॥ ॐ श्रीसाम्बशिवाय नमः ॥ ॥ ॐ श्रीगणेशाय नमः ॥

2223

महर्षि वेदव्यासप्रणीत

श्रीशिवमहापुराण

[प्रथम-खण्ड—पूर्वार्ध]

(विद्येश्वरसंहिता, रुद्रसंहिता—सृष्टिखण्ड, सतीखण्ड, पार्वतीखण्ड, कुमारखण्ड और युद्धखण्ड)

[सचित्र, मूल संस्कृत श्लोक—हिन्दी व्याख्यासहित]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०७६ प्रथम संस्करण ७,०००

❖ मूल्य—₹ ३००
(तीन सौ रुपये)

प्रकाशक एवं मुद्रक—
गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
(गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान)
फोन : (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०, २३३१२५१
web : **gitapress.org** e-mail : **booksales@gitapress.org**

निवेदन

पुराण वाङ्मयमें श्रीशिवमहापुराणका अत्यन्त महिमामय स्थान है। पुराणोंकी परिगणनामें वेदतुल्य, पवित्र और सभी लक्षणोंसे युक्त यह पुराण चौथा है। शिवके उपासक इस पुराणको शैवभागवत मानते हैं। इस ग्रन्थके आदि, मध्य तथा अन्तमें सर्वत्र भूतभावन भगवान् सदाशिवकी महिमाका प्रतिपादन किया गया है। वेद-वेदान्तमें विलसित परमतत्त्व—परमात्माका इस पुराणमें शिव नामसे गान किया गया है।

सन् १९६२ में कल्याणके विशेषांकके रूपमें संक्षिप्त शिवपुराणाङ्कका प्रकाशन हुआ था, जिसमें शिवपुराणकी कथाएँ साररूपमें हिन्दीमें प्रकाशित हुई थीं। भगवान् सदाशिवके प्रेमी पाठकोंका पिछले बहुत वर्षोंसे यह आग्रह था कि मूल शिवमहापुराणका सानुवाद प्रकाशन विशेषांकके रूपमें किया जाय। इस दृष्टिसे मूल शिवमहापुराणके प्रकाशनकी योजना बनायी गयी, परंतु विशेषांककी पृष्ठसंख्या सीमित होनेके कारण चौबीस हजार श्लोकोंके इस बृहत् पुराणका मूलसहित प्रकाशन एक वर्षमें सम्भव नहीं था, अतः यह निर्णय लिया गया कि शिवमहापुराणके मूल श्लोक पुस्तकरूपमें प्रकाशित कर दिये जायँ तथा प्रत्येक श्लोकका अनुवाद श्लोकसंख्यासहित दो वर्षोंमें सर्वसाधारणके लिये विशेषांकके रूपमें प्रकाशित किया जाय। तदनुसार सम्पूर्ण मूल शिवमहापुराण पुस्तकरूपमें प्रकाशित कर दिया गया तथा सन् २०१७ में श्रीशिवमहापुराण पूर्वार्ध (विद्येश्वरसंहिता एवं रुद्रसंहिता)-का तथा सन् २०१८ में इस पुराणके उत्तरार्ध (शतरुद्रसंहितासे वायवीयसंहितातक)-का हिन्दी अनुवाद विशेषांकके रूपमें प्रकाशित किया गया।

प्रतिपाद्य-विषयकी दृष्टिसे शिवमहापुराण अत्यन्त उपयोगी महापुराण है। इसमें भक्ति, ज्ञान, सदाचार, शौचाचार, उपासना, लोकव्यवहार तथा मानवजीवनके परम कल्याणकी अनेक उपयोगी बातें निरूपित हैं। शिवज्ञान, शैवीदीक्षा तथा शैवागमका यह अत्यन्त प्रौढ़ ग्रन्थ है। साधना एवं उपासना-सम्बन्धी अनेकानेक सरल विधियाँ इसमें निरूपित हैं। कथाओंका तो यह आकर ग्रन्थ है। इसकी कथाएँ अत्यन्त मनोरम, रोचक तथा बड़े ही कामकी हैं। मुख्य रूपसे इस पुराणमें देवोंके भी देव महादेव भगवान् साम्बसदाशिवके सकल, निष्कल स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, उनके लीलावतारोंकी कथाएँ, द्वादश ज्योतिर्लिंगोंके आख्यान, शिवरात्रि आदि व्रतोंकी कथाएँ, शिवभक्तोंकी कथाएँ, लिंगरहस्य, लिंगोपासना, पार्थिवलिंग, प्रणव, बिल्व, रुद्राक्ष और भस्म आदिके विषयमें विस्तारसे वर्णन है। यह पुराण उच्चकोटिके सिद्धों, आत्मकल्याणकामी साधकों तथा साधारण आस्तिकजनों—सभीके लिये परम मंगलमय एवं हितकारी है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्यमें तो इस पुराणके अध्ययन एवं मनन तथा इसके उपदेशोंके अनुसार चलनेकी विशेष आवश्यकता प्रतीत होती है। शिवपुराणका पठन-पाठन सच्ची सुख-शान्तिके विस्तारमें परम सहायक सिद्ध हो सकता है। शिवभक्तोंके उसी माँगको देखते हुए २ खण्डोंमें संस्कृत मूल हिन्दी व्याख्याके साथ इसका प्रकाशन किया जा रहा है।

आस्तिकजन इस महापुराणको पढ़कर लाभ उठायें और लोक-परलोकमें सुख-शान्ति तथा मानव-जीवनके परम लक्ष्यको प्राप्त करें, भगवान् सदाशिवसे यही प्रार्थना है।

—राधेश्याम खेमका

॥ श्रीहरि: ॥

श्रीशिवमहापुराण

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

माहात्म्य

विद्येश्वरसंहिता

रुद्रसंहिता

१-सृष्टिखण्ड

२-सतीखण्ड

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

३-पार्वतीखण्ड

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

४-कुमारखण्ड

श्रीशिवमहापुराणनवाहपारायणक्रमः

दिवसाः	विश्रामस्थलानि	अध्याययोगसंख्या
प्रथमेऽहनि	रुद्रसंहितायाः सतीखण्डस्य सप्तमाध्यायपर्यन्तम्	५९
द्वितीयेऽहनि	रुद्रसंहितायाः पार्वतीखण्डस्य पञ्चदशाध्यायपर्यन्तम्	५१
तृतीयेऽहनि	रुद्रसंहितायाः कुमारखण्डस्य दशमाध्यायपर्यन्तम्	५०
चतुर्थेऽहनि	रुद्रसंहितायाः युद्धखण्डस्य एकचत्वारिंशदध्यायपर्यन्तम्	५१
पञ्चमेऽहनि	शतरुद्रसंहितायाः त्रयस्त्रिंशदध्यायपर्यन्तम्	५१
षष्ठेऽहनि	कोटिरुद्रसंहितायाः त्रिचत्वारिंशदध्यायपर्यन्तम्	५२
सप्तमेऽहनि	सम्पूर्णा उमासंहिता	५१
अष्टमेऽहनि	वायवीयसंहितायाः पूर्वखण्डस्य अष्टाविंशाध्यायपर्यन्तम्	५१
नवमेऽहनि	अवशिष्टा वायवीयसंहिता	४८
		४६४

॥ ॐ श्रीसाम्बशिवाय नमः॥ ॥ ॐ श्रीगणेशाय नमः॥

श्रीशिवमहापुराण

माहात्म्य

अथ प्रथमोऽध्यायः

शौनकजीके साधनविषयक प्रश्न करनेपर सूतजीका उन्हें शिवमहापुराणकी महिमा सुनाना

शौनक उवाच

हे हे सूत महाप्राज्ञ सर्वसिद्धान्तवित् प्रभो।
आख्याहि मे कथासारं पुराणानां विशेषतः॥ १

श्रीशौनकजी बोले—हे महाज्ञानी सूतजी! सम्पूर्ण सिद्धान्तोंके ज्ञाता हे प्रभो! मुझसे पुराणोंकी कथाओंके सारतत्त्वका विशेषरूपसे वर्णन कीजिये॥ १॥

सदाचारश्च सद्भक्तिर्विवेको वर्धते कथम्।
स्वविकारनिरासश्च सज्जनैः क्रियते कथम्॥ २

सदाचार, भगवद्भक्ति और विवेककी वृद्धि कैसे होती है तथा साधुपुरुष किस प्रकार अपने काम-क्रोध आदि मानसिक विकारोंका निवारण करते हैं?॥ २॥

जीवाश्चासुरतां प्राप्ताः प्रायो घोरे कलाविह।
तस्य संशोधने किं हि विद्यते परमायनम्॥ ३

इस घोर कलियुगमें जीव प्रायः आसुर स्वभावके हो गये हैं, उस जीवसमुदायको शुद्ध (दैवी सम्पत्तिसे युक्त) बनानेके लिये सर्वश्रेष्ठ उपाय क्या है?॥ ३॥

यदस्ति वस्तु परमं श्रेयसां श्रेय उत्तमम्।
पावनं पावनानां च साधनं तद्वदाधुना॥ ४

आप इस समय मुझे ऐसा कोई शाश्वत साधन बताइये, जो कल्याणकारी वस्तुओंमें भी सबसे उत्कृष्ट एवं परम मंगलकारी हो तथा पवित्र करनेवाले उपायोंमें भी सर्वोत्तम पवित्रकारक उपाय हो॥ ४॥

येन तत्साधनेनाशु शुध्यत्यात्मा विशेषतः।
शिवप्राप्तिर्भवेत्तात सदा निर्मलचेतसः॥ ५

तात! वह साधन ऐसा हो, जिसके अनुष्ठानसे शीघ्र ही अन्तःकरणकी विशेष शुद्धि हो जाय तथा उससे निर्मल चित्तवाले पुरुषको सदाके लिये शिवकी प्राप्ति हो जाय॥ ५॥

सूत उवाच

धन्यस्त्वं मुनिशार्दूल श्रवणप्रीतिलालसः।
अतो विचार्य सुधिया वच्मि शास्त्रं महोत्तमम्॥ ६

सूतजी बोले—मुनिश्रेष्ठ शौनक! आप धन्य हैं; आपके हृदयमें पुराण-कथा सुननेके प्रति विशेष प्रेम एवं लालसा है, इसलिये मैं शुद्ध बुद्धिसे विचारकर परम उत्तम शास्त्रका वर्णन करता हूँ॥ ६॥

सर्वसिद्धान्तनिष्पन्नं भक्त्यादिकविवर्धनम्।
शिवतोषकरं दिव्यं शृणु वत्स रसायनम्॥ ७

वत्स! सम्पूर्ण शास्त्रोंके सिद्धान्तसे सम्पन्न, भक्ति आदिको बढ़ानेवाले, भगवान् शिवको सन्तुष्ट करनेवाले तथा कानोंके लिये रसायनस्वरूप दिव्य पुराणका श्रवण कीजिये॥ ७॥

कालव्यालमहात्रासविध्वंसकरमुत्तमम्।
शैवं पुराणं परमं शिवेनोक्तं पुरा मुने॥ ८

यह उत्तम शिवपुराण कालरूपी सर्पसे प्राप्त होनेवाले महान् त्रास का विनाश करनेवाला है। हे मुने! पूर्वकालमें शिवजीने इसे कहा था। गुरुदेव

सनत्कुमारस्य मुनेरुपदेशात् परादरात्।
व्यासेनोक्तं तु संक्षेपात् कलिजानां हिताय च॥ ९

एतस्मादपरं किञ्चित्पुराणाच्छैवतो मुने।
न विद्यते मनःशुद्ध्यै कलिजानां विशेषतः॥ १०

जन्मान्तरे भवेत् पुण्यं महद्यस्य सुधीमतः।
तस्य प्रीतिर्भवेत्तत्र महाभाग्यवतो मुने॥ ११

एतच्छिवपुराणं हि परमं शास्त्रमुत्तमम्।
शिवरूपं क्षितौ ज्ञेयं सेवनीयं च सर्वथा॥ १२

पठनाच्छ्रवणादस्य भक्तिमान्नरसत्तमः।
सद्यः शिवपदप्राप्तिं लभते सर्वसाधनात्॥ १३

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन काङ्क्षितं पठनं नृभिः।
तथास्य श्रवणं प्रेम्णा सर्वकामफलप्रदम्॥ १४

पुराणश्रवणाच्छम्भोर्निष्पापो जायते नरः।
भुक्त्वा भोगान् सुविपुलान् शिवलोकमवाप्नुयात्॥ १५

राजसूयेन यत्पुण्यमग्निष्टोमशतेन च।
तत् पुण्यं लभते शम्भोः कथाश्रवणमात्रतः॥ १६

ये शृण्वन्ति मुने शैवं पुराणं शास्त्रमुत्तमम्।
ते मनुष्या न मन्तव्या रुद्रा एव न संशयः॥ १७

शृण्वतां तत् पुराणं हि तथा कीर्तयतां च तत्।
पादाम्बुजरजांस्येव तीर्थानि मुनयो विदुः॥ १८

गन्तुं निःश्रेयसं स्थानं येऽभिवाञ्छन्ति देहिनः।
शैवं पुराणममलं भक्त्या शृण्वन्तु ते सदा॥ १९

सदा श्रोतुं यद्यशक्तो भवेत् स मुनिसत्तम।
नियतात्मा प्रतिदिनं शृणुयाद्वा मुहूर्तकम्॥ २०

यदि प्रतिदिनं श्रोतुमशक्तो मानवो भवेत्।
पुण्यमासादिषु मुने शृणुयाच्छिवपुराणकम्॥ २१

व्यासजीने सनत्कुमार मुनिका उपदेश पाकर कलियुगके प्राणियोंके कल्याणके लिये बड़े आदरसे संक्षेपमें इस पुराणका प्रतिपादन किया है॥ ८-९॥

हे मुने! विशेष रूपसे कलियुगके प्राणियोंकी चित्तशुद्धिके लिये इस शिवपुराणके अतिरिक्त कोई अन्य साधन नहीं है॥ १०॥

हे मुने! जिस बुद्धिमान् मनुष्यके पूर्वजन्मके बड़े पुण्य होते हैं, उसी महाभाग्यशाली व्यक्तिकी इस पुराणमें प्रीति होती है॥ ११॥

यह शिवपुराण परम उत्तम शास्त्र है। इसे इस भूतलपर भगवान् शिवका वाङ्मय स्वरूप समझना चाहिये और सब प्रकारसे इसका सेवन करना चाहिये॥ १२॥

इसके पठन और श्रवणसे शिवभक्ति पाकर श्रेष्ठतम स्थितिमें पहुँचा हुआ मनुष्य शीघ्र ही शिवपदको प्राप्त कर लेता है। इसलिये सम्पूर्ण यत्न करके मनुष्योंने इस पुराणके अध्ययनको अभीष्ट साधन माना है और इसका प्रेमपूर्वक श्रवण भी सम्पूर्ण वांछित फलोंको देनेवाला है॥ १३-१४॥

भगवान् शिवके इस पुराणको सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा बड़े-बड़े उत्कृष्ट भोगोंका उपभोग करके [अन्तमें] शिवलोकको प्राप्त कर लेता है॥ १५॥

राजसूययज्ञ और सैकड़ों अग्निष्टोमयज्ञोंसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह भगवान् शिवकी कथाके सुननेमात्रसे प्राप्त हो जाता है॥ १६॥

हे मुने! जो लोग इस श्रेष्ठ शास्त्र शिवपुराणका श्रवण करते हैं, उन्हें मनुष्य नहीं समझना चाहिये; वे रुद्रस्वरूप ही हैं; इसमें सन्देह नहीं है॥ १७॥

इस पुराणका श्रवण और कीर्तन करनेवालोंके चरण-कमलकी धूलिको मुनिगण तीर्थ ही समझते हैं॥ १८॥

जो प्राणी परमपदको प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें सदा भक्तिपूर्वक इस निर्मल शिवपुराणका श्रवण करना चाहिये॥ १९॥

हे मुनिश्रेष्ठ! यदि मनुष्य सदा इसे सुननेमें समर्थ न हो, तो उसे प्रतिदिन स्थिर चित्तसे एक मुहूर्त भी इसको सुनना चाहिये। हे मुने! यदि मनुष्य प्रतिदिन सुननेमें भी अशक्त हो, तो उसे किसी पवित्र महीनेमें इस शिवपुराणका श्रवण करना चाहिये॥ २०-२१॥

मुहूर्तं वा तदर्धं वा तदर्धं वा क्षणं च वा।
ये शृण्वन्ति पुराणं तन्न तेषां दुर्गतिर्भवेत्॥ २२

जो लोग एक मुहूर्त, उसका आधा, उसका भी आधा अथवा क्षणमात्र भी इस पुराणका श्रवण करते हैं, उनकी दुर्गति नहीं होती॥ २२॥

तत्पुराणं च शृण्वानः पुरुषो यो मुनीश्वर।
स निस्तरति संसारं दग्ध्वा कर्ममहाटवीम्॥ २३

हे मुनीश्वर! जो पुरुष इस शिवपुराणकी कथाको सुनता है, वह सुननेवाला पुरुष कर्मरूपी महावनको जलाकर संसारके पार हो जाता है॥ २३॥

यत्पुण्यं सर्वदानेषु सर्वयज्ञेषु वा मुने।
शम्भोः पुराणश्रवणात्तत्फलं निश्चलं भवेत्॥ २४

हे मुने! सभी दानों और सभी यज्ञोंसे जो पुण्य मिलता है, वह फल भगवान् शिवके इस पुराणको सुननेसे निश्चल हो जाता है॥ २४॥

विशेषतः कलौ शैवपुराणश्रवणादृते।
परो धर्मो न पुंसां हि मुक्तिसाधनकृन्मुने॥ २५

हे मुने! विशेषकर इस कलिकालमें तो शिवपुराणके श्रवणके अतिरिक्त मनुष्योंके लिये मुक्तिदायक कोई अन्य श्रेष्ठ साधन नहीं है॥ २५॥

पुराणश्रवणं शम्भोर्नामसङ्कीर्तनं तथा।
कल्पद्रुमफलं सम्यङ् मनुष्याणां न संशयः॥ २६

शिवपुराणका श्रवण और भगवान् शंकरके नामका संकीर्तन—दोनों ही मनुष्योंको कल्पवृक्षके समान सम्यक् फल देनेवाले हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ २६॥

कलौ दुर्मेधसां पुंसां धर्माचारोज्झितात्मनाम्।
हिताय विदधे शम्भुः पुराणाख्यं सुधारसम्॥ २७

कलियुगमें धर्माचरणसे शून्य चित्तवाले दुर्बुद्धि मनुष्योंके उद्धारके लिये भगवान् शिवने अमृतरसस्वरूप शिवपुराणकी उद्भावना की है॥ २७॥

एकोऽजरामरः स्याद्वै पिबन्नेवामृतं पुमान्।
शम्भोः कथामृतं कुर्यात् कुलमेवाजरामरम्॥ २८

अमृतपान करनेसे तो केवल अमृतपान करनेवाला ही मनुष्य अजर-अमर होता है, किंतु भगवान् शिवका यह कथामृत सम्पूर्ण कुलको ही अजर-अमर कर देता है॥ २८॥

सदा सेव्या सदा सेव्या सदा सेव्या विशेषतः।
एतच्छिवपुराणस्य कथा परमपावनी॥ २९

एतच्छिवपुराणस्य कथाश्रवणमात्रतः।
किं ब्रवीमि फलं तस्य शिवश्चित्तं समाश्रयेत्॥ ३०

इस शिवपुराणकी परम पवित्र कथाका विशेष रूपसे सदा ही सेवन करना चाहिये, करना ही चाहिये, करना ही चाहिये। इस शिवपुराणकी कथाके श्रवणका क्या फल कहूँ? इसके श्रवणमात्रसे भगवान् सदाशिव उस प्राणीके हृदयमें विराजमान हो जाते हैं॥ २९-३०॥

चतुर्विंशतिसाहस्रो ग्रन्थोऽयं सप्तसंहितः।
भक्तित्रिकसुसम्पूर्णः शृणुयात्तं परादरात्॥ ३१

यह [शिवपुराण नामक] ग्रन्थ चौबीस हजार श्लोकोंसे युक्त है। इसमें सात संहिताएँ हैं। मनुष्यको चाहिये कि वह भक्ति, ज्ञान और वैराग्यसे भली-भाँति सम्पन्न हो बड़े आदरसे इसका श्रवण करे॥ ३१॥

विद्येश्वरसंहिताद्या द्वितीया रुद्रसंहिता।
तृतीया शतरुद्राख्या कोटिरुद्रा चतुर्थिका॥ ३२

पञ्चम्युमासंहितोक्ता षष्ठी कैलाससंहिता।
सप्तमी वायवीयाख्या सप्तैवं संहिता इह॥ ३३

पहली विद्येश्वरसंहिता, दूसरी रुद्रसंहिता, तीसरी शतरुद्रसंहिता, चौथी कोटिरुद्रसंहिता और पाँचवीं उमासंहिता कही गयी है; छठी कैलाससंहिता और सातवीं वायवीय-संहिता—इस प्रकार इसमें सात संहिताएँ हैं॥ ३२-३३॥

ससप्तसंहितं दिव्यं पुराणं शिवसंज्ञकम्।
वरीवर्ति ब्रह्मतुल्यं सर्वोपरि गतिप्रदम्॥ ३४

सात संहिताओंसे युक्त यह दिव्य शिवपुराण परब्रह्म परमात्माके समान विराजमान है और सबसे उत्कृष्ट गति प्रदान करनेवाला है॥ ३४॥

एतच्छिवपुराणं हि सप्तसंहितमादरात्।
परिपूर्णं पठेद्यस्तु स जीवन्मुक्त उच्यते॥ ३५

जो मनुष्य सात संहिताओंवाले इस शिवपुराणको आदरपूर्वक पूरा पढ़ता है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है॥ ३५॥

पुमानज्ञानतस्तावद् भ्रमतेऽस्मिन्भवे मुने।
यावत्कर्णगतं नास्ति पुराणं शैवमुत्तमम्॥ ३६

हे मुने! जबतक इस उत्तम शिवपुराणको सुननेका सुअवसर नहीं प्राप्त होता, तबतक अज्ञानवश प्राणी इस संसार-चक्रमें भटकता रहता है॥ ३६॥

किं श्रुतैर्बहुभिः शास्त्रैः पुराणैश्च भ्रमावहैः।
शैवं पुराणमेकं हि मुक्तिदानेन गर्जति॥ ३७

भ्रमित कर देनेवाले अनेक शास्त्रों और पुराणोंके श्रवणसे क्या लाभ है, जबकि एक शिवपुराण ही मुक्ति प्रदान करनेके लिये गर्जन कर रहा है॥ ३७॥

एतच्छिवपुराणस्य कथा भवति यद्गृहे।
तीर्थभूतं हि तद् गेहं वसतां पापनाशनम्॥ ३८

जिस घरमें इस शिवपुराणकी कथा होती है, वह घर तीर्थस्वरूप ही है और उसमें निवास करनेवालोंके पाप यह नष्ट कर देता है॥ ३८॥

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
कलां शिवपुराणस्य नार्हन्ति खलु षोडशीम्॥ ३९

हजारों अश्वमेधयज्ञ और सैकड़ों वाजपेययज्ञ शिवपुराणकी सोलहवीं कलाकी भी बराबरी नहीं कर सकते॥ ३९॥

तावत् स प्रोच्यते पापी पापकृन्मुनिसत्तम।
यावच्छिवपुराणं हि न शृणोति सुभक्तितः॥ ४०

हे मुनिश्रेष्ठ! कोई अधम प्राणी जबतक भक्तिपूर्वक शिवपुराणका श्रवण नहीं करता, तभीतक उसे पापी कहा जा सकता है॥ ४०॥

गङ्गाद्याः पुण्यनद्यश्च सप्तपुर्यो गया तथा।
एतच्छिवपुराणस्य समतां यान्ति न क्वचित्॥ ४१

गंगा आदि पवित्र नदियाँ, [मुक्तिदायिनी] सप्त पुरियाँ तथा गयादि तीर्थ इस शिवपुराणकी समता कभी नहीं कर सकते॥ ४१॥

नित्यं शिवपुराणस्य श्लोकं श्लोकार्धमेव च।
स्वमुखेन पठेद्भक्त्या यदीच्छेत् परमां गतिम्॥ ४२

जिसे परमगतिकी कामना हो, उसे नित्य शिवपुराणके एक श्लोक अथवा आधे श्लोकका ही स्वयं भक्तिपूर्वक पाठ करना चाहिये॥ ४२॥

एतच्छिवपुराणं यो वाचयेदर्थतोऽनिशम्।
पठेद्वा प्रीतितो नित्यं स पुण्यात्मा न संशयः॥ ४३

जो निरन्तर अर्थानुसन्धानपूर्वक इस शिवपुराणको बाँचता है अथवा नित्य प्रेमपूर्वक इसका पाठमात्र करता है, वह पुण्यात्मा है, इसमें संशय नहीं है॥ ४३॥

अन्तकाले हि यश्चैनं शृणुयाद्भक्तितः सुधीः।
सुप्रसन्नो महेशानस्तस्मै यच्छति स्वं पदम्॥ ४४

जो उत्तम बुद्धिवाला पुरुष अन्तकालमें भक्तिपूर्वक इस पुराणको सुनता है, उसपर अत्यन्त प्रसन्न हुए भगवान् महेश्वर उसे अपना पद (धाम) प्रदान करते हैं॥ ४४॥

एतच्छिवपुराणं यः पूजयेन्नित्यमादरात्।
स भुक्त्वेहाखिलान् कामानन्ते शिवपदं लभेत्॥ ४५

जो प्रतिदिन आदरपूर्वक इस शिवपुराणका पूजन करता है, वह इस संसारमें सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर अन्तमें भगवान् शिवके पदको प्राप्त कर लेता है॥ ४५॥

एतच्छिवपुराणस्य कुर्वन्नित्यमतन्द्रितः।
पट्टवस्त्रादिना सम्यक् सत्कारं स सुखी सदा॥ ४६

जो प्रतिदिन आलस्यरहित हो रेशमी वस्त्र आदिके वेष्टनसे इस शिवपुराणका सत्कार करता है, वह सदा सुखी होता है॥ ४६॥

शैवं पुराणममलं शैवसर्वस्वमादरात्।
सेवनीयं प्रयत्नेन परत्रेह सुखेप्सुना॥ ४७

यह शिवपुराण निर्मल तथा शैवोंका सर्वस्व है; इहलोक और परलोकमें सुख चाहनेवालेको आदरके साथ प्रयत्नपूर्वक इसका सेवन करना चाहिये॥ ४७॥

चतुर्वर्गप्रदं शैवं पुराणममलं परम्।
श्रोतव्यं सर्वदा प्रीत्या पठितव्यं विशेषतः॥ ४८

यह निर्मल एवं उत्तम शिवपुराण धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है, अतः सदा प्रेमपूर्वक इसका श्रवण एवं विशेष रूपसे पाठ करना चाहिये॥ ४८॥

वेदेतिहासशास्त्रेषु परं श्रेयस्करं महत्।
शैवं पुराणं विज्ञेयं सर्वथा हि मुमुक्षुभिः॥ ४९

वेद, इतिहास तथा अन्य शास्त्रोंमें यह शिवपुराण विशेष कल्याणकारी है—ऐसा मुमुक्षुजनोंको समझना चाहिये॥ ४९॥

शैवं पुराणमिदमात्मविदां वरिष्ठं
सेव्यं सदा परमवस्तु सता समर्च्यम्।
तापत्रयाभिशमनं सुखदं सदैव
प्राणप्रियं विधिहरीशमुखामराणाम्॥ ५०

यह शिवपुराण आत्मतत्त्वज्ञोंके लिये सदा सेवनीय है, सत्पुरुषोंके लिये पूजनीय है, तीनों प्रकारके तापोंका शमन करनेवाला है, सुख प्रदान करनेवाला है तथा ब्रह्मा-विष्णु-महेशादि देवताओंको प्राणोंके समान प्रिय है॥ ५०॥

वन्दे शिवपुराणं हि सर्वदाहं प्रसन्नधीः।
शिवः प्रसन्नतां यायाद् दद्यात्स्वपदयो रतिम्॥ ५१

ऐसे शिवपुराणको मैं प्रसन्नचित्तसे सदा वन्दन करता हूँ। भगवान् शंकर मुझपर प्रसन्न हों और अपने चरणकमलोंकी भक्ति मुझे प्रदान करें॥ ५१॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे शिवपुराणमाहात्म्ये तन्महिमवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणके अन्तर्गत शिवपुराणमाहात्म्यमें उसकी महिमावर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

शिवपुराणके श्रवणसे देवराजको शिवलोककी प्राप्ति

शौनक उवाच

सूत सूत महाभाग धन्यस्त्वं परमार्थवित्।
अद्भुतेयं कथा दिव्या श्राविता कृपया हि नः॥ १

शौनकजी बोले—हे महाभाग सूतजी! आप धन्य हैं, परमार्थतत्त्वके ज्ञाता हैं, आपने कृपा करके हमलोगोंको यह बड़ी अद्भुत एवं दिव्य कथा सुनायी है॥ १॥

अघौघविध्वंसकरी मनःशुद्धिविधायिनी।
शिवसन्तोषजननी कथेयं नः श्रुताद्भुता॥ २

हमने यह पापनाशिनी, मनको पवित्र करनेवाली और भगवान् शिवको प्रसन्न करनेवाली अद्भुत कथा सुनी॥ २॥

एतत्कथासमानं न भुवि किञ्चित् परात्परम्।
निश्चयेनेति विज्ञातमस्माभिः कृपया तव॥ ३

भूतलपर इस कथाके समान कल्याणका सर्वश्रेष्ठ साधन दूसरा कोई नहीं है, यह बात हमने आज आपकी कृपासे निश्चयपूर्वक समझ ली। हे सूतजी!

के के विशुध्यन्त्यनया कथया पापिनः कलौ।
वद तान् कृपया सूत कृतार्थं भुवनं कुरु॥ ४

सूत उवाच

ये मानवाः पापकृतो दुराचाररताः खलाः।
कामादिनिरता नित्यं तेऽपि शुध्यन्त्यनेन वै॥ ५

ज्ञानयज्ञः परोऽयं वै भुक्तिमुक्तिप्रदः सदा।
शोधनः सर्वपापानां शिवसन्तोषकारकः॥ ६

तृष्णाकुलाः सत्यहीनाः पितृमातृविदूषकाः।
दाम्भिका हिंसका ये च तेऽपि शुध्यन्त्यनेन वै॥ ७

स्ववर्णाश्रमधर्मेभ्यो वर्जिता मत्सरान्विताः।
ज्ञानयज्ञेन तेऽनेन सम्पुनन्ति कलावपि॥ ८

छलच्छद्मकरा ये च ये च क्रूराः सुनिर्दयाः।
ज्ञानयज्ञेन तेऽनेन सम्पुनन्ति कलावपि॥ ९

ब्रह्मस्वपुष्टाः सततं व्यभिचाररताश्च ये।
ज्ञानयज्ञेन तेऽनेन सम्पुनन्ति कलावपि॥ १०

सदा पापरता ये च ये शठाश्च दुराशयाः।
ज्ञानयज्ञेन तेऽनेन सम्पुनन्ति कलावपि॥ ११

मलिना दुर्धियोऽशान्ता देवताद्रव्यभोजिनः।
ज्ञानयज्ञेन तेऽनेन सम्पुनन्ति कलावपि॥ १२

पुराणस्यास्य पुण्यं सन्महापातकनाशनम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं चैव शिवसन्तोषहेतुकम्॥ १३

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
यस्य श्रवणमात्रेण पापहानिर्भवत्यलम्॥ १४

आसीत् किरातनगरे ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः।
दरिद्रो रसविक्रेता वेदधर्मपराङ्मुखः॥ १५

सन्ध्यास्नानपरिभ्रष्टो वैश्यवृत्तिपरायणः।
देवराज इति ख्यातो विश्वस्तजनवञ्चकः॥ १६

कलियुगमें इस कथाके द्वारा कौन-कौन-से पापी शुद्ध होते हैं? उन्हें कृपापूर्वक बताइये और इस जगत्‌को कृतार्थ कीजिये॥ ३-४॥

सूतजी बोले—हे मुने! जो मनुष्य पापी, दुराचारी, खल तथा काम-क्रोध आदिमें निरन्तर डूबे रहनेवाले हैं, वे भी इस पुराणसे अवश्य शुद्ध हो जाते हैं॥ ५॥

यह कथा वास्तवमें उत्तम ज्ञानयज्ञ है, जो सदा सांसारिक भोग और मोक्षको देनेवाला है, सभी पापोंको नष्ट करनेवाला है और भगवान् शिवको प्रसन्न करनेवाला है। जो अत्यन्त लालची, सत्यविहीन, अपने माता-पितासे द्वेष करनेवाले, पाखण्डी तथा हिंसक वृत्तिके हैं; वे भी इस ज्ञानयज्ञसे शुद्ध हो जाते हैं। अपने वर्णाश्रमधर्मका पालन न करनेवाले और ईर्ष्याग्रस्त लोग भी कलिकालमें इस ज्ञानयज्ञके द्वारा पवित्र हो जाते हैं॥ ६—८॥

जो लोग छल-कपट करनेवाले, क्रूर स्वभाववाले और अत्यन्त निर्दयी हैं, कलियुगमें वे भी इस ज्ञानयज्ञसे शुद्ध हो जाते हैं। ब्राह्मणके धनसे पलनेवाले तथा निरन्तर व्यभिचारपरायण जो लोग हैं, वे भी इस ज्ञानयज्ञसे इस कलिकालमें भी पवित्र हो जाते हैं। जो मनुष्य सदा पापकर्मोंमें लिप्त रहते हैं, शठ हैं और अत्यन्त दूषित विचारवाले हैं, वे कलियुगमें भी इस ज्ञानयज्ञसे निर्मल हो जाते हैं। दुश्चरित्र, दुर्बुद्धि, उद्विग्न चित्तवाले और देवताओंके द्रव्यका उपभोग करनेवाले पापीजन भी कलिकालमें भी इस ज्ञानयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं॥ ९—१२॥

इस पुराणके श्रवणका पुण्य बड़े-बड़े पापोंको नष्ट करता है, सांसारिक भोग तथा मोक्ष प्रदान करता है और भगवान् शंकरको प्रसन्न करता है॥ १३॥

इस सम्बन्धमें मुनिगण इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं, जिसके श्रवणमात्रसे पापोंका पूर्णतया नाश हो जाता है॥ १४॥

पहलेकी बात है—किरातनगरमें एक ब्राह्मण रहता था, जो अज्ञानी, दरिद्र, रस बेचनेवाला तथा वैदिक धर्मसे विमुख था। वह स्नान-सन्ध्या आदि कर्मोंसे भ्रष्ट हो गया था और वैश्यवृत्तिमें तत्पर रहता था। उसका नाम था देवराज। वह अपने ऊपर

स विप्रान् क्षत्रियान् वैश्यान् शूद्रांश्चापि तथापरान्।
हत्वा नानामिषेणैव तत्तद्धनमपाहरत्॥ १७

अधर्माद् बहुवित्तानि पश्चात्तेनार्जितानि वै।
न धर्माय धनं तस्य स्वल्पञ्चापीह पापिनः॥ १८

विश्वास करनेवाले लोगोंको ठगा करता था। उसने ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों तथा दूसरोंको भी अनेक बहानोंसे मारकर उनका धन हड़प लिया था। बादमें उसने अधर्मसे बहुत सारा धन अर्जित कर लिया, परंतु उस पापीका थोड़ा-सा भी धन कभी धर्मके काममें नहीं लगा॥ १५—१८॥

एकदैकतडागे स स्नातुं यातो महीसुरः।
वेश्यां शोभावतीं नाम दृष्ट्वा तत्रातिविह्वलः॥ १९

स्ववशं धनिनं विप्रं ज्ञात्वा हृष्टाथ सुन्दरी।
वार्तालापेन तच्चित्तं प्रीतिमत्समजायत॥ २०

स्त्रियं कर्तुं स तां मेने पतिं कर्तुं च सा तथा।
एवं कामवशौ भूत्वा बहुकालं विजह्रतुः॥ २१

एक दिन वह ब्राह्मण एक तालाबपर नहाने गया। वहाँ शोभावती नामकी एक वेश्याको देखकर वह अत्यन्त मोहित हो गया। वह सुन्दरी भी उस धनी ब्राह्मणको अपने वशीभूत हुआ जानकर प्रसन्न हुई। आपसमें वार्तालापसे उनमें प्रीति उत्पन्न हो गयी। उस ब्राह्मणने उस वेश्याको पत्नी बनाना तथा उस वेश्याने उसे पति बनाना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार कामवश होकर वे दोनों बहुत समयतक विहार करते रहे॥ १९—२१॥

आसने शयने पाने भोजने क्रीडने तथा।
दम्पतीव सदा द्वौ तु ववृताते परस्परम्॥ २२

मात्रा पित्रा तथा पत्न्या वारितोऽपि पुनः पुनः।
नामन्यत वचस्तेषां पापवृत्तिपरायणः॥ २३

बैठने, सोने, खाने-पीने तथा क्रीड़ामें वे दोनों निरन्तर पति-पत्नीकी तरह व्यवहार करने लगे। अपने माता-पिता तथा पत्नीके बार-बार रोकनेपर भी पापकृत्यमें संलग्न वह ब्राह्मण उनकी बात नहीं मानता था॥ २२-२३॥

एकदेर्ष्यावशाद् रात्रौ मातरं पितरं वधूम्।
प्रसुप्तान् न्यवधीद् दुष्टो धनं तेषां तथाहरत्॥ २४

आत्मनीनं धनं यच्च पित्रादीनां तथा धनम्।
वेश्यायै दत्तवान् सर्वं कामी तद्गतमानसः॥ २५

सोऽभक्ष्यभक्षकः पापी मदिरापानलालसः।
एकपात्रे सदाभौक्षीत् सवेश्यो ब्राह्मणाधमः॥ २६

एक दिन रात्रिमें उस दुष्टने ईर्ष्यावश अपने सोये हुए माता-पिता और पत्नीको मार डाला और उनका सारा धन हर लिया। वेश्यामें आसक्त चित्तवाले उस कामीने अपना और पिता आदिका सारा धन उस वेश्याको दे दिया। वह पापी अभक्ष्य-भक्षण तथा मद्यपान करने लगा और वह नीच ब्राह्मण उस वेश्याके साथ एक ही पात्रमें सदा जूठा भोजन करने लगा॥ २४—२६॥

कदाचिद्दैवयोगेन प्रतिष्ठानमुपागतः।
शिवालयं ददर्शासौ तत्र साधुजनावृतम्॥ २७

एक दिन घूमता-घामता वह दैवयोगसे प्रतिष्ठानपुर (झूँसी-प्रयाग)-में जा पहुँचा। वहाँ उसने एक शिवालय देखा, जहाँ बहुतसे साधु-महात्मा एकत्र हुए थे॥ २७॥

स्थित्वा तत्र च विप्रोऽसौ ज्वरेणातिप्रपीडितः।
शुश्राव सततं शैवीं कथां विप्रमुखोद्गताम्॥ २८

देवराज उस शिवालयमें ठहर गया और वहाँ उस ब्राह्मणको ज्वर आ गया। उस ज्वरसे उसको बड़ी पीड़ा होने लगी। वहाँ एक ब्राह्मणदेवता शिवपुराणकी कथा सुना रहे थे। ज्वरमें पड़ा हुआ देवराज ब्राह्मणके मुखारविन्दसे निकली हुई उस शिवकथाको निरन्तर सुनता रहा॥ २८॥

देवराजश्च मासान्ते ज्वरेणापीडितो मृतः।
बद्धो यमभटैः पाशैर्नीतो यमपुरं बलात्॥ २९

एक मासके बाद वह ज्वरसे अत्यन्त पीड़ित होकर चल बसा। यमराजके दूत आये और उसे पाशोंसे बाँधकर बलपूर्वक यमपुरीमें ले गये॥ २९॥

तावच्छिवगणाः शुभ्रास्त्रिशूलाञ्चितपाणयः।
भस्मभासितसर्वाङ्गा रुद्राक्षाञ्चितविग्रहाः॥ ३०

शिवलोकात् समागत्य क्रुद्धा यमपुरीं ययुः।
ताडयित्वा तु तद्दूतांस्तर्जयित्वा पुनः पुनः॥ ३१

देवराजं समामोच्य विमाने परमाद्भुते।
उपवेश्य यदा दूताः कैलासं गन्तुमुत्सुकाः॥ ३२

तदा यमपुरीमध्ये महाकोलाहलोऽभवत्।

इतनेमें ही शिवलोकसे भगवान् शिवके पार्षदगण आ गये। उनके गौर अंग कर्पूरके समान उज्ज्वल थे, हाथ त्रिशूलसे सुशोभित हो रहे थे, उनके सम्पूर्ण अंग भस्मसे उद्भासित थे और रुद्राक्षकी मालाएँ उनके शरीरकी शोभा बढ़ा रही थीं। वे सब-के-सब क्रोध करते हुए यमपुरीमें गये और यमराजके दूतोंको मार-पीटकर, बारम्बार धमकाकर उन्होंने देवराजको उनके चंगुलसे छुड़ा लिया और अत्यन्त अद्भुत विमानपर बिठाकर जब वे शिवदूत कैलास जानेको उद्यत हुए, उस समय यमपुरीमें बड़ा भारी कोलाहल मच गया॥ ३०—३२½॥

धर्मराजस्तु तं श्रुत्वा स्वालयाद् बहिरागमत्॥ ३३

दृष्ट्वाथ चतुरो दूतान् साक्षाद् रुद्रानिवापरान्।
पूजयामास धर्मज्ञो धर्मराजो यथाविधि॥ ३४

उस कोलाहलको सुनकर धर्मराज अपने भवनसे बाहर आये। साक्षात् दूसरे रुद्रोंके समान प्रतीत होनेवाले उन चारों दूतोंको देखकर धर्मज्ञ धर्मराजने उनका विधिपूर्वक पूजन किया॥ ३३-३४॥

ज्ञानेन चक्षुषा सर्वं वृत्तान्तं ज्ञातवान् यमः।
न भयात् पृष्टवान् किञ्चिच्छम्भोर्दूतान् महात्मनः॥ ३५

यमने ज्ञानदृष्टिसे देखकर सारा वृत्तान्त जान लिया, उन्होंने भयके कारण भगवान् शिवके उन महात्मा दूतोंसे कोई बात नहीं पूछी॥ ३५॥

पूजिताः प्रार्थितास्ते वै कैलासमगमंस्तदा।
ददुः शिवाय साम्बाय तं दयावारिराशये॥ ३६

यमराजसे पूजित तथा प्रार्थित होकर वे शिवदूत कैलासको चले गये और उन्होंने उस ब्राह्मणको दयासागर साम्ब शिवको दे दिया॥ ३६॥

धन्या शिवपुराणस्य कथा परमपावनी।
यस्याः श्रवणमात्रेण पापीयानपि मुक्तिभाक्॥ ३७
सदाशिवमहास्थानं परं धाम परं पदम्।
यदाहुर्वेदविद्वांसः सर्वलोकोपरि स्थितम्॥ ३८
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा अन्येऽपि प्राणिनः।
हिंसिता धनलोभेन बहवो येन पापिना॥ ३९
मातृपितृवधूहन्ता वेश्यागामी च मद्यपः।
देवराजो द्विजस्तत्र गत्वा मुक्तोऽभवत् क्षणात्॥ ४०

शिवपुराणकी यह परम पवित्र कथा धन्य है, जिसके सुननेसे पापीजन भी मुक्तिके योग्य बन जाते हैं। भगवान् सदाशिवके परमधामको वेदज्ञ सभी लोकोंमें सर्वश्रेष्ठ बताते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य प्राणी; यहाँतक कि जिस पापीने धनके लोभसे अनेक लोगोंकी हत्या की तथा अपने माता-पिता और पत्नीको भी मार डाला; वह वेश्यागामी, शराबी ब्राह्मण देवराज भी इस कथाके प्रभावसे भगवान् शिवके परमधामको प्राप्तकर तत्क्षण मुक्त हो गया॥ ३७—४०॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे शिवपुराणमाहात्म्ये देवराजमुक्तिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणके अन्तर्गत शिवपुराणमाहात्म्यमें देवराजमुक्तिवर्णन नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

चंचुलाका पापसे भय एवं संसारसे वैराग्य

शौनक उवाच

सूत सूत महाभाग सर्वज्ञोऽसि महामते।
त्वत्प्रसादात् कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं पुनः पुनः॥ १

इतिहासमिमं श्रुत्वा मनो मेऽतीव मोदते।
अन्यामपि कथां शम्भोर्वद प्रेमविवर्धिनीम्॥ २

नामृतं पिबतां लोके मुक्तिः क्वापि सभाज्यते।
शम्भोः कथासुधापानं प्रत्यक्षं मुक्तिदायकम्॥ ३

धन्या धन्या कथा शम्भोस्त्वं धन्यो धन्य एव च।
यदाकर्णनमात्रेण शिवलोकं व्रजेन्नरः॥ ४

शौनकजी बोले—हे महाभाग सूतजी! आप सर्वज्ञ हैं। हे महामते! आपके कृपाप्रसादसे मैं बारम्बार कृतार्थ हुआ। इस इतिहासको सुनकर मेरा मन अत्यन्त आनन्दमें निमग्न हो रहा है। अतः अब भगवान् शिवमें प्रेम बढ़ानेवाली शिवसम्बन्धिनी दूसरी कथाको भी कहिये॥ १-२॥

अमृत पीनेवालोंको लोकमें कहीं मुक्ति नहीं प्राप्त होती है, किंतु भगवान् शंकरके कथामृतका पान तो प्रत्यक्ष ही मुक्ति देनेवाला है। सदाशिवकी जिस कथाके सुननेमात्रसे मनुष्य शिवलोक प्राप्त कर लेता है, वह कथा धन्य है, धन्य है और कथाका श्रवण करानेवाले आप भी धन्य हैं, धन्य हैं॥ ३-४॥

सूत उवाच

शृणु शौनक वक्ष्यामि त्वदग्रे गुह्यमप्युत।
यतस्त्वं शिवभक्तानामग्रणीर्वेदवित्तमः॥ ५

समुद्रनिकटे देशे ग्रामो बाष्कलसंज्ञकः।
वसन्ति यत्र पापिष्ठा वेदधर्मोज्झिता जनाः॥ ६

दुष्टा दुर्विषयात्मानो निर्दैवा जिह्मवृत्तयः।
कृषीवलाः शस्त्रधराः परस्त्रीभोगिनः खलाः॥ ७

ज्ञानवैराग्यसद्धर्मं न जानन्ति परं हि ते।
कुकथाश्रवणाढ्येषु निरताः पशुबुद्धयः॥ ८

अन्ये वर्णाश्च कुधियः स्वधर्मविमुखाः खलाः।
कुकर्मनिरता नित्यं सदा विषयिणश्च ते॥ ९

स्त्रियः सर्वाश्च कुटिलाः स्वैरिण्यः पापलालसाः।
कुधियो व्यभिचारिण्यः सद्वृत्ताचारवर्जिताः॥ १०

सूतजी बोले—हे शौनक! सुनिये, मैं आपके सामने गोपनीय कथावस्तुका भी वर्णन करूँगा; क्योंकि आप शिवभक्तोंमें अग्रगण्य तथा वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। समुद्रके निकटवर्ती प्रदेशमें एक बाष्कल नामक ग्राम है, जहाँ वैदिक धर्मसे विमुख महापापी द्विज निवास करते हैं। वे सब-के-सब बड़े दुष्ट हैं, उनका मन दूषित विषयभोगोंमें ही लगा रहता है। वे न देवताओंपर विश्वास करते हैं न भाग्यपर; वे सभी कुटिल वृत्तिवाले हैं। किसानी करते और भाँति-भाँतिके घातक अस्त्र-शस्त्र रखते हैं। वे परस्त्रीगमन करनेवाले और खल हैं। ज्ञान, वैराग्य तथा सद्धर्मको वे बिलकुल नहीं जानते हैं। वे सभी पशुबुद्धिवाले हैं और सदा दूषित बातोंको सुननेमें संलग्न रहते हैं॥ ५—८॥

(जहाँके द्विज ऐसे हों, वहाँके अन्य वर्णोंके विषयमें क्या कहा जाय!) अन्य वर्णोंके लोग भी उन्हींकी भाँति कुत्सित विचार रखनेवाले, स्वधर्मविमुख एवं खल हैं; वे सदा कुकर्ममें लगे रहते हैं और नित्य विषयभोगोंमें ही डूबे रहते हैं॥ ९॥

वहाँकी सब स्त्रियाँ भी कुटिल स्वभावकी, स्वेच्छाचारिणी, पापासक्त, कुत्सित विचारवाली और व्यभिचारिणी हैं। वे सद्व्यवहार तथा सदाचारसे सर्वथा शून्य हैं॥ १०॥

एवं कुजनसंवासे ग्रामे बाष्कलसंज्ञिते।
तत्रैको बिन्दुगो नाम विप्र आसीन्महाधमः॥ ११

कुजनोंके निवासस्थान उस बाष्कल नामक ग्राममें किसी समय एक बिन्दुग नामधारी ब्राह्मण रहता था, वह बड़ा अधम था॥ ११॥

स दुरात्मा महापापी सुदारोऽपि कुमार्गगः।
वेश्यापतिर्बभूवाथ कामाकुलितमानसः॥ १२

वह दुरात्मा और महापापी था। यद्यपि उसकी स्त्री बड़ी सुन्दर थी, तो भी वह कुमार्गपर ही चलता था। कामवासनासे कलुषितचित्त वह वेश्यागामी था॥ १२॥

स्वपत्नीं चञ्चुलां नाम हित्वा नित्यं सुधर्मिणीम्।
रेमे स वेश्यया दुष्टः स्मरबाणप्रपीडितः॥ १३

उसकी पत्नीका नाम चंचुला था, वह सदा उत्तम धर्मके पालनमें लगी रहती थी, तो भी उसे छोड़कर वह दुष्ट ब्राह्मण कामासक्त होकर वेश्यागामी हो गया था॥ १३॥

एवं कालो व्यतीयाय महांस्तस्य कुकर्मिणः।
सा स्वधर्मभयात् क्लेशात् स्मरार्तापि च चञ्चुला॥ १४

अथ तस्याङ्गना सापि प्ररूढनवयौवना।
अविषह्यस्मरावेशा स्वधर्माद्विरराम ह॥ १५

इस तरह कुकर्ममें लगे हुए उस बिन्दुगके बहुत वर्ष व्यतीत हो गये। उसकी स्त्री चंचुला कामसे पीड़ित होनेपर भी स्वधर्मनाशके भयसे क्लेश सहकर भी दीर्घकालतक धर्मसे भ्रष्ट नहीं हुई। परंतु दुराचारी पतिके आचरणसे प्रभावित होनेके कारण कामपीड़ित हो आगे चलकर वह स्त्री भी दुराचारिणी हो गयी॥ १४-१५॥

जारेण सङ्गता रात्रौ रेमे पापेन गुप्ततः।
पतिदृष्टिं वञ्चयित्वा भ्रष्टसत्त्वा कुमार्गगा॥ १६

भ्रष्ट चरित्रवाली वह कुमार्गगामिनी अपने पतिकी दृष्टि बचाकर रात्रिमें चोरी-छिपे अन्य पापी जार पुरुषके साथ रमण करने लगी॥ १६॥

कदाचित्तां दुराचारां स्वपत्नीं चञ्चुलां मुने।
जारेण सङ्गतां रात्रौ ददर्श स्मरविह्वलाम्॥ १७

हे मुने! एक बार उस ब्राह्मणने अपनी उस दुराचारिणी पत्नी चंचुलाको कामासक्त हो परपुरुषके साथ रात्रिमें संसर्गरत देख लिया॥ १७॥

दृष्ट्वा तां दूषितां पत्नीं कुकर्मासक्तमानसाम्।
जारेण सङ्गतां रात्रौ क्रोधाद् दुद्राव वेगतः॥ १८

उस दुष्ट तथा दुराचारमें आसक्त मनवाली पत्नीको रातमें परपुरुषके साथ व्यभिचाररत देखकर वह क्रोधपूर्वक वेगसे दौड़ा॥ १८॥

तमागतं गृहे दुष्टमाज्ञाय बिन्दुगं खलः।
पलायितो द्रुतं जारो वेगतश्छद्मवान् स वै॥ १९

उस दुष्ट बिन्दुगको घरमें आया जानकर वह कपटी व्यभिचारी तेजीसे भाग गया॥ १९॥

अथ स बिन्दुगः पत्नीं गृहीत्वा सुदुराशयः।
मुष्टिबन्धेन सन्तर्ज्य पुनः पुनरताडयत्॥ २०

तब वह दुष्टात्मा बिन्दुग अपनी पत्नीको पकड़कर उसे डाँटता हुआ मुक्कोंसे बार-बार पीटने लगा॥ २०॥

सा नारी ताडिता भर्त्रा चञ्चुला स्वैरिणी खला।
कुपिता निर्भया प्राह स्वपतिं बिन्दुगं खलम्॥ २१

वह व्यभिचारिणी दुष्टा नारी चंचुला पीटी जानेपर कुपित होकर निर्भयतापूर्वक अपने दुष्ट पति बिन्दुगसे कहने लगी॥ २१॥

चञ्चुलोवाच

भवान् प्रतिदिनं कामं रमते वेश्यया कुधीः।
मां विहाय स्वपत्नीं च युवतीं पतिसेविनीम्॥ २२

चंचुला बोली—मुझ पतिपरायणा युवती पत्नीको छोड़कर आप कुबुद्धिवश प्रतिदिन वेश्याके साथ इच्छानुसार रमण करते हैं। आप ही बतायें कि रूपवती तथा कामासक्त चित्तवाली मुझ युवतीकी

रूपवत्या युवत्याश्च कामाकुलितचेतसः।
विना पतिविहारं स्यात् का गतिर्मे भवान् वदेत्॥ २३
अहं महारूपवती नवयौवनविह्वला।
कथं सहे कामदुःखं तव सङ्गं विनार्तधीः॥ २४

पतिसंसर्गके बिना क्या गति होती होगी? मैं अत्यन्त सुन्दर हूँ तथा नवयौवनसे उन्मत्त हूँ। आपके संसर्गके बिना व्यथितचित्तवाली मैं कामजन्य दुःखको कैसे सह सकती हूँ?॥ २२—२४॥

सूत उवाच

इत्युक्तः स तया मूर्खो मूढधीर्ब्राह्मणोऽधमः।
प्रोवाच बिन्दुगः पापी स्वधर्मविमुखः खलः॥ २५

सूतजी बोले—उस स्त्रीके इस प्रकार कहनेपर वह मूढ़बुद्धि मूर्ख ब्राह्मणाधम स्वधर्मविमुख दुष्ट पापी बिन्दुग कहने लगा—॥ २५॥

बिन्दुग उवाच

सत्यमेतत्त्वयोक्तं हि कामव्याकुलचेतसा।
हितं वक्ष्यामि तस्मात्ते शृणु कान्ते भयं त्यज॥ २६
जारैर्विहर नित्यं त्वं चेतसा निर्भयेन वै।
धनमाकर्ष तेभ्यो हि दत्त्वा तेभ्यः परां रतिम्॥ २७
तद्धनं देहि सर्वं मे वेश्यासंसक्तचेतसः।
महत्स्वार्थं भवेन्नूनं तवापि च ममापि च॥ २८

बिन्दुग बोला—कामसे व्याकुलचित्त होकर तुमने यह सत्य ही कहा है। हे प्रिये! तुम भय त्याग दो और मैं जो तुमसे हितकी बात कहता हूँ, उसे सुनो। तुम निर्भय होकर नित्य परपुरुषोंके साथ संसर्ग करो। उन्हें सन्तुष्ट करके उनसे धन खींचो। वह सारा धन वेश्याके प्रति आसक्त मनवाले मुझको दे दिया करो। इससे तुम्हारा और मेरा दोनोंका ही स्वार्थ सिद्ध हो जायगा॥ २६—२८॥

सूत उवाच

इति भर्तृवचः श्रुत्वा चञ्चुला तद्वधूश्च सा।
तथेति भर्तृवचनं प्रतिजग्राह हृष्टधीः॥ २९
कृत्वैवं समयं तौ वै दम्पती दुष्टमानसौ।
कुकर्मनिरतौ जातौ निर्भयेन कुचेतसा॥ ३०

सूतजी बोले—पतिका यह वचन सुनकर उसकी पत्नी चंचुलाने प्रसन्न होकर उसकी कही बात मान ली। उन दोनों दुराचारी पति-पत्नीने इस प्रकार समझौता कर लिया तथा वे दोनों निर्भय चित्तसे कुकर्ममें लीन हो गये॥ २९-३०॥

एवं तयोस्तु दम्पत्योर्दुराचारप्रवृत्तयोः।
महान् कालो व्यतीयाय निष्फलो मूढचेतसोः॥ ३१

इस तरह दुराचारमें डूबे हुए उन मूढ़ चित्तवाले पति-पत्नीका बहुत-सा समय व्यर्थ बीत गया॥ ३१॥

अथ विप्रः स कुमतिर्बिन्दुगो वृषलीपतिः।
कालेन निधनं प्राप्तो जगाम नरकं खलः॥ ३२
भुक्त्वा नरकदुःखानि बह्वहानि स मूढधीः।
विन्ध्येऽभवत् पिशाचो हि गिरौ पापी भयङ्करः॥ ३३

तदनन्तर शूद्रजातीय वेश्याका पति बना हुआ वह दूषित बुद्धिवाला दुष्ट ब्राह्मण बिन्दुग समयानुसार मृत्युको प्राप्त हो नरकमें जा पड़ा। बहुत दिनोंतक नरकके दुःख भोगकर वह मूढ़बुद्धि पापी विन्ध्यपर्वतपर भयंकर पिशाच हुआ॥ ३२-३३॥

मृते भर्तरि तस्मिन्वै दुराचारेऽथ बिन्दुगे।
उवास स्वगृहे पुत्रैश्चिरकालं विमूढधीः॥ ३४

इधर, उस दुराचारी पति बिन्दुगके मर जानेपर वह मूढ़हृदया चंचुला बहुत समयतक पुत्रोंके साथ अपने घरमें ही रही॥ ३४॥

एवं विहरती जारैः सा नारी चञ्चुलाह्वया।
आसीत् कामरता प्रीता किञ्चिदुत्क्रान्तयौवना॥ ३५

इस प्रकार प्रेमपूर्वक कामासक्त होकर जारोंके साथ विहार करती हुई उस चंचुला नामक स्त्रीका कुछ-कुछ यौवन समयके साथ ढलने लगा॥ ३५॥

एकदा दैवयोगेन सम्प्राप्ते पुण्यपर्वणि।
सा नारी बन्धुभिः सार्धं गोकर्णं क्षेत्रमाययौ॥ ३६
प्रसङ्गात् सा तदा गत्वा कस्मिंश्चित् तीर्थपाथसि।
सस्नौ सामान्यतो यत्र तत्र बभ्राम बन्धुभिः॥ ३७

एक दिन दैवयोगसे किसी पुण्य पर्वके आनेपर वह स्त्री भाई-बन्धुओंके साथ गोकर्ण-क्षेत्रमें गयी। तीर्थयात्रियोंके संगसे उसने भी उस समय जाकर किसी तीर्थके जलमें स्नान किया। फिर वह साधारणतया

देवालयेऽथ कस्मिंश्चिद्दैवज्ञमुखतः शुभाम्।
शुश्राव सत्कथां शम्भोः पुण्यां पौराणिकीं च सा॥ ३८

(मेला देखनेकी दृष्टिसे) बन्धुजनोंके साथ यत्र-तत्र घूमने लगी। [घूमती-घामती] किसी देवमन्दिरमें उसने एक दैवज्ञ ब्राह्मणके मुखसे भगवान् शिवकी परम पवित्र एवं मंगलकारिणी उत्तम पौराणिक कथा सुनी॥ ३६—३८॥

योषितां जारसक्तानां नरके यमकिङ्कराः।
सन्तप्तलोहपरिघं क्षिपन्ति स्मरमन्दिरे॥ ३९

इति पौराणिकेनोक्तां श्रुत्वा वैराग्यवर्धिनीम्।
कथामासीद्भयोद्विग्ना चकम्पे तत्र सा च वै॥ ४०

[कथावाचक ब्राह्मण कह रहे थे कि] 'जो स्त्रियाँ परपुरुषोंके साथ व्यभिचार करती हैं, वे मरनेके बाद जब यमलोकमें जाती हैं, तब यमराजके दूत उनकी योनिमें तपे हुए लोहेका परिघ डालते हैं।' पौराणिक ब्राह्मणके मुखसे यह वैराग्य बढ़ानेवाली कथा सुनकर चंचुला भयसे व्याकुल हो वहाँ काँपने लगी॥ ३९-४०॥

कथा समाप्तौ सा नारी निर्गतेषु जनेषु च।
भीता रहसि तं प्राह शैवं संवाचकं द्विजम्॥ ४१

जब कथा समाप्त हुई और लोग वहाँसे बाहर चले गये, तब वह भयभीत नारी एकान्तमें शिवपुराणकी कथा बाँचनेवाले उन ब्राह्मणसे कहने लगी॥ ४१॥

चञ्चुलोवाच

ब्रह्मन् त्वं शृण्वसद्वृत्तमजानन्त्या स्वधर्मकम्।
श्रुत्वा मामुद्धर स्वामिन् कृपां कृत्वातुलामपि॥ ४२

चंचुलाने कहा—ब्रह्मन्! मैं अपने धर्मको नहीं जानती थी। इसलिये मेरे द्वारा बड़ा दुराचार हुआ है। स्वामिन्! इसे सुनकर मेरे ऊपर अनुपम कृपा करके आप मेरा उद्धार कीजिये॥ ४२॥

चरितं सूल्बणं पापं मया मूढधिया प्रभो।
नीतं पौंश्चल्यतः सर्वं यौवनं मदनान्धया॥ ४३

हे प्रभो! मैंने मूढ़बुद्धिके कारण घोर पाप किया है। मैंने कामान्ध होकर अपनी सम्पूर्ण युवावस्था व्यभिचारमें बितायी है॥ ४३॥

श्रुत्वेदं वचनं तेऽद्य वैराग्यरसजृम्भितम्।
जाता महाभया साहं सकम्पात्तवियोगिका॥ ४४

धिङ् मां मूढधियं पापां काममोहितचेतसम्।
निन्द्यां दुर्विषयासक्तां विमुखीं हि स्वधर्मतः॥ ४५

आज वैराग्य-रससे ओतप्रोत आपके इस प्रवचनको सुनकर मुझे बड़ा भय लग रहा है। मैं काँप उठी हूँ और मुझे इस संसारसे वैराग्य हो गया है। मुझ मूढ़ चित्तवाली पापिनीको धिक्कार है। मैं सर्वथा निन्दाके योग्य हूँ। मैं कुत्सित विषयोंमें फँसी हुई हूँ और अपने धर्मसे विमुख हो गयी हूँ॥ ४४-४५॥

यदल्पस्य सुखस्यार्थे स्वकार्यस्य विनाशिनम्।
महापापं कृतं घोरमजानन्त्यातिकष्टदम्॥ ४६

थोड़ेसे सुखके लिये अपने हितका नाश करनेवाले तथा भयंकर कष्ट देनेवाले घोर पाप मैंने अनजानेमें ही कर डाले॥ ४६॥

यास्यामि दुर्गतिं कां कां घोरां हा कष्टदायिनीम्।
को ज्ञो यास्यति मां तत्र कुमार्गरतमानसाम्॥ ४७

मरणे यमदूताँस्तान् कथं द्रक्ष्ये भयङ्करान्।
कथं पाशैर्बलात् कण्ठे बध्यमाना धृतिं लभे॥ ४८

हाय! न जाने किस-किस घोर कष्टदायक दुर्गतिमें मुझे पड़ना पड़ेगा और वहाँ कौन बुद्धिमान् पुरुष कुमार्गमें मन लगानेवाली मुझ पापिनीका साथ देगा? मृत्युकालमें उन भयंकर यमदूतोंको मैं कैसे देखूँगी? जब वे बलपूर्वक मेरे गलेमें फंदे डालकर

कथं सहिष्ये नरके खण्डशो देहकृन्तनम्।
यातनां तत्र महतीं दुःखदां च विशेषतः॥ ४९

मुझे बाँधेंगे, तब मैं कैसे धीरज धारण कर सकूँगी? नरकमें जब मेरे शरीरके टुकड़े-टुकड़े किये जायँगे, उस समय विशेष दुःख देनेवाली उस महायातनाको मैं वहाँ कैसे सहूँगी?॥ ४७—४९॥

दिवा चेष्टामिन्द्रियाणां कथं प्राप्स्यामि शोचती।
रात्रौ कथं लभिष्येऽहं निद्रां दुःखपरिप्लुता॥ ५०
हा हतास्मि च दग्धास्मि विदीर्णहृदयास्मि च।
सर्वथाहं विनष्टास्मि पापिनी सर्वथाप्यहम्॥ ५१

दुःख और शोकसे ग्रस्त होकर मैं दिनमें सहज इन्द्रियव्यापार और रात्रिमें नींद कैसे प्राप्त कर सकूँगी? हाय! मैं मारी गयी! मैं जल गयी! मेरा हृदय विदीर्ण हो गया और मैं सब प्रकारसे नष्ट हो गयी; क्योंकि मैं हर तरहसे पापमें ही डूबी रही हूँ॥ ५०-५१॥

हा विधे मां महापापे दत्त्वा दुश्शेमुषीं हठात्।
अपैति यत् स्वधर्माद्वै सर्वसौख्यकरादहो॥ ५२
शूलप्रोतस्य शैलाग्रात्पततस्तुङ्गतो द्विज।
यद्दुःखं देहिनो घोरं तस्मात् कोटिगुणं मम॥ ५३
अश्वमेधशतं कृत्वा गङ्गां स्नात्वा शतं समाः।
न शुद्धिर्जायते प्रायो मत्पापस्य गरीयसः॥ ५४
किं करोमि क्व गच्छामि कं वा शरणमाश्रये।
कस्त्रायते मां लोकेऽस्मिन् पतन्तीं नरकार्णवे॥ ५५

हाय विधाता! मुझ पापिनीको आपने हठात् ऐसी दुर्बुद्धि क्यों दे दी, जो सभी प्रकारका सुख देनेवाले स्वधर्मसे दूर कर देती है! हे द्विज! शूलसे बिँधा हुआ व्यक्ति ऊँचे पर्वत-शिखरसे गिरनेपर जैसा घोर कष्ट पाता है, उससे भी करोड़ गुना कष्ट मुझे है। सैकड़ों अश्वमेधयज्ञ करके अथवा सैकड़ों वर्षोंतक गंगास्नान करनेपर भी मेरे घोर पापोंकी शुद्धि सम्भव नहीं दीखती। मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और किसका आश्रय लूँ? मुझ नरकगामिनीकी इस संसारमें कौन रक्षा करेगा?॥ ५२—५५॥

त्वमेव मे गुरुर्ब्रह्मंस्त्वं माता त्वं पितासि च।
उद्धरोद्धर मां दीनां त्वामेव शरणं गताम्॥ ५६

हे ब्रह्मन्! आप ही मेरे गुरु हैं, आप ही माता और आप ही पिता हैं। आपकी शरणमें आयी हुई मुझ दीन अबलाका उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये॥ ५६॥

सूत उवाच

इति सञ्जातनिर्वेदां पतितां चरणद्वये।
उत्थाप्य कृपया धीमान् बभाषे ब्राह्मणः स हि॥ ५७

सूतजी बोले—हे शौनक! इस प्रकार खेद और वैराग्यसे युक्त हुई चंचुला उस ब्राह्मणके चरणोंमें गिर पड़ी। तब उन बुद्धिमान् ब्राह्मणने कृपापूर्वक उसे उठाकर इस प्रकार कहा॥ ५७॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे शिवपुराणमाहात्म्ये चञ्चुलावैराग्यवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणके अन्तर्गत शिवपुराणमाहात्म्यमें चंचुलावैराग्यवर्णन नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

चंचुलाकी प्रार्थनासे ब्राह्मणका उसे पूरा शिवपुराण सुनाना और समयानुसार शरीर छोड़कर शिवलोकमें जा चंचुलाका पार्वतीजीकी सखी होना

ब्राह्मण उवाच

दिष्ट्या काले प्रबुद्धासि शिवानुग्रहतो वराम्।
इमां शिवपुराणस्य श्रुत्वा वैराग्यवत्कथाम्॥ १
मा भैषीर्द्विजपत्नि त्वं शिवस्य शरणं व्रज।

ब्राह्मण बोले—सौभाग्यकी बात है कि भगवान् शंकरकी कृपासे शिवपुराणकी इस वैराग्ययुक्त तथा श्रेष्ठ कथाको सुनकर तुम्हें समयपर चेत हो गया है। हे ब्राह्मणपत्नी! तुम डरो मत, भगवान् शिवकी शरणमें

शिवानुग्रहतः सर्वं पापं सद्यो विनश्यति॥ २

वक्ष्यामि ते परं वस्तु शिवकीर्तिसमन्वितम्।
भविष्यति गतिर्येन सर्वदा ते सुखावहा॥ ३

सत्कथाश्रवणादेव जाता ते मतिरीदृशी।
पश्चात्तापान्विता शुद्धा वैराग्यं विषयेषु च॥ ४

पश्चात्तापः पापकृतां पापानां निष्कृतिः परा।
सर्वेषां वर्णितं सद्भिः सर्वपापविशोधनम्॥ ५

पश्चात्तापेनैव शुद्धिः प्रायश्चित्तं करोति सः।
यथोपदिष्टं सद्भिर्हि सर्वपापविशोधनम्॥ ६

प्रायश्चित्तमधीकृत्य विधिवन्निर्भयः पुमान्।
न याति सुगतिं प्रायः पश्चात्तापी न संशयः॥ ७

एतच्छिवपुराणस्य कथाश्रवणतो यथा।
जायते चित्तशुद्धिर्हि न तथान्यैरुपायतः॥ ८

शोध्यमानं दर्पणं हि यथा भवति निर्मलम्।
तथैतत्कथया चेतो विशुद्धिं यात्यसंशयम्॥ ९

विशुद्धे चेतसि शिवो नृणां तिष्ठति साम्बिकः।
ततो याति विशुद्धात्मा साम्बशम्भोः परं पदम्॥ १०

अतः सर्वस्य वर्गस्यैतत्कथासाधनं मतम्।
एतदर्थं महादेवो निर्ममे त्वाग्रहादिमाम्॥ ११

कथया सिध्यति ध्यानमनया गिरिजापतेः।
ध्यानाज्ज्ञानं परं तस्मात् कैवल्यं भवति ध्रुवम्॥ १२

असिद्धशङ्करध्यानः कथामेव शृणोति यः।
स प्राप्यान्यभवे ध्यानं शम्भोर्याति परां गतिम्॥ १३

एतत्कथाश्रवणतः कृत्वा ध्यानमुमापतेः।
ते पश्चात्तापिनः पापा बहवः सिद्धिमागताः॥ १४

जाओ। शिवकी कृपासे सारा पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। मैं तुमसे भगवान् शिवकी कीर्तिकथासे युक्त उस परम वस्तुका वर्णन करूँगा, जिससे तुम्हें सदा सुख देनेवाली उत्तम गति प्राप्त होगी॥ १—३॥

शिवकी उत्तम कथा सुननेसे ही तुम्हारी बुद्धि इस तरह पश्चात्तापसे युक्त एवं शुद्ध हो गयी है; साथ ही तुम्हारे मनमें विषयोंके प्रति वैराग्य हो गया है। पश्चात्ताप ही पाप करनेवाले पापियोंके लिये सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है। सत्पुरुषोंने सबके लिये पश्चात्तापको ही समस्त पापोंका शोधक बताया है। पश्चात्तापसे ही पापोंकी शुद्धि होती है। जो पश्चात्ताप करता है, वही वास्तवमें पापोंका प्रायश्चित्त करता है; क्योंकि सत्पुरुषोंने समस्त पापोंकी शुद्धिके लिये जैसे प्रायश्चित्तका उपदेश किया है, वह सब पश्चात्तापसे सम्पन्न हो जाता है॥ ४—६॥

जो पुरुष विधिपूर्वक प्रायश्चित्त करके निर्भय हो जाता है, पर अपने कुकर्मके लिये पश्चात्ताप नहीं करता, उसे प्रायः उत्तम गति नहीं प्राप्त होती। परंतु जिसे अपने कुकृत्यपर हार्दिक पश्चात्ताप होता है, वह अवश्य उत्तम गतिका भागी होता है, इसमें संशय नहीं है। इस शिवपुराणकी कथा सुननेसे जैसी चित्तशुद्धि होती है, वैसी दूसरे उपायोंसे नहीं होती॥ ७-८॥

जैसे दर्पण साफ करनेपर निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार इस शिवपुराणकी कथासे चित्त अत्यन्त शुद्ध हो जाता है—इसमें संशय नहीं है। मनुष्योंके शुद्ध चित्तमें जगदम्बा पार्वतीसहित भगवान् शिव विराजमान रहते हैं। इससे वह विशुद्धात्मा पुरुष श्रीसाम्बसदाशिवके परम पदको प्राप्त होता है॥ ९-१०॥

इस प्रकार यह कथारूपी साधन सभी प्राणियोंके लिये उपकारी है और इसी कारण महादेवजीने इसको आग्रहपूर्वक प्रकट किया है। इस कथासे भगवान् उमापतिका ध्यान सिद्ध हो जाता है। उस ध्यानसे परम ज्ञान और उससे मोक्षकी प्राप्ति निश्चय ही होती है। भगवान् शंकरके ध्यानमें मग्न हुए बिना भी यदि कोई इस कथाको मात्र सुनता है, वह दूसरे जन्ममें भगवान्‌के ध्यानको सिद्धकर परमपदको पा लेता है। इस कथाके श्रवणसे भगवान् शंकरके ध्यानको प्राप्तकर पश्चात्ताप करनेवाले पापी पुरुष सिद्धिको प्राप्त हो गये हैं॥ ११—१४॥

सर्वेषां श्रेयसां बीजं सत्कथाश्रवणं नृणाम्।
यथावर्त्म समाराध्यं भवबन्धगदापहम्॥ १५

कथाश्रवणतः शम्भोर्मननाच्च ततो हृदा।
निदिध्यासनतश्चैव चित्तशुद्धिर्भवत्यलम्॥ १६

अतो भक्तिर्महेशस्य पुत्राभ्यां भवति ध्रुवम्।
तदनुग्रहतो दिव्या ततो मुक्तिर्न संशयः॥ १७

तद्विहीनः पशुर्ज्ञेयो मायाबन्धनसक्तधीः।
संसारबन्धनान्नैव मुक्तो भवति स ध्रुवम्॥ १८

इस उत्तम कथाका श्रवण समस्त मनुष्योंके लिये कल्याणका बीज है। अतः यथोचित (शास्त्रोक्त) मार्गसे इसकी आराधना अथवा सेवा करनी चाहिये। यह कथा-श्रवण भव-बन्धनरूपी रोगका नाश करनेवाला है। भगवान् शिवकी कथाको सुनकर फिर अपने हृदयमें उसका मनन एवं निदिध्यासन करनेसे पूर्णतया चित्तशुद्धि हो जाती है। चित्तशुद्धि होनेसे महेश्वरकी भक्ति अपने दोनों पुत्रों (ज्ञान और वैराग्य)-के साथ निश्चय ही प्रकट होती है। तत्पश्चात् महेश्वरके अनुग्रहसे दिव्य मुक्ति प्राप्त होती है, इसमें संशय नहीं है। जो शिवभक्तिसे वंचित है, उसे पशु समझना चाहिये; क्योंकि उसका चित्त मायाके बन्धनमें आसक्त है। वह निश्चय ही संसारबन्धनसे मुक्त नहीं हो पाता॥ १५—१८॥

अतो हि द्विजपत्नि त्वं विषयेभ्यो निवृत्तधीः।
शृणु शम्भोः कथां चैतां भक्त्या परमपावनीम्॥ १९

शृण्वन्त्याः सत्कथामेतां शङ्करस्य परात्मनः।
शुद्धिमेष्यति चेतस्ते ततो मुक्तिमवाप्स्यसि॥ २०

ध्यायतः शिवपादाब्जं चेतसा निर्मलेन वै।
एकेन जन्मना मुक्तिः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ २१

हे ब्राह्मणपत्नी! इसलिये तुम विषयोंसे मनको हटा लो और भक्तिभावसे भगवान् शंकरकी इस परम पावन कथाको सुनो। परमात्मा शंकरकी इस कथाको सुननेसे तुम्हारे चित्तकी शुद्धि होगी और उससे तुम्हें मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी। निर्मल चित्तसे भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन करनेवालेकी एक ही जन्ममें मुक्ति हो जाती है—यह मैं तुमसे सत्य-सत्य कहता हूँ॥ १९—२१॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स द्विजवरो वरः शैवः कृपार्द्रधीः।
तूष्णीं बभूव शुद्धात्मा शिवध्यानपरायणः॥ २२

सूतजी बोले—शौनक! इतना कहकर वे श्रेष्ठ शिवभक्त ब्राह्मण मौन हो गये। उनका हृदय करुणासे आर्द्र हो गया था। वे शुद्धचित्त महात्मा भगवान् शिवके ध्यानमें मग्न हो गये॥ २२॥

अथ बिन्दुगपत्नी सा चञ्चुलाह्वा प्रसन्नधीः।
इत्युक्ता तेन विप्रेण समासीद्बाष्पलोचना॥ २३

पपातारं द्विजेन्द्रस्य पादयोस्तस्य हृष्टधीः।
चञ्चुला साञ्जलिः सा च कृतार्थास्मीत्यभाषत॥ २४

तदनन्तर बिन्दुगकी पत्नी चंचुला मन-ही-मन प्रसन्न हो उठी। ब्राह्मणका उक्त उपदेश सुनकर उसके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये थे। वह ब्राह्मणपत्नी चंचुला हर्षित हृदयसे उन श्रेष्ठ ब्राह्मणके चरणोंमें गिर पड़ी और हाथ जोड़कर बोली—'मैं कृतार्थ हो गयी'॥ २३-२४॥

अथ सोत्थाय सातङ्का साञ्जलिर्गद्गदाक्षरम्।
तमुवाच महाशैवं द्विजं वैराग्ययुक् सुधीः॥ २५

तत्पश्चात् उठकर वैराग्ययुक्त तथा उत्तम बुद्धिवाली वह स्त्री, जो अपने पापोंके कारण आतंकित थी, उन महान् शिवभक्त ब्राह्मणसे हाथ जोड़कर गद्गद वाणीमें कहने लगी॥ २५॥

चञ्चुलोवाच

ब्रह्मन् शैववर स्वामिन् धन्यस्त्वं परमार्थदृक्।
परोपकारनिरतो वर्णनीयः सुसाधुषु॥ २६

उद्धरोद्धर मां साधो पतन्तीं नरकार्णवे।
श्रुत्वा यां सुकथां शैवीं पुराणार्थविजृम्भिताम्॥ २७

विरक्तधीरहं जाता विषयेभ्यश्च सर्वतः।
सुश्रद्धा महती ह्येतत्पुराणश्रवणेऽधुना॥ २८

चंचुला बोली—हे ब्रह्मन्! हे शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ! हे स्वामिन्! आप धन्य हैं, परमार्थदर्शी हैं और सदा परोपकारमें लगे रहते हैं, इसलिये आप श्रेष्ठ साधु पुरुषोंमें प्रशंसाके योग्य हैं। हे साधो! मैं नरकके समुद्रमें गिर रही हूँ। आप मेरा उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये। पौराणिक अर्थतत्त्वसे सम्पन्न जिस सुन्दर शिवपुराणकी कथाको सुनकर मेरे मनमें सम्पूर्ण विषयोंसे वैराग्य उत्पन्न हो गया, उसी इस शिवपुराणको सुननेके लिये इस समय मेरे मनमें बड़ी श्रद्धा हो रही है॥ २६—२८॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा साञ्जलिः सा वै सम्प्राप्य तदनुग्रहम्।
तत्पुराणं श्रोतुकामातिष्ठत्तत्सेवने रता॥ २९

सूतजी बोले—ऐसा कहकर हाथ जोड़ उनका अनुग्रह पाकर चंचुला उस शिवपुराणकी कथाको सुननेकी इच्छा मनमें लिये उन ब्राह्मणदेवताकी सेवामें तत्पर हो वहाँ रहने लगी॥ २९॥

अथ शैववरो विप्रस्तस्मिन्नेव स्थले सुधीः।
सत्कथां श्रावयामास तत्पुराणस्य तां स्त्रियम्॥ ३०

तदनन्तर शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ और शुद्ध बुद्धिवाले उन ब्राह्मणदेवताने उसी स्थानपर उस स्त्रीको शिवपुराणकी उत्तम कथा सुनायी॥ ३०॥

इत्थं तस्मिन् महाक्षेत्रे तस्मादेव द्विजोत्तमात्।
कथां शिवपुराणस्य सा शुश्राव महोत्तमाम्॥ ३१

भक्तिज्ञानविरागाणां वर्धिनीं मुक्तिदायिनीम्।
बभूव सुकृतार्था सा श्रुत्वा तां सत्कथां पराम्॥ ३२

इस प्रकार उस [गोकर्ण नामक] महाक्षेत्रमें उन्हीं श्रेष्ठ ब्राह्मणसे उसने शिवपुराणकी वह परम उत्तम कथा सुनी, जो भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको बढ़ानेवाली तथा मुक्ति देनेवाली है। उस परम उत्तम कथाको सुनकर वह ब्राह्मणपत्नी अत्यन्त कृतार्थ हो गयी॥ ३१-३२॥

सद्गुरोस्तस्य कृपया शुद्धचित्ता च सा द्रुतम्।
शिवानुग्रहतः शम्भोः रूपध्यानमवाप ह॥ ३३

उन सद्गुरुकी कृपासे उसका चित्त शीघ्र ही शुद्ध हो गया, भगवान् शिवके अनुग्रहसे उसके हृदयमें शिवके सगुणरूपका चिन्तन होने लगा॥ ३३॥

इत्थं सद्गुरुमाश्रित्य सा प्राप्तशिवसन्मतिः।
दध्यौ मुहुर्मुहुः शम्भोश्चिदानन्दमयं वपुः॥ ३४

इस प्रकार सद्गुरुका आश्रय लेकर उसने भगवान् शिवमें लगी रहनेवाली उत्तम बुद्धि पाकर शिवके सच्चिदानन्दमय स्वरूपका बारंबार चिन्तन आरम्भ किया॥ ३४॥

स्नात्वा तीर्थजले नित्यं जटावल्कलधारिणी।
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गी रुद्राक्षकृतभूषणा॥ ३५

शिवनामजपासक्ता वाग्यता मितभोजना।
गुरूपदिष्टमार्गेण सा शिवं समतोषयत्॥ ३६

एवं तस्याश्चञ्चुलायाः कुर्वन्त्या ध्यानमुत्तमम्।
बहुकालो व्यतीयाय शम्भोस्तत्रैव शौनक॥ ३७

वह प्रतिदिन तीर्थके जलमें स्नान करके जटा और वल्कल धारण करने लगी तथा समूची देहमें भस्म लगाकर रुद्राक्षके आभूषण धारण करने लगी। वह भगवान् शिवके नामजपमें लगी रहती थी, संयमित वाणी और अल्पाहार करते हुए गुरुके बताये मार्गसे वह शिवजीको प्रसन्न करने लगी। हे शौनक! इस प्रकार शम्भुका उत्तम ध्यान करते हुए उस चंचुलाका बहुत-सा समय बीत गया॥ ३५—३७॥

अथ कालेन पूर्णेन भक्तित्रिकसमन्विता।
समुत्ससर्ज देहं स्वमनायासेन चञ्चुला॥ ३८

तत्पश्चात् समयके पूर्ण होनेपर भक्ति, ज्ञान और वैराग्यसे युक्त हुई चंचुलाने अपने शरीरको बिना किसी कष्टके त्याग दिया॥ ३८॥

विमानं द्रुतमायान्तं प्रेषितं त्रिपुरारिणा।
दिव्यं स्वगणसंयुक्तं नानाशोभासमन्वितम्॥ ३९

अथ तत्र समारूढा महेशानुचरैर्वरैः।
नीता शिवपुरीं सद्यो ध्वस्तसर्वमला च सा॥ ४०

दिव्यरूपधरा दिव्या दिव्यावयवशालिनी।
चन्द्रार्धशेखरा गौरी विलसद्दिव्यभूषणा॥ ४१

इतनेमें ही त्रिपुरशत्रु भगवान् शिवका भेजा हुआ एक दिव्य विमान द्रुत गतिसे वहाँ पहुँचा, जो उनके अपने गणोंसे संयुक्त और भाँति-भाँतिके शोभा साधनोंसे सम्पन्न था। चंचुला उस विमानपर आरूढ़ हुई और भगवान् शिवके श्रेष्ठ पार्षदोंने उसे तत्काल शिवपुरीमें पहुँचा दिया। उसके सारे मल धुल गये थे। वह दिव्यरूपधारिणी दिव्यांगना हो गयी थी। उसके दिव्य अवयव उसकी शोभा बढ़ाते थे। मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट धारण किये वह गौरांगी देवी शोभाशाली दिव्य आभूषणोंसे विभूषित थी॥ ३९—४१॥

गत्वा तत्र महादेवं सा ददर्श त्रिलोचनम्।
विष्णुब्रह्मादिभिर्देवैः सेव्यमानं सनातनम्॥ ४२

गणेशभृङ्गिनन्दीशवीरभद्रेश्वरादिभिः ।
उपास्यमानं सद्भक्त्या कोटिसूर्यसमप्रभम्॥ ४३

नीलग्रीवं पञ्चवक्त्रं त्र्यम्बकं चन्द्रशेखरम्।
वामाङ्गे बिभ्रतं गौरीं विद्युत्पुञ्जसमप्रभाम्॥ ४४

कर्पूरगौरं गौरीशं सर्वालङ्कारधारिणम्।
सितभस्मलसद्देहं सितवस्त्रं महोज्ज्वलम्॥ ४५

वहाँ पहुँचकर उसने त्रिनेत्रधारी महादेवजीको देखा। ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता उन सनातन शिवकी सेवा कर रहे थे। गणेश, भृंगी, नन्दीश, वीरभद्रेश्वर आदि गण उत्तम भक्तिके साथ उनकी उपासना कर रहे थे। उनकी अंगकान्ति करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशित हो रही थी। कण्ठमें नील चिह्न शोभा पाता था। उनके पाँच मुख थे और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र थे। मस्तकपर अर्धचन्द्राकार मुकुट शोभा देता था। उन्होंने अपने वामांगमें गौरी देवीको बिठा रखा था, जो विद्युत्-पुंजके समान प्रकाशित थीं। गौरीपति महादेवजीकी कान्ति कपूरके समान गौर थी। उन्होंने सभी अलंकार धारण कर रखे थे, उनका सारा शरीर श्वेत भस्मसे भासित था। शरीरपर श्वेत वस्त्र शोभा पा रहे थे। वे अत्यन्त उज्ज्वल वर्णके थे॥ ४२—४५॥

दृष्ट्वैवं शङ्करं नारी सा मुमोदाति चञ्चुला।
सुसम्भ्रमान्महाप्रीता प्रणनाम पुनः पुनः॥ ४६

साञ्जलिः सा मुदा प्रेम्णा सन्तुष्टा च विनीतका।
आनन्दाश्रुजलैर्युक्ता रोमहर्षसमन्विता॥ ४७

अथ सा वै करुणया पार्वत्या शङ्करेण च।
समानीतोपकण्ठं हि सुदृष्ट्या च विलोकिता॥ ४८

इस प्रकार परम उज्ज्वल भगवान् शंकरका दर्शन करके वह ब्राह्मणपत्नी चंचुला बहुत प्रसन्न हुई। अत्यन्त प्रीतियुक्त होकर उसने बड़ी उतावलीके साथ भगवान्‌को बारंबार प्रणाम किया। फिर हाथ जोड़कर वह बड़े प्रेम, आनन्द और सन्तोषसे युक्त हो विनीतभावसे खड़ी हो गयी। उसके नेत्रोंसे आनन्दाश्रुओंकी अविरल धारा बहने लगी तथा सम्पूर्ण शरीरमें रोमांच हो गया। उस समय भगवती पार्वती और भगवान् शंकरने उसे बड़ी करुणाके साथ अपने पास बुलाया और सौम्य दृष्टिसे उसकी ओर देखा। पार्वतीजीने तो

पार्वत्या सा कृता प्रीत्या स्वसखी दिव्यरूपिणी।
दिव्यसौख्यान्विता तत्र चञ्चुला बिन्दुगप्रिया॥ ४९

तस्मिँल्लोके परानन्दघनज्योतिषि शाश्वते।
लब्ध्वा निवासमचलं लेभे सुखमनाहतम्॥ ५०

दिव्यरूपधारिणी बिन्दुगप्रिया चंचुलाको प्रेमपूर्वक अपनी सखी बना लिया। वह उस परमानन्दघन ज्योति:स्वरूप सनातनधाममें अविचल निवास पाकर दिव्य सौख्यसे सम्पन्न हो अक्षय सुखका अनुभव करने लगी॥ ४६—५०॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे शिवपुराणमाहात्म्ये चञ्चुलासद्गतिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणके अन्तर्गत शिवपुराणमाहात्म्यमें चंचुलासद्गतिवर्णन नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

चंचुलाके प्रयत्नसे पार्वतीजीकी आज्ञा पाकर तुम्बुरुका विन्ध्यपर्वतपर शिवपुराणकी कथा सुनाकर बिन्दुगका पिशाचयोनिसे उद्धार करना तथा उन दोनों दम्पतीका शिवधाममें सुखी होना

शौनक उवाच

सूत सूत महाभाग धन्यस्त्वं शिवसक्तधीः।
श्रावितेयं कथास्माकमद्भुता भक्तिवर्धिनी॥ १

तत्र गत्वा किं चकार चञ्चुला प्राप्तसद्गतिः।
तत् त्वं वद विशेषेण तत्पतेश्च महामते॥ २

शौनकजी बोले—हे महाभाग सूतजी! आप धन्य हैं, आपकी बुद्धि भगवान् शिवमें लगी हुई है। आपने कृपापूर्वक यह शिवभक्तिको बढ़ानेवाली अद्भुत कथा हमें सुनायी। हे महामते! सद्गति प्राप्त करनेके बाद वहाँ जाकर चंचुलाने क्या किया और उसके पतिका क्या हुआ; यह सब वृत्तान्त विस्तारसे हमें बताइये॥ १-२॥

सूत उवाच

सा कदाचिदुमां देवीमुपगम्य प्रणम्य च।
सुतुष्टाव करौ बद्ध्वा परमानन्दसम्प्लुता॥ ३

सूतजी बोले—हे शौनक! एक दिन परमानन्दमें निमग्न हुई चंचुलाने उमादेवीके पास जाकर प्रणाम किया और दोनों हाथ जोड़कर वह उनकी स्तुति करने लगी॥ ३॥

चञ्चुलोवाच

गिरिजे स्कन्दमातस्त्वं सेविता सर्वदा नरैः।
सर्वसौख्यप्रदे शम्भुप्रिये ब्रह्मस्वरूपिणि॥ ४

विष्णुब्रह्मादिभिस्सेव्या सगुणा निर्गुणापि च।
त्वमाद्या प्रकृतिस्सूक्ष्मा सच्चिदानन्दरूपिणी॥ ५

सृष्टिस्थितिलयकरी त्रिगुणा त्रिसुरालया।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां सुप्रतिष्ठाकरा परा॥ ६

चंचुला बोली—हे गिरिराजनन्दिनी! हे स्कन्दमाता! मनुष्योंने सदा आपकी सेवा की है। समस्त सुखोंको देनेवाली हे शम्भुप्रिये! हे ब्रह्मस्वरूपिणि! आप विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा सेव्य हैं। आप ही सगुणा और निर्गुणा भी हैं तथा आप ही सूक्ष्मा सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी आद्या प्रकृति हैं। आप ही संसारकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली हैं। तीनों गुणोंका आश्रय भी आप ही हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—इन तीनों देवताओंका आवास-स्थान तथा उनकी उत्तम प्रतिष्ठा करनेवाली पराशक्ति आप ही हैं॥ ४—६॥

सूत उवाच

इति स्तुत्वा महेशीं तां चञ्चुला प्राप्तसद्गतिः।
विरराम नतस्कन्धा प्रेमपूर्णाश्रुलोचना॥ ७

सूतजी बोले—हे शौनक! जिसे सद्गति प्राप्त हो चुकी थी, वह चंचुला इस प्रकार महेश्वरपत्नी उमाकी स्तुति करके सिर झुकाये चुप हो गयी। उसके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू उमड़ आये थे॥ ७॥

ततः सा करुणाविष्टा पार्वती शङ्करप्रिया।
तामुवाच महाप्रीत्या चञ्चुलां भक्तवत्सला॥ ८

तब करुणासे भरी हुई शंकरप्रिया भक्तवत्सला पार्वतीदेवी चंचुलाको सम्बोधित करके बड़े प्रेमसे इस प्रकार कहने लगीं— ॥ ८ ॥

पार्वत्युवाच

चञ्चुले सखि सुप्रीतानया स्तुत्यास्मि सुन्दरि।
किं याचसे वरं ब्रूहि नादेयं विद्यते तव॥ ९

पार्वती बोलीं—हे सखी चंचुले! हे सुन्दरि! मैं तुम्हारी की हुई इस स्तुतिसे बहुत प्रसन्न हूँ। बोलो, क्या वर माँगती हो? तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है॥ ९॥

सूत उवाच

इत्युक्ता सा गिरिजया चञ्चुला सुप्रणम्य ताम्।
पर्यपृच्छत सुप्रीत्या साञ्जलिर्नतमस्तका॥ १०

सूतजी बोले—पार्वतीके इस प्रकार कहनेपर चंचुला उन्हें प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर नतमस्तक हो प्रेमपूर्वक पूछने लगी— ॥ १० ॥

चञ्चुलोवाच

मम भर्ताधुना क्वास्ते नैव जानामि तद्गतिम्।
तेन युक्ता यथाहं वै भवामि गिरिजेऽनघे॥ ११

तथैव कुरु कल्याणि कृपया दीनवत्सले।
महादेवि महेशानि भर्ता मे वृषलीपतिः।
मत्तः पूर्वं मृतः पापी न जाने कां गतिं गतः॥ १२

चंचुला बोली—हे निष्पाप गिरिराजकुमारी! मेरे पति बिन्दुग इस समय कहाँ हैं, उनकी कैसी गति हुई है—यह मैं नहीं जानती! कल्याणमयी दीनवत्सले! मैं अपने उन पतिदेवसे जिस प्रकार संयुक्त हो सकूँ, कृपा करके वैसा ही उपाय कीजिये। हे महेश्वरि! हे महादेवि! मेरे पति एक शूद्रजातीय वेश्याके प्रति आसक्त थे और पापमें ही डूबे रहते थे। उनकी मृत्यु मुझसे पहले ही हो गयी थी। वे न जाने किस गतिको प्राप्त हुए हैं॥ ११-१२॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्याश्चञ्चुलाया हि पार्वती।
प्रत्युवाच सुसम्प्रीत्या गिरिजा नयवत्सला॥ १३

सूतजी बोले—चंचुलाका यह वचन सुनकर नीतिवत्सला हिमालयपुत्री देवी पार्वतीने अत्यन्त प्रेमपूर्वक यह उत्तर दिया— ॥ १३ ॥

गिरिजोवाच

सुते भर्ता बिन्दुगाह्वो महापापी दुराशयः।
वेश्याभोगी महामूढो मृत्वा स नरकं गतः॥ १४

भुक्त्वा नरकदुःखानि विविधान्यमिताः समाः।
पापशेषेण पापात्मा विन्ध्ये जातः पिशाचकः॥ १५

इदानीं स पिशाचोऽस्ति नानाक्लेशसमन्वितः।
तत्रैव वातभुग्दुष्टः सर्वकष्टवहः सदा॥ १६

गिरिजा बोलीं—हे सुते! तुम्हारा बिन्दुग नामवाला पति बड़ा पापी था। उसका अन्तःकरण बड़ा ही दूषित था। वेश्याका उपभोग करनेवाला वह महामूढ़ मरनेके बाद नरकमें पड़ा; अगणित वर्षोंतक नरकमें नाना प्रकारके दुःख भोगकर वह पापात्मा अपने शेष पापको भोगनेके लिये विन्ध्यपर्वतपर पिशाच हुआ है। इस समय वह पिशाचकी अवस्थामें ही है और नाना प्रकारके क्लेश उठा रहा है। वह दुष्ट वहीं वायु पीकर रहता है और सदा सब प्रकारके कष्ट सहता है॥ १४—१६॥

सूत उवाच

इति गौर्या वचः श्रुत्वा चञ्चुला सा शुभव्रता।
पतिदुःखेन महता दुःखितासीत्तदा किल॥ १७
समाधाय ततश्चित्तं सुप्रणम्य महेश्वरीम्।
पुनः पप्रच्छ सा नारी हृदयेन विदूयता॥ १८

सूतजी बोले—हे शौनक! गौरीदेवीकी यह बात सुनकर उत्तम व्रतका पालन करनेवाली वह चंचुला उस समय पतिके महान् दुःखसे दुखी हो गयी। फिर मनको स्थिर करके उस ब्राह्मणपत्नीने व्यथित हृदयसे महेश्वरीको प्रणाम करके पुनः पूछा— ॥ १७-१८ ॥

चञ्चुलोवाच

महेश्वरि महादेवि कृपां कुरु ममोपरि।
समुद्धर पतिं मेऽद्य दुष्टकर्मकरं खलम्॥ १९

केनोपायेन मे भर्ता पापात्मा स कुबुद्धिमान्।
सद्गतिं प्राप्नुयाद्देवि तद्वदाशु नमोऽस्तु ते॥ २०

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्याः पार्वती भक्तवत्सला।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा चञ्चुलां स्वसखीं च ताम्॥ २१

पार्वत्युवाच

शृणुयाद्यदि ते भर्ता पुण्यां शिवकथां पराम्।
निस्तीर्य दुर्गतिं सर्वां सद्गतिं प्राप्नुयादिति॥ २२

इति गौर्या वचः श्रुत्वामृताक्षरमथादरात्।
कृताञ्जलिर्नतस्कन्धा प्रणनाम पुनः पुनः॥ २३

तत्कथाश्रवणं भर्तुः सर्वपापविशुद्धये।
सद्गतिप्राप्तये चैव प्रार्थयामास तां तदा॥ २४

सूत उवाच

तया मुहुर्मुहुर्नार्या प्रार्थ्यमाना शिवप्रिया।
गौरी कृपान्वितासीत् सा महेशी भक्तवत्सला॥ २५

अथ तुम्बुरुमाहूय शिवसत्कीर्तिगायकम्।
प्रीत्या गन्धर्वराजं हि गिरिकन्येदमब्रवीत्॥ २६

गिरिजोवाच

हे तुम्बुरो शिवप्रीत मम मानसकारक।
सहानया विन्ध्यशैलं भद्रं ते गच्छ सत्वरम्॥ २७

आस्ते तत्र महाघोरः पिशाचोऽतिभयङ्करः।
तद्वृत्तं शृणु सुप्रीत्यादितः सर्वं ब्रवीमि ते॥ २८

पुराभवे पिशाचः स बिन्दुगाह्वोऽभवद् द्विजः।
अस्या नार्याः पतिर्दुष्टो मत्सख्या वृषलीपतिः॥ २९

स्नानसन्ध्याक्रियाहीनोऽशौचः क्रोधविमूढधीः।
दुर्भक्षी सज्जनद्वेषी दुष्परिग्रहकारकः॥ ३०

चंचुला बोली—हे महेश्वरि! हे महादेवि! मुझपर कृपा कीजिये और दूषित कर्म करनेवाले मेरे उस दुष्ट पतिका अब उद्धार कर दीजिये। हे देवि! कुत्सित बुद्धिवाले मेरे उस पापात्मा पतिको किस उपायसे उत्तम गति प्राप्त हो सकती है, यह शीघ्र बताइये। आपको नमस्कार है॥ १९-२०॥

सूतजी बोले—उसकी यह बात सुनकर भक्तवत्सला पार्वतीजी अपनी सखी चंचुलासे प्रसन्न होकर ऐसा कहने लगीं॥ २१॥

पार्वतीजी बोलीं—तुम्हारा पति यदि शिवपुराणकी पुण्यमयी उत्तम कथा सुने तो सारी दुर्गतिको पार करके वह उत्तम गतिका भागी हो सकता है॥ २२॥

अमृतके समान मधुर अक्षरोंसे युक्त गौरीदेवीका यह वचन आदरपूर्वक सुनकर चंचुलाने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर उन्हें बारंबार प्रणाम किया और अपने पतिके समस्त पापोंकी शुद्धि तथा उत्तम गतिकी प्राप्तिके लिये पार्वतीदेवीसे यह प्रार्थना की कि मेरे पतिको शिवपुराण सुनानेकी व्यवस्था होनी चाहिये॥ २३-२४॥

सूतजी बोले—उस ब्राह्मणपत्नीके बारंबार प्रार्थना करनेपर शिवप्रिया गौरीदेवीको बड़ी दया आयी। उन भक्तवत्सला महेश्वरी गिरिराजकुमारीने भगवान् शिवकी उत्तम कीर्तिका गान करनेवाले गन्धर्वराज तुम्बुरुको बुलाकर उनसे प्रसन्नतापूर्वक इस प्रकार कहा—॥ २५-२६॥

गिरिजा बोलीं—मेरे मनकी बातोंको जानकर मेरे अभीष्ट कार्योंको सिद्ध करनेवाले तथा शिवमें प्रीति रखनेवाले हे तुम्बुरो! [मैं तुमसे एक बात कहती हूँ।] तुम्हारा कल्याण हो। तुम मेरी इस सखीके साथ शीघ्र ही विन्ध्यपर्वतपर जाओ। वहाँ एक महाघोर और भयंकर पिशाच रहता है। उसका वृत्तान्त तुम आरम्भसे ही सुनो। मैं तुमसे प्रसन्नतापूर्वक सब कुछ बताती हूँ॥ २७-२८॥

पूर्वजन्ममें वह पिशाच बिन्दुग नामक ब्राह्मण था। वह मेरी इस सखी चंचुलाका पति था। परंतु वह दुष्ट वेश्यागामी हो गया। स्नान-सन्ध्या आदि नित्यकर्म छोड़कर वह अपवित्र रहने लगा। क्रोधके कारण उसकी बुद्धिपर मूढ़ता छा गयी थी। वह कर्तव्याकर्तव्यका विवेक नहीं

हिंसकः शस्त्रधारी च सव्यहस्तेन भोजनी।
दीनानां पीडकः क्रूरः परवेश्मप्रदीपकः॥ ३१

चाण्डालाभिरतो नित्यं वेश्याभोगी महाखलः।
स्वपत्नीत्यागकृत् पापी दुष्टसङ्गरतस्तदा॥ ३२

कर पाता था। अभक्ष्यभक्षण, सज्जनोंसे द्वेष और दूषित वस्तुओंका दान लेना—यही उसका स्वाभाविक कर्म बन गया था। वह अस्त्र-शस्त्र लेकर हिंसा करता, बायें हाथसे खाता, दीनोंको सताता और क्रूरतापूर्वक पराये घरोंमें आग लगा देता था। वह चाण्डालोंसे प्रेम करता और प्रतिदिन वेश्याके सम्पर्कमें रहता था। वह बड़ा दुष्ट था। उस पापीने अपनी पत्नीका परित्याग कर दिया था और वह दुष्टोंके संगमें निरत रहता था॥ २९—३२॥

तेन वेश्याकुसङ्गेन सुकृतं नाशितं महत्।
वित्तलोभेन महिषी निर्भया जारिणी कृता॥ ३३

उसने वेश्याके कुसंगसे अपने सारे पुण्य नष्ट कर लिये और धनके लोभसे अपनी पत्नीको निर्भय करके व्यभिचारिणी बना डाला॥ ३३॥

आमृत्योः स दुराचारी कालेन निधनं गतः।
ययौ यमपुरं घोरं भोगस्थानं हि पापिनाम्॥ ३४

तत्र भुक्त्वा स दुष्टात्मा नरकानि बहूनि च।
इदानीं स पिशाचोऽस्ति विन्ध्येऽद्रौ पापभुक् खलः॥ ३५

वह मृत्युपर्यन्त दुराचारमें ही फँसा रहा। फिर समय आनेपर उसकी मृत्यु हो गयी। वह पापियोंके भोगस्थान घोर यमपुरमें गया और वहाँ बहुत-से नरकोंको भोगकर वह दुष्टात्मा इस समय विन्ध्यपर्वतपर पिशाच बना हुआ है। वहींपर वह दुष्ट पिशाच अपने पापोंका फल भोग रहा है॥ ३४-३५॥

तस्याग्रे परमां पुण्यां सर्वपापविनाशिनीम्।
दिव्यां शिवपुराणस्य कथां कथय यत्नतः॥ ३६

द्रुतं शिवपुराणस्य कथाश्रवणतः परात्।
सर्वपापविशुद्धात्मा हास्यति प्रेततां च सः॥ ३७

मुक्तं च दुर्गतेस्तं वै बिन्दुगं त्वं पिशाचकम्।
मदाज्ञया विमानेन समानय शिवान्तिकम्॥ ३८

तुम उसके आगे यत्नपूर्वक शिवपुराणकी उस दिव्य कथाका प्रवचन करो, जो परम पुण्यमयी तथा समस्त पापोंका नाश करनेवाली है। उत्तम शिवपुराणकी कथाके श्रवणसे उसका हृदय शीघ्र ही समस्त पापोंसे शुद्ध हो जायगा और वह प्रेतयोनिका परित्याग कर देगा। दुर्गतिसे मुक्त होनेपर उस बिन्दुग नामक पिशाचको मेरी आज्ञासे विमानपर बिठाकर तुम भगवान् शिवके समीप ले आओ॥ ३६—३८॥

सूत उवाच

इत्यादिष्टो महेशान्या गन्धर्वेन्द्रश्च तुम्बुरुः।
मुमुदेऽतीव मनसि भाग्यं निजमवर्णयत्॥ ३९

आरुह्य सुविमानं स सत्या तत्प्रियया सह।
ययौ विन्ध्याचले सोऽरं यत्रास्ते नारदप्रियः॥ ४०

सूतजी बोले—[हे शौनक!] महेश्वरी उमाके इस प्रकार आदेश देनेपर गन्धर्वराज तुम्बुरु मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने भाग्यकी सराहना की। तत्पश्चात् उस पिशाचकी सती-साध्वी पत्नी चंचुलाके साथ विमानपर बैठकर नारदके प्रिय मित्र तुम्बुरु वेगपूर्वक विन्ध्याचल पर्वतपर गये, जहाँ वह पिशाच रहता था॥ ३९-४०॥

तत्रापश्यत् पिशाचं तं महाकायं महाहनुम्।
प्रहसन्तं रुदन्तं च वल्गन्तं विकटाकृतिम्॥ ४१

बलाज्जग्राह तं पाशैः पिशाचं चातिभीकरम्।
तुम्बुरुश्शिवसत्कीर्तिगायकश्च महाबली॥ ४२

वहाँ उन्होंने उस पिशाचको देखा। उसका शरीर विशाल था और उसकी ठोढ़ी बहुत बड़ी थी। वह कभी हँसता, कभी रोता और कभी उछलता था। उसकी आकृति बड़ी विकराल थी। भगवान् शिवकी उत्तम कीर्तिका गान करनेवाले महाबली तुम्बुरुने उस अत्यन्त भयंकर पिशाचको बलपूर्वक पाशोंद्वारा बाँध लिया॥ ४१-४२॥

अथो शिवपुराणस्य वाचनार्थं स तुम्बुरुः।
निश्चित्य रचनां चक्रे महोत्सवसमन्विताम्॥ ४३

पिशाचं तारितुं देव्याः शासनात्तुम्बुरुर्गतः।
विन्ध्यं शिवपुराणं स ह्यद्रिं श्रावयितुं परम्॥ ४४

इति कोलाहलो जातः सर्वलोकेषु वै महान्।
तत्र तच्छ्रवणार्थाय ययुर्देवर्षयो द्रुतम्॥ ४५

समाजस्तत्र परमोऽद्भुतश्चासीच्छुभावहः।
तेषां शिवपुराणस्यागतानां श्रोतुमादरात्॥ ४६

तदनन्तर तुम्बुरुने शिवपुराणकी कथा बाँचनेका निश्चय करके महोत्सवयुक्त स्थान और मण्डप आदिकी रचना की। इतनेमें ही सम्पूर्ण लोकोंमें बड़े वेगसे यह प्रचार हो गया कि देवी पार्वतीकी आज्ञासे एक पिशाचका उद्धार करनेके उद्देश्यसे शिवपुराणकी उत्तम कथा सुनानेके लिये तुम्बुरु विन्ध्यपर्वतपर गये हैं। तब तो उस कथाको सुननेके लोभसे बहुत-से देवता और ऋषि भी शीघ्र ही वहाँ जा पहुँचे। आदरपूर्वक शिवपुराण सुननेके लिये आये हुए लोगोंका उस पर्वतपर बड़ा अद्भुत और कल्याणकारी समाज जुट गया॥ ४३—४६ ॥

पिशाचमथ तं पाशैर्बद्ध्वा समुपवेश्य च।
तुम्बुरुर्वल्लकीहस्तो जगौ गौरीपतेः कथाम्॥ ४७

आरभ्य संहितामाद्यां सप्तमीसंहितावधि।
स्पष्टं शिवपुराणं हि समाहात्म्यं समावदत्॥ ४८

तत्पश्चात् तुम्बुरुने उस पिशाचको पाशोंसे बाँधकर आसनपर बिठाया और हाथमें वीणा लेकर गौरीपतिकी कथाका गान आरम्भ किया। माहात्म्यसहित पहली अर्थात् प्रथम संहितासे लेकर सातवीं संहितातक शिवपुराणकी कथाका उन्होंने स्पष्ट वर्णन किया॥ ४७-४८ ॥

श्रुत्वा शिवपुराणं तु सप्तसंहितमादरात्।
बभूवुः सुकृतार्थास्ते सर्वे श्रोतार एव हि॥ ४९

स पिशाचो महापुण्यं श्रुत्वा शिवपुराणकम्।
विधूय कलुषं सर्वं जहौ पैशाचिकं वपुः॥ ५०

दिव्यरूपो बभूवाशु गौरवर्णः सितांशुकः।
सर्वालङ्कारदीप्ताङ्गस्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखरः॥ ५१

सात संहितावाले शिवपुराणका आदरपूर्वक श्रवण करके वे सभी श्रोता पूर्णतः कृतार्थ हो गये। उस परम पुण्यमय शिवपुराणको सुनकर उस पिशाचने अपने सारे पापोंको धोकर उस पैशाचिक शरीरको त्याग दिया। शीघ्र ही उसका रूप दिव्य हो गया। अंगकान्ति गौरवर्णकी हो गयी। शरीरपर श्वेत वस्त्र तथा सब प्रकारके पुरुषोचित आभूषण उसके अंगोंको उद्भासित करने लगे। वह त्रिनेत्रधारी चन्द्रशेखररूप हो गया॥ ४९—५१ ॥

दिव्यं दिव्यवपुर्भूत्वा तया स निजकान्तया।
जगौ स्वयमपि श्रीमांश्चरितं पार्वतीपतेः॥ ५२

तद्वधूमिति सन्दृष्ट्वा सर्वे देवर्षयश्च ते।
बभूवुर्विस्मिताश्चित्ते परमानन्दसंयुताः॥ ५३

सुकृतार्था महेशस्य श्रुत्वा चरितमद्भुतम्।
स्वं स्वं धाम ययुः प्रीत्या शंसन्तः शाङ्करं यशः॥ ५४

इस प्रकार दिव्य देहधारी होकर श्रीमान् बिन्दुग अपनी भार्या चंचुलाके साथ स्वयं भी पार्वतीपति भगवान् शिवके दिव्य चरित्रका गुणगान करने लगा। उसकी स्त्रीको इस प्रकार दिव्य रूपसे सुशोभित देखकर वे सभी देवता और ऋषि बड़े विस्मित हुए; उनका चित्त परमानन्दसे परिपूर्ण हो गया। भगवान् महेश्वरका वह अद्भुत चरित्र सुनकर वे सभी श्रोता परम कृतार्थ हो प्रेमपूर्वक श्रीशिवका यशोगान करते हुए अपने-अपने धामको चले गये॥ ५२—५४ ॥

बिन्दुगः सोऽपि दिव्यात्मा सुविमानस्थितः सुखी।
स्वकान्तापार्श्वगः श्रीमाञ्छुशुभेऽतीव खस्थितः॥ ५५

दिव्यरूपधारी श्रीमान् बिन्दुग भी सुन्दर विमानपर अपनी प्रियतमाके पास बैठकर सुखपूर्वक आकाशमें स्थित हो परम शोभा पाने लगा॥ ५५ ॥

अथ गायन् महेशस्य सुगुणान् सुमनोहरान्।
सतुम्बुरुर्जगामाशु सकान्तः शाङ्करं पदम्॥ ५६

सुसत्कृतो महेशेन पार्वत्या च स बिन्दुगः।
स्वगणश्च कृतः प्रीत्या साभवद्गिरिजासखी॥ ५७

तस्मिँल्लोके परानन्दे घनज्योतिषि शाश्वते।
लब्ध्वा निवासमचलं लभेते परमं सुखम्॥ ५८

तदनन्तर महेश्वरके सुन्दर एवं मनोहर गुणोंका गान करता हुआ वह अपनी प्रियतमा तथा तुम्बुरुके साथ शीघ्र ही शिवधाममें जा पहुँचा। वहाँ भगवान् महेश्वर तथा पार्वती देवीने प्रसन्नतापूर्वक बिन्दुगका बड़ा सत्कार किया और उसे अपना गण बना लिया। उसकी पत्नी चंचुला पार्वतीजीकी सखी हो गयी। उस घनीभूतज्योतिःस्वरूप परमानन्दमय सनातनधाममें अविचल निवास पाकर वे दोनों दम्पती परम सुखी हो गये॥ ५६—५८॥

इत्येतत् कथितं पुण्यमितिहासमघापहम्।
शिवाशिवपरानन्दं निर्मलं भक्तिवर्धनम्॥ ५९

य इदं शृणुयाद्भक्त्या कीर्तयेद्वा समाहितः।
स भुक्त्वा विपुलान् भोगानन्ते मुक्तिमवाप्नुयात्॥ ६०

यह उत्तम इतिहास मैंने आपको सुनाया, जो पापोंका नाश करनेवाला, उमा-महेश्वरको आनन्द देनेवाला, अत्यन्त पवित्र तथा उनमें भक्ति बढ़ानेवाला है। जो इसे भक्तिपूर्वक सुनता है अथवा एकाग्रचित्त होकर इसका पाठ करता है, वह अनेक सांसारिक सुखोंको भोगकर अन्तमें मुक्ति प्राप्त करता है॥ ५९-६०॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे शिवपुराणमाहात्म्ये बिन्दुगसद्गतिवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणके अन्तर्गत शिवपुराणमाहात्म्यमें बिन्दुगसद्गतिवर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

शिवपुराणके श्रवणकी विधि

शौनक उवाच

सूत सूत महाप्राज्ञ व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते।
धन्यस्त्वं शैववर्योऽसि वर्णनीयमहद्गुणः॥ १
श्रीमच्छिवपुराणस्य श्रवणस्य विधिं वद।
येन सर्वं लभेच्छ्रोता सम्पूर्णं फलमुत्तमम्॥ २

शौनकजी बोले—हे महाप्राज्ञ! हे व्यासशिष्य! हे सूतजी! आपको नमस्कार है। आप धन्य हैं और शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ हैं। आपके महान् गुण वर्णन करनेयोग्य हैं। अब आप कल्याणमय शिवपुराणके श्रवणकी विधि बतलाइये, जिससे सभी श्रोताओंको सम्पूर्ण उत्तम फलकी प्राप्ति हो सके॥ १-२॥

सूत उवाच

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि सम्पूर्णफलहेतवे।
विधिं शिवपुराणस्य शौनक श्रवणे मुने॥ ३

सूतजी बोले—हे शौनक! हे मुने! अब मैं आपको सम्पूर्ण फलकी प्राप्तिके लिये शिवपुराणके श्रवणकी विधि बता रहा हूँ॥ ३॥

दैवज्ञं च समाहूय सन्तोष्य च जनान्वितः।
मुहूर्तं शोधयेच्छुद्धं निर्विघ्नेन समाप्तये॥ ४

वार्ता प्रेष्या प्रयत्नेन देशे देशे च सा शुभा।
भविष्यति कथा शैवी आगन्तव्यं शुभार्थिभिः॥ ५

[सर्वप्रथम] किसी ज्योतिषीको बुलाकर दान-मानसे सन्तुष्ट करके अपने सहयोगी लोगोंके साथ बैठकर बिना किसी विघ्न-बाधाके कथाकी समाप्ति होनेके उद्देश्यसे शुद्ध मुहूर्तका अनुसन्धान कराये। तदनन्तर प्रयत्नपूर्वक देश-देशमें—स्थान-स्थानपर यह शुभ सन्देश भेजे कि हमारे यहाँ शिवपुराणकी कथा होनेवाली है। अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको [उसे सुननेके लिये] अवश्य पधारना चाहिये॥ ४-५॥

दूरे हरिकथाः केचिद् दूरे शङ्करकीर्तनाः।
स्त्रियः शूद्रादयो ये च बोधस्तेषां भवेद्यतः॥ ६

देशे देशे शाम्भवा ये कीर्तनश्रवणोत्सुकाः।
तेषामानयनं कार्यं तत्प्रकारार्थमादरात्॥ ७

भविष्यति समाजोऽत्र साधूनां परमोत्सवः।
पारायणे पुराणस्य शैवस्य परमाद्भुतः॥ ८

श्रीमच्छिवपुराणाह्वरसपानाय चादरात्।
आयान्त्वरं भवन्तश्च कृपया प्रेमतत्पराः॥ ९

नावकाशो यदि प्रेम्णागन्तव्यं दिनमेककम्।
सर्वथागमनं कार्यं दुर्लभा च क्षणस्थितिः॥ १०

तेषामाह्वानमेवं हि कार्यं सविनयं मुदा।
आगतानां च तेषां हि सर्वथा कार्य आदरः॥ ११

कुछ लोग भगवान् श्रीहरिकी कथासे बहुत दूर पड़ गये हैं। कितने ही स्त्री, शूद्र आदि भगवान् शंकरके कथा-कीर्तनसे वंचित रहते हैं—उन सबको भी सूचना हो जाय, ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये। देश-देशमें जो भगवान् शिवके भक्त हों तथा शिव-कथाके कीर्तन और श्रवणके लिये उत्सुक हों, उन सबको आदरपूर्वक बुलवाना चाहिये॥ ६-७॥

[उन्हें कहलाना चाहिये कि] यहाँ सत्पुरुषोंको आनन्द देनेवाला समाज तथा अति अद्भुत उत्सव होगा, जिसमें शिवपुराणका पारायण होगा। श्रीशिवपुराणकी रसमयी कथाका श्रवण करनेहेतु आपलोग प्रेमपूर्वक शीघ्र पधारनेकी कृपा करें। यदि समयका अभाव हो तो प्रेमपूर्वक एक दिनके लिये भी आइये। आपको निश्चय ही आना चाहिये; क्योंकि इस कथामें क्षणभरके लिये बैठनेका सौभाग्य भी दुर्लभ है। इस प्रकार विनय और प्रसन्नतापूर्वक श्रोताओंको निमन्त्रण देना चाहिये और आये हुए लोगोंका सब प्रकारसे आदर-सत्कार करना चाहिये॥ ८—११॥

शिवालये च तीर्थे वा वने वापि गृहेऽथवा।
कार्यं शिवपुराणस्य श्रवणस्थलमुत्तमम्॥ १२

शिवमन्दिरमें, तीर्थमें, वनप्रान्तमें अथवा घरमें शिवपुराणकी कथा सुननेके लिये उत्तम स्थानका निर्माण करना चाहिये॥ १२॥

कार्यं संशोधनं भूमेर्लेपनं धातुमण्डनम्।
विचित्रा रचना दिव्या महोत्सवपुरस्सरम्॥ १३

गृहोपस्करमुद्धृत्य निखिलं तदयोग्यकम्।
एकान्ते गृहकोणे चादृश्ये यत्नान्निवेशयेत्॥ १४

कथाभूमिको लीपकर शोधन करना चाहिये तथा धातु आदिसे उस स्थानको सुशोभित करना चाहिये। महोत्सवके साथ-साथ वहाँ अद्भुत तथा सुन्दर व्यवस्था कर लेनी चाहिये। कथाके लिये अनुपयोगी घरके साज-सामानको हटाकर घरके किसी एकान्त कोनेमें सुरक्षित रख देना चाहिये॥ १३-१४॥

कर्तव्यो मण्डपोऽत्युच्चैः कदलीस्तम्भमण्डितः।
फलपुष्पादिभिस्सम्यग्विष्वग्वैतानराजितः॥ १५

चतुर्दिक्षु ध्वजारोपस्सपताकः सुशोभनः।
सुभक्तिः सर्वथा कार्या सर्वानन्दविधायिनी॥ १६

केलेके खम्भोंसे सुशोभित एक ऊँचा कथामण्डप तैयार कराये। उसे सब ओर फल-पुष्प आदिसे तथा सुन्दर चँदोवेसे अलंकृत करे और चारों ओर ध्वजा-पताका लगाकर तरह-तरहके सामानोंसे सजाकर सुन्दर शोभासम्पन्न बना दे। भगवान् शिवके प्रति सब प्रकारसे उत्तम भक्ति करनी चाहिये; क्योंकि वही सब तरहसे आनन्दका विधान करनेवाली है॥ १५-१६॥

सङ्कल्प्यमासनं दिव्यं शङ्करस्य परात्मनः।
वक्तुश्चापि तथा दिव्यमासनं सुखसाधनम्॥ १७

परमात्मा भगवान् शंकरके लिये दिव्य आसनका निर्माण करना चाहिये तथा कथा-वाचकके लिये भी एक ऐसा दिव्य आसन बनाना चाहिये, जो उनके लिये सुखद हो सके॥ १७॥

श्रोतॄणां कल्पनीयानि सुस्थलानि यथार्हतः।
अन्येषां च स्थलान्येव साधारणतया मुने॥ १८

हे मुने! [नियमपूर्वक] कथा सुननेवाले श्रोताओंके लिये भी यथायोग्य सुन्दर स्थानोंकी व्यवस्था करनी चाहिये। अन्य लोगोंके लिये भी सामान्यरूपसे स्थान बनाने चाहिये॥ १८॥

विवाहे यादृशं चित्तं तादृशं कार्यमेव हि।
अन्या चिन्ता विनिर्वार्या सर्वा शौनक लौकिकी॥ १९

हे शौनकजी! विवाहोत्सवमें जैसी उल्लासपूर्ण मनःस्थिति होती है, वैसी ही इस कथोत्सवमें रखनी चाहिये। सब प्रकारकी दूसरी लौकिक चिन्ताओंको भूल जाना चाहिये॥ १९॥

उदङ्मुखो भवेद्वक्ता श्रोता प्राग्वदनस्तथा।
व्युत्क्रमः पादयोर्ज्ञेयो विरोधो नास्ति कश्चन॥ २०
अथवा पूर्वदिग्ज्ञेया पूज्यपूजकमध्यतः।
अथवा सम्मुखे वक्तुः श्रोतॄणामाननं स्मृतम्॥ २१

वक्ता उत्तर दिशाकी ओर मुख करे तथा श्रोतागण पूर्व दिशाकी ओर मुख करके पालथी लगाकर बैठें। इस विषयमें भी कोई विरोध नहीं है कि पूज्य-पूजकके बीच पूर्व दिशा रहे अथवा वक्ताके सम्मुख श्रोताओंका मुख रहे—ऐसा कहा गया है॥ २०-२१॥

व्यासासनसमारूढो यदा पौराणिको द्विजः।
असमाप्तौ प्रसङ्गस्य नमस्कुर्यान्न कस्यचित्॥ २२
बालो युवाथ वृद्धो वा दरिद्रो वापि दुर्बलः।
पुराणज्ञः सदा वन्द्यः पूज्यश्च सुकृतार्थिभिः॥ २३

पौराणिक वक्ता व्यासासनपर जबतक विराजमान रहें, तबतक प्रसंग-समाप्तिके पूर्व किसीको नमस्कार नहीं करना चाहिये। पुराणका विद्वान् वक्ता चाहे बालक, युवा, वृद्ध, दरिद्र अथवा दुर्बल—जैसा भी हो, पुण्य चाहनेवालोंके लिये सदा वन्दनीय और पूज्य होता है॥ २२-२३॥

नीचबुद्धिं न कुर्वीत पुराणज्ञे कदाचन।
यस्य वक्त्रोद्गता वाणी कामधेनुः शरीरिणाम्॥ २४
गुरवः सन्ति बहवो जन्मतो गुणतश्च वै।
परो गुरुः पुराणज्ञस्तेषां मध्ये विशेषतः॥ २५

जिसके मुखसे निकली हुई वाणी देहधारियोंके लिये कामधेनुके समान अभीष्ट फल देनेवाली होती है, उस पुराणवेत्ता वक्ताके प्रति तुच्छबुद्धि कभी नहीं करनी चाहिये। संसारमें जन्म तथा गुणोंके कारण बहुत-से गुरु होते हैं, परंतु उन सबमें पुराणोंका ज्ञाता विद्वान् ही परम गुरु माना गया है॥ २४-२५॥

भवकोटिसहस्रेषु भूत्वा भूत्वावसीदताम्।
यो ददाति परां मुक्तिं कोऽन्यस्तस्मात् परो गुरुः॥ २६

करोड़ों योनियोंमें जन्म ले-लेकर दुःख भोगते हुए प्राणियोंको जो मुक्ति प्रदान करता है, उस [पुराणवक्ता]-से बड़ा दूसरा कौन गुरु हो सकता है?॥ २६॥

पुराणज्ञः शुचिर्दक्षः शान्तो विजितमत्सरः।
साधुः कारुण्यवान् वाग्मी वदेत् पुण्यकथामिमाम्॥ २७
आसूर्योदयमारभ्य सार्धत्रिप्रहरान्तकम्।
कथा शिवपुराणस्य वाच्या सम्यक् सुधीमता॥ २८

पुराणवेत्ता पवित्र, दक्ष, शान्त, ईर्ष्यापर विजय पानेवाला, साधु और दयालु होना चाहिये। ऐसा प्रवचनकुशल विद्वान् इस पुण्यमयी कथाको कहे। सूर्योदयसे आरम्भ करके साढ़े तीन पहरतक उत्तम बुद्धिवाले विद्वान् पुरुषको शिवपुराणकी कथा सम्यक् रीतिसे बाँचनी चाहिये॥ २७-२८॥

ये धूर्ता ये च दुर्वृत्ता ये चान्ये विजिगीषवः।
तेषां कुटिलवृत्तीनामग्रे नैव वदेत् कथाम्॥ २९

जो धूर्त, दुराचारी तथा दूसरेसे विवाद करनेवाले और प्रपंची लोग हैं, उन कुटिलवृत्तिवाले लोगोंके सामने यह कथा नहीं कहनी चाहिये।

न दुर्जनसमाकीर्णे न तु दस्युसमावृते।
देशे न धूर्तसदने वदेत् पुण्यकथामिमाम्॥ ३०

दुष्टोंसे भरे तथा डाकुओंसे घिरे प्रदेशमें और धूर्त व्यक्तिके घरमें इस पवित्र कथाको नहीं कहना चाहिये॥ २९-३०॥

कथाविरामः कर्तव्यो मध्याह्ने हि मुहूर्तकम्।
मलमूत्रोत्सर्जनार्थं तत्कथाकीर्तनान्नरैः॥ ३१

मध्याह्नकालमें दो घड़ीतक कथा बन्द रखनी चाहिये, जिससे कथा-कीर्तनसे अवकाश पाकर लोग शौच आदिसे निवृत्त हो सकें॥ ३१॥

वक्त्रा क्षौरं हि सङ्कार्यं दिनादर्वाग्व्रताप्तये।
कार्यं संक्षेपतो नित्यकर्म सर्वं प्रयत्नतः॥ ३२

वक्तुः पार्श्वे सहायार्थमन्यः स्थाप्यस्तथाविधः।
पण्डितः संशयच्छेत्ता लोकबोधनतत्परः॥ ३३

कथा-प्रारम्भके दिनसे एक दिन पहले व्रत ग्रहण करनेके लिये वक्ताको क्षौर करा लेना चाहिये। जिन दिनों कथा हो रही हो, उन दिनों प्रयत्नपूर्वक प्रातःकालका सारा नित्यकर्म संक्षेपसे ही कर लेना चाहिये। वक्ताके पास उसकी सहायताके लिये एक दूसरा वैसा ही विद्वान् स्थापित करना चाहिये, जो सब प्रकारके संशयोंको निवृत्त करनेमें समर्थ और लोगोंको समझानेमें कुशल हो॥ ३२-३३॥

कथाविघ्नविनाशार्थं गणनाथं प्रपूजयेत्।
कथाधीशं शिवं भक्त्या पुस्तकं च विशेषतः॥ ३४

कथां शिवपुराणस्य शृणुयादादरात्सुधीः।
श्रोता सुविधिना शुद्धः शुद्धचित्तः प्रसन्नधीः॥ ३५

कथामें आनेवाले विघ्नोंकी निवृत्तिके लिये गणेशजीका पूजन करे। कथाके स्वामी भगवान् शिवकी तथा विशेषतः शिवपुराण ग्रन्थकी भक्तिभावसे पूजा करे। तत्पश्चात् उत्तम बुद्धिवाला श्रोता विधिपूर्वक तन-मनसे शुद्ध एवं प्रसन्नचित्त हो आदरपूर्वक शिवपुराणकी कथा सुने॥ ३४-३५॥

अनेककर्मविभ्रान्तः कामादिषड्विकारवान्।
स्त्रैणः पाखण्डवादी च वक्ता श्रोता न पुण्यभाक्॥ ३६

लोकचिन्तां धनागारपुत्रचिन्तां व्युदस्य च।
कथाचित्तः शुद्धमतिः स लभेत् फलमुत्तमम्॥ ३७

श्रद्धाभक्तिसमायुक्ता नान्यकार्येषु लालसाः।
वाग्यताः शुचयोऽव्यग्राः श्रोतारः पुण्यभागिनः॥ ३८

जो वक्ता और श्रोता अनेक प्रकारके कर्मोंमें भटक रहे हों, काम आदि छः विकारोंसे युक्त हों, स्त्रीमें आसक्ति रखते हों और पाखण्डपूर्ण बातें कहते हों, वे पुण्यके भागी नहीं होते। जो लौकिक चिन्ता तथा धन, गृह एवं पुत्र आदिकी चिन्ताको छोड़कर कथामें मन लगाये रहता है, उस शुद्धबुद्धि पुरुषको उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। श्रद्धा और भक्तिसे युक्त, दूसरे कर्मोंमें मन नहीं लगानेवाले, मौन धारण करनेवाले, पवित्र एवं उद्वेगशून्य श्रोता ही पुण्यके भागी होते हैं॥ ३६—३८॥

अभक्ता ये कथां पुण्यां शृण्वन्तीमां नराधमाः।
तेषां श्रवणजं नास्ति फलं दुःखं भवे भवे॥ ३९

असम्पूज्य पुराणं ये यथाशक्त्या ह्युपायनैः।
शृण्वन्तीमां कथां मूढाः स्युर्दरिद्रा न पावनाः॥ ४०

जो नराधम भक्तिरहित होकर इस पुण्यमयी कथाको सुनते हैं, उन्हें श्रवणका कोई फल नहीं होता और वे जन्म-जन्मान्तरमें क्लेश भोगते ही रहते हैं। यथाशक्ति उपचारोंसे इस पुराणकी पूजा किये बिना जो मूढ़जन इस कथाको सुनते हैं, वे अपवित्र और दरिद्र होते हैं॥ ३९-४०॥

कथायां कथ्यमानायां गच्छन्त्यन्यत्र ये नराः।
भोगान्तरे प्रणश्यन्ति तेषां दारादिसम्पदः॥ ४१
सोष्णीषमस्तका ये च शृण्वन्तीमां कथां नराः।
तत्पुत्राश्च प्रजायन्ते पापिनः कुलदूषकाः॥ ४२

कथा कहे जाते समय बीचमें ही जो लोग उठकर अन्यत्र चले जाते हैं, जन्मान्तरमें उनकी स्त्री आदि सम्पत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। जो पुरुष सिरपर पगड़ी आदि धारण करके इस कथाका श्रवण करते हैं, उनके पापी और कुलकलंकी पुत्र उत्पन्न होते हैं॥ ४१-४२॥

ताम्बूलं भक्षयन्तो ये शृण्वन्तीमां कथां नराः।
स्वविष्ठां खादयन्त्येतान्नरके यमकिङ्कराः॥ ४३
ये च तुङ्गासनारूढाः शृण्वन्तीमां कथां नराः।
भुक्त्वा ते नरकान् सर्वांस्ततः काका भवन्ति हि॥ ४४

जो पुरुष पान चबाते हुए इस कथाको सुनते हैं, उन्हें नरकमें यमदूत उनकी ही विष्ठा खिलाते हैं। जो लोग ऊँचे आसनपर बैठकर इस कथाका श्रवण करते हैं, वे समस्त नरकोंको भोगकर काकयोनिमें जन्म लेते हैं॥ ४३-४४॥

ये वीराद्यासनारूढाः शृण्वन्तीमां कथां शुभाम्।
भुक्त्वा ते नरकान् सर्वान्विषवृक्षा भवन्ति वै॥ ४५
असम्प्रणम्य वक्तारं कथां शृण्वन्ति ये नराः।
भुक्त्वा ते नरकान् सर्वान् भवन्त्यर्जुनपादपाः॥ ४६
अनातुराः शयाना ये शृण्वन्तीमां कथां नराः।
भुक्त्वा ते नरकान् सर्वान् भवन्त्यजगरादयः॥ ४७
वक्तुः समासनारूढा ये शृण्वन्ति कथामिमाम्।
गुरुतल्पसमं पापं प्राप्यते नारकैः सदा॥ ४८

जो लोग वीरासन आदिसे बैठकर इस शुभ कथाको सुनते हैं, वे अनेकों नरकोंको भोगकर विषवृक्षका जन्म पाते हैं। कथा सुनानेवाले पौराणिकको अच्छी प्रकार प्रणाम किये बिना जो लोग कथा सुनते हैं, वे सभी नरकोंको भोगकर अर्जुनवृक्ष बनते हैं। रोगयुक्त न होनेपर भी जो लोग लेटकर यह कथा सुनते हैं, वे सभी नरकोंको भोगकर अन्तमें अजगर आदि योनियोंमें जन्म लेते हैं। वक्ताके समान ऊँचाईवाले आसनपर बैठकर जो इस कथाका श्रवण करते हैं, उन नारकीय लोगोंको गुरुशय्यापर शयन करने-जैसा पाप लगता है॥ ४५—४८॥

ये निन्दन्ति च वक्तारं कथां चेमां सुपावनीम्।
भवन्ति शुनका भुक्त्वा दुःखं जन्मशतं हि ते॥ ४९
कथायां वर्तमानायां दुर्वादं ये वदन्ति हि।
भुक्त्वा ते नरकान् घोरान् भवन्ति गर्दभास्ततः॥ ५०
कदाचिन्नापि शृण्वन्ति कथामेतां सुपावनीम्।
भुक्त्वा ते नरकान् घोरान् भवन्ति वनसूकराः॥ ५१
कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये खलाः।
कोट्यब्दं नरकान् भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः॥ ५२

जो इस पवित्र कथा तथा वक्ताकी निन्दा करते हैं, वे सौ जन्मोंतक दुःख भोगकर कुत्तेका जन्म पाते हैं। कथा होते समय बीचमें जो गन्दी बातें बोलते हैं, वे घोर नरक भोगनेके बाद गधेका जन्म पाते हैं। जो कभी भी इस परम पवित्र कथाका श्रवण नहीं करते, वे घोर नरक भोगनेके पश्चात् जंगली सूअरका जन्म लेते हैं। जो दुष्ट कथाके बीचमें विघ्न डालते हैं, वे करोड़ों वर्षोंतक नरकयातनाओंको भोगकर गाँवके सूअरका जन्म पाते हैं॥ ४९—५२॥

एवं विचार्य शुद्धात्मा श्रोता वक्तृसुभक्तिमान्।
कथाश्रवणहेतोर्हि भवेत् प्रीत्योद्यतः सुधीः॥ ५३

इसका विचार करके शुद्ध और प्रेमपूर्ण चित्तसे बुद्धिमान् श्रोताको वक्ताके प्रति भक्तिभाव रखकर कथाश्रवणका प्रयत्न करना चाहिये॥ ५३॥

कथाविघ्नविनाशार्थं गणेशं पूजयेत् पुरा।
नित्यं सम्पाद्य सङ्क्षेपात् प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥ ५४
नवग्रहांश्च सम्पूज्य सर्वतोभद्रदैवतम्।
शिवपूजोक्तविधिना पुस्तकं तत्समर्चयेत्॥ ५५

सबसे पहले कथाके विघ्नोंका नाश करनेहेतु गणेशजीकी पूजा करनी चाहिये। अपने नित्यकर्मको संक्षेपमें सम्पन्न करके प्रायश्चित्त करना चाहिये। नवग्रह और सर्वतोभद्र देवताओंका पूजन करके शिवपूजाकी बतायी गयी विधिसे शिवपुराणकी पुस्तकका अर्चन करना चाहिये॥ ५४-५५॥

पूजनान्ते महाभक्त्या करौ बद्ध्वा विनीतकः।
साक्षाच्छिवस्वरूपस्य पुस्तकस्य स्तुतिं चरेत्॥ ५६
श्रीमच्छिवपुराणाख्यः प्रत्यक्षस्त्वं महेश्वरः।
श्रवणार्थं स्वीकृतोऽसि सन्तुष्टो भव वै मयि॥ ५७
मनोरथो मदीयोऽयं कर्तव्यः सफलस्त्वया।
निर्विघ्नेन सुसम्पूर्णं कथाश्रवणमस्तु मे॥ ५८
भवाब्धिमग्नं दीनं मां समुद्धर भवार्णवात्।
कर्मग्राहगृहीताङ्गं दासोऽहं तव शङ्कर॥ ५९

पूजनके अन्तमें विनम्र होकर बड़ी भक्तिके साथ दोनों हाथ जोड़कर साक्षात् शिवस्वरूपिणी पुस्तककी इस प्रकार स्तुति करनी चाहिये—श्रीशिवपुराणके रूपमें आप प्रत्यक्ष सदाशिव हैं; हमने कथा सुननेके लिये आपको अंगीकार किया है। आप हमपर प्रसन्न हों। मेरा जो मनोवांछित हो, उसे आप कृपापूर्वक सम्पन्न करें। मेरा यह कथाश्रवण निर्विघ्नरूपसे सुसम्पन्न हो। कर्मरूपी ग्राहसे ग्रस्त शरीरवाले मुझ दीनका आप संसारसागरसे उद्धार कीजिये। हे शंकर! मैं आपका दास हूँ॥ ५६—५९॥

एवं शिवपुराणं हि साक्षाच्छिवस्वरूपकम्।
स्तुत्वा दीनवचः प्रोच्य वक्तुः पूजां समारभेत्॥ ६०
शिवपूजोक्तविधिना वक्तारं च समर्चयेत्।
सपुष्पवस्त्रभूषाभिर्धूपदीपादिनार्चयेत्॥ ६१
तदग्रे शुद्धचित्तेन कर्तव्यो नियमस्तदा।
आसमाप्ति यथाशक्त्या धारणीयः सुयत्नतः॥ ६२

इस प्रकार साक्षात् शिवस्वरूप इस शिवपुराणकी दीनतापूर्वक स्तुति करके वक्ताकी पूजा आरम्भ करनी चाहिये। शिवपूजाकी बतायी गयी विधिसे पुष्प, वस्त्र, अलंकार, धूप-दीपादिसे वक्ताकी पूजा करे। तदनन्तर शुद्धचित्तसे उनके सामने नियम ग्रहण करे और कथासमाप्तिपर्यन्त यथाशक्ति उसका प्रयत्नपूर्वक पालन करे॥ ६०—६२॥

व्यासरूप प्रबोधाग्रय शिवशास्त्रविशारद।
एतत्कथाप्रकाशेन मदज्ञानं विनाशय॥ ६३
वरणं पञ्चविप्राणां कार्यं वैकस्य भक्तितः।
शिवपञ्चार्णमन्त्रस्य जपः कार्यश्च तैः सदा॥ ६४

[तत्पश्चात् कथावाचक व्यासकी प्रार्थना करे—] हे व्यासजीके समान ज्ञानीश्रेष्ठ, शिवशास्त्रके मर्मज्ञ ब्राह्मणदेवता! आप इस कथाके प्रकाशसे मेरे अज्ञानान्धकारको दूर करें। भक्तिपूर्वक पाँच अथवा एक ब्राह्मणका वरण करे और उनके द्वारा शिवपंचाक्षर मन्त्र (**नमः शिवाय**)-का जप कराये॥ ६३-६४॥

इत्युक्तस्ते मुने भक्त्या कथाश्रवणसद्विधिः।
श्रोतॄणां चैव भक्तानां किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥ ६५

हे मुने! इस प्रकार मैंने भक्त श्रोताओंद्वारा भक्तिपूर्वक कथाश्रवणकी उत्तम विधि आपको बता दी; अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ६५॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे शिवपुराणमाहात्म्ये श्रवणविधिवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणके अन्तर्गत शिवपुराणमाहात्म्यमें श्रवणविधिवर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

श्रोताओंके पालन करनेयोग्य नियमोंका वर्णन

शौनक उवाच

सूत सूत महाप्राज्ञ धन्यस्त्वं शैवपुङ्गव।
श्रावितेयं कथास्माकमद्भुतेयं शुभावहा॥ १
पुंसां शिवपुराणस्य श्रवणव्रतिनां मुने।
सर्वलोकहितार्थाय दयया नियमं वद॥ २

शौनकजी बोले—हे शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ महाबुद्धिमान् सूतजी! आप धन्य हैं, जो कि आपने यह अद्भुत एवं कल्याणकारिणी कथा हमें सुनायी। हे मुने! शिवपुराणकी कथा सुननेके लिये व्रत धारण करनेवाले लोगोंको किन नियमोंका पालन करना चाहिये—यह भी कृपापूर्वक सबके कल्याणकी दृष्टिसे बताइये॥ १-२॥

सूत उवाच

नियमं शृणु सद्भक्त्या पुंसां तेषां च शौनक।
नियमात् सत्कथां श्रुत्वा निर्विघ्नफलमुत्तमम्॥ ३

सूतजी बोले—हे शौनक! अब शिवपुराण सुननेका व्रत लेनेवाले पुरुषोंके लिये जो नियम हैं, उन्हें भक्तिपूर्वक सुनिये। नियमपूर्वक इस श्रेष्ठ कथाको सुननेसे बिना किसी विघ्न-बाधाके उत्तम फलकी प्राप्ति होती है॥ ३॥

पुंसां दीक्षाविहीनानां नाधिकारः कथाश्रवे।
श्रोतुकामैरतो वक्तुर्दीक्षा ग्राह्या च तैर्मुने॥ ४

ब्रह्मचर्यमधस्सुप्तिः पत्रावल्यां च भोजनम्।
कथासमाप्तौ भुक्तिं च कुर्यान्नित्यं कथाव्रती॥ ५

दीक्षासे रहित लोगोंका कथाश्रवणमें अधिकार नहीं है। अतः मुने! कथा सुननेकी इच्छावाले सब लोगोंको पहले वक्तासे दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये। कथाव्रतीको ब्रह्मचर्यसे रहना, भूमिपर सोना, पत्तलमें खाना और प्रतिदिन कथा समाप्त होनेपर ही अन्न ग्रहण करना चाहिये॥ ४-५॥

आसमाप्तपुराणं हि समुपोष्य सुशक्तिमान्।
शृणुयाद्भक्तितः शुद्धः पुराणं शैवमुत्तमम्॥ ६

घृतपानं पयःपानं कृत्वा वा शृणुयात् सुखम्।
फलाहारेण वा श्राव्यमेकभुक्तं न वा हि तत्॥ ७

एकवारं हविष्यान्नं भुञ्ज्यादेतत्कथाव्रती।
सुखसाध्यं यथा स्यात्तच्छ्रवणं कार्यमेव च॥ ८

जिसमें शक्ति हो, वह पुराणकी समाप्तितक उपवास करके शुद्धतापूर्वक भक्तिभावसे उत्तम शिवपुराणको सुने। घृत अथवा दुग्ध पीकर सुखपूर्वक कथाश्रवण करे अथवा फलाहार करके अथवा एक ही समय भोजन करके इसे सुनना चाहिये। इस कथाका व्रत लेनेवाले पुरुषको प्रतिदिन एक ही बार हविष्यान्न भोजन करना चाहिये। जिस प्रकारसे कथाश्रवणका नियम सुखपूर्वक पालित हो सके, वैसे ही करना चाहिये॥ ६—८॥

भोजनं सुकरं मन्ये कथासु श्रवणप्रदम्।
नोपवासो वरश्चेत् स्यात् कथाश्रवणविघ्नकृत्॥ ९

कथाश्रवणमें विघ्न उत्पन्न करनेवाले उपवासकी तुलनामें तो मैं कथाश्रवणमें शक्ति प्रदान करनेवाले भोजनको ही अच्छा समझता हूँ॥ ९॥

गरिष्ठं द्विदलं दग्धं निष्पावांश्च मसूरिकाम्।
भावदुष्टं पर्युषितं जग्ध्वा नित्यं कथाव्रती॥ १०

गरिष्ठ अन्न, दाल, जला अन्न, सेम, मसूर, भावदूषित तथा बासी अन्नको खाकर कथा-व्रती पुरुष कभी कथाको न सुने॥ १०॥

वार्ताकं च कलिन्दं च चिचिण्डं मूलकं तथा।
कूष्माण्डं नालिकेरं च मूलं जग्ध्वा कथाव्रती॥ ११

कथाव्रतीको बैंगन, तरबूज, चिचिंडा, मूली, कोहड़ा, प्याज, नारियलका मूल तथा अन्य कन्द-मूलका त्याग करना चाहिये॥ ११॥

पलाण्डुं लशुनं हिङ्गुं गृञ्जनं मादकं हि तत्।
वस्तून्यामिषसंज्ञानि वर्जयेद्यः कथाव्रती॥ १२

कामादिषड्विकारं च द्विजानां च विनिन्दनम्।
पतिव्रतासतां निन्दां वर्जयेद्यः कथाव्रती॥ १३

जिसने कथाका व्रत ले रखा हो, वह पुरुष प्याज, लहसुन, हींग, गाजर, मादक वस्तु तथा आमिष कही जानेवाली वस्तुओंको त्याग दे। कथाका व्रत लेनेवाला जो पुरुष हो, उसे काम, क्रोध आदि छः विकारों, ब्राह्मणोंकी निन्दा तथा पतिव्रता और साधु-संतोंकी निन्दाका त्याग कर देना चाहिये॥ १२-१३॥

रजस्वलां न पश्येच्च पतितान्न वदेत् कथाम्।
द्विजद्विषो वेदवर्ज्यान्न वदेद्यः कथाव्रती॥ १४

कथाश्रवणका व्रत धारण करनेवाला व्यक्ति रजस्वला स्त्रीको न देखे, पतित मनुष्योंको कथाकी बात न सुनाये, ब्राह्मणोंसे द्वेष रखनेवालों और वेदबहिष्कृत मनुष्योंके साथ सम्भाषण न करे॥ १४॥

सत्यं शौचं दयां मौनमार्जवं विनयं तथा।
औदार्यं मनसश्चैव कुर्यान्नित्यं कथाव्रती॥ १५

निष्कामश्च सकामश्च नियमाच्छृणुयात् कथाम्।
सकामः काममाप्नोति निष्कामो मोक्षमाप्नुयात्॥ १६

दरिद्रश्च क्षयी रोगी पापी निर्भाग्य एव च।
अनपत्योऽपि पुरुषः शृणुयात् सत्कथामिमाम्॥ १७

काकवन्ध्यादयः सप्तविधा अपि खलस्त्रियः।
स्रवद्‌गर्भा च या नारी ताभ्यां श्राव्या कथा परा॥ १८

सर्वेषां श्रवणं कार्यं स्त्रीभिः पुंभिश्च यत्नतः।
एतच्छिवपुराणस्य विधिना च कथां मुने॥ १९

एतच्छिवपुराणस्य पारायणदिनानि वै।
अत्युत्तमानि बोध्यानि कोटियज्ञसमानि च॥ २०

एतेषु विधिना दत्तं यदल्पमपि वस्तु हि।
दिवसेषु वरिष्ठेषु तदक्षय्यफलं लभेत्॥ २१

एवं कृत्वा व्रतविधिं श्रुत्वेमां परमां कथाम्।
परानन्दयुतः श्रीमानुद्यापनमथाचरेत्॥ २२

एतदुद्यापनविधिश्चतुर्दश्याः समो मतः।
कार्यस्तद्वद्धनाढ्यैश्च तदुक्तफलकाङ्‌क्षिभिः॥ २३

अकिञ्चनेषु भक्तेषु प्रायो नोद्यापनग्रहः।
श्रवणेनैव पूतास्ते निष्कामाः शाम्भवा मताः॥ २४

एवं शिवपुराणस्य पारायणमखोत्सवे।
समाप्ते श्रोतृभिर्भक्त्या पूजा कार्या प्रयत्नतः॥ २५

शिवपूजनवत् सम्यक् पुस्तकस्य पुरो मुने।
पूजा कार्या सुविधिना वक्तुश्च तदनन्तरम्॥ २६

पुस्तकाच्छादनार्थं हि नवीनं चासनं शुभम्।
समर्चयेद् दृढं दिव्यं बन्धनार्थं च सूत्रकम्॥ २७

पुराणार्थं प्रयच्छन्ति ये सूत्रं वसनं नवम्।
भोगिनो ज्ञानसम्पन्नास्ते भवन्ति भवे भवे॥ २८

वक्त्रे दद्यान्महार्हाणि वस्तूनि विविधानि च।
वस्त्रभूषणपात्राणि दिव्यं बहु विशेषतः॥ २९

कथाव्रती पुरुष प्रतिदिन सत्य, शौच, दया, मौन, सरलता, विनय तथा मनकी उदारता—इन सद्‌गुणोंको सदा अपनाये रहे। श्रोता निष्काम हो या सकाम, वह नियमपूर्वक कथा सुने। सकाम पुरुष अपनी अभीष्ट कामनाको प्राप्त करता है और निष्काम पुरुष मोक्ष पा लेता है। दरिद्र, क्षयका रोगी, पापी, भाग्यहीन तथा सन्तानरहित पुरुष भी इस उत्तम कथाको सुने॥ १५—१७॥

काकवन्ध्या आदि जो सात प्रकारकी दुष्टा स्त्रियाँ हैं तथा जिस स्त्रीका गर्भ गिर जाता हो—इन सभीको शिवपुराणकी उत्तम कथा सुननी चाहिये। हे मुने! स्त्री हो या पुरुष—सबको यत्नपूर्वक विधि-विधानसे शिवपुराणकी उत्तम कथा सुननी चाहिये॥ १८-१९॥

इस शिवपुराणके कथापारायणके दिनोंको अत्यन्त उत्तम और करोड़ों यज्ञोंके समान पवित्र मानना चाहिये। इन श्रेष्ठ दिनोंमें विधिपूर्वक जो थोड़ी-सी भी वस्तु दान की जाती है, उसका अक्षय फल मिलता है॥ २०-२१॥

इस प्रकार व्रतधारण करके इस परम श्रेष्ठ कथाका श्रवण करके आनन्दपूर्वक श्रीमान् पुरुषोंको इसका उद्यापन करना चाहिये। इसके उद्यापनकी विधि शिवचतुर्दशीके उद्यापनके समान है। अतः यहाँ बताये गये फलकी आकांक्षावाले धनाढ्य लोगोंको उसी प्रकारसे उद्यापन करना चाहिये। अल्पवित्तवाले भक्तोंके लिये प्रायः उद्यापनकी आवश्यकता नहीं है; वे तो कथाश्रवणमात्रसे पवित्र हो जाते हैं। शिवजीके निष्काम भक्त तो शिवस्वरूप ही होते हैं॥ २२—२४॥

हे महर्षे! इस प्रकार शिवपुराणकी कथाके पाठ एवं श्रवण-सम्बन्धी यज्ञोत्सवकी समाप्ति होनेपर श्रोताओंको भक्ति एवं प्रयत्नपूर्वक भगवान् शिवकी पूजाकी भाँति पुराण-पुस्तककी भी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर विधिपूर्वक वक्ताका भी पूजन करना चाहिये। पुस्तकको आच्छादित करनेके लिये नवीन एवं सुन्दर बस्ता बनाये और उसे बाँधनेके लिये दृढ़ एवं दिव्य सूत्र लगाये; फिर उसका विधिवत् पूजन करे॥ २५—२७॥

पुराणके लिये जो लोग नया वस्त्र और सूत्र देते हैं, वे जन्म-जन्मान्तरमें भोग और ज्ञानसे सम्पन्न होते हैं। कथावाचकको अनेक प्रकारके बहुमूल्य पदार्थ देने चाहिये और उत्तम वस्त्र, आभूषण और सुन्दर पात्र

आसनार्थं प्रयच्छन्ति पुराणस्य च ये नराः।
कम्बलाजिनवासांसि मञ्चं फलकमेव च॥ ३०
स्वर्गलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान्।
स्थित्वा ब्रह्मपदे कल्पं यान्ति शैवपदं ततः॥ ३१

आदि विशेष रूपसे देने चाहिये। पुराणके आसनरूपमें जो लोग कम्बल, मृगचर्म, वस्त्र, चौकी, तख्ता आदि प्रदान करते हैं, वे स्वर्ग प्राप्त करके यथेच्छ सुखोंका उपभोगकर पुनः कल्पपर्यन्त ब्रह्मलोकमें रहकर अन्तमें शिवलोक प्राप्त करते हैं॥ २८—३१॥

एवं कृत्वा विधानेन पुस्तकस्य प्रपूजनम्।
वक्तुश्च मुनिशार्दूल महोत्सवपुरस्सरम्॥ ३२
सहायार्थं स्थापितस्य पण्डितस्य प्रपूजनम्।
कुर्यात्तदनुसारेण किञ्चिदूनं धनादिभिः॥ ३३
समागतेभ्यो विप्रेभ्यो दद्यादन्नं धनादिकम्।
महोत्सवः प्रकर्तव्यो गीतैर्वाद्यैश्च नर्तनैः॥ ३४

मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार महान् उत्सवके साथ पुस्तक और वक्ताकी विधिवत् पूजा करके वक्ताकी सहायताके लिये स्थापित किये गये पण्डितका भी उसीके अनुसार उससे कुछ ही कम धन आदिके द्वारा सत्कार करे। वहाँ आये हुए ब्राह्मणोंको अन्न-धन आदिका दान करे। साथ ही गीत, वाद्य और नृत्य आदिके द्वारा महान् उत्सव करे॥ ३२—३४॥

विरक्तश्च भवेच्छ्रोता परेऽहनि विशेषतः।
गीता वाच्या शिवेनोक्ता रामचन्द्राय या मुने॥ ३५

हे मुने! यदि श्रोता विरक्त हो तो उसके लिये कथा-समाप्तिके दिन विशेषरूपसे उस गीताका* पाठ करना चाहिये, जिसे श्रीरामचन्द्रजीके प्रति भगवान् शिवने कहा था॥ ३५॥

गृहस्थश्चेद्भवेच्छ्रोता कर्तव्यस्तेन धीमता।
होमः शुद्धेन हविषा कर्मणस्तस्य शान्तये॥ ३६
रुद्रसंहितया होमः प्रतिश्लोकेन वा मुने।
गायत्र्यास्तन्मयत्वाच्च पुराणस्यास्य तत्त्वतः॥ ३७
अथवा मूलमन्त्रेण पञ्चवर्णेन शैवतः।
होमाशक्तौ बुधो हौम्यं हविर्दद्याद् द्विजाय तत्॥ ३८

यदि श्रोता गृहस्थ हो तो उस बुद्धिमान्को उस श्रवण-कर्मकी शान्तिके लिये शुद्ध हविष्यके द्वारा होम करना चाहिये। हे मुने! रुद्रसंहिताके प्रत्येक श्लोकद्वारा होम करे अथवा गायत्री-मन्त्रसे होम करना चाहिये; क्योंकि वास्तवमें यह पुराण गायत्रीमय ही है। अथवा शिवपंचाक्षर मूलमन्त्रसे हवन करना उचित है। होम करनेकी शक्ति न हो तो विद्वान् पुरुष यथाशक्ति हवनीय हविष्यका ब्राह्मणको दान करे॥ ३६—३८॥

दोषयोः प्रशमार्थं च न्यूनताधिकताख्ययोः।
पठेच्च शृणुयाद्भक्त्या शिवनामसहस्रकम्॥ ३९
तेन स्यात् सफलं सर्वं सफलं नात्र संशयः।
यतो नास्त्यधिकं त्वस्मात् त्रैलोक्ये वस्तु किञ्चन॥ ४०

न्यूनातिरिक्ततारूप दोषोंकी शान्तिके लिये भक्तिपूर्वक शिवसहस्रनामका पाठ अथवा श्रवण करे। इससे सब कुछ सफल होता है, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि तीनों लोकोंमें उससे बढ़कर कोई वस्तु नहीं है॥ ३९-४०॥

एकादशमितान् विप्रान् भोजयेन्मधुपायसैः।
दद्यात् तेभ्यो दक्षिणां च व्रतपूर्णत्वसिद्धये॥ ४१

कथाश्रवणसम्बन्धी व्रतकी पूर्णताकी सिद्धिके लिये ग्यारह ब्राह्मणोंको मधुमिश्रित खीर भोजन कराये और उन्हें दक्षिणा दे॥ ४१॥

शक्तौ पलत्रयमितस्वर्णेन सुन्दरं मुने।
सिंहं विधाय तत्रास्य पुराणस्य शुभाक्षरम्॥ ४२

मुने! यदि शक्ति हो तो तीन पल (बारह तोला) सोनेका एक सुन्दर सिंहासन बनवाये और उसपर उत्तम अक्षरोंमें लिखी अथवा लिखायी हुई शिवपुराणकी

* पद्मपुराणोक्त शिवगीता।

लेखितं लिखितं वापि संस्थाप्य विधिना पुमान्।
सम्पूज्यावाहनाद्यैश्च ह्युपचारैः सदक्षिणम्॥ ४३

वस्त्रभूषणगन्धाद्यैः पूजिताय यतात्मने।
आचार्याय सुधीर्दद्याच्छिवसन्तोषहेतवे॥ ४४

तेन दानप्रभावेण पुराणस्यास्य शौनक।
सम्प्राप्यानुग्रहं शैवं मुक्तः स्याद्भवबन्धनात्॥ ४५

एवं कृते विधाने च श्रीमच्छिवपुराणकम्।
सम्पूर्णफलदं स्याद्वै भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥ ४६

इति ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।
श्रीमच्छिवपुराणस्य माहात्म्यं सर्वकामदम्॥ ४७

श्रीमच्छिवपुराणं तु पुराणतिलकं स्मृतम्।
महच्छिवप्रियं रम्यं भवरोगनिवारणम्॥ ४८

ते जन्मभाजः खलु जीवलोके
ये वै सदा ध्यायन्ति विश्वनाथम्।
वाणी गुणान् स्तौति कथां शृणोति
श्रोत्रद्वयं ते भवमुत्तरन्ति॥ ४९

सकलगुणविभेदैर्नित्यमस्पष्टरूपं
जगति च बहिरन्तर्भासमानं महिम्ना।
मनसि च बहिरन्तर्वाङ्मनोवृत्तिरूपं
परमशिवमनन्तानन्दसान्द्रं प्रपद्ये॥ ५०

पुस्तक विधिपूर्वक स्थापित करे। तत्पश्चात् पुरुष आवाहन आदि विविध उपचारोंसे उसकी पूजा करके दक्षिणा चढ़ाये। तदनन्तर जितेन्द्रिय आचार्यका वस्त्र, आभूषण एवं गन्ध आदिसे पूजन करके उत्तम बुद्धिवाला श्रोता भगवान् शिवके सन्तोषके लिये दक्षिणासहित वह पुस्तक उन्हें समर्पित कर दे॥ ४२—४४॥

हे शौनक! इस पुराणके उस दानके प्रभावसे भगवान् शिवका अनुग्रह पाकर पुरुष भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है। इस तरह विधि-विधानका पालन करनेपर श्रीसम्पन्न शिवपुराण सम्पूर्ण फलको देनेवाला तथा भोग और मोक्षका दाता होता है॥ ४५-४६॥

हे मुने! मैंने आपको शिवपुराणका यह सारा माहात्म्य, जो सम्पूर्ण अभीष्टको देनेवाला है, बता दिया। अब और क्या सुनना चाहते हैं? श्रीसम्पन्न शिवपुराण समस्त पुराणोंका तिलकस्वरूप माना गया है। यह भगवान् शिवको अत्यन्त प्रिय, रमणीय तथा भवरोगका निवारण करनेवाला है॥ ४७-४८॥

जो सदा भगवान् विश्वनाथका ध्यान करते हैं, जिनकी वाणी शिवके गुणोंकी स्तुति करती है और जिनके दोनों कान उनकी कथा सुनते हैं, इस जीव-जगत्में उन्हींका जन्म लेना सफल है, वे निश्चय ही संसारसागरसे पार हो जाते हैं॥ ४९॥

भिन्न-भिन्न प्रकारके समस्त गुण जिनके सच्चिदानन्दमय स्वरूपका कभी स्पर्श नहीं करते, जो अपनी महिमासे जगत्के बाहर और भीतर वाणी एवं मनोवृत्तिरूपमें प्रकाशित होते हैं, उन अनन्त आनन्दघनरूप परम शिवकी मैं शरण लेता हूँ॥ ५०॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे सनत्कुमारसंहितायां श्रीशिवपुराणश्रवणव्रतिनां विधिनिषेधपुस्तकवक्तृपूजनवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणमें सनत्कुमारसंहिताके अन्तर्गत श्रीशिवपुराणके श्रवणव्रतियोंके विधि-निषेध और ग्रन्थ तथा वक्ताके पूजनका वर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

॥ श्रीशिवमहापुराणमाहात्म्य पूर्ण हुआ॥

॥ ॐ श्रीसाम्बशिवाय नमः ॥ ॥ ॐ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

(प्रथम-खण्ड—पूर्वार्ध)

प्रथमा विद्येश्वरसंहिता

अथ प्रथमोऽध्यायः

प्रयागमें सूतजीसे मुनियोंका शीघ्र पापनाश करनेवाले साधनके विषयमें प्रश्न

आद्यन्तमङ्गलमजातसमानभाव-
मार्यं तमीशमजरामरमात्मदेवम्।
पञ्चाननं प्रबलपञ्चविनोदशीलं
सम्भावये मनसि शङ्करमम्बिकेशम्॥

जो आदि और अन्तमें [तथा मध्यमें भी] नित्य मङ्गलमय हैं, जिनकी समानता अथवा तुलना कहीं भी नहीं है, जो आत्माके स्वरूपको प्रकाशित करनेवाले देवता (परमात्मा) हैं, जिनके पाँच मुख हैं और जो खेल-ही-खेलमें—अनायास जगत्की रचना, पालन, संहार, अनुग्रह एवं तिरोभावरूप—पाँच प्रबल कर्म करते रहते हैं, उन सर्वश्रेष्ठ अजर-अमर ईश्वर अम्बिकापति भगवान् शंकरका मैं मन-ही-मन चिन्तन करता हूँ।

व्यास उवाच

धर्मक्षेत्रे महाक्षेत्रे गङ्गाकालिन्दिसङ्गमे।
प्रयागे परमे पुण्ये ब्रह्मलोकस्य वर्त्मनि॥ १
मुनयः शंसितात्मानः सत्यव्रतपरायणाः।
महौजसो महाभागा महासत्रं वितेनिरे॥ २

व्यासजी बोले—जो धर्मका महान् क्षेत्र है, जहाँ गंगा-यमुनाका संगम हुआ है, जो ब्रह्मलोकका मार्ग है, उस परम पुण्यमय प्रयागमें सत्यव्रतमें तत्पर रहनेवाले महातेजस्वी महाभाग महात्मा मुनियोंने एक विशाल ज्ञानयज्ञका आयोजन किया॥ १-२॥

तत्र सत्रं समाकर्ण्य व्यासशिष्यो महामुनिः।
आजगाम मुनीन् द्रष्टुं सूतः पौराणिकोत्तमः॥ ३

उस ज्ञानयज्ञका समाचार सुनकर पौराणिकशिरोमणि व्यासशिष्य महामुनि सूतजी वहाँ मुनियोंका दर्शन करनेके लिये आये॥ ३॥

तं दृष्ट्वा सूतमायान्तं हर्षिता मुनयस्तदा।
चेतसा सुप्रसन्नेन पूजां चक्रुर्यथाविधि॥ ४

सूतजीको आते देखकर वे सब मुनि उस समय हर्षसे खिल उठे और अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे उन्होंने उनका विधिवत् स्वागत-सत्कार किया॥ ४॥

ततो विनयसंयुक्ताः प्रोचुः साञ्जलयश्च ते।
सुप्रसन्ना महात्मानः स्तुतिं कृत्वा यथाविधि॥ ५

तत्पश्चात् उन प्रसन्न महात्माओंने उनकी विधिवत् स्तुति करके विनयपूर्वक हाथ जोड़कर उनसे इस प्रकार कहा—॥ ५॥

रोमहर्षण सर्वज्ञ भवान् वै भाग्यगौरवात्।
पुराणविद्यामखिलां व्यासात् प्रत्यर्थमीयिवान्॥ ६
तस्मादाश्चर्यभूतानां कथानां त्वं हि भाजनम्।
रत्नानामुरुसाराणां रत्नाकर इवार्णवः॥ ७

हे सर्वज्ञ विद्वान् रोमहर्षणजी! आपका भाग्य बड़ा भारी है, इसीसे आपने व्यासजीसे यथार्थरूपमें सम्पूर्ण पुराण-विद्या प्राप्त की, इसलिये आप आश्चर्यस्वरूप कथाओंके भण्डार हैं—ठीक उसी तरह, जैसे रत्नाकर समुद्र बड़े-बड़े सारभूत रत्नोंका आगार है॥ ६-७॥

यच्च भूतं च भव्यं च यच्चान्यद्वस्तु वर्तते।
न त्वयाविदितं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते॥ ८

तीनों लोकोंमें भूत, वर्तमान और भविष्यकी जो बात है तथा अन्य भी जो कोई वस्तु है, वह आपसे अज्ञात नहीं है॥ ८॥

त्वं मद्दिष्टवशादस्य दर्शनार्थमिहागतः।
कुर्वन् किमपि नः श्रेयो न वृथागन्तुमर्हसि॥ ९

आप हमारे सौभाग्यसे इस यज्ञका दर्शन करनेके लिये यहाँ आ गये हैं और इसी व्याजसे हमारा कुछ कल्याण करनेवाले हैं; क्योंकि आपका आगमन निरर्थक नहीं हो सकता॥ ९॥

तत्त्वं श्रुतं स्म नः सर्वं पूर्वमेव शुभाशुभम्।
न तृप्तिमधिगच्छामः श्रवणेच्छा मुहुर्मुहुः॥ १०

हमने पहले भी आपसे शुभाशुभ-तत्त्वका पूरा-पूरा वर्णन सुना है, किंतु उससे तृप्ति नहीं होती, हमें उसे सुननेकी बार-बार इच्छा होती है॥ १०॥

इदानीमेकमेवास्ति श्रोतव्यं सूत सन्मते।
तद्रहस्यमपि ब्रूहि यदि तेऽनुग्रहो भवेत्॥ ११

उत्तम बुद्धिवाले हे सूतजी! इस समय हमें एक ही बात सुननी है; यदि आपका अनुग्रह हो तो गोपनीय होनेपर भी आप उस विषयका वर्णन करें॥ ११॥

प्राप्ते कलियुगे घोरे नराः पुण्यविवर्जिताः।
दुराचाररताः सर्वे सत्यवार्तापराङ्मुखाः॥ १२
परापवादनिरताः परद्रव्याभिलाषिणः।
परस्त्रीसक्तमनसः परहिंसापरायणाः॥ १३
देहात्मदृष्टयो मूढा नास्तिकाः पशुबुद्धयः।
मातृपितृकृतद्वेषाः स्त्रीदेवाः कामकिङ्कराः॥ १४

घोर कलियुग आनेपर मनुष्य पुण्यकर्मसे दूर रहेंगे, दुराचारमें फँस जायँगे, सब-के-सब सत्यभाषणसे विमुख हो जायँगे, दूसरोंकी निन्दामें तत्पर होंगे। पराये धनको हड़प लेनेकी इच्छा करेंगे, उनका मन परायी स्त्रियोंमें आसक्त होगा तथा वे दूसरे प्राणियोंकी हिंसा किया करेंगे। वे अपने शरीरको ही आत्मा समझेंगे। वे मूढ़, नास्तिक तथा पशु-बुद्धि रखनेवाले होंगे, माता-पितासे द्वेष रखेंगे तथा वे कामवश स्त्रियोंकी सेवामें लगे रहेंगे॥ १२—१४॥

विप्रा लोभग्रहग्रस्ता वेदविक्रयजीविनः।
धनार्जनार्थमभ्यस्तविद्या मदविमोहिताः॥ १५
त्यक्तस्वजातिकर्माणः प्रायशः परवञ्चकाः।
त्रिकालसन्ध्यया हीना ब्रह्मबोधविवर्जिताः॥ १६
अदयाः पण्डितंमन्याः स्वाचारव्रतलोपकाः।
कृष्युद्यमरताः क्रूरस्वभावा मलिनाशयाः॥ १७

ब्राह्मण लोभरूपी ग्रहके ग्रास बन जायँगे, वेद बेचकर जीविका चलायेंगे, धनका उपार्जन करनेके लिये ही विद्याका अभ्यास करेंगे, मदसे मोहित रहेंगे, अपनी जातिके कर्म छोड़ देंगे, प्रायः दूसरोंको ठगेंगे, तीनों कालकी सन्ध्योपासनासे दूर रहेंगे और ब्रह्मज्ञानसे शून्य होंगे। दयाहीन, अपनेको पण्डित माननेवाले, अपने सदाचार-व्रतसे रहित, कृषिकार्यमें तत्पर, क्रूर स्वभाववाले एवं दूषित विचारवाले होंगे॥ १५—१७॥

क्षत्रियाश्च तथा सर्वे स्वधर्मत्यागशीलिनः।
असत्सङ्गाः पापरता व्यभिचारपरायणाः॥ १८

समस्त क्षत्रिय भी अपने धर्मका त्याग करनेवाले, कुसंगी, पापी और व्यभिचारी होंगे॥ १८॥

अशूरा अरणप्रीताः पलायनपरायणाः।
कुचौरवृत्तयः शूद्राः कामकिङ्करचेतसः॥ १९

उनमें शौर्यका अभाव होगा, वे युद्धसे विरत अर्थात् रणमें प्रीति न होनेसे भागनेवाले होंगे। वे कुत्सित चौर्य-कर्मसे जीविका चलायेंगे, शूद्रोंके समान बरताव करेंगे और उनका चित्त कामका किंकर बना रहेगा॥ १९॥

शस्त्रास्त्रविद्यया हीना धेनुविप्रावनोज्झिताः।
शरण्यावनहीनाश्च कामिन्यूतिमृगाः सदा॥ २०

वे शस्त्रास्त्रविद्याको नहीं जाननेवाले, गौ और ब्राह्मणकी रक्षा न करनेवाले, शरणागतकी रक्षा न करनेवाले तथा सदा कामिनीको खोजनेमें तत्पर रहेंगे॥ २०॥

प्रजापालनसद्धर्मविहीना भोगतत्पराः।
प्रजासंहारका दुष्टा जीवहिंसाकरा मुदा॥ २१

प्रजापालनरूपी सदाचारसे रहित, भोगमें तत्पर, प्रजाका संहार करनेवाले, दुष्ट और प्रसन्नतापूर्वक जीवहिंसा करनेवाले होंगे॥ २१॥

वैश्याः संस्कारहीनास्ते स्वधर्मत्यागशीलिनः।
कुपथाः स्वार्जनरतास्तुलाकर्मकुवृत्तयः॥ २२

वैश्य संस्कार-भ्रष्ट, स्वधर्मत्यागी, कुमार्गी, धनोपार्जनपरायण तथा नाप-तौलमें अपनी कुत्सित वृत्तिका परिचय देनेवाले होंगे॥ २२॥

गुरुदेवद्विजातीनां भक्तिहीनाः कुबुद्धयः।
अभोजितद्विजाः प्रायः कृपणा बद्धमुष्टयः॥ २३
कामिनीजारभावेषु सुरता मलिनाशयाः।
लोभमोहविचेतस्काः पूर्तादिषु वृषोज्झिताः॥ २४

वे गुरु, देवता और द्विजातियोंके प्रति भक्तिशून्य, कुत्सित बुद्धिवाले, द्विजोंको भोजन न करानेवाले, प्रायः कृपणताके कारण मुट्ठी बाँधकर रखनेवाले, परायी स्त्रियोंके साथ कामरत, मलिन विचारवाले, लोभ और मोहसे भ्रमित चित्तवाले और वापी-कूप-तड़ाग आदिके निर्माण तथा यज्ञादि सत्कर्मोंमें धर्मका त्याग करनेवाले होंगे॥ २३-२४॥

तद्वच्छूद्राश्च ये केचिद् ब्राह्मणाचारतत्पराः।
उज्ज्वलाकृतयो मूढाः स्वधर्मत्यागशीलिनः॥ २५

इसी तरह कुछ शूद्र ब्राह्मणोंके आचारमें तत्पर होंगे, उनकी आकृति उज्ज्वल होगी अर्थात् वे अपना कर्म-धर्म छोड़कर उज्ज्वल वेश-भूषासे विभूषित हो व्यर्थ घूमेंगे, वे मूढ़ होंगे और स्वभावतः ही अपने धर्मका त्याग करनेवाले होंगे॥ २५॥

कर्तारस्तपसां भूयो द्विजतेजोऽपहारकाः।
शिश्वल्पमृत्युकाराश्च मन्त्रोच्चारपरायणाः॥ २६
शालग्रामशिलादीनां पूजका होमतत्पराः।
प्रतिकूलविचाराश्च कुटिला द्विजदूषकाः॥ २७

वे भाँति-भाँतिके तप करनेवाले होंगे, द्विजोंको अपमानित करेंगे, छोटे बच्चोंकी अल्पमृत्यु होनेके लिये आभिचारिक कर्म करेंगे, मन्त्रोंके उच्चारण करनेमें तत्पर रहेंगे, शालग्रामकी मूर्ति आदि पूजेंगे, होम करेंगे, किसी-न-किसीके प्रतिकूल विचार सदा करते रहेंगे, कुटिल स्वभाववाले होंगे और द्विजोंसे द्वेष-भाव रखने वाले होंगे॥ २६-२७॥

धनवन्तः कुकर्माणो विद्यावन्तो विवादिनः।
आख्यानोपासनाधर्मवक्तारो धर्मलोपकाः॥ २८

वे यदि धनी हुए तो कुकर्ममें लग जायँगे, यदि विद्वान् हुए तो विवाद करनेवाले होंगे, कथा और उपासनाधर्मोंके वक्ता होंगे और धर्मका लोप करनेवाले होंगे॥ २८॥

सुभूपाकृतयो दम्भाः सुदातारो महामदाः।
विप्रादीन् सेवकान् मत्वा मन्यमाना निजं प्रभुम्॥ २९

स्वधर्मरहिता मूढाः सङ्कराः क्रूरबुद्धयः।
महाभिमानिनो नित्यं चतुर्वर्णविलोपकाः॥ ३०

वे सुन्दर राजाओंके समान वेष-भूषा धारण करनेवाले, दम्भी, दानमानी, अतिशय अभिमानी, विप्र आदिको अपना सेवक मानकर अपनेको स्वामी माननेवाले होंगे, वे अपने धर्मसे शून्य, मूढ़, वर्णसंकर, क्रूरबुद्धिवाले, महाभिमानी और सदा चारों वर्णोंके धर्मका लोप करनेवाले होंगे॥ २९-३०॥

सुकुलीनान्निजान् मत्वा चतुर्वर्णैर्विवर्तनाः।
सर्ववर्णभ्रष्टकराः मूढाः सत्कर्मकारिणः॥ ३१

वे अपनेको श्रेष्ठ कुलवाला मानकर चारों वर्णोंसे विपरीत व्यवहार करनेवाले, सभी वर्णोंको भ्रष्ट करनेवाले, मूढ़ और [अनुचित रूपसे] सत्कर्म करनेमें तत्पर होंगे॥ ३१॥

स्त्रियश्च प्रायशो भ्रष्टा भर्त्रवज्ञानकारिकाः।
श्वशुरद्रोहकारिण्यो निर्भया मलिनाशनाः॥ ३२

कलियुगकी स्त्रियाँ प्रायः सदाचारसे भ्रष्ट होंगी, पतिका अपमान करनेवाली होंगी, सास-ससुरसे द्रोह करेंगी। किसीसे भय नहीं मानेंगी और मलिन भोजन करेंगी॥ ३२॥

कुहावभावनिरताः कुशीलाः स्मरविह्वलाः।
जारसङ्गरता नित्यं स्वस्वामिविमुखास्तथा॥ ३३

वे कुत्सित हाव-भावमें तत्पर होंगी, उनका शील-स्वभाव बहुत बुरा होगा। वे काम-विह्वल, परपतिसे रति करनेवाली और अपने पतिकी सेवासे सदा विमुख रहेंगी॥ ३३॥

तनया मातृपित्रोश्च भक्तिहीना दुराशयाः।
अविद्यापाठका नित्यं रोगग्रसितदेहकाः॥ ३४

सन्तानें माता-पिताके प्रति श्रद्धारहित, दुष्ट स्वभाववाली, असत् विद्या पढ़नेवाली और सदा रोगग्रस्त शरीरवाली होंगी॥ ३४॥

एतेषां नष्टबुद्धीनां स्वधर्मत्यागशीलिनाम्।
परलोकेऽपीह लोके कथं सूत गतिर्भवेत्॥ ३५

हे सूतजी! इस तरह जिनकी बुद्धि नष्ट हो गयी है और जिन्होंने अपने धर्मका त्याग कर दिया है, ऐसे लोगोंको इहलोक और परलोकमें उत्तम गति कैसे प्राप्त होगी?॥ ३५॥

इति चिन्ताकुलं चित्तं जायते सततं हि नः।
परोपकारसदृशो नास्ति धर्मोऽपरः खलु॥ ३६
लघूपायेन येनैषां भवेत् सद्योऽघनाशनम्।
सर्वसिद्धान्तवित्त्वं हि कृपया तद्वदाधुना॥ ३७

इसी चिन्तासे हमारा मन सदा व्याकुल रहता है; परोपकारके समान दूसरा कोई धर्म नहीं है, अतः जिस छोटे उपायसे इन सबके पापोंका तत्काल नाश हो जाय, उसे इस समय कृपापूर्वक बताइये; क्योंकि आप समस्त सिद्धान्तोंके ज्ञाता हैं॥ ३६-३७॥

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम्।
मनसा शङ्करं स्मृत्वा सूतः प्रोवाच तान् मुनीन्॥ ३८

व्यासजी बोले—उन भावितात्मा मुनियोंकी यह बात सुनकर सूतजी मन-ही-मन भगवान् शंकरका स्मरण करके उन मुनियोंसे इस प्रकार कहने लगे—॥ ३८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां मुनिप्रश्नवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें मुनियोंके प्रश्नका वर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

शिवपुराणका माहात्म्य एवं परिचय

सूत उवाच

साधु पृष्टं साधवो वस्त्रैलोक्यहितकारकम्।
गुरुं स्मृत्वा भवत्स्नेहाद्वक्ष्ये तच्छृणुतादरात्॥ १

सूतजी बोले—हे साधु-महात्माओ! आप सबने तीनों लोकोंका हित करनेवाली अच्छी बात पूछी है। मैं गुरुदेव व्यासजीका स्मरण करके आपलोगोंके स्नेहवश इस विषयका वर्णन करूँगा, आपलोग आदरपूर्वक सुनें॥ १॥

वेदान्तसारसर्वस्वं पुराणं चैवमुत्तमम्।
सर्वाघौघोद्धारकरं परत्र परमार्थदम्॥ २

कलिकल्मषविध्वंसि यस्मिञ्छिवयशः परम्।
विजृम्भते सदा विप्राश्चतुर्वर्गफलप्रदम्॥ ३

सबसे उत्तम जो शिवपुराण है, वह वेदान्तका सार-सर्वस्व है तथा वक्ता और श्रोताका समस्त पापराशियोंसे उद्धार करनेवाला है; [इतना ही नहीं] वह परलोकमें परमार्थ वस्तुको देनेवाला है। कलिकी कल्मषराशिका वह विनाशक है। उसमें भगवान् शिवके उत्तम यशका वर्णन है। हे ब्राह्मणो! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला वह पुराण सदा ही अपने प्रभावसे विस्तारको प्राप्त हो रहा है॥ २-३॥

तस्याध्ययनमात्रेण पुराणस्य द्विजोत्तमाः।
सर्वोत्तमस्य शैवस्य ते यास्यन्ति सुसद्गतिम्॥ ४

हे विप्रवरो! उस सर्वोत्तम शिवपुराणके अध्ययनमात्रसे वे कलियुगके पापासक्त जीव श्रेष्ठतम गतिको प्राप्त हो जायँगे॥ ४॥

तावद्विजृम्भते पापं ब्रह्महत्यापुरस्सरम्।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति जगत्यहो॥ ५

अहो! ब्रह्महत्या आदि महान् पाप तभीतक रहेंगे अर्थात् अपने फलको देनेमें समर्थ होंगे, जबतक जगत्में शिवपुराणका उदय नहीं होगा। [आशय यह है कि शिवपुराण सुननेके बाद अन्तःकरण शिवभक्तिपरायण होकर अतिशय स्वच्छ हो जायगा। अतः किसी भी पापकर्ममें मानवकी प्रवृत्ति ही नहीं होगी, तब ब्रह्महत्या आदि भयंकर पाप न होनेके कारण उस पापके फल-भोगकी सम्भावना ही नहीं है]॥ ५॥

तावत्कलिमहोत्पाताः सञ्चरिष्यन्ति निर्भयाः।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति जगत्यहो॥ ६

कलियुगके महान् उत्पात तभीतक निर्भय होकर विचरेंगे, जबतक यहाँ जगत्में शिवपुराणका उदय नहीं होगा॥ ६॥

तावत्सर्वाणि शास्त्राणि विवदन्ते परस्परम्।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति जगत्यहो॥ ७

सभी शास्त्र परस्पर तभीतक विवाद करेंगे, जबतक जगत्में शिवपुराणका उदय नहीं होगा [अर्थात् शिवपुराणके आ जानेपर किसी प्रकारका विवाद ही नहीं रह जायगा। सभी प्रकारसे भुक्ति-मुक्तिप्रदाता यही रहेगा]॥ ७॥

तावत्स्वरूपं दुर्बोधं शिवस्य महतामपि।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति जगत्यहो॥ ८

अहो! महान् व्यक्तियोंके लिये भी तभीतक शिवका स्वरूप दुर्बोध्य रहेगा, जबतक इस जगत्में शिवपुराणका उदय नहीं होगा॥ ८॥

तावद्यमभटाः क्रूराः सञ्चरिष्यन्ति निर्भयाः।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति जगत्यहो॥ ९

अहो! क्रूर यमदूत तभीतक निर्भय होकर पृथ्वीपर घूमेंगे, जबतक जगत्में शिवपुराणका उदय नहीं होगा॥ ९॥

तावत्सर्वपुराणानि प्रगर्जन्ति महीतले।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति जगत्यहो॥ १०

सभी पुराण पृथिवीपर गर्जन तभीतक करेंगे, जबतक शिवपुराणका जगत्में उदय नहीं होगा॥ १०॥

तावत्सर्वाणि तीर्थानि विवदन्ते महीतले।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति जगत्यहो॥ ११

तावत्सर्वे मुदा मन्त्रा विवदन्ते महीतले।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति महीतले॥ १२

इस पृथिवीपर तीर्थोंका विवाद तभीतक रहेगा, जबतक इस जगत्में शिवपुराणका उदय नहीं होगा। [आशय यह है कि मुक्ति-प्राप्त्यर्थ एवं पापके नाशके लिये मानव विभिन्न तीर्थोंका सेवन करेंगे, किंतु शिवपुराणके आनेके बाद सभी लोग सभी पापोंके नाशके लिये शिवपुराणका ही सेवन करेंगे]। सभी मन्त्र पृथ्वीपर तभीतक आनन्दपूर्वक विवाद करेंगे, जबतक पृथ्वीपर शिवपुराणका उदय नहीं होगा॥ ११-१२॥

तावत्सर्वाणि क्षेत्राणि विवदन्ते महीतले।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति महीतले॥ १३

सभी क्षेत्र तभीतक पृथ्वीपर विवाद करेंगे, जबतक पृथ्वीपर शिवपुराणका उदय नहीं होगा॥ १३॥

तावत्सर्वाणि पीठानि विवदन्ते महीतले।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति महीतले॥ १४

सभी पीठ तभीतक पृथ्वीपर विवाद करेंगे, जबतक पृथ्वीपर शिवपुराणका उदय नहीं होगा॥ १४॥

तावत्सर्वाणि दानानि विवदन्ते महीतले।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति महीतले॥ १५

सभी दान पृथ्वीपर तभीतक विवाद करेंगे, जबतक शिवपुराणका पृथ्वीपर उदय नहीं होगा॥ १५॥

तावत्सर्वे च ते देवा विवदन्ते महीतले।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति महीतले॥ १६

सभी देवगण तभीतक पृथ्वीपर विवाद करेंगे, जबतक शिवपुराणका पृथ्वीपर उदय नहीं होगा॥ १६॥

तावत्सर्वे च सिद्धान्ता विवदन्ते महीतले।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति महीतले॥ १७

सभी सिद्धान्त तभीतक पृथ्वीपर विवाद करेंगे, जबतक शिवपुराणका पृथ्वीपर उदय नहीं होगा॥ १७॥

अस्य शैवपुराणस्य कीर्तनश्रवणाद् द्विजाः।
फलं वक्तुं न शक्नोमि कार्त्स्न्येन मुनिसत्तमाः॥ १८

हे विप्रो! हे श्रेष्ठ मुनिगण! इस शिवपुराणके कीर्तन करने और सुननेसे जो-जो फल होते हैं, उन फलोंको मैं सम्पूर्ण रूपसे नहीं कह सकता हूँ, [अर्थात् शब्दोंके द्वारा इसके सभी फलोंको नहीं कहा जा सकता है]॥ १८॥

तथापि तस्य माहात्म्यं वक्ष्ये किञ्चित्तु वोऽनघाः।
चित्तमाधाय शृणुत व्यासेनोक्तं पुरा मम॥ १९

हे निष्पाप मुनिगण! तथापि शिवपुराणका कुछ माहात्म्य आप लोगोंसे कहता हूँ, जो व्यासजीने पहले मुझसे कहा था, आपलोग चित्त लगाकर ध्यानपूर्वक सुनें॥ १९॥

एतच्छिवपुराणं हि श्लोकं श्लोकार्धमेव च।
यः पठेद्भक्तिसंयुक्तः स पापान्मुच्यते क्षणात्॥ २०

जो भक्तिपूर्वक इस शिवपुराणका एक श्लोक या आधा श्लोक भी पढ़ता है, वह उसी क्षण पापसे छुटकारा पा जाता है॥ २०॥

एतच्छिवपुराणं हि यः प्रत्यहमतन्द्रितः।
यथाशक्ति पठेद् भक्त्या स जीवन्मुक्त उच्यते॥ २१

जो आलस्यरहित होकर प्रतिदिन भक्तिपूर्वक इस शिवपुराणका यथाशक्ति पाठ करता है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है॥ २१॥

एतच्छिवपुराणं हि यो भक्त्यार्चयते सदा।
दिने दिनेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम्॥ २२

जो इस शिवपुराणकी सदा पूजा करता है, वह निःसन्देह प्रतिदिन अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त करता है॥ २२॥

एतच्छिवपुराणं यः साधारणपदेच्छया।
अन्यतः शृणुयात् सोऽपि मत्तो मुच्येत पातकात्॥ २३

जो व्यक्ति साधारण पदकी प्राप्तिकी इच्छासे इस शिवपुराणको मुझसे अथवा अन्य किसीसे सुनता है, वह भी पातकोंसे मुक्त हो जाता है॥ २३॥

एतच्छिवपुराणं यो नमस्कुर्याददूरतः।
सर्वदेवार्चनफलं स प्राप्नोति न संशयः॥ २४

जो इस शिवपुराणको समीपसे प्रणाम करता है, वह सभी देवोंकी पूजाका फल प्राप्त करता है; इसमें संशय नहीं है॥ २४॥

एतच्छिवपुराणं वै लिखित्वा पुस्तकं स्वयम्।
यो दद्याच्छिवभक्तेभ्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु॥ २५

जो इस शिवपुराणको स्वयं लिखकर शिवभक्तोंको दान करता है, उसके पुण्यफलको सुनें॥ २५॥

अधीतेषु च शास्त्रेषु वेदेषु व्याकृतेषु च।
यत्फलं दुर्लभं लोके तत्फलं तस्य सम्भवेत्॥ २६

शास्त्रोंका अध्ययन करने और वेदोंका पाठ करनेसे जो दुर्लभ फल प्राप्त होता है, वह फल उसको प्राप्त होता है॥ २६॥

एतच्छिवपुराणं हि चतुर्दश्यामुपोषितः।
शिवभक्तसभायां यो व्याकरोति स उत्तमः॥ २७

प्रत्यक्षरं तु गायत्रीपुरश्चर्याफलं लभेत्।
इह भुक्त्वाखिलान् कामानन्ते निर्वाणतां व्रजेत्॥ २८

जो चतुर्दशी तिथिके दिन उपवास करके इस शिवपुराणका शिवभक्तोंके समाजमें पाठ करता है—वह श्रेष्ठ पुरुष है। वह व्यक्ति शिवपुराणके प्रत्येक अक्षरकी संख्याके अनुरूप गायत्रीके पुरश्चरणका फल प्राप्त करता है और इस लोकमें सभी अभीष्ट सुखोंको भोगकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है॥ २७-२८॥

उपोषितश्चतुर्दश्यां रात्रौ जागरणान्वितः।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि तस्य पुण्यं वदाम्यहम्॥ २९

जो चतुर्दशीकी रातमें उपवासपूर्वक जागरण करके शिवपुराणका पाठ करता है या इसे सुनता है, उसका पुण्य-फल मैं कहता हूँ॥ २९॥

कुरुक्षेत्रादिनिखिलपुण्यतीर्थेष्वनेकशः।
आत्मतुल्यधनं सूर्यग्रहणे सर्वतोमुखे॥ ३०

विप्रेभ्यो व्यासमुख्येभ्यो दत्त्वा यत्फलमश्नुते।
तत्फलं सम्भवेत्तस्य सत्यं सत्यं न संशयः॥ ३१

कुरुक्षेत्र आदि सभी तीर्थोंमें, पूर्ण सूर्यग्रहणमें अपनी शक्तिके अनुसार विप्रोंको और मुख्य कथावाचकोंको धन देनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल उस व्यक्तिको प्राप्त होता है, यह सत्य है, सत्य है; इसमें कोई संदेह नहीं है॥ ३०-३१॥

एतच्छिवपुराणं हि गायते योऽप्यहर्निशम्।
आज्ञां तस्य प्रतीक्षेरन् देवा इन्द्रपुरोगमाः॥ ३२

जो व्यक्ति इस शिवपुराणका दिन-रात गान करता है, इन्द्र आदि देवगण उसकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करते रहते हैं॥ ३२॥

एतच्छिवपुराणं यः पठञ्छृण्वन् हि नित्यशः।
यद्यत् करोति सत्कर्म तत्कोटिगुणितं भवेत्॥ ३३

इस शिवपुराणका पाठ करनेवाला और सुननेवाला व्यक्ति जो-जो श्रेष्ठ कर्म करता है, वह कोटिगुना हो जाता है [अर्थात् कोटिगुना फल देता है]॥ ३३॥

समाहितः पठेद्यस्तु तत्र श्रीरुद्रसंहिताम्।
स ब्रह्मघ्नोऽपि पूतात्मा त्रिभिरेव दिनैर्भवेत्॥ ३४

जो भलीभाँति ध्यानपूर्वक उसमें भी श्रीरुद्रसंहिताका पाठ करता है, वह यदि ब्रह्मघाती भी हो तो तीन दिनोंमें पवित्रात्मा हो जाता है॥ ३४॥

तां रुद्रसंहितां यस्तु भैरवप्रतिमान्तिके।
त्रिः पठेत्प्रत्यहं मौनी स कामानखिलाँल्लभेत्॥ ३५

जो भैरवकी मूर्तिके पास मौन धारणकर श्रीरुद्रसंहिताका प्रतिदिन तीन बार पाठ करता है, वह सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है॥ ३५॥

तां रुद्रसंहितां यस्तु सम्पठेद् वटबिल्वयोः।
प्रदक्षिणां प्रकुर्वाणो ब्रह्महत्या निवर्तते॥ ३६

जो व्यक्ति वट और बिल्ववृक्षकी प्रदक्षिणा करते हुए उस रुद्रसंहिताका पाठ करता है, वह ब्रह्महत्याके दोषसे भी छुटकारा पा जाता है॥ ३६॥

कैलाससंहिता तत्र ततोऽपि परमा स्मृता।
ब्रह्मस्वरूपिणी साक्षात् प्रणवार्थप्रकाशिका॥ ३७

प्रणवके अर्थको प्रकाशित करनेवाली ब्रह्मरूपिणी साक्षात् कैलाससंहिता रुद्रसंहितासे भी श्रेष्ठ कही गयी है॥ ३७॥

कैलाससंहितायास्तु माहात्म्यं वेत्ति शङ्करः।
कृत्स्नं तदर्धं व्यासश्च तदर्धं वेद्म्यहं द्विजाः॥ ३८

हे द्विजो! कैलाससंहिताका सम्पूर्ण माहात्म्य तो शंकरजी ही जानते हैं, उससे आधा माहात्म्य व्यासजी जानते हैं और उसका भी आधा मैं जानता हूँ॥ ३८॥

तत्र किञ्चित्प्रवक्ष्यामि कृत्स्नं वक्तुं न शक्यते।
यज्ज्ञात्वा तत्क्षणाल्लोकश्चित्तशुद्धिमवाप्नुयात्॥ ३९

उसके सम्पूर्ण माहात्म्यका वर्णन तो मैं नहीं कर सकता, कुछ ही अंश कहूँगा, जिसको जानकर उसी क्षण चित्तकी शुद्धि प्राप्त हो जायगी॥ ३९॥

न नाशयति यत्पापं सा रौद्री संहिता द्विजाः।
तन्न पश्याम्यहं लोके मार्गमाणोऽपि सर्वदा॥ ४०

हे द्विजो! लोकमें ढूँढ़नेपर भी मैंने ऐसे किसी पापको नहीं देखा, जिसे वह रुद्रसंहिता नष्ट न कर सके॥ ४०॥

शिवेनोपनिषत्सिन्धुमन्थनोत्पादितां मुदा।
कुमारायार्पितां तां वै सुधां पीत्वामरो भवेत्॥ ४१

उपनिषद्‌रूपी सागरका मन्थन करके शिवने आनन्दपूर्वक इस रुद्रसंहितारूपी अमृतको उत्पन्न किया और कुमार कार्तिकेयको समर्पित किया; जिसे पीकर मानव अमर हो जाता है॥ ४१॥

ब्रह्महत्यादिपापानां निष्कृतिं कर्तुमुद्यतः।
मासमात्रं संहितां तां पठित्वा मुच्यते ततः॥ ४२

ब्रह्महत्या आदि पापोंकी निष्कृति करनेके लिये तत्पर मनुष्य महीनेभर रुद्रसंहिताका पाठ करके उन पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ४२॥

दुष्प्रतिग्रहदुर्भोज्यदुरालापादिसम्भवम्।
पापं सकृत् कीर्तनेन संहिता सा विनाशयेत्॥ ४३

दुष्प्रतिग्रह, दुर्भोज्य, दुरालापसे जो पाप होता है; वह इस रौद्रीसंहिताका एक बार कीर्तन करनेसे नष्ट हो जाता है॥ ४३॥

शिवालये बिल्ववने संहितां तां पठेत् तु यः।
स यत्फलमवाप्नोति तद्वाचोऽपि न गोचरे॥ ४४

जो व्यक्ति शिवालयमें अथवा बेलके वनमें इस संहिताका पाठ करता है, वह उससे जो फल प्राप्त करता है, उसका वर्णन वाणीसे नहीं किया जा सकता॥ ४४॥

संहितां तां पठन् भक्त्या यः श्राद्धे भोजयेद् द्विजान्।
तस्य ये पितरः सर्वे यान्ति शम्भोः परं पदम्॥ ४५

जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक इस संहिताका पाठ करते हुए श्राद्धके समय ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, उसके सभी पितर शम्भुके परम पदको प्राप्त करते हैं॥ ४५॥

चतुर्दश्यां निराहारो यः पठेत्संहितां च ताम्।
बिल्वमूले शिवः साक्षात् स देवैश्च प्रपूज्यते॥ ४६

चतुर्दशीके दिन निराहार रहकर जो बेलके वृक्षके नीचे इस संहिताका पाठ करता है, वह साक्षात् शिव होकर सभी देवोंसे पूजित होता है॥ ४६॥

अप्यन्याः संहितास्तत्र सर्वकामफलप्रदाः।
उभे विशिष्टे विज्ञेये लीलाविज्ञानपूरिते॥ ४७

उसमें अन्य संहिताएँ सभी कामनाओंके फलको पूर्ण करनेवाली हैं, किंतु लीला और विज्ञानसे परिपूर्ण इन दोनों संहिताओंको विशिष्ट समझना चाहिये॥ ४७॥

तदिदं शैवमाख्यातं पुराणं वेदसम्मितम्।
निर्मितं तच्छिवेनैव प्रथमं ब्रह्मसम्मितम्॥ ४८

इस शिवपुराणको वेदके तुल्य माना गया है। इस वेदकल्प पुराणका सबसे पहले भगवान् शिवने ही प्रणयन किया था॥ ४८॥

विद्येशं च तथा रौद्रं वैनायकमथौमिकम्।
मात्रं रुद्रैकादशकं कैलासं शतरुद्रकम्॥ ४९
कोटिरुद्रसहस्राद्यं कोटिरुद्रं तथैव च।
वायवीयं धर्मसंज्ञं पुराणमिति भेदतः॥ ५०

विद्येश्वरसंहिता, रुद्रसंहिता, विनायकसंहिता, उमासंहिता, मातृसंहिता, एकादशरुद्रसंहिता, कैलाससंहिता, शतरुद्रसंहिता, कोटिरुद्रसंहिता, सहस्रकोटिरुद्रसंहिता, वायवीयसंहिता तथा धर्मसंहिता—इस प्रकार इस पुराणके बारह भेद हैं॥ ४९-५०॥

संहिता द्वादशमिता महापुण्यतरा मताः।
तासां सङ्ख्यां ब्रुवे विप्राः शृणुतादरतोऽखिलम्॥ ५१
विद्येशं दशसाहस्रं रुद्रं वैनायकं तथा।
औमं मातृपुराणाख्यं प्रत्येकाष्टसहस्रकम्॥ ५२

ये बारहों संहिताएँ अत्यन्त पुण्यमयी मानी गयी हैं। ब्राह्मणो! अब मैं उनके श्लोकोंकी संख्या बता रहा हूँ। आपलोग वह सब आदरपूर्वक सुनें। विद्येश्वरसंहितामें दस हजार श्लोक हैं। रुद्रसंहिता, विनायकसंहिता, उमासंहिता और मातृसंहिता—इनमेंसे प्रत्येकमें आठ-आठ हजार श्लोक हैं॥ ५१-५२॥

त्रयोदशसहस्रं हि रुद्रैकादशकं द्विजाः।
षट्सहस्रं च कैलासं शतरुद्रं तदर्धकम्॥ ५३
कोटिरुद्रं त्रिगुणितमेकादशसहस्रकम्।
सहस्रकोटिरुद्राख्यमुदितं ग्रन्थसङ्ख्यया॥ ५४
वायवीयं खाब्धिशतं धर्मं रविसहस्रकम्।
तदेवं लक्षसङ्ख्याकं शैवं सङ्ख्याविभेदतः॥ ५५

हे ब्राह्मणो! एकादशरुद्रसंहितामें तेरह हजार, कैलाससंहितामें छः हजार, शतरुद्रसंहितामें तीन हजार, कोटिरुद्रसंहितामें नौ हजार, सहस्रकोटिरुद्रसंहितामें ग्यारह हजार, वायवीयसंहितामें चार हजार तथा धर्मसंहितामें बारह हजार श्लोक हैं। इस प्रकार संख्याके अनुसार मूल शिवपुराणकी श्लोकसंख्या एक लाख है॥ ५३—५५॥

व्यासेन तत्तु सङ्क्षिप्तं चतुर्विंशत्सहस्रकम्।
शैवं तत्र चतुर्थं वै पुराणं सप्तसंहितम्॥ ५६

परंतु व्यासजीने उसे चौबीस हजार श्लोकोंमें संक्षिप्त कर दिया है। पुराणोंकी क्रमसंख्याके विचारसे इस शिवपुराणका स्थान चौथा है; इसमें सात संहिताएँ हैं॥ ५६॥

शिवेन कल्पितं पूर्वं पुराणं ग्रन्थसङ्ख्यया।
शतकोटिप्रमाणं हि पुरा सृष्टौ सुविस्तृतम्॥ ५७

पूर्वकालमें भगवान् शिवने श्लोकसंख्याकी दृष्टिसे सौ करोड़ श्लोकोंका एक ही पुराणग्रन्थ बनाया था। सृष्टिके आदिमें निर्मित हुआ वह पुराणसाहित्य अत्यन्त विस्तृत था॥ ५७॥

व्यस्तेऽष्टादशधा चैव पुराणे द्वापरादिषु।
चतुर्लक्षेण सङ्क्षिप्ते कृते द्वैपायनादिभिः॥ ५८

तत्पश्चात् द्वापर आदि युगोंमें द्वैपायन व्यास आदि महर्षियोंने जब पुराणका अठारह भागोंमें विभाजन कर दिया, उस समय सम्पूर्ण पुराणोंका संक्षिप्त स्वरूप केवल चार लाख श्लोकोंका रह गया॥ ५८॥

प्रोक्तं शिवपुराणं हि चतुर्विंशत्सहस्रकम्।
श्लोकानां सङ्ख्यया सप्तसंहितं ब्रह्मसम्मितम्॥ ५९

श्लोकसंख्याके अनुसार यह शिवपुराण चौबीस हजार श्लोकोंवाला कहा गया है। यह वेदतुल्य पुराण सात संहिताओंमें विभाजित है॥ ५९॥

विद्येश्वराख्या तत्राद्या रौद्री ज्ञेया द्वितीयिका।
तृतीया शतरुद्राख्या कोटिरुद्रा चतुर्थिका॥ ६०

पञ्चमी चैवमौम्याख्या षष्ठी कैलाससंज्ञिका।
सप्तमी वायवीयाख्या सप्तैवं संहिता मताः॥ ६१

ससप्तसंहितं दिव्यं पुराणं शिवसंज्ञकम्।
वरीवर्ति ब्रह्मतुल्यं सर्वोपरिगतिप्रदम्॥ ६२

एतच्छिवपुराणं हि सप्तसंहितमादरात्।
परिपूर्णं पठेद्यस्तु स जीवन्मुक्त उच्यते॥ ६३

श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासागमशतानि च।
एतच्छिवपुराणस्य नार्हन्त्यल्पां कलामपि॥ ६४

शैवं पुराणममलं शिवकीर्तितं तद्
व्यासेन शैवप्रवणेन च सङ्गृहीतम्।
सङ्क्षेपतः सकलजीवगुणोपकारं
तापत्रयघ्नमतुलं शिवदं सतां हि॥ ६५

विकैतवो धर्म इह प्रगीतो
वेदान्तविज्ञानमयः प्रधानः।
अमत्सरान्तर्बुधवेद्यवस्तु
सत्क्लृप्तमंत्रौघत्रिवर्गयुक्तम् ॥ ६६

शैवं पुराणतिलकं खलु सत्पुराणं
वेदान्तवेदविलसत्परवस्तुगीतम् ।
यो वै पठेच्च शृणुयात् परमादरेण
शम्भुप्रियः स हि लभेत् परमां गतिं वै॥ ६७

इसकी पहली संहिताका नाम विद्येश्वरसंहिता है, दूसरी रुद्रसंहिता समझनी चाहिये, तीसरीका नाम शतरुद्रसंहिता, चौथीका कोटिरुद्रसंहिता, पाँचवींका नाम उमासंहिता, छठीका कैलाससंहिता और सातवींका नाम वायवीयसंहिता है। इस प्रकार ये सात संहिताएँ मानी गयी हैं॥ ६०-६१॥

इन सात संहिताओंसे युक्त दिव्य शिवपुराण वेदके तुल्य प्रामाणिक तथा सबसे उत्कृष्ट गति प्रदान करनेवाला है॥ ६२॥

सात संहिताओंसे समन्वित इस सम्पूर्ण शिवपुराणको जो आद्योपान्त आदरपूर्वक पढ़ता है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है॥ ६३॥

वेद, स्मृति, पुराण, इतिहास तथा सैकड़ों आगम इस शिवपुराणकी अल्प कलाके समान भी नहीं हैं॥ ६४॥

यह निर्मल शिवपुराण भगवान् शिवके द्वारा ही प्रतिपादित है। शैवशिरोमणि भगवान् व्यासने इसे संक्षेपकर संकलित किया है। यह समस्त जीवसमुदायके लिये उपकारक, त्रिविध तापोंका नाशक, तुलनारहित एवं सत्पुरुषोंको कल्याण प्रदान करनेवाला है॥ ६५॥

इसमें वेदान्त-विज्ञानमय, प्रधान तथा निष्कपट धर्मका प्रतिपादन किया गया है। यह पुराण ईर्ष्यारहित अन्तःकरणवाले विद्वानोंके लिये जाननेकी वस्तु है, इसमें श्रेष्ठ मन्त्रसमूहोंका संकलन है और यह धर्म, अर्थ तथा कामसे समन्वित है अर्थात्—इस त्रिवर्गकी प्राप्तिके साधनका भी इसमें वर्णन है॥ ६६॥

यह उत्तम शिवपुराण समस्त पुराणोंमें श्रेष्ठ है। वेद-वेदान्तमें वेद्यरूपसे विलसित परम वस्तु—परमात्माका इसमें गान किया गया है। जो बड़े आदरसे इसे पढ़ता और सुनता है, वह भगवान् शिवका प्रिय होकर परम गति प्राप्त कर लेता है॥ ६७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां मुनिप्रश्नोत्तरवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें मुनिप्रश्नोत्तर-वर्णन नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

साध्य-साधन आदिका विचार

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य वचः सौतं प्रोचुस्ते परमर्षयः।
वेदान्तसारसर्वस्वं पुराणं श्रावयाद्भुतम्॥ १
इति श्रुत्वा मुनीनां स वचनं सुप्रहर्षितः।
संस्मरञ्छङ्करं सूतः प्रोवाच मुनिसत्तमान्॥ २

व्यासजी बोले—सूतजीका यह वचन सुनकर वे सब महर्षि बोले—अब आप हमें वेदान्तके सार-सर्वस्वरूप अद्भुत शिवपुराणको सुनाइये॥ १॥

मुनियोंका यह वचन सुनकर अतिशय प्रसन्न हो वे सूतजी शंकरजीका स्मरण करते हुए उन श्रेष्ठ मुनियोंसे कहने लगे॥ २॥

सूत उवाच

शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे स्मृत्वा शिवमनामयम्।
पुराणप्रवणं शैवं पुराणं वेदसारजम्॥ ३
यत्र गीतं त्रिकं प्रीत्या भक्तिज्ञानविरागकम्॥ ४
वेदान्तवेद्यं सद्वस्तु विशेषेण प्रवर्णितम्॥ ५
शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे पुराणं वेदसारजम्।
पुरा कालेन महता कल्पेऽतीते पुनः पुनः॥ ६
अस्मिन्नुपस्थिते कल्पे प्रवृत्ते सृष्टिकर्मणि।
मुनीनां षट्कुलीनानां ब्रुवतामितरेतरम्॥ ७
इदं परमिदं नेति विवादः सुमहानभूत्।
तेऽभिजग्मुर्विधातारं ब्रह्माणं प्रष्टुमव्ययम्॥ ८
वाग्भिर्विनयगर्भाभिः सर्वे प्राञ्जलयोऽब्रुवन्।
त्वं हि सर्वजगद्धाता सर्वकारणकारणम्॥ ९
कः पुमान् सर्वतत्त्वेभ्यः पुराणः परतः परः।

सूतजी बोले—आप सब महर्षिगण रोग-शोकसे रहित कल्याणमय भगवान् शिवका स्मरण करके वेदके सारतत्त्वसे प्रकट पुराणप्रवर शिवपुराणको सुनिये। जिसमें भक्ति, ज्ञान और वैराग्य—इन तीनोंका प्रीतिपूर्वक गान किया गया है और वेदान्तवेद्य सद्वस्तुका विशेषरूपसे वर्णन किया गया है॥ ३—५॥

हे ऋषिगण! अब आपलोग वेदके सारभूत पुराणको सुनें। बहुत कालमें पुनः-पुनः पूर्वकल्प व्यतीत होनेपर इस वर्तमान कल्पमें जब सृष्टिकर्म आरम्भ हुआ था, उन दिनों छः कुलोंके महर्षि परस्पर वाद-विवाद करते हुए कहने लगे—'अमुक वस्तु सबसे उत्कृष्ट है और अमुक नहीं है।' उनके इस विवादने अत्यन्त महान् रूप धारण कर लिया। तब वे सब-के-सब अपनी शंकाके समाधानके लिये सृष्टिकर्ता अविनाशी ब्रह्माजीके पास गये और हाथ जोड़कर विनयभरी वाणीमें बोले—[हे प्रभो!] आप सम्पूर्ण जगत्का धारण-पोषण करनेवाले हैं तथा समस्त कारणोंके भी कारण हैं; हम यह जानना चाहते हैं कि सम्पूर्ण तत्त्वोंसे परे परात्पर पुराणपुरुष कौन हैं?॥ ६—९½॥

ब्रह्मोवाच

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह॥ १०
यस्मात् सर्वमिदं ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रपूर्वकम्।
सह भूतेन्द्रियैः सर्वैः प्रथमं सम्प्रसूयते॥ ११
एष देवो महादेवः सर्वज्ञो जगदीश्वरः।
अयं तु परया भक्त्या दृश्यते नान्यथा क्वचित्॥ १२
रुद्रो हरिर्हरश्चैव तथान्ये च सुरेश्वराः।
भक्त्या परमया तस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः॥ १३

ब्रह्माजी बोले—जहाँसे मनसहित वाणी उन्हें न पाकर लौट आती है तथा जिनसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्र आदिसे युक्त यह सम्पूर्ण जगत् समस्त भूतों एवं इन्द्रियोंके साथ पहले प्रकट हुआ है, वे ही ये देव, महादेव सर्वज्ञ एवं सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं। ये ही सबसे उत्कृष्ट हैं। उत्तम भक्तिसे ही इनका साक्षात्कार होता है, दूसरे किसी उपायसे कहीं इनका दर्शन नहीं होता। रुद्र, हरि, हर तथा अन्य देवेश्वर सदा उत्तम भक्तिभावसे उनका नित्य दर्शन करना चाहते हैं॥ १०—१३॥

बहुनात्र किमुक्तेन शिवे भक्त्या विमुच्यते।
प्रसादाद्देवताभक्तिः प्रसादो भक्तिसम्भवः।
यथेहाङ्कुरतो बीजं बीजतो वा यथाङ्कुरः॥ १४

तस्मादीशप्रसादार्थं यूयं गत्वा भुवं द्विजाः।
दीर्घसत्रं समाकृध्वं यूयं वर्षसहस्रकम्॥ १५

अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता, भगवान् शिवमें भक्ति होनेसे मनुष्य संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। देवताओंके कृपाप्रसादसे ही उनमें भक्ति होती है और भक्तिसे देवताका कृपाप्रसाद प्राप्त होता है—ठीक उसी तरह, जैसे यहाँ अंकुरसे बीज और बीजसे अंकुर उत्पन्न होता है। इसलिये हे द्विजो! आप लोग भगवान् शंकरका कृपाप्रसाद प्राप्त करनेके लिये भूतलपर जाकर वहाँ सहस्र वर्षोंतक चलनेवाले एक विशाल यज्ञका आयोजन करें॥ १४-१५॥

अमुष्यैवाध्वरेशस्य शिवस्यैव प्रसादतः।
वेदोक्तविद्यासारं तु ज्ञायते साध्यसाधनम्॥ १६

इन यज्ञपति भगवान् शिवकी ही कृपासे वेदोक्त विद्याके सारभूत साध्य-साधनका ज्ञान होता है॥ १६॥

मुनय ऊचुः

अथ किं परमं साध्यं किं वा तत्साधनं परम्।
साधकः कीदृशस्तत्र तदिदं ब्रूहि तत्त्वतः॥ १७

मुनिगण बोले—हे भगवन्! परम साध्य क्या है और उसका परम साधन क्या है? उसका साधक कैसा होता है? ये सभी बातें यथार्थ रूपसे कहें॥ १७॥

ब्रह्मोवाच

साध्यं शिवपदप्राप्तिः साधनं तस्य सेवनम्।
साधकस्तत्प्रसादाद्यो नित्यादिफलनिस्पृहः॥ १८

ब्रह्माजी बोले—शिवपदकी प्राप्ति ही साध्य है, उनकी सेवा ही साधन है तथा उनके प्रसादसे जो नित्य-नैमित्तिक आदि फलोंकी ओरसे निःस्पृह होता है, वही साधक है॥ १८॥

कर्म कृत्वा तु वेदोक्तं तदर्पितमहाफलम्।
परमेशपदप्राप्तिः सालोक्यादिक्रमात्ततः॥ १९

वेदोक्त कर्मका अनुष्ठान करके उसके महान् फलको भगवान् शिवके चरणोंमें समर्पित कर देना ही परमेश्वरपदकी प्राप्ति है। वही सालोक्य आदिके क्रमसे प्राप्त होनेवाली मुक्ति है॥ १९॥

तत्तद्भक्त्यनुसारेण सर्वेषां परमं फलम्।
तत्साधनं बहुविधं साक्षादीशेन बोधितम्॥ २०

उन-उन पुरुषोंकी भक्तिके अनुसार उन सबको उत्कृष्ट फलकी प्राप्ति होती है। उस भक्तिके साधन अनेक प्रकारके हैं, जिनका प्रतिपादन साक्षात् महेश्वरने ही किया है॥ २०॥

सङ्क्षिप्य तत्र वः सारं साधनं प्रब्रवीम्यहम्।
श्रोत्रेण श्रवणं तस्य वचसा कीर्तनं तथा॥ २१

मनसा मननं तस्य महासाधनमुच्यते।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च मन्तव्यश्च महेश्वरः॥ २२

इति श्रुतिः प्रमाणं नः साधनेनामुना परम्।
साध्यं व्रजत सर्वार्थसाधनैकपरायणाः॥ २३

प्रत्यक्षं चक्षुषा दृष्ट्वा तत्र लोकः प्रवर्तते।
अप्रत्यक्षं हि सर्वत्र ज्ञात्वा श्रोत्रेण चेष्टते॥ २४

उसे संक्षिप्त करके मैं सारभूत साधनको बता रहा हूँ। कानसे भगवान्के नाम-गुण और लीलाओंका श्रवण, वाणीद्वारा उनका कीर्तन तथा मनके द्वारा उनका मनन—इन तीनोंको महान् साधन कहा गया है। [तात्पर्य यह कि] महेश्वरका श्रवण, कीर्तन और मनन करना चाहिये—यह श्रुतिका वाक्य हम सबके लिये प्रमाणभूत है। सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिमें लगे हुए आपलोग इसी साधनसे परम साध्यको प्राप्त हों। लोग प्रत्यक्ष वस्तुको नेत्रसे देखकर उसमें प्रवृत्त होते हैं; परंतु जिस वस्तुका कहीं भी प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता, उसे श्रवणेन्द्रियद्वारा जान-सुनकर मनुष्य उसकी प्राप्तिके लिये चेष्टा करता है॥ २१—२४॥

तस्माच्छ्रवणमेवादौ श्रुत्वा गुरुमुखाद् बुधः।
ततः संसाधयेदन्यत् कीर्तनं मननं सुधीः॥ २५

अतः पहला साधन श्रवण ही है। उसके द्वारा गुरुके मुखसे तत्त्वको सुनकर बुद्धिशाली विद्वान् पुरुष अन्य साधन—कीर्तन एवं मननकी सिद्धि करे॥ २५॥

क्रमान्मननपर्यन्ते साधनेऽस्मिन् सुसाधिते।
शिवयोगो भवेत्तेन सालोक्यादिक्रमाच्छनैः॥ २६

क्रमशः मननपर्यन्त इस साधनकी अच्छी तरह साधना कर लेनेपर उसके द्वारा सालोक्य आदिके क्रमसे धीरे-धीरे भगवान् शिवका संयोग प्राप्त होता है॥ २६॥

सर्वाङ्गव्याधयः पश्चात् सर्वानन्दश्च लीयते।
अभ्यासात् क्लेशमेतद् वै पश्चादाद्यन्तमङ्गलम्॥ २७

पहले सारे अंगोंके रोग नष्ट हो जाते हैं। तत्पश्चात् सब प्रकारका लौकिक आनन्द भी विलीन हो जाता है। अभ्यासके ही समय यह साधन कष्टप्रद है, किंतु बादमें निरन्तर मंगल देनेवाला है॥ २७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनविचारं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें साध्यसाधनविचार नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

श्रवण, कीर्तन और मनन—इन तीन साधनोंकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन

मुनय ऊचुः

मननं कीदृशं ब्रह्मञ्छ्रवणं चापि कीदृशम्।
कीर्तनं वा कथं तस्य कीर्तयैतद्यथायथम्॥ १

मुनिगण बोले—हे ब्रह्मन्! मनन कैसा होता है, श्रवणका स्वरूप कैसा है और उनका कीर्तन कैसे किया जाता है, यथार्थ रूपमें आप वर्णन करें॥ १॥

ब्रह्मोवाच

पूजाजपेशगुणरूपविलासनाम्नां
युक्तिप्रियेण मनसा परिशोधनं यत्।
तत्सन्ततं मननमीश्वरदृष्टिलभ्यं
सर्वेषु साधनवरेष्वपि मुख्यमुख्यम्॥ २

ब्रह्माजी बोले—[हे मुनियो!] भगवान् शंकरकी पूजा, उनके नामोंका जप तथा उनके गुण, रूप, विलास और नामोंका युक्तिपरायण चित्तके द्वारा जो निरन्तर परिशोधन या चिन्तन होता है, उसीको मनन कहा गया है, वह महेश्वरकी कृपादृष्टिसे उपलब्ध होता है। वह समस्त श्रेष्ठ साधनोंमें प्रमुखतम है॥ २॥

गीतात्मना श्रुतिपदेन च भाषया वा
शम्भुप्रतापगुणरूपविलासनाम्नाम्।
वाचा स्फुटं तु रसवत् स्तवनं यदस्य
तत्कीर्तनं भवति साधनमत्र मध्यम्॥ ३

शम्भुके प्रताप, गुण, रूप, विलास और नामको प्रकट करनेवाले संगीत, वेदवाक्य या भाषाके द्वारा अनुरागपूर्वक उनकी स्तुति ही मध्यम साधन है, जिसको कीर्तन शब्दसे कहा जाता है॥ ३॥

येनापि केन करणेन च शब्दपुञ्जं
यत्र क्वचिच्छिवपरं श्रवणेन्द्रियेण।
स्त्रीकेलिवद् दृढतरं प्रणिधीयते यत्
तद्वै बुधाः श्रवणमत्र जगत्प्रसिद्धम्॥ ४

हे ज्ञानियो! स्त्रीक्रीड़ामें जैसे मनकी आसक्ति होती है, वैसे ही किसी कारणसे किसी स्थानमें शिवविषयक वाणियोंमें श्रवणेन्द्रियकी दृढ़तर आसक्ति ही जगत्में श्रवणके नामसे प्रसिद्ध है॥ ४॥

सत्सङ्गमेन भवति श्रवणं पुरस्तात्
सङ्कीर्तनं पशुपतेरथ तद् दृढं स्यात्।
सर्वोत्तमं भवति तन्मननं तदन्ते
सर्वं हि सम्भवति शङ्करदृष्टिपाते॥ ५

सर्वप्रथम सज्जनोंकी संगतिसे श्रवण सिद्ध होता है, बादमें शिवजीका कीर्तन दृढ़ होता है और अन्तमें सभी साधनोंसे श्रेष्ठ शंकरविषयक मनन उत्पन्न होता है, किंतु यह सब उनकी कृपादृष्टिसे ही सम्भव होता है॥ ५॥

सूत उवाच

अस्मिन् साधनमाहात्म्ये पुरा वृत्तं मुनीश्वराः।
युष्मदर्थं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वमवधानतः॥ ६

सूतजी बोले—मुनीश्वरो! इस साधनका माहात्म्य बतानेके प्रसंगमें मैं आपलोगोंके लिये एक प्राचीन वृत्तान्तका वर्णन करूँगा, उसे ध्यान देकर आपलोग सुनें॥ ६॥

पुरा मम गुरुर्व्यासः पराशरमुनेः सुतः।
तपश्चचार सम्भ्रान्तः सरस्वत्यास्तटे शुभे॥ ७

पूर्व कालमें पराशर मुनिके पुत्र मेरे गुरु व्यासदेवजी सरस्वती नदीके सुन्दर तटपर तपस्या कर रहे थे॥ ७॥

गच्छन् यदृच्छया तत्र विमानेनार्करोचिषा।
सनत्कुमारो भगवान् ददर्श मम देशिकम्॥ ८

एक दिन सूर्यतुल्य तेजस्वी विमानसे यात्रा करते हुए भगवान् सनत्कुमार अकस्मात् वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने मेरे गुरुदेवको वहाँ देखा॥ ८॥

ध्यानारूढः प्रबुद्धोऽसौ ददर्श तमजात्मजम्।
प्रणिपत्याह सम्भ्रान्तः परं कौतूहलं मुनिः॥ ९

दत्त्वार्घ्यमस्मै प्रददौ देवयोग्यं च विष्टरम्।
प्रसन्नः प्राह तं प्रह्वं प्रभुर्गम्भीरया गिरा॥ १०

वे ध्यानमें मग्न थे। उससे जगनेपर उन्होंने ब्रह्माके पुत्र सनत्कुमारजीको अपने सामने उपस्थित देखा। वे बड़े वेगसे उठे और उनके चरणोंमें प्रणाम करके मुनिने उन्हें अर्घ्य प्रदान करके देवताओंके बैठनेयोग्य आसन भी अर्पित किया। तब प्रसन्न हुए भगवान् सनत्कुमार विनीत भावसे खड़े हुए व्यासजीसे गम्भीर वाणीमें कहने लगे॥ ९-१०॥

सनत्कुमार उवाच

सत्यं वस्तु मुने दध्याः साक्षात्करणगोचरः।
स शिवोऽथ सहायोऽत्र तपश्चरसि किंकृते॥ ११

सनत्कुमार बोले—हे मुने! आप सत्य सनातन भगवान् शंकरका हृदयसे ध्यान कीजिये, तब वे शिव प्रत्यक्ष होकर आपकी सहायता करेंगे; आप यहाँ तप किसलिये कर रहे हैं?॥ ११॥

एवमुक्तः कुमारेण प्रोवाच स्वाशयं मुनिः।
धर्मार्थकाममोक्षाश्च वेदमार्गे कृतादराः॥ १२
बहुधा स्थापिता लोके मया त्वत्कृपया तथा।

इस प्रकार सनत्कुमारके कहनेपर मुनि व्यासने अपना आशय कहा—मैंने आपकी कृपासे वेदसम्मत धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी कथाको मानवसमाजमें अनेक प्रकारसे प्रदर्शित किया है॥ १२१/२॥

एवंभूतस्य मेऽप्येवं गुरुभूतस्य सर्वतः॥ १३
मुक्तिसाधनकं ज्ञानं नोदेति परमाद्भुतम्।
तपश्चरामि मुक्त्यर्थं न जाने तत्र कारणम्॥ १४

इस प्रकार सर्वथा गुरुस्वरूप होनेपर भी मुझमें मुक्तिके साधन ज्ञानका उदय नहीं हुआ है—यह आश्चर्य ही है। मुक्तिका साधन न जाननेके कारण उसके लिये मैं तपस्या कर रहा हूँ॥ १३-१४॥

इत्थं कुमारो भगवान् व्यासेन मुनिनार्थितः।
समर्थः प्राह विप्रेन्द्रा निश्चयं मुक्तिकारणम्॥ १५

हे विप्रेन्द्रो! इस प्रकार जब व्यासमुनिने भगवान् सनत्कुमारसे प्रार्थना की, तब वे समर्थ सनत्कुमारजी मुक्तिका निश्चित कारण बताने लगे॥ १५॥

श्रवणं कीर्तनं शम्भोर्मननं च महत्तरम्।
त्रयं साधनमुक्तं च विद्यते वेदसम्मतम्॥ १६

भगवान् शंकरका श्रवण, कीर्तन, मनन—ये तीनों महत्तर साधन कहे गये हैं। ये तीनों ही वेदसम्मत हैं॥ १६॥

पुराहमथ सम्भ्रान्तो ह्यन्यसाधनसम्भ्रमः।
अचले मन्दरे शैले तपश्चरणमाचरम्॥ १७

पूर्वकालमें मैं दूसरे-दूसरे साधनोंके सम्भ्रममें पड़कर घूमता-घामता मन्दराचलपर जा पहुँचा और वहाँ तपस्या करने लगा॥ १७॥

शिवाज्ञया ततः प्राप्तो भगवान् नन्दिकेश्वरः।
स मे दयालुर्भगवान् सर्वसाक्षी गणेश्वरः॥ १८

उवाच मह्यं सस्नेहं मुक्तिसाधनमुत्तमम्।
श्रवणं कीर्तनं शम्भोर्मननं वेदसम्मतम्॥ १९

त्रिकं च साधनं मुक्तेः शिवेन मम भाषितम्।
श्रवणादित्रिकं ब्रह्मन् कुरुष्वेति मुहुर्मुहुः॥ २०

तदनन्तर महेश्वर शिवकी आज्ञासे भगवान् नन्दिकेश्वर वहाँ आये। उनकी मुझपर बड़ी दया थी। वे सबके साक्षी तथा शिवगणोंके स्वामी भगवान् नन्दिकेश्वर मुझे स्नेहपूर्वक मुक्तिका उत्तम साधन बताते हुए बोले—'भगवान् शंकरका श्रवण, कीर्तन और मनन—ये तीनों साधन वेदसम्मत हैं और मुक्तिके साक्षात् कारण हैं; यह बात स्वयं भगवान् शिवने मुझसे कही है। अतः हे ब्रह्मन्! आप श्रवणादि तीनों साधनोंका बार-बार अनुष्ठान करें॥ १८—२०॥

एवमुक्त्वा ततो व्यासं सानुगो विधिनन्दनः।
जगाम स्वविमानेन पदं परमशोभनम्॥ २१
एवमुक्तं समासेन पूर्ववृत्तान्तमुत्तमम्।

व्यासजीसे बार-बार ऐसा कहकर अनुगामियोंसहित ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार अपने विमानसे परम सुन्दर ब्रह्मधामको चले गये। इस प्रकार पूर्वकालके इस उत्तम वृत्तान्तका मैंने संक्षेपसे वर्णन किया है॥ २१½॥

ऋषय ऊचुः

श्रवणादित्रयं सूत मुक्त्युपायस्त्वयेरितः॥ २२

श्रवणादित्रिकेऽशक्तः किं कृत्वा मुच्यते जनः।
अयत्नेनैव मुक्तिः स्यात् कर्मणा केन हेतुना॥ २३

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! आपने श्रवण आदि तीनों साधनोंको मुक्तिका उपाय बताया है। जो मनुष्य श्रवण आदि तीनों साधनोंमें असमर्थ हो, वह किस उपायका अवलम्बन करके मुक्त हो सकता है और किस साधनभूत कर्मके द्वारा बिना यत्नके ही मोक्ष मिल सकता है?॥ २२-२३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

भगवान् शिवके लिंग एवं साकार विग्रहकी पूजाके रहस्य तथा महत्त्वका वर्णन

सूत उवाच

श्रवणादित्रिकेऽशक्तो लिङ्गं वेरं च शाङ्करम्।
संस्थाप्य नित्यमभ्यर्च्य तरेत् संसारसागरम्॥ १

सूतजी बोले—हे शौनक! जो श्रवण, कीर्तन और मनन—इन तीनों साधनोंके अनुष्ठानमें समर्थ न हो, वह भगवान् शंकरके लिंग एवं मूर्तिकी स्थापनाकर नित्य उसकी पूजा करके संसारसागरसे पार हो सकता है॥ १॥

अपि द्रव्यं वहेदेव यथाबलमवञ्चयन्।
अर्पयेल्लिङ्गवेरार्थमर्चयेदपि सन्ततम्॥ २

छल न करते हुए अपनी शक्तिके अनुसार धनराशि ले जाय और उसे शिवलिंग अथवा शिवमूर्तिकी सेवाके लिये अर्पित कर दे, साथ ही निरन्तर उस लिंग एवं मूर्तिकी पूजा भी करे॥ २॥

मण्डपं गोपुरं तीर्थं मठं क्षेत्रं तथोत्सवम्।
वस्त्रं गन्धं च माल्यं च धूपं दीपं च भक्तितः॥ ३

उसके लिये भक्तिभावसे मण्डप, गोपुर, तीर्थ, मठ एवं क्षेत्रकी स्थापना करे तथा उत्सव करे और वस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा मालपुआ आदि व्यंजनोंसे

विविधान्नं च नैवेद्यमपूपव्यञ्जनैर्युतम्।
छत्रं ध्वजं च व्यजनं चामरं चापि साङ्गकम्॥ ४

राजोपचारवत् सर्वं धारयेल्लिङ्गबेरयोः।
प्रदक्षिणां नमस्कारं यथाशक्ति जपं तथा॥ ५

युक्त भाँति-भाँतिके भक्ष्य-भोज्य अन्न नैवेद्यके रूपमें समर्पित करे। छत्र, ध्वजा, व्यजन, चामर तथा अन्य अंगोंसहित राजोपचारकी भाँति सब वस्तुएँ भगवान् शिवके लिंग एवं मूर्तिपर चढ़ाये। प्रदक्षिणा, नमस्कार तथा यथाशक्ति जप करे॥ ३—५॥

आवाहनादि सर्गान्तं नित्यं कुर्यात् सुभक्तितः।
इत्थमभ्यर्चयन् देवं लिङ्गे बेरे च शाङ्करे॥ ६

सिद्धिमेति शिवप्रीत्या हित्वापि श्रवणादिकम्।
लिङ्गबेरार्चनामात्रान्मुक्ताः पूर्वे महाजनाः॥ ७

आवाहनसे लेकर विसर्जनतक सारा कार्य प्रतिदिन भक्तिभावसे सम्पन्न करे। इस प्रकार शिवलिंग अथवा शिवमूर्तिमें भगवान् शंकरकी पूजा करनेवाला पुरुष श्रवण आदि साधनोंका अनुष्ठान न करे तो भी भगवान् शिवकी प्रसन्नतासे सिद्धि प्राप्त कर लेता है। पहलेके बहुतसे महात्मा पुरुष लिंग तथा शिवमूर्तिकी पूजा करनेमात्रसे भवबन्धनसे मुक्त हो चुके हैं॥ ६-७॥

मुनय ऊचुः

वेरमात्रे तु सर्वत्र पूज्यन्ते देवतागणाः।
लिङ्गे वेरे च सर्वत्र कथं सम्पूज्यते शिवः॥ ८

ऋषिगण बोले—मूर्तिमें ही सर्वत्र देवताओंकी पूजा होती है, परंतु भगवान् शिवकी पूजा सब जगह मूर्तिमें और लिंगमें भी क्यों की जाती है?॥ ८॥

सूत उवाच

अहो मुनीश्वराः पुण्यं प्रश्नमेतन्महाद्भुतम्।
अत्र वक्ता महादेवो नान्योऽस्ति पुरुषः क्वचित्॥ ९

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो! आप लोगोंका यह प्रश्न तो बड़ा ही पवित्र और अत्यन्त अद्भुत है। इस विषयमें महादेवजी ही वक्ता हो सकते हैं; कोई पुरुष कभी और कहीं भी इसका यथार्थ प्रतिपादन नहीं कर सकता॥ ९॥

शिवेनोक्तं प्रवक्ष्यामि क्रमाद् गुरुमुखाच्छ्रुतम्।
शिवैको ब्रह्मरूपत्वान्निष्कलः परिकीर्तितः॥ १०

इस विषयमें भगवान् शिवने जो कुछ कहा है और उसे मैंने गुरुजीके मुखसे जिस प्रकार सुना है, उसी तरह क्रमशः वर्णन करूँगा। एकमात्र भगवान् शिव ही ब्रह्मरूप होनेके कारण निष्कल (निराकार) कहे गये हैं॥ १०॥

रूपित्वात् सकलस्तद्वत्तस्मात् सकलनिष्कलः।
निष्कलत्वान्निराकारं लिङ्गं तस्य समागतम्॥ ११

रूपवान् होनेके कारण उन्हें 'सकल' भी कहा गया है। इसलिये वे सकल और निष्कल दोनों हैं। शिवके निष्कल—निराकार होनेके कारण ही उनकी पूजाका आधारभूत लिंग भी निराकार ही प्राप्त हुआ है अर्थात् शिवलिंग शिवके निराकार स्वरूपका प्रतीक है॥ ११॥

सकलत्वात् तथा वेरं साकारं तस्य सङ्गतम्।
सकलाकलरूपत्वाद् ब्रह्मशब्दाभिधः परः॥ १२

इसी तरह शिवके सकल या साकार होनेके कारण उनकी पूजाका आधारभूत विग्रह साकार प्राप्त होता है अर्थात् शिवका साकार विग्रह उनके साकार स्वरूपका प्रतीक होता है। सकल और अकल (समस्त अंग-आकारसहित साकार और अंग-आकारसे सर्वथा रहित निराकार)-रूप होनेसे ही वे 'ब्रह्म' शब्दसे कहे जानेवाले परमात्मा हैं॥ १२॥

अपि लिङ्गे च वेरे च नित्यमभ्यर्च्यते जनैः।
अब्रह्मत्वात्तदन्येषां निष्कलत्वं न हि क्वचित्॥ १३

यही कारण है कि सब लोग लिंग (निराकार) और मूर्ति (साकार)—दोनोंमें ही सदा भगवान् शिवकी पूजा करते हैं। शिवसे भिन्न जो देवता हैं, वे साक्षात् ब्रह्म नहीं हैं, इसलिये कहीं भी उनके लिये निराकार लिंग नहीं उपलब्ध होता॥ १३॥

तस्मात्ते निष्कले लिङ्गे नाराध्यन्ते सुरेश्वराः।
अब्रह्मत्वाच्च जीवत्वात्तथान्ये देवतागणाः॥ १४
तूष्णीं सकलमात्रत्वादर्च्यन्ते वेरमात्रके।
जीवत्वं शङ्करान्येषां ब्रह्मत्वं शङ्करस्य च॥ १५
वेदान्तसारसंसिद्धं प्रणवार्थे प्रकाशनात्।

अतः सुरेश्वर (इन्द्र, ब्रह्मा) आदि देवगण भी निष्कल लिंगमें पूजित नहीं होते हैं, सभी देवगण ब्रह्म न होनेसे, अपितु सगुण जीव होनेके कारण केवल मूर्तिमें ही पूजे जाते हैं। शंकरके अतिरिक्त अन्य देवोंका जीवत्व और सदाशिवका ब्रह्मत्व वेदोंके सारभूत उपनिषदोंसे सिद्ध होता है। वहाँ प्रणव (ॐकार)-के तत्त्वरूपसे भगवान् शिवका ही प्रतिपादन किया गया है॥ १४-१५१/२॥

एवमेव पुरा पृष्टो मन्दरे नन्दिकेश्वरः॥ १६
सनत्कुमारमुनिना ब्रह्मपुत्रेण धीमता।

इसी प्रकार पूर्वमें मन्दराचल पर्वतपर ज्ञानवान् ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार मुनिने नन्दिकेश्वरसे प्रश्न किया था॥ १६१/२॥

सनत्कुमार उवाच

शिवान्यदेववश्यानां सर्वेषामपि सर्वतः॥ १७
वेरमात्रं च पूजार्थं श्रुतं दृष्टं च भूरिशः।
शिवमात्रस्य पूजायां लिङ्गं वेरं च दृष्यते॥ १८
अतस्तद् ब्रूहि कल्याण तत्त्वं मे साधुबोधनम्।

सनत्कुमार बोले—[हे भगवन्!] शिवके अतिरिक्त उनके वशमें रहनेवाले जो अन्य देवता हैं, उन सबकी पूजाके लिये सर्वत्र प्रायः वेर (मूर्ति)-मात्र ही अधिक संख्यामें देखा और सुना जाता है। केवल भगवान् शिवकी ही पूजामें लिंग और वेर दोनोंका उपयोग देखनेमें आता है। अतः हे कल्याणमय नन्दिकेश्वर! इस विषयमें जो तत्त्वकी बात हो, उसे मुझे इस प्रकार बताइये, जिससे अच्छी तरह समझमें आ जाय॥ १७-१८१/२॥

नन्दिकेश्वर उवाच

अनुत्तरमिमं प्रश्नं रहस्यं ब्रह्मलक्षणम्॥ १९
कथयामि शिवेनोक्तं भक्तियुक्तस्य तेऽनघ।
शिवस्य ब्रह्मरूपत्वान्निष्कलत्वाच्च निष्कलम्॥ २०
लिङ्गं तस्यैव पूजायां सर्ववेदेषु सम्मतम्।
तस्यैव सकलत्वाच्च तथा सकलनिष्कलम्॥ २१
सकलं च तथा वेरं पूजायां लोकसम्मतम्।

नन्दिकेश्वर बोले—हे निष्पाप ब्रह्मकुमार! हम-जैसे लोगोंके द्वारा आपके इस प्रश्नका कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता; क्योंकि यह गोपनीय विषय है और लिंग साक्षात् ब्रह्मका प्रतीक है। इस विषयमें भगवान् शिवने जो कुछ बताया है, उसे मैं आप शिवभक्तके समक्ष कहता हूँ। भगवान् शिव ब्रह्मस्वरूप और निष्कल (निराकार) हैं; इसलिये उन्हींकी पूजामें निष्कल लिंगका उपयोग होता है। सम्पूर्ण वेदोंका यही मत है। वे ही सकल हैं। इस प्रकार वे निराकार तथा साकार दोनों हैं। भगवान् शंकर निष्कल-निराकार होते हुए भी कलाओंसे युक्त हैं, इसलिये उनकी साकार रूपमें प्रतिमापूजा भी लोकसम्मत है॥ १९—२११/२॥

शिवान्येषां च जीवत्वात् सकलत्वाच्च सर्वतः॥ २२

वेरमात्रं च पूजायां सम्मतं वेदनिर्णये।
स्वाविर्भावे च देवानां सकलं रूपमेव हि॥ २३

शिवस्य लिङ्गं वेरं च दर्शने दृश्यते खलु।

शंकरके अतिरिक्त अन्य देवताओंमें जीवत्व तथा सगुणत्व होनेके कारण वेदके मतमें उनकी मूर्तिमात्रमें ही पूजा मान्य है। इसी प्रकार उन देवताओंके आविर्भावके समय उनका समग्र साकार रूप प्रकट होता है, जबकि भगवान् सदाशिवके दर्शनमें साकार और निराकार (ज्योतिरूप) दोनोंकी ही प्राप्ति होती है॥ २२-२३१/२ ॥

सनत्कुमार उवाच

उक्तं त्वया महाभाग लिङ्गवेरप्रचारणम्॥ २४

शिवस्य च तदन्येषां विभज्य परमार्थतः।
तस्मात्तदेव परमं लिङ्गं वेरादिसम्भवम्॥ २५

श्रोतुमिच्छामि योगीन्द्र लिङ्गाविर्भावलक्षणम्।

सनत्कुमार बोले—हे महाभाग! आपने भगवान् शिव तथा दूसरे देवताओंके पूजनमें लिंग और वेरके प्रचारका जो रहस्य विभागपूर्वक बताया है, वह यथार्थ है। इसलिये लिंग और वेरकी आदि उत्पत्तिका जो उत्तम वृत्तान्त है, उसीको मैं इस समय सुनना चाहता हूँ। हे योगीन्द्र! लिंगके प्राकट्यका रहस्य सूचित करनेवाला प्रसंग मुझे सुनाइये॥ २४-२५१/२ ॥

नन्दिकेश्वर उवाच

शृणु वत्स भवत्प्रीत्या वक्ष्यामि परमार्थतः॥ २६

पुरा कल्पे महाकाले प्रपन्ने लोकविश्रुते।
अयुध्येतां महात्मानौ ब्रह्मविष्णू परस्परम्॥ २७

नन्दिकेश्वर बोले—हे वत्स! आपके प्रति प्रीतिके कारण मैं यथार्थ रूपमें वर्णन करता हूँ, सुनिये। लोकविख्यात पूर्वकल्पके बहुत दिन व्यतीत हो जानेपर एक समय महात्मा ब्रह्मा और विष्णु परस्पर लड़ने लगे॥ २६-२७ ॥

तयोर्मानं निराकर्तुं तन्मध्ये परमेश्वरः।
निष्कलस्तम्भरूपेण स्वरूपं समदर्शयत्॥ २८

उन दोनोंके अभिमानको मिटानेके लिये [त्रिगुणातीत] परमेश्वरने उनके मध्यमें निष्कल स्तम्भके रूपमें अपना स्वरूप प्रकट किया॥ २८ ॥

ततः स्वलिङ्गचिह्नत्वात् स्तम्भतो निष्कलं शिवः।
स्वलिङ्गं दर्शयामास जगतां हितकाम्यया॥ २९

जगत्‌का कल्याण करनेकी इच्छासे उस स्तम्भसे निराकार परमेश्वर शिवने अपने लिंग—चिह्नके कारण लिंगका आविर्भाव किया॥ २९ ॥

तदाप्रभृति लोकेषु निष्कलं लिङ्गमैश्वरम्।
सकलं च तथा वेरं शिवस्यैव प्रकल्पितम्॥ ३०

उसी समयसे लोकमें परमेश्वर शंकरके निर्गुण लिंग और सगुण मूर्तिकी पूजा प्रचलित हुई॥ ३० ॥

शिवान्येषां तु देवानां वेरमात्रं प्रकल्पितम्।
तत्तद् वेरं तु देवानां तत्तद्भोगप्रदं शुभम्।
शिवस्य लिङ्गवेरत्वं भोगमोक्षप्रदं शुभम्॥ ३१

शिवके अतिरिक्त अन्य देवोंकी मूर्तिमात्रकी ही प्रकल्पना हुई। वे देव-प्रतिमाएँ पूजित हो नियत शुभ कल्याणको देनेवाली हुईं और शिवका लिंग तथा उनकी प्रतिमा दोनों ही भोग और मोक्षको देनेवाली हुईं॥ ३१ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां शिवलिङ्गमहिमवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें शिवलिंगकी महिमाका वर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

ब्रह्मा और विष्णुके भयंकर युद्धको देखकर देवताओंका कैलास-शिखरपर गमन

नन्दिकेश्वर उवाच

पुरा कदाचिद्योगीन्द्र विष्णुर्विषधरासनः।
सुष्वाप परया भूत्या स्वानुगैरपि संवृतः॥ १

नन्दिकेश्वर बोले—हे योगीन्द्र! प्राचीनकालमें किसी समय शेषशायी भगवान् विष्णु अपनी पराशक्ति लक्ष्मीजी तथा अन्य पार्षदोंसे घिरे हुए शयन कर रहे थे॥ १॥

यदृच्छयागतस्तत्र ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः।
अपृच्छत् पुण्डरीकाक्षं शयानं सर्वसुन्दरम्॥ २

कस्त्वं पुरुषवच्छेषे दृष्ट्वा मामपि दृप्तवत्।
उत्तिष्ठ वत्स मां पश्य तव नाथमिहागतम्॥ ३

आगतं गुरुमाराध्यं दृष्ट्वा यो दृप्तवच्चरेत्।
द्रोहिणस्तस्य मूढस्य प्रायश्चित्तं विधीयते॥ ४

उसी समय ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीने अपनी इच्छासे वहाँ आकर उन परम सुन्दर कमलनेत्र विष्णुसे पूछा—तुम कौन हो, जो मुझे आया देखकर भी उद्धत पुरुषके समान सो रहे हो? हे वत्स! उठो और यहाँ अपने प्रभु—मुझे देखो। जो पुरुष अपने श्रेष्ठ गुरुजनको आया हुआ देखकर उद्धतके समान आचरण करता है, उस मूर्ख गुरुद्रोहीके लिये प्रायश्चित्तका विधान किया गया है॥ २—४॥

इति श्रुत्वा वचः क्रुद्धो बहिः शान्तवदाचरन्।
स्वस्ति ते स्वागतं वत्स तिष्ठ पीठमितो विश॥ ५

किमु ते व्यग्रवद्वक्त्रं विभाति विषमेक्षणम्।

[ब्रह्माके] इस वचनको सुनकर क्रोधित होनेपर भी बाहरसे शान्त व्यवहार करते हुए भगवान् विष्णु बोले—हे वत्स! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारा स्वागत है। आओ, इस आसनपर बैठो। तुम्हारे मुखमण्डलसे व्यग्रता प्रदर्शित हो रही है और तुम्हारे नेत्र विपरीत भाव सूचित कर रहे हैं॥ ५½॥

ब्रह्मोवाच

वत्स विष्णो महामानमागतं कालवेगतः॥ ६
पितामहश्च जगतः पाता च तव वत्सक।

ब्रह्माजी बोले—हे वत्स! हे विष्णो! कालके प्रभावसे तुम्हें बहुत अभिमान हो गया है। हे वत्स! मैं जगत्का पितामह और तुम्हारा रक्षक हूँ॥ ६½॥

विष्णुरुवाच

मत्स्थं जगदिदं वत्स मनुषे त्वं हि चोरवत्॥ ७

मन्नाभिकमलाज्जातः पुत्रस्त्वं भाषसे वृथा।

विष्णु बोले—हे वत्स! यह जगत् मुझमें ही स्थित है, तुम केवल चोरके समान दूसरेकी सम्पत्तिको व्यर्थ अपनी मानते हो! तुम मेरे नाभिकमलसे उत्पन्न हो, अतः तुम मेरे पुत्र हो, तुम तो व्यर्थ बातें कह रहे हो?॥ ७½॥

नन्दिकेश्वर उवाच

एवं हि वदतोस्तत्र मुग्धयोरजयोस्तदा॥ ८

अहमेव वरो न त्वमहं प्रभुरहं प्रभुः।
परस्परं हन्तुकामौ चक्रतुः समरोद्यमम्॥ ९

नन्दिकेश्वर बोले—[हे मुने!] उस समय वे अजन्मा ब्रह्मा और विष्णु मोहवश 'मैं श्रेष्ठ हूँ, मैं स्वामी हूँ, तुम नहीं'—इस प्रकार बोलते-बोलते परस्पर एक-दूसरेको मारनेकी इच्छासे युद्ध करनेके लिये उद्यत हो गये॥ ८-९॥

युयुधातेऽमरौ वीरौ हंसपक्षीन्द्रवाहनौ।
वैरञ्च्या वैष्णवाश्चैवं मिथो युयुधिरे तदा॥ १०

हंस और गरुडपर आरूढ होकर वे दोनों वीर ब्रह्मा और विष्णु युद्ध करने लगे, तब ब्रह्मा और विष्णुके गण भी परस्पर युद्ध करने लगे॥ १०॥

तावद्विमानगतयः सर्वा वै देवजातयः।
दिदृक्षवः समाजग्मुः समरं तं महाद्भुतम्॥ ११

क्षिपन्तः पुष्पवर्षाणि पश्यन्तः स्वैरमम्बरे।
सुपर्णवाहनस्तत्र क्रुद्धो वै ब्रह्मवक्षसि॥ १२

मुमोच बाणानसहानस्त्रांश्च विविधान् बहून्।

मुमोचाथ विधिः क्रुद्धो विष्णोरुरसि दुःसहान्॥ १३

बाणाननलसङ्काशानस्त्रांश्च बहुशस्तदा।
तदाश्चर्यमिति स्पष्टं तयोः समरगोचरम्॥ १४

समीक्ष्य दैवतगणाः शशंसुर्भृशमाकुलाः।

ततो विष्णुः सुसंक्रुद्धः श्वसन् व्यसनकर्शितः॥ १५

माहेश्वरास्त्रं मतिमान् सन्दधे ब्रह्मणोपरि।
ततो ब्रह्मा भृशं क्रुद्धः कम्पयन् विश्वमेव हि॥ १६

अस्त्रं पाशुपतं घोरं सन्दधे विष्णुवक्षसि।
ततस्तदुत्थितं व्योम्नि तपनायुतसन्निभम्॥ १७

सहस्रमुखमत्युग्रं चण्डवातभयङ्करम्।
अस्त्रद्वयमिदं तत्र ब्रह्मविष्ण्वोर्भयङ्करम्॥ १८

इत्थं बभूव समरं ब्रह्मविष्ण्वोः परस्परम्।
ततो देवगणाः सर्वे विषण्णा भृशमाकुलाः।
ऊचुः परस्परं तात राजक्षोभे यथा द्विजाः॥ १९

सृष्टिः स्थितिश्च संहारस्तिरोभावोऽप्यनुग्रहः।
यस्मात् प्रवर्तते तस्मै ब्रह्मणे च त्रिशूलिने॥ २०

अशक्यमन्यैर्यदनुग्रहं विना
तृणक्षयोऽप्यत्र यदृच्छया क्वचित्॥ २१

इति देवा भयं कृत्वा विचिन्वन्तः शिवक्षयम्।
जग्मुः कैलासशिखरं यत्रास्ते चन्द्रशेखरः॥ २२

दृष्ट्वैवममरा हृष्टाः पदं तत्पारमेश्वरम्।
प्रणेमुः प्रणवाकारं प्रविष्टास्तत्र सद्मनि॥ २३

उस समय सभी देवगण उस परम अद्भुत युद्धको देखनेकी इच्छासे विमानपर चढ़कर वहाँ पहुँच गये। [वहाँ आकर] आकाशमें अवस्थित हो पुष्पकी वृष्टि करते हुए वे युद्ध देखने लगे। गरुडवाहन भगवान् विष्णुने क्रुद्ध होकर ब्रह्माके वक्षःस्थलपर अनेक प्रकारके असंख्य दुःसह बाणों और अस्त्रोंसे प्रहार किया॥ ११-१२$^{1}/_{2}$॥

तब विधाता भी क्रुद्ध होकर विष्णुके हृदयपर अग्निके समान बाण और अनेक प्रकारके अस्त्रोंको छोड़ने लगे। उस समय देवगण उन दोनोंका वह अद्भुत युद्ध देखकर अतिशय व्याकुल हो गये और ब्रह्मा तथा विष्णुकी प्रशंसा करने लगे॥ १३-१४$^{1}/_{2}$॥

तत्पश्चात् युद्धमें तत्पर महाज्ञानी विष्णुने अतिशय क्रोधके साथ श्रान्त हो दीर्घ निःश्वास लेते हुए ब्रह्माको लक्ष्यकर भयंकर माहेश्वर अस्त्रका संधान किया। ब्रह्माने भी अतिशय क्रोधमें आकर विष्णुके हृदयको लक्ष्यकर ब्रह्माण्डको कम्पित करते हुए भयंकर पाशुपत अस्त्रका प्रयोग किया। ब्रह्मा और विष्णुके सूर्यके समान हजारों मुखवाले, अत्यन्त उग्र तथा प्रचण्ड आँधीके समान भयंकर दोनों अस्त्र आकाशमें प्रकट हो गये॥ १५—१८॥

इस प्रकार ब्रह्मा और विष्णुका आपसमें भयंकर युद्ध होने लगा। हे तात! उस युद्धको देखकर सभी देवगण राजविप्लवके समय ब्राह्मणोंके समान अतिशय दुखी और व्याकुल होकर परस्पर कहने लगे—जिसके द्वारा सृष्टि, स्थिति, प्रलय, तिरोभाव तथा अनुग्रह होता है और जिसकी कृपाके बिना इस भूमण्डलपर अपनी इच्छासे एक तृणका भी विनाश करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है, उन त्रिशूलधारी ब्रह्मस्वरूप महेश्वरको नमस्कार है॥ १९—२१॥

भयभीत देवतागण इस प्रकार सोचते हुए चन्द्रशेखर महेश्वर जहाँ विराजमान थे, उस शिवस्थान कैलास शिखरपर गये॥ २२॥

शिवके उस प्रणवाकार स्थानको देखकर वे देवता प्रसन्न हुए और प्रणाम करके भवनमें प्रविष्ट हुए॥ २३॥

तेऽपि तत्र सभामध्ये मण्डपे मणिविष्टरे।
विराजमानमुमया ददृशुर्देवपुङ्गवम्॥ २४

सव्योत्तरेतरपदं तदर्पितकराम्बुजम्।
स्वगणैः सर्वतो जुष्टं सर्वलक्षणलक्षितम्॥ २५

वीज्यमानं विशेषज्ञैः स्त्रीजनैस्तीव्रभावनैः।
शंस्यमानं सदा वेदैरनुगृह्णन्तमीश्वरम्॥ २६

दृष्ट्वैवमीशममराः सन्तोषसलिलेक्षणाः।
दण्डवद् दूरतो वत्स नमश्चक्रुर्महागणाः॥ २७

उन्होंने वहाँ सभाके मध्यमें स्थित मण्डपमें देवी पार्वतीके साथ रत्नमय आसनपर विराजमान देवश्रेष्ठ शंकरका दर्शन किया। वे वाम चरणके ऊपर दक्षिण चरण और उसके ऊपर वाम करकमल रखे हुए थे, समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थे और चारों ओर शिवगण उनकी सेवामें तत्पर थे, शिवके प्रति उत्तम भक्तिभाववाली कुशल रमणियाँ उनपर चँवर डुला रही थीं, वेद निरन्तर उनकी स्तुति कर रहे थे और वे अनुग्रहकी दृष्टिसे सबको देख रहे थे। हे वत्स! उन महेश्वर शिवको देखकर आनन्दाश्रुसे परिपूर्ण नेत्रोंवाले देवताओंने दूरसे ही उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया॥ २४—२७॥

तानवेक्ष्य पतिर्देवान् समीपे चाह्वयद् गणैः।
अथ संह्लादयन् देवान् देवो देवशिखामणिः।
अवोचदथ गम्भीरं वचनं मधुमङ्गलम्॥ २८

भगवान् शंकरने उन देवोंको देखकर अपने गणोंसे उन्हें समीप बुलवाया और देवशिरोमणि महादेव उन देवताओंको आनन्दित करते हुए अर्थगम्भीर, मंगलमय तथा सुमधुर वचन कहने लगे॥ २८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां देवानां कैलासयात्रावर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें देवताओंकी कैलासयात्राका वर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

भगवान् शंकरका ब्रह्मा और विष्णुके युद्धमें अग्निस्तम्भरूपमें प्राकट्य, स्तम्भके आदि और अन्तकी जानकारीके लिये दोनोंका प्रस्थान

ईश्वर उवाच

वत्सकाः स्वस्ति वः कच्चिद्वर्तते मम शासनात्।
जगच्च देवतावंशः स्वस्वकर्मणि किं न वा॥ १
प्रागेव विदितं युद्धं ब्रह्मविष्ण्वोर्मया सुराः।
भवतामभितापेन पौनरुक्त्येन भाषितम्॥ २
इति सस्मितया माध्व्या कुमार परिभाषया।
समतोषयदम्बायाः स पतिस्तत्सुरव्रजम्॥ ३

शिवजी बोले—हे पुत्रो! आपकी कुशल तो है? मेरे अनुशासनमें जगत् तथा देवश्रेष्ठ अपने-अपने कार्योंमें लगे तो हैं? हे देवताओ! ब्रह्मा और विष्णुके बीच होनेवाले युद्धका वृत्तान्त तो मुझे पहलेसे ही ज्ञात था; आपलोगोंने [यहाँ आनेका] परिश्रम करके उसे पुनः बताया है। हे सनत्कुमार! उमापति शंकरने इस प्रकार मुसकराते हुए मधुर वाणीमें उन देवगणोंको सन्तुष्ट किया॥ १—३॥

अथ युद्धाङ्गणं गन्तुं हरिधात्रोरधीश्वरः।
आज्ञापयद्गणेशानां शतं तत्रैव संसदि॥ ४

ततो वाद्यं बहुविधं प्रयाणाय परेशितुः।
गणेश्वराश्च सन्नद्धा नानावाहनभूषणाः॥ ५

इसके बाद महादेवजीने ब्रह्मा और विष्णुकी युद्धस्थलीमें जानेके लिये अपने सैकड़ों गणोंको वहीं सभामें आज्ञा दी। तब महादेवजीके प्रयाणके लिये अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे और उनके गणाध्यक्ष भी अनेक प्रकार से सज-धजकर वाहनोंपर सवार होकर जानेके लिये तैयार हो गये॥ ४-५॥

प्रणवाकारमाद्यन्तं पञ्चमण्डलमण्डितम्।
आरुरोह रथं भद्रमम्बिकापतिरीश्वरः।
ससूनुगणमिन्द्राद्याः सर्वेऽप्यनुययुः सुराः॥ ६

चित्रध्वजव्यजनचामरपुष्पवर्ष-
सङ्गीतनृत्यनिवहैरपि वाद्यवर्गैः।
सम्मानितः पशुपतिः परया च देव्या
साकं तयोः समरभूमिमगात्ससैन्यः॥ ७

भगवान् उमापति पाँच मण्डलोंसे सुशोभित आगेसे पीछेतक प्रणव (ॐ)-की आकृतिवाले सुन्दर रथपर आरूढ़ हो गये। इस प्रकार पुत्रों और गणोंसहित प्रस्थान किये हुए शिवजीके पीछे-पीछे इन्द्र आदि सभी देवगण भी चल पड़े। विचित्र ध्वजाएँ, पंखे, चँवर, पुष्पवृष्टि, संगीत, नृत्य और वाद्योंसे सम्मानित पशुपति भगवान् शिव भगवती उमाके साथ सेनासहित उन दोनों (ब्रह्मा और विष्णु)-की युद्धभूमिमें आ पहुँचे॥ ६-७॥

समीक्ष्य तु तयोर्युद्धं निगूढोऽभ्रं समास्थितः।
समाप्तवाद्यनिर्घोषः शान्तोरुगणनिःस्वनः॥ ८
अथ ब्रह्माच्युतौ वीरौ हन्तुकामौ परस्परम्।
माहेश्वरेण चास्त्रेण तथा पाशुपतेन च॥ ९
अस्त्रज्वालैरथो दग्धं ब्रह्मविष्ण्वोर्जगत्त्रयम्।
ईशोऽपि तं निरीक्ष्याथ ह्यकालप्रलयं भृशम्॥ १०
महानलस्तम्भविभीषणाकृति-
र्बभूव तन्मध्यतले स निष्कलः॥ ११

उन दोनोंका युद्ध देखकर शिवजीने गणोंका कोलाहल तथा वाद्योंकी ध्वनि बन्द करा दी तथा वे छिपकर आकाशमें स्थित हो गये। उधर शूरवीर ब्रह्मा और विष्णु एक-दूसरेको मारनेकी इच्छासे माहेश्वरास्त्र और पाशुपतास्त्रका परस्पर सन्धान कर रहे थे। ब्रह्मा और विष्णुके अस्त्रोंकी ज्वालासे तीनों लोक जलने लगे। निराकार भगवान् शंकर इस अकाल प्रलयको आया देखकर एक भयंकर विशाल अग्निस्तम्भके रूपमें उन दोनोंके बीच प्रकट हो गये॥ ८—११॥

ते अस्त्रे चापि सज्वाले लोकसंहरणक्षमे।
निपेततुः क्षणेनैव ह्याविर्भूते महानले॥ १२

दृष्ट्वा तदद्भुतं चित्रमस्त्रशान्तिकरं शुभम्।
किमेतदद्भुताकारमित्यूचुश्च परस्परम्॥ १३

संसारको नष्ट करनेमें सक्षम वे दोनों दिव्यास्त्र अपने तेजसहित उस महान् अग्निस्तम्भके प्रकट होते ही तत्क्षण शान्त हो गये। दिव्यास्त्रोंको शान्त करनेवाले इस आश्चर्यकारी तथा शुभ (अग्निस्तम्भ)-को देखकर सभी लोग परस्पर कहने लगे कि यह अद्भुत आकारवाला (स्तम्भ) क्या है?॥ १२-१३॥

अतीन्द्रियमिदं स्तम्भमग्निरूपं किमुत्थितम्।
अस्योर्ध्वमपि चाधश्च आवयोर्लक्ष्यमेव हि॥ १४
इति व्यवस्थितौ वीरौ मिलितौ वीरमानिनौ।
तत्परौ तत्परीक्षार्थं प्रतस्थातेऽथ सत्वरम्॥ १५
आवयोर्मिश्रयोस्तत्र कार्यमेकं न सम्भवेत्।
इत्युक्त्वा सूकरतनुर्विष्णुस्तस्यादिमीयिवान्॥ १६
तथा ब्रह्मा हंसतनुस्तदन्तं वीक्षितुं ययौ।
भित्त्वा पातालनिलयं गत्वा दूरतरं हरिः॥ १७
नापश्यत्तस्य संस्थानं स्तम्भस्यानलवर्चसः।
श्रान्तः स सूकरहरिः प्राप पूर्वं रणाङ्गणम्॥ १८

यह दिव्य अग्निस्तम्भ कैसे प्रकट हो गया? इसकी ऊँचाईकी और इसकी जड़की हम दोनों जाँच करें—ऐसा एक साथ निश्चय करके वे दोनों अभिमानी वीर उसकी परीक्षा करनेको तत्पर हो गये और शीघ्रतापूर्वक चल पड़े। हम दोनोंके साथ रहनेसे यह कार्य सम्पन्न नहीं होगा—ऐसा कहकर विष्णुने सूकरका रूप धारण किया और उसकी जड़की खोजमें चले। उसी प्रकार ब्रह्मा भी हंसका रूप धारण करके उसका अन्त खोजनेके लिये चल पड़े। पाताललोकको खोदकर बहुत दूरतक जानेपर भी विष्णुको उस अग्निके समान तेजस्वी स्तम्भका आधार नहीं दीखा। तब थक-हारकर सूकराकृति विष्णु रणभूमिमें वापस आ गये॥ १४—१८॥

अथ गच्छंस्तु व्योम्ना च विधिस्तात पिता तव।
ददर्श केतकीपुष्पं किञ्चिद्विच्युतमद्भुतम्॥ १९

अतिसौरभ्यमम्लानं बहुवर्षच्युतं तथा।
अन्वीक्ष्य च तयोः कृत्यं भगवान् परमेश्वरः॥ २०

परिहासं तु कृतवान्कम्पनाच्चलितं शिरः।
तस्मात्तावनुगृह्णातुं च्युतं केतकमुत्तमम्॥ २१

हे तात! आकाशमार्गसे जाते हुए आपके पिता ब्रह्माजीने मार्गमें अद्भुत केतकी (केवड़े)-के पुष्पको गिरते देखा। अनेक वर्षोंसे गिरते रहनेपर भी वह ताजा और अति सुगन्धयुक्त था। ब्रह्मा और विष्णुके इस विग्रहपूर्ण कृत्यको देखकर भगवान् परमेश्वर हँस पड़े, जिससे कम्पनके कारण उनका मस्तक हिला और वह श्रेष्ठ केतकी पुष्प उन दोनोंके ऊपर कृपा करनेके लिये गिरा॥ १९—२१॥

किं त्वं पतसि पुष्पेश पुष्पराट् केन वै धृतः।
आदिमस्याप्रमेयस्य स्तम्भमध्याच्च्युतश्चिरम्॥ २२

न सम्पश्यामि तस्मात्त्वं जह्याशामन्तदर्शने।

[ब्रह्माजीने उससे पूछा—] हे पुष्पराज! तुम्हें किसने धारण कर रखा था और तुम क्यों गिर रहे हो? [केतकीने उत्तर दिया—] इस पुरातन और अप्रमेय स्तम्भके बीचसे मैं बहुत समयसे गिर रहा हूँ। फिर भी इसके आदिको नहीं देख सका। अतः आप भी इस स्तम्भका अन्त देखनेकी आशा छोड़ दें॥ २२ 1/2॥

अस्यान्तस्य च सेवार्थं हंसमूर्तिरिहागतः॥ २३

इतः परं सखे मेऽद्य त्वया कर्तव्यमीप्सितम्।
मया सह त्वया वाच्यमेतद्विष्णोश्च सन्निधौ॥ २४

स्तम्भान्तो वीक्षितो धात्रा तत्र साक्ष्यहमच्युत।
इत्युक्त्वा केतकं तत्र प्रणनाम पुनः पुनः।
असत्यमपि शस्तं स्यादापदीत्यनुशासनम्॥ २५

[ब्रह्माजीने कहा—] मैं तो हंसका रूप लेकर इसका अन्त देखनेके लिये यहाँ आया हूँ। अब हे मित्र! मेरा एक अभिलषित काम तुम्हें करना पड़ेगा। विष्णुके पास मेरे साथ चलकर तुम्हें इतना कहना है कि 'ब्रह्माने इस स्तम्भका अन्त देख लिया है। हे अच्युत! मैं इस बातका साक्षी हूँ।' केतकीसे ऐसा कहकर ब्रह्माने उसे बार-बार प्रणाम किया और कहा कि आपत्कालमें तो मिथ्या भाषण भी प्रशस्त माना गया है—यह शास्त्रकी आज्ञा है॥ २३—२५॥

समीक्ष्य तत्राच्युतमायतश्रमं
प्रनष्टहर्षं तु ननर्त हर्षात्।
उवाच चैनं परमार्थमच्युतं
षण्ढात्तवादः स विधिस्ततोऽच्युतम्॥ २६

स्तम्भाग्रमेतत् समुदीक्षितं हरे
तत्रैव साक्षी ननु केतकं त्विदम्।
ततोऽवदत्तत्र हि केतकं मृषा
तथेति तद्धातृवचस्तदन्तिके॥ २७

वहाँ अति परिश्रमसे थके और [स्तम्भका अन्त न मिलनेसे] उदास विष्णुको देखकर ब्रह्मा प्रसन्नतासे नाच उठे और षण्ढ (नपुंसक)-के समान पूर्ण बातें बनाकर अच्युत विष्णुसे इस प्रकार कहने लगे—हे हरे! मैंने इस स्तम्भका अग्रभाग देख लिया है; इसका साक्षी यह केतकी पुष्प है। तब उस केतकीने भी झूठ ही विष्णुके समक्ष कह दिया कि ब्रह्माकी बात यथार्थ है॥ २६-२७॥

हरिश्च तत्सत्यमितीव चिन्तयं-
श्चकार तस्मै विधये नमः स्वयम्।
षोडशैरुपचारैश्च पूजयामास तं विधिम्॥ २८

विष्णुने उस बातको सत्य मानकर ब्रह्माको स्वयं प्रणाम किया और उनका षोडशोपचार पूजन किया॥ २८॥

विधिं प्रहर्तुं शठमग्निलिङ्गतः
स ईश्वरस्तत्र बभूव साकृतिः।
समुत्थितः स्वामिविलोकनात् पुनः
प्रकम्पपाणिः परिगृह्य तत्पदम्॥ २९

आद्यन्तहीनवपुषि त्वयि मोहबुद्ध्या
भूयान् विमर्श इह नावति कामनोत्थः।
स त्वं प्रसीद करुणाकर कश्मलं नौ
मृष्टं क्षमस्व विहितं भवतैव केल्या॥ ३०

उसी समय कपटी ब्रह्माको दण्डित करनेके लिये उस प्रज्वलित स्तम्भ लिंगसे महेश्वर प्रकट हो गये। तब परमेश्वरको प्रकट हुआ देखकर विष्णु उठ खड़े हुए और काँपते हाथोंसे उनका चरण पकड़कर कहने लगे। हे करुणाकर! आदि और अन्तसे रहित शरीरवाले आप परमेश्वरके विषयमें मैंने मोहबुद्धिसे बहुत विचार किया; किंतु कामनाओंसे उत्पन्न वह विचार सफल नहीं हुआ। अतः आप हमपर प्रसन्न हों, हमारे पापको नष्ट करें और हमें क्षमा करें; यह सब आपकी लीलासे ही हुआ है॥ २९-३०॥

ईश्वर उवाच

वत्स प्रसन्नोऽस्मि हरे यतस्त्व-
मीशत्वमिच्छन्नपि सत्यवाक्यम्।
ब्रूयास्ततस्ते भविता जनेषु
साम्यं मया सत्कृतिरप्यलप्सि॥ ३१
इतः परं ते पृथगात्मनश्च
क्षेत्रप्रतिष्ठोत्सवपूजनं च॥ ३२

ईश्वर बोले—हे वत्स! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ; क्योंकि श्रेष्ठताकी कामना होनेपर भी तुमने सत्य वचनका पालन किया, इसलिये लोगोंमें तुम मेरे समान ही प्रतिष्ठा और सत्कार प्राप्त करोगे। हे हरे अबसे आपकी पृथक् मूर्ति बनाकर पुण्य क्षेत्रोंमें प्रतिष्ठित की जायगी और उसका उत्सवपूर्वक पूजन होगा॥ ३१-३२॥

इति देवः पुरा प्रीतः सत्येन हरये परम्।
ददौ स्वसाम्यमत्यर्थं देवसङ्घे च पश्यति॥ ३३

इस प्रकार परमेश्वरने विष्णुकी सत्यनिष्ठासे प्रसन्न होकर देवताओंके सामने उन्हें अपनी समानता प्रदान की थी॥ ३३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायामनलस्तम्भाविष्कारवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें अग्निस्तम्भके प्राकट्यका वर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

भगवान् शंकरद्वारा ब्रह्मा और केतकी पुष्पको शाप देना और पुनः अनुग्रह प्रदान करना

नन्दिकेश्वर उवाच

ससर्जाथ महादेवः पुरुषं कञ्चिदद्भुतम्।
भैरवाख्यं भ्रुवोर्मध्याद् ब्रह्मदर्पजिघांसया॥ १

स वै तदा तत्र पतिं प्रणम्य शिवमङ्गणे।
किं कार्यं करवाण्यत्र शीघ्रमाज्ञापय प्रभो॥ २

नन्दिकेश्वर बोले—तदुपरान्त महादेव शिवजीने ब्रह्माके गर्वको मिटानेकी इच्छासे अपनी भृकुटीके मध्यसे भैरव नामक एक अद्भुत पुरुषको उत्पन्न किया। उस भैरवने रणभूमिमें अपने स्वामी शिवजीको प्रणाम करके पूछा कि हे प्रभो! आप शीघ्र आज्ञा दें, मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ?॥ १-२॥

शिव उवाच

वत्स योऽयं विधिः साक्षाज्जगतामाद्यदैवतम्।
नूनमर्चय खड्गेन तिग्मेन जवसा परम्॥ ३

शिवजी बोले—हे वत्स! ये जो ब्रह्मा हैं, वे इस सृष्टिके आदि देवता हैं, तुम वेगपूर्वक तीक्ष्ण तलवारसे इनकी पूजा करो अर्थात् इनका वध कर दो॥ ३॥

स वै गृहीत्वैककरेण केशं
तत्पञ्चमं दृप्तमसत्यभाषिणम्।
छित्त्वा शिरो ह्यस्य निहन्तुमुद्यतः
प्रकम्पयन् खड्गमतिस्फुटं करैः॥ ४

पिता तवोत्सृष्टविभूषणाम्बर-
स्त्रगुत्तरीयामलकेशसंहतिः ।
प्रवातरम्भेव लतेव चञ्चलः
पपात वै भैरवपादपङ्कजे॥ ५

तावद्विधिं तात दिदृक्षुरच्युतः
कृपालुरस्मत्पतिपादपल्लवम् ।
निषिच्य बाष्पैरवदत् कृताञ्जलि-
र्यथा शिशुः स्वं पितरं कलाक्षरम्॥ ६

अच्युत उवाच

त्वया प्रयत्नेन पुरा हि दत्तं
यदस्य पञ्चाननमीश चिह्नम्।
तस्मात् क्षमस्वाद्यमनुग्रहार्हं
कुरु प्रसादं विधये ह्यमुष्मै॥ ७

इत्यर्थितोऽच्युतेनेशस्तुष्टः सुरगणाङ्गणे।
निवर्तयामास तदा भैरवं ब्रह्मदण्डतः॥ ८

अथाह देवः कितवं विधिं विगतकन्धरम्।
ब्रह्मंस्त्वमर्हणाकाङ्क्षी शठेशत्वं समास्थितः॥ ९

नातस्ते सत्कृतिर्लोके भूयात् स्थानोत्सवादिकम्।

ब्रह्मोवाच

स्वामिन् प्रसीदाद्य महाविभूते
मन्ये वरं मे शिरसः प्रमोक्षम्॥ १०

नमस्तुभ्यं भगवते बन्धवे विश्वयोनये।
सहिष्णवे च दोषाणां शम्भवे शैलधन्वने॥ ११

ईश्वर उवाच

अराजभयमेतद्वै जगत् सर्वं नशिष्यति।
ततस्त्वं जहि दण्डार्हं वह लोकधुरं शिशो॥ १२

वरं ददामि ते तत्र गृहाण दुर्लभं परम्।
वैतानिकेषु गृह्येषु यज्ञेषु च भवान् गुरुः॥ १३

निष्फलस्त्वदृते यज्ञः साङ्गश्च सहदक्षिणः।

तब भैरव एक हाथसे [ब्रह्माके] केश पकड़कर असत्य भाषण करनेवाले उनके उद्धत पाँचवें सिरको काटकर हाथोंमें तलवार भाँजते हुए उन्हें मार डालनेके लिये उद्यत हुए॥ ४॥

[हे सनत्कुमार!] तब आपके पिता अपने आभूषण, वस्त्र, माला, उत्तरीय एवं निर्मल बालोंके बिखर जानेसे आँधीमें झकझोरे हुए केलेके पेड़ और लतागुल्मोंके समान कम्पित होकर भैरवके चरण-कमलोंपर गिर पड़े। हे तात! तब ब्रह्माकी रक्षा करनेकी इच्छासे कृपालु विष्णुने मेरे स्वामी भगवान् शंकरके चरणकमलोंको अपने अश्रु-जलसे भिगोते हुए हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना की, जैसे एक छोटा बालक अपने पिताके प्रति टूटी-फूटी वाणीमें करता है॥ ५-६॥

अच्युत बोले—[हे ईश!] आपने ही पहले कृपापूर्वक इन ब्रह्माको पंचाननरूप प्रदान किया था। इसलिये ये आपके अनुग्रह करनेयोग्य हैं, इनका अपराध क्षमा करें और इनपर प्रसन्न हों॥ ७॥

भगवान् अच्युतके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये जानेपर शिवजीने प्रसन्न होकर देवताओंके सामने ही ब्रह्माको दण्डित करनेसे भैरवको रोक दिया। शिवजीने एक सिरसे विहीन कपटी ब्रह्मासे कहा—हे ब्रह्मन्! तुम श्रेष्ठता पानेके चक्करमें शठेशत्वको प्राप्त हो गये हो। इसलिये संसारमें तुम्हारा सत्कार नहीं होगा और तुम्हारे मन्दिर तथा पूजनोत्सव आदि नहीं होंगे॥ ८-९$^{1}/_{2}$॥

ब्रह्माजी बोले—हे महाविभूतिसम्पन्न स्वामिन्! आप मुझपर प्रसन्न होइये; मैं [आपकी कृपासे] अपने सिरके कटनेको भी आज श्रेष्ठ समझता हूँ। विश्वके कारण, विश्वबन्धु, दोषोंको सह लेनेवाले और पर्वतके समान कठोर धनुष धारण करनेवाले आप भगवान् शिवको नमस्कार है॥ १०-११॥

ईश्वर बोले—हे वत्स! अनुशासनका भय नहीं रहनेसे यह सारा संसार नष्ट हो जायगा। अतः तुम दण्डनीयको दण्ड दो और इस संसारकी व्यवस्था चलाओ। तुम्हें एक परम दुर्लभ वर भी देता हूँ, जिसे ग्रहण करो। अग्निहोत्र आदि वैतानिक और गृह्य यज्ञोंमें आप ही श्रेष्ठ रहेंगे। सर्वांगपूर्ण और पुष्कल दक्षिणावाला यज्ञ भी आपके बिना निष्फल होगा॥ १२-१३$^{1}/_{2}$॥

अथाह देवः कितवं केतकं कूटसाक्षिणम्॥ १४
रे रे केतक दुष्टस्त्वं शठ दूरमितो व्रज।
ममापि प्रेम ते पुष्पे माभूत्पूजास्वितः परम्॥ १५
इत्युक्ते तत्र देवेन केतकं देवजातयः।
सर्वा निवारयामासुस्तत्पार्श्वादन्यतस्तदा॥ १६

तब भगवान् शिवने झूठी गवाही देनेवाले कपटी केतक पुष्पसे कहा—अरे शठ केतक! तुम दुष्ट हो; यहाँसे दूर चले जाओ। मेरी पूजामें उपस्थित तुम्हारा फूल मुझे प्रिय नहीं होगा। शिवजीद्वारा इस प्रकार कहते ही सभी देवताओंने केतकीको उनके पाससे हटाकर अन्यत्र भेज दिया॥ १४—१६॥

केतक उवाच

नमस्ते नाथ मे जन्म निष्फलं भवदाज्ञया।
सफलं क्रियतां तात क्षम्यतां मम किल्बिषम्॥ १७
ज्ञानाज्ञानकृतं पापं नाशयत्येव ते स्मृतिः।
तादृशे त्वयि दृष्टे मे मिथ्यादोषः कुतो भवेत्॥ १८

केतक बोला—हे नाथ! आपको नमस्कार है। आपकी आज्ञाके कारण मेरा तो जन्म ही निष्फल हो गया है। हे तात! मेरा अपराध क्षमा करें और मेरा जन्म सफल कर दें। जाने-अनजानेमें हुए पाप आपके स्मरणमात्रसे नष्ट हो जाते हैं, फिर ऐसे प्रभावशाली आपके साक्षात् दर्शन करनेपर भी मेरे झूठ बोलनेका दोष कैसे रह सकता है?॥ १७-१८॥

तथा स्तुतस्तु भगवान् केतकेन सभास्थले।
न मे त्वद्धारणं योग्यं सत्यवागहमीश्वरः॥ १९
मदीयास्त्वां धरिष्यन्ति जन्म ते सफलं ततः।
त्वं वै वितानव्याजेन ममोपरि भविष्यसि॥ २०

उस सभास्थलमें केतक पुष्पके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् सदाशिवने कहा—मैं सत्य बोलनेवाला हूँ, अतः मेरे द्वारा तुझे धारण किया जाना उचित नहीं है, किंतु मेरे ही अपने (विष्णु आदि देवगण) तुम्हें धारण करेंगे और तुम्हारा जन्म सफल होगा और मण्डप आदिके बहाने तुम मेरे ऊपर भी उपस्थित रहोगे॥ १९-२०॥

इत्यनुगृह्य भगवान् केतकं विधिमाधवौ।
विरराज सभामध्ये सर्वदेवैरभिष्टुतः॥ २१

इस प्रकार भगवान् शंकर ब्रह्मा, विष्णु और केतकी पुष्पपर अनुग्रह करके सभी देवताओंसे स्तुत होकर सभामें सुशोभित हुए॥ २१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां शिवानुग्रहवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें शिवकी कृपाका वर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः

महेश्वरका ब्रह्मा और विष्णुको अपने निष्कल और सकल स्वरूपका परिचय देते हुए लिंगपूजनका महत्त्व बताना

नन्दिकेश्वर उवाच

तत्रान्तरे तौ च नाथं प्रणम्य विधिमाधवौ।
बद्धाञ्जलिपुटौ तूष्णीं तस्थतुर्दक्षवामगौ॥ १
तत्र संस्थाप्य तौ देवं सकुटुम्बं वरासने।
पूजयामासतुः पूज्यं पुण्यैः पुरुषवस्तुभिः॥ २

नन्दिकेश्वर बोले—वे दोनों—ब्रह्मा और विष्णु भगवान् शंकरको प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर उनके दायें-बायें भागमें चुपचाप खड़े हो गये। फिर उन्होंने वहाँ [साक्षात् प्रकट] पूजनीय महादेवजीको कुटुम्बसहित श्रेष्ठ आसनपर स्थापित करके पवित्र पुरुष-वस्तुओंद्वारा उनका पूजन किया॥ १-२॥

पौरुषं प्राकृतं वस्तु ज्ञेयं दीर्घाल्पकालिकम्।
हारनूपुरकेयूरकिरीटमणिकुण्डलैः ॥ ३

यज्ञसूत्रोत्तरीयस्त्रक्क्षौममाल्याङ्गुलीयकैः।
पुष्पताम्बूलकर्पूरचन्दनागुरुलेपनैः ॥ ४

धूपदीपसितच्छत्रव्यजनध्वजचामरैः।
अन्यैर्दिव्योपहारैश्च वाङ्मनोतीतवैभवैः ॥ ५

पतियोग्यैः पश्वलभ्यैस्तौ समार्चयतां पतिम्।
यद्यच्छ्रेष्ठतमं वस्तु पतियोग्यं हितध्वज ॥ ६

तद्वस्त्वखिलमीशोऽपि पारम्पर्यचिकीर्षया।
सभ्यानां प्रददौ हृष्टः पृथक् तत्र यथाक्रमम् ॥ ७

कोलाहलो महानासीत्तत्र तद्वस्तु गृह्यताम्।
तत्रैव ब्रह्मविष्णुभ्यां चार्चितः शङ्करः पुरा ॥ ८

प्रसन्नः प्राह तौ नम्रौ सस्मितं भक्तिवर्धनः।

ईश्वर उवाच

तुष्टोऽहमद्य वां वत्सौ पूजयास्मिन् महादिने ॥ ९

दिनमेतत्ततः पुण्यं भविष्यति महत्तरम्।
शिवरात्रिरिति ख्याता तिथिरेषा मम प्रिया ॥ १०

एतत्काले तु यः कुर्यात् पूजां मल्लिङ्गवेरयोः।
कुर्यात् स जगतः कृत्यं स्थितिसर्गादिकं पुमान् ॥ ११

दीर्घकालतक अविकृतभावसे सुस्थित रहनेवाली वस्तुओंको पुरुषवस्तु कहते हैं और अल्पकालतक ही टिकनेवाली वस्तुएँ प्राकृतवस्तु कहलाती हैं—इस तरह वस्तुके ये दो भेद जानने चाहिये। [किन पुरुष-वस्तुओंसे उन्होंने भगवान् शिवका पूजन किया, यह बताया जाता है—] हार, नूपुर, केयूर, किरीट, मणिमय कुण्डल, यज्ञोपवीत, उत्तरीय वस्त्र, पुष्प-माला, रेशमी वस्त्र, हार, मुद्रिका (अँगूठी), पुष्प, ताम्बूल, कपूर, चन्दन एवं अगुरुका अनुलेप, धूप, दीप, श्वेतछत्र, व्यजन, ध्वजा, चँवर तथा अन्यान्य दिव्य उपहारोंद्वारा उन दोनोंने अपने स्वामी महेश्वरका पूजन किया, जिन महेश्वरका वैभव वाणी और मनकी पहुँचसे परे था, जो केवल पशुपति परमात्माके ही योग्य थे और जिन्हें पशु (बद्ध जीव) नहीं पा सकते थे ॥ ३—५१/२ ॥

हे सनत्कुमार! स्वामीके योग्य जो-जो उत्तम वस्तुएँ थीं, उन सभी वस्तुओंका भगवान् शंकरने भी प्रसन्नतापूर्वक यथोचित रूपसे सभासदोंके बीच वितरण कर दिया, जिससे यह श्रेष्ठ परम्परा बनी रहे कि प्राप्त पदार्थोंका वितरण आश्रितोंमें करना चाहिये। उन वस्तुओंको ग्रहण करनेवाले सभासदोंमें वहाँ कोलाहल मच गया। इस प्रकार वहाँ पहले ही ब्रह्मा तथा विष्णुसे पूजित हुए भक्तिवर्धक भगवान् शिव विनम्र उन दोनों देवताओंसे हँसकर कहने लगे ॥ ६—८१/२ ॥

ईश्वर बोले—हे पुत्रो! आजका दिन महान् है। इसमें तुम्हारे द्वारा जो आज मेरी पूजा हुई है, इससे मैं तुमलोगोंपर बहुत प्रसन्न हूँ। इसी कारण यह दिन परम पवित्र और महान्-से-महान् होगा। आजकी यह तिथि शिवरात्रिके नामसे विख्यात होकर मेरे लिये परम प्रिय होगी ॥ ९-१० ॥

इस समय जो मेरे लिंग (निष्कल—अंग-आकृतिसे रहित निराकार स्वरूपके प्रतीक) और वेर (सकल—साकाररूपके प्रतीक विग्रह)-की पूजा करेगा, वह पुरुष जगत्‌की सृष्टि और पालन आदि कार्य भी कर सकता है ॥ ११ ॥

शिवरात्रावहोरात्रं निराहारो जितेन्द्रियः।
अर्चयेद्वा यथान्यायं यथाबलमवञ्चकः॥ १२

यत्फलं मम पूजायां वर्षमेकं निरन्तरम्।
तत्फलं लभते सद्यः शिवरात्रौ मदर्चनात्॥ १३

जो शिवरात्रिको दिन-रात निराहार एवं जितेन्द्रिय रहकर अपनी शक्तिके अनुसार निष्कपट भावसे मेरी यथोचित पूजा करेगा, उसको मिलनेवाले फलका वर्णन सुनो। एक वर्षतक निरन्तर मेरी पूजा करनेपर जो फल मिलता है, वह सारा फल केवल शिवरात्रिको मेरा पूजन करनेसे मनुष्य तत्काल प्राप्त कर लेता है॥ १२-१३॥

मद्धर्मवृद्धिकालोऽयं चन्द्रकाल इवाम्बुधेः।
प्रतिष्ठाद्युत्सवो यत्र मामको मङ्गलायनः॥ १४

जैसे पूर्ण चन्द्रमाका उदय समुद्रकी वृद्धिका अवसर है, उसी प्रकार यह शिवरात्रि तिथि मेरे धर्मकी वृद्धिका समय है। इस तिथिमें मेरी स्थापना आदिका मंगलमय उत्सव होना चाहिये॥ १४॥

यत्पुनः स्तम्भरूपेण स्वाविरासमहं पुरा।
स कालो मार्गशीर्षे तु स्यादार्द्राऋक्षमर्भकौ॥ १५

आर्द्रायां मार्गशीर्षे तु यः पश्येन्मामुमासखम्।
मद्बेरमपि वा लिङ्गं स गुहादपि मे प्रियः॥ १६

अलं दर्शनमात्रेण फलं तस्मिन् दिने शुभे।
अभ्यर्चनं चेदधिकं फलं वाचामगोचरम्॥ १७

हे वत्सो! पहले मैं जब ज्योतिर्मय स्तम्भरूपसे प्रकट हुआ था, उस समय मार्गशीर्षमासमें आर्द्रा नक्षत्र था। अतः जो पुरुष मार्गशीर्षमासमें आर्द्रा नक्षत्र होनेपर मुझ उमापतिका दर्शन करता है अथवा मेरी मूर्ति या लिंगकी ही झाँकीका दर्शन करता है, वह मेरे लिये कार्तिकेयसे भी अधिक प्रिय है। उस शुभ दिन मेरे दर्शनमात्रसे पूरा फल प्राप्त होता है। यदि [दर्शनके साथ-साथ] मेरा पूजन भी किया जाय तो उसका अधिक फल प्राप्त होता है, जिसका वाणीद्वारा वर्णन नहीं हो सकता॥ १५—१७॥

रणरङ्गतलेऽमुष्मिन् यदहं लिङ्गवर्ष्मणा।
जृम्भितो लिङ्गवत्तस्माल्लिङ्गस्थानमिदं भवेत्॥ १८

अनाद्यन्तमिदं स्तम्भमणुमात्रं भविष्यति।
दर्शनार्थं हि जगतां पूजनार्थं हि पुत्रकौ॥ १९

भोगावहमिदं लिङ्गं भुक्तिमुक्त्येकसाधनम्।
दर्शनस्पर्शनध्यानाज्जन्तूनां जन्ममोचनम्॥ २०

इस रणभूमिमें मैं लिंगरूपसे प्रकट होकर बहुत बड़ा हो गया था। अतः उस लिंगके कारण यह भूतल लिंगस्थानके नामसे प्रसिद्ध हुआ। हे पुत्रो! जगत्‌के लोग इसका दर्शन और पूजन कर सकें, इसके लिये यह अनादि और अनन्त ज्योतिःस्तम्भ अत्यन्त छोटा हो जायगा। यह लिंग सब प्रकारके भोगोंको सुलभ करानेवाला और भोग तथा मोक्षका एकमात्र साधन होगा। इसका दर्शन, स्पर्श तथा ध्यान प्राणियोंको जन्म और मृत्युसे छुटकारा दिलानेवाला होगा॥ १८—२०॥

अनलाचलसङ्काशं यदिदं लिङ्गमुत्थितम्।
अरुणाचलमित्येव तदिदं ख्यातिमेष्यति॥ २१

अत्र तीर्थं च बहुधा भविष्यति महत्तरम्।
मुक्तिरप्यत्र जन्तूनां वासेन मरणेन च॥ २२

अग्निके पहाड़-जैसा जो यह शिवलिंग यहाँ प्रकट हुआ है, इसके कारण यह स्थान अरुणाचल नामसे प्रसिद्ध होगा। यहाँ अनेक प्रकारके बड़े-बड़े तीर्थ प्रकट होंगे। इस स्थानमें निवास करने या मरनेसे जीवोंका मोक्ष हो जायगा॥ २१-२२॥

रथोत्सवादिकल्याणं जनावासं तु सर्वतः।
अत्र दत्तं हुतं जप्तं सर्वं कोटिगुणं भवेत्॥ २३

मत्क्षेत्रादपि सर्वस्मात् क्षेत्रमेतन्महत्तरम्।
अत्र संस्मृतिमात्रेण मुक्तिर्भवति देहिनाम्॥ २४

तस्मान्महत्तरमिदं क्षेत्रमत्यन्तशोभनम्।
सर्वकल्याणसम्पूर्णं सर्वमुक्तिकरं शुभम्॥ २५

अर्चयित्वात्र मामेव लिङ्गे लिङ्गिनमीश्वरम्।
सालोक्यं चैव सामीप्यं सारूप्यं सार्ष्टिरेव च॥ २६

सायुज्यमिति पञ्चैते क्रियादीनां फलं मतम्।
सर्वेऽपि यूयं सकलं प्राप्स्यथाशु मनोरथम्॥ २७

नन्दिकेश्वर उवाच

इत्यनुगृह्य भगवान् विनीतौ विधिमाधवौ।
यत्पूर्वं प्रहतं युद्धे तयोः सैन्यं परस्परम्॥ २८

तदुत्थापयदत्यर्थं स्वशक्त्यामृतधारया।
तयोर्मौढ्यं च वैरं च व्यपनेतुमुवाच तौ॥ २९

सकलं निष्कलं चेति स्वरूपद्वयमस्ति मे।
नान्यस्य कस्यचित्तस्मादन्यः सर्वोऽप्यनीश्वरः॥ ३०

पुरस्तात् स्तम्भरूपेण पश्चाद् रूपेण चार्भकौ।
ब्रह्मत्वं निष्कलं प्रोक्तमीशत्वं सकलं तथा॥ ३१

द्वयं ममैव संसिद्धं न मदन्यस्य कस्यचित्।
तस्मादीशत्वमन्येषां युवयोरपि न क्वचित्॥ ३२

तदज्ञानेन वां वृत्तमीशमानं महाद्भुतम्।
तन्निराकर्तुमत्रैवमुत्थितोऽहं रणक्षितौ॥ ३३

त्यजतं मानमात्मीयं मयीशे कुरुतं मतिम्।
मत्प्रसादेन लोकेषु सर्वोऽप्यर्थः प्रकाशते॥ ३४

गुरूक्तिर्व्यञ्जकं तत्र प्रमाणं वा पुनः पुनः।
ब्रह्मतत्त्वमिदं गूढं भवत्प्रीत्या भणाम्यहम्॥ ३५

रथोत्सवादिके आयोजनसे यहाँ सर्वत्र अनेक लोग कल्याणकारी रूपसे निवास करेंगे। इस स्थानपर किया गया दान, हवन तथा जप—यह सब करोड़गुना फल देनेवाला होगा। यह क्षेत्र मेरे सभी क्षेत्रोंमें श्रेष्ठतम होगा। यहाँ मेरा स्मरण करनेमात्रसे प्राणियोंकी मुक्ति हो जायगी। अतः यह परम रमणीय क्षेत्र अति महत्त्वपूर्ण है। यह सभी प्रकारके कल्याणोंसे पूर्ण, शुभ और सबको मुक्ति प्रदान करनेवाला होगा॥ २३—२५॥

इस लिंगमें मुझ लिंगेश्वरकी अर्चना करके मनुष्य सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि और सायुज्य—इन पाँचों प्रकारकी मुक्तियोंका अधिकार प्राप्त कर लेगा। आपलोगोंको भी शीघ्र ही सभी मनोवांछित फल प्राप्त होंगे॥ २६-२७॥

नन्दिकेश्वर बोले—इस प्रकार विनम्र ब्रह्मा तथा विष्णुपर अनुग्रह करके भगवान् शंकरने उनके जो सैन्यदल परस्पर युद्धमें मारे गये थे, उन्हें अपनी अमृतवर्षिणी शक्तिसे जीवित कर दिया। उन दोनों ब्रह्मा और विष्णुकी मूढ़ता और [पारस्परिक] वैरको मिटानेके लिये भगवान् शंकर उन दोनोंसे कहने लगे— ॥ २८-२९॥

मेरे दो रूप हैं—'सकल' और 'निष्कल'। दूसरे किसीके ऐसे रूप नहीं हैं, अतः [मेरे अतिरिक्त] अन्य सब अनीश्वर हैं। हे पुत्रो! पहले मैं स्तम्भरूपसे प्रकट हुआ, फिर अपने साक्षात्-रूपसे। 'ब्रह्मभाव' मेरा 'निष्कल' रूप और 'महेश्वरभाव' सकल रूप है। ये दोनों मेरे ही सिद्धरूप हैं; मेरे अतिरिक्त किसी दूसरेके नहीं हैं। इस कारण तुम दोनोंका अथवा अन्य किसीका भी ईश्वरत्व कभी नहीं है॥ ३०—३२॥

अज्ञानके कारण तुम दोनोंको जो यह ईशत्वका आश्चर्यजनक अभिमान उत्पन्न हो गया था, उसे दूर करनेके लिये ही मैं इस रणभूमिमें प्रकट हुआ हूँ। उस अपने अभिमानको छोड़ दो और मुझ परमेश्वरमें [अपनी] बुद्धि स्थिर करो। मेरे अनुग्रहसे ही सभी लोकोंमें सब कुछ प्रकाशित होता है। इस गूढ़ ब्रह्मतत्त्वको तुम्हारे प्रति प्रेम होनेके कारण ही मैं बता रहा हूँ॥ ३३—३५॥

अहमेव परं ब्रह्म मत्स्वरूपं कलाकलम्।
ब्रह्मत्वादीश्वरश्चाहं कृत्यं मेऽनुग्रहादिकम्॥ ३६

बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाच्च ब्रह्माहं ब्रह्मकेशवौ।
समत्वाद्व्यापकत्वाच्च तथैवात्माहमर्भकौ॥ ३७

मैं ही परब्रह्म हूँ। कल (सगुण) और अकल (निर्गुण)—ये दोनों मेरे ही स्वरूप हैं। मेरा स्वरूप ब्रह्मरूप होनेके कारण मैं ईश्वर भी हूँ। जीवोंपर अनुग्रह आदि करना मेरा कार्य है। हे ब्रह्मा और केशव! सबसे बृहत् और जगत्की वृद्धि करनेवाला होनेके कारण मैं 'ब्रह्म' हूँ। हे पुत्रो! सर्वत्र समरूपसे स्थित और व्यापक होनेसे मैं ही सबका आत्मा हूँ॥ ३६-३७॥

अनात्मानः परे सर्वे जीवा एव न संशयः।
अनुग्रहाद्यं सर्गान्तं जगत्कृत्यं च पञ्चकम्॥ ३८

ईशत्वादेव मे नित्यं न मदन्यस्य कस्यचित्।
आदौ ब्रह्मत्वबुद्ध्यर्थं निष्कलं लिङ्गमुत्थितम्॥ ३९

तस्मादज्ञातमीशत्वं व्यक्तं द्योतयितुं हि वाम्।
सकलोऽहमतो जातः साक्षादीशस्तु तत्क्षणात्॥ ४०

सकलत्वमतो ज्ञेयमीशत्वं मयि सत्वरम्।
यदिदं निष्कलं स्तम्भं मम ब्रह्मत्वबोधकम्॥ ४१

लिङ्गलक्षणयुक्तत्वान्मम लिङ्गं भवेदिदम्।
तदिदं नित्यमभ्यर्च्यं युवाभ्यामत्र पुत्रकौ॥ ४२

मदात्मकमिदं नित्यं मम सान्निध्यकारणम्।
महत्पूज्यमिदं नित्यमभेदाल्लिङ्गलिङ्गिनोः॥ ४३

अन्य सभी जीव अनात्मरूप हैं; इसमें सन्देह नहीं है। सर्गसे लेकर अनुग्रहतक (आत्मा या ईश्वरसे भिन्न) जो जगत्-सम्बन्धी पाँच कृत्य हैं, वे सदा मेरे ही हैं, मेरे अतिरिक्त दूसरे किसीके नहीं हैं; क्योंकि मैं ही सबका ईश्वर हूँ। पहले मेरी ब्रह्मरूपताका बोध करानेके लिये 'निष्कल' लिंग प्रकट हुआ था, फिर तुम दोनोंको अज्ञात ईश्वरत्वका स्पष्ट साक्षात्कार करानेके लिये मैं साक्षात् जगदीश्वर ही 'सकल' रूपमें तत्काल प्रकट हो गया। अतः मुझमें जो ईशत्व है, उसे ही मेरा सकलरूप जानना चाहिये तथा जो यह मेरा निष्कल स्तम्भ है, वह मेरे ब्रह्मस्वरूपका बोध करानेवाला है। हे पुत्रो! लिंग-लक्षणयुक्त होनेके कारण यह मेरा ही लिंग (चिह्न) है। तुम दोनोंको प्रतिदिन यहाँ रहकर इसका पूजन करना चाहिये। यह मेरा ही स्वरूप है और मेरे सामीप्यकी प्राप्ति करानेवाला है। लिंग और लिंगीमें नित्य अभेद होनेके कारण मेरे इस लिंगका महान् पुरुषोंको भी पूजन करना चाहिये॥ ३८—४३॥

यत्र प्रतिष्ठितं येन मदीयं लिङ्गमीदृशम्।
तत्र प्रतिष्ठितः सोऽहमप्रतिष्ठोऽपि वत्सकौ॥ ४४

हे वत्सो! जहाँ-जहाँ जिस किसीने मेरे लिंगको स्थापित कर लिया, वहाँ मैं अप्रतिष्ठित होनेपर भी प्रतिष्ठित हो जाता हूँ॥ ४४॥

मत्साम्यमेकलिङ्गस्य स्थापने फलमीरितम्।
द्वितीये स्थापिते लिङ्गे मदैक्यं फलमेव हि॥ ४५

मेरे एक लिंगकी स्थापना करनेका फल मेरी समानताकी प्राप्ति बताया गया है। एकके बाद दूसरे शिवलिंगकी भी स्थापना कर दी गयी, तब फलरूपसे मेरे साथ एकत्व (सायुज्य मोक्ष)-रूप फल प्राप्त होता है॥ ४५॥

लिङ्गं प्राधान्यतः स्थाप्यं तथा वेरं तु गौणकम्।
लिङ्गाभावे न तत्क्षेत्रं सवेरमपि सर्वतः॥ ४६

प्रधानतया शिवलिंगकी ही स्थापना करनी चाहिये। मूर्तिकी स्थापना उसकी अपेक्षा गौण है। शिवलिंगके अभावमें सब ओरसे मूर्तियुक्त होनेपर भी वह स्थान क्षेत्र नहीं कहलाता॥ ४६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां शिवस्य महेश्वराभिधानवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें शिवके महेश्वरत्वका वर्णन नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

अथ दशमोऽध्यायः

सृष्टि, स्थिति आदि पाँच कृत्योंका प्रतिपादन, प्रणव एवं पंचाक्षर-मन्त्रकी महत्ता, ब्रह्मा-विष्णुद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति तथा उनका अन्तर्धान होना

ब्रह्मविष्णू ऊचतुः

सर्गादिपञ्चकृत्यस्य लक्षणं ब्रूहि नौ प्रभो।

शिव उवाच

मत्कृत्यबोधनं गुह्यं कृपया प्रब्रवीमि वाम्॥ १

सृष्टिः स्थितिश्च संहारस्तिरोभावोऽप्यनुग्रहः।
पञ्चैव मे जगत्कृत्यं नित्यसिद्धमजाच्युतौ॥ २

सर्गः संसारसंरम्भस्तत्प्रतिष्ठा स्थितिर्मता।
संहारो मर्दनं तस्य तिरोभावस्तदुत्क्रमः॥ ३

तन्मोक्षोऽनुग्रहस्तन्मे कृत्यमेवं हि पञ्चकम्।
कृत्यमेतद्वहत्यन्यस्तूष्णीं गोपुरबिम्बवत्॥ ४

ब्रह्मा और विष्णु बोले—हे प्रभो! हम दोनोंको सृष्टि आदि पाँच कृत्योंका लक्षण बताइये॥ १/२॥

शिवजी बोले—मेरे कृत्योंको समझना अत्यन्त गहन है, तथापि मैं कृपापूर्वक तुम दोनोंको उनके विषयमें बता रहा हूँ। हे ब्रह्मा और अच्युत! सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह—ये पाँच ही मेरे जगत्-सम्बन्धी कार्य हैं, जो नित्यसिद्ध हैं। संसारकी रचनाका जो आरम्भ है, वह 'सर्ग' है। मुझसे पालित होकर सृष्टिका सुस्थिररूपसे रहना ही उसकी 'स्थिति' कहा गया है। उसका विनाश ही 'संहार' है। प्राणोंका उत्क्रमण ही 'तिरोभाव' है। इन सबसे छुटकारा मिल जाना ही मेरा 'अनुग्रह' है। इस प्रकार मेरे पाँच कृत्य हैं। इन मेरे कर्तव्योंको चुपचाप अन्य पंचभूतादि वहन करते रहते हैं, जैसे जलमें पड़नेवाले गोपुर-बिम्बमें आवागमन होता रहता है॥ १—४॥

सर्गादि यच्चतुःकृत्यं संसारपरिजृम्भणम्।
पञ्चमं मुक्तिहेतुर्वै नित्यं मयि च सुस्थिरम्॥ ५

तदिदं पञ्चभूतेषु दृश्यते मामकैर्जनैः।
सृष्टिर्भूमौ स्थितिस्तोये संहारः पावके तथा॥ ६

तिरोभावोऽनिले तद्वदनुग्रह इहाम्बरे।
सृज्यते धरया सर्वमद्भिः सर्वं प्रवर्धते॥ ७

अर्द्यते तेजसा सर्वं वायुना चापनीयते।
व्योम्नानुगृह्यते सर्वं ज्ञेयमेवं हि सूरिभिः॥ ८

सृष्टि आदि जो चार कृत्य हैं, वे संसारका विस्तार करनेवाले हैं। पाँचवाँ कृत्य अनुग्रह मोक्षका हेतु है। वह सदा मुझमें ही अचल भावसे स्थिर रहता है। मेरे भक्तजन इन पाँचों कृत्योंको पाँचों भूतोंमें देखते हैं। सृष्टि भूतलमें, स्थिति जलमें, संहार अग्निमें, तिरोभाव वायुमें और अनुग्रह आकाशमें स्थित है। पृथ्वीसे सबकी सृष्टि होती है, जलसे सबकी वृद्धि होती है, आग सबको जला देती है, वायु सबको एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जाती है और आकाश सबको अनुगृहीत करता है—यह विद्वान् पुरुषोंको जानना चाहिये॥ ५—८॥

पञ्चकृत्यमिदं वोढुं ममास्ति मुखपञ्चकम्।
चतुर्दिक्षु चतुर्वक्त्रं तन्मध्ये पञ्चमं मुखम्॥ ९

युवाभ्यां तपसा लब्धमेतत्कृत्यद्वयं सुतौ।
सृष्टिस्थित्यभिधं भाग्यं मत्तः प्रीतादतिप्रियम्॥ १०

तथा रुद्रमहेशाभ्यामन्यत्कृत्यद्वयं परम्।
अनुग्रहाख्यं केनापि लब्धुं नैव हि शक्यते॥ ११

इन पाँच कृत्योंका भार वहन करनेके लिये ही मेरे पाँच मुख हैं। चार दिशाओंमें चार मुख हैं और इनके बीचमें पाँचवाँ मुख है। हे पुत्रो! तुम दोनोंने तपस्या करके प्रसन्न हुए मुझ परमेश्वरसे भाग्यवश सृष्टि और स्थिति नामक दो कृत्य प्राप्त किये हैं। ये दोनों तुम्हें बहुत प्रिय हैं। इसी प्रकार मेरे विभूतिस्वरूप रुद्र और महेश्वरने दो अन्य उत्तम कृत्य—संहार और तिरोभाव मुझसे प्राप्त किये हैं, परंतु अनुग्रह नामक कृत्य कोई नहीं पा सकता॥ ९—११॥

तत्सर्वं पौर्विकं कर्म युवाभ्यां कालविस्मृतम्।
न तद् रुद्रमहेशाभ्यां विस्मृतं कर्म तादृशम्॥ १२

रूपे वेषे च कृत्ये च वाहने चासने तथा।
आयुधादौ च मत्साम्यमस्माभिस्तत्कृते कृतम्॥ १३

उन सभी पहलेके कर्मोंको तुम दोनोंने समयानुसार भुला दिया। रुद्र और महेश्वर अपने कर्मोंको नहीं भूले हैं, इसलिये मैंने उन्हें अपनी समानता प्रदान की है। वे रूप, वेष, कृत्य, वाहन, आसन और आयुध आदिमें मेरे समान ही हैं॥ १२-१३॥

मद्ध्यानविरहाद्वत्सौ मौढ्यं वामेवमागतम्।
मज्ज्ञाने सति मैवं स्यान्मानं रूपं महेशवत्॥ १४

तस्मान्मज्ज्ञानसिद्ध्यर्थं मन्त्रमोंकारनामकम्।
इतः परं प्रजपतं मामकं मानभञ्जनम्॥ १५

हे पुत्रो! मेरे ध्यानसे शून्य होनेके कारण तुम दोनोंमें मूढ़ता आ गयी है, मेरा ज्ञान रहनेपर महेशके समान अभिमान और स्वरूप नहीं रहता। इसलिये मेरे ज्ञानकी सिद्धिके लिये मेरे ओंकार नामक मन्त्रका तुम दोनों जप करो, यह अभिमानको दूर करनेवाला है॥ १४-१५॥

उपादिशं निजं मन्त्रमोङ्कारमुरुमङ्गलम्।
ओंकारो मन्मुखाज्जज्ञे प्रथमं मत्प्रबोधकः॥ १६

वाचकोऽयमहं वाच्यो मन्त्रोऽयं हि मदात्मकः।
तदनुस्मरणं नित्यं ममानुस्मरणं भवेत्॥ १७

पूर्वकालमें मैंने अपने स्वरूपभूत मन्त्रका उपदेश किया है, जो ओंकारके रूपमें प्रसिद्ध है। वह महामंगलकारी मन्त्र है। सबसे पहले मेरे मुखसे ओंकार (ॐ) प्रकट हुआ, जो मेरे स्वरूपका बोध करानेवाला है। ओंकार वाचक है और मैं वाच्य हूँ। यह मन्त्र मेरा स्वरूप ही है। प्रतिदिन ओंकारका निरन्तर स्मरण करनेसे मेरा ही सदा स्मरण होता रहता है॥ १६-१७॥

अकार उत्तरात् पूर्वमुकारः पश्चिमाननात्।
मकारो दक्षिणमुखाद् बिन्दुः प्राङ्मुखतस्तथा॥ १८

नादो मध्यमुखादेवं पञ्चधासौ विजृम्भितः।
एकीभूतः पुनस्तद्वदोमित्येकाक्षरोऽभवत्॥ १९

नामरूपात्मकं सर्वं वेदभूतकुलद्वयम्।
व्याप्तमेतेन मन्त्रेण शिवशक्त्योश्च बोधकः॥ २०

पहले मेरे उत्तरवर्ती मुखसे अकार, पश्चिम मुखसे उकार, दक्षिण मुखसे मकार, पूर्ववर्ती मुखसे बिन्दु तथा मध्यवर्ती मुखसे नाद उत्पन्न हुआ। इस प्रकार पाँच अवयवोंसे युक्त होकर ओंकारका विस्तार हुआ है। इन सभी अवयवोंसे एकीभूत होकर वह प्रणव ॐ नामक एक अक्षर हो गया। यह नाम-रूपात्मक सारा जगत् तथा वेद-वर्णित स्त्री-पुरुषवर्गरूप दोनों कुल इस प्रणव-मन्त्रसे व्याप्त हैं। यह मन्त्र शिव और शक्ति दोनोंका बोधक है॥ १८—२०॥

अस्मात् पञ्चाक्षरं जज्ञे बोधकं सकलस्य तत्।
अकारादिक्रमेणैव नकारादि यथाक्रमम्॥ २१

अस्मात् पञ्चाक्षराज्जाता मातृकाः पञ्चभेदतः।
तस्माच्छिरश्चतुर्वक्त्रात्त्रिपाद्गायत्रिरेव हि॥ २२

वेदः सर्वस्ततो जज्ञे ततो वै मन्त्रकोटयः।
तत्तन्मन्त्रेण तत्सिद्धिः सर्वसिद्धिरितो भवेत्॥ २३

अनेन मन्त्रकन्देन भोगो मोक्षश्च सिद्ध्यति।
सकला मन्त्रराजानः साक्षाद्भोगप्रदाः शुभाः॥ २४

इसी प्रणवसे पंचाक्षरमन्त्रकी उत्पत्ति हुई है, जो मेरे सकल रूपका बोधक है। वह अकारादि क्रमसे और नकारादि क्रमसे क्रमशः प्रकाशमें आया है। [ॐ **नमः शिवाय**] इस पंचाक्षरमन्त्रसे मातृकावर्ण प्रकट हुए हैं, जो पाँच भेदवाले हैं।* उसीसे शिरोमन्त्र तथा चार मुखोंसे त्रिपदा गायत्रीका प्राकट्य हुआ है। उस गायत्रीसे सम्पूर्ण वेद प्रकट हुए हैं और उन वेदोंसे करोड़ों मन्त्र निकले हैं। उन-उन मन्त्रोंसे भिन्न-भिन्न कार्योंकी सिद्धि होती है, परंतु इस प्रणव एवं पंचाक्षरसे सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि होती है। इस मूलमन्त्रसे भोग और मोक्ष दोनों ही सिद्ध होते हैं। मेरे सकल स्वरूपसे सम्बन्ध रखनेवाले सभी मन्त्रराज साक्षात् भोग प्रदान करनेवाले और शुभकारक हैं॥ २१—२४॥

नन्दिकेश्वर उवाच

पुनस्तयोस्तत्र तिरः पटं गुरुः
प्रकल्प्य मन्त्रं च समादिशत् परम्।
निधाय तच्छीर्ष्णि कराम्बुजं शनै-
रुदङ्मुखं संस्थितयोः सहाम्बिकः॥ २५

नन्दिकेश्वर बोले— तदनन्तर जगदम्बा पार्वतीके साथ बैठे हुए गुरुवर महादेवजीने उत्तराभिमुख बैठे हुए ब्रह्मा और विष्णुको परदा करनेवाले वस्त्रसे आच्छादित करके उनके मस्तकपर अपना करकमल रखकर धीरे-धीरे उच्चारण करके उन्हें उत्तम मन्त्रका उपदेश दिया॥ २५॥

त्रिरुच्चार्याग्रहीन्मन्त्रं यन्त्रतन्त्रोक्तिपूर्वकम्।
शिष्यौ च तौ दक्षिणायामात्मानं च समार्पयत्॥ २६
प्रबद्धहस्तौ किल तौ तदन्तिके
तमूचतुर्देववरं जगद्गुरुम्॥ २७

यन्त्र-तन्त्रमें बतायी हुई विधिके पालन-पूर्वक तीन बार मन्त्रका उच्चारण करके भगवान् शिवने उन दोनों शिष्योंको मन्त्रकी दीक्षा दी। तत्पश्चात् उन शिष्योंने गुरुदक्षिणाके रूपमें अपने-आपको ही समर्पित कर दिया और दोनों हाथ जोड़कर उनके समीप खड़े हो उन देवश्रेष्ठ जगद्गुरुका स्तवन किया॥ २६-२७॥

ब्रह्माच्युतावूचतुः

नमो निष्कलरूपाय नमो निष्कलतेजसे।
नमः सकलनाथाय नमस्ते सकलात्मने॥ २८

नमः प्रणववाच्याय नमः प्रणवलिङ्गिने।
नमः सृष्ट्यादिकर्त्रे च नमः पञ्चमुखाय ते॥ २९

ब्रह्मा और विष्णु बोले— [हे प्रभो!] आप निष्कलरूप हैं; आपको नमस्कार है। आप निष्कल तेजसे प्रकाशित होते हैं; आपको नमस्कार है। आप सबके स्वामी हैं; आपको नमस्कार है। आप सर्वात्माको नमस्कार है अथवा सकल-स्वरूप आप महेश्वरको नमस्कार है। आप प्रणवके वाच्यार्थ हैं; आपको नमस्कार है। आप प्रणवलिंग-वाले हैं; आपको नमस्कार है। सृष्टि, पालन, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह करनेवाले आपको नमस्कार है। आपके पाँच मुख हैं; आपको नमस्कार है। पंचब्रह्मस्वरूप पाँच कृत्यवाले आपको

* अ इ उ ऋ लृ—ये पाँच मूलभूत स्वर हैं तथा व्यंजन भी पाँच-पाँच वर्णोंसे युक्त पाँच वर्गवाले हैं।

पञ्चब्रह्मस्वरूपाय पञ्चकृत्याय ते नमः।
आत्मने ब्रह्मणे तुभ्यमनन्तगुणशक्तये॥ ३०

सकलाकलरूपाय शम्भवे गुरवे नमः।
इति स्तुत्वा गुरुं पद्यैर्ब्रह्मा विष्णुश्च नेमतुः॥ ३१

नमस्कार है। आप सबके आत्मा हैं, ब्रह्म हैं, आपके गुण और आपकी शक्तियाँ अनन्त हैं, आपको नमस्कार है। आपके सकल और निष्कल दो रूप हैं। आप सद्‌गुरु एवं शम्भु हैं, आपको नमस्कार है। इन पद्योंद्वारा अपने गुरु महेश्वरकी स्तुति करके ब्रह्मा और विष्णुने उनके चरणोंमें प्रणाम किया॥ २८—३१॥

ईश्वर उवाच

वत्सकौ सर्वतत्त्वं च कथितं दर्शितं च वाम्।
जपतं प्रणवं मन्त्रं देवीदिष्टं मदात्मकम्॥ ३२

ईश्वर बोले—हे वत्सो! मैंने तुम दोनोंसे सारा तत्त्व कहा और दिखा दिया। तुमदोनों देवीके द्वारा उपदिष्ट प्रणव (ॐ), जो मेरा ही स्वरूप है-का निरन्तर जप करो॥ ३२॥

ज्ञानं च सुस्थिरं भाग्यं सर्वं भवति शाश्वतम्।
आर्द्रायां च चतुर्दश्यां तज्जप्यं त्वक्षयं भवेत्॥ ३३

सूर्यगत्या महार्द्रायामेकं कोटिगुणं भवेत्।
मृगशीर्षान्तिमो भागः पुनर्वस्वादिमस्तथा॥ ३४

आर्द्रासमं सदा ज्ञेयं पूजाहोमादितर्पणे।
दर्शनं तु प्रभाते च प्रातःसङ्गवकालयोः॥ ३५

[इसके जपसे] ज्ञान, स्थिर भाग्य—सब कुछ सदाके लिये प्राप्त हो जाता है। आर्द्रा नक्षत्रसे युक्त चतुर्दशीको प्रणवका जप किया जाय तो वह अक्षय फल देनेवाला होता है। सूर्यकी संक्रान्तिसे युक्त महा-आर्द्रा नक्षत्रमें एक बार किया हुआ प्रणवजप कोटिगुने जपका फल देता है। मृगशिरा नक्षत्रका अन्तिम भाग तथा पुनर्वसुका आदिभाग पूजा, होम और तर्पण आदिके लिये सदा आर्द्राके समान ही होता है—यह जानना चाहिये। मेरा या मेरे लिंगका दर्शन प्रभातकालमें ही प्रातः तथा संगव (मध्याह्नके पूर्व)-कालमें करना चाहिये॥ ३३—३५॥

चतुर्दशी तथा ग्राह्या निशीथव्यापिनी भवेत्।
प्रदोषव्यापिनी चैव परयुक्ता प्रशस्यते॥ ३६

लिङ्गं वेरं च मे तुल्यं यजतां लिङ्गमुत्तमम्।
तस्माल्लिङ्गं परं पूज्यं वेरादपि मुमुक्षुभिः॥ ३७

लिङ्गमोङ्कारमन्त्रेण वेरं पञ्चाक्षरेण तु।
स्वयमेव हि सद्द्रव्यैः प्रतिष्ठाप्यं परैरपि॥ ३८

पूजयेदुपचारैश्च मत्पदं सुलभं भवेत्।
इति शास्य तथा शिष्यौ तत्रैवान्तर्हितः शिवः॥ ३९

मेरे दर्शन-पूजनके लिये चतुर्दशी तिथि निशीथव्यापिनी अथवा प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये; क्योंकि परवर्तिनी (अमावास्या) तिथिसे संयुक्त चतुर्दशीकी ही प्रशंसा की जाती है। पूजा करनेवालोंके लिये मेरी मूर्ति तथा लिंग दोनों समान हैं, फिर भी मूर्तिकी अपेक्षा लिंगका स्थान श्रेष्ठ है। इसलिये मुमुक्षु पुरुषोंको चाहिये कि वे वेर (मूर्ति)-से भी श्रेष्ठ समझकर लिंगका ही पूजन करें। लिंगका ॐकारमन्त्रसे और वेरका पंचाक्षरमन्त्रसे पूजन करना चाहिये। शिवलिंगकी स्वयं ही स्थापना करके अथवा दूसरोंसे भी स्थापना करवाकर उत्तम द्रव्यमय उपचारोंसे पूजा करनी चाहिये; इससे मेरा पद सुलभ हो जाता है। इस प्रकार उन दोनों शिष्योंको उपदेश देकर भगवान् शिव वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ३६—३९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां ओंकारोपदेशवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें ओंकारोपदेशका वर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

अथैकादशोऽध्यायः

शिवलिंगकी स्थापना, उसके लक्षण और पूजनकी विधिका वर्णन तथा शिवपदकी प्राप्ति करानेवाले सत्कर्मोंका विवेचन

ऋषय ऊचुः

कथं लिङ्गं प्रतिष्ठाप्यं कथं वा तस्य लक्षणम्।
कथं वा तत्समभ्यर्च्यं देशे काले च केन हि॥ १

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] शिवलिंगकी स्थापना कैसे करनी चाहिये, उसका लक्षण क्या है तथा उसकी पूजा कैसे करनी चाहिये, किस देश-कालमें करनी चाहिये और किस द्रव्यके द्वारा उसका निर्माण होना चाहिये?॥ १॥

सूत उवाच

युष्मदर्थं प्रवक्ष्यामि बुध्यतामवधानतः।
अनुकूले शुभे काले पुण्ये तीर्थे तटे तथा॥ २

यथेष्टं लिङ्गमारोप्यं यत्र स्यान्नित्यमर्चनम्।
पार्थिवेन तथाप्येन तैजसेन यथारुचि॥ ३

कल्पलक्षणसंयुक्तं लिङ्गं पूजाफलं लभेत्।
सर्वलक्षणसंयुक्तं सद्यः पूजाफलप्रदम्॥ ४

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] मैं आपलोगोंके लिये इस विषयका वर्णन करता हूँ। ध्यान देकर समझिये। अनुकूल एवं शुभ समयमें किसी पवित्र तीर्थमें अथवा नदी आदिके तटपर अपनी रुचिके अनुसार ऐसी जगह शिवलिंगकी स्थापना करनी चाहिये, जहाँ नित्य पूजन हो सके। पार्थिव द्रव्यसे, जलमय द्रव्यसे अथवा धातुमय पदार्थसे अपनी रुचिके अनुसार कल्पोक्त लक्षणोंसे युक्त शिवलिंगका निर्माण करके उसकी पूजा करनेसे उपासकको उस पूजनका पूरा-पूरा फल प्राप्त होता है। सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त शिवलिंग तत्काल पूजाका फल देनेवाला होता है॥ २—४॥

चरे विशिष्यते सूक्ष्मं स्थावरे स्थूलमेव हि।
सलक्षणं सपीठं च स्थापयेच्छिवनिर्मितम्॥ ५

मण्डलं चतुरस्रं वा त्रिकोणमथवा तथा।
खट्वाङ्गवन्मध्यसूक्ष्मं लिङ्गपीठं महाफलम्॥ ६

यदि चलप्रतिष्ठा करनी हो तो इसके लिये छोटा-सा शिवलिंग और यदि अचलप्रतिष्ठा करनी हो तो स्थूल शिवलिंग श्रेष्ठ माना जाता है। उत्तम लक्षणोंसे युक्त पीठसहित शिवलिंगकी स्थापना करनी चाहिये। शिवलिंगका पीठ मण्डलाकार (गोल), चौकोर, त्रिकोण अथवा खट्वांगके आकारका (ऊपर गोल तथा आगे लम्बा) होना चाहिये। ऐसा लिंगपीठ महान् फल देनेवाला होता है॥ ५-६॥

प्रथमं मृच्छिलादिभ्यो लिङ्गं लोहादिभिः कृतम्।
येन लिङ्गं तेन पीठं स्थावरे हि विशिष्यते॥ ७

पहले मिट्टी, प्रस्तर आदिसे अथवा लोहे आदिसे शिवलिंगका निर्माण करना चाहिये। जिस द्रव्यसे शिवलिंगका निर्माण हो, उसीसे उसका पीठ भी बनाना चाहिये—यही स्थावर (अचल प्रतिष्ठावाले) शिवलिंगकी विशेष बात है। चर (चलप्रतिष्ठावाले) शिवलिंगमें भी लिंग और पीठका एक ही उपादान होना चाहिये, किंतु बाणलिंगके लिये यह नियम नहीं है। लिंगकी लम्बाई निर्माणकर्ताके बारह अंगुलके

लिङ्गं पीठं चरे त्वेकं लिङ्गं बाणकृतं विना।
लिङ्गप्रमाणं कर्तॄणां द्वादशाङ्गुलमुत्तमम्॥ ८

न्यूनं चेत्फलमल्पं स्यादधिकं नैव दुष्यते।
कर्तुरेकाङ्गुलन्यूनं चरेऽपि च तथैव हि॥ ९

बराबर होनी चाहिये—ऐसा ही शिवलिंग उत्तम कहा गया है। इससे कम लम्बाई हो तो फलमें कमी आ जाती है, अधिक हो तो कोई दोष नहीं है। चर लिंगमें भी वैसा ही नियम है, उसकी लम्बाई कम-से-कम कर्ताके एक अंगुलके बराबर होनी चाहिये॥ ७—९॥

आदौ विमानं शिल्पेन कार्यं देवगणैर्युतम्।
तत्र गर्भगृहे रम्ये दृढे दर्पणसन्निभे॥ १०

भूषिते नवरत्नैश्च दिग्द्वारे च प्रधानके।
नीलं रक्तं च वैडूर्यं श्यामं मारकतं तथा॥ ११

मुक्ताप्रवालगोमेदवज्राणि नवरत्नकम्।
मध्ये लिङ्गं महद् द्रव्यं निःक्षिपेत्सहवैदिके॥ १२

सम्पूज्य लिङ्गं सद्याद्यैः पञ्चस्थाने यथाक्रमम्।
अग्नौ च हुत्वा बहुधा हविषा सकुलं च माम्॥ १३

अभ्यर्च्य गुरुमाचार्यमर्थैः कामैश्च बान्धवम्।
दद्यादैश्वर्यमर्थिभ्यो जडमप्यजडं तथा॥ १४

पहले शिल्पशास्त्रके अनुसार एक विमान या देवालय बनवाये, जो देवगणोंकी मूर्तियोंसे अलंकृत हो। उसका गर्भगृह बहुत ही सुन्दर, सुदृढ़ और दर्पणके समान स्वच्छ हो। उसे नौ प्रकारके रत्नोंसे विभूषित किया गया हो। उसमें पूर्व और पश्चिम दिशामें दो मुख्य द्वार हों। जहाँ शिवलिंगकी स्थापना करनी हो, उस स्थानके गर्तमें नीलम, लाल रत्न, वैदूर्य, श्याम रत्न, मरकत, मोती, मूँगा, गोमेद और हीरा—इन नौ रत्नोंको तथा अन्य महत्त्वपूर्ण द्रव्योंको वैदिक मन्त्रोंके साथ छोड़े। सद्योजात आदि पाँच वैदिक मन्त्रोंद्वारा शिवलिंगका पाँच स्थानोंमें क्रमशः पूजन करके अग्निमें हविष्यकी अनेक आहुतियाँ दे और परिवारसहित मेरी पूजा करके गुरुस्वरूप आचार्यको धन तथा भाई-बन्धुओंको अभिलषित वस्तुओंसे सन्तुष्ट करे। याचकोंको जड़ (सुवर्ण, गृह एवं भू-सम्पत्ति) तथा चेतन (गौ आदि) वैभव प्रदान करे॥ १०—१४॥

स्थावरं जङ्गमं जीवं सर्वं सन्तोष्य यत्नतः।
सुवर्णपूरिते श्वभ्रे नवरत्नैश्च पूरिते॥ १५

सद्यादि ब्रह्म चोच्चार्य ध्यात्वा देवं परं शुभम्।
उदीर्य च महामन्त्रमोंकारं नादघोषितम्॥ १६

लिङ्गं तत्र प्रतिष्ठाप्य लिङ्गं पीठेन योजयेत्।
लिङ्गं सपीठं निक्षिप्य नित्यलेपेन बन्धयेत्॥ १७

स्थावर-जंगम सभी जीवोंको यत्नपूर्वक सन्तुष्ट करके एक गड्ढेमें सुवर्ण तथा नौ प्रकारके रत्न भरकर सद्योजातादि* वैदिक मन्त्रोंका उच्चारण करके परम कल्याणकारी महादेवजीका ध्यान करे। तत्पश्चात् नादघोषसे युक्त महामन्त्र ओंकारका उच्चारण करके उक्त गड्ढेमें शिवलिंगकी स्थापना करके उसे पीठसे संयुक्त करे। इस प्रकार पीठयुक्त लिंगकी स्थापना करके उसे नित्य लेप (दीर्घकालतक टिके रहनेवाले मसाले)-से जोड़कर स्थिर करे॥ १५—१७॥

---

* ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः॥

ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः॥

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥

ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदा शिवोम्॥

एवं वेरं च संस्थाप्यं तत्रैव परमं शुभम्।
पञ्चाक्षरेण वेरं तु उत्सवार्थं बहिस्तथा॥ १८

इसी प्रकार वहाँ पंचाक्षर मन्त्रसे परम सुन्दर वेर (मूर्ति)-की भी स्थापना करनी चाहिये (सारांश यह कि भूमि-संस्कार आदिकी सारी विधि जैसी लिंगप्रतिष्ठाके लिये कही गयी है, वैसी ही वेर (मूर्ति)-प्रतिष्ठाके लिये भी समझनी चाहिये। अन्तर इतना ही है कि लिंगप्रतिष्ठाके लिये प्रणवमन्त्रके उच्चारणका विधान है, परंतु वेरकी प्रतिष्ठा पंचाक्षरमन्त्रसे करनी चाहिये)। जहाँ लिंगकी प्रतिष्ठा हुई है, वहाँ भी उत्सवके लिये और बाहर सवारी निकालने आदिके निमित्त वेर (मूर्ति)-को रखना आवश्यक है॥ १८॥

वेरं गुरुभ्यो गृह्णीयात्साधुभिः पूजितं तु वा।
एवं लिङ्गे च वेरे च पूजा शिवपदप्रदा॥ १९

पुनश्च द्विविधं प्रोक्तं स्थावरं जङ्गमं तथा।
स्थावरं लिङ्गमित्याहुस्तरुगुल्मादिकं तथा॥ २०

जङ्गमं लिङ्गमित्याहुः कृमिकीटादिकं तथा।
स्थावरस्य च शुश्रूषा जङ्गमस्य च तर्पणम्॥ २१

तत्तत्सुखानुरागेण शिवपूजां विदुर्बुधाः।

वेरको बाहरसे भी लिया जा सकता है। उसे गुरुजनोंसे ग्रहण करे। बाह्य वेर वही लेनेयोग्य है, जो साधुपुरुषोंद्वारा पूजित हो। इस प्रकार लिंगमें और वेरमें भी की हुई महादेवजीकी पूजा शिवपद प्रदान करनेवाली होती है। स्थावर और जंगमके भेदसे लिंग भी दो प्रकारका कहा गया है। वृक्ष, लता आदिको स्थावर लिंग कहते हैं और कृमि-कीट आदिको जंगम लिंग। सींचने आदिके द्वारा स्थावर लिंगकी सेवा करनी चाहिये और जंगम लिंगको आहार एवं जल आदि देकर तृप्त करना उचित है। उन स्थावर-जंगम जीवोंको सुख पहुँचानेमें अनुरक्त होना भगवान् शिवका पूजन है—ऐसा विद्वान् पुरुष मानते हैं। [इस प्रकार चराचर जीवोंको ही भगवान् शंकरके प्रतीक मानकर उनका पूजन करना चाहिये।]॥ १९—२१$^{1}/_{2}$॥

पीठमम्बामयं सर्वं शिवलिङ्गं च चिन्मयम्॥ २२

यथा देवीमुमामङ्के धृत्वा तिष्ठति शङ्करः।
तथा लिङ्गमिदं पीठं धृत्वा तिष्ठति सन्ततम्॥ २३

सभी पीठ पराप्रकृति जगदम्बाका स्वरूप हैं और समस्त शिवलिंग चैतन्यस्वरूप हैं। जैसे भगवान् शंकर देवी पार्वतीको गोदमें बिठाकर विराजते हैं, उसी प्रकार यह शिवलिंग सदा पीठके साथ ही विराजमान होता है॥ २२-२३॥

एवं स्थाप्य महालिङ्गं पूजयेदुपचारकैः।
नित्यपूजा यथाशक्ति ध्वजादिकरणं तथा॥ २४

इति संस्थापयेल्लिङ्गं साक्षाच्छिवपदप्रदम्।
अथवा चरलिङ्गं तु षोडशैरुपचारकैः॥ २५

पूजयेच्च यथान्यायं क्रमाच्छिवपदप्रदम्।
आवाहनं चासनं च अर्घ्यं पाद्यं तथैव च॥ २६

इस तरह महालिंगकी स्थापना करके विविध उपचारोंद्वारा उसका पूजन करे। अपनी शक्तिके अनुसार नित्य पूजा करनी चाहिये तथा देवालयके पास ध्वजारोपण आदि करना चाहिये। इस प्रकार साक्षात् शिवका पद प्रदान करनेवाले लिंगकी स्थापना करे अथवा चर लिंगमें षोडशोपचारोंद्वारा यथोचित रीतिसे क्रमशः पूजन करे; यह पूजन भी शिवपद प्रदान

तदङ्गाचमनं चैव स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम्।
वस्त्रं गन्धं तथा पुष्पं धूपं दीपं निवेदनम्॥ २७

नीराजनं च ताम्बूलं नमस्कारो विसर्जनम्।
अथवार्घ्यादिकं कृत्वा नैवेद्यान्तं यथाविधि॥ २८

अथाभिषेकं नैवेद्यं नमस्कारं च तर्पणम्।
यथाशक्ति सदा कुर्यात्क्रमाच्छिवपदप्रदम्॥ २९

अथवा मानुषे लिङ्गेऽप्यार्षे दैवे स्वयम्भुवि।
स्थापितेऽपूर्वके लिङ्गे सोपचारं यथा तथा॥ ३०

पूजोपकरणे दत्ते यत्किञ्चित्फलमश्नुते।
प्रदक्षिणानमस्कारैः क्रमाच्छिवपदप्रदम्॥ ३१

लिङ्गदर्शनमात्रं वा नियमेन शिवप्रदम्।
मृत्पिष्टगोशकृत्पुष्पैः करवीरेण वा फलैः॥ ३२

गुडेन नवनीतेन भस्मनान्नैर्यथारुचि।
लिङ्गं यत्नेन कृत्वान्ते यजेत्तदनुसारतः॥ ३३

अङ्गुष्ठादावपि तथा पूजामिच्छन्ति केचन।
लिङ्गकर्मणि सर्वत्र निषेधोऽस्ति न कर्हिचित्॥ ३४

सर्वत्र फलदाता हि प्रयासानुगुणं शिवः।
अथवा लिङ्गदानं वा लिङ्गमौल्यमथापि वा॥ ३५

श्रद्धया शिवभक्ताय दत्तं शिवपदप्रदम्।
अथवा प्रणवं नित्यं जपेद्दशसहस्रकम्॥ ३६

सन्ध्ययोश्च सहस्रं वा ज्ञेयं शिवपदप्रदम्।
जपकाले मकारान्तं मनःशुद्धिकरं भवेत्॥ ३७

करनेवाला है। आवाहन, आसन, अर्घ्य, पाद्य, पाद्यांग आचमन, अभ्यंगपूर्वक स्नान, वस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल-समर्पण, नीराजन, नमस्कार और विसर्जन—ये सोलह उपचार हैं। अथवा अर्घ्यसे लेकर नैवेद्यतक विधिवत् पूजन करे। अभिषेक, नैवेद्य, नमस्कार और तर्पण—ये सब यथाशक्ति नित्य करे। इस तरह किया हुआ शिवका पूजन शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला होता है॥ २४—२९॥

अथवा किसी मनुष्यके द्वारा स्थापित शिवलिंगमें, ऋषियोंद्वारा स्थापित शिवलिंगमें, देवताओंद्वारा स्थापित शिवलिंगमें, अपने-आप प्रकट हुए स्वयम्भूलिंगमें तथा अपने द्वारा नूतन स्थापित हुए शिवलिंगमें भी उपचार-समर्पणपूर्वक जैसे-तैसे पूजन करनेसे या पूजनकी सामग्री देनेसे भी मनुष्य ऊपर जो कुछ कहा गया है, वह सारा फल प्राप्त कर लेता है। क्रमशः परिक्रमा और नमस्कार करनेसे भी शिवलिंग शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला होता है। यदि नियमपूर्वक शिवलिंगका दर्शनमात्र कर लिया जाय तो वह भी कल्याणप्रद होता है। मिट्टी, आटा, गायके गोबर, फूल, कनेरपुष्प, फल, गुड़, मक्खन, भस्म अथवा अन्नसे भी अपनी रुचिके अनुसार शिवलिंग बनाकर तदनुसार उसका पूजन करे॥ ३०—३३॥

कुछ लोग हाथके अँगूठे आदिपर भी पूजा करना चाहते हैं। लिंगका निर्माण कहीं भी करनेमें किसी प्रकारका निषेध नहीं है। भगवान् शिव सर्वत्र ही भक्तके प्रयत्नके अनुसार फल प्रदान कर देते हैं। अथवा श्रद्धापूर्वक शिवभक्तको शिवलिंगका दान या लिंगके मूल्यका दान करनेसे भी शिवलोककी प्राप्ति होती है॥ ३४-३५½॥

अथवा प्रतिदिन दस हजार प्रणवमन्त्रका जप करे अथवा दोनों सन्ध्याओंके समय एक-एक हजार प्रणवका जप किया करे। यह क्रम भी शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला है—ऐसा जानना चाहिये। जपकालमें मकारान्त प्रणवका उच्चारण मनकी शुद्धि करनेवाला होता है। समाधिमें मानसिक जपका विधान है तथा अन्य सब

समाधौ मानसं प्रोक्तमुपांशु सार्वकालिकम्।
समानप्रणवं चेमं बिन्दुनादयुतं विदुः॥ ३८

अथ पञ्चाक्षरं नित्यं जपेदयुतमादरात्।
सन्ध्ययोश्च सहस्रं वा ज्ञेयं शिवपदप्रदम्॥ ३९

समय उपांशु* जप ही करना चाहिये। नाद और बिन्दुसे युक्त ओंकारके उच्चारणको विद्वान् पुरुष समानप्रणव कहते हैं। यदि प्रतिदिन आदरपूर्वक दस हजार पंचाक्षर मन्त्रका जप किया जाय अथवा दोनों सन्ध्याओंके समय एक-एक हजारका ही जप किया जाय तो उसे शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला समझना चाहिये॥ ३६—३९॥

प्रणवेनादिसंयुक्तं ब्राह्मणानां विशिष्यते।
दीक्षायुक्तं गुरोर्ग्राह्यं मन्त्रं ह्यथ फलाप्तये॥ ४०

कुम्भस्नानं मन्त्रदीक्षां मातृकान्यासमेव च।
ब्राह्मणः सत्यपूतात्मा गुरुर्ज्ञानी विशिष्यते॥ ४१

ब्राह्मणोंके लिये आदिमें प्रणवसे युक्त पंचाक्षरमन्त्र अच्छा बताया गया है। फलकी प्राप्तिके लिये दीक्षापूर्वक गुरुसे मन्त्र ग्रहण करना चाहिये। कलशसे किया हुआ स्नान, मन्त्रकी दीक्षा, मातृकाओंका न्यास, सत्यसे पवित्र अन्तःकरणवाला ब्राह्मण तथा ज्ञानी गुरु—इन सबको उत्तम माना गया है॥ ४०-४१॥

द्विजानां च नमः पूर्वमन्येषां च नमोऽन्तकम्।
स्त्रीणां च केचिदिच्छन्ति नमोऽन्तं च यथाविधि॥ ४२

विप्रस्त्रीणां नमः पूर्वमिदमिच्छन्ति केचन।
पञ्चकोटिजपं कृत्वा सदाशिवसमो भवेत्॥ ४३

एकद्वित्रिचतुःकोट्या ब्रह्मादीनां पदं व्रजेत्।
जपेदक्षरलक्षं वा अक्षराणां पृथक्पृथक्॥ ४४

अथवाक्षरलक्षं वा ज्ञेयं शिवपदप्रदम्।
सहस्रं तु सहस्राणां सहस्रेण दिनेन हि॥ ४५

जपेन्मन्त्रादिष्टसिद्धिर्नित्यं ब्राह्मणभोजनात्।

द्विजोंके लिये '**नमः शिवाय**' के उच्चारणका विधान है। द्विजेतरोंके लिये अन्तमें नमः-पदके प्रयोगकी विधि है अर्थात् वे '**शिवाय नमः**' इस मन्त्रका उच्चारण करें। स्त्रियोंके लिये भी कहीं-कहीं विधिपूर्वक अन्तमें नमः जोड़कर उच्चारणका ही विधान है अर्थात् कोई-कोई ऋषि ब्राह्मणकी स्त्रियोंके लिये नमःपूर्वक शिवायके जपकी अनुमति देते हैं अर्थात् वे '**नमः शिवाय**' का जप करें। पंचाक्षर-मन्त्रका पाँच करोड़ जप करके मनुष्य भगवान् सदाशिवके समान हो जाता है। एक, दो, तीन अथवा चार करोड़का जप करनेसे क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा महेश्वरका पद प्राप्त होता है अथवा मन्त्रमें जितने अक्षर हैं, उनका पृथक्-पृथक् एक-एक लाख जप करे अथवा समस्त अक्षरोंका एक साथ ही जितने अक्षर हों, उतने लाख जप करे। इस तरहके जपको शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला समझना चाहिये। यदि एक हजार दिनोंमें प्रतिदिन एक सहस्र जपके क्रमसे पंचाक्षर-मन्त्रका दस लाख जप पूरा कर लिया जाय और प्रतिदिन ब्राह्मण-भोजन कराया जाय तो उस मन्त्रसे अभीष्ट कार्यकी सिद्धि होती है॥ ४२—४५½॥

* मन्त्राक्षरोंका इतने धीमे स्वरमें उच्चारण करे कि उसे दूसरा कोई सुन न सके, ऐसे जपको उपांशु कहते हैं।

अष्टोत्तरसहस्रं वै गायत्रीं प्रातरेव हि॥ ४६
ब्राह्मणस्तु जपेन्नित्यं क्रमाच्छिवपदप्रदाम्।
वेदमन्त्रांश्च सूक्तानि जपेन्नियममास्थितः॥ ४७

ब्राह्मणको चाहिये कि वह प्रतिदिन प्रातःकाल एक हजार आठ बार गायत्रीका जप करे। ऐसा होनेपर गायत्री क्रमशः शिवका पद प्रदान करनेवाली होती है। वेदमन्त्रों और वैदिक सूक्तोंका भी नियमपूर्वक जप करना चाहिये॥ ४६-४७॥

एकं दशार्णमन्त्रं च शतोनं च तदूर्ध्वकम्।
अयुतं च सहस्रं च शतमेकं विना भवेत्॥ ४८

एकाक्षर मन्त्र दस हजार, दशार्ण मन्त्र एक हजार, सौसे कम अक्षरवाले मन्त्र एक सौ और उससे अधिक अक्षरवाले मन्त्र यथाशक्ति एकसे अधिक बार जपने चाहिये॥ ४८॥

वेदपारायणं चैव ज्ञेयं शिवपदप्रदम्।
अन्यान्बहुतरान्मन्त्राञ्जपेदक्षरलक्षतः ॥ ४९

वेदोंके पारायणको भी शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला जानना चाहिये। अन्यान्य जो बहुत-से मन्त्र हैं, उनका भी जितने अक्षर हों, उतने लाख जप करना चाहिये॥ ४९॥

एकाक्षरांस्तथा मन्त्राञ्जपेदक्षरकोटितः।
ततः परं जपेच्चैव सहस्रं भक्तिपूर्वकम्॥ ५०

एकाक्षर मन्त्रोंको उसी प्रकार करोड़की संख्यामें जपना चाहिये। अधिक अक्षरवाले मन्त्र हजारकी संख्यामें भक्तिपूर्वक जपने चाहिये॥ ५०॥

एवं कुर्याद्यथाशक्ति क्रमाच्छिवपदं लभेत्।
नित्यं रुचिकरं त्वेकं मन्त्रमामरणान्तिकम्॥ ५१
सहस्रमोमिति जपेत् सर्वाभीष्टं शिवाज्ञया।

इस प्रकार जो यथाशक्ति जप करता है, वह क्रमशः शिवपद प्राप्त कर लेता है। अपनी रुचिके अनुसार किसी एक मन्त्रको अपनाकर मृत्युपर्यन्त प्रतिदिन उसका जप करना चाहिये अथवा 'ओम् (ॐ)' इस मन्त्रका प्रतिदिन एक सहस्र जप करना चाहिये। ऐसा करनेपर भगवान् शिवकी आज्ञासे सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि होती है॥ ५१½॥

पुष्पारामादिकं वापि तथा सम्मार्जनादिकम्॥ ५२
शिवाय शिवकार्यार्थे कृत्वा शिवपदं लभेत्।
शिवक्षेत्रे तथा वासं नित्यं कुर्याच्च भक्तितः॥ ५३
जडानामजडानां च सर्वेषां भुक्तिमुक्तिदम्।
तस्माद्वासं शिवक्षेत्रे कुर्यादामरणं बुधः॥ ५४

जो मनुष्य भगवान् शिवके लिये फुलवाड़ी या बगीचे आदि लगाता है तथा शिवके सेवाकार्यके लिये मन्दिरमें झाड़ने-बुहारने आदिकी व्यवस्था करता है, वह इस पुण्यकर्मको करके शिवपद प्राप्त कर लेता है। भगवान् शिवके जो [काशी आदि] क्षेत्र हैं, उनमें भक्तिपूर्वक नित्य निवास करे। वे जड, चेतन सभीको भोग और मोक्ष देनेवाले होते हैं। अतः विद्वान् पुरुषको भगवान् शिवके क्षेत्रमें मृत्युपर्यन्त निवास करना चाहिये॥ ५२—५४॥

लिङ्गाद्धस्तशतं पुण्यं क्षेत्रे मानुषके विदुः।
सहस्रारत्निमात्रं तु पुण्यं क्षेत्रे तथार्षके॥ ५५

मनुष्योंद्वारा स्थापित शिवलिंगसे चारों ओर सौ हाथतक पुण्यक्षेत्र कहा गया है तथा ऋषियोंद्वारा स्थापित शिवलिंगके चारों ओर एक हजार हाथतक पुण्यक्षेत्र होता

देवलिङ्गे तथा ज्ञेयं सहस्रारत्निमानतः।
धनुष्प्रमाणसाहस्रं पुण्यं क्षेत्रे स्वयम्भुवि॥ ५६

है। इसी प्रकार देवताओंद्वारा स्थापित शिवलिंगके चारों ओर भी एक हजार हाथतक पुण्यक्षेत्र समझना चाहिये। स्वयम्भू लिंगके चारों ओर तो एक हजार धनुष (चार हजार हाथ)-तक पुण्यक्षेत्र होता है॥ ५५-५६॥

पुण्यक्षेत्रे स्थिता वापी कूपाद्यं पुष्कराणि च।
शिवगङ्गेति विज्ञेयं शिवस्य वचनं यथा॥ ५७

तत्र स्नात्वा तथा दत्त्वा जपित्वा हि शिवं व्रजेत्।
शिवक्षेत्रं समाश्रित्य वसेदामरणं तथा॥ ५८

द्वाहं दशाहं मास्यं वा सपिण्डीकरणं तु वा।
आब्दिकं वा शिवक्षेत्रे क्षेत्रे पिण्डमथापि वा॥ ५९

सर्वपापविनिर्मुक्तः सद्यः शिवपदं लभेत्।
अथवा सप्तरात्रं वा वसेद्वा पञ्चरात्रकम्॥ ६०

त्रिरात्रमेकरात्रं वा क्रमाच्छिवपदं लभेत्।

पुण्यक्षेत्रमें स्थित बावड़ी, कुआँ और पोखरे आदिको शिवगंगा समझना चाहिये—भगवान् शिवका ऐसा ही वचन है। वहाँ स्नान, दान और जप करके मनुष्य भगवान् शिवको प्राप्त कर लेता है। अतः मृत्युपर्यन्त शिवके क्षेत्रका आश्रय लेकर रहना चाहिये। जो शिवके क्षेत्रमें अपने किसी मृत-सम्बन्धीका दाह, दशाह, मासिक श्राद्ध, सपिण्डीकरण अथवा वार्षिक श्राद्ध करता है अथवा कभी भी शिवके क्षेत्रमें अपने पितरोंको पिण्ड देता है, वह तत्काल सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और अन्तमें शिवपद पाता है? अथवा शिवके क्षेत्रमें सात, पाँच, तीन या एक ही रात निवास कर ले। ऐसा करनेसे भी क्रमशः शिवपदकी प्राप्ति होती है॥ ५७—६०१/२॥

स्ववर्णानुगुणं लोके स्वाचारात्प्राप्नुते नरः॥ ६१

वर्णोद्धारेण भक्त्या च तत्फलातिशयं नरः।
सर्वं कृतं कामनया सद्यः फलमवाप्नुयात्॥ ६२

सर्वं कृतमकामेन साक्षाच्छिवपदप्रदम्।

लोकमें अपने-अपने वर्णके अनुरूप सदाचारका पालन करनेसे भी मनुष्य शिवपदको प्राप्त कर लेता है। वर्णानुकूल आचरणसे तथा भक्तिभावसे वह अपने सत्कर्मका अतिशय फल पाता है, कामनापूर्वक किये हुए अपने कर्मके अभीष्ट फलको शीघ्र ही पा लेता है। निष्कामभावसे किया हुआ सारा कर्म साक्षात् शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला होता है॥ ६१—६२१/२॥

प्रातर्मध्याह्नसायाह्नमहस्त्रिष्वेकतः क्रमात्॥ ६३

प्रातर्विधिकरं ज्ञेयं मध्याह्नं कामिकं तथा।
सायाह्नं शान्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि तथैव हि॥ ६४

कालो निशीथो वै प्रोक्तो मध्ययामद्वयं निशि।
शिवपूजा विशेषेण तत्कालेऽभीष्टसिद्धिदा॥ ६५

एवं ज्ञात्वा नरः कुर्वन्यथोक्तफलभाग्भवेत्।
कलौ युगे विशेषेण फलसिद्धिस्तु कर्मणा॥ ६६

दिनके तीन विभाग होते हैं—प्रातः, मध्याह्न और सायाह्न। इन तीनोंमें क्रमशः एक-एक प्रकारके कर्मका सम्पादन किया जाता है। प्रातःकालको शास्त्रविहित नित्यकर्मके अनुष्ठानका समय जानना चाहिये। मध्याह्नकाल सकाम-कर्मके लिये उपयोगी है तथा सायंकाल शान्ति-कर्मके लिये उपयुक्त है—ऐसा जानना चाहिये। इसी प्रकार रात्रिमें भी समयका विभाजन किया गया है। रातके चार प्रहरोंमेंसे जो बीचके दो प्रहर हैं, उन्हें निशीथकाल कहा गया है। विशेषतः उस कालमें की हुई भगवान् शिवकी पूजा अभीष्ट फलको देनेवाली होती है—ऐसा जानकर कर्म करनेवाला मनुष्य यथोक्त फलका भागी होता है। विशेषतः कलियुगमें कर्मसे ही

उक्तेन केनचिद्वापि ह्यधिकारविभेदतः।
सद्वृत्तिः पापभीरुश्चेत्तत्तत्फलमवाप्नुयात्॥ ६७

फलकी सिद्धि होती है। अपने-अपने अधिकारके अनुसार ऊपर कहे गये किसी भी कर्मके द्वारा शिवाराधन करनेवाला पुरुष यदि सदाचारी है और पापसे डरता है तो वह उन-उन कर्मोंका पूरा-पूरा फल अवश्य प्राप्त कर लेता है॥ ६३—६७॥

ऋषय ऊचुः

अथ क्षेत्राणि पुण्यानि समासात्कथयस्व नः।
सर्वाः स्त्रियश्च पुरुषा यान्याश्रित्य पदं लभेत्॥ ६८
सूत योगिवरश्रेष्ठ शिवक्षेत्रागमांस्तथा।

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! अब आप हमें पुण्यक्षेत्र बताइये, जिनका आश्रय लेकर सभी स्त्री-पुरुष शिवपद प्राप्त कर लें। हे सूतजी! हे योगिवरोंमें श्रेष्ठ! शिवक्षेत्रों तथा शैवागमों (शिवविषयक शास्त्रों)-का भी वर्णन कीजिये॥ ६८१/२॥

सूत उवाच

शृणुत श्रद्धया सर्वक्षेत्राणि च तदागमान्॥ ६९

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] सभी क्षेत्रों और आगमोंका वर्णन श्रद्धापूर्वक सुनिये॥ ६९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां शिवलिङ्गपूजादिवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें शिवलिंगकी पूजादिका वर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

मोक्षदायक पुण्यक्षेत्रोंका वर्णन, कालविशेषमें विभिन्न नदियोंके जलमें स्नानके उत्तम फलका निर्देश तथा तीर्थोंमें पापसे बचे रहनेकी चेतावनी

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयः प्राज्ञाः शिवक्षेत्रं विमुक्तिदम्।
तदागमांस्ततो वक्ष्ये लोकरक्षार्थमेव हि॥ १

पञ्चाशत्कोटिविस्तीर्णा सशैलवनकानना।
शिवाज्ञया हि पृथिवी लोकं धृत्वा च तिष्ठति॥ २

तत्र तत्र शिवक्षेत्रं तत्र तत्र निवासिनाम्।
मोक्षार्थं कृपया देवः क्षेत्रं कल्पितवान्प्रभुः॥ ३

सूतजी बोले—हे बुद्धिमान् महर्षियो! मोक्षदायक शिवक्षेत्रोंका वर्णन सुनिये। तत्पश्चात् मैं लोकरक्षाके लिये शिवसम्बन्धी आगमोंका वर्णन करूँगा। पर्वत, वन और काननोंसहित इस पृथ्वीका विस्तार पचास करोड़ योजन है। भगवान् शिवकी आज्ञासे पृथ्वी सम्पूर्ण जगत्को धारण करके स्थित है। भगवान् शिवने भूतलपर विभिन्न स्थानोंमें वहाँके निवासियोंको कृपापूर्वक मोक्ष देनेके लिये शिवक्षेत्रका निर्माण किया है॥ १—३॥

परिग्रहाद् ऋषीणां च देवानां च परिग्रहात्।
स्वयम्भूतान्यथान्यानि लोकरक्षार्थमेव हि॥ ४

तीर्थे क्षेत्रे सदा कार्यं स्नानदानजपादिकम्।
अन्यथा रोगदारिद्र्यमूकत्वाद्याप्नुयान्नरः॥ ५

अथास्मिन्भारते वर्षे प्राप्नोति मरणं नरः।
स्वयम्भूस्थानवासेन पुनर्मानुष्यमाप्नुयात्॥ ६

कुछ क्षेत्र ऐसे हैं, जिन्हें देवताओं तथा ऋषियोंने अपना वासस्थान बनाकर अनुगृहीत किया है। इसीलिये उनमें तीर्थत्व प्रकट हो गया है तथा अन्य बहुत-से तीर्थक्षेत्र ऐसे हैं, जो लोकोंकी रक्षाके लिये स्वयं प्रादुर्भूत हुए हैं। तीर्थ और क्षेत्रमें जानेपर मनुष्यको सदा स्नान, दान और जप आदि करना चाहिये; अन्यथा वह रोग, दरिद्रता तथा मूकता आदि दोषोंका भागी होता है। जो मनुष्य इस भारतवर्षके भीतर

क्षेत्रे पापस्य करणं दृढं भवति भूसुराः।
पुण्यक्षेत्रे निवासे हि पापमण्वपि नाचरेत्॥ ७

येन केनाप्युपायेन पुण्यक्षेत्रे वसेन्नरः।
सिन्धोः शतनदीतीरे सन्ति क्षेत्राण्यनेकशः॥ ८

सरस्वती नदी पुण्या प्रोक्ता षष्टिमुखा तथा।
तत्तत्तीरे वसेत्प्राज्ञः क्रमाद् ब्रह्मपदं लभेत्॥ ९

हिमवद्गिरिजा गङ्गा पुण्या शतमुखा नदी।
तत्तीरे चैव काश्यादिपुण्यक्षेत्राण्यनेकशः॥ १०

तत्र तीरं प्रशस्तं हि मृगे मृगबृहस्पतौ।
शोणभद्रो दशमुखः पुण्योऽभीष्टफलप्रदः॥ ११

तत्र स्नानोपवासेन पदं वैनायकं लभेत्।
चतुर्विंशमुखा पुण्या नर्मदा च महानदी॥ १२

तस्यां स्नानेन वासेन पदं वैष्णवमाप्नुयात्।
तमसा द्वादशमुखा रेवा दशमुखा नदी॥ १३

गोदावरी महापुण्या ब्रह्मगोवधनाशिनी।
एकविंशमुखा प्रोक्ता रुद्रलोकप्रदायिनी॥ १४

कृष्णा वेणी पुण्यनदी सर्वपापक्षयावहा।
साष्टादशमुखा प्रोक्ता विष्णुलोकप्रदायिनी॥ १५

तुङ्गभद्रा दशमुखा ब्रह्मलोकप्रदायिनी।
सुवर्णमुखरी पुण्या प्रोक्ता नवमुखा तथा॥ १६

तत्रैव सुप्रजायन्ते ब्रह्मलोकच्युतास्तथा।
सरस्वती च पम्पा च कन्या श्वेतनदी शुभा॥ १७

एतासां तीरवासेन इन्द्रलोकमवाप्नुयात्।
सह्याद्रिजा महापुण्या कावेरीति महानदी॥ १८

स्वयम्भू तीर्थोंमें वास करके मरता है, उसे पुनः मनुष्ययोनि ही प्राप्त होती है। हे ब्राह्मणो! पुण्यक्षेत्रमें पापकर्म किया जाय तो वह और भी दृढ़ हो जाता है। अतः पुण्यक्षेत्रमें निवास करते समय थोड़ा-सा भी पाप न करे। जिस किसी भी उपायसे मनुष्यको पुण्यक्षेत्रमें वास करना चाहिये॥ ४—७१/२॥

सिन्धु और गंगा नदीके तटपर बहुत-से पुण्यक्षेत्र हैं। सरस्वती नदी परम पवित्र और साठ मुखवाली कही गयी है अर्थात् उसकी साठ धाराएँ हैं। जो विद्वान् पुरुष सरस्वतीकी उन-उन धाराओंके तटपर निवास करता है, वह क्रमशः ब्रह्मपदको पा लेता है। हिमालय पर्वतसे निकली हुई पुण्यसलिला गंगा सौ मुखवाली नदी है, उसके तटपर काशी आदि अनेक पुण्यक्षेत्र हैं। वहाँ मकरराशिके सूर्य होनेपर गंगाकी तटभूमि पहलेसे भी अधिक प्रशस्त एवं पुण्यदायक हो जाती है। शोणभद्र नदकी दस धाराएँ हैं, वह बृहस्पतिके मकरराशिमें आनेपर अत्यन्त पवित्र तथा अभीष्ट फल देनेवाला हो जाता है। उस समय वहाँ स्नान और उपवास करनेसे विनायकपदकी प्राप्ति होती है। पुण्यसलिला महानदी नर्मदाके चौबीस मुख (स्रोत) हैं। उसमें स्नान तथा उसके तटपर निवास करनेसे मनुष्यको वैष्णवपदकी प्राप्ति होती है। तमसा नदीके बारह तथा रेवाके दस मुख हैं। परम पुण्यमयी गोदावरीके इक्कीस मुख बताये गये हैं। वह ब्रह्महत्या तथा गोवधके पापका भी नाश करनेवाली एवं रुद्रलोक देनेवाली है। कृष्णवेणी नदीका जल बड़ा पवित्र है। वह नदी समस्त पापोंका नाश करनेवाली है। उसके अठारह मुख बताये गये हैं तथा वह विष्णुलोक प्रदान करनेवाली है। तुंगभद्राके दस मुख हैं, वह ब्रह्मलोक देनेवाली है। पुण्यसलिला सुवर्णमुखरीके नौ मुख कहे गये हैं। ब्रह्मलोकसे लौटे हुए जीव उसीके तटपर जन्म लेते हैं। सरस्वती, पम्पा, कन्याकुमारी तथा शुभकारक श्वेत नदी—ये सभी पुण्यक्षेत्र हैं। इनके तटपर निवास करनेसे इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। सह्य पर्वतसे निकली हुई महानदी कावेरी परम पुण्यमयी है। उसके सत्ताईस मुख बताये गये हैं। वह

सप्तविंशमुखा प्रोक्ता सर्वाभीष्टप्रदायिनी।
तत्तीराः स्वर्गदाश्चैव ब्रह्मविष्णुपदप्रदाः॥ १९

शिवलोकप्रदाः शैवास्तथाभीष्टफलप्रदाः।
नैमिषे बदरे स्नायान्मेषगे च गुरौ रवौ॥ २०

ब्रह्मलोकप्रदं विद्यात्ततः पूजादिकं तथा।
सिन्धुनद्यां तथा स्नानं सिंहे कर्कटगे रवौ॥ २१

केदारोदकपानं च स्नानं च ज्ञानदं विदुः।
गोदावर्यां सिंहमासे स्नायात्सिंहबृहस्पतौ॥ २२

शिवलोकप्रदमिति शिवेनोक्तं तथा पुरा।
यमुनाशोणयोः स्नायाद् गुरौ कन्यागते रवौ॥ २३

धर्मलोके दन्तिलोके महाभोगप्रदं विदुः।
कावेर्याञ्च तथा स्नायात्तुलागे तु रवौ गुरौ॥ २४

विष्णोर्वचनमाहात्म्यात्सर्वाभीष्टप्रदं विदुः।
वृश्चिके मासि सम्प्राप्ते तथार्के गुरुवृश्चिके॥ २५

नर्मदायां नदीस्नानाद्विष्णुलोकमवाप्नुयात्।
सुवर्णमुखरीस्नानं चापगे च गुरौ रवौ॥ २६

शिवलोकप्रदमिति ब्रह्मणो वचनं यथा।
मृगमासि तथा स्नायाज्जाह्नव्यां मृगगे गुरौ॥ २७

शिवलोकप्रदमिति ब्रह्मणो वचनं यथा।
ब्रह्मविष्णवोः पदे भुक्त्वा तदन्ते ज्ञानमाप्नुयात्॥ २८

सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाली है। उसके तट स्वर्गलोककी प्राप्ति करानेवाले तथा ब्रह्मा और विष्णुका पद देनेवाले हैं। कावेरीके जो तट शैवक्षेत्रके अन्तर्गत हैं, वे अभीष्ट फल देनेके साथ ही शिवलोक प्रदान करनेवाले भी हैं॥ ८—१९½॥

नैमिषारण्य तथा बदरिकाश्रममें सूर्य और बृहस्पतिके मेषराशिमें आनेपर यदि स्नान करे तो उस समय वहाँ किये हुए स्नान-पूजन आदिको ब्रह्मलोककी प्राप्ति करानेवाला जानना चाहिये। सिंह और कर्कराशिमें सूर्यकी संक्रान्ति होनेपर सिन्धुनदीमें किया हुआ स्नान तथा केदारतीर्थके जलका पान एवं स्नान ज्ञानदायक माना गया है॥ २०-२१½॥

जब बृहस्पति सिंहराशिमें स्थित हों, उस समय सिंहकी संक्रान्तिसे युक्त भाद्रपदमासमें यदि गोदावरीके जलमें स्नान किया जाय, तो वह शिवलोककी प्राप्ति करानेवाला होता है—ऐसा पूर्वकालमें स्वयं भगवान् शिवने कहा था। जब सूर्य और बृहस्पति कन्याराशिमें स्थित हों, तब यमुना और शोणभद्रमें स्नान करे। वह स्नान धर्मराज तथा गणेशजीके लोकमें महान् भोग प्रदान करानेवाला होता है—यह महर्षियोंकी मान्यता है। जब सूर्य और बृहस्पति तुलाराशिमें स्थित हों, उस समय कावेरी नदीमें स्नान करे। वह स्नान भगवान् विष्णुके वचनकी महिमासे सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला माना गया है। जब सूर्य और बृहस्पति वृश्चिक राशिपर आ जायँ, तब मार्गशीर्षके महीनेमें नर्मदामें स्नान करनेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। सूर्य और बृहस्पतिके धनुराशिमें स्थित होनेपर सुवर्णमुखरी नदीमें किया हुआ स्नान शिवलोक प्रदान करानेवाला होता है, यह ब्रह्माजीका वचन है। जब सूर्य और बृहस्पति मकरराशिमें स्थित हों, उस समय माघमासमें गंगाजीके जलमें स्नान करना चाहिये। ब्रह्माजीका कथन है कि वह स्नान शिवलोककी प्राप्ति करानेवाला होता है। शिवलोकके पश्चात् ब्रह्मा और विष्णुके स्थानोंमें सुख भोगकर अन्तमें मनुष्यको ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है॥ २२—२८॥

गङ्गायां माघमासे तु तथा कुम्भगते रवौ।
श्राद्धं वा पिण्डदानं वा तिलोदकमथापि वा॥ २९

वंशद्वयपितॄणां च कुलकोट्युद्धरं विदुः।
कृष्णावेण्यां प्रशंसन्ति मीनगे च गुरौ रवौ॥ ३०

तत्तत्तीर्थे च तन्मासि स्नानमिन्द्रपदप्रदम्।
गङ्गां वा सह्यजां वापि समाश्रित्य वसेद् बुधः॥ ३१

तत्कालकृतपापस्य क्षयो भवति निश्चितम्।
रुद्रलोकप्रदान्येव सन्ति क्षेत्राण्यनेकशः॥ ३२

ताम्रपर्णी वेगवती ब्रह्मलोकफलप्रदे।
तयोस्तीरे हि सन्त्येव क्षेत्राणि स्वर्गदानि च॥ ३३

सन्ति क्षेत्राणि तन्मध्ये पुण्यदानि च भूरिशः।
तत्र तत्र वसन्प्राज्ञस्तादृशं च फलं लभेत्॥ ३४

सदाचारेण सद्वृत्त्या सदा भावनयापि च।
वसेद् दयालुः प्राज्ञो वै नान्यथा तत्फलं लभेत्॥ ३५

पुण्यक्षेत्रे कृतं पुण्यं बहुधा ऋद्धिमृच्छति।
पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं महदण्वपि जायते॥ ३६

तत्कालं जीवनार्थश्चेत्पुण्येन क्षयमेष्यति।
पुण्यमैश्वर्यदं प्राहुः कायिकं वाचिकं तथा॥ ३७

मानसं च तथा पापं तादृशं नाशयेद् द्विजाः।
मानसं वज्रलेपं तु कल्पकल्पानुगं तथा॥ ३८

ध्यानादेव हि तन्नश्येन्नान्यथा नाशमृच्छति।
वाचिकं जपजालेन कायिकं कायशोषणात्॥ ३९

दानाद्धनकृतं नश्येन्नान्यथा कल्पकोटिभिः।
क्वचित्पापेन पुण्यं च वृद्धिपूर्वेण नश्यति॥ ४०

माघमासमें तथा सूर्यके कुम्भराशिमें स्थित होनेपर फाल्गुनमासमें गंगाजीके तटपर किया हुआ श्राद्ध, पिण्डदान अथवा तिलोदकदान पिता और नाना दोनों कुलोंके पितरोंकी अनेकों पीढ़ियोंका उद्धार करनेवाला माना गया है। सूर्य और बृहस्पति जब मीनराशिमें स्थित हों, तब कृष्णवेणी नदीमें किये गये स्नानकी ऋषियोंने प्रशंसा की है। उन-उन महीनोंमें पूर्वोक्त तीर्थोंमें किया हुआ स्नान इन्द्रपदकी प्राप्ति करानेवाला होता है। विद्वान् पुरुष गंगा अथवा कावेरी नदीका आश्रय लेकर तीर्थवास करे। ऐसा करनेसे उस समयमें किये हुए पापका निश्चय ही नाश हो जाता है॥ २९—३१$^{1}/_{2}$॥

रुद्रलोक प्रदान करनेवाले बहुत-से क्षेत्र हैं। ताम्रपर्णी और वेगवती—ये दोनों नदियाँ ब्रह्मलोककी प्राप्तिरूप फल देनेवाली हैं। उन दोनोंके तटपर अनेक स्वर्गदायक क्षेत्र हैं। उन दोनोंके मध्यमें बहुत-से पुण्यप्रद क्षेत्र हैं। वहाँ निवास करनेवाला विद्वान् पुरुष वैसे फलका भागी होता है। सदाचार, उत्तम वृत्ति तथा सद्भावनाके साथ मनमें दयाभाव रखते हुए विद्वान् पुरुषको तीर्थमें निवास करना चाहिये, अन्यथा उसका फल नहीं मिलता। पुण्यक्षेत्रमें किया हुआ थोड़ा-सा पुण्य भी अनेक प्रकारसे वृद्धिको प्राप्त होता है तथा वहाँ किया हुआ छोटा-सा पाप भी महान् हो जाता है। यदि पुण्यक्षेत्रमें रहकर ही जीवन बितानेका निश्चय हो, तो उस पुण्यसंकल्पसे उसका पहलेका सारा पाप तत्काल नष्ट हो जायगा; क्योंकि पुण्यको ऐश्वर्यदायक कहा गया है। हे ब्राह्मणो! तीर्थवासजनित पुण्य कायिक, वाचिक और मानसिक सारे पापोंका नाश कर देता है। तीर्थमें किया हुआ मानसिक पाप वज्रलेप हो जाता है। वह कई कल्पोंतक पीछा नहीं छोड़ता है॥ ३२—३८॥

वैसा पाप केवल ध्यानसे ही नष्ट होता है, अन्यथा नष्ट नहीं होता। वाचिक पाप जपसे तथा कायिक पाप शरीरको सुखाने-जैसे कठोर तपसे नष्ट होता है। धनोपार्जनमें हुए पाप दानसे नष्ट होते हैं अन्यथा करोड़ों कल्पोंमें भी उनका नाश नहीं होता। कभी-कभी अतिशय मात्रामें बढ़े पापोंसे पुण्य भी नष्ट हो जाते हैं। पुण्य और पाप दोनोंका बीजांश, वृद्ध्यंश

बीजांशश्चैव वृद्ध्यंशो भोगांशः पुण्यपापयोः।
ज्ञाननाश्यो हि बीजांशो वृद्धिरुक्तप्रकारतः॥ ४१

भोगांशो भोगनाश्यस्तु नान्यथा पुण्यकोटिभिः।
बीजप्ररोहे नष्टे तु शेषो भोगाय कल्पते॥ ४२

देवानां पूजया चैव ब्राह्मणानां च दानतः।
तपोधिक्याच्च कालेन भोगः सह्यो भवेन्नृणाम्।
तस्मात्पापमकृत्वैव वस्तव्यं सुखमिच्छता॥ ४३

और भोगांश होता है। बीजांशका नाश ज्ञानसे, वृद्ध्यंशका ऊपर लिखे प्रकारसे तथा भोगांशका नाश भोगनेसे होता है। अन्य किसी प्रकारसे करोड़ों पुण्य करके भी पापके भोगांश नहीं मिट सकते। पाप-बीजके अंकुरित हो जानेपर उसका अंश नष्ट होनेपर भी शेष पाप भोगना ही पड़ता है। देवताओंकी पूजा, ब्राह्मणोंको दान तथा अधिक तप करनेसे समय पाकर पापभोग मनुष्योंके सहनेयोग्य हो जाते हैं। इसलिये सुख चाहनेवाले व्यक्तिको पापोंसे बचकर ही तीर्थवास करना चाहिये॥ ३९—४३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां शिवक्षेत्रवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें शिवक्षेत्रका वर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

सदाचार, शौचाचार, स्नान, भस्मधारण, सन्ध्यावन्दन, प्रणव-जप, गायत्री-जप, दान, न्यायतः धनोपार्जन तथा अग्निहोत्र आदिकी विधि एवं उनकी महिमाका वर्णन

ऋषय ऊचुः

सदाचारं श्रावयाशु येन लोकाञ्जयेद् बुधः।
धर्माधर्ममयान्ब्रूहि स्वर्गनारकदांस्तथा॥ १

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] अब आप शीघ्र ही हमें वह सदाचार सुनाइये, जिससे विद्वान् पुरुष पुण्यलोकोंपर विजय प्राप्त कर लेता है। स्वर्ग प्रदान करनेवाले धर्ममय आचारों तथा नरकका कष्ट देनेवाले अधर्ममय आचारोंका भी वर्णन कीजिये॥ १॥

सूत उवाच

सदाचारयुतो विद्वान् ब्राह्मणो नाम नामतः।
वेदाचारयुतो विप्रो ह्येतैरेकैकवान्द्विजः॥ २

अल्पाचारोऽल्पवेदश्च क्षत्रियो राजसेवकः।
किञ्चिदाचारवान्वैश्यः कृषिवाणिज्यकृत्तथा॥ ३

शूद्रब्राह्मण इत्युक्तः स्वयमेव हि कर्षकः।
असूयालुः परद्रोही चण्डालद्विज उच्यते॥ ४

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] सदाचारका पालन करनेवाला विद्वान् ब्राह्मण ही वास्तवमें 'ब्राह्मण' नाम धारण करनेका अधिकारी है। जो केवल वेदोक्त आचारका पालन करनेवाला है, उस ब्राह्मणकी 'विप्र' संज्ञा होती है। सदाचार, वेदाचार तथा विद्या—इनमेंसे एक-एक गुणसे ही युक्त होनेपर उसे 'द्विज' कहते हैं। जिसमें स्वल्पमात्रामें ही आचारका पालन देखा जाता है, जिसने वेदाध्ययन भी बहुत कम किया है तथा जो राजाका सेवक (पुरोहित, मन्त्री आदि) है, उसे 'क्षत्रियब्राह्मण' कहते हैं। जो ब्राह्मण कृषि तथा वाणिज्य कर्म करनेवाला है और कुछ-कुछ ब्राह्मणोचित आचारका भी पालन करता है, वह 'वैश्यब्राह्मण' है तथा जो स्वयं ही खेत जोतता (हल चलाता) है, उसे 'शूद्रब्राह्मण' कहा गया है। जो दूसरोंके दोष देखनेवाला और परद्रोही है, उसे 'चाण्डालद्विज' कहते हैं॥ २—४॥

पृथिवीपालको राजा इतरे क्षत्रिया मताः।
धान्यादिक्रयवान्वैश्य इतरो वणिगुच्यते॥ ५

ब्रह्मक्षत्रियवैश्यानां शुश्रूषुः शूद्र उच्यते।
कर्षको वृषलो ज्ञेय इतरे चैव दस्यवः॥ ६

इसी तरह क्षत्रियोंमें भी जो पृथ्वीका पालन करता है, वह राजा है। दूसरे लोग राजत्वहीन क्षत्रिय माने गये हैं। वैश्योंमें भी जो धान्य आदि वस्तुओंका क्रय-विक्रय करता है, वह वैश्य है; दूसरोंको वणिक् कहते हैं। जो ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्योंकी सेवामें लगा रहता है, वह शूद्र कहलाता है। जो शूद्र हल जोतनेका काम करता है, उसे वृषल समझना चाहिये। शेष शूद्र दस्यु कहलाते हैं॥ ५-६॥

सर्वो ह्युषः प्राङ्मुखश्च चिन्तयेद् देवपूर्वकान्।
धर्मानर्थांश्च तत्क्लेशानायं च व्ययमेव च॥ ७

इन सभी वर्णोंके मनुष्योंको चाहिये कि वे उषःकालमें उठकर पूर्वाभिमुख हो सबसे पहले देवताओंका, फिर धर्मका, पुनः अर्थका, तदनन्तर उसकी प्राप्तिके लिये उठाये जानेवाले क्लेशोंका तथा आय और व्ययका भी चिन्तन करें॥ ७॥

आयुर्द्वेषश्च मरणं पापं भाग्यं तथैव च।
व्याधिः पुष्टिस्तथा शक्तिः प्रातरुत्थानदिक्फलम्॥ ८

प्रातःकाल उठकर [पूर्व, अग्निकोण, दक्षिण आदि] आठ दिशाओंकी ओर मुख करके बैठनेपर क्रमशः आयु, द्वेष, मरण, पाप, भाग्य, व्याधि, पुष्टि और शक्ति प्राप्त होती है॥ ८॥

निशान्त्ययामोषा ज्ञेया यामार्धं सन्धिरुच्यते।
तत्काले तु समुत्थाय विण्मूत्रे विसृजेद् द्विजः॥ ९

गृहाद् दूरं ततो गत्वा बाह्यतः प्रावृतस्तथा।
उदङ्मुखः समाविश्य प्रतिबन्धेऽन्यदिङ्मुखः॥ १०

जलाग्निब्राह्मणादीनां देवानां नाभिमुख्यतः।
लिङ्गं पिधाय वामेन मुखमन्येन पाणिना॥ ११

मलमुत्सृज्य चोत्थाय न पश्येच्चैव तन्मलम्।
उद्धृतेन जलेनैव शौचं कुर्याज्जलाद् बहिः॥ १२

अथवा देवपित्रर्षितीर्थावतरणं विना।
सप्त वा पञ्च वा त्रीन्वा गुदं संशोधयेन्मृदा॥ १३

लिङ्गे कर्कोटमात्रं तु गुदे प्रसृतिरिष्यते।
तत उत्थाय पद्धस्तशौचं गण्डूषमष्टकम्॥ १४

रातके पिछले पहरको उषःकाल जानना चाहिये। उस अन्तिम पहरका जो आधा या मध्यभाग है, उसे सन्धि कहते हैं। उस सन्धिकालमें उठकर द्विजको मल-मूत्र आदिका त्याग करना चाहिये। घरसे दूर जाकर बाहरसे अपने शरीरको ढके रखकर दिनमें उत्तराभिमुख बैठकर मल-मूत्रका त्याग करे। यदि उत्तराभिमुख बैठनेमें कोई रुकावट हो तो दूसरी दिशाकी ओर मुख करके बैठे। जल, अग्नि, ब्राह्मण आदि तथा देवताओंका सामना बचाकर बैठे। बायें हाथसे उपस्थको ढँककर तथा दाहिने हाथसे मुखको ढककर मलत्याग करे और उठनेपर उस मलको न देखे। तदनन्तर जलाशयसे बाहर निकाले हुए जलसे ही गुदाकी शुद्धि करे; अथवा देवताओं, पितरों तथा ऋषियोंके तीर्थोंमें उतरे बिना ही प्राप्त हुए जलसे शुद्धि करनी चाहिये। गुदामें सात, पाँच या तीन बार मिट्टीसे उसे धोकर शुद्ध करे। लिंगमें ककोड़ेके फलके बराबर मिट्टी लेकर लगाये और उसे धो दे। परंतु गुदामें लगानेके लिये एक पसर मिट्टीकी आवश्यकता होती है। लिंग और गुदाकी शुद्धिके पश्चात् उठकर अन्यत्र जाय और हाथ-पैरोंकी शुद्धि करके आठ बार कुल्ला करे॥ ९—१४॥

येन केन च पत्रेण काष्ठेन च जलाद् बहिः।
कार्यं सन्तर्जनीं त्यज्य दन्तधावनमीरितम्॥ १५

जलदेवान्नमस्कृत्य मन्त्रेण स्नानमाचरेत्।
अशक्तः कण्ठदघ्नं वा कटिदघ्नमथापि वा॥ १६

आजानुजलमाविश्य मन्त्रस्नानं समाचरेत्।
देवादींस्तर्पयेद्विद्वांस्तत्र तीर्थजलेन च॥ १७

जिस किसी वृक्षके पत्तेसे अथवा उसके पतले काष्ठसे जलके बाहर दातुन करना चाहये। उस समय तर्जनी अँगुलीका उपयोग न करे। यह दन्तशुद्धिका विधान बताया गया है। तदनन्तर जल-सम्बन्धी देवताओंको नमस्कार करके मन्त्रपाठ करते हुए स्नान करे। यदि कण्ठतक या कमरतक पानीमें खड़े होनेकी शक्ति न हो तो घुटनेतक जलमें खड़ा होकर अपने ऊपर जल छिड़ककर मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नानकार्य सम्पन्न करे। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वहाँ तीर्थजलसे देवता आदिका स्नानांग तर्पण भी करे॥ १५—१७॥

धौतवस्त्रं समादाय पञ्चकच्छेन धारयेत्।
उत्तरीयं च किञ्चैव धार्यं सर्वेषु कर्मसु॥ १८

नद्यादितीर्थस्नाने तु स्नानवस्त्रं न शोधयेत्।
वापीकूपगृहादौ तु स्नानादूर्ध्वं नयेद् बुधः॥ १९

शिलादार्वादिके वापि जले वापि स्थलेऽपि वा।
संशोध्य पीडयेद्वस्त्रं पितॄणां तृप्तये द्विजाः॥ २०

इसके बाद धौतवस्त्र लेकर पाँच कच्छ करके उसे धारण करे। साथ ही कोई उत्तरीय भी धारण कर ले; क्योंकि सन्ध्या-वन्दन आदि सभी कर्मोंमें उसकी आवश्यकता होती है। नदी आदि तीर्थोंमें स्नान करनेपर स्नान-सम्बन्धी उतारे हुए वस्त्रको वहाँ न धोये। स्नानके पश्चात् विद्वान् पुरुष उस वस्त्रको बावड़ीमें, कुएँके पास अथवा घर आदिमें ले जाय और वहाँ पत्थरपर, लकड़ी आदिपर, जलमें या स्थलमें अच्छी तरह धोकर उस वस्त्रको निचोड़े। हे द्विजो! वस्त्रको निचोड़नेसे जो जल गिरता है, वह पितरोंकी तृप्तिके लिये होता है॥ १८—२०॥

जाबालकोक्तमन्त्रेण भस्मना च त्रिपुण्ड्रकम्।
अन्यथा चेज्जले पातस्ततो नरकमृच्छति॥ २१

इसके बाद जाबालि-उपनिषद्में बताये गये [**अग्निरिति**] मन्त्रसे भस्म लेकर उसके द्वारा त्रिपुण्ड्र लगाये।* इस विधिका पालन न किया जाय, इसके पूर्व ही यदि जलमें भस्म गिर जाय तो कर्ता नरकमें जाता है। '**आपो हि ष्ठा**' इस मन्त्रसे पाप-शान्तिके

---

* जाबालि-उपनिषद्में भस्मधारणकी विधि इस प्रकार कही गयी है—

'ॐ अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म व्योमेति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म' इस मन्त्रसे भस्मको अभिमन्त्रित करे।

'मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। मा नो वीरान्रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे'॥

इस मन्त्रसे उठाकर जलसे मले, तत्पश्चात्—

'त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽस्तु त्र्यायुषम्॥'

इत्यादि मन्त्रसे मस्तक, ललाट, वक्षःस्थल और कन्धोंपर त्रिपुण्ड्र करे।

'त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽस्तु त्र्यायुषम्॥'

तथा—

'त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥'

—इन दोनों मन्त्रोंको तीन-तीन बार पढ़ते हुए तीन रेखाएँ खींचे।

आपोहिष्ठेति शिरसि प्रोक्षयेत्पापशान्तये।
यस्येति मन्त्रं पादे तु सन्धिप्रोक्षणमुच्यते॥ २२

हृदये मूर्ध्नि पादे च मूर्ध्नि हृत्पाद एव च।
हृत्पादमूर्ध्नि सम्प्रोक्ष्य मन्त्रस्नानं विदुर्बुधाः॥ २३

लिये सिरपर जल छिड़के तथा '**यस्य क्षयाय**'—इस मन्त्रको पढ़कर पैरपर जल छिड़के; इसे सन्धिप्रोक्षण कहते हैं। '**आपो हि ष्ठा**' इत्यादि मन्त्रमें तीन ऋचाएँ हैं और प्रत्येक ऋचामें गायत्री छन्दके तीन-तीन चरण हैं। इनमेंसे प्रथम ऋचाके तीन चरणोंका पाठ करते हुए क्रमशः पैर, मस्तक और हृदयमें जल छिड़के; दूसरी ऋचाके तीन चरणोंको पढ़कर क्रमशः मस्तक, हृदय और पैरमें जल छिड़के तथा तीसरी ऋचाके तीन चरणोंका पाठ करते हुए क्रमशः हृदय, पैर और मस्तकका जलसे प्रोक्षण करे—इसे विद्वान् पुरुष मन्त्रस्नान मानते हैं॥ २१—२३॥

ईषत्स्पर्शे च दौःस्वास्थ्ये राजराष्ट्रभयेऽपि च।
अगत्या गतिकाले च मन्त्रस्नानं समाचरेत्॥ २४

प्रातः सूर्यानुवाकेन सायमग्न्यनुवाकतः।
अपः पीत्वा तथा मध्ये पुनः प्रोक्षणमाचरेत्॥ २५

किसी अपवित्र वस्तुसे किंचित् स्पर्श हो जानेपर, अपना स्वास्थ्य ठीक न रहनेपर, राजभय या राष्ट्रभय उपस्थित होनेपर तथा यात्राकालमें जलकी उपलब्धि न होनेकी विवशता आ जानेपर मन्त्रस्नान करना चाहिये। प्रातःकाल [**सूर्यश्च मा मन्युश्च**—इस] सूर्यानुवाकसे तथा सायंकाल [**अग्निश्च मा मन्युश्च**—इस] अग्नि-सम्बन्धी अनुवाकसे जलका आचमन करके पुनः जलसे अपने अंगोंका प्रोक्षण करे। मध्याह्नकालमें भी [**आपः पुनन्तु**—इस] मन्त्रसे आचमन करके पूर्ववत् प्रोक्षण करना चाहिये॥ २४-२५॥

गायत्र्या जपमन्त्रान्ते त्रिरूर्ध्वं प्राग्विनिक्षिपेत्।
मन्त्रेण सह चैकं वै मध्येऽर्घ्यं तु रवेर्द्विजाः॥ २६

अथ जाते च सायाह्ने भुवि पश्चिमदिङ्मुखः।
उद्धृत्य दद्यात् प्रातस्तु मध्याह्नेऽङ्गुलिभिस्तथा॥ २७

अङ्गुलीनां च रन्ध्रेण लम्बं पश्येद् दिवाकरम्।
आत्मप्रदक्षिणं कृत्वा शुद्धाचमनमाचरेत्॥ २८

प्रातःकालकी सन्ध्योपासनामें गायत्रीमन्त्रका जप करके तीन बार ऊपरकी ओर सूर्यदेवको अर्घ्य देना चाहिये। हे ब्राह्मणो! मध्याह्नकालमें गायत्री-मन्त्रके उच्चारणपूर्वक सूर्यको एक ही अर्घ्य देना चाहिये। फिर सायंकाल आनेपर पश्चिमकी ओर मुख करके बैठ जाय और पृथ्वीपर ही सूर्यके लिये अर्घ्य दे [ऊपरकी ओर नहीं]। प्रातःकाल और मध्याह्नकालके समय अंजलिमें अर्घ्यजल लेकर अँगुलियोंकी ओरसे सूर्यदेवके लिये अर्घ्य दे। अँगुलियोंके छिद्रसे ढलते हुए सूर्यको देखे तथा उनके लिये आत्म-प्रदक्षिणा करके शुद्ध आचमन करे॥ २६—२८॥

सायं मुहूर्तादर्वाक्तु कृता सन्ध्या वृथा भवेत्।
अकालात्काल इत्युक्तो दिनेऽतीते यथाक्रमम्॥ २९

सायंकालमें सूर्यास्तसे दो घड़ी पहले की हुई सन्ध्या निष्फल होती है; क्योंकि वह सायं सन्ध्याका समय नहीं है। ठीक समयपर सन्ध्या करनी चाहिये—ऐसी शास्त्रकी आज्ञा है। यदि सन्ध्योपासना किये

दिवातीते च गायत्रीं शतं नित्यं क्रमाज्जपेत्।
आदशाहात्परातीतं गायत्रीं लक्षमभ्यसेत्॥ ३०

मासातीते तु नित्ये हि पुनश्चोपनयं चरेत्।

बिना दिन बीत जाय तो प्रत्येक समयके लिये क्रमशः प्रायश्चित्त करना चाहिये। यदि एक दिन बीते तो प्रत्येक बीते हुए सन्ध्याकालके लिये नित्य-नियमके अतिरिक्त सौ गायत्री-मन्त्रका अधिक जप करे। यदि नित्यकर्मके लुप्त हुए दस दिनसे अधिक बीत जाय तो उसके प्रायश्चित्तरूपमें एक लाख गायत्रीका जप करना चाहिये। यदि एक मासतक नित्यकर्म छूट जाय तो पुनः अपना उपनयनसंस्कार कराये॥ २९-३०१/२॥

ईशो गौरी गुहो विष्णुर्ब्रह्मा चन्द्रश्च वै यमः॥ ३१
एवंरूपांश्च वै देवांस्तर्पयेदर्थसिद्धये।
ब्रह्मार्पणं ततः कृत्वा शुद्धाचमनमाचरेत्॥ ३२
तीर्थदक्षिणतः शस्ते मठे मन्त्रालये बुधः।
तत्र देवालये वापि गृहे वा नियतस्थले॥ ३३
सर्वान्देवान्नमस्कृत्य स्थिरबुद्धिः स्थिरासनः।
प्रणवं पूर्वमभ्यस्य गायत्रीमभ्यसेत्ततः॥ ३४

अर्थसिद्धिके लिये ईश, गौरी, कार्तिकेय, विष्णु, ब्रह्मा, चन्द्रमा और यमका तथा ऐसे ही अन्य देवताओंका भी शुद्ध जलसे तर्पण करे। तत्पश्चात् तर्पण कर्मको ब्रह्मार्पण करके शुद्ध आचमन करे। तीर्थके दक्षिण भागमें, प्रशस्त मठमें, मन्त्रालयमें, देवालयमें, घरमें अथवा अन्य किसी नियत स्थानमें आसनपर स्थिरतापूर्वक बैठकर विद्वान् पुरुष अपनी बुद्धिको स्थिर करे और सम्पूर्ण देवताओंको नमस्कार करके पहले प्रणवका जप करनेके पश्चात् गायत्री-मन्त्रकी आवृत्ति करे॥ ३१—३४॥

जीवब्रह्मैक्यविषयं बुद्ध्वा प्रणवमभ्यसेत्।
त्रैलोक्यसृष्टिकर्तारं स्थितिकर्तारमच्युतम्॥ ३५
संहर्तारं तथा रुद्रं स्वप्रकाशमुपास्महे।
ज्ञानकर्मेन्द्रियाणां च मनोवृत्तीर्धियस्तथा॥ ३६
भोगमोक्षप्रदे धर्मे ज्ञाने च प्रेरयेत्सदा।
इत्थमर्थं धिया ध्यायन्ब्रह्म प्राप्नोति निश्चयम्॥ ३७
केवलं वा जपेन्नित्यं ब्राह्मण्यस्य च पूर्तये।
सहस्रमभ्यसेन्नित्यं प्रातर्ब्राह्मणपुङ्गवः॥ ३८
अन्येषां च यथाशक्ति मध्याह्ने च शतं जपेत्।
सायं द्विदशकं ज्ञेयं शिखाष्टकसमन्वितम्॥ ३९

प्रणवके अ, उ, म् इन तीनों अक्षरोंसे जीव और ब्रह्मकी एकताका प्रतिपादन होता है—इस बातको जानकर प्रणवका जप करना चाहिये। जपकालमें यह भावना करनी चाहिये कि हम तीनों लोकोंकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा, पालन करनेवाले विष्णु तथा संहार करनेवाले रुद्रकी—जो स्वयंप्रकाश चिन्मय हैं, उपासना करते हैं। यह ब्रह्मस्वरूप ओंकार हमारी कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंकी वृत्तियोंको, मनकी वृत्तियोंको तथा बुद्धिवृत्तियोंको सदा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले धर्म एवं ज्ञानकी ओर प्रेरित करे। बुद्धिके द्वारा प्रणवके इस अर्थका चिन्तन करता हुआ जो इसका जप करता है, वह निश्चय ही ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। अथवा अर्थानुसन्धानके बिना भी प्रणवका नित्य जप करना चाहिये, इससे ब्राह्मणत्वकी पूर्ति होती है। ब्राह्मणत्वकी पूर्तिके लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणको प्रतिदिन प्रातःकाल एक सहस्र गायत्री-मन्त्रका जप करना चाहिये। मध्याह्नकालमें सौ बार और सायंकालमें अट्ठाईस बार जपकी विधि है। अन्य वर्णके लोगोंको अर्थात् क्षत्रिय और वैश्यको तीनों सन्ध्याओंके समय यथासाध्य गायत्री-जप करना चाहिये॥ ३५—३९॥

मूलाधारं समारभ्य द्वादशांशस्थितांस्तथा।
विद्येशब्रह्मविष्णवीशजीवात्मपरमेश्वरान् ॥ ४०

ब्रह्मबुद्ध्या तदैक्यं च सोऽहं भावनया जपेत्।
तानेव ब्रह्मरन्ध्रादौ कायाद् बाह्ये च भावयेत्॥ ४१

महत्तत्त्वं समारभ्य शरीरं तु सहस्रकम्।
एकैकस्माज्जपादेकमतिक्रम्य शनैः शनैः॥ ४२

परस्मिन्योजयेज्जीवं जपतत्त्वमुदाहृतम्।
शतद्विदशकं देहं शिखाष्टकसमन्वितम्॥ ४३

मन्त्राणां जप एवं हि जपमादिक्रमाद्विदुः।

[शरीरके भीतर मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, आज्ञा और सहस्रार—ये छः चक्र हैं।] इनमें मूलाधारसे लेकर सहस्रारतक छहों स्थानोंमें क्रमशः विद्येश्वर, ब्रह्मा, विष्णु, ईश, जीवात्मा और परमेश्वर स्थित हैं। इन सबमें ब्रह्मबुद्धि करके इनकी एकताका निश्चय करे और वह ब्रह्म मैं हूँ—ऐसी भावनासे युक्त होकर जप करे। उन्हीं विद्येश्वर आदिकी ब्रह्मरन्ध्र आदिमें तथा इस शरीरसे बाहर भी भावना करे। महत्तत्त्वसे लेकर पंचभूतपर्यन्त तत्त्वोंसे बना हुआ जो शरीर है, ऐसे सहस्रों शरीरोंका एक-एक अजपा गायत्रीके जपसे एक-एकके क्रमसे अतिक्रमण करके जीवको धीरे-धीरे परमात्मासे संयुक्त करे—यह जपका तत्त्व बताया गया है। सौ अथवा अट्ठाईस मन्त्रोंके जपसे उतने ही शरीरोंका अतिक्रमण होता है। इस प्रकार जो मन्त्रोंका जप है, इसीको आदिक्रमसे वास्तविक जप जानना चाहिये॥ ४०—४३ $^{1}/_{2}$ ॥

सहस्रं ब्राह्मदं विद्याच्छतमैन्द्रप्रदं विदुः॥ ४४
इतरत्त्वात्मरक्षार्थं ब्रह्मयोनिषु जायते।
दिवाकरमुपस्थाय नित्यमित्थं समाचरेत्॥ ४५

एक हजार बार किया हुआ जप ब्रह्मलोक प्रदान करनेवाला होता है—ऐसा जानना चाहिये। सौ बार किया हुआ जप इन्द्रपदकी प्राप्ति करानेवाला माना गया है। ब्राह्मणेतर पुरुष आत्मरक्षाके लिये जो स्वल्पमात्रामें जप करता है, वह ब्राह्मणके कुलमें जन्म लेता है। इस प्रकार प्रतिदिन सूर्योपस्थान करके उपर्युक्तरूपसे जपका अनुष्ठान करना चाहिये॥ ४४-४५॥

लक्षद्वादशयुक्तस्तु पूर्णब्राह्मण ईरितः।
गायत्र्या लक्षहीनं तु वेदकार्ये न योजयेत्॥ ४६

आसप्ततेस्तु नियमं पश्चात्प्रव्राजनं चरेत्।
प्रातर्द्वादशसाहस्रं प्रव्राजी प्रणवं जपेत्॥ ४७

दिने दिने त्वतिक्रान्ते नित्यमेवं क्रमाज्जपेत्।
मासादौ क्रमशोऽतीते सार्धलक्षजपेन हि॥ ४८

अत ऊर्ध्वमतिक्रान्ते पुनः प्रैषं समाचरेत्।
एवं कृत्वा दोषशान्तिरन्यथा रौरवं व्रजेत्॥ ४९

बारह लाख गायत्रीका जप करनेवाला पुरुष पूर्णरूपसे ब्राह्मण कहा गया है। जिस ब्राह्मणने एक लाख गायत्रीका भी जप न किया हो, उसे वैदिक कार्यमें न लगाये। सत्तर वर्षकी अवस्थातक नियमपालनपूर्वक कार्य करे। इसके बाद गृह त्यागकर संन्यास ले ले। परिव्राजक या संन्यासी पुरुष नित्य प्रातःकाल बारह हजार प्रणवका जप करे। यदि एक दिन नियमका उल्लंघन हो जाय, तो दूसरे दिन उसके बदलेमें उतना मन्त्र और अधिक जपना चाहिये; इस प्रकार जपको चलानेका प्रयत्न करना चाहिये। यदि क्रमशः एक मास उल्लंघनका व्यतीत हो गया हो तो डेढ़ लाख जप करके उसका प्रायश्चित्त करना चाहिये। इससे अधिक समयतक नियमका उल्लंघन हो जाय तो पुनः नये सिरेसे गुरुसे नियम ग्रहण करे। ऐसा करनेसे दोषोंकी शान्ति होती है, अन्यथा रौरव नरकमें जाना पड़ता है॥ ४६—४९॥

धर्मार्थयोस्ततो यत्नं कुर्यात्कामी न चेतरः।
ब्राह्मणो मुक्तिकामः स्याद् ब्रह्मज्ञानं सदाभ्यसेत्॥ ५०

धर्मादर्थोऽर्थतो भोगो भोगाद्वैराग्यसम्भवः।
धर्मार्जितार्थभोगेन वैराग्यमुपजायते॥ ५१

विपरीतार्थभोगेन राग एव प्रजायते।
धर्मश्च द्विविधः प्रोक्तो द्रव्यदेहद्वयेन च॥ ५२

द्रव्यमिज्यादिरूपं स्यात्तीर्थस्नानादि दैहिकम्।
धर्मेण धनमाप्नोति तपसा दिव्यरूपताम्॥ ५३

निष्कामः शुद्धिमाप्नोति शुद्ध्या ज्ञानं न संशयः।
कृतादौ हि तपः श्लाघ्यं द्रव्यधर्मः कलौ युगे॥ ५४

कृते ध्यानाज्ज्ञानसिद्धिस्त्रेतायां तपसा तथा।
द्वापरे यजनाज्ज्ञानं प्रतिमापूजया कलौ॥ ५५

यादृशं पुण्यपापं वा तादृशं फलमेव हि।
द्रव्यदेहाङ्गभेदेन न्यूनवृद्धिक्षयादिकम्॥ ५६

अधर्मो हिंसिकारूपो धर्मस्तु सुखरूपकः।
अधर्माद् दुःखमाप्नोति धर्माद्वै सुखमेधते॥ ५७

विद्याद् दुर्वृत्तितो दुःखं सुखं विद्यात्सुवृत्तितः।
धर्मार्जनमतः कुर्याद्भोगमोक्षप्रसिद्धये॥ ५८

सकुटुम्बस्य विप्रस्य चतुर्जनयुतस्य च।
शतवर्षस्य वृत्तिं तु दद्यात्तद्ब्रह्मलोकदम्॥ ५९

जो सकाम भावनासे युक्त गृहस्थ ब्राह्मण है, उसीको धर्म तथा अर्थके लिये यत्न करना चाहिये। मुमुक्षु ब्राह्मणको तो सदा ज्ञानका ही अभ्यास करना चाहिये। धर्मसे अर्थकी प्राप्ति होती है, अर्थसे भोग सुलभ होता है और उस भोगसे वैराग्यकी प्राप्ति होती है। धर्मपूर्वक उपार्जित धनसे जो भोग प्राप्त होता है, उससे एक दिन अवश्य वैराग्यका उदय होता है। धर्मके विपरीत अधर्मसे उपार्जित धनके द्वारा जो भोग प्राप्त होता है, उससे भोगोंके प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है॥ ५०-५१½॥

धर्म दो प्रकारका कहा गया है—द्रव्यके द्वारा सम्पादित होनेवाला और शरीरसे किया जानेवाला। द्रव्यधर्म यज्ञ आदिके रूपमें और शरीरधर्म तीर्थ-स्नान आदिके रूपमें पाये जाते हैं। मनुष्य धर्मसे धन पाता है, तपस्यासे उसे दिव्य रूपकी प्राप्ति होती है। कामनाओंका त्याग करनेवाले पुरुषके अन्तःकरणकी शुद्धि होती है; उस शुद्धिसे ज्ञानका उदय होता है; इसमें संशय नहीं है॥ ५२-५३½॥

सत्ययुग आदिमें तपको ही प्रशस्त कहा गया है, किंतु कलियुगमें द्रव्यसाध्य धर्म अच्छा माना गया है। सत्ययुगमें ध्यानसे, त्रेतामें तपस्यासे और द्वापरमें यज्ञ करनेसे ज्ञानकी सिद्धि होती है, परंतु कलियुगमें प्रतिमा (भगवद्विग्रह)-की पूजासे ज्ञानलाभ होता है॥ ५४-५५॥

जिसका जैसा पुण्य या पाप होता है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है। द्रव्य, देह अथवा अंगमें न्यूनता, वृद्धि अथवा क्षय आदिके रूपमें वह फल प्रकट होता है॥ ५६॥

अधर्म हिंसा (दुःख)-रूप है और धर्म सुखरूप है। मनुष्य अधर्मसे दुःख पाता है और धर्मसे सुख एवं अभ्युदयका भागी होता है। दुराचारसे दुःख प्राप्त होता है और सदाचारसे सुख। अतः भोग और मोक्षकी सिद्धिके लिये धर्मका उपार्जन करना चाहिये॥ ५७-५८॥

जिसके घरमें कम-से-कम चार मनुष्य हैं, ऐसे कुटुम्बी ब्राह्मणको जो सौ वर्षके लिये जीविका (जीवन-निर्वाहकी सामग्री) देता है, उसके लिये वह दान ब्रह्मलोककी प्राप्ति करानेवाला होता है। एक हजार

चान्द्रायणसहस्त्रं तु ब्रह्मलोकप्रदं विदुः।
सहस्त्रस्य कुटुम्बस्य प्रतिष्ठां क्षत्रियश्चरेत्॥ ६०

इन्द्रलोकप्रदं विद्यादयुतं ब्रह्मलोकदम्।
यां देवतां पुरस्कृत्य दानमाचरते नरः॥ ६१

तत्तल्लोकमवाप्नोति इति वेदविदो विदुः।
अर्थहीनः सदा कुर्यात्तपसामर्जनं तथा॥ ६२

तीर्थाच्च तपसा प्राप्यं सुखमक्षय्यमश्नुते।
अर्थार्जनमथो वक्ष्ये न्यायतः सुसमाहितः॥ ६३

कृतात्प्रतिग्रहाच्चैव याजनाच्च विशुद्धतः।
अदैन्यादनतिक्लेशाद् ब्राह्मणो धनमर्जयेत्॥ ६४

क्षत्रियो बाहुवीर्येण कृषिगोरक्षणाद् विशः।
न्यायार्जितस्य वित्तस्य दानात्सिद्धिं समश्नुते॥ ६५

ज्ञानसिद्ध्या मोक्षसिद्धिः सर्वेषां गुर्वनुग्रहात्।
मोक्षात्स्वरूपसिद्धिः स्यात्परानन्दं समश्नुते॥ ६६

सत्सङ्गात्सर्वमेतद्वै नराणां जायते द्विजाः।
धनधान्यादिकं सर्वं देयं वै गृहमेधिना॥ ६७

यद्यत्काले वस्तुजातं फलं वा धान्यमेव च।
तत्तत्सर्वं ब्राह्मणेभ्यो देयं वै हितमिच्छता॥ ६८

जलं चैव सदा देयमन्नं क्षुद्व्याधिशान्तये।
क्षेत्रं धान्यं तथामान्नमन्नमेव चतुर्विधम्॥ ६९

यावत्कालं यदन्नं वै भुक्त्वा श्रवणमेधते।
तावत्कृतस्य पुण्यस्य त्वर्धं दातुर्न संशयः॥ ७०

चान्द्रायण व्रतका अनुष्ठान ब्रह्मलोकदायक माना गया है। जो क्षत्रिय एक हजार कुटुम्बोंको जीविका और आवास देता है, उसका वह कर्म इन्द्रलोककी प्राप्ति करानेवाला होता है और दस हजार कुटुम्बोंको दिया हुआ आश्रयदान ब्रह्मलोक प्रदान करता है। दाता पुरुष जिस देवताके उद्देश्यसे दान करता है अर्थात् वह दानके द्वारा जिस देवताको प्रसन्न करना चाहता है, उसीका लोक उसे प्राप्त होता है—ऐसा वेदवेत्ता पुरुष कहते हैं। धनहीन पुरुष सदा तपस्याका उपार्जन करे; क्योंकि तपस्या और तीर्थसेवनसे अक्षय सुख पाकर मनुष्य उसका उपभोग करता है॥ ५९—६२१/२॥

अब मैं न्यायतः धनके उपार्जनकी विधि बता रहा हूँ। ब्राह्मणको चाहिये कि वह सदा सावधान रहकर विशुद्ध प्रतिग्रह (दानग्रहण) तथा याजन (यज्ञ कराने) आदिसे धनका अर्जन करे। वह इसके लिये कहीं दीनता न दिखाये और न अत्यन्त क्लेशदायक कर्म ही करे। क्षत्रिय बाहुबलसे धनका उपार्जन करे और वैश्य कृषि एवं गोरक्षासे। न्यायोपार्जित धनका दान करनेसे दाताको ज्ञानकी सिद्धि होती है। ज्ञानसिद्धिद्वारा सब पुरुषोंको गुरुकृपासे मोक्षसिद्धि सुलभ होती है। मोक्षसे स्वरूपकी सिद्धि (ब्रह्मरूपसे स्थिति) प्राप्त होती है, जिससे [मुक्त पुरुष] परमानन्दका अनुभव करता है। हे द्विजो! मनुष्योंको यह सब सत्संगसे प्राप्त है॥ ६३—६६१/२॥

गृहस्थाश्रमीको धन-धान्य आदि सभी वस्तुओंका दान करना चाहिये। अपना हित चाहनेवाले गृहस्थको जिस कालमें जो फल अथवा धान्यादि वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं, उन्हें ब्राह्मणोंको दान करना चाहिये॥ ६७-६८॥

वह तृषा-निवृत्तिके लिये जल तथा क्षुधारूपी रोगकी शान्तिके लिये सदा अन्नका दान करे। खेत, धान्य, कच्चा अन्न तथा भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य—ये चार प्रकारके सिद्ध अन्न दान करने चाहिये। जिसके अन्नको खाकर मनुष्य जबतक कथा-श्रवण आदि सद्धर्मका पालन करता है, उतने समयतक उसके किये हुए पुण्यफलका आधा भाग दाताको मिल जाता है; इसमें संशय नहीं है॥ ६९-७०॥

ग्रहीता हि गृहीतस्य दानाद्वै तपसा तथा।
पापसंशोधनं कुर्यादन्यथा रौरवं व्रजेत्॥ ७१

आत्मवित्तं त्रिधा कुर्याद्धर्मवृद्ध्यात्मभोगतः।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं कर्म कुर्यात्तु धर्मतः॥ ७२

वित्तस्य वर्धनं कुर्याद् वृद्ध्यंशेन हि साधकः।
हितेन मितमेध्येन भोगं भोगांशतश्चरेत्॥ ७३

दान लेनेवाला पुरुष दानमें प्राप्त हुई वस्तुका दान तथा तपस्या करके अपने प्रतिग्रहजनित पापकी शुद्धि करे; अन्यथा उसे रौरव नरकमें गिरना पड़ता है। अपने धनके तीन भाग करे—एक भाग धर्मके लिये, दूसरा भाग वृद्धिके लिये तथा तीसरा भाग अपने उपभोगके लिये। नित्य, नैमित्तिक और काम्य—ये तीनों प्रकारके कर्म धर्मार्थ रखे हुए धनसे करे। साधकको चाहिये कि वह वृद्धिके लिये रखे हुए धनसे ऐसा व्यापार करे, जिससे उस धनकी वृद्धि हो तथा उपभोगके लिये रक्षित धनसे हितकारक, परिमित एवं पवित्र भोग भोगे॥ ७१—७३॥

कृष्यर्जिते दशांशं हि देयं पापस्य शुद्धये।
शेषेण कुर्याद्धर्मादि अन्यथा रौरवं व्रजेत्॥ ७४

अथवा पापबुद्धिः स्यात्क्षयं वा सस्यमेष्यति।
वृद्धिवाणिज्यके देयं षडंशं हि विचक्षणैः॥ ७५

खेतीसे पैदा किये हुए धनका दसवाँ अंश दान कर दे। इससे पापकी शुद्धि होती है। शेष धनसे धर्म, वृद्धि एवं उपभोग करे, अन्यथा वह रौरव नरकमें पड़ता है अथवा उसकी बुद्धि पापसे परिपूर्ण हो जाती है या खेती ही चौपट हो जाती है। वृद्धिके लिये किये गये व्यापारमें प्राप्त हुए धनका छठा भाग दान कर दे॥ ७४-७५॥

शुद्धप्रतिग्रहे देयं चतुर्थांशं द्विजोत्तमैः।
अकस्मादुत्थितेऽर्थे हि देयमर्धं द्विजोत्तमैः॥ ७६

असत्प्रतिग्रहे सर्वं दुर्दानं सागरे क्षिपेत्।
आहूय दानं कर्तव्यमात्मभोगसमृद्धये॥ ७७

पृष्टं सर्वं सदा देयमात्मशक्त्यनुसारतः।
जन्मान्तरे ऋणी हि स्याददत्ते पृष्टवस्तुनि॥ ७८

श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दानमें प्राप्त हुए शुद्ध पदार्थोंका चतुर्थांश दान कर देना चाहिये। उन्हें अकस्मात् प्राप्त हुए धनका तो आधा भाग दान कर ही देना चाहिये। असत्-प्रतिग्रह (दूषित दान)-में प्राप्त सम्पूर्ण पदार्थोंको समुद्रमें फेंक देना चाहिये। अपने भोगकी समृद्धिके लिये ब्राह्मणोंको बुलाकर दान करना चाहिये। किसीके द्वारा याचना करनेपर अपनी शक्तिके अनुसार सदैव ही सब कुछ देना चाहिये। यदि माँगे जानेपर [शक्ति रहते हुए] वह पदार्थ न दिया जाय तो दूसरे जन्ममें वह ऋण चुकाना पड़ता है॥ ७६—७८॥

परेषां च तथा दोषं न प्रशंसेद्विचक्षणः।
विद्वेषेण तथा ब्रह्मन् श्रुतं दृष्टं च नो वदेत्॥ ७९

न वदेत्सर्वजन्तूनां हृदि रोषकरं बुधः।

विद्वान्‌को चाहिये कि वह दूसरोंके दोषोंका वर्णन न करे। हे ब्रह्मन्! द्वेषवश दूसरोंके सुने या देखे हुए छिद्रको भी प्रकट न करे। विद्वान् पुरुष ऐसी बात न कहे, जो समस्त प्राणियोंके हृदयमें रोष पैदा करनेवाली हो॥ ७९ १/२॥

सन्ध्ययोरग्निकार्यं च कुर्यादैश्वर्यसिद्धये॥ ८०

अशक्तस्त्वेककाले वा सूर्याग्नी च यथाविधि।
तण्डुलं धान्यमाज्यं वा फलं कन्दं हविस्तथा॥ ८१

ऐश्वर्यकी सिद्धिके लिये दोनों सन्ध्याओंके समय अग्निहोत्र करे, यदि असमर्थ हो तो वह एक ही समय सूर्य और अग्निको विधिपूर्वक दी हुई आहुतिसे सन्तुष्ट करे। चावल, धान्य, घी, फल, कन्द तथा हविष्य—इनके द्वारा विधिपूर्वक स्थालीपाक

स्थालीपाकं तथा कुर्याद्यथान्यायं यथाविधि।
प्रधानहोममात्रं वा हव्याभावे समाचरेत्॥ ८२

नित्यसन्धानमित्युक्तं तमजस्त्रं विदुर्बुधाः।
अथवा जपमात्रं वा सूर्यवन्दनमेव च॥ ८३

बनाये तथा यथोचित रीतिसे सूर्य और अग्निको अर्पित करे। यदि हविष्यका अभाव हो तो प्रधान होममात्र करे। सदा सुरक्षित रहनेवाली अग्निको विद्वान् पुरुष अजस्त्रकी संज्ञा देते हैं। यदि असमर्थ हो तो सन्ध्याकालमें जपमात्र या सूर्यकी वन्दनामात्र कर ले॥ ८०—८३॥

एवमात्मार्थिनः कुर्युरर्थार्थी च यथाविधि।
ब्रह्मयज्ञरता नित्यं देवपूजारतास्तथा॥ ८४

अग्निपूजापरा नित्यं गुरुपूजारतास्तथा।
ब्राह्मणानां तृप्तिकराः सर्वे स्वर्गस्य भागिनः॥ ८५

आत्मज्ञानकी इच्छावाले तथा धनार्थी पुरुषोंको भी इस प्रकार विधिवत् उपासना करनी चाहिये। जो सदा ब्रह्मयज्ञमें तत्पर रहते हैं, देवताओंकी पूजामें लगे रहते हैं, नित्य अग्निपूजा एवं गुरुपूजामें अनुरक्त होते हैं तथा ब्राह्मणोंको तृप्त किया करते हैं, वे सब लोग स्वर्गके भागी होते हैं॥ ८४-८५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां सदाचारवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें सदाचारवर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

अग्नियज्ञ, देवयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ आदिका वर्णन, भगवान् शिवके द्वारा सातों वारोंका निर्माण तथा उनमें देवाराधनसे विभिन्न प्रकारके फलोंकी प्राप्तिका कथन

ऋषय ऊचुः

अग्नियज्ञं देवयज्ञं ब्रह्मयज्ञं तथैव च।
गुरुपूजां ब्रह्मतृप्तिं क्रमेण ब्रूहि नः प्रभो॥ १

ऋषिगण बोले—हे प्रभो! अग्नियज्ञ, देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, गुरुपूजा तथा ब्रह्मतृप्तिका क्रमशः हमारे समक्ष वर्णन कीजिये॥ १॥

सूत उवाच

अग्नौ जुहोति यद् द्रव्यमग्नियज्ञः स उच्यते।
ब्रह्मचर्याश्रमस्थानां समिदाधानमेव हि॥ २

समिदग्नौ व्रताद्यं च विशेषयजनादिकम्।
प्रथमाश्रमिणामेवं यावदौपासनं द्विजाः॥ ३

आत्मन्यारोपिताग्नीनां वनिनां यतिनां द्विजाः।
हितं च मितमेध्यान्नं स्वकाले भोजनं हुतिः॥ ४

सूतजी बोले—हे महर्षियो! गृहस्थ पुरुष अग्निमें सायंकाल और प्रातःकाल जो चावल आदि द्रव्यकी आहुति देता है, उसीको अग्नियज्ञ कहते हैं। जो ब्रह्मचर्य आश्रममें स्थित हैं, उन ब्रह्मचारियोंके लिये समिधाका आधान ही अग्नियज्ञ है। वे समिधाका ही अग्निमें हवन करें। हे ब्राह्मणो! ब्रह्मचर्य आश्रममें निवास करनेवाले द्विजोंका जबतक विवाह न हो जाय और वे औपासनाग्निकी प्रतिष्ठा न कर लें, तबतक उनके लिये अग्निमें समिधाकी आहुति, व्रत आदिका पालन तथा विशेष यजन आदि ही कर्तव्य है (यही उनके लिये अग्नियज्ञ है)। हे द्विजो! जिन्होंने बाह्य अग्निको विसर्जित करके अपनी आत्मामें ही अग्निका आरोप कर लिया है, ऐसे वानप्रस्थियों और संन्यासियोंके लिये यही हवन या अग्नियज्ञ है कि वे विहित समयपर हितकर, परिमित और पवित्र अन्नका भोजन कर लें॥ २—४॥

औपासनाग्निसन्धानं समारभ्य सुरक्षितम्।
कुण्डे वाप्यथ भाण्डे वा तदजस्रं समीरितम्॥ ५

अग्निमात्मन्यरण्यां वा राजदैववशाद् ध्रुवम्।
अग्नित्यागभयादुक्तं समारोपितमुच्यते॥ ६

सम्पत्करी तथा ज्ञेया सायमग्न्याहुतिर्द्विजाः।
आयुष्करीति विज्ञेया प्रातः सूर्याहुतिस्तथा॥ ७

अग्नियज्ञो ह्ययं प्रोक्तो दिवा सूर्यनिवेशनात्।
इन्द्रादीन्सकलान्देवानुद्दिश्याग्नौ जुहोति यत्॥ ८

देवयज्ञं हि तं विद्यात्स्थालीपाकादिकान्क्रतून्।
चौलादिकं तथा ज्ञेयं लौकिकाग्नौ प्रतिष्ठितम्॥ ९

ब्रह्मयज्ञं द्विजः कुर्याद् देवानां तृप्तयेऽसकृत्।
ब्रह्मयज्ञ इति प्रोक्तो वेदस्याध्ययनं भवेत्॥ १०

नित्यानन्तरमासायं ततस्तु न विधीयते।
अनग्नौ देवयजनं शृणुत श्रद्धयादरात्॥ ११

आदिसृष्टौ महादेवः सर्वज्ञः करुणाकरः।
सर्वलोकोपकारार्थं वारान्कल्पितवान्प्रभुः॥ १२

संसारवैद्यः सर्वज्ञः सर्वभेषजभेषजम्।
आदावारोग्यदं वारं स्ववारं कृतवान्प्रभुः॥ १३

सम्पत्करं स्वमायाया वारं च कृतवांस्ततः।
जनने दुर्गतिक्रान्ते कुमारस्य ततः परम्॥ १४

औपासनाग्निको ग्रहण करके जब कुण्ड अथवा भाण्डमें सुरक्षित कर लिया जाय, तब उसे अजस्र कहा जाता है। राजविप्लव या दुर्दैवसे अग्नित्यागका भय उपस्थित हो जानेपर जब अग्निको स्वयं आत्मामें अथवा अरणीमें स्थापित कर लिया जाता है, तब उसे समारोपित कहते हैं॥ ५-६॥

हे ब्राह्मणो! सायंकाल अग्निके लिये दी हुई आहुति सम्पत्ति प्रदान करनेवाली होती है, ऐसा जानना चाहिये और प्रातःकाल सूर्यदेवको दी हुई आहुति आयुकी वृद्धि करनेवाली होती है, यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये। दिनमें अग्निदेव सूर्यमें ही प्रविष्ट हो जाते हैं। अतः प्रातःकाल सूर्यको दी हुई आहुति भी अग्नियज्ञ ही है॥ ७॥

इन्द्र आदि समस्त देवताओंके उद्देश्यसे अग्निमें जो आहुति दी जाती है, उसे देवयज्ञ समझना चाहिये। स्थालीपाक आदि यज्ञोंको देवयज्ञ ही मानना चाहिये। लौकिक अग्निमें प्रतिष्ठित जो चूडाकरण आदि संस्कार-निमित्तक हवन-कर्म हैं, उन्हें भी देवयज्ञके ही अन्तर्गत जानना चाहिये। [अब ब्रह्मयज्ञका वर्णन सुनिये।] द्विजको चाहिये कि वह देवताओंकी तृप्तिके लिये निरन्तर ब्रह्मयज्ञ करे। वेदोंका जो नित्य अध्ययन होता है, उसीको ब्रह्मयज्ञ कहा गया है। प्रातः नित्यकर्मके अनन्तर सायंकालतक ब्रह्मयज्ञ किया जा सकता है। उसके बाद रातमें इसका विधान नहीं है॥ ८—१०१/२॥

अग्निके बिना देवयज्ञ कैसे सम्पन्न होता है, इसे आपलोग श्रद्धासे और आदरपूर्वक सुनिये। सृष्टिके आरम्भमें सर्वज्ञ, दयालु और सर्वसमर्थ महादेवजीने समस्त लोकोंके उपकारके लिये वारोंकी कल्पना की। वे भगवान् शिव संसाररूपी रोगको दूर करनेके लिये वैद्य हैं। सबके ज्ञाता तथा समस्त औषधोंके भी औषध हैं। उन भगवान्‌ने पहले अपने वारकी कल्पना की, जो आरोग्य प्रदान करनेवाला है। तत्पश्चात् उन्होंने अपनी मायाशक्तिका वार बनाया, जो सम्पत्ति प्रदान करनेवाला है। जन्मकालमें दुर्गतिग्रस्त बालककी रक्षाके लिये उन्होंने कुमारके वारकी कल्पना की। तत्पश्चात् सर्वसमर्थ महादेवजीने आलस्य और पापकी

आलस्यदुरितक्रान्त्यै वारं कल्पितवान्प्रभुः।
रक्षकस्य तथा विष्णोर्लोकानां हितकाम्यया॥ १५

पुष्ट्यर्थं चैव रक्षार्थं वारं कल्पितवान्प्रभुः।
आयुष्करं ततो वारमायुषां कर्तुरेव हि॥ १६

त्रैलोक्यसृष्टिकर्तुर्हि ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।
जगदायुष्यसिद्ध्यर्थं वारं कल्पितवान्प्रभुः॥ १७

आदौ त्रैलोक्यवृद्ध्यर्थं पुण्यपापे प्रकल्पिते।
तयोः कर्त्रोस्ततो वारमिन्द्रस्य च यमस्य च॥ १८

भोगप्रदं मृत्युहरं लोकानां च प्रकल्पितम्।
आदित्यादीन्स्वस्वरूपान्सुखदुःखस्य सूचकान्॥ १९

वारेशान्कल्पयित्वादौ ज्योतिश्चक्रे प्रतिष्ठितान्।
स्वस्ववारे हि तेषां तु पूजा स्वस्वफलप्रदा॥ २०

निवृत्ति तथा समस्त लोकोंका हित करनेकी इच्छासे लोकरक्षक भगवान् विष्णुका वार बनाया। इसके बाद सबके स्वामी भगवान् शिवने पुष्टि और रक्षाके लिये आयुःकर्ता तथा त्रिलोकस्रष्टा परमेष्ठी ब्रह्माका आयुष्कारक वार बनाया, जिससे सम्पूर्ण जगत्के आयुष्यकी सिद्धि हो सके। इसके बाद तीनों लोकोंकी वृद्धिके लिये पहले पुण्य-पापकी रचना की; तत्पश्चात् उनके करनेवाले लोगोंको शुभाशुभ फल देनेके लिये भगवान् शिवने इन्द्र और यमके वारोंका निर्माण किया। ये दोनों वार क्रमशः भोग देनेवाले तथा लोगोंके मृत्युभयको दूर करनेवाले हैं॥ ११—१८½॥

इसके बाद सूर्य आदि सात ग्रहोंको, जो अपने ही स्वरूपभूत तथा प्राणियोंके लिये सुख-दुःखके सूचक हैं; भगवान् शिवने उपर्युक्त सात वारोंका स्वामी निश्चित किया। वे सब-के-सब ग्रह नक्षत्रोंके ज्योतिर्मय मण्डलमें प्रतिष्ठित हैं। [शिवके वार या दिनके स्वामी सूर्य हैं। शक्तिसम्बन्धी वारके स्वामी सोम हैं। कुमारसम्बन्धी दिनके अधिपति मंगल हैं। विष्णुवारके स्वामी बुध हैं। ब्रह्माजीके वारके अधिपति बृहस्पति हैं। इन्द्रवारके स्वामी शुक्र और यमवारके स्वामी शनैश्चर हैं।] अपने-अपने वारमें की हुई उन देवताओंकी पूजा उनके अपने-अपने फलको देनेवाली होती है॥ १९-२०॥

आरोग्यं सम्पदश्चैव व्याधीनां शान्तिरेव च।
पुष्टिरायुस्तथा भोगो मृतेर्हानिर्यथाक्रमम्॥ २१

वारक्रमफलं प्राहुर्देवप्रीतिपुरःसरम्।
अन्येषामपि देवानां पूजायाः फलदः शिवः॥ २२

देवानां प्रीतये पूजा पञ्चधैव प्रकल्पिता।
तत्तन्मन्त्रजपो होमो दानं चैव तपस्तथा॥ २३

स्थण्डिले प्रतिमायां च ह्यग्नौ ब्राह्मणविग्रहे।
समाराधनमित्येवं षोडशैरुपचारकैः॥ २४

सूर्य आरोग्यके और चन्द्रमा सम्पत्तिके दाता हैं। मंगल व्याधियोंका निवारण करते हैं, बुध पुष्टि देते हैं, बृहस्पति आयुकी वृद्धि करते हैं, शुक्र भोग देते हैं और शनैश्चर मृत्युका निवारण करते हैं। ये सात वारोंके क्रमशः फल बताये गये हैं, जो उन-उन देवताओंकी प्रीतिसे प्राप्त होते हैं। अन्य देवताओंकी भी पूजाका फल देनेवाले भगवान् शिव ही हैं। देवताओंकी प्रसन्नताके लिये पूजाकी पाँच प्रकारकी ही पद्धति बनायी गयी। उन-उन देवताओंके मन्त्रोंका जप यह पहला प्रकार है। उनके लिये होम करना दूसरा, दान करना तीसरा तथा तप करना चौथा प्रकार है। किसी वेदीपर, प्रतिमामें, अग्निमें अथवा ब्राह्मणके शरीरमें आराध्य देवताकी भावना करके सोलह उपचारोंसे उनकी पूजा या आराधना करना पाँचवाँ प्रकार है॥ २१—२४॥

उत्तरोत्तरवैशिष्ट्यात्पूर्वाभावे तथोत्तरम्।
नेत्रयोः शिरसो रोगे तथा कुष्ठस्य शान्तये॥ २५

आदित्यं पूजयित्वा तु ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः।
दिनं मासं तथा वर्षं वर्षत्रयमथापि वा॥ २६

प्रारब्धं प्रबलं चेत्स्यान्नश्येद् रोगजरादिकम्।
जपाद्यमिष्टदेवस्य वारादीनां फलं विदुः॥ २७

इनमें पूजाके उत्तरोत्तर आधार श्रेष्ठ हैं। पूर्व-पूर्वके अभावमें उत्तरोत्तर आधारका अवलम्बन करना चाहिये। दोनों नेत्रों तथा मस्तकके रोग और कुष्ठ रोगकी शान्तिके लिये भगवान् सूर्यकी पूजा करके ब्राह्मणोंको भोजन कराये। तदनन्तर एक दिन, एक मास, एक वर्ष अथवा तीन वर्षतक लगातार ऐसा साधन करना चाहिये। इससे यदि प्रबल प्रारब्धका निर्माण हो जाय तो रोग एवं जरा आदिका नाश हो जाता है। इष्टदेवके नाममन्त्रोंका जप आदि साधन वार आदिके अनुसार फल देते हैं॥ २५—२७॥

पापशान्तिर्विशेषेण ह्यादिवारे निवेदयेत्।
आदित्यस्यैव देवानां ब्राह्मणानां विशिष्टदम्॥ २८

रविवारको सूर्यदेवके लिये, अन्य देवताओंके लिये तथा ब्राह्मणोंके लिये विशिष्ट वस्तु अर्पित करे। यह साधन विशिष्ट फल देनेवाला होता है तथा इसके द्वारा विशेषरूपसे पापोंकी शान्ति होती है॥ २८॥

सोमवारे च लक्ष्म्यादीन्सम्पदर्थं यजेद् बुधः।
आज्यान्नेन तथा विप्रान्सपत्नीकांश्च भोजयेत्॥ २९

काल्यादीन्भौमवारे तु यजेद् रोगप्रशान्तये।
माषमुद्गाढकान्नेन ब्राह्मणांश्चैव भोजयेत्॥ ३०

विद्वान् पुरुष सोमवारको सम्पत्तिकी प्राप्तिके लिये लक्ष्मी आदिकी पूजा करे तथा सपत्नीक ब्राह्मणोंको घृतपक्व अन्नका भोजन कराये। मंगलवारको रोगोंकी शान्तिके लिये काली आदिकी पूजा करे तथा उड़द, मूँग एवं अरहरकी दाल आदिसे युक्त अन्न ब्राह्मणोंको भोजन कराये॥ २९-३०॥

सौम्यवारे तथा विष्णुं दध्यन्नेन यजेद् बुधः।
पुत्रमित्रकलत्रादिपुष्टिर्भवति सर्वदा॥ ३१

आयुष्कामो गुरोर्वारे देवानां पुष्टिसिद्धये।
उपवीतेन वस्त्रेण क्षीराज्येन यजेद् बुधः॥ ३२

विद्वान् पुरुष बुधवारको दधियुक्त अन्नसे भगवान् विष्णुका पूजन करे—ऐसा करनेसे सदा पुत्र, मित्र और स्त्री आदिकी पुष्टि होती है। जो दीर्घायु होनेकी इच्छा रखता हो, वह गुरुवारको देवताओंकी पुष्टिके लिये वस्त्र, यज्ञोपवीत तथा घृतमिश्रित खीरसे यजन-पूजन करे॥ ३१-३२॥

भोगार्थं भृगुवारे तु यजेद् देवान्समाहितः।
षड्रसोपेतमन्नं च दद्याद् ब्राह्मणतृप्तये॥ ३३

स्त्रीणां च तृप्तये तद्वद् देयं वस्त्रादिकं शुभम्।
अपमृत्युहरे मन्दे रुद्रादींश्च यजेद् बुधः॥ ३४

तिलहोमेन दानेन तिलान्नेन च भोजयेत्।
इत्थं यजेच्च विबुधानारोग्यादिफलं लभेत्॥ ३५

भोगोंकी प्राप्तिके लिये शुक्रवारको एकाग्रचित्त होकर देवताओंका पूजन करे और ब्राह्मणोंकी तृप्तिके लिये षड्रसयुक्त अन्नका दान करे। इसी प्रकार स्त्रियोंकी प्रसन्नताके लिये सुन्दर वस्त्र आदिका दान करे। शनैश्चर अपमृत्युका निवारण करनेवाला है, उस दिन बुद्धिमान् पुरुष रुद्र आदिकी पूजा करे। तिलके होमसे, दानसे देवताओंको सन्तुष्ट करके ब्राह्मणोंको तिलमिश्रित अन्न भोजन कराये। जो इस तरह देवताओंकी पूजा करेगा, वह आरोग्य आदि फलका भागी होगा॥ ३३—३५॥

देवानां नित्ययजने विशेषयजनेऽपि च।
स्नाने दाने जपे होमे ब्राह्मणानां च तर्पणे॥ ३६
तिथिनक्षत्रयोगे च तत्तद्देवप्रपूजने।
आदिवारादिवारेषु सर्वज्ञो जगदीश्वरः॥ ३७
तत्तद्रूपेण सर्वेषामारोग्यादिफलप्रदः।
देशकालानुसारेण तथा पात्रानुसारतः॥ ३८
द्रव्यं श्रद्धानुसारेण तथा लोकानुसारतः।
तारतम्यक्रमाद् देवस्त्वारोग्यादीन्प्रयच्छति ॥ ३९

देवताओंके नित्य-पूजन, विशेष-पूजन, स्नान, दान, जप, होम तथा ब्राह्मण-तर्पण आदिमें एवं रवि आदि वारोंमें विशेष तिथि और नक्षत्रोंका योग प्राप्त होनेपर विभिन्न देवताओंके पूजनमें सर्वज्ञ जगदीश्वर भगवान् शिव ही उन-उन देवताओंके रूपमें पूजित होकर सब लोगोंको आरोग्य आदि फल प्रदान करते हैं। देश, काल, पात्र, द्रव्य, श्रद्धा एवं लोकके अनुसार उनके तारतम्य क्रमका ध्यान रखते हुए महादेवजी आराधना करनेवाले लोगोंको आरोग्य आदि फल देते हैं॥ ३६—३९ ॥

शुभादावशुभान्ते च जन्मर्क्षेषु गृहे गृही।
आरोग्यादिसमृद्ध्यर्थमादित्यादीन्ग्रहान्यजेत् ॥ ४०

तस्माद्वै देवयजनं सर्वाभीष्टफलप्रदम्।
समन्त्रकं ब्राह्मणानामन्येषां चैव तान्त्रिकम्॥ ४१

यथाशक्त्यनुरूपेण कर्तव्यं सर्वदा नरैः।
सप्तस्वपि च वारेषु नरैः शुभफलेप्सुभिः॥ ४२

शुभ (मांगलिक कर्म)-के आरम्भमें और अशुभ (अन्त्येष्टि आदि कर्म)-के अन्तमें तथा जन्म-नक्षत्रोंके आनेपर गृहस्थ पुरुष अपने घरमें आरोग्य आदिकी समृद्धिके लिये सूर्य आदि ग्रहोंका पूजन करे। इससे सिद्ध है कि देवताओंका यजन सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है। ब्राह्मणोंका देवयजन कर्म वैदिक मन्त्रके साथ होना चाहिये [यहाँ ब्राह्मण शब्द क्षत्रिय और वैश्यका भी उपलक्षण है]। शूद्र आदि दूसरोंका देवयज्ञ तान्त्रिक विधिसे होना चाहिये। शुभ फलकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंको सातों ही दिन अपनी शक्तिके अनुसार सदा देवपूजन करना चाहिये॥ ४०—४२ ॥

दरिद्रस्तपसा देवान्यजेदाढ्यो धनेन हि।
पुनश्चैवंविधं धर्मं कुरुते श्रद्धया सह॥ ४३

पुनश्च भोगान्विविधान्भुक्त्वा भूमौ प्रजायते।
छायां जलाशयं ब्रह्मप्रतिष्ठां धर्मसञ्चयम्॥ ४४

सर्वं च वित्तवान्कुर्यात्सदा भोगप्रसिद्धये।
कालाच्च पुण्यपाकेन ज्ञानसिद्धिः प्रजायते॥ ४५

य इमं शृणुतेऽध्यायं पठते वा नरो द्विजाः।
श्रवणस्योपकर्ता च देवयज्ञफलं लभेत्॥ ४६

निर्धन मनुष्य तपस्या (व्रत आदिके कष्ट-सहन)-द्वारा और धनी धनके द्वारा देवताओंकी आराधना करे। वह बार-बार श्रद्धापूर्वक इस तरहके धर्मका अनुष्ठान करता है और बारम्बार पुण्यलोकोंमें नाना प्रकारके फल भोगकर पुनः इस पृथ्वीपर जन्म ग्रहण करता है। धनवान् पुरुष सदा भोगसिद्धिके लिये मार्गमें वृक्ष आदि लगाकर लोगोंके लिये छायाकी व्यवस्था करे, जलाशय (कुआँ, बावली और पोखरे) बनवाये, वेद-शास्त्रोंकी प्रतिष्ठाके लिये पाठशालाका निर्माण करे तथा अन्यान्य प्रकारसे भी धर्मका संग्रह करता रहे। समयानुसार पुण्यकर्मोंके परिपाकसे [अन्तःकरण शुद्ध होनेपर] ज्ञानकी सिद्धि हो जाती है। द्विजो! जो इस अध्यायको सुनता, पढ़ता, अथवा दूसरोंको सुनाता है, उसे देवयज्ञका फल प्राप्त होता है॥ ४३—४६ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां अग्नियज्ञादिवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें अग्नियज्ञ आदिका वर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

देश, काल, पात्र और दान आदिका विचार

ऋषय ऊचुः

देशादीन्क्रमशो ब्रूहि सूत सर्वार्थवित्तम।

ऋषिगण बोले—समस्त पदार्थोंके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ हे सूतजी! अब आप क्रमशः देश, काल आदिका वर्णन करें॥ १/२ ॥

सूत उवाच

शुद्धं गृहं समफलं देवयज्ञादिकर्मसु॥ १

ततो दशगुणं गोष्ठं जलतीरं ततो दश।
ततो दशगुणं बिल्वतुलस्यश्वत्थमूलकम्॥ २

सूतजी बोले—हे महर्षियो! देवयज्ञ आदि कर्मोंमें अपना शुद्ध गृह समान फल देनेवाला होता है अर्थात् अपने घरमें किये हुए देवयज्ञ आदि शास्त्रोक्त कर्म फलको सममात्रामें देनेवाले होते हैं। गोशालाका स्थान घरकी अपेक्षा दसगुना फल देता है। जलाशयका तट उससे भी दसगुना महत्त्व रखता है तथा जहाँ बेल, तुलसी एवं पीपलवृक्षका मूल निकट हो, वह स्थान जलाशयसे भी दस गुना अधिक फल देनेवाला होता है॥ १-२ ॥

ततो देवालयं विद्यात्तीर्थतीरं ततो दश।
ततो दशगुणं नद्यास्तीर्थनद्यास्ततो दश॥ ३

सप्तगङ्गानदीतीर्थं तस्या दशगुणं भवेत्।
गङ्गा गोदावरी चैव कावेरी ताम्रपर्णिका॥ ४

सिन्धुश्च सरयू रेवा सप्त गङ्गाः प्रकीर्तिताः।
ततोऽब्धितीरे दश च पर्वताग्रे ततो दश॥ ५

सर्वस्मादधिकं ज्ञेयं यत्र वा रोचते मनः।

देवालयको उससे भी दस गुना महत्त्वका स्थान जानना चाहिये। तीर्थभूमिका तट देवालयसे भी दस गुना महत्त्व रखता है और उससे दसगुना श्रेष्ठ है नदीका किनारा। उससे दस गुना उत्कृष्ट है तीर्थनदीका तट और उससे भी दस गुना महत्त्व रखता है सप्तगंगा नामक नदियोंका तीर्थ। गंगा, गोदावरी, कावेरी, ताम्रपर्णी, सिन्धु, सरयू और नर्मदा—इन सात नदियोंको सप्तगंगा कहा गया है। समुद्रके तटका स्थान इनसे भी दस गुना अधिक पवित्र माना गया है और पर्वतके शिखरका प्रदेश समुद्रतटसे भी दस गुना पावन है। सबसे अधिक महत्त्वका वह स्थान जानना चाहिये, जहाँ मन लग जाय [यहाँतक देशका वर्णन हुआ, अब कालका तारतम्य बताया जाता है—]॥ ३—५१/२ ॥

कृते पूर्णफलं ज्ञेयं यज्ञदानादिकं तथा॥ ६

त्रेतायुगे त्रिपादं च द्वापरेऽर्धं सदा स्मृतम्।
कलौ पादं तु विज्ञेयं तत्पादोनं ततोऽर्धके॥ ७

सत्ययुगमें यज्ञ, दान आदि कर्म पूर्ण फल देनेवाले होते हैं—ऐसा जानना चाहिये। त्रेतायुगमें उसका तीन चौथाई फल मिलता है। द्वापरमें सदा आधे ही फलकी प्राप्ति कही गयी है। कलियुगमें एक चौथाई ही फलकी प्राप्ति समझनी चाहिये और आधा कलियुग बीतनेपर उस फलमेंसे भी एक चतुर्थांश कम हो जाता है॥ ६-७ ॥

शुद्धात्मनः शुद्धदिने पुण्यं समफलं विदुः।
तस्माद् दशगुणं ज्ञेयं रविसङ्क्रमणे बुधाः॥ ८

विषुवे तद्दशगुणमयने तद्दश स्मृतम्।
तद्दश मृगसङ्क्रान्तौ तच्चन्द्रग्रहणे दश॥ ९

ततश्च सूर्यग्रहणे पूर्णं कालोत्तमे विदुः।
जगद्रूपस्य सूर्यस्य विषयोगाच्च रोगदम्॥ १०

अतस्तद्विषशान्त्यर्थं स्नानदानजपांश्चरेत्।
विषशान्त्यर्थकालत्वात्स कालः पुण्यदः स्मृतः॥ ११

शुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुषको शुद्ध एवं पवित्र दिन सम फल देनेवाला होता है। हे विद्वान् ब्राह्मणो! सूर्य-संक्रान्तिके दिन किया हुआ सत्कर्म पूर्वोक्त शुद्ध दिनकी अपेक्षा दस गुना फल देनेवाला होता है—यह जानना चाहिये। उससे भी दस गुना अधिक महत्त्व उस कर्मका है, जो विषुव* नामक योगमें किया जाता है। दक्षिणायन आरम्भ होनेके दिन अर्थात् कर्ककी संक्रान्तिमें किये हुए पुण्यकर्मका महत्त्व विषुवसे भी दस गुना अधिक माना गया है। उससे भी दसगुना अधिक मकर-संक्रान्तिमें और उससे भी दस गुना अधिक चन्द्रग्रहणमें किये हुए पुण्यका महत्त्व है। सूर्यग्रहणका समय सबसे उत्तम है। उसमें किये गये पुण्यकर्मका फल चन्द्रग्रहणसे भी अधिक और पूर्णमात्रामें होता है—इस बातको विज्ञ पुरुष जानते हैं। जगद्रूपी सूर्यका राहुरूपी विषसे संयोग होता है, इसलिये सूर्यग्रहणका समय रोग प्रदान करनेवाला है। अतः उस विषकी शान्तिके लिये उस समय स्नान, दान और जप करना चाहिये। वह काल विषकी शान्तिके लिये उपयोगी होनेके कारण पुण्यप्रद माना गया है॥ ८—११ ॥

जन्मर्क्षे च व्रतान्ते च सूर्यरागोपमं विदुः।
महतां सङ्गकालश्च कोट्यर्कग्रहणं विदुः॥ १२

जन्म-नक्षत्रके दिन तथा व्रतकी पूर्तिके दिनका समय सूर्यग्रहणके समान ही समझा जाता है। परंतु महापुरुषोंके संगका काल करोड़ों सूर्यग्रहणके समान पावन है—ऐसा ज्ञानी पुरुष मानते हैं॥ १२ ॥

तपोनिष्ठा ज्ञाननिष्ठा योगिनो यतयस्तथा।
पूजायाः पात्रमेते हि पापसङ्क्षयकारणम्॥ १३

चतुर्विंशतिलक्षं वा गायत्र्या जपसंयुतः।
ब्राह्मणस्तु भवेत्पात्रं सम्पूर्णफलभोगदम्॥ १४

पतनात्त्रायत इति पात्रं शास्त्रे प्रयुज्यते।
दातुश्च पातकात्त्राणात्पात्रमित्यभिधीयते॥ १५

तपोनिष्ठ योगी और ज्ञाननिष्ठ यति—ये पूजाके पात्र हैं; क्योंकि ये पापोंके नाशमें कारण होते हैं। जिसने चौबीस लाख गायत्रीका जप कर लिया हो, वह ब्राह्मण भी पूजाका पात्र है; उसका पूजन सम्पूर्ण फलों और भोगोंको देनेमें समर्थ है। जो पतनसे त्राण करता अर्थात् नरकमें गिरनेसे बचाता है, उसके लिये [इसी गुणके कारण शास्त्रमें] पात्र शब्दका प्रयोग होता है। वह दाताको पापसे त्राण प्रदान करनेके कारण पात्र कहलाता है॥ १३—१५ ॥

---

* ज्योतिषके अनुसार वह समय जबकि सूर्य विषुव रेखापर पहुँचता है और दिन तथा रात दोनों बराबर होते हैं। यह वर्षमें दो बार आता है—एक तो सौर चैत्रमासकी नवमी तिथि या अँगरेजी दिनांक २१ मार्चको और दूसरा आश्विनकी नवमी तिथि या अँगरेजी दिनांक २२ सितम्बरको।

गायकं त्रायते पाताद्गायत्रीत्युच्यते हि सा।
यथार्थहीनो लोकेऽस्मिन्परस्यार्थं न यच्छति॥ १६

अर्थवानिह यो लोके परस्यार्थं प्रयच्छति।
स्वयं शुद्धो हि पूतात्मा नरान्सन्त्रातुमर्हति॥ १७

गायत्रीजपशुद्धो हि शुद्धब्राह्मण उच्यते।
तस्माद् दाने जपे होमे पूजायां सर्वकर्मणि॥ १८

दानं कर्तुं तथा त्रातुं पात्रत्वं ब्राह्मणोऽर्हति।

गायत्री अपना गान करनेवालेका अधोगतिसे त्राण करती है, इसलिये वह गायत्री कहलाती है। जैसे इस लोकमें जो धनहीन है, वह दूसरेको धन नहीं दे सकता—जो यहाँ धनवान् है, वही दूसरेको धन दे सकता है, उसी तरह जो स्वयं शुद्ध और पवित्रात्मा है, वही दूसरे मनुष्योंका त्राण या उद्धार कर सकता है। जो गायत्रीका जप करके शुद्ध हो गया है, वही शुद्ध ब्राह्मण कहा जाता है। इसलिये दान, जप, होम, पूजा—इन सभी कर्मोंके लिये वही शुद्ध पात्र है। ऐसा ब्राह्मण ही दान लेने तथा रक्षा करनेकी पात्रता रखता है॥ १६—१८½॥

अन्नस्य क्षुधितं पात्रं नारीनरमयात्मकम्॥ १९

ब्राह्मणं श्रेष्ठमाहूय यत्काले सुसमाहितम्।
तदर्थं शब्दमर्थं वा सद्बोधकमभीष्टदम्॥ २०

इच्छावतः प्रदानं च सम्पूर्णफलदं विदुः।
यत्प्रश्नानन्तरं दत्तं तदर्धफलदं विदुः॥ २१

यत्सेवकाय दत्तं स्यात्तत्पादफलदं विदुः।
जातिमात्रस्य विप्रस्य दीनवृत्तेर्द्विजर्षभाः॥ २२

दत्तमर्थं हि भोगाय भूर्लोके दशवार्षिकम्।
वेदयुक्तस्य विप्रस्य स्वर्गे हि दशवार्षिकम्॥ २३

स्त्री हो या पुरुष—जो भी भूखा हो, वही अन्नदानका पात्र है। श्रेष्ठ ब्राह्मणको समयपर बुलाकर उसे धन अथवा उत्तम वाणीसे सन्तुष्ट करना चाहिये, इससे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। जिसको जिस वस्तुकी इच्छा हो, उसे वह वस्तु बिना माँगे ही दे दी जाय, तो दाताको उस दानका पूरा-पूरा फल प्राप्त होता है—ऐसी महर्षियोंकी मान्यता है। जो याचना करनेके बाद दिया गया हो, वह दान आधा ही फल देनेवाला बताया गया है। अपने सेवकको दिया हुआ दान एक चौथाई फल देनेवाला कहा गया है। हे विप्रवरो! जो जातिमात्रसे ब्राह्मण है और दीनतापूर्ण वृत्तिसे जीवन बिताता है, उसे दिया हुआ धनका दान दाताको इस भूतलपर दस वर्षोंतक भोग प्रदान करनेवाला होता है। वही दान यदि वेदवेत्ता ब्राह्मणको दिया जाय, तो वह स्वर्गलोकमें देवताओंके दस वर्षोंतक दिव्य भोग देनेवाला होता है॥ १९—२३॥

गायत्रीजपयुक्तस्य सत्ये हि दशवार्षिकम्।
विष्णुभक्तस्य विप्रस्य दत्तं वैकुण्ठदं विदुः॥ २४

शिवभक्तस्य विप्रस्य दत्तं कैलासदं विदुः।
तत्तल्लोकोपभोगार्थं सर्वेषां दानमिष्यते॥ २५

गायत्री-जापक ब्राह्मणको दान देनेसे सत्यलोकमें दस वर्षोंतक पुण्यभोग प्राप्त होता है और विष्णुभक्त ब्राह्मणको दिया गया दान वैकुण्ठकी प्राप्ति करानेवाला जाना जाता है। शिवभक्त विप्रको दिया हुआ दान कैलासकी प्राप्ति कराने वाला कहा गया है। इस प्रकार सबको इन लोकोंमें भोगप्राप्तिके लिये दान देना चाहिये॥ २४-२५॥

दशाङ्गमन्नं विप्रस्य भानुवारे ददन्नरः।
परजन्मनि चारोग्यं दशवर्षं समश्नुते॥ २६

बहुमानमथाह्वानमभ्यङ्गं पादसेवनम्।
वासो गन्धाद्यर्चनं च घृतापूपरसोत्तरम्॥ २७

षड्रसं व्यञ्जनं चैव ताम्बूलं दक्षिणोत्तरम्।
नमश्चानुगमश्चैव स्वन्नदानं दशाङ्गकम्॥ २८

दशाङ्गमन्नं विप्रेभ्यो दशभ्यो वै ददन्नरः।
अर्कवारे तथारोग्यं शतवर्षं समश्नुते॥ २९

सोमवारादिवारेषु तत्तद्वारगुणं फलम्।
अन्नदानस्य विज्ञेयं भूर्लोके परजन्मनि॥ ३०

सप्तस्वपि च वारेषु दशभ्यश्च दशाङ्गकम्।
अन्नं दत्त्वा शतं वर्षमारोग्यादिकमश्नुते॥ ३१

एवं शतेभ्यो विप्रेभ्यो भानुवारे ददन्नरः।
सहस्रवर्षमारोग्यं शर्वलोके समश्नुते॥ ३२

सहस्रेभ्यस्तथा दत्त्वाऽयुतवर्षं समश्नुते।
एवं सोमादिवारेषु विज्ञेयं हि विपश्चिता॥ ३३

भानुवारे सहस्राणां गायत्रीपूतचेतसाम्।
अन्नं दत्त्वा सत्यलोके ह्यारोग्यादि समश्नुते॥ ३४

अयुतानां तथा दत्त्वा विष्णुलोके समश्नुते।
अन्नं दत्त्वा तु लक्षाणां रुद्रलोके समश्नुते॥ ३५

बालानां ब्रह्मबुद्ध्या हि देयं विद्यार्थिभिर्नरैः।
यूनां च विष्णुबुद्ध्या हि पुत्रकामार्थिभिर्नरैः॥ ३६

वृद्धानां रुद्रबुद्ध्या हि देयं ज्ञानार्थिभिर्नरैः।
बालस्त्री भारतीबुद्ध्या बुद्धिकामैर्नरोत्तमैः॥ ३७

लक्ष्मीबुद्ध्या युवस्त्रीषु भोगकामैर्नरोत्तमैः।
वृद्धासु पार्वतीबुद्ध्या देयमात्मार्थिभिर्जनैः॥ ३८

रविवारके दिन ब्राह्मणको दशांग अन्न देनेवाला मनुष्य दूसरे जन्ममें दस वर्षोंतक निरोग रहता है। बहुत सम्मानपूर्वक बुलाना, अभ्यंग (चन्दन आदि), पादसेवन, वस्त्र, गन्ध आदिसे पूजन, घीके मालपुए आदि सुन्दर भोजन, छहों रस, व्यंजन, दक्षिणासहित ताम्बूल, नमस्कार और (जाते समय) अनुगमन—ये अन्नदानके दस अंग कहे गये हैं॥ २६—२८॥

दस ब्राह्मणोंको रविवारके दिन दशांग अन्नका दान करनेवाला सौ वर्षतक निरोग रहता है। सोमवार आदि विभिन्न वारोंमें अन्नदानका फल उन-उन वारोंके अनुसार दूसरे जन्ममें इस पृथ्वीलोकमें प्राप्त होता है—ऐसा जानना चाहिये। सातों वारोंमें दस-दस ब्राह्मणोंको दशांग अन्नदान करनेसे सौ वर्षतक आरोग्यादि फल प्राप्त होते हैं। इस प्रकार रविवारके दिन ब्राह्मणोंको अन्नदान करने वाला मनुष्य हजार वर्षोंतक शिवलोकमें आरोग्यलाभ करता है। इसी प्रकार हजार ब्राह्मणोंको अन्नदान करके मनुष्य दस हजार वर्षोंतक आरोग्यभोग करता है। विद्वान्‌को सोमवार आदि दिनोंके विषयमें भी ऐसा ही जानना चाहिये॥ २९—३३॥

रविवारको गायत्रीजपसे पवित्र अन्तःकरणवाले एक हजार ब्राह्मणोंको अन्नदान करके मनुष्य सत्यलोकमें आरोग्यादि भोगोंको प्राप्त करता है। इसी प्रकार दस हजार ब्राह्मणोंको दान देनेसे विष्णुलोकमें ऐसी प्राप्ति होती है और एक लाख ब्राह्मणोंको अन्नदान करनेसे रुद्रलोकमें भोगादिकी प्राप्ति होती है॥ ३४-३५॥

विद्याकी कामनावाले मनुष्योंको ब्रह्मबुद्धिसे बालकोंको दशांग अन्नका दान करना चाहिये, पुत्रकी कामनावाले लोगोंको विष्णुबुद्धिसे युवकोंको दान करना चाहिये और ज्ञानप्राप्तिकी इच्छावालोंको रुद्रबुद्धिसे वृद्धजनोंको दान देना चाहिये। इसी प्रकार बुद्धिकी कामना करनेवाले श्रेष्ठ मनुष्योंको सरस्वतीबुद्धिसे बालिकाओंको दशांग अन्नका दान करना चाहिये। सुखभोगकी कामनावाले श्रेष्ठजनोंको लक्ष्मीबुद्धिसे युवतियोंको दान देना चाहिये। आत्मज्ञानकी इच्छावाले लोगोंको पार्वतीबुद्धिसे वृद्धा स्त्रियोंको अन्नदान करना चाहिये॥ ३६—३८॥

शिलवृत्त्योञ्छवृत्त्या च गुरुदक्षिणयार्जितम्।
शुद्धद्रव्यमिति प्राहुस्तत्पूर्णफलदं विदुः॥ ३९

ब्राह्मणके लिये शिल तथा उञ्छ* वृत्तिसे लाया हुआ और गुरुदक्षिणामें प्राप्त हुआ अन्न-धन शुद्ध द्रव्य कहलाता है; उसका दान दाताको पूर्ण फल देनेवाला बताया गया है॥ ३९॥

शुक्लप्रतिग्रहाद्दत्तं मध्यमं द्रव्यमुच्यते।
कृषिवाणिज्यकोपेतमधमं द्रव्यमुच्यते॥ ४०

शुद्ध (शुक्ल) प्रतिग्रह (दान)-में मिला हुआ द्रव्य मध्यम द्रव्य कहा जाता है और खेती, व्यापार आदिसे प्राप्त धन अधम द्रव्य कहा जाता है॥ ४०॥

क्षत्रियाणां विशां चैव शौर्यवाणिज्यकार्जितम्।
उत्तमं द्रव्यमित्याहुः शूद्राणां भृतकार्जितम्॥ ४१

स्त्रीणां धर्मार्थिनां द्रव्यं पैतृकं भर्तृकं तथा।

क्षत्रियोंका शौर्यसे कमाया हुआ, वैश्योंका व्यापारसे कमाया हुआ और शूद्रोंका सेवावृत्तिसे प्राप्त किया हुआ धन भी उत्तम द्रव्य कहलाता है। धर्मकी इच्छा रखनेवाली स्त्रियोंको जो धन पिता एवं पतिसे मिला हुआ हो, उनके लिये वह उत्तम द्रव्य है॥ ४१$^{1}/_{2}$॥

गवादीनां द्वादशानां चैत्रादिषु यथाक्रमम्॥ ४२

सम्भूय वा पुण्यकाले दद्यादिष्टसमृद्धये।
गोभूतिलहिरण्याज्यवासोधान्यगुडानि च॥ ४३

रौप्यं लवणकूष्माण्डं कन्या द्वादशकं तथा।

गौ आदि बारह वस्तुओंका चैत्र आदि बारह महीनोंमें क्रमशः दान करना चाहिये अथवा किसी पुण्यकालमें एकत्रित करके अपनी अभीष्ट प्राप्तिके लिये इनका दान करना चाहिये। गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, घी, वस्त्र, धान्य, गुड़, चाँदी, नमक, कोंहड़ा और कन्या—ये ही वे बारह वस्तुएँ हैं॥ ४२-४३$^{1}/_{2}$॥

गोदानाद्दत्तगव्येन गोमयेनोपकारिणा॥ ४४

धनधान्याद्याश्रितानां दुरितानां निवारणम्।
जलस्नेहाद्याश्रितानां दुरितानां तु गोजलैः॥ ४५

कायिकादित्रयाणां तु क्षीरदध्याज्यकैस्तथा।
तथा तेषां च पुष्टिश्च विज्ञेया हि विपश्चिता॥ ४६

गोदानमें दी हुई गायके उपकारी गोबरसे धन-धान्यादि ठोस पदार्थोंके आश्रयसे टिके पापोंका नाश होता है और उसके गोमूत्रसे जल-तेल आदि तरल पदार्थोंमें रहनेवाले पापोंका नाश होता है। उसके दूध-दही और घीसे कायिक, वाचिक तथा मानसिक तीनों प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं। उनसे कायिक आदि पुण्यकर्मोंकी पुष्टि भी होती है—ऐसा बुद्धिमान् मनुष्यको जानना चाहिये॥ ४४—४६॥

भूदानं तु प्रतिष्ठार्थमिह चामुत्र च द्विजाः।
तिलदानं बलार्थं हि सदा मृत्युजयं विदुः॥ ४७

हे ब्राह्मणो! भूमिका दान इहलोक और परलोकमें प्रतिष्ठा (आश्रय)-की प्राप्ति करानेवाला है। तिलका दान बलवर्धक एवं मृत्युका निवारक कहा गया है।

* किसानके द्वारा खेतमें बोये हुए अन्नको काटकर ले जानेके बाद उनसे गिरे हुए एक-एक दानेको दोनों अंगुलियोंसे चुनने (उठाने)-को 'उञ्छ' तथा उक्त खेतमें एक-एक बाल (धान्यके गुच्छों)-को चुननेको 'शिल' कहते हैं—'उञ्छो धान्यकणादानं कणिशाद्यर्जनं शिलम्।' मनुस्मृतिके टीकाकार आचार्य श्रीराघवानन्दजीने बाजार आदिमें क्रय-विक्रयके अनन्तर गिरे हुए अन्नके दानोंके चुननेको 'उञ्छ' और खेत कट जानेके बाद खेतमें पड़े हुए धान्यादिकी बालोंको बीनना 'शिल' कहा है। (मनु० ४।५ की व्याख्या)

हिरण्यं जाठराग्नेस्तु वृद्धिदं वीर्यदं तथा।
आज्यं पुष्टिकरं विद्याद्वस्त्रमायुष्करं विदुः॥ ४८

धान्यमन्नसमृद्ध्यर्थं मधुराहारदं गुडम्।
रौप्यं रेतोऽभिवृद्ध्यर्थं षड्रसार्थं तु लावणम्॥ ४९

सर्वं सर्वसमृद्ध्यर्थं कूष्माण्डं पुष्टिदं विदुः।
प्राप्तिदं सर्वभोगानामिह चामुत्र च द्विजाः॥ ५०

यावज्जीवनमुक्तं हि कन्यादानं तु भोगदम्।

सुवर्णका दान जठराग्निको बढ़ानेवाला तथा वीर्यदायक है। घीके दानको पुष्टिकारक जानना चाहिये। वस्त्रका दान आयुकी वृद्धि करानेवाला है—ऐसा जानना चाहिये। धान्यका दान अन्नकी समृद्धिमें कारण होता है। गुड़का दान मधुर भोजनकी प्राप्ति करानेवाला होता है। चाँदीके दानसे वीर्यकी वृद्धि होती है। लवणका दान षड्रस भोजनकी प्राप्ति कराता है। सब प्रकारका दान सम्पूर्ण समृद्धिकी सिद्धिके लिये होता है। विज्ञ पुरुष कूष्माण्डके दानको पुष्टिदायक मानते हैं। कन्याका दान आजीवन भोग देनेवाला कहा गया है। हे ब्राह्मणो! वह लोक और परलोकमें भी सम्पूर्ण भोगोंकी प्राप्ति करानेवाला है॥ ४७—५० १/२ ॥

पनसाम्रकपित्थानां वृक्षाणां फलमेव च॥ ५१
कदल्याद्यौषधीनां च फलं गुल्मोद्भवं तथा।
माषादीनां च मुद्गानां फलं शाकादिकं तथा॥ ५२
मरीचिसर्षपाद्यानां शाकोपकरणं तथा।
यदृतौ यत्फलं सिद्धं तद्देयं हि विपश्चिता॥ ५३

कटहल-आम, कैथ आदि वृक्षोंके फल, केला आदि ओषधियोंके फल तथा जो फल लता एवं गुल्मोंसे उत्पन्न हुए हों, मुष्ट (आवरणयुक्त) फल जैसे—नारियल, बादाम आदि, उड़द, मूँग आदि दालें, शाक, मिर्च, सरसों आदि, तेल-मसाले और ऋतुओंमें तैयार होनेवाले फल समय-समयपर बुद्धिमान् व्यक्तिद्वारा दान किये जाने चाहिये॥ ५१—५३ ॥

श्रोत्रादीन्द्रियतृप्तिश्च सदा देया विपश्चिता।
शब्दादिदशभोगार्थं दिगादीनां च तुष्टिदा॥ ५४

वेदशास्त्रं समादाय बुद्ध्वा गुरुमुखात्स्वयम्।
कर्मणां फलमस्तीति बुद्धिरास्तिक्यमुच्यते॥ ५५

बन्धुराजभयाद् बुद्धिः श्रद्धा सा च कनीयसी।

विद्वान् पुरुषको चाहिये कि जिन वस्तुओंसे श्रवण आदि इन्द्रियोंकी तृप्ति होती है, उनका सदा दान करे। श्रोत्र आदि दस इन्द्रियोंके जो शब्द आदि दस विषय हैं, उनका दान किया जाय, तो वे भोगोंकी प्राप्ति कराते हैं तथा दिशा आदि इन्द्रिय देवताओंको* सन्तुष्ट करते हैं। वेद और शास्त्रको गुरुमुखसे ग्रहण करके गुरुके उपदेशसे अथवा स्वयं ही बोध प्राप्त करनेके पश्चात् जो बुद्धिका यह निश्चय होता है कि 'कर्मोंका फल अवश्य मिलता है', इसीको उच्चकोटिकी 'आस्तिकता' कहते हैं। भाई-बन्धु अथवा राजाके भयसे जो आस्तिकता-बुद्धि या श्रद्धा होती है, वह कनिष्ठ श्रेणीकी आस्तिकता है॥ ५४-५५ १/२ ॥

---

* श्रवणेन्द्रियके देवता दिशाएँ, नेत्रके सूर्य, नासिकाके अश्विनीकुमार, रसनेन्द्रियके वरुण, त्वगिन्द्रियके वायु, वागिन्द्रियके अग्नि, लिंगके प्रजापति, गुदाके मित्र, हाथोंके इन्द्र और पैरोंके देवता विष्णु हैं।

सर्वाभावे दरिद्रस्तु वाचा वा कर्मणा यजेत्॥ ५६

वाचिकं यजनं विद्यान्मन्त्रस्तोत्रजपादिकम्।
तीर्थयात्रा व्रताद्यं हि कायिकं यजनं विदुः॥ ५७

येन केनाप्युपायेन ह्यल्पं वा यदि वा बहु।
देवतार्पणबुद्ध्या च कृतं भोगाय कल्पते॥ ५८

जो सर्वथा दरिद्र है, जिसके पास सभी वस्तुओंका अभाव है, वह वाणी अथवा कर्म (शरीर)-द्वारा यजन करे। मन्त्र, स्तोत्र और जप आदिको वाणीद्वारा किया गया यजन समझना चाहिये तथा तीर्थयात्रा और व्रत आदिको विद्वान् पुरुष शारीरिक यजन मानते हैं। जिस किसी भी उपायसे थोड़ा हो या बहुत, देवतार्पण-बुद्धिसे जो कुछ भी दिया अथवा किया जाय, वह दान या सत्कर्म भोगोंकी प्राप्ति करानेमें समर्थ होता है॥ ५६—५८॥

तपश्चर्या च दानं च कर्तव्यमुभयं सदा।
प्रतिश्रयं प्रदातव्यं स्ववर्णं गुणशोभितम्॥ ५९

देवानां तृप्तयेऽत्यर्थं सर्वभोगप्रदं बुधैः।
इहामुत्रोत्तमं जन्म सदा भोगं लभेद् बुधः।
ईश्वरार्पणबुद्ध्या हि कृत्वा मोक्षफलं लभेत्॥ ६०

तपस्या और दान—ये दो कर्म मनुष्यको सदा करने चाहिये तथा ऐसे गृहका दान करना चाहिये, जो अपने वर्ण (चमक-दमक या सफाई) और गुण (सुख-सुविधा)-से सुशोभित हो। बुद्धिमान् पुरुष देवताओंकी तृप्तिके लिये जो कुछ देते हैं, वह अतिशय मात्रामें और सब प्रकारके भोग प्रदान करनेवाला होता है। उस दानसे विद्वान् पुरुष इहलोक और परलोकमें उत्तम जन्म और सदा सुलभ होनेवाला भोग पाता है। ईश्वरार्पण-बुद्धिसे यज्ञ, दान आदि कर्म करके मनुष्य मोक्ष-फलका भागी होता है॥ ५९-६०॥

य इमं पठतेऽध्यायं यः शृणोति सदा नरः।
तस्य वै धर्मबुद्धिश्च ज्ञानसिद्धिः प्रजायते॥ ६१

जो मनुष्य इस अध्यायका सदा पाठ अथवा श्रवण करता है, उसे धार्मिक बुद्धि प्राप्त होती है तथा उसमें ज्ञानका उदय होता है॥ ६१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां देशकालपात्रादिवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें देश-काल-पात्र आदिका वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

मृत्तिका आदिसे निर्मित देवप्रतिमाओंके पूजनकी विधि, उनके लिये नैवेद्यका विचार, पूजनके विभिन्न उपचारोंका फल, विशेष मास, वार, तिथि एवं नक्षत्रोंके योगमें पूजनका विशेष फल तथा लिंगके वैज्ञानिक स्वरूपका विवेचन

ऋषय ऊचुः

पार्थिवप्रतिमापूजाविधानं ब्रूहि सत्तम।
येन पूजाविधानेन सर्वाभीष्टमवाप्यते॥ १

ऋषिगण बोले—हे साधुशिरोमणे! अब आप पार्थिव प्रतिमाकी पूजाका वह विधान बताइये, जिस पूजा-विधानसे समस्त अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति होती है॥ १॥

सूत उवाच

सुसाधु पृष्टं युष्माभिः सदा सर्वार्थदायकम्।
सद्यो दुःखस्य शमनं शृणुत प्रब्रवीमि वः॥ २

सूतजी बोले—हे महर्षियो! तुमलोगोंने बहुत उत्तम बात पूछी है। पार्थिव प्रतिमाका पूजन सदा सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है तथा दुःखका तत्काल निवारण करनेवाला है। मैं उसका वर्णन करता हूँ, [ध्यान देकर] सुनिये॥ २॥

अपमृत्युहरं कालमृत्योश्चापि विनाशनम्।
सद्यः कलत्रपुत्रादिधनधान्यप्रदं द्विजाः॥ ३

अन्नादिभोज्यं वस्त्रादि सर्वमुत्पद्यते यतः।
ततो मृदादिप्रतिमापूजाभीष्टप्रदा भुवि॥ ४

पुरुषाणां च नारीणामधिकारोऽत्र निश्चितम्।

हे द्विजो! यह पूजा अकाल मृत्युको हरनेवाली तथा काल और मृत्युका भी नाश करनेवाली है। यह शीघ्र ही स्त्री, पुत्र और धन-धान्यको प्रदान करनेवाली है। इसलिये पृथ्वी आदिकी बनी हुई देवप्रतिमाओंकी पूजा इस भूतलपर अभीष्टदायक मानी गयी है; निश्चय ही इसमें पुरुषोंका और स्त्रियोंका भी अधिकार है॥ ३-४१/२॥

नद्यां तडागे कूपे वा जलान्तर्मृदमाहरेत्॥ ५

संशोध्य गन्धचूर्णेन पेषयित्वा सुमण्डपे।
हस्तेन प्रतिमां कुर्यात्क्षीरेण च सुसंस्कृताम्॥ ६

अङ्गप्रत्यङ्गकोपेतामायुधैश्च समन्विताम्।
पद्मासनस्थितां कृत्वा पूजयेदादरेण हि॥ ७

विघ्नेशादित्यविष्णूनामम्बायाश्च शिवस्य च।
शिवस्य शिवलिङ्गं च सर्वदा पूजयेद् द्विजः॥ ८

षोडशैरुपचारैश्च कुर्यात्तत्फलसिद्धये।

नदी, पोखरे अथवा कुएँमें प्रवेश करके पानीके भीतरसे मिट्टी ले आये। तत्पश्चात् गन्ध-चूर्णके द्वारा उसका संशोधन करके शुद्ध मण्डपमें रखकर उसे महीन बनाये तथा हाथसे प्रतिमा बनाये और दूधसे उसका सम्यक् संस्कार करे। उस प्रतिमामें अंग-प्रत्यंग अच्छी तरह प्रकट हुए हों तथा वह सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न बनायी गयी हो। तदनन्तर उसे पद्मासनपर स्थापित करके आदर-पूर्वक उसका पूजन करे। गणेश, सूर्य, विष्णु, दुर्गा और शिवजीकी प्रतिमाका एवं शिवजीके शिवलिंगका द्विजको सदा पूजन करना चाहिये। पूजनजनित फलकी सिद्धिके लिये सोलह उपचारोंद्वारा पूजन करना चाहिये॥ ५—८१/२॥

पुष्पेण प्रोक्षणं कुर्यादभिषेकं समन्त्रकम्॥ ९

शाल्यन्नेनैव नैवेद्यं सर्वं कुडवमानतः।
गृहे तु कुडवं ज्ञेयं मानुषे प्रस्थमिष्यते॥ १०

दैवे प्रस्थत्रयं योग्यं स्वयम्भोः प्रस्थपञ्चकम्।
एवं पूर्णफलं विद्यादधिकं वै द्वयं त्रयम्॥ ११

सहस्रपूजया सत्यं सत्यलोकं लभेद् द्विजः।

पुष्पसे प्रोक्षण और मन्त्रपाठपूर्वक अभिषेक करे। अगहनीके चावलसे नैवेद्य तैयार करे। सारा नैवेद्य एक कुडव (लगभग पावभर) होना चाहिये। घरमें पार्थिव-पूजनके लिये एक कुडव और बाहर किसी मनुष्यद्वारा स्थापित शिवलिंगके पूजनके लिये एक प्रस्थ (सेरभर) नैवेद्य तैयार करना आवश्यक है—ऐसा जानना चाहिये। देवताओंद्वारा स्थापित शिवलिंगके लिये तीन सेर नैवेद्य अर्पित करना उचित है और स्वयं प्रकट हुए लिंगके लिये पाँच सेर। ऐसा करनेसे पूर्ण फलकी प्राप्ति समझनी चाहिये। इससे दुगुना या तिगुना करनेपर और अधिक फल प्राप्त होता है। इस प्रकार सहस्र बार पूजन करनेसे द्विज सत्यलोकको प्राप्त कर लेता है॥ ९—१११/२॥

द्वादशाङ्गुलमायामं द्विगुणं च ततोऽधिकम्॥ १२
प्रमाणमङ्गुलस्यैकं तदूर्ध्वं पञ्चकत्रयम्।
अयोदारुकृतं पात्रं शिवमित्युच्यते बुधैः॥ १३
तदष्टभागः प्रस्थः स्यात्तच्चतुष्कुडवं मतम्।
दशप्रस्थं शतप्रस्थं सहस्रप्रस्थमेव च॥ १४
जलतैलादिगन्धानां यथायोग्यं च मानतः।
मानुषार्षस्वयम्भूनां महापूजेति कथ्यते॥ १५

बारह अँगुल चौड़ा, इससे दूना और एक अँगुल अधिक अर्थात् पचीस अँगुल लम्बा तथा पन्द्रह अँगुल ऊँचा जो लोहे या लकड़ीका बना हुआ पात्र होता है, उसे विद्वान् पुरुष शिव कहते हैं। उसका आठवाँ भाग प्रस्थ कहलाता है, जो चार कुडवके बराबर माना गया है। मनुष्यद्वारा स्थापित शिवलिंगके लिये दस प्रस्थ, ऋषियोंद्वारा स्थापित शिवलिंगके लिये सौ प्रस्थ और स्वयम्भू शिवलिंगके लिये एक सहस्र प्रस्थ नैवेद्य निवेदन किया जाय तथा जल, तैल आदि एवं गन्ध द्रव्योंकी भी यथायोग्य मात्रा रखी जाय तो यह उन शिवलिंगोंकी महापूजा बतायी जाती है॥ १२—१५॥

अभिषेकादात्मशुद्धिर्गन्धात्पुण्यमवाप्यते ।
आयुस्तृप्तिश्च नैवेद्याद् धूपादर्थमवाप्यते॥ १६
दीपाज्ज्ञानमवाप्नोति ताम्बूलाद्भोगमाप्नुयात्।
तस्मात्स्नानादिकं षट्कं प्रयत्नेन प्रसाधयेत्॥ १७

देवताका अभिषेक करनेसे आत्मशुद्धि होती है, गन्धसे पुण्यकी प्राप्ति होती है, नैवेद्य अर्पण करनेसे आयु बढ़ती है और तृप्ति होती है, धूप निवेदन करनेसे धनकी प्राप्ति होती है, दीप दिखानेसे ज्ञानका उदय होता है और ताम्बूल समर्पण करनेसे भोगकी उपलब्धि होती है। इसलिये स्नान आदि छः उपचारोंको यत्नपूर्वक अर्पित करे॥ १६-१७॥

नमस्कारो जपश्चैव सर्वाभीष्टप्रदावुभौ।
पूजान्ते च सदा कार्यौ भोगमोक्षार्थिभिर्नरैः॥ १८
सम्पूज्य मनसा पूर्वं कुर्यात्तत्तत्सदा नरः।
देवानां पूजया चैव तत्तल्लोकमवाप्नुयात्॥ १९
तदवान्तरलोके च यथेष्टं भोग्यमाप्यते।
तद्विशेषान्प्रवक्ष्यामि शृणुत श्रद्धया द्विजाः॥ २०

नमस्कार और जप—ये दोनों सम्पूर्ण अभीष्ट फलको देनेवाले हैं। इसलिये भोग और मोक्षकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको पूजाके अन्तमें सदा ही जप और नमस्कार करना चाहिये। मनुष्यको चाहिये कि वह सदा पहले मनसे पूजा करके फिर उन-उन उपचारोंसे पूजा करे। देवताओंकी पूजासे उन-उन देवताओंके लोकोंकी प्राप्ति होती है तथा उनके अवान्तर लोकमें भी यथेष्ट भोगकी वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं॥ १८-१९½॥

विघ्नेशपूजया सम्यग्भूर्लोकेऽभीष्टमाप्नुयात्।
शुक्रवारे चतुर्थ्यां च सिते श्रावणभाद्रके॥ २१
भिषगृक्षे धनुर्मासे विघ्नेशं विधिवद्यजेत्।
शतं पूजा सहस्रं वा तत्सङ्ख्याकदिनैर्व्रजेत्॥ २२

हे द्विजो! अब मैं देवपूजासे प्राप्त होनेवाले विशेष फलोंका वर्णन करता हूँ। आपलोग श्रद्धापूर्वक सुनें। विघ्नराज गणेशकी पूजासे भूलोकमें उत्तम अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है। शुक्रवारको, श्रावण और भाद्रपद मासोंकी शुक्लपक्षकी चतुर्थीको और पौषमासमें शतभिषा नक्षत्रके आनेपर विधिपूर्वक गणेशजीकी पूजा करनी चाहिये। सौ या सहस्र दिनोंमें सौ या सहस्र बार पूजा करे। देवता और अग्निमें श्रद्धा रखते हुए किया जानेवाला उनका नित्य पूजन मनुष्योंको पुत्र एवं अभीष्ट वस्तु प्रदान करता है। वह समस्त पापोंका शमन तथा भिन्न-

देवाग्निश्रद्धया नित्यं पुत्रदं चेष्टदं नृणाम्।
सर्वपापप्रशमनं तत्तद्दुरितनाशनम्॥ २३

वारपूजां शिवादीनामात्मशुद्धिप्रदां विदुः।
तिथिनक्षत्रयोगानामाधारं सार्वकामिकम्॥ २४

तथा वृद्धिक्षयाभावात्पूर्णब्रह्मात्मकं विदुः।
उदयादुदयं वारो ब्रह्मप्रभृतिकर्मणाम्॥ २५

तिथ्यादौ देवपूजा हि पूर्णभोगप्रदा नृणाम्।
पूर्वभागः पितॄणां तु निशियुक्तः प्रशस्यते॥ २६

परभागस्तु देवानां दिवायुक्तः प्रशस्यते।
उदयव्यापिनी ग्राह्या मध्याह्ने यदि सा तिथिः॥ २७

देवकार्ये तथा ग्राह्यास्तिथिऋक्षादिकाः शुभाः।
सम्यग्विचार्य वारादीन्कुर्यात्पूजाजपादिकम्॥ २८

पूर्जायते ह्यनेनेति वेदेष्वर्थस्य योजना।
पूर्भोगफलसिद्धिश्च जायते तेन कर्मणा॥ २९

मनोभावांस्तथा ज्ञानमिष्टभोगार्थयोजनात्।
पूजाशब्दार्थ एवं हि विश्रुतो लोकवेदयोः॥ ३०

नित्यं नैमित्तिकं कालात्सद्यः काम्ये स्वनुष्ठिते।
नित्यं मासं च पक्षं च वर्षं चैव यथाक्रमम्॥ ३१

तत्तत्कर्मफलप्राप्तिस्तादृक्पापक्षयः क्रमात्।

भिन्न दुष्कर्मोंका विनाश करनेवाला है। विभिन्न वारोंमें की हुई शिव आदिकी पूजाको आत्मशुद्धि प्रदान करनेवाली समझना चाहिये। वार या दिन तिथि, नक्षत्र और योगोंका आधार है। वह समस्त कामनाओंको देनेवाला है। उसमें वृद्धि और क्षय नहीं होता है, इसलिये उसे पूर्ण ब्रह्मस्वरूप मानना चाहिये। सूर्योदयकालसे लेकर दूसरे सूर्योदयकाल आनेतक एक वारकी स्थिति मानी गयी है, जो ब्राह्मण आदि सभी वर्णोंके कर्मोंका आधार है। विहित तिथिके पूर्वभागमें की हुई देवपूजा मनुष्योंको पूर्ण भोग प्रदान करनेवाली होती है॥ २०—२५$^{1}/_{2}$॥

यदि मध्याह्नके बाद तिथिका आरम्भ होता है, तो रात्रियुक्त तिथिका पूर्वभाग पितरोंके श्राद्ध आदि कर्मके लिये उत्तम बताया जाता है। ऐसी तिथिका परभाग ही दिनसे युक्त होता है, अतः वही देवकर्मके लिये प्रशस्त माना गया है। यदि मध्याह्नकालतक तिथि रहे तो उदयव्यापिनी तिथिको ही देवकार्यमें ग्रहण करना चाहिये। इसी तरह शुभ तिथि एवं नक्षत्र आदि देवकार्यमें ग्राह्य होते हैं। वार आदिका भलीभाँति विचार करके पूजा और जप आदि करने चाहिये॥ २६—२८॥

वेदोंमें पूजा-शब्दके अर्थकी इस प्रकार योजना कही गयी है—**'पूर्जायते अनेन इति पूजा।'** यह पूजाशब्दकी व्युत्पत्ति है। पूः का अर्थ है भोग और फलकी सिद्धि—वह जिस कर्मसे सम्पन्न होती है, उसका नाम पूजा है। मनोवांछित वस्तु तथा ज्ञान—ये ही अभीष्ट वस्तुएँ हैं; सकाम भाववालेको अभीष्ट भोग अपेक्षित होता है और निष्काम भाववालेको अर्थ—पारमार्थिक ज्ञान। ये दोनों ही पूजाशब्दके अर्थ हैं; इनकी योजना करनेसे ही पूजा-शब्दकी सार्थकता है। इस प्रकार लोक और वेदमें पूजा-शब्दका अर्थ विख्यात है। नित्य और नैमित्तिक कर्म कालान्तरमें फल देते हैं, किंतु काम्य कर्मका यदि भलीभाँति अनुष्ठान हुआ हो तो वह तत्काल फलदायक होता है। प्रतिदिन एक पक्ष, एक मास और एक वर्षतक लगातार पूजन करनेसे उन-उन कर्मोंके फलकी प्राप्ति होती है और उनसे वैसे ही पापोंका क्रमशः क्षय होता है॥ २९—३१$^{1}/_{2}$॥

महागणपतेः पूजा चतुर्थ्यां कृष्णपक्षके॥ ३२
पक्षपापक्षयकरी पक्षभोगफलप्रदा।
चैत्रे चतुर्थ्यां पूजा च कृता मासफलप्रदा॥ ३३
वर्षभोगप्रदा ज्ञेया कृता वै सिंहभाद्रके।
श्रावणादित्यवारे च सप्तम्यां हस्तभे दिने॥ ३४
माघशुक्ले च सप्तम्यामादित्ययजनं चरेत्।
ज्येष्ठभाद्रकसौम्ये च द्वादश्यां श्रवणर्क्षके॥ ३५
कृतं श्रीविष्णुयजनमिष्टसम्पत्करं विदुः।
श्रावणे विष्णुयजनमिष्टारोग्यप्रदं भवेत्॥ ३६
गवादीन्द्वादशानर्थान्साङ्गान्दत्त्वा तु यत्फलम्।
तत्फलं समवाप्नोति द्वादश्यां विष्णुतर्पणात्॥ ३७
द्वादश्यां द्वादशान्विप्रान् विष्णोर्द्वादशनामतः।
षोडशैरुपचारैश्च यजेत्तत्प्रीतिमाप्नुयात्॥ ३८
एवं च सर्वदेवानां तत्तद्द्वादशनामकैः।
द्वादशब्रह्मयजनं तत्तत्प्रीतिकरं भवेत्॥ ३९
कर्कटे सोमवारे च नवम्यां मृगशीर्षके।
अम्बां यजेद् भूतिकामः सर्वभोगफलप्रदाम्॥ ४०
आश्वयुक्छुक्लनवमी सर्वाभीष्टफलप्रदा।
आदिवारे चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे विशेषतः॥ ४१
आर्द्रायां च महार्द्रायां शिवपूजा विशिष्यते।

प्रत्येक मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिको की हुई महागणपतिकी पूजा एक पक्षके पापोंका नाश करनेवाली और एक पक्षतक उत्तम भोगरूपी फल देनेवाली होती है। चैत्रमासमें चतुर्थीको की हुई पूजा एक मासतक किये गये पूजनका फल देनेवाली होती है और जब सूर्य सिंह राशिपर स्थित हों, उस समय भाद्रपदमासकी चतुर्थीको की हुई गणेशजीकी पूजाको एक वर्षतक [मनोवांछित] भोग प्रदान करनेवाली जानना चाहिये॥ ३२-३३½॥

श्रावणमासके रविवारको, हस्त नक्षत्रसे युक्त सप्तमी तिथिको तथा माघशुक्ला सप्तमीको भगवान् सूर्यका पूजन करना चाहिये। ज्येष्ठ तथा भाद्रपदमासोंके बुधवारको, श्रवण नक्षत्रसे युक्त द्वादशी तिथिको तथा केवल द्वादशीको भी किया गया भगवान् विष्णुका पूजन अभीष्ट सम्पत्तिको देनेवाला माना गया है। श्रावणमासमें की जानेवाली श्रीहरिकी पूजा अभीष्ट मनोरथ और आरोग्य प्रदान करनेवाली होती है। अंगों एवं उपकरणोंसहित पूर्वोक्त गौ आदि बारह वस्तुओंका दान करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, उसीको द्वादशी तिथिमें आराधनाद्वारा श्रीविष्णुकी तृप्ति करके मनुष्य प्राप्त कर लेता है। जो द्वादशी तिथिको भगवान् विष्णुके बारह नामोंद्वारा बारह ब्राह्मणोंका षोडशोपचार पूजन करता है, वह उनकी प्रसन्नता प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार सम्पूर्ण देवताओंके विभिन्न बारह नामोंद्वारा बारह ब्राह्मणोंका किया हुआ पूजन उन-उन देवताओंको प्रसन्न करनेवाला होता है॥ ३४—३९॥

ऐश्वर्यकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको कर्ककी संक्रान्तिसे युक्त श्रावणमासमें नवमी तिथिको मृगशिरा नक्षत्रके योगमें सम्पूर्ण मनोवांछित भोगों और फलोंको देनेवाली अम्बिकाका पूजन करना चाहिये। आश्विन-मासके शुक्लपक्षकी नवमी तिथि सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाली है। उसी मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको यदि रविवार पड़ा हो तो उस दिनका महत्त्व विशेष बढ़ जाता है। उसके साथ ही यदि आर्द्रा और महार्द्रा (सूर्यसंक्रान्तिसे युक्त आर्द्रा)-का योग हो तो उक्त अवसरोंपर की हुई शिवपूजाका

माघकृष्णचतुर्दश्यां सर्वाभीष्टफलप्रदा॥ ४२
आयुष्करी मृत्युहरा सर्वसिद्धिकरी नृणाम्।

विशेष महत्त्व माना गया है। माघ कृष्ण चतुर्दशीको शिवजीकी की हुई पूजा सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाली है। वह मनुष्योंकी आयु बढ़ाती है, मृत्युको दूर हटाती है और समस्त सिद्धियोंकी प्राप्ति कराती है॥ ४०—४२१/२॥

ज्येष्ठमासे महार्द्रायां चतुर्दशीदिनेऽपि च॥ ४३
मार्गशीर्षार्द्रकायां वा षोडशैरुपचारकैः।
तत्तन्मूर्तिशिवं पूज्य तस्य वै पाददर्शनम्॥ ४४
शिवस्य यजनं ज्ञेयं भोगमोक्षप्रदं नृणाम्।
वारादिदेवयजनं कार्तिके हि विशिष्यते॥ ४५
कार्तिके मासि सम्प्राप्ते सर्वान्देवान्यजेद् बुधः।
दानेन तपसा होमैर्जपेन नियमेन च॥ ४६
षोडशैरुपचारैश्च प्रतिमाविप्रमन्त्रकैः।
ब्राह्मणानां भोजनेन निष्कामार्तिहरो भवेत्॥ ४७

ज्येष्ठमासमें चतुर्दशीको यदि महार्द्राका योग हो अथवा मार्गशीर्षमासमें किसी भी तिथिको यदि आर्द्रा नक्षत्र हो तो उस अवसरपर विभिन्न वस्तुओंकी बनी हुई मूर्तिके रूपमें शिवजीकी जो सोलह उपचारोंसे पूजा करता है, उस पुण्यात्माके चरणोंका दर्शन करना चाहिये। भगवान् शिवकी पूजा मनुष्योंको भोग और मोक्ष देनेवाली है—ऐसा जानना चाहिये। कार्तिक मासमें प्रत्येक वार और तिथि आदिमें देवपूजाका विशेष महत्त्व है। कार्तिकमास आनेपर विद्वान् पुरुष दान, तप, होम, जप और नियम आदिके द्वारा समस्त देवताओंका षोडशोपचारोंसे पूजन करे। उस पूजनमें देवप्रतिमा, ब्राह्मण तथा मन्त्रोंका उपयोग आवश्यक है। ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे वह पूजन-कर्म सम्पन्न होता है। पूजकको चाहिये कि वह कामनाओंको त्यागकर पीड़ारहित (शान्त) हो देवाराधनमें तत्पर रहे॥ ४३—४७॥

कार्तिके देवयजनं सर्वभोगप्रदं भवेत्।
व्याधीनां हरणं चैव भवेद्भूतग्रहक्षयः॥ ४८
कार्तिकादित्यवारेषु नृणामादित्यपूजनात्।
तैलकार्पासदानात्तु भवेत्कुष्ठादिसङ्क्षयः॥ ४९
हरीतकीमरीचीनां वस्त्रक्षीरादिदानतः।
ब्रह्मप्रतिष्ठया चैव क्षयरोगक्षयो भवेत्॥ ५०
दीपसर्षपदानाच्च अपस्मारक्षयो भवेत्।

कार्तिकमासमें देवताओंका यजन-पूजन समस्त भोगोंको देनेवाला होता है; यह व्याधियोंको हर लेनेवाला और भूतों तथा ग्रहोंका विनाश भी करनेवाला है। कार्तिकमासके रविवारोंको भगवान् सूर्यकी पूजा करने और तेल तथा कपासका दान करनेसे मनुष्योंके कोढ़ आदि रोगोंका नाश होता है। हर्रे, काली मिर्च, वस्त्र तथा दूध आदिके दानसे और ब्राह्मणोंकी प्रतिष्ठा करनेसे क्षयके रोगका नाश होता है। दीप और सरसोंके दानसे मिरगीका रोग मिट जाता है॥ ४८—५०१/२॥

कृत्तिकासोमवारेषु शिवस्य यजनं नृणाम्॥ ५१
महादारिद्र्यशमनं सर्वसम्पत्करं भवेत्।
गृहक्षेत्रादिदानाच्च गृहोपकरणादिना॥ ५२
कृत्तिकाभौमवारेषु स्कन्दस्य यजनान्नृणाम्।
दीपघण्टादिदानाद्वै वाक्सिद्धिरचिराद्भवेत्॥ ५३

कृत्तिका नक्षत्रसे युक्त सोमवारोंको किया हुआ शिवजीका पूजन मनुष्योंके महान् दारिद्र्यको मिटानेवाला और सम्पूर्ण सम्पत्तियोंको देनेवाला है। घरकी आवश्यक सामग्रियोंके साथ गृह और क्षेत्र आदिका दान करनेसे भी उक्त फलकी प्राप्ति होती है। कृत्तिकायुक्त मंगलवारोंको श्रीस्कन्दका पूजन करनेसे तथा दीपक एवं घण्टा आदिका दान देनेसे मनुष्योंको शीघ्र ही वाक्सिद्धि प्राप्त हो जाती है॥ ५१—५३॥

कृत्तिकासौम्यवारेषु विष्णोर्वै यजनं नृणाम्।
दध्योदनस्य दानं च सत्सन्तानकरं भवेत्॥ ५४

कृत्तिकागुरुवारेषु ब्रह्मणो यजनाद्धनैः।
मधुस्वर्णाज्यदानेन भोगवृद्धिर्भवेन्नृणाम्॥ ५५

कृत्तिकाशुक्रवारेषु गजतुण्डस्य याजनात्।
गन्धपुष्पान्नदानेन भोगवृद्धिर्भवेन्नृणाम्॥ ५६

वन्ध्या सुपुत्रं लभते स्वर्णरौप्यादिदानतः।
कृत्तिकाशनिवारेषु दिक्पालानां च वन्दनम्॥ ५७

दिग्गजानां च नागानां सेतुपानां च पूजनम्।
त्र्यम्बकस्य च रुद्रस्य विष्णोः पापहरस्य च॥ ५८

ज्ञानदं ब्रह्मणश्चैव धन्वन्तर्यश्विनोस्तथा।
रोगापमृत्युहरणं तत्कालव्याधिशान्तिदम्॥ ५९

लवणायसतैलानां माषादीनां च दानतः।
त्रिकटुफलगन्धानां जलादीनां च दानतः॥ ६०

द्रवाणां कठिनानां च प्रस्थेन पलमानतः।
स्वर्गप्राप्तिर्धनुर्मासे ह्युषःकाले च पूजनम्॥ ६१

शिवादीनां च सर्वेषां क्रमाद्वै सर्वसिद्धये।
शाल्यन्नस्य हविष्यस्य नैवेद्यं शस्तमुच्यते॥ ६२

विविधान्नस्य नैवेद्यं धनुर्मासे विशिष्यते।
मार्गशीर्षेऽन्नदस्यैव सर्वमिष्टफलं भवेत्॥ ६३

पापक्षयं चेष्टसिद्धिं चारोग्यं धर्ममेव च।
सम्यग्वेदपरिज्ञानं सदनुष्ठानमेव च॥ ६४

इहामुत्र महाभोगानन्ते योगं च शाश्वतम्।
वेदान्तज्ञानसिद्धिं च मार्गशीर्षान्नदो लभेत्॥ ६५

कृत्तिकायुक्त बुधवारोंको किया हुआ श्रीविष्णुका यजन तथा दही-भातका दान मनुष्योंको उत्तम सन्तानकी प्राप्ति करानेवाला होता है। कृत्तिकायुक्त गुरुवारोंको धनसे ब्रह्माजीका पूजन तथा मधु, सोना और घीका दान करनेसे मनुष्योंके भोग-वैभवकी वृद्धि होती है॥ ५४-५५॥

कृत्तिकायुक्त शुक्रवारोंको गजानन गणेशजीकी पूजा करनेसे तथा गन्ध, पुष्प एवं अन्नका दान देनेसे मानवोंके सुख भोगनेयोग्य पदार्थोंकी वृद्धि होती है। उस दिन सोना, चाँदी आदिका दान करनेसे वन्ध्याको भी उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होती है। कृत्तिकायुक्त शनिवारोंको दिक्पालोंकी वन्दना, दिग्गजों-नागों-सेतुपालोंका पूजन और त्रिनेत्रधारी रुद्र तथा पापहारी विष्णुका पूजन ज्ञानकी प्राप्ति करानेवाला है। ब्रह्मा, धन्वन्तरि एवं दोनों अश्विनीकुमारोंका पूजन करनेसे रोग तथा अपमृत्युका निवारण होता है और तात्कालिक व्याधियोंकी शान्ति हो जाती है। नमक, लोहा, तेल और उड़द आदिका; त्रिकटु (सोंठ, पीपल और गोल मिर्च), फल, गन्ध और जल आदिका तथा [घृत आदि] द्रव-पदार्थोंका और [सुवर्ण, मोती, धान्य आदि] ठोस वस्तुओंका भी दान देनेसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। इनमेंसे नमक आदिका मान कम-से-कम एक प्रस्थ (सेर) और सुवर्ण आदिका मान कम-से-कम एक पल होना चाहिये। धनुकी संक्रान्तिसे युक्त पौषमासमें उषःकालमें शिव आदि समस्त देवताओंका पूजन क्रमशः समस्त सिद्धियोंकी प्राप्ति करानेवाला होता है। इस पूजनमें अगहनीके चावलसे तैयार किये गये हविष्यका नैवेद्य उत्तम बताया जाता है। पौषमासमें नाना प्रकारके अन्नका नैवेद्य विशेष महत्त्व रखता है॥ ५६—६२½॥

मार्गशीर्षमासमें केवल अन्नका दान करनेवाले मनुष्यको सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंकी प्राप्ति हो जाती है। मार्गशीर्षमासमें अन्नका दान करनेवाले मनुष्यके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, वह अभीष्ट-सिद्धि, आरोग्य, धर्म, वेदका सम्यक् ज्ञान, उत्तम अनुष्ठानका फल, इहलोक और परलोकमें महान् भोग तथा अन्तमें सनातन योग (मोक्ष) तथा वेदान्तज्ञानकी सिद्धि प्राप्त कर लेता है। जो भोगकी इच्छा रखनेवाला है, वह

मार्गशीर्षे ह्युषःकाले दिनत्रयमथापि वा।
यजेद् देवान्भोगकामो नाधनुर्मासिको भवेत्॥ ६६

यावत्सङ्गवकालं तु धनुर्मासो विधीयते।
धनुर्मासे निराहारो मासमात्रं जितेन्द्रियः॥ ६७

आमध्याह्नं जपेद् विप्रो गायत्रीं वेदमातरम्।
पञ्चाक्षरादिकान्मन्त्रान्पश्चादासुप्तिकं जपेत्॥ ६८

ज्ञानं लब्ध्वा च देहान्ते विप्रो मुक्तिमवाप्नुयात्।
अन्येषां नरनारीणां त्रिःस्नानेन जपेन च॥ ६९

सदा पञ्चाक्षरस्यैव विशुद्धं ज्ञानमाप्यते।
इष्टमन्त्रान्सदा जप्त्वा महापापक्षयं लभेत्॥ ७०

मनुष्य मार्गशीर्षमास आनेपर कम-से-कम तीन दिन भी उषःकालमें अवश्य देवताओंका पूजन करे और पौषमासको पूजनसे खाली न जाने दे। उषःकालसे लेकर संगवकालतक ही पौषमासमें पूजनका विशेष महत्त्व बताया गया है। पौषमासमें पूरे महीनेभर जितेन्द्रिय और निराहार रहकर द्विज प्रातःकालसे मध्याह्नकालतक वेदमाता गायत्रीका जप करे। तत्पश्चात् रातको सोनेके समयतक पंचाक्षर आदि मन्त्रोंका जप करे। ऐसा करनेवाला ब्राह्मण ज्ञान पाकर शरीर छूटनेके बाद मोक्ष प्राप्त कर लेता है। द्विजेतर नर-नारियोंको त्रिकाल स्नान और पंचाक्षर मन्त्रके ही निरन्तर जपसे विशुद्ध ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इष्ट मन्त्रोंका सदा जप करनेसे बड़े-से-बड़े पापोंका भी नाश हो जाता है॥ ६३—७०॥

धनुर्मासे विशेषेण महानैवेद्यमाचरेत्।
शालितण्डुलभारेण मरीचप्रस्थकेन च॥ ७१
गणनाद् द्वादशं सर्वं मध्वाज्यकुडवेन हि।
द्रोणयुक्तेन मुद्गेन द्वादशव्यञ्जनेन च॥ ७२
घृतपक्वैरपूपैश्च मोदकैः शालिकादिभिः।
द्वादशैश्च दधिक्षीरैर्द्वादशप्रस्थकेन च॥ ७३
नारिकेलफलादीनां तथा गणनया सह।
द्वादशक्रमुकैर्युक्तं षट्त्रिंशत्पत्रकैर्युतम्॥ ७४
कर्पूरखुरचूर्णेन पञ्चसौगन्धिकैर्युतम्।
ताम्बूलयुक्तं तु यदा महानैवेद्यलक्षणम्॥ ७५

पौषमासमें विशेषरूपसे महानैवेद्य चढ़ाना चाहिये। यहाँ बतायी सभी वस्तुएँ बारहकी संख्यामें समझनी चाहिये—चावल (बारह) भार[1], काली मिर्च (बारह) प्रस्थ[2], मधु और घृत (बारह) कुडव[3], मूँग (बारह) द्रोण[4], बारह प्रकारके व्यंजन, घीमें तले हुए पूए, लड्डू और चावलके मिष्टान्न (बारह) प्रस्थ, दही और दूध और बारह नारियल आदि फल, बारह सुपारी, कर्पूर, कत्था और पाँच प्रकारके सुगन्धद्रव्योंसे युक्त छत्तीस पत्ते पानसे महानैवेद्य बनता है॥ ७१—७५॥

महानैवेद्यमेतद्वै देवतार्पणपूर्वकम्।
वर्णानुक्रमपूर्वेण तद्भक्तेभ्यः प्रदापयेत्॥ ७६
एवं चौदननैवेद्याद्भूमौ राष्ट्रपतिर्भवेत्।
महानैवेद्यदानेन नरः स्वर्गमवाप्नुयात्॥ ७७
महानैवेद्यदानेन सहस्रेण द्विजर्षभाः।
सत्यलोकं च तल्लोके पूर्णमायुरवाप्नुयात्॥ ७८
सहस्राणां च त्रिंशत्या महानैवेद्यदानतः।
तदूर्ध्वलोकमाप्यैव न पुनर्जन्मभाग्भवेत्॥ ७९

इस महानैवेद्यको देवताओंको अर्पण करके वर्णानुसार उस देवताके भक्तोंको दे देना चाहिये। इस प्रकारके ओदन-नैवेद्यसे मनुष्य पृथ्वीपर राष्ट्रका स्वामी होता है। महानैवेद्यके दानसे स्वर्गप्राप्ति होती है। हे द्विजश्रेष्ठो! एक हजार महानैवेद्योंके दानसे सत्यलोक प्राप्त होता है और उस लोकमें पूर्णायु प्राप्त होती है एवं तीस हजार महानैवेद्योंके दानसे उसके ऊपरके लोकोंकी प्राप्ति होती है तथा पुनर्जन्म नहीं होता॥ ७६—७९॥

१—४-चार धानकी एक गुंजी या एक रत्ती होती है। पाँच रत्तीका एक पण (आधे मासेसे कुछ अधिक), आठ पणका एक धरण, आठ धरणका एक पल (ढाई छटाँकके लगभग), सौ पल (सोलह सेरके लगभग)-की एक तुला होती है, बीस तुलाका एक भार होता है, अर्थात् आजके मापसे आठ मनका एक भार होता है। पावभरका एक कुडव होता है, चार कुडवका एक प्रस्थ अर्थात् एक सेर होता है। चार सेर (प्रस्थ)-का एक आढक और आठ आढक (३२ सेर)-का एक द्रोण होता है। तीन द्रोणकी एक खारी और आठ द्रोणका एक वाह होता है।

सहस्राणां च षट्त्रिंशज्जन्मनैवेद्यमीरितम्।
तावन्नैवेद्यदानं तु महापूर्णं तदुच्यते॥ ८०
महापूर्णस्य नैवेद्यं जन्मनैवेद्यमिष्यते।
जन्मनैवेद्यदानेन पुनर्जन्म न विद्यते॥ ८१

छत्तीस हजार महानैवेद्योंको जन्मनैवेद्य कहा गया है। उतने नैवेद्योंका दान महापूर्ण कहलाता है। महापूर्ण नैवेद्य ही जन्मनैवेद्य कहा गया है। जन्मनैवेद्यके दानसे पुनर्जन्म नहीं होता॥ ८०-८१॥

ऊर्जे मासि दिने पुण्ये जन्मनैवेद्यमाचरेत्।
सङ्क्रान्तिपातजन्मर्क्षपौर्णमास्यादिसंयुते ॥ ८२
अब्दजन्मदिने कुर्याज्जन्मनैवेद्यमुत्तमम्।
मासान्तरेषु जन्मर्क्षपूर्णयोगदिनेऽपि च॥ ८३
मेलने च शनैर्वापि तावत्साहस्रमाचरेत्।
जन्मनैवेद्यदानेन जन्मार्पणफलं लभेत्॥ ८४
जन्मार्पणाच्छिवः प्रीतः स्वसायुज्यं ददाति हि।
इदं तज्जन्मनैवेद्यं शिवस्यैव प्रदापयेत्॥ ८५
योनिलिङ्गस्वरूपेण शिवो जन्मनिरूपकः।
तस्माज्जन्मनिवृत्त्यर्थं जन्मपूजा शिवस्य हि॥ ८६

कार्तिक मासमें संक्रान्ति, व्यतीपात, जन्मनक्षत्र, पूर्णिमा आदि किसी पवित्र दिनको जन्मनैवेद्य चढ़ाना चाहिये। संवत्सरके प्रारम्भिक दिनको भी उत्तम जन्मनैवेद्यका अर्पण करना चाहिये। किसी अन्य महीनेमें भी जन्मनक्षत्रके पूर्ण योगके दिन तथा अधिक पुण्ययोगोंके मिलनेपर धीरे-धीरे छत्तीस हजार महानैवेद्य अर्पण करे। जन्मनैवेद्यके दानसे जन्मार्पणका फल प्राप्त होता है। जन्मार्पणसे प्रसन्न होकर भगवान् शंकर अपना सायुज्य प्रदान करते हैं। इसलिये इस जन्मनैवेद्यको शिवको ही अर्पण करना चाहिये। योनि और लिंगरूपमें विराजमान शिव जन्मको देनेवाले हैं, अतः पुनर्जन्मकी निवृत्तिके लिये जन्मनैवेद्यसे शिवकी पूजा करनी चाहिये॥ ८२—८६॥

बिन्दुनादात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
बिन्दुः शक्तिः शिवो नादः शिवशक्त्यात्मकं जगत्॥ ८७
नादाधारमिदं बिन्दुर्बिन्द्वाधारमिदं जगत्।
जगदाधारभूतौ हि बिन्दुनादौ व्यवस्थितौ॥ ८८
बिन्दुनादयुतं सर्वं सकलीकरणं भवेत्।
सकलीकरणाज्जन्म जगत्प्राप्नोत्यसंशयम्॥ ८९
बिन्दुनादात्मकं लिङ्गं जगत्कारणमुच्यते।
बिन्दुर्देवी शिवो नादः शिवलिङ्गं तु कथ्यते॥ ९०
तस्माज्जन्मनिवृत्त्यर्थं शिवलिङ्गं प्रपूजयेत्।
माता देवी बिन्दुरूपा नादरूपः शिवः पिता॥ ९१
पूजिताभ्यां पितृभ्यां तु परमानन्द एव हि।
परमानन्दलाभार्थं शिवलिङ्गं प्रपूजयेत्॥ ९२

सारा चराचर जगत् बिन्दु-नादस्वरूप है। बिन्दु शक्ति है और नाद शिव। इस तरह यह जगत् शिव-शक्तिस्वरूप ही है। नाद बिन्दुका और बिन्दु इस जगत्का आधार है, ये बिन्दु और नाद (शक्ति और शिव) सम्पूर्ण जगत्के आधाररूपसे स्थित हैं। बिन्दु और नादसे युक्त सब कुछ शिवस्वरूप है; क्योंकि वही सबका आधार है। आधारमें ही आधेयका समावेश अथवा लय होता है। यही सकलीकरण है। इस सकलीकरणकी स्थितिसे ही सृष्टिकालमें जगत्का प्रादुर्भाव होता है; इसमें संशय नहीं है। शिवलिंग बिन्दुनादस्वरूप है, अतः उसे जगत्का कारण बताया जाता है। बिन्दु देवी है और नाद शिव, इन दोनोंका संयुक्तरूप ही शिवलिंग कहलाता है। अतः जन्मके संकटसे छुटकारा पानेके लिये शिवलिंगकी पूजा करनी चाहिये। बिन्दुरूपा देवी उमा माता हैं और नादस्वरूप भगवान् शिव पिता। इन माता-पिताके पूजित होनेसे परमानन्दकी ही प्राप्ति होती है। अतः परमानन्दका लाभ लेनेके लिये शिवलिंगका विशेषरूपसे पूजन करे॥ ८७—९२॥

सा देवी जगतां माता स शिवो जगतः पिता।
पित्रोः शुश्रूषके नित्यं कृपाधिक्यं हि वर्धते॥ ९३

कृपयान्तर्गतैश्वर्यं पूजकस्य ददाति हि।
तस्मादन्तर्गतानन्दलाभार्थं मुनिपुङ्गवाः॥ ९४

पितृमातृस्वरूपेण शिवलिङ्गं प्रपूजयेत्।
भर्गः पुरुषरूपो हि भर्गा प्रकृतिरुच्यते॥ ९५

अव्यक्तान्तरधिष्ठानं गर्भः पुरुष उच्यते।
सुव्यक्तान्तरधिष्ठानं गर्भः प्रकृतिरुच्यते॥ ९६

पुरुषस्त्वादिगर्भो हि गर्भवाञ्जनको यतः।
पुरुषात्प्रकृतौ युक्तं प्रथमं जन्म कथ्यते॥ ९७

प्रकृतेर्व्यक्ततां यातं द्वितीयं जन्म कथ्यते।
जन्म जन्तुर्मृत्युजन्म पुरुषात्प्रतिपद्यते॥ ९८

अन्यतो भाव्यतेऽवश्यं मायया जन्म कथ्यते।
जीर्यते जन्मकालाद्यत्तस्माज्जीव इति स्मृतः॥ ९९

जन्यते तन्यते पाशैर्जीवशब्दार्थ एव हि।
जन्मपाशनिवृत्त्यर्थं जन्मलिङ्गं प्रपूजयेत्॥ १००

भं वृद्धिं गच्छतीत्यर्थाद्भगः प्रकृतिरुच्यते।
प्राकृतैः शब्दमात्राद्यैः प्राकृतेन्द्रियभोजनात्॥ १०१

भगस्येदं भोगमिति शब्दार्थो मुख्यतः श्रुतः।
मुख्यो भगस्तु प्रकृतिर्भगवाञ्छिव उच्यते॥ १०२

भगवान्भोगदाता हि नान्यो भोगप्रदायकः।
भगस्वामी च भगवान्भर्ग इत्युच्यते बुधैः॥ १०३

भगेन सहितं लिङ्गं भगं लिङ्गेन संयुतम्।
इहामुत्र च भोगार्थं नित्यभोगार्थमेव च॥ १०४

भगवन्तं महादेवं शिवलिङ्गं प्रपूजयेत्।

वे देवी उमा जगत्‌की माता हैं और भगवान् शिव जगत्‌के पिता। जो इनकी सेवा करता है, उस पुत्रपर इन दोनों माता-पिताकी कृपा नित्य अधिकाधिक बढ़ती रहती है। वे पूजकपर कृपा करके उसे अपना आन्तरिक ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। अतः हे मुनीश्वरो! आन्तरिक आनन्दकी प्राप्तिके लिये शिवलिंगको माता-पिताका स्वरूप मानकर उसकी पूजा करनी चाहिये। भर्ग (शिव) पुरुषरूप है और भर्गा (शिवा अथवा शक्ति) प्रकृति कहलाती है। अव्यक्त आन्तरिक अधिष्ठानरूप गर्भको पुरुष कहते हैं और सुव्यक्त आन्तरिक अधिष्ठानभूत गर्भको प्रकृति। पुरुष आदिगर्भ है, वह प्रकृतिरूप गर्भसे युक्त होनेके कारण गर्भवान् है; क्योंकि वही प्रकृतिका जनक है। प्रकृतिमें जो पुरुषका संयोग होता है, यही पुरुषसे उसका प्रथम जन्म कहलाता है। अव्यक्त प्रकृतिसे महत्तत्त्वादिके क्रमसे जो जगत्‌का व्यक्त होना है, यही उस प्रकृतिका द्वितीय जन्म कहलाता है। जीव पुरुषसे ही बार-बार जन्म और मृत्युको प्राप्त होता है। मायाद्वारा अन्यरूपसे प्रकट किया जाना ही उसका जन्म कहलाता है। जीवका शरीर जन्मकालसे ही जीर्ण (छः भावविकारोंसे युक्त) होने लगता है, इसीलिये उसे 'जीव' यह संज्ञा दी गयी है। जो जन्म लेता और विविध पाशोंद्वारा बन्धनमें पड़ता है, उसका नाम जीव है, जन्म और बन्धन जीव-शब्दका ही अर्थ है। अतः जन्ममृत्युरूपी बन्धनकी निवृत्तिके लिये जन्मके अधिष्ठानभूत माता-पितृस्वरूप शिवलिंगका भली-भाँति पूजन करना चाहिये॥ ९३—१००॥

शब्दादि पंचतन्मात्राओं तथा पंचेन्द्रियोंसे विषय ग्रहण करनेसे 'भ' अर्थात् वृद्धिको 'गच्छति' अर्थात् प्राप्त होती है, इसलिये 'भग' शब्दका अर्थ प्रकृति है। भोग ही भगका मुख्य शब्दार्थ है। मुख्य 'भग' प्रकृति है और 'भगवान्' शिव कहे जाते हैं॥ १०१-१०२॥

भगवान् ही भोग प्रदान करते हैं, दूसरा कोई नहीं दे सकता। भग (प्रकृति)-का स्वामी भगवान् ही विद्वानोंद्वारा भर्ग कहा जाता है। भग-प्रकृतिसे संयुक्त परमात्मलिंग और लिंगसंयुक्त भग-प्रकृति ही इस लोक और परलोकमें नित्य भोग प्रदान करते हैं, अतः भगवान् महादेवके शिवलिंगकी पूजा करनी चाहिये॥ १०३-१०४½॥

लोकप्रसविता सूर्यस्तच्चिह्नं प्रसवाद्भवेत्॥ १०५

लिङ्गे प्रसूतिकर्तारं लिङ्गिनं पुरुषो यजेत्।
लिङ्गार्थगमकं चिह्नं लिङ्गमित्यभिधीयते॥ १०६

संसारको उत्पन्न करनेवाले सूर्य हैं और उत्पन्न करनेके कारण जगत् ही उनका (प्रत्यक्ष) चिह्न है। [इसलिये उनका एक नाम भग भी है।] पुरुषको लिंगमें जगत्को उत्पन्न करनेवाले लिंगीकी ही पूजा करनी चाहिये। सृष्टिके अर्थको बतानेवाले चिह्नके रूपमें ही उसे लिंग कहा जाता है॥ १०५-१०६॥

लिङ्गमर्थं हि पुरुषं शिवं गमयतीत्यदः।
शिवशक्त्योश्च चिह्नस्य मेलनं लिङ्गमुच्यते॥ १०७

स्वचिह्नपूजनात्प्रीतश्चिह्नकार्यं न वीयते।
चिह्नकार्यं तु जन्मादि जन्माद्यं विनिवर्तते॥ १०८

प्राकृतैः पुरुषैश्चापि बाह्याभ्यन्तरसम्भवैः।
षोडशैरुपचारैश्च शिवलिङ्गं प्रपूजयेत्॥ १०९

लिंग परमपुरुष शिवका बोध कराता है। इस प्रकार शिव और शक्तिके मिलनके प्रतीकको ही शिवलिंग कहा गया है। अपने चिह्नके पूजनसे प्रसन्न होकर महादेव उस चिह्नके कार्यरूप जन्मादिको समाप्त कर देते हैं तथा पूजकको पुनर्जन्मकी प्राप्ति नहीं होती। अतः सभी लोगोंको यथाप्राप्त बाह्य और मानसिक षोडशोपचारोंसे शिवलिंगका पूजन करना चाहिये॥ १०७—१०९॥

एवमादित्यवारे हि पूजा जन्मनिवर्तिका।
आदिवारे महालिङ्गं प्रणवेनैव पूजयेत्॥ ११०

आदिवारे पञ्चगव्यैरभिषेको विशिष्यते।
गोमयं गोजलं क्षीरं दध्याज्यं पञ्चगव्यकम्॥ १११

रविवारको की गयी पूजा पुनर्जन्मका निवारण कर देती है। रविवारको महालिंगकी प्रणव (ॐ)-से ही पूजा करनी चाहिये। उस दिन पंचगव्यसे किया गया अभिषेक विशेष महत्त्वका होता है। गोबर, गोमूत्र, गोदुग्ध, उसका दही और गोघृत—ये पंचगव्य कहे जाते हैं॥ ११०-१११॥

क्षीराद्यं च पृथक्चैव मधुना चेक्षुसारकैः।
गव्यक्षीरान्ननैवेद्यं प्रणवेनैव कारयेत्॥ ११२

गायका दूध, गायका दही और गायका घी—इन तीनोंको पूजनके लिये शहद और शक्करके साथ पृथक-पृथक् भी रखे और इन सबको मिलाकर सम्मिलितरूपसे पंचामृत भी तैयार कर ले। (इनके द्वारा शिवलिंगका अभिषेक एवं स्नान कराये), फिर गायके दूध और अन्नके मेलसे नैवेद्य तैयार करके प्रणव मन्त्रके उच्चारणपूर्वक उसे भगवान् शिवको अर्पित करे।

प्रणवं ध्वनिलिङ्गं तु नादलिङ्गं स्वयम्भुवः।
बिन्दुलिङ्गं तु यन्त्रं स्यान्मकारं तु प्रतिष्ठितम्॥ ११३

उकारं चरलिङ्गं स्यादकारं गुरुविग्रहम्।

सम्पूर्ण प्रणवको ध्वनिलिंग कहते हैं। स्वयम्भूलिंग नादस्वरूप होनेके कारण नादलिंग कहा गया है। यन्त्र या अर्घा बिन्दुस्वरूप होनेके कारण बिन्दुलिंगके रूपमें विख्यात है। उसमें अचलरूपसे प्रतिष्ठित जो शिवलिंग है, वह मकार-स्वरूप है, इसलिये मकारलिंग कहलाता है। सवारी निकालने आदिके लिये जो चरलिंग होता है, वह उकारस्वरूप होनेसे उकारलिंग कहा गया है तथा पूजाकी दीक्षा देनेवाले जो गुरु या आचार्य हैं, उनका विग्रह अकारका प्रतीक होनेसे अकारलिंग माना गया है।

षड्लिङ्गपूजया नित्यं जीवन्मुक्तो न संशयः॥ ११४

इस प्रकार प्रणवमें प्रतिष्ठित अकार, उकार, मकार, बिन्दु, नाद और ध्वनिके रूपमें लिंगके छः भेद हैं। इन छहों लिंगोंकी नित्य पूजा करनेसे साधक जीवन्मुक्त हो जाता है; इसमें संशय नहीं है॥ ११२—११४॥

शिवस्य भक्त्या पूजा हि जन्ममुक्तिकरी नृणाम्।
रुद्राक्षधारणात्पादमर्धं वै भूतिधारणात्॥ ११५
त्रिपादं मन्त्रजाप्याच्च पूजया पूर्णभक्तिमान्।
शिवलिङ्गं च भक्तं च पूज्य मोक्षं लभेन्नरः॥ ११६
य इमं पठतेऽध्यायं शृणुयाद्वा समाहितः।
तस्यैव शिवभक्तिश्च वर्धते सुदृढा द्विजाः॥ ११७

भक्तिपूर्वक की गयी शिवपूजा मनुष्योंको पुनर्जन्मसे छुटकारा दिलाती है। रुद्राक्षधारणसे एक चौथाई, विभूति (भस्म)-धारणसे आधा, मन्त्रजपसे तीन चौथाई और पूजासे पूर्ण फल प्राप्त होता है। शिवलिंग और शिवभक्तकी पूजा करके मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है। हे द्विजो! जो इस अध्यायको ध्यानपूर्वक पढ़ता-सुनता है, उसकी शिवभक्ति सुदृढ़ होकर बढ़ती रहती है॥ ११५—११७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां पार्थिवपूजाप्रकारादिवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें पार्थिव पूजा आदिका प्रकार वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

षड्लिंगस्वरूप प्रणवका माहात्म्य, उसके सूक्ष्म रूप (ॐकार) और स्थूल रूप (पंचाक्षर मन्त्र)-का विवेचन, उसके जपकी विधि एवं महिमा, कार्यब्रह्मके लोकोंसे लेकर कारणरुद्रके लोकोंतकका विवेचन करके कालातीत, पंचावरणविशिष्ट शिवलोकके अनिर्वचनीय वैभवका निरूपण तथा शिवभक्तोंके सत्कारकी महत्ता

ऋषय ऊचुः

प्रणवस्य च माहात्म्यं षड्लिङ्गस्य महामुने।
शिवभक्तस्य पूजां च क्रमशो ब्रूहि नः प्रभो॥ १

ऋषिगण बोले—हे महामुने! हे प्रभो! आप हमारे लिये क्रमशः षड्लिंगस्वरूप प्रणवका माहात्म्य तथा शिवभक्तके पूजनकी विधि बताइये॥ १॥

सूत उवाच

तपोधनैर्भवद्भिश्च सम्यक् प्रश्नस्त्वयं कृतः।
अस्योत्तरं महादेवो जानाति स्म न चापरः॥ २
तथापि वक्ष्ये तमहं शिवस्य कृपयैव हि।
शिवोऽस्माकं च युष्माकं रक्षां गृह्णातु भूरिशः॥ ३

सूतजीने कहा—महर्षियो! आपलोग तपस्याके धनी हैं, आपने यह बड़ा सुन्दर प्रश्न उपस्थित किया है। किंतु इसका ठीक-ठीक उत्तर महादेवजी ही जानते हैं, दूसरा कोई नहीं। तथापि भगवान् शिवकी कृपासे ही मैं इस विषयका वर्णन करूँगा। वे भगवान् शिव हमारी और आपलोगोंकी रक्षाका महान् भार बारम्बार स्वयं ही ग्रहण करें॥ २-३॥

प्रो हि प्रकृतिजातस्य संसारस्य महोदधेः।
नवं नावांतरमिति प्रणवं वै विदुर्बुधाः॥ ४

'प्र' नाम है प्रकृतिसे उत्पन्न संसाररूपी महासागरका। 'प्रणव' इसे पार करनेके लिये दूसरी (नव) नाव है। इसलिये विद्वान् इस ओंकारको 'प्रणव' की संज्ञा देते हैं। [ॐकार अपने जप करनेवाले

प्रः प्रपञ्चो न नास्ति वो युष्माकं प्रणवं विदुः।
प्रकर्षेण नयेद्यस्मान्मोक्षं वः प्रणवं विदुः॥ ५

साधकोंसे कहता है—] 'प्र-प्रपंच, न—नहीं है, वः—तुमलोगोंके लिये।' अतः इस भावको लेकर भी ज्ञानी पुरुष 'ओम्' को 'प्रणव' नामसे जानते हैं। इसका दूसरा भाव यह है—'**प्र-प्रकर्षेण, न-नयेत्, वः-युष्मान् मोक्षम् इति वा प्रणवः**। अर्थात् यह तुम सब उपासकोंको बलपूर्वक मोक्षतक पहुँचा देगा।' इस अभिप्रायसे भी इसे ऋषि-मुनि 'प्रणव' कहते हैं॥ ४-५॥

स्वमन्त्रजापकानां च पूजकानां च योगिनाम्।
सर्वकर्मक्षयं कृत्वा दिव्यज्ञानं तु नूतनम्॥ ६

तमेव मायारहितं नूतनं परिचक्षते।
प्रकर्षेण महात्मानं नवं शुद्धस्वरूपकम्॥ ७

नूतनं वै करोतीति प्रणवं तं विदुर्बुधाः।

अपना जप करनेवाले योगियोंके तथा अपने मन्त्रकी पूजा करनेवाले उपासकके समस्त कर्मोंका नाश करके यह दिव्य नूतन ज्ञान देता है; इसलिये भी इसका नाम प्रणव है। उन मायारहित महेश्वरको ही नव अर्थात् नूतन कहते हैं। वे परमात्मा प्रकृष्टरूपसे नव अर्थात् शुद्धस्वरूप हैं, इसलिये 'प्रणव' कहलाते हैं। प्रणव साधकको नव अर्थात नवीन (शिवस्वरूप) कर देता है। इसलिये भी विद्वान् पुरुष उसे 'प्रणव' कहते हैं। अथवा प्रकृष्टरूपसे नव—दिव्य परमात्मज्ञान प्रकट करता है, इसलिये वह प्रणव कहा गया है॥ ६-७१/२॥

प्रणवं द्विविधं प्रोक्तं सूक्ष्मस्थूलविभेदतः॥ ८

सूक्ष्ममेकाक्षरं विद्यात्स्थूलं पञ्चाक्षरं विदुः।
सूक्ष्ममव्यक्तपञ्चार्णं सुव्यक्तार्णं तथेतरत्॥ ९

जीवन्मुक्तस्य सूक्ष्मं हि सर्वसारं हितस्य हि।
मन्त्रेणार्थानुसन्धानं स्वदेहविलयावधि॥ १०

स्वदेहे गलिते पूर्णं शिवं प्राप्नोति निश्चयः।

प्रणवके दो भेद बताये गये हैं—स्थूल और सूक्ष्म। एक अक्षररूप जो 'ओम्' है, उसे सूक्ष्म प्रणव जानना चाहिये और 'नमः शिवाय' इस पाँच अक्षरवाले मन्त्रको स्थूल प्रणव समझना चाहिये। जिसमें पाँच अक्षर व्यक्त नहीं हैं, वह सूक्ष्म है और जिसमें पाँचों अक्षर सुस्पष्टरूपसे व्यक्त हैं, वह स्थूल है। जीवन्मुक्त पुरुषके लिये सूक्ष्म प्रणवके जपका विधान है। वही उसके लिये समस्त साधनोंका सार है। (यद्यपि जीवन्मुक्तके लिये किसी साधनकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह सिद्धरूप है, तथापि दूसरोंकी दृष्टिमें जबतक उसका शरीर रहता है, तबतक उसके द्वारा प्रणव-जपकी सहज साधना स्वतः होती रहती है।) वह अपनी देहका विलय होनेतक सूक्ष्म प्रणव मन्त्रका जप और उसके अर्थभूत परमात्म-तत्त्वका अनुसंधान करता रहता है। जब शरीर नष्ट हो जाता है, तब वह पूर्ण ब्रह्मस्वरूप शिवको प्राप्त कर लेता है—यह सुनिश्चित है॥ ८—१०१/२॥

केवलं मन्त्रजापी तु योगं प्राप्नोति निश्चयः॥ ११

षट्त्रिंशत्कोटिजापी तु निश्चयं योगमाप्नुयात्।
सूक्ष्मं च द्विविधं ज्ञेयं ह्रस्वदीर्घविभेदतः॥ १२

जो केवल मन्त्रका जप करता है, उसे निश्चय ही योगकी प्राप्ति होती है। जिसने छत्तीस करोड़ मन्त्रका जप कर लिया हो, उसे अवश्य ही योग प्राप्त हो जाता है। सूक्ष्म प्रणवके भी ह्रस्व और दीर्घके भेदसे दो रूप

अकारश्च उकारश्च मकारश्च ततः परम्।
बिन्दुनादयुतं तद्धि शब्दकालकलान्वितम्॥ १३

दीर्घप्रणवमेवं हि योगिनामेव हृद्गतम्।
मकारं तन्त्रितत्त्वं हि ह्रस्वप्रणव उच्यते॥ १४

शिवः शक्तिस्तयोरैक्यं मकारं तु त्रिकात्मकम्।
ह्रस्वमेवं हि जाप्यं स्यात्सर्वपापक्षयैषिणाम्॥ १५

भूवायुकनकार्णोद्यौः शब्दाद्याश्च तथा दश।
आशान्वये दश पुनः प्रवृत्ता इति कथ्यते॥ १६

ह्रस्वमेव प्रवृत्तानां निवृत्तानां तु दीर्घकम्।
व्याहृत्यादौ च मन्त्रादौ कामं शब्दकलायुतम्॥ १७

वेदादौ च प्रयोज्यं स्याद्वन्दने सन्ध्ययोरपि।

नवकोटिजपाञ्जप्त्वा संशुद्धः पुरुषो भवेत्॥ १८

पुनश्च नवकोट्या तु पृथिवीजयमाप्नुयात्।
पुनश्च नवकोट्या तु ह्यपां जयमवाप्नुयात्॥ १९

पुनश्च नवकोट्या तु तेजसां जयमाप्नुयात्।
पुनश्च नवकोट्या तु वायोर्जयमवाप्नुयात्।
आकाशजयमाप्नोति नवकोटिजपेन वै॥ २०

गन्धादीनां क्रमेणैव नवकोटिजपेन वै।
अहङ्कारस्य च पुनर्नवकोटिजपेन वै॥ २१

सहस्रमन्त्रजप्तेन नित्यशुद्धो भवेत्पुमान्।
ततः परं स्वसिद्ध्यर्थं जपो भवति हि द्विजाः॥ २२

जानने चाहिये। अकार, उकार, मकार, बिन्दु, नाद, शब्द, काल और कला—इनसे युक्त जो प्रणव है, उसे 'दीर्घ प्रणव' कहते हैं। वह योगियोंके ही हृदयमें स्थित होता है। मकारपर्यन्त जो ओम् है, वह अ उ म्—इन तीन तत्त्वोंसे युक्त है। इसीको 'ह्रस्व प्रणव' कहते हैं। 'अ' शिव है, 'उ' शक्ति है और मकार इन दोनोंकी एकता है; वह त्रितत्त्वरूप है, ऐसा समझकर ह्रस्व प्रणवका जप करना चाहिये। जो अपने समस्त पापोंका क्षय करना चाहते हैं, उनके लिये इस ह्रस्व प्रणवका जप अत्यन्त आवश्यक है॥ ११—१५॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पाँच भूत तथा शब्द, स्पर्श आदि इनके पाँच विषय—ये सब मिलकर दस वस्तुएँ मनुष्योंकी कामनाके विषय हैं। इनकी आशा मनमें लेकर जो कर्मोंके अनुष्ठानमें संलग्न होते हैं, वे दस प्रकारके पुरुष प्रवृत्त अथवा प्रवृत्तिमार्गी कहलाते हैं तथा जो निष्कामभावसे शास्त्रविहित कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, वे निवृत्त अथवा निवृत्तिमार्गी कहे गये हैं। प्रवृत्त पुरुषोंको ह्रस्व प्रणवका ही जप करना चाहिये और निवृत्त पुरुषोंको दीर्घ प्रणवका। व्याहृतियों तथा अन्य मन्त्रोंके आदिमें इच्छानुसार शब्द और कलासे युक्त प्रणवका उच्चारण करना चाहिये। वेदके आदिमें और दोनों संध्याओंकी उपासनाके समय भी ओंकारका उच्चारण करना चाहिये॥ १६-१७½॥

प्रणवका नौ करोड़ जप करनेसे मनुष्य शुद्ध हो जाता है। पुनः नौ करोड़का जप करनेसे वह पृथ्वीतत्त्वपर विजय पा लेता है। तत्पश्चात् पुनः नौ करोड़का जप करके वह जल-तत्त्वको जीत लेता है। पुनः नौ करोड़ जपसे वह अग्नितत्त्वपर विजय पाता है। तदनन्तर फिर नौ करोड़का जप करके वह वायु-तत्त्वपर विजयी होता है और फिर नौ करोड़के जपसे आकाशको अपने अधिकारमें कर लेता है। इसी प्रकार नौ-नौ करोड़का जप करके वह क्रमशः गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्दपर विजय पाता है, इसके बाद फिर नौ करोड़का जप करके अहंकारको भी जीत लेता है॥ १८—२१॥

हे द्विजो! मनुष्य एक हजार मन्त्रोंके जप करनेसे नित्य शुद्ध होता है, इसके अनन्तर अपनी सिद्धिके लिये जप किया जाता है॥ २२॥

एवमष्टोत्तरशतकोटिजप्तेन वै पुनः।
प्रणवेन प्रबुद्धस्तु शुद्धयोगमवाप्नुयात्॥ २३

शुद्धयोगेन संयुक्तो जीवन्मुक्तो न संशयः।
सदा जपन्सदा ध्यायञ्छिवं प्रणवरूपिणम्॥ २४

समाधिस्थो महायोगी शिव एव न संशयः।
ऋषिच्छन्दो देवतादि न्यस्य देहे पुनर्जपेत्॥ २५

प्रणवं मातृकायुक्तं देहे न्यस्य ऋषिर्भवेत्।
दशमातृषडध्वादि सर्वं न्यासफलं लभेत्॥ २६

प्रवृत्तानां च मिश्राणां स्थूलप्रणवमिष्यते।

इस तरह एक सौ आठ करोड़ प्रणवका जप करके उत्कृष्ट बोधको प्राप्त हुआ पुरुष शुद्ध योग प्राप्त कर लेता है। शुद्ध योगसे युक्त होनेपर वह जीवन्मुक्त हो जाता है; इसमें संशय नहीं है। सदा प्रणवका जप और प्रणवरूपी शिवका ध्यान करते-करते समाधिमें स्थित हुआ महायोगी पुरुष साक्षात् शिव ही है; इसमें संशय नहीं है। पहले अपने शरीरमें प्रणवके ऋषि, छन्द और देवता आदिका न्यास करके फिर जप आरम्भ करना चाहिये। अकारादि मातृकावर्णोंसे युक्त प्रणवका अपने अंगोंमें न्यास करके मनुष्य ऋषि हो जाता है। मन्त्रोंके दशविध* संस्कार, मातृकान्यास तथा षडध्वशोधन[1] आदिके साथ सम्पूर्ण न्यासका फल उसे प्राप्त हो जाता है। प्रवृत्ति तथा प्रवृत्ति-निवृत्तिसे मिश्रित भाववाले पुरुषोंके लिये स्थूल प्रणवका जप ही अभीष्टका साधक होता है॥ २३—२६½॥

---

* मन्त्रोंके दस संस्कार ये हैं—जनन, दीपन, बोधन, ताड़न, अभिषेचन, विमलीकरण, जीवन, तर्पण, गोपन और आप्यायन। इनकी विधि इस प्रकार है—

भोजपत्रपर गोरोचन, कुंकुम, चन्दनादिसे आत्माभिमुख त्रिकोण लिखे, फिर तीनों कोणोंमें छः-छः समान रेखाएँ खींचे। ऐसा करनेपर ४९ त्रिकोण कोष्ठ बनेंगे। उनमें ईशानकोणसे मातृकावर्ण लिखकर देवताका आवाहन-पूजन करके मन्त्रका एक-एक वर्ण उच्चारण करके अलग पत्रपर लिखे। ऐसा करनेपर 'जनन' नामका प्रथम संस्कार होगा।

हंसमन्त्रका सम्पुट करनेसे एक हजार जपद्वारा मन्त्रका दूसरा 'दीपन' संस्कार होता है। यथा—हंसः रामाय नमः सोऽहम्।

हूँ-बीज-सम्पुटित मन्त्रका पाँच हजार जप करनेसे 'बोधन' नामक तीसरा संस्कार होता है। यथा—हूँ रामाय नमः हूँ।

फट्-सम्पुटित मन्त्रका एक हजार जप करनेसे 'ताड़न' नामक चतुर्थ संस्कार होता है। यथा—फट् रामाय नमः फट्।

भूर्जपत्रपर मन्त्र लिखकर 'रों हंसः ओं' इस मन्त्रसे जलको अभिमन्त्रित करे और उस अभिमन्त्रित जलसे अश्वत्थपत्रादिद्वारा मन्त्रका अभिषेक करे। ऐसा करनेपर 'अभिषेक' नामक पाँचवाँ संस्कार होता है।

'ओं त्रों वषट्' इन वर्णोंसे सम्पुटित मन्त्रका एक हजार जप करनेसे 'विमलीकरण' नामक छठा संस्कार होता है यथा—ओं त्रों वषट् रामाय नमः वषट् त्रों ओं।

स्वधा-वषट्-सम्पुटित मूलमन्त्रका एक हजार जप करनेसे 'जीवन' नामक सातवाँ संस्कार होता है। यथा—स्वधा वषट् रामाय नमः वषट् स्वधा।

दुग्ध, जल एवं घृतके द्वारा मूलमन्त्रसे सौ बार तर्पण करना ही 'तर्पण' संस्कार है।

ह्रीं-बीज-सम्पुटित एक हजार जप करनेसे 'गोपन' नामक नवम संस्कार होता है। यथा—ह्रीं रामाय नमः ह्रीं।

ह्रौं-बीज-सम्पुटित एक हजार जप करनेसे 'आप्यायन' नामक दसवाँ संस्कार होता है। यथा—ह्रौं रामाय नमः ह्रौं।

इस प्रकार संस्कृत किया हुआ मन्त्र शीघ्र सिद्धिप्रद होता है।

१. षडध्व-शोधनका कार्य हौत्री दीक्षाके अन्तर्गत है। उसमें पहले कुण्डमें या वेदीपर अग्निस्थापन होता है। वहाँ षडध्वाका शोधन करके होमसे ही दीक्षा सम्पन्न होती है। विस्तार-भयसे अधिक विवरण नहीं दिया जा रहा है।

क्रियातपोजपैर्युक्तास्त्रिविधाः शिवयोगिनः॥ २७

धनादिविभवैश्चैव कराद्यङ्गैर्नमादिभिः।
क्रियया पूजया युक्तः क्रियायोगीति कथ्यते॥ २८

पूजायुक्तश्च मितभुग्बाह्येन्द्रियजयान्वितः।
परद्रोहादिरहितस्तपोयोगीति कथ्यते॥ २९

एतैर्युक्तः सदा शुद्धः सर्वकामादिवर्जितः।
सदा जपपरः शान्तो जपयोगीति तं विदुः॥ ३०

उपचारैः षोडशभिः पूजया शिवयोगिनाम्।
सालोक्यादिक्रमेणैव शुद्धो मुक्तिं लभेन्नरः॥ ३१

क्रिया, तप और जपके योगसे शिवयोगी तीन प्रकारके होते हैं—[वे क्रमशः क्रियायोगी, तपोयोगी और जपयोगी कहलाते हैं।] जो धन आदि वैभवोंसे पूजा-सामग्रीका संचय करके हाथ आदि अंगोंसे नमस्कारादि क्रिया करते हुए इष्टदेवकी पूजामें लगा रहता है, वह 'क्रियायोगी' कहलाता है। पूजामें संलग्न रहकर जो परिमित भोजन करता हुआ बाह्य इन्द्रियोंको जीतकर वशमें किये रहता है और मनको भी वशमें करके परद्रोह आदिसे दूर रहता है, वह 'तपोयोगी' कहलाता है। इन सभी सद्‌गुणोंसे युक्त होकर जो सदा शुद्धभावसे रहता तथा समस्त काम आदि दोषोंसे रहित हो शान्तचित्तसे निरन्तर जप किया करता है, उसे महात्मा पुरुष 'जपयोगी' मानते हैं। जो मनुष्य सोलह प्रकारके उपचारोंसे शिवयोगी महात्माओंकी पूजा करता है, वह शुद्ध होकर सालोक्य आदिके क्रमसे उत्तरोत्तर उत्कृष्ट मुक्तिको प्राप्त कर लेता है॥ २७—३१॥

जपयोगमथो वक्ष्ये गदतः शृणुत द्विजाः।
तपःकर्तुर्जपः प्रोक्तो यज्जपन्परिमार्जते॥ ३२

शिवनाम नमःपूर्वं चतुर्थ्यां पञ्चतत्त्वकम्।
स्थूलप्रणवरूपं हि शिवपञ्चाक्षरं द्विजाः॥ ३३

पञ्चाक्षरजपेनैव सर्वसिद्धिं लभेन्नरः।
प्रणवेनादिसंयुक्तं सदा पञ्चाक्षरं जपेत्॥ ३४

गुरूपदेशं सङ्गम्य सुखवासे सुभूतले।
पूर्वपक्षे समारभ्य कृष्णभूतावधि द्विजाः॥ ३५

माघं भाद्रं विशिष्टं तु सर्वकालोत्तमोत्तमम्।

हे द्विजो! अब मैं जपयोगका वर्णन करता हूँ, आप सब लोग ध्यान देकर सुनें। तपस्या करनेवालेके लिये जपका उपदेश किया गया है; क्योंकि वह जप करते-करते अपने आपको सर्वथा शुद्ध (निष्पाप) कर लेता है। हे ब्राह्मणो! पहले 'नमः' पद हो, उसके बाद चतुर्थी विभक्तिमें 'शिव' शब्द हो, तो पंचतत्त्वात्मक 'नमः शिवाय' मन्त्र होता है। इसे 'शिव-पंचाक्षर' कहते हैं। यह स्थूल प्रणवरूप है। इस पंचाक्षरके जपसे ही मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है। पंचाक्षरमन्त्रके आदिमें ओंकार लगाकर ही सदा उसका जप करना चाहिये। हे द्विजो! गुरुके मुखसे पंचाक्षरमन्त्रका उपदेश पाकर जहाँ सुखपूर्वक निवास किया जा सके, ऐसी उत्तम भूमिपर महीनेके पूर्वपक्ष (शुक्ल)-में प्रतिपदासे आरम्भ करके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीतक निरन्तर जप करता रहे। माघ और भादोंके महीने अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। यह समय सब समयोंसे उत्तमोत्तम माना गया है॥ ३२—३५½॥

एकवारं मिताशी तु वाग्यतो नियतेन्द्रियः॥ ३६

स्वस्य राजपितॄणां च नित्यं शुश्रूषणं चरेत्।
सहस्रजपमात्रेण भवेच्छुद्धोऽन्यथा ऋणी॥ ३७

पञ्चाक्षरं पञ्चलक्षं जपेच्छिवमनुस्मरन्।
पद्मासनस्थं शिवदं गङ्गाचन्द्रकलान्वितम्॥ ३८

वामोरुस्थितशक्त्या च विराजन्तं महागणैः।
मृगटङ्कधरं देवं वरदाभयपाणिकम्॥ ३९

सदानुग्रहकर्तारं सदाशिवमनुस्मरन्।
सम्पूज्य मनसा पूर्वं हृदि वा सूर्यमण्डले॥ ४०

जपेत्पञ्चाक्षरीं विद्यां प्राङ्मुखः शुद्धकर्मकृत्।
प्रातः कृष्णचतुर्दश्यां नित्यकर्म समाप्य च॥ ४१

मनोरमे शुचौ देशे नियतः शुद्धमानसः।
पञ्चाक्षरस्य मन्त्रस्य सहस्रं द्वादशं जपेत्॥ ४२

वरयेच्च सपत्नीकान् शैवान्वै ब्राह्मणोत्तमान्।
एकं गुरुवरं शिष्टं वरयेत्साम्बमूर्तिकम्॥ ४३

ईशानं चाथ पुरुषमघोरं वाममेव च।
सद्योजातं च पञ्चैव शिवभक्तान्द्विजोत्तमान्॥ ४४

पूजाद्रव्याणि सम्पाद्य शिवपूजां समारभेत्।
शिवपूजां च विधिवत्कृत्वा होमं समारभेत्॥ ४५

मुखान्तं च स्वसूत्रेण कृत्वा होमं समाचरेत्।
दशैकं वा शतैकं वा सहस्रैकमथापि वा॥ ४६

साधकको चाहिये कि वह प्रतिदिन एक बार परिमित भोजन करे, मौन रहे, इन्द्रियोंको वशमें रखे, अपने स्वामी एवं माता-पिताकी नित्य सेवा करे। इस नियमसे रहकर जप करनेवाला पुरुष एक हजार जपसे ही शुद्ध हो जाता है, अन्यथा वह ऋणी होता है। भगवान् शिवका निरन्तर चिन्तन करते हुए पंचाक्षर-मन्त्रका पाँच लाख जप करे। [जपकालमें इस प्रकार ध्यान करे] कल्याणदाता भगवान् शिव कमलके आसनपर विराजमान हैं, उनका मस्तक श्रीगंगाजी तथा चन्द्रमाकी कलासे सुशोभित है, उनकी बायीं जाँघपर आदिशक्ति भगवती उमा बैठी हैं, वहाँ खड़े हुए बड़े-बड़े गण भगवान् शिवकी शोभा बढ़ा रहे हैं, महादेवजी अपने चार हाथोंमें मृगमुद्रा, टंक तथा वर एवं अभयकी मुद्राएँ धारण किये हुए हैं। इस प्रकार सदा सबपर अनुग्रह करनेवाले भगवान् सदाशिवका बार-बार स्मरण करते हुए हृदय अथवा सूर्यमण्डलमें पहले उनकी मानसिक पूजा करके फिर पूर्वाभिमुख हो पूर्वोक्त पंचाक्षरी विद्याका जप करे। उन दिनों साधक सदा शुद्ध कर्म ही करे। जपकी समाप्तिके दिन कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको प्रातःकाल नित्यकर्म सम्पन्न करके शुद्ध एवं सुन्दर स्थानमें [शौच-संतोषादि] नियमोंसे युक्त होकर शुद्ध हृदयसे पंचाक्षर-मन्त्रका बारह हजार जप करे॥ ३६—४२॥

तत्पश्चात् सपत्नीक पाँच ब्राह्मणोंका, जो श्रेष्ठ एवं शिवभक्त हों, वरण करे। इनके अतिरिक्त एक श्रेष्ठ आचार्यका भी वरण करे और उसे साम्बसदाशिवका स्वरूप समझे। ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात—इन पाँचोंके प्रतीकस्वरूप श्रेष्ठ और शिवभक्त ब्राह्मणोंका वरण करनेके पश्चात् पूजन-सामग्रीको एकत्र करके भगवान् शिवका पूजन आरम्भ करे। विधिपूर्वक शिवकी पूजा सम्पन्न करके होम आरम्भ करे। अपने गृह्यसूत्रके अनुसार मुखान्त कर्म करनेके [अर्थात् परिसमूहन, उपलेपन, उल्लेखन, मृद्-उद्धरण और अभ्युक्षण—इन पंच भू-संस्कारोंके पश्चात् वेदीपर स्वाभिमुख अग्निको स्थापित करके कुशकण्डिका करनेके अनन्तर प्रज्वलित अग्निमें आज्यभागान्त आहुति देकर] पश्चात् होमका कार्य आरम्भ करे।

कापिलेन घृतेनैव जुहुयात्स्वयमेव हि।
कारयेच्छिवभक्तैर्वाप्यष्टोत्तरशतं बुधः॥ ४७

कपिला गायके घीसे ग्यारह, एक सौ एक अथवा एक हजार एक आहुतियाँ स्वयं ही दे अथवा विद्वान् पुरुष शिवभक्त ब्राह्मणोंसे एक सौ आठ आहुतियाँ दिलाये॥ ४३—४७॥

होमान्ते दक्षिणा देया गुरोर्गोमिथुनं तथा।
ईशानादिस्वरूपांस्तान्गुरुं साम्बं विभाव्य च॥ ४८

तेषां पत्सिक्ततोयेन स्वशिरः स्नानमाचरेत्।
षट्त्रिंशत्कोटितीर्थेषु सद्यः स्नानफलं लभेत्॥ ४९

दशाङ्गमन्नं तेषां वै दद्याद्वै भक्तिपूर्वकम्।
पराबुद्ध्या गुरोः पत्नीमीशानादिक्रमेण तु॥ ५०

परमान्नेन सम्पूज्य यथाविभवविस्तरम्।
रुद्राक्षवस्त्रपूर्वं च वटकापूपकैर्युतम्॥ ५१

बलिदानं ततः कृत्वा भूरि भोजनमाचरेत्।
ततः सम्प्रार्थ्य देवेशं जपं तावत्समापयेत्॥ ५२

पुरश्चरणमेवं तु कृत्वा मन्त्री भवेन्नरः।
पुनश्च पञ्चलक्षेण सर्वपापक्षयो भवेत्॥ ५३

अतलादि समारभ्य सत्यलोकावधि क्रमात्।
पञ्चलक्षजपात्तत्तल्लोकैश्वर्यमवाप्नुयात् ॥ ५४

होमकर्म समाप्त होनेपर गुरुको दक्षिणाके रूपमें एक गाय और बैल देने चाहिये। ईशान आदिके प्रतीकरूप जिन पाँच ब्राह्मणोंका वरण किया गया हो, उनको ईशान आदिका ही स्वरूप समझे तथा आचार्यको साम्बसदाशिवका स्वरूप माने। इसी भावनाके साथ उन सबके चरण धोये और उनके चरणोदकसे अपने मस्तकको सींचे। ऐसा करनेसे वह साधक छत्तीस करोड़ तीर्थोंमें स्नान करनेका फल तत्काल प्राप्त कर लेता है। उन ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक दशांग अन्न देना चाहिये। गुरुपत्नीको पराशक्ति मानकर उनका भी पूजन करे। ईशानादि-क्रमसे उन सभी ब्राह्मणोंका उत्तम अन्नसे पूजन करके अपने वैभव-विस्तारके अनुसार रुद्राक्ष, वस्त्र, बड़ा और पूआ आदि अर्पित करे। तदनन्तर दिक्पालादिको बलि देकर ब्राह्मणोंको भरपूर भोजन कराये। इसके बाद देवेश्वर शिवसे प्रार्थना करके अपना जप समाप्त करे। इस प्रकार पुरश्चरण करके मनुष्य उस मन्त्रको सिद्ध कर लेता है। फिर पाँच लाख जप करनेसे उसके समस्त पापोंका नाश हो जाता है। तदनन्तर पुनः पाँच लाख जप करनेपर मनुष्य अतलसे लेकर सत्यलोकतकके लोकोंका ऐश्वर्य प्राप्त कर लेता है॥ ४८—५४॥

मध्ये मृतश्चेद्भोगान्ते भूमौ तज्जापको भवेत्।
पुनश्च पञ्चलक्षेण ब्रह्मसामीप्यमाप्नुयात्॥ ५५

पुनश्च पञ्चलक्षेण सारूप्यैश्वर्यमाप्नुयात्।
आहत्य शतलक्षेण साक्षाद् ब्रह्मसमो भवेत्॥ ५६

कार्यब्रह्मण एवं हि सायुज्यं प्रतिपद्य वै।
यथेष्टं भोगमाप्नोति तद् ब्रह्म प्रलयावधि॥ ५७

यदि अनुष्ठान पूर्ण होनेके पहले बीचमें ही साधककी मृत्यु हो जाय तो वह परलोकमें उत्तम भोग भोगनेके पश्चात् पुनः पृथ्वीपर जन्म लेकर पंचाक्षर-मन्त्रके जपका अनुष्ठान करता है। [समस्त लोकोंका ऐश्वर्य पानेके पश्चात् मन्त्रको सिद्ध करनेवाला] वह पुरुष यदि पुनः पाँच लाख जप करे तो उसे ब्रह्माजीका सामीप्य प्राप्त होता है। पुनः पाँच लाख जप करनेसे उसे सारूप्य नामक ऐश्वर्य प्राप्त होता है। सौ लाख जप करनेसे वह साक्षात् ब्रह्माके समान हो जाता है। इस तरह कार्य-ब्रह्म (हिरण्यगर्भ)-का

पुनः कल्पान्तरे वृत्ते ब्रह्मपुत्रः स जायते।
पुनश्च तपसा दीप्तः क्रमान्मुक्तो भविष्यति॥ ५८

सायुज्य प्राप्त करके वह उस ब्रह्माका प्रलय होनेतक उस लोकमें यथेष्ट भोग भोगता है। फिर दूसरे कल्पका आरम्भ होनेपर वह ब्रह्माजीका पुत्र होता है। उस समय फिर तपस्या करके दिव्य तेजसे प्रकाशित होकर वह क्रमशः मुक्त हो जाता है॥ ५५—५८॥

पृथ्व्यादिकार्यभूतेभ्यो लोका वै निर्मिताः क्रमात्।
पातालादि च सत्यान्तं ब्रह्मलोकाश्चतुर्दश॥ ५९
सत्यादूर्ध्वं क्षमान्तं वै विष्णुलोकाश्चतुर्दश।
क्षमालोके कार्यविष्णुर्वैकुण्ठे वरपत्तने॥ ६०
कार्यलक्ष्म्या महाभोगी रक्षां कृत्वाधितिष्ठति।
तदूर्ध्वगाश्च शुच्यन्ता लोकाष्टाविंशतिः स्थिताः॥ ६१
शुचौ लोके तु कैलासे रुद्रो वै भूतहृत्स्थितः।
षडुत्तराश्च पञ्चाशदहिंसान्तास्तदूर्ध्वगाः॥ ६२
अहिंसालोकमास्थाय ज्ञानकैलासके पुरे।
कार्येश्वरस्तिरोभावं सर्वान्कृत्वाधितिष्ठति॥ ६३
तदन्ते कालचक्रं हि कालातीतस्ततः परम्।
शिवेनाधिष्ठितस्तत्र कालश्चक्रेश्वराह्वयः॥ ६४
माहिषं धर्ममास्थाय सर्वान्कालेन युञ्जति।

पृथ्वी आदि कार्यस्वरूप भूतोंद्वारा पातालसे लेकर सत्यलोकपर्यन्त ब्रह्माजीके चौदह लोक क्रमशः निर्मित हुए हैं। सत्यलोकसे ऊपर क्षमालोकतक जो चौदह भुवन हैं, वे भगवान् विष्णुके लोक हैं। उस क्षमालोक वाले श्रेष्ठ वैकुण्ठमें महाभोगी कार्यविष्णु कार्यलक्ष्मीसहित सबकी रक्षा करते हुए विराजमान रहते हैं। क्षमालोकसे ऊपर शुचिलोकपर्यन्त अट्ठाईस भुवन स्थित हैं। शुचिलोकके अन्तर्गत कैलासमें प्राणियोंका संहार करनेवाले रुद्रदेव विराजमान हैं। शुचिलोकसे ऊपर अहिंसालोकपर्यन्त छप्पन भुवनोंकी स्थिति है। अहिंसालोकका आश्रय लेकर जो ज्ञान-कैलास नामक नगर शोभा पाता है, उसमें कार्यभूत महेश्वर सबको अदृश्य करके रहते हैं। अहिंसालोकके अन्तमें कालचक्रकी स्थिति है। तदनन्तर कालातीत स्थित है; जहाँ कालचक्रेश्वर नामक शिव माहिष धर्मका आश्रय लेकर सबको कालसे संयुक्त किये रहते हैं॥ ५९—६४ $^{1}/_{2}$ ॥

असत्यश्चाशुचिश्चैव हिंसा चैवाथ निर्घृणा॥ ६५
असत्यादिचतुष्पादः सर्वांशः कामरूपधृक्।
नास्तिक्यलक्ष्मीर्दुःसङ्गो वेदबाह्यध्वनिः सदा॥ ६६
क्रोधसङ्गः कृष्णवर्णो महामहिषवेषवान्।
तावान्महेश्वरः प्रोक्तस्तिरोधास्तावदेव हि॥ ६७
तदर्वाक्कर्मभोगो हि तदूर्ध्वं ज्ञानभोगकम्।
तदर्वाक्कर्ममाया हि ज्ञानमाया तदूर्ध्वकम्॥ ६८

असत्य, अशुचि, हिंसा, निर्दयता—ये असत्य आदि चार पाद कामरूप धारण करनेवाले शिवके अंश हैं। नास्तिकतायुक्त लक्ष्मी, दुःसंग, वेदबाह्य शब्द, क्रोधका संग, कृष्ण वर्ण—ये महामहिषके रूपवाले हैं। यहाँतक महेश्वरके विराट्-स्वरूपका वर्णन किया गया। वहींतक लोकोंका तिरोधान अथवा लय होता है। उससे नीचे कर्मोंका भोग है और उससे ऊपर ज्ञानका भोग, उसके नीचे कर्ममाया है और उसके ऊपर ज्ञानमाया॥ ६५—६८॥

मा लक्ष्मीः कर्मभोगो वै याति मायेति कथ्यते।
मा लक्ष्मीर्ज्ञानभोगो वै याति मायेति कथ्यते॥ ६९

[अब मैं कर्ममाया और ज्ञानमायाका तात्पर्य बता रहा हूँ—] 'मा' का अर्थ है लक्ष्मी; उससे कर्मभोग यात—प्राप्त होता है, इसलिये वह माया अथवा कर्ममाया कहलाती है। इसी तरह मा अर्थात् लक्ष्मीसे ज्ञानभोग यात अर्थात् प्राप्त होता है, इसलिये

तदूर्ध्वं नित्यभोगो हि तदर्वाङ् नश्वरं विदुः।
तदर्वाक्च तिरोधानं तदूर्ध्वं न तिरोधनम्॥ ७०

तदर्वाक् पाशबन्धो हि तदूर्ध्वं नहि बन्धनम्।
तदर्वाक् परिवर्तन्ते काम्यकर्मानुसारिणः॥ ७१

निष्कामकर्मभोगस्तु तदूर्ध्वं परिकीर्तितः।

उसे माया या ज्ञानमाया कहा गया है। उपर्युक्त सीमासे नीचे नश्वर भोग हैं और ऊपर नित्य भोग। उससे नीचे ही तिरोधान अथवा लय है, ऊपर तिरोधान नहीं है। वहाँसे नीचे ही कर्ममय पाशोंद्वारा बन्धन होता है। ऊपर बन्धनका सदा अभाव है। उससे नीचे ही जीव सकाम कर्मोंका अनुसरण करते हुए विभिन्न लोकों और योनियोंमें चक्कर काटते हैं। उससे ऊपरके लोकोंमें निष्काम कर्मका ही भोग बताया गया है॥ ६९—७१ $^{1}/_{2}$ ॥

तदर्वाक् परिवर्तन्ते बिन्दुपूजापरायणाः॥ ७२

तदूर्ध्वं हि व्रजन्त्येव निष्कामा लिङ्गपूजकाः।
तदर्वाक् परिवर्तन्ते शिवान्यसुरपूजकाः॥ ७३

शिवैकनिरता ये च तदूर्ध्वं सम्प्रयान्ति ते।
तदर्वाग्जीवकोटिः स्यात्तदूर्ध्वं परकोटिकाः॥ ७४

बिन्दुपूजामें तत्पर रहनेवाले उपासक वहाँसे नीचेके लोकोंमें ही घूमते हैं। उसके ऊपर तो निष्कामभावसे शिवलिंगकी पूजा करनेवाले उपासक ही जाते हैं। उसके नीचे शिवके अतिरिक्त अन्य देवताओंकी पूजा करनेवाले घूमते रहते हैं। जो एकमात्र शिवकी ही उपासनामें तत्पर हैं, वे उससे ऊपरके लोकोंमें जाते हैं। वहाँसे नीचे जीवकोटि है और ऊपर ईश्वरकोटि॥ ७२—७४॥

सांसारिकास्तदर्वाक् च मुक्ताः खलु तदूर्ध्वगाः।
तदर्वाक् परिवर्तन्ते प्राकृतद्रव्यपूजकाः॥ ७५
तदूर्ध्वं हि व्रजन्त्येते पौरुषद्रव्यपूजकाः।
तदर्वाक्छक्तिलिङ्गं तु शिवलिङ्गं तदूर्ध्वकम्॥ ७६
तदर्वागावृतं लिङ्गं तदूर्ध्वं हि निराकृति।
तदर्वाक्कल्पितं लिङ्गं तदूर्ध्वं वै न कल्पितम्॥ ७७
तदर्वाग्बाह्यलिङ्गं स्यादन्तरङ्गं तदूर्ध्वकम्।
तदर्वाक्छक्तिलोका हि शतं वै द्वादशाधिकम्॥ ७८
तदर्वाग्बिन्दुरूपं हि नादरूपं तदुत्तरम्।
तदर्वाक्कर्मलोकस्तु तदूर्ध्वं ज्ञानलोककः॥ ७९

नीचे संसारी जीव रहते हैं और ऊपर मुक्त लोग। प्राकृत द्रव्योंसे पूजा करनेवाले उसके नीचे रहते हैं और पौरुष द्रव्योंसे पूजा करने वाले उससे ऊपर जाते हैं। उसके नीचे शक्तिलिंग है और उसके ऊपर शिवलिंग। उसके नीचे सगुण लिंग है और उसके ऊपर निर्गुण लिंग। उसके नीचे कल्पित लिंग है और उसके ऊपर कल्पित नहीं है। उसके नीचे आधिभौतिक लिंग और उसके ऊपर आध्यात्मिक लिंग है। उसके नीचे एक सौ बारह शक्ति-लोक हैं। उसके नीचे बिन्दुरूप और उसके ऊपर नादरूप है। उसके नीचे कर्मलोक है और उसके ऊपर ज्ञानलोक॥ ७५—७९॥

नमस्कारस्तदूर्ध्वं हि मदाहङ्कारनाशनः।
जनं तस्मात् तिरोधानं प्रत्यायाति न ना यतः॥ ८०

ज्ञानशब्दार्थ एवं हि तिरोधाननिवारणात्।
तदर्वाक् परिवर्तन्ते ह्याधिभौतिकपूजकाः॥ ८१

आध्यात्मिकार्चका एव तदूर्ध्वं सम्प्रयान्ति वै।

इसी प्रकार उसके ऊपर मद और अहंकारका नाश करनेवाली नम्रता है, वहाँ जन्मजनित तिरोधान नहीं है। उसका निवारण किये बिना वहाँ किसीका प्रवेश सम्भव नहीं है। इस प्रकार तिरोधानका निवारण करनेसे वहाँ ज्ञानशब्दका अर्थ ही प्रकाशित होता है। आधिभौतिक पूजा करनेवाले लोग उससे नीचेके लोकोंमें ही चक्कर काटते हैं। जो आध्यात्मिक उपासना करनेवाले हैं, वे ही उससे ऊपरको जाते हैं।

तावद्वै वेदिभागं तन्महालोकात्मलिङ्गके॥ ८२
प्रकृत्याद्यष्टबन्धोऽपि वेद्यते सम्प्रतिष्ठितः।
एवमेतादृशं ज्ञेयं सर्वं लौकिकवैदिकम्॥ ८३

इस प्रकार वहाँतक महालोकरूपी आत्मलिंगमें विभागको जानना चाहिये और प्रकृति आदि (प्रकृति, महत्, अहंकार, पंच तन्मात्राएँ) आठ बन्धोंको भी जाने। इस प्रकार सब लौकिक तथा वैदिक स्वरूपको जानना चाहिये॥ ८०—८३॥

अधर्ममहिषारूढं कालचक्रं तरन्ति ते।
सत्यादिधर्मयुक्ता ये शिवपूजापराश्च ये॥ ८४
तदूर्ध्वं वृषभो धर्मो ब्रह्मचर्यस्वरूपधृक्।
सत्यादिपादयुक्तस्तु शिवलोकाग्रतः स्थितः॥ ८५
क्षमाशृङ्गः शमश्रोत्रो वेदध्वनिविभूषितः।
आस्तिक्यचक्षुर्निश्वासगुरुबुद्धिमना वृषः॥ ८६
क्रियादिवृषभा ज्ञेयाः कारणादिषु सर्वदा।
तं क्रियावृषभं धर्मं कालातीतोऽधितिष्ठति॥ ८७

जो सत्य-अहिंसा आदि धर्मोंसे युक्त होकर भगवान् शिवके पूजनमें तत्पर रहते हैं, वे अधर्मरूप भैंसेपर आरूढ कालचक्रको पार कर जाते हैं। कालचक्रेश्वरकी सीमातक जो विराट् महेश्वरलोक बताया गया है, उससे ऊपर वृषभके आकारमें धर्मकी स्थिति है। वह ब्रह्मचर्यका मूर्तिमान् रूप हैं। उसके सत्य, शौच, अहिंसा और दया—ये चार पाद हैं। वह शिवलोकके आगे स्थित है। क्षमा उसके सींग हैं, शम कान हैं, वे वेदध्वनिरूपी शब्दसे विभूषित हैं। आस्तिकता उसके दोनों नेत्र हैं, निःश्वास ही उसकी श्रेष्ठ बुद्धि एवं मन है। क्रिया आदि धर्मरूपी जो वृषभ हैं, वे कारण आदिमें सर्वदा स्थित हैं—ऐसा जानना चाहिये। उस क्रियारूप वृषभाकार धर्मपर कालातीत शिव आरूढ़ होते हैं॥ ८४—८७॥

ब्रह्मविष्णुमहेशानां स्वस्वायुर्दिनमुच्यते।
तदूर्ध्वं न दिनं रात्रिर्न जन्ममरणादिकम्॥ ८८
पुनः कारणसत्यान्ताः कारणब्रह्मणस्तथा।
गन्धादिभ्यस्तु भूतेभ्यस्तदूर्ध्वं निर्मिताः सदा॥ ८९
सूक्ष्मगन्धस्वरूपा हि स्थिता लोकाश्चतुर्दश।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरकी जो अपनी-अपनी आयु है, उसीको दिन कहते हैं। जहाँ धर्मरूपी वृषभकी स्थिति है, उससे ऊपर न दिन है, न रात्रि और वहाँ जन्म-मरण आदि भी नहीं है। फिर कारणस्वरूप ब्रह्माके भी कारण सत्यलोकपर्यन्त चौदह लोक स्थित हैं, जो पांचभौतिक गन्ध आदिसे परे हैं। उनकी सनातन स्थिति है। सूक्ष्म गन्ध ही उनका स्वरूप है॥ ८८-८९ १/२॥

पुनः कारणविष्णोर्वै स्थिता लोकाश्चतुर्दश॥ ९०
पुनः कारणरुद्रस्य लोकाष्टाविंशका मताः।
पुनश्च कारणेशस्य षट्पञ्चाशत्तदूर्ध्वगाः॥ ९१
ततः परं ब्रह्मचर्यलोकाख्यं शिवसम्मतम्।
तत्रैव ज्ञानकैलासे पञ्चावरणसंयुते॥ ९२
पञ्चमण्डलसंयुक्तं पञ्चब्रह्मकलान्वितम्।
आदिशक्तिसमायुक्तमादिलिङ्गं तु तत्र वै॥ ९३
शिवालयमिदं प्रोक्तं शिवस्य परमात्मनः।
परशक्त्या समायुक्तस्तत्रैव परमेश्वरः॥ ९४
सृष्टिः स्थितिश्च संहारस्तिरोभावोऽप्यनुग्रहः।
पञ्चकृत्यप्रवीणोऽसौ सच्चिदानन्दविग्रहः॥ ९५

इसके ऊपर कारणरूप विष्णुके चौदह लोक स्थित हैं। उनसे भी ऊपर फिर कारणरूपी रुद्रके अट्ठाईस लोकोंकी स्थिति मानी गयी है। फिर उनसे भी ऊपर कारणेश शिवके छप्पन लोक विद्यमान हैं। तदनन्तर शिवसम्मत ब्रह्मचर्यलोक है और वहीं पाँच आवरणोंसे युक्त ज्ञानमय कैलास है; वहाँपर पाँच मण्डलों, पाँच ब्रह्मकलाओं और आदिशक्तिसे संयुक्त आदिलिंग प्रतिष्ठित है। उसे परमात्मा शिवका शिवालय कहा गया है। वहीं पराशक्तिसे युक्त परमेश्वर शिव निवास करते हैं। वे सृष्टि, पालन, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह—इन पाँचों कृत्योंमें प्रवीण हैं। उनका श्रीविग्रह सच्चिदानन्दस्वरूप है॥ ९०—९५॥

ध्यानधर्मः सदा यस्य सदानुग्रहतत्परः।
समाध्यासनमासीनः स्वात्मारामो विराजते॥ ९६

तस्य सन्दर्शनं साध्यं कर्मध्यानादिभिः क्रमात्।
नित्यादिकर्मयजनाच्छिवकर्ममतिर्भवेत् ॥ ९७

क्रियादिशिवकर्मभ्यः शिवज्ञानं प्रसाधयेत्।
तद्दर्शनगताः सर्वे मुक्ता एव न संशयः॥ ९८

वे सदा ध्यानरूपी धर्ममें ही स्थित रहते हैं और सदा सबपर अनुग्रह किया करते हैं। वे स्वात्माराम हैं और समाधिरूपी आसनपर आसीन हो सुशोभित होते हैं। कर्म एवं ध्यान आदिका अनुष्ठान करनेसे क्रमशः साधनपथमें आगे बढ़नेपर उनका दर्शन साध्य होता है। नित्य-नैमित्तिक आदि कर्मोंद्वारा देवताओंका यजन करनेसे भगवान् शिवके समाराधन-कर्ममें मन लगता है। क्रिया आदि जो शिवसम्बन्धी कर्म हैं, उनके द्वारा शिवज्ञान सिद्ध करे। जिन्होंने शिवतत्त्वका साक्षात्कार कर लिया है अथवा जिनपर शिवकी कृपादृष्टि पड़ चुकी है, वे सब मुक्त ही हैं; इसमें संशय नहीं है॥ ९६—९८॥

मुक्तिरात्मस्वरूपेण स्वात्मारामत्वमेव हि।
क्रियातपोजपज्ञानध्यानधर्मेषु सुस्थितः॥ ९९

शिवस्य दर्शनं लब्ध्वा स्वात्मारामत्वमेव हि।
यथा रविः स्वकिरणादशुद्धिमपनेष्यति॥ १००

कृपाविचक्षणः शम्भुरज्ञानमपनेष्यति।
अज्ञानविनिवृत्तौ तु शिवज्ञानं प्रवर्तते॥ १०१

शिवज्ञानात्स्वस्वरूपमात्मारामत्वमेष्यति ।
आत्मारामत्वसंसिद्धौ कृतकृत्यो भवेन्नरः॥ १०२

आत्मस्वरूपसे जो स्थिति है, वही मुक्ति है। एकमात्र अपने आत्मामें रमण या आनन्दका अनुभव करना ही मुक्तिका स्वरूप है। जो पुरुष क्रिया, तप, जप, ज्ञान और ध्यानरूपी धर्मोंमें भलीभाँति स्थित है, वह शिवका साक्षात्कार करके स्वात्मारामत्वस्वरूप मोक्षको भी प्राप्त कर लेता है। जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे अशुद्धिको दूर कर देते हैं, उसी प्रकार कृपा करनेमें कुशल भगवान् शिव अपने भक्तके अज्ञानको मिटा देते हैं। अज्ञानकी निवृत्ति हो जानेपर शिवज्ञान स्वतः प्रकट हो जाता है। शिवज्ञानसे अपना विशुद्ध स्वरूप आत्मारामत्व प्राप्त होता है और आत्मारामत्वकी सम्यक् सिद्धि हो जानेपर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है॥ ९९—१०२॥

पुनश्च शतलक्षेण ब्रह्मणः पदमाप्नुयात्।
पुनश्च शतलक्षेण विष्णोः पदमवाप्नुयात्॥ १०३

(शिव मन्त्रका) सौ लाख जप करनेसे ब्रह्मपदकी प्राप्ति होती है और फिर सौ लाख जप करनेसे विष्णुपद प्राप्त होता है॥ १०३॥

पुनश्च शतलक्षेण रुद्रस्य पदमाप्नुयात्।
पुनश्च शतलक्षेण ऐश्वर्यं पदमाप्नुयात्॥ १०४

पुनः सौ लाख (शिवमन्त्रका) जप करनेसे रुद्रका पद प्राप्त होता है। उसके बाद फिर सौ लाख जप करनेपर ऐश्वर्यमय पदकी प्राप्ति हो जाती है॥ १०४॥

पुनश्चैवंविधेनैव जपेन सुसमाहितः।
शिवलोकादिभूतं हि कालचक्रमवाप्नुयात्॥ १०५

फिर इसी प्रकार सम्यक् रूपसे जप करनेपर शिवलोकके आदिभूत अर्थात् शिवलोकके आधारभूत निर्माता कालचक्रको प्राप्त किया जा सकता है॥ १०५॥

कालचक्रं पञ्चचक्रमेकैकेन क्रमोत्तरे।
सृष्टिमोहौ ब्रह्मचक्रं भोगमोहौ तु वैष्णवम्॥ १०६
कोपमोहौ रौद्रचक्रं भ्रमणं चैश्वरं विदुः।
शिवचक्रं ज्ञानमोहौ पञ्चचक्रं विदुर्बुधाः॥ १०७

यह कालचक्र पंचचक्रोंसे युक्त है, जो एकके पश्चात् एकमें स्थित हैं। सृष्टि और मोहसे युक्त ब्रह्मचक्र, भोग तथा मोहसे युक्त वैष्णवचक्र, कोप एवं मोहसे युक्त रौद्रचक्र, भ्रमणसे युक्त ईश्वरचक्र और ज्ञान तथा मोहसे युक्त शिवचक्र है। ऐसा इन पाँच चक्रोंके विषयमें बुद्धिमानोंका कहना है॥ १०६-१०७॥

पुनश्च दशकोट्या हि कारणब्रह्मणः पदम्।
पुनश्च दशकोट्या हि तत्पदैश्वर्यमाप्नुयात्॥ १०८

पुनः दस करोड़ (शिवमन्त्रका) जप करनेपर कारणब्रह्मका पद प्राप्त होता है। तदनन्तर दस करोड़ जप करनेसे ऐश्वर्ययुक्त पदकी प्राप्ति होती है॥ १०८॥

एवं क्रमेण विष्ण्वादेः पदं लब्ध्वा महौजसः।
क्रमेण तत्पदैश्वर्यं लब्ध्वा चैव महात्मनः॥ १०९

इस प्रकार क्रमशः जप करता हुआ प्राणी महान् ओजस्वी विष्णुके पदको प्राप्तकर पुनः उसी क्रमसे जपता हुआ महात्माओंके उस ऐश्वर्यपदको प्राप्त करता है॥ १०९॥

शतकोटिमनुं जप्त्वा पञ्चोत्तरमतन्द्रितः।
शिवलोकमवाप्नोति पञ्चमावरणाद् बहिः॥ ११०

बिना असावधानी किये १०५ करोड़ मन्त्रोंका जप करनेके पश्चात् वह प्राणी पाँच आवरणों (पशु, पाश, माया, शक्ति, रोध)-से बाहर स्थित शिवलोक प्राप्त करता है॥ ११०॥

राजसं मण्डपं तत्र नन्दिसंस्थानमुत्तमम्।
तपोरूपश्च वृषभस्तत्रैव परिदृश्यते॥ १११

वहाँ (उस शिवलोकमें) राजसमण्डप है, नन्दीश्वरका उत्तम निवास है। तपस्यारूपी वृषभ वहींपर दिखायी देता है॥ १११॥

सद्योजातस्य तत्स्थानं पञ्चमावरणं परम्।
वामदेवस्य च स्थानं चतुर्थावरणं पुनः॥ ११२

वहींपर पाँचों आवरणोंसे बाहर सद्योजात (अर्थात् तत्काल आवरणरहित हुए भगवान् शिव)-का स्थान है। पुनः चतुर्थ आवरणमें वामदेवका स्थान है॥ ११२॥

अघोरनिलयं पश्चात् तृतीयावरणं परम्।
पुरुषस्यैव साम्बस्य द्वितीयावरणं शुभम्॥ ११३
ईशानस्य परस्यैव प्रथमावरणं ततः।
ध्यानधर्मस्य च स्थानं पञ्चमं मण्डपं ततः॥ ११४

उसके पश्चात् तृतीयावरणमें अघोर शिवका, दूसरे आवरणमें साम्बशिवका मंगलमय तथा प्रथमावरणमें ईशान शिवका निवासस्थान है। उसके पश्चात् पंचम मण्डप है, जहाँ ध्यान और धर्मका निवास रहता है॥ ११३-११४॥

बलिनाथस्य संस्थानं तत्र पूर्णामृतप्रदम्।
चतुर्थं मण्डपं पश्चाच्चन्द्रशेखरमूर्तिमत्॥ ११५

तदनन्तर चतुर्थ मण्डप है, वहाँपर चन्द्रशेखरकी मूर्तिसे युक्त भगवान् बलिनाथका वासस्थान है, जो पूर्ण अमृतको प्रदान करनेवाला है॥ ११५॥

सोमस्कन्दस्य च स्थानं तृतीयं मण्डपं परम्।
द्वितीयं मण्डपं नृत्यमण्डपं प्राहुरास्तिकाः॥ ११६

तृतीय मण्डपमें सोमस्कन्दका परम निवासस्थान है। उसके पश्चात् द्वितीय मण्डप है, आस्तिक लोग जिसे नृत्यमण्डप कहते हैं॥ ११६॥

प्रथमं मूलमायायाः स्थानं तत्रैव शोभनम्।
तत परं गर्भगृहं लिङ्गस्थानं परं शुभम्॥ ११७

प्रथम मण्डपमें मूलमायाका स्थान है, वहाँपर अत्यन्त शोभा वास करती है। उसके परे गर्भगृह है, जहाँपर शिवका लिंगस्थान है॥ ११७॥

नन्दिसंस्थानतः पश्चान्न विदुः शिववैभवम्।
नन्दीश्वरो बहिस्तिष्ठन्पञ्चाक्षरमुपासते॥ ११८

एवं गुरुक्रमाल्लब्धं नन्दीशाच्च मया पुनः।
ततः परं स्वसंवेद्यं शिवेनैवानुभावितम्॥ ११९

शिवस्य कृपया साक्षाच्छिवलोकस्य वैभवम्।
विज्ञातुं शक्यते सर्वैर्नान्यथेत्याहुरास्तिकाः॥ १२०

एवं क्रमेण मुक्ताः स्युर्ब्राह्मणा वै जितेन्द्रियाः।
अन्येषां च क्रमं वक्ष्ये गदतः शृणुतादरात्॥ १२१

गुरूपदेशाज्जाप्यं वै ब्राह्मणानां नमोऽन्तकम्।
पञ्चाक्षरं पञ्चलक्षमायुष्यं प्रजपेद्विधिः॥ १२२

स्त्रीत्वापनयनार्थं तु पञ्चलक्षं जपेत्पुनः।
मन्त्रेण पुरुषो भूत्वा क्रमान्मुक्तो भवेद् बुधः॥ १२३

क्षत्रियः पञ्चलक्षेण क्षत्रत्वमपनेष्यति।
पुनश्च पञ्चलक्षेण क्षत्रियो ब्राह्मणो भवेत्॥ १२४

मन्त्रसिद्धिर्जपाच्चैव क्रमान्मुक्तो भवेन्नरः।
वैश्यस्तु पञ्चलक्षेण वैश्यत्वमपनेष्यति॥ १२५

पुनश्च पञ्चलक्षेण मन्त्रक्षत्रिय उच्यते।
पुनश्च पञ्चलक्षेण क्षत्रत्वमपनेष्यति॥ १२६

पुनश्च पञ्चलक्षेण मन्त्रब्राह्मण उच्यते।
शूद्रश्चैव नमोऽन्तेन पञ्चविंशतिलक्षतः॥ १२७

नन्दीस्थानके पश्चात् शिवके वैभवको कोई नहीं जान सकता है। नन्दीश्वर (गर्भगृहसे) बाहर रहकर शिवके पंचाक्षर मन्त्रकी उपासना करते हैं॥ ११८॥

इस प्रकार गुरुपरम्परासे नन्दीश्वर और सनत्कुमारके संवादकी जानकारी मुझे हुई है। उसके पश्चात्‌का परम रहस्य स्वसंवेद्य है, जिसका अनुभव स्वयं शिव करते हैं॥ ११९॥

आस्तिकजनोंका कहना है कि साक्षात् शिवकी कृपासे ही शिवलोकके ऐश्वर्यको लोग जान सकते हैं, अन्यथा असम्भव है॥ १२०॥

इस प्रकारसे शिवका साक्षात्कार प्राप्तकर जितेन्द्रिय ब्राह्मण मुक्त हो जाते हैं अर्थात् मोक्षको प्राप्त कर लेते हैं। अब मैं अन्य क्षत्रियादि वर्णोंके विषयमें कहूँगा। उसे आदरपूर्वक आप सब सुनें॥ १२१॥

यदि ब्राह्मणको आयु प्राप्त करनेकी इच्छा है तो उसे गुरुके द्वारा बताये गये उपदेशके अनुसार इस शिवके पंचाक्षरमन्त्रका विधिपूर्वक पाँच लाख जप करना चाहिये॥ १२२॥

यदि स्त्री स्त्रीत्व अर्थात् स्त्रीयोनिसे मुक्त होना चाहती है तो वह भी पाँच लाख पंचाक्षर मन्त्रोंका जप करे। उन मन्त्रोंके प्रभावसे पुरुषका जन्म लेकर वह क्रमशः मुक्त हो जाती है॥ १२३॥

क्षत्रिय पाँच लाख मन्त्रोंका जप करके क्षत्रियत्वको दूर कर लेता है अर्थात् क्षत्रियवर्णमें रहनेवाले गुणोंसे वह मुक्त हो जाता है। तदनन्तर पुनः पाँच लाख मन्त्रोंका जप करनेपर वह ब्राह्मण हो जाता है। फिर उतनेही मन्त्रोंके जपसे मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है और तत्पश्चात् उसी क्रमसे पाँच लाख मन्त्रोंका जप करनेपर वह मनुष्य मुक्त हो जाता है। वैश्य पंचलक्ष मन्त्रोंका जप करनेसे अपने वैश्यत्व (गुण)-का परित्याग कर देता है। पुनः पंचलक्ष मन्त्रका जप करनेपर वह मन्त्र-क्षत्रिय कहलानेका अधिकारी हो जाता है। उसके बाद पाँच लाख मन्त्रोंका जप करनेसे क्षत्रियत्वको दूर कर देता है। तदनन्तर पुनः पंचलक्ष मन्त्रका जप करके मन्त्र-ब्राह्मण कहलानेका अधिकारी हो जाता है। इसी प्रकार शूद्र भी मन्त्रके अन्तमें नमः

मन्त्रविप्रत्वमापद्य पश्चाच्छुद्धो भवेद् द्विजः।
नारी वाथ नरो वाथ ब्राह्मणो वान्य एव वा॥ १२८

शब्द लगाकर यदि २५ लाख मन्त्रोंका जप करता है तो वह शूद्र मन्त्रविप्रत्वको प्राप्त द्विज (ब्राह्मण) हो जाता है। चाहे स्त्री हो अथवा पुरुष, ब्राह्मण हो या अन्य ही कोई वर्ण हो, पंचाक्षर मन्त्रका जप करनेसे सभी शुद्ध हो जाते हैं॥ १२४—१२८॥

नमोऽन्तं वा नमः पूर्वमातुरः सर्वदा जपेत्।
तत्र स्त्रीणां तथैवोह्य गुरुर्निर्दर्शयेत्क्रमात्॥ १२९

जो कामनापूर्तिके लिये आतुर है, उसे चाहिये कि वह नमः को आदि-अन्तमें लगाकर शिवमन्त्रका सदैव जप करता रहे। स्त्रियों तथा शूद्रोंके लिये मन्त्रजपका जैसा स्वरूप कहा गया है, उसीके अनुसार गुरुको भी चाहिये कि वह उन्हें निर्देश दे॥ १२९॥

साधकः पञ्चलक्षान्ते शिवप्रीत्यर्थमेव हि।
महाभिषेकनैवेद्यं कृत्वा भक्तांश्च पूजयेत्॥ १३०

साधकको चाहिये कि वह पाँच लाख जप करनेके पश्चात् भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये महाभिषेक एवं नैवेद्य निवेदन करके शिवभक्तोंका पूजन करे॥ १३०॥

पूजया शिवभक्तस्य शिवः प्रीततरो भवेत्।
शिवस्य शिवभक्तस्य भेदो नास्ति शिवो हि सः॥ १३१

शिवभक्तकी पूजासे भगवान् शिव बहुत प्रसन्न होते हैं। शिव और उनके भक्तमें कोई भेद नहीं है। वह साक्षात् शिवस्वरूप ही है॥ १३१॥

शिवस्वरूपमन्त्रस्य धारणाच्छिव एव हि।
शिवभक्तशरीरे हि शिवे तत्परमो भवेत्॥ १३२

शिवस्वरूप मन्त्रको धारण करके वह शिव ही हो जाता है, शिवभक्तका शरीर शिवरूप ही है। अतः उसकी सेवामें तत्पर रहना चाहिये॥ १३२॥

शिवभक्ताः क्रियाः सर्वा वेद सर्वक्रियां विदुः।
यावद्यावच्छिवं मन्त्रं येन जप्तं भवेत्क्रमात्॥ १३३
तावद्वै शिवसान्निध्यं तस्मिन्देहे न संशयः।
देवीलिङ्गं भवेद् रूपं शिवभक्तस्त्रियास्तथा॥ १३४
यावन्मन्त्रं जपेद्देव्यास्तावत्सान्निध्यमस्ति हि।

जो शिवके भक्त हैं, वे लोक और वेदकी सारी क्रियाओंको जानते हैं। जो क्रमशः जितना-जितना शिवमन्त्रका जप कर लेता है, उसके शरीरको उतना ही उतना शिवका सामीप्य प्राप्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। शिवभक्त स्त्रीका रूप देवी पार्वतीका ही स्वरूप है। वह जितना मन्त्र जपती है, उसे उतना ही देवीका सांनिध्य प्राप्त होता जाता है॥ १३३-१३४$^{1}/_{2}$॥

शिवं सम्पूजयेद्धीमान्स्वयं वै शब्दरूपभाक्॥ १३५
स्वयं चैव शिवो भूत्वा परां शक्तिं प्रपूजयेत्।
शक्तिं वेरं च लिङ्गं च ह्यालेख्यामायया यजेत्॥ १३६

बुद्धिमान् व्यक्तिको शिवका पूजन करना चाहिये, इससे वह साक्षात् मन्त्ररूप हो जाता है। साधक स्वयं शिवस्वरूप होकर पराशक्तिका पूजन करे। शक्ति, वेर (मूर्ति) तथा लिंगका चित्र बनाकर अथवा मिट्टी आदिसे इनकी आकृतिका निर्माण करके प्राणप्रतिष्ठापूर्वक निष्कपट भावसे इनका पूजन करे॥ १३५-१३६॥

शिवलिङ्गं शिवं मत्वा स्वात्मानं शक्तिरूपकम्।
शक्तिलिङ्गं च देवीं च मत्वा स्वं शिवरूपकम्॥ १३७

शिवलिङ्गं नादरूपं बिन्दुरूपं सशक्तिकम्।
उपप्रधानभावेन अन्योन्यासक्तलिङ्गकम्॥ १३८

पूजयेच्च शिवं शक्तिं स शिवो मूलभावनात्।
शिवभक्ताञ्छिवमन्त्ररूपकाञ्छिवरूपकान् ॥ १३९

शिवलिंगको शिव मानकर अपनेको शक्तिरूप समझकर, शक्तिलिंगको देवी और अपनेको शिवरूप समझकर शिवलिंगको नादरूप तथा शक्तिको बिन्दुरूप मानकर परस्पर सटे हुए शक्तिलिंग और शिवलिंगके प्रति उपप्रधान और प्रधानकी भावना रखते हुए जो शिव और शक्तिका पूजन करता है, वह मूलरूपी भावना करनेके कारण शिवरूप ही है। शिवभक्त शिवमन्त्ररूप होनेके कारण शिवके ही स्वरूप हैं॥ १३७—१३९ ॥

षोडशैरुपचारैश्च पूजयेदिष्टमाप्नुयात्।
येन शुश्रूषणाद्यैश्च शिवभक्तस्य लिङ्गिनः॥ १४०

आनन्दं जनयेद्विद्वाञ्छिवः प्रीततरो भवेत्।
शिवभक्तान्सपत्नीकान्पत्न्या सह सदैव तत्॥ १४१

पूजयेद्भोजनाद्यैश्च पञ्च वा दश वा शतम्।
धने देहे च मन्त्रे च भावनायामवञ्चकः॥ १४२

शिवशक्तिस्वरूपेण न पुनर्जायते भुवि।

जो सोलह उपचारोंसे उनकी पूजा करता है, उसे अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है। जो शिवलिंगोपासक शिवभक्तकी सेवा आदि करके उसे आनन्द प्रदान करता है, उस विद्वान्‌पर भगवान् शिव बड़े प्रसन्न होते हैं। पाँच, दस या सौ सपत्नीक शिवभक्तोंको बुलाकर भोजन आदिके द्वारा पत्नीसहित उनका सदैव समादर करे। धनमें, देहमें और मन्त्रमें शिवभावना रखते हुए उन्हें शिव और शक्तिका स्वरूप जानकर निष्कपटभावसे उनकी पूजा करे। ऐसा करनेवाला पुरुष शिवशक्तिस्वरूप होकर इस भूतलपर फिर जन्म नहीं लेता है॥ १४०—१४२१/२ ॥

नाभेरधो ब्रह्मभागमाकण्ठं विष्णुभागकम्॥ १४३

मुखं लिङ्गमिति प्रोक्तं शिवभक्तशरीरकम्।
मृतान्दाहादियुक्तान्वा दाहादिरहितान्मृतान्॥ १४४

उद्दिश्य पूजयेदादिपितरं शिवमेव हि।
पूजां कृत्वादिमातुश्च शिवभक्तांश्च पूजयेत्॥ १४५

पितृलोकं समासाद्य क्रमान्मुक्तो भवेन्मृतः।
क्रियायुक्तदशभ्यश्च तपोयुक्तो विशिष्यते॥ १४६

शिवभक्तकी नाभिके नीचेका भाग ब्रह्मभाग तथा नाभिसे ऊपर कण्ठपर्यन्त तकका भाग विष्णुभाग और मुख शिवलिंगस्वरूप कहा गया है। मृत्युके पश्चात् (जिनका) दाहादि संस्कार हुआ हो अथवा जो दाहादि संस्कारसे रहित हों, उन पितरोंके उद्देश्यसे शिवको ही आदिपितर मानकर उनकी पूजा करनी चाहिये। पुनः आदिमाता शिवकी शक्तिकी पूजाकर शिवभक्तोंका पूजन करना चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष मरनेके पश्चात् क्रमशः पितृलोकको प्राप्त करता है। तदनन्तर उसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। दस क्रियावान् पुरुषोंसे युक्त योगियोंकी अपेक्षा एक तपोयुक्त प्राणी श्रेष्ठ है॥ १४३—१४६ ॥

तपोयुक्तशतेभ्यश्च जपयुक्तो विशिष्यते।
जपयुक्तसहस्रेभ्यः शिवज्ञानी विशिष्यते॥ १४७

सौ तपोयुक्तों (तपस्वियों)-की अपेक्षा एक जपयुक्त जापक विशिष्ट है। सहस्र जपयुक्त जापकोंकी अपेक्षा एक शिवज्ञानीका विशेष महत्त्व है॥ १४७॥

शिवज्ञानिषु लक्षेषु ध्यानयुक्तो विशिष्यते।
ध्यानयुक्तेषु कोटिभ्यः समाधिस्थो विशिष्यते॥ १४८

एक लाख शिवज्ञानियोंसे शिवका ध्यान करनेवाला एक ध्यानी श्रेष्ठ है और करोड़ ध्यानियोंकी अपेक्षा शिवके लिये एक समाधिस्थ श्रेष्ठ है॥ १४८॥

उत्तरोत्तरवैशिष्ट्यात्पूजायामुत्तरोत्तरम् ।
फलं वैशिष्ट्यरूपं च दुर्विज्ञेयं मनीषिभिः॥ १४९
तस्माद्वै शिवभक्तस्य माहात्म्यं वेत्ति को नरः।
शिवशक्त्योः पूजनं च शिवभक्तस्य पूजनम्॥ १५०
कुरुते यो नरो भक्त्या स शिवः शिवमेधते।
य इमं पठतेऽध्यायमर्थवद्वेदसम्मतम्॥ १५१
शिवज्ञानी भवेद्विप्रः शिवेन सह मोदते।
श्रावयेच्छिवभक्तांश्च विशेषज्ञो मुनीश्वराः॥ १५२

इस प्रकार उत्तरोत्तर वैशिष्ट्य-क्रमसे की जानेवाली पूजासे प्राप्त फलमें भी विशिष्टता आ जाती है, जिसको जानना विद्वानोंके लिये भी कठिन है। इस कारणसे शिवभक्तकी महिमाको कौन मनुष्य जान सकता है। जो मनुष्य शिवशक्ति और शिवभक्तकी पूजा भक्तिपूर्वक करता है, वह शिवस्वरूप होकर सदैव कल्याणको प्राप्त करता है। जो ब्राह्मण इस वेदसम्मत अध्यायको अर्थसहित पढ़ता है, वह शिवज्ञानी होकर शिवके साथ आनन्द प्राप्त करता है। हे मुनीश्वरो! विद्वान् पुरुषको चाहिये कि यह अध्याय वह शिवभक्तोंको सुनाये॥ १४९—१५२॥

शिवप्रसादसिद्धिः स्याच्छिवस्य कृपया बुधाः॥ १५३

हे बुधजनो! ऐसा करनेसे भगवान् शिवकी कृपासे उनका अनुग्रह प्राप्त हो जाता है॥ १५३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां प्रणवपञ्चाक्षरमन्त्रमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें प्रणवयुक्त पंचाक्षर मन्त्रका माहात्म्य-वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

बन्धन और मोक्षका विवेचन, शिवपूजाका उपदेश, लिंग आदिमें शिवपूजनका विधान, भस्मके स्वरूपका निरूपण और महत्त्व, शिवके भस्मधारणका रहस्य, शिव एवं गुरु शब्दकी व्युत्पत्ति तथा विघ्नशान्तिके उपाय और शिवधर्मका निरूपण

ऋषय ऊचुः
बन्धमोक्षस्वरूपं हि ब्रूहि सर्वार्थवित्तम।
सूत उवाच
बन्धं मोक्षं तथोपायं वक्ष्येऽहं शृणुतादरात्॥ १
प्रकृत्याद्यष्टबन्धेन बद्धो जीवः स उच्यते।
प्रकृत्याद्यष्टबन्धेन निर्मुक्तो मुक्त उच्यते॥ २
प्रकृत्यादिवशीकारो मोक्ष इत्युच्यते स्वतः।
बद्धजीवस्तु निर्मुक्तो मुक्तजीवः स कथ्यते॥ ३

ऋषिगण बोले—हे सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ! बन्धन और मोक्षका स्वरूप क्या है? यह हमें बताइये॥ १/२॥

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] मैं बन्धन और मोक्षका स्वरूप तथा मोक्षके उपायका वर्णन करूँगा। आपलोग आदरपूर्वक सुनें। जो प्रकृति आदि आठ बन्धनोंसे बँधा हुआ है, वह जीव बद्ध कहलाता है और जो उन आठों बन्धनोंसे छूटा हुआ है, उसे मुक्त कहते हैं। प्रकृति आदिको वशमें कर लेना मोक्ष कहलाता है। बन्धन आगन्तुक है और मोक्ष स्वतःसिद्ध है। बद्ध जीव जब बन्धनसे मुक्त हो जाता है, तब उसे मुक्त जीव कहते हैं॥ १—३॥

प्रकृत्यग्रे ततो बुद्धिरहङ्कारो गुणात्मकः।
पञ्चतन्मात्रमित्येतत्प्रकृत्याद्यष्टकं विदुः॥ ४

प्रकृति, बुद्धि (महत्तत्त्व), त्रिगुणात्मक अहंकार और पाँच तन्मात्राएँ—इन्हें ज्ञानी पुरुष प्रकृत्याद्यष्टक मानते हैं। प्रकृति आदि आठ तत्त्वोंके समूहसे देहकी

प्रकृत्याद्यष्टजो देहो देहजं कर्म उच्यते।
पुनश्च कर्मजो देहो जन्म कर्म पुनः पुनः॥ ५

शरीरं त्रिविधं ज्ञेयं स्थूलं सूक्ष्मं च कारणम्।
स्थूलं व्यापारदं प्रोक्तं सूक्ष्ममिन्द्रियभोगदम्॥ ६

कारणं त्वात्मभोगार्थं जीवकर्मानुरूपतः।
सुखं दुःखं पुण्यपापैः कर्मभिः फलमश्नुते॥ ७

तस्माद्धि कर्मरज्ज्वा हि बद्धो जीवः पुनः पुनः।
शरीरत्रयकर्मभ्यां चक्रवद् भ्राम्यते सदा॥ ८

उत्पत्ति हुई है। देहसे कर्म उत्पन्न होता है और फिर कर्मसे नूतन देहकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार बार-बार जन्म और कर्म होते रहते हैं॥ ४-५॥

शरीरको स्थूल, सूक्ष्म और कारणके भेदसे तीन प्रकारका जानना चाहिये। स्थूल शरीर (जाग्रत्-अवस्थामें) व्यापार करानेवाला, सूक्ष्म शरीर (जाग्रत् और स्वप्न-अवस्थाओंमें) इन्द्रिय-भोग प्रदान करनेवाला तथा कारणशरीर (सुषुप्तावस्थामें) आत्मानन्दकी अनुभूति करानेवाला कहा गया है। जीवको उसके प्रारब्ध-कर्मानुसार सुख-दुःख प्राप्त होते हैं। वह अपने पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप सुख और पापकर्मोंके फलस्वरूप दुःख प्राप्त करता है। अतः कर्मपाशसे बँधा हुआ जीव अपने त्रिविध शरीरसे होनेवाले शुभाशुभ कर्मोंद्वारा सदा चक्रकी भाँति बार-बार घुमाया जाता है॥ ६—८॥

चक्रभ्रमनिवृत्त्यर्थं चक्रकर्तारमीडयेत्।
प्रकृत्यादिमहाचक्रं प्रकृतेः परतः शिवः॥ ९

चक्रकर्ता महेशो हि प्रकृतेः परतो यतः।
पिबति वाथ वमति जीवाबालो जलं यथा॥ १०

शिवस्तथा प्रकृत्यादि वशीकृत्याधितिष्ठति।
सर्वं वशीकृतं यस्मात्तस्माच्छिव इति स्मृतः।
शिव एव हि सर्वज्ञः परिपूर्णश्च निःस्पृहः॥ ११

इस चक्रवत् भ्रमणकी निवृत्तिके लिये चक्रकर्ताका स्तवन एवं आराधन करना चाहिये। प्रकृति आदि जो आठ पाश बतलाये गये हैं, उनका समुदाय ही महाचक्र है और जो प्रकृतिसे परे हैं, वे परमात्मा शिव हैं। भगवान् महेश्वर ही प्रकृति आदि महाचक्रके कर्ता हैं; क्योंकि वे प्रकृतिसे परे हैं। जैसे बकायन नामक वृक्षका थाला जलको पीता और उगलता है, उसी प्रकार शिव प्रकृति आदिको अपने वशमें करके उसपर शासन करते हैं। उन्होंने सबको वशमें कर लिया है, इसीलिये वे शिव कहे गये हैं। शिव ही सर्वज्ञ, परिपूर्ण तथा निःस्पृह हैं॥ ९—११॥

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः
स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः।
अनन्तशक्तिश्च महेश्वरस्य
यन्मानसैश्वर्यमवैति वेदः॥ १२

अतः शिवप्रसादेन प्रकृत्यादि वशं भवेत्।
शिवप्रसादलाभार्थं शिवमेव प्रपूजयेत्॥ १३

सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादिबोध, स्वतन्त्रता, नित्य अलुप्त शक्ति आदिसे संयुक्त होना और अपने भीतर अनन्त शक्तियोंको धारण करना—महेश्वरके इन छः प्रकारके मानसिक ऐश्वर्योंको केवल वेद जानता है। अतः भगवान् शिवके अनुग्रहसे ही प्रकृति आदि आठों तत्त्व वशमें होते हैं। भगवान् शिवका कृपाप्रसाद प्राप्त करनेके लिये उन्हींका पूजन करना चाहिये॥ १२-१३॥

निःस्पृहस्य च पूर्णस्य तस्य पूजा कथं भवेत्।
शिवोद्देशकृतं कर्म प्रसादजनकं भवेत्॥ १४

शिव तो परिपूर्ण हैं, निःस्पृह हैं; उनकी पूजा कैसे हो सकती है? [इसका उत्तर यह है कि] भगवान् शिवके उद्देश्यसे—उनकी प्रसन्नताके लिये किया हुआ

लिङ्गे वेरे भक्तजने शिवमुद्दिश्य पूजयेत्।
कायेन मनसा वाचा धनेनापि प्रपूजयेत्॥ १५

पूजया तु महेशो हि प्रकृतेः परमः शिवः।
प्रसादं कुरुते सत्यं पूजकस्य विशेषतः॥ १६

सत्कर्म उनके कृपाप्रसादको प्राप्त करानेवाला होता है। शिवलिंगमें, शिवकी प्रतिमामें तथा शिवभक्तजनोंमें शिवकी भावना करके उनकी प्रसन्नताके लिये पूजा करनी चाहिये। वह पूजन शरीरसे, मनसे, वाणीसे और धनसे भी किया जा सकता है। उस पूजासे प्रकृतिसे परे महेश्वर पूजकपर विशेष कृपा करते हैं; यह सत्य है॥ १४—१६॥

शिवप्रसादात्कर्माद्यं क्रमेण स्ववशं भवेत्।
कर्मारभ्य प्रकृत्यन्तं यदा सर्वं वशं भवेत्॥ १७

तदा मुक्त इति प्रोक्तः स्वात्मारामो विराजते।
प्रसादात्परमेशस्य कर्मदेहो यदा वशः॥ १८

तदा वै शिवलोके तु वासः सालोक्यमुच्यते।
सामीप्यं याति साम्बस्य तन्मात्रे च वशं गते॥ १९

तदा तु शिवसायुज्यमायुधाद्यैः क्रियादिभिः।
महाप्रसादलाभे च बुद्धिश्चापि वशा भवेत्॥ २०

बुद्धिस्तु कार्यं प्रकृतेस्तत्सार्ष्टिरिति कथ्यते।
पुनर्महाप्रसादेन प्रकृतिर्वशमेष्यति॥ २१

शिवकी कृपासे कर्म आदि सभी बन्धन अपने वशमें हो जाते हैं। कर्मसे लेकर प्रकृतिपर्यन्त सब कुछ जब वशमें हो जाता है, तब वह जीव मुक्त कहलाता है और स्वात्मारामरूपसे विराजमान होता है। परमेश्वर शिवकी कृपासे जब कर्मजनित शरीर अपने वशमें हो जाता है, तब भगवान् शिवके लोकमें निवास प्राप्त होता है; इसीको सालोक्यमुक्ति कहते हैं। जब तन्मात्राएँ वशमें हो जाती हैं, तब जीव जगदम्बासहित शिवका सामीप्य प्राप्त कर लेता है। यह सामीप्यमुक्ति है, उसके आयुध आदि और क्रिया आदि सब कुछ भगवान् शिवके समान हो जाते हैं। भगवान्का महाप्रसाद प्राप्त होनेपर बुद्धि भी वशमें हो जाती है। बुद्धि प्रकृतिका कार्य है। उसका वशमें होना सार्ष्टिमुक्ति कही गयी है। पुनः भगवान्का महान् अनुग्रह प्राप्त होनेपर प्रकृति वशमें हो जायगी॥ १७—२१॥

शिवस्य मानसैश्वर्यं तदाऽयत्नं भविष्यति।
सार्वज्ञाद्यं शिवैश्वर्यं लब्ध्वा स्वात्मनि राजते॥ २२

तत्सायुज्यमिति प्राहुर्वेदागमपरायणाः।
एवं क्रमेण मुक्तिः स्याल्लिङ्गादौ पूजया स्वतः॥ २३

अतः शिवप्रसादार्थं क्रियाद्यैः पूजयेच्छिवम्।
शिवक्रिया शिवतपः शिवमन्त्रजपः सदा॥ २४

शिवज्ञानं शिवध्यानमुत्तरोत्तरमभ्यसेत्।
आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद्वै शिवचिन्तया॥ २५

सद्यादिभिश्च कुसुमैरर्चयेच्छिवमेष्यति।

उस समय भगवान् शिवका मानसिक ऐश्वर्य बिना यत्नके ही प्राप्त हो जायगा। सर्वज्ञता आदि जो शिवके ऐश्वर्य हैं, उन्हें पाकर मुक्त पुरुष अपनी आत्मामें ही विराजमान होता है। वेद और शास्त्रोंमें विश्वास रखनेवाले विद्वान् पुरुष इसीको सायुज्यमुक्ति कहते हैं। इस प्रकार लिंग आदिमें शिवकी पूजा करनेसे क्रमशः मुक्ति स्वतः प्राप्त हो जाती है। इसलिये शिवका कृपाप्रसाद प्राप्त करनेके लिये तत्सम्बन्धी क्रिया आदिके द्वारा उन्हींका पूजन करना चाहिये। शिवक्रिया, शिवतप, शिवमन्त्र-जप, शिवज्ञान और शिवध्यानके लिये सदा उत्तरोत्तर अभ्यास बढ़ाना चाहिये। प्रतिदिन प्रातःकालसे रातको सोते समयतक और जन्मकालसे लेकर मृत्युपर्यन्त सारा समय भगवान् शिवके चिन्तनमें ही बिताना चाहिये। सद्योजातादि मन्त्रों तथा नाना प्रकारके पुष्पोंसे जो शिवकी पूजा करता है, वह शिवको ही प्राप्त होगा॥ २२—२५½॥

ऋषय ऊचुः

लिङ्गादौ शिवपूजाया विधानं ब्रूहि सुव्रत॥ २६

सूत उवाच

लिङ्गानां च क्रमं वक्ष्ये यथावच्छृणुत द्विजाः।
तदेव लिङ्गं प्रथमं प्रणवं सार्वकामिकम्॥ २७

सूक्ष्मप्रणवरूपं हि सूक्ष्मरूपं तु निष्कलम्।
स्थूललिङ्गं हि सकलं तत्पञ्चाक्षरमुच्यते॥ २८

तयोः पूजा तपः प्रोक्तं साक्षान्मोक्षप्रदे उभे।
पौरुषप्रकृतिभूतानि लिङ्गानि सुबहूनि च॥ २९

तानि विस्तरतो वक्तुं शिवो वेत्ति न चापरः।
भूविकाराणि लिङ्गानि ज्ञातानि प्रब्रवीमि वः॥ ३०

स्वयम्भूलिङ्गं प्रथमं बिन्दुलिङ्गं द्वितीयकम्।
प्रतिष्ठितं चरं चैव गुरुलिङ्गं तु पञ्चमम्॥ ३१

देवर्षितपसा तुष्टः सान्निध्यार्थं तु तत्र वै।
पृथिव्यन्तर्गतः शर्वो बीजं वै नादरूपतः॥ ३२

स्थावराङ्कुरवद्भूमिमुद्भिद्य व्यक्त एव सः।
स्वयम्भूतं जातमिति स्वयम्भूरिति तं विदुः॥ ३३

तल्लिङ्गपूजया ज्ञानं स्वयमेव प्रवर्धते।
सुवर्णरजतादौ वा पृथिव्यां स्थण्डिलेऽपि वा॥ ३४

स्वहस्ताल्लिखितं लिङ्गं शुद्धप्रणवमन्त्रकम्।
यन्त्रलिङ्गं समालिख्य प्रतिष्ठावाहनं चरेत्॥ ३५

बिन्दुनादमयं लिङ्गं स्थावरं जङ्गमं च यत्।
भावनामयमेतद्धि शिवदृष्टं न संशयः॥ ३६

यत्र विश्वस्यते शम्भुस्तत्र तस्मै फलप्रदः।
स्वहस्ताल्लिखिते यन्त्रे स्थावरादावकृत्रिमे॥ ३७

आवाह्य पूजयेच्छम्भुं षोडशैरुपचारकैः।
स्वयमैश्वर्यमाप्नोति ज्ञानमभ्यासतो भवेत्॥ ३८

ऋषिगण बोले—हे सुव्रत! अब आप लिंग आदिमें शिवजीकी पूजाका विधान बताइये॥ २६॥

सूतजी बोले—हे द्विजो! मैं लिंगोंके क्रमका यथावत् वर्णन कर रहा हूँ, आप लोग सुनिये। वह प्रणव ही समस्त अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला प्रथम लिंग है। उसे सूक्ष्म प्रणवरूप समझिये। सूक्ष्मलिंग निष्कल होता है और स्थूललिंग सकल। पंचाक्षर मन्त्रको ही स्थूललिंग कहते हैं। उन दोनों प्रकारके लिंगोंका पूजन तप कहलाता है। वे दोनों ही लिंग साक्षात् मोक्ष देनेवाले हैं। पौरुषलिंग और प्रकृतिलिंगके रूपमें बहुत-से लिंग हैं। उन्हें भगवान् शिव ही विस्तारपूर्वक बता सकते हैं; दूसरा कोई नहीं जानता। पृथ्वीके विकारभूत जो-जो लिंग ज्ञात हैं, उन-उनको मैं आपलोगोंको बता रहा हूँ॥ २७—३०॥

उनमें प्रथम स्वयम्भूलिंग, दूसरा बिन्दुलिंग, तीसरा प्रतिष्ठित लिंग, चौथा चरलिंग और पाँचवाँ गुरुलिंग है। देवर्षियोंकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर उनके समीप प्रकट होनेके लिये पृथ्वीके अन्तर्गत बीजरूपसे व्याप्त हुए भगवान् शिव वृक्षोंके अंकुरकी भाँति भूमिको भेदकर नादलिंग रूपमें व्याप्त हो जाते हैं। वे स्वतः व्यक्त हुए शिव ही स्वयं प्रकट होनेके कारण स्वयम्भू नाम धारण करते हैं। ज्ञानीजन उन्हें स्वयम्भूलिंगके रूपमें जानते हैं॥ ३१—३३॥

उस स्वयम्भूलिंगकी पूजासे उपासकका ज्ञान स्वयं ही बढ़ने लगता है। सोने-चाँदी आदिके पत्रपर, भूमिपर अथवा वेदीपर अपने हाथसे लिखित जो शुद्ध प्रणव मन्त्ररूप लिंग है, उसमें तथा यन्त्रलिंगका आलेखन करके उसमें भगवान् शिवकी प्रतिष्ठा और आवाहन करे। ऐसा बिन्दुनादमय लिंग स्थावर और जंगम दोनों ही प्रकारका होता है। इसमें शिवका दर्शन भावनामय ही है; इसमें सन्देह नहीं है। जिसको जहाँ भगवान् शंकरके प्रकट होनेका विश्वास हो, उसके लिये वहीं प्रकट होकर वे अभीष्ट फल प्रदान करते हैं। अपने हाथसे लिखे हुए यन्त्रमें अथवा अकृत्रिम स्थावर आदिमें भगवान् शिवका आवाहन करके सोलह उपचारोंसे उनकी पूजा करे। ऐसा करनेसे साधक स्वयं ही ऐश्वर्यको प्राप्त कर लेता है और इस साधनके अभ्याससे उसको ज्ञान भी प्राप्त हो जाता है॥ ३४—३८॥

देवैश्च ऋषिभिश्चापि स्वात्मसिद्ध्यर्थमेव हि।
समन्त्रेणात्महस्तेन कृतं यच्छुद्धमण्डले॥ ३९

शुद्धभावनया चैव स्थापितं लिङ्गमुत्तमम्।
तल्लिङ्गं पौरुषं प्राहुस्तत्प्रतिष्ठितमुच्यते॥ ४०

तल्लिङ्गपूजया नित्यं पौरुषैश्वर्यमाप्नुयात्।
महद्भिर्ब्राह्मणैश्चापि राजभिश्च महाधनैः॥ ४१

शिल्पिना कल्पितं लिङ्गं मन्त्रेण स्थापितं च यत्।
प्रतिष्ठितं प्राकृतं हि प्राकृतैश्वर्यभोगदम्॥ ४२

यदूर्जितं च नित्यं च तद्धि पौरुषमुच्यते।
यद् दुर्बलमनित्यं च तद्धि प्राकृतमुच्यते॥ ४३

देवताओं और ऋषियोंने आत्मसिद्धिके लिये अपने हाथसे वैदिक मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक शुद्ध मण्डलमें शुद्ध भावनाद्वारा जिस उत्तम शिवलिंगकी स्थापना की है, उसे पौरुषलिंग कहते हैं तथा वही प्रतिष्ठित लिंग कहलाता है। उस लिंगकी पूजा करनेसे सदा पौरुष ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। महान् ब्राह्मणों और महाधनी राजाओंद्वारा किसी शिल्पीसे शिवलिंगका निर्माण कराकर मन्त्रपूर्वक जिस लिंगकी स्थापना तथा प्रतिष्ठा की गयी हो, वह प्राकृतलिंग है, वह [शिवलिंग] प्राकृत ऐश्वर्य-भोगको देनेवाला होता है। जो शक्तिशाली और नित्य होता है, उसे पौरुषलिंग कहते हैं और जो दुर्बल तथा अनित्य होता है, वह प्राकृतलिंग कहलाता है॥ ३९—४३॥

लिङ्गं नाभिस्तथा जिह्वा नासाग्रं च शिखा क्रमात्।
कट्यादिषु त्रिलोकेषु लिङ्गमाध्यात्मिकं चरम्॥ ४४

पर्वतं पौरुषं प्रोक्तं भूतलं प्राकृतं विदुः।
वृक्षादि पौरुषं ज्ञेयं गुल्मादि प्राकृतं विदुः॥ ४५

षाष्टिकं प्राकृतं ज्ञेयं शालिगोधूमपौरुषम्।
ऐश्वर्यं पौरुषं विद्यादणिमाद्यष्टसिद्धिदम्॥ ४६

सुस्त्रीधनादिविषयं प्राकृतं प्राहुरास्तिकाः।

लिंग, नाभि, जिह्वा, नासिकाका अग्र भाग और शिखाके क्रमसे कटि, हृदय और मस्तक तीनों स्थानोंमें जो लिंगकी भावना की गयी है, उस आध्यात्मिक लिंगको ही चरलिंग कहते हैं। पर्वतको पौरुषलिंग बताया गया है और भूतलको विद्वान् पुरुष प्राकृतलिंग मानते हैं। वृक्ष आदिको पौरुषलिंग जानना चाहिये। गुल्म आदिको प्राकृतलिंग कहा गया है। साठी नामक धान्यको प्राकृतलिंग समझना चाहिये और शालि (अगहनी) एवं गेहूँको पौरुषलिंग। अणिमा आदि आठों सिद्धियोंको देनेवाला जो ऐश्वर्य है, उसे पौरुष ऐश्वर्य जानना चाहिये। सुन्दर स्त्री तथा धन आदि विषयोंको आस्तिक पुरुष प्राकृत ऐश्वर्य कहते हैं॥ ४४—४६ १/२॥

प्रथमं चरलिङ्गेषु रसलिङ्गं प्रकथ्यते॥ ४७

रसलिङ्गं ब्राह्मणानां सर्वाभीष्टप्रदं भवेत्।
बाणलिङ्गं क्षत्रियाणां महाराज्यप्रदं शुभम्॥ ४८

स्वर्णलिङ्गं तु वैश्यानां महाधनपतित्वदम्।
शिलालिङ्गं तु शूद्राणां महाशुद्धिकरं शुभम्॥ ४९

स्फाटिकं बाणलिङ्गं च सर्वेषां सर्वकामदम्।
स्वीयाभावेऽन्यदीयं तु पूजायां न निषिद्ध्यते॥ ५०

स्त्रीणां तु पार्थिवं लिङ्गं सभर्तृणां विशेषतः।

चरलिंगोंमें सबसे प्रथम रसलिंगका वर्णन किया जाता है। रसलिंग ब्राह्मणोंको उनकी सारी अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है। शुभकारक बाणलिंग क्षत्रियोंको महान् राज्यकी प्राप्ति करानेवाला है। सुवर्णलिंग वैश्योंको महाधनपतिका पद प्रदान करानेवाला है तथा सुन्दर शिलालिंग शूद्रोंको महाशुद्धि देनेवाला है। स्फटिकलिंग तथा बाणलिंग सब लोगोंको उनकी समस्त कामनाएँ प्रदान करते हैं। अपना न हो तो दूसरेका स्फटिक या बाणलिंग भी पूजाके लिये निषिद्ध नहीं है। स्त्रियों, विशेषतः सधवाओंके लिये

विधवानां प्रवृत्तानां स्फाटिकं परिकीर्तितम्॥ ५१

विधवानां निवृत्तानां रसलिङ्गं विशिष्यते।
बाल्ये वा यौवने वापि वार्धके वापि सुव्रताः॥ ५२

शुद्धस्फटिकलिङ्गं तु स्त्रीणां तत्सर्वभोगदम्।
प्रवृत्तानां पीठपूजा सर्वाभीष्टप्रदा भुवि॥ ५३

पार्थिवलिंगकी पूजाका विधान है। प्रवृत्तिमार्गमें स्थित विधवाओंके लिये स्फटिकलिंगकी पूजा बतायी गयी है। परंतु विरक्त विधवाओंके लिये रसलिंगकी पूजाको ही श्रेष्ठ कहा गया है। हे सुव्रतो! बचपनमें, युवावस्थामें और बुढ़ापेमें भी शुद्ध स्फटिकमय शिवलिंगका पूजन स्त्रियोंको समस्त भोग प्रदान करनेवाला है। गृहासक्त स्त्रियोंके लिये पीठपूजा भूतलपर सम्पूर्ण अभीष्टको देनेवाली है॥ ४७—५३॥

पात्रेणैव प्रवृत्तस्तु सर्वपूजां समाचरेत्।
नैवेद्यं चाभिषेकान्ते शाल्यन्नेन समाचरेत्॥ ५४

पूजान्ते स्थापयेल्लिङ्गं सम्पुटेषु पृथग्गृहे।
करपूजानिवृत्तानां स्वभोज्यं तु निवेदयेत्॥ ५५

निवृत्तानां परं सूक्ष्मं लिङ्गमेव विशिष्यते।
विभूत्यभ्यर्चनं कुर्याद्विभूतिं च निवेदयेत्॥ ५६

पूजां कृत्वाथ तल्लिङ्गं शिरसा धारयेत्सदा।

प्रवृत्तिमार्गमें चलनेवाला पुरुष सुपात्र गुरुके सहयोगसे ही समस्त पूजाकर्म सम्पन्न करे। इष्टदेवका अभिषेक करनेके पश्चात् अगहनीके चावलसे बने हुए [खीर आदि पक्वान्नोंद्वारा] नैवेद्य अर्पण करे। पूजाके अन्तमें शिवलिंगको पधराकर घरके भीतर पृथक् सम्पुटमें स्थापित करे। जो निवृत्तिमार्गी पुरुष हैं, उनके लिये हाथपर ही शिवलिंग-पूजाका विधान है। उन्हें भिक्षादिसे प्राप्त हुए अपने भोजनको ही नैवेद्यरूपमें निवेदित करना चाहिये। निवृत्त पुरुषोंके लिये सूक्ष्मलिंग ही श्रेष्ठ बताया जाता है। वे विभूतिके द्वारा पूजन करें और विभूतिको ही नैवेद्यरूपसे निवेदित भी करें। पूजा करके उस लिंगको सदा अपने मस्तकपर धारण करें॥ ५४—५६½॥

विभूतिस्त्रिविधा प्रोक्ता लोकवेदशिवाग्निभिः॥ ५७

लोकाग्निजमथो भस्म द्रव्यशुद्ध्यर्थमावहेत्।
मृद्दारुलोहरूपाणां धान्यानां च तथैव च॥ ५८

तिलादीनां च द्रव्याणां वस्त्रादीनां तथैव च।
तथा पर्युषितानां च भस्मना शुद्धिरिष्यते॥ ५९

श्वादिभिर्दूषितानां च भस्मना शुद्धिरिष्यते।
सजलं निर्जलं भस्म यथायोग्यं तु योजयेत्॥ ६०

विभूति तीन प्रकारकी बतायी गयी है—लोकाग्निजनित, वेदाग्निजनित और शिवाग्निजनित। लोकाग्निजनित या लौकिक भस्मको द्रव्योंकी शुद्धिके लिये लाकर रखे। मिट्टी, लकड़ी और लोहेके पात्रोंकी, धान्योंकी, तिल आदि द्रव्योंकी, वस्त्र आदिकी तथा पर्युषित वस्तुओंकी शुद्धि भस्मसे होती है। कुत्ते आदिसे दूषित हुए पात्रोंकी भी शुद्धि भस्मसे ही मानी गयी है। वस्तु-विशेषकी शुद्धिके लिये यथायोग्य सजल अथवा निर्जल भस्मका उपयोग करना चाहिये॥ ५७—६०॥

वेदाग्निजं तथा भस्म तत्कर्मान्तेषु धारयेत्।
मन्त्रेण क्रियया जन्यं कर्माग्नौ भस्मरूपधृक्॥ ६१

तद्भस्मधारणात्कर्म स्वात्मन्यारोपितं भवेत्।
अघोरेणात्ममन्त्रेण बिल्वकाष्ठं प्रदाहयेत्॥ ६२

शिवाग्निरिति सम्प्रोक्तस्तेन दग्धं शिवाग्निजम्।

वेदाग्निजनित जो भस्म है, उसको उन-उन वैदिक कर्मोंके अन्तमें धारण करना चाहिये। मन्त्र और क्रियासे जनित जो होमकर्म है, वह अग्निमें भस्मका रूप धारण करता है। उस भस्मको धारण करनेसे वह कर्म आत्मामें आरोपित हो जाता है। अघोर-मूर्तिधारी शिवका जो अपना मन्त्र है, उसे पढ़कर बेलकी लकड़ीको जलाये। उस मन्त्रसे अभिमन्त्रित अग्निको शिवाग्नि कहा गया

कपिलागोमयं पूर्वं केवलं गव्यमेव वा॥ ६३

शम्यश्वत्थपलाशान्वा वटारग्वधबिल्वकान्।
शिवाग्निना दहेच्छुद्धं तद्वै भस्म शिवाग्निजम्॥ ६४

दर्भाग्नौ वा दहेत्काष्ठं शिवमन्त्रं समुच्चरन्।
सम्यक्संशोध्य वस्त्रेण नवकुम्भे निधापयेत्॥ ६५

दीप्त्यर्थं तत्तु सङ्ग्राह्यं मन्यते पूज्यतेऽपि च।

है। उसके द्वारा जले हुए काष्ठका जो भस्म है, वह शिवाग्निजनित है। कपिला गायके गोबर अथवा गायमात्रके गोबरको तथा शमी, पीपल, पलाश, वट, अमलतास और बिल्व—इनकी लकड़ियोंको शिवाग्निसे जलाये। वह शुद्ध भस्म शिवाग्निजनित माना गया है अथवा कुशकी अग्निमें शिवमन्त्रके उच्चारणपूर्वक काष्ठको जलाये। फिर उस भस्मको कपड़ेसे अच्छी तरह छानकर नये घड़ेमें भरकर रख दे। उसे समय-समयपर अपनी कान्ति या शोभाकी वृद्धिके लिये धारण करे। ऐसा करनेवाला पुरुष सम्मानित एवं पूजित होता है॥ ६१—६५$^{1}/_{2}$॥

भस्मशब्दार्थ एवं हि शिवः पूर्वं तथाकरोत्॥ ६६

यथा स्वविषये राजा सारं गृह्णाति यत्करम्।
यथा मनुष्याः सस्यादीन्दग्ध्वा सारं भजन्ति वै॥ ६७

यथा हि जाठराग्निश्च भक्ष्यादीन्विविधान्बहून्।
दग्ध्वा सारतरं सारात्स्वदेहं परिपुष्यति॥ ६८

तथा प्रपञ्चकर्तापि स शिवः परमेश्वरः।
स्वाधिष्ठेयप्रपञ्चस्य दग्ध्वा सारं गृहीतवान्॥ ६९

दग्ध्वा प्रपञ्चं तद्भस्म स्वात्मन्यारोपयेच्छिवः।
उद्धूलनस्य व्याजेन जगत्सारं गृहीतवान्॥ ७०

पूर्वकालमें भगवान् शिवने भस्म शब्दका ऐसा ही अर्थ प्रकट किया था। जैसे राजा अपने राज्यमें सारभूत करको ग्रहण करता है, जैसे मनुष्य सस्य आदिको जलाकर (पकाकर) उसका सार ग्रहण करते हैं तथा जैसे जठरानल नाना प्रकारके भक्ष्य, भोज्य आदि पदार्थोंको भारी मात्रामें ग्रहण करके उसे जलाकर सारतर वस्तु ग्रहण करता और उस सारतर वस्तुसे स्वदेहका पोषण करता है, उसी प्रकार प्रपंचकर्ता परमेश्वर शिवने भी अपनेमें आधेय रूपसे विद्यमान प्रपंचको जलाकर भस्मरूपसे उसके सारतत्त्वको ग्रहण किया है। प्रपंचको दग्ध करके शिवने उसके भस्मको अपने शरीरमें लगाया है। उन्होंने विभूति (भस्म) पोतनेके बहाने जगत्के सारको ही ग्रहण किया है॥ ६६—७०॥

स्वरत्नं स्थापयामास स्वकीये हि शरीरके।
केशमाकाशसारेण वायुसारेण वै मुखम्॥ ७१

हृदयं चाग्निसारेण त्वपां सारेण वै कटिम्।
जानुं चावनिसारेण तद्वत्सर्वं तदङ्गकम्॥ ७२

शिवने अपने शरीरमें अपने लिये रत्नस्वरूप भस्मको इस प्रकार स्थापित किया है—आकाशके सारतत्त्वसे केश, वायुके सारतत्त्वसे मुख, अग्निके सारतत्त्वसे हृदय, जलके सारतत्त्वसे कटिभाग और पृथ्वीके सारतत्त्वसे घुटनेको धारण किया है। इसी तरह उनके सारे अंग विभिन्न वस्तुओंके साररूप हैं॥ ७१-७२॥

ब्रह्मविष्णवोश्च रुद्राणां सारं चैव त्रिपुण्ड्रकम्।
तथा तिलकरूपेण ललाटान्ते महेश्वरः॥ ७३

भूवृद्ध्या सर्वमेतद्धि मन्यते स्वयमित्यसौ।
प्रपञ्चसारसर्वस्वमनेनैव वशीकृतम्॥ ७४

महेश्वरने अपने ललाटके मध्यमें तिलकरूपसे जो त्रिपुण्ड्र धारण किया है, वह ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रका सारतत्त्व है। वे इन सब वस्तुओंको जगत्के अभ्युदयका हेतु मानते हैं। इन भगवान् शिवने ही प्रपंचके सार-सर्वस्वको अपने वशमें किया है। अतः इन्हें अपने

तस्मादस्य वशीकर्ता नान्योऽस्ति स शिवः स्मृतः।
यथा सर्वमृगाणां च हिंसको मृगहिंसकः॥ ७५
अस्य हिंसामृगो नास्ति तस्मात्सिंह इतीरितः।

वशमें करनेवाला दूसरा कोई नहीं है, इसीलिये वे शिव कहे जाते हैं। जैसे समस्त मृगोंका हिंसक मृग (पशु) सिंह कहलाता है और उसकी हिंसा करनेवाला दूसरा कोई मृग नहीं है, अतएव उसे सिंह कहा गया है॥ ७३—७५[१]/२॥

शं नित्यं सुखमानन्दमिकारः पुरुषः स्मृतः॥ ७६
वकारः शक्तिरमृतं मेलनं शिव उच्यते।
तस्मादेवं स्वमात्मानं शिवं कृत्वार्चयेच्छिवम्॥ ७७
तस्मादुद्धूलनं पूर्वं त्रिपुण्ड्रं धारयेत्परम्।
पूजाकाले हि सजलं शुद्ध्यर्थं निर्जलं भवेत्॥ ७८

शकारका अर्थ है नित्यसुख एवं आनन्द। इकारको पुरुष और वकारको अमृतस्वरूपा शक्ति कहा गया है। इन सबका सम्मिलित रूप ही शिव कहलाता है। अतः इस रूपमें भगवान् शिवको अपनी आत्मा मानकर उनकी पूजा करनी चाहिये। [साधक] पहले अपने अंगोंमें भस्म लगाये, फिर ललाटमें उत्तम त्रिपुण्ड्र धारण करे। पूजाकालमें सजल भस्मका उपयोग होता है और द्रव्यशुद्धिके लिये निर्जल भस्मका॥ ७६—७८॥

दिवा वा यदि वा रात्रौ नारी वाथ नरोऽपि वा।
पूजार्थं सजलं भस्म त्रिपुण्ड्रेणैव धारयेत्॥ ७९
त्रिपुण्ड्रं सजलं भस्म धृत्वा पूजां करोति यः।
शिवपूजाफलं साङ्गं तस्यैव हि सुनिश्चितम्॥ ८०
भस्म वै शिवमन्त्रेण धृत्वा ह्युच्चाश्रमी भवेत्।
शिवाश्रमीति सम्प्रोक्तः शिवैकपरमो यतः॥ ८१
शिवव्रतैकनिष्ठस्य नाशौचं न च सूतकम्।
ललाटेऽग्रे सितं भस्म तिलकं धारयेन्मृदा॥ ८२
स्वहस्ताद् गुरुहस्ताद्वा शिवभक्तस्य लक्षणम्।

दिन हो अथवा रात्रि, नारी हो या पुरुष; पूजा करनेके लिये उसे भस्म जलसहित ही त्रिपुण्ड्ररूपमें (ललाटपर) धारण करना चाहिये। जलमिश्रित भस्मको त्रिपुण्ड्ररूपमें धारणकर जो व्यक्ति शिवकी पूजा करता है, उसे सांग शिवकी पूजाका फल तुरंत प्राप्त होता है, यह सुनिश्चित है। जो (प्राणी) शिवमन्त्रके द्वारा भस्मको धारण करता है, वह सभी (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास) आश्रमोंमें श्रेष्ठ होता है। उसे शिवाश्रमी कहा जाता है; क्योंकि वह एकमात्र शिवको ही परम श्रेष्ठ मानता है। शिव-व्रतमें एकमात्र शिवमें ही निष्ठा रखनेवालेको न तो अशौचका दोष लगता है और न तो सूतकका। ललाटके अग्रभागमें अपने हाथसे या गुरुके हाथसे श्वेत भस्म या मिट्टीसे तिलक लगाना चाहिये, यह शिवभक्तका लक्षण है॥ ७९—८२[१]/२॥

गुणान्रुन्ध इति प्रोक्तो गुरुशब्दस्य विग्रहः॥ ८३
सविकारान्राजसादीन्गुणान्रुन्धे व्यपोहति।
गुणातीतः परशिवो गुरुरूपं समाश्रितः॥ ८४
गुणत्रयं व्यपोह्याग्रे शिवं बोधयतीति सः।
विश्वस्तानां तु शिष्याणां गुरुरित्यभिधीयते॥ ८५

जो गुणोंका रोध करता है, वह गुरु है—यह 'गुरु' शब्दका विग्रह कहा गया है। गुणातीत परम शिव राजस आदि सविकार गुणोंका अवरोध करते हैं—दूर हटाते हैं, इसलिये वे सबके गुरुरूपका आश्रय लेकर स्थित हैं। गुरु विश्वासी शिष्योंके तीनों गुणोंको पहले दूर करके उन्हें शिवतत्त्वका बोध कराते हैं, इसीलिये गुरु कहलाते हैं॥ ८३—८५॥

तस्माद् गुरुशरीरं तु गुरुलिङ्गं भवेद् बुधः।
गुरुलिङ्गस्य पूजा तु गुरुशुश्रूषणं भवेत्॥ ८६
श्रुतं करोति शुश्रूषा कायेन मनसा गिरा।
उक्तं यद् गुरुणा पूर्वं शक्यं वाऽशक्यमेव वा॥ ८७
करोत्येव हि पूतात्मा प्राणैरपि धनैरपि।
तस्माद्वै शासने योग्यः शिष्य इत्यभिधीयते॥ ८८

अतः बुद्धिमान् शिष्यको उन गुरुके शरीरको गुरुलिंग समझना चाहिये। गुरुजीकी सेवा-शुश्रूषा ही गुरुलिंगकी पूजा होती है। शरीर, मन और वाणीसे की गयी गुरुसेवासे शास्त्रज्ञान प्राप्त होता है। अपनी शक्तिसे शक्य अथवा अशक्य जिस बातका भी आदेश गुरुने दिया हो, उसका पालन प्राण और धन लगाकर पवित्रात्मा शिष्य करता है, इसीलिये इस प्रकार अनुशासित रहनेवालेको शिष्य कहा जाता है॥ ८६—८८॥

शरीराद्यर्थकं सर्वं गुरोर्दत्त्वा सुशिष्यकः।
अग्रपाकं निवेद्याग्रे भुञ्जीयाद् गुर्वनुज्ञया॥ ८९
शिष्यः पुत्र इति प्रोक्तः सदा शिष्यत्वयोगतः।
जिह्वालिङ्गान्मन्त्रशुक्रं कर्णयोनौ निषिच्य वै॥ ९०
जातः पुत्रो मन्त्रपुत्रः पितरं पूजयेद् गुरुम्।
निमज्जयति पुत्रं वै संसारे जनकः पिता॥ ९१
सन्तारयति संसाराद् गुरुर्वै बोधकः पिता।
उभयोरन्तरं ज्ञात्वा पितरं गुरुमर्चयेत्॥ ९२
अङ्गशुश्रूषया चापि धनाद्यैः स्वार्जितैर्गुरुम्।
पादादिकेशपर्यन्तं लिङ्गान्यङ्गानि यद्गुरोः॥ ९३
धनरूपैः पादुकाद्यैः पादसङ्ग्रहणादिभिः।
स्नानाभिषेकनैवेद्यैर्भोजनैश्च प्रपूजयेत्॥ ९४

सुशील शिष्यको शरीर-धारणके सभी साधन गुरुको अर्पित करके तथा अन्नका पहला पाक उन्हें समर्पित करके उनकी आज्ञा लेकर भोजन करना चाहिये। शिष्यको निरन्तर गुरुके सान्निध्यके कारण पुत्र कहा जाता है। जिह्वारूप लिंगसे मन्त्ररूपी शुक्रका कानरूपी योनिमें आधान करके जो पुत्र उत्पन्न होता है, उसे मन्त्रपुत्र कहते हैं। उसे अपने पितास्वरूप गुरुकी सेवा करनी ही चाहिये। शरीरको उत्पन्न करनेवाला पिता तो संसारप्रपंचमें पुत्रको डुबोता है। ज्ञान देनेवाला गुरुरूप पिता संसारसागरसे पार कर देता है। इन दोनों पिताओंके अन्तरको जानकर गुरुरूप पिताकी अपने कमाये धनसे तथा अपने शरीरसे विशेष सेवा-पूजा करनी चाहिये। पैरसे केशपर्यन्त जो गुरुके शरीरके अंग हैं, उनकी भिन्न-भिन्न प्रकारसे यथा—स्वयं अर्जित धनके द्वारा उपयोगकी सामग्री प्राप्त कराकर, अपने हाथोंसे पैर दबाकर, स्नान-अभिषेक आदि कराकर तथा नैवेद्य-भोजनादि देकर पूजा करनी चाहिये॥ ८९—९४॥

गुरुपूजैव पूजा स्याच्छिवस्य परमात्मनः।
गुरुसेवा तु यत्सर्वमात्मशुद्धिकरी भवेत्॥ ९५

गुरुकी पूजा ही परमात्मा शिवकी पूजा है। गुरुके उपयोगसे बचा हुआ सारा पदार्थ आत्मशुद्धि करनेवाला होता है॥ ९५॥

गुरोः शेषः शिवोच्छिष्टं जलमन्नादिनिर्मितम्।
शिष्याणां शिवभक्तानां ग्राह्यं भोज्यं भवेद् द्विजाः॥ ९६
गुर्वनुज्ञाविरहितं चोरवत्सकलं भवेत्।
गुरोरपि विशेषज्ञं यत्नाद् गृह्णीत वै गुरुम्॥ ९७
अज्ञानमोचनं साध्यं विशेषज्ञो हि मोचकः।

हे द्विजो! गुरुका शेष, जल तथा अन्न आदिसे बना हुआ शिवोच्छिष्ट शिवभक्तों और शिष्योंके लिये ग्राह्य तथा भोज्य है। गुरुकी आज्ञाके बिना उपयोगमें लाया हुआ सब कुछ वैसा ही है, जैसे चोर चोरी करके लायी हुई वस्तुका उपयोग करता है। गुरुसे भी विशेष ज्ञानवान् पुरुष मिल जाय, तो उसे भी यत्नपूर्वक गुरु बना लेना चाहिये। अज्ञानरूपी बन्धनसे छूटना ही जीवमात्रके लिये साध्य पुरुषार्थ है। अतः जो विशेष ज्ञानवान् है, वही जीवको उस बन्धनसे छुड़ा सकता है॥ ९६-९७१/२॥

आदौ च विघ्नशमनं कर्तव्यं कर्मपूर्तये॥ ९८
निर्विघ्नेन कृतं साङ्गं कर्म वै सफलं भवेत्।
तस्मात्सकलकर्मादौ विघ्नेशं पूजयेद् बुधः॥ ९९
सर्वबाधानिवृत्त्यर्थं सर्वान्देवान् यजेद् बुधः।

कर्मकी सांगोपांग पूर्तिके लिये पहले विघ्नशान्ति करनी चाहिये। निर्विघ्नतापूर्वक तथा सांग सम्पन्न हुआ कार्य ही सफल होता है। इसलिये सभी कर्मोंके प्रारम्भमें बुद्धिमान् व्यक्तिको विघ्नविनाशक गणपतिका पूजन करना चाहिये। सभी बाधाओंको दूर करनेके लिये विद्वान् व्यक्तिको सभी देवताओंकी पूजा करनी चाहिये॥ ९८-९९½॥

ज्वरादिग्रन्थिरोगाश्च बाधा ह्याध्यात्मिकी मता॥ १००
पिशाचजम्बुकादीनां वल्मीकाद्युद्भवे तथा।
अकस्मादेव गोधादिजन्तूनां पतनेऽपि च॥ १०१
गृहे कच्छपसर्पस्त्रीदुर्जनादर्शनेऽपि च।
वृक्षनारीगवादीनां प्रसूतिविषयेऽपि च॥ १०२
भाविदुःखं समायाति तस्मात्ते भौतिका मताः।
अमेध्याशनिपातश्च महामारी तथैव च॥ १०३
ज्वरमारी विषूचिश्च गोमारी च मसूरिका।
जन्मर्क्षग्रहसङ्क्रान्तिग्रहयोगाः स्वराशिके॥ १०४
दुःस्वप्नदर्शनाद्याश्च मता वै ह्याधिदैविकाः।

ज्वर आदि ग्रन्थिरोग आध्यात्मिक बाधा कही जाती है। पिशाच और सियार आदिका दीखना, बाँबीका जमीनपर उठ आना, अकस्मात् छिपकली आदि जन्तुओंका गिरना, घरमें कच्छप, साँप, दुष्ट स्त्रीका दीखना, वृक्ष, नारी और गौ आदिकी प्रसूतिका दर्शन होना आगामी दुःखका संकेत होता है। अतः यह आधिभौतिक बाधा मानी जाती है। किसी अपवित्र वस्तुका गिरना, बिजली गिरना, महामारी, ज्वरमारी, हैजा, गोमारी, मसूरिका (एक प्रकारका शीतला रोग), जन्मनक्षत्रपर ग्रहण, संक्रान्ति, अपनी राशिमें अनेक ग्रहोंका योग होना तथा दुःस्वप्नदर्शन आदि आधिदैविक बाधा कही जाती है॥ १००—१०४½॥

शवचाण्डालपतितस्पर्शादन्तर्गृहे गते॥ १०५
एतादृशे समुत्पन्ने भाविदुःखस्य सूचके।
शान्तियज्ञं तु मतिमान्कुर्यात्तद्दोषशान्तये॥ १०६
देवालयेऽथ गोष्ठे वा चैत्ये वापि गृहाङ्गणे।
प्रदेशोन्नतधिष्ण्ये वै द्विहस्ते च स्वलङ्कृते॥ १०७
भारमात्रं व्रीहिधान्यं प्रस्थाप्य परिसृत्य च।
मध्ये विलिख्य कमलं तथा दिक्षु विलिख्य वै॥ १०८
तन्तुना वेष्टितं कुम्भं नवगुग्गुलधूपितम्।
मध्ये स्थाप्य महाकुम्भं तथा दिक्ष्वपि विन्यसेत्॥ १०९

शव, चाण्डाल और पतितका स्पर्श अथवा इनका घरके भीतर आना भावी दुःखका सूचक होता है। बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि उस दोषकी शान्तिके लिये शान्तियज्ञ करे। किसी मन्दिर, गोशाला, यज्ञशाला अथवा घरके आँगनमें जहाँ दो हाथपर ऊँची जमीन हो, उसे अच्छी तरह साफ करके उसपर एक भार धान रखकर उसे फैला दे। उसके बीचमें कमल बनाये तथा कोणसहित आठों दिशाओंमें भी कमल बना दे। फिर प्रधान कलशमें सूत्र बाँधकर तथा गुग्गुलकी धूप दिखाकर उसे बीचमें तथा दिशाओंमें बनाये गये कमलोंपर अन्य आठ कलश स्थापित कर दे॥ १०५—१०९॥

सनालाम्रककूर्चादीन्कलशांश्च तथाष्टसु।
पूरयेन्मन्त्रपूतेन पञ्चद्रव्ययुतेन हि॥ ११०
प्रक्षिपेन्नवरत्नानि नीलादीन्क्रमशस्तथा।
कर्मज्ञं च सपत्नीकमाचार्यं वरयेद् बुधः॥ १११

आठ कलशोंमें कमल, आम्रपल्लव, कुशा डालकर [गन्ध आदि] पंचद्रव्योंसे युक्त मन्त्रपूत जलसे उन्हें भरे। उन समस्त कलशोंमें नीलम आदि नवरत्नोंको क्रमशः डालना चाहिये। तत्पश्चात् बुद्धिमान् यजमान कर्मकाण्डको जाननेवाले सपत्नीक आचार्यका वरण

सुवर्णप्रतिमां विष्णोरिन्द्रादीनां च निक्षिपेत्।
सशिरस्के मध्यकुम्भे विष्णुमावाह्य पूजयेत्॥ ११२

प्रागादिषु यथामन्त्रमिन्द्रादीन्क्रमशो यजेत्।
तत्तन्नाम्ना चतुर्थ्या च नमोऽन्तेन यथाक्रमम्॥ ११३

करे। भगवान् विष्णुकी स्वर्णप्रतिमा तथा इन्द्रादि देवताओंकी भी प्रतिमाएँ बनाकर उन कलशोंमें छोड़े। पूर्णपात्रसे ढके मध्यकलशपर भगवान् विष्णुका आवाहन करके उनकी पूजा करे। पूर्व दिशासे प्रारम्भ करके सभी दिशाओंमें मन्त्रानुसार इन्द्रादिका क्रमशः पूजन करना चाहिये। उनके नामोंमें चतुर्थी विभक्तिसहित नमःका प्रयोग करते हुए उनका पूजन करना चाहिये॥ ११०—११३॥

आवाहनादिकं सर्वमाचार्येणैव कारयेत्।
आचार्यऋत्विजैः सार्धं तन्मन्त्रान्प्रजपेच्छतम्॥ ११४

कुम्भस्य पश्चिमे भागे जपान्ते होममाचरेत्।
कोटिं लक्षं सहस्रं वा शतमष्टोत्तरं बुधाः॥ ११५

एकाहं वा नवाहं वा तथा मण्डलमेव वा।
यथायोग्यं प्रकुर्वीत कालदेशानुसारतः॥ ११६

आवाहनादि सारे कार्य आचार्यद्वारा सम्पन्न कराये तथा आचार्य और ऋत्विजोंसहित उन देवताओंके मन्त्रोंको सौ-सौ बार जपे। कलशोंकी पश्चिम दिशामें जपके बाद होम करना चाहिये। हे विद्वज्जनो! वह जपहोम करोड़, लाख, हजार अथवा १०८ की संख्यामें हो सकता है। इस विधिसे एक दिन, नौ दिन अथवा चालीस दिनोंमें देश-कालकी व्यवस्थाके अनुसार [शान्तियज्ञ] यथोचित रूपमें सम्पन्न करे॥ ११४—११६॥

शमीहोमश्च शान्त्यर्थे वृत्त्यर्थे च पलाशकम्।
समिदन्नाज्यकैर्द्रव्यैर्नाम्ना मन्त्रेण वा हुनेत्॥ ११७

प्रारम्भे यत्कृतं द्रव्यं तत्क्रियान्तं समाचरेत्।
पुण्याहं वाचयित्वान्ते दिने सम्प्रोक्षयेज्जलैः॥ ११८

ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्यावदाहुतिसङ्ख्यया।
आचार्यश्च हविष्याशी ऋत्विजश्च भवेद् बुधाः॥ ११९

शान्तिके लिये शमी तथा वृत्ति (रोजगार)-के लिये पलाशकी समिधासे, अन्न, घृत तथा [सुगन्धित] द्रव्योंसे उन देवताओंके नाम अथवा मन्त्रोंसे हवन करना चाहिये। प्रारम्भमें जिस द्रव्यका उपयोग किया हो, अन्ततक उसीका प्रयोग करते रहना चाहिये। अन्तिम दिन पुण्याहवाचन कराकर कलशोंके जलसे प्रोक्षण करना चाहिये। तत्पश्चात् आहुतिकी संख्याके बराबर ब्राह्मणोंको भोजन कराये। हे विद्वानो! आचार्य और ऋत्विजोंको हविष्यका भोजन कराना चाहिये॥ ११७—११९॥

आदित्यादीन्ग्रहानिष्ट्वा सर्वहोमान्त एव हि।
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यान्नवरत्नं यथाक्रमम्॥ १२०

दशदानं ततः कुर्याद् भूरिदानं ततः परम्।
बालानामुपनीतानां गृहिणां वनिनां धनम्॥ १२१

कन्यानां च सभर्तृणां विधवानां ततः परम्।
तन्त्रोपकरणं सर्वमाचार्याय निवेदयेत्॥ १२२

सूर्य आदि नवग्रहोंका होमके अन्तमें पूजन करना चाहिये। ऋत्विजोंको क्रमानुसार नवरत्नोंकी दक्षिणा देनी चाहिये। तत्पश्चात् दशदान करे और उसके बाद भूयसीदान करना चाहिये। बालक, यज्ञोपवीती, गृहस्थाश्रमी और वानप्रस्थियोंको धनका दान करना चाहिये। तत्पश्चात् कन्या, सधवा और विधवा स्त्रियोंको देनेके अनन्तर बची हुई तथा यज्ञमें बची हुई सारी सामग्री आचार्यको समर्पित कर देनी चाहिये॥ १२०—१२२॥

उत्पातानां च मारीणां दुःखस्वामी यमः स्मृतः।
तस्माद्यमस्य प्रीत्यर्थं कालदानं प्रदापयेत्॥ १२३

शतनिष्केण वा कुर्याद्दशनिष्केण वा पुनः।
पाशांकुशधरं कालं कुर्यात्पुरुषरूपिणम्॥ १२४

तत्स्वर्णप्रतिमादानं कुर्याद्दक्षिणया सह।
तिलदानं ततः कुर्यात्पूर्णायुष्यप्रसिद्धये॥ १२५

आज्यावेक्षणदानं च कुर्याद्व्याधिनिवृत्तये।
सहस्रं भोजयेद्विप्रान्दरिद्रः शतमेव वा॥ १२६

वित्ताभावे दरिद्रस्तु यथाशक्ति समाचरेत्।

भैरवस्य महापूजां कुर्याद्भूतादिशान्तये॥ १२७

महाभिषेकं नैवेद्यं शिवस्यान्ते तु कारयेत्।
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्भूरिभोजनरूपतः ॥ १२८

एवं कृतेन यज्ञेन दोषशान्तिमवाप्नुयात्।
शान्तियज्ञमिमं कुर्याद्वर्षे वर्षे तु फाल्गुने॥ १२९

दुर्दर्शनादौ सद्यो वै मासमात्रे समाचरेत्।
महापापादिसम्प्राप्तौ कुर्याद्भैरवपूजनम्॥ १३०

महाव्याधिसमुत्पत्तौ सङ्कल्पं पुनराचरेत्।
सर्वाभावे दरिद्रस्तु दीपदानमथाचरेत्॥ १३१

तदप्यशक्तः स्नात्वा वै यत्किञ्चिद् दानमाचरेत्।
दिवाकरं नमस्कुर्यान्मन्त्रेणाष्टोत्तरं शतम्॥ १३२

सहस्रमयुतं लक्षं कोटिं वा कारयेद् बुधः।
नमस्कारात्मयज्ञेन तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः॥ १३३

त्वत्स्वरूपेऽर्पिता बुद्धिर्न तेऽशून्ये च रोचते।
या चास्त्यस्मदहन्तेति त्वयि दृष्टे विवर्जिता॥ १३४

नम्रोऽहं हि स्वदेहेन भो महांस्त्वमसि प्रभो।
न शून्यो मत्स्वरूपो वै तव दासोऽस्मि साम्प्रतम्॥ १३५

यथायोग्यं स्वात्मयज्ञं नमस्कारं प्रकल्पयेत्।
अथात्र शिवनैवेद्यं दत्त्वा ताम्बूलमाहरेत्॥ १३६

उत्पात, महामारी और दुःखोंके स्वामी यमराज माने जाते हैं। इसलिये यमराजकी प्रसन्नताके लिये कालप्रतिमाका दान करना चाहिये। सौ निष्क या दस निष्कके परिमाणकी पाश और अंकुश धारण की हुई पुरुषके आकारकी स्वर्णप्रतिमा बनाये। उस स्वर्णप्रतिमाका दक्षिणासहित दान करना चाहिये। उसके बाद पूर्णायु प्राप्त करनेहेतु तिलका दान करना चाहिये। रोगनिवारणके लिये घृतमें अपनी परछाईं देखकर दान करना चाहिये। हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये, धनाभावमें सौ अथवा यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये॥ १२३—१२६½॥

भूत आदिकी शान्तिके लिये भैरवकी महापूजा करे। अन्तमें भगवान् शिवका महाभिषेक और नैवेद्य समर्पित करके ब्राह्मणोंको भूरिभोजन कराना चाहिये॥ १२७-१२८॥

इस प्रकार यज्ञ सम्पन्न करनेसे दोषोंकी शान्ति हो जाती है। इस शान्तियज्ञका प्रतिवर्ष फाल्गुनमासमें आयोजन करना चाहिये। अशुभ दर्शन होनेपर तुरंत अथवा एक महीनेके भीतर यज्ञका आयोजन करना चाहिये। महापाप हो जाय, तो भैरवकी पूजा करनी चाहिये। महाव्याधि हो जाय, तो यज्ञका पुनः संकल्प लेकर उसे सम्पन्न करना चाहिये। अकिंचन दरिद्र व्यक्ति तो केवल दीपदान कर दे। उतना भी न हो सके, तो स्नान करके कुछ दान कर दे। एक सौ आठ, एक हजार, दस हजार, एक लाख या एक करोड़ मन्त्रोंसे भगवान् सूर्यको नमस्कार करे। इस नमस्कारात्मक यज्ञसे सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं॥ १२९—१३३॥

भगवान् शिवकी इस प्रकार प्रार्थना करे—मेरी बुद्धि आपके ज्योतिर्मय पूर्णस्वरूपमें लगी है। मुझमें जो अहंता थी, वह आपके दर्शनसे नष्ट हो गयी है। मैं अपनी देहसे आपको प्रणाम करता हूँ। हे प्रभो! आप महान् हैं। आप पूर्ण हैं और मेरा स्वरूप भी आप ही हैं, तो भी इस समय मैं आपका दास हूँ। इस प्रकार यथायोग्य नमस्कारपूर्वक स्वात्मयज्ञ करना चाहिये। तत्पश्चात् भगवान् शिवको नैवेद्य देकर ताम्बूल समर्पित करना चाहिये॥ १३४—१३६॥

शिवप्रदक्षिणं कुर्यात्स्वयमष्टोत्तरं शतम्।
सहस्रमयुतं लक्षं कोटिमन्येन कारयेत्॥ १३७

शिवप्रदक्षिणात्सर्वं पातकं नश्यति क्षणात्।
दुःखस्य मूलं व्याधिर्हि व्याधेर्मूलं हि पातकम्॥ १३८

धर्मेणैव हि पापानामपनोदनमीरितम्।
शिवोद्देशकृतो धर्मः क्षमः पापविनोदने॥ १३९

तब स्वयं १०८ बार शिवकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये। एक हजार, दस हजार, एक लाख या करोड़ प्रदक्षिणा दूसरोंके द्वारा करायी जा सकती है। शिवकी प्रदक्षिणासे सारे पापोंका तत्क्षण नाश हो जाता है। दुःखका मूल व्याधि है और व्याधिका मूल पापमें होता है। धर्माचरणसे ही पापोंका नाश बताया गया है। भगवान् शिवके उद्देश्यसे किया गया धर्माचरण पापोंका नाश करनेमें समर्थ होता है॥ १३७—१३९॥

अध्यक्षं शिवधर्मेषु प्रदक्षिणमितीरितम्।
क्रियया जपरूपं हि प्रणवं तु प्रदक्षिणम्॥ १४०

जननं मरणं द्वन्द्वं मायाचक्रमितीरितम्।
शिवस्य मायाचक्रं हि बलिपीठं तदुच्यते॥ १४१

बलिपीठं समारभ्य प्रादक्षिण्यक्रमेण वै।
पदे पदान्तरं गत्वा बलिपीठं समाविशेत्॥ १४२

नमस्कारं ततः कुर्यात्प्रदक्षिणमितीरितम्।
निर्गमाज्जननं प्राप्तं नमस्त्वात्मसमर्पणम्॥ १४३

शिवके धर्मोंमें प्रदक्षिणाको प्रधान कहा गया है। क्रियासे जपरूप होकर प्रणव ही प्रदक्षिणा बन जाता है। जन्म और मरणका द्वन्द्व ही मायाचक्र कहा गया है। शिवका मायाचक्र ही बलिपीठ कहलाता है। बलिपीठसे आरम्भ करके प्रदक्षिणाके क्रमसे एक पैरके पीछे दूसरा पैर रखते हुए बलिपीठमें पुनः प्रवेश करना चाहिये। तत्पश्चात् नमस्कार करना चाहिये। इसे प्रदक्षिणा कहा जाता है। बलिपीठसे बाहर निकलना जन्म प्राप्त होना और नमस्कार करना ही आत्मसमर्पण है॥ १४०—१४३॥

जननं मरणं द्वन्द्वं शिवमायासमर्पितम्।
शिवमायार्पितद्वन्द्वो न पुनस्त्वात्मभाग्भवेत्॥ १४४

यावद्देहं क्रियाधीनः स जीवो बद्ध उच्यते।
देहत्रयवशीकारे मोक्ष इत्युच्यते बुधैः॥ १४५

मायाचक्रप्रणेता हि शिवः परमकारणम्।
शिवमायार्पितद्वन्द्वं शिवस्तु परिमार्जति॥ १४६

शिवेन कल्पितं द्वन्द्वं तस्मिन्नेव समर्पयेत्।

जन्म और मरणरूप द्वन्द्व भगवान् शिवकी मायासे प्राप्त है। जो इन दोनोंको शिवकी मायाको ही अर्पित कर देता है, वह फिर शरीरके बन्धनमें नहीं पड़ता। जबतक शरीर रहता है, तबतक जो क्रियाके ही अधीन है, वह जीव बद्ध कहलाता है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण—तीनों शरीरोंको वशमें कर लेनेपर जीवका मोक्ष हो जाता है, ऐसा ज्ञानी पुरुषोंका कथन है। मायाचक्रके निर्माता भगवान् शिव ही परम कारण हैं। वे अपनी मायाके दिये हुए द्वन्द्वका स्वयं ही परिमार्जन करते हैं। अतः शिवके द्वारा कल्पित हुआ द्वन्द्व उन्हींको समर्पित कर देना चाहिये॥ १४४—१४६ $^{1}/_{2}$ ॥

शिवस्यातिप्रियं विद्यात्प्रदक्षिणनमो बुधाः॥ १४७

प्रदक्षिणनमस्काराः शिवस्य परमात्मनः।
षोडशैरुपचारैश्च कृता पूजा फलप्रदा॥ १४८

प्रदक्षिणाऽविनाश्यं हि पातकं नास्ति भूतले।
तस्मात्प्रदक्षिणेनैव सर्वपापं विनाशयेत्॥ १४९

हे विद्वानो! प्रदक्षिणा और नमस्कार शिवको अतिप्रिय हैं, ऐसा जानना चाहिये। भगवान् शिवकी प्रदक्षिणा, नमस्कार और षोडशोपचार पूजन अत्यन्त फलदायी होता है। ऐसा कोई पाप इस पृथ्वीपर नहीं है, जो शिवप्रदक्षिणासे नष्ट न हो सके। इसलिये प्रदक्षिणाका आश्रय लेकर सभी पापोंका नाश कर लेना चाहिये॥ १४७—१४९॥

शिवपूजापरो मौनी सत्यादिगुणसंयुतः।
क्रियातपोजपज्ञानध्यानेष्वेकैकमाचरेत् ॥ १५०
ऐश्वर्यं दिव्यदेहश्च ज्ञानमज्ञानसङ्क्षयः।
शिवसान्निध्यमित्येतत्क्रियादीनां फलं भवेत्॥ १५१
करणेन फलं याति तमसः परिहापनात्।
जन्मनः परिमार्जित्वाज्ज्ञबुद्ध्या जनितानिव॥ १५२
यथादेशं यथाकालं यथादेहं यथाधनम्।
यथायोग्यं प्रकुर्वीत क्रियादीन् शिवभक्तिमान्॥ १५३

जो शिवकी पूजामें तत्पर हो, वह मौन रहे, सत्य आदि गुणोंसे संयुक्त हो तथा क्रिया, जप, तप, ज्ञान और ध्यानमेंसे एक-एकका अनुष्ठान करता रहे। ऐश्वर्य, दिव्य शरीरकी प्राप्ति, ज्ञानका उदय, अज्ञानका निवारण और भगवान् शिवके सामीप्यका लाभ—ये क्रमशः क्रिया आदिके फल हैं। निष्काम कर्म करनेसे अज्ञानका निवारण हो जानेके कारण शिवभक्त पुरुष उसके यथोक्त फलको पाता है। शिवभक्त पुरुष देश, काल, शरीर और धनके अनुसार यथायोग्य क्रिया आदिका अनुष्ठान करे॥ १५०—१५३॥

न्यायार्जितसुवित्तेन वसेत्प्राज्ञः शिवस्थले।
जीवहिंसादिरहितमतिक्लेशविवर्जितम् ॥ १५४
पञ्चाक्षरेण जप्तं च तोयमन्नं विदुः सुखम्।
अथवाहुर्दरिद्रस्य भिक्षान्नं ज्ञानदं भवेत्॥ १५५
शिवभक्तस्य भिक्षान्नं शिवभक्तिविवर्धनम्।
शम्भुसत्रमिति प्राहुर्भिक्षान्नं शिवयोगिनः॥ १५६
येन केनाप्युपायेन यत्र कुत्रापि भूतले।
शुद्धान्नभुक्सदा मौनी रहस्यं न प्रकाशयेत्॥ १५७
प्रकाशयेत्तु भक्तानां शिवमाहात्म्यमेव हि।
रहस्यं शिवमन्त्रस्य शिवो जानाति नापरः॥ १५८

न्यायोपार्जित उत्तम धनसे निर्वाह करते हुए विद्वान् पुरुष शिवके स्थानमें निवास करे। जीवहिंसा आदिसे रहित और अत्यन्त क्लेशशून्य जीवन बिताते हुए पंचाक्षर-मन्त्रके जपसे अभिमन्त्रित अन्न और जलको सुखस्वरूप माना गया है अथवा यह भी कहते हैं कि दरिद्र पुरुषके लिये भिक्षासे प्राप्त हुआ अन्न ज्ञान देनेवाला होता है, शिवभक्तको भिक्षान्न प्राप्त हो, तो वह शिवभक्तिको बढ़ानेवाला होता है। शिवयोगी पुरुष भिक्षान्नको शम्भुसत्र कहते हैं। जिस किसी भी उपायसे जहाँ-कहीं भी भूतलपर शुद्ध अन्नका भोजन करते हुए सदा मौनभावसे रहे और अपने साधनका रहस्य किसीपर प्रकट न करे। भक्तोंके समक्ष ही शिवके माहात्म्यको प्रकाशित करे। शिवमन्त्रके रहस्यको भगवान् शिव ही जानते हैं, दूसरा कोई नहीं जान पाता॥ १५४—१५८॥

शिवभक्तो वसेन्नित्यं शिवलिङ्गं समाश्रितः।
स्थाणुलिङ्गाश्रयेणैव स्थाणुर्भवति भूसुराः॥ १५९
पूजया चरलिङ्गस्य क्रमान्मुक्तो भवेद् ध्रुवम्।
सर्वमुक्तं समासेन साध्यसाधनमुत्तमम्॥ १६०
व्यासेन यत्पुरा प्रोक्तं यच्छ्रुतं हि मया पुरा।
भद्रमस्तु हि वोऽस्माकं शिवभक्तिर्दृढास्तु सा॥ १६१
य इमं पठतेऽध्यायं यः शृणोति नरः सदा।
शिवज्ञानं स लभते शिवस्य कृपया बुधाः॥ १६२

शिवभक्तको सदा शिवलिंगके आश्रित होकर वास करना चाहिये। हे ब्राह्मणो! शिवलिंगाश्रयके प्रभावसे वह भक्त भी शिवरूप ही हो जाता है। चरलिंगकी पूजा करनेसे वह क्रमशः अवश्य ही मुक्त हो जाता है। महर्षि व्यासने पूर्वकालमें जो कहा था और मैंने जैसा सुना था, उस सब साध्य और साधनका संक्षेपमें मैंने वर्णन कर दिया। आप सबका कल्याण हो और भगवान् शिवमें आपकी दृढ़ भक्ति बनी रहे। जो मनुष्य इस अध्यायका पाठ करता है अथवा जो इसे सुनता है, हे विज्ञजनो! वह भगवान् शिवकी कृपासे शिवज्ञानको प्राप्त कर लेता है॥ १५९—१६२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे शिवलिङ्गमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें शिवलिङ्गके माहात्म्यका वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

पार्थिव शिवलिंगके पूजनका माहात्म्य

ऋषय ऊचुः

सूत सूत चिरञ्जीव धन्यस्त्वं शिवभक्तिमान्।
सम्यगुक्तस्त्वया लिङ्गमहिमा सत्फलप्रदः॥ १

यत्र पार्थिवमाहेशलिङ्गस्य महिमाधुना।
सर्वोत्कृष्टश्च कथितो व्यासतो ब्रूहि तं पुनः॥ २

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! आप चिरंजीवी हों। आप धन्य हैं, जो परम शिवभक्त हैं। आपने शुभ फलको देनेवाली शिवलिंगकी महिमा सम्यक् प्रकारसे बतायी। अब आप व्यासजीद्वारा वर्णित भगवान् शिवके सर्वोत्कृष्ट पार्थिव लिंगकी महिमाका वर्णन करें॥ १-२॥

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे सद्भक्त्यादरतोऽखिलाः।
शिवपार्थिवलिङ्गस्य महिमा प्रोच्यते मया॥ ३

उक्तेष्वेतेषु लिङ्गेषु पार्थिवं लिङ्गमुत्तमम्।
तस्य पूजनतो विप्रा बहवः सिद्धिमागताः॥ ४

सूतजी बोले—हे ऋषियो! मैं शिवके पार्थिव लिंगकी महिमा बता रहा हूँ, आप लोग भक्ति और आदरसहित इसका श्रवण करें। हे द्विजो! अभीतक बताये हुए सभी शिवलिंगोंमें पार्थिव लिंग सर्वोत्तम है। उसकी पूजा करनेसे अनेक भक्तोंको सिद्धि प्राप्त हुई है॥ ३-४॥

हरिर्ब्रह्मा च ऋषयः सप्रजापतयस्तथा।
सम्पूज्य पार्थिवं लिङ्गं प्रापुः सर्वेप्सितं द्विजाः॥ ५

देवासुरमनुष्याश्च गन्धर्वोरगराक्षसाः।
अन्येऽपि बहवः सिद्धिं तं सम्पूज्य गताः पराम्॥ ६

हे ब्राह्मणो! ब्रह्मा, विष्णु, प्रजापति तथा अनेक ऋषियोंने पार्थिव लिंगकी पूजा करके अपना सम्पूर्ण अभीष्ट प्राप्त किया है। देव, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, नाग, राक्षसगण और अन्य प्राणियोंने भी उसकी पूजा करके परम सिद्धि प्राप्त की है॥ ५-६॥

कृते रत्नमयं लिङ्गं त्रेतायां हेमसम्भवम्।
द्वापरे पारदं श्रेष्ठं पार्थिवं तु कलौ युगे॥ ७

अष्टमूर्तिषु सर्वासु मूर्तिर्वै पार्थिवी वरा।
अनन्यपूजिता विप्रास्तपस्तस्मान्महत्फलम्॥ ८

सत्ययुगमें मणिलिंग, त्रेतायुगमें स्वर्णलिंग, द्वापरयुगमें पारदलिंग और कलियुगमें पार्थिवलिंगको श्रेष्ठ कहा गया है। भगवान् शिवकी सभी आठ* मूर्तियोंमें पार्थिव मूर्ति श्रेष्ठ है। किसी अन्यद्वारा न पूजी हुई (नवनिर्मित) पार्थिव मूर्तिकी पूजा करनेसे तपस्यासे भी अधिक फल मिलता है॥ ७-८॥

यथा सर्वेषु देवेषु ज्येष्ठः श्रेष्ठः महेश्वरः।
एवं सर्वेषु लिङ्गेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते॥ ९

यथा नदीषु सर्वासु ज्येष्ठा श्रेष्ठा सुरापगा।
तथा सर्वेषु लिङ्गेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते॥ १०

यथा सर्वेषु मन्त्रेषु प्रणवो हि महान्स्मृतः।
तथेदं पार्थिवं श्रेष्ठमाराध्यं पूज्यमेव हि॥ ११

यथा सर्वेषु वर्णेषु ब्राह्मणः श्रेष्ठ उच्यते।

जैसे सभी देवताओंमें शंकर ज्येष्ठ और श्रेष्ठ कहे जाते हैं, उसी प्रकार सभी लिंगमूर्तियोंमें पार्थिवलिंग श्रेष्ठ कहा जाता है। जैसे सभी नदियोंमें गंगा ज्येष्ठ और श्रेष्ठ कही जाती है, वैसे ही सभी लिंगमूर्तियोंमें पार्थिव लिंग श्रेष्ठ कहा जाता है। जैसे सभी मन्त्रोंमें प्रणव (ॐ) महान् कहा गया है, उसी प्रकार शिवका यह पार्थिवलिंग श्रेष्ठ, आराध्य तथा पूजनीय होता है। जैसे सभी वर्णोंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ कहा जाता है, उसी

* पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा तथा यजमान—ये शिवकी आठ मूर्तियाँ हैं।

तथा सर्वेषु लिङ्गेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते॥ १२
यथा पुरीषु सर्वासु काशी श्रेष्ठतमा स्मृता।
तथा सर्वेषु लिङ्गेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते॥ १३
यथा व्रतेषु सर्वेषु शिवरात्रिव्रतं परम्।
तथा सर्वेषु लिङ्गेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते॥ १४
यथा देवीषु सर्वासु शैवी शक्तिः परा स्मृता।
तथा सर्वेषु लिङ्गेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते॥ १५

प्रकार सभी लिंगमूर्तियोंमें पार्थिवलिंग श्रेष्ठ कहा जाता है। जैसे सभी पुरियोंमें काशीको श्रेष्ठतम कहा गया है, वैसे ही सभी शिवलिंगोंमें पार्थिवलिंग श्रेष्ठ कहा जाता है। जैसे सभी व्रतोंमें शिवरात्रिका व्रत सर्वोपरि है, उसी प्रकार सभी शिवलिंगोंमें पार्थिवलिंग सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है। जैसे सभी देवियोंमें शैवी शक्ति प्रधान मानी जाती है, उसी प्रकार सभी शिवलिंगोंमें पार्थिवलिंग प्रधान माना जाता है॥ ९—१५॥

प्रकृत्य पार्थिवं लिङ्गं योऽन्यदेवं प्रपूजयेत्।
वृथा भवति सा पूजा स्नानदानादिकं वृथा॥ १६
पार्थिवाराधनं पुण्यं धन्यमायुर्विवर्धनम्।
तुष्टिदं पुष्टिदं श्रीदं कार्यं साधकसत्तमैः॥ १७

जो पार्थिवलिंगका निर्माण करनेके बाद किसी अन्य देवताकी पूजा करता है, उसकी वह पूजा तथा स्नान-दान आदिकी क्रियाएँ व्यर्थ हो जाती हैं। पार्थिव-पूजन अत्यन्त पुण्यदायी तथा सब प्रकारसे धन्य करनेवाला, दीर्घायुष्य देनेवाला है। यह तुष्टि, पुष्टि और लक्ष्मी प्रदान करनेवाला है, अतः श्रेष्ठ साधकोंको पूजन अवश्य करना चाहिये॥ १६-१७॥

यथालब्धोपचारैश्च भक्तिश्रद्धासमन्वितः।
पूजयेत्पार्थिवं लिङ्गं सर्वकामार्थसिद्धिदम्॥ १८
यः कृत्वा पार्थिवं लिङ्गं पूजयेच्छुभवेदिकम्।
इहैव धनवाञ्छ्रीमानन्ते रुद्रोऽभिजायते॥ १९
त्रिसन्ध्यं योऽर्चयेल्लिङ्गं कृत्वा बिल्वेन पार्थिवम्।
दशैकादशकं यावत्तस्य पुण्यफलं शृणु॥ २०
अनेनैव स्वदेहेन रुद्रलोके महीयते।
पापहं सर्वमर्त्यानां दर्शनात्स्पर्शनादपि॥ २१
जीवन्मुक्तः स वै ज्ञानी शिव एव न संशयः।
तस्य दर्शनमात्रेण भुक्तिर्मुक्तिश्च जायते॥ २२

उपलब्ध उपचारोंसे भक्ति-श्रद्धापूर्वक पार्थिव लिंगका पूजन करना चाहिये; यह सभी कामनाओंकी सिद्धि देनेवाला है। जो सुन्दर वेदीसहित पार्थिव लिंगका निर्माण करके उसकी पूजा करता है, वह इस लोकमें धन-धान्यसे सम्पन्न होकर अन्तमें रुद्रलोकको प्राप्त करता है। जो पार्थिवलिंगका निर्माण करके बिल्वपत्रोंसे ग्यारह वर्षतक उसका त्रिकाल पूजन करता है, उसके पुण्यफलको सुनिये। वह अपने इसी शरीरसे रुद्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। उसके दर्शन और स्पर्शसे मनुष्योंके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। वह जीवन्मुक्त ज्ञानी और शिवस्वरूप है; इसमें संशय नहीं है। उसके दर्शनमात्रसे भोग और मोक्षकी प्राप्ति होती है॥ १८—२२॥

शिवं यः पूजयेन्नित्यं कृत्वा लिङ्गं तु पार्थिवम्।
यावज्जीवनपर्यन्तं स याति शिवमन्दिरम्॥ २३
मृडेनाप्रमितान्वर्षाञ्छिवलोके हि तिष्ठति।
सकामः पुनरागत्य राजेन्द्रो भारते भवेत्॥ २४
निष्कामः पूजयेन्नित्यं पार्थिवं लिङ्गमुत्तमम्।
शिवलोके सदा तिष्ठेत्तस्य सायुज्यमाप्नुयात्॥ २५

जो पार्थिव शिवलिंगका निर्माण करके जीवनपर्यन्त नित्य उसका पूजन करता है, वह शिवलोक प्राप्त करता है। वह असंख्य वर्षोंतक भगवान् शिवके सान्निध्यमें शिवलोकमें वास करता है और कोई कामना शेष रहनेपर वह भारतवर्षमें सम्राट् बनता है। जो निष्कामभावसे नित्य उत्तम पार्थिवलिंगका पूजन करता है, वह सदाके लिये शिवलोकमें वास करता है और शिवसायुज्यको प्राप्त कर लेता है॥ २३—२५॥

पार्थिवं शिवलिङ्गं च विप्रो यदि न पूजयेत्।
स याति नरकं घोरं शूलप्रोतं सुदारुणम्॥ २६

यथाकथञ्चिद्विधिना रम्यं लिङ्गं प्रकारयेत्।
पञ्चसूत्रविधानं च पार्थिवे न विचारयेत्॥ २७

यदि ब्राह्मण पार्थिव शिवलिंगका पूजन नहीं करता है, तो वह अत्यन्त दारुण शूलप्रोत नामक घोर नरकमें जाता है। किसी भी विधिसे सुन्दर पार्थिवलिंगका निर्माण करना चाहिये, किंतु उसमें पंचसूत्रविधान नहीं करना चाहिये॥ २६-२७॥

अखण्डं तद्धि कर्तव्यं न विखण्डं प्रकारयेत्।
विखण्डं तु प्रकुर्वाणो नैव पूजाफलं लभेत्॥ २८

रत्नजं हेमजं लिङ्गं पारदं स्फाटिकं तथा।
पार्थिवं पुष्परागोत्थमखण्डं तु प्रकारयेत्॥ २९

उसे अखण्ड रूपमें बनाना चाहिये, खण्डितरूपमें नहीं। खण्डित लिंगका निर्माण करनेवाला पूजाका फल नहीं प्राप्त करता है। मणिलिंग, स्वर्णलिंग, पारदलिंग, स्फटिकलिंग, पुष्परागलिंग और पार्थिवलिंगको अखण्ड ही बनाना चाहिये॥ २८-२९॥

अखण्डं तु चरं लिङ्गं द्विखण्डमचरं स्मृतम्।
खण्डाखण्डविचारोऽयं सचराचरयोः स्मृतः॥ ३०

वेदिका तु महाविद्या लिङ्गं देवो महेश्वरः।
अतो हि स्थावरे लिङ्गे स्मृता श्रेष्ठा द्विखण्डता॥ ३१

अखण्ड लिंग चरलिंग होता है और दो खण्डवाला अचरलिंग कहा गया है। इस प्रकार चर और अचर लिंगका यह खण्ड-अखण्ड विधान कहा गया है। स्थावरलिंगमें वेदिका भगवती महाविद्याका रूप है और लिंग भगवान् महेश्वरका स्वरूप है। इसलिये स्थावर (अचर)-लिंगोंमें वेदिकायुक्त द्विखण्ड लिंग ही श्रेष्ठ माना गया है॥ ३०-३१॥

द्विखण्डं स्थावरं लिङ्गं कर्तव्यं हि विधानतः।
अखण्डं जङ्गमं प्रोक्तं शैवसिद्धान्तवेदिभिः॥ ३२

द्विखण्डं तु चरं लिङ्गं कुर्वन्त्यज्ञानमोहिताः।
नैव सिद्धान्तवेत्तारो मुनयः शास्त्रकोविदाः॥ ३३

अखण्डं स्थावरं लिङ्गं द्विखण्डं चरमेव च।
ये कुर्वन्ति नरा मूढा न पूजाफलभागिनः॥ ३४

द्विखण्ड (वेदिकायुक्त) स्थावर लिंगका विधानपूर्वक निर्माण करना चाहिये। शिवसिद्धान्तके जाननेवालोंने अखण्ड लिंगको जंगम (चर)-लिंग माना है। अज्ञानतावश ही कुछ लोग चरलिंगको दो खण्डोंमें (वेदिका और लिंग) बना लेते हैं, शास्त्रोंको जाननेवाले सिद्धान्तमर्मज्ञ मुनिजन ऐसा नहीं करते। जो मूढ़जन अचरलिंगको अखण्ड तथा चरलिंगको द्विखण्ड रूपमें बनाते हैं, उन्हें शिवपूजाका फल नहीं प्राप्त होता॥ ३२—३४॥

तस्माच्छास्त्रोक्तविधिना अखण्डं चरसंज्ञकम्।
द्विखण्डं स्थावरं लिङ्गं कर्तव्यं परया मुदा॥ ३५

अखण्डे तु चरे पूजा सम्पूर्णफलदायिनी।
द्विखण्डे तु चरे पूजा महाहानिप्रदा स्मृता॥ ३६

अखण्डे स्थावरे पूजा न कामफलदायिनी।
प्रत्यवायकरी नित्यमित्युक्तं शास्त्रवेदिभिः॥ ३७

इसलिये अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक शास्त्रोक्तविधिसे चरलिंगको अखण्ड तथा अचरलिंगको द्विखण्ड बनाना चाहिये। अखण्ड चरलिंगमें की गयी पूजासे सम्पूर्ण फलकी प्राप्ति होती है। द्विखण्ड चरलिंगकी पूजा महान् अनिष्टकर कही गयी है। उसी प्रकार अखण्ड अचरलिंगकी पूजासे कामना सिद्ध नहीं होती; उससे तो अनिष्ट प्राप्त होता है—ऐसा शास्त्रज्ञ विद्वानोंने कहा है॥ ३५—३७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे पार्थिवशिवलिङ्गपूजनमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें पार्थिव शिवलिंगके पूजनका माहात्म्यवर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

अथ विंशोऽध्यायः

पार्थिव शिवलिंगके निर्माणकी रीति तथा वेद-मन्त्रोंद्वारा उसके पूजनकी विस्तृत एवं संक्षिप्त विधिका वर्णन

सूत उवाच

अथ वैदिकभक्तानां पार्थिवार्चा निगद्यते।
वैदिकेनैव मार्गेण भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी॥ १

सूत्रोक्तविधिना स्नात्वा सन्ध्यां कृत्वा यथाविधि।
ब्रह्मयज्ञं विधायादौ ततस्तर्पणमाचरेत्॥ २

नैत्यिकं सकलं कामं विधायानन्तरं पुमान्।
शिवस्मरणपूर्वं हि भस्मरुद्राक्षधारकः॥ ३

वेदोक्तविधिना सम्यक् सम्पूर्णफलसिद्धये।
पूजयेत्परया भक्त्या पार्थिवं लिङ्गमुत्तमम्॥ ४

सूतजी बोले—हे महर्षियो! अब मैं वैदिक कर्मके प्रति श्रद्धा-भक्ति रखनेवाले लोगोंके लिये वेदोक्त मार्गसे ही पार्थिव-पूजाकी पद्धतिका वर्णन करता हूँ। यह पूजा भोग और मोक्ष दोनोंको देनेवाली है। आह्निकसूत्रोंमें बतायी हुई विधिके अनुसार स्नान और सन्ध्योपासना करके पहले ब्रह्मयज्ञ करे। तत्पश्चात् देवताओं, ऋषियों, सनकादि मनुष्यों और पितरोंका तर्पण करे। मनुष्यको चाहिये कि अपनी रुचिके अनुसार सम्पूर्ण नित्यकर्मको पूर्ण करके शिवस्मरणपूर्वक भस्म तथा रुद्राक्ष धारण करे। तत्पश्चात् सम्पूर्ण मनोवांछित फलकी सिद्धिके लिये ऊँची भक्तिभावनाके साथ उत्तम पार्थिव लिंगकी वेदोक्त विधिसे भलीभाँति पूजा करे॥ १—४॥

नदीतीरे तडागे च पर्वते काननेऽपि च।
शिवालये शुचौ देशे पार्थिवार्चा विधीयते॥ ५

शुद्धप्रदेशसम्भूतां मृदमाहृत्य यत्नतः।
शिवलिङ्गं प्रकल्पेत सावधानतया द्विजाः॥ ६

विप्रे गौरा स्मृता शोणा बाहुजे पीतवर्णका।
वैश्ये कृष्णा पादजाते ह्यथवा यत्र या भवेत्॥ ७

नदी या तालाबके किनारे, पर्वतपर, वनमें, शिवालयमें अथवा और किसी पवित्र स्थानमें पार्थिव-पूजा करनेका विधान है। हे ब्राह्मणो! शुद्ध स्थानसे निकाली हुई मिट्टीको यत्नपूर्वक लाकर बड़ी सावधानीके साथ शिवलिंगका निर्माण करे। ब्राह्मणके लिये श्वेत, क्षत्रियके लिये लाल, वैश्यके लिये पीली और शूद्रके लिये काली मिट्टीसे शिवलिंग बनानेका विधान है अथवा जहाँ जो मिट्टी मिल जाय, उसीसे शिवलिंग बनाये॥ ५—७॥

सङ्गृह्य मृत्तिकां लिङ्गनिर्माणार्थं प्रयत्नतः।
अतीव शुभदेशे च स्थापयेत्तां मृदं शुभाम्॥ ८

संशोध्य च जलेनापि पिण्डीकृत्य शनैः शनैः।
विधीयेत शुभं लिङ्गं पार्थिवं वेदमार्गतः॥ ९

ततः सम्पूजयेद्भक्त्या भुक्तिमुक्तिफलाप्तये।
तत्प्रकारमहं वच्मि शृणुध्वं सविधानतः॥ १०

शिवलिंग बनानेके लिये प्रयत्नपूर्वक मिट्टीका संग्रह करके उस शुभ मृत्तिकाको अत्यन्त शुद्ध स्थानमें रखे। फिर उसकी शुद्धि करके जलसे सानकर पिण्ड बना ले और वेदोक्त मार्गसे धीरे-धीरे सुन्दर पार्थिव लिंगकी रचना करे। तत्पश्चात् भोग और मोक्षरूप फलकी प्राप्तिके लिये भक्तिपूर्वक उसका पूजन करे। उस पार्थिवलिंगके पूजनकी जो विधि है, उसे मैं विधानपूर्वक बता रहा हूँ, आप लोग सुनिये॥ ८—१०॥

नमः शिवाय मन्त्रेणार्चनद्रव्यं च प्रोक्षयेत्।
भूरसीति च मन्त्रेण क्षेत्रसिद्धिं प्रकारयेत्॥ ११

'**ॐ नमः शिवाय**' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए समस्त पूजन-सामग्रीका प्रोक्षण करे—उसपर जल छिड़के। इसके बाद '**भूरसि**'[1] इत्यादि मन्त्रसे क्षेत्रसिद्धि करे॥ ११॥

आपोऽस्मानिति मन्त्रेण जलसंस्कारमाचरेत्।
नमस्ते रुद्रमन्त्रेण स्फाटिकाबन्धमुच्यते॥ १२
शम्भवायेति मन्त्रेण क्षेत्रशुद्धिं प्रकारयेत्।
कुर्यात्पञ्चामृतस्यापि नमःपूर्वेण प्रोक्षणम्॥ १३
नीलग्रीवाय मन्त्रेण नमःपूर्वेण भक्तिमान्।
चरेच्छङ्करलिङ्गस्य प्रतिष्ठापनमुत्तमम्॥ १४
भक्तितस्तत एतत्ते रुद्रावेति च मन्त्रतः।
आसनं रमणीयं वै दद्याद्वैदिकमार्गकृत्॥ १५
मानो महान्तमिति च मन्त्रेणावाहनं चरेत्।
या ते रुद्रेण मन्त्रेण सञ्चरेदुपवेशनम्॥ १६
मन्त्रेण यामिषुमिति न्यासं कुर्याच्छिवस्य च।
अध्यवोचदिति प्रेम्णाधिवासं मनुनाचरेत्॥ १७
मनुनासौ जीव इति देवतान्यासमाचरेत्।
असौ योऽवसर्पतीति चाचरेदुपसर्पणम्॥ १८

फिर '**आपो अस्मान्०**'[2] इस मन्त्रसे जलका संस्कार करे। इसके बाद '**नमस्ते रुद्र०**'[3] इस मन्त्रसे स्फाटिकाबन्ध (स्फटिक शिलाका घेरा) बनानेकी बात कही गयी है। '**नमः शम्भवाय०**'[4] इस मन्त्रसे क्षेत्रशुद्धि और पंचामृतका प्रोक्षण करे। तत्पश्चात् शिवभक्त पुरुष '**नमः**' पूर्वक '**नीलग्रीवाय०**'[5] मन्त्रसे शिवलिंगकी उत्तम प्रतिष्ठा करे। इसके बाद वैदिक रीतिसे पूजन-कर्म करनेवाला उपासक भक्तिपूर्वक '**एतत्ते रुद्राव०**'[6] इस मन्त्रसे रमणीय आसन दे। '**मा नो महान्तम्०**'[7] इस मन्त्रसे आवाहन करे, '**या ते रुद्र०**'[8] इस मन्त्रसे भगवान् शिवको आसनपर समासीन करे। '**यामिषुं०**'[9] इस मन्त्रसे शिवके अंगोंमें न्यास करे। '**अध्यवोचत्०**'[10] इस मन्त्रसे प्रेमपूर्वक अधिवासन करे। '**असौ यस्ताम्रो०**'[11] इस मन्त्रसे शिवलिंगमें इष्टदेवता शिवका न्यास करे। '**असौ योऽवसर्पति०**'[12] इस मन्त्रसे उपसर्पण (देवताके

---

१. भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री। पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳ ह पृथिवीं मा हिꣳ सीः।

२. आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु। विश्वँ हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि। दीक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवाꣳ शग्मां परि दधे भद्रं वर्णं पुष्यन्। (यजु० ४।२)

३. नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः। (यजु० १६।१)

४. नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च। (यजु० १६।४१)

५. नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे। अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः। (यजु० १६।८)

६. एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि। अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा अहिꣳसन्नः शिवोऽतीहि। (यजु० ३।६१)

७. मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षितम्। मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः। (यजु० १६।१५)

८. या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी। तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि। (यजु० १६।२)

९. यामिषुं गिरिशन्त हस्ते विभर्ष्यस्तवे। शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिꣳसीः पुरुषं जगत्। (यजु० १६।३)

१०. अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्। अहीँश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परा सुव। (यजु० १६।५)

११. असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः। ये चैनꣳ रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषाꣳहेड ईमहे। (यजु० १६।६)

१२. असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः। उतैनं गोपा अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्यः स दृष्टो मृडयाति नः। (यजु० १६।७)

**नमोऽस्तु नीलग्रीवायेति पाद्यं मनुनाहरेत्।
अर्घ्यं च रुद्रगायत्र्याचमनं त्र्यम्बकेण च॥ १९**

**पयः पृथिव्यां मन्त्रेण पयसा स्नानमाचरेत्।
दधिक्राव्णोति मन्त्रेण दधिस्नानं च कारयेत्॥ २०**

**घृतस्नानं खलु घृतं घृतयावेति मन्त्रतः।
मधुव्वाता मधुनक्तं मधुमान्न इति त्र्यृचा॥ २१**

**मधुखण्डस्नपनं प्रोक्तमिति पञ्चामृतं स्मृतम्।
अथवा पाद्यमन्त्रेण स्नानं पञ्चामृतेन च॥ २२**

**मानस्तोके इति प्रेम्णा मन्त्रेण कटिबन्धनम्।
नमो धृष्णवे इति वा उत्तरीयं च धारयेत्॥ २३**

**या ते हेतिरिति प्रेम्णा ऋक्चतुष्केण वैदिकः।
शिवाय विधिना भक्तश्चरेद्वस्त्रसमर्पणम्॥ २४**

**नमः श्वभ्य इति प्रेम्णा गन्धं दद्यादृचा सुधीः।
नमस्तक्षभ्य इति चाक्षतान्मन्त्रेण चार्पयेत्॥ २५**

समीप गमन) करे। इसके बाद **'नमोऽस्तु नीलग्रीवाय०'**[१] इस मन्त्रसे इष्टदेवको पाद्य समर्पित करे। **'रुद्रगायत्री'**[२] से अर्घ्य दे। **'त्र्यम्बकं०'**[३] मन्त्रसे आचमन कराये। **'पयः पृथिव्याम्०'**[४] इस मन्त्रसे दुग्धस्नान कराये। **'दधिक्राव्णो०'**[५] इस मन्त्रसे दधिस्नान कराये। **'घृतं घृतपावा०'**[६] इस मन्त्रसे घृतस्नान कराये। **'मधु वाता०'**[७], **'मधु नक्तं०'**[८], **'मधुमान्नो'**[९]—इन तीन ऋचाओंसे मधुस्नान और शर्करा-स्नान कराये। इन दुग्ध आदि पाँच वस्तुओंको पंचामृत कहते हैं अथवा पाद्यसमर्पणके लिये कहे गये **'नमोऽस्तु नीलग्रीवाय०'** इत्यादि मन्त्रद्वारा पंचामृतसे स्नान कराये। तदनन्तर **'मा नस्तोके०'**[१०] इस मन्त्रसे प्रेमपूर्वक भगवान् शिवको कटिबन्ध (करधनी) अर्पित करे। **'नमो धृष्णवे०'**[११] इस मन्त्रका उच्चारण करके आराध्य देवताको उत्तरीय धारण कराये। **'या ते हेतिः०'**[१२] इत्यादि चार ऋचाओंको पढ़कर वेदज्ञ भक्त प्रेमसे विधिपूर्वक भगवान् शिवके लिये वस्त्र [एवं यज्ञोपवीत] समर्पित करे। इसके बाद **'नमः श्वभ्य०'**[१३] इत्यादि मन्त्रको

---

१. यह मन्त्र पहले दिया जा चुका है।

२. तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।

३. त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः। (यजु० ३।६०)

४. पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः। पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम्। (यजु० १८।३६)

५. दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः। सुरभि नो मुखा करत्प्रण आयूꣳषि तारिषत्। (यजु० २३।३२)

६. घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा। दिशः प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा। (यजु० ६।१९)

७. मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः। (यजु० १३।२७)

८. मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳ रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता। (यजु० १३।२८)

९. मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः। (यजु० १३।२९)

१०. मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे। (यजु० १६।१६)

११. नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च। (यजु० १६।३६)

१२. या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः। तयास्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परि भुज (११)। परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः। अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्नि धेहि तम् (१२)। अवतत्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे। निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव (१३)। नमस्त आयुधायानातताय धृष्णवे। उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने (१४)। (यजु० १६)

१३. नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च। (यजु० १६।२८)

नमः पार्याय इति वा पुष्पं मन्त्रेण चार्पयेत्।
नमः पर्णाय इति वा बिल्वपत्रसमर्पणम्॥ २६

नमः कपर्दिने चेति धूपं दद्याद्यथाविधि।
दीपं दद्याद्यथोक्तं तु नम आशव इत्यृचा॥ २७

नमो ज्येष्ठाय मन्त्रेण दद्यान्नैवेद्यमुत्तमम्।
मनुना त्र्यम्बकमिति पुनराचमनं स्मृतम्॥ २८

इमा रुद्रायेति ऋचा कुर्यात्फलसमर्पणम्।
नमो व्रज्यायेति ऋचा सकलं शम्भवेऽर्पयेत्॥ २९

मानो महान्तमिति च मानस्तोके इति ततः।
मन्त्रद्वयेनैकादशाक्षतै रुद्रान्प्रपूजयेत्॥ ३०

हिरण्यगर्भ इति त्र्यृचा दक्षिणां हि समर्पयेत्।
देवस्यत्वेति मन्त्रेण ह्यभिषेकं चरेद्बुधः॥ ३१

पढ़कर शुद्ध बुद्धिवाला भक्त पुरुष भगवान्‌को प्रेमपूर्वक गन्ध (सुगन्धित चन्दन एवं रोली) चढ़ाये। **'नमस्तक्षभ्यो०'**[१] इस मन्त्रसे अक्षत अर्पित करे। **'नमः पार्याय०'**[२] इस मन्त्रसे फूल चढ़ाये। **'नमः पर्णाय०'**[३] इस मन्त्रसे बिल्वपत्र समर्पण करे। **'नमः कपर्दिने च०'**[४] इत्यादि मन्त्रसे विधिपूर्वक धूप दे। **'नम आशवे०'**[५] इस ऋचासे शास्त्रोक्त विधिके अनुसार दीप निवेदित करे। तत्पश्चात् [हाथ धोकर] **'नमो ज्येष्ठाय०'**[६] इस मन्त्रसे उत्तम नैवेद्य अर्पित करे। फिर पूर्वोक्त त्र्यम्बक मन्त्रसे आचमन कराये—ऐसा कहा गया है। **'इमा रुद्राय०'**[७] इस ऋचासे फल समर्पण करे। फिर **'नमो व्रज्याय०'**[८] इस मन्त्रसे भगवान् शिवको अपना सब कुछ समर्पित कर दे। तदनन्तर **'मा नो महान्तम्०'** तथा **'मा नस्तोके०'**—इन पूर्वोक्त दो मन्त्रोंद्वारा केवल अक्षतोंसे ग्यारह रुद्रोंका पूजन करे। फिर **'हिरण्यगर्भः०'**[९] इत्यादि मन्त्रसे जो तीन ऋचाओंके रूपमें पठित है, दक्षिणा चढ़ाये। **'देवस्य त्वा०'**[१०] इस मन्त्रसे विद्वान् पुरुष आराध्यदेवका अभिषेक करे। दीपके लिये

---

१. नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः। (यजु० १६। २७)

२. नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च। (यजु० १६। ४२)

३. नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नम उद्‌गुरमाणाय चाभिघ्नते च नम आखिदते च प्रखिदते च नम इषुकृद्‌भ्यो धनुष्कृद्‌भ्यश्च वो नमो नमो वः किरिकेभ्यो देवानाꣳ हृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षिणत्केभ्यो नम आनिर्हतेभ्यः। (यजु० १६। ४६)

४. नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च। (यजु० १६। २९)

५. नम आशवे चाजिराय च नमः शीघ्र्याय च शीभ्याय च नम ऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च। (यजु० १६। ३१)

६. नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च। (यजु० १६। ३२)

७. इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः। यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्। (यजु० १६। ४८)

८. नमो व्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च निवेष्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च। (यजु० १६। ४४)

९. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम। (यजु० १३। ४)

१०. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभि षिञ्चामि। (यजु० २०। ३)

दीपमन्त्रेण वा शम्भोर्नीराजनविधिं चरेत्।
पुष्पाञ्जलिं चरेद्भक्त्या इमा रुद्राय च त्र्यृचा॥ ३२

मानो महान्तमिति च चरेत्प्राज्ञः प्रदक्षिणाम्।
मानस्तोकेति मन्त्रेण साष्टाङ्गं प्रणमेत्सुधीः॥ ३३

एष ते इति मन्त्रेण शिवमुद्रां प्रदर्शयेत्।
यतो यत इत्यभयां ज्ञानाख्यां त्र्यम्बकेण च॥ ३४

नमः सेनेति मन्त्रेण महामुद्रां प्रदर्शयेत्।
दर्शयेद्धेनुमुद्रां च नमो गोभ्य ऋचानया॥ ३५

पञ्च मुद्राः प्रदर्श्याथ शिवमन्त्रजपं चरेत्।
शतरुद्रियमन्त्रेण जपेद् वेदविचक्षणः॥ ३६

ततः पञ्चाङ्गपाठं च कुयाद् वेदविचक्षणः।
देवागात्विति मन्त्रेण कुर्याच्छम्भोर्विसर्जनम्॥ ३७

इत्युक्तः शिवपूजाया व्यासतो वैदिको विधिः।

समासतश्च शृणुत वैदिकं विधिमुत्तमम्॥ ३८

ऋचा सद्योजातमिति मृदाहरणमाचरेत्।
वामदेवाय इति च जलप्रक्षेपमाचरेत्॥ ३९

अघोरेण च मन्त्रेण लिङ्गनिर्माणमाचरेत्।
तत्पुरुषाय मन्त्रेणाह्वानं कुर्याद्यथाविधि॥ ४०

बताये हुए '**नम आशवे०**' इत्यादि मन्त्रसे भगवान् शिवकी नीराजना (आरती) करे। तत्पश्चात् '**इमा रुद्राय०**' इत्यादि तीन ऋचाओंसे भक्तिपूर्वक रुद्रदेवको पुष्पांजलि अर्पित करे। '**मा नो महान्तम्०**' इस मन्त्रसे विज्ञ उपासक पूजनीय देवताकी परिक्रमा करे। फिर उत्तम बुद्धिवाला उपासक '**मा नस्तोके०**' इस मन्त्रसे भगवान्‌को साष्टांग प्रणाम करे। '**एष ते०**'[1] इस मन्त्रसे शिवमुद्राका प्रदर्शन करे। '**यतो यतः०**'[2] इस मन्त्रसे अभय नामक मुद्राका, '**त्र्यम्बकं**' मन्त्रसे ज्ञान नामक मुद्राका तथा '**नमः सेना०**'[3] इत्यादि मन्त्रसे महामुद्राका प्रदर्शन करे। '**नमो गोभ्य०**'[4] इस ऋचाद्वारा धेनुमुद्रा दिखाये। इस तरह पाँच मुद्राओंका प्रदर्शन करके शिवसम्बन्धी मन्त्रोंका जप करे अथवा वेदज्ञ पुरुष '**शतरुद्रिय**'[5] मन्त्रकी आवृत्ति करे। तत्पश्चात् वेदज्ञ पुरुष पंचांग पाठ करे। तदनन्तर '**देवा गातु०**'[6] इत्यादि मन्त्रसे भगवान् शंकरका विसर्जन करे। इस प्रकार शिवपूजाकी वैदिक विधिका विस्तारसे प्रतिपादन किया गया॥ १२—३७½॥

[हे महर्षियो!] अब संक्षेपमें पार्थिवपूजनकी वैदिक विधिको सुनें। '**सद्योजातम्०**'[7] इस ऋचासे पार्थिवलिंग बनानेके लिये मिट्टी ले आये। '**वामदेवाय०**'[8] मन्त्र पढ़कर उसमें जल डाले। [जब मिट्टी सनकर तैयार हो जाय, तब] '**अघोर०**'[9] मन्त्रसे लिंग निर्माण करे। फिर '**तत्पुरुषाय०**'[10] इस मन्त्रसे उसमें भगवान् शिवका विधिवत् आवाहन

१. एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा। एष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः॥ (यजु० ३।५७)

२. यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः॥ (यजु० ३६।२२)

३. नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो रथिभ्यो अरथेभ्यश्च वो नमो नमः। क्षतृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्यो अर्भकेभ्यश्च वो नमः॥ (यजु० १६।२६)

४. नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च। नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः॥ (गोमतीविद्या)

५. यजुर्वेदका वह अंश, जिसमें रुद्रके सौ या उससे अधिक नाम आये हैं और उनके द्वारा रुद्रदेवकी स्तुति की गयी है। (देखिये यजु० अध्याय १६)

६. देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित। मनसस्पत इमं देव यज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः॥ (यजु० ८।२१)

७. सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः॥

८. ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः।

९. ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः।

१०. ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।

संयोजयेद्वेदिकायामीशानमनुना हरम्।
अन्यत्सर्वं विधानं च कुर्यात्संक्षेपतः सुधीः॥ ४१

पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण गुरुदत्तेन वा तथा।
कुर्यात्पूजां षोडशोपचारेण विधिवत्सुधीः॥ ४२

भवाय भवनाशाय महादेवाय धीमहि।
उग्राय उग्रनाशाय शर्वाय शशिमौलिने॥ ४३

अनेन मनुना वापि पूजयेच्छङ्करं सुधीः।
सुभक्त्या च भ्रमं त्यक्त्वा भक्त्यैव फलदः शिवः॥ ४४

करे। तदनन्तर '**ईशान०**'* मन्त्रसे भगवान् शिवको वेदीपर स्थापित करे। इनके सिवाय अन्य सब विधानोंको भी शुद्ध बुद्धिवाला उपासक संक्षेपसे ही सम्पन्न करे। इसके बाद विद्वान् पुरुष पंचाक्षर मन्त्रसे अथवा गुरुके द्वारा दिये हुए अन्य किसी शिवसम्बन्धी मन्त्रसे सोलह उपचारोंद्वारा विधिवत् पूजन करे अथवा—'**भवाय भवनाशाय महादेवाय धीमहि। उग्राय उग्रनाशाय शर्वाय शशिमौलिने॥**'

—इस मन्त्रद्वारा विद्वान् उपासक भगवान् शंकरकी पूजा करे। वह भ्रम छोड़कर उत्तम भक्तिसे शिवकी आराधना करे; क्योंकि भगवान् शिव भक्तिसे ही [मनोवांछित] फल देते हैं॥ ३८—४४॥

इत्यपि प्रोक्तमादृत्य वैदिकं क्रमपूजनम्।
प्रोच्यतेऽन्यविधिः सम्यक्साधारणतया द्विजाः॥ ४५

पूजा पार्थिवलिङ्गस्य संप्रोक्ता शिवनामभिः।
तां शृणुध्वं मुनिश्रेष्ठाः सर्वकामप्रदायिनीम्॥ ४६

हरो महेश्वरः शम्भुः शूलपाणिः पिनाकधृक्।
शिवः पशुपतिश्चैव महादेव इति क्रमात्॥ ४७

मृदाहरणसंघट्टप्रतिष्ठाह्वानमेव च।
स्नपनं पूजनं चैव क्षमस्वेति विसर्जनम्॥ ४८

ॐकारादिचतुर्थ्यन्तैर्नमोऽन्तैर्नामभिः क्रमात्।
कर्तव्याश्च क्रियाः सर्वा भक्त्या परमया मुदा॥ ४९

हे ब्राह्मणो! यह जो वैदिक विधिसे पूजनका क्रम बताया गया है, इसका पूर्णरूपसे आदर करता हुआ मैं पूजाकी एक दूसरी विधि भी बता रहा हूँ, जो उत्तम होनेके साथ ही सर्वसाधारणके लिये उपयोगी है। हे मुनिवरो! पार्थिवलिंगकी पूजा भगवान् शिवके नामोंसे बतायी गयी है। वह पूजा सम्पूर्ण अभीष्टोंको देनेवाली है, मैं उसे बताता हूँ, सुनो! हर, महेश्वर, शम्भु, शूलपाणि, पिनाकधृक्, शिव, पशुपति और महादेव—[ये क्रमशः शिवके आठ नाम कहे गये हैं।] इनमेंसे प्रथम नामके द्वारा अर्थात् '**ॐ हराय नमः**' का उच्चारण करके पार्थिवलिंग बनानेके लिये मिट्टी लाये। दूसरे नाम अर्थात् '**ॐ महेश्वराय नमः**' का उच्चारण करके लिंगनिर्माण करे। फिर '**ॐ शम्भवे नमः**' बोलकर उस पार्थिवलिंगकी प्रतिष्ठा करे। तत्पश्चात् '**ॐ शूलपाणये नमः**' कहकर उस पार्थिवलिंगमें भगवान् शिवका आवाहन करे। '**ॐ पिनाकधृषे नमः**' कहकर उस शिवलिंगको नहलाये। '**ॐ शिवाय नमः**' बोलकर उसकी पूजा करे। फिर '**ॐ पशुपतये नमः**' कहकर क्षमा-प्रार्थना करे और अन्तमें '**ॐ महादेवाय नमः**' कहकर आराध्यदेवका विसर्जन कर दे। इस प्रकार प्रत्येक नामके आदिमें 'ॐ' कार और अन्तमें चतुर्थी विभक्तिके साथ '**नमः**' पद लगाकर बड़े आनन्द और भक्तिभावसे [पूजनसम्बन्धी] सारे कार्य करने चाहिये॥ ४५—४९॥

* ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदा शिवोम्॥

कृत्वा न्यासविधिं सम्यक् षडङ्गं करयोस्तथा।
षडक्षरेण मन्त्रेण ततो ध्यानं समाचरेत्॥ ५०

कैलासपीठासनमध्यसंस्थं
भक्तैः सनन्दादिभिरर्च्यमानम्।
भक्तार्तिदावानलमप्रमेयं
ध्यायेदुमालिङ्गितविश्वभूषणम् ॥ ५१

ध्यायेन्नित्यं महेशं
रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं
परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणै-
र्व्याघ्रकृत्तिं वसानम्
विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं
पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥ ५२

इति ध्यात्वा च सम्पूज्य पार्थिवं लिङ्गमुत्तमम्।
जपेत्पञ्चाक्षरं मन्त्रं गुरुदत्तं यथाविधि॥ ५३

स्तुतिभिश्चैव देवेशं स्तुवीत प्रणमन्सुधीः।
नानाभिधाभिर्विप्रेन्द्राः पठेद् वै शतरुद्रियम्॥ ५४

ततः साक्षतपुष्पाणि गृहीत्वाञ्जलिना मुदा।
प्रार्थयेच्छङ्करं भक्त्या मन्त्रैरेभिः सुभक्तितः॥ ५५

तावकस्त्वद्गुणप्राणस्त्वच्चित्तोऽहं सदा मृड।
कृपानिधे इति ज्ञात्वा भूतनाथ प्रसीद मे॥ ५६

षडक्षरमन्त्रसे अंगन्यास और करन्यासकी विधि भलीभाँति सम्पन्न करके नीचे लिखे अनुसार ध्यान करे—

कैलास पर्वतपर एक सुन्दर सिंहासनके मध्यभागमें विराजमान, सनन्द आदि भक्तोंसे पूजित, भक्तोंके दुःखरूप दावानलको नष्ट कर देनेवाले, अप्रमेय, उमाके साथ समासीन तथा विश्वके भूषणस्वरूप भगवान् शिवका चिन्तन करना चाहिये। भगवान् महेश्वरका प्रतिदिन इस प्रकार ध्यान करे—उनकी अंगकान्ति चाँदीके पर्वतकी भाँति गौर है, वे अपने मस्तकपर मनोहर चन्द्रमाका मुकुट धारण करते हैं, रत्नोंके आभूषण धारण करनेसे उनका श्रीअंग और भी उद्भासित हो उठा है, उनके चार हाथोंमें क्रमशः परशु, मृगमुद्रा, वर एवं अभयमुद्रा सुशोभित हैं, वे सदा प्रसन्न रहते हैं। कमलके आसनपर बैठे हुए हैं, देवतालोग चारों ओर खड़े होकर उनकी स्तुति कर रहे हैं, उन्होंने वस्त्रके रूपमें व्याघ्रचर्म धारण कर रखा है, वे इस विश्वके आदि हैं, बीज (कारण)-रूप हैं, सबका समस्त भय हर लेनेवाले हैं, उनके पाँच मुख हैं और प्रत्येक मुखमण्डलमें तीन-तीन नेत्र हैं॥ ५०—५२॥

इस प्रकार ध्यान करके तथा उत्तम पार्थिव-लिंगका पूजन करके गुरुके दिये हुए पंचाक्षरमन्त्रका विधिपूर्वक जप करे। हे विप्रवरो! विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह देवेश्वर शिवको प्रणाम करते हुए नाना प्रकारकी स्तुतियोंद्वारा उनका स्तवन करे तथा शतरुद्रिय (यजु० १६वें अध्यायके मन्त्रों)-का पाठ करे। तत्पश्चात् अंजलिमें अक्षत और फूल लेकर उत्तम भक्तिभावसे निम्नांकित मन्त्रोंको पढ़ते हुए प्रेम और प्रसन्नताके साथ भगवान् शंकरसे इस प्रकार प्रार्थना करे— ॥ ५३—५५॥

'सबको सुख देनेवाले हे कृपानिधान! हे भूतनाथ! हे शिव! मैं आपका हूँ, आपके गुणोंमें ही मेरे प्राण बसते हैं अथवा आपके गुण ही मेरे प्राण—मेरे जीवनसर्वस्व हैं, मेरा चित्त सदा आपके ही चिन्तनमें लगा हुआ है—यह जानकर मुझपर प्रसन्न होइये,

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया।
कृतं तदस्तु सफलं कृपया तव शङ्कर॥ ५७

अहं पापी महानद्य पावनश्च भवान्महान्।
इति विज्ञाय गौरीश यदिच्छसि तथा कुरु॥ ५८

वेदैः पुराणैः सिद्धान्तैर्ऋषिभिर्विविधैरपि।
न ज्ञातोऽसि महादेव कुतोऽहं त्वां सदाशिव॥ ५९

यथा तथा त्वदीयोऽस्मि सर्वभावैर्महेश्वर।
रक्षणीयस्त्वयाहं वै प्रसीद परमेश्वर॥ ६०

इत्येवं चाक्षतान्पुष्पाण्यारोप्य च शिवोपरि।
प्रणमेद्भक्तितः शम्भुं साष्टाङ्गं विधिवन्मुने॥ ६१

ततः प्रदक्षिणां कुर्याद्यथोक्तविधिना सुधीः।
पुनः स्तुवीत देवेशं स्तुतिभिः श्रद्धयान्वितः॥ ६२

ततो गलरवं कृत्वा प्रणमेच्छुचिनम्रधीः।
कुर्याद्विज्ञप्तिमादृत्य विसर्जनमथाचरेत्॥ ६३

कृपा कीजिये। हे शंकर! मैंने अनजानमें अथवा जानबूझकर यदि कभी आपका जप और पूजन आदि किया हो, तो आपकी कृपासे वह सफल हो जाय। हे गौरीनाथ! मैं इस समय महान् पापी हूँ और आप सदासे ही परम महान् पतितपावन हैं—इस बातका विचार करके आप जैसा चाहें, वैसा करें। हे महादेव! हे सदाशिव! वेदों, पुराणों, नाना प्रकारके शास्त्रीय सिद्धान्तों और विभिन्न महर्षियोंने भी अबतक आपको पूर्णरूपसे नहीं जाना है, तो फिर मैं कैसे जान सकता हूँ। हे महेश्वर! मैं जैसा हूँ, वैसा ही, उसी रूपमें सम्पूर्ण भावसे आपका हूँ, आपके आश्रित हूँ, इसलिये आपसे रक्षा पानेके योग्य हूँ। हे परमेश्वर! आप मुझपर प्रसन्न होइये।' हे मुने! इस प्रकार प्रार्थना करके हाथमें लिये हुए अक्षत और पुष्पको भगवान् शिवके ऊपर चढ़ाकर उन शम्भुदेवको भक्तिभावसे विधिपूर्वक साष्टांग प्रणाम करे। तदनन्तर शुद्ध बुद्धिवाला उपासक शास्त्रोक्त विधिसे इष्टदेवकी परिक्रमा करे। फिर श्रद्धापूर्वक स्तुतियोंद्वारा देवेश्वर शिवकी स्तुति करे। इसके बाद गला बजाकर (गलेसे अव्यक्त शब्दका उच्चारण करके) पवित्र एवं विनीत चित्तवाला साधक भगवान्‌को प्रणाम करे। फिर आदरपूर्वक विज्ञप्ति करे और उसके बाद विसर्जन करे॥ ५६—६३॥

इत्युक्ता मुनिशार्दूलाः पार्थिवार्चा विधानतः।
भुक्तिदा मुक्तिदा चैव शिवभक्तिविवर्धिनी॥ ६४

इत्यध्यायं सुचित्तेन यः पठेच्छृणुयादपि।
सर्वपापविशुद्धात्मा सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥ ६५

आयुरारोग्यदं चैव यशस्यं स्वर्ग्यमेव च।
पुत्रपौत्रादिसुखदमाख्यानमिदमुत्तमम् ॥ ६६

हे मुनिवरो! इस प्रकार विधिपूर्वक पार्थिवपूजा बतायी गयी, जो भोग और मोक्ष देनेवाली तथा भगवान् शिवके प्रति भक्तिभावको बढ़ानेवाली है। जो मनुष्य इस अध्यायका शुद्धचित्तसे पाठ अथवा श्रवण करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर सभी कामनाओंको प्राप्त करता है। यह उत्तम कथा दीर्घायुष्य, आरोग्य, यश, स्वर्ग, पुत्र-पौत्र आदि सभी सुखोंको प्रदान करनेवाली है॥ ६४—६६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे पार्थिवशिवलिङ्गपूजनविधिवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें पार्थिव शिवलिंगके पूजनकी विधिका वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

अथैकविंशोऽध्यायः

कामनाभेदसे पार्थिवलिंगके पूजनका विधान

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते।
सम्यगुक्तं त्वया तात पार्थिवार्चाविधानकम्॥ १

कामनाभेदमाश्रित्य सङ्ख्यां ब्रूहि विधानतः।
शिवपार्थिवलिङ्गानां कृपया दीनवत्सल॥ २

ऋषिगण बोले—हे व्यासशिष्य सूतजी! हे महाभाग! आपको नमस्कार है। हे तात! आपने अच्छी प्रकारसे पार्थिवार्चनकी विधि बतायी। अब सकाम पूजनमें मनोवांछित पदार्थके अनुसार कितनी संख्यामें पार्थिव लिंगोंके पूजनकी विधि है, हे दीनवत्सल! इसे कृपापूर्वक बताइये॥ १-२॥

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे पार्थिवार्चाविधानकम्।
यस्यानुष्ठानमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः॥ ३

अकृत्वा पार्थिवं लिङ्गं योऽन्यदेवं प्रपूजयेत्।
वृथा भवति सा पूजा दमदानादिकं वृथा॥ ४

सूतजी बोले—हे ऋषियो! आप सब लोग पार्थिव-पूजनकी विधिका श्रवण करें, जिसका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। पार्थिवलिंगके पूजनको छोड़कर जो लोग अन्य देवोंके यजनमें लगे रहते हैं, उनकी वह पूजा, तप तथा दानादि व्यर्थ हो जाता है॥ ३-४॥

सङ्ख्या पार्थिवलिङ्गानां यथाकामं निगद्यते।
सङ्ख्या सद्यो मुनिश्रेष्ठ निश्चयेन फलप्रदा॥ ५

प्रथमावाहनं तत्र प्रतिष्ठा पूजनं पृथक्।
लिङ्गाकारं समं तत्र सर्वं ज्ञेयं पृथक्पृथक्॥ ६

अब मैं कामनाके अनुसार पार्थिवलिंगोंकी संख्या बताता हूँ, हे मुनिश्रेष्ठ! अधिक संख्यामें अर्चन तो निश्चय ही फलदायी होता है। प्रथम आवाहन, तब प्रतिष्ठा, तदनन्तर सभी लिंगोंका पूजन अलग-अलग करना चाहिये। लिंगोंका आकार तो एक समान ही रखना चाहिये॥ ५-६॥

विद्यार्थी पुरुषः प्रीत्या सहस्रमितपार्थिवम्।
पूजयेच्छिवलिङ्गं हि निश्चयात्तत्फलप्रदम्॥ ७

नरः पार्थिवलिङ्गानां धनार्थी च तदर्धकम्।
पुत्रार्थी सार्धसाहस्रं वस्त्रार्थी शतपञ्चकम्॥ ८

विद्याप्राप्तिकी कामनासे पुरुष भक्तिपूर्वक एक हजार पार्थिव शिवलिंगोंका पूजन करे। इससे निश्चय ही उस फलकी प्राप्ति हो जाती है। धन चाहनेवाले पुरुषको उसके आधे (पाँच सौ), पुत्र चाहनेवालेको डेढ़ हजार और वस्त्रोंकी आकांक्षावालेको पाँच सौ शिवलिंगोंका पूजन करना चाहिये॥ ७-८॥

मोक्षार्थी कोटिगुणितं भूकामश्च सहस्रकम्।
दयार्थी च त्रिसाहस्रं तीर्थार्थी द्विसहस्रकम्॥ ९

सुहृत्कामी त्रिसाहस्रं वश्यार्थी शतमष्टकम्।
मारणार्थी सप्तशतं मोहनार्थी शताष्टकम्॥ १०

उच्चाटनपरश्चैव सहस्रं च यथोक्ततः।
स्तम्भनार्थी सहस्रं तु द्वेषणार्थी तदर्धकम्॥ ११

निगडान्मुक्तिकामस्तु सहस्रं सार्धमुत्तमम्।
महाराजभये पञ्चशतं ज्ञेयं विचक्षणैः॥ १२

मोक्षकी कामनावाले व्यक्तिको एक करोड़, भूमिकी अभिलाषावालेको एक हजार, दयाप्राप्तिकी इच्छावालेको तीन हजार और तीर्थाटनकी इच्छावालेको दो हजार शिवलिंगोंकी पूजा करनी चाहिये। मित्रप्राप्तिकी इच्छावालेको तीन हजार तथा अभिचार कर्मोंमें पाँच सौसे लेकर एक हजारतक पार्थिव शिवलिंगोंके पूजनकी विधि है। (कारागार आदिके) बन्धनसे छुटकारेकी इच्छासे डेढ़ हजार तथा राजभयसे मुक्तिकी इच्छासे पाँच सौ शिवलिंगोंका पूजन बुद्धिमानोंको जानना चाहिये॥ ९—१२॥

चौरादिसङ्कटे ज्ञेयं पार्थिवानां शतद्वयम्।
डाकिन्यादिभये पञ्चशतमुक्तं च पार्थिवम्॥ १३

दारिद्र्ये पञ्चसाहस्रमयुतं सर्वकामदम्।
अथ नित्यविधिं वक्ष्ये शृणुध्वं मुनिसत्तमाः॥ १४

चोर आदिके संकटसे बचनेके लिये दो सौ और डाकिनी आदिके भयसे मुक्तिहेतु पाँच सौ पार्थिव शिवलिंगोंका पूजन बताया गया है। दरिद्रतासे छुटकारेके लिये पाँच हजार और सभी कामनाओंकी सिद्धिके लिये दस हजार पार्थिव शिवलिंगोंका पूजन करना चाहिये। हे मुनिश्रेष्ठो ! अब मैं नित्यपूजनविधि बताता हूँ, आप लोग सुनें॥ १३-१४॥

एकं पापहरं प्रोक्तं द्विलिङ्गं चार्थसिद्धिदम्।
त्रिलिङ्गं सर्वकामानां कारणं परमीरितम्॥ १५

उत्तरोत्तरमेवं स्यात्पूर्वोक्तगणनावधि।
मतान्तरमथो वक्ष्ये सङ्ख्यायां मुनिभेदतः॥ १६

एक पार्थिवलिंगका नित्य पूजन पापोंका नाश करनेवाला और दो लिंगोंका पूजन अर्थकी सिद्धि करनेवाला बताया गया है। तीन लिंगोंका पूजन सभी कामनाओंकी सिद्धिका मुख्य हेतु कहा गया है। पूर्वमें बतायी गयी संख्याविधिमें भी उत्तरोत्तर संख्या अधिक फलदायिनी होती है। अन्य मुनियोंके मतसे संख्याका जो अन्तर है, वह भी अब बताता हूँ॥ १५-१६॥

लिङ्गानामयुतं कृत्वा पार्थिवानां सुबुद्धिमान्।
निर्भयो हि भवेन्नूनं महाराजभयं हरेत्॥ १७

कारागृहादिमुक्त्यर्थमयुतं कारयेद् बुधः।
डाकिन्यादिभये सप्तसहस्रं कारयेत्तथा॥ १८

बुद्धिमान् मनुष्य दस हजार पार्थिव शिवलिंगोंका अर्चन करके महान् राजभयसे भी मुक्त होकर निर्भय हो जाता है। कारागार आदिसे छूटनेके लिये दस हजार लिंगोंका अर्चन करना चाहिये और डाकिनी आदिके भयसे छूटनेके लिये सात हजार लिंगार्चन कराना चाहिये॥ १७-१८॥

अपुत्रः पञ्चपञ्चाशत् सहस्राणि प्रकारयेत्।
लिङ्गानामयुतेनैव कन्यकासन्ततिं लभेत्॥ १९

लिङ्गानामयुतेनैव विष्ण्वाद्यैश्वर्यमाप्नुयात्।
लिङ्गानां प्रयुतेनैव ह्यतुलां श्रियमाप्नुयात्॥ २०

पुत्रहीन पुरुष पचपन हजार लिंगार्चन करे, कन्या-सन्तानकी प्राप्ति दस हजार लिंगार्चनसे हो जाती है। दस हजार लिंगार्चनसे विष्णु आदि देवोंके समान ऐश्वर्य प्राप्त हो जाता है। दस लाख शिवलिंगार्चनसे अतुल सम्पत्ति प्राप्त हो जाती है॥ १९-२०॥

कोटिमेकां तु लिङ्गानां यः करोति नरो भुवि।
शिव एव भवेत्सोऽपि नात्र कार्या विचारणा॥ २१

अर्चा पार्थिवलिङ्गानां कोटियज्ञफलप्रदा।
भुक्तिदा मुक्तिदा नित्यं ततः कामार्थिनां नृणाम्॥ २२

विना लिङ्गार्चनं यस्य कालो गच्छति नित्यशः।
महाहानिर्भवेत्तस्य दुर्वृत्तस्य दुरात्मनः॥ २३

जो मनुष्य पृथ्वीपर एक करोड़ शिवलिंगोंका अर्चन कर लेता है, वह तो शिवरूप ही हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। पार्थिवपूजा करोड़ों यज्ञोंका फल प्रदान करनेवाली है। इसलिये सकाम भक्तोंके लिये यह भोग और मोक्ष दोनों प्रदान करती है। जिस मनुष्यका समय रोज बिना लिंगार्चनके व्यतीत होता है, उस दुराचारी तथा दुष्टात्मा व्यक्तिकी महान् हानि होती है॥ २१—२३॥

एकतः सर्वदानानि व्रतानि विविधानि च।
तीर्थानि नियमा यज्ञा लिङ्गार्चा चैकतः स्मृता॥ २४

कलौ लिङ्गार्चनं श्रेष्ठं यथा लोके प्रदृश्यते।
तथान्यन्नास्ति शास्त्राणामेष सिद्धान्तनिश्चयः॥ २५

भुक्तिमुक्तिप्रदं लिङ्गं विविधापन्निवारणम्।
पूजयित्वा नरो नित्यं शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ २६

एक ओर सारे दान, विविध व्रत, तीर्थ, नियम और यज्ञ हैं तथा उनके समकक्ष दूसरी ओर पार्थिव शिवलिंगका पूजन माना गया है। कलियुगमें तो जैसा श्रेष्ठ लिंगार्चन दिखायी देता है, वैसा अन्य कोई साधन नहीं है—यह समस्त शास्त्रोंका निश्चित सिद्धान्त है। शिवलिंग भोग और मोक्ष देनेवाला तथा विविध आपदाओंका निवारण करनेवाला है। इसका नित्य अर्चन करके मनुष्य शिवसायुज्य प्राप्त कर लेता है॥ २४—२६॥

शिवनाममयं लिङ्गं नित्यं पूज्यं महर्षिभिः।
यतश्च सर्वलिङ्गेषु तस्मात्पूज्यं विधानतः॥ २७

उत्तमं मध्यमं नीचं त्रिविधं लिङ्गमीरितम्।
मानतो मुनिशार्दूलास्तच्छृणुध्वं वदाम्यहम्॥ २८

चतुरङ्गुलमुच्छ्रायं रम्यं वेदिकया युतम्।
उत्तमं लिङ्गमाख्यातं मुनिभिः शास्त्रकोविदैः॥ २९

तदर्द्धं मध्यमं प्रोक्तं तदर्द्धमधमं स्मृतम्।
इत्थं त्रिविधमाख्यातमुत्तरोत्तरतः परम्॥ ३०

महर्षियोंको शिवनाममय इस लिंगकी नित्य पूजा करनी चाहिये। यह सभी लिंगोंमें श्रेष्ठ है, अतः विधानपूर्वक इसकी पूजा करनी चाहिये। हे मुनिवरो! परिमाणके अनुसार लिंग तीन प्रकारके कहे गये हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। उसे आपलोग सुनें; मैं बताता हूँ। जो चार अँगुल ऊँचा और देखनेमें सुन्दर हो तथा वेदीसे युक्त हो, उस शिवलिंगको शास्त्रज्ञ महर्षियोंने उत्तम कहा है। उससे आधा मध्यम और उससे भी आधा अधम माना गया है। इस तरह तीन प्रकारके शिवलिंग कहे गये हैं, जो उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं॥ २७—३०॥

अनेकलिङ्गं यो नित्यं भक्तिश्रद्धासमन्वितः।
पूजयेत्स लभेत्कामान्मनसा मानसेप्सितान्॥ ३१

जो भक्ति तथा श्रद्धासे युक्त होकर अनेक लिंगोंकी मनसे नित्य पूजा करता है, वह मनोवांछित कामनाओंकी प्राप्ति कर लेता है॥ ३१॥

न लिङ्गाराधनादन्यत्पुण्यं वेदचतुष्टये।
विद्यते सर्वशास्त्राणामेष एव विनिश्चयः॥ ३२

चारों वेदोंमें लिंगार्चनसे बढ़कर कोई पुण्य नहीं है; सभी शास्त्रोंका भी यह निर्णय है॥ ३२॥

सर्वमेतत्परित्यज्य कर्मजालमशेषतः।
भक्त्या परमया विद्वाँल्लिङ्गमेकं प्रपूजयेत्॥ ३३

विद्वान्‌को चाहिये कि इस समस्त कर्म-प्रपंचका त्याग करके परम भक्तिके साथ एकमात्र शिवलिंगका विधिवत् पूजन करे॥ ३३॥

लिङ्गेऽर्चितेऽर्चितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
संसाराम्बुधिमग्नानां नान्यत्तरणसाधनम्॥ ३४

केवल शिवलिंगकी पूजा हो जानेपर समग्र चराचर जगत्‌की पूजा हो जाती है। संसार-सागरमें डूबे हुए लोगोंके तरनेका अन्य कोई भी साधन नहीं है॥ ३४॥

अज्ञानतिमिरान्धानां विषयासक्तचेतसाम्।
प्लवो नान्योऽस्ति जगति लिङ्गाराधनमन्तरा॥ ३५

अज्ञानरूपी अन्धकारसे अन्धे हुए तथा विषय-वासनाओंमें आसक्त चित्तवाले लोगोंके लिये इस जगत्‌में [भवसागरसे पार होनेहेतु] लिंगार्चनके अतिरिक्त अन्य कोई नौका नहीं है॥ ३५॥

हरिब्रह्मादयो देवा मुनयो यक्षराक्षसाः।
गन्धर्वाश्चारणाः सिद्धा दैतेया दानवास्तथा॥ ३६
नागाः शेषप्रभृतयो गरुडाद्याः खगास्तथा।
सप्रजापतयश्चान्ये मनवः किन्नरा नराः॥ ३७
पूजयित्वा महाभक्त्या लिङ्गं सर्वार्थसिद्धिदम्।
प्राप्ताः कामानभीष्टांश्च तांस्तान्सर्वान्हृदि स्थितान्॥ ३८

ब्रह्मा-विष्णु आदि देवता, मुनिगण, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, चारण, सिद्धजन, दैत्य, दानव, शेष आदि नाग, गरुड़ आदि पक्षी, प्रजापति, मनु, किन्नर और मानव समस्त अर्थसिद्धि प्रदान करनेवाले शिवलिंगकी महान् भक्तिके साथ पूजा करके अपने मनमें स्थित उन-उन समस्त अभीष्ट कामनाओंको प्राप्त कर चुके हैं॥ ३६—३८॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा प्रतिलोमजः।
पूजयेत्सततं लिङ्गं तत्तन्मन्त्रेण सादरम्॥ ३९
किं बहूक्तेन मुनयः स्त्रीणामपि तथान्यतः।
अधिकारोऽस्ति सर्वेषां शिवलिङ्गार्चने द्विजाः॥ ४०

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा विलोम संकर—कोई भी क्यों न हो, वह अपने अधिकारके अनुसार वैदिक अथवा तान्त्रिक मन्त्रसे सदा आदरपूर्वक शिवलिंगकी पूजा करे। हे ब्राह्मणो! हे महर्षियो! अधिक कहनेसे क्या लाभ! शिवलिंगका पूजन करनेमें स्त्रियोंका तथा अन्य सब लोगोंका भी अधिकार है॥ ३९-४०॥

द्विजानां वैदिकेनापि मार्गेणाराधनं वरम्।
अन्येषामपि जन्तूनां वैदिकेन न सम्मतम्॥ ४१
वैदिकानां द्विजानां च पूजा वैदिकमार्गतः।
कर्तव्या नान्यमार्गेण इत्याह भगवान् शिवः॥ ४२
दधीचिगौतमादीनां शापेनादग्धचेतसाम्।
द्विजानां जायते श्रद्धा नैव वैदिककर्मणि॥ ४३
यो वैदिकमनादृत्य कर्म स्मार्तमथापि वा।
अन्यत्समाचरेन्मर्त्यो न सङ्कल्पफलं लभेत्॥ ४४

द्विजोंके लिये वैदिक पद्धतिसे ही शिवलिंगकी पूजा श्रेष्ठ है, परंतु अन्य लोगोंके लिये वैदिक मार्गसे पूजा करनेकी सम्मति नहीं है। वेदज्ञ द्विजोंको वैदिक मार्गसे ही पूजन करना चाहिये, अन्य मार्गसे नहीं—यह भगवान् शिवका कथन है। दधीचि, गौतम आदिके शापसे जिनका चित्त दग्ध हो गया है, उन द्विजोंकी वैदिक कर्ममें श्रद्धा नहीं होती। जो मनुष्य वेदों तथा स्मृतियोंमें कहे हुए सत्कर्मोंकी अवहेलना करके दूसरे कर्मको करने लगता है, उसका मनोरथ कभी सफल नहीं होता॥ ४१—४४॥

इत्थं कृत्वार्चनं शम्भोर्नैवेद्यान्तं विधानतः।
पूजयेदष्टमूर्तीश्च तत्रैव त्रिजगन्मयीः॥ ४५
क्षितिरापोऽनलो वायुराकाशः सूर्यसोमकौ।
यजमान इति त्वष्टौ मूर्तयः परिकीर्तिताः॥ ४६
शर्वो भवश्च रुद्रश्च उग्रो भीम इतीश्वरः।
महादेवः पशुपतिरेतान्मूर्तिभिरर्चयेत्॥ ४७
पूजयेत्परिवारं च ततः शम्भोः सुभक्तितः।
ईशानादिक्रमात्तत्र चन्दनाक्षतपत्रकैः॥ ४८
ईशानं नन्दिनं चण्डं महाकालं च भृङ्गिणम्।
वृषं स्कन्दं कपर्दीशं सोमं शुक्रं च तत्क्रमात्॥ ४९
अग्रतो वीरभद्रं च पृष्ठे कीर्त्तिमुखं तथा।
तत एकादशान् रुद्रान्पूजयेद्विधिना ततः॥ ५०

इस प्रकार विधिपूर्वक भगवान् शंकरका नैवेद्यान्त पूजन करके उनकी त्रिभुवनमयी आठ मूर्तियोंका भी वहीं पूजन करे। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा तथा यजमान—ये भगवान् शंकरकी आठ मूर्तियाँ कही गयी हैं। इन मूर्तियोंके साथ-साथ शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, ईश्वर, महादेव तथा पशुपति—इन नामोंकी भी अर्चना करे। तदनन्तर चन्दन, अक्षत और बिल्वपत्र लेकर वहाँ ईशान आदिके क्रमसे भगवान् शिवके परिवारका उत्तम भक्तिभावसे पूजन करे। ईशान, नन्दी, चण्ड, महाकाल, भृंगी, वृष, स्कन्द, कपर्दीश्वर, सोम तथा शुक्र—ये दस शिवके परिवार हैं, [जो क्रमशः ईशान आदि दसों दिशाओंमें पूजनीय हैं।] तत्पश्चात् भगवान् शिवके समक्ष वीरभद्रका और पीछे कीर्तिमुखका पूजन करके विधिपूर्वक ग्यारह रुद्रोंकी पूजा करे॥ ४५—५०॥

ततः पञ्चाक्षरं जप्त्वा शतरुद्रियमेव च।
स्तुतीर्नानाविधाः कृत्वा पञ्चाङ्गपठनं तथा॥ ५१

ततः प्रदक्षिणां कृत्वा नत्वा लिङ्गं विसर्जयेत्।
इति प्रोक्तमशेषं च शिवपूजनमादरात्॥ ५२

रात्रावुदङ्मुखः कुर्याद् देवकार्यं सदैव हि।
शिवार्चनं सदाप्येवं शुचिः कुर्यादुदङ्मुखः॥ ५३

न प्राचीमग्रतः शम्भोर्नोदीचीं शक्तिसंहिताम्।
न प्रतीचीं यतः पृष्ठमतो ग्राह्यं समाश्रयेत्॥ ५४

विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विना रुद्राक्षमालया।
बिल्वपत्रं विना नैव पूजयेच्छङ्करं बुधः॥ ५५

भस्माप्राप्तौ मुनिश्रेष्ठाः प्रवृत्ते शिवपूजने।
तस्मान्मृदापि कर्तव्यं ललाटे च त्रिपुण्ड्रकम्॥ ५६

इसके बाद पंचाक्षर-मन्त्रका जप करके शतरुद्रियका पाठ तथा नाना प्रकारकी स्तुतियाँ करके शिवपंचांगका पाठ करे। तत्पश्चात् परिक्रमा और नमस्कार करके शिवलिंगका विसर्जन करे। इस प्रकार मैंने शिवपूजनकी सम्पूर्ण विधिका आदरपूर्वक वर्णन किया। रात्रिमें देवकार्यको सदा उत्तराभिमुख होकर ही करना चाहिये। इसी प्रकार शिवपूजन भी पवित्र भावसे सदा उत्तराभिमुख होकर ही करना उचित है। जहाँ शिवलिंग स्थापित हो, उससे पूर्व दिशाका आश्रय लेकर बैठना या खड़ा नहीं होना चाहिये; क्योंकि वह दिशा भगवान् शिवके आगे या सामने पड़ती है (इष्टदेवका सामना रोकना ठीक नहीं है)। शिवलिंगसे उत्तर दिशामें भी न बैठे; क्योंकि उधर भगवान् शंकरका वामांग है, जिसमें शक्तिस्वरूपा देवी उमा विराजमान हैं। पूजकको शिवलिंगसे पश्चिम दिशामें भी नहीं बैठना चाहिये; क्योंकि वह आराध्यदेवका पृष्ठभाग है (पीछेकी ओरसे पूजा करना उचित नहीं है) अतः अवशिष्ट दक्षिण दिशा ही ग्राह्य है, उसीका आश्रय लेना चाहिये। [तात्पर्य यह कि शिवलिंगसे दक्षिण दिशामें उत्तराभिमुख होकर बैठे और पूजा करे।] विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह बिना भस्मका त्रिपुण्ड्र लगाये, बिना रुद्राक्षकी माला धारण किये तथा बिल्वपत्रका बिना संग्रह किये भगवान् शंकरकी पूजा न करे। हे मुनिवरो! शिवपूजन आरम्भ करते समय यदि भस्म न मिले, तो मिट्टीसे ही ललाटमें त्रिपुण्ड्र अवश्य कर लेना चाहिये॥ ५१—५६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे पार्थिवपूजनवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें पार्थिव-पूजन-वर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

शिव-नैवेद्य-भक्षणका निर्णय एवं बिल्वपत्रका माहात्म्य

ऋषय ऊचुः

अग्राह्यं शिवनैवेद्यमिति पूर्वं श्रुतं वचः।
ब्रूहि तन्निर्णयं बिल्वमाहात्म्यमपि सन्मुने॥ १

ऋषिगण बोले—हे महामुने! हमने पहले सुना है कि भगवान् शिवको अर्पित किया गया नैवेद्य अग्राह्य होता है, अतएव नैवेद्यके विषयमें निर्णय और बिल्वपत्रका माहात्म्य भी कहिये॥ १॥

सूत उवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्वे सावधानतयाधुना।
सर्वं वदामि सम्प्रीत्या धन्या यूयं शिवव्रताः॥ २

सूतजी बोले—हे मुनियो! अब आप सब सावधानीसे सुनें। मैं प्रेमपूर्वक सब कुछ कह रहा हूँ। आप लोग शिवव्रत धारण करनेवाले हैं, अतः आपलोग धन्य हैं॥ २॥

शिवभक्तः शुचिः शुद्धः सद्व्रती दृढनिश्चयः।
भक्षयेच्छिवनैवेद्यं त्यजेदग्राह्यभावनाम्॥ ३

जो शिवका भक्त, पवित्र, शुद्ध, सद्व्रती तथा दृढ़निश्चयी है, उसे शिवनैवेद्य अवश्य ग्रहण करना चाहिये और अग्राह्य भावनाका त्याग कर देना चाहिये॥ ३॥

दृष्ट्वापि शिवनैवेद्यं यान्ति पापानि दूरतः।
भुक्ते तु शिवनैवेद्ये पुण्यान्यायान्ति कोटिशः॥ ४

शिवनैवेद्यको देखनेमात्रसे ही सभी पाप दूर हो जाते हैं और शिवका नैवेद्य भक्षण करनेसे तो करोड़ों पुण्य स्वतः आ जाते हैं॥ ४॥

अलं यागसहस्रेणाप्यलं यागार्बुदैरपि।
भक्षिते शिवनैवेद्ये शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ ५

हजार यज्ञोंकी बात कौन कहे, अर्बुद यज्ञ करनेसे भी वह पुण्य प्राप्त नहीं हो पाता है, जो शिवनैवेद्य खानेसे प्राप्त हो जाता है। शिवका नैवेद्य खानेसे तो शिवसायुज्यकी प्राप्ति भी हो जाती है॥ ५॥

यद्गृहे शिवनैवेद्यप्रचारोऽपि प्रजायते।
तद्गृहं पावनं सर्वमन्यपावनकारणम्॥ ६

जिस घरमें शिवको नैवेद्य लगाया जाता है या अन्यत्रसे शिवको समर्पित नैवेद्य प्रसादरूपमें आ जाता है, वह घर पवित्र हो जाता है और वह अन्यको भी पवित्र करनेवाला हो जाता है॥ ६॥

आगतं शिवनैवेद्यं गृहीत्वा शिरसा मुदा।
भक्षणीयं प्रयत्नेन शिवस्मरणपूर्वकम्॥ ७

आये हुए शिवनैवेद्यको प्रसन्नतापूर्वक सिर झुकाकर ग्रहण करके भगवान् शिवका स्मरण करते हुए उसे खा लेना चाहिये॥ ७॥

आगतं शिवनैवेद्यमन्यदा ग्राह्यमित्यपि।
विलम्बे पापसम्बन्धो भवत्येव हि मानवः॥ ८

आये हुए शिवनैवेद्यको दूसरे समयमें ग्रहण करूँगा—ऐसी भावना करके जो मनुष्य उसे ग्रहण करनेमें विलम्ब करता है, उसे पाप लगता है॥ ८॥

न यस्य शिवनैवेद्ये ग्रहणेच्छा प्रजायते।
स पापिष्ठः गरिष्ठः स्यान्नरकं यात्यपि ध्रुवम्॥ ९

जिसमें शिवनैवेद्य ग्रहण करनेकी इच्छा उत्पन्न नहीं होती, वह महान् पापी होता है और निश्चित रूपसे नरकको जाता है॥ ९॥

हृदये चन्द्रकान्ते च स्वर्णरूप्यादिनिर्मिते।
शिवदीक्षावता भक्तेनेदं भक्ष्यमितीर्यते॥ १०

हृदयमें अवस्थित शिवलिंग या चन्द्रकान्तमणिसे बने हुए शिवलिंग अथवा स्वर्ण या चाँदीसे बनाये गये शिवलिंगको समर्पित किया गया नैवेद्य शिवकी दीक्षा लिये भक्तको खाना ही चाहिये—ऐसा कहा गया है॥ १०॥

शिवदीक्षान्वितो भक्तो महाप्रसादसंज्ञकम्।
सर्वेषामपि लिङ्गानां नैवेद्यं भक्षयेच्छुभम्॥ ११

इतना ही नहीं शिवदीक्षित भक्त समस्त शिवलिंगोंके लिये समर्पित महाप्रसादरूप शुभ शिवनैवेद्यको खा सकता है॥ ११॥

अन्यदीक्षायुजां नृणां शिवभक्तिरतात्मनाम्।
शृणुध्वं निर्णयं प्रीत्या शिवनैवेद्यभक्षणे॥ १२

जिन मनुष्योंने अन्य देवोंकी दीक्षा ली है और शिवकी भक्तिमें वे अनुरक्त रहते हैं, उनके लिये शिवनैवेद्यके भक्षणके विषयमें निर्णयको प्रेमपूर्वक आप सब सुनें॥ १२॥

शालग्रामोद्भवे लिङ्गे रसलिङ्गे तथा द्विजाः।
पाषाणे राजते स्वर्णे सुरसिद्धप्रतिष्ठिते॥ १३

काश्मीरे स्फाटिके रात्ने ज्योतिर्लिङ्गेषु सर्वशः।
चान्द्रायणसमं प्रोक्तं शम्भोर्नैवेद्यभक्षणम्॥ १४

हे ब्राह्मणो! शालग्राममें उत्पन्न शिवलिंग, रसलिंग (पारदलिंग), पाषाणलिंग, रजतलिंग, स्वर्णलिंग, देवों और सिद्ध मुनियोंके द्वारा प्रतिष्ठित शिवलिंग, केसरके बने हुए लिंग, स्फटिकलिंग, रत्नलिंग और ज्योतिर्लिंग आदि समस्त शिवलिंगोंके लिये समर्पित नैवेद्यका भक्षण करना चान्द्रायण-व्रतके समान फल देनेवाला कहा गया है॥ १३-१४॥

ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत्।
भक्षयित्वा द्रुतं तस्य सर्वपापं प्रणश्यति॥ १५

यदि ब्रह्महत्या करनेवाला भी पवित्र होकर शिवका पवित्र निर्माल्य धारण करता है और उसे खाता है, उसके सम्पूर्ण पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं॥ १५॥

चण्डाधिकारो यत्रास्ति तद्भोक्तव्यं न मानवैः।
चण्डाधिकारो नो यत्र भोक्तव्यं तच्च भक्तितः॥ १६

जहाँ चण्डका अधिकार हो, वहाँ शिवलिंगके लिये समर्पित नैवेद्यका भक्षण मनुष्योंको नहीं करना चाहिये; जहाँ चण्डका अधिकार न हो, वहाँ भक्तिपूर्वक भक्षण करना चाहिये॥ १६॥

बाणलिङ्गे च लौहे च सिद्धे लिङ्गे स्वयम्भुवि।
प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत्॥ १७

बाणलिंग, लौहलिंग, सिद्धलिंग, स्वयम्भूलिंग और अन्य समस्त प्रतिमाओंमें चण्डका अधिकार नहीं होता है॥ १७॥

स्नापयित्वा विधानेन यो लिङ्गस्नपनोदकम्।
त्रिःपिबेत्त्रिविधं पापं तस्येहाशु विनश्यति॥ १८

जो विधिपूर्वक शिवलिंगको स्नान कराकर उस स्नानजलको तीन बार पीता है, उसके समस्त पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं॥ १८॥

अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
शालग्रामशिलासङ्गात्सर्वं याति पवित्रताम्॥ १९

[चण्डके द्वारा अधिकृत होनेके कारण] अग्राह्य शिवनैवेद्य पत्र-पुष्प-फल और जल—यह सब शालग्रामशिलाके स्पर्शसे पवित्र हो जाता है॥ १९॥

लिङ्गोपरि च यद् द्रव्यं तदग्राह्यं मुनीश्वराः।
सुपवित्रं च तज्ज्ञेयं यल्लिङ्गस्पर्शबाह्यतः॥ २०

हे मुनीश्वरो! शिवलिंगके ऊपर जो भी द्रव्य चढ़ाया जाता है, वह अग्राह्य है और जो लिंगके स्पर्शसे बाहर है, उसे अत्यन्त पवित्र जानना चाहिये॥ २०॥

नैवेद्यनिर्णयः प्रोक्त इत्थं वो मुनिसत्तमाः।
शृणुध्वं बिल्वमाहात्म्यं सावधानतयादरात्॥ २१

हे मुनिश्रेष्ठो! इस प्रकार मैंने शिवनैवेद्यका निर्णय कह दिया। अब आप सब सावधानीसे बिल्वपत्रके माहात्म्यको आदरपूर्वक सुनें॥ २१॥

महादेवस्वरूपोऽयं बिल्वो देवैरपि स्तुतः।
यथाकथञ्चिदेतस्य महिमा ज्ञायते कथम्॥ २२

बिल्ववृक्ष तो महादेवस्वरूप है, देवोंके द्वारा भी इसकी स्तुति की गयी है, अतः जिस किसी प्रकारसे उसकी महिमाको कैसे जाना जा सकता है॥ २२॥

पुण्यतीर्थानि यावन्ति लोकेषु प्रथितान्यपि।
तानि सर्वाणि तीर्थानि बिल्वमूले वसन्ति हि॥ २३

संसारमें जितने भी प्रसिद्ध तीर्थ हैं, वे सब तीर्थ बिल्वके मूलमें निवास करते हैं॥ २३॥

बिल्वमूले महादेवं लिङ्गरूपिणमव्ययम्।
यः पूजयति पुण्यात्मा स शिवं प्राप्नुयाद् ध्रुवम्॥ २४

जो पुण्यात्मा बिल्ववृक्षके मूलमें लिंगरूपी अव्यय भगवान् महादेवकी पूजा करता है, वह निश्चित रूपसे शिवको प्राप्त कर लेता है॥ २४॥

बिल्वमूले जलैर्यस्तु मूर्धानमभिषिञ्चति।
स सर्वतीर्थस्नातः स्यात्स एव भुवि पावनः॥ २५

जो प्राणी बिल्ववृक्षके मूलमें शिवजीके मस्तकपर अभिषेक करता है, वह समस्त तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्तकर पृथ्वीपर पवित्र हो जाता है॥ २५॥

एतस्य बिल्वमूलस्याथालवालमनुत्तमम्।
जलाकुलं महादेवो दृष्ट्वा तुष्टो भवत्यलम्॥ २६

इस बिल्ववृक्षके मूलमें बने हुए उत्तम थालेको जलसे परिपूर्ण देखकर भगवान् शिव अत्यन्त प्रसन्न होते हैं॥ २६॥

पूजयेद् बिल्वमूलं यो गन्धपुष्पादिभिर्नरः।
शिवलोकमवाप्नोति सन्ततिर्वर्धते सुखम्॥ २७

जो व्यक्ति गन्ध-पुष्पादिसे बिल्ववृक्षके मूलका पूजन करता है, वह शिवलोकको प्राप्त करता है और उसके सन्तान और सुखकी अभिवृद्धि होती है॥ २७॥

बिल्वमूले दीपमालां यः कल्पयति सादरम्।
स तत्त्वज्ञानसम्पन्नो महेशान्तर्गतो भवेत्॥ २८

जो मनुष्य बिल्ववृक्षके मूलमें आदरपूर्वक दीपमालाका दान करता है, वह तत्त्वज्ञानसे सम्पन्न होकर महादेवके सान्निध्यको प्राप्त हो जाता है॥ २८॥

बिल्वशाखां समादाय हस्तेन नवपल्लवम्।
गृहीत्वा पूजयेद् बिल्वं स च पापैः प्रमुच्यते॥ २९

जो बिल्वशाखाको हाथसे पकड़कर उसके नवपल्लवको ग्रहण करके बिल्वकी पूजा करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ २९॥

बिल्वमूले शिवरतं भोजयेद्यस्तु भक्तितः।
एकं वा कोटिगुणितं तस्य पुण्यं प्रजायते॥ ३०

जो पुरुष भक्तिपूर्वक बिल्ववृक्षके नीचे एक शिवभक्तको भोजन कराता है, उसे करोड़ों मनुष्योंको भोजन करानेका पुण्य प्राप्त होता है॥ ३०॥

बिल्वमूले क्षीरयुक्तमन्नमाज्येन संयुतम्।
यो दद्याच्छिवभक्ताय स दरिद्रो न जायते॥ ३१

जो बिल्ववृक्षके नीचे दूध और घीसे युक्त अन्न शिव-भक्तको प्रदान करता है, वह दरिद्र नहीं रह जाता है॥ ३१॥

साङ्गोपाङ्गमिति प्रोक्तं शिवलिङ्गप्रपूजनम्।
प्रवृत्तानां निवृत्तानां भेदतो द्विविधं द्विजाः॥ ३२

हे ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने सांगोपांग शिवलिंगके पूजनविधानको कह दिया है। इसमें भी प्रवृत्तों और निवृत्तोंके लिये दो भेद हैं॥ ३२॥

प्रवृत्तानां पीठपूजा सर्वाभीष्टप्रदा भुवि।
पात्रेणैव प्रवृत्तस्तु सर्वपूजां समाचरेत्॥ ३३

प्रवृत्तिमार्गियोंके लिये पीठपूजा इस भूतलपर सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देने वाली होती है। प्रवृत्त पुरुषको चाहिये कि सुपात्र गुरु आदिके द्वारा ही सारी पूजा सम्पन्न करे॥ ३३॥

नैवेद्यमभिषेकान्ते शाल्यन्नेन समाचरेत्।
पूजान्ते स्थापयेल्लिङ्गं पुटे शुद्धे पृथग्गृहे॥ ३४

शिवलिंगका अभिषेक करनेके पश्चात् अगहनी अन्नसे नैवेद्य लगाना चाहिये। पूजाके अन्तमें उस शिवलिंगको किसी शुद्ध पुट (डिब्बे)-में रख देना चाहिये अथवा किसी दूसरे शुद्ध घरमें स्थापित कर

करपूजानिवृत्तानां स्वभोज्यं तु निवेदयेत्।
निवृत्तानां परं सूक्ष्मं लिङ्गमेव विशिष्यते॥ ३५

विभूत्यभ्यर्चनं कुर्याद्विभूतिं च निवेदयेत्।
पूजां कृत्वा तथा लिङ्गं शिरसा धारयेत्सदा॥ ३६

देना चाहिये। निवृत्तिमार्गी उपासकोंके लिये हाथपर ही शिवपूजाका विधान है। उन्हें [भिक्षा आदिसे प्राप्त] अपने भोजनको ही नैवेद्यरूपमें अर्पित करना चाहिये। निवृत्तिमार्गियोंके लिये परात्पर सूक्ष्म लिंग ही श्रेष्ठ बताया गया है। उन्हें चाहिये कि विभूतिसे ही पूजा करें और विभूतिका ही नैवेद्य शिवको प्रदान करें। पूजा करनेके पश्चात् उस विभूतिस्वरूप लिंगको सिरपर सदा धारण करना चाहिये॥ ३४—३६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे शिवनैवेद्यवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें शिवनैवेद्यवर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

भस्म, रुद्राक्ष और शिवनामके माहात्म्यका वर्णन

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते।
तदेव व्यासतो ब्रूहि भस्ममाहात्म्यमुत्तमम्॥ १

तथा रुद्राक्षमाहात्म्यं नाममाहात्म्यमुत्तमम्।
त्रितयं ब्रूहि सुप्रीत्या ममानन्दय मानसम्॥ २

ऋषिगण बोले—हे महाभाग व्यासशिष्य सूतजी! आपको नमस्कार है। अब आप परम उत्तम भस्म-माहात्म्यका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये॥ १॥

भस्ममाहात्म्य, रुद्राक्षमाहात्म्य तथा उत्तम नाममाहात्म्य—इन तीनोंका परम प्रसन्नतापूर्वक प्रतिपादन कीजिये और हमारे हृदयको आनन्दित कीजिये॥ २॥

सूत उवाच

साधु पृष्टं भवद्भिश्च लोकानां हितकारकम्।
भवन्तो वै महाधन्याः पवित्राः कुलभूषणाः॥ ३

सूतजी बोले—हे महर्षियो! आप लोगोंने बहुत उत्तम बात पूछी है; यह समस्त लोकोंके लिये हितकारक विषय है। आप लोग महाधन्य, पवित्र तथा अपने कुलके भूषणस्वरूप हैं॥ ३॥

येषां चैव शिवः साक्षाद् दैवतं परमं शुभम्।
सदाशिवकथा लोके वल्लभा भवतां सदा॥ ४

इस संसारमें कल्याणकारी परमदेवस्वरूप भगवान् शिव जिनके देवता हैं, ऐसे आप सबके लिये यह शिवकी कथा अत्यन्त प्रिय है॥ ४॥

ते धन्याश्च कृतार्थाश्च सफलं देहधारणम्।
उद्धृतं च कुलं तेषां ये शिवं समुपासते॥ ५

वे ही धन्य और कृतार्थ हैं, उन्हींका शरीर धारण करना भी सफल है और उन्होंने ही अपने कुलका उद्धार कर लिया है, जो शिवकी उपासना करते हैं॥ ५॥

शिवनाम मुखे यस्य सदा शिवशिवेति च।
पापानि न स्पृशन्त्येव खदिराङ्गारकं यथा॥ ६

जिनके मुखमें भगवान् शिवका नाम है, जो अपने मुखसे सदा शिव-शिव इस नामका उच्चारण करते रहते हैं, पाप उनका उसी तरह स्पर्श नहीं करते, जैसे खदिर वृक्षके अंगारको छूनेका साहस कोई भी प्राणी नहीं कर सकता॥ ६॥

श्रीशिवाय नमस्तुभ्यं मुखं व्याहरते यदा।
तन्मुखं पावनं तीर्थं सर्वपापविनाशनम्॥ ७

तन्मुखं च तथा यो वै पश्यति प्रीतिमान्नरः।
तीर्थजन्यं फलं तस्य भवतीति सुनिश्चितम्॥ ८

हे शिव! आपको नमस्कार है (**श्रीशिवाय नमस्तुभ्यम्**)—जिस मुखसे ऐसा उच्चारण होता है, वह मुख समस्त पापोंका विनाश करनेवाला पावन तीर्थ बन जाता है। जो मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक उस मुखका दर्शन करता है, उसे निश्चय ही तीर्थसेवनजनित फल प्राप्त होता है॥ ७-८॥

यत्र त्रयं सदा तिष्ठेदेतच्छुभतरं द्विजाः।
तस्य दर्शनमात्रेण वेणीस्नानफलं लभेत्॥ ९

शिवनाम विभूतिश्च तथा रुद्राक्ष एव च।
एतत्त्रयं महापुण्यं त्रिवेणीसदृशं स्मृतम्॥ १०

हे ब्राह्मणो! शिवका नाम, विभूति (भस्म) तथा रुद्राक्ष—ये तीनों त्रिवेणीके समान परम पुण्यवाले माने गये हैं। जहाँ ये तीनों शुभतर वस्तुएँ सर्वदा रहती हैं, उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य त्रिवेणीस्नानका फल पा लेता है॥ ९-१०॥

एतत्त्रयं शरीरे च यस्य तिष्ठति नित्यशः।
तस्यैव दर्शनं लोके दुर्लभं पापहारकम्॥ ११

जिसके शरीरपर भस्म, रुद्राक्ष और मुखमें शिवनाम—ये तीनों नित्य विद्यमान रहते हैं, उसका पापविनाशक दर्शन संसारमें दुर्लभ है॥ ११॥

तद्दर्शनं यथा वेणी नोभयोरन्तरं मनाक्।
एवं यो न विजानाति स पापिष्ठो न संशयः॥ १२

उस पुण्यात्माका दर्शन त्रिवेणीके समान ही है, भस्म, रुद्राक्ष तथा शिवनामका जप करनेवाले और त्रिवेणी—इन दोनोंमें रंचमात्र भी अन्तर नहीं है—ऐसा जो नहीं जानता, वह निश्चित ही पापी है; इसमें सन्देह नहीं है॥ १२॥

विभूतिर्यस्य नो भाले नाङ्गे रुद्राक्षधारणम्।
नास्ये शिवमयी वाणी तं त्यजेदधमं यथा॥ १३

जिसके मस्तकपर विभूति नहीं है, अंगमें रुद्राक्ष नहीं है और मुखमें शिवमयी वाणी नहीं है, उसे अधम व्यक्तिके समान त्याग देना चाहिये॥ १३॥

शैवं नाम यथा गङ्गा विभूतिर्यमुना मता।
रुद्राक्षं विधिजा प्रोक्ता सर्वपापविनाशिनी॥ १४

भगवान् शिवका नाम गंगा है। विभूति यमुना मानी गयी है तथा रुद्राक्षको सरस्वती कहा गया है। इन तीनोंकी संयुक्त त्रिवेणी समस्त पापोंका नाश करनेवाली है॥ १४॥

शरीरे च त्रयं यस्य तत्फलं चैकतः स्थितम्।
एकतो वेणिकायाश्च स्नानजं तु फलं बुधैः॥ १५

तदेवं तुलितं पूर्वं ब्रह्मणा हितकारिणा।
समानं चैव तज्जातं तस्माद् धार्यं सदा बुधैः॥ १६

बहुत पहलेकी बात है, हितकारी ब्रह्माने जिसके शरीरमें उक्त ये तीनों—त्रिपुण्ड्र, रुद्राक्ष और शिवनाम संयुक्त रूपसे विद्यमान थे, उनके फलको तुलाके पलड़ेमें एक ओर रखकर, त्रिवेणीमें स्नान करनेसे उत्पन्न फलको दूसरी ओरके पलड़ेमें रखा और तुलना की, तो दोनों बराबर ही उतरे। अतएव विद्वानोंको चाहिये कि इन तीनोंको सदा अपने शरीरपर धारण करें॥ १५-१६॥

तद्दिनं हि समारभ्य ब्रह्मविष्णवादिभिः सुरैः।
धार्यते त्रितयं तच्च दर्शनात्पापहारकम्॥ १७

उसी दिनसे ब्रह्मा, विष्णु आदि देव भी दर्शनमात्रसे पापोंको नष्ट कर देनेवाले इन तीनों (रुद्राक्ष, विभूति और शिवनाम)-को धारण करने लगे॥ १७॥

ऋषय ऊचुः

ईदृशं हि फलं प्रोक्तं नामादित्रितयोद्भवम्।
तन्माहात्म्यं विशेषेण वक्तुमर्हसि सुव्रत॥ १८

ऋषिगण बोले—हे सुव्रत! [भस्म, रुद्राक्ष और शिवनाम] इन तीनोंको धारण करनेसे इस प्रकार उत्पन्न होनेवाले फलका वर्णन तो आपने कह दिया है, किंतु अब आप विशेष रूपसे उनके माहात्म्यका वर्णन करें॥ १८॥

सूत उवाच

ऋषयो हि महाप्राज्ञाः सच्छैवा ज्ञानिनां वराः।
तन्माहात्म्यं हि सद्भक्त्या शृणुतादरतो द्विजाः॥ १९

सूतजी बोले—ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हे महाप्राज्ञ! हे शिवभक्त ऋषियो और विप्रो! आप सब सद्भक्ति तथा आदरपूर्वक उक्त भस्म, रुद्राक्ष और शिवनाम—इन तीनोंका माहात्म्य सुनें॥ १९॥

सुगूढमपि शास्त्रेषु पुराणेषु श्रुतिष्वपि।
भवत्स्नेहान्मया विप्राः प्रकाशः क्रियतेऽधुना॥ २०

शास्त्रों, पुराणों और श्रुतियोंमें भी इनका माहात्म्य अत्यन्त गूढ़ कहा गया है। हे विप्रो! आप सबके स्नेहवश इस समय मैं [उस रहस्यको खोलकर] प्रकाशित करने जा रहा हूँ॥ २०॥

कस्तत्त्रितयमाहात्म्यं सञ्जानाति द्विजोत्तमाः।
महेश्वरं विना सर्वं ब्रह्माण्डे सदसत्परम्॥ २१

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! इन तीनोंकी महिमाको सदसद्विलक्षण भगवान् महेश्वरके बिना दूसरा कौन भलीभाँति जान सकता है। इस ब्रह्माण्डमें जो कुछ है, वह सब तो केवल महेश्वर ही जानते हैं॥ २१॥

वच्म्यहं नाममाहात्म्यं यथाभक्ति समासतः।
शृणुत प्रीतितो विप्राः सर्वपापहरं परम्॥ २२

हे विप्रगण! मैं अपनी श्रद्धा-भक्तिके अनुसार संक्षेपसे भगवन्नामकी महिमाका कुछ वर्णन करता हूँ। आप सबलोग प्रेमपूर्वक उसे सुनें। यह नाम-माहात्म्य समस्त पापोंको हर लेनेवाला सर्वोत्तम साधन है॥ २२॥

शिवेति नामदावाग्नेर्महापातकपर्वताः।
भस्मीभवन्त्यनायासात्सत्यं सत्यं न संशयः॥ २३

'शिव'-इस नामरूपी दावानलसे महान् पातकरूपी पर्वत अनायास ही भस्म हो जाता है—यह सत्य है, सत्य है; इसमें संशय नहीं है॥ २३॥

पापमूलानि दुःखानि विविधान्यपि शौनक।
शिवनामैकनश्यानि नान्यनश्यानि सर्वथा॥ २४

हे शौनक! पापमूलक जो नाना प्रकारके दुःख हैं, वे एकमात्र शिवनाम (भगवन्नाम)-से ही नष्ट होनेवाले हैं; दूसरे साधनोंसे सम्पूर्ण यत्न करनेपर भी पूर्णतया नष्ट नहीं होते हैं॥ २४॥

स वैदिकः स पुण्यात्मा स धन्यः स बुधो मतः।
शिवनामजपासक्तो यो नित्यं भुवि मानवः॥ २५

जो मनुष्य इस भूतलपर सदा भगवान् शिवके नामोंके जपमें ही लगा हुआ है, वह वेदोंका ज्ञाता है, वह पुण्यात्मा है, वह धन्यवादका पात्र है तथा वह विद्वान् माना गया है॥ २५॥

भवन्ति विविधा धर्मास्तेषां सद्यः फलोन्मुखाः।
येषां भवति विश्वासः शिवनामजपे मुने॥ २६

हे मुने! जिनका शिवनामजपमें विश्वास है, उनके द्वारा आचरित नाना प्रकारके धर्म तत्काल फल देनेके लिये उत्सुक हो जाते हैं॥ २६॥

पातकानि विनश्यन्ति यावन्ति शिवनामतः।
भुवि तावन्ति पापानि क्रियन्ते न नरैर्मुने॥ २७

हे महर्षे! भगवान् शिवके नामसे जितने पाप नष्ट होते हैं, उतने पाप मनुष्य इस भूतलपर कर ही नहीं सकता॥ २७॥

ब्रह्महत्यादिपापानां राशीनप्रमितान्मुने।
शिवनाम द्रुतं प्रोक्तं नाशयत्यखिलान्नरैः॥ २८

हे मुने! ब्रह्महत्या-जैसे पापोंकी समस्त अपरिमित राशियाँ शिवनाम लेनेसे शीघ्र ही नष्ट हो जाती हैं॥ २८॥

शिवनामतरीं प्राप्य संसाराब्धिं तरन्ति ये।
संसारमूलपापानि तानि नश्यन्त्यसंशयम्॥ २९

जो शिवनामरूपी नौकापर आरूढ़ होकर संसार-समुद्रको पार करते हैं, उनके जन्म-मरणरूप संसारके मूलभूत वे सारे पाप निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं॥ २९॥

संसारमूलभूतानां पातकानां महामुने।
शिवनामकुठारेण विनाशो जायते ध्रुवम्॥ ३०

हे महामुने! संसारके मूलभूत पातकरूपी वृक्षका शिवनामरूपी कुठारसे निश्चय ही नाश हो जाता है॥ ३०॥

शिवनामामृतं पेयं पापदावानलार्दितैः।
पापदावाग्नितप्तानां शान्तिस्तेन विना न हि॥ ३१

जो पापरूपी दावानलसे पीड़ित हैं, उन्हें शिवनामरूपी अमृतका पान करना चाहिये। पापोंके दावानलसे दग्ध होनेवाले लोगोंको उस शिवनामामृतके बिना शान्ति नहीं मिल सकती॥ ३१॥

शिवेति नामपीयूषवर्षधारापरिप्लुताः।
संसारदवमध्येऽपि न शोचन्ति कदाचन॥ ३२

जो शिवनामरूपी सुधाकी वृष्टिजनित धारामें गोते लगा रहे हैं, वे संसाररूपी दावानलके बीचमें खड़े होनेपर भी कदापि शोकके भागी नहीं होते॥ ३२॥

शिवनाम्नि महद्भक्तिर्जाता येषां महात्मनाम्।
तद्विधानां तु सहसा मुक्तिर्भवति सर्वथा॥ ३३

जिन महात्माओंके मनमें शिवनामके प्रति बड़ी भारी भक्ति है, ऐसे लोगोंकी सहसा और सर्वथा मुक्ति होती है॥ ३३॥

अनेकजन्मभिर्येन तपस्तप्तं मुनीश्वर।
शिवनाम्नि भवेद्भक्तिः सर्वपापापहारिणी॥ ३४

हे मुनीश्वर! जिसने अनेक जन्मोंतक तपस्या की है, उसीकी शिवनामके प्रति भक्ति होती है, जो समस्त पापोंका नाश करनेवाली है॥ ३४॥

यस्यासाधारणी शम्भुनाम्नि भक्तिरखण्डिता।
तस्यैव मोक्षः सुलभो नान्यस्येति मतिर्मम॥ ३५

जिसके मनमें भगवान् शिवके नामके प्रति कभी खण्डित न होनेवाली असाधारण भक्ति प्रकट हुई है, उसीके लिये मोक्ष सुलभ है—यह मेरा मत है॥ ३५॥

कृत्वाप्यनेकपापानि शिवनामजपादरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो भवत्येव न संशयः॥ ३६

जो अनेक पाप करके भी भगवान् शिवके नाम-जपमें आदरपूर्वक लग गया है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो ही जाता है; इसमें संशय नहीं है॥ ३६॥

भवन्ति भस्मसाद् वृक्षा दवदग्धा यथा वने।
तथा तावन्ति दग्धानि पापानि शिवनामतः॥ ३७

जैसे वनमें दावानलसे दग्ध हुए वृक्ष भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार शिवनामरूपी दावानलसे दग्ध होकर उस समयतकके सारे पाप भस्म हो जाते हैं॥ ३७॥

यो नित्यं भस्मपूताङ्गः शिवनामजपादरः।
स तरत्येव संसारमघोरमपि शौनक॥ ३८

हे शौनक! जिसके अंग नित्य भस्म लगानेसे पवित्र हो गये हैं तथा जो शिवनामजपका आदर करने लगा है, वह घोर संसारसागरको भी पार कर ही लेता है॥ ३८॥

ब्रह्मस्वहरणं कृत्वा हत्वापि ब्राह्मणान्बहून्।
न लिप्यते नरः पापैः शिवनामजपादरः॥ ३९

ब्राह्मणोंका धनहरण और अनेक ब्राह्मणोंकी हत्या करके भी जो आदरपूर्वक शिवके नामका जप करता है, वह पापोंसे लिप्त नहीं होता है [अर्थात् उसे किसी भी प्रकारका पाप नहीं लगता है]॥ ३९॥

विलोक्य वेदानखिलान् शिवनामजपः परः।
संसारतरणोपाय इति पूर्वैर्विनिश्चितम्॥ ४०

सम्पूर्ण वेदोंका अवलोकन करके पूर्ववर्ती महर्षियोंने यही निश्चित किया है कि भगवान् शिवके नामका जप संसारसागरको पार करनेके लिये सर्वोत्तम उपाय है॥ ४०॥

किं बहूक्त्या मुनिश्रेष्ठाः श्लोकेनैकेन वच्म्यहम्।
शिवाभिधानमाहात्म्यं सर्वपापापहारणम्॥ ४१

हे मुनिवरो! अधिक कहनेसे क्या लाभ, मैं शिव-नामके सर्वपापहारी माहात्म्यका वर्णन एक ही श्लोकमें करता हूँ॥ ४१॥

पापानां हरणे शम्भोर्नाम्नः शक्तिर्हि यावती।
शक्नोति पातकं तावत्कर्तुं नापि नरः क्वचित्॥ ४२

भगवान् शंकरके एक नाममें भी पापहरणकी जितनी शक्ति है, उतना पातक मनुष्य कभी कर ही नहीं सकता॥ ४२॥

शिवनामप्रभावेण लेभे सद्गतिमुत्तमाम्।
इन्द्रद्युम्ननृपः पूर्वं महापापयुतो मुने॥ ४३

हे मुने! पूर्वकालमें महापापी राजा इन्द्रद्युम्नने शिवनामके प्रभावसे ही उत्तम सद्गति प्राप्त की थी॥ ४३॥

तथा काचिद् द्विजा योषाऽसौ मुने बहुपापिनी।
शिवनामप्रभावेण लेभे सद्गतिमुत्तमाम्॥ ४४

इसी तरह कोई ब्राह्मणी युवती भी जो बहुत पाप कर चुकी थी, शिवनामके प्रभावसे ही उत्तम गतिको प्राप्त हुई॥ ४४॥

इत्युक्तं वो द्विजश्रेष्ठा नाममाहात्म्यमुत्तमम्।
शृणुध्वं भस्ममाहात्म्यं सर्वपावनपावनम्॥ ४५

हे द्विजवरो! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे भगवन्नामके उत्तम माहात्म्यका वर्णन किया है। अब आप लोग भस्मका माहात्म्य सुनें, जो समस्त पावन वस्तुओंको भी पवित्र करनेवाला है॥ ४५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे शिवनाममाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणमें प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें शिवनाममाहात्म्यवर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

भस्म-माहात्म्यका निरूपण

सूत उवाच

द्विविधं भस्म सम्प्रोक्तं सर्वमङ्गलदं परम्।
तत्प्रकारमहं वक्ष्ये सावधानतया शृणु॥ १

सूतजी बोले—हे महर्षियो! भस्म सम्पूर्ण मंगलोंको देनेवाला तथा उत्तम है, उसके दो भेद बताये गये हैं। मैं उन भेदोंका वर्णन करता हूँ, आप लोग सावधान होकर सुनिये॥ १॥

एकं ज्ञेयं महाभस्म द्वितीयं स्वल्पसंज्ञकम्।
महाभस्म इति प्रोक्तं भस्म नानाविधं परम्॥ २

तद्भस्म त्रिविधं प्रोक्तं श्रौतं स्मार्तं च लौकिकम्।
भस्मैव स्वल्पसंज्ञं हि बहुधा परिकीर्तितम्॥ ३

श्रौतं भस्म तथा स्मार्तं द्विजानामेव कीर्तितम्।
अन्येषामपि सर्वेषामपरं भस्म लौकिकम्॥ ४

एकको 'महाभस्म' जानना चाहिये और दूसरेको 'स्वल्पभस्म'। महाभस्मके भी अनेक भेद हैं। वह तीन प्रकारका कहा गया है—श्रौत, स्मार्त और लौकिक। स्वल्पभस्मके भी बहुत-से भेदोंका वर्णन किया गया है। श्रौत और स्मार्त भस्मको केवल द्विजोंके ही उपयोगमें आनेके योग्य कहा गया है। तीसरा जो लौकिक भस्म है, वह अन्य लोगोंके भी उपयोगमें आ सकता है॥ २—४॥

धारणं मन्त्रतः प्रोक्तं द्विजानां मुनिपुङ्गवैः।
केवलं धारणं ज्ञेयमन्येषां मन्त्रवर्जितम्॥ ५

श्रेष्ठ महर्षियोंने यह बताया है कि द्विजोंको वैदिक मन्त्रके उच्चारणपूर्वक भस्म धारण करना चाहिये। दूसरे लोगोंके लिये बिना मन्त्रके ही केवल धारण करनेका विधान है॥ ५॥

आग्नेयमुच्यते भस्म दग्धगोमयसम्भवम्।
तदपि द्रव्यमित्युक्तं त्रिपुण्ड्रस्य महामुने॥ ६

जले हुए गोबरसे उत्पन्न होनेवाला भस्म आग्नेय कहलाता है। हे महामुने! वह भी त्रिपुण्ड्रका द्रव्य है—ऐसा कहा गया है॥ ६॥

अग्निहोत्रोत्थितं भस्म सङ्ग्राह्यं वा मनीषिभिः।
अन्ययज्ञोत्थितं वापि त्रिपुण्ड्रस्य च धारणे॥ ७

अग्निहोत्रसे उत्पन्न हुए भस्मका भी मनीषी पुरुषोंको संग्रह करना चाहिये। अन्य यज्ञसे प्रकट हुआ भस्म भी त्रिपुण्ड्रधारणके काममें आ सकता है॥ ७॥

अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैर्जाबालोपनिषद्गतैः।
सप्तभिर्धूलनं कार्यं भस्मना सजलेन च॥ ८

जाबालोपनिषद्‌में आये हुए '**अग्निः**' इत्यादि सात मन्त्रोंद्वारा जलमिश्रित भस्मसे धूलन (विभिन्न अंगोंमें मर्दन या लेपन) करना चाहिये॥ ८॥

वर्णानामाश्रमाणां च मन्त्रतोऽमन्त्रतोऽपि च।
त्रिपुण्ड्रोद्धूलनं प्रोक्तं जाबालैरादरेण च॥ ९

महर्षि जाबालिने सभी वर्णों और आश्रमोंके लिये मन्त्रसे या बिना मन्त्रके भी आदरपूर्वक भस्मसे त्रिपुण्ड्र लगानेकी आवश्यकता बतायी है॥ ९॥

भस्मनोद्धूलनं चैव धृतं तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम्।
प्रमादादपि मोक्षार्थी न त्यजेदिति वै श्रुतिः॥ १०

समस्त अंगोंमें सजल भस्मको मलना अथवा विभिन्न अंगोंमें तिरछा त्रिपुण्ड्र लगाना—इन कार्योंको मोक्षार्थी पुरुष प्रमादसे भी न छोड़े—ऐसा श्रुतिका आदेश है॥ १०॥

शिवेन विष्णुना चैव धृतं तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम्।
उमादेव्या च लक्ष्म्या च स्तुतमन्यैश्च नित्यशः॥ ११

भगवान् शिव और विष्णुने भी तिर्यक् त्रिपुण्ड्र धारण किया है। अन्य देवियोंसहित भगवती उमा और लक्ष्मीदेवीने भी वाणीद्वारा इसकी प्रशंसा की है॥ ११॥

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरपि च सङ्करैः।
अपभ्रंशैर्धृतं भस्म त्रिपुण्ड्रोद्धूलनात्मना॥ १२

ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों, वर्णसंकरों तथा जातिभ्रष्ट पुरुषोंने भी उद्धूलन एवं त्रिपुण्ड्रके रूपमें भस्मको धारण किया है॥ १२॥

उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये।
तेषां नास्ति समाचारो वर्णाश्रमसमन्वितः॥ १३

जो लोग श्रद्धापूर्वक शरीरमें भस्मका उद्धूलन (लेप) तथा त्रिपुण्ड्र धारण करनेका आचरण नहीं करते हैं, उनमें वर्णाश्रम-समन्वित सदाचारकी कमी है॥ १३॥

उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये।
तेषां नास्ति विनिर्मुक्तिः संसाराज्जन्मकोटिभिः॥ १४

जिनके द्वारा श्रद्धापूर्वक शरीरमें भस्मलेप और त्रिपुण्ड्रधारणका आचरण नहीं किया जाता है, उनकी विनिर्मुक्ति करोड़ों जन्मोंमें भी संसारसे सम्भव नहीं है॥ १४॥

उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये।
तेषां नास्ति शिवज्ञानं कल्पकोटिशतैरपि॥ १५

जो श्रद्धापूर्वक शरीरमें भस्मलेप और त्रिपुण्ड्र धारणका आचारपालन नहीं करते हैं, उन्हें सौ करोड़ कल्पोंमें भी शिवका ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता॥ १५॥

उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये।
ते महापातकैर्युक्ता इति शास्त्रीयनिर्णयः॥ १६

जो श्रद्धापूर्वक भस्मलेप तथा त्रिपुण्ड्रधारण नहीं करते हैं, वे महापातकोंसे युक्त हो जाते हैं, ऐसा शास्त्रोंका निर्णय है॥ १६॥

उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये।
तेषामाचरितं सर्वं विपरीतफलाय हि॥ १७

जो श्रद्धापूर्वक भस्मोद्धूलन और त्रिपुण्ड्रधारण नहीं करते हैं, उन लोगोंका सम्पूर्ण आचरण विपरीत फल प्रदान करनेवाला हो जाता है॥ १७॥

महापातकयुक्तानां जन्तूनां शर्वविद्विषाम्।
त्रिपुण्ड्रोद्धूलनद्वेषो जायते सुदृढं मुने॥ १८

हे मुनियो! जो महापातकोंसे युक्त और समस्त प्राणियोंसे द्वेष करनेवाले हैं, वे ही त्रिपुण्ड्रधारण तथा भस्मोद्धूलनसे अत्यधिक द्वेष करते हैं॥ १८॥

शिवाग्निकार्यं यः कृत्वा कुर्यात्त्रियायुषात्मवित्।
मुच्यते सर्वपापैस्तु स्पृष्टेन भस्मना नरः॥ १९

जो आत्मज्ञानी मनुष्य शिवाग्नि (अग्निहोत्र)-का कार्य करके **'त्र्यायुषं जमदग्नेः'**—इस मन्त्रसे भस्मका मात्र स्पर्श ही कर लेता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १९॥

सितेन भस्मना कुर्यात्त्रिसन्ध्यं यस्त्रिपुण्ड्रकम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवेन सह मोदते॥ २०

जो मनुष्य तीनों सन्ध्याकालोंमें श्वेत भस्मके द्वारा त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर शिवसान्निध्यका आनन्द भोगता है॥ २०॥

सितेन भस्मना कुर्याल्ललाटे तु त्रिपुण्ड्रकम्।
योऽसावनादिभूतान्हि लोकानाप्नोऽमृतो भवेत्॥ २१

जो व्यक्ति श्वेत भस्मसे अपने मस्तकपर त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह अनादिभूत लोकोंको प्राप्तकर अमर हो जाता है॥ २१॥

अकृत्वा भस्मना स्नानं न जपेद्वै षडक्षरम्।
त्रिपुण्ड्रं च रचित्वा तु विधिना भस्मना जपेत्॥ २२

बिना भस्मस्नान किये षडक्षर [**'ॐ नमः शिवाय'**] मन्त्रका जप नहीं करना चाहिये। विधिपूर्वक भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करके ही इसका जप करना चाहिये॥ २२॥

अदयो वाधमो वापि सर्वपापान्वितोऽपि वा।
उपपापान्वितो वापि मूर्खो वा पतितोऽपि वा॥ २३
यस्मिन्देशे वसेन्नित्यं भूतिशासनसंयुतः।
सर्वतीर्थैश्च क्रतुभिः सान्निध्यं क्रियते सदा॥ २४

दयाहीन, अधम, महापापोंसे युक्त, उपपापोंसे युक्त, मूर्ख अथवा पतित व्यक्ति भी जिस देशमें नित्य भस्म धारण करते रहते हैं, वह देश सदैव सम्पूर्ण तीर्थों और यज्ञोंसे परिपूर्ण ही रहता है॥ २३-२४॥

त्रिपुण्ड्रसहितो जीवः पूज्यः सर्वैः सुरासुरैः।
पापान्वितोऽपि शुद्धात्मा किं पुनः श्रद्धया युतः॥ २५

त्रिपुण्ड्रधारण करनेवाला पापी जीव भी समस्त देवों और असुरोंके द्वारा पूज्य है। यदि पुण्यात्मा त्रिपुण्ड्रसे युक्त है, तो उसके लिये कहना ही क्या॥ २५॥

यस्मिन्देशे शिवज्ञानी भूतिशासनसंयुतः।
गतो यदृच्छयाद्यापि तस्मिंस्तीर्थाः समागताः॥ २६

भस्म धारण करनेवाला शिवज्ञानी जिस देशमें स्वेच्छया चला जाता है, उस देशमें समस्त तीर्थ आ जाते हैं॥ २६॥

बहुनात्र किमुक्तेन धार्यं भस्म सदा बुधैः।
लिङ्गार्चनं सदा कार्यं जप्यो मन्त्रः षडक्षरः॥ २७

इस विषयमें और अधिक क्या कहा जाय! विद्वानोंको सदैव भस्म धारण करना चाहिये एवं लिंगार्चन करके षडक्षर मन्त्रका जप करना चाहिये॥ २७॥

ब्रह्मणा विष्णुना वापि रुद्रेण मुनिभिः सुरैः।
भस्मधारणमाहात्म्यं न शक्यं परिभाषितुम्॥ २८

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, मुनिगण और देवताओंके द्वारा भी भस्म-धारण करनेके महत्त्वका वर्णन किया जाना सम्भव नहीं है॥ २८॥

इति वर्णाश्रमाचारो लुप्तवर्णक्रियोऽपि च।
पापात्सकृत्त्रिपुण्ड्रस्य धारणात्सोऽपि मुच्यते॥ २९

जिसने अपने वर्ण तथा आश्रमधर्मसे सम्बन्धित आचार तथा क्रियाएँ लुप्त कर दी हैं, यदि वह भी त्रिपुण्ड्र धारण करता है, तो समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ २९॥

ये भस्मधारिणं त्यक्त्वा कर्म कुर्वन्ति मानवाः।
तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः॥ ३०

जो भस्मधारण करनेवालेको त्यागकर धार्मिक कृत्य करते हैं, उनको करोड़ों जन्म लेनेपर भी संसारसे मुक्ति प्राप्त नहीं हो पाती है॥ ३०॥

तेनाधीतं गुरोः सर्वं तेन सर्वमनुष्ठितम्।
येन विप्रेण शिरसि त्रिपुण्ड्रं भस्मना कृतम्॥ ३१

जिस ब्राह्मणने भस्मसे अपने सिरपर त्रिपुण्ड्र धारण कर लिया है, उसने मानो गुरुसे सब कुछ पढ़ लिया है और सभी धार्मिक अनुष्ठान कर लिये हैं॥ ३१॥

ये भस्मधारिणं दृष्ट्वा नराः कुर्वन्ति ताडनम्।
तेषां चण्डालतो जन्म ब्रह्मन्नूह्यं विपश्चिता॥ ३२

जो मनुष्य भस्म धारण करनेवालेको देखकर उसे कष्ट देते हैं, वे निश्चित ही चाण्डालसे उत्पन्न हुए हैं—ऐसा विद्वानोंको जानना चाहिये॥ ३२॥

मानस्तोकेन मन्त्रेण मन्त्रितं भस्म धारयेत्।
ब्राह्मणः क्षत्रियश्चैव प्रोक्तेष्वङ्गेषु भक्तिमान्॥ ३३

भक्तिपरायण ब्राह्मण और क्षत्रियको '**मा नस्तोके तनये०**'—इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित भस्मको शास्त्रसम्मत कहे गये अंगोंपर धारण करना चाहिये॥ ३३॥

वैश्यस्त्रियम्बकेनैव शूद्रः पञ्चाक्षरेण तु।
अन्यासां विधवास्त्रीणां विधिः प्रोक्तश्च शूद्रवत्॥ ३४

वैश्य '**त्र्यम्बकं यजामहे**'—इस मन्त्रसे और शूद्र '**शिवाय नमः**'—इस पंचाक्षरमन्त्रसे भस्मको अभिमन्त्रितकर धारण करे; विधवा स्त्रियोंके लिये [भस्म-धारणकी] विधि शूद्रोंके समान कही गयी है॥ ३४॥

पञ्चब्रह्मादिमनुभिर्गृहस्थस्य विधीयते।
त्रियम्बकेन मनुना विधिर्वै ब्रह्मचारिणः॥ ३५

अघोरेणाथ मनुना विपिनस्थविधिः स्मृतः।
यतिस्तु प्रणवेनैव त्रिपुण्ड्रादीनि कारयेत्॥ ३६

पाँच ब्रह्मादि मन्त्रों*से [अभिमन्त्रित भस्मके द्वारा] गृहस्थ त्रिपुण्ड्र धारण करे। ब्रह्मचारी '**त्र्यम्बकं यजामहे**'—इस मन्त्रसे [भस्मको अभिमन्त्रित करके] और वानप्रस्थी '**अघोरेभ्योऽथ०**' इस मन्त्रसे भस्मको अभिमन्त्रित करके त्रिपुण्ड्र धारण करे, किंतु यति [संन्यासी] प्रणवके मन्त्रसे [भस्मको अभिमन्त्रित करके] त्रिपुण्ड्र धारण करे॥ ३५-३६॥

* अघोर, ईशान, तत्पुरुष, सद्योजात, वामदेवके मन्त्र ही पंचब्रह्मके ध्यान हैं। ये मन्त्र पृ०-सं० ८० पर दिये गये हैं।

अतिवर्णाश्रमी नित्यं शिवोऽहं भावनात्परात्।
शिवयोगी च नियतमीशानेनापि धारयेत्॥ ३७

जो वर्णाश्रम धर्मसे परे है, वह '**शिवोऽहं**'—इस भावनासे नित्य त्रिपुण्ड्र धारण करे और जो शिवयोगी है, वह '**ईशानः सर्वविद्यानाम्**'—इस भावनाको करता हुआ त्रिपुण्ड्र धारण करे॥ ३७॥

न त्याज्यं सर्ववर्णैश्च भस्मधारणमुत्तमम्।
अन्यैरपि यथा जीवैः सदेति शिवशासनम्॥ ३८

सभी वर्णोंके द्वारा भस्म-धारण करनेके इस उत्तम कार्यको नहीं छोड़ना चाहिये; अन्य जीवोंको भी सदा भस्म धारण करना चाहिये—ऐसा भगवान् शिवका आदेश है॥ ३८॥

भस्मस्नानेन यावन्तः कणाः स्वाङ्गे प्रतिष्ठिताः।
तावन्ति शिवलिङ्गानि तनौ धत्ते हि धारकः॥ ३९

भस्म-स्नान करनेसे जितने कण शरीरमें प्रवेश करते हैं, उतने ही शिवलिंगोंको वह धारक अपने शरीरमें धारण करता है॥ ३९॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चापि च सङ्कराः।
स्त्रियोऽथ विधवा बालाः प्राप्ता पाखण्डिकास्तथा॥ ४०

ब्रह्मचारी गृही वन्यः संन्यासी वा व्रती तथा।
नार्यो भस्मत्रिपुण्ड्राङ्का मुक्ता एव न संशयः॥ ४१

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसंकर, स्त्री (सधवा), विधवा, बालक, पाखण्डी, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी, संन्यासी, व्रती और संन्यासिनी स्त्रियाँ—ये सभी भस्मके त्रिपुण्ड-धारणके प्रभावके द्वारा मुक्त हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ४०-४१॥

ज्ञानाज्ञानधृतो वापि वह्निदाहसमो यथा।
ज्ञानाज्ञानधृतं भस्म पावयेत्सकलं नरम्॥ ४२

जैसे ज्ञानवश या अज्ञानवश धारण की गयी अग्नि सबको समान रूपसे जलाती है, वैसे ही ज्ञान या अज्ञानवश धारण किया गया भस्म भी समानरूपसे सभी मनुष्योंको पवित्र करता है॥ ४२॥

नाश्नीयाज्जलमन्नमल्पमपि वा भस्माक्षधृत्या विना
भुक्त्वा वाथ गृही वनीपतियतिर्वर्णी तथा सङ्करः।
एनोभुङ् नरकं प्रयाति स तदा गायत्रिजापेन तद्
वर्णानां तु यतेस्तु मुख्यप्रणवाजापेन मुक्तिर्भवेत्॥ ४३

भस्म तथा रुद्राक्ष-धारणके बिना जल अथवा अन्नको अंशमात्र भी नहीं खाना चाहिये। गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी और वर्णसंकर जातिका व्यक्ति यदि भस्म एवं रुद्राक्षको धारण किये बिना भोजन करता है, तो वह मात्र पाप ही खाता है और नरककी ओर प्रस्थान करता है। ऐसे समयमें उक्त वर्णधर्मोंका वह व्यक्ति गायत्री मन्त्रके जपसे तथा यति (संन्यासी) मुख्य प्रणवमन्त्रके जपसे प्रायश्चित्त करके मुक्ति प्राप्त कर सकता है॥ ४३॥

त्रिपुण्ड्रं ये विनिन्दन्ति निन्दन्ति शिवमेव ते।
धारयन्ति च ये भक्त्या धारयन्ति तमेव ते॥ ४४

जो त्रिपुण्ड्रकी निन्दा करते हैं, वे साक्षात् शिवकी ही निन्दा करते हैं और जो त्रिपुण्ड्रको धारण करते हैं, वे साक्षात् उन्हीं शिवको ही धारण करते हैं॥ ४४॥

धिग्भस्मरहितं भालं धिग्ग्राममशिवालयम्।
धिगनीशार्चनं जन्म धिग्विद्यामशिवाश्रयाम्॥ ४५

भस्मरहित भालको धिक्कार है, शिवालय (शिवमन्दिर)-रहित ग्रामको धिक्कार है, शिवार्चनसे रहित जन्मको धिक्कार है और शिवज्ञानरहित विद्याको धिक्कार है॥ ४५॥

ये निन्दन्ति महेश्वरं त्रिजगतामाधारभूतं हरं
ये निन्दन्ति त्रिपुण्ड्रधारणकरं दोषस्तु तद्दर्शने।
ते वै सङ्करसूकरासुरखरश्वक्रोष्टुकीटोपमा
जाता एव भवन्ति पापपरमास्ते नारकाः केवलम्॥ ४६

जो लोग तीनों लोकोंके आधारस्वरूप महेश्वर भगवान् शिवकी निन्दा करते हैं और त्रिपुण्ड्र धारण करनेवालेकी निन्दा करते हैं, उनको तो देखनेसे ही पाप लगता है। वे वर्णसंकर, सुअर, असुर, खर (गधा), श्वान (कुत्ता), क्रोष्टु (सियार) तथा कीड़े-मकोड़ेके समान ही उत्पन्न होते हैं और उन नरकगामी व्यक्तियोंका [यह] जन्म मात्र पाप करनेके लिये ही होता है॥ ४६॥

ते दृष्ट्वा शशिभास्करौ निशि दिने स्वप्नेऽपि नो केवलं
पश्यन्तु श्रुतिरुद्रसूक्तजपतो मुच्येत तेनादृताः।
तत्सम्भाषणतो भवेद्धि नरकं निस्तारवानास्थितं
ये भस्मादिविधारणं हि पुरुषं निन्दन्ति मन्दा हि ते॥ ४७

भगवान् शिवकी तथा त्रिपुण्ड्र धारण करनेवाले उनके भक्तोंकी जो निन्दा करते हैं, उन्हें रातमें देखनेपर चन्द्रमाके दर्शनसे और दिनमें देखनेपर सूर्यके दर्शनसे शुद्धि प्राप्त होती है। [मात्र, इतना ही नहीं स्वप्नमें भी उन्हें देखनेसे पाप लगता है, अतः] स्वप्नमें जो उन्हें देखे, उसको अपनी शुद्धिके लिये श्रुतिमें कहे गये रुद्रसूक्तका आदरपूर्वक पाठ करना चाहिये, तभी उससे छुटकारा मिल सकता है। उनसे बात करनेसे नरक होता है। उस नरकसे मुक्ति प्राप्त करना असम्भव है। जो भस्म-त्रिपुण्ड्र आदि धारण करनेवाले पुरुषकी निन्दा करते हैं, वे निश्चित ही मूर्ख हैं॥ ४७॥

न तान्त्रिकस्त्वधिकृतो नोर्ध्वपुण्ड्रधरो मुने।
सन्तप्तचक्रचिह्नोऽत्र शिवयज्ञे बहिष्कृतः॥ ४८

हे मुने! तान्त्रिक, ऊर्ध्वत्रिपुण्ड्र धारण करनेवाले तथा तपाये हुए चक्र आदि चिह्नोंको धारण करनेवाले इस शिवयज्ञके अधिकारी नहीं हैं, वे इस यज्ञसे बहिष्कृत हैं॥ ४८॥

तत्रैते बहवो लोका बृहज्जाबालचोदिताः।
ते विचार्याः प्रयत्नेन ततो भस्मरतो भवेत्॥ ४९

बृहज्जाबालोपनिषद्में कहे गये वे लोग ही उस यज्ञमें अधिकारी हैं। प्रयत्नपूर्वक उन्हें शिवयज्ञके कार्यमें सम्मिलित करना चाहिये। उन्हें भस्म लगाना चाहिये॥ ४९॥

यच्चन्दनैश्चन्दनकेऽपि मिश्रं
धार्यं हि भस्मैव त्रिपुण्ड्रभस्मना।
विभूतिभालोपरि किञ्चनापि
धार्यं सदा नो यदि सन्ति बुद्धयः॥ ५०

विभूतिका चन्दनसे या चन्दनमें विभूतिका मिश्रणकर बनाये गये मिश्रित भस्मसे [मस्तकपर] त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। कुछ भी हो मस्तकपर विभूति धारण करना आवश्यक है। यदि बुद्धि नहीं है, तो भी यह करना सदा लोगोंके लिये आवश्यक ही है॥ ५०॥

स्त्रीभिस्त्रिपुण्ड्रमलकावधि धारणीयं
भस्म द्विजादिभिरथो विधवाभिरेवम्।
तद्वत्सदाश्रमवतां विशदा विभूति-
र्धार्यापवर्गफलदा सकलाघहन्त्री॥ ५१

ब्रह्मचारिणी, सधवा तथा विधवा स्त्रियों और ब्राह्मणादि द्विजोंको केशपर्यन्त भस्म धारण करना चाहिये। इसी प्रकार ब्रह्मचर्यादि आश्रमवालोंको भी स्वच्छ विभूति धारण करना उचित है; क्योंकि विभूति मोक्ष देनेवाली और समस्त पापोंका नाश करनेवाली है॥ ५१॥

त्रिपुण्ड्रं कुरुते यस्तु भस्मना विधिपूर्वकम्।
महापातकसङ्घातैर्मुच्यते चोपपातकैः॥ ५२

जो भस्मद्वारा विधिपूर्वक त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह [ब्रह्महत्यादि] महापातकसमूहों और [उच्छिष्ट अन्नादिभक्षण] उपपातकोंसे मुक्त हो जाता है॥ ५२॥

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथवा यतिः।
ब्रह्मक्षत्राश्च विट्शूद्रास्तथान्ये पतिताधमाः॥ ५३

उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च धृत्वा शुद्धा भवन्ति च।
भस्मनो विधिना सम्यक् पापराशिं विहाय च॥ ५४

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी और संन्यासी [ये चारों आश्रम]; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य वर्णसंकर [ये चारों वर्ण और उपवर्णके लोग]; पतित अथवा नीच मनुष्य भी विधिपूर्वक शरीरपर भस्म-उद्धूलन और त्रिपुण्ड्र धारण करके शुद्ध हो जाते हैं; [क्योंकि] सम्यक् रूपसे [धारण की गयी] भस्मसे [तत्काल ही] पापराशिसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है॥ ५३-५४॥

भस्मधारी विशेषेण स्त्रीगोहत्यादिपातकैः।
वीरहत्याश्वहत्याभ्यां मुच्यते नात्र संशयः॥ ५५

भस्म धारण करनेवाला व्यक्ति विशेष रूपसे स्त्रीहत्या, गोहत्या, वीरहत्या और अश्वहत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाता है; इसमें संशय नहीं है॥ ५५॥

परद्रव्यापहरणं परदाराभिमर्शनम्।
परनिन्दां परक्षेत्रहरणं परपीडनम्॥ ५६
सस्यारामादिहरणं गृहदाहादिकर्म च।
गोहिरण्यमहिष्यादितिलकम्बलवाससाम्॥ ५७
अन्नधान्यजलादीनां नीचेभ्यश्च परिग्रहः।
दाशवेश्यामतङ्गीषु वृषलीषु नटीषु च॥ ५८
रजस्वलासु कन्यासु विधवासु च मैथुनम्।
मांसचर्मरसादीनां लवणस्य च विक्रयः॥ ५९
पैशुन्यं कूटवादश्च साक्षिमिथ्याभिलाषिणाम्।
एवमादीन्यसङ्ख्यानि पापानि विविधानि च।
सद्य एव विनश्यन्ति त्रिपुण्ड्रस्य च धारणात्॥ ६०

दूसरेके द्रव्यका अपहरण, परायी स्त्रीका अभिमर्शन, दूसरेकी निन्दा, पराये खेतका अपहरण, दूसरेको कष्ट देना, फसल और बाग आदिका अपहरण, घर फूँकना (जलाना) आदि कर्म, नीचोंसे गाय, सोना, भैंस, तिल-कम्बल, वस्त्र, अन्न, धान्य तथा जल आदिका परिग्रह, दाश (मछुवारा), वेश्या, मतंगी, (चाण्डाली), शूद्रा, नटी, रजस्वला, कन्या और विधवा [स्त्रियों]-से मैथुन, मांस, चर्म, रस तथा नमकका विक्रय, पैशुन्य (चुगली) और अस्पष्ट बात, असत्य गवाही आदि देना—इस प्रकारसे अन्य असंख्य विभिन्न प्रकारके पाप त्रिपुण्ड्र धारण करनेके प्रभावसे तत्काल ही नष्ट हो जाते हैं॥ ५६—६०॥

शिवद्रव्यापहरणं शिवनिन्दा च कुत्रचित्।
निन्दा च शिवभक्तानां प्रायश्चित्तैर्न शुध्यति॥ ६१

भगवान् शिवके द्रव्यका अपहरण और जहाँ-कहीं शिवकी निन्दा करनेवाला तथा शिवके भक्तोंकी निन्दा करनेवाला व्यक्ति प्रायश्चित्त करनेपर भी शुद्ध नहीं होता है॥ ६१॥

रुद्राक्षं यस्य गात्रेषु ललाटे तु त्रिपुण्ड्रकम्।
स चाण्डालोऽपि सम्पूज्यः सर्ववर्णोत्तमोत्तमः॥ ६२

जिसने शरीरपर रुद्राक्ष और मस्तकपर त्रिपुण्ड्र धारण किया है, ऐसा मनुष्य यदि चाण्डाल भी है, तो भी वह सभी वर्णोंमें श्रेष्ठतम और सम्पूज्य है॥ ६२॥

यानि तीर्थानि लोकेऽस्मिन् गङ्गाद्याः सरितश्च याः।
स्नातो भवति सर्वत्र ललाटे यस्त्रिपुण्ड्रकम्॥ ६३

जो मस्तकपर त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह इस संसारमें जितने भी तीर्थ हैं और गंगा आदि जितनी नदियाँ हैं, उन सबमें स्नान किये हुएके समान [पुण्यफल प्राप्त करनेवाला] होता है॥ ६३॥

सप्तकोटिमहामन्त्राः पञ्चाक्षरपुरस्सराः।
तथान्ये कोटिशो मन्त्राः शैवकैवल्यहेतवः॥ ६४

पंचाक्षरमन्त्रसे लेकर सात करोड़ महामन्त्र और अन्य करोड़ों मन्त्र शिवकैवल्यको प्रदान करनेवाले होते हैं॥ ६४॥

अन्ये मन्त्राश्च देवानां सर्वसौख्यकरा मुने।
ते सर्वे तस्य वश्याः स्युर्यो बिभर्ति त्रिपुण्ड्रकम्॥ ६५

हे मुने! [विष्णु आदि] देवताओंके [लिये प्रतिपादित] अन्य जो मन्त्र हैं, वे सभी सुखोंको देनेवाले हैं, जो त्रिपुण्ड्र धारण करता है, उसके वशमें वे सब मन्त्र स्वतः ही हो जाते हैं॥ ६५॥

सहस्रं पूर्वजातानां सहस्रं जनयिष्यताम्।
स्ववंशजानां ज्ञातीनामुद्धरेद्यस्त्रिपुण्ड्रकृत्॥ ६६

त्रिपुण्ड्र धारण करनेवाला मनुष्य अपने वंश और गोत्रमें उत्पन्न हजारों पूर्वजोंका और भविष्यमें उत्पन्न होनेवाली हजारों सन्तानोंका उद्धार करता है॥ ६६॥

इह भुक्त्वाखिलान्भोगान्दीर्घायुर्व्याधिवर्जितः।
जीवितान्ते च मरणं सुखेनैव प्रपद्यते॥ ६७

अष्टैश्वर्यगुणोपेतं प्राप्य दिव्यवपुः शिवम्।
दिव्यं विमानमारुह्य दिव्यत्रिदशसेवितम्॥ ६८

जो त्रिपुण्ड्र धारण करता है, उसे इस लोकमें रोगरहित दीर्घ आयु प्राप्त होती है और वह सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके जीवनके अन्तिम समयमें सुखपूर्वक ही मृत्युको प्राप्त करता है। वह मृत्युके पश्चात् अणिमा, महिमा आदि आठों ऐश्वर्यों और सद्गुणोंसे युक्त दिव्य शरीरवाले शिवको प्राप्त करता है और दिव्यलोकके देवोंसे सेवित दिव्य विमानपर चढ़कर शिवलोकको जाता है॥ ६७-६८॥

विद्याधराणां सर्वेषां गन्धर्वाणां महौजसाम्।
इन्द्रादिलोकपालानां लोकेषु च यथाक्रमम्॥ ६९

भुक्त्वा भोगान्सुविपुलान्प्रजेशानां पदेषु च।
ब्रह्मणः पदमासाद्य तत्र कन्याशतं रमेत्॥ ७०

वहाँपर वह सभी विद्याधरों और महापराक्रमी गन्धर्वों, इन्द्रादि लोकपालोंके लोकोंमें क्रमशः जाकर बहुत-से भोगोंका उपभोग करता हुआ प्रजापतियोंके पदों तथा ब्रह्माके पदपर आसीन होकर वहाँ [दिव्यलोककी] सैकड़ों कन्याओंके साथ आनन्दित होता है॥ ६९-७०॥

तत्र ब्रह्मायुषो मानं भुक्त्वा भोगाननेकशः।
विष्णोर्लोके लभेद्भोगं यावद् ब्रह्मशतात्ययः॥ ७१

शिवलोकं ततः प्राप्य लब्ध्वेष्टं काममक्षयम्।
शिवसायुज्यमाप्नोति संशयो नात्र जायते॥ ७२

वह उस लोकमें ब्रह्माकी आयुके बराबर आयुको प्राप्तकर अनेक सुखोंका भोग करके विष्णुलोकको जाता है और ब्रह्माके सौ वर्षोंतक सुखोंका भोग प्राप्त करता है। तदनन्तर वह शिवलोकको जाकर इच्छानुकूल अक्षय कामनाओंको प्राप्तकर शिवका सान्निध्य प्राप्त कर लेता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ७१-७२॥

सर्वोपनिषदां सारं समालोक्य मुहुर्मुहुः।
इदमेव हि निर्णीतं परं श्रेयस्त्रिपुण्ड्रकम्॥ ७३

सभी उपनिषदोंके सारको बार-बार सम्यक् रूपसे देखकर यही निर्णय लिया गया है कि त्रिपुण्ड्र धारण करना ही परम श्रेष्ठ है॥ ७३॥

विभूतिं निन्दते यो वै ब्राह्मणः सोऽन्यजातकः।
प्रयाति नरके घोरे यावद् ब्रह्मा चतुर्मुखः॥ ७४

जो ब्राह्मण विभूतिकी निन्दा करता है, वह ब्राह्मण नहीं है, अपितु अन्य जातिका है और विभूति-निन्दाके कारण उसे चतुर्मुख ब्रह्माकी आयुसीमातक नरक भोगना पड़ता है॥ ७४॥

श्राद्धे यज्ञे जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने।
धृतत्रिपुण्ड्रः पूतात्मा मृत्युं जयति मानवः॥ ७५

श्राद्ध, यज्ञ, जप, होम, बलिवैश्वदेव और देवपूजनके समय जो पूतात्मा मनुष्य त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह मृत्युको भी जीत लेता है॥ ७५॥

जलस्नानं मलत्यागे भस्मस्नानं सदा शुचिः।
मन्त्रस्नानं हरेत्पापं ज्ञानस्नाने परं पदम्॥ ७६

मलत्याग करनेपर [शुद्धिके लिये] जलस्नान किया जाता है, भस्मस्नान करनेपर सदा पवित्रता आती है, मन्त्रस्नान पापका हरण करता है और ज्ञानरूपी जलमें अवगाहन करनेपर परमपदकी प्राप्ति होती है॥ ७६॥

सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम्।
तत्फलं समवाप्नोति भस्मस्नानकरो नरः॥ ७७

समस्त तीर्थोंमें [स्नान करनेसे] जो पुण्य और फल प्राप्त होता है, वह फल, भस्मस्नान करनेवालेको प्राप्त हो जाता है॥ ७७॥

भस्मस्नानं परं तीर्थं गङ्गास्नानं दिने दिने।
भस्मरूपी शिवः साक्षाद्भस्म त्रैलोक्यपावनम्॥ ७८

भस्मस्नान ही परम श्रेष्ठ तीर्थ है, जो प्रतिदिन गंगा (तीर्थ)-स्नानके समान है। भस्म तो भस्मरूपी साक्षात् शिव है, जो त्रैलोक्यको पवित्र करनेवाला है॥ ७८॥

न तत्स्नानं न तद्ध्यानं न तद्दानं जपो न सः।
त्रिपुण्ड्रेण विना येन विप्रेण यदनुष्ठितम्॥ ७९

बिना त्रिपुण्ड्र धारण किये हुए जो ब्राह्मण स्नान, ध्यान, दान और जप आदि अनुष्ठान कर्म करता है, वह न तो स्नान है, न ध्यान है, न दान है और न जप आदि अन्य अनुष्ठित कर्म ही है॥ ७९॥

वानप्रस्थस्य कन्यानां दीक्षाहीननृणां तथा।
मध्याह्नात्प्राग्जलैर्युक्तं परतो जलवर्जितम्॥ ८०

एवं त्रिपुण्ड्रं यः कुर्यान्नित्यं नियतमानसः।
शिवभक्तः स विज्ञेयो भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति॥ ८१

वानप्रस्थ, कन्या और दीक्षारहित मनुष्योंको मध्याह्नके पूर्व ही जलसे युक्त त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये, किंतु मध्याह्नके पश्चात् जलरहित भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करना उचित है। इस प्रकार श्रद्धापूर्वक दृढ़ निश्चयवाला जो व्यक्ति नित्य त्रिपुण्ड्र धारण करता है, उसे ही शिवभक्त जानना चाहिये। उसीको भुक्ति तथा मुक्ति भी प्राप्त होती है॥ ८०-८१॥

यस्याङ्गे नैव रुद्राक्ष एकोऽपि बहुपुण्यदः।
तस्य जन्म निरर्थं स्यात्त्रिपुण्ड्ररहितो यदि॥ ८२

जिसके अंगपर प्रचुर पुण्य देनेवाला एक भी रुद्राक्ष नहीं है और वह त्रिपुण्ड्रसे भी रहित है, उसका जन्म लेना व्यर्थ है॥ ८२॥

एवं त्रिपुण्ड्रमाहात्म्यं समासात् कथितं मया।
रहस्यं सर्वजन्तूनां गोपनीयमिदं त्वया॥ ८३

[इसके पश्चात् भस्मधारण तथा त्रिपुण्ड्रकी महिमा एवं विधि बताकर सूतजीने फिर कहा—हे महर्षियो!] इस प्रकार मैंने संक्षेपसे त्रिपुण्ड्रका माहात्म्य बताया है। यह समस्त प्राणियोंके लिये गोपनीय रहस्य है। अतः आपको भी इसे गुप्त ही रखना चाहिये॥ ८३॥

तिस्रो रेखा भवन्त्येव स्थानेषु मुनिपुङ्गवाः।
ललाटादिषु सर्वेषु यथोक्तेषु बुधैर्मुने॥ ८४

मुनिवरो! ललाट आदि सभी निर्दिष्ट स्थानोंमें जो भस्मसे तीन तिरछी रेखाएँ बनायी जाती हैं, उन्हींको विद्वानोंने त्रिपुण्ड्र कहा है॥ ८४॥

भ्रुवोर्मध्यं समारभ्य यावदन्तो भवेद् भ्रुवोः।
तावत्प्रमाणं सन्धार्यं ललाटे च त्रिपुण्ड्रकम्॥ ८५

भौहोंके मध्य भागसे लेकर जहाँतक भौहोंका अन्त है, उतना बड़ा त्रिपुण्ड्र ललाटमें धारण करना चाहिये॥ ८५॥

मध्यमानामिकाङ्गुल्या मध्ये तु प्रतिलोमतः।
अङ्गुष्ठेन कृता रेखा त्रिपुण्ड्राख्याभिधीयते॥ ८६

मध्येऽङ्गुलिभिरादाय तिसृभिर्भस्म यत्नतः।
त्रिपुण्ड्रं धारयेद्भक्त्या भुक्तिमुक्तिप्रदं परम्॥ ८७

मध्यमा और अनामिका अँगुलीसे दो रेखाएँ करके बीचमें अंगुष्ठद्वारा प्रतिलोमभावसे की गयी रेखा त्रिपुण्ड्र कहलाती है अथवा बीचकी तीन अँगुलियोंसे भस्म लेकर यत्नपूर्वक भक्तिभावसे ललाटमें त्रिपुण्ड्र धारण करे। त्रिपुण्ड्र अत्यन्त उत्तम तथा भोग और मोक्षको देनेवाला है॥ ८६-८७॥

त्रिसृणामपि रेखानां प्रत्येकं नवदेवताः।
सर्वत्राङ्गेषु ता वक्ष्ये सावधानतया शृणु॥ ८८

त्रिपुण्ड्रकी तीनों रेखाओंमेंसे प्रत्येकके नौ-नौ देवता हैं, जो सभी अंगोंमें स्थित हैं, मैं उनका परिचय देता हूँ, सावधान होकर सुनें॥ ८८॥

अकारो गार्हपत्याग्निर्भूर्धर्मश्च रजोगुणः।
ऋग्वेदश्च क्रियाशक्तिः प्रातःसवनमेव च॥ ८९

महादेवश्च रेखायाः प्रथमायाश्च देवता।
विज्ञेया मुनिशार्दूलाः शिवदीक्षापरायणैः॥ ९०

हे मुनिवरो! प्रणवका प्रथम अक्षर अकार, गार्हपत्य अग्नि, पृथ्वी, धर्म, रजोगुण, ऋग्वेद, क्रियाशक्ति, प्रातःसवन तथा महादेव—ये त्रिपुण्ड्रकी प्रथम रेखाके नौ देवता हैं, यह बात शिवदीक्षापरायण पुरुषोंको अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये॥ ८९-९०॥

उकारो दक्षिणाग्निश्च नभस्तत्त्वं यजुस्तथा।
मध्यन्दिनं च सवनमिच्छाशक्त्यन्तरात्मकौ॥ ९१

महेश्वरश्च रेखाया द्वितीयायाश्च देवता।
विज्ञेया मुनिशार्दूल शिवदीक्षापरायणैः॥ ९२

हे मुनिश्रेष्ठो! प्रणवका दूसरा अक्षर उकार, दक्षिणाग्नि, आकाश, सत्त्वगुण, यजुर्वेद, माध्यन्दिनसवन, इच्छाशक्ति, अन्तरात्मा तथा महेश्वर—ये दूसरी रेखाके नौ देवता हैं—ऐसा शिवदीक्षित लोगोंको जानना चाहिये॥ ९१-९२॥

मकाराहवनीयौ च परमात्मा तमो दिवौ।
ज्ञानशक्तिः सामवेदस्तृतीयं सवनं तथा॥ ९३

शिवश्चैव च रेखायास्तृतीयायाश्च देवता।
विज्ञेया मुनिशार्दूल शिवदीक्षापरायणैः॥ ९४

हे मुनिश्रेष्ठो! प्रणवका तीसरा अक्षर मकार, आहवनीय अग्नि, परमात्मा, तमोगुण, द्युलोक, ज्ञानशक्ति, सामवेद, तृतीय सवन तथा शिव—ये तीसरी रेखाके नौ देवता हैं—ऐसा शिवदीक्षित भक्तोंको जानना चाहिये॥ ९३-९४॥

एवं नित्यं नमस्कृत्य सद्भक्त्या स्थानदेवताः।
त्रिपुण्ड्रं धारयेच्छुद्धो भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति॥ ९५

इस प्रकार स्थानदेवताओंको उत्तम भक्तिभावसे नित्य नमस्कार करके स्नान आदिसे शुद्ध हुआ पुरुष यदि त्रिपुण्ड्र धारण करे, तो भोग और मोक्षको भी प्राप्त कर लेता है॥ ९५॥

इत्युक्ताः स्थानदेवाश्च सर्वाङ्गेषु मुनीश्वराः।
तेषां सम्बन्धिनो भक्त्या स्थानानि शृणु साम्प्रतम्॥ ९६

हे मुनीश्वरो! ये सम्पूर्ण अंगोंमें स्थान-देवता बताये गये हैं, अब उनसे सम्बन्धित स्थान बताता हूँ, भक्तिपूर्वक सुनिये॥ ९६॥

द्वात्रिंशत्स्थानके वार्धषोडशस्थानकेऽपि च।
अष्टस्थाने तथा चैव पञ्चस्थानेऽपि नान्यसेत्॥ ९७
उत्तमाङ्गे ललाटे च कर्णयोर्नेत्रयोस्तथा।
नासावक्त्रगलेष्वेवं हस्तयोरुभयोस्ततः॥ ९८
कूर्परे मणिबन्धे च हृदये पार्श्वयोर्द्वयोः।
नाभौ मुष्कद्वये चैवमूर्वोर्गुल्फे च जानुनि॥ ९९
जङ्घाद्वये पदद्वन्द्वे द्वात्रिंशत्स्थानमुत्तमम्।
अग्न्यब्भूवायुदिग्देशदिक्पालान् वसुभिः सह॥ १००

बत्तीस, सोलह, आठ अथवा पाँच स्थानोंमें मनुष्य त्रिपुण्ड्रका न्यास करे। मस्तक, ललाट, दोनों कान, दोनों नेत्र, दोनों नासिका, मुख, कण्ठ, दोनों हाथ, दोनों कोहनी, दोनों कलाई, हृदय, दोनों पार्श्वभाग, नाभि, दोनों अण्डकोष, दोनों ऊरु, दोनों गुल्फ, दोनों घुटने, दोनों पिण्डली और दोनों पैर—ये बत्तीस उत्तम स्थान हैं; इनमें क्रमशः अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु, दस दिक्प्रदेश, दस दिक्पाल तथा आठ वसुओंका निवास है॥ ९७—१००॥

धरा ध्रुवश्च सोमश्च आपश्चैवानिलोऽनलः।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्ट प्रकीर्तिताः॥ १०१
एतेषां नाममात्रेण त्रिपुण्ड्रं धारयेद् बुधः।
कुर्याद्वा षोडशस्थाने त्रिपुण्ड्रं तु समाहितः॥ १०२

धरा (धर), ध्रुव, सोम, आप, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसु कहे गये हैं। इन सबका नाममात्र लेकर इनके स्थानोंमें विद्वान् पुरुष त्रिपुण्ड्र धारण करे। अथवा एकाग्रचित्त होकर सोलह स्थानोंमें ही त्रिपुण्ड्र धारण करे॥ १०१-१०२॥

शीर्षके च ललाटे च कण्ठे चांसद्वये भुजे।
कूर्परे मणिबन्धे च हृदये नाभिपार्श्वके॥ १०३
पृष्ठे चैवं प्रतिष्ठाप्य यजेत्तत्राश्विदैवते।
शिवं शक्तिं तथा रुद्रमीशं नारदमेव च॥ १०४
वामादिनवशक्तीश्च एता षोडश देवताः।
नासत्यौ दस्त्रकश्चैव अश्विनौ द्वौ प्रकीर्तितौ॥ १०५

मस्तक, ललाट, कण्ठ, दोनों कन्धों, दोनों भुजाओं, दोनों कोहनियों तथा दोनों कलाइयोंमें, हृदयमें, नाभिमें, दोनों पसलियोंमें तथा पृष्ठभागमें त्रिपुण्ड्र लगाकर वहाँ दोनों अश्विनीकुमारों, शिव, शक्ति, रुद्र, ईश तथा नारदका और वामा आदि नौ शक्तियोंका पूजन करे। ये सब मिलकर सोलह देवता हैं। अश्विनीकुमार युगल कहे गये हैं—नासत्य और दस्र॥ १०३—१०५॥

अथवा मूर्ध्नि केशे च कर्णयोर्वदने तथा।
बाहुद्वये च हृदये नाभ्यामूरुयुगे तथा॥ १०६
जानुद्वये च पदयोः पृष्ठभागे च षोडश।
शिवश्चन्द्रश्च रुद्रः को विघ्नेशो विष्णुरेव वा॥ १०७
श्रीश्चैव हृदये शम्भुस्तथा नाभौ प्रजापतिः।
नागश्च नागकन्याश्च उभयोर्ऋषिकन्यकाः॥ १०८
पादयोश्च समुद्राश्च तीर्थाः पृष्ठे विशालतः।
इत्येवं षोडशस्थानमष्टस्थानमथोच्यते॥ १०९

अथवा मस्तक, केश, दोनों कान, मुख, दोनों भुजा, हृदय, नाभि, दोनों ऊरु, दोनों जानु, दोनों पैर और पृष्ठभाग—इन सोलह स्थानोंमें सोलह त्रिपुण्ड्रका न्यास करे। मस्तकमें शिव, केशोंमें चन्द्रमा, दोनों कानोंमें रुद्र और ब्रह्मा, मुखमें विघ्नराज गणेश, दोनों भुजाओंमें विष्णु और लक्ष्मी, हृदयमें शम्भु, नाभिमें प्रजापति, दोनों ऊरुओंमें नाग और नागकन्याएँ, दोनों घुटनोंमें ऋषिकन्याएँ, दोनों पैरोंमें समुद्र तथा विशाल पृष्ठभागमें सम्पूर्ण तीर्थ देवतारूपसे विराजमान हैं। इस प्रकार सोलह स्थानोंका परिचय दिया गया। अब आठ स्थान बताये जा रहे हैं॥ १०६—१०९॥

गुह्यस्थानं ललाटश्च कर्णद्वयमनुत्तमम्।
अंसयुग्मं च हृदयं नाभिरित्येवमष्टकम्॥ ११०
ब्रह्मा च ऋषयः सप्त देवताश्च प्रकीर्तिताः।
इत्येवं तु समुद्दिष्टं भस्मविद्भिर्मुनीश्वराः॥ १११

गुह्य स्थान, ललाट, परम उत्तम कर्णयुगल, दोनों कन्धे, हृदय और नाभि—ये आठ स्थान हैं। इनमें ब्रह्मा तथा सप्तर्षि—ये आठ देवता बताये गये हैं। हे मुनीश्वरो! भस्मके स्थानको जाननेवाले विद्वानोंने इस तरह आठ स्थानोंका परिचय दिया है। अथवा

अथवा मस्तकं बाहू हृदयं नाभिरेव च।
पञ्चस्थानान्यमून्याहुर्धारणे भस्मविज्जनाः॥ ११२

यथासम्भवनं कुर्याद्देशकालाद्यपेक्षया।
उद्धूलनेऽप्यशक्तश्चेत्त्रिपुण्ड्रादीनि कारयेत्॥ ११३

मस्तक, दोनों भुजाएँ, हृदय और नाभि—इन पाँच स्थानोंको भस्मवेत्ता पुरुषोंने भस्म धारणके योग्य बताया है। यथासम्भव देश, काल आदिकी अपेक्षा रखते हुए उद्धूलन (भस्म)-को अभिमन्त्रित करना और जलमें मिलाना आदि कार्य करे। यदि उद्धूलनमें भी असमर्थ हो, तो त्रिपुण्ड्र आदि लगाये॥ ११०—११३॥

त्रिनेत्रं त्रिगुणाधारं त्रिदेवजनकं शिवम्।
स्मरन्नमः शिवायेति ललाटे तु त्रिपुण्ड्रकम्॥ ११४

ईशाभ्यां नम इत्युक्त्वा पार्श्वयोश्च त्रिपुण्ड्रकम्।
बीजाभ्यां नम इत्युक्त्वा धारयेत्तु प्रकोष्ठयोः॥ ११५

कुर्यादधः पितृभ्यां च उमेशाभ्यां तथोपरि।
भीमायेति ततः पृष्ठे शिरसः पश्चिमे तथा॥ ११६

त्रिनेत्रधारी, तीनों गुणोंके आधार तथा तीनों देवताओंके जनक भगवान् शिवका स्मरण करते हुए '**नमः शिवाय**' कहकर ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगाये। '**ईशाभ्यां नमः**'—ऐसा कहकर दोनों पार्श्वभागोंमें त्रिपुण्ड्र धारण करे। '**बीजाभ्यां नमः**'—यह बोलकर दोनों प्रकोष्ठोंमें भस्म लगाये। '**पितृभ्यां नमः**' कहकर नीचेके अंगमें, '**उमेशाभ्यां नमः**' कहकर ऊपरके अंगमें तथा '**भीमाय नमः**' कहकर पीठमें और सिरके पिछले भागमें त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिये॥ ११४—११६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां भस्मधारणवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

॥ इस प्रकार शिवमहापुराणके प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें भस्मधारणवर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

रुद्राक्षधारणकी महिमा तथा उसके विविध भेदोंका वर्णन

सूत उवाच

शौनकर्षे महाप्राज्ञ शिवरूप महामते।
शृणु रुद्राक्षमाहात्म्यं समासात् कथयाम्यहम्॥ १

सूतजी बोले—हे महाप्राज्ञ! हे महामते! शिवरूप हे शौनक ऋषे! अब मैं संक्षेपसे रुद्राक्षका माहात्म्य बता रहा हूँ, सुनिये॥ १॥

शिवप्रियतमो ज्ञेयो रुद्राक्षः परपावनः।
दर्शनात् स्पर्शनाज्जाप्यात् सर्वपापहरः स्मृतः॥ २

रुद्राक्ष शिवको बहुत ही प्रिय है। इसे परम पावन समझना चाहिये। रुद्राक्षके दर्शनसे, स्पर्शसे तथा उसपर जप करनेसे वह समस्त पापोंका अपहरण करनेवाला माना गया है॥ २॥

पुरा रुद्राक्षमहिमा देव्यग्रे कथितो मुने।
लोकोपकरणार्थाय शिवेन परमात्मना॥ ३

हे मुने! पूर्वकालमें परमात्मा शिवने समस्त लोकोंका उपकार करनेके लिये देवी पार्वतीके सामने रुद्राक्षकी महिमाका वर्णन किया था॥ ३॥

शिव उवाच

श्रूयतां तु महेशानि रुद्राक्षमहिमा शिवे।
कथयामि तव प्रीत्या भक्तानां हितकाम्यया॥ ४

शिवजी बोले—हे महेश्वरि! हे शिवे! मैं आपके प्रेमवश भक्तोंके हितकी कामनासे रुद्राक्षकी महिमाका वर्णन करता हूँ, सुनिये॥ ४॥

दिव्यवर्षसहस्राणि महेशानि पुनः पुरा।
तपः प्रकुर्वतस्त्रस्तं मनः संयम्य वै मम॥ ५

हे महेशानि! पूर्वकालकी बात है, मैं मनको संयममें रखकर हजारों दिव्य वर्षोंतक घोर तपस्यामें लगा रहा॥ ५॥

स्वतन्त्रेण परेशेन लोकोपकृतिकारिणा।
लीलया परमेशानि चक्षुरुन्मीलितं मया॥ ६

हे परमेश्वरि! मैं सम्पूर्ण लोकोंका उपकार करनेवाला स्वतन्त्र परमेश्वर हूँ। [एक दिन सहसा मेरा मन क्षुब्ध हो उठा।] अतः उस समय मैंने लीलावश ही अपने दोनों नेत्र खोले॥ ६॥

पुटाभ्यां चारुचक्षुर्भ्यां पतिता जलबिन्दवः।
तत्राश्रुबिन्दुतो जाता वृक्षा रुद्राक्षसंज्ञकाः॥ ७

नेत्र खोलते ही मेरे मनोहर नेत्रपुटोंसे कुछ जलकी बूँदें गिरीं। आँसूकी उन बूँदोंसे वहाँ रुद्राक्ष नामक वृक्ष पैदा हो गये॥ ७॥

स्थावरत्वमनुप्राप्य भक्तानुग्रहकारणात्।
ते दत्ता विष्णुभक्तेभ्यश्चतुर्वर्णेभ्य एव च॥ ८

भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये वे अश्रुबिन्दु स्थावरभावको प्राप्त हो गये। वे रुद्राक्ष मैंने विष्णुभक्तोंको तथा चारों वर्णोंके लोगोंको बाँट दिये॥ ८॥

भूमौ गौडोद्भवांश्चक्रे रुद्राक्षाञ्छिववल्लभान्।
मथुरायामयोध्यायां लङ्कायां मलये तथा॥ ९
सह्याद्रौ च तथा काश्यां देशेष्वन्येषु वा तथा।
परानसह्यपापौघभेदनाञ्छ्रुतिनोदनान्॥ १०

भूतलपर अपने प्रिय रुद्राक्षोंको मैंने गौड़ देशमें उत्पन्न किया। मथुरा, अयोध्या, लंका, मलयाचल, सह्यगिरि, काशी तथा अन्य देशोंमें भी उनके अंकुर उगाये। वे उत्तम रुद्राक्ष असह्य पापसमूहोंका भेदन करनेवाले तथा श्रुतियोंके भी प्रेरक हैं॥ ९-१०॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा जाता ममाज्ञया।
रुद्राक्षास्ते पृथिव्यां तु तज्जातीयाः शुभाक्षकाः॥ ११

मेरी आज्ञासे वे रुद्राक्ष ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जातिके भेदसे इस भूतलपर प्रकट हुए। रुद्राक्षोंकी ही जातिके शुभाक्ष भी हैं॥ ११॥

श्वेतरक्ताः पीतकृष्णा वर्णा ज्ञेयाः क्रमाद् बुधैः।
स्वजातीयं नृभिर्धार्यं रुद्राक्षं वर्णतः क्रमात्॥ १२

उन ब्राह्मणादि जातिवाले रुद्राक्षोंके वर्ण श्वेत, रक्त, पीत तथा कृष्ण जानने चाहिये। मनुष्योंको चाहिये कि वे क्रमशः वर्णके अनुसार अपनी जातिका ही रुद्राक्ष धारण करें॥ १२॥

वर्णैस्तु तत्फलं धार्यं भुक्तिमुक्तिफलेप्सुभिः।
शिवभक्तैर्विशेषेण शिवयोः प्रीतये सदा॥ १३

भोग और मोक्षकी इच्छा रखनेवाले चारों वर्णोंके लोगों और विशेषतः शिवभक्तोंको शिव-पार्वतीकी प्रसन्नताके लिये रुद्राक्षके फलोंको अवश्य धारण करना चाहिये॥ १३॥

धात्रीफलप्रमाणं यच्छ्रेष्ठमेतदुदाहृतम्।
बदरीफलमात्रं तु मध्यमं सम्प्रकीर्तितम्॥ १४
अधमं चणमात्रं स्यात् प्रक्रियैषा परोच्यते।
शृणु पार्वति सुप्रीत्या भक्तानां हितकाम्यया॥ १५

आँवलेके फलके बराबर जो रुद्राक्ष हो, वह श्रेष्ठ बताया गया है। जो बेरके फलके बराबर हो, उसे मध्यम श्रेणीका कहा गया है। जो चनेके बराबर हो, उसकी गणना निम्न कोटिमें की गयी है। हे पार्वति! अब इसकी उत्तमताको परखनेकी यह दूसरी प्रक्रिया भक्तोंकी हितकामनासे बतायी जाती है। अतः आप भलीभाँति प्रेमपूर्वक इस विषयको सुनिये॥ १४-१५॥

बदरीफलमात्रं च यत् स्यात् किल महेश्वरि।
तथापि फलदं लोके सुखसौभाग्यवर्धनम्॥ १६

हे महेश्वरि! जो रुद्राक्ष बेरके फलके बराबर होता है, वह उतना छोटा होनेपर भी लोकमें उत्तम फल देनेवाला तथा सुख-सौभाग्यकी वृद्धि करनेवाला होता है॥ १६॥

धात्रीफलसमं यत् स्यात् सर्वारिष्टविनाशनम्।
गुञ्जया सदृशं यत् स्यात् सर्वार्थफलसाधनम्॥ १७

जो रुद्राक्ष आँवलेके फलके बराबर होता है, वह समस्त अरिष्टोंका विनाश करनेवाला होता है तथा जो गुंजाफलके समान बहुत छोटा होता है, वह सम्पूर्ण मनोरथों और फलोंकी सिद्धि करनेवाला होता है॥ १७॥

यथा यथा लघुः स्याद्वै तथाधिकफलप्रदः।
एकैकतः फलं प्रोक्तं दशांशैरधिकं बुधैः॥ १८

रुद्राक्ष जैसे-जैसे छोटा होता है, वैसे-वैसे अधिक फल देनेवाला होता है। एक छोटे रुद्राक्षको विद्वानोंने एक बड़े रुद्राक्षसे दस गुना अधिक फल देनेवाला बताया है॥ १८॥

रुद्राक्षधारणं प्रोक्तं पापनाशनहेतवे।
तस्माच्च धारणीयो वै सर्वार्थसाधनो ध्रुवम्॥ १९

पापोंका नाश करनेके लिये रुद्राक्षधारण आवश्यक बताया गया है। वह निश्चय ही सम्पूर्ण अभीष्ट मनोरथोंका साधक है, अतः उसे अवश्य ही धारण करना चाहिये॥ १९॥

यथा च दृश्यते लोके रुद्राक्षः फलदः शुभः।
न तथा दृश्यतेऽन्या च मालिका परमेश्वरि॥ २०

हे परमेश्वरि! लोकमें मंगलमय रुद्राक्ष जैसा फल देनेवाला देखा जाता है, वैसी फलदायिनी दूसरी कोई माला नहीं दिखायी देती॥ २०॥

समाः स्निग्धा दृढाः स्थूलाः कण्टकैः संयुताः शुभाः।
रुद्राक्षाः कामदा देवि भुक्तिमुक्तिप्रदाः सदा॥ २१

हे देवि! समान आकार-प्रकारवाले, चिकने, सुदृढ़, स्थूल, कण्टकयुक्त (उभरे हुए छोटे-छोटे दानोंवाले) और सुन्दर रुद्राक्ष अभिलषित पदार्थोंके दाता तथा सदैव भोग और मोक्ष देनेवाले हैं॥ २१॥

कृमिदुष्टं छिन्नभिन्नं कण्टकैर्हीनमेव च।
व्रणयुक्तमवृत्तं च रुद्राक्षान् षड् विवर्जयेत्॥ २२

जिसे कीड़ोंने दूषित कर दिया हो, जो खण्डित हो, फूटा हो, जिसमें उभरे हुए दाने न हों, जो व्रणयुक्त हो तथा जो पूरा-पूरा गोल न हो, इन छः प्रकारके रुद्राक्षोंको त्याग देना चाहिये॥ २२॥

स्वयमेव कृतद्वारं रुद्राक्षं स्यादिहोत्तमम्।
यत्तु पौरुषयत्नेन कृतं तन्मध्यमं भवेत्॥ २३

जिस रुद्राक्षमें अपने आप ही डोरा पिरोनेके योग्य छिद्र हो गया हो, वही यहाँ उत्तम माना गया है। जिसमें मनुष्यके प्रयत्नसे छेद किया गया हो, वह मध्यम श्रेणीका होता है॥ २३॥

रुद्राक्षधारणं प्रोक्तं महापातकनाशनम्।
रुद्रसङ्ख्याशतं धृत्वा रुद्ररूपो भवेन्नरः॥ २४

रुद्राक्षधारण बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला बताया गया है। ग्यारह सौ रुद्राक्षोंको धारण करनेवाला मनुष्य रुद्रस्वरूप ही हो जाता है॥ २४॥

एकादशशतानीह धृत्वा यत्फलमाप्यते।
तत्फलं शक्यते नैव वक्तुं वर्षशतैरपि॥ २५

इस जगत्में ग्यारह सौ रुद्राक्ष धारण करके मनुष्य जिस फलको पाता है, उसका वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता॥ २५॥

शतार्धेन युतैः पञ्चशतैर्वै मुकुटं मतम्।
रुद्राक्षैर्विरचेत्सम्यग्भक्तिमान्पुरुषो वरः॥ २६
त्रिभिः शतैः षष्टियुक्तैस्त्रिरावृत्त्या तथा पुनः।
रुद्राक्षैरुपवीतं च निर्मीयाद्भक्तितत्परः॥ २७

भक्तिमान् पुरुष भलीभाँति साढ़े पाँच सौ रुद्राक्षके दानोंका सुन्दर मुकुट बनाये। तीन सौ साठ दानोंको लम्बे सूत्रमें पिरोकर एक हार बना ले। वैसे-वैसे तीन हार बनाकर भक्तिपरायण पुरुष उनका यज्ञोपवीत तैयार करे॥ २६-२७॥

शिखायां च त्रयं प्रोक्तं रुद्राक्षाणां महेश्वरि।
कर्णयोः षट् च षट् चैव वामदक्षिणयोस्तथा॥ २८
शतमेकोत्तरं कण्ठे बाह्वोर्वै रुद्रसङ्ख्यया।
कूर्परद्वारयोस्तत्र मणिबन्धे तथा पुनः॥ २९
उपवीते त्रयं धार्यं शिवभक्तिरतैर्नरैः।
शेषानुर्वरितान्पञ्च सम्मितान्धारयेत्कटौ॥ ३०
एतत्सङ्ख्या धृता येन रुद्राक्षाः परमेश्वरि।
तद्रूपं तु प्रणम्यं हि स्तुत्यं सर्वैर्महेशवत्॥ ३१

हे महेश्वरि! शिवभक्त मनुष्योंको शिखामें तीन, दाहिने और बाँयें दोनों कानोंमें क्रमशः छः-छः, कण्ठमें एक सौ एक, भुजाओंमें ग्यारह-ग्यारह, दोनों कुहनियों और दोनों मणिबन्धोंमें पुनः ग्यारह-ग्यारह, यज्ञोपवीतमें तीन तथा कटिप्रदेशमें गुप्त रूपसे पाँच रुद्राक्ष धारण करना चाहिये। हे परमेश्वरि! [उपर्युक्त कही गयी] इस संख्याके अनुसार जो व्यक्ति रुद्राक्ष धारण करता है, उसका स्वरूप भगवान् शंकरके समान सभी लोगोंके लिये प्रणम्य और स्तुत्य हो जाता है॥ २८—३१॥

एवंभूतं स्थितं ध्याने यदा कृत्वासने जनम्।
शिवेति व्याहरंश्चैव दृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते॥ ३२

इस प्रकार रुद्राक्षसे युक्त होकर मनुष्य जब आसन लगाकर ध्यानपूर्वक शिवका नाम जपने लगता है, तो उसको देखकर पाप स्वतः छोड़कर भाग जाते हैं॥ ३२॥

शताधिकसहस्रस्य विधिरेष प्रकीर्तितः।
तदभावे प्रकारोऽन्यः शुभः सम्प्रोच्यते मया॥ ३३

इस तरह मैंने एक हजार एक सौ रुद्राक्षोंको धारण करनेकी विधि कह दी है। इतने रुद्राक्षोंके न प्राप्त होनेपर मैं दूसरे प्रकारकी कल्याणकारी विधि कह रहा हूँ॥ ३३॥

शिखायामेकरुद्राक्षं शिरसा त्रिंशतं वहेत्।
पञ्चाशच्च गले दध्याद् बाह्वोः षोडश षोडश॥ ३४

शिखामें एक, सिरपर तीस, गलेमें पचास और दोनों भुजाओंमें सोलह-सोलह रुद्राक्ष धारण करना चाहिये॥ ३४॥

मणिबन्धे द्वादश द्विस्कन्धे पञ्चशतं वहेत्।
अष्टोत्तरशतैर्माल्यमुपवीतं प्रकल्पयेत्॥ ३५

दोनों मणिबन्धोंपर बारह, दोनों स्कन्धोंमें पाँच सौ और एक सौ आठ रुद्राक्षोंकी माला बनाकर यज्ञोपवीतके रूपमें धारण करना चाहिये॥ ३५॥

एवं सहस्ररुद्राक्षान्धारयेद्यो दृढव्रतः।
तं नमन्ति सुराः सर्वे यथा रुद्रस्तथैव सः॥ ३६

इस प्रकार दृढ़ निश्चय करनेवाला जो मनुष्य एक हजार रुद्राक्षोंको धारण करता है, वह रुद्र-स्वरूप है; समस्त देवगण जैसे शिवको नमस्कार करते हैं, वैसे ही उसको भी नमन करते हैं॥ ३६॥

एकं शिखायां रुद्राक्षं चत्वारिंशत्तु मस्तके।
द्वात्रिंशत्कण्ठदेशे तु वक्षस्यष्टोत्तरं शतम्॥ ३७
एकैकं कर्णयोः षट् षट् बाह्वोः षोडश षोडश।
करयो रविमानेन द्विगुणेन मुनीश्वर॥ ३८

शिखामें एक, मस्तकपर चालीस, कण्ठप्रदेशमें बत्तीस, वक्षःस्थलपर एक सौ आठ, प्रत्येक कानमें एक-एक, भुजबन्धोंमें छः-छः या सोलह-सोलह, दोनों हाथोंमें उनका दुगुना अथवा हे मुनीश्वर!

सङ्ख्या प्रीतिधृता येन सोऽपि शैवजनः परः।
शिववत्पूजनीयो हि वन्द्यः सर्वैरभीक्ष्णशः॥ ३९

प्रीतिपूर्वक जितनी इच्छा हो, उतने रुद्राक्षोंको धारण करना चाहिये। ऐसा जो करता है, वह शिवभक्त सभी लोगोंके लिये शिवके समान पूजनीय, वन्दनीय और बार-बार दर्शनके योग्य हो जाता है॥ ३७—३९॥

शिरसीशानमन्त्रेण कर्णे तत्पुरुषेण च।
अघोरेण गले धार्यं तेनैव हृदयेऽपि च॥ ४०

सिरपर ईशानमन्त्रसे, कानमें तत्पुरुषमन्त्रसे तथा गले और हृदयमें अघोरमन्त्रसे रुद्राक्ष धारण करना चाहिये॥ ४०॥

अघोरबीजमन्त्रेण करयोर्धारयेत्सुधीः।
पञ्चदशाक्षग्रथितां वामदेवेन चोदरे॥ ४१

विद्वान् पुरुष दोनों हाथोंमें अघोर बीजमन्त्रसे रुद्राक्ष धारण करे और उदरपर वामदेवमन्त्रसे पन्द्रह रुद्राक्षोंद्वारा गूँथी हुई माला धारण करे॥ ४१॥

पञ्चब्रह्मभिरङ्गैश्च त्रिमालां पञ्च सप्त च।
अथ वा मूलमन्त्रेण सर्वानक्षांस्तु धारयेत्॥ ४२

सद्योजात आदि पाँच ब्रह्ममन्त्रों तथा अंगमन्त्रोंके द्वारा रुद्राक्षकी तीन, पाँच या सात मालाएँ धारण करे अथवा मूलमन्त्र [**नमः शिवाय**]-से ही समस्त रुद्राक्षोंको धारण करे॥ ४२॥

मद्यं मांसं तु लशुनं पलाण्डुं शिग्रुमेव च।
श्लेष्मान्तकं विड्वराहं भक्षणे वर्जयेत्ततः॥ ४३

रुद्राक्षधारी पुरुष अपने खान-पानमें मदिरा, मांस, लहसुन, प्याज, सहिजन, लिसोड़ा, विड्वराह आदिको त्याग दे॥ ४३॥

वलक्षं रुद्राक्षं द्विजतनुभिरेवेह विहितं
सुरक्तं क्षत्राणां प्रमुदितमुमे पीतमसकृत्।
ततो वैश्यैर्धार्यं प्रतिदिवसमावश्यकमहो
तथा कृष्णं शूद्रैः श्रुतिगदितमार्गोऽयमगजे॥ ४४

हे गिरिराजनन्दिनी उमे! श्वेत रुद्राक्ष केवल ब्राह्मणोंको ही धारण करना चाहिये। गहरे लाल रंगका रुद्राक्ष क्षत्रियोंके लिये हितकर बताया गया है। वैश्योंके लिये प्रतिदिन बार-बार पीले रुद्राक्षको धारण करना आवश्यक है और शूद्रोंको काले रंगका रुद्राक्ष धारण करना चाहिये—यह वेदोक्त मार्ग है॥ ४४॥

वर्णी वनी गृहयतिर्नियमेन दध्या-
देतद्रहस्यपरमो न हि जातु तिष्ठेत्।
रुद्राक्षधारणमिदं सुकृतैश्च लभ्यं
त्यक्त्वेदमेतदखिलान्नरकान् प्रयान्ति॥ ४५

ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, गृहस्थ और संन्यासी—सबको नियमपूर्वक रुद्राक्ष धारण करना उचित है। इसे धारण किये बिना न रहे, यह परम रहस्य है। इसे धारण करनेका सौभाग्य बड़े पुण्यसे प्राप्त होता है। इसको त्यागनेवाला व्यक्ति नरकको जाता है॥ ४५॥

आदावामलकास्ततो लघुतरा
रुग्णास्ततः कण्टकैः
सन्दष्टाः कृमिभिस्तनूपकरण-
च्छिद्रेण हीनास्तथा।
धार्या नैव शुभेप्सुभिश्चणकवद्
रुद्राक्षमप्यन्ततो
रुद्राक्षो मम लिङ्गमङ्गलमुमे
सूक्ष्मं प्रशस्तं सदा॥ ४६

हे उमे! पहले आँवलेके बराबर और फिर उससे भी छोटे रुद्राक्ष धारण करे। जो रोगयुक्त हों, जिनमें दाने न हों, जिन्हें कीड़ोंने खा लिया हो, जिनमें पिरोनेयोग्य छेद न हो, ऐसे रुद्राक्ष मंगलाकांक्षी पुरुषोंको नहीं धारण करना चाहिये। रुद्राक्ष मेरा मंगलमय लिंगविग्रह है। वह अन्ततः चनेके बराबर लघुतर होता है। सूक्ष्म रुद्राक्षको ही सदा प्रशस्त माना गया है॥ ४६॥

सर्वाश्रमाणां वर्णानां स्त्रीशूद्राणां शिवाज्ञया।
धार्याः सदैव रुद्राक्षा यतीनां प्रणवेन हि॥ ४७

सभी आश्रमों, समस्त वर्णों, स्त्रियों और शूद्रोंको भी भगवान् शिवकी आज्ञाके अनुसार सदैव रुद्राक्ष धारण करना चाहिये। यतियोंके लिये प्रणवके उच्चारणपूर्वक रुद्राक्ष धारण करनेका विधान है॥ ४७॥

दिवा बिभ्रद्रात्रिकृतै रात्रौ बिभ्रद्दिवाकृतैः।
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने मुच्यते सर्वपातकैः॥ ४८

मनुष्य दिनमें [रुद्राक्ष धारण करनेसे] रात्रिमें किये गये पापोंसे और रात्रिमें [रुद्राक्ष धारण करनेसे] दिनमें किये गये पापोंसे; प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल [रुद्राक्ष धारण करनेसे] किये गये समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ४८॥

ये त्रिपुण्ड्रधरा लोके जटाधारिण एव ये।
ये रुद्राक्षधरास्ते वै यमलोकं प्रयान्ति न॥ ४९

संसारमें जितने भी त्रिपुण्ड्र धारण करनेवाले हैं, जटाधारी हैं और रुद्राक्ष धारण करनेवाले हैं, वे यमलोकको नहीं जाते हैं॥ ४९॥

रुद्राक्षमेकं शिरसा बिभर्ति
तथा त्रिपुण्ड्रं च ललाटमध्ये।
पञ्चाक्षरं ये हि जपन्ति मन्त्रं
पूज्या भवद्भिः खलु ते हि साधवः॥ ५०

जिनके ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगा हो और सभी अंग रुद्राक्षसे विभूषित हों तथा जो पंचाक्षरमन्त्रका जप कर रहे हों, वे आप-सदृश पुरुषोंके पूज्य हैं; वे वस्तुतः साधु हैं॥ ५०॥

यस्याङ्गे नास्ति रुद्राक्षस्त्रिपुण्ड्रं भालपट्टके।
मुखे पञ्चाक्षरं नास्ति तमानय यमालयम्॥ ५१

ज्ञात्वा ज्ञात्वा तत्प्रभावं भस्मरुद्राक्षधारिणः।
ते पूज्याः सर्वदास्माकं नो नेतव्याः कदाचन॥ ५२

[यम अपने गणोंको आदेश करते हैं कि] जिसके शरीरपर रुद्राक्ष नहीं है, मस्तकपर त्रिपुण्ड्र नहीं है और मुखमें '**ॐ नमः शिवाय**' यह पंचाक्षर मन्त्र नहीं है, उसको यमलोक लाया जाय। [भस्म एवं रुद्राक्षके] उस प्रभावको जानकर या न जानकर जो भस्म और रुद्राक्षको धारण करनेवाले हैं, वे सर्वदा हमारे लिये पूज्य हैं; उन्हें यमलोक नहीं लाना चाहिये॥ ५१-५२॥

एवमाज्ञापयामास कालोऽपि निजकिङ्करान्।
तथेति मत्वा ते सर्वे तूष्णीमासन्सुविस्मिताः॥ ५३

कालने भी इस प्रकारसे अपने गणोंको आदेश दिया, तब 'वैसा ही होगा'—ऐसा कहकर आश्चर्यचकित सभी गण चुप हो गये॥ ५३॥

अत एव महादेवि रुद्राक्षोऽप्यघनाशनः।
तद्धरो मत्प्रियः शुद्धोऽत्यघवानपि पार्वति॥ ५४

इसलिये हे महादेवि! रुद्राक्ष भी पापोंका नाशक है। हे पार्वति! उसको धारण करनेवाला मनुष्य पापी होनेपर भी मेरे लिये प्रिय है और शुद्ध है॥ ५४॥

हस्ते बाहौ तथा मूर्ध्नि रुद्राक्षं धारयेत्तु यः।
अवध्यः सर्वभूतानां रुद्ररूपी चरेद्भुवि॥ ५५

हाथमें, भुजाओंमें और सिरपर जो रुद्राक्ष धारण करता है, वह समस्त प्राणियोंसे अवध्य है और पृथ्वीपर रुद्ररूप होकर विचरण करता है॥ ५५॥

सुरासुराणां सर्वेषां वन्दनीयः सदा स वै।
पूजनीयो हि दृष्टस्य पापहा च यथा शिवः॥ ५६

सभी देवों और असुरोंके लिये वह सदैव वन्दनीय एवं पूजनीय है। वह दर्शन करनेवाले प्राणीके पापोंका शिवके समान ही नाश करनेवाला है॥ ५६॥

ध्यानज्ञानावमुक्तोऽपि रुद्राक्षं धारयेत्तु यः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम्॥ ५७

ध्यान और ज्ञानसे रहित होनेपर भी जो रुद्राक्ष धारण करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर परमगतिको प्राप्त होता है॥ ५७॥

रुद्राक्षेण जपन्मन्त्रं पुण्यं कोटिगुणं भवेत्।
दशकोटिगुणं पुण्यं धारणाल्लभते नरः॥ ५८

मणि आदिकी अपेक्षा रुद्राक्षके द्वारा मन्त्रजप करनेसे करोड़ गुना पुण्य प्राप्त होता है और उसको धारण करनेसे तो दस करोड़ गुना पुण्यलाभ होता है॥ ५८॥

यावत्कालं हि जीवस्य शरीरस्थो भवेत्स वै।
तावत्कालं स्वल्पमृत्युर्न तं देवि विबाधते॥ ५९

हे देवि! यह रुद्राक्ष, प्राणीके शरीरपर जबतक रहता है, तबतक स्वल्पमृत्यु उसे बाधा नहीं पहुँचाती है॥ ५९॥

त्रिपुण्ड्रेण च संयुक्तं रुद्राक्षाविलसाङ्गकम्।
मृत्युञ्जयं जपन्तं च दृष्ट्वा रुद्रफलं लभेत्॥ ६०

त्रिपुण्ड्रको धारणकर तथा रुद्राक्षसे सुशोभित अंगवाला होकर मृत्युंजयका जप कर रहे उस [पुण्यवान् मनुष्य]-को देखकर ही रुद्रदर्शनका फल प्राप्त हो जाता है॥ ६०॥

पञ्चदेवप्रियश्चैव सर्वदेवप्रियस्तथा।
सर्वमन्त्राञ्जपेद्भक्तो रुद्राक्षमालया प्रिये॥ ६१

हे प्रिये! पंचदेवप्रिय [अर्थात् स्मार्त और वैष्णव] तथा सर्वदेवप्रिय सभी लोग रुद्राक्षकी मालासे समस्त मन्त्रोंका जप कर सकते हैं॥ ६१॥

विष्ण्वादिदेवभक्ताश्च धारयेयुर्न संशयः।
रुद्रभक्तो विशेषेण रुद्राक्षान्धारयेत्सदा॥ ६२

विष्णु आदि देवताओंके भक्तोंको भी निस्सन्देह इसे धारण करना चाहिये। रुद्रभक्तोंके लिये तो विशेष रूपसे रुद्राक्ष धारण करना आवश्यक है॥ ६२॥

रुद्राक्षा विविधाः प्रोक्तास्तेषां भेदान् वदाम्यहम्।
शृणु पार्वति सद्भक्त्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदान्॥ ६३

हे पार्वति! रुद्राक्ष अनेक प्रकारके बताये गये हैं। मैं उनके भेदोंका वर्णन करता हूँ। वे भेद भोग और मोक्षरूप फल देनेवाले हैं। तुम उत्तम भक्तिभावसे उनका परिचय सुनो॥ ६३॥

एकवक्त्रः शिवः साक्षाद्भुक्तिमुक्तिफलप्रदः।
तस्य दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥ ६४

एक मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् शिवका स्वरूप है। वह भोग और मोक्षरूपी फल प्रदान करता है। उसके दर्शनमात्रसे ही ब्रह्महत्याका पाप नष्ट हो जाता है॥ ६४॥

यत्र सम्पूजितस्तत्र लक्ष्मीर्दूरतरा न हि।
नश्यन्त्युपद्रवाः सर्वे सर्वकामा भवन्ति हि॥ ६५

जहाँ रुद्राक्षकी पूजा होती है, वहाँसे लक्ष्मी दूर नहीं जातीं, उस स्थानके सारे उपद्रव नष्ट हो जाते हैं तथा वहाँ रहनेवाले लोगोंकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण होती हैं॥ ६५॥

द्विवक्त्रो देवदेवेशः सर्वकामफलप्रदः।
विशेषतः स रुद्राक्षो गोवधं नाशयेद् द्रुतम्॥ ६६

दो मुखवाला रुद्राक्ष देवदेवेश्वर कहा गया है। वह सम्पूर्ण कामनाओं और फलोंको देनेवाला है। वह विशेष रूपसे गोहत्याका पाप नष्ट करता है॥ ६६॥

त्रिवक्त्रो यो हि रुद्राक्षः साक्षात्साधनदः सदा।
तत्प्रभावाद्भवेयुर्वै विद्याः सर्वाः प्रतिष्ठिताः॥ ६७

तीन मुखवाला रुद्राक्ष सदा साक्षात् साधनका फल देनेवाला है, उसके प्रभावसे सारी विद्याएँ प्रतिष्ठित हो जाती हैं॥ ६७॥

चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा नरहत्यां व्यपोहति।
दर्शनात् स्पर्शनात् सद्यश्चतुर्वर्गफलप्रदः॥ ६८

चार मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् ब्रह्माका रूप है और ब्रह्महत्याके पापसे मुक्ति देनेवाला है। उसके दर्शन और स्पर्शसे शीघ्र ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति होती है॥ ६८॥

पञ्चवक्त्रः स्वयं रुद्रः कालाग्निर्नामतः प्रभुः।
सर्वमुक्तिप्रदश्चैव सर्वकामफलप्रदः॥ ६९

अगम्यागमनं पापमभक्ष्यस्य च भक्षणम्।
इत्यादिसर्वपापानि पञ्चवक्त्रो व्यपोहति॥ ७०

पाँच मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् कालाग्निरुद्ररूप है। वह सब कुछ करनेमें समर्थ, सबको मुक्ति देनेवाला तथा सम्पूर्ण मनोवांछित फल प्रदान करनेवाला है। वह पंचमुख रुद्राक्ष अगम्या स्त्रीके साथ गमन और पापान्न-भक्षणसे उत्पन्न समस्त पापोंको दूर कर देता है॥ ६९-७०॥

षड्वक्त्रः कार्तिकेयस्तु धारणाद् दक्षिणे भुजे।
ब्रह्महत्यादिकैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः॥ ७१

छः मुखोंवाला रुद्राक्ष कार्तिकेयका स्वरूप है। यदि दाहिनी बाँहमें उसे धारण किया जाय, तो धारण करनेवाला मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाता है; इसमें संशय नहीं है॥ ७१॥

सप्तवक्त्रो महेशानि ह्यनङ्गो नाम नामतः।
धारणात्तस्य देवेशि दरिद्रोऽपीश्वरो भवेत्॥ ७२

हे महेश्वरि! सात मुखवाला रुद्राक्ष अनंग नामसे प्रसिद्ध है। हे देवेशि! उसको धारण करनेसे दरिद्र भी ऐश्वर्यशाली हो जाता है॥ ७२॥

रुद्राक्षश्चाष्टवक्त्रश्च वसुमूर्तिश्च भैरवः।
धारणात्तस्य पूर्णायुर्मृतो भवति शूलभृत्॥ ७३

आठ मुखवाला रुद्राक्ष अष्टमूर्ति भैरवरूप है। उसको धारण करनेसे मनुष्य पूर्णायु होता है और मृत्युके पश्चात् शूलधारी शंकर हो जाता है॥ ७३॥

भैरवो नववक्त्रश्च कपिलश्च मुनिः स्मृतः।
दुर्गा वा तदधिष्ठात्री नवरूपा महेश्वरी॥ ७४

नौ मुखवाले रुद्राक्षको भैरव तथा कपिलमुनिका प्रतीक माना गया है अथवा नौ रूप धारण करनेवाली महेश्वरी दुर्गा उसकी अधिष्ठात्री देवी मानी गयी हैं॥ ७४॥

तं धारयेद्वामहस्ते रुद्राक्षं भक्तितत्परः।
सर्वेश्वरो भवेन्नूनं मम तुल्यो न संशयः॥ ७५

जो मनुष्य भक्तिपरायण होकर अपने बायें हाथमें नवमुख रुद्राक्ष धारण करता है, वह निश्चय ही मेरे समान सर्वेश्वर हो जाता है; इसमें संशय नहीं है॥ ७५॥

दशवक्त्रो महेशानि स्वयं देवो जनार्दनः।
धारणात्तस्य देवेशि सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥ ७६

हे महेश्वरि! दस मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् भगवान् विष्णुका रूप है। हे देवेशि! उसको धारण करनेसे मनुष्यकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं॥ ७६॥

एकादशमुखो यस्तु रुद्राक्षः परमेश्वरि।
स रुद्रो धारणात्तस्य सर्वत्र विजयी भवेत्॥ ७७

हे परमेश्वरि! ग्यारह मुखवाला जो रुद्राक्ष है, वह रुद्ररूप है; उसको धारण करनेसे मनुष्य सर्वत्र विजयी होता है॥ ७७॥

द्वादशास्यं तु रुद्राक्षं धारयेत् केशदेशके।
आदित्याश्चैव ते सर्वे द्वादशैव स्थितास्तथा॥ ७८

बारह मुखवाले रुद्राक्षको केशप्रदेशमें धारण करे। उसको धारण करनेसे मानो मस्तकपर बारहों आदित्य विराजमान हो जाते हैं॥ ७८॥

त्रयोदशमुखो विश्वेदेवस्तद्धारणान्नरः।
सर्वान्कामानवाप्नोति सौभाग्यं मङ्गलं लभेत्॥ ७९

तेरह मुखवाला रुद्राक्ष विश्वेदेवोंका स्वरूप है। उसको धारण करके मनुष्य सम्पूर्ण अभीष्टोंको प्राप्त करता है तथा सौभाग्य और मंगललाभ करता है॥ ७९॥

चतुर्दशमुखो यो हि रुद्राक्षः परमः शिवः।
धारयेन्मूर्ध्नि तं भक्त्या सर्वपापं प्रणश्यति॥ ८०

चौदह मुखवाला जो रुद्राक्ष है, वह परमशिवरूप है। उसे भक्तिपूर्वक मस्तकपर धारण करे, इससे समस्त पापोंका नाश हो जाता है॥ ८०॥

इति रुद्राक्षभेदा हि प्रोक्ता वै मुखभेदतः।
तत्तन्मन्त्राञ्छृणु प्रीत्या क्रमाच्छैलेश्वरात्मजे॥ ८१

हे गिरिराजकुमारी! इस प्रकार मुखोंके भेदसे रुद्राक्षके [चौदह] भेद बताये गये। अब तुम क्रमशः उन रुद्राक्षोंके धारण करनेके मन्त्रोंको प्रसन्नतापूर्वक सुनो—

ॐ ह्रीं नमः १ ॐ नमः २ ॐ क्लीं नमः ३ ॐ ह्रीं नमः ४ ॐ ह्रीं नमः ५ ॐ ह्रीं हुं नमः ६ ॐ हुं नमः ७ ॐ हुं नमः ८ ॐ ह्रीं हुं नमः ९ ॐ ह्रीं नमः १० ॐ ह्रीं हुं नमः ११ ॐ क्रौं क्षौं रौं नमः १२ ॐ ह्रीं नमः १३ ॐ नमः १४

१-ॐ ह्रीं नमः। २-ॐ नमः। ३-क्लीं नमः। ४-ॐ ह्रीं नमः। ५-ॐ ह्रीं नमः। ६-ॐ ह्रीं हुं नमः। ७-ॐ हुं नमः। ८-ॐ हुं नमः। ९-ॐ ह्रीं हुं नमः। १०-ॐ ह्रीं नमः। ११-ॐ ह्रीं हुं नमः। १२-ॐ क्रौं क्षौं रौं नमः। १३-ॐ ह्रीं नमः। १४-ॐ नमः [—इन चौदह मन्त्रोंद्वारा क्रमशः एकसे लेकर चौदह मुखवाले रुद्राक्षोंको धारण करनेका विधान है।]

भक्तिश्रद्धायुतश्चैव सर्वकामार्थसिद्धये।
रुद्राक्षान्धारयेन्मन्त्रैर्देवि आलस्यवर्जितः॥ ८२

साधकको चाहिये कि वह निद्रा और आलस्यका त्याग करके श्रद्धाभक्तिसे सम्पन्न होकर सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिके लिये उक्त मन्त्रोंद्वारा उन-उन रुद्राक्षोंको धारण करे॥ ८१-८२॥

विना मन्त्रेण यो धत्ते रुद्राक्षं भुवि मानवः।
स याति नरकं घोरं यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ ८३

इस पृथ्वीपर जो मनुष्य मन्त्रके द्वारा अभिमन्त्रित किये बिना ही रुद्राक्ष धारण करता है, वह क्रमशः चौदह इन्द्रोंके कालपर्यन्त घोर नरकको जाता है॥ ८३॥

रुद्राक्षमालिनं दृष्ट्वा भूतप्रेतपिशाचकाः।
डाकिनी शाकिनी चैव ये चान्ये द्रोहकारकाः॥ ८४

कृत्रिमं चैव यत्किञ्चिदभिचारादिकं च यत्।
तत्सर्वं दूरतो याति दृष्ट्वा शङ्कितविग्रहम्॥ ८५

रुद्राक्षकी माला धारण करनेवाले पुरुषको देखकर भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी तथा जो अन्य द्रोहकारी राक्षस आदि हैं, वे सब-के-सब दूर भाग जाते हैं। जो कृत्रिम अभिचार आदि कर्म प्रयुक्त होते हैं, वे सब रुद्राक्षधारीको देखकर सशंक हो दूर चले जाते हैं॥ ८४-८५॥

रुद्राक्षमालिनं दृष्ट्वा शिवो विष्णुः प्रसीदति।
देवी गणपतिः सूर्यः सुराश्चान्येऽपि पार्वति॥ ८६

हे पार्वति! रुद्राक्षमालाधारी पुरुषको देखकर मैं शिव, भगवान् विष्णु, देवी दुर्गा, गणेश, सूर्य तथा अन्य देवता भी प्रसन्न हो जाते हैं॥ ८६॥

**एवं ज्ञात्वा तु माहात्म्यं रुद्राक्षस्य महेश्वरि।
सम्यग्धार्याः समन्त्राश्च भक्त्या धर्मविवृद्धये॥ ८७**

हे महेश्वरि! इस प्रकार रुद्राक्षकी महिमाको जानकर धर्मकी वृद्धिके लिये भक्तिपूर्वक पूर्वोक्त मन्त्रोंद्वारा विधिवत् उसे धारण करना चाहिये॥ ८७॥

**इत्युक्तं गिरिजाग्रे हि शिवेन परमात्मना।
भस्मरुद्राक्षमाहात्म्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥ ८८**

[हे मुनीश्वरो!] इस प्रकार परमात्मा शिवने भगवती पार्वतीके सामने भुक्ति तथा मुक्ति प्रदान करनेवाले भस्म तथा रुद्राक्षके माहात्म्यका वर्णन किया था॥ ८८॥

**शिवस्यातिप्रियौ ज्ञेयौ भस्मरुद्राक्षधारिणौ।
तद्धारणप्रभावाद्धि भुक्तिर्मुक्तिर्न संशयः॥ ८९**

भस्म और रुद्राक्षको धारण करनेवाले मनुष्य भगवान् शिवको अत्यन्त प्रिय हैं। उसको धारण करनेके प्रभावसे ही भुक्ति-मुक्ति दोनों प्राप्त हो जाती है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ८९॥

**भस्मरुद्राक्षधारी यः शिवभक्तः स उच्यते।
पञ्चाक्षरजपासक्तः परिपूर्णश्च सन्मुखे॥ ९०**

भस्म और रुद्राक्ष धारण करनेवाला मनुष्य शिवभक्त कहा जाता है। भस्म एवं रुद्राक्षसे युक्त होकर जो मनुष्य [शिवप्रतिमाके सामने स्थित होकर] '**ॐ नमः शिवाय**'—इस पंचाक्षर मन्त्रका जप करता है, वह पूर्ण भक्त कहलाता है॥ ९०॥

**विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विना रुद्राक्षमालया।
पूजितोऽपि महादेवो नाभीष्टफलदायकः॥ ९१**

बिना भस्मका त्रिपुण्ड्र धारण किये और बिना रुद्राक्ष-माला लिये जो महादेवकी पूजा करता है, उससे पूजित होनेपर भी महादेव अभीष्ट फल प्रदान नहीं करते हैं॥ ९१॥

**तत्सर्वं च समाख्यातं यत्पृष्टं हि मुनीश्वर।
भस्मरुद्राक्षमाहात्म्यं सर्वकामसमृद्धिदम्॥ ९२
एतद्यः शृणुयान्नित्यं माहात्म्यं परमं शुभम्।
रुद्राक्षभस्मनोर्भक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥ ९३
इह सर्वसुखं भुक्त्वा पुत्रपौत्रादिसंयुतः।
लभेत्परत्र सन्मोक्षं शिवस्यातिप्रियो भवेत्॥ ९४**

हे मुनीश्वर! सभी कामनाओंको परिपूर्ण करनेवाले भस्म और रुद्राक्षके माहात्म्यको मैंने सुनाया। जो इस रुद्राक्ष और भस्मके माहात्म्यको भक्तिपूर्वक सुनता है, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। वह पुत्र-पौत्र आदिके साथ इस लोकमें सभी प्रकारके सुख भोगकर अन्तमें मोक्षको प्राप्त होता है और भगवान् शिवका अतिप्रिय हो जाता है॥ ९२—९४॥

**विद्येश्वरसंहितेयं कथिता वो मुनीश्वराः।
सर्वसिद्धिप्रदा नित्यं मुक्तिदा शिवशासनात्॥ ९५**

हे मुनीश्वरो! इस प्रकार मैंने शिवकी आज्ञाके अनुसार उत्तम मुक्ति देनेवाली विद्येश्वरसंहिता आपके समक्ष कही॥ ९५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे रुद्राक्षमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें रुद्राक्षमाहात्म्यवर्णन नामक पच्चीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

॥ समाप्तेयं प्रथमा विद्येश्वरसंहिता॥ १॥



पञ्चमुख भगवान् शिव

॥ ॐ श्रीसाम्बशिवाय नमः ॥ ॥ ॐ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमः सृष्टिखण्डः

अथ प्रथमोऽध्यायः

ऋषियोंके प्रश्नके उत्तरमें श्रीसूतजीद्वारा नारद-ब्रह्म-संवादकी अवतारणा

विश्वोद्भवस्थितिलयादिषु हेतुमेकं
गौरीपतिं विदिततत्त्वमनन्तकीर्तिम्।
मायाश्रयं विगतमायमचिन्त्यरूपं
बोधस्वरूपममलं हि शिवं नमामि॥ १

जो विश्वकी उत्पत्ति-स्थिति और लय आदिके एकमात्र कारण हैं, गिरिराजकुमारी उमाके पति हैं, तत्त्वज्ञ हैं, जिनकी कीर्तिका कहीं अन्त नहीं है, जो मायाके आश्रय होकर भी उससे अत्यन्त दूर हैं, जिनका स्वरूप अचिन्त्य है, जो बोधस्वरूप हैं तथा निर्विकार हैं, उन भगवान् शिवको मैं प्रणाम करता हूँ॥ १॥

वन्दे शिवं तं प्रकृतेरनादिं
प्रशान्तमेकं पुरुषोत्तमं हि।
स्वमायया कृत्स्नमिदं हि सृष्ट्वा
नभोवदन्तर्बहिरास्थितो यः॥ २

मैं स्वभावसे ही उन अनादि, शान्तस्वरूप, पुरुषोत्तम शिवकी वन्दना करता हूँ, जो अपनी मायासे इस सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करके आकाशकी भाँति इसके भीतर और बाहर भी स्थित हैं॥ २॥

वन्देऽन्तरस्थं निजगूढरूपं
शिवं स्वतः स्त्रष्टुमिदं विचष्टे।
जगन्ति नित्यं परितो भ्रमन्ति
यत्सन्निधौ चुम्बकलोहवत्तम्॥ ३

जैसे लोहा चुम्बकसे आकृष्ट होकर उसके पास ही लटका रहता है, उसी प्रकार ये सारे जगत् सदा सब ओर जिसके आस-पास ही भ्रमण करते हैं, जिन्होंने अपनेसे ही इस प्रपंचको रचनेकी विधि बतायी थी, जो सबके भीतर अन्तर्यामीरूपसे विराजमान हैं तथा जिनका अपना स्वरूप अत्यन्त गूढ़ है, उन भगवान् शिवकी मैं सादर वन्दना करता हूँ॥ ३॥

व्यास उवाच

जगतः पितरं शम्भुं जगतो मातरं शिवाम्।
तत्पुत्रञ्च गणाधीशं नत्वैतद्वर्णयामहे॥ ४

व्यासजी बोले—जगत्के पिता भगवान् शिव, जगन्माता कल्याणमयी पार्वती तथा उनके पुत्र गणेशजीको नमस्कार करके हम इस पुराणका वर्णन करते हैं॥ ४॥

एकदा मुनयः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः।
पप्रच्छुर्वरया भक्त्या सूतं ते शौनकादयः॥ ५

एक समयकी बात है, नैमिषारण्यमें निवास करनेवाले शौनक आदि सभी मुनियोंने उत्तम भक्तिभावके साथ सूतजीसे पूछा— ॥ ५॥

ऋषय ऊचुः

विद्येश्वरसंहितायाः श्रुता सा सत्कथा शुभा।
साध्यसाधनखण्डाख्या रम्याद्या भक्तवत्सला॥ ६

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] विद्येश्वर-संहिताकी जो साध्य-साधन-खण्ड नामवाली शुभ तथा उत्तम कथा है, उसे हमलोगोंने सुन लिया। उसका आदिभाग बहुत ही रमणीय है तथा वह शिवभक्तोंपर भगवान् शिवका वात्सल्य-स्नेह प्रकट करनेवाली है॥ ६॥

सूत सूत महाभाग चिरञ्जीव सुखी भव।
यच्छ्रावयसि नस्तात शाङ्करीं परमां कथाम्॥ ७

पिबन्तस्त्वन्मुखाम्भोजच्युतं ज्ञानामृतं वयम्।
अवितृप्ताः पुनः किञ्चित्प्रष्टुमिच्छामहेऽनघ॥ ८

हे महाभाग! हे सूतजी! हे तात! आप हमलोगोंको सदाशिव भगवान् शंकरकी उत्तम कथाका श्रवण करा रहे हैं, अतएव आप चिरकालतक जीवित रहें और सदा सुखी रहें। आपके मुखकमलसे निकल रहे ज्ञानामृतका पूर्ण रूपसे पान करते हुए भी हमलोग तृप्त नहीं हो पा रहे हैं, इसलिये हे अनघ (पुण्यात्मा)! हम सब पुनः कुछ पूछना चाहते हैं॥ ७-८॥

व्यासप्रसादात्सर्वज्ञो प्राप्तोऽसि कृतकृत्यताम्।
नाज्ञातं विद्यते किञ्चिद्भूतं भव्यं भवच्च यत्॥ ९

भगवान् व्यासकी कृपासे आप सर्वज्ञ एवं कृतकृत्य हैं। आपके लिये भूत-भविष्य और वर्तमानका कुछ भी अज्ञात नहीं है अर्थात् सब कुछ आपको ज्ञात है॥ ९॥

गुरोर्व्यासस्य सद्भक्त्या समासाद्य कृपां पराम्।
सर्वं ज्ञातं विशेषेण सर्वं सार्थं कृतं जनुः॥ १०

अपनी सद्भक्तिके द्वारा गुरु व्यासजीसे परमकृपाको प्राप्तकर आप विशेष रूपसे सब कुछ जान गये हैं और अपने सम्पूर्ण जीवनको भी कृतार्थ कर लिया है॥ १०॥

इदानीं कथय प्राज्ञ शिवरूपमनुत्तमम्।
दिव्यानि वै चरित्राणि शिवयोरप्यशेषतः॥ ११

हे विद्वन्! अब आप भगवान् शिवके परम उत्तम स्वरूपका वर्णन कीजिये। साथ ही शिव और पार्वतीके दिव्य चरित्रोंका पूर्णरूपसे श्रवण कराइये॥ ११॥

अगुणो गुणतां याति कथं लोके महेश्वरः।
शिवतत्त्वं वयं सर्वे न जानीमो विचारतः॥ १२

निर्गुण महेश्वर लोकमें सगुणरूप कैसे धारण करते हैं? हम सबलोग विचार करनेपर भी शिवके तत्त्वको नहीं समझ पाते॥ १२॥

सृष्टेः पूर्वं कथं शम्भुः स्वरूपेणावतिष्ठते।
सृष्टिमध्ये स हि कथं क्रीडन्संवर्तते प्रभुः॥ १३

तदन्ते च कथं देवः स तिष्ठति महेश्वरः।
कथं प्रसन्नतां याति शङ्करो लोकशङ्करः॥ १४

सृष्टिके पूर्वमें भगवान् शिव किस प्रकार अपने स्वरूपसे स्थित होते हैं, पुनः सृष्टिके मध्यकालमें वे भगवान् किस तरह क्रीड़ा करते हुए सम्यक् व्यवहार करते हैं। सृष्टिकल्पका अन्त होनेपर वे महेश्वरदेव किस रूपमें स्थित रहते हैं? लोककल्याणकारी शंकर कैसे प्रसन्न होते हैं॥ १३-१४॥

स प्रसन्नो महेशानः किं प्रयच्छति सत्फलम्।
स्वभक्तेभ्यः परेभ्यश्च तत्सर्वं कथयस्व नः॥ १५

सद्यः प्रसन्नो भगवान्भवतीत्यनुशुश्रुम।
भक्तप्रयासं स महान्न पश्यति दयापरः॥ १६

प्रसन्न हुए महेश्वर अपने भक्तों तथा दूसरोंको कौन-सा उत्तम फल प्रदान करते हैं? यह सब हमसे कहिये। हमने सुना है कि भगवान् शिव शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। वे महान् दयालु हैं, इसलिये वे अपने भक्तोंका कष्ट नहीं देख सकते॥ १५-१६॥

ब्रह्मा विष्णुर्महेशश्च त्रयो देवाः शिवाङ्गजाः।
महेशस्तत्र पूर्णांशः स्वयमेव शिवोऽपरः॥ १७

तस्याविर्भावमाख्याहि चरितानि विशेषतः।
उमाविर्भावमाख्याहि तद्विवाहं तथा प्रभो॥ १८

तद्गार्हस्थ्यं विशेषेण तथा लीलाः परा अपि।
एतत्सर्वं तदन्यच्च कथनीयं त्वयानघ॥ १९

ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये तीनों देवता शिवके ही अंगसे उत्पन्न हुए हैं। इनमें महेश तो पूर्णांश हैं, वे स्वयं ही दूसरे शिव हैं। आप उनके प्राकट्यकी कथा तथा उनके विशेष चरित्रोंका वर्णन कीजिये। हे प्रभो! आप उमाके आविर्भाव और उनके विवाहकी भी कथा कहिये। विशेषतः उनके गार्हस्थ्यधर्मका और अन्य लीलाओंका भी वर्णन कीजिये। हे निष्पाप सूतजी! ये सब तथा अन्य बातें भी आप बतायें॥ १७—१९॥

व्यास उवाच

इति पृष्टस्तदा तैस्तु सूतो हर्षसमन्वितः।
स्मृत्वा शम्भुपदाम्भोजं प्रत्युवाच मुनीश्वरान्॥ २०

व्यासजी बोले—उनके ऐसा पूछनेपर सूतजी प्रसन्न हो उठे और भगवान् शंकरके चरणकमलोंका स्मरण करके मुनीश्वरोंसे कहने लगे— ॥ २० ॥

सूत उवाच

सम्यक् पृष्टं भवद्भिश्च धन्या यूयं मुनीश्वराः।
सदाशिवकथायां वो यज्जाता नैष्ठिकी मतिः॥ २१

सदाशिवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन्पुनाति हि।
वक्तारं पृच्छकं श्रोतॄञ्जाह्नवीसलिलं यथा॥ २२

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो! आपलोगोंने बड़ी उत्तम बात पूछी है। आपलोग धन्य हैं, जो कि भगवान् सदाशिवकी कथामें आपलोगोंकी आन्तरिक निष्ठा हुई है, सदाशिवसे सम्बन्धित कथा वक्ता, पूछनेवाले और सुननेवाले—इन तीनों प्रकारके पुरुषोंको गंगाजीके समान पवित्र करती है॥ २१-२२॥

शम्भोर्गुणानुवादात्को विरज्येत पुमान्द्विजाः।
विना पशुघ्नं त्रिविधजनानन्दकरात्सदा॥ २३

गीयमानो वितृष्णैश्च भवरोगौषधोऽपि हि।
मनःश्रोत्राभिरामश्च यतः सर्वार्थदः स वै॥ २४

हे द्विजो! पशुओंकी हिंसा करनेवाले निष्ठुर कसाईके सिवा दूसरा कौन पुरुष तीनों प्रकारके लोगोंको सदा आनन्द देनेवाले शिव-गुणानुवादको सुननेसे ऊब सकता है। जिनके मनमें कोई तृष्णा नहीं है, ऐसे महात्मा पुरुष भगवान् शिवके उन गुणोंका गान करते हैं; क्योंकि वह संसाररूपी रोगकी दवा है, मन तथा कानोंको प्रिय लगनेवाला है और सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है॥ २३-२४॥

कथयामि यथाबुद्धि भवत्प्रश्नानुसारतः।
शिवलीलां प्रयत्नेन द्विजास्तां शृणुतादरात्॥ २५

हे ब्राह्मणो! आपलोगोंके प्रश्नके अनुसार मैं यथाबुद्धि प्रयत्नपूर्वक शिवलीलाका वर्णन करता हूँ, आपलोग आदरपूर्वक सुनें॥ २५॥

भवद्भिः पृच्छ्यते यद्वत्तत्तथा नारदेन वै।
पृष्टं पित्रे प्रेरितेन हरिणा शिवरूपिणा॥ २६

ब्रह्मा श्रुत्वा सुतवचः शिवभक्तः प्रसन्नधीः।
जगौ शिवयशः प्रीत्या हर्षयन्मुनिसत्तमम्॥ २७

जैसे आपलोग पूछ रहे हैं, उसी प्रकार नारदजीने शिवरूपी भगवान् विष्णुसे प्रेरित होकर अपने पिता ब्रह्माजीसे पूछा था। अपने पुत्र नारदका प्रश्न सुनकर शिवभक्त ब्रह्माजीका चित्त प्रसन्न हो गया और वे उन मुनिश्रेष्ठको हर्ष प्रदान करते हुए प्रेमपूर्वक भगवान् शिवके यशका गान करने लगे॥ २६-२७॥

व्यास उवाच

सूतोक्तमिति तद्वाक्यमाकर्ण्य द्विजसत्तमाः।
पप्रच्छुस्तत्सुसंवादं कुतूहलसमन्विताः॥ २८

व्यासजी बोले—सूतजीके द्वारा कथित उस वचनको सुनकर वे सभी श्रेष्ठ ब्राह्मण आश्चर्यचकित हो उठे और उन लोगोंने उस विषयको उनसे पूछा— ॥ २८॥

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग शैवोत्तम महामते।
श्रुत्वा तव वचो रम्यं चेतो नः सकुतूहलम्॥ २९

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! हे महाभाग! हे शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ! हे महामते! आपके सुन्दर वचनको सुनकर हमारे हृदयमें कौतूहल हो रहा है॥ २९॥

कदा बभूव सुखकृद्विधिनारदयोर्महान्।
संवादो यत्र गिरिशसुलीला भवमोचनी॥ ३०

ब्रह्मा और नारदका यह महान् सुख देनेवाला संवाद कब हुआ था, जिसमें संसारसे मुक्ति प्रदान करनेवाली शिवलीला वर्णित है॥ ३०॥

विधिनारदसंवादपूर्वकं शाङ्करं यशः।
ब्रूहि नस्तात तत्प्रीत्या तत्तत्प्रश्नानुसारतः॥ ३१

हे तात! प्रेमपूर्वक नारदके द्वारा पूछे गये उन-उन प्रश्नोंके अनुसार भगवान् शंकरके यशका गुणानुवाद करनेवाले ब्रह्मा और नारदके संवादका वर्णन करें॥ ३१॥

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम्।
सूतः प्रोवाच सुप्रीतस्तत्संवादानुसारतः॥ ३२

आत्मज्ञानी उन मुनियोंके ऐसे वचनको सुनकर प्रसन्न हुए सूतजी उस ब्रह्मा-नारद-संवादके अनुसार [कही गयी शिवकथाको] कहने लगे॥ ३२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने मुनिप्रश्नवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके सृष्टिखण्डमें मुनि-प्रश्न-वर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

नारद मुनिकी तपस्या, इन्द्रद्वारा तपस्यामें विघ्न उपस्थित करना, नारदका कामपर विजय पाना और अहंकारसे युक्त होकर ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रसे अपने तपका कथन

सूत उवाच

एकस्मिन्समये विप्रा नारदो मुनिसत्तमः।
ब्रह्मपुत्रो विनीतात्मा तपोऽर्थं मन आदधे॥ १

हिमशैलगुहा काचिदेका परमशोभना।
यत्समीपे सुरनदी सदा वहति वेगतः॥ २

तत्राश्रमो महादिव्यो नानाशोभासमन्वितः।
तपोऽर्थं स ययौ तत्र नारदो दिव्यदर्शनः॥ ३

तां दृष्ट्वा मुनिशार्दूलस्तेपे स सुचिरं तपः।
बध्वासनं दृढं मौनी प्राणानायम्य शुद्धधीः॥ ४

चक्रे मुनिः समाधिं तमहम्ब्रह्मेति यत्र ह।
विज्ञानं भवति ब्रह्मसाक्षात्कारकरं द्विजाः॥ ५

इत्थं तपति तस्मिन्वै नारदे मुनिसत्तमे।
चकम्पेऽथ शुनासीरो मनस्सन्तापविह्वलः॥ ६

मनसीति विचिन्त्यासौ मुनिर्मे राज्यमिच्छति।
तद्विघ्नकरणार्थं हि हरिर्यत्नमियेष सः॥ ७

सस्मार स स्मरं शक्रश्चेतसा देवनायकः।
आजगाम द्रुतं कामः समधीर्महिषीयुतः॥ ८

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] एक समयकी बात है, ब्रह्माजीके पुत्र, मुनिशिरोमणि, विनीतचित्त नारदजीने तपस्याके लिये मनमें विचार किया॥ १॥

हिमालय पर्वतमें कोई एक परम शोभा-सम्पन्न गुफा थी, जिसके निकट देवनदी गंगा निरन्तर वेगपूर्वक बहती थीं॥ २॥

वहाँ एक महान् दिव्य आश्रम था, जो नाना प्रकारकी शोभासे सुशोभित था। वे दिव्यदर्शी नारदजी तपस्या करनेके लिये वहाँ गये॥ ३॥

उस गुफाको देखकर मुनिवर नारदजी बड़े प्रसन्न हुए और सुदीर्घकालतक वहाँ तपस्या करते रहे। उनका अन्तःकरण शुद्ध था। वे दृढ़तापूर्वक आसन बाँधकर मौन हो प्राणायामपूर्वक समाधिमें स्थित हो गये॥ ४॥

हे ब्राह्मणो! उन्होंने वह समाधि लगायी, जिसमें ब्रह्मका साक्षात्कार करानेवाला '**अहं ब्रह्मास्मि**' [मैं ब्रह्म हूँ]—यह विज्ञान प्रकट होता है॥ ५॥

मुनिवर नारदजी जब इस प्रकार तपस्या करने लगे, तब देवराज इन्द्र काँप उठे और मानसिक सन्तापसे व्याकुल हो गये॥ ६॥

'वे नारद मुनि मेरा राज्य लेना चाहते हैं'—मन-ही-मन ऐसा सोचकर इन्द्रने उनकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये प्रयत्न करनेकी इच्छा की। उस समय देवनायक इन्द्रने मनसे कामदेवका स्मरण किया। [स्मरण करते ही] समान बुद्धिवाले कामदेव अपनी पत्नी रतिके साथ आ गये॥ ७-८॥

अथागतं स्मरं दृष्ट्वा सम्बोध्य सुरराट् प्रभुः।
उवाच तं प्रपश्याशु स्वार्थे कुटिलशेमुषिः॥ ९

आये हुए कामदेवको देखकर कपटबुद्धि देवराज इन्द्र शीघ्र ही स्वार्थके लिये उनको सम्बोधित करते हुए कहने लगे—॥ ९॥

इन्द्र उवाच

मित्रवर्य महावीर सर्वदा हितकारक।
शृणु प्रीत्या वचो मे त्वं कुरु साहाय्यमात्मना॥ १०

इन्द्र बोले—मित्रोंमें श्रेष्ठ! हे महावीर! हे सर्वदा हितकारक! तुम प्रेमपूर्वक मेरे वचनोंको सुनो और मेरी सहायता करो॥ १०॥

त्वद्बलान्मे बहूनाञ्च तपोगर्वो विनाशितः।
मद्राज्यस्थिरता मित्र त्वदनुग्रहतः सदा॥ ११

हे मित्र! तुम्हारे बलसे मैंने बहुत लोगोंकी तपस्याका गर्व नष्ट किया है। तुम्हारी कृपासे ही मेरा यह राज्य स्थिर है॥ ११॥

हिमशैलगुहायां हि मुनिस्तपति नारदः।
मनसोद्दिश्य विश्वेशं महासंयमवान्दृढः॥ १२

पूर्णरूपसे संयमित होकर दृढ़निश्चयी देवर्षि नारद मनसे विश्वेश्वर भगवान् शंकरकी प्राप्तिका लक्ष्य बनाकर हिमालयकी गुफामें तपस्या कर रहे हैं॥ १२॥

याचेन्न विधितो राज्यं स ममेति विशङ्कितः।
अद्यैव गच्छ तत्र त्वं तत्तपोविघ्नमाचर॥ १३

मुझे यह शंका है कि [तपस्यासे प्रसन्न] ब्रह्मासे वे मेरा राज्य ही न माँग लें। आज ही तुम वहाँ चले जाओ और उनकी तपस्यामें विघ्न डालो॥ १३॥

इत्याज्ञप्तो महेन्द्रेण स कामः समधुप्रियः।
जगाम तत्स्थलं गर्वादुपायं स्वं चकार ह॥ १४

इन्द्रसे ऐसी आज्ञा पाकर वे कामदेव वसन्तको साथ लेकर बड़े गर्वसे उस स्थानपर गये और अपना उपाय करने लगे॥ १४॥

रचयामास तत्राशु स्वकलाः सकला अपि।
वसन्तोऽपि स्वप्रभावं चकार विविधं मदात्॥ १५

उन्होंने वहाँ शीघ्र ही अपनी सारी कलाएँ रच डालीं। वसन्तने भी मदमत्त होकर अनेक प्रकारसे अपना प्रभाव प्रकट किया॥ १५॥

न बभूव मुनेश्चेतो विकृतं मुनिसत्तमाः।
भ्रष्टो बभूव तद्गर्वो महेशानुग्रहेण ह॥ १६

हे मुनिवरो! [कामदेव और वसन्तके अथक प्रयत्न करनेपर भी] नारदमुनिके चित्तमें विकार नहीं उत्पन्न हुआ। महादेवजीके अनुग्रहसे उन दोनोंका गर्व चूर्ण हो गया॥ १६॥

शृणुतादरतस्तत्र कारणं शौनकादयः।
ईश्वरानुग्रहेणात्र न प्रभावः स्मरस्य हि॥ १७

हे शौनक आदि महर्षियो! ऐसा होनेमें जो कारण था, उसे आदरपूर्वक सुनिये। महादेवजीकी कृपासे ही [नारदमुनिपर] कामदेवका कोई प्रभाव नहीं पड़ा॥ १७॥

अत्रैव शम्भुनाकारि सुतपश्च स्मरारिणा।
अत्रैव दग्धस्तेनाशु कामो मुनितपोपहः॥ १८

पहले उसी आश्रममें कामशत्रु भगवान् शिवने उत्तम तपस्या की थी और वहींपर उन्होंने मुनियोंकी तपस्याका नाश करनेवाले कामदेवको शीघ्र ही भस्म कर डाला था॥ १८॥

कामजीवनहेतोर्हि रत्या सम्प्रार्थितैः सुरैः।
सम्प्रार्थित उवाचेदं शङ्करो लोकशङ्करः॥ १९

कञ्चित्समयमासाद्य जीविष्यति सुराः स्मरः।
परन्त्विह स्मरोपायश्चलिष्यति न कश्चन॥ २०

उस समय रतिने कामदेवको पुनः जीवित करनेके लिये देवताओंसे प्रार्थना की। तब देवताओंने समस्त लोकोंका कल्याण करनेवाले भगवान् शंकरसे याचना की। इसपर वे बोले—हे देवताओ! कुछ समय व्यतीत होनेके बाद कामदेव जीवित तो हो जायँगे, परंतु यहाँ उनका कोई उपाय नहीं चल सकेगा॥ १९-२०॥

इह यावद्दृश्यते भूर्जनैः स्थित्वामराः सदा।
कामबाणप्रभावोऽत्र न चलिष्यत्यसंशयम्॥ २१

हे अमरगण! यहाँ खड़े होकर लोग चारों ओर जितनी दूरतककी भूमिको नेत्रोंसे देख पाते हैं, वहाँतक कामदेवके बाणोंका प्रभाव नहीं चल सकेगा, इसमें संशय नहीं है॥ २१॥

इति शम्भूक्तितः कामो मिथ्यात्मगतिकस्तदा।
नारदे स जगामाशु दिवमिन्द्रसमीपतः॥ २२

भगवान् शंकरकी इस उक्तिके अनुसार उस समय वहाँ नारदजीके प्रति कामदेवका अपना प्रभाव मिथ्या सिद्ध हुआ। वे शीघ्र ही स्वर्गलोकमें इन्द्रके पास लौट गये॥ २२॥

आचख्यौ सर्ववृत्तान्तं प्रभावं च मुनेः स्मरः।
तदाज्ञया ययौ स्थानं स्वकीयं समधुप्रियः॥ २३

वहाँ कामदेवने अपना सारा वृत्तान्त और मुनिका प्रभाव कह दिया। तत्पश्चात् इन्द्रकी आज्ञासे वे वसन्तके साथ अपने स्थानको लौट गये॥ २३॥

विस्मितोऽभूत्सुराधीशः प्रशशंसाथ नारदम्।
तद्वृत्तान्तानभिज्ञो हि मोहितः शिवमायया॥ २४

उस समय देवराज इन्द्रको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने नारदजीकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। परंतु शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण वे उस पूर्ववृत्तान्तका स्मरण न कर सके॥ २४॥

दुर्ज्ञेया शाम्भवी माया सर्वेषां प्राणिनामिह।
भक्तं विनार्पितात्मानं तया सम्मोह्यते जगत्॥ २५

वास्तवमें इस संसारमें सभी प्राणियोंके लिये शम्भुकी मायाको जानना अत्यन्त कठिन है। जिसने अपने-आपको शिवको समर्पित कर दिया है, उस भक्तको छोड़कर शेष सम्पूर्ण जगत् उनकी मायासे मोहित हो जाता है॥ २५॥

नारदोऽपि चिरं तस्थौ तत्रेशानुग्रहेण ह।
पूर्णं मत्वा तपस्तत्स्वं विरराम ततो मुनिः॥ २६

नारदजी भी भगवान् शंकरकी कृपासे वहाँ चिरकालतक तपस्यामें लगे रहे। अन्तमें अपनी तपस्याको पूर्ण हुआ जानकर वे मुनि उससे विरत हो गये॥ २६॥

कामाज्जयं निजं मत्वा गर्वितोऽभून्मुनीश्वरः।
वृथैव विगतज्ञानः शिवमायाविमोहितः॥ २७

कामदेवपर अपनी विजय मानकर उन मुनीश्वरको व्यर्थ ही गर्व हो गया। भगवान् शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण उन्हें यथार्थ बातका ज्ञान नहीं रहा॥ २७॥

धन्या धन्या महामाया शाम्भवी मुनिसत्तमाः।
तद्गतिं न हि पश्यन्ति विष्णुब्रह्मादयोऽपि हि॥ २८

हे मुनिश्रेष्ठो! भगवान् शम्भुकी महामाया धन्य है, धन्य है। ब्रह्मा, विष्णु आदि देव भी उसकी गतिको नहीं देख पाते हैं॥ २८॥

तया सम्मोहितोऽतीव नारदो मुनिसत्तमः।
कैलासं प्रययौ शीघ्रं स्ववृत्तं गदितुं मदी॥ २९

उस मायासे अत्यन्त मोहित मुनिशिरोमणि नारद गर्वयुक्त होकर अपना [कामविजय-सम्बन्धी] वृत्तान्त बतानेके लिये तुरंत ही कैलास पर्वतपर गये॥ २९॥

रुद्रं नत्वाब्रवीत्सर्वं स्ववृत्तं गर्ववान्मुनिः।
मत्त्वात्मानं महात्मानं स्वप्रभुञ्च स्मरञ्जयम्॥ ३०

वहाँ रुद्रदेवको नमस्कार करके गर्वसे भरे हुए मुनिने अपने आपको महात्मा, प्रभु तथा कामजेता मानकर उनसे अपना सारा वृत्तान्त कहा॥ ३०॥

तच्छ्रुत्वा शङ्करः प्राह नारदं भक्तवत्सलः।
स्वमायामोहितं हेत्वनभिज्ञं भ्रष्टचेतसम्॥ ३१

यह सुनकर भक्तवत्सल शंकरजी अपनी मायासे मोहित, वास्तविक कारणसे अनभिज्ञ तथा भ्रष्टचित्त नारदसे कहने लगे—॥ ३१॥

रुद्र उवाच

हे तात नारद प्राज्ञ धन्यस्त्वं शृणु मद्वचः।
वाच्यमेवं न कुत्रापि हरेरग्रे विशेषतः॥ ३२

रुद्र बोले—हे तात! हे नारद! हे प्राज्ञ! तुम धन्य हो। मेरी बात सुनो, अबसे फिर कभी ऐसी बात कहीं भी न कहना और विशेषतः भगवान् विष्णुके सामने तो इसकी चर्चा कदापि न करना॥ ३२॥

पृच्छमानोऽपि न ब्रूयाः स्ववृत्तं मे यदुक्तवान्।
गोप्यं गोप्यं सर्वथा हि नैव वाच्यं कदाचन॥ ३३

तुमने मुझसे अपना जो वृत्तान्त बताया है, उसे पूछनेपर भी दूसरोंके सामने न कहना। यह [सिद्धि-सम्बन्धी] वृत्तान्त सर्वथा गुप्त रखनेयोग्य है, इसे कभी किसीसे प्रकट नहीं करना चाहिये॥ ३३॥

शास्म्यहं त्वां विशेषेण मम प्रियतमो भवान्।
विष्णुभक्तो यतस्त्वं हि तद्भक्तोऽतीव मेऽनुगः॥ ३४

तुम मुझे विशेष प्रिय हो, इसीलिये [अधिक जोर देकर] मैं तुम्हें यह शिक्षा देता हूँ; क्योंकि तुम भगवान् विष्णुके भक्त हो और उनके भक्त होते हुए मेरे अत्यन्त अनुगामी हो॥ ३४॥

शास्ति स्मेत्थञ्च बहुशो रुद्रः सूतिकरः प्रभुः।
नारदो न हितं मेने शिवमायाविमोहितः॥ ३५

प्रबला भाविनी कर्मगतिर्ज्ञेया विचक्षणैः।
न निवार्या जनैः कैश्चिदपीच्छा सैव शाङ्करी॥ ३६

इस प्रकार बहुत कुछ कहकर संसारकी सृष्टि करनेवाले भगवान् रुद्रने नारदजीको शिक्षा दी, परंतु शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण नारदजीने उनकी दी हुई शिक्षाको अपने लिये हितकर नहीं माना। भावी कर्मगति अत्यन्त बलवान् होती है, उसे बुद्धिमान् लोग ही जान सकते हैं। भगवान् शिवकी इच्छाको कोई भी मनुष्य नहीं टाल सकता॥ ३५-३६॥

ततः स मुनिवर्यो हि ब्रह्मलोकं जगाम ह।
विधिं नत्वाब्रवीत्कामजयं स्वस्य तपोबलात्॥ ३७

तदनन्तर मुनिशिरोमणि नारद ब्रह्मलोकमें गये। वहाँ ब्रह्माजीको नमस्कार करके उन्होंने अपने तपोबलसे कामदेवको जीत लेनेकी बात कही॥ ३७॥

तदाकर्ण्य विधिः सोऽथ स्मृत्वा शम्भुपदाम्बुजम्।
विज्ञाय कारणं सर्वं निषिषेध सुतं तदा॥ ३८

उनकी वह बात सुनकर ब्रह्माजीने भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका स्मरण करके और समस्त कारण जानकर अपने पुत्रको यह सब कहनेसे मना किया॥ ३८॥

मेने हितं न विध्युक्तं नारदो ज्ञानिसत्तमः।
शिवमायामोहितश्च रूढचित्तमदाङ्कुरः॥ ३९

नारदजी शिवकी मायासे मोहित थे, अतएव उनके चित्तमें मदका अंकुर जम गया था। इसलिये ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ नारदजीने ब्रह्माजीकी बातको अपने लिये हितकर नहीं समझा॥ ३९॥

शिवेच्छा यादृशी लोके भवत्येव हि सा तदा।
तदधीनं जगत्सर्वं वचस्तन्त्यां स्थितं यतः॥ ४०

इस लोकमें शिवकी जैसी इच्छा होती है, वैसा ही होता है। समस्त विश्व उन्हींकी इच्छाके अधीन है और उन्हींकी वाणीरूपी तन्त्रीसे बँधा हुआ है॥ ४०॥

नारदोऽथ ययौ शीघ्रं विष्णुलोकं विनष्टधीः।
मदाङ्कुरमना वृत्तं गदितुं स्वं तदग्रतः॥ ४१

तब नष्ट बुद्धिवाले नारदजी अपना सारा वृत्तान्त गर्वपूर्वक भगवान् विष्णुके सामने कहनेके लिये वहाँसे शीघ्र ही विष्णुलोकमें गये॥ ४१॥

आगच्छन्तं मुनिं दृष्ट्वा नारदं विष्णुरादरात्।
उत्थित्वाग्रे गतोऽरं तं शिश्लेष ज्ञातहेतुकः॥ ४२

स्वासने समुपावेश्य स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम्।
हरिः प्राह वचस्तथ्यं नारदं मदनाशनम्॥ ४३

विष्णुरुवाच

कुत आगम्यते तात किमर्थमिह चागतः।
धन्यस्त्वं मुनिशार्दूल तीर्थोऽहं तु तवागमात्॥ ४४

विष्णुवाक्यमिति श्रुत्वा नारदो गर्वितो मुनिः।
स्ववृत्तं सर्वमाचष्ट समदं मदमोहितः॥ ४५

श्रुत्वा मुनिवचो विष्णुः समदं कारणं ततः।
ज्ञातवानखिलं स्मृत्वा शिवपादाम्बुजं हृदि॥ ४६

तुष्टाव गिरिशं भक्त्या शिवात्मा शैवराड्ढरिः।
साञ्जलिर्विसुधीर्नम्रमस्तकः परमेश्वरम्॥ ४७

विष्णुरुवाच

देव देव महादेव प्रसीद परमेश्वर।
धन्यस्त्वं शिव धन्या ते माया सर्वविमोहिनी॥ ४८

इत्यादि स स्तुतिं कृत्वा शिवस्य परमात्मनः।
निमील्य नयने ध्यात्वा विरराम पदाम्बुजम्॥ ४९

यत्कर्तव्यं शङ्करस्य स ज्ञात्वा विश्वपालकः।
शिवशासनतः प्राह हृदाथ मुनिसत्तमम्॥ ५०

विष्णुरुवाच

धन्यस्त्वं मुनिशार्दूल तपोनिधिरुदारधीः।
भक्तित्रिकं न यस्यास्ति काममोहादयो मुने॥ ५१

विकारास्तस्य सद्यो वै भवन्त्यखिलदुःखदाः।
नैष्ठिको ब्रह्मचारी त्वं ज्ञानवैराग्यवान्सदा॥ ५२

नारद मुनिको आते देखकर भगवान् विष्णु बड़े आदरसे उठकर शीघ्र ही आगे बढ़े और उन्होंने मुनिको हृदयसे लगा लिया। उन्हें मुनिके आगमनके हेतुका ज्ञान पहलेसे ही था। नारदजीको अपने आसनपर बैठाकर भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका स्मरण करके श्रीहरि उनसे यथार्थ तथा गर्वनाशक वचन कहने लगे— ॥ ४२-४३ ॥

विष्णु बोले—हे तात! आप कहाँसे आ रहे हैं? यहाँ किसलिये आपका आगमन हुआ है? हे मुनिश्रेष्ठ! आप धन्य हैं। आपके शुभागमनसे मैं पवित्र हो गया॥ ४४॥

भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर गर्वसे भरे हुए नारद मुनिने मदसे मोहित होकर अपना सारा वृत्तान्त बड़े अभिमानके साथ बताया॥ ४५॥

नारद मुनिका वह अहंकारयुक्त वचन सुनकर मन-ही-मन शिवके चरणारविन्दोंका स्मरणकर भगवान् विष्णुने उनके कामविजयके समस्त यथार्थ कारणको पूर्णरूपसे जान लिया॥ ४६॥

उसके पश्चात् शिवके आत्मस्वरूप, परम शैव, सुबुद्ध भगवान् विष्णु भक्तिपूर्वक अपना सिर झुकाकर हाथ जोड़कर परमेश्वर कैलासपति शंकरकी स्तुति करने लगे॥ ४७॥

विष्णु बोले—हे देवेश्वर! हे महादेव! हे परमेश्वर! आप प्रसन्न हों। हे शिव! आप धन्य हैं और सबको विमोहित करनेवाली आपकी माया भी धन्य है॥ ४८॥

इस प्रकार परमात्मा शिवकी स्तुति करके हरि अपने नेत्रोंको बन्दकर उनके चरणकमलोंमें ध्यानस्थित होकर चुप हो गये॥ ४९॥

विश्वपालक हरि शिवके द्वारा जो होना था, उसे हृदयसे जानकर शिवके आज्ञानुसार मुनिश्रेष्ठ नारदजीसे कहने लगे— ॥ ५०॥

विष्णु बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! आप धन्य हैं, आप तपस्याके भण्डार हैं और आपका हृदय भी बड़ा उदार है। हे मुने! जिसके भीतर भक्ति, ज्ञान और वैराग्य नहीं होते, उसीके मनमें समस्त दुःखोंको देनेवाले काम, मोह आदि विकार शीघ्र उत्पन्न होते हैं। आप तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं और सदा ज्ञान-वैराग्यसे युक्त रहते हैं, फिर आपमें कामविकार कैसे आ सकता है। आप तो जन्मसे निर्विकार तथा शुद्ध बुद्धिवाले हैं॥ ५१-५२॥

कथं कामविकारी स्याज्जन्मनाविकृतः सुधीः।
इत्याद्युक्तं वचो भूरि श्रुत्वा स मुनिसत्तमः॥ ५३
विजहास हृदा नत्वा प्रत्युवाच वचो हरिम्।

श्रीहरिकी कही हुई बहुत-सी बातें सुनकर मुनिशिरोमणि नारदजी जोर-जोरसे हँसने लगे और मन-ही-मन भगवान्‌को प्रणाम करके इस प्रकार कहने लगे— ॥ ५३$^{1}/_{2}$ ॥

नारद उवाच

किंप्रभावः स्मरः स्वामिन्कृपा यद्यस्ति ते मयि॥ ५४

इत्युक्त्वा हरिमानम्य ययौ यादृच्छिको मुनिः॥ ५५

नारदजी बोले—हे स्वामिन्! यदि मुझपर आपकी कृपा है, तब कामदेवका मेरे ऊपर क्या प्रभाव हो सकता है। ऐसा कहकर भगवान्‌के चरणोंमें मस्तक झुकाकर इच्छानुसार विचरनेवाले नारदमुनि वहाँसे चले गये॥ ५४-५५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने नारदतपोवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके सृष्टिखण्डमें नारदतपोवर्णन नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

मायानिर्मित नगरमें शीलनिधिकी कन्यापर मोहित हुए नारदजीका भगवान् विष्णुसे उनका रूप माँगना, भगवान्‌का अपने रूपके साथ वानरका-सा मुँह देना, कन्याका भगवान्‌को वरण करना और कुपित हुए नारदका शिवगणोंको शाप देना

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते।
अद्भुतेयं कथा तात वर्णिता कृपया हि नः॥ १

ऋषिगण बोले—हे सूत! हे सूत! हे महाभाग! हे व्यासशिष्य! आपको नमस्कार है। हे तात! कृपापूर्वक आपने हम सभीको जो कथा सुनायी है, यह निश्चित ही आश्चर्यजनक है॥ १॥

मुनौ गते हरिस्तात किञ्चकार ततः परम्।
नारदोऽपि गतः कुत्र तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ २

हे तात! मुनिके चले जानेके पश्चात् भगवान् विष्णुने क्या किया और नारदजी कहाँ गये? वह सब आप हमलोगोंको बतायें॥ २॥

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां सूतः पौराणिकोत्तमः।
प्रत्युवाच शिवं स्मृत्वा नानासूतिकरं बुधः॥ ३

व्यासजी बोले—उन ऋषियोंकी बात सुनकर पौराणिकोंमें श्रेष्ठ तथा बुद्धिमान् सूतजी नाना प्रकारकी सृष्टि करनेवाले शिवका स्मरण करके कहने लगे— ॥ ३॥

सूत उवाच

मुनौ यदृच्छया विष्णुर्गते तस्मिन्हि नारदे।
शिवेच्छया चकाराशु मायां मायाविशारदः॥ ४

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] उन नारदमुनिके इच्छानुसार वहाँसे चले जानेपर भगवान् शिवकी इच्छासे मायाविशारद श्रीहरिने तत्काल अपनी माया प्रकट की॥ ४॥

मुनिमार्गस्य मध्ये तु विरेचे नगरं महत्।
शतयोजनविस्तारमद्भुतं सुमनोहरम्॥ ५

उन्होंने मुनिके मार्गमें एक विशाल, सौ योजन विस्तारवाले, अद्भुत तथा अत्यन्त मनोहर नगरकी रचना की॥ ५॥

स्वलोकादधिकं रम्यं नानावस्तुविराजितम्।
नरनारीविहाराढ्यं चतुर्वर्णाकुलं परम्॥ ६

भगवान्‌ने उसे अपने वैकुण्ठलोकसे भी अधिक रमणीय बनाया था। नाना प्रकारकी वस्तुएँ उस नगरकी शोभा बढ़ाती थीं। वहाँ स्त्रियों और पुरुषोंके लिये बहुत-से विहारस्थल थे। वह नगर चारों वर्णोंके लोगोंसे युक्त था॥ ६॥

तत्र राजा शीलनिधिर्नामैश्वर्यसमन्वितः।
सुतास्वयम्वरोद्युक्तो महोत्सवसमन्वितः॥ ७

चतुर्दिग्भ्यः समायातैः संयुतं नृपनन्दनैः।
नानावेषैः सुशोभैश्च तत्कन्यावरणोत्सुकैः॥ ८

वहाँ शीलनिधि नामक ऐश्वर्यशाली राजा राज्य करते थे। वे अपनी पुत्रीका स्वयंवर करनेके लिये उद्यत थे। अतः उन्होंने महान् उत्सवका आयोजन किया था। उनकी कन्याका वरण करनेके लिये उत्सुक हो चारों दिशाओंसे बहुत-से राजकुमार आये थे, जो नाना प्रकारकी वेशभूषा तथा सुन्दर शोभासे प्रकाशित हो रहे थे। उन राजकुमारोंसे वह नगर भरा-पूरा दिखायी देता था॥ ७-८॥

एतादृशं पुरं दृष्ट्वा मोहं प्राप्तोऽथ नारदः।
कौतुकी तन्नृपद्वारं जगाम मदनैधितः॥ ९

ऐसे राजनगरको देख नारदजी मोहित हो गये। वे कौतुकी कामासक्त नारद राजा शीलनिधिके द्वारपर गये॥ ९॥

आगतं मुनिवर्यं तं दृष्ट्वा शीलनिधिर्नृपः।
उपवेश्यार्चयाञ्चक्रे रत्नसिंहासने वरे॥ १०

मुनिश्रेष्ठ नारदको आया देखकर राजा शीलनिधिने उन्हें श्रेष्ठ रत्नमय सिंहासनपर बिठाकर उनका पूजन किया॥ १०॥

अथ राजा स्वतनयां नामतः श्रीमतीं वराम्।
नारदस्य समानीय पादयोः समपातयत्॥ ११

तत्पश्चात् राजाने श्रीमती नामक अपनी सुन्दरी कन्याको बुलवाकर उससे नारदजीके चरणोंमें प्रणाम करवाया॥ ११॥

तत्कन्यां प्रेक्ष्य स मुनिर्नारदः प्राह विस्मितः।
केयं राजन्महाभागा कन्या सुरसुतोपमा॥ १२

उस कन्याको देखकर नारदमुनि चकित हो गये और बोले—हे राजन्! यह देवकन्याके समान सुन्दरी तथा महाभाग्यशालिनी कन्या कौन है?॥ १२॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा प्राह कृताञ्जलिः।
दुहितेयं मम मुने श्रीमती नाम नामतः॥ १३

उनकी यह बात सुनकर राजाने हाथ जोड़कर कहा—हे मुने! यह मेरी पुत्री है, इसका नाम श्रीमती है॥ १३॥

प्रदानसमयं प्राप्ता वरमन्वेषती शुभम्।
सा स्वयम्वरसम्प्राप्ता सर्वलक्षणलक्षिता॥ १४

अब इसके विवाहका समय आ गया है। यह अपने लिये सुन्दर वर चुननेके निमित्त स्वयंवरमें जानेवाली है। इसमें सब प्रकारके शुभ लक्षण लक्षित होते हैं॥ १४॥

अस्या भाग्यं वद मुने सर्वं जातकमादरात्।
कीदृशं तनयेयं मे वरमाप्स्यति तद्वद॥ १५

हे महर्षे! आप जन्मस्थ जातक ग्रहोंके अनुसार इसका सम्पूर्ण भाग्य बतायें और यह मेरी पुत्री कैसा वर प्राप्त करेगी, यह भी कहें॥ १५॥

इत्युक्तो मुनिशार्दूलस्तामिच्छुः कामविह्वलः।
समाभाष्य स राजानं नारदो वाक्यमब्रवीत्॥ १६

राजाके इस प्रकार पूछनेपर कामसे विह्वल हुए मुनिश्रेष्ठ नारद उस कन्याको प्राप्त करनेकी इच्छा मनमें लिये राजाको सम्बोधित करके यह वाक्य बोले—॥ १६॥

सुतेयं तव भूपाल सर्वलक्षणलक्षिता।
महाभाग्यवती धन्या लक्ष्मीरिव गुणालया॥ १७

सर्वेश्वरोऽजितो वीरो गिरीशसदृशो विभुः।
अस्याः पतिर्ध्रुवं भावी कामजित्सुरसत्तमः॥ १८

हे भूपाल! आपकी यह पुत्री समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, परम सौभाग्यवती, धन्य और साक्षात् लक्ष्मीकी भाँति समस्त गुणोंकी आगार है। इसका पति निश्चय ही भगवान् शंकरके समान वैभवशाली, सर्वेश्वर, किसीसे पराजित न होनेवाला, वीर, कामविजयी तथा सम्पूर्ण देवताओंमें श्रेष्ठ होगा॥ १७-१८॥

इत्युक्त्वा नृपमामन्त्र्य ययौ यादृच्छिको मुनिः।
बभूव कामविवशः शिवमायाविमोहितः॥ १९

ऐसा कहकर राजासे विदा लेकर इच्छानुसार विचरनेवाले नारदमुनि वहाँसे चल दिये। वे कामके वशीभूत हो गये थे। शिवकी मायाने उन्हें विशेष मोहमें डाल दिया था॥ १९॥

चित्ते विचिन्त्य स मुनिराप्नुयां कन्यकां कथम्।
स्वयम्वरे नृपालानामेकं मां वृणुयात्कथम्॥ २०

वे मुनि मन-ही-मन सोचने लगे कि मैं इस राजकुमारीको कैसे प्राप्त करूँ! स्वयंवरमें आये हुए नरेशोंमेंसे सबको छोड़कर यह एकमात्र मेरा ही वरण कैसे करे!॥ २०॥

सौन्दर्यं सर्वनारीणां प्रियं भवति सर्वथा।
तद् दृष्ट्वैव प्रसन्ना सा स्ववशा नात्र संशयः॥ २१

विधायेत्थं विष्णुरूपं ग्रहीतुं मुनिसत्तमः।
विष्णुलोकं जगामाशु नारदः स्मरविह्वलः॥ २२

समस्त नारियोंको सौन्दर्य सर्वथा प्रिय होता है। सौन्दर्यको देखकर ही वह प्रसन्नतापूर्वक मेरे अधीन हो सकती है, इसमें संशय नहीं है। ऐसा विचारकर कामसे विह्वल हुए मुनिवर नारद भगवान् विष्णुका रूप ग्रहण करनेके लिये तत्काल उनके लोकमें जा पहुँचे॥ २१-२२॥

प्रणिपत्य हृषीकेशं वाक्यमेतदुवाच ह।
रहसि त्वां प्रवक्ष्यामि स्ववृत्तान्तमशेषतः॥ २३

वहाँ भगवान् विष्णुको प्रणाम करके वे यह वचन बोले—[हे भगवन्!] मैं एकान्तमें आपसे अपना सारा वृत्तान्त कहूँगा॥ २३॥

तथेत्युक्ते तथाभूते शिवेच्छाकार्यकर्तरि।
ब्रूहीत्युक्तवति श्रीशे मुनिराह च केशवम्॥ २४

तब 'बहुत अच्छा'—यह कहकर शिव-इच्छित कर्म करनेवाले लक्ष्मीपति श्रीहरि नारदजीके साथ एकान्तमें जा बैठे और बोले—हे मुने! अब आप अपनी बात कहिये, तब केशवसे मुनि नारदजीने कहा॥ २४॥

नारद उवाच

त्वदीयो भूपतिः शीलनिधिः स वृषतत्परः।
तस्य कन्या विशालाक्षी श्रीमती वरवर्णिनी॥ २५

नारदजी बोले—हे भगवन्! आपके भक्त जो राजा शीलनिधि हैं, वे सदा धर्मपालनमें तत्पर रहते हैं। उनकी एक विशाललोचना कन्या है, जो बहुत ही सुन्दरी है। उसका नाम श्रीमती है॥ २५॥

जगन्मोहिन्यभिख्याता त्रैलोक्येऽप्यतिसुन्दरी।
परिणेतुमहं विष्णो तामिच्छाम्यद्य मा चिरम्॥ २६

वह जगन्मोहिनीके रूपमें विख्यात है और तीनों लोकोंमें सबसे अधिक सुन्दरी है। हे विष्णो! आज मैं शीघ्र ही उस कन्यासे विवाह करना चाहता हूँ॥ २६॥

स्वयम्वरं चकारासौ भूपतिस्तनयेच्छया।
चतुर्दिग्भ्यः समायाता राजपुत्राः सहस्रशः॥ २७

यदि दास्यसि रूपं मे तदा तां प्राप्नुयां ध्रुवम्।
त्वद्रूपं सा विना कण्ठे जयमालां न धास्यति॥ २८

राजा शीलनिधिने अपनी पुत्रीकी इच्छासे स्वयंवर रचाया है, इसलिये चारों दिशाओंसे वहाँ हजारों राजकुमार आये हुए हैं। यदि आप अपना रूप मुझे दे दें, तो मैं उसे निश्चित ही प्राप्त कर लूँगा। आपके रूपके बिना वह मेरे कण्ठमें जयमाला नहीं डालेगी॥ २७-२८॥

स्वरूपं देहि मे नाथ सेवकोऽहं प्रियस्तव।
वृणुयान्मां यथा सा वै श्रीमती क्षितिपात्मजा॥ २९

सूत उवाच

वचः श्रुत्वा मुनेरित्थं विहस्य मधुसूदनः।
शाङ्करीं प्रभुतां बुध्वा प्रत्युवाच दयापरः॥ ३०

विष्णुरुवाच

स्वेष्टदेशं मुने गच्छ करिष्यामि हितं तव।
भिषग्वरो यथार्तस्य यतः प्रियतरोऽसि मे॥ ३१

इत्युक्त्वा मुनये तस्मै ददौ विष्णुर्मुखं हरेः।
स्वरूपमनुगृह्यास्य तिरोधानं जगाम सः॥ ३२

एवमुक्तो मुनिर्हृष्टः स्वरूपं प्राप्य वै हरेः।
मेने कृतार्थमात्मानं तद्यत्नं न बुबोध सः॥ ३३

अथ तत्र गतः शीघ्रं नारदो मुनिसत्तमः।
चक्रे स्वयम्वरं यत्र राजपुत्रैः समाकुलम्॥ ३४

स्वयम्वरसभा दिव्या राजपुत्रसमावृता।
शुशुभेऽतीव विप्रेन्द्रा यथा शक्रसभापरा॥ ३५

तस्यां नृपसभायां वै नारदः समुपाविशत्।
स्थित्वा तत्र विचिन्त्येति प्रीतियुक्तेन चेतसा॥ ३६
मां वरिष्यति नान्यं सा विष्णुरूपधरं ध्रुवम्।
आननस्य कुरूपत्वं न वेद मुनिसत्तमः॥ ३७
पूर्वरूपं मुनिं सर्वे ददृशुस्तत्र मानवाः।
तद्भेदं बुबुधुस्ते न राजपुत्रादयो द्विजाः॥ ३८

तत्र रुद्रगणौ द्वौ तद्रक्षणार्थं समागतौ।
विप्ररूपधरौ गूढौ तद्भेदं जज्ञतुः परम्॥ ३९

मूढं मत्वा मुनिं तौ तन्निकटं जग्मतुर्गणौ।
कुरुतस्तत्प्रहासं वै भाषमाणौ परस्परम्॥ ४०

हे नाथ! मैं आपका प्रिय सेवक हूँ, अतः आप मुझे अपना स्वरूप दे दीजिये, जिससे वह राजकुमारी श्रीमती निश्चय ही मुझे वरण कर ले॥ २९॥

सूतजी बोले—हे महर्षियो! नारदमुनिकी ऐसी बात सुनकर भगवान् मधुसूदन हँस पड़े और शंकरके प्रभावका अनुभव करके उन दयालु प्रभुने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया॥ ३०॥

विष्णु बोले—हे मुने! आप अपने अभीष्ट स्थानको जाइये, मैं उसी तरह आपका हितसाधन करूँगा, जैसे श्रेष्ठ वैद्य [अत्यन्त] पीड़ित रोगीका हित करता है; क्योंकि आप मुझे विशेष प्रिय हैं॥ ३१॥

ऐसा कहकर भगवान् विष्णुने नारदमुनिको मुख तो वानरका दे दिया और शेष अंगोंमें अपने-जैसा स्वरूप देकर वे वहाँसे अन्तर्धान हो गये॥ ३२॥

भगवान्‌की पूर्वोक्त बात सुनकर और उनका मनोहर रूप प्राप्त हो गया—समझकर नारद मुनिको बड़ा हर्ष हुआ। वे अपनेको कृतकृत्य मानने लगे, किंतु भगवान्‌के प्रयत्नको वे समझ न सके॥ ३३॥

तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ नारद शीघ्र ही उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ राजा शीलनिधिने राजकुमारोंसे भरी हुई स्वयंवरसभाका आयोजन किया था॥ ३४॥

हे विप्रवरो! राजपुत्रोंसे घिरी हुई वह दिव्य स्वयंवरसभा दूसरी इन्द्रसभाके समान अत्यन्त शोभा पा रही थी॥ ३५॥

नारदजी उस राजसभामें जा बैठे और वहाँ बैठकर प्रसन्न मनसे बार-बार यही सोचने लगे। मैं भगवान् विष्णुके समान रूप धारण किये हूँ, अतः वह राजकुमारी अवश्य मेरा ही वरण करेगी, दूसरेका नहीं। मुनिश्रेष्ठ नारदको यह ज्ञात नहीं था कि मेरा मुँह कुरूप है॥ ३६-३७॥

हे विप्रो! उस सभामें बैठे हुए सभी मनुष्योंने मुनिको उनके पूर्वरूपमें ही देखा। राजकुमार आदि कोई भी उनके रूपपरिवर्तनके रहस्यको न जान सके॥ ३८॥

वहाँ नारदजीकी रक्षाके लिये भगवान् रुद्रके दो गण आये थे, जो ब्राह्मणका रूप धारण करके गूढ़भावसे वहाँ बैठे थे। वे ही नारदजीके रूपपरिवर्तनके उत्तम भेदको जानते थे। मुनिको कामावेशसे मूढ़ हुआ जानकर वे दोनों गण उनके निकट गये और आपसमें बातचीत करते हुए उनकी हँसी उड़ाने लगे॥ ३९-४०॥

पश्य नारदरूपं हि विष्णोरिव महोत्तमम्।
मुखं तु वानरस्येव विकटं च भयङ्करम्॥ ४१
इच्छत्ययं नृपसुतां वृथैव स्मरमोहितः।
इत्युक्त्वा सच्छलं वाक्यमुपहासं प्रचक्रतुः॥ ४२

देखो, नारदका रूप तो निश्चित ही भगवान् विष्णुके समान श्रेष्ठ है, किंतु मुख वानरके समान विकट और महाभयंकर। काममोहित ये व्यर्थमें ही राजपुत्रीको प्राप्त करनेकी इच्छा कर रहे हैं। इस प्रकारकी कपटपूर्ण बातें कहकर वे नारदका उपहास करने लगे॥ ४१-४२ ॥

न शुश्राव यथार्थं तु तद्वाक्यं स्मरविह्वलः।
पर्यैक्षच्छ्रीमतीं तां वै तल्लिप्सुर्मोहितो मुनिः॥ ४३

मुनि तो कामसे विह्वल थे, अतः उन्होंने उनकी यथार्थ बात भी अनसुनी कर दी। वे मोहित हो उस 'श्रीमती' को प्राप्त करनेकी इच्छासे उसके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे॥ ४३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे भूपकन्या चान्तःपुरात्तु सा।
स्त्रीभिः समावृता तत्राजगाम वरवर्णिनी॥ ४४
मालां हिरण्मयीं रम्यामादाय शुभलक्षणा।
तत्र स्वयम्वरे रेजे स्थिता मध्ये रमेव सा॥ ४५

इसी बीच स्त्रियोंसे घिरी हुई वह सुन्दरी राजकन्या अन्तःपुरसे वहाँ आयी। अपने हाथमें सोनेकी सुन्दर माला लिये हुए वह शुभलक्षणा राजकुमारी स्वयंवरके मध्यभागमें लक्ष्मीके समान खड़ी हुई अपूर्व शोभा पा रही थी॥ ४४-४५ ॥

बभ्राम सा सभां सर्वां मालामादाय सुव्रता।
वरमन्वेषती तत्र स्वात्माभीष्टं नृपात्मजा॥ ४६

उत्तम व्रतका पालन करनेवाली वह भूपकन्या हाथमें माला लेकर अपने मनके अनुरूप वरका अन्वेषण करती हुई सारी सभामें भ्रमण करने लगी॥ ४६ ॥

वानरास्यं विष्णुतनुं मुनिं दृष्ट्वा चुकोप सा।
दृष्टिं निवार्य च ततः प्रस्थिता प्रीतमानसा॥ ४७

नारदमुनिका भगवान् विष्णुके समान शरीर और वानर-जैसा मुँह देखकर वह कुपित हो गयी और उनकी ओरसे दृष्टि हटाकर प्रसन्न मनसे दूसरी ओर चली गयी॥ ४७ ॥

न दृष्ट्वा स्ववरं तत्र त्रस्तासीन्मनेप्सितम्।
अन्तःसभास्थिता कस्मिन्नर्पयामास न स्रजम्॥ ४८

स्वयंवरसभामें अपने मनोवांछित वरको न देखकर वह दुःखित हो गयी। राजकुमारी उस सभाके भीतर चुपचाप खड़ी रह गयी और उसने किसीके गलेमें जयमाला नहीं डाली॥ ४८ ॥

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुराजगाम नृपाकृतिः।
न दृष्टः कैश्चिदपरैः केवलं सा ददर्श हि॥ ४९

इतनेमें राजाके समान वेशभूषा धारण किये हुए भगवान् विष्णु वहाँ आ पहुँचे। किन्हीं दूसरे लोगोंने उनको वहाँ नहीं देखा, केवल उस कन्याने ही उन्हें देखा॥ ४९ ॥

अथ सा तं समालोक्य प्रसन्नवदनाम्बुजा।
अर्पयामास तत्कण्ठे तां मालां वरवर्णिनी॥ ५०

भगवान्‌को देखते ही उस परमसुन्दरी राजकुमारीका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। उसने तत्काल ही उनके कण्ठमें वह माला पहना दी॥ ५० ॥

तामादाय ततो विष्णू राजरूपधरः प्रभुः।
अन्तर्धानमगात्सद्यः स्वस्थानं प्रययौ किल॥ ५१

राजाका रूप धारण करनेवाले भगवान् विष्णु उस राजकुमारीको साथ लेकर तुरंत अदृश्य हो गये और अपने धाममें जा पहुँचे॥ ५१ ॥

सर्वे राजकुमाराश्च निराशाः श्रीमतीं प्रति।
मुनिस्तु विह्वलोऽतीव बभूव मदनातुरः॥ ५२

इधर, सब राजकुमार श्रीमतीकी ओरसे निराश हो गये। नारदमुनि तो कामवेदनासे आतुर हो रहे थे, इसलिये वे अत्यन्त विह्वल हो उठे॥ ५२ ॥

तदा तावूचतुः सद्यो नारदं स्मरविह्वलम्।
विप्ररूपधरौ रुद्रगणौ ज्ञानविशारदौ॥ ५३

तब वे दोनों विप्ररूपधारी ज्ञानविशारद रुद्रगण कामविह्वल नारदजीसे कहने लगे—॥ ५३॥

गणावूचतुः

हे नारद मुने त्वं हि वृथा मदनमोहितः।
तल्लिप्सुः स्वमुखं पश्य वानरस्येव गर्हितम्॥ ५४

गण बोले—हे नारद! हे मुने! आप व्यर्थ ही कामसे मोहित हो रहे हैं और [सौन्दर्यके बलसे] राजकुमारीको पाना चाहते हैं। वानरके समान अपना घृणित मुँह तो देख लीजिये॥ ५४॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य तयोर्वाक्यं नारदो विस्मितोऽभवत्।
मुखं ददर्श मुकुरे शिवमायाविमोहितः॥ ५५

सूतजी बोले—हे महर्षियो! उन रुद्रगणोंका यह वचन सुनकर नारदजीको बड़ा विस्मय हुआ। वे शिवकी मायासे मोहित थे। उन्होंने दर्पणमें अपना मुँह देखा॥ ५५॥

स्वमुखं वानरस्येव दृष्ट्वा चुक्रोध सत्वरम्।
शापं ददौ तयोस्तत्र गणयोर्मोहितो मुनिः॥ ५६

युवां ममोपहासं वै चक्रतुर्ब्राह्मणस्य हि।
भवेतां राक्षसौ विप्रवीर्यजौ वै तदाकृती॥ ५७

वानरके समान अपना मुँह देखकर वे तुरंत ही कुपित हो उठे और मायासे मोहित होनेके कारण उन दोनों शिवगणोंको वहाँ यह शाप दे दिया—तुम दोनोंने मुझ ब्राह्मणका उपहास किया है, अतः तुम दोनों ब्राह्मणके वीर्यसे उत्पन्न राक्षस हो जाओ। [ब्राह्मणकी सन्तान होनेपर भी] तुम्हारे आकार राक्षसके समान ही होंगे॥ ५६-५७॥

श्रुत्वा हरगणावित्थं स्वशापं ज्ञानिसत्तमौ।
न किञ्चिदूचतुस्तौ हि मुनिमाज्ञाय मोहितम्॥ ५८

इस प्रकार अपने लिये शाप सुनकर ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ वे दोनों शिवगण मुनिको मोहित जानकर कुछ नहीं बोले॥ ५८॥

स्वस्थानं जग्मतुर्विप्रा उदासीनौ शिवस्तुतिम्।
चक्रतुर्मन्यमानौ वै शिवेच्छां सकलां सदा॥ ५९

हे ब्राह्मणो! वे सदा सब घटनाओंमें भगवान् शिवकी इच्छा मानते थे, अतः उदासीन भावसे अपने स्थानको चले गये और भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे॥ ५९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने नारदमोहवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके सृष्टिखण्डमें नारदमोहवर्णन नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

नारदजीका भगवान् विष्णुको क्रोधपूर्वक फटकारना और शाप देना, फिर मायाके दूर हो जानेपर पश्चात्तापपूर्वक भगवान्‌के चरणोंमें गिरना और शुद्धिका उपाय पूछना तथा भगवान् विष्णुका उन्हें समझा-बुझाकर शिवका माहात्म्य जाननेके लिये ब्रह्माजीके पास जानेका आदेश और शिवके भजनका उपदेश देना

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाप्राज्ञ वर्णिता ह्यद्भुता कथा।
धन्या तु शाम्भवी माया तदधीनं चराचरम्॥ १

ऋषिगण बोले—हे महाप्राज्ञ! हे सूत! आपने बड़ी अद्भुत कथाका वर्णन किया है। भगवान् शंकरकी माया धन्य है। यह चराचर जगत् उसीके अधीन है॥ १॥

गतयोर्गणयोः शम्भोः स्वयमात्मेच्छया विभोः।
किञ्चकार मुनिः क्रुद्धो नारदः स्मरविह्वलः॥ २

भगवान् शंकरके वे दोनों गण जब अपनी इच्छासे [कहीं अन्यत्र] चले गये, तब कामविह्वल और [अपमानसे] क्रुद्ध मुनि नारदने क्या किया?॥ २॥

सूत उवाच

विमोहितो मुनिर्दत्त्वा तयोः शापं यथोचितम्।
जले मुखं निरीक्ष्याथ स्वरूपं गिरिशेच्छया॥ ३

सूतजी बोले—शिवकी इच्छासे विमोहित [उस राजकुमारीके प्रति विशेष आसक्ति होनेके कारण अन्य अर्थ-अनर्थके ज्ञानसे रहित] मुनिने उन दोनोंको यथोचित शाप देकर जलमें अपना मुख और स्वरूप देखा॥ ३॥

शिवेच्छया न प्रबुद्धः स्मृत्वा हरिकृतच्छलम्।
क्रोधं दुर्विषहं कृत्वा विष्णुलोकं जगाम ह॥ ४

उवाच वचनं क्रुद्धः समिद्ध इव पावकः।
दुरुक्तिगर्भितं व्यङ्गं नष्टज्ञानः शिवेच्छया॥ ५

शिव-इच्छाके कारण उन्हें ज्ञान नहीं हुआ और विष्णुके द्वारा किये गये छलका स्मरण करके दुःसह क्रोधमें आकर वे उसी समय विष्णुलोकमें जा पहुँचे। शिवकी इच्छासे ज्ञान-शून्य तथा समिधायुक्त जल रही अग्निके समान क्रुद्ध वे [नारद] विष्णुसे अत्यन्त अप्रिय व्यंग्य वचन कहने लगे—॥ ४-५॥

नारद उवाच

हे हरे त्वं महादुष्टः कपटी विश्वमोहनः।
परोत्साहं न सहसे मायावी मलिनाशयः॥ ६

नारदजी बोले—हे हरे! तुम बड़े दुष्ट हो, कपटी हो और समस्त विश्वको मोहमें डाले रहते हो। दूसरोंका उत्साह तुमसे सहा नहीं जाता। तुम मायावी हो और तुम्हारा अन्तःकरण मलिन है॥ ६॥

मोहिनीरूपमादाय कपटं कृतवान्पुरा।
असुरेभ्योऽपाययस्त्वं वारुणीममृतं न हि॥ ७

पूर्वकालमें तुमने मोहिनीरूप धारण करके कपट किया, असुरोंको वारुणी मदिरा पिलायी और उन्हें अमृत नहीं पीने दिया॥ ७॥

चेत्पिबेन्न विषं रुद्रो दयां कृत्वा महेश्वरः।
भवेन्नष्टाखिला माया तव व्याजरते हरे॥ ८

छल-कपटमें ही रत रहनेवाले हे हरे! यदि महेश्वर रुद्र दया करके विष न पी लेते, तो तुम्हारी सारी माया उसी दिन समाप्त हो जाती॥ ८॥

गतिः सकपटा तेऽतिप्रिया विष्णो विशेषतः।
साधुस्वभावो न भवान्स्वतन्त्रः प्रभुणा कृतः॥ ९

हे विष्णो! कपटपूर्ण चाल तुम्हें अधिक प्रिय है। तुम्हारा स्वभाव अच्छा नहीं है, भगवान् शंकरने तुम्हें स्वतन्त्र बना दिया है॥ ९॥

कृतं समुचितं नैव शिवेन परमात्मना।
तत्प्रभावबलं ध्यात्वा स्वतन्त्रकृतिकारकः॥ १०

त्वद्गतिं सुसमाज्ञाय पश्चात्तापमवाप सः।

परमात्मा शंकरके द्वारा ऐसा करके अच्छा नहीं किया गया और तुम उनके प्रभावबलको जानकर स्वतन्त्र होकर कार्य करते रहते हो। तुम्हारी इस चाल-ढालको समझकर अब वे (भगवान् शिव) भी पश्चात्ताप करते होंगे॥ १०१/२॥

विप्रं सर्वोपरि प्राह स्वोक्तवेदप्रमाणकृत्॥ ११

तज्ज्ञात्वाहं हरे त्वाद्य शिक्षयिष्यामि तद्बलात्।
यथा न कुर्याः कुत्रापीदृशं कर्म कदाचन॥ १२

अपनी वाणीरूप वेदकी प्रामाणिकता स्थापित करनेवाले महादेवजीने ब्राह्मणको सर्वोपरि बताया है। हे हरे! इस बातको जानकर आज मैं बलपूर्वक तुम्हें ऐसी सीख दूँगा, जिससे तुम फिर कभी कहीं भी ऐसा कर्म नहीं कर सकोगे॥ ११-१२॥

अद्यापि निर्भयस्त्वं हि सङ्गं नापस्तरस्विना।
इदानीं लप्स्यसे विष्णो फलं स्वकृतकर्मणः॥ १३

अबतक किसी तेजस्वी पुरुषसे तुम्हारा पाला नहीं पड़ा था, इसलिये आजतक तुम निडर बने हुए हो, परंतु हे विष्णो! अब तुम्हें अपने द्वारा किये गये कर्मका फल मिलेगा॥ १३॥

इत्थमुक्त्वा हरिं सोऽथ मुनिर्मायाविमोहितः।
शशाप क्रोधनिर्विण्णो ब्रह्मतेजः प्रदर्शयन्॥ १४

भगवान् विष्णुसे ऐसा कहकर मायामोहित नारद मुनि अपने ब्रह्मतेजका प्रदर्शन करते हुए क्रोधसे खिन्न हो उठे और शाप देते हुए बोले—॥ १४॥

स्त्रीकृते व्याकुलं विष्णो मामकार्षीर्विमोहकः।
अन्वकार्षीः स्वरूपेण येन कापट्यकार्यकृत्॥ १५

तद्रूपेण मनुष्यस्त्वं भव तद्दुःखभुग्घरे।
यन्मुखं कृतवान्मे त्वं ते भवन्तु सहायिनः॥ १६

त्वं स्त्रीवियोगजं दुःखं लभस्व परदुःखदः।
मनुष्यगतिकः प्रायो भवाज्ञानविमोहितः॥ १७

हे विष्णो! तुमने स्त्रीके लिये मुझे व्याकुल किया है। तुम इसी तरह सबको मोहमें डालते रहते हो। यह कपटपूर्ण कार्य करते हुए तुमने जिस स्वरूपसे मुझे संयुक्त किया था, उसी स्वरूपसे हे हरे! तुम मनुष्य हो जाओ और स्त्रीके लिये दूसरोंको दुःख देनेवाले तुम भी स्त्रीके वियोगका दुःख भोगो। तुमने जिन वानरोंके समान मेरा मुँह बनाया था, वे ही उस समय तुम्हारे सहायक हों। तुम दूसरोंको [स्त्री-विरहका] दुःख देनेवाले हो, अतः स्वयं भी तुम्हें स्त्रीके वियोगका दुःख प्राप्त हो और अज्ञानसे मोहित मनुष्योंके समान तुम्हारी स्थिति हो॥ १५—१७॥

इति शप्त्वा हरिं मोहान्नारदोऽज्ञानमोहितः।
विष्णुर्जग्राह तं शापं प्रशंसन् शाम्भवीमजाम्॥ १८

अज्ञानसे मोहित हुए नारदजीने मोहवश श्रीहरिको जब इस तरह शाप दिया, तब उन विष्णुने शम्भुकी मायाकी प्रशंसा करते हुए उस शापको स्वीकार कर लिया॥ १८॥

अथ शम्भुर्महालीलो निश्चकर्ष विमोहिनीम्।
स्वमायां मोहितो ज्ञानी नारदोऽप्यभवद्यया॥ १९

तदनन्तर महालीला करनेवाले शम्भुने अपनी उस विश्वमोहिनी मायाको, जिसके कारण ज्ञानी नारदमुनि भी मोहित हो गये थे, खींच लिया॥ १९॥

अन्तर्हितायां मायायां पूर्ववन्मतिमानभूत्।
नारदो विस्मितमनाः प्राप्तबोधो निराकुलः॥ २०

उस मायाके तिरोहित होते ही नारदजी पूर्ववत् शुद्ध बुद्धिसे युक्त हो गये। उन्हें पूर्ववत् ज्ञान प्राप्त हो गया और उनकी सारी व्याकुलता जाती रही। इससे उनके मनमें बड़ा विस्मय हुआ॥ २०॥

पश्चात्तापमवाप्याति निनिन्द स्वं मुहुर्मुहुः।
प्रशशंस तदा मायां शाम्भवीं ज्ञानिमोहिनीम्॥ २१

वे पश्चात्ताप करके बार-बार अपनी निन्दा करने लगे। उस समय उन्होंने ज्ञानीको भी मोहमें डालनेवाली भगवान् शम्भुकी मायाकी सराहना की॥ २१॥

अथ ज्ञात्वा मुनिः सर्वं मायाविभ्रममात्मनः।
अपतत्पादयोर्विष्णोर्नारदो वैष्णवोत्तमः॥ २२

तदनन्तर यह जानकर कि मायाके कारण ही मैं भ्रममें पड़ गया था, वैष्णवशिरोमणि नारदजी भगवान् विष्णुके चरणोंमें गिर पड़े॥ २२॥

हर्युपस्थापितः प्राह वचनं नष्टदुर्मतिः।
मया दुरुक्तयः प्रोक्ता मोहितेन कुबुद्धिना॥ २३

दत्तः शापोऽपि ते नाथ वितथं कुरु तं प्रभो।
महत्पापमकार्षं हि यास्यामि निरयं ध्रुवम्॥ २४

कमुपायं हरे कुर्यां दासोऽहं ते तमादिश।
येन पापकुलं नश्येन्निरयो न भवेन्मम॥ २५

भगवान् श्रीहरिने उन्हें उठाकर खड़ा कर दिया। उस समय अपनी दुर्बुद्धि नष्ट हो जानेके कारण वे बोले—मायासे मोहित होनेके कारण मेरी बुद्धि बिगड़ गयी थी, इसलिये मैंने आपके प्रति बहुत दुर्वचन कहे हैं। हे नाथ! मैंने आपको शाप तक दे डाला है। हे प्रभो! उस शापको आप मिथ्या कर दीजिये। हाय! मैंने बहुत बड़ा पाप किया है, अब मैं निश्चय ही नरकमें पड़ूँगा। हे हरे! मैं आपका दास हूँ। अतः बताइये, मैं क्या उपाय—कौन-सा प्रायश्चित्त करूँ, जिससे मेरा पाप-समूह नष्ट हो जाय और मुझे नरकमें न गिरना पड़े॥ २३—२५॥

इत्युक्त्वा स पुनर्विष्णोः पादयोर्मुनिसत्तमः।
पपात सुमतिर्भक्त्या पश्चात्तापमुपागतः॥ २६
अथ विष्णुस्तमुत्थाप्य बभाषे सूनृतं वचः।

ऐसा कहकर शुद्ध बुद्धिवाले मुनिशिरोमणि नारदजी पुनः भक्तिभावसे भगवान् विष्णुके चरणोंमें गिर पड़े। उस समय उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हो रहा था। तब श्रीविष्णु उन्हें उठाकर मधुर वाणीमें कहने लगे— ॥ २६$^1/_2$ ॥

विष्णुरुवाच

न खेदं कुरु मे भक्तवरस्त्वं नात्र संशयः॥ २७
शृणु तात प्रवक्ष्यामि सुहितं तव निश्चयात्।
निरयस्ते न भविता शिवः शं ते विधास्यति॥ २८

विष्णु बोले—हे तात! खेद मत कीजिये। आप मेरे श्रेष्ठ भक्त हैं, इसमें संशय नहीं है। मैं आपको एक बात बताता हूँ, सुनिये। उससे निश्चय ही आपका परम हित होगा, आपको नरकमें नहीं जाना पड़ेगा। भगवान् शिव आपका कल्याण करेंगे॥ २७-२८॥

यदकार्षीः शिववचो वितथं मदमोहितः।
स दत्तवानीदृशं ते फलं कर्मफलप्रदः॥ २९

आपने मदसे मोहित होकर जो भगवान् शिवकी बात नहीं मानी थी—उसकी अवहेलना कर दी थी, उसी अपराधका ऐसा फल भगवान् शिवने आपको दिया है, क्योंकि वे ही कर्मफलके दाता हैं॥ २९॥

शिवेच्छयाखिलं जातं कुर्वित्थं निश्चितां मतिम्।
गर्वापहर्ता स स्वामी शङ्करः परमेश्वरः॥ ३०

आप अपने मनमें यह दृढ़ निश्चय कर लीजिये कि भगवान् शिवकी इच्छासे ही यह सब कुछ हुआ है। सबके स्वामी परमेश्वर शंकर ही गर्वको दूर करनेवाले हैं॥ ३०॥

परं ब्रह्म परात्मा स सच्चिदानन्दबोधनः।
निर्गुणो निर्विकारी च रजःसत्त्वतमःपरः॥ ३१

वे ही परब्रह्म हैं, परमात्मा हैं, उन्हींका सच्चिदानन्द-रूपसे बोध होता है, वे निर्गुण हैं, निर्विकार हैं और सत्त्व, रज तथा तम—इन तीनों गुणोंसे परे हैं॥ ३१॥

स एवादाय मायां स्वां त्रिधा भवति रूपतः।
ब्रह्मविष्णुमहेशात्मा निर्गुणोऽनिर्गुणोऽपि सः॥ ३२

वे ही अपनी मायाको लेकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन तीन रूपोंमें प्रकट होते हैं। निर्गुण और सगुण भी वे ही हैं॥ ३२॥

निर्गुणत्वे शिवाह्वो हि परमात्मा महेश्वरः।
परं ब्रह्माव्ययोऽनन्तो महादेवेति गीयते॥ ३३

निर्गुण अवस्थामें उन्हींका नाम शिव है। वे ही परमात्मा, महेश्वर, परब्रह्म, अविनाशी, अनन्त और महादेव आदि नामोंसे कहे जाते हैं॥ ३३॥

तत्सेवया विधिः स्रष्टा पालको जगतामहम्।
स्वयं सर्वस्य संहारी रुद्ररूपेण सर्वदा॥ ३४

उन्हींकी सेवासे ब्रह्माजी जगत्के स्रष्टा हुए हैं, मैं तीनों लोकोंका पालन करता हूँ और वे स्वयं ही रुद्ररूपसे सदा सबका संहार करते हैं॥ ३४॥

साक्षी शिवस्वरूपेण मायाभिन्नः स निर्गुणः।
स्वेच्छाचारी संविहारी भक्तानुग्रहकारकः॥ ३५

वे शिवस्वरूपसे सबके साक्षी हैं, मायासे भिन्न और निर्गुण हैं। स्वतन्त्र होनेके कारण वे अपनी इच्छाके अनुसार चलते हैं। उनका विहार-आचार, व्यवहार उत्तम है और वे भक्तोंपर दया करनेवाले हैं॥ ३५॥

शृणु त्वं नारद मुने सदुपायं सुखप्रदम्।
सर्वपापापहर्तारं भुक्तिमुक्तिप्रदं सदा॥ ३६

हे नारद मुने! मैं आपको एक सुन्दर उपाय बताता हूँ, जो सुखद, समस्त पापोंका नाश करनेवाला और सदा भोग एवं मोक्ष देनेवाला है, आप उसे सुनिये॥ ३६॥

त्यक्त्वा स्वसंशयं सर्वं गायन् शङ्करसद्यशः।
शतनामशिवस्तोत्रं सदानन्यमतिर्जप॥ ३७

यज्जपित्वा द्रुतं सर्वं तव पापं विनश्यति।

अपने समस्त संशयोंको त्यागकर आप भगवान् शंकरके सुयशका गान कीजिये और सदा अनन्यभावसे शिवके शतनामस्तोत्रका पाठ कीजिये। जिसका पाठ करनेसे आपके समस्त पाप शीघ्र ही नष्ट हो जायँगे॥ ३७$^1/_2$॥

इत्युक्त्वा नारदं विष्णुः पुनः प्राह दयान्वितः॥ ३८

मुने न कुरु शोकं त्वं त्वया किञ्चित्कृतं न हि।
स्वेच्छया कृतवाञ्शम्भुरिदं सर्वं न संशयः॥ ३९

इस प्रकार नारदसे कहकर दयालु भगवान् विष्णुने उनसे पुनः कहा—हे मुने! आप शोक न करें। आपने तो कुछ किया ही नहीं है। यह सब तो भगवान् शंकरने अपनी इच्छासे किया है। इसमें शंका नहीं है॥ ३८-३९॥

अहार्षीत्त्वन्मतिं दिव्यां कामक्लेशमदात्स ते।
त्वन्मुखाद्दापयाञ्चक्रे शापं मे स महेश्वरः॥ ४०

उन्होंने ही आपकी दिव्य बुद्धिका हरण कर लिया था। उन्होंने ही आपको कामका कष्ट भी दिया और उन्हीं भगवान् शंकरने आपके मुखसे मुझे यह शाप भी दिलाया है॥ ४०॥

इत्थं स्वचरितं लोके प्रकटीकृतवान् स्वयम्।
मृत्युञ्जयः कालकालो भक्तोद्धारपरायणः॥ ४१

इस प्रकार उन्होंने संसारमें अपने चरित्रको स्वयं प्रकट किया है [इसमें अन्य किसीका दोष नहीं है]। वे मृत्युको जीतनेवाले, कालके भी काल और भक्तोंका उद्धार करनेमें तत्पर रहनेवाले हैं॥ ४१॥

न मे शिवसमानोऽस्ति प्रियः स्वामी सुखप्रदः।
सर्वशक्तिप्रदो मेऽस्ति स एव परमेश्वरः॥ ४२

मुझे शिवके समान अन्य कोई प्रिय नहीं है। वे ही मेरे स्वामी हैं, सुख और शक्ति देनेवाले हैं। वे महेश्वर ही मेरे सब कुछ हैं॥ ४२॥

तस्योपास्यां कुरु मुने तमेव सततं भज।
तद्यशः शृणु गाय त्वं कुरु नित्यं तदर्चनम्॥ ४३

हे मुने! आप उन्हींकी उपासना करें, सदैव उन्हींका भजन करें, उन्हींके यशका श्रवण और गान करें तथा नित्य उन्हींकी अर्चना करें॥ ४३॥

कायेन मनसा वाचा यः शङ्करमुपैति भोः।
स पण्डित इति ज्ञेयः स जीवन्मुक्त उच्यते॥ ४४

हे मुने! जो शरीर, मन तथा वाणीसे शंकरको प्राप्त कर लेता है, वही पण्डित है—ऐसा जानना चाहिये और वही जीवन्मुक्त कहा जाता है॥ ४४॥

शिवेति नामदावाग्नेर्महापातकपर्वताः।
भस्मीभवन्त्यनायासात्सत्यं सत्यं न संशयः॥ ४५

शिव-नामरूपी इस दावाग्निसे महापातकरूपी पर्वत अनायास ही जलकर भस्म हो जाते हैं, यह पूर्णतया सत्य है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४५॥

पापमूलानि दुःखानि विविधान्यपि तान्यतः।
शिवार्चनैकनश्यानि नान्यनश्यानि सर्वथा॥ ४६

संसारमें पापोंके मूलभूत जितने भी प्रकारके दुःख हैं, वे सर्वथा मात्र शिवपूजनसे ही नष्ट हो जाते हैं। अन्य उपायोंसे [उनका] नाश सम्भव नहीं है॥ ४६॥

स वैदिकः स पुण्यात्मा स धन्यः स बुधो मुने।
यः सदा कायवाक् चित्तैः शरणं याति शङ्करम्॥ ४७

हे मुने! वही वैदिक है, वही पुण्यात्मा है, वही धन्य है और वही बुद्धिमान् है, जो सदा शरीर, वाणी और मनसे भगवान् शंकरकी शरणमें चला जाता है॥ ४७॥

भवन्ति विविधा धर्मा येषां सद्यः फलोन्मुखाः।
तेषां भवति विश्वासस्त्रिपुरान्तकपूजने॥ ४८

जिनके विविध प्रकारके धर्मकृत्य तत्काल फलोन्मुख (फल देनेवाले) होते हैं, उनका पूर्ण विश्वास त्रिपुरके विनाशक शिवमें होता है॥ ४८॥

पातकानि विनश्यन्ति यावन्ति शिवपूजया।
भुवि तावन्ति पापानि न सन्त्येव महामुने॥ ४९

महामुने! शिवकी पूजासे जितने पाप नष्ट हो जाते हैं, उतने पाप तो पृथ्वीमें हैं ही नहीं॥ ४९॥

ब्रह्महत्यादिपापानां राशयोऽप्यमिता मुने।
शिवस्मृत्या विनश्यन्ति सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ ५०

हे मुने! ब्रह्महत्यादि पापोंकी अपरिमित राशियाँ भी शिवका स्मरण करनेसे नष्ट हो जाती हैं, यह मैं पूर्ण सत्य कह रहा हूँ॥ ५०॥

शिवनामतरीं प्राप्य संसाराब्धिं तरन्ति ते।
संसारमूलपापानि तस्य नश्यन्त्यसंशयम्॥ ५१

शिव-नामका कीर्तन करनेवाले लोग ही शिवनामकी नौकासे संसाररूपी सागरको पार कर जाते हैं। संसारका मूल पाप-समूह है, उसका नाश नामकीर्तनसे निश्चित ही हो जाता है॥ ५१॥

संसारमूलभूतानां पातकानां महामुने।
शिवनामकुठारेण विनाशो जायते ध्रुवम्॥ ५२

हे महामुने! शिवनामरूपी कुठारसे संसारके मूलभूत पापोंका नाश अवश्य हो जाता है॥ ५२॥

शिवनामामृतं पेयं पापदावानलार्दितैः।
पापदावाग्नितप्तानां शान्तिस्तेन विना न हि॥ ५३

पापरूपी दावानलसे दग्ध हुए लोगोंको शिव-नामरूपी अमृत पीना चाहिये, पापकी दावाग्निसे तपे हुए लोगोंको उसके बिना शान्ति देनेका कोई अन्य उपाय नहीं मिल सकता॥ ५३॥

शिवेति नामपीयूषवर्षधारापरिप्लुताः।
संसारदवमध्येऽपि न शोचन्ति न संशयः॥ ५४

शिव—इस नामकी अमृतमयी वर्षाकी धारासे नहाये हुए लोग संसारके पापोंकी दावाग्निके मध्य रहते हुए भी शोक नहीं करते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ५४॥

न भक्तिः शङ्करे पुंसां रागद्वेषरतात्मनाम्।
तद्विरुद्धजनानां हि मुक्तिर्भवति सर्वथा॥ ५५

राग-द्वेषमें निरन्तर लगे रहनेवाले लोगोंकी शिवके प्रति भक्ति नहीं होती है, किंतु इसके विपरीत अर्थात् पापोंसे विरत रहनेवाले लोगोंकी मुक्ति तो निश्चित ही होती है॥ ५५॥

अनन्तजन्मभिर्येन तपस्तप्तं भविष्यति।
तस्यैव भक्तिर्भवति भवानीप्राणवल्लभे॥ ५६

जिसने अनन्त जन्मोंमें अपनी तपस्यासे शरीरको जलाया होगा, उसीकी भक्ति भवानीप्राणवल्लभ शिवके लिये सम्भव है॥ ५६॥

जातापि शङ्करे भक्तिरन्यसाधारणी वृथा।
परं त्वव्यभिचारेण शिवभक्तिरपेक्षिता॥ ५७

भगवान् शिवके प्रति अनन्यतापूर्वक की गयी 'शिव-नाम-भक्ति' के अतिरिक्त अन्य साधारण भक्ति व्यर्थ ही हो जाती है॥ ५७॥

यस्यासाधारणी शम्भौ भक्तिरव्यभिचारिणी।
तस्यैव मोक्षः सुलभो नान्यस्येति मतिर्मम॥ ५८

भगवान् शिवके प्रति जिसकी भक्ति एकनिष्ठ तथा असाधारण होती है, उसको ही मोक्ष प्राप्त होता है। अन्यके लिये वह सुलभ नहीं है—ऐसा मेरा विश्वास है॥ ५८॥

कृत्वाप्यनन्तपापानि यदि भक्तिर्महेश्वरे।
सर्वपापविनिर्मुक्तो भवत्येव न संशयः॥ ५९

अनन्त पाप करनेके पश्चात् भी यदि प्राणी भगवान् शंकरमें भक्ति करने लगता है, तो वह सभी पापोंसे निर्मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५९॥

भवन्ति भस्मसाद् वृक्षा दवदग्धा यथा वने।
तथा भवन्ति दग्धानि शाङ्कराणामघान्यपि॥ ६०

जिस प्रकार वनमें दावाग्निसे वृक्ष [जलकर] भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार शिव-भक्तोंके पाप भी [शिव-भक्तिके प्रभावसे] नष्ट हो जाते हैं॥ ६०॥

यो नित्यं भस्मपूताङ्गो शिवपूजोन्मुखो भवेत्।
स तरत्येव संसारमपारमतिदारुणम्॥ ६१

जो मनुष्य नित्य अपने शरीरको भस्मसे पवित्रकर शिवकी पूजामें लगा रहता है, वह महान् कष्ट देनेवाले संसाररूपी अपार सागरको निश्चित ही पार कर जाता है॥ ६१॥

ब्रह्मस्वहरणं कृत्वा हत्वापि ब्राह्मणान्बहून्।
न लिप्यते नरः पापैर्विरूपाक्षस्य सेवकः॥ ६२

ब्राह्मणोंका धन हरण करके और बहुतसे ब्राह्मणोंकी हत्या करके भी जो मनुष्य विरूपाक्ष भगवान् शंकरकी सेवामें लग जाता है, उसे उन पापोंसे लिप्त नहीं होना पड़ता॥ ६२॥

विलोक्य वेदानखिलान् शिवस्यैवार्चनं परम्।
संसारनाशनोपाय इति पूर्वैर्विनिश्चितम्॥ ६३

सम्पूर्ण वेदोंका अवलोकन करके पूर्ववर्ती विद्वानोंने यही निश्चय किया है कि भगवान् शिवकी पूजा ही संसार-बन्धनके नाशका उपाय है॥ ६३॥

अद्यप्रभृति यत्नेन सावधानो यथाविधि।
साम्बं सदाशिवं भक्त्या भज नित्यं महेश्वरम्॥ ६४

[हे मुने!] आजसे यत्नपूर्वक सावधान रहकर विधि-विधानके साथ भक्तिभावसे नित्य जगदम्बा पार्वतीसहित महेश्वर सदाशिवका भजन कीजिये॥ ६४॥

आपादमस्तकं सम्यग्भस्मनोद्धूल्य सादरम्।
सर्वश्रुतिश्रुतं शैवं मन्त्रं जप षडक्षरम्॥ ६५

पैरसे लेकर सिरतक भस्मका लेपन करके सम्यक् रूपसे आदरपूर्वक सभी श्रुतियोंसे सुने गये षडक्षर शैव-मन्त्र (ॐ नमः शिवाय)-का जप कीजिये॥ ६५॥

सर्वाङ्गेषु प्रयत्नेन रुद्राक्षान् शिववल्लभान्।
धारयस्वातिसद्भक्त्या समन्त्रं विधिपूर्वकम्॥ ६६

प्रयत्नपूर्वक [बताये गये नियमानुसार] भगवान् शिवके प्रिय रुद्राक्षको धारण करके अत्यन्त सद्भक्तिसे ही सविधि मन्त्रका जप करना चाहिये॥ ६६॥

शृणु शैवीं कथां नित्यं वद शैवीं कथां सदा।
पूजयस्वातियत्नेन शिवभक्तान्पुनः पुनः॥ ६७

नित्य शिवकी ही कथा सुनिये और कहिये। अत्यन्त यत्न करके बारम्बार शिव-भक्तोंका पूजन किया कीजिये॥ ६७॥

अप्रमादेन सततं शिवैकशरणो भव।
शिवार्चनेन सततमानन्दः प्राप्यते यतः॥ ६८

प्रमादसे रहित होकर सदा एकमात्र शिवकी शरणमें रहिये, क्योंकि शिवके पूजनसे ही निरन्तर आनन्द प्राप्त होता रहता है॥ ६८॥

उरस्याधाय विशदे शिवस्य चरणाम्बुजौ।
शिवतीर्थानि विचर प्रथमं मुनिसत्तम॥ ६९

हे मुनिश्रेष्ठ! अपने हृदयमें भगवान् शिवके उज्ज्वल चरणारविन्दोंकी स्थापना करके पहले शिवके तीर्थोंमें विचरण कीजिये॥ ६९॥

पश्यन्माहात्म्यमतुलं शङ्करस्य परात्मनः।
गच्छानन्दवनं पश्चाच्छम्भुप्रियतमं मुने॥ ७०

हे मुने! इस प्रकार परमात्मा शंकरके अनुपम माहात्म्यका दर्शन करते हुए अन्तमें आनन्दवन (काशी) जाइये, वह स्थान भगवान् शिवको बहुत ही प्रिय है॥ ७०॥

तत्र विश्वेश्वरं दृष्ट्वा पूजनं कुरु भक्तितः।
नत्वा स्तुत्वा विशेषेण निर्विकल्पो भविष्यसि॥ ७१

वहाँ विश्वनाथजीका दर्शन करके भक्तिपूर्वक उनकी पूजा कीजिये। विशेषतः उनकी स्तुति-वन्दना करके आप निर्विकल्प (संशयरहित) हो जायँगे॥ ७१॥

ततश्च भवता नूनं विधेयं गमनं मुने।
ब्रह्मलोके स्वकामार्थं शासनान्मम भक्तितः॥ ७२

हे मुने! इसके बाद आपको मेरी आज्ञासे भक्तिपूर्वक अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये निश्चय ही ब्रह्मलोकमें जाना चाहिये॥ ७२॥

नत्वा स्तुत्वा विशेषेण विधिं स्वजनकं मुने।
प्रष्टव्यं शिवमाहात्म्यं बहुशः प्रीतचेतसा॥ ७३

हे मुने! वहाँ अपने पिता ब्रह्माजीकी विशेषरूपसे स्तुति-वन्दना करके आपको प्रसन्नतापूर्ण हृदयसे बारम्बार शिव-महिमाके विषयमें प्रश्न करना चाहिये॥ ७३॥

स शैवप्रवरो ब्रह्मा माहात्म्यं शङ्करस्य ते।
श्रावयिष्यति सुप्रीत्या शतनामस्तवं च हि॥ ७४

ब्रह्माजी शिव-भक्तोंमें श्रेष्ठ हैं, वे आपको अत्यन्त प्रसन्नताके साथ भगवान् शंकरका माहात्म्य और शतनाम-स्तोत्र सुनायेंगे॥ ७४॥

अद्यतस्त्वं भव मुने शैवः शिवपरायणः।
मुक्तिभागी विशेषेण शिवस्ते शं विधास्यति॥ ७५

हे मुने! आजसे आप शिवाराधनमें तत्पर रहनेवाले शिवभक्त हो जाइये और विशेषरूपसे मोक्षके भागी बनिये। भगवान् शिव आपका कल्याण करेंगे॥ ७५॥

इत्थं विष्णुर्मुनिं प्रीत्या ह्युपदिश्य प्रसन्नधीः।
स्मृत्वा नुत्वा शिवं स्तुत्वा ततस्त्वन्तरधीयत॥ ७६

इस प्रकार प्रसन्नचित्त हुए भगवान् विष्णु नारदमुनिको प्रेमपूर्वक उपदेश देकर शिवजीका स्मरण, वन्दन और स्तवन करके वहाँसे अन्तर्धान हो गये॥ ७६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने नारदाय विष्णूपदेशवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें नारद-विष्णु-उपदेश-वर्णन नामक चतुर्थ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

नारदजीका शिवतीर्थोंमें भ्रमण, शिवगणोंको शापोद्धारकी बात बताना तथा ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माजीसे शिवतत्त्वके विषयमें प्रश्न करना

सूत उवाच

अन्तर्हिते हरौ विप्रा नारदो मुनिसत्तमः।
विचचार महीं पश्यन् शिवलिङ्गानि भक्तितः॥ १

सूतजी बोले—महर्षियो! भगवान् श्रीहरिके अन्तर्धान हो जानेपर मुनिश्रेष्ठ नारद शिवलिंगोंका भक्तिपूर्वक दर्शन करते हुए पृथ्वीपर विचरने लगे॥ १॥

पृथिव्या अटनं कृत्वा शिवरूपाण्यनेकशः।
ददर्श प्रीतितो विप्रा भुक्तिमुक्तिप्रदानि सः॥ २

ब्राह्मणो! भूमण्डलपर घूम-फिरकर उन्होंने भोग और मोक्ष देनेवाले बहुतसे शिवलिंगोंका प्रेमपूर्वक दर्शन किया॥ २॥

अथ तं विचरन्तं कौ नारदं दिव्यदर्शनम्।
ज्ञात्वा शम्भुगणौ तौ तु सुचित्तमुपजग्मतुः॥ ३

दिव्यदर्शी नारदजी भूतलके तीर्थोंमें विचर रहे हैं और इस समय उनका चित्त शुद्ध है—यह जानकर वे दोनों शिवगण उनके पास गये॥ ३॥

शिरसा सुप्रणम्याशु गणावूचतुरादरात्।
गृहीत्वा चरणौ तस्य शापोद्धारेच्छया च तौ॥ ४

वे दोनों शिवगण शापसे उद्धारकी इच्छासे आदरपूर्वक मस्तक झुकाकर भलीभाँति प्रणाम करके मुनिके दोनों पैर पकड़कर आदरपूर्वक उनसे कहने लगे—॥ ४॥

शिवगणावूचतुः

ब्रह्मपुत्र सुरर्षे हि शृणु प्रीत्यावयोर्वचः।
तवापराधकर्तारावावां विप्रौ न वस्तुतः॥ ५

शिवगण बोले—हे ब्रह्मपुत्र देवर्षे! प्रेमपूर्वक हम दोनोंकी बातोंको सुनिये। वास्तवमें हम दोनों ही आपका अपराध करनेवाले हैं, ब्राह्मण नहीं हैं॥ ५॥

आवां हरगणौ विप्र तवागस्कारिणौ मुने।
स्वयम्वरे राजपुत्र्या मायामोहितचेतसा॥ ६

त्वया दत्तश्च नौ शापः परेशप्रेरितेन ह।
ज्ञात्वा कुसमयं तत्र मौनमेव हि जीवनम्॥ ७

हे मुने! हे विप्र! आपका अपराध करनेवाले हम दोनों शिवके गण हैं। राजकुमारी श्रीमतीके स्वयंवरमें आपका चित्त मायासे मोहित हो रहा था। उस समय परमेश्वरकी प्रेरणासे आपने हम दोनोंको शाप दे दिया। वहाँ कुसमय जानकर हमने चुप रह जाना ही अपनी जीवन-रक्षाका उपाय समझा॥ ६-७॥

स्वकर्मणः फलं प्राप्तं कस्यापि न हि दूषणम्।
सुप्रसन्नो भव विभो कुर्वनुग्रहमद्य नौ॥ ८

इसमें किसीका दोष नहीं है। हमें अपने कर्मका ही फल प्राप्त हुआ है। प्रभो! अब आप प्रसन्न होइये और हम दोनोंपर अनुग्रह कीजिये॥ ८॥

सूत उवाच

वच आकर्ण्य गणयोरिति भक्त्युक्तमादरात्।
प्रत्युवाच मुनिः प्रीत्या पश्चात्तापमवाप्य सः॥ ९

सूतजी बोले—उन दोनों गणोंके द्वारा भक्तिपूर्वक कहे गये वचनोंको सुनकर पश्चात्ताप करते हुए देवर्षि नारद प्रेमपूर्वक कहने लगे॥ ९॥

नारद उवाच

शृणुतं मे महादेवगणौ मान्यतमौ सताम्।
वचनं सुखदं मोहनिर्मुक्तं च यथार्थकम्॥ १०

नारदजी बोले—आप दोनों महादेवके गण हैं और सत्पुरुषोंके लिये परम सम्माननीय हैं, अतः मेरे मोहरहित एवं सुखदायक यथार्थ वचनको सुनिये॥ १०॥

पुरा मम मतिर्भ्रष्टासीच्छिवेच्छावशाद् ध्रुवम्।
सर्वथा मोहमापन्नः शप्तवान्वां कुशेमुषिः॥ ११

पहले निश्चय ही शिवेच्छावश मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी और मैं सर्वथा मोहके वशीभूत हो गया था। इसीलिये आप दोनोंको कुबुद्धिवाले मैंने शाप दे दिया॥ ११॥

यदुक्तं तत्तथा भावि तथापि शृणुतां गणौ।
शापोद्धारमहं वच्मि क्षमेथामघमद्य मे॥ १२

हे शिवगणो! मैंने जो कुछ कहा है, वह वैसा ही होगा, फिर भी मेरी बात सुनें। मैं आपके लिये शापोद्धारकी बात बता रहा हूँ। आपलोग आज मेरे अपराधको क्षमा कर दें॥ १२॥

वीर्यान्मुनिवरस्याप्त्वा राक्षसेशत्वमादिशम्।
स्यातां विभवसंयुक्तौ बलिनौ सुप्रतापिनौ॥ १३

सर्वब्रह्माण्डराजानौ शिवभक्तौ जितेन्द्रियौ।
शिवापरतनोर्मृत्युं प्राप्य स्वं पदमाप्स्यथः॥ १४

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य मुनेर्वाक्यं नारदस्य महात्मनः।
उभौ हरगणौ प्रीतौ स्वं पदं जग्मतुर्मुदा॥ १५

नारदोऽपि परं प्रीतो ध्यायन् शिवमनन्यधीः।
विचचार महीं पश्यन् शिवतीर्थान्यभीक्ष्णशः॥ १६

काशीं प्राप्याथ स मुनिः सर्वोपरिविराजिताम्।
शिवप्रियां शम्भुसुखप्रदां शम्भुस्वरूपिणीम्॥ १७

दृष्ट्वा काशीं कृतार्थोऽभूत्काशीनाथं ददर्श ह।
आनर्च परमप्रीत्या परमानन्दसंयुतः॥ १८

समुदः सेव्य तां काशीं कृतार्थो मुनिसत्तमः।
नमन्संवर्णयन्भक्त्या संस्मरन्प्रेमविह्वलः॥ १९

ब्रह्मलोकं जगामाथ शिवस्मरणसन्मतिः।
शिवतत्त्वं विशेषेण ज्ञातुमिच्छुः स नारदः॥ २०

नत्वा तत्र विधिं भक्त्या स्तुत्वा च विविधैस्तवैः।
पप्रच्छ शिवसत्तत्त्वं शिवसंयुक्तमानसः॥ २१

नारद उवाच

ब्रह्मन्ब्रह्मस्वरूपज्ञ पितामह जगत्प्रभो।
त्वत्प्रसादान्मया सर्वं विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम्॥ २२

भक्तिमार्गं ज्ञानमार्गं तपोमार्गं सुदुस्तरम्।
दानमार्गं च तीर्थानां मार्गं च श्रुतवानहम्॥ २३

मुनिवर विश्रवाके वीर्यसे जन्म ग्रहण करके आप सम्पूर्ण दिशाओंमें प्रसिद्ध [कुम्भकर्ण-रावण] राक्षसराजका शरीर प्राप्त करेंगे और बलवान्, वैभवसे युक्त तथा परम प्रतापी होंगे॥ १३॥

समस्त ब्रह्माण्डके राजा होकर शिवभक्त एवं जितेन्द्रिय होंगे और शिवके ही दूसरे स्वरूप श्रीविष्णुके हाथों मृत्यु पाकर फिर आप दोनों अपने पदपर प्रतिष्ठित हो जायँगे॥ १४॥

सूतजी बोले—हे महर्षियो! महात्मा नारदमुनिकी यह बात सुनकर वे दोनों शिवगण प्रसन्न होकर सानन्द अपने स्थानको लौट गये॥ १५॥

नारदजी भी अत्यन्त आनन्दित हो अनन्य भावसे भगवान् शिवका ध्यान तथा शिवतीर्थोंका दर्शन करते हुए बारम्बार भूमण्डलमें विचरने लगे॥ १६॥

अन्तमें वे सबके ऊपर विराजमान काशीपुरीमें गये, जो शिवजीकी प्रिय, शिवस्वरूपिणी एवं शिवको सुख देनेवाली है॥ १७॥

काशीपुरीका दर्शन करके नारदजी कृतार्थ हो गये। उन्होंने भगवान् काशीनाथका दर्शन किया और परम प्रीति एवं परमानन्दसे युक्त हो उनकी पूजा की॥ १८॥

काशीका सानन्द सेवन करके वे मुनिश्रेष्ठ कृतार्थताका अनुभव करने लगे और प्रेमसे विह्वल हो उसका नमन, वर्णन तथा स्मरण करते हुए ब्रह्मलोकको गये। निरन्तर शिवका स्मरण करनेसे शुद्ध-बुद्धिको प्राप्त देवर्षि नारदने वहाँ पहुँचकर विशेषरूपसे शिवतत्त्वका ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे ब्रह्माजीको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति करके उनसे शिवतत्त्वके विषयमें पूछा। उस समय नारदजीका हृदय भगवान् शंकरके प्रति भक्तिभावनासे परिपूर्ण था॥ १९—२१॥

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! परब्रह्म परमात्माके स्वरूपको जाननेवाले हे पितामह! हे जगत्प्रभो! आपके कृपाप्रसादसे मैंने भगवान् विष्णुके उत्तम माहात्म्यका पूर्णतया ज्ञान प्राप्त किया है॥ २२॥

भक्तिमार्ग, ज्ञानमार्ग, अत्यन्त दुस्तर तपोमार्ग, दानमार्ग तथा तीर्थमार्गका भी वर्णन सुना है, परंतु शिवतत्त्वका ज्ञान मुझे अभीतक नहीं हुआ है। मैं भगवान्

न ज्ञातं शिवतत्त्वं च पूजाविधिमतः क्रमात्।
चरित्रं विविधं तस्य निवेदय मम प्रभो॥ २४

शंकरकी पूजा-विधिको भी नहीं जानता। अतः हे प्रभो! आप क्रमशः इन विषयोंको तथा भगवान् शिवके विविध चरित्रोंको मुझे बतानेकी कृपा करें॥ २३-२४॥

निर्गुणोऽपि शिवस्तात सगुणः शङ्करः कथम्।
शिवतत्त्वं न जानामि मोहितः शिवमायया॥ २५

हे तात! शिव तो निर्गुण होते हुए भी सगुण हैं। यह कैसे सम्भव है। शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण मैं शिवके तत्त्वको नहीं जान पा रहा हूँ॥ २५॥

सृष्टेः पूर्वं कथं शम्भुः स्वरूपेण प्रतिष्ठितः।
सृष्टिमध्ये स हि कथं क्रीडन्संवर्तते प्रभुः॥ २६
तदन्ते च कथं देवः स तिष्ठति महेश्वरः।
कथं प्रसन्नतां याति शङ्करो लोकशङ्करः॥ २७

सृष्टिके पूर्व भगवान् शंकर किस स्वरूपसे अवस्थित रहते हैं और सृष्टिके मध्यमें कैसी क्रीडा करते हुए स्थित रहते हैं। सृष्टिके अन्तमें वे देव महेश्वर किस प्रकारसे रहते हैं और संसारका कल्याण करनेवाले वे सदाशिव किस प्रकार प्रसन्न रहते हैं॥ २६-२७॥

सन्तुष्टश्च स्वभक्तेभ्यः परेभ्यश्च महेश्वरः।
किं फलं यच्छति विधे तत्सर्वं कथयस्व मे॥ २८
सद्यः प्रसन्नो भगवान्भवतीत्यनुसंश्रुतम्।
भक्तप्रयासं स महान्न पश्यति दयापरः॥ २९

हे विधाता! वे सन्तुष्ट होकर अपने भक्तों और अन्य लोगोंको कैसा फल देते हैं, वह सब हमें बतायें। मैंने सुना है कि वे भगवान् तत्काल प्रसन्न हो जाते हैं। परमदयालु वे भक्तके कष्टको नहीं देख पाते हैं॥ २८-२९॥

ब्रह्मा विष्णुर्महेशश्च त्रयो देवाः शिवांशजाः।
महेशस्तत्र पूर्णांशः स्वयमेव शिवः परः॥ ३०

ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये तीनों देव शिवके ही अंश हैं। महेश उनमें पूर्ण अंश हैं और स्वयंमें वे परात्पर शिव है॥ ३०॥

तस्याविर्भावमाख्याहि चरितानि विशेषतः।
उमाविर्भावमाख्याहि तद्विवाहं तथा विभो॥ ३१

आप उन महेश्वर शिवके आविर्भाव एवं उनके चरित्रको विशेष रूपसे कहें। हे प्रभो! [इस कथाके साथ ही] उमा (पार्वती)-के आविर्भाव और उनके विवाहकी भी चर्चा करें॥ ३१॥

तद्गार्हस्थ्यं विशेषेण तथा लीलाः परा अपि।
एतत्सर्वं तथान्यच्च कथनीयं त्वयानघ॥ ३२

उनके गृहस्थ आश्रम और उस आश्रममें की गयी विशिष्ट लीलाओंका वर्णन करें। हे निष्पाप! इन सब [कथाओं]-के साथ अन्य जो कहनेयोग्य बातें हैं, उनका भी वर्णन करें॥ ३२॥

तदुत्पत्तिं विवाहं च शिवायास्तु विशेषतः।
प्रब्रूहि मे प्रजानाथ गुहजन्म तथैव च॥ ३३

हे प्रजानाथ! उन (शिव) और शिवाके आविर्भाव एवं विवाहका प्रसंग विशेष रूपसे कहें तथा कार्तिकेयके जन्मकी कथा भी मुझे सुनायें॥ ३३॥

बहुभ्यश्च श्रुतं पूर्वं न तृप्तोऽस्मि जगत्प्रभो।
अतस्त्वां शरणं प्राप्तः कृपां कुरु ममोपरि॥ ३४

हे जगत्प्रभो! पहले बहुत लोगोंसे मैंने ये बातें सुनी हैं, किंतु तृप्त नहीं हो सका हूँ, इसीलिये आपकी शरणमें आया हूँ। आप मुझपर कृपा करें॥ ३४॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्य नारदस्याङ्गजस्य हि।
उवाच वचनं तत्र ब्रह्मा लोकपितामहः॥ ३५

अपने पुत्र नारदकी यह बात सुनकर लोकपितामह ब्रह्मा वहाँ इस प्रकार कहने लगे—॥ ३५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने नारदप्रश्नवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टि-उपाख्यानका नारद-प्रश्न-वर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

महाप्रलयकालमें केवल सद्ब्रह्मकी सत्ताका प्रतिपादन, उस निर्गुण-निराकार ब्रह्मसे ईश्वरमूर्ति (सदाशिव)-का प्राकट्य, सदाशिवद्वारा स्वरूपभूत शक्ति (अम्बिका)-का प्रकटीकरण, उन दोनोंके द्वारा उत्तम क्षेत्र (काशी या आनन्दवन)-का प्रादुर्भाव, शिवके वामांगसे परम पुरुष (विष्णु)-का आविर्भाव तथा उनके सकाशसे प्राकृत तत्त्वोंकी क्रमशः उत्पत्तिका वर्णन

ब्रह्मोवाच

भो ब्रह्मन्साधु पृष्टोऽहं त्वया विबुधसत्तम।
लोकोपकारिणा नित्यं लोकानां हितकाम्यया॥ १

ब्रह्माजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे देवशिरोमणे! आप सदा समस्त जगत्के उपकारमें ही लगे रहते हैं। आपने लोगोंके हितकी कामनासे यह बहुत उत्तम बात पूछी है॥ १॥

यच्छ्रुत्वा सर्वलोकानां सर्वपापक्षयो भवेत्।
तदहं ते प्रवक्ष्यामि शिवतत्त्वमनामयम्॥ २

जिसके सुननेसे सम्पूर्ण लोकोंके समस्त पापोंका क्षय हो जाता है, उस अनामय शिव-तत्त्वका मैं आपसे वर्णन करता हूँ॥ २॥

शिवतत्त्वं मया नैव विष्णुनापि यथार्थतः।
ज्ञातं च परमं रूपमद्भुतं च परेण न॥ ३

शिवतत्त्वका स्वरूप बड़ा ही उत्कृष्ट और अद्भुत है, जिसे यथार्थरूपसे न मैं जान पाया हूँ, न विष्णु ही जान पाये और न अन्य कोई दूसरा ही जान पाया है॥ ३॥

महाप्रलयकाले च नष्टे स्थावरजङ्गमे।
आसीत्तमोमयं सर्वमनर्कग्रहतारकम्॥ ४

जिस समय यह प्रलयकाल हुआ, उस समय समस्त चराचर जगत् नष्ट हो गया, सर्वत्र केवल अन्धकार-ही-अन्धकार था। न सूर्य ही दिखायी देते थे और अन्यान्य ग्रहों तथा नक्षत्रोंका भी पता नहीं था॥ ४॥

अचन्द्रमनहोरात्रमनग्न्यनिलभूजलम्।
अप्रधानं वियच्छून्यमन्यतेजोविवर्जितम्॥ ५

न चन्द्र था, न दिन होता था, न रात ही थी; अग्नि, पृथ्वी, वायु और जलकी भी सत्ता नहीं थी। [उस समय] प्रधान तत्त्व (अव्याकृत प्रकृति)-से रहित सूना आकाशमात्र शेष था, दूसरे किसी तेजकी उपलब्धि नहीं होती थी॥ ५॥

अदृष्टत्वादिरहितं शब्दस्पर्शसमुज्झितम्।
अव्यक्तगन्धरूपं च रसत्यक्तमदिङ्मुखम्॥ ६

अदृष्ट आदिका भी अस्तित्व नहीं था, शब्द और स्पर्श भी साथ छोड़ चुके थे, गन्ध और रूपकी भी अभिव्यक्ति नहीं होती थी। रसका भी अभाव हो गया था और दिशाओंका भी भान नहीं होता था॥ ६॥

इत्थं सत्यन्धतमसे सूचीभेद्ये निरन्तरे।
तत्सद्ब्रह्मेति यच्छ्रुत्वा सदेकं प्रतिपद्यते॥ ७

इस प्रकार सब ओर निरन्तर सूचीभेद्य घोर अन्धकार फैला हुआ था। उस समय '**तत्सद्ब्रह्म**'—इस श्रुतिमें जो 'सत्' सुना जाता है, एकमात्र वही शेष था॥ ७॥

इतीदृशं यदा नासीद्यत्तत्सदसदात्मकम्।
योगिनोऽन्तर्हिताकाशे यत्पश्यन्ति निरन्तरम्॥ ८

जब 'यह', 'वह', 'ऐसा', 'जो' इत्यादि रूपसे निर्दिष्ट होनेवाला भावाभावात्मक जगत् नहीं था, उस समय एकमात्र वह 'सत्' ही शेष था, जिसे योगीजन अपने हृदयाकाशके भीतर निरन्तर देखते हैं॥ ८॥

अमनोगोचरं वाचां विषयं न कदाचन।
अनामरूपवर्णं च न च स्थूलं न यत्कृशम्॥ ९
अह्रस्वदीर्घमलघु गुरुत्वपरिवर्जितम्।
न यत्रोपचयः कश्चित्तथा नोपचयोऽपि च॥ १०

वह सत्तत्त्व मनका विषय नहीं है। वाणीकी भी वहाँतक कभी पहुँच नहीं होती। वह नाम तथा रूप-रंगसे भी शून्य है। वह न स्थूल है, न कृश है, न ह्रस्व है, न दीर्घ है, न लघु है और न गुरु ही है। उसमें न कभी वृद्धि होती है और न ह्रास ही होता है॥ ९-१०॥

अभिधत्ते सचकितं यदस्तीति श्रुतिः पुनः।
सत्यं ज्ञानमनन्तं च परानन्दं परं महः॥ ११
अप्रमेयमनाधारमविकारमनाकृति ।
निर्गुणं योगिगम्यं च सर्वव्याप्येककारकम्॥ १२
निर्विकल्पं निरारम्भं निर्मायं निरुपद्रवम्।
अद्वितीयमनाद्यन्तमविकाशं चिदात्मकम्॥ १३

श्रुति भी उसके विषयमें चकितभावसे 'है'— इतना ही कहती है [अर्थात् उसकी सत्तामात्रका ही निरूपण कर पाती है, उसका कोई विशेष विवरण देनेमें असमर्थ हो जाती है]। वह सत्य, ज्ञानस्वरूप, अनन्त, परमानन्दमय, परम ज्योतिःस्वरूप, अप्रमेय, आधाररहित, निर्विकार, निराकार, निर्गुण, योगिगम्य, सर्वव्यापी, सबका एकमात्र कारण, निर्विकल्प, निरारम्भ, मायाशून्य, उपद्रवरहित, अद्वितीय, अनादि, अनन्त, संकोच-विकाससे शून्य तथा चिन्मय है॥ ११—१३॥

यस्येत्थं संविकल्पन्ते संज्ञासंज्ञोक्तितः स्म वै।
कियता चैव कालेन द्वितीयेच्छाऽभवत्किल॥ १४

जिस परब्रह्मके विषयमें ज्ञान और अज्ञानसे पूर्ण उक्तियोंद्वारा इस प्रकार [ऊपर बताये अनुसार] विकल्प किये जाते हैं, उसने कुछ कालके बाद [सृष्टिका समय आनेपर] द्वितीय होनेकी इच्छा प्रकट की—उसके भीतर एकसे अनेक होनेका संकल्प उदित हुआ॥ १४॥

अमूर्तेन स्वमूर्तिश्च तेनाकल्पि स्वलीलया।
सर्वैश्वर्यगुणोपेता सर्वज्ञानमयी शुभा॥ १५
सर्वगा सर्वरूपा च सर्वदृक्सर्वकारिणी।
सर्वैकवन्द्या सर्वाद्या सर्वदा सर्वसंस्कृतिः॥ १६

तब उस निराकार परमात्माने अपनी लीलाशक्तिसे अपने लिये मूर्ति (आकार)-की कल्पना की। वह मूर्ति सम्पूर्ण ऐश्वर्यगुणोंसे सम्पन्न, सर्वज्ञानमयी, शुभस्वरूपा, सर्वव्यापिनी, सर्वरूपा, सर्वदर्शिनी, सर्वकारिणी, सबकी एकमात्र वन्दनीया, सर्वाद्या, सब कुछ देनेवाली और सम्पूर्ण संस्कृतियोंका केन्द्र थी॥ १५-१६॥

परिकल्प्येति तां मूर्तिमैश्वरीं शुद्धरूपिणीम्।
अद्वितीयमनाद्यन्तं सर्वाभासं चिदात्मकम्।
अन्तर्दधे पराख्यं यद् ब्रह्म सर्वगमव्ययम्॥ १७

उस शुद्धरूपिणी ईश्वरमूर्तिकी कल्पना करके वह अद्वितीय, अनादि, अनन्त, सर्वप्रकाशक, चिन्मय, सर्वव्यापी और अविनाशी परब्रह्म अन्तर्हित हो गया॥ १७॥

अमूर्ते यत्पराख्यं वै तस्य मूर्तिः सदाशिवः।
अर्वाचीनाः पराचीना ईश्वरं तं जगुर्बुधाः॥ १८

जो मूर्तिरहित परमब्रह्म है, उसीकी मूर्ति (चिन्मय आकार) भगवान् सदाशिव हैं। अर्वाचीन और प्राचीन विद्वान् उन्हींको ईश्वर कहते हैं॥ १८॥

शक्तिस्तदैकलेनापि स्वैरं विहरता तनुः।
स्वविग्रहात्स्वयं सृष्टा स्वशरीरानपायिनी॥ १९

उस समय एकाकी रहकर स्वेच्छानुसार विहार करनेवाले उन सदाशिवने अपने विग्रहसे स्वयं ही एक स्वरूपभूता शक्तिकी सृष्टि की, जो उनके अपने श्रीअंगसे कभी अलग होनेवाली नहीं थी॥ १९॥

प्रधानं प्रकृतिं तां च मायां गुणवतीं पराम्।
बुद्धितत्त्वस्य जननीमाहुर्विकृतिवर्जिताम्॥ २०

उस पराशक्तिको प्रधान, प्रकृति, गुणवती, माया, बुद्धितत्त्वकी जननी तथा विकाररहित बताया गया है॥ २०॥

सा शक्तिरम्बिका प्रोक्ता प्रकृतिः सकलेश्वरी।
त्रिदेवजननी नित्या मूलकारणमित्युत॥ २१

वह शक्ति अम्बिका कही गयी है। उसीको प्रकृति, सर्वेश्वरी, त्रिदेवजननी, नित्या और मूलकारण भी कहते हैं॥ २१॥

अस्या अष्टौ भुजाश्चासन्विचित्रवदना शुभा।
राकाचन्द्रसहस्रस्य वदने भाश्च नित्यशः॥ २२

सदाशिवद्वारा प्रकट की गयी उस शक्तिकी आठ भुजाएँ हैं। उस [शुभलक्षणा देवी]-के मुखकी शोभा विचित्र है। वह अकेली ही अपने मुखमण्डलमें सदा पूर्णिमाके एक सहस्र चन्द्रमाओंकी कान्ति धारण करती है॥ २२॥

नानाभरणसंयुक्ता नानागतिसमन्विता।
नानायुधधरा देवी फुल्लपङ्कजलोचना॥ २३

नाना प्रकारके आभूषण उसके श्रीअंगोंकी शोभा बढ़ाते हैं। वह देवी नाना प्रकारकी गतियोंसे सम्पन्न है और अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण करती है। उसके नेत्र खिले हुए कमलके समान जान पड़ते हैं॥ २३॥

अचिन्त्यतेजसा युक्ता सर्वयोनिः समुद्यता।
एकाकिनी यदा माया संयोगाच्चाप्यनेकिका॥ २४

वह अचिन्त्य तेजसे जगमगाती रहती है। वह सबकी योनि है और सदा उद्यमशील रहती है। एकाकिनी होनेपर भी वह माया संयोगवशात् अनेक हो जाती है॥ २४॥

परः पुमानीश्वरः स शिवः शम्भुरनीश्वरः।
शीर्षे मन्दाकिनीधारी भालचन्द्रस्त्रिलोचनः॥ २५

वे जो सदाशिव हैं, उन्हें परमपुरुष, ईश्वर, शिव, शम्भु और अनीश्वर कहते हैं। वे अपने मस्तकपर आकाश-गंगाको धारण करते हैं। उनके भालदेशमें चन्द्रमा शोभा पाते हैं। उनके [पाँच मुख हैं और प्रत्येक मुखमें] तीन नेत्र हैं॥ २५॥

पञ्चवक्त्रः प्रसन्नात्मा दशबाहुस्त्रिशूलधृक्।
कर्पूरगौरसुसितो भस्मोद्धूलितविग्रहः॥ २६

[पाँच मुख होनेके कारण] वे पंचमुख कहलाते हैं। उनका चित्त सदा प्रसन्न रहता है। वे दस भुजाओंसे युक्त और त्रिशूलधारी हैं। उनके श्रीअंगोंकी प्रभा कर्पूरके समान श्वेत-गौर है। वे अपने सारे अंगोंमें भस्म रमाये रहते हैं॥ २६॥

युगपच्च तया शक्त्या साकं कालस्वरूपिणा।
शिवलोकाभिधं क्षेत्रं निर्मितं तेन ब्रह्मणा॥ २७

उन कालरूपी ब्रह्मने एक ही समय शक्तिके साथ 'शिवलोक' नामक क्षेत्रका निर्माण किया था॥ २७॥

तदेव काशिकेत्येतत्प्रोच्यते क्षेत्रमुत्तमम्।
परं निर्वाणसङ्ख्यानं सर्वोपरि विराजितम्॥ २८

उस उत्तम क्षेत्रको ही काशी कहते हैं। वह परम निर्वाण या मोक्षका स्थान है, जो सबके ऊपर विराजमान है॥ २८॥

ताभ्यां च रममाणाभ्यां तस्मिन्क्षेत्रे मनोरमे।
परमानन्दरूपाभ्यां परमानन्दरूपिणम्॥ २९

ये प्रिया-प्रियतमरूप शक्ति और शिव, जो परमानन्दस्वरूप हैं, उस मनोरम क्षेत्रमें नित्य निवास करते हैं। वह [काशीपुरी] परमानन्दरूपिणी है॥ २९॥

मुने प्रलयकालेऽपि न तत्क्षेत्रं कदाचन।
विमुक्तं हि शिवाभ्यां यदविमुक्तं ततो विदुः॥ ३०

हे मुने! शिव और शिवाने प्रलयकालमें भी कभी उस क्षेत्रको अपने सांनिध्यसे मुक्त नहीं किया है। इसलिये विद्वान् पुरुष उसे 'अविमुक्त क्षेत्र' भी कहते हैं॥ ३०॥

अस्यानन्दवनं नाम पुराकारि पिनाकिना।
क्षेत्रस्यानन्दहेतुत्वादविमुक्तमनन्तरम् ॥ ३१

अथानन्दवने तस्मिन् शिवयो रममाणयोः।
इच्छेत्यभूत्सुरर्षे हि सृज्यः कोऽप्यपरः किल॥ ३२

यस्मिन् न्यस्य महाभारमावां स्वस्वैरचारिणौ।
निर्वाणधारणं कुर्वः केवलं काशिशायिनौ॥ ३३

स एव सर्वं कुरुतां स एव परिपातु च।
स एव संवृणोत्वन्ते मदनुग्रहतः सदा॥ ३४

चेतः समुद्रमाकुञ्च्य चिन्ताकल्लोललोलितम्।
सत्त्वरत्नं तमोग्राहं रजोविद्रुमवल्लितम्॥ ३५

यस्य प्रसादात्तिष्ठावः सुखमानन्दकानने।
परिक्षिप्तमनोवृत्तौ बहिश्चिन्तातुरे सुखम्॥ ३६

सम्प्रधार्येति स विभुस्तया शक्त्या परेश्वरः।
सव्ये व्यापारयाञ्चक्रे दशमेऽङ्गे सुधासवम्॥ ३७

ततः पुमानाविरासीदेकस्त्रैलोक्यसुन्दरः।
शान्तः सत्त्वगुणोद्रिक्तो गाम्भीर्यामितसागरः॥ ३८

तथा च क्षमया युक्तो मुनेऽलब्धोपमोऽभवत्।
इन्द्रनीलद्युतिः श्रीमान्पुण्डरीकोत्तमेक्षणः॥ ३९

सुवर्णकान्तिभृच्छ्रेष्ठदुकूलयुगलावृतः।
लसत्प्रचण्डदोर्दण्डयुगलो ह्यपराजितः॥ ४०

वह क्षेत्र आनन्दका हेतु है, इसलिये पिनाकधारी शिवने पहले उसका नाम 'आनन्दवन' रखा था। उसके बाद वह 'अविमुक्त' के नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ ३१॥

हे देवर्षे! एक समय उस आनन्दवनमें रमण करते हुए शिवा और शिवके मनमें यह इच्छा हुई कि किसी दूसरे पुरुषकी भी सृष्टि करनी चाहिये, जिसपर सृष्टि-संचालनका महान् भार रखकर हम दोनों केवल काशीमें रहकर इच्छानुसार विचरण करें और निर्वाण धारण करें॥ ३२-३३॥

वही पुरुष हमारे अनुग्रहसे सदा सबकी सृष्टि करे, वही पालन करे और अन्तमें वही सबका संहार भी करे॥ ३४॥

यह चित्त एक समुद्रके समान है। इसमें चिन्ताकी उत्ताल तरंगें उठ-उठकर इसे चंचल बनाये रहती हैं। इसमें सत्त्वगुणरूपी रत्न, तमोगुणरूपी ग्राह और रजोगुणरूपी मूँगे भरे हुए हैं। इस विशाल चित्त-समुद्रको संकुचित करके हम दोनों उस पुरुषके प्रसादसे आनन्दकानन (काशी)-में सुखपूर्वक निवास करें, [यह आनन्दवन वह स्थान है] जहाँ हमारी मनोवृत्ति सब ओरसे सिमटकर इसीमें लगी हुई है तथा जिसके बाहरका जगत् चिन्तासे आतुर प्रतीत होता है॥ ३५-३६॥

ऐसा निश्चय करके शक्तिसहित सर्वव्यापी परमेश्वर शिवने अपने वामभागके दसवें अंगपर अमृतका सिंचन किया॥ ३७॥

वहाँ उसी समय एक पुरुष प्रकट हुआ, जो तीनों लोकोंमें सबसे अधिक सुन्दर था। वह शान्त था। उसमें सत्त्वगुणकी अधिकता थी तथा वह गम्भीरताका अथाह सागर था॥ ३८॥

मुने! क्षमा गुणसे युक्त उस पुरुषके लिये ढूँढ़नेपर भी कहीं कोई उपमा नहीं मिलती थी। उसकी कान्ति इन्द्रनील मणिके समान श्याम थी। उसके अंग-अंगसे दिव्य शोभा छिटक रही थी और नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान शोभा पा रहे थे॥ ३९॥

उसके श्रीअंगोंपर सुवर्णसदृश कान्तिवाले दो सुन्दर रेशमी पीताम्बर शोभा दे रहे थे। किसीसे भी पराजित न होनेवाला वह वीर पुरुष अपने प्रचण्ड भुजदण्डोंसे सुशोभित हो रहा था॥ ४०॥

ततः स पुरुषः शम्भुं प्रणम्य परमेश्वरम्।
नामानि कुरु मे स्वामिन्वद कर्म जगावति॥ ४१

तदनन्तर उस पुरुषने परमेश्वर शिवको प्रणाम करके कहा—हे स्वामिन्! मेरे नाम निश्चित कीजिये और काम बताइये॥ ४१॥

तच्छ्रुत्वा वचनं प्राह शङ्करः प्रहसन्प्रभुः।
पुरुषं तं महेशानो वाचा मेघगभीरया॥ ४२

उस पुरुषकी यह बात सुनकर महेश्वर भगवान् शंकर हँसते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीमें उससे कहने लगे— ॥ ४२॥

शिव उवाच

विष्णिवति व्यापकत्वात्ते नाम ख्यातं भविष्यति।
बहून्यन्यानि नामानि भक्तसौख्यकराणि ह॥ ४३

शिवजी बोले—हे वत्स! व्यापक होनेके कारण तुम्हारा 'विष्णु' नाम विख्यात होगा। इसके अतिरिक्त और भी बहुतसे नाम होंगे, जो भक्तोंको सुख देनेवाले होंगे॥ ४३॥

तपः कुरु दृढो भूत्वा परमं कार्यसाधनम्।
इत्युक्त्वा श्वासमार्गेण ददौ च निगमं ततः॥ ४४

तुम सुस्थिर होकर उत्तम तप करो, क्योंकि वही समस्त कार्योंका साधन है। ऐसा कहकर भगवान् शिवने श्वासमार्गसे श्रीविष्णुको वेदोंका ज्ञान प्रदान किया॥ ४४॥

ततोऽच्युतः शिवं नत्वा चकार विपुलं तपः।
अन्तर्धानं गतः शक्त्या सलोकः परमेश्वरः॥ ४५

तदनन्तर अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले श्रीहरि भगवान् शिवको प्रणाम करके बहुत बड़ी तपस्या करने लगे और शक्तिसहित परमेश्वर शिव भी पार्षदगणोंके साथ वहाँसे अदृश्य हो गये॥ ४५॥

दिव्यं द्वादशसाहस्रं वर्षं तप्त्वापि चाच्युतः।
न प्राप स्वाभिलषितं सर्वदं शम्भुदर्शनम्॥ ४६

बारह हजार दिव्य वर्षोंतक तपस्या करनेके पश्चात् भी विष्णु अपने अभीष्ट फलस्वरूप, सर्वस्व देनेवाले भगवान् शिवका दर्शन प्राप्त न कर सके॥ ४६॥

ततः संशयमापन्नश्चिन्तितं हृदि सादरम्।
मयाद्य किं प्रकर्तव्यमिति विष्णुः शिवं स्मरन्॥ ४७
एतस्मिन्नन्तरे वाणी समुत्पन्ना शिवाच्छुभा।
तपः पुनः प्रकर्तव्यं संशयस्यापनुत्तये॥ ४८

तब विष्णुको बड़ा सन्देह हुआ। उन्होंने हृदयमें शिवका स्मरण करते हुए सोचा कि अब मुझे क्या करना चाहिये। इसी बीच शिवकी मंगलमयी [आकाश] वाणी हुई कि सन्देह दूर करनेके लिये पुनः तपस्या करनी चाहिये॥ ४७-४८॥

ततस्तेन च तच्छ्रुत्वा तपस्तप्तं सुदारुणम्।
बहुकालं तदा ब्रह्मध्यानमार्गपरेण हि॥ ४९

[शिवकी] उस [वाणी]-को सुनकर विष्णुने ब्रह्ममें ध्यानको अवस्थितकर [पुनः] दीर्घकालतक अत्यन्त कठिन तपस्या की॥ ४९॥

ततः स पुरुषो विष्णुः प्रबुद्धो ध्यानमार्गतः।
सुप्रीतो विस्मयं प्राप्तः किं यत्तत्त्वमहो इति॥ ५०

तदनन्तर ब्रह्मकी ध्यानावस्थामें ही विष्णुको बोध हो आया और वे प्रसन्न होकर यह सोचने लगे कि अरे! वह महान् तत्त्व है क्या?॥ ५०॥

परिश्रमवतस्तस्य विष्णोः स्वाङ्गेभ्य एव च।
जलधारा हि संयाता विविधाः शिवमायया॥ ५१

उस समय शिवकी इच्छासे तपस्याके परिश्रममें निरत विष्णुके अंगोंसे अनेक प्रकारकी जलधाराएँ निकलने लगीं॥ ५१॥

अभिव्याप्तं च सकलं शून्यं यत्तन्महामुने।
ब्रह्मरूपं जलमभूत्स्पर्शनात्पापनाशनम्॥ ५२

हे महामुने! उस जलसे सारा सूना आकाश व्याप्त हो गया। वह ब्रह्मरूप जल अपने स्पर्शमात्रसे सब पापोंका नाश करनेवाला सिद्ध हुआ॥ ५२॥

तदा श्रान्तश्च पुरुषो विष्णुस्तस्मिञ्जले स्वयम्।
सुष्वाप परमप्रीतो बहुकालं विमोहितः॥ ५३

उस समय थके हुए परम पुरुष विष्णु मोहित होकर दीर्घकालतक बड़ी प्रसन्नताके साथ उसमें सोते रहे॥ ५३॥

नारायणेति नामापि तस्यासीच्छ्रुतिसम्मतम्।
नान्यत्किञ्चित्तदा ह्यासीत्प्राकृतं पुरुषं विना॥ ५४

नार अर्थात् जलमें शयन करनेके कारण ही उनका 'नारायण'—यह श्रुतिसम्मत नाम प्रसिद्ध हुआ। उस समय उन परम पुरुष नारायणके अतिरिक्त दूसरी कोई प्राकृत वस्तु नहीं थी॥ ५४॥

एतस्मिन्नन्तरे काले तत्त्वान्यासन्महात्मनः।
तत्प्रकारं शृणु प्राज्ञ गदतो मे महामते॥ ५५

उसके बाद ही उन महात्मा नारायणदेवसे यथासमय सभी तत्त्व प्रकट हुए। हे महामते! हे विद्वन्! मैं उन तत्त्वोंकी उत्पत्तिका प्रकार बता रहा हूँ, सुनिये॥ ५५॥

प्रकृतेश्च महानासीन्महतश्च गुणास्त्रयः।
अहङ्कारस्ततो जातस्त्रिविधो गुणभेदतः॥ ५६

तन्मात्रश्च ततो जाताः पञ्च भूतानि वै ततः।
तदैव तानीन्द्रियाणि ज्ञानकर्ममयानि च॥ ५७

प्रकृतिसे महत्तत्त्व प्रकट हुआ और महत्तत्त्वसे सत्त्वादि तीनों गुण। इन गुणोंके भेदसे ही त्रिविध अहंकारकी उत्पत्ति हुई। अहंकारसे पाँच तन्मात्राएँ हुईं और उन तन्मात्राओंसे पाँच भूत प्रकट हुए। उसी समय ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंका भी प्रादुर्भाव हुआ॥ ५६-५७॥

तत्त्वानामिति सङ्ख्यानमुक्तं ते ऋषिसत्तम।
जडात्मकं च तत्सर्वं प्रकृतेः पुरुषं विना॥ ५८

हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने आपको तत्त्वोंकी संख्या बतायी है। इनमेंसे पुरुषको छोड़कर शेष सारे तत्त्व प्रकृतिसे प्रकट हुए हैं, इसलिये सब-के-सब जड़ हैं॥ ५८॥

तत्तदैकीकृतं तत्त्वं चतुर्विंशतिसङ्ख्यकम्।
शिवेच्छया गृहीत्वा स सुष्वाप ब्रह्मरूपके॥ ५९

तत्त्वोंकी संख्या चौबीस है। उस समय एकाकार हुए चौबीस तत्त्वोंको ग्रहण करके वे परम पुरुष नारायण भगवान् शिवकी इच्छासे ब्रह्मरूप जलमें सो गये॥ ५९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने विष्णूत्पत्तिवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टि-उपाख्यानका विष्णु-उत्पत्ति-वर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

भगवान् विष्णुकी नाभिसे कमलका प्रादुर्भाव, शिवेच्छासे ब्रह्माजीका उससे प्रकट होना, कमलनालके उद्गमका पता लगानेमें असमर्थ ब्रह्माका तप करना, श्रीहरिका उन्हें दर्शन देना, विवादग्रस्त ब्रह्मा-विष्णुके बीचमें अग्निस्तम्भका प्रकट होना तथा उसके ओर-छोरका पता न पाकर उन दोनोंका उसे प्रणाम करना

ब्रह्मोवाच

सुप्ते नारायणे देवे नाभौ पङ्कजमुत्तमम्।
आविर्बभूव सहसा बृहद्वै शङ्करेच्छया॥ १

ब्रह्माजी बोले—हे देवर्षे! जब नारायणदेव जलमें शयन करने लगे, उस समय उनकी नाभिसे भगवान् शंकरकी इच्छासे सहसा एक विशाल तथा उत्तम कमल प्रकट हुआ॥ १॥

अनन्तयष्टिकायुक्तं कर्णिकारसमप्रभम्।
अनन्तयोजनायाममनन्तोच्छ्रायसंयुतम् ॥ २

कोटिसूर्यप्रतीकाशं सुन्दरं तत्त्वसंयुतम्।
अत्यद्भुतं महारम्यं दर्शनीयमनुत्तमम्॥ ३

उसमें असंख्य नालदण्ड थे, उसकी कान्ति कनेरके फूलके समान पीले रंगकी थी तथा उसकी लम्बाई और ऊँचाई भी अनन्त योजन थी। वह कमल करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशित, सुन्दर, सम्पूर्ण तत्त्वोंसे युक्त, अत्यन्त अद्भुत, परम रमणीय, दर्शनके योग्य तथा सबसे उत्तम था॥ २-३॥

कृत्वा यत्नं पूर्ववत्स शङ्करः परमेश्वरः।
दक्षिणाङ्गान्निजान्मां वै साम्बः शम्भुरजीजनत्॥ ४

तत्पश्चात् कल्याणकारी परमेश्वर साम्बसदाशिवने पूर्ववत् प्रयत्न करके मुझे अपने दाहिने अंगसे उत्पन्न किया॥ ४॥

स मायामोहितं कृत्वा मां महेशो द्रुतं मुने।
तन्नाभिपङ्कजादाविर्भावयामास लीलया॥ ५

हे मुने! उन महेश्वरने मुझे तुरंत ही अपनी मायासे मोहित करके नारायणदेवके नाभिकमलमें डाल दिया और लीलापूर्वक मुझे वहाँसे प्रकट किया॥ ५॥

एवं पद्मात्ततो जज्ञे पुत्रोऽहं हेमगर्भकः।
चतुर्मुखो रक्तवर्णस्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकः॥ ६

इस प्रकार उस कमलसे पुत्रके रूपमें मुझ हिरण्यगर्भका जन्म हुआ। मेरे चार मुख हुए और शरीरकी कान्ति लाल हुई। मेरे मस्तक त्रिपुण्ड्रकी रेखासे अंकित थे॥ ६॥

तन्मायामोहितश्चाहं नाविदं कमलं विना।
स्वदेहजनकं तात पितरं ज्ञानदुर्बलः॥ ७

हे तात! भगवान् शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण मेरी ज्ञानशक्ति इतनी दुर्बल हो रही थी कि मैंने उस कमलके अतिरिक्त दूसरे किसीको अपने शरीरका जनक या पिता नहीं जाना॥ ७॥

कोऽहं वा कुत आयातः किं कार्यं तु मदीयकम्।
कस्य पुत्रोऽहमुत्पन्नः केनैव निर्मितोऽधुना॥ ८

इति संशयमापन्नं बुद्धिर्मां समपद्यत।
किमर्थं मोहमायामि तज्ज्ञानं सुकरं खलु॥ ९

मैं कौन हूँ, कहाँसे आया हूँ, मेरा कार्य क्या है, मैं किसका पुत्र होकर उत्पन्न हुआ हूँ और किसने इस समय मेरा निर्माण किया है—इस प्रकार संशयमें पड़े हुए मेरे मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ—मैं किसलिये मोहमें पड़ा हुआ हूँ? जिसने मुझे उत्पन्न किया है, उसका पता लगाना तो बहुत सरल है॥ ८-९॥

एतत्कमलपुष्पस्य पत्रारोहस्थलं ह्यधः।
मत्कर्ता च स वै तत्र भविष्यति न संशयः॥ १०

इस कमलपुष्पका जो पत्रयुक्त नाल है, उसका उद्गमस्थान इस जलके भीतर नीचेकी ओर है। जिसने मुझे उत्पन्न किया है, वह पुरुष भी वहीं होगा, इसमें संशय नहीं है॥ १०॥

इति बुद्धिं समास्थाय कमलादवरोहयम्।
नाले नाले गतस्तत्र वर्षाणां शतकं मुने॥ ११

ऐसा निश्चय करके मैंने अपनेको कमलसे नीचे उतारा। हे मुने! उस कमलकी एक-एक नालमें गया और सैकड़ों वर्षोंतक वहाँ भ्रमण करता रहा॥ ११॥

न लब्धं तु मया तत्र कमलस्थानमुत्तमम्।
संशयं च पुनः प्राप्तः कमले गन्तुमुत्सुकः॥ १२

आरुरोहाथ कमलं नालमार्गेण वै मुने।
कुड्मलं कमलस्याथ लब्धवान्न विमोहितः॥ १३

कहीं भी उस कमलके उद्गमका उत्तम स्थान मुझे नहीं मिला। तब पुनः संशयमें पड़कर मैं उस कमलपुष्पपर जानेके लिये उत्सुक हुआ और हे मुने! नालके मार्गसे उस कमलपर चढ़ने लगा। इस तरह बहुत ऊपर जानेपर भी मैं उस कमलके कोशको न पा सका। उस दशामें मैं और भी मोहित हो उठा॥ १२-१३॥

नालमार्गेण भ्रमतो गतं वर्षशतं पुनः।
क्षणमात्रं तदा तत्र ततस्तिष्ठन्विमोहितः॥ १४

मुझे नालमार्गसे भ्रमण करते हुए पुनः सैकड़ों वर्ष व्यतीत हो गये, [किंतु उसका कोई पता न चल सका] तब मैं मोहित (किंकर्तव्यविमूढ़) होकर एक क्षण वहीं रुक गया॥ १४॥

तदा वाणी समुत्पन्ना तपेति परमा शुभा।
शिवेच्छया परा व्योम्नो मोहविध्वंसिनी मुने॥ १५

हे मुने! उस समय भगवान् शिवकी इच्छासे परम मंगलमयी तथा उत्तम आकाशवाणी प्रकट हुई, जो मेरे मोहका विध्वंस करनेवाली थी, उस वाणीने कहा—'तप' तपस्या करो॥ १५॥

तच्छ्रुत्वा व्योमवचनं द्वादशाब्दं प्रयत्नतः।
पुनस्तप्तं तपो घोरं द्रष्टुं स्वजनकं तदा॥ १६

उस आकाशवाणीको सुनकर मैंने अपने जन्मदाता पिताका दर्शन करनेके लिये उस समय पुनः प्रयत्नपूर्वक बारह वर्षोंतक घोर तपस्या की॥ १६॥

तदा हि भगवान्विष्णुश्चतुर्बाहुः सुलोचनः।
मय्येवानुग्रहं कर्तुं द्रुतमाविर्बभूव ह॥ १७

शङ्खचक्रायुधकरो गदापद्मधरः परः।
घनश्यामलसर्वाङ्गः पीताम्बरधरः परः॥ १८

मुकुटादिमहाभूषः प्रसन्नमुखपङ्कजः।
कोटिकन्दर्पसङ्काशः सन्दृष्टो मोहितेन सः॥ १९

तब मुझपर अनुग्रह करनेके लिये ही चार भुजाओं और सुन्दर नेत्रोंसे सुशोभित भगवान् विष्णु वहाँ सहसा प्रकट हो गये। उन परम पुरुषने अपने हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण कर रखे थे। उनके सारे अंग सजल जलधरके समान श्यामकान्तिसे सुशोभित थे। उन परम प्रभुने सुन्दर पीताम्बर पहन रखा था। उनके मस्तक आदि अंगोंमें मुकुट आदि महामूल्यवान् आभूषण शोभा पा रहे थे। उनका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिला हुआ था। मैं उनकी छविपर मोहित हो रहा था। वे मुझे करोड़ों कामदेवोंके समान मनोहर दिखायी दिये॥ १७—१९॥

तद् दृष्ट्वा सुन्दरं रूपं विस्मयं परमं गतः।
कालाभं काञ्चनाभं च सर्वात्मानं चतुर्भुजम्॥ २०

उन चतुर्भुज भगवान् विष्णुका वह अत्यन्त सुन्दर रूप देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। वे साँवली और सुनहरी आभासे उद्भासित हो रहे थे॥ २०॥

तथाभूतमहं दृष्ट्वा सदसन्मयमात्मना।
नारायणं महाबाहुं हर्षितो ह्यभवं तदा॥ २१

उस समय उन सदसत्स्वरूप, सर्वात्मा, महाबाहु नारायणदेवको वहाँ उस रूपमें अपने साथ देखकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ॥ २१॥

मायया मोहितः शम्भोस्तदा लीलात्मनः प्रभोः।
अविज्ञाय स्वजनकं तमवोचं प्रहर्षितः॥ २२

मैं उस समय प्रभु शम्भुकी लीलासे मोहित हो रहा था, इसलिये मैं अपने उत्पन्न करनेवालेको न जानकर अति हर्षित होकर उनसे कहने लगा—॥ २२॥

ब्रह्मोवाच

कस्त्वं वदेति हस्तेन समुत्थाप्य सनातनम्।
तदा हस्तप्रहारेण तीव्रेण सुदृढेन तु॥ २३
प्रबुद्ध्योत्थाय शयनात्समासीनः क्षणं वशी।
ददर्श निद्राविक्लिन्न नीरजामललोचनः॥ २४
मामत्र संस्थितं भासाध्यासितो भगवान्हरिः।
आह चोत्थाय ब्रह्माणं हसन्मां मधुरं सकृत्॥ २५

ब्रह्माजी बोले—मैंने उन सनातन पुरुषको हाथसे उठाकर कहा कि आप कौन हैं, उस समय हाथके तीव्र तथा सुदृढ़ प्रहारसे क्षणमात्रमें ही वे जितेन्द्रिय जाग करके शय्यासे उठकर बैठ गये। तदनन्तर अविकल रूपसे निद्रारहित होकर उन राजीवलोचन भगवान् विष्णुने मुझको वहाँपर अवस्थित देखा और हँसते हुए बार-बार मधुर वाणीमें [वे] कहने लगे—॥ २३—२५॥

विष्णुरुवाच

स्वागतं स्वागतं वत्स पितामह महाद्युते।
निर्भयो भव दास्येऽहं सर्वान्कामान्न संशयः॥ २६

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स्मितपूर्वं सुरर्षभः।
रजसा बद्धवैरश्च तमवोचं जनार्दनम्॥ २७

ब्रह्मोवाच

भाषसे वत्स वत्सेति सर्वसंहारकारणम्।
मामिहाति स्मितं कृत्वा गुरुः शिष्यमिवानघ॥ २८

कर्तारं जगतां साक्षात्प्रकृतेश्च प्रवर्तकम्।
सनातनमजं विष्णुं विरिञ्चिं विष्णुसम्भवम्॥ २९

विश्वात्मानं विधातारं धातारं पङ्कजेक्षणम्।
किमर्थं भाषसे मोहाद्वक्तुमर्हसि सत्वरम्॥ ३०

वेदो मां वक्ति नियमात्स्वयंभुवमजं विभुम्।
पितामहं स्वराजं च परमेष्ठिनमुत्तमम्॥ ३१

इत्याकर्ण्य हरिर्वाक्यं मम क्रुद्धो रमापतिः।
सोऽपि मामाह जाने त्वां कर्तारमिति लोकतः॥ ३२

विष्णुरुवाच

कर्तुं धर्तुं भवानङ्गादवतीर्णो ममाव्ययात्।
विस्मृतोऽसि जगन्नाथं नारायणमनामयम्॥ ३३

पुरुषं परमात्मानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम्।
विष्णुमच्युतमीशानं विश्वस्य प्रभवोद्भवम्॥ ३४

नारायणं महाबाहुं सर्वव्यापकमीश्वरम्।
मन्नाभिपद्मतस्त्वं हि प्रसूतो नात्र संशयः॥ ३५

तवापराधो नास्त्यत्र त्वयि मायाकृतं मम।
शृणु सत्यं चतुर्वक्त्र सर्वदेवेश्वरो ह्यहम्॥ ३६

कर्ता हर्ता च भर्ता च न मयास्ति समो विभुः।
अहमेव परं ब्रह्म परं तत्त्वं पितामह॥ ३७

अहमेव परं ज्योतिः परमात्मा त्वहं विभुः।
अद्य दृष्टं श्रुतं सर्वं जगत्यस्मिञ्चराचरम्॥ ३८

विष्णुजी बोले—हे वत्स! आपका स्वागत है। हे महाद्युतिमान् पितामह! आपका स्वागत है। निर्भय होकर रहिये। मैं आपकी सभी कामनाओंको पूर्ण करूँगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ २६॥

[हे देवर्षे!] उनके मन्दहासयुक्त उस वचनको सुनकर रजोगुणके कारण शत्रुता मान बैठा देवश्रेष्ठ मैं उन जनार्दन भगवान् विष्णुसे कहने लगा—॥ २७॥

ब्रह्माजी बोले—हे निष्पाप! समस्त संहारके कारणभूत मुझे आप हँसते हुए जो हे वत्स! हे वत्स! कह रहे हैं, वह तो वैसे ही लग रहा है, जैसे कोई गुरु अपने शिष्यको हे वत्स! हे वत्स! कह रहा हो॥ २८॥

मैं ही संसारका साक्षात् कर्ता, प्रकृतिका प्रवर्तक, सनातन, अजन्मा, विष्णु, ब्रह्मा, विष्णुको उत्पन्न करनेवाला विश्वात्मा, विधाता, धाता और पुण्डरीकाक्ष हूँ। आप अज्ञानवश मुझे हे वत्स! हे वत्स! ऐसा क्यों कह रहे हैं? इसका कारण शीघ्र बताइये॥ २९-३०॥

नियमतः वेद भी मुझे स्वयम्भू, अज, विभु, पितामह, स्वराज, सर्वोत्तम और परमेष्ठी कहते हैं॥ ३१॥

मेरे इस वचनको सुनकर लक्ष्मीपति भगवान् हरि क्रुद्ध हो उठे और कहने लगे कि मैं जानता हूँ—संसार आपको जगत्का कर्ता मानता है॥ ३२॥

विष्णुजी बोले—आप संसारकी सृष्टि करने और पालन करनेके लिये मुझ अव्ययके अंगसे अवतीर्ण हुए हैं, फिर भी आप मुझ जगन्नाथ, नारायण, पुरुष, परमात्मा, निर्विकार, पुरुहूत, पुरुष्टुत, विष्णु, अच्युत, ईशान, संसारके उत्पत्ति-स्थानरूप, नारायण, महाबाहु और सर्वव्यापकको भूल गये हैं। मेरे ही नाभिकमलसे आप उत्पन्न हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३३—३५॥

इस विषयमें आपका अपराध भी नहीं है, आपके ऊपर तो मेरी माया है। हे चतुर्मुख! सुनिये, यह सत्य है कि मैं ही सभी देवोंका ईश्वर हूँ॥ ३६॥

मैं ही कर्ता, हर्ता और भर्ता हूँ। मेरे समान अन्य शक्तिशाली कोई देव नहीं है। हे पितामह! मैं ही परब्रह्म तथा परम तत्त्व हूँ॥ ३७॥

मैं ही परमज्योति और वह परमात्मा विभु हूँ, इस जगत्में आज जो यह सब चराचर दिखायी दे रहा है और सुनायी पड़ रहा है, हे चतुर्मुख! यह जो कुछ

तत्तद्विद्धि चतुर्वक्त्र सर्वं मन्मयमित्यथ।
मया सृष्टं पुराव्यक्तं चतुर्विंशतितत्त्वकम्॥ ३९

भी है, वह मुझमें व्याप्त है—ऐसा आप जान लें। मैंने ही सृष्टिके पहले जगत्‌के चौबीस अव्यक्त तत्त्वोंकी रचना की है॥ ३८-३९॥

नित्यं तेष्वणवो बद्धाः सृष्टाः क्रोधभयादयः।
प्रभावाच्च भवानङ्गान्यनेकानीह लीलया॥ ४०

उन्हीं तत्त्वोंसे प्राणियोंके शरीरधारक अणुओंका निर्माण होता है और क्रोध, भय आदि षड्‌गुणोंकी सृष्टि हुई है। मेरे प्रभाव और मेरी लीलासे ही आपके अनेक अंग हैं॥ ४०॥

सृष्टा बुद्धिर्मया तस्यामहङ्कारस्त्रिधा ततः।
तन्मात्रं पञ्चकं तस्मान्मनो देहेन्द्रियाणि च॥ ४१

आकाशादीनि भूतानि भौतिकानि च लीलया।
इति बुद्‌ध्वा प्रजानाथ शरणं व्रज मे विधे॥ ४२

अहं त्वां सर्वदुःखेभ्यो रक्षिष्यामि न संशयः।

मैंने ही बुद्धितत्त्वकी सृष्टि की है और उसमें तीन प्रकारके अहंकार उत्पन्न किये हैं। तदनन्तर उससे रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श—इन पंचतन्मात्राओं, मन एवं चक्षु, जिह्वा, घ्राण, श्रोत्र तथा त्वचा—इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों और वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ—इन पाँच कर्मेन्द्रियों, क्षिति, जल, पावक, गगन और वायु—इन पंच महाभूतों तथा अन्य सभी भौतिक पदार्थोंकी रचना लीलासे ही की है। हे प्रजापते! हे ब्रह्मन्! ऐसा जानकर आप मेरी शरणमें आ जाइये, मैं सभी दुःखोंसे आपकी रक्षा करूँगा, इसमें संशय नहीं है॥ ४१-४२½॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मा क्रोधसमन्वितः।
को वा त्वमिति सम्भर्त्स्याब्रुवं मायाविमोहितः॥ ४३

किमर्थं भाषसे भूरि बह्वनर्थकरं वचः।
नेश्वरस्त्वं परं ब्रह्म कश्चित्कर्ता भवेत्तव॥ ४४

ब्रह्माजी बोले—विष्णुका यह वचन सुनकर मुझ ब्रह्माको क्रोध आ गया और मायाके वशीभूत हुआ मैं उनको डाँटते हुए पूछने लगा कि आप कौन हैं और किसलिये इतना अधिक निरर्थक बोल रहे हैं? आप न ईश्वर हैं, न परब्रह्म हैं। आपका कोई कर्ता अवश्य है॥ ४३-४४॥

मायया मोहितश्चाहं युद्धं चक्रे सुदारुणम्।
हरिणा तेन वै सार्धं शङ्करस्य महाप्रभोः॥ ४५

महाप्रभु शंकरकी मायासे विमोहित मैं उन भगवान् विष्णुके साथ भयंकर युद्ध करने लगा॥ ४५॥

एवं मम हरेश्चासीत्सङ्गरो रोमहर्षणः।
प्रलयार्णवमध्ये तु रजसा बद्धवैरयोः॥ ४६

उस प्रलयकालीन महासमुद्रके मध्य रजोगुणके कारण परस्पर बढ़ी शत्रुतासे हमारा और विष्णुका रोमांचकारी युद्ध होने लगा॥ ४६॥

एतस्मिन्नन्तरे लिङ्गमभवच्चावयोः पुरः।
विवादशमनार्थं हि प्रबोधार्थं तथावयोः॥ ४७

इसी बीच हम दोनोंके छिड़े विवादको शान्त करनेके लिये और ज्ञान प्रदान करनेके लिये हम दोनोंके सामने ही एक लिंग प्रकट हुआ॥ ४७॥

ज्वालामालासहस्राढ्यं कालानलशतोपमम्।
क्षयवृद्धिविनिर्मुक्तमादिमध्यान्तवर्जितम् ॥ ४८

वह लिंग अग्निकी प्रचण्ड हजार ज्वालाओंसे भी अधिक ज्वालासमूहोंवाला, सैकड़ों कालाग्नियोंके समान कान्तिमान्, क्षय एवं वृद्धिसे रहित, आदि-मध्य और अन्तसे विहीन था॥ ४८॥

अनौपम्यमनिर्देश्यमव्यक्तं विश्वसम्भवम्।
तस्य ज्वालासहस्रेण मोहितो भगवान्हरिः॥ ४९

वह उपमारहित, अनिर्देश्य, बिना किसीके द्वारा उपस्थापित, अव्यक्त और विश्वसर्जक था। उस लिंगकी सहस्र ज्वालाओंके समूहको देखनेमात्रसे ही भगवान् विष्णु मोहित हो उठे॥ ४९॥

मोहितं चाह मामत्र किमर्थं स्पर्धसेऽधुना।
आगतस्तु तृतीयोऽत्र तिष्ठतां युद्धमावयोः॥ ५०

शिवकी मायासे मोहित मुझसे वे कहने लगे कि इस समय मुझसे तुम इतनी स्पर्धा क्यों कर रहे हो? हम दोनोंके मध्य तो एक तीसरा भी आ गया है, इसलिये युद्ध रोक दिया जाय॥ ५०॥

कुत एवात्र सम्भूतः परीक्षावोऽग्निसम्भवम्।
अधो गमिष्याम्यनलस्तम्भस्यानुपमस्य च॥ ५१

परीक्षार्थं प्रजानाथ तस्य वै वायुवेगतः।
भवानूर्ध्वं प्रयत्नेन गन्तुमर्हसि सत्वरम्॥ ५२

हम दोनों इस अग्निसे उत्पन्न लिंगकी परीक्षा करें कि यह कहाँसे प्रकट हुआ है। मैं इस अनुपम अग्निस्तम्भके नीचे जाऊँगा और हे प्रजानाथ! आप इसकी परीक्षा करनेके लिये वायुवेगसे प्रयत्नपूर्वक शीघ्र ऊपरकी ओर जायँ॥ ५१-५२॥

ब्रह्मोवाच

एवं व्याहृत्य विश्वात्मा स्वरूपमकरोत्तदा।
वाराहमहमप्याशु हंसत्वं प्राप्तवान्मुने॥ ५३

ब्रह्माजी बोले—तब ऐसा कहकर विश्वात्मा भगवान् विष्णुने वाराहका रूप धारण किया और हे मुने! मैंने भी शीघ्र हंसका रूप बना लिया॥ ५३॥

तदाप्रभृति मामाहुर्हंसहंसो विराडिति।
हंस हंसेति यो ब्रूयात्स हंसोऽथ भविष्यति॥ ५४

उसी समयसे लोग मुझे हंस-हंस और विराट् ऐसा कहने लगे। जो 'हंस-हंस' यह कहकर मेरे नामका जप करता है, वह हंसस्वरूप ही हो जाता है॥ ५४॥

सुश्वेतो ह्यनलप्रख्यो विश्वतः पक्षसंयुतः।
मनोऽनिलजवो भूत्वा गतोर्ध्वं चोर्ध्वतः पुरा॥ ५५

अत्यन्त श्वेत, अग्निके समान, चारों ओरसे पंखोंसे युक्त और मन तथा वायुके वेगवाला होकर मैं ऊपरके भी ऊपर लिंगका पता लगाते हुए चला गया॥ ५५॥

नारायणोऽपि विश्वात्मा सुश्वेतो ह्यभवत्तदा।
दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम्॥ ५६

मेरुपर्वतवर्ष्माणं गौरतीक्ष्णोग्रदंष्ट्रिणम्।
कालादित्यसमाभासं दीर्घघोणं महास्वनम्॥ ५७

ह्रस्वपादं विचित्राङ्गं जैत्रं दृढमनौपमम्।
वाराहाकारमास्थाय गतवांस्तदधो जवात्॥ ५८

उसी समय विश्वात्मा नारायणने भी अत्यन्त श्वेत स्वरूप धारण किया। दस योजन चौड़े, सौ योजन लम्बे मेरुपर्वतके समान शरीरवाले, श्वेत तथा अत्यन्त तेज दाढ़ोंसे युक्त, प्रलयकालीन सूर्यके समान कान्तिमान्, दीर्घ नासिकासे सुशोभित, भयंकर [घुर्र-घुर्रकी] ध्वनि करनेवाले, छोटे-छोटे पैरोंसे युक्त, विचित्र अंगोंवाले, विजय प्राप्त करनेकी इच्छासे परिपूर्ण, दृढ़ तथा अनुपम वाराहका स्वरूप धारण करके वे भगवान् विष्णु भी अत्यन्त वेगसे उसके नीचेकी ओर गये॥ ५६—५८॥

एवं वर्षसहस्रं च चरन्विष्णुरधो गतः।
तदाप्रभृति लोकेषु श्वेतवाराहसंज्ञकः॥ ५९

कल्पो बभूव देवर्षे नराणां कालसंज्ञकः।

इस प्रकार रूप धारणकर भगवान् विष्णु एक हजार वर्षतक नीचेकी ओर ही चलते रहे। उसी समयसे [पृथिवी आदि] लोकोंमें श्वेतवाराह नामक कल्पका प्रादुर्भाव हुआ। हे देवर्षे! यह मनुष्योंकी कालगणनाकी अवधि है॥ ५९ $^1/_2$॥

बभ्राम बहुधा विष्णुः प्रभविष्णुरधोगतः ॥ ६०
नापश्यदल्पमप्यस्य मूलं लिङ्गस्य सूकरः ।

इधर [अत्यन्त तीव्र गतिसे] नीचेकी ओरसे जाते हुए महातेजस्वी विष्णु बहुत प्रकारसे भ्रमण करते रहे, किंतु महावाराहरूपधारी विष्णु उस ज्योतिर्लिंगके मूलका अल्प भाग भी न देख सके ॥ ६०½ ॥

तावत्कालं गतश्चोर्ध्वमहमप्यरिसूदन ॥ ६१
सत्वरं सर्वयत्नेन तस्यान्तं ज्ञातुमिच्छया ।
श्रान्तो न दृष्ट्वा तस्यान्तमहं कालादधोगतः ॥ ६२

हे अरिसूदन! तबतक मैं भी उस ज्योतिर्लिंगके अन्तका पता लगानेके लिये वेगसे ऊपरकी ओर जाता रहा। यत्नपूर्वक उस ज्योतिर्लिंगके अन्तको जाननेका इच्छुक मैं अत्यन्त परिश्रमके कारण थक गया और उसका अन्त बिना देखे ही थोड़े समयमें नीचेकी ओर लौट पड़ा ॥ ६१-६२ ॥

तथैव भगवान्विष्णुः श्रान्तः कमललोचनः ।
सर्वदेवनिभस्तूर्णमुत्थितः स महावपुः ॥ ६३

उसी प्रकार सर्वदेवस्वरूप, महाकाय, कमललोचन, भगवान् विष्णु भी थकानके कारण ज्योतिर्लिंगका अन्त देखे बिना ही ऊपर निकल आये ॥ ६३ ॥

समागतो मया सार्धं प्रणिपत्य भवं मुहुः ।
मायया मोहितः शम्भोस्तस्थौ संविग्नमानसः ॥ ६४

शिवकी मायासे विमोहित विष्णु आकर मेरे साथ ही भगवान् शिवको बार-बार प्रणाम करके व्याकुल चित्तसे वहाँ खड़े रहे ॥ ६४ ॥

पृष्ठतः पार्श्वतश्चैव ह्यग्रतः परमेश्वरम् ।
प्रणिपत्य मया सार्धं सस्मार किमिदं त्विति ॥ ६५

पृष्ठ प्रदेशकी ओरसे, पार्श्वोंकी ओर और आगेकी ओरसे परमेश्वर शिवको मेरे साथ ही प्रणाम करके विष्णु भी सोचने लगे कि यह क्या है? ॥ ६५ ॥

अनिर्देश्यं च तद्रूपमनाम कर्मवर्जितम् ।
अलिङ्गं लिङ्गतां प्राप्तं ध्यानमार्गेऽप्यगोचरम् ॥ ६६

स्वस्थं चित्तं तदा कृत्वा नमस्कारपरायणौ ।
बभूवतुरुभावावामहं हरिरपि ध्रुवम् ॥ ६७

जानीवो न हि ते रूपं योऽसि सोऽसि महाप्रभो ।
नमोऽस्तु ते महेशान रूपं दर्शय नौ त्वरम् ॥ ६८

वह रूप तो अनिर्देश्य, नाम तथा कर्मसे रहित, अलिंग होते हुए भी लिंगताको प्राप्त और ध्यानमार्गसे अगम्य था। तदनन्तर अपने मनको शान्त करके मैं और विष्णु दोनों शिवको बार-बार प्रणामकर कहने लगे—हे महाप्रभो! हम आपके स्वरूपको नहीं जानते। आप जो हैं, वही हैं, आपको हमारा नमस्कार है। हे महेशान! आप शीघ्र ही हमें अपने स्वरूपका दर्शन करायें ॥ ६६—६८ ॥

एवं शरच्छतान्यासन्नमस्कारं प्रकुर्वतोः ।
आवयोर्मुनिशार्दूल मदमास्थितयोस्तदा ॥ ६९

हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार अहंकारसे आविष्ट हुए हम दोनोंको वहाँ नमस्कार करते हुए सैकड़ों वर्ष बीत गये ॥ ६९ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने विष्णुब्रह्मविवादवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टि-उपाख्यानका विष्णु-ब्रह्मा-विवाद-वर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

ब्रह्मा और विष्णुको भगवान् शिवके शब्दमय शरीरका दर्शन

ब्रह्मोवाच

एवं तयोर्मुनिश्रेष्ठ दर्शनं काङ्क्षमाणयोः।
विगर्वयोश्च सुरयोः सदा नौ स्थितयोर्मुने॥ १

दयालुरभवच्छम्भुर्दीनानां प्रतिपालकः।
गर्विणां गर्वहर्ता च सर्वेषां प्रभुरव्ययः॥ २

तदा समभवत्तत्र नादो वै शब्दलक्षणः।
ओमोमिति सुरश्रेष्ठात्सुव्यक्तः प्लुतलक्षणः॥ ३

किमिदं त्विति सञ्चिन्त्य मया तिष्ठन्महास्वनः।
विष्णुः सर्वसुराराध्यो निर्वैरस्तुष्टचेतसा॥ ४

लिङ्गस्य दक्षिणे भागे तथापश्यत्सनातनम्।
आद्यं वर्णमकाराख्यमुकारं चोत्तरे ततः॥ ५

मकारं मध्यतश्चैव नादमन्तेऽस्य चोमिति।

सूर्यमण्डलवद् दृष्ट्वा वर्णमाद्यं तु दक्षिणे॥ ६

उत्तरे पावकप्रख्यमुकारमृषिसत्तम।
शीतांशुमण्डलप्रख्यं मकारं तस्य मध्यतः॥ ७

तस्योपरि तदापश्यच्छुद्धस्फटिकसुप्रभम्।
तुरीयातीतममलं निष्कलं निरुपद्रवम्॥ ८

निर्द्वन्द्वं केवलं शून्यं बाह्याभ्यन्तरवर्जितम्।
सबाह्याभ्यन्तरे चैव बाह्याभ्यन्तरसंस्थितम्॥ ९

आदिमध्यान्तरहितमानन्दस्यादिकारणम् ।
सत्यमानन्दममृतं परं ब्रह्मपरायणम्॥ १०

कुत एवात्र सम्भूतः परीक्षावोऽग्निसम्भवम्।
अधो गमिष्याम्यनलस्तम्भस्यानुपमस्य च॥ ११

ब्रह्माजी बोले—मुनिश्रेष्ठ नारद! इस प्रकार हम दोनों देवता गर्वरहित हो निरन्तर प्रणाम करते रहे। हम दोनोंके मनमें एक ही अभिलाषा थी कि इस ज्योतिर्लिंगके रूपमें प्रकट हुए परमेश्वर प्रत्यक्ष दर्शन दें॥ १॥

दीनोंके प्रतिपालक, अहंकारियोंका गर्व चूर्ण करनेवाले तथा सबके प्रभु अविनाशी शंकर हम दोनोंपर दयालु हो गये॥ २॥

उस समय वहाँ उन सुरश्रेष्ठसे ओम्-ओम् ऐसा शब्दरूप नाद प्रकट हुआ, जो स्पष्टरूपसे प्लुत स्वरमें सुनायी दे रहा था॥ ३॥

जोरसे प्रकट होनेवाले उस शब्दके विषयमें 'यह क्या है'—ऐसा सोचते हुए समस्त देवताओंके आराध्य भगवान् विष्णु मेरे साथ सन्तुष्टचित्तसे खड़े रहे। वे सर्वथा वैरभावसे रहित थे॥ ४॥

उन्होंने लिंगके दक्षिण भागमें सनातन आदिवर्ण अकारका दर्शन किया। तदनन्तर उत्तर भागमें उकारका, मध्यभागमें मकारका और अन्तमें 'ओम्' इस नादका साक्षात् दर्शन किया॥ ५½॥

हे ऋषिश्रेष्ठ! दक्षिण भागमें प्रकट हुए आदिवर्ण अकारको सूर्य-मण्डलके समान तेजोमय देखकर उन्होंने उत्तर भागमें उकार वर्णको अग्निके समान देखा। हे मुनिश्रेष्ठ! इसी तरह उन्होंने मध्यभागमें मकारको चन्द्रमण्डलके समान देखा॥ ६-७॥

तदनन्तर उसके ऊपर शुद्ध स्फटिक मणिके समान निर्मल प्रभासे युक्त, तुरीयातीत, अमल, निष्कल, निरुपद्रव, निर्द्वन्द्व, अद्वितीय, शून्यमय, बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे रहित, बाह्याभ्यन्तर-भेदसे युक्त, जगत्के भीतर और बाहर स्वयं ही स्थित, आदि, मध्य और अन्तसे रहित, आनन्दके आदिकारण तथा सबके परम आश्रय, सत्य, आनन्द एवं अमृतस्वरूप परब्रह्मका साक्षात्कार किया॥ ८—१०॥

[उस समय श्रीहरि यह सोचने लगे कि] यह अग्निस्तम्भ यहाँ कहाँसे प्रकट हुआ है? हम दोनों फिर इसकी परीक्षा करें। मैं इस अनुपम अग्निस्तम्भके

वेदशब्दोभयावेशं विश्वात्मानं व्यचिन्तयत्।
तदाभवदृषिस्तत्र ऋषेः सारतमः स्मृतः॥ १२

नीचे जाऊँगा। ऐसा विचार करते हुए श्रीहरिने वेद और शब्द दोनोंके आवेशसे युक्त विश्वात्मा शिवका चिन्तन किया। तब वहाँ एक ऋषि प्रकट हुए, जो ऋषिसमूहके परम साररूप माने जाते हैं॥ ११-१२॥

तेनैव ऋषिणा विष्णुर्ज्ञातवान्परमेश्वरम्।
महादेवं परं ब्रह्म शब्दब्रह्मतनुं परम्॥ १३

उन्हीं ऋषिके द्वारा परमेश्वर श्रीविष्णुने जाना कि इस शब्दब्रह्ममय शरीरवाले परम लिंगके रूपमें साक्षात् परब्रह्मस्वरूप महादेवजी ही यहाँ प्रकट हुए हैं॥ १३॥

चिन्तया रहितो रुद्रो वाचो यन्मनसा सह।
अप्राप्य तन्निवर्तन्ते वाच्यस्त्वेकाक्षरेण सः॥ १४

ये चिन्तारहित अथवा अचिन्त्य रुद्र हैं, जहाँ जाकर मनसहित वाणी उसे प्राप्त किये बिना ही लौट आती है, उस परब्रह्म परमात्मा शिवका वाचक एकाक्षर प्रणव ही है, वे इसके वाच्यार्थरूप हैं॥ १४॥

एकाक्षरेण तद्वाक्यमृतं परमकारणम्।
सत्यमानन्दममृतं परं ब्रह्म परात्परम्॥ १५

उस परम कारण, ऋत, सत्य, आनन्द एवं अमृतस्वरूप परात्पर परब्रह्मको इस एकाक्षरके द्वारा ही जाना जा सकता है॥ १५॥

एकाक्षरादकाराख्याद्भगवान्बीजकोऽण्डजः।
एकाक्षरादुकाराख्याद्धरिः परमकारणम्॥ १६

एकाक्षरान्मकाराख्याद्भगवान्नीललोहितः।
सर्गकर्ता त्वकाराख्यो ह्युकाराख्यस्तु मोहकः॥ १७

मकाराख्यस्तु यो नित्यमनुग्रहकरोऽभवत्।
मकाराख्यो विभुर्बीजी ह्यकारो बीज उच्यते॥ १८

उकाराख्यो हरिर्योनिः प्रधानपुरुषेश्वरः।
बीजी च बीजं तद्योनिर्नादाख्यश्च महेश्वरः॥ १९

प्रणवके एक अक्षर अकारसे जगत्के बीजभूत अण्डजन्मा भगवान् ब्रह्माका बोध होता है। उसके दूसरे एक अक्षर उकारसे परमकारणरूप श्रीहरिका बोध होता है और तीसरे एक अक्षर मकारसे भगवान् नीललोहित शिवका ज्ञान होता है। अकार सृष्टिकर्ता है, उकार मोहमें डालनेवाला है और मकार नित्य अनुग्रह करनेवाला है। मकार-बोध्य सर्वव्यापी शिव बीजी [बीजमात्रके स्वामी] हैं और अकारसंज्ञक मुझ ब्रह्माको बीज कहा जाता है। उकारसंज्ञक श्रीहरि योनि हैं। प्रधान और पुरुषके भी ईश्वर जो महेश्वर हैं, वे बीजी, बीज और योनि भी हैं। उन्हींको नाद कहा गया है॥ १६—१९॥

बीजी विभज्य चात्मानं स्वेच्छया तु व्यवस्थितः।
अस्य लिङ्गादभूद् बीजमकारो बीजिनः प्रभोः॥ २०

बीजी अपनी इच्छासे ही अपने बीजको अनेक रूपोंमें विभक्त करके स्थित हैं। इन बीजी भगवान् महेश्वरके लिंगसे अकाररूप बीज प्रकट हुआ॥ २०॥

उकारयोनौ निःक्षिप्तमवर्धत समन्ततः।
सौवर्णमभवच्चाण्डमावेद्यं तदलक्षणम्॥ २१

जो उकाररूप योनिमें स्थापित होकर सब ओर बढ़ने लगा, वह सुवर्णमय अण्डके रूपमें ही बतानेयोग्य था। उसका अन्य कोई विशेष लक्षण नहीं लक्षित होता था॥ २१॥

अनेकाब्दं तथा चाप्सु दिव्यमण्डं व्यवस्थितम्।
ततो वर्षसहस्रान्ते द्विधा कृतमजोद्भवम्॥ २२

वह दिव्य अण्ड अनेक वर्षोंतक जलमें ही स्थित रहा। तदनन्तर एक हजार वर्षके बाद उस अण्डके दो टुकड़े हो गये। जलमें स्थित हुआ वह

अण्डमप्सु स्थितं साक्षाद् व्याघातेनेश्वरेण तु।
तथास्य सुशुभं हैमं कपालं चोर्ध्वसंस्थितम्॥ २३

अण्ड अजन्मा ब्रह्माजीकी उत्पत्तिका स्थान था और साक्षात् महेश्वरके आघातसे ही फूटकर दो भागोंमें बँट गया था। उस अवस्थामें ऊपर स्थित हुआ उसका सुवर्णमय कपाल बड़ी शोभा पाने लगा॥ २२-२३॥

जज्ञे सा द्यौस्तदपरं पृथिवी पञ्चलक्षणा।
तस्मादण्डाद्भवो जज्ञे ककाराख्यश्चतुर्मुखः॥ २४

वही द्युलोकके रूपमें प्रकट हुआ तथा जो उसका दूसरा नीचेवाला कपाल था, वही यह पाँच लक्षणोंसे युक्त पृथिवी है। उस अण्डसे चतुर्भुज ब्रह्मा उत्पन्न हुए, जिनकी 'क' संज्ञा है॥ २४॥

स स्रष्टा सर्वलोकानां स एव त्रिविधः प्रभुः।
एवमोमोमिति प्रोक्तमित्याहुर्यजुषां वराः॥ २५

वे समस्त लोकोंके स्रष्टा हैं। इस प्रकार वे भगवान् महेश्वर ही 'अ', 'उ' और 'म्'—इन त्रिविध रूपोंमें वर्णित हुए हैं। इसी अभिप्रायसे उन ज्योतिर्लिंगस्वरूप सदाशिवने 'ओम्', 'ओम्'—ऐसा कहा—यह बात यजुर्वेदके श्रेष्ठ मन्त्र कहते हैं॥ २५॥

यजुषां वचनं श्रुत्वा ऋचः सामानि सादरम्।
एवमेव हरे ब्रह्मन्नित्याहुश्चावयोस्तदा॥ २६

यजुर्वेदके श्रेष्ठ मन्त्रोंका यह कथन सुनकर ऋचाओं और साममन्त्रोंने भी हमसे आदरपूर्वक यह कहा—हे हरे! हे ब्रह्मन्! यह बात ऐसी ही है॥ २६॥

ततो विज्ञाय देवेशं यथावच्छक्तिसम्भवैः।
मन्त्रैर्महेश्वरं देवं तुष्टाव सुमहोदयम्॥ २७

इस तरह देवेश्वर शिवको जानकर श्रीहरिने शक्तिसम्भूत मन्त्रोंद्वारा उत्तम एवं महान् अभ्युदयसे शोभित होनेवाले उन महेश्वर देवका स्तवन किया॥ २७॥

एतस्मिन्नन्तरेऽन्यच्च रूपमद्भुतसुन्दरम्।
ददर्श च मया सार्धं भगवान्विश्वपालकः॥ २८

इसी बीचमें विश्वपालक भगवान् विष्णुने मेरे साथ एक और भी अद्भुत एवं सुन्दर रूपको देखा॥ २८॥

पञ्चवक्त्रं दशभुजं गौरकर्पूरवन्मुने।
नानाकान्तिसमायुक्तं नानाभूषणभूषितम्॥ २९

हे मुने! वह रूप पाँच मुखों और दस भुजाओंसे अलंकृत था। उसकी कान्ति कर्पूरके समान गौर थी। वह नाना प्रकारकी छटाओंसे और भाँति-भाँतिके आभूषणोंसे विभूषित था॥ २९॥

महोदारं महावीर्यं महापुरुषलक्षणम्।
तं दृष्ट्वा परमं रूपं कृतार्थोऽभून्मया हरिः॥ ३०

उस परम उदार, महापराक्रमी और महापुरुषके लक्षणोंसे सम्पन्न अत्यन्त उत्कृष्ट रूपका दर्शन करके मेरे साथ श्रीहरि कृतार्थ हो गये॥ ३०॥

अथ प्रसन्नो भगवान्महेशः परमेश्वरः।
दिव्यं शब्दमयं रूपमाख्याय प्रहसन्स्थितः॥ ३१

तत्पश्चात् परमेश्वर भगवान् महेश प्रसन्न होकर अपने दिव्य शब्दमय रूपको प्रकट करके हँसते हुए खड़े हो गये॥ ३१॥

अकारस्तस्य मूर्धा हि ललाटो दीर्घ उच्यते।
इकारो दक्षिणं नेत्रमीकारो वामलोचनम्॥ ३२

[ह्रस्व] अकार उनका मस्तक और दीर्घ अकार ललाट है। इकार दाहिना नेत्र और ईकार बायाँ नेत्र है॥ ३२॥

उकारो दक्षिणं श्रोत्रमूकारो वाम उच्यते।
ऋकारो दक्षिणं तस्य कपोलं परमेष्ठिनः॥ ३३

उकारको उनका दाहिना और ऊकारको बायाँ कान बताया जाता है। ऋकार उन परमेश्वरका दायाँ कपोल है और ॠकार उनका बायाँ कपोल है।

वामं कपोलमृकारो लृ लॄ नासापुटे उभे।
एकारश्चोष्ठ ऊर्ध्वश्च ह्यैकारस्त्वधरो विभोः॥ ३४

लृ और लॄ—ये उनकी नासिकाके दोनों छिद्र हैं। एकार उन सर्वव्यापी प्रभुका ऊपरी ओष्ठ है और ऐकार अधर है॥ ३३-३४॥

ओकारश्च तथौकारो दन्तपङ्क्तिद्वयं क्रमात्।
अमस्तु तालुनी तस्य देवदेवस्य शूलिनः॥ ३५

ओकार तथा औकार—ये दोनों क्रमशः उनकी ऊपर और नीचेकी दो दंतपंक्तियाँ हैं। अं और अः उन देवाधिदेव शूलधारी शिवके दोनों तालु हैं॥ ३५॥

कादिपञ्चाक्षराण्यस्य पञ्च हस्ताश्च दक्षिणे।
चादिपञ्चाक्षराण्येवं पञ्च हस्तास्तु वामतः॥ ३६

क आदि पाँच अक्षर उनके दाहिने पाँच हाथ हैं और च आदि पाँच अक्षर बायें पाँच हाथ हैं॥ ३६॥

टादिपञ्चाक्षरं पादास्तादि पञ्चाक्षरं तथा।
पकार उदरं तस्य फकारः पार्श्व उच्यते॥ ३७
बकारो वामपार्श्वस्तु भकारः स्कन्ध उच्यते।
मकारो हृदयं शम्भोर्महादेवस्य योगिनः॥ ३८

ट आदि और त आदि पाँच-पाँच अक्षर उनके पैर हैं। पकार पेट है। फकारको दाहिना पार्श्व बताया जाता है और बकारको बायाँ पार्श्व। भकारको कंधा कहा जाता है। मकार उन योगी महादेव शम्भुका हृदय है॥ ३७-३८॥

यकारादिसकारान्ता विभोर्वै सप्तधातवः।
हकारो नाभिरूपो हि क्षकारो घ्राण उच्यते॥ ३९

यसे लेकर स तक [य, र, ल, व, श, ष तथा स—ये सात अक्षर] सर्वव्यापी शिवकी सात धातुएँ हैं। हकारको उनकी नाभि और क्षकारको नासिका कहा जाता है॥ ३९॥

एवं शब्दमयं रूपमगुणस्य गुणात्मनः।
दृष्ट्वा तमुमया सार्धं कृतार्थोऽभून्मया हरिः॥ ४०

इस प्रकार निर्गुण एवं गुण-स्वरूप परमात्माके शब्दमय रूपको भगवती उमासहित देखकर श्रीहरि मेरे साथ कृतार्थ हो गये॥ ४०॥

एवं दृष्ट्वा महेशानं शब्दब्रह्मतनुं शिवम्।
प्रणम्य च मया विष्णुः पुनश्चापश्यदूर्ध्वतः॥ ४१

इस प्रकार शब्द ब्रह्ममय-शरीरधारी महेश्वर शिवका दर्शन पाकर मेरे साथ श्रीहरिने उन्हें प्रणाम करके पुनः ऊपरकी ओर देखा॥ ४१॥

ॐकारप्रभवं मन्त्रं कलापञ्चकसंयुतम्।
शुद्धस्फटिकसङ्काशं शुभाष्टत्रिंशदक्षरम्॥ ४२

उस समय उन्हें पाँच कलाओंसे युक्त, ओंकारजनित, शुद्ध स्फटिक मणिके समान सुन्दर, अड़तीस अक्षरोंवाले मन्त्रका साक्षात्कार हुआ॥ ४२॥

मेधाकारमभूद्भूयः सर्वधर्मार्थसाधकम्।
गायत्रीप्रभवं मन्त्रं सहितं वश्यकारकम्॥ ४३

चतुर्विंशतिवर्णाढ्यं चतुष्कलमनुत्तमम्।
अथ पञ्चसितं मन्त्रं कलाष्टकसमायुतम्॥ ४४

पुनः सम्पूर्ण धर्म तथा अर्थका साधक, बुद्धिस्वरूप, अत्यन्त हितकारक और सबको वशमें करनेवाला गायत्री नामक महान् मन्त्र लक्षित हुआ। वह चौबीस अक्षरों तथा चार कलाओंसे युक्त श्रेष्ठ मन्त्र है। पंचाक्षरमन्त्र (**नमः शिवाय**) आठ कलाओंसे युक्त है॥ ४३-४४॥

आभिचारिकमत्यर्थं प्रायस्त्रिंशच्छुभाक्षरम्।
यजुर्वेदसमायुक्तं पञ्चविंशच्छुभाक्षरम्॥ ४५

अभिचारसिद्धिके लिये प्रयोग किया जानेवाला मन्त्र तीस अक्षरोंसे सम्पन्न है, किंतु यजुर्वेदमें प्रयुक्त मन्त्र पच्चीस सुन्दर अक्षरोंका ही है॥ ४५॥

कलाष्टकसमायुक्तं सुश्वेतं शान्तिकं तथा।
त्रयोदशकलायुक्तं बालाद्यैः सह लेहितम्॥ ४६

यह आठ कलाओंसे युक्त तथा सुश्वेत मन्त्र है, जिसका प्रयोग शान्तिकर्मकी सिद्धिके लिये किया जाता है। इस मन्त्रके अतिरिक्त तेरह कलाओंसे युक्त जो श्रेष्ठ

बभूवुरस्य चोत्पत्तिवृद्धिसंहारकारणम्।
वर्णा एकाधिकाः षष्टिरस्य मन्त्रवरस्य तु॥ ४७

मन्त्र है, वह बाल, युवा और वृद्ध आदि अवस्थाओंमें आनेवाले क्रमके अनुसार उत्पत्ति, पालन तथा संहारका कारणरूप है। इसमें इकसठ वर्ण होते हैं॥ ४६-४७॥

पुनर्मृत्युञ्जयं मन्त्रं पञ्चाक्षरमतः परम्।
चिन्तामणिं तथा मन्त्रं दक्षिणामूर्तिसंज्ञकम्॥ ४८

इसके पश्चात् विष्णुने मृत्युंजयमन्त्र, पंचाक्षरमन्त्र, चिन्तामणिमन्त्र[1] तथा दक्षिणामूर्तिमन्त्र[2] को देखा॥ ४८॥

ततस्तत्त्वमसीत्युक्तं महावाक्यं हरस्य च।
पञ्चमन्त्रांस्तथा लब्ध्वा जजाप भगवान्हरिः॥ ४९

इसके बाद भगवान् विष्णुने शंकरको 'तत्त्वमसि—वही तुम हो'—यह महावाक्य कहा। इस प्रकार उक्त पंचमन्त्रोंको प्राप्त करके वे भगवान् श्रीहरि उनका जप करने लगे॥ ४९॥

अथ दृष्ट्वा कलावर्णमृग्यजुःसामरूपिणम्।
ईशानमीशमुकुटं पुरुषाख्यं पुरातनम्॥ ५०
अघोरहृदयं हृद्यं सर्वगुह्यं सदाशिवम्।
वामपादं महादेवं महाभोगीन्द्रभूषणम्॥ ५१
विश्वतः पादवन्तं तं विश्वतोऽक्षिकरं शिवम्।
ब्रह्मणोऽधिपतिं सर्गस्थितिसंहारकारणम्॥ ५२
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः साम्बं वरदमीश्वरम्।
मया च सहितो विष्णुर्भगवांस्तुष्टचेतसा॥ ५३

इसके पश्चात् ऋक्, यजुः, सामरूप वर्णोंकी कलाओंसे युक्त, ईशान, ईशोंके मुकुट, पुरातन, पुरुष, अघोरहृदय, मनोहर, सर्वगुह्य, सदाशिव, ताण्डव-नृत्यादि कालोंमें वामपादपर अवस्थित रहनेवाले, महादेव, महान् सर्पराजको आभूषणके रूपमें धारण करनेवाले, चारों ओर चरण और नेत्रवाले, कल्याणकारी, ब्रह्माके अधिपति, सृष्टि-स्थिति-संहारके कारणभूत, वरदायक साम्बमहेश्वरको देखकर भगवान् विष्णु प्रसन्न मनसे प्रिय वचनोंद्वारा मेरे साथ उनकी स्तुति करने लगे॥ ५०—५३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने शब्दब्रह्मतनुवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टि-उपाख्यानमें शब्दब्रह्म-तनु-वर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः

उमासहित भगवान् शिवका प्राकट्य, उनके द्वारा अपने स्वरूपका विवेचन तथा ब्रह्मा आदि तीनों देवताओंकी एकताका प्रतिपादन

ब्रह्मोवाच

अथाकर्ण्य नुतिं विष्णुकृतां स्वस्य महेश्वरः।
प्रादुर्बभूव सुप्रीतः सवामः करुणानिधिः॥ १

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] भगवान् विष्णुके द्वारा की हुई अपनी स्तुति सुनकर करुणानिधि महेश्वर प्रसन्न हुए और उमादेवीके साथ सहसा वहाँ प्रकट हो गये॥ १॥

पञ्चवक्त्रस्त्रिनयनो भालचन्द्रो जटाधरः।
गौरवर्णो विशालाक्षो भस्मोद्धूलितविग्रहः॥ २

[उस समय] उनके पाँच मुख और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र शोभा पाते थे। भालदेशमें चन्द्रमाका मुकुट सुशोभित था। सिरपर जटा धारण किये, गौरवर्ण, विशाल नेत्रवाले शिवने अपने सम्पूर्ण अंगोंमें विभूति लगा रखी थी॥ २॥

---

१. 'क्ष्म्यौं'—यह चिन्तामणिमन्त्र है।
२. 'ॐ नमो भगवते दक्षिणामूर्तये मह्यं मेधां प्रयच्छ स्वाहा।'—यह दक्षिणामूर्ति नामक मन्त्र है।

दशबाहुर्नीलगलः सर्वाभरणभूषितः।
सर्वाङ्गसुन्दरो भस्मत्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकः॥ ३

उनकी दस भुजाएँ थीं। उनके कण्ठमें नीला चिह्न था। वे समस्त आभूषणोंसे विभूषित थे। उन सर्वांगसुन्दर शिवके मस्तक भस्ममय त्रिपुण्ड्रसे अंकित थे॥ ३॥

तं दृष्ट्वा तादृशं देवं सवामं परमेश्वरम्।
तुष्टाव पुनरिष्टाभिर्वाग्भिर्विष्णुर्मया सह॥ ४

ऐसे परमेश्वर महादेवजीको भगवती उमाके साथ उपस्थित देखकर भगवान् विष्णुने मेरे साथ पुनः प्रिय वचनोंद्वारा उनकी स्तुति की॥ ४॥

निगमं श्वासरूपेण ददौ तस्मै ततो हरः।
विष्णवे च प्रसन्नात्मा महेशः करुणाकरः॥ ५

तब करुणाकर भगवान् महेश्वर शिवने प्रसन्नचित्त होकर उन श्रीविष्णुदेवको श्वासरूपसे वेदका उपदेश दिया॥ ५॥

ततो ज्ञानमदात्तस्मै रहस्यं परमात्मने।
परमात्मा पुनर्मह्यं दत्तवान्कृपया मुने॥ ६

हे मुने! उसके बाद शिवने परमात्मा श्रीहरिको गुह्य ज्ञान प्रदान किया। फिर उन परमात्माने कृपा करके मुझे भी वह ज्ञान दिया॥ ६॥

सम्प्राप्य निगमं विष्णुः पप्रच्छ पुनरेव तम्।
कृतार्थः साञ्जलिर्नत्वा मया सह महेश्वरम्॥ ७

वेदका ज्ञान प्राप्तकर कृतार्थ हुए भगवान् विष्णुने मेरे साथ हाथ जोड़कर महेश्वरको नमस्कार करके पुनः उनसे पूछा॥ ७॥

विष्णुरुवाच

कथं च तुष्यसे देव मया पूज्यः कथं प्रभो।
कथं ध्यानं प्रकर्तव्यं कथं व्रजसि वश्यताम्॥ ८

विष्णुजी बोले—हे देव! आप कैसे प्रसन्न होते हैं? हे प्रभो! मैं आपकी पूजा किस प्रकार करूँ? आपका ध्यान किस प्रकारसे किया जाय और आप किस विधिसे वशमें हो जाते हैं?॥ ८॥

किं कर्तव्यं महादेव ह्यावाभ्यां तव शासनात्।
सदा सदाज्ञापय नौ प्रीत्यर्थं कुरु शङ्कर॥ ९

हे महादेव! आपकी आज्ञासे हम लोगोंको क्या करना चाहिये? हे शंकर! कौन कार्य अच्छा है और कौन बुरा है, इस विवेकके लिये हम दोनोंके ऊपर कल्याणहेतु आप प्रसन्न हों और उचित बतानेकी कृपा करें॥ ९॥

एतत्सर्वं महाराज कृपां कृत्वावयोः प्रभो।
कथनीयं तथान्यच्च विज्ञाय स्वानुगौ शिव॥ १०

हे महाराज! हे प्रभो! हे शिव! हम दोनोंपर कृपा करके यह सब एवं अन्य जो कहनेयोग्य है, वह सब हम दोनोंको अपना अनुचर समझकर बतायें॥ १०॥

ब्रह्मोवाच

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा प्रसन्नो भगवान्हरः।
उवाच वचनं प्रीत्या सुप्रसन्नः कृपानिधिः॥ ११

ब्रह्माजी बोले—[हे मुने!] [श्रीहरिकी] यह बात सुनकर प्रसन्न हुए कृपानिधान भगवान् शिव प्रीतिपूर्वक यह बात कहने लगे॥ ११॥

श्रीशिव उवाच

भक्त्या च भवतोर्नूनं प्रीतोऽहं सुरसत्तमौ।
पश्यन्तं मां महादेवं भयं सर्वं विमुञ्चताम्॥ १२

श्रीशिवजी बोले—हे सुरश्रेष्ठगण! मैं आप दोनोंकी भक्तिसे निश्चय ही बहुत प्रसन्न हूँ। आपलोग मुझ महादेवकी ओर देखते हुए सभी भयोंको छोड़ दीजिये॥ १२॥

मम लिङ्गं सदा पूज्यं ध्येयं चैतादृशं मम।
इदानीं दृश्यते यद्वत्तथा कार्यं प्रयत्नतः॥ १३

मेरा यह लिंग सदा पूज्य है, सदा ही ध्येय है। इस समय आपलोगोंको मेरा स्वरूप जैसा दिखायी देता है, वैसे ही लिंगरूपका प्रयत्नपूर्वक पूजन-चिन्तन करना चाहिये॥ १३॥

पूजितो लिङ्गरूपेण प्रसन्नो विविधं फलम्।
दास्यामि सर्वलोकेभ्यो मनोऽभीष्टान्यनेकशः॥ १४

यदा दुःखं भवेत्तत्र युवयोः सुरसत्तमौ।
पूजिते मम लिङ्गे च तदा स्याद् दुःखनाशनम्॥ १५

लिंगरूपसे पूजा गया मैं प्रसन्न होकर सभी लोगोंको अनेक प्रकारके फल तो दूँगा ही, साथ ही मनकी अन्य अनेक अभिलाषाएँ भी पूरी करूँगा। हे देवश्रेष्ठ! जब भी आपलोगोंको कष्ट हो, तब मेरे लिंगकी पूजा करें, जिससे आपलोगोंके कष्टका नाश हो जायगा॥ १४-१५॥

युवां प्रसूतौ प्रकृतेर्मदीयाया महाबलौ।
सव्यापसव्यगात्राभ्यां मम सर्वेश्वरस्य हि॥ १६

आप दोनों महाबली देवता मेरी स्वरूपभूत प्रकृतिसे और मुझ सर्वेश्वरके दायें और बायें अंगोंसे प्रकट हुए हैं॥ १६॥

अयं मे दक्षिणात्पार्श्वाद् ब्रह्मा लोकपितामहः।
वामपार्श्वाच्च विष्णुस्त्वं समुत्पन्नः परात्मनः॥ १७

ये लोकपितामह ब्रह्मा मुझ परमात्माके दाहिने पार्श्वसे उत्पन्न हुए हैं और आप विष्णु वाम पार्श्वसे प्रकट हुए हैं॥ १७॥

प्रीतोऽहं युवयोः सम्यग्वरं दद्यां यथेप्सितम्।
मयि भक्तिर्दृढा भूयाद्युवयोरभ्यनुज्ञया॥ १८

मैं आप दोनोंपर भलीभाँति प्रसन्न हूँ और मनोवांछित वर दे रहा हूँ। मेरी आज्ञासे आप दोनोंकी मुझमें सुदृढ़ भक्ति हो॥ १८॥

पार्थिवीं चैव मन्मूर्तिं विधाय कुरुतं युवाम्।
सेवां च विविधां प्राज्ञौ कृत्वा सुखमवाप्स्यथः॥ १९

हे विद्वानो! मेरी पार्थिव-मूर्ति बनाकर आप दोनों उसकी अनेक प्रकारसे पूजा करें। ऐसा करनेपर आपलोगोंको सुख प्राप्त होगा॥ १९॥

ब्रह्मन्सृष्टिं कुरु त्वं हि मदाज्ञापरिपालकः।
वत्स वत्स हरे त्वं च पालयैवं चराचरम्॥ २०

हे ब्रह्मन्! आप मेरी आज्ञाका पालन करते हुए जगत्की सृष्टि कीजिये और हे विष्णो! आप इस चराचर जगत्का पालन कीजिये॥ २०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा नौ प्रभुस्ताभ्यां पूजाविधिमदाच्छुभाम्।
येनैव पूजितः शम्भुः फलं यच्छत्यनेकशः॥ २१

ब्रह्माजी बोले— हम दोनोंसे ऐसा कहकर भगवान् शंकरने हमें पूजाकी उत्तम विधि प्रदान की, जिसके अनुसार पूजित होनेपर शिव अनेक प्रकारके फल देते हैं॥ २१॥

इत्याकर्ण्य वचः शम्भोर्मया च सहितो हरिः।
प्रत्युवाच महेशानं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः॥ २२

शम्भुकी यह बात सुनकर श्रीहरि मेरे साथ महेश्वरको हाथ जोड़कर प्रणाम करके कहने लगे— ॥ २२॥

विष्णुरुवाच

यदि प्रीतिः समुत्पन्ना यदि देयो वरश्च नौ।
भक्तिर्भवतु नौ नित्यं त्वयि चाव्यभिचारिणी॥ २३

विष्णु बोले— [हे प्रभो!] यदि हमारे प्रति आपमें प्रीति उत्पन्न हुई है और यदि आप हमें वर देना चाहते हैं, तो हम यही वर माँगते हैं कि आपमें हम दोनोंकी सदा अविचल भक्ति बनी रहे॥ २३॥

त्वमप्यवतरस्वाद्य लीलया निर्गुणोऽपि हि।
सहायं कुरु नौ तात त्वं परः परमेश्वरः॥ २४

आप निर्गुण हैं, फिर भी अपनी लीलासे आप अवतार धारण कीजिये। हे तात! आप परमेश्वर हैं, हमलोगोंकी सहायता करें॥ २४॥

आवयोर्देवदेवेश विवादमपि शोभनम्।
इहागतो भवान्यस्माद्विवादशमनाय नौ॥ २५

हे देवदेवेश्वर! हम दोनोंका विवाद शुभदायक रहा, जिसके कारण आप हम दोनोंके विवादको शान्त करनेके लिये यहाँ प्रकट हुए॥ २५॥

ब्रह्मोवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्राह हरो हरिम्।
प्रणिपत्य स्थितं मूर्ध्ना कृताञ्जलिपुटः स्वयम्॥ २६

ब्रह्माजी बोले—[हे मुने!] श्रीहरिकी यह बात सुनकर भगवान् हरने मस्तक झुकाकर प्रणाम करके स्थित हुए उन श्रीहरिसे पुनः कहा। वे विष्णु स्वयं हाथ जोड़कर खड़े रहे॥ २६॥

श्रीमहेश उवाच

प्रलयस्थितिसर्गाणां कर्ताहं सगुणोऽगुणः।
परब्रह्म निर्विकारी सच्चिदानन्दलक्षणः॥ २७

श्रीमहेश बोले—मैं सृष्टि, पालन और संहारका कर्ता, सगुण, निर्गुण, निर्विकार, सच्चिदानन्दलक्षणवाला तथा परब्रह्म परमात्मा हूँ॥ २७॥

त्रिधा भिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुहराख्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलोऽहं सदा हरे॥ २८

हे विष्णो! सृष्टि, रक्षा और प्रलयरूप गुणोंके भेदसे मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रका नाम धारण करके तीन स्वरूपोंमें विभक्त हुआ हूँ। हे हरे! मैं वास्तवमें सदा निष्कल हूँ॥ २८॥

स्तुतोऽहं यत्त्वया विष्णो ब्रह्मणा मेऽवतारणे।
प्रार्थनां तां करिष्यामि सत्यां यद्भक्तवत्सलः॥ २९

हे विष्णो! आपने और ब्रह्माने मेरे अवतारके निमित्त जो मेरी स्तुति की है, उस प्रार्थनाको मैं अवश्य सत्य करूँगा; क्योंकि मैं भक्तवत्सल हूँ॥ २९॥

मद्रूपं परमं ब्रह्मन्नीदृशं भवदङ्गतः।
प्रकटीभविता लोके नाम्ना रुद्रः प्रकीर्तितः॥ ३०

ब्रह्मन्! मेरा ऐसा ही परम उत्कृष्ट रूप तुम्हारे शरीरसे इस लोकमें प्रकट होगा, जो नामसे 'रुद्र' कहलायेगा॥ ३०॥

मदंशात्तस्य सामर्थ्यं न्यूनं नैव भविष्यति।
योऽहं सोऽहं न भेदोऽस्ति पूजाविधिविधानतः॥ ३१

मेरे अंशसे प्रकट हुए रुद्रकी सामर्थ्य मुझसे कम नहीं होगी। जो मैं हूँ, वही ये रुद्र हैं। पूजाके विधि-विधानकी दृष्टिसे भी मुझमें और उनमें कोई अन्तर नहीं है॥ ३१॥

यथा च ज्योतिषः सङ्गाज्जलादेः स्पर्शता न वै।
तथा ममागुणस्यापि संयोगाद् बन्धनं न हि॥ ३२

जैसे जल आदिके साथ ज्योतिर्मय बिम्बका (प्रतिबिम्बके रूपमें) सम्पर्क होनेपर भी बिम्बमें स्पर्शदोष नहीं लगता, उसी प्रकार मुझ निर्गुण परमात्माको भी किसीके संयोगसे बन्धन नहीं प्राप्त होता॥ ३२॥

शिवरूपं ममैतच्च रुद्रोऽपि शिववत्तदा।
न तत्र परभेदो वै कर्तव्यश्च महामुने॥ ३३

यह मेरा शिवरूप है। जब रुद्र प्रकट होंगे, तब वे भी शिवके ही तुल्य होंगे। हे महामुने! [मुझमें और] उनमें परस्पर भेद नहीं करना चाहिये॥ ३३॥

वस्तुतो ह्येकरूपं हि द्विधा भिन्नं जगत्युत।
अतो भेदो न विज्ञेयः शिवे रुद्रे कदाचन॥ ३४

वास्तवमें एक ही रूप सब जगत्‌में [व्यवहार-निर्वाहके लिये] दो रूपोंमें विभक्त हो गया है। अतः शिव और रुद्रमें कभी भी भेद नहीं मानना चाहिये॥ ३४॥

सुवर्णस्य यथैकस्य वस्तुत्वं नैव गच्छति।
अलङ्कृतिकृते देव नामभेदो न वस्तुतः॥ ३५

[शिव और रुद्रमें भेद वैसे ही नहीं है] जैसे एक सुवर्णखण्डमें समरूपसे एक ही वस्तुतत्त्व विद्यमान रहता है, किंतु उसीका आभूषण बना देनेपर नामभेद आ जाता है। वस्तुतत्त्वकी दृष्टिसे उसमें भेद नहीं होता॥ ३५॥

यथैकस्या मृदो भेदो नानापात्रे न वस्तुतः।
कारणस्यैव कार्ये न सन्निधानं निदर्शनम्॥ ३६

ज्ञातव्यं बुधवर्यैश्च निर्मलज्ञानिभिः सुरौ।
एवं ज्ञात्वा भवद्भ्यां तु न दृश्यं भेदकारणम्॥ ३७

जिस प्रकार एक ही मिट्टीसे बने हुए नाना प्रकारके पात्रोंमें नाम और रूपका तो भेद आ जाता है, किंतु मिट्टीका भेद नहीं होता; क्योंकि कार्यमें कारणकी ही विद्यमानता दिखायी देती है। हे देवो! निर्मल ज्ञानवाले श्रेष्ठ विद्वानोंको यह जान लेना चाहिये। ऐसा समझकर आपलोग भी शिव और रुद्रमें भेदबुद्धिवाली दृष्टिसे न देखें॥ ३६-३७॥

वस्तुवत् सर्वदृश्यं च शिवरूपं मतं मम।
अहं भवानजश्चैव रुद्रो योऽयं भविष्यति॥ ३८

एकरूपा न भेदस्तु भेदे वै बन्धनं भवेत्।
तथापि च मदीयं हि शिवरूपं सनातनम्॥ ३९

मूलीभूतं सदोक्तं च सत्यज्ञानमनन्तकम्।
एवं ज्ञात्वा सदा ध्येयं मनसा चैव तत्त्वतः॥ ४०

वास्तवमें सारा दृश्य ही मेरा शिवरूप है—ऐसा मेरा मत है। मैं, आप, ब्रह्मा तथा जो ये रुद्र प्रकट होंगे, वे सब-के-सब एकरूप हैं, इनमें भेद नहीं है। भेद माननेपर अवश्य ही बन्धन होगा। तथापि मेरे शिवरूपको ही सर्वदा सनातन, मूलकारण, सत्यज्ञानमय तथा अनन्त कहा गया है—ऐसा जानकर आपलोगोंको सदा मनसे मेरे यथार्थ स्वरूपका ध्यान करना चाहिये॥ ३८—४०॥

श्रूयतां चैव भो ब्रह्मन् यद्गोप्यं कथ्यते मया।
भवन्तौ प्रकृतेर्यातौ नायं वै प्रकृतेः पुनः॥ ४१

हे ब्रह्मन्! सुनिये, मैं आपको एक गोपनीय बात बता रहा हूँ। आप दोनों प्रकृतिसे उत्पन्न हुए हैं, किंतु ये रुद्र प्रकृतिसे उत्पन्न नहीं हैं॥ ४१॥

मदाज्ञा जायते तत्र ब्रह्मणो भ्रुकुटेरहम्।
गुणेष्वपि यथा प्रोक्तस्तामसः प्रकृतो हरः॥ ४२

वैकारिकश्च विज्ञेयो योऽहङ्कार उदाहृतः।
नामतो वस्तुतो नैव तामसः परिचक्ष्यते॥ ४३

मैं अपनी इच्छासे स्वयं ब्रह्माजीकी भ्रुकुटिसे प्रकट हुआ हूँ। गुणोंमें भी मेरा प्राकट्य कहा गया है। जैसा कि लोगोंने कहा है कि हर तामस प्रकृतिके हैं। वास्तवमें उस रूपमें अहंकारका वर्णन हुआ है। उस अहंकारको केवल तामस ही नहीं, वैकारिक [सात्त्विक] भी समझना चाहिये; [सात्त्विक देवगण वैकारिक अहंकारकी ही सृष्टि हैं।] यह तामस और सात्त्विक आदि भेद केवल नाममात्रका है, वस्तुतः नहीं है। वास्तवमें हरको तामस नहीं कहा जा सकता॥ ४२-४३॥

एतस्मात्कारणाद् ब्रह्मन्करणीयमिदं त्वया।
सृष्टिकर्ता भव ब्रह्मन्सृष्टेश्च पालको हरिः॥ ४४

हे ब्रह्मन्! इस कारणसे आपको ऐसा करना चाहिये। हे ब्रह्मन्! आप इस सृष्टिके निर्माता बनें और श्रीहरि इसका पालन करनेवाले हों॥ ४४॥

मदीयश्च तथांशो यो लयकर्ता भविष्यति।
इयं या प्रकृतिर्देवी ह्युमाख्या परमेश्वरी॥ ४५

तस्यास्तु शक्तिर्वाग्देवी ब्रह्माणं सा भजिष्यति।
अन्या शक्तिः पुनस्तत्र प्रकृतेः सम्भविष्यति॥ ४६

समाश्रयिष्यते विष्णुं लक्ष्मीरूपेण सा तदा।
पुनश्च काली नाम्ना सा मदंशं प्राप्स्यति ध्रुवम्॥ ४७

मेरे अंशसे प्रकट होनेवाले जो रुद्र हैं, वे इसका प्रलय करनेवाले होंगे। ये जो उमा नामसे विख्यात परमेश्वरी प्रकृति देवी हैं, इन्हींकी शक्तिभूता वाग्देवी ब्रह्माजीका सेवन करेंगी। पुनः इन प्रकृति देवीसे वहाँ जो दूसरी शक्ति प्रकट होंगी, वे लक्ष्मीरूपसे भगवान् विष्णुका आश्रय लेंगी। तदनन्तर पुनः काली नामसे जो तीसरी शक्ति प्रकट होंगी, वे निश्चय ही मेरे अंशभूत रुद्रदेवको

ज्योतीरूपेण सा तत्र कार्यार्थे सम्भविष्यति।
एवं देव्यास्तथा प्रोक्ताः शक्तयः परमाः शुभाः ॥ ४८

प्राप्त होंगी। वे कार्यकी सिद्धिके लिये वहाँ ज्योतिरूपसे प्रकट होंगी। इस प्रकार मैंने देवीकी शुभस्वरूपा पराशक्तियोंको बता दिया ॥ ४५—४८ ॥

सृष्टिस्थितिलयानां हि कार्यं तासां क्रमाद् ध्रुवम्।
एतस्याः प्रकृतेरंशा मत्प्रियायाः सुरोत्तम ॥ ४९

उनका कार्य क्रमशः सृष्टि, पालन और संहारका सम्पादन ही है। हे सुरश्रेष्ठ! ये सब-की-सब मेरी प्रिया प्रकृति देवीकी अंशभूता हैं ॥ ४९ ॥

त्वं च लक्ष्मीमुपाश्रित्य कार्यं कर्तुमिहार्हसि।
ब्रह्मंस्त्वं च गिरां देवीं प्रकृत्यंशामवाप्य च ॥ ५०
सृष्टिकार्यं हृदा कर्तुं मन्निर्देशादिहार्हसि।
अहं कालीं समाश्रित्य मत्प्रियांशां परात्पराम् ॥ ५१
रुद्ररूपेण प्रलयं करिष्ये कार्यमुत्तमम्।
चतुर्वर्णमयं लोकं तत्सर्वैराश्रमैर्ध्रुवम् ॥ ५२
तदन्यैर्विविधैः कार्यैः कृत्वा सुखमवाप्स्यथः।

हे हरे! आप लक्ष्मीका सहारा लेकर कार्य कीजिये। हे ब्रह्मन्! आप प्रकृतिकी अंशभूता वाग्देवीको प्राप्तकर मेरी आज्ञाके अनुसार मनसे सृष्टिकार्यका संचालन करें और मैं अपनी प्रियाकी अंशभूता परात्पर कालीका आश्रय लेकर रुद्ररूपसे प्रलयसम्बन्धी उत्तम कार्य करूँगा। आप सब लोग अवश्य ही सम्पूर्ण आश्रमों तथा उनसे भिन्न अन्य विविध कार्योंद्वारा चारों वर्णोंसे भरे हुए लोककी सृष्टि एवं रक्षा आदि करके सुख पायेंगे ॥ ५०—५२$^{1}/_{2}$ ॥

ज्ञानविज्ञानसंयुक्तो लोकानां हितकारकः ॥ ५३

मुक्तिदोऽत्र भवानद्य भव लोके मदाज्ञया।
मद्दर्शने फलं यद्वत्तदेव तव दर्शने ॥ ५४

इति दत्तो वरस्तेऽद्य सत्यं सत्यं न संशयः।
ममैव हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये ह्यहम् ॥ ५५

[हे हरे!] आप ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न तथा सम्पूर्ण लोकोंके हितैषी हैं। अतः अब आप मेरी आज्ञासे जगत्में [सब लोगोंके लिये] मुक्तिदाता बनें। मेरा दर्शन होनेपर जो फल प्राप्त होता है, वही फल आपका दर्शन होनेपर भी प्राप्त होगा। मैंने आज आपको यह वर दे दिया, यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं है। मेरे हृदयमें विष्णु हैं और विष्णुके हृदयमें मैं हूँ ॥ ५३—५५ ॥

उभयोरन्तरं यो वै न जानाति मनो मम।
वामाङ्गजो मम हरिर्दक्षिणाङ्गोद्भवो विधिः ॥ ५६

महाप्रलयकृद् रुद्रो विश्वात्मा हृदयोद्भवः।
त्रिधा भिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुभवाख्यया ॥ ५७

सर्गरक्षालयकरस्त्रिगुणै रज आदिभिः।

जो इन दोनोंमें अन्तर नहीं समझता, वही मेरा मन है अर्थात् वही मुझे प्रिय है। श्रीहरि मेरे बायें अंगसे प्रकट हुए हैं, ब्रह्मा दाहिने अंगसे उत्पन्न हुए हैं और महाप्रलयकारी विश्वात्मा रुद्र मेरे हृदयसे प्रादुर्भूत हुए हैं। हे विष्णो! मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और भव नामसे तीन रूपोंमें विभक्त हो गया हूँ। मैं रज आदि तीनों गुणोंके द्वारा सृष्टि, पालन तथा संहार करता हूँ ॥ ५६-५७$^{1}/_{2}$ ॥

गुणभिन्नः शिवः साक्षात्प्रकृतेः पुरुषात्परः ॥ ५८

परं ब्रह्माद्वयो नित्योऽनन्तः पूर्णो निरञ्जनः।
अन्तस्तमो बहिःसत्त्वस्त्रिजगत्पालको हरिः ॥ ५९

अन्तः सत्त्वस्तमोबाह्यस्त्रिजगल्लयकृद्धरः ॥ ६०

शिव गुणोंसे भिन्न हैं और वे साक्षात् प्रकृति तथा पुरुषसे भी परे हैं। वे अद्वितीय, नित्य, अनन्त, पूर्ण एवं निरंजन परब्रह्म हैं। तीनों लोकोंका पालन करनेवाले श्रीहरि भीतर तमोगुण और बाहर सत्त्वगुण धारण करते हैं। त्रिलोकीका संहार करनेवाले रुद्रदेव भीतर सत्त्वगुण और बाहर तमोगुण धारण करते हैं

अन्तर्बहीरजश्चैव त्रिजगत्सृष्टिकृद्विधिः।
एवं गुणास्त्रिदेवेषु गुणभिन्नः शिवः स्मृतः॥ ६१

तथा त्रिभुवनकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजी बाहर और भीतरसे भी रजोगुणी ही हैं। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र इन तीनों देवताओंमें गुण हैं, परंतु शिव गुणातीत माने गये हैं॥ ५८—६१½॥

विष्णो सृष्टिकरं प्रीत्या पालयैनं पितामहम्।
सम्पूज्यस्त्रिषु लोकेषु भविष्यसि मदाज्ञया॥ ६२

हे विष्णो! आप मेरी आज्ञासे इन सृष्टिकर्ता पितामहका प्रसन्नतापूर्वक पालन कीजिये। ऐसा करनेसे आप तीनों लोकोंमें पूजनीय होंगे॥ ६२॥

तव सेव्यो विधेश्चापि रुद्र एव भविष्यति।
शिवपूर्णावतारो हि त्रिजगल्लयकारकः॥ ६३

ये रुद्र आपके और ब्रह्माके सेव्य होंगे; क्योंकि त्रैलोक्यके लयकर्ता ये रुद्र शिवके पूर्णावतार हैं॥ ६३॥

पाद्मे भविष्यति सुतः कल्पे तव पितामहः।
तदा द्रक्ष्यसि मां चैव सोऽपि द्रक्ष्यति पद्मजः॥ ६४

पाद्मकल्पमें पितामह आपके पुत्र होंगे। उस समय आप मुझे देखेंगे और वे ब्रह्मा भी मुझे देखेंगे॥ ६४॥

एवमुक्त्वा महेशानः कृपां कृत्वातुलां हरः।
पुनः प्रोवाच सुप्रीत्या विष्णुं सर्वेश्वरः प्रभुः॥ ६५

ऐसा कहकर महेश, हर, सर्वेश्वर, प्रभु अतुलनीय कृपाकर पुनः प्रेमपूर्वक विष्णुसे कहने लगे—॥ ६५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने शिवतत्त्ववर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डके सृष्टि-उपाख्यानमें शिवतत्त्ववर्णन नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

अथ दशमोऽध्यायः

श्रीहरिको सृष्टिकी रक्षाका भार एवं भोग-मोक्ष-दानका अधिकार देकर भगवान् शिवका अन्तर्धान होना

परमेश्वर उवाच

अन्यच्छृणु हरे विष्णो शासनं मम सुव्रत।
सदा सर्वेषु लोकेषु मान्यः पूज्यो भविष्यसि॥ १

परमेश्वर शिवजी बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हे हरे! हे विष्णो! अब आप मेरी दूसरी आज्ञा सुनें। उसका पालन करनेसे आप सदा समस्त लोकोंमें माननीय और पूजनीय होंगे॥ १॥

ब्रह्मणा निर्मिते लोके यदा दुःखं प्रजायते।
तदा त्वं सर्वदुःखानां नाशाय तत्परो भव॥ २

ब्रह्माजीके द्वारा रचे गये लोकमें जब कोई संकट उत्पन्न हो, तब आप उन सम्पूर्ण दुःखोंका नाश करनेके लिये सदा तत्पर रहना॥ २॥

सहायं ते करिष्यामि सर्वकार्ये च दुःसहे।
तव शत्रून्हनिष्यामि दुःसाध्यान्परमोत्कटान्॥ ३

मैं सम्पूर्ण दुस्सह कार्योंमें आपकी सहायता करूँगा। आपके दुर्जेय और अत्यन्त उत्कट शत्रुओंको मैं मार गिराऊँगा॥ ३॥

विविधानवतारांश्च गृहीत्वा कीर्तिमुत्तमाम्।
विस्तारय हरे लोके तारणाय परो भव॥ ४

हे हरे! आप नाना प्रकारके अवतार धारण करके लोकमें अपनी उत्तम कीर्तिका विस्तार कीजिये और संसारमें प्राणियोंके उद्धारके लिये तत्पर रहिये॥ ४॥

गुणरूपो ह्यहं रुद्रो ह्यनेन वपुषा सदा।
कार्यं करिष्ये लोकानां तवाशक्यं न संशयः॥ ५

गुणरूप धारणकर मैं रुद्र निश्चित ही अपने इस शरीरसे संसारके उन कार्योंको करूँगा, जो आपसे सम्भव नहीं हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५॥

रुद्रध्येयो भवांश्चैव भवद्ध्येयो हरस्तथा।
युवयोरन्तरं नैव तव रुद्रस्य किञ्चन॥ ६

आप रुद्रके ध्येय हैं और रुद्र आपके ध्येय हैं। आप दोनोंमें और आप तथा रुद्रमें कुछ भी अन्तर नहीं है॥ ६॥

वस्तुतश्चापि चैकत्वं वरतोऽपि तथैव च।
लीलयापि महाविष्णो सत्यं सत्यं न संशयः॥ ७

हे महाविष्णो! लीलासे भेद होनेपर भी वस्तुतः आपलोग एक ही तत्त्व हैं। यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं है॥ ७॥

रुद्रभक्तो नरो यस्तु तव निन्दां करिष्यति।
तस्य पुण्यं च निखिलं द्रुतं भस्म भविष्यति॥ ८

जो मनुष्य रुद्रका भक्त होकर आपकी निन्दा करेगा, उसका सारा पुण्य तत्काल भस्म हो जायगा॥ ८॥

नरके पतनं तस्य त्वद्द्वेषात्पुरुषोत्तम।
मदाज्ञया भवेद्विष्णो सत्यं सत्यं न संशयः॥ ९

हे पुरुषोत्तम विष्णो! आपसे द्वेष करनेके कारण मेरी आज्ञासे उसको नरकमें गिरना पड़ेगा। यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं है॥ ९॥

लोकेऽस्मिन्मुक्तिदो नृणां भुक्तिदश्च विशेषतः।
ध्येयः पूज्यश्च भक्तानां निग्रहानुग्रहौ कुरु॥ १०

आप इस लोकमें मनुष्योंके लिये विशेषतः भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले और भक्तोंके ध्येय तथा पूज्य होकर प्राणियोंका निग्रह और अनुग्रह कीजिये॥ १०॥

इत्युक्त्वा मां च धातारं हस्ते धृत्वा स्वयं हरिम्।
कथयामास दुःखेषु सहायो भव सर्वदा॥ ११

ऐसा कहकर भगवान् शिवने मेरा हाथ पकड़ लिया और श्रीविष्णुको सौंपकर उनसे कहा—आप संकटके समय सदा इनकी सहायता करते रहें॥ ११॥

सर्वाध्यक्षश्च सर्वेषु भक्तिमुक्तिप्रदायकः।
भव त्वं सर्वदा श्रेष्ठः सर्वकामप्रसाधकः॥ १२

सबके अध्यक्ष होकर आप सभीको भक्ति और मुक्ति प्रदान करें तथा सर्वदा समस्त कामनाओंके साधक एवं सर्वश्रेष्ठ बने रहें॥ १२॥

सर्वेषां प्राणरूपश्च भव त्वं च ममाज्ञया।
सङ्कटे भजनीयो हि स रुद्रो मत्तनुर्हरे॥ १३

हे हरे! यह मेरी आज्ञा है कि आप सबके प्राणस्वरूप होइये और संकटकाल आनेपर निश्चय ही मेरे शरीररूप उस रुद्रका भजन कीजिये॥ १३॥

त्वां यः समाश्रितो नूनं मामेव स समाश्रितः।
अन्तरं यश्च जानाति निरये पतति ध्रुवम्॥ १४

जो आपकी शरणमें आ गया, वह निश्चय ही मेरी शरणमें आ गया। जो मुझमें और आपमें अन्तर समझता है, वह अवश्य ही नरकमें गिरता है॥ १४॥

आयुर्बलं शृणुष्वाद्य त्रिदेवानां विशेषतः।
सन्देहोऽत्र न कर्तव्यो ब्रह्मविष्णुहरात्मनाम्॥ १५

अब आप तीनों देवताओंके आयुबलको विशेषरूपसे सुनिये। ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी एकतामें [किसी प्रकारका] सन्देह नहीं करना चाहिये॥ १५॥

चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते।
रात्रिश्च तावती तस्य मानमेतत्क्रमेण ह॥ १६

एक हजार चतुर्युगको ब्रह्माका एक दिन कहा जाता है और उतनी ही उनकी रात्रि होती है। इस प्रकार क्रमसे यह ब्रह्माके एक दिन और एक रात्रिका परिमाण है॥ १६॥

तेषां त्रिंशद्दिनैर्मासो द्वादशैस्तैश्च वत्सरः।
शतवर्षप्रमाणेन ब्रह्मायुः परिकीर्तितम्॥ १७

इस प्रकारके तीस दिनोंका एक मास और बारह मासोंका एक वर्ष होता है। सौ वर्षके परिमाणको ब्रह्माकी आयु कहा गया है॥ १७॥

ब्रह्मणो वर्षमात्रेण दिनं वैष्णवमुच्यते।
सोऽपि वर्षशतं यावदात्ममानेन जीवति॥ १८

ब्रह्माके एक वर्षके बराबर विष्णुका एक दिन कहा जाता है। वे विष्णु भी अपने सौ वर्षके प्रमाणतक जीवित रहते हैं॥ १८॥

वैष्णवेन तु वर्षेण दिनं रौद्रं भवेद् ध्रुवम्।
हरो वर्षशते याते नररूपेण संस्थितः॥ १९

विष्णुके एक वर्षके बराबर रुद्रका एक दिन होता है। भगवान् रुद्र भी उस मानके अनुसार नररूपमें सौ वर्षतक स्थित रहते हैं॥ १९॥

यावदुच्छ्वसितं वक्त्रे सदाशिवसमुद्भवम्।
पश्चाच्छक्तिं समभ्येति यावन्निःश्वसितं भवेत्॥ २०
निःश्वासोच्छ्वसितानां च सर्वेषामेव देहिनाम्।
ब्रह्मविष्णुहराणां च गन्धर्वोरगरक्षसाम्॥ २१
एकविंशसहस्राणि शतैः षड्भिः शतानि च।
अहोरात्राणि चोक्तानि प्रमाणं सुरसत्तमौ॥ २२

तदनन्तर शिवके मुखसे एक श्वास निकलता है और जबतक वह निकलता रहता है, तबतक वह शक्तिको प्राप्तकर पुनः जब निःश्वास लेते हैं, तबतक ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गन्धर्व, नाग और राक्षस आदि सभी देहधारियोंके निःश्वास और उच्छ्वासको बाहर और भीतर ले जानेके क्रमकी संख्या हे सुरसत्तम! दिन-रातमें मिलाकर इक्कीस हजारका सौ गुना एवं छः सौ अर्थात् इक्कीस लाख छः सौ कही गयी है॥ २०—२२॥

षड्भिरुच्छ्वासनिःश्वासैः पलमेकं प्रवर्तितम्।
घटी षष्टिपला प्रोक्ता सा षष्ट्या च दिनं निशा॥ २३

छः उच्छ्वास और छः निःश्वासका एक पल होता है। साठ पलोंकी एक घटी और साठ घटी-प्रमाणको एक दिन और रात्रि कहते हैं॥ २३॥

निःश्वासोच्छ्वासितानां च परिसङ्ख्या न विद्यते।
सदाशिवसमुत्थानमेतस्मात्सोऽक्षयः स्मृतः॥ २४

सदाशिवके निःश्वासों और उच्छ्वासोंकी गणना नहीं की जा सकती है। अतः शिवजी सदैव प्रबुद्ध और अक्षय हैं॥ २४॥

इत्थं रूपं त्वया तावद्रक्षणीयं ममाज्ञया।
तावत्सृष्टेश्च कार्यं वै कर्तव्यं विविधैर्गुणैः॥ २५

मेरी आज्ञासे तुम्हें अपने विविध गुणोंके द्वारा सृष्टिके इस प्रकारके होनेवाले कार्योंकी रक्षा करनी चाहिये॥ २५॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचः शम्भोर्मया च भगवान्हरिः।
प्रणिपत्य च विश्वेशं प्राह मन्दतरं वशी॥ २६

ब्रह्माजी बोले—हे देवर्षे! भगवान् शिवका यह वचन सुनकर सबको वशमें करनेवाले भगवान् विष्णु मेरे साथ विश्वनाथको प्रणाम करके मन्द स्वरमें उनसे कहने लगे—॥ २६॥

विष्णुरुवाच

शङ्कर श्रूयतामेतत्कृपासिन्धो जगत्पते।
सर्वमेतत्करिष्यामि भवदाज्ञावशानुगः॥ २७

विष्णुजी बोले—हे शंकर! हे करुणासिन्धो! हे जगत्पते! मेरी यह बात सुनिये। मैं आपकी आज्ञाके अधीन रहकर यह सब कुछ करूँगा॥ २७॥

मम ध्येयः सदा त्वं च भविष्यसि न चान्यथा।
भवतः सर्वसामर्थ्यं लब्धं चैव पुरा मया॥ २८

आप ही मेरे सदा ध्येय होंगे, इसमें अन्यथा नहीं है। मैंने पूर्वकालमें भी आपसे समस्त सामर्थ्य प्राप्त किया था॥ २८॥

क्षणमात्रमपि स्वामिंस्तव ध्यानं परं मम।
चेतसो दूरतो नैव सङ्गच्छतु कदाचन॥ २९

हे स्वामिन्! क्षणमात्र भी आपका श्रेष्ठ ध्यान मेरे चित्तसे कभी दूर न हो॥ २९॥

मम भक्तश्च यः स्वामिंस्तव निन्दां करिष्यति।
तस्य वै निरये वासं प्रयच्छ नियतं ध्रुवम्॥ ३०

हे स्वामिन्! मेरा जो भक्त आपकी निन्दा करे, उसे आप निश्चय ही नरकवास प्रदान करें॥ ३०॥

त्वद्भक्तो यो भवेत् स्वामिन्मम प्रियतरो हि सः।
एवं वै यो विजानाति तस्य मुक्तिर्न दुर्लभा॥ ३१

हे नाथ! जो आपका भक्त है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है। जो ऐसा जानता है, उसके लिये मोक्ष दुर्लभ नहीं है॥ ३१॥

महिमा च मदीयोऽद्य वर्धितो भवता ध्रुवम्।
कदाचिदगुणश्चैव जायते क्षम्यतामिति॥ ३२

आज आपने निश्चय ही मेरी महिमा बढ़ा दी है, यदि कभी कोई अवगुण आ जाय, तो उसे क्षमा करें॥ ३२॥

ब्रह्मोवाच

तदा शम्भुस्तदीयं हि श्रुत्वा वचनमुत्तमम्।
उवाच विष्णुं सुप्रीत्या क्षम्या तेऽगुणता मया॥ ३३

ब्रह्माजी बोले—तदनन्तर विष्णुके द्वारा कहे गये श्रेष्ठ वचनको सुनकर शिवजीने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक विष्णुसे कहा कि मैंने आपके अवगुणोंको क्षमा कर दिया है॥ ३३॥

एवमुक्त्वा हरिं नौ स कराभ्यां परमेश्वरः।
पस्पर्श सकलाङ्गेषु कृपया तु कृपानिधिः॥ ३४

विष्णुसे ऐसा कहकर उन कृपानिधि परमेश्वरने कृपापूर्वक अपने हाथोंसे हम दोनोंके सम्पूर्ण अंगोंका स्पर्श किया॥ ३४॥

आदिश्य विविधान्धर्मान्सर्वदुःखहरो हरः।
ददौ वराननेकांश्चावयोर्हितचिकीर्षया॥ ३५

सर्वदुःखहारी सदाशिवने नाना प्रकारके धर्मोंका उपदेशकर हम दोनोंके हितकी इच्छासे अनेक प्रकारके वर दिये॥ ३५॥

ततः स भगवान् शम्भुः कृपया भक्तवत्सलः।
दृष्ट्या सम्पश्यतोः शीघ्रं तत्रैवान्तरधीयत॥ ३६

इसके बाद भक्तवत्सल भगवान् शम्भु कृपापूर्वक हमारी ओर देखकर हम दोनोंके देखते-देखते शीघ्र वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ३६॥

तदाप्रभृति लोकेऽस्मिल्लिङ्गपूजाविधिः स्मृतः।
लिङ्गे प्रतिष्ठितः शम्भुर्भुक्तिमुक्तिप्रदायकः॥ ३७

तभीसे इस लोकमें लिंगपूजाका विधान प्रचलित हुआ है। लिंगमें प्रतिष्ठित भगवान् शिव भोग और मोक्ष देनेवाले हैं॥ ३७॥

लिङ्गवेदिर्महादेवी लिङ्गं साक्षान्महेश्वरः।
लयनाल्लिङ्गमित्युक्तं तत्रैव निखिलं जगत्॥ ३८

शिवलिंगकी वेदी महादेवीका स्वरूप है और लिंग साक्षात् महेश्वर है। लयकारक होनेके कारण ही इसे लिंग कहा गया है; इसीमें सम्पूर्ण जगत् स्थित रहता है॥ ३८॥

यस्तु लैङ्गं पठेन्नित्यमाख्यानं लिङ्गसन्निधौ।
षण्मासाच्छिवरूपो वै नात्र कार्या विचारणा॥ ३९

जो शिवलिंगके समीप स्थिर होकर नित्य इस लिंगके आख्यानको पढ़ता है, वह छः मासमें ही शिवरूप हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ३९॥

यस्तु लिङ्गसमीपे तु कार्यं किञ्चित्करोति च।
तस्य पुण्यफलं वक्तुं न शक्नोमि महामुने॥ ४०

हे महामुने! जो शिवलिंगके समीप कोई भी कार्य करता है, उसके पुण्यफलका वर्णन करनेमें मैं समर्थ नहीं हूँ॥ ४०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने परमशिवतत्त्ववर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टि-उपाख्यानमें परमशिवतत्त्ववर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

अथैकादशोऽध्यायः

शिवपूजनकी विधि तथा उसका फल

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते।
श्राविताद्याद्भुता शैवी कथा परमपावनी॥ १

तत्राद्भुता महादिव्या लिङ्गोत्पत्तिः श्रुता शुभा।
श्रुत्वा यस्याः प्रभावं च दुःखनाशो भवेदिह॥ २

ब्रह्मनारदसंवादमनुसृत्य दयानिधे।
शिवार्चनविधिं ब्रूहि येन तुष्टो भवेच्छिवः॥ ३

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैर्वा पूज्यते शिवः।
कथं कार्यं च तद् ब्रूहि यथा व्यासमुखाच्छ्रुतम्॥ ४

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां शर्मदं श्रुतिसम्मतम्।
उवाच सकलं प्रीत्या मुनिप्रश्नानुसारतः॥ ५

सूत उवाच

साधु पृष्टं भवद्भिश्च तद्रहस्यं मुनीश्वराः।
तदहं कथयाम्यद्य यथाबुद्धि यथाश्रुतम्॥ ६

भवद्भिः पृच्छ्यते यद्वत्तथा व्यासेन वै पुरा।
पृष्टं सनत्कुमाराय तच्छ्रुतं ह्युपमन्युना॥ ७

ततो व्यासेन वै श्रुत्वा शिवपूजादिकं च यत्।
मह्यं च पाठितं तेन लोकानां हितकाम्यया॥ ८

तच्छ्रुतं चैव कृष्णेन ह्युपमन्योर्महात्मनः।
तदहं कथयिष्यामि यथा ब्रह्मावदत्पुरा॥ ९

ब्रह्मोवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि सङ्क्षेपाल्लिङ्गपूजनम्।
वक्तुं वर्षशतेनापि न शक्यं विस्तरान्मुने॥ १०

एवं तु शांकरं रूपं सुखं स्वच्छं सनातनम्।
पूजयेत्परया भक्त्या सर्वकामफलाप्तये॥ ११

ऋषि बोले—हे व्यासशिष्य महाभाग सूतजी! आपको नमस्कार है, आज आपने भगवान् शिवकी अद्भुत एवं परम पवित्र कथा सुनायी है॥ १॥

उसमें अद्भुत, महादिव्य तथा कल्याणकारिणी लिंगोत्पत्ति हमलोगोंने सुनी, जिसके प्रभावको सुननेसे इस लोकमें दुःखोंका नाश हो जाता है॥ २॥

हे दयानिधे! ब्रह्मा और नारदजीके संवादके अनुसार आप हमें शिवपूजनकी वह विधि बताइये, जिससे भगवान् शिव सन्तुष्ट होते हैं॥ ३॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—सभी शिवकी पूजा करते हैं। वह पूजन कैसे करना चाहिये? आपने व्यासजीके मुखसे इस विषयको जिस प्रकार सुना हो, वह बताइये॥ ४॥

महर्षियोंका वह कल्याणप्रद एवं श्रुतिसम्मत वचन सुनकर सूतजी उन मुनियोंके प्रश्नके अनुसार सब बातें प्रसन्नतापूर्वक बताने लगे॥ ५॥

सूतजी बोले—मुनीश्वरो! आपलोगोंने बहुत अच्छी बात पूछी है, परंतु वह रहस्यकी बात है। मैंने इस विषयको जैसा सुना है और जैसी मेरी बुद्धि है, उसके अनुसार आज कह रहा हूँ॥ ६॥

जैसे आपलोग पूछ रहे हैं, उसी तरह पूर्वकालमें व्यासजीने सनत्कुमारजीसे पूछा था। फिर उसे उपमन्युजीने भी सुना था॥ ७॥

तब व्यासजीने शिवपूजन आदि जो भी था, उसे सुनकर लोकहितकी कामनासे मुझे पढ़ा दिया था॥ ८॥

इसी विषयको भगवान् श्रीकृष्णने महात्मा उपमन्युसे सुना था। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने नारदजीसे इस विषयमें जो कुछ कहा था, वही इस समय मैं कहूँगा॥ ९॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! मैं संक्षेपमें लिंगपूजनकी विधि बता रहा हूँ, सुनिये। हे मुने! इसका वर्णन सौ वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता है। जो भगवान् शंकरका सुखमय, निर्मल एवं सनातन रूप है, सभी मनोवांछित फलोंकी प्राप्तिके लिये उसका उत्तम भक्तिभावसे पूजन करे॥ १०-११॥

दारिद्र्यं रोगदुःखं च पीडनं शत्रुसम्भवम्।
पापं चतुर्विधं तावद्यावन्नार्चयते शिवम्॥ १२

दरिद्रता, रोग, दुःख तथा शत्रुजनित पीड़ा—ये चार प्रकारके पाप-कष्ट तभीतक रहते हैं, जबतक मनुष्य भगवान् शिवका पूजन नहीं करता है॥ १२॥

सम्पूजिते शिवे देवे सर्वदुःखं विलीयते।
सम्पद्यते सुखं सर्वं पश्चान्मुक्तिरवाप्यते॥ १३

भगवान् शिवकी पूजा होते ही सारे दुःख विलीन हो जाते हैं और समस्त सुखोंकी प्राप्ति हो जाती है। तत्पश्चात् [समय आनेपर उपासककी] मुक्ति भी हो जाती है॥ १३॥

यो वै मानुष्यमाश्रित्य मुख्यं सन्तानतः सुखम्।
तेन पूज्यो महादेवः सर्वकार्यार्थसाधकः॥ १४

जो मानवशरीरका आश्रय लेकर मुख्यतया सन्तानसुखकी कामना करता है, उसे चाहिये कि सम्पूर्ण कार्यों और मनोरथोंके साधक महादेवजीकी पूजा करे॥ १४॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च विधिवत्क्रमात्।
शङ्करार्चां प्रकुर्वन्तु सर्वकामार्थसिद्धये॥ १५

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी सम्पूर्ण कामनाओं तथा प्रयोजनोंकी सिद्धिके लिये क्रमसे विधिके अनुसार भगवान् शंकरकी पूजा करें॥ १५॥

प्रातःकाले समुत्थाय मुहूर्ते ब्रह्मसंज्ञके।
गुरोश्च स्मरणं कृत्वा शंभोश्चैव तथा पुनः॥ १६
तीर्थानां स्मरणं कृत्वा ध्यानं चैव हरेरपि।
ममापि निर्जराणां वै मुन्यादीनां तथा मुने॥ १७
ततः स्तोत्रं शंभुनाम गृह्णीयाद्विधिपूर्वकम्।

प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर गुरु तथा शिवका स्मरण करके पुनः तीर्थोंका चिन्तन करके भगवान् विष्णुका ध्यान करे। हे मुने! इसके बाद मेरा, देवताओंका और मुनि आदिका भी स्मरण-चिन्तन करके स्तोत्र-पाठपूर्वक शंकरजीका विधिपूर्वक नाम ले॥ १६-१७½॥

ततोत्थाय मलोत्सर्गं दक्षिणस्यां चरेद्दिशि॥ १८
एकान्ते तु विधिं कुर्यान्मलोत्सर्गस्य यच्छ्रुतम्।
तदेव कथयाम्यद्य शृण्वाधाय मनो मुने॥ १९

उसके बाद शय्यासे उठकर निवासस्थानसे दक्षिण दिशामें जाकर मलत्याग करे। हे मुने! एकान्तमें मलोत्सर्ग करना चाहिये। उससे शुद्ध होनेके लिये जो विधि मैंने सुन रखी है, आप लोगोंसे उसीको आज कहता हूँ, मनको एकाग्र करके सुनें॥ १८-१९॥

शुद्धां मृदं द्विजो लिप्यात्पंचवारं विशुद्धये।
क्षत्रियश्च चतुर्वारं वैश्यो वारत्रयं तथा॥ २०
शूद्रो द्विवारं च मृदं गृह्णीयाद्विधिशुद्धये।
गुदे वाथ सकृल्लिंगे वारमेकं प्रयत्नतः॥ २१

ब्राह्मण [गुदाकी] शुद्धिके लिये पाँच बार मिट्टीका लेप करे और धोये। क्षत्रिय चार बार, वैश्य तीन बार और शूद्र दो बार विधिपूर्वक गुदाकी शुद्धिके लिये उसमें मिट्टी लगाये। लिंगमें भी एक बार प्रयत्नपूर्वक मिट्टी लगानी चाहिये॥ २०-२१॥

दशवारं वामहस्ते सप्तवारं द्वयोस्तथा।
प्रत्येकं पादयोस्तात त्रिवारं करयोः पुनः॥ २२

तत्पश्चात् बायें हाथमें दस बार और दोनों हाथोंमें सात बार मिट्टी लगाये। हे तात! प्रत्येक पैरमें तीन-तीन बार मिट्टी लगाये, फिर दोनों हाथोंमें भी तीन बार मिट्टी लगाकर धोये॥ २२॥

स्त्रीभिश्च शूद्रवत्कार्यं मृदाग्रहणमुत्तमम्।
हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य पूर्ववन्मृदमाहरेत्॥ २३

स्त्रियोंको शूद्रकी भाँति अच्छी तरह मिट्टी लगानी चाहिये। हाथ-पैर धोकर पूर्ववत् शुद्ध मिट्टीका संग्रह करना चाहिये॥ २३॥

दन्तकाष्ठं ततः कुर्यात्स्ववर्णक्रमतो नरः॥ २४

विप्रः कुर्याद्दन्तकाष्ठं द्वादशांगुलमानतः।
एकादशांगुलं राजा वैश्यः कुर्याद्दशांगुलम्॥ २५

शूद्रो नवांगुलं कुर्यादिति मानमिदं स्मृतम्।
कालदोषं विचार्यैव मनुदृष्टं विवर्जयेत्॥ २६

इसके बाद मनुष्यको अपने वर्णके अनुसार दातौन करना चाहिये। ब्राह्मणको बारह अँगुलकी दातौन करनी चाहिये। क्षत्रिय ग्यारह अँगुल, वैश्य दस अँगुल और शूद्र नौ अँगुलकी दातौन करे। दातौनका यह मान बताया गया है। मनुस्मृतिके अनुसार कालदोषका विचार करके ही दातौन करे या त्याग दे॥ २४—२६॥

षष्ट्याद्यामाश्च नवमी व्रतमस्तं रवेर्दिनम्।
तथा श्राद्धदिनं तात निषिद्धं रदधावने॥ २७

हे तात! षष्ठी, प्रतिपदा, अमावस्या, नवमी, व्रतका दिन, सूर्यास्तका समय, रविवार तथा श्राद्धदिवस—ये दन्तधावनके लिये वर्जित हैं॥ २७॥

स्नानं तु विधिवत्कार्यं तीर्थादिषु क्रमेण तु।
देशकालविशेषेण स्नानं कार्यं समन्त्रकम्॥ २८

[दन्तधावनके पश्चात्] तीर्थ आदिमें विधिपूर्वक स्नान करना चाहिये, विशेष देश-काल आनेपर मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नान करना चाहिये॥ २८॥

आचम्य प्रथमं तत्र धौतवस्त्राणि धारयेत्।
एकान्ते सुस्थले स्थित्वा संध्याविधिमथाचरेत्॥ २९

[स्नानके पश्चात्] पहले आचमन करके धुला हुआ वस्त्र धारण करे। फिर सुन्दर एकान्त स्थलमें बैठकर सन्ध्याविधिका अनुष्ठान करे॥ २९॥

यथायोग्यं विधिं कृत्वा पूजाविधिमथारभेत्।
मनस्तु सुस्थिरं कृत्वा पूजागारं प्रविश्य च॥ ३०

पूजाविधिं समादाय स्वासने ह्युपविश्य वै।
न्यासादिकं विधायादौ पूजयेत् क्रमशो हरम्॥ ३१

यथायोग्य सन्ध्याविधि करके पूजाका कार्य आरम्भ करे। मनको सुस्थिर करके पूजागृहमें प्रवेशकर वहाँ पूजन-सामग्री लेकर सुन्दर आसनपर बैठे। पहले न्यास आदि करके क्रमशः महादेवजीकी पूजा करे॥ ३०-३१॥

प्रथमं च गणाधीशं द्वारपालांस्तथैव च।
दिक्पालांश्च सुसंपूज्य पश्चात्पीठं प्रकल्पयेत्॥ ३२

[शिवकी पूजासे] पहले गणेशजीकी, द्वारपालोंकी और दिक्पालोंकी भलीभाँति पूजा करके बादमें देवताके लिये पीठकी स्थापना करे॥ ३२॥

अथवाष्टदलं कृत्वा पूजाद्रव्यं समीपतः।
उपविश्य ततस्तत्र उपवेश्य शिवम् प्रभुम्॥ ३३

आचमनत्रयं कृत्वा प्रक्षाल्य च पुनः करौ।
प्राणायामत्रयं कृत्वा मध्ये ध्यायेच्च त्र्यम्बकम्॥ ३४

पंचवक्त्रं दशभुजं शुद्धस्फटिकसन्निभम्।
सर्वाभरणसंयुक्तं व्याघ्रचर्मोत्तरीयकम्॥ ३५

तस्य सारूप्यतां स्मृत्वा दहेत्पापं नरः सदा।
शिवं ततः समुत्थाप्य पूजयेत्परमेश्वरम्॥ ३६

अथवा अष्टदलकमल बनाकर पूजाद्रव्यके समीप बैठकर उस कमलपर ही भगवान् शिवको समासीन करे। तत्पश्चात् तीन बार आचमन करके पुनः दोनों हाथ धोकर तीन प्राणायाम करके मध्यम प्राणायाम अर्थात् कुम्भक करते समय त्रिनेत्रधारी भगवान् शिवका इस प्रकार ध्यान करे—उनके पाँच मुख हैं, दस भुजाएँ हैं, शुद्ध स्फटिकके समान उनकी कान्ति है, वे सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हैं तथा वे व्याघ्रचर्मका उत्तरीय ओढ़े हुए हैं। उनके सारूप्यकी भावना करके मनुष्य सदाके लिये अपने पापको भस्म कर डाले। [इस प्रकारकी भावनासे युक्त होकर] वहाँपर शिवको प्रतिष्ठापितकर उन परमेश्वरकी पूजा करे॥ ३३—३६॥

देहशुद्धिं ततः कृत्वा मूलमन्त्रं न्यसेत्क्रमात्।
सर्वत्र प्रणवेनैव षडंगन्यासमाचरेत्॥ ३७

शरीरशुद्धि करके मूलमन्त्रका क्रमशः न्यास करे अथवा सर्वत्र प्रणवसे ही षडंगन्यास करे॥ ३७॥

कृत्वा हृदि प्रयोगं च ततः पूजां समारभेत्।
पाद्यार्घाचमनार्थं च पात्राणि च प्रकल्पयेत्॥ ३८

इस प्रकार हृदयादि न्यास करके पूजा आरम्भ करे। पाद्य, अर्घ्य और आचमनके लिये पात्रोंको तैयार करके रखे॥ ३८॥

स्थापयेद्विविधान्कुम्भान्नव धीमान्यथाविधि।
दर्भैराच्छाद्य तैरेव संस्थाप्याभ्युक्ष्य वारिणा॥ ३९

तेषु तेषु च सर्वेषु क्षिपेत्तोयं सुशीतलम्।
प्रणवेन क्षिपेत्तेषु द्रव्याण्यालोक्य बुद्धिमान्॥ ४०

उशीरं चन्दनं चैव पाद्ये तु परिकल्पयेत्।
जातीकंकोलकर्पूरवटमूलतमालकम् ॥ ४१

चूर्णयित्वा यथान्यायं क्षिपेदाचमनीयके।
एतत्सर्वेषु पात्रेषु दापयेच्चन्दनान्वितम्॥ ४२

बुद्धिमान् पुरुष विधिपूर्वक भिन्न-भिन्न प्रकारके नौ कलश स्थापित करे। उन्हें कुशाओंसे ढककर कुशाओंसे ही जल लेकर उन सबका प्रोक्षण करे। उन-उन सभी पात्रोंमें शीतल जल डाले। तत्पश्चात् बुद्धिमान् पुरुष देख-भालकर प्रणवमन्त्रके द्वारा उनमें इन द्रव्योंको डाले। खस और चन्दनको पाद्यपात्रमें रखे। चमेलीके फूल, शीतलचीनी, कपूर, बड़की जड़ तथा तमाल—इन सबको यथोचितरूपसे [कूट-पीसकर] चूर्ण बनाकर आचमनीय पात्र (पंचपात्र)-में डाले। यह सब चन्दनसहित सभी पात्रोंमें डालना चाहिये॥ ३९—४२॥

पार्श्वयोर्देवदेवस्य नंदीशं तु समर्चयेत्।
गंधैर्धूपैस्तथा दीपैर्विविधैः पूजयेच्छिवम्॥ ४३

देवाधिदेव महादेवजीके पार्श्वभागमें नन्दीश्वरका पूजन करे। गन्ध, धूप, दीप आदि विविध उपचारोंसे शिवकी पूजा करे॥ ४३॥

लिंगशुद्धिं ततः कृत्वा मुदा युक्तो नरस्तदा।
यथोचितं तु मंत्रौघैः प्रणवादिनमोऽन्तकैः॥ ४४

कल्पयेदासनं स्वस्तिपद्मादि प्रणवेन तु।
तस्मात्पूर्वदिशं साक्षादणिमामयमक्षरम्॥ ४५

लघिमा दक्षिणं चैव महिमा पश्चिमं तथा।
प्राप्तिश्चैवोत्तरं पत्रं प्राकाम्यं पावकस्य च॥ ४६

ईशित्वं नैर्ऋतं पत्रं वशित्वं वायुगोचरे।
सर्वज्ञत्वं तथैशान्यं कर्णिका सोम उच्यते॥ ४७

फिर प्रसन्नतापूर्वक लिंगशुद्धि करके मनुष्य उचित रूपसे मन्त्रसमूहोंके आदिमें 'प्रणव' तथा अन्तमें 'नमः' पद जोड़कर उनके द्वारा [इष्टदेवके लिये] अथवा प्रणवका उच्चारण करके स्वस्ति, पद्म आदि आसनकी कल्पना करे। पुनः यह भावना करे कि इस कमलका पूर्वदल साक्षात् अणिमा नामक ऐश्वर्यरूप तथा अविनाशी है। दक्षिणदल लघिमा है। पश्चिमदल महिमा है। उत्तरदल प्राप्ति है। अग्निकोणका दल प्राकाम्य है। नैर्ऋत्यकोणका दल ईशित्व है। वायव्यकोणका दल वशित्व है। ईशानकोणका दल सर्वज्ञत्व है और उस कमलकी कर्णिकाको सोम कहा जाता है॥ ४४—४७॥

सोमस्याधस्तथा सूर्यस्तस्याधः पावकस्त्वयम्।
धर्मादीनपि तस्याधो भवतः कल्पयेत् क्रमात्॥ ४८

अव्यक्तादि चतुर्दिक्षु सोमस्यान्ते गुणत्रयम्।
सद्योजातं प्रपद्यामीत्यावाह्य परमेश्वरम्॥ ४९

वामदेवेन मंत्रेण तिष्ठेच्चैवासनोपरि।

इस सोमके नीचे सूर्य है, सूर्यके नीचे यह अग्नि है और अग्निके भी नीचे धर्म आदिकी क्रमशः कल्पना करे। इसके पश्चात् चारों दिशाओंमें अव्यक्त आदिकी तथा सोमके नीचे तीनों गुणोंकी कल्पना करे। इसके बाद '**ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि**' इत्यादि मन्त्रसे परमेश्वर शिवका आवाहन करके '**ॐ वामदेवाय नमः**' इत्यादि वामदेवमन्त्रसे उन्हें आसनपर विराजमान करे। फिर

सान्निध्यं रुद्रगायत्र्या अघोरेण निरोधयेत्॥ ५०

ईशानः सर्वविद्यानामिति मंत्रेण पूजयेत्।
पाद्यमाचनीयं च विधायार्घ्यं प्रदापयेत्॥ ५१

'ॐ तत्पुरुषाय विद्महे' इत्यादि रुद्रगायत्रीद्वारा इष्टदेवका सान्निध्य प्राप्त करके उन्हें 'ॐ अघोरेभ्योऽथ' इत्यादि अघोर मन्त्रसे वहाँ निरुद्ध करे। तत्पश्चात् 'ॐ ईशानः सर्व-विद्यानाम्' इत्यादि मन्त्रसे आराध्य देवका पूजन करे। पाद्य और आचमनीय अर्पित करके अर्घ्य दे॥ ४८—५१॥

स्नापयेद्विधिना रुद्रं गंधचंदनवारिणा।
पञ्चगव्यविधानेन गृह्यपात्रेऽभिमंत्र्य च॥ ५२

प्रणवेनैव गव्येन स्नापयेत्पयसा च तम्।
दध्ना च मधुना चैव तथा चेक्षुरसेन तु॥ ५३

घृतेन तु तथा पूज्यं सर्वकामहितावहम्।
पुण्यैर्द्रव्यैर्महादेवं प्रणवेनाभिषेचयेत्॥ ५४

तत्पश्चात् गन्ध और चन्दनमिश्रित जलसे विधिपूर्वक रुद्रदेवको स्नान कराये। फिर पंचगव्यनिर्माणकी विधिसे पाँचों द्रव्योंको एक पात्रमें लेकर प्रणवसे ही अभिमन्त्रित करके उन मिश्रित गव्यपदार्थोंद्वारा भगवान्‌को स्नान कराये। तत्पश्चात् पृथक्-पृथक् दूध, दही, मधु, गन्नेके रस तथा घीसे नहलाकर समस्त अभीष्टोंके दाता और हितकारी पूजनीय महादेवजीका प्रणवके उच्चारणपूर्वक पवित्र द्रव्योंद्वारा अभिषेक करे॥ ५२—५४॥

पवित्रजलभाण्डेषु मंत्रैः तोयं क्षिपेत्ततः।
शुद्धीकृत्य यथान्यायं सितवस्त्रेण साधकः॥ ५५

साधक श्वेत वस्त्रसे उस जलको यथोचित रीतिसे छान ले और पवित्र जलपात्रोंमें मन्त्रोच्चारणपूर्वक जल डाले॥ ५५॥

तावद् दूरं न कर्तव्यं न यावच्चन्दनं क्षिपेत्।
तंदुलैः सुन्दरैस्तत्र पूजयेच्छंकरं मुदा॥ ५६

कुशापामार्गकर्पूरजातिचंपकपाटलैः।
करवीरैः सितैश्चैव मल्लिकाकमलोत्पलैः॥ ५७

अपूर्वपुष्पैर्विविधैश्चन्दनाद्यैस्तथैव च।
जलेन जलधारां च कल्पयेत्परमेश्वरे॥ ५८

जलधारा तबतक बन्द न करे, जबतक इष्टदेवको चन्दन न चढ़ाये। तब सुन्दर अक्षतोंद्वारा प्रसन्नतापूर्वक शंकरजीकी पूजा करे। उनके ऊपर कुश, अपामार्ग, कपूर, चमेली, चम्पा, गुलाब, श्वेत कनेर, बेला, कमल और उत्पल आदि भाँति-भाँतिके अपूर्व पुष्पों एवं चन्दनसे उनकी पूजा करे। परमेश्वर शिवके ऊपर जलकी धारा गिरती रहे, इसकी भी व्यवस्था करे॥ ५६—५८॥

पात्रैश्च विविधैर्देवं स्नापयेच्च महेश्वरम्।
मंत्रपूर्वं प्रकर्तव्या पूजा सर्वफलप्रदा॥ ५९

जलसे भरे भाँति-भाँतिके पात्रोंद्वारा महेश्वरको स्नान कराये। इस प्रकार मन्त्रोच्चारणपूर्वक समस्त फलोंको देनेवाली पूजा करनी चाहिये॥ ५९॥

मन्त्रांश्च तुभ्यं तांस्तात सर्वकामार्थसिद्धये।
प्रवक्ष्यामि समासेन सावधानतया शृणु॥ ६०

हे तात! अब मैं आपको समस्त मनोवांछित कामनाओंकी सिद्धिके लिये उन [पूजासम्बन्धी] मन्त्रोंको भी संक्षेपमें बता रहा हूँ, सावधानीके साथ सुनिये॥ ६०॥

पवमानेन मंत्रेण तथा वाङ्मयकेन च।
रुद्रेण नीलरुद्रेण सुशुक्लेन शुभेन च॥ ६१

होतारेण तथा शीर्ष्णा शुभेनाथर्वणेन च।
शांत्या वाथ पुनः शांत्या भारुण्डेनारुणेन च॥ ६२

अर्थाभीष्टेन साम्ना च तथा देवव्रतेन च॥ ६३

रथन्तरेण पुष्येण सूक्तेन पुरुषेण च।
मृत्युंजयेन मंत्रेण तथा पंचाक्षरेण च॥ ६४

पावमानमन्त्रसे, 'वाङ्मे०' इत्यादि मन्त्रसे, रुद्रमन्त्रसे, नीलरुद्रमन्त्रसे, सुन्दर एवं शुभ पुरुषसूक्तसे, श्रीसूक्तसे, सुन्दर अथर्वशीर्षके मन्त्रसे, 'आ नो भद्रा०' इत्यादि शान्तिमन्त्रसे, शान्तिसम्बन्धी दूसरे मन्त्रोंसे, भारुण्ड मन्त्र और अरुणमन्त्रोंसे, अर्थाभीष्टसाम तथा देवव्रतसामसे, 'अभि त्वा०' इत्यादि रथन्तरसामसे, पुरुषसूक्तसे, मृत्युंजयमन्त्रसे तथा पंचाक्षरमन्त्रसे पूजा करे॥ ६१—६४॥

जलधाराः सहस्रेण शतेनैकोत्तरेण वा।
कर्तव्या वेदमार्गेण नामभिर्वाथ वा पुनः॥ ६५

एक सहस्र अथवा एक सौ एक जलधाराएँ वैदिक विधिसे शिवके नाममन्त्रसे प्रदान करे॥ ६५॥

ततश्चंदनपुष्पादि रोपणीयं शिवोपरि।
दापयेत्प्रणवेनैव मुखवासादिकं तथा॥ ६६

तदनन्तर भगवान् शंकरके ऊपर चन्दन और फूल आदि चढ़ाये। प्रणवसे ताम्बूल आदि अर्पित करे॥ ६६॥

ततः स्फटिकसंकाशं देवं निष्कलमक्षयम्।
कारणं सर्वलोकानां सर्वलोकमयं परम्॥ ६७
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रविष्ण्वाद्यैरपि देवैरगोचरम्।
वेदविद्भिर्हि वेदांते त्वगोचरमिति स्मृतम्॥ ६८
आदिमध्यान्तरहितं भेषजं सर्वरोगिणाम्।
शिवतत्त्वमिति ख्यातं शिवलिंगं व्यवस्थितम्॥ ६९
प्रणवेनैव मंत्रेण पूजयेल्लिंगमूर्द्धनि।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैस्ताम्बूलैः सुन्दरैस्तथा॥ ७०
नीराजनेन रम्येण यथोक्तविधिना ततः।
नमस्कारैः स्तवैश्चान्यैर्मन्त्रैर्नानाविधैरपि॥ ७१

इसके बाद जो स्फटिकमणिके समान निर्मल, निष्कल, अविनाशी, सर्वलोककारण, सर्वलोकमय, परमदेव हैं, जो ब्रह्मा, इन्द्र, उपेन्द्र, विष्णु आदि देवताओंको भी गोचर न होनेवाले, वेदवेत्ता विद्वानोंके द्वारा वेदान्तमें [मन-वाणीसे] अगोचर बताये गये हैं, जो आदि-मध्य-अन्तसे रहित, समस्त रोगियोंके लिये औषधरूप, शिवतत्त्वके नामसे विख्यात तथा शिवलिंगके रूपमें प्रतिष्ठित हैं, उन भगवान् शिवका शिवलिंगके मस्तकपर प्रणवमन्त्रसे ही पूजन करे। धूप, दीप, नैवेद्य, सुन्दर ताम्बूल, सुरम्य आरती, स्तोत्रों तथा नाना प्रकारके मन्त्रों एवं नमस्कारोंद्वारा यथोक्त विधिसे उनकी पूजा करे॥ ६७—७१॥

अर्घ्यं दत्त्वा तु पुष्पाणि पादयोः सुविकीर्य च।
प्रणिपत्य च देवेशमात्मनाराधयेच्छिवम्॥ ७२

तत्पश्चात् अर्घ्य देकर भगवान्‌के चरणोंमें फूल बिखेरकर और साष्टांग प्रणाम करके देवेश्वर शिवकी आराधना करे॥ ७२॥

हस्ते गृहीत्वा पुष्पाणि समुत्थाय कृतांजलिः।
प्रार्थयेत्पुनरीशानं मंत्रेणानेन शंकरम्॥ ७३
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया।
कृतं तदस्तु सफलं कृपया तव शंकर॥ ७४

इसके बाद हाथमें फूल लेकर खड़ा हो करके दोनों हाथ जोड़कर सर्वेश्वर शंकरकी पुनः प्रार्थना करे—हे शिव! मैंने अनजानमें अथवा जान-बूझकर जो जप-पूजा आदि सत्कर्म किये हों, वे आपकी कृपासे सफल हों॥ ७३-७४॥

पठित्वैवं च पुष्पाणि शिवोपरि मुदा न्यसेत्।
ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा ह्याशिषो विविधास्तथा॥ ७५

मार्जनं तु ततः कार्यं शिवस्योपरि वै पुनः।
नमस्कारं ततः क्षांतिं पुनरागमनाय च॥ ७६

इस प्रकार पढ़कर भगवान् शिवके ऊपर प्रसन्नतापूर्वक फूल चढ़ाये। तत्पश्चात् स्वस्तिवाचन[1] करके नाना प्रकारकी आशीः[2] प्रार्थना करे। फिर शिवके ऊपर मार्जन[3] करना चाहिये। इसके बाद नमस्कार करके अपराधके लिये क्षमा-प्रार्थना[4] करते हुए पुनरागमनके

१. 'ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥' इत्यादि स्वस्तिवाचनसम्बन्धी मन्त्र हैं।

२. 'काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी शस्यशालिनी। देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः॥ सर्वे च सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥' इत्यादि आशीः प्रार्थनाएँ हैं।

३. 'ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवः' (यजु० ११।५०—५२) इत्यादि तीन मार्जन-मन्त्र कहे गये हैं। इन्हें पढ़ते हुए इष्टदेवपर जल छिड़कना 'मार्जन' कहलाता है।

४. 'अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया। तानि सर्वाणि मे देव क्षमस्व परमेश्वर॥' इत्यादि क्षमाप्रार्थनासम्बन्धी श्लोक हैं।

अघोरमन्त्रमुच्चार्य नमस्कारं प्रकल्पयेत्।
प्रार्थयेच्च पुनस्तत्र सर्वभावसमन्वितः॥ ७७

शिवे भक्तिः शिवे भक्तिः शिवे भक्तिर्भवे भवे।
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम॥ ७८

लिये विसर्जन[1] करना चाहिये। इसके बाद अघोर[2] मन्त्रका उच्चारण करके नमस्कार करे। फिर सम्पूर्ण भावसे युक्त होकर इस प्रकार प्रार्थना करे—प्रत्येक जन्ममें शिवमें मेरी भक्ति हो, शिवमें भक्ति हो, शिवमें भक्ति हो। आपके अतिरिक्त दूसरा कोई मुझे शरण देनेवाला नहीं है। हे महादेव! आप ही मेरे लिये शरणदाता हैं॥ ७५—७८॥

इति संप्रार्थ्य देवेशं सर्वसिद्धिप्रदायकम्।
पूजयेत्परया भक्त्या गलनादैर्विशेषतः॥ ७९

इस प्रकार प्रार्थना करके पराभक्तिके द्वारा सम्पूर्ण सिद्धियोंके दाता देवेश्वर शिवका पूजन करे। विशेषतः गलेकी ध्वनिसे भगवान्‌को सन्तुष्ट करे॥ ७९॥

नमस्कारं ततः कृत्वा परिवारगणैः सह।
प्रहर्षमतुलं लब्ध्वा कार्यं कुर्याद्यथासुखम्॥ ८०

तत्पश्चात् परिवारजनोंके साथ नमस्कार करके अनुपम प्रसन्नता प्राप्त करके समस्त [लौकिक] कार्य सुखपूर्वक करता रहे॥ ८०॥

एवं यः पूजयेन्नित्यं शिवभक्तिपरायणः।
तस्य वै सकला सिद्धिर्जायते तु पदे पदे॥ ८१

जो इस प्रकार शिवभक्तिपरायण होकर प्रतिदिन पूजन करता है, उसे अवश्य ही पग-पगपर सब प्रकारकी सिद्धि प्राप्त होती है॥ ८१॥

वाग्मी स जायते तस्य मनोऽभीष्टफलं ध्रुवम्।
रोगं दुःखं च शोकं च ह्युद्वेगं कृत्रिमं तथा॥ ८२
कौटिल्यं च गरं चैव यद्यद्दुःखमुपस्थितम्।
तद्दुःखं नाशयत्येव शिवः शिवकरः परः॥ ८३

वह उत्तम वक्ता होता है तथा उसे मनोवांछित फलकी निश्चय ही प्राप्ति होती है। रोग, दुःख, शोक, दूसरोंके निमित्तसे होनेवाला उद्वेग, कुटिलता, विष तथा अन्य जो-जो कष्ट उपस्थित होता है, उसे कल्याणकारी परम शिव अवश्य नष्ट कर देते हैं॥ ८२-८३॥

कल्याणं जायते तस्य शुक्लपक्षे यथा शशी।
वर्धते सद्गुणस्तत्र ध्रुवं शंकरपूजनात्॥ ८४

उस उपासकका कल्याण होता है। जैसे शुक्लपक्षमें चन्द्रमा बढ़ता है, वैसे ही शंकरकी पूजासे उसमें अवश्य ही सद्‌गुणोंकी वृद्धि होती है॥ ८४॥

इति पूजाविधिः शंभोः प्रोक्तस्ते मुनिसत्तम।
अतः परं च शुश्रूषुः किं प्रष्टासि च नारद॥ ८५

हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने शिवकी पूजाका विधान आपको बताया। हे नारद! अब आप और क्या पूछना तथा सुनना चाहते हैं?॥ ८५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने शिवपूजाविधिवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टि-उपाख्यानमें शिवपूजाविधिवर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

---

१. 'यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम्। अभीष्टफलदानाय पुनरागमनाय च॥' इत्यादि विसर्जनसम्बन्धी श्लोक हैं।
२. अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

भगवान् शिवकी श्रेष्ठता तथा उनके पूजनकी अनिवार्य आवश्यकताका प्रतिपादन

नारद उवाच

ब्रह्मन्प्रजापते तात धन्यस्त्वं शिवसक्तधीः।
एतदेव पुनः सम्यग्ब्रूहि मे विस्तराद्विधे॥ १

ब्रह्मोवाच

एकस्मिन्समये तात ऋषीनाहूय सर्वतः।
निर्जरांश्चावदं प्रीत्या सुवचः पद्मसंभवः॥ २

यदि नित्यसुखे श्रद्धा यदि सिद्धेश्च कामुकाः।
आगन्तव्यं मया सार्धं तीरं क्षीरपयोनिधेः॥ ३

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा गतास्ते हि मया सह।
यत्रास्ते भगवान्विष्णुः सर्वेषां हितकारकः॥ ४

तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं जनार्दनम्।
उपतस्थुः सुरा नत्वा सुकृताञ्जलयो मुने॥ ५

तान्दृष्ट्वा च तदा विष्णुर्ब्रह्माद्यानमरान्स्थितान्।
स्मरन् शिवपदांभोजमब्रवीत्परमं वचः॥ ६

विष्णुरुवाच

किमर्थमागता यूयं ब्रह्माद्याश्च सुरर्षयः।
सर्वं वदत तत्प्रीत्या किं कार्यं विद्यतेऽधुना॥ ७

ब्रह्मोवाच

इति पृष्टास्तदा तेन विष्णुना च मया सुराः।
पुनः प्रणम्य तं प्रीत्या किं कार्यं विद्यतेऽधुना।
विनिवेदयितुं कार्यं ह्यब्रुवन्वचनं शुभम्॥ ८

देवा ऊचुः

नित्यं सेवा तु कस्यैव कार्या दुःखापहारिणी॥ ९

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा भगवान्भक्तवत्सलः।
सामरस्य मम प्रीत्या कृपया वाक्यमब्रवीत्॥ १०

श्रीभगवानुवाच

ब्रह्मन् शृणु सुरैः सम्यक् श्रुतं च भवता पुरा।
तथापि कथ्यते तुभ्यं देवेभ्यश्च तथा पुनः॥ ११

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे प्रजापते! हे तात! आप धन्य हैं; क्योंकि आपकी बुद्धि भगवान् शिवमें लगी हुई है। हे विधे! आप पुनः इसी विषयका सम्यक् प्रकारसे विस्तारपूर्वक मुझसे वर्णन कीजिये॥ १॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात! एक समयकी बात है; कमलसे उत्पन्न होनेवाले मैंने चारों ओरसे ऋषियों और देवताओंको बुलाकर प्रेमपूर्वक सुन्दर और मधुर वाणीमें कहा—॥ २॥

यदि आप सब नित्य सुख प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हैं और नित्य अपने मनोरथकी सिद्धि चाहते हैं, तो मेरे साथ क्षीरसागरके तटपर आयें॥ ३॥

इस वचनको सुनकर वे सब मेरे साथ वहाँपर गये, जहाँ सर्वकल्याणकारी भगवान् विष्णु निवास करते हैं॥ ४॥

हे मुने! वहाँपर जाकर सभी देवता भगवान् जगन्नाथ देवदेवेश्वर जनार्दन विष्णुको हाथ जोड़कर प्रणाम करके खड़े हो गये। ब्रह्मा आदि उन उपस्थित देवताओंको देखकर [मनमें] शिवके चरणकमलका स्मरण करते हुए विष्णु कहने लगे—॥ ५-६॥

विष्णुजी बोले—हे ब्रह्मादि देवो और ऋषियो! आपलोग यहाँ किसलिये आये हुए हैं? प्रेमपूर्वक सब कुछ कहें? इस समय कौन-सा कार्य आ पड़ा?॥ ७॥

ब्रह्माजी बोले—भगवान् विष्णुके द्वारा ऐसा पूछनेपर मैंने उन्हें प्रणाम किया और उपस्थित उन सभी देवताओंसे कहा कि इस समय आप सबके आनेका क्या प्रयोजन है? इसका निवेदन आप सब करें॥ ८॥

देवता बोले—[हे विष्णो!] किसकी सेवा है, जो सभी दुःखोंको दूर करनेवाली है, जिसको कि हमें नित्य करना चाहिये। देवताओंका यह वचन सुनकर भक्तवत्सल भगवान् विष्णु देवताओंसहित मेरी प्रसन्नताके लिये कृपापूर्वक यह वाक्य कहने लगे—॥ ९-१०॥

श्रीभगवान् बोले—हे ब्रह्मन्! देवोंके साथ आपने पहले भी इस विषयमें सुना है, किंतु आज पुनः आपको और देवताओंको बता रहा हूँ॥ ११॥

दृष्टं च दृश्यतेऽद्यैव किं पुनः पृच्छ्यतेऽधुना।
ब्रह्मन्देवैः समस्तैश्च बहुधा कार्यतत्परैः॥ १२

हे ब्रह्मन्! अपने-अपने कार्योंमें संलग्न समस्त देवोंके साथ आपने जो देखा है और इस समय जो देख रहे हैं, उसके विषयमें बार-बार क्यों पूछ रहे हैं ?॥ १२॥

सेव्यः सेव्यः सदा देवः शंकरः सर्वदुःखहा।
ममापि कथितं तेन ब्रह्मणोऽपि विशेषतः॥ १३

सभी दुःखोंको दूर करनेवाले शंकरजीकी ही सदा सेवा करनी चाहिये। यह बात स्वयं ही उन्होंने विशेषकर मुझसे और ब्रह्मासे भी कही थी॥ १३॥

प्रस्तुतं चैव दृष्टं वः सर्वं दृष्टान्तमद्भुतम्।
त्याज्यं तदर्चनं नैव कदापि सुखमीप्सुभिः॥ १४

इस अद्भुत दृष्टान्तको आप सब लोगोंने भी देखा है। अतः सुख चाहनेवाले लोगोंको कभी भी उनका पूजन नहीं छोड़ना चाहिये॥ १४॥

सन्त्यज्य देवदेवेशं लिंगमूर्तिं महेश्वरम्।
तारपुत्रास्तथैवैते नष्टास्तेऽपि सबान्धवाः॥ १५

मया च मोहितास्ते वै मायया दूरतः कृताः।
सर्वे विनष्टाः प्रध्वस्ताः शिवेन रहिता यदा॥ १६

देवदेवेश्वर भगवान् शंकरके लिंगमूर्तिरूप महेश्वरका त्याग करके अपने बन्धु-बान्धवोंसहित तारपुत्र नष्ट हो गये। [शिवकी आराधनाका परित्याग करनेके कारण] वे सब मेरे द्वारा मायासे मोहित कर दिये गये और जब वे शिवकी भक्तिसे वंचित हो गये, तब वे सब नष्ट और ध्वस्त हो गये॥ १५-१६॥

तस्मात्सदा पूजनीयो लिंगमूर्तिधरो हरः।
सेवनीयो विशेषेण श्रद्धया देवसत्तम॥ १७

शर्वलिङ्गार्चनादेव देवा दैत्याश्च सत्तमाः।
अहं त्वं च तथा ब्रह्मन्कथं तद्विस्मृतं त्वया॥ १८

अतः हे देवसत्तम! लिंगमूर्ति धारण करनेवाले भगवान् शंकरकी विशेष श्रद्धाके साथ सदैव पूजा और सेवा करनी चाहिये। शिवलिंगकी पूजा करनेसे ही देवता, दैत्य, हम और आप सभी श्रेष्ठताको प्राप्त कर सके हैं, हे ब्रह्मन्! आपने उसे कैसे भुला दिया है ?॥ १७-१८॥

तल्लिङ्गमर्चयेन्नित्यं येन केनापि हेतुना।
तस्मात् ब्रह्मन्सुरैः शर्वः सर्वकामफलेप्सया॥ १९

इसलिये जिस किसी भी तरहसे भगवान् शिवके लिंगका पूजन नित्य करना ही चाहिये। हे ब्रह्मन्! सभी मनोकामनाओंकी पूर्तिके लिये देवताओंको भगवान् शिवकी पूजा करनी चाहिये॥ १९॥

सा हानिस्तन्महाच्छिद्रं सान्धता सा च मुग्धता।
यन्मुहूर्तं क्षणं वापि शिवं नैव समर्चयेत्॥ २०

वही [मनुष्यके जीवनकी बहुत बड़ी] हानि है, वही [उसके चरित्रका] बहुत बड़ा छिद्र है, वही उसकी अन्धता और वही महामूर्खता है, जिस मुहूर्त अथवा क्षणमें मनुष्य शिवका पूजन नहीं करता है॥ २०॥

भवभक्तिपरा ये च भवप्रणतचेतसः।
भवसंस्मरणा ये च न ते दुःखस्य भाजनाः॥ २१

भवनानि मनोज्ञानि मनोज्ञाभरणाः स्त्रियः।
धनं च तुष्टिपर्यन्तं पुत्रपौत्रादिसंततिः॥ २२

आरोग्यं च शरीरं च प्रतिष्ठां चाप्यलौकिकीम्।
ये वांछंति महाभागाः सुखं वा त्रिदशालयम्॥ २३

अंते मुक्तिफलं चैव भक्तिं वा परमेशितुः।
पूर्वपुण्यातिरेकेण तेऽर्चयन्ति सदाशिवम्॥ २४

जो शिवभक्तिपरायण हैं, जो शिवमें अनुरक्त चित्तवाले हैं और जो शिवका स्मरण करते हैं, वे दुःखके पात्र नहीं होते। जो महाभाग मनको अच्छे लगनेवाले सुन्दर-सुन्दर भवन, सुन्दर आभूषणोंसे युक्त स्त्रियाँ, इच्छानुकूल धन, पुत्र-पौत्रादि सन्तति, निरोग शरीर, अलौकिक प्रतिष्ठा, स्वर्गलोकका सुख, अन्तकालमें मुक्तिलाभ तथा परमेश्वरकी भक्ति चाहते हैं, वे पूर्वजन्मकृत पुण्याधिक्यके कारण सदाशिवकी अर्चना किया करते हैं॥ २१—२४॥

योऽर्चयेच्छिवलिंगं वै नित्यं भक्तिपरायणः।
तस्य वै सफला सिद्धिर्न स पापैः प्रयुज्यते॥ २५

जो भक्तिपरायण मनुष्य शिवलिंगकी नित्य पूजा करता है, उसीकी सिद्धि सफल होती है और वह पापोंसे लिप्त नहीं होता है॥ २५॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ताश्च तदा देवाः प्रणिपत्य हरिं स्वयम्।
लिंगानि प्रार्थयामासुः सर्वकामाप्तये नृणाम्॥ २६

ब्रह्माजी बोले—श्रीभगवान् विष्णुने जब देवताओंसे ऐसा कहा, तब उन्होंने साक्षात् हरिको प्रणाम करके मनुष्योंकी समस्त कामनाओंकी प्राप्तिके लिये उनसे शिवलिंग देनेकी प्रार्थना की॥ २६॥

तच्छ्रुत्वा च तदा विष्णुर्विश्वकर्माणमब्रवीत्।
अहं च मुनिशार्दूल जीवोद्धारपरायणः॥ २७

विश्वकर्मन्यथा शम्भोः कल्पयित्वा शुभानि च।
लिंगानि सर्वदेवेभ्यो देयानि वचनान्मम॥ २८

उसको सुनकर भगवान् विष्णुने विश्वकर्मासे कहा—हे मुनिश्रेष्ठ! मैं तो जीवोंका उद्धार करनेमें तत्पर हूँ। हे विश्वकर्मन्! मेरी आज्ञासे आप भगवान् शिवके कल्याणकारी लिंगोंका निर्माण करके उन्हें सभी देवताओंको प्रदान कीजिये॥ २७-२८॥

ब्रह्मोवाच

लिंगानि कल्पयित्वैवमधिकारानुरूपतः।
विश्वकर्मा ददौ तेभ्यो नियोगान्मम वा हरेः॥ २९

ब्रह्माजी बोले—तब विश्वकर्माने अधिकारके अनुसार शिवलिंगोंका निर्माण करके मेरी और विष्णुकी आज्ञासे उन सभी शिवलिंगोंको उन देवताओंको प्रदान किया॥ २९॥

तदेव कथयाम्यद्य श्रूयतामृषिसत्तम।
पद्मरागमयं शक्रो हैमं विश्रवसः सुतः॥ ३०

पीतं मणिमयं धर्मो वरुणः श्यामलं शिवम्।
इन्द्रनीलमयं विष्णुर्ब्रह्मा हेममयं तथा॥ ३१

विश्वेदेवास्तथा रौप्यं वसवश्च तथैव च।
आरकूटमयं वापि पार्थिवं ह्यश्विनौ मुने॥ ३२

लक्ष्मीश्च स्फाटिकं देवी ह्यादित्यास्ताम्रनिर्मितम्।
मौक्तिकं सोमराजो वै वज्रलिंगं विभावसुः॥ ३३

मृण्मयं चैव विप्रेंद्रा विप्रपत्न्यस्तथैव च।
चांदनं च मयो नागाः प्रवालमयमादरात्॥ ३४

हे ऋषिश्रेष्ठ! वही मैं आज आपसे कह रहा हूँ, सुनिये। इन्द्र पद्मरागमणिसे बने शिवलिंग, विश्रवापुत्र कुबेर सुवर्णलिंग, धर्म पीतवर्ण पुखराजकी मणिसे निर्मित लिंग, वरुण श्यामवर्णकी मणियोंसे बने हुए लिंग, विष्णु इन्द्रनीलमणिसे निर्मित लिंग, ब्रह्मा सुवर्णसे बने शिवलिंग, हे मुने! सभी विश्वेदेव चाँदीसे निर्मित शिवलिंग, वसुगण पीतलके शिवलिंग, अश्विनीकुमार पार्थिव लिंग, देवी लक्ष्मी स्फटिकमणिनिर्मित लिंग, सभी आदित्य ताम्रनिर्मित लिंग, सोमराज चन्द्रमा मौक्तिक शिवलिंग, अग्निदेव वज्रमणि [हीरे]-से बने शिवलिंग, श्रेष्ठ ब्राह्मण और उनकी पत्नियाँ मृण्मय पार्थिव शिवलिंग, मयदानव चन्दनके शिवलिंग, नाग मूँगेसे बने शिवलिंगका आदरपूर्वक विधिवत् पूजन करते हैं॥ ३०—३४॥

नवनीतमयं देवी योगी भस्ममयं तथा।
यक्षा दधिमयं लिंगं छाया पिष्टमयं तथा॥ ३५

शिवलिंगं च ब्रह्माणी रत्नं पूजयति ध्रुवम्।
पारदं पार्थिवं बाणः समर्चंति परेऽपि वा॥ ३६

देवी दुर्गा मक्खनसे बने हुए शिवलिंग, योगी भस्मनिर्मित शिवलिंग, यक्ष दधिनिर्मित शिवलिंग तथा छाया चावलके आटेकी पीठीसे बने हुए शिवलिंगकी विधिवत् पूजा करती हैं। ब्रह्माणी देवी रत्नमय शिवलिंगकी पूजा करती हैं। बाणासुर पारेसे बने शिवलिंग तथा दूसरे लोग मिट्टी आदिसे बनाये गये पार्थिव शिवलिंगका विधिवत् पूजन करते हैं॥ ३५-३६॥

एवंविधानि लिंगानि दत्तानि विश्वकर्मणा।
ते पूजयन्ति सर्वे वै देवा ऋषिगणास्तथा॥ ३७

विश्वकर्माने इसी प्रकारके शिवलिंग देवताओं और ऋषियोंको भी दिये थे, जिनकी पूजा वे सभी देवता और ऋषि सदैव करते रहते हैं॥ ३७॥

विष्णुर्दत्त्वा च लिंगानि देवेभ्यो हितकाम्यया।
पूजाविधिं समाचष्ट ब्रह्मणे मे पिनाकिनः॥ ३८
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य ब्रह्माहं देवसत्तमैः।
आगच्छं च स्वकं धाम हर्षनिर्भरमानसः॥ ३९

देवताओंकी हितकामनाके लिये विष्णुने उन्हें शिवलिंग प्रदान करके मुझ ब्रह्मासे शिवका पूजन-विधान भी बताया। उनके द्वारा कहे गये शिवलिंगके उस पूजनविधानको सुनकर प्रसन्नचित्त मैं ब्रह्मा देवताओंके साथ अपने स्थानपर लौट आया॥ ३८-३९॥

तत्रागत्य ऋषीन्सर्वान्देवांश्चाहं तथा मुने।
शिवपूजाविधिं सम्यगब्रुवं सकलेष्टदम्॥ ४०

हे मुने! वहाँ आकरके मैंने सभी देवों और ऋषियोंको सम्पूर्ण अभीष्टकी सिद्धि करनेवाले शिवलिंगके पूजन-विधानको सम्यक् रूपसे बताया॥ ४०॥

ब्रह्मोवाच

श्रूयतामृषयः सर्वे सामराः प्रेमतत्पराः।
शिवपूजाविधिं प्रीत्या कथये भुक्तिमुक्तिदम्॥ ४१

ब्रह्माजी बोले—हे सभी देवताओ और ऋषियो! सुनिये। मैं प्रसन्नतापूर्वक आप सबसे शिवपूजनकी उस विधिका वर्णन करने जा रहा हूँ, जो भोग और मोक्षको देनेवाली है॥ ४१॥

मानुषं जन्म सम्प्राप्य दुर्लभं सर्वजन्तुषु।
तत्रापि सत्कुले देवा दुष्प्राप्यं च मुनीश्वराः॥ ४२
अव्यंगं चैव विप्रेषु साचारेषु सुपुण्यतः।
शिवसंतोषहेतोश्च कर्म स्वोक्तं समाचरेत्॥ ४३

हे देवो! हे मुनीश्वरो! सभी जीव-जन्तुओंमें मनुष्यका जन्म प्राप्त करना दुर्लभ है, उसमें भी उत्तम कुलमें जन्म लेना तो अत्यन्त दुर्लभ है। उत्तम कुलमें भी सदाचारी ब्राह्मणोंके यहाँ जन्म लेना अच्छे पुण्योंसे ही सम्भव है। अतः भगवान् सदाशिवकी प्रसन्नताके लिये सदैव स्ववर्णाश्रम-विहित कर्म करते रहना चाहिये॥ ४२-४३॥

यद्यज्जातिसमुद्दिष्टं तत्तत्कर्म न लंघयेत्।
यावद्दानस्य सम्पत्तिस्तावत्कर्म समावहेत्॥ ४४

जिस जातिके लिये जो-जो सत्कर्म बताया गया है, उस-उस कर्मका उल्लंघन नहीं करना चाहिये, जितनी सम्पत्ति हो, उसके अनुसार दानकर्म करना चाहिये॥ ४४॥

कर्मयज्ञसहस्रेभ्यस्तपोयज्ञो विशिष्यते।
तपोयज्ञसहस्रेभ्यो जपयज्ञो विशिष्यते॥ ४५
ध्यानयज्ञात्परं नास्ति ध्यानं ज्ञानस्य साधनम्।
यतः समरसं स्वेष्टं योगी ध्यानेन पश्यति॥ ४६

कर्ममय सहस्रों यज्ञोंकी अपेक्षा तपयज्ञ श्रेष्ठ है। सहस्रों तपयज्ञोंकी अपेक्षा जपयज्ञका महत्त्व अधिक है। ध्यान-यज्ञसे बढ़कर तो कोई वस्तु है ही नहीं। ध्यान ज्ञानका साधन है; क्योंकि योगी ध्यानके द्वारा अपने इष्टदेव एकरस सदाशिवका साक्षात्कार करता है॥ ४५-४६॥

ध्यानयज्ञरतस्यास्य सदा सन्निहितः शिवः।
नास्ति विज्ञानिनां किंचित्प्रायश्चित्तादिशोधनम्॥ ४७

भगवान् सदाशिव सदैव ध्यानयज्ञमें तत्पर रहनेवाले उपासकके सान्निध्यमें रहते हैं। जो विज्ञानसे सम्पन्न हैं, उनकी शुद्धिके लिये किसी प्रायश्चित्त आदिकी आवश्यकता नहीं है॥ ४७॥

विशुद्धा विद्यया ये च ब्रह्मन्ब्रह्मविदो जनाः।
नास्ति क्रिया च तेषां वै सुखं दुःखं विचारतः॥ ४८

धर्माधर्मौ जपो होमो ध्यानं ध्यानविधिस्तथा।
सर्वदा निर्विकारास्ते विद्यया च तयामराः॥ ४९

हे ब्रह्मन्! जो ब्रह्मविद् विशुद्ध ब्रह्मविद्याके द्वारा ब्रह्म-साक्षात्कार कर लेते हैं, उन्हें क्रिया, सुख-दुःख, धर्म-अधर्म, जप, होम, ध्यान और ध्यान-विधिको जानने तथा करनेकी आवश्यकता नहीं है। वे इस विद्यासे सदा निर्विकार रहते हैं और अन्तमें अमर हो जाते हैं॥ ४८-४९॥

परानंदकरं लिंगं विशुद्धं शिवमक्षरम्।
निष्कलं सर्वगं ज्ञेयं योगिनां हृदि संस्थितम्॥ ५०

इस शिवलिंगको परमानन्द देनेवाला, विशुद्ध, कल्याणस्वरूप, अविनाशी, निष्कल, सर्वव्यापक तथा योगियोंके हृदयमें अवस्थित रहनेवाला जानना चाहिये॥ ५०॥

लिंगं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यंतरं द्विजाः।
बाह्यं स्थूलं समुद्दिष्टं सूक्ष्ममाभ्यंतरं मतम्॥ ५१

हे द्विजो! शिवलिंग दो प्रकारका बताया गया है—बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्य लिंगको स्थूल एवं आभ्यन्तर लिंगको सूक्ष्म माना गया है॥ ५१॥

कर्मयज्ञरता ये च स्थूललिंगार्चने रताः।
असतां भावनार्थाय सूक्ष्मेण स्थूलविग्रहाः॥ ५२

आध्यात्मिकं तु यल्लिंगं प्रत्यक्षं यस्य नो भवेत्।
स तल्लिंगे तथा स्थूले कल्पयेच्च न चान्यथा॥ ५३

जो कर्मयज्ञमें तत्पर रहनेवाले हैं, वे स्थूल लिंगकी अर्चनामें रत रहते हैं। सूक्ष्मतया शिवके प्रति ध्यान करनेमें अशक्त अज्ञानियोंके लिये शिवके इस स्थूलविग्रहकी कल्पना की गयी है। जिसको इस आध्यात्मिक सूक्ष्मलिंगका प्रत्यक्षीकरण नहीं होता है, उसे उस स्थूल लिंगमें इस सूक्ष्म लिंगकी कल्पना करनी चाहिये, इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं है॥ ५२-५३॥

ज्ञानिनां सूक्ष्मममलं भावात्प्रत्यक्षमव्ययम्।
यथा स्थूलमयुक्तानामुत्कृष्टादौ प्रकल्पितम्॥ ५४

ज्ञानियोंके लिये सूक्ष्मलिंगकी पूजाका विधान है, [जिसमें ध्यानकी प्रधानता होती है।] ध्यान करनेसे उस शिवका साक्षात्कार होता है, जो सदैव निर्मल और अव्यय रहनेवाला है। जिस प्रकार अज्ञानियोंके लिये स्थूल लिंगकी उत्कृष्टता बतायी गयी है, उसी प्रकार ज्ञानियोंके लिये इस सूक्ष्मलिंगको उत्तम माना गया है॥ ५४॥

अहो विचारतो नास्ति ह्यन्यत्तत्त्वार्थवादिनः।
निष्फलं सकलं चित्ते सर्वं शिवमयं जगत्॥ ५५

दूसरे तत्त्वार्थवादियोंके विचारसे आगे कोई अन्तर नहीं है; क्योंकि निष्कल तथा कलामयरूपसे वह सबके चित्तमें रहता है। सम्पूर्ण जगत् शिवस्वरूप ही है॥ ५५॥

एवं ज्ञानविमुक्तानां नास्ति दोषविकल्पना।
विधिश्चैव तथा नास्ति विहिताविहिते तथा॥ ५६

इस प्रकार ज्ञानके द्वारा शिवका साक्षात्कार करके विमुक्त हुए लोगोंको कोई भी पाप नहीं लगता। उनके लिये विधि-निषेध और विहित-अविहित कुछ भी नहीं है॥ ५६॥

यथा जलेषु कमलं सलिलैर्नावलिप्यते।
तथा ज्ञानी गृहे तिष्ठन्कर्मणा नावबध्यते॥ ५७

जिस प्रकार जलके भीतर रहते हुए भी कमल जलसे लिप्त नहीं होता है, उसी प्रकार घरमें रहते हुए भी ज्ञानी पुरुषको कर्म अपने बन्धनमें बाँध नहीं पाते हैं॥ ५७॥

इति ज्ञानं समुत्पन्नं यावन्नैव नरस्य वै।
तावच्च कर्मणा देवं शिवमाराधयेन्नरः॥ ५८

इस प्रकारका ज्ञान जबतक मनुष्यको प्राप्त न हो जाय, तबतक उसे कर्मविहित स्थूल या सूक्ष्म शिवलिंगका निर्माणादि करके सदाशिवकी ही आराधना करनी चाहिये॥ ५८॥

प्रत्ययार्थं च जगतामेकस्थोऽपि दिवाकरः।
एकोऽपि बहुधा दृष्टो जलाधारादिवस्तुषु॥ ५९

दृश्यते श्रूयते लोके यद्यत्सदसदात्मकम्।
तत्तत्सर्वं सुरा वित्त परं ब्रह्म शिवात्मकम्॥ ६०

जिस प्रकार विश्वासके लिये जगत्‌में सूर्य एक ही स्थित है और एक होते हुए भी जलके आधार जलाशय आदि वस्तुओंमें [अपने प्रतिबिम्बके कारण] बहुत-से रूपोंमें दिखायी पड़ता है, उसी प्रकार हे देवो! यह सत्-असत्‌रूप जो कुछ भी इस संसारमें सुनायी और दिखायी दे रहा है, उसे आपलोग शिवस्वरूप परब्रह्म ही समझें॥ ५९-६०॥

भेदो जलानां लोकेऽस्मिन्प्रतिभावेऽविचारतः।
एवमाहुस्तथा चान्ये सर्वे वेदार्थतत्त्वगाः॥ ६१

जलतत्त्वके एक होनेपर भी उनके सम्बन्धमें जो भेद प्रतीत होता है, वह संसारमें सम्यक् विचार न करनेके कारण ही है—ऐसा अन्य सभी वेदार्थतत्त्वज्ञ भी कहते हैं॥ ६१॥

हृदि संसारिणः साक्षात्सकलः परमेश्वरः।
इति विज्ञानयुक्तस्य किं तस्य प्रतिमादिभिः॥ ६२

संसारियोंके हृदयमें सकल लिंगस्वरूप साक्षात् परमेश्वरका वास है—ऐसा ज्ञान जिसको हो गया है, उसको प्रतिमा आदिसे क्या प्रयोजन है!॥ ६२॥

इति विज्ञानहीनस्य प्रतिमाकल्पना शुभा।
पदमुच्चैः समारोढुं पुंसो ह्यालम्बनं स्मृतम्॥ ६३

इस प्रकारके ज्ञानसे हीन प्राणीके लिये शुभ प्रतिमाकी कल्पना की गयी है; क्योंकि ऊँचे स्थानपर चढ़नेके लिये मनुष्यके लिये आलम्बन आवश्यक बताया गया है॥ ६३॥

आलम्बनं विना तस्य पदमुच्चैः सुदुष्करम्।
निर्गुणप्राप्तये नृणां प्रतिमालम्बनं स्मृतम्॥ ६४

जैसे आलम्बनके बिना ऊँचे स्थानपर चढ़ना मनुष्यके लिये अत्यन्त कठिन ही नहीं सर्वथा असम्भव है, वैसे ही निर्गुण ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये प्रतिमाका अवलम्बन आवश्यक कहा गया है॥ ६४॥

सगुणान्निर्गुणप्राप्तिर्भवतीति सुनिश्चितम्।
एवं च सर्वदेवानां प्रतिमा प्रत्ययावहा॥ ६५

सगुणसे ही निर्गुणकी प्राप्ति होती है—ऐसा निश्चित है। इस प्रकार सभी देवताओंकी प्रतिमाएँ उन देवोंमें विश्वास उत्पन्न करनेके लिये होती हैं॥ ६५॥

देवश्चायं महीयान्वै तस्यार्थे पूजनं त्विदम्।
गंधचन्दनपुष्पादि किमर्थं प्रतिमां विना॥ ६६

ये देव सभी देवताओंसे महान् हैं। इन्हींके लिये यह पूजनका विधान है। यदि प्रतिमा न हो, तो गन्ध-चन्दन, पुष्पादिकी आवश्यकता किस कार्यसिद्धिके लिये रह जायगी॥ ६६॥

तावच्च प्रतिमा पूज्या यावद्विज्ञानसम्भवः।
ज्ञानाभावे न पूज्येत पतनं तस्य निश्चितम्॥ ६७

प्रतिमाका पूजन तबतक करते रहना चाहिये, जबतक विज्ञान [परब्रह्म परमेश्वरका ज्ञान] प्राप्त नहीं हो जाता। बिना ज्ञान प्राप्त किये ही जो प्रतिमाका पूजन छोड़ देता है, उसका निश्चित ही पतन होता है॥ ६७॥

एतस्मात्कारणाद्विप्राः श्रूयतां परमार्थतः।
स्वजात्युक्तं तु यत्कर्म कर्तव्यं तत्प्रयत्नतः॥ ६८

हे ब्राह्मणो! इस कारण आपलोग परमार्थरूपसे सुनें। अपनी जातिके अनुसार [शास्त्रोंमें] जो कर्म बताया गया है, उसे प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये॥ ६८॥

यत्र यत्र यथा भक्तिः कर्तव्यं पूजनादिकम्।
विना पूजनदानादि पातकं न च दूरतः॥ ६९

जहाँ-जहाँ जैसी भक्ति हो, वहाँ-वहाँ तदनुरूप पूजनादि कर्म करना चाहिये; क्योंकि पूजन, दान आदिके बिना पाप दूर नहीं होता॥ ६९॥

यावच्च पातकं देहे तावत्सिद्धिर्न जायते।
गते च पातके तस्य सर्वं च सफलं भवेत्॥ ७०

जबतक शरीरमें पाप रहता है, तबतक सिद्धिकी प्राप्ति नहीं होती है। पापके दूर हो जानेपर उसका सब कुछ सफल हो जाता है॥ ७०॥

यथा च मलिने वस्त्रे रंगः शुभतरो न हि।
क्षालने हि कृते शुद्धे सर्वो रंगः प्रसज्जते॥ ७१

तथा च निर्मले देहे देवानां सम्यगर्चया।
ज्ञानरंगः प्रजायेत तदा विज्ञानसंभवः॥ ७२

जिस प्रकार मलिन वस्त्रमें रंग बहुत सुन्दर नहीं चढ़ता, किंतु उसे भली प्रकारसे धोकर स्वच्छ कर लेनेपर पूरा रंग अच्छी तरहसे चढ़ता है, उसी प्रकार देवताओंकी विधिवत् पूजा करनेसे जब निर्मल शरीरमें ज्ञानरूपी रंग चढ़ता है, तब जाकर उस ब्रह्मविज्ञानका प्रादुर्भाव होता है॥ ७१-७२॥

विज्ञानस्य च सन्मूलं भक्तिरव्यभिचारिणी।
ज्ञानस्यापि च सन्मूलं भक्तिरेवाऽभिधीयते॥ ७३

विज्ञानका मूल अनन्य भक्ति है और ज्ञानका मूल भी भक्ति ही कही जाती है॥ ७३॥

भक्तेर्मूलं तु सत्कर्म स्वेष्टदेवादिपूजनम्।
तन्मूलं सद्गुरुः प्रोक्तस्तन्मूलं संगतिः सताम्॥ ७४

भक्तिका मूल सत्कर्म और अपने इष्टदेव आदिका पूजन है और उसका मूल सद्गुरु कहे गये हैं और उन सद्गुरुका मूल सत्संगति है॥ ७४॥

संगत्या गुरुराप्येत गुरोर्मन्त्रादिपूजनम्।
पूजनाज्जायते भक्तिर्भक्त्या ज्ञानं प्रजायते॥ ७५

सत्संगतिसे सद्गुरुको प्राप्त करना चाहिये। सद्गुरुसे प्राप्त मन्त्रसे देवपूजन आदि सत्कर्म करने चाहिये; क्योंकि देवपूजनसे भक्ति उत्पन्न होती है और उस भक्तिसे ज्ञानका प्रादुर्भाव होता है॥ ७५॥

विज्ञानं जायते ज्ञानात्परब्रह्मप्रकाशकम्।
विज्ञानं च यदा जातं तदा भेदो निवर्तते॥ ७६

ज्ञानसे परब्रह्मके प्रकाशक विज्ञानका उदय होता है। जब विज्ञानका उदय हो जाता है, तब भेदबुद्धि [स्वतः ही] नष्ट हो जाती है॥ ७६॥

भेदे निवृत्ते सकले द्वंद्वदुःखविहीनता।
द्वंद्वदुःखविहीनस्तु शिवरूपो भवत्यसौ॥ ७७

समस्त भेदोंके नष्ट हो जानेपर द्वन्द्व-दुःख भी नष्ट हो जाते हैं। द्वन्द्व-दुःखसे रहित हो जानेपर वह साधक शिवस्वरूप हो जाता है॥ ७७॥

द्वंद्वाप्राप्तौ न जायेतां सुखदुःखे विजानतः।
विहिताविहिते तस्य न स्यातां च सुरर्षयः॥ ७८

हे देवर्षियो! द्वन्द्वके नष्ट हो जानेपर ज्ञानीको सुख-दुःखकी अनुभूति नहीं होती और विहित-अविहितका प्रपंच भी उसके लिये नहीं रह जाता है॥ ७८॥

ईदृशो विरलो लोके गृहाश्रमविवर्जितः।
यदि लोके भवत्यस्मिन्दर्शनात्पापहारकः॥ ७९

तीर्थानि श्लाघयन्तीह तादृशं ज्ञानवित्तमम्।
देवाश्च मुनयः सर्वे परब्रह्मात्मकं शिवम्॥ ८०

इस संसारमें ऐसा गृहस्थाश्रमरहित प्राणी विरला ही होता है। यदि लोकमें कोई हो, तो उसके दर्शनमात्रसे ही पाप नष्ट हो जाते हैं। सभी तीर्थ, देवता और मुनि भी उस प्रकारके परब्रह्मय शिवस्वरूप परमज्ञानीकी प्रशंसा करते रहते हैं॥ ७९-८०॥

तादृशानि न तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरुकालेन विज्ञानी दर्शनादपि॥ ८१

वैसे न तो तीर्थ हैं, न मिट्टी और पत्थरसे बने देवता ही हैं, वे तो बहुत समयके बाद पवित्र करते हैं, किंतु विज्ञानी दर्शनमात्रसे पवित्र कर देता है॥ ८१॥

यावद्गृहाश्रमे तिष्ठेत्तावदाकारपूजनम्।
कुर्याच्छ्रेष्ठस्य सुप्रीत्या सुरेषु खलु पंचसु॥ ८२

अथवा च शिवः पूज्यो मूलमेकं विशिष्यते।
मूले सिक्ते तथा शाखाः तृप्ताः सन्त्यखिलाः सुराः॥ ८३

जबतक मनुष्य गृहस्थाश्रममें रहे, तबतक प्रेमपूर्वक उसे पाँच देवताओं (गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव तथा देवी)-की और उनमें भी सर्वश्रेष्ठ भगवान् सदाशिवकी प्रतिमाका पूजन करना चाहिये अथवा मात्र सदाशिवकी ही पूजा करनी चाहिये; एकमात्र वे ही सबके मूल कहे गये हैं। हे देवो! जैसे मूल (जड़)-के सींचे जानेपर सभी शाखाएँ स्वतः तृप्त हो जाती हैं, वैसे ही सर्वदेवमय सदाशिवके ही पूजनसे सभी देवताओंका पूजन हो जाता है और वे प्रसन्न हो जाते हैं॥ ८२-८३॥

शाखासु च सुतृप्तासु मूलं तृप्तं न कर्हिचित्।
एवं सर्वेषु तृप्तेषु सुरेषु मुनिसत्तमाः॥ ८४

सर्वथा शिवतृप्तिर्नो विज्ञेया सूक्ष्मबुद्धिभिः।
शिवे च पूजिते देवाः पूजिताः सर्व एव हि॥ ८५

जैसे वृक्षकी शाखाओंके तृप्त होनेपर अर्थात् उन्हें सींचनेपर कभी भी मूलकी तृप्ति नहीं होती, वैसे ही हे मुनिश्रेष्ठो! सभी देवताओंके तृप्त होनेपर शिवकी भी तृप्ति नहीं होती है—ऐसा सूक्ष्म बुद्धिवाले लोगोंको जानना चाहिये। शिवके पूजित हो जानेपर सभी देवताओंका पूजन स्वतः ही हो जाता है॥ ८४-८५॥

तस्माच्च पूजयेद्देवं शंकरं लोकशंकरम्।
सर्वकामफलावाप्त्यै सर्वभूतहिते रतः॥ ८६

अतः सभी प्राणियोंके कल्याणमें लगे हुए मनुष्यको चाहिये कि वह सभी कामनाओंकी फलप्राप्तिके लिये संसारका कल्याण करनेवाले भगवान् सदाशिवकी पूजा करे॥ ८६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने पूजाविधिवर्णने सारासारविचारवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टि-उपाख्यानमें पूजा-विधि-वर्णन-क्रममें सारासार-विचारवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

शिवपूजनकी सर्वोत्तम विधिका वर्णन

ब्रह्मोवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि पूजाविधिमनुत्तमम्।
श्रूयतामृषयो देवाः सर्वकामसुखावहम्॥ १

ब्रह्माजी बोले—अब मैं पूजाकी सर्वोत्तम विधि बता रहा हूँ, जो समस्त अभीष्ट सुखोंको सुलभ करानेवाली है। हे देवताओ तथा ऋषियो! आपलोग ध्यान देकर सुनें॥ १॥

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय संस्मरेत्साम्बकं शिवम्।
कुर्यात्तत्प्रार्थनां भक्त्या सांजलिर्नतमस्तकः॥ २

उपासकको चाहिये कि वह ब्राह्म मुहूर्तमें उठकर जगदम्बा पार्वतीसहित भगवान् शिवका स्मरण करे तथा हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर भक्तिपूर्वक उनसे इस प्रकार प्रार्थना करे—॥ २॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ देवेश उत्तिष्ठ हृदयेशय।
उत्तिष्ठ त्वमुमास्वामिन्ब्रह्माण्डे मङ्गलं कुरु॥ ३

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति-
र्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
त्वया महादेव हृदि स्थितेन
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥ ४

हे देवेश्वर! उठिये, उठिये। मेरे हृदयमें शयन करनेवाले देवता! उठिये। हे उमाकान्त! उठिये और ब्रह्माण्डमें सबका मंगल कीजिये। मैं धर्मको जानता हूँ, किंतु मेरी उसमें प्रवृत्ति नहीं होती, मैं अधर्मको जानता हूँ, परंतु मैं उससे दूर नहीं हो पाता। हे महादेव! आप मेरे हृदयमें स्थित होकर मुझे जैसी प्रेरणा देते हैं, वैसा ही मैं करता हूँ॥ ३-४॥

इत्युक्त्वा वचनं भक्त्या स्मृत्वा च गुरुपादके।
बहिर्गच्छेद्दक्षिणाशां त्यागार्थं मलमूत्रयोः॥ ५

भक्तिपूर्वक यह वचन कहकर और गुरुके चरणोंका स्मरण करके गाँवसे बाहर दक्षिण दिशामें मलमूत्रका त्याग करनेके लिये जाय॥ ५॥

देहशुद्धिं ततः कृत्वा स मृज्जलविशोधनैः।
हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य दंतधावनमाचरेत्॥ ६

इसके बाद मिट्टी और जलसे शरीरकी शुद्धि करके दोनों हाथों और पैरोंको धोकर दन्तधावन करे॥ ६॥

दिवानाथे त्वनुदिते कृत्वा वै दन्तधावनम्।
मुखं षोडशवारं तु प्रक्षाल्यांजलिभिस्तथा॥ ७

षष्ठ्याद्यामाश्च तिथयो नवम्यर्कदिने तथा।
वर्ज्याः सुरर्षयो यत्नाद्भक्तेन रदधावने॥ ८

सूर्योदय होनेसे पहले ही दातौन करके मुँहको सोलह बार जलकी अँजलियोंसे धोये। हे देवताओ तथा ऋषियो! षष्ठी, प्रतिपदा, अमावास्या और नवमी तिथियों तथा रविवारके दिन शिवभक्तको यत्नपूर्वक दातौनको त्याग देना चाहिये॥ ७-८॥

यथावकाशं सुस्नायान्नद्यादिष्वथवा गृहे।
देशकालाविरुद्धं च स्नानं कार्यं नरेण च॥ ९

अवकाशके अनुसार नदी आदिमें जाकर अथवा घरमें ही भलीभाँति स्नान करे। मनुष्यको देश और कालके विरुद्ध स्नान नहीं करना चाहिये॥ ९॥

रवेर्दिने तथा श्राद्धे संक्रान्तौ ग्रहणे तथा।
महादाने तथा तीर्थे ह्युपवासदिने तथा॥ १०
अशौचेऽप्यथवा प्राप्ते न स्नायादुष्णवारिणा।
यथा साभिमुखं स्नायात्तीर्थादौ भक्तिमान्नरः॥ ११

रविवार, श्राद्ध, संक्रान्ति, ग्रहण, महादान, तीर्थ, उपवासदिवस अथवा अशौच प्राप्त होनेपर मनुष्य गर्म जलसे स्नान न करे। शिवभक्तिसे युक्त मनुष्य तीर्थ आदिमें प्रवाहके सम्मुख होकर स्नान करे॥ १०-११॥

तैलाभ्यंगं च कुर्वीत वारान्दृष्ट्वा क्रमेण च।
नित्यमभ्यंगके चैव वासितं वा न दूषितम्॥ १२

जो नहानेके पहले तेल लगाना चाहे, उसे विहित एवं निषिद्ध दिनोंका विचार करके ही तैलाभ्यंग करना चाहिये। जो प्रतिदिन नियमपूर्वक तेल लगाता हो, उसके लिये किसी भी दिन तैलाभ्यंग करना दोषपूर्ण नहीं है अथवा जो तेल इत्र आदिसे वासित हो, उसका लगाना किसी भी दिन दूषित नहीं है॥ १२॥

श्राद्धे च ग्रहणे चैवोपवासे प्रतिपद्दिने।
अथवा सार्षपं तैलं न दुष्येद् ग्रहणं विना॥ १३

श्राद्ध, ग्रहण, उपवास और प्रतिपदाके दिन तेल नहीं लगाना चाहिये। सरसोंका तेल ग्रहणको छोड़कर किसी भी दिन दूषित नहीं होता॥ १३॥

देशं कालं विचार्य्यैवं स्नानं कुर्याद्यथाविधि।
उत्तराभिमुखश्चैव प्राङ्मुखोऽप्यथवा पुनः॥ १४

इस तरह देश-कालका विचार करके ही विधिपूर्वक स्नान करे। स्नानके समय अपने मुखको उत्तर अथवा पूर्वकी ओर रखना चाहिये॥ १४॥

उच्छिष्टेनैव वस्त्रेण न स्नायात्स कदाचन।
शुद्धवस्त्रेण स स्नायात्तद्देवस्मृतिपूर्वकम्॥ १५

उच्छिष्ट वस्त्र धारण करके स्नान कभी न करे। शुद्ध वस्त्र धारण करके इष्टदेवका स्मरण करते हुए स्नान करना चाहिये॥ १५॥

परधार्य्यं च नोच्छिष्टं रात्रौ च विधृतं च यत्।
तेन स्नानं तथा कार्यं क्षालितं च परित्यजेत्॥ १६

जिस वस्त्रको दूसरेने धारण किया हो तथा जिसे स्वयं रातमें धारण किया गया हो, उससे तभी स्नान किया जा सकता है, जब उसे धो लिया गया हो॥ १६॥

तर्पणं च ततः कार्यं देवर्षिपितृतृप्तिदम्।
धौतवस्त्रं ततो धार्यं पुनराचमनं चरेत्॥ १७

इसके पश्चात् देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंको तृप्ति देनेवाला तर्पण करना चाहिये। उसके बाद धुला हुआ वस्त्र पहने और आचमन करे॥ १७॥

शुचौ देशे ततो गत्वा गोमयाद्युपमार्जिते।
आसनं च शुभं तत्र रचनीयं द्विजोत्तमाः॥ १८

शुद्धकाष्ठसमुत्पन्नं पूर्णं स्तरितमेव वा।
चित्रासनं तथा कुर्यात्सर्वकामफलप्रदम्॥ १९

हे श्रेष्ठ द्विजो! तदनन्तर गोबर आदिसे लीप-पोतकर स्वच्छ किये हुए शुद्ध स्थानमें जाकर वहाँ सुन्दर आसनकी व्यवस्था करे। वह आसन विशुद्ध काष्ठका बना हुआ, पूरा फैला हुआ तथा चित्रमय होना चाहिये। ऐसा आसन सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाला है॥ १८-१९॥

यथायोग्यं पुनर्ग्राह्यं मृगचर्मादिकं च यत्।
तत्रोपविश्य कुर्वीत त्रिपुण्ड्रं भस्मना सुधीः॥ २०

उसके ऊपर बिछानेके लिये यथायोग्य मृगचर्म आदि ग्रहण करे। शुद्ध बुद्धिवाला पुरुष उस आसनपर बैठकर भस्मसे त्रिपुण्ड्र लगाये॥ २०॥

जपस्तपस्तथा दानं त्रिपुण्ड्रात्सफलं भवेत्।
अभावे भस्मनस्तत्र जलस्यादि प्रकीर्तितम्॥ २१

त्रिपुण्ड्रसे जप, तप तथा दान सफल होते हैं। भस्मके अभावमें त्रिपुण्ड्रका साधन जल आदि बताया गया है॥ २१॥

एवं कृत्वा त्रिपुण्ड्रं च रुद्राक्षान्धारयेन्नरः।
सम्पाद्य च स्वकं कर्म पुनराराधयेच्छिवम्॥ २२

इस तरह त्रिपुण्ड्र करके मनुष्य रुद्राक्ष धारण करे और अपने (सन्ध्योपासना आदि) नित्यकर्मका सम्पादन करके पुनः शिवकी आराधना करे॥ २२॥

पुनराचमनं कृत्वा त्रिवारं मंत्रपूर्वकम्।
एकं वाथ प्रकुर्याच्च गंगाबिन्दुरिति ब्रुवन्॥ २३

तत्पश्चात् तीन बार मन्त्रपूर्वक आचमन करे अथवा 'गंगाबिन्दुः'—ऐसा उच्चारण करते हुए एक बार आचमन करे॥ २३॥

अन्नोदकं तथा तत्र शिवपूजार्थमाहरेत्।
अन्यद्वस्तु च यत्किंचिद्यथाशक्ति समीपगम्॥ २४

तत्पश्चात् वहाँ शिवकी पूजाके लिये अन्न और जल लाकर रखे। दूसरी कोई भी जो वस्तु आवश्यक हो, उसे यथाशक्ति जुटाकर अपने पास रखे॥ २४॥

कृत्वा स्थेयं च तत्रैव धैर्यमास्थाय वै पुनः।
अर्घपात्रं तथा चैकं जलगंधाक्षतैर्युतम्॥ २५
दक्षिणांसे तथा स्थाप्यमुपचारस्य क्लृप्तये।
गुरोश्च स्मरणं कृत्वा तदनुज्ञामवाप्य च॥ २६
संकल्पं विधिवत्कृत्वा कामनां च नियुज्य वै।
पूजयेत्परया भक्त्या शिवं सपरिवारकम्॥ २७

इस प्रकार पूजन-सामग्रीका संग्रह करके वहाँ धैर्य धारण करके जल, गन्ध और अक्षतसे युक्त एक अर्घ्यपात्र लेकर उसे दाहिने भागमें रखे, उससे उपचारकी सिद्धि होती है। फिर गुरुका स्मरण करके उनकी आज्ञा लेकर विधिवत् सकाम संकल्प करके पराभक्तिसे सपरिवार शिवका पूजन करे॥ २५—२७॥

मुद्रामेकां प्रदर्श्यैव पूजयेद्विघ्नहारकम्।
सिंदूरादिपदार्थैश्च सिद्धिबुद्धिसमन्वितम्॥ २८

लक्षलाभयुतं तत्र पूजयित्वा नमेत्पुनः।
चतुर्थ्यन्तैर्नामपदैर्नमोऽन्तैः प्रणवादिभिः॥ २९

एक मुद्रा दिखाकर सिन्दूर आदि उपचारोंद्वारा सिद्धि-बुद्धिसहित विघ्नहारी गणेशका पूजन करे। लक्ष और लाभसे युक्त गणेशजीका पूजन करके उनके नामके आदिमें प्रणव तथा अन्तमें नमः जोड़कर नामके साथ चतुर्थी विभक्तिका प्रयोग करते हुए नमस्कार करे। यथा—**ॐ गणपतये नमः** अथवा **ॐ लक्षलाभयुताय सिद्धिबुद्धिसहिताय गणपतये नमः**॥ २८-२९॥

क्षमाप्यैनं तदा देवं भ्रात्रा चैव समन्वितम्।
पूजयेत्परया भक्त्या नमस्कुर्यात्पुनः पुनः॥ ३०

तदनन्तर उनसे क्षमाप्रार्थना करके पुनः भाई कार्तिकेयसहित गणेशजीका पराभक्तिसे पूजन करके उन्हें बारंबार नमस्कार करे॥ ३०॥

द्वारपालं सदा द्वारि तिष्ठन्तं च महोदरम्।
पूजयित्वा ततः पश्चात्पूजयेद्गिरिजां सतीम्॥ ३१

तत्पश्चात् सदा द्वारपर खड़े रहनेवाले महोदरका पूजन करके सती-साध्वी गिरिराजनन्दिनी उमाकी पूजा करे॥ ३१॥

चंदनैः कुंकुमैश्चैव धूपैर्दीपैरनेकशः।
नैवेद्यैर्विविधैश्चैव पूजयित्वा ततः शिवम्॥ ३२
नमस्कृत्य पुनस्तत्र गच्छेच्च शिवसन्निधौ।
यदि गेहे पार्थिवीं वा हैमीं वा राजतीं तथा॥ ३३
धातुजन्यां तथैवान्यां पारदां वा प्रकल्पयेत्।
नमस्कृत्य पुनस्तां च पूजयेद्भक्तितत्परः॥ ३४
तस्यां तु पूजितायां वै सर्वे स्युः पूजितास्तथा।

चन्दन, कुंकुम तथा धूप, दीप आदि अनेक उपचारों तथा नाना प्रकारके नैवेद्योंसे शिवाका पूजन करके नमस्कार करनेके पश्चात् साधक शिवजीके समीप जाय। यथासम्भव अपने घरमें मिट्टी, सोना, चाँदी, धातु या अन्य [द्रव्य] पारे आदिकी शिवप्रतिमा बनाये और उसे नमस्कार करके भक्तिपरायण होकर पूजा करे। उसकी पूजा हो जानेपर सभी देवता पूजित हो जाते हैं॥ ३२—३४$^{1}/_{2}$॥

स्थापयेच्च मृदा लिंगं विधाय विधिपूर्वकम्॥ ३५

कर्तव्यं सर्वथा तत्र नियमाः स्वगृहे स्थितैः।
प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत भूतशुद्धिं विधाय च॥ ३६

मिट्टीका शिवलिंग बनाकर विधिपूर्वक उसकी स्थापना करे। अपने घरमें रहनेवाले लोगोंको स्थापना-सम्बन्धी सभी नियमोंका सर्वथा पालन करना चाहिये। भूतशुद्धि करके प्राणप्रतिष्ठा करे॥ ३५-३६॥

दिक्पालान्पूजयेत्तत्र स्थापयित्वा शिवालये।
गृहे शिवः सदा पूज्यो मूलमन्त्राभियोगतः॥ ३७

शिवालयमें दिक्पालोंकी भी स्थापना करके उनकी पूजा करे। घरमें सदा मूलमन्त्रका प्रयोग करके शिवकी पूजा करनी चाहिये॥ ३७॥

तत्र तु द्वारपालानां नियमो नास्ति सर्वथा।
गृहे लिंगं च यत्पूज्यं तस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ ३८

घरमें द्वारपालोंके पूजनका सर्वथा नियम नहीं है; क्योंकि घरमें जिस शिवलिंगकी पूजा की जाती है, उसमें सभी देवता प्रतिष्ठित रहते हैं॥ ३८॥

पूजाकाले च सांगं वै परिवारेण संयुतम्।
आवाह्य पूजयेद्देवं नियमोऽत्र न विद्यते॥ ३९

घरपर होनेवाली शिवकी पूजाके समय अंगोंसहित तथा सपरिवार उन सदाशिवका आवाहन करके पूजन किया जाय, ऐसा कोई नियम नहीं है॥ ३९॥

शिवस्य सन्निधिं कृत्वा स्वासनं परिकल्पयेत्।
उदङ्मुखस्तदा स्थित्वा पुनराचमनं चरेत्॥ ४०

भगवान् शिवके समीप ही अपने लिये आसनकी व्यवस्था करे। उस समय उत्तराभिमुख बैठकर आचमन करे॥ ४०॥

प्रक्षाल्य हस्तौ पश्चाद्वै प्राणायामं प्रकल्पयेत्।
मूलमंत्रेण तत्रैव दशावर्तं नयेन्नरः॥ ४१

उसके बाद दोनों हाथोंका प्रक्षालन करके प्राणायाम करे। प्राणायामकालमें मनुष्यको मूलमन्त्रकी दस आवृत्तियाँ करनी चाहिये॥ ४१॥

पंचमुद्राः प्रकर्तव्याः पूजावश्यं करे स्थिता।
एता मुद्राः प्रदर्श्यैव चरेत्पूजाविधिं नरः॥ ४२

हाथोंसे पाँच मुद्राएँ दिखाये। यह पूजाका आवश्यक अंग है। इन मुद्राओंका प्रदर्शन करके ही मनुष्य पूजाविधिका अनुसरण करे॥ ४२॥

दीपं कृत्वा तदा तत्र नमस्कारं गुरोरथ।
बध्वा पद्मासनं तत्र भद्रासनमथापि वा॥ ४३

उत्तानासनकं कृत्वा पर्यंकासनकं तथा।
यथासुखं तथा स्थित्वा प्रयोगं पुनरेव च॥ ४४

कृत्वा पूजां पुरा जातां वट्टकेनैव तारयेत्।
यदि वा स्वयमेवेह गृहे न नियमोऽस्ति च॥ ४५

तदनन्तर वहाँ दीप निवेदन करके गुरुको नमस्कार करे और पद्मासन या भद्रासन बाँधकर बैठे अथवा उत्तानासन या पर्यंकासनका आश्रय लेकर सुखपूर्वक बैठे और पुनः पूजनका प्रयोग करे। पुराने समयमें तो पत्थरकी बटियाकी ही श्रद्धापूर्वक पूजा करके लोग भवसागरसे पार हो जाते थे। यदि वे शुद्ध रूपमें स्वयमेव घरमें विद्यमान हैं, तो उसके लिये कोई नियमकी आवश्यकता नहीं है॥ ४३—४५॥

पश्चाच्चैवार्घपात्रेण क्षालयेल्लिंगमुत्तमम्।
अनन्यमानसो भूत्वा पूजाद्रव्यं निधाय च॥ ४६
पश्चाच्चावाहयेद्देवं मंत्रेणानेन वै नरः।

तत्पश्चात् अर्घ्यपात्रसे उत्तम शिवलिंगका प्रक्षालन करे। मनको भगवान् शिवसे अन्यत्र न ले जाकर पूजा-सामग्रीको अपने पास रखकर निम्नांकित मन्त्रसमूहसे महादेवजीका आवाहन करे॥ ४६ १/२॥

कैलासशिखरस्थं च पार्वतीपतिमुत्तमम्॥ ४७

यथोक्तरूपिणं शंभुं निर्गुणं गुणरूपिणम्।
पंचवक्त्रं दशभुजं त्रिनेत्रं वृषभध्वजम्॥ ४८

कर्पूरगौरं दिव्यांगं चन्द्रमौलिं कपर्दिनम्।

जो कैलासके शिखरपर निवास करते हैं, पार्वतीदेवीके पति हैं, समस्त देवताओंसे उत्तम हैं, जिनके स्वरूपका शास्त्रोंमें यथावत् वर्णन किया गया है, जो निर्गुण होते हुए भी गुणरूप हैं, जिनके पाँच मुख, दस भुजाएँ और प्रत्येक मुखमण्डलमें तीन-तीन नेत्र हैं, जिनकी ध्वजापर वृषभ चिह्न अंकित है, जिनके अंगकी कान्ति कर्पूरके समान गौर है, जो

व्याघ्रचर्मोत्तरीयं च गजचर्माम्बरं शुभम्॥ ४९

वासुक्यादिपरीतांगं पिनाकाद्यायुधान्वितम्।
सिद्धयोऽष्टौ च यस्याग्रे नृत्यन्तीह निरंतरम्॥ ५०

जयजयेति शब्दैश्च सेवितं भक्तपुञ्जकैः।
तेजसा दुःसहेनैव दुर्लक्ष्यं देवसेवितम्॥ ५१

शरण्यं सर्वसत्त्वानां प्रसन्नमुखपंकजम्।
वेदैः शास्त्रैर्यथागीतं विष्णुब्रह्मनुतं सदा॥ ५२

भक्तवत्सलमानंदं शिवमावाहयाम्यहम्।
एवं ध्यात्वा शिवं साम्बमासनं परिकल्पयेत्॥ ५३

दिव्यरूपधारी, चन्द्रमारूपी मुकुटसे सुशोभित तथा सिरपर जटाजूट धारण करनेवाले हैं, जो हाथीकी खाल पहनते हैं और व्याघ्रचर्म ओढ़ते हैं, जिनका स्वरूप शुभ है, जिनके अंगोंमें वासुकि आदि नाग लिपटे रहते हैं, जो पिनाक आदि आयुध धारण करते हैं, जिनके आगे आठों सिद्धियाँ निरन्तर नृत्य करती रहती हैं, भक्तसमुदाय जय-जयकार करते हुए जिनकी सेवामें लगे रहते हैं, दुस्सह तेजके कारण जिनकी ओर देखना भी कठिन है, जो देवताओंसे सेवित हैं, जो सम्पूर्ण प्राणियोंको शरण देनेवाले हैं, जिनका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिला हुआ है, वेदों और शास्त्रोंने जिनकी महिमाका यथावत् गान किया है, विष्णु और ब्रह्मा भी सदा जिनकी स्तुति करते हैं तथा जो भक्तवत्सल हैं, उन परमानन्दस्वरूप शिवका मैं आवाहन करता हूँ। इस प्रकार साम्बशिवका ध्यान करके उनके लिये आसन दे॥ ४७—५३॥

चतुर्थ्यन्तपदेनैव सर्वं कुर्याद्यथाक्रमम्।
ततः पाद्यं प्रदद्याद्वै ततोऽर्घ्यं शंकराय च॥ ५४

ततश्चाचमनं कृत्वा शम्भवे परमात्मने।
पश्चाच्च पंचभिर्द्रव्यैः स्नापयेच्छंकरं मुदा॥ ५५

चतुर्थ्यन्त पदसे ही क्रमशः सब कुछ अर्पित करे। [यथा—**साम्बाय सदाशिवाय नमः आसनं समर्पयामि** इत्यादि।] तत्पश्चात् भगवान् शंकरको पाद्य और अर्घ्य दे। तदनन्तर परमात्मा शम्भुको आचमन कराकर पंचामृतसम्बन्धी द्रव्योंद्वारा प्रसन्नतापूर्वक शंकरको स्नान कराये॥ ५४-५५॥

वेदमन्त्रैर्यथायोग्यं नामभिर्वा समन्त्रकैः।
चतुर्थ्यन्तपदैर्भक्त्या द्रव्याण्येवार्पयेत्तदा॥ ५६

तथाभिलषितं द्रव्यमर्पयेच्छङ्करोपरि।
ततश्च वारुणं स्नानं करणीयं शिवाय वै॥ ५७

वेदमन्त्रों अथवा समन्त्रक चतुर्थ्यन्त नामपदोंका उच्चारण करके भक्तिपूर्वक यथायोग्य समस्त द्रव्य भगवान्‌को अर्पित करे। अभीष्ट द्रव्यको शंकरके ऊपर चढ़ाये। फिर भगवान् शिवको जलधारासे स्नान कराये॥ ५६-५७॥

सुगंधं चंदनं दद्यादन्यलेपानि यत्नतः।
ससुगंधजलेनैव जलधारां प्रकल्पयेत्॥ ५८

वेदमंत्रैः षडङ्गैर्वा नामभी रुद्रसंख्यया।
यथावकाशं तां दत्वा वस्त्रेण मार्जयेत्ततः॥ ५९

स्नानके पश्चात् उनके श्रीअंगोंमें सुगन्धित चन्दन तथा अन्य द्रव्योंका यत्नपूर्वक लेप करे। तत्पश्चात् सुगन्धित जलसे ही उनके ऊपर जलधारा गिराकर अभिषेक करे। वेदमन्त्रों, षडंगों अथवा शिवके ग्यारह नामोंद्वारा यथावकाश जलधारा चढ़ाकर वस्त्रसे शिवलिंगको अच्छी तरह पोंछे॥ ५८-५९॥

पश्चादाचमनं दद्यात्ततो वस्त्रं समर्पयेत्।
तिलाश्चैव यवा वापि गोधूमा मुद्गमाषकाः॥ ६०
अर्पणीयाः शिवायैवं मंत्रैर्नानाविधैरपि।
ततः पुष्पाणि देयानि पंचास्याय महात्मने॥ ६१

तदनन्तर आचमन प्रदान करे और वस्त्र समर्पित करे। नाना प्रकारके मन्त्रोंद्वारा भगवान् शिवको तिल, जौ, गेहूँ, मूँग और उड़द अर्पित करे। फिर पाँच मुखवाले परमात्मा शिवको पुष्प चढ़ाये॥ ६०-६१॥

प्रतिवक्त्रं यथाध्यानं यथायोग्याभिलाषतः।
कमलैः शतपत्रैश्च शंखपुष्पैः परैस्तथा॥ ६२
कुशपुष्पैश्च धत्तूरैर्मन्दारैर्द्रोणसंभवैः।
तथा च तुलसीपत्रैर्बिल्वपत्रैर्विशेषतः॥ ६३
पूजयेत्परया भक्त्या शंकरं भक्तवत्सलम्।
सर्वाभावे बिल्वपत्रमर्पणीयं शिवाय वै॥ ६४

प्रत्येक मुखपर ध्यानके अनुसार यथोचित अभिलाषा करके कमल, शतपत्र, शंखपुष्प, कुशपुष्प, धतूर, मन्दार, द्रोणपुष्प, तुलसीदल तथा बिल्वपत्रके द्वारा पराभक्तिके साथ भक्तवत्सल भगवान् शंकरकी विशेष पूजा करे। अन्य सब वस्तुओंका अभाव होनेपर शिवको केवल बिल्वपत्र ही अर्पित करे॥ ६२—६४॥

बिल्वपत्रार्पणेनैव सर्वपूजा प्रसिध्यति।
ततः सुगंधचूर्णं वै वासितं तैलमुत्तमम्॥ ६५

अर्पणीयं च विविधं शिवाय परया मुदा।
ततो धूपः प्रकर्तव्यो गुग्गुलागुरुभिर्मुदा॥ ६६

बिल्वपत्र समर्पित होनेसे ही शिवकी पूजा सफल होती है। तत्पश्चात् सुगन्धित चूर्ण तथा सुवासित उत्तम तैल, इत्र आदि विविध वस्तुएँ बड़े हर्षके साथ भगवान् शिवको अर्पित करे। तदनन्तर प्रसन्नतापूर्वक गुग्गुल और अगुरु आदिसे धूप निवेदित करे॥ ६५-६६॥

दीपो देयस्ततस्तस्मै शंकराय घृताप्लुतः।
अर्घं दद्यात्पुनस्तस्मै मंत्रेणानेन भक्तितः॥ ६७
कारयेद्भावतो भक्त्या वस्त्रेण मुखमार्जनम्।
रूपं देहि यशो देहि भोगं देहि च शंकर॥ ६८
भुक्तिमुक्तिफलं देहि गृहीत्वार्घं नमोऽस्तु ते।
ततो देयं शिवायैव नैवेद्यं विविधं शुभम्॥ ६९

तदनन्तर शंकरजीको घृतपूर्ण दीपक दे। इसके बाद निम्न मन्त्रसे भक्तिपूर्वक पुनः अर्घ्य दे और भक्तिभावसे वस्त्रद्वारा उनके मुखका मार्जन करे—'हे शंकर! आपको नमस्कार है। आप इस अर्घ्यको स्वीकार करके मुझे रूप दीजिये, यश दीजिये, सुख दीजिये तथा भोग और मोक्षका फल प्रदान कीजिये।' इसके बाद भगवान् शिवको भाँति-भाँतिके उत्तम नैवेद्य अर्पित करे॥ ६७—६९॥

तत आचमनं प्रीत्या कारयेद्वाविलम्बतः।
ततः शिवाय ताम्बूलं सांगोपाङ्गं विधाय च॥ ७०
कुर्यादारार्तिकं पञ्चवर्तिकामनुसंख्यया।
पादयोश्च चतुर्वारं द्विःकृत्वो नाभिमण्डले॥ ७१
एककृत्वो मुखे सप्तकृत्वः सर्वाङ्ग एव हि।
ततो ध्यानं यथोक्तं वै कृत्वा मंत्रमुदीरयेत्॥ ७२

इसके पश्चात् प्रेमपूर्वक शीघ्र आचमन कराये। तदनन्तर सांगोपांग ताम्बूल बनाकर शिवको समर्पित करे। इसके अनन्तर पाँच बत्तीकी आरती बनाकर भगवान्‌को दिखाये। पैरोंमें चार बार, नाभिमण्डलके सामने दो बार, मुखके समक्ष एक बार तथा सम्पूर्ण अंगोंमें सात बार आरती दिखाये। तत्पश्चात् यथोक्त ध्यान करके मन्त्रका उच्चारण करे॥ ७०—७२॥

यथासङ्ख्यं यथाज्ञानं कुर्यान्मन्त्रविधिं नरः।
गुरूपदिष्टमार्गेण कृत्वा मन्त्रजपं सुधीः॥ ७३
गुरूपदिष्टमार्गेण कृत्वा मन्त्रमुदीरयेत्।
यथासंख्यं यथाज्ञानं कुर्यान्मन्त्रविधिं नरः॥ ७४

बुद्धिमान् मनुष्यको गुरुके द्वारा बताये गये नियमके अनुसार ही मन्त्रका जप करना चाहिये। अथवा अपने ज्ञानके अनुसार जितनी संख्यामें हो सके, उतनी संख्यामें ही मन्त्रोंका विधिवत् उच्चारण करे॥ ७३-७४॥

स्तोत्रैर्नानाविधैः प्रीत्या स्तुवीत वृषभध्वजम्।
ततः प्रदक्षिणां कुर्याच्छिवस्य च शनैः शनैः॥ ७५

प्रेमपूर्वक नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे वृषभध्वज शंकरकी स्तुति करे। तत्पश्चात् धीरे-धीरे शिवकी परिक्रमा करे॥ ७५॥

नमस्कारांस्ततः कुर्यात्साष्टांगं विधिवत्पुमान्।
ततः पुष्पांजलिर्देयो मंत्रेणानेन भक्तितः॥ ७६

शंकराय परेशाय शिवसन्तोषहेतवे।
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाद्यद्यत्पूजादिकं मया॥ ७७

कृतं तदस्तु सफलं कृपया तव शंकर।
तावकस्त्वद्गतप्राणस्त्वच्चित्तोऽहं सदा मृड॥ ७८

इति विज्ञाय गौरीश भूतनाथ प्रसीद मे।
भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवावलंबनम्॥ ७९

त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं प्रभो।

इसके बाद भक्त पुरुष साष्टांग प्रणाम करे और शिवकी प्रसन्नताके लिये उन परमेश्वर शंकरको इस मन्त्रसे भक्तिपूर्वक पुष्पांजलि दे—हे शंकर! मैंने अज्ञानसे या जान-बूझकर जो-जो पूजन आदि किया है, वह आपकी कृपासे सफल हो। हे मृड! मैं आपका हूँ, मेरे प्राण सदा आपमें लगे हुए हैं, मेरा चित्त सदा आपका ही चिन्तन करता है—ऐसा जानकर हे गौरीनाथ! हे भूतनाथ! आप मुझपर प्रसन्न होइये। हे प्रभो! धरतीपर जिनके पैर लड़खड़ा जाते हैं, उनके लिये भूमि ही सहारा है, उसी प्रकार जिन्होंने आपके प्रति अपराध किये हैं, उनके लिये भी आप ही शरणदाता हैं॥ ७६—७९$^{1}/_{2}$॥

इत्यादि बहुविज्ञप्तिं कृत्वा सम्यग्विधानतः॥ ८०

पुष्पांजलिं समर्प्यैव पुनः कुर्यान्नतिं मुहुः।
स्वस्थानं गच्छ देवेश परिवारयुतः प्रभो॥ ८१

पूजाकाले पुनर्नाथ त्वयागन्तव्यमादरात्।

इस प्रकार बहुविध प्रार्थना करके उत्तम विधिसे पुष्पांजलि अर्पित करनेके पश्चात् पुनः भगवान्‌को बार-बार नमस्कार करे। [तत्पश्चात् यह बोलकर विसर्जन करना चाहिये] हे देवेश! हे प्रभो! अब आप परिवारसहित अपने स्थानको जायँ। नाथ! जब पूजाका समय हो, तब पुनः आप आदरपूर्वक पधारें॥ ८०-८१$^{1}/_{2}$॥

इति संप्रार्थ्य बहुशः शंकरं भक्तवत्सलम्॥ ८२
विसर्जयेत्स्वहृदये तदपो मूर्ध्नि विन्यसेत्।

इस प्रकार भक्तवत्सल शंकरकी बारम्बार प्रार्थना करके उनका विसर्जन करे और उस जलको अपने हृदयमें लगाये तथा मस्तकपर चढ़ाये॥ ८२$^{1}/_{2}$॥

इति प्रोक्तमशेषेण मुनयः शिवपूजनम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं चैव किमन्यच्छ्रोतुमर्हथ॥ ८३

हे ऋषियो! इस तरह मैंने शिवपूजनकी सारी विधि बता दी, जो भोग और मोक्षको देनेवाली है। अब आपलोग और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ८३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने शिवपूजनवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम सृष्टिखण्डमें सृष्टि-उपाख्यानमें शिवपूजनवर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

विभिन्न पुष्पों, अन्नों तथा जलादिकी धाराओंसे शिवजीकी पूजाका माहात्म्य

ऋषय ऊचुः

व्यासशिष्य महाभाग कथय त्वं प्रमाणतः।
कैः पुष्पैः पूजितः शम्भुः किं किं यच्छति वै फलम्॥ १

ऋषिगण बोले—हे महाभाग! हे व्यासशिष्य! आप सप्रमाण हमें यह बतायें कि किन-किन पुष्पोंसे पूजन करनेपर भगवान् सदाशिव कौन-कौन-सा फल प्रदान करते हैं?॥ १॥

सूत उवाच

शौनकाद्याश्च ऋषयः शृणुतादरतोऽखिलम्।
कथयाम्यद्य सुप्रीत्या पुष्पार्पणविनिर्णयम्॥ २
एष एव विधिः पृष्टो नारदेन महर्षिणा।
प्रोवाच परमप्रीत्या पुष्पार्पणविनिर्णयम्॥ ३

सूतजी बोले—हे शौनकादि ऋषियो! आप आदरपूर्वक सब सुनें। मैं बड़े प्रेमसे पुष्पार्पणकी विधि बता रहा हूँ॥ २॥

देवर्षि नारदने भी इसी विधिको विधाता ब्रह्माजीसे पूछा था। तब उन्होंने बड़े ही प्रेमसे शिव-पुष्पार्पणकी विधि बतायी थी॥ ३॥

ब्रह्मोवाच

कमलैर्बिल्वपत्रैश्च शतपत्रैस्तथा पुनः।
शंखपुष्पैस्तथा देवं लक्ष्मीकामोऽर्चयेच्छिवम्॥ ४

एतैश्च लक्षसङ्ख्याकैः पूजितश्चेद्भवेच्छिवः।
पापहानिस्तथा विप्र लक्ष्मीः स्यान्नात्र संशयः॥ ५

विंशतिः कमलानां तु प्रस्थमेकमुदाहृतम्।
बिल्वो दलसहस्रेण प्रस्थार्धं परिभाषितम्॥ ६

शतपत्रसहस्रेण प्रस्थार्धं परिभाषितम्।
पलैः षोडशभिः प्रस्थः पलं टंकदशस्मृतः॥ ७

अनेनैव तु मानेन तुलामारोपयेद्यदा।
सर्वान्कामानवाप्नोति निष्कामश्चेच्छिवो भवेत्॥ ८

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! लक्ष्मीप्राप्तिकी इच्छावालेको कमल, बिल्वपत्र, शतपत्र और शंखपुष्पसे भगवान् शिवकी पूजा करनी चाहिये। हे विप्र! यदि एक लाखकी संख्यामें इन पुष्पोंद्वारा भगवान् शिवकी पूजा की जाय, तो सारे पापोंका नाश होता है और लक्ष्मीकी भी प्राप्ति हो जाती है, इसमें संशय नहीं है॥ ४-५॥

बीस कमलोंका एक प्रस्थ बताया गया है और एक सहस्र बिल्वपत्रोंका आधा प्रस्थ कहा गया है॥ ६॥

एक सहस्र शतपत्रसे आधे प्रस्थकी परिभाषा की गयी है। सोलह पलोंका एक प्रस्थ होता है और दस टंकोंका एक पल। जब इसी मानसे [पत्र, पुष्प आदिको] तुलापर रखे, तो वह सम्पूर्ण अभीष्टको प्राप्त कर लेता है और यदि निष्कामभावनासे युक्त है, तो वह [इस पूजनसे] शिवस्वरूप हो जाता है॥ ७-८॥

राज्यस्य कामुको यो वै पार्थिवानां च पूजया।
तोषयेच्छंकरं देवं दशकोट्या मुनीश्वराः॥ ९

हे मुनीश्वरो! जो राज्य प्राप्त करनेका इच्छुक है, उसको दस करोड़ पार्थिव शिवलिंगोंकी पूजाके द्वारा भगवान् शंकरको प्रसन्न करना चाहिये॥ ९॥

लिंगं शिवं तथा पुष्पमखण्डं तण्डुलं तथा।
चर्चितं चंदनेनैव जलधारां तथा पुनः॥ १०

प्रतिरूपं तथा मंत्रं बिल्वीदलमनुत्तमम्।
अथवा शतपत्रं च कमलं वा तथा पुनः॥ ११

शंखपुष्पैस्तथा प्रोक्तं विशेषेण पुरातनैः।
सर्वकामफलं दिव्यं परत्रेहापि सर्वथा॥ १२

प्रत्येक पार्थिव-लिंगपर मन्त्रसहित पुष्प, खण्डरहित धानके अक्षत और सुगन्धित चन्दन चढ़ाकर अखण्ड जलधारासे अभिषेक करना चाहिये। तदनन्तर प्रत्येक पार्थिव लिंगपर मन्त्रसहित अच्छे-अच्छे बिल्वपत्र अथवा शतपत्र और कमलपुष्प समर्पित करना चाहिये। प्राचीन ऋषियोंने कहा है कि यदि शिवलिंगपर शंखपुष्पीके फूल चढ़ाये जायँ, तो इस लोक और परलोकमें सभी कामनाओंका दिव्य फल प्राप्त होता है॥ १०—१२॥

धूपं दीपं च नैवेद्यमर्घं चारार्तिकं तथा।
प्रदक्षिणां नमस्कारं क्षमापनविसर्जने॥ १३

कृत्वा साङ्गं तथा भोज्यं कृतं येन भवेदिह।
तस्य वै सर्वथा राज्यं शंकरः प्रददाति च॥ १४

धूप, दीप, नैवेद्य, अर्घ्य, आरती, प्रदक्षिणा, नमस्कार, क्षमाप्रार्थना और विसर्जन करके जिसने ब्राह्मणभोजन करा दिया, उसे भगवान् शंकर अवश्य ही राज्य प्रदान करते हैं। जो मनुष्य सर्वश्रेष्ठ बननेका इच्छुक है, वह [उपर्युक्त कही गयी विधिके अनुसार]

प्राधान्यकामुको यो वै तदर्धेनार्चयेत्पुमान्।
कारागृहगतो यो वै लक्षेनैवार्चयेद्धरम्॥ १५

रोगग्रस्तो यदा स्याद्वै तदर्धेनार्चयेच्छिवम्।
कन्याकामो भवेद्यो वै तदर्धेन शिवं पुनः॥ १६

विद्याकामस्तथा यः स्यात्तदर्धेनार्चयेच्छिवम्।
वाणीकामो भवेद्यो वै घृतेनैवार्चयेच्छिवम्॥ १७

उच्चाटनार्थं शत्रूणां तन्मितेनैव पूजनम्।
मारणे वै तु लक्षेण मोहने तु तदर्धतः॥ १८

सामन्तानां जये चैव कोटिपूजा प्रशस्यते।
राज्ञामयुतसंख्यं च वशीकरणकर्मणि॥ १९

यशसे च तथा संख्या वाहनाद्यैः सहस्त्रिका।
मुक्तिकामोऽर्चयेच्छंभुं पंचकोट्या सुभक्तितः॥ २०

ज्ञानार्थी पूजयेत्कोट्या शंकरं लोकशंकरम्।
शिवदर्शनकामो वै तदर्धेन प्रपूजयेत्॥ २१

तथा मृत्युंजयो जाप्यः कामनाफलरूपतः।
पंचलक्षो जपो यर्हि प्रत्यक्षं तु भवेच्छिवः॥ २२

लक्षेण भजते कश्चिद् द्वितीये जातिसंभवः।
तृतीये कामनालाभश्चतुर्थे तं प्रपश्यति॥ २३

उसके आधे अर्थात् पाँच करोड़ पार्थिव शिवलिंगोंका यथाविधि पूजन करे। कारागारमें पड़े मनुष्यको एक लाख पार्थिवलिंगोंसे भगवान् शंकरकी पूजा करनी चाहिये॥ १३—१५॥

यदि रोगग्रस्त हो, तो उसे उस संख्याके आधे अर्थात् पचास हजार पार्थिव लिंगोंसे शिवका पूजन करना चाहिये। कन्या चाहनेवाले मनुष्यको उसके आधे अर्थात् पच्चीस हजार पार्थिव लिंगोंसे शिवका पूजन करना चाहिये॥ १६॥

जो विद्या प्राप्त करनेकी इच्छा रखता है, उसे चाहिये कि वह उसके भी आधे पार्थिव लिंगोंसे शिवकी अर्चना करे। जो वाणीका अभिलाषी हो, उसे घीसे शिवकी पूजा करनी चाहिये॥ १७॥

अभिचारादि कर्मोंमें कमलपुष्पोंसे शिवपूजनका विधान है। सामन्त राजाओंपर विजय प्राप्त करनेके लिये एक करोड़ कमलपुष्पोंसे शिवका पूजन करना प्रशस्त माना गया है। राजाओंको अपने अनुकूल करनेके लिये दस लाख कमलपुष्पोंसे पूजन करनेका विधान है॥ १८-१९॥

यश प्राप्त करनेके लिये उतनी ही संख्या कही गयी है और वाहन आदिकी प्राप्तिके लिये एक हजार पार्थिव लिंगोंकी पूजा करनी चाहिये। मोक्ष चाहनेवालेको पाँच करोड़ कमलपुष्पोंसे उत्तम भक्तिके साथ शिवकी पूजा करनी चाहिये॥ २०॥

ज्ञान चाहनेवाला एक करोड़ कमलपुष्पसे लोक-कल्याणकारी शिवका पूजन करे और शिवका दर्शन प्राप्त करनेका इच्छुक उसके आधे कमलपुष्पसे उनकी पूजा करे। कामनाओंकी पूर्तिके लिये महामृत्युंजय मन्त्रका जप भी करना चाहिये। पाँच लाख महामृत्युंजय मन्त्रका जप करनेपर भगवान् सदाशिव निश्चित ही प्रत्यक्ष हो जाते हैं॥ २१-२२॥

एक लाखके जपसे शरीरकी शुद्धि होती है, दूसरे लाखके जपसे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण होता है, तीसरे लाखके जपसे सम्पूर्ण काम्य वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। चौथे लाखका जप होनेपर भगवान् शिवका

पंचमं च यदा लक्षं फलं यच्छत्यसंशयम्।
अनेनैव तु मंत्रेण दशलक्षे फलं भवेत्॥ २४

दर्शन होता है और जब पाँचवें लाखका जप पूरा होता है, तब भगवान् शिव जपका फल निःसन्देह प्रदान करते हैं। इसी मन्त्रका दस लाख जप हो जाय, तो सम्पूर्ण फलकी सिद्धि होती है॥ २३-२४॥

मुक्तिकामो भवेद्यो वै दर्भैश्च पूजनं चरेत्।
लक्षसंख्या तु सर्वत्र ज्ञातव्या ऋषिसत्तम॥ २५

जो मोक्षकी अभिलाषा रखता है, वह एक लाख दर्भोंद्वारा शिवका पूजन करे। मुनिश्रेष्ठ! शिवकी पूजामें सर्वत्र लाखकी ही संख्या समझनी चाहिये॥ २५॥

आयुःकामो भवेद्यो वै दूर्वाभिः पूजनं चरेत्।
पुत्रकामो भवेद्यो वै धत्तूरकुसुमैश्चरेत्॥ २६

आयुकी इच्छावाला पुरुष एक लाख दूर्वाओंद्वारा पूजन करे। जिसे पुत्रकी अभिलाषा हो, वह धतूरेके एक लाख फूलोंसे पूजा करे॥ २६॥

रक्तदण्डश्च धत्तूरः पूजने शुभदः स्मृतः।
अगस्त्यकुसुमैश्चैव पूजकस्य महद्यशः॥ २७

लाल डंठलवाला धतूरा पूजनमें शुभदायक माना गया है। अगस्त्यके फूलोंसे पूजा करनेवाले पुरुषको महान् यशकी प्राप्ति होती है॥ २७॥

भुक्तिमुक्तिफलं तस्य तुलस्या पूजयेद्यदि।
अर्कपुष्पैः प्रतापश्च कुब्जकह्लारकैस्तथा॥ २८

यदि तुलसीदलसे शिवकी पूजा करे, तो उपासकको भोग और मोक्षका फल प्राप्त होता है। लाल और सफेद मदार, अपामार्ग और कह्लारके फूलोंद्वारा पूजा करनेसे प्रतापकी प्राप्ति होती है॥ २८॥

जपाकुसुमपूजा तु शत्रूणां मृत्युदा स्मृता।
रोगोच्चाटनकानीह करवीराणि वै क्रमात्॥ २९

अड़हुलके फूलोंसे की हुई पूजा शत्रुविनाशक कही गयी है। करवीरके एक लाख फूल यदि शिवपूजनके उपयोगमें लाये जायँ, तो वे यहाँ रोगोंका उच्चाटन करनेवाले होते हैं॥ २९॥

बंधूकैर्भूषणावाप्तिर्जात्या वाहान्न संशयः।
अतसीपुष्पकैर्देवं विष्णुवल्लभतामियात्॥ ३०

बन्धूक [गुलदुपहरिया]-के फूलोंद्वारा [पूजन करनेसे] आभूषणकी प्राप्ति होती है। चमेलीसे शिवकी पूजा करके मनुष्य वाहनोंको उपलब्ध करता है, इसमें संशय नहीं है। अतसीके फूलोंसे महादेवजीका पूजन करनेवाला पुरुष भगवान् विष्णुका प्रिय हो जाता है॥ ३०॥

शमीपत्रैस्तथा मुक्तिः प्राप्यते पुरुषेण च।
मल्लिकाकुसुमैर्दत्तैः स्त्रियं शुभतरां शिवः॥ ३१

शमीपत्रोंसे [पूजा करके] मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है। बेलाके फूल चढ़ानेपर भगवान् शिव अत्यन्त शुभलक्षणा पत्नी प्रदान करते हैं॥ ३१॥

यूथिकाकुसुमैः शस्तैर्गृहं नैव विमुच्यते।
कर्णिकारैस्तथा वस्त्रसंपत्तिर्जायते नृणाम्॥ ३२

जूहीके फूलोंसे पूजा की जाय, तो घरमें कभी अन्नकी कमी नहीं होती। कनेरके फूलोंसे पूजा करनेपर मनुष्योंको वस्त्र-सम्पदाकी प्राप्ति होती है॥ ३२॥

निर्गुण्डीकुसुमैर्लोके मनो निर्मलतां व्रजेत्।
विल्वपत्रैस्तथा लक्षैः सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥ ३३

सेंदुआरि या शेफालिकाके फूलोंसे लोकमें शिवका पूजन किया जाय, तो मन निर्मल होता है। एक लाख बिल्वपत्रोंसे पूजन करनेपर मनुष्य अपनी सारी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है॥ ३३॥

शृङ्गारहारपुष्पैस्तु वर्धते सुखसम्पदा।
ऋतुजातानि पुष्पाणि मुक्तिदानि न संशयः॥ ३४

हरसिंगारके फूलोंसे पूजा करनेपर सुख-सम्पत्तिकी वृद्धि होती है। ऋतुमें पैदा होनेवाले फूल [यदि शिवकी पूजामें समर्पित किये जायँ, तो वे] मोक्ष देनेवाले होते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ३४॥

राजिकाकुसुमानीह शत्रूणां मृत्युदानि च।
एषां लक्षं शिवे दद्याद्दद्याच्च विपुलं फलम्॥ ३५

राईके फूल शत्रुओंके लिये अनिष्टकारी होते हैं। इन फूलोंको एक लाखकी संख्यामें शिवके ऊपर चढ़ाया जाय, तो भगवान् शिव प्रचुर फल प्रदान करते हैं॥ ३५॥

विद्यते कुसुमं तन्न यन्नैव शिववल्लभम्।
चम्पकं केतकं हित्वा त्वन्यत्सर्वं समर्पयेत्॥ ३६

चम्पा और केवड़ेको छोड़कर अन्य कोई ऐसा फूल नहीं है, जो भगवान् शिवको प्रिय न हो, अन्य सभी पुष्पोंको समर्पित करना चाहिये॥ ३६॥

अतः परं च धान्यानां पूजने शंकरस्य च।
प्रमाणं च फलं सर्वं प्रीत्या शृणु च सत्तम॥ ३७

हे सत्तम! अब इसके अनन्तर शंकरके पूजनमें धान्योंका प्रमाण तथा [उनके अर्पणका] फल—यह सब प्रेमपूर्वक सुनिये॥ ३७॥

तंदुलारोपणे नृणां लक्ष्मी वृद्धिः प्रजायते।
अखण्डितविधौ विप्र सम्यग्भक्त्या शिवोपरि॥ ३८

हे विप्र! महादेवके ऊपर परम भक्तिसे अखण्डित चावल चढ़ानेसे मनुष्योंकी लक्ष्मी बढ़ती है॥ ३८॥

षट्केनैव तु प्रस्थानां तदर्धेन तथा पुनः।
पलद्वयं तथा लक्षमानेन समुदाहृतम्॥ ३९

साढ़े छः प्रस्थ और दो पलभर चावल संख्यामें एक लाख हो जाते है। ऐसा लोगोंका कहना है॥ ३९॥

पूजां रुद्रप्रधानेन कृत्वा वस्त्रं सुसुन्दरम्।
शिवोपरि न्यसेत्तत्र तंदुलार्पणमुत्तमम्॥ ४०

रुद्रप्रधान मन्त्रसे पूजा करके भगवान् शिवके ऊपर बहुत सुन्दर वस्त्र चढ़ाये और उसीपर चावल रखकर समर्पित करे, तो उत्तम है॥ ४०॥

उपरि श्रीफलं त्वेकं गन्धपुष्पादिभिस्तथा।
रोपयित्वा च धूपादि कृत्वा पूजाफलं भवेत्॥ ४१

तत्पश्चात् उसके ऊपर गन्ध, पुष्प आदिके साथ एक श्रीफल चढ़ाकर धूप आदि निवेदन करे, तो पूजाका पूरा-पूरा फल प्राप्त होता है॥ ४१॥

प्राजापत्यद्वयं रौप्यमाषसंख्या च दक्षिणा।
देया तदुपदेष्ट्रे हि शक्त्या वा दक्षिणा मता॥ ४२

प्रजापति देवतासे चिह्नांकित दो चाँदीके रुपये अथवा माषसंख्यासे उपदेष्टाको दक्षिणा देनी चाहिये अथवा यथाशक्ति जितनी दक्षिणा हो सके, उतनी दक्षिणा बतायी गयी है॥ ४२॥

आदित्यसंख्यया तत्र ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः।
लक्षपूजा तथा जाता साङ्गं च मन्त्रपूर्वकम्॥ ४३
शतमष्टोत्तरं तत्र मंत्रे विधिरुदाहृतः।

वहाँ शिवके समीप बारह ब्राह्मणोंको भोजन कराये। इससे मन्त्रपूर्वक सांगोपांग लक्षपूजा सम्पन्न होती है। जहाँ सौ मन्त्र जपनेकी विधि हो, वहाँ एक सौ आठ मन्त्र जपनेका विधान बताया गया है॥ ४३ १/२॥

तिलानां च पलं लक्षं महापातकनाशनम्॥ ४४
एकादशपलैरेव लक्षमानमुदाहृतम्।
पूर्ववत्पूजनं तत्र कर्तव्यं हितकाम्यया॥ ४५

एक लाख पल तिलोंका अर्पण पातकोंका नाश करनेवाला होता है। ग्यारह पल (६४ माशा)-में एक लाखकी संख्यामें तिल होते हैं। [अतः इस परिमाणके अनुसार] तिलद्वारा अपने कल्याणके लिये पूर्वकी भाँति पूर्वोक्त विधिसे शिवकी पूजा करनी चाहिये॥ ४४-४५॥

भोज्या वै ब्राह्मणास्तस्मादत्र कार्या नरेण हि।
महापातकजं दुःखं तत्क्षणान्नश्यति ध्रुवम्॥ ४६

यवपूजा तथा प्रोक्ता लक्षेण परमा शिवे।
प्रस्थानामष्टकं चैव तथा प्रस्थार्धकं पुनः॥ ४७

पलद्वययुतं तत्र मानमेतत्पुरातनम्।
यवपूजा च मुनिभिः स्वर्गसौख्यविवर्धिनी॥ ४८

प्राजापत्यं ब्राह्मणानां कर्तव्यं च फलेप्सुभिः।
गोधूमान्नैस्तथा पूजा प्रशस्ता शंकरस्य वै॥ ४९

संततिर्वर्धते तस्य यदि लक्षावधिः कृता।
द्रोणार्धेन भवेल्लक्षं विधानं विधिपूर्वकम्॥ ५०

मुद्गानां पूजने देवः शिवो यच्छति वै सुखम्।
प्रस्थानां सप्तकेनैव प्रस्थार्धेनाथवा पुनः॥ ५१
पलद्वययुतेनैव लक्षमुक्तं पुरातनैः।
ब्राह्मणाश्च तथा भोज्या रुद्रसंख्याप्रमाणतः॥ ५२

प्रियंगुपूजनादेव धर्माध्यक्षे परात्मनि।
धर्मार्थकामा वर्धन्ते पूजा सर्वसुखावहा॥ ५३

प्रस्थैकेन च तस्योक्तं लक्षमेकं पुरातनैः।
ब्रह्मभोजं तथाप्रोक्तमर्कसंख्याप्रमाणतः॥ ५४

राजिकापूजनं शंभोः शत्रोर्मृत्युकरं स्मृतम्।
सर्षपाणां तथा लक्षं पलैर्विंशतिसंख्यया॥ ५५

तेषां च पूजनादेव शत्रोर्मृत्युरुदाहृतः।
आढकीनां दलैश्चैव शोभयित्वार्चयेच्छिवम्॥ ५६

वृता गौश्च प्रदातव्या बलीवर्दस्तथैव च।
मरीचिसम्भवा पूजा शत्रोर्नाशकरी स्मृता॥ ५७

इस अवसरपर मनुष्यको ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। इससे महापातकजन्य दुःख निश्चित ही दूर हो जाता है॥ ४६॥

इसी प्रकार एक लाख यवसे भी की गयी शिवकी पूजा उत्तम कही गयी है। साढ़े आठ प्रस्थ और दो पल (साढ़े आठ सेर तेरह माशा) यव प्राचीन परिमाणके अनुसार संख्यामें एक लाख यवके बराबर होते हैं। मुनियोंने यवके द्वारा की गयी पूजाको स्वर्गका सुख प्रदान करनेवाली बताया है॥ ४७-४८॥

फलप्राप्तिके इच्छुक लोगोंको (यवपूजा करनेके पश्चात्) ब्राह्मणोंके लिये प्रजापति देवताके द्रव्यभूत चाँदीके रुपये भी दक्षिणारूपमें देना चाहिये। गेहूँसे भी की गयी शिवपूजा प्रशस्त है। यदि एक लाख गेहूँसे शिवकी पूजा की जाय, तो उसकी सन्ततिकी अभिवृद्धि होती है। विधानतः आधा द्रोण (आठ सेर) परिमाणमें गेहूँकी संख्या एक लाख होती है। शेष विधान विधिपूर्वक करने चाहिये॥ ४९-५०॥

(एक लाख) मूँगसे पूजन किये जानेपर भगवान् शिव सुख देते हैं। साढ़े सात प्रस्थ और दो पल (साढ़े सात सेर तेरह माशा भर) मूँग संख्यामें एक लाख होती है—ऐसा प्राचीन लोगोंने कहा है। इसमें ग्यारह ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये॥ ५१-५२॥

प्रियंगु (काकुन)-के द्वारा धर्माध्यक्ष परमात्मा शिवकी पूजा करनेपर धर्म, अर्थ और कामकी अभिवृद्धि होती है। वह पूजा सभी सुखोंको देनेवाली है। प्राचीन लोगोंने कहा है कि एक प्रस्थमें एक लाख प्रियंगु होते हैं। इसके अनन्तर बारह ब्राह्मणोंको भोजन कराना बताया गया है॥ ५३-५४॥

राईसे की गयी शिवपूजा शत्रुविनाशक कही गयी है। बीस पल (३० माशा) भर सरसोंके एक लाख दाने हो जाते हैं। उन एक लाख सरसोंके दानोंसे की गयी शिवकी पूजा निश्चित ही शत्रुके लिये घातक होती है—ऐसा कहा गया है। अरहरकी पत्तियोंसे शिवजीको सुशोभित करके उनका पूजन करना चाहिये॥ ५५-५६॥

शिवकी पूजा करनेके पश्चात् एक गौ और एक बैलका दान करना चाहिये। मरीचि (काली मिर्च)-से की गयी शिवकी पूजा शत्रुका नाश करनेवाली बतायी

आढकीनां दलैश्चैव रंजयित्वार्चयेच्छिवम्।
नानासुखकरी ह्येषा पूजा सर्वफलप्रदा॥ ५८

धान्यमानमिति प्रोक्तं मया ते मुनिसत्तम।
लक्षमानं तु पुष्पाणां शृणु प्रीत्या मुनीश्वर॥ ५९

प्रस्थानां च तथा चैकं शंखपुष्पसमुद्भवम्।
प्रोक्तं व्यासेन लक्षं हि सूक्ष्ममानप्रदर्शिना॥ ६०

प्रस्थैरेकादशैर्जातिलक्षमानं प्रकीर्तितम्।
यूथिकायास्तथा मानं राजिकायास्तदर्धकम्॥ ६१

प्रस्थैर्विंशतिकैश्चैव मल्लिकामानमुत्तमम्।
तिलपुष्पैस्तथा मानं प्रस्थान्यूनं तथैव च॥ ६२

ततश्च त्रिगुणं मानं करवीरभवे स्मृतम्।
निर्गुंडीकुसुमे मानं तथैव कथितं बुधैः॥ ६३

कर्णिकारे तथा मानं शिरीषकुसुमे पुनः।
बंधुजीवे तथा मानं प्रस्थानां दशकेन च॥ ६४

इत्याद्यैर्विविधैर्मानं दृष्ट्वा कुर्याच्छिवार्चनम्।
सर्वकामसमृद्ध्यर्थं मुक्त्यर्थं कामनोज्झितः॥ ६५

अतः परं प्रवक्ष्यामि धारापूजाफलं महत्।
यस्य श्रवणमात्रेण कल्याणं जायते नृणाम्॥ ६६

विधानपूर्वकं पूजां कृत्वा भक्त्या शिवस्य वै।
पश्चाच्च जलधारा हि कर्तव्या भक्तितत्परैः॥ ६७

ज्वरप्रलापशांत्यर्थं जलधारा शुभावहा।
शतरुद्रियमंत्रेण रुद्रस्यैकादशेन तु॥ ६८

रुद्रजाप्येन वा तत्र सूक्तेन पौरुषेण वा।
षडंगेनाथ वा तत्र महामृत्युंजयेन च॥ ६९

गायत्र्या वा नमोऽन्तैश्च नामभिः प्रणवादिभिः।
मंत्रैर्वाथागमोक्तैश्च जलधारादिकं तथा॥ ७०

गयी है। अरहरकी पत्तियोंसे रँग करके शिवकी पूजा करनी चाहिये। यह पूजा नाना प्रकारके सुख एवं सभी अभीष्ट फलोंको देनेवाली है॥ ५७-५८॥

हे मुनिसत्तम! [शिवपूजामें] इस प्रकारसे प्रयुक्त धान्योंका परिमाण तो हमने आपलोगोंको बता दिया है। हे मुनीश्वर! अब प्रेमपूर्वक एक लाख पुष्पोंका परिमाण भी सुनें॥ ५९॥

सूक्ष्म मानको प्रदर्शित करनेवाले व्यासजीने एक प्रस्थमें शंखपुष्पीके पुष्पोंकी संख्या एक लाख बतायी है॥ ६०॥

ग्यारह प्रस्थमें चमेलीके फूलोंका मान एक लाख कहा गया है। इतना ही जूहीके फूलोंका मान है और उसका आधा राईके फूलोंका मान होता है॥ ६१॥

मल्लिका [मालती]-के लाख फूलोंका पूर्ण मान बीस प्रस्थ है। तिलके पुष्पोंका मान मल्लिकाके मानकी अपेक्षा एक प्रस्थ कम होता है॥ ६२॥

कनेरके पुष्पोंका मान तिलके पुष्पोंके मानका तिगुना कहा गया है। पण्डितोंने निर्गुण्डीके पुष्पोंका भी उतना ही मान बताया है॥ ६३॥

केवड़ा, शिरीष तथा बन्धुजीव (दुपहरिया)-के एक लाख पुष्पोंका मान दस प्रस्थके बराबर होता है॥ ६४॥

इस तरह अनेक प्रकारके मानको दृष्टिमें रखकर सभी कामनाओंकी सिद्धिके लिये तथा मुक्ति प्राप्त करनेके लिये कामनारहित होकर शिवकी पूजा करनी चाहिये॥ ६५॥

अब मैं जलधारा-पूजाके महान् फलको कह रहा हूँ, जिसके श्रवणमात्रसे ही मनुष्योंका कल्याण हो जाता है॥ ६६॥

भक्तिपूर्वक सदाशिवकी विधिवत् पूजा करनेके पश्चात् उन्हें जलधारा समर्पित करे॥ ६७॥

[सन्निपातादि] ज्वरमें होनेवाले प्रलापकी शान्तिके लिये भगवान् शिवको दी जानेवाली कल्याणकारी जलधारा शतरुद्रिय मन्त्रसे, एकादश रुद्रसे, रुद्रमन्त्रोंके जपसे, पुरुषसूक्तसे, छः ऋचावाले रुद्रसूक्तसे, महामृत्युंजयमन्त्रसे, गायत्रीमन्त्रसे अथवा शिवके शास्त्रोक्त नामोंके आदिमें प्रणव और अन्तमें नमः पद जोड़कर बने हुए मन्त्रोंद्वारा अर्पित करनी चाहिये॥ ६८—७०॥

सुखसन्तानवृद्ध्यर्थं धारापूजनमुत्तमम्।
नानाद्रव्यैः शुभैर्दिव्यैः प्रीत्या सद्भस्मधारिणा॥ ७१

घृतधारा शिवे कार्या यावन्मन्त्रसहस्रकम्।
तदा वंशस्य विस्तारो जायते नात्र संशयः॥ ७२

सुख और सन्तानकी वृद्धिके लिये जलधाराद्वारा पूजन उत्तम होता है। उत्तम भस्म धारण करके उपासकको प्रेमपूर्वक नाना प्रकारके शुभ एवं दिव्य द्रव्योंद्वारा शिवकी पूजा करनी चाहिये और शिवपर उनके सहस्रनाम मन्त्रोंसे घृतकी धारा गिरानी चाहिये। ऐसा करनेपर वंशका विस्तार होता है, इसमें संशय नहीं है॥ ७१-७२॥

एवमयुतमन्त्रेण कार्यं वै शिवपूजनम्।
प्रमेहरोगशान्त्यर्थं प्राप्नुयाच्च मनेप्सितम्।
षण्ढत्वं यदादातस्तदा घृतसुपूजनम्।
ब्रह्मभोज्यं तथा प्रोक्तं प्राजापत्यं मुनीश्वरैः॥ ७३

इस प्रकार यदि दस हजार मन्त्रोंद्वारा शिवजीकी पूजा की जाय तो प्रमेह रोगकी शान्ति होती है और उपासकको मनोवांछित फलकी प्राप्ति हो जाती है। यदि कोई नपुंसकताको प्राप्त हो तो वह घीसे शिवजीकी भलीभाँति पूजा करे। इसके पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन कराये, साथ ही उसके लिये मुनीश्वरोंने प्राजापत्यव्रतका भी विधान किया है॥ ७३॥

केवलं दुग्धधारा च तदा कार्या विशेषतः।
शर्करामिश्रिता तत्र यदा बुद्धिजडो भवेत्॥ ७४

तस्य सञ्जायते जीवसदृशी बुद्धिरुत्तमा।
यावन्मंत्रायुतं न स्यात्तावद्धाराप्रपूजनम्॥ ७५

यदि बुद्धि जड़ हो जाय, तो उस अवस्थामें पूजकको केवल शर्करामिश्रित दुग्धकी धारा चढ़ानी चाहिये। ऐसा करनेपर उसकी बृहस्पतिके समान उत्तम बुद्धि हो जाती है। जबतक दस हजार मन्त्र न हो जायँ, तबतक दुग्धधाराद्वारा भगवान् शिवका पूजन करते रहना चाहिये॥ ७४-७५॥

यदा चोच्चाटनं देहे जायते कारणं विना।
यत्र कुत्रापि वा प्रेम दुःखं च परिवर्धितम्॥ ७६

स्वगृहे कलहो नित्यं यदा चैव प्रजायते।
तद्धारायां कृतायां वै सर्वं दुःखं विलीयते॥ ७७

जब शरीरमें अकारण ही उच्चाटन होने लगे—जी उचट जाय, जहाँ कहीं भी प्रेम न रहे, दुःख बढ़ जाय और अपने घरमें सदा कलह होने लगे, तब पूर्वोक्त रूपसे दूधकी धारा चढ़ानेसे सारा दुःख नष्ट हो जाता है॥ ७६-७७॥

शत्रूणां तापनार्थं वै तैलधारा शिवोपरि।
कर्तव्या सुप्रयत्नेन कार्यसिद्धिर्ध्रुवं भवेत्॥ ७८

शत्रुओंको सन्तप्त करनेके लिये पूर्ण प्रयत्नके साथ भगवान् शंकरके ऊपर तेलकी धारा अर्पित करनी चाहिये। ऐसा करनेपर निश्चित ही कर्मकी सिद्धि होती है॥ ७८॥

वासितेनैव तैलेन भोगवृद्धिः प्रजायते।
सार्षपेनैव तैलेन शत्रुनाशो भवेद् ध्रुवम्॥ ७९

मधुना यक्षराजो वै गच्छेच्च शिवपूजनात्।
धारा चेक्षुरसस्यापि सर्वानन्दकरी शिवे॥ ८०

सुगन्धित तेलकी धारा अर्पित करनेपर भोगोंकी वृद्धि होती है। यदि मधुकी धारासे शिवकी पूजा की जाय, तो राजयक्ष्माका रोग दूर हो जाता है। शिवजीके ऊपर ईखके रसकी धारा चढ़ायी जाय, तो वह भी सम्पूर्ण आनन्दकी प्राप्ति करानेवाली होती है॥ ७९-८०॥

धारा गंगाजलस्यैव भुक्तिमुक्तिफलप्रदा।
एताः सर्वाश्च याः प्रोक्ता मृत्युंजयसमुद्भवाः॥ ८१

गंगाजलकी धारा तो भोग और मोक्ष दोनों फलोंको देनेवाली है। ये सब जो-जो धाराएँ बतायी गयी हैं, इन सबको मृत्युंजय मन्त्रसे चढ़ाना चाहिये,

तत्रायुतप्रमाणं हि कर्तव्यं तद्विधानतः।
कर्तव्यं ब्राह्मणानां च भोज्यं वै रुद्रसंख्यया॥ ८२

उसमें भी उक्त मन्त्रका विधानतः दस हजार जप करना चाहिये और ग्यारह ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये॥ ८१-८२॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं मुनीश्वर।
एतद्वै सफलं लोके सर्वकामहितावहम्॥ ८३

हे मुनीश्वर! जो आपने पूछा था, वह सब मैंने आपको बता दिया। संसारमें सदाशिवकी यह पूजा समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेमें समर्थ और सफल है॥ ८३॥

स्कन्दोमासहितं शंभुं संपूज्य विधिना सह।
यत्फलं लभते भक्त्या तद्वदामि यथाश्रुतम्॥ ८४

भक्तिपूर्वक यथाविधि स्कन्द और उमाके सहित भगवान् शम्भुकी पूजा करके भक्त जो फल प्राप्त करता है, उसे जैसा सुना है, वैसा ही कह रहा हूँ॥ ८४॥

अत्र भुक्त्वाखिलं सौख्यं पुत्रपौत्रादिभिः शुभम्।
ततो याति महेशस्य लोकं सर्वसुखावहम्॥ ८५

वह इस लोकमें पुत्र-पौत्र आदिके साथ समस्त सुखोंका उपभोग करके अन्तमें सभी सुखोंको देनेवाले शिवलोकको जाता है॥ ८५॥

सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैः सर्वकामगैः।
रुद्रकन्यासमाकीर्णैर्गेयवाद्यसमन्वितैः॥ ८६

क्रीडते शिवभूतश्च यावदाभूतसंप्लवम्।
ततो मोक्षमवाप्नोति विज्ञानं प्राप्य चाव्ययम्॥ ८७

वह भक्त वहाँ करोड़ों सूर्यके समान देदीप्यमान तथा सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले विमानोंपर गान-वाद्ययन्त्रोंसे युक्त रुद्रकन्याओंसे घिरकर बैठे हुए शिवरूपमें प्रलयपर्यन्त क्रीड़ा करता है। तदनन्तर अविनाशी परम ज्ञानको प्राप्त करके मोक्षको पा लेता है॥ ८६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने शिवपूजाविधानवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टि-उपाख्यानमें शिवपूजनवर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

सृष्टिका वर्णन

नारद उवाच

विधे विधे महाभाग धन्यस्त्वं सुरसत्तम।
श्राविताद्याद्भुता शैवकथा परमपावनी॥ १

नारदजी बोले—हे महाभाग! हे विधे! हे देवश्रेष्ठ! आप धन्य हैं। आपने आज यह शिवकी परमपावनी अद्भुत कथा सुनायी॥ १॥

तत्राद्भुता महादिव्या लिङ्गोत्पत्तिः श्रुता शुभा।
श्रुत्वा यस्याः प्रभावं च दुःखनाशो भवेदिह॥ २

इसमें सदाशिवकी लिंगोत्पत्तिकी जो कथा हमने सुनी है, वह महादिव्य, कल्याणकारी और अद्भुत है; जिसके प्रभावमात्रको ही सुनकर दुःख नष्ट हो जाते हैं॥ २॥

अनंतरं च यज्जातं माहात्म्यं चरितं तथा।
सृष्टेश्चैव प्रकारं च कथय त्वं विशेषतः॥ ३

इस कथाके पश्चात् जो हुआ, उसका माहात्म्य और उसके चरित्रका वर्णन करें। यह सृष्टि किस प्रकारसे हुई, इसका भी आप विशेष रूपसे वर्णन करें?॥ ३॥

ब्रह्मोवाच

सम्यक् पृष्टं च भवता यज्जातं तदनंतरम्।
कथयिष्यामि संक्षेपाद्यथा पूर्वं श्रुतं मया॥ ४

ब्रह्माजी बोले—आपने यह उचित ही पूछा है। तदनन्तर जो हुआ और मैंने जैसा पहले सुना है, वैसा ही मैं संक्षेपमें कहूँगा॥ ४॥

अंतर्हिते तदा देवे शिवरूपे सनातने।
अहं विष्णुश्च विप्रेन्द्र अधिकं सुखमाप्तवान्॥ ५

हे विप्रेन्द्र! जब सनातनदेव शिव अपने स्वरूपमें अन्तर्धान हो गये, तब मैंने और भगवान् विष्णुने महान् सुखकी अनुभूति की॥ ५॥

मया च विष्णुना रूपं हंसवाराहयोस्तदा।
संवृतं तु ततस्ताभ्यां लोकसर्गावनेच्छया॥ ६

तदनन्तर हम दोनों—ब्रह्मा और विष्णुने अपने-अपने हंस और वाराहरूपका परित्याग किया। सृष्टि-संरचना और उसके पालनकी इच्छासे हमदोनों उस शिवकी मायाके दोनों प्रकारोंसे घिर गये॥ ६॥

नारद उवाच

विधे ब्रह्मन् महाप्राज्ञ संशयो हृदि मे महान्।
कृपां कृत्वातुलां शीघ्रं तं नाशयितुमर्हसि॥ ७

नारदजी बोले—हे विधे! हे महाप्राज्ञ ब्रह्मन्! मेरे हृदयमें महान् सन्देह है। अतुलनीय कृपा करके शीघ्र ही उसको नष्ट करें॥ ७॥

हंसवाराहयो रूपं युवाभ्यां च धृतं कथम्।
अन्यद्रूपं विहायैव किमत्र वद कारणम्॥ ८

अन्य रूपोंको छोड़कर आप दोनोंने हंस और वाराहका ही रूप क्यों धारण किया, इसका क्या कारण है? बताइये॥ ८॥

सूत उवाच

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा नारदस्य महात्मनः।
स्मृत्वा शिवपदांभोजं ब्रह्मा सादरमब्रवीत्॥ ९

सूतजी बोले—महात्मा नारदजीका यह वचन सुनकर ब्रह्माने शिवके चरणारविन्दोंका स्मरण करके आदरपूर्वक यह कहना प्रारम्भ किया॥ ९॥

ब्रह्मोवाच

हंसस्य चोर्ध्वगमने गतिर्भवति निश्चला।
तत्त्वातत्त्वविवेकोऽस्ति जलदुग्धविभागवत्॥ १०

ब्रह्माजी बोले—हंसकी निश्चल गति ऊपरकी ओर गमन करनेमें ही होती है। जल और दूधको पृथक्-पृथक् करनेके समान तत्त्व और अतत्त्वको भी जाननेमें वह समर्थ होता है॥ १०॥

अज्ञानज्ञानयोस्तत्त्वं विवेचयति हंसकः।
हंसरूपं धृतं तेन ब्रह्मणा सृष्टिकारिणा॥ ११

अज्ञान एवं ज्ञानके तत्त्वका विवेचन हंस ही कर सकता है। इसलिये सृष्टिकर्ता मुझ ब्रह्माने हंसका रूप धारण किया॥ ११॥

विवेको नैव लब्धश्च यतो हंसो व्यलीयत।
शिवस्वरूपतत्त्वस्य ज्योतिरूपस्य नारद॥ १२

हे नारद! प्रकाश-स्वरूप शिवतत्त्वका विवेक वह हंसरूप प्राप्त न कर सका, अतः उसे छोड़ देना पड़ा॥ १२॥

सृष्टिप्रवृत्तिकामस्य कथं ज्ञानं प्रजायते।
यतो लब्धो विवेकोऽपि न मया हंसरूपिणा॥ १३

सृष्टिसंरचनाके लिये तत्पर प्रवृत्तिको ज्ञानकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? जब हंसरूपमें मैं नहीं जान सका, तो मैंने उस रूपको छोड़ दिया॥ १३॥

गमनेऽधो वराहस्य गतिर्भवति निश्चला।
धृतं वाराहरूपं हि विष्णुना वनचारिणा॥ १४

नीचेकी ओर जानेमें वाराहकी निश्चल गति होती है, इसलिये विष्णुने उस सदाशिवके अद्भुत लिंगके मूलभागमें पहुँचनेकी इच्छासे वाराहका ही रूप धारण किया॥ १४॥

अथवा भवकल्पार्थं तद्रूपं हि प्रकल्पितम्।
विष्णुना च वराहस्य भुवनावनकारिणा॥ १५

अथवा संसारका पालन करनेवाले विष्णुने जगत्‌में वाराहकल्पको बनानेके लिये उस रूपको धारण किया॥ १५॥

यद्दिनं हि समारभ्य तद्रूपं धृतवान्हरिः।
तद्दिनं प्रतिकल्पोऽसौ कल्पो वाराहसंज्ञकः॥ १६

जिस दिन भगवान्‌ने उस रूपको धारण किया, उसी दिनसे वह [श्वेत] वाराह-संज्ञक-कल्प प्रारम्भ हुआ था॥ १६॥

तदिच्छा वा यदा जाता तस्य रूपस्य धारणे।
तद्दिनं प्रतिकल्पोऽसौ कल्पो वाराहसंज्ञकः॥ १७

अथवा उन महेश्वरकी जब यह इच्छा हुई कि विवादमें फँसे हम दोनोंके द्वारा हंस और वाराहका रूप धारण किया जाय, उसी दिनसे उस वाराह नामके कल्पका भी प्रादुर्भाव हुआ॥ १७॥

इति प्रश्नोत्तरं दत्तं प्रस्तुतं शृणु नारद।
स्मृत्वा शिवपदांभोजं वक्ष्ये सृष्टिविधिं मुने॥ १८

हे नारद! सुनिये। मैंने इस प्रकारसे तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर प्रस्तुत कर दिया है। हे मुने! अब सदाशिवके चरणकमलका स्मरण करके मैं सृष्टिसृजनकी विधि बता रहा हूँ॥ १८॥

अंतर्हिते महादेवे त्वहं लोकपितामहः।
तदीयं वचनं कर्तुमध्यायन्ध्यानतत्परः॥ १९

[ब्रह्माजी बोले—हे मुने!] जब महादेवजी अन्तर्धान हो गये, तब मैं उनकी आज्ञाका पालन करनेके लिये ध्यानमग्न हो कर्तव्यका विचार करने लगा॥ १९॥

नमस्कृत्य तदा शंभुं ज्ञानं प्राप्य हरेस्तदा।
आनंदं परमं गत्वा सृष्टिं कर्तुं मनो दधे॥ २०

विष्णुश्चापि तदा तत्र प्रणिपत्य सदाशिवम्।
उपदिश्य च मां तात ह्यंतर्धानमुपागतः॥ २१

उस समय भगवान् शंकरको नमस्कार करके श्रीहरिसे ज्ञान पाकर, परमानन्दको प्राप्त होकर मैंने सृष्टि करनेका ही निश्चय किया। हे तात! भगवान् विष्णु भी वहाँ सदाशिवको प्रणाम करके मुझे उपदेश देकर तत्काल अदृश्य हो गये॥ २०-२१॥

ब्रह्माण्डाच्च बहिर्गत्वा प्राप्य शम्भोरनुग्रहम्।
वैकुंठनगरं गत्वा तत्रोवास हरिः सदा॥ २२

वे ब्रह्माण्डसे बाहर जाकर भगवान् शिवकी कृपा प्राप्त करके वैकुण्ठधाममें पहुँचकर सदा वहीं रहने लगे॥ २२॥

अहं स्मृत्वा शिवं तत्र विष्णुं वै सृष्टिकाम्यया।
पूर्वं सृष्टं जलं यच्च तत्रांजलिमुदाक्षिपम्॥ २३

मैंने सृष्टिकी इच्छासे भगवान् शिव और विष्णुका स्मरण करके पहलेके रचे हुए जलमें अपनी अंजलि डालकर जलको ऊपरकी ओर उछाला॥ २३॥

अतोऽण्डमभवत्तत्र चतुर्विंशतिसंज्ञकम्।
विराड्रूपमभूद्विप्र जलरूपमपश्यतः॥ २४

इससे वहाँ चौबीस तत्त्वोंवाला एक अण्ड प्रकट हुआ। हे विप्र! उस जलरूप अण्डको मैं देख भी न सका, इतनेमें वह विराट् आकारवाला हो गया॥ २४॥

ततः संशयमापन्नस्तपस्तेपे सुदारुणम्।
द्वादशाब्दमहं तत्र विष्णुध्यानपरायणः॥ २५

[उसमें चेतनता न देखकर] मुझे बड़ा संशय हुआ और मैं अत्यन्त कठोर तप करने लगा। बारह वर्षोंतक मैं भगवान् विष्णुके चिन्तनमें लगा रहा॥ २५॥

तस्मिंश्च समये तात प्रादुर्भूतो हरिः स्वयम्।
मामुवाच महाप्रीत्या मदङ्गं संस्पृशन्मुदा॥ २६

हे तात! उस समयके पूर्ण होनेपर भगवान् श्रीहरि स्वयं प्रकट हुए और बड़े प्रेमसे मेरे अंगोंका स्पर्श करते हुए मुझसे प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे— ॥ २६॥

विष्णुरुवाच

वरं ब्रूहि प्रसन्नोऽस्मि नादेयो विद्यते तव।
ब्रह्मन् शंभुप्रसादेन सर्वं दातुं समर्थकः॥ २७

विष्णु बोले—हे ब्रह्मन्! आप वर माँगिये। मैं प्रसन्न हूँ। मुझे आपके लिये कुछ भी अदेय नहीं है। भगवान् शिवकी कृपासे मैं सब कुछ देनेमें समर्थ हूँ॥ २७॥

ब्रह्मोवाच

युक्तमेतन्महाभाग दत्तोऽहं शंभुना च ते।
तदुक्तं याचते मेऽद्य देहि विष्णो नमोऽस्तु ते॥ २८

ब्रह्माजी बोले—हे महाभाग! आपने जो मुझपर कृपा की है, वह सर्वथा उचित ही है; क्योंकि भगवान् शंकरने मुझे आपके हाथोंमें सौंप दिया था। हे विष्णो! आपको नमस्कार है, आज मैं आपसे जो कुछ माँगता हूँ, उसे दीजिये॥ २८॥

विराड्रूपमिदं ह्यण्डं चतुर्विंशतिसंज्ञकम्।
न चैतन्यं भवत्यादौ जडीभूतं प्रदृश्यते॥ २९

हे प्रभो! यह विराट्रूप तथा चौबीस तत्त्वोंसे बना हुआ अण्ड किसी तरह चेतन नहीं हो रहा है, यह जड़ीभूत दिखायी देता है॥ २९॥

प्रादुर्भूतो भवानद्य शिवानुग्रहतो हरे।
प्राप्तं शंकरसंभूत्या ह्यण्डं चैतन्यमावह॥ ३०

हे हरे! इस समय भगवान् शिवकी कृपासे आप यहाँ प्रकट हुए हैं। अतः शंकरकी शक्तिसे सम्भूत इस अण्डमें चेतनता लाइये॥ ३०॥

इत्युक्ते च महाविष्णुः शंभोराज्ञापरायणः।
अनंतरूपमास्थाय प्रविवेश तदण्डकम्॥ ३१

मेरे ऐसा कहनेपर शिवकी आज्ञामें तत्पर रहनेवाले महाविष्णुने अनन्तरूपका आश्रय लेकर उस अण्डमें प्रवेश किया॥ ३१॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं सर्वतः स्पृत्त्वा तदण्डं व्याप्तवानिति॥ ३२

उस समय उन परमपुरुषके सहस्रों मस्तक, सहस्रों नेत्र और सहस्रों पैर थे। उन्होंने भूमिको सब ओरसे घेरकर उस अण्डको व्याप्त कर लिया॥ ३२॥

प्रविष्टे विष्णुना तस्मिन्नण्डे सम्यक्स्तुतेन मे।
सचेतनमभूदण्डं चतुर्विंशतिसंज्ञकम्॥ ३३

मेरे द्वारा भलीभाँति स्तुति किये जानेपर जब श्रीविष्णुने उस अण्डमें प्रवेश किया, तब वह चौबीस तत्त्वोंवाला अण्ड सचेतन हो गया॥ ३३॥

पातालादिसमारभ्य सत्यलोकाधिपः स्वयम्।
राजते स्म हरिस्तत्र वैराजः पुरुषः प्रभुः॥ ३४

पातालसे लेकर सत्यलोकतककी अवधिवाले उस अण्डके रूपमें वहाँ विराट् श्रीहरि ही विराज रहे थे॥ ३४॥

कैलासनगरं रम्यं सर्वोपरिविराजितम्।
निवासार्थं निजस्यैव पंचवक्त्रश्चकार ह॥ ३५

पंचमुख महादेवने केवल अपने रहनेके लिये सुरम्य कैलास-नगरका निर्माण किया, जो सब लोकोंसे ऊपर सुशोभित होता है॥ ३५॥

ब्रह्मांडस्य तथा नाशे वैकुण्ठस्य च तस्य च।
कदाचिदेव देवर्षे नाशो नास्ति तयोरिह॥ ३६

हे देवर्षे! सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका नाश हो जानेपर भी वैकुण्ठ और कैलास—उन दोनोंका कभी नाश नहीं होता॥ ३६॥

सत्यं पदमुपाश्रित्य स्थितोऽहं मुनिसत्तम।
सृष्टिकामोऽभवं तात महादेवाज्ञया ह्यहम्॥ ३७

हे मुनिश्रेष्ठ! मैं सत्यलोकका आश्रय लेकर रहता हूँ। हे तात! महादेवजीकी आज्ञासे ही मुझमें सृष्टि रचनेकी इच्छा उत्पन्न हुई है॥ ३७॥

सिसृक्षोरथ मे प्रादुरभवत्पापसर्गकः।
अविद्यापञ्चकस्तात बुद्धिपूर्वस्तमोपमः॥ ३८

हे तात! जब मैं सृष्टिकी इच्छासे चिन्तन करने लगा, उस समय पहले मुझसे पापपूर्ण तमोगुणी सृष्टिका प्रादुर्भाव हुआ, जिसे अविद्यापंचक (पंचपर्वा अविद्या) कहते हैं॥ ३८॥

ततः प्रसन्नचित्तोऽहमसृजं स्थावराभिधम्।
मुख्यसर्गं च निःसंगमध्यायं शंभुशासनात्॥ ३९

उसके पश्चात् प्रसन्नचित्त मैंने स्थावरसंज्ञक मुख्य सर्ग (पहले सर्ग)-की संरचना की, जो सृष्टि-सामर्थ्यसे रहित था, पुनः शिवकी आज्ञासे मैंने ध्यान किया॥ ३९॥

तं दृष्ट्वा मे सिसृक्षोश्च ज्ञात्वा साधकमात्मनः।
सर्गोऽवर्तत दुःखाढ्यस्तिर्यक्स्रोता न साधकः॥ ४०

उस मुख्य सर्गको वैसा देखकर अपना कार्य साधनेके लिये सृष्टि करनेके इच्छुक मैंने दुःखसे परिपूर्ण तिर्यक्स्रोत [तिरछे उड़नेवाले] सर्ग (दूसरे सर्ग)-का सृजन किया, वह भी पुरुषार्थसाधक नहीं था॥ ४०॥

तं चासाधकमाज्ञाय पुनश्चिन्तयतश्च मे।
अभवत्सात्त्विकः सर्ग ऊर्ध्वस्रोता इति द्रुतम्॥ ४१

उसे भी पुरुषार्थसाधनकी शक्तिसे रहित जानकर जब मैं पुनः सृष्टिका चिन्तन करने लगा, तब मुझसे शीघ्र ही (तीसरे) सात्त्विक सर्गका प्रादुर्भाव हुआ, जिसे ऊर्ध्वस्रोता कहते हैं॥ ४१॥

देवसर्गः प्रतिख्यातः सत्योऽतीव सुखावहः।
तमप्यसाधकं मत्वाऽचिन्तयं प्रभुमात्मनः॥ ४२

यह देवसर्गके नामसे विख्यात हुआ। यह देवसर्ग सत्यवादी तथा अत्यन्त सुखदायक है। उसे भी पुरुषार्थसाधनसे रहित मानकर मैंने अन्य सर्गके लिये अपने स्वामी श्रीशिवका चिन्तन आरम्भ किया॥ ४२॥

प्रादुरासीत्ततः सर्गो राजसः शंकराज्ञया।
अर्वाक्स्रोता इति ख्यातो मानुषः परसाधकः॥ ४३

तब भगवान् शंकरकी आज्ञासे एक रजोगुणी सृष्टिका प्रादुर्भाव हुआ, जिसे अर्वाक्स्रोता (चौथा सर्ग) कहा गया है, जो मनुष्य-सर्ग कहलाता है, वह सर्ग पुरुषार्थसाधनका अधिकारी हुआ॥ ४३॥

महादेवाज्ञया सर्गस्ततो भूतादिकोऽभवत्।
इति पंचविधा सृष्टिः प्रवृत्ता वै कृता मया॥ ४४

तदनन्तर महादेवजीकी आज्ञासे भूत आदिकी सृष्टि [भूतसर्ग—पाँचवाँ सर्ग] हुई। इस प्रकार मैंने पाँच प्रकारकी सृष्टि की॥ ४४॥

त्रयः सर्गाः प्रकृत्याश्च ब्रह्मणः परिकीर्तिताः।
तत्राद्यो महतः सर्गो द्वितीयः सूक्ष्मभौतिकः॥ ४५
वैकारिकस्तृतीयश्च इत्येते प्राकृतास्त्रयः।
एवं चाष्टविधाः सर्गाः प्राकृतैर्वैकृतैः सह॥ ४६

इनके अतिरिक्त तीन प्रकारके सर्ग मुझ ब्रह्मा और प्रकृतिके सान्निध्यसे उत्पन्न हुए। इनमें पहला महत्तत्त्वका सर्ग है, दूसरा सूक्ष्म भूतों अर्थात् तन्मात्राओंका सर्ग और तीसरा वैकारिक सर्ग कहलाता है। इस तरह ये तीन प्राकृत सर्ग हैं। प्राकृत और वैकृत दोनों प्रकारके सर्गोंको मिलानेसे आठ सर्ग होते हैं॥ ४५-४६॥

कौमारो नवमः प्रोक्तः प्राकृतो वैकृतश्च सः।
एषामवांतरो भेदो मया वक्तुं न शक्यते॥ ४७

इनके अतिरिक्त नौवाँ कौमारसर्ग है, जो प्राकृत और वैकृत भी है। इन सबके अवान्तर भेद हैं, जिनका वर्णन मैं नहीं कर सकता। उसका उपयोग बहुत थोड़ा

अल्पत्वादुपयोगस्य वच्मि सर्गं द्विजात्मकम्।
कौमारः सनकादीनां यत्र सर्गो महानभूत्॥ ४८

है। अब मैं द्विजात्मक सर्गका वर्णन कह रहा हूँ। इसीका दूसरा नाम कौमारसर्ग है, जिसमें सनक-सनन्दन आदि कुमारोंकी महान् सृष्टि हुई है॥ ४७-४८॥

सनकाद्याः सुता मे हि मानसा ब्रह्मसंमिताः।
महावैराग्यसंपन्ना अभवन्पंच सुव्रताः॥ ४९

सनक आदि मेरे पाँच* मानसपुत्र हैं, जो मुझ ब्रह्माके ही समान हैं। वे महान् वैराग्यसे सम्पन्न तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हुए॥ ४९॥

मयाज्ञप्ता अपि च ते संसारविमुखा बुधाः।
शिवध्यानैकमनसो न सृष्टौ चक्रिरे मतिम्॥ ५०

उनका मन सदा भगवान् शिवके चिन्तनमें ही लगा रहता है। वे संसारसे विमुख एवं ज्ञानी हैं। उन्होंने मेरे आदेश देनेपर भी सृष्टिके कार्यमें मन नहीं लगाया॥ ५०॥

प्रत्युत्तरं च तैर्दत्तं श्रुत्वाहं मुनिसत्तम।
अकार्षं क्रोधमत्युग्रं मोहमाप्तश्च नारद॥ ५१

हे मुनिश्रेष्ठ! सनकादि कुमारोंके दिये हुए नकारात्मक उत्तरको सुनकर मैंने बड़ा भयंकर क्रोध प्रकट किया। किंतु हे नारद! मुझे मोह हो गया॥ ५१॥

क्रुद्धस्य मोहितस्याथ विह्वलस्य मुने मम।
क्रोधेन खलु नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिंदवः॥ ५२

हे मुने! क्रोध और मोहसे विह्वल मुझ ब्रह्माके नेत्रोंसे क्रोधवश आँसूकी बूँदें गिरने लगीं॥ ५२॥

तस्मिन्नवसरे तत्र स्मृतेन मनसा मया।
प्रबोधितोऽहं त्वरितमागतेन हि विष्णुना॥ ५३

उस अवसरपर मैंने मन-ही-मन भगवान् विष्णुका स्मरण किया। वे शीघ्र ही आ गये और समझाते हुए मुझसे कहने लगे—॥ ५३॥

तपः कुरु शिवस्येति हरिणा शिक्षितोऽप्यहम्।
तपोऽकारि महद् घोरं परमं मुनिसत्तम॥ ५४

आप भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये तपस्या कीजिये। हे मुनिश्रेष्ठ! श्रीहरिने जब मुझे ऐसी शिक्षा दी, तब मैं महाघोर एवं उत्कृष्ट तप करने लगा॥ ५४॥

तपस्यतश्च सृष्ट्यर्थं भ्रुवोर्घ्राणस्य मध्यतः।
अविमुक्ताभिधाद्देशात्स्वकीयान्मे विशेषतः॥ ५५
त्रिमूर्तीनां महेशस्य प्रादुरासीद् घृणानिधिः।
अर्द्धनारीश्वरो भूत्वा पूर्णांशः सकलेश्वरः॥ ५६

सृष्टिके लिये तपस्या करते हुए मेरी दोनों भौंहों और नासिकाके मध्यभागसे जो उनका अपना ही अविमुक्त नामक स्थान है, महेश्वरकी तीन मूर्तियोंमें अन्यतम, पूर्णांश, सर्वेश्वर एवं दयासागर भगवान् शिव अर्धनारीश्वररूपमें प्रकट हुए॥ ५५-५६॥

तमजं शंकरं साक्षात्तेजोराशिमुमापतिम्।
सर्वज्ञं सर्वकर्तारं नीललोहितसंज्ञकम्॥ ५७
दृष्ट्वा नत्वा महाभक्त्या स्तुत्वाहं तु प्रहर्षितः।
अवोचं देवदेवेशं सृज त्वं विविधाः प्रजाः॥ ५८

जो जन्मसे रहित, तेजकी राशि, सर्वज्ञ तथा सर्वकर्ता हैं, उन नीललोहित-नामधारी भगवान् उमावल्लभको सामने देखकर बड़ी भक्तिसे मस्तक झुकाकर उनकी स्तुति करके मैं बड़ा प्रसन्न हुआ और उन देवदेवेश्वरसे बोला—हे प्रभो! आप विविध जीवोंकी सृष्टि करें॥ ५७-५८॥

श्रुत्वा मम वचः सोऽथ देवदेवो महेश्वरः।
ससर्ज स्वात्मनस्तुल्यान् रुद्रो रुद्रगणान्बहून्॥ ५९

मेरी यह बात सुनकर उन देवाधिदेव महेश्वर रुद्रने अपने ही समान बहुत-से रुद्रगणोंकी सृष्टि की॥ ५९॥

* सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार तथा सनत्सुजात।

अवोचं पुनरेवेशं महारुद्रं महेश्वरम्।
जन्ममृत्युभयाविष्टाः सृज देव प्रजा इति॥ ६०

तब मैंने स्वामी महेश्वर महारुद्रसे फिर कहा—हे देव! आप ऐसे जीवोंकी सृष्टि करें, जो जन्म और मृत्युके भयसे युक्त हों॥ ६०॥

एवं श्रुत्वा महादेवो मद्वचः करुणानिधिः।
प्रहस्योवाच मां सद्यः प्रहस्य मुनिसत्तम॥ ६१

हे मुनिश्रेष्ठ! मेरी ऐसी बात सुनकर करुणासागर महादेवजी हँसकर मुझसे कहने लगे—॥ ६१॥

महादेव उवाच

जन्ममृत्युभयाविष्टा नाहं स्त्रक्ष्ये प्रजा विधे।
अशोभनाः कर्मवशा निमग्ना दुःखवारिधौ॥ ६२

महादेवजी बोले—विधे! मैं जन्म और मृत्युके भयसे युक्त अशोभन जीवोंकी सृष्टि नहीं करूँगा; क्योंकि वे कर्मोंके अधीन होकर दुःखके समुद्रमें डूबे रहेंगे॥ ६२॥

अहं दुःखोदधौ मग्ना उद्धरिष्यामि च प्रजाः।
सम्यग् ज्ञानप्रदानेन गुरुमूर्तिपरिग्रहः॥ ६३

मैं तो गुरुका स्वरूप धारण करके उत्तम ज्ञान प्रदानकर दुःखके सागरमें डूबे हुए उन जीवोंका उद्धारमात्र करूँगा, उन्हें पार करूँगा॥ ६३॥

त्वमेव सृज दुःखाढ्याः प्रजाः सर्वाः प्रजापते।
मदाज्ञया न बद्धस्त्वं मायया संभविष्यसि॥ ६४

हे प्रजापते! दुःखमें डूबे हुए समस्त जीवोंकी सृष्टि तो आप करें। मेरी आज्ञासे इस कार्यमें प्रवृत्त होनेके कारण आपको माया नहीं बाँध सकेगी॥ ६४॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा मां स भगवान्सुश्रीमान्नीललोहितः।
सगणः पश्यतो मे हि द्रुतमन्तर्दधे हरः॥ ६५

ब्रह्माजी बोले—मुझसे ऐसा कहकर श्रीमान् भगवान् नीललोहित महादेव मेरे देखते-ही-देखते अपने पार्षदोंके साथ तत्काल अन्तर्धान हो गये॥ ६५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपक्रमे रुद्रावताराविर्भाववर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टिके उपक्रममें रुद्रावताराविर्भाववर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

ब्रह्माजीकी सन्तानोंका वर्णन तथा सती और शिवकी महत्ताका प्रतिपादन

ब्रह्मोवाच

शब्दादीनि च भूतानि पंचीकृत्वाहमात्मना।
तेभ्यः स्थूलं नभो वायुं वह्निं चैव जलं महीम्॥ १
पर्वतांश्च समुद्रांश्च वृक्षादीनपि नारद।
कलादियुगपर्यंतान्कालानन्यानवासृजम्॥ २

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! तदनन्तर मैंने शब्द आदि सूक्ष्मभूतोंका स्वयं ही पंचीकरण करके उनसे स्थूल आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवीकी सृष्टि की। पर्वतों, समुद्रों, वृक्षों और कलासे लेकर युगपर्यन्त कालोंकी रचना की॥ १-२॥

सृष्ट्यन्तानपरांश्चापि नाहं तुष्टोऽभवं मुने।
ततो ध्यात्वा शिवं साम्बं साधकानसृजं मुने॥ ३

मुने! उत्पत्ति और विनाशवाले और भी बहुतसे पदार्थोंका मैंने निर्माण किया, परंतु इससे मुझे सन्तोष नहीं हुआ। तब साम्बशिवका ध्यान करके मैंने साधनापरायण पुरुषोंकी सृष्टि की॥ ३॥

मरीचिं च स्वनेत्राभ्यां हृदयाद् भृगुमेव च।
शिरसोऽङ्गिरसं व्यानात्पुलहं मुनिसत्तमम्॥ ४
उदानाच्च पुलस्त्यं हि वसिष्ठं च समानतः।

अपने दोनों नेत्रोंसे मरीचिको, हृदयसे भृगुको, सिरसे अंगिराको, व्यानवायुसे मुनिश्रेष्ठ पुलहको, उदानवायुसे पुलस्त्यको, समानवायुसे वसिष्ठको, अपानसे

क्रतुं त्वपानाच्छ्रोत्राभ्यामत्रिं दक्षं च प्राणतः॥ ५

असृजं त्वां तदोत्संगाच्छायायाः कर्दमं मुनिम्।
संकल्पादसृजं धर्मं सर्वसाधनसाधनम्॥ ६

क्रतुको, दोनों कानोंसे अत्रिको, प्राणवायुसे दक्षको, गोदसे आपको तथा छायासे कर्दम मुनिको उत्पन्न किया और संकल्पसे समस्त साधनोंके साधनरूप धर्मको उत्पन्न किया॥ ४—६॥

एवमेतानहं सृष्ट्वा कृतार्थः साधकोत्तमान्।
अभवं मुनिशार्दूल महादेवप्रसादतः॥ ७

हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार महादेवजीकी कृपासे इन उत्तम साधकोंकी सृष्टि करके मैंने अपने-आपको कृतार्थ समझा॥ ७॥

ततो मदाज्ञया तात धर्मः सङ्कल्पसम्भवः।
मानवं रूपमापन्नः साधकैस्तु प्रवर्तितः॥ ८

हे तात! तत्पश्चात् संकल्पसे उत्पन्न हुआ धर्म मेरी आज्ञासे मानवरूप धारण करके उत्तम साधकोंके द्वारा आगे प्रवर्तित हुआ॥ ८॥

ततोऽसृजं स्वगात्रेभ्यो विविधेभ्योऽमितान्सुतान्।
सुरासुरादिकांस्तेभ्यो दत्त्वा तां तां तनुं मुने॥ ९

हे मुने! इसके बाद मैंने अपने विभिन्न अंगोंसे देवता, असुर आदि असंख्य पुत्रोंकी सृष्टि की और उन्हें भिन्न-भिन्न शरीर प्रदान किया॥ ९॥

ततोऽहं शंकरेणाथ प्रेरितोऽन्तर्गतेन हि।
द्विधा कृत्वात्मनो देहं द्विरूपश्चाभवं मुने॥ १०

हे मुने! तदनन्तर अन्तर्यामी भगवान् शंकरकी प्रेरणासे अपने शरीरको दो भागोंमें विभक्त करके मैं दो रूपोंवाला हो गया॥ १०॥

अर्धेन नारी पुरुषश्चार्धेन संततो मुने।
स तस्यामसृजद् द्वंद्वं सर्वसाधनमुत्तमम्॥ ११

हे नारद! आधे शरीरसे मैं स्त्री हो गया और आधेसे पुरुष। उस पुरुषने उस स्त्रीके गर्भसे सर्वसाधनसमर्थ उत्तम जोड़ेको उत्पन्न किया॥ ११॥

स्वायंभुवो मनुस्तत्र पुरुषः परसाधनम्।
शतरूपाभिधा नारी योगिनी सा तपस्विनी॥ १२

उस जोड़ेमें जो पुरुष था, वही स्वायम्भुव मनुके नामसे प्रसिद्ध हुआ। स्वायम्भुव मनु उच्चकोटिके साधक हुए तथा जो स्त्री थी, वह शतरूपा कहलायी। वह योगिनी एवं तपस्विनी हुई॥ १२॥

सा पुनर्मनुना तेन गृहीतातीव शोभना।
विवाहविधिना तातासृजत्सर्गं समैथुनम्॥ १३

हे तात! मनुने वैवाहिक विधिसे अत्यन्त सुन्दरी शतरूपाका पाणिग्रहण किया और उससे वे मैथुनजनित सृष्टि उत्पन्न करने लगे॥ १३॥

तस्यां तेन समुत्पन्नस्तनयश्च प्रियव्रतः।
तथैवोत्तानपादश्च तथा कन्यात्रयं पुनः॥ १४

आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति विश्रुताः।
आकूतिं रुचये प्रादात्कर्दमाय तु मध्यमाम्॥ १५

ददौ प्रसूतिं दक्षायोत्तानपादानुजां सुताम्।
तासां प्रसूतिप्रसवैः सर्वं व्याप्तं चराचरम्॥ १६

उन्होंने शतरूपासे प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र और तीन कन्याएँ उत्पन्न कीं। कन्याओंके नाम थे—आकूति, देवहूति और प्रसूति। मनुने आकूतिका विवाह प्रजापति रुचिके साथ किया, मझली पुत्री देवहूति कर्दमको ब्याह दी और उत्तानपादकी सबसे छोटी बहन प्रसूति प्रजापति दक्षको दे दी। उनमें प्रसूतिकी सन्तानोंसे समस्त चराचर जगत् व्याप्त है॥ १४—१६॥

आकूत्यां च रुचेश्चाभूद् द्वंद्वं यज्ञश्च दक्षिणा।
यज्ञस्य जज्ञिरे पुत्रा दक्षिणायां च द्वादश॥ १७

रुचिके द्वारा आकूतिके गर्भसे यज्ञ और दक्षिणा नामक स्त्री-पुरुषका जोड़ा उत्पन्न हुआ। यज्ञसे दक्षिणाके गर्भसे बारह पुत्र हुए॥ १७॥

देवहूत्यां कर्दमाच्च बह्व्यो जाताः सुता मुने।
दक्षाज्जाताश्चतस्रश्च तथा पुत्र्यश्च विंशतिः॥ १८

हे मुने! कर्दमद्वारा देवहूतिके गर्भसे बहुत-सी पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। दक्षसे चौबीस कन्याएँ हुईं॥ १८॥

धर्माय दत्ता दक्षेण श्रद्धाद्यास्तु त्रयोदश।
शृणु तासां च नामानि धर्मस्त्रीणां मुनीश्वर॥ १९

दक्षने उनमेंसे श्रद्धा आदि तेरह कन्याओंका विवाह धर्मके साथ कर दिया। हे मुनीश्वर! धर्मकी उन पत्नियोंके नाम सुनिये॥ १९॥

श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा तथा क्रिया।
बुद्धिर्लज्जा वसुः शांतिः सिद्धिः कीर्तिस्त्रयोदश॥ २०

श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वसु, शान्ति, सिद्धि और कीर्ति—ये सब तेरह हैं॥ २०॥

ताभ्यां शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः।
ख्यातिः सत्पथसंभूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा॥ २१
सन्नतिश्चानुरूपा च ऊर्जा स्वाहा स्वधा तथा।
भृगुर्भवो मरीचिश्च तथा चैवाङ्गिरा मुनिः॥ २२
पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुश्चर्षिवरस्तथा।
अत्रिर्वसिष्ठो वह्निश्च पितरश्च यथाक्रमम्॥ २३
ख्यातास्ता जगृहुः कन्या भृग्वाद्याः साधका वराः।
ततः संपूरितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ २४

इनसे छोटी शेष ग्यारह सुन्दर नेत्रोंवाली कन्याएँ ख्याति, सत्पथा, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा तथा स्वधा थीं। भृगु, भव, मरीचि, मुनि अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, मुनिश्रेष्ठ क्रतु, अत्रि, वसिष्ठ, वह्नि और पितरोंने क्रमशः इन ख्याति आदि कन्याओंका पाणिग्रहण किया। भृगु आदि मुनि श्रेष्ठ साधक हैं। इनकी सन्तानोंसे समस्त त्रैलोक्य भरा हुआ है॥ २१—२४॥

एवं कर्मानुरूपेण प्राणिनामम्बिकापतेः।
आज्ञया बहवो जाता असंख्याता द्विजर्षभाः॥ २५

इस प्रकार अम्बिकापति महादेवजीकी आज्ञासे प्राणियोंके अपने पूर्वकर्मोंके अनुसार असंख्य श्रेष्ठ द्विज उत्पन्न हुए॥ २५॥

कल्पभेदेन दक्षस्य षष्टिः कन्याः प्रकीर्तिताः।
तासां दश च धर्माय शशिने सप्तविंशतिम्॥ २६
विधिना दत्तवान्दक्षः कश्यपाय त्रयोदश।
चतस्रः पररूपाय ददौ तार्क्ष्याय नारद॥ २७
भृग्वंगिरःकृशाश्वेभ्यो द्वे द्वे कन्ये च दत्तवान्।
ताभ्यस्तेभ्यस्तु संजाता बह्वी सृष्टिश्चराचरा॥ २८

कल्पभेदसे दक्षकी साठ कन्याएँ बतायी गयी हैं। दक्षने उनमेंसे दस कन्याएँ धर्मको, सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमाको और तेरह कन्याएँ कश्यपको विधिपूर्वक प्रदान कर दी। हे नारद! उन्होंने चार कन्याओंका विवाह श्रेष्ठ रूपवाले तार्क्ष्यके साथ कर दिया। उन्होंने भृगु, अंगिरा और कृशाश्वको दो-दो कन्याएँ अर्पित कीं। उन-उन स्त्रियों तथा पुरुषोंसे बहुत-सी चराचर सृष्टि हुई॥ २६—२८॥

त्रयोदशमितास्तस्मै कश्यपाय महात्मने।
दत्ता दक्षेण याः कन्या विधिवन्मुनिसत्तम॥ २९
तासां प्रसूतिभिर्व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
स्थावरं जंगमं चैव शून्यं नैव तु किंचन॥ ३०

हे मुनिश्रेष्ठ! दक्षने महात्मा कश्यपको जिन तेरह कन्याओंका विधिपूर्वक दान किया था, उनकी सन्तानोंसे सारा त्रैलोक्य व्याप्त हो गया। स्थावर और जंगम कोई भी सृष्टि ऐसी नहीं, जो उनकी सन्तानोंसे शून्य हो॥ २९-३०॥

देवाश्च ऋषयश्चैव दैत्याश्चैव प्रजज्ञिरे।
वृक्षाश्च पक्षिणश्चैव सर्वे पर्वतवीरुधः॥ ३१
दक्षकन्याप्रसूतैश्च व्याप्तमेवं चराचरम्।
पातालतलमारभ्य सत्यलोकावधि ध्रुवम्॥ ३२

देवता, ऋषि, दैत्य, वृक्ष, पक्षी, पर्वत तथा तृण-लता आदि सभी [कश्यपपत्नियोंसे] पैदा हुए। इस प्रकार दक्ष-कन्याओंकी सन्तानोंसे सारा चराचर जगत् व्याप्त हो गया। पातालसे लेकर सत्यलोकपर्यन्त समस्त ब्रह्माण्ड निश्चय ही [उनकी सन्तानोंसे] सदा

ब्रह्माण्डं सकलं व्याप्तं शून्यं नैव कदाचन।
एवं सृष्टिः कृता सम्यग्ब्रह्मणा शंभुशासनात्॥ ३३

भरा रहता है, कभी रिक्त नहीं होता। इस प्रकार भगवान् शंकरकी आज्ञासे ब्रह्माजीने भलीभाँति सृष्टि की॥ ३१—३३ ॥

सती नाम त्रिशूलाग्रे सदा रुद्रेण रक्षिता।
तपोऽर्थं निर्मिता पूर्वं शंभुना सर्वविष्णुना॥ ३४

सैव दक्षात्समुद्भूता लोककार्यार्थमेव च।
लीलां चकार बहुशो भक्तोद्धरणहेतवे॥ ३५

पूर्वकालमें सर्वव्यापी शम्भुने जिन्हें तपस्याके लिये प्रकट किया था, रुद्रदेवके रूपमें उन्होंने त्रिशूलके अग्रभागपर रखकर उनकी सदा रक्षा की। वे ही सती देवी लोकहितका कार्य सम्पादित करनेके लिये दक्षसे प्रकट हुईं। उन्होंने भक्तोंके उद्धारके लिये अनेक लीलाएँ कीं॥ ३४-३५ ॥

वामांगो यस्य वैकुंठो दक्षिणांगोऽहमेव च।
रुद्रो हृदयजो यस्य त्रिविधस्तु शिवः स्मृतः॥ ३६

जिनका वामांग वैकुण्ठ विष्णु हैं, दक्षिणभाग स्वयं मैं हूँ और रुद्र जिनके हृदयसे उत्पन्न हैं, उन शिवजीको तीन प्रकारका कहा गया है॥ ३६ ॥

अहं विष्णुश्च रुद्रश्च गुणास्त्रय उदाहृताः।
स्वयं सदा निर्गुणश्च परब्रह्माव्ययः शिवः॥ ३७

विष्णुः सत्त्वं रजोऽहं च तमो रुद्र उदाहृतः।
लोकाचारत इत्येवं नामतो वस्तुतोऽन्यथा॥ ३८

मैं ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तीनों गुणोंसे युक्त कहे गये हैं, किंतु परब्रह्म, अव्यय शिव स्वयं सदा निर्गुण ही रहते हैं। विष्णु सत्त्वगुण, मैं रजोगुण और रुद्र तमोगुणवाले कहे गये हैं। लोकाचारमें ऐसा व्यवहार नामके कारण किया जाता है, किंतु वस्तुतत्त्व इससे सर्वथा भिन्न है॥ ३७-३८ ॥

अंतस्तमो बहिः सत्त्वो विष्णू रुद्रस्तथा मतः।
अंतः सत्त्वस्तमो बाह्यो रजोऽहं सर्वथा मुने॥ ३९

विष्णु अन्तःकरणसे तमोगुण और बाहरसे सत्त्वगुणसे युक्त माने गये हैं। रुद्र अन्तःकरणसे सत्त्वगुण और बाहरसे तमोगुणवाले हैं और हे मुने! मैं सर्वथा रजोगुणवाला ही हूँ॥ ३९ ॥

राजसी च सुरा देवी सत्त्वरूपा तु सा सती।
लक्ष्मीस्तमोमयी ज्ञेया त्रिरूपा च शिवा परा॥ ४०

ऐसे ही सुरादेवी रजोगुणी हैं, वे सतीदेवी सत्त्वस्वरूपा हैं और लक्ष्मी तमोमयी हैं, इस प्रकार पराम्बाको भी तीन रूपोंवाली जानना चाहिये॥ ४० ॥

एवं शिवा सती भूत्वा शंकरेण विवाहिता।
पितुर्यज्ञे तनुं त्यक्त्वा नादरात् स्वपदं ययौ॥ ४१

इस प्रकार देवी शिवा ही सती होकर भगवान् शंकरसे ब्याही गयीं, किंतु पिताके यज्ञमें पतिके अपमानके कारण उन्होंने अपने शरीरको त्याग दिया और फिर उसे ग्रहण नहीं किया। वे अपने परमपदको प्राप्त हो गयीं॥ ४१ ॥

पुनश्च पार्वती जाता देवप्रार्थनया शिवा।
तपः कृत्वा सुविपुलं पुनः शिवमुपागता॥ ४२

तत्पश्चात् देवताओंकी प्रार्थनासे वे ही शिवा पार्वतीरूपसे प्रकट हुईं और बड़ी भारी तपस्या करके उन्होंने पुनः भगवान् शिवको प्राप्त कर लिया॥ ४२ ॥

तस्या नामान्यनेकानि जातानि च मुनीश्वर।
कालिका चंडिका भद्रा चामुंडा विजया जया॥ ४३

जयंती भद्रकाली च दुर्गा भगवतीति च।

हे मुनीश्वर! [इस जगत्‌में] उनके अनेक नाम प्रसिद्ध हुए। उनके कालिका, चण्डिका, भद्रा, चामुण्डा, विजया, जया, जयन्ती, भद्रकाली, दुर्गा, भगवती, कामाख्या, कामदा, अम्बा, मृडानी और सर्वमंगला

कामाख्या कामदा ह्यम्बा मृडानी सर्वमंगला ॥ ४४
नामधेयान्यनेकानि भुक्तिमुक्तिप्रदानि च।
गुणकर्मानुरूपाणि प्रायशस्तत्र पार्वती ॥ ४५

आदि अनेक नाम हैं, जो भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। ये नाम उनके गुण और कर्मोंके अनुसार हैं, इनमें भी पार्वती नाम प्रधान है ॥ ४३—४५ ॥

गुणमय्यस्तथा देव्यो देवा गुणमयास्त्रयः।
मिलित्वा विविधं सृष्टेश्चक्रुस्ते कार्यमुत्तमम् ॥ ४६
एवं सृष्टिप्रकारस्ते वर्णितो मुनिसत्तम।
शिवाज्ञया विरचितो ब्रह्मांडस्य मयाखिलः ॥ ४७

इस प्रकार गुणमयी तीनों देवियों और गुणमय तीनों देवताओंने मिलकर सृष्टिके उत्तम कार्यको निष्पन्न किया। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने आपसे सृष्टिक्रमका वर्णन किया है। ब्रह्माण्डका यह सारा भाग भगवान् शिवकी आज्ञासे मेरे द्वारा रचा गया है ॥ ४६-४७ ॥

परं ब्रह्म शिवः प्रोक्तस्तस्य रूपास्त्रयः सुराः।
अहं विष्णुश्च रुद्रश्च गुणभेदानुरूपतः ॥ ४८

भगवान् शिवको परब्रह्म कहा गया है। मैं, विष्णु और रुद्र—ये तीनों देवता गुणभेदसे उन्हींके रूप हैं ॥ ४८ ॥

शिवया रमते स्वैरं शिवलोके मनोरमे।
स्वतंत्रः परमात्मा हि निर्गुणः सगुणोऽपि वै ॥ ४९
तस्य पूर्णावतारो हि रुद्रः साक्षाच्छिवः स्मृतः।
कैलासे भवनं रम्यं पंचवक्त्रश्चकार ह।
ब्रह्मांडस्य तथा नाशे तस्य नाशोऽस्ति वै न हि ॥ ५०

निर्गुण तथा सगुणरूपवाले वे स्वतन्त्र परमात्मा मनोरम शिवलोकमें शिवाके साथ स्वच्छन्द विहार करते हैं। उनके पूर्णावतार रुद्र ही साक्षात् शिव कहे गये हैं। उन्हीं पंचमुख शिवने कैलासपर अपना रमणीक भवन बना रखा है। [प्रलयकालमें] ब्रह्माण्डका नाश होनेपर भी उसका नाश कभी नहीं होता ॥ ४९-५० ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपक्रमे ब्रह्मनारदसंवादे सृष्टिवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टि-उपक्रममें सृष्टिवर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

यज्ञदत्तके पुत्र गुणनिधिका चरित्र

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य ब्रह्मणः स तु नारदः।
पुनः पप्रच्छ तं नत्वा विनयेन मुनीश्वराः ॥ १

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो! ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर नारदजीने विनयपूर्वक उन्हें प्रणाम करके पुनः पूछा— ॥ १ ॥

नारद उवाच

कदा गतो हि कैलासं शंकरो भक्तवत्सलः।
क्व वा सखित्वं तस्यासीत् कुबेरेण महात्मना ॥ २

नारदजी बोले—भक्तवत्सल भगवान् शंकर कैलासपर्वतपर कब गये और महात्मा कुबेरके साथ उनकी मैत्री कब हुई ॥ २ ॥

किं चकार हरस्तत्र परिपूर्णः शिवाकृतिः।
एतत्सर्वं समाचक्ष्व परं कौतूहलं मम ॥ ३

परिपूर्ण मंगलविग्रह महादेवजीने वहाँ क्या किया? यह सब मुझे बताइये। [इसे सुननेके लिये] मुझे बड़ी उत्सुकता है ॥ ३ ॥

ब्रह्मोवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि चरितं शशिमौलिनः।
यथा जगाम कैलासं सखित्वं धनदस्य च ॥ ४

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! मैं चन्द्रमौलि भगवान् शंकरके चरित्रका वर्णन करता हूँ। वे जिस प्रकार कैलास पर्वतपर गये और कुबेरकी उनके साथ मैत्री हुई, यह सब सुनिये ॥ ४ ॥

आसीत् काम्पिल्यनगरे सोमयाजिकुलोद्भवः।
दीक्षितो यज्ञदत्ताख्यो यज्ञविद्याविशारदः॥ ५
वेदवेदांगवित्प्राज्ञो वेदान्तादिषु दक्षिणः।
राजमान्योऽथ बहुधा वदान्यः कीर्तिभाजनः॥ ६

काम्पिल्यनगरमें सोमयाग करनेवाले कुलमें उत्पन्न यज्ञविद्याविशारद यज्ञदत्त नामका एक दीक्षित ब्राह्मण था। वह वेदवेदांगका ज्ञाता, प्रबुद्ध, वेदान्तादिमें दक्ष, अनेक राजाओंसे सम्मानित, परम उदार और यशस्वी था॥ ५-६॥

अग्निशुश्रूषणरतो वेदाध्ययनतत्परः।
सुन्दरो रमणीयांगश्चन्द्रबिंबसमाकृतिः॥ ७

वह अग्निहोत्र आदि कर्मोंमें सदैव संलग्न रहनेवाला, वेदाध्ययनपरायण, सुन्दर, रमणीय अंगोंवाला तथा चन्द्रबिम्बके समान आकृतिवाला था॥ ७॥

आसीद् गुणनिधिर्नाम दीक्षितस्यास्य वै सुतः।
कृतोपनयनः सोऽष्टौ विद्यां जग्राह भूरिशः।
अथ पित्रानभिज्ञातो द्यूतकर्मरतोऽभवत्॥ ८

इस दीक्षित ब्राह्मणके गुणनिधि नामक एक पुत्र था, उपनयन-संस्कार हो जानेके बाद उसने आठ विद्याओंका भलीभाँति अध्ययन किया, किंतु पिताके अनजानमें वह द्यूतकर्ममें प्रवृत्त हो गया॥ ८॥

आदायादाय बहुशो धनं मातुः सकाशतः।
समदाद् द्यूतकारेभ्यो मैत्रीं तैश्च चकार सः॥ ९

उसने अपनी माताके पाससे बहुत-सा धन ले-लेकर जुआरियोंको सौंप दिया और उनसे मित्रता कर ली॥ ९॥

सन्त्यक्तब्राह्मणाचारः सन्ध्यास्नानपराङ्मुखः।
निन्दको वेदशास्त्राणां देवब्राह्मणनिन्दकः॥ १०
स्मृत्याचारविहीनस्तु गीतवाद्यविनोदभाक्।
नटपाखण्डभाण्डैस्तु बद्धप्रेमपरंपरः॥ ११

वह ब्राह्मणके लिये अपेक्षित आचार-विचारसे रहित, सन्ध्या-स्नान आदि कर्मोंसे पराङ्मुख, वेदशास्त्र आदिका निन्दक, देवताओं और ब्राह्मणोंका अपमान करनेवाला और स्मार्ताचार-विचारसे रहित होकर गाने-बजानेमें आनन्द लेने लगा। उसने नटों, पाखण्डियों तथा भाण्डोंसे प्रेमसम्बन्ध स्थापित कर लिया॥ १०-११॥

प्रेरितोऽपि जनन्या स न ययौ पितुरन्तिकम्।
गृहकार्यान्तरव्याप्तो दीक्षितो दीक्षितायिनीम्॥ १२
यदा यदैव तां पृच्छेदये गुणनिधिः सुतः।
न दृश्यते मया गेहे कल्याणि विदधाति किम्॥ १३

माताके द्वारा प्रेरित किये जानेपर भी वह पिताके समीप कभी भी नहीं गया। घरके अन्य कर्मोंमें व्यस्त वह दीक्षित ब्राह्मण जब-जब अपनी दीक्षित पत्नीसे पूछता कि हे कल्याणि! घरमें मुझे पुत्र गुणनिधि नहीं दिखायी पड़ रहा है, वह क्या कर रहा है?॥ १२-१३॥

तदा तदेति सा ब्रूयादिदानीं स बहिर्गतः।
स्नात्वा समर्च्य वै देवानेतावन्तमनेहसम्॥ १४
अधीत्याध्ययनार्थं स द्वित्रैर्मित्रैः समं ययौ।
एकपुत्रेति तन्माता प्रतारयति दीक्षितम्॥ १५

वह तब-तब यही कहती कि वह इस समय स्नान करके तथा देवताओंकी पूजा करके बाहर गया है। अभीतक पढ़कर वह अपने दो-तीन मित्रोंके साथ पढ़नेके लिये गया हुआ है। इस प्रकार उस गुणनिधिकी एकपुत्रा माता सदैव दीक्षितको धोखा देती रही॥ १४-१५॥

न तत्कर्म च तद्वृत्तं किंचिद्वेत्ति स दीक्षितः।
सर्वं केशान्तकर्मास्य चक्रे वर्षेऽथ षोडशे॥ १६

वह दीक्षित ब्राह्मण उस पुत्रके कर्म और आचरणको कुछ भी नहीं जान पाता था, सोलहवें वर्षमें उसने उसके केशान्त कर्म आदि सब संस्कार भी कर दिये॥ १६॥

अथो स दीक्षितो यज्ञदत्तः पुत्रस्य तस्य च।
गृह्योक्तेन विधानेन पाणिग्राहमकारयत्॥ १७

इसके पश्चात् उस दीक्षित यज्ञदत्तने गृह्यसूत्रमें कहे गये विधानके अनुसार अपने उस पुत्रका पाणिग्रहण संस्कार भी कर दिया॥ १७॥

प्रत्यहं तस्य जननी सुतं गुणनिधिं मृदु।
शास्ति स्नेहार्द्रहृदया ह्युपवेश्य स्म नारद॥ १८

क्रोधनस्तेऽस्ति तनय स महात्मा पितेत्यलम्।
यदि ज्ञास्यति ते वृत्तं त्वां च मां ताडयिष्यति॥ १९

हे नारद! स्नेहसे आर्द्र हृदयवाली उसकी माता पासमें बैठाकर मृदु भाषामें उस पुत्र गुणनिधिको प्रतिदिन समझाती थी कि हे पुत्र! तुम्हारे महात्मा पिता अत्यन्त क्रोधी स्वभाववाले हैं। यदि वे तुम्हारे आचरणको जान जायँगे, तो तुमको और मुझको भी मारेंगे॥ १८-१९॥

आच्छादयामि ते नित्यं पितुरग्रे कुचेष्टितम्।
लोकमान्योऽस्ति ते तातः सदाचारैर्न वै धनैः॥ २०

ब्राह्मणानां धनं तात सद्विद्या साधुसंगमः।
किमर्थं न करोषि त्वं स्वरुचिं प्रीतमानसः॥ २१

तुम्हारे पिताके सामने मैं तुम्हारी इस बुराईको नित्य छिपा देती हूँ। तुम्हारे पिताकी समाजमें प्रतिष्ठा सदाचारसे ही है, धनसे नहीं। हे पुत्र! ब्राह्मणोंका धन तो उत्तम विद्या और सज्जनोंका संसर्ग है। तुम प्रसन्नमन होकर अपनी रुचि उनमें क्यों नहीं लगा रहे हो॥ २०-२१॥

सच्छ्रोत्रियास्तेऽनूचाना दीक्षिताः सोमयाजिनः।
इति रूढिमिह प्राप्तास्तव पूर्वपितामहाः॥ २२

तुम्हारे पितामह आदि पूर्वज सुयोग्य, श्रोत्रिय, वेदविद्यामें पारंगत विद्वान्, दीक्षित, सोमयाज्ञिक ब्राह्मण हैं—ऐसी लोकप्रसिद्धिको प्राप्त किये थे॥ २२॥

त्यक्त्वा दुर्वृत्तसंसर्गं साधुसंगरतो भव।
सद्विद्यासु मनो धेहि ब्राह्मणाचारमाचर॥ २३

अतः तुम दुष्टोंकी संगति छोड़कर साधुओंकी संगतिमें तत्पर होओ, सद्विद्याओंमें मन लगाओ और ब्राह्मणोचित सदाचारका पालन करो॥ २३॥

तातानुरूपो रूपेण यशसा कुलशीलतः।
ततो न त्रपसे किं नः त्यज दुर्वृत्ततां स्वकाम्॥ २४

तुम रूपसे पिताके अनुरूप ही हो। यश, कुल और शीलसे भी उनके अनुरूप बनो। इन कर्मोंसे तुम लज्जित क्यों नहीं होते हो? अपने बुरे आचरणोंको छोड़ दो॥ २४॥

ऊनविंशतिकोऽसि त्वमेषा षोडशवार्षिकी।
एतां संवृणु सद्वृत्तां पितृभक्तियुतो भव॥ २५

तुम उन्नीस वर्षके हो गये हो और यह [तुम्हारी पत्नी] सोलह वर्षकी है। इस सदाचारिणीका वरण करो अर्थात् इससे मधुर सम्बन्ध स्थापित करो और पिताकी भक्तिमें तत्पर हो जाओ॥ २५॥

श्वशुरोऽपि हि ते मान्यः सर्वत्र गुणशीलतः।
ततो न त्रपसे किं नः त्यज दुर्वृत्ततां सुत॥ २६

तुम्हारे श्वसुर भी अपने गुण और शीलके कारण सर्वत्र पूजे जाते हैं। हे पुत्र! [उन्हें देखकर और उनकी प्रशस्तिको सुनकर भी] तुम्हें लज्जा नहीं आती है, अपनी बुरी आदतोंको छोड़ दो॥ २६॥

मातुलास्तेऽतुलाः पुत्र विद्याशीलकुलादिभिः।
तेभ्योऽपि न बिभेषि त्वं शुद्धोऽस्युभयवंशतः॥ २७

हे पुत्र! तुम्हारे सभी मामा भी विद्या, शील तथा कुल आदिसे अतुलनीय हैं। तुम उनसे भी नहीं डरते। तुम तो दोनों वंशोंसे शुद्ध हो॥ २७॥

पश्यैतान्प्रतिवेश्मस्थान्ब्राह्मणानां कुमारकान्।
गृहेऽपि शिष्यान्पश्यैतान्पितुस्ते विनयोचितान्॥ २८

तुम इन पड़ोसी ब्राह्मणकुमारोंको देखो और अपने घरमें ही अपने पिताके इन विनयशील शिष्योंको ही देखो॥ २८॥

राजापि श्रोष्यति यदा तव दुश्चेष्टितं सुत।
श्रद्धां विहाय ते ताते वृत्तिलोपं करिष्यति॥ २९

बालचेष्टितमेवैतद् वदन्त्यद्यापि ते जनाः।
अनन्तरं हरिष्यन्ति युक्तां दीक्षिततामिह॥ ३०

सर्वेऽप्याक्षारयिष्यन्ति तव तातं च मामपि।
मातुश्चरित्रं तनयो धत्ते दुर्भाषणैरिति॥ ३१

पितापि ते न पापीयाञ्छ्रुतिस्मृतिपथानुगः।
तदङ्घ्रिलीनमनसो मम साक्षी महेश्वरः॥ ३२

न चर्तुस्नातयापीह मुखं दुष्टस्य वीक्षितम्।
अहो बलीयान्स विधिर्येन जातो भवानिति॥ ३३

प्रतिक्षणं जनन्येति शिक्ष्यमाणोऽतिदुर्मतिः।
न तत्याज च तद्धर्मं दुर्बोधो व्यसनी यतः॥ ३४

मृगयामद्यपैशुन्यानृतचौर्यदुरोदरैः।
स वारदारैर्व्यसनैरेभिः कोऽत्र न खंडितः॥ ३५

यद्यन्मध्यगृहे पश्येत्तत्तन्नीत्वा सुदुर्मतिः।
अर्पयेद् द्यूतकाराणां सकुप्यं वसनादिकम्॥ ३६

न्यस्तां रत्नमयीं गेहे करस्य पितुरूर्मिकाम्।
चोरयित्वैकदादाय दुरोदरकरेऽर्पयत्॥ ३७

दीक्षितेन परिज्ञातो दैवाद् द्यूतकृतः करे।
उवाच दीक्षितस्तं च कुतो लब्धा त्वयोर्मिका॥ ३८

पृष्टस्तेनाथ निर्बंधादसकृत्तमुवाच सः।
मामाक्षिपसि विप्रोच्चैः किं मया चौर्यकर्मणा॥ ३९

लब्धा मुद्रा त्वदीयेन पुत्रेणैव समर्पिता।
मम मातुर्हि पूर्वेद्युर्जित्वा नीतो हि शाटकः॥ ४०

हे पुत्र! राजा भी जब तुम्हारे इस दुष्टाचरणको सुनेंगे, तो तुम्हारे पिताके प्रति अपनी श्रद्धा त्यागकर उनकी वृत्ति भी समाप्त कर देंगे॥ २९॥

अभी तो लोग यह कह रहे हैं कि यह लड़कपनकी दुश्चेष्टा है। इसके पश्चात् वे प्राप्त हुई प्रतिष्ठित दीक्षितकी उपाधि भी छीन लेंगे॥ ३०॥

सभी लोग तुम्हारे पिताको और मुझको भी दुष्ट वचनोंसे धिक्कारेंगे और कहेंगे कि इसकी माता दुश्चरित्रा है; क्योंकि माताके चरित्रको ही पुत्र धारण करता है॥ ३१॥

तुम्हारे पिता पापी नहीं हैं, वे तो श्रुति-स्मृतियोंके पथपर अनुगमन करनेवाले हैं। उन्हींके चरणोंमें मेरा मन लगा रहता है, जिसके साक्षी भगवान् सदाशिव हैं॥ ३२॥

मैंने ऋतुसमयमें किसी दुष्टका मुख भी नहीं देखा [जिसका तुम्हारे ऊपर प्रभाव पड़ गया हो]। अरे वह विधाता ही बलवान् है, जिसके कारण तुम्हारे-जैसा पुत्र उत्पन्न हुआ है॥ ३३॥

माताके द्वारा इस प्रकार हर समय समझाये जानेपर भी उस अत्यन्त दुष्ट बुद्धिवालेने अपने उस दुष्कर्मका परित्याग नहीं किया; क्योंकि व्यसन-प्राप्त प्राणी दुर्बोध होता है। मृगया (शिकार), मद्य, पैशुन्य (चुगली), असत्यभाषण, चोरी, द्यूत और वेश्यागमन आदि—इन व्यसनोंसे कौन खण्डित नहीं हो जाता है॥ ३४-३५॥

वह दुष्ट जो-जो सन्दूक, वस्त्र आदि वस्तुओंको घरमें देखता, उन-उन वस्तुओंको ले जाकर जुआरियोंको सौंप देता था। एक बार घरमें पिताके हाथकी एक रत्नजटित अँगूठी रखी थी, उसे चुरा करके उसने किसी जुआरीके हाथमें दे दिया॥ ३६-३७॥

संयोगसे दीक्षितने किसी जुआरीके हाथमें उस अँगूठीको देख लिया और उससे पूछा कि तुम्हें यह अँगूठी कहाँसे प्राप्त हुई है?॥ ३८॥

उस दीक्षितके द्वारा बार-बार कठोरतासे पूछे जानेपर उस जुआरीने कहा—हे ब्राह्मण! आप जोर-जोरसे मुझपर क्यों आक्षेप कर रहे हैं? क्या मैंने इसे चोरीसे प्राप्त किया है? आपके पुत्रने ही मुद्रा लेकर इसको मुझे दिया है। इसके पहले भी मेरे द्वारा जुएमें जीत लिये जानेपर उसने अपनी माताकी साड़ी भी चुराकर मुझे दी है॥ ३९-४०॥

न केवलं ममैवैतदंगुलीयं समर्पितम्।
अन्येषां द्यूतकर्तॄणां भूरि तेनार्पितं वसु॥ ४१

रत्नकुप्यदुकूलानि भृङ्गारप्रभृतीनि च।
भाजनानि विचित्राणि कांस्यताम्रमयानि च॥ ४२

नग्नीकृत्य प्रतिदिनं बध्यते द्यूतकारिभिः।
न तेन सदृशः कश्चिदाक्षिको भूमिमण्डले॥ ४३

अद्यावधि त्वया विप्र दुरोदरशिरोमणिः।
कथं नाज्ञायि तनयोऽविनयानयकोविदः॥ ४४

इति श्रुत्वा त्रपाभारविनम्रतरकन्धरः।
प्रावृत्य वाससा मौलिं प्राविशन्निजमन्दिरम्॥ ४५

महापतिव्रतामस्य पत्नीं प्रोवाच तामथ।
स दीक्षितो यज्ञदत्तः श्रौतकर्मपरायणः॥ ४६

यज्ञदत्त उवाच

दीक्षितायनि कुत्रास्ति धूर्तो गुणनिधिः सुतः।
अथ तिष्ठतु किं तेन क्व सा मम शुभोर्मिका॥ ४७

अंगोद्वर्तनकाले या त्वया मेऽङ्गुलितो हृता।
सा त्वं रत्नमयीं शीघ्रं तामानीय प्रयच्छ मे॥ ४८

इति श्रुत्वाथ तद्वाक्यं भीता सा दीक्षितायनी।
प्रोवाच स्नानमध्याह्नीं क्रियां निष्पादयंत्यथ॥ ४९

व्यग्रास्मि देवपूजार्थमुपहारादिकर्मणि।
समयोऽयमतिक्रामेदतिथीनां प्रियातिथे॥ ५०

इदानीमेव पक्वान्नकरणव्यग्रया मया।
स्थापिता भाजने क्वापि विस्मृतेति न वेद्म्यहम्॥ ५१

दीक्षित उवाच

हं हेऽसत्पुत्रजननि नित्यं सत्यप्रभाषिणि।
यदा यदा त्वां सम्पृच्छे तनयः क्व गतस्त्विति॥ ५२
तदा तदेति त्वं ब्रूयान्नाथेदानीं स निर्गतः।
अधीत्याध्ययनार्थं च द्वित्रैर्मित्रैः सयुग्बहिः॥ ५३

कुतस्ते शाटकः पत्नि मांजिष्ठो यो मयार्पितः।
लंबते योऽनिशं धाम्नि तथ्यं ब्रूहि भयं त्यज॥ ५४

उसने मात्र मुझको ही यह अँगूठी नहीं दी है, अपितु अन्य जुआरियोंको भी उसने बहुत-सा धन दिया है॥ ४१॥

रत्नोंकी सन्दूक, रेशमी वस्त्र, सोनेकी झारी आदि वस्तुएँ, अच्छे-अच्छे काँसे और ताँबेके पात्र भी उसने दिये हैं॥ ४२॥

जुआरी लोग उसे प्रतिदिन नग्न करके बाँधते रहते हैं। इस भूमण्डलपर उसके समान कोई दूसरा जुआरी नहीं है। हे विप्र! आजतक आप जुआरियोंमें अग्रणी और अविनय तथा अनीतिमें प्रवीण अपने पुत्रको क्यों जान नहीं सके?॥ ४३-४४॥

ऐसा सुनकर लज्जाके भारसे उस ब्राह्मणका सिर झुक गया और अपने सिरको वस्त्रसे ढँककर वह अपने घर चला आया॥ ४५॥

तदनन्तर वह श्रौतकर्मपरायण दीक्षित यज्ञदत्त अपनी महान् पतिव्रता पत्नीसे कहने लगा— ॥ ४६॥

यज्ञदत्त बोला—हे दीक्षितायनि! धूर्त पुत्र गुणनिधि कहाँ है, कहीं भी बैठा हो, उससे क्या लाभ है? वह मेरी सुन्दर-सी अँगूठी कहाँ है?॥ ४७॥

तुमने मेरे शरीरमें तैल, उबटन आदि लगानेके समय मेरी अँगुलीसे जिसको निकाल लिया था, उस रत्नजटित अँगूठीको लाकर शीघ्र ही मुझे दो॥ ४८॥

उसके इस वचनको सुनकर वह दीक्षितायनी भयभीत हो उठी और बोली—इस समय मैं मध्याह्नकालकी स्नान-क्रियाओंको सम्पन्न कर रही हूँ॥ ४९॥

देवपूजाके लिये अर्पित की जानेवाली सामग्रियोंको एकत्रित करनेमें मैं व्याकुल हूँ। हे अतिथिप्रिय! यह अतिथियोंका समय कहीं अतिक्रमण न कर जाय। इसलिये मैं भोजन बनानेमें व्यस्त हूँ। मैंने किसी पात्रमें अँगूठीको रख दिया है। अभी याद नहीं आ रहा है॥ ५०-५१॥

दीक्षित बोला—अरे दुष्ट पुत्रको उत्पन्न करनेवाली! हे सदा सच बोलनेवाली! मैंने जब-जब तुझसे यह पूछा कि पुत्र कहाँ गया है? तब-तब तूने यही कहा—हे नाथ! अभी पढ़कर वह अपने दो-तीन मित्रोंके साथ पुनः पढ़नेके लिये बाहर चला गया है॥ ५२-५३॥

हे पत्नि! तुम्हारी वह मंजीठी रंगकी साड़ी कहाँ है? जिसको मैंने तुम्हें दिया था, जो घरमें रोज टँगी रहती थी। सच-सच बताओ, डरो मत॥ ५४॥

साम्प्रतं नेक्ष्यते सोऽपि भृंगारो मणिमंडितः।
पट्टसूत्रमयी सापि त्रिपटी या मयार्पिता॥ ५५

मणिजटित वह सोनेकी झारी भी इस समय नहीं दिखायी दे रही है और न तो वह रेशमी-त्रिपटी (दुपट्टा) ही दिखायी दे रही है, जिसको रखनेके लिये तुम्हें मैंने दिया था॥ ५५॥

क्व दाक्षिणात्यं तत्कांस्यं गौडी ताम्रघटी क्व सा।
नागदंतमयी सा क्व सुखकौतुकमंचिका॥ ५६

दक्षिण देशमें बननेवाला वह कांसेका पात्र और गौड़ देशमें बननेवाली वह ताँबेकी घटी कहाँ है? हाथी-दाँतसे बनी हुई वह सुख देनेवाली मचियाँ कहाँ है॥ ५६॥

क्व सा पर्वतदेशीया चन्द्रकांतिरिवाद्भुता।
दीपकव्यग्रहस्ताग्रालंकृता शालभञ्जिका॥ ५७

पर्वतीय-क्षेत्रोंमें पायी जानेवाली, चन्द्रकान्त मणिके समान अद्भुत, हाथमें दीपक लिये वह शृंगारयुक्त शालभंजिका कहाँ है॥ ५७॥

किं बहूक्तेन कुलजे तुभ्यं कुप्याम्यहं वृथा।
तदाभ्यवहरिष्येऽहमुपयंस्याम्यहं यदा॥ ५८

अधिक कहनेसे लाभ ही क्या? हे कुलजे! मैं तुझपर व्यर्थ ही क्रोध कर रहा हूँ। अब तो मेरा भोजन तभी होगा, जब मैं दूसरा विवाह कर लूँगा॥ ५८॥

अनपत्योऽस्मि तेनाहं दुष्टेन कुलदूषिणा।
उत्तिष्ठानय पाथस्त्वं तस्मै दद्यां तिलांजलिम्॥ ५९

कुलको दूषित करनेवाले उस दुष्टके रहते हुए भी अब मैं निःसन्तान हूँ। उठो और जल लाओ। मैं उसे तिलांजलि देता हूँ॥ ५९॥

अपुत्रत्वं वरं नृणां कुपुत्रात्कुलपांसनात्।
त्यजेदेकं कुलस्यार्थे नीतिरेषा सनातनी॥ ६०

कुलको कलंकित करनेवाले कुपुत्रकी अपेक्षा मनुष्यका पुत्रहीन होना श्रेयस्कर है। कुलकी भलाईके लिये एकका परित्याग कर देना चाहिये—यह सनातन नियम है॥ ६०॥

स्नात्वा नित्यविधिं कृत्वा तस्मिन्नेवाह्नि कस्यचित्।
श्रोत्रियस्य सुतां प्राप्य पाणिं जग्राह दीक्षितः॥ ६१

तदनन्तर उस दीक्षित ब्राह्मणने स्नान करके, अपनी नित्य-क्रिया सम्पन्न करके उसी दिन किसी श्रोत्रिय ब्राह्मणकी कन्याको प्राप्त करके उसके साथ विवाह कर लिया॥ ६१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने गुणनिधिचरित्रवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टि-उपाख्यानमें गुणनिधिचरित्रवर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

शिवमन्दिरमें दीपदानके प्रभावसे पापमुक्त होकर गुणनिधिका दूसरे जन्ममें कलिंगदेशका राजा बनना और फिर शिवभक्तिके कारण कुबेर पदकी प्राप्ति

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा तथा स वृत्तान्तं प्राक्तनं स्वं विनिंद्य च।
कांचिद्दिशं समालोक्य निर्ययौ दीक्षितांगजः॥ १

कियच्चिरं ततो गत्वा यज्ञदत्तात्मजः स हि।
दुष्टो गुणनिधिस्तस्थौ गतोत्साहो विसर्जितः॥ २

ब्रह्माजी बोले—उन वृत्तान्तोंको सुनकर वह दीक्षितपुत्र अपने भाग्यकी निन्दा करके किसी दिशाको देखकर अपने घरसे चल पड़ा। कुछ कालतक चलनेके पश्चात् वह यज्ञदत्तपुत्र दुष्ट गुणनिधि थक जानेके कारण उत्साहहीन होकर वहीं रुक गया॥ १-२॥

चिंतामवाप महतीं क्व यामि करवाणि किम्।
नाहमभ्यस्तविद्योऽस्मि न चैवातिधनोऽस्म्यहम्॥ ३

वह बहुत बड़ी चिन्तामें पड़ गया कि अब मैं कहाँ जाऊँ, क्या करूँ? मैंने विद्याका अभ्यास भी नहीं किया और न तो मेरे पास अत्यधिक धन ही है॥ ३॥

देशांतरे यस्य धनं स सद्यः सुखमेधते।
भयमस्ति धने चौरात्स विघ्नः सर्वतो भवः॥ ४

दूसरे देशमें तत्काल सुख तो उसीको प्राप्त होता है, जिसके पास धन रहता है। यद्यपि धन रहनेपर चोरसे भय होता है, किंतु यह विघ्न सर्वत्र उत्पन्न हो सकता है॥ ४॥

याजकस्य कुले जन्म कथं मे व्यसनं महत्।
अहो बलीयान्हि विधिर्भावि कर्मानुसंधयेत्॥ ५

अरे! याजकके कुलमें जन्म होनेपर भी मुझमें इतना बड़ा दुर्व्यसन कैसे आ गया! यह आश्चर्य है, किंतु भाग्य बड़ा बलवान् है, वही मनुष्यके भावी कर्मका अनुसन्धान करता है॥ ५॥

भिक्षितुं नाधिगच्छामि न मे परिचितः क्वचित्।
न च पार्श्वे धनं किञ्चित्किमत्र शरणं भवेत्॥ ६

मैं भिक्षा माँगनेके लिये नहीं जाता हूँ। मेरा यहाँ कोई परिचित भी नहीं है और न मेरे पास कुछ धन ही है। मेरे लिये कोई शरण तो होनी ही चाहिये॥ ६॥

सदानभ्युदिते भानौ प्रसूर्मे मिष्टभोजनम्।
दद्याद्यात्र कं याचे न चेह जननी मम॥ ७

सदैव सूर्योदय होनेके पूर्व ही मेरी माता मुझे मधुर भोजन देती थीं। आज मैं यहाँ किससे माँगूँ। मेरी माता भी तो यहाँ नहीं हैं॥ ७॥

ब्रह्मोवाच

इति चिंतयतस्तस्य बहुशस्तत्र नारद।
अतिदीनं तरोर्मूले भानुरस्ताचलं गतः॥ ८

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! इस प्रकार बहुत-सी चिन्ता करते हुए वृक्षके नीचे बैठे-बैठे वह अत्यधिक दीन-हीन हो उठा, इतनेमें सूर्य अस्ताचलको चला गया॥ ८॥

एतस्मिन्नेव समये कश्चिन्माहेश्वरो नरः।
सहोपहारानादाय नगराद् बहिरभ्यगात्॥ ९
नानाविधान्महादिव्यान्स्वजनैः परिवारितः।
समभ्यर्चितुमीशानं शिवरात्रावुपोषितः॥ १०

इसी समय कोई शिवभक्त मनुष्य अनेक प्रकारकी परम दिव्य पूजा-सामग्रियाँ लेकर शिवरात्रिके दिन उपवासपूर्वक महेश्वरकी पूजा करनेके लिये अपने परिवारजनोंके साथ नगरसे बाहर निकला॥ ९-१०॥

शिवालयं प्रविश्याथ स भक्तः शिवसक्तधीः।
यथोचितं सुचित्तेन पूजयामास शंकरम्॥ ११
पक्वान्नगंधमाघ्राय यज्ञदत्तात्मजो द्विजः।
पितृत्यक्तो मातृहीनः क्षुधितः स तमन्वगात्॥ १२

शिवजीमें रत चित्तवाले उस भक्तने शिवालयमें प्रवेश करके सावधान मनसे यथोचित रूपसे शंकरकी पूजा की। [भगवान् शिवके लिये लगाये गये नैवेद्यके] पक्वान्नोंकी गन्धको सूँघकर पिताके द्वारा परित्यक्त, मातृहीन तथा भूखसे व्याकुल यज्ञदत्तका पुत्र वह ब्राह्मण गुणनिधि उसके पास पहुँचा॥ ११-१२॥

इदमन्नं मया ग्राह्यं शिवायोपकृतं निशि।
सुप्ते शैवजने दैवात्सर्वस्मिन्विविधं महत्॥ १३
इत्याशामवलम्ब्याथ द्वारि शम्भोरुपाविशत्।
ददर्श च महापूजां तेन भक्तेन निर्मिताम्॥ १४

[उसने सोचा कि] ये सभी शिवभक्त जब रात्रिमें सो जायँगे, तब मैं शिवपर चढ़ाये गये इस विविध नैवेद्यको भाग्यवश प्राप्त करूँगा। ऐसी आशा करके वह भगवान् शंकरके द्वारपर बैठ गया और उस भक्तके द्वारा की गयी महापूजाको देखने लगा॥ १३-१४॥

विधाय नृत्यगीतादि भक्ताः सुप्ताः क्षणे यदा।
नैवेद्यं स तदादातुं भर्गागारं विवेश ह॥ १५

भक्तलोग जिस समय [भगवान् शिवके सामने] नृत्य-गीत आदि करके सो गये, उसी समय वह नैवेद्यको लेनेके लिये भगवान् शिवके मन्दिरमें घुस गया॥ १५॥

दीपं मन्दप्रभं दृष्ट्वा पक्वान्नवीक्षणाय सः।
निजचैलांचलाद्वर्तिं कृत्वा दीपं प्रकाश्य च॥ १६

यज्ञदत्तात्मजः सोऽथ शिवनैवेद्यमादरात्।
जग्राह सहसा प्रीत्या पक्वान्नं बहुशस्ततः॥ १७

[वहाँपर जल रहे] दीपकके प्रकाशको मन्द देखकर पक्वान्नोंको देखनेके लिये अपने उत्तरीय वस्त्रको [फाड़ करके] बत्ती बनाकर दीपकको प्रकाशितकर यज्ञदत्तके उस पुत्रने आदरपूर्वक शिवके लिये लगाये गये बहुतसे पक्वान्नोंके नैवेद्यको एकाएक सहर्ष उठा लिया॥ १६-१७॥

ततः पक्वान्नमादाय त्वरितं गच्छतो बहिः।
तस्य पादतलाघातात्प्रसुप्तः कोऽप्यबुध्यत॥ १८

इसके बाद उस पक्वान्नको लेकर शीघ्र ही बाहर जाते हुए उसके पैरके आघातसे कोई सोया हुआ व्यक्ति जग उठा॥ १८॥

कोऽयं कोऽयं त्वरापन्नो गृह्यतां गृह्यतामसौ।
इति चुक्रोश स जनो गिरा भयमहोच्चया॥ १९

शीघ्रता करनेवाला यह कौन है ?, कौन है ? इसे पकड़ो—इस प्रकार भययुक्त ऊँची वाणीमें वह व्यक्ति चिल्लाने लगा॥ १९॥

यावद्भयात्समागत्य तावत्स पुररक्षकैः।
पलायमानो निहतः क्षणादंधत्वमागतः॥ २०

भयवश वह ब्राह्मण जब भाग रहा था, उसी समय वहाँ पुररक्षकोंने पहुँचकर उसे मारा, जिससे वह अन्धा होकर तत्काल मर गया॥ २०॥

अभक्षयच्च नैवेद्यं यज्ञदत्तात्मजो मुने।
शिवानुग्रहतो नूनं भाविपुण्यबलान्न सः॥ २१

हे मुने! यज्ञदत्तके उस पुत्रने निश्चित शिवकी ही कृपासे नैवेद्यको खा लिया था, न कि अपने भावी पुण्यफलके प्रभावसे॥ २१॥

मृतो बद्धः समागत्य पाशमुद्गरपाणिभिः।
निनीषुभिः संयमनीं याम्यैः स विकटैर्भटैः॥ २२

इसके पश्चात् उस मरे हुए ब्राह्मणको यमलोक ले जानेके लिये पाश, मुद्गर हाथमें लिये हुए यमके भयंकर दूत वहाँ आकर उसे बाँधने लगे॥ २२॥

तावत्पारिषदाः प्राप्ताः किंकिणीजालमालिनः।
दिव्यं विमानमादाय तं नेतुं शूलपाणयः॥ २३

इतनेमें छोटी-छोटी घण्टियोंसे युक्त आभूषण धारण किये हुए और हाथमें त्रिशूलसे युक्त हो शिवके पार्षद दिव्य विमान लेकर उसे ले जानेके लिये आ गये॥ २३॥

शिवगणा ऊचुः

मुञ्चतैनं द्विजं याम्या गणाः परमधार्मिकम्।
दण्डयोग्यो न विप्रोऽसौ दग्धः सर्वाघसंचयः॥ २४

शिवगण बोले—हे यमराजके गणो! इस परम धार्मिक ब्राह्मणको छोड़ दो। यह ब्राह्मण दण्डके योग्य नहीं है। इसके समस्त पाप भस्म हो चुके हैं॥ २४॥

इत्याकर्ण्यवचस्ते हि यमराजगणास्ततः।
महादेवगणानाहुर्बभूवुश्चकिता भृशम्॥ २५

शंभोर्गणानथालोक्य भीतैस्तैर्यमकिंकरैः।
अवादि प्रणतैरित्थं दुर्वृत्तोऽयं गणा द्विजः॥ २६

इसके अनन्तर शिवपार्षदोंके वचन सुनकर यमराजके गण आश्चर्यचकित हो गये और महादेवजीके गणोंसे कहने लगे। शम्भुके गणोंको देखकर डरे हुए तथा प्रणाम करते हुए यमराजके दूतोंने इस प्रकार कहा कि हे गणो! यह ब्राह्मण तो दुराचारी था॥ २५-२६॥

यमगणा ऊचुः

कुलाचारं प्रतीर्य्यैष पित्रोर्वाक्यपराङ्मुखः।
सत्यशौचपरिभ्रष्टः सन्ध्यास्नानविवर्जितः॥ २७

यमगण बोले—कुलकी मर्यादाका उल्लंघन करके यह माता-पिताकी आज्ञासे पराङ्मुख, सत्य-शौचसे परिभ्रष्ट और सन्ध्या तथा स्नानसे रहित था॥ २७॥

आस्तां दूरेऽस्य कर्माणि शिवनिर्माल्यलंघकः।
प्रत्यक्षतोऽत्र वीक्षध्वमस्पृश्योऽयं भवादृशाम्॥ २८

यदि इसके अन्य कर्मोंको छोड़ भी दिया जाय, तो भी इसने शिवके निर्माल्य [चढ़ाये गये नैवेद्य]-का लंघन किया है अर्थात् चोरी की है। [इसके इस हेय कर्मको] आप सब स्वयं देख लें, आप-जैसे लोगोंके लिये यह स्पर्शके योग्य भी नहीं है॥ २८॥

शिवनिर्माल्यभोक्तारः शिवनिर्माल्यलंघकाः।
शिवनिर्माल्यदातारः स्पर्शस्तेषां ह्यपुण्यकृत्॥ २९

जो शिव-निर्माल्यको खानेवाले, शिवनिर्माल्यकी चोरी करनेवाले और शिवनिर्माल्यको देनेवाले हैं, उनका स्पर्श अवश्य ही पापकारक होता है॥ २९॥

विषमालोक्य वा पेयं श्रेयो वा स्पर्शनं परम्।
सेवितव्यं शिवस्वं न प्राणैः कण्ठगतैरपि॥ ३०

विषको जान-बूझकर पी लेना श्रेयस्कर है और अछूतका स्पर्श कर लेना भी अति उत्तम है, किंतु कण्ठगत प्राण होनेपर भी शिवनिर्माल्यका सेवन उचित नहीं है॥ ३०॥

यूयं प्रमाणं धर्मेषु यथा न च तथा वयम्।
अस्ति चेद्धर्मलेशोऽस्य गणास्तं शृणुमो वयम्॥ ३१

धर्मके विषयमें आप सब जिस प्रकार प्रमाण हैं, वैसे हमलोग नहीं हैं। हे शिवगण! सुनिये। यदि इसमें धर्मका लेशमात्र भी हो, तो हम सब उसे सुनना चाहते हैं॥ ३१॥

इत्थं तद्वाक्यमाकर्ण्य याम्यानां शिवकिंकराः।
स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं प्रोचुः पारिषदास्तु तान्॥ ३२

यमके दूतोंकी इस बातको सुनकर शिवके पार्षद भगवान् शिवके चरणकमलका स्मरण करके कहने लगे—॥ ३२॥

शिवकिंकरा ऊचुः

किंकराः शिवधर्मा ये सूक्ष्मास्ते तु भवादृशैः।
स्थूललक्ष्यैः कथं लक्ष्या लक्ष्या ये सूक्ष्मदृष्टिभिः॥ ३३

शिवके सेवक बोले—हे यमकिंकरो! जो सूक्ष्म शिवधर्म हैं, जिन्हें सूक्ष्म दृष्टिवाले ही जान सकते हैं, उन्हें आपसदृश स्थूल दृष्टिवाले कैसे जान सकते हैं॥ ३३॥

अनेनानेनसा कर्म यत्कृतं शृणुतेह तत्।
यज्ञदत्तात्मजेनाथ सावधानतया गणाः॥ ३४

हे यमदूतो! पापरहित इस यज्ञदत्तपुत्रने यहाँपर जो पुण्य कर्म किया है, उसे सावधान होकर सुनो—॥ ३४॥

पतन्ती लिंगशिरसि दीपच्छाया निवारिता।
स्वचैलाञ्चलतोऽनेन दत्त्वा दीपदशां निशि॥ ३५

इसने शिवलिंगके शिखरपर पड़ रही दीपककी छायाको दूर किया और अपने उत्तरीय वस्त्रको फाड़कर उससे दीपककी वर्तिका बनायी और फिर उससे दीपकको पुनः जलाकर उस रात्रिमें शिवके लिये प्रकाश किया॥ ३५॥

अपरोऽपि परो धर्मो जातस्तत्रास्य किंकराः।
शृण्वतः शिवनामानि प्रसंगादपि गृह्णताम्॥ ३६

भक्तेन विधिना पूजा क्रियमाणा निरीक्षिता।
उपोषितेन भूतायामनेन स्थिरचेतसा॥ ३७

हे किंकरो! इसने [उस कर्मके अतिरिक्त] अन्य भी पुण्यकर्म किया है। शिवपूजाके प्रसंगमें इसने शिवके नामोंका श्रवण किया और स्वयं उनके नामोंका उच्चारण भी किया है। भक्तके द्वारा विधिवत् की जा रही पूजाको इसने उपवास रखकर बड़े ही मनोयोगसे देखा है॥ ३६-३७॥

शिवलोकमयं ह्यद्य गंतास्माभिः सहैव तु।
कंचित्कालं महाभोगान्करिष्यति शिवानुगः॥ ३८

[अतः इन पुण्योंके प्रभावसे] यह आज ही हमलोगोंके साथ शिवलोकको जायगा। वहाँ शिवका अनुगामी बनकर यह कुछ समयतक उत्तम भोगोंका उपभोग करेगा॥ ३८॥

कलिंगराजो भविता ततो निर्धूतकल्मषः।
एष द्विजवरो नूनं शिवप्रियतरो यतः॥ ३९

तत्पश्चात् अपने पापरूपी मैलको धोकर यह कलिंग देशका राजा बनेगा; क्योंकि यह श्रेष्ठ ब्राह्मण निश्चित ही शिवका प्रिय हो गया है॥ ३९॥

अन्यत्किंचिन्न वक्तव्यं यूयं यात यथागतम्।
यमदूताः स्वलोकं तु सुप्रसन्नेन चेतसा॥ ४०

हे यमदूतो! अब इसके विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है। तुमलोग जैसे आये हो, वैसे ही अतिप्रसन्न मनसे अपने लोकको चले जाओ॥ ४०॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां यमदूता मुनीश्वर।
यथागतं ययुः सर्वे यमलोकं पराङ्मुखाः॥ ४१
सर्वं निवेदयामासुः शमनाय गणा मुने।
तद्वृत्तमादितः प्रोक्तं शंभुदूतैश्च धर्मतः॥ ४२

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! उनके वाक्यको सुनकर पराङ्मुख हुए समस्त यमदूत अपने लोकको लौट गये। हे मुने! गणोंने यमराजसे [गुणनिधिके उस] सम्पूर्ण वृत्तान्तका निवेदन किया और शिवदूतोंने उनसे जो कहा था, वह समाचार आरम्भसे उन्हें सुना दिया॥ ४१-४२॥

धर्मराज उवाच

सर्वे शृणुत मद्वाक्यं सावधानतया गणाः।
तदेव प्रीत्या कुरुत मच्छासनपुरःसरम्॥ ४३

धर्मराज बोले—हे गणो! तुम सब सावधान होकर मेरे इस वाक्यको सुनो। जैसा आदेश दे रहा हूँ, वैसा ही प्रेमपूर्वक तुमलोग करो॥ ४३॥

ये त्रिपुण्ड्रधरा लोके विभूत्या सितया गणाः।
ते सर्वे परिहर्तव्या नानेतव्याः कदाचन॥ ४४

हे गणो! इस संसारमें जो श्वेत भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, उन सभीको छोड़ देना और यहाँपर कभी मत लाना॥ ४४॥

उद्धूलनकरा ये हि विभूत्या सितया गणाः।
ते सर्वे परिहर्तव्या नानेतव्याः कदाचन॥ ४५

हे गणो! जो श्वेत भस्मसे शरीरमें उद्धूलन करते हैं, उन सबको तुमलोग छोड़ देना और यहाँ कभी मत लाना॥ ४५॥

शिववेशतया लोके येन केनापि हेतुना।
ते सर्वे परिहर्तव्या नानेतव्याः कदाचन॥ ४६

इस संसारमें जिस किसी भी कारणसे जो शिवका वेष धारण करनेवाले हैं, उन सभी लोगोंको भी छोड़ देना और यहाँ कभी मत लाना॥ ४६॥

ये रुद्राक्षधरा लोके जटाधारिण एव ये।
ते सर्वे परिहर्तव्या नानेतव्याः कदाचन॥ ४७

इस जगत्में जो रुद्राक्ष धारण करनेवाले हैं या सिरपर जटा धारण करते हैं, उन सबको तुमलोग छोड़ देना और यहाँ कभी मत लाना॥ ४७॥

उपजीवनहेतोश्च शिववेशधरा हि ये।
ते सर्वे परिहर्तव्या नानेतव्याः कदाचन॥ ४८

जिन लोगोंने जीविकाके निमित्त ही शिवका वेष धारण किया है, उन सबको भी छोड़ देना और यहाँ कभी मत लाना॥ ४८॥

दम्भेनापि छलेनापि शिववेशधरा हि ये।
ते सर्वे परिहर्तव्या नानेतव्याः कदाचन॥ ४९

जिन्होंने दम्भ या छल-प्रपंचके कारण ही शिवका वेष धारण किया है, उन सबको भी तुमलोग छोड़ देना और यहाँ कभी मत लाना॥ ४९॥

एवमाज्ञापयामास स यमो निजकिंकरान्।
मत्वा तथेति ते सर्वे तूष्णीमासञ्छुचिस्मिताः॥ ५०

इस प्रकार उन यमराजने अपने सेवकोंको आज्ञा दी, [जिसको सुनकर उन लोगोंने कहा कि जैसी आपकी आज्ञा है] वैसा ही होगा—ऐसा कहकर वे मन्द-मन्द हँसते हुए चुप हो गये॥ ५०॥

ब्रह्मोवाच

पार्षदैर्यमदूतेभ्यो मोचितस्त्विति स द्विजः।
शिवलोकं जगामाशु तैर्गणैः शुचिमानसः॥ ५१

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार शिवपार्षदोंने यमदूतोंसे उस ब्राह्मणको छुड़ाया और वह पवित्र मनसे युक्त होकर शीघ्र ही उन शिवगणोंके साथ शिवलोकको चला गया॥ ५१॥

तत्र भुक्त्वाखिलान्भोगान्संसेव्य च शिवाशिवौ।
अरिंदमस्य तनयः कलिंगाधिपतेरभूत्॥ ५२

वहाँपर सभी सुखभोगोंका उपभोग करके तथा भगवान् सदाशिव एवं पार्वतीकी सेवा करके वह [दूसरे जन्ममें] कलिंगदेशके राजा अरिंदमका पुत्र हुआ॥ ५२॥

दम इत्यभिधानोऽभूच्छिवसेवापरायणः।
बालोऽपि शिशुभिः साकं शिवभक्तिं चकार सः॥ ५३

उस शिवसेवापरायण बालकका नाम दम हुआ। बालक होते हुए भी वह अन्य शिशुओंके साथ शिवकी भक्ति करने लगा॥ ५३॥

क्रमाद्राज्यमवापाथ पितर्युपरते युवा।
प्रीत्या प्रवर्तयामास शिवधर्मांश्च सर्वशः॥ ५४

क्रमशः उसने युवावस्था प्राप्त की और पिताके परलोकगमनके पश्चात् उसे राज्य भी प्राप्त हुआ। उसने प्रेमपूर्वक अनेक शिवधर्मोंको प्रारम्भ किया॥ ५४॥

नान्यं धर्मं स जानाति दुर्दमो भूपतिर्दमः।
शिवालयेषु सर्वेषु दीपदानादृते द्विज॥ ५५

हे ब्रह्मन्! दुष्टोंका दमन करनेवाला वह राजा दम शिवालयोंमें दीपदानके अतिरिक्त अन्य कोई धर्म नहीं मानता था॥ ५५॥

ग्रामाधीशान्समाहूय सर्वान्स विषयस्थितान्।
इत्थमाज्ञापयामास दीपा देयाः शिवालये॥ ५६

उसने सभी ग्राम और जनपद-प्रमुखोंको बुला करके यह आदेश दिया कि तुमलोगोंको शिवालयोंमें दीप-प्रज्वालनकी व्यवस्था करनी है॥ ५६॥

अन्यथा सत्यमेवेदं स मे दण्ड्यो भविष्यति।
दीपदानाच्छिवस्तुष्टो भवतीति श्रुतीरितम्॥ ५७

यदि [किसीके क्षेत्रमें] ऐसा नहीं हुआ, तो यह सत्य है कि [उस क्षेत्रका] वह प्रधान निश्चित ही मेरे द्वारा दण्ड पायेगा। दीपदानसे भगवान् शिव सन्तुष्ट होते हैं—ऐसा श्रुतियोंमें कहा गया है॥ ५७॥

यस्य यस्याभितो ग्रामं यावन्तश्च शिवालयाः।
तत्र तत्र सदा दीपो द्योतनीयोऽविचारितम्॥ ५८

जिसके-जिसके गाँवके चारों ओर जितने भी शिवालय हों, वहाँ-वहाँ सदैव बिना कोई विचार किये ही दीपक जलाना चाहिये॥ ५८॥

ममाज्ञाभंगदोषेण शिरश्छेत्स्याम्यसंशयम्।
इति तद्भयतो दीपा दीप्ताः प्रतिशिवालयम्॥ ५९

अपनी आज्ञाके उल्लंघनके दोषपर मैं निश्चित ही अपराधीका सिर काट लूँगा। इस प्रकार उस राजाके भयसे प्रत्येक शिवमन्दिरमें दीपक जलाये जाने लगे॥ ५९॥

अनेनैव स धर्मेण यावज्जीवं दमो नृपः।
धर्मर्द्धिं महतीं प्राप्य कालधर्मवशं गतः॥ ६०

इस प्रकार जीवनपर्यन्त इसी धर्माचरणके पालनसे राजा दम धर्मकी महान् समृद्धि प्राप्त करके अन्तमें कालधर्मकी गतिको प्राप्त हुआ॥ ६०॥

स दीपवासनायोगाद् बहून्दीपान्प्रदीप्य वै।
अलकायाः पतिरभूद्रत्नदीपशिखाश्रयः॥ ६१

अपनी इस दीपवासनाके कारण शिवालयोंमें बहुत-से दीपक प्रज्वलित करके वह राजा [दूसरे जन्ममें] रत्नमय दीपकोंकी शिखाओंको आश्रय देनेवाली अलकापुरीका राजा कुबेर हुआ॥ ६१॥

एवं फलति कालेन शिवेऽल्पमपि यत्कृतम्।
इति ज्ञात्वा शिवे कार्यं भजनं सुसुखार्थिभिः॥ ६२

इस प्रकार भगवान् शंकरके लिये अल्पमात्र भी किया गया धार्मिक कृत्य समय आनेपर फल प्रदान करता है। यह जानकर उत्तम सुख चाहनेवाले लोगोंको शिवका भजन करना चाहिये॥ ६२॥

क्व स दीक्षितदायादः सर्वधर्मारतिः सदा।
शिवालये दैवयोगाद्यातश्चोरयितुं वसु।
स्वार्थदीपदशोद्योतलिंगमौलितमोहरः॥ ६३

कलिंगविषये राज्यं प्राप्तो धर्मरतिं सदा।
शिवालये समुद्दीप्य दीपान्प्राग्वासनोदयात्॥ ६४

क्वैषा दिक्पालपदवी मुनीश्वर विलोकय।
मनुष्यधर्मिणानेन सांप्रतं येह भुज्यते॥ ६५

कहाँ सभी धर्मोंसे सदा ही दूर रहनेवाला दीक्षितका पुत्र और कहाँ दैवयोगसे धन चुरानेके लिये शिवमन्दिरमें उसका प्रवेश एवं स्वार्थवश दीपककी वर्तिकाको जलाकर शिवलिंगके मस्तकपर छाये हुए अन्धकारको दूर करनेके लिये किया गया उसका पुण्य। [जिसके प्रभावसे] उसने कलिंगदेशका राज्य प्राप्त किया और सदैव धर्ममें अनुरक्त रहने लगा। पूर्वजन्मके संस्कारके उदय होनेके कारण ही शिवालयमें सम्यक् रूपसे मात्र दीपकको जलाकर उसने यह दिक्पाल कुबेरकी महान् पदवी प्राप्त कर ली। हे मुनीश्वर! देखिये यह मनुष्यधर्मा इस समय इस लोकमें रहकर इसका भोग कर रहा है॥ ६३—६५॥

इति प्रोक्तं गुणनिधेर्यज्ञदत्तात्मजस्य हि।
चरितं शिवसंतोषं शृण्वतां सर्वकामदम्॥ ६६

इस प्रकार यज्ञदत्तके पुत्र गुणनिधिके चरित्रका वर्णन कर दिया, जो शिवको प्रसन्न करनेवाला है और जिसको सुननेवालेकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं॥ ६६॥

सर्वदेवशिवेनासौ सखित्वं च यथेयिवान्।
तदप्येकमना भूत्वा शृणु तात ब्रवीमि ते॥ ६७

गुणनिधिने सर्वदेवमय भगवान् सदाशिवसे जिस प्रकार मित्रता प्राप्त की, अब मैं उसका वर्णन आपसे कर रहा हूँ। हे तात! एकाग्रचित्त होकर आप सुनें॥ ६७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने कैलासगमनोपाख्याने गुणनिधिसद्गतिवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टि-उपाख्यानके अन्तर्गत कैलासगमन-उपाख्यानमें गुणनिधिसद्गतिवर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

कुबेरका काशीपुरीमें आकर तप करना, तपस्यासे प्रसन्न उमासहित भगवान् विश्वनाथका प्रकट हो उसे दर्शन देना और अनेक वर प्रदान करना, कुबेरद्वारा शिवमैत्री प्राप्त करना

ब्रह्मोवाच

पाद्मे कल्पे मम पुरा ब्रह्मणो मानसात्सुतात्।
पुलस्त्याद्विश्रवा जज्ञे तस्य वैश्रवणः सुतः॥ १

ब्रह्माजी बोले— पहलेके पाद्मकल्पकी बात है, मुझ ब्रह्माके मानसपुत्र पुलस्त्यसे विश्रवाका जन्म हुआ और विश्रवाके पुत्र वैश्रवण कुबेर हुए॥ १॥

तेनेयमलका भुक्ता पुरी विश्वकृता कृता।
आराध्य त्र्यंबकं देवमत्युग्रतपसा पुरा॥ २

उन्होंने पूर्वकालमें अत्यन्त उग्र तपस्याके द्वारा त्रिनेत्रधारी महादेवकी आराधना करके विश्वकर्माकी बनायी हुई इस अलकापुरीका उपभोग किया॥ २॥

व्यतीते तत्र कल्पे वै प्रवृत्ते मेघवाहने।
याज्ञदत्तिरसौ श्रीमान् तपस्तेपे सुदुःसहम्॥ ३

उस कल्पके व्यतीत हो जानेपर मेघवाहनकल्प आरम्भ हुआ, उस समय वह यज्ञदत्तका पुत्र [कुबेरके रूपमें] अत्यन्त कठोर तपस्या करने लगा॥ ३॥

भक्तिप्रभावं विज्ञाय शंभोस्तद्दीपमात्रतः।
पुरा पुरारेः संप्राप्य काशिकां चित्प्रकाशिकाम्॥ ४

शिवैकादशमुद्बोध्य चित्तरत्नप्रदीपकैः।
अनन्यभक्तिस्नेहाढ्यस्तन्मयो ध्याननिश्चलः॥ ५

दीपदानमात्रसे मिलनेवाली शिवभक्तिके प्रभावको जानकर शिवकी चित्प्रकाशिका काशिकापुरीमें जाकर अपने चित्तरूपी रत्नमय दीपकोंसे ग्यारह रुद्रोंको उद्‌बोधित करके अनन्य भक्ति एवं स्नेहसे सम्पन्न हो वह तन्मयतापूर्वक शिवके ध्यानमें मग्न होकर निश्चलभावसे बैठ गया॥ ४-५॥

शिवैक्यं सुमहापात्रं तपोऽग्निपरिबृंहितम्।
कामक्रोधमहाविघ्नपतंगाघातवर्जितम्॥ ६

प्राणसंरोधनिर्वातं निर्मलं निर्मलेक्षणात्।
संस्थाप्य शांभवं लिंगं सद्भावकुसुमार्चितम्॥ ७

तावत्तताप स तपस्त्वगस्थिपरिशेषितम्।
यावद् बभूव तद्वर्ष्म वर्षाणामयुतं शतम्॥ ८

जो शिवसे एकताका महान् पात्र है, तपरूपी अग्निसे बढ़ा हुआ है, काम-क्रोधादि महाविघ्नरूपी पतंगोंके आघातसे शून्य है, प्राणनिरोधरूपी वायुशून्य स्थानमें निश्चलभावसे प्रकाशित है, निर्मल दृष्टिके कारण स्वरूपसे भी निर्मल है तथा सद्भावरूपी पुष्पोंसे पूजित है—ऐसे शिवलिंगकी प्रतिष्ठा करके वह तबतक तपस्यामें लगा रहा, जबतक उसके शरीरमें केवल अस्थि और चर्ममात्र ही अवशिष्ट नहीं रह गये। इस प्रकार उसने दस हजार वर्षोंतक तपस्या की॥ ६—८॥

ततः सह विशालाक्ष्या देवो विश्वेश्वरः स्वयम्।
अलकापतिमालोक्य प्रसन्नेनान्तरात्मना॥ ९

लिंगे मनः समाधाय स्थितं स्थाणुस्वरूपिणम्।
उवाच वरदोऽस्मीति तदाचक्ष्वालकापते॥ १०

तदनन्तर विशालाक्षी पार्वतीदेवीके साथ भगवान् विश्वनाथ स्वयं प्रसन्नमनसे अलकापुरीके स्वामीको देखकर, जो शिवलिंगमें मनको एकाग्र करके ठूँठे वृक्षकी भाँति स्थिरभावसे बैठे थे, बोले—हे अलकापते! मैं वर देनेके लिये उद्यत हूँ, तुम अपने मनकी बात कहो— ॥ ९-१० ॥

उन्मील्य नयने यावत्स पश्यति तपोधनः।
तावदुद्यत्सहस्रांशुसहस्राधिकतेजसम् ॥ ११

पुरो ददर्श श्रीकंठं चन्द्रचूडमुमाधवम्।
तत्तेजःपरिभूताक्षितेजाः संमील्य लोचने॥ १२

उवाच देवदेवेशं मनोरथपदातिगम्।
निजाङ्घ्रिदर्शने नाथ दृक्सामर्थ्यं प्रयच्छ मे॥ १३

अयमेव वरो नाथ यत्त्वं साक्षान्निरीक्ष्यसे।
किमन्येन वरेणेश नमस्ते शशिशेखर॥ १४

उन तपोनिधिने जब अपने नेत्रोंको खोलकर देखा, तो उन्हें उदित हो रहे हजार किरणोंवाले हजार सूर्योंसे भी अधिक तेजस्वी श्रीकण्ठ उमावल्लभ भगवान् चन्द्रशेखर अपने सामने दिखायी दिये। उनके तेजसे प्रतिहत हुए तेजवाले कुबेर चौंधिया गये और अपनी आँखोंको बन्द करके वे मनके लिये अगोचर देवेश्वर भगवान् शंकरसे कहने लगे कि हे नाथ! अपने चरणोंको देखनेके लिये मुझे दृष्टिसामर्थ्य प्रदान करें। हे नाथ! यही वर चाहता हूँ कि मैं आपका साक्षात् दर्शन प्राप्त कर सकूँ। हे ईश! अन्य वरसे क्या लाभ है? हे शशिशेखर! आपको प्रणाम है॥ ११—१४॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा देवदेव उमापतिः।
ददौ दर्शनसामर्थ्यं स्पृष्ट्वा पाणितलेन तम्॥ १५

उनकी यह बात सुनकर देवाधिदेव उमापतिने अपनी हथेलीसे उनका स्पर्श करके उन्हें अपने दर्शनकी शक्ति प्रदान की॥ १५ ॥

प्रसार्य नयने पूर्वमुमामेव व्यलोकयत्।
ततोऽसौ याज्ञदत्तिस्तु तत्सामर्थ्यमवाप्य च॥ १६

देखनेकी शक्ति मिल जानेपर यज्ञदत्तके उस पुत्रने आँखें खोलकर पहले उमाकी ओर ही देखना आरम्भ किया॥ १६ ॥

शंभोः समीपे का योषिदेषा सर्वांगसुन्दरी।
अनया किं तपस्तप्तं ममापि तपसोऽधिकम्॥ १७

वह मन-ही-मन सोचने लगा, भगवान् शंकरके समीप यह सर्वांगसुन्दरी स्त्री कौन है? इसने मेरे तपसे भी अधिक कौन-सा तप किया है॥ १७॥

अहो रूपमहो प्रेम सौभाग्यं श्रीरहो भृशम्।
इत्यवादीदसौ पुत्रो मुहुर्मुहुरतीव हि॥ १८

यह रूप, यह प्रेम, यह सौभाग्य और यह असीम शोभा—सभी अद्भुत हैं, वह ब्राह्मणकुमार बार-बार यही कहने लगा॥ १८ ॥

क्रूरदृग्वीक्षते यावत्पुनः पुनरिदं वदन्।
तावत्पुस्फोट तन्नेत्रं वामं वामाविलोकनात्॥ १९

बार-बार यही कहता हुआ जब वह क्रूरदृष्टिसे उनकी ओर देखने लगा, तब पार्वतीके अवलोकनसे उसकी बाँयीं आँख फूट गयी॥ १९ ॥

अथ देव्यब्रवीद्देवं किमसौ दुष्टतापसः।
असकृद्वीक्ष्य मां वक्ति वद त्वं मे तपःप्रभाम्॥ २०

तदनन्तर देवी पार्वतीने महादेवजीसे कहा—[हे प्रभो!] यह दुष्ट तपस्वी बार-बार मेरी ओर देखकर क्या बोल रहा है? आप मेरी तपस्याके तेजको प्रकट कीजिये॥ २० ॥

असकृद्दक्षिणेनाक्ष्णा पुनर्मामेव पश्यति।
असूयमानो मे रूपप्रेमसौभाग्यसंपदः॥ २१

यह पुनः अपने दाहिने नेत्रसे बार-बार मुझे देख रहा है, निश्चित ही यह मेरे रूप, प्रेम और सौन्दर्यकी सम्पदासे ईर्ष्या करनेवाला है॥ २१॥

इति देवीगिरं श्रुत्वा प्रहस्य प्राह तां प्रभुः।
उमे त्वदीयः पुत्रोऽयं न च क्रूरेण चक्षुषा॥ २२

सम्पश्यति तपोलक्ष्मीं तव किं त्वधिवर्णयेत्।
इति देवीं समाभाष्य तमीशः पुनरब्रवीत्॥ २३
वरान्ददामि ते वत्स तपसानेन तोषितः।
निधीनामथ नाथस्त्वं गुह्यकानां भवेश्वरः॥ २४

देवीकी यह बात सुनकर भगवान् शिवने हँसते हुए उनसे कहा—हे उमे! यह तुम्हारा पुत्र है, यह तुम्हें क्रूरदृष्टिसे नहीं देख रहा है, अपितु तुम्हारी तपःसम्पत्तिका वर्णन कर रहा है॥ २२॥

देवीसे ऐसा कहकर भगवान् शिव पुनः उस [ब्राह्मणकुमार]-से बोले—हे वत्स! मैं तुम्हारी इस तपस्यासे सन्तुष्ट होकर तुम्हें वर देता हूँ। तुम निधियोंके स्वामी और गुह्यकोंके राजा हो जाओ॥ २३-२४॥

यक्षाणां किन्नराणां च राज्ञां राजा च सुव्रत।
पतिः पुण्यजनानां च सर्वेषां धनदो भव॥ २५

हे सुव्रत! तुम यक्षों, किन्नरों और राजाओंके भी राजा, पुण्यजनोंके पालक और सबके लिये धनके दाता हो जाओ॥ २५॥

मया सख्यं च ते नित्यं वत्स्यामि च तवान्तिके।
अलकां निकषा मित्र तव प्रीतिविवृद्धये॥ २६

आगच्छ पादयोरस्याः पत ते जननी त्वियम्।
याज्ञदत्ते महाभक्त सुप्रसन्नेन चेतसा॥ २७

मेरे साथ सदा तुम्हारी मैत्री बनी रहेगी और हे मित्र! तुम्हारी प्रीति बढ़ानेके लिये मैं अलकाके पास ही रहूँगा। नित्य तुम्हारे निकट निवास करूँगा। हे महाभक्त यज्ञदत्त-कुमार! आओ, इन उमादेवीके चरणोंमें प्रसन्न मनसे प्रणाम करो, ये तुम्हारी माता हैं॥ २६-२७॥

ब्रह्मोवाच

इति दत्त्वा वरान्देवः पुनराह शिवां शिवः।
प्रसादं कुरु देवेशि तपस्विन्यंगजेऽत्र वै॥ २८

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार वर देकर भगवान् शिवने देवी पार्वतीसे पुनः कहा—हे देवेश्वरि! तपस्विनि! पुत्रपर कृपा करो। यह तुम्हारा पुत्र है॥ २८॥

इत्याकर्ण्य वचः शंभोः पार्वती जगदम्बिका।
अब्रवीद्याज्ञदत्तिं तं सुप्रसन्नेन चेतसा॥ २९

भगवान् शंकरका यह कथन सुनकर जगदम्बा पार्वती अति प्रसन्नचित्तसे उस यज्ञदत्तकुमारसे कहने लगीं— ॥ २९॥

देव्युवाच

वत्स ते निर्मला भक्तिर्भवे भवतु सर्वदा।
भवैकपिंगो नेत्रेण वामेन स्फुटितेन ह॥ ३०

देवेन दत्ता ये तुभ्यं वराः सन्तु तथैव ते।
कुबेरो भव नाम्ना त्वं मम रूपेर्ष्यया सुत॥ ३१

देवी बोलीं—हे वत्स! भगवान् शिवमें तुम्हारी सदा निर्मल भक्ति बनी रहे। तुम्हारी बायीं आँख तो फूट ही गयी। इसलिये एक ही पिंगल नेत्रसे युक्त रहो। महादेवजीने तुम्हें जो वर दिये हैं, वे सब उसी रूपमें तुम्हें सुलभ हों। हे पुत्र! मेरे रूपके प्रति ईर्ष्या करनेके कारण तुम कुबेर नामसे प्रसिद्ध होओ॥ ३०-३१॥

इति दत्त्वा वरान्देवो देव्या सह महेश्वरः।
धनदायाविवेशाथ धाम वैश्वेश्वराभिधम्॥ ३२

इस प्रकार कुबेरको वर देकर भगवान् महेश्वर पार्वती-देवीके साथ अपने वैश्वेश्वर नामक धाममें चले गये॥ ३२॥

इत्थं सखित्वं श्रीशंभोः प्रापैष धनदः पुरम्।
अलकान्निकषा चासीत्कैलासः शंकरालयः॥ ३३

इस तरह कुबेरने भगवान् शंकरकी मैत्री प्राप्त की और अलकापुरीके पास जो कैलास पर्वत है, वह भगवान् शंकरका निवास हो गया॥ ३३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे कैलासगमनोपाख्याने कुबेरस्य शिवमित्रत्ववर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टि-उपाख्यानमें कैलासगमनोपाख्यानमें कुबेरकी शिवमैत्रीका वर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

अथ विंशोऽध्यायः

भगवान् शिवका कैलास पर्वतपर गमन तथा सृष्टिखण्डका उपसंहार

ब्रह्मोवाच

नारद त्वं शृणु मुने शिवागमनमुत्तमम्।
कैलासे पर्वतश्रेष्ठे कुबेरस्य तपोबलात्॥ १

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! हे मुने! कुबेरके तपोबलसे भगवान् शिवका जिस प्रकार पर्वतश्रेष्ठ कैलासपर शुभागमन हुआ, वह प्रसंग सुनिये॥ १॥

निधिपत्ववरं दत्त्वा गत्वा स्वस्थानमुत्तमम्।
विचिन्त्य हृदि विश्वेशः कुबेरवरदायकः॥ २

कुबेरको वर देनेवाले विश्वेश्वर शिव जब उन्हें निधिपति होनेका वर देकर अपने उत्तम स्थानको चले गये, तब उन्होंने मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया॥ २॥

विध्यङ्गजस्वरूपो मे पूर्णः प्रलयकार्यकृत्।
तद्रूपेण गमिष्यामि कैलासं गुह्यकालयम्॥ ३

ब्रह्माजीके ललाटसे जिनका प्रादुर्भाव हुआ है तथा जो प्रलयका कार्य सँभालते हैं, वे रुद्र मेरे पूर्ण स्वरूप हैं। अतः उन्हींके रूपमें मैं गुह्यकोंके निवासस्थान कैलास पर्वतपर जाऊँगा॥ ३॥

रुद्रो हृदयजो मे हि पूर्णांशो ब्रह्म निष्कलः।
हरिब्रह्मादिभिः सेव्यो मदभिन्नो निरञ्जनः॥ ४

रुद्र मेरे हृदयसे ही प्रकट हुए हैं। वे पूर्णावतार निष्कल, निरंजन, ब्रह्म हैं और मुझसे अभिन्न हैं। हरि, ब्रह्मा आदि देव उनकी सेवा किया करते हैं॥ ४॥

तत्स्वरूपेण तत्रैव सुहृद्भूत्वा विलास्यहम्।
कुबेरस्य च वत्स्यामि करिष्यामि तपो महत्॥ ५

उन्हींके रूपमें मैं कुबेरका मित्र बनकर उसी पर्वतपर विलासपूर्वक रहूँगा और महान् तपस्या करूँगा॥ ५॥

इति सञ्चिन्त्य रुद्रोऽसौ शिवेच्छां गन्तुमुत्सुकः।
ननाद तत्र ढक्कां स्वां सुगतिं नादरूपिणीम्॥ ६

शिवकी इस इच्छाका चिन्तन करके उन रुद्रदेवने कैलास जानेके लिये उत्सुक हो उत्तम गति देनेवाले नादस्वरूप अपने डमरूको बजाया॥ ६॥

त्रैलोक्यामानशे तस्या ध्वनिरुत्साहकारकः।
आह्वानगतिसंयुक्तो विचित्रः सान्द्रशब्दकः॥ ७

उसकी उत्साहवर्धक ध्वनि तीनों लोकोंमें व्याप्त हो गयी। उसका विचित्र एवं गम्भीर शब्द आह्वानकी गतिसे युक्त था अर्थात् सुननेवालोंको अपने पास आनेके लिये प्रेरणा दे रहा था॥ ७॥

तच्छ्रुत्वा विष्णुब्रह्माद्याः सुराश्च मुनयस्तथा।
आगमा निगमा मूर्ताः सिद्धा जग्मुश्च तत्र वै॥ ८

उस ध्वनिको सुनकर ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवता, ऋषि, मूर्तिमान् आगम, निगम तथा सिद्ध वहाँ आ पहुँचे॥ ८॥

सुरासुराद्याः सकलास्तत्र जग्मुश्च सोत्सवाः।
सर्वेऽपि प्रमथा जग्मुर्यत्र कुत्रापि संस्थिताः॥ ९

देवता और असुर सब लोग बड़े उत्साहमें भरकर वहाँ आये। भगवान् शिवके समस्त पार्षद जहाँ-कहीं भी थे, वहाँसे उस स्थानपर पहुँचे॥ ९॥

गणपाश्च महाभागाः सर्वलोकनमस्कृताः।
तेषां सङ्ख्यामहं वच्मि सावधानतया शृणु॥ १०

सर्वलोकवन्दित महाभाग समस्त गणपाल भी उस स्थानपर जानेके लिये उद्यत हो गये। उनकी मैं संख्या बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनिये॥ १०॥

अभ्ययाच्छङ्कुकर्णश्च गणकोट्या गणेश्वरः।
दशभिः केकराक्षश्च विकृतोऽष्टाभिरेव च॥ ११

शङ्कुकर्ण नामका गणेश्वर एक करोड़ गणोंके साथ, केकराक्ष दस करोड़ और विकृत आठ करोड़ गणोंके साथ जानेके लिये एकत्रित हुआ॥ ११॥

चतुःषष्ट्या विशाखश्च नवभिः पारियात्रकः।
षड्भिः सर्वान्तकः श्रीमान्दुन्दुभोऽष्टाभिरेव च॥ १२

विशाख चौंसठ करोड़ गणोंके साथ, पारियात्रक नौ करोड़ गणोंके साथ, सर्वान्तक छः करोड़ गणोंके साथ और श्रीमान् दुन्दुभ आठ करोड़ गणोंके साथ वहाँ चलनेके लिये तैयार हो गया॥ १२॥

जालंको हि द्वादशभिः कोटिभिर्गणपुंगवः।
सप्तभिः समदः श्रीमाँस्तथैव विकृताननः॥ १३

गणश्रेष्ठ जालंक बारह करोड़ गणोंके साथ, समद सात करोड़ गणोंके साथ और श्रीमान् विकृतानन भी उतने गणोंके साथ जानेके लिये तैयार हुए॥ १३॥

पंचभिश्च कपाली हि षड्भिः सन्दारकः शुभः।
कोटिकोटिभिरेवेह कण्डुकः कुण्डकस्तथा॥ १४

कपाली पाँच करोड़ गणोंके साथ, मंगलकारी सन्दार अपने छः करोड़ गणोंके साथ और कण्डुक तथा कुण्डक नामके गणेश्वर भी एक-एक करोड़ गणोंके साथ गये॥ १४॥

विष्टंभोऽष्टाभिरगमदष्टभिश्चन्द्रतापनः ॥ १५

विष्टम्भ और चन्द्रतापन नामक गणाध्यक्ष भी अपने-अपने आठ-आठ करोड़ गणोंके साथ कैलास चलनेके लिये वहाँपर आ गये॥ १५॥

महाकेशः सहस्रेण कोटीनां गणपो वृतः॥ १६

एक हजार करोड़ गणोंसे घिरा हुआ महाकेश नामक गणपति भी वहाँ आ पहुँचा॥ १६॥

कुण्डी द्वादशभिर्वाहस्तथा पर्वतकः शुभः।
कालश्च कालकश्चैव महाकालः शतेन वै॥ १७

कुण्डी बारह करोड़ गणोंके साथ और वाह, श्रीमान् पर्वतक, काल, कालक एवं महाकाल नामके गणेश्वर सौ करोड़ गणोंके साथ वहाँ पहुँचे॥ १७॥

अग्निकः शतकोट्या वै कोट्याभिमुख एव च।
आदित्यमूर्धा कोट्या च तथा चैव धनावहः॥ १८

अग्निक सौ करोड़, अभिमुख एक करोड़, आदित्यमूर्धा तथा धनावह भी एक-एक करोड़ गणोंके साथ वहाँ आये॥ १८॥

सन्नाहश्च शतेनैव कुमुदः कोटिभिस्तथा।
अमोघः कोकिलश्चैव कोटिकोट्या सुमन्त्रकः॥ १९

सन्नाह तथा कुमुद सौ-सौ करोड़ गणोंके साथ और अमोघ, कोकिल एवं सुमन्त्रक एक-एक करोड़ गणोंके साथ आ गये॥ १९॥

काकपादोऽपरः षष्ट्या षष्ट्या सन्तानकः प्रभुः।

काकपाद नामका एक दूसरा गण साठ करोड़ और सन्तानक नामका गणेश्वर भी साठ करोड़ गणोंको साथ लेकर चलनेके लिये वहाँ आया।

महाबलश्च नवभिर्मधुपिंगश्च पिंगलः॥ २०

महाबल, मधुपिंग तथा पिंगल नामक गणेश्वर नौ-नौ करोड़ गणोंके सहित वहाँ उपस्थित हुए॥ २०॥

नीलो नवत्या देवेशं पूर्णभद्रस्तथैव च।
कोटीनां चैव सप्तानां चतुर्वक्त्रो महाबलः॥ २१

नील एवं पूर्णभद्र नामक गणेश्वर भी नब्बे-नब्बे करोड़ गणोंके साथ वहाँ आये। महाशक्तिशाली चतुर्वक्त्र नामका गणेश्वर सात करोड़ गणोंसे घिरा हुआ कैलास जानेके लिये वहाँ आ पहुँचा॥ २१॥

कोटिकोटिसहस्त्राणां शतैर्विंशतिभिर्वृतः।
तत्राजगाम सर्वेशः कैलासगमनाय वै॥ २२

एक सौ बीस हजार करोड़ गणोंसे आवृत होकर सर्वेश नामका गणेश्वर भी कैलास चलनेके लिये वहाँ आया॥ २२॥

काष्ठागूढश्चतुःषष्ट्या सुकेशो वृषभस्तथा।
कोटिभिः सप्तभिश्चैत्रो नकुलीशस्स्वयं प्रभुः॥ २३

काष्ठागूढ, सुकेश तथा वृषभ नामक गणपति चौंसठ करोड़, चैत्र और स्वामी नकुलीश स्वयं सात करोड़ गणोंके साथ कैलासगमनके लिये आये॥ २३॥

लोकान्तकश्च दीप्तात्मा तथा दैत्यान्तकः प्रभुः।
देवो भृंगी रिटिः श्रीमान्देवदेवप्रियस्तथा॥ २४

अशनिर्भानुकश्चैव चतुःषष्ट्या सनातनः।
नन्दीश्वरो गणाधीशः शतकोट्या महाबलः॥ २५

लोकान्तक, दीप्तात्मा, दैत्यान्तक, प्रभु, देव, भृंगी, श्रीमान् देवदेवप्रिय, रिटि, अशनि, भानुक तथा सनातन नामके गणपति चौंसठ-चौंसठ करोड़ गणोंके साथ वहाँपर उपस्थित हुए। नन्दीश्वर नामके महाबलवान् गणाधीश सौ करोड़ गणोंके सहित कैलास चलनेके लिये वहाँ आ पहुँचे॥ २४-२५॥

एते चान्ये च गणपा असंख्याता महाबलाः।
सर्वे सहस्त्रहस्ताश्च जटामुकुटधारिणः॥ २६

इन गणाधिपोंके अतिरिक्त अन्य बहुत-से असंख्य शक्तिशाली गणेश्वर वहाँ कैलास चलनेके लिये आये। वे सब हजार भुजाओंवाले थे तथा जटा, मुकुट धारण किये हुए थे॥ २६॥

सर्वे चन्द्रावतंसाश्च नीलकण्ठास्त्रिलोचनाः।
हारकुण्डलकेयूरमुकुटाद्यैरलंकृताः॥ २७

सभी गण चन्द्रमाके आभूषणसे शोभायमान थे, सभीके कण्ठ नीलवर्णके थे और वे तीन-तीन नेत्रोंसे युक्त थे। सभी हार, कुण्डल, केयूर तथा मुकुट आदि आभूषणोंसे अलंकृत थे॥ २७॥

ब्रह्मेन्द्रविष्णुसंकाशा अणिमादिगणैर्वृताः।
सूर्यकोटिप्रतीकाशास्तत्राजग्मुर्गणेश्वराः॥ २८

ब्रह्मा, इन्द्र और विष्णुके समान अणिमादि अष्ट महासिद्धियोंसे युक्त, करोड़ों सूर्योंके समान देदीप्यमान सभी गणेश्वर वहाँपर आ गये॥ २८॥

एते गणाधिपाश्चान्ये महात्मानोऽमलप्रभाः।
जग्मुस्तत्र महाप्रीत्या शिवदर्शनलालसाः॥ २९

इन गणाध्यक्षोंके अतिरिक्त निर्मल प्रभामण्डलसे युक्त, महान् आत्मावाले तथा भगवान् शिवके दर्शनकी लालसासे परिपूर्ण अन्य अनेक गणाधिप अत्यन्त प्रसन्नताके साथ वहाँपर जा पहुँचे॥ २९॥

गत्वा तत्र शिवं दृष्ट्वा नत्वा चक्रुः परां नुतिम्।
सर्वे साञ्जलयो विष्णुप्रमुखा नतमस्तकाः॥ ३०

विष्णु आदि प्रमुख समस्त देवता वहाँ जाकर भगवान् सदाशिवको देखकर हाथ जोड़कर नतमस्तक होकर उनकी उत्तम स्तुति करने लगे॥ ३०॥

इति विष्ण्वादिभिः सार्धं महेशः परमेश्वरः।
कैलासमगमत्प्रीत्या कुबेरस्य महात्मनः॥ ३१

इस प्रकार विष्णु आदि देवताओंके साथ परमेश्वर भगवान् महेश महात्मा कुबेरके प्रेमसे वशीभूत हो कैलासको चले गये॥ ३१॥

कुबेरोऽप्यागतं शंभुं पूजयामास सादरम्।
भक्त्या नानोपहारैश्च परिवारसमन्वितः॥ ३२

कुबेरने भी सपरिवार भक्तिपूर्वक नाना प्रकारके उपहारोंसे वहाँ आये हुए भगवान् शम्भुकी सादर पूजा की॥ ३२॥

ततो विष्ण्वादिकान्देवान्गणांश्चान्यानपि ध्रुवम्।
शिवानुगान्समानर्च शिवतोषणहेतवे॥ ३३

तत्पश्चात् उसने शिवको सन्तुष्ट करनेके लिये उनका अनुगमन करनेवाले विष्णु आदि देवताओं और अन्यान्य गणेश्वरोंका भी विधिवत् पूजन किया॥ ३३॥

अथ शम्भुः समालिंग्य कुबेरं प्रीतमानसः।
मूर्ध्नि चाघ्राय संतस्थावलकां निकषाखिलैः॥ ३४

[इसके बाद उसकी सेवाको देखकर] अति प्रसन्नचित्त भगवान् शम्भु कुबेरका आलिंगनकर और उसका सिर सूँघकर अलकापुरीके अति निकट ही अपने समस्त अनुगामियोंके साथ ठहर गये॥ ३४॥

शशास विश्वकर्माणं निर्माणार्थं गिरौ प्रभुः।
नानाभक्तनिवासाय स्वपरेषां यथोचितम्॥ ३५

तदनन्तर भगवान् शिवने विश्वकर्माको अपने तथा दूसरे देवताओंके भक्तोंके लिये उस पर्वतपर निवासहेतु यथोचित निर्माणकार्य करनेकी आज्ञा दी॥ ३५॥

विश्वकर्मा ततो गत्वा तत्र नानाविधां मुने।
रचनां रचयामास द्रुतं शम्भोरनुज्ञया॥ ३६

हे मुने! विश्वकर्माने शिवकी आज्ञासे वहाँ जाकर यथाशीघ्र ही नाना प्रकारकी रचना की॥ ३६॥

अथ शम्भुः प्रमुदितो हरिप्रार्थनया तदा॥ ३७
कुबेरानुग्रहं कृत्वा ययौ कैलासपर्वतम्।
सुमुहूर्ते प्रविश्यासौ स्वस्थानं परमेश्वरः॥ ३८
अकरोदखिलान्प्रीत्या सनाथान्भक्तवत्सलः।
अथ सर्वे प्रमुदिता विष्णुप्रभृतयः सुराः।
मुनयश्चापरे सिद्धा अभ्यषिञ्चन्मुदा शिवम्॥ ३९

उस समय विष्णुकी प्रार्थनासे शिव प्रसन्न हो उठे और कुबेरपर अनुग्रह करके वे कैलासपर्वतपर चले गये। शुभ मुहूर्तमें अपने निवासस्थानमें प्रवेशकर भक्तवत्सल उन परमेश्वरने अपने प्रेमसे सबको सनाथ कर दिया। सभी प्रमुदित विष्णु आदि देवता, मुनिगण और अन्य सिद्धजनोंने मिलकर प्रेमपूर्वक सदाशिवका अभिषेक किया॥ ३७—३९॥

समानर्चुः क्रमात्सर्वे नानोपायनपाणयः।
नीराजनं समाकार्षुर्महोत्सवपुरःसरम्॥ ४०

हाथोंमें नाना प्रकारके उपहार लेकर सबने क्रमशः उनका पूजन किया और बहुत महोत्सवके साथ [सामने खड़े होकर] उनकी आरती उतारी॥ ४०॥

तदासीत्सुमनोवृष्टिर्मंगलायतना मुने।
सुप्रीता ननृतुस्तत्राप्सरसो गानतत्पराः॥ ४१

हे मुने! उस समय [आकाशसे] मंगलसूचक पुष्पवृष्टि होने लगी और अत्यन्त प्रसन्न होकर गान करती हुई अप्सराएँ नाचने लगीं॥ ४१॥

जयशब्दो नमः शब्दस्तत्रासीत्सर्वसंस्कृतः।
तदोत्साहो महानासीत्सर्वेषां सुखवर्धनः॥ ४२

सब ओर जय-जयकार और नमस्कारके सुसंस्कृत शब्द गूँजने लगे। उस समय चारों ओर एक महान् उत्साह व्याप्त था, जो सबके सुखको बढ़ा रहा था॥ ४२॥

स्थित्वा सिंहासने शंभुर्विरराजाधिकं तदा।
सर्वैः संसेवितोऽभीक्ष्णं विष्ण्वाद्यैश्च यथोचितम्॥ ४३

उस समय सिंहासनपर बैठकर भगवान् सदाशिव अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे और विष्णु आदि सभी लोग बार-बार उनकी यथोचित सेवा कर रहे थे॥ ४३॥

अथ सर्वे सुराद्याश्च तुष्टुवुस्तं पृथक्पृथक्।
अर्थ्याभिर्वाग्भिरिष्टाभिः शंकरं लोकशंकरम्॥ ४४

सभी देवताओंने पृथक्-पृथक् रूपमें अर्थभरी वाणी और अभीष्ट वस्तुओंसे लोकमंगलकारी भगवान् शंकरका स्तवन-वन्दन किया॥ ४४॥

प्रसन्नात्मा स्तुतिं श्रुत्वा तेषां कामान्ददौ शिवः।
मनोभिलषितान्प्रीत्या वरान्सर्वेश्वरः प्रभुः॥ ४५

प्रसन्नचित्त सर्वेश्वर स्वामी सदाशिवने उनकी स्तुतिको सुनकर प्रेमपूर्वक उन्हें मनोवांछित वर दिये॥ ४५॥

शिवाज्ञयाथ ते सर्वे स्वं स्वं धाम ययुर्मुने।
प्राप्तकामाः प्रमुदिता अहं च विष्णुना सह॥ ४६

[हे मुने!] अभीष्ट कामनाओंसे परिपूर्ण, प्रसन्नचित्त वे सभी [देव, मुनि और सिद्धजन] भगवान् शिवकी आज्ञासे अपने-अपने धामको चले गये। मैं भी विष्णुके साथ प्रसन्नतापूर्वक चलनेके लिये उद्यत हुआ॥ ४६॥

उपवेश्यासने विष्णुं मां च शम्भुरुवाच ह।
बहु सम्बोध्य सुप्रीत्यानुगृह्य परमेश्वरः॥ ४७

तब श्रीविष्णु और मुझको आसनपर बैठाकर परमेश्वर शम्भु बड़े प्रेमसे बहुत समझाकर अनुग्रह करके कहने लगे— ॥ ४७॥

शिव उवाच

हे हरे हे विधे तातौ युवां प्रियतरौ मम।
सुरोत्तमौ त्रिजगतोऽवनसर्गकरौ सदा॥ ४८

शिवजी बोले—हे हरे! हे विधे! हे तात! सदैव तीनों लोकोंका सृजन और संरक्षण करनेवाले हे सुरश्रेष्ठ! आप दोनों मुझे अत्यन्त प्रिय हैं॥ ४८॥

गच्छतं निर्भयं नित्यं स्वस्थानं च मदाज्ञया।
सुखप्रदाताहं वै वां विशेषात्प्रेक्षकः सदा॥ ४९

अब आप दोनों भी निर्भय होकर मेरी आज्ञासे अपने-अपने स्थानको जायँ। मैं सदा आप दोनोंको सुख प्रदान करनेवाला हूँ और विशेष रूपसे आप दोनोंके सुख-दुःखको देखता ही रहता हूँ॥ ४९॥

इत्याकर्ण्य वचः शम्भोः सुप्रणम्य तदाज्ञया।
अहं हरिश्च स्वं धामागमाव प्रीतमानसौ॥ ५०

भगवान् सदाशिवके वचनको सुनकर मैं और विष्णु दोनों प्रेमपूर्वक प्रणाम करके प्रसन्नचित्त होकर उनकी आज्ञासे अपने-अपने धामको लौट आये॥ ५०॥

तदानीमेव सुप्रीतः शंकरो निधिपं मुदा।
उपवेश्य गृहीत्वा तं कर आह शुभं वचः॥ ५१

उसी समय प्रसन्नचित्त भगवान् शंकर निधिपति कुबेरका भी हाथ पकड़कर उन्हें अपने पास बैठाकर यह शुभ वाक्य कहने लगे— ॥ ५१॥

तव प्रेम्णा वशीभूतो मित्रतामगमं सखे।
स्वस्थानं गच्छ विभयः सहायोऽहं सदानघ॥ ५२

हे मित्र! तुम्हारे प्रेमके वशीभूत होकर मैं तुम्हारा मित्र बन गया हूँ। हे पुण्यात्मन्! भयरहित होकर तुम अपने स्थानको जाओ; मैं सदा तुम्हारा सहायक हूँ॥ ५२॥

इत्याकर्ण्य वचः शम्भोः कुबेरः प्रीतमानसः।
तदाज्ञया स्वकं धाम जगाम प्रमुदान्वितः॥ ५३

भगवान् शम्भुके इस वचनको सुनकर प्रसन्नचित्त कुबेर उनकी आज्ञासे प्रसन्नतापूर्वक अपने धामको चले गये॥ ५३॥

स उवास गिरौ शम्भुः कैलासे पर्वतोत्तमे।
सगणो योगनिरतः स्वच्छन्दो ध्यानतत्परः॥ ५४

योगपरायण, सब प्रकारसे स्वच्छन्द तथा सदा ध्यानमग्न रहनेवाले भगवान् शिव अपने गणोंके साथ उस पर्वतश्रेष्ठ कैलासपर निवास करने लगे॥ ५४॥

क्वचिद्दध्यौ स्वमात्मानं क्वचिद्योगरतोऽभवत्।
इतिहासं गणान्प्रीत्यावादीत्स्वच्छन्दमानसः ॥ ५५

क्वचित्कैलासकुधरसुस्थानेषु महेश्वरः।
विजहार गणैः प्रीत्या विविधेषु विहारवित्॥ ५६

कभी वे अपने ही आत्मस्वरूप ब्रह्मका चिन्तन करते थे। कभी योगमें तल्लीन रहते थे, कभी स्वच्छन्द मनसे प्रेमपूर्वक अपने गणोंको इतिहास सुनाते थे और कभी विहार करनेमें चतुर भगवान् महेश्वर अपने गणोंके साथ कैलास पर्वतकी टेढ़ी-मेढ़ी, ऊबड़-खाबड़ गुफाओं तथा कन्दराओंमें और अनेक सुरम्य स्थानोंपर प्रसन्नचित्त होकर विचरण करते थे॥ ५५-५६॥

इत्थं रुद्रस्वरूपोऽसौ शंकरः परमेश्वरः।
अकार्षीत्स्वगिरौ लीला नाना योगिवरोऽपि यः॥ ५७

इस प्रकार रुद्र-स्वरूप परमेश्वर भगवान् शंकर जो नाना प्रकारके योगियोंमें भी सर्वश्रेष्ठ हैं, उन्होंने अपने उस पर्वतपर अनेक लीलाएँ कीं॥ ५७॥

नीत्वा कालं कियन्तं सोऽपत्नीकः परमेश्वरः।
पश्चादवाप स्वां पत्नीं दक्षपत्नीसमुद्भवाम्॥ ५८

इस प्रकार बिना पत्नीके रहते हुए परमेश्वर सदाशिवने अपना कुछ समय व्यतीत करके बादमें दक्षपत्नीसे उत्पन्न सतीको पत्नीके रूपमें प्राप्त किया॥ ५८॥

विजहार तया सत्या दक्षपुत्र्या महेश्वरः।
सुखी बभूव देवर्षे लोकाचारपरायणः॥ ५९

तदनन्तर हे देवर्षे! वे महेश्वर उन दक्षपुत्री सतीके साथ विहार करने लगे। इस प्रकार [सतीके साथ पतिरूपमें] लोकाचारपरायण रहते हुए वे बहुत ही सुखी थे॥ ५९॥

इत्थं रुद्रावतारस्ते वर्णितोऽयं मुनीश्वर।
कैलासागमनं चास्य सखित्वं निधिपस्य हि॥ ६०

तदन्तर्गतलीलापि वर्णिता ज्ञानवर्धिनी।
इहामुत्र च या नित्यं सर्वकामफलप्रदा॥ ६१

हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैंने आपको रुद्रके अवतारका वर्णन कर दिया है। मैंने उनके कैलास-आगमन और कुबेरके साथ उनकी मित्रताका प्रसंग भी कह दिया है। कैलासके अन्तर्गत होनेवाली उनकी ज्ञानवर्धिनी लीलाका भी वर्णन कर दिया है, जो इस लोक और परलोकमें सदैव सभी मनोवांछित फलोंको प्रदान करनेवाली है॥ ६०-६१॥

इमां कथां पठेद्यस्तु शृणुयाद्वा समाहितः।
इह भुक्तिं समासाद्य लभेन्मुक्तिं परत्र सः॥ ६२

जो एकाग्रचित्त होकर इस कथाको सम्यक् रूपसे पढ़ता है अथवा सुनता है, वह इस लोकमें सुख भोगकर परलोकमें मुक्ति प्राप्त करता है॥ ६२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने कैलासोपाख्याने शिवस्य कैलासगमनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टि-उपाख्यानके कैलासोपाख्यानमें शिवकैलासगमन नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयरुद्रसंहितायां प्रथमः सृष्टिखण्डः समाप्तः॥

॥ ॐ श्रीसाम्बशिवाय नमः॥ ॥ ॐ श्रीगणेशाय नमः॥

श्रीशिवमहापुराण

द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीयः सतीखण्डः

अथ प्रथमोऽध्यायः

सतीचरित्रवर्णन, दक्षयज्ञविध्वंसका संक्षिप्त वृत्तान्त तथा सतीका पार्वतीरूपमें हिमालयके यहाँ जन्म लेना

नारद उवाच

विधे सर्वं विजानासि कृपया शङ्करस्य च।
त्वयाद्भुता हि कथिताः कथा मे शिवयोः शुभाः॥ १

नारदजी बोले—हे विधे! भगवान् शंकरकी कृपासे आप सब कुछ जानते हैं। आपने शिव और पार्वतीकी बहुत ही अद्भुत तथा मंगलकारी कथाएँ कही हैं॥ १॥

त्वन्मुखाम्भोजसंवृत्तां श्रुत्वा शिवकथां पराम्।
अतृप्तो हि पुनस्तां वै श्रोतुमिच्छाम्यहं प्रभो॥ २

आपके मुखारविन्दसे निकली हुई शम्भुकी श्रेष्ठ कथाको सुनकर मैं अतृप्त ही हूँ, हे प्रभो! मैं उसे पुनः सुनना चाहता हूँ॥ २॥

पूर्णांशः शङ्करस्यैव यो रुद्रो वर्णितः पुरा।
विधे त्वया महेशानः कैलासनिलयो वशी॥ ३

स योगी सर्वविष्ण्वादिसुरसेव्यः सतां गतिः।
निर्द्वन्द्वः क्रीडति सदा निर्विकारो महाप्रभुः॥ ४

हे विधे! पहले आपने शंकरके पूर्णांश महेशान, कैलासवासी तथा जितेन्द्रिय जिन रुद्रका वर्णन किया, वे योगी जितेन्द्रिय विष्णु आदि सभी देवताओंसे सेवाके योग्य, संतोंकी परम गति, निर्विकार महाप्रभु निर्द्वन्द्व होकर सदैव क्रीड़ा करते रहते थे॥ ३-४॥

सोऽभूत्पुनर्गृहस्थश्च विवाह्य परमां स्त्रियम्।
हरिप्रार्थनया प्रीत्या मङ्गलां सुतपस्विनीम्॥ ५

विष्णुकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर वे मंगलमयी परमतपस्विनी तथा श्रेष्ठ स्त्रीसे विवाह करके गृहस्थ बन गये॥ ५॥

प्रथमं दक्षपुत्री सा पश्चात्सा पर्वतात्मजा।
कथमेकशरीरेण द्वयोरप्यात्मजा मता॥ ६

सर्वप्रथम वे [शिवा] दक्षपुत्री हुईं और तत्पश्चात् पर्वतराज हिमालयकी कन्या पार्वतीके रूपमें उन्होंने जन्म लिया। एक ही शरीरसे वे दोनोंकी कन्या किस प्रकारसे मानी गयीं?॥ ६॥

कथं सती पार्वती सा पुनः शिवमुपागता।
एतत्सर्वं तथान्यच्च ब्रह्मन् गदितुमर्हसि॥ ७

वे सती पुनः पार्वती होकर शिवको कैसे प्राप्त हुईं? हे ब्रह्मन्! यह सब तथा अन्य बातोंको भी आप कृपा करके बतायें॥ ७॥

सूत उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा सुरर्षेः शंकरात्मनः।
प्रसन्नमानसो भूत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत्॥ ८

सूतजी बोले—शिवभक्त देवर्षि नारदके इस वचनको सुनकर मनसे [अत्यन्त] प्रसन्न होकर ब्रह्माजी कहने लगे—॥ ८॥

ब्रह्मोवाच

शृणु तात मुनिश्रेष्ठ कथयामि कथां शुभाम्।
यां श्रुत्वा सफलं जन्म भविष्यति न संशयः॥ ९

ब्रह्माजी बोले—हे तात! हे मुनिश्रेष्ठ! सुनिये, अब मैं शिवकी मंगलकारिणी कथा कह रहा हूँ, जिसको सुनकर जन्म सफल हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ ९॥

पुराहं स्वसुतां दृष्ट्वा सन्ध्याह्वां तनयैः सह।
अभवं विकृतस्तात कामबाणप्रपीडितः॥ १०

हे तात! पुराने समयकी बात है—अपनी सन्ध्या नामक पुत्रीको देखकर पुत्रोंसहित मैं कामदेवके बाणोंसे पीड़ित होकर विकारग्रस्त हो गया॥ १०॥

धर्मः स्मृतस्तदा रुद्रो महायोगी परः प्रभुः।
धिक्कृत्य मां सुतैस्तात स्वस्थानं गतवानयम्॥ ११

हे तात! उस समय धर्मके द्वारा स्मरण किये गये महायोगी और महाप्रभु रुद्र पुत्रोंसहित मुझे धिक्कारकर अपने घर चले गये॥ ११॥

यन्मायामोहितश्चाहं वेदवक्ता च मूढधीः।
तेनाकार्षं सहाकार्यं परमेशेन शंभुना॥ १२

जिनकी मायासे मोहित हुआ मैं वेदवक्ता होनेपर भी मूढ़ बुद्धिवाला हो गया, उन्हीं परमेश्वर शंकरके साथ मैं अकरणीय कार्य करने लगा॥ १२॥

तदीर्षयाहमाकार्षं बहूपायान्सुतैः सह।
कर्तुं तन्मोहनं मूढः शिवमायाविमोहितः॥ १३

शिवकी मायासे मोहित हुआ मैं मूढ़ अपने पुत्रोंके सहित ईर्ष्यावश उन्हींको मोहित करनेके लिये अनेक उपाय करने लगा॥ १३॥

अभवंस्तेऽथ वै सर्वे तस्मिन् शंभौ परप्रभौ।
उपाया निष्फलास्तेषां मम चापि मुनीश्वर॥ १४

हे मुनीश्वर! उन परमेश्वर शिवके ऊपर किये गये मेरे तथा मेरे उन पुत्रोंके सभी उपाय निष्फल हो गये॥ १४॥

तदास्मरं रमेशानं व्यर्थोपायः सुतैः सह।
अबोधयत्स आगत्य शिवभक्तिरतः सुधीः॥ १५

तब अपने पुत्रोंसहित उपायोंको करनेमें विफल हुए मैंने लक्ष्मीपति विष्णुका स्मरण किया। शिवभक्तिपरायण तथा श्रेष्ठ बुद्धिवाले भगवान् विष्णुने आकर मुझे समझाया॥ १५॥

प्रबोधितो रमेशेन शिवतत्त्वप्रदर्शिना।
तदीर्षामत्यजं सोऽहं तं हठं न विमोहितः॥ १६

शिवतत्त्वको भलीभाँति जाननेवाले भगवान् रमापतिके द्वारा समझाये जानेपर भी विमोहित मैं अपनी ईर्ष्या और हठको नहीं छोड़ सका॥ १६॥

शक्तिं संसेव्य तत्प्रीत्योत्पादयामास तां तदा।
दक्षादसिक्न्यां वीरिण्यां स्वपुत्राद्धरमोहने॥ १७

तब मैंने शक्तिकी सेवाकर उन्हें प्रसन्न किया। उनकी ही कृपासे शिवको मोहित करनेके लिये अपने पुत्र दक्षसे वीरणकी कन्या असिक्नीके गर्भसे कन्याको उत्पन्न कराया॥ १७॥

सोमा भूत्वा दक्षसुता तपः कृत्वा तु दुःसहम्।
रुद्रपत्न्यभवद्भक्त्या स्वभक्तहितकारिणी॥ १८

अपने भक्तोंका हित करनेवाली वही उमा दक्षपुत्री नामसे प्रसिद्ध होकर दुःसह तप करके अपनी दृढ़भक्तिसे रुद्रकी पत्नी हो गयीं॥ १८॥

सोमो रुद्रो गृही भूत्वाकार्षील्लीलां परां प्रभुः।
मोहयित्वाथ मां तत्र स्वविवाहेऽविकारधीः॥ १९

विकाररहित बुद्धिवाले वे प्रभु रुद्र अपने विवाहकालमें मुझे मोहितकर उमाके साथ गृहस्थ होकर उत्तम लीला करने लगे॥ १९॥

विवाह्य तां स आगत्य स्वगिरौ सूतिकृत्तया।
रेमे बहुविमोहो हि स्वतंत्रः स्वात्तविग्रहः॥ २०

उमाके साथ विवाहकर सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छासे अपने कैलास पर्वतपर आकर स्वेच्छासे शरीर धारण करनेवाले तथा सदा स्वतन्त्र रहनेवाले सदाशिव अत्यन्त विमोहित होकर उनके साथ रमण करने लगे॥ २०॥

तया विहरतस्तस्य व्यतीयाय महान् मुने।
कालः सुखकरः शंभोर्निर्विकारस्य सद्व्रतेः॥ २१

ततो रुद्रस्य दक्षेण स्पर्धा जाता निजेच्छया।
महामूढस्य तन्मायामोहितस्य सुगर्विणः॥ २२

हे मुने! उनके साथ विहार करते हुए निर्विकार शिवका वह सुखकारी बहुत-सा समय बीत गया। तदनन्तर किसी निजी इच्छाके कारण रुद्रकी दक्षसे स्पर्धा हो गयी। उस समय शिवकी मायासे दक्ष मोहसे ग्रस्त, महामूढ़ और अहंकारसे युक्त हो गया॥ २१-२२॥

तत्प्रभावाद्धरं दक्षो महागर्वी विमूढधीः।
महाशांतं निर्विकारं निनिन्द बहुमोहितः॥ २३

उनके ही प्रभावसे महान् अहंकारी, मूढ़बुद्धि और अत्यन्त विमोहित हुआ वह दक्ष उन्हीं महाशान्त तथा निर्विकार भगवान् हरकी निन्दा करने लगा॥ २३॥

ततो दक्षः स्वयं यज्ञं कृतवान्गर्वितोऽहरम्।
सर्वानाहूय देवादीन् विष्णुं मां चाखिलाधिपः॥ २४

तदनन्तर गर्वमें भरे हुए सर्वाधिप दक्षने मुझे, विष्णुको तथा सभी देवताओंको बुलाकर, किंतु शिवजीको बिना बुलाये ही स्वयं यज्ञ कर डाला॥ २४॥

नाजुहाव तथाभूतो रुद्रं रोषसमाकुलः।
तथा तत्र सतीं नाम्नीं स्वपुत्रीं विधिमोहितः॥ २५

[किसी कारणवश] रुद्रपर असन्तुष्ट, क्रोधसे भरे हुए उस दक्ष प्रजापतिने उन्हें उस यज्ञमें नहीं बुलाया और दुर्भाग्यवश न तो उसने अपनी पुत्रीको ही उस यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये आहूत किया॥ २५॥

यदा नाकारिता पित्रा मायामोहितचेतसा।
लीलां चकार सुज्ञाना महासाध्वी शिवा तदा॥ २६

अथागता सती तत्र शिवाज्ञामधिगम्य सा।
अनाहूतापि दक्षेण गर्विणा स्वपितुर्गृहम्॥ २७

जब मायासे मोहित चित्तवाले दक्ष प्रजापतिने शिवाको [यज्ञमें] आमन्त्रित नहीं किया, तो ज्ञानस्वरूपा उन महासाध्वीने अपनी लीला प्रारम्भ की। वे शिवजीकी आज्ञा प्राप्तकर गर्वयुक्त दक्षके द्वारा आमन्त्रित न होनेपर भी अपने पिता दक्षके घर पहुँच गयीं॥ २६-२७॥

विलोक्य रुद्रभागं नो प्राप्यावज्ञां च ताततः।
विनिन्द्य तत्र तान्सर्वान्देहत्यागमथाकरोत्॥ २८

उन देवीने यज्ञमें रुद्रके भागको न देखकर और अपने पितासे अपमानित होकर वहाँ [उपस्थित] सभीकी निन्दा करके [योगाग्निसे] अपने शरीरको त्याग दिया॥ २८॥

तच्छ्रुत्वा देवदेवेशः क्रोधं कृत्वा तु दुःसहम्।
जटामुत्कृत्य महतीं वीरभद्रमजीजनत्॥ २९

यह सुनकर देवदेवेश्वर रुद्रने दुःसह क्रोध करके अपनी महान् जटा उखाड़कर वीरभद्रको उत्पन्न किया॥ २९॥

सगणं तं समुत्पाद्य किं कुर्यामिति वादिनम्।
सर्वापमानपूर्वं हि यज्ञध्वंसं दिदेश ह॥ ३०

गणोंसहित उसे उत्पन्न करके 'मैं क्या करूँ'—ऐसा कहते हुए उस वीरभद्रको शिवजीने आज्ञा दी कि [हे वीरभद्र! दक्षके यज्ञमें आये हुए] सभीका अपमान करते हुए तुम यज्ञका विध्वंस करो॥ ३०॥

गणाधीशस्तदाज्ञां स प्राप्य बहुबलान्वितः।
गतोऽरं तत्र सहसा महाबलपराक्रमः॥ ३१

शिवजीकी इस आज्ञाको पाकर महाबलवान् तथा पराक्रमी वह गणेश्वर वीरभद्र अपनी बहुत-सी सेना लेकर [यज्ञविध्वंसके लिये] वहाँ शीघ्र ही पहुँचा॥ ३१॥

महोपद्रवमाचेरुर्गणास्तत्र तदाज्ञया।
सर्वान्स दण्डयामास न कश्चिदवशेषितः॥ ३२

उसकी आज्ञासे उन गणोंने वहाँ महान् उपद्रव प्रारम्भ किया। उस वीरभद्रने सबको दण्डित किया, [दण्ड पानेसे] कोई भी न बचा॥ ३२॥

विष्णुं संजित्य यत्नेन सामरं गणसत्तमः।
चक्रे दक्षशिरश्छेदं तच्छिरोऽग्नौ जुहाव च॥ ३३

यज्ञध्वंसं चकाराशु महोपद्रवमाचरन्।
ततो जगाम स्वगिरिं प्रणनाम प्रभुं शिवम्॥ ३४

वीरभद्रने देवताओंके साथ विष्णुको भी जीतकर दक्षका सिर काट लिया और उस सिरको अग्निमें हवन कर दिया। इस प्रकार महान् उपद्रव करते हुए उसने यज्ञको विनष्ट कर दिया। तत्पश्चात् वह कैलासपर गया और उसने शिवको प्रणाम किया॥ ३३-३४॥

यज्ञध्वंसोऽभवच्चेत्थं देवलोके हि पश्यति।
रुद्रस्यानुचरैस्तत्र वीरभद्रादिभिः कृतः॥ ३५

इस प्रकार यज्ञका विध्वंस हो गया, देवताओंके देखते-देखते रुद्रके अनुचर वीरभद्र आदिने यज्ञको विनष्ट कर दिया॥ ३५॥

मुने नीतिरियं ज्ञेया श्रुतिस्मृतिषु सम्मता।
रुद्रे रुष्टे कथं लोके सुखं भवति सुप्रभौ॥ ३६

हे मुने! श्रुतियों तथा स्मृतियोंसे प्रतिपादित यह नीति जान लेनी चाहिये कि श्रेष्ठ प्रभु रुद्रके रुष्ट हो जानेपर लोकमें सुख कैसे हो सकता है!॥ ३६॥

ततो रुद्रः प्रसन्नोऽभूत्स्तुतिमाकर्ण्य तां पराम्।
विज्ञप्तिं सफलां चक्रे सर्वेषां दीनवत्सलः॥ ३७

[उसके बाद सभी देवताओंने यज्ञकी पूर्णताके लिये भगवान् रुद्रकी स्तुति की] उस उत्तम स्तुतिको सुनकर रुद्र प्रसन्न हो गये। उन दीनवत्सल [भगवान् रुद्र]-ने सबकी प्रार्थनाको सफल बना दिया॥ ३७॥

पूर्ववच्च कृतं तेन कृपालुत्वं महात्मना।
शंकरेण महेशेन नानालीलाविहारिणा॥ ३८

जीवितस्तेन दक्षो हि तत्र सर्वे हि सत्कृताः।
पुनः स कारितो यज्ञः शंकरेण कृपालुना॥ ३९

अनेक प्रकारकी लीला करनेवाले महात्मा शंकर महेशने पूर्ववत् कृपालुता की। उन्होंने दक्षप्रजापतिको जीवित कर दिया और सभी लोगोंका सत्कार किया, तदुपरान्त कृपालु शंकरने [दक्षसे] पुनः यज्ञ करवाया॥ ३८-३९॥

रुद्रश्च पूजितस्तत्र सर्वैर्देवैर्विशेषतः।
यज्ञे विष्ण्वादिभिर्भक्त्या सुप्रसन्नात्मभिर्मुने॥ ४०

हे मुने! उस यज्ञमें विष्णु आदि सभी देवताओंने बड़े प्रसन्नमनसे भक्तिके साथ रुद्रका विशेष रूपसे पूजन किया॥ ४०॥

सतीदेहसमुत्पन्ना ज्वाला लोकसुखावहा।
पतिता पर्वते तत्र पूजिता सुखदायिनी॥ ४१

सतीके शरीरसे उत्पन्न तथा सभी लोगोंको सुख देनेवाली वह ज्वाला पर्वतपर गिरी, वह लोगोंके द्वारा पूजित होनेपर सुख प्रदान करती है॥ ४१॥

ज्वालामुखीति विख्याता सर्वकामफलप्रदा।
बभूव परमा देवी दर्शनात्पापहारिणी॥ ४२

इदानीं पूज्यते लोके सर्वकामफलाप्तये।
संविधाभिरनेकाभिर्महोत्सवपुरःसरम्॥ ४३

ज्वालामुखीके नामसे प्रसिद्ध वे परमा देवी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली तथा दर्शनसे समस्त पापोंको विनष्ट करनेवाली हैं। सम्पूर्ण कामनाओंके फलकी प्राप्तिहेतु लोग इस समय अनेकों विधि-विधानोंसे महोत्सवपूर्वक उनकी पूजा करते हैं॥ ४२-४३॥

ततश्च सा सती देवी हिमालयसुताभवत्।
तस्याश्च पार्वती नाम प्रसिद्धमभवत्तदा॥ ४४

तदनन्तर वे सती देवी हिमालयकी पुत्रीके रूपमें उत्पन्न हुईं। तब उनका पार्वती—यह नाम विख्यात हुआ॥ ४४॥

सा पुनश्च समाराध्य तपसा कठिनेन वै।
तमेव परमेशानं भर्तारं समुपाश्रिता॥ ४५

उन देवीने पुनः कठिन तपस्याके द्वारा उन्हीं परमेश्वर शिवकी आराधना करके उन्हें पतिरूपमें प्राप्त किया॥ ४५॥

एतत्सर्वं समाख्यातं यत्पृष्टोऽहं मुनीश्वर।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥ ४६

हे मुनीश्वर! जो आपने मुझसे पूछा था, वह सब मैंने कह दिया, जिसे सुनकर मनुष्य सभी पापोंसे छुटकारा प्राप्त कर लेता है॥ ४६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे सतीसंक्षेपचरित्रवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सतीचरित्रवर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

सदाशिवसे त्रिदेवोंकी उत्पत्ति, ब्रह्माजीसे देवता आदिकी सृष्टिके पश्चात् देवी सन्ध्या तथा कामदेवका प्राकट्य

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य नैमिषारण्यवासिनः।
पप्रच्छ च मुनिश्रेष्ठः कथां पापप्रणाशिनीम्॥ १

सूतजी बोले—हे नैमिषारण्यनिवासी मुनियो! [ब्रह्माके] इस वचनको सुनकर नारदने पुनः पापोंको नष्ट करनेवाली कथा पूछी—॥ १॥

नारद उवाच

विधे विधे महाभाग कथां शंभोः शुभावहाम्।
शृण्वन् भवन्मुखांभोजान्न तृप्तोऽस्मि महाप्रभो॥ २

नारदजी बोले—हे विधे! हे विधे! हे महाभाग! हे महाप्रभो! आपके मुखकमलसे कही जानेवाली कल्याणकारिणी कथाको सुनकर मैं तृप्त नहीं हो पा रहा हूँ॥ २॥

अतः कथय तत्सर्वं शिवस्य चरितं शुभम्।
सतीकीर्त्यन्वितं दिव्यं श्रोतुमिच्छामि विश्वकृत्॥ ३

सती हि कथमुत्पन्ना दक्षदारेषु शोभना।
कथं हरो मनश्चक्रे दाराहरणकर्मणि॥ ४

हे विश्वस्रष्टा! सतीकी कीर्तिसे युक्त शिवजीके कल्याणमय तथा दिव्य उस सम्पूर्ण चरित्रको कहिये, मैं उसे सुनना चाहता हूँ। दक्षकी अनेक पत्नियोंमें से शोभामयी सती किस प्रकार उत्पन्न हुईं और हरने किस प्रकार स्त्रीसे विवाह करनेका विचार किया?॥ ३-४॥

कथं वा दक्षकोपेन त्यक्तदेहा सती पुरा।
हिमवत्तनया जाता भूयो वाकाशमागता॥ ५

पूर्वकालमें सतीने दक्षपर क्रोधसे किस प्रकार अपने शरीरका त्याग किया? पुनः किस प्रकार हिमालयकी कन्या पार्वती हुईं और किस प्रकारसे प्रकाशमें आयीं?॥ ५॥

पार्वत्याश्च तपोऽत्युग्रं विवाहश्च कथं त्वभूत्।
कथमर्धशरीरस्था बभूव स्मरनाशिनः॥ ६

पार्वतीका कठोर तप तथा उनका विवाह किस प्रकार हुआ? फिर वे कामदेवका नाश करनेवाले शिवकी अर्धांगिनी कैसे हुईं?॥ ६॥

एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण महामते।
नान्योऽस्ति संशयच्छेत्ता त्वत्समो न भविष्यति॥ ७

हे महामते! इन सब बातोंको आप विस्तारके साथ कहिये; आपके समान संशयोंको दूर करनेवाला कोई दूसरा न तो है और न ही होगा॥ ७॥

ब्रह्मोवाच

शृणु त्वं च मुने सर्वं सतीशिवयशः शुभम्।
पावनं परमं दिव्यं गुह्याद् गुह्यतमं परम्॥ ८

एतच्छम्भुः पुरोवाच भक्तवर्याय विष्णवे।
पृष्टस्तेन महाभक्त्या परोपकृतये मुने॥ ९

ततः सोऽपि मया पृष्टो विष्णुः शैववरः सुधीः।
प्रीत्या मह्यं समाचख्यौ विस्तरान्मुनिसत्तम॥ १०

अहं तत्कथयिष्यामि कथामेतां पुरातनीम्।
शिवाशिवयशोयुक्तां सर्वकामफलप्रदाम्॥ ११

पुरा यदा शिवो देवो निर्गुणो निर्विकल्पकः।
अरूपः शक्तिरहितश्चिन्मात्रः सदसत्परः॥ १२

अभवत्सगुणः सोऽपि द्विरूपः शक्तिमान्प्रभुः।
सोमो दिव्याकृतिर्विप्र निर्विकारी परात्परः॥ १३

तस्य वामाङ्गजो विष्णुर्ब्रह्माहं दक्षिणाङ्गजः।
रुद्रो हृदयतो जातोऽभवच्च मुनिसत्तम॥ १४

सृष्टिकर्ताभवं ब्रह्मा विष्णुः पालनकारकः।
लयकर्ता स्वयं रुद्रस्त्रिधाभूतः सदाशिवः॥ १५

तमेवाहं समाराध्य ब्रह्मा लोकपितामहः।
प्रजाः ससर्ज सर्वास्ताः सुरासुरनरादिकाः॥ १६

सृष्ट्वा प्रजापतीन् दक्षप्रमुखान्सुरसत्तमान्।
अमन्यं सुप्रसन्नोऽहं निजं सर्वमहोन्नतम्॥ १७

मरीचिमत्रिं पुलहं पुलस्त्याङ्गिरसौ क्रतुम्।
वसिष्ठं नारदं दक्षं भृगुं चेति महाप्रभून्॥ १८

ब्रह्माहं मानसान्पुत्रानसर्जं च यदा मुने।
तदा मन्मनसो जाता चारुरूपा वराङ्गना॥ १९

नाम्ना सन्ध्या दिवाक्षान्ता सायं संध्या जपन्तिका।
अतीव सुन्दरी सुभ्रूर्मुनिचेतोविमोहिनी॥ २०

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! शिव तथा सतीके परम-पावन, दिव्य एवं गुह्यसे गुह्यतम तथा परम कल्याणकारी चरित्रको सुनिये। हे मुने! पूर्वकालमें परोपकारके लिये विष्णुद्वारा महान् भक्तिसे पूछे जानेपर शिवजीने भक्तवर विष्णुसे इसका वर्णन किया था॥ ८-९॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उसके बाद मैंने भी यह कथा शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ बुद्धिमान् विष्णुसे पूछी, तब उन्होंने प्रीतिपूर्वक विस्तारसे मुझसे कहा था। मैं सभी कामनाओंका फल प्रदान करनेवाली एवं शिवके यशसे युक्त उस प्राचीन कथाको आपसे कहूँगा॥ १०-११॥

पहले भगवान् शिव निर्गुण, निर्विकल्प, रूपहीन, शक्तिसे रहित, चिन्मात्र एवं सत्-असत्से परे थे; फिर हे विप्र! वे प्रभु सगुण, द्विरूप, शक्तिमान्, उमासहित, दिव्य आकृतिवाले, विकाररहित तथा परात्पर हो गये॥ १२-१३॥

हे मुनिसत्तम! उनके वामांगसे विष्णु, दक्षिणांगसे मैं ब्रह्मा तथा हृदयसे रुद्रकी उत्पत्ति हुई। मैं ब्रह्मा सृष्टि करनेवाला और विष्णु पालन करनेवाले तथा रुद्र स्वयं लय करनेवाले हुए। इस प्रकार सदाशिवके तीन रूप हुए॥ १४-१५॥

लोकपितामह मुझ ब्रह्माने उन्हीं सदाशिवकी आराधनाकर देव, दैत्य, मनुष्य आदि समस्त प्रजाओंकी सृष्टि की। दक्ष आदि प्रमुख प्रजापतियोंकी तथा देवश्रेष्ठोंकी रचनाकर मैं बड़ा ही प्रसन्न हुआ तथा अपनेको सबसे महान् समझने लगा॥ १६-१७॥

हे मुने! जिस समय मुझ ब्रह्माने मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, अंगिरा, क्रतु, वसिष्ठ, नारद, दक्ष एवं भृगु—इन महान् प्रभुतासम्पन्न मानस पुत्रोंकी सृष्टि की, उसी समय मेरे मनसे एक सुन्दर रूपवाली श्रेष्ठ युवती भी उत्पन्न हुई॥ १८-१९॥

वह सन्ध्याके नामसे प्रसिद्ध हुई, जो प्रातः-सन्ध्या तथा सायं-सन्ध्याके रूपमें क्रमशः दिवाक्षान्ता तथा जपन्तिका कही गयी। वह अत्यन्त सुन्दरी, सुन्दर भौंहोंवाली तथा मुनियोंके मनको मोहित करनेवाली थी॥ २०॥

न तादृशी देवलोके न मर्त्ये न रसातले।
कालत्रयेऽपि वै नारी सम्पूर्णगुणशालिनी॥ २१

सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त वैसी स्त्री देवलोक, मृत्युलोक और पाताललोकमें न उत्पन्न हुई, न है और न तो होगी। वह सम्पूर्ण गुणोंसे परिपूर्ण थी॥ २१॥

दृष्ट्वाहं तां समुत्थाय चिन्तयन् हृदि हृद्गताम्।
दक्षादयश्च स्त्रष्टारो मरीच्याद्याश्च मत्सुताः॥ २२

एवं चिन्तयतो मे हि ब्रह्मणो मुनिसत्तम।
मानसः पुरुषो मञ्जुराविर्भूतो महाद्भुतः॥ २३

उस कन्याको देखते ही उठ करके उसे हृदयमें धारण करनेके लिये मैं मनमें सोचने लगा। दक्ष तथा मरीचि आदि लोकस्रष्टा मेरे पुत्र भी सोचने लगे। हे मुनिसत्तम! मैं ब्रह्मा अभी इस प्रकार सोच ही रहा था कि उसी समय एक अत्यन्त अद्भुत एवं मनोहर मानस पुरुष उत्पन्न हुआ॥ २२-२३॥

काञ्चनीकृतजाताभः पीनोरस्कः सुनासिकः।
सुवृत्तोरुकटीजंघो नीलवेलितकेसरः॥ २४

लग्नभ्रूयुगलो लोलः पूर्णचन्द्रनिभाननः।
कपाटायतसद्वक्षो रोमराजीविराजितः॥ २५

अभ्रमातङ्गकाकारः पीनो नीलसुवासकः।
आरक्तपाणिनयनमुखपादकरोद्भवः॥ २६

क्षीणमध्यश्चारुदन्तः प्रमत्तगजगन्धनः।
प्रफुल्लपद्मपत्राक्षः केसरघ्राणतर्पणः॥ २७

कंबुग्रीवो मीनकेतुः प्रांशुर्मकरवाहनः।
पञ्चपुष्पायुधो वेगी पुष्पकोदंडमंडितः॥ २८

कान्तः कटाक्षपातेन भ्रामयन्नयनद्वयम्।
सुगन्धिमारुतो तात शृङ्गाररससेवितः॥ २९

हे तात! वह पुरुष तप्त सुवर्णके समान कान्तिवाला, स्थूल वक्षःस्थलवाला, सुन्दर नासिकावाला, सुन्दर तथा गोल ऊरु-कमर-जंघावाला, काले तथा घुँघराले बालोंवाला, आपसमें मिली हुई भौंहोंवाला, पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाला, कपाटके समान विस्तीर्ण छातीवाला, रोमराजिसे सुशोभित, बादलपर्यन्त ऊँचे गजराजके समान आकृतिवाला, महास्थूल तथा नीलवर्णका सुन्दर वस्त्र धारण किये, रक्तवर्णके हाथ, नेत्र, मुख, पैर और अँगुलियोंवाला, पतली कमरवाला, सुन्दर दाँतोंवाला, मतवाले हाथीकी-सी गन्धवाला, खिले हुए कमलके पत्रसदृश नेत्रोंवाला, अंगोंपर लगे हुए केसरसे नासिकाको तृप्त करनेवाला, शंखके समान गरदनवाला, मछलीके चिह्नसे अंकित ध्वजावाला, अत्यन्त ऊँचा, मकरके वाहनवाला, पुष्पोंके पाँच बाणोंसे युक्त, वेगवान्, पुष्पधनुषसे सुशोभित, कटाक्षपातसे अपने नेत्रोंको घुमाते हुए मनोहर प्रतीत होनेवाला, सुगन्धित श्वाससे युक्त और शृंगाररससे सेवित था॥ २४—२९॥

तं वीक्ष्य पुरुषं सर्वे दक्षाद्या मत्सुताश्च ते।
औत्सुक्यं परमं जग्मुर्विस्मयाविष्टमानसाः॥ ३०

उस पुरुषको देखकर मेरे दक्ष आदि पुत्रोंका मन आश्चर्यसे भर गया और वे उसे जाननेके लिये अत्यन्त उत्सुक हो गये॥ ३०॥

अभवद्विकृतं तेषां मत्सुतानां मनो द्रुतम्।
धैर्यं नैवालभत्तात कामाकुलितचेतसाम्॥ ३१

वासनासे आकुल चित्तवाले मेरे उन पुत्रोंका मन शीघ्र ही विकृत हो गया, हे तात! उन्हें थोड़ा भी धैर्य नहीं प्राप्त हुआ॥ ३१॥

मां सोऽपि वेधसं वीक्ष्य स्त्रष्टारं जगतां पतिम्।
प्रणम्य पुरुषः प्राह विनयानतकन्धरः॥ ३२

वह पुरुष स्रष्टा तथा जगत्पति मुझ ब्रह्माको देखकर विनयभावसे सिर झुकाकर प्रणाम करके मुझसे कहने लगा— ॥ ३२॥

पुरुष उवाच

किं करिष्याम्यहं कर्म ब्रह्मंस्तत्र नियोजय।
मान्योऽद्य पुरुषो यस्मादुचितः शोभितो विधे॥ ३३

पुरुष बोला—हे ब्रह्मन्! मैं कौन-सा कार्य करूँ? [मुझे जो कर्म करणीय हो,] उस कर्ममें मुझे नियुक्त कीजिये। हे विधाता! आप मेरे मान्य पुरुष हैं, मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँ, यही उचित है तथा इसीसे मेरी शोभा भी होगी॥ ३३॥

अभिमानं च योग्यं च स्थानं पत्नी च या मम।
तन्मे वद त्रिलोकेश त्वं स्त्रष्टा जगतां पतिः॥ ३४

मेरे लिये जो अभिमानयोग्य स्थान हो तथा जो मेरी पत्नी हो, उसे मुझे बताइये। हे त्रिलोकेश! आप जगत्‌के पति हैं॥ ३४॥

ब्रह्मोवाच

एवं तस्य वचः श्रुत्वा पुरुषस्य महात्मनः।
क्षणं न किंचित् प्रोवाच स स्त्रष्टा चातिविस्मितः॥ ३५

अतो मनः सुसंयम्य सम्यगुत्सृज्य विस्मयम्।
अवोचत्पुरुषं ब्रह्मा तत्कामं च समावहन्॥ ३६

ब्रह्माजी बोले—उस महात्मा पुरुषके इस वचनको सुनकर मैं ब्रह्मा अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गया और थोड़ी देरतक कुछ नहीं बोला, फिर मनको नियन्त्रितकर और आश्चर्यका परित्याग करके उस कामदेवको बताते हुए कहने लगा—॥ ३५-३६॥

ब्रह्मोवाच

अनेन त्वं स्वरूपेण पुष्पबाणैश्च पञ्चभिः।
मोहयन् पुरुषान् स्त्रींश्च कुरु सृष्टिं सनातनीम्॥ ३७
अस्मिञ्जीवाश्च देवाद्यास्त्रैलोक्ये सचराचरे।
एते सर्वे भविष्यन्ति न क्षमास्तव लङ्घने॥ ३८

ब्रह्माजी बोले—तुम अपने इस स्वरूपसे और पुष्पोंके पाँच बाणोंसे सभी स्त्री तथा पुरुषोंको मोहित करते हुए सनातन सृष्टिकी रचना करो। इस चराचर त्रिलोकीमें जीव तथा देवता आदि कोई भी तुम्हारा लंघन करनेमें समर्थ नहीं होंगे॥ ३७-३८॥

अहं वा वासुदेवो वा स्थाणुर्वा पुरुषोत्तम।
भविष्यामस्तव वशे किमन्ये प्राणधारकाः॥ ३९

हे पुरुषोत्तम! मैं, वासुदेव अथवा शंकर भी तुम्हारे वशमें रहेंगे, अन्य प्राणधारियोंकी तो बात ही क्या?॥ ३९॥

प्रच्छन्नरूपो जन्तूनां प्रविशन् हृदयं सदा।
सुखहेतुः स्वयं भूत्वा सृष्टिं कुरु सनातनीम्॥ ४०

तुम गुप्त रूपसे प्राणियोंके हृदयमें प्रवेश करते हुए स्वयं सबके सुखके कारण बनकर सनातन सृष्टि करो॥ ४०॥

त्वत्पुष्पबाणस्य सदा सुखलक्ष्यं मनोऽद्भुतम्।
सर्वेषां प्राणिनां नित्यं सदा मदकरो भवान्॥ ४१

समस्त प्राणियोंका विचित्र मन तुम्हारे पुष्पबाणोंका सुखपूर्वक भेदनेयोग्य लक्ष्य होगा; तुम सभीको सदा उन्मत्त करनेवाले होगे॥ ४१॥

इति ते कर्म कथितं सृष्टिप्रावर्तकं पुनः।
नामान्येते वदिष्यन्ति सुता मे तव तत्त्वतः॥ ४२

मैंने सृष्टिमें प्रवृत्त करनेवाला यह तुम्हारा कर्म कह दिया। ये मेरे पुत्र तत्त्वपूर्वक तुम्हारे नामोंका वर्णन करेंगे॥ ४२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वाहं सुरश्रेष्ठ स्वसुतानां मुखानि च।
आलोक्य स्वासने पाद्मे प्रोपविष्टोऽभवं क्षणम्॥ ४३

ब्रह्माजी बोले—हे सुरश्रेष्ठ! ऐसा कहकर अपने पुत्रोंके मुखकी ओर देखकर क्षणभरके लिये मैं अपने पद्मासनपर बैठ गया॥ ४३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे कामप्रादुर्भावो नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें कामप्रादुर्भावका वर्णन नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

कामदेवको विविध नामों एवं वरोंकी प्राप्ति, कामके प्रभावसे ब्रह्मा तथा ऋषिगणोंका मुग्ध होना, धर्मद्वारा स्तुति करनेपर भगवान् शिवका प्राकट्य और ब्रह्मा तथा ऋषियोंको समझाना, ब्रह्मा तथा ऋषियोंसे अग्निष्वात्त आदि पितृगणोंकी उत्पत्ति, ब्रह्माद्वारा कामको शापकी प्राप्ति तथा निवारणका उपाय

ब्रह्मोवाच

ततस्ते मुनयः सर्वे मदभिप्रायवेदिनः।
चक्रुस्तदुचितं नाम मरीचिप्रमुखाः सुताः॥ १

मुखावलोकनादेव ज्ञात्वा वृत्तान्तमन्यतः।
दक्षादयश्च स्रष्टारः स्थानं पत्नीं च ते ददुः॥ २

ततो निश्चित्य नामानि मरीचिप्रमुखा द्विजाः।
ऊचुः सङ्गतमेतस्मै पुरुषाय ममात्मजाः॥ ३

ऋषय ऊचुः

यस्मात्प्रमथसे तत्त्वं जातोऽस्माकं यथा विधेः।
तस्मान्मन्मथनामा त्वं लोके ख्यातो भविष्यसि॥ ४

जगत्सु कामरूपस्त्वं त्वत्समो न हि विद्यते।
अतस्त्वं कामनामापि ख्यातो भव मनोभव॥ ५

मदनान्मदनाख्यस्त्वं जातो दर्पात्सदर्पकः।
तस्मात्कन्दर्पनामापि लोके ख्यातो भविष्यसि॥ ६

त्वत्समं सर्वदेवानां यद्वीर्यं न भविष्यति।
ततः स्थानानि सर्वाणि सर्वव्यापी भवांस्ततः॥ ७

दक्षोऽयं भवतः पत्नीं स्वयं दास्यति कामिनीम्।
आद्यः प्रजापतिर्यो हि यथेष्टं पुरुषोत्तमः॥ ८

एषा च कन्यका चारुरूपा ब्रह्ममनोभवा।
सन्ध्या नाम्नेति विख्याता सर्वलोके भविष्यति॥ ९

ब्रह्मणो ध्यायतो यस्मात्सम्यग्जाता वराङ्गना।
अतः सन्ध्येति विख्याता क्रान्ताभा तुल्यमल्लिका॥ १०

ब्रह्माजी बोले—तब मेरे अभिप्रायको जाननेवाले मेरे पुत्र मरीचि आदि मुनियोंने उसके उचित नाम रखे॥ १॥

उन सृष्टिकर्ता दक्ष आदिने उसका मुख देखते ही तथा [उसकी अन्य चेष्टाओंसे] उसके समस्त चरित्रको जानकर उसे रहनेका स्थान दिया तथा पत्नी भी दे दी॥ २॥

मेरे पुत्र मरीचि आदि ऋषियोंने एकत्रित होकर नामोंका निश्चय करके उस पुरुषको नाम भी बता दिये॥ ३॥

ऋषिगण बोले—तुमने ब्रह्माजीसे उत्पन्न होते ही हमलोगोंके मनको मथ डाला है, इसलिये तुम लोकमें 'मन्मथ' नामसे प्रसिद्ध होओगे॥ ४॥

सभी लोकोंमें तुम सुन्दर रूपवाले हो, तुम्हारे समान कोई भी सुन्दर नहीं है, इसलिये हे मनोभव! 'काम' नामसे भी तुम विख्यात होओगे॥ ५॥

तुम सभीको मदोन्मत्त करनेके कारण 'मदन' कहे जाओगे। अहंकारयुक्त होकर दर्पसे उत्पन्न हुए हो, इसलिये तुम 'कन्दर्प' नामसे भी संसारमें प्रसिद्ध होओगे॥ ६॥

तुम्हारे समान किसी भी देवताका पराक्रम नहीं होगा, अतः तुम्हारे लिये सभी स्थान होंगे और तुम सर्वव्यापी होओगे॥ ७॥

ये जो आदिप्रजापति पुरुषोत्तम दक्ष हैं, वे स्वयं ही तुमको योग्य पत्नीके रूपमें सुन्दर स्त्री प्रदान करेंगे॥ ८॥

ब्रह्माके मनसे उत्पन्न हुई यह सुन्दर रूपवाली कन्या सन्ध्या नामसे सभी लोकोंमें विख्यात होगी॥ ९॥

अच्छी प्रकारसे ध्यान करते हुए ब्रह्माजीके हृदयसे उत्पन्न होनेके कारण तेज आभावाली तथा मल्लिकापुष्पके सदृश यह कन्या सन्ध्या—इस नामसे विख्यात होगी॥ १०॥

ब्रह्मोवाच

**कौसुमानि तथास्त्राणि पञ्चादाय मनोभवः।
प्रच्छन्नरूपी तत्रैव चिन्तयामास निश्चयम्॥ ११**

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कामदेव अपने पाँच पुष्प-आयुधोंको लेकर वहींपर गुप्त रूपसे स्थित होकर विचार करने लगा—॥ ११॥

**हर्षणं रोचनाख्यं च मोहनं शोषणं तथा।
मारणं चेति प्रोक्तानि मुनेर्मोहकराण्यपि॥ १२**

हर्षण, रोचन, मोहन, शोषण तथा मारण नामक ये [मेरे] पाँच अस्त्र मुनियोंको भी मोहित करनेवाले कहे गये हैं॥ १२॥

**ब्रह्मणा मम यत्कर्म समुद्दिष्टं सनातनम्।
तदिहैव करिष्यामि मुनीनां सन्निधौ विधेः॥ १३**

ब्रह्माजीने मुझे जिस सनातन कर्मको करनेके लिये आदेश दिया है, उसे मैं यहाँ मुनियों और ब्रह्माजीके सन्निकट ही करूँगा॥ १३॥

**तिष्ठन्ति मुनयश्चात्र स्वयं चापि प्रजापतिः।
एतेषां साक्षिभूतं मे भविष्यत्यद्य निश्चयम्॥ १४**

यहाँ बहुत-से मुनिगण तथा स्वयं प्रजापति ब्रह्माजी भी उपस्थित हैं। ये लोग साक्षीरूपसे विद्यमान हैं, इसलिये मेरे कर्मकी सत्यताका आरम्भ भी हो जायगा॥ १४॥

**सन्ध्यापि ब्रह्मणा प्रोक्ता चेदानीं प्रेषयेद्वचः।
इह कर्म परीक्ष्यैव प्रयोगान्मोहयाम्यहम्॥ १५**

यह ब्रह्माजीके द्वारा सन्ध्या नामसे कही गयी यह कन्या भी मेरे वचनका समर्थन करेगी। मैं इसी स्थानपर अपने कर्मकी परीक्षा करके ही प्रयोगद्वारा सबको मोहित करूँगा॥ १५॥

ब्रह्मोवाच

**इति सञ्चिन्त्य मनसा निश्चित्य च मनोभवः।
पुष्पजं पुष्पजातैश्च योजयामास मार्गणैः॥ १६
आलीढस्थानमासाद्य धनुराकृष्य यत्नतः।
चकार वलयाकारं कामो धन्विवरस्तदा॥ १७**

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार विचार करनेके अनन्तर मनमें निश्चय करके वह अपने पुष्पके धनुषपर पुष्पके बाणोंको चढ़ाने लगा। श्रेष्ठ धनुर्धारी कामदेवने धनुष खींचनेकी मुद्रामें स्थित होकर यत्नपूर्वक धनुष चढ़ाकर उसे मण्डलाकार किया॥ १६-१७॥

**संहिते तेन कोदण्डे मारुताश्च सुगन्धयः।
ववुस्तत्र मुनिश्रेष्ठ सम्यगाह्लादकारिणः॥ १८**

हे मुनिश्रेष्ठ! जब इस प्रकारके धनुषपर कामदेवने अपना बाण चढ़ाया, तो उसी समय [मनको] आह्लादित करनेवाली सुगन्धित वायु बहने लगी॥ १८॥

**ततस्तानपि धात्रादीन् सर्वानेव च मानसान्।
पृथक् पुष्पशरैस्तीक्ष्णैर्मोहयामास मोहनः॥ १९**

उस समय कामदेवने तीक्ष्ण पुष्पबाणोंसे मुझ ब्रह्माको तथा सभी मानसपुत्रोंको मोहित कर लिया॥ १९॥

**ततस्ते मुनयः सर्वे मोहिताश्चाप्यहं मुने।
संहितो मनसा किंचिद्विकारं प्रापुरादितः॥ २०**

हे मुने! तत्पश्चात् सभी मुनिगण और मैं भी मोहित हो गया, सभीके मनमें कामविकार उत्पन्न हो गया॥ २०॥

**सन्ध्यां सर्वे निरीक्षन्तः सविकारं मुहुर्मुहुः।
आसन् प्रवृद्धमदनाः स्त्री यस्मान्मदनैधिनी॥ २१**

विकारसे युक्त होनेके कारण सभी लोग सन्ध्याकी ओर बार-बार देखने लगे। सभीके मनमें कामका उद्रेक हो गया; क्योंकि स्त्री कामको बढ़ानेवाली होती है॥ २१॥

**ततः सर्वान्स मदनो मोहयित्वा पुनः पुनः।
यथेन्द्रियविकारं ते प्रापुस्तानकरोत्तथा॥ २२**

उस कामदेवने सभीको बार-बार मोहित करके जिस किसी भी तरहसे वे कामविकारको प्राप्त हों, वैसा उन सबको कर दिया॥ २२॥

उदीरितेन्द्रियो धाता वीक्ष्याहं स यदा च ताम्।
तदैव चोनपञ्चाशद्भावा जाता: शरीरत:॥ २३

उस स्त्रीको देखकर जब मैं ब्रह्मा उन्मत्त इन्द्रियोंवाला हो गया, उस समय मेरे शरीरसे उनचास भाव उत्पन्न हो गये॥ २३॥

सापि तैर्वीक्ष्यमाणाथ कन्दर्पशरपातनात्।
चक्रे मुहुर्मुहुर्भावान् कटाक्षावरणादिकान्॥ २४

कामबाणके प्रहारसे उन सभीके द्वारा देखी जाती हुई वह सन्ध्या भी अपने कटाक्षोंके आवरणसे अनेक प्रकारके भाव प्रकट करने लगी॥ २४॥

निसर्गसुन्दरी सन्ध्या तान्भावान् मानसोद्भवान्।
कुर्वन्त्यतितरां रेजे स्वर्णदीव तनूर्मिभि:॥ २५

स्वभावसे सुन्दरी वह सन्ध्या मनसे उत्पन्न उन भावोंको प्रकट करती हुई छोटी-छोटी लहरोंसे युक्त गंगाकी तरह शोभित होने लगी॥ २५॥

अथ भावयुतां सन्ध्यां वीक्ष्याकार्षं प्रजापति:।
धर्माभिपूरिततनुरभिलाषमहं मुने॥ २६

हे मुने! इस प्रकारके भावोंसे युक्त सन्ध्याको देखकर कामसे परिपूर्ण शरीरवाला मैं ब्रह्मा उसकी अभिलाषा करने लगा॥ २६॥

ततस्ते मुनय: सर्वे मरीच्यत्रिमुखा अपि।
दक्षाद्याश्च द्विजश्रेष्ठ प्रापुर्वैकारिकेन्द्रियम्॥ २७

दृष्ट्वा तथाविधान् दक्षमरीचिप्रमुखांश्च माम्।
संध्यां च कर्मणि निजे श्रद्दधे मदनस्तदा॥ २८

हे द्विजश्रेष्ठ! तब मरीचि, अत्रि आदि सभी मुनि तथा दक्ष प्रजापति आदि विकृत इन्द्रियोंवाले हो गये। दक्ष-मरीचि आदि ऋषियों तथा मुझे और सन्ध्याको भी कामविकारसे युक्त देखकर कामदेवको अपने कार्यपर विश्वास हो गया॥ २७-२८॥

यदिदं ब्रह्मणा कर्म ममोद्दिष्टं मयापि तत्।
कर्तुं शक्यमिति ह्यद्धा भावितं स्वभुवा तदा॥ २९

अब कामदेवके मनमें यह विश्वास हो गया कि ब्रह्माने मुझे जिस कार्यके लिये आदेश दिया है, मैं वह कार्य करनेमें पूर्ण रूपसे सक्षम हूँ॥ २९॥

इत्थं पापगतिं वीक्ष्य भ्रातृणां च पितुस्तथा।
धर्म: सस्मार शम्भुं वै तदा धर्मावनं प्रभुम्॥ ३०

[ब्रह्माजीके पुत्र] धर्मने अपने पिता तथा भाइयोंकी ऐसी दशा देखकर धर्मकी रक्षा करनेवाले भगवान् सदाशिवका स्मरण किया॥ ३०॥

संस्मरन्मनसा धर्म: शंकरं धर्मपालकम्।
तुष्टाव विविधैर्वाक्यैर्दीनो भूत्वाजसंभव:॥ ३१

धर्मने धर्मपालक शिवजीका मनसे स्मरणकर दीनभावनासे युक्त होकर अनेक प्रकारके वाक्योंसे उनकी इस प्रकार स्तुति की—॥ ३१॥

धर्म उवाच

देवदेव महादेव धर्मपाल नमोऽस्तु ते।
सृष्टिस्थितिविनाशानां कर्ता शंभो त्वमेव हि॥ ३२

धर्म बोला—हे देवाधिदेव! हे महादेव! हे धर्मपाल! आपको नमस्कार है। हे शम्भो! सृष्टि, पालन तथा विनाश करनेवाले आप ही हैं॥ ३२॥

सृष्टौ ब्रह्मा स्थितौ विष्णु: प्रलये हररूपधृक्।
रज:सत्त्वतमोभिश्च त्रिगुणैरगुण: प्रभो॥ ३३

हे प्रभो! आपने निर्गुण होकर भी रज, सत्त्व तथा तमोगुणसे सृष्टिकार्यके लिये ब्रह्मा, पालनके लिये विष्णु तथा प्रलयके लिये रुद्रस्वरूप धारण किया है॥ ३३॥

निस्त्रैगुण्य: शिव: साक्षात्तुर्यश्च प्रकृते: पर:।
निर्गुणो निर्विकारी त्वं नानालीलाविशारद:॥ ३४

[हे प्रभो!] आप शिव तीनों गुणोंसे रहित, प्रकृतिसे परे, तुरीयावस्थामें स्थित, निर्गुण, निर्विकार तथा अनेक प्रकारकी लीलाओंमें प्रवीण हैं॥ ३४॥

रक्ष रक्ष महादेव पापान्मां दुस्तरादितः।
मत्पितायं तथा चेमे भ्रातरः पापबुद्धयः॥ ३५

हे महादेव! इस भयंकर पापसे मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये, इस समय मेरे पिता तथा मेरे भाई पापबुद्धिवाले हो गये हैं॥ ३५॥

ब्रह्मोवाच

इति स्तुतो महेशानो धर्मेणैव परः प्रभुः।
तत्राजगाम शीघ्रं वै रक्षितुं धर्ममात्मभूः॥ ३६

ब्रह्माजी बोले—धर्मके द्वारा परमात्मा प्रभुकी जब इस प्रकार स्तुति की गयी, तब वे आत्मभू शिव धर्मकी रक्षा करनेके लिये वहीं प्रकट हो गये॥ ३६॥

जातो वियद्गतः शंभुर्विधिं दृष्ट्वा तथाविधम्।
मां दक्षाद्यांश्च मनसा जहासोपजहास च॥ ३७

स साधुवादं तान् सर्वान् विहस्य च पुनः पुनः।
उवाचेदं मुनिश्रेष्ठ लज्जयन् वृषभध्वजः॥ ३८

वे शम्भु आकाशमें स्थित होकर मुझ ब्रह्मा तथा दक्ष आदिको इस प्रकारसे मोहित देखकर मन-ही-मन हँसने लगे। हे मुनिश्रेष्ठ! उन सबको साधुवाद देकर और बार-बार हँसकर मुझे लज्जित करते हुए वे वृषभध्वज यह कहने लगे—॥ ३७-३८॥

शिव उवाच

अहो ब्रह्मंस्तव कथं कामभावः समुद्गतः।
दृष्ट्वा च तनयां नैव योग्यं वेदानुसारिणाम्॥ ३९

शिवजी बोले—हे ब्रह्मन्! अपनी कन्याको देखकर आपको कामभाव कैसे उत्पन्न हो गया? वेदोंका अनुसरण करनेवालोंके लिये यह उचित नहीं है॥ ३९॥

यथा माता च भगिनी भ्रातृपत्नी तथा सुता।
एताः कुदृष्ट्या द्रष्टव्या न कदापि विपश्चिता॥ ४०

बुद्धिमान्‌को चाहिये कि माता, भगिनी, भ्रातृपत्नी तथा कन्याको समान भावसे देखे। इन्हें कदापि कुदृष्टिसे न देखे॥ ४०॥

एष वै वेदमार्गस्य निश्चयस्त्वन्मुखे स्थितः।
कथं तु काममात्रेण स ते विस्मारितो विधे॥ ४१

वेदमार्गका यह सिद्धान्त तो आपके मुखमें स्थित है। हे विधे! आपने कामके उत्पन्न होते ही उसे कैसे विस्मृत कर दिया!॥ ४१॥

धैर्यं जागरितं चित्ते न कथं चतुरानन।
येन क्षुद्रेण कामेन रन्तुं विघटितं विधे॥ ४२

हे चतुरानन! आपके मनमें धैर्य जागरूक रहना चाहिये। आश्चर्य है कि आपने इस कामके वशीभूत हो कन्यासे रमण करनेके लिये इस प्रकार अपने धैर्यको नष्ट कर दिया॥ ४२॥

एकांतयोगिनस्तस्मात्सर्वदादित्यदर्शिनः।
कथं दक्षमरीच्याद्या लोलुपाः स्त्रीषु मानसाः॥ ४३

एकान्त-योगी तथा सर्वदा सूर्यका दर्शन करनेवाले दक्ष, मरीचि आदि भी स्त्रीमें आसक्त चित्तवाले हो गये॥ ४३॥

कथं कामोऽपि मन्दात्मा प्राबल्यात्सोऽधुनैव हि।
विकृतान् कृतवान् बाणैरकालज्ञोऽल्पचेतनः॥ ४४

देश-कालका ज्ञान न रखनेवाले, मन्दात्मा तथा अल्प बुद्धिवाले कामदेवने भी अपनी प्रबलतासे कामबाणोंद्वारा आपलोगोंको विकारयुक्त कैसे बना दिया?॥ ४४॥

धिक् तं श्रुतं सदा तस्य यस्य कान्ता मनोऽहरत्।
धैर्यादाकृष्य लौल्येषु मज्जयत्यपि मानसम्॥ ४५

उस पुरुषको तथा उसके वेद, शास्त्र आदिके ज्ञानको धिक्कार है, जिसके मनको स्त्री हर लेती है और धैर्यसे विचलित करके मनको लोलुपतामें डुबा देती है॥ ४५॥

ब्रह्मोवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा लोके सोऽहं शिवस्य च।
व्रीडया द्विगुणीभूतः स्वेदार्द्रस्त्वभवं क्षणात्॥ ४६

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार सदाशिवके वचनको सुनकर मैं दुगुनी लज्जामें पड़ गया, उस समय मेरा शरीर पसीनेसे पानी-पानी हो उठा॥ ४६॥

ततः कामविकारं हि निगृह्य चात्यजं मुने।
जिघृक्षुरपि तद्भीत्या तां संध्यां कामरूपिणीम्॥ ४७

हे मुने! तत्पश्चात् कामरूपिणी सन्ध्याको ग्रहण करनेकी इच्छा करते हुए भी मैंने शिवजीके भयसे इन्द्रियोंको वशमें करके कामविकारको दूर कर दिया॥ ४७॥

मच्छरीरात्तु घर्मांभो यत्पपात द्विजोत्तम।
अग्निष्वात्ताः पितृगणा जाताः पितृगणास्ततः॥ ४८

भिन्नाञ्जननिभाः सर्वे फुल्लराजीवलोचनाः।
नितान्तयतयः पुण्याः संसारविमुखाः परे॥ ४९

हे द्विजश्रेष्ठ! उस समय मेरे शरीरसे [लज्जाके कारण] जो पसीना गिरा, उसीसे अग्निष्वात्त तथा बर्हिषद् नामक पितृगणोंकी उत्पत्ति हुई। अंजनके समान कृष्णवर्णवाले और विकसित कमलके समान नेत्रवाले वे पितर महायोगी, पुण्यशील तथा संसारसे विमुख रहनेवाले हैं॥ ४८-४९॥

सहस्त्राणां चतुःषष्टिरग्निष्वात्ताः प्रकीर्तिताः।
षडशीतिसहस्त्राणि तथा बर्हिषदो मुने॥ ५०

हे मुने! चौंसठ हजार अग्निष्वात्त पितर और छियासी हजार बर्हिषद् पितर कहे गये हैं॥ ५०॥

घर्मांभः पतितं भूमौ तदा दक्षशरीरतः।
समस्तगुणसंपन्ना तस्माज्जाता वराङ्गना॥ ५१

उसी समय दक्षके शरीरसे भी स्वेद निकलकर पृथ्वीपर गिरा, उससे समस्त गुणसम्पन्न परम मनोहर एक स्त्रीकी उत्पत्ति हुई॥ ५१॥

तन्वङ्गी सममध्या च तनुरोमावली श्रुता।
मृद्वङ्गी चारुदशना नवकाञ्चनसुप्रभा॥ ५२

उसका शरीर सूक्ष्म था, कटिप्रदेश सम था, शरीरकी रोमावली अत्यन्त सूक्ष्म थी, उसके अंग कोमल तथा दाँत परम सुन्दर थे और वह तपे हुए सोनेके समान कान्तिसे देदीप्यमान हो रही थी॥ ५२॥

सर्वावयवरम्या च पूर्णचन्द्राननाम्बुजा।
नाम्ना रतिरिति ख्याता मुनीनामपि मोहिनी॥ ५३

वह अपने शरीरके समस्त अवयवोंसे बड़ी मनोहर प्रतीत हो रही थी तथा उसका मुखकमल पूर्ण चन्द्रमाके समान था। उसका नाम रति था, जो मुनियोंके भी मनको मोहित करनेवाली थी॥ ५३॥

मरीचिप्रमुखाः षड् वै निगृहीतेन्द्रियक्रियाः।
ऋते क्रतुं वसिष्ठं च पुलस्त्याङ्गिरसौ तथा॥ ५४

क्रत्वादीनां चतुर्णां च बीजं भूमौ पपात च।
तेभ्यः पितृगणा जाता अपरे मुनिसत्तम॥ ५५

क्रतु, वसिष्ठ, पुलस्त्य तथा अंगिराको छोड़कर मरीचि आदि छः ऋषियोंने अपनी इन्द्रियोंका निग्रह कर लिया। हे मुनिश्रेष्ठ! इन क्रतु आदि चार ऋषियोंका वीर्य पृथ्वीपर गिरा, उन्हींसे दूसरे पितृगणोंकी उत्पत्ति हुई॥ ५४-५५॥

सोमपा आज्यपा नाम्ना तथैवान्ये सुकालिनः।
हविष्मन्तः सुताः सर्वे कव्यवाहाः प्रकीर्तिताः॥ ५६

इन पितरोंमें सोमपा, आज्यपा, सुकालिन् तथा हविष्मान् मुख्य हैं। ये सभी पुत्र कव्यको धारण करनेवाले कहे गये हैं॥ ५६॥

क्रतोस्तु सोमपाः पुत्रा वसिष्ठात्कालिनस्तथा।
आज्यपाख्याः पुलस्त्यस्य हविष्मन्तोऽङ्गिरः सुताः॥ ५७

क्रतुके पुत्र सोमपा नामक पितर, वसिष्ठके पुत्र सुकालिन् नामक पितर, पुलस्त्यके पुत्र आज्यपा तथा अंगिराके पुत्र हविष्मान् नामक पितरके रूपमें उत्पन्न हुए॥ ५७॥

जातेषु तेषु विप्रेन्द्र अग्निष्वात्तादिकेष्वथ।
लोकानां पितृवर्गेषु कव्यवाट् स समन्ततः॥ ५८

हे विप्रेन्द्र! इस प्रकार अग्निष्वात्त आदि पितरोंके उत्पन्न हो जानेपर पितरोंके मध्य वे सभी कव्यका वहन करनेवाले कव्यवाट् हुए॥ ५८॥

सन्ध्या पितृप्रसूर्भूत्वा तदुद्देशयुताभवत्।
निर्दोषा शम्भुसन्दृष्टा धर्मकर्मपरायणा॥ ५९

इस प्रकार सन्ध्या पितरोंको उत्पन्न करनेवाली बनकर उनकी उद्देश्यसिद्धिमें लगी रहती थी। यह शिवके द्वारा देख लिये जानेके कारण दोषोंसे रहित तथा धर्म-कर्ममें परायण रहती थी॥ ५९॥

एतस्मिन्नन्तरे शम्भुरनुगृह्याखिलान्द्विजान्।
धर्मं संरक्ष्य विधिवदन्तर्धानं गतो द्रुतम्॥ ६०

इसी बीच सदाशिव समस्त महर्षियोंपर अनुग्रह करके तथा विधिपूर्वक धर्मकी रक्षाकर शीघ्र ही अन्तर्धान हो गये॥ ६०॥

अथ शंकरवाक्येन लज्जितोऽहं पितामहः।
कंदर्पायाकोपिषं हि भ्रुकुटीकुटिलाननः॥ ६१

उसके बाद शम्भु सदाशिवके वाक्योंसे मैं पितामह लज्जित हुआ। मैंने अपनी भ्रुकुटि चढ़ा ली और कामदेवपर बड़ा क्रुद्ध हुआ॥ ६१॥

दृष्ट्वा मुखमभिप्रायं विदित्वा सोऽपि मन्मथः।
स्वबाणान्सञ्जहाराशु भीतः पशुपतेर्मुने॥ ६२

हे मुने! मेरे मुखको देखकर और मेरा अभिप्राय समझकर रुद्रसे भयभीत उस कामदेवने अपने बाणोंको लौटा लिया॥ ६२॥

ततः कोपसमायुक्तः पद्मयोनिरहं मुने।
अज्वलं चातिबलवान् दिधक्षुरिव पावकः॥ ६३

हे मुने! तब मैं पद्मयोनि ब्रह्मा कोपयुक्त होकर इस प्रकार जलने लगा, जिस प्रकार भस्म करनेकी इच्छावाली अति बलवान् अग्नि प्रज्वलित हो उठती है॥ ६३॥

भवनेत्राग्निनिर्दग्धः कंदर्पो दर्पमोहितः।
भविष्यति महादेवे कृत्वा कर्म सुदुष्करम्॥ ६४

[मैंने क्रोधमें भरकर उसे यह शाप दे दिया] अहंकारसे मोहित हुआ यह कन्दर्प शिवजीके प्रति दुष्कर कर्म करके उनकी नेत्राग्निसे भस्म हो जायगा॥ ६४॥

इति वेधास्त्वहं काममक्षयं द्विजसत्तम।
समक्षं पितृसंघस्य मुनीनां च यतात्मनाम्॥ ६५

हे द्विजश्रेष्ठ! इस प्रकार मुझ ब्रह्माने पितृसमूहोंके तथा जितेन्द्रिय मुनियोंके सामने इस कामको यह अमित शाप दिया॥ ६५॥

इति भीतो रतिपतिस्तत्क्षणात्त्यक्तमार्गणः।
प्रादुर्बभूव प्रत्यक्षं शापं श्रुत्वातिदारुणम्॥ ६६

मेरे शापको सुनकर भयभीत हुआ कामदेव उसी क्षण अपने बाणोंको त्यागकर सबके सामने प्रकट हो गया॥ ६६॥

ब्रह्माणं मामुवाचेदं सदक्षादिसुतं मुने।
शृण्वतां पितृसंघानां संध्यायाश्च विगर्वधीः॥ ६७

हे मुने! उसका सारा गर्व नष्ट हो गया। तब वह दक्ष आदि मेरे पुत्रों, [अग्निष्वात्तादि] पितरों, सन्ध्या एवं मुझ ब्रह्माके सामने ही सबको सुनाते हुए यह कहने लगा—॥ ६७॥

काम उवाच

किमर्थं भवता ब्रह्मन् शप्तोऽहमिति दारुणम्।
अनागास्तव लोकेश न्याय्यमार्गानुसारिणः॥ ६८

काम बोला—हे ब्रह्मन्! आप तो न्यायमार्गका अनुसरण करनेवाले हैं, हे लोकेश! तब मुझ निरपराधको आपने इस प्रकार दारुण शाप क्यों दे दिया?॥ ६८॥

त्वया चोक्तं नु मत्कर्म यत्तद् ब्रह्मन् कृतं मया।
तत्र योग्यो न शापो मे यतो नान्यत्कृतं मया॥ ६९

हे ब्रह्मन्! आपने मेरे लिये जो कहा था, मैंने तो वही कार्य किया। आपको मुझे शाप देना ठीक नहीं है; क्योंकि मैंने [आपकी आज्ञाके विरुद्ध] कोई अन्य कार्य नहीं किया है॥ ६९॥

अहं विष्णुस्तथा शम्भुः सर्वे त्वच्छरगोचराः।
इति यद्भवता प्रोक्तं तन्मयापि परीक्षितम्॥ ७०

[हे ब्रह्मन्!] मैं [ब्रह्मा], विष्णु तथा शिव—ये सब भी तुम्हारे बाणोंके वशीभूत होकर रहेंगे—ऐसा जो आपने कहा था, उसीके अनुसार ही मैंने परीक्षा ली थी॥ ७० ॥

नापराधो ममाप्यत्र ब्रह्मन् मयि निरागसि।
दारुणः समयश्चैष शापो देव जगत्पते॥ ७१

अतः हे ब्रह्मन्! इसमें मेरा अपराध नहीं है। हे देव! हे जगत्पते! यदि आपने मुझ निरपराधको यह दारुण शाप दे ही दिया, तो इसका कोई समय भी निश्चित कर दीजिये॥ ७१ ॥

ब्रह्मोवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्माहं जगतां पतिः।
प्रत्यवोचं यतात्मानं मदनं दमयन्मुहुः॥ ७२

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] तब मैं जगत्पति ब्रह्मा उसकी यह बात सुनकर चित्तको वशमें करनेवाले कामको बार-बार डाँटता हुआ इस प्रकार बोला— ॥ ७२ ॥

ब्रह्मोवाच

आत्मजा मम संध्येयं यस्मादेतत्सकामतः।
लक्ष्यीकृतोऽहं भवता ततः शापो मया कृतः॥ ७३

[हे काम!] यह सन्ध्या मेरी कन्या है, तुमने इसकी ओर सकाम करनेके लिये मुझे [अपने कामका] लक्ष्य बनाया। इसलिये मैंने तुम्हें शाप दिया॥ ७३ ॥

अधुना शान्तरोषोऽहं त्वां वदामि मनोभव।
शृणुष्व गतसन्देहः सुखी भव भयं त्यज॥ ७४

हे मनोभव! अब मेरा क्रोध शान्त हो गया है, अतः मैं तुमसे कह रहा हूँ, उसे सुनो। तुम सन्देहरहित होकर सुखी हो जाओ और भय छोड़ो॥ ७४ ॥

त्वं भस्म भूत्वा मदन भर्गलोचनवह्निना।
तथैवाशु समं पश्चाच्छरीरं प्रापयिष्यसि॥ ७५

हे मदन! तुम महादेवजीकी नेत्राग्निसे भस्म होकर बादमें शीघ्र ही इसीके समान शरीर प्राप्त करोगे॥ ७५ ॥

यदा करिष्यति हरोऽञ्जसा दारपरिग्रहम्।
तदा स एव भवतः शरीरं प्रापयिष्यति॥ ७६

जब शंकरजी विवाह करेंगे, तब वे अनायास ही तुम्हें शरीर प्रदान करेंगे॥ ७६ ॥

एवमुक्त्वाथ मदनमहं लोकपितामहः।
अन्तर्गतो मुनीन्द्राणां मानसानां प्रपश्यताम्॥ ७७

[हे नारद!] कामसे इस प्रकार कहकर मैं लोकपितामह उन मानसपुत्र मुनिवरोंके देखते-देखते ही अन्तर्धान हो गया॥ ७७ ॥

इत्येवं मे वचः श्रुत्वा मदनस्तेऽपि मानसाः।
सम्बभूवुः सुताः सर्वे सुखिनोऽरं गृहं गताः॥ ७८

इस प्रकार मेरे वचनको सुनकर कामदेव तथा मेरे वे सभी मानसपुत्र प्रसन्न हो गये और शीघ्रतासे अपने-अपने घरोंको चले गये॥ ७८ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे कामशापानुग्रहो नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें कामशापानुग्रहवर्णन नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

कामदेवके विवाहका वर्णन

नारद उवाच

विष्णुशिष्य महाप्राज्ञ विधे लोककर प्रभो।
अद्भुतेयं कथा प्रोक्ता शिवलीलामृतान्विता॥ १

नारदजी बोले—हे विष्णुशिष्य! हे महाप्राज्ञ! हे विधे! संसारकी रचना करनेवाले हे प्रभो! आपने शिवजीकी लीलारूपी अमृतसे युक्त यह अद्भुत कथा कही॥ १ ॥

ततः किमभवत्तात चरितं तद् वदाधुना।
अहं श्रद्धान्वितः श्रोतुं यदि शम्भुकथाश्रयम्॥ २

हे तात! इसके बाद क्या हुआ? यदि मैं शम्भुकी कथापर आश्रित उनके चरित्रको सुननेमें श्रद्धावान् होऊँ, तो उसे कहिये॥ २॥

ब्रह्मोवाच

शम्भौ गते निजस्थाने वेधस्यन्तर्हिते मयि।
दक्षः प्राहाथ कंदर्पं संस्मरन् मम तद्वचः॥ ३

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार शिवजीके अपने स्थानको चले जाने तथा मुझ ब्रह्माके अन्तर्धान हो जानेपर दक्षप्रजापति मेरी बातका स्मरण करते हुए कामदेवसे कहने लगे—॥ ३॥

दक्ष उवाच

मद्देहजेयं कंदर्प सद्रूपगुणसंयुता।
एनां गृह्णीष्व भार्यार्थं भवतः सदृशीं गुणैः॥ ४

दक्ष बोले—हे काम! सुन्दर रूप एवं गुणोंसे युक्त यह कन्या मेरे शरीरसे उत्पन्न हुई है, अतः तुम अपनी पत्नी बनानेके लिये इसे ग्रहण करो, यह गुणोंमें तुम्हारे ही समान है॥ ४॥

एषा तव महातेजाः सर्वदा सहचारिणी।
भविष्यति यथाकामं धर्मतो वशवर्तिनी॥ ५

हे महातेजस्विन्! यह कन्या सदा तुम्हारे साथ रहेगी और धर्मके अनुरूप तुम्हारी इच्छाके अनुसार तुम्हारे वशमें रहेगी॥ ५॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा प्रददौ तस्मै देहस्वेदाम्बुसम्भवाम्।
कन्दर्पायाग्रतः कृत्वा नाम कृत्वा रतीति ताम्॥ ६

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] यह कहकर दक्षने अपने स्वेदसे उत्पन्न हुई कन्याका नाम रति रखकर और उसे अपने आगेकर कामदेवको दे दिया॥ ६॥

विवाह्य तां स्मरः सोऽपि मुमोदातीव नारद।
दक्षजां तनयां रम्यां मुनीनामपि मोहिनीम्॥ ७

हे नारद! वह कामदेव मुनियोंको भी मोहित करनेवाली उस परम सुन्दर दक्षकन्यासे विवाह करके बड़ा प्रसन्न हुआ॥ ७॥

अथ तां वीक्ष्य मदनो रत्याख्यां स्वस्त्रियं शुभाम्।
आत्मागुणेन विद्धोऽसौ मुमोह रतिरंजितः॥ ८

प्रेमासक्त कामदेव भी परम कल्याणकारिणी रति नामक अपनी स्त्रीको देखकर उसके गुणोंसे आकृष्ट होकर उसपर अत्यन्त मोहित हो गया॥ ८॥

क्षणप्रदाभवत्कान्ता गौरी मृगदृशी मुदा।
लोलापांग्यथ तस्यैव भार्या च सदृशी रतौ॥ ९

गौरवर्णवाली, हरिणाक्षी तथा चंचल नेत्रप्रान्तवाली वह रति भी कामके सदृश होनेके कारण उसे परम आह्लाद प्रदान करने लगी॥ ९॥

तस्या भ्रूयुगलं वीक्ष्य संशयं मदनोऽकरोत्।
उत्सादनं मत्कोदण्डं विधात्रास्यां निवेशितम्॥ १०

उसकी चपल भौंहोंको देखकर कामदेव संशयमें पड़ जाता था कि विधाताने सबको वशमें करनेवाले मेरे धनुषको इसके नेत्रोंमें सन्निविष्ट कर दिया है क्या?॥ १०॥

गतिं दृष्ट्वा कटाक्षाणामाशु तस्या द्विजोत्तम।
आशु गन्तुं निजास्त्राणां श्रद्दधे न च चारुताम्॥ ११

हे द्विजश्रेष्ठ! उस रतिके कटाक्षोंकी शीघ्र गति तथा उसकी सुन्दरताको देखकर कामदेवको अपने अस्त्रोंकी शीघ्र गतिपर विश्वास नहीं रह गया॥ ११॥

तस्याः स्वभावसौरम्यं धीरश्वासानिलं तथा।
आघ्राय मदनः श्रद्धां त्यक्तवान् मलयानिले॥ १२

उसके स्वाभाविक रूपसे सुगन्धित तथा मन्द श्वासवायुको सूँघकर कामदेवने मलय-पवनके प्रति अपनी श्रद्धाका त्याग कर दिया॥ १२॥

पूर्णेन्दुसदृशं वक्त्रं दृष्ट्वा लक्ष्मसुलक्षितम्।
न निश्चिकाय मदनो भेदं तन्मुखचन्द्रयोः॥ १३

सुन्दर लक्षणोंसे युक्त तथा पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान उसके मुखमण्डलको देखकर कामदेव उसके मुख और चन्द्रमाका भेद करनेमें असमर्थ हो गया॥ १३॥

सुवर्णपद्मकलिकातुल्यं तस्याः कुचद्वयम्।
रेजे चूचुकयुग्मेन भ्रमरेणेव वेष्टितम्॥ १४

सुवर्णकमलकी कलीके समान उसका वक्षःस्थल भ्रमरसे वेष्टित कमलकी भाँति सुशोभित हो रहा था॥ १४॥

दृढपीनोन्नतं तस्याः स्तनमध्यं विलंबिनीम्।
आनाभिलम्बिनीं मालां तन्वीं चन्द्रायितां शुभाम्॥ १५

ज्यां पुष्पधनुषः कामः षट्पदावलिसंभ्रमाम्।
विसस्मार च यस्मात्तां विसृज्यैनां निरीक्षते॥ १६

उसका कठोर, स्थूल एवं उन्नत वक्षःस्थलका मध्यभाग नाभिपर्यन्त लटकनेवाली, लम्बी, पतली तथा चन्द्रमाके समान स्वच्छ माला धारण किये हुए था। वह कामदेव भ्रमरकी पंक्तियोंसे घिरी अपने पुष्पधनुषकी प्रत्यंचाको भी भूल गया और उसे देखना छोड़कर बार-बार उसी रतिकी ओर एकटक देखने लगा॥ १५-१६॥

गम्भीरनाभिरन्ध्रान्तश्चतुःपार्श्वत्वगावृतम्।
आननाब्जेक्षणद्वंद्वमारक्तकमलं यथा॥ १७

चारों ओर त्वचासे परिवेष्टित उसकी नाभिका रन्ध्र अत्यन्त गम्भीर था। उसके मुखकमलपर दोनों नेत्र लाल कमलके समान प्रतीत हो रहे थे॥ १७॥

क्षीणमध्येन वपुषा निसर्गाष्टापदप्रभा।
रुक्मवेदीव ददृशे कामेन रमणी हि सा॥ १८

उस कामदेवने कृश कटिप्रदेशवाले शरीरसे सुशोभित, स्वभावतः सुवर्णकी आभावाली उस रमणीको सुवर्णवेदीके समान देखा॥ १८॥

रंभास्तंभायतं स्निग्धं यदूरुयुगलं मृदु।
निजशक्तिसमं कामो वीक्षाञ्चक्रे मनोहरम्॥ १९

कदलीस्तम्भके सदृश विस्तृत, स्निग्ध, कोमल तथा मनोहर उसकी जंघाओंको कामदेवने अपनी शक्तिके समान देखा॥ १९॥

आरक्तपार्ष्णिपादाग्रं प्रांतभागं पदद्वयम्।
अनुरागमिवानेन मित्रं तस्या मनोभवः॥ २०

तस्याः करयुगं रक्तं नखरैः किंशुकोपमैः।
वृत्ताभिरंगुलीभिश्च सूक्ष्माग्राभिर्मनोहरम्॥ २१

तद् बाहुयुगलं कांतं मृणालयुगलायतम्।
मृदु स्निग्धं चिरं राजत्कांतिलोहप्रवालवत्॥ २२

नीलनीरदसंकाशः केशपाशो मनोहरः।
चमरीबालभरवद्विभाति स्म स्मरप्रिया॥ २३

एतादृशीं रतिं नाम्नीं प्रालेयाद्रिसमुद्भवाम्।
गङ्गामिव महादेवो जग्राहोत्फुल्ललोचनः॥ २४

लाल-लाल पादाग्र तथा प्रान्तभागवाले उसके दोनों पैर रँगे हुए-से थे, इससे कामदेव अनुरक्त होकर उसका मित्र बन गया। पलाशपुष्पके समान लाल नखोंसे युक्त, सूक्ष्म अग्रभागवाले तथा गोलाकार अँगुलियोंसे युक्त उसके दोनों हाथ अत्यन्त मनोहर प्रतीत हो रहे थे। उसकी दोनों भुजाएँ कान्तिमय, मृणालके समान लम्बी, कोमल, स्निग्ध और कान्तियुक्त लाल मूँगेके समान शोभित हो रही थीं। उसका मनोहर केशपाश काले-काले बादलोंके समान शोभा पा रहा था, इससे वह कामप्रिया चमरीके बालोंको धारण करनेवाले चँवरकी भाँति सुशोभित हो रही थी। [सौन्दर्ययुक्त] ऐसी रतिको हर्षित नेत्रोंवाले कामदेवने उसी प्रकार ग्रहण किया, जिस प्रकार हिमालयसे उत्पन्न गंगाको महादेवजीने ग्रहण किया था॥ २०—२४॥

चक्रपद्मां चारुबाहुं मृणालशकलान्विताम्।
भ्रूयुग्मविभ्रमव्राततनूर्मिपरिराजिताम् ॥ २५

चक्र तथा पद्मके चिह्नोंसे युक्त, मृणालखण्डके समान मनोहर हाथोंसे युक्त वह रति गंगा नदीके समान प्रतीत हो रही थी। उस रतिकी दोनों भौंहोंकी चेष्टाएँ नदीकी सूक्ष्म लहरोंके समान प्रतीत हो रही थीं॥ २५ ॥

कटाक्षपाततुङ्गौघां स्वीयनेत्रोत्पलान्विताम्।
तनुलोमांबुशैवालां मनोद्रुमविलासिनीम्॥ २६

उसके कटाक्षपात ही नदीकी वेगवती धारा थे और विशाल नेत्र कमलके समान प्रतीत हो रहे थे। उसकी सूक्ष्म रोमावली शैवाल थी और वह अपने मनरूपी वृक्षोंसे विलास कर रही थी॥ २६ ॥

निम्ननाभिह्रदां क्षामां सर्वांगरमणीयिकाम्।
सर्वलावण्यसदनां शोभमानां रमामिव॥ २७

द्वादशाभरणैर्युक्तां शृङ्गारैः षोडशैर्युताम्।
मोहिनीं सर्वलोकानां भासयन्तीं दिशो दश॥ २८

उसकी गम्भीर नाभि ह्रदके समान शोभा पा रही थी। वह कृशगात्रा रति अपने सर्वांगकी रमणीयता तथा लावण्यमयी शोभासे बारह आभूषणोंसे युक्त तथा सोलह शृंगारोंसे शोभायमान होकर सम्पूर्ण लोकोंको मोहनेवाली और अपनी कान्तिसे दसों दिशाओंको प्रज्वलित करती हुई महालक्ष्मी-जैसी प्रतीत हो रही थी॥ २७-२८ ॥

इति तां मदनो वीक्ष्य रतिं जग्राह सोत्सुकः।
रागादुपस्थितां लक्ष्मीं हृषीकेश इवोत्तमाम्॥ २९

इस प्रकार परम सुन्दरी रतिको देखकर कामदेवने इसे बड़ी प्रसन्नतासे ग्रहण किया, जिस प्रकार कि स्वयं रागसे उपस्थित हुई महालक्ष्मीको भगवान् नारायणने ग्रहण किया था॥ २९ ॥

नोवाच च तदा दक्षं कामो मोदभवात्ततः।
विस्मृत्य दारुणं शापं विधिदत्तं विमोहितः॥ ३०

उस समय कामदेवने आनन्द होनेके कारण विमोहित होकर ब्रह्माजीके द्वारा दिये गये दारुण शापको भूलकर दक्षसे कुछ नहीं कहा॥ ३० ॥

तदा महोत्सवस्तात बभूव सुखवर्धनः।
दक्षः प्रीततरश्चासीन्मुमुदे तनया मम॥ ३१

हे तात! उस समय [सबके] सुखको बढ़ानेवाला महान् उत्सव हुआ। दक्ष प्रजापति अत्यन्त ही प्रसन्न हुए और कन्या रति भी परम प्रसन्न हो गयी॥ ३१ ॥

कामोऽतीव सुखं प्राप्य सर्वदुःखक्षयं गतः।
दक्षजापि रतिः कामं प्राप्य चापि जहर्ष ह॥ ३२

अत्यधिक सुख पाकर कामका समस्त दुःख विनष्ट हो गया और इधर दक्षतनया रति भी कामको पतिरूपमें प्राप्तकर परम हर्षित हुई॥ ३२ ॥

रराज च तया सार्धं भिन्नश्चारुवचाः स्मरः।
जीमूत इव सन्ध्यायां सौदामन्या मनोज्ञया॥ ३३

रतिसे मोहित हुआ गद्गद कण्ठवाला वह मधुरभाषी काम सायंकालमें मनोहर बिजलीसे युक्त मेघके समान दक्षकन्या रतिके साथ शोभा पाने लगा॥ ३३ ॥

इति रतिपतिरुच्चैर्मोहयुक्तो रतिं तां
हृदुपरि जगृहे वै योगदर्शीव विद्याम्।
रतिरपि पतिमग्र्यं प्राप्य सा चापि रेजे
हरिमिव कमला वै पूर्णचन्द्रोपमास्या॥ ३४

इस प्रकार रतिपति कामने अत्यन्त मोहित होकर उस रतिको इस प्रकार अपने हृदयमें ग्रहण किया, जिस प्रकार योगी ब्रह्मविद्याको ग्रहण करता है और वह रति भी श्रेष्ठ कामको प्राप्तकर इस प्रकार प्रसन्न हुई, जिस प्रकार पूर्णचन्द्रके समान मुखवाली महालक्ष्मी विष्णुको पतिरूपमें प्राप्तकर प्रसन्न हुई थीं॥ ३४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे कामविवाहवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें कामविवाहवर्णन नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

ब्रह्माकी मानसपुत्री कुमारी सन्ध्याका आख्यान

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य ब्रह्मणो मुनिसत्तमः।
स मुदोवाच संस्मृत्य शंकरं प्रीतमानसः॥ १

सूतजी बोले—हे महर्षियो! ब्रह्माजीके इस वचनको सुनकर मुनिश्रेष्ठ [नारद] प्रसन्नचित्त होकर शंकरजीका स्मरण करके आनन्दपूर्वक कहने लगे—॥ १॥

नारद उवाच

ब्रह्मन् विधे महाभाग विष्णुशिष्य महामते।
अद्भुता कथिता लीला त्वया च शशिमौलिनः॥ २

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे विधे! हे विष्णुशिष्य! हे महाभाग! हे महामते! आपने शिवजीकी अद्भुत लीलाका वर्णन किया॥ २॥

गृहीतदारे मदने हृष्टे हि स्वगृहं गते।
दक्षे च स्वगृहं याते तथा हि त्वयि कर्तरि॥ ३
मानसेषु च पुत्रेषु गतेषु स्वस्वधामसु।
सन्ध्या कुत्र गता सा च ब्रह्मपुत्री पितृप्रसूः॥ ४

जब कामदेव अपनी पत्नीको प्राप्तकर प्रसन्न होकर अपने घर चला गया तथा प्रजापति दक्ष भी अपने घर चले गये, सृष्टिकर्ता आप ब्रह्मा तथा आपके मानसपुत्र भी अपने-अपने घर चले गये, तब पितरोंकी जन्मदात्री वह ब्रह्मपुत्री सन्ध्या कहाँ गयी?॥ ३-४॥

किं चकार च केनैव पुरुषेण विवाहिता।
एतत्सर्वं विशेषेण संध्यायाश्चरितं वद॥ ५

उसने क्या किया और उसका विवाह किस पुरुषके साथ हुआ? इन सब बातोंको और सन्ध्याके चरित्रको विशेष रूपसे कहिये॥ ५॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य ब्रह्मपुत्रस्य धीमतः।
संस्मृत्य शंकरं भक्त्या ब्रह्मा प्रोवाच तत्त्ववित्॥ ६

सूतजी बोले—तत्त्ववेत्ता ब्रह्मदेव परम बुद्धिमान् देवर्षि नारदके इस वचनको सुनकर भक्तिपूर्वक शंकरजीका स्मरण करके कहने लगे—॥ ६॥

ब्रह्मोवाच

शृणु त्वं च मुने सर्वं संध्यायाश्चरितं शुभम्।
यच्छ्रुत्वा सर्वकामिन्यः साध्व्यः स्युः सर्वदा मुने॥ ७

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! सन्ध्याका सम्पूर्ण शुभ चरित्र सुनिये, जिसे सुनकर हे मुने! सभी स्त्रियाँ पतिव्रता होती हैं॥ ७॥

सा च संध्या सुता मे हि मनोजाता पुराभवत्।
तपस्तप्त्वा तनुं त्यक्त्वा सैव जाता त्वरुन्धती॥ ८

वह सन्ध्या, जो पूर्वकालमें मेरे मनसे उत्पन्न हुई थी, वही तपस्याकर शरीर छोड़नेके बाद अरुन्धती हुई॥ ८॥

मेधातिथेः सुता भूत्वा मुनिश्रेष्ठस्य धीमती।
ब्रह्मविष्णुमहेशानवचनाच्चरितव्रता ॥ ९

वव्रे पतिं महात्मानं वसिष्ठं शंसितव्रतम्।
पतिव्रता च मुख्याभूद्वंद्या पूज्या त्वभीषणा॥ १०

उस बुद्धिमती तथा उत्तम व्रत करनेवाली सन्ध्याने मुनिश्रेष्ठ मेधातिथिकी कन्याके रूपमें जन्म ग्रहणकर ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वरके वचनोंसे महात्मा वसिष्ठका अपने पतिरूपमें वरण किया। वह श्रेष्ठ पतिव्रता, वन्दनीय, पूजनीय तथा दयाकी प्रतिमूर्ति थी॥ ९-१०॥

नारद उवाच

कथं तया तपस्तप्तं किमर्थं कुत्र संध्यया।
कथं शरीरं सा त्यक्त्वाभवन्मेधातिथेः सुता॥ ११

कथं वा विहितं देवैर्ब्रह्मविष्णुशिवैः पतिम्।
वसिष्ठं तु महात्मानं संवव्रे शंसितव्रतम्॥ १२

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! उस सन्ध्याने क्यों, कहाँ तथा किस उद्देश्यसे तप किया, किस प्रकार वह अपना शरीर त्याग करके मेधातिथिकी कन्या हुई और उसने किस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवके द्वारा बताये गये उत्तम व्रतवाले महात्मा वसिष्ठको अपना पति स्वीकार किया?॥ ११-१२॥

एतन्मे श्रोष्यमाणाय विस्तरेण पितामह।
कौतूहलमरुन्धत्याश्चरितं ब्रूहि तत्त्वतः॥ १३

हे पितामह! इसे सुननेकी मेरी बड़ी उत्सुकता है, अतः सुननेकी इच्छावाले मुझसे अरुन्धतीके चरित्रका विस्तारपूर्वक ठीक-ठीक वर्णन कीजिये॥ १३॥

ब्रह्मोवाच

अहं स्वतनयां संध्यां दृष्ट्वा पूर्वमथात्मनः।
कामायाशु मनोऽकार्षं त्यक्ता शिवभयाच्च सा॥ १४

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!]पहले अपनी पुत्री सन्ध्याको देखकर मेरा मन कामसे आकृष्ट हो गया, किंतु बादमें शिवके भयसे मैंने उसे छोड़ दिया॥ १४॥

संध्यायाश्चलितं चित्तं कामबाणविलोडितम्।
ऋषीणामपि संरुद्धमानसानां महात्मनाम्॥ १५

कामबाणसे घायल होकर उस सन्ध्याका तथा मनको वशमें रखनेवाले महात्मा ऋषियोंका भी चित्त चलायमान हो गया था॥ १५॥

भर्गस्य वचनं श्रुत्वा सोपहासं च मां प्रति।
आत्मनश्चलितत्वं वै ह्यमर्यादमृषीन्प्रति॥ १६

कामस्य तादृशं भावं मुनिमोहकरं मुहुः।
दृष्ट्वा सन्ध्या स्वयं तत्रोपयमायातिदुःखिता॥ १७

उस समय मेरे प्रति कहे गये शिवजीके उपहासयुक्त वचनको सुनकर और ऋषियोंके प्रति अपने चित्तको मर्यादा छोड़कर चलायमान देखकर तथा बार-बार मुनियोंको मोहित करनेवाले उस प्रकारके भावको देखकर वह सन्ध्या विवाहके लिये स्वयं अत्यन्त दुःखी हुई॥ १६-१७॥

ततस्तु ब्रह्मणा शप्ते मदने च मया मुने।
अन्तर्भूते मयि शिवे गते चापि निजास्पदे॥ १८

आमर्षवशमापन्ना सा संध्या मुनिसत्तम।
मम पुत्री विचार्यैवं तदा ध्यानपराभवत्॥ १९

हे मुने! कामदेवको शाप देकर जब मैं अन्तर्धान हो गया एवं शिवजी अपने स्थान कैलासको चले गये, उस समय हे मुनिसत्तम! वह मेरी पुत्री सन्ध्या क्षुब्ध होकर कुछ विचार करके ध्यानमग्न हो गयी॥ १८-१९॥

ध्यायन्ती क्षणमेवाशु पूर्वं वृत्तं मनस्विनी।
इदं विममृशे सन्ध्या तस्मिन्काले यथोचितम्॥ २०

वह मनस्विनी सन्ध्या कुछ देरतक अपने पूर्व वृत्तका स्मरण करती हुई उस समय यथोचित रूपसे यह विचार करने लगी—॥ २०॥

सन्ध्योवाच

उत्पन्नमात्रां मां दृष्ट्वा युवतीं मदनेरितः।
अकार्षीत्सानुरागोऽयमभिलाषं पिता मम॥ २१

सन्ध्या बोली—मेरे पिताने उत्पन्न होते ही मुझ युवतीको देखकर कामसे प्रेरित होकर अनुरागपूर्वक मुझे प्राप्त करनेकी अभिलाषा की॥ २१॥

पश्यतां मानसानां च मुनीनां भावितात्मनाम्।
दृष्ट्वैव माममर्यादं सकाममभवन्मनः॥ २२

इसी प्रकार आत्मतत्त्वज्ञ ब्रह्मदेवके मानसपुत्रोंने भी मुझे देखकर अपना मन मर्यादासे रहितकर कामाभिलाषसे युक्त कर लिया॥ २२॥

ममापि मथितं चित्तं मदनेन दुरात्मना।
येन दृष्ट्वा मुनीन्सर्वांश्चलितं मन्मनो भृशम्॥ २३

इस दुरात्मा कामदेवने मेरे भी चित्तको मथ डाला, जिससे सभी मुनियोंको देखकर मेरा मन बहुत चंचल हो गया॥ २३॥

फलमेतस्य पापस्य मदनः स्वयमाप्तवान्।
यस्तं शशाप कुपितः शम्भोरग्रे पितामहः॥ २४

इस पापका फल कामदेवने स्वयं पाया कि शंकरजीके सामने कुपित होकर ब्रह्माजीने उसे शाप दे दिया॥ २४॥

प्राप्नुयां फलमेतस्य पापस्य स्वघकारिणी।
तच्छोधनफलमहमाशु चेच्छामि साधनम्॥ २५

यन्मां पिता भ्रातरश्च सकामामपरोक्षतः।
दृष्ट्वा चक्रुः स्पृहां तस्मान्न मत्तः पापकृत्परा॥ २६

मैं पापिनी भी इस पापका फल पाऊँगी, अतः उस पापसे शुद्ध होनेके लिये मैं भी कोई साधन करना चाहती हूँ; क्योंकि मुझे देखकर मेरे पिता तथा सभी भाई प्रत्यक्ष रूपसे कामभावपूर्वक मेरी अभिलाषा करने लगे। अतः मुझसे बढ़कर कोई पापिनी नहीं है॥ २५-२६॥

ममापि कामभावोऽभूदमर्यादं समीक्ष्य तान्।
पत्या इव स्वके ताते सर्वेषु सहजेष्वपि॥ २७

उन सबको देखकर मुझमें भी अमर्यादित रूपसे कामभाव उत्पन्न हो गया और मैं भी अपने पिता तथा सभी भाइयोंमें पतिके समान भावना करने लगी॥ २७॥

करिष्याम्यस्य पापस्य प्रायश्चित्तमहं स्वयम्।
आत्मानमग्नौ होष्यामि वेदमार्गानुसारतः॥ २८
किं त्वेकां स्थापयिष्यामि मर्यादामिह भूतले।
उत्पन्नमात्रा न यथा सकामाः स्युः शरीरिणः॥ २९

अब मैं इस पापका प्रायश्चित्त करूँगी और वेदमार्गके अनुसार अपने शरीरको अग्निमें हवन कर दूँगी। मैं इस भूतलपर एक मर्यादा स्थापित करूँगी, जिससे कि शरीरधारी उत्पन्न होते ही कामभावसे युक्त न हों॥ २८-२९॥

एतदर्थमहं कृत्वा तपः परमदारुणम्।
मर्यादां स्थापयिष्यामि पश्चात्त्यक्ष्यामि जीवितम्॥ ३०

इसके लिये मैं परम कठोर तप करके उस मर्यादाको स्थापित करूँगी और बादमें अपना शरीर छोड़ूँगी॥ ३०॥

यस्मिन् शरीरे पित्रा मे ह्यभिलाषः स्वयं कृतः।
भ्रातृभिस्तेन कायेन किंचिन्नास्ति प्रयोजनम्॥ ३१

मेरे जिस शरीरमें मेरे पिता एवं भाइयोंने कामाभिलाष किया, उस शरीरसे अब कोई प्रयोजन नहीं है॥ ३१॥

मया येन शरीरेण तातेषु सहजेषु च।
उद्भावितः कामभावो न तत्सुकृतसाधनम्॥ ३२

मैंने भी जिस शरीरसे अपने पिता तथा भाइयोंमें कामभाव उत्पन्न किया, अब वह शरीर पुण्यकार्यका साधन नहीं हो सकता॥ ३२॥

इति संचिन्त्य मनसा संध्या शैलवरं ततः।
जगाम चन्द्रभागाख्यं चन्द्रभागापगा यतः॥ ३३

वह सन्ध्या अपने मनमें ऐसा विचारकर चन्द्रभाग नामक श्रेष्ठ पर्वतपर गयी, जहाँसे चन्द्रभागा नदी निकली हुई है॥ ३३॥

अथ तत्र गतां ज्ञात्वा संध्यां गिरिवरं प्रति।
तपसे नियतात्मानं ब्रह्मावोचमहं सुतम्॥ ३४
वसिष्ठं संयतात्मानं सर्वज्ञं ज्ञानयोगिनम्।
समीपे स्वे समासीनं वेदवेदाङ्गपारगम्॥ ३५

इसके बाद सन्ध्याको उस श्रेष्ठ पर्वतपर तपस्याके लिये गयी हुई जानकर मैंने अपने पासमें बैठे हुए, मनको वशमें रखनेवाले, सर्वज्ञ, ज्ञानयोग तथा वेदवेदांगके पारगामी अपने पुत्र वसिष्ठसे कहा— ॥ ३४-३५॥

ब्रह्मोवाच

वसिष्ठ पुत्र गच्छ त्वं संध्यां जातां मनस्विनीम्।
तपसे धृतकामां च दीक्षस्वैनां यथाविधि॥ ३६

मंदाक्षमभवत्तस्याः पुरा दृष्ट्वैव कामुकान्।
युष्मान्मां च तथात्मानं सकामां मुनिसत्तम॥ ३७

अनुक्तमूर्त्तं तत्कर्म पूर्वमृत्युं विमृश्य सा।
युष्माकमात्मनश्चापि प्राणान्संत्यक्तुमिच्छति॥ ३८

अमर्यादेषु मर्यादां तपसा स्थापयिष्यति।
तपः कर्तुं गता साध्वी चन्द्रभागाख्यभूधरे॥ ३९

न भावं तपसस्तात सानुजानाति कंचन।
तस्माद्यथोपदेशात्सा प्राप्नोत्विष्टं तथा कुरु॥ ४०

इदं रूपं परित्यज्य निजं रूपान्तरं मुने।
परिगृह्यांतिके तस्याः तपश्चर्यां निदर्शय॥ ४१

इदं स्वरूपं भवतो दृष्ट्वा पूर्वं यथात्र वाम्।
नाप्नुयात्साथ किंचिद्वै ततो रूपान्तरं कुरु॥ ४२

ब्रह्मोवाच

नारदेत्थं वसिष्ठो मे समाज्ञप्तो दयायुतः।
तथास्त्विति च मां प्रोच्य ययौ संध्यान्तिकं मुनिः॥ ४३

तत्र देवसरः पूर्णं गुणैर्मानससंमितम्।
ददर्श स वसिष्ठोऽथ संध्यां तत्तीरगामपि॥ ४४

तीरस्थया तया रेजे तत्सरः कमलोज्ज्वलम्।
उद्यदिन्दुसुनक्षत्रं प्रदोषे गगनं यथा॥ ४५

मुनिर्दृष्ट्वाथ तां तत्र सुसंभावां स कौतुकी।
वीक्षाञ्चक्रे सरस्तत्र बृहल्लोहितसंज्ञकम्॥ ४६

चन्द्रभागा नदी तस्मात्प्राकाराद्दक्षिणाम्बुधिम्।
यान्ती सा चैव ददृशे तेन सानुगिरेर्महत्॥ ४७

ब्रह्माजी बोले—हे पुत्र वसिष्ठ! तपस्याका विचार करके गयी हुई मनस्विनी पुत्री सन्ध्याके पास जाओ और इसे विधिपूर्वक दीक्षा प्रदान करो॥ ३६॥

हे मुनिसत्तम! प्रथम यह तुमलोगोंको, मुझको तथा अपनेको कामाभिलाषसे युक्त देख रही थी, परंतु अब इसके नेत्रोंकी चपलता दूर हो गयी है॥ ३७॥

यह तुमलोगोंको तथा अपने अभूतपूर्व दुष्कर्मको समझकर 'मृत्यु ही अच्छी है'—ऐसा विचारकर प्राण छोड़नेकी इच्छा करती है॥ ३८॥

अब यह तपस्याके द्वारा अमर्यादित प्राणियोंमें मर्यादा स्थापित करेगी, इसलिये तपस्या करनेके लिये वह साध्वी चन्द्रभाग नामक पर्वतपर गयी है॥ ३९॥

हे तात! वह तपस्याकी किसी भी क्रियाको नहीं जानती है, अतः जिस प्रकारके उपदेशसे वह अपने अभीष्टको प्राप्त करे, वैसा करो॥ ४०॥

हे मुने! तुम अपने इस रूपको छोड़कर दूसरा शरीर धारणकर उसके समीपमें स्थित होकर तपश्चर्याकी क्रियाओंको प्रदर्शित करो॥ ४१॥

उसने यहाँपर मेरे तथा तुम्हारे रूपको पहले देख लिया है, इस रूपद्वारा वह कुछ भी शिक्षा ग्रहण नहीं करेगी, इसलिये दूसरा रूप धारण करो॥ ४२॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! इस प्रकार दयालु मुनि वसिष्ठजीने मुझसे आज्ञा प्राप्त की और तथास्तु—ऐसा कहकर वे सन्ध्याके समीप गये॥ ४३॥

वसिष्ठजीने वहाँ मानससरोवरके समान गुणोंसे परिपूर्ण देवसरको तथा उसके तटपर गयी हुई उस सन्ध्याको भी देखा॥ ४४॥

उज्ज्वल कमलोंसे युक्त वह देवसर तटपर स्थित सन्ध्याद्वारा इस प्रकार शोभित हो रहा था, मानो प्रदोषकालमें उदित चन्द्रमा तथा नक्षत्रोंसे युक्त आकाश रात्रिमें सुशोभित हो रहा हो॥ ४५॥

कौतूहलयुक्त वसिष्ठजी सुन्दर भावोंवाली उस सन्ध्याको देखकर बृहल्लोहित नामक उस तालाबकी ओर देखने लगे॥ ४६॥

उन्होंने उसी चन्द्रभाग पर्वतके शिखरोंसे दक्षिण समुद्रकी ओर जानेवाली चन्द्रभागा नदीको देखा। वह

निर्भिद्य पश्चिमं सा तु चन्द्रभागस्य सा नदी।
यथा हिमवतो गङ्गा तथा गच्छति सागरम्॥ ४८

तस्मिन् गिरौ चन्द्रभागे बृहल्लोहिततीरगाम्।
संध्यां दृष्ट्वाथ पप्रच्छ वसिष्ठः सादरं तदा॥ ४९

वसिष्ठ उवाच

किमर्थमागता भद्रे निर्जनं त्वं महीधरम्।
कस्य वा तनया किं वा भवत्यापि चिकीर्षितम्॥ ५०
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं वद गुह्यं न चेद्भवेत्।
वदनं पूर्णचन्द्राभं निष्चेष्टं वा कथं तव॥ ५१

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य वसिष्ठस्य महात्मनः।
दृष्ट्वा च तं महात्मानं ज्वलन्तमिव पावकम्॥ ५२
शरीरधृग्ब्रह्मचर्यं विलसन्तं जटाधरम्।
सादरं प्रणिपत्याथ संध्योवाच तपोधनम्॥ ५३

संध्योवाच

यदर्थमागता शैलं सिद्धं तन्मे निबोध ह।
तव दर्शनमात्रेण यन्मे सेत्स्यति वै विभो॥ ५४
तपश्चर्तुमहं ब्रह्मन्निर्जनं शैलमागता।
ब्रह्मणोऽहं सुता जाता नाम्ना संध्येति विश्रुता॥ ५५

यदि ते युज्यते सह्यं मां त्वं समुपदेशय।
एतच्चिकीर्षितं गुह्यं नान्यं किंचन विद्यते॥ ५६

अज्ञात्वा तपसो भावं तपोवनमुपाश्रिता।
चिंतया परिशुष्येऽहं वेपते हि मनो मम॥ ५७

ब्रह्मोवाच

आकर्ण्य तस्या वचनं वसिष्ठो ब्रह्मवित्तमः।
स्वयं च सर्वकृत्यज्ञो नान्यत्किंचन पृष्टवान्॥ ५८
अथ तां नियतात्मानं तपसेति धृतोद्यमाम्।
प्रोवाच मनसा स्मृत्वा शंकरं भक्तवत्सलम्॥ ५९

वसिष्ठ उवाच

परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः।
परमः परमाराध्यः शम्भुर्मनसि धार्यताम्॥ ६०

नदी चन्द्रभाग पर्वतके विशाल पश्चिमीभागको तोड़कर समुद्रकी ओर उसी प्रकार जा रही थी, जैसे हिमालयसे गंगा समुद्रमें जाती है॥ ४७-४८॥

उस चन्द्रभाग पर्वतपर बृहल्लोहित सरोवरके तटपर स्थित सन्ध्याको देखकर वसिष्ठजी आदरपूर्वक उससे पूछने लगे—॥ ४९॥

वसिष्ठजी बोले—हे भद्रे! इस निर्जन पर्वतपर तुम किसलिये आयी हो, तुम किसकी कन्या हो और यहाँ क्या करना चाहती हो? पूर्ण चन्द्रमाके समान तुम्हारा मुख मलिन क्यों हो गया है? यदि कोई गोपनीय बात न हो, तो बताओ, मुझे सुननेकी इच्छा है॥ ५०-५१॥

ब्रह्माजी बोले—उन महात्मा वसिष्ठकी बात सुनकर उन्हें महात्मा, प्रदीप्त अग्निके समान तेजस्वी, ब्रह्मचारी तथा जटाधारी देखकर और आदरपूर्वक प्रणामकर सन्ध्या उन तपोधन वसिष्ठसे कहने लगी—॥ ५२-५३॥

सन्ध्या बोली—हे विभो! मैं जिस उद्देश्यसे इस सिद्धपर्वतपर आयी हूँ, वह तो आपके दर्शनमात्रसे ही पूर्ण हो जायगा॥ ५४॥

हे ब्रह्मन्! मैं तप करनेके लिये इस निर्जन पर्वतपर आयी हूँ, मैं ब्रह्माकी पुत्री हूँ और सन्ध्या नामसे प्रसिद्ध हूँ॥ ५५॥

यदि आपको उचित जान पड़े, तो मुझे उपदेश कीजिये। मैं तपस्या करना चाहती हूँ, अन्य कुछ भी गोपनीय नहीं है॥ ५६॥

मैं तपस्याकी कोई विधि बिना जाने ही तपोवनमें आ गयी हूँ। इसी चिन्तासे मैं सूखती जा रही हूँ तथा मेरा हृदय काँप रहा है॥ ५७॥

ब्रह्माजी बोले—ब्रह्मज्ञानी वसिष्ठजीने उसकी बात सुनकर पुनः सन्ध्यासे कुछ नहीं पूछा; क्योंकि वे सभी बातें जानते थे। इसके बाद वे मनमें भक्तवत्सल शंकरजीका स्मरणकर तपस्याके लिये उद्यम करनेवाली तथा मनको वशमें रखनेवाली उस सन्ध्यासे कहने लगे—॥ ५८-५९॥

वसिष्ठजी बोले—[हे देवि!] जो महान् तेजःस्वरूप, महान् तप तथा परम आराध्य हैं, उन शम्भुका मनमें ध्यान करो॥ ६०॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां य एकस्त्वादिकारणम्।
तमेकं जगतामाद्यं भजस्व पुरुषोत्तमम्॥ ६१

जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके आदिकारण तथा अद्वैतस्वरूप हैं, उन्हीं संसारके एकमात्र आदिकारण पुरुषोत्तमका भजन करो॥ ६१॥

मंत्रेणानेन देवेशं शम्भुं भज शुभानने।
तेन ते सकलावाप्तिर्भविष्यति न संशयः॥ ६२

हे शुभानने! तुम इस मन्त्रसे देवेश्वर शम्भुका भजन करो, उससे तुम्हें समस्त पदार्थोंकी प्राप्ति हो जायगी, इसमें सन्देह नहीं है॥ ६२॥

ॐ नमः शंकरायेति ओमित्यन्तेन सन्ततम्।
मौनं तपः समारम्भं तन्मे निगदतः शृणु॥ ६३

'ॐ नमः शंकराय ॐ' इस मन्त्रसे मौन होकर इस प्रकार तपस्याका प्रारम्भ करो, [विशेष विधि] तुमको बता रहा हूँ, सुनो॥ ६३॥

स्नानं मौनेन कर्तव्यं मौनेन हरपूजनम्।
द्वयोः पूर्णजलाहारं प्रथमं षष्ठकालयोः॥ ६४
तृतीये षष्ठकाले तु ह्युपवासपरो भवेत्।
एवं तपःसमाप्तौ वा षष्ठे काले क्रिया भवेत्॥ ६५

मौन होकर स्नान तथा मौन होकर सदाशिवकी पूजा करनी चाहिये। प्रथम दोनों षष्ठकालोंमें जलका आहारकर तीसरे षष्ठकालमें उपवास करे। इस प्रकार षष्ठकालिक क्रिया तपस्याकी समाप्तिपर्यन्त करनी चाहिये॥ ६४-६५॥

एवं मौनतपस्याख्या ब्रह्मचर्यफलप्रदा।
सर्वाभीष्टप्रदा देवि सत्यं सत्यं न संशयः॥ ६६

हे देवि! इसका नाम मौन तपस्या है। इसे करनेसे यह ब्रह्मचर्यका फल प्रदान करनेवाली तथा सभी अभीष्ट फल प्रदान करनेवाली है, यह सत्य है, सत्य है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ६६॥

एवं चित्ते समुद्दिश्य कामं चिंतय शंकरम्।
स ते प्रसन्न इष्टार्थमचिरादेव दास्यति॥ ६७

इस प्रकार चित्तमें विचार करके सदाशिवका गहन चिन्तन करो, [ऐसा करनेसे] वे तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होकर शीघ्र ही अभीष्ट फल प्रदान करेंगे॥ ६७॥

ब्रह्मोवाच

उपविश्य वसिष्ठोऽथ संध्यायै तपसः क्रियाम्।
तामाभाष्य यथान्यायं तत्रैवान्तर्दधे मुनिः॥ ६८

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार मुनि वसिष्ठ वहाँ बैठकर सन्ध्याको तपस्याकी यथोचित विधि बताकर अन्तर्धान हो गये॥ ६८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे संध्याचरित्रवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सन्ध्याचरित्रवर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

सन्ध्याद्वारा तपस्या करना, प्रसन्न हो भगवान् शिवका उसे दर्शन देना, सन्ध्याद्वारा की गयी शिवस्तुति, सन्ध्याको अनेक वरोंकी प्राप्ति तथा महर्षि मेधातिथिके यज्ञमें जानेका आदेश प्राप्त होना

ब्रह्मोवाच

सुतवर्य महाप्राज्ञ शृणु संध्यातपो महत्।
यच्छ्रुत्वा नश्यते पापसमूहस्तत्क्षणाद् ध्रुवम्॥ १

ब्रह्माजी बोले—हे पुत्रवर! हे महाप्राज्ञ! अब सन्ध्याके द्वारा किये गये महान् तपको सुनिये। जिसके सुननेसे पापसमूह उसी क्षण निश्चय ही नष्ट हो जाता है॥ १॥

उपदिश्य तपोभावं वसिष्ठे स्वगृहं गते।
संध्यापि तपसो भावं ज्ञात्वा मोदमवाप ह॥ २

तपस्याका उपदेशकर वसिष्ठजीके अपने घर चले जानेपर सन्ध्या भी तपस्याकी विधिको जानकर अत्यन्त हर्षित हो गयी॥ २॥

ततः सानंदमनसो वेषं कृत्वा तु यादृशम्।
तपश्चर्तुं समारेभे बृहल्लोहिततीरगा॥ ३

वह बृहल्लोहितसरके सन्निकट प्रसन्नचित्त होकर अनुकूल वेष धारण करके तपस्या करने लगी॥ ३॥

यथोक्तं तु वसिष्ठेन मंत्रं तपसि साधनम्।
मंत्रेण तेन सद्भक्त्या पूजयामास शंकरम्॥ ४

वसिष्ठजीने तपस्याके साधनभूत जिस मन्त्रको बताया था, उस मन्त्रसे वह शंकरजीका पूजन करने लगी॥ ४॥

एकान्तमनसस्तस्याः कुर्वन्त्याः सुमहत्तपः।
शंभौ विन्यस्तचित्ताया गतमेकं चतुर्युगम्॥ ५

इस प्रकार सदाशिवमें चित्त लगाकर एकाग्र मनसे घोर तपस्या करती हुई उस सन्ध्याका एक चतुर्युग बीत गया॥ ५॥

प्रसन्नोऽभूत्तदा शंभुस्तपसा तेन तोषितः।
अंतर्बहिस्तथाकाशे दर्शयित्वा निजं वपुः॥ ६

यद्रूपं चिंतयंती सा तेन प्रत्यक्षतां गतः॥ ७

उसके पश्चात् उस तपस्यासे सन्तुष्ट हुए शिवजी उसके ऊपर प्रसन्न हो गये और बाहर-भीतर तथा आकाशमें उसे अपना विग्रह दिखाकर, वह [शिवजीके] जिस रूपका ध्यान करती थी, उसी रूपसे उसके समक्ष प्रकट हो गये॥ ६-७॥

अथ सा पुरतो दृष्ट्वा मनसा चिंतितं प्रभुम्।
प्रसन्नवदनं शांतं मुमोदातीव शंकरम्॥ ८

सन्ध्या अपने मनमें चिन्तित, प्रसन्नमुख तथा शान्तस्वरूप भगवान् शिवको सामने देखकर बहुत प्रसन्न हुई॥ ८॥

ससाध्वसमहं वक्ष्ये किं कथं स्तौमि वा हरम्।
इति चिंतापरा भूत्वा न्यमीलयत चक्षुषी॥ ९

निमीलिताक्ष्यास्तस्यास्तु प्रविश्य हृदयं हरः।
दिव्यं ज्ञानं ददौ तस्यै वाचं दिव्ये च चक्षुषी॥ १०

मैं शिवजीसे क्या कहूँ तथा किस प्रकार इनकी स्तुति करूँ—इस प्रकार चिन्तित होकर सन्ध्याने भयपूर्वक अपने नेत्रोंको बन्द कर लिया। तब नेत्र बन्द की हुई उस सन्ध्याके हृदयमें प्रविष्ट होकर शिवजीने उसे दिव्य ज्ञान, दिव्य वाणी और दिव्य चक्षु प्रदान किये॥ ९-१०॥

दिव्यज्ञानं दिव्यचक्षुर्दिव्यां वाचमवाप सा।
प्रत्यक्षं वीक्ष्य दुर्गेशं तुष्टाव जगतां पतिम्॥ ११

इस प्रकार उसने दिव्य ज्ञान, दिव्य चक्षु, दिव्य वाणी प्राप्त की और जगत्पति दुर्गेशको प्रत्यक्ष खड़ा देखकर वह उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगी—॥ ११॥

संध्योवाच

निराकारं ज्ञानगम्यं परं य-
न्नैव स्थूलं नापि सूक्ष्मं न चोच्चम्।
अंतश्चिन्त्यं योगिभिस्तस्य रूपं
तस्मै तुभ्यं लोककर्त्रे नमोऽस्तु॥ १२

सन्ध्या बोली—जिनका रूप निराकार, ज्ञानगम्य तथा पर है; जो न स्थूल, न सूक्ष्म, न उच्च ही है तथा जो योगियोंके द्वारा अन्तःकरणसे चिन्त्य है, ऐसे रूपवाले लोककर्ता आपको नमस्कार है॥ १२॥

सर्वं शांतं निर्मलं निर्विकारं
ज्ञानागम्यं स्वप्रकाशेऽविकारम्।
खाध्वप्रख्यं ध्वांतमार्गात्परस्ताद्-
रूपं यस्य त्वां नमामि प्रसन्नम्॥ १३

जिनका रूप सर्वस्वरूप, शान्त, निर्मल, निर्विकार, ज्ञानसे परे, अपने प्रकाशमें स्थित, विकाररहित, आकाशमार्गस्वरूप एवं अन्धकारमार्गसे परे तथा प्रसन्न रहनेवाला है, ऐसे आपको नमस्कार है। जिनका रूप

एकं शुद्धं दीप्यमानं विनाजां
चिदानंदं सहजं चाविकारि।
नित्यानंदं सत्यभूतिप्रसन्नं
यस्य श्रीदं रूपमस्मै नमस्ते॥ १४

एक (अद्वितीय), शुद्ध, देदीप्यमान, मायारहित, चिदानन्द, सहज, विकाररहित, नित्यानन्दस्वरूप, सत्य और विभूतिसे युक्त, प्रसन्न रहनेवाला तथा समस्त श्रीको प्रदान करनेवाला है, उन आपको नमस्कार है॥ १३-१४॥

विद्याकारोद्भावनीयं प्रभिन्नं
सत्त्वच्छंदं ध्येयमात्मस्वरूपम्।
सारं पारं पावनानां पवित्रं
तस्मै रूपं यस्य चैवं नमस्ते॥ १५

जिनका रूप महाविद्याके द्वारा ध्यान करनेयोग्य, सबसे सर्वथा भिन्न, परम सात्त्विक, ध्येयस्वरूप, आत्मस्वरूप, सारस्वरूप, संसारसागरसे पार करनेवाला है और पवित्रको भी पवित्र करनेवाला है, उन आपको नमस्कार है॥ १५॥

यत्त्वाकारं शुद्धरूपं मनोज्ञं
रत्नाकल्पं स्वच्छकर्पूरगौरम्।
इष्टाभीती शूलमुंडं दधानं
हस्तैर्नमो योगयुक्ताय तुभ्यम्॥ १६

जिनका आकार शुद्धरूप, मनोज्ञ, रत्नके समान, स्वच्छ, कर्पूरके समान गौरवर्ण और हाथोंमें वर-अभयमुद्रा, शूल-मुण्डको धारण करनेवाला है, उन आप योगयुक्त [सदाशिव]-को नमस्कार है॥ १६॥

गगनं भूर्दिशश्चैव सलिलं ज्योतिरेव च।
पुनः कालश्च रूपाणि यस्य तुभ्यं नमोऽस्तु ते॥ १७

आकाश, पृथिवी, दिशाएँ, जल, ज्योति और काल जिनके स्वरूप हैं, ऐसे आपको नमस्कार है॥ १७॥

प्रधानपुरुषौ यस्य कायत्वेन विनिर्गतौ।
तस्मादव्यक्तरूपाय शंकराय नमो नमः॥ १८

जिनके शरीरसे प्रधान एवं पुरुषकी उत्पत्ति हुई है, उन अव्यक्तस्वरूप आप शंकरको बार-बार नमस्कार है॥ १८॥

यो ब्रह्मा कुरुते सृष्टिं यो विष्णुः कुरुते स्थितिम्।
संहरिष्यति यो रुद्रस्तस्मै तुभ्यं नमो नमः॥ १९

जो ब्रह्मारूप होकर [इस जगत्‌की] सृष्टि करते हैं, विष्णुरूप होकर पालन करते हैं तथा रुद्ररूप होकर संहार करते हैं, उन आपको बार-बार नमस्कार है॥ १९॥

नमो नमः कारणकारणाय
दिव्यामृतज्ञानविभूतिदाय।
समस्तलोकांतरभूतिदाय
प्रकाशरूपाय परात्पराय॥ २०

कारणोंके कारण, दिव्य अमृतस्वरूप ज्ञानसम्पदा देनेवाले, समस्त लोकोंको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, प्रकाशस्वरूप तथा परात्पर [शंकर]-को बार-बार नमस्कार है॥ २०॥

यस्यापरं नो जगदुच्यते पदात्
क्षितिर्दिशः सूर्य इंदुर्मनोजः।
बहिर्मुखा नाभितश्चान्तरिक्षं
तस्मै तुभ्यं शंभवे मे नमोऽस्तु॥ २१

जिनके अतिरिक्त यह जगत् और कुछ नहीं है। जिनके पैरसे पृथिवी, दिशाएँ, सूर्य, चन्द्रमा, कामदेव तथा बहिर्मुख (अन्य देवता) और नाभिसे अन्तरिक्ष उत्पन्न हुआ है, उन आप शम्भुको मेरा नमस्कार है॥ २१॥

त्वं परः परमात्मा च त्वं विद्या विविधा हरः।
सद्ब्रह्म च परं ब्रह्म विचारणपरायणः॥ २२

हे हर! आप सर्वश्रेष्ठ तथा परमात्मा हैं, आप विविध विद्या हैं, सद्ब्रह्म, परब्रह्म तथा ज्ञानपरायण हैं॥ २२॥

यस्य नादिर्न मध्यं च नान्तमस्ति जगद्यतः।
कथं स्तोष्यामि तं देवं वाङ्मनोऽगोचरं हरम्॥ २३

जिनका न आदि है, न मध्य है तथा न अन्त है और जिनसे यह समस्त संसार उत्पन्न हुआ है, वाणी, तथा मनसे अगोचर उन सदाशिवकी स्तुति किस प्रकार करूँ?॥ २३॥

यस्य ब्रह्मादयो देवा मुनयश्च तपोधनाः।
न विवृण्वन्ति रूपाणि वर्णनीयः कथं स मे॥ २४

ब्रह्मा आदि देवगण तथा तपोधन महर्षि भी जिनके रूपोंका वर्णन नहीं कर पाते हैं, उनका वर्णन मैं किस प्रकार कर सकती हूँ?॥ २४॥

स्त्रिया मया ते किं ज्ञेया निर्गुणस्य गुणाः प्रभो।
नैव जानन्ति यद्रूपं सेन्द्रा अपि सुरासुराः॥ २५

हे प्रभो! इन्द्रसहित समस्त देवगण तथा सभी असुर भी जब आपके रूपको नहीं जानते, तो आप-जैसे निर्गुणके गुणोंको मेरे-जैसी स्त्री किस प्रकार जान सकती है॥ २५॥

नमस्तुभ्यं महेशान नमस्तुभ्यं तपोमय।
प्रसीद शंभो देवेश भूयो भूयो नमोऽस्तु ते॥ २६

हे महेशान! आपको नमस्कार है। हे तपोमय! आपको नमस्कार है। हे शम्भो! हे देवेश! आपको बार-बार नमस्कार है, आप [मेरे ऊपर] प्रसन्न होइये॥ २६॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्याः संस्तुतः परमेश्वरः।
सुप्रसन्नतरश्चाभूच्छंकरो भक्तवत्सलः॥ २७

ब्रह्माजी बोले—सन्ध्याके द्वारा स्तुत भक्तवत्सल परमेश्वर सदाशिव उसके वचनको सुनकर परम प्रसन्न हो गये॥ २७॥

अथ तस्याः शरीरं तु वल्कलाजिनसंयुतम्।
परिच्छन्नं जटाव्रातैः पवित्रे मूर्ध्नि राजितैः॥ २८
हिमानीतर्जिताम्भोजसदृशं वदनं तदा।
निरीक्ष्य कृपयाविष्टो हरः प्रोवाच तामिदम्॥ २९

वे शिव वल्कल तथा कृष्णमृगचर्मयुक्त उसके शरीरको, जटासे आच्छन्न एवं पवित्री धारण किये हुए उसके सिरको तथा तुषारपातसे मुरझाये हुए कमलके समान उसके मुखको देखकर दयामय होकर उससे इस प्रकार कहने लगे—॥ २८-२९॥

महेश्वर उवाच

प्रीतोऽस्मि तपसा भद्रे भवत्याः परमेण वै।
स्तवेन च शुभप्राज्ञे वरं वरय सांप्रतम्॥ ३०

महेश्वर बोले—हे भद्रे! तुम्हारी इस उत्कृष्ट तपस्यासे तथा तुम्हारी इस स्तुतिसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। हे शुभप्राज्ञे! अब तुम वर माँगो॥ ३०॥

येन ते विद्यते कार्यं वरेणास्मिन्मनोगतम्।
तत्करिष्ये च भद्रं ते प्रसन्नोऽहं तव व्रतैः॥ ३१

जो भी तुम्हारा अभीष्ट हो तथा जिससे तुम्हारा कार्य पूर्ण हो, वह सब मैं करूँगा। हे भद्रे! तुम्हारी इस तपस्यासे मैं परम प्रसन्न हो गया हूँ॥ ३१॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा महेशस्य प्रसन्नमनसस्तदा।
संध्योवाच सुप्रसन्ना प्रणम्य च मुहुर्मुहुः॥ ३२

ब्रह्माजी बोले—महेश्वरका वचन सुनकर सन्ध्या बड़ी प्रसन्न हुई और उन्हें बार-बार प्रणामकर इस प्रकार कहने लगी—॥ ३२॥

सन्ध्योवाच

यदि देयो वरः प्रीत्या वरयोग्यास्म्यहं यदि।
यदि शुद्धास्म्यहं जाता तस्मात्पापान्महेश्वर॥ ३३
यदि देव प्रसन्नोऽसि तपसा मम साम्प्रतम्।
वृतस्तदायं प्रथमं वरो मम विधीयताम्॥ ३४
उत्पन्नमात्रा देवेश प्राणिनोऽस्मिन् भुवस्थले।
न भवन्तु समेनैव सकामाः संभवन्तु वै॥ ३५
यद्धि वृत्ता हि लोकेषु त्रिष्वपि प्रथिता यथा।
भविष्यामि तथा नान्या वर एको वृतो मया॥ ३६

सन्ध्या बोली—हे महेश्वर! यदि आप प्रसन्नतापूर्वक वर देना चाहते हैं, यदि मैं आपसे वर प्राप्त करनेयोग्य हूँ तथा यदि मैं उस पापसे सर्वथा विशुद्ध हो गयी हूँ और हे देव! यदि आप इस समय मेरे तपसे प्रसन्न हैं, तो पहले मैं यह वर माँगती हूँ, उसे दीजिये। हे देवाधिदेव! इस आकाश तथा पृथिवीमें उत्पन्न होते ही कोई भी प्राणी सद्यः कामयुक्त न हो। हे प्रभो! मैं अपने आचरणसे तीनों लोकोंमें इस प्रकार प्रसिद्ध होऊँ, जैसी और कोई दूसरी स्त्री न हो, एक और वर माँगती हूँ। मेरे द्वारा

सकामा मम सृष्टिस्तु कुत्रचिन्न पतिष्यति।
यो मे पतिर्भवेन्नाथ सोऽपि मेऽतिसुहृच्च वै॥ ३७

यो द्रक्ष्यति सकामो मां पुरुषस्तस्य पौरुषम्।
गमिष्यति तदा नाशं स च क्लीबो भविष्यति॥ ३८

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्याः शंकरो भक्तवत्सलः।
उवाच सुप्रसन्नात्मा निष्पापायास्तयेरिते॥ ३९

महेश्वर उवाच

शृणु देवि च संध्ये त्वं त्वत्पापं भस्मतां गतम्।
त्वयि त्यक्तो मया क्रोधः शुद्धा जाता तपःकरात्॥ ४०

यद्यद्वृतं त्वया भद्रे दत्तं तदखिलं मया।
सुप्रसन्नेन तपसा तव संध्ये वरेण हि॥ ४१

प्रथमं शैशवो भावः कौमाराख्यो द्वितीयकः।
तृतीयो यौवनो भावश्चतुर्थो वार्धकस्तथा॥ ४२

तृतीये त्वथ संप्राप्ते वयोभागे शरीरिणः।
सकामाः स्युर्द्वितीयान्ते भविष्यति क्वचित् क्वचित्॥ ४३

तपसा तव मर्यादा जगति स्थापिता मया।
उत्पन्नमात्रा न यथा सकामाः स्युः शरीरिणः॥ ४४

त्वं च लोके सतीभावं तादृशं समवाप्नुहि।
त्रिषु लोकेषु नान्यस्या यादृशं संभविष्यति॥ ४५

यः पश्यति सकामस्त्वां पाणिग्राहमृते तव।
स सद्यः क्लीबतां प्राप्य दुर्बलत्वं गमिष्यति॥ ४६

पतिस्तव महाभागस्तपोरूपसमन्वितः।
सप्तकल्पांतजीवी च भविष्यति सह त्वया॥ ४७

इति ते ये वरा मत्तः प्रार्थितास्ते कृता मया।
अन्यच्च ते वदिष्यामि पूर्वजन्मनि संस्थितम्॥ ४८

अग्नौ शरीरत्यागस्ते पूर्वमेव प्रतिश्रुतः।
तदुपायं वदामि त्वां तत्कुरुष्व न संशयः॥ ४९

उत्पन्न की गयी कोई भी सन्तति सकाम होकर पतित न हो और हे नाथ! जो मेरा पति हो, वह भी मेरा अत्यन्त सुहृद् बना रहे। [मेरे पतिके अतिरिक्त] जो कोई भी पुरुष मुझे सकाम दृष्टिसे देखे, उसका पौरुष नष्ट हो जाय और वह नपुंसक हो जाय॥ ३३—३८॥

ब्रह्माजी बोले—निष्पाप सन्ध्याके इस प्रकारके वचनोंको सुनकर तथा उससे प्रेरित होकर भक्तवत्सल भूतभावन शंकर प्रसन्नचित्त होकर कहने लगे—॥ ३९॥

महेश्वर बोले—हे देवि! हे सन्ध्ये! मेरी बात सुनो। तुम्हारा पाप नष्ट हो गया, अब मेरा क्रोध तुम्हारे ऊपर नहीं है और तुम तप करनेसे शुद्ध हो चुकी हो। हे भद्रे! हे सन्ध्ये! तुमने जो-जो वरदान माँगा है, तुम्हारी श्रेष्ठ तपस्यासे परम प्रसन्न होकर मैंने वह सब तुम्हें प्रदान कर दिया॥ ४०-४१॥

अब प्राणियोंका प्रथम शैशव (बाल)-भाव, दूसरा कौमार भाव, तीसरा यौवन भाव तथा चौथा वार्धक्य भाव होगा॥ ४२॥

शरीरधारी तीसरी अवस्था आनेपर सकाम होंगे और कोई-कोई प्राणी दूसरीके अन्ततक सकाम होंगे॥ ४३॥

मैंने तुम्हारी तपस्यासे संसारमें यह मर्यादा स्थापित कर दी कि शरीरधारी उत्पन्न होते ही सकाम नहीं होंगे॥ ४४॥

तुम इस लोकमें ऐसा सतीभाव प्राप्त करोगी, जैसा तीनों लोकोंमें किसी अन्य स्त्रीका नहीं होगा॥ ४५॥

तुम्हारे पतिके अतिरिक्त जो तुमको सकाम दृष्टिसे देखेगा, वह तत्काल नपुंसक होकर दुर्बल हो जायगा॥ ४६॥

तुम्हारा पति महान् भाग्यशाली, तपस्वी तथा रूपवान् होगा। वह तुम्हारे साथ सात कल्पोंतक जीवित रहेगा॥ ४७॥

इस प्रकार तुमने जो-जो वर मुझसे माँगा, उन सभी वरोंको मैंने प्रदान किया। अब मैं तुम्हारे जन्मान्तरकी कुछ बातें कहूँगा॥ ४८॥

तुम अग्निमें अपने शरीरत्याग करनेकी प्रतिज्ञा पहले ही कर चुकी हो, अतः उसका उपाय मैं तुमको बता रहा हूँ, उसे निश्चित रूपसे करो॥ ४९॥

स च मेधातिथेर्यज्ञे मुनेर्द्वादशवार्षिके।
कृत्स्नप्रज्वलिते वह्नावचिरात् क्रियतां त्वया॥ ५०

वह उपाय यही है कि तुम महर्षि मेधातिथिके बारह वर्षतक चलनेवाले यज्ञमें प्रचण्डरूपसे जलती हुई अग्निमें शीघ्रतासे प्रवेश करो॥ ५०॥

एतच्छैलोपत्यकायां चन्द्रभागानदीतटे।
मेधातिथिर्महायज्ञं कुरुते तापसाश्रमे॥ ५१

इस समय मेधातिथि इसी पर्वतकी तलहटीमें चन्द्रभागा नदीके तटपर तपस्वियोंके आश्रममें महान् यज्ञ कर रहे हैं॥ ५१॥

तत्र गत्वा स्वयं छंदं मुनिभिर्नोपलक्षिता।
मत्प्रसादाद्वह्निजाता तस्य पुत्री भविष्यति॥ ५२

वहाँ तुम अपनी इच्छासे जाकर मेरे प्रसादसे मुनियोंसे अलक्षित रहती हुई अग्निमें प्रवेश कर जाओ, फिर तुम यज्ञाग्निसे प्रकट होकर मेधातिथिकी पुत्री बनोगी॥ ५२॥

यस्ते वरो वाञ्छनीयः स्वामी मनसि कश्चन।
तं निधाय निजस्वान्ते त्यज वह्नौ वपुः स्वकम्॥ ५३

तुम्हारे मनमें जो कोई भी श्रेष्ठ पतिके रूपमें वांछनीय हो, उसे अपने अन्तःकरणमें रखकर अग्निमें अपना शरीर छोड़ना॥ ५३॥

यदा त्वं दारुणं संध्ये तपश्चरसि पर्वते।
यावच्चतुर्युगं तस्य व्यतीते तु कृते युगे॥ ५४
त्रेतायाः प्रथमे भागे जाता दक्षस्य कन्यकाः।
यास्ताः शीलसमापन्ना यथायोग्यं विवाहिताः॥ ५५
तन्मध्ये स ददौ कन्या विधवे सप्तविंशतिः।
चन्द्रोऽन्याः सम्परित्यज्य रोहिण्यां प्रीतिमानभूत्॥ ५६

हे सन्ध्ये! तुम इस पर्वतपर चारयुगसे घोर तपस्या कर रही हो, कृतयुगके बीत जानेपर और त्रेताका प्रथम भाग आनेपर दक्षकी जो शीलसम्पन्न कन्याएँ उत्पन्न हुईं, वे यथायोग्य विवाहित हुईं, उनमेंसे उन्होंने सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमाको [विवाह-विधिद्वारा] प्रदान कीं, किंतु चन्द्रमा उन सभीको छोड़कर रोहिणीमें प्रीति करने लगा॥ ५४—५६॥

तद्धेतोर्हि यदा चन्द्रः शप्तो दक्षेण कोपिना।
तदा भवत्या निकटे सर्वे देवाः समागताः॥ ५७

इस कारण जब दक्षने क्रोधसे चन्द्रमाको शाप दे दिया, तब सभी देवता तुम्हारे पास आये थे॥ ५७॥

न दृष्टाश्च त्वया संध्ये ते देवा ब्रह्मणा सह।
मयि विन्यस्तमनसा खं च दृष्ट्वा लभेत्पुनः॥ ५८

हे सन्ध्ये! उस समय तुम मेरा ध्यान कर रही थी, इसलिये वे देवगण जो ब्रह्माजीके साथ आये हुए थे, तुमने उनकी तरफ देखा नहीं; क्योंकि तुम आकाशकी ओर देख रही थी, अब तुमने मेरा दर्शन प्राप्त कर लिया है॥ ५८॥

चंद्रस्य शापमोक्षार्थं जाता चंद्रनदी तदा।
सृष्टा धात्रा तदैवात्र मेधातिथिरुपस्थितः॥ ५९

तब ब्रह्माजीने चन्द्रमाके शापको दूर करनेके लिये इस चन्द्रभागा नदीका निर्माण किया है, उसी समय यहाँ मेधातिथि उपस्थित हुए थे॥ ५९॥

तपसा तत्समो नास्ति न भूतो न भविष्यति।
येन यज्ञः समारब्धो ज्योतिष्टोमो महाविधिः॥ ६०

तपस्यामें उनके समान न तो कोई है, न कोई होनेवाला है और न कोई हुआ है। उन्होंने ही इस चन्द्रभागा नदीके तटपर विधिपूर्वक ज्योतिष्टोम यज्ञका आरम्भ किया है॥ ६०॥

तत्र प्रज्वलितो वह्निस्तस्मिन्त्यज वपुः स्वकम्।
इदानीं सुपवित्रा त्वं संपूर्णोऽस्तु पणस्तव॥ ६१

वहाँ अग्नि प्रज्वलित हो रही है, उसीमें अपने शरीरको छोड़ो। इस समय तुम अत्यन्त पवित्र हो, तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्ण हो॥ ६१॥

एतन्मया स्थापितं स्वकार्यार्थं भो तपस्विनि।
तत्कुरुष्व महाभागे याहि यज्ञे महामुनेः।
कृत्वा हितं च देवेशस्तत्रैवान्तरधीयत॥ ६२

हे तपस्विनि! अपने कार्यकी सिद्धिके लिये मैंने यह विधि बतायी है। अतः हे महाभागे! तुम यहाँ मुनिके यज्ञमें जाओ और इसे करो। इस प्रकार वे देवेश उसका हित करके वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ६२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे संध्याचरित्रवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सन्ध्याचरित्रवर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

महर्षि मेधातिथिकी यज्ञाग्निमें सन्ध्याद्वारा शरीरत्याग, पुनः अरुन्धतीके रूपमें यज्ञाग्निसे उत्पत्ति एवं वसिष्ठमुनिके साथ उसका विवाह

ब्रह्मोवाच

वरं दत्त्वा मुने तस्मिन् शंभावन्तर्हिते तदा।
संध्याप्यगच्छत्तत्रैव यत्र मेधातिथिर्मुनिः॥ १

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार भगवान् सदाशिव जब सन्ध्याको वर प्रदानकर अन्तर्धान हो गये, तब सन्ध्या वहाँ गयी, जहाँ महर्षि मेधातिथि थे॥ १॥

तत्र शंभोः प्रसादेन न केनाप्युपलक्षिता।
सस्मार वर्णिनं तं वै स्वोपदेशकरं तपः॥ २

वहाँपर भगवान् सदाशिवकी कृपासे उसे किसीने नहीं देखा। उसने उस समय तपस्याके विषयमें उपदेश करनेवाले उन ब्रह्मचारीका स्मरण किया॥ २॥

वसिष्ठेन पुरा सा तु वर्णीभूत्वा महामुने।
उपदिष्टा तपश्चर्तुं वचनात्परमेष्ठिनः॥ ३

हे महामुने! वे ब्रह्मचारी वसिष्ठ मुनि ही थे, जो ब्रह्माजीकी आज्ञासे ब्रह्मचारीका रूप धारणकर सन्ध्याको तपस्याके सम्बन्धमें उपदेश करने आये थे॥ ३॥

तमेव कृत्वा मनसा तपश्चर्योपदेशकम्।
पतित्वेन तदा संध्या ब्राह्मणं ब्रह्मचारिणम्॥ ४

समिद्धेऽग्नौ महायज्ञे मुनिभिर्नोपलक्षिता।
हृष्टा शंभुप्रसादेन सा विवेश विधेः सुता॥ ५

तपश्चर्याका उपदेश करनेवाले उन्हीं ब्रह्मचारी ब्राह्मण [वसिष्ठ]-का पतिरूपसे स्मरण करके वह ब्रह्मपुत्री सन्ध्या प्रसन्नमनसे सदाशिवकी कृपासे मुनियोंद्वारा अलक्षित हो उस महायज्ञकी प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश कर गयी॥ ४-५॥

तस्याः पुरोडाशमयं शरीरं तत्क्षणात्ततः।
दग्धं हव्यमयं गन्धं तस्तार यदलक्षितम्॥ ६

उसका समस्त शरीर पुरोडाशके समान तत्क्षण ही जलकर राख हो गया, जिससे अलक्षित रूपसे पुरोडाशका गन्ध चारों ओर फैल गया॥ ६॥

वह्निस्तस्याः शरीरं तु दग्ध्वा सूर्यस्य मंडलम्।
शुद्धं प्रवेशयामास शंभोरेवाज्ञया पुनः॥ ७

पुनः सदाशिवकी आज्ञासे अग्निने उसके शुद्ध शरीरको भस्मकर सूर्यमण्डलमें प्रविष्ट करा दिया॥ ७॥

सूर्यो द्व्यर्धं विभज्याथ तच्छरीरं तदा रथे।
स्वके संस्थापयामास प्रीतये पितृदेवयोः॥ ८

तदनन्तर सूर्यने उसके शरीरको दो भागोंमें विभक्तकर पितरों एवं देवताओंकी प्रसन्नताके लिये अपने रथमें स्थापित कर लिया॥ ८॥

तदूर्ध्वभागस्तस्यास्तु शरीरस्य मुनीश्वर।
प्रातःसंध्याभवत्सा तु अहोरात्रादिमध्यगा॥ ९

हे मुनीश्वर! उसके शरीरका जो ऊपरका भाग था, वही रात्रि तथा दिनके बीचमें होनेवाली प्रातःसन्ध्या हुई॥ ९॥

तच्छेषभागस्तस्यास्तु अहोरात्रान्तमध्यगा।
सा सायमभवत्संध्या पितृप्रीतिप्रदा सदा॥ १०

जो उसके शरीरका शेष भाग था, वही दिन तथा रात्रिके बीचमें होनेवाली सायंसन्ध्या हुई, जो सदैव ही पितरोंकी प्रसन्नताका कारण होती है॥ १०॥

सूर्योदयात्तु प्रथमं यदा स्यादरुणोदयः।
प्रातःसंध्या तदोदेति देवानां प्रीतिकारिणी॥ ११

सूर्योदयके पहले जब अरुणोदय होता है, तब देवताओंको प्रसन्न करनेवाली प्रातःसन्ध्याका उदय होता है॥ ११॥

अस्तं गते ततः सूर्ये शोणपद्मनिभे सदा।
उदेति सायंसंध्यापि पितॄणां मोदकारिणी॥ १२

जब लाल कमलके समान सूर्य अस्त हो जाता है, तब पितरोंको प्रसन्न करनेवाली सायंसन्ध्याका उदय होता है॥ १२॥

तस्याः प्राणास्तु मनसा शंभुनाथ दयालुना।
दिव्येन तु शरीरेण चक्रिरे हि शरीरिणः॥ १३

उसके मनसहित प्राणको परम दयालु शिवने शरीरधारियोंके दिव्य शरीरसे निर्मित किया था॥ १३॥

मुनेर्यज्ञावसाने तु संप्राप्ते मुनिना तु सा।
प्राप्ता पुत्री वह्निमध्ये तप्तकाञ्चनसुप्रभा॥ १४

जब मेधातिथिका यज्ञ समाप्त हो रहा था, तब उन्हें देदीप्यमान सुवर्णके समान कान्तिवाली वह कन्या यज्ञाग्निमें प्राप्त हुई॥ १४॥

तां जग्राह तदा पुत्रीं मुनिरामोदसंयुतः।
यज्ञार्थं तां तु संस्नाप्य निजक्रोडे दधौ मुने॥ १५

हे मुने! महामुनि मेधातिथिने यज्ञसे प्राप्त हुई उस कन्याको बड़ी प्रसन्नतासे ग्रहण किया और उसे स्नान कराकर अपनी गोदमें बिठाया॥ १५॥

अरुन्धतीति तस्यास्तु नाम चक्रे महामुनिः।
शिष्यैः परिवृतस्तत्र महामोदमवाप ह॥ १६

उन्होंने उसका नाम अरुन्धती रखा। [उस कन्याको प्राप्तकर] वे शिष्योंके साथ बड़े ही हर्षित हुए॥ १६॥

न रुणद्धि यतो धर्मं सा कस्मादपि कारणात्।
अतस्त्रिलोके विदितं नाम संप्राप तत्स्वयम्॥ १७

उसने किसी भी कारणके उपस्थित होनेपर अपने पातिव्रत्यधर्मका परित्याग नहीं किया, इसलिये त्रिलोकीमें उसने स्वयं यह प्रसिद्ध [अरुन्धती] नाम धारण किया॥ १७॥

यज्ञं समाप्य स मुनिः कृतकृत्यभाव-
मासाद्य सम्मदयुतस्तनयाप्रलंभात्।
तस्मिन्निजाश्रमपदे सह शिष्यवर्गै-
स्तामेव संततमसौ दयते सुरर्षे॥ १८

[ब्रह्माजी बोले—] हे सुरर्षे! यज्ञ समाप्त करनेके उपरान्त वे मुनि कन्यारूप सम्पत्तिसे युक्त हो अपने शिष्योंसहित अत्यन्त कृतकृत्य होकर अपने उस आश्रममें उसका लालन-पालन करने लगे॥ १८॥

अथ सा ववृधे देवी तस्मिन्मुनिवराश्रमे।
चन्द्रभागानदीतीरे तापसारण्यसंज्ञके॥ १९

उसके बाद वह कन्या चन्द्रभागा नदीके तटपर श्रेष्ठ मुनिके तापसारण्य नामक आश्रममें बढ़ने लगी॥ १९॥

संप्राप्ते पञ्चमे वर्षे चन्द्रभागां तदा गुणैः।
तापसारण्यमपि सा पवित्रमकरोत्सती॥ २०

वह सती पाँच वर्षकी अवस्थामें अपने गुणोंसे चन्द्रभागा नदी तथा तापसारण्यको पवित्र करने लगी॥ २०॥

विवाहं कारयामासुस्तस्या ब्रह्मसुतेन वै।
वसिष्ठेन ह्यरुन्धत्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥ २१

ब्रह्मा, विष्णु तथा महेशने ब्रह्मपुत्र वसिष्ठके साथ उस अरुन्धतीका विवाह करवाया॥ २१॥

तद्विवाहे महोत्साहो बभूव सुखवर्धनः।
सर्वे सुराश्च मुनयः सुखमापुः परं मुने॥ २२

हे मुने! उसके विवाहमें सुखदायक महान् उत्सव हुआ, जिससे सभी देवता तथा मुनिगण अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ २२॥

ब्रह्मविष्णुमहेशानां करनिस्सृततोयतः।
सप्तनद्यः समुत्पन्नाः शिप्राद्याः सुपवित्रकाः ॥ २३

[उस विवाहमें] ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वरके हाथसे गिरे हुए जलसे शिप्रा आदि सात पवित्र नदियाँ उत्पन्न हुईं॥ २३॥

अरुन्धती महासाध्वी साध्वीनां प्रवरोत्तमा।
वसिष्ठं प्राप्य संरेजे मेधातिथिसुता मुने॥ २४

हे मुने! साध्वी स्त्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ महासाध्वी वह मेधातिथिकी कन्या अरुन्धती वसिष्ठको [पतिरूपमें] प्राप्तकर अत्यन्त शोभित हुई॥ २४॥

यस्याः पुत्राः समुत्पन्नाः श्रेष्ठाः शक्त्यादयः शुभाः।
वसिष्ठं प्राप्य तं कान्तं संरेजे मुनिसत्तम॥ २५

हे मुनिश्रेष्ठ! उससे शक्ति आदि श्रेष्ठ तथा सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार वसिष्ठको पतिरूपमें प्राप्तकर वह शोभा पाने लगी॥ २५॥

एवं संध्याचरित्रं ते कथितं मुनिसत्तम।
पवित्रं परमं दिव्यं सर्वकामफलप्रदम्॥ २६

हे मुनिसत्तम! इस प्रकार मैंने सन्ध्याका चरित्र कहा, जो अत्यन्त पवित्र, दिव्य तथा सम्पूर्ण कामनाओंका फल देनेवाला है॥ २६॥

य इदं शृणुयान्नारी पुरुषो वा शुभव्रतः।
सर्वान्कामानवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥ २७

जो शुभ व्रतवाला पुरुष अथवा नारी इस चरित्रको सुनता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ २७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे अरुन्धतीवसिष्ठविवाहवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें अरुन्धती तथा वसिष्ठके विवाहका वर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

कामदेवके सहचर वसन्तके आविर्भावका वर्णन

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य ब्रह्मणो हि प्रजापतेः।
प्रसन्नमानसो भूत्वा तं प्रोवाच स नारदः॥ १

सूतजी बोले—प्रजापति ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर प्रसन्नचित्त हो नारदजी उनसे कहने लगे—॥ १॥

नारद उवाच

ब्रह्मन् विधे महाभाग विष्णुशिष्य महामते।
धन्यस्त्वं शिवभक्तो हि परतत्त्वप्रदर्शकः॥ २

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे विधे! हे महाभाग! हे विष्णुशिष्य! हे महामते! परतत्त्वके प्रकाशक तथा शिवभक्त आप धन्य हैं॥ २॥

श्राविता सुकथा दिव्या शिवभक्तिविवर्धिनी।
अरुन्धत्यास्तथा तस्याः स्वरूपायाः परे भवे॥ ३

इदानीं ब्रूहि धर्मज्ञ पवित्रं चरितं परम्।
शिवस्य परपापघ्नं मङ्गलप्रदमुत्तमम्॥ ४

हे धर्मज्ञ! आपने अरुन्धतीकी तथा पूर्वजन्ममें उसकी स्वरूपभूता सन्ध्याकी बड़ी उत्तम दिव्य कथा सुनायी, जो शिवभक्तिकी वृद्धि करनेवाली है। अब आप शिवका परम चरित्र जो सम्पूर्ण पापोंका विनाशक है तथा मंगलको प्रदान करनेवाला है, उसे सुनाइये॥ ३-४॥

गृहीतदारे कामे च हृष्टे तेषु गतेषु च।
संध्यायां किं तपस्तप्तुं गतायामभवत्ततः॥ ५

जब कामने प्रसन्न होकर रतिको प्राप्त कर लिया और ब्रह्मा तथा उनके मानसपुत्र चले गये तथा सन्ध्या तप करने चली गयी, उसके बाद क्या हुआ?॥ ५॥

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य ऋषेर्वै भावितात्मनः।
सुप्रसन्नतरो भूत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत्॥ ६

सूतजी बोले—इस प्रकार आत्मतत्त्वज्ञ देवर्षि नारदका वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हो ब्रह्माजी यह बात कहने लगे—॥ ६॥

ब्रह्मोवाच

शृणु नारद विप्रेन्द्र तदेव चरितं शुभम्।
शिवलीलान्वितं भक्त्या धन्यस्त्वं शिवसेवकः॥ ७

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! हे विप्रेन्द्र! शिवलीलासे परिपूर्ण अब उस महान् कल्याणकारी शिव-चरित्रको सुनें। आप धन्य हैं; क्योंकि आप शिवजीके भक्त हैं॥ ७॥

अहं विमोहितस्तात यदैवान्तर्हितः पुरा।
अचिन्तयं सदाहं तच्छंभुवाक्यविषार्दितः॥ ८

हे तात! पहले जब मैं शिवमायासे मोहित होकर अन्तर्धान हो गया, तब शिवके वाक्यरूपी विषसे दुखी हो [अपने मनमें] विचार करने लगा॥ ८॥

चिन्तयित्वा चिरं चित्ते शिवमायाविमोहितः।
शिवे चेर्ष्यामकार्षं हि तच्छृणुष्व वदामि ते॥ ९

शिवमायासे मोहित हुआ मैं बहुत देरतक अपने चित्तमें विचार करके उनसे जिस प्रकार ईर्ष्या करने लगा, उसे आपसे बताता हूँ, सुनिये॥ ९॥

अथाहमगमं तत्र यत्र दक्षादयः स्थिताः।
सरतिं मदनं दृष्ट्वा समदोऽहं हि किञ्चन॥ १०

तत्पश्चात् मैं वहाँ पहुँचा, जहाँ दक्ष आदि स्थित थे और वहाँ रतिसहित कामदेवको देखकर मैं कुछ मदमत्त हो गया॥ १०॥

दक्षमाभाष्य सुप्रीत्या परान्पुत्रांश्च नारद।
अवोचं वचनं सोऽहं शिवमायाविमोहितः॥ ११

हे नारद! दक्ष तथा अपने अन्य मानसपुत्रोंसे प्रीतिपूर्वक बातचीत करके शिवमायासे विमोहित मैं इस प्रकार उनसे कहने लगा—॥ ११॥

ब्रह्मोवाच

हे दक्ष हे मरीच्याद्याः सुताः शृणुत मद्वचः।
श्रुत्वोपायं विधेयं हि मम कष्टापनुत्तये॥ १२

ब्रह्माजी बोले—हे दक्ष! हे मरीचि आदि पुत्रो! मेरी बात सुनो और उसे सुनकर मेरे कष्टको दूर करनेका उपाय करो॥ १२॥

कांताभिलाषमात्रं मे दृष्ट्वा शम्भुरगर्हयत्।
मां च युष्मान्महायोगी धिक्कारं कृतवान्बहु॥ १३

स्त्रीके प्रति मेरी अभिलाषा देखकर महायोगी शिवने मेरी निन्दा की और उन्होंने मुझे तथा तुमलोगोंको बहुत फटकारा॥ १३॥

तेन दुःखाभितप्तोऽहं लभेऽहं शर्म न क्वचित्।
यथा गृह्णातु कांतां स स यत्नः कार्य एव हि॥ १४

उसके कारण मैं दुःखसे सन्तप्त हूँ और कहीं भी मुझे चैन नहीं मिलता, अतः जिस प्रकार वे भी स्त्रीको ग्रहण करें, वह यत्न करो॥ १४॥

यथा गृह्णातु कांतां स सुखी स्यां दुःखवर्जितः।
दुर्लभः स तु कामो मे परं मन्ये विचारतः॥ १५

जब वे स्त्रीको स्वीकार करेंगे, तभी हमारा वह दुःख दूर होगा, किंतु विचार करनेपर मैं समझता हूँ कि यह कार्य बड़ा ही कठिन है॥ १५॥

कांताभिलाषमात्रं मे दृष्ट्वा शंभुरगर्हयत्।
मुनीनां पुरतः कस्मात्स कांतां सङ्ग्रहीष्यति॥ १६

जब उन्होंने मुनियोंके समक्ष ही मेरे कान्ता-परिग्रहकी अभिलाषामात्रसे मुझे धिक्कारा, तो वे स्वयं किस प्रकार स्त्री ग्रहण करेंगे?॥ १६॥

का वा नारी त्रिलोकेऽस्मिन् या भवेत्तन्मनःस्थिता।
योगमार्गमवज्ञाय तस्य मोहं करिष्यति॥ १७

इस त्रिलोकमें कौन-सी ऐसी स्त्री है, जो उनके मनमें विराजमान होकर, उन्हें योगमार्गसे हटाकर मोहमें डाल सकती है?॥ १७॥

मन्मथोऽपि समर्थो नो भविष्यत्यस्य मोहने।
नितांतयोगी रामाणां नामापि सहते न सः॥ १८

कामदेव भी इन्हें मोहित करनेमें समर्थ नहीं है; क्योंकि वे परमयोगी हैं और स्त्रियोंके नामको भी सहन नहीं कर सकते हैं॥ १८॥

परिग्रहं विना चैव हरेण कथयादिना।
मध्यमा च भवेत्सृष्टिस्तद्वाचा नान्यवारिता॥ १९

जो प्रसंगके द्वारा भी स्त्रीका नाम कदापि नहीं सहन कर सकता तो भला वह वाणीसे स्त्री ग्रहणकर किस प्रकार सृष्टिकार्यमें प्रवृत्त हो सकता है?॥ १९॥

भुवि केचिद्भविष्यन्ति मम वध्या महासुराः।
वध्याः केचिद्धरेर्नूनं केचिच्छंभोरुपायतः॥ २०

इस पृथिवीमें बड़े-बड़े देवता भी मायाके बन्धनमें पड़े हुए हैं। जो बचे हुए हैं, वे विष्णुके बन्धनमें बँधे हैं और कुछ देवगण शम्भुके उपायोंसे आबद्ध हैं॥ २०॥

संसारविमुखे शंभौ तथैकान्तविरागिणि।
अस्मादृते न कर्मान्यत् करिष्यति न संशयः॥ २१

संसारसे विमुख तथा एकान्तविरागी सदाशिवके अतिरिक्त और कौन है, जो ऐसा दुष्कर कार्य कर सकता है?॥ २१॥

इत्युक्त्वा तनयांश्चाहं दक्षादीन् सुनिरीक्ष्य च।
सरतिं मदनं तत्र सानंदमगदं ततः॥ २२

इस प्रकार दक्षादि पुत्रोंसे कहकर रतिसहित कामदेवको वहाँ देखकर मैं आनन्दपूर्वक उनसे कहने लगा—॥ २२॥

ब्रह्मोवाच

मत्पुत्रवर काम त्वं सर्वथा सुखदायकः।
मद्वचः शृणु सुप्रीत्या स्वपत्न्या पितृवत्सल॥ २३

ब्रह्माजी बोले—मेरे श्रेष्ठ पुत्र हे कामदेव! तुम सभी प्रकारसे सबको सुख देनेवाले हो। हे पितृवत्सल! तुम अपनी पत्नीसहित प्रसन्नतापूर्वक मेरी बात सुनो॥ २३॥

अनया सहचारिण्या राजसे त्वं मनोभव।
एषा च भवता पत्या युक्ता संशोभते भृशम्॥ २४

हे मनोभव! तुम [अपनी] इस सहचारिणी स्त्रीके साथ जिस प्रकार शोभा पा रहे हो और यह भी [वैसे ही] तुम्हें पतिरूपमें प्राप्तकर अति शोभित हो रही है॥ २४॥

यथा स्त्रिया हृषीकेशो हरिणा सा यथा रमा।
क्षणदा विधुना युक्ता तया युक्तो यथा विधुः॥ २५

तथैव युवयोः शोभा दांपत्यं च पुरस्कृतम्।
अतस्त्वं जगतः केतुर्विश्वकेतुर्भविष्यसि॥ २६

जिस प्रकार महालक्ष्मीसे भगवान् विष्णु तथा विष्णुसे महालक्ष्मी एवं जिस प्रकार रात्रिसे चन्द्रमा एवं चन्द्रमासे रात्रि सुशोभित होती है, उसी प्रकार तुम दोनोंकी शोभा है और तुम्हारा दाम्पत्य भी अलंकृत है। इसलिये तुम इस जगत्को जीतनेवाले विश्वकेतु होओगे॥ २५-२६॥

जगद्धिताय वत्स त्वं मोहयस्व पिनाकिनम्।
यथाशु सुमनः शंभुः कुर्याद्दारप्रतिग्रहम्॥ २७

हे वत्स! तुम संसारके हितके लिये महादेवको मोहित करो, जिससे प्रसन्न मनवाले शंकर शीघ्र विवाह करें॥ २७॥

विजने स्निग्धदेशे तु पर्वतेषु सरःसु च।
यत्र यत्र प्रयातीशस्तत्र तत्रानया सह॥ २८

मोहय त्वं यतात्मानं वनिताविमुखं हरम्।
त्वदृते विद्यते नान्यः कश्चिदस्य विमोहकः॥ २९

भूते हरे सानुरागे भवतोऽपि मनोभव।
शापोपशांतिर्भविता तस्मादात्महितं कुरु॥ ३०

सानुरागो वरारोहां यदीच्छति महेश्वरः।
तदा भवोऽपि योग्यार्यस्त्वां च संतारयिष्यति॥ ३१

तस्माज्जायाद्वितीयस्त्वं यतस्व हरमोहने।
विश्वस्य भव केतुस्त्वं मोहयित्वा महेश्वरम्॥ ३२

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचो मे हि जनकस्य जगत्प्रभोः।
उवाच मन्मथस्तथ्यं तदा मां जगतां पतिम्॥ ३३

मन्मथ उवाच

करिष्येऽहं तव विभो वचनाच्छंभुमोहनम्।
किं तु योषिन्ममास्त्रं मे तत्कान्तां भगवन् सृज॥ ३४

मया संमोहिते शंभौ यया तस्यानुमोहनम्।
कर्तव्यमधुना धातस्तत्रोपायं परं कुरु॥ ३५

ब्रह्मोवाच

एवंवादिनि कंदर्पे धाताहं स प्रजापतिः।
कया संमोहिनीयोसाविति चिंतामयामहम्॥ ३६

चिन्ताविष्टस्य मे तस्य निःश्वासो यो विनिःसृतः।
तस्माद्वसंतः सञ्जातः पुष्पव्रातविभूषितः॥ ३७

शोणराजीवसंकाशः फुल्लतामरसेक्षणः।
संध्योदिताखंडशशिप्रतिमास्यः सुनासिकः॥ ३८

शार्ङ्गवच्चरणावर्तः श्यामकुञ्चितमूर्धजः।
संध्यांशुमालिसदृशः कुंडलद्वयमंडितः॥ ३९

प्रमत्तेभगतिः पीनायतदोरुन्नतांसकः।

निर्जन स्थानमें, उत्तम प्रदेशमें, पर्वतपर अथवा तालाबके तटपर—जहाँ भी शिवजी जायँ, वहीं तुम अपनी इस पत्नीके साथ जाकर इन जितेन्द्रिय तथा स्त्रीरहित शंकरजीको मोहित करो। [इस संसारमें] तुम्हारे अतिरिक्त और कोई दूसरा इनको मोहमें डालनेवाला नहीं है॥ २८-२९॥

हे मनोभव! शंकरजीके अनुरागयुक्त हो जानेपर तुम्हारे भी शापकी शान्ति हो जायगी, अतः तुम अपना हित करो। यदि महेश्वर सानुराग होकर स्त्रीकी अभिलाषा करेंगे, तो वे श्रेष्ठ शिव तुम्हारा भी उद्धार कर देंगे॥ ३०-३१॥

इसलिये तुम अपनी स्त्रीको साथ लेकर शंकरजीको मोहित करनेका प्रयत्न करो और महेश्वरको मोहित करके विश्वके केतु हो जाओ॥ ३२॥

ब्रह्माजी बोले—संसारके प्रभु एवं अपने पिता मुझ ब्रह्माकी बात सुनकर वह कामदेव मुझ जगत्पतिसे कहने लगा—॥ ३३॥

मन्मथ बोला—हे प्रभो! मैं आपके आज्ञानुसार शिवजीको मोहित करूँगा, किंतु हे भगवन्! स्त्री ही मेरा मुख्य अस्त्र है। अतः शंकरजीके योग्य स्त्रीका निर्माण कीजिये, जो मेरे द्वारा शिवजीको मोहित करनेपर उनका पुनः मोहन कर सके। हे धाता! इसका उत्तम उपाय अब कीजिये॥ ३४-३५॥

ब्रह्माजी बोले—कामदेवके इस प्रकार कहनेपर मैं प्रजापति ब्रह्मा अपने मनमें विचार करने लगा कि किस प्रकारकी स्त्रीसे शिवजीको मोहित किया जाय?॥ ३६॥

इस प्रकार चिन्तामें निमग्न हुए मुझसे जो श्वास निकला, उसीसे पुष्पसमूहोंसे विभूषित वसन्त उत्पन्न हुआ। उसके शरीरकी कान्ति लालकमलके समान थी, उसकी आँखें विकसित कमलके समान थीं, उसका मुख सन्ध्याके समय उदय हुए पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर था, उसकी नासिका भी बहुत सुन्दर थी। उसके चरणोंमें सींगके समान आवर्त थे, वह काले तथा घुँघराले केशोंसे शोभायमान हो रहा था। सन्ध्याकालीन सूर्यके सदृश दो कुण्डलोंसे वह सुशोभित था, मतवाले हाथीके समान उसकी चाल थी, उसकी

कंबुग्रीवः सुविस्तीर्णहृदयः पीनसन्मुखः॥ ४०

सर्वांगसुन्दरः श्यामः सम्पूर्णः सर्वलक्षणैः।
दर्शनीयतमः सर्वमोहनः कामवर्धनः॥ ४१

भुजाएँ लम्बी तथा मोटी थीं, उसका कन्धा अत्यन्त ऊँचा था। उसकी ग्रीवा शंखके समान थी, उसका वक्ष:स्थल बहुत चौड़ा था, मुखमण्डल स्थूल तथा सुन्दर था, उसके सभी अंग सुन्दर थे, वह श्याम वर्णका था, सभी लक्षणोंसे युक्त वह सबको मोहित करनेवाला, कामको बढ़ानेवाला तथा अत्यन्त दर्शनीय था॥ ३७—४१॥

एतादृशे समुत्पन्ने वसंते कुसुमाकरे।
ववौ वायुः सुसुरभिः पादपा अपि पुष्पिताः॥ ४२

इस प्रकार पुष्पगुच्छोंसे सुशोभित हुए वसन्तके उत्पन्न होते ही सुगन्धित वायु चलने लगी, वृक्ष भी फूलोंसे लद गये॥ ४२॥

पिका विनेदुः शतशः पञ्चमं मधुरस्वनाः।
प्रफुल्लपद्मा अभवन्सरस्यः स्वच्छपुष्कराः॥ ४३

तमुत्पन्नमहं वीक्ष्य तदा तादृशमुत्तमम्।
हिरण्यगर्भो मदनमगदं मधुरं वचः॥ ४४

सैकड़ों कोयलें मधुर पंचम स्वरमें बोलने लगीं और बावलियाँ विकसित तथा स्वच्छ कमलोंसे युक्त हो गयीं। इस प्रकार उत्पन्न हुए उस श्रेष्ठ वसन्तको देखकर मैं ब्रह्मा कामदेवसे मधुर शब्दोंमें कहने लगा— ॥ ४३-४४॥

ब्रह्मोवाच

एवं स मन्मथनिभः सदा सहचरोऽभवत्।
आनुकूल्यं तव कृते सर्वं देवः करिष्यति॥ ४५

ब्रह्माजी बोले—[हे पुत्र!] कामदेवतुल्य यह वसन्त अब तुम्हारे लिये अनुकूल मित्र उत्पन्न हो गया है। अब यह तुम्हारी सब प्रकारसे सहायता करेगा॥ ४५॥

यथाग्नेः पवनो मित्रं सर्वत्रोपकरिष्यति।
तथायं भवतो मित्रं सदा त्वामनुयास्यति॥ ४६

जिस प्रकार पवन अग्निका मित्र बनकर सदा उसका उपकार करता रहता है, उसी प्रकार यह वसन्त भी तुम्हारा मित्र बनकर सदा तुम्हारे साथ रहेगा॥ ४६॥

वसतेरंतहेतुत्वाद्वसंताख्यो भवत्वयम्।
तवानुगमनं कर्म तथा लोकानुरञ्जनम्॥ ४७

रमणमें हेतु होनेके कारण यह तुम्हारे साथ निवास करेगा, इसलिये इसका नाम वसन्त होगा। लोकका अनुरंजन तथा तुम्हारा अनुगमन ही इसका कार्य होगा॥ ४७॥

असौ वसंतशृङ्गारो वासंतो मलयानिलः।
भवेत्तु सुहृदो भावः सदा त्वद्वशवर्तिनः॥ ४८

वसन्तकालीन यह मलयानिल इस वसन्तका शृंगार बनकर इसके मित्ररूपसे बना रहेगा, जो सदा तुम्हारे अधीन रहेगा॥ ४८॥

विव्वोकाद्यास्तथा हावाश्चतुष्षष्टिकलास्तथा।
रत्याः कुर्वंतु सौहृद्यं सुहृदस्ते यथा तव॥ ४९

जिस प्रकार तुम्हारे मित्र रहते हैं, उसी प्रकार ये बिब्बोक आदि हाव तथा चौंसठ कलाएँ रतिके साथ सुहृद् होकर रहेंगी॥ ४९॥

एभिः सहचरैः काम वसंतप्रमुखैर्भवान्।
मोहयस्व महादेवं रत्या सह महोद्यमः॥ ५०

हे काम! तुम अपने इन वसन्त आदि सहचरों तथा रतिके साथ उद्यत होकर महादेवजीको मोहित करो॥ ५०॥

अहं तां कामिनीं तात भावयिष्यामि यत्नतः।
मनसा सुविचार्यैव या हरं मोहयिष्यति॥ ५१

हे तात! अब मैं यत्नपूर्वक अच्छी तरह मनमें सोच-विचारकर उस कामिनीको प्राप्त करूँगा, जो भगवान् शंकरको मोहित कर लेगी॥ ५१॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तो मया कामः सुरज्येष्ठेन हर्षितः।
ननाम चरणौ मेऽपि स पत्नीसहितस्तदा॥ ५२
दक्षं प्रणम्य तान् सर्वान्मानसानभिवाद्य च।
यत्रात्मा गतवान् शंभुस्तत्स्थानं मन्मथो ययौ॥ ५३

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार मुझ सुरश्रेष्ठ ब्रह्माके कहनेपर उस कामदेवने पत्नीसहित मेरे चरणोंमें प्रणाम किया। पुनः दक्ष एवं मेरे मानसपुत्रोंको प्रणामकर कामदेव उस स्थानपर गया, जहाँ आत्मस्वरूप शंकरजी गये थे॥ ५२-५३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां सतीचरित्रे द्वितीये सतीखण्डे वसंतस्वरूपवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें वसन्तस्वरूपवर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः

कामदेवद्वारा भगवान् शिवको विचलित न कर पाना, ब्रह्माजीद्वारा कामदेवके सहायक मारगणोंकी उत्पत्ति; ब्रह्माजीका उन सबको शिवके पास भेजना, उनका वहाँ विफल होना, गणोंसहित कामदेवका वापस अपने आश्रमको लौटना

ब्रह्मोवाच

तस्मिन् गते सानुचरे शिवस्थानं च मन्मथे।
चरित्रमभवच्चित्रं तच्छृणुष्व मुनीश्वर॥ १

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! अनुचरोंके साथ उस कामके शिवस्थानमें पहुँच जानेपर अद्भुत चरित्र हुआ, उसे सुनिये॥ १॥

गत्वा तत्र महावीरो मन्मथो मोहकारकः।
स्वप्रभावं ततानाशु मोहयामास प्राणिनः॥ २

सभी लोगोंको मोहित करनेवाले उस महावीर कामने वहाँ पहुँचकर अपना प्रभाव फैला दिया और सभी प्राणियोंको मोहित कर लिया॥ २॥

वसंतोऽपि प्रभावं स्वं चकार हरमोहनम्।
सर्वे वृक्षा एकदैव प्रफुल्ला अभवन्मुने॥ ३

विविधान्कृतवान्यत्नान् रत्या सह मनोभवः।
जीवाः सर्वे वशं याताः सगणेशः शिवो न हि॥ ४

हे मुने! वसन्तने भी महादेवजीको अपना मोहित करनेवाला प्रभाव दिखाया, जिससे समस्त वृक्ष एक साथ ही फूलोंसे लद गये। उस समय कामने रतिके साथ [शिवको मोहित करनेके लिये] अनेक यत्न किये, जिससे सभी जीव उसके वशीभूत हो गये, किंतु गणोंसहित शिवजी उसके वशमें नहीं हुए॥ ३-४॥

समधोर्मदनस्यासन्प्रयासा निष्फला मुने।
जगाम स निजस्थानं निवृत्य विमदस्तदा॥ ५

कृत्वा प्रणामं विधये मह्यं गद्गदया गिरा।
उवाच मदनो मां चोदासीनो विमदो मुने॥ ६

हे मुने! [इस प्रकार चेष्टा करते हुए] जब वसन्तसहित उस कामके समस्त प्रयत्न निष्फल हो गये, तब वह अहंकाररहित हो गया और लौटकर अपने स्थानपर चला गया। हे मुने! मुझ ब्रह्माको प्रणामकर उदासीन तथा अभिमानरहित वह कामदेव गद्गद वाणीसे मुझसे कहने लगा—॥ ५-६॥

काम उवाच

ब्रह्मन् शंभुर्मोहनीयो न वै योगपरायणः।
न शक्तिर्मम नान्यस्य तस्य शंभोर्हि मोहने॥ ७

काम बोला—हे ब्रह्मन्! शिवको मोहित नहीं किया जा सकता; क्योंकि वे योगपरायण हैं। उन शिवको मोहित करनेकी शक्ति न मुझमें है और न अन्य किसीमें है॥ ७॥

समित्रेण मया ब्रह्मन्नुपाया विविधाः कृताः।
रत्या सहाखिलास्ते च निष्फला अभवन् शिवे॥ ८

श्रृणु ब्रह्मन्यथास्माभिः कृता हि हरमोहने।
प्रयासान् विविधाँस्तात गदतस्तान्मुने मम॥ ९

हे ब्रह्मन्! मैंने मित्र वसन्त तथा रतिके साथ उन्हें मोहित करनेके अनेक उपाय किये, किंतु शिवमें वे सभी निष्फल हो गये। हे ब्रह्मन्! हमलोगोंने शिवजीको मोहित करनेके लिये जिन उपायोंको किया, उन विविध उपायोंको मैं बता रहा हूँ, हे मुने! हे तात! आप सुनिये—॥ ८-९॥

यदा समाधिमाश्रित्य स्थितः शंभुर्नियंत्रितः।
तदा सुगंधिवातेन शीतलेनातिवेगिना॥ १०
उद्वेजयामि रुद्रं स्म नित्यं मोहनकारिणा।
प्रयत्नतो महादेवं समाधिस्थं त्रिलोचनम्॥ ११

जब शिवजी संयमित होकर समाधि लगाकर बैठे हुए थे, तब मैं मोहित करनेवाली वेगवान्, सुगन्धयुक्त तथा शीतल वायुसे त्रिनेत्र महादेव रुद्रको विचलित करने लगा॥ १०-११॥

स्वसायकांस्तथा पञ्च समादाय शरासनम्।
तस्याभितो भ्रमतस्तु मोहयंस्तद्गणानहम्॥ १२
मम प्रवेशमात्रेण सुवश्याः सर्वजंतवः।
अभवद्विकृतो नैव शंकरः सगणः प्रभुः॥ १३

मैं अपने धनुष तथा पाँचों पुष्पबाणोंको लेकर उनके चारों ओर छोड़ता हुआ उनके गणोंको मोहित करने लगा। [उस प्रदेशमें] मेरे प्रवेश करते ही समस्त प्राणी मोहित हो गये, किंतु गणोंसहित भगवान् शिव विकारयुक्त नहीं हुए॥ १२-१३॥

यदा हिमवतः प्रस्थं स गतः प्रमथाधिपः।
तत्रागतस्तदैवाहं सरतिः समधुर्विधे॥ १४

हे विधे! जब वे प्रमथाधिपति शिव हिमालयके शिखरपर गये, तब मैं भी वसन्त और रतिके साथ वहाँ पहुँच गया॥ १४॥

यदा मेरुं गतो रुद्रो यदा वा नागकेशरम्।
कैलासं वा यदा यातस्तत्राहं गतवांस्तदा॥ १५

जब वे मेरु पर्वतपर और नागकेसर पर्वतपर गये, तो मैं वहाँ भी गया। जब वे कैलास पर्वतपर गये, तब मैं भी वहाँपर गया॥ १५॥

यदा त्यक्तसमाधिस्तु हरस्तस्थौ कदाचन।
तदा तस्य पुरश्चक्रयुगं रचितवानहम्॥ १६

तच्च भ्रूयुगलं ब्रह्मन् हावभावयुतं मुहुः।
नानाभावानकार्षीच्च दांपत्यक्रममुत्तमम्॥ १७

जब वे किसी समय समाधिसे मुक्त हो गये, तो मैंने उनके सामने दो चक्र रचे। वे दोनों चक्र स्त्रीके हाव-भावयुक्त दोनों कटाक्ष थे। मैंने दाम्पत्यभावका अनुकरण करते हुए उन नीलकण्ठ महादेवके सामने नाना प्रकारके भाव उत्पन्न किये॥ १६-१७॥

नीलकंठं महादेवं सगणं तत्पुरःस्थिताः।
अकार्षुर्मोहितं भावं मृगाश्च पक्षिणस्तथा॥ १८

पशुओं तथा पक्षियोंने भी उनके सामने स्थित होकर गणोंसहित शिवजीको मोहित करनेके लिये मोहकारी भाव प्रदर्शित किये॥ १८॥

मयूरमिथुनं तत्राकार्षीद्भावं रसोत्सुकम्।
विविधां गतिमाश्रित्य पार्श्वे तस्य पुरस्तथा॥ १९

नालभद् विवरं तस्मिन् कदाचिदपि मच्छरः।
सत्यं ब्रवीमि लोकेश मम शक्तिर्न मोहने॥ २०

रसोत्सुक हुए मयूरके जोड़ेने अनेक प्रकारकी गतियोंका सहारा लेकर विविध प्रकारके भाव उनके आगे-पीछे प्रदर्शित किये, किंतु मेरे बाणोंको कभी भी अवकाश नहीं मिला, मैं यह सत्य कह रहा हूँ। हे लोकेश! शिवजीको मोहित करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है॥ १९-२०॥

मधुरप्यकरोत्कर्म युक्तं यत्तस्य मोहने।
तच्छृणुष्व महाभाग सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ २१

इस वसन्तने भी उन्हें मोहित करनेके लिये जो-जो उचित उपाय किये हैं, हे महाभाग! उन्हें आप सुनें, मैं सत्य-सत्य कह रहा हूँ॥ २१॥

चंपकान्केशरान्बालान्कारणान्पाटलांस्तथा ।
नागकेशरपुन्नागान्किंशुकान्केतकान् वरान्॥ २२

मालतीमल्लिकापर्णभारान्कुरबकांस्तथा ।
उत्फुल्लयति तत्र स्म यत्र तिष्ठति वै हरः॥ २३

इस वसन्तने श्रेष्ठ चम्पक, केसर, बाल [इलायची], कटहल, गुलाब, नागकेसर, पुन्नाग, किंशुक, केतकी, मालती, मल्लिका, पर्णभार एवं कुरबक आदि पुष्पोंको जहाँ भी शिवजी बैठते थे, वहीं विकसित कर दिया॥ २२-२३ ॥

सरांस्युत्फुल्लपद्मानि वीजयन् मलयानिलैः।
यत्नात्सुगंधीन्यकरोदतीव गिरिशाश्रमे॥ २४

इस वसन्तने शिवजीके आश्रममें तालाबके सभी फूले हुए कमलोंको मलय पवनोंसे यत्नपूर्वक अत्यन्त सुगन्धित कर दिया॥ २४॥

लताः सर्वाः सुमनसो धत्तूराङ्कुरसञ्चयाः।
वृक्षाङ्कं चिरभावेन वेष्टयन्ति स्म तत्र च॥ २५

सभी लताएँ फूलसे युक्त और अंकुर-समूहके साथ सन्निकटके वृक्षोंमें बड़े प्रेमसे लिपट गयीं॥ २५ ॥

तान्वृक्षांश्च सुपुष्पौघान् तैः सुगंधिसमीरणैः।
दृष्ट्वा कामवशं याता मुनयोऽपि परे किमु॥ २६

सुगन्धित पवनोंसे खिले हुए फूलोंसे युक्त उन वृक्षोंको देखकर मुनि भी कामके वशीभूत हो गये, फिर अन्यकी तो बात ही क्या!॥ २६ ॥

एवं सत्यपि शंभोर्न दृष्टं मोहस्य कारणम्।
भावमात्रमकार्षीन्नो कोपो मय्यपि शंकरः॥ २७

इतना होनेपर भी मैंने शंकरजीके मोहित होनेका न कोई लक्षण देखा, न तो उनमें कोई कामका भाव ही उत्पन्न हुआ। [इतना सब कुछ करनेपर भी] शंकरने मेरे ऊपर रंचमात्र भी क्रोध नहीं किया॥ २७॥

इति सर्वमहं दृष्ट्वा ज्ञात्वा तस्य च भावनाम्।
विमुखोऽहं शंभुमोहान्नियतं ते वदाम्यहम्॥ २८

इस प्रकार सब कुछ देखकर तथा उनकी भावनाको जानकर मैं शिवजीको मोहित करनेके प्रयाससे विरत हो गया, उसका कारण आपसे निवेदन कर रहा हूँ॥ २८॥

तस्य त्यक्तसमाधेस्तु क्षणं नो दृष्टिगोचरे।
शक्नुयामो वयं स्थातुं तं रुद्रं को विमोहयेत्॥ २९

समाधि छोड़ देनेपर हमलोग उनकी दृष्टिके सामने क्षणमात्र भी टिक नहीं सकते, उन रुद्रको कौन मोहित कर सकता है?॥ २९॥

ज्वलदग्निप्रकाशाक्षं जटाराशिकरालिनम्।
शृङ्गिणं वीक्ष्य कः स्थातुं ब्रह्मन् शक्नोति तत्पुरः॥ ३०

हे ब्रह्मन्! जलती हुई अग्निके समान प्रकाशित नेत्रोंवाले तथा जटा धारण करनेसे महाविकराल उन कैलासपर्वतनिवासी शिवजीको देखकर उनके सामने कौन खड़ा रह सकता है?॥ ३०॥

ब्रह्मोवाच

मनोभववचश्चेत्थं श्रुत्वाहं चतुराननः।
विवक्षुरपि नावोचं चिंताविष्टोऽभवं तदा॥ ३१

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कामके वचनको सुनकर मैं चतुरानन ब्रह्मा चिन्तामग्न हो गया और बोलनेकी इच्छा करते हुए भी कुछ बोल न सका॥ ३१ ॥

मोहनेऽहं समर्थो न हरस्येति मनोभवः।
वचः श्रुत्वा महादुःखान्निरश्वसमहं मुने॥ ३२

मैं कामदेव शिवको मोहित करनेमें समर्थ नहीं हूँ। हे मुने! उसका यह वचन सुनकर मैं बड़े दुःखके साथ उष्ण श्वास लेने लगा॥ ३२॥

निःश्वासमारुता मे हि नानारूपा महाबलाः।
जाता गणा लोलजिह्वा लोलाश्चातिभयंकराः॥ ३३

उस समय मेरे निःश्वास अनेक रूपोंवाले, महाबलवान्, लपलपाती जीभवाले, चंचल तथा अत्यन्त भयंकर गणोंके रूपमें परिणत हो गये॥ ३३॥

अवादयन्त ते सर्वे नानावाद्यानसंख्यकान्।
पटहादिगणास्तांस्तान् विकरालान्महारवान्॥ ३४
अथ ते मम निःश्वाससंभवाश्च महागणाः।
मारयच्छेदयेत्यूचुर्ब्रह्मणो मे पुरः स्थिताः॥ ३५
तेषां तु वदतां तत्र मारयच्छेदयेति माम्।
वचः श्रुत्वा विधिं कामः प्रवक्तुमुपचक्रमे॥ ३६
मुनेऽथ मां समाभाष्य तान् दृष्ट्वा मदनो गणान्।
उवाच वारयन् ब्रह्मन्गणानामग्रतः स्मरः॥ ३७

उन गणोंने भेरी, मृदंग आदि अनेक प्रकारके असंख्य विकराल, महाभयंकर बाजे बजाना प्रारम्भ किया। मेरे निःश्वाससे उत्पन्न वे महागण मुझ ब्रह्माके सामने ही मारो, काटो—ऐसा बोलने लगे॥ ३४-३५॥

मारो, काटो—ऐसा बोलनेवाले उन गणोंके शब्दोंको सुनकर वह काम मुझ ब्रह्मासे कहने लगा॥ ३६॥

हे मुने! हे ब्रह्मन्! इस प्रकार उस कामने मेरी आज्ञा लेकर उन सभी गणोंकी ओर देखकर उन्हें ऐसा करनेसे रोकते हुए गणोंके सामने ही मुझसे कहना प्रारम्भ किया—॥ ३७॥

काम उवाच

हे ब्रह्मन् हे प्रजानाथ सर्वसृष्टिप्रवर्तक।
उत्पन्नाः क इमे वीरा विकराला भयंकराः॥ ३८
किं कर्मैते करिष्यंति कुत्र स्थास्यंति वा विधे।
किन्नामधेया एते तद्वद तत्र नियोजय॥ ३९
नियोज्य तान्निजे कृत्ये स्थानं दत्त्वा च नाम च।
मामाज्ञापय देवेश कृपां कृत्वा यथोचिताम्॥ ४०

काम बोला—हे ब्रह्मन्! हे प्रजानाथ! हे सृष्टिके प्रवर्तक! ये कौन विकराल एवं भयंकर वीर उत्पन्न हो गये?॥ ३८॥

हे विधे! ये कौन-सा कार्य करेंगे तथा कहाँ निवास करेंगे और इनका क्या नाम है? उन्हें आप मुझे बताइये तथा इनको कार्यमें नियुक्त कीजिये॥ ३९॥

हे देवेश! इनको अपने कार्यमें नियुक्तकर और इनके नाम रखकर तथा स्थानोंकी व्यवस्था करके यथोचित कृपा करके मुझे आज्ञा दीजिये॥ ४०॥

ब्रह्मोवाच

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य मुनेऽहं लोककारकः।
तमवोचं ह मदनं तेषां कर्मादिकं दिशन्॥ ४१
एत उत्पन्नमात्रा हि मारयेत्यवदन् वचः।
मुहुर्मुहुरतोऽमीषां नाम मारेति जायताम्॥ ४२
सदैव विघ्नं जंतूनां करिष्यन्ति गणा इमे।
विना निजार्चनं काम नानाकामरतात्मनाम्॥ ४३
तवानुगमनं कर्म मुख्यमेषां मनोभव।
सहायिनो भविष्यन्ति सदा तव न संशयः॥ ४४
यत्र यत्र भवान् याता स्वकर्मार्थं यदा यदा।
गंतारस्तत्र तत्रैते सहायार्थं तदा तदा॥ ४५
चित्तभ्रांतिं करिष्यंति त्वदस्त्रवशवर्तिनाम्।
ज्ञानिनां ज्ञानमार्गं च विघ्नयिष्यंति सर्वथा॥ ४६

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! उस कामकी बात सुनकर उनके कार्य आदिका निर्देश करते हुए लोककर्ता मैंने कामसे कहा—॥ ४१॥

हे काम! उत्पन्न होते ही इन सबने बारंबार मारय-मारय [मारो-मारो]—इस प्रकारका शब्द कहा है, इसलिये इनका नाम 'मार' होना चाहिये॥ ४२॥

हे काम! अपनी पूजाके बिना ये गण अनेक प्रकारकी कामनाओंमें रत मनवाले प्राणियोंके कार्योंमें सर्वदा विघ्न किया करेंगे॥ ४३॥

हे कामदेव! तुम्हारे अनुकूल रहना ही इनका मुख्य कार्य होगा और ये तुम्हारी सहायतामें सदा तत्पर रहेंगे, इसमें संशय नहीं है॥ ४४॥

जब-जब और जहाँ-जहाँ तुम अपने कार्यके लिये जाओगे, तब-तब वहाँ-वहाँ ये तुम्हारी सहायताके लिये जायँगे॥ ४५॥

ये तुम्हारे अस्त्रोंसे वशवर्ती प्राणियोंके चित्तमें सदैव भ्रान्ति उत्पन्न करेंगे और ज्ञानियोंके ज्ञानमार्गमें विघ्न डालेंगे॥ ४६॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचो मे हि सरतिः स मनोभवः।
किंचित्प्रसन्नवदनो बभूव मुनिसत्तम॥ ४७

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिसत्तम! मेरे इस वचनको सुनकर रति और वसन्तसहित वह कामदेव कुछ प्रसन्नमुख हो गया॥ ४७॥

श्रुत्वा तेऽपि गणाः सर्वे मदनं मां च सर्वतः।
परिवार्य यथाकामं तस्थुस्तत्र निजाकृतिम्॥ ४८
अथ ब्रह्मा स्मरं प्रीत्यागदं मे कुरु शासनम्।
एभिः सहैव गच्छ त्वं पुनश्च हरमोहने॥ ४९

मेरी बातको सुनकर वे सभी गण अपने-अपने स्वरूपसे मुझे तथा कामदेवको चारों ओरसे घेरकर बैठ गये। इसके बाद मुझ ब्रह्माने कामसे प्रेमपूर्वक कहा—[हे मदन!] मेरी बात मानो, तुम इन गणोंको साथ लेकर शिवको मोहित करनेके लिये पुनः जाओ॥ ४८-४९॥

मन आधाय यत्नानि कुरु मारगणैः सह।
मोहो भवेद्यथा शंभोर्दारग्रहणहेतवे॥ ५०

इत्याकर्ण्य वचः कामः प्रोवाच वचनं पुनः।
देवर्षे गौरवं मत्वा प्रणम्य विनयेन माम्॥ ५१

अब तुम इन मारगणोंके साथ मन लगाकर ऐसा प्रयत्न करो, जिससे स्त्री ग्रहण करनेके लिये शिवजीको मोह हो जाय। हे देवर्षे! मेरी बात सुनकर काम गौरवका ध्यान रखते हुए मुझे प्रणाम करके विनयपूर्वक मुझसे पुनः यह वचन कहने लगा—॥ ५०-५१॥

काम उवाच

मया सम्यक् कृतं कर्म मोहने तस्य यत्नतः।
तन्मोहो नाभवत्तात न भविष्यति नाधुना॥ ५२

काम बोला—हे तात! मैंने शिवको मोहित करनेके लिये भली-भाँति यत्नपूर्वक उपाय किये, किंतु उनको मोह नहीं हुआ, न आगे होगा और वर्तमानमें भी वे मोहित नहीं हैं॥ ५२॥

तव वाग्गौरवं मत्वा दृष्ट्वा मारगणानपि।
गमिष्यामि पुनस्तत्र सदारोऽहं त्वदाज्ञया॥ ५३

किंतु आपकी वाणीका गौरव मानकर इन मारगणोंको देखकर आपकी आज्ञासे मैं पुनः वहाँ पत्नीसहित जाऊँगा॥ ५३॥

मनो निश्चितमेतद्धि तन्मोहो न भविष्यति।
भस्म कुर्यान्न मे देहमिति शंकास्ति मे विधे॥ ५४

हे ब्रह्मन्! मैंने मनमें यह निश्चय कर लिया है कि उन्हें मोह नहीं होगा और हे विधे! मुझे यह शंका है कि [इस बार] कहीं वे मेरे शरीरको भस्म न कर दें॥ ५४॥

इत्युक्त्वा समधुः कामः सरतिः सभयस्तदा।
ययौ मारगणैः सार्धं शिवस्थानं मुनीश्वर॥ ५५

हे मुनीश्वर! ऐसा कहकर वह कामदेव वसन्त, रति तथा मारगणोंको साथ लेकर भयपूर्वक शिवजीके स्थानपर गया॥ ५५॥

पूर्ववत् स्वप्रभावं च चक्रे मनसिजस्तदा।
बहूपायं स हि मधुर्विविधां बुद्धिमावहन्॥ ५६

उपायं स चकाराति तत्र मारगणोऽपि च।
मोहोऽभवन्न वै शंभोरपि कश्चित्परात्मनः॥ ५७

[वहाँ जाकर] कामदेवने पहलेके समान ही अपना प्रभाव दिखाया तथा वसन्तने भी अनेक प्रकारकी बुद्धिका प्रयोग करते हुए बहुत उपाय किये, मारगणोंने भी वहाँ बहुत उपाय किये, किंतु परमात्मा शंकरको कुछ भी मोह न हुआ॥ ५६-५७॥

निवृत्य पुनरायातो मम स्थानं स्मरस्तदा।
आसीन्मारगणोऽगर्वोऽहर्षो मेऽपि पुरस्थितः॥ ५८

तब वह कामदेव लौटकर पुनः मेरे पास आया। समस्त मारगण भी अभिमानरहित तथा उदास होकर मेरे सामने खड़े हो गये॥ ५८॥

कामः प्रोवाच मां तात प्रणम्य च निरुत्सवः।
स्थित्वा मम पुरोऽगर्वो मारैश्च मधुना तदा॥ ५९

हे तात! तब उदास और गर्वरहित कामदेवने मारगणों तथा वसन्तके साथ मेरे सामने खड़े होकर प्रणाम करके मुझसे कहा—॥ ५९॥

कृतं पूर्वादधिकतः कर्म तन्मोहने विधे।
नाभवत्तस्य मोहोऽपि कश्चिद्ध्यानरतात्मनः॥ ६०

हे विधे! मैंने शिवजीको मोहित करनेके लिये पहलेसे भी अधिक प्रयत्न किया, किंतु ध्यानरत चित्तवाले उन शिवको कुछ भी मोह नहीं हुआ॥ ६०॥

न दग्धा मे तनुश्चैव तत्र तेन दयालुना।
कारणं पूर्वपुण्यं च निर्विकारः स वै प्रभुः॥ ६१

चेद्वरस्ते हरो भार्यां गृह्णीयादिति पद्मज।
परोपायं कुरु तदा विगर्व इति मे मतिः॥ ६२

उन दयालुने मेरे शरीरको भस्म नहीं किया, इसमें मेरे पूर्वजन्मका पुण्य ही कारण है। वे प्रभु सर्वथा निर्विकार हैं। हे ब्रह्मन्! यदि आपकी ऐसी इच्छा है कि महादेवजी दारपरिग्रह करें, तो मेरे विचारसे आप गर्वरहित होकर दूसरा उपाय कीजिये॥ ६१-६२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा सपरीवारो ययौ कामः स्वमाश्रमम्।
प्रणम्य मां स्मरन् शंभुं गर्वदं दीनवत्सलम्॥ ६३

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर कामदेव मुझे प्रणाम करके गर्वका खण्डन करनेवाले दीनवत्सल शम्भुका स्मरण करता हुआ परिवारसहित अपने आश्रमको चला गया॥ ६३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे सत्युपाख्याने कामप्रभावमारगणोत्पत्तिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें कामप्रभाव एवं मारगणोत्पत्तिवर्णन नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

अथ दशमोऽध्यायः

ब्रह्मा और विष्णुके संवादमें शिवमाहात्म्यका वर्णन

नारद उवाच

ब्रह्मन् विधे महाभाग धन्यस्त्वं शिवसक्तधीः।
कथितं सुचरित्रं ते शंकरस्य परात्मनः॥ १

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे विधे! हे महाभाग! आप धन्य हैं, जो आपकी बुद्धि शिवमें आसक्त है। आपने परमात्मा शंकरजीके सुन्दर चरित्रका आख्यान किया॥ १॥

निजाश्रमे गते कामे सगणे सरतौ ततः।
किमासीत्किमकार्षीस्त्वं तच्चरित्रं वदाधुना॥ २

मारगणों तथा [अपनी स्त्री] रतिके साथ जब काम अपने स्थानपर चला गया, तब क्या हुआ और आपने क्या किया? अब उस चरित्रको कहिये॥ २॥

ब्रह्मोवाच

शृणु नारद सुप्रीत्या चरित्रं शशिमौलिनः।
यस्य श्रवणमात्रेण निर्विकारो भवेन्नरः॥ ३

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! आप अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक महादेवजीके चरित्रको सुनिये, जिसके श्रवणमात्रसे मनुष्य विकारसे मुक्त हो जाता है॥ ३॥

निजाश्रमं गते कामे परिवारसमन्विते।
यद् बभूव तदा जातं तच्चरित्रं निबोध मे॥ ४

कामके सपरिवार अपने आश्रममें चले जानेपर उस समय जो हुआ, उस चरित्रको मुझसे सुनिये॥ ४॥

नष्टोऽभून्नारद मदो विस्मयोऽभूच्च मे हृदि।
निरानंदस्य च मुनेऽपूर्णे निजमनोरथे॥ ५

हे नारद! मेरा घमण्ड चूर-चूर हो गया और अपने मनोरथके अपूर्ण रहनेसे मुझ आनन्दरहितके हृदयमें विस्मय हुआ॥ ५॥

अशोचं बहुधा चित्ते गृह्णीयात्स कथं स्त्रियम्।
निर्विकारो जितात्मा स शंकरो योगतत्परः॥ ६

मैंने मनमें अनेक प्रकारसे विचार किया कि वे निर्विकार, जितात्मा तथा योगपरायण शिव स्त्रीको किस प्रकार ग्रहण कर सकते हैं?॥ ६॥

इत्थं विचार्य बहुधा तदाहं विमदो मुने।
हरिं तं सोऽस्मरं भक्त्या शिवात्मानं स्वदेहदम्॥ ७

अस्तवं च शुभस्तोत्रैर्दीनवाक्यसमन्वितैः।
तच्छ्रुत्वा भगवानाशु बभूवाविर्हि मे पुरा॥ ८

चतुर्भुजोऽरविंदाक्षः शंखपद्मगदाधरः।
लसत्पीतपटः श्यामतनुर्भक्तप्रियो हरिः॥ ९

हे मुने! इस प्रकार अनेक तरहसे विचार करके अहंकाररहित मैंने उस समय अपने जन्मदाता शिवस्वरूप उन विष्णुका भक्तिपूर्वक स्मरण किया और दीनतापूर्ण वाक्योंसे युक्त कल्याणकारी स्तोत्रोंसे मैं उनकी स्तुति करने लगा। उसे सुनकर चतुर्भुज, कमलनयन, शंख-पद्म-गदाधारी, पीताम्बरसे सुशोभित तथा श्यामवर्णके शरीरवाले भक्तप्रिय भगवान् विष्णु शीघ्र ही मेरे सम्मुख प्रकट हो गये॥ ७—९॥

तं दृष्ट्वा तादृशमहं सुशरण्यं मुहुर्मुहुः।
अस्तवं च पुनः प्रेम्णा बाष्पगद्गदया गिरा॥ १०

उस प्रकारके रूपवाले शरणागतवत्सल उन भगवान्‌को देखकर मैंने पुनः प्रेमसे गद्गद वाणीमें बार-बार उनकी स्तुति की॥ १०॥

हरिराकर्ण्य तत्स्तोत्रं सुप्रसन्न उवाच माम्।
दुःखहा निजभक्तानां ब्रह्माणं शरणं गतम्॥ ११

अपने भक्तोंके दुःखको दूर करनेवाले भगवान् विष्णु उस स्तोत्रको सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हो मुझ शरणागत ब्रह्मासे कहने लगे॥ ११॥

हरिरुवाच

विधे ब्रह्मन् महाप्राज्ञ धन्यस्त्वं लोककारक।
किमर्थं स्मरणं मेऽद्य कृतं च क्रियते नुतिः॥ १२

विष्णुजी बोले—हे विधे! हे ब्रह्मन्! हे महाप्राज्ञ! आप धन्य हैं, हे लोककर्ता! आपने आज किसलिये मेरा स्मरण किया और किसलिये आप मेरी स्तुति कर रहे हैं?॥ १२॥

किं जातं ते महद्दुःखं मदग्रे तद्वदाधुना।
शमयिष्यामि तत्सर्वं नात्र कार्या विचारणा॥ १३

आपको कौन-सा महान् दुःख हो गया है, उसे अभी बताइये। उस सम्पूर्ण दुःखका मैं नाश करूँगा, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ १३॥

ब्रह्मोवाच

इति विष्णोर्वचः श्रुत्वा किंचिदुच्छ्वसिताननः।
अवोचं वचनं विष्णुं प्रणम्य सुकृताञ्जलिः॥ १४

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! विष्णुके इन वचनोंको सुनकर मैंने दीर्घ श्वास लिया और हाथ जोड़कर प्रणाम करके विष्णुसे यह वचन कहा—॥ १४॥

देवदेव रमानाथ मद्वार्तां शृणु मानद।
श्रुत्वा च करुणां कृत्वा हर दुःखं कमावह॥ १५

हे देवदेव! हे रमानाथ! मेरी बात सुनिये और हे मानद! उसे सुनकर दया करके मेरा दुःख दूर कीजिये तथा मुझे सुखी कीजिये॥ १५॥

रुद्रसंमोहनार्थं हि कामं प्रेषितवानहम्।
परिवारयुतं विष्णो समारमधुबांधवम्॥ १६

हे विष्णो! मैंने रुद्रके सम्मोहनके लिये सपरिवार मारगण तथा वसन्तके साथ कामको भेजा था॥ १६॥

चक्रुस्ते विविधोपायान् निष्फला अभवंश्च ते।
नाभवत्तस्य संमोहो योगिनः समदर्शिनः॥ १७

उन्होंने शिवजीको मोहित करनेके लिये अनेक प्रकारके उपाय किये, परंतु वे सब निष्फल हो गये। उन समदर्शी योगीको मोह नहीं हुआ॥ १७॥

इत्याकर्ण्य वचो मे स हरिर्मां प्राह विस्मितः।
विज्ञाताखिलदो ज्ञानी शिवतत्त्वविशारदः॥ १८

मेरा यह वचन सुनकर शिवतत्त्वके ज्ञाता, विज्ञानी तथा सब कुछ देनेवाले वे विष्णु विस्मित होकर मुझसे कहने लगे॥ १८॥

विष्णुरुवाच

कस्माद्धेतोरिरिति मतिस्तव जाता पितामह।
सर्वं विचार्य सुधिया ब्रह्मन् सत्यं हि तद्वद॥ १९

विष्णुजी बोले—हे पितामह! आपकी इस प्रकारकी बुद्धि किस कारणसे हो गयी है? हे ब्रह्मन्! अपनी सुबुद्धिसे सब विचारकर मुझसे सत्य-सत्य उसे कहें॥ १९॥

ब्रह्मोवाच

शृणु तात चरित्रं तत् तव माया विमोहिनी।
तदधीनं जगत्सर्वं सुखदुःखादितत्परम्॥ २०

ब्रह्माजी बोले—हे तात! अब उस चरित्रको सुनिये। यह आपकी माया मोहनेवाली है, सुख-दुःखमय यह सारा जगत् उसीके अधीन है॥ २०॥

ययैव प्रेषितश्चाहं पापं कर्तुं समुद्यतः।
आसं तच्छृणु देवेश वदामि तव शासनात्॥ २१

उसी मायाके द्वारा प्रेरित होकर मैं [इस प्रकारका] पाप करनेके लिये प्रवृत्त हुआ हूँ। हे देवेश! आपकी आज्ञासे मैं कह रहा हूँ। आप उसे सुनिये॥ २१॥

सृष्टिप्रारंभसमये दश पुत्रा हि जज्ञिरे।
दक्षाद्यास्तनया चैका वाग्भवाप्यतिसुन्दरी॥ २२

सृष्टिके प्रारम्भमें मेरे दक्ष आदि दस पुत्र उत्पन्न हुए और मेरी वाणीसे एक परम सुन्दरी कन्या भी उत्पन्न हुई॥ २२॥

धर्मो वक्षःस्थलात्कामो मनसोऽन्योऽपि देहतः।
जातास्तत्र सुतां दृष्ट्वा मम मोहोऽभवद्धरे॥ २३

जिसमें धर्म मेरे वक्षःस्थलसे, काम मनसे तथा अन्य पुत्र मेरे शरीरसे उत्पन्न हुए, हे हरे! कन्याको देखकर मुझे मोह हो गया॥ २३॥

कुदृष्ट्या तां समद्राक्षं तव मायाविमोहितः।
तत्क्षणाद्धर आगत्य मामनिन्दत्सुतानपि॥ २४

मैंने आपकी मायासे मोहित होकर जब उसे कुदृष्टिसे देखा, तब उसी समय महादेवजीने आकर मेरी तथा मेरे पुत्रोंकी निन्दा की॥ २४॥

धिक्कारं कृतवान् सर्वान् निजं मत्वा परं प्रभुम्।
ज्ञानिनं योगिनं नाथं भोगिनं विजितेन्द्रियम्॥ २५

हे नाथ! उन्होंने स्वयंको श्रेष्ठ तथा प्रभु मानकर ज्ञानी, योगी, जितेन्द्रिय, भोगरहित मुझ ब्रह्माको तथा मेरे पुत्रोंको धिक्कारा॥ २५॥

पुत्रो भूत्वा मम हरेऽनिन्दन्मां च समक्षतः।
इति दुःखं महन्मे हि तदुक्तं तव सन्निधौ॥ २६

हे हरे! मेरे पुत्र होकर भी शिवने सबके सामने ही मेरी निन्दा की। यही मुझे महान् दुःख है, इसे मैंने आपके सामने कह दिया॥ २६॥

गृह्णीयाद्यदि पत्नीं स स्यां सुखी नष्टदुःखधीः।
एतदर्थं समायातः शरणं तव केशव॥ २७

यदि वे पत्नी ग्रहण कर लें, तो मैं सुखी हो जाऊँगा और मेरे मनका कष्ट दूर हो जायगा। हे केशव! इसीलिये मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ २७॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचो मे हि ब्रह्मणो मधुसूदनः।
विहस्य मां द्रुतं प्राह हर्षयन्भवकारकम्॥ २८

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] मुझ ब्रह्माका यह वचन सुनकर विष्णु हँसकर मुझ सृष्टिकर्ता ब्रह्माको हर्षित करते हुए शीघ्र ही कहने लगे—॥ २८॥

विष्णुरुवाच

विधे शृणु हि मद्वाक्यं सर्वं भ्रमनिवारणम्।
सर्वं वेदागमादीनां संमतं परमार्थतः॥ २९

विष्णुजी बोले—हे विधे! सम्पूर्ण भ्रमका निवारण करनेवाले और वेद तथा आगमोंद्वारा अनुमोदित परमार्थयुक्त मेरे वचनको सुनें॥ २९॥

महामूढमतिश्चाद्य सञ्जातोऽसि कथं विधे।
वेदवक्तापि निखिललोककर्ता हि दुर्मतिः॥ ३०

हे विधे! वेदके वक्ता तथा समस्त लोकके कर्ता होकर भी आप इस प्रकार महामूर्ख तथा दुर्बुद्धियुक्त किस प्रकार हो गये?॥ ३०॥

जडतां त्यज मन्दात्मन् कुरु त्वं नेदृशीं मतिम्।
किं ब्रुवन्त्यखिला वेदाः स्तुत्या तत्स्मर सद्धिया॥ ३१

हे मन्दात्मन्! आप अपनी जड़ताका त्याग करें और इस प्रकारकी बुद्धि न करें। सम्पूर्ण वेद स्तुतिद्वारा क्या कहते हैं, अच्छी बुद्धिसे उसका स्मरण करें॥ ३१॥

रुद्रं जानासि दुर्बुद्धे स्वसुतं परमेश्वरम्।
वेदवक्तापि विज्ञानं विस्मृतं तेऽखिलं विधे॥ ३२

हे दुर्बुद्धे! आप उन परेश, रुद्रको अपना पुत्र समझते हैं। हे विधे! आप वेदके वक्ता हैं, फिर भी आपका समस्त ज्ञान विस्मृत हो गया है॥ ३२॥

शंकरं सुरसामान्यं मत्वा द्रोहं करोषि हि।
सुबुद्धिर्विगता तेऽद्याविर्भूता कुमतिस्तथा॥ ३३

[ऐसा ज्ञात होता है कि] इस समय आपकी सुबुद्धि नष्ट हो गयी है और आपमें कुमति उत्पन्न हो गयी है, जो आप शंकरको सामान्य देवता समझकर उनसे द्रोह कर रहे हैं॥ ३३॥

तत्त्वसिद्धान्तमाख्यातं शृणु सद्बुद्धिमावह।
यथार्थं निगमाख्यातं निर्णीय भवकारकम्॥ ३४

हे ब्रह्मन्! निर्णय करके वेदोंमें वर्णित किया गया जो कल्याणकारक तत्त्वसिद्धान्त कहा गया है, उसे आप सुनिये और सद्बुद्धि रखिये॥ ३४॥

शिवः सर्वस्वकर्ता हि भर्ता हर्ता परात्परः।
परब्रह्म परेशश्च निर्गुणो नित्य एव च॥ ३५
अनिर्देश्यो निर्विकारः परमात्माद्वयोऽच्युतः।
अनन्तोऽन्तकरः स्वामी व्यापकः परमेश्वरः॥ ३६
सृष्टिस्थितिविनाशानां कर्ता त्रिगुणभाग्विभुः।
ब्रह्मविष्णुमहेशाख्यो रजः सत्त्वतमः परः॥ ३७
मायाभिन्नो निरीहश्च मायो मायाविशारदः।
सगुणोऽपि स्वतंत्रश्च निजानंदोऽविकल्पकः॥ ३८
आत्मारामो हि निर्द्वन्द्वो भक्ताधीनः सुविग्रहः।
योगी योगरतो नित्यं योगमार्गप्रदर्शकः॥ ३९
गर्वापहारी लोकेशः सर्वदा दीनवत्सलः।
एतादृशो हि यः स्वामी स्वपुत्रं मन्यसे हि तम्॥ ४०

शिवजी ही समस्त सृष्टिके कर्ता, भर्ता, हर्ता परात्पर, परब्रह्म, परेश, निर्गुण, नित्य, अनिर्देश्य, निर्विकार, परमात्मा, अद्वैत, अच्युत, अनन्त, सबका अन्त करनेवाले, स्वामी, व्यापक, परमेश्वर, सृष्टि-पालन-संहारको करनेवाले, सत्त्व-रज-तम—इन तीन गुणोंसे युक्त, सर्वव्यापी, रज-सत्त्व-तमरूपसे ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर नाम धारण करनेवाले, मायासे भिन्न, इच्छारहित, मायास्वरूप, माया रचनेमें प्रवीण, सगुण, स्वतन्त्र, अपनेमें आनन्दित रहनेवाले, निर्विकल्पक, अपनेमें ही रमण करनेवाले, द्वन्द्वसे रहित, भक्तोंके अधीन रहनेवाले, उत्तम शरीरवाले, योगी, सदा योगमें निरत रहनेवाले, योगमार्ग दिखानेवाले, लोकेश्वर, गर्वको दूर करनेवाले तथा सदैव दीनोंपर दया करनेवाले हैं। जो ऐसे स्वामी हैं, उन्हें आप अपना पुत्र मानते हैं!॥ ३५—४०॥

ईदृशं त्यज कुज्ञानं शरणं व्रज तस्य वै।
भज सर्वात्मना शम्भुं सन्तुष्टः शं विधास्यति॥ ४१

हे ब्रह्मन्! [शिव हमारे पुत्र हैं—] इस प्रकारका अज्ञान छोड़ दीजिये। उन्हींकी शरणमें जाइये और सब प्रकारसे शिवजीका भजन कीजिये, वे प्रसन्न होकर आपका कल्याण करेंगे॥ ४१॥

गृह्णीयाच्छङ्करः पत्नीं विचारो हृदि चेत्तव।
शिवामुद्दिश्य सुतपः कुरु ब्रह्मन् शिवं स्मरन्॥ ४२

यदि आपका यह विचार है कि शिवजी अवश्य दारपरिग्रह करें, तो शिवजीका स्मरण करते हुए आप शिवाको उद्देश्य करके कठोर तप कीजिये॥ ४२॥

कुरु ध्यानं शिवायास्त्वं काममुद्दिश्य तं हृदि।
सा चेत्प्रसन्ना देवेशी सर्वं कार्यं विधास्यति॥ ४३

आप अपनी इच्छाको हृदयमें धारणकर [भगवती] शिवाका ध्यान कीजिये। यदि वे देवेश्वरी प्रसन्न हो गयीं, तो आपका समस्त कार्य पूर्ण करेंगी॥ ४३॥

कृत्वावतारं सगुणा यदि स्यान्मानुषी शिवा।
कस्यचित्तनया लोके सा तत्पत्नी भवेद् ध्रुवम्॥ ४४

यदि वे शिवा सगुणरूपसे अवतार लेकर किसी मनुष्यकी कन्या बनें, तो निश्चय ही वे उन (शिव)-की पत्नी बन सकती हैं॥ ४४॥

दक्षमाज्ञापय ब्रह्मन् तपः कुर्यात्प्रयत्नतः।
तामुत्पादयितुं पत्नीं शिवार्थं भक्तितः स्वतः॥ ४५

हे ब्रह्मन्! आप [इस कार्यके लिये] दक्षको आज्ञा दीजिये कि वे स्वयं भक्तितत्पर होकर उन शिवपत्नीको उत्पन्न करनेके लिये प्रयत्नपूर्वक तप करें॥ ४५॥

भक्ताधीनौ च तौ तात सुविज्ञेयौ शिवाशिवौ।
स्वेच्छया सगुणौ जातौ परब्रह्मस्वरूपिणौ॥ ४६

हे तात! आप इसे भली प्रकार समझ लें कि वे शिवा और शिव भक्तोंके अधीन हैं, परब्रह्मस्वरूप ये दोनों स्वेच्छासे सगुणभाव धारण कर लेते हैं॥ ४६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा तत्क्षणं मेशः शिवं सस्मार स्वप्रभुम्।
कृपया तस्य संप्राप्य ज्ञानमूचे च मां ततः॥ ४७

ब्रह्माजी बोले—लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुने इस प्रकार कहकर तत्क्षण अपने प्रभु शिवजीका स्मरण किया और उसके बाद उनकी कृपासे ज्ञान प्राप्तकर वे मुझसे कहने लगे—॥ ४७॥

विष्णुरुवाच

विधे स्मर पुरोक्तं यद्वचनं शंकरेण च।
प्रार्थितेन यदावाभ्यामुत्पन्नाभ्यां तदिच्छया॥ ४८

विष्णुजी बोले—हे ब्रह्मन्! पूर्वकालमें शिवजीकी इच्छासे उत्पन्न हुए हम दोनोंके द्वारा प्रार्थना करनेपर उन्होंने जो-जो वचन कहा था, उसका स्मरण कीजिये॥ ४८॥

विस्मृतं तव तत्सर्वं धन्या या शांभवी परा।
तया संमोहितं सर्वं दुर्विज्ञेया शिवं विना॥ ४९

आप वह सब भूल गये हैं। शिवजीकी जो पराशक्ति है, वह धन्य है, उसीने इस समस्त जगत्को मोहित कर रखा है। शिवके अतिरिक्त उसे कोई नहीं जान सकता॥ ४९॥

यदा हि सगुणो जातः स्वेच्छया निर्गुणः शिवः।
मामुत्पाद्य ततस्त्वां च स्वशक्त्या सुविहारकृत्॥ ५०

उपादिदेश त्वां शम्भुः सृष्टिकार्यं तदा प्रभुः।
तत्पालनं च मां ब्रह्मन् सोमः सूतिकरोऽव्ययः॥ ५१

हे ब्रह्मन्! जब निर्गुण शिवजीने अपनी इच्छासे सगुणरूप धारण किया था, उस समय मुझे तथा आपको उत्पन्न करके अपनी शक्तिके साथ उत्तम विहार करनेवाले, सृष्टिकर्ता, अविनाशी, परमेश्वर उन शम्भुने आपको सृष्टिकार्यके लिये तथा मुझे उसके पालनके लिये आदेश दिया॥ ५०-५१॥

तदा वां वेश्म संप्राप्तौ साञ्जली नतमस्तकौ।
भव त्वमसि सर्वेशोऽवतारी गुणरूपधृक्॥ ५२

इत्युक्तः प्राह स स्वामी विहस्य करुणान्वितः।
दिवमुद्वीक्ष्य सुप्रीत्या नानालीलाविशारदः॥ ५३

उसके बाद हम दोनोंने हाथ जोड़कर विनम्र होकर निवेदन किया कि आप सर्वेश्वर होकर भी सगुणरूप धारणकर अवतार लीजिये। ऐसा कहनेपर करुणामय तथा अनेक प्रकारकी लीलाएँ करनेमें प्रवीण उन स्वामी शिवजीने आकाशकी ओर देखकर हँसते हुए प्रेमपूर्वक कहा—॥ ५२-५३॥

मद्रूपं परमं विष्णो ईदृशं ह्यङ्गतो विधेः।
प्रकटीभविता लोके नाम्ना रुद्रः प्रकीर्तितः॥ ५४

पूर्णरूपः स मे पूज्यः सदा वां सर्वकामकृत्।
लयकर्ता गुणाध्यक्षो निर्विशेषः सुयोगकृत्॥ ५५

हे विष्णो! मेरा ऐसा ही परम रूप ब्रह्माजीके अंगसे प्रकट होगा, जो लोकमें रुद्र नामसे प्रसिद्ध होगा। वह मेरा पूजनीय पूर्णरूप आप दोनोंके समस्त कार्यको पूरा करनेवाला, जगत्का लयकर्ता, सभी गुणोंका अधिष्ठाता, निर्विशेष तथा उत्तम योग करनेवाला होगा॥ ५४-५५॥

त्रिदेवा अपि मे रूपं हरः पूर्णो विशेषतः।
उमाया अपि रूपाणि भविष्यंति त्रिधा सुतौ॥ ५६
लक्ष्मीर्नाम हरेः पत्नी ब्रह्मपत्नी सरस्वती।
पूर्णरूपा सती नाम रुद्रपत्नी भविष्यति॥ ५७

यद्यपि त्रिदेव मेरे स्वरूप हैं, किंतु 'हर' मेरे पूर्णरूप होंगे। [इसी प्रकार] हे पुत्रो! उमाके भी तीन प्रकारके रूप होंगे। लक्ष्मी विष्णुकी पत्नी, सरस्वती ब्रह्माकी पत्नी और पूर्णरूपा सती रुद्रकी पत्नी होंगी॥ ५६-५७॥

विष्णुरुवाच

इत्युक्त्वान्तर्हितो जातः कृपां कृत्वा महेश्वरः।
अभूतां सुखिनावावां स्वस्वकार्यपरायणौ॥ ५८

विष्णुजी बोले—[हे ब्रह्मन्!] भगवान् महेश्वर ऐसा कहकर हमदोनोंपर कृपा करके अन्तर्धान हो गये, उसके बाद हम दोनों सुखी होकर अपने-अपने कार्योंमें लग गये॥ ५८॥

समयं प्राप्य सस्त्रीकावावां ब्रह्मन्न शंकरः।
अवतीर्णः स्वयं रुद्रनामा कैलाससंश्रयः॥ ५९

हे ब्रह्मन्! समय पाकर हमदोनोंने स्त्री ग्रहण कर ली, किंतु शंकरजीने नहीं। वे रुद्र नामसे अवतीर्ण हुए हैं और कैलास पर्वतपर रहते हैं॥ ५९॥

अवतीर्णा शिवाभूत्सा सती नाम प्रजेश्वर।
तदुत्पादनहेतोर्हि यत्नोऽतः कार्य एव वै॥ ६०

हे प्रजेश्वर! वे शिवा सती नामसे अवतीर्ण होंगी। अतः उन्हें उत्पन्न होनेके लिये हमदोनोंको यत्न करना चाहिये॥ ६०॥

इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुः कृत्वा स करुणां पराम्।
प्राप्नुवं प्रमुदं चाथ ह्यधिकं गतमत्सरः॥ ६१

परम कृपा करके वे विष्णु ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गये। तब मैं [शिवजीके प्रति] ईर्ष्यारहित होकर अत्यधिक प्रसन्न हो गया॥ ६१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे ब्रह्मविष्णुसंवादो नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें ब्रह्मा और विष्णुका संवाद नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

अथैकादशोऽध्यायः

ब्रह्माद्वारा जगदम्बिका शिवाकी स्तुति तथा वरकी प्राप्ति

नारद उवाच

ब्रह्मन् तात महाप्राज्ञ वद नो वदतां वर।
गते विष्णौ किमभवदकार्षीत्किं विधे भवान्॥ १

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे महाप्राज्ञ! हे तात! [आपसे] इस प्रकार कहकर विष्णुके अन्तर्धान हो जानेपर क्या हुआ? हे विधे! आपने क्या किया? हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! आप मुझसे कहिये॥ १॥

ब्रह्मोवाच

विप्रनन्दनवर्य त्वं सावधानतया शृणु।
विष्णौ गते भगवति यदकार्षमहं खलु॥ २

ब्रह्माजी बोले—हे श्रेष्ठ विप्रनन्दन! भगवान् विष्णुके चले जानेपर मैंने जो कार्य किया, आप उसे सावधानीपूर्वक सुनिये॥ २॥

विद्याविद्यात्मिकां शुद्धां परब्रह्मस्वरूपिणीम्।
स्तौमि देवीं जगद्धात्रीं दुर्गां शम्भुप्रियां सदा॥ ३

तब मैं विद्या-अविद्यास्वरूपा, शुद्ध, परब्रह्म-स्वरूपिणी तथा जगत्को धारण करनेवाली शम्भुप्रिया देवी दुर्गाकी स्तुति करने लगा॥ ३॥

सर्वत्र व्यापिनीं नित्यां निरालंबां निराकुलाम्।
त्रिदेवजननीं वंदे स्थूलस्थूलामरूपिणीम्॥ ४

सर्वत्र व्याप्त रहनेवाली, नित्य, निराश्रय, निराकुल, त्रिदेवोंको उत्पन्न करनेवाली, स्थूलसे भी स्थूल रूप धारण करनेवाली तथा निराकार दुर्गाकी मैं वन्दना करता हूँ।

त्वं चितिः परमानंदा परमात्मस्वरूपिणी।

आप चित्स्वरूपा, परमानन्दस्वरूपिणी

प्रसन्ना भव देवेशि मत्कार्यं कुरु ते नमः॥ ५

तथा परमात्म-स्वरूपिणी हैं। हे देवेशि! मेरे ऊपर आप प्रसन्न हों और मेरा कार्य करें। आपको नमस्कार है॥ ४-५॥

एवं संस्तूयमाना सा योगनिद्रा मया मुने।
आविर्बभूव प्रत्यक्षं देवर्षे चंडिका मम॥ ६

हे मुने! हे देवर्षे! मेरे द्वारा इस प्रकार स्तुति करनेपर वे योगनिद्रा भगवती चण्डिका मेरे सामने प्रकट हो गयीं॥ ६॥

स्निग्धाञ्जनद्युतिश्चारुरूपा दिव्यचतुर्भुजा।
सिंहस्था वरहस्ता च मुक्तामणिकचोत्कटा॥ ७

शरदिंद्वानना शुभ्रचन्द्रभाला त्रिलोचना।
सर्वावयवरम्या च कमलाङ्घ्रिनखद्युतिः॥ ८

वे भगवती दुर्गा चिकने अंजनके समान शरीरकी कान्तिसे युक्त थीं, वे सुन्दर रूपसे सम्पन्न थीं, उनकी दिव्य चार भुजाएँ थीं, वे सिंहपर सवार थीं, वे हाथमें वरमुद्रा धारण किये हुए थीं, उनके केशोंमें मोती तथा मणियाँ ग्रथित थीं, वे अत्यन्त उत्कट थीं, उनका मुख शरत्कालीन पूर्णिमाके समान था, उनके मस्तकपर शुभ चन्द्रमा सुशोभित हो रहा था, वे तीन नेत्रोंसे युक्त थीं, उनके समस्त शरीरके अवयव परम मनोहर थे तथा वे चरणकमलके नखकी कान्तिसे प्रकाशित हो रही थीं॥ ७-८॥

समक्षं तामुमां वीक्ष्य मुने शक्तिं शिवस्य हि।
भक्त्या विनततुङ्गांशः प्रास्तवं सुप्रणम्य वै॥ ९

इस प्रकार अपने सामने शिवकी शक्ति उन भगवती उमाको उपस्थित देखकर भक्तिसे सिर झुकाकर मैं उन्हें प्रणाम करके [इस प्रकार] स्तुति करने लगा—॥ ९॥

ब्रह्मोवाच

नमो नमस्ते जगतः प्रवृत्ति-
निवृत्तिरूपे स्थितिसर्गरूपे।
चराचराणां भवती सुशक्तिः
सनातनी सर्वविमोहनीति॥ १०

ब्रह्माजी बोले—हे जगत्‌की प्रवृत्ति एवं निवृत्ति-स्वरूपे! हे सर्गस्थितिरूपे! आपको नमस्कार है। आप समस्त चराचरकी शक्ति, सनातनी तथा सबको मोहित करनेवाली हैं॥ १०॥

या श्रीः सदा केशवमूर्तिमाला
विश्वंभरा या सकलं बिभर्ति।
या त्वं पुरा सृष्टिकरी महेशी
हर्त्री त्रिलोकस्य परा गुणेभ्यः॥ ११

जो महालक्ष्मी भगवान् विष्णुको मालाकी भाँति हृदयमें धारण करनेवाली, विश्वका भरण करनेवाली तथा सभीका पोषण करनेवाली हैं, जो महेश्वरी पूर्वमें त्रिलोकीका सृजन करनेवाली हैं, उसका संहार करनेवाली हैं तथा गुणोंसे सर्वथा परे हैं॥ ११॥

या योगिनां वै महिता मनोज्ञा
सा त्वं नमस्ते परमाणुसारे।
यमादिपूते हृदि योगिनां या
या योगिनां ध्यानपथे प्रतीता॥ १२

प्रकाशशुद्ध्यादियुता विरागा
सा त्वं हि विद्या विविधावलंबा।
कूटस्थमव्यक्तमनंतरूपं
त्वं बिभ्रती कालमयी जगंति॥ १३

जो योगियोंके लिये पूज्य हैं, मनोहर हैं—वे आप ही हैं। हे परमाणुओंकी सारस्वरूपे! आपको नमस्कार है। जो यम-नियमोंसे पवित्र हुए योगियोंके हृदयमें निवास करनेवाली तथा योगियोंके द्वारा ध्यानगम्य हैं, वे प्रकाश एवं शुद्धि आदिसे युक्त, मोहसे रहित एवं [इस जगत्‌को] अनेक प्रकारसे अवलम्ब देनेवाली विद्यास्वरूपा आप ही हैं। आप कूटस्थ, अव्यक्त एवं अनन्तरूपा हैं। [हे भगवति!] आप कालरूपसे इस जगत्‌को धारण करती हैं॥ १२-१३॥

विकारबीजं प्रकरोषि नित्यं
गुणान्विता सर्वजनेषु नूनम्।
त्वं वै गुणानां च शिवे त्रयाणां
निदानभूता च ततः परासि॥ १४

आप गुणोंसे युक्त होकर सभी प्राणियोंमें नित्य विकाररूप बीज उत्पन्न करती हैं। हे शिवे! आप तीनों गुणोंकी कारणरूपा हैं तथा इससे परे भी हैं॥ १४॥

सत्त्वं रजस्तामस इत्यमीषां
विकारहीना सभुवस्तुरीया।
सा त्वं गुणानां जगदेकहेतुं
ब्रह्मांतरारंभसि चात्सि पासि॥ १५

[हे देवि!] आप सत्त्व, रज तथा तम—इन तीनों गुणोंके साथ ही पार्थिव विकारोंसे रहित तुरीय रूप हैं। आप इस जगत्‌की तथा गुणोंकी हेतुभूता हैं। आप ही ब्रह्माण्डमें स्थित रहकर इस जगत्‌की सृष्टि, प्रलय तथा पालन करती हैं॥ १५॥

अशेषजगतां बीजे ज्ञेयज्ञानस्वरूपिणि।
जगद्धिताय सततं शिवपत्नि नमोऽस्तु ते॥ १६

हे सम्पूर्ण जगत्‌की बीजस्वरूपे! हे ज्ञान तथा ज्ञेयस्वरूपिणि! आप सर्वदा जगत्‌के हितसाधनमें तत्पर रहनेवाली हैं। अतः हे शिवपत्नि! आपको सदा नमस्कार है॥ १६॥

इत्याकर्ण्य वचः सा मे काली लोकविभाविनी।
प्रीत्या मां जगतामूचे स्त्रष्टारं जनशब्दवत्॥ १७

[ब्रह्माजी बोले—] मेरी स्तुतिको सुनकर लोकका कल्याण करनेवाली वे महाकाली, सामान्य मनुष्यकी भाँति मुझ जगत्स्त्रष्टासे प्रेमपूर्वक कहने लगीं॥ १७॥

देव्युवाच

ब्रह्मन् किमर्थं भवता स्तुताहमवधारय।
उच्यतां यदि धृष्योऽसि तच्छीघ्रं पुरतो मम॥ १८

देवी बोलीं—हे ब्रह्मन्! आपने मेरी स्तुति किसलिये की है, इसे आप ठीकसे समझ लें। आप मेरे भक्त हैं, तो उसे शीघ्र ही मेरे सामने निवेदन करें॥ १८॥

प्रत्यक्षमपि जातायां सिद्धिः कार्यस्य निश्चिता।
तस्मात्त्वं वांछितं ब्रूहि या करिष्यामि भाविता॥ १९

मेरे प्रत्यक्ष रूपसे प्रकट हो जानेपर कार्य-सिद्धि निश्चित है। अतः आप अपनी मनोभिलषित बात कहें, मैं प्रसन्न होकर उसे निश्चित रूपसे करूँगी॥ १९॥

ब्रह्मोवाच

शृणु देवि महेशानि कृपां कृत्वा ममोपरि।
मनोरथस्थं सर्वज्ञे प्रवदामि त्वदाज्ञया॥ २०

ब्रह्माजी बोले—हे देवि! हे महेश्वरि! मेरे ऊपर कृपाकर मेरी बात सुनें। हे सर्वज्ञे! आपकी आज्ञासे मैं अपने मनोरथकी बात कह रहा हूँ॥ २०॥

यः पतिस्तव देवेशि ललाटान्मेऽभवत्पुरा।
शिवो रुद्राख्यया योगी स वै कैलासमास्थितः॥ २१

हे देवेशि! पूर्वकालमें मेरे ललाट-प्रदेशसे उत्पन्न हुए आपके पति जो रुद्रनामसे प्रसिद्ध हैं, वे इस समय योगी होकर कैलासपर्वतपर निवास कर रहे हैं॥ २१॥

तपश्चरति भूतेश एक एवाविकल्पकः।
अपत्नीको निर्विकारो न द्वितीयां समीहते॥ २२

वे भूतोंके स्वामी इस समय अकेले निर्विकल्पक समाधिमें लीन होकर तप कर रहे हैं। वे निर्विकार होनेके कारण पत्नीसे रहित हैं और [आत्मामें रमण करनेके कारण] दूसरी पत्नीकी अपेक्षा नहीं करते॥ २२॥

तं मोहय यथा चान्यां द्वितीयां सति वीक्षते।
त्वदृते तस्य नो काचिद्भविष्यति मनोहरा॥ २३

तस्मात्त्वमेव रूपेण भवस्य हरमोहिनी।
सुता भूत्वा च दक्षस्य रुद्रपत्नी शिवे भव॥ २४

हे सति! आप उन्हींको मोहित करें, जिससे वे [आत्माभिरमणसे उपरत होकर] दूसरी स्त्री [आप]-को देखें। आपके अतिरिक्त कोई अन्य स्त्री उनके मनको मोहित करनेवाली नहीं होगी। इसलिये आप ही दक्षकी कन्या बनकर अपने रूपसे शिवजीको मोहित करनेवाली हों। हे शिवे! आप शिवपत्नी बनें॥ २३-२४॥

यथा धृतशरीरा त्वं लक्ष्मीरूपेण केशवम्।
आमोदयसि विश्वस्य हितायैतं तथा कुरु॥ २५

जिस प्रकार आप लक्ष्मीका रूप धारणकर विष्णुको प्रसन्न करती हैं, उसी प्रकार संसारके हितके लिये आप इस कार्यको भी वैसे ही करें॥ २५॥

कांताभिलाषमात्रं मे दृष्ट्वानिंदद् वृषध्वजः।
स कथं वनितां देवि स्वेच्छया सङ्ग्रहीष्यति॥ २६

हे देवि! जब उन शिवने स्त्रीविषयक अभिलाषा-मात्रसे मेरी निन्दा की, तो भला वे स्वेच्छासे किस प्रकार स्त्री ग्रहण कर सकते हैं?॥ २६॥

हरे गृहीतकांते तु कथं सृष्टिः शुभावहा।
आद्यंतमध्ये चैतस्य हेतौ तस्मिन्विरागिणि॥ २७

यदि वे स्त्री ग्रहण कर भी लें, तो भी वे तो सृष्टिके आदि, मध्य और अन्तमें सदैव विरक्त रहते हैं, अतः उनसे उत्तम सृष्टि किस प्रकार होगी?॥ २७॥

इति चिंतापरो नाहं त्वदन्यं शरणं हितम्।
कृच्छ्रवांस्तेन विश्वस्य हितायैतत्कुरुष्व मे॥ २८

हे देवि! इस प्रकार चिन्तापरायण हुए मेरे लिये आपके अतिरिक्त और कोई शरणप्रद नहीं है, इसलिये विश्वकल्याणके निमित्त आप मेरे इस कार्यको करें॥ २८॥

न विष्णुस्तस्य मोहाय न लक्ष्मीर्न मनोभवः।
न चाप्यहं जगन्मातर्नान्यस्त्वां कोऽपि वै विना॥ २९

शिवजीको मोहित करनेमें न विष्णु, न लक्ष्मी, न काम और न तो मैं ही समर्थ हूँ। हे जगन्माता! आपके बिना कोई भी उन्हें मोहित करनेमें समर्थ नहीं है॥ २९॥

तस्मात्त्वं दक्षजा भूत्वा दिव्यरूपा महेश्वरी।
तत्पत्नी भव मद्भक्त्या योगिनं मोहयेश्वरम्॥ ३०

अतः आप दिव्यरूपा दक्षपुत्रीके रूपमें जन्म लेकर मेरी भक्तिके आग्रहसे महायोगी शिवको मोहित करें और उनकी पत्नी महेश्वरी बनें॥ ३०॥

दक्षस्तपति देवेशि क्षीरोदोत्तरतीरगः।
त्वामुद्दिश्य समाधाय मनस्त्वयि दृढव्रतः॥ ३१

हे देवेशि! इस समय दक्षप्रजापति क्षीरसमुद्रके उत्तर तटपर आपको प्राप्त करनेके उद्देश्यसे मनमें आपका ध्यान करते हुए दृढ़व्रती होकर तपस्या कर रहे हैं॥ ३१॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचः सा मे चिंतामाप शिवा तदा।
उवाच च स्वमनसि विस्मिता जगदम्बिका॥ ३२

ब्रह्माजी बोले—मेरे इस वचनको सुनकर वे जगदम्बिका शिवा चिन्तित हो उठीं और विस्मित होकर अपने मनमें कहने लगीं—॥ ३२॥

देव्युवाच

अहो सुमहदाश्चर्यं वेदवक्ताऽपि विश्वकृत्।
महाज्ञानपरो भूत्वा विधाता किं वदत्ययम्॥ ३३

देवी बोलीं—वेदवक्ता और जगत्कर्ता ये विधाता महान् अज्ञानसे युक्त होकर कैसी बात कर रहे हैं—अहो! यह महान् आश्चर्य है!॥ ३३॥

विधेश्चेतसि सञ्जातो महामोहोऽसुखावहः।
यद्वरं निर्विकारं तं संमोहयितुमिच्छति॥ ३४

ब्रह्माके चित्तमें ऐसा यह दुःखदायी महान् मोह कैसे उत्पन्न हो गया कि वे निर्विकार परमात्माको भी मोहित करना चाहते हैं!॥ ३४॥

हरमोहवरं मत्तः समिच्छति विधिस्त्वयम्।
को लाभोऽस्यात्र स विभुर्निर्मोहो निर्विकल्पकः॥ ३५

ये ब्रह्मा मुझसे शिवजीके मोहका वर चाहते हैं, इनका कौन-सा लाभ है? वे प्रभु तो निर्विकल्प, निर्मोह हैं॥ ३५॥

परब्रह्माख्यो यः शंभुर्निर्गुणो निर्विकारवान्।
तस्याहं सर्वदा दासी तदाज्ञावशगा सदा॥ ३६

वे शम्भु निर्विकार, निर्गुण तथा परब्रह्म हैं और मैं तो सदा उनकी आज्ञामें रहनेवाली दासी हूँ॥ ३६॥

स एव पूर्णरूपेण रुद्रनामाभवच्छिवः।
भक्तोद्धारणहेतोर्हि स्वतंत्रः परमेश्वरः॥ ३७

वे स्वतन्त्र परमेश्वर शिवभक्तोंके उद्धारहेतु अपने पूर्ण रूपसे रुद्र नामसे अवतीर्ण हुए हैं॥ ३७॥

हरेर्विधेश्च स स्वामी शिवायूनो न कर्हिचित्।
योगादरो ह्यमायस्थो मायेशः परतः परः॥ ३८

वे रुद्र ब्रह्मा तथा विष्णुके भी स्वामी हैं और किसी भी प्रकार शिवसे कम नहीं हैं। वे योगका आदर करनेवाले, मायासे रहित, मायापति तथा परसे भी परे हैं॥ ३८॥

मत्वा तमात्मजं ब्रह्मा सामान्यसुरसंनिभम्।
इच्छत्ययं मोहयितुमतोऽज्ञानविमोहितः॥ ३९

अज्ञानसे मोहित ये ब्रह्मा उन्हें अपना आत्मज तथा सामान्य देवता समझकर मोहित करना चाहते हैं॥ ३९॥

न दद्याच्चेद्वरं वेदनीतिर्भ्रष्टा भवेदिति।
किं कुर्यां येन न विभुः क्रुद्धः स्यान्मे महेश्वरः॥ ४०

यदि इन ब्रह्माको वरदान न दूँ, तो वेदकी नीति भ्रष्ट होती है। अब मैं क्या करूँ, जिससे प्रभु महेश्वर मेरे ऊपर क्रोधित न हों॥ ४०॥

ब्रह्मोवाच

विचार्येत्थं महेशं तं सस्मार मनसा शिवा।
प्राप्यानुज्ञां शिवस्याथोवाच दुर्गा च मां तदा॥ ४१

ब्रह्माजी बोले—शिवाने इस प्रकार विचारकर मनसे महादेवजीका स्मरण किया। तत्पश्चात् शिवकी आज्ञा पाकर वे दुर्गा मुझसे कहने लगीं—॥ ४१॥

दुर्गोवाच

यदुक्तं भवता ब्रह्मन् समस्तं सत्यमेव तत्।
मदृते मोहयित्रीह शंकरस्य न विद्यते॥ ४२

दुर्गा बोलीं—हे ब्रह्मन्! आपने जो भी कहा है, वह सब सत्य है, मुझे छोड़कर शंकरजीको मोहित करनेवाली कोई दूसरी स्त्री संसारमें नहीं है॥ ४२॥

हरेऽगृहीतदारे तु सृष्टिर्नैषा सनातनी।
भविष्यतीति तत्सत्यं भवता प्रतिपादितम्॥ ४३

आपने जो कहा कि जबतक शंकरजी दारपरिग्रह नहीं करेंगे, तबतक सनातनी सृष्टि नहीं होगी, यह बात भी सत्य है॥ ४३॥

ममापि मोहने यन्नो विद्यतेऽस्य महाप्रभोः।
त्वद्वाक्याद् द्विगुणो मेऽद्य प्रयत्नोऽभूत्स निर्भरः॥ ४४

मुझमें भी महाप्रभुको मोहित करनेकी सामर्थ्य नहीं है, किंतु अब आपके कहनेसे दुगुने उत्साहसे युक्त होकर मैं पूर्ण प्रयत्न करूँगी॥ ४४॥

अहं तथा यतिष्यामि यथा दारपरिग्रहम्।
हरः करिष्यति विधे स्वयमेव विमोहितः॥ ४५

हे विधे! अब मैं वैसा उपाय करूँगी, जिससे शंकरजी मोहित होकर स्वयं स्त्री ग्रहण करेंगे॥ ४५॥

सतीमूर्तिमहं धृत्वा तस्यैव वशवर्तिनी।
भविष्यामि महाभागा लक्ष्मीर्विष्णोर्यथा प्रिया॥ ४६

जिस प्रकार महाभागा लक्ष्मीजी विष्णुप्रिया हैं, उसी प्रकार मैं भी सतीरूप धारणकर उनकी वशवर्तिनी [प्रिया पत्नी] बनूँगी॥ ४६॥

यथा सोऽपि मयैवेह वशवर्ती सदा भवेत्।
तथा यत्नं करिष्यामि तस्यैव कृपया विधे॥ ४७

वे भी जिस प्रकारसे मेरे वशवर्ती बने रहें, मैं भी उन्हींकी कृपासे वैसा ही यत्न करूँगी॥ ४७॥

उत्पन्ना दक्षजायायां सतीरूपेण शंकरम्।
अहं सभाजयिष्यामि लीलया तं पितामह॥ ४८

हे पितामह! मैं दक्षकी पत्नीके गर्भसे सतीरूपसे जन्म लेकर अपनी लीलाके द्वारा शिवजीको प्राप्त करूँगी॥ ४८॥

यथान्यजंतुरवनौ वर्तते वनितावशे।
मद्भक्त्या स हरो वामावशवर्ती भविष्यति॥ ४९

जिस प्रकार संसारमें अन्य प्राणी स्त्रीके वशमें होते हैं, उसी प्रकार मेरी भक्तिसे वे महादेवजी भी स्त्रीके वशवर्ती बने रहेंगे॥ ४९॥

ब्रह्मोवाच

मह्यमित्थं समाभाष्य शिवा सा जगदम्बिका।
वीक्ष्यमाणा मया तात तत्रैवांतर्दधे ततः॥ ५०

ब्रह्माजी बोले—हे तात! मुझसे इस प्रकार कहकर वे जगदम्बा शिवा मेरे देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गयीं॥ ५०॥

तस्यामन्तर्हितायां तु सोऽहं लोकपितामहः।
अगमं यत्र स्वसुतास्तेभ्यः सर्वमवर्णयम्॥ ५१

उनके अन्तर्धान हो जानेपर मैं लोकपितामह ब्रह्मा वहाँ गया, जहाँ मेरे पुत्र थे और मैंने उनसे सब कुछ वर्णन किया॥ ५१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे दुर्गास्तुतिब्रह्मवरप्राप्तिवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें दुर्गास्तुति-ब्रह्मवरप्राप्तिवर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

दक्षप्रजापतिका तपस्याके प्रभावसे शक्तिका दर्शन और उनसे रुद्रमोहनकी प्रार्थना करना

नारद उवाच

ब्रह्मन् शंभुवर प्राज्ञ सम्यगुक्तं त्वयानघ।
शिवाशिवचरित्रं च पावितं जन्म मे हितम्॥ १

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे शिवभक्त! हे प्राज्ञ! हे निष्पाप! आपने शिवा तथा शिवके कल्याणकारी चरित्रका भलीभाँति वर्णन किया और मेरे जन्मको पवित्र कर दिया॥ १॥

इदानीं वद दक्षस्तु तपः कृत्वा दृढव्रतः।
कं वरं प्राप देव्यास्तु कथं सा दक्षजाभवत्॥ २

अब आप यह बताइये कि व्रतमें दृढ़ता रखनेवाले दक्षने तप करके देवीसे कौन-सा वर प्राप्त किया तथा वे शिवा किस प्रकार दक्षकन्याके रूपमें उत्पन्न हुईं?॥ २॥

ब्रह्मोवाच

शृणु नारद धन्यस्त्वं मुनिभिर्भक्तितोऽखिलैः।
यथा तेपे तपो दक्षो वरं प्राप च सुव्रतः॥ ३

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! तुम इन मुनियोंके साथ शिवमें भक्ति रखनेके कारण अत्यन्त धन्य हो। उत्तम व्रतवाले दक्षने जिस प्रकार तपस्या की तथा वर प्राप्त किया, उसे सुनो॥ ३॥

मदाज्ञप्तः सुधीर्दक्षः समाधाय महाधिपः।
अयाद्द्रष्टुं च तां देवीं तत्कामो जगदंबिकाम्॥ ४

क्षीरोदोत्तरतीरस्थां तां कृत्वा हृदयस्थिताम्।
तपस्तप्तुं समारेभे द्रष्टुं प्रत्यक्षतोऽम्बिकाम्॥ ५

मेरी आज्ञा पाकर वे बुद्धिमान् महाराज दक्षप्रजापति उस कार्यकी सिद्धिकी इच्छासे चित्तको समाहितकर देवी जगदम्बाकी उपासनाके लिये गये और क्षीरसागरके उत्तरतटपर रहनेवाली उन जगदम्बिकाको हृदयमें धारण करके उनका प्रत्यक्ष दर्शन करनेहेतु तपस्या करने लगे॥ ४-५॥

दिव्यवर्षेण दक्षस्तु सहस्राणां त्रयं समाः।
तपश्चचार नियतः संयतात्मा दृढव्रतः॥ ६

इन्द्रियोंको अपने वशमें करके दृढ़व्रती उन दक्षने देवताओंके तीन हजार वर्षपर्यन्त नियमपूर्वक तप किया॥ ६॥

मारुताशी निराहारो जलाहारी च पर्णभुक्।
एवं निनाय तं कालं चिन्तयन्तां जगन्मयीम्॥ ७

उन जगन्मयी शिवाका ध्यान करते हुए दक्षने कुछ दिन पत्ते खाकर, कुछ दिन जल पीकर, कुछ दिन निराहार रहकर तथा कुछ दिन वायु पीकर उस समयको व्यतीत किया॥ ७॥

दुर्गाध्यानसमासक्तश्चिरं कालं तपोरतः।
नियमैर्बहुभिर्देवीमाराधयति सुव्रतः॥ ८

ततो यमादियुक्तस्य दक्षस्य मुनिसत्तम।
जगदम्बां पूजयतः प्रत्यक्षमभवच्छिवा॥ ९

इस प्रकार वे सुव्रत दुर्गाके ध्यानमें संलग्न होकर बहुत समयतक तपस्या करते रहे और अनेक नियमोंसे देवीकी आराधना करते रहे। तब हे मुनिश्रेष्ठ! अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि यमोंसे युक्त होकर जगदम्बाकी पूजा करते हुए उन दक्षके सामने जगदम्बा शिवा प्रत्यक्ष हुईं॥ ८-९॥

ततः प्रत्यक्षतो दृष्ट्वा जगदम्बां जगन्मयीम्।
कृतकृत्यमथात्मानं मेने दक्षः प्रजापतिः॥ १०

तब दक्ष प्रजापतिने उन जगन्मयी जगदम्बाको अपने सामने प्रत्यक्ष देखकर अपनेको कृत्यकृत्य समझा॥ १०॥

सिंहस्थां कालिकां कृष्णां चारुवक्त्रां चतुर्भुजाम्।
वरदाभयनीलाब्जखड्गहस्तां मनोहराम्॥ ११

आरक्तनयनां चारुमुक्तकेशीं जगत्प्रसूम्।
तुष्टाव वाग्भिश्चित्राभिः सुप्रणम्याथ सुप्रभाम्॥ १२

सिंहपर सवार, कृष्णवर्णवाली, सुन्दर मुखवाली, चार भुजाओंवाली, हाथोंमें वर-अभय-नीलकमल तथा खड्ग धारण की हुई, मनोहर, लाल नेत्रवाली, बिखरे हुए सुन्दर बालोंसे युक्त, जगत्‌की जन्मदात्री तथा सुन्दर कान्तिवाली उन कालिकाको प्रणामकर दक्ष-प्रजापतिने [अपनी] विचित्र वाणीसे उनकी स्तुति की॥ ११-१२॥

दक्ष उवाच

जगदंब महामाये जगदीशे महेश्वरि।
कृपां कृत्वा नमस्तेऽस्तु दर्शितं स्ववपुर्मम॥ १३

दक्ष बोले—हे जगदम्बे! हे महामाये! हे जगदीश्वरि! हे महेश्वरि! आपने कृपा करके मुझे अपने रूपका दर्शन दिया है, आपको मेरा नमस्कार है॥ १३॥

प्रसीद भगवत्याद्ये प्रसीद शिवरूपिणि।
प्रसीद भक्तवरदे जगन्माये नमोऽस्तु ते॥ १४

हे भगवति! हे आद्ये! मुझपर प्रसन्न हों, हे शिवरूपिणि! प्रसन्न हों, हे भक्तवरदे! प्रसन्न हों, हे जगन्माये! आपको नमस्कार है॥ १४॥

ब्रह्मोवाच

इति स्तुता महेशानी दक्षेण प्रयतात्मना।
उवाच दक्षं ज्ञात्वापि स्वयं तस्येप्सितं मुने॥ १५

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! संयत चित्तवाले दक्षने इस प्रकार महेश्वरीकी स्तुति की, तब उनके मनोरथको जानती हुई भी वे दक्षसे कहने लगीं—॥ १५॥

देव्युवाच

तुष्टाहं दक्ष भवतः सद्भक्त्या ह्यनया भृशम्।
वरं वृष्णीष्व स्वाभीष्टं नादेयं विद्यते तव॥ १६

देवी बोलीं—हे दक्ष! मैं आपकी इस भक्तिसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है, अतः अपना अभीष्ट वर माँगिये॥ १६॥

ब्रह्मोवाच

जगदम्बावचः श्रुत्वा ततो दक्षः प्रजापतिः।
सुप्रहृष्टतरः प्राह नामं नामं च तां शिवाम्॥ १७

ब्रह्माजी बोले—जगन्माताके इस वचनको सुनकर दक्ष प्रजापति अत्यन्त प्रसन्न होकर शिवाको बारंबार प्रणाम करते हुए कहने लगे—॥ १७॥

दक्ष उवाच

जगदम्ब महामाये यदि त्वं वरदा मम।
मद्वचः शृणु सुप्रीत्या मम कामं प्रपूरय॥ १८

दक्ष बोले—हे जगदम्ब! हे महामाये! यदि आप मुझे वर देना चाहती हैं, तो मेरे वचनोंको सुनिये और प्रसन्नतासे मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये॥ १८॥

मम स्वामी शिवो यो हि स जातो ब्रह्मणः सुतः।
रुद्रनामा पूर्णरूपावतारः परमात्मनः॥ १९

तवावतारो नो जातः का तत्पत्नी भवेदतः।
तं मोहय महेशानमवतीर्य क्षितौ शिवे॥ २०

जो मेरे स्वामी शिव हैं, वे रुद्रनामसे ब्रह्माके पुत्ररूपमें अवतरित हुए हैं, वे परमात्माके पूर्णावतार हैं, परंतु अभीतक आपका अवतार नहीं हुआ है, [आपके अतिरिक्त] उनकी पत्नी कौन हो सकती है? अतः हे शिवे! आप पृथ्वीपर अवतरित होकर उन्हें मोहित करें॥ १९-२०॥

त्वदृते तस्य मोहाय न शक्तान्या कदाचन।
तस्मान्मम सुता भूत्वा हरजाया भवाधुना॥ २१

[हे देवि!] आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी उन्हें मोहित नहीं कर सकती, इसलिये आप इस समय मेरी कन्याके रूपमें जन्म लेकर शिवपत्नी बनें॥ २१॥

इत्थं कृत्वा सुलीलां च भव त्वं हरमोहिनी।
ममैवैष वरो देवि सत्यमुक्तं तवाग्रतः॥ २२

इस प्रकार उत्तम लीला करके आप शिवजीको मोहमें डालें, हे देवि! मेरा यही वर है, आपके सामने मैंने सत्य कह दिया॥ २२॥

स्वार्थं न केवलं मेऽस्ति सर्वेषां जगतामपि।
ब्रह्मविष्णुशिवानां च ब्रह्मणा प्रेरितो ह्यहम्॥ २३

इसमें केवल मेरा ही स्वार्थ नहीं है, अपितु सम्पूर्ण लोकोंका और ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवजीका भी स्वार्थ है। इसीलिये ऐसा करनेके लिये ब्रह्माजीने मुझे प्रेरित किया है॥ २३॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य प्रजेशस्य वचनं जगदम्बिका।
प्रत्युवाच विहस्येति स्मृत्वा तं मनसा शिवम्॥ २४

ब्रह्माजी बोले—दक्षके इस वचनको सुनकर जगदम्बा मनमें उन शिवजीका स्मरण करके हँसकर कहने लगीं—॥ २४॥

देव्युवाच

तात प्रजापते दक्ष शृणु मे परमं वचः।
सत्यं ब्रवीमि त्वद्भक्त्या सुप्रसन्नाखिलप्रदा॥ २५
अहं तव सुता दक्ष त्वज्जायायां महेश्वरी।
भविष्यामि न संदेहस्त्वद्भक्तिवशवर्तिनी॥ २६

देवी बोलीं—हे तात! हे प्रजापते! हे दक्ष! मेरी सत्य बात सुनिये। मैं आपकी भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न होकर सब कुछ प्रदान करनेवाली हूँ। हे दक्ष! मैं महेश्वरी आपकी पुत्री बनूँगी, इसमें सन्देह नहीं। मैं आपकी भक्तिके वशमें हो गयी हूँ॥ २५-२६॥

तथा यत्नं करिष्यामि तपः कृत्वा सुदुःसहम्।
हरजाया भविष्यामि तद्वरं प्राप्य चानघ॥ २७

हे अनघ! मैं अत्यन्त कठोर तप करके ऐसा प्रयत्न करूँगी, जिससे शिवजीसे वरको प्राप्तकर उनकी पत्नी बन जाऊँ॥ २७॥

नान्यथा कार्यसिद्धिर्हि निर्विकारी च स प्रभुः।
विधेर्विष्णोश्च संसेव्यः पूर्ण एव सदाशिवः॥ २८

वे प्रभु सदाशिव ब्रह्मा तथा विष्णुके सेव्य, विकाररहित तथा पूर्ण हैं। अतः बिना तपके इस प्रकारकी कार्यसिद्धि नहीं हो सकती है॥ २८॥

अहं तस्य सदा दासी प्रिया जन्मनि जन्मनि।
मम स्वामी स वै शंभुर्नानारूपधरोऽपि ह॥ २९

मैं तो प्रत्येक जन्ममें उनकी प्रिय दासी हूँ और अनेक प्रकारके रूप धारण करनेवाले वे सदाशिव मेरे स्वामी हैं॥ २९॥

वरप्रभावाद् भ्रुकुटेरवतीर्णो विधेः स च।
अहं तद्वरतोऽपीहावतरिष्ये तदाज्ञया॥ ३०

वे वरके प्रभावसे ब्रह्माजीकी भृकुटिसे अवतीर्ण हुए हैं और मैं भी उन्हींकी आज्ञासे ब्रह्माजीके वरदानसे इस लोकमें अवतार लूँगी॥ ३०॥

गच्छ स्वभवनं तात मया ज्ञाता तु दूतिका।
हरजाया भविष्यामि भूत्वा ते तनयाचिरात्॥ ३१

हे तात! अब आप अपने घर जाइये। मैंने अपनी दूतीको सारी बात बता दी है। मैं [कुछ ही दिनोंमें] आपकी कन्या बनकर शीघ्र ही शिवकी पत्नी बनूँगी॥ ३१॥

इत्युक्त्वा सद्वचो दक्षं शिवाज्ञां प्राप्य चेतसि।
पुनः प्रोवाच सा देवी स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम्॥ ३२

इस प्रकार दक्षप्रजापतिसे श्रेष्ठ वचन कहकर और मनमें शिवकी आज्ञा पाकर वे शिवजीके चरणकमलोंका ध्यान करके पुनः कहने लगीं—॥ ३२॥

परन्तु प्रण आधेयो मनसा ते प्रजापते।
श्रावयिष्यामि ते तं वै सत्यं जानीहि नो मृषा॥ ३३

देवी बोलीं—हे प्रजापते! परंतु मेरी एक प्रतिज्ञा अपने मनमें सदैव रखना। मैं उस प्रतिज्ञाको तुम्हें सुना देती हूँ, उसे सत्य समझना, असत्य नहीं॥ ३३॥

यदा भवान् मयि पुनर्भवेन्मंदादरस्तदा।
देहं त्यक्ष्ये निजं सत्यं स्वात्मन्यस्म्यथ वेतरम्॥ ३४

यदि आपने कभी मेरा अनादर किया तो मैं अपना शरीर त्याग दूँगी, यह सत्य है। मैं सर्वथा स्वतन्त्र हूँ, अतः दूसरा शरीर धारण करूँगी॥ ३४॥

एष दत्तस्तव वरः प्रतिसर्गं प्रजापते।
अहं तव सुता भूत्वा भविष्यामि हरप्रिया॥ ३५

हे प्रजापते! मैं प्रत्येक सर्गमें आपकी कन्या बनकर शिवजीकी पत्नी बनूँगी—मैंने यह वरदान आपको दिया॥ ३५॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा महेशानी दक्षं मुख्यप्रजापतिम्।
अंतर्दधे द्रुतं तत्र सम्यग् दक्षस्य पश्यतः॥ ३६

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार दक्ष प्रजापतिसे कहकर वे महेश्वरी उनके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गयीं॥ ३६॥

अंतर्हितायां दुर्गायां स दक्षोऽपि निजाश्रमम्।
जगाम च मुदं लेभे भविष्यति सुतेति सा॥ ३७

देवीके अन्तर्धान होनेपर दक्ष भी अपने घर चले गये और यह विचारकर आनन्दित हो गये कि देवी मेरी कन्या बनकर अवतार ग्रहण करेंगी॥ ३७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे दक्षवरप्राप्तिवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें दक्षवरप्राप्तिवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

ब्रह्माकी आज्ञासे दक्षद्वारा मैथुनी सृष्टिका आरम्भ, अपने पुत्र हर्यश्वों तथा सबलाश्वोंको निवृत्तिमार्गमें भेजनेके कारण दक्षका नारदको शाप देना

नारद उवाच

ब्रह्मन् विधे महाप्राज्ञ वद नो वदतां वर।
दक्षे गृहं गते प्रीत्या किमभूत्तदनंतरम्॥ १

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे विधे! हे महाप्राज्ञ! हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! दक्षप्रजापतिके घर चले जानेके बाद फिर क्या हुआ? यह सब [वृत्तान्त] प्रीतिपूर्वक कहिये॥ १॥

ब्रह्मोवाच

दक्षः प्रजापतिर्गत्वा स्वाश्रमं हृष्टमानसः।
सर्गं चकार बहुधा मानसं मम चाज्ञया॥ २
तमबृंहितमालोक्य प्रजासर्गं प्रजापतिः।
दक्षो निवेदयामास ब्रह्मणे जनकाय मे॥ ३

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] दक्षप्रजापतिने अपने आश्रममें जाकर प्रसन्नचित्त हो मेरी आज्ञासे बहुत-सी मानसी सृष्टि की, किंतु उस प्रजासृष्टिको बढ़ता हुआ न देखकर दक्ष अपने पिता मुझ ब्रह्मासे कहने लगे—॥ २-३॥

दक्ष उवाच

ब्रह्मंस्तात प्रजानाथ वर्धन्ते न प्रजाः प्रभो।
मया विरचिताः सर्वास्तावत्यो हि स्थिताः खलु॥ ४

दक्ष बोले—हे तात! हे ब्रह्मन्! हे प्रजानाथ! मेरे द्वारा बनायी गयी प्रजाएँ बढ़ नहीं रही हैं। मैंने भली प्रकारसे विचारकर देख लिया है कि मैंने जितनी भी सृष्टि की है, वह उतनी ही है॥ ४॥

किं करोमि प्रजानाथ वर्धेयुः कथमात्मना।
तदुपायं समाचक्ष्व प्रजाः कुर्यां न संशयः॥ ५

हे प्रजानाथ! मैं क्या करूँ? यह मेरी प्रजा किस प्रकार बढ़ेगी? आप कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे प्रजाओंके सृष्टिक्रमका विस्तार करूँ॥ ५॥

ब्रह्मोवाच

दक्ष प्रजापते तात शृणु मे परमं वचः।
तत्कुरुष्व सुरश्रेष्ठ शिवस्ते शं करिष्यति॥ ६

ब्रह्माजी बोले—हे दक्ष! हे प्रजापते! हे तात! मेरी उत्तम बात सुनिये और उसे कीजिये। हे सुरश्रेष्ठ! भगवान् शंकर आपका कल्याण करेंगे॥ ६॥

या च पञ्चजनस्याङ्गसुता रम्या प्रजापतेः।
असिक्नी नाम पत्नीत्वे प्रजेश प्रतिगृह्यताम्॥ ७

हे प्रजेश! पंचजन प्रजापतिकी जो असिक्नी नामक सुन्दर पुत्री है, उसे आप पत्नीरूपसे ग्रहण कीजिये॥ ७॥

वामव्यवायधर्मस्त्वं प्रजासर्गमिमं पुनः।
तद्विधायां च कामिन्यां भूरिशो भावयिष्यसि॥ ८

अभीतक आप पत्नीरहित होकर धर्माचरण करते रहे हैं, किंतु इस प्रकारकी पत्नीमें मैथुनधर्मसे प्रवृत्त होकर जब आप सृष्टि करेंगे, तब प्रजा बढ़ेगी॥ ८॥

ब्रह्मोवाच

ततः समुत्पादयितुं प्रजा मैथुनधर्मतः।
उपयेमे वीरणस्य निदेशान्मे सुतां ततः॥ ९

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] तब दक्षप्रजापतिने मैथुनधर्मसे प्रजासृष्टि करनेके लिये मेरी आज्ञासे वीरणकी कन्याके साथ विवाह किया॥ ९॥

अथ तस्यां स्वपत्न्यां च वीरिण्यां स प्रजापतिः।
हर्यश्वसंज्ञानयुतं दक्षः पुत्रानजीजनत्॥ १०

प्रजापति दक्षने अपनी पत्नी उस वीरिणीके गर्भसे हर्यश्व नामक दस हजार पुत्रोंको उत्पन्न किया॥ १०॥

अपृथग्धर्मशीलास्ते सर्व आसन् सुता मुने।
पितृभक्तिरता नित्यं वेदमार्गपरायणाः॥ ११

हे मुने! वे सभी पुत्र समान धर्माचरण करनेवाले, पिताकी भक्तिमें तत्पर रहनेवाले और सदा वेदमार्गका अनुसरण करनेवाले थे॥ ११॥

पितृप्रोक्ताः प्रजासर्गकरणार्थं ययुर्दिशम्।
प्रतीचीं तपसे तात सर्वे दाक्षायणाः सुताः॥ १२

हे तात! वे सभी दक्षपुत्र अपने पिताकी आज्ञा पाकर सृष्टिके उद्देश्यसे तपस्याहेतु पश्चिम दिशाकी ओर चले गये॥ १२॥

तत्र नारायणसरस्तीर्थं परमपावनम्।
सङ्गमो यत्र सञ्जातो दिव्यसिन्धुसमुद्रयोः॥ १३

वहाँपर परम पवित्र नारायणसर नामक तीर्थ है, जहाँ दिव्य सिन्धु नदी तथा समुद्रका संगम हुआ है॥ १३॥

तदुपस्पर्शनादेव प्रोत्पन्नमतयोऽभवन्।
धर्मे पारमहंसे च विनिर्धूतमलाशयाः॥ १४

उस तीर्थके स्पर्शमात्रसे उनकी बुद्धि अत्यन्त निर्मल हो गयी और पापके दूर होते ही वे सभी परमहंसधर्ममें स्थित हो गये॥ १४॥

प्रजाविवृद्धये ते वै तेपिरे तत्र सत्तमाः।
दाक्षायणा दृढात्मानः पित्रादेशसुयंत्रिताः॥ १५

तत्पश्चात् दृढ़चित्तवाले तथा श्रेष्ठ वे दक्षपुत्र पिताकी आज्ञासे बँधे होनेके कारण प्रजावृद्धिके लिये तप करने लगे॥ १५॥

त्वं च तान् नारद ज्ञात्वा तपतः सृष्टिहेतवे।
अगमस्तत्र भूरीणि हार्दमाज्ञाय मापतेः॥ १६

अदृष्ट्वा तं भुवः सृष्टिं कथं कर्तुं समुद्यताः।
हर्यश्वा दक्षतनया इत्यवोचंस्तमादरात्॥ १७

हे नारद! सृष्टिसंवर्धनहेतु उन्हें घोर तप करते हुए जानकर और विष्णुका मनोगत अभिप्राय समझकर आप उनके पास गये और आदरपूर्वक आपने उनसे कहा—हे दक्षपुत्र हर्यश्वो! तुमलोग पृथिवीका विस्तार न जानकर सृष्टिकर्ममें किस प्रकार प्रवृत्त हुए हो?॥ १६-१७॥

ब्रह्मोवाच

तं निशम्याथ हर्यश्वास्ते त्वदुक्तमतंद्रिताः।
औत्पत्तिकधियः सर्वे स्वयं विममृशुर्भृशम्॥ १८

सुशास्त्रजनकादेशं यो न वेद निवर्तकम्।
स कथं गुणविश्रंभी कर्तुं सर्गमुपक्रमेत्॥ १९

इति निश्चित्य ते पुत्राः सुधियश्चैकचेतसः।
प्रणम्य तं परिक्रम्यायुर्मार्गमनिवर्तकम्॥ २०

नारद त्वं मनः शंभोर्लोकानन्यचरो मुने।
निर्विकारो महेशानमनोवृत्तिकरस्तदा॥ २१

काले गते बहुतरे मम पुत्रः प्रजापतिः।
नाशं निशम्य पुत्राणां नारदादन्वतप्यत॥ २२

मुहुर्मुहुरुवाचेति सुप्रजस्त्वं शुचां पदम्।
शुशोच बहुशो दक्षः शिवमायाविमोहितः॥ २३

अहमागत्य सुप्रीत्या सांत्वयं दक्षमात्मजम्।
शांतिभावं प्रदर्श्यैव दैवं प्रबलमित्युत॥ २४

अथ दक्षः पञ्चजन्यां मया स परिसांत्वितः।
सबलाश्वाभिधान् पुत्रान् सहस्रं चाप्यजीजनत्॥ २५

तेऽपि जग्मुस्तत्र सुताः पित्रादिष्टा दृढव्रताः।
प्रजासर्गे यत्र सिद्धाः स्वपूर्वभ्रातरो ययुः॥ २६

तदुपस्पर्शनादेव नष्टाघा विमलाशयाः।
तेपुर्महत्तपस्तत्र जपन्तो ब्रह्म सुव्रताः॥ २७

प्रजासर्गोद्यतांस्तान् वै ज्ञात्वा गत्वेति नारद।
पूर्ववच्चागदो वाक्यं संस्मरन्नैश्वरीं गतिम्॥ २८

ब्रह्माजी बोले—वे हर्यश्वगण आपकी कही हुई बात सुनकर सृष्टिके विषयमें सावधान होकर मनमें बहुत विचार करने लगे॥ १८॥

जो उत्तम शास्त्ररूपी पिताके निवृत्तिपरक वचनोंको नहीं जानता, वह मात्र गुणोंपर ही विश्वास रखनेवाली सृष्टिका उपक्रम किस प्रकार कर सकता है?॥ १९॥

वे परम बुद्धिमान् दक्षपुत्र एकाग्र बुद्धिसे ऐसा विचारकर देवर्षि नारदकी परिक्रमा करके एवं उन्हें प्रणामकर निवृत्तिमार्गमें परायण हो गये॥ २०॥

हे नारद! हे मुने! आप शिवके मन हैं और लोकमें पर्यटन करते रहते हैं तथा निर्विकार रहकर शिवकी चित्तवृत्तिके अनुसार रहते हैं॥ २१॥

बहुत काल बीतनेपर मेरे पुत्र दक्षप्रजापति नारदजीके द्वारा अपने पुत्रोंके नाशको सुनकर बहुत सन्तप्त हुए॥ २२॥

उस समय आपने शोक करते हुए दक्षसे बार-बार कहा कि आप अच्छी सन्तानवाले थे, [जो कि आपके पुत्र श्रेष्ठ मार्गका अनुसरण करते हुए मुक्त हो गये] किंतु वे दक्ष शिवकी मायासे मोहित हो बार-बार शोक करते रहे॥ २३॥

तदनन्तर दक्षके पास आकर मैंने उन्हें शान्तिभावका उपदेशकर सान्त्वना देते हुए कहा [शोक मत करो], दैव बड़ा प्रबल होता है॥ २४॥

तब दक्षप्रजापतिने मेरे द्वारा धीरज बँधाये जानेपर पुनः पंचजनकी कन्या [असिक्नी]-के गर्भसे सबलाश्व नामक हजार पुत्रोंको उत्पन्न किया॥ २५॥

दृढ़ व्रतवाले वे सबलाश्व भी पिताकी आज्ञासे सृष्टिसंवर्धनहेतु वहाँ गये, जहाँ उनसे पूर्व उनके भाई गये थे और सिद्ध हो गये थे॥ २६॥

वे भी उस तीर्थके स्पर्शमात्रसे सर्वथा निष्पाप तथा शुद्ध अन्तःकरणवाले हो गये और उत्तम व्रतमें परायण होकर ब्रह्मका जप करते हुए कठिन तप करने लगे॥ २७॥

हे नारद! आपने सृष्टि करनेके लिये उन्हें तपस्यामें उद्यत देखकर उनके पास जाकर ईश्वरकी गतिका स्मरण करते हुए वही उपदेश दिया, जो पूर्वमें उनके भाइयोंको दिया था॥ २८॥

भ्रातृपंथानमादिश्य त्वं मुनेऽमोघदर्शनः।
अयाश्चोर्ध्वगतिं तेऽपि भ्रातृमार्गं ययुः सुताः॥ २९

हे मुने! आपका दर्शन निष्फल नहीं होता, इसलिये आपने उनको भी पूर्वके भाइयोंके मार्गका उपदेश किया, जिससे वे भी अपने भाइयोंके मार्गका अनुसरण करते हुए उसी मार्गपर चले गये॥ २९॥

उत्पातान् बहुशोऽपश्यत्तदैव स प्रजापतिः।
विस्मितोऽभूत्स मे पुत्रो दक्षो मनसि दुःखितः॥ ३०

उसी समय दक्षप्रजापतिको अनेक उत्पात दिखायी पड़ने लगे। वे अपने पुत्रोंको आया न देखकर आश्चर्यचकित होकर मनमें दुखी हो गये॥ ३०॥

पूर्ववत् त्वत्कृतं दक्षः शुश्राव चकितो भृशम्।
पुत्रनाशं शुशोचाति पुत्रशोकविमूर्च्छितः॥ ३१

उन्होंने आपके द्वारा प्रथम पुत्रोंके नाशके समान ही इन पुत्रोंके भी नाशका जब समाचार सुना, तो वे आश्चर्यमें भरकर पुत्रशोकसे मूर्च्छित हो अत्यन्त सन्तप्त हो उठे॥ ३१॥

चुक्रोध तुभ्यं दक्षोऽसौ दुष्टोऽयमिति चाब्रवीत्।
आगतस्तत्र दैवात् त्वमनुग्रहकरस्तदा॥ ३२

वे दक्ष आपपर कुपित हो गये और कहने लगे कि यह नारद दुष्ट है। उसी समय दैवयोगसे उनके पुत्रोंपर अनुग्रह करनेवाले आप भी दक्षके पास आ गये॥ ३२॥

शोकाविष्टः स दक्षो हि रोषविस्फुरिताधरः।
उपलभ्य तमाहत्य धिग्धिक् प्रोच्य विगर्हयन्॥ ३३

उस समय वे प्रजापति दक्ष क्रोधमें भरकर अपने ओठोंको फड़फड़ाते हुए आपके पास आये और आपको धिक्कारते हुए निन्दापूर्वक कहने लगे— ॥ ३३॥

दक्ष उवाच

किं कृतं तेऽधमश्रेष्ठ साधूनां साधुलिङ्गतः।
भिक्षोर्मार्गोऽर्भकानां वै दर्शितोऽसाधुकारि नः॥ ३४

दक्ष बोले—हे अधमोंमें श्रेष्ठ! तुमने साधुका रूप धारणकर मेरे सत्पुत्रोंको यह कैसा उपदेश किया? तुमने मेरे इन पुत्रोंको इस प्रकार भिक्षुमार्गका उपदेश क्यों किया, जो उनके लिये कल्याणकारी नहीं था॥ ३४॥

ऋणैस्त्रिभिरमुक्तानां लोकयोरुभयोः कृतः।
विघातः श्रेयसोऽमीषां निर्दयेन शठेन ते॥ ३५

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य यो गृहात्प्रव्रजेत्पुमान्।
मातरं पितरं त्यक्त्वा मोक्षमिच्छन् व्रजत्यधः॥ ३६

तुम्हारे-जैसे निर्दयी शठने देव, ऋषि तथा पितृ-ऋणसे मुक्त हुए बिना ही मेरे पुत्रोंको ऐसा उपदेशकर उनके इस लोक तथा परलोकके कल्याणको नष्ट कर दिया, क्योंकि जो बिना तीनों ऋणों*से मुक्त हुए ही माता-पिताको छोड़कर मोक्षकी इच्छा करता हुआ निवृत्तिमार्गका अनुसरण करता है, वह नरकगामी होता है॥ ३५-३६॥

निर्दयस्त्वं सुनिर्लज्जः शिशुधीभिद्यशोऽपहा।
हरेः पार्षदमध्ये हि वृथा चरसि मूढधीः॥ ३७

तुम निर्दयी, अत्यन्त निर्लज्ज हो, बालकोंको बहकानेवाले तथा यशको नष्ट करनेवाले हो। हे मूर्ख! तुम हरिके पार्षदोंके बीचमें व्यर्थ ही विचरण करते हो॥ ३७॥

मुहुर्मुहुरभद्रं त्वमचरो मेऽधमाधम।
विभवेद् भ्रमतस्तेऽतः पदं लोकेषु न स्थिरम्॥ ३८

हे अधमाधम! तुमने बार-बार मेरा अहित किया है। इसलिये लोकमें भ्रमण करते हुए तुम्हारा पैर स्थिर न रहे॥ ३८॥

---

* ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक वेद-शास्त्रोंके स्वाध्यायसे ऋषि-ऋण, यज्ञ और पूजा आदिसे देव-ऋण तथा पुत्रके उत्पादनसे पितृ-ऋणका निवारण होता है।

शशापेति शुचा दक्षस्त्वां तदा साधुसंमतम्।
बुबोध नेश्वरेच्छां स शिवमायाविमोहितः॥ ३९

शापं प्रत्यग्रहीच्च त्वं स मुने निर्विकारधीः।
एष एव ब्रह्मसाधो सहते सोऽपि च स्वयम्॥ ४०

इस प्रकार शिवजीकी मायासे मोहित हुए दक्षने ईश्वरकी इच्छाको नहीं समझा और सज्जनोंके मान्य आपको शोकसन्तप्त होकर शाप दे दिया और हे मुने! निर्मल बुद्धिवाले आपने भी दक्ष प्रजापतिके इस शापको ग्रहण कर लिया, हे ब्रह्मसाधो! ऐसा साधु स्वयं इस प्रकारके अपकारको सहन कर लेता है॥ ३९-४०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे दक्षसृष्टौ नारदशापो नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें दक्षकी सृष्टि [उपाख्यान]-में नारद-शापवर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

दक्षकी साठ कन्याओंका विवाह, दक्षके यहाँ देवी शिवा (सती)-का प्राकट्य, सतीकी बाललीलाका वर्णन

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे देवमुने लोकपितामहः।
तत्रागममहं प्रीत्या ज्ञात्वा तच्चरितं द्रुतम्॥ १

ब्रह्माजी बोले—हे देवमुने! इसी समय मैं लोकपितामह ब्रह्मा भी इस चरित्रको जानकर प्रीतिपूर्वक शीघ्रतासे वहाँ पहुँचा॥ १॥

असान्त्वयमहं दक्षं पूर्ववत्सुविचक्षणः।
अकार्षं तेन सुस्नेहं तव सुप्रीतिमावहन्॥ २

मैंने पूर्वकी भाँति दक्ष प्रजापतिको धैर्य धारण कराया, जिससे वे प्रसन्न हो आपसे पूर्ववत् स्नेह करने लगे॥ २॥

स्वात्मजं मुनिवर्यं त्वां सुप्रीत्या देववल्लभम्।
समाश्वास्य समादाय प्रत्यपद्ये स्वधाम ह॥ ३

हे मुनिवर्य! मैं देवताओंके प्रिय अपने पुत्र आपको प्रेमपूर्वक बहुत धीरज देकर अपने साथ लेकर आश्रमको लौट आया॥ ३॥

ततः प्रजापतिर्दक्षोऽनुनीतो मे निजस्त्रियाम्।
जनयामास दुहितॄः सुभगाः षष्टिसंमिताः॥ ४

तदनन्तर दक्षप्रजापतिने मेरी आज्ञासे अपनी स्त्रीमें साठ सौभाग्यवती कन्याओंको उत्पन्न किया॥ ४॥

तासां विवाहं कृतवान् धर्मादिभिरतंद्रितः।
तदेव शृणु सुप्रीत्या प्रवदामि मुनीश्वर॥ ५

दक्षने आलस्यरहित होकर उन कन्याओंका विवाह धर्मादिकोंके साथ जिस प्रकार किया, उसे प्रीतिपूर्वक सुनिये। हे मुनीश्वर! उसको मैं कह रहा हूँ॥ ५॥

ददौ दश सुता दक्षो धर्माय विधिवन्मुने।
त्रयोदश कश्यपाय मुनये त्रिनवेन्दवे॥ ६
भूताङ्गिरःकृशाश्वाभ्यां द्वे द्वे पुत्र्यौ प्रदत्तवान्।
तार्क्ष्याय चापराः कन्याः प्रसूतिप्रसवैर्यतः॥ ७
त्रिलोकाः पूरितास्तन्नो वर्ण्यते व्यासतो भयात्॥ ८

हे मुने! दक्षने दस कन्याएँ धर्मको, तेरह कश्यप मुनिको और सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमाको विधिपूर्वक दीं। दो-दो कन्याएँ अंगिरा तथा कृशाश्वको और अन्य कन्याएँ तार्क्ष्यको दीं। जिनकी प्रसूति-परम्परासे यह समस्त जगत् व्याप्त है, विस्तारके भयसे मैं उनका वर्णन नहीं कर रहा हूँ॥ ६—८॥

केचिद्वदंति तां ज्येष्ठां मध्यमां चापरे शिवाम्।
सर्वानन्तरजां केचित्कल्पभेदात् त्रयं च सत्॥ ९

कुछ लोग शिवाको इन कन्याओंसे ज्येष्ठ कहते हैं, कोई मध्यम कहते हैं और कोई सबसे छोटी मानते हैं, किंतु कल्पभेदसे ये तीनों ही सही हैं॥ ९॥

अनंतरं सुतोत्पत्तेः सपत्नीकः प्रजापतिः।
दक्षो दधौ सुप्रीत्या तां मनसा जगदम्बिकाम्॥ १०

कन्याकी उत्पत्तिके अनन्तर पत्नीसहित दक्ष प्रजापतिने अत्यन्त प्रेमसे अपने मनमें जगदम्बाका ध्यान किया॥ १०॥

अतः प्रेम्णा च तुष्टाव गिरा गद्गदया हि सः।
भूयो भूयो नमस्कृत्य साञ्जलिर्विनयान्वितः॥ ११

उन्होंने गद्गद स्वरसे प्रेमपूर्वक विनययुक्त होकर हाथ जोड़कर बार-बार नमस्कार करके उनकी स्तुति की॥ ११॥

सन्तुष्टा सा तदा देवी विचारं मनसीति च।
चक्रेऽवतारं वीरिण्यां कुर्यां पणविपूर्तये॥ १२
अथ सोवास मनसि दक्षस्य जगदम्बिका।
विललास तदातीव स दक्षो मुनिसत्तम॥ १३

तब वे देवी सन्तुष्ट होकर मनमें विचार करने लगीं कि मुझे अपनी प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेके लिये वीरिणीमें अवतार लेना चाहिये। इसके बाद उन जगदम्बाने दक्षके मनमें निवास किया। हे मुनिसत्तम! उस समय वे अत्यन्त शोभित होने लगे॥ १२-१३॥

सुमुहूर्तेन दक्षोऽपि स्वपत्न्यां निदधे मुदा।
दक्षपत्न्यास्तदा चित्ते शिवोवास दयान्विता॥ १४
आविर्बभूव चिह्नानि दोहदस्याखिलानि वै॥ १५

उन्होंने उत्तम शुभ मुहूर्तमें अपनी स्त्रीमें प्रसन्नतापूर्वक गर्भाधान किया। तब वे दयामयी शिवा दक्षपत्नीके हृदयमें निवास करने लगीं और दक्षकी स्त्रीमें गर्भके समस्त लक्षण प्रकट होने लगे॥ १४-१५॥

विरेजे वीरिणी तात हृष्टचित्ताधिकं च सा।
शिवावासप्रभावात्तु महामङ्गलरूपिणी॥ १६

हे तात! गर्भमें शिवाके निवासके प्रभावसे वे दक्षपत्नी वीरिणी महामंगल-स्वरूपा और [पहलेकी अपेक्षा] अधिक प्रसन्नचित्त हो गयीं॥ १६॥

कुलस्य संप्रदायैश्च श्रुतेश्चित्तसमुन्नतेः।
व्यधत्त सुक्रिया दक्षः प्रीत्या पुंसवनादिकाः॥ १७
उत्सवोऽतीव सञ्जातस्तदा तेषु च कर्मसु।
वित्तं ददौ द्विजातिभ्यो यथाकामं प्रजापतिः॥ १८

उस समय दक्षने अपने कुलके सम्प्रदायके अनुसार, वेदके अनुसार तथा अपने सम्मानके अनुरूप प्रसन्नतापूर्वक पुंसवनादि सभी संस्कार किये। उन पुंसवनादि कर्मोंमें महान् उत्सव हुआ। दक्ष प्रजापतिने ब्राह्मणोंको उस समय यथेष्ट धन प्रदान किया॥ १७-१८॥

अथ तस्मिन्नवसरे सर्वे हर्यादयः सुराः।
ज्ञात्वा गर्भगतां देवीं वीरिण्यां ते मुदं ययुः॥ १९
तत्रागत्य च सर्वे ते तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम्।
लोकोपकारकरिणीं प्रणम्य च मुहुर्मुहुः॥ २०

उस समय विष्णु आदि सभी देवगण देवीको वीरिणीके गर्भमें आयी हुई जानकर प्रसन्न हो गये और वहाँ आकर उन सबने लोकका उपकार करनेवाली उन जगदम्बाको बार-बार प्रणाम करके उनकी स्तुति की॥ १९-२०॥

कृत्वा ततस्ते बहुधा प्रशंसां हृष्टमानसाः।
दक्षप्रजापतेश्चैव वीरिण्याः स्वगृहं ययुः॥ २१

इसके बाद प्रसन्नचित्त होकर वीरिणी तथा दक्ष प्रजापतिकी बहुत ही प्रशंसाकर वे अपने-अपने घर चले गये॥ २१॥

गतेषु नवमासेषु कारयित्वा च लौकिकीम्।
गतिं शिवा च पूर्णे सा दशमे मासि नारद॥ २२
आविर्बभूव पुरतो मातुः सद्यस्तदा मुने।
मुहूर्ते सुखदे चन्द्रग्रहतारानुकूलके॥ २३

हे नारद! हे मुने! इस प्रकार नौ मास पूर्ण हो जानेपर समस्त लौकिक क्रिया कर लेनेके बाद जब दसवाँ मास पूर्ण हो गया, तब वे शिवा चन्द्र, ग्रह, तारा [आदि]-के अनुकूल होनेपर सुखद मुहूर्तमें शीघ्र ही माताके सामने प्रकट हो गयीं॥ २२-२३॥

तस्यां तु जातमात्रायां सुप्रीतोऽसौ प्रजापतिः।
शैवदेवीति तां मेने दृष्ट्वा तां तेजसोल्बणाम्॥ २४

उनके उत्पन्न होते ही प्रजापति दक्ष बड़े प्रसन्न हुए तथा उनके प्रकृष्ट तेजको देखकर उन्होंने उन्हें वही शिवादेवी समझा॥ २४॥

तदाभूत्पुष्पसद्वृष्टिर्मेघाश्च ववृषुर्जलम्।
दिशः शांता द्रुतं तस्यां जातायां च मुनीश्वर॥ २५

अवादयन्त त्रिदशाः शुभवाद्यानि खे गताः।
जज्वलुश्चाग्नयः शांताः सर्वमासीत्सुमङ्गलम्॥ २६

हे मुनीश्वर! उन देवीके उत्पन्न होते ही उस समय आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी, मेघोंने जलकी वर्षा प्रारम्भ कर दी और सभी दिशाएँ शान्त हो गयीं। देवता आकाशमें स्थित होकर उत्तम बाजे बजाने लगे और शान्त अग्नियाँ प्रज्वलित हो उठीं। इस प्रकार [सभी दिशाओंमें] मंगल-ही-मंगल हो गया॥ २५-२६॥

वीरिणीसंभवां दृष्ट्वा दक्षस्तां जगदम्बिकाम्।
नमस्कृत्य करौ बद्ध्वा बहु तुष्टाव भक्तितः॥ २७

वीरिणीमें उत्पन्न हुई उन जगदम्बाको देखकर दक्ष भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार करके स्तुति करने लगे॥ २७॥

दक्ष उवाच

महेशानि नमस्तुभ्यं जगदम्बे सनातनि।
कृपां कुरु महादेवि सत्ये सत्यस्वरूपिणि॥ २८

दक्ष बोले—हे महेशानि! हे सनातनि! हे जगदम्बे! आपको नमस्कार है, हे सत्ये! हे सत्यस्वरूपिणि! हे महादेवि! [मेरे ऊपर] दया करें॥ २८॥

शिवा शांता महामाया योगनिद्रा जगन्मयी।
या प्रोच्यते वेदविद्भिर्नमामि त्वां हितावहाम्॥ २९

वेदके ज्ञाता जिन्हें शिवा, शान्ता, महामाया, योगनिद्रा तथा जगन्मयी कहते हैं, उन आप हितकारिणी देवीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ २९॥

यया धाता जगत्सृष्टौ नियुक्तस्तां पुराकरोत्।
तां त्वां नमामि परमां जगद्धात्रीं महेश्वरीम्॥ ३०

जिन्होंने पूर्वकालमें ब्रह्माजीको उत्पन्नकर इस जगत्‌की सृष्टिके कार्यमें नियुक्त किया है, उन परमा जगन्माता आप महेश्वरीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ३०॥

यया विष्णुर्जगत्स्थित्यै नियुक्तस्तां सदाकरोत्।
तां त्वां नमामि परमां जगद्धात्रीं महेश्वरीम्॥ ३१

यया रुद्रो जगन्नाशे नियुक्तस्तां सदाकरोत्।
तां त्वां नमामि परमां जगद्धात्रीं महेश्वरीम्॥ ३२

जिन्होंने सदा संसारके पालनके लिये विष्णुको नियुक्त किया है, उन परमा जगन्माता आप महेश्वरीको मैं नमस्कार करता हूँ। जिन्होंने संसारके विनाशके लिये रुद्रको नियुक्त किया है, उन परमा जगन्माता आप महेश्वरीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ३१-३२॥

रजःसत्त्वतमोरूपां सर्वकार्यकरीं सदा।
त्रिदेवजननीं देवीं त्वां नमामि च तां शिवाम्॥ ३३

सत्त्व-रज-तमरूपोंवाली, सर्वदा समस्त कार्योंको साधनेवाली तथा तीनों देवताओंको उत्पन्न करनेवाली उन आप शिवादेवीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ३३॥

यस्त्वां विचिंतयेद् देवि विद्याविद्यात्मिकां पराम्।
तस्य भुक्तिश्च मुक्तिश्च सदा करतले स्थिता॥ ३४

हे देवि! जो आपको विद्या-अविद्या—इन दोनों रूपोंसे स्मरण करता है, उसके हाथमें भोग तथा मोक्ष दोनों ही स्थित हो जाते हैं॥ ३४॥

यस्त्वां प्रत्यक्षतो देवि शिवां पश्यति पावनीम्।
तस्यावश्यं भवेन्मुक्तिर्विद्याविद्याप्रकाशिका॥ ३५

हे देवि! जो परमपावनी शिवास्वरूपा आपका प्रत्यक्ष दर्शन करता है, उसे विद्या तथा अविद्याको प्रकाशित करनेवाली मुक्ति अपने-आप मिल जाती है॥ ३५॥

ये स्तुवंति जगन्मातर्भवानीमंबिकेति च।
जगन्मयीति दुर्गेति सर्वं तेषां भविष्यति॥ ३६

हे जगदम्बे! जो अम्बिका, जगन्मयी एवं दुर्गा—इन नामोंसे आप भवानीका स्तवन करते हैं, उनके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं॥ ३६॥

ब्रह्मोवाच

इति स्तुता जगन्माता शिवा दक्षेण धीमता।
तथोवाच तदा दक्षं यथा माता शृणोति न॥ ३७

ब्रह्मा बोले—जब इस प्रकार जगन्माता शिवाकी स्तुति दक्षप्रजापतिने की, तब वे दक्षसे इस प्रकारसे कहने लगीं, जिससे कि माता वीरिणी न सुन सकें॥ ३७॥

सर्वं सम्मोह्य तथ्यं च तथा दक्षः शृणोतु तत्।
नान्यस्तथा शिवा प्राह नानोतिः परमेश्वरी॥ ३८

नाना प्रकारके रूपोंको धारण करनेवाली उन परमेश्वरी शिवाने सबको मोहित करके इस प्रकार सत्य कहा कि उसे केवल दक्ष ही सुन सकें, अन्य कोई नहीं॥ ३८॥

देव्युवाच

अहमाराधिता पूर्वं सुतार्थं ते प्रजापते।
ईप्सितं तव सिद्धं तु तपो धारय संप्रति॥ ३९

देवी बोलीं—हे प्रजापते! आपने मुझे पुत्रीरूपसे प्राप्त करनेहेतु पहले मेरी आराधना की थी, वह आपका अभीष्ट पूरा हुआ, अब आप पुनः तपस्या कीजिये॥ ३९॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तदा देवी दक्षं च निजमायया।
आस्थाय शैशवं भावं जनन्यंते रुरोद सा॥ ४०

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार दक्षसे कहकर वे देवी अपनी मायासे शिशुका रूप धारणकर माताके पास रोने लगीं॥ ४०॥

अथ तद् रोदनं श्रुत्वा स्त्रियो वाक्यं ससंभ्रमाः।
आगतास्तत्र सुप्रीत्या दास्योऽपि च ससंभ्रमाः॥ ४१

दृष्ट्वासिक्नीसुतारूपं ननन्दुः सर्वयोषितः।
सर्वे पौरजनाश्चापि चक्रुर्जयरवं तदा॥ ४२

उस रोदनको सुनकर और उसे स्त्रीका शब्द जानकर स्त्रियाँ तथा समस्त दासियाँ भी आश्चर्यचकित हो प्रीतिपूर्वक वहाँ गयीं। असिक्नीकी सुताके रूपको देखकर सभी स्त्रियाँ परम प्रसन्न हुईं। उस समय समस्त नगरवासियोंने भी जय-जयकार किया॥ ४१-४२॥

उत्सवश्च महानासीद् गानवाद्यपुरःसरम्।
दक्षोऽसिक्नी मुदं लेभे शुभं दृष्ट्वा सुताननम्॥ ४३

दक्षः श्रुतिकुलाचारं चक्रे च विधिवत्तदा।
दानं ददौ द्विजातिभ्योऽन्येभ्यश्च द्रविणं तथा॥ ४४

नगरमें गाने-बजानेके साथ महान् उत्सव होने लगा। पुत्रीका सुन्दर मुख देखकर असिक्नी तथा दक्ष परम प्रसन्न हुए। दक्षप्रजापतिने विधिपूर्वक वेदविहित कुलाचार किया और ब्राह्मणोंको दान दिया तथा अन्य लोगोंको भी बहुत-सा धन दिया॥ ४३-४४॥

बभूव सर्वतो गानं नर्तनं च यथोचितम्।
नेदुर्वाद्यानि बहुशः सुमङ्गलपुरःसरम्॥ ४५

वहाँ सभी ओर मंगलाचारपूर्वक गायन तथा नृत्य होने लगा और अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे॥ ४५॥

अथ हर्यादयो देवाः सर्वे सानुचरास्तदा।
मुनिवृन्दैः समागत्योत्सवं चक्रुर्यथाविधि॥ ४६

[शिवाके जन्मके समय] विष्णु आदि सभी देवगण अपने-अपने अनुचरों तथा मुनियोंके साथ आकर यथाविधि अनेक उत्सव करने लगे॥ ४६॥

दृष्ट्वा दक्षसुतामम्बां जगतः परमेश्वरीम्।
नेमुः सविनयाः सर्वे तुष्टुवुश्च शुभैः स्तवैः॥ ४७

ऊचुः सर्वे प्रमुदिता गिरं जयजयात्मिकाम्।
प्रशशंसुर्मुदा दक्षं वीरिणीं च विशेषतः॥ ४८

दक्षकन्याके रूपमें [अवतरित हुई] उन परमेश्वरी जगदम्बाको देखकर देवताओंने विनयपूर्वक उन्हें प्रणाम किया और अनेक प्रकारके उत्तम स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति की। सभी देवता प्रसन्न होकर जय-जयकार करने लगे और दक्ष तथा वीरिणीकी विशेष रूपसे प्रशंसा करने लगे॥ ४७-४८॥

तदोमेति नाम चक्रे तस्या दक्षस्तदाज्ञया।
प्रशस्तायाः सर्वगुणैः सत्त्वादपि मुदान्वितः॥ ४९

नामान्यन्यानि तस्यास्तु पश्चाज्जातानि लोकतः।
महामङ्गलदान्येव दुःखघ्नानि विशेषतः॥ ५०

दक्षने प्रसन्न होकर विष्णु आदि देवताओंकी आज्ञासे सभी गुणोंसे सम्पन्न होनेके कारण उस प्रशस्त अम्बिकाका उमा—यह नाम रखा। उसके बाद लोकमें उनके अन्य नाम भी पड़े, जो मंगल करनेवाले तथा लोगोंके दुःख दूर करनेवाले थे॥ ४९-५०॥

दक्षस्तदा हरिं नत्वा मां सर्वानमरानपि।
मुनीनपि करौ बद्ध्वा स्तुत्वा चानर्च भक्तितः॥ ५१

उस समय दक्षप्रजापतिने हाथ जोड़कर विष्णु, मुझ ब्रह्मा, सम्पूर्ण मुनियों तथा देवताओंकी स्तुति करके भक्तिपूर्वक सभी लोगोंका पूजन किया॥ ५१॥

अथ विष्ण्वादयः सर्वे सुप्रशस्याजनंदनम्।
प्रीत्या ययुः स्वधामानि संस्मरन् सशिवं शिवम्॥ ५२

तदनन्तर विष्णु आदि सभी देवगण दक्षकी प्रशंसा करके शिवा तथा शिवका स्मरण करते हुए अपने-अपने स्थानोंको चले गये॥ ५२॥

अतस्तां च सुतां माता सुसंस्कृत्य यथोचितम्।
शिशुपानेन विधिना तस्यै स्तन्यादिकं ददौ॥ ५३

उसके बाद माताने भी यथोचित रूपसे उस कन्याका संस्कारकर बालकोंकी स्तनपानविधिसे उसे अपना दूध पिलाया॥ ५३॥

पालिता साथ वीरिण्या दक्षेण च महात्मना।
ववृधे शुक्लपक्षस्य यथा शशिकलान्वहम्॥ ५४

महात्मा प्रजापति दक्ष तथा वीरिणीने [बड़ी सावधानीके साथ] उस कन्याका लालन-पालन किया, जिससे वह शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी कलाके समान प्रतिदिन बढ़ने लगी॥ ५४॥

तस्यां तु सद्‌गुणाः सर्वे विविशुर्द्विजसत्तम।
शैशवेऽपि यथा चन्द्रे कलाः सर्वा मनोहराः॥ ५५

हे द्विजश्रेष्ठ! उस कन्यामें बाल्यकालमें ही सभी सद्‌गुण प्रविष्ट हो गये; जैसे चन्द्रमामें सभी मनोहर कलाएँ अपने-आप आ जाती हैं॥ ५५॥

आचरन्निजभावेन सखीमध्यगता यदा।
तदा लिलेख भर्गस्य प्रतिमामन्वहं मुहुः॥ ५६

यदा जगौ सुगीतानि शिवा बाल्योचितानि सा।
तदा स्थाणुं हरं रुद्रं सस्मार स्मरशासनम्॥ ५७

जब वह सखियोंके बीचमें जाकर अपने भावमें मग्न होती थी, तब प्रतिदिन शंकरजीकी प्रतिमाका बार-बार निर्माण करती थी। जब वह शिवा बालोचित गाने गाती, तो वह कामपर शासन करनेवाले हर, रुद्र तथा स्थाणुका [गानेके बहाने] स्मरण करती थी॥ ५६-५७॥

ववृधेऽतीव दंपत्योः प्रत्यहं करुणातुला।
तस्या बाल्येऽपि भक्तायास्तयोर्नित्यं मुहुर्मुहुः॥ ५८

दक्ष प्रजापति तथा वीरिणीका स्नेह दिन-प्रतिदिन उस कन्यापर बढ़ता ही गया। यद्यपि वह बालिका थी, फिर भी वह अपने माता-पितामें बड़ी भक्ति रखती थी॥ ५८॥

सर्वबालगुणाक्रांतां सदा स्वालयकारिणीम्।
तोषयामास पितरौ नित्यं नित्यं मुहुर्मुहुः॥ ५९

सभी बालोचित गुणोंसे परिपूर्ण वह उमा देवी अपने घरके सभी कार्योंको निपुणतासे सम्पन्नकर प्रतिदिन अपने माता-पिताको सन्तुष्ट करने लगी॥ ५९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे सतीजन्मबाललीलावर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सतीजन्म एवं बाललीलाका वर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

सतीद्वारा नन्दा-व्रतका अनुष्ठान तथा देवताओंद्वारा शिवस्तुति

ब्रह्मोवाच

अथैकदा पितुः पार्श्वे तिष्ठन्तीं तां सतीमहम्।
त्वया सह मुनेऽद्राक्षं सारभूतां त्रिलोकके॥ १

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! एक समय आपके साथ जाकर मैंने त्रिलोकीकी सर्वस्वभूता उन सतीको अपने पिताके पास बैठी हुई देखा॥ १॥

पित्रा नमस्कृतं वीक्ष्य सत्कृतं त्वां च मां सती।
प्रणनाम मुदा भक्त्या लोकलीलानुसारिणी॥ २

पिताके द्वारा नमस्कृत तथा सत्कृत होते हुए हमदोनोंको देखकर लोकलीलाका अनुसरण करनेवाली उन सतीने प्रेमपूर्वक भक्तिके साथ आपको तथा मुझे प्रणाम किया॥ २॥

प्रणामान्ते सतीं वीक्ष्य दक्षदत्तशुभासने।
स्थितोऽहं नारद त्वं च विनतामहमागदम्॥ ३

त्वामेव यः कामयते यं तु कामयसे सति।
तमाप्नुहि पतिं देवं सर्वज्ञं जगदीश्वरम्॥ ४

यो नान्यां जगृहे नापि गृह्णाति न ग्रहीष्यति।
जायां स ते पतिर्भूयादनन्यसदृशः शुभे॥ ५

हे नारद! प्रणाम करनेके पश्चात् दक्षके द्वारा दिये गये आसनपर हम दोनों बैठ गये, इसके बाद विनम्र सतीको देखकर मैंने कहा—हे सति! जो तुम्हें चाहता है तथा जिसे तुम चाहती हो, उन सर्वज्ञ जगदीश्वरको तुम पतिरूपमें प्राप्त करो। जिसने [तुम्हारे अतिरिक्त] दूसरी स्त्रीका पाणिग्रहण नहीं किया है, जो वर्तमानमें भी न करते हैं, न करेंगे और हे शुभे! जिनकी समता कोई और करनेवाला नहीं है, वे ही [इस समय] तुम्हारे पति हों॥ ३—५॥

इत्युक्त्वा सुचिरं तां वै स्थित्वा दक्षालये पुनः।
विसृष्टौ तेन संयातौ स्वस्थानं तौ च नारद॥ ६

हे नारद! ऐसा कहकर कुछ दिन दक्षके घर निवासकर हमदोनों उनसे विदा लेकर अपने-अपने स्थानपर चले गये॥ ६॥

दक्षोऽभवच्च सुप्रीतस्तदाकर्ण्य गतज्वरः।
आददे तनयां स्वां तां मत्वा हि परमेश्वरीम्॥ ७

मेरी बात सुनकर दक्ष परम प्रसन्न होकर चिन्तारहित हो गये और अपनी कन्याको परमेश्वरी जानकर उनका बड़ा सत्कार करने लगे॥ ७॥

इत्थं विहारै रुचिरैः कौमारैर्भक्तवत्सला।
जहाववस्थां कौमारीं स्वेच्छाधृतनराकृतिः॥ ८

अपनी इच्छासे मनुष्यशरीर धारण करनेवाली, भक्तवत्सला देवीने मनोहर कौमारोचित विहार करके अपनी कौमार्यावस्था समाप्त की॥ ८॥

बाल्यं व्यतीत्य सा प्राप किञ्चिद्यौवनतां सती।
अतीव तपसाङ्गेन सर्वांगेषु मनोहरा॥ ९

अपनी तपस्याके प्रभावसे सर्वांगमनोहरा उन सतीने धीरे-धीरे बाल्यावस्था समाप्तकर युवावस्थाको प्राप्त किया॥ ९॥

दक्षस्तां वीक्ष्य लोकेशः प्रोद्भिन्नान्तर्वयःस्थिताम्।
चिंतयामास भर्गाय कथं दास्य इमां सुताम्॥ १०

लोकेश दक्षप्रजापति उस कन्याको युवावस्थाको प्राप्त हुई देखकर विचार करने लगे कि अपनी इस पुत्रीको शिवके लिये किस प्रकार प्रदान करूँ॥ १०॥

अथ सापि स्वयं भर्गं प्राप्तुमैच्छत्तदान्वहम्।
पितुर्मनोगतिं ज्ञात्वा मातुर्निकटमागता॥ ११

पप्रच्छाज्ञां तपोहेतोः शंकरस्य विशालधीः।
मातुः शिवाथ वीरिण्याः सा सती परमेश्वरी॥ १२

ततः सती महेशानं पतिं प्राप्तुं दृढव्रता।
सा तमाराधयामास गृहे मातुरनुज्ञया॥ १३

इधर, वे सती भी प्रतिदिन शिवको प्राप्त करनेकी इच्छा करने लगीं। पिताके मनोभावको जानकर वे माताके पास आयीं। विशाल बुद्धिवाली उन सती परमेश्वरीने शंकरको प्राप्त करनेकी इच्छासे तप करनेके लिये अपनी माता वीरिणीसे आज्ञा माँगी। तब दृढ़ व्रतवाली वे सती माताकी आज्ञासे महेश्वरको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये घरमें ही तपस्या करने लगीं॥ ११—१३॥

आश्विने मासि नन्दायां तिथावानर्च भक्तितः।
गुडौदनैः सलवणैर्हरं नत्वा निनाय तम्॥ १४

उन्होंने आश्विनमासकी प्रत्येक नन्दा तिथि—प्रतिपदा, षष्ठी तथा एकादशीमें गुड़, भात तथा लवणसे भक्तिपूर्वक हरका पूजन किया, इस प्रकार उस मासको बिता दिया॥ १४॥

कार्तिकस्य चतुर्दश्यामपूपैः पायसैरपि।
समाकीर्णैः समाराध्य सस्मार परमेश्वरम्॥ १५

कार्तिकमासकी चतुर्दशीको खीर तथा अपूपसे शिवजीकी आराधनाकर वे उनका स्मरण करने लगीं॥ १५॥

मार्गशीर्षेऽसिताष्टम्यां सतिलैः सयवौदनैः।
पूजयित्वा हरं कीलैर्निनाय दिवसान् सती॥ १६

वे मार्गशीर्षके कृष्णपक्षकी अष्टमीको यव, तिल एवं चावलसहित कीलोंसे शिवजीका पूजनकर दिन बिताने लगीं॥ १६॥

पौषे तु शुक्लसप्तम्यां कृत्वा जागरणं निशि।
अपूजयच्छिवं प्रातः कृशरान्नेन सा सती॥ १७

वे सती पौषमासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको रात्रिमें जागरण करके प्रात:काल खिचड़ीसे शिवका पूजन करने लगीं॥ १७॥

माघे तु पौर्णमास्यां सा कृत्वा जागरणं निशि।
आर्द्रवस्त्रा नदीतीरेऽकरोच्छंकरपूजनम्॥ १८

माघकी पूर्णिमा तिथिको रात्रिमें जागरणकर प्रात:काल भीगे कपड़े पहनकर वे नदीके किनारे शिवका पूजन करने लगीं॥ १८॥

तपस्यासितभूतायां कृत्वा जागरणं निशि।
विशेषतः समानर्च शैलूषैः सर्वयामसु॥ १९

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीको रात्रिमें जागरणकर सब प्रहरोंमें बिल्वपत्र तथा बिल्वफलसे शिवकी विशेष पूजा करने लगीं॥ १९॥

चैत्रे शुक्लचतुर्दश्यां पलाशैर्दमनैः शिवम्।
अपूजयद्दिवारात्रौ संस्मरन् सा निनाय तम्॥ २०

चैत्र शुक्ल चतुर्दशीको वे सती पलाशपुष्प तथा दवनों [दौनों]-से शिवजीकी पूजा करती थीं और दिन-रात उनका स्मरण करती हुई समय व्यतीत करती थीं॥ २०॥

राधशुक्लतृतीयायां तिलाहारयवौदनैः।
पूजयित्वा सती रुद्रं गव्यैर्मासं निनाय तम्॥ २१

वैशाख शुक्ल तृतीयाको गव्य, तिलाहार, यव एवं चावलोंसे शिवजीका पूजनकर उस मासको व्यतीत करने लगीं॥ २१॥

ज्येष्ठस्य पूर्णिमायां वै रात्रौ संपूज्य शंकरम्।
वसनैर्बृहतीपुष्पैर्निराहारा निनाय तम्॥ २२

ज्येष्ठकी पूर्णिमाके दिन निराहार रहकर रात्रिमें वस्त्र एवं भटकटैयाके पुष्पोंसे शिवजीका पूजन करके वे सती उस मासको व्यतीत करने लगीं॥ २२॥

आषाढस्य चतुर्दश्यां शुक्लायां कृष्णवाससा।
बृहतीकुसुमैः पूजा रुद्रस्याकारि वै तथा॥ २३

वे आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशीको काले वस्त्र एवं भटकटैयाके पुष्पोंसे शिवजीकी पूजा करने लगीं॥ २३॥

श्रावणस्य सिताष्टम्यां चतुर्दश्यां च सा शिवम्।
यज्ञोपवीतैर्वासोभिः पवित्रैरप्यपूजयत्॥ २४

वे श्रावण शुक्ल अष्टमी तथा चतुर्दशी तिथिको पवित्र यज्ञोपवीत तथा वस्त्रोंसे शिवका पूजन करने लगीं॥ २४॥

भाद्रे कृष्णत्रयोदश्यां पुष्पैर्नानाविधैः फलैः।
संपूज्य च चतुर्दश्यां चकार जलभोजनम्॥ २५

भाद्रपद कृष्ण चतुर्दशीको अनेक प्रकारके पुष्पों तथा फलोंसे शिवका पूजन करके वे चतुर्दशी तिथिमें केवल जलका आहार करती थीं॥ २५॥

नानाविधैः फलैः पुष्पैः सस्यैस्तत्कालसंभवैः।
चक्रे सुनियताहारा जपन्मासे शिवार्चनम्॥ २६

इस प्रकार वे परिमित आहार करके जप करती हुई उन-उन कालोंमें उत्पन्न होनेवाले नाना प्रकारके फल,पुष्प तथा शस्योंद्वारा प्रत्येक महीने शिवार्चन करती थीं॥ २६॥

सर्वमासे सर्वदिने शिवार्चनरता सती।
दृढव्रताभवद्देवी स्वेच्छाधृतनराकृतिः॥ २७

अपनी इच्छासे मानवरूप धारण करनेवाली वे सती दृढ़ व्रतसे युक्त होकर सभी महीनोंमें तथा सभी दिनोंमें शिवपूजनमें तत्पर रहने लगीं॥ २७॥

इत्थं नंदाव्रतं कृत्स्नं समाप्य सुसमाहिता।
दध्यौ शिवं सती प्रेम्णा निश्चलाभूदनन्यधीः॥ २८

इस प्रकार नन्दाव्रतको पूर्णरूपसे समाप्त करके भगवान् शिवमें अनन्य भाव रखनेवाली सती एकाग्रचित्त होकर बड़े प्रेमसे भगवान् शिवका ध्यान करने लगीं तथा उनके ध्यानमें ही निश्चलभावसे स्थित हो गयीं॥ २८॥

एतस्मिन्नन्तरे देवा मुनयश्चाखिला मुने।
विष्णुं मां च पुरस्कृत्य ययुर्द्रष्टुं सतीतपः॥ २९

हे मुने! इसी समय सब देवता और ऋषि भगवान् विष्णुको और मुझको आगे करके सतीकी तपस्या देखनेके लिये गये॥ २९॥

दृष्ट्वागत्य सती देवैर्मूर्ता सिद्धिरिवापरा।
शिवध्यानमहामग्ना सिद्धावस्थां गता तदा॥ ३०

वहाँ आकर देवताओंने देखा कि सती मूर्तिमती दूसरी सिद्धिके समान जान पड़ती हैं। वे उस समय भगवान् शिवके ध्यानमें निमग्न थीं और सिद्धावस्थामें पहुँच गयी थीं॥ ३०॥

चक्रुः सर्वे सुराः सत्यै मुदा साञ्जलयो नतिम्।
मुनयश्च नतस्कंधा विष्ण्वाद्याः प्रीतमानसाः॥ ३१

विष्णु आदि समस्त देवताओं तथा मुनियोंने प्रसन्नचित्त होकर दोनों हाथ जोड़कर तथा सिर झुकाकर प्रेमपूर्वक सतीको नमस्कार किया॥ ३१॥

अथ सर्वे सुप्रसन्नाः विष्ण्वाद्याश्च सुरर्षयः।
प्रशशंसुस्तपस्तस्याः सत्यास्तस्मात्सविस्मयाः॥ ३२

इसके बाद अति प्रसन्न श्रीविष्णु आदि सब देवता और मुनिगण आश्चर्यचकित होकर सती देवीकी तपस्याकी [भूरि-भूरि] प्रशंसा करने लगे॥ ३२॥

ततः प्रणम्य तां देवीं पुनस्ते मुनयः सुराः।
जग्मुर्गिरिवरं सद्यः कैलासं शिववल्लभम्॥ ३३

तदनन्तर वे सभी देवता और ऋषिगण सती देवीको पुनः प्रणामकर भगवान् शिवजीके परमप्रिय श्रेष्ठ कैलास पर्वतपर शीघ्र ही चले गये॥ ३३॥

सावित्रीसहितश्चाहं सह लक्ष्म्या मुदान्वितः।
वासुदेवोऽपि भगवाञ्जगामाथ हरान्तिकम्॥ ३४

लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णु और सावित्री-सहित मैं भी प्रसन्नतापूर्वक भगवान् शिवके समीप गया॥ ३४॥

गत्वा तत्र प्रभुं दृष्ट्वा सुप्रणम्य ससंभ्रमाः।
तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः करौ बद्ध्वा विनम्रकाः॥ ३५

वहाँ पहुँचकर आश्चर्यचकित होकर सभी लोगोंने प्रभुका दर्शनकर उन्हें प्रणाम किया और दोनों हाथ जोड़कर अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे वे उनकी स्तुति करने लगे॥ ३५॥

देवा ऊचुः

नमो भगवते तुभ्यं यत एतच्चराचरम्।
पुरुषाय महेशाय परेशाय महात्मने॥ ३६
आदिबीजाय सर्वेषां चिद्रूपाय पराय च।
ब्रह्मणे निर्विकाराय प्रकृतेः पुरुषस्य च॥ ३७
य इदं प्रतिपच्येदं येनेदं विचकास्ति हि।
यस्मादिदं यतश्चेदं यस्येदं त्वं च यत्रतः॥ ३८

योऽस्मात्परस्माच्च परो निर्विकारी महाप्रभुः।
ईक्षते यः स्वात्मनीदं तं नताः स्म स्वयंभुवम्॥ ३९

अविद्धदृक् परः साक्षी सर्वात्मानेकरूपधृक्।
आत्मभूतः परब्रह्म तपन्तं शरणं गताः॥ ४०

न यस्य देवा ऋषयः सिद्धाश्च न विदुः पदम्।
कः पुनर्जंतुरपरो ज्ञातुमर्हति वेदितुम्॥ ४१
दिदृक्षवो यस्य पदं मुक्तसङ्गाः सुसाधवः।
चरन्ति सुगतिर्नस्त्वं सलोकव्रतमव्रणम्॥ ४२

त्वज्जन्मादिविकारा नो विद्यन्ते केऽपि दुःखदाः।
तथापि मायया त्वं हि गृह्णासि कृपया च तान्॥ ४३

तस्मै नमः परेशाय तुभ्यमाश्चर्यकर्मणे।
नमो गिरां विदूराय ब्रह्मणे परमात्मने॥ ४४

अरूपायोरुरूपाय परायानन्तशक्तये।
त्रिलोकपतये सर्वसाक्षिणे सर्वगाय च॥ ४५
नम आत्मप्रदीपाय निर्वाणसुखसंपदे।
ज्ञानात्मने नमस्तेऽस्तु व्यापकायेश्वराय च॥ ४६

नैष्कर्म्येण सुलभ्याय कैवल्यपतये नमः।
पुरुषाय परेशाय नमस्ते सर्वदाय च॥ ४७

देवता बोले—परम पुरुष, महेश्वर, परमेश्वर और महान् आत्मावाले, सभी प्राणियोंके आदिबीज, चेतन-स्वरूप, परात्पर, ब्रह्मस्वरूप, निर्विकार और प्रकृति तथा पुरुषसे परे उन आप भगवान्‌को नमस्कार है, जिनसे यह चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है॥ ३६-३७॥

जो प्रपंचरूपसे स्वयं सृष्टिस्वरूप हैं तथा जिनकी सत्तासे समस्त संसार भासित हो रहा है, जिनके द्वारा यह जगत् उत्पन्न हुआ है, जिनके अधीन यह समस्त जगत् है, जिनका यह सब कुछ है॥ ३८॥

जो इस जगत्‌के बाहर तथा भीतर व्याप्त हैं, जो निर्विकार और महाप्रभु हैं, जो अपनी आत्मामें ही इस समस्त विश्वको देखते हैं, उन स्वयम्भू परमेश्वरको हमलोग नमस्कार कर रहे हैं॥ ३९॥

जिनकी दृष्टि कही नहीं रुकती, जो परात्पर, सभी प्राणियोंके साक्षी, सर्वात्मा, अनेक रूपोंको धारण करनेवाले, आत्मस्वरूप, परब्रह्म तथा तप करनेवाले हैं, हमलोग उनकी शरणमें आये हैं॥ ४०॥

देवता, ऋषि तथा सिद्ध भी जिनके पदको नहीं जानते हैं तो फिर अन्य प्राणी उनको किस प्रकार जान सकते हैं? और किस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं? जिनको देखनेके लिये मुक्तसंग साधुजन ब्रह्मचर्यादि व्रतोंका आचरण करते हैं, वे आप हमारी उत्तम गति हैं॥ ४१-४२॥

हे प्रभो! दुःख देनेवाले जन्मादि कोई भी विकार आपमें नहीं होते, फिर भी आप अपनी मायासे कृपापूर्वक उन्हें ग्रहण करते हैं॥ ४३॥

आश्चर्यमय कर्म करनेवाले उन आप परमात्माको नमस्कार है। वाणीसे सर्वथा परे आप परब्रह्म परमात्माको नमस्कार है॥ ४४॥

बिना रूपके होते हुए भी बहुत रूपोंवाले, परात्पर, अनन्तशक्तिसे समन्वित, त्रिलोकपति, सर्वसाक्षी तथा सर्वव्यापीको नमस्कार है। स्वयं प्रकाशमान, निर्वाणसुख तथा सम्पत्तिस्वरूप, ज्ञानात्मा तथा व्यापक आप ईश्वरको नमस्कार है॥ ४५-४६॥

निष्काम कर्मके द्वारा प्राप्त होनेवाले कैवल्य-पतिको नमस्कार है। परम पुरुष, परमेश्वर तथा सब कुछ देनेवाले आप प्रभुको नमस्कार है॥ ४७॥

क्षेत्रज्ञायात्मरूपाय सर्वप्रत्ययहेतवे॥ ४८

सर्वाध्यक्षाय महते मूलप्रकृतये नमः।
पुरुषाय परेशाय नमस्ते सर्वदाय च॥ ४९

क्षेत्रज्ञ, आत्मस्वरूप, सभी प्रत्ययोंके हेतु, सबके पति, महान् तथा मूलप्रकृतिको नमस्कार है। पुरुष, परेश तथा सब कुछ प्रदान करनेवाले आप [परमात्मा]-को नमस्कार है॥ ४८-४९॥

त्रिनेत्रायेषुवक्त्राय सदाभासाय ते नमः।
सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे निष्कारण नमोऽस्तु ते॥ ५०

हे कारणरहित! त्रिनेत्र, पाँच मुखवाले तथा सर्वदा ज्योतिःस्वरूप! आपको नमस्कार है। सभी इन्द्रियों और गुणोंको देखनेवाले आप परमात्माको नमस्कार है॥ ५०॥

त्रिलोककारणायाथापवर्गाय नमो नमः।
अपवर्गप्रदायाशु शरणागततारिणे॥ ५१

सर्वाम्नायागमानां चोदधये परमेष्ठिने।
परायणाय भक्तानां गुणानां च नमोऽस्तु ते॥ ५२

तीनों लोकोंके कारण, मुक्तिस्वरूप, मोक्ष प्रदान करनेवाले, शीघ्र ही शरणागतको तारनेवाले, आम्नाय [वेद] तथा आगमशास्त्रके समुद्र, परमेष्ठी तथा भक्तोंके आश्रयरूप आप प्रभुको नमस्कार है॥ ५१-५२॥

नमो गुणारणिच्छन्नचिदूष्माय महेश्वर।
मूढदुष्प्रापरूपाय ज्ञानिहृद्वासिने सदा॥ ५३

पशुपाशविमोक्षाय भक्तसन्मुक्तिदाय च।
स्वप्रकाशाय नित्यायाव्ययायाजस्रसंविदे॥ ५४

प्रत्यग्द्रष्ट्रेऽविकाराय परमैश्वर्यधारिणे।

हे महेश्वर! आप गुणरूपी अरणीसे आच्छन्न, चित्स्वरूप, अग्निरूप, मूर्खोंके द्वारा प्राप्त न होनेवाले, ज्ञानियोंके हृदयमें सदा निवास करनेवाले, संसारी जीवोंके बन्धनको काटनेवाले, उत्तम भक्तोंको मुक्ति प्रदान करनेवाले, स्वप्रकाशस्वरूप, नित्य, अव्यय, निरन्तर ज्ञानस्वरूप, प्रत्यक्ष द्रष्टा, अविकारी तथा परम ऐश्वर्य धारण करनेवाले हैं, आप प्रभुको नमस्कार है॥ ५३-५४ 1/2॥

यं भजन्ति चतुर्वर्गं कामयन्तीष्टसद्गतिम्।
सोऽभूदकरुणस्त्वं नः प्रसन्नो भव ते नमः॥ ५५

लोग धर्म-अर्थ-काम-मोक्षके लिये जिनका भजन करते हैं तथा जिनसे अपनी सद्गति चाहते हैं, ऐसे [हे प्रभो!] आप हम सभीके लिये दयारहित कैसे हो गये? हमपर प्रसन्न हों, आपको नमस्कार है॥ ५५॥

एकान्तिनः कञ्चनार्थं भक्ता वांछंति यस्य न।
केवलं चरितं ते ते गायन्ति परमङ्गलम्॥ ५६

आपके अनन्य भक्त आपसे किसी अन्य अर्थकी अपेक्षा नहीं करते हैं, वे तो केवल आपके मंगलस्वरूप चरित्रको ही गाया करते हैं॥ ५६॥

अक्षरं परमं ब्रह्म तमव्यक्ताकृतिं विभुम्।
अध्यात्मयोगगम्यं त्वां परिपूर्णं स्तुमो वयम्॥ ५७

अविनाशी, परब्रह्म, अव्यक्तस्वरूपवाले, व्यापक, अध्यात्म तथा योगसे जाननेयोग्य तथा परिपूर्ण आप प्रभुकी हमलोग स्तुति करते हैं॥ ५७॥

अतीन्द्रियमनाधारं सर्वाधारमहेतुकम्।
अनन्तमाद्यं सूक्ष्मं त्वां प्रणमामोऽखिलेश्वर॥ ५८

हे अखिलेश्वर! इन्द्रियोंसे परे, स्वयं आधाररहित, सबके आश्रय, हेतुरहित, अनन्त, आद्य और सूक्ष्म आप प्रभुको हम सभी प्रणाम करते हैं॥ ५८॥

हर्यादयोऽखिला देवास्तथा लोकाश्चराचराः।
नामरूपविभेदेन फल्ग्व्या च कलया कृताः॥ ५९

आपने अपनी तुच्छ कलामात्रसे नामरूपके द्वारा विष्णु आदि सभी देवताओं तथा इस चराचर जगत्की [अलग-अलग] सृष्टि की है॥ ५९॥

यथार्चिषोऽग्नेः सवितुर्यान्ति निर्यान्ति वासकृत्।
गभस्तयस्तथायं वै प्रवाहो गौण उच्यते॥ ६०

जैसे अग्निकी चिनगारियाँ तथा सूर्यकी किरणें बार-बार निकलती हैं और फिर उन्हींमें लीन हो जाती हैं, उसी प्रकार सृष्टिका यह प्रवाह त्रिगुणात्मक कहा जाता है॥ ६०॥

न त्वं देवोऽसुरो मर्त्यो न तिर्यङ् न द्विजः प्रभो।
न स्त्री न षंढो न पुमान्सदसन्न च किंचन॥ ६१

निषेधशेषः सर्वं त्वं विश्वकृद्विश्वपालकः।
विश्वलयकृद्विश्वात्मा प्रणताः स्मः तमीश्वरम्॥ ६२

हे प्रभो! आप न देवता हैं, न असुर हैं, न मनुष्य हैं, न पक्षी हैं, न द्विज हैं, न स्त्री हैं, न पुरुष हैं, न नपुंसक हैं; यहाँतक कि सत्-असत् कुछ भी नहीं हैं। श्रुतियोंके निषेधसे जो शेष बचता है, वही निषेध-स्वरूप आप हैं। आप विश्वकी उत्पत्ति करनेवाले, विश्वके पालक, विश्वका लय करनेवाले तथा विश्वात्मा हैं, उन ईश्वरको हम सभी प्रणाम करते हैं॥ ६१-६२॥

योगरंधितकर्माणो यं प्रपश्यन्ति योगिनः।
योगसंभाविते चित्ते योगेशं त्वां नता वयम्॥ ६३

योगसे दग्ध हुए कर्मवाले योगीलोग अपने योगासक्त चित्तमें जिन्हें देखते हैं, ऐसे आप योगेश्वरको हमलोग नमस्कार करते हैं॥ ६३॥

नमोऽस्तु तेऽसह्यवेग शक्तित्रय त्रयीमय।
नमः प्रपन्नपालाय नमस्ते भूरिशक्तये॥ ६४

हे तीनों शक्तियोंसे सम्पन्न असह्य वेगवाले! हे त्रयीमय! आपको नमस्कार है। अनन्त शक्तियोंसे युक्त तथा शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले आपको नमस्कार है॥ ६४॥

कदिंद्रियाणां दुर्गेशानवाप्य परवर्त्मने।
भक्तोद्धाररतायाथ नमस्ते गूढवर्चसे॥ ६५

यच्छक्त्याहंधियात्मानं हन्त वेद न मूढधीः।
तं दुरत्ययमाहात्म्यं त्वां नताः स्मो महाप्रभुम्॥ ६६

हे दुर्गेश! दूषित इन्द्रियवालोंके लिये आप सर्वथा दुष्प्राप्य हैं; क्योंकि आपको प्राप्त करनेका मार्ग ही दूसरा है। सदा भक्तोंके उद्धारमें तत्पर रहनेवाले तथा गुप्त शक्तिसे सम्पन्न आप प्रभुको नमस्कार है। जिनकी मायाशक्तिके कारण अहंबुद्धिसे युक्त मूर्ख अपने स्वरूपको नहीं जान पाता है, उन दुरत्यय महिमावाले आप महाप्रभुको हम नमस्कार करते हैं॥ ६५-६६॥

ब्रह्मोवाच

इति स्तुत्वा महादेवं सर्वे विष्ण्वादिकाः सुराः।
तूष्णीमासन्प्रभोरग्रे सद्भक्तिनतकंधराः॥ ६७

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार महादेवजीकी स्तुति करके मस्तक झुकाये हुए विष्णु आदि सभी देवता उत्तम भक्तिसे युक्त हो प्रभु शिवजीके आगे चुपचाप खड़े हो गये॥ ६७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे नंदाव्रतविधानशिवस्तुतिवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें नन्दाव्रतविधि तथा शिवस्तुतिवर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

ब्रह्मा और विष्णुद्वारा शिवसे विवाहके लिये प्रार्थना करना तथा उनकी इसके लिये स्वीकृति

ब्रह्मोवाच

इति स्तुतिं च हर्यादिकृतामाकर्ण्य शंकरः।
बभूवातिप्रसन्नो हि विजहास च सूतिकृत्॥ १

ब्रह्माजी बोले—भगवान् विष्णु आदि देवताओंद्वारा की गयी स्तुतिको सुनकर सबकी उत्पत्ति करनेवाले भगवान् शंकर बड़े प्रसन्न हुए और जोरसे हँसे॥ १॥

ब्रह्मविष्णू तु दृष्ट्वा तौ सस्त्रीकौ सङ्गतौ हरः।
यथोचितं समाभाष्य पप्रच्छागमनं तयोः॥ २

सपत्नीक ब्रह्माजी और भगवान् विष्णुको साथ आया हुआ देखकर महादेवजीने हमलोगोंसे यथोचित वार्तालाप करके हमारे आगमनका कारण पूछा॥ २॥

रुद्र उवाच

हे हरे हे विधे देवा मुनयश्चाद्य निर्भयाः।
निजागमनहेतुं हि कथयध्वं सुतत्त्वतः॥ ३

किमर्थमागता यूयं किं कार्यं चेह विद्यते।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि भवत्स्तुत्या प्रसन्नधीः॥ ४

रुद्र बोले—हे हरे! हे विधे! हे देवताओ और महर्षियो! आपलोग आज निर्भय होकर अपने आनेका ठीक-ठीक कारण बताइये। आपलोगोंकी स्तुतिसे मैं [बहुत ही] प्रसन्न हूँ। आपलोग किसलिये यहाँ आये हैं, कौन-सा कार्य आ पड़ा है, वह सब मैं सुनना चाहता हूँ॥ ३-४॥

ब्रह्मोवाच

इति पृष्टे हरेणाहं सर्वलोकपितामहः।
मुनेऽवोचं महादेवं विष्णुना परिचोदितः॥ ५

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! महादेवजीके इस प्रकार पूछनेपर सभी लोकोंका पितामह मैं ब्रह्मा भगवान् विष्णुकी आज्ञासे कहने लगा॥ ५॥

देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो।
यदर्थमागतावावां तच्छृणु त्वं सुरर्षिभिः॥ ६

हे देवाधिदेव! हे महादेव! हे करुणासागर! हे प्रभो! हम दोनों इन देवताओं और मुनियोंके साथ जिस उद्देश्यसे यहाँ आये हैं, उसे सुनिये॥ ६॥

विशेषतस्तवैवार्थमागता वृषभध्वज।
सहार्थिनः सदा योग्यमन्यथा न जगद्भवेत्॥ ७

हे वृषभध्वज! विशेष रूपसे आपके लिये ही हमलोग यहाँ आये हैं; क्योंकि हम तीनों सहायतार्थी हैं, [सृष्टिचक्रके संचालनरूप प्रयोजनकी सिद्धिके लिये एक-दूसरेके सहायक हैं] सहार्थीको सदा परस्पर यथायोग्य सहयोग करना चाहिये, अन्यथा यह जगत् टिक नहीं सकता॥ ७॥

केचिद्भविष्यन्त्यसुरा मम वध्या महेश्वर।
हरेर्वध्यास्तथा केचिद्भवतश्चापि केचन॥ ८

केचित्त्वद्वीर्यजातस्य तनयस्य महाप्रभो।
मायावध्याः प्रभो केचिद्भविष्यन्त्यसुराः सदा॥ ९

हे महेश्वर! कुछ ऐसे असुर उत्पन्न होंगे, जो मेरे द्वारा मारे जायँगे, कुछ भगवान् विष्णुके द्वारा और कुछ आपके द्वारा वध्य होंगे। हे महाप्रभो! कुछ आपके वीर्यसे उत्पन्न पुत्रद्वारा मारे जायँगे और कुछ असुर आपकी मायाके द्वारा वधको प्राप्त होंगे॥ ८-९॥

तवैव कृपया शंभोः सुराणां सुखमुत्तमम्।
नाशयित्वासुरान् घोराञ्जगत्स्वास्थ्यं सदाभयम्॥ १०

आप भगवान् शंकरकी कृपासे ही देवताओंको सदा उत्तम सुख प्राप्त होगा। घोर असुरोंका विनाश करके आप जगत्को सदा स्वास्थ्य एवं अभय प्रदान करेंगे॥ १०॥

योगयुक्ते त्वयि सदा रागद्वेषविवर्जिते।
दयामात्रैकनिरते न वध्या ह्यथवा तव॥ ११

आराधितेषु तेष्वीश कथं सृष्टिस्तथा स्थितिः।
अतश्च भविता युक्तं नित्यं नित्यं वृषध्वज॥ १२

आप राग-द्वेषरहित, योगयुक्त एवं सर्वथा दयालु हैं, इसलिये हो सकता है कि आप असुरोंका वध न करें। हे ईश! जब ये आराधना करके वर प्राप्त कर लेंगे, तब सृष्टिकी स्थिति किस प्रकार रहेगी? इसलिये हे वृषभध्वज! उचित यही है कि आप [इस सृष्टिकी स्थितिके लिये] सदैव असुरोंका वध करते रहें॥ ११-१२॥

सृष्टिस्थित्यन्तकर्माणि न कार्याणि यदा तदा।
शरीरभेदमस्माकं मायायाश्च न युज्यते॥ १३

यदि सृष्टि, पालन तथा संहारकर्म न करने हों, तब हमारा तथा मायाका भिन्न-भिन्न शरीर धारण करना सार्थक नहीं रहेगा॥ १३॥

एकस्वरूपा हि वयं भिन्नाः कार्यस्य भेदतः।
कार्यभेदो न सिद्धश्चेद्रूपभेदोऽप्रयोजनः॥ १४

वास्तवमें हम तीनों एक ही स्वरूपवाले हैं, किंतु कार्यके भेदसे भिन्न-भिन्न शरीर धारण करके स्थित हैं। यदि कार्यभेद न सिद्ध हो, तब तो हमारे रूपभेदका कोई प्रयोजन नहीं है॥ १४॥

एक एव त्रिधा भिन्नः परमात्मा महेश्वरः।
मायायाः कारणादेव स्वतंत्रो लीलया प्रभुः॥ १५

परमात्मा महेश्वर एक होते हुए भी अपनी मायाके कारण ही तीन रूपोंमें विभक्त हैं, वे प्रभु अपनी लीलासे स्वतन्त्र हैं॥ १५॥

वामाङ्गजो हरिस्तस्य दक्षिणाङ्गभवो ह्यहम्।
शिवस्य हृदयाज्जातस्त्वं हि पूर्णतनुः शिवः॥ १६

श्रीहरि उनके वामांगसे उत्पन्न हुए हैं, मैं ब्रह्मा उनके दाहिने अंगसे उत्पन्न हुआ हूँ और आप उन सदाशिवके हृदयसे उत्पन्न हैं, अतः आप ही शिवजीके पूर्ण रूप हैं॥ १६॥

इत्थं वयं त्रिधा भूताः प्रभो भिन्नस्वरूपिणः।
शिवाशिवसुतास्तत्त्वं हृदा विद्धि सनातन॥ १७

हे प्रभो! इस प्रकार भिन्न स्वरूपवाले हम तीन रूपोंमें प्रकट हैं और जो [वस्तुतः] उन शिवाशिवके पुत्र ही हैं। हे सनातन! इस यथार्थ तत्त्वको आप हृदयसे अनुभव कीजिये॥ १७॥

अहं विष्णुश्च सस्त्रीकौ सञ्जातौ कार्यहेतुतः।
लोककार्यकरौ प्रीत्या तव शासनतः प्रभो॥ १८

हे प्रभो! मैं और भगवान् विष्णु आपके आदेशसे प्रसन्नतापूर्वक लोककी सृष्टि और पालनका कार्य कर रहे हैं तथा कार्यकारणवश सपत्नीक भी हो गये हैं॥ १८॥

तस्माद्विश्वहितार्थाय सुराणां सुखहेतवे।
परिगृह्णीष्व भार्यार्थे रामामेकां सुशोभनाम्॥ १९

अतः आप भी विश्वहितके लिये तथा देवताओंके सुखके लिये एक परम सुन्दरी स्त्रीको पत्नीके रूपमें ग्रहण करें॥ १९॥

अन्यच्छृणु महेशान पूर्ववृत्तं स्मृतं मया।
यन्नो पुरः पुरा प्रोक्तं त्वयैव शिवरूपिणा॥ २०

हे महेश्वर! एक और बात सुनिये। मुझे पहलेके वृत्तान्तका स्मरण हो आया है, जिसे पूर्वकालमें आपने ही शिवस्वरूपसे हमारे सामने कहा था॥ २०॥

मद्रूपं परमं ब्रह्मन्नीदृशं भवदङ्गतः।
प्रकटीभविता लोके नाम्ना रुद्रः प्रकीर्तितः॥ २१

हे ब्रह्मन्! मेरा ऐसा उत्तम रूप आपके अंगसे प्रकट होगा, जो लोकमें रुद्र नामसे प्रसिद्ध होगा॥ २१॥

सृष्टिकर्ताभवद् ब्रह्मा हरिः पालनकारकः।
लयकारी भविष्यामि रुद्ररूपो गुणाकृतिः॥ २२

स्त्रियं विवाह्य लोकस्य करिष्ये कार्यमुत्तमम्।
इति संस्मृत्य स्वप्रोक्तं पूर्णं कुरु निजं पणम्॥ २३

निदेशस्तव च स्वामिन्नहं सृष्टिकरो हरिः।
पालको लयहेतुस्त्वमाविर्भूतः स्वयं शिवः॥ २४

त्वां विना न समर्थौ हि आवां च स्वस्वकर्मणि।
लोककार्यरतां तस्मादेकां गृह्णीष्व कामिनीम्॥ २५

यथा पद्मालया विष्णोः सावित्री च यथा मम।
तथा सहचरीं शंभो कान्तां गृह्णीष्व संप्रति॥ २६

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचो मे हि ब्रह्मणः पुरतो हरेः।
स मां जगाद लोकेशः स्मेराननमुखो हरः॥ २७

ईश्वर उवाच

हे ब्रह्मन् हे हरे मे हि युवां प्रियतरौ सदा।
दृष्ट्वा वां च ममानंदो भवत्यतितरां खलु॥ २८

युवां सुरविशिष्टौ हि त्रिभुवस्वामिनौ किल।
कथनं वां गरिष्ठेति भवकार्यरतात्मनोः॥ २९

उचितं न सुरश्रेष्ठौ विवाहकरणं मम।
तपोरतविरक्तस्य सदा विदितयोगिनः॥ ३०

यो निवृत्तिसुमार्गस्थः स्वात्मारामो निरंजनः।
अवधूततनुर्ज्ञानी स्वद्रष्टा कामवर्जितः॥ ३१

अविकारी ह्यभोगी च सदाशुचिरमङ्गलः।
तस्य प्रयोजनं लोके कामिन्या किं वदाधुना॥ ३२

केवलं योगलग्नस्य ममानंदः सदास्ति वै।
ज्ञानहीनस्तु पुरुषो मनुते बहु कामकम्॥ ३३

विवाहकरणं लोके विज्ञेयं परबंधनम्।
तस्मात्तस्य रुचिर्नो मे सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ ३४

आप ब्रह्मा सृष्टिकर्ता होंगे, श्रीहरि जगत्का पालन करनेवाले होंगे तथा मैं सगुण रुद्ररूप होकर संहार करनेवाला होऊँगा॥ २२॥

मैं एक स्त्रीके साथ विवाह करके लोकका उत्तम कार्य करूँगा, [हे स्वामिन्!] आप अपने द्वारा कहे गये वचनको याद करके अपनी प्रतिज्ञाको पूर्ण कीजिये॥ २३॥

हे स्वामिन्! आपका आदेश है कि मैं सृष्टि करूँ, श्रीहरि पालन करें और आप स्वयं संहारके हेतु बनकर प्रकट हों, सो आप साक्षात् शिव ही संहारकर्ताके रूपमें प्रकट हुए हैं। आपके बिना हम दोनों अपना-अपना कार्य करनेमें समर्थ नहीं हैं। अतः आप लोकहितके कार्यमें तत्पर एक कामिनीको स्वीकार करें॥ २४-२५॥

हे शम्भो! जैसे लक्ष्मी भगवान् विष्णुकी और सावित्री मेरी सहधर्मिणी हैं, उसी प्रकार आप इस समय अपनी सहचरी कान्ताको ग्रहण करें॥ २६॥

ब्रह्माजी बोले—मेरी यह बात सुनकर मुसकानयुक्त मुखमण्डलवाले वे लोकेश हर श्रीहरिके सामने मुझसे कहने लगे—॥ २७॥

ईश्वर बोले—हे ब्रह्मन्! हे विष्णो! आप दोनों मुझे सदा ही अत्यन्त प्रिय हैं, आप दोनोंको देखकर मुझे बड़ा आनन्द मिलता है॥ २८॥

आपलोग समस्त देवताओंमें श्रेष्ठ और त्रिलोकीके स्वामी हैं। लोकहितके कार्यमें मन लगाये रहनेवाले आपदोनोंका वचन अत्यन्त गौरवपूर्ण है॥ २९॥

किंतु हे सुरश्रेष्ठगण! सदा तपस्यामें संलग्न रहकर संसारसे विरत रहनेवाले और योगीके रूपमें प्रसिद्ध मेरे लिये विवाह करना उचित नहीं है; जो निवृत्तिके सुन्दर मार्गपर स्थित, अपनी आत्मामें ही रमण करनेवाला, निरंजन, अवधूत देहवाला, ज्ञानी, आत्मदर्शी, कामनासे शून्य, विकाररहित, अभोगी, सदा अपवित्र और अमंगल वेशधारी है, उसे संसारमें कामिनीसे क्या प्रयोजन है, यह इस समय मुझे बताइये॥ ३०—३२॥

मुझे तो सदा केवल योगमें लगे रहनेपर ही आनन्द आता है, ज्ञानहीन पुरुष ही भोगको अधिक महत्त्व देता है। संसारमें विवाह करना बहुत बड़ा बन्धन समझना चाहिये। इसलिये मैं सत्य-सत्य कहता हूँ कि उसमें मेरी अभिरुचि नहीं है। आत्मा ही अपना

न स्वार्थं मे प्रवृत्तिर्हि सम्यक् स्वार्थविचिंतनात्।
तथापि तत्करिष्यामि भवदुक्तं जगद्धितम्॥ ३५

मत्वा वचो गरिष्ठं वा निजोक्तिपरिपूर्तये।
करिष्यामि विवाहं वै भक्तवश्यः सदा ह्यहम्॥ ३६

उत्तम अर्थ या स्वार्थ है, उसका भलीभाँति चिन्तन करनेके कारण [लौकिक] स्वार्थमें मेरी प्रवृत्ति नहीं होती है, तथापि आपने जगत्के हितके लिये हितकर जो कुछ कहा है, उसे मैं करूँगा। आपके वचनको गरिष्ठ मानकर अथवा अपनी कही हुई बातको पूर्ण करनेके लिये मैं विवाह अवश्य करूँगा; क्योंकि मैं सदा अपने भक्तोंके अधीन हूँ॥ ३३—३६॥

परंतु यादृशीं कांतां ग्रहीष्यामि यथापणम्।
तच्छृणुष्व हरे ब्रह्मन् युक्तमेव वचो मम॥ ३७

या मे तेजः समर्था हि ग्रहीतुं स्याद्विभागशः।
तां निदेशय भार्यार्थे योगिनीं कामरूपिणीम्॥ ३८

योगयुक्ते मयि तथा योगिन्येव भविष्यति।
कामासक्ते मयि तथा कामिन्येव भविष्यति॥ ३९

हे हरे! हे ब्रह्मन्! परंतु मैं जैसी नारीको प्रिय पत्नीके रूपमें ग्रहण करूँगा और जिस शर्तके साथ करूँगा, उसे सुनें। मेरा वचन सर्वथा उचित है। जो नारी मेरे तेजको विभागपूर्वक ग्रहण करनेमें समर्थ हो, उस योगिनी तथा कामरूपिणी स्त्रीको मेरी पत्नी बनानेके लिये बतायें। जब मैं योगमें तत्पर रहूँ, तब उसे भी योगिनी बनकर रहना होगा और जब मैं कामासक्त होऊँ, तब उसे भी कामिनीके रूपमें रहना होगा॥ ३७—३९॥

यमक्षरं वेदविदो निगदन्ति मनीषिणः।
ज्योतीरूपं शिवं ते च चिंतयिष्ये सनातनम्॥ ४०

तच्चिन्तायां यदासक्तो ब्रह्मन् गच्छामि भाविनीम्।
तत्र या विघ्नजननी न भवित्री हतास्तु मे॥ ४१

वेदवेत्ता विद्वान् जिन्हें अविनाशी बतलाते हैं, उन ज्योतिःस्वरूप सनातन शिवतत्त्वका मैं सदा चिन्तन करता हूँ। हे ब्रह्मन्! उन सदाशिवके चिन्तनमें जब मैं न लगा होऊँ तब उस कामिनीके साथ मैं समागम कर सकता हूँ। जो मेरे शिव-चिन्तनमें विघ्न डालेगी, वह दुर्भगा स्त्री मेरी भार्या न बने॥ ४०-४१॥

त्वं वा विष्णुरहं वापि शिवस्य ब्रह्मरूपिणः।
अंशभूता महाभागा योग्यं तदनुचिंतनम्॥ ४२

आप ब्रह्मा, विष्णु और मैं तीनों ही महाभाग्यशाली ब्रह्मस्वरूप शिवजीके अंशभूत हैं, अतः हमारे लिये उनका नित्य चिन्तन करना उचित है॥ ४२॥

तच्चिन्तया विनोद्वाहं स्थास्यामि कमलासन।
तस्माज्जायां प्रादिश त्वं मत्कर्मानुगतां सदा॥ ४३

हे कमलासन! उनके चिन्तनके लिये मैं बिना विवाहके भी रह लूँगा, किंतु उनका चिन्तन छोड़कर विवाह नहीं करूँगा। अतः आपलोग मुझे इस प्रकारकी पत्नी बताइये, जो सदा मेरे कर्मके अनुकूल चल सके॥ ४३॥

तत्राप्येकं पणं मे त्वं शृणु ब्रह्मँश्च मां प्रति।
अविश्वासो मदुक्ते चेन्मया त्यक्ता भविष्यति॥ ४४

हे ब्रह्मन्! उसमें भी मेरी एक शर्त है, उसे आप सुनें। यदि उस स्त्रीका मुझपर और मेरे वचनोंपर अविश्वास होगा, तो मैं उसे त्याग दूँगा॥ ४४॥

ब्रह्मोवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वाहं स विष्णुर्हरस्य च।
सस्मितं मोदितमनोऽवोचं चेति विनम्रकः॥ ४५

ब्रह्माजी बोले—उन रुद्रकी बात सुनकर मैंने और श्रीविष्णुने मन्द मुसकानके साथ मन-ही-मन प्रसन्नताका अनुभव किया, फिर मैंने विनम्र होकर यह कहा—॥ ४५॥

शृणु नाथ महेशान मार्गिता यादृशी त्वया।
निवेदयामि सुप्रीत्या तां स्त्रियं तादृशीं प्रभो॥ ४६

हे नाथ! हे महेश्वर! हे प्रभो! आपने जिस प्रकारकी स्त्रीका निर्देश किया है, वैसी ही स्त्रीके विषयमें मैं आपको प्रसन्नतापूर्वक बता रहा हूँ॥ ४६॥

उमा सा भिन्नरूपेण सञ्जाता कार्यसाधिनी।
सरस्वती तथा लक्ष्मीर्द्विधारूपा पुरा प्रभो॥ ४७

वे उमा जगत्‌की कार्यसिद्धिके लिये भिन्न-भिन्न रूपमें प्रकट हुई हैं। हे प्रभो! सरस्वती और लक्ष्मी ये दो रूप धारण करके वे पहले ही प्रकट हो चुकी हैं॥ ४७॥

पद्मा कांताभवद्विष्णोस्तथा मम सरस्वती।
तृतीयरूपा सा नोऽभूल्लोककार्यहितैषिणी॥ ४८

महालक्ष्मी तो विष्णुकी कान्ता तथा सरस्वती मेरी कान्ता हुई हैं। लोकहितका कार्य करनेकी इच्छावाली वे अब हमारे लिये तीसरा रूप धारण करके प्रकट हुई हैं॥ ४८॥

दक्षस्य तनया याभूत्सती नाम्ना तु सा विभो।
सैवेदृशी भवेद्भार्या भवेद्धि हितकारिणी॥ ४९

हे प्रभो! वे शिवा 'सती' नामसे दक्षपुत्रीके रूपमें अवतीर्ण हुई हैं। वे ही आपकी ऐसी भार्या हो सकती हैं, जो सदा आपके लिये हितकारिणी होंगी॥ ४९॥

सा तपस्यति देवेश त्वदर्थं हि दृढव्रता।
त्वां पतिं प्राप्तुकामा वै महातेजोवती सती॥ ५०

हे देवेश! वे दृढ़व्रतमें स्थित होकर आपके लिये तप कर रही हैं। वे महातेजस्विनी सती आपको पतिरूपमें प्राप्त करनेकी इच्छुक हैं॥ ५०॥

दातुं गच्छ वरं तस्यै कृपां कुरु महेश्वर।
तां विवाहय सुप्रीत्या वरं दत्त्वा च तादृशम्॥ ५१

हे महेश्वर! [उन सतीके ऊपर] कृपा कीजिये, उन्हें वर प्रदान करनेके लिये जाइये और वैसा वर देकर उनके साथ विवाह कीजिये॥ ५१॥

हरेर्मम च देवानामियं वाञ्छास्ति शंकर।
परिपूरय सद्दृष्ट्या पश्यामोत्सवमादरात्॥ ५२

हे शंकर! भगवान् विष्णुकी, मेरी तथा सभी देवताओंकी यही इच्छा है। आप अपनी शुभ दृष्टिसे हमारी इच्छाको पूर्ण कीजिये, जिससे हम इस उत्सवको आदरपूर्वक देख सकें॥ ५२॥

मङ्गलं परमं भूयात् त्रिलोकेषु सुखावहम्।
सर्वज्वरो विनश्येद् वै सर्वेषां नात्र संशयः॥ ५३

ऐसा होनेसे तीनों लोकोंमें सुख देनेवाला परम मंगल होगा और सबकी समस्त चिन्ताएँ मिट जायँगी, इसमें संशय नहीं है॥ ५३॥

अथवास्मद्वचःशेषेऽवदत्तं मधुसूदनः।
लीलाजाकृतिमीशानं भक्तवत्सलमच्युतः॥ ५४

मेरी बात पूरी होनेपर अच्युत मधुसूदन लीलासे रूप धारण करनेवाले भक्तवत्सल ईशानसे कहने लगे— ॥ ५४॥

विष्णुरुवाच

देवदेव महादेव करुणाकर शंकर।
यदुक्तं ब्रह्मणा सर्वं मदुक्तं तन्न संशयः॥ ५५

विष्णुजी बोले— हे देवाधिदेव! हे महादेव! हे करुणाकर! हे शम्भो! ब्रह्माजीने जो कुछ भी कहा है, उसे मेरे द्वारा कहा गया ही समझिये, इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है॥ ५५॥

तत्कुरुष्व महेशान कृपां कृत्वा ममोपरि।
सनाथं कुरु सद्दृष्ट्या त्रिलोकं सुविवाह्य ताम्॥ ५६

हे महेश्वर! मेरे ऊपर कृपा करके उसे कीजिये, उन सतीसे विवाहकर इस त्रिलोकीको अपनी कृपा-दृष्टिसे सनाथ कीजिये॥ ५६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुः तूष्णीमास मुने सुधीः।
तथास्त्विति विहस्याह स प्रभुर्भक्तवत्सलः॥ ५७

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! यह कहकर उत्तम बुद्धिवाले भगवान् विष्णु चुप हो गये, तब भक्तवत्सल भगवान् शिवजीने हँसकर 'तथास्तु' कहा॥ ५७॥

ततस्त्वावां च संप्राप्य चाज्ञां स मुनिभिः सुरैः।
अगच्छाव स्वेष्टदेशं सस्त्रीकौ परहर्षितौ॥ ५८

तत्पश्चात् उनसे आज्ञा प्राप्तकर पत्नियोंसहित हम दोनों मुनियों तथा देवताओंके साथ अपने-अपने अभीष्ट स्थानको अत्यन्त प्रसन्नताके साथ चले आये॥ ५८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे विष्णुब्रह्मकृतशिवप्रार्थनावर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें विष्णु और ब्रह्माद्वारा शिवकी प्रार्थनाका वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

भगवान् शिवद्वारा सतीको वर-प्राप्ति और शिवका ब्रह्माजीको दक्ष प्रजापतिके पास भेजना

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ता सर्वदेवैश्च कृता शंभोर्नुतिः परा।
शिवाच्च सा वरं प्राप्ता शृणु ह्यादरतो मुने॥ १

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार मैंने सभी देवताओंके द्वारा की गयी शिवजीकी उत्तम स्तुतिको आपसे कह दिया। हे मुने! सतीने जिस प्रकार शिवजीसे वर प्राप्त किया, उसे अब मुझसे सुनो॥ १॥

अथो सती पुनः शुक्लपक्षेऽष्टम्यामुपोषिता।
आश्विने मासि सर्वेशं पूजयामास भक्तितः॥ २

सतीने आश्विनमासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिको उपवासकर भक्तिपूर्वक सर्वेश्वर शिवजीका पूजन किया॥ २॥

इति नंदाव्रते पूर्णे नवम्यां दिनभागतः।
तस्यास्तु ध्यानमग्नायाः प्रत्यक्षमभवद् हरः॥ ३

इस प्रकार नन्दाव्रतके पूर्ण हो जानेपर नवमी तिथिका कुछ भाग शेष रह गया था, उस समय ध्यानमें निमग्न उन सतीके सामने शिव प्रकट हो गये॥ ३॥

सर्वाङ्गसुन्दरो गौरः पञ्चवक्त्रस्त्रिलोचनः।
चंद्रभालः प्रसन्नात्मा शितिकंठश्चतुर्भुजः॥ ४

त्रिशूलब्रह्मकवराभयधृग्भस्मभास्वरः।
स्वर्धुन्या विलसच्छीर्षः सकलाङ्गमनोहरः॥ ५

महालावण्यधामा च कोटिचन्द्रसमाननः।
कोटिस्मरसमा कांतिः सर्वथा स्त्रीप्रियाकृतिः॥ ६

वे सर्वांगसुन्दर तथा गौरवर्णके थे, उनके पाँच मुख थे और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र थे। भालदेशमें चन्द्रमा शोभा पा रहा था, उनका चित्त प्रसन्न था, उनका कण्ठ नीला था और उनकी चार भुजाएँ थीं, उन्होंने हाथोंमें त्रिशूल-ब्रह्मकपाल-वर तथा अभय मुद्राको धारण कर रखा था, भस्ममय अंगरागसे उनका शरीर उद्भासित हो रहा था, उनके मस्तकपर गंगाजी शोभा बढ़ा रही थीं तथा उनके सभी अंग मनोहर थे, वे परम सौन्दर्यके धाम थे, उनका मुख करोड़ों चन्द्रमाओंके समान प्रकाशमान था, उनकी कान्ति करोड़ों कामदेवोंके समान थी और उनकी आकृति स्त्रियोंको प्रिय लगनेवाली थी॥ ४—६॥

प्रत्यक्षतो हरं वीक्ष्य सती सेदृग्विधं प्रभुम्।
ववन्दे चरणौ तस्य सुलज्जावनतानना॥ ७

अथ प्राह महादेवः सतीं सद्व्रतधारिणीम्।
तामिच्छन्नपि भार्यार्थं तपश्चर्याफलप्रदः॥ ८

इस प्रकारके प्रभु महादेवजीको प्रत्यक्ष देखकर सतीने लज्जासे नीचेकी ओर मुख करके उनके चरणोंमें प्रणाम किया। तपस्याका फल प्रदान करनेवाले महादेवजी उत्तम व्रत धारण करनेवाली सतीको पत्नीरूपमें प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हुए भी उनसे कहने लगे— ॥ ७-८ ॥

महादेव उवाच

दक्षनंदिनि प्रीतोऽस्मि व्रतेनानेन सुव्रते।
वरं वरय संदास्ये यत्तवाभिमतं भवेत्॥ ९

महादेवजी बोले—हे दक्षनन्दिनि! मैं तुम्हारे इस व्रतसे प्रसन्न हूँ। हे सुव्रते! जो तुम्हारा अभीष्ट वर हो, उसे माँगो, मैं उसे प्रदान करूँगा॥ ९ ॥

ब्रह्मोवाच

जानन्नपीह तद्भावं महादेवो जगत्पतिः।
जगौ वरं वृणीष्वेति तद्वाक्यश्रवणेच्छया॥ १०

ब्रह्माजी बोले—[मुने!] जगदीश्वर महादेवने सतीकी भावनाको जानते हुए भी उनकी बात सुननेकी इच्छासे 'वर माँगो'—ऐसा कहा॥ १० ॥

सापि त्रपावशा युक्ता वक्तुं नो हृदि यत्स्थितम्।
शशाक सा त्वभीष्टं यत्तल्लज्जाच्छादितं पुनः॥ ११
प्रेममग्नाभवत्साति श्रुत्वा शिववचः प्रियम्।
तज्ज्ञात्वा सुप्रसन्नोऽभूच्छंकरो भक्तवत्सलः॥ १२

वे लज्जाके वशमें हो गयीं और जो उनके मनमें था, उसे कह न सकीं। उनका जो अभीष्ट था, वह लज्जासे आच्छादित हो गया था। शिवजीका प्रिय वचन सुनकर वे प्रेममें विभोर हो गयीं। इसे जानकर भक्तवत्सल शंकरजी अत्यन्त हर्षित हुए॥ ११-१२ ॥

वरं ब्रूहि वरं ब्रूहि प्राहेति स पुनर्द्रुतम्।
सतीभक्तिवशः शंभुरंतर्यामी सतां गतिः॥ १३

सत्पुरुषोंके शरणस्वरूप तथा अन्तर्यामी वे शिवजी सतीकी भक्तिके वशीभूत होकर वर माँगो, वर माँगो—ऐसा शीघ्रतापूर्वक बार-बार कहने लगे॥ १३ ॥

अथ त्रपां स्वां संधाय यदा प्राह हरं सती।
यथेष्टं देहि वरद वरमित्यनिवारकम्॥ १४

उस समय सतीने अपनी लज्जाको रोककर शिवजीसे कहा—हे वरद! आप कभी भी न टलनेवाला यथेष्ट वर प्रदान करें॥ १४ ॥

तदा वाक्यस्यावसानमनवेक्ष्य वृषध्वजः।
भव त्वं मम भार्येति प्राह तां भक्तवत्सलः॥ १५

शिवजीने अनुभव किया कि सती अपनी बात पूरी नहीं कर पा रही हैं, एतदर्थ उन्होंने स्वयं ही कहा—हे देवि! तुम मेरी पत्नी बनो॥ १५ ॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य साभीष्टफलभावनम्।
तूष्णीं तस्थौ प्रमुदिता वरं प्राप्य मनोगतम्॥ १६
सकामस्य हरस्याग्रे स्थिता सा चारुहासिनी।
अकरोन्निजभावांश्च हावान्कामविवर्धनान्॥ १७

अपने अभीष्ट फलको प्रकट करनेवाले शिवजीके वचनको सुनकर और अपना मनोगत वर प्राप्त करके सती प्रसन्न होकर चुपचाप खड़ी रहीं। वे सकाम शिवजीके सामने मन्द-मन्द मुसकराती हुई कामनाको बढ़ानेवाले अपने हाव-भाव प्रकट करने लगीं॥ १६-१७ ॥

ततो भावान्समादाय शृङ्गाराख्यो रसस्तदा।
तयोश्चित्ते विवेशाशु कला हावा यथोदितम्॥ १८

सतीद्वारा अभिव्यक्त हाव-भावको स्वीकारकर शृंगाररसने उन दोनोंके चित्तमें शीघ्रतासे प्रवेश किया॥ १८ ॥

तत्प्रवेशात्तु देवर्षे लोकलीलानुसारिणोः।
काप्यभिख्या तयोरासीच्चित्राचन्द्रमसोर्यथा॥ १९

हे देवर्षे! शृंगाररसके प्रवेश करते ही लोकलीला करनेवाले शिवजी तथा सतीकी चित्रासे युक्त चन्द्रमाके समान विलक्षण कान्ति हो गयी॥ १९ ॥

रेजे सती हरं प्राप्य स्निग्धभिन्नाञ्जनप्रभा।
चन्द्राभ्याशेऽभ्रलेखेव स्फटिकोज्ज्वलवर्ष्मण: ॥ २०

अथ सा तमुवाचेदं हरं दाक्षायणी मुहु:।
सुप्रसन्ना करौ बद्ध्वा नतका भक्तवत्सलम् ॥ २१

सत्युवाच

देवदेव महादेव विवाहविधिना प्रभो।
पितुर्मे गोचरीकृत्य मां गृहाण जगत्पते ॥ २२

ब्रह्मोवाच

एवं सतीवच: श्रुत्वा महेशो भक्तवत्सल:।
तथास्त्विति वच: प्राह निरीक्ष्य प्रेमतश्च ताम् ॥ २३

दाक्षायण्यपि तं नत्वा शंभुं विज्ञाप्य भक्तित:।
प्राप्ताज्ञा मातुरभ्याशमगान्मोहमुदान्विता ॥ २४

हरोऽपि हिमवत्प्रस्थं प्रविश्य च निजाश्रमम्।
दाक्षायणीवियोगाद्वै कृच्छ्रं ध्यानपरोऽभवत् ॥ २५

समाधाय मन: शंभुर्लौकिकीं गतिमाश्रित:।
चिंतयामास देवर्षे मनसा मां वृषध्वज: ॥ २६

तत: संचिन्त्यमानोऽहं महेशेन त्रिशूलिना।
पुरस्तात्प्राविशत्तूर्णं हरसिद्धिप्रचोदित: ॥ २७

यत्रासौ हिमवत्प्रस्थे तद्वियोगी हर: स्थित:।
सरस्वतीयुतस्तात तत्रैव समुपस्थित: ॥ २८

सरस्वतीयुतं मां च देवर्षे वीक्ष्य स प्रभु:।
उत्सुक: प्रेमबद्धश्च सत्या शंभुरुवाच ह ॥ २९

शंभुरुवाच

अहं ब्रह्मन्स्वार्थपर: परिग्रहकृतौ च यत्।
तदा स्वत्वमिव स्वार्थे प्रतिभाति ममाधुना ॥ ३०

अहमाराधित: सत्या दाक्षायण्याथ भक्तित:।
तस्यै वरो मया दत्तो नंदाव्रतप्रभावत: ॥ ३१

काले तथा चिकने अंजनके समान कान्तिवाली सती स्फटिकमणिके सदृश कान्तियुक्त उन शिवजीको प्राप्तकर इस प्रकार शोभित हुईं, जिस प्रकार अभ्रलेखा [मेघघटा] चन्द्रमाको प्राप्तकर शोभित होती है ॥ २० ॥

तदनन्तर दक्षकन्या सती अत्यन्त प्रसन्न होकर दोनों हाथोंको जोड़कर भक्तवत्सल भगवान् शिवजीसे विनम्रता-पूर्वक कहने लगीं— ॥ २१ ॥

सती बोलीं—हे देवदेव! हे महादेव! हे प्रभो! हे जगत्पते! आप मेरे पिताके समक्ष वैवाहिक विधिसे मुझे ग्रहण कीजिये ॥ २२ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! इस प्रकार सतीकी बात सुनकर भक्तवत्सल महादेवजीने प्रेमपूर्वक उनकी ओर देखकर यह वचन कहा—ऐसा ही होगा ॥ २३ ॥

तब दक्षकन्या सती भी उन शिवजीको प्रणाम करके भक्तिपूर्वक विदा माँगकर और पुन: उनकी आज्ञा प्राप्त करके मोह और आनन्दसे युक्त हो अपनी माताके पास चली गयीं। शिवजी भी हिमालयके शिखरपर अपने आश्रममें प्रवेश करके दक्षकन्या सतीके वियोगके कारण बड़ी कठिनाईसे ध्यानमें तत्पर हो सके ॥ २४-२५ ॥

देवर्षे! मनको एकाग्र करके लौकिक गतिका आश्रय लेकर वृषध्वज शंकरने मन-ही-मन मेरा स्मरण किया ॥ २६ ॥

तब त्रिशूलधारी महेश्वरके स्मरण करनेपर उनकी सिद्धिसे प्रेरित होकर मैं शीघ्र ही उनके समीप पहुँच गया और हे तात! हिमालयके शिखरपर जहाँ सतीके वियोगजनित दु:खका अनुभव करनेवाले महादेवजी विद्यमान थे, वहीं मैं सरस्वतीसहित उपस्थित हो गया ॥ २७-२८ ॥

हे देवर्षे! तदनन्तर सरस्वतीसहित मुझ ब्रह्माको देखकर सतीके प्रेममें बँधे हुए शिवजी उत्सुकतापूर्वक कहने लगे— ॥ २९ ॥

शम्भु बोले—हे ब्रह्मन्! मैं जबसे विवाहके कार्यमें स्वार्थबुद्धि कर बैठा हूँ, तबसे अब मुझे इस स्वार्थमें ही स्वत्व-सा प्रतीत हो रहा है ॥ ३० ॥

दक्षकन्या सतीने बड़े भक्तिभावसे मेरी आराधना की है और मैंने नन्दाव्रतके प्रभावसे उसे [अभीष्ट] वर दे दिया है ॥ ३१ ॥

भर्ता भवेति च तया मत्तो ब्रह्मन् वरो वृतः।
मम भार्या भवेत्युक्तं मया तुष्टेन सर्वथा॥ ३२

हे ब्रह्मन्! उस सतीने मुझसे यह वर माँगा कि आप मेरे पति हो जाइये। तब सर्वथा सन्तुष्ट होकर मैंने भी कह दिया कि तुम मेरी पत्नी हो जाओ॥ ३२॥

अथावदत्तदा मां सा सती दाक्षायणी त्विति।
पितुर्मे गोचरीकृत्य मां गृहाण जगत्पते॥ ३३

तदप्यङ्गीकृतं ब्रह्मन्मया तद्भक्तितुष्टितः।
सा गता भवनं मातुरहमत्रागतो विधे॥ ३४

तदनन्तर उस सतीने मुझसे कहा—हे जगत्पते! मेरे पिताको सूचित करके [वैवाहिक विधिका पालन करते हुए] मुझे ग्रहण कीजिये। हे ब्रह्मन्! उसकी भक्तिसे सन्तुष्ट हुए मैंने उसे भी स्वीकार कर लिया। हे विधे! [इस प्रकारका वर प्राप्तकर] सती अपनी माताके पास चली गयी और मैं यहाँ चला आया॥ ३३-३४॥

तस्मात्त्वं गच्छ भवनं दक्षस्य मम शासनात्।
तां दक्षोऽपि यथा कन्यां दद्यान्मेऽरं तथा वद॥ ३५

इसलिये हे ब्रह्मन्! आप मेरी आज्ञासे दक्षके घर जाइये और वे दक्षप्रजापति जिस प्रकार मुझे शीघ्र अपनी कन्या प्रदान करें, उस प्रकार उनसे कहिये॥ ३५॥

सतीवियोगभङ्गः स्याद्यथा मे त्वं तथा कुरु।
समाश्वासय तं दक्षं सर्वविद्याविशारदः॥ ३६

जिस प्रकार मेरा सतीवियोग भंग हो, वैसा उपाय आप कीजिये। आप सभी प्रकारकी विद्याओंमें निपुण हैं, अतः [इस बातके लिये] दक्षप्रजापतिको समझाइये॥ ३६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युदीर्य महादेवः सकाशे मे प्रजापतेः।
सरस्वतीं विलोक्याशु वियोगवशगोऽभवत्॥ ३७

ब्रह्माजी बोले—यह कहकर वे शिवजी मुझ ब्रह्माके समीप स्थित सरस्वतीको देखकर शीघ्र ही सतीके वियोगके वशीभूत हो गये॥ ३७॥

तेनाहमपि चाज्ञप्तः कृतकृत्यो मुदान्वितः।
प्रावोचं चेति जगतां नाथं तं भक्तवत्सलम्॥ ३८

उनकी आज्ञा पाकर मैं कृतकृत्य और प्रसन्न हो गया तथा उन भक्तवत्सल जगत्पतिसे यह कहने लगा— ॥ ३८॥

ब्रह्मोवाच

यदात्थ भगवन् शम्भो तद्विचार्य सुनिश्चितम्।
मुख्यः स्वार्थो हि देवानां ममापि वृषभध्वज॥ ३९

दक्षस्तुभ्यं सुतां स्वां च स्वयमेव प्रदास्यति।
अहं चापि वदिष्यामि त्वद्वाक्यं तत्समक्षतः॥ ४०

ब्रह्माजी बोले—भगवन्! हे शम्भो! आपने जो कुछ कहा है, उसपर भलीभाँति विचार करके हमलोगोंने [पहले ही] उसे सुनिश्चित कर दिया है। हे वृषभध्वज! इसमें देवताओंका और मेरा भी मुख्य स्वार्थ है। दक्ष प्रजापति स्वयं ही आपको अपनी पुत्री प्रदान करेंगे और मैं भी उनके समक्ष आपका वचन कह दूँगा॥ ३९-४०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युदीर्य महादेवमहं सर्वेश्वरं प्रभुम्।
अगमं दक्षनिलयं स्यंदनेनातिवेगिना॥ ४१

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] सर्वेश्वर प्रभु महादेवजीसे इस प्रकार कहकर मैं अत्यन्त वेगशाली रथसे दक्षके घर जा पहुँचा॥ ४१॥

नारद उवाच

विधे प्राज्ञ महाभाग वद नो वदतां वर।
सत्यै गृहागतायै स दक्षः किमकरोत्ततः॥ ४२

नारदजी बोले—हे प्राज्ञ! हे महाभाग! हे विधे! हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! [तपस्याके पश्चात्] घर लौटकर आयी हुई सतीके लिये दक्षने क्या किया?॥ ४२॥

ब्रह्मोवाच

तपस्तप्त्वा वरं प्राप्य मनोऽभिलषितं सती।
गृहं गत्वा पितुर्मातुः प्रणाममकरोत्तदा॥ ४३

मात्रे पित्रेऽथ तत्सर्वं समाचख्यौ महेश्वरात्।
वरप्राप्तिः स्वसख्या वै सत्यास्तुष्टात्तु भक्तितः॥ ४४

माता पिता च वृत्तान्तं सर्वं श्रुत्वा सखीमुखात्।
आनन्दं परमं लेभे चक्रे च परमोत्सवम्॥ ४५

द्रव्यं ददौ द्विजातिभ्यो यथाभीष्टमुदारधीः।
अन्येभ्यश्चांधदीनेभ्यो वीरिणी च महामनाः॥ ४६

वीरिणी तां समालिंग्य स्वसुतां प्रीतिवर्द्धिनीम्।
मूर्ध्न्युपाघ्राय मुदिता प्रशशंशुर्मुहुर्मुहुः॥ ४७

अथ दक्षः कियत्काले व्यतीते धर्मवित्तमः।
चिन्तयामास देयेयं स्वसुता शम्भवे कथम्॥ ४८

आगतोऽपि महादेवः प्रसन्नः स जगाम ह।
पुनरेव कथं सोऽपि सुतार्थेऽत्रागमिष्यति॥ ४९

प्रस्थाप्योऽथ मया कश्चिच्छंभोर्निकटमञ्जसा।
नैतद्योग्यं न गृह्णीयाद्यद्येवं विफलार्दना॥ ५०

अथवा पूजयिष्यामि तमेव वृषभध्वजम्।
मदीयतनया भक्त्या स्वयमेव यथा भवेत्॥ ५१

तयैव पूजितः सोऽपि वाञ्छत्यार्यप्रयत्नतः।
शंभुर्भवतु मद्भर्तेत्येवं दत्तवरेण तत्॥ ५२

इति चिन्तयतस्तस्य दक्षस्य पुरतोऽन्वहम्।
उपस्थितोऽहं सहसा सरस्वत्यन्वितस्तदा॥ ५३

मां दृष्ट्वा पितरं दक्षः प्रणम्यावनतः स्थितः।
आसनं च ददौ मह्यं स्वभवाय यथोचितम्॥ ५४

ब्रह्माजी बोले—तपस्या करके मनोऽभिलषित वर प्राप्तकर तथा घर जाकर सतीने माता-पिताको प्रणाम किया। तत्पश्चात् सतीने अपनी सखीके द्वारा माता-पितासे वह सारा वृत्तान्त कहलवाया, जिस प्रकार उनकी भक्तिसे प्रसन्न हुए महेश्वरसे उन्हें वरकी प्राप्ति हुई थी॥ ४३-४४॥

सखीके मुँहसे सारा वृत्तान्त सुनकर माता-पिताको बड़ा आनन्द हुआ और उन्होंने महान् उत्सव मनाया॥ ४५॥

उदारचित्त दक्ष और महामनस्विनी वीरिणीने ब्राह्मणोंको उनकी इच्छाके अनुसार धन दिया और अन्धों, दीनों तथा अन्य लोगोंको भी धन बाँटा॥ ४६॥

प्रीति बढ़ानेवाली अपनी उस पुत्रीको हृदयसे लगाकर उसका मस्तक सूँघकर और आनन्दविभोर होकर वीरिणीने बार-बार उसकी प्रशंसा की॥ ४७॥

कुछ समय बीतनेपर धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ दक्ष इस चिन्तामें पड़ गये कि मैं अपनी इस पुत्रीको शंकरको किस प्रकार प्रदान करूँ?॥ ४८॥

महादेवजी प्रसन्न होकर मेरी पुत्रीको वर देनेके लिये आये थे, किंतु वे तो चले गये, अब मेरी पुत्रीके लिये वे पुनः कैसे आयेंगे?॥ ४९॥

यदि मैं किसीको उनके पास शीघ्र भेजूँ, तो यह भी उचित नहीं है; क्योंकि यदि वे पुत्रीको स्वीकार न करें, तो मेरी याचना निष्फल हो जायगी॥ ५०॥

अथवा मैं स्वयं उनका पूजन-अर्चन करूँ, जिससे कि वे मेरी पुत्रीकी भक्तिसे प्रसन्न होकर स्वयं इसे ग्रहणकर इसके पति बनें॥ ५१॥

उस सतीके द्वारा श्रेष्ठ प्रयत्नसे पूजित होकर वे भी उसको पाना चाह रहे हैं; क्योंकि वे 'मेरे पति शिवजी हों'—सतीको यह वर दे चुके हैं॥ ५२॥

इस प्रकारकी चिन्तामें पड़े हुए दक्ष प्रजापतिके सामने मैं सरस्वतीके साथ एकाएक उपस्थित हुआ॥ ५३॥

मुझ अपने पिताको देखकर प्रणाम करके दक्ष विनीत भावसे खड़े हुए और उन्होंने मुझ ब्रह्माको यथोचित आसन दिया॥ ५४॥

ततो मां सर्वलोकेशं तत्रागमनकारणम्।
दक्षः पप्रच्छ स क्षिप्रं चिंताविष्टोऽपि हर्षितः॥ ५५

तत्पश्चात् चिन्तासे युक्त होनेपर भी हर्षित हुए वे दक्ष शीघ्र ही सर्वलोकेश्वर मुझ ब्रह्मासे आगमनका कारण पूछने लगे—॥ ५५॥

दक्ष उवाच

तवात्रागमने हेतुः कः प्रवेशे स सृष्टिकृत्।
ममोपरि सुप्रसादं कृत्वाचक्ष्व जगद्गुरो॥ ५६

दक्ष बोले—हे जगद्गुरो! हे सृष्टिकर्ता! यहाँ आपके आगमनका क्या कारण है, मेरे ऊपर महती कृपा करके उसे कहिये॥ ५६॥

पुत्रस्नेहात्कार्यवशादथवा लोककारक।
ममाश्रमं समायातो हृष्टस्य तव दर्शनात्॥ ५७

हे लोककारक! आप मुझ पुत्रके स्नेहवश अथवा किसी कार्यवश मेरे आश्रममें पधारे हैं, आपके दर्शनसे मुझे प्रसन्नता हो रही है॥ ५७॥

ब्रह्मोवाच

इति पृष्टः स्वपुत्रेण दक्षेण मुनिसत्तम।
विहसन्नब्रुवं वाक्यं मोदयंस्तं प्रजापतिम्॥ ५८

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिसत्तम! अपने पुत्र दक्षद्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर मैं उन प्रजापतिको प्रसन्न करता हुआ हँसकर कहने लगा॥ ५८॥

ब्रह्मोवाच

शृणु दक्ष यदर्थं त्वत्समीपमहमागतः।
त्वत्तो कस्य हितं मेऽपि भवतोऽपि तदीप्सितम्॥ ५९

ब्रह्माजी बोले—हे दक्ष! मैं जिस उद्देश्यसे यहाँ आपके पास आया हूँ, उसको सुनिये। जिसके करनेसे तुम्हारा तथा मेरा दोनोंका अभीष्ट सिद्ध होगा॥ ५९॥

तव पुत्री समाराध्य महादेवं जगत्पतिम्।
यो वरः प्रार्थितस्तस्य समयोऽयमुपागतः॥ ६०

आपकी पुत्री सतीने जगत्पति महादेवजीकी आराधना करके जो वर प्राप्त किया है, उसका समय अब उपस्थित हो चुका है॥ ६०॥

शंभुना तव पुत्र्यर्थं त्वत्सकाशमहं ध्रुवम्।
प्रस्थापितोऽस्मि यत्कृत्यं श्रेयस्तदवधारय॥ ६१

शम्भुने आपकी पुत्रीको पत्नीरूपमें प्राप्त करनेके लिये ही मुझे आपके पास भेजा है। अब [आपके लिये] जो कल्याणकारी कार्य है, उसे कर डालिये॥ ६१॥

वरं दत्त्वा गतो रुद्रस्तावत्प्रभृति शंकरः।
त्वत्सुताया वियोगेन न शर्म लभतेऽञ्जसा॥ ६२

जबसे रुद्र वर प्रदान करके गये हैं, तभीसे आपकी पुत्रीके वियोगके कारण उन शंकरको शान्ति नहीं मिल रही है॥ ६२॥

अलब्धच्छिद्रमदनो जिगाय गिरिशं न यम्।
सर्वैः पुष्पमयैर्बाणैर्यत्नं कृत्वापि भूरिशः॥ ६३

स कामबाणविद्धोऽपि परित्यज्यात्मचिंतनम्।
सतीं विचिन्तयन्नास्ते व्याकुलः प्राकृतो यथा॥ ६४

कामदेव अपने समस्त पुष्पबाणोंके द्वारा अनेक उपाय करके भी छिद्र न पा सकनेके कारण जिन्हें जीत न सका, वे ही शिवजी अब कामबाणसे विद्ध होकर अपना आत्मचिन्तन त्यागकर सतीकी चिन्ता करते हुए सामान्य प्राणीकी भाँति व्याकुल हो रहे हैं॥ ६३-६४॥

विस्मृत्य प्रश्रुतां वाणीं गणाग्रे विप्रयोगतः।
क्व सतीत्येवमभितो भाषते निकृतावपि॥ ६५

मया यद्वाञ्छितं पूर्वं त्वया च मदनेन च।
मरीच्याद्यैर्मुनिवरैस्तत्सिद्धमधुना सुत॥ ६६

वे सुनी हुई वाणीको भी भूल जाते हैं तथा सतीके वियोगवश अपने गणोंके समक्ष ही 'सती कहाँ है'—इस प्रकारकी वाणी कहते हैं और किसी काममें प्रवृत्त नहीं होते हैं। हे सुत! मैंने, आपने, कामदेवने तथा मरीचि आदि श्रेष्ठ मुनियोंने जो पूर्वमें चाहा था, वह इस समय सिद्ध हो चुका है॥ ६५-६६॥

त्वत्पुत्र्याराधितः शंभुः सोऽपि तस्या विचिंतनात्।
अनुशोधयितुं प्रेप्सुर्वर्तते हिमवद्गिरौ॥ ६७

यथा नानाविधैर्भावैः सत्त्वात्तेन व्रतेन च।
शंभुराराधितस्तेन तथैवाराध्यते सती॥ ६८

आपकी पुत्रीने शम्भुकी आराधना की है, इससे वे भी उसकी चिन्ता करते हुए उसको प्राप्त करनेकी इच्छासे युक्त होकर हिमालय पर्वतपर स्थित हैं। जिस प्रकार सतीने अनेक प्रकारके भावों और सात्त्विकतापूर्वक व्रतके द्वारा शिवजीकी आराधना की थी, उसी प्रकार [इस समय] वे भी सतीकी आराधना कर रहे हैं॥ ६७-६८॥

तस्मात्तु दक्ष तनयां शंभ्वर्थं परिकल्पिताम्।
तस्मै देह्यविलंबेन कृता ते कृतकृत्यता॥ ६९

इसलिये हे दक्ष! शिवके लिये ही रची गयी अपनी पुत्रीको आप अविलम्ब उन्हें प्रदान कर दीजिये, ऐसा करनेसे आप कृतकृत्य हो जायँगे॥ ६९॥

अहं तमानयिष्यामि नारदेन त्वदालयम्।
तस्मै त्वमेनां संयच्छ तदर्थे परिकल्पिताम्॥ ७०

मैं नारदके साथ जाकर उन्हें आपके घर लाऊँगा और उन्हींके लिये रची हुई इस सतीको उन्हें अर्पित कर दीजिये॥ ७०॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा मम वचश्चेति स मे पुत्रोऽतिहर्षितः।
एवमेवेति मां दक्ष उवाच परहर्षितः॥ ७१

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! मेरी यह बात सुनकर मेरे पुत्र दक्ष परम प्रसन्न हुए और उन्होंने अत्यन्त हर्षित होकर मुझसे कहा—ठीक है, ऐसा ही होगा॥ ७१॥

ततः सोऽहं मुने तत्रागममत्यन्तहर्षितः।
उत्सुको लोकनिरतो गिरिशो यत्र संस्थितः॥ ७२

उसके बाद हे मुने! मैं अत्यन्त हर्षित हो वहाँपर गया, जहाँ लोककल्याणमें तत्पर रहनेवाले शिवजी उत्सुक होकर बैठे थे॥ ७२॥

गते नारद दक्षोऽपि सदारतनयो ह्यपि।
अभवत्पूर्णकामस्तु पीयूषैरिव पूरितः॥ ७३

हे नारद! मेरे चले आनेपर स्त्री और पुत्रीसहित दक्ष भी अमृतसे परिपूर्ण हुएके समान पूर्णकाम [सफल मनोरथवाले] हो गये॥ ७३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे सतीवरलाभो नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सती-वरलाभवर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

देवताओं और मुनियोंसहित भगवान् शिवका दक्षके घर जाना, दक्षद्वारा सबका सत्कार एवं सती तथा शिवका विवाह

नारद उवाच

रुद्रपार्श्वे त्वयि गते किमभूच्चरितं ततः।
का वार्ता ह्यभवत्तात किं चकार हरः स्वयम्॥ १

नारदजी बोले—जब आप भगवान् रुद्रके पास गये, तब क्या चरित्र हुआ, हे तात! कौन-सी बात हुई और शिवजीने स्वयं क्या किया?॥ १॥

ब्रह्मोवाच

अथाहं शिवमानेतुं प्रसन्नः परमेश्वरम्।
आसदं हि महादेवं हिमवद्गिरिसंस्थितम्॥ २

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! तदनन्तर मैं हिमालय पर्वतके कैलास शिखरपर रहनेवाले परमेश्वर महादेव शिवजीको लानेके लिये प्रसन्नतापूर्वक उनके समीप गया॥ २॥

मां वीक्ष्य लोकस्त्रष्टारमायान्तं वृषभध्वजः।
मनसा संशयं चक्रे सतीप्राप्तौ मुहुर्मुहुः॥ ३

वृषभध्वज शिवजी मुझ लोककर्ताको आते हुए देखकर अपने मनमें सतीकी प्राप्तिके विषयमें बार-बार संशय करने लगे॥ ३॥

अथ प्रीत्या हरो लोके गतिमाश्रित्य लीलया।
सत्या भक्त्या च मां क्षिप्रमुवाच प्राकृतो यथा॥ ४

तत्पश्चात् शिवजी प्रीतिपूर्वक अपनी लीलासे और सतीकी भक्तिसे लोकगतिका आश्रय लेकर सामान्य मनुष्यके समान मुझसे शीघ्र कहने लगे— ॥ ४॥

ईश्वर उवाच

किमकार्षीत्सुरज्येष्ठ सत्यर्थे त्वत्सुतः स माम्।
कथयस्व यथा स्वान्तं न दीर्येन्मन्मथेन हि॥ ५

ईश्वर बोले—हे सुरश्रेष्ठ! आपके पुत्र दक्षप्रजापतिने सतीको मुझे प्रदान करनेके विषयमें क्या किया, आप मुझसे कहिये, जिससे कामके कारण मेरा हृदय विदीर्ण न हो जाय॥ ५॥

धावमानो विप्रयोगो मामेव च सतीं प्रति।
अभिहन्ति सुरज्येष्ठ त्यक्त्वान्यां प्राणधारिणीम्॥ ६

हे सुरश्रेष्ठ! किसी अन्य प्राणधारिणी कामिनीको छोड़कर केवल सतीकी ओर दौड़ता हुआ यह वियोग मुझे अत्यन्त पीड़ित कर रहा है॥ ६॥

सतीति सततं ब्रह्मन् वद कार्यं करोम्यहम्।
अभेदान्मम सा प्राप्या तद्विधे क्रियतां तथा॥ ७

हे ब्रह्मन्! मैं सदा 'सती-सती' ऐसा कहता हुआ कार्योंको करता हूँ, उस सतीके पास जाकर आप मेरी व्यथाको कहें। वह सती मुझसे अभिन्न है। हे विधे! अतः उसकी प्राप्तिके लिये आप यत्न कीजिये। अथवा सतीकी प्राप्तिके निमित्त उपाय बताइये, जिसे मैं शीघ्र ही करूँ॥ ७॥

ब्रह्मोवाच

इति रुद्रोक्तवचनं लोकाचारसुगर्भितम्।
श्रुत्वाहं नारदमुने सान्त्वयन्नगदं शिवम्॥ ८

ब्रह्माजी बोले—हे नारद मुने! रुद्रके द्वारा कहे गये लोकाचारयुक्त वचनको सुनकर उन्हें सान्त्वना देते हुए मैं कहने लगा॥ ८॥

ब्रह्मोवाच

सत्यर्थं यन्मम सुतो वदति स्म वृषध्वज।
तच्छृणुष्व निजासाध्यं सिद्धमित्यवधारय॥ ९

ब्रह्माजी बोले—हे वृषभध्वज! सतीके लिये मेरे पुत्र दक्षने जो बात कही है, उसे सुनिये और जिस कार्यको आप अपने लिये असाध्य मान रहे हैं, उसे सिद्ध हुआ समझिये॥ ९॥

देया तस्मै मया पुत्री तदर्थं परिकल्पिता।
ममाभीष्टमिदं कार्यं त्वद्वाक्यादधिकं पुनः॥ १०

[दक्षने मुझसे कहा कि हे ब्रह्मन्!] मैं अपनी पुत्री भगवान् शिवके हाथोंमें ही दूँगा; क्योंकि उन्हींके लिये यह उत्पन्न हुई है। यह कार्य मुझे स्वयं अभीष्ट है, फिर आपके भी कहनेसे इसका महत्त्व और बढ़ गया है॥ १०॥

मत्पुत्र्याराधितः शंभुरेतदर्थं स्वयं पुनः।
सोऽप्यन्विष्यति मां यस्मात्तदा देया मया हरे॥ ११

मेरी पुत्रीने स्वयं इसी उद्देश्यसे भगवान् शिवकी पूजा की थी और इस समय शिवजी भी इसी विषयमें पूछ-ताछ कर रहे हैं। इसलिये मुझे अपनी कन्या शिवजीके हाथमें अवश्य देनी है॥ ११॥

शुभे लग्ने सुमुहूर्ते समागच्छतु सोऽन्तिकम्।
तदा दास्यामि तनयां भिक्षार्थं शंभवे विधे॥ १२

हे विधे! वे शंकर शुभ लग्न और सुन्दर मुहूर्तमें मेरे यहाँ पधारें, जिससे मैं उन्हें भिक्षारूपमें अपनी कन्या प्रदान करूँ॥ १२॥

इत्युवाच स मां दक्षस्तस्मात्त्वं वृषभध्वज।
शुभे मुहूर्ते तद्वेश्म गच्छ तामानयस्व च॥ १३

हे वृषभध्वज! दक्षने मुझसे ऐसी बात कही है, अतः आप शुभ मुहूर्तमें उनके घर चलिये और सतीको ले आइये॥ १३॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा मम वचो लौकिकीं गतिमाश्रितः।
उवाच विहसन् रुद्रो मुने मां भक्तवत्सलः॥ १४

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! मेरी यह बात सुनकर भक्तवत्सल भगवान् रुद्र लौकिक गतिका आश्रय लेकर हँसते हुए मुझसे कहने लगे—॥ १४॥

रुद्र उवाच

गमिष्ये भवता सार्धं नारदेन च तद्गृहम्।
अहमेव जगत्स्रष्टस्तस्मात्त्वं नारदं स्मर॥ १५
मरीच्यादीन् स्वपुत्रांश्च मानसानपि संस्मर।
तैः सार्धं दक्षनिलयं गमिष्ये सगणो विधे॥ १६

रुद्र बोले—जगत्की रचना करनेवाले हे ब्रह्मन्! मैं आपके और नारदके साथ ही दक्षके घर चलूँगा, अतः आप नारदका स्मरण करें और अपने मरीचि आदि मानसपुत्रोंका भी स्मरण करें, हे विधे! मैं अपने गणोंसहित उन सबके साथ दक्षके घर चलूँगा॥ १५-१६॥

ब्रह्मोवाच

इत्याज्ञप्तोऽहमीशेन लोकाचारपरेण ह।
संस्मरं नारदं त्वां च मरीच्यादीन्सुतांस्तथा॥ १७

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] लोकाचारके निर्वाहमें लगे हुए भगवान् शिवजीके इस प्रकार आज्ञा देनेपर मैंने आप नारदका और मरीचि आदि पुत्रोंका स्मरण किया॥ १७॥

ततः समागताः सर्वे मानसास्तनयास्त्वया।
मम स्मरणमात्रेण हृष्टास्ते द्रुतमादरात्॥ १८

तब मेरे स्मरण करते ही आपके साथ मेरे सभी मानसपुत्र प्रसन्न होकर आदरपूर्वक शीघ्र ही वहाँ उपस्थित हो गये॥ १८॥

विष्णुः समागतस्तूर्णं स्मृतो रुद्रेण शैवराट्।
स स्वसैन्यैः कमलया गरुडारूढ एव च॥ १९

भगवान् रुद्रके स्मरण करनेपर शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ वे विष्णु भी अपने सैनिकों तथा कमला लक्ष्मीके साथ गरुड़पर आरूढ़ हो तुरंत ही वहाँ आ गये॥ १९॥

अथ चैत्रसिते पक्षे नक्षत्रे भगदैवते।
त्रयोदश्यां दिने भानौ निर्गच्छत्स महेश्वरः॥ २०

तदनन्तर चैत्र शुक्लपक्ष त्रयोदशीमें रविवारको पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्रमें उन महेश्वरने [विवाहके लिये] यात्रा की॥ २०॥

सर्वैः सुरगणैः सार्धं ब्रह्मविष्णुपुरःसरैः।
तथा तैर्मुनिभिर्गच्छन् स बभौ पथि शंकरः॥ २१

ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवताओं और ऋषियोंके साथ मार्गमें चलते हुए वे शिवजी बहुत शोभा पा रहे थे॥ २१॥

मार्गे समुत्सवो जातो देवादीनां च गच्छताम्।
तथा हरगणानां च सानंदमनसामति॥ २२

वहाँ जाते हुए देवताओं, मुनियों तथा आनन्दमग्न मनवाले प्रमथगणोंका मार्गमें महान् उत्सव हो रहा था॥ २२॥

गजगोव्याघ्रसर्पाश्च जटा चंद्रकला तथा।
जग्मुः सर्वे भूषणत्वं यथायोग्यं शिवेच्छया॥ २३

शिवजीकी इच्छासे गज, वृषभ, व्याघ्र, सर्प, जटा और चन्द्रकला—ये सब उनके लिये यथायोग्य आभूषण बन गये॥ २३॥

ततः क्षणेन बलिना बलीवर्देन वेगिना।
सविष्णुप्रमुखः प्रीत्या प्राप दक्षालयं हरः॥ २४

तदनन्तर वेगसे चलनेवाले बलीवर्द (बैल)-पर आरूढ़ हुए महादेवजी विष्णु आदिको साथ लिये क्षणभरमें प्रसन्नतापूर्वक दक्षके घर जा पहुँचे॥ २४॥

ततो दक्षो विनीतात्मा संप्रहृष्टतनूरुहः।
प्रययौ सन्मुखं तस्य संयुक्तः सकलैर्निजैः॥ २५

तब हर्षके कारण रोमांचित और विनीत चित्तवाले दक्ष समस्त आत्मीय जनोंके साथ [भगवान् शिवकी अगवानीके लिये] उनके सामने आये॥ २५॥

सर्वे सुरगणास्तत्र स्वयं दक्षेण सत्कृताः।
पार्श्वे श्रेष्ठं च मुनिभिरुपविष्टा यथाक्रमम्॥ २६

दक्षने वहाँ समस्त देवताओंका सत्कार किया। वे सब लोग सुरश्रेष्ठ शिवजीको बिठाकर उनके पार्श्वभागमें स्वयं भी मुनियोंके साथ यथाक्रम बैठ गये॥ २६॥

परिवार्याखिलान्देवान्गणांश्च मुनिभिर्यथा।
दक्षः समानयामास गृहाभ्यंतरतः शिवम्॥ २७

इसके पश्चात् दक्ष मुनियोंसहित समस्त देवताओं तथा गणोंको साथ लेकर भगवान् शिवको घरके भीतर ले गये॥ २७॥

अथ दक्षः प्रसन्नात्मा स्वयं सर्वेश्वरं हरम्।
समानर्च विधानेन दत्त्वासनमनुत्तमम्॥ २८

ततो विष्णुं च मां विप्रान्सुरान्सर्वान्गणांस्तथा।
पूजयामास सद्भक्त्या यथोचितविधानतः॥ २९

उस समय दक्षने प्रसन्नचित्त होकर उत्तम आसन देकर स्वयं ही विधिपूर्वक सर्वेश्वर शिवजीका पूजन किया। तत्पश्चात् उन्होंने विष्णुका, मेरा, ब्राह्मणोंका, देवताओंका और समस्त शिवगणोंका भी यथोचित विधिसे उत्तम भक्तिभावके साथ पूजन किया॥ २८-२९॥

कृत्वा यथोचितां पूजां तेषां पूज्यादिभिस्तथा।
चकार संविदं दक्षो मुनिभिर्मानसैः पुनः॥ ३०

इस तरह पूजनीय पुरुषों तथा अन्य लोगोंसहित उनका पूजन करके दक्षने मेरे मानसपुत्र [मरीचि आदि] मुनियोंके साथ मन्त्रणा की॥ ३०॥

ततो मां पितरं प्राह दक्षः प्रीत्या हि मत्सुतः।
प्रणिपत्य त्वया कर्म कार्यं वैवाहिकं विभो॥ ३१

इसके बाद मेरे पुत्र दक्षने मुझ पिताको प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक कहा—विभो! आप ही वैवाहिक कार्य करायें॥ ३१॥

वाढमित्यहमप्युक्त्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना।
समुत्थाय ततोऽकार्षं तत्कार्यमखिलं तथा॥ ३२

तब मैं प्रसन्न मनसे 'बहुत अच्छा'—ऐसा कहकर उठ करके वह समस्त कार्य कराने लगा॥ ३२॥

ततः शुभे मुहूर्ते हि लग्ने ग्रहबलान्विते।
सतीं निजसुतां दक्षो ददौ हर्षेण शंभवे॥ ३३

तदनन्तर दक्षने ग्रहोंके बलसे युक्त शुभ लग्न और मुहूर्तमें हर्षपूर्वक शिवजीको अपनी पुत्री सती प्रदान कर दी॥ ३३॥

उद्वाहविधिना सोऽपि पाणिं जग्राह हर्षितः।
दाक्षायण्या वरतनोस्तदानीं वृषभध्वजः॥ ३४

उन शिवजीने भी उस समय हर्षित होकर सुन्दर शरीरवाली दक्षपुत्रीका वैवाहिक विधिसे पाणिग्रहण किया॥ ३४॥

अहं हरिस्त्वदाद्या वै मुनयश्च सुरा गणाः।
नेमुः सर्वे संस्तुतिभिः तोषयामासुरीश्वरम्॥ ३५

उस समय मैंने, श्रीहरि विष्णुने, आपने, अन्य मुनियोंने, देवताओंने और प्रमथगणोंने भगवान् शिवजीको प्रणाम किया और [अनेक प्रकारकी] स्तुतियोंद्वारा उन्हें सन्तुष्ट किया॥ ३५॥

समुत्सवो महानासीन्नृत्यगानपुरःसरः।
आनन्दं परमं जग्मुः सर्वे मुनिगणाः सुराः॥ ३६

उस समय नाच-गानेके साथ महान् उत्सव हुआ और समस्त देवता तथा मुनिगण परम आनन्दित हुए॥ ३६॥

कन्यां दत्त्वा कृतार्थोऽभूत्तदा दक्षो हि मत्सुतः।
शिवाशिवौ प्रसन्नौ च निखिलं मङ्गलालयम्॥ ३७

इस प्रकार मेरे पुत्र दक्ष [शिवजीको] पुत्री प्रदान करके कृतार्थ हो गये। शिवा और शिव प्रसन्न हुए तथा सब कुछ मंगलमय हो गया॥ ३७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे कन्यादानवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें कन्यादानवर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

शिवका सतीके साथ विवाह, विवाहके समय शम्भुकी मायासे ब्रह्माका मोहित होना और विष्णुद्वारा शिवतत्त्वका निरूपण

ब्रह्मोवाच

कृत्वा दक्षः सुतादानं यौतकं विविधं ददौ।
हराय सुप्रसन्नश्च द्विजेभ्यो विविधं धनम्॥ १

अथ शंभुमुपागत्य समुत्थाय कृताञ्जलिः।
सार्धं कमलया चेदमुवाच गरुडध्वजः॥ २

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार कन्यादानकर दक्षने भगवान् शंकरको अनेक प्रकारके उपहार दिये और ब्राह्मणोंको भी बहुत-सा धन दिया॥ १॥

उसके बाद लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णु शम्भुके पास जाकर हाथ जोड़कर खड़े होकर यह कहने लगे—॥ २॥

विष्णुरुवाच

देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो।
त्वं पिता जगतां तात सती माताखिलस्य च॥ ३

युवां लीलावतारौ वै सतां क्षेमाय सर्वदा।
खलानां निग्रहार्थाय श्रुतिरेषा सनातनी॥ ४

स्निग्धनीलाञ्जनश्यामशोभया शोभसे हर।
दाक्षायण्या यथा चाहं प्रतिलोमेन पद्मया॥ ५

देवानां वा नृणां रक्षां कुरु सत्यानया सताम्।
संसारसारिणां शम्भो मङ्गलं सर्वदा तथा॥ ६

य एनां साभिलाषो वै दृष्ट्वा श्रुत्वाथवा भवेत्।
तं हन्याः सर्वभूतेश विज्ञप्तिरिति मे प्रभो॥ ७

विष्णु बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणासागर! हे प्रभो! हे तात! आप सम्पूर्ण जगत्के पिता हैं और ये सती अखिल संसारकी माता हैं॥ ३॥

आप दोनों सत्पुरुषोंके कल्याण तथा दुष्टोंके दमनके लिये सदा लीलापूर्वक अवतार ग्रहण करते हैं—यह सनातन श्रुति है॥ ४॥

हे हर! आप चिकने नीले अंजनके समान शोभावाली सतीके साथ उसी प्रकार शोभा पा रहे हैं, जैसे मैं उसके विपरीत लक्ष्मीके साथ शोभा पा रहा हूँ। सती नीलवर्णा और आप गौरवर्ण हैं, उसके विपरीत मैं नीलवर्ण और लक्ष्मी गौरवर्ण हैं॥ ५॥

हे शम्भो! आप इन सतीके साथ रहकर देवताओंकी और सज्जन मनुष्योंकी रक्षा कीजिये, जिससे संसारी जनोंका सदा कल्याण होता रहे॥ ६॥

हे सर्वभूतेश! हे प्रभो! इन सतीको देखकर अथवा [इनके विषयमें] सुनकर जो कामनायुक्त हो, उसका आप वध कीजिये, यह मेरी प्रार्थना है॥ ७॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचो विष्णोर्विहस्य परमेश्वरः।
एवमस्त्विति सर्वज्ञः प्रोवाच मधुसूदनम्॥ ८

ब्रह्माजी बोले—भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर सर्वज्ञ परमेश्वरने मधुसूदनसे हँसकर कहा—ऐसा ही होगा॥ ८॥

स्वस्थानं हरिरागत्य स्थित आसीन्मुनीश्वर।
उत्सवं कारयामास जुगोप चरितं च तत्॥ ९

हे मुनीश्वर! उसके बाद विष्णु अपने स्थानपर आकर स्थित हो गये। उन्होंने उत्सव कराया और उस चरित्रको गुप्त ही रखा॥ ९॥

अहं देवीं समागत्य गृह्योक्तविधिनाखिलम्।
अग्निकार्यं यथोद्दिष्टमकार्षं च सुविस्तरम्॥ १०

तत्पश्चात् मैं देवी सतीके पास आकर गृह्यसूत्रमें वर्णित विधिके अनुसार सारा अग्निकार्य विधानके साथ विस्तारपूर्वक करने लगा॥ १०॥

ततः शिवा शिवश्चैव यथाविधि प्रहृष्टवत्।
अग्नेः प्रदक्षिणं चक्रे मदाचार्यद्विजाज्ञया॥ ११

इसके बाद शिवा और शिवने प्रसन्न होकर मुझ आचार्य और द्विजोंकी आज्ञासे विधिपूर्वक अग्निकी प्रदक्षिणा की॥ ११॥

तदा महोत्सवस्तत्राद्भुतोऽभूद् द्विजसत्तम।
सर्वेषां सुखदं वाद्यं गीतनृत्यपुरःसरम्॥ १२

हे द्विजसत्तम! उस समय वहाँ बड़ा अद्भुत उत्सव मनाया गया और गीत एवं नृत्यके साथ वाद्य बजाया गया, जो सबके लिये सुखद था॥ १२॥

तदानीमद्भुतं तत्र चरितं समभूदति।
सुविस्मयकरं तात तच्छृणु त्वं वदामि ते॥ १३

हे तात! उस समय [सबको] आश्चर्यचकित करनेवाला एक अद्भुत चरित्र वहाँ हुआ, उसे आपसे मैं कह रहा हूँ, आप सुनिये॥ १३॥

दुर्ज्ञेया शांभवी माया तया सम्मोहितं जगत्।
सचराचरमत्यन्तं सदेवासुरमानुषम्॥ १४

शिवजीकी माया दुर्ज्ञेय है, उसने देव, असुर तथा मनुष्योंसहित इस चराचर जगत्को पूर्णरूपसे मोहित कर रखा है॥ १४॥

योऽहं शंभुं मोहयितुं पुरैच्छं कपटेन ह।
मां च तं शंकरस्तात मोहयामास लीलया॥ १५

हे तात! पूर्वकालमें मैंने जिन शिवको कपटपूर्वक मोहमें डालना चाहा था, उन्हीं शिवने अपनी लीलासे मुझे मोहित कर लिया॥ १५॥

इच्छेत्परापकारं यः स तस्यैव भवेद् ध्रुवम्।
इति मत्वापकारं नो कुर्यादन्यस्य पूरुषः॥ १६

जो दूसरेका अपकार करना चाहता है, निश्चय ही पहले उसीका अपकार हो जाता है। ऐसा समझकर कोई भी व्यक्ति किसी दूसरेका अपकार न करे॥ १६॥

प्रदक्षिणां प्रकुर्वन्त्या वह्नेः सत्याः पदद्वयम्।
आविर्बभूव वसनात्तदद्राक्षमहं मुने॥ १७

हे मुने! जिस समय सती अग्निकी प्रदक्षिणा कर रही थीं, उस समय उनके दोनों चरण वस्त्रसे बाहर निकल आये थे, मैंने उन्हें देख लिया॥ १७॥

मदनाविष्टचेताश्च भूत्वाङ्गानि व्यलोकयम्।
अहं सत्या द्विजश्रेष्ठ शिवमायाविमोहितः॥ १८

हे द्विजश्रेष्ठ! शिवजीकी मायासे मोहित हुआ मैं कामसे व्याप्त चित्तवाला होकर सतीके दूसरे अंगोंको देखने लगा॥ १८॥

यथा यथाहं रम्याणि व्यैक्षमङ्गानि कौतुकात्।
सत्या बभूव संहृष्टः कामार्तो हि तथा तथा॥ १९

मैं जैसे-जैसे सतीके अंगोंको उत्सुकतापूर्वक देख रहा था, वैसे-वैसे प्रसन्न हो कामार्त हो रहा था॥ १९॥

अहमेवं तथा दृष्ट्वा दक्षजां च पतिव्रताम्।
स्मराविष्टमना वक्त्रं द्रष्टुकामोऽभवं मुने॥ २०

हे मुने! इस प्रकार पतिव्रता दक्षपुत्रीको देखकर कामाविष्ट मनवाला मैं उनके मुखको देखनेका इच्छुक हो गया॥ २०॥

न शंभोर्लज्जया वक्त्रं प्रत्यक्षं च विलोकितम्।
न च सा लज्जयाविष्टा करोति प्रकटं मुखम्॥ २१

किंतु शिवजीके सामने लज्जाके कारण मैं प्रत्यक्ष सतीका मुख नहीं देख सका और वे भी लज्जासे युक्त होनेके कारण अपना मुख प्रकट नहीं कर रही थीं॥ २१॥

ततस्तद्दर्शनार्थाय सदुपायं विचारयन्।
धूम्रघोरेण कामार्तोऽकार्षं तच्च ततः परम्॥ २२

आर्द्रेन्धनानि भूरीणि क्षिप्त्वा तत्र विभावसौ।
स्वल्पाज्याहुतिविन्यासादार्द्रद्रव्योद्भवस्तथा ॥ २३

प्रादुर्भूतस्ततो धूमो भूयांस्तत्र समन्ततः।
तादृग् येन तमोभूतं वेदीभूमिविनिर्मितम्॥ २४

तब सतीका मुख देखनेके लिये एक अत्यन्त सुन्दर उपाय सोचते हुए कामपीड़ित मैंने अग्निमें बहुत-सी गीली लकड़ी डालकर घोर धुआँ उत्पन्न कर दिया और उस धूमयुक्त अग्निमें घृतकी थोड़ी-थोड़ी आहुति देने लगा। तब गीली लकड़ीके संयोगसे चारों दिशाओंमें घोर धुआँ फैल गया। इस प्रकार धूमाधिक्य होनेके फलस्वरूप वेदीके चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार हो गया॥ २२—२४॥

ततो धूमाकुले नेत्रे महेशः परमेश्वरः।
हस्ताभ्यां छादयामास बहुलीलाकरः प्रभुः॥ २५

तब अनेक प्रकारकी लीला करनेवाले प्रभु महेश्वरके नेत्र भी धूमसे व्याकुल हो उठे और उन्होंने दोनों हाथोंसे अपने नेत्रोंको बन्द कर लिया॥ २५॥

ततो वस्त्रं समुत्क्षिप्य सतीवक्त्रमहं मुने।
अवेक्षं किल कामार्तः प्रहृष्टेनान्तरात्मना॥ २६

तत्पश्चात् कामसे पीड़ित मैंने प्रसन्न मनसे वस्त्र हटाकर सतीके मुखको देख लिया॥ २६॥

मुहुर्मुहुरहं तात पश्यामि स्म सतीमुखम्।
अथेन्द्रियविकारं च प्राप्तवानस्मि सोऽवशः॥ २७
मम रेतः प्रचस्कंद ततस्तद्वीक्षणाद् द्रुतम्।
चतुर्बिन्दुमितं भूमौ तुषारचयसंनिभम्॥ २८
ततोऽहं शंकितो मौनी तत्क्षणं विस्मितो मुने।
आच्छादये स्म तद्रेतो यथा कश्चिद् बुबोध न॥ २९
अथ तद्भगवान् शंभुर्ज्ञात्वा दिव्येन चक्षुषा।
रेतोऽवस्कन्दनात्तस्य कोपादेतदुवाच ह॥ ३०

हे पुत्र! मैं सतीके मुखको बार-बार देखने लगा, इस प्रकार अवश होकर मैं इन्द्रियविकारसे युक्त हो गया। अपनेको असंयमित देख सशंकित हो मैं आश्चर्यसे चकित होकर मौन हो गया। भगवान् शिव अपनी दिव्य दृष्टिसे इसे जानकर क्रोधित होकर कहने लगे— ॥ २७—३०॥

रुद्र उवाच

किमेतद्विहितं पाप त्वया कर्म विगर्हितम्।
विवाहे मम कान्ताया वक्त्रं दृष्टं नु रागतः॥ ३१

रुद्र बोले—हे पाप! आपने ऐसा कुत्सित कर्म क्यों किया, जो कि विवाहमें रागपूर्वक मेरी स्त्रीका मुख देखा?॥ ३१॥

त्वं वेत्सि शंकरेणैतत्कर्म ज्ञातं न किंचन।
त्रैलोक्येऽपि न मेऽज्ञातं गूढं तस्मात्कथं विधे॥ ३२

आप समझते हैं कि शंकर इस कुत्सित कर्मको नहीं जान सकेंगे। हे विधे! इस त्रिलोकीमें कोई भी बात मुझसे अज्ञात नहीं रह सकती, तो यह बात कैसे छिपी रहेगी?॥ ३२॥

यत्किंचित् त्रिषु लोकेषु जङ्गमं स्थावरं तथा।
तस्याहं मध्यगो मूढ तैलं यद्वत्तिलांतिगम्॥ ३३

हे मूढ़! जिस प्रकार तिलके सभी अवयवोंमें तेल रहता है, उसी प्रकार तीनों लोकोंमें जो कुछ भी स्थावर-जंगम पदार्थ हैं, उनमें मैं रहता हूँ॥ ३३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा प्रियविष्णुर्मां तदा विष्णुवचः स्मरन्।
इयेष हन्तुं ब्रह्माणं शूलमुद्यम्य शंकरः॥ ३४

ब्रह्माजी बोले—तत्पश्चात् विष्णुके लिये प्रिय शंकरजीने मुझसे यह कहकर [पूर्वमें कहे गये] विष्णुके वचनका स्मरणकर शूल लेकर मुझ ब्रह्माको मारना चाहा॥ ३४॥

शंभुनोद्यमिते शूले मां च हन्तुं द्विजोत्तम।
मरीचिप्रमुखास्ते वै हाहाकारं च चक्रिरे॥ ३५

हे द्विजोत्तम! मुझे मारनेके लिये शिवके द्वारा त्रिशूल उठाये जानेपर [वहाँ उपस्थित] मरीचि आदि ऋषि हाहाकार करने लगे॥ ३५॥

ततो देवगणाः सर्वे मुनयश्चाखिलास्तथा।
तुष्टुवुः शंकरं तत्र प्रज्वलन्तं भयातुराः॥ ३६

उस समय सभी देवता तथा मुनि भयभीत होकर क्रोधसे जलते हुए शिवजीकी स्तुति करने लगे॥ ३६॥

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव शरणागतवत्सल।
ब्रह्माणं रक्ष रक्षेश कृपां कुरु महेश्वर॥ ३७

देवगण बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे शरणागतवत्सल! हे ईश! आप ब्रह्माकी रक्षा कीजिये। हे महेश्वर! कृपा कीजिये॥ ३७॥

जगत्पिता महेश त्वं जगन्माता सती मता।
हरिब्रह्मादयः सर्वे तव दासाः सुरप्रभो॥ ३८

हे महेश! आप इस संसारके पिता हैं तथा देवी सती जगत्की माता कही गयी हैं। हे सुरप्रभो! विष्णु, ब्रह्मा आदि सभी [देवगण] आपके दास हैं॥ ३८॥

अद्भुताकृतिलीलस्त्वं तव मायाद्भुता प्रभो।
तया विमोहितं सर्वं विना त्वद्भक्तिमीश्वर॥ ३९

आपकी आकृति तथा लीला अद्भुत है। हे प्रभो! आपकी माया भी अद्भुत है। हे ईश्वर! उसने आपकी भक्तिसे रहित सभीको मोहित कर लिया है॥ ३९॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं बहुतरं दीना निर्जरा मुनयश्च ते।
तुष्टुवुर्देवदेवेशं क्रोधाविष्टं महेश्वरम्॥ ४०

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार दुःखित देवता तथा मुनि क्रोधमें भरे हुए देवाधिदेव महादेवकी स्तुति करने लगे॥ ४०॥

दक्षो मैवं मैवमिति पाणिमुद्यम्य शंकितः।
वारयामास भूतेशं क्षिप्रमेत्य पुरोगतः॥ ४१

दक्ष प्रजापतिने शंकित होकर वहाँ पहुँचकर दोनों हाथ उठाकर ऐसा मत कीजिये, ऐसा मत कीजिये—ऐसा कहते हुए शिवजीके आगे जाकर उन्हें ऐसा करनेसे रोका॥ ४१॥

अथाग्रे सङ्गतं वीक्ष्य तदा दक्षं महेश्वरः।
प्रत्युवाचाप्रियमिदं संस्मरन्प्रार्थनां हरेः॥ ४२

तब शिवजी अपने आगे दक्षको आया हुआ देखकर भगवान् विष्णुकी प्रार्थनाका स्मरण करते हुए इस प्रकारका अप्रिय वचन कहने लगे—॥ ४२॥

महेश्वर उवाच

विष्णुना मेऽतिभक्तेन यदिदानीमुदीरितम्।
मयाप्यङ्गीकृतं कर्तुं तदिहैव प्रजापते॥ ४३

महेश्वर बोले—हे प्रजापते! मेरे महान् भक्त विष्णुने उस समय जैसा कहा था, मैंने वही करना स्वीकार भी किया था॥ ४३॥

सतीं यः साभिलाषः सन् वीक्षेत वध तं प्रभो।
इति विष्णुवचः सत्यं विधिं हत्वा करोम्यहम्॥ ४४

[विष्णुने कहा था कि] हे प्रभो! जो वासनायुक्त होकर सतीको देखे, उसका वध कीजिये। अब मैं ब्रह्माका वध करके विष्णुके वचनको सत्य करता हूँ॥ ४४॥

साभिलाषः कथं ब्रह्मा सतीं समवलोकयत्।
अभवत् त्यक्तरेतास्तु ततो हन्मि कृतागसम्॥ ४५

ब्रह्माने कामनायुक्त होकर सतीको क्यों देखा? इन्होंने अत्यन्त गर्हित कर्म किया है, इसलिये अपराधी ब्रह्माका वध मैं अवश्य करूँगा॥ ४५॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तवति देवेशे महेशे क्रोधसंकुले।
चकंपिरे जनाः सर्वे सदेवमुनिमानुषाः॥ ४६

ब्रह्माजी बोले—उस समय क्रोधाविष्ट देवेश्वर महेशके ऐसा कहनेपर देवता, मुनि तथा मनुष्योंसहित सभी लोग काँपने लगे॥ ४६॥

हाहाकारो महानासीदौदासीन्यं च सर्वशः।
अभूवं विकलोऽतीव तदाहं तद्विमोहितः॥ ४७

चारों दिशाओंमें हाहाकार मच गया और चारों ओर उदासी छा गयी। उनके द्वारा विमोहित किया गया मैं उस समय अत्यन्त व्याकुल हो उठा॥ ४७॥

अथ विष्णुर्महेशातिप्रियः कार्यविचक्षणः।
तमेवंवादिनं रुद्रं तुष्टाव प्रणतः सुधीः॥ ४८

तब महेशके अतिप्रिय, कार्य सिद्ध करनेमें प्रवीण तथा बुद्धिमान् भगवान् विष्णुने ऐसा कहनेवाले उन शिवजीकी स्तुति की॥ ४८॥

स्तुत्वा च विविधैः स्तोत्रैः शंकरं भक्तवत्सलम्।
इदमूचे वारयंस्तं क्षिप्रं भूत्वा पुरःसरः॥ ४९

अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे भक्तवत्सल शिवजीकी स्तुतिकर उन्हें [ब्रह्माका वध करनेसे] रोकते हुए आगे जाकर उन्होंने इस प्रकार कहा—॥ ४९॥

विष्णुरुवाच

विधिं न जहि भूतेश स्त्रष्टारं जगतां प्रभुम्।
अयं शरणगस्तेऽद्य शरणागतवत्सलः॥ ५०

विष्णुजी बोले—हे भूतेश! आप जगत्को उत्पन्न करनेवाले प्रभु इन ब्रह्माका वध न करें। ये आपकी शरणमें आये हैं और आप शरणमें आये हुए लोगोंसे स्नेह करनेवाले हैं॥ ५०॥

अहं तेऽतिप्रियो भक्तो भक्तराज इतीरितः।
विज्ञप्तिं हृदि मे मत्वा कृपां कुरु ममोपरि॥ ५१

मैं आपका परम प्रिय हूँ, इसीलिये मुझे भक्तराज कहा गया है। मेरे इस निवेदनको हृदयमें स्वीकार करके मेरे ऊपर कृपा कीजिये॥ ५१॥

अन्यच्च शृणु मे नाथ वचनं हेतुगर्भितम्।
तन्मनुष्व महेशान कृपां कृत्वा ममोपरि॥ ५२

[इसके अतिरिक्त] हे नाथ! हेतुयुक्त मेरी दूसरी प्रार्थना भी सुनिये और हे महेश्वर! मेरे ऊपर कृपा करके उसे मानिये॥ ५२॥

प्रजाः स्त्रष्टुमयं शंभो प्रादुर्भूतश्चतुर्मुखः।
अस्मिन् हते प्रजास्त्रष्टा नास्त्यन्यः प्राकृतोऽधुना॥ ५३

हे शम्भो! ये चतुरानन ब्रह्मा प्रजाकी सृष्टि करनेके लिये उत्पन्न हुए हैं। इनके मारे जानेपर प्रजाकी सृष्टि करनेवाला कोई दूसरा नहीं है॥ ५३॥

सृष्टिस्थित्यन्तकर्माणि करिष्यामः पुनः पुनः।
त्रयो देवा वयं नाथ शिवरूप त्वदाज्ञया॥ ५४

हे नाथ! हे शिवस्वरूप! आपकी आज्ञासे ही हम तीनों देवता सृष्टि, स्थिति और संहारका कार्य बार-बार करेंगे॥ ५४॥

एतस्मिन्निहते शम्भो कस्त्वत्कर्म करिष्यति।
तस्मान्न वध्यो भवता सृष्टिकृल्लयकृद्विभो॥ ५५

हे शम्भो! उनका वध कर देनेपर आपका कार्य कौन सम्पन्न करेगा? इसलिये हे लयकर्ता विभो! आप इन सृष्टिकर्ताका वध न करें॥ ५५॥

अनेनैव सती कन्या दक्षस्य च शिवा विभो।
सदुपायेन वै भार्या भवदर्थे प्रकल्पिता॥ ५६

हे विभो! इन्होंने ही आपकी भार्या होनेके लिये शिवाको दक्षकन्या सतीके रूपमें सत्प्रयत्नसे अवतरित किया है॥ ५६॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य महेशस्तु विज्ञप्तिं विष्णुना कृताम्।
प्रत्युवाचाखिलांस्तांश्च श्रावयंश्च दृढव्रतः॥ ५७

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] विष्णुके द्वारा की गयी इस प्रार्थनाको सुनकर दृढ़व्रत शंकरजी [वहाँ उपस्थित] सभी लोगोंको सुनाते हुए [भगवान् विष्णुसे] इस प्रकार कहने लगे—॥ ५७॥

महेश उवाच

देवदेव रमेशान विष्णो मत्प्राणवल्लभ।
न निवारय मां तात वधादस्य खलस्त्वयम्॥ ५८

महेश बोले—हे देवदेव! हे रमेश! हे विष्णो! हे मेरे प्राणप्रिय! हे तात! मुझको इसका वध करनेसे मत रोकिये; क्योंकि यह दुष्ट है॥ ५८॥

पूरयिष्यामि विज्ञप्तिं पूर्वान्तेऽङ्गीकृतां मया।
महापापकरं दुष्टं हन्म्येनं चतुराननम्॥ ५९

अहमेव प्रजाः स्रक्ष्ये सर्वाः स्थिरचरा अपि।
अन्यं स्रक्ष्ये सृष्टिकरमथवाहं स्वतेजसा॥ ६०

हत्वैनं विधिमेवाहं स्वपणं पूरयन् कृतम्।
स्रष्टारमेकं स्रक्ष्यामि न निवारय मेश माम्॥ ६१

ब्रह्मोवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा गिरीशस्याह चाच्युतः।
स्मितप्रभिन्नहृदयः पुनर्मैवमितीरयन्॥ ६२

अच्युत उवाच

प्रतिज्ञापूरणं योग्यं परस्मिन्पुरुषेऽस्ति वै।
विचारयस्व वध्येश भवत्यात्मनि न प्रभो॥ ६३

त्रयो देवा वयं शंभो त्वदात्मानः परा नहि।
एकरूपा न भिन्नाश्च तत्त्वतः सुविचारय॥ ६४

ततस्तद्वचनं श्रुत्वा विष्णोः स्वातिप्रियस्य सः।
शंभुरूचे पुनस्तं वै ख्यापयन्नात्मनो गतिम्॥ ६५

शम्भुरुवाच

हे विष्णो सर्वभक्तेश कथमात्मा विधिर्मम।
लक्ष्यते भिन्न एवायं प्रत्यक्षेणाग्रतः स्थितः॥ ६६

ब्रह्मोवाच

इत्याज्ञप्तो महेशेन सर्वेषां पुरतस्तदा।
इदमूचे महादेवं तोषयन् गरुडध्वजः॥ ६७

विष्णुरुवाच

न ब्रह्मा भवतो भिन्नो न त्वं तस्मात्सदाशिव।
न वाहं भवतो भिन्नो न मत् त्वं परमेश्वर॥ ६८

सर्वं जानासि सर्वज्ञ परमेश सदाशिव।
मन्मुखादखिलान्सर्वं संश्रावयितुमिच्छसि॥ ६९

आपकी पूर्व प्रार्थनाको, जिसे मैंने स्वीकार किया था, उसे पूर्ण करूँगा। इस महापापी तथा दुष्ट चतुर्मुख ब्रह्माका वध मैं [अवश्य] करूँगा॥ ५९॥

मैं स्वयं ही सभी चराचर प्रजाओंकी सृष्टि करूँगा। अथवा अपने तेजसे किसी दूसरे सृष्टिकर्ताको उत्पन्न करूँगा। मैं अपनी की गयी प्रतिज्ञाको पूरा करते हुए इस ब्रह्माका वध करके अन्य सृष्टिकर्ताको उत्पन्न करूँगा, अतः हे लक्ष्मीपते! [इसका वध करनेसे] मुझे मत रोकिये॥ ६०-६१॥

ब्रह्माजी बोले—शिवजीका यह वचन सुनकर मन्द-मन्द मुसकराते हुए 'ऐसा मत कीजिये'—इस प्रकार बोलते हुए भगवान् विष्णु पुनः कहने लगे—॥ ६२॥

अच्युत बोले—हे प्रभो! प्रतिज्ञाकी पूर्ति तो दूसरे पुरुषमें की जाती है। हे विनाशके ईश! आप स्वयं विचार करें, वह अपने ऊपर नहीं की जाती॥ ६३॥

हे शम्भो! हम तीनों देवता आपकी ही आत्मा हैं, दूसरे नहीं। हमलोग एकरूप हैं, भिन्न नहीं हैं, इस बातको आप यथार्थ रूपसे विचार कीजिये॥ ६४॥

तब अपने अत्यन्त प्रिय विष्णुका वह वचन सुनकर शिवजी अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए उनसे कहने लगे—॥ ६५॥

शम्भु बोले—हे विष्णो! हे सम्पूर्ण भक्तोंके ईश! ब्रह्मा किस प्रकार मेरी आत्मा हो सकते हैं; क्योंकि ये तो प्रत्यक्ष रूपसे आगे बैठे हुए मुझसे भिन्न दिखायी दे रहे हैं?॥ ६६॥

ब्रह्माजी बोले—जब सबके आगे महेश्वरने ऐसा कहा, तब उन महादेवको सन्तुष्ट करते हुए विष्णु कहने लगे—॥ ६७॥

विष्णु बोले—हे सदाशिव! न ब्रह्मा आपसे भिन्न हैं और न तो आप ही उनसे भिन्न हैं। हे परमेश्वर! न मैं ही आपसे भिन्न हूँ और न तो आप ही मुझसे भिन्न हैं॥ ६८॥

हे सर्वज्ञ! हे परमेश! हे सदाशिव! आप सब कुछ जानते हैं, किंतु आप मेरे मुखसे सारी बात सभी लोगोंको सुनवाना चाहते हैं॥ ६९॥

त्वदाज्ञया वदामीश शृण्वंतु निखिलाः सुराः।
मुनयश्चापरे शैवं तत्त्वं संधार्य स्वं मनः॥ ७०

हे ईश! मैं आपकी आज्ञासे शिवतत्त्वका वर्णन कर रहा हूँ, समस्त देवता, मुनिगण तथा अन्य लोग अपने मनको एकाग्र करके सुनें॥ ७०॥

प्रधानस्याप्रधानस्य भागाभागस्य रूपिणः।
ज्योतिर्मयस्य भागास्ते वयं देवाः प्रभोस्त्रयः॥ ७१

हम तीनों देवता प्रधान-अप्रधान तथा भाग-अभागरूपवाले और ज्योतिर्मयस्वरूप आप परमेश्वरके ही अंश हैं॥ ७१॥

कस्त्वं कोऽहं च को ब्रह्मा तवैव परमात्मनः।
अंशत्रयमिदं भिन्नं सृष्टिस्थित्यन्तकारणम्॥ ७२

आप कौन हैं, मैं कौन हूँ और ब्रह्मा कौन हैं। आप परमात्माके ही ये तीन अंश हैं, जो सृष्टि, पालन और संहार करनेके कारण एक-दूसरेसे भिन्न प्रतीत होते हैं॥ ७२॥

चिन्तयस्वात्मनात्मानं स्वलीलाधृतविग्रहः।
एकस्त्वं ब्रह्म सगुणो ह्यंशभूता वयं त्रयः॥ ७३

आप स्वयं अपने स्वरूपका चिन्तन कीजिये। आपने अपनी लीलासे ही शरीर धारण किया है। आप एक, सगुण ब्रह्म हैं और हम [ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र]तीनों आपके अंश हैं॥ ७३॥

शिरोग्रीवादिभेदेन यथैकस्यैव वर्ष्मणः।
अङ्गानि ते तथेशस्य तस्य भागत्रयं हर॥ ७४

हे हर! जैसे मस्तक, ग्रीवा आदिके भेदसे एक ही शरीरके [भिन्न-भिन्न] अवयव होते हैं, उसी प्रकार हम तीनों उन्हीं आप परमेश्वरके अंग हैं॥ ७४॥

यज्ज्योतिरभ्रं स्वपुरं पुराणं
कूटस्थमव्यक्तमनन्तरूपम्।
नित्यं च दीर्घादिविशेषणाद्यै-
र्हीनं शिवस्त्वं तत एव सर्वम्॥ ७५

जो ज्योतिर्मय, आकाशस्वरूप, स्वयं ही अपना धाम, पुराण, कूटस्थ, अव्यक्त, अनन्तरूपवाला, नित्य तथा दीर्घ आदि विशेषणोंसे रहित ब्रह्म है, वह आप शिव ही हैं। आपसे ही सब कुछ प्रकट हुआ है॥ ७५॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य महादेवो मुनीश्वर।
बभूव सुप्रसन्नश्च न जघान स मां ततः॥ ७६

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! तत्पश्चात् उनकी यह बात सुनकर महादेवजी अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उन्होंने मेरा वध नहीं किया॥ ७६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे सतीविवाहशिवलीलावर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सतीविवाह और शिवलीलावर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

अथ विंशोऽध्यायः

ब्रह्माजीका 'रुद्रशिर' नाम पड़नेका कारण, सती एवं शिवका विवाहोत्सव, विवाहके अनन्तर शिव और सतीका वृषभारूढ़ हो कैलासके लिये प्रस्थान

नारद उवाच

ब्रह्मन् विधे महाभाग शिवभक्त वरप्रभो।
श्रावितं चरितं शंभोरद्भुतं मङ्गलायनम्॥ १

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे विधे! हे महाभाग! हे शिवभक्त! हे श्रेष्ठ प्रभो! हे विधे! आपने भगवान् शिवके परम मंगलदायक तथा अद्भुत चरित्रको सुनाया॥ १॥

ततः किमभवत्तात कथ्यतां शशिमौलिनः।
सत्याश्च चरितं दिव्यं सर्वाघौघविनाशनम्॥ २

हे तात! उसके बाद क्या हुआ, चन्द्रमाको सिरपर धारण करनेवाले शिवजी एवं सतीके दिव्य तथा सम्पूर्ण पापराशिका नाश करनेवाले चरित्रका वर्णन कीजिये॥ २॥

ब्रह्मोवाच

निवृत्ते शंकरे चास्मद्वधाद्भक्तानुकम्पिनि।
अभवन्निर्भयाः सर्वे सुखिनः सुप्रसन्नकाः॥ ३

ब्रह्माजी बोले—भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले शिवजी जब मेरा वध करनेसे विरत हो गये, तब सभी लोग निर्भय, सुखी और प्रसन्न हो गये॥ ३॥

नतस्कंधाः साञ्जलयः प्रणेमुर्निखिलाश्च ते।
तुष्टुवुः शंकरं भक्त्या चक्रुर्जयरवं मुदा॥ ४

सभी लोगोंने हाथ जोड़कर नतमस्तक हो शंकरजीको प्रणाम किया, भक्तिपूर्वक स्तुति की और प्रसन्नतापूर्वक जय-जयकार किया॥ ४॥

एतस्मिन्नेव कालेऽहं प्रसन्नो निर्भयो मुने।
अस्तवं शंकरं भक्त्या विविधैश्च शुभस्तवैः॥ ५

हे मुने! उसी समय मैंने प्रसन्न तथा निर्भय होकर अनेक प्रकारके उत्तम स्तोत्रोंद्वारा शंकरकी स्तुति की॥ ५॥

ततस्तुष्टमनाः शंभुर्बहुलीलाकरः प्रभुः।
मुने मां समुवाचेदं सर्वेषां शृण्वतां तदा॥ ६

हे मुने! तत्पश्चात् अनेक प्रकारकी लीला करनेवाले भगवान् शिव प्रसन्नचित्त होकर सभीको सुनाते हुए मुझसे इस प्रकार कहने लगे—॥ ६॥

रुद्र उवाच

ब्रह्मन् तात प्रसन्नोऽहं निर्भयस्त्वं भवाधुना।
स्वशीर्षं स्पृश हस्तेन मदाज्ञां कुर्वसंशयम्॥ ७

रुद्र बोले—हे ब्रह्मन्! हे तात! मैं प्रसन्न हूँ। अब आप निर्भय हो जाइये। आप अपने हाथसे सिरका स्पर्श करें और संशयरहित होकर मेरी आज्ञाका पालन करें॥ ७॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचः शम्भोर्बहुलीलाकृतः प्रभोः।
स्पृशन् स्वं कं तथा भूत्वा प्राणमं वृषभध्वजम्॥ ८

ब्रह्माजी बोले—अनेक लीलाएँ करनेवाले भगवान् शिवजीकी इस बातको सुनकर मैंने अपने सिरका स्पर्श करते हुए उन वृषध्वजको प्रणाम किया॥ ८॥

यावदेवमहं स्वं कं स्पृशामि निजपाणिना।
तावत्तत्र स्थितं सद्यस्तद्रूपवृषवाहनम्॥ ९

ततो लज्जापरीताङ्गः स्थितश्चाहमधोमुखः।
इन्द्राद्यैरमरैः सर्वैः सुदृष्टः सर्वतः स्थितैः॥ १०

मैंने जैसे ही अपने हाथसे अपने सिरका स्पर्श किया, उसी क्षण वहाँ उसीके रूपमें वृषवाहन स्थित दिखायी पड़े। तब लज्जायुक्त शरीरवाला मैं नीचेकी ओर मुख करके खड़ा रहा। उस समय वहाँ स्थित इन्द्र आदि देवताओंने मुझे देखा॥ ९-१०॥

अथाहं लज्जयाविष्टः प्रणिपत्य महेश्वरम्।
प्रावोचं संस्तुतिं कृत्वा क्षम्यतां क्षम्यतामिति॥ ११

उसके पश्चात् लज्जासे युक्त होकर मैं शिवजीको प्रणाम करके तथा उनकी स्तुति करके क्षमा कीजिये-क्षमा कीजिये—ऐसा कहने लगा॥ ११॥

अस्य पापस्य शुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं वद प्रभो।
निग्रहं च तथा न्यायं येन पापं प्रयातु मे॥ १२

हे प्रभो! इस पापकी शुद्धिके लिये कोई प्रायश्चित्त और उचित दण्ड कीजिये, जिससे मेरा पाप दूर हो जाय॥ १२॥

इत्युक्तस्तु मया शंभुरुवाच प्रणतं हि माम्।
सुप्रसन्नतरो भूत्वा सर्वेशो भक्तवत्सलः॥ १३

इस प्रकार मेरे कहनेपर भक्तवत्सल सर्वेश शम्भु अत्यन्त प्रसन्न होकर मुझ विनम्र ब्रह्मासे कहने लगे॥ १३॥

शंभुरुवाच

अनेनैव स्वरूपेण मदधिष्ठितकेन हि।
तपः कुरु प्रसन्नात्मा मदाराधनतत्परः॥ १४

ख्यातिं यास्यसि सर्वत्र नाम्ना रुद्रशिरः क्षितौ।
साधकः सर्वकृत्यानां तेजोभाजां द्विजन्मनाम्॥ १५

मनुष्याणामिदं कृत्यं यस्माद्वीर्यं त्वयाधुना।
तस्मात्त्वं मानुषो भूत्वा विचरिष्यसि भूतले॥ १६

यस्त्वां चानेन रूपेण दृष्ट्वा कौ विचरिष्यति।
किमेतद् ब्रह्मणो मूर्ध्नि वदन्निति पुरान्तकः॥ १७

ततस्ते चेष्टितं सर्वं कौतुकाच्छ्रोष्यतीति यः।
परदारकृतात्त्यागान्मुक्तिं सद्यः स यास्यति॥ १८

यथा यथा जनश्चैतत्कृत्यं ते कीर्तयिष्यति।
तथा तथा विशुद्धिस्ते पापस्यास्य भविष्यति॥ १९

एतदेव हि ते ब्रह्मन् प्रायश्चित्तं मयेरितम्।
जनहास्यकरं लोके तव गर्हाकरं परम्॥ २०

एतच्च तव वीर्यं हि पतितं वेदिमध्यगम्।
कामार्तस्य मया दृष्टं नैतद्धार्यं भविष्यति॥ २१

चतुर्बिन्दुमितं रेतः पतितं यत्क्षितौ तव।
तन्मितास्तोयदा व्योम्नि भवेयुः प्रलयंकराः॥ २२

एतस्मिन्नन्तरे तत्र देवर्षीणां पुरो द्रुतम्।
तद्रेतसः समभवंस्तन्मिताश्च बलाहकाः॥ २३

संवर्तकस्तथावर्तः पुष्करो द्रोण एव च।
एते चतुर्विधास्तात महामेघा लयंकराः॥ २४

गर्जन्तश्चाथ मुञ्चन्तस्तोयानीषच्छिवेच्छया।
फेलुर्व्योम्नि मुनिश्रेष्ठ तोयदास्ते कदारवाः॥ २५

तैस्तु संछादिते व्योम्नि सुगर्जद्भिश्च शंकरः।
प्रशान् दाक्षायणी देवी भृशं शांतोऽभवद् द्रुतम्॥ २६

अथ चाहं वीतभयः शंकरस्याज्ञया तदा।
शेषं वैवाहिकं कर्म समाप्तिमनयं मुने॥ २७

शम्भु बोले—[हे ब्रह्मन्!] मुझसे अधिष्ठित इसी रूपसे आप प्रसन्नचित्त होकर आराधनामें संलग्न रहते हुए तप करें॥ १४॥

इसीसे पृथ्वीपर सर्वत्र 'रुद्रशिर' नामसे आपकी प्रसिद्धि होगी और आप तेजस्वी ब्राह्मणोंके सभी कार्योंको सिद्ध करनेवाले होंगे। आपने [कामके वशीभूत होकर] जो वीर्यपात किया है, वह कृत्य मनुष्योंका है, इसलिये आप मनुष्य होकर पृथ्वीपर विचरण करें॥ १५-१६॥

जो तुम्हें इस रूपसे देखकर यह क्या! ब्रह्माके सिरपर शिवजी कैसे हो गये—ऐसा कहता हुआ पृथ्वीपर विचरण करेगा और फिर जो कौतुकवश आपके सम्पूर्ण कृत्यको सुनेगा, वह परायी स्त्रीके निमित्त किये गये त्यागसे शीघ्र ही मुक्त हो जायगा॥ १७-१८॥

लोग जैसे-जैसे आपके इस कुकृत्यका वर्णन करेंगे, वैसे-वैसे आपके इस पापकी शुद्धि होती जायगी॥ १९॥

हे ब्रह्मन्! संसारमें मनुष्योंके द्वारा आपका उपहास करानेवाला तथा आपकी निन्दा करानेवाला यह प्रायश्चित्त मैंने आपसे कह दिया॥ २०॥

कामपीड़ित आपका जो तेज वेदीके मध्यमें गिरा तथा जिसे मैंने देख लिया, वह किसीके भी धारण करनेयोग्य नहीं होगा॥ २१॥

तुम्हारा जो तेज पृथ्वीपर गिरा, उससे आकाशमें प्रलयंकर मेघ होंगे। उसी समय वहाँ देवर्षियोंके सामने शीघ्र ही उस तेजसे हे तात! संवर्त, आवर्त, पुष्कर तथा द्रोण—नामक ये चार प्रकारके प्रलयंकारी महामेघ हो गये॥ २२—२४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! ये मेघ शिवकी इच्छासे गरजते हुए, जलकी थोड़ी-सी वर्षा करते हुए तथा भयानक शब्द करते हुए आकाशमें फैल गये॥ २५॥

उस समय घोर गर्जन करते हुए उन मेघोंके द्वारा आकाशके आच्छादित हो जानेपर शीघ्र ही शंकरजी और सती देवी शान्त हो गये। हे मुने! उसके बाद मैं निर्भय हो गया और शिवजीकी आज्ञासे मैंने विवाहके शेष कृत्योंको यथाविधि पूर्ण किया॥ २६-२७॥

पपात पुष्पवृष्टिश्च शिवाशिवशिरस्कयोः।
सर्वत्र च मुनिश्रेष्ठ मुदा देवगणोज्झिता॥ २८

वाद्यमानेषु वाद्येषु गायमानेषु तेषु च।
पठत्सु विप्रवर्गेषु वेदान् भक्त्यान्वितेषु च॥ २९

रंभादिषु पुरंध्रीषु नृत्यमानासु सादरम्।
महोत्सवो महानासीद्देवपत्नीषु नारद॥ ३०

अथ कर्मवितानेशः प्रसन्नः परमेश्वरः।
प्राह मां प्राञ्जलिं प्रीत्या लौकिकीं गतिमाश्रितः॥ ३१

ईश्वर उवाच

हे ब्रह्मन् सुकृतं कर्म सर्वं वैवाहिकं च यत्।
प्रसन्नोऽस्मि त्वमाचार्यो दद्यां ते दक्षिणां च काम्॥ ३२

याचस्व तां सुरज्येष्ठ यद्यपि स्यात्सुदुर्लभा।
ब्रूहि शीघ्रं महाभाग नादेयं विद्यते मम॥ ३३

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचः सोऽहं शंकरस्य कृताञ्जलिः।
मुनेऽवोचं विनीतात्मा प्रणम्येशं मुहुर्मुहुः॥ ३४

यदि प्रसन्नो देवेश वरयोग्योऽस्म्यहं यदि।
तत्कुरु त्वं महेशान सुप्रीत्या यद्वदाम्यहम्॥ ३५

अनेनैव तु रूपेण वेद्यामस्यां महेश्वर।
त्वया स्थेयं सदैवात्र नृणां पापविशुद्धये॥ ३६

येनास्य संनिधौ कृत्वा स्वाश्रमं शशिशेखर।
तपः कुर्यां विनाशाय स्वपापस्यास्य शंकर॥ ३७

चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां नक्षत्रे भगदैवते।
सूर्यवारे च यो भक्त्या वीक्षेत भुवि मानवः॥ ३८

तदैव तस्य पापानि प्रयान्तु हर संक्षयम्।
वर्धते विपुलं पुण्यं रोगा नश्यन्तु सर्वशः॥ ३९

या नारी दुर्भगा वंध्या काणा रूपविवर्जिता।
सापि त्वद्दर्शनादेव निर्दोषा संभवेद् ध्रुवम्॥ ४०

हे मुनिश्रेष्ठ! उस समय देवताओंने प्रसन्न होकर शिवाशिवके मस्तकपर चारों ओरसे पुष्पोंकी वर्षा की॥ २८॥

उस समय बाजे बजने लगे, गीत गाये जाने लगे। ब्राह्मणगण भक्तिसे परिपूर्ण हो वेदपाठ करने लगे॥ २९॥

रम्भा आदि अप्सराएँ प्रेमपूर्वक नृत्य करने लगीं—इस प्रकार हे नारद! देवताओंकी स्त्रियोंके बीच महान् उत्सव हुआ॥ ३०॥

तदनन्तर यज्ञकर्मका फल देनेवाले भगवान् परमेश्वर शिव प्रसन्न होकर लौकिक गतिका आश्रय ले हाथ जोड़कर प्रेमपूर्वक मुझ ब्रह्मासे कहने लगे—॥ ३१॥

ईश्वर बोले—हे ब्रह्मन्! जो भी वैवाहिक कार्य था, उसे आपने उत्तम रीतिसे सम्पन्न किया है, अब मैं आपपर प्रसन्न हूँ, आप [इस वैवाहिक कृत्यके] आचार्य हैं, मैं आपको क्या दक्षिणा दूँ?॥ ३२॥

हे सुरश्रेष्ठ! आप उसे माँगिये। वह दुर्लभ ही क्यों न हो, उसको शीघ्र कहिये। हे महाभाग! आपके लिये मेरे द्वारा कुछ भी अदेय नहीं है॥ ३३॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! शंकरका यह वचन सुनकर मैंने हाथ जोड़कर विनीत भावसे उन्हें बार-बार प्रणामकर कहा—॥ ३४॥

हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं और यदि मैं वर प्राप्त करनेयोग्य हूँ, तो हे महेशान! जो मैं कह रहा हूँ, उसे आप अत्यन्त प्रसन्नताके साथ कीजिये॥ ३५॥

हे महेश्वर! आप मनुष्योंके पापकी शुद्धिके लिये इसी रूपमें इस वेदीपर सदा विराजमान रहिये॥ ३६॥

हे चन्द्रशेखर! हे शंकर! जिससे आपके सान्निध्यमें अपना आश्रम बनाकर अपने इस पापकी शुद्धिके लिये मैं तपस्या करूँ॥ ३७॥

चैत्रमासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिको पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें रविवारके दिन इस भूतलपर जो मनुष्य आपका भक्तिपूर्वक दर्शन करेगा, हे हर! उसके सारे पाप नष्ट हो जायँ, विपुल पुण्यकी वृद्धि हो और उसके समस्त रोगोंका सर्वथा नाश हो जाय। जो स्त्री दुर्भगा, वन्ध्या, कानी अथवा रूपहीन हो, वह भी आपके दर्शनमात्रसे निश्चित रूपसे निर्दोष हो जाय॥ ३८—४०॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचो मे हि स्वात्मसर्वसुखावहम्।
तथास्त्विति शिवः प्राह सुप्रसन्नेन चेतसा॥ ४१

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार अपने तथा सम्पूर्ण लोगोंको सुख देनेवाले मुझ ब्रह्माका वचन सुनकर प्रसन्न मनसे भगवान् शंकरने 'तथास्तु' कहा॥ ४१॥

शिव उवाच

हिताय सर्वलोकस्य वेद्यां तस्यां व्यवस्थितः।
स्थास्यामि सहितः पत्न्या सत्या त्वद्वचनाद्विधे॥ ४२

शिवजी बोले—हे ब्रह्मन्! आपके कथनानुसार मैं सारे संसारके हितके लिये अपनी पत्नीसहित इस वेदीपर सुस्थिरभावसे स्थित रहूँगा॥ ४२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा भगवांस्तत्र सभार्यो वृषभध्वजः।
उवाच वेदिमध्यस्थो मूर्तिं कृत्वांशरूपिणीम्॥ ४३
ततो दक्षं समामंत्र्य शंकरः परमेश्वरः।
पत्न्या सत्या गन्तुमना अभूत्स्वजनवत्सलः॥ ४४

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर पत्नीसहित भगवान् शिवजी अपनी अंशरूपिणी मूर्तिको प्रकटकर वेदीके मध्यभागमें विराजमान हो गये। तत्पश्चात् स्वजनोंपर स्नेह रखनेवाले भगवान् सदाशिव दक्षसे विदा ले अपनी पत्नी सतीके साथ [कैलास] जानेको उद्यत हुए॥ ४३-४४॥

एतस्मिन्नन्तरे दक्षो विनयावनतः सुधीः।
साञ्जलिर्नतकः प्रीत्या तुष्टाव वृषभध्वजम्॥ ४५

विष्ण्वादयः सुराः सर्वे मुनयश्च गणास्तदा।
नत्वा संस्तूय विविधं चक्रुर्जयरवं मुदा॥ ४६

उस समय उत्तम बुद्धिवाले दक्षने विनयभावसे मस्तक झुकाकर हाथ जोड़ भगवान् वृषभध्वजकी प्रेम-पूर्वक स्तुति की। तत्पश्चात् विष्णु आदि समस्त देवताओं, मुनियों तथा गणोंने स्तुति और नमस्कारकर प्रसन्नतापूर्वक अनेक प्रकारसे जय-जयकार किया॥ ४५-४६॥

आरोप्य वृषभे शंभुः सतीं दक्षाज्ञया मुदा।
जगाम हिमवत्प्रस्थं वृषभस्थः स्वयं प्रभुः॥ ४७

उसके बाद दक्षकी आज्ञा प्राप्तकर प्रसन्नतापूर्वक सदाशिवने अपनी पत्नी सतीको वृषभपर बिठाकर और स्वयं भी वृषभपर आरूढ़ हो हिमालयके शिखरकी ओर गमन किया॥ ४७॥

अथ सा शंकराभ्याशे सुदती चारुहासिनी।
विरेजे वृषभस्था वै चन्द्रान्ते कालिका यथा॥ ४८

मन्द-मन्द मधुर मुसकानवाली तथा सुन्दर दाँतोंवाली सती शंकरजीके साथ वृषभपर बैठी हुई चन्द्रमामें विद्यमान श्यामकान्तिकी तरह शोभायमान हो रही थीं॥ ४८॥

विष्ण्वादयः सुराः सर्वे मरीच्याद्यास्तथर्षयः।
दक्षोऽपि मोहितश्चासीत्तथान्ये निश्चला जनाः॥ ४९

उस समय विष्णु आदि सम्पूर्ण देवता, मरीचि आदि समस्त ऋषि एवं दक्ष प्रजापति भी मोहित हो गये तथा अन्य सभी लोग चित्रलिखित-से प्रतीत हो रहे थे॥ ४९॥

केचिद्वाद्यान्वादयन्तो गायन्तः सुस्वरं परे।
शिवं शिवयशः शुद्धमनुजग्मुः शिवं मुदा॥ ५०

कुछ लोग बाजे बजाते हुए तथा कुछ लोग सुन्दर स्वरमें शुद्ध तथा कल्याणकारी शिवयशका गान करते हुए प्रसन्नतापूर्वक शिवजीका अनुगमन करने लगे॥ ५०॥

मध्यमार्गाद्विसृष्टो हि दक्षः प्रीत्याथ शम्भुना।
स्वधाम प्राप सगणः शम्भुः प्रेमसमाकुलः॥ ५१

[कुछ दूर चले जानेके पश्चात्] शिवजीने आधे मार्गसे दक्षको प्रेमपूर्वक लौटा दिया, फिर सदाशिव गणों-सहित प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानको चले आये॥ ५१॥

विसृष्टा अपि विष्ण्वाद्याः शम्भुना पुनरेव ते।
अनुजग्मुः शिवं भक्त्या सुराः परमया मुदा॥ ५२

शिवजीने विष्णु आदि सभी देवताओंको विदा भी कर दिया, फिर भी वे लोग परम भक्ति एवं प्रेमके वशीभूत हो शिवजीके साथ-साथ कैलासपर पहुँच गये॥ ५२॥

तैः सर्वैः सगणैः शंभुः सत्या च स्वस्त्रिया युतः।
प्राप स्वं धाम संहृष्टो हिमवद् गिरिशोभितम्॥ ५३

उन सभी देवताओं, गणों तथा अपनी स्त्री सतीके साथ भगवान् शम्भु प्रसन्न होकर हिमालय पर्वतपर सुशोभित अपने धाममें पहुँच गये॥ ५३॥

तत्र गत्वाखिलान्देवान्मुनीनपि परांस्तथा।
मुदा विसर्जयामास बहु सम्मान्य सादरम्॥ ५४

वहाँ जाकर सम्पूर्ण देवताओं, मुनियों तथा अन्य लोगोंका आदरपूर्वक बहुत सम्मान करके प्रसन्नतापूर्वक शिवजीने उन्हें विदा किया॥ ५४॥

शंभुमाभाष्य ते सर्वे विष्ण्वाद्या मुदिताननाः।
स्वं स्वं धाम ययुर्नत्वा स्तुत्वा च मुनयः सुराः॥ ५५

तदनन्तर शम्भुकी आज्ञासे विष्णु आदि सब देवता तथा मुनिगण नमस्कार और स्तुति करके प्रसन्नमुख होकर अपने-अपने धामको चले गये॥ ५५॥

शिवोऽपि मुदितोऽत्यर्थं स्वपत्न्या दक्षकन्यया।
हिमवत्प्रस्थसंस्थो हि विजहार भवानुगः॥ ५६

लोकरीतिका अनुगमन करनेवाले शिवजी भी अत्यन्त आनन्दित हो हिमालयके शिखरपर अपनी पत्नी दक्षकन्याके साथ विहार करने लगे॥ ५६॥

ततः स शंकरः सत्या सगणः सूतिकृन्मुने।
प्राप स्वं धाम संहृष्टः कैलासं पर्वतोत्तमम्॥ ५७

हे मुने! इस प्रकार सृष्टि करनेवाले वे शंकर सती तथा अपने गणोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक पर्वतोंमें उत्तम अपने स्थान कैलासपर चले गये॥ ५७॥

एतद् वः सर्वमाख्यातं यथा तस्य पुराभवत्।
विवाहो वृषयानस्य मनुस्वायंभुवान्तरे॥ ५८

हे मुने! पूर्वकालमें स्वायम्भुव मन्वन्तरमें भगवान् शिवजीका विवाह जिस प्रकार हुआ, उसका वर्णन मैंने आपलोगोंसे किया॥ ५८॥

विवाहसमये यज्ञे प्रारंभे वा शृणोति यः।
एतदाख्यानमव्यग्रः संपूज्य वृषभध्वजम्॥ ५९

तस्याविघ्नं भवेत्सर्वं कर्म वैवाहिकं च यत्।
शुभाख्यमपरं कर्म निर्विघ्नं सर्वदा भवेत्॥ ६०

हे मुने! जो विवाहकालमें, यज्ञमें अथवा किसी भी शुभकार्यके आरम्भमें भगवान् शंकरकी पूजा करके शान्तचित्त होकर इस कथाको सुनता है, उसका सारा वैवाहिक कर्म बिना किसी विघ्न-बाधाके पूर्ण हो जाता है तथा दूसरे शुभ कर्म भी सदा निर्विघ्न पूर्ण होते हैं॥ ५९-६०॥

कन्या च सुखसौभाग्यशीलाचारगुणान्विता।
साध्वी स्यात्पुत्रिणी प्रीत्या श्रुत्वाख्यानमिदं शुभम्॥ ६१

इस उत्तम कथाको प्रेमपूर्वक सुनकर कन्या सुख, सौभाग्य, सुशीलता, आचार तथा गुणोंसे युक्त हो पतिव्रता तथा पुत्रवती होती है॥ ६१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे सतीविवाहवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सतीविवाहवर्णन नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

अथैकविंशोऽध्यायः

कैलास पर्वतपर भगवान् शिव एवं सतीकी मधुर लीलाएँ

नारद उवाच

समीचीनं वचस्तात सर्वज्ञस्य तवानघ।
महाद्भुतं श्रुतं नो वै चरितं शिवयोः शुभम्॥ १

नारदजी बोले—हे तात! हे अनघ! आप सर्वज्ञकी बात ठीक है। आपके द्वारा मैंने शिवाशिवके अत्यन्त अद्भुत एवं कल्याणकारी चरित्रको सुना॥ १॥

विवाहश्च श्रुतः सम्यक् सर्वमोहापहारकः।
परमज्ञानसंपन्नो मङ्गलालय उत्तमः॥ २

समस्त मोहोंको दूर करनेवाले, परम ज्ञानसम्पन्न, मंगलायन तथा उत्तम विवाहकर्मका वर्णन भी अच्छी प्रकारसे सुना॥ २॥

भूय एव विवित्सा मे चरितं शिवयोः शुभम्।
तद्वर्णय महाप्राज्ञ कृपां कृत्वातुलामरम्॥ ३

हे महाप्राज्ञ! फिर भी शिवजी एवं सतीके अत्यन्त मनोहर एवं उत्तम चरित्रको सुननेकी प्रबल इच्छा है। अतः आप मुझपर दया करके पुनः उसका वर्णन कीजिये॥ ३॥

ब्रह्मोवाच

सम्यक्कारुणिकस्यैव मुने ते विचिकित्सितम्।
यदहं नोदितः सौम्य शिवलीलानुवर्णने॥ ४

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! आपकी इच्छा परम दयावान् शिवजीकी लीला सुननेमें लगी हुई है। यह तो परम सौभाग्यकी बात है, हे सौम्य! जो आपने मुझे शिवजीकी लीलाका वर्णन करनेके लिये बार-बार प्रेरित किया है॥ ४॥

विवाह्य दक्षजां देवीं सतीं त्रैलोक्यमातरम्।
गत्वा स्वधाम सुप्रीत्या यदकार्षीन्निबोध मे॥ ५

हे नारद! शिवजीने दक्ष प्रजापतिकी कन्या एवं जगज्जननी देवी सतीके साथ विवाहकर उन्हें अपने स्थानपर ले जाकर जो कुछ भी किया, उसे अब सुनें॥ ५॥

ततो हरः स सगणः स्वस्थानं प्राप्य मोदनम्।
देवर्षे तत्र वृषभादवातरदतिप्रियात्॥ ६

हे देवर्षे! दक्षसे विदा होनेके बाद महादेवजी गणोंसहित अपने आनन्ददायक स्थानपर जाकर बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने परमप्रिय वाहन नन्दीश्वरसे उतरे॥ ६॥

यथायोग्यं निजस्थानं प्रविश्य स सतीसखः।
मुमुदेऽतीव देवर्षे भवाचारकरः शिवः॥ ७

हे देवर्षे! इस प्रकार सांसारिक लीला करनेमें प्रवीण सतीपति सदाशिव यथायोग्य अपने स्थानमें प्रवेशकर अत्यन्त हर्षित हुए॥ ७॥

ततो विरूपाक्ष इमां प्राप्य दाक्षायणीं गणान्।
स्वीयान्निर्यापयामास नंद्यादीन् गिरिकंदरात्॥ ८

इन महादेवजीने सतीको प्राप्त कर लेनेके उपरान्त अपने नन्दी आदि समस्त गणोंको पर्वतकी कन्दरासे बाहर भेज दिया॥ ८॥

उवाच चैतांस्तान् सर्वान्नंद्यादीनतिसूनृतम्।
लौकिकीं रीतिमाश्रित्य करुणासागरः प्रभुः॥ ९

विदा करते हुए उन नन्दीश्वर आदि समस्त गणोंसे करुणासागर शिवजी लौकिक रीतिका अनुसरण करते हुए मधुर वचनोंसे कहने लगे—॥ ९॥

महेश उवाच

यदाहं च स्मराम्यत्र स्मरणादरमानसाः।
समागमिष्यथ तदा मत्पार्श्वं मे गणा द्रुतम्॥ १०

महेश बोले—हे गणो! जिस समय मैं आपलोगोंका स्मरण करूँ, तब आपलोग मेरे स्मरणका आदर करते हुए शीघ्र मेरे पास चले आइये॥ १०॥

इत्युक्ते वामदेवेन नंद्याद्याः स्वगणाश्च ते।
महावेगा महावीरा नानास्थानेषु संययुः॥ ११

शिवजीके ऐसा कहनेपर महावेगवान् महावीर नन्दी आदि वे सभी गण अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ११॥

ईश्वरोऽपि तया सार्धं तेषु यातेषु विभ्रमी।
दाक्षायण्या समं रेमे रहस्ये मुदितो भृशम्॥ १२

उन गणोंके चले जानेके अनन्तर परम कौतुकी शिवजी बड़ी प्रसन्नतापूर्वक एकान्तमें सतीके साथ विहार करने लगे॥ १२॥

कदाचिद्वन्यपुष्पाणि समाहृत्य मनोहराम्।
मालां विधाय सत्यास्तु हारस्थाने स योजयत्॥ १३

शिवजी कभी वनोंसे तोड़कर लाये हुए पुष्पोंकी मनोहर माला बनाकर सतीके हार-स्थान अर्थात् हृदयमें पहनाते थे॥ १३॥

कदाचिद्दर्पणे चैव वीक्षन्तीमात्मनः सतीम्।
अनुगम्य हरो वक्त्रं स्वीयमप्यवलोकयत्॥ १४

कभी-कभी जब देवी सती अपना मुख दर्पणमें देख रही होती थीं, उस समय शिवजी भी सतीके पीछे जाकर अपना मुख देखने लगते थे॥ १४॥

कदाचित्कुंडलं तस्या उल्लास्योल्लास्य सङ्गतः।
बध्नाति मोचयत्येव सा स्वयं मार्जयत्यपि॥ १५

वे कभी सतीके कुण्डलोंको बार-बार पकड़कर हिलाने लगते थे, उन्हें सतीके कानोंमें पहनाते और फिर निकालने लगते थे॥ १५॥

सरागौ चरणावस्याः यावकेनोज्ज्वलेन च।
निसर्गरक्तौ कुरुते पूर्णरागौ वृषध्वजः॥ १६

कभी वे भगवान् शंकर स्वभावतः लालवर्णवाले सतीके चरणोंको देदीप्यमान लाक्षारससे रँगकर अत्यधिक रागयुक्त कर देते थे॥ १६॥

उच्चैरपि यदाख्येयमन्येषां पुरतो बहु।
तत् कर्णे कथयत्यस्या हरो द्रष्टुं तदाननम्॥ १७

सतीका मुखावलोकन करनेके उद्देश्यसे जो बात दूसरोंके समक्ष भी कही जा सकती थी, उसे सतीके कानोंमें कहते थे॥ १७॥

न दूरमपि गन्तासौ समागत्य प्रयत्नतः।
अनुबध्नाति नामाक्षी पृष्ठदेशेऽन्यमानसाम्॥ १८

वे कभी घरसे दूर नहीं जाते थे, यदि दूर जाते भी तो शीघ्रतासे वापस आ जाते थे और किसी बातको सोचती हुई सतीके नेत्रोंको पीछेसे आकर अपने हाथोंसे बन्द कर लेते थे॥ १८॥

अन्तर्हितस्तु तत्रैव मायया वृषभध्वजः।
तामालिलिङ्ग भीत्या स्वं चकिता व्याकुलाभवत्॥ १९

कभी वे अपनी मायासे छिपकर वहीं जाकर सतीका आलिंगन करते तो वे भयभीत होकर अत्यन्त चकित होते हुए व्याकुल हो जाती थीं॥ १९॥

सौवर्णपद्मकलिकातुल्ये तस्याः कुचद्वये।
चकार भ्रमराकारं मृगनाभिविशेषकम्॥ २०

हारमस्याः कुचयुगाद्वियोज्य सहसा हरः।
न्ययोजयच्च तत्रैव स्वकरस्पर्शनं मुहुः॥ २१

अङ्गदान्वलयानूर्मान्विश्लेष्य च पुनः पुनः।
तत्स्थानात्पुनरेवासौ तत्स्थाने प्रत्ययोजयत्॥ २२

वे कभी सुवर्णकमलकी कलीके समान उनके वक्षःस्थलपर कस्तूरीसे भ्रमरके आकारकी चित्रकारी करते थे और कभी उनका हार उतार लेते थे और फिर उसे वहीं स्थापित भी कर देते थे। कभी सतीके अंगसे बाजूबंद, कंकण तथा अँगूठी बार-बार निकालकर उसे पुनः उसी स्थानपर पहना दिया करते थे॥ २०—२२॥

कालिकेति समायाति सवर्णा ते सखी त्विमाम्।
यास्यत्वस्यास्तथेक्षन्त्याः प्रोत्तुङ्गौ साहसं कुचौ॥ २३

यह तुम्हारे ही समान स्वरूपवाली तुम्हारी कालिका नामकी सखी आ रही है—शिवजीद्वारा इस प्रकारके वचनोंको सुनकर जब सती उस सखीको देखनेके लिये चलतीं, तो शिवजी उनका स्पर्श करने लगते॥ २३॥

कदाचिन्मदनोन्मादचेतनः प्रमथाधिपः।
चकार नर्म शर्माणि तथाकृतिप्रियया मुदा॥ २४

कभी प्रमथाधिपति शिव कामके उन्मादसे व्यग्र होकर अपनी प्रियाके साथ कामकेलि-परिहास करने लगते थे॥ २४॥

आहृत्य पद्मपुष्पाणि रम्यपुष्पाणि शंकरः।
सर्वाङ्गेषु करोति स्म पुष्पाभरणमादरात्॥ २५

कभी शंकरजी कमलपुष्पों तथा अन्य मनोहर पुष्पोंको लाकर बड़े प्रेमसे उनका आभूषण बनाकर सतीके अंगोंमें पहनाते थे॥ २५॥

गिरिकुंजेषु रम्येषु सत्या सह महेश्वरः।
विजहार समस्तेषु प्रियया भक्तवत्सलः॥ २६

इस प्रकार भक्तवत्सल महेश्वर समस्त रमणीय वनकुंजोंमें सतीके साथ विहार करने लगे॥ २६॥

तया विना स्म नो याति नास्थितो न स्म चेष्टते।
तया विना क्षणमपि शर्म लेभे न शंकरः॥ २७

देवी सतीके बिना शिवजी कहीं भी नहीं जाते थे, न बैठते थे और न ही किसी प्रकारकी चेष्टा ही करते थे। सतीके बिना उन्हें क्षणमात्र भी चैन नहीं पड़ता था॥ २७॥

विहृत्य सुचिरं कालं कैलासगिरिकुंजरे।
अगमद्धिमवत्प्रस्थं सस्मार स्वेच्छया स्मरम्॥ २८

इस प्रकार कैलासपर्वतके प्रत्येक वनकुंजमें बहुत समयतक विहार करनेके पश्चात् वे पुनः हिमालयके शिखरपर गये और उन्होंने अपनी इच्छासे कामदेवका स्मरण किया॥ २८॥

तस्मिन्प्रविष्टे कामे तु वसंतः शंकरांतिके।
वितस्तार निजं भावं हार्दं विज्ञाय यत्प्रभोः॥ २९

जिस समय काम उनके आश्रममें प्रविष्ट हुआ, उसके साथ ही वसन्तने भी शिवजीके अभिप्रायको जानकर अपना प्रभाव प्रकट किया॥ २९॥

सर्वे च पुष्पिता वृक्षा लताश्चान्याश्च पुष्पिताः।
अंभांसि फुल्लपद्मानि पद्माः सभ्रमरास्तथा॥ ३०

उस पर्वतके सभी वृक्ष तथा लताएँ पुष्पसे आच्छादित हो उठीं और जल खिले कमलोंसे तथा कमल भ्रमरोंसे युक्त हो गये॥ ३०॥

प्रविष्टे सदृतौ तत्र ववौ स मलयो मरुत्।
सुगंधिगंधपुष्पेण मोदकश्च सुगंधियुक्॥ ३१

उस समय उत्तम ऋतु वसन्तके प्रविष्ट होते ही सुगन्धित पुष्पोंकी गन्धसे समन्वित आनन्ददायक तथा सुगन्धिसे युक्त मलय पवन बहने लगा॥ ३१॥

संध्यार्धचन्द्रसंकाशाः पलाशाश्च विरेजिरे।
कामास्त्रवत्सुमनसः प्रमोदात्पादपाधरः॥ ३२

सन्ध्याकालीन अरुण चन्द्रमाके सदृश पलाश शोभायमान होने लगे। सभी वृक्ष कामके अस्त्रके समान सुन्दर पुष्पोंसे अलंकृत हो गये॥ ३२॥

बभुः पंकजपुष्पाणि सरस्सु सकलाञ्जनान्।
संमोहयितुमुद्युक्ता सुमुखी वायुदेवता॥ ३३

तड़ागोंमें कमलपुष्प खिल उठे। अनुकूल वायु संसारके मनुष्योंको मोहित करनेहेतु उद्यत दिखायी पड़ने लगी॥ ३३॥

नागकेशरवृक्षाश्च स्वर्णवर्णैः प्रसूनकैः।
बभुर्मदनकेत्वाभा मनोज्ञाः शंकरान्तिके॥ ३४

भगवान् शंकरके समीप नागकेसरके वृक्ष अपने सुवर्णके समान पुष्पोंसे कामदेवकी ध्वजाके समान मनोहर प्रतीत होने लगे॥ ३४॥

लवङ्गवल्ली सुरभिगंधेनोद्वास्य मारुतम्।
मोहयामास चेतांसि भृशं कामिजने पुरा॥ ३५

लवंगकी लता अपनी सुरभित गन्धसे वायुको सुवासित करके कामीजनोंके चित्तको मोहित करने लगी॥ ३५॥

चारुचर्चितभृङ्गौघाः सुस्वराश्चूतशालिनः।
बभुर्मदनबाणौघपर्यंकमदनावृताः॥ ३६

मँडरानेवाले तथा आम्रमंजरियोंमें गुंजार करनेवाले भौंरोंके सुन्दर समूह कामदेवके बाणोंके समान तथा कामसे व्याप्त मदनके पर्यंक जैसे प्रतीत हो रहे थे॥ ३६॥

अंभांसि मलहीनानि रेजुः फुल्लकुशाशयाः।
मुनीनामिव चेतांसि प्रव्यक्तज्योतिरुद्गमम्॥ ३७

ज्ञानरूपी प्रकाशको प्राप्तकर जिस प्रकार मुनियोंका मन प्रफुल्लित हो जाता है, उसी प्रकार खिले हुए कमलपुष्पोंसे युक्त निर्मल जल शोभा पा रहे थे॥ ३७॥

तुषाराः सूर्यरश्मीनां सङ्गमादगमन् बहिः।
प्रमत्वानीक्ष्यतेक्षाश्च सलिलीहृदयास्तदा॥ ३८

सूर्यकी किरणोंके सम्पर्कके कारण बर्फ पिघलकर बहने लगी। जल ही जिनका हृदय है, ऐसे कमल जलके बीच स्पष्टरूपसे दृष्टिगोचर हो रहे थे॥ ३८॥

प्रसन्नाः सह चन्द्रेण निर्नीशारास्तदाऽभवन्।
विभावर्यः प्रियेणैवं कामिन्यः सुमनोहराः॥ ३९

रात्रिवेलामें तुषाररहित रात्रियाँ चन्द्रमासे युक्त होनेके कारण प्रियतमके साथ सुशोभित होनेवाली स्त्रियों-जैसी प्रतीत हो रही थीं॥ ३९॥

तस्मिन्काले महादेवः सह सत्या धरोत्तमे।
रेमे स सुचिरं छन्दं निकुंजेषु नदीषु च॥ ४०
तथा तेन समं रेजे तदा दाक्षायणी मुने।
यथा हरः क्षणमपि शांतिमाप तया विना॥ ४१
संभोगविषये देवी सती तस्य मनःप्रिया।
विशतीव हरस्याङ्गे पाययन्निव तद्रसम्॥ ४२

ऐसे मनोहारी वसन्तकालमें महादेवजी सतीके साथ पर्वतकुंजों एवं नदियोंमें बहुत कालतक स्वच्छन्दतासे रमण करने लगे और हे मुने! उस समय दक्षकन्या देवी सती भी महादेवजीके साथ शोभाको प्राप्त हुईं। शिवजीको सतीके बिना क्षणमात्र भी शान्ति नहीं मिलती थी। शिवजीकी प्रिया सती भी उन्हें रसका पान कराती हुई प्रतीत हो रही थीं॥ ४०—४२॥

तस्याः कुसुममालाभिर्भूषयन्सकलां तनुम्।
स्वहस्तरचिताभिस्तु नवशर्माकरोच्च सः॥ ४३

शंकरजी खिले हुए नवीन पुष्पोंकी अपने हाथसे माला बनाकर सतीके अंगोंको सुशोभित करते हुए नये-नये मंगल कर रहे थे॥ ४३॥

आलापैर्वीक्षितैर्हास्यैस्तथा संभाषणैर्हरः।
तस्यादिदेश गिरिजां शंसतीवात्मसंविदम्॥ ४४

आलाप, अवलोकन, हास्य और परस्पर सम्भाषण आदिके द्वारा वे शम्भु कभी उन गिरिजाको स्वयं सौतके रूपमें भी दिखा देते थे॥ ४४॥

तद्वक्त्रचंद्रपीयूषपानस्थिरतनुर्हरः।
नानावैशेषिकीं तन्वीमवस्थां स कदाचन॥ ४५

उन सतीके चन्द्रमुखका अमृतपान करनेमें सन्नद्ध शरीरवाले शिव अपने शरीरकी अनेक अवस्थाएँ कभी-कभी दिखाने लगते थे॥ ४५॥

तद्वक्त्राम्बुजवासेन तत्सौन्दर्य्यैश्च नर्मभिः।
गुणैरिव महादन्ती बद्धो नान्यविचेष्टितः॥ ४६

वे शिवजी सतीके मुखकमलकी सुगन्धि, उनकी मनोहारी सुन्दरता तथा प्रीतिपूर्ण चेष्टाओंमें इस प्रकार बँध गये थे, जैसे कोई बँधा हुआ हाथी किसी भी प्रकारकी चेष्टा करनेमें अपनेको असमर्थ पाता है॥ ४६॥

इति हिमगिरिकुंजप्रस्थभागे दरीषु
प्रतिदिनमभिरेमे दक्षपुत्र्या महेशः।
क्रतुभुजपरिमाणैः क्रीडतस्तस्य जाता
दश दश च सुरर्षे वत्सराः पञ्च चान्ये॥ ४७

इस प्रकार वे महेश्वर हिमालयपर्वतके कुंजों, शिखरोंपर और गुफाओंमें सतीके साथ प्रतिदिन रमण करने लगे। हे सुरर्षे! इस प्रकार उनके विहार करते हुए देवताओंके वर्षके अनुसार पचीस वर्ष व्यतीत हो गये॥ ४७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे सतीशिवक्रीडावर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सतीशिवक्रीड़ावर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

सती और शिवका विहार-वर्णन

ब्रह्मोवाच

कदाचिदथ दक्षस्य तनया जलदागमे।
कैलासक्ष्माभृतः प्राह प्रस्थस्थं वृषभध्वजम्॥ १

ब्रह्माजी बोले—किसी समय वर्षाऋतुमें जब श्रीमहादेवजी कैलासपर्वतके शिखरपर विराजमान थे, उस समय सती शिवजीसे कहने लगीं—॥ १॥

सत्युवाच

देवदेव महादेव शंभो मत्प्राणवल्लभ।
शृणु मे वचनं नाथ श्रुत्वा तत्कुरु मानद॥ २

सती बोलीं—हे देवदेव! हे महादेव! हे शम्भो! हे मेरे प्राणवल्लभ! हे नाथ! मेरे वचनको सुनिये और हे मानद! सुन करके उसे कीजिये॥ २॥

घनागमोऽयं संप्राप्तः कालः परमदुःसहः।
अनेकवर्णमेघौघाः सङ्गीतांबरदिक्चयाः॥ ३

हे नाथ! यह परम कष्टदायक वर्षाकाल आ गया है तथा अनेक वर्णके मेघोंके गर्जनसे आकाश तथा दिशाएँ व्याप्त हो गयी हैं॥ ३॥

विवान्ति वाता हृदयं हारयंतीति वेगिनः।
कदंबरजसा धौताः पाथोबिन्दुविकर्षणाः॥ ४

कदम्बके परागसे समन्वित, जलबिन्दुओंको लेकर बहनेवाली मनोहारिणी तथा तीव्रगतिवाली वायु प्रवाहित हो रही है॥ ४॥

मेघानां गर्जितैरुच्चैर्धारासारं विमुञ्चताम्।
विद्युत्पताकिनां तीव्रैः क्षुब्धं स्यात्कस्य नो मनः॥ ५

इस वर्षाकालमें जलसमूहकी धाराओंसे वृष्टि करते हुए तथा चमकती हुई बिजलीकी पताकावाले इन मेघोंकी गर्जनाके कारण किसका मन विक्षुब्ध नहीं हो जाता॥ ५॥

न सूर्यो दृश्यते नापि मेघच्छन्नो निशापतिः।
दिवापि रात्रिवद्भाति विरहिव्यसनाकरः॥ ६

विरहीजनोंको दुःखदायी कर देनेवाला यह वर्षाकाल महाभयानक है। इस समय आकाशके मेघाच्छन्न होनेके कारण दिनमें न तो सूर्यका दर्शन हो पा रहा है और न तो रात्रिमें चन्द्रमा ही दिखायी पड़ता है। [इस कालमें] दिन भी रात्रिके समान ही प्रतीत हो रहा है॥ ६॥

मेघा नैकत्र तिष्ठन्तो ध्वनन्तः पवनेरिताः।
पतन्त इव लोकानां दृश्यन्ते मूर्ध्नि शंकर॥ ७

प्रचण्ड वायुके झोंकोंके कारण मेघ शब्द करते हुए आकाशमें कहीं भी स्थिर नहीं हो पा रहे हैं। हे शंकर! ये मेघ ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, जैसे अभी लोगोंके सिरपर गिर जायँगे॥ ७॥

वाताहता महावृक्षा नर्तन्त इव चांबरे।
दृश्यन्ते हर भीरूणां त्रासदाः कामुकेप्सिताः॥ ८

हे शंकर! हवाके वेगसे ये बड़े-बड़े वृक्ष आकाशमें नाचते हुए-से प्रतीत हो रहे हैं। ये कामीजनोंके लिये सुख देनेवाले तथा भीरुजनोंको भयभीत करनेवाले हैं॥ ८॥

स्निग्धनीलाञ्जनस्याशु सदिवौघस्य पृष्ठतः।
बलाकराजीवात्युच्चैर्यमुनापृष्ठफेनवत् ॥ ९

काले तथा चिकने बादलोंवाले आकाशके ऊपर उड़ती हुई बकपंक्ति यमुनानदीके ऊपर बहते हुए फेन-जैसी प्रतीत हो रही है॥ ९॥

क्षपायामीश वलयो दृश्यन्ते करभाश्रिताः।
अंबुधाविव संदीप्तपावको वडवामुखः॥ १०

ईश! काली रात्रिमें बादलोंमें छिपा हुआ यह चन्द्रमण्डल समुद्रमें प्रदीप्त हुई वडवाग्निके समान प्रतीत हो रहा है॥ १०॥

प्रारोहंतीह सस्यानि मन्दरे प्राङ्गणेष्वपि।
किमन्यत्र विरूपाक्ष सस्योद्भूतिं वदाम्यहम्॥ ११

हे विरूपाक्ष! इस मन्दराचल पर्वतशिखरके प्रांगणमें भी वर्षाकालीन घासें उग आयी हैं, फिर अन्य स्थानोंकी चर्चा ही क्या करूँ?॥ ११॥

श्यामलै राजतै रक्तैर्विशदोऽयं हिमाचलः।
मंदराश्रयमेघौघः पत्रैर्दुग्धाम्बुधिर्यथा॥ १२

मन्दराचलपर आश्रय ग्रहण करनेवाले इन काले, श्वेत तथा रक्तवर्णके मेघोंसे यह विशाल हिमालय इस प्रकार प्रतीत हो रहा है, जैसे पत्तोंसे पूर्ण दुग्धका समुद्र हो॥ १२॥

असमश्रीश्च कुटिलं भेजे यस्याथ किंशुकान्।
उच्चावचान् कलौ लक्ष्मीर्गन्ता संत्यज्य सज्जनान्॥ १३

श्री (शोभा) सभी वृक्षोंको त्यागकर केवल विषमतासे किंशुक वृक्षोंको शोभित कर रही है, जिस प्रकार महालक्ष्मी कलियुगमें सज्जनोंको त्यागकर सभी ऊँचे-नीचे पुरुषोंको प्राप्त होती हैं॥ १३॥

मंदराचलमेघानां शब्देन हृषिता मुहुः।
केकायंते प्रतिवने सततं पृष्ठसूचकम्॥ १४

मन्दराचल पर्वतके शिखरपर वास करनेवाले बादलोंके शब्दसे हर्षित होकर मोर वनमें अपनी पीठ दिखाकर नृत्य कर रहे हैं॥ १४॥

मेघोत्सुकानां मधुरश्चातकानां मनोहरः।
धारासारशरैस्तापं पेतुः प्रतिपथोद्गतम्॥ १५

मेघानां पश्य मद्देहे दुर्नयं करकोत्करैः।
ये छादयन्त्यनुगते मयूरांश्चातकांस्तथा॥ १६

मेघोंके लिये उत्सुक इन चातकोंकी मधुर ध्वनि इस वर्षाकालमें सुनायी पड़ रही है और पथिकगण तीव्र जल-वर्षाके कारण रास्तेमें होनेवाली थकानको दूर कर रहे हैं। हे शंकर! मेरी देहपर मेघोंद्वारा ओले गिराये जानेसे उत्पन्न हुई इस दुर्नीतिको देखिये, जो अपने अनुगामी मोर तथा चातकोंपर भी उपलकी वर्षाकर उन्हें ओलोंसे आच्छादित कर रहे हैं॥ १५-१६॥

शिखिसारंगयोर्दृष्ट्वा मित्रादपि पराभवम्।
हर्षं गच्छन्ति गिरिश विदूरमपि मानसम्॥ १७

हे गिरिश! मोर तथा सारंग भी अपने मित्र (बादल)-से पराभवको प्राप्तकर दूर होनेपर भी हर्षपूर्वक मानसरोवरको चले जा रहे हैं॥ १७॥

एतस्मिन्विषमे काले नीडं काकाश्चकोरकाः।
कुर्वन्ति त्वां विना गेहान् कथं शांतिमवाप्स्यसि॥ १८

[हे सदाशिव!] इस विषम परिस्थितिमें [केवल] आपको छोड़कर कौआ और चकोर पक्षी भी अपना घोंसला बना रहे हैं। अब आप ही बताइये, घरके बिना आप किस प्रकार शान्ति प्राप्त करेंगे?॥ १८॥

महतीवाद्य नो भीतिर्मां मेघोत्था पिनाकधृक्।
यतस्व यस्माद्वासाय माचिरं वचनान्मम॥ १९

कैलासे वा हिमाद्रौ वा महाकोश्यामथ क्षितौ।
तत्रोपयोग्यं संवासं कुरु त्वं वृषभध्वज॥ २०

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तस्तया शंभुर्दाक्षायण्या तथासकृत्।
सञ्जहास च शीर्षस्थचन्द्ररश्मिस्मितालयम्॥ २१

अथोवाच सतीं देवीं स्मिताभिन्नौष्ठसंपुटः।
महात्मा सर्वतत्त्वज्ञस्तोषयन्परमेश्वरः॥ २२

ईश्वर उवाच

यत्र प्रीत्यै मया कार्यो वासस्तव मनोहरे।
मेघास्तत्र न गन्तारः कदाचिदपि मत्प्रिये॥ २३

मेघा नितंबपर्यन्तं सञ्चरन्ति महीभृतः।
सदा प्रालेयसानोस्तु वर्षास्वपि मनोहरे॥ २४

कैलासस्य तथा देवि पादगाः प्रायशो घनाः।
सञ्चरन्ति न गच्छन्ति तत ऊर्ध्वं कदाचन॥ २५

सुमेरोर्वा गिरेरूर्ध्वं न गच्छन्ति बलाहकाः।
जम्बूमूलं समासाद्य पुष्करावर्तकादयः॥ २६

इत्युक्तेषु गिरीन्द्रेषु यस्योपरि भवेद्धि ते।
मनोरुचिर्निवासाय तमाचक्ष्व द्रुतं हि मे॥ २७

स्वेच्छाविहारैस्तव कौतुकानि
सुवर्णपक्षानिलवृन्दवृन्दैः ।
शब्दोत्तरंगैर्मधुरस्वनैस्तै-
र्मुदोपगेयानि गिरौ हिमोत्थे॥ २८

सिद्धाङ्गनास्ते रचितासना भुवं
काङ्क्षन्ति चैवोपहृतं सकौतुकम्।
स्वेच्छाविहारे मणिकुट्टिमे गिरौ
कुर्वन्ति चेष्यन्ति फलादिदानकैः॥ २९

हे पिनाकधारिन्! मुझे इन मेघोंसे बहुत बड़ा भय उत्पन्न हो गया है, इसलिये मेरे कहनेसे निवासके लिये शीघ्र ही घर बनानेका प्रयत्न कीजिये॥ १९॥

हे वृषभध्वज! आप कैलासपर्वतपर, हिमालयपर अथवा महाकोशीपर या पृथ्वीपर अपने योग्य निवासस्थान बनाइये॥ २०॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार दक्षकन्या सतीके द्वारा बार-बार कहे जानेपर शिवजी अपने सिरपर स्थित चन्द्रमाके प्रकाशपुंजके समान उज्ज्वल मुखसे हँसने लगे॥ २१॥

तदनन्तर मुसकराहटके कारण खुले ओठोंवाले वे सर्वतत्त्वज्ञाता महात्मा परमेश्वर महादेवजी सतीको प्रसन्न करते हुए कहने लगे—॥ २२॥

ईश्वर बोले—हे मनोहरे! हे मेरी प्रिये! तुम्हारी प्रीतिके लिये मैं तुम्हारे रहनेके योग्य निवासस्थान उस जगहपर बना दूँगा, जहाँ मेघ कभी भी नहीं जा सकेंगे॥ २३॥

हे मनोहरे! वर्षाकालमें भी ये मेघ हिमालय पर्वत (मध्य भाग)-के नीचे ही नीचे घूमते रहते हैं॥ २४॥

उसी प्रकार हे देवि! ये मेघ इस कैलासपर्वतके भी नीचे-ही-नीचे घूमते हैं, कैलास पर्वतके ऊपर नहीं जाते हैं॥ २५॥

पुष्कर, आवर्तक आदि मेघ भी जम्बूके मूलभागतक ही रह जाते हैं। ये जम्बूके ऊपर रहनेवाले सुमेरु पर्वतके शिखरपर नहीं जाते हैं॥ २६॥

हे प्रिये! इन वर्णित पर्वतोंमें जिस पर्वतपर तुम्हारी निवास करनेकी इच्छा हो, उस पर्वतको शीघ्र ही बताओ॥ २७॥

इस हिमालय पर्वतपर निवास करनेसे स्वच्छन्द विहार करनेवाले सुवर्णके सदृश पंखवाले ये अनिल नामक पक्षिसमूह ऊँचे-ऊँचे मधुर शब्दोंसे तुम्हारे कौतुक (केलिक्रीडा)-का गान करेंगे॥ २८॥

सिद्धोंकी कमनीय स्त्रियाँ मणियोंके द्वारा कूटकर बनायी गयी इस हिमालयकी भूमिपर स्वेच्छा-विहारकालमें कौतुकसे तुम्हारे बैठनेके लिये आसनका निर्माणकर स्वच्छ पृथिवीको तुम्हारे लिये अर्पण करेंगी और अनेक प्रकारके फल-मूल आदि लाकर देनेकी इच्छा करेंगी॥ २९॥

फणीन्द्रकन्या गिरिकन्यकाश्च
या नागकन्याश्च तुरंगमुख्याः।
सर्वास्तु तास्ते सततं सहायतां
समाचरिष्यन्त्यनुमोदविभ्रमैः ॥ ३०

नागकन्याएँ, पर्वतकन्याएँ एवं तुरंगमुखी किन्नरियाँ—ये सभी मनको मोहनेवाले अपने हाव-भावसे सदैव तुम्हारी सहायता करेंगी॥ ३०॥

रूपं तदेवमतुलं वदनं सुचारु
दृष्ट्वाङ्गना निजवपुर्निजकांतिसह्यम्।
हेला निजे वपुषि रूपगणेषु नित्यं
कर्तार इत्यनिमिषेक्षणचारुरूपाः॥ ३१

तुम्हारे इस अतुलनीय रूप तथा मनोहारी मुखको देखकर वहाँकी स्त्रियाँ अपने पतिके लिये मनोहर लगनेवाले शरीर, अपने रूप तथा गुणोंको धिक्कार करेंगी तथा तुम्हारी ओर निरन्तर देखती रहेंगी॥ ३१॥

या मेनका पर्वतराज जाया
रूपैर्गुणैः ख्यातवती त्रिलोके।
सा चापि ते तत्र मनोऽनुमोदं
नित्यं करिष्यत्यनुनाथनाद्यैः॥ ३२

पर्वतराज हिमालयकी पत्नी मेनका, जो अपने रूप तथा गुणसे त्रिलोकमें विख्यात हैं, वे भी तुम्हारे मनोऽनुकूल ऐश्वर्य, आशीर्वाद तथा प्रार्थनासे तुम्हें प्रसन्न करना चाहेंगी॥ ३२॥

पुरस्थवर्गैर्गिरिराजवंद्यैः
प्रीतिं विचिन्वद्भिरुदाररूपाम्।
शिक्षा सदा ते खलु शोचितापि
कार्यान्वहं प्रीतियुता गुणाद्यैः॥ ३३

गिरिराजसे वन्दनाके योग्य समस्त पुरजन तुम्हें प्रसन्न करनेका सदा प्रयत्न करेंगे और यदि अत्यन्त उदाररूपा तुमको कभी शोक हुआ तो वे लोग तुम्हें शिक्षा देंगे तथा अपने गुणोंसे प्रसन्न रखेंगे॥ ३३॥

विचित्रैः कोकिलालापमोदैः कुंजगणावृतम्।
सदा वसंतप्रभवं गंतुमिच्छसि किं प्रिये॥ ३४

हे प्रिये! कोकिलोंके विचित्र मधुर आलापोंसे परिपूर्ण कुंजसमूहोंसे आवृत स्थानमें जहाँ वसन्तकी उत्पत्तिका स्थान है, क्या तुम उस स्थानमें जाना चाहती हो?॥ ३४॥

नानाबहुजलापूर्णसरः शीतसमावृतम्।
पद्मिनीशतशोयुक्तमचलेन्द्रं हिमालयम्॥ ३५

सर्वकामप्रदैर्वृक्षैः शाद्वलैः कल्पसंज्ञकैः।
सक्षणं पश्य कुसुमान्यथाश्वकरिगोव्रजम्॥ ३६

प्रशांतश्वापदगणं मुनिभिर्यतिभिर्वृतम्।
देवालये महामाये नानामृगगणैर्युतम्॥ ३७

जहाँ विविध प्रकारके अनेक तालाब सैकड़ों कमलिनियोंसे समन्वित शीतल जलसे परिपूर्ण हैं, जहाँ अश्व, हाथी तथा गौओंका निवास है, हे देवि! वहाँ सभी प्रकारकी कामनाओंको प्रदान करनेवाले कल्पसंज्ञक वृक्षोंसे घिरे हुए सुन्दर मनोहारी पुष्पोंको तथा हरे-भरे नवीन घासके मैदानोंको प्रफुल्लित नेत्रोंसे देखना। हे महामाये! इस प्रकारके उस हिमालयपर हिंसक जन्तुगण भी शान्तिपूर्वक निवास करते हैं, वह अनेक प्रकारके मृगगणोंसे युक्त है, वहाँपर स्थित देवालयोंमें मुनियों तथा यतियोंका निवास है॥ ३५—३७॥

स्फाटिकैः स्वर्णवप्राद्यै राजतैश्च विराजितम्।
मानसादिसरोरंगैरभितः परिशोभितम्॥ ३८

हिरण्मयै रत्ननालैः पंकजैर्मुकुलैर्वृतम्।
शिशुमारैस्तथासंख्यैः कच्छपैर्मकरैः करैः॥ ३९

उस पर्वतके शिखर स्फटिक, सुवर्ण एवं चाँदीसे व्याप्त हैं, वह मानसादि सरोवरोंसे चारों ओरसे सुशोभित है। वह सुवर्णसे बने हुए, रत्नोंके दण्डवाले अधखिले कमलोंसे व्याप्त है। शिशुमार एवं असंख्य कच्छप एवं मकरोंसे वह मानसरोवर परिव्याप्त है॥ ३८-३९॥

निषेवितं मञ्जुलैश्च तथा नीलोत्पलादिभिः।
देवेशि तस्मान्मुक्तैश्च सर्वगंधैश्च कुंकुमैः॥ ४०

लसद्गन्धजलैः शुभ्रैरापूर्णैः स्वच्छकांतिभिः।

वह मनोहर नीलकमलों और उत्पलकमलोंसे शोभित है। हे देवेशि! वह [कमलपुष्पोंसे] गिरते हुए सुगन्धित कुंकुमोंसे व्याप्त है। गन्धोंसे समन्वित स्वच्छ जलोंसे वह मानसरोवर पूर्ण है। मानसरोवरका तट

शाद्वलैस्तरुणैस्तुङ्गैस्तीरस्थैरुपशोभितम् ॥ ४१

नृत्यद्भिरिव शाखोटैर्वर्जयन्तं स्वसंभवम्।
कामदेवैः सारसैश्च मत्तचक्राङ्गशोभितैः॥ ४२

मधुरारावविभिर्मोदकारिभिर्भ्रमरादिभिः ।
शब्दायमानं च मुदा कामोद्दीपनकारकम्॥ ४३

वासवस्य कुबेरस्य यमस्य वरुणस्य च।
अग्नेः कोणपराजस्य मारुतस्य परस्य च॥ ४४
पुरीभिः शोभिशिखरं मेरोरुच्चैः सुरालयम्।
रंभाशचीमेनकादिरंभोरुगणसेवितम् ॥ ४५

किं त्वमिच्छसि सर्वेषां पर्वतानां हि भूभृताम्।
सारभूते महारम्ये संविहर्तुं महागिरौ॥ ४६

तत्र देवी सखियुता साप्सरोगणमंडिता।
नित्यं करिष्यति शची तव योग्यां सहायताम्॥ ४७

अथवा मम कैलासे पर्वतेन्द्रे सदाश्रये।
स्थानमिच्छसि वित्तेशपुरीपरिविराजिते॥ ४८

गङ्गाजलौघप्रयते पूर्णचन्द्रसमप्रभे।
दरीषु सानुषु सदा ब्रह्मकन्याभ्युदीरिते॥ ४९

नानामृगगणैर्युक्ते पद्माकरशतावृते।
सर्वैर्गुणैश्च सद्वस्तुसुमेरोरपि सुंदरे॥ ५०

स्थानेष्वेतेषु यत्रापि तवान्तःकरणे स्पृहा।
तं द्रुतं मे समाचक्ष्व वासकर्तास्मि तत्र ते॥ ५१

ब्रह्मोवाच

इतीरिते शंकरेण तदा दाक्षायणी शनैः।
इदमाह महादेवं लक्षणं स्वप्रकाशनम्॥ ५२

सत्युवाच

हिमाद्रावेव वसितुमहमिच्छे त्वया सह।
नचिरात्कुरु संवासं तस्मिन्नेव महागिरौ॥ ५३

हरे-भरे, ऊँचे एवं नवीन घासवाले भूमिभागसे सुशोभित है। यहाँके शाखोटके वृक्ष इस प्रकार प्रतीत हो रहे हैं, जैसे अपनी शाखाको हिलाकर नृत्य कर रहे हों। अपनी इच्छाके अनुसार अनेक प्रकारके रूप धारण करनेवाले देवताओं, सारसों एवं मतवाले चक्रवाकोंसे मानसरोवर सुशोभित हो रहा है॥ ४०—४२॥

परम आनन्दको प्रदान करनेवाले भौंरोंके मधुर शब्दोंसे गुंजित वह मानसरोवर महान् उद्दीपन करनेवाला है॥ ४३॥

मेरुपर्वतके ऊँचे शिखरपर इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, अग्नि, निर्ऋति, वायु तथा ईशानकी पुरियाँ हैं, जहाँ देवताओंका निवासस्थान है। रम्भा, शची एवं मेनकादि अप्सराओंसे वह मेरुशिखर सुशोभित है॥ ४४-४५॥

[हे देवि!] क्या तुम उन समस्त पर्वतोंके राजा तथा पृथिवीके सारभूत महारम्य सुमेरु पर्वतपर विहार करना चाहती हो?॥ ४६॥

वहाँ [निवास करनेसे] सखियों एवं अप्सराओं-सहित शची देवी तुम्हारी उचित सहायता करेंगी॥ ४७॥

अथवा तुम मेरे आश्रयभूत कैलासपर, जो पर्वतेन्द्रके नामसे विख्यात है, उसपर निवास करना चाहती हो, जहाँपर कुबेरकी अलकापुरी है। जहाँ गंगाकी जलधारा बह रही है, जो स्वयं पूर्णचन्द्रके समान समुज्ज्वल है और जिस कैलासकी कन्दराओं तथा शिखरोंपर ब्रह्मकन्याएँ मनोहर गान करती हैं॥ ४८-४९॥

यह कैलास अनेक प्रकारके मृगगणोंके समूहोंसे युक्त, सैकड़ों कमलोंसे परिपूर्ण एवं सुमेरुपर्वतकी अपेक्षा समस्त गुणोंसे युक्त तथा सुन्दर है॥ ५०॥

[हे देवि!] इन स्थानोंमें जहाँ कहीं भी तुम्हारी रहनेकी इच्छा हो, उस स्थानको शीघ्र मुझे बताओ। मैं वहाँपर तुम्हारे निवासस्थानका निर्माण करूँगा॥ ५१॥

ब्रह्माजी बोले—शंकरके इस प्रकार कहनेपर सतीदेवी अपने निवासभूत स्थानका लक्षण इस प्रकार कहने लगीं—॥ ५२॥

सती बोलीं—हे देव! मैं आपके साथ इस पर्वतराज हिमालयपर ही निवास करना चाहती हूँ, आप इसी पर्वतपर शीघ्रतापूर्वक निवासस्थानका निर्माण कीजिये॥ ५३॥

ब्रह्मोवाच

अथ तद्वाक्यमाकर्ण्य हरः परममोहितः।
हिमाद्रिशिखरं तुङ्गं दाक्षायण्या समं ययौ॥ ५४

सिद्धाङ्गनागणयुतमगम्यं चैव पक्षिभिः।
अगमच्छिखरं रम्यं सरसीवनराजितम्॥ ५५

विचित्ररूपैः कमलैः शिखरं रत्नकर्बुरम्।
बालार्कसदृशं शंभुराससाद सतीसखः॥ ५६

स्फटिकाभ्रमये तस्मिन् शाद्वलद्रुमराजिते।
विचित्रपुष्पावलिभिः सरसीभिश्च संयुते॥ ५७

प्रफुल्लतरुशाखाग्रं गुंजद् भ्रमरसेवितम्।
पङ्केरुहैः प्रफुल्लैश्च नीलोत्पलचयैस्तथा॥ ५८

शोभितं चक्रवाकाद्यैः कादंबैर्हंससंकुलैः।
प्रमत्तसारसैः क्रौंचैर्नीलस्कन्धैश्च शब्दितैः॥ ५९

पुंस्कोकिलानां निनदैर्मधुरैर्गणसेवितैः।
तुरंगवदनैः सिद्धैरप्सरोभिश्च गुह्यकैः॥ ६०

विद्याधरीभिर्देवीभिः किन्नरीभिर्विहारितम्।
पुरंध्रीभिः पार्वतीभिः कन्याभिरभिसङ्गतम्॥ ६१

विपञ्चीतांत्रिकामत्तमृदङ्गपटहस्वनैः।
नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च कौतुकोत्थैश्च शोभितम्॥ ६२

देविकाभिर्दीर्घिकाभिर्गंधिभिः सुसमावृतम्।
प्रफुल्लकुसुमैर्नित्यं सुकुञ्जैरुपशोभितम्॥ ६३

शैलराजपुराभ्यर्णे शिखरे वृषभध्वजः।
सह सत्या चिरं रेमे एवंभूतेषु शोभनम्॥ ६४

तस्मिन् स्वर्गसमे स्थाने दिव्यमानेन शंकरः।
दशवर्षसहस्राणि रेमे सत्या समं मुदा॥ ६५

स कदाचित्ततः स्थानादन्यद्याति स्थलं हरः।
कदाचिन्मेरुशिखरं देवीदेववृतं सदा॥ ६६

ब्रह्माजी बोले—सतीद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर शंकरजी अत्यधिक मोहित हो गये और सतीको साथ लेकर हिमालयपर्वतके ऊँचे शिखरपर चले गये॥ ५४॥

सिद्धांगनाओंसे युक्त, पक्षियोंसे सर्वथा अगम्य, अनेक छोटी-छोटी बावलियोंसे युक्त, विचित्र कमलोंसे चित्रित और प्रातःकालीन सूर्यके समान सुशोभित उस शिखरपर शिवजी सती देवीके साथ चले गये॥ ५५-५६॥

वह स्फटिकमणिके समान समुज्ज्वल, हरे-भरे वृक्षोंसे तथा घासोंसे परिपूर्ण, विचित्र पुष्पोंवाली बावलियोंसे युक्त था, उस शिखरके वृक्षोंकी शाखाओंका अग्रभाग विकसित पुष्पोंसे शोभित था, भौंरे गुंजार कर रहे थे, वह नील एवं अनेक वर्णके कमलोंसे परिव्याप्त था॥ ५७-५८॥

चक्रवाक, कदम्ब, हंस, शुक, सारस और नीली गर्दनवाले क्रौंच पक्षियोंके शब्दोंसे वह शिखर शब्दायमान हो रहा था॥ ५९॥

उस शिखरपर पुंस्कोकिल मनोहर शब्द कर रहे थे, वह अनेक प्रकारके गणों, किन्नरियों, सिद्धों, अप्सराओं तथा गुह्यकोंसे सेवित था॥ ६०॥

विद्याधरियाँ, देवियाँ तथा किन्नरियाँ वहाँ विहार कर रही थीं तथा पर्वतीय स्त्रियों एवं कन्याओंसे वह युक्त था॥ ६१॥

वीणा, सितार, मृदंग एवं पटहके वाद्ययन्त्रोंपर नृत्य एवं कौतुक करती हुई अप्सराओंके समूहसे वह शिखर सुशोभित हो रहा था॥ ६२॥

देविकाओं, दीर्घिकाओं, खिले हुए तथा सुगन्धित पुष्पों और निकुंजोंसे वह शोभायमान हो रहा था॥ ६३॥

इस प्रकारकी शोभासे युक्त पर्वतराज हिमालयके शिखरपर शंकरजी सती देवीके साथ बहुत कालतक रमण करते रहे॥ ६४॥

महादेवजी उस स्वर्गके समान दिव्य स्थानमें सतीके साथ देवताओंके वर्षके गणनानुसार दस हजार वर्षतक प्रसन्नतापूर्वक विहार करते रहे॥ ६५॥

वे कभी उस स्थानको छोड़कर सतीके साथ किसी दूसरे स्थानपर चले जाते थे और कभी देवी-देवताओंसे व्याप्त मेरु शिखरपर चले जाते थे॥ ६६॥

द्वीपान्नाना तथोद्यानवनानि वसुधातलम्।
गत्वा गत्वा पुनस्तत्राभ्येत्य रेमे सतीसुखम्॥ ६७

इस पृथ्वीतलके अनेक प्रकारके द्वीपों, उद्यानों एवं वनोंमें जाकर पुनः वहाँ आकर सतीके साथ रमण करने लगते थे॥ ६७॥

न यज्ञे स दिवारात्रौ न ब्रह्मणि तपस्समम्।
सत्यां हि मनसा शंभुः प्रीतिमेव चकार ह॥ ६८

शिवजीका मन यज्ञ, ब्रह्म तथा समाधिमें नहीं लगता था, वे शम्भु दिन-रात मनसे सतीमें ही प्रीति करते रहते थे॥ ६८॥

एवं महादेवमुखं सत्यपश्यत्स्म सर्वदा।
महादेवोऽपि सर्वत्र सदाद्राक्षीत्सतीमुखम्॥ ६९

इसी प्रकार सती भी निरन्तर महादेवजीके मुखका अवलोकन करती रहती थीं और शिवजी भी सतीके मुखको देखते रहते थे॥ ६९॥

एवमन्योन्यसंसर्गादनुरागमहीरुहम्।
वर्धयामासतुः कालीशिवौ भावांबुसेचनैः॥ ७०

इस प्रकार वे शिव तथा सती परस्परके संयोगसे स्नेहरूपी जलद्वारा अनुरागरूपी वृक्षको सिंचितकर बढ़ाने लगे॥ ७०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे शिवाशिवविहारवर्णनं नामद्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें शिवा-शिवविहारवर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

सतीके पूछनेपर शिवद्वारा भक्तिकी महिमा तथा नवधा भक्तिका निरूपण

ब्रह्मोवाच

एवं कृत्वा विहारं वै शंकरेण च सा सती।
संतुष्टा साभवच्चाति विरागा समजायत॥ १

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इस प्रकार शंकरजीके साथ विहार करके वे सती कामसे सन्तुष्ट हो गयीं और उनके मनमें वैराग्य उत्पन्न होने लगा॥ १॥

एकस्मिन्दिवसे देवी सती रहसि सङ्गता।
शिवं प्रणम्य सद्भक्त्या न्यस्योच्चैः सुकृताञ्जलिः॥ २
सुप्रसन्नं प्रभुं नत्वा सा दक्षतनया सती।
उवाच साञ्जलिर्भक्त्या विनयावनता ततः॥ ३

एक दिनकी बात है, देवी सती एकान्तमें भगवान् शंकरसे मिलीं और उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणामकर दोनों हाथ जोड़कर खड़ी हो गयीं। भगवान् शंकरको प्रसन्नचित्त जानकर विनयभावसे दक्षकुमारी सती कहने लगीं—॥ २-३॥

सत्युवाच

देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो।
दीनोद्धर महायोगिन् कृपां कुरु ममोपरि॥ ४

सती बोलीं—हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणासागर! हे प्रभो! हे दीनोद्धारपरायण! हे महायोगिन्! मुझपर कृपा कीजिये॥ ४॥

त्वं परः पुरुषः स्वामी रजःसत्त्वतमःपरः।
निर्गुणः सगुणः साक्षी निर्विकारी महाप्रभुः॥ ५

आप परमपुरुष हैं, इस जगत्के स्वामी हैं, रजोगुण-तमोगुण एवं सत्त्वगुणसे परे हैं, निर्गुण हैं, सगुण भी हैं, सबके साक्षी हैं, निर्विकार हैं और महाप्रभु हैं॥ ५॥

धन्याहं ते प्रिया जाता कामिनी सुविहारिणी।
जातस्त्वं मे पतिः स्वामिन् भक्तवात्सल्यतो हर॥ ६

मैं धन्य हूँ, जो आपकी कामिनी और आपके साथ सुन्दर विहार करनेवाली आपकी प्रिया हुई। हे स्वामिन्! हे हर! आप अपनी भक्तवत्सलताके कारण ही मेरे स्वामी हुए॥ ६॥

कृतो बहुसमा नाथ विहारः परमस्त्वया।
संतुष्टाहं महेशान निवृत्तं मे मनस्ततः॥ ७

हे नाथ! मैंने आपके साथ बहुत दिनोंतक विहार किया। हे महेशान! इससे मैं सन्तुष्ट हो गयी हूँ। अब मेरा मन उधरसे हट गया है॥ ७॥

ज्ञातुमिच्छामि देवेश परं तत्त्वं सुखावहम्।
येन संसारदुःखाद्वै तरेज्जीवोऽञ्जसा हर॥ ८

हे देवेश! अब मैं परमतत्त्वका ज्ञान प्राप्त करना चाहती हूँ, जो सुख प्रदान करनेवाला है तथा हे हर! जिसको जान लेनेपर समस्त जीव संसारदुःखसे अनायास ही उद्धार प्राप्त कर लेते हैं॥ ८॥

यत्कृत्वा विषयी जीवः स लभेत्परमं पदम्।
संसारी न भवेन्नाथ तत्त्वं वद कृपां कुरु॥ ९

हे नाथ! जिस कर्मका अनुष्ठान करके विषयी जीव भी परमपदको प्राप्त कर लेता है तथा पुनः संसारबन्धनमें नहीं पड़ता है, उस परमतत्त्वको आप बताइये, मुझपर कृपा कीजिये॥ ९॥

ब्रह्मोवाच

इत्यपृच्छत्स्म सद्भक्त्या शंकरं सा सती मुने।
आदिशक्तिर्महेशानी जीवोद्धाराय केवलम्॥ १०

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इस प्रकार आदिशक्ति महेश्वरी सतीने केवल जीवोंके उद्धारके लिये उत्तम भक्तिभावसे भगवान् शंकरसे इस प्रकार पूछा॥ १०॥

आकर्ण्य तच्छिवः स्वामी स्वेच्छयोपात्तविग्रहः।
अवोचत्परमप्रीतः सतीं योगविरक्तधीः॥ ११

तब इसे सुनकर स्वेच्छासे शरीर धारण करनेवाले तथा योगके द्वारा भोगसे विरक्त चित्तवाले स्वामी शिवजी अत्यन्त प्रसन्न होकर सतीसे कहने लगे—॥ ११॥

शिव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि दाक्षायणि महेश्वरि।
परं तत्त्वं तदेवानुशयी मुक्तो भवेद्यतः॥ १२

शिवजी बोले—हे देवि! हे दक्षनन्दिनि! हे महेश्वरि! सुनो, मैं उस परमतत्त्वका वर्णन करता हूँ, जिससे वासनाबद्ध जीव तत्काल मुक्त हो जाता है॥ १२॥

परतत्त्वं विजानीहि विज्ञानं परमेश्वरि।
द्वितीयं स्मरणं यत्र नाहं ब्रह्मेति शुद्धधीः॥ १३

हे सती! तुम विज्ञानको परमतत्त्व जानो। विज्ञान वह है, जिसके उदय होनेपर 'मैं ब्रह्म हूँ', ऐसा दृढ़ निश्चय हो जाता है। ब्रह्मके सिवा दूसरी किसी वस्तुका स्मरण नहीं रहता तथा उस विज्ञानी पुरुषकी बुद्धि सर्वथा शुद्ध हो जाती है॥ १३॥

तद्दुर्लभं त्रिलोकेऽस्मिंस्तज्ज्ञाता विरलः प्रिये।
यादृशो यः स दासोऽहं ब्रह्म साक्षात्परात्परः॥ १४

हे प्रिये! वह विज्ञान दुर्लभ है, त्रिलोकीमें उसका ज्ञाता कोई विरला ही होता है। वह जो और जैसा भी है, सदा मेरा स्वरूप ही है। साक्षात् परात्पर ब्रह्म है॥ १४॥

तन्माता मम भक्तिश्च भुक्तिमुक्तिफलप्रदा।
सुलभा मत्प्रसादाद्धि नवधा सा प्रकीर्तिता॥ १५

भक्तौ ज्ञाने न भेदो हि तत्कर्तुः सर्वदा सुखम्।
विज्ञानं न भवत्येव सति भक्तिविरोधिनः॥ १६

इस प्रकारके विज्ञानकी माता केवल मेरी भक्ति है, जो भोग और मोक्षरूप फल प्रदान करती है। वह मेरी कृपासे सुलभ होती है। वह भक्ति नौ प्रकारकी कही गयी है। हे सति! भक्ति और ज्ञानमें कोई भेद नहीं है। भक्त और ज्ञानी दोनोंको ही सदा सुख प्राप्त होता है। भक्तिके विरोधीको विज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती॥ १५-१६॥

भक्ताधीः सदाहं वै तत्प्रभावाद् गृहेष्वपि।
नीचानां जातिहीनानां यामि देवि न संशयः॥ १७

हे देवि! मैं सदा भक्तके अधीन रहता हूँ और भक्तिके प्रभावसे जातिहीन नीच मनुष्योंके घरोंमें भी चला जाता हूँ, इसमें संशय नहीं है॥ १७॥

या भक्तिर्द्विविधा देवि सगुणा निर्गुणा मता।
वैधी स्वाभाविकी या या वरा सा त्ववरा स्मृता॥ १८

नैष्ठिक्यनैष्ठिकी भेदाद् द्विविधे द्विविधे हि ते।
षड्विधा नैष्ठिकी ज्ञेया द्वितीयैकविधा स्मृता॥ १९

हे देवि! वह भक्ति दो प्रकारकी कही गयी है, सगुण और निर्गुण। जो वैधी अर्थात् शास्त्रविधिसे प्रेरित और स्वाभाविकी भक्ति होती है, वह श्रेष्ठ है और इससे भिन्न जो कामनामूलक भक्ति है, वह निम्नकोटिकी कही गयी है। सगुण और निर्गुण भक्ति—ये दोनों प्रकारकी भक्तियाँ नैष्ठिकी और अनैष्ठिकीके भेदसे दो प्रकारकी हो जाती हैं। नैष्ठिकी भक्ति छः प्रकारवाली जाननी चाहिये और अनैष्ठिकी एक ही प्रकारकी कही गयी है॥ १८-१९॥

विहिताविहिताभेदात्तामनेकां विदुर्बुधाः।
तयोर्बहुविधत्वाच्च तत्त्वं त्वन्यत्र वर्णितम्॥ २०

ते नवाङ्गे उभे ज्ञेये वर्णिते मुनिभिः प्रिये।
वर्णयामि नवाङ्गानि प्रेमतः शृणु दक्षजे॥ २१

विद्वान् पुरुष विहिता और अविहिता आदि भेदसे उसे अनेक प्रकारकी मानते हैं। इन द्विविध भक्तियोंके बहुतसे भेद-प्रभेद होनेके कारण इनके तत्त्वका अन्यत्र वर्णन किया गया है। हे प्रिये! मुनियोंने सगुण और निर्गुण दोनों भक्तियोंके नौ अंग बताये हैं। हे दक्षनन्दिनि! मैं उन नौ अंगोंका वर्णन करता हूँ, तुम प्रेमसे सुनो॥ २०-२१॥

श्रवणं कीर्तनं चैव स्मरणं सेवनं तथा।
दास्यं तथार्चनं देवि वंदनं मम सर्वदा॥ २२

सख्यमात्मार्पणं चेति नवाङ्गानि विदुर्बुधाः।
उपाङ्गानि शिवे तस्या बहूनि कथितानि वै॥ २३

हे देवि! श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, दास्य, अर्चन, सदा मेरा वन्दन, सख्य और आत्मसमर्पण—विद्वानोंने भक्तिके ये नौ अंग माने हैं। हे शिवे! इसके अतिरिक्त उस भक्तिके बहुत-से उपांग भी कहे गये हैं॥ २२-२३॥

शृणु देवि नवाङ्गानां लक्षणानि पृथक् पृथक्।
मम भक्तेर्मनो दत्त्वा भुक्तिमुक्तिप्रदानि हि॥ २४

कथादेर्नित्यसम्मानं कुर्वन्देहादिभिर्मुदा।
स्थिरासनेन तत्पानं यत्तच्छ्रवणमुच्यते॥ २५

हे देवि! अब तुम मन लगाकर मेरी भक्तिके नौ अंगोंके पृथक्-पृथक् लक्षण सुनो, जो भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। जो स्थिर आसनपर बैठकर तन-मन आदिसे मेरे कथा-कीर्तन आदिका नित्य सम्मान करते हुए प्रसन्नतापूर्वक [अपने श्रवणपुटोंसे] उसका पान किया जाता है, उसे श्रवण कहते हैं॥ २४-२५॥

हृदाकाशेन संपश्यन् जन्मकर्माणि वै मम।
प्रीत्योच्चोच्चारणं तेषामेतत्कीर्तनमुच्यते॥ २६

व्यापकं देवि मां दृष्ट्वा नित्यं सर्वत्र सर्वदा।
निर्भयत्वं सदा लोके स्मरणं तदुदाहृतम्॥ २७

जो हृदयाकाशके द्वारा मेरे दिव्य जन्म एवं कर्मोंका चिन्तन करता हुआ प्रेमसे वाणीद्वारा उनका उच्च स्वरसे उच्चारण करता है, उसके इस भजनसाधनको कीर्तन कहा जाता है। हे देवि! मुझ नित्य महेश्वरको सदा और सर्वत्र व्यापक जानकर संसारमें निरन्तर निर्भय रहनेको स्मरण कहा गया है [यह निर्गुण स्मरण भक्ति है।]॥ २६-२७॥

अरुणोदयमारभ्य सेवाकालेऽञ्चिता हृदा।
निर्भयत्वं सदा लोके स्मरणं तदुदाहृतम्॥ २८

अरुणोदयकालसे प्रारम्भकर शयनपर्यन्त तत्पर-चित्तसे निर्भय होकर भगवद्विग्रहकी सेवा करनेको स्मरण कहा जाता है [यह सगुण स्मरण भक्ति है।] ॥ २८ ॥

सदा सेव्यानुकूल्येन सेवनं तद्धि गोगणैः।
हृदयामृतभोगेन प्रियं दास्यमुदाहृतम्॥ २९

हर समय सेव्यकी अनुकूलताका ध्यान रखते हुए हृदय और इन्द्रियोंसे जो निरन्तर सेवा की जाती है, वही सेवन नामक भक्ति है। अपनेको प्रभुका किंकर समझकर हृदयामृतके भोगसे स्वामीका सदा प्रिय-सम्पादन करना दास्य कहा गया है॥ २९ ॥

सदा भृत्यानुकूल्येन विधिना मे परात्मने।
अर्पणं षोडशानां वै पाद्यादीनां तदर्चनम्॥ ३०

अपनेको सदा सेवक समझकर शास्त्रीय विधिसे मुझ परमात्माको सदा पाद्य आदि सोलह उपचारोंका जो समर्पण करना है, उसे अर्चन कहा जाता है॥ ३० ॥

मंत्रोच्चारणध्यानाभ्यां मनसा वचसा क्रमात्।
यदष्टाङ्गेन भूस्पर्शं तद्वै वंदनमुच्यते॥ ३१

वाणीसे मन्त्रका उच्चारण करते हुए तथा मनसे ध्यान करते हुए आठों अंगोंसे भूमिका स्पर्श करते हुए जो इष्टदेवको अष्टांग प्रणाम* किया जाता है, उसे वन्दन कहा जाता है॥ ३१ ॥

मङ्गलामङ्गलं यद्यत्करोतीतीश्वरो हि मे।
सर्वं तन्मङ्गलायेति विश्वासः सख्यलक्षणम्॥ ३२

ईश्वर मंगल-अमंगल जो कुछ भी करता है, वह सब मेरे मंगलके लिये है—ऐसा दृढ़ विश्वास रखना सख्य भक्तिका लक्षण है॥ ३२ ॥

कृत्वा देहादिकं तस्य प्रीत्यै सर्वं तदर्पणम्।
निर्वाहाय च शून्यत्वं यत्तदात्मसमर्पणम्॥ ३३

देह आदि जो कुछ भी अपनी कही जानेवाली वस्तु है, वह सब भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये उन्हींको समर्पित करके अपने निर्वाहके लिये कुछ भी बचाकर न रखना अथवा निर्वाहकी चिन्तासे भी रहित हो जाना, आत्मसमर्पण कहा जाता है॥ ३३ ॥

नवाङ्गानीति मद्भक्तेर्भुक्तिमुक्तिप्रदानि च।
मम प्रियाणि चातीव ज्ञानोत्पत्तिकराणि च॥ ३४
उपाङ्गानि च मद्भक्तेर्बहूनि कथितानि वै।
बिल्वादिसेवनादीनि समूह्यानि विचारतः॥ ३५

मेरी भक्तिके ये नौ अंग हैं, जो भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। इनसे ज्ञान प्रकट हो जाता है तथा ये साधन मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। मेरी भक्तिके अनेक उपांग भी कहे गये हैं। जैसे बिल्व आदिका सेवन, इनको विचारसे समझ लेना चाहिये॥ ३४-३५ ॥

इत्थं साङ्गोपाङ्गभक्तिर्मम सर्वोत्तमा प्रिये।
ज्ञानवैराग्यजननी मुक्तिदासी विराजते॥ ३६

सर्वकर्मफलोत्पत्तिः सर्वदा त्वत्समप्रिया।
यच्चित्ते सा स्थिता नित्यं सर्वदा सोऽति मत्प्रियः॥ ३७

हे प्रिये! इस प्रकार मेरी सांगोपांग भक्ति सबसे उत्तम है। यह ज्ञान-वैराग्यकी जननी है और मुक्ति इसकी दासी है। हे देवि! भक्ति सर्वदा सभी कर्मोंके फलोंको देनेवाली है, यह भक्ति मुझे सदा तुम्हारे समान ही प्रिय है। जिसके चित्तमें नित्य-निरन्तर यह भक्ति निवास करती है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है॥ ३६-३७ ॥

---

* दोनों चरणों, दोनों हाथों, दोनों जानुओं, वक्षःस्थल, सिर, मन, वाणी तथा भक्तिभाव (मतान्तरसे दृष्टिसे)—इस प्रकार आठ अंगोंसे भूमिपर दण्डकी भाँति लेटकर जो प्रणाम किया जाता है, वह अष्टांग-प्रणाम कहलाता है—

दोर्भ्यां पद्भ्यां च जानुभ्यामुरसा शिरसा तथा। मनसा वचसा भक्त्या प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः॥

(आचारेन्दुमें नरसिंहपुराणका वचन)

त्रैलोक्ये भक्तिसदृशः पंथा नास्ति सुखावहः।
चतुर्युगेषु देवेशि कलौ तु सुविशेषतः॥ ३८

कलौ तु ज्ञानवैराग्यौ वृद्धरूपौ निरुत्सवौ।
ग्राहकाभावतो देवि जातौ जर्जरतामति॥ ३९

हे देवेशि! तीनों लोकों और चारों युगोंमें भक्तिके समान दूसरा कोई सुखदायक मार्ग नहीं है। कलियुगमें तो यह विशेष सुखद एवं सुविधाजनक है; क्योंकि कलियुगमें प्रायः ज्ञान और वैराग्य दोनों ही ग्राहकके अभावके कारण वृद्ध, उत्साहशून्य और जर्जर हो जाते हैं॥ ३८-३९॥

कलौ प्रत्यक्षफलदा भक्तिः सर्वयुगेष्वपि।
तत्प्रभावादहं नित्यं तद्वशो नात्र संशयः॥ ४०

परंतु भक्ति कलियुगमें तथा अन्य सभी युगोंमें भी प्रत्यक्ष फल देनेवाली है। भक्तिके प्रभावसे मैं सदा भक्तके वशमें रहता हूँ, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४०॥

यो भक्तिमान्पुमाँल्लोके सदाहं तत्सहायकृत्।
विघ्नहर्ता रिपुस्तस्य दंड्यो नात्र च संशयः॥ ४१

संसारमें जो भक्तिमान् पुरुष है, उसकी मैं सदा सहायता करता हूँ और उसके कष्टोंको दूर करता हूँ। उस भक्तका जो शत्रु होता है, वह मेरे लिये दण्डनीय है, इसमें संशय नहीं है॥ ४१॥

भक्तहेतोरहं देवि कालं क्रोधपरिप्लुतः।
अदहं वह्निना नेत्रभवेन निजरक्षकः॥ ४२

हे देवि! मैं अपने भक्तोंका रक्षक हूँ, भक्तकी रक्षाके लिये ही मैंने कुपित होकर अपने नेत्रजनित अग्निसे कालको भी भस्म कर डाला था॥ ४२॥

भक्तहेतोरहं देवि रव्युपर्यभवं किल।
अतिक्रोधान्वितः शूलं गृहीत्वान्वजयं पुरा॥ ४३

हे देवि! भक्तकी रक्षाके लिये मैं पूर्वकालमें सूर्यपर भी अत्यन्त क्रोधित हो उठा था और मैंने त्रिशूल लेकर सूर्यको भी जीत लिया था॥ ४३॥

भक्तहेतोरहं देवि रावणं सगणं क्रुधा।
त्यजामि स्म कृतो नैव पक्षपातो हि तस्य वै॥ ४४

भक्तहेतोरहं देवि व्यासं हि कुमतिग्रहम्।
काश्या न्यसारयं क्रोधाद्दण्डयित्वा च नंदिना॥ ४५

हे देवि! मैंने भक्तके लिये सैन्यसहित रावणको भी क्रोधपूर्वक त्याग दिया और उसके प्रति कोई पक्षपात नहीं किया। हे देवि! भक्तोंके लिये ही मैंने कुमतिसे ग्रस्त व्यासको नन्दीद्वारा दण्ड दिलाकर उन्हें काशीके बाहर निकाल दिया॥ ४४-४५॥

किं बहूक्तेन देवेशि भक्ताधीनः सदा ह्यहम्।
तत्कर्तुः पुरुषस्यातिवशगो नात्र संशयः॥ ४६

हे देवेशि! बहुत कहनेसे क्या लाभ, मैं सदा ही भक्तके अधीन रहता हूँ और भक्ति करनेवाले पुरुषके अत्यन्त वशमें हो जाता हूँ, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४६॥

ब्रह्मोवाच

इत्थमाकर्ण्य भक्तेस्तु महत्त्वं दक्षजा सती।
जहर्षातीव मनसि प्रणनाम शिवं मुदा॥ ४७

ब्रह्माजी बोले—[नारद!] इस प्रकार भक्तिका महत्त्व सुनकर दक्षकन्या सतीको बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक भगवान् शिवको मन-ही-मन प्रणाम किया॥ ४७॥

पुनः पप्रच्छ सद्भक्त्या तत्काण्डविषयं मुने।
शास्त्रं सुखकरं लोके जीवोद्धारपरायणम्॥ ४८

हे मुने! देवी सतीने पुनः भक्तिविषयक शास्त्रके विषयमें बड़े आदरपूर्वक पूछा, जो लोकमें सुखदायक तथा जीवोंके उद्धारका साधन है॥ ४८॥

सयन्त्रमन्त्रशास्त्रं च तन्माहात्म्यं विशेषतः।
अन्यानि धर्मवस्तूनि जीवोद्धारकराणि हि॥ ४९

हे मुने! उन्होंने यन्त्र, मन्त्रशास्त्र, उनके माहात्म्य तथा अन्य जीवोद्धारक धर्ममय साधनोंके विषयमें विशेष रूपसे जाननेकी इच्छा प्रकट की॥ ४९॥

शंकरोऽपि तदाकर्ण्य सतीप्रश्नं प्रहृष्टधीः।
वर्णयामास सुप्रीत्या जीवोद्धाराय कृत्स्नशः॥ ५०

सतीके इस प्रश्नको सुनकर शंकरजीके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने जीवोंके उद्धारके लिये सब शास्त्रोंका प्रेमपूर्वक वर्णन किया॥ ५०॥

तन्त्रशास्त्रं सयन्त्रं हि सपञ्चाङ्गं महेश्वरः।
बभाषे महिमानं च तत्तद्देववरस्य वै॥ ५१

महेश्वरने पाँचों अंगसहित तन्त्रशास्त्र, यन्त्रशास्त्र तथा भिन्न-भिन्न देवेश्वरोंकी महिमाका वर्णन किया॥ ५१॥

सेतिहासकथां तेषां भक्तमाहात्म्यमेव च।
सवर्णाश्रमधर्मांश्च नृपधर्मान् मुनीश्वर॥ ५२
सुतस्त्रीधर्ममाहात्म्यं वर्णाश्रममनश्वरम्।
वैद्यशास्त्रं तथा ज्योतिःशास्त्रं जीवसुखावहम्॥ ५३
सामुद्रिकं परं शास्त्रमन्यच्छास्त्राणि भूरिशः।
कृपां कृत्वा महेशानो वर्णयामास तत्त्वतः॥ ५४

हे मुनीश्वर! महेश्वरने कृपा करके इतिहास—कथासहित उन देवताओंके भक्तोंकी महिमा, वर्णाश्रमधर्म, राजधर्म, पुत्र और स्त्रीके धर्मकी महिमा, कभी नष्ट न होनेवाले वर्णाश्रम, जीवोंको सुख देनेवाले वैद्यकशास्त्र एवं ज्योतिषशास्त्र, उत्तम सामुद्रिकशास्त्र तथा अन्य भी बहुतसे शास्त्रोंका तत्त्वतः वर्णन किया॥ ५२—५४॥

इत्थं त्रिलोकसुखदौ सर्वज्ञौ च सतीशिवौ।
लोकोपकारकरणधृतसद्गुणविग्रहौ॥ ५५

चिक्रीडाते बहुविधं कैलासे हिमवद् गिरौ।
अन्यस्थलेषु च तदा परब्रह्मस्वरूपिणौ॥ ५६

इस प्रकार लोकोपकार करनेके लिये सद्गुणसम्पन्न शरीर धारण करनेवाले, तीनों लोकोंको सुख देनेवाले सर्वज्ञ परब्रह्मस्वरूप शिव और सतीने हिमालयपर्वतके कैलासशिखरपर तथा अन्यान्य स्थानोंमें अनेक प्रकारकी लीलाएँ कीं॥ ५५-५६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे भक्तिप्रभाववर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें भक्तिके प्रभावका वर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

दण्डकारण्यमें शिवको रामके प्रति मस्तक झुकाते देख सतीका मोह तथा शिवकी आज्ञासे उनके द्वारा रामकी परीक्षा

नारद उवाच

ब्रह्मन् विधे प्रजानाथ महाप्राज्ञ कृपाकर।
श्रावितं शंकरयशः सतीशंकरयोः शुभम्॥ १

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे विधे! हे प्रजानाथ! हे महाप्राज्ञ! हे कृपाकर! आपने भगवान् शंकर तथा देवी सतीके मंगलकारी यशका श्रवण कराया है॥ १॥

इदानीं ब्रूहि सत्प्रीत्या परं तद्यश उत्तमम्।
किमकार्ष्टां हि तत्स्थौ वै चरितं दंपती शिवौ॥ २

अब इस समय पुनः प्रेमपूर्वक उनके उत्तम चरित्रका वर्णन कीजिये। उन दम्पती शिवा-शिवने वहाँ रहकर कौन-कौन-सा चरित्र किया था?॥ २॥

ब्रह्मोवाच

सतीशिवचरित्रं च शृणु मे प्रेमतो मुने।
लौकिकीं गतिमाश्रित्य चिक्रीडाते सदान्वहम्॥ ३

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! आप मुझसे सती और शिवके चरित्रका प्रेमपूर्वक श्रवण कीजिये। वे दोनों दम्पती वहाँ लौकिक गतिका आश्रय ले नित्य-निरन्तर क्रीडा करते थे॥ ३॥

ततः सती महादेवी वियोगमलभन्मुने।
स्वपतः शंकरस्येति वदन्त्येके सुबुद्धयः॥ ४

हे मुने! तदनन्तर महादेवी सतीको अपने पति शंकरका वियोग प्राप्त हुआ—ऐसा कुछ श्रेष्ठ बुद्धिवाले विद्वानोंका कथन है॥ ४॥

वागर्थाविव संपृक्तौ शक्तीशौ सर्वदा चितौ।
कथं घटेत च तयोर्वियोगस्तत्त्वतो मुने॥ ५

परंतु हे मुने! वास्तवमें उन दोनों शक्ति और शक्तिमान्‌का परस्पर वियोग कैसे हो सकता है; क्योंकि चिन्मय वे दोनों वाणी और अर्थके समान एक-दूसरेसे सदा मिले-जुले हैं॥ ५॥

लीलारुचित्वादथवा संघटेताखिलं च तत्।
कुरुते यद्यदीशौ च सतीशौ भवरीतिगौ॥ ६

फिर भी सर्वसमर्थ सती एवं शिव लीलाप्रिय होनेके कारण लोक-व्यवहारका अनुसरण करते हुए जो कुछ भी करते हैं, वह सब समीचीन ही है॥ ६॥

सा त्यक्ता दक्षजा दृष्ट्वा पतिना जनकाध्वरे।
शंभोरनादरात्तत्र देहं तत्याज सङ्गता॥ ७

दक्षकन्या सतीने जब देखा कि मेरे पतिने मुझे त्याग दिया है, तब वे अपने पिता दक्षके यज्ञमें गयीं और वहाँ भगवान् शंकरका अनादर देखकर उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया॥ ७॥

पुनर्हिमालये सैवाविर्भूता नामतः सती।
पार्वतीति शिवं प्राप तप्त्वा भूरि विवाहतः॥ ८

वे ही सती पुनः हिमालयके घर पार्वतीके नामसे प्रकट हुईं और कठोर तपस्या करके उन्होंने विवाहके द्वारा पुनः भगवान् शिवको प्राप्त कर लिया॥ ८॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य ब्रह्मणः स तु नारदः।
पप्रच्छ च विधातारं शिवाशिवमहद्यशः॥ ९

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] ब्रह्माजीकी इस बातको सुनकर नारदजी ब्रह्माजीसे शिवा और शिवके महान् यशके विषयमें इस प्रकार पूछने लगे—॥ ९॥

नारद उवाच

विष्णुशिष्य महाभाग विधे मे वद विस्तरात्।
शिवाशिवचरित्रं तद्भवाचारपरानुगम्॥ १०

नारदजी बोले—हे विष्णुशिष्य! हे महाभाग! हे विधे! आप मुझे शिवाशिवके लोक-आचारसे सम्बन्ध रखनेवाले उनके चरित्रको विस्तारपूर्वक बताइये॥ १०॥

किमर्थं शंकरो जायां तत्याज प्राणतः प्रियाम्।
तस्मादाचक्ष्व मे तात विचित्रमिति मन्महे॥ ११

हे तात! भगवान् शंकरजीने प्राणोंसे भी प्यारी अपनी धर्मपत्नी सतीका किसलिये त्याग किया? यह घटना बड़ी विचित्र जान पड़ती है, अतः इसे आप अवश्य कहिये॥ ११॥

कुतोऽध्वरेऽजः पुत्रस्यानादरोऽभूच्छिवस्य ते।
कथं तत्याज सा देहं गत्वा तत्र पितुः क्रतौ॥ १२

आपके पुत्र दक्ष प्रजापतिने यज्ञमें भगवान् शंकरका अनादर क्यों किया और वहाँ अपने पिताके यज्ञमें जाकर सतीने अपने शरीरका त्याग क्यों किया?॥ १२॥

ततः किमभवत्तत्र किमकार्षीन्महेश्वरः।
तत्सर्वं मे समाचक्ष्व श्रद्धायुक् तच्छ्रुतावहम्॥ १३

पुनः उसके बाद क्या हुआ? महेश्वरने क्या किया? ये सब बातें मुझसे कहिये। मैं इस वृत्तान्तको श्रद्धायुक्त होकर सुनना चाहता हूँ॥ १३॥

ब्रह्मोवाच

शृणु तात परप्रीत्या मुनिभिः सह नारद।
सुतवर्य महाप्राज्ञ चरितं शशिमौलिनः॥ १४
नमस्कृत्य महेशानं हर्यादिसुरसेवितम्।
परब्रह्म प्रवक्ष्यामि तच्चरित्रं महाद्भुतम्॥ १५

ब्रह्माजी बोले—मेरे पुत्रोंमें श्रेष्ठ हे महाप्राज्ञ! हे तात! हे नारद! आप महर्षियोंके साथ बड़े प्रेमसे भगवान् चन्द्रमौलिका चरित्र सुनिये। श्रीविष्णु आदि देवताओंसे सेवित परब्रह्म परमेश्वरको नमस्कार करके मैं उनके महान् अद्भुत चरित्रका वर्णन करता हूँ॥ १४-१५॥

सर्वेयं शिवलीला हि बहुलीलाकरः प्रभुः।
स्वतंत्रो निर्विकारी च सती सापि हि तद्विधा॥ १६
अन्यथा कः समर्थो हि तत्कर्मकरणे मुने।
परमात्मा परब्रह्म स एव परमेश्वरः॥ १७

हे मुने! यह सब शिवकी लीला है। वे प्रभु अनेक प्रकारकी लीला करनेवाले, स्वतन्त्र और निर्विकार हैं। देवी सती भी वैसी ही हैं। हे मुने! अन्यथा वैसा कर्म करनेमें कौन समर्थ हो सकता है। परमेश्वर शिव ही परब्रह्म परमात्मा हैं॥ १६-१७॥

यं सदा भजते श्रीशोऽहं चापि सकलाः सुराः।
मुनयश्च महात्मानः सिद्धाश्च सनकादयः॥ १८

शेषः सदा यशो यस्य मुदा गायति नित्यशः।
पारं न लभते तात स प्रभुः शंकरः शिवः॥ १९

जिनका भजन सदा श्रीपति विष्णु, मैं ब्रह्मा, समस्त देवतागण, महात्मा, मुनि, सिद्ध तथा सनकादि सदैव करते रहते हैं। शेषजी प्रसन्नतापूर्वक जिनके यशका निरन्तर गान करते रहते हैं, किंतु कभी भी उनका पार नहीं पाते हैं, वे ही शंकर सबके प्रभु तथा ईश्वर हैं॥ १८-१९॥

तस्यैव लीलया सर्वोऽयमिति तत्त्वविभ्रमः।
तत्र दोषो न कस्यापि सर्वव्यापी स प्रेरकः॥ २०

एकस्मिन्समये रुद्रः सत्या त्रिभवगो भवः।
वृषमारुह्य पर्याटद्रसां लीलाविशारदः॥ २१

यह सब तत्त्वविभ्रम उन्हींकी लीलासे हो रहा है। इसमें किसीका दोष नहीं है; क्योंकि वे सर्वव्यापी ही प्रेरक हैं। एक समयकी बात है तीनों लोकोंमें विचरण करनेवाले, लीलाविशारद भगवान् रुद्र सतीके साथ वृषभपर आरूढ़ हो पृथ्वीपर भ्रमण कर रहे थे॥ २०-२१॥

आगत्य दण्डकारण्यं पर्यटन् सागराम्बराम्।
दर्शयन् तत्रगां शोभां सत्यै सत्यपणः प्रभुः॥ २२

तत्र रामं ददर्शासौ लक्ष्मणेनान्वितं हरः।
अन्विष्यन्तं प्रियां सीतां रावणेन हृतां छलात्॥ २३

सागर और आकाशमें घूमते-घूमते दण्डकारण्यमें आकर सत्य प्रतिज्ञावाले वे प्रभु सतीको वहाँकी शोभा दिखाने लगे। वहाँ उन्होंने लक्ष्मणसहित श्रीरामको देखा, जो रावणद्वारा बलपूर्वक हरी गयी अपनी प्रिया पत्नी सीताकी खोज कर रहे थे॥ २२-२३॥

हा सीतेति प्रोच्चरन्तं विरहाविष्टमानसम्।
यतस्ततश्च पश्यन्तं रुदन्तं हि मुहुर्मुहुः॥ २४

वे 'हा सीते!' इस प्रकार उच्च स्वरसे पुकार रहे थे, जहाँ-तहाँ देख रहे थे और बार-बार रो रहे थे, उनके मनमें विरहका आवेश छा गया था॥ २४॥

समिच्छन्तं च तत्प्राप्तिं पृच्छन्तं तद्गतिं हृदा।
कुजादिभ्यो नष्टधियमत्रपं शोकविह्वलम्॥ २५

वे उनकी प्राप्तिकी इच्छा कर रहे थे, मनमें उनकी दशाका विचार कर रहे थे, वृक्ष आदिसे उनके विषयमें पूछ रहे थे, उनकी बुद्धि नष्ट हो गयी थी, वे लज्जासे रहित हो गये थे और शोकसे विह्वल थे॥ २५॥

सूर्यवंशोद्भवं वीरं भूपं दशरथात्मजम्।
भरताग्रजमानंदरहितं विगतप्रभम्॥ २६

पूर्णकामो वराधीनं प्राणमत्स्म मुदा हरः।
रामं भ्रमन्तं विपिने सलक्ष्मणमुदारधीः॥ २७

जयेत्युक्त्वान्यतोऽगच्छन्नदात्तस्मै स्वदर्शनम्।
रामाय विपिने तस्मिन् शंकरो भक्तवत्सलः॥ २८

वे सूर्यवंशमें उत्पन्न, वीर, भूपाल, दशरथनन्दन, भरताग्रज थे। आनन्दरहित होनेके कारण उनकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी। उस समय उदारचेता पूर्णकाम भगवान् शंकरने लक्ष्मणके साथ वनमें घूमते हुए माता कैकेयीके वरोंके अधीन उन रामको बड़ी प्रसन्नताके साथ प्रणाम किया और जय-जयकार करके वे दूसरी ओर चल दिये। उन भक्तवत्सल शंकरने उस वनमें श्रीरामको पुनः दर्शन नहीं दिया॥ २६—२८॥

इतीदृशीं सती दृष्ट्वा शिवलीलां विमोहनीम्।
सुविस्मिता शिवं प्राह शिवमायाविमोहिता॥ २९

सत्युवाच

देवदेव परब्रह्म सर्वेश परमेश्वर।
सेवन्ते त्वां सदा सर्वे हरिब्रह्मादयः सुराः॥ ३०

त्वं प्रणम्यो हि सर्वेषां सेव्यो ध्येयश्च सर्वदा।
वेदांतवेद्यो यत्नेन निर्विकारी परप्रभुः॥ ३१

काविमौ पुरुषौ नाथ विरहव्याकुलाकृती।
विचरन्तौ वने क्लिष्टौ दीनौ वीरौ धनुर्धरौ॥ ३२

तयोर्ज्येष्ठं कञ्जश्यामं दृष्ट्वा वै केन हेतुना।
मुदितः सुप्रसन्नात्माभवो भक्त इवाधुना॥ ३३

इति मे संशयं स्वामिन् शंकर छेत्तुमर्हसि।
सेव्यस्य सेवके नैव घटते प्रणतिः प्रभो॥ ३४

ब्रह्मोवाच

आदिशक्तिः सती देवी शिवा सा परमेश्वरी।
शिवमायावशी भूत्वा पप्रच्छेत्थं शिवं प्रभुम्॥ ३५
तदाकर्ण्य वचः सत्याः शंकरः परमेश्वरः।
तदा विहस्य स प्राह सतीं लीलाविशारदः॥ ३६

परमेश्वर उवाच

शृणु देवि सति प्रीत्या यथार्थं वच्मि नच्छलम्।
वरदानप्रभावात्तु प्रणामं चैवमादरात्॥ ३७

रामलक्ष्मणनामानौ भ्रातरौ वीरसम्मतौ।
सूर्यवंशोद्भवौ देवि प्राज्ञौ दशरथात्मजौ॥ ३८

गौरवर्णो लघुर्बन्धुः शेषेशो लक्ष्मणाभिधः।
ज्येष्ठो रामाभिधो विष्णुः पूर्णांशो निरुपद्रवः॥ ३९

अवतीर्णः क्षितौ साधुरक्षणाय भवाय नः।
इत्युक्त्वा विररामासौ शंभुः सूतिकरः प्रभुः॥ ४०

मोहमें डालनेवाली भगवान् शिवकी ऐसी लीलाको देखकर सतीको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे उनकी मायासे मोहित हो उनसे इस प्रकार कहने लगीं— ॥ २९ ॥

सती बोलीं—हे देवदेव! हे परब्रह्म! हे सर्वेश! हे परमेश्वर! ब्रह्मा, विष्णु आदि सब देवता आपकी ही सेवा सदा करते रहते हैं। आप ही सबके द्वारा प्रणाम करनेयोग्य हैं। सबको आपका ही सर्वदा सेवन और ध्यान करना चाहिये। वेदान्तशास्त्रके द्वारा यत्नपूर्वक जानने-योग्य निर्विकार तथा परमप्रभु आप ही हैं॥ ३०-३१ ॥

हे नाथ! ये दोनों पुरुष कौन हैं, इनकी आकृति विरह-व्यथासे व्याकुल दिखायी पड़ रही है। ये दोनों धनुर्धर वीर वनमें विचरण करते हुए दुःखके भागी और दीन हो रहे हैं। उन दोनोंमें नीलकमलके समान ज्येष्ठ पुरुषको देखकर किस कारणसे आप आनन्दविभोर हो उठे और भक्तकी भाँति अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो गये?॥ ३२-३३ ॥

हे स्वामिन्! हे शंकर! आप मेरे संशयको दूर कीजिये। हे प्रभो! सेव्य [स्वामी] अपने सेवकको प्रणाम करे—यह उचित नहीं जान पड़ता॥ ३४॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] कल्याणमयी परमेश्वरी आदिशक्ति सती देवीने शिवकी मायाके वशीभूत होकर जब भगवान् शिवसे इस प्रकार पूछा। तब सतीकी यह बात सुनकर लीला करनेमें प्रवीण परमेश्वर शंकरजी हँसकर सतीसे कहने लगे— ॥ ३५-३६ ॥

परमेश्वर बोले—हे देवि! हे सति! सुनो, मैं प्रसन्नतापूर्वक सत्य बात कह रहा हूँ। इसमें किसी प्रकारका छल नहीं है। वरदानके प्रभावसे ही मैंने इन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया है॥ ३७॥

हे देवि! ये दोनों भाई वीरोंद्वारा सम्मानित हैं, इनके नाम श्रीराम और लक्ष्मण हैं, ये सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए हैं, परम बुद्धिमान् हैं और राजा दशरथके पुत्र हैं॥ ३८ ॥

इनमें जो गौरवर्णके छोटे भाई हैं, वे शेषके अंश हैं, उनका नाम लक्ष्मण है। इनमें ज्येष्ठ भाईका नाम श्रीराम है। ये भगवान् विष्णुके पूर्ण अंश तथा उपद्रवरहित हैं। ये साधुपुरुषोंकी रक्षा और हमलोगोंके कल्याणके लिये इस पृथिवीपर अवतरित हुए हैं। इतना कहकर सृष्टि करनेवाले भगवान् शम्भु चुप हो गये॥ ३९-४० ॥

श्रुत्वापीत्थं वचः शम्भोर्न विशश्वास तन्मनः।
शिवमाया बलवती सैव त्रैलोक्यमोहिनी॥ ४१

इस प्रकार शिवका वचन सुनकर भी उनके मनको विश्वास नहीं हुआ; क्योंकि शिवकी माया बलवती है, वही तीनों लोकोंको मोहित किये रहती है॥ ४१॥

अविश्वस्तं मनो ज्ञात्वा तस्याः शंभुः सनातनः।
अवोचद्वचनं चेति प्रभुर्लीलाविशारदः॥ ४२

सतीके मनमें मेरी बातपर विश्वास नहीं हुआ है, ऐसा जानकर लीलाविशारद सनातन प्रभु शम्भु यह वचन कहने लगे—॥ ४२॥

शिव उवाच

शृणु मद्वचनं देवि न विश्वसिति चेन्मनः।
स्वयं रामपरीक्षां हि कुरु तत्र स्वया धिया॥ ४३

विनश्यति यथा मोहस्तत्कुरु त्वं सति प्रिये।
गत्वा तत्र स्थितस्तावद् वटे भव परीक्षिका॥ ४४

शिवजी बोले—हे देवि! मेरी बात सुनो, यदि तुम्हारे मनको [मेरे कथनपर] विश्वास नहीं होता है, तो तुम वहाँ [जाकर] अपनी ही बुद्धिसे श्रीरामकी परीक्षा स्वयं कर लो। हे सति! हे प्रिये! जिस प्रकार तुम्हारा भ्रम दूर हो, वैसा ही तुम करो। तुम वहाँ जाकर परीक्षा करो, तबतक मैं इस वटवृक्षके नीचे बैठा हूँ॥ ४३-४४॥

ब्रह्मोवाच

शिवाज्ञया सती तत्र गत्वाचिन्तयदीश्वरी।
कुर्यां परीक्षां च कथं रामस्य वनचारिणः॥ ४५

सीतारूपमहं धृत्वा गच्छेयं रामसन्निधौ।
यदि रामो हरिः सर्वं विज्ञास्यति न चान्यथा॥ ४६

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] भगवान् शिवकी आज्ञासे ईश्वरी सती वहाँ जाकर सोचने लगीं कि मैं वनचारी रामकी कैसे परीक्षा करूँ। मैं सीताका रूप धारण करके रामके पास चलूँ। यदि राम [साक्षात्] विष्णु हैं, तो सब कुछ जान लेंगे, अन्यथा वे मुझे नहीं पहचानेंगे॥ ४५-४६॥

इत्थं विचार्य सीता सा भूत्वा रामसमीपतः।
अगमत्तत्परीक्षार्थं सती मोहपरायणा॥ ४७

सीतारूपां सतीं दृष्ट्वा जपन्नाम शिवेति च।
विहस्य तत्प्रविज्ञाय नत्वावोचद् रघूद्वहः॥ ४८

इस प्रकार विचार करके मोहमें पड़ी हुई वे सती सीताका रूप धारणकर श्रीरामके पास उनकी परीक्षा लेनेके लिये गयीं। सतीको सीताके रूपमें देखकर शिव-नामका जप करते हुए रघुकुलश्रेष्ठ श्रीराम सब कुछ जानकर उन्हें प्रणाम करके हँसकर कहने लगे—॥ ४७-४८॥

श्रीराम उवाच

प्रेमतस्त्वं सति ब्रूहि क्व शंभुस्ते नमो गतः।
एकाकी विपिने कस्मादागता पतिना विना॥ ४९

श्रीराम बोले—हे सति! आपको नमस्कार है, आप प्रेमपूर्वक बताइये कि शिवजी कहाँ गये हैं, आप पतिके बिना अकेली ही इस वनमें क्यों आयी हैं?॥ ४९॥

त्यक्त्वा स्वरूपं कस्मात्ते धृतं रूपमिदं सति।
ब्रूहि तत्कारणं देवि कृपां कृत्वा ममोपरि॥ ५०

हे सति! आपने अपना रूप त्यागकर किसलिये यह रूप धारण किया है? हे देवि! मुझपर कृपा करके इसका कारण बताइये?॥ ५०॥

ब्रह्मोवाच

इति रामवचः श्रुत्वा चकितासीत्सती तदा।
स्मृत्वा शिवोक्तं मत्वा चावितथं लज्जिता भृशम्॥ ५१

रामं विज्ञाय विष्णुं तं स्वरूपं संविधाय च।
स्मृत्वा शिवपदं चित्ते सत्युवाच प्रसन्नधीः॥ ५२

ब्रह्माजी बोले—रामजीकी यह बात सुनकर सती उस समय आश्चर्यचकित हो गयीं। वे शिवजीकी कही हुई बातका स्मरण करके और उसे सत्य समझकर बहुत लज्जित हुईं। श्रीरामको साक्षात् विष्णु जानकर अपना रूप धारण करके मन-ही-मन शिवके चरणोंका चिन्तनकर प्रसन्नचित्त हुई सतीने उनसे इस प्रकार कहा—॥ ५१-५२॥

शिवो मया गणैश्चैव पर्यटन् वसुधां प्रभुः।
इहागच्छच्च विपिने स्वतंत्रः परमेश्वरः॥ ५३

[हे रघुनन्दन!] स्वतन्त्र परमेश्वर प्रभु शिव मेरे तथा अपने पार्षदोंके साथ पृथिवीपर भ्रमण करते हुए इस वनमें आये हुए हैं॥ ५३॥

अपश्यदत्र स त्वां हि सीतान्वेषणतत्परम्।
सलक्ष्मणं विरहिणं सीतया क्लिष्टमानसम्॥ ५४

नत्वा त्वां स गतो मूले वटस्य स्थित एव हि।
प्रशंसन् महिमानं ते वैष्णवं परमं मुदा॥ ५५

यहाँ उन्होंने सीताकी खोजमें लगे हुए, उनके विरहसे युक्त और दुखी चित्तवाले आपको लक्ष्मणसहित देखा। वे आपको प्रणाम करके चले गये और आपकी वैष्णवी महिमाकी प्रशंसा करते हुए अत्यन्त आनन्दके साथ वटवृक्षके नीचे बैठे हैं॥ ५४-५५॥

चतुर्भुजं हरिं त्वां नो दृष्ट्वैव मुदितोऽभवत्।
यथेदं रूपममलं पश्यन्नानंदमाप्तवान्॥ ५६

तच्छ्रुत्वा वचनं शंभोर्भ्रममानीय चेतसि।
तदाज्ञया परीक्षां ते कृतवत्यस्मि राघव॥ ५७

वे आपके चतुर्भुज विष्णुरूपको देखे बिना ही आनन्दविभोर हो गये। इस निर्मल रूपको देखते हुए उन्हें बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। शम्भुके वचनको सुनकर मेरे मनमें भ्रान्ति उत्पन्न हो गयी। अतः हे राघव! मैंने उनकी आज्ञा लेकर आपकी परीक्षा की है॥ ५६-५७॥

ज्ञातं मे राम विष्णुस्त्वं दृष्टा ते प्रभुताखिला।
निःसंशया तदापि तच्छृणु त्वं च महामते॥ ५८

हे श्रीराम! अब मुझे ज्ञात हो गया कि आप [साक्षात्] विष्णु हैं। मैंने आपकी सम्पूर्ण प्रभुता देख ली है। अब मेरा संशय दूर हो गया है, तो भी महामते! आप मेरी बात सुनें॥ ५८॥

कथं प्रणम्यस्त्वं तस्य सत्यं ब्रूहि ममाग्रतः।
कुरु निःसंशयां त्वं मां शमलं प्राप्नुहि द्रुतम्॥ ५९

मेरे सामने यह सच-सच बतायें कि आप उन शिवके वन्दनीय कैसे हो गये? आप मुझे संशयरहित कीजिये और शीघ्र ही मुझे शान्ति प्रदान कीजिये॥ ५९॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्या रामश्चोत्फुल्ललोचनः।
अस्मरत्स्वं प्रभुं शंभुं प्रेमाभूद् हृदि चाधिकम्॥ ६०

सत्या विनाज्ञया शंभुसमीपं नागमन्मुने।
संवर्ण्य महिमानं च प्रावोचद्राघवः सतीम्॥ ६१

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] उनकी यह बात सुनकर श्रीरामके नेत्र प्रफुल्लित हो उठे। उन्होंने अपने प्रभु शिवका स्मरण किया। इससे उनके हृदयमें अत्यधिक प्रेम उत्पन्न हो गया। हे मुने! शिवकी आज्ञाके बिना वे राघव सतीके साथ भगवान् शिवके समीप नहीं गये तथा [मन-ही-मन] उनकी महिमाका वर्णन करके सतीसे कहने लगे॥ ६०-६१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे रामपरीक्षावर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें रामपरीक्षा-वर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

श्रीशिवके द्वारा गोलोकधाममें श्रीविष्णुका गोपेशके पदपर अभिषेक, श्रीरामद्वारा सतीके मनका सन्देह दूर करना, शिवद्वारा सतीका मानसिक रूपसे परित्याग

श्रीराम उवाच

एकदा हि पुरा देवि शंभुः परमसूतिकृत्।
विश्वकर्माणमाहूय स्वलोके परतः परे॥ १

श्रीराम बोले—देवि! प्राचीन कालमें एक समय परम स्रष्टा भगवान् शम्भुने अपने परम धाममें विश्वकर्माको बुलाकर उनके द्वारा अपनी गोशालामें

तेन स्वधेनुशालायां कारयामास विस्तृतं।
रम्यं च भवनं सम्यक् तत्र सिंहासनं वरम्॥ २
तत्र च्छत्रं महादिव्यं सर्वदाद्भुतमुत्तमम्।
कारयामास विघ्नार्थं शंकरो विश्वकर्मणा॥ ३

एक विस्तृत तथा रमणीय भवन बनवाया और उसमें एक श्रेष्ठ सिंहासनका भी निर्माण कराया॥ १-२॥

उस सिंहासनपर भगवान् शंकरने विघ्ननिवारणार्थ विश्वकर्माद्वारा एक छत्र बनवाया, जो बहुत ही दिव्य, सदाके लिये अद्भुत और परम उत्तम था॥ ३॥

शक्रादीनां जुहावाशु समस्तान् देवतागणान्।
सिद्धगंधर्वनागादीनुपदेवांश्च कृत्स्नशः॥ ४
वेदान् सर्वानागमांश्च विधिपुत्रान् मुनीनपि।
देवीः सर्वा अप्सरोभिर्नानावस्तुसमन्विताः॥ ५

उसके बाद उन्होंने इन्द्र आदि देवगणों, सिद्धों, गन्धर्वों, नागों तथा सम्पूर्ण उपदेवोंको भी शीघ्र वहाँ बुलवाया। समस्त वेदों, आगमों, ब्रह्माजीके पुत्रों, मुनियों तथा अप्सराओंसहित अनेक प्रकारकी वस्तुओंसे युक्त समस्त देवियोंको भी आमन्त्रित किया॥ ४-५॥

देवानां च तथर्षीणां सिद्धानां फणिनामपि।
आनयन् मङ्गलकराः कन्याः षोडश षोडश॥ ६
वीणामृदङ्गप्रमुखवाद्यान्नानाविधान् मुने।
उत्सवं कारयामास वादयित्वा सुगायनैः॥ ७

[इनके अतिरिक्त] देवताओं, ऋषियों, सिद्धों और नागोंकी मंगलकारिणी सोलह-सोलह कन्याओंको भी बुलवाया। हे मुने! उन्होंने वीणा, मृदंग आदि नाना प्रकारके वाद्योंको बजवाकर सुन्दर गीतोंद्वारा महान् उत्सव कराया॥ ६-७॥

राजाभिषेकयोग्यानि द्रव्याणि सकलौषधैः।
प्रत्यक्षतीर्थपाथोभिः पञ्चकुंभांश्च पूरितान्॥ ८
तथान्याः संविधा दिव्या आनयत्स्वगणैस्तदा।
ब्रह्मघोषं महारावं कारयामास शंकरः॥ ९

सम्पूर्ण औषधियोंके साथ राज्याभिषेकके योग्य द्रव्य, प्रत्यक्ष तीर्थोंके जलोंसे भरे हुए पाँच कलश तथा बहुत-सी दिव्य सामग्रियोंको भगवान् शंकरने अपने पार्षदोंद्वारा मँगवाया और वहाँ उच्च स्वरसे वेदमन्त्रोंका घोष करवाया॥ ८-९॥

अथो हरिं समाहूय वैकुंठात्प्रीतमानसः।
तद्भक्त्या पूर्णया देवि मोदति स्म महेश्वरः॥ १०
सुमुहूर्ते महादेवस्तत्र सिंहासने वरे।
उपवेश्य हरिं प्रीत्या भूषयामास सर्वशः॥ ११

हे देवि! भगवान् विष्णुकी पूर्ण भक्तिसे महेश्वरदेव सदा प्रसन्न रहते हैं। इसलिये प्रसन्नचित्त होकर वैकुण्ठधामसे श्रीहरिको बुलाकर शुभ मुहूर्तमें उन्हें श्रेष्ठ सिंहासनपर बैठाकर महादेवजीने स्वयं ही प्रेमपूर्वक उन्हें सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित किया॥ १०-११॥

आबद्धरम्यमुकुटं कृतकौतुकमङ्गलम्।
अभ्यषिञ्चन्महेशस्तु स्वयं ब्रह्मांडमंडपे॥ १२
दत्तवान्निखिलैश्वर्यं यन्नैजं नान्यगामि यत्।
ततस्तुष्टाव तं शंभुः स्वतन्त्रो भक्तवत्सलः॥ १३
ब्रह्माणं लोककर्तारमवोचद्वचनं त्विदम्।
व्यापयन्स्वं वराधीनं स्वतन्त्रं भक्तवत्सलः॥ १४

उनके मस्तकपर मनोहर मुकुट बाँधकर और उत्सव-मंगलाचार करके महेश्वरने स्वयं ब्रह्माण्डमण्डपमें श्रीहरिका अभिषेक किया और उन्हें अपना वह सारा ऐश्वर्य प्रदान किया, जो वे दूसरोंको नहीं देते थे। तदनन्तर भक्तवत्सल स्वतन्त्र शम्भुने श्रीहरिका स्तवन किया। तत्पश्चात् अपनी पराधीनता (भक्तपरवशता)-को सर्वत्र प्रसिद्ध करते हुए लोककर्ता ब्रह्माजीसे कहा—॥ १२—१४॥

महेश उवाच

अतःप्रभृति लोकेश मन्निदेशादयं हरिः।
मम वंद्यः स्वयं विष्णुर्जातः सर्वः शृणोति हि॥ १५

महेश्वर बोले—लोकेश! आजसे मेरी आज्ञाके अनुसार ये विष्णु हरि स्वयं मेरे वन्दनीय हो गये, इस बातको सभी सुन लें। हे तात! आप सम्पूर्ण देवता

सर्वैर्देवादिभिस्तात प्रणम त्वममुं हरिम्।
वर्णयन्तु हरिं वेदा ममैते मामिवाज्ञया॥ १६

आदिके साथ इन श्रीहरिको प्रणाम कीजिये और ये वेद मेरी आज्ञासे मेरी ही तरह इन श्रीहरिका वर्णन करें॥ १५-१६॥

श्रीराम उवाच

इत्युक्त्वाथ स्वयं रुद्रोऽनमद्वै गरुडध्वजम्।
विष्णुभक्तिप्रसन्नात्मा वरदो भक्तवत्सलः॥ १७
ततो ब्रह्मादिभिर्देवैः सर्वरूपसुरैस्तथा।
मुनिसिद्धादिभिश्चैव वंदितोऽभूद्धरिस्तदा॥ १८

श्रीराम बोले—विष्णुकी भक्तिसे प्रसन्नचित्त हुए वरदायक भक्तवत्सल रुद्रदेवने ऐसा कहकर स्वयं ही गरुडध्वज श्रीहरिको प्रणाम किया। तदनन्तर ब्रह्मा आदि देवताओं, अन्य सभी देवों, मुनियों और सिद्धों आदिने भी उस समय श्रीहरिकी वन्दना की॥ १७-१८॥

ततो महेशो हरयेऽशंसद्दिविषदां पुरः।
महावरान् सुप्रसन्नो दत्तवान् भक्तवत्सलः॥ १९

इसके बाद अत्यन्त प्रसन्न हुए भक्तवत्सल महेश्वरने देवताओंके समक्ष श्रीहरिको महान् वर प्रदान किये॥ १९॥

महेश उवाच

त्वं कर्ता सर्वलोकानां भर्ता हर्ता मदाज्ञया।
दाता धर्मार्थकामानां शास्ता दुर्णयकारिणाम्॥ २०
जगदीशो जगत्पूज्यो महाबलपराक्रमः।
अजेयस्त्वं रणे क्वापि ममापि हि भविष्यसि॥ २१

महेश्वर बोले—[हे हरे!] आप मेरी आज्ञासे सम्पूर्ण लोकोंके कर्ता, पालक, संहारक, धर्म-अर्थ-कामके दाता तथा अन्याय करनेवालोंको दण्ड देनेवाले होंगे। आप महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न, जगत्पूज्य, जगदीश्वर होंगे और कहीं-कहीं मुझसे भी अजेय होंगे॥ २०-२१॥

शक्तित्रयं गृहाण त्वमिच्छादि प्रापितं मया।
नानालीलाप्रभावत्वं स्वतन्त्रत्वं भवत्रये॥ २२

आप मुझसे मेरी दी हुई तीन प्रकारकी ये शक्तियाँ ग्रहण करें—इच्छा आदिकी सिद्धि, अनेक प्रकारकी लीलाओंको प्रकट करनेकी शक्ति और तीनों लोकोंमें नित्य स्वतन्त्र रहनेकी शक्ति॥ २२॥

त्वद्द्वेष्टारो हरे नूनं मया शास्याः प्रयत्नतः।
त्वद्भक्तानां मया विष्णो देयं निर्वाणमुत्तमम्॥ २३

हे हरे! आपसे द्वेष करनेवाले निश्चय ही मेरे द्वारा प्रयत्नपूर्वक दण्डनीय होंगे। हे विष्णो! मैं आपके भक्तोंको उत्तम मोक्ष प्रदान करूँगा॥ २३॥

मायां चापि गृहाणेमां दुःप्रणोद्यां सुरादिभिः।
यया संमोहितं विश्वमचिद्रूपं भविष्यति॥ २४

आप इस मायाको भी ग्रहण करें, जिसका निवारण करना देवता आदिके लिये भी कठिन है और जिससे मोहित होनेपर यह विश्व जड़रूप हो जायगा॥ २४॥

मम बाहुर्मदीयस्त्वं दक्षिणोऽसौ विधिर्हरे।
अस्यापि हि विधेः पाता जनितापि भविष्यसि॥ २५

हरे! आप मेरी बायीं भुजा हैं और विधाता दाहिनी भुजा हैं। आप इन विधाताके भी उत्पादक और पालक होंगे॥ २५॥

हृदयं मम यो रुद्रः स एवाहं न संशयः।
पूज्यस्तव सदा सोऽपि ब्रह्मादीनामपि ध्रुवम्॥ २६
अत्र स्थित्वा जगत्सर्वं पालय त्वं विशेषतः।
नानावतारभेदैश्च सदा नानोतिकर्तृभिः॥ २७

मेरे हृदयरूप जो रुद्र हैं, वही मैं हूँ, इसमें संशय नहीं है। वे रुद्र आपके और ब्रह्मा आदि देवताओंके भी निश्चय ही पूज्य हैं। आप यहाँ रहकर अनेक प्रकारकी लीलाएँ करनेवाले अपने विभिन्न अवतारोंद्वारा विशेषरूपसे सम्पूर्ण जगत्‌का पालन करें॥ २६-२७॥

मम लोके तवेदं वै स्थानं च परमर्द्धिमत्।
गोलोक इति विख्यातं भविष्यति महोज्ज्वलम्॥ २८

मेरे लोकमें आपका यह परम वैभवशाली और अत्यन्त उज्ज्वल स्थान गोलोक नामसे विख्यात होगा॥ २८॥

भविष्यंति हरे ये तेऽवतारा भुवि रक्षकाः।
मद्भक्तास्तान् ध्रुवं द्रक्ष्ये प्रीतानथ निजाद् वरात्॥ २९

हे हरे! भूतलपर जो आपके अवतार होंगे, वे सबके रक्षक और मेरे भक्त होंगे। मैं उनका दर्शन करूँगा। वे मेरे वरसे सदा प्रसन्न रहेंगे॥ २९॥

श्रीराम उवाच

अखंडैश्वर्यमासाद्य हरेरित्थं हरः स्वयम्।
कैलासे स्वगणैस्तस्मिन् स्वैरं क्रीडत्युमापतिः॥ ३०

तदाप्रभृति लक्ष्मीशो गोपवेषोऽभवत्तथा।
अयासीत्तत्र सुप्रीत्या गोपगोपीगवां पतिः॥ ३१

श्रीरामजी बोले—इस प्रकार श्रीहरिको अपना अखण्ड ऐश्वर्य प्रदानकर उमापति भगवान् हर स्वयं कैलासपर्वतपर रहते हुए अपने पार्षदोंके साथ स्वच्छन्द क्रीड़ा करने लगे। तभीसे भगवान् लक्ष्मीपतिने गोपवेश धारण कर लिया और वे गोप-गोपी तथा गौओंके अधिपति होकर बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ रहने लगे॥ ३०-३१॥

सोऽपि विष्णुः प्रसन्नात्मा जुगोप निखिलं जगत्।
नानावतारसंधर्तावनकर्ता शिवाज्ञया॥ ३२

वे विष्णु भी प्रसन्नचित्त होकर समस्त जगत्की रक्षा करने लगे। वे शिवजीकी आज्ञासे नाना प्रकारके अवतार धारण करके जगत्का पालन करने लगे॥ ३२॥

इदानीं स चतुर्द्धात्रावातरच्छंकराज्ञया।
रामोऽहं तत्र भरतो लक्ष्मणः शत्रुहेति च॥ ३३

इस समय वे श्रीहरि भगवान् शंकरकी आज्ञासे चार रूपोंमें अवतीर्ण हुए हैं। उनमें एक मैं राम हूँ और भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न हैं॥ ३३॥

अथ पित्राज्ञया देवि ससीतालक्ष्मणः सति।
आगतोऽहं वने चाद्य दुःखितो दैवतोऽभवम्॥ ३४

निशाचरेण मे जाया हृता सीतेति केनचित्।
अन्वेष्यामि प्रियां चात्र विरही बंधुना वने॥ ३५

हे देवि! हे सति! मैं पिताकी आज्ञासे सीता और लक्ष्मणके साथ वनमें आया हूँ और भाग्यवश इस समय मैं दुखी हूँ। यहाँ किसी निशाचरने मेरी पत्नीका हरण कर लिया है और मैं विरही होकर भाईके साथ वनमें अपनी प्रियाकी खोज कर रहा हूँ॥ ३४-३५॥

दर्शनं ते यदि प्राप्तं सर्वथा कुशलं मम।
भविष्यति न संदेहो मातस्ते कृपया सति॥ ३६

सीताप्राप्तिवरं देवि भविष्यति न संशयः।
तं हत्वा दुःखदं पापं राक्षसं त्वदनुग्रहात्॥ ३७

हे सति! हे मातः! जब आपका दर्शन प्राप्त हो गया, तब आपकी कृपासे सर्वथा मेरा कुशल ही होगा, इसमें सन्देह नहीं है। हे देवि! आपका दर्शन मेरे लिये सीता-प्राप्तिका वरस्वरूप होगा, आपकी कृपासे उस दुःख देनेवाले पापी राक्षसको मारकर मैं सीताको प्राप्त कर लूँगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३६-३७॥

महद्भाग्यं ममाद्यैव यद्यकार्ष्टां कृपां युवाम्।
यस्मिन् सकरुणौ स्यातां स धन्यः पुरुषो वरः॥ ३८

आज मेरा महान् सौभाग्य है, जो आप दोनोंने मुझपर कृपा की। जिसपर आप दोनों दयार्द्र हो जायँ, वह पुरुष धन्य और श्रेष्ठ है॥ ३८॥

इत्थमाभाष्य बहुधा सुप्रणम्य सतीं शिवाम्।
तदाज्ञया वने तस्मिन् विचचार रघूद्वहः॥ ३९

अथाकर्ण्य सती वाक्यं रामस्य प्रयतात्मनः।
हृष्टाभूत्सा प्रशंसन्तं शिवभक्तिरतं हृदि॥ ४०

इस प्रकार बहुत-सी बातें कहकर कल्याणमयी सती देवीको प्रणाम करके रघुकुलशिरोमणि श्रीराम उनकी आज्ञासे उस वनमें विचरने लगे। पवित्र हृदयवाले रामकी शिव-भक्तिपरायण तथा शिवप्रशंसापरक बात सुनकर सती मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुईं॥ ३९-४०॥

स्मृत्वा स्वकर्म मनसाकार्षीच्छोकं सुविस्तरम्।
प्रत्यागच्छदुदासीना विवर्णा शिवसन्निधौ॥ ४१

[तदनन्तर] अपने कर्मको याद करके उनके मनमें बड़ा शोक हुआ। उनकी अंगकान्ति फीकी पड़ गयी और वे उदास होकर शिवजीके पास लौट आयीं॥ ४१॥

पथि साचिन्तयद् देवी सञ्चलंती पुनः पुनः।
नाङ्गीकृतं शिवोक्तं मे रामं प्रति कुधीः कृता॥ ४२

किमुत्तरमहं दास्ये गत्वा शंकरसन्निधौ।
इति संचिन्त्य बहुधा पश्चात्तापोऽभवत्तदा॥ ४३

मार्गमें जाती हुई देवी सती बारम्बार चिन्ता करने लगीं कि मैंने भगवान् शिवकी बात नहीं मानी और श्रीरामके प्रति कुत्सित बुद्धि कर ली। अब शंकरजीके पास जाकर उन्हें क्या उत्तर दूँगी, इस प्रकारके विचार करनेपर उन्हें बहुत पश्चात्ताप हुआ॥ ४२-४३॥

गत्वा शंभुसमीपं च प्रणनाम शिवं हृदा।
विषण्णवदना शोकव्याकुला विगतप्रभा॥ ४४

शिवजीके पास जाकर उन सतीने उन्हें हृदयसे प्रणाम किया। उनके मुखपर विषाद छा गया। वे शोकसे व्याकुल और निस्तेज हो गयी थीं॥ ४४॥

अथ तां दुःखितां दृष्ट्वा पप्रच्छ कुशलं हरः।
प्रोवाच वचनं प्रीत्या तत्परीक्षा कृता कथम्॥ ४५

श्रुत्वा शिववचो नाहं किमपि प्रणतानना।
सती शोकविषण्णा सा तस्थौ तत्र समीपतः॥ ४६

सतीको दुखी देखकर भगवान् हरने उनका कुशल-क्षेम पूछा और प्रेमपूर्वक कहा—तुमने किस प्रकार उनकी परीक्षा ली? शिवजीकी यह बात सुनकर मैंने कोई परीक्षा नहीं ली—ऐसा कहकर वे सती सिर झुकाये शोकाकुल होकर उनके पास खड़ी हो गयीं॥ ४५-४६॥

अथ ध्यात्वा महेशस्तु बुबोध चरितं हृदा।
दक्षजाया महायोगी नानालीलाविशारदः॥ ४७

इसके बाद महायोगी तथा अनेकविध लीला करनेमें प्रवीण भगवान् महेश्वरने मनमें ध्यान लगाकर दक्षपुत्री सतीका सारा चरित्र जान लिया॥ ४७॥

सस्मार स्वपणं पूर्वं यत्कृतं हरिकोपतः।
तत्प्रार्थितोऽथ रुद्रोऽसौ मर्यादाप्रतिपालकः॥ ४८

विषादोऽभूत्प्रभोस्तत्र मनस्येवमुवाच ह।
धर्मवक्ता धर्मकर्ता धर्मावनकरः सदा॥ ४९

उन्हें अपनी उस प्रतिज्ञाका स्मरण हो आया, जिसे हरिके विशेष आग्रह करनेपर मर्यादाप्रतिपालक उन रुद्रने विवाहके लिये देवताओंके द्वारा निवेदन किये जानेपर पूर्वमें किया था। उन महाप्रभुके मनमें विषाद उत्पन्न हो गया। तब धर्मवक्ता, धर्मकर्ता तथा धर्मरक्षक प्रभुने अपने मनमें कहा— ॥ ४८-४९॥

शिव उवाच

कुर्यां चेद्दक्षजायां हि स्नेहं पूर्वं यथा महान्।
नश्येन्मम पणः शुद्धो लोकलीलानुसारिणः॥ ५०

शिवजी बोले—यदि मैं सतीसे अब पूर्ववत् स्नेह करूँ, तो लोकलीलाका अनुसरण करनेवाले मुझ शिवकी महान् प्रतिज्ञा ही नष्ट हो जायगी॥ ५०॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं विचार्य बहुधा हृदा तामत्यजत्सतीम्।
पणं न नाशयामास वेदधर्मप्रपालकः॥ ५१

ततो विहाय मनसा सतीं तां परमेश्वरः।
जगाम स्वगिरिं भेदं जगावद्धा स हि प्रभुः॥ ५२

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार मनमें अनेक तरहसे विचारकर वेद और धर्मके प्रतिपालक शंकरजीने हृदयसे सतीका त्याग कर दिया, किंतु अपनी प्रतिज्ञाको नष्ट नहीं किया। तत्पश्चात् परमेश्वर शिवजी मनसे सतीको त्यागकर अपने कैलासपर्वतकी ओर चल दिये। उन प्रभुने अपने निश्चयको किसीके सामने प्रकट नहीं किया॥ ५१-५२॥

चलन्तं पथि तं व्योमवाण्युवाच महेश्वरम्।
सर्वान् संश्रावयंस्तत्र दक्षजां च विशेषतः॥ ५३

मार्गमें जाते हुए महेश्वरको, अन्य सबको तथा विशेषकर सतीको सुनाते हुए आकाशवाणी हुई॥ ५३॥

व्योमवाण्युवाच

धन्यस्त्वं परमेशान त्वत्समोऽद्य तथा पणः।
न कोऽप्यन्यस्त्रिलोकेऽस्मिन् महायोगी महाप्रभुः॥ ५४

आकाशवाणी बोली—हे परमेश्वर! आप धन्य हैं, इस त्रिलोकीमें आपके समान कोई भी नहीं है, जिसने आजतक ऐसी प्रतिज्ञा की हो, आप महायोगी तथा महाप्रभु हैं॥ ५४॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा व्योमवचो देवी शिवं पप्रच्छ विप्रभा।
कं पणं कृतवान्नाथ ब्रूहि मे परमेश्वर॥ ५५

इति पृष्टोऽपि गिरिशः सत्या हितकरः प्रभुः।
नोद्वाहं स्वं पणं तस्यै यत् हर्यग्रेऽकरोत्पुरा॥ ५६

तदा सती शिवं ध्यात्वा स्वपतिं प्राणवल्लभम्।
सर्वं बुबोध हेतुं तं प्रियत्यागमयं मुने॥ ५७

ततोऽतीव शुशोचाशु बुध्वा सा त्यागमात्मनः।
शंभुना दक्षजा तस्मान्निःश्वसंती मुहुर्मुहुः॥ ५८

शिवस्तस्याः समाज्ञाय गुप्तं चक्रे मनोभवम्।
सत्यै पणं स्वकीयं हि कथा बह्वीर्वदन् प्रभुः॥ ५९

सत्या प्राप स कैलासं कथयन् विविधाः कथाः।
वरे स्थित्वा निजं रूपं दधौ योगी समाधिभृत्॥ ६०

तत्र तस्थौ सती धाम्नि महाव्याकुलमानसा।
न बुबोध चरित्रं तत्कश्चिच्च शिवयोर्मुने॥ ६१

महान्कालो व्यतीयाय तयोरित्थं महामुने।
स्वोपात्तदेहयोः प्रभ्वोर्लोकलीलानुसारिणोः॥ ६२

ध्यानं तत्याज गिरिशस्ततः स परमोतिकृत्।
तज्ज्ञात्वा जगदंबा हि सती तत्राजगाम सा॥ ६३

ननामाथ शिवं देवी हृदयेन विदूयता।
आसनं दत्तवान् शंभुः स्वसम्मुख उदारधीः॥ ६४

कथयामास सुप्रीत्या कथा बह्वीर्मनोरमाः।
निःशोकां कृतवान् सद्यो लीलां कृत्वा च तादृशीम्॥ ६५

पूर्ववत्सा सुखं लेभे तत्याज स्वपणं न सः।
नेत्याश्चर्यं शिवे तात मन्तव्यं परमेश्वरे॥ ६६

इत्थं शिवाशिवकथां वदन्ति मुनयो मुने।
किल केचिदविद्वांसो वियोगश्च कथं तयोः॥ ६७

ब्रह्माजी बोले—यह आकाशवाणी सुनकर कान्तिसे हीन देवी सतीने शिवसे पूछा—हे नाथ! आपने कौन-सी प्रतिज्ञा की है? हे परमेश्वर! मुझे बताइये॥ ५५॥

सतीके इस प्रकार पूछनेपर भी सबका हित करनेवाले प्रभुने पहले अपने विवाहके विषयमें भगवान् विष्णुके सामने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे नहीं बताया॥ ५६॥

हे मुने! उस समय सती अपने प्राणवल्लभ पति भगवान् शिवका ध्यान करके प्रियतमके द्वारा अपने त्याग-सम्बन्धी समस्त कारणको जान गयीं॥ ५७॥

शम्भुने मेरा त्याग किया है—इस बातको जानकर दक्षकन्या सती बार-बार श्वास भरती हुईं शीघ्र ही अत्यन्त शोकमें डूब गयीं, बारम्बार सिसकने लगीं॥ ५८॥

सतीके मनोभावको जानकर प्रभु शिवने उनके लिये जो प्रतिज्ञा की थी, उसे गुप्त ही रखा और वे दूसरी बहुत-सी कथाएँ कहने लगे॥ ५९॥

इस प्रकार नाना प्रकारकी कथाएँ कहते हुए वे सतीके साथ कैलासपर जा पहुँचे और श्रेष्ठ आसनपर स्थित हो समाधि लगाकर अपने स्वरूपका ध्यान करने लगे। सती अत्यन्त व्याकुलचित्त होकर अपने धाममें रहने लगीं। हे मुने! शिवा और शिवके उस चरित्रको किसीने नहीं जाना। हे महामुने! इस प्रकार स्वेच्छासे शरीर धारण करके लोकलीलाका अनुसरण करनेवाले उन दोनों प्रभुओंका बहुत काल व्यतीत हो गया॥ ६०—६२॥

तत्पश्चात् उत्तम लीला करनेवाले महादेवजीने ध्यान तोड़ा—यह जानकर जगदम्बा सती वहाँ आयीं और उन्होंने व्यथित हृदयसे शिवको प्रणाम किया। उदार चित्तवाले शम्भुने उन्हें अपने सामने [बैठनेके लिये] आसन दिया और वे बड़े प्रेमसे बहुत-सी मनोरम कथाएँ कहने लगे। उन्होंने वैसी ही लीला करके सतीके शोकको तत्काल दूर कर दिया॥ ६३—६५॥

वे पूर्ववत् सुखी हो गयीं, फिर भी शिवजीने अपनी प्रतिज्ञाको नहीं तोड़ा। हे तात! परमेश्वर शिवजीके विषयमें यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं समझनी चाहिये। हे मुने! मुनि लोग शिव और शिवाकी ऐसी ही कथा कहते हैं। कुछ मूर्ख लोग उन दोनोंमें वियोग मानते हैं, परंतु उनमें वियोग कैसे सम्भव है!॥ ६६-६७॥

शिवाशिवचरित्रं को जानाति परमार्थतः।
स्वेच्छया क्रीडतस्तौ हि चरितं कुरुतः सदा॥ ६८

वागर्थाविव संपृक्तौ सदा खलु सतीशिवौ।
तयोर्वियोगोऽसंभाव्यः संभवेदिच्छया तयोः॥ ६९

शिवा और शिवके वास्तविक चरित्रको कौन जान सकता है? वे दोनों सदा अपनी इच्छासे क्रीड़ा करते और [भाँति-भाँतिकी] लीलाएँ करते हैं। सती और शिव वाणी और अर्थकी भाँति एक-दूसरेसे नित्य संयुक्त हैं। उन दोनोंमें वियोग होना असम्भव है, उनकी इच्छासे ही लीलामें वियोग हो सकता है॥ ६८-६९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे सतीवियोगो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सतीवियोगवर्णन नामक पच्चीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

सतीके उपाख्यानमें शिवके साथ दक्षका विरोधवर्णन

ब्रह्मोवाच

पुराभवच्च सर्वेषामध्वरो विधिना महान्।
प्रयागे समवेतानां मुनीनां च महात्मनाम्॥ १

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! पूर्वकालमें प्रयागमें एकत्रित हुए समस्त मुनियों तथा महात्माओंका विधि-विधानसे एक बहुत बड़ा यज्ञ हुआ॥ १॥

तत्र सिद्धाः समायाताः सनकाद्याः सुरर्षयः।
सप्रजापतयो देवा ज्ञानिनो ब्रह्मदर्शिनः॥ २

उस यज्ञमें सिद्धगण, सनक आदि, देवर्षि, प्रजापति, देवता तथा ब्रह्मका साक्षात्कार करनेवाले ज्ञानी आये॥ २॥

अहं समागतस्तत्र परिवारसमन्वितः।
निगमैरागमैर्युक्तो मूर्तिमद्भिर्महाप्रभैः॥ ३

मैं भी मूर्तिमान् महातेजस्वी निगमों और आगमोंसे युक्त हो सपरिवार वहाँ गया था॥ ३॥

समाजोऽभूद्विचित्रो हि तेषामुत्सवसंयुतः।
ज्ञानवादोऽभवत्तत्र नानाशास्त्रसमुद्भवः॥ ४

अनेक प्रकारके उत्सवोंके साथ वहाँ उनका विचित्र समाज जुटा था। वहाँ अनेक शास्त्रोंसे सम्बन्धित ज्ञानचर्चा होने लगी॥ ४॥

तस्मिन्नवसरे रुद्रः सभवानीगणः प्रभुः।
त्रिलोकहितकृत्स्वामी तत्रागात्सूतिकृन्मुने॥ ५

हे मुने! उसी समय सती और पार्षदोंके साथ त्रिलोकहितकारी, सृष्टिकर्ता एवं सबके स्वामी भगवान् रुद्र भी वहाँ पहुँचे॥ ५॥

दृष्ट्वा शिवं सुराः सर्वे सिद्धाश्च मुनयस्तथा।
अनमंस्तं प्रभुं भक्त्या तुष्टुवुश्च तथा ह्यहम्॥ ६

शिवको देखकर सम्पूर्ण देवताओं, सिद्धों, मुनियों और मैंने भक्तिभावसे उन्हें प्रणाम किया और उनकी स्तुति की॥ ६॥

तस्थुः शिवाज्ञया सर्वे यथास्थानं मुदान्विताः।
प्रभुदर्शनसंतुष्टाः वर्णयन्तो निजं विधिम्॥ ७

तत्पश्चात् शिवजीकी आज्ञा पाकर सब लोग प्रसन्नतापूर्वक यथास्थान बैठ गये। भगवान्‌के दर्शनसे सन्तुष्ट होकर सब लोग अपने भाग्यकी सराहना करने लगे॥ ७॥

तस्मिन्नवसरे दक्षः प्रजापतिपतिः प्रभुः।
आगमत्तत्र सुप्रीतः सुवर्चस्वी यदृच्छया॥ ८
मां प्रणम्य स दक्षो हि न्युष्टस्तत्र मदाज्ञया।

उसी समय प्रजापतियोंके स्वामी महातेजस्वी प्रभु दक्षप्रजापति घूमते हुए प्रसन्नतापूर्वक वहाँ अकस्मात् आये। वे मुझे प्रणामकर मेरी आज्ञासे वहाँ बैठ गये।

ब्रह्माण्डाधिपतिर्मान्यो मानी तत्त्वबहिर्मुखः॥ ९

वे दक्ष ब्रह्माण्डके अधिपति और सबके मान्य थे, परंतु अहंकारी तथा तत्त्वज्ञानसे शून्य थे॥ ८-९॥

स्तुतिभिः प्रणिपातैश्च दक्षः सर्वैः सुरर्षिभिः।
पूजितो वरतेजस्वी करौ वध्वा विनम्रकैः॥ १०

उस समय समस्त देवर्षियोंने नतमस्तक हो स्तुति और प्रणामद्वारा दोनों हाथ जोड़कर उत्तम तेजयुक्त दक्षका आदर-सत्कार किया॥ १०॥

नानाविहारकृन्नाथः स्वतंत्रः परमोतिकृत्।
नानमत्तं तदा दक्षं स्वासनस्थो महेश्वरः॥ ११

किंतु नाना प्रकारके लीलाविहार करनेवाले सबके स्वामी और परम रक्षक महेश्वरने उस समय दक्षको प्रणाम नहीं किया। वे अपने आसनपर बैठे ही रह गये॥ ११॥

दृष्ट्वानतं हरं तत्र स मे पुत्रोऽप्रसन्नधीः।
अकुप्यत्सहसा रुद्रे तदा दक्षः प्रजापतिः॥ १२

महादेवजीको वहाँ मस्तक न झुकाते देख मेरे पुत्र दक्ष मन-ही-मन अप्रसन्न हो गये। दक्ष प्रजापति रुद्रपर कुपित हो गये॥ १२॥

क्रूरदृष्ट्या महागर्वो दृष्ट्वा रुद्रं महाप्रभुम्।
सर्वान्संश्रावयन्नुच्चैरवोचज्ज्ञानवर्जितः॥ १३

ज्ञानशून्य तथा महान् अहंकारी दक्ष महाप्रभु रुद्रको क्रूर दृष्टिसे देखकर सबको सुनाते हुए उच्च स्वरमें कहने लगे— ॥ १३॥

दक्ष उवाच

एते हि सर्वे च सुरासुरा भृशं
नमन्ति मां विप्रवरास्तथर्षयः।
कथं ह्यसौ दुर्जनवन्महामना
त्वभूत्तु यः प्रेतपिशाचसंवृतः॥ १४

दक्ष बोले—ये सब देवता, असुर, श्रेष्ठ ब्राह्मण तथा ऋषि मुझे विशेष रूपसे मस्तक झुकाते हैं, परंतु वह जो प्रेतों और पिशाचोंसे घिरा हुआ महामनस्वी है, वह दुष्ट मनुष्यके समान कैसे हो गया?॥ १४॥

श्मशानवासी निरपत्रपो ह्ययं
कथं प्रणामं न करोति मेऽधुना।
लुप्तक्रियो भूतपिशाचसेवितो
मत्तोऽविधो नीतिविदूषकः सदा॥ १५

श्मशानमें निवास करनेवाला निर्लज्ज मुझे इस समय प्रणाम क्यों नहीं करता? इसके [वेदोक्त] कर्म लुप्त हो गये हैं, यह भूतों और पिशाचोंसे सेवित हो मतवाला बना रहता है, शास्त्रीय विधिसे रहित है तथा नीतिमार्गको सदा कलंकित करता है॥ १५॥

पाखंडिनो दुर्जनपापशीला
दृष्ट्वा द्विजं प्रोद्धतनिंदकाश्च।
वध्वां सदासक्तरतिप्रवीण-
स्तस्मादमुं शप्तुमहं प्रवृत्तः॥ १६

इसके साथ रहनेवाले या इसका अनुसरण करनेवाले लोग पाखण्डी, दुष्ट, पापाचारी तथा ब्राह्मणको देखकर उद्दण्डतापूर्वक उसकी निन्दा करनेवाले होते हैं। यह स्वयं ही स्त्रीमें आसक्त रहनेवाला तथा रतिकर्ममें ही दक्ष है। अतः मैं इसे शाप देनेके लिये उद्यत हूँ॥ १६॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवमुक्त्वा स महाखलस्तदा
रुषान्वितो रुद्रमिदं ह्यवोचत्।
शृण्वन्त्वमी विप्रवरास्तथा सुरा
वध्यं हि मे चार्हथ कर्तुमेतम्॥ १७

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर वे महादुष्ट दक्ष कुपित होकर रुद्रके प्रति कहने लगे। हे ब्राह्मणो एवं देवताओ! यह रुद्र मेरे तथा आप सभीके द्वारा वध्य है॥ १७॥

दक्ष उवाच

रुद्रो ह्ययं यज्ञबहिष्कृतो मे
वर्णेष्वतीतोऽथ विवर्णरूपः।
देवैर्न भागं लभतां सहैव
श्मशानवासी कुलजन्महीनः॥ १८

दक्ष बोले—मैं इस रुद्रको यज्ञसे बहिष्कृत करता हूँ। यह चारों वर्णोंसे बाहर, श्मशानमें निवास करनेवाला तथा उत्तम कुल और जन्मसे हीन है। इसलिये यह देवताओंके साथ यज्ञमें भाग न पाये॥ १८॥

ब्रह्मोवाच

इति दक्षोक्तमाकर्ण्य भृग्वाद्या बहवो जनाः।
अगर्हयन् दुष्टसत्त्वं रुद्रं मत्वाऽमरैः समम्॥ १९
नन्दी निशम्य तद्वाक्यं लोलाक्षोऽतिरुषान्वितः।
अब्रवीत् त्वरितं दक्षं शापं दातुमना गणः॥ २०

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! दक्षकी कही हुई यह बात सुनकर भृगु आदि बहुतसे महर्षि रुद्रदेवको दुष्ट मानकर देवताओंके साथ उनकी निन्दा करने लगे॥ १९॥

दक्षकी बात सुनकर गणेश्वर नन्दीको बड़ा रोष हुआ। उनके नेत्र चंचल हो उठे और वे दक्षको शाप देनेके विचारसे तुरंत इस प्रकार कहने लगे—॥ २०॥

नन्दीश्वर उवाच

रे रे शठ महामूढ दक्ष दुष्टमते त्वया।
यज्ञबाह्यो हि मे स्वामी महेशो हि कृतः कथम्॥ २१
यस्य स्मरणमात्रेण भवन्ति सफला मखाः।
तीर्थानि च पवित्राणि सोऽयं शप्तो हरः कथम्॥ २२

नन्दीश्वर बोले—हे शठ! महामूढ़! हे दुष्टबुद्धि दक्ष! तुमने मेरे स्वामी महेश्वरको यज्ञसे बहिष्कृत क्यों कर दिया? जिनके स्मरणमात्रसे यज्ञ सफल और तीर्थ पवित्र हो जाते हैं, उन्हीं महादेवजीको तुमने शाप कैसे दे दिया?॥ २१-२२॥

वृथा ते ब्रह्मचापल्याच्छप्तोऽयं दक्ष दुर्मते।
वृथोपहसितश्चैवादुष्टो रुद्रो महाप्रभुः॥ २३
येनेदं पाल्यते विश्वं सृष्टमन्ते विनाशितम्।
शप्तोऽयं स कथं रुद्रो महेशो ब्राह्मणाधम॥ २४

हे दुर्बुद्धि दक्ष! तुमने ब्राह्मणजातिकी चपलतासे प्रेरित हो इन निर्दोष महाप्रभु रुद्रदेवको व्यर्थ ही शाप दिया और इनका उपहास किया है। हे ब्राह्मणाधम! जिन्होंने इस जगत्की सृष्टि की है, जो इसका पालन करते हैं और अन्तमें जिनके द्वारा इसका संहार होता है, उन्हीं महेश्वर रुद्रको तूने शाप कैसे दे दिया?॥ २३-२४॥

एवं निर्भर्त्सितस्तेन नन्दिना हि प्रजापतिः।
नन्दिनं च शशापाथ दक्षो रोषसमन्वितः॥ २५

नन्दीके इस प्रकार फटकारनेपर प्रजापति दक्ष रुष्ट हो गये और नन्दीको शाप दे दिया॥ २५॥

दक्ष उवाच

यूयं सर्वे रुद्रगणा वेदबाह्या भवन्तु वै।
वेदमार्गपरित्यक्तास्तथा त्यक्ता महर्षिभिः॥ २६
पाखंडवादनिरताः शिष्टाचारबहिष्कृताः।
मदिरापाननिरता जटाभस्मास्थिधारिणः॥ २७

दक्ष बोले—हे रुद्रगणो! तुमलोग वेदसे बहिष्कृत हो जाओ, वैदिक मार्गसे भ्रष्ट हो जाओ, महर्षियोंद्वारा परित्यक्त हो जाओ, पाखण्डवादमें लग जाओ, शिष्टाचारसे दूर रहो, सिरपर जटा और शरीरमें भस्म एवं हड्डियोंके आभूषण धारण करो और मद्यपानमें आसक्त रहो॥ २६-२७॥

ब्रह्मोवाच

इति शप्तास्तथा तेन दक्षेण शिवकिंकराः।
तच्छ्रुत्वातिरुषाविष्टोऽभवन्नन्दी शिवप्रियः॥ २८

ब्रह्माजी बोले—जब दक्षने शिवगणोंको इस प्रकार शाप दे दिया, तब उस शापको सुनकर शिवभक्त नन्दी अत्यन्त रोषमें भर गये॥ २८॥

प्रत्युवाच द्रुतं दक्षं गर्वितं तं महाखलम्।
शिलादतनयो नन्दी तेजस्वी शिववल्लभः॥ २९

शिलादके पुत्र, शिवप्रिय, तेजस्वी नन्दी गर्वसे भरे हुए महादुष्ट दक्षको तत्काल इस प्रकार उत्तर देने लगे—॥ २९॥

नन्दीश्वर उवाच

रे दक्ष शठ दुर्बुद्धे वृथैव शिवकिंकराः।
शप्तास्ते ब्रह्मचापल्याच्छिवतत्त्वमजानता॥ ३०

नन्दीश्वर बोले—हे शठ! हे दुर्बुद्धि दक्ष! ब्रह्मचापल्यके कारण शिवतत्त्वको न जानते हुए तुमने शिवके पार्षदोंको व्यर्थ ही शाप दिया है॥ ३०॥

भृग्वाद्यैर्दुष्टचित्तैश्च मूढैः स उपहासितः।
महाप्रभुर्महेशानो ब्राह्मणत्वादहंमते॥ ३१
ये रुद्रविमुखाश्चात्र ब्राह्मणास्त्वादृशाः खलाः।

हे अहंकारी दक्ष! दूषित चित्तवाले मूढ़ भृगु आदिने भी ब्राह्मणत्वके अभिमानमें आकर महाप्रभु महेश्वरका उपहास किया है। अतः यहाँ जो भगवान् रुद्रसे विमुख

रुद्रतेजःप्रभावत्वात्तेषां शापं ददाम्यहम्॥ ३२

वेदवादरता यूयं वेदतत्त्वबहिर्मुखाः।
भवन्तु सततं विप्रा नान्यदस्तीति वादिनः॥ ३३

कामात्मानः स्वर्गपराः क्रोधलोभमदान्विताः।
भवन्तु सततं विप्रा भिक्षुका निरपत्रपाः॥ ३४

वेदमार्गं पुरस्कृत्य ब्राह्मणाः शूद्रयाजिनः।
दरिद्रा वै भविष्यन्ति प्रतिग्रहरताः सदा॥ ३५

असत्प्रतिग्रहाश्चैव सर्वे निरयगामिनः।
भविष्यन्ति सदा दक्ष केचिद्वै ब्रह्मराक्षसाः॥ ३६

यः शिवं सुरसामान्यमुद्दिश्य परमेश्वरम्।
द्रुह्यत्यजो दुष्टमतिः तत्त्वतां विमुखो भवेत्॥ ३७

कूटधर्मेषु गेहेषु सदा ग्राम्यसुखेच्छया।
कर्मतन्त्रं वितनुतां वेदवादं च शाश्वतम्॥ ३८

विनष्टानंदकमुखो विस्मृतात्मगतिः पशुः।
भ्रष्टकर्मानयरतो दक्षो बस्तमुखोऽचिरात्॥ ३९

शप्तास्ते कोपिना तत्र नंदिना ब्राह्मणा यदा।
हाहाकारो महानासीच्छप्तो दक्षेण चेश्वरः॥ ४०

तदाकर्ण्याहमत्यन्तमनिन्दं तं मुहुर्मुहुः।
भृग्वादीनपि विप्रांश्च वेदसृट् शिवतत्त्ववित्॥ ४१

ईश्वरोऽपि वचः श्रुत्वा नंदिनः प्रहसन्निव।
उवाच मधुरं वाक्यं बोधयंस्तं सदाशिवः॥ ४२

सदाशिव उवाच

शृणु नंदिन् महाप्राज्ञ न कर्तुं क्रोधमर्हसि।
वृथा शप्तं ब्रह्मकुलं मत्वा शप्तं च मां भ्रमात्॥ ४३

तुम-जैसे खल ब्राह्मण विद्यमान हैं, उनको मैं रुद्रतेजके प्रभावसे शाप दे रहा हूँ॥ ३१-३२॥

तुम-जैसे ब्राह्मण [कर्मफलके प्रशंसक] वेदवादमें फँसकर वेदके तत्त्वज्ञानसे शून्य हो जायँ, वे ब्राह्मण सदा भोगोंमें तन्मय रहकर स्वर्गको ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ मानते हुए स्वर्गसे बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है—ऐसा कहते रहें तथा क्रोध, लोभ एवं मदसे युक्त, निर्लज्ज और भिक्षुक बने रहें॥ ३३-३४॥

[कितने ही] ब्राह्मण वेदमार्गको सामने रखकर शूद्रोंका यज्ञ करानेवाले और दरिद्र होंगे। वे सदा दान लेनेमें लगे रहेंगे। दूषित दान ग्रहण करनेके कारण वे सबके सब नरकगामी होंगे। हे दक्ष! उनमेंसे कुछ ब्राह्मण तो ब्रह्मराक्षस होंगे॥ ३५-३६॥

यह अजन्मा प्रजापति दक्ष, जो परमेश्वर शिवको सामान्य देवता समझकर उनसे द्रोह करता है, यह दुष्ट बुद्धिवाला तत्त्वज्ञानसे विमुख हो जायगा॥ ३७॥

यह विषयसुखकी इच्छासे कामनारूपी कपटसे युक्त धर्मवाले गृहस्थाश्रममें आसक्त रहकर कर्मकाण्डका तथा कर्मफलकी प्रशंसा करनेवाले सनातन वेदवादका ही विस्तार करता रहेगा। दक्षका आनन्ददायी मुख नष्ट हो जाय, यह आत्मज्ञानको भूलकर पशुके समान हो जाय और कर्मभ्रष्ट तथा अनीतिपरायण होकर शीघ्र ही बकरेके मुखसे युक्त हो जाय। इस प्रकार कुपित हुए नन्दीने जब ब्राह्मणोंको शाप दिया और दक्षने महादेवजीको शाप दिया, तब वहाँ महान् हाहाकार मच गया॥ ३८—४०॥

[हे नारद!] दक्षका वह शाप सुनकर वेदोंके प्रतिपादक तथा शिवतत्त्वको जाननेवाले मैंने उस दक्षकी तथा भृगु आदि ब्राह्मणोंकी बारंबार निन्दा की॥ ४१॥

सदाशिव महादेवजी भी नन्दीकी वह बात सुनकर हँसते हुए और समझाते हुए मधुर वचन कहने लगे—॥ ४२॥

सदाशिव बोले—हे नन्दिन्! [मेरी बात] सुनो। हे महाप्राज्ञ! तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये। तुमने भ्रमसे यह समझकर कि मुझे शाप दिया गया है, व्यर्थमें ही ब्राह्मणकुलको शाप दे डाला॥ ४३॥

**वेदो मंत्राक्षरमयः साक्षात्सूक्तमयो भृशम्।
सूक्ते प्रतिष्ठितो ह्यात्मा सर्वेषामपि देहिनाम्॥ ४४**

**तस्मादात्मविदो नित्यं त्वं मा शप रुषान्वितः।
शप्या न वेदाः केनापि दुर्धियाऽपि कदाचन॥ ४५**

**अहं शप्तो न चेदानीं तत्त्वतो बोद्धुमर्हसि।
शान्तो भव महाधीमन् सनकादिविबोधकः॥ ४६**

**यज्ञोऽहं यज्ञकर्माहं यज्ञाङ्गानि च सर्वशः।
यज्ञात्मा यज्ञनिरतो यज्ञबाह्योऽहमेव वै॥ ४७**

**कोऽयं कस्त्वमिमे के हि सर्वोऽहमपि तत्त्वतः।
इति बुद्ध्या हि विमृश वृथा शप्तास्त्वया द्विजाः॥ ४८**

**तत्त्वज्ञानेन निर्हृत्य प्रपञ्चरचनां भव।
बुधः स्वस्थो महाबुद्धे नन्दिन् क्रोधादिवर्जितः॥ ४९**

ब्रह्मोवाच

**एवं स प्रबोधितस्तेन शम्भुना नन्दिकेश्वरः।
विवेकपरमो भूत्वा शांतोऽभूत्क्रोधवर्जितः॥ ५०
शिवोऽपि तं प्रबोध्याशु स्वगणं प्राणवल्लभम्।
सगणः स ययौ तस्मात्स्वस्थानं प्रमुदान्वितः॥ ५१**

**दक्षोऽपि स रुषाविष्टस्तैर्द्विजैः परिवारितः।
स्वस्थानं च ययौ चित्ते शिवद्रोहपरायणः॥ ५२**

**रुद्रं तदानीं परिशप्यमानं
संस्मृत्य दक्षः परया रुषान्वितः।
श्रद्धां विहायैव स मूढबुद्धि-
र्निन्दापरोऽभूच्छिवपूजकानाम् ॥ ५३**

**इत्युक्तो दक्षदुर्बुद्धिः शंभुना परमात्मना।
परां दुर्धिषणां तस्य शृणु तात वदाम्यहम्॥ ५४**

वेद मन्त्राक्षरमय और सूक्तमय हैं। [उसके प्रत्येक] सूक्तमें समस्त देहधारियोंकी आत्मा प्रतिष्ठित है। उन मन्त्रोंके ज्ञाता नित्य आत्मवेत्ता हैं, इसलिये तुम रोषवश उन्हें शाप न दो। किसी कुत्सित बुद्धिवालेको भी कभी वेदोंको शाप नहीं देना चाहिये॥ ४४-४५॥

इस समय मुझे शाप नहीं मिला है, इस बातको तुम्हें ठीक-ठीक समझना चाहिये। हे महामते! तुम तो सनकादिको भी तत्त्वज्ञानका उपदेश देनेवाले हो, अतः शान्त हो जाओ। मैं ही यज्ञ हूँ, मैं ही यज्ञकर्म हूँ, यज्ञोंके अंग भी मैं ही हूँ, यज्ञकी आत्मा मैं ही हूँ, यज्ञपरायण यजमान मैं ही हूँ और यज्ञसे बहिष्कृत भी मैं ही हूँ॥ ४६-४७॥

यज्ञ कौन है, तुम कौन हो और ये कौन हैं? वास्तवमें सब मैं ही हूँ। तुम अपनी बुद्धिसे इस बातका विचार करो। तुमने ब्राह्मणोंको व्यर्थ ही शाप दिया है। हे महामते! हे नन्दिन्! तुम तत्त्वज्ञानके द्वारा प्रपंच-रचनाको दूर करके विवेकपरायण, स्वस्थ तथा क्रोध आदिसे रहित हो जाओ॥ ४८-४९॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार भगवान् शिवद्वारा समझाये जानेपर वे नन्दी परम ज्ञानसे युक्त और क्रोधरहित होकर शान्त हो गये। वे भगवान् शिव भी अपने प्राणप्रिय गण नन्दीको बोध प्रदान करके गणोंसहित वहाँसे प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानको चले गये॥ ५०-५१॥

इधर, रोषसे युक्त दक्ष भी चित्तमें शिवके प्रति द्रोहयुक्त होकर ब्राह्मणोंके साथ अपने स्थानको लौट गये॥ ५२॥

उस समय रुद्रको शाप दिये जानेकी घटनाका स्मरण करके दक्ष सदा महान् रोषसे भरे रहते थे। मूर्ख बुद्धिवाले वे शिवके प्रति श्रद्धाको त्यागकर शिवपूजकोंकी निन्दा करने लगे। हे तात! इस प्रकार परमात्मा शम्भुके साथ [दुर्व्यवहार करके] दक्षने अपनी जिस दुष्ट बुद्धिका परिचय दिया था, वह मैंने आपको बता दिया, अब उनकी और बड़ी दुर्बुद्धिके विषयमें सुनिये, मैं बता रहा हूँ॥ ५३-५४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे सत्युपाख्याने शिवेन दक्षविरोधो नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सतीके उपाख्यानमें शिवके साथ दक्षका विरोधवर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २६॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

दक्षप्रजापतिद्वारा महान् यज्ञका प्रारम्भ, यज्ञमें दक्षद्वारा शिवके न बुलाये जानेपर दधीचिद्वारा दक्षकी भर्त्सना करना, दक्षके द्वारा शिव-निन्दा करनेपर दधीचिका वहाँसे प्रस्थान

ब्रह्मोवाच

एकदा तु मुने तेन यज्ञः प्रारंभितो महान्।
तत्राहूतास्तदा सर्वे दीक्षितेन सुरर्षयः॥ १

महर्षयोऽखिलास्तत्र निर्जराश्च समागताः।
यद्यज्ञकरणार्थं हि शिवमायाविमोहिताः॥ २

अगस्त्यः कश्यपोऽत्रिश्च वामदेवस्तथा भृगुः।
दधीचिर्भगवान् व्यासो भारद्वाजोऽथ गौतमः॥ ३

पैलः पराशरो गर्गो भार्गवः ककुभः सितः।
सुमंतुत्रिककंकाश्च वैशम्पायन एव च॥ ४

एते चान्ये च बहवो मुनयो हर्षिता ययुः।
मम पुत्रस्य दक्षस्य सदाराः ससुता मखम्॥ ५

तथा सर्वे सुरगणा लोकपाला महोदयाः।
तथोपनिर्जराः सर्वे स्वोपकारबलान्विताः॥ ६

सत्यलोकात्समानीतो नुतोऽहं विश्वकारकः।
ससुतः सपरीवारो मूर्तवेदादिसंयुतः॥ ७

वैकुंठाच्च तथा विष्णुः संप्रार्थ्य विविधादरात्।
सपार्षदपरीवारः समानीतो मखं प्रति॥ ८

एवमन्ये समायाता दक्षयज्ञं विमोहिताः।
सत्कृतास्तेन दक्षेण सर्वे ते हि दुरात्मना॥ ९

भवनानि महार्हाणि सुप्रभाणि महांति च।
त्वष्ट्रा कृतानि दिव्यानि तेभ्यो दत्तानि तेन वै॥ १०

तेषु सर्वेषु धिष्ण्येषु यथायोग्यं च संस्थिताः।
सन्मानिता अराजंस्ते सकला विष्णुना मया॥ ११

वर्तमाने महायज्ञे तीर्थे कनखले तदा।
ऋत्विजश्च कृतास्तेन भृग्वाद्याश्च तपोधनाः॥ १२

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! एक समय दक्षने एक बड़े महान् यज्ञका प्रारम्भ किया और दीक्षाप्राप्त उसने उस यज्ञमें सभी देवताओं तथा ऋषियोंको बुलाया॥ १॥

शिवकी मायासे विमोहित होकर सभी महर्षि तथा देवता यज्ञको सम्पन्न करानेके लिये आये॥ २॥

अगस्त्य, कश्यप, अत्रि, वामदेव, भृगु, दधीचि, भगवान् व्यास, भारद्वाज, गौतम, पैल, पराशर, गर्ग, भार्गव, ककुभ, सित, सुमन्तु, त्रिक, कंक और वैशम्पायन—ये सब तथा अन्य बहुत-से मुनि अपने स्त्री-पुत्रोंको साथ लेकर मेरे पुत्र दक्षके यज्ञमें हर्षपूर्वक गये॥ ३—५॥

[इनके अतिरिक्त] समस्त देवगण, महान् अभ्युदय-शाली लोकपालगण और सभी उपदेवता अपनी उपकारक सैन्यशक्तिके साथ वहाँ आये थे। दक्षने प्रार्थना करके पुत्र, परिवार और मूर्तिमान् वेदोंसहित मुझ विश्वस्रष्टा ब्रह्माको भी सत्यलोकसे बुलवाया था॥ ६-७॥

इसी तरह भाँति-भाँतिसे सादर प्रार्थना करके वैकुण्ठलोकसे पार्षदों और परिवारसहित भगवान् विष्णु भी उस यज्ञमें बुलाये गये थे। इसी प्रकार अन्य लोग भी विमोहित होकर दक्षके यज्ञमें आये और दुरात्मा दक्षने उन सबका बड़ा सत्कार किया। विश्वकर्माके द्वारा बनाये गये अत्यन्त दीप्तिमान्, विशाल, बहुमूल्य तथा दिव्य भवन दक्षने उन्हें [ठहरनेके लिये] दिये थे॥ ८—१०॥

उन भवनोंमें मेरे तथा विष्णुके साथ वे सभी [देव, महर्षिगण] दक्षसे यथायोग्य सम्मानित हो अपने-अपने स्थानोंपर स्थिर होकर शोभित होने लगे। उस समय कनखल नामक तीर्थमें आरम्भ हुए उस महायज्ञमें दक्षने भृगु आदि तपोधनोंको ऋत्विज बनाया॥ ११-१२॥

अधिष्ठाता स्वयं विष्णुः सह सर्वमरुद्गणैः।
अहं तत्राभवं ब्रह्मा त्रयीविधिनिदर्शकः॥ १३
तथैव सर्वे दिक्पाला द्वारपालाश्च रक्षकाः।
सायुधाः सपरीवाराः कुतूहलकराः सदा॥ १४

सम्पूर्ण मरुद्गणोंके साथ स्वयं भगवान् विष्णु [उस यज्ञके] अधिष्ठाता बने और मैं वेदत्रयीकी विधिको बतानेवाला ब्रह्मा बना था। इसी तरह सम्पूर्ण दिक्पाल अपने आयुधों और परिवारोंके साथ द्वारपाल एवं रक्षक बने थे, वे सदा कौतूहल पैदा करते थे॥ १३-१४॥

उपतस्थे स्वयं यज्ञः सुरूपस्तस्य चाध्वरे।
सर्वे महामुनिश्रेष्ठाः स्वयं वेदधराभवन्॥ १५
तनूनपादपि निजं चक्रे रूपं सहस्रशः।
हविषां ग्रहणायाशु तस्मिन् यज्ञे महोत्सवे॥ १६

स्वयं यज्ञदेव सुन्दर रूप धारण करके उनके यज्ञमें उस समय उपस्थित थे और बड़े-बड़े श्रेष्ठ मुनिलोग स्वयं वेदोंको धारण किये हुए थे। अग्निने भी उस यज्ञमहोत्सवमें शीघ्र ही हविष्य ग्रहण करनेके लिये अपने हजारों रूप प्रकट किये थे॥ १५-१६॥

अष्टाशीतिसहस्राणि जुह्वति सह ऋत्विजः।
उद्गातारश्चतुःषष्टिसहस्राणि सुरर्षयः॥ १७
अध्वर्यवोऽथ होतारस्तावन्तो नारदादयः।
सप्तर्षयः समा गाथाः कुर्वन्ति स्म पृथक्पृथक्॥ १८

वहाँ अठासी हजार ऋत्विज एक साथ हवन करते थे। चौंसठ हजार देवर्षि उस यज्ञमें उद्गाता थे। अध्वर्यु एवं होता भी उतने ही थे। नारद आदि देवर्षि और सप्तर्षि पृथक्-पृथक् गाथा-गान कर रहे थे॥ १७-१८॥

गंधर्वविद्याधरसिद्धसंघा-
नादित्यसंघान् सगणान् सयज्ञान्।
संख्यावतान्नागचरान् समस्तान्
वव्रे स दक्षो हि महाध्वरे स्वे॥ १९

दक्षने अपने उस महायज्ञमें गन्धर्वों, विद्याधरों, सिद्धों, सभी आदित्यों और उनके गणों, यज्ञों एवं नागलोकमें विचरण करनेवाले समस्त नागोंका भी बहुत बड़ी संख्यामें वरण किया था॥ १९॥

द्विजर्षिराजर्षिसुरर्षिसंघा
नृपाः समित्राः सचिवाः ससैन्याः।
वसुप्रमुख्या गणदेवताश्च
सर्वे वृतास्तेन मखोपवेत्रा॥ २०
दीक्षायुक्तस्तदा दक्षः कृतकौतुकमङ्गलः।
भार्यया सहितो रेजे कृतस्वस्त्ययनो भृशम्॥ २१

ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षियोंके समुदाय और अपने मित्रों, मन्त्रियों तथा सेनाओंके साथ अनेक राजा भी वहाँ आये हुए थे। यजमान दक्षने उस यज्ञमें वसु आदि समस्त गण-देवताओंका भी वरण किया था। कौतुक और मंगलाचार करके जब दक्षने यज्ञकी दीक्षा ली तथा जब उनके लिये बारंबार स्वस्तिवाचन किया जाने लगा, तब वे अपनी पत्नीके साथ बड़ी शोभा पाने लगे॥ २०-२१॥

तस्मिन् यज्ञे वृतः शंभुर्न दक्षेण दुरात्मना।
कपालीति विनिश्चित्य तस्य यज्ञार्हता न हि॥ २२
कपालिभार्येति सती दयिता स्वसुतापि च।
नाहूता यज्ञविषये दक्षेणागुणदर्शिना॥ २३

[इतना सब करनेपर भी] दुरात्मा दक्षने उस यज्ञमें भगवान् शम्भुको नहीं बुलाया। उनकी दृष्टिमें कपालधारी होनेके कारण वे निश्चय ही यज्ञमें भाग लेनेयोग्य नहीं थे। दोषदर्शी दक्षने कपालीकी पत्नी होनेके कारण अपनी प्रिय पुत्री सतीको भी यज्ञमें नहीं बुलाया॥ २२-२३॥

एवं प्रवर्तमाने हि दक्षयज्ञे महोत्सवे।
स्वकार्यलग्नास्तत्रासन् सर्वे तेऽध्वरसंमताः॥ २४
एतस्मिन्नन्तरेऽदृष्ट्वा तत्र वै शंकरं प्रभुम्।
प्रोद्विग्नमानसः शैवो दधीचो वाक्यमब्रवीत्॥ २५

इस प्रकार दक्षके यज्ञ-महोत्सवके आरम्भ हो जानेपर यज्ञमण्डपमें आये हुए सब ऋत्विज अपने-अपने कार्यमें संलग्न हो गये। इसी बीच वहाँ भगवान् शंकरको [उपस्थित] न देखकर शिवभक्त दधीचिका चित्त अत्यन्त उद्विग्न हो उठा और वे कहने लगे— ॥ २४-२५॥

दधीच उवाच

सर्वे शृणुत मद्वाक्यं देवर्षिप्रमुखा मुदा।
कस्मान्नैवागतः शंभुरस्मिन् यज्ञे महोत्सवे॥ २६

एते सुरेशा मुनयो महत्तराः
सलोकपालाश्च समागता हि।
तथापि यज्ञस्तु न शोभते भृशं
पिनाकिना तेन महात्मना विना॥ २७

येनैव सर्वाण्यपि मङ्गलानि
भवन्ति शंसन्ति महाविपश्चितः।
सोऽसौ न दृष्टोऽत्र पुमान् पुराणो
वृषध्वजो नीलगलः परेशः॥ २८

अमङ्गलान्येव च मङ्गलानि
भवन्ति येनाधिगतानि दक्ष।
त्रिपञ्चकेनाप्यथ मङ्गलानि
भवन्ति सद्यः परतः पराणि॥ २९

तस्मात्त्वयैव कर्तव्यमाह्वानं परमेशितुः।
त्वरितं ब्रह्मणा वापि विष्णुना प्रभुविष्णुना॥ ३०

इन्द्रेण लोकपालैश्च द्विजैः सिद्धैः सहाधुना।
सर्वथानयनीयोऽसौ शंकरो यज्ञपूर्तये॥ ३१

सर्वैर्भवद्भिर्गन्तव्यं यत्र देवो महेश्वरः।
दाक्षायण्या समं शम्भुमानयध्वं त्वरान्विताः॥ ३२

तेन सर्वं पवित्रं स्याच्छम्भुना परमात्मना।
अत्रागतेन देवेशाः साम्बेन परमात्मना॥ ३३

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या समग्रं सुकृतं भवेत्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ह्यानेतव्यो वृषध्वजः॥ ३४

समागते शंकरेऽत्र पावनो हि भवेन्मखः।
भविष्यत्यन्यथापूर्णः सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम्॥ ३५

ब्रह्मोवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दक्षो रोषसमन्वितः।
उवाच त्वरितं मूढः प्रहसन्निव दुष्टधीः॥ ३६

मूलं विष्णुर्देवतानां यत्र धर्मः सनातनः।
समानीतो मया सम्यक् किमूनं यज्ञकर्मणि॥ ३७

दधीचि बोले—हे प्रमुख देवताओ तथा महर्षियो! आप सब लोग प्रसन्नतापूर्वक मेरी बात सुनें। इस यज्ञमहोत्सवमें भगवान् शंकर क्यों नहीं आये हैं?॥ २६॥

यद्यपि ये देवेश्वर, बड़े-बड़े मुनि और लोकपाल यहाँ आये हुए हैं, तथापि उन पिनाकधारी महात्मा शंकरके बिना यह यज्ञ अधिक शोभा नहीं पा रहा है। बड़े-बड़े विद्वान् कहते हैं कि मंगलमय भगवान् शिवजीकी कृपादृष्टिसे ही समस्त मंगलकार्य सम्पन्न हो जाते हैं। जिनका ऐसा प्रभाव है, वे पुराणपुरुष, वृषभध्वज, परमेश्वर श्रीनीलकण्ठ यहाँ क्यों नहीं दिखायी दे रहे हैं? हे दक्ष! जिनके सम्पर्कमें आनेपर अथवा जिनके स्वीकार कर लेनेपर अमंगल भी मंगल हो जाते हैं तथा जिनके पन्द्रह नेत्रोंसे देखे जानेपर बड़े-से-बड़े मंगल तत्काल हो जाते हैं, उनका इस यज्ञमें पदार्पण होना अत्यन्त आवश्यक है॥ २७—२९॥

इसलिये तुम्हें स्वयं ही परमेश्वर शिवजीको यहाँ बुलाना चाहिये अथवा ब्रह्मा, प्रभावशाली भगवान् विष्णु, इन्द्र, लोकपालों, ब्राह्मणों और सिद्धोंकी सहायतासे सर्वथा प्रयत्न करके इस समय यज्ञकी पूर्तिके लिये उन भगवान् शंकरको यहाँ ले आना चाहिये॥ ३०-३१॥

आप सब लोग उस स्थानपर जायँ, जहाँ महेश्वरदेव विराजमान हैं। वहाँसे दक्षनन्दिनी सतीके साथ भगवान् शम्भुको यहाँ तुरंत ले आयें। हे देवेश्वरो! जगदम्बासहित उन परमात्मा शिवके यहाँ आ जानेसे सब कुछ पवित्र हो जायगा। जिनके स्मरणसे तथा नाम लेनेसे सारा कार्य पुण्यमय बन जाता है, अतः पूर्ण प्रयत्न करके उन भगवान् वृषभध्वजको यहाँ ले आना चाहिये॥ ३२—३४॥

भगवान् शंकरके यहाँ आनेपर यह यज्ञ पवित्र हो जायगा, अन्यथा यह अपूर्ण ही रह जायगा, यह मैं सत्य कह रहा हूँ॥ ३५॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] दधीचिका यह वचन सुनकर दुष्ट बुद्धिवाले मूढ़ दक्ष हँसते हुए शीघ्र ही रोषपूर्वक कहने लगे—॥ ३६॥

भगवान् विष्णु सम्पूर्ण देवताओंके मूल हैं, जिनमें सनातनधर्म प्रतिष्ठित है। जब इन्हें मैंने सादर बुला लिया है, तब इस यज्ञकर्ममें क्या कमी हो सकती है?॥ ३७॥

यस्मिन् वेदाश्च यज्ञाश्च कर्माणि विविधानि च।
प्रतिष्ठितानि सर्वाणि सोऽसौ विष्णुरिहागतः॥ ३८

जिनमें वेद, यज्ञ और नाना प्रकारके कर्म प्रतिष्ठित हैं, वे भगवान् विष्णु तो यहाँ आ ही गये हैं॥ ३८॥

सत्यलोकात्समायातो ब्रह्मा लोकपितामहः।
वेदैः सोपनिषद्भिश्च विविधैरागमैः सह॥ ३९

लोकपितामह ब्रह्मा सत्यलोकसे वेदों, उपनिषदों और विविध आगमोंके साथ यहाँ आये हुए हैं॥ ३९॥

तथा सुरगणैः साकमागतः सुरराट् स्वयम्।
तथा यूयं समायाता ऋषयो वीतकल्मषाः॥ ४०

ये ये यज्ञोचिताः शान्ताः पात्रभूताः समागताः।
वेदवेदार्थतत्त्वज्ञाः सर्वे यूयं दृढव्रताः॥ ४१

अत्रैव च किमस्माकं रुद्रेणापि प्रयोजनम्।
कन्या दत्ता मया विप्र ब्रह्मणा नोदितेन हि॥ ४२

देवगणोंके साथ स्वयं देवराज इन्द्र भी आये हैं तथा निष्पाप आप ऋषिगण भी यहाँ आ गये हैं। जो-जो यज्ञमें सम्मिलित होनेयोग्य शान्त, सुपात्र हैं, वेद और वेदार्थके तत्त्वको जाननेवाले और दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाले हैं—वे आप सब यहाँ पदार्पण कर चुके हैं, तब हमें यहाँ रुद्रसे क्या प्रयोजन है! हे विप्र! मैंने ब्रह्माजीके कहनेसे ही अपनी कन्या रुद्रको दी थी॥ ४०—४२॥

हरोऽकुलीनोऽसौ विप्र पितृमातृविवर्जितः।
भूतप्रेतपिशाचानां पतिरेको दुरत्ययः॥ ४३

आत्मसंभावितो मूढः स्तब्धो मौनी समत्सरः।
कर्मण्यस्मिन्न योग्योऽसौ नानीतो हि मयाधुना॥ ४४

हे विप्र! हर कुलीन नहीं है, उसके माता-पिता नहीं हैं, वह भूतों-प्रेतों-पिशाचोंका स्वामी अकेला रहता है और उसका अतिक्रमण करना दूसरोंके लिये अत्यन्त कठिन है। वह आत्मप्रशंसक, मूढ़, जड़, मौनी और ईर्ष्यालु है। वह इस यज्ञकर्मके योग्य नहीं है, इसलिये मैंने उसको यहाँ नहीं बुलाया है॥ ४३-४४॥

तस्मात्त्वयेदृशं वाक्यं पुनर्वाच्यं न हि क्वचित्।
सर्वैर्भवद्भिः कर्तव्यो यज्ञो मे सफलो महान्॥ ४५

अतः [दधीचिजी!] आप ऐसा पुनः कभी न कहें, आप सभी लोग मिलकर मेरे महान् यज्ञको सफल बनायें॥ ४५॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य दधीचिर्वाक्यमब्रवीत्।
सर्वेषां शृण्वतां देवमुनीनां सारसंयुतम्॥ ४६

ब्रह्माजी बोले—दक्षकी यह बात सुनकर दधीचि सभी देवताओं तथा मुनियोंको सुनाते हुए सारयुक्त वचन कहने लगे—॥ ४६॥

दधीच उवाच

अयज्ञोऽयं महाजातो विना तेन शिवेन हि।
विनाशोऽपि विशेषेण ह्यत्र ते हि भविष्यति॥ ४७

एवमुक्त्वा दधीचोऽसावेक एव विनिर्गतः।
यज्ञवाटाच्च दक्षस्य त्वरितः स्वाश्रमं ययौ॥ ४८

ततोऽन्ये शांकरा ये च मुख्याः शिवमतानुगाः।
निर्ययुः स्वाश्रमान् सद्यः शापं दत्त्वा तथैव च॥ ४९

दधीचि बोले—[हे दक्ष!] उन भगवान् शिवके बिना यह महान् यज्ञ भी अयज्ञ है। निश्चय ही इस यज्ञसे तुम्हारा विनाश होगा। इस प्रकार कहकर दधीचि दक्षकी यज्ञशालासे अकेले ही निकलकर अपने आश्रमको चल दिये। तदनन्तर जो मुख्य-मुख्य शिवभक्त थे तथा उनके मतका अनुसरण करनेवाले थे, वे भी दक्षको शाप देकर तुरंत वहाँसे अपने आश्रमोंको चले गये॥ ४७—४९॥

मुनौ विनिर्गते तस्मिन् मखादन्येषु दुष्टधीः।
शिवद्रोही मुनीन् दक्षः प्रहसन्निदमब्रवीत्॥ ५०

मुनि दधीचि तथा दूसरे ऋषियोंके उस यज्ञमण्डपसे निकल जानेपर दुष्टबुद्धि तथा शिवद्रोही दक्ष मुसकराते हुए अन्य मुनियोंसे कहने लगे—॥ ५०॥

दक्ष उवाच

गतः शिवप्रियो विप्रो दधीचो नाम नामतः।
अन्ये तथाविधा ये च गतास्ते मम चाध्वरात्॥ ५१
एतच्छुभतरं जातं सम्मतं मे हि सर्वथा।
सत्यं ब्रवीमि देवेश सुराश्च मुनयस्तथा॥ ५२

विनष्टचित्ता मंदाश्च मिथ्यावादरताः खलाः।
वेदबाह्या दुराचाराः त्याज्यास्ते मखकर्मणि॥ ५३

वेदवादरता यूयं सर्वे विष्णुपुरोगमाः।
यज्ञं मे सफलं विप्राः सुराः कुर्वन्तु माचिरम्॥ ५४

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य शिवमायाविमोहिताः।
तन्मखे देवयजनं चक्रुः सर्वे सुरर्षयः॥ ५५

इति तन्मखशापो हि वर्णितो मे मुनीश्वर।
यज्ञविध्वंसयोगोऽपि प्रोच्यते शृणु सादरम्॥ ५६

दक्ष बोले—दधीचि नामक वे शिवप्रिय ब्राह्मण चले गये और उन्हींके समान जो दूसरे थे, वे भी मेरे यज्ञसे चले गये। यह तो बड़ा अच्छा हुआ। मुझे सदा यही अभीष्ट है। हे देवेश! हे देवताओ और हे मुनियो! मैं सत्य कह रहा हूँ॥ ५१-५२॥

जो नष्टबुद्धिवाले, मूर्ख, मिथ्या-भाषणमें रत, खल, वेदबहिष्कृत और दुराचारी हैं, उन लोगोंको यज्ञकर्ममें त्याग देना चाहिये। आप सभी लोग वेदवादमें परायण रहनेवाले हैं। अतः विष्णु आदि सब देवता और ब्राह्मण मेरे इस यज्ञको शीघ्र सफल बनायें॥ ५३-५४॥

ब्रह्माजी बोले—उसकी यह बात सुनकर शिवकी मायासे मोहित हुए समस्त देवता तथा ऋषि उस यज्ञमें देवताओंका पूजन करने लगे॥ ५५॥

हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैंने उस यज्ञको दधीचिद्वारा प्रदत्त शापका वर्णन कर दिया। अब यज्ञके विध्वंसकी घटना भी बता रहा हूँ, आदरपूर्वक सुनिये॥ ५६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे यज्ञप्रारम्भो नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें यज्ञका प्रारम्भ नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २७॥

अथाष्टविंशोऽध्यायः

दक्षयज्ञका समाचार पाकर एवं शिवकी आज्ञा प्राप्तकर देवी सतीका शिवगणोंके साथ पिताके यज्ञमण्डपके लिये प्रस्थान

ब्रह्मोवाच

यदा ययुर्दक्षमखमुत्सवेन सुरर्षयः।
तस्मिन्नेवान्तरे देवी पर्वते गंधमादने॥ १
धारागृहे वितानेन सखीभिः परिवारिता।
दाक्षायणी महाक्रीडाश्चकार विविधाः सती॥ २

क्रीडासक्ता तदा देवी ददर्शाथ मुदा सती।
दक्षयज्ञे प्रयान्तीं तां रोहिण्यापृच्छ्य सत्वरम्॥ ३

दृष्ट्वा सीमंतया भूतां विजयां प्राह सा सती।
स्वसखीं प्रवरां प्राणप्रियां सा हि हितावहाम्॥ ४

सत्युवाच

हे सखीप्रवरे प्राणप्रिये त्वं विजये मम।
क्व गमिष्यति चन्द्रोऽयं रोहिण्या पृच्छ सत्वरम्॥ ५

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! जब देवता तथा ऋषिगण बड़े उत्साहके साथ दक्षके यज्ञमें जा रहे थे, उसी समय दक्षकन्या देवी सती गन्धमादन पर्वतपर चँदोवेसे युक्त धारागृहमें सखियोंसे घिरी हुई अनेक प्रकारकी क्रीडाएँ कर रही थीं॥ १-२॥

प्रसन्नतापूर्वक क्रीडामें लगी हुई देवी सतीने उस समय चन्द्रमाके साथ दक्षयज्ञमें जाती हुई रोहिणीको देखा और शीघ्र ही उससे पुछवाया। उन्हें देखकर सतीजी अपनी हितकारिणी प्राण-प्यारी सौभाग्यशालिनी प्रिय तथा श्रेष्ठ सखी विजयासे बोलीं—॥ ३-४॥

सती बोलीं—हे सखियोंमें श्रेष्ठ! हे मेरी प्राणप्रिये! हे विजये! जल्दी जाकर पूछो कि ये चन्द्रदेव रोहिणीके साथ कहाँ जा रहे हैं?॥ ५॥

ब्रह्मोवाच

तथोक्ता विजया सत्या गत्वा तत्सन्निधौ द्रुतम्।
क्व गच्छसीति पप्रच्छ शशिनं तं यथोचितम्॥ ६

ब्रह्माजी बोले—सतीके इस प्रकार कहनेपर विजयाने तुरंत उनके पास जाकर यथोचित रूपसे उन चन्द्रमासे पूछा कि आप कहाँ जा रहे हैं?॥ ६॥

विजयोक्तमथाकर्ण्य स्वयात्रां पूर्वमादरात्।
कथितं तेन तत्सर्वं दक्षयज्ञोत्सवादिकम्॥ ७

विजयाकी बात सुनकर चन्द्रदेवने अपनी यात्राका उद्देश्य आदरपूर्वक बताया और उन्होंने दक्षके यहाँ होनेवाले यज्ञमहोत्सवका सारा वृत्तान्त कहा॥ ७॥

तच्छ्रुत्वा विजया देवीं त्वरिता जातसंभ्रमा।
कथयामास तत्सर्वं यदुक्तं शशिना सतीम्॥ ८

तच्छ्रुत्वा कालिका देवी विस्मिताभूत्सती तदा।
विमृश्य कारणं तत्राज्ञात्वा चेतस्यचिन्तयत्॥ ९

वह सब सुनकर विजया बड़ी उतावलीके साथ देवीजीके पास आयी और चन्द्रमाने जो कहा था, वह सब सतीसे कह दिया। उसे सुनकर सती कालिका देवीको बड़ा आश्चर्य हुआ। सोचने-विचारनेपर भी [अपने यहाँ सूचना न मिलनेका] कारण न समझ पानेपर वे मनमें सोचने लगीं॥ ८-९॥

दक्षः पिता मे माता च वीरिणी नौ कुतः सती।
आह्वानं न करोति स्म विस्मृता मां प्रियां सुताम्॥ १०

पृच्छेयं शंकरं तत्र कारणं सर्वमादरात्।
चिन्तयित्वेति सासीद्वै तत्र गंतुं सुनिश्चया॥ ११

दक्ष मेरे पिता हैं, वीरिणी मेरी माता हैं और मैं उनकी प्रिय कन्या हूँ, परंतु उन्होंने यज्ञमें मुझे नहीं बुलाया। वे कैसे भूल गये और निमन्त्रण क्यों नहीं भेजा? मैं इसका कारण आदरपूर्वक शंकरजीसे पूछूँ—ऐसा विचारकर सतीने शंकरजीके पास जानेका निश्चय किया॥ १०-११॥

अथ दाक्षायणी देवी विजयां प्रवरां सखीम्।
स्थापयित्वा द्रुतं तत्र समगच्छच्छिवांतिकम्॥ १२

ददर्श तं सभामध्ये संस्थितं बहुभिर्गणैः।
नंद्यादिभिर्महावीरैः प्रवरैर्यूथयूथपैः॥ १३

दृष्ट्वा तं प्रभुमीशानं स्वपतिं साथ दक्षजा।
प्रष्टुं तत्कारणं शीघ्रं प्राप शंकरसंनिधिम्॥ १४

इसके अनन्तर दक्षपुत्री देवी सती अपनी प्रिय सखी विजयाको वहीं बैठाकर शिवजीके पास शीघ्र गयीं। उन्होंने शिवजीको सभाके मध्यमें अनेक गणों, नन्दी आदि महावीरों तथा प्रमुख यूथपतियोंके साथ बैठे हुए देखा। वे अपने पति सदाशिव ईशानको देखकर उस कारणको पूछनेके लिये शीघ्र उनके पास पहुँच गयीं॥ १२—१४॥

शिवेन स्थापिता स्वाङ्के प्रीतियुक्तेन स्वप्रिया।
प्रमोदिता वचोभिः सा बहुमानपुरःसरम्॥ १५

अथ शंभुर्महालीलः सर्वेशः सुखदः सताम्।
सतीमुवाच त्वरितं गणमध्यस्थ आदरात्॥ १६

शिवजीने बड़े प्रेमसे प्रिया सतीको अपनी गोदमें बैठाया और बड़े आदरके साथ उन्हें अपने वचनोंसे प्रसन्न किया। इसके बाद महालीला करनेवाले तथा सज्जनोंको सुख देनेवाले सर्वेश्वर शंकर जो गणोंके मध्यमें विराजमान थे, सतीसे शीघ्र कहने लगे—॥ १५-१६॥

शंभुरुवाच

किमर्थमागतात्र त्वं सभामध्ये सविस्मया।
कारणं तस्य सुप्रीत्या शीघ्रं वद सुमध्यमे॥ १७

शिवजी बोले—तुम इस सभाके मध्यमें आश्चर्यचकित होकर क्यों आयी हो? हे सुन्दर कटिप्रदेशवाली! तुम इसका कारण प्रेमपूर्वक शीघ्र बताओ॥ १७॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्ता तदा तेन महेशेन मुनीश्वर।
साञ्जलिः सुप्रणम्याशु सत्युवाच प्रभुं शिवा॥ १८

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! शिवजीने जब सतीसे इस प्रकार कहा, तो वे शिवा हाथ जोड़कर प्रणाम करके प्रभुसे कहने लगीं—॥ १८॥

सत्युवाच

पितुर्मम महान् यज्ञो भवतीति मया श्रुतम्।
तत्रोत्सवो महानस्ति समवेताः सुरर्षयः॥ १९

पितुर्मम महायज्ञे कस्मात्तव न रोचते।
गमनं देवदेवेश तत्सर्वं कथय प्रभो॥ २०

सुहृदामेष वै धर्मः सुहृद्भिः सह सङ्गतिः।
कुर्वन्ति यन्महादेव सुहृदः प्रीतिवर्धिनीम्॥ २१

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मया गच्छ सह प्रभो।
यज्ञवाटं पितुर्मेऽद्य स्वामिन् प्रार्थनया मम॥ २२

सती बोलीं—[हे प्रभो!] मैंने सुना है कि मेरे पिताजीके यहाँ कोई बहुत बड़ा यज्ञ हो रहा है। उसमें महान् उत्सव होगा और वहाँ देवता तथा ऋषि एकत्रित हुए हैं। हे देवदेवेश्वर! पिताजीके उस महान् यज्ञमें जाना आपको अच्छा क्यों नहीं लगा, हे प्रभो [जो भी कारण हो] वह सब बताइये॥ १९-२०॥

महादेव! सुहृदोंका यह धर्म है कि सुहृदोंके साथ अच्छी संगति करके रहें। मित्रलोग प्रेमको बढ़ानेवाली इस प्रकारकी संगतिको करते रहते हैं॥ २१॥

इसलिये हे प्रभो! हे स्वामिन्! आप मेरी प्रार्थनासे मेरे साथ पिताजीके यज्ञमण्डपमें अवश्य चलिये॥ २२॥

ब्रह्मोवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा सत्या देवो महेश्वरः।
दक्षवागिषुहृद्विद्धो बभाषे सूनृतं वचः॥ २३

ब्रह्माजी बोले—सतीके इस वचनको सुनकर दक्षके वाग्बाणोंसे बिंधे हुए हृदयवाले देव महेश्वर मधुर वचन कहने लगे—॥ २३॥

महेश्वर उवाच

दक्षस्तव पिता देवि मम द्रोही विशेषतः॥ २४
यस्य ये मानिनः सर्वे ससुरर्षिमुखाः परे।
ते मूढा यजनं प्राप्ताः पितुस्ते ज्ञानवर्जिताः॥ २५

अनाहूताश्च ये देवि गच्छन्ति परमन्दिरम्।
अवमानं प्राप्नुवन्ति मरणादधिकं तथा॥ २६

परालयं गतोऽपीन्द्रो लघुर्भवति तद्विधः।
का कथा च परेषां वै रीढा यात्रा हि तद्विधा॥ २७

महेश्वर बोले—हे देवि! तुम्हारे पिता दक्ष मेरे विशेष द्रोही हो गये हैं। जो प्रमुख देवता, ऋषि तथा अन्य लोग अभिमानी, मूढ़ और ज्ञानशून्य हैं, वे ही तुम्हारे पिताके यज्ञमें गये हुए हैं॥ २४-२५॥

हे देवि! जो लोग बिना बुलाये दूसरेके घर जाते हैं, वे वहाँ अनादर ही पाते हैं, जो मृत्युसे भी बढ़कर होता है। चाहे वह इन्द्र ही क्यों न हो, बिना बुलाये दूसरेके घर जानेपर लघुता ही प्राप्त होगी और फिर दूसरेकी बात ही क्या! ऐसी यात्रा अनर्थका कारण बन जाती है॥ २६-२७॥

तस्मात्त्वया मया चापि दक्षस्य यजनं प्रति।
न गन्तव्यं विशेषेण सत्यमुक्तं मया प्रिये॥ २८

तथारिभिर्न व्यथते ह्यर्दितोऽपि शरैर्जनः।
स्वानां दुरुक्तिभिर्मर्मताडितः स यथा मतः॥ २९

विद्यादिभिर्गुणैः षड्भिरसदन्यैः सतां स्मृतौ।
हतायां भूयसां धाम न पश्यन्ति खलाः प्रिये॥ ३०

इसलिये तुमको और मुझको तो विशेष रूपसे दक्षके यज्ञमें नहीं जाना चाहिये; हे प्रिये! यह मैंने सत्य कहा है। मनुष्य अपने शत्रुओंके बाणसे घायल होकर उतना व्यथित नहीं होता, जितना अपने सम्बन्धियोंके निन्दायुक्त वचनोंसे दुखी होता है॥ २८-२९॥

हे प्रिये! सज्जनोंमें रहनेवाले विद्या आदि छः गुण जब दुष्ट मनुष्योंमें आ जाते हैं, तो उनकी स्मृति नष्ट हो जाती है और वे मानी होकर तेजस्वियोंकी ओर नहीं देखते हैं॥ ३०॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्ता सती तेन महेशेन महात्मना।
उवाच रोषसंयुक्ता शिवं वाक्यविदां वरम्॥ ३१

ब्रह्माजी बोले—महात्मा महेश्वरके इस प्रकार कहनेपर सती वाक्यवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवान् शंकरसे रोषपूर्वक कहने लगीं—॥ ३१॥

सत्युवाच

यज्ञः स्यात्सफलो येन स त्वं शंभोऽखिलेश्वर।
अनाहूतोऽसि तेनाद्य पित्रा मे दुष्टकारिणा॥ ३२

तत्सर्वं ज्ञातुमिच्छामि भव भावं दुरात्मनः।
सुरर्षीणां च सर्वेषामागतानां दुरात्मनाम्॥ ३३

तस्माच्चाद्यैव गच्छामि स्वपितुर्यजनं प्रभो।
अनुज्ञां देहि मे नाथ तत्र गन्तुं महेश्वर॥ ३४

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तो भगवान् रुद्रस्तया देव्या शिवः स्वयम्।
विज्ञाताखिलदृक् द्रष्टा सतीं सूतिकरोऽब्रवीत्॥ ३५

शिव उवाच

यद्येवं ते रुचिर्देवि तत्र गन्तुमवश्यकम्।
सुव्रते वचनान्मे त्वं गच्छ शीघ्रं पितुर्मखम्॥ ३६
एतं नंदिनमारुह्य वृषभं सज्जमादरात्।
महाराजोपचाराणि कृत्वा बहुगुणान्विता॥ ३७

भूषितं वृषमारोहेत्युक्ता रुद्रेण सा सती।
सुभूषिता सती युक्ता ह्यगमत्पितृमन्दिरम्॥ ३८

महाराजोपचाराणि दत्तानि परमात्मना।
सुच्छत्रचामरादीनि सद्वस्त्राभरणानि च॥ ३९
गणाः षष्टिसहस्राणि रौद्रा जग्मुः शिवाज्ञया।
कुतूहलयुताः प्रीता महोत्सवसमन्विताः॥ ४०

तदोत्सवो महानासीद्यजने तत्र सर्वतः।
सत्याः शिवप्रियायास्तु वामदेवगणैः कृतः॥ ४१

कुतूहलं गणाश्चक्रुः शिवयोर्यश उज्जगुः।
बलात्ते पुप्लुवुः प्रीत्या महावीराः शिवप्रियाः॥ ४२

सर्वथासीन्महाशोभा गमने जगदम्बिके।
सुखारावः संबभूव पूरितं भुवनत्रयम्॥ ४३

सती बोलीं—हे शम्भो! हे अखिलेश्वर! जिनके जानेसे यज्ञ सफल होता है, उन्हीं आपको मेरे दुष्ट पिताने आमन्त्रित नहीं किया है॥ ३२॥

हे भव! उस दुरात्मा दक्षके तथा वहाँ आये हुए सम्पूर्ण दुरात्मा देवताओं तथा ऋषियोंके मनोभावोंको मैं जानना चाहती हूँ। अतः हे प्रभो! मैं आज ही अपने पिताके यज्ञमें जा रही हूँ। हे नाथ! हे महेश्वर! आप मुझे वहाँ जानेकी आज्ञा प्रदान कीजिये॥ ३३-३४॥

ब्रह्माजी बोले—उन देवीके इस प्रकार कहनेपर सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, सृष्टिकर्ता एवं कल्याणस्वरूप साक्षात् भगवान् रुद्र सतीसे कहने लगे—॥ ३५॥

शिवजी बोले—हे देवि! यदि इस प्रकार तुम्हारी रुचि वहाँ अवश्य जानेकी है, तो हे सुव्रते! मेरी आज्ञासे तुम महाराजाओंके योग्य उपचार करके, बहुतसे गुणोंसे सम्पन्न हो, इस सजे हुए नन्दी वृषभपर सवार होकर शीघ्र अपने पिताके यज्ञमें जाओ॥ ३६-३७॥

तुम इस विभूषित वृषभपर आरूढ़ होओ। तब रुद्रके इस प्रकार आदेश देनेपर सुन्दर आभूषणोंसे अलंकृत तथा सब साधनोंसे युक्त हो देवी सती पिताके घरकी ओर चलीं॥ ३८॥

परमात्मा शिवजीने उन्हें सुन्दर वस्त्र, आभूषण, परम उज्ज्वल छत्र, चामर आदि महाराजोचित उपचार दिये। भगवान् शिवजीकी आज्ञासे साठ हजार रुद्रगण भी बड़ी प्रसन्नता और महान् उत्साहके साथ कौतूहलपूर्वक [सतीके साथ] गये॥ ३९-४०॥

उस समय वहाँ यज्ञमें सभी ओर महान् उत्सव हो रहा था। वामदेवके गणोंने शिवप्रिया सतीका भी उत्सव मनाया। महावीर तथा शिवप्रिय वे गण कौतूहलपूर्ण कार्य करने तथा सती और शिवके यशको गाने लगे और बलपूर्वक उछल-कूद करने लगे॥ ४१-४२॥

जगदम्बाके यात्राकालमें सब प्रकारसे महान् शोभा हो रही थी। उस समय जो सुखद [जय-जयकार आदि] शब्द उत्पन्न हुआ, उससे तीनों लोक गूँज उठे॥ ४३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे सतीयात्रावर्णनं नामाष्टविंशोऽध्यायः॥ २८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सतीयात्रावर्णन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २८॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

यज्ञशालामें शिवका भाग न देखकर तथा दक्षद्वारा शिवनिन्दा सुनकर क्रुद्ध हो सतीका दक्ष तथा देवताओंको फटकारना और प्राणत्यागका निश्चय

ब्रह्मोवाच

दाक्षायणी गता तत्र यत्र यज्ञो महाप्रभः।
सुरासुरमुनीन्द्रादिकुतूहलसमन्वितः ॥ १

स्वपितुर्भवनं तत्र नानाश्चर्यसमन्वितम्।
ददर्श सुप्रभं चारु सुरर्षिगणसंयुतम्॥ २

द्वारि स्थिता तदा देवी ह्यवरुह्य निजासनात्।
नन्दिनोऽभ्यन्तरं शीघ्रमेकैवागच्छदध्वरम्॥ ३

आगतां च सतीं दृष्ट्वासिक्नी माता यशस्विनी।
अकरोदादरं तस्या भगिन्यश्च यथोचितम्॥ ४

नाकरोदादरं दक्षो दृष्ट्वा तामपि किंचन।
नान्योऽपि तद्भयात्तत्र शिवमायाविमोहितः॥ ५

अथ सा मातरं देवी पितरं च सती मुने।
अनमद्विस्मितात्यन्तं सर्वलोकपराभवात्॥ ६

भागानपश्यद्देवानां हर्यादीनां तदध्वरे।
न शंभुभागमकरोत् क्रोधं दुर्विषहं सती॥ ७

तदा दक्षं दहन्तीव रुषा पूर्णा सती भृशम्।
क्रूरदृष्ट्या विलोक्यैव सर्वानप्यपमानिता॥ ८

सत्युवाच

अनाहूतस्त्वया कस्माच्छंभुः परमशोभनः।
येन पूतमिदं विश्वं समग्रं सचराचरम्॥ ९

यज्ञो यज्ञविदां श्रेष्ठो यज्ञाङ्गो यज्ञदक्षिणः।
यज्ञकर्ता च यः शंभुस्तं विना च कथं मखः॥ १०

यस्य स्मरणमात्रेण सर्वं पूतं भवत्यहो।
विना तेन कृतं सर्वमपवित्रं भविष्यति॥ ११

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] दक्षकन्या सती उस स्थानपर गयीं, जहाँ देवता, असुर और मुनीन्द्र आदिके कौतूहलपूर्ण कार्यसे युक्त महान् यज्ञ हो रहा था॥ १॥

सतीने वहाँ अपने पिताके भवनको देखा, जो नाना प्रकारके आश्चर्यजनक भावोंसे युक्त, कान्तिमान्, मनोहर तथा देवताओं और ऋषियोंके समुदायसे भरा हुआ था॥ २॥

देवी सती भवनके द्वारपर जाकर खड़ी हुईं और अपने वाहन नन्दीसे उतरकर अकेली ही शीघ्रतापूर्वक यज्ञस्थलके भीतर गयीं॥ ३॥

सतीको आया देख उनकी यशस्विनी माता असिक्नी (वीरिणी) और बहनोंने उनका यथोचित सत्कार किया॥ ४॥

परंतु दक्षने उन्हें देखकर भी कुछ आदर नहीं किया तथा उनके भयसे शिवकी मायासे मोहित हुए अन्य लोगोंने भी उनका आदर नहीं किया॥ ५॥

हे मुने! सब लोगोंके द्वारा तिरस्कार प्राप्त होनेपर भी सती देवीने अत्यन्त विस्मित हो माता-पिताको प्रणाम किया॥ ६॥

उस यज्ञमें सतीने भगवान् विष्णु आदि देवताओंके भागको देखा, परंतु शिवजीका भाग कहीं भी दिखायी नहीं दिया, तब उन्होंने असह्य क्रोध प्रकट किया। अपमानित होकर भी रोषसे भरकर सब लोगोंकी ओर क्रूर दृष्टिसे देखकर दक्षको भस्म करती हुई-सी वे कहने लगीं॥ ७-८॥

सती बोलीं—आपने परम मंगलकारी शिवको [इस यज्ञमें] क्यों नहीं बुलाया, जिनके द्वारा यह सम्पूर्ण चराचर जगत् पवित्र होता है। जो यज्ञस्वरूप, यज्ञवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, यज्ञके अंग, यज्ञकी दक्षिणा और यज्ञकर्ता हैं, उन शिवके बिना यह यज्ञ कैसे पूर्ण हो सकता है?॥ ९-१०॥

अहो! जिनके स्मरणमात्रसे सब कुछ पवित्र हो जाता है, उनके बिना किया हुआ यह सारा यज्ञ अपवित्र हो जायगा॥ ११॥

द्रव्यमंत्रादिकं सर्वं हव्यं कव्यं च यन्मयम्।
शंभुना हि विना तेन कथं यज्ञः प्रवर्तितः॥ १२

द्रव्य, मन्त्र आदि, हव्य और कव्य—ये सब जिनके स्वरूप हैं, उन शिवके बिना यज्ञका आरम्भ कैसे किया गया?॥ १२॥

किं शिवं सुरसामान्यं मत्वाकार्षीरनादरम्।
भ्रष्टबुद्धिर्भवानद्य जातोऽसि जनकाधम॥ १३

क्या आपने शिवजीको सामान्य देवता समझकर उनका अनादर किया है? हे अधम पिता! अवश्य ही आपकी बुद्धि आज भ्रष्ट हो गयी है॥ १३॥

विष्णुब्रह्मादयो देवा यं संसेव्य महेश्वरम्।
प्राप्ताः स्वपदवीं सर्वे तं न जानासि रे हरम्॥ १४

ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवता महेश्वरकी सेवा करके अपनी पदवीपर अधिष्ठित हैं। निश्चय ही आप अभीतक उन शिवको नहीं जानते हैं॥ १४॥

एते कथं समायाता विष्णुब्रह्मादयः सुराः।
तव यज्ञे विना शंभुं स्वप्रभुं मुनयस्तथा॥ १५

ये ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता तथा मुनि अपने प्रभु भगवान् शिवके बिना इस यज्ञमें कैसे चले आये?॥ १५॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा परमेशानी विष्णवादीन्सकलान् प्रति।
पृथक्पृथगवोचत्सा भर्त्सयन्ती भवात्मिका॥ १६

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर शिवस्वरूपिणी परमेश्वरी विष्णु आदि सब देवताओंको अलग-अलग फटकारती हुई कहने लगीं—॥ १६॥

सत्युवाच

हे विष्णो त्वं महादेवं किं न जानासि तत्त्वतः।
सगुणं निर्गुणं चापि श्रुतयो यं वदन्ति ह॥ १७

सती बोलीं—हे विष्णो! श्रुतियाँ जिन्हें सगुण एवं निर्गुणरूपसे प्रतिपादित करती हैं, क्या आप उन शिवजीको यथार्थ रूपसे नहीं जानते हैं?॥ १७॥

यद्यपि त्वां करं दत्त्वा बहुवारं महेश्वरः।
अशिक्षयत्पुरा शाल्वप्रमुखाकृतिभिर्हरे॥ १८

तदपि ज्ञानमायातं न ते चेतसि दुर्मते।
भागार्थी दक्षयज्ञेऽस्मिन् शिवं स्वस्वामिनं विना॥ १९

[हे विष्णो!] यद्यपि पूर्वकालमें शिवजीने शाल्वादि रूपोंके द्वारा आपके सिरपर हाथ रखकर कई बार शिक्षा दी है, फिर भी हे दुर्बुद्धे! आपके हृदयमें ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ और आपने अपने स्वामी शंकरके बिना ही इस यज्ञमें भाग ग्रहण कर लिया!॥ १८-१९॥

पुरा पञ्चमुखो भूत्वा गर्वितोऽसि सदाशिवम्।
कृतश्चतुर्मुखस्तेन विस्मृतोऽसि तदद्भुतम्॥ २०

[हे ब्रह्मन्!] आप पूर्वकालमें जब पाँच मुखवाले होकर सदाशिवके प्रति गर्वित हो गये थे, तब उन्होंने आपको चार मुखवाला कर दिया था, आप उन्हें भूल गये—यह तो आश्चर्य है!॥ २०॥

इन्द्र त्वं किं न जानासि महादेवस्य विक्रमम्।
भस्मीकृतः पविस्ते हि हरेण क्रूरकर्मणा॥ २१

हे इन्द्र! क्या आप शंकरके पराक्रमको नहीं जानते? कठिन कर्म करनेवाले शिवजीने ही आपके वज्रको भस्म कर दिया था॥ २१॥

हे सुराः किन्न जानीथ महादेवस्य विक्रमम्।
अत्रे वसिष्ठ मुनयो युष्माभिः किं कृतं त्विह॥ २२

हे देवताओ! क्या आपलोग महादेवका पराक्रम नहीं जानते। हे अत्रे! हे वसिष्ठ! हे मुनियो! आपलोगोंने यह क्या कर डाला?॥ २२॥

भिक्षाटनं च कृतवान् पुरा दारुवने विभुः।
शप्तो यद्भिक्षुको रुद्रो भवद्भिर्मुनिभिस्तदा॥ २३

शप्तेनापि च रुद्रेण यत्कृतं विस्मृतं कथम्।
तल्लिङ्गेनाखिलं दग्धं भुवनं सचराचरम्॥ २४

जब शिवजी दारुवनमें भिक्षाटन कर रहे थे और आप सभी मुनियोंने उन भिक्षुक रुद्रको शाप दे दिया था, तब शापित होकर उन्होंने जो किया था, उसे आपलोग कैसे भूल गये? उनके लिंगसे चराचरसहित समस्त भुवन दग्ध होने लगा था॥ २३-२४॥

सर्वे मूढाश्च सञ्जाता विष्णुब्रह्मादयः सुराः।
मुनयोऽन्ये विना शंभुमागता यदिहाध्वरे॥ २५

सर्वे वेदाश्च संभूता साङ्गाः शास्त्राणि वाग्यतः।
योऽसौ वेदांतगः शम्भुः कैश्चिज्ज्ञातुं न पार्यते॥ २६

ब्रह्मोवाच

इत्यनेकविधा वाणीरगदज्जगदम्बिका।
कोपान्विता सती तत्र हृदयेन विदूयता॥ २७

विष्ण्वादयोऽखिला देवा मुनयो ये च तद्वचः।
मौनीभूतास्तदाकर्ण्य भयव्याकुलमानसाः॥ २८

अथ दक्षः समाकर्ण्य स्वपुत्र्यास्तादृशं वचः।
विलोक्य क्रूरदृष्ट्या तां सतीं क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः॥ २९

दक्ष उवाच

तव किं बहुनोक्तेन कार्यं नास्तीह सांप्रतम्।
गच्छ वा तिष्ठ वा भद्रे कस्मात्त्वं हि समागता॥ ३०

अमङ्गलस्तु ते भर्ता शिवोऽसौ गम्यते बुधैः।
अकुलीनो वेदबाह्यो भूतप्रेतपिशाचराट्॥ ३१

तस्मान्नाह्वायितो रुद्रो यज्ञार्थं सुकुवेषभृत्।
देवर्षिसंसदि मया ज्ञात्वा पुत्रि विपश्चिता॥ ३२

विधिना प्रेरितेन त्वं दत्ता मंदेन पापिना।
रुद्रायाविदितार्थाय चोद्धताय दुरात्मने॥ ३३

तस्मात्कोपं परित्यज्य स्वस्था भव शुचिस्मिते।
यद्यागतासि यज्ञेऽस्मिन् दायं गृह्णीष्व चात्मना॥ ३४

ब्रह्मोवाच

दक्षेणोक्तेति सा पुत्री सती त्रैलोक्यपूजिता।
निंदायुक्तं स्वपितरं दृष्ट्वासीद् रुषिता भृशम्॥ ३५

अचिन्तयत्तदा सेति कथं यास्यामि शंकरम्।
शंकरं द्रष्टुकामाहं पृष्टा वक्ष्ये किमुत्तरम्॥ ३६

अथ प्रोवाच पितरं दक्षं तं दुष्टमानसम्।
निःश्वसन्ती रुषाविष्टा सा सती त्रिजगत्प्रसूः॥ ३७

[ऐसा लग रहा है कि] ब्रह्मा, विष्णु आदि समस्त देवता तथा अन्य मुनिगण मूर्ख हो गये हैं, जो कि भगवान् शिवके बिना ही इस यज्ञमें आ गये॥ २५॥

अंगोंसहित सभी वेद, शास्त्र एवं वाणी जिनसे उत्पन्न हुए हैं, उन वेदान्तवेद्य भगवान् शंकरको जाननेमें कोई पार नहीं पा सकता है॥ २६॥

ब्रह्माजी बोले—[नारद!] इस प्रकार क्रोधसे भरी हुई जगदम्बा सतीने वहाँ व्यथितहृदयसे अनेक प्रकारकी बातें कहीं॥ २७॥

श्रीविष्णु आदि समस्त देवता और मुनि जो वहाँ उपस्थित थे, उनकी बात सुनकर चुप रह गये और भयसे व्याकुलचित्त हो गये॥ २८॥

तब दक्ष अपनी पुत्रीके उस प्रकारके वचनको सुनकर उन सतीको क्रूर दृष्टिसे देखकर क्रोधित होकर कहने लगे—॥ २९॥

दक्ष बोले—हे भद्रे! तुम्हारे बहुत कहनेसे क्या लाभ! इस समय यहाँ तुम्हारा कोई काम नहीं है। तुम चली जाओ या ठहरो, तुम यहाँ किसलिये आयी हो?॥ ३०॥

सभी विद्वान् जानते हैं कि तुम्हारे पति शिव मंगलरहित, अकुलीन तथा वेदसे बहिष्कृत हैं और भूतों-प्रेतोंके स्वामी हैं। इसलिये हे पुत्रि! मुझ बुद्धिमान्ने ऐसा जानकर कुवेषधारी शिवको देवताओं और ऋषियोंकी इस सभामें नहीं बुलाया॥ ३१-३२॥

मुझ पापी दुर्बुद्धिने ब्रह्माजीके द्वारा प्रेरित किये जानेपर शास्त्रके अर्थको न जाननेवाले, उद्दण्ड तथा दुरात्मा रुद्रको तुम्हें प्रदान कर दिया था॥ ३३॥

इसलिये हे शुचिस्मिते! तुम क्रोध छोड़कर शान्त हो जाओ और यदि इस यज्ञमें तुम आ ही गयी हो तो अपना भाग ग्रहण करो॥ ३४॥

ब्रह्माजी बोले—दक्षके इस प्रकार कहनेपर त्रिभुवनपूजिता दक्षपुत्री सती निन्दायुक्त अपने पिताकी ओर देखकर अत्यन्त क्रोधित हो गयीं॥ ३५॥

वे सोचने लगीं कि अब मैं शंकरजीके पास कैसे जाऊँ? मैं तो शंकरको देखना चाहती हूँ, किंतु उनके पूछनेपर मैं क्या उत्तर दूँगी?॥ ३६॥

तदनन्तर तीनों लोकोंकी जननी वे सती क्रोधसे युक्त हो लम्बी श्वास लेती हुई दूषित मनवाले अपने पितासे कहने लगीं—॥ ३७॥

सत्युवाच

यो निंदति महादेवं निंद्यमानं शृणोति वा।
तावुभौ नरकं यातौ यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ ३८

सती बोलीं—जो महादेवजीकी निन्दा करता है अथवा जो उनकी हो रही निन्दाको सुनता है, वे दोनों तबतक नरकमें पड़े रहते हैं, जबतक चन्द्रमा और सूर्य विद्यमान हैं॥ ३८॥

तस्मात्त्यक्ष्याम्यहं देहं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्।
किं जीवितेन मे तात शृण्वन्त्यानादरं प्रभोः॥ ३९

अतः हे तात! मैं अग्निमें प्रवेश करूँगी और [अपने] शरीरको त्याग दूँगी, अपने स्वामीका अनादर सुनकर अब मुझे जीवनसे क्या प्रयोजन?॥ ३९॥

यदि शक्तः स्वयं शंभोर्निन्दकस्य विशेषतः।
छिन्द्यात् प्रसह्य रसनां तदा शुद्ध्येन्न संशयः॥ ४०

यद्यशक्तो जनस्तत्र निरयात्सुपिधाय वै।
कर्णौ धीमान् ततः शुद्ध्येद् वदन्तीदं बुधा वराः॥ ४१

[शिवनिन्दा सुननेवाला व्यक्ति] यदि समर्थ हो तो वह स्वयं विशेष यत्न करके शम्भुकी निन्दा करनेवालेकी जीभको बलपूर्वक काट डाले, तभी वह [शिवनिन्दा-श्रवणके पापसे] शुद्ध हो सकता है, इसमें संशय नहीं है। यदि मनुष्य [कुछ प्रतिकार कर सकनेमें] असमर्थ हो, तो बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह दोनों कान बंद करके वहाँसे चला जाय, तब वह पापसे शुद्ध हो सकता है—ऐसा श्रेष्ठ विद्वान् कहते हैं॥ ४०-४१॥

ब्रह्मोवाच

इत्थमुक्त्वा धर्मनीतिं पश्चात्तापमवाप सा।
अस्मरच्छांकरं वाक्यं दूयमानेन चेतसा॥ ४२

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार धर्मनीति कहकर वे सती पश्चात्ताप करने लगीं और उन्होंने व्यथितचित्तसे भगवान् शंकरके वचनका स्मरण किया॥ ४२॥

ततः संक्रुद्ध्य सा दक्षं निःशंकं प्राह तानपि।
सर्वान्विष्णवादिकान्देवान्मुनीनपि सती ध्रुवम्॥ ४३

तदनन्तर सतीने अत्यन्त कुपित हो दक्ष तथा उन विष्णु आदि समस्त देवताओं और मुनियोंसे भी निडर होकर कहा—॥ ४३॥

सत्युवाच

तात त्वं निन्दकः शंभोः पश्चात्तापं गमिष्यसि।
इह भुक्त्वा महादुःखमन्ते यास्यसि यातनाम्॥ ४४

सती बोलीं—हे तात! आप शंकरके निन्दक हैं, अतः आपको पश्चात्ताप करना पड़ेगा, इस लोकमें महान् दुःख भोगकर अन्तमें आपको यातना भोगनी पड़ेगी॥ ४४॥

यस्य लोकेऽप्रियो नास्ति प्रियश्चैव परात्मनः।
तस्मिन्नवैरे शर्वेऽस्मिन् त्वां विना कः प्रतीपकः॥ ४५

इस लोकमें जिन परमात्माका न कोई प्रिय है, न अप्रिय है, उन द्वेषरहित शिवके साथ आपके अतिरिक्त दूसरा कौन वैर कर सकता है?॥ ४५॥

महद्विनिन्दा नाश्चर्यं सर्वदासत्सु सेर्ष्यकम्।
महदङ्घ्रिरजोध्वस्ततमःसु नैव शोभना॥ ४६

जो दुष्ट लोग हैं, वे सदा ईर्ष्यापूर्वक यदि महापुरुषोंकी निन्दा करें तो उनके लिये यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, परंतु जो महात्माओंके चरणोंकी रजसे अपने अज्ञानान्धकारको दूर कर चुके हैं, उन्हें महापुरुषोंकी निन्दा शोभा नहीं देती॥ ४६॥

शिवेति द्व्यक्षरं यस्य नृणां नाम गिरेरितम्।
सकृत्प्रसङ्गात्सकलमघमाशु विहंति तत्॥ ४७

जिनका 'शिव' यह दो अक्षरोंका नाम कभी बातचीतके प्रसंगसे मनुष्योंकी वाणीद्वारा एक बार उच्चरित हो जाय, तो वह सम्पूर्ण पापराशिको शीघ्र ही

पवित्रकीर्तिममलं भवान् द्वेष्टि शिवेतरः।
अलङ्घ्यशासनं शंभुमहो सर्वेश्वरं खलः॥ ४८

यत्पादपद्मं महतां मनोऽलिसुनिषेवितम्।
सर्वार्थदं ब्रह्मरसैः सर्वार्थिभिरथादरात्॥ ४९

यद्वर्षत्यर्थिनः शीघ्रं लोकस्य शिव आदरात्।
भवान् द्रुह्यति मूर्खत्वात् तस्मै चाशेषबंधवे॥ ५०

किंवा शिवाख्यमशिवं त्वदन्ये न विदुर्बुधाः।
ब्रह्मादयस्तं मुनयः सनकाद्यास्तथापरे॥ ५१

अवकीर्य जटा भूतैः श्मशाने स कपालधृक्।
तन्माल्यभस्म वा ज्ञात्वा प्रीत्यावसदुदारधीः॥ ५२

ये मूर्द्धभिर्दधति तच्चरणोत्सृष्टमादरात्।
निर्माल्यं मुनयो देवाः स शिवः परमेश्वरः॥ ५३

प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म चोदितम्।
वेदे विविच्य वृत्तं च तद्विचार्यं मनीषिभिः॥ ५४

विरोधियौगपद्यैककर्तृके च तथा द्वयम्।
परब्रह्मणि शंभौ तु कर्मर्च्छन्ति न किंचन॥ ५५

मा वः पदव्यः स्म पितः या अस्मदास्थिताः सदा।
यज्ञशालासु वो धूम्रवर्त्मभुक्तोज्झिताः परम्॥ ५६

नोऽव्यक्तलिङ्गः सततमवधूतसुसेवितः।
अभिमानमतो न त्वं कुरु तात कुबुद्धिधृक्॥ ५७

नष्ट कर देता है, अहो, खलस्वरूप आप शिवसे विपरीत होकर उन पवित्र कीर्तिवाले, निर्मल, अलंघ्य शासनवाले सर्वेश्वर शिवसे विद्वेष करते हैं॥ ४७-४८॥

महापुरुषोंके मनरूपी मधुकर ब्रह्मानन्दमय रसका पान करनेकी इच्छासे जिनके सर्वार्थदायक चरणकमलोंका निरन्तर सेवन किया करते हैं और जो शिव संसारके लोगोंपर शीघ्र ही आदरपूर्वक मनोरथोंकी वर्षा करते हैं, सबके बन्धु उन्हीं महादेवसे आप मूर्खतावश द्रोह करते हैं॥ ४९-५०॥

जिन शिवको आप अशिव बताते हैं, उन्हें क्या आपके सिवा दूसरे विद्वान् नहीं जानते। ब्रह्मा आदि देवता, सनक आदि मुनि तथा अन्य ज्ञानी क्या उनके स्वरूपको नहीं समझते॥ ५१॥

उदारबुद्धि भगवान् शिव जटा फैलाये, कपाल धारण किये श्मशानमें भूतोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं तथा भस्म एवं नरमुण्डोंकी माला धारण करते हैं॥ ५२॥

इस बातको जानकर भी जो मुनि और देवता उनके चरणोंसे गिरे निर्माल्यको बड़े आदरके साथ अपने मस्तकपर चढ़ाते हैं, इसका क्या कारण है? यही कि वे भगवान् शिव ही साक्षात् परमेश्वर हैं॥ ५३॥

वेदोंमें प्रवृत्त तथा निवृत्त—ये दो प्रकारके कर्म बताये गये हैं, जिनका विद्वानोंको विवेकपूर्वक विचार करना चाहिये। ये दोनों ही कर्म परस्पर विरुद्ध गतिवाले हैं, अतः एक कर्ताके द्वारा इनका साथ-साथ अनुष्ठान नहीं किया जा सकता। भगवान् शिव तो साक्षात् परब्रह्म हैं, अतः उनमें इन दोनों ही कर्मोंकी गति नहीं है। (अतः वे इन दोनों ही कर्मोंसे परतन्त्र नहीं हैं)॥ ५४-५५॥

हे पितः! जो योगैश्वर्य अर्थात् अणिमा आदि सिद्धियाँ हमें सर्वदा प्राप्त हैं, वे आपको प्राप्त नहीं हैं। आपकी यज्ञशालाओंमें आयोजित होनेवाले तथा धूममार्गको प्रदान करनेवाले प्रवृत्तिमार्गीय कर्मोंका हम त्याग कर चुके हैं। हमारा ऐश्वर्य अव्यक्त है तथा ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंके द्वारा निरन्तर सेवित है। हे तात! आप विपरीत बुद्धिवाले हैं, अतः आपको अभिमान नहीं करना चाहिये॥ ५६-५७॥

किं बहूक्तेन वचसा दुष्टस्त्वं सर्वथा कुधीः।
त्वदुद्भवेन देहेन न मे किंचित्प्रयोजनम्॥ ५८

तज्जन्म धिग्यो महतां सर्वथावद्यकृत्खलः।
परित्याज्यो विशेषेण तत्संबंधो विपश्चिता॥ ५९

अधिक कहनेसे क्या लाभ? आप दुष्टहृदय हैं और आपकी बुद्धि सर्वथा दूषित हो चुकी है, अतः आपसे उत्पन्न हुए इस शरीरसे भी मेरा कुछ भी प्रयोजन नहीं रहा, उस दुष्ट व्यक्तिके जन्मको धिक्कार है, जो महापुरुषोंके प्रति अपराध करनेवाला है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि ऐसे सम्बन्धका विशेष रूपसे त्याग कर दे॥ ५८-५९॥

गोत्रं त्वदीयं भगवान् यदाह वृषभध्वजः।
दाक्षायणीति सहसाहं भवामि सुदुर्मना॥ ६०

जिस समय भगवान् शिव आपके गोत्रका उच्चारण करते हुए मुझे दाक्षायणी कहेंगे, उस समय मेरा मन सहसा अत्यन्त दुखी हो जायगा॥ ६०॥

तस्मात्त्वदङ्गजं देहं कुणपं गर्हितं सदा।
व्युत्सृज्य नूनमधुना भविष्यामि सुखावहा॥ ६१

इसलिये आपके अंगसे उत्पन्न हुए शवतुल्य घृणित इस शरीरको इस समय मैं अवश्य ही त्याग दूँगी और ऐसा करके सुखी हो जाऊँगी॥ ६१॥

हे सुरा मुनयः सर्वे यूयं शृणुत मद्वचः।
सर्वथानुचितं कर्म युष्माकं दुष्टचेतसाम्॥ ६२

सर्वे यूयं विमूढा हि शिवनिंदाः कलिप्रियाः।
प्राप्स्यन्ति दण्डं नियतमखिलं च हराद् ध्रुवम्॥ ६३

हे देवताओ और मुनियो! आप सब लोग मेरी बात सुनें, दूषित मनवाले आपलोगोंका यह कर्म सर्वथा अनुचित है। आप सब लोग मूढ़ हैं; क्योंकि शिवजीकी निन्दा और कलह आपलोगोंको प्रिय है। अतः भगवान् हरसे सभीको इस कुकर्मका निश्चय ही पूरा-पूरा दण्ड मिलेगा॥ ६२-६३॥

ब्रह्मोवाच

दक्षमुक्त्वाध्वरे तस्मिन् व्यरमत्सा सती तदा।
अनूद्य चेतसा शम्भुमस्मरत्प्राणवल्लभम्॥ ६४

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] उस यज्ञमें दक्षसे तथा देवताओंसे ऐसा कहकर सती देवी चुप हो गयीं और मन-ही-मन अपने प्राणवल्लभ शम्भुका स्मरण करने लगीं॥ ६४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे सतीवाक्यवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सतीका वाक्य-वर्णन नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

दक्षयज्ञमें सतीका योगाग्निसे अपने शरीरको भस्म कर देना, भृगुद्वारा यज्ञकुण्डसे ऋभुओंको प्रकट करना, ऋभुओं और शंकरके गणोंका युद्ध, भयभीत गणोंका पलायित होना

नारद उवाच

मौनीभूता यदा सासीत्सती शंकरवल्लभा।
चरित्रं किमभूत्तत्र विधे तद्वद चादरात्॥ १

नारदजी बोले—हे विधे! जब [दक्षको सम्बोधित-कर] शिवप्रिया सतीने मौन धारण कर लिया, तब वहाँ क्या चरित्र हुआ, मुझसे उसे आदरपूर्वक कहिये॥ १॥

ब्रह्मोवाच

मौनीभूता सती देवी स्मृत्वा स्वपतिमादरात्।
क्षितावुदीच्यां सहसा निषसाद प्रशान्तधीः॥ २

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! मौन होकर सतीदेवी अपने पतिका सादर स्मरण करके और शान्तचित्त होकर सहसा उत्तर दिशामें भूमिपर बैठ गयीं॥ २॥

जलमाचम्य विधिवत् संवृता वाससा शुचिः।
दृङ् निमील्य पतिं स्मृत्वा योगमार्गं समाविशत्॥ ३

उन्होंने विधिपूर्वक जलका आचमन करके वस्त्र ओढ़ लिया और पवित्रभावसे आँखें मूँदकर पतिका चिन्तन करके वे योगमार्गमें प्रविष्ट हो गयीं॥ ३॥

कृत्वा समानावनिलौ प्राणापानौ सितानना।
उत्थाप्योदानमथ च यत्नात्सा नाभिचक्रतः॥ ४

हृदि स्थाप्योरसि धिया स्थितं कंठाद् भ्रुवोः सती।
अनिंदितानयन्मध्यं शंकरप्राणवल्लभा॥ ५

गौर मुखवाली शंकरकी प्राणप्रिया सती [प्राणायाम-द्वारा] प्राण और अपान वायुको समान करके उदान वायुको यत्नपूर्वक नाभिचक्रसे ऊपर उठाकर बुद्धिपूर्वक हृदयमें स्थापित करनेके पश्चात् उस हृदयस्थित वायुको कण्ठमार्गसे भ्रुकुटियोंके बीचमें ले गयीं॥ ४-५॥

एवं स्वदेहं सहसा दक्षकोपाज्जिहासती।
दग्धे गात्रे वायुशुचिर्धारितं योगमार्गतः॥ ६

ततः स्वभर्तुश्चरणं चिन्तयन्ती न चापरम्।
अपश्यत्सा सती तत्र योगमार्गनिविष्टधीः॥ ७

इस प्रकार दक्षपर कुपित हो सहसा अपने शरीरको त्यागनेकी इच्छासे सतीने योगमार्गसे शरीरके दग्ध हो जानेपर पवित्र वायुमय रूप धारण किया। तदनन्तर अपने पतिके चरणका चिन्तन करती हुई सतीने अन्य सब वस्तुओंका ध्यान भुला दिया। उनका चित्त योगमार्गमें स्थित हो गया था, इसलिये वहाँ उन्हें [पतिके चरणोंके अतिरिक्त] और कुछ दिखायी नहीं दिया॥ ६-७॥

हतकल्मषतद्देहः प्रापतच्च तदग्निना।
भस्मसादभवत्सद्यो मुनिश्रेष्ठ तदिच्छया॥ ८

हे मुनिश्रेष्ठ! उनका निष्पाप शरीर [यज्ञाग्निमें] गिरा और उनकी इच्छाके अनुसार अग्निसे जलकर उसी क्षण भस्म हो गया॥ ८॥

तत्पश्यतां च खे भूमौ वादोऽभूत्सुमहांस्तदा।
हाहेति सोऽद्भुतश्चित्रः सुरादीनां भयावहः॥ ९

उस समय [वहाँ आये हुए] देवता आदिने जब यह घटना देखी, तब वे बड़े जोरसे हाहाकार करने लगे। उनका वह अद्भुत, विचित्र एवं भयंकर हाहाकार आकाशमें और पृथिवीतलपर सर्वत्र व्याप्त हो गया॥ ९॥

हन्त प्रिया परा शंभोर्देवी दैवतमस्य हि।
जहावसून् सती केन सुदुष्टेन प्रकोपिता॥ १०

[लोग कह रहे थे] हाय! भगवान् शंकरकी परम-प्रेयसी तथा देवतास्वरूपिणी सतीदेवीने किस दुष्टके दुर्व्यवहारसे कुपित होकर अपने प्राण त्याग दिये!॥ १०॥

अहो त्वनात्म्यं सुमहदस्य दक्षस्य पश्यत।
चराचरं प्रजा यस्य यत्पुत्रस्य प्रजापतेः॥ ११

अहो! चराचर जिनकी प्रजा है और जो ब्रह्माजीके पुत्र हैं, ऐसे इन दक्षकी बड़ी भारी दुष्टता तो देखो!॥ ११॥

अहोऽद्य विमनाभूत्सा सती देवी मनस्विनी।
वृषध्वजप्रियाभीक्ष्णं मानयोग्या सतां सदा॥ १२

अहो, शिवप्रिया मनस्विनी सतीदेवी, जो सदा ही सज्जनोंके लिये मानयोग्य थीं, आज इतनी दुःखित हो गयीं॥ १२॥

सोऽयं दुर्मर्षहृदयो ब्रह्मध्रुक् स प्रजापतिः।
महतीमपकीर्तिं हि प्राप्स्यति त्वखिले भवे॥ १३

वास्तवमें उन दक्षका हृदय बड़ा ही असहिष्णु है। वे ब्राह्मणद्रोही हैं, इसलिये सारे संसारमें उन्हें महान् अपयश प्राप्त होगा॥ १३॥

यत्स्वाङ्गजां सुतां शंभुद्विट् न्यषेधत्समुद्यताम्।
महानरकभोगी स मृतये नोऽपराधतः॥ १४

इन शम्भुद्रोही दक्षने प्राणत्याग करनेको उद्यत अपनी पुत्रीको रोकातक नहीं। इस अपराधके कारण इन्हें महान् नरक भोगना पड़ेगा॥ १४॥

वदत्येवं जने सत्या दृष्ट्वासुत्यागमद्भुतम्।
द्रुतं तत्पार्षदाः क्रोधादुदतिष्ठन्नुदायुधाः॥ १५

सतीके प्राणत्यागको देखकर जिस समय लोग ऐसा कह रहे थे, उसी समय शिवजीके पार्षद शीघ्र ही क्रोधपूर्वक अस्त्र-शस्त्र लेकर उठ खड़े हुए॥ १५॥

द्वारि स्थिता गणाः सर्वे रसायुतमिता रुषा।
शंकरस्य प्रभावात्तेऽक्रुध्यन्नतिमहाबलाः॥ १६

[यज्ञमण्डपके] द्वारपर खड़े हुए वे भगवान् शंकरके समस्त साठ हजार महाबली पार्षद शंकरजीके प्रभावसे कुपित हो उठे थे॥ १६॥

हाहाकारमकुर्वंस्ते धिग् धिग् नो नेति वादिनः।
उच्चैः सर्वेऽसकृद्वीराः शंकरस्य गणाधिपाः॥ १७

हमें धिक्कार है, धिक्कार है—ऐसा कहते हुए शंकरके सभी वीर गणाधिप बारम्बार उच्च स्वरसे हाहाकार करने लगे॥ १७॥

हाहाकारेण महता व्याप्तमासीद्दिगन्तरम्।
सर्वे प्रापन् भयं देवा मुनयोऽन्येऽपि ते स्थिताः॥ १८

शिवगणोंके महान् हाहाकारसे सभी दिशाएँ व्याप्त हो गयीं। सभी देवता, मुनिगण तथा जो भी अन्य लोग वहाँ उपस्थित थे, वे भयभीत हो गये॥ १८॥

गणाः संमन्त्र्य ते सर्वेऽभूवन् क्रुद्धा उदायुधाः।
कुर्वन्तः प्रलयं वाद्यैः शस्त्रैर्व्याप्तं दिगन्तरम्॥ १९

क्रुद्ध हुए उन समस्त रुद्रगणोंने आपसमें विचार-विमर्श करके वाद्योंसे प्रलय मचाते हुए [लड़नेके लिये] शस्त्रास्त्र उठा लिये॥ १९॥

शस्त्रैरघ्नन्निजाङ्गानि केचित्तत्र शुचाकुलाः।
शिरोमुखानि देवर्षे सुतीक्ष्णैः प्राणनाशिभिः॥ २०

हे देवर्षे! कितने ही पार्षद तो वहाँ शोकसे ऐसे व्याकुल हो गये कि वे अत्यन्त तीखे प्राणनाशक शस्त्रोंद्वारा अपने ही मस्तक और मुख आदि अंगोंपर आघात करने लगे॥ २०॥

इत्थं ते विलयं प्राप्ता दाक्षायण्याः समं तदा।
गणायुते द्वे च तदा तदद्भुतमिवाभवत्॥ २१

इस प्रकार बीस हजार पार्षद उस समय दक्षकन्या सतीके साथ ही नष्ट हो गये, वह एक अद्भुत-सी बात हुई॥ २१॥

गणा नाशावशिष्टा ये शंकरस्य महात्मनः।
दक्षं तं क्रोधितं हन्तुमुदतिष्ठन्नुदायुधाः॥ २२

महात्मा शंकरके जो गण नष्ट होनेसे बच गये, वे क्रोधयुक्त होकर दक्षको मारनेके लिये हथियार उठाकर खड़े हो गये॥ २२॥

तेषामापततां वेगं निशम्य भगवान् भृगुः।
यज्ञघ्नघ्नेन यजुषा दक्षिणाग्नौ जुहोन्मुने॥ २३

हे मुने! आक्रमणकारी उन पार्षदोंका वेग देखकर भगवान् भृगुने यज्ञमें विघ्न डालनेवालोंका नाश करनेवाले [**अपहता असुरा रक्षाꣳसि वेदिषदः**] इस यजुर्मन्त्रसे दक्षिणाग्निमें आहुति दी॥ २३॥

हूयमाने च भृगुणा समुत्पेतुर्महासुराः।
ऋभवो नाम प्रबला वीरास्तत्र सहस्रशः॥ २४

भृगुके आहुति देते ही यज्ञकुण्डसे ऋभु नामक हजारों महान् देवता, जो बड़े प्रबल वीर थे, वहाँ प्रकट हो गये॥ २४॥

तैरलातायुधैस्तत्र प्रमथानां मुनीश्वर।
अभूद्युद्धं सुविकटं शृण्वतां रोमहर्षणम्॥ २५

हे मुनीश्वर! हाथमें जलती हुई लकड़ियोंको आयुधके रूपमें धारण करनेवाले उन सभीके साथ प्रमथगणोंका अत्यन्त विकट युद्ध हुआ, जो सुननेवालोंके भी रोंगटे खड़े कर देनेवाला था॥ २५॥

ऋभुभिस्तैर्महावीरैर्हन्यमानाः समन्ततः ।
अयत्नयानाः प्रमथा उशद्भिर्ब्रह्मतेजसा॥ २६

एवं शिवगणास्ते वै हता विद्राविता द्रुतम्।
शिवेच्छया महाशक्त्या तदद्भुतमिवाभवत्॥ २७

उन ब्रह्मतेजसे सम्पन्न महावीर ऋभुओंके द्वारा सभी ओरसे मारे जाते हुए प्रमथगण बिना अधिक प्रयासके ही भाग खड़े हुए। इस प्रकार उन देवताओंने उन शिवगणोंको तुरंत मार भगाया। यह अद्भुत-सी घटना भगवान् शिवकी इच्छारूपी महाशक्तिसे ही हुई थी॥ २६-२७॥

तद् दृष्ट्वा ऋषयो देवाः शक्राद्याः समरुद्गणाः।
विश्वेऽश्विनौ लोकपालास्तूष्णीं भूतास्तदाभवन्॥ २८

उसे देखकर ऋषि, इन्द्र आदि देवता, मरुद्गण, विश्वेदेव, दोनों अश्विनीकुमार और लोकपाल चुप ही रहे॥ २८॥

केचिद्विष्णुं प्रभुं तत्र प्रार्थयन्तः समन्ततः।
उद्विग्ना मन्त्रयन्तश्च विघ्नाभावं मुहुर्मुहुः॥ २९

कुछ लोग सब ओरसे वहाँ भगवान् विष्णुसे प्रार्थना करते थे और उद्विग्न हो बारम्बार विघ्ननिवारणके लिये आपसमें मन्त्रणा करने लगे॥ २९॥

सुविचार्योदर्कफलं महोद्विग्नाः सुबुद्धयः।
सुरविष्ण्वादयोऽभूवंस्तन्नाशाद्रावणान्मुहुः ॥ ३०

प्रमथगणोंके नाश होने और भगाये जानेसे जो परिणाम होनेवाला था, उसका भलीभाँति विचार करके उत्तम बुद्धिवाले विष्णु आदि देवता अत्यन्त उद्विग्न हो उठे॥ ३०॥

एवंभूतस्तदा यज्ञो विघ्नो जातो दुरात्मनः।
ब्रह्मबंधोश्च दक्षस्य शंकरद्रोहिणो मुने॥ ३१

हे मुने! दुरात्मा, शंकरद्रोही तथा ब्रह्मबन्धु (पतित ब्राह्मण) दक्षके यज्ञमें उस समय इस प्रकारका विघ्न उपस्थित हो गया॥ ३१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे सत्युपाख्याने सतीदेहत्यागोपद्रववर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सतीके उपाख्यानमें सतीका देहत्याग और उपद्रववर्णन नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३०॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

यज्ञमण्डपमें आकाशवाणीद्वारा दक्षको फटकारना तथा देवताओंको सावधान करना

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र नभोवाणी मुनीश्वर।
अवोचच्छृण्वतां दक्षसुरादीनां यथार्थतः॥ १

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! इसी बीच वहाँ दक्ष तथा देवता आदिको सुनाते हुए आकाशवाणीने यथार्थ बात कही॥ १॥

व्योमवाण्युवाच

रे रे दक्ष दुराचार दंभाचारपरायण।
किं कृतं ते महामूढ कर्म चानर्थकारकम्॥ २

आकाशवाणी बोली—हे दुराचारी तथा दम्भवृत्तिमें तत्पर दक्ष! हे महामूढ़! तुमने यह कैसा अनर्थकारी कर्म कर डाला!॥ २॥

न कृतं शैवराजस्य दधीचेर्वचनस्य हि।
प्रमाणं तत्कृते मूढ सर्वानन्दकरं शुभम्॥ ३

हे मूढ़! तुमने शिवभक्तराज दधीचिके कथनको भी प्रमाण नहीं माना, जो तुम्हारे लिये सब प्रकारसे आनन्ददायक और मंगलकारी था॥ ३॥

निर्गतस्ते मखाद्विप्रः शापं दत्त्वा सुदुःसहम्।
ततोऽपि बुद्धं किंचिन्नो त्वया मूढेन चेतसि॥ ४

वे ब्राह्मण तुमको दुस्सह शाप देकर चले गये, तब भी तुम मूढ़ने अपने मनमें कुछ भी नहीं समझा॥ ४॥

ततः कृतः कथं नो वै स्वपुत्र्यास्त्वादरः परः।
समागतायाः सत्याश्च मङ्गलाया गृहं स्वतः॥ ५

इसके अनन्तर तुमने अपने घरमें स्वतः आयी हुई अपनी मंगलमयी पुत्री सतीका विशेष आदर क्यों नहीं किया?॥ ५॥

सतीभवौ नार्चितौ हि किमिदं ज्ञानदुर्बल।
ब्रह्मपुत्र इति वृथा गर्वितोऽसि विमोहितः॥ ६

हे ज्ञानदुर्बल! तुमने सती और महादेवजीकी पूजा नहीं की, यह तुमने क्या किया? मैं ब्रह्माजीका पुत्र हूँ—ऐसा समझकर विमोहमें पड़कर तुम व्यर्थ ही घमण्डमें भरे हुए हो॥ ६॥

सा सत्येव सदाराध्या सर्वपुण्यफलप्रदा।
त्रिलोकमाता कल्याणी शंकरार्धाङ्गभागिनी॥ ७

सा सत्येवार्चिता नित्यं सर्वसौभाग्यदायिनी।
माहेश्वरी स्वभक्तानां सर्वमङ्गलदायिनी॥ ८

सा सत्येवार्चिता नित्यं संसारभयनाशिनी।
मनोऽभीष्टप्रदा देवी सर्वोपद्रवहारिणी॥ ९

वे सती सदा आराधना करनेके योग्य, समस्त पुण्योंका फल देनेवाली, तीनों लोकोंकी माता, कल्याण-स्वरूपा और शंकरके आधे अंगमें निवास करनेवाली हैं। वे माहेश्वरी सती देवी पूजित होनेपर सदा सम्पूर्ण सौभाग्य प्रदान करनेवाली और अपने भक्तोंको सब प्रकारके मंगल देनेवाली हैं। वे सती देवी ही पूजित होनेपर सदा संसारका भय दूर करनेवाली, मनोवांछित फल देनेवाली हैं और समस्त उपद्रवोंको नष्ट करनेवाली हैं॥ ७—९॥

सा सत्येवार्चिता नित्यं कीर्तिसंपत्प्रदायिनी।
परमा परमेशानी भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी॥ १०

सा सत्येव जगद्धात्री जगद्रक्षणकारिणी।
अनादिशक्तिः कल्पान्ते जगत्संहारकारिणी॥ ११

वे परमा परमेश्वरी सती ही पूजित होनेपर सदा कीर्ति, भोग तथा मोक्ष प्रदान करती हैं। वे सती ही इस जगत्को जन्म देनेवाली माता, जगत्की रक्षा करनेवाली, अनादि शक्ति और कल्पके अन्तमें जगत्का संहार करनेवाली हैं॥ १०-११॥

सा सत्येव जगन्माता विष्णुमाता विलासिनी।
ब्रह्मेन्द्रचन्द्रवह्न्यर्कदेवादिजननी स्मृता॥ १२

सा सत्येव तपोधर्मदानादिफलदायिनी।
शंभुशक्तिर्महादेवी दुष्टहन्त्री परात्परा॥ १३

वे सती ही जगत्की माता, भगवान् विष्णुकी माता, विलासिनी तथा ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र, अग्नि एवं सूर्य आदिकी जननी मानी गयी हैं। वे सती ही तपस्या, धर्म तथा दान आदिका फल देनेवाली, शम्भुशक्ति, महादेवी, दुष्टोंका हनन करनेवाली और परात्पर शक्ति हैं॥ १२-१३॥

ईदृग्विधा सती देवी यस्य पत्नी सदा प्रिया।
तस्मै भागो न दत्तस्ते मूढेन कुविचारिणा॥ १४

शंभुर्हि परमेशानः सर्वस्वामी परात्परः।
विष्णुब्रह्मादिसंसेव्यः सर्वकल्याणकारकः॥ १५

ऐसी सती देवी जिनकी सदा प्रिय भार्या हैं, उन शिवको दुष्ट विचारवाले मूढ़ तुमने यज्ञ-भाग नहीं दिया। भगवान् शिव ही परमेश्वर, सबके स्वामी, परात्पर, ब्रह्मा-विष्णु आदिके द्वारा सम्यक् सेव्य हैं और सबका कल्याण करनेवाले हैं॥ १४-१५॥

तप्यते हि तपः सिद्धैरेतद्दर्शनकांक्षिभिः।
युज्यते योगिभिर्योगैरेतद्दर्शनकांक्षिभिः॥ १६

अनन्तधनधान्यानां यागादीनां तथैव च।
दर्शनं शंकरस्यैव महत्फलमुदाहृतम्॥ १७

इन्हींके दर्शनकी इच्छावाले सिद्ध पुरुष तपस्या करते हैं और इन्हींके दर्शनकी इच्छावाले योगीजन योगसाधनामें प्रवृत्त होते हैं। अनन्त धनधान्य और यज्ञ आदिका सबसे महान् फल शंकरका दर्शन ही कहा गया है॥ १६-१७॥

शिव एव जगद्धाता सर्वविद्यापतिः प्रभुः।
आदिविद्यावरस्वामी सर्वमङ्गलमङ्गलः॥ १८

तच्छक्तेर्न कृतो यस्मात्सत्कारोऽद्य त्वया खल।
अत एवाध्वरस्यास्य विनाशो हि भविष्यति॥ १९

अमङ्गलं भवत्येव पूजार्हाणामपूजया।
पूज्यमाना च नासौ हि यतः पूज्यतमा शिवा॥ २०

सहस्रेणापि शिरसां शेषो यत्पादजं रजः।
वहत्यहरहः प्रीत्या तस्य शक्तिः शिवा सती॥ २१

यत्पादपद्ममनिशं ध्यात्वा संपूज्य सादरम्।
विष्णुर्विष्णुत्वमापन्नस्तस्य शंभोः प्रिया सती॥ २२

यत्पादपद्ममनिशं ध्यात्वा संपूज्य सादरम्।
ब्रह्मा ब्रह्मत्वमापन्नस्तस्य शंभोः प्रिया सती॥ २३

यत्पादपद्ममनिशं ध्यात्वा संपूज्य सादरम्।
इन्द्रादयो लोकपालाः प्रापुः स्वं स्वं परं पदम्॥ २४

जगत्पिता शिवः शक्तिर्जगन्माता च सा सती।
सत्कृतौ न त्वया मूढ कथं श्रेयो भविष्यति॥ २५

दौर्भाग्यं त्वयि संक्रान्तं संक्रान्तास्त्वयि चापदः।
यौ चानाराधितौ भक्त्या भवानीशंकरौ च तौ॥ २६

अनभ्यर्च्य शिवं शंभुं कल्याणं प्राप्नुयामिति।
किमस्ति गर्वो दुर्वारः स गर्वोऽद्य विनश्यति॥ २७

सर्वेशविमुखो भूत्वा देवेष्वेतेषु कस्तव।
करिष्यति सहायं तं न ते पश्यामि सर्वथा॥ २८

यदि देवाः करिष्यन्ति साहाय्यमधुना तव।
तदा नाशं समाप्स्यन्ति शलभा इव वह्निना॥ २९

ज्वलत्वद्य मुखं ते वै यज्ञध्वंसो भवत्विति।
सहायास्तव यावन्तस्ते ज्वलन्त्वद्य सत्वरम्॥ ३०

अमराणां च सर्वेषां शपथोऽमङ्गलाय ते।
करिष्यंत्यद्य साहाय्यं यदेतस्य दुरात्मनः॥ ३१

शिवजी ही जगत्‌का धारण-पोषण करनेवाले, समस्त विद्याओंके पति, सब कुछ करनेमें समर्थ, आदि विद्याके श्रेष्ठ स्वामी और समस्त मंगलोंके मंगल हैं। हे खल! तुमने उनकी शक्तिका आज सत्कार नहीं किया, इसलिये अवश्य ही इस यज्ञका विनाश हो जायगा॥ १८-१९॥

पूजनीय व्यक्तियोंकी पूजा न करनेसे अमंगल होता है। क्या परम पूजनीया वे शिवा तुम्हारी पूजाके योग्य नहीं थीं? शेषनाग अपने हजार मस्तकोंसे प्रतिदिन जिनकी चरणरजको प्रेमपूर्वक धारण करते हैं, उन्हीं शिवकी शक्ति ये शिवा सती हैं॥ २०-२१॥

जिनके चरणकमलोंका आदरपूर्वक ध्यान और पूजनकर विष्णु विष्णुत्वको प्राप्त हो गये, उन्हीं शिवकी पत्नी सती हैं॥ २२॥

जिनके चरणकमलोंका ध्यान एवं पूजनकर ब्रह्माजी ब्रह्मत्वको प्राप्त हो गये और जिनके चरण-कमलोंका आदरपूर्वक निरन्तर ध्यान एवं पूजन करके इन्द्र आदि लोकपालोंने अपने-अपने उत्तम पदको प्राप्त किया है, उन्हीं शिवकी पत्नी सती हैं॥ २३-२४॥

भगवान् शिव [सम्पूर्ण] जगत्‌के पिता हैं और शक्तिरूपा देवी सती जगन्माता कही गयी हैं। हे मूढ़! तुमने उनका सत्कार नहीं किया, तुम्हारा कल्याण कैसे होगा? तुम्हारे ऊपर दुर्भाग्यका आक्रमण हो गया है और विपत्तियाँ टूट पड़ी हैं; क्योंकि तुमने भक्तिपूर्वक उन भवानी और शंकरकी आराधना नहीं की॥ २५-२६॥

कल्याणकारी शिवजीका पूजन-अर्चन न करके मैं कल्याण प्राप्त कर लूँगा; यह कैसा गर्व है? वह तुम्हारा दुर्वार गर्व आज विनष्ट हो जायगा॥ २७॥

इन देवताओंमें कौन ऐसा है, जो सर्वेश्वर शिवसे विमुख होकर तुम्हारी सहायता करेगा, मुझे तो ऐसा कोई दिखायी नहीं दे रहा है। यदि देवता इस समय तुम्हारी सहायता करेंगे तो जलती हुई आगसे खेलनेवाले पतिंगोंके समान वे नाशको ही प्राप्त होंगे॥ २८-२९॥

आज तुम्हारा मुख जल जाय, तुम्हारे यज्ञका नाश हो जाय और जितने तुम्हारे सहायक हैं, वे भी आज शीघ्र ही भस्म हो जायँ। जो आज इस दुरात्मा दक्षकी सहायता करेंगे; उन समस्त देवताओंके लिये शपथ है कि उनका कर्म तुझ दक्षके अमंगलके लिये हो॥ ३०-३१॥

निर्गच्छन्त्वमराः स्वोकमेतदध्वरमंडपात्।
अन्यथा भवतो नाशो भविष्यत्यद्य सर्वथा॥ ३२

निर्गच्छन्त्वपरे सर्वे मुनिनागादयो मखात्।
अन्यथा भवतां नाशो भविष्यत्यद्य सर्वथा॥ ३३

निर्गच्छ त्वं हरे शीघ्रमेतदध्वरमंडपात्।
अन्यथा भवतो नाशो भविष्यत्यद्य सर्वथा॥ ३४

निर्गच्छ त्वं विधे शीघ्रमेतदध्वरमंडपात्।
अन्यथा भवतो नाशो भविष्यत्यद्य सर्वथा॥ ३५

समस्त देवता आज इस यज्ञमण्डपसे निकलकर अपने-अपने स्थानको चले जायँ, अन्यथा आपलोगोंका सब प्रकारसे नाश हो जायगा। अन्य सब मुनि और नाग आदि भी इस यज्ञसे निकल जायँ, अन्यथा आज आपलोगोंका सर्वथा नाश हो जायगा॥ ३२-३३॥

हे विष्णु! आप इस यज्ञमण्डपसे शीघ्र निकल जायँ, अन्यथा आज आपका सर्वथा नाश हो जायगा। हे विधाता! आप भी इस यज्ञमण्डपसे शीघ्र निकल जाइये, अन्यथा आज आपका सर्वथा नाश हो जायगा॥ ३४-३५॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वाध्वरशालायामखिलायां सुसंस्थितान्।
व्यरमत्सा नभोवाणी सर्वकल्याणकारिणी॥ ३६

तच्छ्रुत्वा व्योमवचनं सर्वे हर्यादयः सुराः।
अकार्षुर्विस्मयं तात मुनयश्च तथा परे॥ ३७

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] सम्पूर्ण यज्ञशालामें बैठे हुए लोगों से ऐसा कहकर सबका कल्याण करनेवाली आकाशवाणी मौन हो गयी। हे तात! इस प्रकारकी आकाशवाणीको सुनकर विष्णु आदि सभी देवता तथा अन्य मुनि आदि सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये॥ ३६-३७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे सत्युपाख्याने नभोवाणीवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सती-उपाख्यानमें आकाशवाणीका वर्णन नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३१॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

सतीके दग्ध होनेका समाचार सुनकर कुपित हुए शिवका अपनी जटासे वीरभद्र और महाकालीको प्रकट करके उन्हें यज्ञ-विध्वंस करनेकी आज्ञा देना

नारद उवाच

श्रुत्वा व्योमगिरं दक्षः किमकार्षीत्तदाबुधः।
अन्ये च कृतवन्तः किं ततश्च किमभूद् वद॥ १

नारदजी बोले—[हे ब्रह्मन्!] आकाशवाणीको सुनकर अज्ञानी दक्षने क्या किया तथा अन्य उपस्थित लोगोंने क्या किया और उसके बाद क्या हुआ? इसे बताइये॥ १॥

पराजिताः शिवगणा भृगुमंत्रबलेन वै।
किमकार्षुः कुत्र गतास्तत्त्वं वद महामते॥ २

हे महामते! भृगुजीके मन्त्रबलसे पराजित होकर शिवजीके गणोंने क्या किया तथा वे कहाँ गये—यह सब आप मुझसे कहिये॥ २॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा व्योमगिरं सर्वे विस्मिताश्च सुरादयः।
नावोचत्किंचिदपि ते तिष्ठन्तस्तु विमोहिताः॥ ३

पलायमाना ये वीरा भृगुमंत्रबलेन ते।
अवशिष्टाः शिवगणाः शिवं शरणमाययुः॥ ४

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] आकाशवाणी सुनकर समस्त देवता आदि आश्चर्यचकित हो गये, वे मोहित होकर [जहाँ-तहाँ] खड़े हो गये और कुछ भी न बोल सके। भृगुजीके मन्त्रबलसे जो वीर शिवगण बच गये थे, वे भागते हुए शिवकी शरणमें गये॥ ३-४॥

सर्वं निवेदयामासू रुद्रायामिततेजसे।
चरित्रं च तथाभूतं सुप्रणम्यादराच्च ते॥ ५

वे महातेजस्वी शिवजीको आदरपूर्वक प्रणाम करके जो चरित्र हुआ था, वह सब बताने लगे॥ ५॥

गणा ऊचुः

देवदेव महादेव पाहि नः शरणागतान्।
संशृणवादरतो नाथ सतीवार्तां च विस्तरात्॥ ६

गण बोले—हे देवदेव! हे महादेव! शरणमें आये हुए हमलोगोंकी रक्षा कीजिये और हे नाथ! आदरपूर्वक सतीजीका चरित्र विस्तारसे सुनिये॥ ६॥

गर्वितेन महेशान दक्षेण सुदुरात्मना।
अपमानः कृतः सत्यानादरो निर्जरैस्तथा॥ ७

हे महेश्वर! अभिमानसे युक्त दुरात्मा दक्षने तथा देवताओंने सतीका अपमान तथा अनादर किया॥ ७॥

तुभ्यं भागमदान्नो स देवेभ्यश्च प्रदत्तवान्।
दुर्वचांस्यवदत्प्रोच्चैर्दुष्टो दक्षः सुगर्वितः॥ ८

महाभिमानी दुष्ट दक्षने [अपने यज्ञमें] आपको भाग नहीं दिया। देवताओंको भाग दिया, किंतु [आपके विषयमें] उच्च स्वरसे दुर्वचन भी कहा॥ ८॥

ततो दृष्ट्वा न ते भागं यज्ञेऽकुप्यत्सती प्रभो।
विनिंद्य बहुशस्तातमधाक्षीत्स्वतनुं तदा॥ ९

गणास्त्वयुतसंख्याका मृतास्तत्र विलज्जया।
स्वाङ्गान्याच्छिद्य शस्त्रैश्च क्रुध्याम ह्यपरे वयम्॥ १०

हे प्रभो! उसके बाद यज्ञमें आपका भाग न देखकर सतीजी कुपित हो गयीं और उन्होंने अपने पिताकी बार-बार निन्दा करके [योगमार्गका अवलम्बनकर] अपने शरीरको भस्म कर लिया। [यह देखकर] दस हजार गण लज्जावश शस्त्रोंसे अपने अंगोंको काटकर वहीं मर गये, [बचे हुए] हमलोग दक्षपर कुपित हो उठे॥ ९-१०॥

तद्यज्ञं ध्वंसितुं वेगात्सन्नद्धास्तु भयावहाः।
तिरस्कृता हि भृगुणा स्वप्रभावाद्विरोधिना॥ ११

हमलोग भयानक रूप धारणकर वेगपूर्वक यज्ञका विध्वंस करनेको उद्यत हो गये, परंतु विरोधी भृगुने अपने मन्त्रबलके प्रभावसे हमारा तिरस्कार कर दिया॥ ११॥

ते वयं शरणं प्राप्तास्तव विश्वंभर प्रभो।
निर्भयान् कुरु नस्तस्माद् दयमान भवाद्भयात्॥ १२

हे विश्वम्भर! हे प्रभो! अब हमलोग आपकी शरणमें आये हुए हैं, आप [हमारे ऊपर] दया करते हुए इस उत्पन्न भयसे हमलोगोंको निर्भय कीजिये॥ १२॥

अपमानं विशेषेण तस्मिन् यज्ञे महाप्रभो।
दक्षाद्यास्तेऽखिला दुष्टा अकुर्वन् गर्विता अति॥ १३

हे महाप्रभो! दक्ष आदि सभी दुष्टोंने अत्यन्त गर्वित होकर उस यज्ञमें आपका बहुत अपमान किया है॥ १३॥

इत्युक्तं निखिलं वृत्तं स्वेषां सत्याश्च शङ्कर।
तेषां च मूढबुद्धीनां यथेच्छसि तथा कुरु॥ १४

हे शंकर! इस प्रकार हमने अपना, सतीका और उन मूर्खोंका सारा वृत्तान्त आपसे कह दिया, अब आप जैसा चाहते हों, वैसा कीजिये॥ १४॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य स्वगणानां वचः प्रभुः।
सस्मार नारदं सर्वं ज्ञातुं तच्चरितं लघु॥ १५

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] अपने गणोंका यह वचन सुनकर प्रभु शिवने उनका सम्पूर्ण चरित्र जाननेके लिये शीघ्रतापूर्वक आप नारदका स्मरण किया॥ १५॥

आगतस्त्वं द्रुतं तत्र देवर्षे दिव्यदर्शनः।
प्रणम्य शंकरं भक्त्या साञ्जलिस्तत्र तस्थिवान्॥ १६

हे देवर्षे! [भगवान्‌के स्मरण करनेपर] दिव्य दर्शनवाले आप वहाँ शीघ्रतासे पहुँच गये और भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर शिवजीको प्रणामकर वहाँ खड़े हो गये॥ १६॥

त्वां प्रशस्याथ स स्वामी सत्या वार्तां च पृष्टवान्।
दक्षयज्ञगताया वै परं च चरितं तथा॥ १७

पृष्टेन शंभुना तात त्वयाश्वेव शिवात्मना।
तत्सर्वं कथितं वृत्तं जातं दक्षाध्वरे हि यत्॥ १८

उसके बाद स्वामी शंकरजीने आपकी प्रशंसा करके दक्षयज्ञमें गयी हुई सतीका समाचार एवं अन्य दूसरी घटनाओंके सम्बन्धमें पूछा। हे नारद! शिवजीके पूछनेपर शिवस्वरूप आपने शीघ्र ही जो कुछ भी दक्षयज्ञमें घटित हुआ था, वह सब समाचार कह दिया॥ १७-१८॥

तदाकर्ण्येश्वरो वाक्यं मुने तत् त्वन्मुखोदितम्।
चुकोपातिद्रुतं रुद्रो महारौद्रपराक्रमः॥ १९

उत्पाट्यैकां जटां रुद्रो लोकसंहारकारकः।
आस्फालयामास रुषा पर्वतस्य तदोपरि॥ २०

हे मुने! आपके मुखसे कही हुई बातको सुनकर महारौद्रपराक्रमी भगवान् शंकर शीघ्र ही अत्यन्त क्रोधित हो उठे। लोकका संहार करनेवाले रुद्रने उसी समय एक जटा उखाड़कर क्रोधसे उसे पर्वतके ऊपर पटक दिया॥ १९-२०॥

तोदनाच्च द्विधा भूता सा जटा च मुने प्रभोः।
संबभूव महारावो महाप्रलयभीषणः॥ २१

हे मुने! भगवान् शंकरद्वारा जटा पटके जानेके फलस्वरूप वह जटा दो टुकड़ोंमें विभक्त हो गयी और उससे महान् प्रलयंकारी भयंकर शब्द उत्पन्न हुआ॥ २१॥

तज्जटायाः समुद्भूतो वीरभद्रो महाबलः।
पूर्वभागेन देवर्षे महाभीमो गणाग्रणीः॥ २२

हे देवर्षे! उस जटाके पूर्वभागसे महाभयंकर, महाबली सभी गणोंमें अग्रणी वीरभद्र उत्पन्न हुए॥ २२॥

स भूमिं विश्वतो वृत्य चात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।
प्रलयानलसंकाशः प्रोन्नतो दोःसहस्रवान्॥ २३

वे चारों ओरसे पृथिवीको घेरकर दस अंगुलपर्यन्त पृथिवीसे ऊपर स्थित हो गये। वे प्रलयाग्निके समान थे और एक हजार भुजाओंसे युक्त थे॥ २३॥

कोपनिःश्वासतस्तत्र महारुद्रस्य चेशितुः।
जातं ज्वराणां शतकं संनिपातास्त्रयोदश॥ २४

उन महारुद्र महेश्वरके क्रोधयुक्त निःश्वाससे सौ प्रकारके ज्वर तथा तेरह सन्निपात उत्पन्न हुए॥ २४॥

महाकाली समुत्पन्ना तज्जटापरभागतः।
महाभयंकरा तात भूतकोटिभिरावृता॥ २५

हे तात! उस जटाके दूसरे भागसे महाकाली उत्पन्न हुईं, जो बड़ी भयंकर थीं और करोड़ों भूतोंसे घिरी हुई थीं॥ २५॥

सर्वे मूर्तिधराः क्रूराः ज्वरा लोकभयंकराः।
स्वतेजसा प्रज्वलंतो दहंत इव सर्वतः॥ २६

मूर्तिधारी वे सभी ज्वर क्रूर तथा संसारको भयभीत करनेवाले थे और अपने तेजसे ऐसे प्रज्वलित हो रहे थे, मानो सबको जला देंगे॥ २६॥

अथ वीरो वीरभद्रः प्रणम्य परमेश्वरम्।
कृताञ्जलिपुटः प्राह वाक्यं वाक्यविशारदः॥ २७

तदनन्तर वाक्यविशारद महावीर वीरभद्र हाथ जोड़कर शिवजीको प्रणाम करके कहने लगे— ॥ २७॥

वीरभद्र उवाच

महारुद्र महारौद्र सोमसूर्याग्निलोचन।
किं कर्तव्यं मया कार्यं शीघ्रमाज्ञापय प्रभो॥ २८

वीरभद्र बोले—हे महारुद्र! हे महारौद्र! सूर्य, सोम तथा अग्निरूप नेत्रवाले हे प्रभो! मैं कौन-सा कार्य करूँ? शीघ्र ही आज्ञा प्रदान कीजिये॥ २८॥

शोषणीयाः किमीशान क्षणार्धेनैव सिंधवः।
पेषणीयाः किमीशान क्षणार्धेनैव पर्वताः॥ २९
क्षणेन भस्मसात्कुर्यां ब्रह्मांडमुत किं हर।
क्षणेन भस्मसात्कुर्यां सुरान्वा किं मुनीश्वरान्॥ ३०
व्याश्वासः सर्वलोकानां किमु कार्यो हि शंकर।
कर्तव्यं किमुतेशान सर्वप्राणिविहिंसनम्॥ ३१

हे ईशान! क्या मैं आधे ही क्षणमें समुद्रोंको सुखा दूँ अथवा हे ईशान! क्या आधे ही क्षणमें पर्वतोंको चूर-चूर कर दूँ अथवा हे हर! क्या मैं क्षणभरमें सारे ब्रह्माण्डको भस्म कर दूँ अथवा क्या मैं क्षणभरमें देवताओं एवं मुनीश्वरोंको भस्म कर दूँ अथवा हे शंकर! क्या मैं सभी लोगोंका श्वास रोक दूँ अथवा हे ईशान! क्या मैं सम्पूर्ण प्राणियोंका विनाश कर डालूँ?॥ २९—३१॥

ममाशक्यं न कुत्रापि त्वत्प्रसादान्महेश्वर।
पराक्रमेण मत्तुल्यो न भूतो न भविष्यति॥ ३२

हे महेश्वर! आपकी कृपासे कोई भी कार्य ऐसा नहीं है, जो मैं न कर सकूँ, पराक्रममें मेरे समान न तो कोई हुआ है और न तो होगा॥ ३२॥

यत्र यत्कार्यमुद्दिश्य प्रेषयिष्यसि मां प्रभो।
तत्कार्यं साधयाम्येव सत्वरं त्वत्प्रसादतः॥ ३३

हे प्रभो! आप मुझे जिस कार्यके लिये जहाँ भी भेजेंगे, मैं आपकी कृपासे उस कार्यको शीघ्र ही सिद्ध करूँगा॥ ३३॥

क्षुद्रास्तरंति लोकाब्धिं शासनाच्छंकरस्य ते।
हरातोऽहं न किं तर्तुं महापत्सागरं क्षमः॥ ३४

हे हर! आप शिवकी आज्ञासे क्षुद्रजन भी इस संसार-सागरको पार कर जाते हैं, तो क्या मैं इस महान् विपत्तिरूपी समुद्रको पार करनेमें समर्थ नहीं हो सकता?॥ ३४॥

त्वत्प्रेषिततृणेनापि महत्कार्यमयत्नतः।
क्षणेन शक्यते कर्तुं शंकरात्र न संशयः॥ ३५

हे शंकर! आपके द्वारा भेजे गये तृणसे भी क्षणमात्रमें ही बिना प्रयत्नके बहुत बड़ा कार्य किया जा सकता है, इसमें संशय नहीं है॥ ३५॥

लीलामात्रेण ते शंभो कार्यं यद्यपि सिध्यति।
तथाप्यहं प्रेषणीयो तवैवानुग्रहो ह्ययम्॥ ३६

हे शम्भो! यद्यपि सारा कार्य आपके लीलामात्रसे ही सिद्ध हो सकता है, फिर भी यदि आप मुझे भेज दें, तो यह आपकी [बहुत बड़ी] कृपा होगी॥ ३६॥

शक्तिरेतादृशी शंभो ममापि त्वदनुग्रहात्।
विना शक्तिर्न कस्यापि शंकर त्वदनुग्रहात्॥ ३७

हे शम्भो! हे शंकर! आपकी कृपासे मुझमें ऐसी शक्ति है, जैसी कि आपकी कृपाके बिना अन्य किसीमें भी नहीं हो सकती॥ ३७॥

त्वदाज्ञया विना कोऽपि तृणादीनपि वस्तुतः।
नैव चालयितुं शक्तः सत्यमेतन्न संशयः॥ ३८

आपकी कृपाके बिना कोई एक तृण भी हिलानेमें समर्थ नहीं है, यह सत्य है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३८॥

शंभो नियम्याः सर्वेऽपि देवाद्यास्ते महेश्वर।
तथैवाहं नियम्यस्ते नियन्तुः सर्वदेहिनाम्॥ ३९

हे शम्भो! हे महेश्वर! सभी देवता आपके नियन्त्रणमें हैं, उसी प्रकार मैं भी समस्त प्राणियोंके नियामक आपके नियन्त्रणमें ही हूँ॥ ३९॥

प्रणतोऽस्मि महादेव भूयोऽपि प्रणतोऽस्म्यहम्।
प्रेषय स्वेष्टसिद्ध्यर्थं मामद्य हर सत्वरम्॥ ४०

हे महादेव! मैं आपको प्रणाम करता हूँ, मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ। हे हर! आज मुझे अपनी इष्टसिद्धिके लिये आप शीघ्र ही भेजिये॥ ४०॥

स्पंदोऽपि जायते शंभोऽसव्याङ्गानां मुहुर्मुहुः।
भविष्यत्यद्य विजयो मामतः प्रेषय प्रभो॥ ४१

हे शम्भो! मेरे दाहिने अंगोंमें बार-बार स्पन्दन हो रहा है। हे प्रभो! आज मेरी विजय होगी। अतः आप मुझे भेजिये॥ ४१॥

हर्षोत्साहविशेषोऽपि जायते मम कश्चन।
शंभो त्वत्पादकमले संसक्तश्च मनो मम॥ ४२

भविष्यति प्रतिपदं शुभसंतानसंततिः॥ ४३

हे शम्भो! इस समय मुझे विशेष हर्ष तथा उत्साह हो रहा है और मेरा मन आपके चरणकमलमें लगा हुआ है। अतः पग-पगपर [मेरे लिये] शुभ परिणामका विस्तार होगा॥ ४२-४३॥

तस्यैव विजयो नित्यं तस्यैव शुभमन्वहम्।
यस्य शंभो दृढा भक्तिस्त्वयि शोभनसंश्रये॥ ४४

हे शम्भो! उत्तम आश्रय-स्वरूप आप शिवमें जिसकी सुदृढ़ भक्ति है, उसीकी सदा विजय होती है और उसीका प्रतिदिन कल्याण होता है॥ ४४॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तं तद्वचः श्रुत्वा संतुष्टो मङ्गलापतिः।
वीरभद्र जयेति त्वं प्रोक्ताशीः प्राह तं पुनः॥ ४५

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] उनके द्वारा कहे गये इस वचनको सुनकर मंगलापति [सदाशिव] अत्यन्त प्रसन्न हो गये और हे वीरभद्र! तुम्हारी जय हो, यह आशीर्वाद देकर उनसे पुनः कहने लगे— ॥ ४५ ॥

महेश्वर उवाच

शृणु मद्वचनं तात वीरभद्र सुचेतसा।
करणीयं प्रयत्नेन तद् द्रुतं मे प्रतोषकम्॥ ४६

महेश्वर बोले—हे तात! हे वीरभद्र! शान्त मनसे मेरी बात सुनो और शीघ्र ही प्रयत्नपूर्वक उस कार्यको करो, जिससे मुझे प्रसन्नता हो॥ ४६ ॥

यागं कर्तुं समुद्युक्तो दक्षो विधिसुतः खलः।
मद्विरोधी विशेषेण महागर्वोऽबुधोऽधुना॥ ४७

इस समय ब्रह्माका पुत्र दक्ष यज्ञ करनेके लिये तत्पर है। वह महाभिमानी, दुष्ट तथा अज्ञानी विशेष रूपसे मेरा विरोध कर रहा है॥ ४७ ॥

तन्मखं भस्मसात्कृत्वा सयागपरिवारकम्।
पुनरायाहि मत्स्थानं सत्वरं गणसत्तम॥ ४८

हे गणश्रेष्ठ! तुम यज्ञको तथा यज्ञमें सम्मिलित सभीको भस्म करके शीघ्र ही मेरे स्थानको पुनः लौट आओ॥ ४८ ॥

सुरा भवन्तु गंधर्वा यक्षा वान्ये च केचन।
तानप्यद्यैव सहसा भस्मसात्कुरु सत्वरम्॥ ४९

देवता, गन्धर्व, यक्ष अथवा अन्य कोई भी जो वहाँ हों, उन्हें आज ही शीघ्र सहसा भस्म कर डालना॥ ४९ ॥

तत्रास्तु विष्णुर्ब्रह्मा वा शचीशो वा यमोऽपि वा।
अपि चाद्यैव तान्सर्वान्पातयस्व प्रयत्नतः॥ ५०

वहाँ ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, यम कोई भी हो, तुम उन सबको प्रयत्नपूर्वक आज ही गिरा दो॥ ५० ॥

सुरा भवन्तु गंधर्वा यक्षा वान्ये च केचन।
तानप्यद्यैव सहसा भस्मसात्कुरु सत्वरम्॥ ५१

देवता, गन्धर्व, यक्ष अथवा अन्य कोई भी जो वहाँ हों, उन्हें आज ही शीघ्र सहसा भस्म कर डालना॥ ५१ ॥

दधीचिकृतमुल्लंघ्य शपथं मयि तत्र ये।
तिष्ठन्ति ते प्रयत्नेन ज्वालनीयास्त्वया ध्रुवम्॥ ५२

दधीचिकी दिलायी हुई मेरी शपथका उल्लंघन करके जो भी वहाँ ठहरे हुए हैं, उन्हें निश्चय ही तुम प्रयत्नपूर्वक जला देना॥ ५२ ॥

प्रमथाश्चागमिष्यन्ति यदि विष्वादयो भ्रमात्।
नानाकर्षणमंत्रेण ज्वालयानीय सत्वरम्॥ ५३

यदि भ्रमवश प्रमथगण और विष्णु आदि वहाँ आ जायँ तो शीघ्र ही अनेक आकर्षण मन्त्रोंसे खींचकर उन्हें भस्म कर देना॥ ५३ ॥

ये तत्रोल्लंघ्य शपथं मदीयं गर्विताः स्थिताः।
ते हि मद्द्रोहिणोऽतस्तान् ज्वालयानलमालया॥ ५४

जो मेरी शपथका उल्लंघन करके गर्वित हो वहाँ ठहरे हुए हैं, वे मेरे द्रोही हैं, अतः उन्हें अग्निकी लपटोंसे भस्म कर देना॥ ५४॥

सपत्नीकान्ससारांश्च दक्षयागस्थलस्थितान्।
प्रज्वाल्य भस्मसात्कृत्वा पुनरायाहि सत्वरम्॥ ५५

दक्षके यज्ञस्थलमें स्थित लोगोंको उनकी पत्नियों तथा सामग्रीसहित जलाकर भस्म करके शीघ्रतासे पुनः चले आओ॥ ५५॥

तत्र त्वयि गते देवा विश्वाद्या अपि सादरम्।
स्तोष्यन्ति त्वां तदाप्याशु ज्वालया ज्वालयैव तान्॥ ५६

तुम्हारे वहाँ जानेपर विश्वेदेव आदि देवगण भी यदि [सामने आकर] सादर स्तुति करें, तो भी तुम उन्हें शीघ्र ही आगकी ज्वालासे जला डालना॥ ५६ ॥

देवानपि कृतद्रोहान् ज्वालामालासमाकुलैः।
ज्वालय ज्वलनैः शीघ्रं माध्यायाध्यायपालकम्॥ ५७

इस प्रकार जो भी मुझसे द्रोह करनेवाले देवतागण वहाँ उपस्थित हों, उन्हें शीघ्र ही अग्निकी ज्वालामें जलाकर मेरे समीप लौट आना। मन्त्रपालक समझकर उनकी उपेक्षा कदापि न करना॥ ५७॥

दक्षादीन्सकलांस्तत्र सपत्नीकान्सबांधवान्।
प्रज्वाल्य वीर दक्षं नु सलीलं सलिलं पिब॥ ५८

हे वीर! पत्नियों तथा बन्धुओंसहित वहाँ उपस्थित दक्ष आदि सभीको लीलापूर्वक भस्म करनेके बाद ही तुम जल ग्रहण करना अर्थात् कार्य पूर्ण होनेके अनन्तर ही पूर्ण विश्राम करना॥ ५८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षो वेदमर्यादपालकः।
विरराम महावीरं कालारिः सकलेश्वरः॥ ५९

ब्रह्माजी बोले—वेदमर्यादाका पालन करनेवाले, कालके भी शत्रु तथा सर्वेश्वर शिवजीने रोषसे आँखें लाल-लालकर महावीर [वीरभद्र]-से इस प्रकार कहकर मौन धारण कर लिया॥ ५९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे वीरभद्रोत्पत्तिशिवोपदेशवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें वीरभद्रकी उत्पत्ति और उन्हें शिवका उपदेशवर्णन नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

गणोंसहित वीरभद्र और महाकालीका दक्षयज्ञ-विध्वंसके लिये प्रस्थान

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तं श्रीमहेशस्य श्रुत्वा वचनमादरात्।
वीरभद्रोऽतिसंतुष्टः प्रणनाम महेश्वरम्॥ १

शासनं शिरसा धृत्वा देवदेवस्य शूलिनः।
प्रचचाल ततः शीघ्रं वीरभद्रो मखं प्रति॥ २

शिवोऽथ प्रेषयामास शोभार्थं कोटिशो गणान्।
तेन सार्धं महावीरान्प्रलयानलसन्निभान्॥ ३

अथ ते वीरभद्रस्य पुरतः प्रबला गणाः।
पश्चादपि ययुर्वीराः कुतूहलकरा गणाः॥ ४

वीरभद्रसमेता ये गणाः शतसहस्रशः।
पार्षदाः कालकालस्य सर्वे रुद्रस्वरूपिणः॥ ५

गणैः समेतः किल तैर्महात्मा
स वीरभद्रो हरवेषभूषणः।
सहस्रबाहुर्भुजगाधिपाढ्यो
ययौ रथस्थः प्रबलोऽतिभीकरः॥ ६

नल्वानां च सहस्रे द्वे प्रमाणं स्यन्दनस्य हि।
अयुतेनैव सिंहानां वाहनानां प्रयत्नतः॥ ७

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] महेश्वरके कहे गये इस वचनको आदरपूर्वक सुनकर वीरभद्र बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने महेश्वरको प्रणाम किया॥ १॥

तत्पश्चात् त्रिशूलधारी उन देवाधिदेवकी आज्ञाको शिरोधार्य करके वीरभद्र वहाँसे शीघ्र ही दक्षके यज्ञकी ओर चल पड़े। भगवान् शिवने प्रलयाग्निके समान करोड़ों महावीर गणोंको [केवल] शोभाके लिये उनके साथ भेज दिया॥ २-३॥

वे बलशाली तथा वीर गण वीरभद्रके आगे और पीछे भी चल रहे थे। कौतूहल करते हुए वीरभद्रसहित जो लाखों गण थे, वे कालके भी काल शिवके पार्षद थे, वे सब रुद्रके ही समान थे॥ ४-५॥

महात्मा वीरभद्र शिवके समान ही वेशभूषा धारण करके रथपर बैठकर उन गणोंके साथ चल पड़े। उनकी एक हजार भुजाएँ थीं, उनके शरीरमें नागराज लिपटे हुए थे। वे प्रबल और भयंकर दिखायी पड़ रहे थे॥ ६॥

उनका रथ आठ लाख हाथ विस्तारवाला था। उसमें दस हजार सिंह जुते हुए थे, जो प्रयत्नपूर्वक रथको खींच रहे थे॥ ७॥

तथैव प्रबलाः सिंहा बहवः पार्श्वरक्षकाः।
शार्दूला मकरा मत्स्या गजास्तत्र सहस्रशः॥ ८

उसी प्रकार बहुत-से प्रबल सिंह, शार्दूल, मगर, मत्स्य और हजारों हाथी उनके पार्श्वरक्षक थे॥ ८॥

वीरभद्रे प्रचलिते दक्षनाशाय सत्वरम्।
कल्पवृक्षसमुत्सृष्टा पुष्पवृष्टिरभूत्तदा॥ ९
तुष्टुवुश्च गणा वीरं शिपिविष्टे प्रचेष्टितम्।
चक्रुः कुतूहलं सर्वे तस्मिंश्च गमनोत्सवे॥ १०

इस प्रकार जब दक्षके विनाशके लिये वीरभद्रने प्रस्थान किया, उस समय कल्पवृक्षोंसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। सभी गणोंने शिवजीके कार्यके लिये चेष्टा करनेवाले वीरभद्रकी स्तुति की और उस यात्राके उत्सवमें कुतूहल करने लगे॥ ९-१०॥

काली कात्यायनीशानी चामुंडा मुंडमर्दिनी।
भद्रकाली तथा भद्रा त्वरिता वैष्णवी तथा॥ ११
एताभिर्नवदुर्गाभिर्महाकाली समन्विता।
ययौ दक्षविनाशाय सर्वभूतगणैः सह॥ १२

उसी समय काली, कात्यायनी, ईशानी, चामुण्डा, मुण्डमर्दिनी, भद्रकाली, भद्रा, त्वरिता तथा वैष्णवी—इन नौ दुर्गाओं तथा समस्त भूतगणोंके साथ महाकाली दक्षका विनाश करनेके लिये चल पड़ीं॥ ११-१२॥

डाकिनी शाकिनी चैव भूतप्रमथगुह्यकाः।
कूष्मांडाः पर्पटाश्चैव चटका ब्रह्मराक्षसाः॥ १३
भैरवाः क्षेत्रपालाश्च दक्षयज्ञविनाशकाः।
निर्ययुस्त्वरितं वीराः शिवाज्ञाप्रतिपालकाः॥ १४

शिवकी आज्ञाके पालक, डाकिनी, शाकिनी, भूत, प्रमथ, गुह्यक, कूष्माण्ड, पर्पट, चटक, ब्रह्मराक्षस, भैरव तथा क्षेत्रपाल आदि वीर दक्षके यज्ञका विनाश करनेके लिये तुरंत चल दिये॥ १३-१४॥

तथैव योगिनीचक्रं चतुःषष्टिगणान्वितम्।
निर्ययौ सहसा क्रुद्धं दक्षयज्ञं विनाशितुम्॥ १५

उसी प्रकार चौंसठ गणोंके साथ योगिनियोंका मण्डल भी सहसा कुपित होकर दक्षयज्ञका विनाश करनेके लिये निकल पड़ा॥ १५॥

तेषां गणानां सर्वेषां संख्यानं शृणु नारद।
महाबलवतां संघो मुख्यानां धैर्यशालिनाम्॥ १६

हे नारद! उन सभी गणोंके धैर्यशाली तथा महाबली मुख्य गणोंका जो समूह था, उसकी संख्याको सुनिये॥ १६॥

अभ्યयाच्छङ्कुकर्णश्च दशकोट्या गणेश्वरः।
दशभिः केकराक्षश्च विकृतोऽष्टाभिरेव च॥ १७

शंकुकर्ण [नामक] गणेश्वर दस करोड़ गणोंके साथ, केकराक्ष दस करोड़ गणोंके साथ तथा विकृत आठ करोड़ गणोंके साथ चल पड़े॥ १७॥

चतुःषष्ट्या विशाखश्च नवभिः पारियात्रिकः।
षड्भिः सर्वाङ्कको वीरस्तथैव विकृताननः॥ १८
ज्वालकेशो द्वादशभिः कोटिभिर्गणपुङ्गवः।
सप्तभिः समदज्जीमान् दुद्रभोऽष्टाभिरेव च॥ १९
पञ्चभिश्च कपालीशः षड्भिः संदारको गणः।
कोटिकोटिभिरेवेह कोटिकुण्डस्तथैव च॥ २०
विष्टम्भोऽष्टाष्टभिर्वीरैः कोटिभिर्गणसत्तमः।
सहस्रकोटिभिस्तात सन्नादः पिप्पलस्तथा॥ २१
आवेशनस्तथाष्टाभिरष्टाभिश्चंद्रतापनः।
महावेशः सहस्रेण कोटिना गणपो वृतः॥ २२
कुण्डी द्वादशकोटीभिस्तथा पर्वतको मुने।
विनाशितुं दक्षयज्ञं निर्ययौ गणसत्तमः॥ २३

हे तात! हे मुने! विशाख चौंसठ करोड़, पारियात्रिक नौ करोड़, सर्वांकक छः करोड़, वीर विकृतानन भी छः करोड़, गणोंमें श्रेष्ठ ज्वालकेश बारह करोड़, समदज्जीमान् सात करोड़, दुद्रभ आठ करोड़, कपालीश पाँच करोड़, सन्दारक छः करोड़, कोटि और कुण्ड एक-एक करोड़, गणोंमें उत्तम विष्टम्भ चौंसठ करोड़ वीरोंके साथ, सन्नाद, पिप्पल एक हजार करोड़, आवेशन तथा चन्द्रतापन आठ-आठ करोड़, गणाधीश महावेश हजार करोड़ गणोंके साथ, कुंडी बारह करोड़ और गणश्रेष्ठ पर्वतक भी बारह करोड़ गणोंके साथ दक्षयज्ञका विध्वंस करनेके लिये चल पड़े॥ १८—२३॥

कालश्च कालकश्चैव महाकालस्तथैव च।
कोटीनां शतकेनैव दक्षयज्ञं ययौ प्रति॥ २४

काल, कालक और महाकाल सौ-सौ करोड़ गणोंको साथ लेकर दक्षयज्ञकी ओर चल पड़े॥ २४॥

अग्निकृच्छतकोट्या च कोट्याग्निमुख एव च।
आदित्यमूर्धा कोट्या च तथा चैव घनावहः॥ २५
सन्नाहः शतकोट्या च कोट्या च कुमुदो गणः।
अमोघः कोकिलश्चैव कोटिकोट्या गणाधिपः॥ २६
काष्ठागूढश्चतुःषष्ट्या सुकेशो वृषभस्तथा।
सुमन्त्रको गणाधीशस्तथा तात सुनिर्ययौ॥ २७

हे तात! अग्निकृत् सौ करोड़, अग्निमुख एक करोड़, आदित्यमूर्धा तथा घनावह एक-एक करोड़, सन्नाह सौ करोड़, गण कुमुद एक करोड़, गणेश्वर अमोघ तथा कोकिल एक-एक करोड़ और गणाधीश काष्ठागूढ़, सुकेशी, वृषभ तथा सुमन्त्रक चौंसठ-चौंसठ करोड़ गणोंको साथ लेकर चले॥ २५—२७॥

काकपादोदरः षष्टिकोटिभिर्गणसत्तमः।
तथा सन्तानकः षष्टिकोटिभिर्गणपुङ्गवः॥ २८
महाबलश्च नवभिः कोटिभिः पुङ्गवस्तथा॥ २९
मधुपिङ्गस्तथा तात गणाधीशो हि निर्ययौ।
नीलो नवत्या कोटीनां पूर्णभद्रस्तथैव च॥ ३०
निर्ययौ शतकोटीभिश्चतुर्वक्त्रो गणाधिपः॥ ३१

हे तात! गणोंमें श्रेष्ठ काकपादोदर साठ करोड़, गणश्रेष्ठ सन्तानक साठ करोड़, महाबल तथा पुंगव नौ-नौ करोड़, गणाधीश मधुपिंग नौ करोड़ और नील तथा पूर्णभद्र नब्बे करोड़ गणोंको साथ लेकर चल पड़े। गणराज चतुर्वक्त्र सौ करोड़ गणोंको साथ लेकर चला॥ २८—३१॥

विरूपाक्षश्च कोटीनां चतुःषष्ट्या गणेश्वरः।
तालकेतुः षडास्यश्च पञ्चास्यश्च गणाधिपः॥ ३२
संवर्तकस्तथा चैव कुलीशश्च स्वयं प्रभुः।
लोकान्तकश्च दीप्तात्मा तथा दैत्यान्तको मुने॥ ३३
गणो भृङ्गीरिटिः श्रीमान् देवदेवप्रियस्तथा।
अशनिर्भालकश्चैव चतुःषष्ट्या सहस्रकः॥ ३४

हे मुने! गणेश्वर विरूपाक्ष, तालकेतु, षडास्य तथा गणेश्वर पंचास्य चौंसठ करोड़, संवर्तक, स्वयं प्रभु कुलीश, लोकान्तक, दीप्तात्मा, दैत्यान्तक एवं शिवके परम प्रिय गण श्रीमान् भृंगी, रिटि, अशनि, भालक और सहस्रक चौंसठ करोड़ गणोंके साथ चले॥ ३२—३४॥

कोटिकोटिसहस्राणां शतैर्विंशतिभिर्वृतः।
वीरेशो ह्यभ्ययाद्वीरः वीरभद्रः शिवाज्ञया॥ ३५

महावीर तथा वीरेश्वर वीरभद्र भी शिवजीकी आज्ञासे बीसों, सैकड़ों तथा हजारों करोड़ गणोंसे घिरे हुए वहाँ पहुँचे॥ ३५॥

भूतकोटिसहस्रैस्तु प्रययौ कोटिभिस्त्रिभिः।
रोमजैः श्वगणैश्चैव तथा वीरो ययौ द्रुतम्॥ ३६

वीरभद्र हजार करोड़ भूतों तथा तीन करोड़ रोमजनित श्वगणोंके साथ शीघ्र ही वहाँ पहुँच गये॥ ३६॥

तदा भेरीमहानादः शंखाश्च विविधस्वनाः।
जटाहरो मुखाश्चैव शृङ्गाणि विविधानि च॥ ३७
ते तानि विततान्येव बंधनानि सुखानि च।
वादित्राणि विनेदुश्च विविधानि महोत्सवे॥ ३८

उस समय भेरियोंकी गम्भीर ध्वनि होने लगी। शंख बजने लगे। जटाहर, मुखों तथा शृंगोंसे अनेक प्रकारके शब्द होने लगे। उस महोत्सवमें चित्तको आकर्षित एवं सुखानुभूति उत्पन्न करनेवाले बाजोंके शब्द चारों ओर व्याप्त हो गये॥ ३७-३८॥

वीरभद्रस्य यात्रायां सबलस्य महामुने।
शकुनान्यभवंस्तत्र भूरीणि सुखदानि च॥ ३९

हे महामुने! सेनासहित महाबली वीरभद्रकी उस यात्रामें अनेक प्रकारके सुखदायक शकुन होने लगे॥ ३९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे वीरभद्रयात्रावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें वीरभद्रकी यात्राका वर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३३॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

दक्ष तथा देवताओंका अनेक अपशकुनों एवं उत्पातसूचक लक्षणोंको देखकर भयभीत होना

ब्रह्मोवाच

एवं प्रचलिते चास्मिन् वीरभद्रे गणान्विते।
दुष्टचिह्नानि दक्षेण दृष्टानि विबुधैरपि॥ १

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार गणोंसहित वीरभद्रके प्रस्थान करनेपर दक्ष तथा देवताओंको अनेक प्रकारके अशुभ लक्षण दिखायी पड़ने लगे॥ १॥

उत्पाता विविधाश्चासन् वीरभद्रे गणान्विते।
त्रिविधा अपि देवर्षे यज्ञविध्वंससूचकाः॥ २

गणोंसहित वीरभद्रके चल देनेपर वहाँ अनेक प्रकारके उत्पात होने लगे और हे देवर्षे! यज्ञविध्वंसकी सूचना देनेवाले तीनों प्रकार (आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक)-के अपशकुन होने लगे॥ २॥

दक्षवामाक्षिबाहूरुविस्पंदः समजायत।
नानाकष्टप्रदस्तात सर्वथाशुभसूचकः॥ ३

हे तात! दक्षकी बाँयीं आँख, बाँयीं भुजा और बाँयी जाँघ फड़कने लगी, जो अनेक प्रकारके कष्ट देनेवाली तथा सर्वथा अशुभकी सूचक थी॥ ३॥

भूकंपः समभूत्तत्र दक्षयागस्थले तदा।
दक्षोऽपश्यच्च मध्याह्ने नक्षत्राण्यद्भुतानि च॥ ४

दिशश्चासन्सुमलिनाः कर्बुरोऽभूद्दिवाकरः।
परिवेषसहस्रेण संक्रांतश्च भयंकरः॥ ५

उस समय दक्षके यज्ञस्थलमें भूकम्प उत्पन्न हो गया। दक्षको दोपहरमें अनेक अद्भुत नक्षत्र दीखने लगे। दिशाएँ मलिन हो गयीं, सूर्य चितकबरा हो गया। सूर्यपर हजारों घेरे पड़ गये, जिससे वह भयंकर दिखायी पड़ने लगा॥ ४-५॥

नक्षत्राणि पतन्ति स्म विद्युदग्निप्रभाणि च।
नक्षत्राणामभूद्वक्रा गतिश्चाधोमुखी तदा॥ ६

गृध्रा दक्षशिरः स्पृष्ट्वा समुद्भूताः सहस्रशः।
आसीद् गृध्रपक्षच्छायैः सच्छायो यागमंडपः॥ ७

बिजली तथा अग्निके समान दीप्तिमान् तारे टूटकर गिरने लगे। नक्षत्रोंकी गति टेढ़ी और नीचेकी ओर हो गयी। हजारों गीध दक्षके सिरको छूकर उड़ने लगे और उन गीधोंके पंखोंकी छायासे यज्ञमण्डप ढँक गया॥ ६-७॥

ववाशिरे यागभूमौ क्रोष्टारो नेत्रकस्तदा।
उल्कावृष्टिरभूत्तत्र श्वेतवृश्चिकसंभवा॥ ८

खरा वाता ववुस्तत्र पांशुवृष्टिसमन्विताः।
शलभाश्च समुद्भूता विवर्तानिलकंपिताः॥ ९

यज्ञभूमिमें सियार तथा उल्लू शब्द करने लगे। [आकाशमण्डलसे] श्वेत बिच्छुओंकी उल्कावृष्टि होने लगी। धूलिकी वर्षाके साथ तेज हवाएँ चलने लगीं और विवर्त [घूमती हुई] वायुसे कम्पित होकर टिड्डियाँ सब जगह उड़ने लगीं॥ ८-९॥

नीतश्च पवनैरूर्ध्वं स दक्षाध्वरमंडपः।
देवान्वितेन दक्षेण यः कृतो नूतनोऽद्भुतः॥ १०

वेमुर्दक्षादयः सर्वे तदा शोणितमद्भुतम्।
वेमुश्च मांसखण्डानि सशल्यानि मुहुर्मुहुः॥ ११

दक्षने देवताओंके साथ जिस नवीन तथा अद्भुत यज्ञमण्डपका निर्माण किया था, उसे वायुने ऊपरकी ओर उड़ा दिया। दक्ष आदि सभी लोग अद्भुत प्रकारसे रक्तका वमन करने लगे और हड्डीसे समन्वित मांसखण्ड बार-बार उगलने लगे॥ १०-११॥

सकम्पाश्च बभूवुस्ते दीपा वातहता इव।
दुःखिताश्चाभवन्सर्वे शस्त्रधाराहता इव॥ १२

वे सभी लोग वायुके झोंकेसे हिलते हुए दीपकके समान काँपने लगे और शस्त्रोंसे आहत हुए प्राणियोंके समान दुःखित हो गये। जिस प्रकार वनमें

तदा निनादजातानि बाष्पवर्षाणि तत्क्षणे।
प्रातस्तुषारवर्षीणि पद्मानीव वनान्तरे॥ १३

दक्षाद्यक्षीणि जातानि ह्यकस्माद्विशदान्यपि।
निशायां कमलाश्चैव कुमुदानीव सङ्गवे॥ १४

असृग्ववर्ष देवश्च तिमिरेणावृता दिशः।
दिग्दाहोऽभूद्विशेषेण त्रासयन् सकलाञ्जनान्॥ १५

एवंविधान्यरिष्टानि ददृशुर्विबुधादयः।
भयमापेदिरेऽत्यन्तं मुने विष्ण्वादिकास्तदा॥ १६

भुवि ते मूर्छिताः पेतुर्हा हताः स्म इतीरयन्।
तरवस्तीरसञ्जाता नदीवेगहता इव॥ १७

पतित्वा ते स्थिता भूमौ क्रूराः सर्पा हता इव।
कंदुका इव ते भूयः पतिताः पुनरुत्थिताः॥ १८

ततस्ते तापसंतप्ता रुरुदुः कुररी इव।
रोदनध्वनिसंक्रान्तोरुक्तिप्रत्युक्तिका इव॥ १९

सवैकुंठास्ततः सर्वे तदा कुंठितशक्तयः।
स्वस्वोपकंठमाकंठं लुलुठुः कमठा इव॥ २०

एतस्मिन्नन्तरे तत्र सञ्जाता चाशरीरवाक्।
श्रावयत्यखिलान् देवान् दक्षं चैव विशेषतः॥ २१

आकाशवाण्युवाच

धिग् जन्म तव दक्षाद्य महामूढोऽसि पापधीः।
भविष्यति महद्दुःखमनिवार्यं हरोद्भवम्॥ २२

सहायिनोऽत्र ये मूढास्तव देवादयः स्थिताः।
तेषामपि महद्दुःखं भविष्यति न संशयः॥ २३

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वाकाशवचनं दृष्ट्वारिष्टानि तानि च।
दक्षः प्रापद्भयं चाति परे देवादयोऽपि ह॥ २४

वेपमानस्तदा दक्षो विकलश्चाति चेतसि।
अगच्छच्छरणं विष्णोः स्वप्रभोरिन्दिरापतेः॥ २५

प्रातःकालके समय कमलपुष्पोंपर तुषार (ओस)-की वर्षा हुई हो, उसी प्रकार शब्द करते हुए वाष्पकी वर्षा होने लगी॥ १२-१३॥

जिस प्रकार रात्रिमें कमल तथा दिनमें कुमुद बन्द हो जाते हैं, उसी प्रकार दक्ष आदिकी विशाल आँखें भी अचानक बन्द हो गयीं॥ १४॥

आकाशसे रक्तकी वर्षा होने लगी, दिशाएँ अन्धकारसे ढँक गयीं तथा सभी प्राणियोंको सन्त्रस्त करता हुआ दिग्दाह होने लगा॥ १५॥

हे मुने! जब विष्णु आदि देवताओंने इस प्रकारके उत्पात देखे, तब वे अत्यन्त भयभीत हो उठे॥ १६॥

हाय, अब हमलोग मारे गये—इस प्रकार कहते हुए वे मूर्च्छित होकर पृथिवीपर इस प्रकार गिर पड़े, जैसे नदीके वेगसे किनारेपर वृक्ष गिर जाते हैं॥ १७॥

वे पृथिवीपर इस प्रकार गिरकर अचेत हो जाते थे जैसे काटनेके बाद विषैला सर्प अचेत हो जाता है और कभी गेंदके समान पृथिवीपर गिरकर पुनः उठ जाते थे। तदनन्तर वे तापसे व्याकुल होकर कुररी पक्षीकी भाँति विलाप करते थे एवं उक्ति तथा प्रत्युक्तिका शब्द करते हुए रो रहे थे॥ १८-१९॥

उस समय विष्णुसहित सभी लोगोंकी शक्ति कुण्ठित हो गयी और वे आपसमें एक-दूसरेके समीप कण्ठपर्यन्त कछुएके समान लोटने लगे॥ २०॥

इसी बीच वहाँ समस्त देवताओं और विशेषकर दक्षको सुनाते हुए आकाशवाणी हुई॥ २१॥

आकाशवाणी बोली—हे दक्ष! तुम्हारे जन्मको धिक्कार है। तुम महामूढ़ और पापात्मा हो। शिवजीके कारण आज तुम्हें महान् दुःख प्राप्त होगा, जिसका निवारण नहीं हो सकता॥ २२॥

यहाँ जो तुम्हारे सहायक मूर्ख देवता उपस्थित हैं, उन्हें भी महान् दुःख होगा, इसमें संशय नहीं है॥ २३॥

ब्रह्माजी बोले—[हे मुने!] उस आकाशवाणीको सुनकर और उन उपद्रवोंको देखकर दक्ष तथा अन्य देवता आदि भी अत्यन्त भयभीत हो उठे॥ २४॥

उस समय दक्ष मन-ही-मन अत्यन्त व्याकुल हो काँपने लगे और अपने प्रभु लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुकी शरणमें गये॥ २५॥

सुप्रणम्य भयाविष्टः संस्तूय च विचेतनः।
अवोचद्देवदेवं तं विष्णुं स्वजनवत्सलम्॥ २६

भयभीत तथा बेसुध वे दक्ष उन स्वजनवत्सल देवाधिदेव विष्णुको प्रणाम करके तथा उनकी स्तुति करके कहने लगे— ॥ २६ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे दुःशकुनदर्शनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें अपशकुन-दर्शन नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३४ ॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

दक्षद्वारा यज्ञकी रक्षाके लिये भगवान् विष्णुसे प्रार्थना, भगवान्‌का शिवद्रोहजनित संकटको टालनेमें अपनी असमर्थता बताते हुए दक्षको समझाना तथा सेनासहित वीरभद्रका आगमन

दक्ष उवाच

देवदेव हरे विष्णो दीनबंधो कृपानिधे।
मम रक्षा विधातव्या भवता साध्वरस्य च॥ १
रक्षकस्त्वं मखस्यैव मखकर्मा मखात्मकः।
कृपा विधेया यज्ञस्य भङ्गो भवतु न प्रभो॥ २

दक्ष बोले—हे देवदेव! हे हरे! हे विष्णो! हे दीनबन्धो! हे कृपानिधे! आपको मेरी और मेरे यज्ञकी रक्षा करनी चाहिये। आप ही यज्ञके रक्षक, यज्ञ करनेवाले और यज्ञस्वरूप हैं। हे प्रभो! आपको ऐसी कृपा करनी चाहिये, जिससे यज्ञका विनाश न हो॥ १-२ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं बहुविधां दक्षः कृत्वा विज्ञप्तिमादरात्।
पपात पादयोस्तस्य भयव्याकुलमानसः॥ ३
उत्थाप्य तं ततो विष्णुर्दक्षं विक्लिन्नमानसम्।
श्रुत्वा च तस्य तद्वाक्यं कुमतेरस्मरच्छिवम्॥ ४

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! इस प्रकार आदरपूर्वक प्रार्थना करके भयसे व्याकुल चित्तवाले दक्ष उनके चरणोंमें गिर पड़े। तब दुखी मनवाले दक्षको उठाकर और उन दुर्बुद्धिकी बातको सुनकर विष्णुने शिवका स्मरण किया॥ ३-४ ॥

स्मृत्वा शिवं महेशानं स्वप्रभुं परमेश्वरम्।
अवदच्छिवतत्त्वज्ञो दक्षं संबोधयन्हरिः॥ ५

अपने प्रभु एवं महान् ऐश्वर्यसे युक्त परमेश्वर शिवका स्मरण करके शिवतत्त्वके ज्ञाता श्रीहरि दक्षको सम्बोधित करते हुए कहने लगे— ॥ ५ ॥

हरिरुवाच

शृणु दक्ष प्रवक्ष्यामि तत्त्वतः शृणु मे वचः।
सर्वथा ते हितकरं महामंत्रसुखप्रदम्॥ ६

हरि बोले—हे दक्ष! मैं आपको यथार्थ बात बता रहा हूँ, मेरी बात सुनिये, यह आपके लिये सर्वथा हितकर तथा महामन्त्रकी तरह सुखदायक है॥ ६ ॥

अवज्ञा हि कृता दक्ष त्वया तत्त्वमजानता।
सकलाधीश्वरस्यैव शंकरस्य परात्मनः॥ ७

हे दक्ष! शिवतत्त्वको न जाननेके कारण आपने सबके अधिपति परमात्मा शंकरकी अवहेलना की है॥ ७ ॥

ईश्वरावज्ञया सर्वं कार्यं भवति सर्वथा।
विफलं केवलं नैव विपत्तिश्च पदे पदे॥ ८
अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूजनीयो न पूज्यते।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दारिद्र्यं मरणं भयम्॥ ९

ईश्वरकी अवहेलनासे सारा कार्य न केवल सर्वथा निष्फल हो जाता है, अपितु पग-पगपर विपत्ति भी आती है। जहाँ अपूज्य लोगोंकी पूजा होती है और पूजनीयकी पूजा नहीं होती, वहाँ दरिद्रता, मृत्यु एवं भय—ये तीन अवश्य होंगे॥ ८-९ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन माननीयो वृषध्वजः।
अमानितान्महेशाच्च महद्भयमुपस्थितम्॥ १०

इसलिये सम्पूर्ण प्रयत्नसे तुम्हें भगवान् वृषभध्वजका सम्मान करना चाहिये। महेश्वरका अपमान करनेसे ही [आपके ऊपर] महान् भय उपस्थित हुआ है॥ १०॥

अद्यापि न वयं सर्वे प्रभवः प्रभवामहे।
भवतो दुर्नयेनैव मया सत्यमुदीर्यते॥ ११

हम सब लोग प्रभु होते हुए भी आज आपकी दुर्नीतिके कारण कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं हैं। मैं सत्य कह रहा हूँ॥ ११॥

ब्रह्मोवाच

विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा दक्षश्चिन्तापरोऽभवत्।
विवर्णवदनो भूत्वा तूष्णीमासीद्भुवि स्थितः॥ १२

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] विष्णुका यह वचन सुनकर दक्ष चिन्तामें पड़ गये। उनका मुख तथा उनके चेहरेका रंग फीका पड़ गया और वे चुप होकर पृथिवीपर खड़े रह गये॥ १२॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरभद्रः सैन्यसमन्वितः।
अगच्छदध्वरं रुद्रप्रेरितो गणनायकः॥ १३

इसी समय रुद्रके भेजे हुए गणनायक वीरभद्र अपनी सेनाके साथ यज्ञस्थलमें जा पहुँचे॥ १३॥

पृष्ठे केचित्समायाता गगने केचिदागताः।
दिशश्च विदिशः सर्वे समावृत्य तथापरे॥ १४
शर्वाज्ञया गणाः शूरा निर्भया रुद्रविक्रमाः।
असंख्याः सिंहनादान्वै कुर्वंतो वीरसत्तमाः॥ १५

कुछ गण भूपृष्ठपर आ गये, कुछ आकाशमें स्थित हो गये और कुछ गण दिशाओं तथा विदिशाओंको व्याप्त करके खड़े हो गये। शिवकी आज्ञासे वे रुद्रके समान पराक्रमवाले, शूर, निर्भीक तथा वीरोंमें श्रेष्ठ असंख्य गण सिंहनाद करते हुए वहाँ पहुँच गये॥ १४-१५॥

तेन नादेन महता नादितं भुवनत्रयम्।
रजसा चावृतं व्योम तमसा चावृता दिशः॥ १६
सप्तद्वीपान्विता पृथ्वी चचालाति भयाकुला।
सशैलकानना तत्र चुक्षुभुः सकलाब्धयः॥ १७

उस घोर नादसे तीनों लोक गूँज उठे। आकाश धूलसे भर गया और दिशाएँ अन्धकारसे आवृत हो गयीं। सातों द्वीपोंसे युक्त पृथिवी भयसे अत्यन्त व्याकुल होकर पर्वत और वनोंसहित काँपने लगी तथा सभी समुद्र विक्षुब्ध हो उठे॥ १६-१७॥

एवंभूतं च तत्सैन्यं लोकक्षयकरं महत्।
दृष्ट्वा च विस्मिताः सर्वे बभूवुरमरादयः॥ १८

समस्त लोकोंका विनाश करनेवाले इस प्रकारके उस विशाल सैन्यदलको देखकर समस्त देवता आदि चकित रह गये॥ १८॥

सैन्योद्योगमथालोक्य दक्षश्चासृङ्मुखाकुलः।
दंडवत्पतितो विष्णुं सकलत्रोऽभ्यभाषत॥ १९

इस सैन्य-उद्योगको देखकर मुखसे रक्तका वमन करते हुए वे दक्ष पत्नीसहित विष्णुके चरणोंमें दण्डकी भाँति गिर पड़े और इस प्रकार कहने लगे—॥ १९॥

दक्ष उवाच

भवद्बलेनैव मया यज्ञः प्रारंभितो महान्।
सत्कर्मसिद्धये विष्णो प्रमाणं त्वं महाप्रभो॥ २०

दक्ष बोले—हे विष्णो! हे महाप्रभो! आपके बलसे ही मैंने इस महान् यज्ञको आरम्भ किया है, सत्कर्मकी सिद्धिके लिये आप ही प्रमाण माने गये हैं॥ २०॥

विष्णो त्वं कर्मणां साक्षी यज्ञानां प्रतिपालकः।
धर्मस्य वेदगर्भस्य ब्रह्मणस्त्वं महाप्रभो॥ २१
तस्माद्रक्षा विधातव्या यज्ञस्यास्य मम प्रभो।
त्वदन्यः कः समर्थोऽस्ति यतस्त्वं सकलप्रभुः॥ २२

हे विष्णो! आप कर्मोंके साक्षी तथा यज्ञोंके प्रतिपालक हैं। हे महाप्रभो! आप वेदसारसर्वस्व, धर्म और ब्रह्माके रक्षक हैं। अतः हे प्रभो! आपको मेरे इस यज्ञकी रक्षा करनी चाहिये। आपके अतिरिक्त दूसरा कौन समर्थ है; क्योंकि आप सबके प्रभु हैं॥ २१-२२॥

ब्रह्मोवाच

दक्षस्य वचनं श्रुत्वा विष्णुर्दीनतरं तदा।
अवोचद् बोधयंस्तं वै शिवतत्त्वपराङ्मुखम्॥ २३

ब्रह्माजी बोले—तब दक्षकी अत्यन्त दीनतापूर्ण बात सुनकर भगवान् विष्णु शिवतत्त्वसे विमुख उन दक्षको बोध प्रदान करते हुए कहने लगे—॥ २३॥

विष्णुरुवाच

मया रक्षा विधातव्या तव यज्ञस्य दक्ष वै।
ख्यातो मम पणः सत्यो धर्मस्य परिपालनम्॥ २४

विष्णु बोले—हे दक्ष! मुझे आपके यज्ञकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये; धर्मके परिपालनविषयक जो मेरी सत्य प्रतिज्ञा है, वह [सर्वत्र] विख्यात है॥ २४॥

तत्सत्यं तु त्वयोक्तं हि किं तत्तस्य व्यतिक्रमः।
शृणु त्वं वच्म्यहं दक्ष क्रूरबुद्धिं त्यजाधुना॥ २५

आपने जो कहा है, वह सत्य है, उसका व्यतिक्रम कैसे हो सकता है। परंतु दक्ष! मैं जो कहता हूँ, उसे आप सुनिये। आप इस समय क्रूरतापूर्ण बुद्धिको त्याग दीजिये॥ २५॥

नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रे यज्जातं वृत्तमद्भुतम्।
तत् किं न स्मर्यते दक्ष विस्मृतं किं कुबुद्धिना॥ २६

हे दक्ष! देवताओंके क्षेत्र नैमिषारण्यमें जो अद्भुत घटना घटित हुई थी, क्या उसका स्मरण आपको नहीं हो रहा है? आप कुबुद्धिके कारण उसे भूल गये?॥ २६॥

रुद्रकोपाच्च को ह्यत्र समर्थो रक्षणे तव।
न यस्याभिमतं दक्ष यस्त्वां रक्षति दुर्मतिः॥ २७

रुद्रके कोपसे आपकी रक्षा करनेमें यहाँ कौन समर्थ है? हे दक्ष! आपकी रक्षा किसको अभिमत नहीं है? परंतु जो आपकी रक्षा करनेको उद्यत होता है, वह दुर्बुद्धि है॥ २७॥

किं कर्म किमकर्मेति तन्न पश्यसि दुर्मते।
समर्थं केवलं कर्म न भविष्यति सर्वदा॥ २८

हे दुर्मते! क्या कर्म है और क्या अकर्म है, इसे आप नहीं समझ पा रहे हैं। केवल कर्म ही [सब कुछ करनेमें] सर्वदा समर्थ नहीं हो सकता॥ २८॥

स्वकर्म विद्धि तद्येन समर्थत्वेन जायते।
न त्वन्यः कर्मणो दाता शं भवेदीश्वरं विना॥ २९

ईश्वरस्य च यो भक्त्या शांतस्तद्गतमानसः।
कर्मणो हि फलं तस्य प्रयच्छति तदा शिवः॥ ३०

जिसके सहयोगसे कर्ममें कुछ करनेका सामर्थ्य आता है, उसीको आप स्वकर्म समझिये। भगवान् शिवके बिना दूसरा कोई कर्ममें कल्याण करनेकी शक्ति देनेवाला नहीं है। जो शान्त होकर ईश्वरमें मन लगाकर भक्तिपूर्वक कार्य करता है, उसीको भगवान् शिव उस कर्मका फल देते हैं॥ २९-३०॥

केवलं ज्ञानमाश्रित्य निरीश्वरपरा नराः।
निरयं ते च गच्छन्ति कल्पकोटिशतानि च॥ ३१

पुनः कर्ममयैः पाशैर्बद्धा जन्मनि जन्मनि।
निरयेषु प्रपच्यन्ते केवलं कर्मरूपिणः॥ ३२

जो मनुष्य केवल ज्ञानका सहारा लेकर अनीश्वरवादी हो जाते हैं, वे सौ करोड़ कल्पोंतक नरकमें ही पड़े रहते हैं। केवल कर्मपरायण रहनेवाले लोग प्रत्येक जन्ममें कर्ममय पाशोंसे बँधते हैं और नरकोंकी यातना भोगते हैं॥ ३१-३२॥

अयं रुद्रगणाधीशो वीरभद्रोऽरिमर्दनः।
रुद्रकोपाग्निसंभूतः समायातोऽध्वराङ्गणे॥ ३३

ये रुद्रगणोंके स्वामी, शत्रुमर्दन तथा रुद्रकी क्रोधाग्निसे उत्पन्न वीरभद्र यज्ञभूमिमें आ गये हैं॥ ३३॥

अयमस्मद्विनाशार्थमागतोऽस्ति न संशयः।
अशक्यमस्य नास्त्येव किमप्यस्तु तु वस्तुतः॥ ३४

ये हमलोगोंके विनाशके लिये आये हैं, इसमें संशय नहीं है। चाहे कुछ भी हो, वास्तवमें इनके लिये कुछ भी अशक्य नहीं है॥ ३४॥

प्रज्वाल्यास्मानयं सर्वान् ध्रुवमेव महाप्रभुः।
ततः प्रशांतहृदयो भविष्यति न संशयः॥ ३५

श्रीमहादेवशपथं समुल्लंघ्य भ्रमान्मया।
यतः स्थितं ततः प्राप्यं मया दुःखं त्वया सह॥ ३६

शक्तिर्मम तु नास्त्येव दक्षाद्यैतन्निवारणे।
शपथोल्लंघनादेव शिवद्रोही यतोऽस्म्यहम्॥ ३७

कालत्रयेऽपि न यतो महेशद्रोहिणां सुखम्।
ततोऽवश्यं मया प्राप्तं दुःखमद्य त्वया सह॥ ३८

सुदर्शनाभिधं चक्रमेतस्मिन्न लगिष्यति।
शैवचक्रमिदं यस्मादशैवलयकारणम्॥ ३९

विनापि वीरभद्रेण नामैतच्चक्रमैश्वरम्।
हत्वा गमिष्यत्यधुना सत्वरं हरसन्निधौ॥ ४०

शैवं शपथमुल्लंघ्य स्थितं मां चक्रमीदृशम्।
असंहत्यैव सहसा कृपयैव स्थिरं परम्॥ ४१

अतः परमिदं चक्रमपि न स्थास्यति ध्रुवम्।
गमिष्यत्यधुना शीघ्रं ज्वालामालासमाकुलम्॥ ४२

वीरभद्रः पूजितोऽपि शीघ्रमस्माभिरादरात्।
महाक्रोधसमाक्रांतो नास्मान् संरक्षयिष्यति॥ ४३

अकांडप्रलयोऽस्माकमागतोऽद्य हि हा हहा।
हा हा बत तवेदानीं नाशोऽस्माकमुपस्थितः॥ ४४

शरण्योऽस्माकमधुना नास्त्येव हि जगत्त्रये।
शंकरद्रोहिणो लोके कः शरण्यो भविष्यति॥ ४५

तनुनाशेऽपि संप्राप्यास्तैश्चापि यमयातनाः।
ता नैव शक्यते सोढुं बहुदुःखप्रदायिनीः॥ ४६

शिवद्रोहिणमालोक्य दष्टदन्तो यमः स्वयम्।
तप्ततैलकटाहेषु पातयत्येव नान्यथा॥ ४७

गन्तुमेवाहमुद्युक्तः सर्वथा शपथोत्तरम्।
तथापि न गतः शीघ्रं दुष्टसंसर्गपापतः॥ ४८

महान् सामर्थ्यशाली ये हम सबको अवश्य जलाकर ही शान्तचित्त होंगे, इसमें संशय नहीं है॥ ३५॥

मैं भ्रमसे महादेवजीकी शपथका उल्लंघन करके जो यहाँ रुक गया, उसके कारण आपके साथ मुझे भी दुःख सहना पड़ेगा। हे दक्ष! आज मुझमें इनको रोक सकनेकी शक्ति नहीं है; क्योंकि शपथका उल्लंघन करनेसे मैं शिवद्रोही हो गया हूँ॥ ३६-३७॥

भगवान् शिवसे द्रोह करनेवालेको त्रिकालमें भी सुख नहीं मिलता है, अतः आज आपके साथ मुझे भी अवश्य दुःख प्राप्त हुआ है। मेरा सुदर्शन नामक चक्र भी इनपर प्रभाव नहीं डाल पायेगा; क्योंकि यह शैवचक्र [केवल] अशैवोंका लय करनेवाला है॥ ३८-३९॥

वीरभद्रपर इस चक्रसे प्रहार करते ही बिना उनका वध किये ही यह शैवचक्र शीघ्र ही शिवजीके पास चला जायगा। यह शैवचक्र शिवकी शपथका उल्लंघन करनेवाले मेरे पास मुझपर सहसा बिना प्रहार किये हुए ही अबतक स्थित है, यही उनकी महान् कृपा है॥ ४०-४१॥

अब यह चक्र निश्चित रूपसे मेरे पास नहीं रहेगा और अग्निकी लपटोंसे व्याप्त होकर इस समय शीघ्र ही चला जायगा। हमलोगोंके द्वारा शीघ्रतासे आदरपूर्वक पूजा किये जानेपर भी महान् क्रोधसे भरे हुए ये वीरभद्र हमारी रक्षा नहीं करेंगे॥ ४२-४३॥

हाय! यह बड़े दुःखकी बात है कि असमयमें ही हमलोगोंके लिये प्रलय आ गया है। इस समय आपका और हमारा विनाश उपस्थित हो गया है॥ ४४॥

इस समय त्रिलोकीमें हमारी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है, भला शंकरके द्रोहीको शरण देनेवाला संसारमें कौन होगा? शरीरका नाश हो जानेपर भी [शिवद्रोहके कारण] उन्हें यमकी यातनाएँ प्राप्त होती हैं। बहुत दुःख देनेवाली उन यातनाओंको सहा नहीं जा सकता॥ ४५-४६॥

शिवद्रोहीको देखकर यमराज स्वयं दाँत पीसते हुए सन्तप्त तैलपूर्ण कड़ाहोंमें डाल देते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। शपथके बाद मैं शीघ्र ही जानेको उद्यत था, किंतु दुष्टके संसर्गरूपी पापके कारण ही नहीं गया॥ ४७-४८॥

यदद्य क्रियतेऽस्माभिः पलायनमितस्तदा।
शार्वो नाकर्षकः शस्त्रैरस्मानाकर्षयिष्यति॥ ४९
स्वर्गे वा भुवि पाताले यत्र कुत्रापि वा यतः।
श्रीवीरभद्रशस्त्राणां गमनं न हि दुर्लभम्॥ ५०

यदि इस समय हमलोग भागनेका प्रयास भी करें, तो कर्षण करनेवाले शिवभक्त वीरभद्र अपने शस्त्रोंसे हमें खींच लेंगे; क्योंकि स्वर्ग, पृथिवी, पातालमें जहाँ कहीं भी वीरभद्रके शस्त्रोंका जाना असम्भव नहीं है॥ ४९-५०॥

यावन्तश्च गणाः सन्ति श्रीरुद्रस्य त्रिशूलिनः।
तावतामपि सर्वेषां शक्तिरेतादृशी ध्रुवम्॥ ५१
श्रीकालभैरवः काश्यां नखाग्रेणैव लीलया।
पुरा शिरश्च चिच्छेद पञ्चमं ब्रह्मणो ध्रुवम्॥ ५२

त्रिशूलधारी श्रीरुद्रके जितने भी गण यहाँ हैं, उन सबकी ऐसी ही शक्ति है। पूर्व समयमें काशीमें कालभैरवने अपने नखके अग्रभागसे लीलापूर्वक ब्रह्माजीके पाँचवें सिरको काट दिया था॥ ५१-५२॥

एतदुक्त्वा स्थितो विष्णुरतित्रस्तमुखाम्बुजः।
वीरभद्रोऽपि संप्राप तदैवाध्वरमंडपम्॥ ५३
एवं ब्रुवति गोविन्द आगतं सैन्यसागरम्।
वीरभद्रेण सहितं ददृशुश्च सुरादयः॥ ५४

ऐसा कहकर अत्यन्त व्याकुल मुखकमलवाले विष्णु चुपचाप बैठ गये, उसी समय वीरभद्र भी यज्ञमण्डपमें आ पहुँचे। विष्णु ऐसा कह ही रहे थे कि वीरभद्रके साथ [विशाल] सैन्यसमूह भी आ गया, जिसे देवता आदिने देखा॥ ५३-५४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे सत्युपाख्याने विष्णुवाक्यवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सती-उपाख्यानमें विष्णुका वचनवर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३५॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

युद्धमें शिवगणोंसे पराजित हो देवताओंका पलायन, इन्द्र आदिके पूछनेपर बृहस्पतिका रुद्रदेवकी अजेयता बताना, वीरभद्रका देवताओंको युद्धके लिये ललकारना, श्रीविष्णु और वीरभद्रकी बातचीत

ब्रह्मोवाच

इन्द्रोऽपि प्रहसन् विष्णुमात्मवादरतं तदा।
वज्रपाणिः सुरैः सार्धं योद्धुकामोऽभवत्तदा॥ १

ब्रह्माजी बोले—उस समय [शिवतत्त्वरूपी] आत्मवादमें रत विष्णुपर हँसते हुए इन्द्र हाथमें गदा धारणकर देवताओंको साथ लेकर [वीरभद्रसे] युद्ध करनेके लिये तत्पर हो गये॥ १॥

तदेन्द्रो गजमारूढो बस्तारूढोऽनलस्तथा।
यमो महिषमारूढो निर्ऋतिः प्रेतमेव च॥ २

उस समय इन्द्र हाथीपर सवार हो गये, अग्नि भेंड़पर सवार हो गये, यम भैंसेपर चढ़ गये और निर्ऋति प्रेतपर सवार हो गये॥ २॥

पाशी च मकरारूढो मृगारूढः सदागतिः।
कुबेरः पुष्पकारूढः संनद्धोऽभूदतन्द्रितः॥ ३
तथान्ये सुरसंघाश्च यक्षचारणगुह्यकाः।
आरुह्य वाहनान्येव स्वानि स्वानि प्रतापिनः॥ ४

वरुण मकरपर, वायु मृगपर और कुबेर पुष्पक विमानपर आरूढ़ हो आलस्यरहित होकर [युद्धके लिये] तैयार हो गये। इसी प्रकार प्रतापी अन्य देवसमूह, यक्ष, चारण तथा गुह्यक भी अपने-अपने वाहनोंपर आरूढ़ होकर तैयार हो गये॥ ३-४॥

तेषामुद्योगमालोक्य दक्षश्चासृङ्मुखस्तथा।
तदन्तिकं समागत्य सकलत्रोऽभ्यभाषत॥ ५

उन देवताओंके उद्योगको देखकर रक्तसे सने हुए मुखवाले वे दक्ष अपनी पत्नीके साथ उनके पास जाकर कहने लगे—॥ ५॥

दक्ष उवाच

युष्मद्बलेनैव मया यज्ञः प्रारंभितो महान्।
सत्कर्मसिद्धये यूयं प्रमाणाः स्युर्महाप्रभाः॥ ६

दक्ष बोले—[हे देवगणो!] मैंने आपलोगोंके ही बलसे इस यज्ञको प्रारम्भ किया है; क्योंकि महातेजस्वी आपलोग ही सत्कर्मकी सिद्धिके लिये प्रमाण हैं॥ ६॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा दक्षवचनं सर्वे देवाः सवासवाः।
निर्ययुस्त्वरितं तत्र युद्धं कर्तुं समुद्यताः॥ ७
अथ देवगणाः सर्वे युयुधुस्ते बलान्विताः।
शक्रादयो लोकपाला मोहिताः शिवमायया॥ ८

ब्रह्माजी बोले—दक्षके उस वचनको सुनकर इन्द्र आदि सभी देवगण युद्ध करनेके लिये तैयार हो निकल पड़े। तदनन्तर समस्त देवगण तथा इन्द्र आदि लोकपाल शिवजीकी मायासे मोहित होकर अपनी-अपनी सेनाओंको साथ लेकर युद्ध करने लगे॥ ७-८॥

देवानां च गणानां च तदासीत्समरो महान्।
तीक्ष्णतोमरनाराचैर्युयुधुस्ते परस्परम्॥ ९
नेदुः शंखाश्च भेर्यश्च तस्मिन् रणमहोत्सवे।
महादुन्दुभयो नेदुः पटहा डिण्डिमादयः॥ १०

उस समय देवताओं तथा शिवगणोंमें महान् युद्ध होने लगा। वे तीखे तोमर तथा बाणोंसे परस्पर युद्ध करने लगे। उस युद्धमहोत्सवमें शंख तथा भेरियाँ बजने लगीं और बड़ी-बड़ी दुन्दुभियाँ, नगाड़े तथा डिण्डिम आदि बजने लगे॥ ९-१०॥

तेन शब्देन महता श्लाघ्यमानास्तदा सुराः।
लोकपालैश्च सहिता जघ्नुस्तान् शिवकिंकरान्॥ ११
इन्द्राद्यैर्लोकपालैश्च गणाः शंभोः पराङ्मुखाः।
कृताश्च मुनिशार्दूल भृगोर्मन्त्रबलेन च॥ १२

उस महान् शब्दसे उत्साहमें भरे हुए समस्त देवगण लोकपालोंको साथ लेकर उन शिवगणोंको मारने लगे। हे मुनिश्रेष्ठ! इन्द्र आदि देवताओं एवं लोकपालोंने भृगुके मन्त्रबलके प्रभावसे शिवजीके गणोंको पराङ्मुख कर दिया॥ ११-१२॥

उच्चाटनं कृतं तेषां भृगुणा यज्वना तदा।
यजनार्थं च देवानां तुष्ट्यर्थं दीक्षितस्य च॥ १३

उस समय याज्ञिक भृगुजीने दीक्षा ग्रहण किये हुए दक्षके तथा देवताओंके सन्तोषहेतु और यज्ञकी निर्विघ्न समाप्तिके लिये उन शिवगणोंका उच्चाटन कर दिया॥ १३॥

पराजितान् स्वकान् दृष्ट्वा वीरभद्रो रुषान्वितः।
भूतप्रेतपिशाचांश्च कृत्वा तानेव पृष्ठतः॥ १४
वृषभस्थान् पुरस्कृत्य स्वयं चैव महाबलः।
महात्रिशूलमादाय पातयामास निर्जरान्॥ १५

इस प्रकार अपने गणोंको पराजित देखकर वीरभद्र क्रोधमें भर उठे और भूत, प्रेत तथा पिशाचोंको पीछे करके वे महाबली वीरभद्र बैलपर सवार सभी शिवगणोंको आगे करके स्वयं त्रिशूल लेकर देवताओंको गिराने लगे॥ १४-१५॥

देवान् यक्षान् साध्यगणान् गुह्यकान् चारणानपि।
शूलघातैश्च ते सर्वे गणा वेगात् प्रजघ्निरे॥ १६
केचिद् द्विधा कृताः खड्गैर्मुद्गरैश्च विपोथिताः।
अन्यैः शस्त्रैरपि सुरा गणैर्भिन्नास्तदाभवन्॥ १७

सभी शिवगणोंने भी त्रिशूलके प्रहारोंसे शीघ्रतापूर्वक देवताओं, यक्षों, साध्यगणों, गुह्यकों तथा चारणोंको मार डाला। गणोंने तलवारोंसे कुछ देवताओंके दो टुकड़े कर दिये, कुछको मुद्गरोंसे पीट डाला और कुछको घायल कर दिया॥ १६-१७॥

एवं पराजिताः सर्वे पलायनपरायणाः।
परस्परं परित्यज्य गता देवास्त्रिविष्टपम्॥ १८

केवलं लोकपालास्ते शक्राद्यास्तस्थुरुत्सुकाः।
सङ्ग्रामे दारुणे तस्मिन् धृत्वा धैर्यं महाबलाः॥ १९

सर्वे मिलित्वा शक्राद्या देवास्तत्र रणाजिरे।
बृहस्पतिं च पप्रच्छुर्विनयावनतास्तदा॥ २०

लोकपाला ऊचुः

गुरो बृहस्पते तात महाप्राज्ञ दयानिधे।
शीघ्रं वद पृच्छतो नः कुतोऽस्माकं जयो भवेत्॥ २१

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां स्मृत्वा शंभुं प्रयत्नवान्।
बृहस्पतिरुवाचेदं महेन्द्रं ज्ञानदुर्बलम्॥ २२

बृहस्पतिरुवाच

यदुक्तं विष्णुना पूर्वं तत्सर्वं जातमद्य वै।
तदेव विवृणोमीन्द्र सावधानतया शृणु॥ २३

अस्ति यश्चेश्वरः कश्चित् फलदः सर्वकर्मणाम्।
कर्तारं भजते सोऽपि न स्वकर्तुः प्रभुर्हि सः॥ २४

न मंत्रौषधयः सर्वे नाभिचारा न लौकिकाः।
न कर्माणि न वेदाश्च न मीमांसाद्वयं तथा॥ २५

अन्यान्यपि च शास्त्राणि नानावेदयुतानि च।
ज्ञातुं नेशं संभवन्ति वदन्त्येवं पुरातनाः॥ २६

न स्वज्ञेयो महेशानः सर्ववेदायुतेन सः।
भक्तैरनन्यशरणैर्नान्यथेति महाश्रुतिः॥ २७

शान्त्या च परया दृष्ट्या सर्वथा निर्विकारया।
तदनुग्रहतो नूनं ज्ञातव्यो हि सदाशिवः॥ २८

परं तु संवदिष्यामि कार्याकार्यविवक्षितौ।
सिद्ध्यंशं च सुरेशान तं शृणु त्वं हिताय वै॥ २९

त्वमिन्द्र बालिशो भूत्वा लोकपालैः सहाद्य वै।
आगतो दक्षयज्ञं हि किं करिष्यसि विक्रमम्॥ ३०

इस प्रकार सभी देवता पराजित होकर भाग चले और एक-दूसरेको रणभूमिमें छोड़कर देवलोकको चले गये। उस अत्यन्त भयानक युद्धमें महाबली इन्द्र आदि लोकपाल ही धैर्य धारण करके उत्साहित होकर खड़े रहे॥ १८-१९॥

उस समय इन्द्र आदि समस्त देवता एकत्र होकर विनयभावसे युक्त हो उस युद्धस्थलमें बृहस्पतिजीसे पूछने लगे—॥ २०॥

लोकपाल बोले—हे गुरो! हे बृहस्पते! हे तात! हे महाप्राज्ञ! हे दयानिधे! शीघ्र बताइये, हमलोग यह पूछते हैं कि हमारी विजय किस प्रकार होगी?॥ २१॥

ब्रह्माजी बोले—उनकी यह बात सुनकर उपायोंको जाननेवाले बृहस्पति शम्भुका स्मरण करके ज्ञानदुर्बल महेन्द्रसे कहने लगे—॥ २२॥

बृहस्पति बोले—हे इन्द्र! भगवान् विष्णुने पहले जो कहा था, वह सब आज घटित हो गया, मैं उसी बातको कह रहा हूँ, सावधानीपूर्वक सुनिये॥ २३॥

समस्त कर्मोंका फल देनेवाले जो कोई ईश्वर हैं, वे भी अपने कर्ता शिवका भजन करते हैं। वे अपने कर्ताके प्रभु नहीं हैं॥ २४॥

न मन्त्र, न औषधियाँ, न समस्त आभिचारिक कर्म, न लौकिक पुरुष, न कर्म, न वेद, न पूर्वमीमांसा, न उत्तरमीमांसा तथा न अनेक वेदोंसे युक्त अन्यान्य शास्त्र ही ईश्वरको जाननेमें समर्थ होते हैं, ऐसा प्राचीन विद्वान् कहते हैं॥ २५-२६॥

अनन्यशरण भक्तोंको छोड़कर दूसरे लोग सम्पूर्ण वेदोंका दस हजार बार स्वाध्याय करके भी महेश्वरको भलीभाँति नहीं जान सकते—यह महाश्रुति है। भगवान् सदाशिवके अनुग्रहसे ही सर्वथा शान्त, निर्विकार एवं उत्तम दृष्टिसे उनको जाना जा सकता है॥ २७-२८॥

तब भी हे सुरेश्वर! उचित-अनुचित कार्यके निर्णयमें सबके कल्याणके लिये सिद्धिके उत्तम अंशका प्रतिपादन करूँगा, आप उसे सुनिये। हे इन्द्र! आप लोकपालोंके साथ नादान बनकर इस समय दक्षयज्ञमें आ गये, किंतु आप कौन-सा पराक्रम करेंगे?॥ २९-३०॥

एते रुद्रसहायाश्च गणाः परमकोपनाः।
आगता यज्ञविघ्नार्थं तं करिष्यन्त्यसंशयम्॥ ३१

भगवान् रुद्रके सहायक ये गण अत्यन्त कुपित होकर यज्ञमें विघ्न डालनेके लिये आये हैं, ये अवश्य ही उसे करेंगे॥ ३१॥

सर्वथा न ह्युपायोऽत्र केषांचिदपि तत्त्वतः।
यज्ञविघ्नविनाशार्थं सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम्॥ ३२

मैं यह सत्य-सत्य कह रहा हूँ कि इस यज्ञमें विघ्ननिवारणके लिये वस्तुतः किसीके भी पास सर्वथा कोई उपाय नहीं है॥ ३२॥

ब्रह्मोवाच

एवं बृहस्पतेर्वाक्यं श्रुत्वा ते हि दिवौकसः।
चिंतामापेदिरे सर्वे लोकपालाः सवासवाः॥ ३३
ततोऽब्रवीद् वीरभद्रो महावीरगणैर्वृतः।
इन्द्रादीन् लोकपालांस्तान् स्मृत्वा मनसि शंकरम्॥ ३४

ब्रह्माजी बोले—बृहस्पतिकी इस बातको सुनकर स्वर्गमें रहनेवाले इन्द्रसहित वे समस्त लोकपाल चिन्तामें पड़ गये। तब महावीर गणोंसे घिरे हुए वीरभद्र मन-ही-मन भगवान् शंकरका स्मरण करके उन इन्द्र आदि लोकपालोंसे कहने लगे—॥ ३३-३४॥

वीरभद्र उवाच

सर्वे यूयं बालिशत्वादवदानार्थमागताः।
अवदानं प्रयच्छामि आगच्छत ममान्तिकम्॥ ३५

वीरभद्र बोले—आपलोग मूर्खताके कारण ही [इस यज्ञमें] अपना-अपना भाग लेनेके लिये आये हैं। अतः मेरे समीप आइये, मैं आपलोगोंको यज्ञका फल देता हूँ॥ ३५॥

हे शक्र हे शुचे भानो हे शशिन् हे धनाधिप।
हे पाशपाणे हे वायो निर्ऋते यम शेष हे॥ ३६

हे सुरासुरसंघा हीहैत यूयं विचक्षणाः।
अवदानानि दास्यामि आतृप्त्याद्यासतां वरान्॥ ३७

हे शक्र! हे अग्ने! हे सूर्य! हे चन्द्र! हे कुबेर! हे यम! हे वरुण! हे वायो! हे निर्ऋते! हे शेष! हे बुद्धिमान् देव तथा राक्षसगण! आपलोग इधर आइये, मैं आपलोगोंको तृप्त करनेके लिये इसका फल प्रदान करूँगा॥ ३६-३७॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा सितैर्बाणैर्जघानाथ रुषान्वितः।
निखिलांस्तान् सुरान् सद्यो वीरभद्रो गणाग्रणीः।
तैर्बाणैर्निहताः सर्वे वासवाद्याः सुरेश्वराः॥ ३८
पलायनपरा भूत्वा जग्मुस्ते च दिशो दश।
गतेषु लोकपालेषु विद्रुतेषु सुरेषु च।
यज्ञवाटोपकंठे हि वीरभद्रोऽगमद् गणैः॥ ३९

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर गणोंमें श्रेष्ठ वीरभद्रने क्रोधमें भरकर तीक्ष्ण बाणोंसे उन सभी देवताओंको शीघ्र ही घायल कर दिया। उन बाणोंसे घायल होकर इन्द्र आदि वे समस्त सुरेश्वर भागकर दसों दिशाओंमें चले गये। लोकपालोंके चले जानेपर और देवताओंके भाग जानेपर वीरभद्र गणोंके साथ यज्ञशालाके समीप पहुँचे॥ ३८-३९॥

तदा ते ऋषयः सर्वे सुभीता हि रमेश्वरम्।
विज्ञप्तुकामाः सहसा शीघ्रमूचुर्नता भृशम्॥ ४०

उस समय वहाँ उपस्थित समस्त ऋषि अत्यन्त भयभीत होकर रमापति श्रीहरिसे [रक्षाकी] प्रार्थना करनेके लिये सहसा विनम्र हो शीघ्र कहने लगे—॥ ४०॥

ऋषय ऊचुः

देवदेव रमानाथ सर्वेश्वर महाप्रभो।
रक्ष यज्ञं हि दक्षस्य यज्ञोऽसि त्वं न संशयः॥ ४१
यज्ञकर्मा यज्ञरूपो यज्ञाङ्गो यज्ञरक्षकः।
रक्ष यज्ञमतो रक्ष त्वत्तोऽन्यो न हि रक्षकः॥ ४२

ऋषिगण बोले—हे देवदेव! हे रमानाथ! हे सर्वेश्वर! हे महाप्रभो! दक्षके यज्ञकी रक्षा कीजिये, आप यज्ञस्वरूप हैं, इसमें संशय नहीं है। आप ही यज्ञ करनेवाले, यज्ञरूप, यज्ञके अंग और यज्ञके रक्षक हैं, अतः यज्ञकी रक्षा कीजिये-रक्षा कीजिये, आपके अतिरिक्त कोई दूसरा रक्षक नहीं है॥ ४१-४२॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषामृषीणां वचनं हरिः।
योद्धुकामोऽभवद्विष्णुर्वीरभद्रेण तेन वै॥ ४३

चतुर्भुजः सुसंनद्धो चक्रायुधधरः करैः।
महाबलोऽमरगणैर्यज्ञवाटात्स निर्ययौ॥ ४४

वीरभद्रः शूलपाणिर्नानागणसमन्वितः।
ददर्श विष्णुं संनद्धं योद्धुकामं महाप्रभुम्॥ ४५

तं दृष्ट्वा वीरभद्रोऽभूद् भ्रुकुटीकुटिलाननः।
कृतान्त इव पापिष्ठं मृगेन्द्र इव वारणम्॥ ४६

तथाविधं हरिं दृष्ट्वा वीरभद्रोऽरिमर्दनः।
अवदत्त्वरितः क्रुद्धो गणैर्वीरैः समावृतः॥ ४७

वीरभद्र उवाच

रे रे हरे महादेवशपथोल्लंघनं त्वया।
कथमद्य कृतं चित्ते गर्वः किमभवत्तव॥ ४८

तव श्रीरुद्रशपथोल्लंघने शक्तिरस्ति किम्।
को वा त्वमसि को वा ते रक्षकोऽस्ति जगत्रये॥ ४९

अत्र त्वमागतः कस्माद्वयं तन्नैव विद्महे।
दक्षस्य यज्ञपाता त्वं कथं जातोऽसि तद्वद॥ ५०

दाक्षायण्या कृतं यच्च तन्न दृष्टं किमु त्वया।
प्रोक्तं यच्च दधीचेन श्रुतं तन्न किमु त्वया॥ ५१

त्वं चापि दक्षयज्ञेऽस्मिन् अवदानार्थमागतः।
अवदानं प्रयच्छामि तव चापि महाभुज॥ ५२

वक्षो विदारयिष्यामि त्रिशूलेन हरे तव।
कस्तवास्ति समायातो रक्षकोऽद्य ममान्तिकम्॥ ५३

पातयिष्यामि भूपृष्ठे ज्वालयिष्यामि वह्निना।
दग्धं भवन्तमधुना पेषयिष्यामि सत्वरम्॥ ५४

रे रे हरे दुराचार महेशविमुखाधम।
श्रीमहारुद्रमाहात्म्यं किन्न जानासि पावनम्॥ ५५

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] उन ऋषियोंके इस वचनको सुनकर भगवान् विष्णु वीरभद्रके साथ युद्ध करनेके लिये उद्यत हो गये॥ ४३॥

महाबली चतुर्भुज भगवान् विष्णु हाथोंमें चक्र आदि आयुध धारणकर सम्यक् सावधान होकर देवताओंके साथ यज्ञमण्डपसे बाहर निकले। अनेक गणोंसे समन्वित तथा हाथमें त्रिशूल धारण किये हुए वीरभद्रने महाप्रभु विष्णुको युद्धके लिये तैयार देखा॥ ४४-४५॥

उन्हें देखते ही वीरभद्र टेढ़ी भौंहोंसे युक्त मुखमण्डलवाले हो गये, जैसे पापीको देखकर यमराज और हाथीको देखकर सिंह हो जाता है॥ ४६॥

उस प्रकार श्रीहरिको [युद्धके लिये उद्यत] देखकर वीरगणोंसे घिरे हुए शत्रुनाशक वीरभद्र कुपित होकर शीघ्रतासे कहने लगे—॥ ४७॥

वीरभद्र बोले—हे हरे! आपने आज शिवजीके शपथकी अवहेलना क्यों की? और आपके मनमें घमण्ड क्यों हो गया है? क्या आपमें शिवजीके शपथका उल्लंघन करनेकी शक्ति है? आप कौन हैं? तीनों लोकोंमें आपका रक्षक कौन है?॥ ४८-४९॥

यहाँ किसलिये आये हैं, इसे हम नहीं जान पा रहे हैं। आप दक्षके यज्ञरक्षक क्यों बन गये हैं, इसे बताइये। [इस यज्ञमें] सतीने जो किया, उसे क्या आपने नहीं देखा और दधीचिने जो कहा, उसे क्या आपने नहीं सुना?॥ ५०-५१॥

आप दक्षके इस यज्ञमें अवदान (यज्ञभाग) प्राप्त करनेके लिये आये हुए हैं। हे महाबाहो! मैं [शीघ्र ही] आपको अवदान देता हूँ। हे हरे! मैं त्रिशूलसे आपका वक्ष:स्थल विदीर्ण करूँगा। आपका कौन रक्षक है, वह मेरे समक्ष आये॥ ५२-५३॥

मैं आपको पृथिवीपर धराशायी करूँगा, अग्निसे जला दूँगा और पुनः दग्ध हुए आपको पीस डालूँगा॥ ५४॥

हे हरे! हे दुराचारी! हे महेशविमुख! हे अधम! क्या आप शिवजीके पावन माहात्म्यको नहीं जानते?॥ ५५॥

अथापि त्वं महाबाहो योद्धुकामोऽग्रतः स्थितः।
नेष्यामि पुनरावृत्तिं यदि तिष्ठेस्त्वमात्मना॥ ५६

फिर भी हे महाबाहो! आप युद्धकी कामनासे आगे स्थित हैं। यदि आप [इस युद्धभूमिमें] खड़े रह गये तो मैं आपको उस स्थानपर भेज दूँगा, जहाँसे पुनः लौटना सम्भव नहीं है॥ ५६॥

ब्रह्मोवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वीरभद्रस्य बुद्धिमान्।
उवाच विहसन् प्रीत्या विष्णुस्तत्र सुरेश्वरः॥ ५७

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] उन वीरभद्रकी इस बातको सुनकर बुद्धिमान् सुरेश्वर विष्णु प्रसन्नतापूर्वक हँसते हुए कहने लगे—॥ ५७॥

विष्णुरुवाच

शृणु त्वं वीरभद्राद्य प्रवक्ष्यामि त्वदग्रतः।
न रुद्रविमुखं मां त्वं वद शंकरसेवकम्॥ ५८

विष्णु बोले—हे वीरभद्र! आज आपके सामने मैं जो कह रहा हूँ, उसको सुनिये। आप मुझ शंकरके सेवकको रुद्रविमुख मत कहिये॥ ५८॥

अनेन प्रार्थितः पूर्वं यज्ञार्थं च पुनः पुनः।
दक्षेणाविदितार्थेन कर्मनिष्ठेन मौढ्यतः॥ ५९

कर्ममें निष्ठा रखनेवाले अज्ञानी इन दक्षने मूर्खतावश पहले मुझसे यज्ञके लिये बार-बार प्रार्थना की थी॥ ५९॥

अहं भक्तपराधीनस्तथा सोऽपि महेश्वरः।
दक्षो भक्तो हि मे तात तस्मादत्रागतो मखे॥ ६०

मैं भक्तके अधीन हूँ और वे भगवान् महेश्वर भी भक्तके अधीन हैं। हे तात! दक्ष मेरे भक्त हैं, इसलिये मैं यज्ञमें आया हूँ॥ ६०॥

शृणु प्रतिज्ञां मे वीर रुद्रकोपसमुद्भव।
रुद्रतेजःस्वरूपो हि सुप्रतापालय प्रभो॥ ६१

रुद्रके कोपसे उत्पन्न होनेवाले हे वीर! हे महान् प्रतापके आलय! हे प्रभो! आप रुद्रतेजस्वरूप हैं, आप मेरी प्रतिज्ञा सुनिये॥ ६१॥

अहं निवारयामि त्वां त्वं च मां विनिवारय।
तद्भविष्यति यद्भावि करिष्येऽहं पराक्रमम्॥ ६२

मैं [यज्ञकी रक्षाके लिये] आपसे युद्ध करूँगा और आप भी [इस यज्ञके विध्वंसके लिये] मुझसे युद्ध कीजिये। जो होनहार होगा, वह होगा, मैं अवश्य ही पराक्रम प्रकट करूँगा॥ ६२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तवति गोविन्दे प्रहस्य स महाभुजः।
अवदत्सुप्रसन्नोऽस्मि त्वां ज्ञात्वास्मत्प्रभोः प्रियम्॥ ६३
ततो विहस्य सुप्रीतो वीरभद्रो गणाग्रणीः।
प्रश्रयावनतोऽवादीद्विष्णुं देवं हि तत्त्वतः॥ ६४

ब्रह्माजी बोले—विष्णुके इस प्रकार कहनेपर महाबाहु वीरभद्रने हँसते हुए कहा—[हे विष्णो!] मैं आपको अपने प्रभु शिवका प्रिय जानकर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तदनन्तर गणोंमें श्रेष्ठ वीरभद्रने प्रसन्नतापूर्वक हँसते हुए बड़े विनयसे भगवान् विष्णुसे कहा—॥ ६३-६४॥

वीरभद्र उवाच

तव भावपरीक्षार्थमित्युक्तं मे महाप्रभो।
इदानीं तत्त्वतो वच्मि शृणु त्वं सावधानतः॥ ६५

वीरभद्र बोले—हे महाप्रभो! मैंने आपके भावकी परीक्षाके लिये ही ऐसा वचन कहा था, अब मैं यथार्थ बात कह रहा हूँ, उसको आप सावधानीपूर्वक सुनिये॥ ६५॥

यथा शिवस्तथा त्वं हि यथा त्वं च तथा शिवः।
इति वेदा वर्णयन्ति शिवशासनतो हरे॥ ६६

हे हरे! जैसे शिव हैं, वैसे आप हैं और जैसे आप हैं, वैसे शिव हैं। शिवके आदेशसे वेद ऐसा ही कहते हैं॥ ६६॥

शिवाज्ञया वयं सर्वे सेवकाः शंकरस्य वै।
तथापि च रमानाथ प्रवादोचितमादरात्॥ ६७

हे रमानाथ! भगवान् शिवकी आज्ञाके अनुसार हम सब लोग उनके सेवक ही हैं, तथापि मैंने जो बात कही है, वह इस वाद-विवादके अवसरके अनुकूल ही है। आप प्रत्येक बातको आदरपूर्वक ही समझें॥ ६७॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य वीरभद्रस्य सोऽच्युतः।
प्रहस्य चेदं प्रोवाच वीरभद्रहितं वचः॥ ६८

ब्रह्माजी बोले—उन वीरभद्रका यह वचन सुनकर भगवान् विष्णु हँसकर और उनके लिये हितकर यह वचन कहने लगे—॥ ६८॥

विष्णुरुवाच

युद्धं कुरु महावीर मया सार्धमशङ्कितः।
तवास्त्रैः पूर्यमाणोऽहं गमिष्यामि स्वमाश्रमम्॥ ६९

विष्णु बोले—हे महावीर! आप निःशंक होकर मेरे साथ युद्ध कीजिये, आपके अस्त्रोंसे शरीरके भर जानेपर ही मैं अपने आश्रमको जाऊँगा॥ ६९॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा हि विरम्यासौ सन्नद्धोऽभूद् रणाय च।
स्वगणैर्वीरभद्रोऽपि सन्नद्धोऽभून्महाबलः॥ ७०

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर वे विष्णु चुप होकर युद्धके लिये तैयार हो गये और महाबली वीरभद्र भी अपने गणोंके साथ युद्धके लिये उद्यत हो गये॥ ७०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे विष्णुवीरभद्रसंवादो नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें विष्णुवीरभद्रसंवाद-वर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३६॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

गणोंसहित वीरभद्रद्वारा दक्षयज्ञका विध्वंस, दक्षवध, वीरभद्रका वापस कैलास पर्वतपर जाना, प्रसन्न भगवान् शिवद्वारा उसे गणाध्यक्ष पद प्रदान करना

ब्रह्मोवाच

वीरभद्रोऽथ युद्धे वै विष्णुना स महाबलः।
संस्मृत्य शंकरं चित्ते सर्वापद्विनिवारणम्॥ १
आरुह्य स्यन्दनं दिव्यं सर्ववैरिविमर्दनः।
गृहीत्वा परमास्त्राणि सिंहनादं जगर्ज ह॥ २

ब्रह्माजी बोले—सभी शत्रुओंके विनाशक, महाबलवान् वीरभद्र भगवान् विष्णुके साथ युद्धमें सभी प्रकारके दुःखोंको दूर करनेवाले भगवान् शंकरका अपने हृदयमें ध्यान करके दिव्य रथपर आरूढ़ होकर बड़े महान् अस्त्रोंको लेकर सिंहके समान गर्जन करने लगे॥ १-२॥

विष्णुश्चापि महाघोषं पाञ्चजन्याभिधं निजम्।
दध्मौ बली महाशंखं स्वकीयान् हर्षयन्निव॥ ३

बलशाली विष्णु भी अपने योद्धाओंको उत्साहित करते हुए महान् शब्द करनेवाले अपने पांचजन्य नामक शंखको बजाने लगे॥ ३॥

तच्छ्रुत्वा शंखनिर्ह्रादं देवा ये च पलायिताः।
रणं हित्वा गताः पूर्वं ते द्रुतं पुनरराययुः॥ ४

उस शंखकी ध्वनिको सुनकर जो देवता पहले युद्धभूमि छोड़कर भाग खड़े हुए थे, वे तत्क्षण लौटकर आ गये॥ ४॥

वीरभद्रगणैस्ते तु लोकपालाः सवासवाः।
युद्धं चक्रुस्तथा सिंहनादं कृत्वा बलान्विताः॥ ५

तब सेनासहित समस्त इन्द्र आदि लोकपाल सिंहगर्जना करके वीरभद्रके गणोंके साथ युद्ध करने लगे॥ ५॥

गणानां लोकपालानां द्वन्द्वयुद्धं भयावहम्।
अभवत्तत्र तुमुलं गर्जतां सिंहनादतः॥ ६

उस समय सिंहनाद करते हुए गणों एवं लोकपालोंके बीच भयंकर घनघोर द्वन्द्वयुद्ध छिड़ गया॥ ६॥

नन्दिना युयुधे शक्रोऽनलो वै चाश्मना तथा।
कुबेरोऽपि हि कूष्माण्डपतिना युयुधे बली॥ ७
तदेन्द्रेण हतो नन्दी वज्रेण शतपर्वणा॥ ८
नन्दिना च हतः शक्रस्त्रिशूलेन स्तनान्तरे॥ ९

इन्द्र नन्दीके साथ युद्ध करने लगे, अग्नि अश्माके साथ और बलशाली कुबेर कूष्माण्डपतिके साथ युद्ध करने लगे। तब इन्द्रने सौ पर्ववाले वज्रसे नन्दीपर प्रहार किया। नन्दीने भी त्रिशूलसे इन्द्रकी छातीमें प्रहार किया॥ ७—९॥

बलिनौ द्वावपि प्रीत्या युयुधाते परस्परम्।
नानाघातांश्च कुर्वन्तौ नन्दिशक्रौ जिगीषया॥ १०

बलवान् इन्द्र और नन्दी दोनों एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छासे अनेक प्रकारके प्रहार करते हुए परस्पर प्रीतिपूर्वक लड़ने लगे॥ १०॥

शक्त्या जघान चाश्मानं शुचिः परमकोपनः।
सोऽपि शूलेन तं वेगाच्छितधारेण पावकम्॥ ११

अत्यन्त क्रोधयुक्त अग्निने अपनी शक्तिसे अश्मापर प्रहार किया तथा उसने भी अग्निपर बड़े वेगसे तीक्ष्ण धारवाले त्रिशूलसे प्रहार किया॥ ११॥

यमेन सह सङ्ग्रामं महालोको गणाग्रणीः।
चकार तुमुलं वीरो महादेवं स्मरन्मुदा॥ १२

गणोंमें श्रेष्ठ यूथपति महालोक प्रीतिपूर्वक शिवजीका ध्यान करते हुए यमराजके साथ घनघोर युद्ध करने लगे॥ १२॥

नैर्ऋतेन समागम्य चंडश्च बलवत्तरः।
युयुधे परमास्त्रैश्च नैर्ऋतिं निविडम्बयन्॥ १३

महान् बलशाली चण्ड आ करके निर्ऋतिको तिरस्कृत करते हुए बड़े-बड़े अस्त्रोंसे उनके साथ युद्ध करने लगे॥ १३॥

वरुणेन समं वीरो मुंडश्चैव महाबलः।
युयुधे परया शक्त्या त्रिलोकीं विस्मयन्निव॥ १४

महाबलवान् मुण्ड भी त्रिलोकीको विस्मित करते हुए अपनी उत्तम शक्तिसे वरुणके साथ युद्ध करने लगे॥ १४॥

वायुना च हतो भृङ्गी स्वास्त्रेण परमौजसा।
भृङ्गिणा च हतो वायुस्त्रिशूलेन प्रतापिना॥ १५

वायुने अपने परम तेजस्वी अस्त्रसे भृंगीको आहत कर दिया और प्रतापी भृंगीने भी त्रिशूलसे वायुपर प्रहार किया॥ १५॥

कुबेरेणैव सङ्गम्य कूष्मांडपतिरादरात्।
युयुधे बलवान् वीरो ध्यात्वा हृदि महेश्वरम्॥ १६

वीर कूष्माण्डपतिने पहुँचकर हृदयमें आदरपूर्वक शिवजीका ध्यान करके कुबेरके साथ युद्ध करना प्रारम्भ किया॥ १६॥

योगिनीचक्रसंयुक्तो भैरवीनायको महान्।
विदार्य देवानखिलान् पपौ शोणितमद्भुतम्॥ १७

महान् भैरवीपति योगिनियोंके समूहको साथ लेकर समस्त देवताओंको विदीर्ण करके विचित्र रूपसे उनका रक्त पीने लगे॥ १७॥

क्षेत्रपालास्तथा तत्र बुभुक्षुः सुरपुङ्गवान्।
काली चापि विदार्यैव तान्पपौ रुधिरं बहु॥ १८

क्षेत्रपाल श्रेष्ठ देवताओंका भक्षण करने लगे और काली भी उन देवताओंको विदीर्णकर रक्त पीने लगीं॥ १८॥

अथ विष्णुर्महातेजा युयुधे तैश्च शत्रुहा।
चक्रं चिक्षेप वेगेन दहन्निव दिशो दश॥ १९

तब शत्रुओंका संहार करनेवाले भगवान् विष्णु उनके साथ युद्ध करने लगे और उन्होंने दसों दिशाओंको दग्ध करते हुए वेगपूर्वक [अपना] चक्र फेंका॥ १९॥

क्षेत्रपालः समायान्तं चक्रमालोक्य वेगतः।
तत्रागत्यागतो वीरश्चाग्रसत्सहसा बली॥ २०

चक्रको वेगपूर्वक आते हुए देखकर बलवान् क्षेत्रपालने सहसा वहाँ पहुँचकर उस चक्रको ग्रसित कर लिया॥ २०॥

चक्रं ग्रसितमालोक्य विष्णुः परपुरञ्जयः।
मुखं तस्य परामृज्य तमुद्गालितवानरिम्॥ २१

शत्रुओंके नगरको जीतनेवाले भगवान् विष्णुने अपने चक्रको ग्रसित हुआ देखकर उसके मुखको मसलकर उस शत्रुके मुखसे चक्रको उगलवा लिया॥ २१॥

स्वचक्रमादाय महानुभावः
चुकोप चातीव भवैकभर्ता।
महाबली तैर्युयुधे प्रवीरैः
सङ्क्रुद्धनानायुधधारकोऽस्त्रैः ॥ २२

तब संसारके एकमात्र स्वामी, महानुभाव तथा महाबलवान् भगवान् विष्णु अत्यन्त कुपित हो उठे। वे क्रोधित होकर अपने चक्र तथा अनेक प्रकारके अस्त्रोंको लेकर उन अस्त्रोंसे उन महावीर गणोंके साथ युद्ध करने लगे॥ २२॥

चक्रे महारणं विष्णुः तैः सार्धं युयुधे मुदा।
नानायुधानि संक्षिप्य तुमुलं भीमविक्रमम्॥ २३

विष्णुने प्रचण्ड पराक्रमके साथ भयंकर महायुद्ध किया। वे अनेक प्रकारके अस्त्र चलाकर प्रसन्नतापूर्वक उनके साथ युद्ध कर रहे थे॥ २३॥

अथ ते भैरवाद्याश्च युयुधुस्तेन भूरिशः।
नानास्त्राणि विमुञ्चन्तः संक्रुद्धाः परमौजसा॥ २४

वे भैरव आदि गण भी अत्यधिक क्रोधमें भरकर महान् ओजसे अनेक प्रकारके अस्त्रोंको छोड़ते हुए उनके साथ युद्ध करने लगे॥ २४॥

इत्थं तेषां रणं दृष्ट्वा हरिणातुलतेजसा।
विनिवृत्य समागम्य तान्स्वयं युयुधे बली॥ २५

इस प्रकार अतुलनीय तेजवाले विष्णुके साथ होते हुए उनके युद्धको देखकर बलवान् वीरभद्र लौटकर उनके पास पहुँचकर विष्णुके साथ स्वयं युद्ध करने लगे॥ २५॥

अथ विष्णुर्महातेजाश्चक्रमुद्यम्य मूर्च्छितः।
युयुधे भगवांस्तेन वीरभद्रेण माधवः॥ २६

उसके बाद महातेजस्वी माधव भगवान् विष्णु अपने चक्रको लेकर कुपित हो उन वीरभद्रके साथ युद्ध करने लगे॥ २६॥

तयोः समभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम्।
महावीराब्धिपत्योस्तु नानास्त्रधरयोर्मुने॥ २७

हे मुने! [उस समय] अनेक प्रकारके अस्त्र धारण करनेवाले महावीर वीरभद्र तथा सागरपति विष्णु—उन दोनोंका रोमांचकारी घनघोर युद्ध होने लगा॥ २७॥

विष्णोर्योगबलात्तस्य देहादेव सुदारुणाः।
शङ्खचक्रगदाहस्ता असंख्याताश्च जज्ञिरे॥ २८

विष्णुके योगबलसे उनके शरीरसे शंख, चक्र और गदा हाथोंमें धारण किये हुए असंख्य वीरगण प्रकट हो गये॥ २८॥

ते चापि युयुधुस्तेन वीरभद्रेण भाषता।
विष्णुवत् बलवन्तो हि नानायुधधरा गणाः॥ २९

विष्णुके समान ही बलशाली तथा नाना प्रकारके अस्त्रोंको धारण किये हुए वे वीरगण वार्तालाप करते हुए वीरभद्रके साथ युद्ध करने लगे॥ २९॥

तान्सर्वानपि वीरोऽसौ नारायणसमप्रभान्।
भस्मीचकार शूलेन हत्वा स्मृत्वा शिवं प्रभुम्॥ ३०

वीरभद्रने भगवान् शंकरका स्मरण करके विष्णुके समान तेजस्वी उन सभीको अपने त्रिशूलसे मारकर भस्म कर दिया॥ ३०॥

ततश्चोरसि तं विष्णुं लीलयैव रणाजिरे।
जघान वीरभद्रो हि त्रिशूलेन महाबली॥ ३१

तत्पश्चात् उन महाबली वीरभद्रने युद्धभूमिमें ही लीलापूर्वक विष्णुकी छातीपर त्रिशूलसे प्रहार किया॥ ३१॥

तेन घातेन सहसा विहतः पुरुषोत्तमः।
पपात च तदा भूमौ विसंज्ञोऽभून्मुने हरिः॥ ३२

हे मुने! पुरुषोत्तम श्रीहरि त्रिशूलके प्रहारसे घायल होकर सहसा भूमिपर गिर पड़े और अचेत हो गये॥ ३२॥

ततो जज्ञेऽद्भुतं तेजः प्रलयानलसन्निभम्।
त्रैलोक्यदाहकं तीव्रं वीराणामपि भीकरम्॥ ३३

तब प्रलयाग्निके समान तीनों लोकोंको जला देनेवाला और वीरोंको भयभीत करनेवाला अद्भुत तेज उत्पन्न हुआ॥ ३३॥

क्रोधरक्तेक्षणः श्रीमान् पुनरुत्थाय स प्रभुः।
प्रहर्तुं चक्रमुद्यम्य ह्यतिष्ठत्पुरुषर्षभः॥ ३४

पुरुषश्रेष्ठ श्रीमान् भगवान् विष्णु पुनः उठकर क्रोधसे नेत्रोंको लाल किये हुए अपने चक्रको उठाकर [वीरभद्रको] मारनेके लिये खड़े हो गये॥ ३४॥

तस्य चक्रं महारौद्रं कालादित्यसमप्रभम्।
व्यष्टम्भयददीनात्मा वीरभद्रः शिवः प्रभुः॥ ३५

तब दीनतारहित चित्तवाले शिवस्वरूप वीरभद्रने प्रलयकालीन आदित्यके समान महातेजस्वी उस चक्रको स्तम्भित कर दिया॥ ३५॥

मुने शंभोः प्रभावात्तु मायेशस्य महाप्रभोः।
न चचाल हरेश्चक्रं करस्थं स्तंभितं ध्रुवम्॥ ३६

हे मुने! मायापति महाप्रभु शंकरके प्रभावसे विष्णुके हाथमें स्थित चक्र चल नहीं पाया, वह निश्चितरूपसे स्तम्भित हो गया था॥ ३६॥

अथ विष्णुर्गणेशेन वीरभद्रेण भाषता।
अतिष्ठत् स्तंभितस्तेन शृङ्गवानिव निश्चलः॥ ३७

तब भाषण करते हुए उन गणेश्वर वीरभद्रने विष्णुको भी स्तम्भित कर दिया और वे शिखरयुक्त पर्वतके समान खड़े रह गये॥ ३७॥

ततो विष्णुः स्तंभितो हि वीरभद्रेण नारद।
यज्वोपमन्त्रणमनुं निःस्तंभनकरं जपन्॥ ३८

हे नारद! वीरभद्रने जब भगवान् विष्णुको स्तम्भित कर दिया, तब यह देखकर याज्ञिकोंने स्तम्भनसे मुक्त करानेवाले मन्त्रका जप करके उन्हें स्तम्भनसे मुक्त कर दिया॥ ३८॥

ततः स्तंभननिर्मुक्तः शार्ङ्गधन्वा रमेश्वरः।
शार्ङ्गं जग्राह स क्रुद्धः स्वधनुः सशरं मुने॥ ३९

हे मुने! तदनन्तर स्तम्भनसे मुक्त होनेपर शार्ङ्ग नामक धनुष धारण करनेवाले रमापतिने कुपित होकर बाणसहित अपने धनुषको उठा लिया॥ ३९॥

त्रिभिश्च धर्षितं बाणैस्तेन शार्ङ्गधनुर्हरेः।
वीरभद्रेण तत्तात त्रिधाभूत्तत्क्षणान्मुने॥ ४०

हे तात! हे मुने! उन वीरभद्रने तीन बाणोंसे विष्णुके शार्ङ्ग धनुषपर प्रहार किया और वह उसी क्षण तीन टुकड़ोंमें विभक्त हो गया॥ ४०॥

अथ विष्णुर्महावाण्या बोधितस्तं महागणम्।
असह्यवर्चसं ज्ञात्वा ह्यन्तर्धातुं मनो दधे॥ ४१

तब महावाणीद्वारा बोधित हुए विष्णुने उन महागण वीरभद्रको असह्य तेजसे सम्पन्न जानकर अन्तर्धान होनेका मनमें विचार किया॥ ४१॥

ज्ञात्वा च तत्सर्वमिदं भविष्यं
सतीकृतं दुष्प्रसहं परेषाम्।
गताः स्वलोकं स्वगणान्वितास्तु
स्मृत्वा शिवं सर्वपतिं स्वतन्त्रम्॥ ४२

सतीके द्वारा किये गये आत्मदाहके समस्त परिणामको, जो शत्रुओंके लिये असह्य था, जानकर सभी लोग सबके स्वामी स्वतन्त्र शिवजीका स्मरण करके अपने गणोंके साथ अपने-अपने लोकको चले गये॥ ४२॥

सत्यलोकगतश्चाहं पुत्रशोकेन पीडितः।
अचिन्तयं सुदुःखार्तो मया किं कार्यमद्य वै॥ ४३

मैं भी पुत्रके शोकसे पीड़ित हो सत्यलोक चला आया और अत्यन्त दुःखसे व्याकुल होकर विचार करने लगा कि मुझे अब क्या करना चाहिये॥ ४३॥

विष्णौ मयि गते चैव देवाश्च मुनिभिः सह।
विनिर्जिता गणैः सर्वे ये ते यज्ञोपजीविनः॥ ४४

तमुपद्रवमालक्ष्य विध्वस्तं च महामखम्।
मृगस्वरूपो यज्ञो हि महाभीतोऽपि दुद्रुवे॥ ४५

तं तदा मृगरूपेण धावन्तं गगनं प्रति।
वीरभद्रः समादाय विशिरस्कमथाकरोत्॥ ४६

ततः प्रजापतिं धर्मं कश्यपं च प्रगृह्य सः।
अरिष्टनेमिनं वीरो बहुपुत्रं मुनीश्वरम्॥ ४७

मुनिमङ्गिरसं चैव कृशाश्वं च महागणः।
जघान मूर्ध्नि पादेन दत्तं च मुनिपुङ्गवम्॥ ४८

सरस्वत्याश्च नासाग्रं देवमातुस्तथैव च।
चिच्छेद करजाग्रेण वीरभद्रः प्रतापवान्॥ ४९

ततोऽन्यानपि देवादीन् विदार्य पृथिवीतले।
पातयामास सोऽयं वै क्रोधाक्रांतातिलोचनः॥ ५०

वीरभद्रो विदार्यापि देवान्मुख्यान्मुनीनपि।
नाभूच्छांतो द्रुतक्रोधः फणिराडिव मंडितः॥ ५१

वीरभद्रोद्धृताराति: केसरीव वनद्विपान्।
दिशो विलोकयामास कः कुत्रास्तीत्यनुक्षणम्॥ ५२

व्यपोथयद् भृगुं यावन्मणिभद्रः प्रतापवान्।
पदाक्रम्योरसि तदाकार्षीत्तच्छ्मश्रुलुञ्चनम्॥ ५३

चंडश्चोत्पाटयामास पूष्णो दंतान् प्रवेगतः।
शप्यमाने हरे पूर्वं योऽहसद्दर्शयन्दतः॥ ५४

नन्दी भगस्य नेत्रे हि पातितस्य रुषा भुवि।
उज्जहार दक्षमक्ष्णा यः शपन्तमसूसुचत्॥ ५५

विडंबिता स्वधा तत्र सा स्वाहा दक्षिणा तथा।
मंत्रास्तंत्रास्तथा चान्ये तत्रस्था गणनायकैः॥ ५६

ववृषुस्ते पुरीषाणि वितानाग्नौ रुषा गणाः।
अनिर्वाच्यं तदा चक्रुर्गणा वीरास्तमध्वरम्॥ ५७

मेरे तथा श्रीविष्णुके चले जानेपर जो भी यज्ञोपजीवी देवता थे, मुनियोंसहित उन सबको शिवगणोंने जीत लिया। उस उपद्रवको और महायज्ञको विध्वस्त हुआ देखकर यज्ञदेव अत्यन्त भयभीत हो मृगका रूप धारण करके भागने लगे॥ ४४-४५॥

मृगरूपमें आकाशकी ओर भागते हुए उन यज्ञको वीरभद्रने पकड़कर सिरविहीन कर दिया॥ ४६॥

उसके बाद महागण वीरभद्रने प्रजापति, धर्म, कश्यप, अनेक पुत्रोंवाले मुनीश्वर अरिष्टनेमि, मुनि अंगिरा, कृशाश्व तथा महामुनि दत्तके सिरपर पैरसे प्रहार किया॥ ४७-४८॥

प्रतापी वीरभद्रने सरस्वती तथा देवमाता अदितिकी नासिकाके अग्रभागको अपने नखाग्रसे विदीर्ण कर दिया। तत्पश्चात् क्रोधके कारण चढ़ी हुई आँखोंवाले उन वीरभद्रने अन्यान्य देवताओंको भी विदीर्णकर उन्हें पृथिवीपर गिरा दिया॥ ४९-५०॥

मुख्य-मुख्य देवताओं और मुनियोंको विदीर्ण कर देनेपर भी वे शान्त नहीं हुए। महान् क्रोधसे भरे हुए वे नागराजकी भाँति सुशोभित हो रहे थे॥ ५१॥

जैसे सिंह वनके हाथियोंकी ओर देखता है, उसी प्रकार शत्रुओंको मारकर भी वे वीरभद्र सभी दिशाओंमें देखने लगे, कौन शत्रु कहाँ है॥ ५२॥

उसी समय प्रतापी मणिभद्रने भृगुको पटक दिया और उनकी छातीपर पैरसे प्रहार करके उनकी दाढ़ी नोंच ली॥ ५३॥

चण्डने बड़े वेगसे पूषाके दाँत उखाड़ लिये; जो पूर्वकालमें महादेवजीको [दक्षद्वारा] शाप दिये जानेपर दाँत दिखाकर हँस रहे थे॥ ५४॥

नन्दीने भगको रोषपूर्वक पृथ्वीपर गिरा दिया और उनकी दोनों आँखें निकाल लीं; जिन्होंने [शिवको] शाप देते हुए दक्षकी ओर नेत्रसे संकेत किया था॥ ५५॥

गणेश्वरोंने स्वधा, स्वाहा, दक्षिणा, मन्त्र, तन्त्र तथा अन्य जो भी वहाँ उपस्थित थे, सबको तहस-नहस कर दिया॥ ५६॥

उन गणोंने क्रोधित होकर वितानाग्निमें विष्ठाकी वर्षा कर दी। इस प्रकार वीर गणोंने यज्ञकी ऐसी दुर्गति कर दी, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता॥ ५७॥

अन्तर्वेद्यन्तरगतं निलीनं तद्भयाद् बलात्।
आनिनाय समाज्ञाय वीरभद्रः स्वभूःसुतम्॥ ५८

ब्रह्मपुत्र दक्ष उनके भयके मारे अन्तर्वेदीके भीतर छिप गये थे, वीरभद्र पता लगाकर बलपूर्वक उन्हें खींच लाये॥ ५८॥

कपोलेऽस्य गृहीत्वा तं खड्गेनोपहृतं शिरः।
अभेद्यमभवत्तस्य तच्च योगप्रभावतः॥ ५९

उनका गाल पकड़कर उन्होंने उनके मस्तकपर तलवारसे आघात किया, परंतु योगके प्रभावसे उनका सिर फटा नहीं, अभेद्य ही रह गया॥ ५९॥

अभेद्यं तच्छिरो मत्वा शस्त्रास्त्रैश्च तु सर्वशः।
करेण त्रोटयामास पद्भ्यामाक्रम्य चोरसि॥ ६०

तब उनके सिरको अस्त्र-शस्त्रोंसे अभेद्य समझकर उन्होंने पैरोंसे दक्षकी छातीको दबाकर हाथसे सिरको तोड़ दिया॥ ६०॥

तच्छिरस्तस्य दुष्टस्य दक्षस्य हरवैरिणः।
अग्निकुंडे प्रचिक्षेप वीरभद्रो गणाग्रणीः॥ ६१

तदनन्तर गणोंमें श्रेष्ठ वीरभद्रने उन शिवद्रोही दुष्ट दक्षके उस सिरको अग्निकुण्डमें डाल दिया॥ ६१॥

रेजे तदा वीरभद्रस्त्रिशूलं भ्रामयन्करे।
क्रुद्धा रणाक्षसंवर्ताः प्रज्वाल्य पर्वतोपमाः॥ ६२

उस समय वीरभद्र अपने हाथमें त्रिशूल घुमाते हुए इस प्रकार शोभित हो रहे थे, मानो युद्धभूमिमें संवर्ताग्नि सबको जलाकर क्रोधमें भरी हुई पर्वतके समान स्थित हो॥ ६२॥

अनायासेन हत्वैतान् वीरभद्रस्ततोऽग्निना।
ज्वालयामास सक्रोधो दीप्ताग्निः शलभानिव॥ ६३

जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि पतिंगोंको जला डालती है, उसी प्रकार वीरभद्रने क्रोधित होकर बिना परिश्रम किये ही इन सबको मारकर अग्निसे जला डाला॥ ६३॥

वीरभद्रस्ततो दग्धान् दृष्ट्वा दक्षपुरोगमान्।
अट्टाट्टहासमकरोत् पूरयंश्च जगत्त्रयम्॥ ६४

वीरश्रिया वृतस्तत्र ततो नन्दनसंभवा।
पुष्पवृष्टिरभूद्दिव्या वीरभद्रे गणान्विते॥ ६५

तत्पश्चात् दक्ष आदिको जलाकर वीरोंकी शोभासे युक्त, त्रिलोकीको गुंजित करते हुए वीरभद्रने भयानक अट्टहास किया। तदनन्तर वहाँ गणोंसहित वीरभद्रके ऊपर नन्दनवनकी दिव्य पुष्पवृष्टि होने लगी॥ ६४-६५॥

ववुर्गंधवहाः शीताः सुगन्धाः सुखदाः शनैः।
देवदुंदुभयो नेदुः सममेव ततः परम्॥ ६६

शीतल, सुगन्धित तथा सुखदायक हवाएँ धीरे-धीरे बहने लगीं और उसीके साथ देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं॥ ६६॥

कैलासं स ययौ वीरः कृतकार्यस्ततः परम्।
विनाशितदृढध्वांतो भानुमानिव सत्वरम्॥ ६७

तदनन्तर घोर अन्धकारका नाश करनेवाले सूर्यकी भाँति वे वीरभद्र दक्ष और उनके यज्ञका विनाश करके कृतकार्य हो तुरंत कैलासपर्वतपर चले गये॥ ६७॥

कृतकार्यं वीरभद्रं दृष्ट्वा संतुष्टमानसः।
शंभुर्वीरगणाध्यक्षं चकार परमेश्वरः॥ ६८

कार्यको पूर्ण किये हुए वीरभद्रको देखकर परमेश्वर शिवजी मन-ही-मन प्रसन्न हुए और उन्होंने वीरभद्रको गणोंका अध्यक्ष बना दिया॥ ६८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे यज्ञविध्वंसवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें यज्ञविध्वंसवर्णन नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३७॥

अथाष्टत्रिंशोऽध्यायः

दधीचि मुनि और राजा क्षुवके विवादका इतिहास, शुक्राचार्यद्वारा दधीचिको महामृत्युंजयमन्त्रका उपदेश, मृत्युंजयमन्त्रके अनुष्ठानसे दधीचिको अवध्यताकी प्राप्ति

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य विधेरमितधीमतः।
पप्रच्छ नारदः प्रीत्या विस्मितस्तं द्विजोत्तमः॥ १

सूतजी बोले—अत्यन्त बुद्धिमान् ब्रह्माका यह वचन सुनकर द्विजश्रेष्ठ नारद विस्मित होकर प्रसन्नतापूर्वक उनसे पूछने लगे॥ १॥

नारद उवाच

शिवं विहाय दक्षस्य सुरैर्यज्ञं हरिर्गतः।
हेतुना केन तद् ब्रूहि यत्रावज्ञाभवत्ततः॥ २
जानाति किं स शंभुं नो हरिः प्रलयविक्रमम्।
रणं कथं च कृतवान् तद्‌गणैरबुधो यथा॥ ३

नारदजी बोले—[हे ब्रह्मन्!] भगवान् विष्णु शिवजीको छोड़कर [अन्य] देवताओंके साथ दक्षके यज्ञमें किस कारणसे गये, जहाँ उनका तिरस्कार ही हुआ, इसे बताइये। क्या वे प्रलयकारी पराक्रमवाले शंकरको नहीं जानते थे, उन्होंने अज्ञानीकी भाँति शिवगणोंके साथ युद्ध क्यों किया?॥ २-३॥

एष मे संशयो भूयांस्तं छिंधि करुणानिधे।
चरितं ब्रूहि शंभोस्तु चित्तोत्साहकरं प्रभो॥ ४

हे करुणानिधे! यह मुझे बहुत बड़ा सन्देह है, आप उसे दूर कीजिये और प्रभो! मनमें उत्साह पैदा करनेवाले शिवचरित्रको भी कहिये॥ ४॥

ब्रह्मोवाच

द्विजवर्य शृणु प्रीत्या चरितं शशिमौलिनः।
यत्पृच्छते कुर्वतश्च सर्वसंशयहारकम्॥ ५

ब्रह्माजी बोले—हे द्विजवर्य! आप प्रेमपूर्वक शिवचरित्रका श्रवण कीजिये, जो पूछनेवालों तथा कहनेवालोंके सभी सन्देहोंको दूर करता है॥ ५॥

दधीचस्य मुनेः शापाद् भ्रष्टज्ञानो हरिः पुरा।
सामरो दक्षयज्ञं वै गतः क्षुवसहायकृत्॥ ६

पूर्वकालमें दधीचि मुनिने राजा क्षुवकी सहायता करनेवाले श्रीहरिको शाप दे दिया था, इसलिये भ्रष्ट ज्ञानवाले वे विष्णु देवताओंके साथ दक्षके यज्ञमें चले गये॥ ६॥

नारद उवाच

किमर्थं शप्तवान्विष्णुं दधीचो मुनिसत्तमः।
कोऽपकारः कृतस्तस्य हरिणा तत्सहायिना॥ ७

नारदजी बोले—[हे ब्रह्मन्!] मुनियोंमें श्रेष्ठ दधीचिने भगवान् विष्णुको शाप क्यों दिया? क्षुवकी सहायता करनेवाले विष्णुने उनका कौन-सा अपकार किया था॥ ७॥

ब्रह्मोवाच

समुत्पन्नो महातेजा राजा क्षुव इति स्मृतः।
अभून्मित्रं दधीचस्य मुनीन्द्रस्य महाप्रभोः॥ ८
चिरात्तपःप्रसङ्गाद्वै वादः क्षुवदधीचयोः।
महानर्थकरः ख्यातस्त्रिलोकेष्वभवत्पुरा॥ ९

ब्रह्माजी बोले—क्षुव नामसे प्रसिद्ध एक महातेजस्वी राजा उत्पन्न हुए थे। वे महाप्रभावशाली मुनीश्वर दधीचिके मित्र थे। पूर्वकालमें लम्बे समयसे तपके प्रसंगको लेकर क्षुव और दधीचिमें महान् अनर्थकारी विवाद आरम्भ हो गया, जो तीनों लोकोंमें विख्यात हो गया॥ ८-९॥

तत्र त्रिवर्णतः श्रेष्ठो विप्र एव न संशयः।
इति प्राह दधीचो हि शिवभक्तस्तु वेदवित्॥ १०

उस विवादमें वेदविद् शिवभक्त दधीचिने कहा कि तीनों वर्णोंमें ब्राह्मण ही श्रेष्ठ हैं, इसमें सन्देह नहीं॥ १०॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य दधीचस्य महामुनेः।
क्षुवः प्राहेति नृपतिः श्रीमदेन विमोहितः॥ ११

महामुनि दधीचिकी यह बात सुनकर धनके मदसे विमोहित राजा क्षुवने इस प्रकार प्रतिवाद किया॥ ११॥

क्षुव उवाच

अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः।
तस्मान्नृपो वरिष्ठो हि वर्णाश्रमपतिः प्रभुः॥ १२

सर्वदेवमयो राजा श्रुतिः प्राहेति तत्परा।
महती देवता या सा सोऽहमेव ततो मुने॥ १३

तस्माद्विप्राद्वरो राजा च्यावनेय विचार्यताम्।
नावमन्तव्य एवातः पूज्योऽहं सर्वथा त्वया॥ १४

क्षुव बोले—राजा [इन्द्र आदि] आठ लोकपालोंके स्वरूपको धारण करता है तथा समस्त वर्णों और आश्रमोंका स्वामी एवं प्रभु है, इसलिये राजा ही सबसे श्रेष्ठ है। राजाकी श्रेष्ठता प्रतिपादन करनेवाली श्रुति भी कहती है कि राजा सर्वदेवमय है। इसलिये हे मुने! जो सबसे बड़ा देवता है, वह मैं ही हूँ॥ १२-१३॥

अतः हे च्यवनपुत्र! राजा ब्राह्मणसे श्रेष्ठ होता है, आप [इस सम्बन्धमें] विचार करें और मेरा अनादर न करें, मैं आपके लिये सर्वथा पूजनीय हूँ॥ १४॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा तथा मतं तस्य क्षुवस्य मुनिसत्तमः।
श्रुतिस्मृतिविरुद्धं तं चुकोपातीव भार्गवः॥ १५

अथ क्रुद्धो महातेजा गौरवाच्चात्मनो मुने।
अताडयत्क्षुवं मूर्ध्नि दधीचो वाममुष्टितः॥ १६

वज्रेण तं च चिच्छेद दधीचं ताडितः क्षुवः।
जगर्जातीव संक्रुद्धो ब्रह्मांडाधिपतिः कुधीः॥ १७

पपात भूमौ निहतो तेन वज्रेण भार्गवः।
शुक्रं सस्मार क्षुवकृद्भार्गवस्य कुलंधरः॥ १८

शुक्रोऽथ संधयामास ताडितं च क्षुवेन तु।
योगी दधीचस्य तदा देहमागत्य स द्रुतम्॥ १९

संधाय पूर्ववद्देहं दधीचस्याह भार्गवः।
शिवभक्ताग्रणीर्मृत्युञ्जयविद्याप्रवर्तकः ॥ २०

ब्रह्माजी बोले—उन क्षुवका श्रुतियों और स्मृतियोंके विरुद्ध यह मत सुनकर मुनिश्रेष्ठ दधीचि अत्यन्त कुपित हो उठे॥ १५॥

तब हे मुने! आत्मगौरवके कारण कुपित हुए महातेजस्वी दधीचिने क्षुवके मस्तकपर [अपनी] बायीं मुट्ठीसे प्रहार किया॥ १६॥

तत्पश्चात् [दधीचिके द्वारा] ताड़ित किये गये ब्रह्माण्डाधिपति दुष्ट क्षुव अत्यन्त कुपित हो गरज उठे और उन्होंने वज्रसे दधीचिका सिर काट डाला॥ १७॥

उस वज्रसे आहत हो दधीचि पृथिवीपर गिर पड़े। क्षुवके द्वारा काटे गये भार्गववंशधर दधीचिने [गिरते समय] शुक्राचार्यका स्मरण किया॥ १८॥

तब योगी शुक्राचार्यने आकर क्षुवके द्वारा दधीचिके काटे गये शरीरको तुरंत जोड़ दिया॥ १९॥

दधीचिकी देहको पूर्वकी भाँति ठीक करके शिवभक्तशिरोमणि तथा मृत्युंजयविद्याके प्रवर्तक शुक्राचार्य उनसे कहने लगे—॥ २०॥

शुक्र उवाच

दधीच तात संपूज्य शिवं सर्वेश्वरं प्रभुम्।
महामृत्युञ्जयं मन्त्रं श्रौतमग्र्यं वदामि ते॥ २१

त्र्यम्बकं यजामहे त्रैलोक्यं पितरं प्रभुम्।
त्रिमंडलस्य पितरं त्रिगुणस्य महेश्वरम्॥ २२

शुक्र बोले—हे तात! दधीचि! मैं सर्वेश्वर प्रभु शंकरका पूजन करके श्रेष्ठ वैदिक महामृत्युंजय मन्त्र*का आपको उपदेश देता हूँ॥ २१॥

[‘**त्र्यम्बकं यजामहे**’] हम त्रिलोकीके पिता, तीन नेत्रवाले, तीनों मण्डलों (सूर्य, सोम तथा अग्नि)-के पिता तथा तीनों गुणों (सत्त्व, रज तथा तम)-के स्वामी महेश्वरका पूजन करते हैं॥ २२॥

* त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥ (यजुर्वेद ३।६०)

त्रितत्त्वस्य त्रिवह्नेश्च त्रिधाभूतस्य सर्वतः।
त्रिदिवस्य त्रिबाहोश्च त्रिधाभूतस्य सर्वतः॥ २३

त्रिदेवस्य महादेवः सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्।
सर्वभूतेषु सर्वत्र त्रिगुणेषु कृतौ यथा॥ २४

इन्द्रियेषु तथान्येषु देवेषु च गणेषु च।
पुष्पे सुगंधिवत्सूरः सुगंधिरमरेश्वरः॥ २५

जो त्रितत्त्व (आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व), त्रिवह्नि (आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि) तथा पृथिवी, जल, तेज—इन तीनों भूतोंके एवं जो त्रिदिव (स्वर्ग), त्रिबाहु तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीनों देवताओंके महान् ईश्वर महादेवजी हैं। '**सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्**' [महामृत्युंजयमन्त्रका यह द्वितीय चरण है] जैसे फूलोंमें उत्तम गन्ध होती है, उसी प्रकार वे भगवान् शिव सम्पूर्ण भूतोंमें, तीनों गुणोंमें, समस्त कृत्योंमें, इन्द्रियोंमें, अन्यान्य देवोंमें और गणोंमें उनके प्रकाशक सारभूत आत्माके रूपमें व्याप्त हैं। अतएव सुगन्धयुक्त एवं सम्पूर्ण देवताओंके ईश्वर हैं॥ २३—२५॥

पुष्टिश्च प्रकृतेर्यस्मात्पुरुषाद् वै द्विजोत्तम।
महदादिविशेषान्तविकल्पश्चापि सुव्रत॥ २६

विष्णोः पितामहस्यापि मुनीनां च महामुने।
इन्द्रियाणां च देवानां तस्माद् वै पुष्टिवर्धनः॥ २७

हे द्विजोत्तम! जिन महापुरुषसे प्रकृतिकी पुष्टि होती है। हे सुव्रत! महत् तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त विकल्पके जो स्वरूप हैं। हे महामुने! जो विष्णु, पितामह, मुनिगणों एवं इन्द्रियोंसहित समस्त देवताओंकी पुष्टिका वर्धन करते हैं, इसलिये वे पुष्टिवर्धन हैं॥ २६-२७॥

तं देवममृतं रुद्रं कर्मणा तपसापि वा।
स्वाध्यायेन च योगेन ध्यानेन च प्रजायते॥ २८

वे देव रुद्र अमृतस्वरूप हैं। जो पुण्यकर्मसे, तपस्यासे, स्वाध्यायसे, योगसे अथवा ध्यानसे उनकी आराधना करता है, उसे वे प्राप्त हो जाते हैं॥ २८॥

सत्येनान्येन सूक्ष्माग्रान्मृत्युपाशाद्भवः स्वयम्।
बंधमोक्षकरो यस्मादुर्वारुकमिव प्रभुः॥ २९

जिस प्रकार ककड़ीका पौधा अपने फलसे स्वयं ही लताको बन्धनमें बाँधे रखता है और पक जानेपर स्वयं ही उसे बन्धनसे मुक्त कर देता है, ठीक उसी प्रकार बन्धमोक्षकारी प्रभु सदाशिव अपने सत्यसे जगत्के समस्त प्राणियोंको मृत्युके पाशरूप सूक्ष्म बन्धनसे छुड़ा देते हैं॥ २९॥

मृतसञ्जीवनीमन्त्रो मम सर्वोत्तमः स्मृतः।
एवं जपपरः प्रीत्या नियमेन शिवं स्मरन्॥ ३०

यह मृतसंजीवनी मन्त्र है, जो मेरे मतसे सर्वोत्तम है। हे दधीचि! आप मेरे द्वारा दिये गये इस मन्त्रका शिवध्यानपरायण होकर नियमसे जप कीजिये॥ ३०॥

जप्त्वा हुत्वाभिमन्त्र्यैवं जलं पिब दिवानिशम्।
शिवस्य सन्निधौ ध्यात्वा नास्ति मृत्युभयं क्वचित्॥ ३१

जप और हवन भी इसी मन्त्रसे करें और इसी मन्त्रसे अभिमन्त्रितकर दिन और रातमें जल भी पीजिये तथा शिव-विग्रहके पास स्थित हो उन्हींका ध्यान करते रहिये, इससे कभी भी मृत्युका भय नहीं रहता॥ ३१॥

कृत्वा न्यासादिकं सर्वं संपूज्य विधिवच्छिवम्।
संविधायेदं निर्व्यग्रः शंकरं भक्तवत्सलम्॥ ३२

सब न्यास आदि करके विधिवत् शिवकी पूजा करके व्यग्रतारहित हो भक्तवत्सल सदाशिवका ध्यान करें॥ ३२॥

ध्यानमस्य प्रवक्ष्यामि यथा ध्यात्वा जपेन्मनुम्।
सिद्धमन्त्रो भवेद्धीमान् यावच्छंभुप्रभावतः॥ ३३

अब मैं सदाशिवके ध्यानको बता रहा हूँ, जिसके अनुसार उनका ध्यान करके मन्त्रजप करना चाहिये। इस प्रकार [जप करनेसे] बुद्धिमान् पुरुष भगवान् शिवके प्रभावसे उस मन्त्रको सिद्ध कर लेता है॥ ३३॥

हस्तांभोजयुगस्थकुंभयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरः
सिञ्चन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्के सकुम्भौ करौ।
अक्षस्त्रङ्मृगहस्तमंबुजगतं मूर्धस्थचन्द्रस्त्रवत्-
पीयूषार्द्रतनुं भजे सगिरिजं त्र्यक्षं च मृत्युञ्जयम्॥ ३४

[ध्यानमन्त्रका अर्थ इस प्रकार है] अपने दो करकमलोंमें स्थित दोनों कुम्भोंसे जलको निकालकर ऊपरवाले दोनों हाथोंसे सिरपर अभिषेक करते हुए, कुम्भसहित अपने अन्य दोनों हाथोंको अपनी गोदमें धारण करते हुए, शेष दो हाथोंसे अक्षमाला तथा मृगमुद्रा धारण करनेवाले, कमलके आसनपर विराजमान, सिरपर स्थित चन्द्रमासे टपकते हुए अमृतकणसे भीगे हुए शरीरवाले तथा तीन नेत्रवाले पार्वतीसहित महामृत्युंजय भगवान्‌का मैं ध्यान करता हूँ॥ ३४॥

ब्रह्मोवाच

उपदिश्येति शुक्रः तं दधीचिं मुनिसत्तमम्।
स्वस्थानमगमत्तात संस्मरन् शंकरं प्रभुम्॥ ३५

ब्रह्माजी बोले—हे तात! मुनिश्रेष्ठ दधीचिको इस प्रकार उपदेश देकर शुक्राचार्य भगवान् शंकरका स्मरण करते हुए अपने स्थानको चले गये॥ ३५॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दधीचो हि महामुनिः।
वनं जगाम तपसे महाप्रीत्या शिवं स्मरन्॥ ३६

उनकी बात सुनकर महामुनि दधीचि बड़े प्रेमसे शिवजीका स्मरण करते हुए तपस्याके लिये वनमें गये॥ ३६॥

तत्र गत्वा विधानेन महामृत्युञ्जयाभिधम्।
तं मनुं प्रजपन् प्रीत्या तपस्तेपे शिवं स्मरन्॥ ३७

वहाँ जाकर वे विधिपूर्वक महामृत्युंजय नामक उस मन्त्रका जप करते हुए और प्रेमपूर्वक शिवका चिन्तन करते हुए तपस्या करने लगे॥ ३७॥

तन्मनुं सुचिरं जप्त्वा तपसाराध्य शंकरम्।
शिवं संतोषयामास महामृत्युञ्जयं हि सः॥ ३८

दीर्घकालतक उस महामृत्युंजय मन्त्रका जप करके तपस्याद्वारा शंकरकी आराधना करके उन्होंने शिवको प्रसन्न कर लिया॥ ३८॥

अथ शंभुः प्रसन्नात्मा तज्जपाद्भक्तवत्सलः।
आविर्बभूव पुरतस्तस्य प्रीत्या महामुने॥ ३९

हे महामुने! तब उस जपसे प्रसन्नचित्त हुए भक्तवत्सल शिव उनके सामने प्रेमपूर्वक प्रकट हो गये॥ ३९॥

तं दृष्ट्वा स्वप्रभुं शंभुं स मुमोद मुनीश्वरः।
प्रणम्य विधिवद्भक्त्या तुष्टाव सुकृताञ्जलिः॥ ४०

अपने प्रभु शम्भुका [साक्षात्] दर्शन करके वे मुनीश्वर आनन्दित हो गये और उन्हें विधिपूर्वक प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़ भक्तिभावसे स्तवन करने लगे॥ ४०॥

अथ प्रीत्या शिवस्तात प्रसन्नश्च्यावनिं मुने।
वरं ब्रूहीति स प्राह सुप्रसन्नेन चेतसा॥ ४१

हे तात! हे मुने! उसके बाद मुनिके प्रेमसे आनन्दित उन शिवने अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे दधीचिसे कहा—वर माँगो। शिवका वह वचन

तच्छ्रुत्वा शंभुवचनं दधीचो भक्तसत्तमः।
साञ्जलिर्नतकः प्राह शंकरं भक्तवत्सलम्॥ ४२

सुनकर भक्तश्रेष्ठ दधीचि दोनों हाथ जोड़कर नतमस्तक हो भक्तवत्सल शंकरसे कहने लगे—॥ ४१-४२ ॥

दधीच उवाच

देवदेव महादेव मह्यं देहि वरत्रयम्।
वज्रास्थित्वमवध्यत्वमदीनत्वं हि सर्वतः॥ ४३

दधीचि बोले—हे देवदेव! हे महादेव! मुझे तीन वर दीजिये, मेरी हड्डी वज्र हो जाय, कोई भी मेरा वध न कर सके और मैं सर्वथा अदीन रहूँ॥ ४३ ॥

ब्रह्मोवाच

तदुक्तवचनं श्रुत्वा प्रसन्नः परमेश्वरः।
वरत्रयं ददौ तस्मै दधीचाय तथास्त्विति॥ ४४
वरत्रयं शिवात्प्राप्य सानंदश्च महामुनिः।
क्षुवस्थानं जगामाशु वेदमार्गे प्रतिष्ठितः॥ ४५

ब्रह्माजी बोले—उनके कहे हुए वचनको सुनकर प्रसन्न हुए परमेश्वरने 'तथास्तु' कहा और उन दधीचिको तीनों वर दे दिये। शिवजीसे तीन वर पाकर वेदमार्गमें प्रतिष्ठित महामुनि आनन्दमग्न हो गये और शीघ्र ही राजा क्षुवके स्थानपर गये॥ ४४-४५ ॥

प्राप्यावध्यत्वमुग्रात्स वज्रास्थित्वमदीनताम्।
अताडयच्च राजेन्द्रं पादमूलेन मूर्धनि॥ ४६

उग्र स्वभाववाले महादेवजीसे अवध्यता, अस्थिके वज्रमय होने और अदीनताका वर पाकर दधीचिने राजेन्द्र क्षुवके मस्तकपर पादमूलसे प्रहार किया॥ ४६ ॥

क्षुवो दधीचं वज्रेण जघानोरस्यथो नृपः।
क्रोधं कृत्वा विशेषेण विष्णुगौरवगर्वितः॥ ४७

तब विष्णुकी महिमासे गर्वित राजा क्षुवने भी क्रोधित होकर दधीचिकी छातीपर वज्रसे प्रहार किया॥ ४७ ॥

नाभून्नाशाय तद्वज्रं दधीचस्य महात्मनः।
प्रभावात्परमेशस्य धातृपुत्रो विसिस्मिये॥ ४८
दृष्ट्वाप्यवध्यत्वमदीनतां च
वज्रस्य चात्यन्तपरप्रभावम्।
क्षुवो दधीचस्य मुनीश्वरस्य
विसिस्मिये चेतसि धातृपुत्रः॥ ४९

वह वज्र परमेश्वर शिवके प्रभावसे महात्मा दधीचिका [कुछ भी] अनिष्ट न कर सका, इससे ब्रह्मपुत्र क्षुवको आश्चर्य हुआ। मुनीश्वर दधीचिकी अवध्यता, अदीनता तथा वज्रसे बढ़कर प्रभाव देखकर ब्रह्मकुमार क्षुवके मनमें बड़ा विस्मय हुआ॥ ४८-४९ ॥

आराधयामास हरिं मुकुन्द-
मिन्द्रानुजं काननमाशु गत्वा।
प्रपन्नपालश्च पराजितो हि
दधीचमृत्युञ्जयसेवकेन॥ ५०

वे शरणागतपालक नरेश मृत्युंजयके सेवक दधीचिसे पराजित होकर शीघ्र ही वनमें जाकर इन्द्रके छोटे भाई मुकुन्द हरिकी आराधना करने लगे॥ ५० ॥

पूजया तस्य सन्तुष्टो भगवान् मधुसूदनः।
प्रददौ दर्शनं तस्मै दिव्यं वै गरुडध्वजः॥ ५१

उनकी पूजासे सन्तुष्ट होकर गरुडध्वज भगवान् मधुसूदनने उन्हें दिव्य दृष्टि प्रदान की॥ ५१ ॥

दिव्येन दर्शनेनैव दृष्ट्वा देवं जनार्दनम्।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः प्रणम्य गरुडध्वजम्॥ ५२

उस दिव्य दृष्टिसे गरुडध्वज जनार्दन देवका दर्शन करके और उन्हें प्रणाम करके क्षुवने प्रिय वचनोंके द्वारा उनकी स्तुति की॥ ५२ ॥

सम्पूज्य चैवं त्रिदशेश्वराद्यैः
स्तुत्वा स्तुतं देवमजेयमीशम्।
विज्ञापयामास निरीक्ष्य भक्त्या
जनार्दनाय प्रणिपत्य मूर्ध्ना॥ ५३

इस प्रकार इन्द्र आदिसे स्तुत उन अजेय ईश्वर देवका पूजन और स्तवन करके वे [राजा क्षुव] भक्तिभावसे उनकी ओर देखकर मस्तक झुकाकर प्रणाम करके उन जनार्दनसे कहने लगे—॥ ५३ ॥

राजोवाच

भगवन् ब्राह्मणः कश्चिद्दधीच इति विश्रुतः।
धर्मवेत्ता विनीतात्मा सखा मम पुराभवत्॥ ५४

राजा बोले—हे भगवन्! दधीचि नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण हैं, जो धर्मके ज्ञाता तथा विनम्र स्वभाववाले हैं, वे पहले मेरे मित्र थे॥ ५४॥

अवध्यः सर्वदा सर्वैः शंकरस्य प्रभावतः।
तमाराध्य महादेवं मृत्युञ्जयमनामयम्॥ ५५

वे निर्विकार मृत्युंजय महादेवकी आराधना करके उन्हीं शिवजीके प्रभावसे सबके द्वारा सदाके लिये अवध्य हो गये हैं॥ ५५॥

सावज्ञं वामपादेन मम मूर्ध्नि सदस्यपि।
ताडयामास वेगेन स दधीचो महातपाः॥ ५६

उवाच मां च गर्वेण न बिभेमीति सर्वतः।
मृत्युञ्जयाप्तसुवरो गर्वितो ह्यतुलं हरे॥ ५७

[एक दिन] उन महातपस्वी दधीचिने भरी सभामें अपने बायें पैरसे मेरे मस्तकपर बड़े वेगसे अवहेलनापूर्वक प्रहार किया और बड़े गर्वसे मुझसे कहा—मैं किसीसे नहीं डरता। हे हरे! वे मृत्युंजयसे उत्तम वर पाकर अनुपम गर्वसे भर गये हैं॥ ५६-५७॥

ब्रह्मोवाच

अथ ज्ञात्वा दधीचस्य ह्यवध्यत्वं महात्मनः।
सस्मारास्य महेशस्य प्रभावमतुलं हरिः॥ ५८
एवं स्मृत्वा हरिः प्राह क्षुवं विधिसुतं द्रुतम्।
विप्राणां नास्ति राजेन्द्र भयमण्वपि कुत्रचित्॥ ५९

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] महात्मा दधीचिकी अवध्यताको जानकर श्रीहरिने महेश्वरके अतुलित प्रभावका स्मरण किया। इस प्रकार स्मरण करके विष्णु ब्रह्मपुत्र क्षुवसे शीघ्र बोले—राजेन्द्र! ब्राह्मणोंको कहीं भी थोड़ा-सा भी भय नहीं है॥ ५८-५९॥

विशेषाद् रुद्रभक्तानां भयं नास्ति च भूपते।
दुःखं करोति विप्रस्य शापार्थं स सुरस्य मे॥ ६०

हे भूपते! विशेष रूपसे रुद्रभक्तोंके लिये तो भय है ही नहीं। यदि मैं आपकी ओरसे कुछ करूँ तो ब्राह्मण दधीचिको दुःख होगा और वह मुझ-जैसे देवताके लिये भी शापका कारण बन जायगा॥ ६०॥

भविता तस्य शापेन दक्षयज्ञे सुरेश्वरात्।
विनाशो मम राजेन्द्र पुनरुत्थानमेव च॥ ६१

हे राजेन्द्र! दधीचिके शापसे दक्षके यज्ञमें सुरेश्वर शिवके द्वारा मेरा विनाश होगा और फिर उत्थान भी होगा॥ ६१॥

तस्मात्समेत्य राजेन्द्र सर्वयज्ञो न भूयते।
करोमि यत्नं राजेन्द्र दधीचविजयाय ते॥ ६२

हे राजेन्द्र! दधीचिके शापके कारण ही सभी देवताओं, मेरे तथा ब्रह्माके उपस्थित रहनेपर भी दक्षका यज्ञ सफल नहीं होगा। हे महाराज! मैं आपके लिये दधीचिको जीतनेका प्रयास करूँगा॥ ६२॥

श्रुत्वा वाक्यं क्षुवः प्राह तथास्त्विति हरेर्नृपः।
तस्थौ तत्रैव तत्प्रीत्या तत्कामोत्सुकमानसः॥ ६३

विष्णुका यह वचन सुनकर राजा क्षुवने कहा—ऐसा ही हो। इस प्रकार कहकर वे उस कार्यके लिये मन-ही-मन उत्सुक हो प्रसन्नतापूर्वक वहीं ठहर गये॥ ६३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे क्षुवदधीचवादवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें क्षुव और दधीचिके विवादका वर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३८॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीविष्णु और देवताओंसे अपराजित दधीचिद्वारा देवताओंको शाप देना तथा राजा क्षुवपर अनुग्रह करना

ब्रह्मोवाच

क्षुवस्य हितकृत्येन दधीचस्याश्रमं ययौ।
विप्ररूपमथास्थाय भगवान् भक्तवत्सलः॥ १

दधीचं प्राह विप्रर्षिमभिवन्द्य जगद्गुरुः।
क्षुवकार्यार्थमुद्युक्तः शैवेन्द्रं छलमाश्रितः॥ २

विष्णुरुवाच

भो भो दधीच विप्रर्षे भवार्चनरताव्यय।
वरमेकं वृणे त्वत्तस्तद्भवान् दातुमर्हति॥ ३

ब्रह्मोवाच

याचितो देवदेवेन दधीचः शैवसत्तमः।
क्षुवकार्यार्थिना शीघ्रं जगाद वचनं हरिम्॥ ४

दधीच उवाच

ज्ञातं तवेप्सितं विप्र क्षुवकार्यार्थमागतः।
भगवान् विप्ररूपेण मायी त्वमसि वै हरिः॥ ५

भूतं भविष्यं देवेश वर्तमानं जनार्दन।
ज्ञानं प्रसादाद् रुद्रस्य सदा त्रैकालिकं मम॥ ६

त्वां जानेऽहं हरिं विष्णुं द्विजत्वं त्यज सुव्रत।
आराधितोऽसि भूपेन क्षुवेण खलबुद्धिना॥ ७

जाने तवैव भगवन् भक्तवत्सलतां हरे।
छलं त्यज स्वरूपं हि स्वीकुरु स्मर शंकरम्॥ ८

अस्ति चेत्कस्यचिद्भीतिर्भवार्चनरतस्य मे।
वक्तुमर्हसि यत्नेन सत्यधारणपूर्वकम्॥ ९

वदामि न मृषा क्वापि शिवस्मरणसक्तधीः।
न बिभेमि जगत्यस्मिन्देवदैत्यादिकादपि॥ १०

विष्णुरुवाच

भयं दधीच सर्वत्र नष्टं च तव सुव्रत।
भवार्चनरतो यस्माद्भवान्सर्वज्ञ एव च॥ ११

ब्रह्माजी बोले—[नारद!] भक्तवत्सल भगवान् विष्णु राजा क्षुवके हितसाधनके लिये ब्राह्मणका रूप धारणकर दधीचिके आश्रममें गये॥ १॥

कपटरूप धारण करके जगद्गुरु श्रीहरि शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि दधीचिको प्रणाम करके क्षुवके कार्यकी सिद्धिके लिये तत्पर हो उनसे कहने लगे— ॥ २॥

विष्णु बोले—हे दधीचि! शिवकी आराधनामें तत्पर रहनेवाले हे विप्रर्षे! हे अव्यय! मैं आपसे एक वर माँगता हूँ, कृपा करके उसे आप मुझे दीजिये॥ ३॥

ब्रह्माजी बोले—क्षुवकी कार्यसिद्धि चाहनेवाले देवदेव विष्णुके द्वारा याचित परम शिवभक्त दधीचि विष्णुसे शीघ्र यह वचन कहने लगे— ॥ ४॥

दधीचि बोले—हे विप्र! मैंने आपका अभीष्ट जान लिया है, आप भगवान् श्रीहरि क्षुवके कार्यके लिये ही यहाँ ब्राह्मणका रूप धारणकर आये हैं, आप तो मायावी हैं। हे देवेश! हे जनार्दन! शिवजीकी कृपासे मुझे भूत-भविष्य और वर्तमान—इन तीनों कालोंका ज्ञान सदा रहता है॥ ५-६॥

मैं आप श्रीहरि विष्णुको जानता हूँ। हे सुव्रत! इस ब्राह्मणवेशको छोड़िये। दुष्टबुद्धिवाले क्षुवने आपकी आराधना की है। हे भगवन्! हे हरे! मैं आपकी भक्तवत्सलताको जानता हूँ, यह छल छोड़िये, अपने रूपको ग्रहण कीजिये और भगवान् शंकरका स्मरण कीजिये॥ ७-८॥

शंकरकी आराधनामें लगे रहनेवाले मुझसे यदि किसीको भय हो, तो आप उसे यत्नपूर्वक सत्यकी शपथके साथ कहिये। शिवके स्मरणमें आसक्त बुद्धिवाला मैं कभी झूठ नहीं बोलता। मैं इस संसारमें किसी देवता या दैत्यसे भी नहीं डरता॥ ९-१०॥

विष्णु बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हे दधीचि! आपका भय तो सर्वथा नष्ट ही है; क्योंकि आप शिवकी आराधनामें तत्पर रहते हैं और सर्वज्ञ हैं॥ ११॥

बिभेमीति सकृद्वक्तुमर्हसि त्वं नमस्तव।
नियोगान्मम राजेन्द्र क्षुवात् प्रतिसहादहम्॥ १२

ब्रह्मोवाच

एवं श्रुत्वापि तद्वाक्यं विष्णोः स तु महामुनिः।
विहस्य निर्भयः प्राह दधीचः शैवसत्तमः॥ १३

दधीच उवाच

न बिभेमि सदा क्वापि कुतश्चिदपि किंचन।
प्रभावाद्देवदेवस्य शंभोः साक्षात्पिनाकिनः॥ १४

ब्रह्मोवाच

ततस्तस्य मुनेः श्रुत्वा वचनं कुपितो हरिः।
चक्रमुद्यम्य संतस्थौ दिधक्षुर्मुनिसत्तमम्॥ १५

अभवत्कुंठितं तत्र विप्रे चक्रं सुदारुणम्।
प्रभावाच्च तदीशस्य नृपतेः सन्निधावपि॥ १६

दृष्ट्वा तं कुंठितास्यं तच्चक्रं विष्णुं जगाद ह।
दधीचः सस्मितं साक्षात्सदसद्व्यक्तिकारणम्॥ १७

दधीच उवाच

भगवन् भवता लब्धं पुरातीव सुदारुणम्।
सुदर्शनमिति ख्यातं चक्रं विष्णोः प्रयत्नतः।
भवस्य तच्छुभं चक्रं न जिघांसति मामिह॥ १८

भगवानथ क्रुद्धोऽस्मै सर्वास्त्राणि क्रमाद्धरिः।
ब्रह्मास्त्राद्यैः शरैश्चास्त्रैः प्रयत्नं कर्तुमर्हसि॥ १९

ब्रह्मोवाच

स तस्य वचनं श्रुत्वा दृष्ट्वा निर्वीर्यमानुषम्।
ससर्जाथ क्रुधा तस्मै सर्वास्त्राणि क्रमाद्धरिः॥ २०

चक्रुर्देवास्ततस्तस्य विष्णोः साहाय्यमादरात्।
द्विजेनैकेन संयोद्धुं प्रसृतस्य विबुद्धयः॥ २१

चिक्षिपुः स्वानि स्वान्याशु शस्त्राण्यस्त्राणि सर्वतः।
दधीचोपरि वेगेन शक्राद्या हरिपाक्षिकाः॥ २२

कुशमुष्टिमथादाय दधीचः संस्मरन् शिवम्।
ससर्ज सर्वदेवेभ्यो वज्रास्थिः सर्वतो वशी॥ २३

आपको नमस्कार है। आप मेरे कहनेसे एक बार अपने प्रतिद्वन्द्वी राजा क्षुवसे यह कह दीजिये—हे राजेन्द्र! मैं आपसे डरता हूँ॥ १२॥

ब्रह्माजी बोले—विष्णुका यह वचन सुनकर भी शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ महामुनि दधीचि हँसकर निर्भय हो कहने लगे—॥ १३॥

दधीचि बोले—मैं पिनाकधारी देवाधिदेव शम्भुके प्रभावसे कहीं भी किसीसे किंचिन्मात्र भी नहीं डरता हूँ॥ १४॥

ब्रह्माजी बोले—उन मुनिका यह वचन सुनकर भगवान् विष्णु क्रोधित हो उठे और वे मुनिश्रेष्ठ दधीचिको जलानेकी इच्छासे अपने चक्रको ऊपर उठाकर खड़े हो गये। राजा क्षुवके सामने ही ब्राह्मणपर चलाया जानेवाला उनका भयंकर चक्र शिवजीके प्रभावसे वहींपर कुण्ठित हो गया। इस प्रकार उस चक्रको कुण्ठित हुआ देखकर दधीचि हँसते हुए सत् एवं असत्‌की अभिव्यक्तिके कारणभूत भगवान् विष्णुसे कहने लगे—॥ १५—१७॥

दधीचि बोले—हे भगवन्! आपने पूर्व समयमें [तपस्याके] प्रयत्नसे शिवजीसे सुदर्शन नामक अत्यन्त दारुण जिस चक्रको प्राप्त किया है, शिवजीका वह शुभ चक्र मुझे नहीं मारना चाहता है। तब भगवान् श्रीहरिने क्रुद्ध होकर क्रमसे सभी अस्त्रोंको उनपर चलाया। [इसपर दधीचिने कहा—] अब आप ब्रह्मास्त्र आदि बाणोंसे तथा अन्य प्रकारके अस्त्रोंसे प्रयत्न कीजिये॥ १८-१९॥

ब्रह्माजी बोले—दधीचिके वचनको सुनकर भगवान् विष्णु उन्हें अपने सामने अत्यन्त तुच्छ मनुष्य समझकर क्रोधित हो अन्य प्रकारके अस्त्रोंका उनपर प्रयोग करने लगे। उस समय एकमात्र उस ब्राह्मणसे युद्ध करनेके लिये मूर्ख देवता भी आदरपूर्वक विष्णुकी सहायता करने लगे॥ २०-२१॥

विष्णुपक्षीय इन्द्र आदि देवगण भी दधीचिके ऊपर बड़े वेगसे अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र शीघ्र चलाने लगे। तब वज्र हुई अस्थियोंवाले जितेन्द्रिय दधीचिने शिवजीका स्मरण करते हुए मुट्ठीभर कुशा लेकर सभी देवताओंपर प्रयोग किया॥ २२-२३॥

शंकरस्य प्रभावात्तु कुशमुष्टिर्मुनेर्हि सा।
दिव्यं त्रिशूलमभवत् कालाग्निसदृशं मुने॥ २४

हे मुने! शंकरजीके प्रभावसे [मुनीश्वर दधीचिके द्वारा प्रयुक्त] वह मुट्ठीभर कुशा कालाग्निके समान दिव्य त्रिशूल बन गया॥ २४॥

दग्धुं देवान् मतिं चक्रे सायुधान् सशिखं च तत्।
प्रज्वलत्सर्वतः शैवं युगांताग्न्यधिकप्रभम्॥ २५

चारों ओरसे जलता हुआ, प्रलयाग्निसे भी अधिक तेजवाला तथा ज्वालाओंसे युक्त वह शैव अस्त्र आयुधोंसहित समस्त देवताओंको भस्म करनेका विचार करने लगा॥ २५॥

नारायणेन्द्रमुख्यैस्तु देवैः क्षिप्तानि यानि च।
आयुधानि समस्तानि प्रणेमुस्त्रिशिखं च तत्॥ २६

देवाश्च दुद्रुवुः सर्वे ध्वस्तवीर्या दिवौकसः।
तस्थौ तत्र हरिर्भीतः केवलं मायिनां वरः॥ २७

उस समय विष्णु, इन्द्र आदि मुख्य देवताओंके द्वारा जो अस्त्र छोड़े गये थे, वे सभी उस त्रिशूलको प्रणाम करने लगे। तब नष्टपराक्रमवाले सभी स्वर्गवासी देवगण [इधर-उधर] भागने लगे। मायावियोंमें श्रेष्ठ स्वामी विष्णु ही एकमात्र भयभीत हो वहाँ स्थित रहे॥ २६-२७॥

ससर्ज भगवान् विष्णुः स्वदेहात्पुरुषोत्तमः।
आत्मनः सदृशान् दिव्यान् लक्षलक्षायुतान् गणान्॥ २८

ते चापि युयुधुस्तत्र वीरा विष्णुगणास्ततः।
मुनिनैकेन देवर्षे दधीचेन शिवात्मना॥ २९

तब पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुने अपने शरीरसे अपने ही समान हजारों एवं लाखों दिव्य गणोंको उत्पन्न किया। हे देवर्षे! तदनन्तर विष्णुके वीरगण अकेले शिवस्वरूप दधीचिसे युद्ध करने लगे॥ २८-२९॥

ततो विष्णुगणांस्तान्वै नियुध्य बहुशो रणे।
ददाह सहसा सर्वान् दधीचः शैवसत्तमः॥ ३०

तदनन्तर शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ महर्षि दधीचिने रणमें उन गणोंके साथ वहाँ बहुत युद्धकर सहसा उन सबको जला दिया॥ ३०॥

ततस्तद्विस्मयार्थाय दधीचस्य मुनेर्हरिः।
विश्वमूर्तिरभूच्छीघ्रं महामायाविशारदः॥ ३१

तब मायाविशारद भगवान् विष्णु महर्षि दधीचिको विस्मित करनेके लिये शीघ्र ही विश्वमूर्ति हो गये॥ ३१॥

तस्य देहे हरेः साक्षादपश्यद् द्विजसत्तमः।
दधीचो देवतादीनां जीवानां च सहस्रकम्॥ ३२
भूतानां कोटयश्चैव गणानां कोटयस्तथा।
अंडानां कोटयश्चैव विश्वमूर्तेस्तनौ तदा॥ ३३

ब्राह्मणश्रेष्ठ दधीचिने [उस समय] उन विष्णुके शरीरमें हजारों देवता आदिको और अन्य जीवोंको देखा। उस समय विश्वमूर्तिके शरीरमें करोड़ों भूत, करोड़ों गण तथा करोड़ों ब्रह्माण्ड विद्यमान थे॥ ३२-३३॥

दृष्ट्वैतदखिलं तत्र च्यावनिः सततं तदा।
विष्णुमाह जगन्नाथं जगत्स्तवमजं विभुम्॥ ३४

इन सभीको देखकर दधीचि मुनि जगत्पति, जगत्स्तुत्य, अजन्मा तथा अविनाशी उन भगवान् विष्णुसे कहने लगे— ॥ ३४॥

दधीच उवाच

मायां त्यज महाबाहो प्रतिभासो विचारतः।
विज्ञातानि सहस्राणि दुर्विज्ञेयानि माधव॥ ३५

मयि पश्य जगत्सर्वं त्वया युक्तमतन्द्रितः।
ब्रह्माणं च तथा रुद्रं दिव्यां दृष्टिं ददामि ते॥ ३६

दधीचि बोले—हे महाबाहो! आप मायाको त्याग दीजिये। विचार करनेसे सब प्रतिभासमात्र प्रतीत होता है। हे माधव! मैंने भी हजारों दुर्विज्ञेय वस्तुओंको जान लिया है। अब आप निरालस्य होकर मुझमें अपने सहित ब्रह्मा, रुद्र तथा सम्पूर्ण जगत्‌को देखिये, मैं आपको दिव्य दृष्टि देता हूँ॥ ३५-३६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा दर्शयामास स्वतनौ निखिलं मुनिः।
ब्रह्माण्डं च्यावनिः शंभुतेजसा पूर्णदेहकः॥ ३७

तदाह विष्णुं देवेशं दधीचः शैवसत्तमः।
संस्मरन् शंकरं चित्ते विहसन् विभयः सुधीः॥ ३८

दधीच उवाच

मायया त्वनया किं वा मंत्रशक्त्याथ वा हरे।
सत्कामनामिमां कृत्वा योद्धुमर्हसि यत्नतः॥ ३९

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा मुनेस्तस्य वचनं निर्भयस्तदा।
शंभुतेजोमयं विष्णुः चुकोपातीव तं मुनिम्॥ ४०

देवाश्च दुद्रुवुर्भूयो देवं नारायणं च तम्।
योद्धुकामाश्च मुनिना दधीचेन प्रतापिना॥ ४१

एतस्मिन्नन्तरे तत्रागमन्मत्सङ्गतः क्षुवः।
अवारयन्तं निश्चेष्टं पद्मयोनिं हरिं सुरान्॥ ४२

निशम्य वचनं मे हि ब्राह्मणो न विनिर्जितः।
जगाम निकटं तस्य प्रणनाम मुनिं हरिः॥ ४३

क्षुवो दीनतरो भूत्वा गत्वा तत्र मुनीश्वरम्।
दधीचमभिवाद्यैव प्रार्थयामास विक्लवः॥ ४४

क्षुव उवाच

प्रसीद मुनिशार्दूल शिवभक्तशिरोमणे।
प्रसीद परमेशान दुर्लक्ष्यो दुर्जनैः सदा॥ ४५

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य राज्ञः सुरगणस्य हि।
अनुजग्राह तं विप्रो दधीचस्तपसां निधिः॥ ४६

अथ दृष्ट्वा रमेशादीन् क्रोधविह्वलितो मुनिः।
हृदि स्मृत्वा शिवं विष्णुं शशाप च सुरानपि॥ ४७

दधीच उवाच

रुद्रकोपाग्निना देवाः सदेवेन्द्रा मुनीश्वराः।
ध्वस्ता भवंतु देवेन विष्णुना च समं गणैः॥ ४८

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर भगवान् शिवके तेजसे पूर्ण शरीरवाले दधीचि मुनिने अपने शरीरमें समस्त ब्रह्माण्डको दिखाया। तत्पश्चात् शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ बुद्धिमान् दधीचि मनमें शंकरका स्मरण करते हुए निर्भय होकर देवेश भगवान् विष्णुसे कहने लगे॥ ३७-३८॥

दधीचि बोले—हे हरे! आपकी इस मायासे अथवा मन्त्रशक्तिसे क्या हो सकता है? आप श्रेष्ठ कामना करके यत्नपूर्वक मुझसे युद्ध कीजिये॥ ३९॥

ब्रह्माजी बोले—तब उन मुनिका यह वचन सुनकर विष्णु शिवजीके तेजसे निर्भय होकर उन मुनिपर अत्यन्त कुपित हो उठे॥ ४०॥

उस समय जो देवता भाग गये थे, वे भी प्रतापी दधीचिसे युद्ध करनेकी इच्छासे उन नारायणदेवके पास आ गये॥ ४१॥

इसी बीच मुझे साथ लेकर राजा क्षुव वहाँ आ गये। मैंने देवताओं तथा विष्णुको युद्ध करनेसे मना किया और कहा कि यह ब्राह्मण [किसीसे] जीता नहीं जा सकता है। मेरी इस बातको सुनकर भगवान् विष्णुने मुनिके निकट जाकर उन्हें प्रणाम किया॥ ४२-४३॥

उसके बाद वे क्षुव भी अत्यन्त दीन होकर वहाँ मुनीश्वर दधीचिके पास जाकर व्याकुल हो प्रणाम करके प्रार्थना करने लगे—॥ ४४॥

क्षुव बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! प्रसन्न होइये। हे शिवभक्तशिरोमणे! प्रसन्न होइये। हे परमेशान! आप दुर्जनोंके द्वारा सदा दुर्लक्ष्य हैं॥ ४५॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] उन राजा क्षुवकी तथा देवताओंकी यह बात सुनकर तपस्यानिधि ब्राह्मण दधीचिने उनपर अनुग्रह किया॥ ४६॥

तदनन्तर विष्णु आदिको देखकर मुनिने क्रोधसे व्याकुल होकर मनसे शिवजीका स्मरण करके विष्णु तथा देवताओंको शाप दे दिया॥ ४७॥

दधीचि बोले—देवराज इन्द्रसहित सभी देवता और मुनीश्वर तथा गणोंके साथ विष्णुदेव रुद्रकी क्रोधाग्निसे ध्वस्त हो जायँ॥ ४८॥

ब्रह्मोवाच

एवं शप्त्वा सुरान् प्रेक्ष्य क्षुवमाह ततो मुनिः।
देवैश्च पूज्यो राजेन्द्र नृपैश्चैव द्विजोत्तमः॥ ४९

ब्राह्मणा एव राजेन्द्र बलिनः प्रभविष्णवः।
इत्युक्त्वा स स्फुटं विप्रः प्रविवेश निजाश्रमम्॥ ५०

दधीचमभिवंद्यैव क्षुवो निजगृहं गतः।
विष्णुर्जगाम स्वं लोकं सुरैः सह यथागतम्॥ ५१

तदेवं तीर्थमभवत् स्थानेश्वर इति स्मृतम्।
स्थानेश्वरमनुप्राप्य शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ ५२

कथितस्तव संक्षेपाद्वादः क्षुवदधीचयोः।
नृपाप्तशापयोस्तात ब्रह्मविष्ण्वोः शिवं विना॥ ५३

य इदं कीर्तयेन्नित्यं वादं क्षुवदधीचयोः।
जित्वापमृत्युं देहान्ते ब्रह्मलोकं प्रयाति सः॥ ५४

रणे यः कीर्तयित्वेदं प्रविशेत्तस्य सर्वदा।
मृत्युभीतिर्भवेन्नैव विजयी च भविष्यति॥ ५५

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार देवताओंको शाप देकर पुनः क्षुवकी ओर देखकर मुनिने क्षुवसे कहा—हे राजेन्द्र! श्रेष्ठ द्विज देवताओं और राजाओंसे भी अधिक पूज्य होता है। हे राजेन्द्र! ब्राह्मण ही बली और प्रभावशाली होते हैं—ऐसा स्पष्टरूपसे कहकर वे ब्राह्मण दधीचि अपने आश्रममें प्रविष्ट हो गये॥ ४९-५०॥

तत्पश्चात् दधीचिको नमस्कार करके क्षुव अपने घर चले गये और भगवान् विष्णु भी जैसे आये थे, उसी तरह देवताओंके साथ अपने वैकुण्ठलोकको लौट गये॥ ५१॥

[इस प्रकार] वह स्थान स्थानेश्वर नामक तीर्थके रूपमें प्रसिद्ध हो गया। स्थानेश्वरमें पहुँचकर मनुष्य शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। हे तात! इस प्रकार मैंने आपसे संक्षेपमें क्षुव और दधीचिका विवाद कह दिया और शंकरको छोड़कर ब्रह्मा और विष्णुको जो शाप प्राप्त हुआ, उसका भी वर्णन किया॥ ५२-५३॥

जो [व्यक्ति] क्षुव और दधीचिके इस विवाद-सम्बन्धी प्रसंगका नित्य पाठ करता है, वह अपमृत्युको जीतकर शरीरत्यागके पश्चात् ब्रह्मलोकको जाता है॥ ५४॥

जो इसका पाठ करके रणभूमिमें प्रवेश करेगा, उसे सर्वदा मृत्युका भय नहीं रहेगा तथा वह विजयी होगा॥ ५५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे विष्णुदधीचयुद्धवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें विष्णु और दधीचिके युद्धका वर्णन नामक उनतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३९॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

देवताओंसहित ब्रह्माका विष्णुलोकमें जाकर अपना दुःख निवेदन करना, उन सभीको लेकर विष्णुका कैलासगमन तथा भगवान् शिवसे मिलना

नारद उवाच

विधे विधे महाप्राज्ञ शैवतत्त्वप्रदर्शक।
श्राविता रमणीप्राया शिवलीला महाद्भुता॥ १

वीरेण वीरभद्रेण दक्षयज्ञं विनाश्य वै।
कैलासाद्रौ गते तात किमभूत्तद्वदाधुना॥ २

नारदजी बोले—हे विधे! हे महाप्राज्ञ! हे शिवतत्त्वके प्रदर्शक! आपने अत्यन्त अद्भुत एवं रमणीय शिवलीला सुनायी है। हे तात! पराक्रमी वीरभद्र जब दक्षके यज्ञका विनाश करके कैलास पर्वतपर चले गये, तब क्या हुआ? अब उसे बताइये॥ १-२॥

ब्रह्मोवाच

अथ देवगणाः सर्वे मुनयश्च पराजिताः।
रुद्रानीकैर्विभिन्नाङ्गा मम लोकं ययुस्तदा॥ ३
स्वयंभुवे नमस्कृत्य मह्यं संस्तूय भूरिशः।
तत्स्वक्लेशं विषेशेण कात्स्न्र्येनैव न्यवेदयन्॥ ४

तदाकर्ण्य ततोऽहं वै पुत्रशोकेन पीडितः।
अचिन्तयमतिव्यग्रो दूयमानेन चेतसा॥ ५

किं कार्यं कार्यमद्याशु मया देवसुखावहम्।
येन जीवतु दक्षोऽसौ मखः पूर्णो भवेत्सुरः॥ ६

एवं विचार्य बहुधा नालभं शमहं मुने।
विष्णुं तदा स्मरन् भक्त्या ज्ञानमाप तदोचितम्॥ ७

अथ देवैश्च मुनिभिर्विष्णोर्लोकमहं गतः।
नत्वा नुत्वा च विविधैः स्तवैर्दुःखं न्यवदेयम्॥ ८

यथाध्वरः प्रपूर्णः स्याद्देव यज्ञकरश्च सः।
सुखिनः स्युः सुराः सर्वे मुनयश्च तथा कुरु॥ ९

देवदेव रमानाथ विष्णो देवसुखावह।
वयं त्वच्छरणं प्राप्ताः सदेवमुनयो ध्रुवम्॥ १०

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचो मे हि ब्रह्मणः स रमेश्वरः।
प्रत्युवाच शिवं स्मृत्वा शिवात्मा दीनमानसः॥ ११

विष्णुरुवाच

तेजीयसि न सा भूता कृतागसि बुभूषताम्।
तत्र क्षेमाय बहुधा बुभूषा हि कृतागसाम्॥ १२

कृतपापाः सुराः सर्वे शिवे हि परमेश्वरे।
परादद‍ुर्यज्ञभागं तस्य शंभोर्विधे यतः॥ १३

प्रसादयध्वं सर्वे हि यूयं शुद्धेन चेतसा।
अथापरप्रसादं तं गृहीताङ्घ्रियुगं शिवम्॥ १४

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] समस्त देवता और मुनि रुद्रके सैनिकोंसे पराजित तथा छिन्न-भिन्न अंगोंवाले होकर मेरे लोकको चले गये। वहाँ मुझ स्वयम्भूको नमस्कार करके और बार-बार मेरा स्तवन करके उन्होंने अपने विशेष क्लेशको पूर्णरूपसे बताया॥ ३-४॥

तब उसे सुनकर मैं पुत्रशोकसे पीड़ित हो गया और अत्यन्त व्यग्र हो व्यथितचित्तसे विचार करने लगा॥ ५॥

इस समय मैं कौन-सा कार्य करूँ, जो देवताओंके लिये सुखकारी हो और जिससे देव दक्ष जीवित हो जायँ तथा यज्ञ भी पूरा हो जाय॥ ६॥

हे मुने! इस प्रकार बहुत विचार करनेपर जब मुझे शान्ति नहीं मिली, तब भक्तिपूर्वक विष्णुका स्मरण करते हुए मैंने उचित ज्ञान प्राप्त कर लिया॥ ७॥

तदनन्तर देवताओं और मुनियोंके साथ मैं विष्णुलोकमें गया और उन्हें नमस्कार करके तथा अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करके अपना दु:ख उनसे कहने लगा—हे देव! जिस तरह भी यज्ञ पूर्ण हो, यज्ञकर्ता [दक्ष] जीवित हों और समस्त देवता तथा मुनि सुखी हो जायँ, आप वैसा कीजिये। हे देवदेव! हे रमानाथ! हे देवसुखदायक विष्णो! हम देवता और मुनिलोग निश्चय ही आपकी शरणमें आये हैं॥ ८—१०॥

ब्रह्माजी बोले—मुझ ब्रह्माकी यह बात सुनकर शिवस्वरूप लक्ष्मीपति विष्णु शिवजीका स्मरण करके दुखीचित्त होकर इस प्रकार कहने लगे—॥ ११॥

विष्णु बोले—हे देवताओ! परम समर्थ तेजस्वी पुरुषसे कोई अपराध बन जाय, तो भी उसके बदलेमें अपराध करनेवाले मनुष्योंके लिये उनका वह अपराध मंगलकारी नहीं हो सकता। हे विधे! समस्त देवता परमेश्वर शिवके अपराधी हैं; क्योंकि इन्होंने उन शम्भुको यज्ञका भाग नहीं दिया॥ १२-१३॥

अब आप सभी लोग शुद्ध हृदयसे शीघ्र ही प्रसन्न होनेवाले भगवान् शिवके पैर पकड़कर उन्हें प्रसन्न कीजिये॥ १४॥

यस्मिन् प्रकुपिते देवे विनश्यत्यखिलं जगत्।
सलोकपालयज्ञस्य शासनाज्जीवितं द्रुतम्॥ १५

तमाशु प्रियया देवं विहीनं च दुरुक्तिभिः।
क्षमापयध्वं हृद्विद्धं दक्षेण सुदुरात्मना॥ १६

जिन भगवान्‌के कुपित होनेपर यह सारा जगत् नष्ट हो जाता है तथा जिनके शासनसे लोकपालोंसहित यज्ञका जीवन शीघ्र ही समाप्त जाता है, उन प्रियाविहीन तथा अत्यन्त दुरात्मा दक्षके दुर्वचनोंसे बिंधे हुए हृदयवाले देव शंकरसे आपलोग शीघ्र ही क्षमा माँगिये॥ १५-१६॥

अयमेव महोपायस्तच्छान्त्यै केवलं विधे।
शंभोः संतुष्टये मन्ये सत्यमेवोदितं मया॥ १७

हे विधे! उन शम्भुकी शान्ति तथा सन्तुष्टिके लिये केवल यही महान् उपाय है—ऐसा मैं समझता हूँ। यह मैंने सच्ची बात कही है॥ १७॥

नाहं न त्वं सुराश्चान्ये मुनयोऽपि तनूभृतः।
यस्य तत्त्वं प्रमाणं च न विदुर्बलवीर्ययोः॥ १८

आत्मतन्त्रस्य तस्यापि परस्य परमात्मनः।
क उपायं विधित्सेद्वै परं मूढं विरोधिनम्॥ १९

हे विधे! न मैं, न तुम, न अन्य देवता, न मुनिगण और न दूसरे शरीरधारी ही जिनके बल तथा पराक्रमके तत्त्व तथा प्रमाणोंको जान पाते हैं, उन स्वतन्त्र परमात्मा परमेश्वरको विरुद्धकर प्रसन्न करनेका [प्रणिपात करनेके अतिरिक्त] कोई दूसरा उपाय नहीं हो सकता॥ १८-१९॥

चलिष्येऽहमपि ब्रह्मन् सर्वैः सार्धं शिवालयम्।
क्षमापयामि गिरिशं कृतागश्च शिवे ध्रुवम्॥ २०

हे ब्रह्मन्! आपलोगोंके साथ मैं भी शिवालय चलूँगा और शिवके प्रति स्वयं अपराधी होनेपर भी उनसे क्षमा करवाऊँगा॥ २०॥

ब्रह्मोवाच

इत्थमादिश्य विष्णुर्मां ब्रह्माणं सामरादिकम्।
सार्धं देवैर्मतिं चक्रे तद्‌गिरौ गमनाय सः॥ २१

ब्रह्माजी बोले—देवता आदिके साथ मुझ ब्रह्माको इस प्रकार आदेश देकर भगवान् विष्णुने देवताओंके साथ कैलासपर्वतपर जानेका विचार किया॥ २१॥

ययौ स्वधिष्ण्यनिलयं शिवस्याद्रिवरं शुभम्।
कैलासं सामरमुनिप्रजेशादिमयो हरिः॥ २२

देवता, मुनि, प्रजापति आदिको साथ लेकर वे विष्णु शिवजीके स्वप्रकाशस्वरूप शुभ तथा श्रेष्ठ कैलास पर्वतपर पहुँच गये॥ २२॥

अतिप्रियं प्रभोर्नित्यं सुजुष्टं किन्नरादिभिः।
नरेतरैरप्सरोभिर्योगसिद्धैर्महोन्नतम् ॥ २३

कैलास भगवान् शिवको सदा ही प्रिय है, वह मनुष्योंके अतिरिक्त किन्नरों, अप्सराओं तथा योगसिद्ध महात्माओंसे सेवित था और बहुत ऊँचा था॥ २३॥

नानामणिमयैः शृङ्गैः शोभमानं समन्ततः।
नानाधातुविचित्रं वै नानाद्रुमलताकुलम्॥ २४

वह चारों ओरसे अनेक मणिमय शिखरोंसे सुशोभित था, अनेक धातुओंसे विचित्र जान पड़ता था और अनेक प्रकारके वृक्ष तथा लताओंसे भरा हुआ था॥ २४॥

नानामृगगणाकीर्णं नानापक्षिसमन्वितम्।
नानाजलप्रस्रवणैरमरैः सिद्धयोषिताम्॥ २५

रमणैर्विहरन्तीनां नानाकन्दरसानुभिः।
द्रुमजातिभिरन्याभी राजितं राजतप्रभम्॥ २६

अनेक प्रकारके पशुओं-पक्षियों तथा अनेक प्रकारके झरनोंसे वह परिव्याप्त था। उसके शिखरपर सिद्धांगनाएँ अपने-अपने पतियोंके साथ विहार करती थीं। वह अनेक प्रकारकी कन्दराओं, शिखरों तथा अनेक प्रकारके वृक्षोंकी जातियोंसे सुशोभित था। उसकी कान्ति चाँदीके समान श्वेतवर्णकी थी॥ २५-२६॥

व्याघ्रादिभिर्महासत्त्वैर्निर्घुष्टं क्रूरतोज्झितम्।
सर्वशोभान्वितं दिव्यं महाविस्मयकारकम्॥ २७

वह पर्वत बड़े-बड़े व्याघ्र आदि जन्तुओंसे युक्त, भयानकतासे रहित, सम्पूर्ण शोभासे सम्पन्न, दिव्य तथा अत्यधिक आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला था॥ २७॥

पर्यस्तं गङ्गया सत्या स्थानपुण्यतरोदया।
सर्वपावनसंकर्त्र्या विष्णुपद्या सुनिर्मलम्॥ २८

वह सभीको पवित्र कर देनेवाली तथा अनेक तीर्थोंका निर्माण करनेवाली विष्णुपदी सती श्रीगंगाजीसे घिरा हुआ तथा अत्यन्त निर्मल था॥ २८॥

एवंविधं गिरिं दृष्ट्वा कैलासाख्यं शिवप्रियम्।
ययुस्ते विस्मयं देवा विष्णवाद्याः समुनीश्वराः॥ २९

शिवजीके परम प्रिय कैलास नामक इस प्रकारके पर्वतको देखकर मुनीश्वरोंसहित विष्णु आदि देवता आश्चर्यचकित हो गये॥ २९॥

तत्समीपेऽलकां रम्यां ददृशुर्नाम ते पुरीम्।
कुबेरस्य महादिव्यां रुद्रमित्रस्य निर्जराः॥ ३०

उन देवताओंने उस कैलासके सन्निकट शिवके मित्र कुबेरकी अलका नामक परम दिव्य तथा रम्य पुरीको देखा॥ ३०॥

वनं सौगन्धिकं चापि ददृशुस्तत्समीपतः।
सर्वद्रुमान्वितं दिव्यं यत्र तन्नादमद्भुतम्॥ ३१

उन्होंने उसके पास ही सौगन्धिक नामक दिव्य वन भी देखा, जो अनेक प्रकारके दिव्य वृक्षोंसे शोभित था और जहाँ [पक्षियोंकी] अद्भुत ध्वनि हो रही थी॥ ३१॥

तद्बाह्यतस्तस्य दिव्ये सरितावतिपावने।
नंदा चालकनंदा च दर्शनात्पापहारिके॥ ३२

उससे बाहर नन्दा एवं अलकनन्दा नामक दिव्य तथा परम पावन सरिताएँ बह रही थीं, जो दर्शनमात्रसे ही [मनुष्योंके] पापोंका विनाश कर देती हैं॥ ३२॥

पपुः सुरस्त्रियो नित्यमवगूह्य स्वलोकतः।
विगाह्य पुंभिस्तास्तत्र क्रीडंति रतिकर्शिताः॥ ३३

देवस्त्रियाँ प्रतिदिन अपने लोकसे आकर उनका जल पीतीं और स्नान करके रतिसे आकृष्ट होकर पुरुषोंके साथ विहार करती हैं॥ ३३॥

हित्वा यक्षेश्वरपुरीं वनं सौगंधिकं च यत्।
गच्छन्तस्ते सुरा आराद्ददृशुः शांकरं वटम्॥ ३४

उसके बाद उस अलकापुरी तथा सौगन्धिक वनको छोड़कर आगेकी ओर जाते हुए उन देवताओंने समीपमें ही शंकरजीके वटवृक्षको देखा॥ ३४॥

पर्यक्कृताचलच्छायं पादोनविटपायतम्।
शतयोजनकोत्सेधं निर्नीडं तापवर्जितम्॥ ३५

महापुण्यवतां दृश्यं सुरम्यं चातिपावनम्।
शंभुयोगस्थलं दिव्यं योगिसेव्यं महोत्तमम्॥ ३६

वह [वटवृक्ष] उस पर्वतके चारों ओर छाया फैलाये हुए था, उसकी शाखाएँ तीन ओर फैली हुई थीं, उसका घेरा सौ योजन ऊँचा था, वह घोंसलोंसे विहीन था और तापसे रहित था। उसका दर्शन [केवल] पुण्यात्माओंको ही होता है। वह अत्यन्त रमणीय, परम पावन, शिवजीका योगस्थल, दिव्य योगियोंके निवासके योग्य तथा अत्युत्तम था॥ ३५-३६॥

मुमुक्षुशरणे तस्मिन् महायोगमये वटे।
आसीनं ददृशुः सर्वे शिवं विष्णवादयः सुराः॥ ३७

विष्णु आदि सभी देवताओंने महायोगमय तथा मुमुक्षुओंको शरण प्रदान करनेवाले उस वटवृक्षके नीचे बैठे हुए शिवजीको देखा॥ ३७॥

विधिपुत्रैर्महासिद्धैः शिवभक्तिरतैः सदा।
उपास्यमानं समुदा शांतैः संशांतविग्रहैः॥ ३८

शान्त स्वभाववाले, अत्यन्त शान्त विग्रहवाले, शिवभक्तिमें तत्पर तथा महासिद्ध [सनक आदि] ब्रह्मपुत्र प्रसन्नताके साथ उनकी उपासना कर रहे थे॥ ३८॥

तथा सख्या कुबेरेण भर्त्रा गुह्यकरक्षसाम्।
सेव्यमानं विशेषेण स्वगणैर्ज्ञातिभिः सदा॥ ३९

तापसाभीष्टसद्रूपं बिभ्रतं परमेश्वरम्।
वात्सल्याद्विश्वसुहृदं भस्मादिसुविराजितम्॥ ४०

गुह्यकों एवं राक्षसोंके पति उनके मित्र कुबेर अपने गणों तथा कुटुम्बीजनोंके साथ विशेषरूपसे उनकी सेवा कर रहे थे। वे परमेश्वर शिव तपस्वीजनोंको प्रिय लगनेवाले सुन्दर रूपको धारण किये हुए थे, वात्सल्यके कारण वे सम्पूर्ण विश्वके मित्ररूप प्रतीत हो रहे थे और भस्म आदिसे उनके अंगोंकी बड़ी शोभा हो रही थी॥ ३९-४०॥

मुने तुभ्यं प्रवोचन्तं पृच्छते ज्ञानमुत्तमम्।
कुशासने सूपविष्टं सर्वेषां शृण्वतां सताम्॥ ४१

कृत्वोरौ दक्षिणे सव्यं चरणं चैव जानुनि।
बाहुप्रकोष्ठाक्षमालं स्थितं सत्तर्कमुद्रया॥ ४२

हे मुने! आपके पूछनेपर कुशासनपर बैठे हुए वे शिव सभी सज्जनोंको सुनाते हुए आपको ज्ञानका उपदेश दे रहे थे। वे अपना बायाँ चरण अपनी दायीं जाँघपर और बायाँ हाथ बायें घुटनेपर रखे कलाईमें रुद्राक्षकी माला डाले सुन्दर तर्कमुद्रामें विराजमान थे॥ ४१-४२॥

एवंविधं शिवं दृष्ट्वा तदा विष्ण्वादयः सुराः।
प्रणेमुस्त्वरितं सर्वे करौ बध्वा विनम्रकाः॥ ४३

उपलभ्यागतं रुद्रो मया विष्णुं सतां गतिः।
उत्थाय चक्रे शिरसाभिवंदनमपि प्रभुः॥ ४४

इस प्रकारके स्वरूपवाले शिवको देखकर उस समय विष्णु आदि सभी देवताओंने शीघ्रतासे नम्रतापूर्वक दोनों हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। तब सज्जनोंके शरणदाता प्रभु रुद्रने मेरे साथ आये हुए विष्णुको देखकर उठ करके सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया॥ ४३-४४॥

वंदिताङ्घ्रिस्तदा सर्वैर्दिव्यैर्विष्ण्वादिभिः शिवः।
ननामाथ यथा विष्णुः कश्यपं लोकसद्गतिः॥ ४५

विष्णु आदि देवताओंने जब भगवान् शिवजीके चरणोंमें प्रणाम किया, तब उन्होंने भी उसी प्रकार मुझे नमस्कार किया, जिस प्रकार लोकोंको सद्गति प्रदान करनेवाले भगवान् विष्णु कश्यपको प्रणाम करते हैं॥ ४५॥

सुरसिद्धगणाधीशमहर्षिसुनमस्कृतम्।
समुवाच सुरैर्विष्णुं कृतसन्नतिमादरात्॥ ४६

तब शिवजीने देवताओं, सिद्धों, गणाधीशों और महर्षियोंसे नमस्कृत तथा वन्दित विष्णुसे आदरपूर्वक वार्तालाप किया॥ ४६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे शिवदर्शनवर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें शिवके दर्शनका वर्णन नामक चालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४०॥

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

देवताओंद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति

विष्ण्वादय ऊचुः

देवदेव महादेव लौकिकाचारकृत्प्रभो।
ब्रह्म त्वामीश्वरं शंभुं जानीमः कृपया तव॥ १

विष्णु आदि बोले—हे देवदेव! हे महादेव! लोकाचारका प्रदर्शन करनेवाले हे प्रभो! आपकी कृपासे हमलोग आप परमेश्वर शम्भुको परम ब्रह्म मानते हैं॥ १॥

किं मोहयसि नस्तात मायया परया तव।
दुर्ज्ञेयया सदा पुंसां मोहिन्या परमेश्वर॥ २

हे परमेश्वर! हे तात! आप सम्पूर्ण संसारको मोहनेवाली अपनी उत्कृष्ट तथा दुर्जेय मायासे हमें क्यों मोहित कर रहे हैं?॥ २॥

प्रकृतेः पुरुषस्यापि जगतो योनिबीजयोः।
परब्रह्म परस्त्वं च मनोवाचामगोचरः॥ ३

आप संसारके योनि एवं बीजभूत प्रकृति तथा पुरुषसे भी परे हैं। आप परब्रह्म हैं एवं मन तथा वाणीके विषयसे परे हैं॥ ३॥

त्वमेव विश्वं सृजसि पास्यत्सि निजतन्त्रतः।
स्वरूपां शिवशक्तिं हि क्रीडन्नूर्णपटो यथा॥ ४

आप ही अपनी इच्छासे इस विश्वका सृजन करते हैं, पालन करते हैं तथा संहार भी करते हैं। जैसे मकड़ी अपने मुँहसे जाला बनाती है तथा उसको पुनः समेट लेती है, उसी प्रकार आप भी अपनी शक्तिके द्वारा अनेक प्रकारकी क्रीड़ाएँ करते रहते हैं॥ ४॥

त्वमेव क्रतुमीशान ससर्जिथ दयापरः।
दक्षेण सूत्रेण विभो सदा त्रय्यभिपत्तये॥ ५

हे ईशान! हे विभो! आपने ही दयालु होकर वेदत्रयीकी रक्षाके लिये दक्षरूपी सूत्रके द्वारा यज्ञकी रचना की है॥ ५॥

त्वयैव लोकेऽवसिताः सेतवो यान् धृतव्रताः।
शुद्धान् श्रद्दधते विप्रा वेदमार्गविचक्षणाः॥ ६

आपने ही संसारमें उन [वैदिक] मर्यादाओंकी स्थापना की है, जिनपर वेदमार्गपरायण तथा दृढ़-व्रतका पालन करनेवाले ब्राह्मण लोग श्रद्धा करते हैं॥ ६॥

कर्तुस्त्वं मङ्गलानां हि स्वपरं तु सुखे विभो।
अमङ्गलानां च हितं मिश्रं वाथ विपर्ययम्॥ ७

हे विभो! आप ही मंगलोंके कर्ता हैं, आप ही अपनों और दूसरोंको सुख प्रदान करनेवाले हैं और आप ही अमंगलोंका भी हितकारी अथवा अहितकारी या मिश्रित फल देनेवाले हैं॥ ७॥

सर्वकर्मफलानां हि सदा दाता त्वमेव हि।
सर्वे हि प्रोक्ताः पशवस्तत्पतिस्त्वं श्रुतिश्रुतः॥ ८

हे प्रभो! आप ही सदा सब कर्मोंका फल प्रदान करनेवाले हैं। जगत्के समस्त प्राणी पशु कहे गये हैं, उनकी रक्षाके कारण ही आपका नाम पशुपति है—ऐसा वेदोंमें कहा गया है॥ ८॥

पृथग्धियः कर्मदृशोऽरुंतुदाश्च दुराशयाः।
वितुदंति परान् मूढा दुरुक्तैर्मत्सरान्विताः॥ ९

आपसे भिन्न बुद्धि होनेके कारण ही कर्मपर विश्वास करनेवाले, मर्मभेदी वचन बोलनेवाले, दुरात्मा, दुर्बुद्धि लोग ही ईर्ष्यावश कटुवाक्योंसे दूसरोंको कष्ट पहुँचाते हैं॥ ९॥

तेषां दैववधानां भो भूयात्त्वच्च वधो विभो।
भगवन्परमेशान कृपां कुरु परप्रभो॥ १०

हे विभो! दुर्दैवद्वारा मारे गये उन लोगोंका वध क्या आपके द्वारा होना चाहिये, हे भगवन्! हे परमेशान! हे परप्रभो! आप कृपा कीजिये॥ १०॥

नमो रुद्राय शांताय ब्रह्मणे परमात्मने।
कपर्दिने महेशाय ज्योत्स्नाय महते नमः॥ ११

परम शान्त, रुद्र ब्रह्मको नमस्कार है। परमात्मा, जटाधारी, स्वयंप्रकाश महान् महेशको हमारा नमस्कार है॥ ११॥

त्वं हि विश्वसृजां स्त्रष्टा धाता त्वं प्रपितामहः।
त्रिगुणात्मा निर्गुणश्च प्रकृतेः पुरुषात्परः॥ १२

आप ही प्रजापतियोंके स्रष्टा, धाता, प्रपितामह, त्रिगुण (सत्त्व, रज, तम)-स्वरूप, निर्गुण एवं प्रकृति तथा पुरुषसे परे हैं॥ १२॥

नमस्ते नीलकंठाय वेधसे परमात्मने।
विश्वाय विश्वबीजाय जगदानंदहेतवे॥ १३

नीलकण्ठ, विधाता, परमात्मा, विश्व, विश्वके बीज और जगत्‌के आनन्दभूत आपको नमस्कार है॥ १३॥

ओंकारस्त्वं वषट्कारः सर्वारंभप्रवर्तकः।
हंतकारः स्वधाकारो हव्यकव्यान्नभुक् सदा॥ १४

[हे प्रभो!] आप ही ॐकार, वषट्कार, सभीके आदिप्रवर्तक, हन्तकार, स्वधाकार एवं हव्य-कव्यके सदा भोक्ता हैं॥ १४॥

कृतः कथं यज्ञभङ्गस्त्वया धर्मपरायण।
ब्रह्मण्यस्त्वं महादेव कथं यज्ञहनो विभो॥ १५

हे धर्मपरायण! आपने इस यज्ञका विध्वंस क्यों किया? हे महादेव! आप तो ब्राह्मणोंके रक्षक हैं, तब हे विभो! आप इस यज्ञके विनाशक कैसे बन गये?॥ १५॥

ब्राह्मणानां गवां चैव धर्मस्य प्रतिपालकः।
शरण्योऽसि सदानन्त्यः सर्वेषां प्राणिनां प्रभो॥ १६

हे प्रभो! आप ब्राह्मण, गौ तथा धर्मकी रक्षा करनेवाले एवं सभी प्राणियोंको शरण प्रदान करनेवाले तथा अनन्त हैं॥ १६॥

नमस्ते भगवन् रुद्र भास्करामिततेजसे।
नमो भवाय देवाय रसायांबुमयाय ते॥ १७

हे भगवन्! हे रुद्र! हे सूर्यके समान अमित तेजवाले! आपको प्रणाम है। रसरूप, जलरूप, जगन्मय-स्वरूप आप भव देवताको नमस्कार है॥ १७॥

शर्वाय क्षितिरूपाय सदा सुरभिणे नमः।
रुद्रायाग्निस्वरूपाय महातेजस्विने नमः॥ १८

सुगन्धवाले पृथ्वीस्वरूप आप शर्वको नमस्कार है। अग्निस्वरूप महातेजस्वी आप रुद्रको नमस्कार है॥ १८॥

ईशाय वायवे तुभ्यं संस्पर्शाय नमो नमः।
पशूनां पतये तुभ्यं यजमानाय वेधसे॥ १९

आप वायुरूप, स्पर्शरूप ईश्वरको नमस्कार है, आप पशुओंके पति, यजमान एवं विधाताको नमस्कार है॥ १९॥

भीमाय व्योमरूपाय शब्दमात्राय ते नमः।
महादेवाय सोमाय प्रवृत्ताय नमोऽस्तु ते॥ २०

आकाशस्वरूप शब्दवाले आप भीमको नमस्कार है। सोमस्वरूपसे कर्ममें प्रवृत्त करनेवाले आप महादेवको नमस्कार है॥ २०॥

उग्राय सूर्यरूपाय नमस्ते कर्मयोगिने।
नमस्ते कालकालाय नमस्ते रुद्रमन्यवे॥ २१

आप उग्र, सूर्यरूप कर्मयोगीको नमस्कार है। हे रुद्र! कालोंके भी काल एवं क्रोधस्वरूप आपके लिये नमस्कार है॥ २१॥

नमः शिवाय भीमाय शंकराय शिवाय ते।
उग्रोऽसि सर्वभूतानां नियंता यच्छिवोऽसि नः॥ २२

शिव, भीम एवं कल्याण करनेवाले आप शिव-शंकरको नमस्कार है। [हे प्रभो!] आप उग्र हैं, सभी प्राणियोंके नियन्ता हैं एवं हमारा कल्याण करनेवाले हैं॥ २२॥

मयस्कराय विश्वाय ब्रह्मणे ह्यार्तिनाशिने।
अम्बिकापतये तुभ्यमुमायाः पतये नमः॥ २३

आप मयस्कर [सुख प्रदान करनेवाले], विश्वरूप, ब्रह्म, दुःखोंका नाश करनेवाले, अम्बिकापति तथा उमापति हैं, आपको नमस्कार है॥ २३॥

शर्वाय सर्वरूपाय पुरुषाय परात्मने।
सदसद्व्यक्तिहीनाय महतः कारणाय ते॥ २४
जाताय बहुधा लोके प्रभूताय नमो नमः।
नीलाय नीलरुद्राय कद्रुद्राय प्रचेतसे॥ २५

शर्व, सर्वरूप, पुरुषरूप, परात्मा, सत् एवं असत्‌की अभिव्यक्तिसे हीन, महत्तत्त्वके कारण, संसारमें अनेक प्रकारसे उत्पन्न होनेवाले, प्रभूतस्वरूप, नीलस्वरूप, नीलरुद्र, कद्रुद्र एवं प्रचेताको बार-बार नमस्कार है॥ २४-२५॥

मीढुष्टमाय देवाय शिपिविष्टाय ते नमः।
महीयसे नमस्तुभ्यं हन्त्रे देवारिणां सदा॥ २६

आप मीढुष्टम, देव तथा शिपिविष्टको नमस्कार है। देवताओंके शत्रुओंको मारनेवाले तथा सर्वश्रेष्ठको नमस्कार है॥ २६॥

ताराय च सुताराय तरुणाय सुतेजसे।
हरिकेशाय देवाय महेशाय नमो नमः॥ २७

तारकमन्त्रस्वरूप, सबका उद्धार करनेवाले, तरुणरूप, परमतेजस्वी, हरिकेश, देव महेश्वरको बार-बार नमस्कार है॥ २७॥

देवानां शंभवे तुभ्यं विभवे परमात्मने।
परमाय नमस्तुभ्यं कालकंठाय ते नमः॥ २८
हिरण्याय परेशाय हिरण्यवपुषे नमः।
भीमाय भीमरूपाय भीमकर्मरताय च॥ २९

देवताओंका कल्याण करनेवाले, सभी ऐश्वर्योंसे युक्त, परमात्मा तथा परम आपको नमस्कार है। आप कालकण्ठको नमस्कार है। सुवर्णस्वरूप, परमेश, सुवर्णमय शरीरवाले, भीम, भीमरूप एवं भीमकर्ममें रत रहनेवाले आपको नमस्कार है॥ २८-२९॥

भस्मदिग्धशरीराय रुद्राक्षाभरणाय च।
नमो ह्रस्वाय दीर्घाय वामनाय नमोऽस्तु ते॥ ३०

भस्मसे लिप्त शरीरवाले, रुद्राक्षका आभूषण धारण करनेवाले तथा ह्रस्व-दीर्घ-वामनस्वरूपवाले आपको बार-बार नमस्कार है॥ ३०॥

दूरेवधाय ते देवाग्रेवधाय नमो नमः।
धन्विने शूलिने तुभ्यं गदिने हलिने नमः॥ ३१

नानायुधधरायैव दैत्यदानवनाशिने।
सद्याय सद्यरूपाय सद्योजाताय वै नमः॥ ३२

वामाय वामरूपाय वामनेत्राय ते नमः।
अघोराय परेशाय विकटाय नमो नमः॥ ३३

हे देव! दूर रहनेवालों तथा आगे रहनेवालोंका वध करनेवाले आपको नमस्कार है। धनुष, शूल, गदा तथा हल धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। अनेक आयुधोंको धारण करनेवाले, दैत्य-दानवोंका विनाश करनेवाले, सद्य, सद्यरूप तथा सद्योजात आपको नमस्कार है। वाम, वामरूप तथा वामनेत्र आपको नमस्कार है। अघोर, परेश एवं विकटको बार-बार नमस्कार है॥ ३१—३३॥

तत्पुरुषाय नाथाय पुराणपुरुषाय च।
पुरुषार्थप्रदानाय व्रतिने परमेष्ठिने॥ ३४
ईशानाय नमस्तुभ्यमीश्वराय नमो नमः।
ब्रह्मणे ब्रह्मरूपाय नमः साक्षात्परात्मने॥ ३५

तत्पुरुष, नाथ, पुराणपुरुष, पुरुषार्थ प्रदान करनेवाले, व्रतधारी परमेष्ठीको नमस्कार है। ईशान, ईशस्वरूप आपको बार-बार नमस्कार है। ब्रह्म, ब्रह्मस्वरूप एवं साक्षात् परमात्मस्वरूपको नमस्कार है॥ ३४-३५॥

उग्रोऽसि सर्वदुष्टानां नियंतासि शिवोऽसि नः।
कालकूटाशिने तुभ्यं देवाद्यवनकारिणे॥ ३६

वीराय वीरभद्राय रक्षद्वीराय शूलिने।
महादेवाय महते पशूनां पतये नमः॥ ३७

आप उग्र हैं, सभी दुष्टोंका नियन्त्रण एवं हम देवताओंका कल्याण करनेवाले हैं। कालकूट विषका पान करनेवाले, देवताओं आदिकी रक्षा करनेवाले, वीर, वीरभद्र, वीरोंकी रक्षा करनेवाले, त्रिशूलधारी, पशुपति, महादेव, महान् आपको नमस्कार है॥ ३६-३७॥

वीरात्मने सुविद्याय श्रीकंठाय पिनाकिने।
नमोऽनंताय सूक्ष्माय नमस्ते मृत्युमन्यवे॥ ३८

पराय परमेशाय परात्परतराय ते।
परात्पराय विभवे नमस्ते विश्वमूर्तये॥ ३९

वीरात्मा, श्रेष्ठ विद्यावाले, श्रीकण्ठ, पिनाकी, अनन्त, सूक्ष्म, मृत्यु तथा क्रोधस्वरूपवाले आपको बार-बार नमस्कार है। पर, परमेश, परसे भी पर, परात्पर, सर्वैश्वर्य-सम्पन्न तथा विश्वमूर्ति आपको नमस्कार है॥ ३८-३९॥

नमो विष्णुकलत्राय विष्णुक्षेत्राय भानवे।
भैरवाय शरण्याय त्र्यंबकाय विहारिणे॥ ४०

विष्णुको अपना मित्र माननेवाले, विष्णुको अपना कुटुम्ब माननेवाले, भानुरूप, भैरव, सबको शरण देनेवाले, त्रिलोचन एवं [सर्वत्र] विहार करनेवाले [शिवजी]-को प्रणाम है॥ ४०॥

मृत्युञ्जयाय शोकाय त्रिगुणाय गुणात्मने।
चन्द्रसूर्याग्निनेत्राय सर्वकारणसेतवे॥ ४१

भवता हि जगत्सर्वं व्याप्तं स्वेनैव तेजसा।
परब्रह्म निर्विकारी चिदानंदः प्रकाशवान्॥ ४२

मृत्युंजय, शोकस्वरूप, त्रिगुण, गुणरूप, सूर्य-चन्द्र-अग्निरूप नेत्रवाले तथा समस्त कारणोंके सेतुस्वरूप आपको नमस्कार है। आपने ही अपने तेजसे सारे जगत्‌को व्याप्त किया है। आप परब्रह्म, विकाररहित, चिदानन्द एवं प्रकाशवान् हैं॥ ४१-४२॥

ब्रह्मविष्ण्विन्द्रचन्द्रादिप्रमुखाः सकलाः सुराः।
मुनयश्चापरे त्वत्तः संप्रसूता महेश्वर॥ ४३

हे महेश्वर! ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्र आदि समस्त देव तथा अन्य मुनिगण आपसे ही उत्पन्न हुए हैं॥ ४३॥

यतो बिभर्षि सकलं विभज्य तनुमष्टधा।
अष्टमूर्तिरितीशश्च त्वमाद्यः करुणामयः॥ ४४

आप ही आठ प्रकारसे अपने शरीरको विभक्तकर जगत्‌की रक्षा करते हैं, इस कारण आप अष्टमूर्ति हैं। आप ही ईश्वर, जगत्‌के आदिकारण तथा करुणामय हैं॥ ४४॥

त्वद्भयाद्वाति वातोऽयं दहत्यग्निर्भयात्तव।
सूर्यस्तपति ते भीत्या मृत्युर्धावति सर्वतः॥ ४५

आपके भयसे वायु सर्वदा बहता रहता है, आपके भयसे अग्नि जलती है, आपके भयसे सूर्य तपता है तथा आपके ही भयसे मृत्यु सर्वत्र दौड़ती रहती है॥ ४५॥

दयासिन्धो महेशान प्रसीद परमेश्वर।
रक्ष रक्ष सदैवास्मान् यस्मान्नष्टान् विचेतसः॥ ४६

हे दयासिन्धो! हे महेशान! हे परमेश्वर! आप प्रसन्न होइये। हमलोग नष्ट और कर्तव्यशून्य हो गये हैं, अतः हमलोगोंकी रक्षा कीजिये॥ ४६॥

रक्षिताः सततं नाथ त्वयैव करुणानिधे।
नानापद्भ्यो वयं शंभो तथैवाद्य प्रपाहि नः॥ ४७

हे करुणानिधान! हे नाथ! आपने सदैव ही आपत्तियोंमें हमलोगोंकी रक्षा की है। हे शम्भो! उसी प्रकार आज भी हमलोगोंकी रक्षा कीजिये॥ ४७॥

यज्ञस्योद्धरणं नाथ कुरु शीघ्रं प्रसादकृत्।
असमाप्तस्य दुर्गेश दक्षस्य च प्रजापतेः॥ ४८

हे नाथ! हे दुर्गेश! हे कृपा करनेवाले! आप प्रजापति दक्षके अपूर्ण यज्ञका उद्धार कीजिये॥ ४८॥

भगोऽक्षिणी प्रपद्येत यजमानश्च जीवतु।
पूष्णो दन्ताश्च रोहन्तु भृगोः श्मश्रूणि पूर्ववत्॥ ४९

भग देवता पूर्ववत् नेत्र प्राप्त कर लें, यजमान दक्ष जीवित हो जायँ, पूषा अपने दाँतोंको पूर्ववत् प्राप्त कर लें तथा महर्षि भृगुकी दाढ़ी पूर्ववत् हो जाय॥ ४९॥

भवतानुगृहीतानां देवादीनां च सर्वशः।
आरोग्यं भग्नगात्राणां शंकर त्वायुधाश्मभिः॥ ५०

हे शंकर! शस्त्रोंसे तथा पत्थरोंसे छिन्न-भिन्न शरीरवाले तथा आपके द्वारा अनुगृहीत देवता आदिको आरोग्य प्राप्त हो जाय॥ ५०॥

पूर्णभागोऽस्तु ते नाथावशिष्टेऽध्वरकर्मणि।
रुद्रभागेन यज्ञस्ते कल्पितो नान्यथा क्वचित्॥ ५१

हे नाथ! इस शेष यज्ञकर्ममें आपका ही पूर्ण भाग हो। आपके उसी रुद्रभागसे ही यज्ञकी पूर्ति होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ५१॥

इत्युक्त्वा सप्रजेशश्च रमेशश्च कृताञ्जलिः।
दंडवत्पतितो भूमौ क्षमापयितुमुद्यतः॥ ५२

यह कहकर ब्रह्मासहित विष्णुदेव हाथ जोड़कर क्षमा करानेके लिये उद्यत हो दण्डके समान पृथिवीपर लेट गये॥ ५२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे देवस्तुतिवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें देवताओंद्वारा स्तुति-वर्णन नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४१॥

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवान् शिवका देवता आदिपर अनुग्रह, दक्षयज्ञ-मण्डपमें पधारकर दक्षको जीवित करना तथा दक्ष और विष्णु आदिद्वारा शिवकी स्तुति

ब्रह्मोवाच

श्रीब्रह्मेशप्रजेशेन सदैव मुनिना च वै।
अनुनीतः शंभुरासीत्प्रसन्नः परमेश्वरः॥ १
आश्वास्य देवान् विष्णवादीन् विहस्य करुणानिधिः।
उवाच परमेशानः कुर्वन् परमनुग्रहम्॥ २

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] मुझ ब्रह्मा, लोकपाल, प्रजापति तथा मुनियोंसहित विष्णुके अनुनय-विनय करनेपर परमेश्वर शिव प्रसन्न हो गये। विष्णु आदि देवताओंको आश्वासन देकर उनपर परम अनुग्रह करते हुए करुणानिधान परमेश्वर शिवजी हँसकर कहने लगे—॥ १-२॥

श्रीमहादेव उवाच

शृणुतं सावधानेन मम वाक्यं सुरोत्तमौ।
यथार्थं वच्मि वां तात वां क्रोधं सर्वदासहम्॥ ३
नाघं तनौ तु बालानां वर्णये नानुचिन्तये।
मम मायाभिभूतानां दंडस्तत्र धृतो मया॥ ४

श्रीमहादेवजी बोले—हे श्रेष्ठ देवताओ! आप दोनों सावधान होकर मेरी बात सुनें, मैं सच्ची बात कह रहा हूँ, हे तात! मैं आप दोनोंका क्रोध सर्वदा सहता रहता हूँ। बालकों अर्थात् अज्ञानियोंके द्वारा किये गये अपराधका मैं न तो वर्णन करता हूँ और न चिन्तन ही करता हूँ। इसपर भी मेरी मायासे भ्रान्त प्राणियोंके शिक्षणार्थ ही मैं दण्ड धारण करता हूँ॥ ३-४॥

दक्षस्य यज्ञभङ्गोऽयं न कृतश्च मया क्वचित्।
परं द्वेष्टि परेषां यदात्मनस्तद्भविष्यति॥ ५
परेषां क्लेदनं कर्म न कार्यं तत् कदाचन।
परं द्वेष्टि परेषां यदात्मनस्तद्भविष्यति॥ ६

दक्षके यज्ञका विध्वंस मैंने कभी नहीं किया है। दक्ष स्वयं ही दूसरोंसे द्वेष करते हैं। दूसरोंके प्रति जैसा व्यवहार किया जायगा, वह अपने लिये ही फलित होगा। अतः दूसरोंको कष्ट देनेवाला कार्य कभी नहीं करना चाहिये, जो दूसरोंसे द्वेष करता है, वह द्वेष अपने लिये ही होता है॥ ५-६॥

दक्षस्य यज्ञशीर्ष्णो हि भवत्वजमुखं शिरः।
मित्रनेत्रेण संपश्येद्यज्ञभागं भगः सुरः॥ ७
पूषाभिधः सुरस्तात दद्भिर्जक्षतु पिष्टभुक्।
याजमानैर्भग्नदन्तः सत्यमेतन्मयोदितम्॥ ८
बस्तश्मश्रुर्भवेदेव भृगुर्मम विरोधकृत्।

दक्षका मस्तक जल गया है, इसलिये इनके सिरके स्थानमें बकरेका सिर जोड़ दिया जाय। भग देवता मित्रकी आँखसे यज्ञका भाग देखें। हे तात! पूषा नामक देवता, जिनके दाँत टूट गये हैं, यजमानके दाँतोंसे भलीभाँति पिसे हुए अन्नका भक्षण करें। यह मैंने सच्ची बात बतायी है। मेरा विरोध करनेवाले भृगुकी दाढ़ीके स्थानमें बकरेकी दाढ़ी लगा दी जाय। शेष सभी देवताओंके, जिन्होंने मुझे यज्ञका उच्छिष्ट

देवाः प्रकृतिसर्वांगा ये म उच्छेषणं ददुः॥ ९

बाहुभ्यामश्विनौ पूष्णो हस्ताभ्यां कृतवाहकः।
भवन्त्वध्वर्यवश्चान्ये भवत्प्रीत्या मयोदितम्॥ १०

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा परमेशानो विरराम दयान्वितः।
चराचरपतिर्देवः सम्राट् वेदानुसारकृत्॥ ११

तदा सर्वे सुराद्यास्ते श्रुत्वा शंकरभाषितम्।
साधु साध्विति संप्रोचुः परितुष्टाः सविष्ण्वजाः॥ १२

ततः शंभुं समामन्त्र्य मया विष्णुः सुरर्षिभिः।
भूयस्तद्देवयजनं ययौ च परया मुदा॥ १३

एवं तेषां प्रार्थनया विष्णुप्रभृतिभिः सुरैः।
ययौ कनखलं शंभुर्यज्ञवाटं प्रजापतेः॥ १४

रुद्रस्तदा ददर्शाथ वीरभद्रेण यत्कृतम्।
प्रध्वंसं तं क्रतोस्तत्र देवर्षीणां विशेषतः॥ १५

स्वहा स्वधा तथा पूषा तुष्टिर्धृतिः सरस्वती।
तथान्ये ऋषयः सर्वे पितरश्चाग्नयस्तथा॥ १६

येऽन्ये च बहवस्तत्र यक्षगंधर्वराक्षसाः।
त्रोटिता लुंचिताश्चैव मृताः केचिद्रणाजिरे॥ १७

यज्ञं तथाविधं दृष्ट्वा समाहूय गणाधिपम्।
वीरभद्रं महावीर्यमुवाच प्रहसन् प्रभुः॥ १८

वीरभद्र महाबाहो किं कृतं कर्म ते त्विदम्।
महान् दंडो धृतस्तात देवर्ष्यादिषु सत्वरम्॥ १९

दक्षमानय शीघ्रं त्वं येनेदं कृतमीदृशम्।
यज्ञो विलक्षणस्तात यस्येदं फलमीदृशम्॥ २०

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तः शंकरेण वीरभद्रस्त्वरान्वितः।
कबंधमानयित्वाग्रे तस्य शंभोरथाक्षिपत्॥ २१

भाग दिया, सारे अंग पहलेकी भाँति ठीक हो जायँ। याज्ञिकोंमेंसे जिनकी भुजाएँ टूट गयी हैं, वे अश्विनीकुमारोंकी भुजाओंसे और जिनके हाथ नष्ट हो गये हैं, वे पूषाके हाथोंसे अपना काम चलायें। यह मैंने आपलोगोंके प्रेमवश कहा है॥ ७—१०॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार कहकर वेदका अनुसरण करनेवाले सुरसम्राट् चराचरपति दयालु परमेश्वर महादेवजी चुप हो गये। भगवान् शंकरका वह वचन सुनकर श्रीविष्णु और ब्रह्मासहित सम्पूर्ण देवता सन्तुष्ट हो गये। वे तत्काल साधुवाद देने लगे। तदनन्तर भगवान् शम्भुको आमन्त्रित करके मुझ ब्रह्मा और देवर्षियोंके साथ भगवान् विष्णु अत्यन्त हर्षित हो पुनः दक्षकी यज्ञशालाकी ओर चले॥ ११—१३॥

इस प्रकार उनकी प्रार्थनासे भगवान् शम्भु विष्णु आदि देवताओंके साथ कनखलमें स्थित प्रजापति दक्षकी यज्ञशालामें गये। उस समय रुद्रदेवने वहाँ यज्ञका और विशेषतः देवताओं तथा ऋषियोंका विध्वंस, जो वीरभद्रके द्वारा किया गया था, उसे देखा॥ १४-१५॥

स्वाहा, स्वधा, पूषा, तुष्टि, धृति, सरस्वती, अन्य समस्त ऋषि, पितर, अग्नि तथा अन्यान्य बहुत-से यक्ष, गन्धर्व और राक्षस वहाँ पड़े थे। उनमेंसे कुछ लोगोंके अंग तोड़ डाले गये थे। कुछ लोगोंके बाल नोंच लिये गये थे और कितने ही उस समरांगणमें मरे पड़े थे॥ १६-१७॥

उस यज्ञकी वैसी दुरवस्था देखकर भगवान् शंकरने अपने गणनायक पराक्रमी वीरभद्रको बुलाकर हँसते हुए कहा—हे महाबाहु वीरभद्र! यह तुमने कैसा काम किया? हे तात! थोड़ी ही देरमें देवता तथा ऋषि आदिको बड़ा भारी दण्ड दे दिया! हे तात! जिसने ऐसा [द्रोहपूर्ण] कार्य किया तथा इस विलक्षण यज्ञका आयोजन किया और जिसे ऐसा फल मिला, उस दक्षको तुम शीघ्र यहाँ ले आओ॥ १८—२०॥

ब्रह्माजी बोले—भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर वीरभद्रने शीघ्रतापूर्वक दक्षका धड़ लाकर उन शम्भुके समक्ष डाल दिया॥ २१॥

विशिरस्कं च तं दृष्ट्वा शंकरो लोकशंकरः।
वीरभद्रमुवाचाग्रे विहसन् मुनिसत्तम॥ २२
शिरः कुत्रेति तेनोक्तं वीरभद्रोऽब्रवीत्प्रभुः।
मया शिरो हुतं चाग्नौ तदानीमेव शंकर॥ २३

हे मुनिश्रेष्ठ! उसे सिररहित देख लोककल्याणकारी भगवान् शंकरने आगे खड़े हुए वीरभद्रसे हँसकर पूछा—दक्षका सिर कहाँ है? तब प्रभावशाली वीरभद्रने कहा—हे शंकर! मैंने तो उसी समय दक्षके सिरको आगमें होम कर दिया था॥ २२-२३॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्य वीरभद्रस्य शंकरः।
देवान् तथाज्ञपत्प्रीत्या यदुक्तं तत्पुरा प्रभुः॥ २४
विधाय कार्त्स्न्येन च तद्यदाह भगवान् भवः।
मया विष्ण्वादयः सर्वे भृग्वादीनथ सत्वरम्॥ २५

वीरभद्रकी यह बात सुनकर भगवान् शंकरने देवताओंको प्रसन्नतापूर्वक वैसी ही आज्ञा दी, जो पहलेसे दे रखी थी। भगवान् भवने उस समय जो कुछ कहा, उसकी मेरे द्वारा पूर्ति कराकर श्रीहरि आदि सब देवताओंने भृगु आदि सबको शीघ्र ही ठीक कर दिया॥ २४-२५॥

अथ प्रजापतेस्तस्य सवनीयपशोः शिरः।
बस्तस्य संदधुः शंभोः कायेनारं सुशासनात्॥ २६
संधीयमाने शिरसि शंभुसद्दृष्टिवीक्षितः।
सद्यः सुप्त इवोत्तस्थौ लब्धप्राणः प्रजापतिः॥ २७

तदनन्तर शम्भुके आदेशसे प्रजापति दक्षके धड़के साथ सवनीय पशु—बकरेका सिर जोड़ दिया गया। उस सिरके जोड़े जाते ही शम्भुकी कृपादृष्टि पड़नेसे प्रजापति दक्ष प्राण प्राप्त करके तत्क्षण सोकर जगे हुए पुरुषकी भाँति उठकर खड़े हो गये॥ २६-२७॥

उत्थितश्चाग्रतः शंभुं ददर्श करुणानिधिम्।
दक्षः प्रीतमतिः प्रीत्या संस्थितः सुप्रसन्नधीः॥ २८
पुरा हरमहाद्वेषकलिलात्माभवद्धि सः।
शिवावलोकनात् सद्यः शरच्चन्द्र इवामलः॥ २९

उठते ही दक्षने प्रसन्नचित्त होकर प्रेमपूर्वक अपने सामने करुणानिधि भगवान् शंकरको देखा। पहले महादेवजीसे द्वेष करनेके कारण उनका अन्तःकरण मलिन हो गया था, परंतु उस समय शिवजीके दर्शनसे वे तत्काल शरद् ऋतुके चन्द्रमाकी भाँति निर्मल हो गये॥ २८-२९॥

भवं स्तोतुमनाः सोऽथ नाशक्नोदनुरागतः।
उत्कण्ठाविकलत्वाच्च संपरेतां सुतां स्मरन्॥ ३०

यद्यपि वे [प्रेमके वशीभूत होकर] मनमें शिवजीकी स्तुति करनेकी इच्छा कर रहे थे, किंतु उन्हें उसी समय सतीके ब्रह्माजी बोले—शरीरत्यागका स्मरण हो गया, इसलिये वे उत्कण्ठासे व्याकुल होनेके कारण स्तुति नहीं कर सके॥ ३०॥

अथ दक्षः प्रसन्नात्मा शिवं लज्जासमन्वितः।
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा शंकरं लोकशंकरम्॥ ३१

तदनन्तर लज्जित होकर दक्ष प्रजापति प्रसन्नचित्त हो विनम्रतापूर्वक लोकका कल्याण करनेवाले शंकरकी स्तुति करने लगे॥ ३१॥

दक्ष उवाच

नमामि देवं वरदं वरेण्यं
महेश्वरं ज्ञाननिधिं सनातनम्।
नमामि देवाधिपतीश्वरं हरं
सदा सुखाढ्यं जगदेकबांधवम्॥ ३२

दक्ष बोले—वरदानी, श्रेष्ठ, महेश्वर, ज्ञाननिधि, सनातन देवको नमस्कार करता हूँ। देवाधिदेवोंके भी ईश्वर, सुखरूप एवं संसारके एकमात्र बन्धु भगवान् शंकरजीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ३२॥

नमामि विश्वेश्वर विश्वरूपं
पुरातनं ब्रह्मनिजात्मरूपम्।
नमामि शर्वं भवभावभावं
परात्परं शंकरमानतोऽस्मि॥ ३३

हे विश्वेश्वर! [आप] विश्वरूप, पुरातन, ब्रह्म तथा आत्मस्वरूपको मैं नमस्कार करता हूँ। मैं शर्वको नमस्कार करता हूँ। मैं संसारके भावोंका चिन्तन करनेवाले परात्पर शंकरको नमस्कार करता हूँ॥ ३३॥

देवदेव महादेव कृपां कुरु नमोऽस्तु ते।
अपराधं क्षमस्वाद्य मम शंभो कृपानिधे॥ ३४
अनुग्रहः कृतस्ते हि दंडव्याजेन शंकर।
खलोऽहं मूढधीर्देव ज्ञातं तत्त्वं मया न ते॥ ३५

हे देवदेव! हे महादेव! आपको नमस्कार है, मुझपर कृपा कीजिये। हे कृपानिधे! हे शम्भो! आज मेरे अपराधको क्षमा कीजिये। हे शंकर! आपने दण्डके बहाने ही मुझपर अनुग्रह किया है। मैं खल और मूर्ख हूँ; हे देव! मुझे आपके तत्त्वका ज्ञान नहीं था॥ ३४-३५॥

अद्य ज्ञातं मया तत्त्वं सर्वोपरि भवान्मतः।
विष्णुब्रह्मादिभिः सेव्यो वेदवेद्यो महेश्वरः॥ ३६

साधूनां कल्पवृक्षस्त्वं दुष्टानां दंडधृक् सदा।
स्वतन्त्रः परमात्मा हि भक्ताभीष्टवरप्रदः॥ ३७

हे प्रभो! आप विष्णु एवं ब्रह्मादि देवोंके भी सेव्य, वेदोंसे जाननेयोग्य तथा महेश्वर हैं। आज मुझे आपके तात्त्विक स्वरूपका ज्ञान हुआ है, आप सभी लोगोंमें श्रेष्ठ माने गये हैं। आप सत्पुरुषोंके लिये कल्पवृक्ष हैं और दुष्टोंको सदा दण्ड प्रदान करनेवाले हैं। आप सर्वथा स्वतन्त्र परमात्मा हैं एवं भक्तोंको अभीष्ट वर प्रदान करनेवाले हैं॥ ३६-३७॥

विद्यातपोव्रतधरानसृजः प्रथमं द्विजान्।
आत्मतत्त्वं समावेत्तुं मुखतः परमेश्वरः॥ ३८

आप परमेश्वरने ही अपने मुखसे विद्या, तप तथा व्रत धारण करनेवाले इन ब्राह्मणोंको तत्त्वका साक्षात्कार करनेके लिये उत्पन्न किया है॥ ३८॥

सर्वापद्भ्यः पालयिता गोपतिस्तु पशूनिव।
गृहीतदंडो दुष्टांस्तान् मर्यादापरिपालकः॥ ३९

मया दुरुक्तविशिखैः प्रविद्धः परमेश्वरः।
अमरानतिदीनाशान् मदनुग्रहकारकः॥ ४०

समस्त गोरूप पशुओंकी रक्षा जिस प्रकार गोपतिद्वारा की जाती है, उसी प्रकार आप सभी विपत्तियोंसे रक्षा करते हैं। आप मर्यादाके परिपालक तथा दुर्जनोंके लिये दण्ड धारण करते हैं। हे भगवन्! मैंने अनेक प्रकारके कटु वचनरूपी बाणोंसे आप परमेश्वरको बींध डाला था, फिर भी अत्यन्त क्षीण आशावाले इन देवताओं-सहित मुझपर आपने दया ही की है॥ ३९-४०॥

स भवान् भगवान् शंभो दीनबंधो परात्परः।
स्वकृतेन महार्हेण संतुष्टो भक्तवत्सल॥ ४१

इसलिये हे शम्भो! हे दीनबन्धो! हे भक्तवत्सल! आप परात्पर भगवान् मेरे द्वारा की गयी पूजासे सन्तुष्ट हो जाइये॥ ४१॥

ब्रह्मोवाच

इति स्तुत्वा महेशानं शंकरं लोकशंकरम्।
प्रजापतिर्विनीतात्मा विरराम महाप्रभुम्॥ ४२
अथ विष्णुः प्रसन्नात्मा तुष्टाव वृषभध्वजम्।
बाष्पगद्गदया वाण्या सुप्रणम्य कृताञ्जलिः॥ ४३

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार लोकका कल्याण करनेवाले महाप्रभु महेश्वरकी विनम्रतापूर्वक स्तुतिकर प्रजापति मौन हो गये। उसके बाद भगवान् विष्णु प्रसन्नचित्त होकर दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करके गद्गद वाणीसे वृषभध्वज शिवकी स्तुति करने लगे—॥ ४२-४३॥

विष्णुरुवाच

महादेव महेशान लोकानुग्रहकारक।
परब्रह्म परात्मा त्वं दीनबंधो दयानिधे॥ ४४

सर्वव्यापी स्वैरवर्ती वेदवेद्ययशाः प्रभो।
अनुग्रहः कृतस्तेन कृताश्चासुकृता वयम्॥ ४५

विष्णु बोले—हे महादेव! हे महेशान! लोकपर अनुग्रह करनेवाले हे दीनबन्धो! हे दयानिधे! आप परब्रह्म परमात्मा हैं। हे प्रभो! आप सर्वव्यापी स्वतन्त्र हैं, आपका यश वेदोंसे ही जाना जा सकता है। आपने हमलोगोंपर कृपा की है, उससे हमलोग कृतकृत्य हो गये॥ ४४-४५॥

दक्षोऽयं मम भक्तस्त्वां यन्निनिंद खलः पुरा।
तत् क्षन्तव्यं महेशाद्य निर्विकारो यतो भवान्॥ ४६

हे महेश्वर! इस मेरे भक्त दुष्ट दक्षने पूर्वमें आपकी जो निन्दा की है, उसे आप आज क्षमा कीजिये;

कृतो मयापराधोऽपि तव शंकर मौढ्यतः।
त्वद्गणेन कृतं युद्धं वीरभद्रेण पक्षतः॥ ४७

क्योंकि आप निर्विकार हैं। हे शंकर! मैंने भी मूर्खतावश आपका अपराध किया है, जो दक्षके पक्षसे आपके गण वीरभद्रके साथ युद्ध किया॥ ४६-४७॥

त्वं मे स्वामी परब्रह्म दासोऽहं ते सदाशिव।
पोष्यश्चापि सदा ते हि सर्वेषां त्वं पिता यतः॥ ४८

हे सदाशिव! आप मेरे स्वामी हैं, आप परब्रह्म हैं, मैं आपका दास हूँ, आप सभीके पिता हैं। इसलिये आपको हम सबका पालन करना चाहिये॥ ४८॥

ब्रह्मोवाच

देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो।
स्वतन्त्रः परमात्मा त्वं परमेशोऽद्वयोऽव्ययः॥ ४९

ब्रह्माजी बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणासागर! हे प्रभो! आप स्वतन्त्र, परमात्मा, परमेश्वर, अद्वय तथा अविनाशी हैं॥ ४९॥

मम पुत्रोपरि कृतो देवानुग्रह ईश्वर।
स्वापमानमगणयन् दक्षयज्ञं समुद्धर॥ ५०

प्रसन्नो भव देवेश सर्वशापान्निराकुरु।
सबोधः प्रेरकस्त्वं मे त्वमेव विनिवारकः॥ ५१

हे ईश्वर! हे देव! आपने मेरे इस पुत्रपर अनुग्रह किया है, अब आप अपना अपमान भूलकर दक्षके यज्ञका उद्धार कीजिये। हे देवेश! अब आप प्रसन्न हो जाइये और अपने सभी प्रकारके शापोंसे इसका उद्धार कीजिये; आप ज्ञानवान् ही मुझे प्रेरणा देनेवाले हैं और आप ही निवारण करनेवाले हैं॥ ५०-५१॥

इति स्तुत्वा महेशानं परमं च महामुने।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विनम्रीकृतमस्तकः॥ ५२

अथ शक्रादयो देवा लोकपालाः सुचेतसः।
तुष्टुवुः शंकरं देवं प्रसन्नमुखपंकजम्॥ ५३

हे महामुने! इस प्रकार परमात्मा महेश्वरकी स्तुति करके दोनों हाथ जोड़कर मैंने अपने मस्तकको झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर इन्द्र आदि देवतागण एवं लोकपाल सावधान होकर प्रसन्न मुख-कमलवाले शंकरजीकी स्तुति करने लगे॥ ५२-५३॥

ततः प्रसन्नमनसः सर्वे देवास्तथा परे।
सिद्धर्षयः प्रजेशाश्च तुष्टुवुः शंकरं मुदा॥ ५४

तथोपदेवनागाश्च सदस्या ब्राह्मणास्तथा।
प्रणम्य परया भक्त्या तुष्टुवुश्च पृथक् पृथक्॥ ५५

उसके बाद अन्य सभी देवता, सिद्ध, ऋषि एवं प्रजापतिगण भी प्रसन्नताके साथ शिवजीकी स्तुति करने लगे। तत्पश्चात् उपदेवता, नाग, सदस्य तथा ब्राह्मणलोग भी सद्भक्तिसे प्रणामकर अलग-अलग स्तुति करने लगे॥ ५४-५५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे
दक्षदुःखनिराकरणवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें दक्षके दुःखनिराकरणका वर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवान् शिवका दक्षको अपनी भक्तवत्सलता, ज्ञानी भक्तकी श्रेष्ठता तथा तीनों देवोंकी एकता बताना, दक्षका अपने यज्ञको पूर्ण करना, देवताओंका अपने-अपने लोकोंको प्रस्थान तथा सतीखण्डका उपसंहार और माहात्म्य

ब्रह्मोवाच

इति स्तुतो रमेशेन मया चैव सुरर्षिभिः।
तथान्यैश्च महादेवः प्रसन्नः संबभूव ह॥ १

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! इस प्रकार रमापति विष्णु, मेरे, देवताओं, ऋषियों तथा अन्य लोगोंके द्वारा स्तुति करनेपर महादेवजी बड़े प्रसन्न हो गये॥ १॥

अथ शंभुः कृपादृष्ट्या सर्वान् ऋषिसुरादिकान्।
ब्रह्मविष्णू समाधाय दक्षमेतदुवाच ह॥ २

तब वे शम्भु कृपादृष्टिसे सभी ऋषियों एवं देवताओंको देखकर तथा मुझ ब्रह्मा और श्रीविष्णुका समाधान करके दक्षसे इस प्रकार कहने लगे— ॥ २ ॥

महादेव उवाच

शृणु दक्ष प्रवक्ष्यामि प्रसन्नोऽस्मि प्रजापते।
भक्ताधीनः सदाहं वै स्वतन्त्रोऽप्यखिलेश्वरः॥ ३

महादेव बोले—हे प्रजापते! हे दक्ष! मैं [जो कुछ] कह रहा हूँ, सुनिये, मैं प्रसन्न हूँ। यद्यपि मैं सबका ईश्वर हूँ और स्वतन्त्र हूँ, फिर भी सदा भक्तोंके अधीन रहता हूँ॥ ३॥

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनः सदा।
उत्तरोत्तरतः श्रेष्ठास्तेषां दक्ष प्रजापते॥ ४

चार प्रकारके पुण्यात्मा मेरा भजन करते हैं। हे दक्ष! हे प्रजापते! उनमें पूर्वकी अपेक्षा उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं॥ ४॥

आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी चैव चतुर्थकः।
पूर्वे त्रयश्च सामान्याश्चतुर्थो हि विशिष्यते॥ ५

उनमें आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और चौथा ज्ञानी है। पहलेके तीन तो सामान्य [भक्त] हैं और चौथा विशिष्ट महत्त्वका है॥ ५॥

तत्र ज्ञानी प्रियतरो मम रूपं च स स्मृतः।
तस्मात्प्रियतरो नान्यः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ ६

उनमें चौथा ज्ञानी ही मुझे अधिक प्रिय है और वह मेरा रूप माना गया है। उससे बढ़कर दूसरा कोई मुझे प्रिय नहीं है, मैं सत्य-सत्य कह रहा हूँ॥ ६॥

ज्ञानगम्योऽहमात्मज्ञो वेदान्तश्रुतिपारगैः।
विना ज्ञानेन मां प्राप्तुं यतन्ते चाल्पबुद्धयः॥ ७

वेद-वेदान्तके पारगामी विद्वान् ही मुझ आत्मज्ञानीको ज्ञानके द्वारा जान सकते हैं, अल्प बुद्धिवाले ही ज्ञानके बिना मुझे प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं॥ ७॥

न वेदैश्च न यज्ञैश्च न दानैस्तपसा क्वचित्।
न शक्नुवन्ति मां प्राप्तुं मूढाः कर्मवशा नराः॥ ८

कर्मके वशीभूत मूढ़ मानव न वेदोंसे, न यज्ञोंसे, न दानोंसे और न तपस्यासे ही मुझे पा सकते हैं॥ ८॥

केवलं कर्मणा त्वं स्म संसारं तर्तुमिच्छसि।
अत एवाभवं रुष्टो यज्ञविध्वंसकारकः॥ ९

इतः प्रभृति भो दक्ष मत्वा मां परमेश्वरम्।
बुद्ध्या ज्ञानपरो भूत्वा कुरु कर्म समाहितः॥ १०

आप केवल कर्मके द्वारा ही इस संसारको पार करना चाहते थे, इसीलिये रुष्ट होकर मैंने इस यज्ञका विनाश किया है। अतः हे दक्ष! आजसे आप बुद्धिके द्वारा मुझे परमेश्वर मानकर ज्ञानका आश्रय लेते हुए सावधान होकर कर्म कीजिये॥ ९-१०॥

अन्यच्च शृणु सद्बुद्ध्या वचनं मे प्रजापते।
वच्मि गुह्यं धर्महेतोः सगुणत्वेऽप्यहं तव॥ ११

प्रजापते! आप उत्तम बुद्धिके द्वारा मेरी दूसरी बात भी सुनिये, मैं अपने सगुण स्वरूपके विषयमें भी धर्मकी दृष्टिसे गोपनीय बात आपसे कहता हूँ॥ ११॥

अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च जगतः कारणं परम्।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः॥ १२

जगत्का परम कारणरूप मैं ही ब्रह्मा और विष्णु हूँ। मैं सबका आत्मा, ईश्वर, साक्षी, स्वयंप्रकाश तथा निर्विशेष हूँ॥ १२॥

आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं मुने।
सृजन् रक्षन्हरन्विश्वं दधे संज्ञाः क्रियोचिताः॥ १३

हे मुने! अपनी [त्रिगुणात्मिका] मायामें प्रवेश करके मैं ही जगत्का सृजन, पालन और संहार करता हुआ क्रियाओंके अनुरूप [ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र] नामोंको धारण करता हूँ॥ १३॥

**अद्वितीये परे तस्मिन् ब्रह्मण्यात्मनि केवले।
अज्ञः पश्यति भेदेन भूतानि ब्रह्म चेश्वरम्॥ १४**

उस अद्वितीय (भेदरहित), केवल (विशुद्ध) मुझ परब्रह्म परमात्मामें अज्ञानी पुरुष ही ब्रह्म, ईश्वर तथा अन्य समस्त जीवोंको भिन्न रूपसे देखता है॥ १४॥

**शिरःकरादिस्वाङ्गेषु कुरुते न यथा पुमान्।
पारक्यशेमुषीं क्वापि भूतेष्वेवं हि मत्परः॥ १५**

जैसे मनुष्य अपने सिर, हाथ आदि अंगोंमें [ये मुझसे भिन्न हैं, ऐसी] परकीय बुद्धि कभी नहीं करता, उसी तरह मेरा भक्त सभी प्राणियोंमें भेदबुद्धि नहीं रखता॥ १५॥

**सर्वभूतात्मनामेकभावानां यो न पश्यति।
त्रिसुराणां भिदां दक्ष स शांतिमधिगच्छति॥ १६**

हे दक्ष! सभी भूतोंके आत्मास्वरूप तथा एक ही भाववाले [ब्रह्मा, विष्णु और मुझ शिव]—इन तीनों देवताओंमें जो भेद नहीं देखता, वही शान्ति प्राप्त करता है॥ १६॥

**यः करोति त्रिदेवेषु भेदबुद्धिं नराधमः।
नरके स वसेन्नूनं यावदाचन्द्रतारकम्॥ १७**

जो नराधम तीनों देवताओंमें भेदबुद्धि रखता है, वह निश्चय ही जबतक चन्द्रमा और तारे रहते हैं, तबतक नरकमें निवास करता है॥ १७॥

**मत्परः पूजयेद्देवान् सर्वानपि विचक्षणः।
स ज्ञानं लभते येन मुक्तिर्भवति शाश्वती॥ १८**

मुझमें परायण होकर जो बुद्धिमान् मनुष्य सभी देवताओंकी पूजा करता है, उसे इस प्रकारका ज्ञान हो जाता है, जिससे उसकी शाश्वती मुक्ति हो जाती है॥ १८॥

**विधिभक्तिं विना नैव भक्तिर्भवति वैष्णवी।
विष्णुभक्तिं विना मे न भक्तिः क्वापि प्रजायते॥ १९**

विधाताकी भक्तिके बिना विष्णुकी भक्ति नहीं हो सकती और विष्णुकी भक्तिके बिना मेरी भक्ति कभी नहीं हो सकती है॥ १९॥

**इत्युक्त्वा शंकरः स्वामी सर्वेषां परमेश्वरः।
सर्वेषां शृण्वतां तत्रोवाच वाणीं कृपाकरः॥ २०**

ऐसा कहकर कृपालु, सबके स्वामी परमेश्वर शिव सबको सुनाते हुए फिर यह वचन बोले— ॥ २०॥

**हरिभक्तो हि मां निन्देत्तथा शैवो भवेद्यदि।
तयोः शापा भवेयुस्ते तत्त्वप्राप्तिर्भवेन्न हि॥ २१**

यदि कोई विष्णुभक्त मेरी निन्दा करेगा और मेरा भक्त विष्णुकी निन्दा करेगा, तो आपको दिये हुए समस्त शाप उन्हीं दोनोंको प्राप्त होंगे और निश्चय ही उन्हें तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति नहीं हो सकती॥ २१॥

ब्रह्मोवाच

**इत्याकर्ण्य महेशस्य वचनं सुखकारकम्।
जहर्षुः सकलास्तत्र सुरमुन्यादयो मुने॥ २२**

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! भगवान् महेश्वरके इस सुखकर वचनको सुनकर वहाँ [उपस्थित] सभी देवता, मुनि आदि अत्यन्त हर्षित हुए॥ २२॥

**दक्षोऽभवन्महाप्रीत्या शिवभक्तिरतस्तदा।
सकुटुम्बः सुराद्यास्ते शिवं मत्वाखिलेश्वरम्॥ २३**

शिवको अखिलेश्वर मानकर दक्ष कुटुम्बसहित प्रसन्नतापूर्वक शिवभक्तिमें तत्पर हो गये और वे देवता आदि भी शिवभक्तिपरायण हो गये॥ २३॥

**यथा येन कृता शंभोः संस्तुतिः परमात्मनः।
तथा तस्मै वरो दत्तः शंभुना तुष्टचेतसा॥ २४**

जिसने जिस प्रकारसे परमात्मा शम्भुकी स्तुति की थी, उसे उसी प्रकार सन्तुष्टचित्त हुए शम्भुने वर दिया॥ २४॥

ज्ञप्तः शिवेनाशु दक्षः शिवभक्तः प्रसन्नधीः।
यज्ञं चकार संपूर्णं शिवानुग्रहतो मुने॥ २५

हे मुने! उसके बाद भगवान् शिवकी आज्ञा पाकर प्रसन्नचित्त हुए शिवभक्त दक्षने शिवजीकी कृपासे यज्ञ पूरा किया॥ २५॥

ददौ भागान्सुरेभ्यो हि पूर्णभागं शिवाय सः।
दानं ददौ द्विजेभ्यश्च प्राप्तः शंभोरनुग्रहः॥ २६

उन्होंने देवताओंको यज्ञभाग दिया और शिवजीको पूर्ण भाग दिया। साथ ही उन्होंने ब्राह्मणोंको दान भी दिया। इस तरह उन्हें शम्भुका अनुग्रह प्राप्त हुआ॥ २६॥

अथ देवस्य सुमहत्तत्कर्म विधिपूर्वकम्।
दक्षः समाप्य विधिवत्सहर्त्विग्भिः प्रजापतिः॥ २७

इस प्रकार महादेवजीके उस महान् कर्मका विधि-पूर्वक वर्णन किया गया। प्रजापति दक्षने ऋत्विजोंके सहयोगसे उस यज्ञकर्मको विधिवत् समाप्त किया॥ २७॥

एवं दक्षमखः पूर्णोऽभवत्तत्र मुनीश्वर।
शंकरस्य प्रसादेन परब्रह्मस्वरूपिणः॥ २८

हे मुनीश्वर! इस प्रकार परब्रह्मस्वरूप शंकरकी कृपासे दक्षका यज्ञ पूरा हुआ॥ २८॥

अथ देवर्षयः सर्वे शंसन्तः शांकरं यशः।
स्वधामानि ययुस्तुष्टाः परेऽपि सुखतस्तदा॥ २९

तदनन्तर सब देवता और ऋषि सन्तुष्ट होकर भगवान् शिवके यशका वर्णन करते हुए अपने-अपने स्थानको चले गये। दूसरे लोग भी उस समय वहाँसे सुखपूर्वक चले गये॥ २९॥

अहं विष्णुश्च सुप्रीतावपि स्वं स्वं परं मुदा।
गायन्तौ सुयशः शंभोः सर्वमङ्गलदं सदा॥ ३०

मैं और भगवान् विष्णु भी अत्यन्त प्रसन्न हो भगवान् शिवके सदा सर्वमंगलदायक सुयशका निरन्तर गान करते हुए अपने-अपने स्थानको सानन्द चल दिये॥ ३०॥

दक्षसम्मानितः प्रीत्या महादेवोऽपि सद्गतिः।
कैलासं स ययौ शैलं सुप्रीतः सगणो निजम्॥ ३१

सत्पुरुषोंको आश्रय देनेवाले महादेवजी भी दक्षसे प्रीतिपूर्वक सम्मानित हो प्रसन्नताके साथ गणोंसहित अपने निवासस्थान कैलास पर्वतपर चले गये॥ ३१॥

आगत्य स्वगिरिं शंभुः सस्मार स्वप्रियां सतीम्।
गणेभ्यः कथयामास प्रधानेभ्यश्च तत्कथाम्॥ ३२

अपने पर्वतपर आकर शम्भुने अपनी प्रिया सतीका स्मरण किया और प्रधान गणोंसे वह कथा कही॥ ३२॥

कालं निनाय विज्ञानी बहु तच्चरितं वदन्।
लौकिकीं गतिमाश्रित्य दर्शयन् कामितां प्रभुः॥ ३३

विज्ञानमय भगवान् शंकरने लौकिक गतिका अवलम्बनकर अपने सकामभावको प्रकट करते हुए तथा सतीचरित्र वर्णन करते हुए बहुत समय व्यतीत किया॥ ३३॥

नानीतिकारकः स्वामी परब्रह्म सतां गतिः।
तस्य मोहः क्व वा शोकः क्व विकारः परो मुने॥ ३४

हे मुने! वे सज्जनोंके शरणदाता, सबके स्वामी, अनीति न करनेवाले तथा परब्रह्म हैं, उन्हें मोह, शोक अथवा अन्य विकार कहाँसे हो सकता है!॥ ३४॥

अहं विष्णुश्च जानीवस्तद्भेदं न कदाचन।
के परे मुनयो देवा मानुषाद्याश्च योगिनः॥ ३५

जब मैं और विष्णु भी उनके भेदको कभी नहीं जान पाये, तो अन्य देवता, मुनि, मनुष्य आदि तथा योगिजनकी बात ही क्या है!॥ ३५॥

महिमा शांकरोऽनन्तो दुर्विज्ञेयो मनीषिभिः।
भक्तज्ञातश्च सद्भक्त्या तत्प्रसादाद्विना श्रमम्॥ ३६

भगवान् शंकरकी महिमा अनन्त है, जिसे बड़े-बड़े विद्वान् भी जाननेमें असमर्थ हैं, किंतु भक्तलोग उनकी कृपासे बिना श्रमके ही उत्तम भक्तिके द्वारा उसे जान लेते हैं॥ ३६॥

एकोऽपि न विकारो हि शिवस्य परमात्मनः।
संदर्शयति लोकेभ्यः कृत्वा तां तादृशीं गतिम्॥ ३७

यत्पठित्वा च संश्रुत्य सर्वलोकसुधीर्मुने।
लभते सद्गतिं दिव्यामिहापि सुखमुत्तमम्॥ ३८

परमात्मा शिवमें एक भी विकार नहीं है, किंतु लोकपरायण वे सगुणरूप धारणकर अपना चरित्र लोगोंको दिखाते हैं। हे मुने! जिसे पढ़कर और सुनकर सभी लोगोंमें बुद्धिमान् वह व्यक्ति इस लोकमें उत्तम सुख एवं [अन्तमें] दिव्य सद्गति प्राप्त कर लेता है॥ ३७-३८॥

इत्थं दाक्षायणी हित्वा निजदेहं सती पुनः।
जज्ञे हिमवतः पत्न्यां मेनायामिति विश्रुतम्॥ ३९

इस प्रकार दक्षकन्या सती [यज्ञमें] अपने शरीरको त्यागकर फिर हिमालयकी पत्नी मेनाके गर्भसे उत्पन्न हुईं, यह बात प्रसिद्ध ही है॥ ३९॥

पुनः कृत्वा तपस्तत्र शिवं वव्रे पतिं च सा।
गौरी भूत्वार्धवामाङ्गी लीलाश्चक्रेऽद्भुताः शिवा॥ ४०

तत्पश्चात् वहाँ तपस्या करके गौरी शिवाने भगवान् शिवका पतिरूपमें वरण किया। वे उनकी वाम-अर्धांगिनी होकर अद्भुत लीलाएँ करने लगीं॥ ४०॥

इत्थं सतीचरित्रं ते वर्णितं परमाद्भुतम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं सर्वकामप्रदायकम्॥ ४१

[हे नारद!] इस प्रकार मैंने आपसे सतीके परम अद्भुत चरित्रका वर्णन किया, जो भोग-मोक्षको देनेवाला, दिव्य तथा सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है॥ ४१॥

इदमाख्यानमनघं पवित्रं परपावनम्।
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं पुत्रपौत्रफलप्रदम्॥ ४२

यह आख्यान कालुष्यरहित, पवित्र, दूसरोंको पवित्र करनेवाला, स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला और पुत्र-पौत्ररूप फल प्रदान करनेवाला है॥ ४२॥

य इदं शृणुयाद् भक्त्या श्रावयेद्भक्तिमान्नरान्।
सर्वकर्मा लभेत्तात परत्र परमां गतिम्॥ ४३

हे तात! जो भक्तिमान् पुरुष भक्तिभावसे इसे सुनता है और अन्य मनुष्योंको सुनाता है। वह [इस लोकमें] सम्पूर्ण कर्मोंका फल पाकर परलोकमें परमगति प्राप्त करता है॥ ४३॥

यः पठेत्पाठयेद्वापि समाख्यानमिदं शुभम्।
सोऽपि भुक्त्वाखिलान् भोगानन्ते मोक्षमवाप्नुयात्॥ ४४

जो इस शुभ आख्यानको पढ़ता है अथवा पढ़ाता है, वह भी समस्त सुखोंका उपभोग करके अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है॥ ४४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे दक्षयज्ञानुसंधानवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें दक्षयज्ञके अनुसन्धानका वर्णन नामक तैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४३॥

॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयरुद्रसंहितायां द्वितीयः सतीखण्डः समाप्तः॥

॥ ॐ श्रीसाम्बशिवाय नमः ॥ ॥ ॐ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीयः पार्वतीखण्डः

अथ प्रथमोऽध्यायः

पितरोंकी कन्या मेनाके साथ हिमालयके विवाहका वर्णन

नारद उवाच

दाक्षायणी सती देवी त्यक्तदेहा पितुर्मखे।
कथं गिरिसुता ब्रह्मन् बभूव जगदम्बिका॥ १
कथं कृत्वा तपोऽत्युग्रं पतिमाप शिवं च सा।
एतन्मे पृच्छते सम्यक् कथय त्वं विशेषतः॥ २

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! अपने पिताके यज्ञमें शरीरका त्यागकर दक्षकन्या सती देवी जगदम्बा किस प्रकार हिमालयकी पुत्री बनीं और किस तरह अत्यन्त उग्र तपस्या करके उन्होंने शिवजीको पतिरूपमें प्राप्त किया? मैं यह आपसे पूछ रहा हूँ, आप विशेष रूपसे बताइये॥ १-२॥

ब्रह्मोवाच

शृणु त्वं मुनिशार्दूल शिवाचरितमुत्तमम्।
पावनं परमं दिव्यं सर्वपापहरं शुभम्॥ ३

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! आप शिवाके परम पावन, दिव्य, सभी पापोंको दूर करनेवाले, कल्याणकारी तथा उत्तम चरित्रको सुनिये॥ ३॥

यदा दाक्षायणी देवी हरेण सहिता मुदा।
हिमाचले सुचिक्रीडे लीलया परमेश्वरी॥ ४
मत्सुतेयमिति ज्ञात्वा सिषेवे मातृवर्चसा।
हिमाचलप्रिया मेना सर्वर्द्धिभिरनिर्भरा॥ ५

दक्षकन्या सती देवी जब प्रसन्नचित्त होकर शिवजीके साथ हिमालय पर्वतपर लीलापूर्वक क्रीड़ा करती थीं, उस समय मातृप्रेमसे भरी हुई हिमालयकी प्रिया मेना 'सम्पूर्ण सिद्धियोंसे युक्त यह मेरी पुत्री है'—ऐसा समझकर उनकी सेवामें संलग्न रहती थीं॥ ४-५॥

यदा दाक्षायणी रुष्टा नादृता स्वतनुं जहौ।
पित्रा दक्षेण तद्यज्ञे सङ्गता परमेश्वरी॥ ६
तदैव मेनका तां सा हिमाचलप्रिया मुने।
शिवलोकस्थितां देवीमारिराधयिषुस्तदा॥ ७

हे मुने! दक्षकन्या सती देवीने जब पिता दक्षके द्वारा अपमानित होकर क्रोधित हो यज्ञमें अपना शरीर त्याग दिया, उस समय हिमालयप्रिया मेना शिवलोकमें स्थित उन भगवती सतीकी आराधना करना चाह रही थीं॥ ६-७॥

तस्यामहं सुता स्यामित्यवधार्य सती हृदा।
त्यक्तदेहा मनो दध्रे भवितुं हिमवत्सुता॥ ८

उन्हींके गर्भसे मैं पुत्रीके रूपमें उत्पन्न होऊँ—ऐसा हृदयमें विचार करके शरीरका त्याग करनेवाली सतीने हिमालयकी पुत्री होनेके लिये मनमें निश्चय किया॥ ८॥

समयं प्राप्य सा देवी सर्वदेवस्तुता पुनः।
सती त्यक्ततनुः प्रीत्या मेनकातनयाभवत्॥ ९

देहत्यागके अनन्तर समय आनेपर सभी देवताओंके द्वारा स्तुत वे भगवती सती प्रसन्नतापूर्वक मेनका (मेना)-की पुत्रीके रूपमें उत्पन्न हुईं॥ ९॥

नाम्ना सा पार्वती देवी तपः कृत्वा सुदुस्सहम्।
नारदस्योपदेशाद्वै पतिं प्राप शिवं पुनः॥ १०

उन देवीका नाम पार्वती हुआ। उन्होंने नारदके उपदेशसे अत्यन्त कठोर तपस्याकर पुनः शिवजीको पतिरूपमें प्राप्त किया॥ १०॥

नारद उवाच

ब्रह्मन् विधे महाप्राज्ञ वद मे वदतां वर।
मेनकायाः समुत्पत्तिं विवाहचरितं तथा॥ ११
धन्या हि मेनका देवी यस्यां जाता सुता सती।
अतो मान्या च धन्या च सर्वेषां सा पतिव्रता॥ १२

ब्रह्मोवाच

शृणु त्वं नारद मुने पार्वतीमातुरुद्भवम्।
विवाहं चरितं चैव पावनं भक्तिवर्धनम्॥ १३
अस्त्युत्तरस्यां दिशि वै गिरीशो हिमवान्महान्।
पर्वतो हि मुनिश्रेष्ठ महातेजाः समृद्धिभाक्॥ १४
द्वैरूप्यं तस्य विख्यातं जङ्गमस्थिरभेदतः।
वर्णयामि समासेन तस्य सूक्ष्मस्वरूपकम्॥ १५
पूर्वापरौ तोयनिधी सुविगाह्य स्थितो हि यः।
नानारत्नाकरो रम्यो मानदण्ड इव क्षितेः॥ १६
नानावृक्षसमाकीर्णो नानाशृङ्गसुचित्रितः।
सिंहव्याघ्रादिपशुभिः सेवितः सुखिभिः सदा॥ १७
तुषारनिधिरत्युग्रो नानाश्चर्यविचित्रितः।
देवर्षिसिद्धमुनिभिः संश्रितः शिवसंप्रियः॥ १८
तपःस्थानोऽतिपूतात्मा पावनश्च महात्मनाम्।
तपस्सिद्धिप्रदोऽत्यन्तं नानाधात्वाकरः शुभः॥ १९
स एव दिव्यरूपो हि रम्यः सर्वाङ्गसुन्दरः।
विष्णवंशोऽविकृतः शैलराजराजः सतां प्रियः॥ २०
कुलस्थित्यै च स गिरिर्धर्मवर्धनहेतवे।
स्वविवाहं कर्तुमैच्छत्पितृदेवहितेच्छया॥ २१
तस्मिन्नवसरे देवाः स्वार्थमाचिन्त्य कृत्स्नशः।
ऊचुः पितॄन्समागत्य दिव्यान्प्रीत्या मुनीश्वर॥ २२

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे विधे! हे महाप्राज्ञ! हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! आप मुझसे मेनकाकी उत्पत्ति, उनके विवाह तथा चरित्रका वर्णन कीजिये॥ ११॥

जिनसे भगवती सतीने पुत्रीके रूपमें जन्म लिया, वे मेनका देवी धन्य हैं। इसीलिये वे पतिव्रता मेना सभी लोगोंकी मान्य और धन्य हैं॥ १२॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! हे मुने! आप पार्वतीकी माताके जन्म, विवाह एवं अन्य भक्तिवर्धक पावन चरित्रको सुनिये। हे मुनिश्रेष्ठ! उत्तर दिशामें पर्वतोंका राजा हिमालय नामक महान् पर्वत है। जो महातेजस्वी और समृद्धिशाली है॥ १३-१४॥

जंगम तथा स्थावरभेदसे उसके दो रूप प्रसिद्ध हैं, मैं उसके सूक्ष्म स्वरूपका संक्षेपमें वर्णन कर रहा हूँ। वह पर्वत रमणीय एवं अनेक प्रकारके रत्नोंका आकर (खान) है, जो पूर्व तथा पश्चिम समुद्रके भीतर प्रवेश करके पृथ्वीके मानदण्डकी भाँति स्थित है॥ १५-१६॥

वह नाना प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त है, अनेक शिखरोंके कारण विचित्र शोभासे सम्पन्न है और सुखी सिंह, व्याघ्र आदि पशुओंसे सदा सेवित रहता है॥ १७॥

वह हिमका भण्डार है, अत्यन्त उग्र है, अनेक आश्चर्यजनक दृश्योंके कारण विचित्र है; देवता, ऋषि, सिद्ध और मुनि उसपर रहते हैं तथा वह भगवान् शिवको बहुत ही प्रिय है॥ १८॥

वह तप करनेका स्थान है, अत्यन्त पावन है, महात्माओंको भी पवित्र करनेवाला है, तपस्यामें अत्यन्त शीघ्र सिद्धि प्रदान करता है, अनेक प्रकारकी धातुओंकी खान है और शुभ है। वह दिव्य रूपवाला है, सर्वांगसुन्दर है, रमणीय है, शैलराजोंका भी राजा है, विष्णुका अंश है, विकाररहित एवं सज्जन पुरुषोंका प्रिय है॥ १९-२०॥

उस पर्वतने अपनी कुलपरम्पराकी स्थितिके लिये, धर्मकी अभिवृद्धिके लिये और देवताओं तथा पितरोंका हित करनेकी अभिलाषासे अपना विवाह करनेकी इच्छा की। हे मुनीश्वर! उसी समय देवतागण अपने पूर्ण स्वार्थका विचार करके दिव्य पितरोंके पास आकर उनसे प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे—॥ २१-२२॥

देवा ऊचुः

सर्वे शृणुत नो वाक्यं पितरः प्रीतमानसाः।
कर्तव्यं तत्तथैवाशु देवकार्येप्सवो यदि॥ २३

देवता बोले—हे पितरो! आप सभी प्रसन्नचित्त होकर हमारी बात सुनें और यदि आपलोगोंको देवताओंका कार्य करना अभीष्ट हो, तो शीघ्र वैसा ही करें॥ २३॥

मेना नाम सुता या वो ज्येष्ठा मङ्गलरूपिणी।
तां विवाह्य च सुप्रीत्या हिमाख्येन महीभृता॥ २४

एवं सर्वमहालाभः सर्वेषां च भविष्यति।
युष्माकममराणां च दुःखहानिः पदे पदे॥ २५

आपलोगोंकी मेना नामक जो ज्येष्ठ पुत्री प्रसिद्ध है, वह मंगलरूपिणी है, उसका विवाह आपलोग अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक हिमालय नामक पर्वतसे कर दीजिये। ऐसा करनेपर सभी लोगोंका महान् लाभ होगा और आपलोगोंके तथा देवताओंके दुःखोंका निवारण भी पग-पगपर होता रहेगा॥ २४-२५॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्यामरवचः पितरस्ते विमृश्य च।
स्मृत्वा शापं सुतानां च प्रोचुरोमिति तद्वचः॥ २६

ब्रह्माजी बोले—देवताओंकी यह बात सुनकर पितरोंने परस्पर विचार करके कन्याओंके शापका स्मरण करके इस बातको स्वीकार कर लिया॥ २६॥

ददुर्मेनां सुविधिना हिमागाय निजात्मजाम्।
समुत्सवो महानासीत्तद्विवाहे सुमङ्गले॥ २७

उन लोगोंने अपनी कन्या मेनाका विवाह विधिपूर्वक हिमालयके साथ कर दिया; उस मंगलमय विवाहमें महान् उत्सव हुआ॥ २७॥

हर्यादयोऽपि ते देवा मुनयश्चापरेऽखिलाः।
आजग्मुस्तत्र संस्मृत्य वामदेवं भवं धिया॥ २८

वामदेव शंकरका स्मरणकर विष्णु आदि देवता तथा समस्त मुनिगण उस विवाहमें आये॥ २८॥

उत्सवं कारयामासुर्दत्त्वा दानान्यनेकशः।
सुप्रशस्य पितॄन्दिव्यान्प्रशशंसुर्हिमाचलम्॥ २९

उन लोगोंने अनेक प्रकारके दान देकर उत्सव करवाया, तदनन्तर वे दिव्य पितरोंकी प्रशंसा करके हिमालयकी प्रशंसा करने लगे॥ २९॥

महामोदान्विता देवास्ते सर्वे समुनीश्वराः।
संजग्मुः स्वस्वधामानि संस्मरन्तः शिवाशिवौ॥ ३०

इसके बाद परम आनन्दसे युक्त वे सभी देवता तथा मुनीश्वर शिवा एवं शिवका स्मरण करते हुए अपने-अपने निवासस्थानको चले गये॥ ३०॥

यौतुकं बहु सम्प्राप्य सुविवाह्य प्रियां च ताम्।
आजगाम स्वभवनं मुदमाप गिरीश्वरः॥ ३१॥

उधर, पर्वतराज हिमालय भी अनेक प्रकारके उपहार प्राप्तकर उस प्रिया मेनाके साथ विवाह करके अपने घर आये और परम प्रसन्न हुए॥ ३१॥

ब्रह्मोवाच

मेनया हि हिमागस्य सुविवाहो मुनीश्वर।
प्रोक्तो मे सुखदः प्रीत्या किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ३२॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! मैंने मेनाके साथ हिमालयके सुखद पवित्र विवाहका वर्णन कर दिया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ३२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे हिमाचलविवाहवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें हिमाचलविवाह-वर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

पितरोंकी तीन मानसी कन्याओं—मेना, धन्या और कलावतीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त तथा सनकादिद्वारा प्राप्त शाप एवं वरदानका वर्णन

नारद उवाच

विधे प्राज्ञ वदेदानीं मेनोत्पत्तिं समादरात्।
अपि शापं समाचक्ष्व कुरु सन्देहभञ्जनम्॥ १

नारदजी बोले—हे महाप्राज्ञ! हे विधे! अब आदर-पूर्वक मेनाकी उत्पत्तिका वर्णन कीजिये और शापके भी विषयमें बताइये, इस प्रकार मेरे सन्देहको दूर कीजिये॥ १॥

ब्रह्मोवाच

शृणु नारद सुप्रीत्या मेनोत्पत्तिं विवेकतः।
मुनिभिः सह वक्ष्येऽहं सुतवर्य महाबुध॥ २

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! हे सुतवर्य! हे महाबुध! आप इन मुनिगणोंके साथ विवेकपूर्वक मेनाकी उत्पत्तिके वृत्तान्तको अत्यन्त प्रेमपूर्वक सुनिये, मैं कह रहा हूँ॥ २॥

दक्षनामा मम सुतो यः पुरा कथितो मुने।
तस्य जाताः सुताः षष्टिप्रमिताः सृष्टिकारणाः॥ ३

हे मुने! मैंने अपने दक्ष नामक जिन पुत्रकी चर्चा पहले की थी; उनके यहाँ सृष्टिकी कारणभूता साठ कन्याएँ उत्पन्न हुईं॥ ३॥

तासां विवाहमकरोत्स वरैः कश्यपादिभिः।
विदितं ते समस्तं तत्प्रस्तुतं शृणु नारद॥ ४

उन्होंने उन कन्याओंका विवाह श्रेष्ठ कश्यप आदिके साथ किया। हे नारद! यह सारा वृत्तान्त आपको विदित ही है, अब प्रस्तुत कथाका श्रवण कीजिये॥ ४॥

तासां मध्ये स्वधानाम्नीं पितृभ्यो दत्तवान्सुताम्।
तिस्रोऽभवन्सुतास्तस्याः सुभगा धर्ममूर्तयः॥ ५

तासां नामानि शृणु मे पावनानि मुनीश्वर।
सदा विघ्नहराण्येव महामङ्गलदानि च॥ ६

उन्होंने उनमेंसे स्वधा नामकी कन्या पितरोंको दी। उस स्वधासे धर्ममूर्तिरूपा सौभाग्यवती तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं। हे मुनीश्वर! उन कन्याओंके पवित्र, सदा विघ्नोंका हरण करनेवाले तथा महामंगल प्रदान करनेवाले नामोंको मुझसे सुनिये॥ ५-६॥

मेनानाम्नी सुता ज्येष्ठा मध्या धन्या कलावती।
अन्त्या एताः सुताः सर्वाः पितॄणां मानसोद्भवाः॥ ७

सबसे बड़ी कन्याका नाम मेना, मझली कन्याका नाम धन्या तथा अन्तिम कन्याका नाम कलावती था—ये सभी कन्याएँ पितरोंके मनसे प्रादुर्भूत हुई थीं॥ ७॥

अयोनिजाः स्वधायाश्च लोकतस्तत्सुता मताः।
आसां प्रोच्य सुनामानि सर्वान्कामान् जनो लभेत्॥ ८

ये अयोनिजा कन्याएँ लोकाचारके अनुसार स्वधाकी पुत्रियाँ कही गयी हैं। इनके पवित्र नामोंका उच्चारण करके मनुष्य समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेता है॥ ८॥

जगद्वन्द्याः सदा लोकमातरः परमोददाः।
योगिन्यः परमा ज्ञाननिधानास्तास्त्रिलोकगाः॥ ९

वे जगत्की वन्दनीया, लोकमाता, परमानन्दको देनेवाली, योगिनीस्वरूपा, उत्कृष्ट, ज्ञानकी निधि तथा तीनों लोकोंमें विचरण करनेवाली हुईं॥ ९॥

एकस्मिन्समये तिस्रो भगिन्यस्ता मुनीश्वर।
श्वेतद्वीपं विष्णुलोकं जग्मुर्दर्शनहेतवे॥ १०

कृत्वा प्रणामं विष्णोश्च संस्तुतिं भक्तिसंयुताः।
तस्थुस्तदाज्ञया तत्र सुसमाजो महानभूत्॥ ११

हे मुनीश्वर! एक समयकी बात है—वे तीनों बहनें भगवान् विष्णुके निवासस्थान श्वेतद्वीपमें उनके दर्शनके लिये गयीं। भक्तिपूर्वक विष्णुको प्रणाम तथा उनकी स्तुति करके वे उनकी आज्ञासे वहीं रुक गयीं। वहाँ उस समय बहुत बड़ा समाज एकत्रित था॥ १०-११॥

तदैव सनकाद्यास्तु सिद्धा ब्रह्मसुता मुने।
गतास्तत्र हरिं नत्वा स्तुत्वा तस्थुस्तदाज्ञया॥ १२

सनकाद्यान्मुनीन् दृष्ट्वोत्तस्थुस्ते सकला द्रुतम्।
तत्रस्थान्संस्थितान्नत्वा देवाद्याँल्लोकवन्दितान्॥ १३

तिस्रो भगिन्यस्तास्तत्र नोत्तस्थुर्मोहिता मुने।
मायया दैवविवशाः शङ्करस्य परात्मनः॥ १४

मोहिनी सर्वलोकानां शिवमाया गरीयसी।
तदधीनं जगत्सर्वं शिवेच्छा सा प्रकीर्त्यते॥ १५

प्रारब्धं प्रोच्यते सैव तन्नामानि ह्यनेकशः।
शिवेच्छया भवत्येव नात्र कार्या विचारणा॥ १६

भूत्वा तद्वशगास्ता वै न चक्रुरपि तन्नतिम्।
विस्मिताः सम्प्रदृश्यैव संस्थितास्तत्र केवलम्॥ १७

तादृशीं तद्गतिं दृष्ट्वा सनकाद्या मुनीश्वराः।
ज्ञानिनोऽपि परं चक्रुः क्रोधं दुर्विषहं च ते॥ १८

शिवेच्छामोहितस्तत्र सक्रोधस्ता उवाच ह।
सनत्कुमारो योगीशः शापं दण्डकरं ददत्॥ १९

सनत्कुमार उवाच

यूयं तिस्रो भगिन्यश्च मूढाः सद्वयुनोज्झिताः।
अज्ञातश्रुतितत्त्वा हि पितृकन्या अपि ध्रुवम्॥ २०

अभ्युत्थानं कृतं नो यो नमस्कारोऽपि गर्विताः।
मोहिता नरभावत्वात्स्वर्गाद् दूरा भवन्तु हि॥ २१

नरस्त्रियः सम्भवन्तु तिस्रोऽप्यज्ञानमोहिताः।
स्वकर्मणः प्रभावेण लभध्वं फलमीदृशम्॥ २२

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य च साध्व्यस्तास्तिस्रोऽपि चकिता भृशम्।
पतित्वा पादयोस्तस्य समूचुर्नतमस्तकाः॥ २३

पितृतनया ऊचुः

मुनिवर्य दयासिन्धो प्रसन्नो भव चाधुना।
त्वत्प्रणामं वयं मूढाः कुर्महे स्म न भावतः॥ २४

हे मुने! उसी अवसरपर [मुझ] ब्रह्माके पुत्र सनकादि सिद्धगण भी वहाँ गये और श्रीहरिको प्रणामकर वहीं उनकी आज्ञासे बैठ गये। तब सभी लोग सनकादि मुनियोंको देखकर वहाँ बैठे हुए लोकवन्दित देवता आदिको प्रणाम करके शीघ्र उठ खड़े हुए॥ १२-१३॥

किंतु हे मुने! वे तीनों बहनें परात्पर शंकरकी मायासे मोहित होनेके कारण प्रारब्धसे विवश हो नहीं उठीं॥ १४॥

शिवजीकी माया अत्यन्त प्रबल है, जो सब लोकोंको मोहित करनेवाली है। समस्त संसार उसीके अधीन है, वह शिवकी इच्छा कही जाती है॥ १५॥

उसीको प्रारब्ध भी कहा जाता है, उसके अनेक नाम हैं। वह शिवकी इच्छासे ही प्रवृत्त होती है, इसमें सन्देह नहीं है। उसी [शिवमाया]-के अधीन होकर उन कन्याओंने सनक आदिको प्रणाम नहीं किया। वे केवल उन्हें देखकर विस्मित हो बैठी रह गयीं॥ १६-१७॥

ज्ञानी होते हुए भी सनकादि मुनीश्वरोंने उनके उस प्रकारके व्यवहारको देखकर अत्यधिक असह्य क्रोध किया। तब शिवजीकी इच्छासे मोहित हुए योगीश्वर सनत्कुमार क्रोधित होकर दण्डित करनेवाला शाप देते हुए उनसे कहने लगे— ॥ १८-१९॥

सनत्कुमार बोले—तुम तीनों बहनें पितरोंकी कन्या हो, तथापि मूर्ख, सद्ज्ञानसे रहित और वेदतत्त्वके ज्ञानसे शून्य हो॥ २०॥

अभिमानमें भरी हुई तुमलोगोंने न तो हमारा अभ्युत्थान किया और न ही अभिवादन किया, तुमलोग नरभावसे मोहित हो गयी हो, अतः इस स्वर्गसे दूर चली जाओ और अज्ञानसे मोहित होनेके कारण तुम तीनों ही मनुष्योंकी स्त्रियाँ बनो। इस प्रकार तुमलोग अपने कर्मके प्रभावसे इस प्रकारका फल प्राप्त करो॥ २१-२२॥

ब्रह्माजी बोले—यह सुनकर वे साध्वी कन्याएँ आश्चर्यचकित हो गयीं और उनके चरणोंमें गिरकर विनम्रतासे सिर झुकाकर कहने लगीं॥ २३॥

पितृकन्याएँ बोलीं—हे मुनिवर्य! हे दयासागर! अब हमलोगोंपर प्रसन्न हो जाइये, हमलोगोंने मूढ़ होनेके कारण आपको श्रद्धासे प्रणाम नहीं किया॥ २४॥

प्राप्तं च तत्फलं विप्र न ते दोषो महामुने।
अनुग्रहं कुरुष्वात्र लभेम स्वर्गतिं पुनः॥ २५

हे विप्र! अतः हमलोगोंने उसका फल पाया। हे महामुने! इसमें आपका दोष नहीं है। आप हमलोगोंपर दया कीजिये, जिससे हमलोगोंको पुनः स्वर्गलोककी प्राप्ति हो॥ २५॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा तद्वचनं तात प्रोवाच स मुनिस्तदा।
शापोद्धारं प्रसन्नात्मा प्रेरितः शिवमायया॥ २६

ब्रह्माजी बोले—हे तात! तब उनकी यह बात सुनकर प्रसन्नचित्त वे मुनि शिवजीकी मायासे प्रेरित हो शापसे उद्धारका उपाय कहने लगे॥ २६॥

सनत्कुमार उवाच

पितॄणां तनयास्तिस्रः शृणुत प्रीतमानसाः।
वचनं मम शोकघ्नं सुखदं सर्वदैव वः॥ २७

सनत्कुमार बोले—हे पितरोंकी तीनों कन्याओ! तुमलोग प्रसन्नचित्त होकर मेरी बात सुनो, यह तुम्हारे शोकका नाश करनेवाली और सदा ही तुम्हें सुख प्रदान करनेवाली है॥ २७॥

विष्णोरंशस्य शैलस्य हिमाधारस्य कामिनी।
ज्येष्ठा भवतु तत्कन्या भविष्यत्येव पार्वती॥ २८

तुममेंसे जो ज्येष्ठ है, वह विष्णुके अंशभूत हिमालयगिरिकी पत्नी होगी और पार्वती उसकी पुत्री होंगी॥ २८॥

धन्या प्रिया द्वितीया तु योगिनी जनकस्य च।
तस्याः कन्या महालक्ष्मीर्नाम्ना सीता भविष्यति॥ २९

वृषभानस्य वैश्यस्य कनिष्ठा च कलावती।
भविष्यति प्रिया राधा तत्सुता द्वापरान्ततः॥ ३०

योगिनीस्वरूपा धन्या नामक दूसरी कन्या राजा जनककी पत्नी होगी, उसकी कन्या महालक्ष्मी होंगी, जिनका नाम सीता होगा। सबसे छोटी कन्या कलावती वैश्य वृषभानकी पत्नी होगी, जिसकी पुत्रीके रूपमें द्वापरके अन्तमें राधाजी प्रकट होंगी॥ २९-३०॥

मेनका योगिनी पत्या पार्वत्याश्च वरेण च।
तेन देहेन कैलासं गमिष्यति परं पदम्॥ ३१

धन्या च सीतया सीरध्वजो जनकवंशजः।
जीवन्मुक्तो महायोगी वैकुण्ठं च गमिष्यति॥ ३२

योगिनी मेनका पार्वतीके वरदानसे अपने पतिके साथ उसी शरीरसे परम पद कैलासको जायगी तथा यह धन्या जनकवंशमें उत्पन्न जीवन्मुक्त तथा महायोगी सीरध्वजको पतिरूपमें प्राप्तकर सीताको जन्म देगी तथा वैकुण्ठधामको जायगी॥ ३१-३२॥

कलावती वृषभानस्य कौतुकात्कन्यया सह।
जीवन्मुक्ता च गोलोकं गमिष्यति न संशयः॥ ३३

वृषभानके साथ विवाह होनेके कारण जीवन्मुक्त कलावती भी अपनी कन्याके साथ गोलोक जायगी, इसमें संशय नहीं है॥ ३३॥

विना विपत्तिं महिमा केषां कुत्र भविष्यति।
सुकर्मिणां गते दुःखे प्रभवेद् दुर्लभं सुखम्॥ ३४

[इस संसारमें] बिना विपत्तिके किसको कहाँ महत्त्व प्राप्त होगा। उत्तम कर्म करनेवालोंके दुःख दूर हो जानेपर उन्हें दुर्लभ सुख प्राप्त होता है॥ ३४॥

पितॄणां तनयाः यूयं सर्वाः स्वर्गविलासिकाः।
कर्मक्षयश्च युष्माकमभवद्विष्णुदर्शनात्॥ ३५

तुमलोग पितरोंकी कन्याएँ हो और स्वर्गमें विलास करनेवाली हो। अब विष्णुका दर्शन हो जानेसे तुमलोगोंके कर्मका क्षय हो गया है॥ ३५॥

इत्युक्त्वा पुनरप्याह गतक्रोधो मुनीश्वरः।
शिवं संस्मृत्य मनसा ज्ञानदं भुक्तिमुक्तिदम्॥ ३६

अपरं शृणुत प्रीत्या मद्वचः सुखदं सदा।
धन्या यूयं शिवप्रीता मान्या पूज्या ह्यभीक्ष्णशः॥ ३७

यह कहकर क्रोधरहित हुए मुनीश्वरने ज्ञान, भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले शिवजीका स्मरण करके पुनः कहा—[हे पितृकन्याओ!] तुमलोग प्रीतिपूर्वक मेरी दूसरी बात भी सुनो, जो अत्यन्त सुखदायक है। शिवजीमें भक्ति रखनेवाली तुमलोग सदा धन्य, मान्य और बार-बार पूजनीय हो॥ ३६-३७॥

मेनायास्तनया देवी पार्वती जगदम्बिका।
भविष्यति प्रिया शम्भोस्तपः कृत्वा सुदुस्सहम्॥ ३८
धन्यासुता स्मृता सीता रामपत्नी भविष्यति।
लौकिकाचारमाश्रित्य रामेण विहरिष्यति॥ ३९
कलावतीसुता राधा साक्षाद् गोलोकवासिनी।
गुप्तस्नेहनिबद्धा सा कृष्णपत्नी भविष्यति॥ ४०

मेनाकी कन्या जगदम्बिका पार्वती देवी परम कठोर तपकर शिवजीकी पत्नी होंगी, धन्याकी पुत्री कही गयी सीता [भगवान्] रामकी पत्नी होंगी, जो लौकिक आचारका आश्रय लेकर उनके साथ विहार करेंगी और साक्षात् गोलोकवासिनी कलावतीपुत्री राधा अपने गुप्त स्नेहसे बँधी हुई श्रीकृष्णकी पत्नी होंगी॥ ३८—४०॥

ब्रह्मोवाच

इत्थमाभाष्य स मुनिर्भ्रातृभिः सह संस्तुतः।
सनत्कुमारो भगवाँस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत्॥ ४१
तिस्रो भगिन्यस्तास्तात पितॄणां मानसीः सुताः।
गतपापाः सुखं प्राप्य स्वधाम प्रययुर्द्रुतम्॥ ४२

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर सबके द्वारा स्तुत वे भगवान् सनत्कुमार मुनि अपने भाइयोंसहित वहीं अन्तर्हित हो गये॥ ४१॥

हे तात! पितरोंकी मानसी कन्याएँ वे तीनों बहनें पापरहित हो सुख पाकर तुरंत अपने धामको चली गयीं॥ ४२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे पूर्वगतिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें पूर्वगतिवर्णन नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

विष्णु आदि देवताओंका हिमालयके पास जाना, उन्हें उमाराधनकी विधि बता स्वयं भी देवी जगदम्बाकी स्तुति करना

नारद उवाच

विधे प्राज्ञ महाधीमन्वद मे वदतां वर।
ततः परं किमभवच्चरितं विष्णुसद्गुरोः॥ १
अद्भुतेयं कथा प्रोक्ता मेनापूर्वगतिः शुभा।
विवाहश्च श्रुतः सम्यक् परमं चरितं वद॥ २
मेनां विवाह्य स गिरिः कृतवान् किं ततः परम्।
पार्वती कथमुत्पन्ना तस्यां वै जगदम्बिका॥ ३
तपः सुदुस्सहं कृत्वा कथं प्राप पतिं हरम्।
एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तराच्छाङ्करं यशः॥ ४

नारदजी बोले—हे विधे! हे प्राज्ञ! हे महाबुद्धिमान्! हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! इसके बाद विष्णुके सद्गुरु शिवका क्या चरित्र हुआ, उसको आप मुझसे कहिये॥ १॥

आपने मेनाके पूर्वजन्मकी शुभ एवं अद्भुत कथा कही। उनके विवाहप्रसंगको भी मैंने भलीभाँति सुन लिया, अब उनके उत्तम चरित्रको कहिये॥ २॥

हिमालयने मेनाके साथ विवाह करनेके बाद क्या किया? जगदम्बा पार्वतीने उनसे किस प्रकार जन्म लिया और कठोर तपकर किस प्रकार शिवजीको पतिरूपमें प्राप्त किया? यह सब बताइये और हे ब्रह्मन्! शंकरके यशका विस्तारसे वर्णन कीजिये॥ ३-४॥

ब्रह्मोवाच

मुने त्वं शृणु सुप्रीत्या शांकरं सुयशः शुभम्।
यच्छ्रुत्वा ब्रह्महा शुद्ध्येत्सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥ ५

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! आप शंकरके कल्याणकारी उत्तम यशको सुनिये, जिसे सुनकर ब्रह्महत्यारा भी शुद्ध हो जाता है और सभी मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है॥ ५॥

यदा मेनाविवाहं तु कृत्वागच्छद्गिरिर्गृहम्।
तदा समुत्सवो जातस्त्रिषु लोकेषु नारद॥ ६

हे नारद! जब मेनाके साथ विवाह करके हिमवान् घर गये, तब तीनों लोकोंमें बड़ा भारी उत्सव हुआ॥ ६॥

हिमाचलोऽपि सुप्रीतश्चकार परमोत्सवम्।
भूसुरान् बंधुवर्गांश्च परानानर्च सद्धिया॥ ७

हिमालयने भी अत्यन्त प्रसन्न होकर परमोत्सव मनाया और सद्बुद्धिसे ब्राह्मणों, बन्धुजनों एवं अन्य श्रेष्ठ लोगोंका अर्चन किया॥ ७॥

सर्वे द्विजाश्च सन्तुष्टा दत्त्वाशीर्वचनं वरम्।
ययुस्तस्मै स्वस्वधाम बंधुवर्गास्तथापरे॥ ८

हिमाचलोऽपि सुप्रीतो मेनया सुखदे गृहे।
रेमेऽन्यत्र च सुस्थाने नन्दनादिवनेष्वपि॥ ९

तत्पश्चात् सभी सन्तुष्ट ब्राह्मण, बन्धुजन तथा अन्यलोग उन्हें उत्तम आशीर्वाद देकर अपने-अपने निवासस्थानको चले गये। हिमालय भी अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने सुखदायक घरमें, अन्य रम्य स्थानमें तथा नन्दन आदि वनोंमें भी मेनाके साथ रमण करने लगे॥ ८-९॥

तस्मिन्नवसरे देवा मुने विष्ण्वादयोऽखिलाः।
मुनयश्च महात्मानः प्रजग्मुर्भूधरान्तिके॥ १०

हे मुने! उसी समय विष्णु आदि समस्त देवता और महात्मा मुनि गिरिराजके पास गये॥ १०॥

दृष्ट्वा तानागतान्देवान्प्रणनाम मुदा गिरिः।
सम्मानं कृतवान् भक्त्या प्रशंसन् स्वविधिं महान्॥ ११

गिरिराजने उन देवताओंको आया हुआ देखकर प्रसन्नतापूर्वक उन्हें प्रणाम किया और अपने भाग्यकी सराहना करते हुए भक्तिभावसे उनका सत्कार किया॥ ११॥

साञ्जलिर्नतशीर्षो हि स तुष्टाव सुभक्तितः।
रोमोद्गमो महानासीद्गिरेः प्रेमाश्रवोऽपतन्॥ १२

हाथ जोड़कर मस्तक झुकाये हुए उन्होंने उत्तम भक्तिसे स्तुति की। हिमालयके शरीरमें महान् रोमांच हो आया और उनके नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बहने लगे॥ १२॥

ततः प्रणम्य सुप्रीतो हिमशैलः प्रसन्नधीः।
उवाच प्रणतो भूत्वा मुने विष्ण्वादिकान्सुरान्॥ १३

हे मुने! तब हिमालय प्रसन्न मनसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक प्रणाम करके और विनीतभावसे खड़े हो विष्णु आदि देवताओंसे कहने लगे—॥ १३॥

हिमाचल उवाच

अद्य मे सफलं जन्म सफलं सुमहत्तपः।
अद्य मे सफलं ज्ञानमद्य मे सफलाः क्रियाः॥ १४

हिमाचल बोले—आज मेरा जन्म सफल हो गया, आज मेरी महान् तपस्या सफल हुई, आज मेरा ज्ञान सफल हुआ और आज मेरी क्रियाएँ सफल हो गयीं॥ १४॥

धन्योऽहमद्य संजातो धन्या मे सकला क्षितिः।
धन्यं कुलं तथा दाराः सर्वं धन्यं न संशयः॥ १५

यतः समागता यूयं मिलित्वा सर्व एकदा।
मां निदेशयत प्रीत्योचितं मत्वा स्वसेवकम्॥ १६

आज मैं धन्य हो गया, मेरी समस्त भूमि धन्य हो गयी, मेरा कुल धन्य हो गया, मेरी स्त्री तथा मेरा सब कुछ धन्य हो गया, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि आप सभी लोग एक साथ मिलकर एक ही समय यहाँ पधारे हैं। मुझे अपना सेवक समझकर आपलोग प्रसन्नतापूर्वक उचित कार्यके लिये आज्ञा दें॥ १५-१६॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा महीध्रस्य वचनं ते सुरास्तदा।
ऊचुर्हर्यादयः प्रीताः सिद्धिं मत्वा स्वकार्यतः॥ १७

ब्रह्माजी बोले—तब हिमालयके इस वचनको सुनकर विष्णु आदि वे देवता अपने कार्यकी सिद्धिको मानकर प्रसन्न होकर कहने लगे—॥ १७॥

देवा ऊचुः

हिमाचल महाप्राज्ञ शृणवस्मद्वचनं हितम्।
यदर्थमागताः सर्वे तद् ब्रूमः प्रीतितो वयम्॥ १८

देवता बोले—हे महाप्राज्ञ हिमालय! हमारा हितकारक वचन सुनिये, हम सब लोग जिस कामके लिये यहाँ आये हैं, उसे प्रसन्नतापूर्वक बता रहे हैं॥ १८॥

या पुरा जगदम्बोमा दक्षकन्याभवद्गिरे।
रुद्रपत्नी हि सा भूत्वा चिक्रीडे सुचिरं भुवि॥ १९

पितृतोऽनादरं प्राप्य संस्मृत्य स्वपणं सती।
जगाम स्वपदं त्यक्त्वा तच्छरीरं तदाम्बिका॥ २०

सा कथा विदिता लोके तवापि हिमभूधर।
एवं सति महालाभो भवेद्देवगणस्य हि॥ २१

सर्वस्य भवतश्चापि स्युः सर्वे ते वशाः सुराः॥ २२

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां हर्यादीनां गिरीश्वरः।
तथास्त्विति प्रसन्नात्मा प्रोवाच न च आदरात्॥ २३

अथ ते च समादिश्य तद्विधिं परमादरात्।
स्वयं जग्मुश्च शरणमुमायाः शंकरस्त्रियः॥ २४

सुस्थले मनसा स्थित्वा सस्मरुर्जगदम्बिकाम्।
प्रणम्य बहुशस्तत्र तुष्टुवुः श्रद्धया सुराः॥ २५

देवा ऊचुः

देव्युमे जगतामम्ब शिवलोकनिवासिनि।
सदाशिवप्रिये दुर्गे त्वां नमामो महेश्वरि॥ २६

श्रीशक्तिं पावनां शान्तां पुष्टिं परमपावनीम्।
वयं नमामहे भक्त्या महदव्यक्तरूपिणीम्॥ २७

शिवां शिवकरां शुद्धां स्थूलां सूक्ष्मां परायणाम्।
अन्तर्विद्यासुविद्याभ्यां सुप्रीतां त्वां नमामहे॥ २८

त्वं श्रद्धा त्वं धृतिस्त्वं श्रीस्त्वमेव सर्वगोचरा।
त्वं दीधितिस्सूर्यगता स्वप्रपञ्चप्रकाशिनी॥ २९

या च ब्रह्माण्डसंस्थाने जगज्जीवेषु या जगत्।
आप्याययति ब्रह्मादितृणान्तं तां नमामहे॥ ३०

हे गिरे! पहले जो जगदम्बा उमा दक्षकन्या सतीके रूपमें उत्पन्न हुई थीं और रुद्रपत्नी होकर चिरकालतक इस भूतलपर क्रीड़ा करती रहीं, वे ही जगदम्बा अपने पितासे अनादर पाकर अपनी प्रतिज्ञाका स्मरण करके [यज्ञमें] शरीरका त्यागकर अपने परम धामको चली गयीं॥ १९-२०॥

हे हिमगिरे! यह कथा लोकमें विख्यात है और आपको भी विदित है। अब ऐसा होनेपर (आपके यहाँ उनके उत्पन्न होनेपर) सभी देवगणोंका तथा आपका भी बहुत लाभ होगा और वे सभी देवतागण भी आपके वशमें हो जायँगे॥ २१-२२॥

ब्रह्माजी बोले—उन विष्णु आदि देवताओंकी यह बात सुनकर गिरिराजने उनको आदर देनेके लिये नहीं, अपितु स्वयं प्रसन्नचित्त होकर 'तथास्तु'—ऐसा कहा॥ २३॥

तत्पश्चात् वे देवता [उमाको प्रसन्न करनेकी] उस विधिको हिमालयसे आदरपूर्वक कहकर स्वयं शंकरप्रिया उमाकी शरणमें गये॥ २४॥

वे देवता उत्तम स्थानपर स्थित होकर मनसे जगदम्बाका स्मरण करने लगे और अनेक बार उन्हें प्रणामकर श्रद्धाके साथ उनकी स्तुति करने लगे॥ २५॥

देवता बोले—हे देवि! हे उमे! हे जगन्मातः! शिवलोकमें निवास करनेवाली हे सदाशिवप्रिये! हे दुर्गे! हे महेश्वरि! हम आपको प्रणाम करते हैं॥ २६॥

हमलोग श्रीशक्ति, पावन, शान्त, पुष्टिरूपिणी, परम तथा महत् और अव्यक्तरूपिणी [आपको] भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं॥ २७॥

कल्याणरूपिणी, कल्याण करनेवाली, शुद्ध, स्थूल, सूक्ष्म, सबका परम आश्रय और अन्तर्विद्या तथा सुविद्यासे प्रसन्न होनेवाली आपको हम नमस्कार करते हैं॥ २८॥

आप ही श्रद्धा हैं, आप ही धृति हैं, आप ही श्री हैं, आप ही सर्वगोचरा हैं, सूर्यमें रहनेवाली प्रकाशरूपा आप ही हैं तथा आप अपने प्रपंचको प्रकाशित करनेवाली हैं॥ २९॥

जो ब्रह्माण्डमें तथा समस्त जीवोंमें रहनेवाली हैं और जो ब्रह्मासे लेकर समस्त तृणपर्यन्त संसारको तृप्त करती हैं, उन्हें हम प्रणाम करते हैं॥ ३०॥

गायत्री त्वं वेदमाता त्वं सावित्री सरस्वती।
त्वं वार्ता सर्वजगतां त्वं त्रयी धर्मरूपिणी॥ ३१

आप ही गायत्री हैं, आप ही वेदमाता सावित्री एवं सरस्वती हैं, आप ही समस्त जगत्‌की वार्ता हैं, आप ही वेदत्रयी एवं धर्मस्वरूपा हैं॥ ३१॥

निद्रा त्वं सर्वभूतेषु क्षुधा तृप्तिस्त्वमेव हि।
तृष्णा कान्तिश्छविस्तुष्टिः सर्वानन्दकरी सदा॥ ३२

आप ही समस्त प्राणियोंमें निद्रा, क्षुधा, तृप्ति, तृष्णा, कान्ति, छवि तथा तुष्टिरूपसे विराजमान हैं। आप सदा सबको आनन्द देनेवाली हैं॥ ३२॥

त्वं लक्ष्मीः पुण्यकर्तॄणां त्वं ज्येष्ठा पापिनां सदा।
त्वं शान्तिः सर्वजगतां त्वं धात्री प्राणपोषिणी॥ ३३

पुण्यकर्ताओंमें आप लक्ष्मीरूपा हैं, पापियोंको दण्ड देनेके लिये आप ज्येष्ठा (अलक्ष्मी) हैं। आप सम्पूर्ण जगत्‌की शान्ति, धात्री तथा प्राणपोषिणी माता हैं॥ ३३॥

त्वं तत्त्वरूपा भूतानां पञ्चानामपि सारकृत्।
त्वं हि नीतिभृतां नीतिर्व्यवसायस्वरूपिणी॥ ३४

आप पाँचों भूतोंके सारतत्त्वको प्रकट करनेवाली तत्त्वस्वरूपा हैं। आप ही नीतिज्ञोंकी नीति तथा व्यवसायरूपिणी हैं॥ ३४॥

गीतिस्त्वं सामवेदस्य ग्रन्थिस्त्वं यजुषां हुतिः।
ऋग्वेदस्य तथा मात्राथर्वणस्य परा गतिः॥ ३५

आप ही सामवेदकी गीतिस्वरूपा हैं, आप ही यजुर्वेदकी ग्रन्थि हैं, आप ही ऋग्वेदकी ऋचारूप स्तुति तथा अथर्ववेदकी मात्रा हैं और आप ही मोक्षस्वरूपा हैं॥ ३५॥

समस्तगीर्वाणगणस्य शक्ति-
स्तमोमयी धातृगुणैकदृश्या।
रजःप्रपञ्चात्तु भवैकरूपा
या नः श्रुता भव्यकरी स्तुतेह॥ ३६

जो सभी देवगणोंकी शक्ति हैं, तमोमयी हैं, एकमात्र धारण-पोषण गुणोंसे देखनेमें आती हैं, रजोगुणके प्रपंचसे केवल सृष्टिरूपा हैं तथा जिन्हें हमने कल्याणकारिणी सुना है, उनकी हम स्तुति करते हैं॥ ३६॥

संसारसागरकरालभवाङ्गदुःख-
निस्तारकारितरणिं च निवीतहीनाम्।
अष्टाङ्गयोगपरिपालनकेलिदक्षां
विन्ध्यागवासनिरतां प्रणमाम तां वै॥ ३७

कराल संसारसागरके महान् दुःखोंसे पार करानेवाली पालरहित नौकारूपिणी, अष्टांगयोगके पालनरूपी क्रीडामें दक्ष और विन्ध्यपर्वतपर निवास करनेवाली उन भगवतीको हम प्रणाम करते हैं॥ ३७॥

नासाक्षिवक्त्रभुजवक्षसि मानसे च
धृत्या सुखानि वितनोति सदैव जन्तोः।
निद्रेति याति सुभगा जगती भवानां
सा नः प्रसीदतु भवस्थितिपालनाय॥ ३८

जो प्राणियोंके नासिका, नेत्र, मुख, भुजा, वक्षःस्थल एवं मनमें प्रतिष्ठित होकर सदा धैर्यपूर्वक सुख प्रदान करती हैं, जो संसारके कल्याणके लिये सुखकारी निद्रारूपमें प्रवृत्त होती हैं, वे संसारकी स्थिति तथा पालनके लिये हमारे ऊपर प्रसन्न हों॥ ३८॥

ब्रह्मोवाच

इति स्तुत्वा महेशानीं जगदम्बामुमां सतीम्।
सुप्रेममनसः सर्वे तस्थुस्ते दर्शनेप्सवः॥ ३९

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार जगदम्बा महेश्वरी उमा सतीकी स्तुति करके [अपने] हृदयमें विशुद्ध प्रेमलिये वे सब देवता उनके दर्शनकी इच्छासे वहाँ खड़े रहे॥ ३९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे देवस्तुतिर्नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें देवस्तुतिवर्णन नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

उमादेवीका दिव्यरूपमें देवताओंको दर्शन देना और अवतार ग्रहण करनेका आश्वासन देना

ब्रह्मोवाच

इत्थं देवैः स्तुता देवी दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी।
आविर्बभूव देवानां पुरतो जगदम्बिका॥ १

रथे रत्नमये दिव्ये संस्थिता परमाद्भुते।
किंकिणीजालसंयुक्ते मृदुसंस्तरणे वरे॥ २

कोटिसूर्याधिकाभासरम्यावयवभासिनी।
स्वतेजोराशिमध्यस्था वररूपासमच्छविः॥ ३

अनूपमा महामाया सदाशिवविलासिनी।
त्रिगुणा निर्गुणा नित्या शिवलोकनिवासिनी॥ ४

त्रिदेवजननी चण्डी शिवा सर्वार्तिनाशिनी।
सर्वमाता महानिद्रा सर्वस्वजनतारिणी॥ ५

तेजोराशेः प्रभावात्तु सा तु दृष्टा सुरैश्शिवा।
तुष्टुवुस्तां पुनस्ते वै सुरा दर्शनकांक्षिणः॥ ६

अथ देवगणाः सर्वे विष्ण्वाद्या दर्शनेप्सवः।
ददृशुर्जगदम्बां तां तत्कृपां प्राप्य तत्र हि॥ ७

बभूवानन्दसन्दोहः सर्वेषां त्रिदिवौकसाम्।
पुनः पुनः प्रणेमुस्तां तुष्टुवुश्च विशेषतः॥ ८

देवा ऊचुः

शिवे शर्वाणि कल्याणि जगदम्ब महेश्वरि।
त्वां नताः सर्वथा देवा वयं सर्वार्तिनाशिनीम्॥ ९

न हि जानन्ति देवेशि वेदाः शास्त्राणि कृत्स्नशः।
अतीतो महिमा ध्यानं तव वाङ्मनसोः शिवे॥ १०

अतद्व्यावृत्तितस्त्वां वै चकितं चकितं सदा।
अभिधत्ते श्रुतिरपि परेषां का कथा मता॥ ११

जानन्ति बहवो भक्तास्त्वत्कृपां प्राप्य भक्तितः।
शरणागतभक्तानां न कुत्रापि भयादिकम्॥ १२

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार देवताओंके द्वारा स्तुति किये जानेपर दुर्ग नामक राक्षसके द्वारा उत्पन्न संकटका नाश करनेवाली जगन्माता देवी दुर्गा देवताओंके समक्ष प्रकट हुईं॥ १॥

वे रत्नोंसे जटित, दिव्य, परम अद्भुत, किंकिणीजालसे युक्त, कोमल बिछौनेवाले तथा श्रेष्ठ रथपर विराजमान थीं॥ २॥

करोड़ों सूर्योंसे भी अधिक प्रभायुक्त, रम्य अंगोंसे भासित, अपनी तेजोराशिके बीच विराजमान, सुन्दर रूपवाली, अनुपम छविसे सम्पन्न, अतुलनीय, महामाया, सदाशिवके साथ विलास करनेवाली, त्रिगुणात्मिका, गुणोंसे रहित, नित्या, शिवलोकमें निवास करनेवाली, त्रिदेवजननी, चण्डी, शिवा, सभी कष्टोंका नाश करनेवाली, सबकी माता, महानिद्रा, सभी स्वजनों (भक्तों)-को मोक्ष प्रदान करनेवाली उन भगवती शिवाको तेजोराशिकी प्रभाके रूपमें देवताओंने देखा, किंतु उनके प्रत्यक्ष दर्शनकी अभिलाषा-वाले देवताओंने पुनः उनकी स्तुति की॥ ३—६॥

इसके बाद [भगवतीके] दर्शनके अभिलाषी देवगण उन जगदम्बाकी कृपा प्राप्त करके ही उनका प्रत्यक्ष दर्शन कर सके। [देवीके दर्शनसे] सभी देवगणोंको महान् आनन्द प्राप्त हुआ। उन्होंने बार-बार उनको प्रणाम किया और वे विशेष रूपसे उनकी स्तुति करने लगे—॥ ७-८॥

देवता बोले—हे शिवे! हे शर्वाणि! हे कल्याणि! हे जगदम्ब! हे महेश्वरि! हम सभी देवता सबके दुःखोंका नाश करनेवाली आपको सदा प्रणाम करते हैं॥ ९॥

हे देवेशि! वेद एवं शास्त्र भी आपको पूर्णरूपसे नहीं जानते हैं। हे शिवे! आपका ध्यान एवं महिमा वाणी एवं मनसे अगोचर है। श्रुति भी चकित होकर सदा अतद्-व्यावृत्तिसे (नेति-नेति कहते हुए) आपका वर्णन करती है, तो फिर दूसरोंकी बात ही क्या है!॥ १०-११॥

[हे शिवे!] भक्तिसे आपकी कृपा प्राप्त करके बहुत-से भक्त आपकी महिमाको जानते हैं। आपके शरणागत भक्तोंको कहीं भी भय आदि नहीं होता॥ १२॥

विज्ञप्तिं शृणु सुप्रीता यस्या दासाः सदाम्बिके।
तव देवि महादेवि हीनतो वर्णयामहे॥ १३

हे अम्बिके! हम सब आपके दास हैं, अतः अब आप प्रेमयुक्त होकर हमारी प्रार्थना सुनें। हे देवि! हमलोग आपकी महिमाका थोड़ा-सा वर्णन करते हैं॥ १३॥

पुरा दक्षसुता भूत्वा संजाता हरवल्लभा।
ब्रह्मणश्च परेषां वानाशयत्त्वमकं महत्॥ १४

आप पहले दक्षकी पुत्री होकर शिवजीकी प्रिया बनी थीं, आपने [उस समय] ब्रह्मा तथा अन्य लोगोंके महान् दुःखको दूर किया था॥ १४॥

पितृतोऽनादरं प्राप्यात्यजः पणवशात्तनुम्।
स्वलोकमगमस्त्वं वालभद्दुखं हरोऽपि हि॥ १५

न हि जातं प्रपूर्णं तद्देवकार्यं महेश्वरि।
व्याकुला मुनयो देवाः शरणं त्वां गता वयम्॥ १६

आपने अपने पितासे अनादर प्राप्तकर अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार अपने शरीरका त्याग किया और आप अपने धामको चली गयी थीं, जिसके कारण महादेवजीने दुःख पाया था। किंतु हे महेश्वरि! देवताओंका वह कार्य पूरा नहीं हुआ। इसीलिये हम समस्त देवता एवं मुनिगण आपकी शरणमें आये हुए हैं॥ १५-१६॥

पूर्णं कुरु महेशानि निर्जराणां मनोरथम्।
सनत्कुमारवचनं सफलं स्याद्यथा शिवे॥ १७

हे महेशानि! आप देवताओंके मनोरथको पूर्ण कीजिये, जिससे हे शिवे! सनत्कुमारका [कहा हुआ] वचन सफल हो॥ १७॥

अवतीर्य क्षितौ देवि रुद्रपत्नी पुनर्भव।
लीलां कुरु यथायोग्यं प्राप्नुयुर्निर्जराः सुखम्॥ १८

सुखी स्याद्देवि रुद्रोऽपि कैलासाचलसंस्थितः।
सर्वे भवन्तु सुखिनो दुःखं नश्यतु कृत्स्नशः॥ १९

हे देवि! आप पृथ्वीपर अवतरित होकर पुनः शिवजीकी पत्नी बनें और यथायोग्य लीला करें, जिससे देवगण सुखी हो जायँ, हे देवि! कैलासपर्वतपर स्थित भगवान् शिवजी भी सुखी हो जायँ, सभी लोग सुखी हो जायँ और पूर्णरूपसे दुःखका विनाश हो जाय॥ १८-१९॥

ब्रह्मोवाच

इति प्रोच्यामराः सर्वे विष्ण्वाद्याः प्रेमसंकुलाः।
मौनमास्थाय संतस्थुर्भक्तिनम्रात्ममूर्तयः॥ २०

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] विष्णु आदि सब देवता यह कहकर प्रेमसे मग्न हो गये और वे भक्तिपूर्वक विनम्रतासे सिर झुकाये मौन खड़े हो गये॥ २०॥

शिवापि सुप्रसन्नाभूदाकर्ण्यामरसंस्तुतिम्।
आकलय्याथ तद्धेतुं संस्मृत्य स्वप्रभुं शिवम्॥ २१

उवाचोमा तदा देवी सम्बोध्य विबुधांश्च तान्।
विहस्य मापतिमुखान् सदया भक्तवत्सला॥ २२

शिवा भी देवताओंकी स्तुति सुनकर प्रसन्न हो गयीं। अपनी स्तुतिके कारणका विचारकर तथा प्रभु शिवजीका स्मरणकर भक्तवत्सला तथा दयामयी उमादेवी विष्णु आदि उन देवताओंको सम्बोधित करके हँसकर कहने लगीं—॥ २१-२२॥

उमोवाच

हे हरे हे विधे देवा मुनयश्च गतव्यथाः।
सर्वे शृणुत मद्वाक्यं प्रसन्नाहं न संशयः॥ २३

चरितं मम सर्वत्र त्रैलोक्यस्य सुखावहम्।
कृतं मयैव सकलं दक्षमोहादिकं च तत्॥ २४

उमा बोलीं—हे हरे! हे विधे! हे देवताओ! हे मुनिगण! अब आप सभी लोग दुःखरहित हो जाइये और मेरी बात सुनिये। मैं [आपलोगोंपर] प्रसन्न हूँ, इसमें सन्देह नहीं है। मेरा चरित्र त्रैलोक्यको सर्वत्र सुख प्रदान करनेवाला है। दक्ष आदिको जो मोह उत्पन्न हुआ, वह सब मेरे द्वारा ही किया गया था॥ २३-२४॥

अवतारं करिष्यामि क्षितौ पूर्णं न संशयः।
बहवो हेतवोऽप्यत्र तद्वदामि महादरात्॥ २५

पुरा हिमाचलो देवा मेना चातिसुभक्तितः।
सेवां मे चक्रतुस्तातजननीवत्सतीतनोः॥ २६

इदानीं कुरुतः सेवां सुभक्त्या मम नित्यशः।
मेना विशेषतस्तत्र सुतात्वे नात्र संशयः॥ २७

रुद्रो गच्छतु यूयं चावतारं हिमवद्गृहे।
अतश्चावतरिष्यामि दुःखनाशो भविष्यति॥ २८

सर्वे गच्छत धाम स्वं स्वं सुखं लभतां चिरम्।
अवतीर्य सुता भूत्वा मेनाया दास्य उत्सुखम्॥ २९

हरपत्नी भविष्यामि सुगुप्तं मतमात्मनः।
अद्भुता शिवलीला हि ज्ञानिनामपि मोहिनी॥ ३०

यावत्प्रभृति मे त्यक्ता स्वतनुर्दक्षजा सुराः।
पितृतोऽनादरं दृष्ट्वा स्वामिनस्तत्क्रतौ गता॥ ३१

तदाप्रभृति स स्वामी रुद्रः कालाग्निसंज्ञकः।
दिगम्बरो बभूवाशु मच्चिन्तनपरायणः॥ ३२

मम रोषं क्रतौ दृष्ट्वा पितुस्तत्र गता सती।
अत्यजत्स्वतनुं प्रीत्या धर्मज्ञेति विचारतः॥ ३३

योग्यभूत्सदनं त्यक्त्वा कृत्वा वेषमलौकिकम्।
न सेहे विरहं सत्या मद्रूपाया महेश्वरः॥ ३४

मम हेतोर्महादुःखी स बभूव कुवेषभृत्।
अत्यजत्स तदारभ्य कामजं सुखमुत्तमम्॥ ३५

अन्यच्छृणुत हे विष्णो हे विधे मुनयः सुराः।
महाप्रभोर्महेशस्य लीलां भुवनपालिनीम्॥ ३६

विधाय मालां सुप्रीत्या ममास्थ्नां विरहाकुलः।
न शान्तिं प्राप कुत्रापि प्रबुद्धोऽप्येक एव सः॥ ३७

मैं पृथिवीपर पूर्ण अवतार ग्रहण करूँगी, इसमें सन्देह नहीं है। इसमें बहुत-से हेतु हैं, उन्हें मैं आदरपूर्वक कह रही हूँ। हे देवताओ! पूर्व समयमें हिमाचल और मेनाने बड़े भक्तिभावसे मुझ सतीशरीरधारिणीकी माता-पिताके समान सेवा की थी॥ २५-२६॥

इस समय भी वे नित्यप्रति मेरी भक्तिपूर्वक सेवा कर रहे हैं और मेना विशेषकर अपनी पुत्रीरूपमें सेवा करती हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ २७॥

अतः रुद्र तथा आपलोग [अपने-अपने धामको] जायँ, मैं हिमालयके घर अवतार लूँगी, इससे सभी लोगोंका दुःख दूर हो जायगा॥ २८॥

आप सब लोग अपने-अपने घर जायँ और चिरकालतक सुखी रहें। मैं मेनाकी पुत्रीके रूपमें अवतार लेकर सभीको सुख प्रदान करूँगी॥ २९॥

यह मेरा अत्यन्त गुप्त मत है कि मैं शिवजीकी पत्नी बनूँगी। भगवान् शिवकी लीला अद्भुत है, वह ज्ञानियोंको भी मोहमें डालनेवाली है॥ ३०॥

हे देवगणो! जबसे मैंने दक्षके यज्ञमें जाकर पिताद्वारा अपने स्वामीका अनादर देखकर दक्षोत्पन्न अपने शरीरको त्याग दिया है, उसी समयसे वे कालाग्निसंज्ञक स्वामी रुद्रदेव दिगम्बर होकर मेरी चिन्तामें संलग्न हैं॥ ३१-३२॥

मेरे रोषको देखकर अपने पिताके यज्ञमें गयी हुई धर्मज्ञ सतीने [मेरी] प्रीतिके कारण अपना शरीर त्याग दिया। यही सोच करके वे घर छोड़कर अलौकिक वेष धारणकर योगी हो भटक गये। वे महेश्वर मेरे सतीरूपका वियोग सहन नहीं कर पा रहे हैं॥ ३३-३४॥

उन्होंने उसी समयसे कामजन्य उत्तम सुखका परित्याग कर दिया है और मेरे निमित्त कुवेष धारणकर वे अत्यन्त दुखी हो गये हैं॥ ३५॥

हे विष्णो! हे विधे! हे देवगणो! हे मुनिगणो! आपलोग महाप्रभु महेश्वरकी भुवनपालिनी अन्य लीला भी सुनें। ज्ञानी होते हुए भी विरहमें व्याकुल वे मेरी अस्थियोंकी माला बनाकर धारण किये रहते हैं, फिर भी उन्हें कहीं भी शान्ति नहीं मिलती है॥ ३६-३७॥

इतस्ततो रुरोदोच्चैरनीश इव स प्रभुः।
योग्यायोग्यं न बुबुधे भ्रमन्सर्वत्र सर्वदा॥ ३८

इत्थं लीलां हरोऽकार्षीद्दर्शयन्कामिनां प्रभुः।
ऊचे कामुकवद्वाणीं विरहव्याकुलामिव॥ ३९

वे प्रभु अनाथके समान इधर-उधर घूमते हुए ऊँचे स्वरमें रोते रहते हैं, उन्हें उचित तथा अनुचितका ज्ञान भी नहीं है। इस प्रकार वे प्रभु सदाशिव कामियोंकी गति दिखाते हुए लीला करते फिरते हैं और कामुककी भाँति विरहाकुल वाणी बोलते रहते हैं॥ ३८-३९॥

वस्तुतोऽविकृतोऽदीनोऽस्त्यजितः परमेश्वरः।
परिपूर्णः शिवः स्वामी मायाधीशोऽखिलेश्वरः॥ ४०

वे शिव वस्तुतः निर्विकार तथा दीनतासे रहित, अजित, परमेश्वर, परिपूर्ण, स्वामी, मायाधीश तथा सबके अधिपति हैं॥ ४०॥

अन्यथा मोहतस्तस्य किं कामाच्च प्रयोजनम्।
विकारेणापि केनाशु मायालिप्तो न स प्रभुः॥ ४१

वे तो लोकानुसरणकर ही लीला करते हैं; अन्यथा उन्हें मोह तथा कामसे प्रयोजन ही क्या है, वे प्रभु न तो किसी विकारसे अथवा मायासे ही लिप्त रहनेवाले हैं॥ ४१॥

रुद्रोऽतीवेच्छति विभुः स मे कर्तुं करग्रहम्।
अवतारं क्षितौ मेनाहिमाचलगृहे सुराः॥ ४२

वे सर्वव्यापी रुद्र मेरे साथ विवाह करनेकी प्रबल इच्छा रखते हैं। अतः हे देवगणो! मैं पृथ्वीपर मेना-हिमाचलके घरमें अवतार ग्रहण करूँगी॥ ४२॥

अतश्चावतरिष्यामि रुद्रसन्तोषहेतवे।
हिमागपत्न्यां मेनायां लौकिकीं गतिमाश्रिता॥ ४३

मैं रुद्रके सन्तोषके लिये लौकिक गतिका आश्रय लेकर हिमालयपत्नी मेनामें अवतार ग्रहण करूँगी॥ ४३॥

भक्ता रुद्रप्रिया भूत्वा तपः कृत्वा सुदुस्सहम्।
देवकार्यं करिष्यामि सत्यं सत्यं न संशयः॥ ४४

गच्छत स्वगृहं सर्वे भवं भजत नित्यशः।
तत्कृपातोऽखिलं दुःखं विनश्यति न संशयः॥ ४५

कठोर तपस्या करके रुद्रकी भक्त तथा प्रिया होकर मैं देवताओंका कार्य करूँगी, यह सत्य है, सत्य है—इसमें सन्देह नहीं है। आप सभी लोग अपने घर जाइये और रुद्रका भजन कीजिये, उन्हींकी कृपासे समस्त दुःख दूर हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४४-४५॥

भविष्यति कृपालोस्तु कृपया मङ्गलं सदा।
वन्द्या पूज्या त्रिलोकेऽहं तज्जायेति च हेतुतः॥ ४६

उन कृपालुकी कृपासे सर्वदा मंगल ही होगा और मैं उनकी प्रिया होनेके कारण त्रिलोकमें वन्दनीय तथा पूजनीय हो जाऊँगी॥ ४६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा जगदम्बा सा देवानां पश्यतां तदा।
अन्तर्दधे शिवा तात स्वं लोकं प्राप वै द्रुतम्॥ ४७

ब्रह्माजी बोले—हे तात! इस प्रकार कहकर वे जगदम्बा देवताओंके देखते-देखते अन्तर्धान हो गयीं और शीघ्रतासे अपने लोकको चली गयीं॥ ४७॥

विष्ण्वादयः सुराः सर्वे मुनयश्च मुदान्विताः।
कृत्वा तद्दिशि सन्नामं स्वस्वधामानि संययुः॥ ४८

[तदनन्तर] विष्णु आदि समस्त देवता और मुनिगण अत्यन्त प्रसन्न होकर उस दिशामें प्रणामकर अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ४८॥

इत्थं दुर्गासुचरितं वर्णितं ते मुनीश्वर।
सर्वदा सुखदं नृणां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥ ४९

हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैंने दुर्गाके उत्तम चरित्रका आपसे वर्णन किया, जो सर्वदा मनुष्योंको सुख, भोग तथा मोक्ष देनेवाला है।

य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः।
पठेद्वा पाठयेद्वापि सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥ ५०

जो एकाग्र होकर इस चरित्रको नित्य सुनता अथवा सुनाता है, पढ़ता अथवा पढ़ाता है, वह सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है॥ ४९-५०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे देवसान्त्वनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें देवसान्त्वनवर्णन नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

मेनाकी तपस्यासे प्रसन्न होकर देवीका उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देकर वरदान देना, मेनासे मैनाकका जन्म

नारद उवाच

अन्तर्हितायां देव्यां तु दुर्गायां स्वगृहेषु च।
गतेष्वमरवृन्देषु किमभूत्तदनन्तरम्॥ १
कथं मेनागिरीशौ च तेपाते परमं तपः।
कथं सुताभवत्तस्य मेनायां तात तद्वद॥ २

नारदजी बोले—हे तात! जब देवी दुर्गा अन्तर्धान हो गयीं और देवगण अपने-अपने धामको चले गये, उसके बाद क्या हुआ?॥ १॥

हे तात! मेना तथा हिमाचलने किस प्रकार कठोर तप किया और भगवती किस प्रकार मेनाके गर्भसे उत्पन्न होकर उन हिमाचलकी कन्या हुईं, उसे कहिये॥ २॥

ब्रह्मोवाच

विप्रवर्य सुतश्रेष्ठ शृणु तच्चरितं महत्।
प्रणम्य शङ्करं भक्त्या वच्मि भक्तिविवर्धनम्॥ ३

ब्रह्माजी बोले—हे विप्रवर्य! हे सुतश्रेष्ठ! मैं शिवजीको भक्तिपूर्वक प्रणामकर उनके भक्तिवर्धक महान् चरित्रको कह रहा हूँ॥ ३॥

उपदिश्य गते तात सुरवृन्दे गिरीश्वरः।
हर्यादौ मेनका चापि तेपाते परमं तपः॥ ४

उपदेश देकर विष्णु आदि देवसमुदायके चले जानेपर पर्वतराज हिमाचल तथा मेनका कठोर तप करने लगे॥ ४॥

अहर्निशं शिवां शम्भुं चिन्तयन्तौ च दम्पती।
सम्यगारेधतुर्नित्यं भक्तियुक्तेन चेतसा॥ ५
गिरिप्रियातीव मुदानर्च देवीं शिवेन सा।
दानं ददौ द्विजेभ्यश्च सदा तत्तोषहेतवे॥ ६

वे पति-पत्नी भक्तियुक्त चित्तसे दिन-रात शम्भु और शिवाका चिन्तन करते हुए उनकी सम्यक् रीतिसे नित्य आराधना करने लगे। गिरिप्रिया वे मेना प्रसन्नतापूर्वक शिवजीके साथ देवीका पूजन करती थीं और उन्हें प्रसन्न करनेके लिये नित्य ब्राह्मणोंको दान देती थीं॥ ५-६॥

चैत्रमासं समारभ्य सप्तविंशतिवत्सरान्।
शिवां सम्पूजयामासापत्यार्थिन्यन्वहं रता॥ ७

सन्तानकी कामनासे मेनाने चैत्रमाससे आरम्भ करके सत्ताईस वर्षोंतक प्रतिदिन तत्परतापूर्वक शिवाकी पूजा की॥ ७॥

अष्टम्यामुपवासं तु कृत्वादान्नवमीतिथौ।
मोदकैर्बलिपिष्टैश्च पायसैर्गन्धपुष्पकैः॥ ८

वे अष्टमीको उपवास करके नवमी तिथिको लड्डू, पीठी, खीर, गन्ध, पुष्प आदि अर्पण करती थीं॥ ८॥

गङ्गायामौषधिप्रस्थे कृत्वा मूर्तिं महीमयीम्।
उमायाः पूजयामास नानावस्तुसमर्पणैः॥ ९
कदाचित्सा निराहारा कदाचित्सा धृतव्रता।
कदाचित्पवनाहारा कदाचिज्जलभुग्ह्यभूत्॥ १०

वे गंगाके औषधिप्रस्थमें उमादेवीकी मिट्टीकी प्रतिमा बनाकर अनेक प्रकारकी वस्तुएँ समर्पितकर उनकी पूजा किया करती थीं। वे कभी निराहार रहती थीं, कभी व्रत धारण करती थीं, कभी जल पीकर ही रहतीं थीं और कभी हवा पीकर ही रह जाती थीं॥ ९-१०॥

शिवाविन्यस्तचेतस्का सप्तविंशतिवत्सरान्।
निनाय मेनका प्रीत्या परं सा मृष्टवर्चसा॥ ११

इस प्रकार विशुद्ध तेजसे दीप्तिमती मेनाने प्रेमपूर्वक शिवामें चित्त लगाते हुए सत्ताईस वर्ष व्यतीत किये॥ ११॥

सप्तविंशतिवर्षान्ते जगन्माता जगन्मयी।
सुप्रीताभवदत्यर्थमुमा शंकरकामिनी॥ १२

सत्ताईसवें वर्षकी समाप्तिपर जगन्मयी जगज्जननी शंकरकामिनी उमा अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं॥ १२॥

अनुग्रहाय मेनायाः पुरतः परमेश्वरी।
आविर्बभूव सा देवी सन्तुष्टा तत्सुभक्तितः॥ १३

मेनाकी उत्तम भक्तिसे सन्तुष्ट होकर परमेश्वरी देवी उनपर अनुग्रह करनेके लिये उनके सामने प्रकट हुईं॥ १३॥

दिव्यावयवसंयुक्ता तेजोमण्डलमध्यगा।
उवाच विहसन्ती सा मेनां प्रत्यक्षतां गता॥ १४

तेजोराशिके बीचमें विराजमान तथा दिव्य अवयवोंसे संयुक्त उमादेवी प्रत्यक्ष होकर मेनासे हँसती हुई कहने लगीं— ॥ १४॥

देव्युवाच

वरं ब्रूहि महासाध्वि यत्ते मनसि वर्तते।
सुप्रसन्ना च तपसा तवाहं गिरिकामिनि॥ १५

देवी बोलीं—हे महासाध्वि! जो तुम्हारे मनमें हो, वह वर माँगो। हे गिरिकामिनि! मैं तुम्हारी तपस्यासे बहुत प्रसन्न हूँ॥ १५॥

यत्प्रार्थितं त्वया मेने तपोव्रतसमाधिना।
दास्ये तेऽहं च तत्सर्वं वाञ्छितं यद्यदा भवेत्॥ १६

हे मेने! तुमने तपस्या, व्रत और समाधिके द्वारा जो प्रार्थना की है, वह सब मैं तुम्हें प्रदान करूँगी और जब भी तुम्हारी जो इच्छा होगी, वह भी दूँगी॥ १६॥

ततः सा मेनका देवीं प्रत्यक्षां कालिकां तदा।
दृष्ट्वा च प्रणनामाथ वचनं चेदमब्रवीत्॥ १७

तब उन मेनाने प्रत्यक्ष प्रकट हुई कालिका देवीको देखकर प्रणाम किया और यह वचन कहा— ॥ १७॥

मेनोवाच

देवि प्रत्यक्षतो रूपं दृष्टं तव मयाधुना।
त्वामहं स्तोतुमिच्छामि प्रसन्ना भव कालिके॥ १८

मेना बोलीं—हे देवि! इस समय मुझे आपके रूपका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ है, अतः मैं आपकी स्तुति करना चाहती हूँ। हे कालिके! आप प्रसन्न हों॥ १८॥

ब्रह्मोवाच

अथ सा मेनयेत्युक्ता कालिका सर्वमोहिनी।
बाहुभ्यां सुप्रसन्नात्मा मेनकां परिषस्वजे॥ १९

ब्रह्माजी बोले—[नारद!] मेनाके ऐसा कहनेपर सर्वमोहिनी कालिकाने अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर अपनी दोनों बाँहोंसे मेनाका आलिंगन किया॥ १९॥

ततः प्राप्तमहाज्ञाना मेनका कालिकां शिवाम्।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिर्भक्त्या प्रत्यक्षतां गताम्॥ २०

तत्पश्चात् मेनकाको महाज्ञानकी प्राप्ति हो गयी और वे प्रिय वचनोंद्वारा भक्तिभावसे प्रत्यक्ष हुई शिवा कालिकाकी स्तुति करने लगीं— ॥ २०॥

मेनोवाच

महामायां जगद्धात्रीं चण्डिकां लोकधारिणीम्।
प्रणमामि महादेवीं सर्वकामार्थदायिनीम्॥ २१

मेना बोलीं—मैं महामाया, जगत्‌का पालन करनेवाली, चण्डिका, लोकको धारण करनेवाली तथा सम्पूर्ण मनोवांछित पदार्थोंको देनेवाली महादेवीको प्रणाम करती हूँ॥ २१॥

नित्यानन्दकरीं मायां योगनिद्रां जगत्प्रसूम्।
प्रणमामि सदा सिद्धां शुभसारसमालिनीम्॥ २२

नित्य आनन्द प्रदान करनेवाली, माया, योगनिद्रा, जगज्जननी, सिद्धस्वरूपिणी तथा सुन्दर कमलोंकी माला धारण करनेवाली देवीको सदा प्रणाम करती हूँ॥ २२॥

मातामहीं सदानन्दां भक्तशोकविनाशिनीम्।
आकल्पं वनितानां च प्राणिनां बुद्धिरूपिणीम्॥ २३

मातामही, नित्य आनन्द प्रदान करनेवाली, भक्तोंके शोकको सर्वदा विनष्ट करनेवाली तथा नारियों एवं प्राणियोंकी बुद्धिस्वरूपिणी देवीको मैं प्रणाम करती हूँ॥ २३॥

सा त्वं बंधच्छेदहेतुर्यतीनां
कस्ते गेयो मादृशीभिः प्रभावः।
हिंसां या वाथर्ववेदस्य सा त्वं
नित्यं कामं त्वं ममेष्टं विधेहि॥ २४

आप यतियोंके बन्धनके नाशकी हेतुभूत [ब्रह्मविद्या] हैं, तो मुझ-जैसी नारियाँ आपके प्रभावका क्या वर्णन कर सकती हैं। अथर्ववेदकी जो हिंसा है, वह आप ही हैं। [हे देवि!] आप मेरे अभीष्ट फलको सदा प्रदान कीजिये॥ २४॥

नित्यानित्यैर्भावहीनैः परास्तै-
स्तत्तन्मात्रैर्योज्यते भूतवर्गः।
तेषां शक्तिस्त्वं सदा नित्यरूपा
काले योषा योगयुक्ता समर्था॥ २५

भावहीन तथा अदृश्य नित्यानित्य तन्मात्राओंसे आप ही पंचभूतोंके समुदायको संयुक्त करती हैं। आप उनकी शक्ति हैं और सदा नित्यरूपा हैं। आप समय-समयपर योगयुक्त एवं समर्थ नारीके रूपमें प्रकट होती हैं॥ २५॥

योनिर्धरित्री जगतां त्वमेव
त्वमेव नित्या प्रकृतिः परस्तात्।
यया वशं क्रियते ब्रह्मरूपं
सा त्वं नित्या मे प्रसीदाद्य मातः॥ २६

आप ही जगत्की उत्पादिका और आधारशक्ति हैं, आप ही सबसे परे नित्या प्रकृति हैं। जिसके द्वारा ब्रह्मके स्वरूपको वशमें किया जाता है, वह नित्या [विद्या] आप ही हैं। हे मातः! आज मुझपर प्रसन्न होइये॥ २६॥

त्वं जातवेदोगतशक्तिरुग्रा
त्वं दाहिका सूर्यकरस्य शक्तिः।
आह्लादिका त्वं बहुचन्द्रिका या
तां त्वामहं स्तौमि नमामि चण्डीम्॥ २७

आप ही अग्निके भीतर व्याप्त उग्र शक्ति हैं। आप ही सूर्यकिरणोंकी प्रकाशिका शक्ति हैं। चन्द्रमामें जो आह्लादिका शक्ति है, वह भी आप ही हैं, उन आप चण्डी देवीका मैं स्तवन और वन्दन करती हूँ॥ २७॥

योषाणां सत्प्रिया च त्वं नित्या त्वं चोर्ध्वरेतसाम्।
वाञ्छा त्वं सर्वजगतां माया च त्वं यथा हरेः॥ २८

आप स्त्रियोंको बहुत प्रिय हैं। ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारियोंकी नित्या ब्रह्मशक्ति भी आप ही हैं। आप सम्पूर्ण जगत्की वांछा हैं तथा श्रीहरिकी माया भी आप ही हैं॥ २८॥

या चेष्टरूपाणि विधाय देवी
सृष्टिस्थितिर्नाशमयी च कर्त्री।
ब्रह्माच्युतस्थाणुशरीरहेतुः
सा त्वं प्रसीदाद्य पुनर्नमस्ते॥ २९

जो देवी इच्छानुसार रूप धारण करके सृष्टि, स्थिति, पालन तथा संहारमयी होकर उन कार्योंका सम्पादन करती हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रके शरीरकी भी हेतुभूता हैं, वे आप ही हैं। आप मुझपर प्रसन्न हों। आपको पुनः मेरा नमस्कार है॥ २९॥

ब्रह्मोवाच

तत इत्थं स्तुता दुर्गा कालिका पुनरेव हि।
उवाच मेनकां देवीं वांछितं वरयेत्युत॥ ३०

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] मेनाके इस प्रकार स्तुति करनेपर दुर्गा कालिकाने पुनः मेना देवीसे कहा—तुम अपना मनोवांछित वर माँग लो॥ ३०॥

उमोवाच

प्राणप्रिया मम त्वं हि हिमाचलविलासिनि।
यदिच्छसि ध्रुवं दास्ये नादेयं विद्यते मम॥ ३१

उमा बोलीं—हे हिमाचलप्रिये! तुम मुझे प्राणोंसे अधिक प्रिय हो, तुम जो भी चाहती हो, उसे मैं निश्चय ही दूँगी, तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है॥ ३१॥

इति श्रुत्वा महेशान्याः पीयूषसदृशं वचः।
उवाच परितुष्टा सा मेनका गिरिकामिनी॥ ३२

महेश्वरीका अमृतके समान यह मधुर वचन सुनकर हिमगिरिकामिनी मेना अत्यधिक सन्तुष्ट होकर कहने लगीं— ॥ ३२ ॥

मेनोवाच

शिवे जय जय प्राज्ञे महेश्वरि भवाम्बिके।
वरयोग्यास्म्यहं चेत्ते वृणे भूयो वरं वरम्॥ ३३

मेना बोलीं—हे शिवे! आपकी जय हो, जय हो, हे प्राज्ञे! हे महेश्वरि! हे भवाम्बिके! यदि मैं वर पानेके योग्य हूँ, तो आपसे पुनः श्रेष्ठ वर माँगती हूँ॥ ३३ ॥

प्रथमं शतपुत्रा मे भवन्तु जगदम्बिके।
बह्वायुषो वीर्यवन्त ऋद्धिसिद्धिसमन्विताः॥ ३४

हे जगदम्बिके! पहले तो मुझे सौ पुत्र हों, वे दीर्घ आयुवाले, पराक्रमसे युक्त तथा ऋद्धि-सिद्धिसे सम्पन्न हों॥ ३४ ॥

पश्चात्तथैका तनया स्वरूपगुणशालिनी।
कुलद्वयानंदकरी भुवनत्रयपूजिता॥ ३५

उन पुत्रोंके पश्चात् मेरी एक पुत्री हो, जो स्वरूप और गुणोंसे युक्त, दोनों कुलोंको आनन्द देनेवाली तथा तीनों लोकोंमें पूजित हो॥ ३५ ॥

सुता भव मम शिवे देवकार्यार्थमेव हि।
रुद्रपत्नी भव तथा लीलां कुरु भवाम्बिके॥ ३६

हे शिवे! आप ही देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मेरी पुत्री हों। हे भवाम्बिके! आप रुद्रदेवकी पत्नी हों और लीला करें॥ ३६ ॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा मेनकोक्तं हि प्राह देवी प्रसन्नधीः।
स्मितपूर्वं वचस्तस्याः पूरयन्ती मनोरथम्॥ ३७

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] मेनकाकी वह बात सुनकर प्रसन्नहृदया देवी उमा उनके मनोरथको पूर्ण करती हुई मुसकराकर यह वचन कहने लगीं— ॥ ३७ ॥

देव्युवाच

शतपुत्राः सम्भवन्तु भवत्या वीर्यसंयुताः।
तत्रैको बलवान्मुख्यः प्रथमं सम्भविष्यति॥ ३८

देवी बोलीं—तुम्हें सौ बलवान् पुत्र होंगे। उनमें एक बलवान् और प्रधान होगा, जो सबसे पहले उत्पन्न होगा॥ ३८ ॥

सुताहं सम्भविष्यामि सन्तुष्टा तव भक्तितः।
देवकार्यं करिष्यामि सेविता निखिलैः सुरैः॥ ३९

तुम्हारी भक्तिसे सन्तुष्ट मैं [स्वयं] पुत्रीके रूपमें अवतीर्ण होऊँगी और समस्त देवताओंसे सेवित होकर उनका कार्य सिद्ध करूँगी॥ ३९ ॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा जगद्धात्री कालिका परमेश्वरी।
पश्यन्त्या मेनकायास्तु तत्रैवान्तर्दधे शिवा॥ ४०

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर जगद्धात्री परमेश्वरी कालिका शिवा मेनकाके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गयीं॥ ४० ॥

मेनकापि वरं लब्ध्वा महेशान्या अभीप्सितम्।
मुदं प्रापामितां तात तपःक्लेशोऽप्यनश्यत॥ ४१

हे तात! महेश्वरीसे अभीष्ट वर पाकर मेनकाको भी अपार हर्ष हुआ और उनका तपस्याजनित क्लेश नष्ट हो गया॥ ४१ ॥

दिशि तस्यां नमस्कृत्य सुप्रहृष्टमनाः सती।
जयशब्दं प्रोच्चरन्ती स्वस्थानं प्रविवेश ह॥ ४२

अत्यन्त प्रसन्नचित्त साध्वी मेना उस दिशामें नमस्कारकर जय शब्दका उच्चारण करती हुई अपने स्थानको चली गयीं॥ ४२ ॥

अथ तस्मै स्वपतये शशंस सुवरं च तम्।
स्वचिह्नबुद्धमिव वै सुवाचा पुनरुक्तया॥ ४३

ऐसे तो मेनाके प्रसन्न मुखमण्डलसे ही हिमवान्‌को सारी बातोंकी जानकारी हो गयी, फिर भी मेनाने अपने मुखसे वरदानकी सारी बात पुनरुक्त वचनोंके समान हिमालयसे पुनः कह दीं॥ ४३ ॥

श्रुत्वा शैलपतिर्हृष्टोऽभवन्मेनावचो हि तत्।
प्रशशंस प्रियां प्रीत्या शिवाभक्तिरतां च ताम्॥ ४४

मेनाका वचन सुनकर पर्वतराज [हिमालय] प्रसन्न हुए और उन्होंने शिवामें भक्ति रखनेवाली [अपनी] उन प्रियाकी प्रेमपूर्वक प्रशंसा की॥ ४४॥

कालक्रमेणाथ तयोः प्रवृत्ते सुरते मुने।
गर्भो बभूव मेनाया ववृधे प्रत्यहं च सः॥ ४५

हे मुने! तत्पश्चात् कालक्रमसे उन दोनोंके सहवासमें प्रवृत्त होनेपर मेनाको गर्भ रह गया और वह प्रतिदिन बढ़ने लगा॥ ४५॥

असूत सा नागवधूपभोग्यं सुतमुत्तमम्।
समुद्रबद्धसत्सख्यं मैनाकाभिधमद्भुतम्॥ ४६

समयानुसार उन्होंने एक उत्तम पुत्रको जन्म दिया, जिसका नाम मैनाक था। उसने समुद्रके साथ उत्तम मैत्री की। वह अद्भुत पर्वत नागवधुओंके विहारका स्थल है॥ ४६॥

वृत्रशत्रावपि क्रुद्धे वेदनाज्ञं सपक्षकम्।
पविक्षतानां देवर्षे पक्षच्छिदि वराङ्गकम्॥ ४७

हे देवर्षे! जिस समय इन्द्रने पर्वतोंपर क्रोधित होकर उनके पंख काटना प्रारम्भ किया, उस समय वज्रद्वारा कटे हुए पर्वतोंके पंखोंको देखकर वह मैनाक वेदनासे अनभिज्ञ ही रहा और पंखयुक्त ही रहा॥ ४७॥

प्रवरं शतपुत्राणां महाबलपराक्रमम्।
स्वोद्भवानां महीध्राणां पर्वतेन्द्रैकधिष्ठितम्॥ ४८

हिमालयके सौ पुत्रोंमें मैनाक सबसे श्रेष्ठ और महाबल तथा पराक्रमसे युक्त था। अपने आप प्रकट हुए समस्त पर्वतोंमें एकमात्र मैनाक ही पर्वतराजके पदपर अधिष्ठित हुआ॥ ४८॥

आसीन्महोत्सवस्तत्र हिमाचलपुरेऽद्भुतः।
दम्पत्योः प्रमुदाधिक्यं बभूव क्लेशसंक्षयः॥ ४९

उस समय हिमालयके नगरमें महान् उत्सव हुआ। दोनों पति-पत्नी अत्यधिक प्रसन्नताको प्राप्त हुए और उनका क्लेश नष्ट हो गया॥ ४९॥

दानं ददौ द्विजातिभ्योऽन्येभ्यश्च प्रददौ धनम्।
शिवाशिवपदद्वन्द्वे स्नेहोऽभूदधिकस्तयोः॥ ५०

उन्होंने ब्राह्मणोंको दान दिया तथा अन्य लोगोंको भी धन प्रदान किया। शिवाशिवके चरणयुगलमें उन दोनोंका अत्यधिक स्नेह हो गया॥ ५०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे मेनावरलाभवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें मेनाकी वरप्राप्तिका वर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

देवी उमाका हिमवान्‌के हृदय तथा मेनाके गर्भमें आना, गर्भस्था देवीका देवताओंद्वारा स्तवन, देवीका दिव्यरूपमें प्रादुर्भाव, माता मेनासे वार्तालाप तथा पुनः नवजात कन्याके रूपमें परिवर्तित होना

ब्रह्मोवाच

अथ सस्मरतुर्भक्त्या दम्पती तौ भवाम्बिकाम्।
प्रसूतिहेतवे तत्र देवकार्यार्थमादरात्॥ १

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] कुछ समय बीतनेके पश्चात् उन पति-पत्नी दोनोंने देवताओंके कार्यके लिये जन्महेतु भक्तिपूर्वक जगदम्बाका स्मरण किया॥ १॥

ततः सा चण्डिका योगात्त्यक्तदेहा पुरा पितुः।
ईहया भवितुं भूयः समैच्छद् गिरिदारतः॥ २

सत्यं विधातुं स्ववचः प्रसन्नाखिलकामदा।
पूर्णांशाच्छैलचित्ते सा विवेशाथ महेश्वरी॥ ३

इधर, अपने पिताके यज्ञमें योगद्वारा शरीरत्याग करने-वाली भगवती चण्डिकाने हिमालयपत्नी मेनाके गर्भसे जन्म लेनेका विचार किया। प्रसन्न होनेपर सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली वे महेश्वरी अपने वचनको सत्य करनेके लिये पूर्ण अंशसे हिमवान्‌के चित्तमें प्रविष्ट हुईं॥ २-३॥

विरराज ततः सोऽति प्रमदोऽपूर्वसुद्युतिः।
हुताशन इवाधृष्यस्तेजोराशिर्महामनाः॥ ४

उस समय महामनस्वी वे हिमालय प्रसन्नतासे अपूर्व कान्तिसम्पन्न होकर अग्निके समान अधृष्य तथा तेजसमूहसे युक्त हो गये॥ ४॥

ततो गिरिः स्वप्रियायां परिपूर्णं शिवांशकम्।
समाधिमत्वात्समये समधत्त सुशंकरे॥ ५

तत्पश्चात् समाधिसम्पन्न होनेसे गिरिराज हिमालयने सुन्दर कल्याणकारी समयमें अपनी प्रिया मेनाके उदरमें शिवाके उस परिपूर्ण अंशका ध्यान किया॥ ५॥

समधत्त गिरेः पत्नी गर्भं देव्याः प्रसादतः।
चित्ते स्थितायाः करुणाकरायाः सुखदं गिरेः॥ ६

गिरिप्रिया सर्वजगन्निवासासंश्रयाधिकम्।
विरेजे सुतरां मेना तेजोमण्डलगा सदा॥ ७

इस तरह हिमालयकी पत्नीने हिमवान्‌के हृदयमें विराजमान करुणा करनेवाली देवीकी कृपासे सुखदायक गर्भ धारण किया। सम्पूर्ण जगत्‌को आश्रय देनेवाली उन देवीके गर्भमें आनेसे गिरिप्रिया मेना सदा तेजोमण्डलके बीचमें स्थित होकर अधिक शोभा पाने लगी॥ ६-७॥

सुखोदयं स्वभर्तुश्च मेना दौर्हृदलक्षणम्।
दधौ निदानं देवानामानन्दस्येप्सितं शुभम्॥ ८

देहसादादसंपूर्णभूषणा लोध्रसंमुखा।
स्वल्पभेन्दुक्षयेकासौ विचेष्यर्क्षा विभावरी॥ ९

मेनाने अपने पतिको सुख देनेवाले तथा देवताओंके आनन्दके कारणभूत शुभ अभीष्ट गर्भलक्षणको धारण किया। शरीरके अधिक दुर्बल होनेके कारण उन्होंने सभी आभूषणोंको उतार दिया, उनका मुखमण्डल लोधके समान [श्वेत वर्ण] हो गया और वे प्रभात-कालीन चन्द्रमाके प्रकाशके क्षीण हो जानेसे अल्प तारागणोंवाली रात्रिके समान दीखने लगीं॥ ८-९॥

तदाननं मृत्सुरभि नायं तृप्तिं गिरीश्वरः।
मुने रहस्युपाघ्राय प्रेमाधिक्यं बभूव तत्॥ १०

मेना स्पृहावती केषु न मे शंसति वस्तुषु।
किंचिदिष्टं ह्रियापृच्छदनुवेलं सखीर्गिरिः॥ ११

गिरिराज मिट्टीके समान सुगन्धित उनके मुखमण्डलको एकान्तमें सूँघकर तृप्त नहीं होते थे और [गर्भवती होनेके कारण दिनानुदिन] मेनामें उनका प्रेमाधिक्य होने लगा। वे हिमालय मेनाकी सखियोंसे सदा यह पूछते रहते थे कि मेनाको किन वस्तुओंकी इच्छा है। वह लज्जाके कारण अपना कुछ भी इष्ट मुझसे नहीं बताती है॥ १०-११॥

उपेत्य दौर्हृदं शैल्यं यद्वव्रेऽपश्यदाशु तत्।
आनीतं नेष्टमस्याद्धा नासाध्यं त्रिदिवेऽपि हि॥ १२

कष्टप्रद गर्भलक्षणके प्राप्त कर लेनेपर वे मेना जिस वस्तुके लिये कहती थीं, उसे अपने सामने गिरिराजके द्वारा उपस्थित हुआ देखती थीं; क्योंकि उनकी इच्छित कोई भी वस्तु तीनों लोकोंमें दुर्लभ नहीं थी॥ १२॥

प्रचीयमानावयवा निस्तीर्य दौर्हृदव्यथाम्।
रेजे मेना बाललता नद्धपत्राधिका यथा॥ १३

गिरिः सगर्भां महिषीममंस्त धरणीमिव।
निधानगर्भामभ्यन्तर्लीनवह्निशमीमिव ॥ १४

प्रियाप्रीतेश्च मनसः स्वार्जितद्रविणस्य च।
समुन्नतेः श्रुतेः प्राज्ञः क्रियाश्चक्रे यथोचिताः ॥ १५

ददर्श काले मेनां स प्रतीतः प्रसवोन्मुखीम्।
अभ्रितां च दिवं गर्भगृहे भिषगधिष्ठिते॥ १६

दृष्ट्वा प्रियां शुभाङ्गीं वै मुमोदाति गिरीश्वरः।
गर्भस्थजगदम्बां हि महातेजोवतीं तदा॥ १७

तस्मिन्नवसरे देवा मुने विष्ण्वादयस्तथा।
मुनयश्च समागम्य गर्भस्थां तुष्टुवुः शिवाम्॥ १८

देवा ऊचुः

दुर्गे जय जय प्राज्ञे जगदम्ब महेश्वरि।
सत्यव्रते सत्यपरे त्रिसत्ये सत्यरूपिणि॥ १९
सत्यस्थे सत्यसुप्रीते सत्ययोने च सत्यतः।
सत्यवक्त्रे सत्यनेत्रे प्रपन्नाः शरणं च ते॥ २०
शिवप्रिये महेशानि देवदुःखक्षयङ्करि।
त्रैलोक्यमाता शर्वाणी व्यापिनी भक्तवत्सला॥ २१

आविर्भूय त्रिलोकेशि देवकार्यं कुरुष्व ह।
सनाथाः कृपया ते हि वयं सर्वे महेश्वरि॥ २२

त्वत्तः सर्वे च सुखिनो लभन्ते सुखमुत्तमम्।
त्वां विना न हि किंचिद्वै शोभते त्रिभवेष्वपि॥ २३

ब्रह्मोवाच

इत्थं कृत्वा महेशान्या गर्भस्थाया बहुस्तुतिम्।
प्रसन्नमनसो देवाः स्वं स्वं धाम ययुस्तदा॥ २४
व्यतीते नवमे मासे दशमे मासि पूर्णतः।
गर्भस्था सा गतिं दध्रे कालिका जगदम्बिका॥ २५

धीरे-धीरे गर्भजन्य व्यथाको पारकर पुष्ट अंगोंवाली वह मेना पत्तोंसे समन्वित बाललताके समान शोभित होने लगी। हिमालयने अपनी सगर्भा पत्नीको रत्नभण्डारको अपने भीतर छिपाये रखनेवाली पृथ्वी और अग्निको अपने भीतर छिपाये रखनेवाले शमी वृक्षके समान समझा॥ १३-१४॥

महाबुद्धिमान् हिमालयने अपनी प्रियाके प्रीतियोग्य, अपने द्वारा अर्जित द्रव्योंके अनुसार, राजसी प्रवृत्ति एवं अपने शास्त्रज्ञानके अनुरूप संस्कार किये॥ १५॥

उन्होंने प्रसवोन्मुखी अपनी प्रियाको वैद्योंके द्वारा निर्दिष्ट गर्भगृहमें मेघमण्डलसे आच्छादित आकाशके समान देखा। शुभ लक्षणोंवाली, गर्भमें जगदम्बाको धारण करनेवाली, महातेजयुक्त तथा सुन्दर अंगोंवाली प्रिया मेनाको देखकर गिरिराज हिमवान् बड़ी प्रसन्नताका अनुभव करने लगे॥ १६-१७॥

हे मुने! उस समय विष्णु आदि देवता तथा मुनिगण आकर गर्भमें स्थित शिवाकी स्तुति करने लगे॥ १८॥

देवगण बोले—हे दुर्गे! हे प्राज्ञे! हे जगदम्बे! हे महेश्वरि! हे सत्यव्रते! हे सत्यपरे! हे त्रिसत्ये! हे सत्य-स्वरूपिणि! आपकी जय हो, आपकी जय हो। हे सत्यस्थे! हे सत्यसुप्रीते! हे सत्ययोने! हे सत्यवक्त्रे! हे सत्यनेत्रे! हम सभी आपकी शरणमें प्राप्त हुए हैं॥ १९-२०॥

हे शिवप्रिये! हे महेश्वरि! देवताओंके दुःखको दूर करनेवाली! आप तीनों लोकोंकी माता, शर्वाणी, सर्वव्यापिनी तथा भक्तोंसे स्नेह रखनेवाली हैं। हे त्रिलोकेशि! आप प्रकट होकर देवगणोंके कार्यको पूर्ण करें। हे महेश्वरि! हम सभी देवगण आपकी कृपासे सनाथ हो जायँगे॥ २१-२२॥

इस संसारके सभी सुखी मनुष्य आपके द्वारा ही उत्तम सुख प्राप्त करते हैं, आपके बिना इस त्रिलोकमें कुछ भी शोभा नहीं देता॥ २३॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार सभी देवगण प्रसन्न-चित्त होकर गर्भस्थित महेश्वरीकी बहुत स्तुति करके अपने-अपने धामको चले गये। जब नौवाँ महीना बीत गया और दसवाँ भी पूरा हो चला, तब गर्भस्थित जगदम्बा महाकालीने गर्भसे बाहर आनेकी इच्छा की॥ २४-२५॥

तदा सुसमयश्चासीच्छान्तभग्रहतारकः।
नभः प्रसन्नतां यातं प्रकाशः सर्वदिक्षु हि॥ २६

महीमङ्गलभूयिष्ठा सवनग्रामसागरा।
सरःस्रवन्तीवापीषु पुफुल्लुः पंकजानि वै॥ २७

ववुश्च विविधा वाताः सुखस्पर्शा मुनीश्वर।
मुमुदुः साधवः सर्वेऽसतां दुःखमभूद् द्रुतम् ॥ २८

वह समय बड़ा सुहावना हो गया, नक्षत्र, तारे तथा ग्रह शान्त हो गये, आकाश निर्मल हो गया और सभी दिशाओंमें प्रकाश फैल गया। वन, ग्राम तथा सागरके सहित पृथ्वीपर नाना प्रकारके मंगल होने लगे। तालाब, नदियों एवं बावलियोंमें कमल खिल उठे॥ २६-२७॥

हे मुनीश्वर! अनेक प्रकारकी सुखस्पर्शी वायु बहने लगी, सभी साधुजन आनन्दित हो गये तथा दुर्जन शीघ्र ही दुखी हो गये॥ २८॥

दुन्दुभीन्वादयामासुर्नभस्यागत्य निर्जराः।
पुष्पवृष्टिरभूत्तत्र जगुर्गन्धर्वसत्तमाः॥ २९

विद्याधरस्त्रियो व्योम्नि ननृतुश्चाप्सरास्तथा।
तदोत्सवो महानासीद्देवादीनां नभःस्थले॥ ३०

देवता आकाशमें आकर दुन्दुभियाँ बजाने लगे, वहाँ फूलोंकी वर्षा होने लगी तथा श्रेष्ठ गन्धर्व गान करने लगे। अप्सराएँ और विद्याधरोंकी स्त्रियाँ आकाशमें नाचने लगीं, इस प्रकार आकाशमण्डलमें देवताओं आदिका महान् उत्सव होने लगा॥ २९-३०॥

तस्मिन्नवसरे देवी पूर्वशक्तिः शिवा सती।
आविर्बभूव पुरतो मेनाया निजरूपतः॥ ३१

उसी अवसरपर आद्याशक्ति सती शिवा देवी मेनाके सामने अपने रूपमें प्रकट हुईं॥ ३१॥

वसन्तर्तौ मधौ मासे नवम्यां मृगधिष्ण्यके।
अर्धरात्रे समुत्पन्ना गङ्गेव शशिमण्डलात्॥ ३२

समये तत्स्वरूपेण मेनकाजठराच्छिवा।
समुद्भूय समुत्पन्ना सा लक्ष्मीरिव सागरात्॥ ३३

वे वसन्त ऋतुके चैत्रमासमें नवमी तिथिको मृगशिरा नक्षत्रमें आधी रातके समय चन्द्रमण्डलसे गंगाकी भाँति प्रकट हुईं। वे शिवा मेनाके गर्भसे अपने स्वरूपसे इस प्रकार प्रकट हुईं, जैसे समुद्रसे महालक्ष्मीका आविर्भाव हुआ था॥ ३२-३३॥

ततस्तस्यां तु जातायां प्रसन्नोऽभूत्तदा भवः।
अनुकूलो ववौ वायुर्गम्भीरो गंधयुक् शुभः॥ ३४

बभूव पुष्पवृष्टिश्च तोयवृष्टिपुरस्सरम्।
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ता जगर्जुश्च तदा घनाः॥ ३५

उस समय भगवतीके प्रकट होनेपर शंकरजी प्रसन्न हो गये और अनुकूल, गम्भीर, सुगन्धित तथा शुभ वायु बहने लगी। उस समय जलकी वर्षाके साथ पुष्पवृष्टि होने लगी, [अग्निहोत्रकी] शान्त अग्नि प्रज्वलित हो उठी और बादल गरजने लगे॥ ३४-३५॥

तस्यां तु जायमानायां सर्वस्वं समपद्यत।
हिमवन्नगरे तत्र सर्वं दुःखं क्षयं गतम्॥ ३६

उनके प्रकट होते ही हिमालयके नगरमें समस्त सम्पत्ति स्वतः आ गयी तथा [लोगोंका] सारा दुःख दूर हो गया॥ ३६॥

तस्मिन्नवसरे तत्र विष्ण्वाद्याः सकलाः सुराः।
आजग्मुः सुखिनः प्रीत्या ददृशुर्जगदम्बिकाम्॥ ३७

तुष्टुवुस्तां शिवामम्बां कालिकां शिवकामिनीम्।
दिव्यरूपां महामायां शिवलोकनिवासिनीम्॥ ३८

उस अवसरपर विष्णु आदि समस्त देवगण सुखी होकर वहाँ आ गये और प्रेमसे जगदम्बाका दर्शन करने लगे। वे शिवलोकमें निवास करनेवाली शिवप्रिया महाकाली दिव्यरूपधारिणी उन महामाया जगदम्बाकी स्तुति करने लगे॥ ३७-३८॥

देवा ऊचुः

जगदम्ब महादेवि सर्वसिद्धिविधायिनि।
देवकार्यकरी त्वं हि सदातस्त्वां नमामहे॥ ३९

देवता बोले—हे जगदम्ब! हे महादेवि! हे सर्वसिद्धिविधायिनि! आप देवताओंका कार्य पूर्ण करनेवाली हैं, इसलिये हम सभी आपको सदा प्रणाम करते हैं॥ ३९॥

सर्वथा कुरु कल्याणं देवानां भक्तवत्सले।
मेनामनोरथः पूर्णः कृतः कुरु हरस्य च॥ ४०

हे भक्तवत्सले! आप हर प्रकारसे देवताओंका कल्याण करें। आपने मेनाका मनोरथ पूर्ण किया है, अब शिवका भी मनोरथ पूर्ण करें॥ ४०॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं स्तुत्वा शिवां देवा विष्णवाद्याः सुप्रणम्य ताम्।
स्वं स्वं धाम ययुः प्रीताः शंसन्तस्तद्गतिं पराम्॥ ४१

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार विष्णु आदि देवता शिवाकी स्तुतिकर उन्हें प्रणाम करके उनकी परम गतिकी प्रशंसा करते हुए अपने-अपने धामको चले गये॥ ४१॥

तां तु दृष्ट्वा तथा जातां नीलोत्पलदलप्रभाम्।
श्यामां सा मेनका देवीं मुदमायाति नारद॥ ४२

दिव्यरूपं विलोक्यानु ज्ञानमाप गिरिप्रिया।
विज्ञाय परमेशानीं तुष्टावातिप्रहर्षिता॥ ४३

हे नारद! नीलकमलके दलके समान कान्तिमयी उन श्यामा भगवतीको उत्पन्न हुआ देखकर मेना परम प्रसन्न हो गयीं। उस दिव्य रूपको देखकर गिरिप्रिया मेनाको ज्ञान प्राप्त हो गया। वे उन्हें परमेश्वरी जानकर अत्यन्त हर्षित होकर उनकी स्तुति करने लगीं॥ ४२-४३॥

मेनोवाच

जगदम्ब महेशानि कृतातिकरुणा त्वया।
आविर्भूता मम पुरो विलसन्ती यदम्बिके॥ ४४

त्वमाद्या सर्वशक्तीनां त्रिलोकजननी शिवे।
शिवप्रिया सदा देवी सर्वदेवस्तुता परा॥ ४५

कृपां कुरु महेशानि मम ध्यानस्थिता भव।
एतद्रूपेण प्रत्यक्षं रूपं धेहि सुतासमम्॥ ४६

मेना बोलीं—हे जगदम्बे! हे महेश्वरि! हे अम्बिके! आपने बड़ी कृपा की, जो सुशोभित होती हुई मेरे सामने प्रकट हुईं। हे शिवे! आप सम्पूर्ण शक्तियोंमें आद्याशक्ति तथा तीनों लोकोंकी जननी हैं। हे देवि! आप भगवान् शिवको सदा ही प्रिय हैं तथा सम्पूर्ण देवताओंसे स्तुत पराशक्ति हैं। हे महेश्वरि! आप कृपा करें और इसी रूपसे मेरे ध्यानमें स्थित हो जायँ और अब मेरी पुत्रीके समान प्रत्यक्ष रूप धारण करें॥ ४४—४६॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्या मेनाया भूधरस्त्रियाः।
प्रत्युवाच शिवा देवी सुप्रसन्ना गिरिप्रियाम्॥ ४७

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] पर्वतपत्नी उन मेनाकी यह बात सुनकर शिवा देवी अत्यन्त प्रसन्न होकर उन गिरिप्रियासे कहने लगीं॥ ४७॥

देव्युवाच

हे मेने त्वं पुरा मां च सुसेवितवती रता।
त्वद्भक्त्या सुप्रसन्नाहं वरं दातुं गतान्तिकम्॥ ४८

वरं ब्रूहीति मद्वाणीं श्रुत्वा ते तद्वरो वृतः।
सुता भव महादेवि सा मे देवहितं कुरु॥ ४९

तथा दत्त्वा वरं तेऽहं गता स्वं पदमादरात्।
समयं प्राप्य तनयाभवं ते गिरिकामिनि॥ ५०

देवी बोलीं—हे मेने! आपने पहले तत्पर होकर मेरी बड़ी सेवा की थी, [उस समय] आपकी भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न होकर वर देनेके लिये मैं आपके पास गयी थी। वर माँगिये—मेरी इस वाणीको सुनकर आपने वह वर माँगा था—हे महादेवि! आप मेरी पुत्री हो जायँ और देवताओंका हित साधन करें। तब मैं आपको आदरपूर्वक वह वर देकर अपने धामको चली गयी। हे गिरिकामिनि! अब समय पाकर मैं आपकी पुत्री हुई हूँ॥ ४८—५०॥

दिव्यरूपं धृतं मेऽद्य यत्ते मत्स्मरणं भवेत्।
अन्यथा मर्त्यभावेन तवाज्ञानं भवेन्मयि॥ ५१

आज मैंने जो दिव्य रूप धारण किया है, वह इसलिये कि आपको मेरा स्मरण हो जाय, अन्यथा मनुष्यरूपमें प्रकट होनेपर मेरे विषयमें आप अनजान ही बनी रहतीं॥ ५१॥

युवां मां पुत्रिभावेन दिव्यभावेन वासकृत्।
चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यातास्थो मद्गतिं पराम्॥ ५२
देवकार्यं करिष्यामि लीलां कृत्वाद्भुतां क्षितौ।
शम्भुपत्नी भविष्यामि तारयिष्यामि सज्जनान्॥ ५३

अब आप दोनों पुत्रीभावसे अथवा दिव्य भावसे स्नेहपूर्वक मेरा निरन्तर चिन्तन करते हुए मेरे परम पदको प्राप्त होओगे। मैं पृथ्वीपर अद्भुत लीला करके देवताओंका कार्य सिद्ध करूँगी, भगवान् शम्भुकी पत्नी होऊँगी और सज्जनोंका उद्धार करूँगी॥ ५२-५३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वासीच्छिवा तूष्णीमम्बिका स्वात्ममायया।
पश्यन्त्यां मातरि प्रीत्या सद्योऽभूत्तनयातनुः॥ ५४

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर अम्बिका शिवा मौन हो गयीं और उसी क्षण माताके देखते-देखते अपनी मायासे प्रसन्नतापूर्वक [नवजात] पुत्रीरूपमें हो गयीं॥ ५४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे पार्वतीजन्मवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें पार्वतीके जन्मका वर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

पार्वतीका नामकरण तथा उनकी बाललीलाएँ एवं विद्याध्ययन

ब्रह्मोवाच

ततो मेनापुरः सा वै सुता भूत्वा महाद्युतिः।
चकार रोदनं तत्र लौकिकीं गतिमाश्रिता॥ १
अरिष्टशय्यां परितः सद्विसारिसुतेजसा।
निशीथदीपा विहतत्विष आसन्नरं मुने॥ २

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] तदनन्तर मेनाके सामने महातेजस्वी कन्या होकर वे लौकिक गतिका आश्रय लेकर रोने लगीं। हे मुने! उस समय प्रसूति-गृहकी शय्याके चारों ओर फैले हुए उनके महान् तेजसे रात्रिके दीपक शीघ्र ही कान्तिहीन हो गये॥ १-२॥

श्रुत्वा तद् रोदनं रम्यं गृहस्थाः सर्वयोषितः।
जहृषुः सम्भ्रमात्तत्रागताः प्रीतिपुरस्सराः॥ ३

उनका मनोहर रुदन सुनकर घरकी सब स्त्रियाँ प्रसन्न हो गयीं और शीघ्र ही प्रेमपूर्वक वहाँ चली आयीं॥ ३॥

तच्छुद्धान्तचरः शीघ्रं शशंस भूभृते तदा।
पार्वतीजन्म सुखदं देवकार्यकरं शुभम्॥ ४
तच्छुद्धान्तःचरायाशु पुत्रीजन्म सुशंसते।
सितातपत्रं नादेयमासीत्तस्य महीभृतः॥ ५
गतस्तत्र गिरिः प्रीत्या सपुरोहितसद्विजः।
ददर्श तनयां तां तु शोभमानां सुभाससा॥ ६

तब अन्तःपुरके दूतने देवकार्य सम्पन्न करनेवाले, कल्याणकारक तथा सुख देनेवाले पार्वतीजन्मको शीघ्र ही पर्वतराजको बताया। पुत्रीजन्मका समाचार सुनानेवाले अन्तःपुरके दूतको [न्योछावररूपमें] देनेहेतु उन पर्वतराजके लिये श्वेतछत्रतक अदेय नहीं रहा। तत्पश्चात् पुरोहित और ब्राह्मणोंके साथ गिरिराज वहाँ गये और उन्होंने अपूर्व कान्तिसे सुशोभित हुई उस कन्याको देखा॥ ४—६॥

नीलोत्पलदलश्यामां सुद्युतिं सुमनोरमाम्।
दृष्ट्वा च तादृशीं कन्यां मुमोदाति गिरीश्वरः॥ ७

नीलकमलके समान श्यामवर्ण, सुन्दर कान्तिसे युक्त तथा अत्यन्त मनोरम उस कन्याको देखकर ही गिरिराज अत्यन्त प्रसन्न हो गये॥ ७॥

सर्वे च मुमुदुस्तत्र पौराश्च पुरुषाः स्त्रियः।
तदोत्सवो महानासीन्नेदुर्वाद्यानि भूरिशः॥ ८

नगरमें रहनेवाले समस्त स्त्री एवं पुरुष परम प्रसन्न हुए। इस समय नगरमें अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे और बहुत बड़ा उत्सव होने लगा।

बभूव मङ्गलं गानं ननृतुर्वारयोषितः।
दानं ददौ द्विजातिभ्यो जातकर्म विधाय च॥ ९

मंगलगान होने लगा और वारांगनाएँ नृत्य करने लगीं। गिरिराजने [कन्याका] जातकर्म संस्कारकर द्विजातियोंको दान दिया॥ ८-९॥

अथ द्वारं समागत्य चकार सुमहोत्सवम्।
हिमाचलः प्रसन्नात्मा भिक्षुभ्यो द्रविणं ददौ॥ १०

उसके बाद दरवाजेपर आकर हिमाचलने महान् उत्सव मनाया और प्रसन्नचित्त होकर भिक्षुकोंको बहुत-सा धन दिया॥ १०॥

अथो शुभमुहूर्तेऽस्मिन् हिमवान्मुनिभिः सह।
नामाकरोत्सुतायास्तु कालीत्यादि सुखप्रदम्॥ ११

तदनन्तर हिमवान्‌ने शुभ मुहूर्तमें मुनियोंके साथ उस कन्याके काली आदि सुखदायक नाम रखे॥ ११॥

दानं ददौ तदा प्रीत्या द्विजेभ्यो बहु सादरम्।
उत्सवं कारयामास विविधं गानपूर्वकम्॥ १२

इत्थं कृत्वोत्सवं भूरि कालीं पश्यन्मुहुर्मुहुः।
लेभे मुदं सपत्नीको बहुपुत्रोऽपि भूधरः॥ १३

उन्होंने उस समय ब्राह्मणोंको प्रेम तथा आदरपूर्वक बहुत-सा धन प्रदान किया और गानपूर्वक अनेक प्रकारका उत्सव कराया। इस प्रकार उत्सव मनाकर बार-बार कालीको देखते हुए सपत्नीक हिमालय अनेक पुत्रोंवाले होनेपर भी बहुत आनन्दित हुए॥ १२-१३॥

तत्र सा ववृधे देवी गिरिराजगृहे शिवा।
गङ्गेव वर्षासमये शरदीवाथ चन्द्रिका॥ १४

एवं सा कालिका देवी चार्वङ्गी चारुदर्शना।
दध्रे चानुदिनं रम्यां चन्द्रबिम्बकलामिव॥ १५

देवी शिवा गिरिराजके घरमें वर्षाके समय गंगाके समान तथा शरद् ऋतुकी चाँदनीके समान बढ़ने लगीं। इस प्रकार परम सुन्दरी तथा दिव्य दर्शनवाली कालिका देवी प्रतिदिन चन्द्रकलाके समान शोभायुक्त हो बढ़ने लगीं॥ १४-१५॥

कुलोचितेन नाम्ना तां पार्वतीत्याजुहाव ह।
बन्धुप्रियां बन्धुजनः सौशील्यगुणसंयुताम्॥ १६

सुशीलता आदि गुणोंसे संयुक्त तथा बन्धुजनोंकी प्रिय उस कन्याको कुटुम्बके लोग अपनी कुलपरम्पराके अनुसार 'पार्वती' इस नामसे पुकारने लगे॥ १६॥

उमेति मात्रा तपसे निषिद्धा कालिका च सा।
पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम भुवने मुने॥ १७

हे मुने! माताने उन कालिकाको 'उमा' कहकर तपस्या करनेसे मना किया था, अतः बादमें वे सुमुखी लोकमें उमा नामसे विख्यात हुईं॥ १७॥

दृष्टिः पुत्रवतोऽप्यद्रेस्तस्मिंस्तृप्तिं जगाम न।
अपत्ये पार्वतीत्याख्ये सर्वसौभाग्यसंयुते॥ १८

मधोरनन्तपुष्पस्य चूते हि भ्रमरावलिः।
विशेषसङ्गा भवति सहकारे मुनीश्वर॥ १९

पुत्रवान् होते हुए भी पर्वतराज हिमालय सर्वसौभाग्ययुक्त उस पार्वती नामक अपनी सन्तानको देखते हुए तृप्त नहीं होते थे, क्योंकि हे मुनीश्वर! वसन्त ऋतुमें नाना प्रकारके पुष्पोंमें रस होनेपर भी भ्रमरावली आमके बौरपर ही विशेष रूपसे आसक्त होती है॥ १८-१९॥

पूतो विभूषितश्चापि स बभूव तया गिरिः।
संस्कारवत्यैव गिरा मनीषीव हिमालयः॥ २०

वे पर्वतराज हिमालय उस पार्वतीसे उसी प्रकार पवित्र तथा विभूषित हुए, जिस प्रकार संस्कारसे युक्त वाणीसे विद्वान् पवित्र तथा विभूषित होता है॥ २०॥

प्रभामहत्या शिखयेव दीपो भवनस्य च।
त्रिमार्गयेव सन्मार्गस्तद्वद् गिरिजया गिरिः॥ २१

जिस प्रकार महान् प्रभावशाली शिखासे भवनका दीपक एवं त्रिमार्गगामिनी गंगासे सन्मार्ग शोभित होता है, उसी प्रकार पार्वतीद्वारा पर्वतराज सुशोभित हुए॥ २१॥

कन्दुकैः कृत्रिमैः पुत्रैः सखीमध्यगता च सा।
गङ्गासैकतवेदीभिर्बाल्ये रेमे मुहुर्मुहुः॥ २२

वे पार्वती बचपनमें अपनी सहेलियोंके साथ कन्दुक (गेंद), कृत्रिम पुत्रों [पुतला] तथा गंगाकी बालुकासे बनायी गयी वेदियोंद्वारा क्रीड़ा करती थीं॥ २२॥

अथ देवी शिवा सा चोपदेशसमये मुने।
पपाठ विद्याः सुप्रीत्या यतचित्ता च सद्गुरोः॥ २३

प्राक्तना जन्मविद्यास्तां शरदीव प्रपेदिरे।
हंसालिः स्वर्णदीं नक्तमात्मभासो महौषधिम्॥ २४

इत्थं सुवर्णिता लीला शिवायाः काचिदेव हि।
अन्यलीलां प्रवक्ष्येऽहं शृणु त्वं प्रेमतो मुने॥ २५

उसके अनन्तर हे मुने! वे शिवा देवी उपदेशके समय एकाग्रचित्त होकर सद्गुरुसे अत्यन्त प्रीतिपूर्वक सभी विद्याएँ पढ़ने लगीं। जिस प्रकार शरद् ऋतुमें हंसपंक्ति गंगाको तथा रात्रिमें अमृतमयी चन्द्र किरणें औषधियोंको प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार उन पार्वतीको पूर्वजन्मकी विद्याएँ स्वयं प्राप्त हो गयीं। हे मुने! इस प्रकार मैंने शिवाकी कुछ लीलाका ही आपसे वर्णन किया, अब अन्य लीलाका भी वर्णन करूँगा, आप प्रेमपूर्वक सुनें॥ २३—२५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे पार्वतीबाल्यलीलावर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें पार्वतीकी बाल्यलीलाका वर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

नारद मुनिका हिमालयके समीप गमन, वहाँ पार्वतीका हाथ देखकर भावी लक्षणोंको बताना, चिन्तित हिमवान्को शिवमहिमा बताना तथा शिवसे विवाह करनेका परामर्श देना

ब्रह्मोवाच

एकदा त्वं शिवज्ञानी शिवलीलाविदां वरः।
हिमाचलगृहं प्रीत्यागमस्त्वं शिवप्रेरितः॥ १

दृष्ट्वा मुने गिरीशस्त्वां नत्वानर्च स नारद।
आहूय च स्वतनयां त्वदङ्घ्र्योस्तामपातयत्॥ २

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! एक समयकी बात है, आप शिवजीसे प्रेरित होकर प्रसन्नतापूर्वक हिमालयके घर गये। आप शिवतत्त्वके ज्ञाता और शिवकी लीलाके जानकारोंमें श्रेष्ठ हैं। हे मुने! गिरिराज हिमालयने आपको देखकर प्रणाम करके आपकी पूजा की और अपनी पुत्रीको बुलाकर उनसे आपके चरणोंमें प्रणाम करवाया॥ १-२॥

पुनर्नत्वा मुनीश त्वामुवाच हिमभूधरः।
साञ्जलिः स्वविधिं मत्वा बहुसन्नतमस्तकः॥ ३

हे मुनीश्वर! तत्पश्चात् स्वयं नमस्कार करके हिमाचल अपने सौभाग्यकी सराहना करके मस्तक झुकाकर हाथ जोड़कर आपसे कहने लगे—॥ ३॥

हिमालय उवाच

हे मुने नारद ज्ञानिन् ब्रह्मपुत्रवर प्रभो।
सर्वज्ञस्त्वं सकरुणः परोपकरणे रतः॥ ४

मत्सुताजातकं ब्रूहि गुणदोषसमुद्भवम्।
कस्य प्रिया भाग्यवती भविष्यति सुता मम॥ ५

हिमालय बोले—हे मुने! हे नारद! हे ज्ञानिन्! हे ब्रह्माके पुत्रोंमें श्रेष्ठ! हे प्रभो! आप सर्वज्ञ हैं, दयामय हैं और दूसरोंके उपकारमें लगे रहनेवाले हैं। गुण-दोषको प्रकट करनेवाले आप मेरी पुत्रीके जन्मफलका वर्णन कीजिये, मेरी सौभाग्यवती पुत्री किसकी पत्नी होगी?॥ ४-५॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तो मुनिवर्य त्वं गिरीशेन हिमाद्रिणा।
विलोक्य कालिकाहस्तं सर्वाङ्गं च विशेषतः॥ ६

अवोचस्त्वं गिरिं तात कौतुकी वाग्विशारदः।
ज्ञानी विदितवृत्तान्तो नारदः प्रीतमानसः॥ ७

नारद उवाच

एषा ते तनया मेने सुधांशोरिव वर्धिता।
आद्या कला शैलराज सर्वलक्षणशालिनी॥ ८

स्वपतेः सुखदात्यन्तं पित्रोः कीर्तिविवर्धिनी।
महासाध्वी च सर्वासु महानन्दकरी सदा॥ ९

सुलक्षणानि सर्वाणि त्वत्सुतायाः करे गिरे।
एका विलक्षणा रेखा तत्फलं शृणु तत्त्वतः॥ १०

योगी नग्नोऽगुणोऽकामी मातृतातविवर्जितः।
अमानोऽशिववेषश्च पतिरस्याः किलेदृशः॥ ११

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्ते हि सत्यं मत्वा च दम्पती।
मेना हिमाचलश्चापि दुःखितौ तौ बभूवतुः॥ १२

शिवाकर्ण्यवचस्ते हि तादृशं जगदम्बिका।
लक्षणैस्तं शिवं मत्वा जहर्षाति मुने हृदि॥ १३

न मृषा नारदवचस्त्विति संचिन्त्य सा शिवा।
स्नेहं शिवपदद्वन्द्वे चकाराति हृदा तदा॥ १४

उवाच दुखितः शैलस्त्वां तदा हृदि नारद।
कमुपायं मुने कुर्यामतिदुःखमभूदिति॥ १५

तच्छ्रुत्वा त्वं मुने प्रात्थ महाकौतुककारकः।
हिमाचलं शुभैर्वाक्यैर्हर्षयन्वाग्विशारदः॥ १६

नारद उवाच

स्नेहाच्छृणु गिरे वाक्यं मम सत्यं मृषा न हि।
कररेखा ब्रह्मलिपिर्न मृषा भवति ध्रुवम्॥ १७

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! हे तात! गिरिराज हिमालयके ऐसा कहनेपर कालिकाके हाथ और विशेष रूपसे उसके सम्पूर्ण अंगोंको देखकर कौतुकी, बोलनेमें चतुर, ज्ञानी और सभी वृत्तान्तोंको जाननेवाले आप नारद प्रसन्नचित्त होकर पर्वतराजसे कहने लगे— ॥ ६-७ ॥

नारद बोले—हे शैलराज! हे मेने! आपकी यह पुत्री चन्द्रमाकी आदि कलाके समान बढ़ रही है, यह समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न है॥ ८॥

यह अपने पतिके लिये अत्यन्त सुखदायिनी, माता-पिताकी कीर्तिको बढानेवाली, समस्त नारियोंमें परम साध्वी और [स्वजनोंको] सदा महान् आनन्द देनेवाली होगी॥ ९॥

हे गिरे! आपकी पुत्रीके हाथमें उत्तम लक्षण विद्यमान हैं, केवल एक रेखा विलक्षण है, उसका फल यथार्थरूपसे सुनिये। इसे ऐसा पति प्राप्त होगा, जो योगी, नग्न, निर्गुण, निष्काम, माता-पितासे रहित, मानविहीन और अमंगल वेषवाला होगा॥ १०-११ ॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] आपकी इस बातको सुनकर और सत्य मानकर वे मेना तथा हिमालय—दोनों पति-पत्नी बहुत दुखी हुए॥ १२ ॥

परंतु हे मुने! जगदम्बा शिवा आपके उस प्रकारके वचनको सुनकर और इन लक्षणोंसे युक्त उन शिवको मानकर मन-ही-मन अत्यन्त हर्षित हुईं॥ १३ ॥

नारदजीकी बात कभी झूठ नहीं हो सकती—यह सोचकर वे शिवा शिवके युगलचरणोंमें सम्पूर्ण हृदयसे अत्यन्त स्नेह करने लगीं॥ १४॥

हे नारद! उस समय मन-ही-मन दुखी हो हिमवान्ने आपसे कहा—मुने! [उस रेखाका फल सुनकर] मुझे बड़ा दुःख हुआ है, मैं क्या उपाय करूँ?॥ १५ ॥

हे मुने! यह सुनकर महान् कौतुक करनेवाले और वार्तालापविशारद आप मंगलकारी वचनोंद्वारा हिमाचलको हर्षित करते हुए कहने लगे— ॥ १६ ॥

नारदजी बोले—हे गिरिराज! आप स्नेहपूर्वक सुनिये। मेरी बात सच्ची है, वह झूठ नहीं होगी। हाथकी रेखा ब्रह्माजीकी लिपि है। निश्चय ही वह मिथ्या नहीं होती है॥ १७॥

तादृशोऽस्याः पतिः शैल भविष्यति न संशयः।
तत्रोपायं शृणु प्रीत्या यं कृत्वा लप्स्यसे सुखम्॥ १८

हे शैल! इसका पति वैसा ही होगा, इसमें संशय नहीं है, परंतु आप इसके उपायको प्रेमपूर्वक सुनिये, जिसे करके आप सुख प्राप्त करेंगे॥ १८॥

तादृशोऽस्ति वरः शम्भुः लीलारूपधरः प्रभुः।
कुलक्षणानि सर्वाणि तत्र तुल्यानि सद्गुणैः॥ १९

उस प्रकारके वर तो लीलारूपधारी प्रभु शिव ही हैं, उनमें समस्त कुलक्षण सद्गुणोंके समान ही हैं॥ १९॥

प्रभौ दोषो न दुःखाय दुःखदोऽत्यप्रभौ हि सः।
रविपावकगङ्गानां तत्र ज्ञेया निदर्शना॥ २०

समर्थ पुरुषमें दोष दुःखका कारण नहीं होता, असमर्थमें ही वह दुःखदायक होता है। इस विषयमें सूर्य, अग्नि और गंगाका दृष्टान्त जानना चाहिये॥ २०॥

तस्माच्छिवाय कन्यां स्वां शिवां देहि विवेकतः।
शिवः सर्वेश्वरः सेव्योऽविकारी प्रभुरव्ययः॥ २१

शीघ्रप्रसादः स शिवः तां ग्रहीष्यत्यसंशयम्।
तपःसाध्यो विशेषेण यदि कुर्याच्छिवा तपः॥ २२

इसलिये आप विवेकपूर्वक अपनी कन्या शिवाको शिवको अर्पण कीजिये। भगवान् शिव सर्वेश्वर, सबके सेव्य, निर्विकार, सामर्थ्यशाली और अविनाशी हैं। विशेषतः वे तपस्यासे वशमें हो जाते हैं। अतः यदि शिवा तप करे, तो शीघ्र ही प्रसन्न होनेवाले वे शिव उसे अवश्य ग्रहण कर लेंगे॥ २१-२२॥

सर्वथा सुसमर्थो हि स शिवः सकलेश्वरः।
कुलिशस्यापि विध्वंसी ब्रह्माधीनः सुखप्रदः॥ २३

सर्वेश्वर शिव सब प्रकारसे समर्थ तथा वज्र [-लेख]-का भी विनाश करनेवाले हैं। ब्रह्माजी उनके अधीन हैं तथा वे सबको सुख देनेवाले हैं॥ २३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा त्वं पुनस्तात कौतुकी ब्रह्मविन्मुने।
शैलराजमवोचो हि हर्षयन्वचनैः शुभैः॥ २४

ब्रह्माजी बोले—हे तात! हे ब्रह्मवित्! हे मुने! ऐसा कहकर कौतुक करनेवाले आपने शुभ वचनोंसे गिरिराजको हर्षित करते हुए पुनः कहा—॥ २४॥

भाविनी दयिता शम्भोः सानुकूला सदा हरे।
महासाध्वी सुव्रता च पित्रोः सुखविवर्धिनी॥ २५

पार्वती भगवान् शंकरकी पत्नी होगी और वह सदा रुद्रदेवके अनुकूल रहेगी; क्योंकि यह महासाध्वी और उत्तम व्रतका पालन करनेवाली है तथा माता-पिताके सुखको बढ़ानेवाली है॥ २५॥

शम्भोश्चित्तं वशे चैषा करिष्यति तपस्विनी।
स चाप्येनामृते योषां न ह्यन्यामुद्वहिष्यति॥ २६

यह तपस्विनी भगवान् शिवके मनको अपने वशमें कर लेगी और वे भी इसके सिवा किसी दूसरी स्त्रीसे विवाह नहीं करेंगे॥ २६॥

एतयोः सदृशं प्रेम न कस्याप्येव तादृशम्।
भूतं वा भविता वापि नाधुना च प्रवर्तते॥ २७

इन दोनोंका जैसा प्रेम है, वैसा प्रेम न तो किसीका हुआ है, न इस समय है और न आगे होगा॥ २७॥

अनयोः सुरकार्याणि कर्तव्यानि मृतानि च।
यानि यानि नगश्रेष्ठ जीवितानि पुनः पुनः॥ २८

हे गिरिश्रेष्ठ! इन्हें देवताओंके कार्य करने हैं, उनके जो-जो कार्य नष्टप्राय हो गये हैं, उन सबका इनके द्वारा पुनः उद्धार होगा॥ २८॥

अनया कन्यया तेऽद्रे अर्धनारीश्वरो हरः।
भविष्यति तथा हर्षदिनयोर्मिलितं पुनः॥ २९

हे गिरे! आपकी इस कन्यासे भगवान् हर अर्धनारीश्वर होंगे, इन दोनोंका पुनः हर्षपूर्वक मिलन होगा॥ २९॥

शरीरार्धं हरस्यैषा हरिष्यति सुता तव।
तपःप्रभावात्संतोष्य महेशं सकलेश्वरम्॥ ३०

आपकी यह पुत्री तपस्याके प्रभावसे सर्वेश्वर महेश्वरको सन्तुष्ट करके उनके शरीरके आधे भागको अपने अधिकारमें कर लेगी॥ ३०॥

स्वर्णगौरी सुवर्णाभा तपसा तोष्य तं हरम्।
विद्युद्गौरतमा चेयं तव पुत्री भविष्यति॥ ३१

यह आपकी कन्या अपनी तपस्यासे उन शिवको सन्तुष्टकर विद्युत् तथा सुवर्णके समान गौरवर्णकी होगी॥ ३१॥

गौरीति नाम्ना कन्या तु ख्यातिमेषा गमिष्यति।
सर्वदेवगणैः पूज्या हरिब्रह्मादिभिस्तथा॥ ३२

इसीलिये यह कन्या गौरी नामसे विख्यात होगी और ब्रह्मा, विष्णु तथा समस्त देवगण इसका पूजन करेंगे॥ ३२॥

नान्यस्मै त्वमिमां दातुमिहार्हसि नगोत्तम।
इदं चोपांशु देवानां न प्रकाश्यं कदाचन॥ ३३

हे गिरिश्रेष्ठ! आप इस कन्याको किसी दूसरेके लिये नहीं देना और इस रहस्यको देवताओंसे कभी प्रकट नहीं करना॥ ३३॥

ब्रह्मोवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा देवर्षे तव नारद।
उवाच हिमवान्वाक्यं मुने त्वां वाग्विशारदः॥ ३४

ब्रह्माजी बोले—हे देवर्षे! हे नारद! हे मुने! आपका यह वचन सुनकर वाक्यविशारद हिमालय आपसे यह वाक्य कहने लगे—॥ ३४॥

हिमालय उवाच

हे मुने नारद प्राज्ञ विज्ञप्तिं कांचिदेव हि।
करोमि तां शृणु प्रीत्यातस्त्वं प्रमुदमावह॥ ३५

हिमालय बोले—हे मुने! हे नारद! हे प्राज्ञ! मैं आपसे कुछ निवेदन कर रहा हूँ, आप उसे प्रेमपूर्वक सुनिये और आनन्दका अनुभव कीजिये॥ ३५॥

श्रूयते त्यक्तसङ्गः स महादेवो यतात्मवान्।
तपश्चरति सन्नित्यं देवानामप्यगोचरः॥ ३६

सुना जाता है कि वे महादेवजी आसक्तियोंका त्याग करके अपने मनको संयममें रखते हुए नित्य तपस्या करते हैं और देवताओंकी भी दृष्टिमें नहीं आते॥ ३६॥

स कथं ध्यानमार्गस्थः परब्रह्मार्पितं मनः।
भ्रंशयिष्यति देवर्षे तत्र मे संशयो महान्॥ ३७

हे देवर्षे! ध्यानमार्गमें स्थित हुए वे [भगवान् शंकर] परब्रह्ममें लगाये हुए अपने मनको किस प्रकार विचलित करेंगे, इस विषयमें मुझे महान् संशय है॥ ३७॥

अक्षरं परमं ब्रह्म प्रदीपकलिकोपमम्।
सदाशिवाख्यं स्वं रूपं निर्विकारमजात्परम्॥ ३८

निर्गुणं सगुणं तच्च निर्विशेषं निरीहकम्।
अतः पश्यति सर्वत्र न तु बाह्यं निरीक्षते॥ ३९

दीपककी लौके समान प्रकाशमान, अविनाशी, प्रकृतिसे परे, निर्विकार, निर्गुण, सगुण, निर्विशेष और निरीह जो परब्रह्म है, वही उनका अपना सदाशिव नामक स्वरूप है, अतः वे उसीका सर्वत्र साक्षात्कार करते हैं। किसी बाह्य वस्तुपर दृष्टिपात नहीं करते॥ ३८-३९॥

इति स श्रूयते नित्यं किन्नराणां मुखान्मुने।
इहागतानां सुप्रीत्या किं तन्मिथ्यावचो ध्रुवम्॥ ४०

हे मुने! यहाँ आये हुए किन्नरोंके मुखसे उनके विषयमें नित्य ऐसा सुना जाता है, क्या यह बात मिथ्या ही है॥ ४०॥

विशेषतः श्रूयते स साक्षान्नाम्ना तथा हरः।
समयं कृतवान्पूर्वं तन्मया गदितं शृणु॥ ४१

विशेषतः यह बात भी सुननेमें आती है कि उन भगवान् हरने पूर्व समयमें [सतीके समक्ष] प्रतिज्ञा की थी, उसे मैं कहता हूँ, आप सुनें॥ ४१॥

न त्वामृतेऽन्यां वरये दाक्षायणि सति प्रिये।
भार्यार्थं न ग्रहीष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ ४२

[उन्होंने कहा था—] हे दाक्षायणि! हे सति! हे प्रिये! मैं तुम्हारे अतिरिक्त दूसरी स्त्रीका न तो वरण करूँगा और न तो उसे पत्नीरूपमें ग्रहण करूँगा, यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ॥ ४२॥

इति सत्या समं तेन पुरैव समयः कृतः।
तस्यां मृतायां स कथं स्वयमन्यां ग्रहीष्यति॥ ४३

इस प्रकार सतीके साथ उन्होंने पहले ही प्रतिज्ञा कर ली है। अब सतीके मर जानेपर वे स्वयं दूसरी स्त्रीको कैसे ग्रहण करेंगे?॥ ४३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा स गिरिस्तूष्णीमास तस्य पुरस्तव।
तदाकर्ण्याथ देवर्षे त्वं प्रावोचः सुतत्त्वतः॥ ४४

ब्रह्माजी बोले—हे देवर्षे! यह कहकर उन गिरिने आपके सामने मौन धारण कर लिया, तब इसे सुनकर आप तत्त्वपूर्वक यह बात कहने लगे—॥ ४४॥

नारद उवाच

न वै कार्या त्वया चिंता गिरिराज महामते।
एषा तव सुता काली दक्षजा ह्यभवत्पुरा॥ ४५

नारदजी बोले—हे गिरिराज! हे महामते! आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिये, आपकी यह कन्या काली पूर्व समयमें दक्षकी पुत्री थी॥ ४५॥

सतीनामाभवत्तस्याः सर्वमङ्गलदं सदा।
सती सा वै दक्षकन्या भूत्वा रुद्रप्रियाभवत्॥ ४६

उस समय उसका नाम सती था, जो सदा मंगल प्रदान करनेवाला है। वह सती दक्षकन्या होकर रुद्रकी प्रिया बनी थी॥ ४६॥

पितुर्यज्ञे तथा प्राप्यानादरं शंकरस्य च।
तं दृष्ट्वा कोपमाधायात्याक्षीद्देहं च सा सती॥ ४७

उस सतीने अपने पिताके यज्ञमें अनादर पाकर तथा भगवान् शंकरका भी अपमान हुआ देखकर कोप करके अपने शरीरको त्याग दिया था॥ ४७॥

पुनः सैव समुत्पन्ना तव गेहेऽम्बिका शिवा।
पार्वती हरपत्नीयं भविष्यति न संशयः॥ ४८

वे ही अम्बिका शिवा आपके घरमें उत्पन्न हुई हैं। यह पार्वती भगवान् शंकरकी पत्नी होगी, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४८॥

एतत्सर्वं विस्तरात्त्वं प्रोक्तवान्भूभृते मुने।
पूर्वरूपं चरित्रं च पार्वत्याः प्रीतिवर्धनम्॥ ४९

[ब्रह्माजीने कहा—] हे मुने! उस समय आपने पार्वतीका यह सब प्रीतिवर्धक पूर्वजन्म तथा चरित्र विस्तारपूर्वक गिरिराजसे कहा था॥ ४९॥

तं सर्वं पूर्ववृत्तान्तं काल्या मुनिमुखाद्गिरिः।
श्रुत्वा सपुत्रदारः स तदा निःसंशयोऽभवत्॥ ५०

मुनिके मुखसे कालीके सम्पूर्ण पूर्व वृत्तान्तको सुनकर पुत्र-स्त्रीसहित वे गिरि सन्देहरहित हो गये॥ ५०॥

ततः काली कथां श्रुत्वा नारदस्य मुखात्तदा।
लज्जयाधोमुखी भूत्वा स्मितविस्तारितानना॥ ५१

तत्पश्चात् कालीने नारदजीके मुखसे उस कथाको सुनकर लज्जासे मुख नीचे कर लिया और उनके मुखपर मुसकान छा गयी॥ ५१॥

करेण तां तु संस्पृश्य श्रुत्वा तच्चरितं गिरिः।
मूर्ध्नि शश्वत्तथाघ्राय स्वासनान्ते न्यवेशयत्॥ ५२

उसके चरित्रको सुनकर, हाथसे उसका स्पर्श करके और बार-बार उसका मस्तक सूँघकर हिमालयने उसे अपने आसनके पास बैठाया॥ ५२॥

ततस्त्वं तां पुनर्दृष्ट्वावोचस्तत्र स्थितां मुने।
हर्षयन् गिरिराजं च मेनकां तनयैः सह॥ ५३

सिंहासनं तु किन्त्वस्याः शैलराज भवेदतः।
शम्भोरूरौ सदैतस्या आसनं तु भविष्यति॥ ५४

हरेरूर्वासनं प्राप्य तनया तव सन्ततम्।
न यत्र कस्यचिद् दृष्टिर्मानसं वा गमिष्यति॥ ५५

तब हे मुने! आप वहाँ बैठी हुई उस कालीको देखकर पुत्रोंसहित गिरिराज एवं मेनाको प्रसन्न करते हुए कहने लगे—हे शैलराज! इस पार्वतीके बैठनेके लिये यह सिंहासन क्या है? इसका आसन तो सदा शम्भुका ऊरुदेश होगा। यह तुम्हारी तनया शिवजीके ऊरुका आसन प्राप्त करेगी, जहाँ किसीकी दृष्टि अथवा मनतक नहीं जा सकेगा॥ ५३—५५॥

ब्रह्मोवाच

इति वचनमुदारं नारद त्वं गिरीशं
त्रिदिवमगम उक्त्वा तत्क्षणादेव प्रीत्या।
गिरिपतिरपि चित्ते चारुसंमोदयुक्तः
स्वगृहमगमदेवं सर्वसम्पत्समृद्धम्॥ ५६

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! इस प्रकार आप गिरिराजसे उदार वचन कहकर वहाँसे स्वर्ग चले गये और वे गिरिराज भी चित्तमें प्रसन्न होकर सम्पूर्ण समृद्धियोंसे युक्त अपने घर चले गये॥ ५६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे नारदहिमालयसंवादवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें नारदहिमालयसंवादवर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः

पार्वतीके विवाहके सम्बन्धमें मेना और हिमालयका वार्तालाप, पार्वती और हिमालयद्वारा देखे गये अपने स्वप्नका वर्णन

नारद उवाच

विधे तात त्वया शैववर प्राज्ञाद्भुता कथा।
वर्णिता करुणां कृत्वा प्रीतिर्मे वर्धिताधिका॥ १

विधे गते स्वकं धाम मयि वै दिव्यदर्शने।
ततः किमभवत्तात कृपया तद्वदाधुना॥ २

नारदजी बोले—हे विधे! हे तात! हे शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ! हे प्राज्ञ! आपने करुणा करके [भगवान् शिवकी] यह अद्भुत कथा कही, उससे [मेरे मनमें] बहुत प्रीति बढ़ी है। हे विधे! जब दिव्य दृष्टिवाला मैं अपने स्थानको चला गया, तब हे तात! क्या हुआ? अब कृपाकर उसे मुझे बतलाइये॥ १-२॥

ब्रह्मोवाच

गते त्वयि मुने स्वर्गे कियत्काले गते सति।
मेना प्राप्यैकदा शैलनिकटं प्रणनाम सा॥ ३
स्थित्वा सविनयं प्राह स्वनाथं गिरिकामिनी।
तत्र शैलाधिनाथं सा प्राणप्रियसुता सती॥ ४

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! आपके स्वर्ग चले जानेपर कुछ समय बीतनेपर मेनाने हिमालयके पास आकर उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् पुत्रीको प्राणोंसे भी अधिक चाहनेवाली साध्वी गिरिप्रिया मेना वहाँ बैठकर अपने पति गिरिराजसे विनयपूर्वक कहने लगीं॥ ३-४॥

मेनोवाच

मुनिवाक्यं न बुद्धं मे सम्यङ् नारीस्वभावतः।
विवाहं कुरु कन्यायाः सुन्दरेण वरेण ह॥ ५

सर्वथा हि भवेत्तत्रोद्वाहोऽपूर्वसुखावहः।
वरश्च गिरिजायास्तु सुलक्षणकुलोद्भवः॥ ६

प्राणप्रिया सुता मे हि सुखिता स्याद्यथा प्रिया।
सद्वरं प्राप्य सुप्रीता तथा कुरु नमोऽस्तु ते॥ ७

मेना बोलीं—स्त्री-स्वभावके कारण मुनिकी बातको मैंने अच्छी तरह नहीं समझा, [मेरी तो यह प्रार्थना है कि] आप कन्याका विवाह किसी सुन्दर वरके साथ कर दीजिये। यह विवाह सर्वथा अपूर्व सुख देनेवाला होना चाहिये। गिरिजाका वर शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न और कुलीन होना चाहिये। मेरी पुत्री मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है। वह प्रिया उत्तम वर पाकर जिस प्रकार भी प्रसन्न और सुखी हो सके, वैसा कीजिये, आपको मेरा नमस्कार है॥ ५—७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वाश्रुमुखी मेना पत्यङ्घ्र्योः पतिता तदा।
तामुत्थाप्य गिरिः प्राह यथावत्प्राज्ञसत्तमः॥ ८

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर अश्रुयुक्त मुखवाली मेना पतिके चरणोंमें गिर पड़ीं, तब बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हिमवान् उन्हें उठाकर यथोचित बात कहने लगे—॥ ८॥

हिमालय उवाच

शृणु त्वं मेनके देवि यथार्थं वच्मि तत्त्वतः।
भ्रमं त्यज मुनेर्वाक्यं वितथं न कदाचन॥ ९

यदि स्नेहः सुतायास्ते सुतां शिक्षय सादरम्।
तपः कुर्याच्छंकरस्य सा भक्त्या स्थिरचेतसा॥ १०

चेत्प्रसन्नः शिवः काल्याः पाणिं गृह्णाति मेनके।
सर्वं भूयाच्छुभं नश्येन्नारदोक्तममङ्गलम्॥ ११

अमङ्गलानि सर्वाणि मङ्गलानि सदा शिवे।
तस्मात्सुतां शिवप्राप्त्यै तपसे शिक्षय द्रुतम्॥ १२

हिमालय बोले—हे देवि! हे मेनके! मैं यथार्थ और तत्त्वकी बात बताता हूँ, सुनिये। आप भ्रम छोड़िये। मुनिकी बात कभी झूठ नहीं हो सकती। यदि आपको पुत्रीके प्रति स्नेह है, तो उसे सादर शिक्षा दीजिये कि वह भक्तिपूर्वक सुस्थिर चित्तसे शंकरके लिये तप करे। हे मेनके! यदि शिव प्रसन्न होकर कालीका पाणिग्रहण कर लेते हैं, तो सब शुभ ही होगा और नारदजीका बताया हुआ अमंगल नष्ट हो जायगा। शिवके समीप सारे अमंगल सदा मंगलरूप हो जाते हैं, इसलिये आपको शिवकी प्राप्तिके लिये पुत्रीको तपस्या करनेकी शीघ्र शिक्षा देनी चाहिये॥ ९—१२॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य गिरेर्वाक्यं मेना प्रीततराभवत्।
सुतोपकंठमगमदुपदेष्टुं तपोरुचिम्॥ १३
सुताङ्गं सुकुमारं हि दृष्ट्वातीवाथ मेनका।
विव्यथे नेत्रयुग्मे चाश्रुपूर्णेऽभवतां द्रुतम्॥ १४

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] हिमवान्‌की यह बात सुनकर मेना परम प्रसन्न हुईं। वे तपस्यामें रुचिका उपदेश देनेके लिये पुत्रीके पास गयीं। पुत्रीके सुकुमार शरीरपर दृष्टिपात करके मेनाको बड़ी व्यथा हुई और उनके दोनों नेत्रोंमें शीघ्र ही आँसू भर आये॥ १३-१४॥

सुतां समुपदेष्टुं तन्न शशाक गिरिप्रिया।
बुबुधे पार्वती तद्वै जननीङ्गितमाशु सा॥ १५
अथ सा कालिका देवी सर्वज्ञा परमेश्वरी।
उवाच जननीं सद्यः समाश्वास्य पुनः पुनः॥ १६

तब गिरिप्रिया मेना पुत्रीको उपदेश न दे सकीं, किंतु माताकी उस चेष्टाको वे पार्वती शीघ्र ही समझ गयीं। तदनन्तर वे सर्वज्ञ परमेश्वरी कालिका देवी माताको बार-बार आश्वासन देकर शीघ्र कहने लगीं॥ १५-१६॥

पार्वत्युवाच

मातः शृणु महाप्राज्ञेऽद्यतनेऽजमुहूर्तके।
रात्रौ दृष्टो मया स्वप्नस्तं वदामि कृपां कुरु॥ १७

विप्रश्चैव तपस्वी मां सदयः प्रीतिपूर्वकम्।
उपादिदेश सुतपः कर्तुं मातः शिवस्य वै॥ १८

पार्वती बोलीं—हे मातः! हे महाप्राज्ञे! सुनिये, आजकी रात्रिके ब्राह्ममुहूर्तमें मैंने एक स्वप्न देखा है, उसे बताती हूँ, आप कृपा करें। हे मातः! एक दयालु एवं तपस्वी ब्राह्मणने मुझे शिवके निमित्त उत्तम तपस्या करनेका प्रसन्नतापूर्वक उपदेश दिया है॥ १७-१८॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा मेनका शीघ्रं पतिमाहूय तत्र च।
तत्स्वप्नं कथयामास सुतादृष्टमशेषतः॥ १९
सुतास्वप्नमथाकर्ण्य मेनकातो गिरीश्वरः।
उवाच परमप्रीतः प्रियां सम्बोधयन्गिरा॥ २०

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] यह सुनकर मेनकाने वहाँ शीघ्र अपने पतिको बुलाकर पुत्रीके देखे हुए उस स्वप्नको पूर्णरूपसे बताया। तब मेनकासे पुत्रीके स्वप्नको सुनकर गिरिराज बड़े प्रसन्न हुए और वाणीसे पत्नीको समझाते हुए कहने लगे—॥ १९-२०॥

गिरीश्वर उवाच

हे प्रियेऽपररात्रान्ते स्वप्नो दृष्टो मयापि हि।
तं शृणु त्वं महाप्रीत्या वच्म्यहं ते समादरात्॥ २१

एकस्तपस्वी परमो नारदोक्तवराङ्गधृक्।
पुरोपकंठं सुप्रीत्या तपः कर्तुं समागतः॥ २२

गिरिराज बोले—हे प्रिये! मैंने भी रातके अन्तिम प्रहरमें एक स्वप्न देखा है, मैं आदरपूर्वक उसे बताता हूँ, आप प्रेमपूर्वक सुनें। नारदजीके द्वारा बताये गये वरके अंगों [लक्षणों]-को धारण करनेवाले एक परम तपस्वी प्रसन्नताके साथ तपस्या करनेके लिये मेरे नगरके निकट आये। तब मैं भी अति प्रसन्न होकर

गृहीत्वा स्वसुतां तत्रागमं प्रीततरोऽप्यहम्।
मया ज्ञातः स वै शम्भुर्नारदोक्तवरः प्रभुः॥ २३

सेवार्थं तस्य तनयामुपदिश्य तपस्विनः।
तं वै प्रार्थितवांस्तस्यां न तदाङ्गीचकार सः॥ २४

अभूद्विवादः सुमहान्सांख्यवेदान्तसंमतः ।
ततस्तदाज्ञया तत्र संस्थितासीत्सुता मम॥ २५

निधाय हृदि तं कामं सिषेवे भक्तितश्च सा।
इति दृष्टं मया स्वप्नं प्रोक्तवांस्ते वरानने॥ २६

ततो मेने कियत्कालं परीक्ष्यं तत्फलं प्रिये।
योग्यमस्तीदमेवेह बुध्यस्व त्वं मम ध्रुवम् ॥ २७

अपनी पुत्रीको साथ लेकर वहाँ गया। [उस समय] मुझे ज्ञात हुआ कि नारदजीके द्वारा बताये हुए वर भगवान् शम्भु ये ही हैं। मैंने उन तपस्वीकी सेवाके लिये अपनी पुत्रीको उपदेश देकर उनसे भी प्रार्थना की कि वे इसकी सेवा स्वीकार करें, परंतु उस समय उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। इतनेमें वहाँ सांख्य और वेदान्तके अनुसार बहुत बड़ा विवाद छिड़ गया। तदनन्तर उनकी आज्ञासे मेरी पुत्री वहीं रह गयी और अपने हृदयमें उन्हींकी कामना रखकर भक्तिपूर्वक उनकी सेवा करने लगी। हे सुमुखि! मैंने यही स्वप्न देखा था, जिसे तुम्हें बता दिया। अतः हे मेने! हे प्रिये! कुछ समयतक इस स्वप्नके फलकी परीक्षा करनी चाहिये, इस समय यही उचित जान पड़ता है, अब आप इसीको मेरा निश्चित मत समझिये॥ २१—२७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा गिरिराजश्च मेनका वै मुनीश्वर।
सन्तस्थतुः परीक्षन्तौ तत्फलं शुद्धचेतसौ॥ २८

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! यह कहकर वे गिरिराज तथा मेना शुद्धचित्त हो [कुछ कालपर्यन्त] स्वप्नफलकी प्रतीक्षा करने लगे॥ २८॥

इत्थं व्यतीतेऽल्पदिने परमेशः सतां गतिः।
सतीविरहसुव्यग्रो भ्रमन्सर्वत्र सूतिकृत्॥ २९

तत्राजगाम सुप्रीत्या कियद् गणयुतः प्रभुः।
तपः कर्तुं सतीप्रेमविरहाकुलमानसः॥ ३०

तपश्चकार स्वं तत्र पार्वती सेवने रता।
सखीभ्यां सहिता नित्यं प्रसन्नार्थमभूत्तदा॥ ३१

इसके अनन्तर अभी कुछ ही काल बीता था कि सृष्टिकर्ता तथा सज्जनोंको गति देनेवाले परमेश्वर शिवजी सतीके विरहसे अत्यन्त व्याकुल होकर सर्वत्र घूमते हुए गणोंके साथ तप करनेके लिये प्रेमपूर्वक वहाँ आये। सतीके प्रेमविरहमें व्याकुल चित्तवाले वे वहीं अपना तप करने लगे। उस समय पार्वती अपनी दो सखियोंके साथ उन्हें प्रसन्न करनेके लिये उनकी सेवामें लगी रहती थीं॥ २९—३१॥

विद्धोऽपि मार्गणैः शम्भुर्विकृतिं नाप स प्रभुः।
प्रेषितेन सुरैः स्वात्ममोहनार्थं स्मरेण वै॥ ३२

[उस समय] उन आत्मस्वरूप शिवको मोहित करनेके लिये देवताओंके द्वारा भेजे गये कामदेवके बाणोंसे विद्ध होकर भी भगवान् शम्भु विचलित नहीं हुए॥ ३२॥

दग्ध्वा स्मरं च तत्रैव स्ववह्निनयनेन सः।
स्मृत्वा मम वचः क्रुद्धो मह्यमन्तर्दधे ततः॥ ३३

अपनी नेत्राग्निसे कामदेवको जलाकर मेरे वचनका स्मरणकर वे वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ३३॥

ततः कालेन कियता विनाश्य गिरिजामदम्।
प्रसादितः सुतपसा प्रसन्नोऽभून्महेश्वरः॥ ३४

तत्पश्चात् कुछ समय बीतनेके बाद गिरिजाके अभिमानका नाश करके पुनः उनकी कठोर तपस्यासे प्रसन्न किये गये महेश्वर प्रसन्न हुए॥ ३४॥

लौकिकाचारमाश्रित्य रुद्रो विष्णुप्रसादितः।
कालीं विवाहयामास ततोऽभूद् बहुमङ्गलम्॥ ३५

उसके बाद विष्णुके द्वारा प्रसन्न किये गये रुद्रने लोकाचारका आश्रय लेकर पार्वतीके साथ विवाह किया। उस अवसरपर बहुत मंगल हुआ॥ ३५॥

इत्येतत्कथितं तात समासाच्चरितं विभोः।
शंकरस्य परं दिव्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ३६

पुनः ब्रह्माजी बोले—हे तात! इस प्रकार मैंने संक्षेपमें विभु शंकरका अत्यन्त दिव्य चरित्र [आपसे] कहा, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ३६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे स्वप्नवर्णनपूर्वकं संक्षेपशिवचरितवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें स्वप्नवर्णनपूर्वक संक्षेपमें शिवचरित-वर्णन नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

अथ दशमोऽध्यायः

शिवजीके ललाटसे भौमोत्पत्ति

नारद उवाच

विष्णुशिष्य महाभाग विधे शैववर प्रभो।
शिवलीलामिमां व्यासात्प्रीत्या मे वक्तुमर्हसि॥ १

नारदजी बोले—हे विष्णुशिष्य! हे महाभाग! हे विधे! हे शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ! हे प्रभो! आप शिवजीकी इस लीलाको प्रीतिपूर्वक विस्तारसे मुझसे कहिये॥ १॥

सतीविरहयुक् शम्भुः किं चक्रे चरितं तथा।
तपः कर्तुं कदायातो हिमवत्प्रस्थमुत्तमम्॥ २

सतीके विरहसे युक्त होकर शिवजीने कौन-सा चरित्र किया और वे उत्तम हिमालय पर्वतपर तप करनेके लिये कब आये?॥ २॥

शिवाशिवविवादोऽभूत्कथं कामक्षयश्च वै।
तपः कृत्वा कथं प्राप शिवं शम्भुं च पार्वती॥ ३

शिवा और शिवजीका विवाद और कामदेवका विनाश किस प्रकार हुआ? पार्वतीने तपस्या करके किस प्रकार कल्याणकारी शम्भुको प्राप्त किया?॥ ३॥

तत्सर्वमपरं चापि शिवसच्चरितं परम्।
वक्तुमर्हसि मे ब्रह्मन्महानन्दकरं शुभम्॥ ४

हे ब्रह्मन्! इन सब बातोंको तथा महान् आनन्द देनेवाले अन्य सुन्दर शिवचरित्रोंको मुझसे कहिये॥ ४॥

सूत उवाच

इति श्रुत्वा नारदस्य प्रश्नं लोकाधिपोत्तमः।
विधिः प्रोवाच सुप्रीत्या स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम्॥ ५

सूतजी बोले—नारदजीके इस प्रश्नको सुनकर लोकाधिपतियोंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजी शिवजीके चरणकमलका ध्यान करके अति प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे—॥ ५॥

ब्रह्मोवाच

देवर्षे शैववर्याद्य तद्यशः शृणु चादरात्।
पावनं मङ्गलकरं भक्तिवर्धनमुत्तमम्॥ ६

ब्रह्माजी बोले—हे देवर्षे! हे शैववर्य! मंगल करनेवाले, उत्तम भक्तिको बढ़ानेवाले पावन शिव-चरित्रको आदरपूर्वक सुनिये॥ ६॥

आगत्य स्वगिरिं शम्भुः प्रियाविरहकातरः।
सस्मार स्वप्रियां देवीं सतीं प्राणाधिकां हृदा॥ ७

अपने पर्वतपर आकर प्रियाके विरहसे दुखी शम्भुने प्राणोंसे भी बढ़कर अपनी प्रिया सती देवीका हृदयसे स्मरण किया॥ ७॥

गणानाभाष्य शोचंस्तां तद्गुणान्प्रेमवर्धनान्।
वर्णयामास सुप्रीत्या दर्शयँल्लौकिकीं गतिम्॥ ८

वे [अपने] गणोंको बुलाकर उन सतीके लिये शोक प्रकट करते हुए, लौकिक गति दिखाते हुए उनके प्रेमवर्धक गुणोंका अत्यन्त प्रेमपूर्वक वर्णन करने लगे॥ ८॥

दिगम्बरो बभूवाथ त्यक्त्वा गार्हस्थ्यसद्गतिम्।
पुनर्बभ्राम लोकान्वै सर्वान् लीलाविशारदः॥ ९

लीलाविशारद वे शिवजी गृहस्थोचित उत्तम आचरणको छोड़कर दिगम्बर हो गये और पुनः सभी लोकोंमें भ्रमण करने लगे॥ ९॥

न प्राप दर्शनं क्वापि सतीविरहदुःखितः।
पुनश्च गिरिमायातः शंकरो भक्तशंकरः॥ १०

सतीके विरहसे दुखी हुए भगवान् शंकरको कहीं भी सतीका दर्शन प्राप्त नहीं हुआ, तब भक्तोंका कल्याण करनेवाले शिवजी पुनः [कैलास] पर्वतपर आ गये॥ १०॥

समाधाय मनो यत्नात् समाधिं दुःखनाशनम्।
चकार च ददर्शासौ स्वरूपं निजमव्ययम्॥ ११

उसके बाद उन्होंने यत्नपूर्वक मनको एकाग्रकर दुःख दूर करनेवाली समाधि लगायी और अपने अविनाशी स्वरूपका दर्शन किया॥ ११॥

इत्थं चिरतरं स्थाणुस्तस्थौ ध्वस्तगुणत्रयः।
निर्विकारी परं ब्रह्म मायाधीशः स्वयं प्रभुः॥ १२

इस प्रकार मायाधीश, त्रिगुणातीत, विकाररहित परब्रह्म स्वयंप्रभु सदाशिव स्थायी होकर समाधिमें बहुत दिनोंतक लीन रहे॥ १२॥

ततः समाधिं तत्याज व्यतीयुर्ह्यमिताः समाः।
यदा तदा बभूवाशु चरितं तद्वदामि वः॥ १३

जब [समाधि लगाये हुए उनको] बहुत वर्ष बीत गये, तब उन्होंने अपनी समाधिका त्याग किया। उस समय जो चरित्र हुआ, उसे मैं आपसे शीघ्र कह रहा हूँ॥ १३॥

प्रभोर्ललाटदेशात्तु यत्पृषच्छ्रमसंभवम्।
पपात धरणौ तत्र स बभूव शिशुर्द्रुतम्॥ १४

प्रभुके ललाटस्थलसे जो पसीनेकी बूँदें पृथ्वीपर गिरीं, उनसे शीघ्र ही एक बालक उत्पन्न हुआ॥ १४॥

चतुर्भुजोऽरुणाकारो रमणीयाकृतिर्मुने।
अलौकिकद्युतिः श्रीमाँस्तेजस्वी परदुस्सहः॥ १५

हे मुने! वह चार भुजाओंसे युक्त, अरुण-वर्णवाला, अत्यन्त मनोहर रूपवाला, अलौकिक तेजसे सम्पन्न, श्रीमान्, तेजस्वी तथा शत्रुओंके लिये दुःसह था॥ १५॥

रुरोद स शिशुस्तस्य पुरो हि परमेशितुः।
प्राकृतात्मजवत्तत्र भवाचाररतस्य हि॥ १६

वह बालक उन लोकाचाररत परमेश्वर शिवके सामने समीप जाकर साधारण पुत्रकी भाँति रोने लगा॥ १६॥

तदा विचार्य सुधिया धृत्वा सुस्त्रीतनुं क्षितिः।
आविर्बभूव तत्रैव भयमानीय शंकरात्॥ १७

तं बालं द्रुतमुत्थाप्य क्रोडायां निदधे वरम्।
स्तन्यं सापाययत्प्रीत्या दुग्धं चोपरिसम्भवम्॥ १८

उसी समय भगवान् शंकरसे भयभीत हुई पृथ्वी बुद्धिसे विचारकर अत्यन्त सुन्दर स्त्रीका शरीर धारण करके प्रकट हो गयी। उसने शीघ्रतासे उस सुन्दर बालकको अपनी गोदमें उठाकर रख लिया और प्रेमसे उसे अपना दूध पिलाने लगी॥ १७-१८॥

चुचुम्ब तन्मुखं स्नेहात्स्मित्वा क्रीडयदात्मजम्।
सत्यभावात्स्वयं माता परमेशहितावहा॥ १९

इस प्रकार वह परमेश्वरके हित-साधनके लिये सत्यभावसे बालककी माता बनी और प्रेमपूर्वक हँसते हुए बालकका मुख चूमने लगी॥ १९॥

तद् दृष्ट्वा चरितं शम्भुः कौतुकी सूतिकृत्कृती।
अन्तर्यामी विहस्याथोवाच ज्ञात्वा रसां हरः॥ २०

तब कौतुकी, सृष्टिकर्ता तथा अन्तर्यामी शम्भु इस चरित्रको देखकर उसे पृथ्वी जानकर हँस करके उससे बोले—॥ २०॥

धन्या त्वं धरणि प्रीत्या पालयैतं सुतं मम।
त्वय्युद्भूतं श्रमजलान्महातेजस्विनो वरम्॥ २१

हे धरणि! तुम धन्य हो, तुम मेरे पुत्रका प्रेमसे पालन करो। यह श्रेष्ठ [बालक] मेरे महातेजस्वी पसीनेसे तुममें उत्पन्न हुआ है॥ २१॥

मम श्रमकभूर्बालो यद्यपि प्रियकृत्क्षिते।
त्वन्नाम्ना स्याद्भवेत्ख्यातस्त्रितापरहितः सदा॥ २२

असौ बालः कुदाता हि भविष्यति गुणी तव।
ममापि सुखदाता हि गृहाणैनं यथारुचि॥ २३

हे क्षिते! यद्यपि मेरे श्रमजल (पसीने)-से उत्पन्न हुआ यह बालक मुझे बड़ा प्रिय है, फिर भी यह तुम्हारे नामसे विख्यात होगा और सदा तीनों तापोंसे रहित होगा। यह बालक भूमिदान करनेवाला, गुणोंसे सम्पन्न और तुम्हें तथा मुझको भी सुख प्रदान करनेवाला होगा, अतः तुम इसे रुचिके अनुसार ग्रहण करो॥ २२-२३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा विररामाथ किंचिद्विरहमुक्तधीः।
लोकाचारकरो रुद्रो निर्विकारी सतां प्रियः॥ २४

ब्रह्माजी बोले—विरहवेदनासे थोड़ा-सा मुक्त हुए भगवान् शिव इस प्रकार कहकर चुप हो गये। [वस्तुतः] निर्विकारी तथा सज्जनोंके प्रिय वे प्रभु शिवजी लोकाचारका अनुसरण करते हैं॥ २४॥

अपि क्षितिर्जगामाशु शिवाज्ञामधिगम्य सा।
स्वस्थानं ससुता प्राप सुखमात्यंतिकं च वै॥ २५

तब शिवजीसे आज्ञा लेकर पृथ्वी शीघ्र पुत्रसहित अपने स्थानपर चली गयी और उसे अत्यन्त सुख प्राप्त हुआ॥ २५॥

स बालो भौम इत्याख्यां प्राप्य भूत्वा युवा द्रुतम्।
तस्यां काश्यां चिरं कालं सिषेवे शंकरं प्रभुम्॥ २६

विश्वेश्वरप्रसादेन ग्रहत्वं प्राप्य भूमिजः।
दिव्यं लोकं जगामाशु शुक्रलोकात्परं वरम्॥ २७

वह बालक भौम नाम प्राप्त करके शीघ्र ही युवा हो उस काशीमें बहुत कालतक शिवजीकी सेवा करता रहा। इस प्रकार वह भूमिपुत्र विश्वेश्वरकी कृपासे ग्रहपद प्राप्तकर शुक्रलोकसे भी आगे दिव्य लोकमें चला गया॥ २६-२७॥

इत्युक्तं शम्भुचरितं सतीविरहसंयुतम्।
तपस्याचरणं शम्भोः शृणु चादरतो मुने॥ २८

हे मुने! मैंने सतीके विरहयुक्त शिव-चरित्रको कहा, अब आप शिवजीकी तपस्याके आचरणको आदरके साथ सुनिये॥ २८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे भौमोत्पत्तिशिवलीलावर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें भौमकी उत्पत्ति तथा शिवलीलाका वर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

अथैकादशोऽध्यायः

भगवान् शिवका तपस्याके लिये हिमालयपर आगमन, वहाँ पर्वतराज हिमालयसे वार्तालाप

ब्रह्मोवाच

वर्धमाना गिरेः पुत्री सा शक्तिर्लोकपूजिता।
अष्टवर्षा यदा जाता हिमालयगृहे सती॥ १॥

तज्जन्म गिरिशो ज्ञात्वा सतीविरहकातरः।
कृत्वा तामद्भुतामन्तर्मुमोदातीव नारद॥ २॥

ब्रह्माजी बोले—हिमालयकी वह लोकपूजित पुत्री पार्वती उनके घरमें बढ़ती हुई जब आठ वर्षकी हो गयी, तब हे नारद! उसका जन्म [हिमालयके घरमें] जानकर सतीके विरहसे दुखी हुए शंकरजी सतीकी इस अद्भुत लीलासे मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हो उठे॥ १-२॥

तस्मिन्नेवान्तरे शम्भुर्लौकिकीं गतिमाश्रितः।
समाधातुं मनः सम्यक् तपः कर्तुं समैच्छत॥ ३

उसी समय लौकिक गतिका आश्रय लेकर शम्भुने अपने मनको एकाग्र करनेके लिये तप करनेका विचार किया॥ ३॥

कांश्चिद्गणवरान् शान्तान् नंद्यादीनवगृह्य च।
गङ्गावतारमगमद्धिमवत्प्रस्थमुत्तमम्॥ ४

यत्र गङ्गा निपतिता पुरा ब्रह्मपुरात्स्रुता।
सर्वाघौघविनाशाय पावनी परमा मुने॥ ५

नन्दी आदि कुछ शान्त, श्रेष्ठ पार्षदोंको साथ लेकर वे हिमालयके गंगावतार नामक उत्तम शिखरपर गये, हे मुने! जहाँ पूर्वकालमें ब्रह्मधामसे प्रवाहित होकर समस्त पापराशिका विनाश करनेके लिये परम पावनी गंगा गिरी थीं॥ ४-५॥

तपःप्रारम्भमकरोत्स्थित्वा तत्र वशी हरः।
एकाग्रं चिंतयामास स्वमात्मानमतन्द्रितः॥ ६

चेतो ज्ञानभवं नित्यं ज्योतीरूपं निरामयम्।
जगन्मयं चिदानन्दं द्वैतहीनं निराश्रयम्॥ ७

जितेन्द्रिय हरने वहीं रहकर तपस्या आरम्भ की, वे आलस्यका त्यागकर चेतन, ज्ञानस्वरूप, नित्य, ज्योतिर्मय, निरामय, जगन्मय, चिदानन्दस्वरूप, द्वैतहीन तथा आश्रयरहित अपने आत्मभूत परमात्माका एकाग्रभावसे चिन्तन करने लगे॥ ६-७॥

हरे ध्यानपरे तस्मिन्प्रमथा ध्यानतत्पराः।
अभवन्केचिदपरे नन्दिभृंग्यादयो गणाः॥ ८

भगवान् हरके ध्यानपरायण होनेपर नन्दी, भृंगी आदि कुछ अन्य पार्षदगण भी ध्यानमें तत्पर हो गये॥ ८॥

सेवां चक्रुस्तदा केचिद्गणाः शम्भोः परात्मनः।
नैवाकूजंस्तु मौना हि द्वारपाः केचनाभवन्॥ ९

उस समय कुछ गण परमात्मा शम्भुकी सेवा करते थे और कुछ द्वारपाल हो गये। वे सब-के-सब मौन रहते थे और कुछ नहीं बोलते थे॥ ९॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र जगाम हिमभूधरः।
शङ्करस्यौषधिप्रस्थे श्रुत्वागमनमादरात्॥ १०

इसी समय गिरिराज हिमालय उस औषधि-शिखरपर भगवान् शंकरका आगमन सुनकर आदरपूर्वक वहाँ गये॥ १०॥

प्रणनाम प्रभुं रुद्रं सगणो भूधरेश्वरः।
समानर्च च सुप्रीतस्तुष्टाव स कृताञ्जलिः॥ ११

अपने गणोंसहित गिरिराजने प्रभु रुद्रको प्रणाम किया, उनकी पूजा की और अत्यन्त प्रसन्न हो हाथ जोड़कर [वे शिवजीकी] स्तुति करने लगे॥ ११॥

हिमालय उवाच

देवदेव महादेव कपर्दिन् शंकर प्रभो।
त्वयैव लोकनाथेन पालितं भुवनत्रयम्॥ १२

हिमालय बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे कपर्दिन्! हे प्रभो! हे शंकर! आप लोकनाथने ही तीनों लोकोंका पालन किया है॥ १२॥

नमस्ते देवदेवेश योगिरूपधराय च।
निर्गुणाय नमस्तुभ्यं सगुणाय विहारिणे॥ १३

कैलासवासिने शम्भो सर्वलोकाटनाय च।
नमस्ते परमेशाय लीलाकाराय शूलिने॥ १४

परिपूर्णगुणाधानविकाररहिताय ते।
नमोऽनीहाय वीहाय धीराय परमात्मने॥ १५

योगीरूप धारण करनेवाले हे देवदेवेश! आपको नमस्कार है, निर्गुण, सगुण तथा विहार करनेवाले आपको नमस्कार है। हे शम्भो! आप कैलासवासी, सभी लोकोंमें विचरण करनेवाले, लीला करनेवाले, त्रिशूलधारी परमेश्वरको नमस्कार है। [सभी प्रकारसे] परिपूर्ण गुणोंके आकर, विकाररहित, सर्वथा इच्छारहित होते हुए भी इच्छावाले तथा धैर्यवान् आप परमात्माको नमस्कार है॥ १३—१५॥

अबहिर्भोगकाराय जनवत्सल ते नमः।
त्रिगुणाधीश मायेश ब्रह्मणे परमात्मने॥ १६

विष्णुब्रह्मादिसेव्याय विष्णुब्रह्मस्वरूपिणे ।
विष्णुब्रह्मैकदात्रे ते भक्तप्रिय नमोऽस्तु ते॥ १७

हे जनवत्सल! हे त्रिगुणाधीश! हे मायापते! बाहरी भोगोंको ग्रहण न करनेवाले आप परब्रह्म परमात्माको नमस्कार है। हे भक्तप्रिय! आप ब्रह्मा, विष्णु आदिके द्वारा सेव्य, ब्रह्मा-विष्णुस्वरूप तथा विष्णु-ब्रह्माको सुख प्रदान करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है॥ १६-१७॥

तपोरत तपःस्थान सुतपःफलदायिने।
तपःप्रियाय शान्ताय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे॥ १८

हे तपोरत! हे तपःस्थान! आप उत्तम तपस्याका फल प्रदान करनेवाले, तपस्यासे प्रेम करनेवाले, शान्त तथा ब्रह्मस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है॥ १८॥

व्यवहारकरायैव लोकाचारकराय ते।
सगुणाय परेशाय नमोऽस्तु परमात्मने॥ १९

व्यवहार तथा लोकाचार करनेवाले आप सगुण, परेश परमात्माको नमस्कार है॥ १९॥

लीला तव महेशानावेद्या साधुसुखप्रदा।
भक्ताधीनस्वरूपोऽसि भक्तवश्यो हि कर्मकृत्॥ २०

हे महेश्वर! आपकी लीलाको कोई जान नहीं सकता और यह साधुओंको सुख देनेवाली है। आप भक्तोंके अधीन स्वरूपवाले तथा भक्तोंके वशमें होकर कर्म करनेवाले हैं॥ २०॥

मम भाग्योदयादत्र त्वमागत इह प्रभो।
सनाथं कृतवान्मां त्वं वर्णितो दीनवत्सलः॥ २१

अद्य मे सफलं जन्म सफलं जीवनं मम।
अद्य मे सफलं सर्वं यदत्र त्वं समागतः॥ २२

हे प्रभो! मेरे भाग्यके उदय होनेसे ही आप यहाँ आये हैं। आपने मुझे सनाथ कर दिया, इसीलिये आप दीनवत्सल कहे गये हैं। आज मेरा जन्म सफल हो गया, मेरा जीवन सफल हो गया, आज मेरा सब कुछ सफल हो गया, जो आप यहाँ पधारे हैं॥ २१-२२॥

ज्ञात्वा मां दासमव्यग्रमाज्ञां देहि महेश्वर।
त्वत्सेवां च महाप्रीत्या कुर्यामहमनन्यधीः॥ २३

हे महेश्वर! मुझे अपना दास समझकर निःसंकोच आज्ञा दीजिये, मैं अनन्य बुद्धि होकर बड़े प्रेमसे आपकी सेवा करूँगा॥ २३॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य गिरीशस्य महेश्वरः।
किंचिदुन्मील्य नेत्रे च ददर्श सगणं गिरिम्॥ २४

सगणं तं तथा दृष्ट्वा गिरिराजं वृषध्वजः।
उवाच ध्यानयोगस्थः स्मयन्निव जगत्पतिः॥ २५

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] गिरिराजका यह वचन सुनकर महेश्वरने थोड़ी-सी आँखें खोलकर सेवकोंसहित हिमालयको देखा। सेवकोंसहित गिरिराजको [उपस्थित] देखकर ध्यानयोगमें स्थित हुए जगदीश्वर वृषभध्वज मुसकराते हुए कहने लगे—॥ २४-२५॥

महेश्वर उवाच

तव पृष्ठे तपस्तप्तुं रहस्यमहमागतः।
यथा न कोऽपि निकटं समायातु तथा कुरु॥ २६

महेश्वर बोले—[हे शैलराज!] मैं आपके शिखरपर एकान्तमें तपस्या करनेके लिये आया हूँ, आप ऐसा प्रबन्ध कीजिये, जिससे कोई भी मेरे निकट न आ सके॥ २६॥

त्वं महात्मा तपोधामा मुनीनां च सदाश्रयः।
देवानां राक्षसानां च परेषां च महात्मनाम्॥ २७

आप महात्मा, तपस्याके धाम तथा मुनियों, देवताओं, राक्षसों और अन्य महात्माओंको सदा आश्रय देनेवाले हैं॥ २७॥

सदावासो द्विजादीनां गङ्गापूतश्च नित्यदा।
परोपकारी सर्वेषां गिरीणामधिपः प्रभुः॥ २८

अहं तपश्चराम्यत्र गङ्गावतरणे स्थले।
आश्रितस्तव सुप्रीतो गिरिराज यतात्मवान्॥ २९

आप द्विज आदिके सदा निवासस्थान, गंगासे सर्वदा पवित्र, दूसरोंका उपकार करनेवाले तथा सम्पूर्ण पर्वतोंके सामर्थ्यशाली राजा हैं। हे गिरिराज! मैं चित्तको नियममें रखकर यहाँ गंगावतरणस्थलमें आपके आश्रित होकर बड़ी प्रसन्नताके साथ तपस्या करूँगा॥ २८-२९ ॥

निर्विघ्नं मे तपश्चात्र हेतुना येन शैलप।
सर्वथा हि गिरिश्रेष्ठ सुयत्नं कुरु साम्प्रतम्॥ ३०

हे शैलराज! हे गिरिश्रेष्ठ! जिस साधनसे यहाँ मेरी तपस्या बिना किसी विघ्नके हो सके, उसे इस समय आप सर्वथा यत्नपूर्वक कीजिये॥ ३० ॥

ममेदमेव परमं सेवनं पर्वतोत्तम।
स्वगृहं गच्छ सत्प्रीत्या तत्संपादय यत्नतः॥ ३१

हे पर्वतप्रवर! मेरी यही सबसे बड़ी सेवा है, आप अपने घर जाइये और उसका उत्तम प्रीतिसे यत्नपूर्वक प्रबन्ध कीजिये॥ ३१ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा जगतां नाथस्तूष्णीमास स सूतिकृत्।
गिरिराजस्तदा शम्भुं प्रणयादिदमब्रवीत्॥ ३२

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] ऐसा कहकर सृष्टिकर्ता वे जगदीश्वर चुप हो गये, तब गिरिराजने शम्भुसे प्रेमपूर्वक यह बात कही—॥ ३२ ॥

हिमालय उवाच

पूजितोऽसि जगन्नाथ मया त्वं परमेश्वर।
स्वागतेनाद्य विषये स्थितं त्वां प्रार्थयामि किम्॥ ३३

हिमालय बोले—हे जगन्नाथ! हे परमेश्वर! आज मैंने आपका स्वागतपूर्वक पूजन किया है, [यही मेरे लिये महान् सौभाग्यकी बात है।] अब मैं अपने देशमें उपस्थित आपसे क्या प्रार्थना करूँ?॥ ३३ ॥

महता तपसा त्वं हि देवैर्यत्नपराश्रितैः।
न प्राप्यसे महेशान स त्वं स्वयमुपस्थितः॥ ३४

हे महेश्वर! बड़े-बड़े यत्नका आश्रय ले लेनेवाले देवतालोग महान् तपके द्वारा भी आपको नहीं पाते, वे आप स्वयं उपस्थित हो गये हैं॥ ३४॥

मत्तोऽप्यन्यतमो नास्ति न मत्तोऽन्योऽस्ति पुण्यवान्।
भवानिति च मत्पृष्ठे तपसे समुपस्थितः॥ ३५

मुझसे बढ़कर कोई सौभाग्यशाली नहीं है और मुझसे बढ़कर कोई पुण्यात्मा नहीं है; जो आप मेरे पृष्ठभागपर तपस्याके लिये उपस्थित हुए हैं॥ ३५ ॥

देवेन्द्रादधिकं मन्ये स्वात्मानं परमेश्वर।
सगणेन त्वयागत्य कृतोऽनुग्रहभागहम्॥ ३६

हे परमेश्वर! मैं अपनेको देवराज इन्द्रसे भी बढ़कर समझता हूँ; क्योंकि गणोंसहित आपने [यहाँ] आकर मुझे अनुग्रहका भागी बना दिया॥ ३६ ॥

निर्विघ्नं कुरु देवेश स्वतन्त्रः परमं तपः।
करिष्येऽहं तथा सेवां दासोऽहं ते सदा प्रभो॥ ३७

हे देवेश! आप स्वतन्त्र होकर बिना किसी विघ्नके उत्तम तपस्या कीजिये। हे प्रभो! मैं आपका दास हूँ, अतः सदा आपकी सेवा करूँगा॥ ३७ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा गिरिराजोऽसौ स्वं वेश्म द्रुतमागतः।
वृत्तान्तं तं समाचख्यौ प्रियायै च समादरात्॥ ३८

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] ऐसा कहकर वे गिरिराज तुरंत अपने घर आ गये और उन्होंने अपनी प्रियाको बड़े आदरसे वह सारा वृत्तान्त सुनाया॥ ३८ ॥

नीयमानान् परीवारान् स्वगणानपि नारद।
समाहूयाखिलान् शैलपतिः प्रोवाच तत्त्वतः॥ ३९

तत्पश्चात् शैलराज साथ जानेवाले परिजनोंको तथा अपने समस्त गणोंको बुलाकर उनसे भलीभाँति कहने लगे—॥ ३९ ॥

हिमालय उवाच

अद्यप्रभृति नो यातु कोऽपि गङ्गावतारणम्।
मच्छासनेन मत्प्रस्थं सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम्॥ ४०
गमिष्यति जनः कश्चित्तत्र चेत्तं महाखलम्।
दण्डयिष्ये विशेषेण सत्यमेतन्मयोदितम्॥ ४१

हिमालय बोले—मेरी आज्ञासे आजसे कोई भी गंगावतरण नामक मेरे शिखरपर न जाय, यह मैं सत्य कह रहा हूँ। यदि कोई व्यक्ति वहाँ जायगा तो मैं उस महादुष्टको विशेष रूपसे दण्ड दूँगा, यह मैंने सत्य कहा है॥ ४०-४१॥

इति तान्स नियम्याशु स्वगणान्निखिलान्मुने।
सुयत्नं कृतवान् शैलस्तं शृणु त्वं वदामि ते॥ ४२

हे मुने! इस प्रकार अपने समस्त गणोंको शीघ्र ही नियन्त्रित करके हिमवान्ने [विघ्ननिवारणके लिये] जो सुन्दर प्रयत्न किया, उसे आपको बता रहा हूँ, आप सुनिये॥ ४२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शिवशैलसमागमवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें शिवशैलसमागमवर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

हिमवान्का पार्वतीको शिवकी सेवामें रखनेके लिये उनसे आज्ञा माँगना, शिवद्वारा कारण बताते हुए इस प्रस्तावको अस्वीकार कर देना

ब्रह्मोवाच

अथ शैलपतिर्हृष्टः सत्पुष्पफलसंचयम्।
समादाय स्वतनयासहितोऽगाद्धरान्तिकम्॥ १
स गत्वा त्रिजगन्नाथं प्रणम्य ध्यानतत्परम्।
अर्पयामास तनयां कालीं तस्मै हृदाद्भुताम्॥ २

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] तदनन्तर शैलराज हर्षित होकर उत्तम फल-फूलका समूह लेकर अपनी पुत्रीके साथ भगवान् हरके समीप गये। वहाँ जाकर उन्होंने ध्यानपरायण त्रिलोकीनाथको प्रणाम करके अपनी अद्भुत कन्या कालीको हृदयसे उन्हें अर्पित कर दिया॥ १-२॥

फलपुष्पादिकं सर्वं तत्तदग्रे निधाय सः।
अग्रे कृत्वा सुतां शम्भुमिदमाह च शैलराट्॥ ३

सब फल-फूल आदि उनके सामने रखकर और पुत्रीको आगे करके वे शैलराज शम्भुसे यह कहने लगे— ॥ ३॥

हिमगिरिरुवाच

भगवंस्तनया मे त्वां सेवितुं चन्द्रशेखरम्।
समुत्सुका समानीता त्वदाराधनकांक्षया॥ ४

हिमगिरि बोले—हे भगवन्! मेरी पुत्री आप चन्द्रशेखरकी सेवा करनेके लिये बड़ी उत्सुक है, अतः आपकी आराधनाकी इच्छासे मैं इसको लाया हूँ॥ ४॥

सखीभ्यां सह नित्यं त्वां सेवतामेव शंकरम्।
अनुजानीहि तां नाथ मयि ते यद्यनुग्रहः॥ ५

यह अपनी दो सखियोंके साथ सदा आप शंकरकी ही सेवा करेगी। हे नाथ! यदि आपका मुझपर अनुग्रह है, तो इसे [सेवाके लिये] आज्ञा दीजिये॥ ५॥

ब्रह्मोवाच

अथ तां शंकरोऽपश्यत्प्रथमारूढयौवनाम्।
फुल्लेन्दीवरपत्राभां पूर्णचन्द्रनिभाननाम्॥ ६
समस्तलीलासंस्थानशुभवेषविजृम्भिकाम्।
कम्बुग्रीवां विशालाक्षीं चारुकर्णयुगोज्ज्वलाम्॥ ७

ब्रह्माजी बोले—तब शंकरने यौवनकी प्रथमावस्थामें वर्तमान, पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली, विकसित नीलकमलके पत्रके समान आभावाली, समस्त लीलाओंकी स्थानरूप, सुन्दर वेषसे सुसज्जित, शंखके समान ग्रीवावाली, विशाल नेत्रोंवाली, सुन्दर कर्णयुगलसे शोभित, मृणालके समान चिकनी एवं

मृणालायतपर्यन्तबाहुयुग्ममनोहराम् ।
राजीवकुड्मलप्रख्यौ घनपीनौ दृढौ स्तनौ॥ ८

बिभ्रतीं क्षीणमध्यां च त्रिवलीमध्यराजिताम्।
स्थलपद्मप्रतीकाशपादयुग्मविराजिताम् ॥ ९

ध्यानपंजरनिर्बद्धमुनिमानसमप्यलम् ।
दर्शनाद् भ्रंशने शक्तां योषिद्गणशिरोमणिम्॥ १०

दृष्ट्वा तां तादृशीं तात ध्यानिनां च मनोहराम्।
विग्रहे तन्त्रमन्त्राणां वर्धिनीं कामरूपिणीम्॥ ११

न्यमीलयद् दृशौ शीघ्रं दध्यौ स्वं रूपमुत्तमम्।
परतत्त्वं महायोगी त्रिगुणात्परमव्ययम्॥ १२

दृष्ट्वा तदानीं सकलेश्वरं विभुं
तपो जुषाणं विनिमीलितेक्षणम्।
कपर्दिनं चन्द्रकलाविभूषणं
वेदान्तवेद्यं परमासने स्थितम्॥ १३

ववन्द शीर्ष्णा च पुनर्हिमाचलः
स संशयं प्रापददीनसत्त्वः।
उवाच वाक्यं जगदेकबन्धुं
गिरीश्वरो वाक्यविदां वरिष्ठः॥ १४

हिमाचल उवाच

देवदेव महादेव करुणाकर शंकर।
पश्य मां शरणं प्राप्तमुन्मील्य नयने विभो॥ १५

शिव शर्व महेशान जगदानन्दकृत्प्रभो।
त्वां नतोऽहं महादेव सर्वापद्विनिवर्तकम्॥ १६

न त्वां जानन्ति देवेश वेदाः शास्त्राणि कृत्स्नशः।
अतीतो महिमाध्वानं तव वाङ्मनसोः सदा॥ १७

अतद्व्यावृत्तितस्त्वां वै चकितं चकितं सदा।
अभिधत्ते श्रुतिः सर्वा परेषां का कथा मता॥ १८

जानन्ति बहवो भक्तास्त्वत्कृपां प्राप्य भक्तितः।
शरणागतभक्तानां न कुत्रापि भ्रमादिकम्॥ १९

लम्बी दो भुजाओंसे मनोहर प्रतीत होनेवाली, कमलकलीके समान घने, मोटे तथा दृढ़ स्तनोंको धारण करनेवाली, पतले कटिप्रदेशवाली, त्रिवलीयुक्त मध्यभागवाली, स्थलपद्मके समान चरणयुगलसे सुशोभित, अपने दर्शनसे ध्यानरूपी पिंजड़ेमें बन्द मुनियोंके मनको भी विचलित करनेमें समर्थ और स्त्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ उस [कन्या]-को देखा॥ ६—१०॥

ध्यानियोंके भी मनका हरण करनेवाली, विग्रहसे तन्त्र-मन्त्रोंको बढ़ानेवाली तथा कामरूपिणी वैसी उस कन्याको देखकर उन महायोगीने शीघ्र दोनों नेत्र बन्द कर लिये और वे अपने उत्तम, परमतत्त्वमय, तीनों गुणोंसे परे तथा अविनाशी स्वरूपका ध्यान करने लगे॥ ११-१२॥

उस समय सर्वेश्वर, सर्वव्यापी, तप करते हुए, बन्द नेत्रोंवाले, चन्द्रकलारूप आभूषणवाले, जटा धारण करनेवाले, वेदान्तके द्वारा जाननेयोग्य तथा उत्तम आसनमें स्थित शिवको देखकर महात्मा हिमालयने उन्हें प्रणाम किया, वे पुनः संशयमें पड़ गये। इसके बाद वाक्यवेत्ताओंमें श्रेष्ठ गिरीश्वर जगत्‌के एकमात्र बन्धु शंकरसे यह वचन कहने लगे—॥ १३-१४॥

हिमालय बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणाकर! हे शंकर! हे विभो! आँखें खोलकर मुझ शरणागतको देखिये॥ १५॥

हे शिव! हे शर्व! हे महेशान! हे जगत्‌को आनन्द प्रदान करनेवाले प्रभो! हे महादेव! मैं सम्पूर्ण आपत्तियोंको दूर करनेवाले आपको प्रणाम करता हूँ। हे देवेश! वेद और शास्त्र भी आपको पूर्णरूपसे नहीं जानते हैं; क्योंकि आपकी महिमा वाणी तथा मनके मार्गसे भी सर्वथा परे है॥ १६-१७॥

सभी श्रुतियाँ भी आपकी महिमाका पार न पा सकनेके कारण चकित होकर नेति-नेति कहते हुए सदा आपका वर्णन करती हैं, फिर दूसरोंकी क्या बात कही जाय!॥ १८॥

बहुत-से भक्त ही भक्तिके द्वारा आपकी कृपा प्राप्त करके उसे जान सकते हैं; क्योंकि [आपकी] शरणमें आये हुए भक्तोंको कहीं भी भ्रम आदि नहीं होता॥ १९॥

विज्ञप्तिं शृणु मत्प्रीत्या स्वदासस्य ममाधुना।
तव देवाज्ञया तात दीनत्वाद्वर्णयामि हि॥ २०

सभाग्योऽहं महादेव प्रसादात्तव शंकर।
मत्वा स्वदासं मां नाथ कृपां कुरु नमोऽस्तु ते॥ २१

प्रत्यहं चागमिष्यामि दर्शनार्थं तव प्रभो।
अनया सुतया स्वामिन्निदेशं दातुमर्हसि॥ २२

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्योन्मील्य नेत्रे महेश्वरः।
त्यक्तध्यानः परामृश्य देवदेवोऽब्रवीद्वचः॥ २३

महेश्वर उवाच

आगन्तव्यं त्वया नित्यं दर्शनार्थं ममाचल।
कुमारीं सदने स्थाप्य नान्यथा मम दर्शनम्॥ २४

ब्रह्मोवाच

महेशवचनं श्रुत्वा शिवातातस्तथाविधम्।
अचलः प्रत्युवाचेदं गिरिशं नतकंधरः॥ २५

हिमाचल उवाच

कस्मान्मयानया सार्धं नागन्तव्यं तदुच्यताम्।
सेवने किमयोग्येयं नाहं वेद्म्यत्र कारणम्॥ २६

ब्रह्मोवाच

ततोऽब्रवीद्गिरिं शंभुः प्रहसन्वृषभध्वजः।
लोकाचारं विशेषेण दर्शयन्हि कुयोगिनाम्॥ २७

शंभुरुवाच

इयं कुमारी सुश्रोणी तन्वी चन्द्रानना शुभा।
नानेतव्या मत्समीपे वारयामि पुनः पुनः॥ २८

मायारूपा स्मृता नारी विद्वद्भिर्वेदपारगैः।
युवती तु विशेषेण विघ्नकर्त्री तपस्विनाम्॥ २९

अहं तपस्वी योगी च निर्लिप्तो मायया सदा।
प्रयोजनं युवत्या वै स्त्रिया किं मेऽस्ति भूधर॥ ३०

एवं पुनर्न वक्तव्यं तपस्विवरसंश्रित।
वेदधर्मप्रवीणस्त्वं यतो ज्ञानिवरो बुधः॥ ३१

अब आप दया करके इस समय मुझ अपने दासका निवेदन सुनें। हे देव! हे तात! मैं आपकी आज्ञासे दीन होकर उसका वर्णन कर रहा हूँ॥ २०॥

हे महादेव! हे शंकर! मैं आपकी कृपासे भाग्यशाली हो गया हूँ। हे नाथ! मुझे अपना दास समझकर मुझपर कृपा करें, आपको नमस्कार है। हे प्रभो! मैं आपके दर्शनके लिये प्रतिदिन इस कन्याके साथ आया करूँगा। हे स्वामिन्! मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये॥ २१-२२॥

ब्रह्माजी बोले—उनका यह वचन सुनकर अपने नेत्र खोलकर ध्यान त्यागकर और कुछ सोच-विचारकर देवदेव महादेव यह वचन कहने लगे—॥ २३॥

महेश्वर बोले—हे भक्त! [अपनी] कन्याको घरपर ही छोड़कर नित्य मेरे दर्शनके लिये आप आ सकते हैं। अन्यथा मेरा दर्शन नहीं होगा॥ २४॥

ब्रह्माजी बोले—महेशके इस प्रकारके वचनको सुनकर पार्वतीके पिता हिमालय सिर झुकाकर शिवजीसे यह कहने लगे—॥ २५॥

हिमाचल बोले—[हे प्रभो!] इस कन्याके साथ [आपके दर्शनके लिये] किस कारणसे मुझे नहीं आना चाहिये, इसे बताइये। क्या यह आपकी सेवा करनेमें अयोग्य है? मैं इसका कारण नहीं समझ पा रहा हूँ॥ २६॥

ब्रह्माजी बोले—तत्पश्चात् वृषभध्वज शंकर विशेषतः कुयोगियोंका लोकाचार दिखाते हुए हँसकर हिमालयसे कहने लगे—॥ २७॥

शम्भु बोले—[हे शैलराज!] मनोहर नितम्बवाली, तन्वी, चन्द्रमुखी तथा सुन्दरी इस कन्याको मेरे सन्निकट मत लाइयेगा, इसके लिये मैं बार-बार मना करता हूँ॥ २८॥

वेदोंके पारगामी विद्वानोंने स्त्रीको मायारूपा कहा है, उसमें भी विशेष रूपसे युवती स्त्री तो तपस्वियोंके लिये विघ्नकारिणी होती है॥ २९॥

हे भूधर! मैं तपस्वी, योगी तथा सदा मायासे निर्लिप्त रहनेवाला हूँ। अतः मुझे युवती स्त्रीसे क्या प्रयोजन है? हे तपस्वियोंके श्रेष्ठ आश्रय! आपको पुनः ऐसा नहीं कहना चाहिये; क्योंकि आप वेदधर्ममें प्रवीण, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ तथा विद्वान् हैं॥ ३०-३१॥

भवत्यचल तत्सङ्गाद्विषयोत्पत्तिराशु वै।
विनश्यति च वैराग्यं ततो भ्रश्यति सत्तपः॥ ३२

अतस्तपस्विना शैल न कार्या स्त्रीषु सङ्गतिः।
महाविषयमूलं सा ज्ञानवैराग्यनाशिनी॥ ३३

हे पर्वत! उनके संगसे शीघ्र ही विषयवासना उत्पन्न हो जाती है, वैराग्य नष्ट हो जाता है और उससे श्रेष्ठ तपस्या नष्ट हो जाती है। अतः हे शैल! तपस्वियोंको स्त्रियोंका संग नहीं करना चाहिये; वह [स्त्री] महाविषयका मूल तथा ज्ञान-वैराग्यका नाश करनेवाली होती है॥ ३२-३३॥

ब्रह्मोवाच

इत्याद्युक्त्वा बहुतरं महायोगी महेश्वरः।
विरराम गिरीशं तं महायोगिवरः प्रभुः॥ ३४

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! इस प्रकारकी बहुत-सी बातें उन गिरिराजसे कहकर महान् योगियोंमें श्रेष्ठ महायोगी प्रभु महेश्वर चुप हो गये॥ ३४॥

एतच्छ्रुत्वा वचनं तस्य शंभो-
निरामयं निःस्पृहं निष्ठुरं च।
कालीतातश्चकितोऽभूत्सुरर्षे
तद्वक्तिंकिंचिद्व्याकुलश्चास तूष्णीम्॥ ३५
तपस्विनोक्तं वचनं निशम्य
तथा गिरीशं चकितं विचार्य।
अतः प्रणम्यैव शिवं भवानी
जगाद वाक्यं विशदं तदानीम्॥ ३६

हे देवर्षे! उन शम्भुका यह स्पृहारहित, निरामय तथा निष्ठुर वचन सुनकर कालीके पिता [हिमालय] विस्मयमें पड़ गये और वे कुछ-कुछ व्याकुल-से होकर चुप हो गये। उस समय तपस्वीके द्वारा कही गयी बातको सुनकर और गिरिराजको आश्चर्यमें पड़ा हुआ विचार करके शिवजीको प्रणामकर भवानी उनसे विशद वचन कहने लगीं॥ ३५-३६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शिवहिमाचलसंवादवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें शिव-हिमाचल-संवादवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

पार्वती और परमेश्वरका दार्शनिक संवाद, शिवका पार्वतीको अपनी सेवाके लिये आज्ञा देना, पार्वतीका महेश्वरकी सेवामें तत्पर रहना

भवान्युवाच

किमुक्तं गिरिराजाय त्वया योगिंस्तपस्विना।
तदुत्तरं शृणु विभो मत्तो ज्ञानविशारद॥ १

तपःशक्त्यान्वितः शम्भो करोषि विपुलं तपः।
तव बुद्धिरियं जाता तपस्तप्तुं महात्मनः॥ २

सा शक्तिः प्रकृतिर्ज्ञेया सर्वेषामपि कर्मणाम्।
तया विरच्यते सर्वं पाल्यते च विनाश्यते॥ ३

भवानी बोलीं—हे योगिन्! आपने तपस्वी होकर भी मेरे पितासे क्या कह दिया। हे ज्ञानविशारद! उसका उत्तर मुझसे सुनिये। हे शम्भो! आप तपकी शक्तिसे सम्पन्न होकर ही महातपस्या कर रहे हैं और [उसी महाशक्तिकी ही प्रेरणासे] तपस्या करनेके लिये आप महात्माको ऐसी बुद्धि प्राप्त हुई है। सभी कर्मोंको करनेवाली उस शक्तिको ही प्रकृति जानना चाहिये, उसीके द्वारा सबकी सृष्टि, पालन और संहार होता है॥ १—३॥

कस्त्वं का प्रकृतिः सूक्ष्मा भगवंस्तद्विमृश्यताम्।
विना प्रकृत्या च कथं लिङ्गरूपी महेश्वरः॥ ४

अतः हे भगवन्! आप कौन हैं और सूक्ष्म प्रकृति क्या है, इसका आप विचार करें। प्रकृतिके बिना लिंगरूपी महेश्वर किस प्रकार रह सकते हैं?॥ ४॥

अर्चनीयोऽसि वन्द्योऽसि ध्येयोऽसि प्राणिनां सदा।
प्रकृत्या च विचार्येति हृदा सर्वं तदुच्यताम्॥ ५

ब्रह्मोवाच

पार्वत्यास्तद्वचः श्रुत्वा महोतिकरणे रतः।
सुविहस्य प्रसन्नात्मा महेशो वाक्यमब्रवीत्॥ ६

महेश्वर उवाच

तपसा परमेणैव प्रकृतिं नाशयाम्यहम्।
प्रकृत्या रहितः शम्भुरहं तिष्ठामि तत्त्वतः॥ ७
तस्माच्च प्रकृतेः सद्भिर्न कार्यः सङ्ग्रहः क्वचित्।
स्थातव्यं निर्विकारैश्च लोकाचारविवर्जितैः॥ ८

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ता शम्भुना तात लौकिकव्यवहारतः।
सुविहस्य हृदा काली जगाद मधुरं वचः॥ ९

काल्युवाच

यदुक्तं भवता योगिन्वचनं शंकर प्रभो।
सा च किं प्रकृतिर्न स्यादतीतस्तां भवान्कथम्॥ १०

एतद्विचार्य वक्तव्यं तत्त्वतो हि यथातथम्।
प्रकृत्या सर्वमेतच्च बद्धमस्ति निरंतरम्॥ ११

तस्मात्त्वया न वक्तव्यं न कार्यं किंचिदेव हि।
वचनं रचनं सर्वं प्राकृतं विद्धि चेतसा॥ १२

यच्छृणोषि यदश्नासि यत्पश्यसि करोषि यत्।
तत्सर्वं प्रकृतेः कार्यं मिथ्यावादो निरर्थकः॥ १३

प्रकृतेः परमश्चेत्त्वं किमर्थं तप्यसे तपः।
त्वया शंभोऽधुना ह्यस्मिन्गिरौ हिमवति प्रभो॥ १४

प्रकृत्या गिलितोऽसि त्वं न जानासि निजं हर।
निजं जानासि चेदीश किमर्थं तप्यसे तपः॥ १५

वाग्वादेन च किं कार्यं मम योगिंस्त्वया सह।
प्रत्यक्षे ह्यनुमानस्य न प्रमाणं विदुर्बुधाः॥ १६

इंद्रियाणां गोचरत्वं यावद्भवति देहिनाम्।
तावत्सर्वं विमन्तव्यं प्राकृतं ज्ञानिभिर्धिया॥ १७

किं बहूक्तेन योगीश शृणु मद्वचनं परम्।
सा चाहं पुरुषोऽसि त्वं सत्यं सत्यं न संशयः॥ १८

आप प्रकृतिके ही कारण सदा प्राणियोंके लिये अर्चनीय, वन्दनीय और चिन्तनीय हैं [इस बातको] हृदयसे विचारकर ही आप वह सब कहिये॥ ५॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] पार्वतीजीके उस वचनको सुनकर महती लीला करनेमें रत रहनेवाले प्रसन्नचित्त महेश्वर हँसकर कहने लगे—॥ ६॥

महेश्वर बोले—मैं उत्तम तपस्याद्वारा ही प्रकृतिका नाश करता हूँ और वस्तुतः प्रकृतिसे रहित होकर ही शम्भुके रूपमें स्थित रहता हूँ। अतः सत्पुरुषोंको कभी भी प्रकृतिका संग्रह नहीं करना चाहिये और लोकाचारसे दूर तथा विकाररहित रहना चाहिये॥ ७-८॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात! जब शम्भुने लौकिक व्यवहारके अनुसार यह बात कही, तब काली मन-ही-मन हँसकर यह मधुर वचन कहने लगीं—॥ ९॥

काली बोलीं—हे योगिन्! हे शंकर! हे प्रभो! आपने जो बात कही है, क्या वह प्रकृति नहीं है, आप उससे परे कैसे हैं? इन सबका तात्त्विक दृष्टिसे ठीक-ठीक विचार करके ही आपको बोलना चाहिये। यह सब कुछ सदा प्रकृतिसे बँधा हुआ है। इसीलिये आपको न तो बोलना चाहिये और न कुछ करना ही चाहिये; क्योंकि कहना और करना सब व्यवहार प्रकृति ही है—ऐसा अपनी बुद्धिसे समझिये॥ १०—१२॥

आप जो कुछ सुनते, खाते, देखते और करते हैं, वह सब प्रकृतिका ही कार्य है। इसे मिथ्या कह देना निरर्थक है। हे प्रभो! शम्भो! यदि आप प्रकृतिसे परे हैं, तो इस समय इस हिमवान् पर्वतपर आप तपस्या किसलिये कर रहे हैं। हे हर! प्रकृतिने आपको निगल लिया है, अतः आप अपनेको नहीं जानते। हे ईश! यदि आप अपनेको जानते हैं, तो किसलिये तप करते हैं॥ १३—१५॥

हे योगिन्! मुझे आपके साथ वाद-विवाद करनेकी क्या आवश्यकता है। विद्वान् पुरुष प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध होनेपर अनुमान प्रमाणको नहीं मानते॥ १६॥

जो कुछ प्राणियोंकी इन्द्रियोंका विषय होता है, वह सब ज्ञानी पुरुषोंको बुद्धिसे विचारकर प्राकृत ही मानना चाहिये। हे योगीश! बहुत कहनेसे क्या लाभ! मेरी उत्तम बात सुनिये। मैं वह प्रकृति हूँ और आप पुरुष हैं। यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं है॥ १७-१८॥

मदनुग्रहतस्त्वं हि सगुणो रूपवान्मतः।
मां विना त्वं निरीहोऽसि न किंचित्कर्तुमर्हसि॥ १९

पराधीनः सदा त्वं हि नानाकर्मकरो वशी।
निर्विकारी कथं त्वं हि न लिप्तश्च मया कथम्॥ २०

प्रकृतेः परमोऽसि त्वं यदि सत्यं वचस्तव।
तर्हि त्वया न भेतव्यं समीपे मम शंकर॥ २१

मेरे अनुग्रहसे ही आप सगुण और साकार माने गये हैं। मेरे बिना आप निरीह हैं और कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं हैं। आप जितेन्द्रिय होनेपर भी प्रकृतिके अधीन हो नाना प्रकारके कर्म करते हैं, तब आप फिर निर्विकार कैसे हैं और मुझसे लिप्त कैसे नहीं हैं? हे शंकर! यदि आप प्रकृतिसे परे हैं और यदि आपका वचन सत्य है, तो मेरे समीप रहनेपर भी आपको डरना नहीं चाहिये॥ १९—२१॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्याः सांख्यशास्त्रोदितं शिवः।
वेदान्तमतसंस्थो हि वाक्यमूचे शिवां प्रति॥ २२

ब्रह्माजी बोले—पार्वतीका सांख्यशास्त्रके अनुसार कहा हुआ वचन सुनकर भगवान् शिव वेदान्तमतमें स्थित हो शिवासे यह वचन कहने लगे—॥ २२॥

श्रीशिव उवाच

इत्येवं त्वं यदि ब्रूषे गिरिजे सांख्यधारिणी।
प्रत्यहं कुरु मे सेवामनिषिद्धां सुभाषिणि॥ २३

यद्यहं ब्रह्म निर्लिप्तो मायया परमेश्वरः।
वेदांतवेद्यो मायेशस्त्वं करिष्यसि किं तदा॥ २४

श्रीशिव बोले—सुन्दर भाषण करनेवाली हे गिरिजे! यदि आप सांख्यमतको धारण करके ऐसा कहती हैं, तो प्रतिदिन मेरी अनिषिद्ध सेवा कीजिये, यदि मैं ब्रह्म, मायासे निर्लिप्त, परमेश्वर, वेदान्तसे जाननेयोग्य तथा मायापति हूँ, तब आप क्या करेंगी?॥ २३-२४॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवमुक्त्वा गिरिजां वाक्यमूचे गिरिं प्रभुः।
भक्तानुरंजनकरो भक्तानुग्रहकारकः॥ २५

ब्रह्माजी बोले—गिरिजासे इस प्रकार कहकर भक्तोंको प्रसन्न करनेवाले तथा भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले भगवान् शिव हिमवान्‌से कहने लगे—॥ २५॥

श्रीशिव उवाच

अत्रैव सोऽहं तपसा परेण
गिरे तव प्रस्थवरेऽतिरम्ये।
चरामि भूमौ परमार्थभाव-
स्वरूपमानंदमयं सुलोचयन्॥ २६

तपस्तप्तुमनुज्ञा मे दातव्या पर्वताधिप।
अनुज्ञया विना किंचित्तपः कर्तुं न शक्यते॥ २७

शिवजी बोले—हे गिरे! मैं यहीं आपके अत्यन्त रमणीय श्रेष्ठ शिखरकी भूमिपर उत्तम तपस्याके द्वारा आनन्दमय परमार्थ स्वरूपका विचार करता हुआ विचरण करूँगा। पर्वतराज! आप मुझे यहाँ तपस्या करनेकी अनुमति दें, आपकी आज्ञाके बिना कोई तप नहीं किया जा सकता है॥ २६-२७॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य देवदेवस्य शूलिनः।
प्रणम्य हिमवान् शंभुमिदं वचनमब्रवीत्॥ २८

ब्रह्माजी बोले—देवाधिदेव शूलधारी शिवकी यह बात सुनकर हिमवान्‌ने शम्भुको प्रणाम करके यह वचन कहा—॥ २८॥

हिमवानुवाच

त्वदीयं हि जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्।
किमप्यहं महादेव तुच्छो भूत्वा वदामि ते॥ २९

हिमवान् बोले—हे महादेव! देवता, असुर और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण जगत् तो आपका ही है, मैं तुच्छ होकर आपसे क्या कहूँ॥ २९॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तो हिमवता शंकरो लोकशंकरः।
विहस्य गिरिराजं तं प्राह याहीति सादरम्॥ ३०

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] हिमवान्‌के इस प्रकार कहनेपर लोककल्याणकारी भगवान् शंकरने हँसकर आदरपूर्वक उन गिरिराजसे कहा—अब आप जाइये॥ ३०॥

शंकरेणाभ्यनुज्ञातः स्वगृहं हिमवान्ययौ।
सार्धं गिरिजया वै स प्रत्यहं दर्शने स्थितः॥ ३१
पित्रा विनापि सा काली सखीभ्यां सह नित्यशः।
जगाम शंकराभ्याशं सेवायै भक्तितत्परा॥ ३२
निषिषेध न तां कोऽपि गणो नंदीश्वरादिकः।
महेशशासनात्तात तच्छासनकरः शुचिः॥ ३३

शंकरजीकी आज्ञा पाकर हिमवान् गिरिजाके साथ अपने घर लौट गये। तबसे वे गिरिजाके साथ प्रतिदिन उनका दर्शन करने लगे। काली अपने पिताके बिना भी दोनों सहेलियोंके साथ नित्य भक्तिपरायण होकर सेवाके लिये शंकरके पास जाती थीं। हे तात! महेश्वरके आदेशसे उनकी आज्ञाका पालन करनेवाले पवित्र नन्दीश्वर आदि कोई भी गण उन्हें रोकते नहीं थे॥ ३१—३३॥

सांख्यवेदांतमतयोः शिवयोः शिवदः सदा।
संवादः सुखकृच्चोक्तोऽभिन्नयोः सुविचारतः॥ ३४
गिरिराजस्य वचनात्तनयां तस्य शंकरः।
पार्श्वे समीपे जग्राह गौरवादपि गोपरः॥ ३५

विशेष विचार करनेपर परस्पर अभिन्न होते हुए भी सांख्य और वेदान्तमतवाले शिवा तथा शिवका संवाद [सभीके लिये] सदा कल्याणदायक तथा सुखकर कहा गया है। इन्द्रियातीत भगवान् शंकरने गिरिराजके कहनेसे उनका गौरव मानकर उनकी पुत्रीको अपने पास रहकर सेवा करनेके लिये स्वीकार कर लिया॥ ३४-३५॥

उवाचेदं वचः कालीं सखीभ्यां सह गोपतिः।
नित्यं मां सेवतां यातु निर्भीता ह्यत्र तिष्ठतु॥ ३६
एवमुक्त्वा तु तां देवीं सेवायै जगृहे हरः।
निर्विकारो महायोगी नानालीलाकरः प्रभुः॥ ३७
इदमेव महद्धैर्यं धीराणां सुतपस्विनाम्।
विघ्नवन्त्यपि संप्राप्य यद्विघ्नैर्न विहन्यते॥ ३८

भगवान् शंकरने सखियोंसहित पार्वतीसे कहा कि तुम नित्य मेरी सेवा करो तथा चली जाओ अथवा निर्भय होकर यहाँ रहो। इस प्रकार कहकर निर्विकार, महायोगी तथा अनेक प्रकारकी लीलाएँ करनेवाले भगवान् शंकरने अपनी सेवाके लिये उन देवीको रख लिया। धैर्यशाली तथा परम तपस्वियोंका यह महान् धैर्य ही है, जो विघ्नकारक वस्तुओंको ग्रहणकर भी विघ्नोंसे विनष्ट नहीं होता है॥ ३६—३८॥

ततः स्वपुरमायातो गिरिराट् परिचारकैः।
मुमोदातीव मनसि सप्रियः स मुनीश्वर॥ ३९

हे मुनीश्वर! तत्पश्चात् गिरिराज अपने सेवकोंके साथ अपने स्थानको चले आये और अपनी प्रियाके साथ मनमें परम आनन्दित हुए॥ ३९॥

हरश्च ध्यानयोगेन परमात्मानमादरात्।
निर्विघ्नेन स्वमनसा त्वासीच्चिन्तयितुं स्थितः॥ ४०

भगवान् शंकर भी आदरपूर्वक ध्यान-योगके द्वारा निर्विघ्न मनसे परमात्माका चिन्तन करने लगे॥ ४०॥

काली सखीभ्यां सहिता प्रत्यहं चंद्रशेखरम्।
सेवमाना महादेवं गमनागमने स्थिता॥ ४१

काली भी प्रतिदिन सखियोंसहित चन्द्रशेखर महादेवकी सेवा करती हुई वहाँ जाने-आने लगीं॥ ४१॥

प्रक्षाल्य चरणौ शंभोः पपौ तच्चरणोदकम्।
वह्निशौचेन वस्त्रेण चक्रे तद्गात्रमार्जनम्॥ ४२

वे भगवान् शंकरके चरणोंको धोकर उस चरणोदकका पान करती थीं और आगसे [तपाकर] शुद्ध किये हुए वस्त्रसे उनके शरीरको पोंछा करती थीं॥ ४२॥

षोडशेनोपचारेण संपूज्य विधिवद्धरम्।
पुनः पुनः सुप्रणम्य ययौ नित्यं पितुर्गृहम्॥ ४३
एवं संसेवमानायाः शंकरं ध्यानतत्परम्।
व्यतीयाय महान्कालः शिवाया मुनिसत्तम॥ ४४
कदाचित्सहिता काली सखीभ्यां शंकराश्रमे।
वितेने सुंदरं गानं सुतालं स्मरवर्धनम्॥ ४५

वे नित्यप्रति षोडशोपचारसे विधिवत् भगवान् हरकी पूजाकर बारंबार उन्हें प्रणामकर अपने पिताके घर चली जाती थीं। हे मुनिसत्तम! इस प्रकार ध्यानमें तत्पर भगवान् शंकरकी सेवा करती हुई उन शिवाका बहुत समय व्यतीत हो गया। वे कभी अपनी सखियोंके साथ भगवान् शंकरके आश्रममें तालसे समन्वित प्रेमवर्धक सुन्दर गान करती थीं॥ ४३—४५॥

कदाचित्कुशपुष्पाणि समिधं नयति स्वयम्।
सखीभ्यां स्थानसंस्कारं कुर्वती न्यवसत्तदा॥ ४६
कदाचिन्नियता गेहे स्थिता चन्द्रभृतो भृशम्।
वीक्षंती विस्मयामास सकामा चन्द्रशेखरम्॥ ४७

ततस्तप्तेन भूतेशस्तां निस्सङ्गां परिस्थिताम्।
सोऽचिंतयत्तदा वीक्ष्य भूतदेहे स्थितेति च॥ ४८

नाग्रहीद्गिरिशः कालीं भार्यार्थे निकटे स्थिताम्।
महालावण्यनिचयां मुनीनामपि मोहिनीम्॥ ४९

महादेवः पुनर्दृष्ट्वा तथा तां संयतेन्द्रियाम्।
स्वसेवने रतां नित्यं सदयः समचिन्तयत्॥ ५०
यदैवैषा तपश्चर्याव्रतं काली करिष्यति।
तदा च तां ग्रहीष्यामि गर्वबीजविवर्जिताम्॥ ५१

ब्रह्मोवाच

इति संचिन्त्य भूतेशो द्रुतं ध्यानसमाश्रितः।
महायोगीश्वरोऽभूद्वै महालीलाकरः प्रभुः॥ ५२
ध्यानसक्तस्य तस्याथ शिवस्य परमात्मनः।
हृदि नासीन्मुने काचिदन्या चिंता व्यवस्थिता॥ ५३
काली त्वनुदिनं शंभुं सद्भक्त्या समसेवत।
विचिंतयन्ती सततं तस्य रूपं महात्मनः॥ ५४

हरो ध्यानपरः कालीं नित्यं प्रैक्षत सुस्थिताम्।
विस्मृत्य पूर्वचिंतां तां पश्यन्नपि न पश्यति॥ ५५

एतस्मिन्नन्तरे देवाः शक्राद्या मुनयश्च ते।
ब्रह्माज्ञया स्मरं तत्र प्रेषयामासुरादरात्॥ ५६
तेन कारयितुं योगं काल्या रुद्रेण कामतः।
महावीर्येणासुरेण तारकेण प्रपीडिताः॥ ५७
गत्वा तत्र स्मरः सर्वमुपायमकरोन्निजम्।
चुक्षुभे न हरः किञ्चित्तं च भस्मीचकार ह॥ ५८

पार्वत्यपि विगर्वाभून्मुने तस्य निदेशतः।
ततस्तपो महत्कृत्वा शिवं प्राप पतिं सती॥ ५९

वे कभी कुशा, पुष्प तथा समिधाएँ स्वयं लाती थीं और सखियोंके साथ आश्रमका सम्मार्जन करती थीं॥ ४६॥

वे कभी नियमपूर्वक शंकरजीके आश्रममें रहकर सकाम भावसे शंकरजीको देखती हुई उन्हें आश्चर्यचकित कर दिया करती थीं॥ ४७॥

भगवान् शिवने अपनी तपस्याके बलसे निःसंग रहनेवाली उस कालीको देखकर पंचतत्त्वके शरीरमें रहनेवाली अपनी पूर्वजन्मकी भार्या समझ लिया॥ ४८॥

फिर भी शिवजीने मुनियोंको भी मोहित कर देनेवाली तथा महासौन्दर्यकी राशिस्वरूप उन कालीको अपनी पत्नीके रूपमें ग्रहण नहीं किया॥ ४९॥

महादेवजी भगवतीको इस प्रकार जितेन्द्रिय होकर नित्यप्रति अपनी सेवामें संलग्न देखकर दयापूर्वक विचार करने लगे कि जब यह तपस्याका व्रत करेगी, तब अभिमान-बीजसे रहित इस कालीको ग्रहण करूँगा॥ ५०-५१॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार विचार करके बड़ी-बड़ी लीलाएँ करनेवाले महायोगीश्वर भूतेश्वर भगवान् शिव शीघ्र ही ध्यानमें तत्पर हो गये॥ ५२॥

हे मुने! ध्यानमें मग्न उन परमात्मा शंकरके मनमें किसी अन्य चिन्ताका उदय नहीं हुआ॥ ५३॥

काली भी उन्हीं परमात्मा शंकरके स्वरूपका चिन्तन करती हुई भक्तिपूर्वक निरन्तर उनकी सेवा करने लगीं॥ ५४॥

भगवान् शिव ध्यानमें स्थित हो पूर्व चिन्ताओंको भूलकर सुस्थित कालीको देखा करते थे, वस्तुतः वे उन्हें देखते हुए भी नहीं देखते थे॥ ५५॥

इसी समय महापराक्रमी तारकासुरसे अत्यन्त पीड़ित इन्द्र आदि देवताओं तथा मुनियोंने उन रुद्रके साथ कालीका कामभावसे योग करानेके लिये ब्रह्माजीकी आज्ञासे कामदेवको आदरपूर्वक वहाँ भेजा॥ ५६-५७॥

कामदेवने वहाँ जाकर अपना समस्त उपाय लगाया, परंतु शिव कुछ भी विक्षुब्ध नहीं हुए और उन्होंने उसे भस्म कर दिया॥ ५८॥

हे मुने! पार्वतीका भी अभिमान नष्ट हो गया और तत्पश्चात् नारदजीके उपदेशानुसार घोर तपस्या करके उन सतीने शिवको पतिरूपमें प्राप्त किया॥ ५९॥

बभूवतुस्तौ सुप्रीतौ पार्वतीपरमेश्वरौ।
चक्रतुर्देवकार्यं हि परोपकरणे रतौ॥ ६०

इस प्रकार परमेश्वर एवं पार्वती परम प्रसन्न हो गये और परोपकारमें परायण होकर देवकार्यको पूर्ण करने लगे॥ ६०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे पार्वतीपरमेश्वरसंवादवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें पार्वती और परमेश्वरका संवादवर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

तारकासुरकी उत्पत्तिके प्रसंगमें दितिपुत्र वज्रांगकी कथा, उसकी तपस्या तथा वरप्राप्तिका वर्णन

नारद उवाच

विष्णुशिष्य महाशैव सम्यगुक्तं त्वया विधे।
चरितं परमं ह्येतच्छिवायाश्च शिवस्य च॥ १

कस्तारकासुरो ब्रह्मन्येन देवाः प्रपीडिताः।
कस्य पुत्रस्य वै ब्रूहि तत्कथां च शिवाश्रयाम्॥ २

भस्मीचकार स कथं शंकरश्च स्मरं वशी।
तदपि ब्रूहि सुप्रीत्याद्भुतं तच्चरितं विभोः॥ ३

कथं शिवा तपोऽत्युग्रं चकार सुखहेतवे।
कथं प्राप पतिं शंभुमादिशक्तिर्जगत्परा॥ ४

एतत्सर्वमशेषेण विशेषेण महाबुध।
ब्रूहि मे श्रद्दधानाय स्वपुत्राय शिवात्मने॥ ५

नारदजी बोले—हे विष्णुशिष्य! हे महाशैव! हे विधे! आपने यह शिवा एवं शिवजीके परम पवित्र चरित्रका अच्छी तरहसे वर्णन किया॥ १॥

हे ब्रह्मन्! तारकासुर कौन था, जिसने देवताओंको दुःखित किया, वह किसका पुत्र था, शिवजीसे सम्बन्धित उस कथाको [आप मुझसे] कहिये। जितेन्द्रिय शंकरने किस प्रकार कामदेवको भस्म किया? भगवान् शंकरके इस अद्भुत चरित्रका भी प्रसन्नतापूर्वक वर्णन कीजिये॥ २-३॥

जगत्से परे आदिशक्ति पार्वतीने किस प्रकार अत्यन्त कठोर तप किया और अपने सुखके लिये उन्होंने शंकरको किस प्रकार पतिरूपमें प्राप्त किया?॥ ४॥

हे महाज्ञानी! आप मुझ श्रद्धावान् तथा शिवभक्त अपने पुत्रसे यह सम्पूर्ण चरित्र विशेष रूपसे कहिये॥ ५॥

ब्रह्मोवाच

पुत्रवर्य महाप्राज्ञ सुरर्षे शंसितव्रत।
वच्म्यहं शंकरं स्मृत्वा सर्वं तच्चरितं शृणु॥ ६

प्रथमं तारकस्यैव भवं संशृणु नारद।
यद्वधार्थं महायत्नः कृतो देवैः शिवाश्रयैः॥ ७

मम पुत्रो मरीचिर्यः कश्यपस्तस्य चात्मजः।
त्रयोदशमितास्तस्य स्त्रियो दक्षसुताश्च याः॥ ८

दितिर्ज्येष्ठा च तत्स्त्री हि सुषुवे सा सुतद्वयम्।
हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्ततः॥ ९

ब्रह्माजी बोले—हे पुत्रवर्य! हे महाप्राज्ञ! हे सुरर्षे! हे प्रशंसनीय व्रतवाले! मैं शंकरका स्मरणकर उनके सम्पूर्ण चरित्रका वर्णन कर रहा हूँ, आप सुनें॥ ६॥

हे नारद! सबसे पहले आप तारकासुरकी उत्पत्तिको सुनें, जिसके वधके लिये देवताओंने शिवका आश्रय लेकर बड़ा यत्न किया था॥ ७॥

मेरे पुत्र जो मरीचि थे, उनके पुत्र कश्यप हुए। उनकी तेरह स्त्रियाँ थीं, जो दक्षकी कन्याएँ थीं॥ ८॥

उनकी सबसे बड़ी पत्नी दिति थी, उसके दो पुत्र हुए। उनमें हिरण्यकशिपु ज्येष्ठ तथा हिरण्याक्ष छोटा था॥ ९॥

तौ हतौ विष्णुना दैत्यौ नृसिंहक्रोडरूपतः।
सुदुःखदौ ततो देवाः सुखमापुश्च निर्भयाः॥ १०

भगवान् विष्णुने नृसिंह तथा वराहरूप धारणकर अत्यन्त दुःख देनेवाले उन दोनोंका वध किया। तत्पश्चात् देवगण निर्भय और सुखी रहने लगे॥ १०॥

दितिश्च दुःखितासीत्सा कश्यपं शरणं गता।
पुनः संसेव्य तं भक्त्या गर्भमाधत्त सुव्रता॥ ११

तद्विज्ञाय महेन्द्रोऽपि लब्धच्छिद्रो महोद्यमी।
तद्गर्भं व्यच्छिनत्तत्र प्रविश्य पविना मुहुः॥ १२

तद्व्रतस्य प्रभावेण न तद्गर्भो ममार ह।
स्वपन्त्या दैवयोगेन सप्त सप्ताभवन्सुताः॥ १३

इससे दिति दुखी हुई और वह कश्यपकी शरणमें गयी। उस पतिव्रताने उनकी सेवाकर भक्तिपूर्वक पुनः गर्भ धारण किया। यह जानकर महान् परिश्रमी देवराज इन्द्रने अवसर पाकर उसके गर्भमें प्रविष्ट होकर वज्रसे उसके गर्भके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। किंतु उसके व्रतके प्रभावसे उसका गर्भ नहीं मरा और दैवयोगसे सोती हुई उसके गर्भसे उनचास पुत्र उत्पन्न हुए॥ ११—१३॥

देवा आसन्सुतास्ते च नामतो मरुतोऽखिलाः।
स्वर्गं ययुस्तदेन्द्रेण देवराजात्मसात्कृताः॥ १४

पुनर्दितिः पतिं भेजेऽनुतप्ता निजकर्मतः।
चकार सुप्रसन्नं तं मुनिं परमसेवया॥ १५

वे सभी पुत्र मरुत् नामके देवता हुए और स्वर्गको चले गये। देवराजने उन्हें अपना लिया। तब दिति अपने कर्मसे अनुतप्त हो पुनः उनकी सेवा करने लगी और उसने महान् सेवासे उन मुनिको प्रसन्न कर लिया॥ १४-१५॥

कश्यप उवाच

तपः कुरु शुचिर्भूत्वा ब्रह्मणश्चायुतं समाः।
चेद्भविष्यति तत्पूर्वं भविता ते सुतस्तदा॥ १६

कश्यप बोले—हे भद्रे! यदि तुम पवित्र होकर ब्रह्माके दस हजार वर्षपर्यन्त तपस्या करो, तो तुम्हारे गर्भसे पुनः महापराक्रमी पुत्रका जन्म हो सकता है॥ १६॥

तथा दित्या कृतं पूर्णं तत्तपः श्रद्धया मुने।
ततः पत्युः प्राप्य गर्भं सुषुवे तादृशं सुतम्॥ १७

हे मुने! दितिने श्रद्धाके साथ जब तपस्या पूरी की, तब अपने पतिसे गर्भ धारणकर वैसा ही पुत्र उत्पन्न किया॥ १७॥

वज्राङ्गनामा सोऽभूद्वै दितिपुत्रोऽमरोपमः।
नामतुल्यतनुर्वीरः सुप्रताप्युद्भवाद् बली॥ १८

दितिका वह पुत्र देवताओंके समान था, वह वज्रांग नामसे विख्यात हुआ। उसका शरीर नामके अनुसार ही [वज्रके समान] था। वह जन्मसे महाप्रतापी और बलवान् था॥ १८॥

जननीशासनात्सद्यः स सुतो निर्जराधिपम्।
बलाद्धृत्वा ददौ दण्डं विविधं निर्जरानपि॥ १९

दितिः सुखमतीवाप दृष्ट्वा शक्रादिदुर्दशाम्।
अमरा अपि शक्राद्या जग्मुर्दुःखं स्वकर्मतः॥ २०

उस पुत्रने अपनी माताकी आज्ञासे बलपूर्वक देवराज इन्द्र तथा देवताओंको भी पकड़कर अनेक प्रकारका दण्ड दिया। इस प्रकार इन्द्र आदिकी दुर्दशा देखकर दिति बहुत प्रसन्न हुई तथा इन्द्र आदि देवता अपने-अपने कर्मफलके अनुसार बड़े दुखी हुए॥ १९-२०॥

तदाहं कश्यपेनाशु तत्रागत्य सुसामगीः।
देवानत्याजयंस्तस्मात्सदा देवहिते रतः॥ २१

तब देवताओंकी सदा भलाई करनेवाले मैंने कश्यपको साथ लेकर वहाँ पहुँचकर शान्तिकी बात कहकर देवताओंको उस वज्रांगसे छुड़ाया॥ २१॥

देवान्मुक्त्वा स वज्राङ्गस्ततः प्रोवाच सादरम्।
शिवभक्तोऽतिशुद्धात्मा निर्विकारः प्रसन्नधीः॥ २२

तत्पश्चात् शुद्धात्मा, निर्विकार वह शिवभक्त वज्रांग देवताओंको मुक्त करके प्रसन्नचित्त होकर आदरपूर्वक कहने लगा—॥ २२॥

वज्राङ्ग उवाच

इन्द्रो दुष्टः प्रजाघाती मातुर्मे स्वार्थसाधकः।
स फलं प्राप्तवानद्य स्वराज्यं हि करोतु सः॥ २३

वज्रांग बोला—यह इन्द्र बड़ा स्वार्थी और दुष्ट है। इसने ही मेरी माताकी सन्तानोंको नष्ट किया है, इसको अपने कर्मका फल मिल गया, अब यह अपना राज्यपालन करे॥ २३॥

मातुराज्ञावशाद् ब्रह्मन्कृतमेतन्मयाखिलम्।
न मे भोगाभिलाषो वै कस्यचिद्भुवनस्य हि॥ २४

हे ब्रह्मन्! यह सारा कार्य मैंने माताकी आज्ञासे किया है। मुझे किसी भुवनके भोगकी अभिलाषा नहीं है॥ २४॥

तत्त्वसारं विधे ब्रूहि मह्यं वेदविदांवर।
येन स्यां सुसुखी नित्यं निर्विकारः प्रसन्नधीः॥ २५

हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मन्! आप मुझे वेदतत्त्वका सार बताइये, जिससे मैं सदा परम सुखी, विकाररहित तथा प्रसन्नचित्त हो जाऊँ॥ २५॥

तच्छ्रुत्वाहं मुनेऽवोचं सात्त्विको भाव उच्यते।
तत्त्वसार इति प्रीत्या सृजाम्येकां वरां स्त्रियम्॥ २६

हे मुने! यह सुनकर मैंने उससे कहा—जो सात्त्विक भाव है, वही तत्त्वसार है। मैंने [तुम्हारे लिये] प्रसन्नतापूर्वक एक सुन्दर स्त्रीका निर्माण किया है॥ २६॥

वराङ्गीं नाम तां दत्त्वा तस्मै दितिसुताय वै।
अयां स्वधाम सुप्रीतः कश्यपस्तत्पितापि च॥ २७

उस वरांगी नामवाली स्त्रीको मैंने उस दितिपुत्रको प्रदानकर उसके पिताको अत्यन्त प्रसन्नकर मैं अपने घर चला गया और कश्यप भी अपने स्थानको लौट गये॥ २७॥

ततो दैत्यः स वज्राङ्गः सात्त्विकं भावमाश्रितः।
आसुरं भावमुत्सृज्य निर्वैरः सुखमाप्तवान्॥ २८

तब वह दैत्य वज्रांग सात्त्विक भावसे युक्त हो गया और राक्षसी भावको छोड़कर वैररहित हो सुख भोगने लगा॥ २८॥

न बभूव वरांग्या हि हृदि भावोऽथ सात्त्विकः।
सकामा स्वपतिं भेजे श्रद्धया विविधं सती॥ २९

किंतु वरांगीके हृदयमें सात्त्विक भावका उदय नहीं हुआ और वह सकाम होकर श्रद्धापूर्वक अपने पतिकी अनेक प्रकारसे सेवा करने लगी॥ २९॥

अथ तत्सेवनादाशु संतुष्टोऽभून्महाप्रभुः।
स वज्राङ्गः पतिस्तस्या उवाच वचनं तदा॥ ३०

वरांगीका पति महाप्रभु वह वज्रांग उसकी सेवासे सन्तुष्ट हो गया और उससे कहने लगा— ॥ ३०॥

वज्राङ्ग उवाच

किमिच्छसि प्रिये ब्रूहि किं ते मनसि वर्तते।
तच्छ्रुत्वानम्य तं प्राह सा पतिं स्वमनोरथम्॥ ३१

वज्रांग बोला—हे प्रिये! तुम क्या चाहती हो, तुम्हारे मनमें क्या [विचार] है? मुझे बताओ। तब उसने विनम्र होकर पतिसे अपने मनोरथको कहा— ॥ ३१॥

वरांग्युवाच

चेत् प्रसन्नोऽभवस्त्वं वै सुतं मे देहि सत्पते।
महाबलं त्रिलोकस्य जेतारं हरिदुःखदम्॥ ३२

वरांगी बोली—हे सत्पते! यदि आप [मुझसे] प्रसन्न हैं, तो मुझे ऐसा पुत्र दीजिये, जो महाबली, त्रिलोकीको जीतनेवाला तथा इन्द्रको दुःख देनेवाला हो॥ ३२॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा प्रियावाक्यं विस्मितोऽभूत्स आकुलः।
उवाच हृदि स ज्ञानी सात्त्विको वैरवर्जितः॥ ३३

ब्रह्माजी बोले—अपनी पत्नीका यह वचन सुनकर वह व्याकुल तथा आश्चर्यचकित हो गया। वैररहित, ज्ञानी एवं सात्त्विक वह वज्रांग अपने मनमें सोचने लगा— ॥ ३३॥

प्रियेच्छति विरोधं वै सुरैर्मे न हि रोचते।
किं कुर्यां हि क्व गच्छेयं कथं नश्येन्न मे पणः ॥ ३४

मेरी प्रिया देवताओंसे विरोध करना चाहती है, परंतु मुझे यह अच्छा नहीं लगता। अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और कौन ऐसा उपाय करूँ, जिससे मेरी प्रतिज्ञा नष्ट न हो॥ ३४॥

प्रियामनोरथश्चैव पूर्णः स्यात् त्रिजगद्भवेत्।
क्लेशयुङ् नितरां भूयो देवाश्च मुनयस्तथा॥ ३५

यदि प्रियाका मनोरथ पूर्ण होता है, तो तीनों लोक कष्टमें पड़ जायँगे तथा देवता और मुनि भी दुखी हो जायँगे॥ ३५॥

न पूर्णः स्यात्प्रियाकामस्तदा मे नरको भवेत्।
द्विधापि धर्महानिर्वै भवतीत्यनुशुश्रुवान्॥ ३६

परंतु यदि प्रियाका मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ, तो मुझे नरक भोगना पड़ेगा। दोनों ही प्रकारसे धर्मकी हानि होगी, ऐसा मैंने [धर्मशास्त्रोंसे] सुना है॥ ३६॥

वज्राङ्ग इत्थं बभ्राम स मुने धर्मसंकटे।
बलाबलं द्वयोस्तत्र विचिचिंत च बुद्धितः॥ ३७

हे मुने! इस तरह धर्मसंकटमें पड़ा हुआ वह वज्रांग भ्रममें पड़ गया, वह अपनी बुद्धिसे दोनों बातोंके उचित-अनुचित [पक्षों]-पर विचार करने लगा॥ ३७॥

शिवेच्छया स हि मुने वाक्यं मेने स्त्रियो बुधः।
तथास्त्विति वचः प्राह प्रियां प्रति स दैत्यराट्॥ ३८

हे मुने! [उस समय] उस बुद्धिमान् वज्रांगने शिवकी इच्छासे स्त्रीकी बात मान ली। उस दैत्यराजने प्रियासे कहा—ठीक है, ऐसा ही होगा॥ ३८॥

तदर्थमकरोत्तीव्रं तपोऽन्यद् दुष्करं स तु।
मां समुद्दिश्य सुप्रीत्या बहुवर्षं जितेन्द्रियः॥ ३९

तत्पश्चात् उसने इस निमित्त जितेन्द्रिय होकर मेरे उद्देश्यसे बहुत वर्षोंतक प्रीतिपूर्वक तप किया॥ ३९॥

वरं दातुमगां तस्मै दृष्ट्वाहं तत्तपो महत्।
वरं ब्रूहि ह्यवोचं तं सुप्रसन्नेन चेतसा॥ ४०

तब उसका महातप देखकर उसे वर प्रदान करनेके लिये मैं गया और प्रसन्नमनसे मैंने उससे कहा—वर माँगो॥ ४०॥

वज्राङ्गस्तु तदा प्रीतं मां दृष्ट्वा खे स्थितं विभुम्।
सुप्रणम्य बहु स्तुत्वा वरं वव्रे प्रियाहितम्॥ ४१

उस समय वज्रांगने प्रसन्न हुए मुझ विभुको आकाशमें स्थित देखकर प्रणाम करके नाना प्रकारकी स्तुतिकर प्रियाके लिये हितकारी वर माँगा॥ ४१॥

वज्राङ्ग उवाच

सुतं देहि स्वमातुर्मे महाहितकरं प्रभो।
महाबलं सुप्रतापं सुसमर्थं तपोनिधिम्॥ ४२

वज्रांग बोला—हे प्रभो! आप मुझे ऐसा पुत्र दीजिये, जो अपनी माताका तथा मेरा परम हित करनेवाला, महाबली, महाप्रतापी, सर्वसमर्थ और तपोनिधि हो॥ ४२॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य च तद्वाक्यं तथास्त्वित्यब्रवं मुने।
अयां स्वधाम तद्दत्त्वा विमनाः संस्मरन् शिवम्॥ ४३

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! उसका यह वचन सुनकर मैंने 'तथास्तु' कहा और इस प्रकार उसे वर देकर शिवका स्मरण करते हुए उदास होकर मैं अपने स्थानको लौट आया॥ ४३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे तारकोत्पत्तौ वज्राङ्गोत्पत्तितपोवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें तारककी उत्पत्तिके प्रसंगमें वज्रांगकी उत्पत्ति और उसकी तपस्याका वर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

वरांगीके पुत्र तारकासुरकी उत्पत्ति, तारकासुरकी तपस्या एवं ब्रह्माजीद्वारा उसे वरप्राप्ति, वरदानके प्रभावसे तीनों लोकोंपर उसका अत्याचार

ब्रह्मोवाच

अथ सा गर्भमाधत्त वराङ्गी तत्पुरादरात्।
स ववर्धाभ्यंतरे हि बहुवर्षैः सुतेजसा॥ १

ततः सा समये पूर्णे वराङ्गी सुषुवे सुतम्।
महाकायं महावीर्यं प्रज्वलन्तं दिशो दश॥ २

ब्रह्माजी बोले—तदनन्तर वरांगीने आदरपूर्वक गर्भ धारण किया। वह बहुत वर्षोंतक परम तेजसे भीतर ही बढ़ता रहा। तत्पश्चात् समय पूरा होनेपर वरांगीने विशालकाय, महाबलवान् तथा अपने तेजसे दसों दिशाओंको दीप्त करनेवाले पुत्रको उत्पन्न किया॥ १-२॥

तदैव च महोत्पाता बभूवुर्दुःखहेतवः।
जायमाने सुते तस्मिन्वरांग्याः सुरदुःखदे॥ ३

दिवि भुव्यन्तरिक्षे च सर्वलोकभयंकराः।
अनर्थसूचकास्तात त्रिविधाः तान्ब्रवीम्यहम्॥ ४

देवताओंको दुःख देनेवाले उस वरांगीपुत्रके उत्पन्न होनेपर दुःखके हेतु महान् उत्पात होने लगे। हे तात! उस समय स्वर्ग, भूमि तथा आकाशमें सभी लोकोंको भयभीत करनेवाले अनर्थसूचक तीन प्रकारके उत्पात हुए, मैं उनका वर्णन कर रहा हूँ॥ ३-४॥

सोल्काश्चाशनयः पेतुर्महाशब्दा भयंकराः।
उदयं चक्रुरुत्कृष्टाः केतवो दुःखदायकाः॥ ५

चचाल वसुधा साद्रिर्जज्वलुः सकला दिशः।
चुक्षुभुः सरितः सर्वाः सागराश्च विशेषतः॥ ६

[आकाशसे] महान् शब्द करते हुए भयंकर उल्कायुक्त वज्र गिरने लगे और जगत्को दुःख देनेवाले अनेक सुतीक्ष्ण केतु उदय हो गये। पर्वतसहित पृथ्वी चलायमान हो गयी, सभी दिशाएँ प्रज्वलित हो गयीं, सभी नदियाँ एवं विशेषकर समुद्र क्षुब्ध होने लगे॥ ५-६॥

हूत्कारानीरयन् घोरान्खरस्पर्शो मरुद्ववौ।
उन्मूलयन्महावृक्षान्वात्यानीको रजोध्वजः॥ ७

सराह्वोः सूर्यविध्वोस्तु मुहुः परिधयोऽभवन्।
महाभयस्य विप्रेन्द्र सूचकाः सुखहारकाः॥ ८

भयंकर हू-हू शब्द करते हुए तीक्ष्ण स्पर्शवाली हवा बहने लगी और धूल उड़ाती एवं वृक्षोंको उखाड़ती हुई आँधी चलने लगी। हे विप्रेन्द्र! राहुसहित सूर्य और चन्द्रमाके ऊपर बार-बार मण्डल पड़ने लगे, जो महाभयके सूचक तथा सुखका नाश करनेवाले थे॥ ७-८॥

महीध्रविवरेभ्यश्च निर्घाता भयसूचकाः।
रथनिर्ह्रादतुल्याश्च जज्ञिरेऽवसरे ततः॥ ९

सृगालोलूकटंकारैर्वमन्त्यो मुखतोऽनलम्।
अंतर्ग्रामेषु विकटं प्रणेदुरशिवाः शिवाः॥ १०

उस समय पर्वतोंकी गुफाओंसे रथकी नेमिके समान घर्घर एवं भयसूचक महान् शब्द होने लगे। सियार एवं उल्लू अपने मुखसे भयानक टंकारयुक्त शब्द करते हुए अग्नि उगलने लगे और सियारिनें गाँवोंके भीतर घुसकर अत्यन्त अमंगल तथा महाभयानक शब्द करने लगीं॥ ९-१०॥

यतस्ततो ग्रामसिंहा उन्नमय्य शिरोधराम्।
सङ्गीतवद्रोदनवद्व्यमुञ्चन्विविधान् रवान्॥ ११

कुत्ते जहाँ-तहाँ गर्दन उठाकर संगीतके समान और रुदनके समान अनेक प्रकारके शब्द करने लगे॥ ११॥

खार्कारारभसा मत्ताः खुरैर्घ्नन्तो रसां खराः।
वरूथशः तदा तात पर्यधावन्नितस्ततः॥ १२

हे तात! गधे रेंकनेके भयानक शब्दसे मत्त होकर अपने खुरोंसे पृथिवीको खोदते हुए झुण्डके झुण्ड इधर-उधर दौड़ने लगे॥ १२॥

खगा उदपतन्नीडाद् रासभत्रस्तमानसाः।
क्रोशंतो व्यग्रचित्ताश्च स्थितिमापुर्न कुत्रचित्॥ १३

पक्षी घोसलोंसे उड़ने लगे। गदहे भयभीत हो गये और व्याकुलचित्त होकर भयानक शब्द करने लगे। उन्हें कहीं भी शान्ति नहीं मिल रही थी॥ १३॥

शकृन्मूत्रमकार्षुश्च गोष्ठेऽरण्ये भयाकुलाः।
बभ्रमुः स्थितिमापुर्नो पशवस्ताडिता इव॥ १४

गावोऽत्रसन्नसृग्दोहा बाष्पनेत्रा भयाकुलाः।
तोयदा अभवंस्तत्र भयदाः पूयवर्षिणः॥ १५

पशु ताड़ित हुएके समान अपने गोष्ठमें और अरण्यमें भयभीत होकर बारंबार मल-मूत्रका त्याग करने लगे और जहाँ-तहाँ इधरसे उधर भागने लगे। वे एक जगह ठहरते नहीं थे। गायें भयसे आक्रान्त हो उठीं, उनके स्तनोंसे रुधिर निकलने लगा, नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी और वे व्याकुल हो गयीं। बादल भी भय उत्पन्न करते हुए पीवकी वर्षा करने लगे॥ १४-१५॥

व्यरुदन्प्रतिमास्तत्र देवानामुत्पतिष्णवः।
विनानिलं द्रुमाः पेतुर्ग्रहयुद्धं बभूव खे॥ १६
इत्यादिका बहूत्पाता जज्ञिरे मुनिसत्तम।
अज्ञानिनो जनास्तत्र मेनिरे विश्वसम्प्लवम्॥ १७
अथ प्रजापतिर्नामाकरोत्तस्यासुरस्य वै।
तारकेति विचार्यैव कश्यपो हि महौजसः॥ १८

देवताओंकी प्रतिमाएँ उछलकर रोने लगीं, बिना आँधीके वृक्ष गिरने लगे और आकाशमें ग्रहोंका युद्ध होने लगा। हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार अनेक उत्पात होने लगे। अज्ञानी लोग उस समय यह समझ बैठे कि विश्वप्रलय हो रहा है। तदनन्तर प्रजापति कश्यपने विचार करके उस महातेजस्वी असुरका नाम तारक रखा॥ १६—१८॥

महावीरः स सहसा व्यज्यमानात्मपौरुषः।
ववृधेऽत्यश्मसारेण कायेनाद्रिपतिर्यथा॥ १९

वह महावीर सहसा अपने पौरुषको प्रकट करता हुआ वज्रतुल्य शरीरसे पर्वतराजके समान बढ़ने लगा॥ १९॥

अथो स तारको दैत्यो महाबलपराक्रमः।
तपः कर्तुं जनन्याश्चाज्ञां ययाचे महामनाः॥ २०

प्राप्ताज्ञः स महामायी मायिनामपि मोहकः।
सर्वदेवजयं कर्तुं तपोऽर्थं मन आदधे॥ २१

तत्पश्चात् उस महाबली, महापराक्रमी तथा मनस्वी तारक दैत्यने तपस्या करनेके लिये मातासे आज्ञा माँगी। मायावियोंको भी मोहित करनेवाले उस महामायावी दैत्यने अपनी मातासे आज्ञा प्राप्तकर सभी देवताओंपर विजय प्राप्त करनेके लिये अपने मनमें तप करनेका विचार किया॥ २०-२१॥

मधोर्वनमुपागम्य गुर्वाज्ञाप्रतिपालकः।
विधिमुद्दिश्य विधिवत्तपस्तेपे सुदारुणम्॥ २२

गुरुकी आज्ञाका पालन करनेवाला वह दैत्य मधुवनमें जाकर ब्रह्माजीको लक्ष्य करके विधिपूर्वक अत्यन्त कठोर तपस्या करने लगा॥ २२॥

ऊर्ध्वबाहुश्चैकपादो रविं पश्यन्स चक्षुषा।
शतवर्षं तपश्चक्रे दृढचित्तो दृढव्रतः॥ २३

उस दृढ़व्रत दैत्यने चित्तको स्थिरकर नेत्रोंद्वारा सूर्यको देखते हुए अपनी भुजाओंको ऊपर उठाकर एक पैरपर खड़े होकर सौ वर्षपर्यन्त तपस्या की॥ २३॥

अङ्गुष्ठेन भुवं स्पृष्ट्वा शतवर्षं च तादृशः।
तेपे तपो दृढात्मा स तारकोऽसुरराट् प्रभुः॥ २४

तदनन्तर पैरके अँगूठेसे भूमिको टेककर दृढ़चित्तवाले तथा ऐश्वर्यशाली महान् असुरराज तारकने उसी प्रकार सौ वर्षतक तपस्या की॥ २४॥

शतवर्षं जलं प्राश्नन् शतवर्षं च वायुभुक्।
शतवर्षं जले तिष्ठन् शतं च स्थंडिलेऽतपत्॥ २५

सौ वर्षतक जल पीकर, सौ वर्षतक वायु पीकर, सौ वर्षतक जलमें खड़ा रहकर और सौ वर्षतक स्थण्डिलपर रहकर उसने तपस्या की॥ २५॥

शतवर्षं तथा चाग्नौ शतवर्षमधोमुखः।
शतवर्षं तु हस्तस्य तलेन च भुवं स्थितः॥ २६

शतवर्षं तु वृक्षस्य शाखामालम्ब्य वै मुने।
पादाभ्यां शुचिधूमं हि पिबंश्चाधोमुखस्तथा॥ २७

सौ वर्षतक अग्निके बीचमें, सौ वर्षतक नीचेकी ओर मुख करके और सौ वर्षतक हथेलीके बल पृथ्वीपर स्थित होकर वह तपस्या करता रहा। हे मुने! वह सौ वर्षतक वृक्षकी शाखाको दोनों पैरोंसे पकड़कर नीचेकी ओर मुख करके पवित्र धूमका पान करता रहा॥ २६-२७॥

एवं कष्टतरं तेपे सुतपः स तु दैत्यराट्।
काममुद्दिश्य विधिवच्छृण्वतामपि दुस्सहम्॥ २८

इस प्रकार उस असुरराजने अपने मनोरथको लक्ष्य करके सुननेवालोंको भी सर्वथा दुःसह जान पड़नेवाला अत्यन्त कठिन तथा कष्टकर तप किया॥ २८॥

तत्रैवं तपतस्तस्य महत्तेजो विनिस्सृतम्।
शिरसः सर्वसंसर्पि महोपद्रवकृन्मुने॥ २९

हे मुने! इस प्रकार तप करते हुए उसके सिरसे चारों दिशाओंमें फैलनेवाला एक महान् उपद्रवकारी महातेज निकला॥ २९॥

तेनैव देवलोकास्ते दग्धप्राया बभूविरे।
अभितो दुःखमापन्नाः सर्वे देवर्षयो मुने॥ ३०

हे मुने! उस तेजसे सभी देवलोक प्रायः जलने लगे और चारों ओर समस्त देवता तथा ऋषिगण बड़े दुखी हुए॥ ३०॥

इन्द्रश्च भयमापेदेऽधिकं देवेश्वरस्तदा।
तपस्यत्यद्य कश्चिद्वै मत्पदं धर्षयिष्यति॥ ३१

उस समय देवराज इन्द्र अधिक भयभीत हुए कि निश्चय ही इस समय कोई तप कर रहा है, वह मेरे पदको भी छीन लेगा॥ ३१॥

अकांडे चैव ब्रह्माण्डं संहरिष्यत्ययं प्रभुः।
इति संशयमापन्ना निश्चयं नोपलेभिरे॥ ३२

वह ऐश्वर्यशाली तो असमयमें ही ब्रह्माण्डका संहार कर डालेगा—इस प्रकार सन्देहमें पड़े हुए [देवता] लोग कुछ भी निश्चय नहीं कर पा रहे थे॥ ३२॥

ततः सर्वे सुसंमन्त्र्य मिथस्ते निर्जरर्षयः।
मल्लोकमगमन्भीता दीना मां समुपस्थिताः॥ ३३

तदनन्तर सभी देवता एवं ऋषि परस्पर विचार करके भयभीत एवं दीन होकर मेरे लोकमें पहुँचे और मेरे सामने उपस्थित हुए॥ ३३॥

मां प्रणम्य सुसंस्तूय सर्वे ते क्लिष्टचेतसः।
कृतस्वञ्जलयो मह्यं वृत्तं सर्वं न्यवेदयन्॥ ३४

व्यथित चित्तवाले उन सभीने प्रणामकर मेरी स्तुति करके हाथ जोड़कर सारा वृत्तान्त मुझसे कहा॥ ३४॥

अहं सर्वं सुनिश्चित्य कारणं तस्य सद्धिया।
वरं दातुं गतस्तत्र यत्र तप्यति सोऽसुरः॥ ३५

मैं भी सद्‌बुद्धिसे [उनकी व्यग्रताका] समस्त कारण जानकर जिस स्थानपर असुर तप कर रहा था, उस स्थानपर उसे वर देनेके लिये गया॥ ३५॥

अवोचं वचनं तं वै वरं ब्रूहीत्यहं मुने।
तपस्तप्तं त्वया तीव्रं नादेयं विद्यते तव॥ ३६

इत्येवं मद्वचः श्रुत्वा तारकः स महासुरः।
मां प्रणम्य सुसंस्तूय वरं वव्रेऽतिदारुणम्॥ ३७

हे मुने! मैंने उससे कहा—[हे दैत्य!] तुमने घोर तपस्या की है, अतः वर माँगो, मुझे कोई भी वस्तु तुम्हारे लिये अदेय नहीं है। तब मेरा वचन सुनकर उस महान् असुर तारकने मुझे प्रणाम करके तथा मेरी स्तुतिकर अत्यन्त कठिन वर माँगा॥ ३६-३७॥

तारक उवाच

त्वयि प्रसन्ने वरदे किमसाध्यं भवेन्मम।
अतो याचे वरं त्वत्तः शृणु तन्मे पितामह॥ ३८

तारक बोला—हे पितामह! वर देनेवाले आपके प्रसन्न हो जानेपर मेरे लिये क्या असाध्य हो सकता है, अतः मैं आपसे वर माँगता हूँ, उसे मुझसे सुनिये॥ ३८॥

यदि प्रसन्नो देवेश यदि देयो वरो मम।
देयं वरद्वयं मह्यं कृपां कृत्वा ममोपरि॥ ३९

हे देवेश! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और यदि मुझे वर देना चाहते हैं, तो मेरे ऊपर कृपा करके मुझे दो वर दीजिये॥ ३९॥

त्वया च निर्मिते लोके सकलेऽस्मिन्महाप्रभो।
मत्तुल्यो बलवान्नूनं न भवेत्कोऽपि वै पुमान्॥ ४०
शिववीर्यसमुत्पन्नः पुत्रः सेनापतिर्यदा।
भूत्वा शस्त्रं क्षिपेन्मह्यं तदा मे मरणं भवेत्॥ ४१

हे महाप्रभो! आपके बनाये हुए इस समस्त लोकमें कोई भी पुरुष मेरे समान बलवान् न हो और शिवजीके वीर्यसे उत्पन्न हुआ पुत्र देवताओंका सेनापति बनकर जब मेरे ऊपर शस्त्र प्रहार करे, तब मेरी मृत्यु हो॥ ४०-४१॥

इत्युक्तोऽथ तदा तेन दैत्येनाहं मुनीश्वर।
वरं च तादृशं दत्त्वा स्वलोकमगमं द्रुतम्॥ ४२

हे मुनीश्वर! जब उस दैत्यने मुझसे इस प्रकार कहा, तब मैं उसे उसी प्रकारका वर देकर शीघ्रतापूर्वक अपने स्थानको चला गया॥ ४२॥

दैत्योऽपि स वरं लब्ध्वा मनसेप्सितमुत्तमम्।
सुप्रसन्नतरो भूत्वा शोणिताख्यपुरं गतः॥ ४३

वह दैत्य भी मनोवांछित उत्तम वर प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्न होकर शोणित नामक पुरको चला गया॥ ४३॥

अभिषिक्तस्तदा राज्ये त्रैलोक्यस्यासुरैः सह।
शुक्रेण दैत्यगुरुणाज्ञया मे स महासुरः॥ ४४
ततस्तु स महादैत्योऽभवत् त्रैलोक्यनायकः।
स्वाज्ञां प्रवर्तयामास पीडयन्सचराचरम्॥ ४५
राज्यं चकार विधिवत्त्रिलोकस्य स तारकः।
प्रजाश्च पालयामास पीडयन्निर्जरादिकान्॥ ४६

उसके बाद दैत्यगुरु शुक्राचार्यने मेरी आज्ञासे असुरोंके साथ जाकर त्रिलोकीके राज्यपर उस महान् असुरका अभिषेक किया। तब वह महादैत्य त्रैलोक्याधिपति हो गया और चराचरको पीड़ित करता हुआ अपनी आज्ञा चलाने लगा। इस प्रकार वह तारक विधिपूर्वक त्रैलोक्यका राज्य करने लगा और देवता आदिको पीड़ा पहुँचाता हुआ प्रजापालन करने लगा॥ ४४—४६॥

ततः स तारको दैत्यस्तेषां रत्नान्युपाददे।
इन्द्रादिलोकपालानां स्वतो दत्तानि तद्भयात्॥ ४७

तदनन्तर उस तारकासुरने इन्द्र आदि लोकपालोंके रत्नोंको ग्रहण कर लिया, उन्होंने उसके भयसे [रत्न] स्वयं प्रदान किये॥ ४७॥

इन्द्रेणैरावतस्तस्य भयात्तस्मै समर्पितः।
कुबेरेण तदा दत्ता निधयो नवसंख्यकाः॥ ४८
वरुणेन हयाः शुभ्रा ऋषिभिः कामकृत्तथा।
इन्द्रेणोच्चैःश्रवा दिव्यो भयात्तस्मै समर्पितः॥ ४९

इन्द्रने उसके भयसे उसे ऐरावत हाथी समर्पित कर दिया और कुबेरने नौ निधियाँ दे दीं। वरुणने श्वेतवर्णके घोड़े, ऋषियोंने कामधेनु और इन्द्रने उच्चैःश्रवा नामक दिव्य घोड़ा भयके कारण उसे समर्पित कर दिया॥ ४८-४९॥

यत्र यत्र शुभं वस्तु दृष्टं तेनासुरेण हि।
तत्तद् गृहीतं तरसा निस्सारस्त्रिभवोऽभवत्॥ ५०

उस असुरने जहाँ-जहाँ अच्छी वस्तुएँ देखीं, उन्हें बलपूर्वक हरण कर लिया। इस प्रकार त्रिलोकी सर्वथा निःसार हो गयी॥ ५०॥

समुद्राश्च तथा रत्नान्यदुस्तस्मै भयान्मुने।
अकृष्टपच्यासीत्पृथ्वी प्रजाः कामदुघाखिलाः॥ ५१

हे मुने! समुद्रोंने भी भयसे उसे समस्त रत्न प्रदान कर दिये, बिना जोते-बोये ही पृथिवी अन्न प्रदान करने लगी और सभी प्रजाओंके मनोरथ पूर्ण हो गये॥ ५१॥

सूर्यश्च तपते तद्वत्तद् दुःखं न यथा भवेत्।
चंद्रस्तु प्रभया दृश्यो वायुः सर्वानुकूल्यवान्॥ ५२

सूर्य उतना ही तपते थे, जिससे किसीको कष्ट न हो, चन्द्रमा उजाला करते रहते और वायु सबके अनुकूल ही चलता था॥ ५२॥

देवानां चैव यद् द्रव्यं पितॄणां च परस्य च।
तत्सर्वं समुपादत्तमसुरेण दुरात्मना॥ ५३

उस दुरात्मा असुरने देवताओं, पितरों तथा अन्यका जो भी द्रव्य था, वह सब हरण कर लिया॥ ५३॥

वशीकृत्य स लोकांस्त्रीन्स्वयमिन्द्रो बभूव ह।
अद्वितीयः प्रभुश्चासीद्राज्यं चक्रेऽद्भुतं वशी॥ ५४

इस प्रकार वह तीनों लोकोंको अपने अधीनकर स्वयं इन्द्र बन बैठा। वह इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला अद्वितीय राजा हुआ और अद्भुत प्रकारसे राज्य करने लगा॥ ५४॥

निस्सार्य सकलान्देवान्दैत्यानस्थापयत्ततः।
स्वयं नियोजयामास देवयोनीन् स्वकर्मणि॥ ५५

अथ तद्बाधिता देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः।
मुने मां शरणं जग्मुरनाथा अतिविह्वलाः॥ ५६

उसने समस्त देवताओंको हटाकर उनकी जगह दैत्योंको नियुक्त कर दिया और देवताओंको अपने कर्ममें नियुक्त किया। हे मुने! तदनन्तर उससे पीड़ित हुए इन्द्र आदि समस्त देवगण अनाथ तथा अत्यन्त व्याकुल होकर मेरी शरणमें आये॥ ५५-५६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे तारकासुरतपोराज्यवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें तारकासुरकी तपस्या एवं उसके राज्यका वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

तारकासुरसे उत्पीड़ित देवताओंको ब्रह्माजीद्वारा सान्त्वना प्रदान करना

ब्रह्मोवाच

अथ ते निर्जराः सर्वे सुप्रणम्य प्रजेश्वरम्।
तुष्टुवुः परया भक्त्या तारकेण प्रपीडिताः॥ १

ब्रह्माजी बोले—उसके बाद तारकासुरसे पीड़ित वे समस्त देवता मुझ प्रजापतिको भलीभाँति प्रणामकर परम भक्तिसे स्तुति करने लगे॥ १॥

अहं श्रुत्वामरनुतिं यथार्थां हृदयङ्गमाम्।
सुप्रसन्नतरो भूत्वा प्रत्यवोचं दिवौकसः॥ २

देवताओंकी यथार्थ एवं हृदयग्राही सरस स्तुति सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होकर मैंने उन देवताओंसे कहा—॥ २॥

स्वागतं स्वाधिकारा वै निर्विघ्नाः सन्ति वः सुराः।
किमर्थमागता यूयमत्र सर्वे वदन्तु मे॥ ३

इति श्रुत्वा वचो मे ते नत्वा सर्वे दिवौकसः।
मामूचुर्नतका दीनास्तारकेण प्रपीडिताः॥ ४

हे देवताओ! आपलोगोंका स्वागत है। आपलोगोंके अधिकार निर्विघ्न तो हैं? आप सब यहाँ किस निमित्त आये हैं, मुझसे कहिये। मेरी यह बात सुनकर तारकासुरसे पीड़ित वे सभी देवता मुझे प्रणाम करके विनयी हो दीनतापूर्वक मुझसे कहने लगे—॥ ३-४॥

देवा ऊचुः

लोकेश तारको दैत्यो वरेण तव दर्पितः।
निरस्यास्मान्हठात्स्थानान्यग्रहीन्नो बलात् स्वयम्॥ ५

भवतः किमु न ज्ञातं दुःखं यन्न उपस्थितम्।
तद्दुःखं नाशय क्षिप्रं वयं ते शरणं गताः॥ ६

देवता बोले—हे लोकेश! आपके वरदानसे अभिमानमें भरे हुए तारक असुरने हठपूर्वक हमलोगोंको अपने स्थानोंसे वंचितकर उन्हें बलपूर्वक स्वयं ग्रहण कर लिया है। हमलोगोंके समक्ष जो दुःख उपस्थित हुआ है, क्या आप उसे नहीं जानते हैं? हमलोग आपकी शरणमें आये हैं, उस दुःखका शीघ्र निवारण कीजिये॥ ५-६॥

अहर्निशं बाधतेऽस्मान् यत्र तत्रास्थितान्स वै।
पलायमानाः पश्यामो यत्र तत्रापि तारकम्॥ ७

हमलोग जहाँ कहीं भी जाते हैं, वह असुर रात-दिन हमलोगोंको पीड़ित करता है। हम जहाँ भी भागकर जाते हैं, वहाँ तारकको ही देखते हैं॥ ७॥

तारकान्नश्च यद्दुःखं संभूतं सकलेश्वर।
तेन सर्वे वयं तात पीडिता विकला अति॥ ८

हे सर्वेश्वर! हमलोगोंके समक्ष तारकासुरसे जैसा भय उपस्थित हो गया है, वह दुःख सहा नहीं जा रहा है। हमलोग उसी पीड़ासे अत्यन्त व्याकुल हैं॥ ८॥

अग्निर्यमोऽथ वरुणो निर्ऋतिर्वायुरेव च।
अन्ये दिक्पतयश्चापि सर्वे तद्वशगामिनः॥ ९
सर्वे मनुष्यधर्माणः सर्वैः परिकरैर्युताः।
सेवन्ते तं महादैत्यं न स्वतंत्राः कदाचन॥ १०

अग्नि, यम, वरुण, निर्ऋति, वायु एवं अन्य समस्त दिक्पाल उसके वशमें हो गये हैं। सभी देवता अपने समस्त परिकरोंसहित मनुष्यधर्मा हो गये हैं और उसकी सेवा करते हैं। वे किसी प्रकार भी स्वतन्त्र नहीं हैं॥ ९-१०॥

एवं तेनार्दिता देवा वशगास्तस्य सर्वदा।
तदिच्छाकार्यनिरताः सर्वे तस्यानुजीविनः॥ ११

इस प्रकार उससे पीड़ित होकर सभी देवता सदा उसके वशवर्ती हो गये हैं और उसकी इच्छाके अनुसार कार्य करते हैं तथा उसके अनुजीवी हो गये हैं॥ ११॥

यावत्यो वनिताः सर्वा ये चाप्यप्सरसां गणाः।
सर्वांस्तानग्रहीद्दैत्यस्तारकोऽसौ महाबली॥ १२

उस महाबली तारकने जितनी भी सुन्दर स्त्रियाँ हैं तथा अप्सराएँ हैं, उन सबको ग्रहण कर लिया है॥ १२॥

न यज्ञाः संप्रवर्तन्ते न तपस्यन्ति तापसाः।
दानधर्मादिकं किंचिन्न लोकेषु प्रवर्तते॥ १३
तस्य सेनापतिः क्रौंचो महापाप्यस्ति दानवः।
स पातालतलं गत्वा बाधते त्वनिशं प्रजाः॥ १४
तेन नस्तारकेणेदं सकलं भुवनत्रयम्।
हृतं हठाज्जगद्धातः पापेनाकरुणात्मना॥ १५
वयं च तत्र यास्यामो यत्स्थानं त्वं विनिर्दिशेः।
स्वस्थास्तद्वारितास्तेन लोकनाथ सुरारिणा॥ १६
त्वं नो गतिश्च शास्ता च धाता त्राता त्वमेव हि।
वयं सर्वे तारकाख्यवह्नौ दग्धाः सुविह्वलाः॥ १७

अब यज्ञ-याग सम्पन्न नहीं होते, तपस्वी लोग तपस्या भी नहीं कर पाते। लोकोंमें दान, धर्म आदि कुछ भी नहीं हो रहा है। उसका सेनापति दानव क्रौंच अत्यन्त पापी है। वह पाताललोकमें जाकर प्रजाओंको निरन्तर पीड़ित करता है। हे जगद्धाता! उस निष्करुण तथा पापी तारकने हमारे सम्पूर्ण त्रिलोकको बलपूर्वक अपने वशमें कर लिया है। अब आप ही जो स्थान बतायें, वहाँ हमलोग जायँ। हे लोकनाथ! उस देवशत्रुने हमलोगोंको अपने-अपने स्थानोंसे हटा दिया है। अब आप ही हमलोगोंके शरणदाता हैं। आप ही हमारे शासक, रक्षक तथा पोषक हैं। हम सभी लोग तारक नामक अग्निमें दग्ध होकर बहुत व्याकुल हो रहे हैं॥ १३—१७॥

तेन क्रूरा उपाया नः सर्वे हतबलाः कृताः।
विकारे सांनिपाते वा वीर्यवन्त्यौषधानि च॥ १८

जिस प्रकार सन्निपात नामक विकारमें बलवान् औषधियाँ भी निष्फल हो जाती हैं, उसी प्रकार उसने हमारे सभी कठोर उपायोंको निष्फल कर दिया है॥ १८॥

यत्रास्माकं जयाशा हि हरिचक्रे सुदर्शने।
तत्कुंठितमभूत्तस्य कंठे पुष्पमिवार्पितम्॥ १९

भगवान् विष्णुके जिस सुदर्शन नामक चक्रसे हमलोगोंको विजयकी आशा थी, वह उसके कण्ठमें पुष्पके समान लगकर कुण्ठित हो गया है॥ १९॥

ब्रह्मोवाच

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा निर्जराणामहं मुने।
प्रत्यवोचं सुरान्सर्वांस्तत्कालसदृशं वचः॥ २०

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! देवताओंके इस वचनको सुनकर मैं सभी देवताओंसे समयोचित बात कहने लगा—॥ २०॥

ब्रह्मोवाच

ममैव वचसा दैत्यस्तारकाख्यः समेधितः।
न मत्तस्तस्य हननं युज्यते हि दिवौकसः॥ २१

ततो नैव वधो योग्यो यतो वृद्धिमुपागतः।
विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसांप्रतम्॥ २२

युष्माकं चाखिलं कार्यं कर्तुं योग्यो हि शंकरः।
किन्तु स्वयं न शक्तो हि प्रतिकर्तुं प्रचोदितः॥ २३

तारकाख्यस्तु पापेन स्वयमेष्यति संक्षयम्।
यथा यूयं संविदध्वमुपदेशकरस्त्वहम्॥ २४

न मया तारको वध्यो हरिणापि हरेण च।
नान्येनापि सुरैर्वापि मद्वरात्सत्यमुच्यते॥ २५

शिववीर्यसमुत्पन्नो यदि स्यात्तनयः सुराः।
स एव तारकाख्यस्य हन्ता दैत्यस्य नापरः॥ २६

यमुपायमहं वच्मि तं कुरुध्वं सुरोत्तमाः।
महादेवप्रसादेन सिद्धिमेष्यति स ध्रुवम्॥ २७

सती दाक्षायणी पूर्वं त्यक्तदेहा तु याभवत्।
सोत्पन्ना मेनकागर्भात्सा कथा विदिता हि वः॥ २८

तस्या अवश्यं गिरिशः करिष्यति करग्रहम्।
तत्कुरुध्वमुपायं च तथापि त्रिदिवौकसः॥ २९

तथा विदध्वं सुतरां तस्यां तु परियत्नतः।
पार्वत्यां मेनकाजायां रेतःप्रतिनिपातने॥ ३०

तमूर्ध्वरेतसं शंभुं सैव प्रच्युतरेतसम्।
कर्तुं समर्था नान्यास्ति तथा काप्यबला बलात्॥ ३१

सा सुता गिरिराजस्य सांप्रतं प्रौढयौवना।
तपस्यन्तं हिमगिरौ नित्यं संसेवते हरम्॥ ३२

वाक्याद्धिमवतः काली स्वपितुर्हठतश्शिवा।
सखीभ्यां सेवते सार्धं ध्यानस्थं परमेश्वरम्॥ ३३

तामग्रतोऽर्चमानां वै त्रैलोक्ये वरवर्णिनीम्।
ध्यानासक्तो महेशो हि मनसापि न हीयते॥ ३४

ब्रह्माजी बोले—हे देवगणो! मेरे वरदानके कारण ही वह तारक नामक दैत्य बलवान् हुआ है। अतः मेरे द्वारा उसका वध उचित नहीं है। जिसके द्वारा वह वृद्धिको प्राप्त हुआ है, उसीसे उसका वध उचित नहीं है। विषवृक्षको भी बढ़ाकर उसे स्वयं काटना अनुचित है॥ २१-२२॥

शिवजी ही आपलोगोंका सारा कार्य कर सकनेयोग्य हैं, किंतु वे स्वयं कुछ नहीं करेंगे, प्रेरणा करनेपर वे इसका प्रतीकार करनेमें समर्थ हैं॥ २३॥

तारकासुर स्वयं अपने पापसे नष्ट होगा। मैं जैसा उपदेश करता हूँ, वैसा आपलोग करें॥ २४॥

मेरे वरके प्रभावसे न मैं, न विष्णु, न शंकर, न दूसरा कोई और न सभी देवता ही तारकका वध कर सकते हैं, यह मैं सत्य कह रहा हूँ। हे देवताओ! यदि शिवजीके वीर्यसे कोई पुत्र उत्पन्न हो, तो वही तारक दैत्यका वध कर सकता है, दूसरा नहीं॥ २५-२६॥

हे श्रेष्ठ देवताओ! मैं जो उपाय बता रहा हूँ, उसे आपलोग कीजिये, वह उपाय महादेवजीकी कृपासे अवश्य सिद्ध होगा। पूर्वकालमें जिन दक्षकन्या सतीने [दक्षके यज्ञमें] अपने शरीरका त्याग किया था, वे ही [इस समय] मेनाके गर्भसे उत्पन्न हुई हैं, यह बात आपलोगोंको ज्ञात ही है॥ २७-२८॥

हे देवगणो! महादेवजी उनका पाणिग्रहण अवश्य करेंगे, तथापि आपलोग भी उसका उपाय करें॥ २९॥

आपलोग यत्नपूर्वक ऐसा उपाय कीजिये कि मेनाकी पुत्री पार्वतीमें शिवजीके वीर्यका आधान हो॥ ३०॥

ऊर्ध्वरेता शंकरको च्युतवीर्य करनेमें वे ही समर्थ हैं, कोई अन्य स्त्री समर्थ नहीं है॥ ३१॥

पूर्ण यौवनवाली वे गिरिराजपुत्री इस समय हिमालयपर तपस्या करते हुए शंकरकी नित्य सेवा करती हैं॥ ३२॥

अपने पिता हिमवान्के कहनेसे वे काली शिवा अपनी दो सखियोंके साथ ध्यानपरायण परमेश्वर शिवकी हठपूर्वक सेवा कर रही हैं। सेवामें तत्पर उन त्रैलोक्य-सुन्दरीको सामने देखकर ध्यानमग्न महेश्वर मनसे भी विचलित नहीं होते॥ ३३-३४॥

भार्यां समीहेत यथा स कालीं चन्द्रशेखरः।
तथा विधध्वं त्रिदशा न चिरादेव यत्नतः॥ ३५
स्थानं गत्वाथ दैत्यस्य तमहं तारकं ततः।
निवारयिष्ये कुहठात्स्वस्थानं गच्छतामराः॥ ३६
इत्युक्त्वाहं सुरान् शीघ्रं तारकाख्यासुरस्य वै।
उपसङ्गम्य सुप्रीत्या समाभाष्येदमब्रवम्॥ ३७

हे देवताओ! वे चन्द्रशेखर जिस प्रकार कालीको भार्यारूपमें स्वीकार करें, आपलोग शीघ्र ही वैसा प्रयत्न करें। मैं भी उस दैत्यके स्थानपर जाकर उस तारकको दुराग्रहसे रोकूँगा। हे देवताओ! अब आपलोग अपने स्थानको जाइये। देवताओंसे इस प्रकार कहकर मैं शीघ्र ही तारक नामक असुरके पास जाकर उसे प्रेमपूर्वक बुलाकर कहने लगा— ॥ ३५—३७ ॥

ब्रह्मोवाच

तेजःसारमिमं स्वर्गं राज्यं त्वं परिपासि नः।
यदर्थं सुतपस्तप्तं वाञ्छसि त्वं ततोऽधिकम्॥ ३८

ब्रह्माजी बोले—[हे तारक!] तुम तेजोंके सारस्वरूप इस स्वर्गका राज्य कर रहे हो। जिसके लिये तुमने उत्तम तपस्या की थी, उससे भी अधिककी इच्छा रखते हो॥ ३८ ॥

वरश्चाप्यवरो दत्तो न मया स्वर्गराज्यता।
तस्मात्स्वर्गं परित्यज्य क्षितौ राज्यं समाचर॥ ३९

मैंने [तुम्हें] इससे छोटा ही वर दिया था, मैंने तुम्हें स्वर्गका राज्य नहीं दिया था, इसलिये तुम स्वर्गका राज्य छोड़कर पृथिवीपर राज्य करो॥ ३९ ॥

देवयोग्यानि तत्रैव कार्याणि निखिलान्यपि।
भविष्यन्त्यसुरश्रेष्ठ नात्र कार्या विचारणा॥ ४०

हे असुरश्रेष्ठ! इसमें तुम किसी प्रकार विचार मत करो, वहाँ भी बहुत-से देवताओंके योग्य कार्य हैं॥ ४० ॥

इत्युक्त्वाहं च संबोध्यासुरं तं सकलेश्वरः।
स्मृत्वा शिवां च सशिवं तत्रान्तर्धानमागतः॥ ४१
तारकोऽपि परित्यज्य स्वर्गं क्षितिमथाभ्यगात्।
शोणिताख्यपुरे स्थित्वा सर्वराज्यं चकार सः॥ ४२
देवाः सर्वेऽपि तच्छ्रुत्वा मद्वाक्यं सुप्रणम्य माम्।
शक्रस्थानं ययुः प्रीत्या शक्रेण सुसमाहिताः॥ ४३

सभीका ईश्वर मैं इस प्रकार उस असुरसे कहकर और उसे समझाकर शिवासहित शिवका ध्यान करके वहीं अन्तर्धान हो गया। उसके बाद तारक भी स्वर्गको छोड़कर पृथिवीपर आ गया और वह शोणित नामक नगरमें रहकर राज्य करने लगा। सभी देवगण भी मेरा वचन सुनकर मुझे सादर प्रणाम करके समाहितचित्त हो इन्द्रके साथ इन्द्रपुरीको गये॥ ४१—४३ ॥

तत्र गत्वा मिलित्वा च विचार्य च परस्परम्।
ते सर्वे मरुतः प्रीत्या मघवन्तं वचोऽब्रुवन्॥ ४४

वहाँ जाकर मिल करके आपसमें विचार करके उन सब देवताओंने इन्द्रसे प्रेमपूर्वक कहा— ॥ ४४ ॥

देवा ऊचुः

शम्भोर्यथा शिवायां वै रुचिर्जायेत कामतः।
मघवंस्ते प्रकर्तव्यं ब्रह्मोक्तं सर्वमेव तत्॥ ४५

देवता बोले—हे इन्द्र! जिस प्रकार भगवान् शंकर सकाम होकर शिवाकी अभिलाषा करें, ब्रह्माजीके द्वारा बताया हुआ वह सारा प्रयत्न आपको करना चाहिये॥ ४५ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं सर्ववृत्तान्तं विनिवेद्य सुरेश्वरम्।
जग्मुस्ते सर्वतो देवाः स्वं स्वं स्थानं मुदान्विताः॥ ४६

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार इन्द्रसे सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदित करके वे देवता प्रसन्नतापूर्वक सब ओर अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ४६ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे देवसांत्वनवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें देवसान्त्वनवर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

इन्द्रके स्मरण करनेपर कामदेवका उपस्थित होना, शिवको तपसे विचलित करनेके लिये इन्द्रद्वारा कामदेवको भेजना

ब्रह्मोवाच

गतेषु तेषु देवेषु शक्रः सस्मार वै स्मरम्।
पीडितस्तारकेनाति दैत्येन च दुरात्मना॥ १
आगतस्तत्क्षणात्कामः सवसन्तो रतिप्रियः।
सावलेपो युतो रत्या त्रैलोक्यविजयी प्रभुः॥ २

ब्रह्माजी बोले—उन देवताओंके चले जानेपर दुरात्मा तारकासुरसे अत्यन्त पीड़ित हुए इन्द्रने कामका स्मरण किया। उसी समय वसन्तको साथ लेकर रतिपति त्रैलोक्यविजयी समर्थ कामदेव रतिके साथ साभिमान वहाँ उपस्थित हुआ॥ १-२॥

प्रणामं च ततः कृत्वा स्थित्वा तत्पुरतः स्मरः।
महोन्नतमनास्तात साञ्जलिः शक्रमब्रवीत्॥ ३

हे तात! प्रणाम करके उनके समक्ष खड़ा होकर हाथ जोड़कर वह महामनस्वी काम इन्द्रसे कहने लगा—॥ ३॥

काम उवाच

किं कार्यं ते समुत्पन्नं स्मृतोऽहं केन हेतुना।
तत् त्वं कथय देवेश तत्कर्तुं समुपागतः॥ ४

काम बोला—हे देवेश! आपको कौन-सा कार्य आ पड़ा है, आपने किस कारणसे मेरा स्मरण किया है, उसे शीघ्र ही कहिये, मैं उसे करनेके लिये ही यहाँ उपस्थित हुआ हूँ॥ ४॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कंदर्पस्य सुरेश्वरः।
उवाच वचनं प्रीत्या युक्तं युक्तमिति स्तुवन्॥ ५

ब्रह्माजी बोले—उस कामके इस वचनको सुनकर बहुत अच्छा, बहुत अच्छा—यह कहकर देवराज प्रेमपूर्वक यह वचन कहने लगे—॥ ५॥

शक्र उवाच

तव साधु समारम्भो यन्मे कार्यमुपस्थितम्।
तत्कर्तुमुद्यतोऽसि त्वं धन्योऽसि मकरध्वज॥ ६

इन्द्र बोले—मेरा जिस प्रकारका कार्य उपस्थित हुआ है, उसको करनेमें तुम्हीं समर्थ हो, हे मकरध्वज! तुम धन्य हो, जो उसे करनेके लिये उद्यत हो॥ ६॥

प्रस्तुतं शृणु मद्वाक्यं कथयामि तवाग्रतः।
मदीयं चैव यत्कार्यं त्वदीयं तन्न चान्यथा॥ ७
मित्राणि मम सन्त्येव बहूनि सुमहान्ति च।
परं तु स्मर सन्मित्रं त्वत्तुल्यं न हि कुत्रचित्॥ ८

मेरे प्रस्तुत वाक्यको सुनो, मैं तुम्हारे सामने कह रहा हूँ, मेरा जो कार्य है, वह तुम्हारा ही है, इसमें सन्देह नहीं है। मेरे बहुत-से महान् मित्र हैं, किंतु हे काम! तुम्हारे समान उत्तम मित्र कहीं भी नहीं है॥ ७-८॥

जयार्थं मे द्वयं तात निर्मितं वज्रमुत्तमम्।
वज्रं च निष्फलं स्याद्वै त्वं तु नैव कदाचन॥ ९

हे तात! विजय प्राप्त करनेके लिये मेरे पास दो ही उपाय हैं, एक वज्र और दूसरे तुम, जिसमें वज्र तो [कदाचित्] निष्फल भी हो जाता है, किंतु तुम कभी निष्फल होनेवाले नहीं हो॥ ९॥

यतो हितं प्रजायेत ततः को नु प्रियः परः।
तस्मान्मित्रवरस्त्वं हि मत्कार्यं कर्तुमर्हसि॥ १०

जिससे अपना हित हो, उससे प्रिय और कौन हो सकता है? इसलिये तुम मेरे सर्वश्रेष्ठ मित्र हो, तुम अवश्य ही मेरा कार्य सम्पन्न कर सकते हो॥ १०॥

मम दुःखं समुत्पन्नमसाध्यं चापि कालजम्।
केनापि नैव तच्छक्यं दूरीकर्तुं त्वया विना॥ ११

समयानुसार मेरे सामने असाध्य दुःख उत्पन्न हो गया है, तुम्हारे अतिरिक्त कोई भी उसे दूर करनेमें समर्थ नहीं है॥ ११॥

दातुः परीक्षा दुर्भिक्षे रणे शूरस्य जायते।
आपत्काले तु मित्रस्याशक्तौ स्त्रीणां कुलस्य हि॥ १२

विनये संकटे प्राप्तेऽवितथस्य परोक्षतः।
सुस्नेहस्य तथा तात नान्यथा सत्यमीरितम्॥ १३

दुर्भिक्ष पड़नेपर दानीकी, युद्धस्थलमें शूरवीरकी, आपत्तिकालमें मित्रकी, असमर्थ होनेपर स्त्रियोंकी तथा कुलकी, नम्रतामें तथा संकटके उपस्थित होनेपर सत्यकी और उत्तम स्नेहकी परीक्षा परोक्षकालमें होती है, यह अन्यथा नहीं है, यह सत्य कहा गया है॥ १२-१३॥

प्राप्तायां वै ममापत्ताववार्यायां परेण हि।
परीक्षा च त्वदीयाद्य मित्रवर्य भविष्यति॥ १४

हे मित्रवर्य! दूसरेके द्वारा दूर न की जा सकनेवाली मेरी इस विपत्तिके आ पड़नेपर आज तुम्हारी परीक्षा होगी॥ १४॥

न केवलं मदीयं च कार्यमस्ति सुखावहम्।
किं तु सर्वसुरादीनां कार्यमेतन्न संशयः॥ १५

सुखकी प्राप्ति करानेवाला यह कार्य केवल मेरा ही नहीं है, अपितु यह सभी देवता आदिका कार्य है, इसमें सन्देह नहीं है॥ १५॥

ब्रह्मोवाच

इत्येतन्मघवद्वाक्यं श्रुत्वा तु मकरध्वजः।
उवाच प्रेमगंभीरं वाक्यं सुस्मितपूर्वकम्॥ १६

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार इन्द्रके इस वचनको सुनकर कामदेव मुसकराते हुए प्रेमयुक्त वचन कहने लगा— ॥ १६॥

काम उवाच

किमर्थमित्थं वदसि नोत्तरं वच्म्यहं तव।
उपकृत्कृत्रिमं लोके दृश्यते कथ्यते न च॥ १७

काम बोला—हे देवराज! आप इस प्रकारकी बातें क्यों कर रहे हैं? मैं आपको उत्तर नहीं दे सकता। बनावटी मित्र ही लोकमें देखे जाते हैं, वास्तविक उपकारीके विषयमें कुछ कहा नहीं जाता है॥ १७॥

सङ्कटे बहु यो ब्रूते स किं कार्यं करिष्यति।
तथापि च महाराज कथयामि शृणु प्रभो॥ १८

जो [मित्र] संकटमें बहुत बातें करता है, वह क्या कार्य करेगा, फिर भी हे महाराज! हे प्रभो! मैं कुछ कह रहा हूँ, उसे आप सुनें॥ १८॥

पदं ते कर्षितुं यो वै तपस्तपति दारुणम्।
पातयिष्याम्यहं तं च शत्रुं ते मित्र सर्वथा॥ १९

क्षणेन भ्रंशयिष्यामि कटाक्षेण वरस्त्रियाः।
देवर्षिदानवादींश्च नराणां गणना न मे॥ २०

हे मित्र! जो आपका पद छीननेके लिये कठोर तपस्या कर रहा है, मैं आपके उस शत्रुको तपसे सर्वथा च्युत कर दूँगा। चाहे वह देवता, ऋषि एवं दानव आदि कोई हो, उसे क्षणभरमें सुन्दर स्त्रीके कटाक्षसे भ्रष्ट कर दूँगा, फिर मनुष्योंकी तो मेरे सामने कोई गणना ही नहीं है॥ १९-२०॥

वज्रं तिष्ठतु दूरे वै शस्त्राण्यन्यान्यनेकशः।
किं ते कार्यं करिष्यन्ति मयि मित्र उपस्थिते॥ २१

ब्रह्माणं वा हरिं वापि भ्रष्टं कुर्यां न संशयः।
अन्येषां गणना नास्ति पातयेयं हरं त्वपि॥ २२

आपके वज्र और अन्य बहुत-से शस्त्र दूर ही रहें। मेरे-जैसे मित्रके रहते वे आपका क्या कार्य कर सकते हैं। मैं ब्रह्मा तथा विष्णुको भी विचलित कर सकता हूँ। [अधिक क्या कहूँ] मैं शंकरको भी भ्रष्ट कर सकता हूँ, औरोंकी तो गणना ही नहीं है॥ २१-२२॥

पञ्चैव मृदवो बाणास्ते च पुष्पमया मम।
चापस्त्रिधा पुष्पमयश्शिञ्जिनी भ्रमरार्जिता॥ २३
बलं सुदयिता मे हि वसंतः सचिवः स्मृतः।
अहं पञ्चबलो देव मित्रं मम सुधानिधिः॥ २४

मेरे पास पाँच ही कोमल बाण हैं और वे भी पुष्पनिर्मित हैं, तीन प्रकारवाला मेरा धनुष भी पुष्पमय है, उसकी डोरी भ्रमरोंसे युक्त है। मेरा बल सुन्दर स्त्री है तथा वसन्त मेरा सचिव कहा गया है।

**सेनाधिपश्च शृङ्गारो हावभावाश्च सैनिकाः।
सर्वे मे मृदवः शक्र अहं चापि तथाविधः॥ २५**

हे देव! इस प्रकार मैं पंचबल [पाँच बलोंवाला] हूँ। चन्द्रमा मेरा मित्र है, शृंगार मेरा सेनापति है और हाव-भाव मेरे सैनिक हैं। हे इन्द्र! ये सभी मेरे उपकरण मृदु हैं और मैं भी उसी प्रकारका हूँ॥ २३—२५॥

**यद्येन पूर्यते कार्यं धीमांस्तत्तेन योजयेत्।
मम योग्यं तु यत्कार्यं सर्वं तन्मे नियोजय॥ २६**

जिससे जो कार्य पूर्ण हो, बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि उसको उसी कार्यमें नियुक्त करे। अतः [हे इन्द्र!] मेरे योग्य जो भी कार्य हो, उसमें आप मुझे नियुक्त करें॥ २६॥

ब्रह्मोवाच

**इत्येवं तु वचस्तस्य श्रुत्वा शक्रः सुहर्षितः।
उवाच प्रणमन्वाचा कामं कांतासुखावहम्॥ २७**

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार उसके वचनको सुनकर इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हो उठे और वाणीसे सत्कार करते हुए वे स्त्रियोंको सुख देनेवाले कामसे कहने लगे— ॥ २७॥

शक्र उवाच

**यत्कार्यं मनसोद्दिष्टं मया तात मनोभव।
कर्त्तुं तत् त्वं समर्थोऽसि नान्यस्मात्तस्य सम्भवः॥ २८**

शक्र बोले—हे तात! हे कामदेव! मैंने जो कार्य [अपने] मनमें सोचा है, उसे करनेमें केवल तुम ही समर्थ हो, वह कार्य दूसरेसे होनेवाला नहीं है॥ २८॥

**शृणु काम प्रवक्ष्यामि यथार्थं मित्रसत्तम।
यदर्थे च स्पृहा जाता तव चाद्य मनोभव॥ २९**

**तारकाख्यो महादैत्यो ब्रह्मणो वरमद्भुतम्।
अभूतजेयः संप्राप्य सर्वेषामपि दुःखदः॥ ३०**

हे काम! हे मित्रवर्य! हे मनोभव! जिस कार्यके लिये आज तुम्हारी आवश्यकता हुई है, उसे मैं यथार्थ रूपसे कह रहा हूँ, तुम उसे सुनो। इस समय तारक नामक महादैत्य ब्रह्मासे अद्भुत वरदान पाकर अजेय हो गया है और सभीको पीड़ा पहुँचा रहा है॥ २९-३०॥

**तेन संपीड्यते लोको नष्टा धर्मा ह्यनेकशः।
दुःखिता निर्जराः सर्वे ऋषयश्च तथाखिलाः॥ ३१**

वह सारे संसारको पीड़ा दे रहा है, [उसके कारण] सभी धर्म भी नष्ट हो गये हैं, सभी देवता तथा ऋषिगण दुःखित हैं॥ ३१॥

**देवैश्च सकलैस्तेन कृतं युद्धं यथाबलम्।
सर्वेषां चायुधान्यत्र विफलान्यभवन्पुरा॥ ३२**

देवताओंने अपने बलके अनुसार उससे युद्ध भी किया, किंतु सभीके शस्त्र उसके सामने व्यर्थ हो गये॥ ३२॥

**भग्नः पाशो जलेशस्य हरिचक्रं सुदर्शनम्।
तत्कुण्ठितमभूत्तस्य कण्ठे क्षिप्तं च विष्णुना॥ ३३**

**एतस्य मरणं प्रोक्तं प्रजेशेन दुरात्मनः।
शम्भोर्वीर्योद्भवाद्बालान्महायोगीश्वरस्य हि॥ ३४**

**एतत्कार्यं त्वया साधु कर्तव्यं सुप्रयत्नतः।
ततः स्यान्मित्रवर्याति देवानां नः परं सुखम्॥ ३५**

वरुणका पाश टूट गया और विष्णुके द्वारा उसके कण्ठपर प्रहार किया गया, किंतु उनका वह सुदर्शन चक्र भी कुण्ठित हो गया। ब्रह्माजीने दुरात्मा दैत्यकी मृत्युका निर्धारण महायोगीश्वर शिवके वीर्यसे उत्पन्न हुए पुत्रके द्वारा किया है। अब तुम्हें प्रयत्नपूर्वक इस कार्यको अच्छी तरह करना चाहिये। हे मित्र! इस कार्यसे देवताओंको महान् सुख होगा॥ ३३—३५॥

**ममापि विहितं तस्मात्सर्वलोकसुखावहम्।
मित्रधर्मं हृदि स्मृत्वा कर्तुमर्हसि सांप्रतम्॥ ३६**

अतः तुम हृदयमें मित्रधर्मका स्मरण करके मेरे लिये भी हितकर तथा सभी लोकोंको सुख देनेवाले इस कार्यको इसी समय सम्पन्न करो॥ ३६॥

**शंभुः स गिरिराजे हि तपः परममास्थितः।
स प्रभुर्नापि कामेन स्वतंत्रः परमेश्वरः॥ ३७**

वे परमेश्वर प्रभु कामनासे परे हैं। वे शम्भु इस समय हिमालयपर्वतपर परम तप कर रहे हैं॥ ३७॥

तत्समीपे च देवार्थं पार्वती स्वसखीयुता।
सेवमाना तिष्ठतीति पित्राज्ञप्ता मया श्रुतम्॥ ३८

मैंने ऐसा सुना है कि उनके समीप ही पार्वती अपने पितासे आज्ञा लेकर अपनी सखियोंके साथ उन्हें प्रसन्नकर अपना पति बनानेके उद्देश्यसे सेवापरायण रहती हैं॥ ३८॥

यथा तस्यां रुचिस्तस्य शिवस्य नियतात्मनः।
जायेत नितरां मार तथा कार्यं त्वया ध्रुवम्॥ ३९

इति कृत्वा कृती स्यास्त्वं सर्वं दुःखं विनङ्क्ष्यति।
लोके स्थायी प्रतापस्ते भविष्यति न चान्यथा॥ ४०

हे काम! इस प्रकारका उपाय करना चाहिये, जिससे कि चित्तको वशमें रखनेवाले शिवजीकी अभिरुचि पार्वतीमें हो जाय। ऐसा करके तुम कृतकृत्य हो जाओगे और सारा दुःख नष्ट हो जायगा। तुम्हारी कीर्ति भी संसारमें चिरस्थायी हो जायगी, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३९-४०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तः स तु कामो हि प्रफुल्लमुखपंकजः।
प्रेम्णोवाचेति देवेशं करिष्यामि न संशयः॥ ४१

ब्रह्माजी बोले—इन्द्रके इस प्रकार कहनेपर कामदेवका मुखकमल खिल उठा और उसने प्रेमपूर्वक इन्द्रसे कहा—मैं [आपका यह कार्य] निःसन्देह करूँगा॥ ४१॥

इत्युक्त्वा वचनं तस्मै तथेत्योमिति तद्वचः।
अग्रहीत्तरसा कामः शिवमायाविमोहितः॥ ४२

यत्र योगीश्वरः साक्षात्तप्यते परमं तपः।
जगाम तत्र सुप्रीतः सदारः सवसन्तकः॥ ४३

शिवकी मायासे मोहित कामदेवने उनके वचनको 'ओम्'-ऐसा कहकर शीघ्रतापूर्वक स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् जहाँ साक्षात् योगीश्वर शंकर कठोर तप कर रहे थे, वहाँ प्रसन्नचित्त होकर अपनी पत्नी तथा वसन्तको साथ लेकर कामदेव पहुँच गया॥ ४२-४३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शक्रकामसंवादवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें इन्द्रकामदेवसंवादवर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

कामदेवद्वारा असमयमें वसन्त-ऋतुका प्रभाव प्रकट करना, कुछ क्षणके लिये शिवका मोहित होना, पुनः वैराग्य-भाव धारण करना

ब्रह्मोवाच

तत्र गत्वा स्मरो गर्वी शिवमायाविमोहितः।
मोहकः स मधोश्चादौ धर्मं विस्तारयन्स्थितः॥ १

ब्रह्माजी बोले—शिवजीकी मायासे मोहित होकर वह महाभिमानी तथा मोह उत्पन्न करनेवाला काम शिवजीके समीप जाकर वसन्त-ऋतुके गुण-धर्मको फैलाता हुआ वहाँ स्थित हो गया॥ १॥

वसंतस्य च यो धर्मः प्रससार स सर्वतः।
तपःस्थाने महेशस्यौषधिप्रस्थे मुनीश्वर॥ २

हे मुनीश्वर! वसन्तका जो प्रभाव है, वह महेशके तपःस्थान औषधिशिखरपर सभी ओर फैल गया॥ २॥

वनानि च प्रफुल्लानि पादपानां महामुने।
आसन्विशेषतस्तत्र तत्प्रभावान्मुनीश्वर॥ ३

हे महामुने! हे मुनीश्वर! वहाँ उसके प्रभावसे पादपोंके वन विशेषरूपसे पुष्पित हो उठे॥ ३॥

पुष्पाणि सहकाराणामशोकवनिकासु वै।
विरेजुस्सुस्मरोद्दीपकराणि सुरभीण्यपि॥ ४
कैरवाणि च पुष्पाणि भ्रमराकलितानि च।
बभूवुर्मदनावेशकराणि च विशेषतः॥ ५

अशोककी वाटिकाओंमें सहकारोंके कामोद्दीपक तथा सुगन्धित पुष्प विराजने लगे। भौंरोंसे घिरे हुए कुमुदके पुष्प विशेषरूपसे कामावेशको बढ़ानेवाले हो गये॥ ४-५॥

सुकामोद्दीपनकरं कोकिलाकलकूजितम्।
आसीदति सुरम्यं हि मनोहरमतिप्रियम्॥ ६

[उस समय] कोयलोंका कलरव कामको अत्यधिक उद्दीप्त करनेवाला, सुरम्य, मनोहर और अतिप्रिय हो गया॥ ६॥

भ्रमराणां तथा शब्दा विविधा अभवन्मुने।
मनोहराश्च सर्वेषां कामोद्दीपकरा अपि॥ ७

चंद्रस्य विशदा कांतिर्विकीर्णा हि समन्ततः।
कामिनां कामिनीनां च दूतिका इव साभवत्॥ ८

मानिनां प्रेरणायासीत्तत्काले कालदीपिका।
मारुतश्च सुखः साधो ववौ विरहिणोऽप्रियः॥ ९

हे मुने! भौंरोंके अनेक प्रकारके शब्द होने लगे, जो सबके मनको हर लेनेवाले तथा काम-वासनाको उत्तेजित करनेवाले थे। चन्द्रमाकी मनोहर ज्योत्स्ना चारों ओर फैल गयी, वह कामियों तथा कामिनियोंकी दूतीके समान हो गयी। वह [ज्योत्स्ना] मानीजनोंको रति आदिके लिये प्रेरित तथा रतिकालको और भी उद्दीप्त करनेवाली थी। हे साधो! [उस समय] विरहीजनके लिये अप्रिय सुखकारी वायु बहने लगी॥ ७—९॥

एवं वसंतविस्तारो मदनावेशकारकः।
वनौकसां तदा तत्र मुनीनां दुस्सहोऽत्यभूत्॥ १०

इस प्रकार कामावेशको बढ़ानेवाला वह वसन्तका विस्तार वहाँ वनमें रहनेवाले मुनियोंके लिये भी अत्यन्त असह्य हो गया॥ १०॥

अचेतसामपि तदा कामासक्तिरभून्मुने।
सुचेतसां हि जीवानां सेति किं वर्ण्यते कथा॥ ११

एवं चकार स मधुः स्वप्रभावं सुदुस्सहम्।
सर्वेषां चैव जीवानां कामोद्दीपनकारकः॥ १२

हे मुने! उस समय जड़ पदार्थोंमें भी जब कामका संचार होने लगा, तब सचेतन प्राणियोंकी कथाका किस प्रकार वर्णन किया जाय। इस प्रकार सभी प्राणियोंके लिये कामको उद्दीप्त करनेवाले उस वसन्तने अपना अत्यन्त दुस्सह प्रभाव उत्पन्न किया॥ ११-१२॥

अकालनिर्मितं तात मधोर्वीक्ष्य हरस्तदा।
आश्चर्यं परमं मेने स्वलीलात्ततनुः प्रभुः॥ १३

हे तात! तब अपनी लीलाके लिये शरीर धारण करनेवाले प्रभु शंकरने असमयमें उस वसन्तके प्रभावको देखकर इसे महान् आश्चर्य समझा॥ १३॥

अथ लीलाकरस्तत्र तपः परमदुष्करम्।
तताप स वशीशो हि हरो दुःखहरः प्रभुः॥ १४

इसके बाद लीला करनेवाले तथा दुःखहरण करनेवाले परम संयमी प्रभु शिव परम दुष्कर तपस्या करने लगे॥ १४॥

वसंते प्रसृते तत्र कामो रतिसमन्वितः।
चूतं बाणं समाकृष्य स्थितस्तद्वामपार्श्वतः॥ १५

स्वप्रभावं वितस्तार मोहयन्सकलान् जनान्।
रत्या युक्तं तदा कामं दृष्ट्वा को वा न मोहितः॥ १६

तदनन्तर वहाँ वसन्तके फैल जानेपर रतिसहित वह काम आम्रमंजरीका बाण चढ़ाकर उनके बाँयीं ओर खड़ा हो गया और प्राणियोंको मोहित करता हुआ अपना प्रभाव फैलाने लगा। उस समय रतिसहित कामको देखकर भला कौन [प्राणी] मोहित नहीं हुआ॥ १५-१६॥

एवं प्रवृत्तसुरतौ शृङ्गारोऽपि गणैः सह।
हावभावयुतस्तत्र प्रविवेश हरान्तिकम्॥ १७

इस प्रकार उनके कामक्रीडामें प्रवृत्त हो जानेपर शृंगार भी हाव-भावसे युक्त होकर अपने गणोंके साथ शिवजीके समीप पहुँचा॥ १७॥

मदनः प्रकटस्तत्र न्यवसच्चित्तगो बहिः।
न दृष्टवांस्तदा शंभोश्छिद्रं येन प्रविश्यते॥ १८

चित्तमें निवास करनेवाला कामदेव वहाँ बाहर प्रकट हो गया, उस समय वह शंकरमें कोई छिद्र नहीं देख पाया, जिससे वह प्रवेश कर सके॥ १८॥

यदा चाप्राप्तविवरस्तस्मिन्योगिवरे स्मरः।
महादेवे तदा सोऽभून्महाभयविमोहितः॥ १९

जब कामदेवने उन योगिश्रेष्ठ महादेवमें छिद्र नहीं पाया, तब वह महान् भयसे विमोहित हो गया॥ १९॥

ज्वलज्ज्वालाग्निसंकाशभालनेत्रसमन्वितम्।
ध्यानस्थं शंकरं को वा समासादयितुं क्षमः॥ २०

धधकती हुई ज्वालावाली अग्निके समान भालनेत्रसे युक्त ध्यानस्थ शंकरके पास जानेमें कौन समर्थ है?॥ २०॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र सखीभ्यां संयुता शिवा।
जगाम शिवपूजार्थं नीत्वा पुष्पाण्यनेकशः॥ २१
पृथिव्यां यादृशं लोकैः सौन्दर्यं वर्ण्यते महत्।
तत्सर्वमधिकं तस्यां पार्वत्यामस्ति निश्चितम्॥ २२

इसी समय पार्वती भी दो सखियोंके साथ अनेक प्रकारके पुष्प लेकर शिवकी पूजा करनेके लिये वहाँ पहुँच गयीं। लोग पृथिवीपर जिस-जिस प्रकारके महान् सौन्दर्यका वर्णन करते हैं, वह सब तथा उससे भी अधिक सौन्दर्य उन पार्वतीजीमें है॥ २१-२२॥

आर्तवाणि सुपुष्पाणि धृतानि च तया यदा।
तत्सौन्दर्यं कथं वर्ण्यमपि वर्षशतैरपि॥ २३
यदा शिवसमीपे तु गता सा पर्वतात्मजा।
तदैव शंकरो ध्यानं त्यक्त्वा क्षणमवस्थितः॥ २४

उन्होंने ऋतुकालीन सुन्दर पुष्पोंको धारण किया था, उनकी सुन्दरताका वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी कैसे किया जा सकता है! जिस समय वे पार्वती शिवजीके समीप पहुँचीं, उस समय शिवजी क्षणभरके लिये ध्यान त्यागकर अवस्थित हो गये॥ २३-२४॥

तच्छिद्रं प्राप्य मदनः प्रथमं हर्षणेन तु।
बाणेन हर्षयामास पार्श्वस्थं चन्द्रशेखरम्॥ २५

उस छिद्रको पाकर कामने पहले [अपने] हर्षण नामक बाणसे समीपस्थ शंकरको हर्षित कर दिया॥ २५॥

शृङ्गारैश्च तदा भावैः सहिता पार्वती हरम्।
जगाम कामसाहाय्ये मुने सुरभिणा सह॥ २६

हे मुने! उस समय पार्वती भी शृंगार एवं भावोंसे युक्त होकर मलयानिलके साथ [मानो] कामकी सहायता करनेके लिये शिवके सन्निकट गयी हुई थीं॥ २६॥

तदैवाकृष्य तच्चापं रुच्यर्थं शूलधारिणः।
द्रुतं पुष्पशरं तस्मै स्मरोऽमुञ्चत्सुसंयतः॥ २७

उसी समय कामदेवने शूलधारी शिवको [पार्वतीमें] रुचि उत्पन्न करनेके लिये अपना धनुष खींचकर शीघ्र ही बड़ी सावधानीसे उनपर पुष्प-बाण छोड़ा॥ २७॥

यथा निरंतरं नित्यमागच्छति तथा शिवम्।
तं नमस्कृत्य तत्पूजां कृत्वा तत्पुरतः स्थिता॥ २८

जिस प्रकार पार्वती नित्य निरन्तर शिवजीके पास आती थीं, उसी प्रकार आकर उन्हें प्रणाम करके उनकी पूजाकर वे उनके सामने खड़ी हो गयीं॥ २८॥

सा दृष्टा पार्वती तत्र प्रभुणा गिरिशेन हि।
विवृण्वती तदाङ्गानि स्त्रीस्वभावात्सुलज्जया॥ २९

उस समय प्रभु शंकरने स्त्रीस्वभाववश लज्जाके कारण अपने अंगोंको ढकती हुई उन पार्वतीको वहाँ देखा॥ २९॥

सुसंस्मृत्य वरं तस्या विधिदत्तं पुरा प्रभुः।
शिवोऽपि वर्णयामास तदङ्गानि मुदा मुने॥ ३०

हे मुने! पूर्व समयमें पार्वतीको ब्रह्माके द्वारा दिये गये वरदानका भलीभाँति स्मरण करके प्रभु शिव भी प्रसन्नतापूर्वक उनके अंगोंका वर्णन करने लगे॥ ३०॥

शिव उवाच

किं मुखं किं शशांकश्च किं नेत्रे चोत्पले च किम्।
भ्रुकुट्यौ धनुषी चैते कंदर्पस्य महात्मनः॥ ३१

अधरः किं च बिंबं किं किं नासा शुकचंचुका।
किं स्वरः कोकिलालापः किं मध्यं चाथ वेदिका॥ ३२

किं गतिर्वर्ण्यते ह्यस्याः किं रूपं वर्ण्यते मुहुः।
पुष्पाणि किं च वर्ण्यन्ते वस्त्राणि च तथा पुनः॥ ३३

लालित्यं चारु यत्सृष्टौ तदेकत्र विनिर्मितम्।
सर्वथा रमणीयानि सर्वाङ्गानि न संशयः॥ ३४

अहो धन्यतरा चेयं पार्वत्यद्भुतरूपिणी।
एतत्समा न त्रैलोक्ये नारी कापि सुरूपिणी॥ ३५

सुलावण्यनिधिश्चेयमद्भुताङ्गानि बिभ्रती।
विमोहिनी मुनीनां च महासुखविवर्धिनी॥ ३६

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वर्णयित्वा तु तदङ्गानि मुहुर्मुहुः।
विधिदत्तवराध्यासाद्धरस्तु विरराम ह॥ ३७

हस्तं वस्त्रांतरे यावदचालयत शंकरः।
स्त्रीस्वभावाच्च सा तत्र लज्जिता दूरतो गता॥ ३८

विवृण्वती निजाङ्गानि पश्यंती च मुहुर्मुहुः।
सुवीक्षणैर्महामोदात्सुस्मिताभूच्छिवा मुने॥ ३९

एवं चेष्टां तदा दृष्ट्वा शंभुर्मोहमुपागतः।
उवाच वचनं चैवं महालीलो महेश्वरः॥ ४०

अस्या दर्शनमात्रेण महानंदो भवत्यलम्।
यदालिङ्गनमेतस्याः कुर्यां किन्तु ततः सुखम्॥ ४१

क्षणमात्रं विचार्येत्थं संपूज्य गिरिजां ततः।
प्रबुद्धः स महायोगी सुविरक्तो जगाविति॥ ४२

किं जातं चरितं चित्रं किमहं मोहमागतः।
कामेन विकृतश्चाद्य भूत्वापि प्रभुरीश्वरः॥ ४३

ईश्वरोऽहं यदीच्छेयं पराङ्गस्पर्शनं खलु।
तर्हि कोऽन्योऽक्षमः क्षुद्रः किं किं नैव करिष्यति॥ ४४

शिवजी बोले—यह मुख है या चन्द्रमा, ये नेत्र हैं अथवा दो कमल और ये दोनों भृकुटी हैं या महात्मा कामदेवके धनुष, यह अधर है अथवा बिम्बफल, यह नासिका है या तोतेकी चोंच है, यह स्वर है या कोकिलकी मनोहर कूक है और यह मध्यभाग [कमर] है या वेदी है॥ ३१-३२॥

इसकी चालका क्या वर्णन किया जाय, इसके रूपका क्या वर्णन किया जाय और इसके पुष्पों तथा वस्त्रोंका भी क्या वर्णन किया जाय!॥ ३३॥

सृष्टिमें जितनी उत्तम सुन्दरता है, वह एकत्रितकर इसमें रच दी गयी है। इसके सभी अंग सब प्रकारसे रमणीय हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३४॥

अहो! अद्भुत रूपवाली यह पार्वती धन्य है, तीनों लोकोंमें इसके समान सुन्दर रूपवाली कोई भी स्त्री नहीं है। अद्भुत अंगोंको धारण करनेवाली यह लावण्यकी निधि है। यह मुनियोंको भी मोहनेवाली और महासुखको बढ़ानेवाली है॥ ३५-३६॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार बार-बार उनके अंगोंका वर्णन करके शिवजी ब्रह्माको दिये गये वरदानका स्मरणकर मौन हो गये। उस समय ज्यों ही शंकरजीने उनके वस्त्रोंका स्पर्श किया, वे पार्वती स्त्रीस्वभावके कारण लज्जित होकर कुछ दूर चली गयीं॥ ३७-३८॥

हे मुने! अपने अंगोंको छिपाती हुई तथा तीक्ष्ण कटाक्षोंसे बार-बार [शिवजीकी ओर] देखती हुई वे शिवा महामोदके कारण मुसकराने लगीं॥ ३९॥

उनकी इस चेष्टाको देखकर शंकरजी मोहमें पड़ गये और तब महान् लीला करनेवाले महेश्वरने यह वचन कहा—जब इसके दर्शनमात्रसे इतना अधिक आनन्द प्राप्त हो रहा है, तब यदि मैं इसका सामीप्य प्राप्त करूँ तो कितना सुख प्राप्त होगा। इस प्रकार क्षणभर विचारकर गिरिजाकी प्रशंसा करके वे महायोगी बोधयुक्त हुए और विरक्त हो बोले—॥ ४०—४२॥

यह कैसा विचित्र चरित्र हो गया? क्या मैं मोहको प्राप्त हो गया। प्रभु तथा ईश्वर होकर भी कामके कारण मैं विकारयुक्त हो गया। मैं ईश्वर हूँ और यदि दूसरेके अंगस्पर्शकी मेरी यह इच्छा है, तो अन्य अक्षम तथा क्षुद्र पुरुष क्या-क्या [अनर्थ] नहीं करेगा॥ ४३-४४॥

एवं वैराग्यमासाद्य पर्यङ्कासादनं च तत्।
वारयामास सर्वात्मा परेशः किं पतेदिह॥ ४५

इस प्रकार वैराग्यभावको प्राप्तकर उन सर्वात्माने पर्यंक एवं आसनका परित्याग कर दिया; क्योंकि क्या परमेश्वर पतित हो सकता है!॥ ४५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे कामकृतविकारवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें कामकृतविकारवर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

भगवान् शिवकी नेत्रज्वालासे कामदेवका भस्म होना और रतिका विलाप, देवताओंद्वारा रतिको सान्त्वना प्रदान करना और भगवान् शिवसे कामको जीवित करनेकी प्रार्थना करना

नारद उवाच

ब्रह्मन् विधे महाभाग किं जातं तदनन्तरम्।
कथय त्वं प्रसादेन तां कथां पापनाशिनीम्॥ १

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे विधे! हे महाभाग! इसके अनन्तर फिर क्या हुआ? आप मुझपर दयाकर इस पापको विनष्ट करनेवाली कथाका पुनः वर्णन कीजिये॥ १॥

ब्रह्मोवाच

श्रूयतां सा कथा तात यज्जातं तदनन्तरम्।
तव स्नेहात्प्रवक्ष्यामि शिवलीलां मुदावहाम्॥ २
धैर्यस्य व्यसनं दृष्ट्वा महायोगी महेश्वरः।
विचिचिन्त मनस्येवं विस्मितोऽति ततः परम्॥ ३

ब्रह्माजी बोले—हे तात! इसके अनन्तर जो हुआ, उसे आप सुनें। मैं आपके स्नेहवश आनन्ददायक शिवलीलाका वर्णन करूँगा। [हे नारद!] उसके बाद महायोगी महेश्वर [अपने] धैर्यके नाशको देखकर अत्यन्त विस्मित हो मनमें इस प्रकार विचार करने लगे॥ २-३॥

शिव उवाच

किमु विघ्नाः समुत्पन्नाः कुर्वतस्तप उत्तमम्।
केन मे विकृतं चित्तं कृतमत्र कुकर्मिणा॥ ४
कुवर्णनं मया प्रीत्या परस्त्र्युपरि वै कृतम्।
जातो धर्मविरोधोऽत्र श्रुतिसीमा विलंघिता॥ ५

शिवजी बोले—मैं तो उत्तम तपस्या कर रहा था, उसमें विघ्न कैसे आ गया! किस कुकर्मीने यहाँ मेरे चित्तमें विकार पैदा कर दिया है! मैंने दूसरेकी स्त्रीके विषयमें प्रेमपूर्वक निन्दित वर्णन किया। यह तो धर्मका विरोध हो गया और शास्त्रमर्यादाका उल्लंघन हुआ॥ ४-५॥

ब्रह्मोवाच

विचिंत्येत्थं महायोगी परमेशः सतां गतिः।
दिशो विलोकयामास परितः शंकितस्तदा॥ ६
वामभागे स्थितं कामं ददर्शाकृष्टबाणकम्।
स्वशरं क्षेप्तुकामं हि गर्वितं मूढचेतसम्॥ ७

ब्रह्माजी बोले—तब सज्जनोंके एकमात्र रक्षक महायोगी परमेश्वर शिव इस प्रकार विचारकर शंकित हो सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर देखने लगे। इसी समय वामभागमें बाण खींचे खड़े हुए कामपर उनकी दृष्टि पड़ी। वह मूढ़चित्त मदन अपनी शक्तिके गर्वसे चूर होकर पुनः अपना बाण छोड़ना ही चाह रहा था॥ ६-७॥

तं दृष्ट्वा तादृशं कामं गिरीशस्य परात्मनः।
संजातः क्रोधसंमर्दस्तत्क्षणादपि नारद॥ ८

हे नारद! उस अवस्थामें कामपर दृष्टि पड़ते ही परमात्मा गिरीशको तत्काल क्रोध उत्पन्न हो गया॥ ८॥

कामः स्थितोऽन्तरिक्षे स धृत्वा तत्सशरं धनुः।
चिक्षेपास्त्रं दुर्निवारममोघं शंकरे मुने॥ ९

बभूवामोघमस्त्रं तु मोघं तत्परमात्मनि।
समशाम्यत्ततस्तस्मिन्संक्रुद्धे परमेश्वरे॥ १०

हे मुने! इधर, आकाशमें बाणसहित धनुष लेकर खड़े हुए कामने भगवान् शंकरपर अपना दुर्निवार तथा अमोघ अस्त्र छोड़ दिया। परमात्मा शिवपर वह अमोघ अस्त्र व्यर्थ हो गया। कुपित हुए परमेश्वरके पास जाते ही वह शान्त हो गया॥ ९-१०॥

मोघीभूते शिवे स्वेऽस्त्रे भयमापाशु मन्मथः।
चकम्पे च पुरः स्थित्वा दृष्ट्वा मृत्युंजयं प्रभुम्॥ ११

सस्मार त्रिदशान्सर्वाञ्शक्रादीन्भयविह्वलः।
स स्मरो मुनिशार्दूल स्वप्रयासे निरर्थके॥ १२

तदनन्तर भगवान् शिवपर अपने अस्त्रके व्यर्थ हो जानेपर मन्मथको बड़ा भय हुआ। भगवान् मृत्युंजयको देखकर उनके सामने खड़ा होकर वह काँप उठा। हे मुनिश्रेष्ठ! वह कामदेव अपने प्रयासके निष्फल हो जानेपर भयसे व्याकुल होकर इन्द्र आदि सभी देवताओंका स्मरण करने लगा॥ ११-१२॥

कामेन सुस्मृता देवाः शक्राद्यास्ते मुनीश्वर।
आययुः सकलास्ते हि शंभुं नत्वा च तुष्टुवुः॥ १३

हे मुनीश्वर! कामदेवके स्मरण करनेपर वे इन्द्र आदि सब देवता आ गये और शम्भुको प्रणामकर उनकी स्तुति करने लगे॥ १३॥

स्तुतिं कुर्वत्सु देवेषु क्रुद्धस्याति हरस्य हि।
तृतीयात्तस्य नेत्राद्वै निस्ससार ततो महान्॥ १४

ललाटमध्यगात्तस्मात्सवह्निर्द्रुतसम्भवः।
जज्वालोर्ध्वशिखो दीप्तः प्रलयाग्निसमप्रभः॥ १५

देवता स्तुति कर ही रहे थे कि कुपित हुए भगवान् शिवके ललाटके मध्यभागमें स्थित तृतीय नेत्रसे बड़ी भारी आगकी ज्वाला तत्काल प्रकट होकर निकली। वे ज्वालाएँ ऊपरकी ओर उठ रही थीं। वह आग धू-धू करके जलने लगी। उसकी ज्योति प्रलयाग्निके समान मालूम पड़ती थी॥ १४-१५॥

उत्पत्य गगने तूर्णं निपत्य धरणीतले।
भ्रामं भ्रामं स्वपरितः पपात मेदिनीं परि॥ १६

भस्मसात्कृतवान्साधो मदनं तावदेव हि।
यावच्च मरुतां वाचः क्षम्यतां क्षम्यतामिति॥ १७

वह ज्वाला तत्काल ही आकाशमें उछलकर पृथ्वीपर गिरकर फिर अपने चारों ओर चक्कर काटती हुई कामदेवपर जा गिरी। हे साधो! क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये, यह बात जबतक देवताओंने कही, तबतक उस आगने कामदेवको जलाकर राख कर दिया॥ १६-१७॥

हते तस्मिन्स्मरे वीरे देवा दुःखमुपागताः।
रुरुदुर्विह्वलाश्चातिक्रोशंतः किमभूदिति॥ १८

श्वेताङ्गा विकृतात्मा च गिरिराजसुता तदा।
जगाम मंदिरं स्वं च समादाय सखीजनम्॥ १९

क्षणमात्रं रतिस्तत्र विसंज्ञा साभवत्तदा।
भर्तृमृत्युजदुःखेन पतिता सा मृता इव॥ २०

उस वीर कामदेवके मारे जानेपर देवताओंको बड़ा दुःख हुआ। वे व्याकुल होकर, यह क्या हुआ, इस प्रकार कहकर जोर-जोरसे चीत्कार करते हुए रोने-बिलखने लगे। उस समय घबरायी हुई पार्वतीका समस्त शरीर सफेद पड़ गया और वे सखियोंको साथ लेकर अपने भवनको चली गयीं। [कामदेवके जल जानेपर] रति वहाँ क्षणभरके लिये अचेत हो गयी। पतिके मृत्युजनित दुःखसे वह मरी हुईकी भाँति पड़ी रही॥ १८—२०॥

जातायां चैव संज्ञायां रतिरत्यंतविह्वला।
विललाप तदा तत्रोच्चरन्ती विविधं वचः॥ २१

[थोड़ी देरमें] चेतना आनेपर अत्यन्त व्याकुल होकर वह रति उस समय तरह-तरहकी बातें कहती हुई विलाप करने लगी॥ २१॥

रतिरुवाच

किं करोमि क्व गच्छामि किं कृतं दैवतैरिह।
मत्स्वामिनं समाहूय नाशयामासुरुद्धतम्॥ २२
हा हा नाथ स्मर स्वामिन्प्राणप्रिय सुखप्रद।
इदं तु किमभूदत्र हा हा प्रिय प्रियेति च॥ २३

रति बोली—मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? देवताओंने यह क्या किया, मेरे उद्धत स्वामीको बुलाकर उन्होंने नष्ट करा दिया। हाय! हाय! हे नाथ! हे स्मर! हे स्वामिन्! हे प्राणप्रिय! हे सुखप्रद! हे प्रिय! हे प्रिय! यह यहाँ क्या हो गया?॥ २२-२३॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं विलपती सा तु वदन्ती बहुधा वचः।
हस्तौ पादौ तदास्फाल्य केशानत्रोटयत्तदा॥ २४

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार रोती-बिलखती और अनेक प्रकारकी बातें कहती हुई वह हाथ-पैर पटककर सिरके बालोंको नोंचने लगी॥ २४॥

तद्विलापं तदा श्रुत्वा तत्र सर्वे वनेचराः।
अभवन्दुःखिताः सर्वे स्थावरा अपि नारद॥ २५
एतस्मिन्नन्तरे तत्र देवाः शक्रादयोऽखिलाः।
रतिमूचुः समाश्वास्य संस्मरन्तो महेश्वरम्॥ २६

हे नारद! उस समय उसका विलाप सुनकर वहाँ रहनेवाले समस्त वनवासी तथा सभी स्थावर प्राणी भी दुखी हो गये। इसी बीच इन्द्र आदि समस्त देवता महेश्वरका स्मरण करते हुए रतिको आश्वस्त करके उससे कहने लगे—॥ २५-२६॥

देवा ऊचुः

किंचिद्भस्म गृहीत्वा तु रक्ष यत्नाद्भयं त्यज।
जीवयिष्यति स स्वामी लप्स्यसे त्वं पुनः प्रियम्॥ २७

देवता बोले—थोड़ा-सा भस्म लेकर उसे यत्नपूर्वक रखो और भय छोड़ दो। वे स्वामी महादेवजी [कामदेवको] जीवित कर देंगे और तुम पतिको पुनः प्राप्त कर लोगी॥ २७॥

सुखदाता न कोऽप्यस्ति दुःखदाता न कश्चन।
सर्वोऽपि स्वकृतं भुंक्ते देवान् शोचसि वै वृथा॥ २८

कोई न सुख देनेवाला है और न कोई दुःख ही देनेवाला है। सब लोग अपनी करनीका फल भोगते हैं। तुम देवताओंको दोष देकर व्यर्थ ही शोक करती हो॥ २८॥

ब्रह्मोवाच

इत्याश्वास्य रतिं देवाः सर्वे शिवमुपागताः।
सुप्रसाद्य शिवं भक्त्या वचनं चेदमब्रुवन्॥ २९

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार रतिको समझा-बुझाकर सब देवता भगवान् शिवके समीप आये और उन्हें भक्तिसे प्रसन्न करके यह वचन कहने लगे—॥ २९॥

देवा ऊचुः

भगवन् श्रूयतामेतद्वचनं नः शुभं प्रभो।
कृपां कृत्वा महेशान शरणागतवत्सल॥ ३०

देवता बोले—हे भगवन्! हे प्रभो! हे महेशान! हे शरणागतवत्सल! आप कृपा करके हमारे इस शुभ वचनको सुनिये॥ ३०॥

सुविचारय सुप्रीत्या कृतिं कामस्य शंकर।
कामेनैतत्कृतं यत्र न स्वार्थं तन्महेश्वर॥ ३१

हे शंकर! आप कामदेवके कृत्यपर भलीभाँति अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक विचार कीजिये। हे महेश्वर! कामने जो यह कार्य किया है, इसमें उसका कोई स्वार्थ नहीं था॥ ३१॥

दुष्टेन पीडितैर्देवैस्तारकेणाखिलैर्विभो।
कर्म तत्कारितं नाथ नान्यथा विद्धि शंकर॥ ३२

हे विभो! दुष्ट तारकासुरसे पीड़ित हुए सब देवताओंने मिलकर उससे यह कार्य कराया है। हे नाथ! हे शंकर! इसे आप अन्यथा न समझें॥ ३२॥

रतिरेकाकिनी देव विलापं दुःखिता सती।
करोति गिरिश त्वं च तामाश्वासय सर्वद॥ ३३

सब कुछ प्रदान करनेवाले हे देव! हे गिरिश! साध्वी रति अकेली अति दुखी होकर विलाप कर रही है, आप उसे सान्त्वना प्रदान कीजिये॥ ३३॥

संहारं कर्तुकामोऽसि क्रोधेनानेन शंकर।
दैवतैः सह सर्वेषां हतवांस्तं यदि स्मरम्॥ ३४

हे शंकर! यदि इस क्रोधके द्वारा आपने कामदेवको मार डाला, तो हम यही समझेंगे कि आप देवताओंसहित समस्त प्राणियोंका अभी संहार कर डालना चाहते हैं॥ ३४॥

दुःखं तस्या रतेर्दृष्ट्वा नष्टप्रायाश्च देवताः।
तस्मात्त्वया च कर्तव्यं रत्याश्शोकापनोदनम्॥ ३५

उस रतिका दुःख देखकर देवता नष्टप्राय हो गये हैं। इसलिये आपको रतिका शोक दूर कर देना चाहिये॥ ३५॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां प्रसन्नो भगवान् शिवः।
देवानां सकलानां च वचनं चेदमब्रवीत्॥ ३६

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] उन सम्पूर्ण देवताओंका यह वचन सुनकर भगवान् शिव प्रसन्न हो गये और यह वचन कहने लगे—॥ ३६॥

शिव उवाच

देवाश्च ऋषयः सर्वे मद्वचः शृणुतादरात्।
मत्कोपेन च यज्जातं तत्तथा नान्यथा भवेत्॥ ३७
अनङ्गस्तावदेव स्यात्कामो रतिपतिः प्रभुः।
यावच्चावतरेत्कृष्णो धरण्यां रुक्मिणीपतिः॥ ३८

शिवजी बोले—हे देवताओ और ऋषियो! आप सब आदरपूर्वक मेरी बात सुनिये। मेरे क्रोधसे जो कुछ हो गया है, वह तो अन्यथा नहीं हो सकता, तथापि रतिका शक्तिशाली पति कामदेव तभीतक अनंग रहेगा, जबतक रुक्मिणीपति श्रीकृष्णका धरतीपर अवतार नहीं हो जाता॥ ३७-३८॥

द्वारकायां यदा स्थित्वा पुत्रानुत्पादयिष्यति।
तदा कृष्णस्तु रुक्मिण्यां काममुत्पादयिष्यति॥ ३९

जब श्रीकृष्ण द्वारकामें रहकर पुत्रोंको उत्पन्न करेंगे, तब ये रुक्मिणीके गर्भसे कामको भी जन्म देंगे॥ ३९॥

प्रद्युम्नं नाम तस्यैव भविष्यति न संशयः।
जातमात्रं तु तं पुत्रं शंबरः संहरिष्यति॥ ४०
हृत्वा प्रास्य समुद्रं तं शंबरो दानवोत्तमः।
मृतं ज्ञात्वा वृथा मूढो नगरं स्वं गमिष्यति॥ ४१
तावच्च नगरं तस्य रते स्थेयं यथासुखम्।
तत्रैव स्वपतेः प्राप्तिः प्रद्युम्नस्य भविष्यति॥ ४२

उस कामका ही नाम [उस समय] प्रद्युम्न होगा, इसमें संशय नहीं है। उस पुत्रके जन्म लेते ही शम्बरासुर उसे हर लेगा। हरण करके दानवश्रेष्ठ मूर्ख शम्बर उसे समुद्रमें फेंककर और उसे मरा हुआ जानकर वृथा ही अपने नगरको लौट जायगा। हे रते! तुम्हें उस समयतक शम्बरासुरके नगरमें सुखपूर्वक निवास करना चाहिये, वहींपर तुम्हें अपने पति प्रद्युम्नकी प्राप्ति होगी॥ ४०—४२॥

तत्र कामो मिलित्वा तं हत्वा शम्बरमाहवे।
भविष्यति सुखी देवाः प्रद्युम्नाख्यः स्वकामिनीम्॥ ४३

हे देवताओ! वहाँ युद्धमें उस शम्बरासुरका वध करके कामदेव अपनी पत्नीको प्राप्त करके सुखी होगा॥ ४३॥

तदीयं चैव यद् द्रव्यं नीत्वा स नगरं पुनः।
गमिष्यति तया सार्धं देवाः सत्यं वचो मम॥ ४४

हे देवताओ! प्रद्युम्न नामधारी वह काम शम्बरासुरका जो भी धन होगा, उसे लेकर उस रतिके साथ [अपने] नगरमें जायगा, मेरा यह कथन सर्वथा सत्य होगा॥ ४४॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचः शंभोर्देवा ऊचुः प्रणम्य तम्।
किंचिदुच्छ्वसिताश्चित्ते करौ बद्ध्वा नताङ्गकाः॥ ४५

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] शिवजीकी यह बात सुनकर देवताओंके चित्तमें कुछ उल्लास हुआ और वे सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर उनसे कहने लगे—॥ ४५॥

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो।
शीघ्रं जीवय कामं त्वं रक्ष प्राणान् रतेर्हर॥ ४६

देवता बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणासागर! हे प्रभो! हे हर! आप कामदेवको शीघ्र जीवित कर दीजिये तथा रतिके प्राणोंकी रक्षा कीजिये॥ ४६॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्यामरवचः प्रसन्नः परमेश्वरः।
पुनर्बभाषे करुणासागरः सकलेश्वरः॥ ४७

ब्रह्माजी बोले—देवताओंकी यह बात सुनकर सबके स्वामी करुणासागर परमेश्वर शिव प्रसन्न होकर पुनः कहने लगे—॥ ४७॥

शिव उवाच

हे देवाः सुप्रसन्नोऽस्मि जीवयिष्यामि चान्तरे।
कामः स मद्‌गणो भूत्वा विहरिष्यति नित्यशः॥ ४८

शिवजी बोले—हे देवताओ! मैं बहुत प्रसन्न हूँ, मैं कामको सबके हृदयमें जीवित कर दूँगा और वह सदा मेरा गण होकर विहार करेगा॥ ४८॥

नाख्येयमिदमाख्यानं कस्यचित्पुरतः सुराः।
गच्छत स्वस्थलं दुखं नाशयिष्यामि सर्वतः॥ ४९

हे देवताओ! आपलोग इस आख्यानको किसीके सामने मत कहियेगा, आपलोग अपने स्थानको जाइये, मैं सब प्रकारसे [आपलोगोंके] दुःखका नाश करूँगा॥ ४९॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधे रुद्रो देवानां स्तुवतां तदा।
सर्वे देवाः सुप्रसन्ना बभूवुर्गतविस्मयाः॥ ५०

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर रुद्रदेव देवताओंके स्तुति करते-करते ही अन्तर्धान हो गये। तब सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न तथा सन्देहरहित हो गये॥ ५०॥

ततस्तां च समाश्वास्य रुद्रस्य वचने स्थिताः।
उक्त्वा वचस्तदीयं च स्वं स्वं धाम ययुर्मुने॥ ५१

कामपत्नी समादिष्टं नगरं सा गता तदा।
प्रतीक्षमाणा तं कालं रुद्रादिष्टं मुनीश्वर॥ ५२

हे मुने! तदनन्तर रुद्रकी बातपर भरोसा करके वे देवता रतिको आश्वासन देकर तथा उससे उनका वचन कहकर अपने-अपने धामको चले गये। हे मुनीश्वर! तब वह कामपत्नी शिवके बताये हुए नगरको चली गयी तथा रुद्रके बताये गये समयकी प्रतीक्षा करने लगी॥ ५१-५२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे कामनाशवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें कामनाशवर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

अथ विंशोऽध्यायः

शिवकी क्रोधाग्निका वडवारूप-धारण और ब्रह्माद्वारा उसे समुद्रको समर्पित करना

नारद उवाच

विधे नेत्रसमुद्भूतवह्निज्वाला हरस्य सा।
गता कुत्र वद त्वं तच्चरितं शशिमौलिनः॥ १

नारदजी बोले—हे विधे! भगवान् हरके [तृतीय] नेत्रसे निकली हुई वह अग्निकी ज्वाला कहाँ गयी? आप चन्द्रशेखरके उस चरित्रको कहिये॥ १॥

ब्रह्मोवाच

यदा भस्म चकाराशु तृतीयनयनानलः।
शम्भोः कामं प्रजज्वाल सर्वतो विफलस्तदा॥ २

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] जब भगवान् रुद्रके तीसरे नेत्रसे प्रकट हुई अग्निने कामदेवको शीघ्र ही जलाकर राख कर दिया, उसके अनन्तर वह बिना किसी प्रयोजनके ही सब ओर फैलने लगी॥ २॥

हाहाकारो महानासीत् त्रैलोक्ये सचराचरे।
सर्वे देवर्षयस्तात शरणं मां ययुर्द्रुतम्॥ ३

चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंमें महान् हाहाकार मच गया। हे तात! तब सम्पूर्ण देवता और ऋषि शीघ्र ही मेरी शरणमें आये॥ ३॥

सर्वे निवेदयामासुस्तद्दुःखं मह्यमाकुलाः।
सुप्रणम्य सुसंस्तूय करौ बद्ध्वा नताननाः॥ ४

उन सबने व्याकुल होकर मस्तक झुकाकर दोनों हाथ जोड़कर मुझे प्रणामकर विधिवत् मेरी स्तुति करके अपना दुःख निवेदन किया॥ ४॥

तच्छ्रुत्वाहं शिवं स्मृत्वा तद्धेतुं सुविमृश्य च।
गतस्तत्र विनीतात्मा त्रिलोकावनहेतवे॥ ५

उसको सुनकर शिवका स्मरणकर और उसके हेतुका भलीभाँति विचारकर तीनों लोकोंकी रक्षा करनेके लिये मैं विनीत भावसे वहाँ पहुँचा॥ ५॥

संदग्धुकामः स शुचिर्ज्वालामालातिदीपितः।
स्तंभितोऽरं मया शंभुप्रसादाप्तसुतेजसा॥ ६

वह अग्नि ज्वालामालासे अत्यन्त उद्दीप्त हो जगत्को जला देनेके लिये उद्यत थी, परंतु भगवान् शिवकी कृपासे प्राप्त हुए उत्तम तेजके द्वारा मैंने उसे तत्काल स्तम्भित कर दिया॥ ६॥

अथ क्रोधमयं वह्निं दग्धुकामं जगत्त्रयम्।
वाडवं तमकार्षं च सौम्यज्वालामुखं मुने॥ ७

हे मुने! मैंने त्रिलोकीको दग्ध करनेकी इच्छा रखनेवाली उस क्रोधमय अग्निको सौम्य ज्वालामुखवाले घोड़ेके रूपमें परिवर्तित कर दिया॥ ७॥

तं वाडवतनुमहं समादाय शिवेच्छया।
सागरं समगां लोकहिताय जगतां पतिः॥ ८

भगवान् शिवकी इच्छासे उस वाडव-शरीरवाली अग्निको लेकर जगत्पति मैं लोकहितके लिये समुद्रके पास गया॥ ८॥

आगतं मां समालोक्य सागरस्सांजलिर्मुने।
धृत्वा च पौरुषं रूपमागतः संनिधिं मम॥ ९

हे मुने! मुझे आया हुआ देखकर समुद्र एक दिव्य पुरुषका रूप धारण करके हाथ जोड़कर मेरे पास आया॥ ९॥

सुप्रणम्याथ मां सिंधुः संस्तूय च यथाविधि।
स मामुवाच सुप्रीत्या सर्वलोकपितामहम्॥ १०

मुझ सम्पूर्ण लोकोंके पितामहकी भलीभाँति स्तुति करके वह सिन्धु मुझसे प्रसन्नतापूर्वक कहने लगा—॥ १०॥

सागर उवाच

किमर्थमागतोऽसि त्वं ब्रह्मन्नत्राखिलाधिप।
तन्निदेशय सुप्रीत्या मत्वा मां च स्वसेवकम्॥ ११

सागर बोला—हे ब्रह्मन्! हे सर्वेश्वर! आप यहाँ किसलिये आये हैं? मुझे अपना सेवक समझकर आप प्रीतिपूर्वक उसे कहिये॥ ११॥

अथाहं सागरवचः श्रुत्वा प्रीतिपुरस्सरम्।
प्रावोचं शंकरं स्मृत्वा लौकिकं हितमावहन्॥ १२

सागरकी बात सुनकर शंकरका स्मरण करके लोकहितका ध्यान रखते हुए मैं उससे प्रसन्नतापूर्वक कहने लगा—॥ १२॥

ब्रह्मोवाच

शृणु तात महाधीमन्सर्वलोकहितावह।
वच्म्यहं प्रीतितः सिंधो शिवेच्छाप्रेरितो हृदा॥ १३

ब्रह्माजी बोले—हे तात! हे महाबुद्धिमान्! सम्पूर्ण लोकोंके हितकारी! हे सिन्धो! मैं शिवकी इच्छासे प्रेरित हो हृदयसे प्रीतिपूर्वक तुमसे कह रहा हूँ, सुनो॥ १३॥

अयं क्रोधो महेशस्य वाडवात्मा महाप्रभुः।
दग्ध्वा कामं द्रुतं सर्वं दग्धुकामोऽभवत्ततः॥ १४

यह महेश्वरका क्रोध है, जो महान् शक्तिशाली अश्वके रूपमें यहाँ उपस्थित है। यह कामदेवको दग्ध करके शीघ्र सम्पूर्ण जगत्को जला डालनेके लिये उद्यत हो गया था॥ १४॥

प्रार्थितोऽहं सुरैः शीघ्रं पीडितैः शंकरेच्छया।
तत्रागत्य द्रुतं तं वै तात स्तंभितवान् शुचिम्॥ १५

वाडवं रूपमाधत्त तमादायागतोऽत्र ह।
निर्दिशामि जलाधार त्वामहं करुणाकरः॥ १६

अयं क्रोधो महेशस्य वाडवं रूपमाश्रितः।
ज्वालामुखस्त्वया धार्यो यावदाभूतसम्प्लवम्॥ १७

यदात्राहं समागम्य वत्स्यामि सरितां पते।
तदा त्वया परित्याज्यः क्रोधोऽयं शाङ्करोऽद्भुतः॥ १८

भोजनं तोयमेतस्य तव नित्यं भविष्यति।
यत्नादेवावधार्योऽयं यथा नोपैति चांतरम्॥ १९

इत्युक्तो हि मया सिंधुरंगीचक्रे तदा ध्रुवम्।
ग्रहीतुं वाडवं वह्निं रौद्रं चाशक्यमन्यतः॥ २०

ततः प्रविष्टो जलधौ स वाडवतनुः शुचिः।
वार्यौघान्सुदहंस्तस्य ज्वालामालाभिदीपितः॥ २१

ततः संतुष्टचेतस्कः स्वं धामाहं गतो मुने।
अन्तर्धानमगात्सिंधुर्दिव्यरूपः प्रणम्य माम्॥ २२

स्वास्थ्यं प्राप जगत्सर्वं निर्मुक्तं तद्भवाद्भयात्।
देवा बभूवुः सुखिनो मुनयश्च महामुने॥ २३

हे तात! तब पीड़ित हुए देवताओंने शंकरकी इच्छासे मेरी प्रार्थना की और मैंने शीघ्र वहाँ आकर अग्निको स्तम्भित किया। फिर इसने घोड़ेका रूप धारण किया और इसे लेकर मैं यहाँ आया। हे जलाधार! [जगत्पर] दया करनेवाला मैं तुम्हें यह आदेश दे रहा हूँ॥ १५-१६॥

महेश्वरके इस क्रोधको, जो घोड़ेका रूप धारण करके मुखसे ज्वाला प्रकट करता हुआ खड़ा है, तुम प्रलयकालपर्यन्त धारण किये रहो॥ १७॥

हे सरित्पते! जब मैं यहाँ आकर निवास करूँगा, तब तुम शंकरके इस अद्भुत क्रोधको छोड़ देना॥ १८॥

तुम्हारा जल ही इसका प्रतिदिनका भोजन होगा। तुम यत्नपूर्वक इसे धारण किये रहना, जिससे यह अन्यत्र न जा सके॥ १९॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार मेरे कहनेपर समुद्रने [रुद्रके क्रोधाग्निरूप] वडवानलको धारण करना स्वीकार किया, जो दूसरेके लिये असम्भव था॥ २०॥

उसके अनन्तर वाडव शरीरवाली वह अग्नि समुद्रमें प्रविष्ट हुई और ज्वालामालाओंसे प्रदीप्त हो उस सागरकी जलराशिका दहन करने लगी॥ २१॥

हे मुने! तदनन्तर सन्तुष्टचित्त होकर मैं अपने धामको चला आया और दिव्य रूपधारी वह समुद्र मुझे प्रणाम करके अन्तर्धान हो गया। महामुने! रुद्रकी उस क्रोधाग्निके भयसे छूटकर सम्पूर्ण जगत् स्वस्थताका अनुभव करने लगा और देवता तथा मुनिगण सुखी हो गये॥ २२-२३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे वडवानलचरितवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें वडवानलचरितवर्णन नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

अथैकविंशोऽध्यायः

कामदेवके भस्म हो जानेपर पार्वतीका अपने घर आगमन, हिमवान् तथा मेनाद्वारा उन्हें धैर्य प्रदान करना, नारदद्वारा पार्वतीको पंचाक्षर मन्त्रका उपदेश

नारद उवाच

विधे तात महाप्राज्ञ विष्णुशिष्य त्रिलोककृत्।
अद्भुतेयं कथा प्रोक्ता शंकरस्य महात्मनः॥ १

नारदजी बोले—हे विधे! हे तात! हे महाप्राज्ञ! हे विष्णुशिष्य! हे त्रिलोककर्ता! आपने महात्मा शंकरकी यह विलक्षण कथा सुनायी।

भस्मीभूते स्मरे शंभुतृतीयनयनाग्निना।
तस्मिन्प्रविष्टे जलधौ वद त्वं किमभूत्ततः॥ २

शिवके तृतीय नेत्रकी अग्निसे कामदेवके भस्म हो जानेपर और [पुनः] उस अग्निके समुद्रमें प्रवेश कर जानेपर फिर क्या हुआ?॥ १-२॥

किं चकार ततो देवी पार्वती कुधरात्मजा।
गता कुत्र सखीभ्यां सा तद्वदाद्य दयानिधे॥ ३

तदनन्तर हिमालयपुत्री पार्वतीदेवीने क्या किया और वे अपनी दोनों सखियोंके साथ कहाँ गयीं? हे दयानिधे! अब आप इसे बताइये॥ ३॥

ब्रह्मोवाच

शृणु तात महाप्राज्ञ चरितं शशिमौलिनः।
महोतिकारकस्यैव स्वामिनो मम चादरात्॥ ४

यदादहच्छंभुनेत्रोद्भवो हि मदनं शुचिः।
महाशब्दोऽद्भुतोऽभूद्वै येनाकाशः प्रपूरितः॥ ५

ब्रह्माजी बोले—हे तात! हे महाप्राज्ञ! अब आप महान् लीला करनेवाले मेरे स्वामी चन्द्रशेखरके चरित्रको आदरपूर्वक सुनिये। भगवान् शंकरके नेत्रसे उत्पन्न हुई अग्निने जब कामदेवको जला दिया, तब महान् अद्भुत महाशब्द प्रकट हुआ, जिससे आकाश पूर्णरूपसे गूँज उठा॥ ४-५॥

तेन शब्देन महता कामं दग्धं समीक्ष्य च।
सखीभ्यां सह भीता सा ययौ स्वगृहमाकुला॥ ६

उस महान् शब्दके साथ ही कामदेवको दग्ध हुआ देखकर भयभीत और व्याकुल हुई पार्वती अपनी दोनों सखियोंके साथ अपने घर चली गयीं॥ ६॥

तेन शब्देन हिमवान्परिवारसमन्वितः।
विस्मितोऽभूदतिक्लिष्टः सुतां स्मृत्वा गतां ततः॥ ७

जगाम शोकं शैलेशो सुतां दृष्ट्वातिविह्वलाम्।
रुदन्तीं शंभुविरहादाससादाचलेश्वरः॥ ८

आसाद्य पाणिना तस्या मार्जयन्नयनद्वयम्।
मा बिभीहि शिवेऽरोदीरित्युक्त्वा तां तदाग्रहीत्॥ ९

क्रोडे कृत्वा सुतां शीघ्रं हिमवानचलेश्वरः।
स्वमालयमथानिन्ये सांत्वयन्नतिविह्वलाम्॥ १०

उस शब्दसे परिवारसहित हिमवान् भी बड़े आश्चर्यमें पड़ गये और वहाँ गयी हुई अपनी पुत्रीका स्मरण करके उन्हें बड़ा क्लेश हुआ। [इतनेमें ही पार्वती भी आ गयीं]। वे शम्भुके विरहसे रो रही थीं। अपनी पुत्रीको अत्यन्त विह्वल देखकर शैलराज हिमवान्‌को बड़ा शोक हुआ और वे शीघ्र ही उनके पास पहुँचे। वे हाथसे उनकी दोनों आँखोंको पोंछकर बोले—हे शिवे! डरो मत, रोओ मत—ऐसा कहकर उन्हें पकड़ लिया। इसके बाद पर्वतराज हिमवान्‌ने अत्यन्त विह्वल हुई पुत्री पार्वतीको शीघ्र ही गोदमें उठा लिया और वे उन्हें सान्त्वना देते हुए अपने घर ले आये॥ ७—१०॥

अंतर्हिते स्मरं दग्ध्वा हरे तद्विरहाच्छिवा।
विकलाभूद् भृशं सा वै लेभे शर्म न कुत्रचित्॥ ११

कामदेवका दाह करके महादेवजीके अन्तर्धान हो जानेपर उनके विरहसे पार्वती अत्यन्त व्याकुल हो गयीं और उन्हें कहीं भी शान्ति नहीं मिल रही थी॥ ११॥

पितुर्गृहं तदा गत्वा मिलित्वा मातरं शिवा।
पुनर्जातं तदा मेने स्वात्मानं सा धरात्मजा॥ १२

पिताके घर जाकर जब वे अपनी मातासे मिलीं, उस समय पार्वतीने अपना नया जन्म हुआ माना॥ १२॥

निनिंद च स्वरूपं सा हा हतास्मीत्यथाब्रवीत्।
सखीभिर्बोधिता चापि न बुबोध गिरीन्द्रजा॥ १३

वे अपने रूपकी निन्दा करने लगीं और कहने लगीं। हाय! मैं मारी गयी। सखियोंके समझानेपर भी वे गिरिराजकुमारी कुछ समझ नहीं पाती थीं॥ १३॥

स्वपती च पिबंती च सा स्नाती गच्छती शिवा।
तिष्ठन्ती च सखीमध्ये न किंचित्सुखमाप ह॥ १४

धिक्स्वरूपं मदीयं च तथा जन्म च कर्म च।
इति ब्रुवंती सततं स्मरन्ती हरचेष्टितम्॥ १५

एवं सा पार्वती शंभुविरहात् क्लिष्टमानसा।
सुखं न लेभे किंचिद्वाब्रवीच्छिवशिवेति च॥ १६

निवसंती पितुर्गेहे पिनाकिगतचेतना।
शुशोचाथ शिवा तात मुमोह च मुहुर्मुहुः॥ १७

शैलाधिराजोऽप्यथ मेनकापि
मैनाकमुख्यास्तनयाश्च सर्वे।
तां सांत्वयामासुरदीनसत्त्वा
हरं विसस्मार तथापि नो सा॥ १८

अथ देवमुने धीमन्हिमवत्प्रस्तरे तदा।
नियोजितो बलभिदागमस्त्वं कामचारतः॥ १९
ततस्त्वं पूजितस्तेन भूधरेण महात्मना।
कुशलं पृष्टवांस्तं वै तदाविष्टो वरासने॥ २०
ततः प्रोवाच शैलेशः कन्याचरितमादितः।
हरसेवान्वितं कामदहनं च हरेण ह॥ २१

श्रुत्वावोचो मुने त्वं तु तं शैलेशं शिवं भज।
तमामंत्र्योदतिष्ठस्त्वं संस्मृत्य मनसा शिवम्॥ २२

तं समुत्सृज्य रहसि कालीं तामगमस्त्वरा।
लोकोपकारको ज्ञानी त्वं मुने शिववल्लभः॥ २३

आसाद्य कालीं संबोध्य तद्धिते स्थित आदरात्।
अवोचस्त्वं वचस्तथ्यं सर्वेषां ज्ञानिनां वरः॥ २४

नारद उवाच

शृणु कालि वचो मे हि सत्यं वच्मि दयारतः।
सर्वथा ते हितकरं निर्विकारं सुकामदम्॥ २५

वे सोते-जागते, खाते-पीते, नहाते-धोते, चलते-फिरते और सखियोंके बीचमें बैठते समय किंचिन्मात्र भी सुखका अनुभव नहीं करती थीं। मेरे स्वरूप, जन्म तथा कर्मको धिक्कार है—ऐसा कहती हुई वे सदा महादेवजीकी प्रत्येक चेष्टाका चिन्तन करती रहती थीं॥ १४-१५॥

इस प्रकार वे पार्वती भगवान् शिवके विरहसे मन-ही-मन अत्यन्त क्लेशका अनुभव करतीं और किंचिन्मात्र भी सुख नहीं पाती थीं, वे सदा शिव-शिव कहा करती थीं॥ १६॥

पिताके घरमें रहकर भी वे चित्तसे पिनाकपाणि भगवान् शंकरके पास पहुँची रहती थीं। हे तात! शिवा शोकमग्न हो बारंबार मूर्च्छित हो जाती थीं॥ १७॥

शैलराज हिमवान्, उनकी पत्नी मेनका तथा उनके मैनाक आदि सभी पुत्र, जो बड़े उदारचित्त थे, उन्हें सदा सान्त्वना देते रहते थे तथापि वे भगवान् शंकरको भूल न सकीं। हे बुद्धिमान् देवर्षे! तदनन्तर [एक दिन] इन्द्रकी प्रेरणासे इच्छानुसार घूमते हुए आप हिमालय-पर्वतपर पहुँचे। उस समय महात्मा हिमवान्‌ने आपका सत्कार किया। तब आप [उनके द्वारा दिये हुए] उत्तम आसनपर बैठकर उनसे कुशल पूछने लगे॥ १८—२०॥

उसके बाद पर्वतराज हिमवान्‌ने अपनी कन्याके चरित्रका आरम्भसे वर्णन किया कि किस तरह उसने महादेवजीकी सेवा की और किस तरह हरके द्वारा कामदेवका दहन हुआ॥ २१॥

हे मुने! यह सब सुनकर आपने गिरिराजसे कहा—हे शैलेश्वर! भगवान् शिवका भजन कीजिये। फिर उनसे विदा लेकर आप उठे और मन-ही-मन शिवका स्मरणकर शैलराजको छोड़कर शीघ्र ही एकान्तमें कालीके पास आ गये। हे मुने! आप लोकोपकारी, ज्ञानी तथा शिवके प्रिय भक्त हैं, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं, अतः कालीके समीप जाकर उसे सम्बोधित करके उसीके हितमें स्थित हो उससे आदरपूर्वक यह वचन कहने लगे—॥ २२—२४॥

नारदजी बोले—हे कालि! तुम मेरी बात सुनो। मैं दयावश यह सत्य बात कह रहा हूँ। मेरा वचन तुम्हारे लिये सर्वथा हितकर, निर्दोष तथा उत्तम

सेवितश्च महादेवस्त्वयेह तपसा विना।
गर्ववत्या यदध्वंसीद्दीनानुग्रहकारकः॥ २६

विरक्तश्च स ते स्वामी महायोगी महेश्वरः।
विसृष्टवान्स्मरं दग्ध्वा त्वां शिवे भक्तवत्सलः॥ २७

वस्तुओंको देनेवाला होगा। तुमने यहाँ महादेवजीकी सेवा अवश्य की थी, परंतु बिना तपस्याके गर्वयुक्त होकर की थी। दीनोंपर अनुग्रह करनेवाले शिवने तुम्हारे उसी गर्वको नष्ट किया है। हे शिवे! तुम्हारे स्वामी महेश्वर विरक्त और महायोगी हैं, उन भक्तवत्सलने कामदेवको जलाकर तुम्हें [सकुशल] छोड़ दिया है॥ २५—२७॥

तस्मात्त्वं सुतपोयुक्ता चिरमाराधयेश्वरम्।
तपसा संस्कृतां रुद्रः स द्वितीयां करिष्यति॥ २८

त्वं चापि शंकरं शम्भुं न त्यक्ष्यसि कदाचन।
नान्यं पतिं हठाद्देवि ग्रहीष्यसि शिवादृते॥ २९

इसलिये तुम उत्तम तपस्यामें निरत हो चिरकालतक महेश्वरकी आराधना करो। तपस्याके द्वारा संस्कारयुक्त हो जानेपर रुद्रदेव तुम्हें अपनी भार्या अवश्य बनायेंगे और तुम भी कभी उन कल्याणकारी शम्भुका परित्याग नहीं करोगी। हे देवि! तुम हठपूर्वक शिवजीके अतिरिक्त किसी दूसरेको पतिरूपमें स्वीकार नहीं करोगी॥ २८-२९॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्यवचस्ते हि मुने सा भूधरात्मजा।
किंचिदुच्छ्वसिता काली प्राह त्वां सांजलिर्मुदा॥ ३०

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! आपकी यह बात सुनकर गिरिराजकुमारी काली कुछ उच्छ्वास लेती हुई हाथ जोड़कर आपसे प्रसन्नतापूर्वक कहने लगीं—॥ ३०॥

शिवोवाच

त्वं तु सर्वज्ञ जगतामुपकारकर प्रभो।
रुद्रस्याराधनार्थाय मंत्रं देहि मुने हि मे॥ ३१

न सिध्यति क्रिया कापि सर्वेषां सद्गुरुं विना।
मया श्रुता पुरा सत्यं श्रुतिरेषा सनातनी॥ ३२

शिवा बोलीं—हे सर्वज्ञ! जगत्का उपकार करनेवाले हे प्रभो! हे मुने! रुद्रदेवकी आराधनाके लिये मुझे किसी मन्त्रका उपदेश कीजिये; क्योंकि सद्गुरुके बिना किसीकी कोई भी क्रिया सिद्ध नहीं होती—ऐसा मैंने सुन रखा है और यही सनातन श्रुति भी है॥ ३१-३२॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्याः पार्वत्या मुनिसत्तमः।
पंचाक्षरं शम्भुमन्त्रं विधिपूर्वमुपादिशः॥ ३३

अवोचश्च वचस्तां त्वं श्रद्धामुत्पादयन्मुने।
प्रभावं मन्त्रराजस्य तस्य सर्वाधिकं मुने॥ ३४

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! पार्वतीका यह वचन सुनकर आप मुनिश्रेष्ठने पंचाक्षर मन्त्र ['नमः शिवाय'] का उन्हें विधिपूर्वक उपदेश दिया और हे मुने! मन्त्रराजमें श्रद्धा उत्पन्न करनेहेतु आपने उसका सबसे अधिक प्रभाव बताया। हे मुने! आपने उनसे यह वचन कहा—॥ ३३-३४॥

नारद उवाच

शृणु देवि मनोरस्य प्रभावं परमाद्भुतम्।
यस्य श्रवणमात्रेण शंकरः सुप्रसीदति॥ ३५

मंत्रोऽयं सर्वमंत्राणामधिराजश्च कामदः।
भुक्तिमुक्तिप्रदोऽत्यन्तं शंकरस्य महाप्रियः॥ ३६

नारदजी बोले—हे देवि! इस मन्त्रके अत्यन्त अद्भुत प्रभावको सुनो, जिसके सुननेमात्रसे शंकर परम प्रसन्न हो जाते हैं। यह मन्त्रराज सब मन्त्रोंका राजा, मनोवांछित फल प्रदान करनेवाला, शंकरको बहुत ही प्रिय तथा साधकको भोग और मोक्ष देनेवाला है॥ ३५-३६॥

सुभगे येन जप्तेन विधिना सोऽचिराद् द्रुतम्।
आराधितस्ते प्रत्यक्षो भविष्यति शिवो ध्रुवम्॥ ३७

हे सौभाग्यशालिनि! इसका विधिपूर्वक जप करनेसे तुम्हारे द्वारा आराधित हुए भगवान् शिव अवश्य और शीघ्र ही तुम्हारी आँखोंके सामने प्रकट हो जायँगे॥ ३७॥

चिन्तयन्ती च तद्रूपं नियमस्था शराक्षरम्।
जप मन्त्रं शिवे त्वं हि संतुष्यति शिवो द्रुतम्॥ ३८

हे शिवे! नियमोंमें तत्पर रहकर उनके स्वरूपका चिन्तन करती हुई तुम पंचाक्षर मन्त्रका जप करो, इससे शिव शीघ्र ही सन्तुष्ट होंगे॥ ३८॥

एवं कुरु तपः साध्वि तपःसाध्यो महेश्वरः।
तपस्येव फलं सर्वैः प्राप्यते नान्यथा क्वचित्॥ ३९

हे साध्वि! इस प्रकार तुम तपस्या करो, क्योंकि तपस्यासे महेश्वर वशमें हो सकते हैं? तपस्यासे ही सबको मनोनुकूल फलकी प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं॥ ३९॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तदा कालीं नारद त्वं शिवप्रियः।
यादृच्छिकोऽगमस्त्वं तु स्वर्गं देवहिते रतः॥ ४०

पार्वती च तदा श्रुत्वा वचनं तव नारद।
सुप्रसन्ना तदा प्राप पंचाक्षरमनूत्तमम्॥ ४१

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! कालीसे इस प्रकार कहकर भगवान् शिवके प्रिय [भक्त], इच्छानुसार विचरण करनेवाले तथा देवताओंके हितमें तत्पर रहनेवाले आपने स्वर्गलोकको प्रस्थान किया। हे नारद! तब आपकी बातको सुनकर पार्वती बहुत प्रसन्न हुईं; क्योंकि उन्हें परम उत्तम पंचाक्षर मन्त्रराजकी प्राप्ति हो गयी थी॥ ४०-४१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे नारदोपदेशो नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें नारदोपदेशवर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

पार्वतीकी तपस्या एवं उसके प्रभावका वर्णन

ब्रह्मोवाच

त्वयि देवमुने याते पार्वती हृष्टमानसा।
तपःसाध्यं हरं मेने तपोऽर्थं मन आदधे॥ १

ततः सख्यौ समादाय जयां च विजयां तथा।
मातरं पितरं चैव सखीभ्यां पर्यपृच्छत॥ २

ब्रह्माजी बोले—हे देवर्षे! आपके चले जानेपर प्रसन्नचित्त पार्वतीने शिवजीको तपस्यासे ही साध्य माना और तपस्या करनेका मन बना लिया। तदनन्तर पार्वतीने अपनी जया एवं विजया नामक सखियोंके द्वारा अपनी माता मेना तथा पिता हिमालयसे तप करनेकी आज्ञा माँगी॥ १-२॥

प्रथमं पितरं गत्वा हिमवन्तं नगेश्वरम्।
पर्यपृच्छत्सुप्रणम्य विनयेन समन्विता॥ ३

उन दोनों सखियोंने सबसे पहले पर्वतराज हिमालयके पास जाकर नम्रतापूर्वक भक्तिभावसे प्रणामकर पूछा— ॥ ३॥

सख्यावूचतुः

हिमवन् श्रूयतां पुत्रीवचनं कथ्यतेऽधुना।
सा स्वयं चैव देहस्य रूपस्यापि तथा पुनः॥ ४

भवतो हि कुलस्यास्य साफल्यं कर्तुमिच्छति।
तपसा साधनीयोऽसौ नान्यथा दृश्यतां व्रजेत्॥ ५

सखियाँ बोलीं—हे हिमालय! आपकी पुत्री पार्वती, जो आपसे कुछ कहना चाह रही है, उसे सुनिये। यह आपकी पुत्री अपने शरीर, रूप तथा आपके कुलको [भगवान् शंकरकी आराधनासे] सफल बनाना चाहती है। वे शंकर तपस्यासे ही साध्य हैं, अन्य उपायसे उनका दर्शन सम्भव नहीं है॥ ४-५॥

तस्माच्च पर्वतश्रेष्ठ देयाज्ञा भवताधुना।
तपः करोतु गिरिजा वनं गत्वेति सादरम्॥ ६

हे गिरिराज! इसलिये आपको इसी समय आज्ञा प्रदान करनी चाहिये, जिससे गिरिजा वनमें जाकर आदरपूर्वक तपस्या करे॥ ६॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं च तदा पृष्टः सखीभ्यां मुनिसत्तम।
पार्वत्या सुविचार्याथ गिरिराजोऽब्रवीदिदम्॥ ७

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! पार्वतीकी सखियोंके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर गिरिराज भलीभाँति विचारकर यह कहने लगे—॥ ७॥

हिमालय उवाच

मह्यं च रोचतेऽत्यर्थं मेनायै रुच्यतां पुनः।
यथेदं भवितव्यं च किमतः परमुत्तमम्॥ ८

हिमालय बोले—मुझे तो यह बात अच्छी लगती है, परंतु यदि पार्वतीकी माताको यह बात अच्छी लगे तो ऐसा ही होना चाहिये। यदि ऐसा हो तो इससे बढ़कर और क्या बात हो सकती है॥ ८॥

साफल्यं तु मदीयस्य कुलस्य च न संशयः।
मात्रे तु रुच्यते चेद्वै ततः शुभतरं नु किम्॥ ९

यदि पार्वतीकी माताको यह बात रुचिकर लगे, तो इसमें हम तथा हमारा कुल दोनों ही धन्य हो जायँगे। इससे बढ़कर और शुभकारक कौन-सी उत्तम बात होगी॥ ९॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वचनं पित्रा प्रोक्तं श्रुत्वा तु ते तदा।
जग्मतुर्मातरं सख्यौ तदाज्ञप्ते तया सह॥ १०
गत्वा तु मातरं तस्याः पार्वत्यास्ते च नारद।
सुप्रणम्य करौ बध्वोचतुर्वचनमादरात्॥ ११

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार दोनों सखियाँ पार्वतीके पिताके वचनको सुनकर पार्वतीकी मातासे आज्ञा लेनेके लिये उनके साथ वहाँ गयीं। हे नारद! पार्वतीकी माताके पास जाकर प्रणामकर हाथ जोड़कर आदरपूर्वक उनसे यह वचन कहने लगीं—॥ १०-११॥

सख्यावूचतुः

मातस्त्वं वचनं पुत्र्याः शृणु देवि नमोऽस्तु ते।
सुप्रसन्नतया तद्वै श्रुत्वा कर्तुमिहार्हसि॥ १२

सखियाँ बोलीं—हे देवि! आपको नमस्कार है। हे मातः! आप पार्वतीके वचनको सुनें और उसे सुनकर प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करें॥ १२॥

तप्तुकामा तु ते पुत्री शिवार्थं परमं तपः।
प्राप्तानुज्ञा पितुश्चैव तुभ्यं च परिपृच्छति॥ १३

आपकी यह पुत्री शिवजीको प्राप्त करनेहेतु तपस्या करना चाहती है। इसे तप करनेकी आज्ञा पितासे प्राप्त हो गयी है। अब आपसे पूछ रही है॥ १३॥

इयं स्वरूपसाफल्यं कर्तुकामा पतिव्रते।
त्वदाज्ञा यदि जायेत तप्यते च तथा तपः॥ १४

हे पतिव्रते! यह [उत्तम पति प्राप्त करनेहेतु] अपने स्वरूपको सफल बनाना चाहती है, अतः यदि आपकी आज्ञा हो, तो यह तपस्या करे॥ १४॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा च ततः सख्यौ तूष्णीमास्तां मुनीश्वर।
नाङ्गीचकार मेना सा तद्वाक्यं खिन्नमानसा॥ १५
ततः सा पार्वती प्राह स्वयमेवाथ मातरम्।
करौ बद्ध्वा विनीतात्मा स्मृत्वा शिवपदांबुजम्॥ १६

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! इस प्रकार कहकर सखियाँ चुप हो गयीं। मेना [यह बात सुनते ही] खिन्न मनवाली हो गयीं और उन्होंने इस बातको अस्वीकार कर दिया। तब वे पार्वती शिवजीके चरणकमलोंका ध्यानकर हाथ जोड़कर विनम्रचित्त होकर अपनी मातासे स्वयं कहने लगीं—॥ १५-१६॥

पार्वत्युवाच

मातस्तप्तुं गमिष्यामि प्रातः प्राप्तुं महेश्वरम्।
अनुजानीहि मां गन्तुं तपसेऽद्य तपोवनम्॥ १७

पार्वती बोलीं—हे मातः! मैं महेश्वरको प्राप्त करनेके लिये प्रातःकाल तपस्याहेतु तपोवन जाना चाहती हूँ, अतः आप मुझे जानेके लिये आज ही आज्ञा प्रदान कीजिये॥ १७॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचः पुत्र्या मेना दुःखमुपागता।
सोपाहूय तदा पुत्रीमुवाच विकला सती॥ १८

मेनोवाच

दुःखितासि शिवे पुत्रि तपस्तप्तुं पुरा यदि।
तपश्चर गृहेऽद्य त्वं न बहिर्गच्छ पार्वति॥ १९

कुत्र यासि तपः कर्तुं देवाः सन्ति गृहे मम।
तीर्थानि च समस्तानि क्षेत्राणि विविधानि च॥ २०

कर्तव्यो न हठः पुत्रि गंतव्यं न बहिः क्वचित्।
साधितं किं त्वया पूर्वं पुनः किं साधयिष्यसि॥ २१

शरीरं कोमलं वत्से तपस्तु कठिनं महत्।
एतस्मात्तु त्वया कार्यं तपोऽत्र न बहिर्व्रज॥ २२

स्त्रीणां तपोवनगतिर्न श्रुता कामनार्थिनी।
तस्मात्त्वं पुत्रि मा कार्षीः तपोऽर्थं गमनं प्रति॥ २३

ब्रह्मोवाच

इत्येवं बहुधा पुत्री तन्मात्रा विनिवारिता।
संवदे न सुखं किंचिद्विनाराध्य महेश्वरम्॥ २४

तपोनिषिद्धा तपसे वनं गन्तुं च मेनया।
हेतुना तेन सोमेति नाम प्राप शिवा तदा॥ २५

अथ तां दुःखितां ज्ञात्वा मेना शैलप्रिया शिवाम्।
निदेशं सा ददौ तस्याः पार्वत्यास्तपसे मुने॥ २६

मातुराज्ञां च संप्राप्य सुव्रता मुनिसत्तम।
ततः स्वांते सुखं लेभे पार्वती स्मृतशंकरा॥ २७

मातरं पितरं साथ प्रणिपत्य मुदा शिवा।
सखीभ्यां च शिवं स्मृत्वा तपस्तप्तुं समुद्गता॥ २८

हित्वा मतान्यनेकानि वस्त्राणि विविधानि च।
वल्कलानि धृतान्याशु मौञ्जीं बद्ध्वा तु शोभनाम्॥ २९

ब्रह्माजी बोले—पुत्रीकी यह बात सुनकर मेना दुखी हो गयीं और विकल होकर पुत्रीको अपने पास बुलाकर कहने लगीं— ॥ १८ ॥

मेना बोलीं—हे शिवे! हे पुत्रि! यदि तुम दुखी हो और तपस्या करना चाहती हो, तो घरमें ही तपस्या करो, हे पार्वति! अब बाहर मत जाओ॥ १९ ॥

जब मेरे घरमें ही सब देवता, तीर्थ तथा समस्त क्षेत्र विद्यमान हैं, तो तप करनेके लिये तुम अन्यत्र कहाँ जा रही हो? हे पुत्रि! तुम हठ मत करो और न तो कहीं बाहर जाओ। तुमने पहले क्या सिद्ध कर लिया और अब क्या सिद्ध करोगी? हे वत्से! तुम्हारा शरीर कोमल है और तपस्या तो बड़ा कठिन कार्य है। इसलिये तुम यहीं तपस्या करो। कहीं बाहर मत जाओ॥ २०—२२ ॥

मनोकामनाकी पूर्तिके लिये स्त्रियोंके वन जानेकी बात तो मैंने नहीं सुनी है, इसलिये हे पुत्रि! तपस्या करनेके लिये वनगमनका विचार मत करो॥ २३ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार उनकी माताने अनेक प्रकारसे पुत्रीको वन जानेके लिये मना किया, किंतु शंकरजीकी आराधनाके बिना कहीं भी उन पार्वतीको शान्ति नहीं मिली॥ २४॥

मेनाने बार-बार तपस्याके निमित्त वन जानेसे उन्हें रोका, इसी कारणसे शिवाने 'उमा' नाम प्राप्त किया॥ २५ ॥

हे मुने! इसके बाद तपस्याकी अनुमति न मिलनेसे उन शिवाको दुखी जानकर शैलप्रिया मेनाने पार्वतीको तप करनेके लिये आज्ञा प्रदान कर दी॥ २६ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! माताकी आज्ञा पाकर उत्तम व्रतवाली पार्वतीने शंकरका स्मरण करते हुए अपने मनमें बड़े सुखका अनुभव किया॥ २७॥

तदनन्तर शिवा माता-पिताको प्रसन्नतापूर्वक प्रणामकर अपनी दोनों सखियोंको साथ लेकर शिवजीका स्मरण करके तपस्या करनेके लिये वनकी ओर चलीं॥ २८॥

उन्होंने अनेक प्रकारके विचारों, प्रिय वस्तुओं तथा नाना प्रकारके वस्त्रोंका परित्यागकर मौंजी, मेखला बाँधकर सुन्दर वल्कलको धारण कर लिया

हित्वा हारं तथा चर्म मृगस्य परमं धृतम्।
जगाम तपसे तत्र गङ्गावतरणं प्रति॥ ३०

और बहुमूल्य हार उतारकर मृगचर्म धारण कर लिया। इसके बाद वे तपस्या करनेके लिये गंगावतरण नामक स्थानपर चली गयीं॥ २९-३०॥

शंभुना कुर्वता ध्यानं यत्र दग्धो मनोभवः।
गङ्गावतरणो नाम प्रस्थो हिमवतः स च॥ ३१
हरशून्योऽथ ददृशे स प्रस्थो हिमभूभृतः।
काल्या तत्रेत्य भोस्तात पार्वत्या जगदम्बया॥ ३२

ध्यान करते हुए शंकरने जहाँ कामदेवको जलाकर भस्म कर दिया था, वही हिमालयका गंगावतरण नामवाला शिखर है। हे तात! काली हिमवत्प्रदेशके शिखरपर स्थित उसी गंगावतरण नामक स्थानपर गयीं और जगदम्बा पार्वती कालीने उसे शिवजीसे रहित देखा॥ ३१-३२॥

यत्र स्थित्वा पुरा शंभुः तप्तवान्दुस्तरं तपः।
तत्र क्षणं तु सा स्थित्वा बभूव विरहार्दिता॥ ३३

हा हरेति शिवा तत्र रुदन्ती सा गिरेः सुता।
विललापातिदुःखार्ता चिन्ताशोकसमन्विता॥ ३४

जहाँ स्थित रहकर शिवजीने अत्यन्त कठिन तप किया था, उस स्थानपर जाकर वे क्षणभरके लिये शिवविरहसे व्याकुल हो उठीं। उस समय वे हा शंकर! इस प्रकार कहकर रोती हुई चिन्ता तथा शोकसे युक्त होकर अत्यन्त दुःखित हो विलाप करने लगीं॥ ३३-३४॥

ततश्चिरेण सा मोहं धैर्यात्संस्तभ्य पार्वती।
नियमायाभवत्तत्र दीक्षिता हिमवत्सुता॥ ३५

इसके अनन्तर बहुत समयके बाद हिमालयपुत्री पार्वती धैर्यपूर्वक मोहका त्याग करके नियममें दीक्षित हुईं॥ ३५॥

तपश्चकार सा तत्र शृंगितीर्थे महोत्तमे।
गौरीशिखर नामासीत्तत्तपःकरणाद्धि तत्॥ ३६

वे उस महान् उत्तम शृंगी तीर्थमें तपस्या करने लगीं। उस स्थानमें गौरीके तपस्या करनेके कारण उसका गौरीशंकर—ऐसा नाम पड़ा॥ ३६॥

सुंदराश्च द्रुमास्तत्र पवित्राश्शिवया मुने।
आरोपिताः परीक्षार्थं तपसः फलभागिनः॥ ३७
भूमिशुद्धिं ततः कृत्वा वेदीं निर्माय सुंदरी।
तथा तपः समारब्धं मुनीनामपि दुष्करम्॥ ३८
विगृह्य मनसा सर्वाणीन्द्रियाणि सहाशु सा।
समुपस्थानिके तत्र चकार परमं तपः॥ ३९

हे मुने! वहाँ पार्वतीने अपनी तपस्याकी परीक्षाके लिये अनेक प्रकारके पवित्र, सुन्दर तथा फलवान् वृक्ष लगाये। उन सुन्दरीने भूमिशुद्धि और वेदीका निर्माण करके मनके साथ समस्त इन्द्रियोंको रोककर उसी स्थानपर मुनियोंके लिये भी कठिन तपस्या आरम्भ कर दी॥ ३७—३९॥

ग्रीष्मे च परितो वह्निं प्रज्वलन्तं दिवानिशम्।
कृत्वा तस्थौ च तन्मध्ये सततं जपती मनुम्॥ ४०

वे ग्रीष्मकालमें दिन-रात अग्नि प्रज्वलितकर उसके बीचमें बैठकर पंचाग्नि तापती हुई पंचाक्षर महामन्त्रका जप करती थीं॥ ४०॥

सततं चैव वर्षासु स्थंडिले सुस्थिरासना।
शिलापृष्ठे च संसिक्ता बभूव जलधारया॥ ४१
शीते जलांतरे शश्वत्तस्थौ सा भक्तितत्परा।
अनाहारातपत्तत्र नीहारेषु निशासु च॥ ४२

वे वर्षाके समय पत्थरकी चट्टानके स्थण्डिलपर सुस्थिर आसन लगाकर बैठी हुई खुले आकाशके नीचे जलकी धारा सहन करतीं और भक्तिमें तत्पर होकर निराहार रहकर वे शीतकालकी रात्रियोंमें निरन्तर शीतल जलमें निवास करतीं॥ ४१-४२॥

एवं तपः प्रकुर्वाणा पंचाक्षरजपे रता।
दध्यौ शिवं शिवा तत्र सर्वकामफलप्रदम्॥ ४३

इस प्रकार पंचाक्षर मन्त्रके जपमें रत होकर तप करती हुई वे सम्पूर्ण मनोवांछित फलके दाता शंकरका ध्यान करने लगीं। वे प्रतिदिन अवकाश मिलनेपर

स्वारोपितान् शुभान्वृक्षान्सखीभिस्सिञ्चती मुदा।
प्रत्यहं सावकाशे सा तत्रातिथ्यमकल्पयत्॥ ४४

अपने द्वारा लगाये गये सुन्दर वृक्षोंको सखियोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक सींचती थीं तथा अतिथिसत्कार भी करती थीं॥ ४३-४४॥

वातश्चैव तथा शीतवृष्टिश्च विविधा तथा।
दुस्सहोऽपि तथा घर्म्मस्तया सेहे सुचित्तया॥ ४५

शुद्धचित्तवाली वे पार्वती आँधी, सर्दी, अनेक प्रकारकी वर्षा तथा असह्य धूप बिना कष्ट माने सहन करती थीं॥ ४५॥

दुःखं च विविधं तत्र गणितं न तयागतम्।
केवलं मन आधाय शिवे सासीत्स्थिता मुने॥ ४६

हे मुने! इस प्रकार उनके ऊपर अनेक प्रकारके दुःख आये, परंतु उन्होंने उनकी कुछ भी परवाह नहीं की। वे केवल शिवमें मन लगाकर वहाँ स्थित थीं॥ ४६॥

प्रथमं फलभोगेन द्वितीयं पर्णभोजनैः।
तपः प्रकुर्वती देवी क्रमान्निन्येऽमिताः समाः॥ ४७

इस प्रकार तप करती हुई देवीने पहले फलाहारसे, फिर पत्तेके आहारसे क्रमशः अनेक वर्ष बिताये॥ ४७॥

ततः पर्णान्यपि शिवा निरस्य हिमवत्सुता।
निराहाराभवद्देवी तपश्चरणसंरता॥ ४८

तदनन्तर हिमालयपुत्री शिवा देवी पत्ते भी छोड़कर सर्वथा निराहार रहकर तपस्यामें लीन रहने लगीं॥ ४८॥

आहारे त्यक्तपर्णाभूद्यस्माद्धिमवतः सुता।
तेन देवैरपर्णेति कथिता नामतः शिवा॥ ४९

जब उन हिमालयपुत्री शिवाने पत्ते खाना भी छोड़ दिया, तब वे शिवा देवताओंके द्वारा 'अपर्णा' कही जाने लगीं॥ ४९॥

एकपादस्थिता सासीच्छिवं संस्मृत्य पार्वती।
पंचाक्षरं जपन्ती च मनुं तेपे तपो महत्॥ ५०

चीरवल्कलसंवीता जटासंघातधारिणी।
शिवचिंतनसंसक्ता जिगाय तपसा मुनीन्॥ ५१

इसके बाद पार्वती भगवान् शिवका ध्यान करके एक पैरपर खड़ी होकर पंचाक्षरमन्त्रका जप करती हुई कठोर तपस्या करने लगीं। उनके अंग चीर और वल्कलसे ढँके थे, वे सिरपर जटाजूटको धारण किये हुए थीं। इस प्रकार शिवजीके चिन्तनमें लगी हुई पार्वतीने तपस्याके द्वारा मुनियोंको भी जीत लिया॥ ५०-५१॥

एवं तस्यास्तपस्यन्त्या चिन्तयन्त्या महेश्वरम्।
त्रीणि वर्षसहस्त्राणि जग्मुः काल्यास्तपोवने॥ ५२

षष्टिवर्षसहस्त्राणि यत्र तेपे तपो हरः।
तत्र क्षणमथोषित्वा चिंतयामास सा शिवा॥ ५३

इस प्रकार तप करती हुई तथा महेश्वरका चिन्तन करती हुई उन कालीने तीन हजार वर्ष इस तपोवनमें बिता दिये। जहाँपर शंकरजीने साठ हजार वर्षतक तपस्या की थी, उस स्थानपर कुछ क्षण रुककर वे अपने मनमें विचार करने लगीं॥ ५२-५३॥

नियमस्थां महादेव किं मां जानासि नाधुना।
येनाहं सुचिरं तेन नानुयाता तपोरता॥ ५४

लोके वेदे च गिरिशो मुनिभिर्गीयते सदा।
शंकरः स हि सर्वज्ञः सर्वात्मा सर्वदर्शनः॥ ५५

हे महादेव! क्या आप तपस्यामें संलग्न हुई मुझे नहीं जानते, जो कि मुझे तपस्यामें लीन हुए इतने वर्ष बीत गये फिर भी आपने मेरी सुधि न ली। लोक एवं वेदमें मुनियोंके द्वारा सदा गान किया जाता है कि भगवान् शंकर सर्वज्ञ, सर्वात्मा तथा सर्वदर्शन हैं॥ ५४-५५॥

सर्वभूतिप्रदो देवः सर्वभावानुभावनः।
भक्ताभीष्टप्रदो नित्यं सर्वक्लेशनिवारणः॥ ५६

वे देव समस्त ऐश्वर्यको प्रदान करनेवाले, सब प्रकारके भावोंसे प्राप्त होनेवाले, भक्तोंके मनोरथ सदा पूर्ण करनेवाले तथा सभी प्रकारके कष्टोंको दूर करनेवाले हैं॥ ५६॥

सर्वकामान्परित्यज्य यदि चाहं वृषध्वजे।
अनुरक्ता तदा सोऽत्र संप्रसीदतु शंकरः॥ ५७

यदि नारदतंत्रोक्तमंत्रो जप्तः शराक्षरः।
सुभक्त्या विधिना नित्यं संप्रसीदतु शंकरः॥ ५८

यदि भक्त्या शिवस्याहं निर्विकारा यथोदितम्।
सर्वेश्वरस्य चात्यन्तं संप्रसीदतु शंकरः॥ ५९

यदि मैं अपनी सारी कामनाओंका त्यागकर मात्र वृषध्वज शंकरमें अनुरक्त हूँ, तो वे शंकर मुझपर प्रसन्न हों। यदि मैंने उत्तम भक्तिके साथ विधिपूर्वक नित्य नारदतन्त्रोक्त पंचाक्षर मन्त्रका जप किया है, तो वे शिवजी मेरे ऊपर प्रसन्न हों॥ ५७-५८॥

यदि मैंने विकाररहित होकर भक्तिपूर्वक सर्वेश्वर शिवका यथोक्त चिन्तन किया है, तो वे शंकर [मुझपर] परम प्रसन्न हों॥ ५९॥

एवं चिंतयती नित्यं तेपे सा सुचिरं तपः।
अधोमुखी निर्विकारा जटावल्कलधारिणी॥ ६०

इस तरह नित्य अपने मनमें सोचती हुई उन्होंने नीचेकी ओर मुख किये एवं जटा-वल्कल धारणकर निर्विकार होकर दीर्घकालतक तप किया॥ ६०॥

तथा तया तपस्तप्तं मुनीनामपि दुष्करम्।
स्मृत्वा च पुरुषास्तत्र परमं विस्मयं गताः॥ ६१

तत्तपोदर्शनार्थं हि समाजग्मुश्च तेऽखिलाः।
धन्यान्निजान्मन्यमाना जगदुश्चेति सम्मताः॥ ६२

इस तरह उन्होंने मुनियोंके लिये भी दुष्कर तपस्या की, जिसका स्मरणकर वहाँ सभी पुरुष परम विस्मयमें पड़ गये। उनकी तपस्या देखनेके लिये सभी लोग वहाँ उपस्थित हो गये और अपनेको धन्य मानते हुए एक स्वरसे कहने लगे॥ ६१-६२॥

महतां धर्मवृद्धेषु गमनं श्रेय उच्यते।
प्रमाणं तपसो नास्ति मान्यो धर्मः सदा बुधैः॥ ६३

धर्मवृद्धोंके पास बड़े लोगोंका जाना कल्याणकारी कहा गया है। तपस्यामें कोई प्रमाण नहीं है, विद्वानोंको सदा धर्मका मान करना चाहिये॥ ६३॥

श्रुत्वा दृष्ट्वा तपोऽस्यास्तु किमन्यैः क्रियते तपः।
अस्मात्तपोऽधिकं लोके न भूतं न भविष्यति॥ ६४

जल्पन्त इति ते सर्वे सुप्रशस्य शिवातपः।
जग्मुः स्वं धाम मुदिताः कठिनाङ्गाश्च ये ह्यपि॥ ६५

इसकी तपस्याको सुनकर तथा देखकर [ऐसा ज्ञात होता है कि] अन्य लोग क्या तप कर सकते हैं। संसारमें इसके तपसे बढ़कर कोई तप न तो हुआ है और न होगा। इस प्रकार कहते हुए पार्वतीके तपकी प्रशंसाकर कठोर अंगवाले वे तपस्वी तथा अन्य जन प्रसन्न हो अपने-अपने स्थानोंको चले गये॥ ६४-६५॥

अन्यच्छृणु महर्षे त्वं प्रभावं तपसोऽधुना।
पार्वत्या जगदम्बायाः पराश्चर्यकरं महत्॥ ६६

[ब्रह्माजी बोले—] हे महर्षे! अब आप जगदम्बा पार्वतीकी तपस्याके अन्य बड़े प्रभावको सुनिये, जो महान् आश्चर्यजनक चरित्र है॥ ६६॥

तदाश्रमगता ये च स्वभावेन विरोधिनः।
तेऽप्यासँस्तत्प्रभावेण विरोधरहितास्तदा॥ ६७

पार्वतीके आश्रममें रहनेवाले समस्त जन्तु जो स्वभावसे ही परस्पर विरोधी थे, वे भी उनकी तपस्याके प्रभावसे वैररहित हो गये॥ ६७॥

सिंहा गावश्च सततं रागादिदोषसंयुताः।
तन्महिम्ना च ते तत्र नाबाधन्त परस्परम्॥ ६८

निरन्तर राग आदि दोषसे युक्त रहनेवाले वे सिंह और गौ आदि भी वहाँ उनकी तपस्याकी महिमासे परस्पर बाधा नहीं पहुँचाते थे॥ ६८॥

अथान्ये च मुनिश्रेष्ठ मार्जारा मूषकादयः।
निसर्गाद्वैरिणो यत्र विक्रियंते स्म न क्वचित्॥ ६९

हे मुनिश्रेष्ठ! मार्जार, मूषक आदि भी जो स्वभावसे आपसमें वैर करनेवाले हैं, वे भी [एक-दूसरेके प्रति] कभी विकारभाव नहीं रखते थे॥ ६९॥

वृक्षाश्च सफलास्तत्र तृणानि विविधानि च।
पुष्पाणि च विचित्राणि तत्रासन्मुनिसत्तम॥ ७०

हे मुनिसत्तम! वहाँ फलयुक्त वृक्ष, विविध प्रकारके तृण और विचित्र पुष्प उत्पन्न हो गये॥ ७०॥

तद्वनं च तदा सर्वं कैलासेनोपमान्वितम्।
जातं च तपसस्तस्याः सिद्धिरूपमभूत्तदा॥ ७१

वह सम्पूर्ण वन उनकी तपस्याकी सिद्धिके रूपमें हो गया और कैलासके समान मालूम पड़ने लगा॥ ७१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे पार्वतीतपोवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें पार्वतीतपस्यावर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

हिमालय आदिका तपस्यानिरत पार्वतीके पास जाना, पार्वतीका पिता हिमालय आदिको अपने तपके विषयमें दृढ़ निश्चयकी बात बताना, पार्वतीके तपके प्रभावसे त्रैलोक्यका संतप्त होना, सभी देवताओंका भगवान् शंकरके पास जाना

ब्रह्मोवाच

एवं तपत्यां पार्वत्यां शिवप्राप्तौ मुनीश्वर।
चिरकालो व्यतीयाय प्रादुर्भूतो हरो न हि॥ १

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! शिवजीकी प्राप्तिके लिये इस प्रकार तपस्या करती हुई पार्वतीका बहुत समय व्यतीत हो गया, तो भी शंकर प्रकट नहीं हुए॥ १॥

हिमालयस्तदागत्य पार्वतीं कृतनिश्चयाम्।
सभार्यः ससुतामात्य उवाच परमेश्वरीम्॥ २

तब अपने संकल्पमें दृढ़ निश्चयवाली परमेश्वरी पार्वतीके समीप अपनी भार्या, पुत्र तथा मन्त्रियोंसहित आकर गिरिराज हिमालय उनसे कहने लगे—॥ २॥

हिमालय उवाच

मा खिद्यतां महाभागे तपसानेन पार्वति।
रुद्रो न दृश्यते बाले विरक्तो नात्र संशयः॥ ३

हिमालय बोले—हे महाभागे! हे पार्वति! तुम इस तपसे दुखी मत होओ, हे बाले! रुद्र विरक्त हैं, इसलिये तुम्हें दर्शन नहीं दे रहे हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३॥

त्वं तन्वी सुकुमाराङ्गी तपसा च विमोहिता।
भविष्यसि न संदेहः सत्यं सत्यं वदामि ते॥ ४

दुबली-पतली तथा सुकुमार अंगोंवाली तुम इस तपस्यासे मूर्च्छित हो जाओगी, इसमें सन्देह नहीं है, यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ॥ ४॥

तस्मादुत्तिष्ठ चैहि त्वं स्वगृहं वरवर्णिनि।
किं तेन तव रुद्रेण येन दग्धः पुरा स्मरः॥ ५

इसलिये हे वरवर्णिनि! तुम उठो और अपने घर चलो। उन रुद्रसे तुम्हारा कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होगा, जिन्होंने पहले कामदेवको ही भस्म कर दिया है?॥ ५॥

अतो हि निर्विकारत्वात्त्वामादातुं वरां हरः।
नागमिष्यति देवेशि तं कथं प्रार्थयिष्यसि॥ ६

गगनस्थो यथा चंद्रो ग्रहीतुं न हि शक्यते।
तथैव दुर्गमं शंभुं जानीहि त्वमिहानघे॥ ७

जब निर्विकार होनेके कारण वे शिव तुम्हें ग्रहण करने नहीं आयेंगे, तो हे देवेशि! तुम उनसे प्रार्थना भी क्यों करोगी? जिस प्रकार आकाशमें रहनेवाले चन्द्रमाको ग्रहण नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार हे अनघे! तुम शिवजीको भी दुर्गम समझो॥ ६-७॥

ब्रह्मोवाच

तथैव मेनया चोक्ता तथा सह्याद्रिणा सती।
मेरुणा मंदरेणैव मैनाकेन तथैव सा॥ ८
एवमन्यैः क्षितिध्रैश्च क्रौंचादिभिरनातुरा।
तथैव गिरिजा प्रोक्ता नानावादविधायिभिः॥ ९
एवं प्रोक्ता यदा तन्वी सा सर्वैः तपसि स्थिता।
उवाच प्रहसंत्येव हिमवंतं शुचिस्मिता॥ १०

पार्वत्युवाच

पुरा प्रोक्तं मया तात मातः किं विस्मृतं त्वया।
अधुनापि प्रतिज्ञां च शृणुध्वं मम बांधवाः॥ ११
विरक्तोऽसौ महादेवो येन दग्धो रुषा स्मरः।
तं तोषयामि तपसा शंकरं भक्तवत्सलम्॥ १२
सर्वे भवन्तो गच्छन्तु स्वं स्वं धाम प्रहर्षिताः।
भविष्यत्येव तुष्टोऽसौ नात्र कार्या विचारणा॥ १३
दग्धो हि मदनो येन येन दग्धं गिरेर्वनम्।
तमानयिष्ये चात्रैव तपसा केवलेन हि॥ १४
तपोबलेन महता सुसेव्यो हि सदाशिवः।
जानीध्वं हि महाभागाः सत्यं सत्यं वदामि वः॥ १५

ब्रह्मोवाच

आभाष्य चैवं गिरिजा च मेनकां
मैनाकबंधुं पितरं हिमालयम्।
तूष्णीं बभूवाशु सुभाषिणी शिवा
समंदरं पर्वतराजबालिका॥ १६
जग्मुस्तथोक्ताः शिवया हि पर्वता
यथागतेनापि विचक्षणास्ते।
प्रशंसमाना गिरिजां मुहुर्मुहुः
सुविस्मिता हेमनगेश्वराद्याः॥ १७
गतेषु तेषु सर्वेषु सखीभिः परिवारिता।
तपस्तेपे तदधिकं परमार्थसुनिश्चया॥ १८
तपसा महता तेन तप्तमासीच्चराचरम्।
त्रैलोक्यं हि मुनिश्रेष्ठ सदेवासुरमानुषम्॥ १९
तदा सुरासुराः सर्वे यक्षकिन्नरचारणाः।
सिद्धाः साध्याश्च मुनयो विद्याधरमहोरगाः॥ २०
सप्रजापतयश्चैव गुह्यकाश्च तथापरे।
कष्टात् कष्टतरं प्राप्ताः कारणं न विदुः स्म तत्॥ २१

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार मेना, सह्याद्रि, मेरु, मन्दार एवं मैनाकने भी उन सतीको बहुत समझाया, अन्य क्रौंचादि पर्वतोंने भी अनेक कारणोंको प्रदर्शित करते हुए आतुरतासे रहित उन पार्वतीको समझाया॥ ८-९॥

इस प्रकार सब लोगोंके समझा लेनेके बाद तपस्यामें संलग्न वे पवित्र मुसकानवाली तन्वी पार्वती हँसती हुई [अपने पिता] हिमालयसे कहने लगीं—॥ १०॥

पार्वती बोलीं—हे माता! हे पिता! मैंने जो बात पहले कही थी, क्या आपलोग उसे भूल गये? हे बन्धुगण! इस समय आपलोग भी मेरी प्रतिज्ञा सुनें॥ ११॥

जिन्होंने क्रोधसे कामदेवको जला दिया, वे महादेव निश्चय ही विरक्त हैं, किंतु उन भक्तवत्सल शंकरको मैं अपनी तपस्यासे सन्तुष्ट करूँगी॥ १२॥

आप सभी लोग परम प्रसन्न होकर अपने अपने घरोंको जायँ। वे अवश्य ही प्रसन्न होंगे, इसमें सन्देह नहीं। जिन्होंने कामदेवको भस्म कर दिया तथा जिन्होंने पर्वतके वनको भी जला दिया, उन सदाशिवको मैं केवल अपनी तपस्यासे यहाँ अवश्य बुलाऊँगी। हे महाभागो! वे सदाशिव महान् तपोबलसे अवश्य प्रसन्न हो जाते हैं, यह निश्चित जानिये, मैं आपलोगोंसे सत्य कह रही हूँ॥ १३—१५॥

ब्रह्माजी बोले—पर्वतराजकी पुत्री सुभाषिणी पार्वती अपनी माता मेनका, भाई मैनाक, मन्दर तथा पिता हिमालयसे इतना कहकर चुप हो गयीं। इस प्रकार जब शिवाने उनसे कहा, तब वे विचक्षण हिमनग आदि पर्वत बार-बार गिरिजाकी प्रशंसा करते हुए जहाँसे आये थे, वहाँ अत्यन्त विस्मित हो चले गये॥ १६-१७॥

उन सबके चले जानेपर सखियोंसहित वे पार्वती परमार्थके निश्चयसे युक्त हो और अधिक दृढ़तासे महान् तपस्या करने लगीं। हे मुनिश्रेष्ठ! उस महान् तपस्यासे देवता, असुर एवं मनुष्यसहित चराचर त्रैलोक्य सन्तप्त हो उठा॥ १८-१९॥

उस समय समस्त सुर, असुर, यक्ष, किन्नर, चारण, सिद्ध, साध्य, मुनि, विद्याधर, महान् उरग, प्रजापति एवं गुह्यक तथा अन्य प्राणी बड़े कष्टको प्राप्त हुए, किंतु वे इसका कारण न समझ सके॥ २०-२१॥

सर्वे मिलित्वा शक्राद्या गुरुमामंत्र्य विह्वलाः।
सुमेरौ तप्तसर्वाङ्गा विधिं मां शरणं ययुः॥ २२

तत्र गत्वा प्रणम्याशु विह्वला नष्टसुत्विषः।
ऊचुः सर्वे च संस्तूय ह्यैकपद्येन मां हि ते॥ २३

तपते हुए समस्त अंगवाले तथा व्याकुल वे सभी इन्द्र आदि परस्पर मिलकर गुरु बृहस्पतिसे परामर्श करके मुझ ब्रह्माकी शरणमें सुमेरु पर्वतपर गये। नष्ट कान्तिवाले तथा व्याकुल वे सब वहाँ पहुँचकर शीघ्र प्रणाम करके तथा स्तुति करके एक साथ मुझसे कहने लगे—॥ २२-२३॥

देवा ऊचुः

त्वया सृष्टमिदं सर्वं जगदेतच्चराचरम्।
संतप्तमति कस्माद्वै न ज्ञातं कारणं विभो॥ २४

देवता बोले—हे विभो! इस चराचर सम्पूर्ण जगत्का आपने ही निर्माण किया है, किंतु इस समय यह सारी सृष्टि क्यों जल रही है, इसका कारण ज्ञात नहीं हो पा रहा है॥ २४॥

तद् ब्रूहि कारणं ब्रह्मन् ज्ञातुमर्हसि नः प्रभो।
दग्धीभूततनून्देवान् त्वत्तो नान्योऽस्ति रक्षकः॥ २५

हे प्रभो! हे ब्रह्मन्! इसका कारण आप बताइये; क्योंकि आप ही इसे जाननेमें समर्थ हैं। हम देवगणोंका सारा शरीर जल रहा है। दग्ध होते हुए शरीरवाले हम देवताओंका आपके अतिरिक्त कोई अन्य रक्षक नहीं है॥ २५॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषामहं स्मृत्वा शिवं हृदा।
विचार्य मनसा सर्वं गिरिजायास्तपः फलम्॥ २६

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार देवताओंकी बातको सुनकर मैं शिवजीका स्मरणकर हृदयमें सोचने लगा कि यह सब पार्वतीकी तपस्याका फल है॥ २६॥

दग्धं विश्वमिति ज्ञात्वा तैः सर्वैरिह सादरात्।
हरये तत्कथयितुं क्षीराब्धिमगमं द्रुतम्॥ २७

सारा विश्व जल जायगा, यह जानकर मैं भगवान् विष्णुसे निवेदन करनेके लिये उन सभीके साथ आदरपूर्वक शीघ्र क्षीरसागर गया॥ २७॥

तत्र गत्वा हरिं दृष्ट्वा विलसन्तं सुखासने।
सुप्रणम्य सुसंस्तूय प्रावोचं सांजलिः सुरैः॥ २८

देवगणोंके साथ वहाँ जाकर मैंने देखा कि नारायण सुखपूर्वक आसनपर विराजमान हैं, उस समय मैं उन्हें प्रणामकर तथा स्तुति करके हाथ जोड़कर कहने लगा—॥ २८॥

त्राहि त्राहि महाविष्णो तप्तान्नः शरणागतान्।
तपसोग्रेण पार्वत्यास्तपन्त्याः परमेण हि॥ २९

हे महाविष्णो! तपस्यामें संलग्न पार्वतीकी परम कठोर तपस्यासे हमलोग सन्तप्त हो रहे हैं, अतः हम शरणागतोंकी आप रक्षा कीजिये॥ २९॥

इत्याकर्ण्य वचस्तेषामस्मदादिदिवौकसाम्।
शेषासने समाविष्टोऽस्मानुवाच रमेश्वरः॥ ३०

हम देवताओंका यह वचन सुनकर शेषासनपर बैठे हुए रमेश्वर हमलोगोंसे कहने लगे—॥ ३०॥

विष्णुरुवाच

ज्ञातं सर्वं निदानं मे पार्वतीतपसोऽद्य वै।
युष्माभिः सहितस्त्वद्य व्रजामि परमेश्वरम्॥ ३१

महादेवं प्रार्थयामो गिरिजाप्रापणाय तम्।
पाणिग्रहार्थमधुना लोकानां स्वस्तयेऽमराः॥ ३२

विष्णुजी बोले—मैंने सारा कारण जान लिया है। आप सब लोग पार्वतीकी तपस्यासे सन्तप्त हो रहे हैं, अतः मैं आपलोगोंके साथ अभी परमेश्वरके पास चल रहा हूँ। हे देवगणो! हमलोग सदाशिवके समीप चलकर उनसे प्रार्थना करें कि वे पार्वतीका पाणिग्रहण करें; क्योंकि शिवजीके द्वारा पार्वतीका पाणिग्रहण करनेपर ही लोकका कल्याण होगा॥ ३१-३२॥

वरं दातुं शिवायै हि देवदेवः पिनाकधृक्।
यथा चेष्यति तत्रैव करिष्यामोऽधुना हि तत्॥ ३३

देवाधिदेव पिनाकधारी सदाशिव पार्वतीको वर प्रदान करनेके लिये जिस प्रकार उद्यत हों, उसी प्रकारका उपाय हमलोगोंको इस समय करना चाहिये॥ ३३॥

तस्माद् वयं गमिष्यामो यत्र रुद्रो महाप्रभुः।
तपसोग्रेण संयुक्तोऽद्यास्ते परममङ्गलः॥ ३४

इसलिये अब हमलोग उस स्थानपर चलेंगे, जहाँ परम मंगल महाप्रभु रुद्र इस समय उग्र तपस्यामें लीन हैं॥ ३४॥

ब्रह्मोवाच

विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा सर्व ऊचुः सुरादयः।
महाभीता हठात् कुद्धाद्दग्धुकामात् लयंकरात्॥ ३५

ब्रह्माजी बोले—विष्णुजीकी वह बात सुनकर प्रलय करनेवाले और क्रोधपूर्वक हठसे कामदेवको नष्ट करनेवाले शंकरसे भयभीत वे देवता विष्णुसे कहने लगे— ॥ ३५॥

देवा ऊचुः

महाभयंकरं क्रुद्धं कालानलसमप्रभम्।
न यास्यामो वयं सर्वे विरूपाक्षं महाप्रभुम्॥ ३६
यथा दग्धः पुरा तेन मदनो दुरतिक्रमः।
तथैव क्रोधयुक्तो नः स धक्ष्यति न संशयः॥ ३७

देवतागण बोले—[हे विष्णो!] महाभयंकर, क्रोधी, कालाग्निके समान प्रभावाले तथा विरूपाक्ष महाप्रभुके पास हमलोग नहीं जायँगे; क्योंकि उन्होंने जिस प्रकार दुराधर्ष कामदेवको भस्म कर दिया, उसी प्रकार क्रोधमें भरकर वे हमलोगोंको भी भस्म कर देंगे, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३६-३७॥

ब्रह्मोवाच

तदाकर्ण्य वचस्तेषां शक्रादीनां रमेश्वरः।
सांत्वयंस्तान्सुरान्सर्वान्प्रोवाच स हरिर्मुने॥ ३८

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इन्द्रादि देवताओंकी यह बात सुनकर वे विष्णु उन सभी देवताओंको धीरज बँधाते हुए कहने लगे— ॥ ३८॥

हरिरुवाच

हे सुरा मद्वचः प्रीत्या शृणुतादरतोऽखिलाः।
न वो धक्ष्यति स स्वामी देवानां भयनाशनः॥ ३९
तस्माद्भवद्भिर्गन्तव्यं मया सार्धं विचक्षणैः।
शंभुं शुभकरं मत्वा शरणं तस्य सुप्रभोः॥ ४०

विष्णुजी बोले—हे देवगणो! आप सभी लोग आदरपूर्वक मेरी बात सुनिये, वे सदाशिव आपलोगोंको भस्म नहीं करेंगे; क्योंकि वे देवताओंके भयको नष्ट करनेवाले हैं। इसलिये आप सभी बुद्धिमान् लोग शम्भुको कल्याणकारी मानकर मेरे साथ उन परम प्रभुके पास चलिये॥ ३९-४०॥

शिवं पुराणं पुरुषं ह्यधीशं
वरेण्यरूपं हि परं पुराणम्।
तपो जुषाणं परमात्मरूपं
परात्परं तं शरणं व्रजामः॥ ४१

वे शिव ही पुराणपुरुष, सबके अधीश्वर, सबसे श्रेष्ठ, तपस्या करनेवाले, परमात्मस्वरूप और परात्पर हैं, हमलोगोंको उन्हींका आश्रय लेना चाहिये॥ ४१॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तास्तदा देवा विष्णुना प्रभविष्णुना।
जग्मुः सर्वे तेन सह द्रष्टुकामाः पिनाकिनम्॥ ४२
प्रथमं शैलपुत्र्यास्तत्तपो द्रष्टुं तदाश्रमम्।
जग्मुर्मार्गवशात्सर्वे विष्ण्वाद्याः सकुतूहलाः॥ ४३

ब्रह्माजी बोले—जब सर्वसमर्थ विष्णुने इस प्रकार देवगणोंसे कहा, तब वे सब उनके साथ पिनाकी भगवान् सदाशिवके दर्शन करनेकी इच्छासे चले। विष्णु आदि देवगण मार्गमें पड़नेके कारण सर्वप्रथम कुतूहलवश उस आश्रममें गये, जहाँ पार्वती तपस्या कर रही थीं॥ ४२-४३॥

पार्वत्याः सुतपो दृष्ट्वा तेजसा व्यापृतास्तदा।
प्रणेमुस्तां जगद्धात्रीं तेजोरूपां तपःस्थिताम्॥ ४४

तदनन्तर सभी देवताओंने पार्वतीका तप देखकर उनके तेजसे व्यापृत हो तेजोरूपवाली तथा तपमें अधिष्ठित उन जगदम्बाको प्रणाम किया और

प्रशंसन्तस्तपस्तस्याः साक्षात्सिद्धितनोः सुराः।
जग्मुस्तत्र तदा ते च यत्रास्ते वृषभध्वजः॥ ४५

साक्षात् सिद्धिका शरीर धारण करनेवाली उन पार्वतीके तपकी प्रशंसा करते हुए वे देवगण वहाँ गये, जहाँ वृषध्वज थे॥ ४४-४५॥

तत्र गत्वा च ते देवास्त्वां मुने प्रैषयंस्तदा।
पश्यन्तो दूरतस्तस्थुः कामभस्मकृतो हरात्॥ ४६

नारद त्वं शिवस्थानं तदा गत्वाभयः सदा।
शिवभक्तो विशेषेण प्रसन्नं दृष्टवान् प्रभुम्॥ ४७

पुनरागत्य यत्नेन देवानाहूय तांस्ततः।
निनाय शंकरस्थानं तदा विष्ण्वादिकान्मुने॥ ४८

हे मुने! वहाँ पहुँचकर उन देवताओंने [सर्वप्रथम] आपको शिवके समीप भेजा और वे स्वयं कामको नष्ट करनेवाले भगवान् शंकरको देखते हुए दूर ही स्थित रहे। उस समय हे नारद! विशेषरूपसे शिवभक्त आपने निर्भय होकर शिवजीके स्थानपर जाकर शिवजीको प्रसन्न मुद्रामें देखा। हे मुने! तदनन्तर लौटकर यत्नपूर्वक उन विष्णु आदि देवताओंको बुलाकर आप शिवजीके स्थानपर उन्हें ले गये॥ ४६—४८॥

अथ विष्ण्वादयः सर्वे तत्र गत्वा शिवं प्रभुम्।
ददृशुः सुखमासीनं प्रसन्नं भक्तवत्सलम्॥ ४९

योगपट्टस्थितं शंभुं गणैश्च परिवारितम्।
तपोरूपं दधानं च परमेश्वररूपिणम्॥ ५०

तदनन्तर विष्णु आदि सभी देवताओंने शिवजीके स्थानमें जाकर प्रसन्न मनसे उन भक्तवत्सल भगवान् सदाशिवको सुखपूर्वक बैठे हुए देखा। वे योगासन लगाये हुए अपने गणोंसे घिरे थे। वे परमेश्वररूपी शंकर साक्षात् तपस्याके विग्रहवान् रूप थे॥ ४९-५०॥

ततो विष्णुर्मयान्ये च सुरसिद्धमुनीश्वराः।
प्रणम्य तुष्टुवुः सूक्तैर्वेदोपनिषदन्वितैः॥ ५१

तब विष्णु एवं मेरे साथ रहनेवाले अन्य देव, मुनि तथा सिद्धगण उन परमेश्वर शिवजीको प्रणामकर वेद एवं उपनिषदोंके सूक्तोंद्वारा उनकी स्तुति करने लगे॥ ५१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे पार्वतीसांत्वनशिवदेवदर्शनवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें पार्वतीसान्त्वन-शिवदेवदर्शनवर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

देवताओंका भगवान् शिवसे पार्वतीके साथ विवाह करनेका अनुरोध, भगवान्का विवाहके दोष बताकर अस्वीकार करना तथा उनके पुनः प्रार्थना करनेपर स्वीकार कर लेना

देवा ऊचुः

नमो रुद्राय देवाय मदनांतकराय च।
स्तुत्याय भूरिभासाय त्रिनेत्राय नमो नमः॥ १

देवता बोले—कामदेवको विनष्ट करनेवाले रुद्र देवताको नमस्कार है, स्तुतिके योग्य, अत्यन्त तेजस्वी तथा त्रिनेत्रको बार-बार नमस्कार है॥ १॥

शिपिविष्टाय भीमाय भीमाक्षाय नमो नमः।
महादेवाय प्रभवे त्रिविष्टपतये नमः॥ २

शिपिविष्ट, भीम एवं भीमाक्षको बार-बार नमस्कार है। महादेव, प्रभु तथा स्वर्गपतिको नमस्कार है॥ २॥

त्वं नाथः सर्वलोकानां पिता माता त्वमीश्वरः।
शंभुरीशः शंकरोऽसि दयालुस्त्वं विशेषतः॥ ३

आप सभी लोकोंके नाथ और माता-पिता हैं। आप ईश्वर, शम्भु, ईश, शंकर तथा विशेष रूपसे दयालु हैं॥ ३॥

त्वं धाता सर्वजगतां त्रातुमर्हसि नः प्रभो।
त्वां विना कः समर्थोऽस्ति दुःखनाशे महेश्वर॥ ४

आप ही सब जगत्‌को धारण करते हैं, अतएव हे प्रभो! आप हमलोगोंकी रक्षा कीजिये। हे परमेश्वर! आपके अतिरिक्त और कौन दुःख दूर करनेमें समर्थ है॥ ४॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां सुराणां नन्दिकेश्वरः।
कृपया परया युक्तो विज्ञप्तुं शंभुमारभत्॥ ५

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] उन देवताओंका यह वचन सुनकर परम कृपासे युक्त होकर नन्दिकेश्वर शिवजीसे निवेदन करने लगे—॥ ५॥

नंदिकेश्वर उवाच

विष्णवादयः सुरगणा मुनिसिद्धसंघा-
स्त्वां द्रष्टुमेव सुरवर्य विशेषयन्ति।
कार्यार्थिनोऽसुरवरैः परिभर्त्स्यमानाः
सम्यक् पराभवपदं परमं प्रपन्नाः॥ ६

नन्दिकेश्वर बोले—हे सुरवर्य! सिद्ध, मुनि, विष्णु आदि देवगण दैत्योंसे पराजित एवं तिरस्कृत हो आपकी शरणमें आये हैं और वे आपके दर्शनकी इच्छा करते हैं॥ ६॥

तस्मात्त्वया हि सर्वेश त्रातव्या मुनयः सुराः।
दीनबंधुर्विशेषेण त्वमुक्तो भक्तवत्सलः॥ ७

इसलिये हे सर्वेश! आप [शरणागत हुए] इन देवताओं तथा मुनियोंकी रक्षा कीजिये; क्योंकि आप विशेषरूपसे दीनबन्धु और भक्तवत्सल कहे गये हैं॥ ७॥

ब्रह्मोवाच

एवं दयावता शंभुर्विज्ञप्तो नंदिना भृशम्।
शनैः शनैरुपरमद्ध्यानादुन्मील्य चाक्षिणी॥ ८

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार जब दयालु नन्दिकेश्वरने बार-बार शिवजीसे निवेदन किया, तब उन्होंने धीरे-धीरे अपने नेत्र खोलकर समाधिका त्याग किया॥ ८॥

ईशोऽथोपरतः शंभुस्तदा परमकोविदः।
समाधेः परमात्मासौ सुरान्सर्वानुवाच ह॥ ९

उसके बाद समाधिसे उपरत हुए वे महाज्ञानी परमात्मा शम्भु सभी देवताओंसे कहने लगे—॥ ९॥

शंभुरुवाच

कस्माद्यूयं समायाता मत्समीपं सुरेश्वराः।
हरिब्रह्मादयः सर्वे ब्रूत कारणमाशु तत्॥ १०

शम्भु बोले—आप सभी ब्रह्मा, विष्णु आदि सुरेश्वर मेरे पास किसलिये आये हैं? उस कारणको शीघ्र कहिये॥ १०॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचः शम्भोः सर्वे देवा मुदान्विताः।
विष्णोर्विलोकयामासुर्मुखं विज्ञप्तिहेतवे॥ ११

ब्रह्माजी बोले—शिवजीके इस वचनको सुनकर सभी देवता प्रसन्न हो गये और विज्ञप्तिके लिये विष्णुके मुखकी ओर देखने लगे॥ ११॥

अथ विष्णुर्महाभक्तो देवानां हितकारकः।
मदीरितमुवाचेदं सुरकार्यं महत्तमम्॥ १२

तब शिवके परम भक्त तथा देवताओंके हितकारक विष्णु मेरे द्वारा कहे गये देवताओंके इस बहुत बड़े कार्यका निवेदन करने लगे—॥ १२॥

विष्णुरुवाच

तारकेण कृतं शंभो देवानां परमाद्भुतम्।
कष्टात्कष्टतरं देवा विज्ञप्तुं सर्व आगताः॥ १३

विष्णुजी बोले—हे शम्भो! तारकसे इन देवताओंको अत्यन्त अद्भुत दुःख प्राप्त हो रहा है, इसी कारण सभी देवता आपसे निवेदन करने यहाँ आये हुए हैं॥ १३॥

हे शंभो तव पुत्रेणौरसेन हि भविष्यति।
निहतस्तारको दैत्यो नान्यथा मम भाषितम्॥ १४

हे शम्भो! आपके द्वारा जो औरस पुत्र उत्पन्न होगा, उसीके द्वारा तारकासुरका वध होगा, यह मेरा कथन अन्यथा नहीं हो सकता॥ १४॥

विचार्येत्थं महादेव कृपां कुरु नमोऽस्तु ते।
देवान्समुद्धर स्वामिन् कष्टात्तारकनिर्मितात्॥ १५

हे महादेव! आपको नमस्कार है, आप इस बातका विचारकर देवताओंपर दया कीजिये। हे स्वामिन्! तारकासुरसे उत्पन्न इस महाकष्टसे देवताओंका उद्धार कीजिये॥ १५॥

तस्मात्त्वया गिरिजा देव शंभो
ग्रहीतव्या पाणिना दक्षिणेन।
पाणिग्रहेणैव महानुभावां
दत्तां गिरीन्द्रेण च तां कुरुष्व॥ १६

इसीलिये हे देव! हे शम्भो! आपको स्वयं गिरिजाका दाहिने हाथसे पाणिग्रहण करना चाहिये; क्योंकि गिरिराज हिमालय आपको पाणिग्रहणके द्वारा ही गिरिजाको प्रदान करना चाहते हैं, अतः आप उसे स्वीकार कीजिये॥ १६॥

विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रसन्नो ह्यब्रवीच्छिवः।
दर्शयन् सद्गतिं तेषां सर्वेषां योगतत्परः॥ १७

विष्णुके इस वचनको सुनकर योगमें तत्पर भगवान् शिव अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उनकी सद्गतिके लिये उत्तम उपदेश करते हुए कहने लगे—॥ १७॥

शिव उवाच

यदा मे स्वीकृता देवी गिरिजा सर्वसुंदरी।
तदा सर्वे सुरेन्द्राश्च मुनयो ऋषयस्तदा॥ १८
सकामाश्च भविष्यंति न क्षमाश्च परे पथि।
जीवयिष्यति दुर्गा सा पाणिग्रहणतः स्मरम्॥ १९

शिवजी बोले—[हे देवताओ!] जब मैं सर्वसुन्दरी गिरिजादेवीको स्वीकार करूँगा, तब सभी देवता, मुनि तथा ऋषि सकाम हो जायँगे। फिर तो ये परमार्थ मार्गपर चल न सकेंगे। मेरे पाणिग्रहणसे ये दुर्गा मृत कामदेवको पुनः जीवित कर देंगी॥ १८-१९॥

मदनो हि मया दग्धः सर्वेषां कार्यसिद्धये।
ब्रह्मणो वचनाद्विष्णो नात्र कार्या विचारणा॥ २०

मैंने सबकी कार्यसिद्धिके लिये ही कामदेवको जलाया है। हे विष्णो! ब्रह्माके वचनानुसार ही मैंने यह कार्य सम्पादित किया है, इसमें सन्देह नहीं है॥ २०॥

एवं विमृश्य मनसा कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
सुधीः सर्वैश्च देवेन्द्र हठं नो कर्तुमर्हसि॥ २१

हे देवेन्द्र! आप इस कार्याकार्यकी परिस्थितिमें मनसे तत्त्वका विचार करके मेरे विवाहका हठ छोड़ दीजिये॥ २१॥

दग्धे कामे मया विष्णो सुरकार्यं महत् कृतम्।
सर्वे तिष्ठन्तु निष्कामा मया सह सुनिश्चितम्॥ २२

यथाहं च सुराः सर्वे तथा यूयमयत्नतः।
तपः परमसंयुक्ताः करिष्यध्वं सुदुष्करम्॥ २३

हे विष्णो! मैंने कामदेवको जलाकर देवताओंका बहुत बड़ा कार्य सिद्ध किया है। अब उचित यही होगा कि मेरे साथ समस्त देवगण सुनिश्चित रूपसे निष्काम होकर निवास करें। हे देवताओ! जिस प्रकार मैं तपस्या करता हूँ, उसी प्रकार आपलोग भी सहजरूपसे कठोर तपमें निरत हो जाइये॥ २२-२३॥

यूयं समाधिना तेन मदनेन विना सुराः।
परमानंदसंयुक्ता निर्विकारा भवंतु वै॥ २४

पुरावृत्तं स्मरकृतं विस्मृतं यद् विधे हरे।
महेन्द्र मुनयो देवा यत्तत्सर्वं विमृश्यताम्॥ २५

अब तो कामदेव नहीं रहा, इसलिये हे देवताओ! आपलोग निर्विघ्न समाधि लगाकर आनन्दयुक्त निर्विकार भावसे निवास कीजिये। हे विधे! हे विष्णो! हे महेन्द्र! हे मुनिगण! हे देवगण! आपलोगोंने पूर्व समयमें कामदेवके द्वारा किये गये सारे कार्यको भुला दिया है, उन सबपर विचार कीजिये॥ २४-२५॥

महाधनुर्धरेणैव मदनेन हठात्सुराः।
सर्वेषां ध्यानविध्वंसः कृतस्तेन पुरामराः॥ २६

हे देवताओ! पहले इस महाधनुर्धर कामदेवने हठसे सभी देवताओंका ध्यान नष्ट कर दिया था॥ २६॥

कामो हि नरकायैव तस्मात् क्रोधोऽभिजायते।
क्रोधाद्भवति संमोहो मोहाच्च भ्रंशते तपः॥ २७

कामक्रोधौ परित्याज्यौ भवद्भिः सुरसत्तमैः।
सर्वैरेव च मन्तव्यं मद्वाक्यं नान्यथा क्वचित्॥ २८

काम ही नरकका द्वार है, कामसे क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोधसे मोह होता है और मोहसे तप विनष्ट हो जाता है। अतः आप सभी श्रेष्ठ देवताओंको काम एवं क्रोधका परित्याग कर देना चाहिये। आप सभीको मेरी यह बात स्वीकार करनी चाहिये; क्योंकि मेरी बात कभी असत्य नहीं सिद्ध होती॥ २७-२८॥

ब्रह्मोवाच

एवं विश्राव्य भगवान् महादेवो वृषध्वजः।
सुरान् प्रवाचयामास विधिविष्णू तथा मुनीन्॥ २९

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] वृषभध्वज भगवान् महादेवजी इस प्रकार कहनेके बाद विधाता, विष्णु, मुनिगण तथा देवताओंसे उत्तरकी प्रतीक्षा करने लगे॥ २९॥

तूष्णींभूतोऽभवच्छंभुर्ध्यानमाश्रित्य वै पुनः।
आस्ते पुरा यथा स्थाणुर्गणैश्च परिवारितः॥ ३०

तब अपने गणोंसे घिरे हुए वे शम्भु चुपचाप होकर समाधिमें स्थित हो स्थाणुके समान अचल हो गये॥ ३०॥

स्वात्मानमात्मना शंभुरात्मन्येव व्यचिन्तयत्।
निरंजनं निराभासं निर्विकारं निरामयम्॥ ३१
परात्परतरं नित्यं निर्ममं निरवग्रहम्।
शब्दातीतं निर्गुणं च ज्ञानगम्यं परात्परम्॥ ३२

वे शम्भु अपने अन्तःकरणमें अपने निरंजन, निराभास, निर्विकार एवं निरामय स्वरूपका ध्यान करने लगे। जो सबसे परे, नित्य, निर्मम, विग्रहरहित, शब्दातीत, निर्गुण, ज्ञानगम्य तथा परात्पर है॥ ३१-३२॥

एवं स्वरूपं परमं चिन्तयन् ध्यानमास्थितः।
परमानंदसंमग्नो बभूव बहुसूतिकृत्॥ ३३

ध्यानस्थितं च सर्वेशं दृष्ट्वा सर्वे दिवौकसः।
हरिशक्रादयः सर्वे नंदिनं प्रोचुरानताः॥ ३४

इस प्रकार अनेक जगत्की सृष्टि करनेवाले वे अपने परम रूपका चिन्तन करते हुए ध्यानमें स्थित हो परमानन्दमें निमग्न हो गये। उस समय विष्णु, इन्द्र आदि सभी देवता शंकरजीको ध्यानमें स्थित देखकर विनम्र होकर नन्दिकेश्वरसे कहने लगे—॥ ३३-३४॥

देवा ऊचुः

किं वयं करवामाद्य विरक्तो ध्यानमास्थितः।
शंभुस्त्वं शंकरसखः सर्वज्ञः शुचिसेवकः॥ ३५

देवता बोले—[हे नन्दिकेश्वर!] शिवजी विरक्त होकर ध्यानमें मग्न हैं। अब हमलोगोंको क्या करना चाहिये? आप शंकरके सखा, सर्वज्ञ एवं इनके पवित्र सेवक हैं॥ ३५॥

केनोपायेन गिरिशः प्रसन्नः स्याद्गणाधिप।
तदुपायं समाचक्ष्व वयं त्वच्छरणं गताः॥ ३६

हे गणाधिप! शिवजी किस उपायसे हमलोगोंपर प्रसन्न होंगे, उस उपायको शीघ्र बताइये। हमलोग आपकी शरणमें आये हैं॥ ३६॥

ब्रह्मोवाच

इति विज्ञापितो देवैर्मुने हर्यादिभिस्तदा।
प्रत्युवाच सुरांस्तान्स नंदी शंभुप्रियो गणः॥ ३७

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! जब इन्द्रादि देवताओंने इस प्रकार नन्दीसे निवेदन किया, तब शिवजीके प्रिय गण नन्दी उन देवताओंसे कहने लगे—॥ ३७॥

नंदीश्वर उवाच

हे हरे हे विधे शक्र निर्जरा मुनयस्तथा।
शृणुध्वं वचनं मे हि शिवसंतोषकारकम्॥ ३८

नन्दीश्वर बोले—हे हरे! हे विधे! हे इन्द्र! हे देवताओ! हे मुनियो! आपलोग शिवजीको सन्तुष्ट करनेवाला मेरा वचन सुनें॥ ३८॥

यदि वो हठ एवाद्य शिवदारपरिग्रहे।
अतिदीनतया सर्वे सुनुतिं कुरुतादरात्॥ ३९

यदि आपलोगोंका ऐसा ही हठ है कि शिवजी स्त्रीका पाणिग्रहण करें, तो अत्यन्त दीनभावसे आप सभी शिवजीकी उत्तम स्तुति करें॥ ३९॥

भक्तेर्वश्यो महादेवो न साधारणतः सुराः।
अकार्यमपि सद्भक्त्या करोति परमेश्वरः॥ ४०

हे देवताओ! महादेव भक्तिद्वारा वशमें हो जाते हैं, अन्य साधारण उपायोंसे वशीभूत नहीं होते। वे परमेश्वर उत्तम भक्तिसे अकार्य भी कर सकते हैं॥ ४०॥

एवं कुरुत सर्वे हि विधिविष्णुमुखाः सुराः।
यथागतेन मार्गेणान्यथा गच्छत मा चिरम्॥ ४१

हे ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओ! आपलोग ऐसा ही कीजिये, अन्यथा जहाँसे आये हैं, वहीं शीघ्र ही चले जाइये, विलम्ब न कीजिये॥ ४१॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य मुने विष्ण्वादयः सुराः।
तथेति मत्त्वा सुप्रीत्या शंकरं तुष्टुवुर्हि ते॥ ४२
देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो।
समुद्धर महाक्लेशात् त्राहि नः शरणागतान्॥ ४३

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! उनकी यह बात सुनकर विष्णु आदि वे देवता उस बातको मानकर अत्यन्त प्रेमसे शंकरका स्तवन करने लगे—हे देवदेव, हे महादेव, हे करुणासागर, हे प्रभो! महान् क्लेशसे हमलोगोंका उद्धार कीजिये, हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये॥ ४२-४३॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं बहुदीनोक्त्या तुष्टुवुः शंकरं सुराः।
रुरुदुः सुस्वरं सर्वे प्रेमव्याकुलमानसाः॥ ४४

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार बहुत ही दीन हो देवताओंने शिवजीकी स्तुति की और वे सब व्याकुलचित्त होकर उच्च स्वरसे रोने लगे॥ ४४॥

हरिर्मया सुदीनोक्त्या सुविज्ञप्तं चकार ह।
संस्मरन्मनसा शंभुं भक्त्या परमयान्वितः॥ ४५

सुरैरेवं स्तुतः शंभुर्हरिणा च मया भृशम्।
भक्तवात्सल्यतो ध्यानाद्विरतोऽभून्महेश्वरः॥ ४६

उवाच सुप्रसन्नात्मा हर्यादीन्हर्षयन्हरः।
विलोक्य करुणादृष्ट्या शंकरो भक्तवत्सलः॥ ४७

मुझे साथ लेकर विष्णुने मनसे शिवजीका स्मरण करते हुए परम भक्तिसे युक्त होकर दीन वचनोंसे शम्भुसे प्रार्थना की। इस प्रकार जब मैंने, विष्णुने तथा सभी देवताओंने शम्भुकी स्तुति की, तब भक्तवात्सल्यके कारण वे महेश्वर ध्यानसे विरत हो गये। तदनन्तर प्रसन्नचित्त होकर दुःखोंका हरण करनेवाले वे भक्त-वत्सल शंकर विष्णु आदि देवगणोंको हर्षित करते हुए करुणाभरी दृष्टिसे देखकर कहने लगे—॥ ४५—४७॥

शंकर उवाच

हे हरे हे विधे देवाः शक्राद्या युगपत्समे।
किमर्थमागता यूयं सत्यं ब्रूत ममाग्रतः॥ ४८

शंकर बोले—हे हरे! हे विधे! हे इन्द्रादि देवताओ! आप सब एक साथ किसलिये आये हैं, मेरे सामने सच-सच बताइये॥ ४८॥

हरिरुवाच

सर्वज्ञस्त्वं महेशान त्वन्तर्याम्यखिलेश्वरः।
किं न जानासि चित्तस्थं तथा वच्म्यपि शासनात्॥ ४९

तारकासुरतो दुःखं संभूतं विविधं मृड।
सर्वेषां नस्तदर्थं हि प्रसन्नोऽकारि वै सुरैः॥ ५०

शिवा सा जनिता शैलात्त्वदर्थं हि हिमालयात्।
तस्यां त्वदुद्भवात्पुत्रात्तस्य मृत्युर्न चान्यथा॥ ५१

विष्णु बोले—हे महेश्वर! आप सर्वज्ञ, अन्तर्यामी तथा अखिलेश्वर हैं। क्या आप हमारे मनकी बात नहीं जानते, फिर भी मैं आपके आज्ञानुसार निवेदन कर रहा हूँ। हे मृड! हम सब देवताओंको तारकासुरसे महान् दुःख प्राप्त हो रहा है, इसीलिये हम देवताओंने आपको प्रसन्न किया है। वे शिवा आपके लिये ही हिमालयकी कन्याके रूपमें उत्पन्न हुई हैं; क्योंकि आपके द्वारा पार्वतीसे उत्पन्न पुत्रके द्वारा ही तारकासुरकी मृत्यु होनेवाली है, यह बात अन्यथा नहीं है॥ ४९—५१॥

इति दत्तो ब्रह्मणा हि तस्मै दैत्याय यद्वरः।
तदन्यस्मादमृत्युः स बाधते निखिलं जगत्॥ ५२

ब्रह्माजीने उस तारकासुरको इसी प्रकारका वरदान दे रखा है। वह अन्य किसीके द्वारा मारा नहीं जायगा, यही कारण है कि वह सबको पीड़ित कर रहा है॥ ५२॥

नारदस्य निदेशात्सा करोति कठिनं तपः।
तत्तेजसाखिलं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ ५३

इस समय देवर्षि नारदके उपदेशानुसार वे पार्वती तपस्या कर रही हैं और उनके तेजसे चराचरसहित समस्त त्रैलोक्य व्याप्त हो रहा है॥ ५३॥

वरं दातुं शिवायै हि गच्छ त्वं परमेश्वर।
देवदुःखं जहि स्वामिन्नस्माकं सुखमावह॥ ५४

इसलिये हे परमेश्वर! आप शिवाको वर देनेहेतु जाइये। हे स्वामिन्! ऐसा करके हम देवताओंका दुःख दूर कीजिये तथा हमलोगोंको सुखी कीजिये॥ ५४॥

देवानां मे महोत्साहो हृदये चास्ति शंकर।
विवाहं तव संद्रष्टुं तत्त्वं कुरु यथोचितम्॥ ५५

रत्यै यद्भवता दत्तो वरस्तस्य परात्पर।
प्राप्तोऽवसर एवाशु सफलं स्वपणं कुरु॥ ५६

हे शंकर! देवताओंके और मेरे मनमें आपका विवाह देखनेके लिये महान् उत्साह है, अतः आप उसे उचित रूपसे कीजिये। हे परात्पर! आपने रतिको जो वरदान दिया है, उसका भी अवसर उपस्थित हो गया है, आप अपनी प्रतिज्ञाको सफल कीजिये॥ ५५-५६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा तं प्रणम्यैव विष्णुर्देवा महर्षयः।
संस्तूय विविधैः स्तोत्रैः संतस्थुस्तत्पुरोऽखिलाः॥ ५७

भक्ताधीनः शंकरोऽपि श्रुत्वा देववचस्तदा।
विहस्य प्रत्युवाचाशु वेदमर्यादरक्षकः॥ ५८

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर उन्हें प्रणामकर तथा अनेक प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति करके विष्णु आदि देवता और महर्षि सब-के-सब उनके सामने खड़े हो गये। तब वेदकी मर्यादाकी रक्षा करनेवाले तथा भक्तोंके अधीन रहनेवाले शिवजी भी देवताओंके वचनको सुनकर हँस करके शीघ्र कहने लगे— ॥ ५७-५८॥

शंकर उवाच

हे हरे हे विधे देवाः शृणुतादरतोऽखिलाः।
यथोचितमहं वच्मि सविशेषं विवेकतः॥ ५९

नोचितं हि विधानं वै विवाहकरणं नृणाम्।
महानिगडसंज्ञो हि विवाहो दृढबन्धनः॥ ६०

कुसङ्गा बहवो लोके स्त्रीसङ्गस्तत्र चाधिकः।
उद्धरेत्सकलैर्बन्धैर्न स्त्रीसङ्गात्प्रमुच्यते॥ ६१

शंकर बोले—हे हरे! हे विधे! हे देवताओ! मैं ज्ञानसे युक्त और यथोचित बातें कहता हूँ, उसे आप सब आदरपूर्वक सुनें। विवाह करना मनुष्योंके लिये उचित विधान नहीं है; क्योंकि विवाह बेड़ीके समान अत्यन्त कठिन दृढ़बन्धन है। संसारमें बहुतसे कुसंग हैं, परंतु उनमें स्त्रीसंग सबसे बढ़कर है; क्योंकि मनुष्य सभी प्रकारके बन्धनोंसे छुटकारा प्राप्त कर सकता है, किंतु स्त्रीसंगसे उसका छुटकारा नहीं होता॥ ५९—६१॥

लोहदारुमयैः पाशैर्दृढं बद्धोऽपि मुच्यते।
स्त्र्यादिपाशसुसंबद्धो मुच्यते न कदाचन॥ ६२

लोहे तथा लकड़ीके पाशोंमें दृढ़तापूर्वक बँधा हुआ पुरुष उससे छुटकारा पा सकता है, किंतु स्त्री आदिके पाशमें बँधा हुआ कभी मुक्त नहीं होता है॥ ६२॥

वर्धन्ते विषयाः शश्वन्महाबंधनकारिणः।
विषयाक्रांतमनसः स्वप्ने मोक्षोऽपि दुर्लभः॥ ६३

[स्त्रीसंगसे] महाबन्धनकारी विषय निरन्तर बढ़ते रहते हैं, विषयोंसे आक्रान्त मनवालेको स्वप्नमें भी मोक्ष दुर्लभ हो जाता है॥ ६३॥

सुखमिच्छति चेत्प्राज्ञो विधिवद्विषयांस्त्यजेत्।
विषवद्विषयानाहुर्विषयैर्येर्निहन्यते ॥ ६४

यदि बुद्धिमान् पुरुष सुख प्राप्त करना चाहे, तो विषयोंको भलीभाँति छोड़ दे। जिन विषयोंसे प्राणी मारा जाता है, वे विषय विषके समान कहे गये हैं॥ ६४॥

जनो विषयिणा साकं वार्तातः पतति क्षणात्।
विषयं प्राहुराचार्याः सितालिप्तेन्द्रवारुणीम्॥ ६५

मोक्षकी कामना करनेवाला पुरुष विषयी पुरुषोंके साथ वार्ता करनेमात्रसे क्षणभरमें ही पतित हो जाता है। आचार्योंने विषयवासनाको शर्करासे आलिप्त इन्द्रायनफलके समान (आपातमधुर) कहा है॥ ६५॥

यद्यप्येवं हि जानामि सर्वं ज्ञानं विशेषतः।
तथाप्यहं करिष्यामि प्रार्थनां सफलां च वः॥ ६६

यद्यपि मैं समस्त ज्ञान विशेष रूपसे जानता हूँ, फिर भी मैं आपलोगोंकी प्रार्थनाको सफल करूँगा॥ ६६॥

भक्ताधीनोऽहमेवास्मि तद्वशात्सर्वकार्यकृत्।
अयथोचितकर्ता हि प्रसिद्धो भुवनत्रये॥ ६७

तीनों लोकोंमें मेरी प्रसिद्धि है कि मैं भक्तोंके वशमें होनेसे सभी प्रकारके उचित-अनुचित कार्य करता हूँ॥ ६७॥

कामरूपाधिपस्यैव पणश्च सफलः कृतः।
सुदक्षिणस्य भूपस्य भवबंधगतस्य हि॥ ६८

मैंने कामरूप देशके राजाकी प्रतिज्ञा सफल की और भव-बन्धनमें पड़े हुए राजा सुदक्षिणका प्रण मैंने पूरा किया॥ ६८॥

गौतमक्लेशकर्ताहं त्र्यंबकात्मा सुखावहः।
तत्कष्टप्रददुष्टानां शापदायी विशेषतः॥ ६९

मैंने गौतमको क्लेश दिया, मैं त्र्यम्बकात्मा सबको सुख देनेवाला हूँ और जो भक्तोंको दुःख देनेवाले हैं, उन दुष्टोंको विशेष रूपसे कष्ट तथा शाप प्रदान करता हूँ॥ ६९॥

विषं पीतं सुरार्थं हि भक्तवत्सलभावधृक्।
देवकष्टं हृतं यत्नात्सर्वदैव मया सुराः॥ ७०

मैंने अपनी भक्तवत्सलताका भाव प्रकट करनेके लिये ही विषपान किया था। हे देवताओ! मैंने यत्नसे सदैव ही देवताओंके कष्टोंको दूर किया है॥ ७०॥

भक्तार्थमसहं कष्टं बहुशो बहुयत्नतः।
विश्वानरमुनेर्दुःखं हृतं गृहपतिर्भवन्॥ ७१

किं बहूक्तेन च हरे विधे सत्यं ब्रवीम्यहम्।
मत्पणोऽस्तीति यूयं वै सर्वे जानीथ तत्त्वतः॥ ७२

मैंने भक्तोंके लिये बहुत बार अनेक कष्ट उठाया है। मैंने विश्वानर मुनिके घर गृहपतिके रूपमें जन्म लेकर उनके दुःखको दूर किया है। हे हरे! हे विधे! मैं अधिक क्या कहूँ। मैं सत्य कहता हूँ और मेरी जो प्रतिज्ञा है, उसे भी आपलोग अच्छी तरह जानते हैं॥ ७१-७२॥

यदा यदा विपत्तिर्हि भक्तानां भवति क्वचित्।
तदा तदा हराम्याशु तत्क्षणात्सर्वशः सदा॥ ७३

जब-जब मेरे भक्तोंपर किसी प्रकारकी विपत्ति आती है, तब-तब मैं उन्हें शीघ्र ही सब प्रकारसे दूर कर देता हूँ॥ ७३॥

जानेऽहं तारकाद्दुःखं सर्वेषां वः समुत्थितम्।
असुरात्तद्धरिष्यामि सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ ७४

इस समय तारकासुरके द्वारा जो विपत्ति आपलोगोंपर आ पड़ी है, उसे भी मैं जानता हूँ। उस दुःखको भी मैं दूर कर दूँगा, यह मैं सत्य-सत्य कह रहा हूँ॥ ७४॥

नास्ति यद्यपि मे काचिद्विवाहकरणे रुचिः।
विवाहयिष्ये गिरिजां पुत्रोत्पादनहेतवे॥ ७५

गच्छत स्वगृहाण्येव निर्भयाः सकलाः सुराः।
कार्यं वः साधयिष्यामि नात्र कार्या विचारणा॥ ७६

यद्यपि मुझे विवाहमें कोई इच्छा नहीं है, तो भी [आपलोगोंके लिये] पुत्र उत्पन्न करनेहेतु गिरिजासे विवाह करूँगा। हे देवताओ! अब आपलोग निडर होकर अपने-अपने घरोंको जाइये। मैं आपलोगोंका कार्य सिद्ध करूँगा। इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ७५-७६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा मौनमास्थाय समाधिस्थोऽभवद्धरः।
सर्वे विष्ण्वादयो देवाः स्वधामानि ययुर्मुने॥ ७७

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! ऐसा कहकर शंकर पुनः मौन धारणकर समाधिस्थ हो गये और विष्णु आदि समस्त देवता अपने-अपने धामोंको लौट गये॥ ७७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे पार्वतीविवाहस्वीकारो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें पार्वतीविवाहस्वीकार नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

भगवान् शंकरकी आज्ञासे सप्तर्षियोंद्वारा पार्वतीके शिवविषयक अनुरागकी परीक्षा करना और वह वृत्तान्त भगवान् शिवको बताकर स्वर्गलोक जाना

नारद उवाच

गतेषु तेषु देवेषु विधिविष्ण्वादिकेषु च।
सर्वेषु मुनिषु प्रीत्या किं बभूव ततः परम्॥ १
किं कृतं शंभुना तात वरं दातुं समागतः।
कियत्कालेन च कथं तद्वद प्रीतिमावह॥ २

नारदजी बोले—[हे ब्रह्मन्!] उन ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं तथा सभी मुनियोंके प्रेमपूर्वक चले जानेपर फिर क्या हुआ? हे तात! शिवने क्या किया और फिर कितने समयके बाद तथा किस प्रकार वर देनेके लिये आये, उसे बताइये और प्रीति प्रदान कीजिये॥ १-२॥

ब्रह्मोवाच

गतेषु तेषु देवेषु ब्रह्मादिषु निजाश्रमम्।
तत्तपः सुपरीक्षार्थं समाधिस्थोऽभवद्भवः॥ ३

ब्रह्माजी बोले—उन ब्रह्मा आदि देवताओंके अपने-अपने आश्रमोंको चले जानेपर पार्वतीकी तपस्याकी परीक्षा करनेके लिये शिवजी समाधिस्थ हो गये॥ ३॥

स्वात्मानमात्मना कृत्वा स्वात्मन्येव व्यचिन्तयत्।
परात्परतरं स्वस्थं निर्मायं निरवग्रहम्॥ ४

उन्होंने अपने आत्मासे ही परमात्मामें परात्पर, निरवग्रह, आत्मस्थित ज्योतिको धारणकर विचार किया॥ ४॥

तद्वस्तुभूतो भगवानीश्वरो वृषभध्वजः।
अविज्ञातगतिः सूतिः स हरः परमेश्वरः॥ ५

वस्तुतः वे शिव ही भगवान्, ईश्वर, वृषभध्वज, अविज्ञातगति, जगत्स्रष्टा, हर एवं परमेश्वर हैं॥ ५॥

ब्रह्मोवाच

गिरिजा हि तदा तात तताप परमं तपः।
तपसा तेन रुद्रोऽपि परं विस्मयमागतः॥ ६
समाधेश्चलितस्सोऽभूद्भक्ताधीनोऽपि नान्यथा।
वसिष्ठादीन्मुनीन्सप्त सस्मार सूतिकृद्धरः॥ ७

ब्रह्माजी बोले—हे तात! उसी समय पार्वतीने भी महाघोर तपस्या प्रारम्भ की, उस तपसे शंकर भी अत्यन्त विस्मित हो गये। भक्तोंके अधीन रहनेवाले वे समाधिसे विचलित हो गये। तब उन जगत्स्रष्टा हरने वसिष्ठादि सप्तर्षियोंका स्मरण किया॥ ६-७॥

सप्तापि मुनयः शीघ्रमाययुः स्मृतिमात्रतः।
प्रसन्नवदनाः सर्वे वर्णयन्तो विधिं बहु॥ ८
प्रणम्य तं महेशानं तुष्टुवुर्हर्षनिर्भराः।
वाण्या गद्गदया बद्धकरा विनतकंधराः॥ ९

वे सभी सप्तर्षि भी शिवजीके स्मरण करते ही प्रसन्नमुख होकर अपने भाग्यकी बहुत सराहना करते हुए वहाँ शीघ्र ही उपस्थित हो गये। उन महेश्वरको प्रणाम करके वे हर्षपूर्वक गद्गद वाणीसे हाथ जोड़कर तथा सिर झुकाकर स्तुति करने लगे॥ ८-९॥

सप्तर्षय ऊचुः

देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो।
जाता वयं सुधन्या हि त्वया यदधुना स्मृताः॥ १०

सप्तर्षि बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणासागर! हे प्रभो! हमलोग धन्य हो गये, जो आपने आज हमलोगोंका स्मरण किया॥ १०॥

किमर्थं संस्मृता नाथ शासनं देहि तद्धि नः ।
स्वदाससदृशीं स्वामिन्कृपां कुरु नमोऽस्तु ते ॥ ११

हे नाथ ! आपने किसलिये स्मरण किया है, हमलोगोंको आज्ञा दीजिये । हे स्वामिन् ! अपने दासके समान ही हमलोगोंपर कृपा कीजिये, आपको प्रणाम है ॥ ११ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य मुनीनां तु विज्ञप्तिं करुणानिधिः ।
प्रोवाच विहसन्प्रीत्या प्रोत्फुल्लनयनाम्बुजः ॥ १२

ब्रह्माजी बोले—मुनियोंकी इस विज्ञप्तिको सुनकर विकसित कमलके समान नेत्रोंवाले वे करुणानिधि हँसते हुए प्रेमपूर्वक कहने लगे— ॥ १२ ॥

महेश्वर उवाच

हे सप्तमुनयस्ताताः शृणुतारं वचो मम ।
अस्मद्धितकरा यूयं सर्वज्ञानविचक्षणाः ॥ १३

महेश्वर बोले—हे सप्तर्षिगण ! आपलोग सभी प्रकारके ज्ञानमें विचक्षण हैं तथा मेरा हित करनेवाले हैं । हे तात ! मेरी बात शीघ्र सुनिये ॥ १३ ॥

तपश्चरति देवेशी पार्वती गिरिजाधुना ।
गौरीशिखरसंज्ञे हि पर्वते दृढमानसा ॥ १४

इस समय गौरीशिखर नामक पर्वतपर देवेशी पार्वती गिरिजा अत्यन्त दृढ़ चित्तसे तपस्या कर रही है ॥ १४ ॥

मां पतिं प्राप्तुकामा हि सा सखीसेविता द्विजाः ।
सर्वान्कामान्विहायान्यान्परं निश्चयमागता ॥ १५

हे ऋषियो ! सखियोंसे सेवित उसने अपनी समस्त कामनाओंका त्यागकर बड़ी दृढ़ताके साथ मुझे अपना पति बनानेके लिये निश्चय कर लिया है ॥ १५ ॥

तत्र गच्छत यूयं मच्छासनान्मुनिसत्तमाः ।
परीक्षां दृढतायास्तत्कुरुत प्रेमचेतसः ॥ १६

हे मुनिश्रेष्ठो ! आपलोग मेरी आज्ञासे वहाँ जाइये और उसके प्रेम एवं दृढ़ताकी परीक्षा कीजिये ॥ १६ ॥

सर्वथा छलसंयुक्तं वचनीयं वचश्च वः ।
न संशयः प्रकर्तव्यः शासनान्मम सुव्रताः ॥ १७

हे सुव्रतो ! मेरी आज्ञा है कि आपलोग उससे सर्वथा छलयुक्त वचन कहिये, इसमें संशय न कीजिये ॥ १७ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्याज्ञप्ताश्च मुनयो जग्मुस्तत्र द्रुतं हि ते ।
यत्र राजति सा दीप्ता जगन्माता नगात्मजा ॥ १८
तत्र दृष्टा शिवा साक्षात्तपःसिद्धिरिवापरा ।
मूर्ता परमतेजस्का विलसन्ती सुतेजसा ॥ १९

ब्रह्माजी बोले—शिवजीकी आज्ञा प्राप्तकर मुनिगण उसी समय उस स्थानपर गये, जहाँ जगन्माता पार्वती तपस्या कर रही थीं । उन लोगोंने वहाँ साक्षात् दूसरी तपःसिद्धिके समान, तेजसे देदीप्यमान और परमतेजकी मूर्तिस्वरूपा पार्वतीको देखा ॥ १८-१९ ॥

हृदा प्रणम्य तां ते तु ऋषयस्सप्त सुव्रताः ।
सन्नता वचनं प्रोचुः पूजिताश्च विशेषतः ॥ २०

हे सुव्रतो ! उन सप्तर्षियोंने हृदयसे पार्वतीको प्रणाम करके उनसे विशेष रूपसे सत्कृत हो विनम्र होकर यह वचन कहा— ॥ २० ॥

ऋषय ऊचुः

शृणु शैलसुते देवि किमर्थं तप्यते तपः ।
इच्छसि त्वं सुरं कं च किं फलं तद्वदाधुना ॥ २१

ऋषिगण बोले—हे शैलसुते ! देवि ! सुनो, तुम किस उद्देश्यसे तपस्या कर रही हो ? तुम किस देवताको प्रसन्न करना चाहती हो और क्या फल चाहती हो, उसे इस समय बताओ ॥ २१ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ता सा शिवा देवी गिरीन्द्रतनया द्विजैः ।
प्रत्युवाच वचः सत्यं सुगूढमपि तत्पुरः ॥ २२

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद !] जब उन सप्तर्षियोंने इस प्रकार देवी पार्वतीसे कहा, तब वे सत्य तथा अत्यन्त गोपनीय वचन उनके सामने कहने लगीं— ॥ २२ ॥

पार्वत्युवाच

मुनीश्वराः संशृणुत मद्वाक्यं प्रीतितो हृदा ।
ब्रवीमि स्वविचारं वै चिंतितो यो धिया स्वया ॥ २३

पार्वती बोलीं—हे मुनीश्वरो ! मैंने अपनी बुद्धिसे जो विचार किया है, उसे आपके समक्ष प्रकट करती हूँ । आपलोग प्रेमपूर्वक मेरी बात सुनें ॥ २३ ॥

करिष्यथ प्रहासं मे श्रुत्वा वाचो ह्यसंभवाः।
संकोचो वर्णनाद्विप्रा भवत्येव करोमि किम्॥ २४

हे विप्रो! आपलोग मेरी असम्भव बात सुनकर परिहास करेंगे, इसलिये उसे कहनेमें भी मुझे संकोच हो रहा है, पर मैं क्या करूँ? आपलोगोंके पूछनेपर कह रही हूँ॥ २४॥

इदं मनो हि सुदृढमवशं परकर्मकृत्।
जलोपरि महाभित्तिं चिकीर्षति महोन्नताम्॥ २५

सुरर्षेः शासनं प्राप्य करोमि सुदृढं तपः।
रुद्रः पतिर्भवेन्मे हि विधायेति मनोरथम्॥ २६

अपक्षो मन्मनःपक्षी व्योम्नि उड्डीयते हठात्।
तदाशां शंकरः स्वामी पिपर्त्तु करुणानिधिः॥ २७

मेरा यह मन बड़ी दृढ़तासे हठपूर्वक दूसरेके वशमें हो गया है और जलके ऊपर बहुत ऊँची दीवार उठाना चाहता है। सदाशिव ही पति हों—ऐसा मनोरथ लेकर देवर्षि नारदकी आज्ञा प्राप्त करके मैं अति कठोर व्रत कर रही हूँ। इसमें मेरे मनरूपी पक्षीको यद्यपि पंख नहीं हैं, फिर भी यह हठपूर्वक आकाशमें उड़ना चाहता है। करुणासागर स्वामी शंकर मेरी उस आशाको पूर्ण करें॥ २५—२७॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्या विहस्य मुनयश्च ते।
सम्मान्य गिरिजां प्रीत्या प्रोचुश्छलवचो मृषा॥ २८

ब्रह्माजी बोले—उनकी यह बात सुनकर वे मुनि गिरिजाका सम्मान करके हँसकर प्रेमपूर्वक मिथ्या तथा छलयुक्त वचन कहने लगे॥ २८॥

ऋषय ऊचुः

न ज्ञातं तस्य चरितं वृथापण्डितमानिनः।
देवर्षेः क्रूरमनसः सुज्ञा भूत्वाप्यगात्मजे॥ २९

ऋषिगण बोले—हे पर्वतराजपुत्रि! बुद्धिमती होकर भी तुमने व्यर्थ ही अपनेको पण्डित माननेवाले तथा क्रूर चित्तवाले उस देवर्षि नारदका चरित्र नहीं जाना है॥ २९॥

नारदः कूटवादी च परचित्तप्रमंथकः।
तस्य वार्ताश्रवणतो हानिर्भवति सर्वथा॥ ३०

तत्र त्वं शृणु सद्बुद्ध्या चेतिहासं सुशोभितम्।
क्रमात्त्वां बोधयंतो हि प्रीत्या तमुपधारय॥ ३१

वह नारद तो मिथ्यावादी और दूसरेके चित्तको भुलावेमें डालनेवाला है, उसकी बात सुननेसे सर्वथा हानि ही होती है। उस नारदके सम्बन्धमें एक सुन्दर इतिहास हमलोग कह रहे हैं, उसको तुम उत्तम बुद्धिसे सुनो और प्रेमपूर्वक उसे अपने हृदयमें धारण करो॥ ३०-३१॥

ब्रह्मपुत्रो हि यो दक्षः सुषुवे पितुराज्ञया।
स्वपत्न्यामयुतं पुत्रानयुंक्त तपसि प्रियान्॥ ३२

ते सुताः पश्चिमदिशि नारायणसरो गताः।
तपोऽर्थे ते प्रतिज्ञाय नारदस्तत्र वै ययौ॥ ३३

कूटोपदेशमाश्राव्य तत्र तान्नारदो मुनिः।
तदाज्ञया च ते सर्वे पितुर्न गृहमाययुः॥ ३४

ब्रह्माके पुत्र दक्षने अपने पिताकी आज्ञासे अपनी पत्नीसे दस हजार प्रिय पुत्र उत्पन्न किये और उनको तपस्यामें नियुक्त किया। तपस्याके लिये प्रतिज्ञा करके वे दक्षपुत्र पश्चिम दिशामें नारायण सरोवरपर गये, नारद भी वहाँ पहुँच गये। उन नारदने उन्हें मिथ्या उपदेश देकर विरक्त कर दिया और उनकी आज्ञासे वे पुनः अपने पिताके घर लौटकर नहीं आये॥ ३२—३४॥

तच्छ्रुत्वा कुपितो दक्षः पित्राश्वासितमानसः।
उत्पाद्य पुत्रान्प्रायुङ्क्त सहस्रप्रमितांस्ततः॥ ३५

तेऽपि तत्र गताः पुत्राः तपोऽर्थं पितुराज्ञया।
नारदोऽपि ययौ तत्र पुनस्तत्स्वोपदेशकृत्॥ ३६

यह समाचार सुनकर दक्ष अत्यन्त व्याकुल हो उठे। ब्रह्मदेवने उन्हें धैर्य प्रदान किया। तदनन्तर उन्होंने पुनः एक हजार पुत्र उत्पन्न किये और उन पुत्रोंको भी तपकार्यमें नियुक्त किया। वे भी अपने पिताकी आज्ञासे वहीं तप करनेके लिये गये। पुनः नारद वहाँ पहुँच गये और उन्हें भी अपना उपदेश दिया॥ ३५-३६॥

ददौ तदुपदेशं ते तेभ्यो भ्रातृपथं ययुः।
आययुर्न पितुर्गेहं भिक्षुवृत्तिरताश्च ते॥ ३७

इत्थं नारदसद्वृत्तिर्विश्रुता शैलकन्यके।
अन्यां शृणु हि तद्वृत्तिं वैराग्यकरणीं नृणाम्॥ ३८

[उसका उपदेश मानकर] वे भी अपने भाइयोंके मार्गपर चले गये और भिक्षावृत्तिमें संलग्न हो गये। वे पुनः अपने पिताके घर नहीं आये। नारदका यह चरित्र है, जो जगत्‌में प्रसिद्ध है। हे शैलपुत्रि! मनुष्योंको विरक्त करनेवाले उनके अन्य चरित्रको भी सुनो॥ ३७-३८॥

विद्याधरश्चित्रकेतुर्यो बभूव पुराकरोत्।
स्वोपदेशमयं दत्त्वा तस्मै शून्यं च तद्गृहम्॥ ३९

प्रह्लादाय स्वोपदेशान्हिरण्यकशिपोः परम्।
दत्त्वा दुःखं ददौ चायं परबुद्धिप्रभेदकः॥ ४०

पूर्व समयमें एक विद्याधर था, जो चित्रकेतु नामका राजा हुआ था। उसको भी इसी नारदने उपदेश देकर उसका घर सूना कर दिया। प्रह्लादको उपदेश देकर हिरण्यकशिपुसे नाना प्रकारके दुःख दिलवाये। इस प्रकार वह [उलटा उपदेश देकर] दूसरोंकी बुद्धि फेर देता है॥ ३९-४०॥

मुनिना निजविद्या यच्छ्राविता कर्णरोचना।
स स्वगेहं विहायाशु भिक्षां चरति प्रायशः॥ ४१

इस नारदने कानोंको प्रिय लगनेवाली अपनी विद्या जिन-जिन लोगोंको सुनायी, वे शीघ्र ही प्रायः अपना घर छोड़कर भिक्षा माँगने लगे॥ ४१॥

नारदो मलिनात्मा हि सर्वदोज्ज्वलदेहवान्।
जानीमस्तं विशेषेण वयं तत्सहवासिनः॥ ४२

वे नारद यद्यपि देखनेमें बड़े सज्जन लगते हैं, किंतु उनका मन मलिन है, हमलोग उनके साथ रहनेके कारण उनका चरित्र विशेषरूपसे जानते हैं॥ ४२॥

बकं साधुं वर्णयन्ति स मत्स्यानत्ति सर्वथा।
सहवासी विजानीयाच्चरित्रं सहवासिनाम्॥ ४३

बगुलेके श्वेत वर्ण शरीरको देखकर सब लोग उसे साधु कहते हैं। फिर भी क्या वह मछली नहीं खाता। साथमें रहनेवाला ही साथ रहनेवालोंका [वास्तविक] चरित्र जानता है॥ ४३॥

लब्ध्वा तदुपदेशं हि त्वमपि प्राज्ञसंमता।
वृथैव मूर्खीभूता त्वं तपश्चरसि दुष्करम्॥ ४४

तुम तो परम बुद्धिमती हो, फिर कैसे उनके उपदेशमें फँसकर मूर्खोंकी तरह कठिन तपस्यामें लग गयी!॥ ४४॥

यदर्थमीदृशं बाले करोषि विपुलं तपः।
सोदासीनो निर्विकारो मदनारिर्न संशयः॥ ४५

हे बाले! यह परम दुःखकी बात है कि तुम जिसे अपना पति बनानेके लिये इतना कठिन तप कर रही हो, वह कामदेवका शत्रु है और उदासीन तथा निर्विकार है॥ ४५॥

अमङ्गलवपुर्धारी निर्लज्जोऽसदनोऽकुली।
कुवेषी प्रेतभूतादिसङ्गी नग्नो हि शूलभृत्॥ ४६

वह अमंगल वेष धारण करनेवाला शिव निर्लज्ज है, उसके घरका तथा कुलका आज तक किसीको पता नहीं है, वह कुवेषी, भूत एवं प्रेतादिका साथ करनेवाला, त्रिशूल धारण करनेवाला और नग्न रहनेवाला है॥ ४६॥

स धूर्तस्तव विज्ञानं विनाश्य निजमायया।
मोहयामास सद्युक्त्या कारयामास वै तपः॥ ४७

उस धूर्त नारदने अपनी मायासे तुम्हारे ज्ञानको नष्ट करके बड़ी युक्तिसे तुम्हें मोहित कर दिया और तुमसे तपस्या करवायी॥ ४७॥

ईदृशं हि वरं लब्ध्वा किं सुखं संभविष्यति।
विचारं कुरु देवेशि त्वमेव गिरिजात्मजे॥ ४८

ऐसे वरको प्राप्तकर तुम्हें क्या सुख मिलेगा? हे देवेशि! हे पार्वति! तुम्हीं विचार करो॥ ४८॥

प्रथमं दक्षजां साध्वीं विवाह्य सुधिया सतीम्।
निर्वाहं कृतवान्नैव मूढः किंचिद्दिनानि हि॥ ४९
तां तथैव स वै दोषं दत्त्वात्याक्षीत् स्वयं प्रभुः।
ध्यायन्स्वरूपमकलमशोकमरमत्सुखी ॥ ५०
एकलः परनिर्वाणो ह्यसङ्गोऽद्वय एव च।
तेन नार्याः कथं देवि निर्वाहः संभविष्यति॥ ५१

मूढ़ शिवने सद्बुद्धिसे दक्षकन्या सतीसे पहले विवाह करके कुछ दिन भी उसका निर्वाह नहीं किया और सतीको ही दोष लगाकर उसका स्वयं त्याग कर दिया। वे तो अपने अकल, अशोक स्वरूपका ध्यान करते हुए सुखी होकर रमण करते रहे। वे तो अकेले, परनिर्वाण, असंग तथा अद्वैत हैं, हे देवि! उनके साथ स्त्रीका निर्वाह किस प्रकार सम्भव होगा?॥ ४९—५१॥

अद्यापि शासनं प्राप्य गृहमायाहि दुर्मतिम्।
त्यजास्माकं महाभागे भविष्यति च शं तव॥ ५२

अब भी तुम हमारी बात मानकर घर चली जाओ और अपनी दुर्बुद्धिका त्याग कर दो। हे महाभागे! [ऐसा करनेसे] तुम्हारा कल्याण होगा॥ ५२॥

त्वद्योग्यो हि वरो विष्णुः सर्वसद्‌गुणवान्प्रभुः।
वैकुण्ठवासी लक्ष्मीशो नानाक्रीडाविशारदः॥ ५३

तुम्हारे योग्य वर विष्णु हैं, सभी सद्‌गुणोंसे सम्पन्न वे प्रभु वैकुण्ठमें निवास करनेवाले, लक्ष्मीके ईश और नाना प्रकारकी क्रीड़ाओंमें कुशल हैं॥ ५३॥

तेन ते कारयिष्यामो विवाहं सर्वसौख्यदम्।
इतीदृशं त्यज हठं सुखिता भव पार्वति॥ ५४

हमलोग तुम्हारा विवाह उन विष्णुसे करायेंगे, वह विवाह सब प्रकारके सुखोंको देनेवाला है। हे पार्वति! तुम इस प्रकारके हठका परित्याग करो और सुखी हो जाओ॥ ५४॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा पार्वती जगदम्बिका।
विहस्य च पुनः प्राह मुनीन् ज्ञानविशारदान्॥ ५५

ब्रह्माजी बोले—इस वचनको सुनकर जगदम्बा पार्वती हँसकर उन ज्ञानविशारद मुनियोंसे पुनः कहने लगीं—॥ ५५॥

पार्वत्युवाच

सत्यं भवद्भिः कथितं स्वज्ञानेन मुनीश्वराः।
परंतु मे हठो नैव मुक्तो भवति हे द्विजाः॥ ५६

पार्वती बोलीं—हे मुनिगण! आपलोग यद्यपि अपने विचारसे सत्य कह रहे हैं, किंतु हे द्विजो! मेरा हठ नहीं छूटेगा॥ ५६॥

स्वतनोः शैलजातत्वात्काठिन्यं सहजं स्थितम्।
इत्थं विचार्य सुधिया मां निषेद्धुं न चार्हथ॥ ५७

पर्वतसे उत्पन्न होनेके कारण मेरे इस शरीरमें काठिन्य एवं हठका होना स्वाभाविक है, ऐसा अपनी बुद्धिसे विचारकर हे ब्राह्मणो! मुझे तपस्यासे मना मत कीजिये॥ ५७॥

सुरर्षेर्वचनं पथ्यं त्यक्ष्ये नैव कदाचन।
गुरूणां वचनं पथ्यमिति वेदविदो विदुः॥ ५८

मेरे लिये नारदजीका वचन सर्वथा हितकर है, मैं उनका परित्याग कदापि नहीं करूँगी। वेदवेत्ता विद्वान् कहते हैं कि गुरुका वचन कल्याणकारी होता है॥ ५८॥

गुरूणां वचनं सत्यमिति येषां दृढा मतिः।
तेषामिहामुत्र सुखं परमं नासुखं क्वचित्॥ ५९

जिन लोगोंने बुद्धिसे यह निश्चित किया है कि गुरुके वचन सर्वदा सत्य हैं, उनको इस लोक तथा परलोकमें सदैव सुख प्राप्त होता है। उन्हें कभी दुःख होता ही नहीं॥ ५९॥

गुरूणां वचनं सत्यमिति यद्धृदये न धीः।
इहामुत्रापि तेषां हि दुःखं न च सुखं क्वचित्॥ ६०

जिन लोगोंके हृदयमें यह विचार नहीं है कि गुरुओंका वचन सत्य होता है, उन्हें इस लोक एवं परलोकमें दुःख ही दुःख होता है, उन्हें सुख कभी नहीं होता॥ ६०॥

सर्वथा न परित्याज्यं गुरूणां वचनं द्विजाः।
गृहं वसेद्वा शून्यं स्यान्मे हठः सुखदः सदा॥ ६१

हे ब्राह्मणो! गुरुओंके वचनका किसी प्रकार त्याग नहीं करना चाहिये। चाहे घर बसे अथवा उजड़े—यह हठ मुझे सदा सुख देनेवाला है॥ ६१॥

यद्भवद्भिः सुभणितं वचनं मुनिसत्तमाः।
तदन्यथा तद्विवेकं वर्णयामि समासतः॥ ६२

हे मुनिसत्तमो! आपलोगोंने जो वचन कहा है, उस विषयमें मैं संक्षेपमें अपना विचार प्रकट करती हूँ॥ ६२॥

गुणालयो विहारी च विष्णुः सत्यं प्रकीर्तितः।
सदाशिवोऽगुणः प्रोक्तस्तत्र कारणमुच्यते॥ ६३

शिवो ब्रह्माविकारः स भक्तहेतोर्धृताकृतिः।
प्रभुतां लौकिकीं नैव संदर्शयितुमिच्छति॥ ६४

अतः परमहंसानां धार्यते सुप्रिया गतिः।
अवधूतस्वरूपेण परानंदेन शंभुना॥ ६५

आपलोगोंने जो विष्णुको सर्वगुणसम्पन्न, वैकुण्ठमें विहार करनेवाला तथा सदाशिवको निर्गुण एवं निर्विकार कहा है, वह सत्य ही है, इसका कारण मैं आपलोगोंको बताती हूँ। शिव परब्रह्म एवं विकाररहित हैं, वे भक्तोंके लिये ही शरीर धारण करते हैं। वे प्रभु कभी भी सांसारिक प्रभुता दिखानेकी इच्छा नहीं करते। अतः परमानन्द शम्भु अवधूतस्वरूपसे परमहंसोंकी प्रिय गति धारण करते हैं॥ ६३—६५॥

भूषणादिरुचिर्मायालिप्तानां ब्रह्मणो न च।
स प्रभुर्निर्गुणोऽजो निर्मायोऽलक्ष्यगतिर्विराट्॥ ६६

मायामें लिप्त रहनेवालोंको ही भूषणादिमें अभिरुचि होती है, ब्रह्मको किसी प्रकारकी कोई अभिरुचि नहीं होती। वे सदाशिव प्रभु निर्गुण, अज, मायारहित, अलक्ष्यगति एवं विराट् हैं॥ ६६॥

धर्मजात्यादिभिः शम्भुर्नानुगृह्णाति वै द्विजाः।
गुरोरनुग्रहेणैव शिवं जानामि तत्त्वतः॥ ६७

चेच्छिवः स हि मे विप्रा विवाहं न करिष्यति।
अविवाहा सदाहं स्यां सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ ६८

हे द्विजो! धर्म, जाति आदिके द्वारा ही शम्भुका अनुग्रह नहीं होता है, मैं तो गुरुके अनुग्रहसे ही शिवको तत्त्वपूर्वक जानती हूँ। हे ब्राह्मणो! यदि शंकर मेरे साथ विवाह नहीं करेंगे, तो मैं सर्वदा अविवाहित रहूँगी, यह मैं सत्य-सत्य कहती हूँ॥ ६७-६८॥

उदयति यदि भानुः पश्चिमे दिग्विभागे
प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति वह्निः।
विकसति यदि पद्मं पर्वताग्रे शिलायां
न हि चलति हठो मे सत्यमेतद् ब्रवीमि॥ ६९

चाहे सूर्य पश्चिम दिशामें उदय हो, सुमेरु चलायमान हो जाय, अग्नि शीतल हो जाय, पर्वतपर कमल खिलने लगें, किंतु मेरा हठ नहीं डिगेगा, यह मैं सत्य कहती हूँ॥ ६९॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा तान्प्रणम्याशु मुनीन्सा पर्वतात्मजा।
विरराम शिवं स्मृत्वा निर्विकारेण चेतसा॥ ७०

ऋषयोऽपीत्थमाज्ञाय गिरिजायाः सुनिश्चयम्।
प्रोचुर्जयगिरं तत्र ददुश्चाशिषमुत्तमाम्॥ ७१

अथ प्रणम्य तां देवीं मुनयो हृष्टमानसाः।
शिवस्थानं द्रुतं जग्मुस्तत्परीक्षाकरा मुने॥ ७२

ब्रह्माजी बोले—यह कहकर और उन मुनियोंको प्रणाम करके वे पार्वती विकाररहित चित्तसे शिवजीका स्मरणकर मौन हो गयीं। तदनन्तर ऋषियोंने भी पार्वतीका यह निश्चय जानकर उनकी जय-जयकार की और उन्हें उत्तम आशीर्वाद प्रदान किया। हे मुने! शिवाकी परीक्षा करनेवाले वे मुनिगण उन देवीको प्रणाम करके प्रसन्नचित्त होकर शीघ्र ही शिवस्थानको चले गये॥ ७०—७२॥

तत्र गत्वा शिवं नत्वा वृत्तान्तं विनिवेद्य तत्।
तदाज्ञां समनुप्राप्य स्वर्लोकं जग्मुरादरात्॥ ७३

वे लोग वहाँ जाकर शिवको प्रणाम करके उस वृत्तान्तका निवेदनकर उनकी आज्ञा प्राप्त करके आदरपूर्वक स्वर्गलोकको चले गये॥ ७३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे सप्तर्षिकृतपरीक्षावर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें सप्तर्षिकृतपरीक्षावर्णन नामक पच्चीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

पार्वतीकी परीक्षा लेनेके लिये भगवान् शिवका जटाधारी ब्राह्मणका वेष धारणकर पार्वतीके समीप जाना, शिव-पार्वती-संवाद

ब्रह्मोवाच

गतेषु तेषु मुनिषु स्वं लोकं शंकरः स्वयम्।
परीक्षितुं तपो देव्या ऐच्छत्सूतिकरः प्रभुः॥ १

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! उन मुनियोंके अपने-अपने लोक चले जानेपर जगत्स्रष्टा प्रभु शिवने स्वयं पार्वतीके तपकी परीक्षा लेनेकी इच्छा की॥ १॥

परीक्षाछद्मना शंभुर्द्रष्टुं तां तुष्टमानसः।
जटिलं रूपमास्थाय स ययौ पार्वतीवनम्॥ २

प्रसन्नचित्त वे शिवजी परीक्षाके बहाने उन्हें देखनेके लिये जटाधारीरूप धारणकर पार्वतीके वनमें गये॥ २॥

अतीव स्थविरो विप्रदेहधारी स्वतेजसा।
प्रज्वलन्मनसा हृष्टो दंडी छत्री बभूव सः॥ ३

उन्होंने प्रसन्न मनसे बूढ़े ब्राह्मणका वेष धारण किया और अपने तेजसे देदीप्यमान हो दण्ड तथा छत्र धारण कर लिया था॥ ३॥

तत्रापश्यत्स्थितां देवीं सखीभिः परिवारिताम्।
वेदिकोपरि शुद्धां तां शिवामिव विधोः कलाम्॥ ४

वहाँपर उन्होंने सखियोंसे घिरी हुई उन विशुद्ध पार्वतीको वेदीपर बैठी हुई साक्षात् चन्द्रकलाके समान देखा॥ ४॥

शंभुर्निरीक्ष्य तां देवीं ब्रह्मचारिस्वरूपवान्।
उपकंठं ययौ प्रीत्या तदासौ भक्तवत्सलः॥ ५

तब ब्रह्मचारीका रूप धारण किये हुए वे भक्तवत्सल शिव उन देवीको देखकर प्रेमपूर्वक उनके समीप गये॥ ५॥

आगतं तं तदा दृष्ट्वा ब्राह्मणं तेजसाद्भुतम्।
अपूजयच्छिवा देवी सर्वपूजोपहारकैः॥ ६

सुसत्कृतं संविधाभिः पूजितं परया मुदा।
पार्वती कुशलं प्रीत्या पप्रच्छ द्विजमादरात्॥ ७

उस अपूर्व तेजस्वी ब्राह्मणको आया हुआ देखकर शिवादेवीने सभी प्रकारकी पूजासामग्रीसे उनका पूजन किया। इस प्रकार भलीभाँति पूजा-सत्कार करनेके अनन्तर पार्वतीजी प्रसन्नताके साथ उस ब्राह्मणसे आदरपूर्वक कुशल पूछने लगीं— ॥ ६-७॥

पार्वत्युवाच

ब्रह्मचारिस्वरूपेण कस्त्वं हि कुत आगतः।
इदं वनं भासयसे वद वेदविदां वर॥ ८

पार्वती बोलीं—हे ब्राह्मण! ब्रह्मचारीका स्वरूप धारण किये हुए आप कौन हैं और कहाँसे आये हैं? आप इस वनको प्रकाशित कर रहे हैं। हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! यह सब मुझसे कहिये॥ ८॥

विप्र उवाच

अहमिच्छाभिगामी च वृद्धो विप्रतनुः सुधीः।
तपस्वी सुखदोऽन्येषामुपकारी न संशयः॥ ९

ब्राह्मण बोले—मैं वृद्ध ब्राह्मणका शरीर धारण किये अपने इच्छानुसार चलनेवाला एक बुद्धिमान् तपस्वी हूँ, मैं दूसरोंको सुख देनेवाला तथा उनका उपकार करनेवाला हूँ, इसमें संशय नहीं है॥ ९॥

का त्वं कस्यासि तनया किमर्थं विजने वने।
तपश्चरसि दुर्धर्षं मुनिभिः प्रपदैरपि॥ १०

तुम कौन हो और किसकी कन्या हो, इस निर्जन वनमें अकेली रहकर इतनी कठिन तपस्या क्यों कर रही हो, जो मुनियोंके लिये भी दुष्कर है॥ १०॥

न बाला न च वृद्धासि तरुणी भासि शोभना।
कथं पतिं विना तीक्ष्णं तपश्चरसि वै वने॥ ११

किं त्वं तपस्विनी भद्रे कस्यचित्सहचारिणी।
तपस्वी स न पुष्णाति देवि त्वां च गतोऽन्यतः॥ १२

तुम न तो बाला हो, न ही वृद्धा, तुम तो सर्वथा तरुणी जान पड़ती हो। पतिके बिना इस वनमें इतनी कठोर तपस्या क्यों कर रही हो? हे भद्रे! क्या तुम किसी तपस्वीकी सहचारिणी हो, जो इतनी घोर तपस्यामें निमग्न हो। क्या वह तपस्वी तुम्हारा पोषण नहीं करता अथवा तुम्हें छोड़कर अन्यत्र चला गया है?॥ ११-१२॥

वद कस्य कुले जाता कः पिता तव काभिधा।
महासौभाग्यरूपा त्वं वृथा तव तपोरतिः॥ १३

तुम किसके कुलमें उत्पन्न हुई हो, तुम्हारे पिता कौन हैं तथा तुम्हारा क्या नाम है, यह बताओ, तुम तो सौभाग्य-शालिनी हो, तपस्यामें तुम्हारी आसक्ति तो व्यर्थ ही है॥ १३॥

किं त्वं वेदप्रसूर्लक्ष्मीः किं सुरूपा सरस्वती।
एतासु मध्ये का वा त्वं नाहं तर्कितुमुत्सहे॥ १४

क्या तुम वेदोंकी जन्मदात्री सावित्री हो या महालक्ष्मी हो अथवा सुन्दर रूप धारण किये हुए सरस्वती हो! इनमें तुम कौन हो! मैं अनुमान नहीं कर पा रहा हूँ॥ १४॥

पार्वत्युवाच

नाहं वेदप्रसूर्विप्र न लक्ष्मीश्च सरस्वती।
अहं हिमाचलसुता सांप्रतं नाम पार्वती॥ १५

पार्वती बोलीं—हे विप्र! न तो मैं सावित्री हूँ, न महालक्ष्मी और न ही सरस्वती ही हूँ। मैं हिमालयकी पुत्री हूँ और मेरा वर्तमान नाम पार्वती है॥ १५॥

पुरा दक्षसुता जाता सती नामान्यजन्मनि।
योगेन त्यक्तदेहाहं यत्पित्रा निन्दितः पतिः॥ १६

अत्र जन्मनि संप्राप्तः शिवोऽपि विधिवैभवात्।
मां त्यक्त्वा भस्मसात्कृत्य मन्मथं स जगाम ह॥ १७

प्रयाते शंकरे तापोद्विजिताहं पितुर्गृहात्।
आगता तपसे विप्र सुदृढा स्वर्णदीतटे॥ १८

पूर्वजन्ममें मैं दक्षकी कन्या थी, उस समय मेरा नाम सती था। मेरे पिताने मेरे पतिकी निन्दा की थी, इसलिये मैंने [योगमार्गका अवलम्बनकर] अपना शरीर त्याग दिया था। मैंने इस जन्ममें भी भाग्यवश शिवजीको ही प्राप्त किया, परंतु वे कामदेवको जलाकर मुझे छोड़कर चले गये। हे विप्र! शंकरजीके चले जानेपर मैं कष्टसे उद्विग्न हो गयी और तपके लिये दृढ़ होकर पिताके घरसे गंगाके तटपर चली आयी॥ १६—१८॥

कृत्वा तपः कठोरं च सुचिरं प्राणवल्लभम्।
न प्राप्याग्नौ विविक्षन्ती त्वां दृष्ट्वा संस्थिता क्षणम्॥ १९

बहुत समयतक कठोर तपस्या करनेके बाद भी मेरे प्राणवल्लभ सदाशिव मुझे प्राप्त नहीं हुए, इस कारण मैं अग्निमें प्रवेश करना चाहती थी, किंतु आपको देखकर क्षणमात्रके लिये रुक गयी॥ १९॥

गच्छ त्वं प्रविशाम्यग्नौ शिवेनाङ्गीकृता न हि।
यत्र यत्र जनुर्लप्स्ये वरिष्यामि शिवं वरम्॥ २०

अब आप जाइये। शिवजीने मुझे अंगीकार नहीं किया, इसलिये मैं अब अग्निमें प्रवेश करूँगी। मैं जहाँ-जहाँ जन्म लूँगी, वहाँ भी शिवको ही वररूपमें प्राप्त करूँगी॥ २०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा पार्वती वह्नौ तत्पुरः प्रविवेश सा।
निषिध्यमाना पुरतो ब्राह्मणेन पुनः पुनः॥ २१
वह्निप्रवेशं कुर्वत्याः पार्वत्यास्तत्प्रभावतः।
बभूव तत्क्षणं सद्यो वह्निश्चन्दनपङ्कवत्॥ २२
क्षणं तदन्तरे स्थित्वा ह्युत्पतन्तीं दिवं द्विजः।
पुनः पप्रच्छ सहसा विहसन्सुतनुं शिवः॥ २३

द्विज उवाच

अहो तपस्ते किं भद्रे न बुद्धं किञ्चिदेव हि।
न दग्धो वह्निना देहो न च प्राप्तं मनीषितम्॥ २४

अतः सत्यं निकामं वै वद देवि मनोरथम्।
ममाग्रे विप्रवर्यस्य सर्वानंदप्रदस्य हि॥ २५

यथाविधि त्वया देवि कीर्त्यतां सर्वथात्मना।
तस्मान्मैत्री च संजाता कार्यं गोप्यं त्वया न हि॥ २६

किमिच्छसि वरं देवि प्रष्टुमिच्छाम्यतःपरम्।
त्वय्येव तदसौ देवि फलं सर्वं प्रदृश्यते॥ २७

परार्थे च तपश्चेद्वै तिष्ठेत्तु तप एव तत्।
रत्नं हस्ते समादाय हित्वा काचस्तु संचितः॥ २८

ईदृशं तव सौन्दर्यं कथं व्यर्थीकृतं त्वया।
हित्वा वस्त्राण्यनेकानि चर्मादि च धृतं त्वया॥ २९

तत्सर्वं कारणं ब्रूहि तपसस्त्वस्य सत्यतः।
तच्छ्रुत्वा विप्रवर्योऽहं यथा हर्षमवाप्नुयाम्॥ ३०

ब्रह्मोवाच

इति पृष्टा तदा तेन सखीं प्रैरयताम्बिका।
तन्मुखेनैव तत्सर्वं कथयामास सुव्रता॥ ३१
तया च प्रेरिता तत्र पार्वत्या विजयाभिधा।
प्राणप्रिया सुव्रतज्ञा सखी जटिलमब्रवीत्॥ ३२

सख्युवाच

शृणु साधो प्रवक्ष्यामि पार्वतीचरितं परम्।
हेतुं च तपसस्सर्वं यदि त्वं श्रोतुमिच्छसि॥ ३३

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर पार्वती ब्रह्मचारीद्वारा बारम्बार निषेध करनेपर भी अग्निमें प्रवेश कर गयीं। पार्वतीके अग्निमें प्रवेश करते ही उनकी तपस्याके प्रभावसे वह अग्नि उसी समय शीघ्र ही चन्दनके समान शीतल हो गयी। क्षणभर अग्निमें रहनेके बाद ज्यों ही वे द्युलोक जानेको उद्यत हुईं, तब [विप्ररूप] शिव हँसते हुए उन सुन्दरांगीसे सहसा पूछने लगे—॥ २१—२३॥

द्विज बोले—हे भद्रे! तुम्हारी यह कैसी तपस्या है? मुझे तो तुम्हारी इस तपस्याका कुछ भी फल नहीं जान पड़ता। इस अग्निने तुम्हारे शरीरको भी नहीं जलाया और तुम्हारा मनोरथ भी प्राप्त नहीं हुआ॥ २४॥

इसलिये हे देवि! सब प्रकारका आनन्द प्रदान करनेवाले मुझ विप्रवरके सामने तुम अपना मनोरथ ठीकसे कहो, हे देवि! तुम पूर्णरूपसे इस बातको यथाविधि कह दो। [परस्पर बातचीतसे] हमारी-तुम्हारी मित्रता हो गयी, अतः तुम्हें इस बातको गोपनीय नहीं रखना चाहिये॥ २५-२६॥

हे देवि! इसके पश्चात् मैं पूछना चाहता हूँ कि तुम कौन-सा वरदान चाहती हो? हे देवि! मुझे सारे वरदानका फल तुम्हींमें दिखायी पड़ रहा है॥ २७॥

यह तपस्या यदि तुमने दूसरेके लिये की है, तो वह सारा-का-सारा तुम्हारा तप व्यर्थ हो गया और तुमने हाथमें रत्नको ले करके उसे खोकर पुनः काँच धारण किया॥ २८॥

इस प्रकारकी अपनी सुन्दरता तुमने व्यर्थ क्यों कर दी? अनेक प्रकारके वस्त्र त्यागकर तुमने यह मृगचर्म क्यों धारण किया? इसलिये तुम इस तपस्याका सारा कारण सत्य-सत्य बताओ, जिससे कि उसे सुनकर ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ मैं प्रसन्नता प्राप्त करूँ॥ २९-३०॥

ब्रह्माजी बोले—जब इस प्रकार उस ब्राह्मणने पार्वतीसे पूछा, तब उन सुव्रताने अपनी सखीको प्रेरित किया और उसके मुखसे सारा वृत्तान्त कहलवाया॥ ३१॥

तदनन्तर उस पार्वतीसे प्रेरित होकर पार्वतीको प्राणोंके समान प्रिय तथा उत्तम व्रतको जाननेवाली विजया नामकी सखी उस ब्रह्मचारीसे कहने लगी—॥ ३२॥

सखी बोली—हे साधो! यदि आप इस पार्वतीका श्रेष्ठ चरित्र एवं इसकी तपस्याका समस्त कारण जानना चाहते हैं, तो मैं उसे कहूँगी, आप सुनें॥ ३३॥

सखी मे गिरिराजस्य सुतेयं हिमभूभृतः।
ख्याता वै पार्वती नाम्ना तस्या मातास्ति मेनका॥ ३४
ऊढेयं न च केनापि न वाञ्छति शिवात्परम्।
त्रीणि वर्षसहस्राणि तपश्चरणसाधिनी॥ ३५

तदर्थं मेऽनया सख्या प्रारब्धं तप ईदृशम्।
तदत्र कारणं वक्ष्ये शृणु साधो द्विजोत्तम॥ ३६

हित्वेन्द्रप्रमुखान्देवान् हरिं ब्रह्माणमेव च।
पतिं पिनाकपाणिं वै प्राप्तुमिच्छति पार्वती॥ ३७

यह मेरी सखी पर्वतराज हिमालयकी पुत्री है और पार्वती नामसे प्रसिद्ध है। इसकी माता मेनका है॥ ३४॥

अभीतक इसका विवाह किसीके साथ नहीं हुआ है, यह शिवजीको छोड़कर दूसरेको अपना पति नहीं बनाना चाहती। यह तीन हजार वर्षसे तपस्या कर रही है। हे साधो! हे द्विजोत्तम! उन्हींके लिये मेरी सखीने ऐसा तप आरम्भ किया है, इसका भी कारण मैं आपसे कहती हूँ आप सुनें। यह पार्वती इन्द्रादि प्रमुख देवताओं एवं ब्रह्मा, विष्णु आदिको छोड़कर केवल पिनाकपाणि शंकरको ही पतिरूपमें प्राप्त करनेकी इच्छा करती है॥ ३५—३७॥

इयं सखी मदीया वै वृक्षानारोपयत्पुरा।
तेषु सर्वेषु संजातं फलपुष्पादिकं द्विज॥ ३८

हे द्विज! तपस्या प्रारम्भ करनेके पूर्व मेरी सखीने जिन वृक्षोंको लगाया था, उन सबमें फूल, फल आदि आ गये हैं [अतः प्रतीत होता है कि मेरी सखीके मनोरथ पूर्ण होनेका समय आ गया है।]॥ ३८॥

रूपसार्थाय जनककुलालंकरणाय च।
समुद्दिश्य महेशानं कामस्यानुग्रहाय च॥ ३९

मत्सखी नारदादेशात्तपस्तपति दारुणम्।
मनोरथं कुतस्तस्या न फलिष्यति तापस॥ ४०

यह मेरी सखी नारदजीके उपदेशानुसार अपने रूपको सार्थक करनेके लिये, अपने पिताके कुलको अलंकृत करनेके लिये और कामदेवपर अनुग्रह करनेके लिये महेश्वरके उद्देश्यसे कठिन तप कर रही है, हे तापस! क्या इसका मनोरथ सफल नहीं होगा?॥ ३९-४०॥

यत्ते पृष्टं द्विजश्रेष्ठ मत्सख्या मनसीप्सितम्।
मया ख्यातं च तत्प्रीत्या किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥ ४१

हे द्विजश्रेष्ठ! आपने मेरी सखीके जिस मनोरथको पूछा था, उसे मैंने प्रीतिपूर्वक कह दिया, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ४१॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा विजयाया यथार्थतः।
मुने स जटिलो रुद्रो विहसन्वाक्यमब्रवीत्॥ ४२

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! विजयाकी इस यथार्थ बातको सुनकर वे जटाधारी रुद्र हँसते हुए यह वचन कहने लगे—॥ ४२॥

जटिल उवाच

सख्येदं कथितं तत्र परिहासोऽनुमीयते।
यथार्थं चेत्तदा देवी स्वमुखेनाभिभाषताम्॥ ४३

जटिल बोले—सखीके द्वारा जो यह कहा गया है, वह तो परिहास मालूम पड़ता है, यदि यह यथार्थ है, तो देवी अपने मुखसे कहें॥ ४३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ते च तदा तेन जटिलेन द्विजन्मना।
उवाच पार्वती देवी स्वमुखेनैव तं द्विजम्॥ ४४

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार जब जटाधारी ब्राह्मणने कहा, तब पार्वतीदेवी अपने मुखसे ही उन ब्राह्मणसे कहने लगीं॥ ४४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शिवाजटिलसंवादो नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें शिवाजटिलसंवादवर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २६॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

जटाधारी ब्राह्मणद्वारा पार्वतीके समक्ष शिवजीके स्वरूपकी निन्दा करना

पार्वत्युवाच

शृणु द्विजेन्द्र जटिल मद्वृत्तं निखिलं खलु।
सख्युक्तं मेऽद्य यत्सत्यं तत्तथैव न चान्यथा॥ १

पार्वती बोलीं—हे द्विजेन्द्र! हे जटिल! मेरा समस्त वृत्तान्त सुनें। इस समय मेरी सखीने जो कुछ भी कहा है, वह सब सत्य है, कुछ भी झूठा नहीं है॥ १॥

मनसा वचसा साक्षात्कर्मणा पतिभावतः।
सत्यं ब्रवीमि नोऽसत्यं वृतो वै शंकरो मया॥ २

जानामि दुर्लभं वस्तु कथं प्राप्यं मया भवेत्।
तथापि मन औत्सुक्यात्तप्यतेऽद्य तपो मया॥ ३

मैंने मन, वचन एवं कर्मसे शंकरजीका ही पतिभावसे वरण किया है, यह बात मैं सत्य कहती हूँ, असत्य नहीं। मैं जानती हूँ कि दुर्लभ वस्तु मुझे कैसे प्राप्त हो सकती है, फिर भी मनकी उत्सुकतावश मैं इस समय तप कर रही हूँ॥ २-३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा वचनं तस्मै स्थिता सा गिरिजा तदा।
उवाच ब्राह्मणस्तत्र तच्छ्रुत्वा पार्वतीवचः॥ ४

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार उस ब्रह्मचारीसे कहकर गिरिजा चुप हो गयीं। तब वे ब्राह्मण पार्वतीकी बात सुनकर कहने लगे—॥ ४॥

ब्राह्मण उवाच

एतावत्कालपर्यन्तं ममेच्छा महती ह्यभूत्।
किं वस्तु कांक्षती देवी कुरुते सुमहत्तपः॥ ५

ब्राह्मण बोले—अभीतक मुझे यह बड़ी इच्छा थी कि यह देवी किस वस्तुको प्राप्त करनेके लिये अत्यन्त कठिन तप कर रही है॥ ५॥

तज्ज्ञात्वा निखिलं देवि श्रुत्वा त्वन्मुखपंकजात्।
इतो गच्छाम्यहं स्थानाद्यथेच्छसि तथा कुरु॥ ६

हे देवि! तुम्हारे मुखकमलसे सारी बातें सुनकर और उसे जानकर अब मैं यहाँसे जाना चाहता हूँ, अब तुम जैसा चाहती हो, वैसा ही करो॥ ६॥

न कथ्यते त्वया मह्यं मित्रत्वं निष्फलं भवेत्।
यथा कार्यं तथा भावि कथनीयं सुखेन च॥ ७

यदि तुम मुझसे इन बातोंको न कहती, तो मित्रता व्यर्थ हो जाती। कार्य तो होनहारके अनुसार होता है, इसलिये सुखपूर्वक उसे कहना चाहिये॥ ७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा वचनं तस्य यावद्गन्तुमियेष सः।
तावच्च पार्वती देवी प्रणम्योवाच तं द्विजम्॥ ८

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार कहकर ज्यों ही उस ब्राह्मणने जानेकी इच्छा की, तभी पार्वती देवी प्रणाम करके उन द्विजसे कहने लगीं—॥ ८॥

पार्वत्युवाच

किं गमिष्यसि विप्रेन्द्र स्थितो भव हितं वद।
इत्युक्ते च तया तत्र स्थित्वोवाच स दण्डधृक्॥ ९

पार्वती बोलीं—हे विप्रेन्द्र! आप क्यों जा रहे हैं, ठहरिये और मेरे हितकी बात कहिये। उनके ऐसा कहनेपर वे दण्डधारी रुककर कहने लगे—॥ ९॥

द्विज उवाच

यदि श्रोतुमना देवि मां स्थापयसि भक्तितः।
वदामि तत्त्वं तत्सर्वं येन ते वयुनं भवेत्॥ १०

जानाम्यहं महादेवं सर्वथा गुरुधर्मतः।
प्रवदामि यथार्थं हि सावधानतया शृणु॥ ११

ब्राह्मण बोले—हे देवि! यदि तुम सुननेकी इच्छा करती हो और भक्तिपूर्वक मुझे रोकती हो, तो मैं तुमसे वह सब तत्त्व कहता हूँ, जिससे [उनके विषयमें] तुम्हें भलीभाँति जानकारी हो जायगी। मैं गुरुप्रसादसे महादेवको अच्छी तरहसे जानता हूँ। जो बात सत्य है, उसको कह रहा हूँ, तुम सावधान होकर सुनो॥ १०-११॥

वृषध्वजो महादेवो भस्मदिग्धो जटाधरः।
व्याघ्रचर्माम्बरधरः संवीतो गजकृत्तिना॥ १२

महादेव बैलकी सवारी करते हैं, भस्म पोते रहते हैं, जटा धारण किये रहते हैं, व्याघ्रचर्म धारण करते हैं और हाथीका चमड़ा ओढ़ते हैं॥ १२॥

कपालधारी सर्पौघैः सर्वगात्रेषु वेष्टितः।
विषदिग्धोऽभक्ष्यभक्षो विरूपाक्षो विभीषणः॥ १३

वे कपाल धारण करते हैं तथा सम्पूर्ण शरीरमें साँप लपेटे रहते हैं। वे विष पीनेवाले, अभक्ष्यका भक्षण करनेवाले, विरूपाक्ष और महाभयंकर हैं॥ १३॥

अव्यक्तजन्मा सततं गृहभोगविवर्जितः।
दिगंबरो दशभुजो भूतप्रेतान्वितस्सदा॥ १४

उनके जन्मका किसीको पता नहीं है और वे गृहस्थोचित भोगसे सर्वथा रहित हैं। वे दिगम्बर, दशभुजावाले तथा भूत-प्रेतोंके साथ निवास करते हैं॥ १४॥

केन वा कारणेन त्वं तं भर्तारं समीहसे।
क्व ज्ञानं ते गतं देवि तद्वदाद्य विचारतः॥ १५
पूर्वं श्रुतं मया चैव व्रतं तस्य भयंकरम्।
शृणु ते निगदाम्यद्य यदि ते श्रवणे रुचिः॥ १६

हे देवि! तुम किस कारणसे उन्हें अपना पति बनाना चाहती हो, तुम्हारा ज्ञान कहाँ खो गया है, इसे विचारकर मुझसे इस समय कहो—मैंने पूर्व समयमें भी उनका भयंकर चरित्र सुना है। यदि तुम्हें उसे सुननेकी इच्छा हो, तो मैं कह रहा हूँ, उसे सुनो॥ १५-१६॥

दक्षस्य दुहिता साध्वी सती वृषभवाहनम्।
वव्रे पतिं पुरा दैवात्तत्संभोगः परिश्रुतः॥ १७
कपालिजायेति सती दक्षेण परिवर्जिता।
यज्ञे भागप्रदानाय शंभुश्चापि विवर्जितः॥ १८

पहले दक्षकन्या साध्वी सतीने वृषभवाहन शिवका वरण किया था, उसके साथ उन्होंने जैसा व्यवहार किया, वह बात भी तुमने सुनी होगी। दक्षने स्वयं अपनी कन्याको इसीलिये नहीं बुलाया कि वह कपालीकी पत्नी है और यज्ञमें शिवजीको भाग भी नहीं दिया॥ १७-१८॥

सा तथैवापमानेन भृशं कोपाकुला सती।
तत्याजासून्प्रियाँस्तत्र तया त्यक्तश्च शंकरः॥ १९

इस अपमानसे अत्यन्त क्रुद्ध हुई सतीने अपने प्रिय प्राण त्याग दिये और उसने शंकरजीको भी छोड़ दिया॥ १९॥

त्वं स्त्रीरत्नं तव पिता राजा निखिलभूभृताम्।
तथाविधं पतिं कस्मादुग्रेण तपसेहसे॥ २०

तुम सभी स्त्रियोंमें रत्न हो और तुम्हारे पिता भी पर्वतोंके राजा हैं, फिर उग्र तपस्याके द्वारा तुम इस प्रकारके पतिको क्यों प्राप्त करना चाहती हो?॥ २०॥

दत्त्वा सुवर्णमुद्रां च ग्रहीतुं काचमिच्छसि।
हित्वा च चंदनं शुभ्रं कर्दमं लेप्तुमिच्छसि॥ २१
सूर्यतेजः परित्यज्य खद्योतद्युतिमिच्छसि।
चीनांशुकं विहायैव चर्माम्बरमिहेच्छसि॥ २२

तुम सुवर्णकी मुद्रा देकर काँच क्यों ग्रहण करना चाहती हो और सुन्दर चन्दनको छोड़कर कीचड़ लगानेकी इच्छा क्यों कर रही हो? सूर्यका तेज छोड़कर तुम जुगनूका प्रकाश क्यों चाहती हो और रेशमी वस्त्रको त्यागकर चमड़ा क्यों पहनना चाहती हो?॥ २१-२२॥

गृहवासं परित्यज्य वनवासं समीहसे।
लोहमिच्छसि देवेशि त्यक्त्वा शेवधिमुत्तमम्॥ २३
इन्द्रादिलोकपालांश्च हित्वा शिवमनुव्रता।
नैतत्सूक्तं हि लोकेषु विरुद्धं दृश्यतेऽधुना॥ २४

घरमें रहना छोड़कर वनमें रहना चाहती हो और हे देवेशि! उत्तम खजानेको छोड़कर लोहेकी इच्छा करती हो। जो तुम इन्द्र आदि लोकपालोंको छोड़कर शिवमें अनुरक्त हुई हो, यह तो उचित नहीं है और यह लोकके सर्वथा विरुद्ध दिखायी पड़ता है॥ २३-२४॥

क्व त्वं कमलपत्राक्षी क्वासौ वै त्रिविलोचनः।
शशांकवदना त्वं च पंचवक्त्रः शिवः स्मृतः॥ २५

कहाँ तुम कमलके समान विशाल नेत्रवाली हो और कहाँ वे भयंकर तीन नेत्रवाले हैं। तुम चन्द्रमाके समान मुखवाली हो तथा वे शिव पाँच मुखवाले कहे गये हैं॥ २५॥

वेणी शिरसि ते दिव्या सर्पिणीव विभासिता।
जटाजूटं शिवस्यैव प्रसिद्धं परिचक्षते॥ २६

तुम्हारे सिरपर सर्पिणीके समान वेणी सुशोभित है और शिवका जटाजूट तो प्रसिद्ध ही है॥ २६॥

चंदनं च त्वदीयाङ्गे चिताभस्म शिवस्य च।
क्व दुकूलं त्वदीयं वै शाङ्करं क्व गजाजिनम्॥ २७

क्व भूषणानि दिव्यानि क्व सर्पाः शंकरस्य च।
क्व चरा देवताः सर्वाः क्व च भूतबलिप्रियः॥ २८

तुम्हारे शरीरमें चन्दनका लेप और शिवके शरीरमें चिताका भस्म लगा रहता है। कहाँ तुम्हारा दुकूल और कहाँ शंकरका गजचर्म! कहाँ [तुम्हारे] दिव्य आभूषण और कहाँ शंकरके सर्प! कहाँ सभी देवता तुम्हारे सेवक तथा कहाँ भूतों तथा बलिको प्रिय समझनेवाला वह शिव!॥ २७-२८॥

क्व वा मृदङ्गवादश्च क्व च तड्डमरुस्तथा।
क्व च भेरीकलापश्च क्व च शृङ्गरवोऽशुभः॥ २९

क्व च ढक्कामयः शब्दो गलनादः क्व चाशुभः।
भवत्याश्च शिवस्यैव न युक्तं रूपमुत्तमम्॥ ३०

कहाँ [तुम्हें सुख देनेवाला] मृदंगवाद्य और कहाँ डमरू? कहाँ तुम्हारी भेरीकी ध्वनि और कहाँ उनका अशुभदायक शृंगीका शब्द! कहाँ तुम्हारा ढक्का नामक बाजेका शब्द और उनका अशुभ गलेका शब्द! तुम्हारा रूप उत्तम है और शिवका रूप नहीं है॥ २९-३०॥

यदि द्रव्यं भवेत्तस्य कथं स्यात्स दिगम्बरः।
वाहनं च बलीवर्दः सामग्री कापि तस्य न॥ ३१

वरेषु ये गुणाः प्रोक्ता नारीणां सुखदायकाः।
तन्मध्ये हि विरूपाक्षे एकोऽपि न गुणः स्मृतः॥ ३२

यदि उनके पास द्रव्य होता तो वे दिगम्बर कैसे होते, उनका वाहन भी बैल है तथा उनके पास और कोई सामग्री भी नहीं है। स्त्रियोंको सुख देनेवाले जो गुण वरोंमें बताये गये हैं, उनमेंसे एक भी गुण विरूपाक्ष शिवमें नहीं कहा गया है॥ ३१-३२॥

तवापि कामो दयितो दग्धस्तेन हरेण च।
अनादरस्तदा दृष्टो हित्वा त्वामन्यतो गतः॥ ३३

उन्होंने तुम्हारे अत्यन्त प्रिय कामदेवको भी भस्म कर दिया। उस समय तुमने अपना अनादर भी देख लिया कि वे तुम्हें छोड़कर अन्यत्र चले गये॥ ३३॥

जातिर्न दृश्यते तस्य विद्या ज्ञानं तथैव च।
सहायाश्च पिशाचा हि विषं कण्ठे हि दृश्यते॥ ३४

उनकी जातिका पता नहीं है, उसी प्रकार उनके ज्ञान तथा विद्याका भी पता नहीं, पिशाच ही उनके सहायक हैं और उनके गलेमें विष दिखायी पड़ता है॥ ३४॥

एकाकी च सदा नित्यं विरागी च विशेषतः।
तस्मात्त्वं हि हरेणैव मनो योक्तुं न चार्हसि॥ ३५

वे विशेष रूपसे विरक्त हैं, इसलिये अकेले रहते हैं। अतः तुम शंकरके साथ अपना मन मत जोड़ो॥ ३५॥

क्व च हारस्त्वदीयो वै क्व च तन्मुण्डमालिका।
अङ्गरागः क्व ते दिव्यः चिताभस्म क्व तत्तनौ॥ ३६

कहाँ तुम्हारा हार और कहाँ उनकी मुण्डमाला! कहाँ तुम्हारा दिव्य अंगराग और कहाँ उनके शरीरमें चिताभस्म!॥ ३६॥

सर्वं विरुद्धं रूपादि तव देवि हरस्य च।
मह्यं न रोचते ह्येतद्यदिच्छसि तथा कुरु॥ ३७

हे देवि! तुम्हारा और शंकरका रूप आदि सब कुछ एक-दूसरेके विपरीत है, मुझे तो यह अच्छा नहीं लगता, अब तुम जैसा चाहती हो, वैसा करो॥ ३७॥

असद्वस्तु च यत्किंचित् तत्सर्वं स्वयमीहसे।
निवर्तय मनस्तस्मान्नो चेदिच्छसि तत्कुरु॥ ३८

जो कुछ भी असद् वस्तु है, वह सब तुम स्वयं चाह रही हो। तुम उससे अपना मन हटा लो। अन्यथा जो चाहती हो, उसे करो॥ ३८॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा तस्य विप्रस्य पार्वती।
उवाच क्रुद्धमनसा शिवनिन्दापरं द्विजम्॥ ३९

ब्रह्माजी बोले—उस ब्राह्मणके इस प्रकारके वचन सुनकर पार्वती कुपित मनसे उन शिवनिन्दक ब्राह्मणसे कहने लगीं— ॥ ३९ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे ब्रह्मचारिप्रतारणवाक्यवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें ब्रह्मचारिप्रतारणवाक्यवर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २७ ॥

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

पार्वतीद्वारा परमेश्वर शिवकी महत्ता प्रतिपादित करना और रोषपूर्वक जटाधारी ब्राह्मणको फटकारना, शिवका पार्वतीके समक्ष प्रकट होना

पार्वत्युवाच

एतावद्धि मया ज्ञातं कश्चिदन्योऽयमागतः।
इदानीं सकलं ज्ञातमवध्यस्त्वं विशेषतः॥ १

पार्वतीजी बोलीं—मैं तो यही समझती थी कि यह कोई अन्य ही आया है, किंतु अब मैंने सब कुछ जान लिया है। [क्रोध तो बहुत आ रहा है, किंतु ब्रह्मचारी होनेसे] तुम विशेषरूपसे अवध्य हो॥ १ ॥

त्वयोक्तं विदितं देव तदलीकं न चान्यथा।
यदि त्वयोदितं स्याद्वै विरुद्धं नोच्यते त्वया॥ २

हे देव! आपने जो कहा है, उसे मैंने जान लिया, वह सब मिथ्या है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। यदि आप शिवजीको जानते होते, तो ऐसी विरुद्ध बातें नहीं करते॥ २ ॥

कदाचिद् दृश्यते तादृक् वेषधारी महेश्वरः।
स्वलीलया परब्रह्म स्वरागोपात्तविग्रहः॥ ३

ब्रह्मचारिस्वरूपेण प्रतारयितुमुद्यतः।
आगतश्छलसंयुक्तं वचोऽवादीः कुयुक्तितः॥ ४

महेश्वर, जो इस प्रकारका वेष धारण करते हुए देखे जाते हैं, उसका यही कारण है कि वे लीला करनेके लिये ही वैसा वेष धारण करते हैं। आप ब्रह्मचारीका रूप धारणकर मुझे छलना चाहते हैं, इसीलिये कुतर्कसे भरी हुई ऐसी बातें मुझसे कह रहे हैं॥ ३-४॥

शंकरस्य स्वरूपं तु जानामि सुविशेषतः।
शिवतत्त्वमतो वच्मि सुविचार्य यथार्हतः॥ ५

शंकरके स्वरूपको मैं विशेष रूपसे जानती हूँ, इसलिये विचारकर यथार्थ रूपसे शिवतत्त्व कहती हूँ॥ ५ ॥

वस्तुतो निर्गुणो ब्रह्म सगुणः कारणेन सः।
कुतो जातिर्भवेत्तस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः॥ ६

वस्तुतः वे निर्गुण ब्रह्म हैं और कारणवश सगुण हो जाते हैं। जो निर्गुण होकर मायासे सगुणरूप धारण करता है, उसका जन्म किस प्रकारसे सम्भव है? ॥ ६ ॥

स सर्वासां हि विद्यानामधिष्ठानं सदाशिवः।
किं तस्य विद्यया कार्यं पूर्णस्य परमात्मनः॥ ७

वेदा उच्छ्वासरूपेण पुरा दत्ताश्च विष्णवे।
शंभुना तेन कल्पादौ तत्समः कोऽस्ति सुप्रभुः॥ ८

वे सदाशिव सभी विद्याओंके अधिष्ठान हैं, उन पूर्ण परमात्माको विद्यासे क्या प्रयोजन? कल्पके आदिमें उन्हीं सदाशिवने सर्वप्रथम विष्णुको उच्छ्वासरूपसे वेद प्रदान किये थे, उनके समान कौन परम प्रभु है?॥ ७-८ ॥

सर्वेषामादिभूतस्य वयोमानं कुतस्ततः।
प्रकृतिस्तु ततो जाता किं शक्तेस्तस्य कारणम्॥ ९

जो सबका आदिकारण है, उसकी अवस्थाका प्रमाण कौन कर सकता है। यह प्रकृति तो उन्हींसे उत्पन्न हुई है, फिर उनकी शक्तिका दूसरा कारण क्या हो सकता है?॥ ९ ॥

ये भजंति च तं प्रीत्या शक्तीशं शंकरं सदा।
तस्मै शक्तित्रयं शंभुः स ददाति सदाव्ययम्॥ १०

जो लोग प्रेमपूर्वक शक्तिके पति उन सदाशिवका भजन करते हैं, उनको शिवजी सदा ही अक्षयरूप तीनों शक्तियाँ (क्रियाशक्ति, इच्छाशक्ति और ज्ञानशक्ति) प्रदान करते हैं॥ १०॥

तस्यैव भजनाज्जीवो मृत्युं जयति निर्भयः।
तस्मान्मृत्युञ्जयं नाम प्रसिद्धं भुवनत्रये॥ ११

जीव उन्हींके भजनसे निर्भय होकर मृत्युको जीत लेता है, इसलिये त्रिलोकीमें उनका मृत्युंजय नाम प्रसिद्ध है॥ ११॥

तस्यैव पक्षपातेन विष्णुर्विष्णुत्वमाप्नुयात्।
ब्रह्मत्वं च यथा ब्रह्मा देवा देवत्वमेव च॥ १२

उन्हींके पक्षमें रहनेसे विष्णुने विष्णुत्व प्राप्त किया है, ब्रह्माने ब्रह्मत्व तथा देवताओंने देवत्व प्राप्त किया है॥ १२॥

दर्शनार्थं शिवस्यादौ यथा गच्छति देवराट्।
भूतादयस्तत्परस्य द्वारपालाः शिवस्य तु॥ १३

दण्डैश्च मुकुटं विद्धं मृष्टं भवति सर्वतः।
किं तस्य बहुपक्षेण स्वयमेव महाप्रभुः॥ १४

देवताओंमें प्रमुख इन्द्र जब भगवान् शिवके दर्शनार्थ जाते हैं, तब भगवान् शिवके जो द्वारपाल एवं भूत आदि हैं, सादर उनके दण्डोंमें घिसा गया इन्द्रका मुकुट सब प्रकारसे उज्ज्वल हो उठता है। उनके विषयमें बहुत बात करनेसे क्या? वे तो स्वयं प्रभु हैं॥ १३-१४॥

कल्याणरूपिणस्तस्य सेवयेह न किं भवेत्।
किं न्यूनं तस्य देवस्य मामिच्छति सदाशिवः॥ १५

उन कल्याणस्वरूप शिवजीकी सेवा करनेसे इस लोकमें क्या नहीं सिद्ध हो जाता है। उन देवके पास किस बातकी कमी है, जो वे सदाशिव मेरी इच्छा करें॥ १५॥

सप्तजन्मदरिद्रः स्यात्सेवेद्यो यदि शंकरम्।
तस्यैतत्सेवनाल्लोके लक्ष्मीः स्यादनपायिनी॥ १६

जो सात जन्मोंका दरिद्र हो, वह भी यदि शंकरकी सेवा करे, तो उनकी इस सेवासे उसे लोकमें स्थिर रहनेवाली लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है॥ १६॥

यदग्रे सिद्धयोऽष्टौ च नित्यं नृत्यंति तोषितुम्।
अवाङ्मुखाः सदा तत्र तद्धितं दुर्लभं कुतः॥ १७

जिन्हें सन्तुष्ट करनेके लिये आठों सिद्धियाँ सदा नीचेकी ओर मुख किये जिनके आगे सदा नृत्य करती हैं, उनसे हित होना कहाँसे दुर्लभ है?॥ १७॥

यद्यस्य मङ्गलानीह सेवते शंकरस्य न।
तथापि मङ्गलं तस्य स्मरणादेव जायते॥ १८

यद्यपि समस्त मंगल उन शिवजीकी सेवा नहीं करते अर्थात् वे मंगलवेश धारण नहीं करते, तो भी उनके स्मरणमात्रसे ही पुरुषका मंगल होता है॥ १८॥

यस्य पूजाप्रभावेण कामाः सिद्ध्यन्ति सर्वशः।
कुतो विकारस्तस्यास्ति निर्विकारस्य सर्वदा॥ १९

शिवेति मङ्गलं नाम मुखे यस्य निरन्तरम्।
तस्यैव दर्शनादन्ये पवित्राः सन्ति सर्वदा॥ २०

जिनकी पूजाके प्रभावसे निरन्तर समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, उन निर्विकार शंकरमें विकार कहाँसे हो सकता है? जिसके मुखसे 'शिव' यह मंगल नाम निरन्तर निकलता है, उस पुरुषके दर्शनमात्रसे ही दूसरे प्राणी सदा पवित्र हो जाते हैं॥ १९-२०॥

यद्यपूतं भवेद्भस्म चितायाश्च त्वयोदितम्।
नित्यमस्याङ्गगं देवैः शिरोभिर्धार्यते कथम्॥ २१

[हे ब्रह्मचारिन्!] जैसा आपने कहा है कि चिताकी भस्म अपवित्र होती है, तो देवगण उनके अंगमें शोभित भस्म सिरपर नित्य क्यों धारण करते हैं?॥ २१॥

यो देवो जगतां कर्ता भर्ता हर्ता गुणान्वितः।
निर्गुणः शिवसंज्ञश्च स विज्ञेयः कथं भवेत्॥ २२

अगुणं ब्रह्मणो रूपं शिवस्य परमात्मनः।
तत्कथं हि विजानन्ति त्वादृशास्तद्बहिर्मुखाः॥ २३

जो देव जगत्का कर्ता, भर्ता तथा हर्ता है, गुणोंसे संयुक्त है, निर्गुण तथा शिव है, उसे कोई किस प्रकार जान सकता है? ब्रह्मस्वरूप परमात्मा शिवजीका रूप सदा निर्गुण है। अतः आपके सदृश शिवद्रोही उन्हें किस प्रकार जान सकते हैं?॥ २२-२३॥

दुराचाराश्च पापाश्च वेदेभ्यो ये विनिर्गताः।
तत्त्वं ते नैव जानन्ति शिवस्यागुणरूपिणः॥ २४

जो दुराचारी, महापापी, वेद एवं देवतासे विमुख हैं, वे निर्गुणरूपवाले शिवके तत्त्वको नहीं जान सकते॥ २४॥

शिवनिन्दां करोतीह तत्त्वमज्ञाय यः पुमान्।
आजन्मसंचितं पुण्यं भस्मीभवति तस्य तत्॥ २५
त्वया निंदा कृता यात्र हरस्यामिततेजसः।
त्वत्पूजा च कृता यन्मे तस्मात्पापं भजाम्यहम्॥ २६
शिवविद्वेषिणं दृष्ट्वा सचैलं स्नानमाचरेत्।
शिवविद्वेषिणं दृष्ट्वा प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥ २७

जो पुरुष तत्त्वको न जानकर शिवकी निन्दा करता है, उसका जन्मपर्यन्त संचित किया गया पुण्य भस्म हो जाता है। आपने इस समय जो महातेजस्वी शिवकी निन्दा की है और मैंने जो आपकी पूजा की है, इसका पाप मुझे भी लग गया है। शिवजीकी निन्दा करनेवालेको देखकर वस्त्रोंसहित स्नान करना चाहिये और शिवद्रोहीको देखते ही प्रायश्चित्त भी करना चाहिये॥ २५—२७॥

रे रे दुष्ट त्वया चोक्तमहं जानामि शंकरम्।
निश्चयेन न विज्ञातश्शिव एव सनातनः॥ २८

यथा तथा भवेद्रुद्रो यथा वा बहुरूपवान्।
ममाभीष्टतमो नित्यं निर्विकारी सतां प्रियः॥ २९

अरे दुष्ट! तुमने जो कहा कि मैं शिवको जानता हूँ, तुम्हें तो निश्चित रूपसे सनातन शिवजीका कुछ ज्ञान नहीं है। वे रुद्र चाहे किसी भी स्वरूपवाले हों, रूपवान् हों अथवा अरूपी हों, वे सज्जनोंके प्रिय निर्विकारी प्रभु मेरे तो सर्वस्व हैं और मुझे अत्यन्त प्रिय हैं॥ २८-२९॥

विष्णुर्ब्रह्मापि न समः तस्य क्वापि महात्मनः।
कुतोऽन्ये निर्जराद्याश्च कालाधीनाः सदैव ते॥ ३०

उन महात्मा सदाशिवकी ब्रह्मा, विष्णु भी किसी प्रकार समता नहीं कर सकते, फिर जो सर्वदा कालके अधीन अन्य देवता आदि हैं, वे किस प्रकार उनकी समता कर सकते हैं?॥ ३०॥

इति बुद्ध्या समालोक्य स्वया सत्या सुतत्त्वतः।
शिवार्थं वनमागत्य करोमि विपुलं तपः॥ ३१

इस प्रकार अपनी सत्य बुद्धिसे विचारकर मैं उन शिवकी प्राप्तिहेतु वनमें आकर घोर तपस्या कर रही हूँ॥ ३१॥

स एव परमेशानः सर्वेशो भक्तवत्सलः।
संप्राप्तुं मेऽभिलाषो हि दीनानुग्रहकारकम्॥ ३२

वे ही परमेश्वर, सर्वेश एवं भक्तवत्सल हैं। दीनोंपर अनुग्रह करनेवाले उन्हींको प्राप्त करनेकी मेरी इच्छा है॥ ३२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा गिरिजा सा हि गिरीश्वरसुता मुने।
विरराम शिवं दध्यौ निर्विकारेण चेतसा॥ ३३
तदाकर्ण्य वचो देव्या ब्रह्मचारी स वै द्विजः।
पुनर्वचनमाख्यातुं यावदेव प्रचक्रमे॥ ३४
उवाच गिरिजा तावत्स्वसखीं विजयां द्रुतम्।
शिवसक्तमनोवृत्तिः शिवनिंदापराङ्मुखी॥ ३५

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इस प्रकार वे गिरिराजपुत्री मौन हो गयीं और निर्विकार चित्तसे पुनः शिवजीका ध्यान करने लगीं। तदनन्तर वे ब्राह्मण पार्वतीके इस प्रकारके वचनको सुनकर पुनः ज्यों ही कुछ कहनेको उद्यत हुए, उसी समय शिवजीमें मन लगाये हुए और शिवजीकी निन्दासे पराङ्मुख रहनेवाली पार्वती अपनी विजया नामकी सखीसे शीघ्रतापूर्वक कहने लगीं—॥ ३३—३५॥

गिरिजोवाच

वारणीयः प्रयत्नेन सख्ययं हि द्विजाधमः।
पुनर्वक्तुमनाश्चैव शिवनिंदां करिष्यति॥ ३६
न केवलं भवेत्पापं निन्दां कर्तुश्शिवस्य हि।
यो वै शृणोति तन्निन्दां पापभाक् स भवेदिह॥ ३७

पार्वती बोलीं—हे सखि! बोलनेकी इच्छावाला यह द्विजाधम पुनः शिवकी निन्दा करेगा, अतः इसे प्रयत्नपूर्वक रोको; क्योंकि केवल शिवकी निन्दा करनेवालेको ही पाप नहीं लगता, अपितु जो उनकी निन्दाको सुनता है, वह भी पापका भागी होता है॥ ३६-३७॥

शिवनिन्दाकरो वध्यः सर्वथा शिवकिंकरैः।
ब्राह्मणश्चेत्स वै त्याज्यो गन्तव्यं तत्स्थलाद् द्रुतम्॥ ३८

शिवभक्तोंको चाहिये कि वे शिवनिन्दकका वध कर दें। यदि वह ब्राह्मण है, तो उसका त्याग कर देना चाहिये और उस स्थानसे अन्यत्र चले जाना चाहिये॥ ३८॥

अयं दुष्टः पुनर्निन्दां करिष्यति शिवस्य हि।
ब्राह्मणत्वादवध्यश्चेत्त्याज्योऽदृश्यश्च सर्वथा॥ ३९

यह दुष्ट पुनः शिवजीकी निन्दा करेगा, ब्राह्मण होनेके कारण यह अवध्य है, अतः इसका त्यागकर अन्यत्र चलना चाहिये, जहाँ जानेपर यह पुनः दिखायी न पड़े॥ ३९॥

हित्वैतत्स्थलमद्यैव यास्यामोऽन्यत्र मा चिरम्।
यथा संभाषणं न स्यादनेनाऽविदुषा पुनः॥ ४०

अब इस स्थानको छोड़कर हमलोग अविलम्ब दूसरे स्थानपर चलेंगे, जिससे इस मूर्ख ब्राह्मणसे पुनः सम्भाषण न करना पड़े॥ ४०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा चोमया यावत्पादमुत्क्षिप्यते मुने।
असौ तावच्छिवः साक्षादालंबे प्रियया स्वयम्॥ ४१

कृत्वा स्वरूपं सुभगं शिवाध्यानं यथा तथा।
दर्शयित्वा शिवायै तामुवाचावाङ्मुखीं शिवः॥ ४२

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इतना कहनेके अनन्तर ज्यों ही पार्वतीने अन्यत्र जानेके लिये अपना पैर उठाया, इतनेमें ब्रह्मचारीस्वरूप साक्षात् शिवजीने पार्वतीको पकड़ लिया। उन शिवने उस समय जैसा पार्वती ध्यान कर रही थीं, उसी प्रकारका अत्यन्त सुन्दर रूप धारणकर उन्हें दर्शन दिया और पुनः नीचेकी ओर मुख की हुई पार्वतीसे वे शिव कहने लगे—॥ ४१-४२॥

शिव उवाच

कुत्र यास्यसि मां हित्वा न त्वं त्याज्या मया पुनः।
प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूहि नादेयं विद्यते तव॥ ४३

शिवजी बोले—[हे देवि!] तुम मुझे छोड़कर कहाँ जा रही हो? मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा। मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ, मेरे द्वारा तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है॥ ४३॥

अद्यप्रभृति ते दासः तपोभिः क्रीत एव ते।
क्रीतोऽस्मि तव सौन्दर्यात्क्षणमेकं युगाय ते॥ ४४

आजसे मैं तुम्हारे तपोंसे तुम्हारा खरीदा हुआ दास हो गया। तुमने अपने सौन्दर्यसे मुझे मोल ले लिया है, तुम्हारे बिना एक क्षण भी युगके समान है॥ ४४॥

त्यज्यतां च त्वया लज्जा मम पत्नी सनातनी।
गिरिजे त्वं हि सद्बुध्या विचारय महेश्वरि॥ ४५

मया परीक्षितासि त्वं बहुधा दृढमानसे।
तत्क्षमस्वापराधं मे लोकलीलानुसारिणः॥ ४६

न त्वादृशीं प्रणयिनीं पश्यामि च त्रिलोकके।
सर्वथाहं तवाधीनः स्वकामः पूर्यतां शिवे॥ ४७

हे गिरिजे! तुम लज्जाका त्याग करो, तुम तो मेरी सनातन पत्नी हो। हे महेश्वरि! इसे तुम अपनी सद्बुद्धिसे स्वयं विचार करो। हे दृढ़ मनवाली! मैंने तुम्हारी अनेक प्रकारसे परीक्षा की, मुझ लोकलीलाका अनुसरण करनेवालेके इस अपराधको क्षमा करो। मैंने तुम्हारी-जैसी पतिव्रता सती त्रिलोकमें कहीं नहीं देखी। हे शिवे! मैं सर्वथा तुम्हारे अधीन हूँ, तुम अपनी कामना पूर्ण करो॥ ४५—४७॥

एहि प्रिये मत्सकाशं पत्नी त्वं मे वरस्तव।
त्वया साकं द्रुतं यास्ये स्वगृहं पर्वतोत्तमम्॥ ४८

हे प्रिये! तुम मेरे पास आओ, तुम मेरी पत्नी हो तथा मैं तुम्हारा वर हूँ, अब मैं तुम्हें अपने साथ लेकर पर्वतोंमें उत्तम अपने घर कैलासको चलूँगा॥ ४८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ते देवदेवेन पार्वती मुदमाप सा।
तपोजातं तु यत्कष्टं तज्जहौ च पुरातनम्॥ ४९

सर्वः श्रमो विनष्टोऽभूत्सत्यास्तु मुनिसत्तम।
फले जाते श्रमः पूर्वो जन्तोर्नाशमवाप्नुयात्॥ ५०

ब्रह्माजी बोले—देवदेव शंकरजीके इस प्रकार कहनेपर पार्वतीको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ और उन्हें पूर्व समयमें तपस्याके कारण जो दुःख हुआ था, वह तत्क्षण ही दूर हो गया। हे मुनिसत्तम! पार्वतीका सारा श्रम दूर हो गया; क्योंकि फलके प्राप्त हो जानेपर प्राणीका पूर्वमें किया हुआ सारा श्रम नष्ट हो जाता है॥ ४९-५०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे पार्वत्या शिवरूपदर्शनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें पार्वतीको शिवरूपदर्शन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २८॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

शिव और पार्वतीका संवाद, विवाहविषयक पार्वतीके अनुरोधको शिवद्वारा स्वीकार करना

नारद उवाच

ब्रह्मन् विधे महाभाग किं जातं तदनन्तरम्।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथय त्वं शिवायशः॥ १

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे विधे! हे महाभाग! इसके बाद फिर क्या हुआ? मैं वह सब सुनना चाहता हूँ, आप शिवाके चरित्रको कहिये॥ १॥

ब्रह्मोवाच

देवर्षे श्रूयतां सम्यक् कथयामि कथां मुदा।
तां महापापसंहर्त्रीं शिवभक्तिविवर्धिनीम्॥ २

ब्रह्माजी बोले—हे देवर्षे! सुनिये, मैं इस कथाको प्रसन्नतापूर्वक कह रहा हूँ। यह कथा पापका नाश करनेवाली तथा शिवमें भक्ति बढ़ानेवाली है॥ २॥

पार्वती वचनं श्रुत्वा हरस्य परमात्मनः।
दृष्ट्वानन्दकरं रूपं जहर्षातीव च द्विज॥ ३

प्रत्युवाच महासाध्वी स्वोपकण्ठस्थितं विभुम्।
अतीव सुखिता देवी प्रीत्युत्फुल्लानना शिवा॥ ४

हे द्विज! परमात्मा हरका वचन सुनकर और उनके परमानन्दकारी रूपको देखकर पार्वतीजी परम आनन्दित हो गयीं। स्नेहके कारण उनके नेत्रकमल खिल उठे। उसके बाद वे महासाध्वी सुखी हो प्रसन्नतासे अपने समीप खड़े प्रभुसे कहने लगीं॥ ३-४॥

पार्वत्युवाच

त्वं नाथो मम देवेश त्वया किं विस्मृतं पुरा।
दक्षयज्ञविनाशं हि यदर्थं कृतवान्हठात्॥ ५

स त्वं साहं समुत्पन्ना मेनायां कार्यसिद्धये।
देवानां देवदेवेश तारकाप्तासुखात्मनाम्॥ ६

पार्वती बोलीं—हे देवेश! आप तो मेरे नाथ हैं, क्या आप इस बातको भूल गये कि मेरे ही निमित्त आपने दक्षके यज्ञका विनाश किया था। यद्यपि आप तो वही हैं, किंतु मैं देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये मेनासे पुनः उत्पन्न हुई हूँ। हे देवदेवेश! देवतागण तारक असुरसे इस समय अत्यन्त पीड़ित हो रहे हैं॥ ५-६॥

यदि प्रसन्नो देवेश करोषि च कृपां यदि।
पतिर्भव ममेशान मम वाक्यं कुरु प्रभो॥ ७

हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं और यदि मुझपर कृपा करना चाहते हैं, तो हे महेशान! हे प्रभो! आप मेरे पति बनिये और मेरा वचन मानिये।

पितुर्गेहे मया सम्यग्गम्यते त्वदनुज्ञया।
प्रसिद्धं क्रियतां तद्वै विशुद्धं परमं यशः॥ ८

इस समय आप मुझे पिताके घर जानेकी आज्ञा दें, अब आप अपना विशुद्ध और उत्कृष्ट यश जगत्में प्रसिद्ध करें॥ ७-८॥

गन्तव्यं भवता नाथ हिमवत्पार्श्वतः प्रभो।
याचस्व मां ततो भिक्षुर्भूत्वा लीलाविशारदः॥ ९

तथा त्वया प्रकर्तव्यं लोकेषु ख्यापयन् यशः।
पितुर्मे सफलं सर्वं कुरुष्वैवं गृहाश्रमम्॥ १०

ऋषिभिर्बोधितः प्रीत्या स्वबन्धुपरिवारितः।
करिष्यति न संदेहस्तव वाक्यं पिता मम॥ ११

हे नाथ! हे प्रभो! अनेक लीलाओंको करनेवाले आपको भिक्षु बनकर मेरे पिताके पास जाना चाहिये और उनसे मुझे माँगना चाहिये। आपको अपने यशका लोकमें विस्तार करते हुए ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे मेरे पिताका गृहस्थाश्रम सफल हो जाय। ऋषियोंने मेरे पिताको समझा दिया है, इसलिये बन्धुजनों एवं परिवारसे युक्त मेरे पिता आपकी बात निःसन्देह मान जायँगे॥ ९—११॥

दक्षकन्या पुराहं वै पित्रा दत्ता यदा तव।
यथोक्तविधिना तत्र विवाहो न कृतस्त्वया॥ १२

न ग्रहाः पूजितास्तेन दक्षेण जनकेन मे।
ग्रहाणां विषयस्तेन सच्छिद्रोऽयं महानभूत्॥ १३

पूर्व समयमें जब मैं दक्षकी कन्या थी, उस समय भी मेरे पिताने मुझे आपको ही दिया था, किंतु उस समय आपने यथोक्त विधिसे मुझसे विवाह नहीं किया था। उस समय मेरे पिता दक्षने विधिपूर्वक ग्रहोंका पूजन नहीं किया था। उन ग्रहोंके कारण ही विवाहमें विघ्न हुआ॥ १२-१३॥

तस्माद्यथोक्तविधिना कर्तुमर्हसि मे प्रभो।
विवाहं त्वं महादेव देवानां कार्यसिद्धये॥ १४

अतः हे प्रभो! हे महादेव! देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये आप यथोक्त रीतिसे मेरे साथ विवाह कीजिये॥ १४॥

विवाहस्य यथा रीतिः कर्तव्या सा तथा ध्रुवम्।
जानातु हिमवान् सम्यक् कृतं पुत्र्या शुभं तपः॥ १५

विवाहकी जो विधि है, उसे अवश्य करना चाहिये, जिससे हिमवान् जान लें कि कि मेरी पुत्रीने उत्तम तपस्या की है॥ १५॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा सुप्रसन्नः सदाशिवः।
प्रोवाच वचनं प्रीत्या गिरिजां प्रहसन्निव॥ १६

ब्रह्माजी बोले—यह वचन सुनकर सदाशिव अत्यन्त प्रसन्न हो गये और वे हँसते हुए प्रेमपूर्वक पार्वतीसे यह वचन कहने लगे—॥ १६॥

शिव उवाच

शृणु देवि महेशानि परमं वचनं मम।
यथोचितं सुमाङ्गल्यमविकारि तथा कुरु॥ १७

ब्रह्मादिकानि भूतानि त्वनित्यानि वरानने।
दृष्टं यत्सर्वमेतच्च नश्वरं विद्धि भामिनि॥ १८

शिवजी बोले—हे देवि! हे महेशानि! मेरी उत्तम बात सुनो, जिससे विवाहमें किसी प्रकारकी बाधा न हो, वैसा उचित मंगल कार्य करो। हे भामिनि! इस जगत्में ब्रह्मा आदिसे लेकर जितने स्थावर तथा जंगम पदार्थ दिखायी पड़ते हैं, उन्हें अनित्य तथा नश्वर समझो॥ १७-१८॥

एकोऽनेकत्वमापन्नो निर्गुणो हि गुणान्वितः।
स्वज्योत्स्नया यो विभाति परज्योत्स्नान्वितोऽभवत्॥ १९

स्वतन्त्रः परतन्त्रश्च त्वया देवि कृतो ह्यहम्।
सर्वकर्त्री च प्रकृतिर्महामाया त्वमेव हि॥ २०

यह एक निर्गुण ब्रह्म ही सगुण रूप धारणकर अनेक रूपमें परिवर्तित हो गया है, यही स्वयं अपनी सत्तासे प्रकाशित होते हुए भी पर प्रकाशसे युक्त हो गया है। हे देवि! मैं सदा स्वतन्त्र हूँ, पर तुमने मुझे परतन्त्र बना दिया है; क्योंकि सब कुछ करनेवाली महामाया प्रकृति तुम्हीं हो॥ १९-२०॥

मायामयं कृतमिदं च जगत्समग्रं
सर्वात्मना हि विधृतं परया स्वबुद्ध्या।
सर्वात्मभिः सुकृतिभिः परमात्मभावैः
संसिक्तमात्मनि गुणैः परिवेष्टितञ्च॥ २१

यह सम्पूर्ण जगत् मायाके द्वारा रचित है और सर्वात्मा परमात्माने अपनी श्रेष्ठ बुद्धिके द्वारा इसे धारण कर रखा है। सभी पवित्र आत्माएँ, जो परमात्माके स्वरूपको प्राप्त कर चुकी हैं और सदा मेरे साथ अभेदभावसे रहती हैं, उनसे तथा अपने गुणोंसे यह संसार घिरा हुआ है॥ २१॥

के ग्रहाः के ऋतुगणाः के वान्येऽपि त्वया ग्रहाः।
किमुक्तं चाधुना देवि शिवार्थं वरवर्णिनि॥ २२

हे देवि! इस जगत्‌में तुम्हें छोड़कर न तो कोई ग्रह है, न तो कोई ऋतु है। हे वरवर्णिनि! तुम शिवके लिये ग्रहोंकी बात क्यों करती हो?॥ २२॥

गुणकार्यप्रभेदेनावाभ्यां प्रादुर्भवः कृतः।
भक्तहेतोर्जगत्यस्मिन्भक्तवत्सलभावतः॥ २३
त्वं हि वै प्रकृतिः सूक्ष्मा रजः सत्त्वतमोमयी।
व्यापारदक्षा सततं सगुणा निर्गुणापि च॥ २४

हम दोनों भक्तोंके लिये भक्तवत्सलतावश गुण-कार्यके भेदसे प्रकट हुए हैं। रज, सत्त्व तथा तमोमयी तुम सूक्ष्म प्रकृति हो, निरन्तर जगत्‌के कार्यमें दक्ष हो और सगुण तथा निर्गुण रूपवाली हो॥ २३-२४॥

सर्वेषामिह भूतानामहमात्मा सुमध्यमे।
निर्विकारी निरीहश्च भक्तेच्छोपात्तविग्रहः॥ २५

हिमालयं न गच्छेयं जनकं तव शैलजे।
ततस्त्वां भिक्षुको भूत्वा न याचेयं कथंचन॥ २६

हे सुमध्यमे! सभी प्राणियोंकी आत्मा मैं ही हूँ। मैं सर्वथा निर्विकार तथा निरीह होकर भी भक्तोंके लिये ही शरीर धारण करता हूँ। किंतु हे शैलपुत्रि! मैं तुम्हारे पिता हिमालयके पास नहीं जाऊँगा और न तो भिक्षुकका रूप धारणकर उनसे तुमको माँगूँगा॥ २५-२६॥

महागुणैर्गरिष्ठोऽपि महात्मापि गिरीन्द्रजे।
देहीति वचनात्सद्यः पुरुषो याति लाघवम्॥ २७

इत्थं ज्ञात्वा तु कल्याणि किमस्माकं वदस्यथ।
कार्यं त्वदाज्ञया भद्रे यथेच्छसि तथा कुरु॥ २८

हे गिरिजे! महान् गुणोंसे वरिष्ठ कोई कितना भी बड़ा क्यों न हो, वह 'दीजिये'—इस शब्दका उच्चारण करते ही लघुताको प्राप्त हो जाता है। हे कल्याणि! इस बातको जानते हुए भी तुम मुझसे इस प्रकारकी बात क्यों करती हो? हे भद्रे! यह कार्य तो तुम्हारे आज्ञानुसार ही मुझे करना है, अतः तुम जैसा चाहती हो, वैसा करो॥ २७-२८॥

ब्रह्मोवाच

तेनोक्तापि महादेवी सा साध्वी कमलेक्षणा।
जगाद शंकरं भक्त्या सुप्रणम्य पुनः पुनः॥ २९

ब्रह्माजी बोले—उनके द्वारा यह कहे जानेपर कमलके समान नेत्रोंवाली साध्वी महादेवी भक्तिपूर्वक शंकरजीको बार-बार प्रणामकर उनसे पुनः कहने लगीं—॥ २९॥

पार्वत्युवाच

त्वमात्मा प्रकृतिश्चाहं नात्र कार्या विचारणा।
स्वतन्त्रौ भक्तवशगौ निर्गुणौ सगुणावपि॥ ३०

पार्वती बोलीं—[हे महेश्वर!] आप आत्मा हैं और मैं प्रकृति हूँ, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। हम दोनों स्वतन्त्र एवं गुणरहित होकर भी भक्तके वशमें होकर सगुण रूप धारण करते रहते हैं॥ ३०॥

प्रयत्नेन त्वया शम्भो कार्यं वाक्यं मम प्रभो।
याचस्व मां हिमगिरेः सौभाग्यं देहि शङ्कर॥ ३१

हे शम्भो! हे प्रभो! आपको मेरी बात प्रयत्नपूर्वक मान लेनी चाहिये। अतः हे शंकर! आप हिमालयसे याचना कीजिये, मुझे सौभाग्य प्रदान कीजिये॥ ३१॥

कृपां कुरु महेशान तव भक्तास्मि नित्यशः।
तव पत्नी सदा नाथ ह्यहं जन्मनि जन्मनि॥ ३२

त्वं ब्रह्म परमात्मा हि निर्गुणः प्रकृतेः परः।
निर्विकारी निरीहश्च स्वतन्त्रः परमेश्वरः॥ ३३

तथापि सगुणोऽपीह भक्तोद्धारपरायणः।
विहारी स्वात्मनि रतो नानालीलाविशारदः॥ ३४

सर्वथा त्वामहं जाने महादेव महेश्वर।
किमुक्तेन च सर्वज्ञ बहुना हि दयां कुरु॥ ३५

हे महेश्वर! आप मुझपर दया करें, मैं आपकी नित्य भक्त हूँ। हे नाथ! मैं सदा जन्म-जन्मान्तरकी आपकी पत्नी हूँ। आप ब्रह्म, परमात्मा, निर्गुण, प्रकृतिसे परे, विकाररहित, इच्छारहित, स्वतन्त्र तथा परमेश्वर हैं, तथापि भक्तोंके उद्धारके लिये आप सगुण रूप धारण करते हैं। आप आत्मपरायण होकर भी विहार करनेवाले तथा नाना प्रकारकी लीलामें निपुण हैं। हे महादेव! हे महेश्वर! मैं आपको सर्वथा जानती हूँ। हे सर्वज्ञ! बहुत कहनेसे क्या प्रयोजन, आप मुझपर दया कीजिये॥ ३२—३५॥

विस्तारय यशो लोके कृत्वा लीलां महाद्भुताम्।
यत्सुगीय जना नाथाञ्जसोत्तीर्णा भवाम्बुधिम्॥ ३६

हे नाथ! आप अद्भुत लीलाकर संसारमें अपने यशका विस्तार कीजिये, जिसका गान करके आपके भक्त इस संसाररूपी समुद्रसे अनायास ही पार हो जायँ॥ ३६॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवमुक्त्वा गिरिजा सुप्रणम्य पुनः पुनः।
विरराम महेशानं नतस्कन्धा कृताञ्जलिः॥ ३७

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर गिरिजा शंकरजीको बारंबार हाथ जोड़कर सिर झुकाकर प्रणाम करके मौन हो गयीं॥ ३७॥

इत्येवमुक्तः स तया महात्मा
महेश्वरो लोकविडम्बनाय।
तथेति मत्वा प्रहसन् बभूव
मुदान्वितः कर्तुमनास्तदेव॥ ३८

पार्वतीने जब इस प्रकार कहा, तब लोकविडम्बनाके निमित्त शंकरजीने हँसते हुए प्रसन्न होकर ऐसा ही होगा—यह कहकर वे वैसा करनेके लिये उद्यत हो गये॥ ३८॥

ततो ह्यन्तर्हितश्शम्भुर्बभूव सुप्रहर्षितः।
कैलासं प्रययौ काल्या विरहाकृष्टमानसः॥ ३९

उसके बाद वे शम्भु प्रसन्न हो अन्तर्धान हो गये और कालीके विरहसे आकृष्टचित्तवाले वे कैलासको चले गये॥ ३९॥

तत्र गत्वा महेशानो नन्द्यादिभ्यः स ऊचिवान्।
वृत्तान्तं सकलं तं वै परमानन्दनिर्भरः॥ ४०

वहाँ जाकर उन महेश्वरने परमानन्दमें निमग्न हो यह सारा वृत्तान्त नन्दीश्वरादि गणोंको बताया॥ ४०॥

तेऽपि श्रुत्वा गणाः सर्वे भैरवाद्याश्च सर्वशः।
बभूवुः सुखिनोऽत्यन्तं विदधुः परमोत्सवम्॥ ४१

इस वृत्तान्तको सुनकर वे सम्पूर्ण भैरवादि गण भी बहुत सुखी हुए और महान् उत्सव करने लगे॥ ४१॥

महत् सुमङ्गलं तत्र बभूवातीव नारद।
सर्वेषां दुःखनाशोऽभूद्रुद्रः प्रापापि संमुदम्॥ ४२

हे नारद! उस समय वहाँ महामंगल होने लगा, सबका दुःख दूर हो गया और रुद्रको भी परम प्रसन्नता हुई॥ ४२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शिवाशिवसंवादवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें शिवा-शिवसंवादवर्णन नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

पार्वतीके पिताके घरमें आनेपर महामहोत्सवका होना, महादेवजीका नटरूप धारणकर वहाँ उपस्थित होना तथा अनेक लीलाएँ दिखाना, शिवद्वारा पार्वतीकी याचना, किंतु माता-पिताके द्वारा मना करनेपर अन्तर्धान हो जाना

नारद उवाच

विधे तात महाभाग धन्यस्त्वं परमार्थदृक्।
अद्भुतेयं कथाश्रावि त्वदनुग्रहतो मया॥ १
गते हरे स्वशैले हि पार्वती सर्वमङ्गला।
किं चकार गता कुत्र तन्मे वद महामते॥ २

नारदजी बोले—हे विधे! हे तात! हे महाभाग! परमार्थके ज्ञाता आप धन्य हैं, आपकी कृपासे मैंने यह अद्भुत कथा सुनी। जब शिवजी कैलास चले गये, तब सर्वमंगला पार्वतीने क्या किया और वे पुनः कहाँ गयीं? हे महामते! मुझसे कहिये॥ १-२॥

ब्रह्मोवाच

शृणु सुप्रीतितस्तात यज्जातं तदनन्तरम्।
हरे गते निजस्थाने तद् वदामि शिवं स्मरन्॥ ३

ब्रह्माजी बोले—हे तात! हरके अपने स्थान चले जानेके बाद जो कुछ हुआ, उसे प्रेमपूर्वक सुनो, मैं शिवजीका स्मरणकर उसे कह रहा हूँ॥ ३॥

पार्वत्यपि सखीयुक्ता रूपं कृत्वा तु सार्थकम्।
जगाम स्वपितुर्गेहं महादेवेति वादिनी॥ ४
पार्वत्यागमनं श्रुत्वा मेना च स हिमाचलः।
दिव्यं यानं समारुह्य प्रययौ हर्षविह्वलः॥ ५

पार्वती अपना रूप सार्थककर 'महादेव' शब्दका उच्चारण करती हुई पिताके घर अपनी सखियोंके साथ गयीं। पार्वतीके आगमनका समाचार सुनते ही मेना तथा हिमालय दिव्य विमानपर चढ़कर हर्षसे विह्वल हो उनकी अगवानीके लिये चले॥ ४-५॥

पुरोहितश्च पौराश्च सख्यश्चैवाप्यनेकशः।
सम्बन्धिनस्तथान्ये च सर्वे ते च समाययुः॥ ६
भ्रातरः सकला जग्मुर्मैनाकप्रमुखास्तदा।
जयशब्दं प्रब्रुवन्तो महाहर्षसमन्विताः॥ ७

उस समय पुरोहित, पुरवासी, अनेक सखियाँ तथा अन्य दूसरे सब सम्बन्धी आये। मैनाक आदि सभी भाई महाप्रसन्न हो 'जय' शब्दका उच्चारण करने लगे॥ ६-७॥

संस्थाप्य मङ्गलघटं राजवर्त्मनि राजिते।
चन्दनागरुकस्तूरीफलशाखासमन्विते ॥ ८

चन्दन, अगरु, कस्तूरी, फल तथा वृक्षकी शाखाओंसे युक्त राजमार्गको अपूर्व सजावटसे सम्पन्नकर स्थान-स्थानपर मंगलघट स्थापित कराया गया॥ ८॥

सुपुरोधाब्राह्मणैश्च मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः।
नारीभिर्नर्तकीभिश्च गजेन्द्रादिसुशोभितैः ॥ ९

सारा राजमार्ग पुरोहित, ब्राह्मण, ब्रह्मवेत्ता, मुनियों, नर्तकियों एवं बड़े-बड़े गजेन्द्रोंसे खचाखच भर गया॥ ९॥

परितः परितो रंभास्तम्भवृन्दसमन्विते।
पतिपुत्रवतीयोषित्समूहैर्दीपहस्तकैः ॥ १०
द्विजवृन्दैश्च संयुक्ते कुर्वद्भिर्मङ्गलध्वनिम्।
नानाप्रकारवाद्यैश्च शंखध्वनिभिरन्विते॥ ११
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गाजगाम स्वपुरान्तिकम्।
विशंती नगरं देवी ददर्श पितरौ पुनः॥ १२
सुप्रसन्नौ प्रधावन्तौ हर्षविह्वलमानसौ।
दृष्ट्वा काली सुप्रहृष्टा स्वालिभिः प्रणनाम तौ॥ १३

जगह-जगहपर केलेके खम्भे लगाये गये और चारों ओर पति-पुत्रवती स्त्रियाँ हाथमें दीपक लिये हुए खड़ी हो गयीं। ब्राह्मणोंका समूह मंगलपाठपूर्वक वेदोंका उद्घोष कर रहा था। अनेक प्रकारके वाद्य तथा शंखकी ध्वनि हो रही थी। इसी बीच दुर्गा देवी अपने नगरके समीप आयीं और प्रवेश करते ही उन्होंने सर्वप्रथम अपने माता-पिताका पुनः दर्शन किया। उन कालीको देखकर माता-पिता हर्षसे विह्वल हो प्रसन्नतासे दौड़ पड़े। पुनः पार्वतीने भी उनको देखकर सखियोंसहित उन्हें प्रणाम किया॥ १०—१३॥

तौ सम्पूर्णाशिषं दत्त्वा चक्रतुस्तौ स्ववक्षसि।
हे वत्से त्वेवमुच्चार्य रुदन्तौ प्रेमविह्वलौ॥ १४

माता-पिताने आशीर्वाद देकर कालीको अपनी गोदमें ले लिया और 'हे वत्से!'— इस प्रकार उच्चारणकर स्नेहसे विह्वल हो रोने लगे॥ १४॥

ततः स्वकीया अप्यस्या अन्या नार्योऽपि संमुदा।
भ्रातृस्त्रियोऽपि सुप्रीत्या दृढालिङ्गनमादधुः॥ १५

साधितं हि त्वया सम्यक् सुकार्यं कुलतारणम्।
त्वत्सदाचरणेनापि पाविताः स्माखिला वयम्॥ १६

तदनन्तर इनके अपने सगे-सम्बन्धियोंकी स्त्रियोंने तथा अन्य भाई आदिकी पत्नियोंने भी प्रीतिपूर्वक पार्वतीका दृढ़ आलिंगन किया और उन्होंने कहा—तुमने कुलको तारनेका कार्य भलीभाँति सम्पन्न किया। तुम्हारे इस सदाचरणसे हम सभी पवित्र हो गयीं॥ १५-१६॥

इति सर्वे सुप्रशंस्य प्रणेमुस्तां प्रहर्षिताः।
चन्दनैः सुप्रसूनैश्च समानर्चुः शिवां मुदा॥ १७

इस प्रकार गिरिजाकी प्रशंसाकर सभी लोगोंने उन्हें प्रणाम किया और चन्दन तथा उत्तम पुष्पोंके द्वारा प्रसन्नतासे उनका पूजन करने लगे॥ १७॥

तस्मिन्नवसरे देवा विमानस्था मुदाम्बरे।
पुष्पवृष्टिं शुभां चक्रुर्नत्वा तां तुष्टुवुः स्तवैः॥ १८

तदा तां च रथे स्थाप्य सर्वे शोभान्विते वरे।
पुरं प्रवेशयामासुः सर्वे विप्रादयो मुदा॥ १९

अथ विप्राः पुरोधाश्च सख्योऽन्याश्च स्त्रियः शिवाम्।
गृहं प्रवेशयामासुर्बहुमानपुरस्सरम्॥ २०

उसी समय विमानोंमें बैठे हुए देवगण भी आकाशसे फूलोंकी वर्षा करने लगे और पार्वतीको नमस्कारकर स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करने लगे। उसके बाद ब्राह्मण आदि प्रसन्नतापूर्वक अनेक प्रकारकी शोभासे सुसज्जित रथमें पार्वतीको बैठाकर नगरमें ले गये और ब्राह्मण, पुरोहित, स्त्रियों तथा सखियोंने बड़े प्रेमके साथ आदरपूर्वक उनको घरमें प्रवेश कराया॥ १८—२०॥

स्त्रियो निर्मञ्छनं चक्रुर्विप्रा युयुजुराशिषः।
हिमवान्मेनका माता मुमोदाति मुनीश्वर॥ २१

स्वाश्रमं सफलं मेने कुपुत्रात्पुत्रिका वरा।
हिमवान्नारदं त्वां च संस्तुवन् साधु साध्विति॥ २२

स्त्रियाँ मंगलाचार करने लगीं और ब्राह्मण आशीर्वाद देने लगे। हे मुनीश्वर! उस समय माता मेनका तथा पिता हिमवान्‌को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उन्होंने गृहस्थाश्रमको सफल माना और कहा कि कुपुत्रकी अपेक्षा पुत्री ही अच्छी होती है। तदनन्तर वे हिमालय, आप नारदको भी साधुवाद देते हुए प्रशंसा करने लगे॥ २१-२२॥

ब्राह्मणेभ्यश्च बंदिभ्यः पर्वतेन्द्रो धनं ददौ।
मङ्गलं पाठयामास स द्विजेभ्यो महोत्सवम्॥ २३

पर्वतराज हिमालयने ब्राह्मणों एवं बन्दीजनोंको बहुत-सा धन दिया और ब्राह्मणोंद्वारा मंगलपाठ कराया, बहुत बड़ा उत्सव किया॥ २३॥

एवं स्वकन्यया हृष्टौ पितरौ भ्रातरस्तथा।
जामयश्च महाप्रीत्या समूषुः प्राङ्गणे मुने॥ २४

हे मुने! इस प्रकार प्रसन्न हुए माता-पिता, भाई तथा सभी सम्बन्धीगण पार्वतीके साथ आँगनमें बैठे॥ २४॥

ततः स हिमवान् तात सुप्रहृष्टाः प्रसन्नधीः।
सम्मान्य सकलान्प्रीत्या स्नातुं गङ्गां जगाम ह॥ २५

हे तात! तत्पश्चात् हिमालय परम प्रसन्न हो सभी सम्बन्धियोंका प्रेमपूर्वक सम्मानकर गंगास्नानको गये॥ २५॥

एतस्मिन्नन्तरे शंभुः सुलीलो भक्तवत्सलः।
सुनर्तकनटो भूत्वा मेनकासंनिधिं ययौ॥ २६

शृङ्गं वामे करे धृत्वा दक्षिणे डमरुं तथा।
पृष्ठे कंथां रक्तवासा नृत्यगानविशारदः॥ २७

उसी समय लीला करनेमें तत्पर भक्तवत्सल भगवान् शंकर सुन्दर नाचनेवाले नटका रूप धारणकर मेनकाके समीप पहुँचे। वे बाएँ हाथमें शृंगी, दाहिने हाथमें डमरू तथा पीठपर गुदड़ी धारण करके रक्तवस्त्र पहने

ततस्सुनटरूपोऽसौ मेनाया प्राङ्गणे मुदा।
चक्रे सुनृत्यं विविधं गानं चातिमनोहरम्॥ २८

श‍ृङ्गं च डमरुं तत्र वादयामास सुध्वनिम्।
महतीं विविधां तत्र स चकार मनोहराम्॥ २९
तां द्रष्टुं नागराः सर्वे पुरुषाश्च स्त्रियस्तथा।
आजग्मुः सहसा तत्र बाला वृद्धा अपि ध्रुवम्॥ ३०
श्रुत्वा सुगीतं तद् दृष्ट्वा सुनृत्यं च मनोहरम्।
सहसा मुमुहुः सर्वे मेनापि च तदा मुने॥ ३१
मूर्च्छां संप्राप सा दुर्गा विलोक्य हृदि शंकरम्।
त्रिशूलादिकचिह्नानि बिभ्रतं चातिसुन्दरम्॥ ३२

विभूतिभूषितं रम्यमस्थिमालासमन्वितम्।
त्रिलोचनोज्ज्वलद्वक्त्रं नागयज्ञोपवीतकम्॥ ३३
वरं वृणिवत्युक्तवन्तं गौरवर्णं महेश्वरम्।
दीनबन्धुं दयासिन्धुं सर्वथा सुमनोहरम्॥ ३४
हृदयस्थं हरं दृष्ट्वेदृशं सा प्रणनाम तम्।
वरं वव्रे मानसं हि पतिर्मे त्वं भवेति च॥ ३५

वरं दत्त्वा शिवां चाथ तादृशं प्रीतितो हृदा।
अन्तर्धाय पुनस्तत्र सुननर्त स भिक्षुकः॥ ३६
ततो मेना सुरत्नानि स्वर्णपात्रस्थितानि च।
तस्मै दातुं ययौ प्रीत्या तद्भूतिप्रीतमानसः॥ ३७
तानि न स्वीचकारासौ भिक्षां याचे शिवां च ताम्।
पुनः सुनृत्यं गानञ्च कौतुकात्कर्तुमुद्यतः॥ ३८

मेना तद्वचनं श्रुत्वा चुकोपाति सुविस्मिता।
भिक्षुकं भर्त्सयामास बहिष्कर्तुमियेष सा॥ ३९

एतस्मिन्नन्तरे तत्र गङ्गातो गिरिरराययौ।
ददर्श पुरतो भिक्षुं प्राङ्गणस्थं नराकृतिम्॥ ४०
श्रुत्वा मेनामुखाद् वृत्तं तत्सर्वं सुचुकोप सः।
आज्ञां चकारानुचरान्बहिष्कर्तुञ्च तं नटम्॥ ४१

महाग्निमिव दुःस्पर्शं प्रज्वलन्तं सुतेजसम्।
न शशाक बहिष्कर्तुं कोऽपि तं मुनिसत्तम॥ ४२

हुए थे। नृत्य-गानमें प्रवीण वे शिवजी मेनाके आँगनमें बड़ी प्रसन्नताके साथ अनेक प्रकारका मनोहर नृत्य एवं गान करने लगे॥ २६—२८॥

वे सुन्दर ध्वनिसे श‍ृंगी तथा डमरू बजाने लगे और नाना प्रकारकी मनोहर लीला करने लगे॥ २९॥

उस लीलाको देखनेके लिये सभी नगर-निवासी स्त्री-पुरुष, बालक तथा वृद्ध सहसा वहाँ आ गये॥ ३०॥

हे मुने! उस मनोहर नृत्यको देखकर एवं गीतको सुनकर सभी लोग तथा मेना भी अत्यन्त मोहित हो गयीं। त्रिशूल आदि चिह्नसे युक्त एवं अत्यन्त मनोहर रूप धारण करनेवाले उस नटको देखकर पार्वती भी उन्हें हृदयसे शंकर जानकर मूर्च्छित हो गयीं॥ ३१-३२॥

विभूतिसे विभूषित होनेके कारण अत्यन्त मनोहर, अस्थिमालासे समन्वित, त्रिलोचन, देदीप्यमान मुख-मण्डलवाले, नागका यज्ञोपवीत धारण किये हुए, गौरवर्ण, दीनबन्धु, दयासागर, सर्वथा मनोहर और 'वर माँगो' इस प्रकार कहते हुए उन हृदयस्थ महेश्वरको देखकर पार्वतीने उन्हें प्रणाम किया और मनमें वर माँगा कि आप ही हमारे पति हों॥ ३३—३५॥

इस प्रकार हृदयसे पार्वतीको प्रीतिपूर्वक वर देकर शिवजी अन्तर्धान होकर पुनः भिक्षुकका रूप धारणकर नृत्य करने लगे। तब उस नृत्यसे प्रसन्न होकर मेना सोनेके पात्रमें बहुत-सारे रत्न रखकर बड़े प्रेमसे उस भिक्षुकको देनेके लिये गयीं, किंतु भिक्षुकने उन्हें स्वीकार नहीं किया और भिक्षामें शिवाको माँगा तथा पुनः नृत्य-गान करने लगे॥ ३६—३८॥

मेना भिक्षुकके वचनको सुनकर विस्मित हो क्रोधसे भर गयीं। वे भिक्षुककी भर्त्सना करने लगीं और उन्होंने उसे बाहर निकालनेकी इच्छा की। इसी समय हिमालय भी गंगाजीसे आ गये और उन्होंने नरकी आकृतिवाले भिक्षुकको आँगनमें स्थित देखा॥ ३९-४०॥

मेनाद्वारा सभी बातोंको जानकर हिमालयको बड़ा क्रोध आया। उन्होंने भिक्षुकको घरसे बाहर निकालनेके लिये अपने सेवकोंको आज्ञा दी॥ ४१॥

किंतु हे मुनिसत्तम! प्रलयाग्निके समान जलते हुए तेजसे अत्यन्त दुःसह उस भिक्षुकको बाहर निकालनेमें कोई भी समर्थ नहीं हुआ॥ ४२॥

ततः स भिक्षुकस्तात नानालीलाविशारदः।
दर्शयामास शैलाय स्वप्रभावमनन्तकम्॥ ४३

शैलो ददर्श तं तत्र विष्णुरूपधरं द्रुतम्।
किरीटिनं कुण्डलिनं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम्॥ ४४

यद्यत्पुष्पादिकं दत्तं पूजाकाले गदाभृते।
गात्रे शिरसि तत्सर्वं भिक्षुकस्य ददर्श ह॥ ४५

ततो ददर्श जगतां स्रष्टारं स चतुर्मुखम्।
रक्तवर्णं पठन्तं च श्रुतिसूक्तं गिरीश्वरः॥ ४६

ततः सूर्यस्वरूपं च जगच्चक्षुस्स्वरूपकम्।
ददर्श गिरिराजः स क्षणं कौतुककारिणम्॥ ४७

ततो ददर्श तं तात रुद्ररूपं महाद्भुतम्।
पार्वती सहितं रम्यं विहसन्तं सुतेजसम्॥ ४८

ततस्तेजस्स्वरूपं च निराकारं निरंजनम्।
निरुपाधिं निरीहं च महाद्भुतमरूपकम्॥ ४९

एवं बहूनि रूपाणि तस्य तत्र ददर्श सः।
सुविस्मितो बभूवाशु परमानन्दसंयुतः॥ ५०

अथासौ भिक्षुवर्यो हि तस्मात्तस्याश्च सूतिकृत्।
भिक्षां ययाचे दुर्गां तां नान्यज्जग्राह किञ्चन॥ ५१

न स्वीचकार शैलेन्द्रो मोहितश्शिवमायया।
भिक्षुः किंचिन्न जग्राह तत्रैवान्तर्दधे ततः॥ ५२

तदा बभूव सुज्ञानं मेनाशैलेशयोरिति।
आवां शिवो वञ्चयित्वा स्वस्थानं गतवान्प्रभुः॥ ५३

तयोर्विचिन्त्य तत्रैवं शिवे भक्तिरभूत्परा।
महामोक्षकरी दिव्या सर्वानन्दप्रदायिनी॥ ५४

हे तात! उस समय अनेक लीलाओंमें प्रवीण उस भिक्षुकने पर्वतराज हिमालयको अपना अनन्त प्रभाव दिखाया। हिमालयने देखा कि वह भिक्षुक तत्क्षण किरीट, कुण्डल, पीताम्बर तथा चतुर्भुज रूप धारणकर विष्णुके स्वरूपमें हो गया है॥ ४३-४४॥

विष्णुपूजाके लिये उन्होंने जो-जो पुष्पादि अर्पण किये थे, वह सभी पूजोपहारकी सामग्री विष्णुरूपधारी इन भिक्षुकके सिर एवं गलेमें पड़ी हुई उन्होंने देखी॥ ४५॥

तत्पश्चात् गिरिराजने देखा कि उस भिक्षुकने रक्तवर्ण होकर वेदोंके सूक्तों उच्चारण करते हुए, चतुर्भुज, जगत्स्रष्टा ब्रह्माका रूप धारण कर लिया है॥ ४६॥

पुनः गिरीश्वरने एक क्षण बाद देखा कि वह जगच्चक्षु सूर्यके रूपमें परिवर्तित हो गया। इस प्रकार उन्होंने क्षण-क्षणमें रूप बदलकर कौतुक करते हुए उस भिक्षुकको देखा। हे तात! तत्पश्चात् हिमालयने देखा कि वह भिक्षुक अद्भुत रूप धारण किये हुए रुद्र हो गया है, जो पार्वतीसहित परम मनोहर अपने तेजसे प्रकाशित हो रहा है॥ ४७-४८॥

तदनन्तर उन्होंने निराकार, निरंजन, निरुपाधि, निरीह, परम अद्भुत, तेजस्वरूपमें परिवर्तित होते हुए उस भिक्षुकको देखा। इस प्रकार जब हिमालयने उस भिक्षुकके अनेक विस्मयकारक रूप देखे, तब वे आनन्दयुक्त होकर आश्चर्यमें पड़ गये॥ ४९-५०॥

उसके बाद पुनः भिक्षुकरूपधारी उन सृष्टिकर्ता शिवजीने हिमालयसे दुर्गाकी याचना की और कुछ नहीं माँगा, किंतु शिवमायासे मोहित होनेके कारण हिमालयने उसे स्वीकार नहीं किया, भिक्षुकने भी और कुछ ग्रहण नहीं किया और वहीं अन्तर्धान हो गया॥ ५१-५२॥

तब मेना और शैलराजको ज्ञान हुआ कि प्रभु शंकरजी हम दोनोंको वंचितकर अपने स्थानको चले गये॥ ५३॥

इस बातका विचार करके उन दोनोंको दिव्य, सर्वानन्दप्रदायिनी तथा परम मोक्ष देनेवाली परा भक्ति शिवजीमें उत्पन्न हो गयी॥ ५४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे पार्वतीप्रत्यागमनमहोत्सववर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें पार्वतीप्रत्यागमनमहोत्सववर्णन नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३०॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

देवताओंके कहनेपर शिवका ब्राह्मण-वेषमें हिमालयके यहाँ जाना और शिवकी निन्दा करना

ब्रह्मोवाच

तयोर्भक्तिं शिवे ज्ञात्वा परामव्यभिचारिणीम्।
सर्वे शक्रादयो देवाश्चिचिन्तुरिति नारद॥ १

देवा ऊचुः

एकान्तभक्त्या शैलश्चेत्कन्यां तस्मै प्रदास्यति।
ध्रुवं निर्वाणतां सद्यः स प्राप्स्यति च भारते॥ २

अनन्तरत्नाधारश्चेत्पृथ्वीं त्यक्त्वा प्रयास्यति।
रत्नगर्भाभिधा भूमिर्मिथ्यैव भविता ध्रुवम्॥ ३

स्थावरत्वं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय सः।
कन्यां शूलभृते दत्त्वा शिवलोकं गमिष्यति॥ ४

महादेवस्य सारूप्यं लप्स्यते नात्र संशयः।
तत्र भुक्त्वा वरान्भोगांस्ततो मोक्षमवाप्स्यति॥ ५

ब्रह्मोवाच

इत्यालोच्य सुराः सर्वे कृत्वा चामन्त्रणं मिथः।
प्रस्थापयितुमैच्छंस्ते गुरुं तत्र सुविस्मिताः॥ ६

ततः शक्रादयो देवाः सर्वे गुरुनिकेतनम्।
जग्मुः प्रीत्या सविनया नारद स्वार्थसाधकाः॥ ७

गत्वा तत्र गुरुं नत्वा सर्वे देवाः सवासवाः।
चक्रुर्निवेदनं तस्मै गुरवे वृत्तमादरात्॥ ८

देवा ऊचुः

गुरो हिमालयगृहं गच्छास्मत्कार्यसिद्धये।
तत्र गत्वा प्रयत्नेन कुरु निन्दां च शूलिनः॥ ९

पिनाकिना विना दुर्गा वरं नान्यं वरिष्यति।
अनिच्छया सुतां दत्त्वा फलं तूर्णं लभिष्यति॥ १०

कालेनैवाधुना शैल इदानीं भुवि तिष्ठतु।
अनेकरत्नाधारं तं स्थापय त्वं क्षितौ गुरो॥ ११

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! इस प्रकार मेना और शैलराजकी शिवमें अनन्य भक्ति देखकर इन्द्र आदि सभी देवताओंने विचार किया॥ १॥

देवता बोले—यदि हिमालय शिवजीमें अनन्य भक्तिपूर्वक शंकरजीको अपनी कन्या देंगे तो भारतमें अवश्य ही निर्वाण पद प्राप्त कर लेंगे॥ २॥

यदि इन अनन्त रत्नोंसे पूर्ण वे हिमालय वसुन्धराको त्यागकर चले जायँगे, तो निश्चय ही इस पृथिवीका रत्नगर्भा—यह नाम व्यर्थ हो जायगा। इस स्थावररूपको छोड़कर दिव्यरूप धारणकर और अपनी कन्या शूलधारी शंकरको देकर वे अवश्य ही शिवलोक चले जायँगे॥ ३-४॥

उन्हें शिवलोकमें सारूप्य मुक्ति प्राप्त होगी, इसमें संशय नहीं। वहाँ अनेक प्रकारके श्रेष्ठ भोगोंको भोगकर वे मुक्त हो जायँगे॥ ५॥

ब्रह्माजी बोले—यह कहकर वे सभी देवता इस बातका विचारकर विस्मित हो परस्पर मन्त्रणा करके बृहस्पतिको हिमालयके पास भेजनेकी इच्छा करने लगे॥ ६॥

हे नारद! तब इन्द्रादि सभी देवता स्वार्थ-साधनकी इच्छासे विनम्र होकर प्रीतिपूर्वक बृहस्पतिके घर गये॥ ७॥

वे देवता वहाँ जाकर बृहस्पतिको प्रणाम करके आदरपूर्वक उन गुरुसे सारा वृत्तान्त कहने लगे— ॥ ८॥

देवता बोले—हे गुरो! आप हमलोगोंकी कार्यसिद्धिके लिये हिमालयके पास जाइये और वहाँ जाकर प्रयत्नपूर्वक शिवकी निन्दा कीजिये॥ ९॥

पार्वती शिवके अतिरिक्त किसी अन्यका वरण नहीं करेंगी और वे हिमालय बिना इच्छाके ही अपनी कन्या पार्वतीका विवाह शिवजीके साथ करेंगे और शीघ्र ही इसका फल प्राप्त कर लेंगे। हे गुरो! हमलोगोंकी इच्छा है कि हिमालय अभी पृथिवीपर निवास करें। अतः आप अनेक रत्नोंको धारण करनेवाले उन हिमालयको पृथ्वीपर स्थापित कीजिये॥ १०-११॥

ब्रह्मोवाच

इति देववचः श्रुत्वा प्रददौ कर्णयोः करम्।
न स्वीचकार स गुरुः स्मरन्नाम शिवेति च॥ १२

अथ स्मृत्वा महादेवं बृहस्पतिरुदारधीः।
उवाच देववर्यांश्च धिक्कृत्वा च पुनः पुनः॥ १३

बृहस्पतिरुवाच

सर्वे देवाः स्वार्थपराः परार्थध्वंसकारकाः।
कृत्वा शंकरनिंदां हि यास्यामि नरकं ध्रुवम्॥ १४

कश्चिन्मध्ये च युष्माकं गच्छेच्छैलान्तिकं सुराः।
संपादयेत्स्वाभिमतं शैलेन्द्रं प्रतिबोध्य च॥ १५

अनिच्छया सुतां दत्त्वा सुखं तिष्ठतु भारते।
तस्मै भक्त्या सुतां दत्त्वा मोक्षं प्राप्स्यति निश्चितम्॥ १६

पश्चात्सप्तर्षयः सर्वे बोधयिष्यन्ति पर्वतम्।
पिनाकिना विना दुर्गा वरं नान्यं वरिष्यति॥ १७

अथवा गच्छत सुरा ब्रह्मलोकं सवासवाः।
वृत्तं कथयत स्वं तत्स वः कार्यं करिष्यति॥ १८

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा ते समालोच्याजग्मुर्मम सभां सुराः।
सर्वे निवेदयाञ्चक्रुर्नत्वा तद्गतमादरात्॥ १९

देवानां तद्वचः श्रुत्वा शिवनिन्दाकरं तदा।
वेदवक्ता विलप्याहं तानवोचं सुरान्मुने॥ २०

ब्रह्मोवाच

नाहं कर्तुं क्षमो वत्साः शिवनिन्दां सुदुस्सहाम्।
संपद्विनाशरूपां च विपदां बीजरूपिणीम्॥ २१

सुरा गच्छत कैलासं सन्तोषयत शंकरम्।
प्रस्थापयत तं शीघ्रं हिमालयगृहं प्रति॥ २२

स गच्छेदुपशैलेशमात्मनिन्दां करोतु वै।
परनिन्दा विनाशाय स्वनिन्दा यशसे मता॥ २३

ब्रह्माजी बोले—देवगणोंकी यह बात सुनकर बृहस्पतिने अपने कानोंपर हाथ रख लिया और शिवजीका नाम-स्मरण करते हुए उन्होंने इस बातको स्वीकार नहीं किया। उदारबुद्धिवाले बृहस्पति महादेवजीका स्मरणकर श्रेष्ठ देवताओंको बार-बार धिक्कारते हुए कहने लगे— ॥ १२-१३ ॥

बृहस्पति बोले—हे देवताओ! तुमलोग स्वार्थसाधक और दूसरेके कार्यको विनष्ट करनेवाले हो। शंकरजीकी निन्दा करके मैं निश्चित रूपसे नरक चला जाऊँगा॥ १४॥

इसलिये आपलोगोंमेंसे कोई हिमालयके पास जाकर हिमालयको समझाकर अपना कार्य सिद्ध करे, जिससे वे अनिच्छापूर्वक अपनी कन्या शिवजीको देकर भारतमें निवास करें; क्योंकि भक्तिपूर्वक कन्या देकर वे निश्चित ही मोक्ष प्राप्त कर लेंगे॥ १५-१६ ॥

बादमें सप्तर्षि पर्वतराजको समझायेंगे कि यह पार्वती शिवजीको छोड़कर दूसरे किसीका वरण नहीं करेगी॥ १७॥

अथवा हे देवताओ! आपलोग इन्द्रके साथ ब्रह्मलोकको जायँ और अपना सारा वृत्तान्त ब्रह्माजीको बतायें, वे ही आपलोगोंका कार्य सम्पन्न करेंगे॥ १८॥

ब्रह्माजी बोले—यह सुनकर और विचारकर वे सभी देवता मेरी सभामें आये और प्रणामकर आदरपूर्वक अपना सारा वृत्तान्त उन्होंने मुझसे निवेदन किया॥ १९॥

हे मुने! तब देवताओंकी उस शिव-निन्दाविषयक बातको सुनकर वेदवक्ता मैं दुखी होकर उन देवताओंसे कहने लगा— ॥ २०॥

ब्रह्माजी बोले—हे वत्सो! मैं शिवजीकी दुःसह निन्दा नहीं कर सकता हूँ; क्योंकि शिवजीकी निन्दा सम्पत्तिका विनाश करनेवाली एवं विपत्तियोंका कारण है॥ २१॥

इसलिये हे देवताओ! आपलोग कैलासपर जायँ और शिवको सन्तुष्ट करें तथा उन्हींको हिमालयके घर भेजिये। वे ही स्वयं हिमालयके घर जाकर अपनी निन्दा करें; क्योंकि परनिन्दा विनाशके लिये और आत्मनिन्दा यशके लिये कही गयी है॥ २२-२३॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वेति मद्वचो देवा मां प्रणम्य मुदा च ते।
कैलासं प्रययुः शीघ्रं शैलानामधिपं गिरिम्॥ २४

तत्र गत्वा शिवं दृष्ट्वा प्रणम्य नतमस्तकाः।
सुकृतांजलयः सर्वे तुष्टुवुस्तं सुरा हरम्॥ २५

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव करुणाकर शंकर।
वयं त्वां शरणापन्नाः कृपां कुरु नमोऽस्तु ते॥ २६

त्वं भक्तवत्सलः स्वामिन्भक्तकार्यकरः सदा।
दीनोद्धरः कृपासिन्धुर्भक्तापद्विनिमोचकः॥ २७

ब्रह्मोवाच

इति स्तुत्वा महेशानं सर्वे देवाः सवासवाः।
सर्वं निवेदयांचक्रुस्तद्वृत्तं तत आदरात्॥ २८

तच्छ्रुत्वा देववचनं स्वीचकार महेश्वरः।
देवान् सुयापयामास तानाश्वास्य विहस्य सः॥ २९

देवा मुमुदिरे सर्वे शीघ्रं गत्वा स्वमंदिरम्।
सिद्धं मत्वा स्वकार्यं हि प्रशंसन्तः सदाशिवम्॥ ३०
ततः स भगवाञ्छम्भुर्महेशो भक्तवत्सलः।
प्रययौ शैलभूपं च मायेशो निर्विकारवान्॥ ३१
यदा शैलः सभामध्ये समुवास मुदान्वितः।
बन्धुवर्गैः परिवृतः पार्वतीसहितः स्वयम्॥ ३२
एतस्मिन्नन्तरे तत्र ह्याजगाम सदाशिवः।
दण्डी छत्री दिव्यवासा बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम्॥ ३३

करे स्फटिकमालां च शालग्रामं गले दधत्।
जपन्नाम हरेर्भक्त्या साधुवेषधरो द्विजः॥ ३४

तं च दृष्ट्वा समुत्तस्थौ सगणोऽपि हिमालयः।
ननाम दण्डवद्भूमौ भक्त्यातिथिमपूर्वकम्॥ ३५

ननाम पार्वती भक्त्या प्राणेशं विप्ररूपिणम्।
ज्ञात्वा तं मनसा देवी तुष्टाव परया मुदा॥ ३६

ब्रह्माजी बोले—वे देवता मेरी बात सुनकर प्रेमसे मुझे प्रणामकर शीघ्र ही शैलराज कैलास-पर्वतपर गये॥ २४॥

वहाँ जाकर शिवजीको देखकर सिर झुकाकर शिवजीको प्रणाम करके हाथ जोड़कर वे सभी देवता उन शिवजीकी स्तुति करने लगे—॥ २५॥

देवता बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणाकर! हे शंकर! हम सब आपकी शरणमें हैं, आपको प्रणाम है, हमलोगोंपर कृपा कीजिये॥ २६॥

हे स्वामिन्! आप भक्तवत्सल हैं, सदा भक्तोंका कार्य करनेवाले, दीनोंका उद्धार करनेवाले, कृपासिन्धु और भक्तोंकी आपत्ति दूर करनेवाले हैं॥ २७॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार इन्द्रादि देवगणोंने शिवजीकी स्तुति करके बड़े आदरके साथ अपना सारा वृत्तान्त उनसे निवेदन किया॥ २८॥

देवताओंकी उस बातको सुनकर शिवजीने उसे स्वीकार कर लिया और उन्होंने हँसकर देवताओंको आश्वासन देकर उन्हें विदा कर दिया॥ २९॥

तब सभी देवगण प्रसन्न हो गये और अपना कार्य सिद्ध जानकर शिवजीकी प्रशंसा करते हुए वे अपने स्थानको चले गये। तब वे भक्तवत्सल, मायेश, निर्विकार महेश्वर भगवान् शम्भु शैलराजके पास गये॥ ३०-३१॥

उस समय गिरिराज अपने बन्धुवर्गोंके साथ पार्वतीसहित प्रसन्न मनसे सभामें विराजमान थे॥ ३२॥

उसी समय दण्ड, छत्र एवं दिव्य वस्त्र धारण किये तथा उज्ज्वल तिलक लगाये हुए भगवान् सदाशिव उनकी सभामें आ गये॥ ३३॥

वे एक हाथमें स्फटिककी माला और गलेमें शालग्रामशिला धारण किये हुए थे। वे भली प्रकार ब्राह्मणका वेष धारणकर नारायणके नामका जप कर रहे थे॥ ३४॥

उन्हें देखकर हिमालय सभासदोंके साथ खड़े हो गये और उन्होंने भूतलपर दण्डके समान पड़कर भक्ति-भावसे उन अपूर्व अतिथिको साष्टांग प्रणाम किया॥ ३५॥

ब्राह्मणवेषधारी शिवजीको अपना प्राणेश्वर समझकर पार्वतीने प्रणाम किया और हृदयसे परम प्रसन्नतासे उनकी स्तुति की॥ ३६॥

आशिषं युयुजे विप्रः सर्वेषां प्रीतितश्शिवः।
शिवाया अधिकं तात मनोऽभिलषितं हृदा॥ ३७

ब्राह्मणवेष धारण करनेवाले उन सदाशिवने बड़े प्रेम-पूर्वक उन सबको आशीर्वाद दिया और विशेषकर पार्वतीको हृदयसे उनका मनोवांछित आशीर्वाद प्रदान किया॥ ३७॥

मधुपर्कादिकं सर्वं जग्राह ब्राह्मणो मुदा।
दत्तं शैलाधिराजेन हिमागेन महादरात्॥ ३८

उन ब्राह्मणने शैलाधिराज हिमवान्‌के द्वारा बड़े आदरके साथ दिये गये मधुपर्क आदिको प्रेमसे ग्रहण किया॥ ३८॥

पप्रच्छ कुशलं चास्य हिमाद्रिः पर्वतोत्तमः।
तं द्विजेन्द्रं महाप्रीत्या सम्पूज्य विधिवन्मुने॥ ३९

पुनः पप्रच्छ शैलेशस्तं ततः को भवानिति।
उवाच शीघ्रं विप्रेन्द्रो गिरीन्द्रं सादरं वचः॥ ४०

हे मुने! इस प्रकार प्रेमपूर्वक उन द्विजेन्द्रका विधिवत् पूजन करनेके पश्चात् पर्वतश्रेष्ठ हिमालय उनका कुशल पूछने लगे। पर्वतराजने उनसे पूछा कि आप कौन हैं? तब विप्रेन्द्र गिरिराजसे आदरपूर्वक शीघ्र यह वचन कहने लगे—॥ ३९-४०॥

विप्रेन्द्र उवाच

ब्राह्मणोऽहं गिरिश्रेष्ठ वैष्णवो बुधसत्तमः।
घटिकीं वृत्तिमाश्रित्य भ्रमामि धरणीतले॥ ४१

विप्रेन्द्र बोले—हे गिरिश्रेष्ठ! मैं बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ वैष्णव ब्राह्मण हूँ और ज्योतिषवृत्तिका सहारा लेकर पृथिवीतलमें विचरण करता हूँ॥ ४१॥

मनोयायी सर्वगामी सर्वज्ञोऽहं गुरोर्बलात्।
परोपकारी शुद्धात्मा दयासिन्धुर्विकारहा॥ ४२

मैं अपने गुरुकी कृपासे मनके समान सर्वत्र चलनेवाला, सर्वत्र गमन करनेवाला, सर्वज्ञ, परोपकारी, शुद्ध मनवाला, दयासिन्धु तथा विकारका नाश करनेवाला हूँ॥ ४२॥

मया ज्ञातं हराय त्वं स्वसुतां दातुमिच्छसि।
इमां पद्मसमां दिव्यां वररूपां सुलक्षणाम्॥ ४३

निराश्रयायासङ्गाय कुरूपायागुणाय च।
श्मशानवासिने व्यालग्राहिरूपाय योगिने॥ ४४

दिग्वाससे कुगात्राय व्यालभूषणधारिणे।
अज्ञातकुलनाम्ने च कुशीलायाविहारिणे॥ ४५

विभूतिदिग्धदेहाय संक्रुद्धायाविवेकिने।
अज्ञातवयसेऽतीव कुजटाधारिणे सदा॥ ४६

सर्वाश्रयाय भ्रमिणे नागहाराय भिक्षवे।
कुमार्गनिरतायाथ वेदाऽध्वत्यागिने हठात्॥ ४७

मुझे ज्ञात हुआ है कि आप कमलके समान, दिव्य, उत्तम रूपवाली तथा सर्वलक्षणसम्पन्न अपनी यह कन्या आश्रयरहित, असंग, कुरूप, गुणहीन, श्मशानमें रहनेवाले, सर्पधारी, योगी, नग्न, मलिन शरीरवाले, सर्पका आभूषण धारण करनेवाले, अज्ञात कुल तथा नामवाले, कुशील, विहारमें रुचि न रखनेवाले, विभूतिसे लिप्त देहवाले, अत्यन्त क्रोधी, अज्ञानी, अज्ञात आयुवाले, सदा विकृत जटा धारण करनेवाले, सबको आश्रय देनेवाले, भ्रमणशील, नागोंका हार पहननेवाले, भिक्षुक, कुमार्गमें निरत तथा हठपूर्वक वैदिक मार्गका त्याग करनेवाले शिवको देना चाहते हैं॥ ४३—४७॥

इयं ते बुद्धिरचला न हि मङ्गलदा खलु।
विबोध ज्ञानिनां श्रेष्ठ नारायणकुलोद्भव॥ ४८

[हे हिमालय!] आपका यह अटल विचार अवश्य ही मंगलदायक नहीं है। नारायणकुलमें उत्पन्न तथा ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ [गिरिराज!] आप इसपर विचार कीजिये॥ ४८॥

न ते पात्रानुरूपश्च पार्वतीदानकर्मणि।
महाजनः स्मेरमुखः श्रुतमात्राद्भविष्यति॥ ४९

पश्य शैलाधिप त्वं च न तस्यैकोऽस्ति बान्धवः।
महारत्नाकरः त्वं च तस्य किञ्चिद्धनं न हि॥ ५०

पार्वतीके दानकर्ममें वे आपके इस दानके अनुरूप पात्र नहीं हैं। बड़े लोग इस बातको सुनकर आपकी हँसी करेंगे। देखिये, उनका कोई बन्धु-बान्धव नहीं है और आप पर्वतराज हैं, उनके पास कुछ भी नहीं है और आप रत्नाकर हैं॥ ४९-५०॥

बान्धवान्मेनकां कुध्रपते शीघ्रं सुतांस्तथा।
सर्वान्पृच्छ प्रयत्नेन पण्डितान्पार्वतीं विना॥ ५१

हे शैलाधिराज! आप पार्वतीको छोड़कर [इस विषयमें] बान्धवोंसे, मेनासे, पुत्रोंसे और सभी पण्डितोंसे प्रयत्नपूर्वक शीघ्रतासे पूछिये॥ ५१॥

रोगिणो नौषधं शश्वद्रोचते गिरिसत्तम।
कुपथ्यं रोचतेऽभीक्ष्णं महादोषकरं सदा॥ ५२

हे गिरिसत्तम! रोगीको सर्वदा औषधि अच्छी नहीं लगती, अपितु महादोषकारक कुपथ्य ही सदा बहुत अच्छा लगता है॥ ५२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा ब्राह्मणः शीघ्रं स वै भुक्त्वा मुदान्वितः।
जगाम स्वालयं शान्तो नानालीलाकरश्शिवः॥ ५३

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर नाना प्रकारकी लीला करनेवाले विप्ररूप शिव प्रसन्नतापूर्वक भोजनकर शान्तचित्त हो शीघ्र अपने घर चले गये॥ ५३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शिवमायावर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें शिवमायावर्णन नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३१॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

ब्राह्मण-वेषधारी शिवद्वारा शिवस्वरूपकी निन्दा सुनकर मेनाका कोपभवनमें गमन, शिवद्वारा सप्तर्षियोंका स्मरण और उन्हें हिमालयके घर भेजना, हिमालयकी शोभाका वर्णन तथा हिमालयद्वारा सप्तर्षियोंका स्वागत

ब्रह्मोवाच

ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा मेनोवाच हिमालयम्।
शोकेनासाधुनयना हृदयेन विदूयता॥ १

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] ब्राह्मणका यह वचन सुनकर [अश्रुपूर्ण नेत्रोंवाली] मेना व्यथित मनसे हिमालयसे कहने लगीं—॥ १॥

मेनोवाच

शृणु शैलेन्द्र मद्वाक्यं परिणामे सुखावहम्।
पृच्छ शैववरान्सर्वान्किमुक्तं ब्राह्मणेन ह॥ २

मेना बोलीं—हे शैलेन्द्र! परिणाममें सुख प्रदान करनेवाले मेरे वचनको सुनें, सभी श्रेष्ठ शैवोंसे पूछिये कि इस ब्राह्मणने क्या कह दिया?॥ २॥

निन्दानेन कृता शम्भोर्वैष्णवेन द्विजन्मना।
श्रुत्वा तां मे मनोऽतीव निर्विण्णं हि नगेश्वर॥ ३

हे नगेश्वर! इस विष्णुभक्त ब्राह्मणने शिवजीकी निन्दा की है, उसे सुनकर मेरा मन अत्यन्त दुखी है॥ ३॥

तस्मै रुद्राय शैलेश न दास्यामि सुतामहम्।
कुरूपशीलनाम्ने हि सुलक्षणयुतां निजाम्॥ ४

हे शैलेश्वर! मैं कुत्सित रूप एवं शीलवाले उस रुद्रको अपनी सुलक्षणा कन्या नहीं दूँगी॥ ४॥

न मन्यसे वचो चेन्मे मरिष्यामि न संशयः।
त्यक्ष्यामि च गृहं सद्यो भक्षयिष्यामि वा विषम्॥ ५

गले बद्ध्वांबिकां रज्ज्वा यास्यामि गहनं वनम्।
महाम्बुधौ मज्जयिष्ये तस्मै दास्यामि नो सुताम्॥ ६

यदि आप मेरे वचनको नहीं मानेंगे, तो इसमें सन्देह नहीं कि मैं मर जाऊँगी, तुरंत घर छोड़ दूँगी अथवा विष खा लूँगी अथवा अम्बिकाके गलेमें रस्सी बाँधकर घोर वनमें चली जाऊँगी अथवा उसे महासागरमें डुबो दूँगी, किंतु उसको अपनी कन्या नहीं दूँगी॥ ५-६॥

इत्युक्त्वाशु तथा गत्वा मेना कोपालयं शुचा।
त्यक्त्वा हारं रुदन्ती सा चकार शयनं भुवि॥ ७

इस प्रकार कहकर शोकसे सन्तप्त वे मेना शीघ्र कोपभवनमें जाकर हार उतारकर रोती हुई भूमिपर लेट गयीं॥ ७॥

एतस्मिन्नन्तरे तात शम्भुना सप्त एव ते।
संस्मृता ऋषयः सद्यो विरहव्याकुलात्मना॥ ८

हे तात! उसी समय [कालीके] विरहसे व्याकुल हुए शंकरजीने शीघ्र ही उन सप्तर्षियोंका स्मरण किया॥ ८॥

ऋषयश्चैव ते सर्वे शम्भुना संस्मृता यदा।
तदाजग्मुः स्वयं सद्यः कल्पवृक्षा इवापरे॥ ९
अरुन्धती तथायाता साक्षात्सिद्धिरिवापरा।
तान्दृष्ट्वा सूर्यसंकाशान्विजहौ स्वजपं हरः॥ १०

जब शिवजीने उन सभी ऋषियोंका स्मरण किया, तब वे दूसरे कल्पवृक्षके समान तत्काल वहाँ उपस्थित हो गये और साक्षात् सिद्धिके समान अरुन्धती भी वहाँ आ गयीं। सूर्यके समान तेजस्वी उन ऋषियोंको देखकर शिवजीने अपना जप छोड़ दिया॥ ९-१०॥

स्थित्वाग्रे ऋषयः श्रेष्ठा नत्वा स्तुत्वा शिवं मुने।
मेनिरे च तदात्मानं कृतार्थं ते तपस्विनः॥ ११

हे मुने! वे श्रेष्ठ तपस्वी ऋषि शिवजीके आगे खड़े होकर उन्हें प्रणामकर उनकी स्तुति करके अपनेको कृतार्थ समझने लगे॥ ११॥

ततो विस्मयमापन्ना नमस्कृत्य स्थिताः पुनः।
प्रोचुः प्राञ्जलयस्ते वै शिवं लोकनमस्कृतम्॥ १२

तत्पश्चात् विस्मयमें पड़कर वे पुनः लोकनमस्कृत शिवको प्रणाम करके हाथ जोड़कर सामने खड़े होकर उनसे कहने लगे—॥ १२॥

ऋषय ऊचुः

सर्वोत्कृष्ट महाराज सार्वभौम दिवौकसाम्।
स्वभाग्यं वर्ण्यतेऽस्माभिः किं पुनः सकलोत्तमम्॥ १३

ऋषिगण बोले—हे सर्वोत्कृष्ट! हे देवताओंके सम्राट्! हे महाराज! हमलोग अपने सर्वोत्तम भाग्यकी सराहना किस प्रकार करें॥ १३॥

तपस्तप्तं त्रिधा पूर्वं वेदाध्ययनमुत्तमम्।
अग्नयश्च हुताः पूर्वं तीर्थानि विविधानि च॥ १४

वाङ्मनःकायजं किंचित्पुण्यं स्मरणसम्भवम्।
तत्सर्वं सङ्गतं चाद्य स्मरणानुग्रहात्तव॥ १५

हमलोगोंने जो पूर्व समयमें [कायिक, वाचिक तथा मानसिक] तीनों प्रकारकी तपस्या की है, उत्तम वेदाध्ययन किया है, अग्निहोत्र किया है तथा नाना प्रकारके तीर्थ किये हैं और ज्ञानपूर्वक वाणी, मन तथा शरीरसे जो कुछ भी पुण्य किया है, वह सब आज आपके स्मरणरूप अनुग्रहके प्रभावसे सफल हो गया॥ १४-१५॥

यो वै भजति नित्यं त्वां कृतकृत्यो भवेन्नरः।
किं पुण्यं वर्ण्यते तेषां येषां च स्मरणं तव॥ १६

जो मनुष्य आपका नित्य स्मरण करता है, वह कृतकृत्य हो जाता है, तब उसके पुण्यका क्या वर्णन किया जाय, जिसका स्मरण आप करते हैं॥ १६॥

सर्वोत्कृष्टा वयं जाताः स्मरणात्ते सदाशिव।
मनोरथपथं नैव गच्छसि त्वं कथंचन॥ १७

हे सदाशिव! आपके द्वारा स्मरण किये जानेसे हमलोग सर्वोत्कृष्ट हो गये हैं,आप तो किसीके मनोरथमार्गमें किसी प्रकार आते ही नहीं हैं॥ १७॥

वामनस्य फलं यद्वज्जन्मान्धस्य दृशौ यथा।
वाचालत्वं च मूकस्य रंकस्य निधिदर्शनम्॥ १८

पङ्गोर्गिरिवराक्रान्तिर्वन्ध्यायाः प्रसवस्तथा।
दर्शनं भवतस्तद्वज्जातं नो दुर्लभं प्रभो॥ १९

जिस प्रकार बौनेको फल प्राप्त हो जाता है, जन्मान्धको नेत्रकी प्राप्ति होती है, गूँगेको वाणी मिल जाती है, कंगालको निधिदर्शन हो जाता है, पंगुको ऊँचे पहाड़पर चढ़नेकी शक्ति प्राप्त हो जाती है तथा वन्ध्याको प्रसव सम्भव हो जाता है, उसी प्रकार हे प्रभो! हमें आपका यह दुर्लभ दर्शन प्राप्त हो गया॥ १८-१९॥

अद्यप्रभृति लोकेषु मान्याः पूज्या मुनीश्वराः।
जातास्ते दर्शनादेव स्वमुच्चैः पदमाश्रिताः॥ २०

आजसे अब हम मुनीश्वर आपके दर्शनसे लोकोंमें मान्य एवं पूज्य हो गये तथा ऊँची पदवीको प्राप्त हो गये॥ २०॥

अत्र किं बहुनोक्तेन सर्वथा मान्यतां गताः।
दर्शनात्तव देवेश सर्वदेवेश्वरस्य हि॥ २१

हे देवेश! बहुत कहनेसे क्या? आप सर्वदेवेश्वरके दर्शनसे हम सर्वथा मान्यताको प्राप्त हो गये॥ २१॥

पूर्णानां किञ्च कर्तव्यमस्ति चेत्परमा कृपा।
सदृशं सेवकानां तु देयं कार्यं त्वया शुभम्॥ २२

आप-जैसे पूर्ण परमात्माको किसीसे प्रयोजन ही क्या है? किंतु यदि हम सेवकोंपर कृपा करना ही है, तो हम सबके योग्य कार्यके लिये आज्ञा प्रदान कीजिये॥ २२॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा तेषां शम्भुर्महेश्वरः।
लौकिकाचारमाश्रित्य रम्यं वाक्यमुपाददे॥ २३

ब्रह्माजी बोले—तब उनकी इस बातको सुनकर लोकाचारका आश्रय लेकर महेश्वर शम्भु मनोहर वचन कहने लगे—॥ २३॥

शिव उवाच

ऋषयश्च सदा पूज्या भवन्तश्च विशेषतः।
युष्माकं कारणाद्विप्राः स्मरणं च मया कृतम्॥ २४

शिवजी बोले—हे महर्षियो! ऋषिजन हर तरहसे पूज्य हैं, आपलोग तो विशेष रूपसे पूज्य हैं। हे विप्रो! कुछ कारणवश मैंने आपलोगोंका स्मरण किया है॥ २४॥

ममावस्था भवद्भिश्च ज्ञायते ह्युपकारिका।
साधनीया विशेषेण लोकानां सिद्धिहेतवे॥ २५

आप सब जानते हैं कि मेरी स्थिति सदैव ही परोपकार करनेवाली है और विशेषकर लोकोपकारके लिये तो मुझे यह सब करना ही पड़ता है॥ २५॥

देवानां दुःखमुत्पन्नं तारकात्सुदुरात्मनः।
ब्रह्मणा च वरो दत्तः किं करोमि दुरासदः॥ २६

इस समय दुरात्मा तारकासुरसे देवताओंके समक्ष दुःख उत्पन्न हो गया है, क्या करूँ, ब्रह्माजीने उसे बड़ा विकट वरदान दे रखा है॥ २६॥

मूर्तयोऽष्टौ च याः प्रोक्ता मदीयाः परमर्षयः।
ताः सर्वा उपकाराय न तु स्वार्थाय तत्स्फुटम्॥ २७

हे महर्षियो! मेरी जो आठ प्रकारकी मूर्तियाँ (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र तथा यजमान) कही गयी हैं, वे सब भी परोपकारके निमित्त ही हैं, स्वार्थके लिये नहीं हैं, यह बात तो स्पष्ट है॥ २७॥

तथा च कर्तुकामोऽहं विवाहं शिवया सह।
तया वै सुतपस्तप्तं दुष्करं परमर्षिभिः॥ २८

[इस परोपकारके लिये ही] मैं पार्वतीके साथ विवाह करना चाहता हूँ; उसने भी महर्षियोंके कहनेसे दुष्कर कठोर तप किया है॥ २८॥

तस्यै परं फलं देयमभीष्टं तद्धितावहम्।
एतादृशः पणो मे हि भक्तानन्दप्रदः स्फुटम्॥ २९

उसके इच्छानुसार उसका हितकारक फल मुझे अवश्य देना चाहिये; क्योंकि भक्तोंको आनन्द देनेवाली मेरी यह स्पष्ट प्रतिज्ञा है॥ २९॥

पार्वतीवचनाद्भिक्षुरूपो यातो गिरेर्गृहम्।
अहं पावितवान्कालीं यतो लीलाविशारदः॥ ३०

मैं पार्वतीके वचनानुसार भिक्षुकका रूप धारणकर हिमालयके घर गया था और मुझ लीलाप्रवीणने कालीको पवित्र किया था॥ ३०॥

मां ज्ञात्वा तौ परं ब्रह्म दम्पती परभक्तितः।
दातुकामावभूतां च स्वसुतां वेदरीतितः॥ ३१

वे स्त्री-पुरुष मुझे परब्रह्म जानकर वेदरीतिसे सद्भक्तिसे अपनी कन्या मुझे देनेके लिये तत्पर हो गये॥ ३१॥

देवप्रेरणयाहं वै कृतवानस्मि निन्दनम्।
तदा स्वस्य च तद्भक्तिं विहन्तुं वैष्णवात्मना॥ ३२

उसके बाद देवताओंकी प्रेरणासे वैष्णव भिक्षुका रूप धारणकर मैं उन दोनोंसे अपनी निन्दा करने लगा। उससे मेरे प्रति उनकी भक्ति नष्ट हो गयी॥ ३२॥

तच्छ्रुत्वा तौ सुनिर्विण्णौ तद्धीनौ संबभूवतुः।
स्वकन्यां नेच्छतो दातुं मह्यं हि मुनयोऽधुना॥ ३३

उसे सुनकर वे बड़े दुखी हो गये और मेरी भक्तिसे विमुख हो गये। हे मुनिगणो! अब वे मुझे अपनी कन्या नहीं देना चाहते हैं॥ ३३॥

तस्माद्भवन्तो गच्छन्तु हिमाचलगृहं ध्रुवम्।
तत्र गत्वा गिरिवरं तत्पत्नीं च प्रबोधय॥ ३४

इसलिये! आपलोग निश्चित रूपसे हिमालयके घर जायँ और वहाँ जाकर गिरिश्रेष्ठ हिमालय और उनकी पत्नीको समझायें॥ ३४॥

कथनीयं प्रयत्नेन वचनं वेदसम्मितम्।
सर्वथा करणीयं तद्यथा स्यात्कार्यमुत्तमम्॥ ३५

आपलोग प्रयत्नपूर्वक वेदसम्मत वचन उनसे कहें और सर्वथा वही करें, जिससे यह उत्तम कार्य सिद्ध हो जाय॥ ३५॥

उद्वाहं कर्तुमिच्छामि तत्पुत्र्या सह सत्तमाः।
स्वीकृतस्तद्विवाहो मे वरो दत्तश्च तादृशः॥ ३६

हे मुनिसत्तमो! मैं उनकी पुत्रीके साथ विवाह करना चाहता हूँ। मैंने [देवताओं एवं विष्णुके कहनेसे] विवाह करना स्वीकार कर लिया है और [पार्वतीको] वैसा वर भी दे दिया है॥ ३६॥

अत्र किं बहुनोक्तेन बोधनीयो हिमालयः।
तथा मेना च बोद्धव्या देवानां स्याद्धितं यथा॥ ३७

अब मैं अधिक क्या कहूँ, आपलोग हिमालय तथा मेनाको समझाइये, जिससे देवताओंका हित हो॥ ३७॥

भवद्भिः कल्पितो यो वै विधिः स्यादधिकस्ततः।
भवतां चैव कार्यं तु भवन्तः कार्यभागिनः॥ ३८

आपलोगोंने जिस प्रकारकी विधिकी कल्पना की है, उससे भी अधिक होनी चाहिये, यह आपलोगोंका ही कार्य है और इस कार्यके भागी आपलोग ही हैं॥ ३८॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा मुनयस्तेऽमलाशयाः।
आनन्दं लेभिरे सर्वे प्रभुणानुग्रहीकृताः॥ ३९

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकारके वचनको सुनकर स्वच्छ अन्तःकरणवाले वे सभी महर्षि प्रभुसे अनुगृहीत हो आनन्दको प्राप्त हुए॥ ३९॥

वयं धन्या अभूवंश्च कृतकृत्याश्च सर्वथा।
वंद्या जाताश्च सर्वेषां पूजनीया विशेषतः॥ ४०

[वे ऋषि परस्पर कहने लगे] हमलोग सर्वथा धन्य तथा कृतकृत्य हो गये और विशेष रूपसे सबके वन्दनीय एवं पूजनीय हो गये॥ ४०॥

ब्रह्मणा विष्णुना यो वै वन्द्यः सर्वार्थसाधकः।
सोऽस्मान्प्रेषयते प्रेष्यान्कार्ये लोकसुखावहे॥ ४१

जो ब्रह्मा तथा विष्णुके भी वन्दनीय हैं और सम्पूर्ण मनोरथोंको सिद्ध करनेवाले हैं, वे हमलोगोंको अपना दूत बनाकर लोकको सुख प्रदान करनेवाले कार्यके लिये भेज रहे हैं॥ ४१॥

अयं वै जगतां स्वामी पिता सा जननी मता।
अयं युक्तश्च सम्बन्धो वर्धतां चन्द्रवत्सदा॥ ४२

ये शिवजी लोकोंके स्वामी एवं पिता हैं और वे [पार्वती] जगत्‌की माता कही गयी हैं। [इन दोनोंका] यह उचित सम्बन्ध सर्वदा चन्द्रमाके समान बढ़ता रहे॥ ४२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा ऋषयो दिव्या नमस्कृत्य शिवं तदा।
गता आकाशमार्गेण यत्रास्ति हिमवत्पुरम्॥ ४३
दृष्ट्वा तां च पुरीं दिव्यां ऋषयस्तेऽतिविस्मिताः।
वर्णयन्तश्च स्वं पुण्यमब्रुवन्वै परस्परम्॥ ४४

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर वे दिव्य ऋषि शिवजीको प्रणामकर आकाशमार्गसे वहाँ गये, जहाँ हिमालयका नगर है। उस दिव्य पुरीको देखते ही ऋषिगण आश्चर्यसे चकित हो गये और अपने पुण्यका वर्णन करते हुए परस्पर कहने लगे— ॥ ४३-४४ ॥

ऋषय ऊचुः

पुण्यवन्तो वयं धन्या दृष्ट्वैतद्धिमवत्पुरम्।
यस्मादेवंविधे कार्ये शिवेनैव नियोजिताः॥ ४५

ऋषि बोले—हिमालयके इस नगरको देखकर हम सभी पुण्यवान् एवं धन्य हो गये; क्योंकि स्वयं शिवजीने इस प्रकारके कार्यमें हमलोगोंको नियुक्त किया है॥ ४५ ॥

अलकायाश्च स्वर्गाच्च भोगवत्यास्तथा पुनः।
विशेषेणामरावत्या दृश्यते पुरमुत्तमम्॥ ४६

यह [हिमालयकी] पुरी तो अलका, स्वर्ग, भोगवती तथा विशेषकर अमरावतीसे भी उत्तम दिखायी पड़ती है॥ ४६ ॥

सुगृहाणि सुरम्याणि स्फटिकैर्विविधैर्वरैः।
मणिभिर्वा विचित्राणि रचितान्यङ्गणानि च॥ ४७
सूर्यकान्ताश्च मणयश्चन्द्रकान्तास्तथैव च।
गृहे गृहे विचित्राश्च वृक्षाः स्वर्गसमुद्भवाः॥ ४८

इस पुरीके अत्यन्त मनोहर एवं विचित्र घर और आँगन स्फटिक तथा नाना प्रकारकी उत्तम मणियोंसे बनाये गये हैं। इस पुरीके प्रत्येक घरमें सूर्यकान्त एवं चन्द्रकान्त मणियाँ विद्यमान हैं तथा अद्भुत स्वर्गीय वृक्ष लगे हुए हैं॥ ४७-४८ ॥

तोरणानां तथा लक्ष्मीर्दृश्यते च गृहे गृहे।
विविधानि विचित्राणि शुकहंसैर्विमानकैः॥ ४९

तोरणोंकी शोभा घर-घरमें दिखायी दे रही है। इस पुरके विमानोंमें तोते तथा हंस बोल रहे हैं॥ ४९ ॥

वितानानि विचित्राणि चैलवत्तोरणैः सह।
जलाशयान्यनेकानि दीर्घिका विविधाः स्थिताः॥ ५०

विचित्र प्रकारके वितान चित्र-विचित्र कपड़ोंके बने हैं, जिनमें बन्दनवार बँधे हैं। वहाँ अनेक जलाशय तथा विविध बावलियाँ हैं॥ ५० ॥

उद्यानानि विचित्राणि प्रसन्नैः पूजितान्यथ।
नराश्च देवताः सर्वे स्त्रियश्चाप्सरसस्तथा॥ ५१

वहाँ विचित्र उद्यान हैं, जिनका लोग प्रसन्नचित्त होकर सेवन करते हैं। यहाँके सभी पुरुष देवताके सदृश तथा स्त्रियाँ अप्सराओंके सदृश हैं॥ ५१ ॥

कर्मभूमौ याज्ञिकाश्च पौराणाः स्वर्गकाम्यया।
कुर्वन्ति ते वृथा सर्वे विहाय हिमवत्पुरम्॥ ५२

हिमालयके पुरको छोड़कर स्वर्गकी कामनासे कर्मभूमिमें याज्ञिक एवं पौराणिक लोग व्यर्थ ही अनुष्ठान करते रहते हैं॥ ५२ ॥

यावन्न दृष्टमेतच्च तावत्स्वर्गपरा नराः।
दृष्टमेतद्यदा विप्राः किं स्वर्गेण प्रयोजनम्॥ ५३

हे विप्रो! मनुष्योंको स्वर्गकी तभीतक कामना रहती है, जबतक उन्होंने इस पुरीको नहीं देखा, जब इसे देख लिया, तो स्वर्गसे क्या प्रयोजन?॥ ५३ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवमृषिवर्यास्ते वर्णयन्तः पुरं च तत्।
गता हैमालयं सर्वे गृहं सर्वसमृद्धिमत्॥ ५४

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार उस पुरीका वर्णन करते हुए वे सभी ऋषि सब प्रकारकी समृद्धिसे युक्त हिमालयके घर पहुँचे॥ ५४ ॥

तान्दृष्ट्वा सूर्यसंकाशान् हिमवान्विस्मितोऽब्रवीत्।
दूरादाकाशमार्गस्थान्मुनीन्सप्त सुतेजसः॥ ५५

आकाशमार्गसे आते हुए सूर्यके समान अत्यन्त तेजस्वी उन सात ऋषियोंको दूरसे ही देखकर हिमवान् विस्मित हो [मनमें] कहने लगे॥ ५५ ॥

हिमवानुवाच

सप्तैते सूर्यसंकाशाः समायान्ति मदन्तिके।
पूजा कार्या प्रयत्नेन मुनीनां च मयाधुना॥ ५६

वयं धन्या गृहस्थाश्च सर्वेषां सुखदायिनः।
येषां गृहे समायान्ति महात्मानो यदीदृशाः॥ ५७

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे चैवाकाशादेत्य भुवि स्थितान्।
सम्मुखे हिमवान्दृष्ट्वा ययौ मानपुरस्सरम्॥ ५८

कृतांजलिर्नतस्कन्धः सप्तर्षीन्सुप्रणम्य सः।
पूजां चकार तेषां वै बहुमानपुरस्सरम्॥ ५९

हिताः सप्तर्षयस्ते च हिमवन्तं नगेश्वरम्।
गृहीत्वोचुः प्रसन्नास्या वचनं मङ्गलालयम्॥ ६०

यथाग्रतश्च तान्कृत्वा धन्यो मम गृहाश्रमः।
इत्युक्त्वासनमानीय ददौ भक्तिपुरस्सरम्॥ ६१

आसनेषूपविष्टेषु तदाज्ञप्तः स्वयं स्थितः।
उवाच हिमवांस्तत्र मुनीन् ज्योतिर्मयांस्तदा॥ ६२

हिमालय उवाच

धन्यो हि कृतकृत्योऽहं सफलं जीवितं मम।
लोकेषु दर्शनीयोऽहं बहुतीर्थसमो मतः॥ ६३

यस्माद्भवन्तो मद्गेहमागता विष्णुरूपिणः।
पूर्णानां भवतां कार्यं कृपणानां गृहेषु किम्॥ ६४

तथापि किञ्चित्कार्यं च सदृशं सेवकस्य मे।
कथनीयं सुदयया सफलं स्याज्जनुर्मम॥ ६५

हिमवान् बोले—ये सूर्यके समान तेजस्वी सप्तर्षिगण मेरे पास आ रहे हैं, मुझे इस समय प्रयत्नपूर्वक इन मुनियोंकी पूजा करनी चाहिये॥ ५६॥

हम गृहस्थलोग धन्य हैं, जिनके घर सभीको सुख प्रदान करनेवाले इस प्रकारके महात्मा [स्वयं] आते हैं॥ ५७॥

ब्रह्माजी बोले—इसी बीच आकाशसे उतरकर पृथिवीपर स्थित हुए उन सबको अपने सम्मुख देखकर हिमालय सम्मानपूर्वक उनके पास गये॥ ५८॥

उन्होंने हाथ जोड़कर सिर झुकाकर उन सप्तर्षियोंको प्रणाम करके पुनः बड़े सम्मानके साथ उनकी पूजा की॥ ५९॥

उस पूजाको स्वीकार करके हित करनेवाले प्रसन्नमुख सप्तर्षियोंने गिरिराज हिमालयसे कुशल-मंगल पूछा॥ ६०॥

मेरा गृहस्थाश्रम धन्य हो गया—हिमालयने ऐसा कहकर उन्हें आगे करके आसन लाकर भक्तिपूर्वक समर्पित किया। आसनोंपर उनके बैठ जानेपर पुनः उनसे आज्ञा लेकर वे हिमालय स्वयं भी बैठ गये और इसके बाद तेजस्वी ऋषियोंसे कहने लगे— ॥ ६१-६२॥

हिमालय बोले—मैं धन्य तथा कृतकृत्य हो गया, मेरा जीवन सफल हो गया, मैं लोकोंमें दर्शनीय तथा अनेक तीर्थोंके समान हो गया हूँ; क्योंकि विष्णुस्वरूप आपलोग मेरे घर पधारे हैं। कृपणोंके घरोंमें [हर प्रकारसे] परिपूर्ण आपलोगोंको कौन-सा कार्य हो सकता है? तो भी मुझ सेवकके योग्य जो कुछ कार्य हो, उसे दयापूर्वक कहिये, जिससे मेरा जन्म सफल हो जाय॥ ६३—६५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे सप्तर्ष्यागमनवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें सप्तर्षियोंका आगमनवर्णन नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

वसिष्ठपत्नी अरुन्धतीद्वारा मेनाको समझाना तथा सप्तर्षियोंद्वारा हिमालयको शिवमाहात्म्य बताना

ऋषय ऊचुः

जगत्पिता शिवः प्रोक्तो जगन्माता शिवा मता।
तस्माद्देया त्वया कन्या शंकराय महात्मने॥ १

ऋषि बोले—[हे हिमालय!] शिवजी जगत्के पिता कहे गये हैं और पार्वती जगत्की माता मानी गयी हैं। इसलिये आप अपनी कन्या महात्मा शंकरको

एवं कृत्वा हिमगिरे सार्थकं ते भवेज्जनुः।
जगद्गुरोर्गुरुस्त्वं हि भविष्यसि न संशयः॥ २

ब्रह्मोवाच

एवं वचनमाकर्ण्य सप्तर्षीणां मुनीश्वर।
प्रणम्य तान्करौ बद्ध्वा गिरिराजोऽब्रवीदिदम्॥ ३

हिमालय उवाच

सप्तर्षयो महाभागा भवद्भिर्यदुदीरितम्।
तत्प्रमाणीकृतं मे हि पुरैव गिरिशेच्छया॥ ४

इदानीमेक आगत्य विप्रो वैष्णवधर्मवान्।
शिवमुद्दिश्य सुप्रीत्या विपरीतं वचोऽब्रवीत्॥ ५

तदारभ्य शिवामाता ज्ञानभ्रष्टा बभूव ह।
सुताविवाहं रुद्रेण योगिना तेन नेच्छति॥ ६

कोपागारमगात्सा हि सुतप्ता मलिनाम्बरा।
कृत्वा महाहठं विप्रा बोध्यमानापि नाबुधत्॥ ७

अहं च ज्ञानविभ्रष्टो जातोऽहं सत्यमीर्यते।
दातुं सुतां महेशाय नेच्छामि भिक्षुरूपिणे॥ ८

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा शैलराजस्तु शिवमायाविमोहितः।
तूष्णीं बभूव तत्रस्थो मुनीनां मध्यतो मुने॥ ९
सर्वे सप्तर्षयस्ते हि शिवमायां प्रशस्य वै।
प्रेषयामासुरथ तां मेनकां प्रत्यरुन्धतीम्॥ १०
अथ पत्युः समादाय निदेशं ज्ञानदा हि सा।
जगामारुन्धती तूर्णं यत्र मेना च पार्वती॥ ११
गत्वा ददर्श मेनां तां शयानां शोकमूर्च्छिताम्।
उवाच मधुरं साध्वी सावधाना हितं वचः॥ १२

अरुन्धत्युवाच

उत्तिष्ठ मेनके साध्वि त्वद्गृहेऽहमरुन्धती।
आगता मुनयश्चापि सप्तायाताः कृपालवः॥ १३

ब्रह्मोवाच

अरुन्धतीस्वरं श्रुत्वा शीघ्रमुत्थाय मेनका।
उवाच शिरसा नत्वा तां पद्मामिव तेजसा॥ १४

मेनोवाच

अहोऽद्य किमिदं पुण्यमस्माकं पुण्यजन्मनाम्।
वधूर्जगद्विधेः पत्नी वसिष्ठस्यागतेह वै॥ १५

प्रदान कर दीजिये। हे हिमालय! ऐसा करनेसे आपका जन्म सफल हो जायगा और आप जगद्‌गुरुके भी गुरु हो जायँगे, इसमें सन्देह नहीं है॥ १-२॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! ऋषियोंके इस प्रकारके वचनको सुनकर उन्हें प्रणामकर हाथ जोड़कर गिरिराज यह कहने लगे— ॥ ३॥

हिमालय बोले—हे महाभाग्यवान् सप्तर्षिगण! आपलोगोंने जैसा कहा है, उसे मैंने शिवजीकी इच्छासे पहले ही स्वीकार कर लिया था। [किंतु हे प्रभो!] इसी समय एक वैष्णवधर्मी ब्राह्मणने यहाँ आकर शिवजीको लक्ष्य करके प्रेमपूर्वक उनके विपरीत वचन कहा है॥ ४-५॥

तभी से शिवाकी माता ज्ञानसे भ्रष्ट हो गयी हैं और अपनी पुत्रीका विवाह उन योगी रुद्रसे नहीं करना चाहती हैं। हे विप्रो! वे अत्यन्त दुखी होकर मैले वस्त्र धारणकर बड़ा हठ करके कोपभवनमें चली गयी हैं और समझानेपर भी नहीं समझ रही हैं। मैं सत्य कह रहा हूँ कि मैं भी ज्ञानभ्रष्ट हो गया हूँ और अब मैं भिक्षुकरूपधारी महेश्वरको कन्या नहीं देना चाहता हूँ॥ ६—८॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! शिवकी मायासे मोहित शैलराज इस प्रकार कहकर चुप हो गये और मुनियोंके बीच बैठ गये॥ ९॥

उसके बाद उन सभी सप्तर्षियोंने शिवमायाकी प्रशंसा करके उन मेनाके पास अरुन्धतीको भेजा॥ १०॥

पतिकी आज्ञा पाकर ज्ञानदात्री अरुन्धती शीघ्र ही वहाँ गयीं, जहाँ मेना और पार्वती थीं॥ ११॥

वहाँ जाकर अरुन्धतीने शोकसे मूर्च्छित होकर [पृथिवीपर] सोयी हुई मेनाको देखा। तब उन पतिव्रताने सावधानीपूर्वक हितकर वचन कहा— ॥ १२॥

अरुन्धती बोली—हे साध्वि मेनके! उठिये, मैं अरुन्धती आपके घर आयी हूँ तथा कृपालु सप्तर्षिगण भी आये हुए हैं॥ १३॥

ब्रह्माजी बोले—अरुन्धतीका स्वर सुनकर शीघ्रतासे उठकर महालक्ष्मीके समान तेजयुक्त अरुन्धतीको सिर झुकाकर प्रणाम करके मेनका कहने लगीं— ॥ १४॥

मेना बोलीं—अहो! आज हम पुण्यवानोंका यह कितना बड़ा पुण्य है, जो जगत्‌के विधाताकी पुत्रवधू एवं वसिष्ठकी पत्नी मेरे घर स्वयं आयी हैं॥ १५॥

किमर्थमागता देवि तन्मे ब्रूहि विशेषतः।
अहं दासीसमा ते हि ससुता करुणां कुरु॥ १६

हे देवि! आप किसलिये आयी हैं, उसे मुझसे विशेष रूपसे कहिये। पुत्री पार्वतीसहित मैं आपकी दासीके समान हूँ, आप कृपा कीजिये॥ १६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ता मेनका साध्वी बोधयित्वा च तां बहु।
तत्रागता च सुप्रीत्या यत्र सप्तर्षयोऽपि ते॥ १७
अथ शैलेश्वरं ते च बोधयामासुरादरात्।
स्मृत्वा शिवपदद्वन्द्वं सर्वे वाक्यविशारदाः॥ १८

ब्रह्माजी बोले—जब मेनाने इस प्रकार कहा, तब साध्वी अरुन्धती उन्हें बहुत समझाकर प्रेमपूर्वक वहाँ गयीं, जहाँ सप्तर्षिगण विराजमान थे। इधर, वाक्यविशारद सभी महर्षिगण भी शिवके चरणयुगलका स्मरण करके आदरके साथ गिरिराजको समझाने लगे॥ १७-१८॥

ऋषय ऊचुः

शैलेन्द्र श्रूयतां वाक्यमस्माकं शुभकारणम्।
शिवाय पार्वतीं देहि संहर्तुः श्वशुरो भव॥ १९

अयाचितारं सर्वेशं प्रार्थयामास यत्नतः।
तारकस्य विनाशाय ब्रह्मा सम्बन्धकर्मणि॥ २०

नोत्सुको दारसंयोगे शंकरो योगिनां वरः।
विधेः प्रार्थनया देवस्तव कन्यां ग्रहीष्यति॥ २१

ऋषि बोले—हे शैलराज! आप हमलोगोंका शुभकारक वचन सुनें, आप पार्वतीका विवाह शिवके साथ कर दीजिये और संहारकर्ता शिवजीके श्वशुर बन जाइये। तारकासुरके वधके निमित्त ब्रह्माजीने इस विवाहको करनेके लिये उन अयाचक सर्वेश्वरसे प्रयत्न-पूर्वक प्रार्थना की है। यद्यपि योगियोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण सदाशिव इस दारसंग्रह-कार्यके लिये उत्सुक नहीं हैं, किंतु ब्रह्माजीके द्वारा बहुत प्रार्थना करनेपर वे आपकी इस कन्याको ग्रहण करेंगे॥ १९—२१॥

दुहितुस्ते तपस्तप्तं प्रतिज्ञानं चकार सः।
हेतुद्वयेन योगीन्द्रो विवाहं च करिष्यति॥ २२

आपकी कन्याने भी [शिवजीको वररूपमें प्राप्त करनेहेतु] बड़ा तप किया है, इसीलिये उन्होंने उसे वर दिया है, इन्हीं दो कारणोंसे वे योगीन्द्र विवाह करेंगे॥ २२॥

ब्रह्मोवाच

ऋषीणां वचनं श्रुत्वा प्रहस्य स हिमालयः।
उवाच किञ्चिद्भीतस्तु परं विनयपूर्वकम्॥ २३

ब्रह्माजी बोले—ऋषियोंकी यह बात सुनकर हिमालय हँस करके फिर कुछ भयभीत होकर विनयपूर्वक इस प्रकार कहने लगे—॥ २३॥

हिमालय उवाच

शिवस्य राजसामग्रीं न हि पश्यामि काञ्चन।
कञ्चिदाश्रयमैश्वर्यं कं वा स्वजनबान्धवम्॥ २४

नेच्छाम्यतिविनिर्लिप्तयोगिने स्वां सुतामहम्।
यूयं वेदविधातुश्च पुत्रा वदत निश्चितम्॥ २५

हिमालय बोले—मैं शिवके पास कोई राजोचित सामग्री नहीं देख रहा हूँ, न उनका कोई आश्रय और ऐश्वर्य ही दिखायी पड़ रहा है और न तो कोई उनका सगा-सम्बन्धी ही दिखायी पड़ता है। मैं अत्यन्त निर्लिप्त योगीको अपनी पुत्री नहीं देना चाहता हूँ। आपलोग तो ब्रह्मदेवके पुत्र हैं, आपलोग ही निश्चित बात बतायें॥ २४-२५॥

वरायाननुरूपाय पिता कन्यां ददाति चेत्।
कामान्मोहाद्भयाल्लोभात्स नष्टो नरकं व्रजेत्॥ २६

यदि पिता काम, मोह, भय तथा लोभवश अपनी कन्या प्रतिकूल वरको प्रदान करता है, तो वह नष्ट होकर नरकमें जाता है॥ २६॥

न हि दास्याम्यहं कन्यामिच्छया शूलपाणये।
यद्विधानं भवेद्योग्यमृषयस्तद् विधीयताम्॥ २७

मैं स्वेच्छासे इस कन्याको शंकरको नहीं दूँगा, हे ऋषियो! अब जो उचित विधान हो, उसे आपलोग करें॥ २७॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य हिमागस्य मुनीश्वर।
प्रत्युवाच वसिष्ठस्तं तेषां वाक्यविशारदः॥ २८

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! हिमालयके इस प्रकारके वचनको सुनकर उन ऋषियोंमें वाक्यविशारद वसिष्ठजी उनसे कहने लगे—॥ २८॥

वसिष्ठ उवाच

शृणु शैलेश मद्वाक्यं सर्वथा ते हितावहम्।
धर्माविरुद्धं सत्यं च परत्रेह मुदावहम्॥ २९

वचनं त्रिविधं शैल लौकिके वैदिकेऽपि च।
सर्वं जानाति शास्त्रज्ञो निर्मलज्ञानचक्षुषा॥ ३०

वसिष्ठजी बोले—हे शैलेन्द्र! आप मेरी बात सुनिये, जो आपके लिये सर्वथा हितकर, धर्मके अनुकूल, सत्य और इस लोक तथा परलोकमें आनन्द प्रदान करनेवाली है। हे शैल! लोक एवं वेदमें तीन प्रकारके वचन होते हैं, शास्त्रका ज्ञाता अपने निर्मल ज्ञानरूपी नेत्रसे उन सबको जानता है॥ २९-३०॥

असत्यमहितं पश्चात्सांप्रतं श्रुतिसुन्दरम्।
सुबुद्धिर्वक्ति शत्रुर्हि हितं नैव कदाचन॥ ३१

जो वचन सुननेमें सुन्दर लगे, पर असत्य एवं अहितकारी हो, ऐसा वचन बुद्धिमान् शत्रु बोलते हैं। ऐसा वचन किसी प्रकार हितकारी नहीं होता॥ ३१॥

आदावप्रीतिजनकं परिणामे सुखावहम्।
दयालुर्धर्मशीलो हि बोधयत्येव बांधवः॥ ३२

श्रुतिमात्रात्सुधातुल्यं सर्वकालसुखावहम्।
सत्यसारं हितकरं वचनं श्रेष्ठमीप्सितम्॥ ३३

जो वचन आरम्भमें अप्रिय लगनेवाला हो, किंतु परिणाममें सुखकारी हो, ऐसा वचन दयालु तथा धर्मशील बन्धु ही कहता है। सुननेमें अमृतके समान, सभी कालमें सुखदायक, सत्यका सारस्वरूप तथा हितकारक वचन श्रेष्ठ होता है॥ ३२-३३॥

एवं च त्रिविधं शैल नीतिशास्त्रोदितं वचः।
कथ्यतां त्रिषु मध्ये किं ब्रुवे वाक्यं त्वदीप्सितम्॥ ३४

ब्राह्मसम्पद्विहीनश्च शंकरस्त्रिदशेश्वरः।
तत्त्वज्ञानसमुद्रेषु सन्निमग्नैकमानसः॥ ३५

हे शैल! इस प्रकार तीन तरहके वचन नीतिशास्त्रमें कहे गये हैं। अब आप ही बताइये कि इन तीन प्रकारके वचनोंमें हमलोग किस प्रकारका वचन बोलें, जो आपके अनुकूल हो। देवताओंके स्वामी शंकरजी ब्रह्मज्ञानसे सम्पन्न हैं। रजोगुणी सम्पत्तिसे विहीन हैं, उनका मन तत्त्वज्ञानके समुद्रमें सदा निमग्न रहता है॥ ३४-३५॥

ज्ञानानन्दस्येश्वरस्य ब्राह्मवस्तुषु का स्पृहा।
गृही ददाति स्वसुतां राज्यसम्पत्तिशालिने॥ ३६

ऐसे ज्ञान तथा आनन्दके ईश्वर सदाशिवको रजोगुणी वस्तुओंकी इच्छा किस प्रकार हो सकती है, गृहस्थ अपनी कन्या राजसम्पत्तिशालीको देता है॥ ३६॥

कन्यकां दुःखिने दत्त्वा कन्याघाती भवेत्पिता।
को वेद शंकरो दुःखी कुबेरो यस्य किंकरः॥ ३७

पिता यदि अपनी कन्या किसी दीन-दुखीको देता है, तो वह कन्याघाती होता है अर्थात् उसे कन्याके वधका पाप लगता है। हे हिमालय! कौन कहता है कि शंकर दुखी हैं, कुबेर जिनके दास हैं॥ ३७॥

भ्रूभङ्गलीलया सृष्टिं स्त्रष्टुं हर्तुं क्षमो हि सः।
निर्गुणः परमात्मा च परेशः प्रकृतेः परः॥ ३८

वे शिवजी तो अपनी भंगिमाकी लीलामात्रसे संसारका सृजन और संहार करनेमें समर्थ हैं। वे निर्गुण, परमात्मा, परमेश्वर और प्रकृतिसे [सर्वथा] परे हैं॥ ३८॥

यस्य च त्रिविधा मूर्तिर्विधातुः सृष्टिकर्मणि।
सृष्टिस्थित्यन्तजननी ब्रह्मविष्णुहराभिधा॥ ३९

सृष्टिकार्य करनेके लिये जिनकी तीन मूर्तियाँ ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वररूपसे जगत्की उत्पत्ति, पालन तथा संहार करती हैं॥ ३९॥

ब्रह्मा च ब्रह्मलोकस्थो विष्णुः क्षीरोदवासकृत्।
हरः कैलासनिलयः सर्वाः शिवविभूतयः॥ ४०

ब्रह्मा ब्रह्मलोकमें रहते हैं, विष्णु क्षीरसागरमें वास करते हैं और हर कैलासमें निवास करते हैं, ये सभी शिवजीकी विभूतियाँ हैं॥ ४०॥

धत्ते च त्रिविधा मूर्तीः प्रकृतिः शिवसम्भवा।
अंशेन लीलया सृष्टौ कलया बहुधा अपि॥ ४१

यह सारी प्रकृति शिवजीसे ही उत्पन्न हुई है, जो तीन प्रकारकी होकर इस जगत्‌को धारण करती है। वह प्रकृति इस जगत्‌में अपनी लीलासे अंशावतारों तथा कलावतारोंके रूपोंमें अनेक प्रकारकी प्रतीत होती है॥ ४१॥

मुखोद्भवा स्वयं वाणी वागधिष्ठातृदेवता।
वक्षःस्थलोद्भवा लक्ष्मीः सर्वसम्पत्स्वरूपिणी॥ ४२

उनकी वाणीरूप प्रकृति मुखसे उत्पन्न हुई हैं, जो वाणीकी अधिष्ठात्री देवी हैं। उनकी लक्ष्मीरूप प्रकृति वक्षःस्थलसे आविर्भूत हुई हैं, जो सम्पूर्ण सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री हैं॥ ४२॥

शिवा तेजस्सु देवानामाविर्भावं चकार सा।
निहत्य दानवान्सर्वान्देवेभ्यश्च श्रियं ददौ॥ ४३

उनकी शिवा नामकी प्रकृति देवताओंके तेजसे प्रादुर्भूत हुई हैं, जो सभी दानवोंका वधकर देवताओंके लिये महालक्ष्मी प्रदान करती हैं॥ ४३॥

प्राप कल्पान्तरे जन्म जठरे दक्षयोषितः।
नाम्ना सती हरं प्राप दक्षस्तस्मै ददौ च ताम्॥ ४४

देहं तत्याज योगेन श्रुत्वा सा भर्तृनिन्दनम्।
साद्य त्वत्तस्तु मेनायां जज्ञे जठरतश्शिवा॥ ४५

ये ही शिवा इसके पूर्वकल्पमें दक्षकी पत्नीके उदरसे जन्म लेकर सती नामसे विख्यात हुईं। दक्षने शंकरजीको ही दिया था, किंतु उस जन्ममें पिताके द्वारा शिवजीकी निन्दा सुनकर उन्होंने अपने शरीरको योगके द्वारा त्याग दिया। वही शिवा अब इस समय आपके द्वारा मेनाके गर्भसे उत्पन्न हुई हैं॥ ४४-४५॥

शिवा शिवस्य पत्नीयं शैल जन्मनि जन्मनि।
कल्पे कल्पे बुद्धिरूपा ज्ञानिनां जननी परा॥ ४६

हे शैलराज! इस प्रकार वे शिवा प्रत्येक जन्ममें शिवजीकी पत्नी रही हैं, वे प्रतिकल्पमें बुद्धिस्वरूपा तथा ज्ञानियोंकी माता हैं॥ ४६॥

जायते स्म सदा सिद्धा सिद्धिदा सिद्धिरूपिणी।
सत्या अस्थि चिताभस्म भक्त्या धत्ते हरः स्वयम्॥ ४७

वही सिद्धा, सिद्धिदात्री एवं सिद्धिरूपिणी-रूपसे सदा प्रादुर्भूत होती हैं। शिवजी सतीकी अस्थि तथा उनकी चिताकी भस्म उनके प्रेमके कारण स्वयं धारण करते हैं॥ ४७॥

अतस्त्वं स्वेच्छया कन्यां देहि भद्रां हराय च।
अथवा सा स्वयं कान्तस्थाने यास्यत्यदास्यसि॥ ४८

इसलिये आप अपनी इच्छासे इस कल्याणी कन्याको शंकरके निमित्त प्रदान कीजिये, अन्यथा आप नहीं देंगे तो भी वह स्वयं अपने पतिके पास चली जायगी॥ ४८॥

कृत्वा प्रतिज्ञां देवेशो दृष्ट्वा क्लेशमसंख्यकम्।
दुहितुस्ते तपःस्थानमाजगाम द्विजात्मकः॥ ४९

तामाश्वास्य वरं दत्त्वा जगाम निजमन्दिरम्।
तत्प्रार्थनावशाच्छम्भुर्ययाचे त्वां शिवां गिरे॥ ५०

वे देवेश प्रतिज्ञा करके और यह देखकर कि आपकी कन्याने असंख्य क्लेश प्राप्त किये, तब ब्राह्मणका रूप धारणकर उसके तपःस्थानपर गये थे और उसे आश्वस्त करके वर देकर अपने स्थानपर लौट आये। हे पर्वत! उसके प्रार्थना करनेपर ही वे शिवजी आपसे शिवाको माँग रहे हैं॥ ४९-५०॥

अङ्गीकृतं युवाभ्यां तच्छिवभक्तिरतात्मना।
विपरीतमतिर्जाता वद कस्माद्गिरीश्वर॥ ५१

तद्गत्वा प्रभुणा देवप्रार्थितेन त्वदन्तिकम्।
प्रस्थापिता वयं शीघ्रं ऋषयः साप्यरुन्धती॥ ५२

उस समय आप दोनोंने शिवभक्तिमें निरत रहनेके कारण उन्हें पार्वतीको देना स्वीकार भी कर लिया, किंतु हे गिरीश्वर! अब आप दोनोंकी ऐसी विपरीत बुद्धि क्यों हो गयी, इसे बताइये। जब सदाशिव पार्वतीकी प्रार्थनाहेतु तुम्हारे पास आये थे और तुमने उसे अस्वीकार कर दिया, तब यहाँसे लौटकर उन्होंने हम ऋषियोंको तथा अरुन्धतीको शीघ्र ही भेजा है॥ ५१-५२॥

शिक्षयामो वयं त्वां हि देहि रुद्राय पार्वतीम्।
एवंकृते महानन्दो भविष्यति गिरे तव॥ ५३

इसलिये हमलोग आपको उपदेश देते हैं कि आप इस पार्वतीको शीघ्रतासे रुद्रको प्रदान कीजिये। हे शैल! ऐसा करनेसे आपको महान् आनन्दकी प्राप्ति होगी॥ ५३॥

शिवां शिवाय शैलेन्द्र स्वेच्छया चेन्न दास्यसि।
भविता तद्विवाहोऽत्र भवितव्यबलेन हि॥ ५४

हे शैलेन्द्र! यदि आप इस शिवाको शिवके लिये अपनी इच्छासे नहीं देंगे, तो भी भवितव्यताके बलसे यह विवाह अवश्य ही होगा॥ ५४॥

वरं ददौ शिवायै स तपन्त्यै तात शंकरः।
न हीश्वरप्रतिज्ञातं विपरीताय कल्पते॥ ५५

हे तात! इन शंकरने तप करती हुई इस शिवाको वरदान दिया है, ईश्वरकी प्रतिज्ञा कभी निष्फल नहीं होती॥ ५५॥

अहो प्रतिज्ञा दुर्लङ्घ्या साधूनामीशवर्तिनाम्।
सर्वेषां जगतां मध्ये किमीशस्य पुनर्गिरे॥ ५६

जब ईश्वरके उपासक महात्माओंकी प्रतिज्ञा कभी विफल नहीं होती, तो फिर सारे संसारके अधिपति इन ईश्वरकी प्रतिज्ञाकी बात ही क्या!॥ ५६॥

एको महेन्द्रः शैलानां पक्षांश्चिच्छेद लीलया।
पार्वती लीलया मेरोः शृङ्गभङ्गं चकार च॥ ५७

जब अकेले महेन्द्रने लीलासे ही पर्वतोंके पंख काट डाले और पार्वतीने अकेले ही मेरुका शिखर ढहा दिया, तो उन सर्वेश्वरकी प्रतिज्ञा कैसे निष्फल हो सकती है?॥ ५७॥

एकार्थे नहि शैलेश नश्याः सर्वा हि सम्पदः।
एकं त्यजेत्कुलस्यार्थे श्रुतिरेषा सनातनी॥ ५८

हे शैलेन्द्र! एकके कारण सारी सम्पत्तिका नाश नहीं करना चाहिये, यह सनातनी श्रुति है कि कुलकी रक्षाके लिये एकका त्याग कर देना चाहिये॥ ५८॥

दत्त्वा विप्राय स्वसुतामनरण्यो नृपेश्वरः।
ब्राह्मणाद्भयमापन्नो ररक्ष निजसम्पदम्॥ ५९

[हे शैलेश्वर!] [पूर्व कालमें] अनरण्य नामक राजेश्वरने अपनी कन्या ब्राह्मणको देकर उसके शापके भयसे अपनी सम्पत्तिकी रक्षा की थी॥ ५९॥

तमाशु बोधयामासुर्नीतिशास्त्रविदो जनाः।
ब्रह्मशापाद्विभीतञ्च गुरवो ज्ञातिसत्तमाः॥ ६०

शैलराज त्वमप्येवं सुतां दत्त्वा शिवाय च।
रक्ष सर्वान् बंधुवर्गान् वशं कुरु सुरानपि॥ ६१

ब्राह्मणके शापसे भयभीत हुए उस राजाको नीतिशास्त्रके ज्ञाता गुरुजनोंने एवं श्रेष्ठ बन्धुओंने समझाया था। हे शैलराज! इसी प्रकार आप भी अपनी इस कन्याको शिवके निमित्त देकर समस्त बन्धुवर्गोंकी रक्षा कीजिये तथा देवताओंको अपने वशमें कीजिये॥ ६०-६१॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वसिष्ठस्य वचनं स प्रहस्य च।
पप्रच्छ नृपवार्ताञ्च हृदयेन विदूयता॥ ६२

ब्रह्माजी बोले—वसिष्ठके इस वचनको सुनकर कुछ हँस करके व्यथित हृदयसे उन्होंने राजा अनरण्यका वृत्तान्त पूछा॥ ६२॥

हिमालय उवाच

**कस्य वंशोद्भवो ब्रह्मन् अनरण्यो नृपश्च सः।
सुतां दत्त्वा स च कथं ररक्षाखिलसम्पदः॥ ६३**

हिमालय बोले—हे ब्रह्मन्! वह अनरण्य राजा किसके वंशमें उत्पन्न हुआ था और उसने अपनी कन्याको देकर किस प्रकार सम्पूर्ण सम्पत्तिकी रक्षा की थी?॥ ६३॥

ब्रह्मोवाच

**इति श्रुत्वा वसिष्ठस्तु शैलवाक्यं प्रसन्नधीः।
प्रोवाच गिरये तस्मै नृपवार्त्तां सुखावहाम्॥ ६४**

ब्रह्माजी बोले—हिमालयके इस प्रकारके वचनको सुनकर वसिष्ठजी प्रसन्नचित्त होकर राजा अनरण्यका सुखदायक वृत्तान्त उनसे कहने लगे—॥ ६४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे गिरिसांत्वनो नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें गिरिसान्त्वन नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३३॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

सप्तर्षियोंद्वारा हिमालयको राजा अनरण्यका आख्यान सुनाकर पार्वतीका विवाह शिवसे करनेकी प्रेरणा देना

वसिष्ठ उवाच

**मनोर्वंशोद्भवो राजा सोऽनरण्यो नृपेश्वरः।
इन्द्रसावर्णिसंज्ञस्य चतुर्दशमितस्य हि॥ १**

वसिष्ठजी बोले—[हे गिरिश्रेष्ठ!] इन्द्रसावर्णि नामक चौदहवें मनुके वंशमें वह अनरण्य नामक राजा उत्पन्न हुआ था॥ १॥

**अनरण्यो नृपश्रेष्ठः सप्तद्वीपमहीपतिः।
शम्भुभक्तो विशेषेण मङ्गलारण्यजो बली॥ २**

**भृगुं पुरोधसं कृत्वा शतं यज्ञांश्चकार सः।
न स्वीचकार शक्रत्वं दीयमानं सुरैरपि॥ ३**

वह राजराजेश्वर तथा सातों द्वीपोंका सम्राट् था। वह मंगलारण्यका पुत्र अनरण्य महाबलवान् एवं विशेषरूपसे शिवजीका भक्त था। उसने महर्षि भृगुको अपना पुरोहित बनाकर एक सौ यज्ञ किये और देवताओंके द्वारा इन्द्रपद दिये जानेपर भी उसने उसे स्वीकार नहीं किया॥ २-३॥

**बभूवुः शतपुत्राश्च राज्ञस्तस्य हिमालय।
कन्यैका सुन्दरी नाम्ना पद्मा पद्मालया समा॥ ४**

हे हिमालय! उस राजाके सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे और लक्ष्मीसदृश सुन्दर एक पद्मा नामकी कन्या उत्पन्न हुई॥ ४॥

**यः स्नेहः पुत्रशतके कन्यायाञ्च ततोऽधिकः।
नृपस्य तस्य तस्यां हि बभूव नगसत्तम॥ ५**

हे नगश्रेष्ठ! उस राजाका जो प्रेम अपने सौ पुत्रोंके प्रति था, उससे भी अधिक उस कन्यापर रहा करता था॥ ५॥

**प्राणाधिका प्रियतमा महिष्यः सर्वयोषितः।
नृपस्य पत्न्यः पञ्चासन् सर्वाः सौभाग्यसंयुताः॥ ६**

उस अनरण्य राजाकी सर्वसौभाग्यशालिनी पाँच रानियाँ थीं, जो राजाको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थीं॥ ६॥

**सा कन्या यौवनस्था च बभूव स्वपितुर्गृहे।
पत्रं प्रस्थापयामास सुवरानयनाय सः॥ ७**

जिस समय वह कन्या पिताके घरमें युवावस्थाको प्राप्त हुई, तब राजाने उसके लिये उत्तम वर प्राप्त करनेहेतु [अपने दूतोंसे] पत्र भेजा॥ ७॥

एकदा पिप्पलादर्षिर्गन्तुं स्वाश्रममुत्सुकः।
तपःस्थाने निर्जने च गन्धर्वं स ददर्श ह॥ ८

स्त्रीयुतं मग्नचित्तं च शृङ्गारे रससागरे।
विहरन्तं महाप्रेम्णा कामशास्त्रविशारदम्॥ ९

एक समय ऋषि पिप्पलाद जब अपने आश्रम जानेके लिये तत्पर थे, तभी तपस्याके योग्य एक निर्जन स्थानमें उन्होंने कामकलामें निपुण तथा स्त्रीके साथ शृंगाररसके सागरमें निमग्न हो बड़े प्रेमसे विहार करते हुए एक गन्धर्वको देखा॥ ८-९॥

दृष्ट्वा तं मुनिशार्दूलः सकामः संबभूव सः।
तपःस्वदत्तचित्तश्चाचिंतयद्दारसङ्ग्रहम् ॥ १०

वे मुनिश्रेष्ठ उसे देखकर कामके वशीभूत हो गये और तपसे चित्त हटाकर दारसंग्रहकी चिन्तामें पड़ गये॥ १०॥

एवंवृत्तस्य तस्यैव पिप्पलादस्य सन्मुनेः।
कियत्कालो गतस्तत्र कामोन्मथितचेतसः॥ ११

इस प्रकार कामसे व्याकुलचित्त हुए उन श्रेष्ठ मुनि पिप्पलादका कुछ समय बीत गया॥ ११॥

एकदा पुष्पभद्रायां स्नातुं गच्छन्मुनीश्वरः।
ददर्श पद्मां युवतीं पद्मामिव मनोरमाम्॥ १२

एक समय जब वे मुनिश्रेष्ठ पुष्पभद्रा नदीमें स्नान करनेके लिये जा रहे थे, तब उन्होंने लक्ष्मीके समान मनोरम युवती पद्माको देखा॥ १२॥

केयं कन्येति पप्रच्छ समीपस्थाञ्जनान्मुनिः।
जना निवेदयाञ्चक्रुर्नत्वा शापनियन्त्रिताः॥ १३

उसके बाद मुनिने आस-पासके लोगोंसे पूछा कि यह किसकी कन्या है, तब शापके भयसे व्याकुल उन लोगोंने नमस्कार करके बताया॥ १३॥

जना ऊचुः

अनरण्यसुतेयं वै पद्मा नाम रमापरा।
वरारोहा प्रार्थ्यमाना नृपश्रेष्ठैर्गुणालया॥ १४

लोग बोले—यह [राजा] अनरण्यकी पद्मा नामक कन्या है, जो साक्षात् दूसरी लक्ष्मीके समान है, श्रेष्ठ राजागण गुणोंकी निधिस्वरूपा इस सुन्दरीको पानेकी इच्छा कर रहे हैं॥ १४॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा स मुनिर्वाक्यं जनानां तथ्यवादिनाम्।
चुक्षोभातीव मनसि तल्लिप्सुरभवच्च सः॥ १५

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार वे मुनि उन सत्यवादी मनुष्योंकी बात सुनकर अत्यन्त व्याकुल हो उठे और मनमें उसे प्राप्त करनेकी इच्छा करने लगे॥ १५॥

मुनिः स्नात्वाभीष्टदेवं सम्पूज्य विधिवच्छिवम्।
जगाम कामी भिक्षार्थमनरण्यसभां गिरे॥ १६

हे गिरे! उसके बाद मुनि स्नानकर विधिपूर्वक अपने इष्टदेव शंकरका विधिवत् पूजन करके कामके वशीभूत हो भिक्षाके लिये अनरण्यकी सभामें गये॥ १६॥

राजा शीघ्रं मुनिं दृष्ट्वा प्रणनाम भयाकुलः।
मधुपर्कादिकं दत्त्वा पूजयामास भक्तितः॥ १७

राजाने मुनिको देखते ही भयभीत होकर प्रणाम किया और मधुपर्कादि देकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की॥ १७॥

कामात्सर्वं गृहीत्वा च ययाचे कन्यकां मुनिः।
मौनी बभूव नृपतिः किञ्चिन्निर्वक्तुमक्षमः॥ १८

पूजा-ग्रहण करनेके अनन्तर मुनिने कन्याकी याचना की, तब राजा [इस बातको सुनकर] अवाक् हो गया और कुछ भी कहनेमें समर्थ नहीं हुआ॥ १८॥

मुनिर्ययाचे कन्यां स तां देहीति नृपेश्वर।
अन्यथा भस्मसात्सर्वं करिष्यामि क्षणेन च॥ १९

उन मुनिने कन्याको माँगा और कहा—हे नृपेश्वर! तुम अपनी कन्या हमें दे दो, अन्यथा मैं क्षणभरमें सब कुछ भस्म कर दूँगा॥ १९॥

सर्वे बभूवुराच्छन्ना गणास्तत्तेजसा मुने।
रुदोद राजा सगणो दृष्ट्वा विप्रं जरातुरम्॥ २०

[उस समय] हे मुने! मुनिके तेजसे [राजाके] सब सेवक हक्के-बक्के हो गये और वृद्धावस्थासे जर्जर उस विप्रको देखकर परिकरोंसहित राजा रोने लगे॥ २०॥

महिष्यो रुरुदुस्सर्वा इतिकर्तव्यताक्षमाः।
मूर्च्छामाप महाराज्ञी कन्यामाता शुचाकुला॥ २१

बभूवुस्तनयाः सर्वे शोकाकुलितमानसाः।
सर्वं शोकाकुलं जातं नृपसम्बन्धि शैलप॥ २२

सभी रानियोंको भी कुछ सूझ नहीं रहा था, वे रोने लगीं। कन्याकी माता महारानी शोकसे व्यथित होकर मूर्च्छित हो गयीं, राजाके सभी पुत्र भी शोकसे आकुल-चित्तवाले हो गये। हे शैलपति! इस प्रकार राजाके सभी सगे-सम्बन्धी शोकसे व्याकुल हो गये॥ २१-२२॥

एतस्मिन्नन्तरे प्राज्ञो द्विजो गुरुरनुत्तमः।
पुरोहितश्च मतिमान् आगतो नृपसन्निधिम्॥ २३

इसी समय महापण्डित, बुद्धिमान् तथा सर्वोत्तम गुरु एवं पुरोहित ब्राह्मण—दोनों राजाके समीप आये॥ २३॥

राजा प्रणम्य सम्पूज्य रुदोद च तयोः पुरः।
सर्वं निवेदयाञ्चक्रे पप्रच्छोचितमाशु तत्॥ २४

राजाने प्रणामकर उनका पूजन करके उन दोनोंके आगे रुदन किया और अपना सारा वृत्तान्त निवेदन किया एवं पूछा कि [इस समय] जो उचित हो, उसको जल्दीसे बताइये॥ २४॥

अथ राज्ञो गुरुर्विप्रः पण्डितश्च पुरोहितः।
अपि द्वौ शास्त्रनीतिज्ञौ बोधयामासतुर्नृपम्॥ २५

शोकाकुलांश्च महिषीर्नृपबालांश्च कन्यकाम्।
उत्तमां नीतिमादृत्य सर्वेषां हितकारिणीम्॥ २६

तब राजाके नीतिशास्त्रज्ञ पण्डित गुरु तथा ब्राह्मण पुरोहित दोनोंने राजाको तथा शोकसे व्याकुल रानियों, राजपुत्रों तथा उस कन्याको सभीके हितकारक तथा नीतियुक्त वाक्योंसे आदरपूर्वक समझाया॥ २५-२६॥

गुरुपुरोधसावूचतुः

श्रृणु राजन्महाप्राज्ञ वचो नौ सद्धितावहम्।
मा शुचः सपरीवारः शास्त्रे कुरु मतिं सतीम्॥ २७

गुरु तथा पुरोहित बोले—हे राजन्! हे महाप्राज्ञ! आप हमारी हितकारी बात सुनिये, आप परिवारके सहित शोक मत कीजिये और शास्त्रमें अपनी बुद्धि लगाइये॥ २७॥

अद्य वाब्ददिनान्ते वा दातव्या कन्यका नृप।
पात्राय विप्रायान्यस्मै कस्मैचिद्वा विशेषतः॥ २८

हे राजन्! आज ही अथवा एक वर्षके बाद आपको अपनी कन्या किसी-न-किसी पात्रको देनी ही है, वह पात्र चाहे ब्राह्मण हो अथवा अन्य कोई हो॥ २८॥

सत्पात्रं ब्राह्मणादन्यं न पश्यावो जगत्त्रये।
सुतां दत्त्वा च मुनये रक्ष स्वां सर्वसम्पदम्॥ २९

किंतु हम इस ब्राह्मणसे बढ़कर सुन्दर पात्र इस त्रिलोकीमें अन्यको नहीं देख रहे हैं, अतः आप अपनी कन्या इन मुनिको देकर अपनी सम्पूर्ण सम्पत्तिकी रक्षा कीजिये॥ २९॥

राजन्नेकनिमित्तेन सर्वसंपद्विनश्यति।
सर्वं रक्षति तं त्यक्त्वा विना तं शरणागतम्॥ ३०

हे राजन्! [यदि ऐसा नहीं करेंगे तो] एकके कारण तुम्हारी सारी सम्पत्ति नष्ट हो जायगी। उस एकका त्यागकर सबकी रक्षा करो। शरणागतका त्याग नहीं करना चाहिये, चाहे उसके लिये सब कुछ नष्ट हो जाय॥ ३०॥

वसिष्ठ उवाच

राजा प्राज्ञवचः श्रुत्वा विलप्य च मुहुर्मुहुः।
कन्यां सालंकृतां कृत्वा मुनीन्द्राय ददौ किल॥ ३१

वसिष्ठजी बोले—राजाने उन दोनों बुद्धिमानोंकी बात सुनकर बार-बार विलाप करके उस कन्याको [वस्त्र तथा आभूषणसे] अलंकृतकर मुनीन्द्रको दे दिया॥ ३१॥

कान्तां गृहीत्वा स मुनिर्विवाह्य विधिवद्गिरे।
पद्मां पद्मोपमां तां वै मुदितः स्वालयं ययौ॥ ३२

हे गिरे! इस प्रकार उस कन्यासे विधानपूर्वक विवाहकर महर्षि पिप्पलाद महालक्ष्मीके समान उस पद्माको लेकर प्रसन्नतासे युक्त अपने घर चले गये॥ ३२॥

राजा सर्वान्परित्यज्य दत्त्वा वृद्धाय चात्मजाम्।
ग्लानिं चित्ते समाधाय जगाम तपसे वनम्॥ ३३

इधर, राजा उस वृद्धको अपनी कन्या प्रदान करके सभी लोगोंको छोड़कर मनमें ग्लानि रखकर तपस्याके लिये वनमें चले गये॥ ३३॥

तद्भार्यापि वनं याते प्राणनाथे तदा गिरे।
भर्तुश्च दुहितुः शोकात्प्राणांस्तत्याज सुन्दरी॥ ३४

हे गिरे! अपने प्राणनाथके वन चले जानेपर उनकी भार्याने भी पति तथा कन्याके शोकसे प्राण त्याग दिये॥ ३४॥

पूज्याः पुत्राश्च भृत्याश्च मूर्च्छामापुर्नृपं विना।
शुशुचुः श्वाससंयुक्ता ज्ञात्वा सर्वेऽपरे जनाः॥ ३५

राजाके पूज्य लोग, पुत्र, सेवक राजाके बिना मूर्च्छित हो गये तथा अन्य सभी पुरवासी एवं दूसरे लोग यह सब जानकर उच्छ्वास लेकर शोक करने लगे॥ ३५॥

अनरण्यो वनं गत्वा तपस्तप्त्वाति शंकरम्।
समाराध्य ययौ भक्त्या शिवलोकमनामयम्॥ ३६

नृपस्य कीर्तिमान्नाम्ना ज्येष्ठपुत्रोऽथ धार्मिकः।
पुत्रवत्पालयामास प्रजा राज्यं चकार ह॥ ३७

[राजा] अनरण्य वनमें जाकर कठोर तप करके भक्तिपूर्वक शंकरकी आराधनाकर शाश्वत शिवलोकको चला गया। तदनन्तर राजाका कीर्तिमान् नामक धार्मिक ज्येष्ठ पुत्र राज्य करने लगा और पुत्रके समान प्रजाका पालन करने लगा॥ ३६-३७॥

इति ते कथितं शैलानरण्यचरितं शुभम्।
कन्यां दत्त्वा यथारक्षद्वंशं चाप्यखिलं धनम्॥ ३८

हे शैल! मैंने अनरण्यका यह शुभ चरित्र आपसे कहा, जिस प्रकार अपनी कन्या प्रदानकर उन्होंने अपने वंशकी तथा सम्पूर्ण धनकी रक्षा की॥ ३८॥

शैलराज त्वमप्येवं सुतां दत्त्वा शिवाय च।
रक्ष सर्वकुलं सर्वान् वशान् कुरु सुरानपि॥ ३९

इसी प्रकार हे शैलराज! आप भी अपनी कन्या शंकरजीको देकर अपने समस्त कुलकी रक्षा कीजिये और सभी देवताओंको भी वशमें कीजिये॥ ३९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डेऽनरण्यचरितवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें अनरण्यचरितवर्णन नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३४॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

धर्मराजद्वारा मुनि पिप्पलादकी भार्या सती पद्माके पातिव्रत्यकी परीक्षा, पद्माद्वारा धर्मराजको शाप प्रदान करना तथा पुनः चारों युगोंमें शापकी व्यवस्था करना, पातिव्रत्यसे प्रसन्न हो धर्मराजद्वारा पद्माको अनेक वर प्रदान करना, महर्षि वसिष्ठद्वारा हिमवान्‌से पद्माके दृष्टान्तद्वारा अपनी पुत्री शिवको सौंपनेके लिये कहना

नारद उवाच

अनरण्यस्य चरितं सुतादानसमन्वितम्।
श्रुत्वा गिरिवरस्तात किं चकार च तद्वद॥ १

नारदजी बोले—हे तात! अनरण्यके कन्यादान-सम्बन्धी चरित्रको सुनकर गिरिश्रेष्ठने क्या किया, उसे कहिये॥ १॥

ब्रह्मोवाच

अनरण्यस्य चरितं कन्यादानसमन्वितम्।
श्रुत्वा पप्रच्छ शैलेशो वसिष्ठं साञ्जलिः पुनः॥ २

ब्रह्माजी बोले—हे तात! अनरण्यका कन्यादान-सम्बन्धी चरित्र सुनकर गिरिराजने हाथ जोड़कर वसिष्ठजीसे पुनः पूछा—॥ २॥

शैलेश उवाच

वसिष्ठ मुनिशार्दूल ब्रह्मपुत्र कृपानिधे।
अनरण्यचरित्रं ते कथितं परमाद्भुतम्॥ ३

शैलेश बोले—हे वसिष्ठ! हे मुनिशार्दूल! हे ब्रह्मपुत्र! हे कृपानिधे! आपने अनरण्यका परम अद्भुत चरित्र कहा॥ ३॥

अनरण्यसुता यस्मात् पिप्पलादं मुनिं पतिम्।
सम्प्राप्य किमकार्षीत्सा तच्चरित्रं मुदावहम्॥ ४

तदनन्तर अनरण्यकी कन्याने पिप्पलाद मुनिको पतिरूपमें प्राप्त करनेके अनन्तर क्या किया? वह सुखदायक चरित्र आप कहिये॥ ४॥

वसिष्ठ उवाच

पिप्पलादो मुनिवरो वयसा जर्जरोऽधिकः।
गत्वा निजाश्रमं नार्यानरण्यसुतया तया॥ ५
उवास तत्र सुप्रीत्या तपस्वी नातिलम्पटः।
तत्रारण्ये गिरिवरे स नित्यं निजधर्मकृत्॥ ६

वसिष्ठजी बोले—अवस्थासे जर्जर मुनिश्रेष्ठ पिप्पलाद अनरण्यकी उस कन्याके साथ अपने आश्रममें जाकर बड़े प्रेमसे निवास करने लगे। हे गिरिराज! वे वहाँ वनमें श्रेष्ठ पर्वतपर इन्द्रियोंको वशमें करके तपस्यापरायण हो नित्य अपने धर्मका पालन करने लगे॥ ५-६॥

अथानरण्यकन्या सा सिषेवे भक्तितो मुनिम्।
कर्मणा मनसा वाचा लक्ष्मीर्नारायणं यथा॥ ७

एकदा स्वर्णदीं स्नातुं गच्छन्तीं सुस्मितां च ताम्।
ददर्श पथि धर्मश्च मायया नृपरूपधृक्॥ ८

वह अनरण्यकन्या भी मन, वचन तथा कर्मसे भक्तिपूर्वक मुनिकी सेवा करने लगी, जिस प्रकार लक्ष्मी नारायणकी सेवा करती है। किसी समय जब वह सुस्मित-भाषिणी गंगास्नान करने जा रही थी, तब मायासे मनुष्यरूप धारण किये धर्मराजने उसे रास्तेमें देखा॥ ७-८॥

चारुरत्नरथस्थश्च नानालङ्कारभूषितः।
नवीनयौवनश्श्रीमान्कामदेवसमप्रभः॥ ९

दृष्ट्वा तां सुन्दरीं पद्मामुवाच स वृषो विभुः।
विज्ञातुं भावमन्तःस्थं तस्याश्च मुनियोषितः॥ १०

वे अनेक प्रकारके अलंकारोंसे भूषित, मनोहर रत्नोंसे जटित रथपर विराजमान थे। वे नवयौवनसे सम्पन्न एवं कामदेवके समान अत्यन्त कमनीय थे। प्रभु धर्म उस सुन्दरी पद्माको देखकर उस मुनिपत्नीके अन्तःकरणका भाव जाननेके लिये उससे कहने लगे—॥ ९-१०॥

धर्म उवाच

अयि सुन्दरि लक्ष्मीर्वै राजयोग्ये मनोहरे।
अतीव यौवनस्थे च कामिनि स्थिरयौवने॥ ११

धर्म बोले—हे सुन्दरि! हे राजयोग्ये! हे मनोहरे! हे नवीन यौवनवाली! हे कामिनि! हे नित्य युवावस्थामें रहनेवाली! तुम तो साक्षात् लक्ष्मी हो॥ ११॥

जरातुरस्य वृद्धस्य पिप्पलादस्य वै मुनेः।
सत्यं वदामि तन्वङ्गि समीपे नैव राजसे॥ १२

हे तन्वंगि! मैं सत्य कहता हूँ कि तुम जराग्रस्त पिप्पलाद मुनिके समीप शोभित नहीं हो रही हो॥ १२॥

विप्रं तपस्सु निरतं निर्घृणं मरणोन्मुखम्।
त्यक्त्वा मां पश्य राजेन्द्रं रतिशूरं स्मरातुरम्॥ १३

तुम तपस्यामें लगे हुए, क्रोधी तथा मरणोन्मुख ब्राह्मणको त्यागकर मुझ राजेन्द्र, कामकलामें निपुण एवं कामातुरकी ओर देखो॥ १३॥

प्राप्नोति सुन्दरी पुण्यात्सौन्दर्यं पूर्वजन्मनः।
सफलं तद्भवेत्सर्वं रसिकालिङ्गनेन च॥ १४

सुन्दरी स्त्री अपने पूर्वजन्ममें किये गये पुण्यके प्रभावसे ही सौन्दर्यको प्राप्त करती है। किंतु वह सब किसी रसिकके आलिंगनसे ही सफल होता है॥ १४॥

सहस्रसुन्दरीकान्तं कामशास्त्रविशारदम्।
किंकरं कुरु मां कान्ते सम्परित्यज्य तं पतिम्॥ १५

निर्जने कानने रम्ये शैले शैले नदीतटे।
विहरस्व मया सार्धं जन्मेदं सफलं कुरु॥ १६

वसिष्ठ उवाच

इत्येवमुक्तवन्तं सा स्वरथादवरुह्य च।
गृहीतुमुत्सुकं हस्ते तमुवाच पतिव्रता॥ १७

पद्मोवाच

गच्छ दूरं गच्छ दूरं पापिष्ठस्त्वं नराधिप।
मां चेत्पश्यसि कामेन सद्यो नष्टो भविष्यसि॥ १८

पिप्पलादं मुनिश्रेष्ठं तपसा पूतविग्रहम्।
त्यक्त्वा कथं भजेयं त्वां स्त्रीजितं रतिलम्पटम्॥ १९

स्त्रीजितस्पर्शमात्रेण सर्वं पुण्यं प्रणश्यति।
स्त्रीजितः परपापी च तद्दर्शनमघावहम्॥ २०

सत्क्रियो ह्यशुचिर्नित्यं स पुमान् यः स्त्रिया जितः।
निन्दन्ति पितरो देवा मानवाः सकलाश्च तम्॥ २१

तस्य किं ज्ञानसुतपोजपहोमप्रपूजनैः।
विद्यया दानतः किं वा स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम्॥ २२

मातरं मां स्त्रियो भावं कृत्वा येन ब्रवीषि ह।
भविष्यति क्षयस्तेन कालेन मम शापतः॥ २३

वसिष्ठ उवाच

श्रुत्वा धर्मः सतीशापं नृपमूर्तिं विहाय च।
धृत्वा स्वमूर्तिं देवेशः कम्पमान उवाच सः॥ २४

धर्म उवाच

मातर्जानीहि मां धर्मं ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुम्।
परस्त्रीमातृबुद्धिं च कुर्वन्तं सततं सति॥ २५

अहं तवान्तरं ज्ञातुमागतस्तव सन्निधिम्।
तवाहं च मनो जाने तथापि विधिनोदितः॥ २६

कृतं मे दमनं साध्वि न विरुद्धं यथोचितम्।
शास्तिः समुत्पथस्थानामीश्वरेण विनिर्मिता॥ २७

हे कान्ते! तुम इस जरा-जर्जर पतिको छोड़कर हजारों स्त्रियोंके कान्त तथा कामशास्त्रके विशारद मुझे अपना किंकर बनाओ और निर्जन मनोहर वनमें, पर्वतपर तथा नदीके तटपर मेरे साथ विहार करो तथा इस जन्मको सफल करो॥ १५-१६॥

वसिष्ठजी बोले—इस प्रकार कहकर वे ज्यों ही रथसे उतरकर उसका हाथ पकड़ना ही चाहते थे कि वह पतिव्रता कहने लगी—॥ १७॥

पद्मा बोली—हे राजन्! तुम तो बड़े पापी हो, दूर हट जाओ, दूर हट जाओ, यदि तुमने मुझे और सकाम भावसे देखा, तो शीघ्र ही नष्ट हो जाओगे॥ १८॥

मैं तपस्यासे पवित्र शरीरवाले उन मुनिश्रेष्ठ पिप्पलादको छोड़कर परस्त्रीगामी एवं स्त्रीके वशमें रहनेवाले तुमको कैसे स्वीकार कर सकती हूँ?॥ १९॥

स्त्रीके वशमें रहनेवालेके स्पर्शमात्रसे सारा पुण्य नष्ट हो जाता है। जो स्त्रीजित् तथा दूसरेकी हत्या करनेवाला पापी है, उसका दर्शन भी पाप उत्पन्न करनेवाला होता है। जो पुरुष स्त्रीके वशमें रहनेवाला है, वह सत्कर्ममें लगे रहनेपर भी सदा अपवित्र है। पितर, देवता तथा सभी मनुष्य उसकी निन्दा करते हैं॥ २०-२१॥

जिसका मन स्त्रियोंके द्वारा हर लिया गया है, उसके ज्ञान, उत्तम तप, जप, होम, पूजन, विद्या तथा दानसे क्या लाभ है! तुमने माताके समान मुझमें स्त्रीकी भावनासे जो इस प्रकारकी बात कही है, इसलिये समय आनेपर मेरे शापसे तुम्हारा नाश हो जायगा॥ २२-२३॥

वसिष्ठजी बोले—सतीके शापको सुनकर वे देवेश धर्मराज राजाका रूप त्यागकर अपना स्वरूप धारणकर काँपते हुए कहने लगे—॥ २४॥

धर्म बोले—हे मातः! हे सति! आप मुझे ज्ञानियोंके गुरुओंका भी गुरु तथा परायी स्त्रीमें सर्वदा मातृबुद्धि रखनेवाला समझें॥ २५॥

मैं आपके मनोभावकी परीक्षा लेनेके लिये आपके पास आया था और आपका अभिप्राय जान लिया, किंतु हे साध्वि! विधिसे प्रेरित होकर आपने [शाप देकर] मेरा गर्व नष्ट किया। यह तो आपने उचित ही किया, कोई विरुद्ध कार्य नहीं किया। इस प्रकारका शासन उन्मार्गगामियोंके लिये ईश्वरद्वारा निर्मित है॥ २६-२७॥

स्वयं प्रदाता सर्वेभ्यः सुखदुःखवरान्क्षमः।
सम्पदं विपदं यो हि नमस्तस्मै शिवाय हि॥ २८
शत्रुं मित्रं संविधातुं प्रीतिं च कलहं क्षमः।
स्त्रष्टुं नष्टुं च यस्सृष्टिं नमस्तस्मै शिवाय हि॥ २९

जो स्वयं सबको महान् सुख-दुःख देनेवाले हैं और सम्पत्ति तथा विपत्ति देनेमें समर्थ हैं, उन शिवके प्रति नमस्कार है। जो शत्रु, मित्र, प्रीति तथा कलहका विधान करनेमें और सृष्टिका सृजन एवं संहार करनेमें समर्थ हैं, उन शिवको नमस्कार है॥ २८-२९॥

येन शुक्लीकृतं क्षीरं जले शैत्यं कृतं पुरा।
दाहीकृतो हुताशश्च नमस्तस्मै शिवाय हि॥ ३०
प्रकृतिर्निर्मिता येन तत्त्वानि महदादितः।
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या नमस्तस्मै शिवाय हि॥ ३१

जिन्होंने पूर्वकालमें दूधको शुक्लवर्णका बनाया, जलमें शैत्य उत्पन्न किया और अग्निको दाहकताशक्ति प्रदान की, उन शिवको नमस्कार है। जिन्होंने प्रकृतिका, महत् आदि तत्त्वोंका एवं ब्रह्मा, विष्णु-महेश आदिका निर्माण किया है, उन शिवको नमस्कार है॥ ३०-३१॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा पुरतस्तस्यास्तस्थौ धर्मो जगद्गुरुः।
किञ्चिन्नोवाच चकितस्तत्पातिव्रत्यतोषितः॥ ३२
पद्मापि नृपकन्या सा पिप्पलादप्रिया तदा।
साध्वी तं धर्ममाज्ञाय विस्मितोवाच पर्वत॥ ३३

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर जगद्गुरु धर्मराज उस पतिव्रताके आगे खड़े हो गये। वे उसके पातिव्रत्यसे सन्तुष्ट होकर आश्चर्यसे चकित रह गये और कुछ भी नहीं बोल सके। हे पर्वत! तब अनरण्यकी कन्या तथा पिप्पलादकी पत्नी वह साध्वी पद्मा उन्हें धर्मराज जानकर चकित होकर कहने लगी—॥ ३२-३३॥

पद्मोवाच

त्वमेव धर्म सर्वेषां साक्षी निखिलकर्मणाम्।
कथं मनो मे विज्ञातुं विडम्बयसि मां विभो॥ ३४

पद्मा बोली—हे धर्म! आप ही सबके समस्त कर्मोंके साक्षी हैं, हे विभो! आपने मेरे मनका भाव जाननेके लिये कपटरूप क्यों धारण किया?॥ ३४॥

यत्तत्सर्वं कृतं ब्रह्मन् नापराधो बभूव मे।
त्वं च शप्तो मयाज्ञानात्स्त्रीस्वभावाद् वृथा वृष॥ ३५

हे ब्रह्मन्! यह जो कुछ मैंने किया, उसमें मेरा अपराध नहीं है। हे धर्म! मैंने अज्ञानसे स्त्रीस्वभावके कारण आपको व्यर्थ ही शाप दे दिया॥ ३५॥

का व्यवस्था भवेत्तस्य चिन्तयामीति साम्प्रतम्।
चित्ते स्फुरतु सा बुद्धिर्यया शं संल्लभामि वै॥ ३६

मैं इस समय यही सोच रही हूँ कि उस शापकी क्या व्यवस्था होनी चाहिये, मेरे चित्तमें अब वह बुद्धि स्फुरित हो, जिससे मैं शान्ति प्राप्त करूँ॥ ३६॥

आकाशोऽसौ दिशः सर्वा यदि नश्यन्तु वायवः।
तथापि साध्वीशापस्तु न नश्यति कदाचन॥ ३७

यह आकाश, सभी दिशाएँ तथा वायु भले ही नष्ट हो जायँ, किंतु पतिव्रताका शाप कभी नष्ट नहीं होता॥ ३७॥

सत्ये पूर्णश्चतुष्पादः पौर्णमास्यां यथा शशी।
विराजसे देवराज सर्वकालं दिवानिशम्॥ ३८
त्वं च नष्टो भवसि चेत्सृष्टिनाशो भवेत्तदा।
इतिकर्तव्यतामूढा वृथापि च वदाम्यहम्॥ ३९

हे देवराज! आप सत्ययुगमें अपने चारों पैरोंसे सभी समय पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान दिन-रात शोभित रहते हैं। यदि आप नष्ट हो जायँगे, तब तो सृष्टिका ही नाश हो जायगा। किंकर्तव्यविमूढ़ होकर मैंने यह झूठा शाप दे दिया है॥ ३८-३९॥

पादक्षयश्च भविता त्रेतायां च सुरोत्तम।
पादोऽपरे द्वापरे च तृतीयोऽपि कलौ विभो॥ ४०
कलिशेषेऽखिलाश्छिन्ना भविष्यन्ति तवाङ्घ्रयः।
पुनः सत्ये समायाते परिपूर्णो भविष्यसि॥ ४१

हे सुरोत्तम! हे विभो! [अब आप मेरे शापकी व्यवस्था सुनिये।] त्रेतायुगमें आपका एक पाद, द्वापरमें दो पाद और कलियुगमें तीन पाद नष्ट होगा और कलिके अन्तमें आपके सभी पाद नष्ट हो जायँगे। तदनन्तर सत्ययुग आनेपर आपः पुनः पूर्ण हो जायँगे॥ ४०-४१॥

सत्ये सर्वव्यापकस्त्वं तदन्येषु च कुत्रचित्।
युगव्यवस्थया स त्वं भविष्यसि यथा तथा॥ ४२

इत्येवं वचनं सत्यं ममास्तु सुखदं तव।
याम्यहं पतिसेवायै गच्छ त्वं स्वगृहं विभो॥ ४३

सत्ययुगमें आप सर्वव्यापक रहेंगे और अन्य युगोंमें युग-व्यवस्थानुसार आप कहीं-कहीं जैसे-तैसे घटते-बढ़ते रहेंगे। मेरा यह सत्य वचन आपके लिये सुखदायक हो। हे विभो! अब मैं अपने पतिकी सेवाके लिये जा रही हूँ और आप अपने घर जायँ॥ ४२-४३॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्याः सन्तुष्टोऽभूद् वृषः स वै।
तदेवंवादिनीं साध्वीमुवाच विधिनन्दन॥ ४४

ब्रह्माजी बोले—हे ब्रह्मपुत्र नारद! पद्माके इस वचनको सुनकर धर्मराज प्रसन्न हो गये और इस प्रकार कहनेवाली उस साध्वीसे कहने लगे—॥ ४४॥

धर्म उवाच

धन्यासि पतिभक्तासि स्वस्ति तेऽस्तु पतिव्रते।
वरं गृहाण त्वत्स्वामी त्वत्परित्राणकारणात्॥ ४५
युवा भवतु ते भर्ता रतिशूरश्च धार्मिकः।
रूपवान् गुणवान्वाग्मी संततस्थिरयौवनः॥ ४६

धर्म बोले—हे पतिव्रते! तुम धन्य हो, तुम पतिभक्त हो, तुम्हारा कल्याण हो। तुम वर स्वीकार करो। तुम्हारा स्वामी तुम्हारी रक्षा करनेके कारण युवा हो जाय। तुम्हारा पति रतिमें शूर, धार्मिक, रूपवान्, गुणवान्, वक्ता और सदा स्थिर यौवनवाला हो॥ ४५-४६॥

चिरञ्जीवी स भवतु मार्कण्डेयात्परश्शुभे।
कुबेराद्धनवांश्चैव शक्रादैश्वर्यवानपि॥ ४७

शिवभक्तो हरिसमस्सिद्धस्तु कपिलात्परः।
बुद्ध्या बृहस्पतिसमः समत्वेन विधेः समः॥ ४८

हे शुभे! वह मार्कण्डेयसे भी बढ़कर चिरंजीवी हो, कुबेरसे भी अधिक धनवान् तथा इन्द्रसे भी अधिक ऐश्वर्यशाली रहे। वह विष्णुके समान शिवभक्त, कपिलके समान सिद्ध, बुद्धिमें बृहस्पतिके समान तथा समदर्शितामें ब्रह्मदेवके समान हो॥ ४७-४८॥

स्वामिसौभाग्यसंयुक्ता भव त्वं जीवनावधि।
तथा च सुभगे देवि त्वं भव स्थिरयौवना॥ ४९

तुम जीवनपर्यन्त स्वामीके सौभाग्यसे संयुक्त रहो और हे सुभगे! हे देवि! तुम्हारा भी यौवन स्थिर रहे॥ ४९॥

माता त्वं दशपुत्राणां गुणिनां चिरजीविनाम्।
स्वभर्तुरधिकानां च भविष्यसि न संशयः॥ ५०

तुम अपने पतिसे भी अधिक चिरंजीवी एवं गुणवान् दस पुत्रोंकी माता होओगी, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५०॥

गृहा भवन्तु ते साध्वि सर्वसम्पत्समन्विताः।
प्रकाशवन्तः सततं कुबेरभवनाधिकाः॥ ५१

हे साध्वि! तुम्हारे घर नाना प्रकारकी सम्पत्तिसे पूर्ण, निरन्तर प्रकाशयुक्त तथा कुबेरके भवनसे भी श्रेष्ठ हों॥ ५१॥

वसिष्ठ उवाच

इत्येवमुक्त्वा सन्तस्थौ धर्मः स गिरिसत्तम।
सा तं प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य स्वगृहं ययौ॥ ५२

वसिष्ठ बोले—हे गिरिश्रेष्ठ! इस प्रकार कहकर धर्मराज चुप होकर खड़े हो गये और वह भी उनकी प्रदक्षिणाकर उन्हें प्रणाम करके अपने घर चली गयी॥ ५२॥

धर्मस्तथाशिषो दत्त्वा जगाम निजमन्दिरम्।
प्रशशंस च तां प्रीत्या पद्मां संसदि संसदि॥ ५३

सा रेमे स्वामिना सार्धं यूना रहसि सन्ततम्।
पश्चाद् बभूवुः सत्पुत्रास्तद्भर्तुरधिका गुणैः॥ ५४

धर्मराज भी [पद्माको] आशीर्वाद देकर अपने घर चले गये और वे प्रत्येक सभामें प्रसन्न मनसे पद्माकी प्रशंसा करने लगे। तदनन्तर वह [पद्मा] अपने युवा स्वामीके साथ नित्य एकान्तमें रमण करने लगी। बादमें उसके पतिसे भी अधिक गुणवान् उत्तम पुत्र उत्पन्न हुए॥ ५३-५४॥

बभूव सकला सम्पद्दम्पत्योः सुखवर्धिनी।
सर्वानन्दवृद्धिकरी परत्रेह च शर्मणे॥ ५५

स्त्री एवं पुरुषोंको सुख देनेवाली सारी सम्पत्ति उनके पास हो गयी, जो सब प्रकारके आनन्दको बढ़ानेवाली और इस लोक तथा परलोकमें कल्याणकारिणी हुई॥ ५५॥

शैलेन्द्र कथितं सर्वमितिहासं पुरातनम्।
दम्पत्योश्च तयोः प्रीत्या श्रुतं ते परमादरात्॥ ५६

हे शैलेन्द्र! उन दोनों स्त्री-पुरुषोंका यह सारा पुरातन इतिहास मैंने आपसे वर्णन किया और आपने इसे अत्यन्त आदरपूर्वक सुना॥ ५६॥

बुद्ध्वा तत्त्वं सुतां देहि पार्वतीमीश्वराय च।
कुरुषं त्यज शैलेन्द्र मेनया स्वस्त्रिया सह॥ ५७

अतः आप इस चरित्रको जानकर अपनी कन्या पार्वतीको शिवजीको प्रदान कीजिये और हे शैलेन्द्र! अपनी स्त्री मेनाके सहित अपना हठ छोड़ दीजिये॥ ५७॥

सप्ताहे समतीते तु दुर्लभेऽतिशुभे क्षणे।
लग्नाधिपे च लग्नस्थे चन्द्रे स्वतनयान्विते॥ ५८

मुदिते रोहिणीयुक्ते विशुद्धे चन्द्रतारके।
मार्गमासे चन्द्रवारे सर्वदोषविवर्जिते॥ ५९

सर्वसद्ग्रहसंसृष्टेऽसद्ग्रहदृष्टिवर्जिते।
सदपत्यप्रदे जीवे पतिसौभाग्यदायिनि॥ ६०

एक सप्ताह बीतनेपर एक दुर्लभ उत्तम शुभयोग आ रहा है। उस लग्नमें लग्नका स्वामी स्वयं अपने घरमें स्थित है और चन्द्रमा भी अपने पुत्र बुधके साथ स्थित रहेगा। चन्द्रमा रोहिणीयुक्त होगा, इसलिये चन्द्र तथा तारागणोंका योग भी उत्तम है। मार्गशीर्षका महीना है, उसमें भी सर्वदोषविवर्जित चन्द्रवारका दिन है, वह लग्न सभी उत्तम ग्रहोंसे युक्त तथा नीच ग्रहोंकी दृष्टिसे रहित है। उस शुभ लग्नमें बृहस्पति उत्तम सन्तान तथा पतिका सौभाग्य प्रदान करनेवाले हैं॥ ५८—६०॥

जगदम्बां जगत्पित्रे मूलप्रकृतिमीश्वरीम्।
कन्यां प्रदाय गिरिजां कृती त्वं भव पर्वत॥ ६१

हे पर्वत! [ऐसे शुभ लग्नमें] अपनी कन्या मूल प्रकृतिरूपा ईश्वरी जगदम्बाको जगत्पिता शिवजीके लिये प्रदान करके आप कृतार्थ हो जायँगे॥ ६१॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलो वसिष्ठो ज्ञानिसत्तमः।
विरराम शिवं स्मृत्वा नानालीलाकरं प्रभुम्॥ ६२

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] यह कहकर ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ मुनिशार्दूल वसिष्ठजी अनेक लीला करनेवाले प्रभु शिवका स्मरण करके चुप हो गये॥ ६२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे पद्मापिप्पलादचरितवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें पद्मापिप्पलादचरितवर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३५॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

सप्तर्षियोंके समझानेपर हिमवान्‌का शिवके साथ अपनी पुत्रीके विवाहका निश्चय करना, सप्तर्षियोंद्वारा शिवके पास जाकर उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त बताकर अपने धामको जाना

ब्रह्मोवाच

वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा सगणोऽपि हिमालयः।
विस्मितो भार्यया शैलानुवाच स गिरीश्वरः॥ १

ब्रह्माजी बोले—वसिष्ठजीकी बात सुनकर अपने गणों एवं भार्यासहित विस्मित होकर गिरिराज हिमालय पर्वतोंसे कहने लगे—॥ १॥

हिमालय उवाच

हे मेरो गिरिराट् सह्य गन्धमादन मन्दर।
मैनाक विन्ध्य शैलेन्द्राः सर्वे शृणुत मद्वचः॥ २

वसिष्ठो हि वदत्येवं किं मे कार्यं विचार्यते।
यथा तथा च शंसध्वं निर्णीय मनसाखिलम्॥ ३

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य सुमेरुप्रमुखाश्च ते।
प्रोचुर्हिमालयं प्रीत्या सुनिर्णीय महीधराः॥ ४

शैला ऊचुः

अधुना किं विमर्शेन कृतं कार्यं तथैव हि।
उत्पन्नेयं महाभाग देवकार्यार्थमेव हि॥ ५

प्रदातव्या शिवायेति शिवस्यार्थेऽवतारिणी।
अनयाराधितो रुद्रो रुद्रेण यदि भाषिता॥ ६

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां मेर्वादीनां हिमाचलः।
सुप्रसन्नतरोऽभूद् वै जहास गिरिजा हृदि॥ ७

अरुन्धती च तां मेनां बोधयामास कारणात्।
नानावाक्यसमूहेनेतिहासैर्विविधैरपि॥ ८

अथ सा मेनका शैलपत्नी बुद्ध्वा प्रसन्नधीः।
मुनीनरुन्धतीं शैलं भोजयित्वा बुभोज च॥ ९

अथ शैलवरो ज्ञानी सुसंसेव्य मुनींश्च तान्।
उवाच साञ्जलिः प्रीत्या प्रसन्नात्मा गतभ्रमः॥ १०

हिमाचल उवाच

सप्तर्षयो महाभागा वचः शृणुत मामकम्।
विस्मयो मे गतः सर्वः शिवयोश्चरितं श्रुतम्॥ ११

मदीयं च शरीरं वै पत्नी मेना सुता सुताः।
ऋद्धिः सिद्धिश्च चान्यद्वै शिवस्यैव न चान्यथा॥ १२

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा स तदा पुत्रीं दृष्ट्वा तत्सादरं च ताम्।
भूषयित्वा तदङ्गानि ऋष्युत्सङ्गे न्यवेशयत्॥ १३

हिमालय बोले—हे गिरिराज मेरो! हे सह्य! हे गन्धमादन! हे मन्दर! हे मैनाक! हे विन्ध्य! हे पर्वतेश्वरो! आप सब लोग मेरी बात सुनें। वसिष्ठजी ऐसा कह रहे हैं। अब मुझको क्या करना चाहिये। इस सम्बन्धमें आपलोग विचार करें और मनसे सब बातोंका निर्णय करके जैसा ठीक हो, वैसा बताइये॥ २-३॥

ब्रह्माजी बोले—उनकी बात सुनकर सुमेरु आदि वे पर्वत भलीभाँति निर्णय करके प्रेमपूर्वक हिमालयसे कहने लगे—॥ ४॥

पर्वत बोले—इस समय बहुत विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है, कार्य तो हो ही गया है। हे महाभाग! यह [कन्या] देवताओंके कार्यके लिये ही उत्पन्न हुई है। इसका अवतार ही जब शिवके लिये हुआ है, तो इसे शिवजीको ही देना चाहिये। इसने रुद्रकी आराधना की है और रुद्रने इसे स्वीकृति भी दी है॥ ५-६॥

ब्रह्माजी बोले—मेरु आदि पर्वतोंकी यह बात सुनकर हिमालयको बड़ी प्रसन्नता हुई और गिरिजा भी मन-ही-मन हँसने लगीं। अरुन्धतीने [शिव-पार्वतीके विवाहके लिये] अनेक प्रकारके वचनों तथा विविध इतिहासोंसे उन मेनाको समझाया॥ ७-८॥

तब शैलपत्नी मेना सब कुछ समझ गयीं और प्रसन्नचित्त हो गयीं। उन्होंने मुनियों, अरुन्धती तथा हिमालयको भोजन कराकर स्वयं भोजन किया॥ ९॥

तदनन्तर ज्ञानी गिरिश्रेष्ठ उन मुनियोंकी सेवा करके प्रसन्नचित्त और भ्रमरहित होकर हाथ जोड़कर प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे—॥ १०॥

हिमालय बोले—हे महाभाग्यवान् सप्तर्षिगण! आपलोग मेरी बात सुनिये, मैंने शिवा और शिवजीका सारा चरित्र सुन लिया, जिससे मेरा सारा सन्देह दूर हो गया है। मेरा यह शरीर, पत्नी मेना, पुत्री, पुत्र, ऋद्धि, सिद्धि तथा अन्य जो कुछ भी मेरे पास है, वह सब शिवका ही है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ११-१२॥

ब्रह्माजी बोले—उन्होंने इस प्रकार कहकर उस पुत्रीकी ओर आदरपूर्वक देखकर उसके अंगोंको [अलंकारोंसे] सुसज्जितकर उसे ऋषियोंकी गोदमें

उवाच च पुनः प्रीत्या शैलराज ऋषींस्तदा।
अयं भागो मया तस्मै दातव्य इति निश्चितम्॥ १४

बैठा दिया। तदनन्तर शैलराजने पुनः प्रेमसे ऋषियोंसे कहा—मुझे शंकरका यह भाग उन्हें अवश्य देना है, ऐसा मैंने निश्चय किया है॥ १३-१४॥

ऋषय ऊचुः

शंकरो भिक्षुकस्तेऽथ स्वयं दाता भवान् गिरे।
भैक्ष्यञ्च पार्वती देवी किमतः परमुत्तमम्॥ १५

हिमवन् शिखराणान्ते यद्धेतोः सदृशी गतिः।
धन्यस्त्वं सर्वशैलानामधिपः सर्वतो वरः॥ १६

ऋषि बोले—हे गिरे! भगवान् शंकर ग्रहीता होनेके कारण भिक्षुक हैं, आप कन्यादान देनेके कारण दाता हैं और देवी पार्वती भिक्षा हैं, अब इससे उत्तम और क्या बात हो सकती है। हे हिमालय! जिस प्रकार सभी शिखरोंसे ऊँचे होनेके कारण आपके शिखरोंकी श्रेष्ठता है, उसी प्रकार आप भी सम्पूर्ण पर्वतोंके अधिपति होनेके कारण सबसे उत्तम हैं तथा धन्य हैं॥ १५-१६॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु कन्यायै मुनयो विमलाशयाः।
आशिषं दत्तवन्तस्ते शिवाय सुखदा भव॥ १७
स्पृष्ट्वा करेण तां तत्र कल्याणं ते भविष्यति।
शुक्लपक्षे यथा चन्द्रो वर्धन्तां त्वद्गुणास्तथा॥ १८

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर निर्मल मनवाले मुनियोंने हाथसे स्पर्श करके कन्याको आशीर्वाद दिया कि शिवको सुख देनेवाली बनो, तुम्हारा कल्याण हो। जिस प्रकार शुक्लपक्षका चन्द्रमा बढ़ता है, उसी प्रकार तुम्हारे गुणोंकी वृद्धि हो॥ १७-१८॥

इत्युक्त्वा मुनयः सर्वे दत्त्वा ते गिरये मुदा।
पुष्पाणि फलयुक्तानि प्रत्ययं चक्रिरे तदा॥ १९

इस प्रकार कहकर उन सभी मुनियोंने प्रसन्नतापूर्वक हिमालयको [आशीर्वाद रूपमें] फूल तथा फल अर्पित करके विश्वास उत्पन्न कराया॥ १९॥

अरुन्धती तदा तत्र मेनां सा सुमुखी मुदा।
गुणैश्च लोभयामास शिवस्य परमा सती॥ २०

परम पतिव्रता सुमुखी अरुन्धतीने शिवजीके गुणोंसे मेनाको प्रलोभित किया॥ २०॥

हरिद्राकुंकुमैः शैलश्मश्रूणि प्रत्यमार्जयत्।
लौकिकाचारमाधाय मङ्गलायनमुत्तमम्॥ २१

तदनन्तर हिमालयने दाढ़ीमें हरिद्रा तथा कुंकुमसे मार्जन किया और लौकिकाचारपूर्वक सारा मंगल किया॥ २१॥

ततश्च ते चतुर्थेऽह्नि संधार्य लग्नमुत्तमम्।
परस्परं च सन्तुष्य संजग्मुः शिवसन्निधिम्॥ २२

तदनन्तर चौथे दिन शुभ लग्नका निश्चयकर परस्पर सन्तुष्ट हो वे [मुनिगण] शिवजीके पास गये॥ २२॥

तत्र गत्वा शिवं नत्वा स्तुत्वा विविधसूक्तिभिः।
ऊचुः सर्वे वसिष्ठाद्या मुनयः परमेश्वरम्॥ २३

वहाँ जाकर शिवजीको प्रणामकर अनेक सूक्तोंसे उनकी स्तुतिकर वे वसिष्ठ आदि सभी मुनि कहने लगे॥ २३॥

ऋषय ऊचुः

देवदेव महादेव परमेश महाप्रभो।
शृण्वस्मद्वचनं प्रीत्या यत्कृतं सेवकैस्तव॥ २४

ऋषि बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे परमेश्वर! हे महाप्रभो! आपके सेवक हम लोगोंने जो किया है, उस बातको प्रेमसे सुनिये॥ २४॥

बोधितो गिरिराजश्च मेना विविधसूक्तिभिः।
सेतिहासं महेशान प्रबुद्धोऽसौ न संशयः॥ २५

वाक्यदत्ता गिरीन्द्रेण पार्वती ते हि नान्यथा।

हे महेशान! हमलोगोंने इतिहासपूर्वक अनेक प्रकारके उत्तम वचनोंसे पर्वतराज [हिमालय] तथा मेनाको बहुत समझाया, जिससे वे समझ गये, अब उन्हें सन्देह नहीं रहा। गिरीन्द्रने वाग्दान देकर प्रतिज्ञा

उद्वाहाय प्रगच्छ त्वं गणैर्देवैश्च संयुतः॥ २६

की है कि यह पार्वती आपकी है। अब आप अपने गणों तथा देवताओंको लेकर विवाहके लिये चलिये॥ २५-२६॥

गच्छ शीघ्रं महादेव हिमाचलगृहं प्रभो।
विवाहय यथा रीतिः पार्वतीमात्मजन्मने॥ २७

हे महादेव! हे प्रभो! आप शीघ्र ही विवाहके लिये हिमालयके घर चलिये तथा सन्तान-उत्पादनके लिये रीतिके अनुसार पार्वतीसे विवाह कीजिये॥ २७॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां लौकिकाचारतत्परः।
प्रहृष्टात्मा महेशानः प्रहस्येदमुवाच सः॥ २८

ब्रह्माजी बोले—उनकी यह बात सुनकर शिवजी प्रसन्नचित्त हो गये और लौकिकाचारमें तत्पर होकर हँसते हुए इस प्रकार कहने लगे—॥ २८॥

महेश उवाच

विवाहो हि महाभागा न दृष्टो न श्रुतो मया।
यथा पुरा भवद्भिस्तद्विधिः प्रोच्यो विशेषतः॥ २९

महेश बोले—हे महाभाग! मैंने तो विवाह न देखा है और न सुना है, आपलोग ही जैसी विधि देखे-सुने हैं, उसे बताइये॥ २९॥

ब्रह्मोवाच

तदाकर्ण्य महेशस्य लौकिकं वचनं शुभम्।
प्रत्यूचुः प्रहसन्तस्ते देवदेवं सदाशिवम्॥ ३०

ब्रह्माजी बोले—शिवजीके लौकिक शुभ वचनको सुनकर वे देवाधिदेव सदाशिवसे हँसते हुए कहने लगे—॥ ३०॥

ऋषय ऊचुः

विष्णुमाहूय वै शीघ्रं ससमाजं विशेषतः।
ब्रह्माणं ससुतं प्रीत्या तथा देवं शतक्रतुम्॥ ३१
तथा ऋषिगणान्सर्वान् यक्षगन्धर्वकिन्नरान्।
सिद्धान् विद्याधरांश्चैव तथा चैवाप्सरोगणान्॥ ३२
एतांश्चान्यान्प्रभो सर्वानानयस्वेह सादरम्।
सर्वे संसाधयिष्यन्ति त्वत्कार्यं ते न संशयः॥ ३३

ऋषि बोले—हे प्रभो! आप समाजसहित विष्णुको विशेष रूपसे शीघ्र बुलाकर पुत्रसहित ब्रह्माजी, इन्द्रदेव, सभी ऋषि, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, विद्याधर, अप्सरा—इन सबको तथा अन्य लोगोंको आदरपूर्वक यहाँ बुलाइये। वे सब आपका कार्य सिद्ध करेंगे, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३१—३३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा सप्त ऋषयस्तदाज्ञां प्राप्य ते मुदा।
स्वधाम प्रययुः सर्वे शंसन्तः शाङ्करीं गतिम्॥ ३४

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर उनकी आज्ञा लेकर वे सभी सप्तर्षि शिवजीकी महिमाका वर्णन करते हुए प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानको चले गये॥ ३४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे सप्तर्षिवचनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें सप्तर्षिवचन नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३६॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

हिमालयद्वारा विवाहके लिये लग्नपत्रिकाप्रेषण, विवाहकी सामग्रियोंकी तैयारी तथा अनेक पर्वतों एवं नदियोंका दिव्य रूपमें सपरिवार हिमालयके घर आगमन

नारद उवाच

तात प्राज्ञ वदेदानीं सप्तर्षिषु गतेषु च।
किमकार्षीद्धिमगिरिस्तन्मे कृत्वा कृपां प्रभो॥ १

नारदजी बोले—हे तात! हे महाप्राज्ञ! हे प्रभो! अब आप कृपाकर मुझे यह बताइये कि उन सप्तर्षियोंके चले जानेके बाद हिमालयने क्या किया?॥ १॥

ब्रह्मोवाच

गतेषु तेषु मुनिषु सप्तस्वपि मुनीश्वर।
सारुन्धतीषु हिमवान् यदकार्षीद् ब्रवीमि ते॥ २
तत आमन्त्र्य स्वभ्रातॄन् मेर्वादीन् ससुतप्रियः।
महामनाः स मुमुदे हिमवान् पर्वतेश्वरः॥ ३

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! अरुन्धतीसहित उन सप्तर्षियोंके चले जानेपर हिमालयने जो किया, उसे मैं आपसे कह रहा हूँ। उसके बाद महामनस्वी गिरिराज हिमालय प्रिय पुत्रोंसहित अपने मेरु आदि बन्धुओंको बुलाकर बड़े प्रसन्न हुए॥ २-३ ॥

तदाज्ञप्तस्ततः प्रीत्या हिमवान् लग्नपत्रिकाम्।
लेखयामास सुप्रीत्या गर्गेण स्वपुरोधसा॥ ४
अथ प्रस्थापयामास तां शिवाय स पत्रिकाम्।
नानाविधास्तु सामग्र्यः स्वजनैर्मुदितात्मभिः॥ ५

उनसे आज्ञा लेनेके बाद हिमालयने प्रीतिपूर्वक अपने पुरोहित गर्गजीसे लग्नपत्रिका लिखवायी और उन्होंने प्रसन्न मनवाले अपने सेवकोंसे अनेक प्रकारकी सामग्रियों तथा उस लग्नपत्रिकाको बड़े प्रेमसे शिवजीके पास भिजवाया॥ ४-५ ॥

ते जनास्तत्र गत्वा च कैलासे शिवसन्निधिम्।
ददुः शिवाय तत्पत्रं तिलकं संविधाय च॥ ६

उन लोगोंने कैलासपर शिवजीके समीप जाकर उनको तिलक लगाकर वह पत्रिका उन्हें प्रदान की॥ ६ ॥

सम्मानिता विशेषेण प्रभुणा च यथोचितम्।
सर्वे ते प्रीतिमनस आजग्मुः शैलसन्निधिम्॥ ७
सम्मानितान्विशेषेण महेशेनागतान् जनान्।
दृष्ट्वा सुहर्षितान् शैलो मुमोदातीव चेतसि॥ ८

भगवान् सदाशिवने उन लोगोंका विशेष रूपसे यथोचित सम्मान किया और प्रसन्नतापूर्वक वे सभी लोग हिमालयके पास लौट आये। हिमालय भी शिवजीके द्वारा विशेष रूपसे सम्मानित हुए हर्षित लोगोंको देखकर मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हो गये॥ ७-८ ॥

ततो निमन्त्रणं चक्रे स्वबन्धूनां प्रमोदितः।
नानादेशस्थितानां च निखिलानां सुखास्पदम्॥ ९
ततः स कारयामास स्वन्नसङ्ग्रहमादरात्।
नानाविधाश्च सामग्रीर्विवाहकरणोचिताः॥ १०

तत्पश्चात् उन्होंने भी अनेक देशोंमें रहनेवाले अपने सम्बन्धियोंको बड़े प्रेमके साथ सुखदायक निमन्त्रण भेजा। उसके बाद उन्होंने आदरसे उत्तम अन्न तथा विवाहके लिये अनेक प्रकारकी उपयोगी सामग्रियाँ एकत्रित कीं॥ ९-१० ॥

तण्डुलानां बहून् शैलान् पृथुकानां तथैव च।
गुडानां शर्कराणां च लवणानां तथैव च॥ ११
क्षीराणां च घृतानां च दध्नां वापीश्चकार सः।
यवादिधान्यपिष्टानां लड्डुकानां तथैव च॥ १२
शष्कुलीनां स्वस्तिकानां शर्कराणां तथैव च।
अमृतेक्षुरसानां च तत्र वापीश्चकार सः॥ १३
बह्वीर्हैयङ्गवानां च ह्यासवानां तथैव च।
नानापक्वान्नसंघांश्च महास्वादुरसाँस्तथा॥ १४

उन्होंने चावल, चिउड़ा, गुड़, शर्करा तथा नमकका पहाड़ लगवा दिया। दूध, घी, दहीकी वापी बनवाकर उन्होंने जौ आदिका आटा, लड्डू, पूड़ी, स्वस्तिक, शर्कराका प्रभूत-संग्रह करवाया और अमृतके समान स्वादिष्ट इक्षुरसकी वापी बनवा दी तथा मक्खन, आसवोंका समूह एवं महास्वादिष्ट पक्वान्नों एवं रसोंका ढेर लगवा दिया॥ ११—१४ ॥

नानाव्यञ्जनवस्तूनि गणदेवहितानि च।
अमूल्यनानावस्त्राणि वह्निशौचानि यानि च॥ १५
मणिरत्नप्रकाराणि सुवर्णरजतानि च।
द्रव्याण्येतानि चान्यानि सङ्गृह्य विधिपूर्वकम्॥ १६
मङ्गलं कर्तुमारेभे गिरिर्मंगलकृद्दिने।
संस्कारं कारयामासुः पार्वत्याः पर्वतस्त्रियः॥ १७

शिवजीके गणों तथा देवताओंके लिये हितकारक अनेक प्रकारके व्यंजन, वस्तुएँ तथा अग्निसे पवित्र किये गये अनेक प्रकारके बहुमूल्य वस्त्र, नाना प्रकारकी मणियाँ, रत्न, सुवर्ण तथा चाँदी—इन द्रव्योंको तथा अन्य वस्तुओंको विधिपूर्वक एकत्रित करके गिरिराजने मंगलदायक दिनमें मंगलाचार प्रारम्भ किया। पर्वतोंकी स्त्रियाँ पार्वतीका संस्कार करने लगीं।

ता मङ्गलं मुदा चक्रुर्भूषिता भूषणैः स्वयम्।
पुरद्विजस्त्रियो हृष्टा लोकाचारं प्रचक्रिरे॥ १८

सोत्सवं विविधं तत्र सुमङ्गलपुरस्सरम्।

वे स्वयं अनेक प्रकारके आभूषणोंसे सुसज्जित होकर प्रसन्नतापूर्वक मंगलाचार करने लगीं। नगरमें रहनेवाली द्विजस्त्रियाँ भी प्रसन्न होकर उत्सव तथा मंगलाचारके साथ अनेक प्रकारके लोकाचार करने लगीं॥ १५—१८१/२ ॥

हिमालयोऽपि हृष्टात्मा कृत्वाचारं सुमङ्गलम्॥ १९

सर्वभावेन सुप्रीतो बन्धुवर्गागमोत्सुकः।
एतस्मिन्नन्तरे तस्य बान्धवाश्च निमन्त्रिताः॥ २०

आजग्मुः सस्त्रियो हृष्टाः ससुताः सपरिच्छदाः।
तदेव शृणु देवर्षे गिर्यागमनमादृतः॥ २१

वर्णयामि समासेन शिवप्रीतिविवृद्धये।

हिमालय भी प्रसन्नचित्त होकर प्रेमके साथ समस्त मंगलाचारकर बन्धुवर्गोंके आनेकी प्रतीक्षा करने लगे। इसी बीच निमन्त्रित उनके सभी बान्धव अपनी स्त्रियों, पुत्रों तथा सेवकोंसहित प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आ गये। हे देवर्षे! अब उन पर्वतोंका आगमन आदरपूर्वक सुनिये। मैं शिवजीकी प्रीति बढ़ानेके लिये संक्षेपसे इसका वर्णन कर रहा हूँ॥ १९—२११/२ ॥

देवालयगिरिर्यो हि दिव्यरूपधरो महान्॥ २२

नानारत्नपरिभ्राजत्समाजः सपरिच्छदः।
नानामणिमहारत्नसारमादाय यत्नतः॥ २३

सुवेषालंकृतः श्रीमान् जगाम स हिमालयम्।
मन्दरः सर्वशोभाढ्यः सनारीतनयो गिरिः॥ २४

सूपायनानि सङ्गृह्य जगाम विविधानि च।
अस्ताचलोऽपि दिव्यात्मा सोपायन उदारधीः॥ २५

बहुशोभासमायुक्त आजगाम मुदान्वितः।
उदयाचल आदाय सद्रत्नानि मणीनपि॥ २६

अत्युत्कृष्टपरीवार आजगाम महासुखी।
मलयो गिरिराजो हि सपरीवार आदृतः॥ २७

सुदिव्यरचनायुक्त आययौ बहुसद्बलः।
सद्यो दर्दुरनामा च मुदितः सकलत्रकः॥ २८

बहुशोभान्वितस्तात ययौ हिमगिरेर्गृहम्।
निषदोऽपि प्रहृष्टात्मा सपरिच्छद आययौ॥ २९

ससुतस्त्रीगणः प्रीत्या ययौ हिमगिरेर्गृहम्।
आजगाम महाभाग्यो भूधरो गन्धमादनः॥ ३०

करवीरस्तथैवापि महाविभवसंयुतः।
महेन्द्रः पर्वतश्रेष्ठ आजगाम हिमालयम्॥ ३१

सबसे पहले सर्वश्रेष्ठ तथा श्रीमान् देवालय नामक पर्वत सुन्दर वेषसे अलंकृत होकर दिव्य रूप धारणकर अनेक प्रकारके रत्नोंसे देदीप्यमान अपने समाज तथा कुटुम्बके साथ अनेक मणियों तथा बहुमूल्य रत्नोंको लेकर हिमालयके यहाँ पहुँचे। सम्पूर्ण शोभासे संयुक्त मन्दराचल अनेक प्रकारके उत्तम उपहारोंको लेकर अपनी स्त्री तथा पुत्रोंसहित हिमालयके पास गये। उदारबुद्धिवाले तथा दिव्यात्मा अस्ताचल पर्वत भी महान् शोभासे युक्त हो विविध प्रकारकी भेंटसामग्री लेकर प्रसन्नतापूर्वक हिमालयके निकट आये। उसी प्रकार हर्षोल्लाससे समन्वित उदयाचल भी सभी प्रकारके उत्तम रत्न तथा मणियोंको लेकर अत्युत्तम परिवारके साथ आये। मलयाचल भी आदरपूर्वक अत्यन्त दिव्य रचनासे युक्त हो बहुत-सी सेना तथा परिवारसहित हिमालयके यहाँ आये। हे तात! दर्दर नामक पर्वत भी प्रसन्न हो अपनी पत्नीके साथ महान् शोभासे युक्त होकर हिमालयके घर शीघ्र पहुँचे। निषद पर्वत भी प्रसन्नचित्त होकर अपने परिवारजनोंके साथ हिमालयके घर आये। इसी प्रकार महाभाग्यवान् गन्धमादन पर्वत भी पुत्र तथा स्त्रियोंके साथ प्रसन्नतासे हिमालयके घर आये। महान् ऐश्वर्यसे समन्वित होकर करवीर तथा पर्वतश्रेष्ठ महेन्द्र भी हिमालयके घर आये॥ २२—३१ ॥

सगणः ससुतस्त्रीको बहुशोभासमन्वितः ।
पारियात्रो हि हृष्टात्मा मणिरत्नाकरैर्युतः॥ ३२

सगणः सपरीवार आययौ हिमभूधरम्।
क्रौञ्चः पर्वतराजो हि महाबलपरिच्छदः।
आजगाम गिरिश्रेष्ठः समुपायन आदृतः॥ ३३

अनेक प्रकारकी शोभासे सम्पन्न पारियात्र भी प्रसन्न-चित्त होकर अनेक गणों, पुत्रों एवं स्त्रियोंको साथ लेकर मणि तथा रत्नोंकी खानसे युक्त हो हिमालयके पास गये। गिरिश्रेष्ठ पर्वतराज क्रौंच अपनी सेना तथा सेवकोंको लेकर अपने पुत्र, स्त्री तथा परिवारसहित प्रसन्न हो भेंटसामग्रीसे युक्त हो आदरपूर्वक हिमालयके घर गये॥ ३२-३३॥

पुरुषोत्तमशैलोऽपि सपरिच्छद आदृतः।
महोपायनमादायाजगाम हिमभूधरम्॥ ३४

नीलः सलीलः ससुतः सस्त्रीको द्रव्यसंयुतः।
आजगाम हिमागस्य गृहमानन्दसंयुतः॥ ३५

पुरुषोत्तम पर्वत भी अपने समाजसहित बड़े आदरके साथ बहुत-सी भेंट-सामग्री लेकर हिमालयके पास आये। नीलपर्वत भी अपनी स्त्री तथा पुत्रके साथ बहुत-सा द्रव्य लेकर आनन्दित होकर हिमालयके घर आये॥ ३४-३५॥

त्रिकूटश्चित्रकूटोऽपि वेंकटः श्रीगिरिस्तथा।
गोकामुखो नारदश्च हिमगेहमुपागमत्॥ ३६

विन्ध्यश्च पर्वतश्रेष्ठो नानासम्पत्समन्वितः।
आजगाम प्रहृष्टात्मा सदारतनयः शुभः॥ ३७

त्रिकूट, चित्रकूट, वेंकट, श्रीगिरि, गोकामुख तथा नारद—ये पर्वत भी हिमालयके घर आये। पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्य भी अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर अपने स्त्री-पुत्रोंसहित नाना प्रकारकी सम्पत्तिसे युक्त हो हिमालयके घर आये॥ ३६-३७॥

कालंजरो महाशैलो बहुहर्षसमन्वितः।
बहुभिः स्वगणैः प्रीत्याजगाम हिमभूधरम्॥ ३८

कैलासस्तु महाशैलो महाहर्षसमन्वितः।
आजगाम कृपां कृत्वा सर्वोपरि लसत्प्रभुः॥ ३९

महाशैल कालंजर अपने अनेक गणोंके साथ प्रसन्नता-पूर्वक हिमालयके घर आये। कैलास नामक महापर्वत भी बड़ी प्रसन्नताके साथ कृपापूर्वक हिमालयके घर आये। वे सभी पर्वतोंकी अपेक्षा अधिक शोभासम्पन्न थे॥ ३८-३९॥

अन्येऽपि भूभृतो ये हि द्वीपेष्वन्येष्वपि द्विज।
इहापि येऽचलाः सर्वे आययुस्ते हिमालयम्॥ ४०

निमन्त्रिता नगास्तत्र तेन पूर्वं मुदा मुने।
आययुर्निखिलाः प्रीत्या विवाहश्शिवयोरिति॥ ४१

हे नारद! इसी प्रकार अन्य द्वीपोंमें रहनेवाले तथा भारतवर्षमें रहनेवाले जो अन्य पर्वत थे, वे सब हिमालयके घर आये। हे मुने! हिमालयने जिन पर्वतोंको पहले ही प्रेमसे आमन्त्रित किया था, वे सभी यह सोचकर कि यह शिवा-शिवका विवाह है, प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आये॥ ४०-४१॥

तदा सर्वे समायाताः शोणभद्रादयः खलु।
बहुशोभा महाप्रीत्या विवाहश्शिवयोरिति॥ ४२

शिवा-शिवका विवाह हो रहा है—यह जानकर उस समय शोणभद्रादि सभी नद अनेक शोभासे युक्त होकर बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ आये॥ ४२॥

नद्यः सर्वाः समायाता नानालंकारसंयुताः ।
दिव्यरूपधराः प्रीत्या विवाहश्शिवयोरिति॥ ४३

गोदावरी च यमुना ब्रह्मस्त्रीर्वेणिका तथा।
आययौ हिमशैलं वै विवाहश्शिवयोरिति॥ ४४

शिवा-शिवका विवाह हो रहा है—यह जानकर सभी नदियाँ दिव्य रूप धारण करके नाना भाँतिके अलंकारोंसे युक्त हो प्रेमपूर्वक वहाँ आयीं। शिवा-शिवका विवाह हो रहा है—यह जानकर गोदावरी, यमुना, ब्रह्मस्त्री तथा वेणिका हिमालयके यहाँ आयीं॥ ४३-४४॥

गङ्गा तु सुमहाप्रीत्या नानालंकारसंयुता।
दिव्यरूपाययौ प्रीत्या विवाहश्शिवयोरिति॥ ४५

शिवा-शिवका विवाह हो रहा है—यह जानकर गंगाजी भी महाप्रसन्न हो दिव्य रूप धारण करके अनेक प्रकारके आभूषणोंसे सुसज्जित हो वहाँ आयीं॥ ४५॥

नर्मदा तु महामोदा रुद्रकन्या सरिद्वरा।
महाप्रीत्याजगामाशु विवाहश्शिवयोरिति॥ ४६

शिवा-शिवका विवाह हो रहा है—यह जानकर सरिताओंमें श्रेष्ठ, अत्यन्त आनन्द प्रदान करनेवाली, रुद्रकी कन्या नर्मदा भी बड़े प्रेमसे शीघ्र वहाँ आ गयीं॥ ४६॥

आगतैस्तैस्ततः सर्वैः सर्वतो हिमभूधरम्।
संकुलासीत्पुरी दिव्या सर्वशोभासमन्विता॥ ४७

महोत्सवा लसत्केतुध्वजातोरणकाधिका।
वितानविनिवृत्तार्का तथा नानालसत्प्रभा॥ ४८

उस समय हिमालयके यहाँ आये हुए उन सभी लोगोंसे वह दिव्य तथा सभी शोभासे युक्त पुरी भर गयी। वह महोत्सवसे युक्त हो गयी, उसमें नाना प्रकारके केतु, ध्वज एवं तोरण सुशोभित होने लगे, नाना प्रकारके वितानोंसे सूर्यका प्रकाश रुक गया और वह पुरी रंग-बिरंगे रत्नोंकी छटासे पूर्ण हो गयी॥ ४७-४८॥

हिमालयोऽपि सुप्रीत्यादरेण विविधेन च।
तेषां चकार सम्मानं तासां चैव यथायथम्॥ ४९

सर्वान्निवासयामास सुस्थानेषु पृथक् पृथक्।
सामग्रीभिरनेकाभिस्तोषयामास कृत्स्नशः॥ ५०

हिमालयने भी प्रभूत आदरके साथ अत्यन्त प्रेमपूर्वक उन स्त्रियों तथा पुरुषोंका यथोचित सम्मान किया। उन्होंने सभी लोगोंको अलग-अलग उत्तम स्थानोंपर निवास प्रदान किया और अनेक प्रकारकी सामग्रियोंसे उन्हें पूर्णरूपसे सन्तुष्ट किया॥ ४९-५०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे लग्नपत्रसंप्रेषणसामग्रीसङ्ग्रहशैलागमनवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें लग्नपत्रसम्प्रेषणसामग्रीसंग्रह-शैलागमनवर्णन नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३७॥

अथाष्टत्रिंशोऽध्यायः

हिमालयपुरीकी सजावट, विश्वकर्माद्वारा दिव्यमण्डप एवं देवताओंके निवासके लिये दिव्यलोकोंका निर्माण करना

ब्रह्मोवाच

अथ शैलेश्वरः प्रीतो हिमवान्मुनिसत्तम।
स्वपुरं रचयामास विचित्रं परमोत्सवम्॥ १

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिसत्तम! इसके बाद हिमालयने प्रसन्न होकर महोत्सवसम्पन्न अपने नगरको विचित्र प्रकारसे सजाया॥ १॥

सिक्तमार्गं संस्कृतं च शोभितं परमर्द्धिभिः।
द्वारि द्वारि च रम्भादि मङ्गलं द्रव्यसंयुतम्॥ २

उन्होंने सभी मार्गोंपर जलका छिड़काव कराया और सभी प्रकारकी ऋद्धि-सिद्धिसे नगरको अलंकृतकर प्रत्येक द्वारको केलेके खम्भे तथा मंगलद्रव्योंसे सुसज्जित किया॥ २॥

प्राङ्गणं रचयामास रम्भास्तंभसमन्वितम्।
पट्टसूत्रैः संनिबद्धं रसालपल्लवान्वितम्॥ ३
मालतीमाल्यसंयुक्तं लसत्तोरणसुप्रभम्।

आँगनमें केलेके खम्भे लगवाये गये। रेशमी धागोंमें आमका पल्लव बाँधकर बंदनवार, जिसमें मालतीकी माला बँधी हुई थी, लटकाया गया और

शोभितं मङ्गलद्रव्यैश्चतुर्दिक्षु स्थितैः शुभैः॥ ४
तथैव सर्वं परया मुदान्वित-
श्चक्रे गिरीन्द्रः स्वसुतार्थमेव।
गर्गं पुरस्कृत्य महाप्रभावं
प्रस्तावयोग्यं च सुमङ्गलं हि॥ ५

उस आँगनको चारों दिशाओंमें कल्याणकारी मंगलद्रव्योंसे सुशोभित किया गया। पर्वतराजने महाप्रभावशाली गर्गाचार्यके आज्ञानुसार अपनी कन्याके विवाहके निमित्त परम प्रसन्नतासे युक्त हो सारी सामग्री तथा सभी प्रकारके मंगलद्रव्य एकत्रित किये॥ ३—५॥

आहूय विश्वकर्माणं कारयामास सादरम्।
मण्डपं च सुविस्तीर्णं वेदिकादिमनोहरम्॥ ६

उन्होंने विश्वकर्माको आदरपूर्वक बुलाकर विस्तृत मण्डप तथा मनोहर वेदिका आदिका निर्माण कराया॥ ६॥

अयुतेन सुरर्षे तद्योजनानां च विस्तृतम्।
अनेकलक्षणोपेतं नानाश्चर्यसमन्वितम्॥ ७
स्थावरं जङ्गमं सर्वं सदृशं तैर्मनोहरम्।
सर्वतोऽद्भुतसर्वस्वं नानावस्तुचमत्कृतम्॥ ८

हे देवर्षे! वह [मण्डप] दस हजार योजन लम्बा, अनेक लक्षणोंसे युक्त तथा अनेक आश्चर्योंसे परिपूर्ण था। स्थावर चित्रकी रचना जंगमके सदृश ही होनेसे वह मण्डप चारों ओर अद्भुत पदार्थोंसे परिपूर्ण हो गया॥ ७-८॥

जङ्गमं विजितं तत्र स्थावरेण विशेषतः।
जङ्गमेन च तत्रासीज्जितं स्थावरमेव हि॥ ९

स्थावर रचनाने विशेष रूपसे जंगमको तथा जंगम रचनाने स्थावर रचनाको पराजित कर दिया था॥ ९॥

पयसा च जिता तत्र स्थलभूमिर्न चान्यथा।
जलं किं हि स्थलं किं हि न विदुः केऽपि कोविदाः॥ १०

जलकी रचनासे स्थलभूमि जीत ली गयी। बड़े-बड़े विशेषज्ञोंको भी पता नहीं लगता था कि कहाँ जल है और कहाँ स्थल है॥ १०॥

क्वचित्सिंहाः कृत्रिमाश्च क्वचित्सारसपंक्तयः।
क्वचिच्छिखण्डिनस्तत्र कृत्रिमाश्च मनोहराः॥ ११

कहींपर कृत्रिम सिंह तथा सारसोंकी पंक्ति बनी हुई थी तथा कहीं अत्यन्त मनोहर कृत्रिम मोर बने हुए थे॥ ११॥

क्वचित्स्त्रियः कृत्रिमाश्च नृत्यन्त्यः पुरुषैस्सह।
मोहयन्त्यो जनान्सर्वान्पश्यन्त्यः कृत्रिमास्तथा॥ १२

कहीं पुरुषोंके साथ नाचती हुई स्त्रियोंके चित्र बनाये गये थे, वे कृत्रिम स्त्रियाँ अपनी दृष्टिसे देखते हुए पुरुषोंको मानो मोह रही थीं॥ १२॥

तथा तेनैव विधिना द्वारपाला मनोहराः।
हस्तैर्धनूंषि चोद्धृत्य स्थावरा जङ्गमोपमाः॥ १३

इसी प्रकार हाथमें धनुष धारण किये मनोहर द्वारपाल स्थावर होकर भी जंगमके सदृश प्रतीत होते थे॥ १३॥

द्वारि स्थिता महालक्ष्मीः कृत्रिमा रचिताद्भुता।
सर्वलक्षणसंयुक्तागता साक्षात्पयोर्णवात्॥ १४

क्षीरसागरसे उत्पन्न हुई सर्वलक्षणयुक्त साक्षात् लक्ष्मीके समान अद्भुत कृत्रिम महालक्ष्मी दरवाजेपर बनायी गयी थी॥ १४॥

गजाश्चालङ्कृता ह्यासन्कृत्रिमा अकृतोपमाः।
तथाश्वाः सादिभिश्चैव गजाश्च गजसादिभिः॥ १५
रथा रथिभिराकृष्टा महाश्चर्यसमन्विताः।
वाहनानि तथान्यानि पत्तयः कृत्रिमास्तथा॥ १६

अलंकृत हाथी वास्तविक हाथीके समान दिखायी पड़ते थे। इसी प्रकार घुड़सवारोंसे समन्वित अश्व तथा गजारोहियोंसे युक्त गज और आश्चर्यपूर्ण रथीसे युक्त रथ समतामें किसी प्रकार जीवधारीसे कम न थे। अनेक प्रकारके वाहन तथा पैदल कृत्रिम होते हुए भी अकृत्रिम-जैसे प्रतीत होते थे॥ १५-१६॥

एवं विमोहनार्थं तु कृतं वै विश्वकर्मणा।
देवानां च मुनीनां च तेन प्रीतात्मना मुने॥ १७

हे मुने! उन प्रसन्नचित्त विश्वकर्माने देवताओं और मुनियोंको मोहित करनेके लिये यह सब किया था॥ १७॥

महाद्वारि स्थितो नन्दी कृत्रिमश्च कृतो मुने।
शुद्धस्फटिकसंकाशो यथा नन्दी तथैव सः॥ १८

तस्योपरि महादिव्यं पुष्पकं रत्नभूषितम्।
राजितं पल्लवैः शुभ्रैश्चामरैश्च सुशोभितम्॥ १९

हे मुने! महाद्वारपर शुद्ध स्फटिकके समान अत्यन्त उज्ज्वल नन्दीका चित्र बनाया गया था, वह साक्षात् नन्दीके ही समान था। उसके ऊपर महादिव्य, रत्नजटित एवं मनोहर पल्लवों तथा चामरोंसे शोभायमान पुष्पक विमान रखा हुआ था॥ १८-१९॥

वामपार्श्वे गजौ द्वौ च शुद्धकाश्मीरसन्निभौ।
चतुर्दन्तौ षष्टिवर्षौ भेदमानौ महाप्रभौ॥ २०

द्वारके बायें भागमें शुद्ध काश्मीरी रंगके चार दाँतवाले दो हाथी बनाये गये थे, जो महाकान्तिमान् तथा साठ वर्षके थे और एक-दूसरेसे भिड़े हुए थे॥ २०॥

तथैवार्कनिभौ तेन कृतौ चाश्वौ महाप्रभौ।
चामरालंकृतौ दिव्यौ दिव्यालङ्कारभूषितौ॥ २१

उसी प्रकार सूर्यके समान महाकान्तिमान् तथा दिव्य दो घोड़े भी बनाये गये थे, जो चँवरों तथा दिव्य अलंकारोंसे सुसज्जित थे॥ २१॥

दंशिता वररत्नाढ्या लोकपालास्तथैव च।
सर्वे देवा यथार्थं वै कृता वै विश्वकर्मणा॥ २२

विश्वकर्माने श्रेष्ठ रत्नोंसे विभूषित यथार्थ रूपवाले सभी लोकपालों तथा देवताओंको बनाया था॥ २२॥

तथा हि ऋषयः सर्वे भृग्वाद्याश्च तपोधनाः।
अन्ये ह्युपसुरास्तद्वत्सिद्धाश्चान्येऽपि वै कृताः॥ २३

विष्णुश्च पार्षदैः सर्वैर्गरुडाख्यैः समन्वितः।
कृत्रिमो निर्मितस्तद्वत्परमाश्चर्यरूपवान्॥ २४

इसी प्रकार तपोधन भृगु आदि ऋषियों, अन्य उपदेवताओं, सिद्धों तथा अन्य लोगोंके भी चित्रोंका निर्माण किया गया था। कृत्रिम विष्णु अपने गरुड़ आदि पार्षदोंके साथ इस प्रकारके बनाये गये थे कि उनको देखनेसे महान् आश्चर्य प्रतीत हो रहा था॥ २३-२४॥

तथैवाहं सुतैर्वेदैस्सिद्धैश्च परिवारितः।
कृत्रिमो निर्मितस्तद्वत्पठन्सूक्तानि नारद॥ २५

ऐरावतगजारूढः शक्रः स्वदलसंयुतः।
कृत्रिमो निर्मितस्तद्वत्परिपूर्णेन्दुसंनिभः॥ २६

हे नारद! इसी प्रकार अपने पुत्रों, वेदों एवं परिवारके साथ सूक्तपाठ करते हुए मुझ ब्रह्माके चित्रका भी निर्माण कराया गया था। विश्वकर्माने ऐरावतपर चढ़े हुए अपने दलसहित इन्द्रका निर्माण किया था, जो पूर्णचन्द्रके समान प्रकाशित हो रहे थे॥ २५-२६॥

किं बहूक्तेन देवर्षे सर्वो वै विश्वकर्मणा।
हिमागप्रेरितेनाशु क्लृप्तः सुरसमाजकः॥ २७

एवंभूतः कृतस्तेन मण्डपो दिव्यरूपवान्।
अनेकाश्चर्यसम्भूतो महान्देवविमोहनः॥ २८

हे देवर्षे! बहुत कहनेसे क्या लाभ? विश्वकर्माने हिमालयसे प्रेरित होकर सम्पूर्ण देवसमाजकी शीघ्र ही रचना की थी। इस प्रकार दिव्य रूपसे युक्त, देवताओंको मोहित करनेवाले तथा अनेक आश्चर्योंसे परिपूर्ण उस विशाल मण्डपका निर्माण विश्वकर्माने किया॥ २७-२८॥

अथाज्ञप्तो गिरीशेन विश्वकर्मा महामतिः।
निवासार्थं सुरादीनां तत्तल्लोकान् हि यत्नतः॥ २९

इसके अनन्तर महाबुद्धिमान् विश्वकर्माने हिमालयकी आज्ञा पाकर देवताओं आदिके निवासके लिये यत्नपूर्वक उनके लोकोंकी रचना की॥ २९॥

तत्रैव च महामञ्चाः सुप्रभाः परमाद्भुताः।
रचिताः सुखदा दिव्यास्तेषां वै विश्वकर्मणा॥ ३०

विश्वकर्माने देवताओंको सुख देनेवाले, अत्यधिक प्रभावाले, परम आश्चर्यकारक तथा दिव्य मंचोंका भी निर्माण किया॥ ३०॥

तथा स सत्यलोकं वै विरेचे क्षणतोऽद्भुतम्।
दीप्त्या परमया युक्तं निवासार्थं स्वयम्भुवः॥ ३१

उन्होंने ब्रह्माके निवासके लिये क्षणभरमें परम दीप्तिसे युक्त अद्भुत सत्यलोककी रचना कर डाली॥ ३१॥

तथैव विष्णोस्त्वपरं वैकुण्ठाख्यं महोज्ज्वलम्।
विरेचे क्षणतो दिव्यं नानाश्चर्यसमन्वितम्॥ ३२

उसी प्रकार उन्होंने विष्णुके लिये वैकुण्ठ नामक स्थान क्षणमात्रमें बनाया, जो अति उज्ज्वल, दिव्य तथा नाना प्रकारके आश्चर्यसे युक्त था॥ ३२॥

अमरेशगृहं दिव्यं तथैवाद्भुतमुत्तमम्।
विरेचे विश्वकर्मासौ सर्वैश्वर्यसमन्वितम्॥ ३३

उन विश्वकर्माने सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे युक्त, अत्यन्त अद्भुत, दिव्य तथा उत्तम इन्द्रभवनका निर्माण किया॥ ३३॥

गृहाणि लोकपालानां विरेचे सुन्दराणि च।
तद्वत्स प्रीतितो दिव्यान्यद्भुतानि महान्ति च॥ ३४

उसी प्रकार उन्होंने लोकपालोंके लिये सुन्दर, दिव्य, अद्भुत तथा महान् गृहोंकी प्रीतिपूर्वक रचना की॥ ३४॥

अन्येषाममराणां च सर्वेषां क्रमशस्तथा।
सदनानि विचित्राणि रचितानि च तेन वै॥ ३५

विश्वकर्मा महाबुद्धिः प्राप्तशम्भुमहावरः।
विरेचे क्षणतः सर्वं शिवतुष्ट्यर्थमेव च॥ ३६

उन्होंने अन्य देवताओंके लिये क्रमशः विचित्र गृहोंकी रचना की। शिवजीसे वर प्राप्त करनेके कारण महाबुद्धिमान् विश्वकर्माने क्षणभरमें शिवजीकी प्रसन्नताके लिये सारे स्थानका निर्माण किया॥ ३५-३६॥

तथैव चित्रं परमं महोज्ज्वलं
महाप्रभं देववरैः सुपूजितम्।
गिरीशचिह्नं शिवलोकसंस्थितं
सुशोभितं शम्भुगृहं चकार॥ ३७

उन्होंने शिवलोकमें रहनेवाले, परम उज्ज्वल, महान् प्रभावाले, श्रेष्ठ देवताओंसे पूजित, गिरीशके चिह्नोंसे युक्त तथा शोभासम्पन्न शिवगृहका निर्माण किया॥ ३७॥

एवंभूता कृता तेन रचना विश्वकर्मणा।
विचित्रा शिवतुष्ट्यर्थं पराश्चर्या महोज्ज्वला॥ ३८

एवं कृत्वाखिलं चेदं व्यवहारं च लौकिकम्।
पर्यैक्षिष्ट मुदा शम्भ्वागमनं स हिमाचलः॥ ३९

इति प्रोक्तमशेषेण वृत्तान्तं प्रमुदावहम्।
हिमालयस्य देवर्षे किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ४०

उन विश्वकर्माने शिवजीकी प्रसन्नताके लिये इस प्रकारकी विचित्र, परम आश्चर्यसे युक्त तथा परमोज्ज्वल रचना की थी। इस प्रकार यह सारा लौकिक व्यवहार करके वे हिमालय अत्यन्त प्रेमसे शिवके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। हे देवर्षे! मैंने हिमालयका आनन्ददायक वृत्तान्त पूर्णरूपसे कह दिया, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ३८—४०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे मण्डपादिरचनावर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें मण्डपादिरचनावर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३८॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवान् शिवका नारदजीके द्वारा सब देवताओंको निमन्त्रण दिलाना, सबका आगमन तथा शिवका मंगलाचार एवं ग्रहपूजन आदि करके कैलाससे बाहर निकलना

नारद उवाच

विधे तात महाप्राज्ञ विष्णुशिष्य नमोऽस्तु ते।
अद्भुतेयं कथाश्रावि त्वत्तोऽस्माभिः कृपानिधे॥ १

इदानीं श्रोतुमिच्छामि चरितं शशिमौलिनः।
वैवाहिकं सुमाङ्गल्यं सर्वाघौघविनाशनम्॥ २

किं चकार महादेवः प्राप्य मङ्गलपत्रिकाम्।
तां श्रावय कथां दिव्यां शङ्करस्य परात्मनः॥ ३

नारदजी बोले—हे विष्णुशिष्य! हे महाप्राज्ञ! हे तात! हे विधे! आपको प्रणाम है। हे कृपानिधे! हमलोगोंने आपसे यह अद्भुत कथा सुनी। अब मैं शिवजीके वैवाहिक चरित्रको सुनना चाहता हूँ, जो परम मंगलदायक तथा सब प्रकारकी पापराशिका विनाश करनेवाला है॥ १-२॥

मंगलपत्रिका प्राप्त करनेके बाद महादेवजीने क्या किया? परमात्मा शिवजीकी वह दिव्य कथा सुनाइये॥ ३॥

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्स महाप्राज्ञ शाङ्करं परमं यशः।
यच्चकार महादेवः प्राप्य मङ्गलपत्रिकाम्॥ ४

अथ शम्भुर्गृहीत्वा तां मुदा मङ्गलपत्रिकाम्।
विजहास प्रहृष्टात्मा मानं तेषां व्यधाद्विभुः॥ ५

वाचयित्वा च तां सम्यग्स्वीचकार विधानतः।
तज्जनान्यापयामास बहुसम्मान्य चादृतः॥ ६

उवाच मुनिवर्गांस्तान्कार्यं सम्यक् कृतं शुभम्।
आगन्तव्यं विवाहे मे विवाहः स्वीकृतो मया॥ ७

इत्याकर्ण्य वचः शम्भोः प्रहृष्टास्ते प्रणम्य तम्।
परिक्रम्य ययुर्धाम शंसन्तः स्वं विधिं परम्॥ ८

अथ देवेश्वरः शम्भुः सामरस्त्वां मुने द्रुतम्।
लौकिकाचारमाश्रित्य महालीलाकरः प्रभुः॥ ९

त्वमागतः परप्रीत्या प्रशंसंस्त्वं विधिं परम्।
प्रणमंश्च नतस्कन्धो विनीतात्मा कृताञ्जलिः॥ १०

अस्तौस्सुजयशब्दानि समुच्चार्य मुहुर्मुहुः।

ब्रह्माजी बोले—हे वत्स! हे महाप्राज्ञ! महादेवजीने मंगलपत्रिका प्राप्त करनेके पश्चात् जो किया, भगवान् शंकरके उस यशको सुनिये॥ ४॥

विभु शिवजी प्रसन्नतापूर्वक मंगलपत्रिका ग्रहणकर जोरसे हँसे और उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर उन लग्नपत्रिका लानेवालोंका बड़ा स्वागत-सम्मान किया॥ ५॥

उन्होंने उस लग्नपत्रिकाको सम्यक् पढ़कर विधि-विधानसे स्वीकार किया तथा उन लोगोंको आदरसे बहुत सम्मानितकर विदा कर दिया। उन्होंने सप्तर्षियोंसे कहा कि आपलोगोंने यह परम कल्याणकारी कार्य ठीकसे सम्पन्न किया। अब मैंने विवाह स्वीकार कर लिया है, अतः मेरे विवाहमें आपलोग [अवश्य] आइयेगा॥ ६-७॥

शिवजीके इस प्रकारके वचनको सुनकर वे परम प्रसन्न हो गये और उनको प्रणामकर तथा उनकी प्रदक्षिणा करके अपने परम भाग्यकी सराहना करते हुए अपने घर चले गये। हे मुने! तब महान् लीला करनेवाले, देवताओंके सहित देवेश्वर प्रभु शिवजीने लौकिकाचारका आश्रयण करते हुए शीघ्र आपका स्मरण किया॥ ८-९॥

उस समय आप अपने सौभाग्यकी प्रशंसा करते हुए बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ आये और हाथ जोड़कर सिर झुकाकर विनम्रतासे उन्हें प्रणाम करते हुए बारम्बार 'जय' शब्दका उच्चारण करके आपने

निदेशं प्रार्थयंस्तस्य प्रशंसंस्त्वं विधिं मुने॥ ११

उनकी स्तुति की। हे मुने! उसके बाद अपने भाग्यकी प्रशंसा करते हुए शिवजीसे आज्ञा प्रदान करनेके लिये आपने निवेदन किया॥ १०-११॥

ततः शम्भुःप्रहृष्टात्मा दर्शयँल्लौकिकीं गतिम्।
उवाच मुनिवर्य त्वां प्रीणयन् शुभया गिरा॥ १२

हे मुनिवर! तब प्रसन्नचित्त होकर लौकिकी गतिको दिखाते हुए शुभ वचनोंसे आपको प्रसन्न करते हुए शिवजी कहने लगे—॥ १२॥

शिव उवाच

प्रीत्या शृणु मुनिश्रेष्ठ ह्यस्मत्तोऽद्य वदामि ते।
ब्रुवे तत्त्वां प्रियो मे यद्भक्तराजशिरोमणिः॥ १३

शिवजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! मैं जो कहता हूँ, उसे प्रेमपूर्वक सुनिये। आप मेरे परमप्रिय तथा भक्तराजशिरोमणि हैं, इसलिये आपसे कहता हूँ॥ १३॥

कृतं महत्तपो देव्या पार्वत्या तव शासनात्।
तस्यै वरो मया दत्तः पतित्वे तोषितेन वै॥ १४

आपकी आज्ञासे पार्वतीने जिस प्रकारकी महान् तपस्या की थी, उससे सन्तुष्ट होकर मैंने उसे पति बननेके लिये वरदान दे दिया है॥ १४॥

करिष्येऽहं विवाहं च तस्या वश्यो हि भक्तितः।
सप्तर्षिभिः साधितं च तल्लग्नं शोधितं च तैः॥ १५

मैं उसकी भक्तिके वशीभूत होकर अब विवाह करना चाहता हूँ। सप्तर्षियोंने सारा कार्य सम्पन्न कर दिया है और विवाहका लग्न भी निश्चित कर दिया है॥ १५॥

अद्यतः सप्तमे चाह्नि तद्भविष्यति नारद।
महोत्सवं करिष्यामि लौकिकीं गतिमाश्रितः॥ १६

हे नारद! वह विवाह आजके सातवें दिन होगा। मैं लोकरीतिका आश्रय लेकर [वैवाहिक] महोत्सव करूँगा॥ १६॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य शंकरस्य परात्मनः।
प्रसन्नधीः प्रभुं नत्वा तात त्वं वाक्यमब्रवीः॥ १७

ब्रह्माजी बोले—हे तात! इस प्रकार परमात्मा शंकरका वचन सुनकर आप परम प्रसन्न हो उन प्रभुको प्रणाम करके यह वचन कहने लगे—॥ १७॥

नारद उवाच

भवतस्तु व्रतमिदं भक्तवश्यो भवान्मतः।
सम्यक् कृतं च भवता पार्वतीमानसेप्सितम्॥ १८
कार्यं मत्सदृशं किञ्चित्कथनीयं त्वया विभो।
मत्वा स्वसेवकं मां हि कृपां कुरु नमोऽस्तु ते॥ १९

नारदजी बोले—आपका यह व्रत है कि आप भक्तोंके अधीन रहते हैं और ऐसा सभीका मत भी है, इसलिये आपने यह उचित ही किया; क्योंकि पार्वती यही चाहती भी थीं। हे विभो! अब मेरे योग्य जो कोई कार्य हो, आप मुझे बताइये, आपको प्रणाम है, आप मुझे अपना सेवक मानकर कृपा कीजिये॥ १८-१९॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तस्तु त्वया शम्भुः शंकरो भक्तवत्सलः।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा सादरं त्वां मुनीश्वर॥ २०

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! जब आपने शिवजीसे इस प्रकार कहा, तब भक्तवत्सल शिवजी प्रसन्नचित्त होकर आदरपूर्वक आपसे कहने लगे—॥ २०॥

शिव उवाच

विष्णुप्रभृतिदेवांश्च मुनीन् सिद्धानपि ध्रुवम्।
त्वं निमन्त्रय मद्वाण्या मुनेऽन्यानपि सर्वतः॥ २१

सर्व आयान्तु सोत्साहाः सर्वशोभासमन्विताः।
सस्त्रीसुतगणाः प्रीत्या मम शासनगौरवात्॥ २२

शिवजी बोले—हे मुने! आप मेरी ओरसे विष्णु आदि देवों, मुनियों, सिद्धों तथा अन्य लोगोंको भी चारों ओर निमन्त्रण दीजिये। मेरी आज्ञाको मानते हुए उपर्युक्त सभी लोग उत्साह तथा शोभासे युक्त हो अपनी स्त्री, पुत्र तथा गणोंके सहित इस विवाहमें आयें॥ २१-२२॥

नागमिष्यन्ति ये त्वत्र मद्विवाहोत्सवे मुने।
ते स्वकीया न मन्तव्या मया देवादयः खलु॥ २३

हे मुने! जो इस विवाहोत्सवमें सम्मिलित नहीं होंगे, उन्हें मैं अपना नहीं मानूँगा, चाहे वे देवता ही क्यों न हों॥ २३॥

ब्रह्मोवाच

इतीशाज्ञां ततो धृत्वा भवान् शङ्करवल्लभः।
सर्वान्निमन्त्रयामास तं तं गत्वा द्रुतं मुने॥ २४

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! ईश्वरकी इस आज्ञाको स्वीकार करके शिवप्रिय आपने शीघ्रतासे उन-उनके यहाँ जाकर सबको निमन्त्रण दे दिया॥ २४॥

शम्भूपकण्ठमागत्य द्रुतं मुनिवरो भवान्।
तद् हूत्यात्तत्र सन्तस्थौ तदाज्ञां प्राप्य नारद॥ २५

शिवोऽपि तस्थौ सोत्कण्ठस्तदागमनलालसः।
स्वगणैः सोत्सवैः सर्वैर्नृत्यद्भिः सर्वतो दिशम्॥ २६

हे नारद! इस प्रकार शिवजीके दूतका कार्य शीघ्रतासे सम्पन्नकर शिवजीके पास आकर आप मुनिवर उनकी आज्ञासे वहीं बैठ गये। शिवजी भी उन लोगोंके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। उनके गण सभी जगह नृत्य-गान-पूर्वक उत्सव करने लगे॥ २५-२६॥

एतस्मिन्नेव काले तु रचयित्वा स्ववेषकम्।
आजगामाच्युतः शीघ्रं कैलासं सपरिच्छदः॥ २७

इसी समय अत्यन्त सुन्दर वेश-भूषासे सुसज्जित होकर भगवान् विष्णु अपने परिकरोंके साथ कैलास आये॥ २७॥

शिवं प्रणम्य सद्भक्त्या सदारः सदलो मुदा।
तदाज्ञां प्राप्य सन्तस्थौ सुस्थाने प्रीतमानसः॥ २८

तथाहं स्वगणैराशु कैलासमगमं मुदा।
प्रभुं प्रणम्यातिष्ठं वै सानन्दः स्वगणान्वितः॥ २९

वे अपनी भार्या तथा पार्षदोंके साथ भक्तिपूर्वक प्रणामकर उनकी आज्ञा प्राप्त करके प्रसन्नचित्त हो बैठ गये। उसके बाद मैं भी अपने गणोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक कैलासपर्वतपर गया और प्रभुको प्रणाम करके अपने गणोंसहित आनन्दित हो बैठ गया॥ २८-२९॥

इन्द्रादयो लोकपाला आययुः सपरिच्छदाः।
तथैवालंकृतास्सर्वे सोत्सवास्सकलत्रकाः॥ ३०

इन्द्र आदि लोकपाल भी अपनी पत्नियों तथा सेवकोंके सहित नाना प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत हो उत्सव मनाते हुए वहाँ आये॥ ३०॥

तथैवं मुनयो नागास्सिद्धा उपसुरास्तथा।
आययुश्चापरेऽपीह सोत्सवाः सुनिमन्त्रिताः॥ ३१

इसी प्रकार निमन्त्रित मुनि, नाग, सिद्ध तथा उपदेव एवं अन्य दूसरे लोग भी वहाँ आये॥ ३१॥

महेश्वरस्तदा तत्रागतानां च पृथक् पृथक्।
सर्वेषाममराद्यानां सत्कारं व्यदधान्मुदा॥ ३२

उस समय महेश्वरने वहाँ आये उन सभी देवता आदिका प्रसन्नतासे पृथक्-पृथक् सत्कार किया॥ ३२॥

अथोत्सवो महानासीत्कैलासे परमोऽद्भुतः।
नृत्यादिकं तदा चक्रुर्यथायोग्यं सुरस्त्रियः॥ ३३

उस समय कैलासपर देवस्त्रियोंने यथायोग्य नृत्य आदि करना प्रारम्भ कर दिया तथा वहाँ अद्भुत एवं महान् उत्सव होने लगा॥ ३३॥

एतस्मिन्समये देवा विष्ण्वाद्या ये समागताः।
यात्रां कारयितुं शम्भोस्तत्रोषुस्तेऽखिला मुने॥ ३४

हे मुने! इसी समय जो विष्णु आदि देवगण शिवके यहाँ आये हुए थे, वे सब शिवकी वरयात्राकी तैयारी करानेके लिये प्रसन्नतासे निवास करने लगे॥ ३४॥

शिवाज्ञप्तास्तदा सर्वे मदीयमिति यन्त्रिताः।
शिवकार्यमिदं सर्वं चक्रिरे शिवसेवनम्॥ ३५

उस समय शिवजीकी आज्ञासे आये हुए सभी लोग शिवजीके कार्यको यह मेरा ही कार्य है—ऐसा समझकर शिवकी सेवा करने लगे॥ ३५॥

मातरः सप्त तास्तत्र शिवभूषाविधिं परम्।
चक्रिरे च मुदा युक्ता यथायोग्यं तथा पुनः॥ ३६

सप्तमातृकाओंने शिवजीके विवाहका दूलह वेष बड़े प्रेमसे शिवजीके अनुरूप सजाया॥ ३६॥

तस्य स्वाभाविको वेषो भूषाविधिरभूत्तदा।
तस्येच्छया मुनिश्रेष्ठ परमेशस्य सुप्रभोः॥ ३७

हे मुनिश्रेष्ठ! परमेश्वर प्रभुकी इच्छासे ही उनके स्वाभाविक वेषको भूषणोंसे सजाया गया॥ ३७॥

चन्द्रश्च मुकुटस्थाने सान्निध्यमकरोत्तदा।
लोचनं सुन्दरं ह्यासीत्तृतीयं तिलकं शुभम्॥ ३८

सप्तमातृकाओंने मुकुटके स्थानपर चन्द्रमाको बाँध दिया। उनके ललाटमें रहनेवाला तीसरा नेत्र तिलकरूपसे शोभित किया गया॥ ३८॥

कर्णाभरणरूपौ च यौ हि सर्पौ प्रकीर्तितौ।
कुण्डलेऽभवतां तस्य नानारत्नान्विते मुने॥ ३९

हे मुने! नाना रत्नोंसे देदीप्यमान दो सर्प दोनों कानोंको अलंकृत करनेवाले कुण्डलके रूपमें शोभित हुए॥ ३९॥

अन्याङ्गसंस्थिताः सर्पाः तदङ्गाभरणानि च।
बभूवुरतिरम्याणि नानारत्नमयानि च॥ ४०

उनके अंगमें निवास करनेवाले अन्य सर्प अनेक रत्नोंसे युक्त आभूषणोंके समान सुशोभित हुए॥ ४०॥

विभूतिरंगरागोऽभूच्चन्दनादिसमुद्भवः।
तद्दुकूलमभूद्दिव्यं गजचर्मादि सुन्दरम्॥ ४१

उनके शरीरमें लगी हुई विभूति चन्दनादि पदार्थोंसे उत्पन्न उत्तम अंगराग हो गया। उनका परम सुन्दर गजचर्म दिव्य दुकूलके समान हो गया॥ ४१॥

ईदृशं सुन्दरं रूपं जातं वर्णातिदुष्करम्।
ईश्वरोऽपि स्वयं साक्षादैश्वर्यं लब्धवान् स्वतः॥ ४२
ततश्च सर्वे सुरपक्षदानवा
नागाः पतङ्गाप्सरसो महर्षयः।
समेत्य सर्वे शिवसन्निधिं तदा
महोत्सवाः प्रोचुरहो मुदान्विताः॥ ४३

उस समय शिवजीका ऐसा सुन्दर रूप हो गया, जो अवर्णनीय था। वे साक्षात् ईश्वर हैं, अतः उन्होंने सभी ऐश्वर्य धारण कर लिया था। उस समय सभी देवता, दानव, नाग, पन्नग, अप्सराएँ तथा महर्षिगण उत्सवसे युक्त होकर शिवजीके समीप जाकर प्रसन्न हो कहने लगे॥ ४२-४३॥

सर्व ऊचुः

गच्छ गच्छ महादेव विवाहार्थं महेश्वर।
गिरिजाया महादेव्याः सहास्माभिः कृपां कुरु॥ ४४

सभी लोग कहने लगे—हे महादेव! हे महेश्वर! हिमालयपुत्री महादेवी पार्वतीसे विवाह करनेके लिये आप हम सभीके साथ कृपापूर्वक प्रस्थान करें॥ ४४॥

ततो विष्णुरुवाचेदं प्रस्तावसदृशं वचः।
प्रणम्य शंकरं भक्त्या विज्ञानप्रीतमानसः॥ ४५

तदुपरान्त शिवतत्त्वको जाननेके कारण प्रसन्न चित्तवाले विष्णुने भक्तिपूर्वक शिवजीको प्रणामकर उस प्रस्तावके अनुरूप कहना प्रारम्भ किया॥ ४५॥

विष्णुरुवाच

देवदेव महादेव शरणागतवत्सल।
कार्यकर्ता स्वभक्तानां विज्ञप्तिं शृणु मे प्रभो॥ ४६

विष्णु बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे शरणागतवत्सल! आप अपने भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं। अतः हे प्रभो! मेरा निवेदन सुनें॥ ४६॥

गृह्योक्तविधिना शम्भो स्वविवाहस्य शंकर।
गिरीशसुतया देव्या कर्म कर्तुमिहार्हसि॥ ४७

त्वया च क्रियमाणे तु विवाहस्य विधौ हर।
स एव हि तथा लोके सर्वः सुख्यातिमाप्नुयात्॥ ४८

मण्डपस्थापनं नान्दीमुखं तत्कुलधर्मतः।
कारय प्रीतितो नाथ लोके स्वं ख्यापयन् यशः॥ ४९

हे शम्भो! हे शंकर! आप गृह्यसूत्रकी विधिसे गिरीशसुता देवी पार्वतीके साथ अपने विवाहका कर्म कीजिये। हे हर! यदि आप गृह्यसूत्रकी विधिसे विवाहकर्म करेंगे, तो सारे लोकमें इसी प्रकारसे विवाहकी विधि प्रसिद्ध हो जायगी। हे नाथ! इस लोकमें आप अपने यशकी घोषणा करते हुए कुलधर्मके अनुसार मण्डपस्थापन तथा नान्दीमुख-कृत्य प्रसन्नतापूर्वक कीजिये॥ ४७—४९॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तस्तदा शम्भुर्विष्णुना परमेश्वरः।
लौकिकाचारनिरतो विधिना तच्चकार सः॥ ५०
अहं ह्यधिकृतस्तेन सर्वमभ्युदयोचितम्।
अकुर्वं मुनिभिः प्रीत्या तत्र तत्कर्म चादरात्॥ ५१
कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च गौतमो भागुरिर्गुरुः।
कण्वो बृहस्पतिः शक्तिर्जमदग्निः पराशरः॥ ५२
मार्कण्डेयश्शिलापाकोऽरुणपालोऽकृतश्रमः।
अगस्त्यश्च्यवनो गर्गश्शिलादोऽथ महामुने॥ ५३
दधीचिरुपमन्युश्च भरद्वाजोऽकृतव्रणः।
पिप्पलादोऽथ कुशिकः कौत्सो व्यासः सशिष्यकः॥ ५४
एते चान्ये च बहव आगताश्शिवसन्निधिम्।
मया सुनोदितास्तत्र चक्रुस्ते विधिवत्क्रियाम्॥ ५५
वेदोक्तविधिना सर्वे वेदवेदाङ्गपारगाः।
रक्षां चक्रुर्महेशस्य कृत्वा कौतुकमङ्गलम्॥ ५६
ऋग्यजुस्सामसूक्तैस्तु तथा नानाविधैः परैः।
मङ्गलानि च भूरीणि चक्रुः प्रीत्यर्षयोऽखिलाः॥ ५७
ग्रहाणां पूजनं प्रीत्या चक्रुस्ते शम्भुना मया।
मण्डलस्थसुराणां च सर्वेषां विघ्नशान्तये॥ ५८
ततश्शिवः सुसन्तुष्टः कृत्वा सर्वं यथोचितम्।
लौकिकं वैदिकं कर्म ननाम च मुदा द्विजान्॥ ५९
अथ सर्वेश्वरो विप्रान्देवान्कृत्वा पुरस्सरान्।
निस्ससार मुदा तस्मात्कैलासात्पर्वतोत्तमात्॥ ६०
बहिः कैलासकुधराच्छम्भुस्तस्थौ मुदान्वितः।
देवैः सह द्विजैश्चैव नानास्वीकारकः प्रभुः॥ ६१
तदोत्सवो महानासीत्तत्र देवादिभिः कृतः।
सन्तुष्ट्यर्थं महेशस्य गानवाद्यसुनृत्यकः॥ ६२

ब्रह्माजी बोले—विष्णुके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर परमेश्वर शंकरजीने समस्त लौकिकाचार मुझ ब्रह्माके द्वारा सम्पन्न करवाया। [हे नारद!] उन्होंने सारे अभ्युदयका कार्यभार मेरे ऊपर सौंप दिया और मैंने भी मुनियोंके साथ प्रेमपूर्वक सभी कृत्योंको पूरा किया॥ ५०-५१॥

हे महामुने! कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, गौतम, भागुरि, गुरु, कण्व, बृहस्पति, शक्ति, जमदग्नि, पराशर, मार्कण्डेय, शिलापाक, अरुणपाल, अकृतश्रम, अगस्त्य, च्यवन, गर्ग, शिलाद, दधीचि, उपमन्यु, भरद्वाज, अकृतव्रण, पिप्पलाद, कुशिक, कौत्स, शिष्योंके सहित व्यास—ये तथा अन्य बहुत-से ऋषिगण शिवजीके समीप आये और मेरी प्रेरणासे उन्होंने विधिवत् क्रिया सम्पन्न की॥ ५२—५५॥

वेद-वेदांगके पारगामी उन ऋषियोंने शिवजीका समस्त कौतुक-मंगलकर वेदरीतिके अनुसार उनकी रक्षाका विधान किया। उन सम्पूर्ण ऋषियोंने ऋक्, यजुः, साम एवं अन्य नाना प्रकारके रक्षोघ्नसूक्तोंसे अनेक प्रकारसे मंगलपाठ किये। उन्होंने विघ्नशान्तिके लिये मुझसे तथा श्रीशिवजीसे मण्डपस्थ देवताओं तथा समस्त ग्रहोंका पूजन करवाया॥ ५६—५८॥

इस प्रकार शिवजीने प्रसन्न होकर समस्त लौकिक कुलाचार तथा वैदिक विधिका सम्पादनकर प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणोंको प्रणाम किया। उसके बाद देवताओं और ब्राह्मणोंको आगेकर सर्वेश्वर शिवजी अपने पर्वतोत्तम कैलाससे प्रसन्नतापूर्वक चले॥ ५९-६०॥

लीला करनेमें प्रवीण वे शिवजी उन देवताओं तथा ब्राह्मणोंके साथ कैलासके बहिर्भागमें आकर प्रेमसे स्थित हो गये॥ ६१॥

देवताओंने उस समय महेशकी प्रसन्नताके लिये अनेक प्रकारके गाने-बजाने तथा नृत्य-सम्बन्धी अनेक प्रकारके उत्सव किये॥ ६२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे देवनिमन्त्रणदेवागमनशिवयात्रावर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें देवनिमन्त्रण, देवागमन, शिवयात्रावर्णन नामक उनतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३९॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

शिवबरातकी शोभा, भगवान् शिवका बरात लेकर हिमालयपुरीकी ओर प्रस्थान

ब्रह्मोवाच

अथ शम्भुः समाहूय नन्द्यादीन् सकलान्गणान्।
आज्ञापयामास मुदा गन्तुं स्वेन च तत्र वै॥ १

ब्रह्माजी बोले—तदनन्तर भगवान् शम्भुने नन्दी आदि सब गणोंको बुलाकर अपने साथ उन्हें वहाँ चलनेकी आज्ञा दी॥ १॥

शिव उवाच

अपि यूयं सह मया सङ्गच्छध्वं गिरेः पुरम्।
कियद्गणानिहास्थाप्य महोत्सवपुरस्सरम्॥ २

शिवजी बोले—तुमलोग कुछ गणोंको यहीं रोककर महोत्सव करते हुए मेरे साथ हिमाचलपुरीको चलो॥ २॥

ब्रह्मोवाच

अथ ते समनुज्ञप्ता गणेशा निर्ययुर्मुदा।
स्वं स्वं बलमुपादाय तान् कथंचिद्वदाम्यहम्॥ ३

ब्रह्माजी बोले—शिवजीकी आज्ञा पाकर सभी गणेश्वर अपनी-अपनी टोली लेकर प्रसन्नतापूर्वक चलने लगे, मैं कुछ अंशमें उनका वर्णन करता हूँ—॥ ३॥

अभ्यगाच्छंखकर्णश्च गणकोट्या गणेश्वरः।
शिवेन सार्धं सङ्गन्तुं हिमाचलपुरं प्रति॥ ४

दशकोट्या केकराक्षो गणानां स महोत्सवः।
अष्टकोट्या च विकृतो गणानां गणनायकः॥ ५

शंखकर्ण नामक गणेश्वर अपने एक करोड़ गणोंसहित शिवजीके साथ हिमालयपुरीको चलनेके लिये उद्यत हुआ। केकराक्ष नामक गणराज दस करोड़ गणोंके साथ महान् उत्सवसे चला। इसी प्रकार विकृत नामक गणराज भी आठ करोड़ गणोंके साथ चला॥ ४-५॥

चतुष्कोट्या विशाखश्च गणानां गणनायकः।
पारिजातश्च नवभिः कोटिभिर्गणपुङ्गवः॥ ६

गणनायक विशाख चार करोड़ गणोंके साथ तथा गणश्रेष्ठ पारिजात नौ करोड़ गणोंके साथ चले॥ ६॥

षष्टिः सर्वान्तकः श्रीमान् तथैव विकृताननः।
गणानां दुन्दुभोऽष्टाभिः कोटिभिर्गणनायकः॥ ७

पञ्चभिश्च कपालाख्यो गणेशः कोटिभिस्तथा।
षड्भिस्सन्दारको वीरो गणानां कोटिभिर्मुने॥ ८

श्रीमान् सर्वान्तक तथा विकृतानन साठ-साठ करोड़ गण लेकर चले। दुन्दुभ नामक गणनायक आठ करोड़ गणोंके साथ चला। हे मुने! कपाल नाम गणेश्वर पाँच करोड़ गणोंके साथ और वीर सन्दारक छः करोड़ गणोंको साथ लेकर चले॥ ७-८॥

कोटिकोटिभिरेवेह कन्दुकः कुण्डकस्तथा।
विष्टम्भो गणपोऽष्टाभिर्गणानां कोटिभिस्तथा॥ ९

कन्दुक तथा कुण्डक एक-एक करोड़ गणोंके साथ और गणेश्वर विष्टम्भ आठ करोड़ गणोंके साथ चले॥ ९॥

सहस्रकोट्या गणपः पिप्पलो मुदितो ययौ।
तथा सनादको वीरो गणेशो मुनिसत्तम॥ १०

हे मुनिसत्तम! पिप्पल नामक गणेश्वर एक सहस्रकोटि गणोंके साथ और इतने ही गणोंके साथ वीर गणेश्वर सनादक प्रसन्नतापूर्वक चले॥ १०॥

आवेशनस्तथाष्टाभिः कोटिभिर्गणनायकः।
महाकेशः सहस्रेण कोटीनां गणपो ययौ॥ ११

गणेश्वर आवेशन आठ करोड़ गणोंके साथ तथा गणाधीश महाकेश सहस्र कोटि गणोंके साथ चले॥ ११॥

कुण्डो द्वादशकोट्या हि तथा पर्वतको मुने।
अष्टाभिः कोटिभिर्वीरः समगाच्चन्द्रतापनः॥ १२

हे मुने! इसी प्रकार कुण्ड और पर्वतक बारह करोड़ गणोंको तथा वीर चन्द्रतापन आठ करोड़ गणोंको साथ लेकर चले॥ १२॥

कालश्च कालकश्चैव महाकालः शतेन वै।
कोटीनां गणनाथो हि तथैवाग्निकनामकः॥ १३

काल, कालक, महाकाल तथा अग्निक नामक गणनायक सौ-सौ करोड़ गणोंको साथ लेकर चले॥ १३॥

कोट्यग्निमुख एवागाद् गणानां गणनायकः।
आदित्यमूर्धा कोट्या च तथा चैव घनावहः॥ १४

इसी प्रकार अग्निमुख, आदित्यमूर्धा तथा घनावह एक-एक करोड़ गणोंको साथ लेकर चले॥ १४॥

सन्नाहः शतकोट्या हि कुमुदो गणपस्तथा।
अमोघः कोकिलश्चैव शतकोट्या गणाधिपः॥ १५
सुमन्त्रः कोटिकोट्या च गणानां गणनायकः।
काकपादोदरः कोटिषष्ट्या सन्तानकस्तथा॥ १६

सन्नाह, कुमुद, अमोघ और कोकिल नामक गणराज सौ-सौ करोड़ गण लेकर चले। गणाध्यक्ष सुमन्त्र करोड़ों-करोड़ों गणोंको लेकर तथा काकपादोदर एवं सन्तानक साठ करोड़ गणोंको लेकर चले॥ १५-१६॥

महाबलश्च नवभिर्मधुपिङ्गश्च कोकिलः।
नीलो नवत्या कोटीनां पूर्णभद्रस्तथैव च॥ १७

महाबल नौ करोड़ और मधुपिंग, कोकिल, नील तथा पूर्णभद्र नब्बे करोड़ गणोंके साथ चले॥ १७॥

सप्तकोट्या चतुर्वक्त्रः करणो विंशकोटिभिः।
ययौ नवतिकोट्या तु गणेशानोऽहिरोमकः॥ १८

चतुर्वक्त्र सात करोड़, करण बीस करोड़ तथा गणेश्वर नब्बे करोड़ गणोंके साथ चले॥ १८॥

यज्वाक्षः शतमन्युश्च मेघमन्युश्च नारद।
तावत्कोट्या ययुः सर्वे गणेशा हि पृथक् पृथक्॥ १९

इसी प्रकार हे नारद! यज्वाक्ष, शतमन्यु एवं मेघमन्यु—ये सभी गणेश्वर नब्बे-नब्बे करोड़ गणोंके साथ पृथक्-पृथक् चले॥ १९॥

काष्ठाङ्गुष्ठश्चतुःषष्ट्या कोटीनां गणनायकः।
विरूपाक्षः सुकेशश्च वृषभश्च सनातनः॥ २०

गणनायक काष्ठांगुष्ठ, विरूपाक्ष, सुकेश, सनातन और वृषभ चौंसठ करोड़ गणोंके साथ चले॥ २०॥

तालकेतुः षडास्यश्च चञ्च्वास्यश्च सनातनः।
संवर्तकस्तथा चैत्रो लकुलीशः स्वयम्प्रभुः॥ २१
लोकान्तकश्च दीप्तात्मा तथा दैत्यान्तको मुने।
देवो भृंगिरिटिः श्रीमान्देवदेवप्रियस्तथा॥ २२
अशनिर्भानुकश्चैव चतुःषष्ट्या सहस्रशः।
ययुः शिवविवाहार्थं शिवेन सहसोत्सवाः॥ २३

हे मुने! तालकेतु, षण्मुख, चंचुमुख, सनातन, संवर्तक, चैत्र, लकुलीश, स्वयंप्रभु, लोकान्तक, दीप्तात्मा, दैत्यान्तक, देव भृंगिरिटि, श्रीमान्, देवदेवप्रिय, अशनि, भानुक आदि चौंसठ हजार गणोंके साथ बड़े उत्साहसे शिवजीके विवाहके लिये उनके साथ चले॥ २१—२३॥

भूतकोटिसहस्रेण प्रमथाः कोटिभिस्त्रिभिः।
वीरभद्रश्चतुःषष्ट्या रोमजानान्त्रिकोटिभिः॥ २४

प्रमथगण सहस्रों भूतगणोंके साथ तथा तीन करोड़ अपने गणोंके साथ चले। वीरभद्र चौंसठ करोड़ गणोंके साथ तथा तीन करोड़ रोमज प्रेतगणोंको साथ लेकर चले॥ २४॥

कोटिकोटिसहस्राणां शतैर्विंशतिभिर्वृताः।
तत्र जग्मुश्च नन्द्याद्या गणपाः शंकरोत्सवे॥ २५

इसी प्रकार नन्दी आदि गणेश्वर भी एक सौ बीस हजार करोड़ गणोंसे युक्त होकर शंकरके उत्सवमें चले॥ २५॥

क्षेत्रपालो भैरवश्च कोटिकोटिगणैर्युतः।
उद्वाहः शंकरस्येत्याययौ प्रीत्या महोत्सवः॥ २६
एते चान्ये च गणपा असङ्ख्याता महाबलाः।
तत्र जग्मुर्महाप्रीत्या सोत्साहाः शंकरोत्सवे॥ २७

यह शंकरका विवाह-महोत्सव है—ऐसा जानकर क्षेत्रपाल, भैरव करोड़-करोड़ गणोंके साथ प्रीतिपूर्वक आये। ये गण तथा शिवके असंख्य गण जो अत्यन्त बलवान् थे, वे उत्साह तथा प्रीतिसे युक्त हो शिवजीके विवाहोत्सवमें वहाँ गये॥ २६-२७॥

सर्वे सहस्रहस्ताश्च जटामुकुटधारिणः।
चन्द्ररेखावतंसाश्च नीलकण्ठास्त्रिलोचनाः॥ २८

इन सभी गणेश्वरोंके हजारों हाथ थे तथा वे सिरपर जटामुकुट धारण किये हुए थे। वे मस्तकपर चन्द्ररेखा धारण किये हुए थे, नीले कण्ठसे युक्त थे तथा तीन नेत्रोंवाले थे। वे सब

रुद्राक्षाभरणाः सर्वे तथा सद्भस्मधारिणः।
हारकुण्डलकेयूरमुकुटाद्यैरलंकृताः ॥ २९
ब्रह्मविष्णिवन्द्रसंकाशा अणिमादिगुणैर्युताः।
सूर्यकोटिप्रतीकाशास्तत्र रेजुर्गणेश्वराः ॥ ३०

आभूषणके रूपमें रुद्राक्ष धारण किये हुए थे। उत्तम भस्म लगाये हुए थे। हार, कुण्डल, केयूर तथा मुकुटसे अलंकृत थे। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्रके समान अणिमादि गुणोंसे अलंकृत कोटि सूर्यके समान देदीप्यमान वे सभी गणेश्वर शोभासे समन्वित थे॥ २८—३०॥

पृथिवीचारिणः केचित् केचित्पातालचारिणः।
केचिद्व्योमचराः केचित्सप्तस्वर्गचरा मुने॥ ३१

किं बहूक्तेन देवर्षे सर्वलोकनिवासिनः।
आययुः स्वगणाः शम्भोः प्रीत्या वै शङ्करोत्सवे॥ ३२

हे मुने! इनमें कुछ पृथिवीपर, कुछ पातालमें चलनेवाले तथा कोई आकाशगामी तथा कोई सप्तस्वर्गमें विचरण करनेवाले थे। हे देवर्षे! मैं बहुत वर्णन क्या करूँ, सभी लोकोंमें रहनेवाले वे सभी गणेश्वर शिवके विवाहका महोत्सव देखनेके लिये बड़े प्रेमसे आये॥ ३१-३२॥

इत्थं देवैर्गणैश्चान्यैः सहितः शङ्करः प्रभुः।
ययौ हिमगिरिपुरं विवाहार्थं निजस्य वै॥ ३३
यदा जगाम सर्वेशो विवाहार्थं सुरादिभिः।
तदा तत्र ह्यभूद् वृत्तं तच्छृणु त्वं मुनीश्वर॥ ३४

इस प्रकार इन देवताओं तथा गणोंसे युक्त भगवान् सदाशिवने अपना विवाह करनेके लिये हिमालयके नगरको प्रस्थान किया। हे मुनीश्वर! जिस समय सर्वेश्वर शिवजी देवताओं एवं गणोंके साथ विवाहके लिये चले, उस समयका वृत्तान्त सुनिये॥ ३३-३४॥

रुद्रस्य भगिनी भूत्वा चण्डी सूत्सवसंयुता।
तत्राजगाम सुप्रीत्या परेषां सुभयावहा॥ ३५

शत्रुओंको भय देनेवाली चण्डी रुद्रकी भगिनी बनकर उत्सव मनाती हुई बड़े प्रेमके साथ वहाँ आयी॥ ३५॥

प्रेतासनसमारूढा सर्पाभरणभूषिता।
पूर्णं कलशमादाय हैमं मूर्ध्नि महाप्रभम्॥ ३६

स्वपरीवारसंयुक्ता दीप्तास्या दीप्तलोचना।
कुतूहलं प्रकुर्वन्ती जातहर्षा महाबला॥ ३७

वह चण्डी प्रेतके आसनपर सवार थी; सर्पका आभूषण पहने हुई थी और सिरपर महादेदीप्यमान जलपूर्ण कलश धारण किये हुई थी। वह अपने परिवारसे युक्त थी। उसके मुख तथा नेत्रसे अग्निकी ज्वाला निकल रही थी। वह बलशालिनी हर्षसे युक्त होकर नाना प्रकारके कुतूहल कर रही थी॥ ३६-३७॥

तत्र भूतगणा दिव्या विरूपाः कोटिशो मुने।
विराजन्ते स्म बहुशः तथा नानाविधास्तदा॥ ३८

हे मुने! वहाँ विकृत वेष धारण किये हुए अनेक प्रकारके करोड़ों दिव्य भूतगण शोभित हो रहे थे॥ ३८॥

तैः समेताग्रतश्चण्डी जगाम विकृतानना।
कुतूहलान्विता प्रीता प्रीत्युपद्रवकारिणी॥ ३९

इन भूतगणोंको साथ लेकर भयानक मुखवाली उपद्रवकारिणी वह चण्डी कुतूहल करती हुई प्रसन्नतापूर्वक वहाँ गयी॥ ३९॥

चण्ड्या सर्वे रुद्रगणाः पृष्ठतश्च कृतास्तदा।
कोट्येकादशसंख्याका रौद्रारुद्रप्रियाश्च ते॥ ४०

उस चण्डीने रुद्रमें अनन्य प्रीति करनेवाले ग्यारह हजार करोड़ रुद्रगणोंको अपने पीछे कर लिया॥ ४०॥

तदा डमरुनिर्घोषैर्व्याप्तमासीज्जगत्त्रयम्।
भेरीझंकारशब्देन शंखानां निनदेन च॥ ४१

उस समय डमरूके शब्द, भेरियोंकी गड़गड़ाहट और शंखोंके नादसे तीनों लोक गूँज रहे थे॥ ४१॥

तदा दुन्दुभिनिर्घोषैः शब्दः कोलाहलोऽभवत्।
कुर्वञ्जगन्मङ्गलं च नाशयेन्मङ्गलेतरत्॥ ४२
गणानां पृष्ठतो भूत्वा सर्वे देवाः समुत्सुकाः।
अन्वयुः सर्वसिद्धाश्च लोकपालादिका मुने॥ ४३

इसी प्रकार दुन्दुभिके निर्घोषसे बहुत बड़ा कोलाहल हुआ, जो जगत्में मंगल करनेवाला तथा अमंगलका विनाशक था। मुने! बरातमें गणोंके पीछे होकर सभी देवता, सिद्धगण तथा लोकपाल अत्यन्त उत्कण्ठाके साथ चलने लगे॥ ४२-४३॥

मध्ये व्रजन् रमेशोऽथ गरुडासनमाश्रितः।
शुशुभे ध्रियमाणेन छत्रेण महता मुने॥ ४४
चामरैर्वीज्यमानोऽसौ स्वगणैः परिवारितः।
पार्षदैर्विलसद्भिश्च स्वभूषाविधिभूषितः॥ ४५

हे मुने! बरातके मध्यभागमें बहुत बड़े छत्रसे शोभित गरुड़ासनपर बैठे हुए भगवान् वैकुण्ठनाथ विष्णु विविध प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित होकर चल रहे थे। उनके अगल-बगल पार्षद घेरे हुए थे तथा उनके दोनों ओर चँवर डुलाये जा रहे थे॥ ४४-४५॥

तथाहमप्यशोभं वै व्रजन्मार्गे विराजितः।
वेदैर्मूर्तिधरैः शास्त्रैः पुराणैरागमैस्तथा॥ ४६
सनकादिमहासिद्धैः सप्रजापतिभिः सुतैः।
परिवारैः संयुतो हि शिवसेवनतत्परः॥ ४७
स्वसैन्यमध्यगः शक्र ऐरावतगजस्थितः।
नानाविभूषितोऽत्यन्तं व्रजन् रेजे सुरेश्वरः॥ ४८

विग्रहधारी वेदों, शास्त्रों, पुराणों, आगमों तथा सनक आदि महासिद्धों, प्रजापतियों, पुत्रों और परिवारके साथ मैं भी शिवजीकी सेवामें तत्पर हो मार्गमें शोभासम्पन्न होकर चल रहा था। ऐरावत हाथीपर आरूढ़ देवराज इन्द्र अनेक प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित होकर सेनाके मध्यमें चलते हुए शोभा पा रहे थे॥ ४६—४८॥

तदा तु व्रजमानास्ते ऋषयो बहवश्च ते।
विरेजुरतिसोत्कण्ठाः शिवस्योद्वाहनं प्रति॥ ४९

उस समय विवाह देखनेकी उत्कण्ठासे बहुत-से ऋषिगण भी मार्गमें जाते हुए शोभा पा रहे थे॥ ४९॥

शाकिन्यो यातुधानाश्च वेतालाब्रह्मराक्षसाः।
भूतप्रेतपिशाचाश्च तथान्ये प्रमथादयः॥ ५०
तुम्बुरुर्नारदो हाहाहूहूश्चेत्यादयो वराः।
गन्धर्वाः किन्नरा जग्मुर्वाद्यानाध्माय हर्षिताः॥ ५१

इसी प्रकार शाकिनी, यातुधान, वेताल, ब्रह्मराक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच, प्रमथ, तुम्बुरु, नारद, हाहा, हूहू आदि श्रेष्ठ गन्धर्व एवं किन्नरगण हर्षित होकर बाजा बजाते हुए चले॥ ५०-५१॥

जगतो मातरः सर्वा देवकन्याश्च सर्वशः।
गायत्री चैव सावित्री लक्ष्मीरन्याः सुरस्त्रियः॥ ५२
एताश्चान्याश्च देवानां पत्नयो भवमातरः।
उद्वाहः शंकरस्येति जग्मुः सर्वा मुदान्विताः॥ ५३

सम्पूर्ण जगत्की माताएँ, देवकन्याएँ, गायत्री, सावित्री, लक्ष्मी, अन्य देवस्त्रियाँ—ये सब तथा अन्य देवपत्नियाँ और जगन्माताएँ शंकरजीका विवाह हो रहा है—ऐसा जानकर प्रसन्नतापूर्वक वहाँ गयीं॥ ५२-५३॥

शुद्धस्फटिकसंकाशो वृषभः सर्वसुन्दरः।
यो धर्म उच्यते वेदैः शास्त्रैः सिद्धैर्महर्षिभिः॥ ५४
तमारूढो महादेवो वृषभं धर्मवत्सलः।
शुशुभेऽतीव देवर्षिसेवितः सकलैर्व्रजन्॥ ५५
एभिः समेतैः सकलैर्महर्षिभि-
र्बभौ महेशो बहुशोऽत्यलंकृतः।
हिमालयाह्वस्य धरस्य संव्रजन्
पाणिग्रहार्थं सदनं शिवायाः॥ ५६

शुद्ध स्फटिकके समान सर्वसुन्दर वृषभ, जिसे वेदों, शास्त्रों तथा महर्षियोंने धर्म कहा है, उसपर सवार होकर धर्मवत्सल भगवान् शिवजी सम्पूर्ण देवगणों तथा ऋषियोंसे सेवित हो मार्गमें चलते हुए अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे। इन सभी देवगणों, महर्षियों तथा गणोंके साथ अलंकृत हुए शिवजी पार्वतीसे विवाह करनेके लिये हिमाचलके घर जाते हुए मार्गमें अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे॥ ५४—५६॥

इत्युक्तं शम्भुचरितं गमनं परमोत्सवम्।
हिमालयपुरोद्भूतं सद्वृत्तं शृणु नारद॥ ५७

हे नारद! इस प्रकार मैंने शिवजीके वरयात्रा-प्रस्थानका आपसे वर्णन किया, अब हिमालयके नगरमें जो शिवचरित्र हुआ, उस वृत्तान्तको सुनिये॥ ५७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शिवयात्रावर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें शिवयात्रावर्णन नामक चालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४०॥

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

नारदद्वारा हिमालयगृहमें जाकर विश्वकर्माद्वारा बनाये गये विवाहमण्डपका दर्शनकर मोहित होना और वापस आकर उस विचित्र रचनाका वर्णन करना

ब्रह्मोवाच

ततः सम्मन्त्र्य च मिथः प्राप्याज्ञां शांकरीं हरिः।
मुने त्वां प्रेषयामास प्रथमं कुधरालयम्॥ १

अथ प्रणम्य सर्वेशं गतस्त्वं नारदाग्रतः।
हरिणा नोदितः प्रीत्या हिमाचलगृहं प्रति॥ २

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! उसके बाद आपसमें विचार-विमर्शकर शंकरजीकी आज्ञा लेकर भगवान् विष्णुने पहले आपको हिमालयके घर भेजा। हे नारद! भगवान् श्रीहरिकी प्रेमपूर्ण प्रेरणासे सर्वेश्वर शिवको प्रणामकर आप बरातसे आगे हिमालयके नगरको चले॥ १-२॥

त्वं मुनेऽपश्य आत्मानं गत्वा तद्व्रीडयान्वितम्।
कृत्रिमं रचितं तत्र विस्मितो विश्वकर्मणा॥ ३

श्रान्तस्त्वमात्मना तेन कृत्रिमेण महामुने।
अवलोकपरः सोऽभूच्चरितं विश्वकर्मणः॥ ४

प्रविष्टो मण्डपं तस्य हिमाद्रे रत्नचित्रितम्।
सुवर्णकलशैर्जुष्टं रम्भादिबहुशोभितम्॥ ५

हे मुने! वहाँ जाकर आपने विश्वकर्माद्वारा रचित लज्जाकी मुद्रासे युक्त अपनी कृत्रिम मूर्ति देखी और उसे देखते ही आप विस्मित हो गये। हे महामुने! विश्वकर्माद्वारा बनायी गयी अपनी मूर्तिको देखकर तथा विश्वकर्माका सारा चरित्र जानकर आप श्रान्त हो गये। तत्पश्चात् आपने स्वर्णकलशोंसे एवं केलेके खम्भोंसे अत्यन्त मण्डित रत्नचित्रित हिमालयके मण्डपमें प्रवेश किया॥ ३—५॥

सहस्रस्तम्भसंयुक्तं विचित्रं परमाद्भुतम्।
वेदिकां च तथा दृष्ट्वा विस्मयं त्वं मुने ह्ययाः॥ ६

वह मण्डप अति अद्भुत, नाना प्रकारके चित्रोंसे अलंकृत तथा हजारों खम्भोंसे युक्त था। उसमें बनी हुई वेदी देखकर आप आश्चर्यमें पड़ गये॥ ६॥

तदावोचश्च स मुने नारद त्वं नगेश्वरम्।
विस्मितोऽतीव मनसि नष्टज्ञानो विमूढधीः॥ ७

हे मुने! हे नारद! उस विस्मयके कारण आपका ज्ञान एवं बुद्धि नष्ट हो गयी, पुनः आपने हिमालयसे पूछा—॥ ७॥

आगतास्ते किमधुना देवा विष्णुपुरोगमाः।
तथा महर्षयः सर्वे सिद्धा उपसुरास्तथा॥ ८

महादेवो वृषारूढो गणैश्च परिवारितः।
आगतः किं विवाहार्थं वद तथ्यं नगेश्वर॥ ९

हे हिमालय! क्या इस समय विष्णु आदि सभी देवता, महर्षि, सिद्ध एवं गन्धर्व यहाँ पहुँच गये हैं? हे पर्वतराज! क्या विवाहहेतु श्वेत बैलपर सवार होकर गणेश्वरोंसे युक्त सदाशिव पधार चुके हैं? यह बात आप सत्य-सत्य कहिये॥ ८-९॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा तव विस्मितचेतसः।
उवाच त्वां मुने तथ्यं वाक्यं स हिमवान् गिरिः॥ १०

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! विस्मितचित्त हुए आपके इस प्रकारके वचनको सुनकर पर्वत हिमालय आपसे तथ्ययुक्त वचन कहने लगे—॥ १०॥

हिमवानुवाच

हे नारद महाप्राज्ञागतो नैवाधुना शिवः।
विवाहार्थं च पार्वत्याः सगणः सवरातकः॥ ११

हिमवान् बोले—हे नारद! हे महाप्राज्ञ! अभी पार्वतीके विवाहके लिये अपने गणों तथा बरातियोंको लेकर शिवजी नहीं आये हैं॥ ११॥

विश्वकर्मकृतं चित्रं विद्धि नारद सद्धिया।
विस्मयं त्यज देवर्षे स्वस्थो भव शिवं स्मर॥ १२

हे नारद! आप उत्तम बुद्धिसे विश्वकर्माके द्वारा रचित चित्र जानिये। हे देवर्षे! आप आश्चर्यका त्याग कीजिये, स्वस्थ हो जाइये और शिवका स्मरण कीजिये॥ १२॥

भुक्त्वा विश्रम्य सुप्रीतः कृपां कृत्वा ममोपरि।
मैनाकादिधरैः सार्धं गच्छ त्वं शंकरान्तिकम्॥ १३

आप मुझपर कृपाकर भोजन तथा विश्राम करके मैनाक आदि पर्वतोंके साथ शंकरके समीप जाना॥ १३॥

एभिस्समेतो गिरिभिर्महामते
संप्रार्थ्य शीघ्रं शिवमत्र चानय।
देवैः समेतं च महर्षिसंघैः
सुरासुरैरर्चितपादपल्लवम्॥ १४

हे महामते! जिनके चरणकमलकी अर्चना देवता तथा असुर भी किया करते हैं, उन शिवकी प्रार्थनाकर आप इन पर्वतोंको साथ लेकर देवताओं तथा महर्षियोंसहित उन्हें यहाँ शीघ्र ले आइये॥ १४॥

ब्रह्मोवाच

तथेति चोक्त्वागम आशु हि त्वं
तदैव तैः शैलसुतादिभिश्च।
तत्रत्यकृत्यं सुविधाय भुक्त्वा
महामनास्त्वं शिवसन्निधानम्॥ १५

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] तब आपने 'तथास्तु' कहा और वहाँका सारा कृत्य अच्छी तरह सम्पन्नकर भोजन करके महामनस्वी आप हिमालयके पुत्रोंसहित बड़ी प्रसन्नतासे शीघ्र शिवजीके समीप गये॥ १५॥

तत्र दृष्टो महादेवो देवादिपरिवारितः।
नमस्कृतस्त्वया दीप्तः शैलैस्तैर्भक्तितश्च वै॥ १६

वहाँ आपने देवताओंसे घिरे हुए महादेवजीको देखा। आपने तथा उन पर्वतोंने भक्तिसे उन कान्तिमान् शिवको प्रणाम किया॥ १६॥

तदा मया विष्णुना च सर्वे देवाः सवासवाः।
पप्रच्छुस्त्वां मुने सर्वे रुद्रस्यानुचरास्तथा॥ १७

विस्मिताः पर्वतान्दृष्ट्वा सन्देहाकुलमानसाः।
मैनाकसह्यमेर्वाद्यान्नानालंकारसंयुतान्॥ १८

तत्पश्चात् हे मुने! अनेक प्रकारके अलंकारोंसे युक्त मैनाक, सह्य, मेरु आदि पर्वतोंको देखकर सन्देहसे आकुल मनवाले मैंने, विष्णुने तथा इन्द्रसे युक्त देवताओं एवं रुद्रानुचरोंने विस्मित होकर आपसे पूछा—॥ १७-१८॥

देवा ऊचुः

हे नारद महाप्राज्ञ विस्मितस्त्वं हि दृश्यसे।
सत्कृतोऽसि हिमागेन किं न वा वद विस्तरात्॥ १९

एते कस्मात्समायाताः पर्वता इह सत्तमाः।
मैनाकसह्यमेर्वाद्याः सुप्रतापाः स्वलंकृताः॥ २०

कन्यां दास्यति शैलोऽसौ शंभवे वा न नारद।
हिमालयगृहे तात किं भवत्यद्य तद्वद॥ २१

देवता बोले—हे नारद! हे महाप्राज्ञ! आप तो आश्चर्यसे चकित दिखायी पड़ते हैं, हिमालयने आपका सत्कार किया या नहीं। हमलोगोंको यह विस्तारपूर्वक बताइये। ये महाबली मैनाक, सह्य तथा मेरु आदि पर्वत अनेक अलंकार धारणकर यहाँ किस उद्देश्यसे आये हैं। हे नारद! आप यह भी बताइये कि पर्वतराज हिमालयका विचार शिवजीको कन्या देनेका है या नहीं? हे तात! इस समय हिमालयके यहाँ क्या हो रहा है, यह सब विस्तारसे कहिये॥ १९—२१॥

इति सन्दिग्धमनसामस्माकं च दिवौकसाम्।
वद त्वं पृच्छमानानां सन्देहं हर सुव्रत॥ २२

हे सुव्रत! हम देवताओंका मन अनेक प्रकारके सन्देहसे ग्रस्त हो रहा है, इसलिये हमलोग आपसे पूछ रहे हैं, आप हमारा सन्देह दूर करें॥ २२॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां विष्ण्वादीनान्दिवौकसाम्।
अवोचस्तान्मुने त्वं हि विस्मितस्त्वाष्ट्रमायया॥ २३

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! उन विष्णु आदि देवताओंका वचन सुनकर विश्वकर्माकी मायासे विस्मित हुए आपने उनसे कहा—॥ २३॥

एकान्तमाश्रित्य च मां हि विष्णु-
मभाषथा वाक्यमिदं मुने त्वम्।
शचीपतिं सर्वसुरेश्वरं वै
पक्षच्छिदं पूर्वरिपुं धराणाम्॥ २४

हे मुने! आप मुझ विष्णुको और सभी देवताओंके ईश्वर शचीके पति, पर्वतोंके पूर्व शत्रु तथा पर्वतोंके पक्षको काटनेवाले इन्द्रको एकान्तमें बुलाकर कहने लगे—॥ २४॥

नारद उवाच

त्वष्ट्रा कृतं तद्विकृतं विचित्रं
विमोहनं सर्वदिवौकसां हि।
येनैव सर्वान्स विमोहितुं सुरान्
समिच्छति प्रेमत एव युक्त्या॥ २५

नारदजी बोले—विश्वकर्माने हिमालयके घर जैसी कारीगरी की है, उसे देखते ही सभी देवगण मोहित हो जायँगे। वे हिमालय तो उस कारीगरीके कौशलसे सारे देवताओंको प्रेमपूर्वक युक्तिसे मोहित करना चाहते हैं॥ २५॥

पुरा कृतं तस्य विमोहनं त्वया
सुविस्मृतं तत् सकलं शचीपते।
तस्मादसौ त्वां विजिगीषुरेव
गृहे ध्रुवं तस्य गिरेर्महात्मनः॥ २६
अहं विमोहितस्तेन प्रतिरूपेण भास्वता।
तथा विष्णुः कृतस्तेन ब्रह्मा शक्रोऽपि तादृशः॥ २७

हे शचीपते! आपने पूर्वकालमें विश्वकर्माको भुलावेमें डाल दिया था, क्या उसे आप भूल गये हैं? इसलिये वे आज आपको जीतनेकी इच्छासे हिमालयके घरमें विराजमान हैं। उन्होंने मेरा ऐसा चित्र बनाया है कि उसे देखकर मैं तो मोहित हो गया हूँ। इसी प्रकार उन्होंने विष्णु, ब्रह्मा तथा इन्द्र आदि देवताओंके चित्रका भी निर्माण किया है॥ २६-२७॥

किं बहूक्तेन देवेश सर्वदेवगणाः कृताः।
कृत्रिमाश्चित्ररूपेण न किंचिदवशेषितम्॥ २८

विमोहनार्थं सर्वेषां देवानां च विशेषतः।
कृता माया चित्रमयी परिहासविकारिणी॥ २९

हे देवेश! अधिक कहनेसे क्या! उन विश्वकर्माने सभी देवगणोंका चित्र इतनी कुशलतासे बनाया है कि वह यथार्थ देवताओंके रूपसे किंचिन्मात्र भी भिन्न नहीं जान पड़ता। उन्होंने परिहास करनेके लिये सभी देवताओंकी यह मायामयी चित्ररचना की है, जिससे देवताओंको मोह उत्पन्न हो जाय॥ २८-२९॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य देवेन्द्रो वाक्यमब्रवीत्।
विष्णुं प्रति तदा शीघ्रं भयाकुलतनुर्हरिम्॥ ३०

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार नारदके वचनको सुनकर भयसे व्याकुल शरीरवाले देवेन्द्रने विष्णुकी ओर देखकर शीघ्रतासे कहा—॥ ३०॥

देवेन्द्र उवाच

देवदेव रमानाथ त्वष्टा मां निहनिष्यति।
पुत्रशोकेन तमोऽसौ व्याजेनानेन नान्यथा॥ ३१

देवेन्द्र बोले—हे देवदेव! हे रमानाथ! त्वष्टापुत्र विश्वकर्मा शोकसे व्याकुल हो मुझसे द्रोह करता है। कहीं ऐसा न हो कि वह इसी बहाने मेरा वध कर दे॥ ३१॥

ब्रह्मोवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा देवदेवो जनार्दनः।
उवाच प्रहसन् वाक्यं शक्रमाश्वासयंस्तदा॥ ३२

ब्रह्माजी बोले—उनका यह वचन सुनकर देवाधिदेव जनार्दन उन्हें समझाते हुए कहने लगे—॥ ३२॥

विष्णुरुवाच

निवातकवचैः पूर्वं मोहितोऽसि शचीपते।
महाविद्याबलेनैव दानवैः पूर्ववैरिभिः॥ ३३

पर्वतो हिमवानेष तथान्येऽखिलपर्वताः।
विपक्षा हि कृताः सर्वे मम वाक्याच्च वासव॥ ३४

तेऽनुस्मृत्या तु वै दृष्ट्वा मायया गिरयो ह्यमी।
जेतुमिच्छन्ति ये मूढा न भेतव्यमरावपि॥ ३५

ईश्वरो नो हि सर्वेषां शंकरो भक्तवत्सलः।
सर्वथा कुशलं शक्र करिष्यति न संशयः॥ ३६

विष्णुजी बोले—हे शचीपते! आपके वैरी निवात-कवचादि दानवगणोंने महाविद्याके बलसे पूर्वसमयमें भी आपको मोहित किया था। हे वासव! इसी प्रकार आपने मेरी आज्ञासे पर्वतराज हिमालयके तथा अन्य दूसरे पर्वतोंके पंखका छेदन कर दिया है। इस कारण ये पर्वत भी उसी मायाको देखकर तथा सुनकर आपको जीतनेकी इच्छा करते हैं। ये सभी मूर्ख हैं और पराक्रम नहीं जानते हैं, अतः आप इनसे भयभीत न हों॥ ३३—३५॥

हे देवेन्द्र! इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि भक्तवत्सल भगवान् सदाशिव हम सभीका मंगल करेंगे॥ ३६॥

ब्रह्मोवाच

एवं संवदमानं तं शक्रं विकृतमानसम्।
हरिणोक्तश्च गिरिशो लौकिकीं गतिमाश्रितः॥ ३७

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार व्याकुल हुए इन्द्रको देखकर विष्णुने उन्हें समझाया। तब लौकिक गतिका आश्रय लेनेवाले भगवान् शिव उनसे कहने लगे—॥ ३७॥

ईश्वर उवाच

हे हरे हे सुरेशान किं ब्रूथोऽद्य परस्परम्।
इत्युक्त्वा तौ महेशानो मुने त्वां प्रत्युवाच सः॥ ३८

किं नु वक्ति महाशैलो यथार्थं वद नारद।
वृत्तान्तं सकलं ब्रूहि न गोप्यं कर्तुमर्हसि॥ ३९

ददाति वा नैव ददाति शैलः
सुतां स्वकीयां वद तच्च शीघ्रम्।
किं ते दृष्टं किं कृतं तत्र गत्वा
प्रीत्या सर्वं तद्वदाश्वद्य तात॥ ४०

ईश्वर बोले—हे हरे! हे सुरपते! आपलोग आपसमें क्या विचार-विमर्श कर रहे हैं? [ब्रह्माजी बोले—] उन दोनोंसे इस प्रकार कहकर हे मुने! पुनः उन्होंने आपसे कहा—हे नारद! महाशैलने क्या कहा है, आप यथार्थ रूपसे सारा वृत्तान्त कहिये, आप उसे गुप्त न रखें॥ ३८-३९॥

आप शीघ्रतासे बताइये कि शैलराजकी कन्या देनेकी इच्छा है अथवा नहीं? हे तात! आपने वहाँ जाकर क्या देखा और क्या किया? यह सारा वृत्तान्त प्रेमपूर्वक कहिये॥ ४०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तः शम्भुना तत्र मुने त्वं देवदर्शनः।
सर्वं रहस्यवोचो वै यद् दृष्टं तत्र मण्डपे॥ ४१

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! जब शिवजीने आपसे यह कहा, तब दिव्य दृष्टिवाले आपने मण्डपमें जो कुछ देखा था, वह सब एकान्तमें इस प्रकार कहा—॥ ४१॥

नारद उवाच

देवदेव महादेव शृणु मद्वचनं शुभम्।
नास्ति विघ्नभयं नाथ विवाहे किंचिदेव हि॥ ४२

नारदजी बोले—हे देवदेव! हे महादेव! आप मेरा शुभ वचन सुनें। इस विवाहमें किसी प्रकारके विघ्न दिखायी नहीं पड़ते और न तो किसी प्रकारका भय ही है॥ ४२॥

अवश्यमेव शैलेशस्तुभ्यं दास्यति कन्यकाम्।
त्वामानयितुमायाता इमे शैला न संशयः॥ ४३

शैलराज निश्चित रूपसे आपको ही अपनी कन्या देना चाहते हैं और ये पर्वत इसी निमित्त आपको लेनेकी इच्छासे यहाँ आये हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४३॥

किन्तु ह्यमरमोहार्थं माया विरचिताद्भुता।
कुतूहलार्थं सर्वज्ञ न कश्चिद्विघ्नसम्भवः॥ ४४

हे सर्वज्ञ! परंतु एक बात यह है कि कुतूहलवश वहाँ सभी देवताओंको मोहित करनेके लिये एक अद्भुत माया रची गयी है। इसके अतिरिक्त वहाँ और किसी प्रकारके विघ्नकी सम्भावना नहीं है॥ ४४॥

विचित्रं मण्डपं गेहेऽकार्षीत्तस्य तदाज्ञया।
विश्वकर्मा महामायी नानाश्चर्यमयं विभो॥ ४५

सर्वदेवसमाजश्च कृतस्तत्र विमोहनः।
तं दृष्ट्वा विस्मयं प्राप्तोऽहं तन्मायाविमोहितः॥ ४६

हे विभो! महामाया करनेवाले विश्वकर्माने हिमालयकी आज्ञासे उनके घरमें महान् आश्चर्ययुक्त मण्डपकी रचना की है। उस मण्डपमें विश्वकर्माने सारे देवसमाजके चित्रका निर्माण किया है, उसे देखकर मैं मोहित होकर आश्चर्यमें पड़ गया हूँ॥ ४५-४६॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा तद्वचस्तात लोकाचारकरः प्रभुः।
हर्यादीन्प्रहसन् शम्भुरुवाच सकलान्सुरान्॥ ४७

ब्रह्माजी बोले—नारदका वचन सुनकर लोकाचार करनेवाले प्रभु शिवजी विष्णु आदि देवताओंसे हँसते हुए कहने लगे—॥ ४७॥

ईश्वर उवाच

कन्यां दास्यति चेन्मह्यं पर्वतो हि हिमाचलः।
मायया मम किं कार्यं वद विष्णो यथातथम्॥ ४८

ईश्वर बोले—हे विष्णो! यदि पर्वत हिमालय मुझे अपनी कन्या देंगे, तो आप यथार्थ रूपसे बताइये कि मुझे मायासे क्या प्रयोजन है?॥ ४८॥

हे ब्रह्मन् शक्र मुनयः सुरा ब्रूत यथार्थतः।
मायया मम किं कार्यं कन्यां दास्यति चेद्गिरिः॥ ४९

हे ब्रह्मन्! हे शक्र! हे मुनिगण तथा हे देवताओ! आपलोग यथार्थ रूपसे कहिये कि हिमालय मुझे अपनी कन्या दे रहे हैं, तो मायासे मेरा क्या प्रयोजन है?॥ ४९॥

केनाप्युपायेन फलं हि साध्य-
मित्युच्यते पण्डितैर्न्यायविद्भिः।
तस्मात्सर्वैर्गम्यतां शीघ्रमेव
कार्यार्थिभिर्विष्णुपुरोगमैश्च॥ ५०

न्यायशास्त्रके जानकार पण्डितोंने कहा है कि जिस किसी उपायसे अपने साध्यको प्राप्त करना चाहिये। अतः आप सभी विष्णु आदि देवगण इस कार्यसिद्धिकी इच्छासे शीघ्र ही चलें॥ ५०॥

ब्रह्मोवाच

एवं संवदमानोऽसौ देवैः शम्भुरभूत्तदा।
कृतः स्मरेणेव वशी वशं वा प्राकृतो नरः॥ ५१
अथ शम्भ्वाज्ञया सर्वे विष्ण्वाद्या निर्जरास्तदा।
ऋषयश्च महात्मानो ययुर्मोहभ्रमावहम्॥ ५२

ब्रह्माजी बोले—देवताओंसे इस प्रकार कहनेवाले जितेन्द्रिय भगवान् सदाशिवको कामदेवने साधारण मनुष्यके समान अपने वशमें कर लिया। उसके बाद शिवजीकी आज्ञासे विष्णु आदि देवता एवं ऋषिगण भ्रान्त तथा मोहित करनेवाले हिमालय-गृहकी ओर गये॥ ५१-५२॥

पुरस्कृत्य मुने त्वां च पर्वतांस्तान्सविस्मयाः।
हिमाद्रेश्च तदा जग्मुर्मन्दिरं परमाद्भुतम्॥ ५३

हे मुने! उन देवताओंने आप नारदको तथा उन पर्वतोंको आगेकर आश्चर्यचकित हो हिमालयके अपूर्व एवं परम अद्भुत मन्दिरकी ओर प्रस्थान किया॥ ५३॥

अथ विष्ण्वादिसंयुक्तो मुदितैः स्वबलैर्युतः।
आजगामोपहैमागपुरं प्रमुदितो हरः॥ ५४

इस प्रकार हर्षमें भरे हुए विष्णु आदि देवताओं तथा प्रसन्नतासे युक्त अपने गणोंके साथ वे शिवजी आनन्दित होकर हिमालयके नगरके समीप आ गये॥ ५४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे मण्डपरचनावर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें मण्डपरचनावर्णन नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४१॥

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

हिमालयद्वारा प्रेषित मूर्तिमान् पर्वतों और ब्राह्मणोंद्वारा बरातकी अगवानी, देवताओं और पर्वतोंके मिलापका वर्णन

ब्रह्मोवाच

अथाकर्ण्य गिरीशश्च निजपुर्युपकण्ठतः।
प्राप्तमीशं सर्वगं वै मुमुदेऽति हिमालयः॥ १

अथ सम्भृतसम्भारः सम्भाषां कर्तुमीश्वरम्।
शैलान्प्रस्थापयामास ब्राह्मणानपि सर्वशः॥ २

स्वयं जगाम सद्भक्त्या प्राणेप्सुं द्रष्टुमीश्वरम्।
भक्त्युद्रुतमनाः शैलः प्रशंसन् स्वविधिं मुदा॥ ३

देवसेनां तदा दृष्ट्वा हिमवान्विस्मयं गतः।
जगाम सम्मुखस्तत्र धन्योऽहमिति चिन्तयन्॥ ४

देवा हि तद्बलं दृष्ट्वा विस्मयं परमं गताः।
आनन्दं परमं प्रापुर्देवाश्च गिरयस्तथा॥ ५

पर्वतानां महासेना देवानां च तथा मुने।
मिलित्वा विरराजेव पूर्वपश्चिमसागरौ॥ ६

परस्परं मिलित्वा ते देवाश्च पर्वतास्तथा।
कृतकृत्यं तथात्मानं मेनिरे परया मुदा॥ ७

अथेश्वरं पुरो दृष्ट्वा प्रणनाम हिमालयः।
सर्वे प्रणेमुर्गिरयो ब्राह्मणाश्च सदाशिवम्॥ ८

वृषभस्थं प्रसन्नास्यं नानाभरणभूषितम्।
दिव्यावयवलावण्यप्रकाशितदिगन्तरम्॥ ९

सुसूक्ष्माहतसत्पट्टवस्त्रशोभितविग्रहम्।
सद्रत्नविलसन्मौलिं विहसन्तं शुचिप्रभम्॥ १०

भूषाभूताहियुक्ताङ्गमद्भुतावयवप्रभम्।
दिव्यद्युतिं सुरेशैश्च सेवितं करचामरैः॥ ११

वामस्थिताच्युतं दक्षभागस्थितविधिं प्रभुम्।
पृष्ठस्थितहरिं पृष्ठपार्श्वस्थितसुरादिकम्॥ १२

नानाविधसुराद्यैश्च संस्तुतं लोकशंकरम्।

ब्रह्माजी बोले—गिरिराज हिमालय सर्वव्यापी शिवजीको अपने नगरके निकट आया हुआ सुनकर बड़े प्रसन्न हुए॥ १॥

तदनन्तर उन्होंने सभी सामग्री एकत्रित करके परमेश्वरकी अगवानी करनेके लिये बहुत-से ब्राह्मणों तथा पर्वतोंको भेजा और प्राणोंसे प्रिय ईश्वरका दर्शन करनेके लिये भक्तिसे परिपूर्ण हृदयवाले वे हिमालय अपने भाग्यकी प्रशंसा करते हुए प्रसन्नतापूर्वक स्वयं भी गये॥ २-३॥

उस समय देवसेनाको देखकर हिमवान् विस्मित हो गये और मैं धन्य हूँ—ऐसा सोचते हुए वे उनके सामने गये। देवता भी हिमालयकी [विशाल] सेनाको देखकर आश्चर्यचकित हो गये। इस प्रकार देवताओं तथा पर्वतोंको परम आनन्द प्राप्त हुआ॥ ४-५॥

हे मुने! [उस समय] देवताओं तथा पर्वतोंकी विशाल सेना मिलकर पूर्व तथा पश्चिम सागरके समान शोभित हुई। वे देवता तथा पर्वत परस्पर मिलकर बड़ी प्रसन्नतासे अपनेको कृतकृत्य मानने लगे॥ ६-७॥

उसके बाद हिमालयने ईश्वरको सामने देखकर उन्हें प्रणाम किया और सभी पर्वतों तथा ब्राह्मणोंने भी सदाशिवको प्रणाम किया॥ ८॥

हिमालयने वृषभपर सवार, प्रसन्न मुखवाले, नानालंकारोंसे शोभित, अपने दिव्य शरीरकी शोभासे दिगन्तरोंको प्रकाशित करनेवाले, अत्यन्त सूक्ष्म तथा नवीन रेशमी वस्त्रसे शोभित विग्रहवाले, सिरपर रत्नोंसे जटित मुकुट धारण किये हुए, हँसते हुए, शुभ्र कान्तिवाले, सर्पोंके अलंकारोंसे सुशोभित अंगवाले, अंगोंकी अद्भुत प्रभावाले, दिव्य कान्तिसे सम्पन्न, हाथोंमें चँवर धारण किये देवताओंद्वारा सेवित, बायीं ओर अच्युत, दाहिनी ओर ब्रह्मा, पृष्ठभागमें इन्द्र और पीछे तथा पार्श्वभागमें देवता आदिसे शोभायमान, अनेकविध देवता आदिके द्वारा स्तुत, संसारका कल्याण करनेवाले, अपनी इच्छासे शरीर धारण करनेवाले,

स्वहेत्वात्ततनुं ब्रह्म सर्वेशं वरदायकम्॥ १३
सगुणं निर्गुणं चापि भक्ताधीनं कृपाकरम्।
प्रकृतेः पुरुषस्यापि परं सच्चित्सुखात्मकम्॥ १४

ब्रह्मस्वरूप, सर्वेश्वर, वर प्रदान करनेवाले, निर्गुण तथा सगुण रूपवाले, भक्तोंके अधीन रहनेवाले, कृपा करनेवाले, प्रकृति तथा पुरुषसे भी परे और सच्चिदानन्दस्वरूप शिवको देखा॥ ९—१४॥

प्रभोर्दक्षिणभागे तु ददर्श हरिमच्युतम्।
विनतातनयारूढं नानाभूषणभूषितम्॥ १५

हिमालयने प्रभुके दक्षिण भागमें गरुड़पर सवार तथा नाना प्रकारके आभूषणोंसे सुसज्जित अच्युत श्रीहरिको देखा॥ १५॥

प्रभोश्च वामभागे तु मुने मां सन्ददर्श ह।
चतुर्मुखं महाशोभं स्वपरीवारसंयुतम्॥ १६

हे मुने! उन्होंने प्रभुके वामभागमें चार मुखवाले, महान् शोभावाले तथा अपने परिवारसे युक्त मुझे देखा॥ १६॥

एतौ सुरेश्वरौ दृष्ट्वा शिवस्यातिप्रियौ सदा।
प्रणनाम गिरीशश्च सपरीवार आदरात्॥ १७

इस प्रकार शिवके परम प्रिय हम दोनों सुरेश्वरोंको देखकर गिरीशने परिवारसहित आदरसे प्रणाम किया॥ १७॥

तथा शिवस्य पृष्ठे च पार्श्वयोः सुविराजितान्।
देवादीन्प्रणनामासौ दृष्ट्वा गिरिवरेश्वरः॥ १८

फिर गिरीश्वरने देवाधिदेव सदाशिवके पीछे तथा पार्श्वभागमें स्थित हुए सभी देवताओंको प्रणाम किया॥ १८॥

शिवाज्ञया पुरो भूत्वा जगाम स्वपुरं गिरिः।
शेषहर्यात्मभूः शीघ्रं मुनिभिर्निर्जरादिभिः॥ १९

इसके बाद शिवजीकी आज्ञासे गिरिराज हिमालय आगे होकर अपने नगरमें प्रविष्ट हुए, तदनन्तर शेष, विष्णु तथा ब्रह्मा भी देवताओंके साथ नगरमें गये॥ १९॥

सर्वे मुनिसुराद्याश्च गच्छन्तः प्रभुणा सह।
गिरेः पुरं समुदिताः शशंसुर्बहु नारद॥ २०

रचिते शिखरे रम्ये संस्थाप्य देवतादिकम्।
जगाम हिमवाँस्तत्र यत्रास्ति विधिवेदिका॥ २१

हे नारद! प्रभुके साथ जाते हुए सभी मुनि, देवता आदि एवं देवगण परम प्रसन्न हो हिमालयके नगरकी प्रशंसा करने लगे। उसके बाद हिमालय सुरम्य तथा निवासके योग्य बनाये गये अपने शिखरपर देवता आदिको ठहराकर स्वयं वहाँ चले गये, जहाँ वेदी बनी थी॥ २०-२१॥

कारयित्वा विशेषेण चतुष्कं तोरणैर्युतम्।
स्नानदानादिकं कृत्वा परीक्षामकरोत्तदा॥ २२

उसे चौकोर तथा तोरणोंसे विशेष रूपसे सुसज्जित कराकर स्नान-दानादि क्रियाकर उन्होंने [विधिपूर्वक] वहाँका निरीक्षण किया॥ २२॥

स्वपुत्रान्प्रेषयामास शिवस्य निकटे तथा।
हिमो विष्ण्वादिसम्पूर्णवर्गयुक्तस्य शैलराट्॥ २३

तदनन्तर पर्वतराज हिमालयने विष्णु आदि सम्पूर्ण वर्गसे युक्त शिवके समीप अपने पुत्रोंको भेजा॥ २३॥

कर्तुमैच्छद्वराचारं महोत्सवपुरस्सरम्।
महाहर्षयुतः सर्वबन्धुयुग्घिमशैलराट् ॥ २४

अथ ते गिरिपुत्राश्च तत्र गत्वा प्रणम्य तम्।
सस्ववर्गं प्रार्थनान्तामूचुः शैलेश्वरस्य वै॥ २५

वे पर्वतराज परम प्रसन्न हो अपने बन्धुगणोंके साथ महान् उत्सवपूर्वक वरका यथोचित आचार करना चाहते थे। तब उन पर्वतपुत्रोंने वहाँ जाकर अपने वर्गोंके सहित विराजमान उन शिवको प्रणाम करके शैलेश्वरकी वह प्रार्थना सुनायी॥ २४-२५॥

ततस्ते स्वालयं जग्मुः शैलपुत्रास्तदाज्ञया।
शैलराजाय संचख्युः ते चायान्तीति हर्षिताः॥ २६

अथ देवाः प्रार्थनान्तां गिरेः श्रुत्वातिहर्षिताः।
मुने विष्ण्वादयः सर्वे सेश्वरा मुमुदुर्भृशम्॥ २७

कृत्वा सुवेषं सर्वेऽपि निर्जरा मुनयो गणाः।
गमनं चक्रुरन्येऽपि प्रभुणा गिरिराड्गृहम्॥ २८

तत्पश्चात् वे पर्वतपुत्र उनकी आज्ञासे अपने घर चले गये और प्रसन्न होकर शैलराजसे बोले कि अब लोग आ रहे हैं। हे मुने! इसपर शिवजीसहित विष्णु आदि समस्त देवता गिरिराजकी वह प्रार्थना सुनकर परम प्रसन्न और अत्यन्त आह्लादित हो गये। उसके बाद सभी देवता, मुनि, गण तथा अन्य लोग उत्तम वेशभूषा धारण करके प्रभुके साथ पर्वतराजके घर गये॥ २६—२८॥

तस्मिन्नवसरे मेना द्रष्टुकामाभवच्छिवम्।
प्रभोराह्वाययामास मुने त्वां मुनिसत्तमम्॥ २९

अगमस्त्वं मुने तत्र प्रभुणा प्रेरितस्तदा।
मनसा शिवहृद्धेतुं पूर्णं कर्तुं तमिच्छता॥ ३०

उस अवसरपर मेनाने शिवजीको देखना चाहा और हे मुने! प्रभुको देखनेके लिये उन्होंने आप मुनिश्रेष्ठको बुलवाया। तब हे मुने! आप प्रभुसे प्रेरित होकर शिवजीके हृदयकी बात पूर्ण करनेकी इच्छासे युक्त मनसे वहाँ गये॥ २९-३०॥

त्वां प्रणम्य मुने मेना प्राह विस्मितमानसा।
द्रष्टुकामा प्रभो रूपं शंकरस्य मदापहम्॥ ३१

हे मुने! आपको प्रणाम करके विस्मित मनवाली मेना भगवान् शंकरके मदविनाशक रूपको देखनेकी इच्छासे [आपसे] कहने लगीं॥ ३१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे देवगिरिमिलापवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें देवताओं तथा पर्वतोंका मिलाप-वर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

मेनाद्वारा शिवको देखनेके लिये महलकी छतपर जाना, नारदद्वारा सबका दर्शन कराना, शिवद्वारा अद्भुत लीलाका प्रदर्शन, शिवगणों तथा शिवके भयंकर वेषको देखकर मेनाका मूर्च्छित होना

मेनोवाच

निरीक्षिष्यामि प्रथमं मुने तं गिरिजापतिम्।
कीदृशं शिवरूपं हि यदर्थे तप उत्तमम्॥ १

मेना बोलीं—हे मुने! मैं पहले गिरिजाके होनेवाले पतिको देखूँगी। जिनके लिये उसके द्वारा उत्तम तप किया गया है, उन शिवका रूप कैसा है?॥ १॥

ब्रह्मोवाच

इत्यज्ञानपरा सा च दर्शनार्थं शिवस्य च।
त्वया मुने समं सद्यश्चन्द्रशालां समागता॥ २

शिवोऽपि च तदा तस्यां ज्ञात्वाहंकारमात्मनः।
प्राह विष्णुं च मां तात लीलां कृत्वाद्भुतां प्रभुः॥ ३

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इस प्रकार अज्ञानके वशीभूत वे मेना शिवका दर्शन करनेके लिये आपके साथ शीघ्र ही चन्द्रशालापर गयीं। हे तात! उस समय प्रभु शिवजी भी अपने प्रति उनके अहंकारको जानकर अद्भुत लीला करके मुझसे और विष्णुसे बोले—॥ २-३॥

शिव उवाच

मदाज्ञया युवां तातौ सदेवौ च पृथक्पृथक्।
गच्छतं हि गिरिद्वारं वयं पश्चाद् व्रजेमहि॥ ४

शिवजीने कहा—हे तात! आप दोनों मेरी आज्ञासे देवताओंके साथ अलग-अलग पर्वत हिमालयके दरवाजेपर चलें। हमलोग बादमें चलेंगे॥ ४॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य हरिः सर्वानाहूयोवाच तन्मयाः।
सुराः सर्वे तथैवाशु गमनं चक्रुरुत्सुकाः॥ ५

ब्रह्माजी बोले—यह सुनकर विष्णुने सभी देवगणोंको बुलाकर वैसा करनेको कहा। उसके बाद सभी देवता शिवमें चित्त लगाये हुए उत्सुक होकर चलने लगे॥ ५॥

स्थितां शिरोगृहे मेनां मुने विश्वेश्वरस्त्वया।
तथैव दर्शयामास हृद्विभ्रंशो यथा भवेत्॥ ६

एतस्मिन् समये मेना सेनां च परमां शुभाम्।
निरीक्षन्ती मुने दृष्ट्वा सामान्यं हर्षिताभवत्॥ ७

हे मुने! उसी समय शिवजीके दर्शनकी इच्छासे मेना भी तुमको साथ लेकर महलकी अटारीपर चढ़ गयीं। तब तुम उन्हें इस प्रकार दिखाने लगे, जिससे उनका हृदय विदीर्ण हो। हे मुने! उस समय परम शुभ सेनाको देखती हुई मेना सामान्यरूपसे हर्षित हो उठीं॥ ६-७॥

प्रथमं चैव गन्धर्वाः सुन्दराः सुभगास्तदा।
आयाताः शुभवस्त्राढ्या नानालंकारभूषिताः॥ ८

नानावाहनसंयुक्ता नानावाद्यपरायणाः।
पताकाभिर्विचित्राभिरप्सरोगणसंयुताः॥ ९

अथ दृष्ट्वा वसुं तत्र तत्पतिं परमप्रभुम्।
मेना प्रहर्षिता ह्यासीच्छिवोऽयमिति चाब्रवीत्॥ १०

सबसे पहले सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए, सुभग, शुभ, नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित, विविध वाहनोंसे युक्त, अनेक प्रकारके बाजे बजानेमें तत्पर और विचित्र पताकाओं तथा अप्सराओंको अपने साथ लिये हुए गन्धर्व आये। उस समय मेना गन्धर्वपति परमप्रभु वसुको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं और उन्होंने पूछा कि क्या ये शिवजी हैं?॥ ८—१०॥

शिवस्य गणका एते न शिवोऽयं शिवापतिः।
इत्येवं त्वं ततस्तां वै अवोच ऋषिसत्तम॥ ११

हे ऋषिश्रेष्ठ! तब आपने उनसे यह कहा—ये शिवजीके गण हैं, शिवाके पति शंकरजी नहीं हैं॥ ११॥

एवं श्रुत्वा तदा मेना विचारे तत्पराभवत्।
इतश्चाभ्यधिको यो वै स च कीदृग्भविष्यति॥ १२

यह सुनकर मेनाने विचार किया कि जो इनसे भी अधिक श्रेष्ठ है, वह कैसा होगा॥ १२॥

एतस्मिन्नन्तरे यक्षा मणिग्रीवादयश्च ये।
तेषां सेना तया दृष्टा शोभापि द्विगुणीकृता॥ १३

उसी समय जो मणिग्रीव आदि यक्ष थे, उनकी सेनाको उन्होंने देखा, जिनकी शोभा गन्धर्वोंसे दुगुनी थी॥ १३॥

तत्पतिं च मणिग्रीवं दृष्ट्वा शोभान्वितं हि सा।
अयं रुद्रः शिवास्वामी मेना प्राहेति हर्षिता॥ १४

नायं रुद्रः शिवास्वामी सेवकोऽयं शिवस्य वै।
इत्यवोचोऽग्नपत्यै त्वं तावद्वह्निः स आगतः॥ १५

ततोऽपि द्विगुणां शोभां दृष्ट्वा तस्य च साब्रवीत्।
रुद्रोऽयं गिरिजास्वामी तदा नेति त्वमब्रवीः॥ १६

यक्षाधिपति मणिग्रीवको अत्यन्त शोभासे समन्वित देखकर ये शिवास्वामी रुद्र हैं—मेनाने हर्षित होकर ऐसा कहा। हे नारद! तब तुमने कहा—ये शिवास्वामी रुद्र नहीं हैं, ये तो शिवके सेवक हैं। उसी समय अग्निदेव आ गये। मणिग्रीवकी अपेक्षा उनकी दुगुनी शोभा देखकर मेनाने पूछा—क्या ये ही गिरिजाके स्वामी रुद्र हैं? तब आपने कहा—नहीं॥ १४—१६॥

तावद्यमः समायातः ततोऽपि द्विगुणप्रभः।
तं दृष्ट्वा प्राह सा मेना रुद्रोऽयमिति हर्षिता॥ १७

नेति त्वमब्रवीस्तां वै तावन्निर्ऋतिरागतः।
बिभ्राणो द्विगुणां शोभां शुभः पुण्यजनप्रभुः॥ १८

तत्पश्चात् उनकी भी शोभासे द्विगुणित शोभायुक्त यम आये। उन्हें देखकर प्रसन्न होकर मेनाने कहा—क्या ये रुद्र हैं? तब आपने उनसे कहा—नहीं, उसी समय उनसे भी द्विगुणित शोभा धारण किये हुए पुण्यजनोंके प्रभु शुभ निर्ऋति आये॥ १७-१८॥

तं दृष्ट्वा प्राह सा मेना रुद्रोऽयमिति हर्षिता।
नेति त्वमब्रवीस्तां वै तावद्वरुण आगतः॥ १९

ततोऽपि द्विगुणां शोभां दृष्ट्वा तस्य च साब्रवीत्।
रुद्रोऽयं गिरिजास्वामी तदा नेति त्वमब्रवीः॥ २०

उन्हें देखकर मेनाने प्रसन्न होकर कहा—क्या ये रुद्र हैं? तब आपने उनसे कहा—नहीं। तभी वरुण आ गये। निर्ऋतिसे भी दुगुनी शोभा उनकी देखकर उन मेनाने कहा—ये गिरिजास्वामी रुद्र हैं? तब आपने कहा—नहीं॥ १९-२०॥

तावद्वायुः समायातः ततोऽपि द्विगुणप्रभः।
तं दृष्ट्वा प्राह सा मेना रुद्रोऽयमिति हर्षिता॥ २१

नेति त्वमब्रवीस्तां वै तावद्धनद आगतः।
ततोऽपि द्विगुणां शोभां बिभ्राणो गुह्यकाधिपः॥ २२

तदनन्तर उनसे भी दुगुनी शोभा धारण किये वायुदेव वहाँ आये। उनको देखकर मेनाने हर्षित होकर कहा—क्या ये ही रुद्र हैं? तब आपने उनसे कहा—नहीं। उसी समय गुह्यकपति कुबेर उनसे भी दूनी शोभा धारण किये हुए वहाँ आये॥ २१-२२॥

तं दृष्ट्वा प्राह सा मेना रुद्रोऽयमिति हर्षिता।
नेति त्वमब्रवीस्तां वै तावदीशान आगतः॥ २३

उनको देखकर प्रसन्न हो उन मेनाने कहा—क्या ये ही रुद्र हैं? तब आपने उनसे कहा—नहीं। इतनेमें ईशानदेव आ गये॥ २३॥

ततोऽपि द्विगुणां शोभां दृष्ट्वा तस्य च साब्रवीत्।
रुद्रोऽयं गिरिजास्वामी तदा नेति त्वमब्रवीः॥ २४

कुबेरसे भी दुगुनी उनकी शोभा देखकर मेनाने कहा—क्या ये गिरिजापति रुद्र हैं, तब आपने कहा—नहीं॥ २४॥

तावदिन्द्रः समायातः ततोऽपि द्विगुणप्रभः।
सर्वामरवरो नानादिव्यभास्त्रिदिवेश्वरः॥ २५

तदनन्तर उनसे भी दुगुनी शोभासे सम्पन्न, सभी देवताओंमें श्रेष्ठ, अनेक प्रकारकी दिव्य कान्तिवाले और स्वर्गलोकके स्वामी इन्द्र आये॥ २५॥

तं दृष्ट्वा शंकरः सोऽयमिति सा प्राह मेनका।
शक्रः सुरपतिश्चायं स नेति त्वं तदाब्रवीः॥ २६

उनको देखकर वे मेना बोलीं—क्या ये ही शंकर हैं? तब आपने कहा—ये देवराज इन्द्र हैं, वे नहीं हैं॥ २६॥

तावच्चन्द्रः समायातः शोभां तद्द्विगुणां दधत्।
दृष्ट्वा तं प्राह रुद्रोऽयं तां तु नेति त्वमब्रवीः॥ २७

तावत्सूर्यः समायातः शोभां तद्द्विगुणां दधत्।
दृष्ट्वा तं प्राह सा सोऽयं तां तु नेति त्वमब्रवीः॥ २८

तब उनसे भी दुगुनी शोभा धारण करनेवाले चन्द्रमा आये। उन्हें देखकर मेना बोलीं—क्या ये ही रुद्र हैं? तब आपने कहा—नहीं। इसके बाद उनसे भी दुगुनी शोभा धारण करनेवाले सूर्य आये। उन्हें देखकर मेनाने कहा—क्या ये ही शिव हैं? आपने कहा—नहीं॥ २७-२८॥

तावत्समागतास्तत्र भृग्वाद्याश्च मुनीश्वराः।
तेजसो राशयः सर्वे स्वशिष्यगणसंयुताः॥ २९

इतनेमें तेजोराशि भृगु आदि मुनीश्वर अपने शिष्योंसहित वहाँ पहुँच गये॥ २९॥

तन्मध्ये चैव वागीशं दृष्ट्वा सा प्राह मेनका।
रुद्रोऽयं गिरिजास्वामी तदा नेति त्वमब्रवीः॥ ३०

उनके मध्यमें बृहस्पतिको देखकर मेना बोलीं—ये ही गिरिजापति रुद्र हैं? तब आपने कहा—नहीं॥ ३०॥

तावद्ब्रह्मा समायातः तेजसां राशिरुत्तमः।
सर्षिवर्यसुतः साक्षाद्धर्मपुंज इव स्तुतः॥ ३१

दृष्ट्वा मां तं तदा मेना महाहर्षवती मुने।
सोऽयं शिवापतिः प्राह तां तु नेति त्वमब्रवीः॥ ३२

उसके बाद तेजोंकी महाराशि तथा साक्षात् धर्मके पुंजके समान मैं ब्रह्मा स्तुत होता हुआ ऋषियों तथा पुत्रोंके सहित उपस्थित हुआ। हे मुने! मुझे देखकर मेना बहुत प्रसन्न हुईं और उन्होंने कहा—क्या ये ही शिव हैं? तब आपने उनसे कहा—नहीं॥ ३१-३२॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र विष्णुर्देवः समागतः।
सर्वशोभान्वितः श्रीमान्मेघश्यामश्चतुर्भुजः॥ ३३

कोटिकन्दर्पलावण्यः पीताम्बरधरः स्वराट्।
राजीवलोचनः शान्तः पक्षीन्द्रवरवाहनः॥ ३४

शंखादिलक्षणैर्युक्तो मुकुटादिविभूषितः।
श्रीवत्सवक्षा लक्ष्मीशो ह्यप्रमेयप्रभान्वितः॥ ३५

इसी बीच सम्पूर्ण शोभासे युक्त, श्रीमान्, मेघके समान श्याम वर्णवाले, चार भुजाओंसे युक्त, करोड़ों कामदेवके समान कमनीय, पीताम्बर धारण किये हुए, अपने तेजसे प्रकाशित, कमलनयन, शान्तस्वभाव, श्रेष्ठ गरुड़पर सवार, शंख आदि लक्षणोंसे युक्त, मुकुट आदिसे विभूषित, वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न धारण किये हुए, अप्रमेय कान्तिसे सम्पन्न लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु वहाँ आये॥ ३३—३५॥

तं दृष्ट्वा चकिताक्ष्यासीन्महाहर्षेण साब्रवीत्।
सोऽयं शिवापतिः साक्षाच्छिवो वै नात्र संशयः॥ ३६

उनको देखकर उनके नेत्र चकित हो गये और उन्होंने हर्षसे भरकर कहा—ये ही साक्षात् गिरिजापति शिव हैं, इसमें सन्देह नहीं॥ ३६॥

अथ त्वं मेनकावाक्यमाकर्ण्योवाच ऊतिकृत्।
नायं शिवापतिरयं किन्त्वयं केशवो हरिः॥ ३७

तब मेनकाका वचन सुनकर परम कौतुकी आपने कहा—वे शिवापति नहीं हैं, अपितु ये केशव विष्णु हैं॥ ३७॥

शंकराखिलकार्यस्य ह्यधिकारी च तत्प्रियः।
अतोऽधिको वरो ज्ञेयः स शिवः पार्वतीपतिः॥ ३८

तच्छोभां वर्णितुं मेने मया नैव हि शक्यते।
स एवाखिलब्रह्माण्डपतिः सर्वेश्वरः स्वराट्॥ ३९

ये शंकरजीके समस्त कार्योंके अधिकारी तथा उनके प्रिय हैं, उन पार्वतीपति शिवको इनसे भी अधिक श्रेष्ठ समझना चाहिये। हे मेने! उनकी शोभाका वर्णन मैं नहीं कर सकता, वे ही समस्त ब्रह्माण्डोंके अधिपति, सर्वेश्वर तथा स्वराट् हैं॥ ३८-३९॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य मेना मेने च तां शुभाम्।
महाधनां भाग्यवतीं कुलत्रयसुखावहाम्॥ ४०

ब्रह्माजी बोले—नारदके वचनको सुनकर मेनाने उसको [पार्वतीको] महाधनवती, भाग्यवती, तीनों कुलों (पितृकुल, मातृकुल तथा पतिकुल)-को सुख देनेवाली तथा कल्याणकारिणी समझा॥ ४०॥

उवाच च प्रसन्नास्या प्रीतियुक्तेन चेतसा।
स्वभाग्यमधिकं चापि वर्णयन्ती मुहुर्मुहुः॥ ४१

उसके बाद प्रीतियुक्त चित्तसे प्रसन्न मुखवाली मेना बार-बार अपने भाग्यकी बड़ाई करती हुई कहने लगीं— ॥ ४१॥

मेनोवाच

धन्याहं सर्वथा जाता पार्वत्या जन्मनाधुना।
धन्यो गिरीश्वरोऽप्यद्य सर्वं धन्यतमं मम॥ ४२

ये ये दृष्टा मया देवा नायकाः सुप्रभान्विताः।
एतेषां यः पतिः सोऽत्र पतिरस्या भविष्यति॥ ४३

मेना बोलीं—पार्वतीके जन्मसे इस समय मैं सर्वथा धन्य हो गयी, गिरीश्वर भी आज धन्य हो गये, मेरा सब कुछ धन्य हो गया। उत्तम प्रभासे युक्त जिन-जिन देवताओं एवं देवाधिपतियोंको मैंने देखा—इन सबके जो स्वामी हैं, वे ही इसके पति होंगे॥ ४२-४३॥

अस्याः किं वर्ण्यते भाग्यमपि वर्षशतैरपि।
वर्णितुं शक्यते नैव तत्प्रभुप्राप्तिदर्शनात्॥ ४४

उसके भाग्यका क्या वर्णन किया जाय! उसके द्वारा भगवान् शिवको पतिरूपमें प्राप्त करनेके कारण सौ वर्षोंमें भी पार्वतीके सौभाग्यका वर्णन नहीं किया जा सकता॥ ४४॥

ब्रह्मोवाच

इत्यवादीच्च सा मेना प्रेमनिर्भरमानसा।
तावत्समागतो रुद्रोऽद्भुतोतिकारकः प्रभुः॥ ४५

अद्भुतात्मगणास्तात मेनागर्वापहारकाः।
आत्मानं दर्शयन् मायानिर्लिप्तं निर्विकारकम्॥ ४६

तमागतमभिप्रेत्य नारद त्वं मुने तदा।
मेनामवोचः सुप्रीत्या दर्शयंस्तं शिवापतिम्॥ ४७

नारद उवाच

अयं स शंकरः साक्षाद् दृश्यतां सुन्दरि त्वया।
यदर्थे शिवया तप्तं तपोऽति विपिने महत्॥ ४८

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ता हर्षिता मेना तं ददर्श मुदा प्रभुम्।
अद्भुताकृतिमीशानमद्भुतानुगमद्भुतम् ॥ ४९

तावदेवं समायाता रुद्रसेना महाद्भुता।
भूतप्रेतादिसंयुक्ता नानागणसमन्विता॥ ५०

वात्यारूपधराः केचित्पताकामर्मरस्वनाः।
वक्रतुंडास्तत्र केचिद्विरूपाश्चापरे तथा॥ ५१

करालाः श्मश्रुलाः केचित्केचित्खञ्जा ह्यलोचनाः।
दण्डपाशधराः केचित्केचिन्मुद्गरपाणयः॥ ५२

विरुद्धवाहनाः केचिच्छृंगनादनिनादिनः।
डमरोर्वादिनः केचित्केचिद्गोमुखवादिनः॥ ५३

अमुखाः विमुखाः केचित्केचिद् बहुमुखा गणाः।
अकरा विकराः केचित्केचिद् बहुकरा गणाः॥ ५४

अनेत्रा बहुनेत्राश्च विशिराः कुशिरास्तथा।
अकर्णा बहुकर्णाश्च नानावेषधरा गणाः॥ ५५

इत्यादिविकृताकारा अनेके प्रबला गणाः।
असंख्यातास्तथा तात महावीरा भयंकराः॥ ५६

ब्रह्माजी बोले—प्रेमसे परिपूर्ण चित्तवाली मेना जब इस प्रकार कह रही थीं, उसी समय सब कुछ करनेमें सर्वथा समर्थ प्रभु रुद्र अद्भुत वेष धारणकर आ गये॥ ४५॥

हे तात! उनके गण भी अद्भुत थे, जो मेनाके गर्वको दूर करनेवाले थे। उस समय प्रभु रुद्र अपनेको मायासे निर्लिप्त तथा निर्विकार दिखा रहे थे॥ ४६॥

हे नारद! हे मुने! उस समय उनको आया देखकर परम प्रेमसे आप शिवाके पति शंकरको दिखाते हुए मेनासे कहने लगे—॥ ४७॥

नारदजी बोले—हे सुन्दरि! आप देखिये, ये ही वे साक्षात् शंकर हैं, जिनके निमित्त वनमें पार्वतीने कठिन तप किया था॥ ४८॥

ब्रह्माजी बोले—नारदके वचनको सुनकर मेना हर्षित होकर अद्भुत आकृतिवाले, अद्भुत गणोंसे युक्त तथा आश्चर्यजनक प्रभु शिवजीको देखने लगीं॥ ४९॥

उसी समय भूत-प्रेत आदिसे युक्त तथा नाना प्रकारके गणोंसे समन्वित अत्यन्त अद्भुत रुद्रसेना आ पहुँची॥ ५०॥

उनमें कोई आँधीके समान रूप धारण किये हुए थे, कोई पताकाके समान मर्मर शब्द कर रहे थे, कोई वक्रतुण्ड थे तथा कोई विकृत रूपवाले, कोई विकराल थे, कोई बड़ी दाढ़ी-मूँछवाले थे, कोई लँगड़े थे, कोई अन्धे थे, कोई हाथमें दण्ड, पाश तथा कोई मुद्गर धारण किये हुए थे, कोई विरुद्ध वाहनपर सवार थे, कोई शृंगीनाद कर रहे थे, कोई डमरू बजा रहे थे, कोई गोमुख बजा रहे थे, कोई मुखरहित थे, कोई विकट मुखवाले थे, कोई गण बहुत मुखवाले थे, कोई हाथसे रहित थे, कोई विकृत हाथवाले थे, कोई गण बहुत हाथोंवाले थे। कोई नेत्रहीन, कोई बहुत नेत्रवाले, कोई बिना सिरके, कोई विकृत सिरवाले, कोई कर्णहीन तथा कोई बहुत कानवाले थे। सभी गण नाना प्रकारके वेष धारण किये हुए थे। इसी प्रकार और भी विकृत आकारवाले अनेक प्रबल गण थे। हे तात! वे असंख्य, बड़े वीर और भयंकर थे॥ ५१—५६॥

अङ्गुल्या दर्शयंस्त्वं तां मुने रुद्रगणांस्ततः।
हरस्य सेवकान्पश्य हरं चापि वरानने॥ ५७

उसके बाद हे मुने! आपने मेनाको रुद्रगणोंको अँगुलीसे दिखाते हुए कहा—हे वरानने! आप इन शंकरके गणोंको और शंकरको भी देखिये॥ ५७॥

असंख्यातान् गणान् दृष्ट्वा भूतप्रेतादिकान् मुने।
तत्क्षणादभवत्सा वै मेनका त्राससंकुला॥ ५८

हे मुने! भूत-प्रेत आदि असंख्य गणोंको देखकर वे मेना तत्क्षण भयसे अत्यन्त व्याकुल हो गयीं॥ ५८॥

तन्मध्ये शंकरं चैव निर्गुणं गुणवत्तरम्।
वृषभस्थं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं भूतिभूषितम्॥ ५९

कपर्दिनं चन्द्रमौलिं दशहस्तं कपालिनम्।
व्याघ्रचर्मोत्तरीयं च पिनाकवरपाणिनम्॥ ६०

शूलयुक्तं विरूपाक्षं विकृताकारमाकुलम्।
गजचर्म वसानं हि वीक्ष्य त्रेसे शिवाप्रसूः॥ ६१

उन गणोंके मध्य निर्गुण, परम गुणी, वृषभपर सवार, पाँच मुख तथा तीन नेत्रवाले, शिवविभूतिसे विभूषित, जटाजूटसे युक्त, मस्तकमें चन्द्रकलासे शोभित, दस भुजाओंसे युक्त, कपाल धारण किये, व्याघ्रचर्मका उत्तरीय धारण किये हुए, हाथमें श्रेष्ठ पिनाक धारण किये हुए, शूलसे युक्त, विरूप नेत्रवाले, विकृत आकारवाले, व्याकुल तथा गजचर्म ओढ़े हुए शिवको देखकर पार्वतीकी माता भयभीत हो उठीं॥ ५९—६१॥

चकितां कम्पसंयुक्तां विह्वलां विभ्रमद्धियम्।
शिवोऽयमिति चाङ्गुल्या दर्शयंस्तां त्वमब्रवीः॥ ६२

त्वदीयं तद्वचः श्रुत्वा वाताहतलता इव।
सा पपात द्रुतं भूमौ मेना दुःखभरा सती॥ ६३

किमिदं विकृतं दृष्ट्वा वञ्चिताहं दुराग्रहे।
इत्युक्त्वा मूर्च्छिता तत्र मेनका साभवत्क्षणात्॥ ६४

उसके अनन्तर आश्चर्यचकित, काँपती हुई, व्याकुल तथा भ्रमित बुद्धिवाली उन मेनाको अँगुलीके संकेतसे शिवजीकी ओर दिखाते हुए आपने कहा—ये ही शिव हैं। आपके उस वचनको सुनते ही वे सती मेना दुःखित होकर वायुके झोंकेसे गिरी हुई लताके समान शीघ्र ही पृथिवीपर गिर पड़ीं। इस विकृत रूपको देखकर दुराग्रहमें फँसकर मैं ठगी गयी—ऐसा कहकर वे मेना क्षणमात्रमें मूर्च्छित हो गयीं॥ ६२—६४॥

अथ प्रयत्नैर्विविधैः सखीभिरुपसेविता।
लेभे संज्ञां शनैर्मेना गिरीश्वरप्रिया तदा॥ ६५

उसके बाद सखियोंके द्वारा अनेक प्रकारके प्रयत्नोंसे उपचार करनेपर हिमालयप्रिया मेनाको धीरे-धीरे चैतन्य प्राप्त हुआ॥ ६५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शिवाद्भुतलीलावर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें शिवकी अद्भुत लीलाका वर्णन नामक तैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४३॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

शिवजीके रूपको देखकर मेनाका विलाप, पार्वती तथा नारद आदि सभीको फटकारना, शिवके साथ कन्याका विवाह न करनेका हठ, विष्णुद्वारा मेनाको समझाना

ब्रह्मोवाच

संज्ञां लब्ध्वा ततः सा च मेना शैलप्रिया सती।
विललापातिसंक्षुब्धा तिरस्कारमथाकरोत्॥ १
तत्र तावत्स्वपुत्रांश्च निनिन्द स्खलिता मुहुः।
प्रथमं सा ततः पुत्रीं कथयामास दुर्वचः॥ २

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] चेतना प्राप्तकर शैलप्रिया सती मेना अत्यन्त क्षुब्ध होकर विलाप करने लगीं और सबका तिरस्कार करने लगीं। उन्होंने व्याकुल होकर सर्वप्रथम अपने पुत्रोंकी निन्दा की और इसके बाद वे अपनी पुत्रीको दुर्वचन कहने लगीं॥ १-२॥

मेनोवाच

मुने पुरा त्वया प्रोक्तं वरिष्यति शिवा शिवम्।
पश्चाद्धिमवतः कृत्यं पूजार्थं विनिवेशितम्॥ ३

मेना बोली—हे मुने! पहले आपने ही कहा था कि यह पार्वती शिवको वरण करेगी। तत्पश्चात् हिमवान्से कहकर आपने उसे तपस्याके कार्यमें लगाया॥ ३॥

ततो दृष्टं फलं सत्यं विपरीतमनर्थकम्।
मुनेऽधमाहं दुर्बुद्धे सर्वथा वञ्चिता त्वया॥ ४

उसका तो प्रतिकूल एवं अनर्थकारी परिणाम दिखायी पड़ा, यह सत्य है। हे दुष्टबुद्धिवाले मुने! आपने मुझ अधमको सर्वथा धोखा दिया॥ ४॥

पुनस्तया तपस्तप्तं दुष्करं मुनिभिश्च यत्।
तस्य लब्धं फलं ह्येतत्पश्यतां दुःखदायकम्॥ ५

किं करोमि क्व गच्छामि को मे दुःखं व्यपोहताम्।
कुलादिकं विनष्टं मे विहतं जीवितं मम॥ ६

हे मुने! उसने मुनियोंके द्वारा असाध्य परम दुष्कर जो तप किया, उसका यह फल प्राप्त हुआ, जो देखनेवालोंको भी दुःख देनेवाला है। अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? कौन मेरे दुःखको दूर करेगा, मेरा कुल आदि नष्ट हो गया, मेरा जीवन भी नष्ट हो गया॥ ५-६॥

क्व गता ऋषयो दिव्याः श्मश्रूणि त्रोटयाम्यहम्।
तपस्विनी च या पत्नी सा धूर्ता स्वयमागता॥ ७

वे दिव्य ऋषि कहाँ गये? मैं उनकी दाढ़ी-मूँछ उखाड़ लूँ। जो वसिष्ठपत्नी तपस्विनी है, वह धूर्त यहाँ स्वयं आयी थी॥ ७॥

केषाञ्चैवापराधेन सर्वं नष्टं ममाधुना।
इत्युक्त्वा वीक्ष्य च सुतामुवाच वचनं कटु॥ ८

किनके अपराधसे मेरा सब कुछ नष्ट हो गया—ऐसा कहकर पुत्रीकी ओर देखकर वे कटु वचन कहने लगीं॥ ८॥

किं कृतं ते सुते दुष्टे कर्म दुःखकरं मम।
हेम दत्त्वा त्वयानीतः काचो वै दुष्टया स्वयम्॥ ९

हे सुते! हे दुष्टे! तुमने मुझे दुःख देनेवाला कर्म क्यों किया? तुझ दुष्टने स्वयं सोना देकर काँच ले लिया!॥ ९॥

हित्वा तु चन्दनं भूयो लेपितः कर्दमस्त्वया।
हंसमुड्डीय काको वै गृहीतो हस्तपञ्जरे॥ १०

चन्दनको छोड़कर तुमने अपने शरीरमें कीचड़का लेप कर लिया! हंसको उड़ाकर तुमने पिंजड़ेमें कौआ ग्रहण कर लिया!॥ १०॥

हित्वा ब्रह्मजलं दूरे पीतं कूपोदकं त्वया।
सूर्यं हित्वा तु खद्योतो गृहीतो यत्नतस्त्वया॥ ११

गंगाजलको दूर छोड़कर तुमने कुएँका जल पी लिया और सूर्यको छोड़कर प्रयत्नपूर्वक जुगनू ग्रहण कर लिया!॥ ११॥

तण्डुलांश्च तथा हित्वा कृतं वै तुषभक्षणम्।
प्रक्षिप्याज्यं तथा तैलं कारण्डं भुक्तमादरात्॥ १२

चावलोंका त्यागकर भूसी खा ली और घीको छोड़कर आदरपूर्वक कारण्डका तेल पी लिया!॥ १२॥

सिंहसेवां तथा मुक्त्वा शृगालः सेवितस्त्वया।
ब्रह्मविद्यां तथा मुक्त्वा कुगाथा च श्रुता त्वया॥ १३

सिंहकी सेवा छोड़कर तुमने शृगालकी सेवा की और ब्रह्मविद्याका त्यागकर तुमने कुत्सित गाथा सुनी!॥ १३॥

गृहे यज्ञविभूतिं हि दूरीकृत्य सुमङ्गलाम्।
गृहीतं च चिताभस्म त्वया पुत्रि ह्यमङ्गलम्॥ १४

हे पुत्रि! तुमने घरकी परम मांगलिक यज्ञविभूतिको छोड़कर अमंगल चिताभस्मको धारण किया!॥ १४॥

सर्वान् देववरांस्त्यक्त्वा विष्णवादीन्परमेश्वरान्।
कृतं त्वया कुबुद्ध्या वै शिवार्थं तप ईदृशम्॥ १५

धिक्त्वां च तव बुद्धिं च धिग्रूपं चरितं तव।
धिक् चोपदेशकर्तारं धिक्सख्यावपि ते तथा॥ १६

आवां च धिक्तथा पुत्रि यौ ते जन्मप्रवर्तकौ।
धिक्ते नारद बुद्धिं च सप्तर्षींश्च कुबुद्धिदान्॥ १७

धिक्कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं सर्वं धिग्यत्कृतं त्वया।
गृहं तु धुक्षितं त्वेतन्मरणं तु ममैव हि॥ १८

पर्वतानामयं राजा नायातु निकटे मम।
सप्तर्षयः स्वयं नैव दर्शयन्तु मुखं मम॥ १९

साधितं किं च सर्वैस्तु मिलित्वा घातितं कुलम्।
बन्ध्याहं न कथं जाता गर्भो न गलितः कथम्॥ २०

अथो न वा मृता चाहं पुत्रिका न मृता कथम्।
राक्षसाद्यैः कथं नो वा भक्षिता गगने पुनः॥ २१

छेदयामि शिरस्तेऽद्य किं करोमि कलेवरैः।
त्यक्त्वा त्वां च कुतो यायां हाहा मे जीवितं हतम्॥ २२

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा पतिता सा च मेना भूमौ विमूर्छिता।
व्याकुला शोकरोषाद्यैर्न गता भर्तृसन्निधौ॥ २३

हाहाकारो महानासीत्तस्मिन्काले मुनीश्वर।
सर्वे समागतास्तत्र क्रमात्तत्सन्निधौ सुराः॥ २४

पुरा देवमुने चाहमागतस्तु स्वयं तदा।
मां दृष्ट्वा त्वं वचस्तां वै प्रावोच ऋषिसत्तम॥ २५

विष्णु आदि परमेश्वरों तथा श्रेष्ठ देवगणोंको छोड़कर तुमने कुबुद्धिसे शिवके निमित्त ऐसा तप किया!॥ १५॥

तुम्हें तथा तुम्हारी बुद्धिको धिक्कार है, तुम्हारे रूप तथा आचरणको धिक्कार है, तुम्हें उपदेश देनेवालेको धिक्कार है और तुम्हारी उन सखियोंको भी धिक्कार है! हे पुत्रि! जो तुमको जन्म देनेवाले हैं—ऐसे हम दोनोंको धिक्कार है। हे नारद! आपकी बुद्धिको धिक्कार है और कुबुद्धि देनेवाले सप्तर्षियोंको धिक्कार है!॥ १६-१७॥

कुलको धिक्कार है, तुम्हारी कार्यकुशलताको धिक्कार है, तुमने जो कुछ किया, उस सबको धिक्कार है, तुमने घरको नष्ट कर दिया, अब तो मेरा मरण ही है॥ १८॥

ये पर्वतराज मेरे निकट न आयें और स्वयं सप्तर्षिगण भी मुझे अपना मुँह न दिखायें॥ १९॥

सब लोगोंने मिलकर यह क्या किया, जिससे मेरा कुल ही नष्ट हो गया। मैं वन्ध्या क्यों न हुई, मेरा गर्भ क्यों नहीं गिर गया। मैं ही क्यों नहीं मर गयी अथवा मेरी पुत्री ही क्यों नहीं मर गयी। आकाशमें [ले जाकर] राक्षसोंने उसे क्यों नहीं खा लिया?॥ २०-२१॥

आज मैं तुम्हारा सिर काट डालूँ, अब मुझे इस शरीरसे क्या करना है, किंतु क्या करूँ, तुम्हें त्यागकर भी कहाँ जाऊँ? हाय! मेरा जीवन ही नष्ट हो गया॥ २२॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर वे मेना मूर्च्छित हो पृथिवीपर गिर पड़ीं। वे शोक तथा रोष आदिसे व्याकुल होनेके कारण पतिके पास न जा सकीं॥ २३॥

हे मुनीश्वर! उस समय सारे घरमें हाहाकार मच गया, फिर सब देवता बारी-बारीसे वहाँ उनके समीप आये॥ २४॥

हे देवमुने! पहले मैं स्वयं ही [उनके समीप] आया। तब हे ऋषिश्रेष्ठ! मुझे देखकर आप उनसे यह वचन कहने लगे—॥ २५॥

नारद उवाच

यथार्थं सुंदरं रूपं न ज्ञातं ते शिवस्य वै।
लीलयेदं धृतं रूपं न यथार्थं शिवेन च॥ २६
तस्मात्क्रोधं परित्यज्य स्वस्था भव पतिव्रते।
कार्यं कुरु हठं त्यक्त्वा शिवां देहि शिवाय च॥ २७

नारदजी बोले—[हे मेने!] तुमने शिवजीके वास्तविक सुन्दर रूपको नहीं पहचाना, शिवजीने यह रूप लीलासे धारण किया है, यह उनका यथार्थ रूप नहीं है। हे पतिव्रते! इसलिये तुम क्रोध छोड़कर स्वस्थ हो जाओ और हठ छोड़कर कार्य करो तथा पार्वतीको शंकरके निमित्त प्रदान करो॥ २६-२७॥

ब्रह्मोवाच

तदाकर्ण्य वचस्ते सा मेना त्वां वाक्यमब्रवीत्।
उत्तिष्ठेतो गच्छ दूरं दुष्टाधमवरो भवान्॥ २८
इत्युक्ते तु तया देवा इन्द्राद्याः सकलाः क्रमात्।
समागत्य च दिक्पाला वचनं चेदमब्रुवन्॥ २९

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! तब आपका वचन सुनकर मेनाने आपसे यह वाक्य कहा—तुम बड़े दुष्ट एवं अधम हो, उठो और यहाँसे दूर चले जाओ। उनके इस प्रकार कहनेपर समस्त इन्द्रादि देवता तथा दिक्पाल क्रमसे आकर मेनासे यह वचन कहने लगे—॥ २८-२९॥

देवा ऊचुः

हे मेने पितृकन्ये हि शृण्वस्मद्वचनं मुदा।
अयं वै परमः साक्षाच्छिवः परसुखावहः॥ ३०
कृपया च भवत्पुत्र्यास्तपो दृष्ट्वातिदुस्सहम्।
दर्शनं दत्तवान् शम्भुर्वरं सद्भक्तवत्सलः॥ ३१

देवता बोले—हे मेने! हे पितृकन्ये! प्रसन्न होकर तुम हमारी बात सुनो। ये दूसरोंको सुख देनेवाले साक्षात् शिवजी हैं। भक्तवत्सल इन भगवान् शिवने तुम्हारी पुत्रीका अत्यन्त कठिन तप देखकर कृपापूर्वक उसे दर्शन देकर वर प्रदान किया॥ ३०-३१॥

ब्रह्मोवाच

अथोवाच सुरान्मेना विलप्याति मुहुर्मुहुः।
न देया तु मया कन्या गिरिशायोग्ररूपिणे॥ ३२
किमर्थं तु भवन्तश्च सर्वे देवाः प्रवञ्चिताः।
रूपमस्याः परन्नाम व्यर्थीकर्तुं समुद्यताः॥ ३३

ब्रह्माजी बोले—इसके बाद मेना बारंबार बहुत विलाप करके देवताओंसे बोली—भयानक रूपवाले शिवको मैं अपनी कन्या नहीं दूँगी॥ ३२॥

आप सभी देवगण किसलिये प्रपंचमें पड़े हैं और इसके श्रेष्ठ रूपको व्यर्थ करनेके लिये तत्पर हैं?॥ ३३॥

इत्युक्ते च तया तत्र ऋषयः सप्त एव हि।
ऊचुस्ते वच आगत्य वसिष्ठाद्या मुनीश्वर॥ ३४

हे मुनीश्वर! उनके इस प्रकार कहनेपर सभी वसिष्ठादि सप्तर्षि वहाँ आकर उनसे यह वचन कहने लगे॥ ३४॥

सप्तर्षय ऊचुः

कार्यं साधयितुं प्राप्ताः पितृकन्ये गिरिप्रिये।
विरुद्धं चात्र युक्तार्थे कथं मन्यामहे वयम्॥ ३५
अयं वै परमो लाभो दर्शनं शंकरस्य यत्।
दानपात्रं स ते भूत्वागतस्तव च मंदिरम्॥ ३६

सप्तर्षि बोले—हे पितृकन्ये! हे गिरिप्रिये! हम कार्य सिद्ध करनेके लिये आये हैं, जो बात ठीक है, उसे हम विपरीत कैसे मान सकते हैं? यह सबसे बड़ा लाभ है, जो आपको शंकरजीका दर्शन प्राप्त हुआ और वे दानके पात्र होकर आपके घर आये हैं॥ ३५-३६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ता तैस्ततो मेना मुनिवाक्यं मृषाकरोत्।
प्रत्युवाच च रुष्टा सा तानृषीन् ज्ञानदुर्बला॥ ३७

ब्रह्माजी बोले—उनके इस प्रकार कहनेपर मेनाने उन मुनियोंके वचनको झूठा समझ लिया और वे अज्ञानतावश रुष्ट होकर उन ऋषियोंसे इस प्रकार कहने लगीं—॥ ३७॥

मेनोवाच

शस्त्राद्यैर्घातयिष्येऽहं न दास्ये शंकराय ताम्।
दूरं गच्छत सर्वे हि नागन्तव्यं मदन्तिके॥ ३८

मेना बोलीं—मैं शस्त्र आदिसे उसका वध कर डालूँगी, किंतु शंकरके निमित्त उसे नहीं दूँगी। आप सभी दूर चले जाइये और मेरे पास मत आइयेगा॥ ३८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा विररामाशु सा विलप्यातिविह्वला।
हाहाकारो महानासीत्तत्र तद्वृत्ततो मुने॥ ३९
ततो हिमालयस्तत्राजगामातिसमाकुलः।
तां च बोधयितुं प्रीत्या प्राह तत्त्वं च दर्शयन्॥ ४०

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर वे मेना चुप हो गयीं और पुनः विलाप करके अत्यन्त व्याकुल हो उठीं। हे मुने! उस समय इस समाचारसे बड़ा हाहाकार मच गया। तदनन्तर अत्यन्त व्याकुल होकर हिमालय मेनाको समझानेके लिये वहाँ आये और तत्त्वकी बात कहते हुए प्रेमपूर्वक उनसे कहने लगे॥ ३९-४०॥

हिमालय उवाच

शृणु मेने वचो मेऽद्य विकलासि कथं प्रिये।
के के समागता गेहं कथं चैतान्विनिन्दसि॥ ४१

हिमालय बोले—हे मेने! हे प्रिये! तुम आज व्याकुल क्यों हो गयी, मेरी बात सुनो, तुम्हारे घर कौन-कौन लोग आये हैं, तुम इनकी निन्दा क्यों करती हो?॥ ४१॥

शंकरं त्वं न जानासि रूपं दृष्ट्वासि विह्वला।
विकटं तस्य शंभोस्तु नानारूपाभिधस्य हि॥ ४२

स शंकरो मया ज्ञातः सर्वेषां प्रतिपालकः।
पूज्यानां पूज्य एवासौ कर्तानुग्रहनिग्रहौ॥ ४३

तुम शंकरको [अच्छी तरह] नहीं जानती हो, अनेक रूप और नामवाले उन शंकरके विकट रूपको देखकर व्याकुल हो गयी हो। उन शंकरको मैं जानता हूँ। वे सबका पालन करनेवाले, पूज्योंके भी पूज्य और निग्रह तथा अनुग्रह करनेवाले हैं॥ ४२-४३॥

हठं न कुरु मुञ्च त्वं दुःखं प्राणप्रियेऽनघे।
उत्तिष्ठारं तथा कार्यं कर्तुमर्हसि सुव्रते॥ ४४

हे प्राणप्रिये! हे पुण्यशीले! हठ मत करो और दुःखका त्याग करो। हे सुव्रते! शीघ्रतासे उठो, कार्य करो॥ ४४॥

यद्वै द्वारगतः शंभुः पुरा विकटरूपधृक्।
नानालीलां च कृतवान् चेतयामि च तामिमाम्॥ ४५

तुम मेरी बात मानो, ये शंकर विकट रूप धारणकर द्वारपर जो आये हैं, वे अपनी लीला ही दिखा रहे हैं॥ ४५॥

तन्माहात्म्यं परं दृष्ट्वा कन्यां दातुं त्वया मया।
अङ्गीकृतं तदा देवि तत्प्रमाणं कुरु प्रिये॥ ४६

हे देवि! पहले हम दोनोंने उनका श्रेष्ठ माहात्म्य देखकर ही कन्या देना स्वीकार किया था। हे प्रिये! अब उस बातको सत्यरूपसे प्रमाणित करो॥ ४६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा सोऽद्रिनाथो हि विरराम ततो मुने।
तदाकर्ण्य शिवामाता मेनोवाच हिमालयम्॥ ४७

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इस प्रकार कहकर उन पर्वतराज हिमालयने मौन धारण कर लिया। तब यह सुनकर पार्वतीकी माता मेना हिमालयसे कहने लगीं—॥ ४७॥

मेनोवाच

मद्वचः श्रूयतां नाथ तथा कर्तुं त्वमर्हसि।
गृहीत्वा तनुजां चैनां बद्ध्वा कण्ठे तु पार्वतीम्॥ ४८

अधः पातय निःशंकं दास्ये तां न हराय हि।
तथैनामथवा नाथ गत्वा वै सागरे सुताम्॥ ४९

निमज्जय दयां त्यक्त्वा ततोऽद्रीश सुखी भव।
यदि दास्यसि पुत्रीं त्वं रुद्राय विकटात्मने।
तर्हि त्यक्ष्याम्यहं स्वामिन्निश्चयेन कलेवरम्॥ ५०

मेना बोली—हे नाथ! मेरी बात सुनिये और आप वैसा ही कीजिये, इस अपनी कन्या पार्वतीको पकड़कर कण्ठमें रस्सी बाँधकर निःशंक हो नीचे गिरा दीजिये, किंतु मैं शिवको उसे नहीं दूँगी अथवा हे नाथ! हे पर्वतराज! इस कन्याको ले जाकर दयारहित होकर समुद्रमें डुबो दीजिये और इसके बाद सुखी हो जाइये। ऐसा करनेसे ही सुख मिलेगा। हे स्वामिन्! यदि आप भयंकर रूपवाले रुद्रको पुत्री देंगे, तो मैं निश्चित रूपसे शरीर त्याग दूँगी॥ ४८—५०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ते च तदा तत्र वचने मेनया हठात्।
उवाच वचनं रम्यं पार्वती स्वयमागता॥ ५१

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! जब मेना हठपूर्वक यह बात कह रही थीं, उसी समय पार्वती स्वयं आ गयीं और मनोहर वचन कहने लगीं—॥ ५१॥

पार्वत्युवाच

मातस्ते विपरीता हि बुद्धिर्जाताशुभावहा।
धर्मावलम्बनात्त्वं हि कथं धर्मं जहासि वै॥ ५२

अयं रुद्रोऽपरः साक्षात्सर्वप्रभव ईश्वरः।
शम्भुः सुरूपः सुखदः सर्वश्रुतिषु वर्णितः॥ ५३

पार्वती बोलीं—हे मातः! आपकी बुद्धि विपरीत तथा अमंगलकारिणी कैसे हो गयी? धर्मका अवलम्बन करनेवाली होनेपर भी आप धर्मका त्याग क्यों कर रही हैं? ये रुद्र सबसे श्रेष्ठ, साक्षात् ईश्वर, सबको उत्पन्न करनेवाले, शम्भु, सुन्दर रूपवाले, सुख देनेवाले तथा सभी श्रुतियोंमें वर्णित हैं॥ ५२-५३॥

महेशः शंकरश्चायं सर्वदेवप्रभुः स्वराट्।
नानारूपाभिधो मातर्हरिर्ब्रह्मादिसेवितः॥ ५४

हे मातः! ये ही महेश कल्याण करनेवाले, सर्वदेवोंके प्रभु तथा स्वराट् हैं। नाना प्रकारके रूप एवं नामवाले और ब्रह्मा एवं विष्णु आदिसे भी सेवित हैं॥ ५४॥

अधिष्ठानं च सर्वेषां कर्ता हर्ता च स प्रभुः।
निर्विकारी त्रिदेवेशो ह्यविनाशी सनातनः॥ ५५

यदर्थे देवताः सर्वा आयाता किंकरीकृताः।
द्वारि ते सोत्सवाश्चाद्य किमतोऽन्यत्परं सुखम्॥ ५६

वे सबके कर्ता, हर्ता, अधिष्ठान, निर्विकारी, त्रिदेवेश, अविनाशी तथा सनातन हैं। इन्हींके लिये सभी देवगण दासके समान होकर तुम्हारे द्वारपर उत्सव करते हुए आये हैं। अब इससे बढ़कर और क्या सुख होगा?॥ ५५-५६॥

उत्तिष्ठातः प्रयत्नेन जीवितं सफलं कुरु।
देहि मां त्वं शिवायास्मै स्वाश्रमं कुरु सार्थकम्॥ ५७

देहि मां परमेशाय शंकराय जनन्यहो।
स्वीकुरु त्वमिमं मातर्विनयं मे ब्रवीमि ते॥ ५८

अतः हे मातः! प्रयत्नपूर्वक उठिये और अपने जीवनको सफल कीजिये, आप इन शंकरजीके निमित्त मुझे प्रदान कीजिये और अपना गृहस्थाश्रम सफल बनाइये। हे जननि! आज आप मुझे परमेश्वर शंकरके निमित्त प्रदान कीजिये। हे मातः! मैं आपसे कह रही हूँ, आप मेरी इस प्रार्थनाको स्वीकार कीजिये॥ ५७-५८॥

चेन्न दास्यसि तस्मै मां न वृणेऽन्यमहं वरम्।
भागं लभेत्कथं सैंहं शृगालः परवंचकः॥ ५९

यदि आपने मुझे इनको नहीं दिया, तो मैं किसी दूसरेका पतिके रूपमें वरण नहीं करूँगी। परवंचक शृगाल सिंहके भागको किस प्रकार प्राप्त कर सकता है?॥ ५९॥

मनसा वचसा मातः कर्मणा च हरः स्वयम्।
मया वृतो वृतश्चैव यदिच्छसि तथा कुरु॥ ६०

हे मातः! मैंने स्वयं मन, वचन तथा कर्मसे शिवजीका वरण कर लिया है, अब आप जैसा चाहती हैं, वैसा कीजिये॥ ६०॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य शिवावाक्यं मेना शैलेश्वरप्रिया।
सुविलप्य महाक्रुद्धा गृहीत्वा तत्कलेवरम्॥ ६१
मुष्टिभिः कूर्परैश्चैव दन्तान्धर्षयती च सा।
ताडयामास तां पुत्रीं विह्वलातिरुषान्विता॥ ६२

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] पार्वतीका यह वचन सुनकर पर्वतराजकी प्रिया मेना बहुत विलापकर अत्यन्त क्रुद्ध होकर उनके शरीरको पकड़कर दाँतोंको कटकटाती हुई व्याकुल तथा रोषयुक्त होकर मुक्के तथा केहुनोंसे पुत्रीको मारने लगीं॥ ६१-६२॥

ये तत्र ऋषयस्तात त्वदाद्याश्चापरे मुने।
तद्धस्तात्तां परिच्छिद्य निन्युर्दूरतरं ततः॥ ६३

तान्वै तथाविधान्दृष्ट्वा भर्त्सयित्वा पुनः पुनः।
उवाच श्रावयन्ती सा दुर्वचो निखिलान्पुनः॥ ६४

मेनोवाच

किमेनां हि करिष्येऽहं दुष्टाग्रहवतीं शिवाम्।
दास्याम्यस्यै गरं तीव्रं कूपे क्षेप्स्यामि वा ध्रुवम्॥ ६५

छेत्स्यामि कालीमथवा शस्त्रास्त्रैर्भूरिखण्डशः।
निमज्जयिष्ये वा सिन्धौ स्वसुतां पार्वतीं खलु॥ ६६

अथवा स्वशरीरं हि त्यक्ष्याम्याश्वन्यथा ध्रुवम्।
न दास्ये शम्भवे कन्यां दुर्गां विकटरूपिणे॥ ६७

वरोऽयं कीदृशो भीमोऽनया लब्धश्च दुष्टया।
कारितश्चोपहासो मे गिरेश्चापि कुलस्य हि॥ ६८

न माता न पिता भ्राता न बन्धुर्गोत्रजोऽपि हि।
नो सुरूपं न चातुर्यं न गृहं वास्य किंचन॥ ६९

न वस्त्रं नाप्यलङ्कारा: सहायाः केऽपि तस्य न।
वाहनं न शुभं ह्यस्य न वयो न धनं तथा॥ ७०

न पावित्र्यं न विद्या च कीदृशः काय आर्तिदः।
किं विलोक्य मया पुत्री देयास्मै स्यात्सुमङ्गला॥ ७१

ब्रह्मोवाच

इत्यादि सुविलप्याथ बहुशो मेनका तदा।
रुरोदोच्चैर्मुने सा हि दुःखशोकपरिप्लुता॥ ७२
अथाहं द्रुतमागत्याकथयं मेनकां च ताम्।
शिवतत्त्वं च परमं कुज्ञानहरमुत्तमम्॥ ७३

ब्रह्मोवाच

श्रोतव्यं प्रीतितो मेने मदीयं वचनं शुभम्।
यस्य श्रवणतः प्रीत्या कुबुद्धिस्ते विनश्यति॥ ७४

शङ्करो जगतः कर्ता भर्ता हर्ता तथैव च।
न त्वं जानासि तद्रूपं कथं दुःखं समीहसे॥ ७५

हे तात! हे मुने! तदनन्तर वहाँपर तुम तथा अन्य जो ऋषि थे, वे मेनाके हाथसे पार्वतीको छुड़ाकर दूर ले गये। उन सबको वैसा करते देखकर उन्हें बार-बार फटकारकर वे मेना उन्हें सुनाती हुई पुनः दुर्वचन कहने लगीं— ॥ ६३-६४ ॥

मेना बोलीं—हाय! इस दुराग्रहशील पार्वतीका अब मैं क्या करूँ? अब निश्चय ही या तो इसे तीव्र विष दे दूँगी या कुएँमें डाल दूँगी॥ ६५ ॥

अथवा अस्त्र-शस्त्रोंसे काटकर इस कालीके टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगी अथवा अपनी पुत्री इस पार्वतीको समुद्रमें डुबो दूँगी। अथवा मैं शीघ्र ही निश्चित स्वयं अपना शरीर त्याग दूँगी, किंतु विकट रूपधारी शिवको अपनी कन्या दुर्गा नहीं दूँगी॥ ६६-६७ ॥

इस दुष्टाने यह कैसा विकराल वर पाया है। ऐसा करके इसने मेरा, गिरिराजका तथा इस कुलका उपहास करा दिया॥ ६८ ॥

इस [शंकर]-के न माता हैं, न पिता हैं, न भाई हैं, न गोत्रमें उत्पन्न बन्धु हैं, न तो इसका सुन्दर रूप है, न तो इसमें चतुराई ही है, न इसके पास घर है, न वस्त्र है, न अलंकार है, इसका कोई सहायक भी नहीं हैं, इसका वाहन भी अच्छा नहीं है, इसकी वय भी [विवाहयोग्य] नहीं है। इसके पास धन भी नहीं है। न इसमें पवित्रता है, न विद्या है, इसका कष्टदायक कैसा शरीर है, फिर [इसका] क्या देखकर मैं इसे अपनी सुमंगली पुत्री प्रदान करूँ?॥ ६९—७१ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इस प्रकार बहुत विलाप करके दुःख तथा शोकसे व्याप्त होकर वे मेना जोर-जोरसे रोने लगीं। उसके बाद मैं शीघ्रतासे आकर उन मेनासे अज्ञानका हरण करनेवाले श्रेष्ठ तथा परम शिवतत्त्वका वर्णन करने लगा॥ ७२-७३ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मेने! आप प्रीतिपूर्वक मेरे शुभ वचनको सुनिये, जिसके प्रेमपूर्वक सुननेसे आपकी कुबुद्धि नष्ट हो जायगी॥ ७४ ॥

शंकर जगत्‌की सृष्टि करनेवाले, पालन करनेवाले तथा विनाश करनेवाले हैं। आप उनके रूपको नहीं जानती हैं और दुःख क्यों उठा रही हैं?॥ ७५ ॥

अनेकरूपनामा च नानालीलाकरः प्रभुः।
सर्वस्वामी स्वतन्त्रश्च मायाधीशोऽविकल्पकः॥ ७६

इति विज्ञाय मेने त्वं शिवां देहि शिवाय वै।
कुहठं त्यज कुज्ञानं सर्वकार्यविनाशनम्॥ ७७

ये प्रभु अनेक रूप तथा नामवाले, विविध लीला करनेवाले, सबके स्वामी, स्वतन्त्र, मायाधीश तथा विकल्पसे रहित हैं। हे मेने! ऐसा जानकर आप शिवाको शिवजीके लिये प्रदान कीजिये और सभी कार्यका नाश करनेवाले इस दुराग्रह तथा दुर्बुद्धिका त्याग कीजिये॥ ७६-७७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ता सा मया मेना विलपन्ती मुहुर्मुहुः।
लज्जां किंचिच्छनैस्त्यक्त्वा मुने मां वाक्यमब्रवीत्॥ ७८

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! मेरे ऐसा कहनेपर वे मेना बार-बार विलाप करती हुई शनैः-शनैः लज्जा त्यागकर मुझसे कहने लगीं—॥ ७८॥

मेनोवाच

किमर्थं तु भवान्ब्रह्मन् रूपमस्या महावरम्।
व्यर्थीकरोति किमियं हन्यतां न स्वयं शिवा॥ ७९

न वक्तव्यं च भवता शिवाय प्रतिदीयताम्।
न दास्येऽहं शिवायैनां स्वसुतां प्राणवल्लभाम्॥ ८०

मेना बोलीं—हे ब्रह्मन्! आप इसके अति श्रेष्ठ रूपको किसलिये व्यर्थ कर रहे हैं? आप इस शिवाको स्वयं मार क्यों नहीं डालते? आप ऐसा न कहिये कि इसे शिवको दे दीजिये, मैं अपनी इस प्राणप्रिया पुत्रीको शिवके निमित्त नहीं दूँगी॥ ७९-८०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ते तु तदा सिद्धाः सनकाद्या महामुने।
समागत्य महाप्रीत्या वचनं हीदमब्रुवन्॥ ८१

ब्रह्माजी बोले—हे महामुने! तब उनके ऐसा कहनेपर सनक आदि सिद्ध आकर [मेनासे] प्रेमपूर्वक यह वचन कहने लगे—॥ ८१॥

सिद्धा ऊचुः

अयं वै परमः साक्षाच्छिवः परसुखावहः।
कृपया च भवत्पुत्र्यै दर्शनं दत्तवान्प्रभुः॥ ८२

सिद्ध बोले—ये परम सुख प्रदान करनेवाले साक्षात् परमात्मा शिव हैं। इन प्रभुने कृपा करके आपकी पुत्रीको दर्शन दिया है॥ ८२॥

ब्रह्मोवाच

अथोवाच तु तान्मेना विलप्य च मुहुर्मुहुः।
न देया तु मया सम्यग्गिरिशायोग्ररूपिणे॥ ८३

ब्रह्माजी बोले—तब मेनाने बार-बार विलाप करते हुए उनसे भी कहा कि मैं भयंकर रूपवाले शंकरको इसे नहीं दूँगी॥ ८३॥

किमर्थं तु भवन्तश्च सर्वे सिद्धाः प्रपञ्चिनः।
रूपमस्याः परं नाम व्यर्थीकर्तुं समुद्यताः॥ ८४

प्रपंचवाले आप सभी सिद्ध लोग इसके श्रेष्ठ रूपको व्यर्थ करनेके लिये क्यों उद्यत हुए हैं?॥ ८४॥

इत्युक्ते च तया तत्र मुनेऽहं चकितोऽभवम्।
सर्वे विस्मयमापन्ना देवसिद्धर्षिमानवाः॥ ८५

एतस्मिन्समये तस्या हठं श्रुत्वा दृढं महत्।
द्रुतं शिवप्रियो विष्णुः समागत्याब्रवीदिदम्॥ ८६

हे मुने! उनके ऐसा कहनेपर मैं चकित हो गया और सभी देव, सिद्ध, ऋषि तथा मनुष्य भी आश्चर्यमें पड़ गये। इसी समय उनके दृढ़ तथा महान् हठको सुनकर शिवके प्रिय विष्णुजी शीघ्र ही वहाँ आकर यह कहने लगे—॥ ८५-८६॥

विष्णुरुवाच

पितॄणां च प्रिया पुत्री मानसी गुणसंयुता।
पत्नी हिमवतः साक्षाद्ब्रह्मणः कुलमुत्तमम्॥ ८७

सहायास्तादृशा लोके धन्या ह्यसि वदामि किम्।
धर्मस्याधारभूतासि कथं धर्मं जहासि हि॥ ८८

विष्णुजी बोले—आप पितरोंकी प्रिय मानसी कन्या हैं, गुणोंसे युक्त हैं और साक्षात् हिमालयकी पत्नी हैं, आपका अत्यन्त पवित्र ब्रह्मकुल है। वैसे ही आपके सहायक भी हैं, इसलिये आप लोकमें धन्य हैं, मैं विशेष क्या कहूँ। आप धर्मकी आधारभूत हैं, तो आप धर्मका त्याग क्यों कर रही हैं?॥ ८७-८८॥

देवैश्च ऋषिभिश्चैव ब्रह्मणा वा मया तथा।
विरुद्धं कथ्यते किं नु त्वयैव सुविचार्यताम्॥ ८९
शिवं त्वं न च जानासि निर्गुणः सगुणः स हि।
विरूपः ससुरूपो हि सर्वसेव्यः सतां गतिः॥ ९०

भला, आप ही विचार करें कि सभी देवता, ऋषि, ब्रह्माजी तथा मैं विरुद्ध क्यों बोलेंगे? आप शिवजीको नहीं जानती हैं। वे निर्गुण, सगुण, कुरूप, सुरूप, सज्जनोंको शरण देनेवाले तथा सभीके सेव्य हैं॥ ८९-९०॥

तेनैव निर्मिता देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी।
तत्पार्श्वे च तदा तेन निर्मितः पुरुषोत्तमः॥ ९१
ताभ्यां चाहं तथा ब्रह्मा ततश्च गुणरूपतः।
अवतीर्य स्वयं रुद्रो लोकानां हितकारकः॥ ९२

उन्होंने ही मूल प्रकृति ईश्वरीदेवीका निर्माण किया और उस समय उनके बगलमें उन्होंने पुरुषोत्तमकी भी रचना की। तदनन्तर उन दोनोंसे मैं तथा ब्रह्मा अपने गुण तथा रूपके अनुसार उत्पन्न हुए हैं। किंतु वे रुद्र स्वयं अवतरित होकर लोकोंका हित करते हैं॥ ९१-९२॥

ततो वेदास्तथा देवा यत्किंचिद् दृश्यते जगत्।
स्थावरं जङ्गमं चैव तत्सर्वं शंकरादभूत्॥ ९३
तद्रूपं वर्णितं केन ज्ञायते केन वा पुनः।
मया च ब्रह्मणा यस्य ह्यन्तो लब्धश्च नैव हि॥ ९४

वेद, देवता तथा जो कुछ स्थावर-जंगमरूप जगत् दिखायी देता है, वह सब शिवजीसे ही उत्पन्न हुआ है। उनके स्वरूपका वर्णन किसने किया है और उसे कौन जान सकता है? मैं तथा ब्रह्माजी भी उनका अन्त न पा सके॥ ९३-९४॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यंतं यत्किञ्चिद् दृश्यते जगत्।
तत्सर्वं च शिवं विद्धि नात्र कार्या विचारणा॥ ९५
स एवेदृक्सुरूपेणावतीर्णो निजलीलया।
शिवातपःप्रभावाद्धि तव द्वारि समागतः॥ ९६

ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जो कुछ जगत् दिखायी देता है, उस सबको शिव समझिये, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। अपनी लीलासे इस प्रकारके सुन्दर रूपसे अवतीर्ण हुए वे [शिव] पार्वतीके तपके प्रभावसे ही आपके द्वारपर आये हैं॥ ९५-९६॥

तस्मात्त्वं हिमवत्पत्नि दुःखं मुञ्च शिवं भज।
भविष्यति महानन्दः क्लेशो यास्यति संक्षयम्॥ ९७

इसलिये हे हिमालयपत्नि! आप दुःखका त्याग कीजिये और शिवजीका भजन कीजिये, [ऐसा करनेसे] महान् आनन्द प्राप्त होगा और क्लेश नष्ट हो जायगा॥ ९७॥

ब्रह्मोवाच

एवं प्रबोधितायास्तु मेनकाया अभून्मुने।
तस्यास्तु कोमलं किंचिन्मनो विष्णुप्रबोधितम्॥ ९८

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इस प्रकार समझानेपर उन मेनाका विष्णुप्रबोधित मन कुछ कोमल हो गया॥ ९८॥

परं हठं न तत्याज कन्यां दातुं हराय न।
स्वीचकार तदा मेना शिवमायाविमोहिता॥ ९९

किंतु उस समय शिवकी मायासे विमोहित मेनाने हठका परित्याग नहीं किया और शिवको कन्या देना स्वीकार नहीं किया॥ ९९॥

उवाच च हरिं मेना किञ्चिद्बुद्धा गिरिप्रिया।
श्रुत्वा विष्णुवचो रम्यं गिरिजाजननी हि सा॥ १००
यदि रम्यतनुः सः स्यात्तदा देया मया सुता।
नान्यथा कोटिशो यत्नैर्वच्मि सत्यं दृढं वचः॥ १०१

पार्वतीकी माता गिरिप्रिया उन मेनाने विष्णुके मनोहर वचनको सुनकर कुछ उद्बुद्ध होकर विष्णुजीसे कहा—यदि वे सुन्दर शरीर धारण करें, तो मैं अपनी कन्या दे सकती हूँ, अन्यथा करोड़ों प्रयत्नोंसे भी मैं नहीं दूँगी। मैं सत्य तथा दृढ़ वचन कहती हूँ॥ १००-१०१॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा वचनं मेना तूष्णीमास दृढव्रता।
शिवेच्छाप्रेरिता धन्या तथा याखिलमोहिनी॥ १०२

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] जो सबको मोहनेवाली है, उस शिवेच्छासे प्रेरित हुई धन्य तथा दृढ़ व्रतवाली वे मेना इस प्रकार कहकर चुप हो गयीं॥ १०२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे मेनाप्रबोधवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें मेनाप्रबोधवर्णन नामक चौवालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४४॥

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवान् शिवका अपने परम सुन्दर दिव्य रूपको प्रकट करना, मेनाकी प्रसन्नता और क्षमा-प्रार्थना तथा पुरवासिनी स्त्रियोंका शिवके रूपका दर्शन करके जन्म और जीवनको सफल मानना

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे त्वं हि विष्णुना प्रेरितो द्रुतम्।
अनुकूलयितुं शंभुमयास्तन्निकटे मुने॥ १

तत्र गत्वा स वै रुद्रो भवता सुप्रबोधितः।
स्तोत्रैर्नानाविधैः स्तुत्वा देवकार्यचिकीर्षया॥ २

श्रुत्वा त्वद्वचनं प्रीत्या शंभुना धृतमद्भुतम्।
स्वरूपमुत्तमं दिव्यं कृपालुत्वं च दर्शितम्॥ ३

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इसी समय आप विष्णुजीसे प्रेरित होकर शिवजीको प्रसन्न करनेके लिये शीघ्र उनके पास गये। वहाँ जाकर देवकार्य करनेकी इच्छासे आपने अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति करके रुद्रको भलीभाँति समझाया। तब सदाशिव शम्भुने आपकी बात सुनकर अपनी कृपालुता दिखायी और प्रेमपूर्वक अद्भुत दिव्य तथा उत्तम स्वरूप धारण कर लिया॥ १—३॥

तद् दृष्ट्वा सुन्दरं शम्भुं स्वरूपं मन्मथाधिकम्।
अत्यहृष्यो मुने त्वं हि लावण्यपरमायनम्॥ ४

स्तोत्रैर्नानाविधैः स्तुत्वा परमानन्दसंयुतः।
आगच्छस्त्वं मुने तत्र यत्र मेना स्थिताखिलैः॥ ५

कामदेवसे भी अधिक कमनीय, लावण्यके परम निधि तथा सुन्दर रूपवाले उन शिवको देखकर हे मुने! आप अत्यन्त प्रसन्न हो गये और परमानन्दसे युक्त हो अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे उनकी स्तुतिकर आप पुनः वहाँ आये, जहाँ मेना सभी लोगोंके साथ थीं॥ ४-५॥

तत्रागत्य सुप्रसन्नो मुनेऽतिप्रेमसंकुलः।
हर्षयंस्तां शैलपत्नीं मेनां त्वं वाक्यमब्रवीः॥ ६

हे मुने! वहाँ आकर अत्यन्त हर्षित तथा प्रेमयुक्त आप हिमालयकी पत्नी मेनाको हर्षित करते हुए यह वचन कहने लगे—॥ ६॥

नारद उवाच

मेने पश्य विशालाक्षि शिवरूपमनुत्तमम्।
कृता शिवेन तेनैव सुकृपा करुणात्मना॥ ७

नारदजी बोले—हे विशाल नेत्रोंवाली मेने! आप शिवजीके अत्युत्तम रूपको देखिये, उन्हीं करुणामय शंकरने यह महती कृपा की है॥ ७॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा सा तद्वचो मेना विस्मिता शैलकामिनी।
ददर्श शिवरूपं तत्परमानन्ददायकम्॥ ८
कोटिसूर्यप्रतीकाशं सर्वावयवसुन्दरम्।
विचित्रवसनं चात्र नानाभूषणभूषितम्॥ ९

ब्रह्माजी बोले—यह बात सुनकर शैलकामिनी मेना विस्मित हो परमानन्द प्रदान करनेवाले शिवरूपको देखने लगीं। वह रूप करोड़ों सूर्यके समान कान्तिमान्, सभी अंगोंसे सुन्दर, विचित्र वस्त्रसे युक्त, अनेक आभूषणोंसे अलंकृत, अत्यन्त प्रसन्न, सुन्दर हास्यसे

सुप्रसन्नं सुहासं च सुलावण्यं मनोहरम्।
गौराभं द्युतिसंयुक्तं चन्द्ररेखाविभूषितम्॥ १०
सर्वैर्देवगणैः प्रीत्या विष्ण्वाद्यैः सेवितं तथा।
सूर्येण च्छत्रितं मूर्ध्नि चन्द्रेण च विशोभितम्॥ ११
सर्वथा रमणीयं च भूषितस्य विभूषणैः।
वाहनस्य महाशोभा वर्णितुं नैव शक्यते॥ १२

युक्त, लावण्यमय, मनको मोहित करनेवाला, गौर आभावाला, कान्तिसम्पन्न, चन्द्ररेखासे विभूषित, विष्णु आदि सभी देवताओंसे प्रेमपूर्वक सेवित, सिरपर सूर्य तथा चन्द्रमाके द्वारा लगाये गये छत्रसे शोभायमान, अत्यन्त शोभामय तथा सभी प्रकारसे रमणीय था। आभूषणोंसे विभूषित उनके वाहनकी महा-शोभाका तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता॥ ८—१२॥

गङ्गा च यमुना चैव विधत्तः स्म सुचामरे।
सिद्धयोऽष्टौ पुरस्तस्य कुर्वन्ति स्म सुनर्तनम्॥ १३

गंगा और यमुना उनपर चँवर डुला रही थीं और आठों सिद्धियाँ उनके आगे सुन्दर नृत्य कर रही थीं॥ १३॥

मया चैव तदा विष्णुरिन्द्राद्या ह्यमरास्तथा।
स्वं स्वं वेषं सुसम्भूष्य गिरिशेनाचरन्युताः॥ १४

उस समय मेरे तथा शिवजीके साथ विष्णु, इन्द्र आदि सभी देवता अपने-अपने वेष धारणकर चल रहे थे॥ १४॥

तथा जयेति भाषन्तो नानारूपा गणास्तदा।
स्वलङ्कृतमहामोदा गिरीशपुरतोऽचरन्॥ १५

महान् मोदमें भरे हुए तथा अनेक प्रकारके रूपोंवाले गण उस समय जय-जयकार करते हुए शिवजीके आगे-आगे चल रहे थे॥ १५॥

सिद्धाश्चोपसुराः सर्वे मुनयश्च महासुखाः।
ययुः शिवेन सुप्रीताः सकलाश्चापरे तथा॥ १६

सिद्ध, अन्य देवता, महामंगलकारी मुनिगण तथा अन्य लोग भी प्रसन्न होकर शिवजीके साथ चल रहे थे॥ १६॥

एवं देवादयः सर्वे कुतूहलसमन्विताः।
परं ब्रह्म गृणन्तस्ते स्वपत्नीभिरलंकृताः॥ १७

विश्वावसुमुखास्तत्र ह्यप्सरोगणसंयुताः।
गायन्तोऽप्यग्रतस्तस्य परमं शाङ्करं यशः॥ १८

इसी प्रकार सजे हुए सभी देवता अपनी स्त्रियोंको साथ लिये कौतूहलसे युक्त हो परब्रह्म शंकरजीकी स्तुति करते हुए चल रहे थे। समस्त अप्सराओंको साथ लिये हुए विश्वावसु आदि गन्धर्व शिवजीके महान् यशका गान करते हुए उनके आगे-आगे चल रहे थे॥ १७-१८॥

इत्थं महोत्सवस्तत्र बभूव मुनिसत्तम।
नानाविधो महेशे हि शैलद्वारि च गच्छति॥ १९

हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार हिमालयके द्वारपर शंकरके जाते समय अनेक प्रकारके महोत्सव हो रहे थे॥ १९॥

तस्मिंश्च समये तत्र सुषमा या परात्मनः।
वर्णितुं तां विशेषेण कः शक्नोति मुनीश्वर॥ २०

हे मुनीश्वर! उस समय परमात्मा शंकरकी जैसी शोभा थी, उसका विशेष रूपसे वर्णन कौन कर सकता है?॥ २०॥

तथाविधं च तं दृष्ट्वा मेना चित्रगता इव।
क्षणमासीत्ततः प्रीत्या प्रोवाच वचनं मुने॥ २१

हे मुने! उस प्रकारके रूपवाले उन शिवजीको देखकर मेना क्षणभरके लिये चित्रलिखितके समान हो गयीं, इसके बाद वे प्रेमपूर्वक यह वचन कहने लगीं—॥ २१॥

मेनोवाच

धन्या पुत्री मदीया च यया तप्तं महत्तपः।
यत्प्रभावान्महेशान त्वं प्राप्त इह मद्गृहे॥ २२

मेना बोलीं—हे महेशान! मेरी पुत्री धन्य है, जिसने कठिन तपस्या की। जिसके प्रभावसे आप यहाँ मेरे घर पधारे हैं॥ २२॥

मया कृता पुरा या वै शिवनिन्दा दुरत्यया।
तां क्षमस्व शिवास्वामिन्सुप्रसन्नो भवाधुना॥ २३

हे शिवास्वामिन्! मैंने पहले जो घोर शिवनिन्दा की है, उसे आप क्षमा कीजिये और अब परम प्रसन्न हो जाइये॥ २३॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं सम्भाष्य सा मेना संस्तूयेन्दुललाटकम्।
साञ्जलिः प्रणता शैलप्रिया लज्जापराभवत्॥ २४

तावत्स्त्रियः समाजग्मुर्हित्वा कामाननेकशः।
वह्व्यस्ताः पुरवासिन्यः शिवदर्शनलालसाः॥ २५

मज्जनं कुर्वती काचित्तच्चूर्णसहिता ययौ।
द्रष्टुं कुतूहलाढ्या च शङ्करं गिरिजावरम्॥ २६

ब्रह्माजी बोले—शैलप्रिया मेनाने इस प्रकार कहकर चन्द्रमौलिकी स्तुतिकर अत्यन्त लज्जित हो हाथ जोड़कर प्रणाम किया। उसी समय नगरकी बहुत-सी स्त्रियाँ [अपना-अपना] सारा काम छोड़कर शिवदर्शनकी इच्छासे वहाँ पहुँच गयीं। स्नान करती हुई कोई स्त्री स्नानचूर्ण लिये-लिये कुतूहलमें भरकर गिरिजापति शंकरको देखनेके लिये पहुँच गयी॥ २४—२६॥

काचित्तु स्वामिनः सेवां सखीयुक्ता विहाय च।
सुचामरकरा प्रीत्यागाच्छम्भोर्दर्शनाय वै॥ २७

काचित्तु बालकं हित्वा पिबन्तं स्तन्यमादरात्।
अतृप्तं शङ्करं द्रष्टुं ययौ दर्शनलालसा॥ २८

कोई [स्त्री] अपने स्वामीकी सेवा छोड़कर हाथमें सुन्दर चँवर लिये हुए अपनी सखीके साथ शंकरजीके दर्शनके लिये प्रेमपूर्वक पहुँच गयी। कोई स्तनपान करते हुए अपने बालकको अतृप्त ही छोड़कर शिवजीके दर्शनकी इच्छासे आदरपूर्वक [वहाँ] चली गयी॥ २७-२८॥

रशनां बध्नती काचित्तयैव सहिता ययौ।
वसनं विपरीतं वै धृत्वा काचिद्ययौ ततः॥ २९

भोजनार्थं स्थितं कान्तं हित्वा काचिद्ययौ प्रिया।
द्रष्टुं शिवावरं प्रीत्या सतृष्णा सकुतूहला॥ ३०

कोई करधनी बाँध रही थी, उसे वैसे ही लिये पहुँच गयी और कोई विपरीत वस्त्र धारण किये ही पहुँच गयी। कोई स्त्री भोजनके लिये बैठे हुए अपने पतिको छोड़कर प्रेमसे पार्वतीपतिको देखनेकी तृष्णा लिये कुतूहलमें भरकर वहाँ पहुँच गयी॥ २९-३०॥

काचिद्धस्ते शलाकां च धृत्वांजनकरा प्रिया।
अञ्जित्वैकाक्षि सन्द्रष्टुं ययौ शैलसुतावरम्॥ ३१

कोई स्त्री एक ही आँखमें अंजन लगाकर एक हाथमें अंजन और दूसरे हाथमें शलाका लिये हुए हिमालयपुत्रीके पतिको देखनेके लिये चल पड़ी॥ ३१॥

काचित्तु कामिनी पादौ रञ्जयन्ती ह्यलक्तकैः।
श्रुत्वा घोषं च तद्धित्वा दर्शनार्थमुपागता॥ ३२

इत्यादि विविधं कार्यं हित्वा वासं स्त्रियो ययुः।
दृष्ट्वा तु शांकरं रूपं मोहं प्राप्तास्तदाभवन्॥ ३३

ततस्ताः प्रेमसंविग्नाः शिवदर्शनहर्षिताः।
निधाय हृदि तन्मूर्तिं वचनं चेदमब्रुवन्॥ ३४

कोई स्त्री पैरोंमें महावर लगा ही रही थी कि बाजेका शब्द सुनकर वह उसे वहीं छोड़कर दर्शनके लिये दौड़ पड़ी। इस प्रकार स्त्रियाँ विविध कार्योंको तथा निवासस्थानको छोड़कर पहुँच गयीं। [उस समय] शिवका रूप देखकर वे मोहित हो गयीं। तब शिवदर्शनसे हर्षित हुईं वे प्रेमसे विभोर हो उनकी मूर्ति हृदयमें धारणकर [परस्पर] यह वचन कहने लगीं—॥ ३२—३४॥

पुरवासिन्य ऊचुः

नेत्राणि सफलान्यासन् हिमवत्पुरवासिनाम्।
यो योऽपश्यददो रूपं तस्य वै सार्थकं जनुः॥ ३५

पुरवासिनियाँ बोलीं—हिमालयपुरीमें रहनेवालोंके नेत्र सफल हो गये, जिस-जिसने इस स्वरूपको देखा, आज उसका जन्म सफल हो गया। उसीका जन्म

तस्यैव सफलं जन्म तस्यैव सफलाः क्रियाः।
येन दृष्टः शिवः साक्षात्सर्वपापप्रणाशकः॥ ३६

पार्वत्या साधितं सर्वं शिवार्थे यत्तपः कृतम्।
धन्येयं कृतकृत्येयं शिवा प्राप्य शिवं पतिम्॥ ३७

यदीदं युगलं ब्रह्मा न युञ्ज्याच्छिवयोर्मुदा।
तदा च सकलोऽप्यस्य श्रमो निष्फलतामियात्॥ ३८

सम्यक् कृतं तथा चात्र योजितं युग्ममुत्तमम्।
सर्वेषां सार्थता जाता सर्वकार्यसमुद्भवा॥ ३९

विना तु तपसा शम्भोर्दर्शनं दुर्लभं नृणाम्।
दर्शनाच्छंकरस्यैव सर्वे याताः कृतार्थताम्॥ ४०

लक्ष्मीर्नारायणं लेभे यथा वै स्वामिनं पुरा।
तथासौ पार्वती देवी हरं प्राप्य सुभूषिता॥ ४१

ब्रह्माणं च यथा लेभे स्वामिनं वै सरस्वती।
तथासौ पार्वती देवी हरं प्राप्य सुभूषिता॥ ४२

वयं धन्याः स्त्रियः सर्वाः पुरुषाः सकला वराः।
ये ये पश्यन्ति सर्वेशं शंकरं गिरिजापतिम्॥ ४३

ब्रह्मोवाच

इत्थमुक्त्वा तु वचनं चन्दनैश्चाक्षतैरपि।
शिवं समर्चयामासुर्लाजान्ववृषुरादरात्॥ ४४
तस्थुस्तत्र स्त्रियः सर्वा मेनया सह सोत्सुकाः।
वर्णयन्त्योऽधिकं भाग्यं मेनायाश्च गिरेरपि॥ ४५

कथास्तथाविधाः शृण्वंस्तद्वामावर्णिताः शुभाः।
प्रहृष्टोऽभूत्प्रभुः सर्वैर्मुने विष्ण्वादिभिस्तदा॥ ४६

सफल है एवं उसीकी क्रियाएँ सफल हैं, जिसने सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाले साक्षात् शिवका दर्शन किया॥ ३५-३६॥

पार्वतीने सब कुछ सिद्ध कर लिया, जो उसने शिवके लिये तप किया। यह पार्वती शिवको पतिरूपमें प्राप्तकर धन्य तथा कृतकृत्य हो गयी॥ ३७॥

यदि ब्रह्मा प्रसन्नतापूर्वक शिवा-शिवकी इस जोड़ीको न मिलाते तो, उनका सम्पूर्ण श्रम व्यर्थ हो जाता॥ ३८॥

इन्होंने बहुत ठीक किया, जो यहाँ उत्तम जोड़ीका संयोग करा दिया। इससे सभीके समस्त कार्योंकी सार्थकता हो गयी। बिना तपस्याके मनुष्योंको शिवजीका दर्शन दुर्लभ है, [आज] शिवजीके दर्शनसे ही सभी लोग कृतार्थ हो गये। जिस प्रकार पूर्व समयमें लक्ष्मीने नारायणको पतिरूपमें प्राप्त किया था, उसी प्रकार ये पार्वती देवी भी शिवको प्राप्तकर सुशोभित हो गयीं॥ ३९—४१॥

जिस प्रकार सरस्वतीने ब्रह्माको पतिरूपमें पाया था, वैसे ही पार्वती देवी शंकरको प्राप्तकर सुशोभित हो गयीं॥ ४२॥

हम सभी स्त्रियाँ धन्य हैं तथा सभी पुरुष धन्य हैं, जो-जो गिरिजापति सर्वेश्वर शिवका दर्शन कर रहे हैं॥ ४३॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] ऐसा कहकर उन लोगोंने चन्दन एवं अक्षतसे शिवजीका पूजन किया और आदरपूर्वक उनके ऊपर लाजाकी वर्षा की॥ ४४॥

उसके अनन्तर सभी स्त्रियाँ उत्सुक होकर मेनाके साथ खड़ी रहीं और हिमालय तथा मेनाके महान् भाग्यकी सराहना करने लगीं। हे मुने! स्त्रियोंके द्वारा कही गयी उस प्रकारकी शुभ बातोंको सुनकर विष्णु आदि सभी देवताओंके साथ प्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ ४५-४६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शिवसुन्दरस्वरूप-पुरवास्युत्सववर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें शिवके सुन्दर स्वरूप और पुरवासियोंके उत्सवका वर्णन नामक पैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४५॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

नगरमें बरातियोंका प्रवेश, द्वाराचार तथा पार्वतीद्वारा कुलदेवताका पूजन

ब्रह्मोवाच

अथ शंभुः प्रसन्नात्मा सदूतं स्वगणैः सुरैः।
सर्वैरन्यैर्गिरेर्धाम जगाम सकुतूहलम्॥ १

ब्रह्माजी बोले—तदनन्तर शिवजी प्रसन्नचित्त होकर अपने गणों, देवताओं, दूतों तथा अन्य सभी लोगोंके साथ कुतूहलपूर्वक हिमालयके घर गये॥ १॥

मेनापि स्त्रीगणैस्तैश्च हिमाचलवरप्रिया।
तत उत्थाय स्वगृहाभ्यंतरं सा जगाम ह॥ २

हिमालयकी श्रेष्ठ प्रिया मेना भी सभी स्त्रियोंके साथ उठकर अपने घरके अन्दर गयीं॥ २॥

नीराजनार्थं शम्भोश्च दीपपात्रकरा सती।
सर्वर्षिस्त्रीगणैस्साकमगच्छद् द्वारमादरात्॥ ३

इसके बाद वे सती शिवजीकी आरतीके लिये हाथमें दीपक लेकर सभी ऋषियोंकी स्त्रियोंको साथ लेकर आदरपूर्वक द्वारपर आयीं॥ ३॥

तत्रागतं महेशानं शंकरं गिरिजावरम्।
ददर्श प्रीतितो मेना सेवितं सकलैः सुरैः॥ ४

वहाँ मेनाने द्वारपर आये हुए, सभी देवताओंसे सेवित गिरिजापति महेश्वर शिवको बड़े प्रेमसे देखा॥ ४॥

चारुचंपकवर्णाभं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं रत्नस्वर्णादिभूषितम्॥ ५

मालतीमालया युक्तं सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम्।
सत्कंठाभरणं चारुवलयाङ्गदभूषितम्॥ ६

वह्निशौचेनातुलेन त्वतिसूक्ष्मेण चारुणा।
अमूल्यवस्त्रयुग्मेन विचित्रेणातिराजितम्॥ ७

चन्दनागरुकस्तूरीचारुकुंकुमभूषितम्।
रत्नदर्पणहस्तं च कज्जलोज्ज्वललोचनम्॥ ८

सर्वस्वप्रभयाच्छन्नमतीव सुमनोहरम्।
अतीव तरुणं रम्यं भूषिताङ्गैश्च भूषितम्॥ ९

कामिनीकांतमव्यग्रं कोटिचन्द्राननांबुजम्।
कोटिस्मराधिकतनुच्छविं सर्वांगसुन्दरम्॥ १०

ईदृग्विधं सुदेवं तं स्थितं स्वपुरतः प्रभुम्।
दृष्ट्वा जामातरं मेना जहौ शोकं मुदान्विता॥ ११

सुन्दर चम्पक पुष्पके वर्णके समान आभावाले, पाँच मुखवाले, तीन नेत्रवाले, मन्द मुसकान तथा प्रसन्नतायुक्त मुखवाले, रत्न तथा सुवर्ण आदिसे शोभित, मालतीकी मालासे युक्त, उत्तम रत्नोंसे जटित मुकुटसे प्रकाशित, गलेमें सुन्दर हार धारण किये हुए, सुन्दर कंगन तथा बाजूबन्दसे सुशोभित, अग्निके समान देदीप्यमान, अनुपम, अत्यन्त सूक्ष्म, मनोहर, बहुमूल्य तथा विचित्र युग्म वस्त्र धारण किये हुए, चन्दन-अगरु-कस्तूरी तथा सुन्दर कुमकुमके लेपसे शोभित, हाथमें रत्नमय दर्पण लिये हुए, कज्जलके कारण कान्तिमान् नेत्रवाले, सम्पूर्ण प्रभासे आच्छन्न, अत्यन्त मनोहर, पूर्ण यौवनवाले, रम्य, सजे हुए अंगोंसे विभूषित, स्त्रियोंको सुन्दर लगनेवाले, व्यग्रतासे रहित, करोड़ों चन्द्रमाके समान मुखकमलवाले, करोड़ों कामदेवसे भी अधिक शरीरकी छविवाले तथा सर्वांगसुन्दर—इस प्रकारके अपने जामाता सुन्दर देव प्रभु शिवको अपने आगे स्थित देखकर मेनाने अपना शोक त्याग दिया और वे आनन्दमें भर गयीं॥ ५—११॥

प्रशशंस स्वभाग्यं सा गिरिजां भूधरं कुलम्।
मेने कृतार्थमात्मानं जहर्ष च पुनः पुनः॥ १२

वे अपने भाग्य, गिरिजा तथा पर्वतके कुलकी प्रशंसा करने लगीं। उन्होंने अपनेको कृतार्थ माना और वे बार-बार प्रसन्न होने लगीं॥ १२॥

नीराजनं चकारासौ प्रफुल्लवदना सती।
अवलोकपरा तत्र मेना जामातरं मुदा॥ १३
गिरिजोक्तमनुस्मृत्य मेना विस्मयमागता।
मनसैव ह्युवाचेदं हर्षफुल्लाननाम्बुजा॥ १४
यद्वै पुरोक्तं च तया पार्वत्या मम तत्र च।
ततोऽधिकं प्रपश्यामि सौन्दर्यं परमेशितुः॥ १५
महेशस्य सुलावण्यमनिर्वाच्यं च संप्रति।
एवं विस्मयमापन्ना मेना स्वगृहमाययौ॥ १६

तब वे सती मेना प्रसन्नमुख होकर आरती करने लगीं और आनन्दपूर्वक उन्हें देखने लगीं। वे मेना गिरिजाकी कही हुई बातका स्मरणकर विस्मित हो गयीं। उनका मुखकमल हर्षके कारण खिल उठा और वे अपने मनमें कहने लगीं—उस पार्वतीने मुझसे पूर्वमें जो कहा था, मैं तो उससे भी अधिक सौन्दर्य परमेश्वरका देख रही हूँ। इस समय महेश्वरका सौन्दर्य तो वर्णनसे परे है। इस प्रकार विस्मित हुई मेना अपने घरके भीतर गयीं॥ १३—१६॥

प्रशशंसुर्युवतयो धन्या धन्या गिरेः सुता।
दुर्गा भगवतीत्येवमूचुः काश्चन कन्यकाः॥ १७

युवतियाँ प्रशंसा करने लगीं कि गिरिजा धन्य हैं, धन्य हैं और कुछ कन्याओंने तो यह कहा कि ये साक्षात् भगवती दुर्गा हैं॥ १७॥

न दृष्टो वर इत्येवमस्माभिर्दानगोचरः।
धन्या हि गिरिजादेवीमूचुः काश्चन कन्यकाः॥ १८

कुछ कन्याएँ तो इस प्रकार कहने लगीं कि ये गिरिजा धन्य हैं, जो इन्हें मनोहर पति प्राप्त हुआ। हमलोगोंने तो इस प्रकारके मनोहर वरका दर्शन ही नहीं किया है॥ १८॥

जगुर्गन्धर्वप्रवरा ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
दृष्ट्वा शंकररूपं च प्रहृष्टाः सर्वदेवताः॥ १९

[उस समय] श्रेष्ठ गन्धर्व गाने लगे, अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। सभी देवता शंकरजीके रूपको देखकर अत्यन्त हर्षित हो गये॥ १९॥

नानाप्रकारवाद्यानि वादका मधुराक्षरम्।
नानाप्रकारशिल्पेन वादयामासुरादरात्॥ २०

बाजा बजानेवाले अनेक प्रकारके कौशलसे मधुर ध्वनिमें आदरपूर्वक अनेक प्रकारके वाद्य बजाने लगे॥ २०॥

हिमाचलोऽपि मुदितो द्वाराचारमथाकरोत्।
मेनापि सर्वनारीभिर्महोत्सवपुरस्सरम्॥ २१

परपृच्छां चकारासौ मुदिता स्वगृहं ययौ।
शिवो निवेदितं स्थानं जगाम गणनिर्जरैः॥ २२

इसके बाद हिमालयने भी प्रसन्न होकर द्वाराचार किया। मेनाने भी आनन्दित होकर सभी स्त्रियोंके साथ महोत्सवपूर्वक परिछन किया। फिर वे अपने घरमें चली गयीं। इसके बाद शिवजी भी अपने गणों और देवताओंके साथ निर्दिष्ट स्थानपर चले गये॥ २१-२२॥

एतस्मिन्नन्तरे दुर्गां शैलान्तःपुरचारिकाः।
बहिर्जग्मुः समादाय पूजितुं कुलदेवताम्॥ २३

इसी बीच हिमालयके अन्तःपुरकी परिचारिकाएँ दुर्गाको साथ लेकर कुलदेवताकी पूजा करनेके लिये बाहर गयीं॥ २३॥

तत्र तां ददृशुर्देवा निमेषरहिता मुदा।
सुनीलाञ्जनवर्णाभां स्वाङ्गैश्च प्रतिभूषिताम्॥ २४
त्रिनेत्रादृतनेत्रां तामन्यवारितलोचनाम्।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां सकटाक्षां मनोहराम्॥ २५
सुचारुकबरीभारां चारुपत्रकशोभिताम्।

वहाँपर देवताओंने प्रेमपूर्वक अपलक दृष्टिसे नील अंजनके समान वर्णवाली, अपने अंगोंसे विभूषित, शिवजीके द्वारा आदृत, तीन नेत्रोंवाली, [शिवजीके अतिरिक्त] अन्यके ऊपरसे हटे हुए नेत्रवाली, मन्द-मन्द हासयुक्त तथा प्रसन्न मुखमण्डलवाली, कटाक्षयुक्त, मनोहर, सुन्दर केशपाशवाली, सुन्दर पत्र-रचनासे

कस्तूरीबिन्दुभिस्सार्धं सिन्दूरबिन्दुशोभिताम्॥ २६

रत्नेन्द्रसारहारेण वक्षसा सुविराजिताम्।
रत्नकेयूरवलयां रत्नकङ्कणमंडिताम्॥ २७

सद्रत्नकुण्डलाभ्यां च चारुगण्डस्थलोज्ज्वलाम्।
मणिरत्नप्रभामुष्टिदन्तराजिविराजिताम् ॥ २८

मधुबिम्बाधरोष्ठां च रत्नयावकसंयुताम्।
रत्नदर्पणहस्तां च क्रीडापद्मविभूषिताम्॥ २९

चन्दनागुरुकस्तूरीकुंकुमेनातिचर्चिताम् ।
क्वणन्मंजीरपादां च रक्तांघ्रितलराजिताम्॥ ३०

शोभित, कस्तूरी-बिन्दुसहित सिन्दूरबिन्दुसे शोभित, वक्ष:स्थलपर श्रेष्ठ रत्नोंके हारसे सुशोभित, रत्ननिर्मित बाजूबन्द धारण करनेवाली, रत्नमय कंकणोंसे मण्डित, श्रेष्ठ रत्नोंके कुण्डलोंसे प्रकाशित, सुन्दर कपोलवाली, मणि एवं रत्नोंकी कान्तिको फीकी कर देनेवाली दन्तपंक्तिसे सुशोभित, मनोहर बिम्बफलके समान अधरोष्ठवाली, रत्नोंके यावक (महावर)-से युक्त, हाथमें रत्नमय दर्पण धारण की हुई, क्रीड़ाके लिये कमलसे विभूषित, चन्दन-अगरु-कस्तूरी तथा कुमकुमके लेपसे सुशोभित, मधुर शब्द करते हुए घुँघरुओंसे युक्त चरणोंवाली तथा रक्तवर्णके पादतलसे शोभित उन देवीको देखा॥ २४—३०॥

प्रणेमुः शिरसा देवीं भक्तियुक्ताः समेनकाम्।
सर्वे सुरादयो दृष्ट्वा जगदाद्यां जगत्प्रसूम्॥ ३१

उस समय सभी देवता आदिने जगत्की आदिस्वरूपा तथा जगत्को उत्पन्न करनेवाली देवीको देखकर भक्तियुक्त हो सिर झुकाकर मेनासहित उन्हें प्रणाम किया॥ ३१॥

त्रिनेत्रो नेत्रकोणेन तां ददर्श मुदान्वितः।
शिवः सत्याकृतिं दृष्ट्वा विजहौ विरहज्वरम्॥ ३२

त्रिनेत्र शंकरने भी उन्हें अपने नेत्रके कोणसे देखा और सतीके रूपको देखकर विरहज्वरको त्याग दिया॥ ३२॥

शिवः सर्वं विसस्मार शिवासंन्यस्तलोचनः।
पुलकांचितसर्वाङ्गो हर्षाद्गौरीविलोचनः॥ ३३

अथ काली बहिः पुर्या गत्वा पूज्य कुलाम्बिकाम्।
विवेश भवनं रम्यं स्वपितुस्सद्विजाङ्गना॥ ३४

शिवापर टिकाये हुए नेत्रवाले शिव सब कुछ भूल गये। गौरीको देखनेसे हर्षके कारण उनके सभी अंग पुलकित हो उठे। इस प्रकार कालीने नगरके बाहर जाकर कुलदेवीका पूजनकर द्विजपत्नियोंके साथ अपने पिताके रम्य घरमें प्रवेश किया॥ ३३-३४॥

शङ्करोऽपि सुरैः सार्धं हरिणा ब्रह्मणा तथा।
हिमाचलसमुद्दिष्टं स्वस्थानमगमन्मुदा॥ ३५

शंकरजी भी देवताओं, ब्रह्मा तथा विष्णुके साथ हिमालयके द्वारा निर्दिष्ट अपने स्थानपर प्रसन्नतापूर्वक चले गये॥ ३५॥

तत्र सर्वे सुखं तस्थुः सेवन्तः शङ्करं यथा।
सम्मानिता गिरीशेन नानाविधसुसम्पदा॥ ३६

वहाँपर सभी लोग गिरीशके द्वारा नाना प्रकारकी सम्पत्तिसे सम्मानित होकर शंकरजीकी सेवा करते हुए सुखपूर्वक ठहर गये॥ ३६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे वरागमादिवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें वरके आगमन आदिका वर्णन नामक छियालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४६॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

पाणिग्रहणके लिये हिमालयके घर शिवके गमनोत्सवका वर्णन

ब्रह्मोवाच

ततः शैलवरः सोऽपि प्रीत्या दुर्गोपवीतकम्।
कारयामास सोत्साहं वेदमन्त्रैश्शिवस्य च॥ १
अथ विष्ण्वादयो देवा मुनयः सकुतूहलम्।
हिमाचलप्रार्थनया विवेशान्तर्गृहं गिरेः॥ २

ब्रह्माजी बोले—तदनन्तर शैलराजने प्रसन्नतापूर्वक बड़े उत्साहसे वेदमन्त्रोंके द्वारा शिवा एवं शिवजीका उपनयन-संस्कार सम्पन्न कराया। तदनन्तर विष्णु आदि देवताओं एवं मुनियोंने हिमालयके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर उनके घरके भीतर प्रवेश किया॥ १-२॥

श्रुत्याचारं भवाचारं विधाय च यथार्थतः।
शिवामलंकृतां चक्रुः शिवदत्तविभूषणैः॥ ३
प्रथमं स्नापयित्वा तां भूषयित्वाथ सर्वशः।
नीराजिता सखीभिश्च विप्रपत्नीभिरेव च॥ ४
अहताम्बरयुग्मेन शोभिता वरवर्णिनी।
विरराज महाशैलदुहिता शङ्करप्रिया॥ ५

उन लोगोंने लोक तथा वेदरीतिको यथार्थ रूपसे सम्पन्नकर शिवके द्वारा दिये गये आभूषणोंसे पार्वतीको अलंकृत किया। सखियों और ब्राह्मणोंकी पत्नियोंने पहले पार्वतीको स्नान कराकर पुनः सभी प्रकारसे सजाकर उनकी आरती उतारी। शंकरप्रिया तथा गिरिराजसुता वरवर्णिनी पार्वती उस समय दो नूतन वस्त्र धारण किये हुए अत्यन्त शोभित हो रही थीं॥ ३—५॥

कंचुकी परमा दिव्या नानारत्नान्विताद्भुता।
विधृता च तया देव्या विलसन्त्यधिकं मुने॥ ६
सा बभार तदा हारं दिव्यरत्नसमन्वितम्।
वलयानि महार्हाणि शुद्धचामीकराणि च॥ ७

हे मुने! उन देवीने अनेक प्रकारके रत्नोंसे जटित परम दिव्य तथा अद्भुत कंचुकी धारण की, जिससे वे अधिक शोभा पाने लगीं। तदनन्तर उन्होंने दिव्य रत्नोंसे जड़ा हुआ हार तथा शुद्ध सुवर्णके बने हुए बहुमूल्य कंकणोंको भी धारण किया॥ ६-७॥

स्थिता तत्रैव सुभगा ध्यायन्ती मनसा शिवम्।
शुशुभेऽति महाशैलकन्यका त्रिजगत्प्रसूः॥ ८

तीनों जगत्को उत्पन्न करनेवाली तथा महाशैलकी कन्या सौभाग्यवती वे पार्वती मनमें शिवजीका ध्यान करते हुए वहींपर बैठी हुई अत्यन्त शोभित होने लगीं॥ ८॥

तदोत्सवो महानासीदुभयत्र मुदावहः।
दानं बभूव विविधं ब्राह्मणेभ्यो विवर्णितम्॥ ९
अन्येषां द्रव्यदानं च बभूव विविधं महत्।
गीतवाद्यविनोदश्च तत्रोत्सवपुरस्सरम्॥ १०

उस समय दोनों पक्षोंमें आनन्ददायक महान् उत्सव हुआ और [उभयपक्षसे] नाना प्रकारके अवर्णनीय दान ब्राह्मणोंको दिये गये। इसी प्रकार लोगोंको भी अनेक प्रकारके दान दिये गये और वहाँ उत्सवपूर्वक गीत, वाद्य एवं विनोद सम्पन्न हुए॥ ९-१०॥

अथ विष्णुरहं धाता शक्राद्या अमरास्तथा।
मुनयश्च महाप्रीत्या निखिलाः सोत्सवा मुदा॥ ११
सुप्रणम्य शिवां भक्त्या स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम्।
सम्प्राप्य हिमगिर्याज्ञां स्वं स्वं स्थानं समाश्रिताः॥ १२
एतस्मिन्नन्तरे तत्र ज्योतिःशास्त्रविशारदः।
हिमवन्तं गिरीन्द्रं तं गर्गो वाक्यमभाषत॥ १३

तब मैं ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि सभी देवगण तथा सभी मुनिलोग बड़ी प्रसन्नताके साथ आनन्दपूर्वक उत्सव मनाकर भक्तिपूर्वक पार्वतीको प्रणामकर तथा शिवजीके चरणकमलोंका ध्यानकर हिमालयकी आज्ञा प्राप्त करके अपने-अपने स्थानपर बैठ गये। इसी समय वहाँ ज्योतिःशास्त्रके पारंगत विद्वान् गर्गाचार्य उन गिरिराज हिमालयसे यह वचन कहने लगे—॥ ११—१३॥

गर्ग उवाच

हिमाचल धराधीश स्वामिन् कालीपितः प्रभो।
पाणिग्रहार्थं शंभुं चानय त्वं निजमंदिरम्॥ १४

गर्ग बोले—हे हिमालय! हे धराधीश! हे स्वामिन्! हे कालीके पिता! हे प्रभो! अब आप पाणिग्रहणके निमित्त शिवजीको अपने घरपर ले आइये॥ १४॥

ब्रह्मोवाच

अथ तं समयं ज्ञात्वा कन्यादानोचितं गिरिः।
निवेदितं च गर्गेण मुमुदेऽतीव चेतसि॥ १५

ब्रह्माजी बोले—तत्पश्चात् गर्गके द्वारा निर्देश किये गये कन्यादानके लिये उचित समयको जानकर हिमालय मनमें अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ १५॥

महीधरान्द्विजांश्चैव परानपि मुदा गिरिः।
प्रेषयामास सुप्रीत्या शिवानयनकाम्यया॥ १६

ते पर्वता द्विजाश्चैव सर्वमङ्गलपाणयः।
संजग्मुः सोत्सवाः प्रीत्या यत्र देवो महेश्वरः॥ १७

हिमालयने आनन्दित होकर [उसी समय] पर्वतों, द्विजों तथा अन्य लोगोंको भी अत्यन्त प्रेमके साथ शिवजीको बुलानेकी इच्छासे भेजा। वे पर्वत तथा ब्राह्मण हाथोंमें सभी मांगलिक वस्तुएँ लेकर महान् उत्सव करते हुए प्रेमपूर्वक वहाँ गये, जहाँ भगवान् महेश्वर थे॥ १६-१७॥

तदा वादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा।
महोत्साहोऽभवत्तत्र गीतनृत्यान्वितेन हि॥ १८

उस समय गीत-नृत्यसहित वाद्यध्वनि तथा वेदध्वनिसे महान् उत्सव होने लगा॥ १८॥

श्रुत्वा वादित्रनिर्घोषं सर्वे शंकरसेवकाः।
उत्थितास्त्वैकपद्येन सदेवर्षिगणा मुदा॥ १९

परस्परं समूचुस्ते हर्षनिर्भरमानसाः।
अत्रागच्छन्ति गिरयः शिवानयनकाम्यया॥ २०

वाद्योंके शब्दको सुनकर शंकरजीके सभी सेवक, देवता, ऋषि तथा गण आनन्दित होकर एक साथ ही उठ खड़े हुए और वे हर्षसे परिपूर्ण होकर परस्पर कहने लगे—शिवजीको बुलानेकी इच्छासे [गिरिराजके द्वारा भेजे गये] पर्वत यहाँ आ रहे हैं॥ १९-२०॥

पाणिग्रहणकालो हि नूनं सद्यः समागतः।
महद्भाग्यं हि सर्वेषां संप्राप्तमिह मन्महे॥ २१

धन्या वयं विशेषेण विवाहं शिवयोर्ध्रुवम्।
द्रक्ष्यामः परमप्रीत्या जगतां मङ्गलालयम्॥ २२

निश्चय ही पाणिग्रहणका काल शीघ्र उपस्थित हो गया है, अतः सभीका महाभाग्य उपस्थित हो गया है—ऐसा हमलोग मानते हैं। हमलोग विशेष रूपसे धन्य हैं, क्योंकि हमलोग संसारके मंगलोंके स्थानस्वरूप शिवा-शिवके विवाहको अत्यन्त प्रेमसे देखेंगे॥ २१-२२॥

ब्रह्मोवाच

एवं यावदभूत्तेषां संवादस्तत्र चादरात्।
तावत्सर्वे समायाताः पर्वतेन्द्रस्य मंत्रिणः॥ २३

ते गत्वा प्रार्थयाञ्चक्रुः शिवं विष्ण्वादिकानपि।
कन्यादानोचितः कालो वर्तते गम्यतामिति॥ २४

ब्रह्माजी बोले—जब आदरपूर्वक उनका यह संवाद हो रहा था, उसी समय गिरिराजके सभी मन्त्री वहाँ आ गये। उन लोगोंने जा करके विष्णु आदि तथा शंकरसे प्रार्थना की कि कन्यादानका उचित समय उपस्थित हो गया है, अब आप लोग चलें॥ २३-२४॥

ते तच्छ्रुत्वा सुराः सर्वे मुने विष्ण्वादयोऽखिलाः।
मुमुदुश्चेतसातीव जयेत्यूचुर्गिरिं द्रुतम्॥ २५

यह सुनकर वे विष्णु आदि सभी देवता मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हुए और जोर-जोरसे गिरिराज हिमालयकी जय-जयकार करने लगे॥ २५॥

शिवोऽपि मुमुदेऽतीव कालीप्रापणलालसः।
गुप्तं चकार तच्चिह्नं मनस्येवाद्भुताकृतिः॥ २६

इधर, शिवजी भी कालीको प्राप्त करनेकी लालसासे अत्यन्त प्रसन्न हो उठे, किंतु अद्भुत रूपवाले उन शिवने उसके लक्षणको मनमें गुप्त रखा।

अथ स्नानं कृतं तेन मङ्गलद्रव्यसंयुतम्।
शूलिना सुप्रसन्नेन लोकानुग्रहकारिणा॥ २७

इसके उपरान्त लोकपर कृपा करनेवाले शूलधारीने परम प्रसन्न होकर मांगलिक द्रव्योंसे युक्त [जलसे] स्नान किया॥ २६-२७॥

स्नातः सुवाससा युक्तः सर्वैस्तैः परिवारितः।
आरोपितो वृषस्कन्धे लोकपालैः सुसेवितः॥ २८

पुरस्कृत्य प्रभुं सर्वे जग्मुर्हिमगिरेर्गृहम्।
वाद्यानि वादयन्तश्च कृतवन्तः कुतूहलम्॥ २९

सभी लोकपालोंने स्नान किये हुए तथा सुन्दर वस्त्रसे युक्त उन शिवको चारों ओरसे घेरकर उनकी सेवा की तथा उन्हें वृषभके स्कन्धपर बैठाया। इसके बाद प्रभुको आगे करके सभी लोग हिमालयके घरकी ओर चल पड़े। वे वाद्य बजाते हुए कुतूहल कर रहे थे॥ २८-२९॥

हिमागप्रेषिता विप्रास्तथा ते पर्वतोत्तमाः।
शम्भोरग्रचरा ह्यासन्कुतूहलसमन्विताः॥ ३०

बभौ छत्रेण महता ध्रियमाणो हि मूर्धनि।
चामरैर्वीज्यमानोऽसौ सवितानो महेश्वरः॥ ३१

अहं विष्णुस्तथा चेन्द्रो लोकपालास्तथैव च।
अग्रगाः स्मातिशोभन्ते श्रिया परमया श्रिताः॥ ३२

उस समय हिमालयके द्वारा भेजे गये ब्राह्मण तथा श्रेष्ठ पर्वतगण कुतूहलसे युक्त होकर शिवजीके आगे-आगे चल रहे थे। मस्तकपर विशाल छत्र लगाये हुए, चँवर डुलाये जाते एवं वितानसे युक्त वे महेश्वर अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे। उस समय आगे-आगे चलते हुए मैं, विष्णु, इन्द्र तथा समस्त लोकपाल परम ऐश्वर्यसे युक्त होकर सुशोभित हो रहे थे॥ ३०—३२॥

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पटहानकगोमुखाः।
पुनः पुनरवाद्यन्त वादित्राणि महोत्सवे॥ ३३

उस महोत्सवमें शंख, भेरियाँ, नगाड़े, बड़े-बड़े ढोल तथा गोमुख आदि बाजे बार-बार बज रहे थे॥ ३३॥

तथैव गायकाः सर्वे जगुः परममङ्गलम्।
नर्तक्यो ननृतुः सर्वा नानातालसमन्विताः॥ ३४

सभी गायक भी मंगलगीत गा रहे थे तथा सभी नर्तकियाँ अनेक प्रकारके तालोंके साथ नाच रही थीं॥ ३४॥

एभिस्समेतो जगदेकबन्धु-
र्ययौ तदानीं परमेशवर्चसा।
सुसेव्यमानः सकलैः सुरेश्वरै-
र्विकीर्यमाणः कुसुमैश्च हर्षितैः॥ ३५

उस समय इन सभीके साथ जगत्‌के एकमात्र बन्धु शिव परम तेजसे युक्त होकर समस्त हर्षित सुरेश्वरोंके द्वारा सेवित होते हुए तथा अपने ऊपर पुष्प विकीर्ण किये जाते हुए चल रहे थे॥ ३५॥

सम्पूजितस्तदा शम्भुः प्रविष्टो यज्ञमण्डपम्।
संस्तूयमानो बह्वीभिः स्तुतिभिः परमेश्वरः॥ ३६

तत्पश्चात् सभी लोगोंसे भली-भाँति पूजित होकर शम्भुने यज्ञमण्डपमें प्रवेश किया, उस समय सभी लोग उन परमेश्वरकी नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति कर रहे थे॥ ३६॥

वृषादुत्तारयामासुर्महेशं पर्वतोत्तमाः।
निन्युर्गृहान्तरं प्रीत्या महोत्सवपुरस्सरम्॥ ३७

श्रेष्ठ पर्वतोंने शिवजीको वृषभसे उतारा और प्रेमके साथ महोत्सवपूर्वक उन्हें घरके भीतर ले गये॥ ३७॥

हिमालयोऽपि सम्प्राप्तं सदेवगणमीश्वरम्।
प्रणम्य विधिवद्भक्त्या नीराजनमथाकरोत्॥ ३८

हिमालयने भी देवताओं तथा गणोंसहित आये हुए ईश्वरको विधिवत् भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और उनकी आरती उतारी॥ ३८॥

सर्वान्सुरान्मुनीनन्यान् प्रणम्य समहोत्सवः।
सम्मानमकरोत्तेषां प्रशंसन्स्वविधिं मुदा॥ ३९

[इसी प्रकार] उत्साहयुक्त होकर उन्होंने सभी देवताओं, मुनियों तथा अन्य लोगोंको प्रणामकर अपने भाग्यकी प्रशंसा करते हुए प्रेमपूर्वक उन सबका सम्मान किया॥ ३९॥

सोऽगः साच्युतमीशानं सुपाद्यार्घ्यपुरस्सरम्।
सदेवमुख्यवर्गं च निनाय स्वालयान्तरम्॥ ४०

प्राङ्गणे स्थापयामास रत्नसिंहासनेषु तान्।
सर्वान्विष्णुं च मामीशं विशिष्टांश्च विशेषतः॥ ४१

वे हिमालय विष्णु और प्रमुख देवसमुदाय-सहित ईशानको उत्तम पाद्य तथा अर्घ्य प्रदानकर उन्हें अपने घरमें ले गये और उन्होंने आँगनमें रत्नके सिंहासनपर विशेष-विशेष देवताओंको, मुझे, विष्णुको, ईशको तथा सभी विशिष्ट लोगोंको आदरपूर्वक बैठाया॥ ४०-४१॥

सखीभिर्मेनया प्रीत्या ब्राह्मणस्त्रीभिरेव च।
अन्याभिश्च पुरन्ध्रीभिश्चक्रे नीराजनं मुदा॥ ४२

पुरोधसा कृत्यविदा शंकराय महात्मने।
मधुपर्कादिकं यद्यत्कृत्यं तत्तत्कृतं मुदा॥ ४३

मेनाने भी बड़े प्रेमसे अपनी सखियों, ब्राह्मणस्त्रियों तथा अन्य पुरन्ध्रियोंके साथ मुदित होकर शिवजीकी आरती उतारी। कर्मकाण्डके ज्ञाता पुरोहितने मधुपर्क-दान आदि जो-जो कृत्य था, वह सब महात्मा शंकरके लिये सम्पन्न किया॥ ४२-४३॥

मया स नोदितस्तत्र पुरोधाः कृतवांस्तदा।
सुमङ्गलं च यत्कर्म प्रस्तावसदृशं मुने॥ ४४

हे मुने! पुरोहितने मेरे द्वारा प्रेरित होकर प्रस्तावके अनुकूल जो मांगलिक कार्य था, उसे किया॥ ४४॥

अन्तर्वेद्यां महाप्रीत्या सम्प्रविश्य हिमाद्रिणा।
यत्र सा पार्वती कन्या सर्वाभरणभूषिता॥ ४५
वेदिकोपरि तन्वङ्गी संस्थिता सुविराजिता।
तत्र नीतो महादेवो विष्णुना च मया सह॥ ४६
लग्नं निरीक्षमाणास्ते वाचस्पतिपुरोगमाः।
कन्यादानोचितं तत्र बभूवुः परमोत्सवाः॥ ४७

उसके बाद अन्तर्वेदीमें बड़े प्रेमसे प्रविष्ट होकर हिमालय वेदीके ऊपर समस्त आभूषणोंसे विभूषित तन्वंगी कन्या पार्वती जहाँ विराजमान थीं, वहाँ विष्णु तथा मेरे साथ महादेवजीको ले गये। उस समय वहाँ बृहस्पति आदि देवता कन्यादानोचित लग्नकी प्रतीक्षा करते हुए अत्यन्त आनन्दित हो रहे थे॥ ४५—४७॥

तत्रोपविष्टो गर्गश्च यत्रास्ति घटिकालयम्।
यावच्छेषा घटी तावत्कृतं प्रणवभाषणम्॥ ४८

पुण्याहं प्रवदन् गर्गः समादध्रेऽञ्जलिं मुदा।
पार्वत्यक्षतपूर्णं च ववृषे च शिवोपरि॥ ४९

तया सम्पूजितो रुद्रो दध्यक्षतकुशाम्बुभिः।
परमोदारया तत्र पार्वत्या रुचिरास्यया॥ ५०

जहाँ घटिकायन्त्र स्थापित था, वहींपर गर्गाचार्य बैठे हुए थे। विवाहकी घड़ी आनेतक वे प्रणवका जप कर रहे थे। गर्गाचार्यने पुण्याहवाचन करते हुए अक्षतोंको पार्वतीकी अंजलिमें दिया, तब पार्वतीने प्रेमपूर्वक शिवके ऊपर अक्षतोंकी वर्षा की। इसके बाद परम उदार तथा सुन्दर मुखवाली उन पार्वतीने दही, अक्षत तथा कुशके जलसे शिवजीकी पूजा की॥ ४८—५०॥

विलोकयन्ती तं शम्भुं यस्यार्थे परमं तपः।
कृतं पुरा महाप्रीत्या विरराज शिवाति सा॥ ५१

मया मुने तदोक्तस्तु गर्गादिमुनिभिश्च सः।
समानर्च शिवां शम्भुः लौकिकाचारसंरतः॥ ५२

एवं परस्परं तौ वै पार्वतीपरमेश्वरौ।

जिनके लिये उन शिवाने पूर्वकालसे अत्यन्त कठोर तप किया था, उन शम्भुको प्रेमपूर्वक देखती हुई वे अत्यन्त शोभित हो रही थीं। हे मुने! तदनन्तर मेरे एवं गर्ग आदि मुनियोंके कहनेपर सदाशिवने लौकिक विधिका आश्रयणकर पार्वतीका पूजन किया। इस प्रकार जगन्मय पार्वती तथा परमेश्वर परस्पर

अर्चयन्तौ तदानीं च शुशुभाते जगन्मयौ॥ ५३
त्रैलोक्यलक्ष्म्या संवीतौ निरीक्षन्तौ परस्परम्।
तदा नीराजितौ लक्ष्म्यादिभिः स्त्रीभिर्विशेषतः॥ ५४
तथापरा वै द्विजयोषितश्च
नीराजयामासुरथो पुरस्त्रियः।
शिवां च शम्भुं च विलोकयन्त्योऽ-
वापुर्मुदं ताः सकला महोत्सवम्॥ ५५

एक-दूसरेका सत्कार करते हुए परम शोभाको प्राप्त हो रहे थे। लक्ष्मी आदि देवियोंने त्रैलोक्यकी शोभासे समन्वित होकर एक-दूसरेकी ओर देखते हुए उन दोनोंकी विशेषरूपसे आरती उतारी॥ ५१—५४॥

तत्पश्चात् ब्राह्मणोंकी स्त्रियों तथा नगरकी अन्य स्त्रियोंने उनकी आरती की। उस समय शिवा तथा शिवको उत्सुकतापूर्वक देखती हुई वे सब बहुत आनन्दित हुईं॥ ५५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शिवहिमगिरिगृहाभ्यन्तरगमनोत्सववर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें हिमालयके घर शिवके गमनोत्सवका वर्णन नामक सैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४७॥

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

शिव-पार्वतीके विवाहका प्रारम्भ, हिमालयद्वारा शिवके गोत्रके विषयमें प्रश्न होनेपर नारदजीके द्वारा उत्तरके रूपमें शिवमाहात्म्य प्रतिपादित करना, हर्षयुक्त हिमालयद्वारा कन्यादानकर विविध उपहार प्रदान करना

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र गर्गाचार्यप्रणोदितः।
हिमवान्मेनया सार्धं कन्यां दातुं प्रचक्रमे॥ १

ब्रह्माजी बोले—इसी समय वहाँ गर्गाचार्यसे प्रेरित हो मेनासहित हिमवान् कन्यादान करनेहेतु उद्यत हुए॥ १॥

हैमं कलशमादाय मेना चार्धांगमाश्रिता।
हिमाद्रेश्च महाभागा वस्त्राभरणभूषिता॥ २
पाद्यादिभिस्ततः शैलः प्रहृष्टः सपुरोहितः।
तं वरं वरयामास वस्त्रचंदनभूषणैः॥ ३

उस समय वस्त्र तथा आभूषणोंसे शोभित महाभागा मेना सोनेका कलश लेकर पति हिमवान्के दाहिने भागमें बैठ गयीं। तत्पश्चात् पुरोहितके सहित हिमालयने प्रसन्न होकर पाद्य आदिसे और वस्त्र, चन्दन तथा आभूषणसे उन वरका वरण किया॥ २-३॥

ततो हिमाद्रिणा प्रोक्ता द्विजास्तिथ्यादिकीर्तने।
प्रयोगो भण्यतां तावदस्मिन्समय आगते॥ ४
तथेति चोक्त्वा ते सर्वे कालज्ञा द्विजसत्तमाः।
तिथ्यादिकीर्तनं चक्रुः प्रीत्या परमनिर्वृताः॥ ५

इसके बाद हिमालयने ब्राह्मणोंसे कहा—अब [कन्या-दानका] यह समय उपस्थित हो गया है, अतः आपलोग संकल्पके लिये तिथि आदिका उच्चारण कीजिये। उनके यह कहनेपर कालके ज्ञाता श्रेष्ठ ब्राह्मण निश्चिन्त होकर प्रेमपूर्वक तिथि आदिका उच्चारण करने लगे॥ ४-५॥

ततो हिमाचलः प्रीत्या शंभुना प्रेरितो हृदा।
सूतीकृतपरेशेन विहसन् शंभुमब्रवीत्॥ ६
स्वगोत्रं कथ्यतां शम्भो प्रवरश्च कुलं तथा।
नाम वेदं तथा शाखां माकार्षीः समयात्ययम्॥ ७

तब सृष्टिकर्ता परमेश्वर शम्भुके द्वारा हृदयसे प्रेरित हुए हिमालयने हँसते हुए प्रसन्नताके साथ शिवजीसे कहा—हे शम्भो! अब आप अपने गोत्र, प्रवर, कुल, नाम, वेद तथा शाखाको कहिये, विलम्ब मत कीजिये॥ ६-७॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य हिमाद्रेः शंकरस्तदा।
सुमुखो विमुखः सद्योऽप्यशोच्यः शोच्यतां गतः॥ ८

ब्रह्माजी बोले—उन हिमालयकी यह बात सुनकर भगवान् शंकर प्रसन्न होते हुए भी उदास हो गये और शोकके योग्य न होते हुए भी शोकयुक्त हो गये॥ ८॥

एवंविधः सुरवरैर्मुनिभिस्तदानीं
गंधर्वयक्षगणसिद्धगणैस्तथैव।
दृष्टो निरुत्तरमुखो भगवान्महेशोऽ-
कार्षीस्सुहास्यमथ तत्र स नारद त्वम्॥ ९
वीणामवादयंस्त्वं हि ब्रह्मविज्ञोऽथ नारद।
शिवेन प्रेरितस्तत्र मनसा शंभुमानसः॥ १०
तदा निवारितो धीमान् पर्वतेन्द्रेण वै हठात्।
विष्णुना च मया देवैर्मुनिभिश्चाखिलैस्तथा॥ ११

उस समय श्रेष्ठ देवताओं, मुनियों, गन्धर्वों, यक्षों तथा सिद्धोंने जब शंकरको निरुत्तरमुख देखा, तब हे नारद! आपने सुन्दर हास्य किया। हे नारद! उस समय ब्रह्मवेत्ता तथा शिवजीमें आसक्त चित्तवाले आपने शिवजीके द्वारा मनसे प्रेरित होकर वीणा बजायी। उस समय पर्वतराज, विष्णु, मैंने, देवताओं तथा सभी मुनियोंने आप बुद्धिमान्‌को ऐसा करनेसे हठपूर्वक रोका॥ ९—११॥

न निवृत्तोऽभवस्त्वं हि स यदा शंकरेच्छया।
इति प्रोक्तोऽद्रिणा तर्हि वीणां मा वादयाधुना॥ १२
सुनिषिद्धो हठात्तेन देवर्षे त्वं यदा बुध।
प्रत्यवोचो गिरीशं तं सुसंस्मृत्य महेश्वरम्॥ १३

किंतु जब शिवजीकी इच्छासे आप नहीं माने, तब [पुनः] हिमालयने आपसे कहा—इस समय आप वीणा मत बजाइये। हे बुद्धिमान्! हे देवर्षे! जब उन्होंने हठपूर्वक आपको मना किया, तब आप महेश्वरका स्मरण करके हिमालयसे कहने लगे—॥ १२-१३॥

नारद उवाच

त्वं हि मूढत्वमापन्नो न जानासि च किंचन।
वाच्ये महेशविषयेऽतीवासि त्वं बहिर्मुखः॥ १४

नारदजी बोले—[हे पर्वतराज!] आप मूढ़तासे युक्त हैं, अतः कुछ भी नहीं जानते। महेश्वरके विषयमें कथनीय बातोंसे आप सर्वथा अनभिज्ञ हैं॥ १४॥

त्वया पृष्टो हरः साक्षात्स्वगोत्रकथनं प्रति।
समयेऽस्मिंस्तदत्यंतमुपहासकरं वचः॥ १५

आपने इस समय जो इन साक्षात् महेश्वरसे गोत्र बतानेके लिये कहा है, वह वचन अत्यन्त हास्यास्पद है॥ १५॥

अस्य गोत्रं कुलं नाम नैव जानन्ति पर्वत।
विष्णुब्रह्मादयोऽपीह परेषां का कथा स्मृता॥ १६

हे पर्वत! ब्रह्मा, विष्णु आदि भी इनका गोत्र, कुल, नाम नहीं जानते, दूसरोंकी क्या बात कही जाय!॥ १६॥

यस्यैकदिवसे शैल ब्रह्मकोटिर्लयं गता।
स एव शंकरस्तेद्य दृष्टः कालीतपोबलात्॥ १७

हे शैल! जिनके एक दिनमें करोड़ों ब्रह्मा लयको प्राप्त हो जाते हैं, उन शंकरका दर्शन आपने आज कालीके तपके प्रभावसे ही किया है॥ १७॥

अरूपोऽयं परब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः परः।
निराकारो निर्विकारी मायाधीशः परात्परः॥ १८

ये प्रकृतिसे परे, परब्रह्म, अरूप, निर्गुण, निराकार, निर्विकार, मायाधीश तथा परात्पर हैं॥ १८॥

अगोत्रकुलनामा हि स्वतंत्रो भक्तवत्सलः।
तदिच्छया हि सगुणः सुतनुर्बहुनामभृत्॥ १९

ये स्वतन्त्र, भक्तवत्सल और गोत्र, कुल तथा नामसे सर्वथा रहित हैं। ये अपनी इच्छासे ही सगुण, सुन्दर शरीरवाले तथा अनेक नामवाले हो जाते हैं॥ १९॥

सुगोत्री गोत्रहीनश्च कुलहीनः कुलीनकः।
पार्वतीतपसा सोऽद्य जामाता ते न संशयः॥ २०

ये गोत्रहीन होते हुए भी श्रेष्ठ गोत्रवाले हैं, कुलहीन होते हुए भी उत्तम कुलवाले हैं और आज पार्वतीके तपसे आपके जामाता हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं॥ २०॥

लीलाविहारिणा तेन मोहितं सचराचरम्।
नो जानाति शिवं कोऽपि प्राज्ञोऽपि गिरिसत्तम॥ २१

लिङ्गाकृतेर्महेशस्य केन दृष्टं न मस्तकम्।
विष्णुर्गत्वा हि पातालं तदैनं नाप विस्मितः॥ २२

उन लीलाविहारीने चराचरसहित जगत्‌को मोहित कर रखा है। हे गिरिसत्तम! कोई महान् ज्ञानी भी इन्हें नहीं जानता। ब्रह्माजी भी लिंगकी आकृतिवाले महेशके मस्तकको नहीं देख सके। विष्णु भी पातालतक जाकर इन्हें नहीं प्राप्त कर पाये और आश्चर्यचकित हो गये॥ २१-२२॥

किं बहूक्त्या नगश्रेष्ठ शिवमाया दुरत्यया।
तदधीनास्त्रयो लोका हरिब्रह्मादयोऽपि च॥ २३

हे गिरिश्रेष्ठ! अधिक कहनेसे क्या लाभ, शिवजीकी माया बड़ी दुस्तर है। त्रैलोक्य और विष्णु, ब्रह्मा आदि भी उसी [माया]-के अधीन हैं॥ २३॥

तस्मात्त्वया शिवातात सुविचार्य प्रयत्नतः।
न कर्तव्यो विमर्शोऽत्र त्वेवंविधवरे मनाक्॥ २४

इसलिये हे पार्वतीतात! प्रयत्नपूर्वक भली-भाँति विचार करके आप वरके गोत्र, कुल एवं इस प्रकारके वरके सम्बन्धमें थोड़ा भी सन्देह मत कीजिये॥ २४॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा त्वं मुने ज्ञानी शिवेच्छाकार्यकारकः।
प्रत्यवोचः पुनस्तं वै शैलेद्रं हर्षयन् गिरा॥ २५

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! ऐसा कहकर ज्ञानी तथा शिवकी इच्छासे कार्य करनेवाले आप पर्वतराजको [अपनी] वाणीसे हर्षित करते हुए पुनः उनसे कहने लगे—॥ २५॥

नारद उवाच

शृणु तात महाशैल शिवाजनक मद्वचः।
तच्छ्रुत्वा तनयां देवीं देहि त्वं शंकराय हि॥ २६

नारदजी बोले—हे तात! हे महाशैल! हे शिवाजनक! आप मेरी बात सुनिये तथा उसे सुनकर शंकरजीको अपनी कन्या प्रदान कीजिये॥ २६॥

सगुणस्य महेशस्य लीलया रूपधारिणः।
गोत्रं कुलं विजानीहि नादमेव हि केवलम्॥ २७

[अपनी] लीलासे अनेक रूप धारण करनेवाले सगुण महेशका गोत्र तथा कुल केवल नाद ही जानिये॥ २७॥

शिवो नादमयः सत्यं नादः शिवमयस्तथा।
उभयोरन्तरं नास्ति नादस्य च शिवस्य च॥ २८

शिव नादमय हैं और नाद भी शिवमय है, यही सत्य है। शिव तथा नाद—इन दोनोंमें भेद नहीं है॥ २८॥

सृष्टौ प्रथमजत्वाद्धि लीलासगुणरूपिणः।
शिवान्नादस्य शैलेन्द्र सर्वोत्कृष्टस्ततः स हि॥ २९

सृष्टिके आरम्भमें लीलासे सगुण रूप धारण करनेवाले शिवके द्वारा सर्वप्रथम नादकी उत्पत्ति होनेके कारण वह सर्वश्रेष्ठ है॥ २९॥

अतो हि वादिता वीणा प्रेरितेन मयाद्य वै।
सर्वेश्वरेण मनसा शंकरेण हिमालय॥ ३०

इसलिये हे हिमालय! अपने मनमें सर्वेश्वर शिवसे प्रेरित होकर मैंने आज वीणा बजायी है॥ ३०॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तव मुने वचस्तत्तु गिरीश्वरः।
हिमाद्रिस्तोषमापन्नो गतविस्मयमानसः॥ ३१

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! गिरीश्वर हिमालय आपका यह वचन सुनकर सन्तुष्ट हो गये और उनके मनका विस्मय जाता रहा॥ ३१॥

अथ विष्णुप्रभृतयः सुराश्च मुनयस्तथा।
साधु साध्विति ते सर्वे प्रोचुर्विगतविस्मयाः॥ ३२

तब विष्णु आदि वे देवता एवं मुनि विस्मयरहित हो 'साधु-साधु'—ऐसा कहने लगे॥ ३२॥

महेश्वरस्य गांभीर्यं ज्ञात्वा सर्वे विचक्षणाः।
सविस्मया महामोदान्विताः प्रोचुः परस्परम्॥ ३३

यस्याज्ञया जगदिदं च विशालमेव
जातं परात्परतरो निजबोधरूपः।
शर्वः स्वतंत्रगतिकृत्परभावगम्यः
सोऽसौ त्रिलोकपतिरद्य च नः सुदृष्टः॥ ३४

सभी विद्वान् लोग महेश्वरके गाम्भीर्यको जानकर विस्मित होकर परम आनन्दमें निमग्न हो परस्पर कहने लगे। जिनकी आज्ञासे यह विशाल जगत् उत्पन्न हुआ है और जो परसे भी परे, निजबोधस्वरूप हैं, स्वतन्त्र गतिवाले एवं उत्कृष्ट भावसे जाननेयोग्य हैं, उन त्रिलोकपति शिवको आज हमलोगोंने भलीभाँति देखा॥ ३३-३४॥

अथ ते पर्वतश्रेष्ठा मेर्वाद्या जातसंभ्रमाः।
ऊचुस्ते चैकपद्येन हिमवंतं नगेश्वरम्॥ ३५

तदनन्तर वे सुमेरु आदि सभी श्रेष्ठ पर्वत सन्देहरहित होकर एक साथ पर्वतराज हिमालयसे कहने लगे— ॥ ३५॥

पर्वता ऊचुः

कन्यादाने स्थीयतां चाद्य शैल-
नाथोक्त्या किं कार्यनाशस्तवैव।
सत्यं ब्रूमो नात्र कार्यो विमर्शः
तस्मात्कन्या दीयतामीश्वराय॥ ३६

पर्वत बोले—हे शैलराज! अब आप कन्यादान करनेके लिये समुद्यत हो जाइये। विवादसे क्या लाभ! ऐसा करनेसे [निश्चय ही] आपके कार्यमें बाधा होगी। हमलोग सत्य कहते हैं, अब आपको विचार नहीं करना चाहिये, अतः आप शिवको कन्या प्रदान कीजिये॥ ३६॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां सुहृदां स हिमालयः।
स्वकन्यादानमकरोच्छिवाय विधिनोदितः॥ ३७

ब्रह्माजी बोले—उन सुहृदोंकी वह बात सुनकर विधिसे प्रेरित होकर हिमालयने शिवको अपनी कन्याका दान कर दिया॥ ३७॥

इमां कन्यां तुभ्यमहं ददामि परमेश्वर।
भार्यार्थं परिगृह्णीष्व प्रसीद सकलेश्वर॥ ३८

[उन्होंने कहा—] हे परमेश्वर! मैं अपनी कन्या आपको दे रहा हूँ, हे सकलेश्वर! आप भार्याके रूपमें इसे ग्रहण कीजिये और प्रसन्न होइये॥ ३८॥

तस्मै रुद्राय महते मंत्रेणानेन दत्तवान्।
हिमाचलो निजां कन्यां पार्वतीं त्रिजगत्प्रसूम्॥ ३९

इस प्रकार तीनों लोकोंको उत्पन्न करनेवाली अपनी कन्या पार्वतीको हिमालयने इस मन्त्रसे उन महान् शिवको अर्पण कर दिया॥ ३९॥

इत्थं शिवाकरं शैलः शिवहस्ते निधाय च।
मुमोदातीव मनसि तीर्णकाममहार्णवः॥ ४०

इस प्रकार पार्वतीका हाथ शिवजीके हाथमें रखकर वे हिमालय मनमें बहुत प्रसन्न हुए, मानो उन्होंने इच्छारूपी महासागरको पार कर लिया हो॥ ४०॥

वेदमंत्रेण गिरिशो गिरिजाकरपङ्कजम्।
जग्राह स्वकरेणाशु प्रसन्नः परमेश्वरः॥ ४१

क्षितिं संस्पृश्य कामस्य कोऽदादिति मनुं मुने।
पपाठ शंकरः प्रीत्या दर्शयँल्लौकिकीं गतिम्॥ ४२

पर्वतपर शयन करनेवाले परमेश्वरने प्रसन्न होकर अपने हाथसे वेदमन्त्रके द्वारा पार्वतीका करकमल ग्रहण किया। हे मुने! लौकिक गति प्रदर्शित करते हुए पृथिवीका स्पर्शकर महादेवने भी **'कोऽदात्'*** इस कामसम्बन्धी मन्त्रका प्रेमपूर्वक पाठ किया॥ ४१-४२॥

* विवाहमें कन्या-प्रतिग्रहके पश्चात् वर इस कामस्तुतिका पाठ करता है। पूरा मन्त्र इस प्रकार है—'कोऽदात्कस्मा अदात्कामोऽदात्कामायादात्कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते।' (शु० यजुर्वेदसंहिता ७।४८)

महोत्सवो महानासीत्सर्वत्र प्रमुदावहः।
बभूव जयसंरावो दिवि भूम्यन्तरिक्षके॥ ४३

साधुशब्दं नमः शब्दं चक्रुः सर्वेऽतिहर्षिताः।
गंधर्वाः सुजगुः प्रीत्या ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥ ४४

उस समय सर्वत्र आनन्ददायक महान् उत्सव होने लगा और स्वर्ग, भूमि तथा अन्तरिक्षमें तीव्र जयध्वनि होने लगी। सभी लोगोंने अत्यन्त प्रसन्न होकर **'साधु'** शब्द तथा **'नमः'** शब्दका उच्चारण किया, गन्धर्वगण प्रीतिपूर्वक गान करने लगे तथा अप्सराएँ नाचने लगीं॥ ४३-४४॥

हिमाचलस्य पौरा हि मुमुदुश्चाति चेतसि।
मङ्गलं महदासीद्वै महोत्सवपुरस्सरम्॥ ४५

हिमालयके नगरके लोग भी अपने मनमें परम आनन्दका अनुभव करने लगे। [उस समय] महान् उत्सवके साथ परम मंगल मनाया जाने लगा॥ ४५॥

अहं विष्णुश्च शक्रश्च निर्जरा मुनयोऽखिलाः।
हर्षिता ह्यभवंश्चाति प्रफुल्लवदनाम्बुजाः॥ ४६

मैं, विष्णु, इन्द्र, देवता एवं सभी मुनिगण अत्यन्त हर्षित हुए और सभीके मुखकमल खिल उठे॥ ४६॥

अथ शैलवरः सोऽदात्सुप्रसन्नो हिमाचलः।
शिवाय कन्यादानस्य साङ्गतां सुयथोचिताम्॥ ४७

उसके बाद उन शैलराज हिमालयने अति प्रसन्न होकर कन्यादानकी यथोचित सांगता शिवको प्रदान की॥ ४७॥

ततो बन्धुजनास्तस्य शिवां सम्पूज्य भक्तितः।
ददुः शिवाय सद्द्रव्यं नानाविधिविधानतः॥ ४८

हिमालयस्तुष्टमनाः पार्वतीशिवप्रीतये।
नानाविधानि द्रव्याणि ददौ तत्र मुनीश्वर॥ ४९

तत्पश्चात् उनके बन्धुजनोंने भक्तिपूर्वक भली-भाँति पार्वतीका पूजनकर शिवजीको विधि-विधानसे अनेक प्रकारके उत्तम द्रव्य प्रदान किये। हे मुनीश्वर! हिमालयने भी प्रसन्नचित्त होकर पार्वती तथा शिवकी प्रसन्नताके लिये अनेक प्रकारके द्रव्य दिये॥ ४८-४९॥

यौतुकानि ददौ तस्मै रत्नानि विविधानि च।
चारुरत्नविकाराणि पात्राणि विविधानि च॥ ५०
गवां लक्षं हयानां च सज्जितानां शतं तथा।
दासीनामनुरक्तानां लक्षं सद्द्रव्यभूषितम्॥ ५१
नागानां शतलक्षं हि रथानां च तथा मुने।
सुवर्णजटितानां च रत्नसारविनिर्मितम्॥ ५२
इत्थं हिमालयो दत्त्वा स्वसुतां गिरिजां शिवाम्।
शिवाय परमेशाय विधिनाप कृतार्थताम्॥ ५३

उन्होंने उपहारस्वरूप नाना प्रकारके रत्न एवं उत्तम रत्नोंसे जड़े हुए विविध पात्र प्रदान किये। हे मुने! उन्होंने एक लाख सुसज्जित गायें, सजे-सजाये सौ घोड़े, नाना रत्नोंसे विभूषित एक लाख अनुरागिणी दासियाँ दीं और एक करोड़ हाथी तथा सुवर्णजटित एवं उत्तम रत्नोंसे निर्मित रथ प्रदान किये। इस प्रकार परमेश्वर शिवको विधिपूर्वक अपनी पुत्री शिवा गिरिजाको प्रदान करके हिमालय कृतार्थ हो गये॥ ५०—५३॥

अथ शैलवरो माध्यंदिनोक्तस्तोत्रतो मुदा।
तुष्टाव परमेशानं सद्गिरा सुकृताञ्जलिः॥ ५४

ततो वेदविदा तेनाज्ञप्ता मुनिगणास्तदा।
शिरोऽभिषेकं चक्रुस्ते शिवायाः परमोत्सवाः॥ ५५

देवाभिधानमुच्चार्य पर्युक्षणविधिं व्यधुः।
महोत्सवस्तदा चासीन्महानन्दकरो मुने॥ ५६

तत्पश्चात् पर्वतराजने हाथ जोड़कर श्रेष्ठ वाणीमें माध्यन्दिनी शाखामें कहे गये स्तोत्रसे परमेश्वरकी स्तुति की। इसके बाद वेदज्ञ हिमालयकी आज्ञा पाकर मुनियोंने अतिप्रसन्न होकर शिवाके सिरपर अभिषेक किया और देवताओंके नामका उच्चारणकर पर्युक्षण-विधि सम्पन्न की। हे मुने! उस समय परम आनन्द उत्पन्न करनेवाला महोत्सव हुआ॥ ५४—५६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे कन्यादानवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें कन्यादानवर्णन नामक अड़तालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४८॥

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अग्निपरिक्रमा करते समय पार्वतीके पदनखको देखकर ब्रह्माका मोहग्रस्त होना, बालखिल्योंकी उत्पत्ति, शिवका कुपित होना, देवताओंद्वारा शिवस्तुति

ब्रह्मोवाच

अथो ममाज्ञया विप्रैः संस्थाप्यानलमीश्वरः।
होमं चकार तत्रैवमङ्के संस्थाप्य पार्वतीम्॥ १
ऋग्यजुस्साममन्त्रैश्चाहुतिं वह्नौ ददौ शिवः।
लाजाञ्जलिं ददौ कालीभ्राता मैनाकसंज्ञकः॥ २
अथ काली शिवश्चोभौ चक्रतुर्विधिवन्मुदा।
वह्निप्रदक्षिणां तात लोकाचारं विधाय च॥ ३
तत्राद्भुतमलञ्चक्रे चरितं गिरिजापतिः।
तदेव शृणु देवर्षे तवस्नेहाद् ब्रवीम्यहम्॥ ४

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इसके अनन्तर मेरी आज्ञासे ईश्वरने ब्राह्मणोंद्वारा अग्निस्थापन करके पार्वतीको अपने पास बैठाकर हवन किया। शिवने ऋक्, साम तथा यजुर्वेदके मन्त्रोंसे अग्निमें आहुति दी और कालीके भाई मैनाकने लाजाकी अंजलि दी। हे तात! इसके बाद लोकाचारका विधानकर काली और शिव दोनोंने प्रसन्नताके साथ विधिवत् अग्निकी प्रदक्षिणा की। हे देवर्षे! उस समय गिरिजापति शंकरने एक अद्भुत चरित्र किया, मैं आपके स्नेहके कारण उसका वर्णन करता हूँ, आप सुनिये॥ १—४॥

तस्मिन्नवसरे चाहं शिवमायाविमोहितः।
अपश्यं चरणे देव्या नखेन्दुं च मनोहरम्॥ ५

उस समय शिवकी मायासे मोहित हुआ मैं पार्वतीके चरणोंमें मनोहर नखचन्द्रको देखने लगा॥ ५॥

दर्शनात्तस्य च तदाभूवं देवमुने ह्यहम्।
मदनेन समाविष्टोऽतीव क्षुभितमानसः॥ ६
मुहुर्मुहुरपश्यं वै तदङ्गं स्मरमोहितः।
ततस्तद्दर्शनात्सद्यो वीर्यं मे प्राच्युतद्भुवि॥ ७
रेतसा क्षरता तेन लज्जितोऽहं पितामहः।
मुने व्यमर्दं तच्छिश्नं चरणाभ्यां हि गोपयन्॥ ८
तज्ज्ञात्वा च महादेवश्चुकोपातीव नारद।
हन्तुमैच्छत्तदा शीघ्रं मां विधिं काममोहितम्॥ ९

हे देवमुने! उसके दर्शनसे मैं मोहित हो उठा और मेरा मन अत्यन्त क्षुब्ध हो गया। मोहित होकर मैं बार-बार उनके अंगोंको देखने लगा, तब उस देखनेसे मेरा तेज शीघ्र ही पृथ्वीपर गिर गया और मैं अत्यन्त लज्जित हो गया। यह देखकर महादेवजी अत्यन्त कुपित हो गये और तब उन्होंने मुझ ब्रह्माको शीघ्र मारनेकी इच्छा की॥ ६—९॥

हाहाकारो महानासीत्तत्र सर्वत्र नारद।
जनाश्चकम्पिरे सर्वे भयमायाति विश्वभृत्॥ १०

हे नारद! वहाँ सर्वत्र बड़ा हाहाकार होने लगा, सभी लोग काँपने लगे तथा विश्वको धारण करनेवाले विष्णुको भय होने लगा॥ १०॥

ततस्तं तुष्टुवुः शम्भुं विष्ण्वाद्या निर्जरा मुने।
सकोपं प्रज्वलन्तं च तेजसा हन्तुमुद्यतम्॥ ११

हे मुने! तब विष्णु आदि देवगण कोपयुक्त, अपने तेजसे प्रज्वलित होते हुए और [मुझ ब्रह्माको] मारनेके लिये उद्यत उन शिवजीकी स्तुति करने लगे॥ ११॥

देवा ऊचुः

देवदेव जगद्व्यापिन् परमेश सदाशिव।
जगदीश जगन्नाथ सम्प्रसीद जगन्मय॥ १२
सर्वेषामपि भावानां त्वमात्मा हेतुरीश्वरः।
निर्विकारोऽव्ययो नित्यो निर्विकल्पोऽक्षरः परः॥ १३
आद्यन्तावस्य यन्मध्यमिदमन्यदहं बहिः।
यतोऽव्ययः स नैतानि तत्सत्यं ब्रह्म चिद्भवान्॥ १४

देवता बोले—हे देवदेव! हे जगद्व्यापिन्! हे परमेश! हे सदाशिव! हे जगत्पते! हे जगन्नाथ! हे जगन्मय! आप प्रसन्न हों। आप सभी पदार्थोंकी आत्मा, सबके हेतु, ईश्वर, निर्विकार, अव्यय, नित्य, निर्विकल्प, अक्षर तथा सबसे परे हैं। आप इस जगत्के आदि, मध्य, अन्त एवं अभ्यन्तर तथा बाहर विराजमान हैं, आप अव्यय, सनातन एवं तत्पदवाच्य, सच्चिदानन्द ब्रह्म हैं॥ १२—१४॥

तवैव चरणाम्भोजं मुक्तिकामा दृढव्रताः।
विसृज्योभयतः सङ्गं मुनयः समुपासते॥ १५

त्वं ब्रह्म पूर्णममृतं विशोकं निर्गुणं परम्।
आनंदमात्रमव्यग्रमविकारमनात्मकम् ॥ १६

विश्वस्य हेतुरुदयस्थितिसंयमनस्य हि।
तदपेक्षतयात्मेशोऽनपेक्षः सर्वदा विभुः॥ १७

एकस्त्वमेव सदसद् द्वयमद्वयमेव च।
स्वर्णं कृताकृतमिव वस्तुभेदो न चैव हि॥ १८

अज्ञानतस्त्वयि जनैर्विकल्पो विदितो यतः।
तस्माद् भ्रमप्रतीकारो निरुपाधेर्न हि स्वतः॥ १९

धन्या वयं महेशान तव दर्शनमात्रतः।
दृढभक्तजनानन्दप्रदः शम्भो दयां कुरु॥ २०

त्वमादिस्त्वमनादिश्च प्रकृतेस्त्वं परः पुमान्।
विश्वेश्वरो जगन्नाथो निर्विकारः परात्परः॥ २१
योऽयं ब्रह्मास्ति रजसा विश्वमूर्तिः पितामहः।
त्वत्प्रसादात्प्रभो विष्णुः सत्त्वेन पुरुषोत्तमः॥ २२
कालाग्निरुद्रस्तमसा परमात्मा गुणैः परः।
सदाशिवो महेशानः सर्वव्यापी महेश्वरः॥ २३

व्यक्तं महच्च भूतादिस्तन्मात्राणीन्द्रियाणि च।
त्वयैवाधिष्ठितान्येव विश्वमूर्ते महेश्वर॥ २४

महादेव परेशान करुणाकर शंकर।
प्रसीद देवदेवेश प्रसीद पुरुषोत्तम॥ २५

वासांसि सागराः सप्त दिशश्चैव महाभुजाः।
द्यौर्मूर्धा ते विभोर्नाभिः खं वायुर्नासिका ततः॥ २६
चक्षूंष्यग्नी रविस्सोमः केशा मेघास्तव प्रभो।
नक्षत्रतारकाद्याश्च ग्रहाश्चैव विभूषणम्॥ २७

कथं स्तोष्यामि देवेश त्वां विभो परमेश्वर।
वाचामगोचरोऽसि त्वं मनसा चापि शंकर॥ २८

मुक्तिकी कामनावाले दृढ़व्रत मुनिजन सब प्रकारसे संगका परित्यागकर आपके ही चरणकमलकी उपासना करते हैं। आप अमृतस्वरूप, शोकरहित, निर्गुण, श्रेष्ठ, आनन्दमात्र, व्यग्रतारहित, निर्विकार, आत्मासे रहित तथा मायासे परे पूर्णब्रह्म हैं॥ १५-१६॥

आप संसारकी उत्पत्ति, पालन तथा प्रलयके कारण हैं। इस संसारको आपकी अपेक्षा है, किंतु सर्वत्र व्यापक आप परमात्माको किसीकी अपेक्षा नहीं है॥ १७॥

आप एक होते हुए भी सत् एवं असत् हैं, द्वैत एवं अद्वैत हैं, गढ़े हुए तथा न गढ़े हुए स्वर्णमें जैसे वस्तुभेद नहीं है, वैसे ही आप भी हैं॥ १८॥

पुरुषोंने अज्ञानताके कारण आपमें विकल्पका आरोप किया है, इसलिये सोपाधिमें भ्रमका प्रतीकार किया जाता है, किंतु निरुपाधिमें नहीं॥ १९॥

हे महेशान! हम सब आपके दर्शनमात्रसे धन्य हो गये; क्योंकि आप दृढ़ भक्तोंको आनन्द प्रदान करते हैं, अतः हे शम्भो! हमलोगोंपर दया कीजिये॥ २०॥

आप आदि हैं, आप अनादि हैं, आप प्रकृतिसे परे पुरुष हैं। आप विश्वेश्वर, जगन्नाथ, निर्विकार एवं परसे भी परे हैं। हे प्रभो! रजोगुणयुक्त ये जो विश्वमूर्ति पितामह ब्रह्मा हैं और सत्त्वगुणसे युक्त पुरुषोत्तम विष्णु हैं, वे आपकी ही कृपासे हैं। कालाग्नि रुद्र तमोगुणसे युक्त हैं, आप परमात्मा सभी गुणोंसे परे हैं, आप सदाशिव महेशान, सर्वव्यापी तथा महेश्वर हैं॥ २१—२३॥

हे विश्वमूर्ते! हे महेश्वर! व्यक्त महत्तत्त्व, पंचभूत, तन्मात्राएँ एवं इन्द्रियाँ आपसे ही अधिष्ठित हैं॥ २४॥

हे महादेव! हे परेशान! हे करुणाकर! हे शंकर! प्रसन्न होइये। हे देवदेवेश! पुरुषोत्तम! प्रसन्न हो जाइये। हे प्रभो! सातों समुद्र आपके वस्त्र, सभी दिशाएँ आपकी महाभुजाएँ, द्युलोक आपका सिर, आकाश नाभि तथा वायु नासिका है॥ २५-२६॥

हे प्रभो! रवि-सोम-अग्नि आपके नेत्र, मेघ आपके केश और नक्षत्र-तारा-ग्रह आपके आभूषण हैं॥ २७॥

हे शंकर! आप वाणी तथा मनसे सर्वथा अगोचर हैं, अतः हे देवेश! हे विभो! हे परमेश्वर! हमलोग आपकी स्तुति किस प्रकार करें॥ २८॥

पञ्चास्याय च रुद्राय पञ्चाशत्कोटिमूर्तये।
त्र्यधिपाय वरिष्ठाय विद्यातत्त्वाय ते नमः॥ २९

पंचमुख, पचास करोड़ मूर्तिवाले, त्रिलोकेश, वरिष्ठ एवं विद्यातत्त्वस्वरूप आप रुद्रको प्रणाम है॥ २९॥

अनिर्देश्याय नित्याय विद्युज्ज्वालाय रूपिणे।
अग्निवर्णाय देवाय शंकराय नमो नमः॥ ३०
विद्युत्कोटिप्रतीकाशमष्टकोणं सुशोभनम्।
रूपमास्थाय लोकेऽस्मिन् संस्थिताय नमो नमः॥ ३१

अनिर्देश्य, नित्य, विद्युज्ज्वालाके समान रूपवाले, अग्निवर्ण एवं देवाधिदेव आप शंकरको बार-बार नमस्कार है। करोड़ों विद्युत्के समान प्रकाशमान, अष्ट कोणवाले तथा अत्यन्त सुन्दर रूपको धारण करके इस लोकमें स्थित रहनेवाले आपको नमस्कार है॥ ३०-३१॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां प्रसन्नः परमेश्वरः।
ब्रह्मणे मे ददौ शीघ्रमभयं भक्तवत्सलः॥ ३२

ब्रह्माजी बोले—उन [देवताओं]-की यह बात सुनकर प्रसन्न हुए भक्तवत्सल परमेश्वरने मुझ ब्रह्माको शीघ्र ही अभय प्रदान कर दिया॥ ३२॥

अथ सर्वे सुरास्तत्र विष्णवाद्या मुनयस्तथा।
अभवन्सुस्मितास्तात चक्रुश्च परमोत्सवम्॥ ३३

हे तात! उसके बाद विष्णु आदि सभी देवता तथा मुनिगण मन्द-मन्द हँसते हुए परम आनन्दित हो उठे॥ ३३॥

मम तद्रेतसा तात मर्दितेन मुहुर्मुहुः।
अभवन्कणकास्तत्र भूरिशः परमोज्ज्वलाः॥ ३४
ऋषयो बहवो जाता बालखिल्याः सहस्रशः।
कणकैस्तैश्च वीर्यस्य प्रज्वलद्भिः स्वतेजसा॥ ३५

हे तात! मेरे उस रेतसे अत्यन्त उज्ज्वल बहुत-से कण हो गये और अपने तेजसे प्रज्वलित उन कणोंसे बालखिल्य नामक हजारों ऋषि प्रकट हो गये॥ ३४-३५॥

अथ ते ऋषयः सर्वे उपतस्थुस्तदा मुने।
ममान्तिकं परप्रीत्या तात तातेति चाब्रुवन्॥ ३६

हे मुने! तब वे सभी ऋषि मेरे समीप खड़े हो गये और बड़े प्रेमसे मुझे हे तात! हे तात! कहने लगे॥ ३६॥

ईश्वरेच्छाप्रयुक्तेन प्रोक्तास्ते नारदेन हि।
बालखिल्यास्तु ते तत्र कोपयुक्तेन चेतसा॥ ३७

तब ईश्वरेच्छासे प्रेरित हुए नारदजी [आप] क्रोधयुक्त चित्तसे उन बालखिल्य ऋषियोंसे कहने लगे— ॥ ३७॥

नारद उवाच

गच्छध्वं सङ्गता यूयं पर्वतं गन्धमादनम्।
न स्थातव्यं भवद्भिश्च न हि वोऽत्र प्रयोजनम्॥ ३८

नारदजी बोले—अब आपलोग एक साथ ही गन्धमादन पर्वतपर चले जाइये। आपलोग यहाँ मत रुकिये; आपलोगोंका यहाँ [कोई] प्रयोजन नहीं है॥ ३८॥

तत्र तप्त्वा तपश्चाति भवितारो मुनीश्वराः।
सूर्यशिष्याः शिवस्यैवाज्ञया मे कथितं त्विदम्॥ ३९

वहाँ कठोर तपस्या करके आपलोग मुनीश्वर और सूर्यके शिष्य होंगे, मैंने यह बात शिवजीकी आज्ञासे कही है॥ ३९॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तास्ते तदा सर्वे बालखिल्याश्च पर्वतम्।
सत्वरं प्रययुर्नत्वा शंकरं गन्धमादनम्॥ ४०
विष्णवादिभिस्तदाभूवं श्वासितोऽहं मुनीश्वर।
निर्भयः परमेशानप्रेरितैस्तैर्महात्मभिः॥ ४१
अस्तवं चापि सर्वेशं शंकरं भक्तवत्सलम्।
सर्वकार्यकरं ज्ञात्वा दुष्टगर्वापहारकम्॥ ४२

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहे गये वे बालखिल्य शंकरजीको नमस्कार करके शीघ्र ही गन्धमादन पर्वतपर चले गये। हे मुनीश्वर! तब शिवजीके द्वारा प्रेरित विष्णु आदिने मुझे बहुत समझाया और मैं निर्भय हो गया और फिर सर्वेश शंकरको भक्तवत्सल, सम्पूर्ण कार्योंको करनेवाला तथा दुष्टोंके गर्वको नष्ट करनेवाला समझकर उनकी स्तुति करने लगा॥ ४०—४२॥

देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो।
त्वमेव कर्ता सर्वस्य भर्ता हर्ता च सर्वथा॥ ४३

हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणासागर! हे प्रभो! आप ही सब प्रकारसे सबके कर्ता, भर्ता तथा हर्ता हैं॥ ४३॥

त्वदिच्छया हि सकलं स्थितं हि सचराचरम्।
तन्त्यां यथा बलीवर्दा मया ज्ञातं विशेषतः॥ ४४

मैंने यह अच्छी तरह जान लिया है कि जिस प्रकार बलवान् बैल नाथनेसे वशमें हो जाता है, उसी प्रकार यह सारा चराचर जगत् आपकी इच्छासे स्थित है॥ ४४॥

इत्येवमुक्त्वा सोऽहं वै प्रणामं च कृताञ्जलिः।
अन्येऽपि तुष्टुवुः सर्वे विष्णवाद्यास्तं महेश्वरम्॥ ४५

इस प्रकार कहकर हाथ जोड़ मैंने शिवको प्रणाम किया और विष्णु आदि अन्य सभीने भी उन महेश्वरकी स्तुति की॥ ४५॥

अथाकर्ण्य नुतिं शुद्धां मम दीनतया तदा।
विष्णवादीनां च सर्वेषां प्रसन्नोऽभून्महेश्वरः॥ ४६

तब दीनभावसे की गयी विष्णु आदि सभी देवताओंकी तथा मेरी शुद्ध स्तुति सुनकर महेश्वर प्रसन्न हो गये॥ ४६॥

ददौ सोऽतिवरं मह्यमभयं प्रीतमानसः।
सर्वे सुखमतीवापुरत्यामोदमहं मुने॥ ४७

हे मुने! उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर मुझे अतिश्रेष्ठ अभयदान दिया, सभीने महान् सुख प्राप्त किया और मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई॥ ४७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे विधिमोहवर्णनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ४९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें ब्रह्माके मोहका वर्णन नामक उनचासवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४९॥

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

शिवा-शिवके विवाहकृत्यसम्पादनके अनन्तर देवियोंका शिवसे मधुर वार्तालाप

ब्रह्मोवाच

ततश्चाहं मुनिगणैः शेषकृत्यं शिवाज्ञया।
अकार्षं नारद प्रीत्या शिवाशिवविवाहतः॥ १

तयोः शिरोऽभिषेकश्च बभूवादरतस्ततः।
ध्रुवस्य दर्शनं विप्राः कारयामासुरादरात्॥ २

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! तदनन्तर मैंने शिवजीकी आज्ञासे मुनियोंके साथ परमप्रीतिसे शिवाशिवके विवाहके शेष कृत्योंका सम्पादन किया। उन दोनोंके सिरपर आदरपूर्वक मांगलिक अभिषेक हुआ और ब्राह्मणोंने आदरके साथ उन्हें ध्रुवदर्शन कराया॥ १-२॥

हृदयालम्भनं कर्म बभूव तदनन्तरम्।
स्वस्तिपाठश्च विप्रेन्द्र महोत्सवपुरस्सरः॥ ३

हे विप्रेन्द्र! उसके बाद हृदयालम्भनका कर्म तथा बड़े महोत्सवके साथ स्वस्तिवाचन हुआ॥ ३॥

शिवाशिरसि सिन्दूरं ददौ शम्भुर्द्विजाज्ञया।
तदानीं गिरिजाभिख्याद्भुतावर्ण्या बभूव ह॥ ४

ततो विप्राज्ञया तौ द्वावेकासनसमास्थितौ।
लेभाते परमां शोभां भक्तचित्तमुदावहाम्॥ ५

ब्राह्मणोंकी आज्ञासे शम्भुने शिवाकी माँगमें सिन्दूर लगाया, उस समय गिरिजा अत्यन्त अद्भुत अवर्णनीय रूपवती हो गयीं। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंकी आज्ञासे दोनों एक आसनपर विराजमान हुए और भक्तोंके चित्तको आनन्द देनेवाली अपूर्व शोभासे सम्पन्न हो गये॥ ४-५॥

ततः स्वस्थानमागत्य संस्रवप्राशनं मुदा।
चक्रतुस्तौ निदेशान्मेऽद्भुतलीलाकरौ मुने॥ ६

इत्थं निवृत्ते विधिवद्यज्ञे वैवाहिके शिवः।
ब्रह्मणे पूर्णपात्रं मे ददौ लोककृते प्रभुः॥ ७

गोदानं विधिवच्छम्भुराचार्याय ददौ ततः।
महादानानि च प्रीत्या यानि मङ्गलदानि वै॥ ८

हे मुने! तदनन्तर अद्भुत लीला करनेवाले उन दोनोंने अपने स्थानपर आकर मेरी आज्ञासे प्रसन्नतापूर्वक संस्रव*-प्राशन किया। इस प्रकार विवाह-यज्ञके विधिवत् सम्पन्न हो जानेपर प्रभु शिवने मुझ लोककर्ता ब्रह्माको पूर्णपात्रका दान किया। तत्पश्चात् शिवजीने आचार्यको विधिपूर्वक गोदान दिया तथा मंगल प्रदान करनेवाले जो अन्य महादान हैं, उन्हें भी बड़े प्रेमसे दिया॥ ६—८॥

ततः शतसुवर्णं च विप्रेभ्यः स ददौ पृथक्।
बहुभ्यो रत्नकोटीश्च नानाद्रव्याण्यनेकशः॥ ९

तदानीममराः सर्वे परे जीवाश्चराचराः।
मुमुदुश्चेतसातीव बभूवाति जयध्वनिः॥ १०

मङ्गलध्वनिगानं च बभूव बहु सर्वतः।
वाद्यध्वनिरभूद्रम्यो सर्वानन्दप्रवर्धनः॥ ११

हरिर्मयाथ देवाश्च मुनयश्चापरेऽखिलाः।
गिरिमामन्त्र्य सुप्रीत्या स्वस्थानं प्रययुर्द्रुतम्॥ १२

उसके बाद उन्होंने बहुत-से ब्राह्मणोंको अलग-अलग सौ-सौ स्वर्णमुद्राएँ, करोड़ों रत्न तथा अनेक प्रकारके द्रव्य दिये। उस समय सभी देवगण एवं अन्य चराचर जीव हृदयसे अत्यन्त प्रसन्न हुए और जोर-जोरसे जयध्वनि होने लगी। सभी ओर मंगलध्वनिके साथ गान होने लगा और सबके आनन्दको बढ़ानेवाली रम्य वाद्य-ध्वनि होने लगी। उसके बाद मेरे साथ विष्णु, देवता, मुनिगण तथा अन्य लोग हिमालयसे आज्ञा लेकर प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने निवासस्थानको गये॥ ९—१२॥

तदानीं शैलनगरे स्त्रियश्च मुदिता वरम्।
शिवाशिवौ समानीय ययुः कुहवरालयम्॥ १३

उस समय हिमालयके नगरकी स्त्रियाँ प्रसन्न होकर शिवा एवं शिवको लेकर दिव्य कोहवर-घरमें गयीं॥ १३॥

लौकिकाचारमाजह्रुस्ताः स्त्रियस्तत्र चादृताः।
महोत्साहो बभूवाथ सर्वतः प्रमुदावहः॥ १४

अथ तास्तौ समानीय दम्पती जनशंकरौ।
वासालयं महादिव्यं भवाचारं व्यधुर्मुदा॥ १५

वहाँपर वे स्त्रियाँ आदरके साथ लौकिकाचार करने लगीं। चारों ओर आनन्द प्रदान करनेवाला महान् उत्साह फैल गया। उसके बाद उन सबने लोगोंका कल्याण करनेवाले उन शिव-शिवाको महादिव्य निवासस्थानमें ले जाकर प्रसन्नतापूर्वक लौकिकाचार किया॥ १४-१५॥

अथो समीपमागत्य शैलेन्द्रनगरस्त्रियः।
निर्वृत्य मङ्गलं कर्म प्रापयन्दम्पती गृहम्॥ १६

तत्पश्चात् हिमालयके नगरकी स्त्रियाँ समीपमें आकर मंगलकर्म करके दम्पतीको घरमें ले गयीं॥ १६॥

कृत्वा जयध्वनिं चक्रुर्ग्रन्थिनिर्मोचनादिकम्।
सस्मितास्सकटाक्षाश्च पुलकाञ्चितविग्रहाः॥ १७

वे जय-जयकारकर ग्रन्थि-बन्धन खोलने लगीं। उस समय वे कटाक्ष करती हुईं मन्द-मन्द हँस रही थीं और उनका शरीर रोमांचित हो रहा था॥ १७॥

* अग्निमें घीकी आहुति देकर स्रुवामें अवशिष्ट घृतको जलयुक्त प्रोक्षणीपात्रमें डालनेकी विधि है। प्रत्येक आहुतिमें ऐसा किया जाता है। प्रोक्षणीपात्रमें डाले हुए घीको ही 'संस्रव' कहते हैं। अन्तमें यजमान उसे पीता है। इसीको 'संस्रवप्राशन' कहा गया है।

वासगेहं सम्प्रविश्य मुमुहुः कामिनीवराः।
प्रशंसन्त्यः स्वभाग्यानि पश्यन्त्यः परमेश्वरम्॥ १८
महासुरूपवेषं च सर्वलावण्यसंयुतम्।
नवीनयौवनस्थं च कामनीचित्तमोहनम्॥ १९
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं सकटाक्षं सुसुन्दरम्।
सुसूक्ष्मवासो बिभ्राणं नानारत्नविभूषितम्॥ २०

वे श्रेष्ठ स्त्रियाँ वासगृहमें प्रवेश करते ही मोहित हो गयीं और सुन्दर रूप तथा वेषवाले, सम्पूर्ण लावण्यसे युक्त, नवीन यौवनसे परिपूर्ण, कामिनियोंके चित्तको मोहित करनेवाले, मन्द-मन्द मुसकानयुक्त प्रसन्न मुख-मण्डलवाले, कटाक्षयुक्त, अत्यन्त सुन्दर, अत्यन्त सूक्ष्म वस्त्र धारण किये हुए और अनेक रत्नोंसे विभूषित परमेश्वरको देखती हुईं अपने-अपने भाग्यकी प्रशंसा करने लगीं॥ १८—२०॥

तदानीं दिव्यनार्यश्च षोडशारं समाययुः।
तौ दम्पती च संद्रष्टुं महादरपुरस्सरम्॥ २१
सरस्वती च लक्ष्मीश्च सावित्री जाह्नवी तथा।
अदितिश्च शची चैव लोपामुद्राप्यरुन्धती॥ २२
अहल्या तुलसी स्वाहा रोहिणी च वसुन्धरा।
शतरूपा च संज्ञा च रतिरेताः सुरस्त्रियः॥ २३
देवकन्या नागकन्या मुनिकन्या मनोहराः।
तत्र या याः स्थितास्तासां सङ्ख्यां कर्तुं च कः क्षमः॥ २४

उस समय सोलह दिव्य नारियाँ बड़े आदरके साथ इन दम्पतीको देखनेके लिये शीघ्र ही पहुँच गयीं। सरस्वती, लक्ष्मी, सावित्री, जाह्नवी, अदिति, शची, लोपामुद्रा, अरुन्धती, अहल्या, तुलसी, स्वाहा, रोहिणी, वसुन्धरा, शतरूपा, संज्ञा और रति—ये देवस्त्रियाँ हैं। अन्य जो-जो मनोहर देवकन्याएँ एवं मुनिकन्याएँ वहाँ स्थित थीं, उनकी गणना करनेमें कौन समर्थ है॥ २१—२४॥

ताभी रत्नासने दत्ते तत्रोवास शिवो मुदा।
तमूचुः क्रमतो देव्यः सुहासं मधुरं वचः॥ २५

उनके द्वारा दिये गये रत्नके आसनपर शिवजी प्रसन्नताके साथ बैठे। इसके बाद सब देवियाँ क्रमसे मन्द-मन्द हँसती हुई उनसे मधुर वचन कहने लगीं॥ २५॥

सरस्वत्युवाच

प्राप्ता सती महादेवाधुना प्राणाधिका मुदा।
दृष्ट्वा प्रियास्यं चन्द्राभं सन्तापं त्यज कामुक॥ २६

सरस्वती बोलीं—हे महादेव! अब प्राणोंसे भी अधिक प्यारी सतीदेवी आपको प्राप्त हो गयी हैं। हे कामुक! इनके चन्द्रमाके समान आभावाले प्रिय मुखको प्रसन्नतापूर्वक देखकर आप सन्तापको त्याग दीजिये॥ २६॥

कालं गमय कालेश सतीसंश्लेषपूर्वकम्।
विश्लेषस्ते न भविता सर्वकालं समाश्रिता॥ २७

हे कालेश! आप इस सतीका आलिंगन करते हुए अपना समय व्यतीत कीजिये। सभी समय आपके आश्रित रहनेवाली इस सखीसे आपका वियोग नहीं होगा॥ २७॥

लक्ष्मीरुवाच

लज्जां विहाय देवेश सतीं कृत्वा स्ववक्षसि।
तिष्ठ तां प्रति का लज्जा प्राणा यान्ति यया विना॥ २८

लक्ष्मी बोलीं—हे देवेश! अब लज्जाका त्यागकर सतीको अपने वक्ष:स्थलमें स्थित कीजिये, जिसके बिना आपके प्राण निकल रहे थे, उसके प्रति कौन-सी लज्जा!॥ २८॥

सावित्र्युवाच

भोजयित्वा सतीं शम्भो शीघ्रं त्वं भुङ्क्ष्व मा खिदः।
तदाचम्य सकर्पूरं तांबूलं देहि सादरम्॥ २९

सावित्री बोलीं—हे शम्भो! सतीको भोजन कराकर आप भी शीघ्र भोजन कीजिये, किसी बातका खेद मत कीजिये और आचमन करके सतीको आदरसे कपूरमिश्रित ताम्बूल दीजिये॥ २९॥

जाह्नव्युवाच

स्वर्णकांतिकरां धृत्वा केशान्मार्जय योषितः।
कामिन्याः स्वामिसौभाग्यसुखं नातः परं भवेत्॥ ३०

जाह्नवी बोलीं—अब इस सुवर्णकान्तिवाली पार्वतीके केशोंको पकड़कर सँवारिये; क्योंकि कामिनी स्त्रियोंका इससे बढ़कर और कोई पतिसे प्राप्त होनेवाला सौभाग्यसुख नहीं होता॥ ३०॥

अदितिरुवाच

भोजनान्ते शिवे शम्भुं मुखशुद्ध्यर्थमादरात्।
जलं देहि महाप्रीत्या दम्पतिप्रेम दुर्लभम्॥ ३१

अदिति बोलीं—हे शिवे! आप भोजनके पश्चात् मुख शुद्ध करनेके लिये शम्भुको अति प्रेमसे जल प्रदान कीजिये; क्योंकि दम्पतीका परस्पर प्रेम [सर्वथा] दुर्लभ है॥ ३१॥

शच्युवाच

कृत्वा विलापं यद्धेतोः शिवां कृत्वा च वक्षसि।
यो बभ्रामानिशं मोहात् का लज्जा ते प्रियां प्रति॥ ३२

शची बोलीं—जिसके लिये आप मोहवश विलाप करते-करते [दर-दर] भटक रहे थे, उस शिवाको वक्षःस्थलपर धारण कीजिये, उस प्रियाके प्रति आपको लज्जा क्यों?॥ ३२॥

लोपामुद्रोवाच

व्यवहारोऽस्ति च स्त्रीणां भुक्त्वा वासगृहे शिव।
दत्त्वा शिवायै ताम्बूलं शयनं कर्तुमर्हसि॥ ३३

लोपामुद्रा बोलीं—हे शंकर! भोजन करके आप वासगृहमें जाइये, यह स्त्रियोंका व्यवहार है। आप शिवाको ताम्बूल देकर शयन कीजिये॥ ३३॥

अरुन्धत्युवाच

मया दत्तां सतीं मेना तुभ्यं दातुमनीप्सिता।
विविधं बोधयित्वेमां सुरतिं कर्तुमर्हसि॥ ३४

अरुन्धती बोलीं—हे शिव! मेना आपके निमित्त पार्वतीको देना नहीं चाहती थीं, किंतु मेरे बहुत समझानेपर उन्होंने पार्वतीको देना स्वीकार किया, अब आप इनसे अधिक प्रेम कीजिये॥ ३४॥

अहल्योवाच

वृद्धावस्थां परित्यज्य ह्यतीव तरुणो भव।
येन मेनानुमन्येत त्वां सुतार्पितमानसा॥ ३५

अहल्या बोलीं—अब आप वृद्धावस्थाको छोड़कर पूर्ण युवा हो जाइये, जिससे कन्या देनेवाली इस मेनाको पुत्रीदानसे सन्तुष्टि प्राप्त हो जाय॥ ३५॥

तुलस्युवाच

सती त्वया परित्यक्ता कामो दग्धः पुरा कृतः।
कथं तदा वसिष्ठश्च प्रभो प्रस्थापितोऽधुना॥ ३६

तुलसी बोलीं—हे प्रभो! आपने पूर्वकालमें सतीका त्याग किया, उसके बाद कामदेवको जलाया, अब आपने [पार्वतीको प्राप्त करनेके लिये] हिमालयके घर वसिष्ठको कैसे भेजा?॥ ३६॥

स्वाहोवाच

स्थिरो भव महादेव स्त्रीणां वचसि साम्प्रतम्।
विवाहे व्यवहारोऽस्ति पुरन्ध्रीणां प्रगल्भता॥ ३७

स्वाहा बोलीं—हे महादेव! अब आप स्त्रियोंके वचनमें स्थिर हो जाइये; क्योंकि विवाहमें स्त्रियोंकी प्रगल्भता एक व्यवहार होता है॥ ३७॥

रोहिण्युवाच

कामं पूरय पार्वत्याः कामशास्त्रविशारद।
कुरु पारं स्वयं कामी कामिनीकामसागरम्॥ ३८

रोहिणी बोलीं—हे कामशास्त्रविशारद! अब आप पार्वतीकी कामना पूर्ण कीजिये, आप स्वयं कामी हैं, अतः कामिनीके कामसागरको पार कीजिये॥ ३८॥

वसुन्धरोवाच

जानासि भावं भावज्ञ कामार्तानां च योषिताम्।
न च स्वं स्वामिनं शम्भो ईश्वरं पाति सन्ततम्॥ ३९

वसुन्धरा बोलीं—हे भावज्ञ! आप कामार्त स्त्रियोंके भावको जानते हैं। हे शम्भो! स्त्री अपने स्वामीकी ईश्वरभावसे निरन्तर सेवा करती है, वह पतिके अतिरिक्त अपनी किसी भी वस्तुकी रक्षा करना नहीं चाहती॥ ३९॥

शतरूपोवाच

भोगं दिव्यं विना भुक्त्वा न हि तुष्येत्क्षुधातुरः।
येन तुष्टिर्भवेच्छंभो तत्कर्तुमुचितं स्त्रियाः॥ ४०

शतरूपा बोलीं—भूखसे तड़पता हुआ व्यक्ति दिव्य सुखका भोग किये बिना सन्तुष्ट नहीं होता। अतः हे शम्भो! जिससे स्त्रीको सन्तुष्टि हो, आपको वही करना उचित है॥ ४०॥

संज्ञोवाच

तूर्णं प्रस्थापय प्रीत्या पार्वत्या सह शङ्करम्।
रत्नप्रदीपं ताम्बूलं तल्पं निर्माय निर्जने॥ ४१

संज्ञा बोलीं—[हे सखि!] रत्नदीपक जलाकर एकान्तमें पलंग बिछाकर और उसपर ताम्बूल रखकर परम प्रीतिसे शीघ्रतापूर्वक शिवाके साथ शिवको स्थापित करो॥ ४१॥

ब्रह्मोवाच

स्त्रीणां तद्वचनं श्रुत्वा ता उवाच शिवः स्वयम्।
निर्विकारश्च भगवान्योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः॥ ४२

ब्रह्माजी बोले—स्त्रियोंके वे वचन सुनकर निर्विकार एवं महान् योगियोंके गुरुके भी गुरु भगवान् शंकरजी उनसे स्वयं कहने लगे—॥ ४२॥

शंकर उवाच

देव्यो न ब्रूत वचनमेवंभूतं ममान्तिकम्।
जगतां मातरः साध्व्यः पुत्रे चपलता कथम्॥ ४३

शंकरजी बोले—हे देवियो! मेरे समीप इस प्रकारके वचनको आपलोग न बोलें, आप सब पतिव्रताएँ एवं जगत्‌की माताएँ हैं, फिर पुत्रके विषयमें इस प्रकारकी चपलता क्यों?॥ ४३॥

ब्रह्मोवाच

शङ्करस्य वचः श्रुत्वा लज्जिताः सुरयोषितः।
बभूवुः सम्भ्रमात्तूष्णीं चित्रपुत्तलिका यथा॥ ४४

ब्रह्माजी बोले—शंकरकी यह बात सुनकर सभी देवस्त्रियाँ लज्जित हो गयीं और सम्भ्रमके कारण चित्रलिखित पुतलियोंकी भाँति चुप हो गयीं॥ ४४॥

भुक्त्वा मिष्टान्नमाचम्य महेशो हृष्टमानसः।
सकर्पूरं च तांबूलं बुभुजे भार्यया सह॥ ४५

तदनन्तर मिष्टान्न ग्रहणकर आचमनकर प्रसन्नचित्त महेशने पार्वतीके साथ कर्पूरयुक्त पानका सेवन किया॥ ४५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे परिहासवर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें परिहासवर्णन नामक पचासवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५०॥

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

रतिके अनुरोधपर श्रीशंकरका कामदेवको जीवित करना, देवताओंद्वारा शिवस्तुति

ब्रह्मोवाच

तस्मिन्नवसरे ज्ञात्वानुकूलं समयं रतिः।
सुप्रसन्ना च तं प्राह शङ्करं दीनवत्सलम्॥ १

ब्रह्माजी बोले—उस अवसरपर अनुकूल समय जानकर प्रसन्नतासे पूर्ण रति दीनवत्सल शंकरसे कहने लगी—॥ १॥

रतिरुवाच

गृहीत्वा पार्वतीं प्राप्तं सौभाग्यमतिदुर्लभम्।
किमर्थं प्राणनाथो मे निस्स्वार्थं भस्मसात्कृतः॥ २

रति बोली—[हे भगवन्!] पार्वतीको ग्रहण करके आपने परम दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त किया, किंतु मेरे प्राणनाथको आपने व्यर्थ ही भस्म क्यों कर दिया?॥ २॥

जीवयात्र पतिं मे हि कामव्यापारमात्मनि।
कुरु दूरं च सन्तापं समविश्लेषहेतुकम्॥ ३

अपने मनमें विचार करके मेरे पतिको जीवित कर दीजिये और समानरूपसे वियोगके हेतुभूत सन्तापको दूर कीजिये॥ ३॥

विवाहोत्सव एतस्मिन् सुखिनो निखिला जनाः।
अहमेका महेशान दुःखिनी स्वपतिं विना॥ ४

हे महेश्वर! इस विवाहोत्सवमें सभी लोग सुखी हैं, केवल मैं ही अपने पतिके बिना दुखी हूँ॥ ४॥

सनाथां कुरु मां देव प्रसन्नो भव शङ्कर।
स्वोक्तं सत्यं विधेहि त्वं दीनबन्धो पर प्रभो॥ ५

हे देव! मुझे सनाथ कीजिये। हे शंकर! अब आप प्रसन्न होइये। हे दीनबन्धो! हे परप्रभो! अपने वचनको आप सत्य कीजिये॥ ५॥

त्वां विना कः समर्थोऽत्र त्रैलोक्ये सचराचरे।
नाशने मम दुःखस्य ज्ञात्वेति करुणां कुरु॥ ६

इस चराचर त्रिलोकीमें आपके बिना कौन मेरा दुःख दूर करनेमें समर्थ है, ऐसा जानकर मुझपर दया कीजिये॥ ६॥

सोत्सवे स्वविवाहेऽस्मिन्सर्वानन्दप्रदायिनि।
सोत्सवामपि मां नाथ कुरु दीनकृपाकर॥ ७

हे नाथ! हे दीनोंपर कृपा करनेवाले! सभीको आनन्द देनेवाले उत्सवपूर्ण अपने इस विवाहमें मुझे भी आनन्दित कीजिये॥ ७॥

जीविते मम नाथे हि पार्वत्या प्रियया सह।
सुविहारः प्रपूर्णश्च भविष्यति न संशयः॥ ८

मेरे पतिके जीवित होनेपर ही प्रिया पार्वतीके साथ आपका विहार पूर्ण होगा, इसमें सन्देह नहीं॥ ८॥

सर्वं कर्तुं समर्थोऽसि यतस्त्वं परमेश्वरः।
किं बहूक्त्यात्र सर्वेश जीवयाशु पतिं मम॥ ९

आप सब कुछ करनेमें समर्थ हैं, क्योंकि आप परमेश्वर हैं। हे सर्वेश! बहुत क्या कहूँ, आप मेरे पतिको शीघ्र जीवित कीजिये॥ ९॥

ब्रह्मोवाच

तदित्युक्त्वा कामभस्म ददौ सग्रन्थिबन्धनम्।
रुरोद पुरतः शम्भोर्नाथ नाथेत्युदीर्य च॥ १०

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर रतिने अपने गाँठमें बँधी हुई कामकी भस्म उन्हें दे दी और हे नाथ! हे नाथ! ऐसा कहकर उनके सामने विलाप करने लगी॥ १०॥

रतिरोदनमाकर्ण्य सरस्वत्यादयः स्त्रियः।
रुरुदुः सकला देव्यः प्रोचुर्दीनतरं वचः॥ ११

रतिके रुदनको सुनकर [वहाँ उपस्थित] सरस्वती आदि सभी स्त्रियाँ रोने लगीं और अत्यन्त दीन वचन कहने लगीं॥ ११॥

देव्य ऊचुः

भक्तवत्सलनामा त्वं दीनबन्धुर्दयानिधिः।
कामं जीवय सोत्साहां रतिं कुरु नमोऽस्तु ते॥ १२

देवियाँ बोलीं—[हे प्रभो!] आप भक्तवत्सल नामवाले, दीनबन्धु और दयानिधि हैं, आप कामको जीवित कर दीजिये तथा रतिको प्रसन्न कीजिये, आपको नमस्कार है॥ १२॥

ब्रह्मोवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रसन्नोऽभून्महेश्वरः।
कृपादृष्टिं चकाराशु करुणासागरः प्रभुः॥ १३

ब्रह्माजी बोले—उनके इस वचनको सुनकर महेश्वर प्रसन्न हो गये। उन करुणासागर प्रभुने शीघ्र ही [उनपर] कृपादृष्टि की॥ १३॥

सुधादृष्ट्या शूलभृतो भस्मतो निर्गतः स्मरः।
तद्रूपवेषचिह्नात्मा सुन्दरोऽद्भुतमूर्तिमान्॥ १४

शूलधारी शिवजीकी अमृतमयी दृष्टि पड़ते ही भस्मसे उसी रूप-वेष-चिह्नको धारण किये हुए, सुन्दर तथा अद्भुत शरीरवाले कामदेव प्रकट हो गये॥ १४॥

तद्रूपं च तदाकारं सस्मितं सधनुश्शरम्।
दृष्ट्वा पतिं रतिस्तं च प्रणनाम महेश्वरम्॥ १५

उसी रूप तथा उसी आकारवाले, हास्ययुक्त एवं धनुष-बाणयुक्त [अपने] पतिको देखकर रतिने उन्हें तथा महेश्वरको प्रणाम किया॥ १५॥

कृतार्थाभूच्छिवं देवं तुष्टाव च कृताञ्जलिः।
प्राणनाथप्रदं पत्या जीवितेन पुनः पुनः॥ १६

वह कृतार्थ हो गयी और हाथ जोड़कर [अपने] जीवित पतिके साथ प्राणनाथ [कामदेव]-को प्रदान करनेवाले देव शंकरकी स्तुति करने लगी॥ १६॥

कामस्य स्तुतिमाकर्ण्य सनारीकस्य शङ्करः।
प्रसन्नोऽभवदत्यंतमुवाच करुणार्द्रधीः॥ १७

पत्नीसहित कामकी स्तुति सुनकर भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये और करुणासे आर्द्र होकर कहने लगे— ॥ १७॥

शङ्कर उवाच

प्रसन्नोऽहं तव स्तुत्या सनारीकस्य चित्तज।
स्वयंभव वरं ब्रूहि वाञ्छितं तद् ददामि ते॥ १८

शंकरजी बोले—हे काम! स्त्रीसहित तुम्हारी स्तुतिसे मैं प्रसन्न हूँ। हे स्वयम्भव! अब तुम अभीष्ट वर माँगो, मैं उसे तुम्हें देता हूँ॥ १८॥

ब्रह्मोवाच

इति शम्भुवचः श्रुत्वा महानंदः स्मरस्ततः।
उवाच साञ्जलिर्नम्रो गद्गदाक्षरया गिरा॥ १९

ब्रह्माजी बोले—शिवजीका ऐसा वचन सुनकर कामदेव अत्यन्त प्रसन्न हो गये और विनम्र होकर हाथ जोड़कर गद्गद वाणीमें बोले— ॥ १९॥

काम उवाच

देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो।
यदि प्रसन्नः सर्वेश ममानन्दकरो भव॥ २०

कामदेव बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणासागर! हे प्रभो! हे सर्वेश! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मुझे आनन्द प्रदान कीजिये॥ २०॥

क्षमस्व मेऽपराधं हि यत्कृतश्च पुरा प्रभो।
स्वजनेषु परां प्रीतिं भक्तिं देहि स्वपादयोः॥ २१

हे प्रभो! मैंने पूर्व समयमें जो अपराध किया है, उसे क्षमा कीजिये। स्वजनोंमें परम प्रीति और अपने चरणोंमें भक्ति दीजिये॥ २१॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य स्मरवचः प्रसन्नः परमेश्वरः।
ओमित्युक्त्वाब्रवीत्तं वै विहसन्करुणानिधिः॥ २२

ब्रह्माजी बोले—कामदेवकी यह बात सुनकर करुणासागर परमेश्वर प्रसन्न हो 'तथास्तु'—ऐसा कहकर हँसते हुए उनसे पुनः कहने लगे— ॥ २२॥

ईश्वर उवाच

हे कामाहं प्रसन्नोऽस्मि भयं त्यज महामते।
गच्छ विष्णुसमीपं च बहिःस्थाने स्थितो भव॥ २३

ईश्वर बोले—हे काम! हे महामते! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, तुम भयका त्याग करो और विष्णुके समीप जाओ तथा बाहर स्थित हो जाओ॥ २३॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा शिरसा नत्वा परिक्रम्य स्तुवन्विभुम्।
बहिर्गत्वा हरिं देवान् प्रणम्य समुपास्त सः॥ २४

ब्रह्माजी बोले—यह सुनकर वह कामदेव सिर झुकाकर प्रभुको प्रणाम करके परिक्रमाकर उनकी स्तुति करते हुए बाहर जाकर विष्णु एवं अन्य देवताओंको प्रणामकर उनकी उपासना करने लगा॥ २४॥

कामं सम्भाष्य देवाश्च ददुस्तस्मै शुभाशिषम्।
विष्णवादयः प्रसन्नास्ते प्रोचुः स्मृत्वा शिवं हृदि॥ २५

देवताओंने कामदेवसे सम्भाषणकर कल्याणकारी आशीष प्रदान किया, इसके बाद प्रसन्नतापूर्वक शिवजीका हृदयमें स्मरण करके वे विष्णु आदि उनसे कहने लगे— ॥ २५॥

देवा ऊचुः

धन्यस्त्वं स्मर सन्दग्धः शिवेनानुग्रहीकृतः।
जीवयामास सत्त्वांशकृपादृष्ट्याखिलेश्वरः॥ २६

देवता बोले—हे काम! तुम धन्य हो, जो शिवजीके द्वारा दग्ध हो जानेके बाद भी उनके अनुग्रह-पात्र बने और अखिलेश्वरने सात्त्विक कृपादृष्टिसे तुम्हें जीवित कर दिया॥ २६॥

सुखदुःखदो न चान्योऽस्ति यतः स्वकृतभुक् पुमान्।
काले रक्षा विवाहश्च निषेकः केन वार्यते॥ २७

कोई भी किसीको सुख-दुःख देनेवाला नहीं है, पुरुष स्वयं अपने किये हुए कर्मका फल भोगता है। समयके आनेपर रक्षा, विवाह तथा जन्म होता है, उसे कौन रोक सकता है?॥ २७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा ते च सम्मान्य तं सुखेनामरास्तदा।
सन्तस्थुस्तत्र विष्णवाद्याः सर्वे लब्धमनोरथाः॥ २८

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर उनका सत्कार करके सफल मनोरथवाले वे सभी विष्णु आदि देवगण सुखपूर्वक वहीं स्थित हो गये॥ २८॥

सोऽपि प्रमुदितस्तत्र समुवास शिवाज्ञया।
जयशब्दो नमःशब्दः साधुशब्दो बभूव ह॥ २९

कामदेवने भी प्रमुदित होकर शिवजीकी आज्ञासे वहीं निवास किया। उस समय जय शब्द, नमःशब्द और साधु शब्द होने लगा॥ २९॥

ततः शम्भुर्वासगेहे वामे संस्थाप्य पार्वतीम्।
मिष्टान्नं भोजयामास तं च सा च मुदान्विता॥ ३०

उसके बाद शिवजीने अपने निवासगृहमें पार्वतीको बायीं ओर बैठाकर उन्हें मिष्टान्नका भोजन कराया और उन्होंने भी परम प्रसन्न होकर उन शिवजीको भोजन कराया॥ ३०॥

अथ शम्भुर्भवाचारी तत्र कृत्यं विधाय तत्।
मेनामामन्त्र्य शैलं च जनवासं जगाम सः॥ ३१

इस प्रकार लोकाचारमें लगे हुए वे शम्भु वहाँका कृत्य करके मेना तथा हिमालयसे आज्ञा लेकर जनवासमें चले गये॥ ३१॥

महोत्सवस्तदा चासीद् वेदध्वनिरभून्मुने।
वाद्यानि वादयामासुर्जनाश्चतुर्विधानि च॥ ३२

हे मुने! उस समय महोत्सव होने लगा, वेदध्वनि होने लगी तथा लोग चारों प्रकारके बाजे* बजाने लगे॥ ३२॥

शम्भुरागत्य स्वस्थानं ववन्दे च मुनींस्तदा।
हरिं च मां भवाचाराद्वन्दितोऽभूत्सुरादिभिः॥ ३३

शिवजीने अपने स्थानपर आकर मुनियोंको, मुझे तथा विष्णुको प्रणाम किया। देवता आदिने लोकाचारके कारण उनको भी प्रणाम किया॥ ३३॥

जयशब्दो बभूवाथ नमश्शब्दस्तथैव च।
वेदध्वनिश्च शुभदः सर्वविघ्नविदारणः॥ ३४

उस समय जय शब्द और नमः शब्दका उच्चारण होने लगा और सभी प्रकारके विघ्नोंको दूर करनेवाली मंगलदायिनी वेदध्वनि होने लगी॥ ३४॥

अथ विष्णुरहं शक्रः सर्वे देवाश्च सर्षयः।
सिद्धा उपसुरा नागास्तुष्टुवुस्ते पृथक्पृथक्॥ ३५

विष्णु, मैं, इन्द्र, सभी देवगण, ऋषि, सिद्ध, उपदेव एवं नाग अलग-अलग शिवजीकी स्तुति करने लगे—॥ ३५॥

देवा ऊचुः

जय शम्भोऽखिलाधार जय नाम महेश्वर।
जय रुद्र महादेव जय विश्वम्भर प्रभो॥ ३६

देवता बोले—हे शंकर! हे सर्वाधार! आपकी जय हो। हे महेश्वर! आपकी जय हो। हे रुद्र! हे महादेव! हे विश्वम्भर! हे प्रभो! आपकी जय हो।

* अमरकोशमें जो चार प्रकारके बाजे बताये गये हैं, संसारके सभी प्राचीन अथवा अर्वाचीन वाद्य उन्हींके अन्तर्गत हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—तत, आनद्ध, सुषिर और घन। 'तत' वह बाजा है, जिसमें तारका विस्तार हो—जैसे वीणा, सितार आदि। जिसे चमड़ेसे मढ़ाकर कसा गया हो, वह 'आनद्ध' कहलाता है—जैसे ढोल, मृदंग, नगारा आदि। जिसमें छेद हो और उसमें हवा भरकर स्वर निकाला जाता हो, उसे 'सुषिर' कहते हैं—जैसे वंशी, शंख, विगुल, हारमोनियम आदि। काँसेके झाँझ आदिको 'घन' कहते हैं।

जय कालीपते स्वामिन् जयानन्दप्रवर्धक।
जय त्र्यम्बक सर्वेश जय मायापते विभो॥ ३७

हे कालीपते! हे स्वामिन्! हे आनन्दप्रवर्धक! आपकी जय हो। हे त्र्यम्बक! हे सर्वेश! आपकी जय हो। हे मायापते! हे विभो! आपकी जय हो॥ ३६-३७॥

जय निर्गुण निष्काम कारणातीत सर्वग।
जय लीलाखिलाधार धृतरूप नमोऽस्तु ते॥ ३८

हे निर्गुण! हे निष्काम! हे कारणातीत! हे सर्वग! आपकी जय हो। हे सम्पूर्ण लीलाओंके आधार! आपकी जय हो। हे अवतार धारण करनेवाले! आपको नमस्कार है॥ ३८॥

जय स्वभक्तसत्कामप्रदेश करुणाकर।
जय सानन्दसद्रूप जय मायागुणाकृते॥ ३९

अपने भक्तोंकी कामनाको पूर्ण करनेवाले हे ईश! हे करुणासागर! आपकी जय हो। हे आनन्दमय! हे सुन्दररूपवाले! आपकी जय हो। हे मायासे सगुण रूप धारण करनेवाले! आपकी जय हो॥ ३९॥

जयोग्र मृड सर्वात्मन् दीनबन्धो दयानिधे।
जयाविकार मायेश वाङ्मनोऽतीतविग्रह॥ ४०

हे उग्र! हे मृड! हे सर्वात्मन्! हे दीनबन्धो! हे दयानिधे! आपकी जय हो। हे अविकार! हे मायेश! हे वाणी तथा मनसे अतीत स्वरूपवाले! आपकी जय हो॥ ४०॥

ब्रह्मोवाच

इति स्तुत्वा महेशानं गिरिजानायकं प्रभुम्।
सिषेविरे परप्रीत्या विष्ण्वाद्यास्ते यथोचितम्॥ ४१

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार गिरिजापति महेश्वर प्रभुकी स्तुतिकर वे विष्णु आदि देवगण परम प्रीतिसे शिवजीकी यथोचित सेवा करने लगे॥ ४१॥

अथ शम्भुर्महेशानो लीलात्ततनुरीश्वरः।
ददौ मानवरं तेषां सर्वेषां तत्र नारद॥ ४२

हे नारद! तब लीलासे शरीर धारण करनेवाले महेश्वर भगवान् शम्भुने उन सबको श्रेष्ठ सम्मान प्रदान किया॥ ४२॥

विष्ण्वाद्यास्तेऽखिलास्तात प्राप्याज्ञां परमेशितुः।
अतिहृष्टाः प्रसन्नास्याः स्वस्थानं जग्मुरादृताः॥ ४३

हे तात! इसके बाद वे विष्णु आदि सभी लोग महेश्वरकी आज्ञा प्राप्त करके अत्यन्त हर्षित, प्रसन्नमुख तथा सम्मानित होकर अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ४३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे ब्रह्मनारदसंवादे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे कामसंजीवनवर्णनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें कामसंजीवनवर्णन नामक इक्यावनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५१॥

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

हिमालयद्वारा सभी बरातियोंको भोजन कराना, शिवका विश्वकर्माद्वारा निर्मित वासगृहमें शयन करके प्रातःकाल जनवासेमें आगमन

ब्रह्मोवाच

अथ शैलवरस्तात हिमवान्भाग्यसत्तमः।
प्राङ्गणं रचयामास भोजनार्थं विचक्षणः॥ १

ब्रह्माजी बोले—हे तात! इसके बाद भाग्यवान् एवं बुद्धिमान् पर्वतश्रेष्ठ हिमालयने सबको भोजन करानेके लिये आँगनको सजाया॥ १॥

मार्जनं लेपनं सम्यक्कारयामास तस्य सः।
स सुगन्धैरलञ्चक्रे नानावस्तुभिरादरात्॥ २

उन्होंने अच्छी प्रकारसे उसका मार्जन तथा लेपन कराया और अनेक प्रकारकी सुगन्धित वस्तुओंसे आदरपूर्वक उसे अलंकृत कराया॥ २॥

अथ शैलः सुरान् सर्वानन्यानपि च सेश्वरान्।
भोजनायाह्वयामास पुत्रैः शैलैः परैरपि॥ ३

तदनन्तर अपने पुत्रों तथा अन्य पर्वतोंद्वारा शंकरजी-सहित सभी देवगणों तथा अन्य लोगोंको भोजनके लिये बुलवाया॥ ३॥

शैलाह्वानमथाकर्ण्य स प्रभुः साच्युतो मुने।
सर्वैः सुरादिभिस्तत्र भोजनाय ययौ मुदा॥ ४

हे मुने! हिमालयके आमन्त्रणको सुनकर विष्णु तथा सभी देवता आदिके साथ वे प्रभु प्रसन्नताके साथ भोजनके लिये वहाँ गये॥ ४॥

गिरिः प्रभुं च सर्वांस्तान् सुसत्कृत्य यथाविधि।
मुदोपवेशयामास सत्पीठेषु गृहान्तरे॥ ५

नानासुभोज्यवस्तूनि परिवेष्य च तत्पुनः।
साञ्जलिर्भोजनायाज्ञां चक्रे विज्ञप्तिमानतः॥ ६

हिमालयने प्रभु तथा उन सभी देवगणोंका यथोचित सत्कार करके घरके भीतर उत्तम आसनोंपर प्रसन्नताके साथ बैठाया और उन्हें अनेक प्रकारकी सुभोज्य वस्तुओंको परोसकर नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर भोजनके लिये प्रार्थना की॥ ५-६॥

अथ सम्मानितास्तत्र देवा विष्णुपुरोगमाः।
सदाशिवं पुरस्कृत्य बुभुजुः सकलाश्च ते॥ ७

उसके बाद विष्णु आदि सभी देवता [हिमालयसे] इस प्रकार सम्मानित होकर सदाशिवको आगेकर भोजन करने लगे॥ ७॥

तदा सर्वे हि मिलिता ऐकपद्येन सर्वशः।
पंक्तिभूताश्च बुभुजुर्विहसन्तः पृथक्पृथक्॥ ८

उस समय सभी देवगण मिलकर एक साथ पंक्तिबद्ध होकर [परस्पर] हास्य करते हुए अलग-अलग भोजन करने लगे॥ ८॥

नन्दिभृंगिवीरभद्रवीरभद्रगणाः पृथक्।
बुभुजुस्ते महाभागाः कुतूहलसमन्विताः॥ ९

महाभाग नन्दी, भृंगी, वीरभद्र तथा वीरभद्रके गण पृथक् होकर कौतूहलमें भरकर भोजन करने लगे॥ ९॥

देवाः सेन्द्रा लोकपाला नानाशोभासमन्विताः।
बुभुजुस्ते महाभागा नानाहास्यरसैस्सह॥ १०

अनेक प्रकारकी शोभासे सम्पन्न महाभाग इन्द्र आदि लोकपाल तथा देवगण अनेक प्रकारके हास-परिहासके साथ भोजन करने लगे॥ १०॥

सर्वे च मुनयो विप्रा भृग्वाद्या ऋषयस्तथा।
बुभुजुः प्रीतितः सर्वे पृथक् पंक्तिगतास्तदा॥ ११

सभी मुनि, ब्राह्मण तथा भृगु आदि ऋषिगण आनन्दके साथ पृथक् पंक्तिमें बैठकर भोजन करने लगे॥ ११॥

तथा चण्डीगणाः सर्वे बुभुजुः कृतभोजनाः।
कुतूहलं प्रकुर्वन्तो नानाहास्यकरा मुदा॥ १२

इसी प्रकार चण्डीके सभी गणोंने भी भोजन किया। वे भोजन करनेके बाद प्रसन्नतापूर्वक कौतूहल करते हुए अनेक प्रकारके हास-परिहास कर रहे थे॥ १२॥

एवं ते भुक्तवन्तश्चाचम्य सर्वे मुदान्विताः।
विश्रामार्थं गताः प्रीत्या विष्ण्वाद्याः स्वं स्वमाश्रमम्॥ १३

इस तरह विष्णु आदि उन सभी देवताओंने आनन्दके साथ भोजन किया, फिर आचमन करके विश्रामके लिये वे प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने निवासस्थानको चले गये॥ १३॥

मेनाज्ञया स्त्रियः साध्व्यः शिवं सम्प्रार्थ्य भक्तितः।
गेहे निवासयामासुर्वासाख्ये परमोत्सवे॥ १४

इधर, मेनाकी आज्ञासे सभी पतिव्रता स्त्रियाँ भक्तिपूर्वक शिवसे प्रार्थनाकर वास नामक परमानन्ददायक निवासगृहमें ले गयीं॥ १४॥

रत्नसिंहासने शम्भुः मेनादत्ते मनोहरे।
सन्निधाय मुदा युक्तो ददृशे वासमन्दिरम्॥ १५

वहाँपर मेनाके द्वारा दिये गये मनोहर रत्नके सिंहासनपर बैठकर प्रसन्नतापूर्वक शिवजी वासगृहको देखने लगे॥ १५॥

रत्नप्रदीपशतकैर्ज्वलद्भिर्ज्वलितं श्रिया।
रत्नपात्रघटाकीर्णं मुक्तामणिविराजितम्॥ १६

रत्नदर्पणशोभाढ्यं मण्डितं श्वेतचामरैः।
मुक्तामणिसुमालाभिर्वेष्टितं परमर्द्धिमत्॥ १७

अनौपम्यं महादिव्यं विचित्रं सुमनोहरम्।
चित्ताह्लादकरं नानारचनारचितस्थलम्॥ १८

वह गृह सैकड़ों जलते हुए रत्नदीपकोंसे प्रकाशित तथा शोभासम्पन्न था, वहाँ अनेक प्रकारके रत्नोंके पात्र विराज रहे थे, उसमें स्थान-स्थानपर मोती तथा मणियाँ लगी हुई थीं। वह रत्नोंके दर्पणकी शोभासे युक्त था, वह श्वेत वर्णके चँवरोंसे मण्डित था, उसमें मोतियों और मणियोंकी मालाएँ लगी हुई थीं। वह परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न, अनुपम, महादिव्य, विचित्र, अत्यन्त मनोहर तथा चित्तको प्रसन्न करनेवाला था और उसके प्रत्येक स्थलमें नाना प्रकारकी कारीगरी की गयी थी॥ १६—१८॥

शिवदत्तवरस्यैव प्रभावमतुलं परम्।
दर्शयन्तं समुल्लासि शिवलोकाभिधानकम्॥ १९

वह गृह शिवके द्वारा दिये गये वरका अतुलनीय प्रभाव प्रकट कर रहा था और शोभासे सम्पन्न होनेके कारण उस गृहका शिवलोक नामकरण किया गया था॥ १९॥

नानासुगन्धसद्द्रव्यैर्वासितं सुप्रकाशकम्।
चन्दनागरुसंयुक्तं पुष्पशय्यासमन्वितम्॥ २०

वह अनेक प्रकारके सुगन्धित उत्तम द्रव्योंसे सुवासित, उत्तम प्रकाशसे युक्त, चन्दन-अगरुयुक्त तथा पुष्पकी शय्यासे समन्वित था॥ २०॥

नानाचित्रविचित्राढ्यं निर्मितं विश्वकर्मणा।
रत्नेन्द्रसाररचितैराचितं हारकैर्वरैः॥ २१

वह गृह विश्वकर्माके द्वारा रचित नाना प्रकारके चित्रोंकी विचित्रतासे युक्त था, उसमें सभी उत्तम रत्नोंके सारोंसे रचित श्रेष्ठ हारोंके ढेर लगे हुए थे॥ २१॥

कुत्रचित्सुरनिर्माणं वैकुण्ठं सुमनोहरम्।
कुत्रचिच्च ब्रह्मलोकं लोकपालपुरं क्वचित्॥ २२

कैलासं कुत्रचिद्रम्यं कुत्रचिच्छक्रमन्दिरम्।
कुत्रचिच्छिवलोकं च सर्वोपरि विराजितम्॥ २३

कहीं देवताओंके लिये अत्यन्त मनोहर वैकुण्ठ बना हुआ था, कहीं ब्रह्मलोक बना हुआ था, कहीं लोकपालोंका पुर बना हुआ था, कहीं मनोहर कैलास बना हुआ था, कहीं इन्द्रका मन्दिर बना हुआ था और कहीं सबके ऊपर शिवलोक सुशोभित हो रहा था॥ २२-२३॥

एतादृशं गृहं सर्वं दृष्ट्वाश्चर्यं महेश्वरः।
प्रशंसन् हिमशैलेशं परितुष्टो बभूव ह॥ २४

आश्चर्यचकित करनेवाले ऐसे घरको देखकर शिवजी गिरिराज हिमालयकी प्रशंसा करते हुए परम प्रसन्न हो गये॥ २४॥

तत्रातिरमणीये च रत्नपर्यङ्क उत्तमे।
अशयिष्ट मुदा युक्तो लीलया परमेश्वरः॥ २५

उसके बाद शिवजीने परम रमणीय तथा उत्तम रत्न-पर्यंकपर प्रसन्न हो लीलापूर्वक शयन किया॥ २५॥

हिमाचलश्च स्वभ्रातॄन्भोजयामास कृत्स्नशः।
सर्वानन्यांश्च सुप्रीत्या शेषकृत्यं चकार ह॥ २६

हिमालयने अपने सभी भाइयोंको तथा अन्य लोगोंको बड़े प्रेमसे भोजन कराया तथा शेष कृत्य पूर्ण किया॥ २६॥

एवं कुर्वति शैलेशे स्वपिति प्रेष्ठ ईश्वरे।
व्यतीता रजनी सर्वा प्रातःकालो बभूव ह॥ २७

इस प्रकार हिमालयको सब कार्य पूर्ण करते हुए एवं ईश्वर शिवजीके शयन करते हुए सारी रात बीत गयी और प्रभातकाल उपस्थित हो गया॥ २७॥

अथ प्रभातकाले च धृत्युत्साहपरायणाः।
नानाप्रकारवाद्यानि वादयाञ्चक्रिरे जनाः॥ २८

तब प्रातःकाल होनेपर धैर्य एवं उत्साहसे भरे हुए लोग अनेक प्रकारके बाजे बजाने लगे॥ २८॥

सर्वे सुराः समुत्तस्थुर्विष्णवाद्याः सुमुदान्विताः।
स्वेष्टं संस्मृत्य देवेशं सज्जीभूताः ससंभ्रमाः॥ २९

स्ववाहनानि सज्जानि कैलासं गन्तुमुत्सुकाः।
कृत्वा सम्प्रेषयामासुर्धर्मं शिवसमीपतः॥ ३०

वासगेहमथागत्य धर्मो नारायणाज्ञया।
उवाच शंकरं योगी योगीशं समयोचितम्॥ ३१

विष्णु आदि सभी देवगण उठ गये और अपने इष्टदेव शंकरका स्मरणकर प्रसन्नताके साथ शीघ्रतासे सज्जित होकर तैयार हो गये। अपने-अपने वाहनोंको सजाकर कैलास जानेके लिये उत्सुक उन लोगोंने शिवजीके समीप धर्मको भेजा। तत्पश्चात् नारायणकी आज्ञासे निवासगृहमें आकर योगी धर्म योगीश्वर शंकरसे समयोचित वचन कहने लगे— ॥ २९—३१॥

धर्म उवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते भव नः प्रमथाधिप।
जनावासं समागच्छ कृतार्थं कुरु तत्र तान्॥ ३२

धर्म बोले—हे भव! उठिये, उठिये, आपका कल्याण हो। हे प्रमथाधिप! जनवासेमें चलिये और वहाँ उन सभीको कृतार्थ कीजिये॥ ३२॥

ब्रह्मोवाच

इति धर्मवचः श्रुत्वा विजहास महेश्वरः।
ददर्श कृपया दृष्ट्या तल्पमुज्झाञ्चकार ह॥ ३३
उवाच विहसन् धर्मं त्वमग्रे गच्छ तत्र ह।
अहमप्यागमिष्यामि द्रुतमेव न संशयः॥ ३४

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] धर्मराजके इस वचनको सुनकर शिवजी हँसे। उन्होंने कृपादृष्टिसे धर्मकी ओर देखा और शय्याका परित्याग किया। वे हँसते हुए धर्मसे कहने लगे—तुम आगे चलो, मैं भी वहाँ शीघ्र ही आऊँगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३३-३४॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तः शंकरेणाथ जनावासं जगाम सः।
स्वयं गन्तुमना आसीत्तत्र शम्भुरपि प्रभुः॥ ३५

ब्रह्माजी बोले—शंकरजीके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर धर्मराज जनवासेमें गये और बादमें स्वयं प्रभु शंकरजी भी वहाँ जानेका विचार करने लगे॥ ३५॥

तज्ज्ञात्वा स्त्रीगणः सोऽसौ तत्रागच्छन्महोत्सवः।
चक्रे मङ्गलगानं हि पश्यन् शम्भुपदद्वयम्॥ ३६
अथ शम्भुर्भवाचारी प्रातःकृत्यं विधाय च।
मेनामामन्त्र्य कुध्रं च जनावासं जगाम सः॥ ३७

इसे जानकर स्त्रियाँ आनन्दमें भरकर वहाँ पहुँच गयीं और शिवके दोनों चरणोंको देखती हुई मंगलगान करने लगीं। इसके बाद वे शिवजी लोकाचार प्रदर्शित करते हुए प्रातःकृत्य करके मेना एवं पर्वतराजसे आज्ञा लेकर जनवासेमें गये॥ ३६-३७॥

महोत्सवस्तदा चासीद्वेदध्वनिरभून्मुने।
वाद्यानि वादयामासुर्जनाश्चतुर्विधानि च॥ ३८

हे मुने! उस समय महोत्सव होने लगा, वेदध्वनि होने लगी और लोग चारों प्रकारके बाजे बजाने लगे॥ ३८॥

शम्भुरागत्य स्वस्थानं ववन्दे च मुनींस्तदा।
हरिं च मां भवाचाराद् वन्दितोऽभूत्सुरादिभिः॥ ३९

शिवजीने अपने स्थानपर आकर मुनियोंको, मुझे तथा विष्णुको प्रणाम किया तथा देवता आदिने भी लौकिक आचारवश उनकी वन्दना की॥ ३९॥

जयशब्दो बभूवाथ नमःशब्दस्तथैव च।
वेदध्वनिश्च शुभदो महाकोलाहलोऽभवत्॥ ४०

[उस समय चारों ओर] जय शब्द, नमः शब्द और मंगलदायक वेदध्वनि होने लगी, इस प्रकार वहाँ महान् कोलाहल व्याप्त हो गया॥ ४०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे वरवर्गभोजन-शिवशयनवर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें वरवर्गका भोजन और शिवशयन-वर्णन नामक बावनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५२॥

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

चतुर्थीकर्म, बरातका कई दिनोंतक ठहरना, सप्तर्षियोंके समझानेसे हिमालयका बरातको विदा करनेके लिये राजी होना, मेनाका शिवको अपनी कन्या सौंपना तथा बरातका पुरीके बाहर जाकर ठहरना

ब्रह्मोवाच

अथ विष्ण्वादयो देवा मुनयश्च तपोधनाः।
कृत्वावश्यककर्माणि यात्रां सन्तेनिरे गिरेः॥ १

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] तदनन्तर विष्णु आदि सभी देवगण एवं तपोधन मुनिगण आवश्यक कर्म करके हिमालयसे प्रस्थान करनेका उपक्रम करने लगे॥ १॥

ततो गिरिवरः स्नात्वा स्वेष्टं सम्पूज्य यत्नतः।
पौरबन्धून्समाहूय जनवासं ययौ मुदा॥ २

तत्र प्रभुं प्रपूज्याथ चक्रे सम्प्रार्थनां मुदा।
कियद्दिनानि सन्तिष्ठ मद्गेहे सकलैः सह॥ ३

हिमालय भी स्नानकर अपने इष्टदेवकी यत्नपूर्वक पूजा करके नगरवासियों एवं बन्धुवर्गोंको बुलाकर प्रसन्नतापूर्वक जनवासेमें गये। उन्होंने शंकरजीका विधिवत् पूजन करके आनन्दपूर्वक प्रार्थना की—आप इन सभीके साथ कुछ दिनतक मेरे घरपर निवास कीजिये॥ २-३॥

विलोकनेन ते शम्भो कृतार्थोऽहं न संशयः।
धन्यश्च यस्य मद्गेहे आयातोऽसि सुरैः सह॥ ४

हे शम्भो! आपके दर्शनसे मैं कृतार्थ तथा धन्य हो गया हूँ, इसमें संशय नहीं है, जो कि आप देवताओंके साथ मेरे घर आये हैं॥ ४॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा बहु शैलेशः करौ बद्ध्वा प्रणम्य च।
प्रभुं निमन्त्रयामास सह विष्णुसुरादिभिः॥ ५

अथ ते मनसा गत्वा शिवं संयुतमादरात्।
प्रत्यूचुर्मुनयो देवा हृष्टा विष्णुसुरादिभिः॥ ६

ब्रह्माजी बोले—शैलराजने इस प्रकार बहुत कहकर दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करके विष्णु आदि देवगणोंके साथ प्रभुको आमन्त्रित किया। तत्पश्चात् आदरके साथ मनमें शिवजीका ध्यानकर विष्णुके सहित देवता तथा मुनिगण प्रसन्नतापूर्वक हिमालयसे कहने लगे—॥ ५-६॥

देवा ऊचुः

धन्यस्त्वं गिरिशार्दूल तव कीर्तिर्महीयसी।
त्वत्समो न त्रिलोकेषु कोऽपि पुण्यतमो जनः॥ ७

यस्य द्वारि महेशानः परब्रह्म सतां गतिः।
समागतः सदासैश्च कृपया भक्तवत्सलः॥ ८

देवता बोले—हे गिरिराज! आप धन्य हैं और आपकी कीर्ति महान् है, तीनों लोकोंमें आपके समान पुण्यात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, जिसके द्वारपर सज्जनोंको गति देनेवाले, भक्तवत्सल एवं परब्रह्म महेश्वर अपने सेवकोंके साथ कृपा करके पधारे॥ ७-८॥

जनावासोऽतिरम्यश्च सम्मानो विविधः कृतः।
भोजनानि त्वपूर्वाणि न वर्ण्यानि गिरीश्वर॥ ९

आपने [हमें ठहरनेके लिये] मनोहर जनवासा दिया एवं विविध सम्मान किया। हे गिरीश्वर! आपने ऐसे उत्तम भोजन दिये, जो अवर्णनीय हैं॥ ९॥

चित्रं न खलु तत्रास्ति यत्र देवी शिवाम्बिका।
परिपूर्णमशेषं च वयं धन्या यदागताः॥ १०

वहाँ कोई आश्चर्य नहीं, जहाँ [साक्षात्] अम्बिका शिवादेवी हैं। सब कुछ सर्वथा परिपूर्ण है, कुछ भी शेष नहीं रहा, हमलोग धन्य हैं, जो यहाँपर आ गये॥ १०॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं परस्परं तत्र प्रशंसाभवदुत्तमा।
उत्सवो विविधो जातो वेदसाधुजयध्वनिः॥ ११

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार वहाँ परस्पर एक-दूसरेकी उत्तम प्रशंसा हुई। उस समय वैदिक मन्त्रों, साधु तथा जय शब्दकी ध्वनि होने लगी और नाना प्रकारके उत्सव होने लगे॥ ११॥

अभून्मङ्गलगानं च ननर्ताप्सरसाङ्गणः।
नुतिं चक्रुर्मागधाद्या द्रव्यदानमभूद् बहु॥ १२

मंगलगान होने लगा, अप्सराएँ नाचने लगीं, मागध स्तुति करने लगे और द्रव्योंका पर्याप्त दान हुआ॥ १२॥

तत आमन्त्र्य देवेशं स्वगेहमगमद्गिरिः।
भोजनोत्सवमारेभे नानाविधिविधानतः॥ १३

तत्पश्चात् देवेशका आमन्त्रणकर हिमालय अपने घर गये और अनेक विधि-विधानोंसे भोजनोत्सवकी तैयारी करने लगे॥ १३॥

भोजनार्थं प्रभुं प्रीत्यानयामास यथोचितम्।
परिवारसमेतं च सकुतूहलमीश्वरम्॥ १४

वे कुतूहलपूर्वक परिवारसहित प्रभु शंकरको भोजन करानेके लिये प्रेमके साथ ले आये॥ १४॥

प्रक्षाल्य चरणौ शम्भोर्विष्णोर्मम वरादरात्।
सर्वेषाममराणां च मुनीनां च यथार्थतः॥ १५

परेषां च गतानां च गिरीशो मण्डपान्तरे।
आसयामास सुप्रीत्या तांस्तान्बन्धुभिरन्वितः॥ १६

परम आदरसे शिवजीके, विष्णुके, मेरे, सभी देवताओंके, मुनियोंके तथा अन्य गये हुए लोगोंके चरणोंको धोकर बन्धु-बान्धवोंसहित गिरिराजने बड़े प्रेमसे उन सबको मण्डपके भीतर [आसन देकर] बैठाया॥ १५-१६॥

सुरसैर्विविधान्नैश्च तर्पयामास तान् गिरिः।
बुभुजुर्निखिलास्ते वै शम्भुना विष्णुना मया॥ १७

तदानीं पुरनार्यश्च गालीदानं व्यधुर्मुदा।
मृदुवाण्या हसन्त्यश्च पश्यन्त्यो यत्नतश्च तान्॥ १८

विष्णु, सदाशिव एवं मुझ ब्रह्मासहित समस्त लोग भोजन करने लगे। [इस प्रकार] गिरिराजने रसीले विविध अन्नोंसे उन सबको तृप्त किया। उस समय नगरकी नारियाँ हँसती हुई एवं उन सभीकी ओर यत्नसे देखती हुई मधुर वाणीमें गालियाँ देने लगीं॥ १७-१८॥

ते भुक्त्वाचम्य विधिवद्गिरिमामन्त्र्य नारद।
स्वस्थानं प्रययुः सर्वे मुदितास्तृप्तिमागताः॥ १९

हे नारद! इस प्रकार सब लोग विधिवत् भोजन करके आचमनकर गिरिराजसे आज्ञा लेकर प्रसन्नता एवं तृप्तिसे युक्त हो अपने-अपने स्थानको चले गये॥ १९॥

इत्थं तृतीये घस्त्रेऽपि मानितास्तेऽभवन्मुने।
गिरीश्वरेण विधिवद्दानमानादरादिभिः॥ २०

चतुर्थे दिवसे प्राप्ते चतुर्थीकर्म शुद्धितः।

हे मुने! इसी प्रकार तीसरे दिन भी गिरिराजने विधिवत् दान, सम्मान एवं आदर आदिके द्वारा उनका सत्कार किया। चौथा दिन प्राप्त होनेपर बड़ी शुद्धताके

बभूव विधिवद्येन विना खण्डित एव सः॥ २१

साथ चतुर्थी कर्म विधिवत् सम्पन्न हुआ, जिसके बिना वह उत्सव अधूरा ही रह जाता। उस समय अनेक प्रकारका उत्सव, जय-जयकार तथा साधु शब्दोंका उच्चारण, नाना प्रकारका दान, गान एवं नृत्य होने लगा॥ २०—२२॥

उत्सवो विविधश्चासीत्साधुवादजयध्वनिः।
बहुदानं सुगानं च नर्तनं विविधं तथा॥ २२

पञ्चमे दिवसे प्राप्ते सर्वे देवा मुदान्विताः।
विज्ञप्तिं चक्रिरे शैलं यात्रार्थमतिप्रेमतः॥ २३

तदाकर्ण्य गिरीशश्चोवाच देवान् कृताञ्जलिः।
कियद्दिनानि तिष्ठन्तु कृपां कुर्वन्तु मां सुराः॥ २४

पाँचवाँ दिन प्राप्त होनेपर प्रसन्न हुए सभी देवताओंने बड़े प्रेमके साथ गिरिराजसे विदाईके लिये निवेदन किया। यह सुनकर हिमालयने हाथ जोड़कर देवताओंसे कहा—हे देवताओ! अभी आपलोग कुछ दिन और रहें तथा मेरे ऊपर कृपा करें॥ २३-२४॥

इत्युक्त्वा स्नेहतस्ताँश्च प्रभुं विष्णुं च मां परान्।
वासयामास दिवसान् बहून्नित्यं समादरात्॥ २५

ऐसा कहकर उन्होंने बड़े स्नेहसे शंकर, विष्णु, मुझ ब्रह्मा तथा अन्य देवताओंको बहुत दिनोंतक बड़े आदरके साथ ठहराया॥ २५॥

इत्थं व्यतीयुर्दिवसा बहवो वसतां च तत्।
सप्तर्षीन्प्रेषयामासुर्गिरीशान्ते ततः सुराः॥ २६

इस प्रकार निवास करते हुए जब बहुत दिन बीत गये, तब देवताओंने हिमालयके पास सप्तर्षियोंको भेजा॥ २६॥

ते तं सम्बोधयामासुर्मेनां च समयोचितम्।
शिवतत्त्वं परं प्रोचुः प्रशंसन्विधिवन्मुदा॥ २७

उन्होंने गिरिराज तथा मेनाको समयोचित बातें कहकर समझाया और प्रशंसा करते हुए प्रसन्नतापूर्वक श्रेष्ठ शिवतत्त्वको विधिवत् प्रतिपादित किया॥ २७॥

अङ्गीकृतं गिरीशेन तत्तद्बोधनतो मुने।
यात्रार्थमगमच्छम्भुः शैलेशं सामरादिकः॥ २८

हे मुने! उनके समझानेसे हिमालयने उसे स्वीकार कर लिया। तब शिवजी विदा होनेके लिये देवताओंसहित हिमालयके घर गये॥ २८॥

यात्रां कुर्वति देवेशे स्वशैलं सामरे शिवे।
उच्चैः रुरोद सा मेना तमुवाच कृपानिधिम्॥ २९

जब देवेश शिव देवताओंसहित अपने कैलासपर्वतके लिये यात्रा करने लगे, तब मेना ऊँचे स्वरसे रोने लगीं और कृपासागर शंकरजीसे कहने लगीं—॥ २९॥

मेनोवाच

कृपानिधे कृपां कृत्वा शिवां सम्पालयिष्यसि।
सहस्रदोषं पार्वत्या आशुतोषः क्षमिष्यसि॥ ३०

मेना बोलीं—कृपानिधे! आप कृपा करके भलीभाँति शिवाका पालन कीजियेगा, आप आशुतोष हैं, अतः पार्वतीके हजारों दोषोंको क्षमा कीजियेगा॥ ३०॥

त्वत्पादाम्बुजभक्ता च मद्वत्सा जन्मजन्मनि।
स्वप्ने ज्ञाने स्मृतिर्नास्ति महादेवं प्रभुं विना॥ ३१

त्वद्भक्तिश्रुतिमात्रेण हर्षाश्रुपुलकान्विता।
त्वन्निन्दया भवेन्मौना मृत्युंजय मृता इव॥ ३२

हे प्रभो! यह मेरी कन्या जन्म-जन्मान्तरसे आपके चरणकमलकी भक्त है, आप महादेव प्रभुको छोड़कर इसे सोते अथवा जागते समय भी किसीका स्मरण नहीं रहता। हे मृत्युंजय! आपकी भक्तिके सुननेमात्रसे ही यह हर्षके आँसू गिराती हुई पुलकित हो जाती है और आपकी निन्दासे यह मौन हो मृतकके समान हो जाती है॥ ३१-३२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा मेनका तस्मै समर्प्य स्वसुतां तदा।
अत्युच्चै रोदनं कृत्वा मूर्च्छामाप तयोः पुरः॥ ३३

अथ मेनां बोधयित्वा तामामन्त्र्य गिरिं तथा।
चकार यात्रां देवैश्च महोत्सवपुरस्सरम्॥ ३४

ब्रह्माजी बोले—तब ऐसा कहकर मेना उन्हें अपनी पुत्रीको समर्पितकर जोर-जोरसे रुदन करके उन दोनोंके सामने मूर्च्छित हो गयीं। तदनन्तर शंकरने मेनाको समझा करके और उनसे तथा हिमालयसे आज्ञा लेकर देवगणोंके साथ महोत्सवपूर्वक यात्रा की॥ ३३-३४॥

अथ ते निर्जराः सर्वे प्रभुणा स्वगणैः सह।
यात्रां प्रचक्रिरे तूष्णीं गिरिं प्रति शिवं दधुः॥ ३५

तदनन्तर सभी देवताओंने हिमालयके कल्याणकी कामना करते हुए प्रभु तथा अपने गणोंके साथ मौन हो प्रस्थान किया॥ ३५॥

हिमाचलपुरीबाह्योपवने हर्षिताः सुराः।
सेश्वराः सोत्सवास्तस्थुः पर्यैषन्त शिवागमम्॥ ३६

[कुछ दूर जाकर] हर्षित देवता हिमालयकी पुरीके बाहर बगीचेमें शिवजीसहित आनन्दपूर्वक ठहर गये और शिवाके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे॥ ३६॥

इत्युक्ता शिवसद्यात्रा देवैस्सह मुनीश्वर।
आकर्णय शिवायात्रां विरहोत्सवसंयुताम्॥ ३७

हे मुनीश्वर! इस प्रकार देवगणोंके सहित शिवकी उत्तम यात्राका वृत्तान्त मैंने आपसे कह दिया। अब उत्सव तथा [विदाईके अनन्तर होनेवाले] विरहसे युक्त शिवाकी यात्रा सुनिये॥ ३७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शिवयात्रावर्णनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें शिवयात्रावर्णन नामक तिरपनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५३॥

अथ चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मेनाकी इच्छाके अनुसार एक ब्राह्मणपत्नीका पार्वतीको पातिव्रतधर्मका उपदेश देना

ब्रह्मोवाच

अथ सप्तर्षयस्ते च प्रोचुर्हिमगिरीश्वरम्।
कारय स्वात्मजादेव्या यात्रामद्योचितां गिरे॥ १

ब्रह्माजी बोले—उसके बाद सप्तर्षियोंने हिमालयसे कहा—आज गिरिजाकी विदाईके लिये उत्तम मुहूर्त है, अतः आप अपनी पुत्री पार्वतीकी विदाई कर दीजिये॥ १॥

इति श्रुत्वा गिरीशो हि बुद्ध्वा तद्विरहं परम्।
विषण्णोऽभून्महाप्रेम्णा कियत्कालं मुनीश्वर॥ २

हे मुनीश्वर! यह बात सुनकर वे हिमालय पार्वतीवियोगजन्य दुःखका स्मरणकर कुछ देरके लिये व्याकुल हो गये॥ २॥

कियत्कालेन सम्प्राप्य चेतनां शैलराट् ततः।
तथास्त्विति गिरामुक्त्वा मेनां सन्देशमब्रवीत्॥ ३

फिर कुछ कालके अनन्तर चेतना प्राप्त होनेपर 'ऐसा ही होगा'—यह कहकर उन्होंने मेनाको सन्देश भेजा॥ ३॥

शैलसन्देशमाकर्ण्य हर्षशोकवशा मुने।
मेना संयापयामास कर्तुमासीत्समुद्यता॥ ४

हे मुने! शैलका सन्देश सुनकर मेना हर्ष तथा शोकसे युक्त हो गयीं और गिरिजाको विदा करानेके लिये उद्यत हो गयीं॥ ४॥

श्रुतिस्वकुलजाचारं चचार विधिवन्मुने।
उत्सवं विविधं तत्र सा मेना क्षितिभृत्प्रिया॥ ५

हे मुने! हिमाचलप्रिया उन मेनाने प्रथम वेद तथा अपने कुलकी रीति सम्पन्न की, फिर पार्वतीकी यात्राके निमित्त वे नाना प्रकारके मंगलविधान करने लगीं॥ ५॥

गिरिजां भूषयामास नानारत्नांशुकैर्वरैः।
द्वादशाभरणैश्चैव शृङ्गारैर्नृपसम्मितैः॥ ६

मेनामनोगतिं बुद्ध्वा साध्व्येका द्विजकामिनी।
गिरिजां शिक्षयामास पातिव्रत्यव्रतं परम्॥ ७

उन्होंने पार्वतीको अनेक रत्नों तथा श्रेष्ठ वस्त्रोंसे और राजकुलोचित शृंगारों तथा उत्तमोत्तम द्वादश आभरणोंसे अलंकृत किया। तदनन्तर मेनाके मनकी बात जानकर एक पतिव्रता ब्राह्मणपत्नी गिरिजाको श्रेष्ठ पातिव्रत-धर्मका उपदेश देने लगी—॥ ६-७॥

द्विजपत्न्युवाच

गिरिजे शृणु सुप्रीत्या मद्वचो धर्मवर्धनम्।
इहामुत्रानन्दकरं शृण्वतां च सुखप्रदम्॥ ८

ब्राह्मणपत्नी बोली—हे गिरिजे! तुम प्रेमपूर्वक मेरा यह वचन सुनो। मेरे ये वचन स्त्रियोंको इस लोक तथा परलोकमें सुख देनेवाले हैं तथा इनके सुननेसे भी स्त्रियोंका कल्याण हो जाता है॥ ८॥

धन्या पतिव्रता नारी नान्या पूज्या विशेषतः।
पावनी सर्वलोकानां सर्वपापौघनाशिनी॥ ९

इस जगत्में पतिव्रता नारी ही धन्य है, इसके अतिरिक्त और कोई नारी पूजाके योग्य नहीं है। वह सब लोगोंको पवित्र करनेवाली तथा समस्त पापोंको दूर करनेवाली है॥ ९॥

सेवते या पतिं प्रेम्णा परमेश्वरवच्छिवे।
इह भुक्त्वाखिलान् भोगानन्ते पत्या शिवां गतिम्॥ १०

हे शिवे! जो स्त्री अपने स्वामीकी परमेश्वरके समान सेवा करती है, वह यहाँ अनेक भोगोंको भोगकर अन्तमें पतिके साथ उत्तम गतिको प्राप्त होती है॥ १०॥

पतिव्रता च सावित्री लोपामुद्रा ह्यरुन्धती।
शाण्डिल्या शतरूपानसूया लक्ष्मीः स्वधा सती॥ ११

संज्ञा च सुमतिः श्रद्धा मेना स्वाहा तथैव च।
अन्या बह्व्योऽपि साध्व्यो हि नोक्ता विस्तारजाद्भयात्॥ १२

सावित्री, लोपामुद्रा, अरुन्धती, शाण्डिल्या, शतरूपा, अनसूया, लक्ष्मी, स्वधा, सती, संज्ञा, सुमति, श्रद्धा, मेना और स्वाहा आदि बहुत-सी पतिव्रताएँ हैं, जिन्हें विस्तारके भयसे यहाँ नहीं कह रही हूँ॥ ११-१२॥

पातिव्रत्यवृषेणैव ता गताः सर्वपूज्यताम्।
ब्रह्मविष्णुहरैश्चापि मान्या जाता मुनीश्वरैः॥ १३

ये सभी पातिव्रत्यधर्मके प्रभावसे ही जगत्में मान्य तथा पूज्य हुईं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर एवं अन्य मुनीश्वरोंने भी इनका सम्मान किया है॥ १३॥

सेव्यस्त्वया पतिस्तस्मात्सर्वदा शङ्करः प्रभुः।
दीनानुग्रहकर्ता च सर्वसेव्यः सतां गतिः॥ १४

इसलिये तुम्हें अपने पति शंकरकी विशेष रूपसे सेवा करनी चाहिये; क्योंकि ये दीनोंपर अनुग्रह करनेवाले एवं पूज्य होनेके कारण सबके सेव्य हैं और सज्जनोंके गतिदाता हैं॥ १४॥

महान्पतिव्रताधर्मः श्रुतिस्मृतिषु नोदितः।
यथैव वर्ण्यते श्रेष्ठो न तथान्योऽस्ति निश्चितम्॥ १५

पतिव्रताओंका धर्म महान् है, जिसका वर्णन श्रुतियों तथा स्मृतियोंमें भरा हुआ है। निश्चय ही पातिव्रत्यधर्म जितना श्रेष्ठ है, उतना अन्य धर्म श्रेष्ठ नहीं है॥ १५॥

भुंज्याद्भुक्ते प्रिये पत्यौ पातिव्रत्यपरायणा।
तिष्ठेत्तस्मिंञ्छिवे नारी सर्वथा सति तिष्ठति॥ १६

स्त्रीको चाहिये कि जब अपना प्रिय पति भोजन कर ले, तब स्वयं पतिभक्तिमें परायण होकर भोजन करे। हे शिव! जब पति खड़ा हो, तब साध्वी स्त्रीको भी खड़ा ही रहना चाहिये॥ १६॥

स्वप्यात्स्वपिति सा नित्यं बुध्येत्तु प्रथमं सुधीः।
सर्वदा तद्धितं कुर्यादकैतवगतिः प्रिया॥ १७

अनलंकृतमात्मानं दर्शयेन्न क्वचिच्छिवे।
कार्यार्थं प्रोषिते तस्मिन् भवेन्मण्डनवर्जिता॥ १८

पतिके सो जानेपर स्वयं शयन करे और उसके उठनेसे पहले स्वयं जाग जाय, पतिका सर्वदा छलरहित हो हित करे। हे शिवे! कभी अलंकारसे रहित हो अपने स्वामीके सम्मुख न जाय। जब स्वामी कार्यवश परदेश चला जाय, तो कभी शरीरका संस्कार एवं श्रृंगार न करे॥ १७-१८॥

पत्युर्नाम न गृह्णीयात् कदाचन पतिव्रता।
आक्रुष्टापि न चाक्रोशेत्प्रसीदेत्ताडितापि च।
हन्यतामिति च ब्रूयात्स्वामिन्निति कृपां कुरु॥ १९

पतिव्रता स्त्रीको चाहिये कि वह पतिका नाम कभी न ले, पतिके द्वारा क्रुद्ध होकर कठोर वचन कहनेपर भी उसे बुरा वचन न कहे और पतिके शासित करनेपर भी प्रसन्न रहे। उस समय भी यही कहे कि स्वामिन्! और अधिक दण्ड देकर मेरे ऊपर कृपा कीजिये॥ १९॥

आहूता गृहकार्याणि त्यक्त्वा गच्छेत्तदन्तिकम्।
सत्वरं साञ्जलिः प्रीत्या सुप्रणम्य वदेदिति॥ २०

किमर्थं व्याहृता नाथ स प्रसादो विधीयताम्।
तदादिष्टा चरेत्कर्म सुप्रसन्नेन चेतसा॥ २१

पतिके बुलानेपर घरका सारा कामकाज छोड़कर उनके समीप जाय और शीघ्रतासे प्रणामकर हाथ जोड़कर उनसे प्रेमपूर्वक कहे। हे स्वामिन्! आपने किसलिये बुलाया है, कृपाकर आज्ञा दीजिये, इसके बाद उस आज्ञाको प्रसन्नतापूर्वक सम्पन्न करना चाहिये॥ २०-२१॥

चिरं तिष्ठेन्न च द्वारे गच्छेन्नैव परालये।
आदाय तत्त्वं यत्किंचित्कस्मैचिन्नार्पयेत्क्वचित्॥ २२

दरवाजेपर खड़ी होकर बहुत कालतक इधर-उधर न देखे और न तो दूसरेके घर जाय। किसीका भेद लेकर किसी अन्यके सामने उसको प्रकाशित न करे॥ २२॥

पूजोपकरणं सर्वमनुक्ता साधयेत्स्वयम्।
प्रतीक्षमाणावसरं यथाकालोचितं हितम्॥ २३

न गच्छेत्तीर्थयात्रां वै पत्याज्ञां न विना क्वचित्।
दूरतो वर्जयेत्सा हि समाजोत्सवदर्शनम्॥ २४

तीर्थार्थिनी तु या नारी पतिपादोदकं पिबेत्।
तस्मिन्सर्वाणि तीर्थानि क्षेत्राणि च न संशयः॥ २५

बिना कहे ही पतिके लिये पूजनकी सामग्री प्रस्तुत करे और पतिके हितके लिये निरन्तर अवसरकी प्रतीक्षा करती रहे। पतिकी आज्ञाके बिना कभी भी तीर्थयात्राके लिये न जाय और किसी समाज तथा उत्सवको देखनेके लिये भी न जाय। जिस स्त्रीको तीर्थयात्राकी इच्छा हो, वह अपने स्वामीका चरणामृत लेकर सन्तुष्ट हो जाय; क्योंकि पतिके चरणोदकमें सभी तीर्थ एवं क्षेत्र निवास करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ २३—२५॥

भुंज्यात्सा भर्तुरुच्छिष्टमिष्टमन्नादिकं च यत्।
महाप्रसाद इत्युक्त्वा पतिदत्तं पतिव्रता॥ २६

अविभज्य न चाश्नीयाद्देवपित्रतिथिष्वपि।
परिचारकवर्गेषु गोषु भिक्षुकुलेषु च॥ २७

पतिके भोजन करनेके पश्चात् उसका उच्छिष्ट जो भी इष्ट अन्नादि हो, उसे पतिप्रदत्त महाप्रसाद समझकर पतिव्रता स्त्री भोजन करे। देवता, पितर, अतिथि, सेवक, गौ एवं भिक्षुकको बिना दिये अन्नका भोजन न करे॥ २६-२७॥

संयतोपस्करा दक्षा हृष्टा व्ययपराङ्मुखी।
भवेत्सा सर्वदा देवी पतिव्रतपरायणा॥ २८

घरकी समग्र सामग्री ठीक तरहसे रखे, नित्य उत्साहयुक्त तथा सावधान रहे और अधिक व्यय न करे, इस प्रकार सर्वदा पातिव्रत्यधर्मका पालन करे॥ २८॥

कुर्यात्पत्यननुज्ञाता नोपवासव्रतादिकम्।
अन्यथा तत्फलं नास्ति परत्र नरकं व्रजेत्॥ २९
सुखपूर्वं सुखासीनं रममाणं यदृच्छया।
आन्तरेष्वपि कार्येषु पतिं नोत्थापयेत्क्वचित्॥ ३०
क्लीबं वा दुरवस्थं वा व्याधितं वृद्धमेव च।
सुखितं दुःखितं वापि पतिमेकं न लंघयेत्॥ ३१

पतिकी आज्ञाके बिना कोई उपवास तथा व्रत न करे, अन्यथा उसका फल नहीं होता और उसे नरकको प्राप्ति होती है। सुखपूर्वक आनन्दसे बैठे हुए तथा अपनी इच्छासे रमण करते हुए पतिको आवश्यक कार्य आ पड़नेपर भी न उठाये। पति क्लीब, दुर्गतिमें पड़ा हुआ, वृद्ध, रोगी, सुखी अथवा दुखी चाहे जैसा ही क्यों न हो, उसका अपमान न करे॥ २९—३१॥

स्त्रीधर्मिणी त्रिरात्रं च स्वमुखं नैव दर्शयेत्।
स्ववाक्यं श्रावयेन्नापि यावत् स्नानान्न शुध्यति॥ ३२

मासिक धर्म प्राप्त हो जानेपर आरम्भसे तीन रात्रिपर्यन्त अपना मुख पतिको न दिखाये और जबतक चौथे दिन स्नानसे शुद्ध न हो, अपना शब्द भी न सुनाये॥ ३२॥

सुस्नाता भर्तृवदनमीक्षेतान्यस्य न क्वचित्।
अथवा मनसि ध्यात्वा पतिं भानुं विलोकयेत्॥ ३३

ऋतुस्नान करनेके पश्चात् पतिका ही मुख देखे, कभी अन्यका मुख न देखे अथवा पतिके न होनेपर पतिका ध्यानकर सूर्यका दर्शन करे॥ ३३॥

हरिद्राकुङ्कुमं चैव सिन्दूरं कज्जलादिकम्।
कूर्पासकं च ताम्बूलं माङ्गल्याभरणादिकम्॥ ३४
केशसंस्कारकबरीकरकर्णादिभूषणम्।
भर्तुरायुष्यमिच्छन्ती दूरयेन्न पतिव्रता॥ ३५

पतिके आयुष्यकी इच्छा करनेवाली पतिव्रता स्त्रीको हरिद्रा, कुंकुम, सिन्दूर, काजल, कूर्पासक, ताम्बूल, मांगलिक आभूषण, केशोंका संस्कार, केशपाश बनाना, हाथमें कंगन एवं कानोंमें कर्णफूल नित्य धारण करना चाहिये, इसका परित्याग कभी किसी भी अवस्थामें न करे॥ ३४-३५॥

न रजक्या न बन्धक्या तथा श्रमणया न च।
न च दुर्भगया क्वापि सखित्वं कारयेत् क्वचित्॥ ३६
पतिविद्वेषिणीं नारीं न सा संभाषयेत् क्वचित्।
नैकाकिनी क्वचित्तिष्ठेन्नग्ना स्नायान्न च क्वचित्॥ ३७

धोबिन, वन्ध्या, व्यभिचारिणी, संन्यासिनी अथवा दुर्भाग्ययुक्त स्त्रीसे कभी मित्रता न करे। जो स्त्री अपने पतिसे द्वेष करती हो, उससे बातचीत न करे, कभी अकेली न रहे और न नग्न होकर कभी स्नान करे॥ ३६-३७॥

नोलूखले न मुसले न वर्द्धन्यां दृषद्यपि।
न यंत्रके न देहल्यां सती न प्रवसेत् क्वचित्॥ ३८

ओखली, मूसल, बुहारी (झाड़ू), सिल, लोढ़ा तथा देहलीपर सती स्त्री कभी न बैठे॥ ३८॥

विना व्यवायसमयं प्रागल्भ्यं नाचरेत् क्वचित्।
यत्र यत्र रुचिर्भर्तुस्तत्र प्रेमवती भवेत्॥ ३९

सहवासके अतिरिक्त और किसी समय पतिसे धृष्टता न करे। अपना पति जिससे प्रेम करे, उसीसे प्रेम करे॥ ३९॥

हृष्टाहृष्टे विषण्णा स्याद्विषण्णास्ये प्रिये प्रिया।
पतिव्रता भवेद्देवी सदा पतिहितैषिणी॥ ४०

पतिके प्रसन्न होनेपर प्रसन्न रहे, पतिके दुखी होनेपर दुखी रहे तथा पतिके प्रियमें ही अपना प्रिय समझे। इस प्रकार पतिव्रता स्त्री सदैव पतिके हितकी इच्छा करे॥ ४०॥

एकरूपा भवेत्पुण्या संपत्सु च विपत्सु च।
विकृतिं स्वात्मनः क्वापि न कुर्याद्धैर्यधारिणी॥ ४१

सर्पिर्लवणतैलादिक्षयेऽपि च पतिव्रता।
पतिं नास्तीति न ब्रूयादायासेषु न योजयेत्॥ ४२
विधेर्विष्णोर्हराद्वापि पतिरेकोऽधिको मतः।
पतिव्रताया देवेशि स्वपतिश्शिव एव च॥ ४३

व्रतोपवासनियमं पतिमुल्लंघ्य याचरेत्।
आयुष्यं हरते भर्तुर्मृता निरयमृच्छति॥ ४४

उक्ता प्रत्युत्तरं दद्याद्या नारी क्रोधतत्परा।
सरमा जायते ग्रामे शृगाली निर्जने वने॥ ४५

उच्चासनं न सेवेत न व्रजेद्दुष्टसन्निधौ।
न च कातरवाक्यानि वदेन्नारी पतिं क्वचित्॥ ४६
अपवादं न च ब्रूयात्कलहं दूरतस्त्यजेत्।
गुरूणां सन्निधौ क्वापि नोच्चैर्ब्रूयान्न वै हसेत्॥ ४७

बाह्यादायान्तमालोक्य त्वरितान्नजलाशनैः।
ताम्बूलैर्वसनैश्चापि पादसंवाहनादिभिः॥ ४८
तथैव चाटुवचनैः खेदसन्नोदनैः परैः।
या प्रियं प्रीणयेत्प्रीता त्रिलोकी प्रीणिता तया॥ ४९
मितं ददाति जनको मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य हि दातारं भर्तारं पूजयेत्सदा॥ ५०

भर्ता देवो गुरुर्भर्ता धर्मतीर्थव्रतानि च।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्चयेत्॥ ५१
या भर्तारं परित्यज्य रहश्चरति दुर्मतिः।
उलूकी जायते क्रूरा वृक्षकोटरशायिनी॥ ५२
ताडिता ताडितुं चेच्छेत्सा व्याघ्री वृषदंशिका।
कटाक्षयति यान्यं वै केकराक्षी तु सा भवेत्॥ ५३

या भर्तारं परित्यज्य मिष्टमश्नाति केवलम्।
ग्रामे वा सूकरी भूयाद्वल्गुर्वापि स्वविड्भुजा॥ ५४

पतिव्रता स्त्री सदैव सम्पत्ति तथा विपत्ति दोनों अवस्थाओंमें एकरूप रहे। विकार उपस्थित होनेपर कभी विकृत न हो और सदैव धैर्य धारण करे॥ ४१॥

घी, नमक, तेल आदिके न होनेपर भी पतिव्रता स्त्री पतिसे 'नहीं है'—ऐसा न कहे और पतिको किसी असाध्य कार्यमें नियुक्त न करे। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवसे भी अधिक पतिका महत्त्व है। अतः हे देवेशि! पतिव्रता अपने पतिको साक्षात् शिवस्वरूप ही समझे॥ ४२-४३॥

पतिकी आज्ञाका उल्लंघन करके जो स्त्री व्रत, उपवास तथा नियमादिका आचरण करती है, वह अपने पतिकी आयुका हरण करती है और मरनेपर नरक प्राप्त करती है। जो स्त्री क्रुद्ध होकर पतिके कुछ कहनेपर उसका प्रत्युत्तर करती है, वह ग्रामकी कुतिया अथवा निर्जन वनमें शृगाली होती है॥ ४४-४५॥

स्त्रीको चाहिये कि वह पतिसे ऊँचे स्थानपर न बैठे, दुष्टोंके समीप न जाय और कभी भी पतिसे कातर वाक्य न कहे। किसीकी निन्दा या आक्षेपयुक्त बात न कहे, दूरसे ही कलहका परित्याग करे, गुरुजनोंके समीप कभी जोरसे न बोले और न जोरसे हँसे॥ ४६-४७॥

पतिको बाहरसे आया हुआ देखकर शीघ्रतासे अन्न, जल, भोजन, ताम्बूल, वस्त्र, पादसंवाहन, खेद दूर करनेवाले मीठे वचनके द्वारा जो स्त्री अपने स्वामीको प्रसन्न रखती है, मानो उसने त्रैलोक्यको प्रसन्न कर लिया॥ ४८-४९॥

माता, पिता, पुत्र, भाई तो स्त्रीको बहुत थोड़ा ही सुख देते हैं, परंतु पति तो अपरिमित सुख देता है। इसलिये स्त्रीको चाहिये कि वह पतिका सदैव पूजन करे॥ ५०॥

पति ही देवता, गुरु, भर्ता, धर्म, तीर्थ एवं व्रतादि सब कुछ है। इसलिये सब कुछ छोड़कर एकमात्र पतिका ही पूजन करे। जो दुष्ट स्त्री अपने पतिको छोड़कर एकान्तमें दूसरेके पास जाती है, वह वृक्षके कोटरमें रहनेवाली उलूकी होती है॥ ५१-५२॥

जो स्वामीके द्वारा ताड़न करनेपर स्वयं भी ताड़न करना चाहती है, वह वृषभभक्षिणी व्याघ्री होती है। जो अपने पतिको छोड़कर अन्यसे कटाक्ष करती है, वह केकराक्षी होती है। जो अपने पतिको बिना दिये मिष्टान्न खा लेती है, वह ग्रामसूकरी अथवा अपनी विष्ठा खानेवाली वल्गु (बकरी) होती है॥ ५३-५४॥

या तुं कृत्य प्रियं ब्रूयान् मूका सा जायते खलु।
या सपत्नीं सदेर्ष्येत दुर्भगा सा पुनः पुनः॥ ५५

जो अपने पतिको 'तू' कहकर बोलती है, वह जन्मान्तरमें गूँगी होती है और जो अपनी सपत्नी (सौत)-से डाह करती है, वह बारंबार विधवा होती है॥ ५५॥

दृष्टिं विलुप्य भर्त्तुर्या कञ्चिदन्यं समीक्षते।
काणा च विमुखी चापि कुरूपापि च जायते॥ ५६

जो अपने स्वामीकी दृष्टि बचाकर किसी अन्य पुरुषको देखती है, वह काणी, कुमुखी तथा कुरूपा होती है॥ ५६॥

जीवहीनो यथा देहः क्षणादशुचितां व्रजेत्।
भर्तृहीना तथा योषित्सुस्नाताप्यशुचिः सदा॥ ५७

जैसे जीवके बिना देह क्षणमात्रमें अशुचि हो जाता है, उसी प्रकार अपने स्वामीके बिना स्त्री अच्छी तरह स्नान करनेपर भी अपवित्र ही रहती है॥ ५७॥

सा धन्या जननी लोके स धन्यो जनकः पिता।
धन्यः स च पतिर्यस्य गृहे देवी पतिव्रता॥ ५८

इस लोकमें उसकी माता धन्य है और उसके पिता भी धन्य हैं तथा उसका वह पति भी धन्य है, जिसके घरमें पतिव्रता स्त्रीका निवास होता है॥ ५८॥

पितृवंश्याः मातृवंश्याः पतिवंश्यास्त्रयस्त्रयः।
पतिव्रतायाः पुण्येन स्वर्गे सौख्यानि भुंजते॥ ५९

पतिव्रता स्त्रीके पुण्यसे उसके पितृवंश, मातृवंश तथा पतिवंशके तीन-तीन पूर्वज स्वर्गमें सुख भोगते हैं॥ ५९॥

शीलभङ्गेन दुर्वृत्ताः पातयन्ति कुलत्रयम्।
पितुर्मातुस्तथा पत्युरिहामुत्रापि दुःखिता॥ ६०

दुराचारिणी स्त्रियाँ अपने दुराचरणके द्वारा माता-पिता तथा पति—इन तीनों कुलोंको नरकमें गिराती हैं और वे इस लोक तथा परलोकमें सदैव दुखी रहती हैं॥ ६०॥

पतिव्रतायाश्चरणो यत्र यत्र स्पृशेद्भुवम्।
तत्र तत्र भवेत्सा हि पापहन्त्री सुपावनी॥ ६१
विभुः पतिव्रतास्पर्शं कुरुते भानुमानपि।
सोमो गन्धवहश्चापि स्वपावित्र्याय नान्यथा॥ ६२

पतिव्रताके चरण जहाँ-जहाँ पड़ते हैं, वहाँ-वहाँकी पृथिवी सदा पापका हरण करनेवाली तथा अत्यन्त पवित्र हो जाती है। सर्वव्यापक सूर्य, चन्द्रमा तथा वायु भी अपनी पवित्रताके लिये ही पतिव्रताका स्पर्श करते हैं, अन्य किसी कारणसे नहीं॥ ६१-६२॥

आपः पतिव्रतास्पर्शमभिलष्यन्ति सर्वदा।
अद्य जाड्यविनाशो नो जातस्त्वद्यान्यपावनाः॥ ६३

भार्या मूलं गृहस्थस्य भार्या मूलं सुखस्य च।
भार्या धर्मफलावाप्त्यै भार्या सन्तानवृद्धये॥ ६४

गृहे गृहे न किं नार्यो रूपलावण्यगर्विताः।
परं विश्वेशभक्त्यैव लभ्यते स्त्री पतिव्रता॥ ६५

जल तो सदैव पतिव्रताका स्पर्श चाहते हैं, वे कहते हैं कि आज इस पतिव्रताके स्पर्शसे हमारी जड़ता नष्ट हो गयी और हमें दूसरेको पवित्र करनेकी योग्यता प्राप्त हुई। भार्या गृहस्थका मूल है, भार्या ही सुखका मूल है, धर्मफलकी प्राप्ति एवं सन्तानवृद्धिके लिये भार्याकी अत्यन्त आवश्यकता है। क्या अपने रूप, लावण्यका गर्व करनेवाली स्त्रियाँ प्रत्येक घरोंमें नहीं हैं, किंतु विश्वेश्वरमें भक्ति करनेसे ही पतिव्रता स्त्री प्राप्त होती है॥ ६३—६५॥

परलोकस्त्वयं लोको जीयते भार्यया द्वयम्।
देवपित्रतिथीज्यादि नाभार्यः कर्म चार्हति॥ ६६

गृहस्थः स हि विज्ञेयो यस्य गेहे पतिव्रता।
ग्रस्यतेऽन्यान्प्रतिदिनं राक्षस्या जरया यथा॥ ६७

भार्याके द्वारा ही इस लोक तथा परलोक—दोनों लोकोंपर विजय प्राप्त की जा सकती है। देवकर्म, पितृकर्म, अतिथिकर्म तथा यज्ञकर्म बिना भार्याके फलवान् नहीं होता। गृहस्थ उसीको कहते हैं, जिसके घरमें पतिव्रता स्त्रीका निवास है, अन्य स्त्रियाँ तो प्रतिदिन जरा राक्षसीके समान पुरुषको ग्रसती रहती हैं॥ ६६-६७॥

यथा गङ्गावगाहेन शरीरं पावनं भवेत्।
तथा पतिव्रतां दृष्ट्वा सकलं पावनं भवेत्॥ ६८

जिस प्रकार गंगास्नानसे शरीर पवित्र हो जाता है, उसी प्रकार पतिव्रता स्त्रीके दर्शनमात्रसे सब कुछ पवित्र हो जाता है॥ ६८॥

न गङ्गया तया भेदो या नारी पतिदेवता।
उमाशिवसमौ साक्षात्तस्मात्तौ पूजयेद् बुधः॥ ६९

गंगा तथा पतिव्रता स्त्रीमें कोई भेद नहीं है। वे दोनों स्त्री-पुरुष शिव तथा पार्वतीके तुल्य हैं, अतः बुद्धिमान् पुरुषको उनका पूजन करना चाहिये॥ ६९॥

तारः पतिः श्रुतिर्नारी क्षमा सा स स्वयं तपः।
फलं पतिः सत्क्रिया सा धन्यौ तौ दम्पती शिवे॥ ७०

पति ॐकार है, तो स्त्री श्रुति वेद है, पति तप है, तो स्त्री क्षमा है, स्त्री सत्क्रिया है, तो पति उसका फल है। हे शिवे! इस प्रकारके दम्पती धन्य हैं॥ ७०॥

एवं पतिव्रताधर्मो वर्णितस्ते गिरीन्द्रजे।
तद्भेदान् शृणु सुप्रीत्या सावधानतयाद्य मे॥ ७१

हे पार्वति! इस प्रकारसे मैंने तुमसे पातिव्रत्य-धर्मका निरूपण किया। अब उन पतिव्रताओंके भेद सावधानीके साथ प्रेमपूर्वक सुनो॥ ७१॥

चतुर्विधास्ताः कथिता नार्यो देवि पतिव्रताः।
उत्तमादिविभेदेन स्मरतां पापहारिकाः॥ ७२

उत्तम आदिके भेदसे पतिव्रता स्त्रियाँ चार प्रकारकी कही गयी हैं। जिनके स्मरणसे पाप नष्ट हो जाते हैं॥ ७२॥

उत्तमा मध्यमा चैव निकृष्टातिनिकृष्टिका।
ब्रुवे तासां लक्षणानि सावधानतया शृणु॥ ७३

उत्तम, मध्यम, निकृष्ट तथा अतिनिकृष्ट—[ये चार भेद पतिव्रताओंके होते हैं।] अब मैं उनका लक्षण कह रहा हूँ, सावधान होकर उसका श्रवण करो॥ ७३॥

स्वप्नेऽपि यन्मनो नित्यं स्वपतिं पश्यति ध्रुवम्।
नान्यं परपतिं भद्रे उत्तमा सा प्रकीर्तिता॥ ७४

या पितृभ्रातृसुतवत् परं पश्यति सद्धिया।
मध्यमा सा हि कथिता शैलजे वै पतिव्रता॥ ७५

जिसका मन स्वप्नमें भी अपने पतिको ही देखता है और कभी परपतिमें नहीं जाता; हे भद्रे! वह उत्तम पतिव्रता कही गयी है। जो दूसरोंके पतियोंको पिता, भ्राता तथा पुत्रके समान सद्बुद्धिसे देखती है, हे पार्वति! वह मध्यम पतिव्रता कही गयी है॥ ७४-७५॥

बुद्ध्वा स्वधर्मं मनसा व्यभिचारं करोति न।
निकृष्टा कथिता सा हि सुचरित्रा च पार्वति॥ ७६

हे पार्वति! जो स्त्री मनमें अपना धर्म समझकर व्यभिचार नहीं करती, वह सुन्दर चरित्रवाली स्त्री निकृष्ट पतिव्रता (अधमा) कही गयी है॥ ७६॥

पत्युः कुलस्य च भयाद्व्यभिचारं करोति न।
पतिव्रताऽधमा सा हि कथिता पूर्वसूरिभिः॥ ७७

जो मनमें इच्छा रहते हुए भी पति एवं कुलके भयसे व्यभिचार नहीं करती, उसको पुरातन लोगोंने अति-निकृष्ट पतिव्रता कहा है॥ ७७॥

चतुर्विधा अपि शिवे पापहन्त्र्यः पतिव्रताः।
पावनाः सर्वलोकानामिहामुत्रापि हर्षिताः॥ ७८

हे शिवे! ये चारों प्रकारकी पतिव्रताएँ पापहरण करनेवाली हैं, सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करनेवाली हैं और इस लोक एवं परलोकमें आनन्द प्रदान करनेवाली हैं॥ ७८॥

पातिव्रत्यप्रभावेणात्रिस्त्रिया त्रिसुरार्थनात्।
जीवितो विप्र एको हि मृतो वाराहशापतः॥ ७९

पातिव्रत्यके प्रभावसे ही अत्रिप्रिया अनसूयाने तीनों देवताओंकी प्रार्थनापर वाराहके शापसे मरे हुए ब्राह्मणको जीवनदान दिया था॥ ७९॥

एवं ज्ञात्वा शिवे नित्यं कर्तव्यं पतिसेवनम्।
त्वया शैलात्मजे प्रीत्या सर्वकामप्रदं सदा॥ ८०

हे शिवे! ऐसा जानकर तुमको नित्य प्रेमपूर्वक अपने पतिकी सेवा करनी चाहिये; क्योंकि हे शैलपुत्रि! ऐसा करनेसे तुम्हारे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होंगे॥ ८०॥

जगदम्बा महेशी त्वं शिवः साक्षात्पतिस्तव।
तव स्मरणतो नार्यो भवन्ति हि पतिव्रताः॥ ८१

तुम तो साक्षात् जगत्की माता तथा महेश्वरी हो और जगत्पिता महेश्वर तुम्हारे साक्षात् पति हैं। तुम्हारे नामके स्मरणमात्रसे स्त्रियाँ पतिव्रता होंगी॥ ८१॥

त्वदग्रे कथनेनानेन किं देवि प्रयोजनम्।
तथापि कथितं मेऽद्य जगदाचारतः शिवे॥ ८२

हे देवि! तुम्हारे आगे इस कथनसे क्या प्रयोजन! फिर भी हे शिवे! संसारके आचरणके अनुसार मैंने तुम्हें यह सब कहा है॥ ८२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा विररामासौ द्विजस्त्री सुप्रणम्य ताम्।
शिवां मुदमतिप्राप पार्वती शङ्करप्रिया॥ ८३

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर वह द्विजपत्नी भगवतीको प्रणामकर मौन हो गयी और उस उपदेशके श्रवणसे शंकरप्रिया शिवा अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो गयीं॥ ८३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे पतिव्रताधर्मवर्णनं नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें पतिव्रताधर्मवर्णन नामक चौवनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५४॥

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

शिव-पार्वती तथा बरातकी विदाई, भगवान् शिवका समस्त देवताओंको विदा करके कैलासपर रहना और शिव-विवाहोपाख्यानके श्रवणकी महिमा

ब्रह्मोवाच

अथ सा ब्राह्मणी देव्यै शिक्षयित्वा व्रतं च तत्।
प्रोवाच मेनामामन्त्र्य यात्रामस्याश्च कारय॥ १

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार ब्राह्मणीने देवी पार्वतीको पातिव्रत्यधर्मका उपदेश देकर मेनाको बुलाकर कहा—अब इनकी यात्राकी तैयारी कीजिये॥ १॥

तथास्त्विति च सम्प्रोच्य प्रेमवश्या बभूव सा।
धृतिं धृत्वाहूय कालीं विश्लेषविरहाकुला॥ २

अत्युच्चै रोदनं चक्रे संश्लिष्य च पुनः पुनः।
पार्वत्यपि रुरोदोच्चैरुच्चरन्ती कृपावचः॥ ३

मेनाने भी 'तथास्तु' कहा और वे प्रेमसे विभोर हो गयीं। तदनन्तर धैर्य धारणकर कालीको बुलाकर उसके विरहसे व्याकुल हो उठीं, उस समय वे मेना पार्वतीको बारंबार गले लगाकर ऊँचे स्वरमें रोने लगीं और पार्वती भी दीनवचन कहती हुई ऊँचे स्वरसे रोने लगीं॥ २-३॥

शैलप्रिया शिवा चापि मूर्च्छामाप शुचार्दिता।
मूर्च्छाम्प्रापुर्देवपत्न्यः पार्वत्या रोदनेन च॥ ४

सर्वाश्च रुरुदुर्नार्यः सर्वमासीदचेतनम्।
स्वयं रुरोद योगीशो गच्छन्कोऽन्यः परः प्रभुः॥ ५

शोकव्यथित होकर शैलप्रिया मेना और पार्वती मूर्च्छित हो गयीं। पार्वतीके रोनेके शब्दसे सभी देवपत्नियाँ भी अपनी सुध-बुध खो बैठीं। उस समय सभी देवस्त्रियाँ रोने लगीं तथा अचेत हो गयीं। विदा होते हुए स्वयं योगीश्वर भी रो पड़े, तब दूसरोंकी क्या बात!॥ ४-५॥

एतस्मिन्नन्तरे शीघ्रमाजगाम हिमालयः।
स सर्वतनयैस्तत्र सचिवैश्च द्विजैः परैः॥ ६

स्वयं रुरोद मोहेन वत्सां कृत्वा स्ववक्षसि।
क्व यासीत्येवमुच्चार्य शून्यं कृत्वा मुहुर्मुहुः॥ ७

इसी समय बड़ी शीघ्रताके साथ हिमालय भी अपने सभी पुत्रों, मन्त्रियों तथा अन्य ब्राह्मणोंके साथ वहाँ आ पहुँचे। उस समय हिमालय भी पार्वतीको गोदमें लेकर मोहवश रोने लगे। हे वत्से! इस घरको शून्यकर तुम कहाँ जा रही हो? इस प्रकार कह करके वे बारंबार रोने लगे॥ ६-७॥

ततः पुरोहितो विप्रैरध्यात्मविद्यया सुखम्।
सर्वान्प्रबोधयामास कृपया ज्ञानवत्तरः॥ ८

ननाम पार्वती भक्त्या मातरं पितरं गुरुम्।
महामाया भवाचाराद्रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः॥ ९

तब ब्राह्मणोंके साथ उनके ज्ञानी तथा श्रेष्ठ पुरोहितने उनपर कृपाकर अध्यात्मविद्याका उपदेश देकर उन्हें समझाया। महामाया पार्वतीने [विदाईके समय] माता-पिता तथा गुरुजनोंको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और वे लोकाचारवश जोर-जोरसे रोने लगीं॥ ८-९॥

पार्वत्या रोदनेनैव रुरुदुः सर्वयोषितः।
नितरां जननी मेना यामयो भ्रातरस्तथा॥ १०

पार्वतीके रोनेसे वहाँ उपस्थित सभी स्त्रियाँ, माता मेना, सगे-सम्बन्धी तथा अन्य भी रोने लगे॥ १०॥

पुनः पुनः शिवामाता यामयोऽन्याश्च योषितः।
भ्रातरो जनकः प्रेम्णा रुरुदुर्बद्धसौहृदाः॥ ११

तदा विप्राः समागत्य बोधयामासुरादरात्।
लग्नं निवेदयामासुर्यात्रायाः सुखदं परम्॥ १२

ततो हिमालयो मेनां धृत्वा धैर्यं विवेकतः।
शिबिकामानयामास शिवारोहणहेतवे॥ १३

शिवामारोहयामासुस्तत्र विप्राङ्गनाश्च ताम्।
आशिषं प्रददुः सर्वाः पिता माता द्विजास्तथा॥ १४

इस प्रकार पार्वतीकी माता, सगे-सम्बन्धी तथा अन्य स्त्रियाँ, भाई, पिता तथा सखियाँ अत्यन्त प्रेमवश बार-बार रोते रहे। उस समय ब्राह्मणोंने आकर सबको आदरपूर्वक समझाया और कहा कि यात्राके लिये सुखदायी लग्नवेला आ गयी है। तब हिमालयने मेनाको धीरज बँधाया और स्वयं विवेकयुक्त होकर पार्वतीके चढ़नेके लिये शिविका मँगवायी। तदनन्तर ब्राह्मणस्त्रियोंने पार्वतीको पालकीमें चढ़ाया और माता-पिता, ब्राह्मण आदि सबने आशीर्वाद प्रदान किया॥ ११—१४॥

महाराज्युपचाराँश्च ददौ मेना गिरिस्तथा।
नानाद्रव्यसमूहं च परेषां दुर्लभं शुभम्॥ १५

शिवा नत्वा गुरून्सर्वान् जनकं जननीं तथा।
द्विजान्पुरोहितं यामीस्त्रीस्तथान्या ययौ मुने॥ १६

मेना और हिमालयने महारानियोंके योग्य उपचार पार्वतीको प्रदान किये और अन्योंके लिये सर्वथा दुर्लभ द्रव्यसमूह दिये। हे मुने! पार्वतीने अपने माता-पिता, गुरुजन, ब्राह्मण, पुरोहित, सम्बन्धी एवं स्त्रियोंको प्रणाम करके प्रस्थान किया॥ १५-१६॥

हिमाचलोऽपि ससुतोऽगच्छत्स्नेहवशो बुधः।
प्राप्तस्तत्र प्रभुर्यत्र सामरः प्रीतिमावहन्॥ १७

परम बुद्धिमान् हिमालय भी अपने पुत्रोंके साथ प्रेमसे विभोर होकर पालकीके साथ चले और वहाँ पहुँचे, जहाँ सभी देवता ठहरे हुए थे॥ १७॥

प्रीत्याभिरेभिरे सर्वे महोत्सवपुरस्सरम्।
प्रभुं प्रणेमुस्ते भक्त्या प्रशंसन्तोऽविशन्पुरीम्॥ १८

जातिस्मरां स्मारयामि नित्यं स्मरसि चेद्वद।
लीलया त्वां च देवेशि सदा प्राणप्रिया मम॥ १९

तत्पश्चात् सभी लोगोंने भक्तिसे सदाशिवको प्रणाम किया और प्रशंसा करते हुए अपने नगरको चले आये। तब पार्वतीके कैलास पहुँचते ही सभी लोगोंने बहुत बड़ा उत्सव किया। [शिवजीने पार्वतीके साथ अपने स्थानपर पहुँचकर कहा—] हे देवेशि! मैं तुम्हें पूर्वजन्मका स्मरण करा रहा हूँ और यदि तुम अपनी लीलासे उसे स्मरण करती हो, तो बताओ तुम तो आजसे नहीं, जन्म-जन्मान्तरसे मेरी प्राणप्रिया हो॥ १८-१९॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य महेशस्य स्वनाथस्याथ पार्वती।
शङ्करस्य प्रिया नित्यं सस्मितोवाच सा सती॥ २०

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार अपने स्वामी महेशका वचन सुनकर हँसती हुई शिवप्रिया पार्वती कहने लगीं—॥ २०॥

पार्वत्युवाच

सर्वं स्मरामि प्राणेश मौनीभूतो भवेति च।
प्रस्तावोचितमद्याशु कार्यं कुरु नमोऽस्तु ते॥ २१

पार्वती बोलीं—हे प्राणेश्वर! मुझे सभी बातोंका स्मरण है, किंतु हे भव! इस समय आप चुप रहिये और आज जो कार्य उपस्थित है, उसीको शीघ्र कीजिये, आपको नमस्कार है॥ २१॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य प्रियावाक्यं सुधाधाराशतोपमम्।
मुमुदेऽतीव विश्वेशो लौकिकाचारतत्परः॥ २२

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार प्रिया पार्वतीके सैकड़ों सुधाधाराओंके समान वचनको सुनकर विश्वेश्वर प्रसन्न हो गये और लौकिकाचारमें संलग्न हो गये॥ २२॥

शिवः सम्भृतसम्भारो नानावस्तुमनोहरम्।
भोजयामास देवांश्च नारायणपुरोगमान्॥ २३

तथान्यान्निखिलान्प्रीत्या स्वविवाहसमागतान्।
भोजयामास सुरसमन्नं बहुविधं प्रभुः॥ २४

ततो भुक्त्वा च ते देवा नानारत्नविभूषिताः।
सस्त्रीकाः सगणाः सर्वे प्रणेमुश्चंद्रशेखरम्॥ २५

शिवजीने अनेक प्रकारकी भोजन-सामग्री एकत्रितकर नारायण आदि सभी देवगणोंको नानाविध मनोहर भोज्य-वस्तुओंका भोजन कराया। उन्होंने अपने विवाहमें आये हुए सभी लोगोंको यथायोग्य विधिवत् उत्तम रससे सम्पन्न भोजन कराया। तब भोजन करके नाना रत्नोंसे विभूषित सभी देवताओंने अपनी स्त्रियों तथा गणोंके साथ चन्द्रशेखरको प्रणाम किया॥ २३—२५॥

संस्तुत्य वाग्भिरिष्टाभिः परिक्रम्य मुदान्विताः।
प्रशंसन्तो विवाहं च स्वधामानि ययुस्ततः॥ २६

नारायणं मुने मां च प्रणनाम शिवः स्वयम्।
लौकिकाचारमाश्रित्य यथा विष्णुश्च कश्यपम्॥ २७

तदनन्तर उन्होंने प्रिय वचनोंद्वारा प्रसन्नतापूर्वक शिवजीकी स्तुति करते हुए उनकी परिक्रमा की तथा विवाहकी प्रशंसा करते हुए वे सभी अपने-अपने स्थानोंको चले गये। हे मुने! शिवजीने मुझे तथा विष्णुजीको उसी प्रकार प्रणाम किया, जैसे लोकाचारसे विष्णुजी कश्यपको प्रणाम करते हैं॥ २६-२७॥

मयाश्लिष्याशिषं दत्त्वा शिवस्य पुनरग्रतः।
मत्वा वै तं परं ब्रह्म चक्रे च स्तुतिरुत्तमा॥ २८

तमामन्त्र्य मया विष्णुः साञ्जलिः शिवयोर्मुदा।
प्रशंसंस्तद्विवाहं च जगाम स्वालयं परम्॥ २९

मैंने उन्हें गले लगाकर उनको आशीर्वाद दिया, फिर शंकरको परब्रह्म जानकर उनके आगे खड़े होकर मैंने उनकी स्तुति की। इसके पश्चात् मैं तथा विष्णु शिवा एवं शिवजीको हाथ जोड़कर प्रणामकर विवाहकी प्रशंसा करते हुए अपने-अपने स्थानोंको चले गये॥ २८-२९॥

शिवोऽपि स्वगिरौ तस्थौ पार्वत्या विहरन् मुदा।
सर्वे गणाः सुखं प्रापुरतीव स्वभजन् शिवौ॥ ३०

इत्येवं कथितस्तात शिवोद्वाहः सुमङ्गलः।
शोकघ्नो हर्षजनक आयुष्यो धनवर्द्धनः॥ ३१

इधर, शिवजी भी पार्वतीके साथ आनन्द-विहार करते हुए अपने निवासभूत कैलासमें रहने लगे और उनके सभी गण आनन्दपूर्वक प्रेमसे शिवा-शिवकी आराधना करने लगे। हे तात! इस प्रकार मैंने शिवा एवं शिवके विवाहका आपसे वर्णन किया, यह विवाह परम मंगलदायक, शोक-नाशक, आनन्ददायक तथा धन एवं आयुकी वृद्धि करनेवाला है॥ ३०-३१॥

य इमं शृणुयान्नित्यं शुचिस्तद्गतमानसः।
श्रावयेद्वाथ नियमाच्छिवलोकमवाप्नुयात्॥ ३२

इदमाख्यानमाख्यातमद्भुतं मङ्गलायनम्।
सर्वविघ्नप्रशमनं सर्वव्याधिविनाशनम्॥ ३३

यशस्यं स्वर्ग्यमायुष्यं पुत्रपौत्रकरं परम्।
सर्वकामप्रदं चेह भुक्तिदं मुक्तिदं सदा॥ ३४

अपमृत्युप्रशमनं महाशान्तिकरं शुभम्।
सर्वदुःस्वप्नशमनं बुद्धिप्रज्ञादिसाधनम्॥ ३५

जो पवित्र होकर शिवजीमें मन लगाकर नित्य इस विवाहचरित्रको नियमपूर्वक सुनता है अथवा दूसरोंको सुनाता है, वह अवश्य ही शिवलोकको प्राप्त कर लेता है। मेरा कहा हुआ यह आख्यान अद्भुत, मंगलका धाम, सभी विघ्नोंका नाश करनेवाला, समस्त व्याधियोंको दूर करनेवाला, यश देनेवाला, स्वर्ग देनेवाला, आयु प्रदान करनेवाला, पुत्र-पौत्रोंको बढ़ानेवाला, सभी कामनाओंको सिद्ध करनेवाला, भोग और मोक्ष देनेवाला, अपमृत्युको दूर करनेवाला, महाशान्ति प्रदान करनेवाला, कल्याणकारक, समस्त दुःस्वप्नोंको शान्त करनेवाला और बुद्धि-ज्ञान आदिकी वृद्धि करनेवाला है॥ ३२—३५॥

शिवोत्सवेषु सर्वेषु पठितव्यं प्रयत्नतः।
शुभेप्सुभिर्जनैः प्रीत्या शिवसन्तोषकारणम्॥ ३६

अपने शुभकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको सभी कल्याण-कारक उत्सवोंमें प्रयत्नपूर्वक प्रेमके साथ शिवको सन्तुष्ट करनेवाले इस आख्यानका पाठ करना चाहिये॥ ३६॥

पठेत्प्रतिष्ठाकाले तु देवादीनां विशेषतः।
शिवस्य सर्वकार्यस्य प्रारम्भे च सुप्रीतितः॥ ३७

शृणुयाद्वा शुचिर्भूत्वा चरितं शिवयोश्शिवम्।
सिध्यन्ति सर्वकार्याणि सत्यं सत्यं न संशयः॥ ३८

विशेष रूपसे देवता आदिकी प्रतिष्ठाके समय और शिवके सभी कार्योंके प्रारम्भमें प्रेमसे इस आख्यानका पाठ करना चाहिये। जो पवित्र होकर शिवा-शिवके इस चरित्रको सुनता है, उसके सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं, यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं है॥ ३७-३८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे ब्रह्मनारदसंवादे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां तृतीये पार्वतीखण्डे शिवकैलासगमनवर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके ब्रह्मा-नारद-संवादके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें शिवकैलासगमनवर्णन नामक पचपनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५५॥

॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयरुद्रसंहितायां तृतीयः पार्वतीखण्डः समाप्तः॥

॥ द्वितीय रुद्रसंहिताका तृतीय पार्वतीखण्ड पूर्ण हुआ॥

॥ ॐ श्रीसाम्बशिवाय नमः ॥ ॥ ॐ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थः कुमारखण्डः

अथ प्रथमोऽध्यायः

कैलासपर भगवान् शिव एवं पार्वतीका विहार

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं
पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं
विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शंकरम्॥ १

वन्दना करनेसे जिनका मन प्रसन्न हो जाता है, जिन्हें प्रेम अत्यन्त प्रिय है, जो सबको प्रेम प्रदान करनेवाले हैं, स्वयं पूर्ण हैं, दूसरोंकी अभिलाषाको भी पूर्ण करते हैं, सम्पूर्ण संसिद्ध ऐश्वर्यके एकमात्र स्थान हैं, स्वयं सत्यस्वरूप हैं, सत्यमय हैं, जिनका सत्तात्मक ऐश्वर्य त्रिकालाबाधित है, जो सत्यप्रिय एवं सबको सत्य प्रदान करनेवाले हैं, ब्रह्मा-विष्णु जिनकी वन्दना करते हैं और जो अपनी कृपासे ही विग्रह धारण करते हैं—ऐसे नित्य शिवकी हम वन्दना करते हैं॥ १॥

नारद उवाच

विवाहयित्वा गिरिजां शंकरो लोकशंकरः।
गत्वा स्वपर्वतं ब्रह्मन् किमकार्षीद्धि तद्वद॥ २

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! लोककल्याणकारी शंकरने पार्वतीसे विवाह करनेके पश्चात् कैलास जाकर क्या किया, उस वृत्तान्तको हमें सुनाइये॥ २॥

कथं हि तनयो जज्ञे शिवस्य परमात्मनः।
यदर्थमात्मारामोऽपि समुवाह शिवां प्रभुः॥ ३

तारकस्य कथं ब्रह्मन् वधोऽभूद्देवशंकर।
एतत्सर्वमशेषेण वद कृत्वा दयां मयि॥ ४

जिस पुत्रके निमित्त आत्माराम होते हुए भी उन्होंने पार्वतीसे विवाह किया, उन परमात्मा शिवको किस प्रकार पुत्र उत्पन्न हुआ? देवताओंका कल्याण करनेवाले हे ब्रह्मन्! तारकासुरका वध किस प्रकार हुआ? मेरे ऊपर कृपाकर यह सारी बात विस्तारसे कहिये॥ ३-४॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य नारदस्य प्रजापतिः।
सुप्रसन्नमनाः स्मृत्वा शंकरं प्रत्युवाच ह॥ ५

सूतजी बोले—नारदके इस प्रकारके वचनको सुनकर प्रजापति ब्रह्माजीने शिवजीका स्मरणकर प्रसन्न मनसे कहा—॥ ५॥

ब्रह्मोवाच

चरितं शृणु वक्ष्यामि शशिमौलेस्तु नारद।
गुहजन्मकथां दिव्यां तारकासुरसद्वधम्॥ ६

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! चन्द्रशेखर भगवान् शिवजीके चरित्रको बताता हूँ, आप सुनें, मैं कार्तिकेयकी उत्पत्तिकी दिव्य कथा तथा उनके द्वारा किये गये तारकासुरके वधका वृत्तान्त भी कहता हूँ॥ ६॥

श्रूयतां कथयाम्यद्य कथां पापप्रणाशिनीम्।
यां श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवो ध्रुवम्॥ ७

मैं जिस कथाको कह रहा हूँ, उसे सुनिये, वह कथा समस्त पापोंको विनष्ट करनेवाली है, जिसे सुनकर निश्चय ही मनुष्य सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ७॥

इदमाख्यानमनघं रहस्यं परमाद्भुतम्।
पापसंतापहरणं सर्वविघ्नविनाशनम्॥ ८

सर्वमंगलदं सारं सर्वश्रुतिमनोहरम्।
सुखदं मोक्षबीजं च कर्ममूलनिकृन्तनम्॥ ९

यह आख्यान पापरहित, गोपनीय, परम अद्भुत, पाप-सन्तापको दूर करनेवाला तथा सभी प्रकारके विघ्नोंको विनष्ट करनेवाला है। यह सभी प्रकारके मंगलोंका दाता, पुराणोंका सारभूत अंश तथा सबके कानोंको सुख प्रदान करनेवाला, आनन्दको बढ़ानेवाला, मोक्षका बीज और कर्ममूलका विनाश करनेवाला है॥ ८-९॥

कैलासमागत्य शिवां विवाह्य
शोभां प्रपेदे नितरां शिवोऽपि।
विचारयामास च देवकृत्यं
पीडां जनस्यापि च देवकृत्ये॥ १०

शिवजी शिवासे विवाहकर कैलासपर आकर अत्यन्त शोभित हुए और देवगणोंके कार्यसाधनका विचार करने लगे। उन्होंने तारकासुरके द्वारा दी गयी अपने भक्तजनोंकी पीड़ाके विषयमें भी विचार किया॥ १०॥

शिवः स भगवान् साक्षात्कैलासमगमद्यदा।
सौख्यं च विविधं चक्रुर्गणाः सर्वे सुहर्षिताः॥ ११

इधर शिवजी जब कैलासपर पहुँचे, तब उनके गण प्रसन्न होकर उनको नानाविध सुख प्रदान करने लगे॥ ११॥

महोत्सवो महानासीच्छिवे कैलासमागते।
देवाः स्वविषयं प्राप्ता हर्षनिर्भरमानसाः॥ १२

अथ शंभुर्महादेवो गृहीत्वा गिरिजां शिवाम्।
जगाम निर्जनं स्थानं महादिव्यं मनोहरम्॥ १३

शय्यां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचन्दनचर्चिताम्।
अद्भुतां तत्र परमां भोगवस्त्वन्वितां शुभाम्॥ १४

शिवजीके कैलास पहुँचते ही महान् उत्सव होने लगा। सब देवगण प्रसन्नमन होकर अपने-अपने स्थानको चले गये। इसके बाद महादेव सदाशिव गिरिकन्या शिवाको साथ लेकर महादिव्य, मनोहर एवं निर्जन स्थानमें चले गये। वहाँ उन्होंने रतिको बढ़ानेवाली शय्याका निर्माणकर उसे पुष्प तथा चन्दनसे सुशोभित किया। उस अद्भुत मनोहर शय्याके समीप नाना प्रकारकी भोगसामग्री भी स्थापित कर दी॥ १२—१४॥

स रेमे तत्र भगवान् शंभुर्गिरिजया सह।
सहस्रवर्षपर्यन्तं देवमानेन मानदः॥ १५

दुर्गाङ्गस्पर्शमात्रेण लीलया मूर्च्छितः शिवः।
मूर्च्छिता सा शिवस्पर्शाद्बुबुधे न दिवानिशम्॥ १६

उसी शय्यापर मान देनेवाले भगवान् शम्भु पार्वतीके साथ देवताओंके वर्षपरिमाणके अनुसार एक हजार वर्षतक विहार करते रहे। भगवती पार्वतीके अंगके स्पर्शमात्रसे भगवान् सदाशिव लीलापूर्वक मूर्च्छित हो गये। भगवती पार्वती भी भगवान् शिवके स्पर्शसे मूर्च्छित हो गयीं। इस प्रकार उन्हें दिन-रातका ज्ञान नहीं रहा॥ १५-१६॥

हरे भोगप्रवृत्ते तु लोकधर्मप्रवर्तिनि।
महान् कालो व्यतीयाय तयोः क्षण इवानघ॥ १७

हे अनघ! लोकधर्मका प्रवर्तन करनेवाले शिवजीके भोगमें प्रवृत्त होनेपर उन दोनोंका लम्बा समय भी क्षणमात्रके समान बीत गया॥ १७॥

अथ सर्वे सुरास्तात एकत्रीभूय चैकदा।
मंत्रयाञ्चक्रुरागत्य मेरौ शक्रपुरोगमाः॥ १८

हे तात! तब एक समय इन्द्रादि सब देवता मेरु पर्वतपर एकत्र होकर विचार करने लगे॥ १८॥

सुरा ऊचुः

विवाहं कृतवाञ्छंभुरस्मत्कार्यार्थमीश्वरः।
योगीश्वरो निर्विकारो स्वात्मारामो निरंजनः॥ १९

देवता बोले—यद्यपि शिव योगीश्वर निर्विकार आत्माराम तथा मायारहित हैं, फिर भी हमलोगोंके कल्याणके लिये भगवान् शंकरने विवाह किया है॥ १९॥

नोत्पन्नस्तनयस्तस्य न जानीमोऽत्र कारणम्।
विलंबः क्रियते तेन कथं देवेश्वरेण ह॥ २०

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे देवा नारदाद्देवदर्शनात्।
बुबुधुस्तन्मितं भोगं तयोश्च रममाणयोः॥ २१

चिरं ज्ञात्वा तयोर्भोगं चिंतामापुः सुराश्च ते।
ब्रह्माणं मां पुरस्कृत्य ययुर्नारायणान्तिकम्॥ २२

तं नत्वा कथितं सर्वं मया वृत्तांतमीप्सितम्।
सन्तस्थिरे सर्वदेवाः चित्रे पुत्तलिका यथा॥ २३

सहस्त्रवर्षपर्यन्तं देवमानेन शंकरः।
रतौ रतश्च निश्श्रेष्टो योगी विरमते न हि॥ २४

श्रीभगवानुवाच

चिन्ता नास्ति जगद्धातः सर्वं भद्रं भविष्यति।
शरणं व्रज देवेश शंकरस्य महाप्रभोः॥ २५

महेशशरणापन्ना ये जना मनसा मुदा।
तेषां प्रजेश भक्तानां न कुतश्चिद्भयं क्वचित्॥ २६

श्रृंगारभंगः समये भविता नाधुना विधे।
कालप्रयुक्तं कार्यं च सिद्धिं प्राप्नोति नान्यथा॥ २७

शम्भोः सम्भोगमिष्टं को भद्रां कर्तुमिहेश्वरः।
पूर्णे वर्षसहस्त्रे च स्वेच्छया हि विरंस्यति॥ २८

स्त्रीपुंसो रतिविच्छेदमुपायेन करोति यः।
तस्य स्त्रीपुत्रयोर्भेदो भवेज्जन्मनि जन्मनि॥ २९

भ्रष्टज्ञानो नष्टकीर्त्तिरलक्ष्मीको भवेदिह।
प्रयात्यन्ते कालसूत्रं वर्षलक्षं स पातकी॥ ३०

रंभायुक्तं शक्रमिमं चकार विरतं रतौ।
महामुनीन्द्रो दुर्वासास्तत्स्त्रीभेदो बभूव ह॥ ३१
पुनरन्यां स संप्राप्य विषेव्य शुभपाणिकाम्।
दिव्यं वर्षसहस्त्रं च विजहौ विरहज्वरम्॥ ३२

किंतु अबतक इनको कोई पुत्र नहीं हुआ, इसका कारण ज्ञात नहीं हो रहा है। वे भगवान् देवेश्वर विलम्ब क्यों कर रहे हैं?॥ २०॥

ब्रह्माजी बोले—इसी बीच देवदर्शन नारदसे देवताओंने शिवा और शिवके परिमित भोगकालको जाना॥ २१॥

तब उनके भोगकालको दीर्घकालीन जानकर देवता बड़े चिन्तित हुए, फिर मुझ ब्रह्माको आगे करके वे विष्णुके समीप गये॥ २२॥

मैंने नारायणको प्रणामकर सारा अभीष्ट वृत्तान्त उनसे निवेदित किया। देवतालोग तो चित्रलिखित पुत्तलिकाके समान खड़े रहे॥ २३॥

[हे नारायण!] योगीश्वर शंकरजी देवताओंके वर्षके परिमाणके अनुसार एक हजार वर्षपर्यन्त विहारपरायण हैं॥ २४॥

भगवान् विष्णु बोले—हे जगत्के विधाता! चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। सब कुछ कल्याणकारी ही होगा। हे देवेश! आप महाप्रभु शंकरकी शरणमें जाइये॥ २५॥

जो मनुष्य प्रसन्न मनसे शंकरकी शरणमें जाते हैं; हे प्रजापते! शंकरके उन अनन्य भक्तोंको कहींसे कोई भय नहीं होता। हे विधे! उनके श्रृंगारका रसभंग समयसे होगा, अभी नहीं। जो कार्य ठीक समयमें किया जाता है, वही सफल होता है, अन्यथा नहीं॥ २६-२७॥

भगवान् शंकरके अभीष्टको भग्न करनेमें कौन समर्थ है? हजार वर्ष पूर्ण होनेपर वे स्वयं निवृत्त हो जायँगे॥ २८॥

जो रतिको भंग करता है, उसे जन्म-जन्मान्तरमें स्त्री तथा पुत्रसे वियोग प्राप्त होता है। उस भेदकर्ता पुरुषका ज्ञान नष्ट हो जाता है, कीर्ति नष्ट हो जाती है और वह दरिद्र हो जाता है। अन्तमें वह एक लाख वर्षतक कालसूत्र नामक नरकमें रहता है॥ २९-३०॥

इसी कारण महामुनीन्द्र दुर्वासाको स्त्रीसे वियोग हुआ। फिर उन्होंने दूसरी मंगलमय कर-कमलोंवाली स्त्रीको प्राप्त करके वियोगजन्य दुःखको दूर किया। घृताचीपर आसक्त कामदेवको

घृताच्या सह संश्लिष्टं कामं वारितवान् गुरुः।
षण्मासाभ्यंतरे चन्द्रस्तस्य पत्नीं जहार ह॥ ३३
पुनश्शिवं समाराध्य कृत्वा तारामयं रणम्।
तारां सगर्भां संप्राप्य विजहौ विरहज्वरम्॥ ३४
मोहिनीसहितं चन्द्रं चकार विरतं रतौ।
महर्षिगौतमस्तस्य स्त्रीविच्छेदो बभूव ह॥ ३५
हरिश्चन्द्रो हालिकं च वृषल्या सह संयुतम्।
वारयामास निश्श्रेष्टं निर्जने तत्फलं शृणु॥ ३६
भ्रष्टः स्त्रीपुत्रराज्येभ्यो विश्वामित्रेण ताडितः।
ततः शिवं समाराध्य मुक्तो भूतो हि कश्मलात्॥ ३७
अजामिलं द्विजश्रेष्ठं वृषल्या सह संयुतम्।
न भिया वारयामासुः सुरास्तां चापि केचन॥ ३८

सर्वं निषेकसाध्यं च निषेको बलवान् विधे।
निषेकफलदो वै स निषेकः केन वार्यते॥ ३९

दिव्यं वर्षसहस्रं च शंभोः संभोगकर्म तत्।
पूर्णे वर्षसहस्रे च गत्वा तत्र सुरेश्वराः॥ ४०

येन वीर्यं पतेद्भूमौ तत् करिष्यथ निश्चितम्।
तत्र वीर्ये च भविता स्कन्दनामा प्रभोः सुतः॥ ४१

अधुना स्वगृहं गच्छ विधे सुरगणैः सह।
करोतु शंभुः संभोगं पार्वत्या सह निर्जने॥ ४२

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा कमलाकान्तः शीघ्रं स्वान्तःपुरं ययौ।
स्वालयं प्रययुर्देवा मया सह मुनीश्वर॥ ४३
शक्तिशक्तिमतोश्चाथ विहारेणाति च क्षितिः।
भाराक्रांता चकंपे सा सशेषापि सकच्छपा॥ ४४

कच्छपस्य हि भारेण सर्वाधारः समीरणः।
स्तंभितोऽथ त्रिलोकाश्च बभुवुर्भयविह्वलाः॥ ४५

अथ सर्वे मया देवा हरेश्च शरणं ययुः।
सर्वं निवेदयाञ्चक्रुस्तद्वृत्तं दीनमानसा॥ ४६

बृहस्पतिके द्वारा मना करने पर बृहस्पतिको पत्नी-हरणका दु:ख मिला। फिर उन्होंने शिवजीकी आराधनाकर ताराको प्राप्त किया, जिससे उनकी विरहव्यथा दूर हुई॥ ३१—३४॥

महर्षि गौतमने मोहिनीमें आसक्त चन्द्रमाको वियुक्त किया, इस कारण उनका स्त्रीसे वियोग हुआ। हालिकको वृषलीमें कामासक्त देखकर हरिश्चन्द्रद्वारा निषेध किये जानेपर उन्हें विश्वामित्रका कोपभाजन बनना पड़ा और वे स्त्री-पुत्र तथा राज्यसे भी च्युत हो गये। फिर उन्होंने शिवाराधनकर इस कष्टसे छुटकारा प्राप्त किया॥ ३५—३७॥

वृषलीमें आसक्त हुए द्विजश्रेष्ठ अजामिलको तथा उस वृषलीको भयके कारण किसी देवताने भी मना नहीं किया। निषेक (वीर्यसिंचन)-से सब कुछ साध्य है। हे विधे! निषेक बलवान् है, निषेक ही फल देनेवाला है, उस निषेकका कौन निवारण कर सकता है?॥ ३८-३९॥

शंकरजीके भोगका वह काल देवताओंके वर्षसे हजार वर्षपर्यन्तका था। हे देवगणो! एक हजार दिव्य वर्ष पूर्ण हो जानेपर आपलोग वहाँ जाकर इस प्रकारका उपाय करें, जिससे उनका तेज पृथ्वीपर गिरे। उसी तेजसे प्रभु शंकरका स्कन्द नामक पुत्र उत्पन्न होगा॥ ४०-४१॥

अतः हे ब्रह्मन्! इस समय आप इन देवताओंको साथ लेकर अपने स्थानको लौट जायँ और शिवजी एकान्तमें पार्वतीके साथ आनन्दविहार करें॥ ४२॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! इस प्रकार कहकर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु शीघ्र ही अपने अन्तःपुरमें चले गये और मेरे साथ सभी देवता अपने-अपने स्थानपर चले गये। इस प्रकार बहुत दिनोंतक शक्ति एवं शक्तिमान्के विहारसे भाराक्रान्त यह पृथ्वी शेष एवं कच्छपके धारण करनेपर भी काँप उठी॥ ४३-४४॥

तब कच्छपके भारसे आक्रान्त सबका आधारभूत पवन स्तम्भित हो गया, जिससे सम्पूर्ण त्रैलोक्य भयसे व्याकुल हो उठा। फिर सभी देवता मेरे साथ भगवान् विष्णुकी शरणमें गये और दुखी मनवाले उन्होंने उस वृत्तान्तको भगवान् विष्णुसे निवेदित किया॥ ४५-४६॥

देवा ऊचुः

देवदेव रमानाथ सर्वावनकर प्रभो।
रक्ष नः शरणापन्नान् भयव्याकुलमानसान्॥ ४७

देवता बोले—हे देवदेव! हे रमानाथ! हे सर्वरक्षक प्रभो! हमलोग भयसे व्याकुलचित्त हो आपकी शरणमें आये हुए हैं। आप हमारी रक्षा कीजिये॥ ४७॥

स्तंभितस्त्रिजगत्प्राणो न जाने केन हेतुना।
व्याकुलं मुनिभिर्लेखैस्त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ ४८

पता नहीं, किस कारणसे तीनों लोकोंके प्राणभूत वायुदेव स्तम्भित हो गये हैं तथा मुनि एवं देवगणोंके सहित सारा चराचर त्रैलोक्य व्याकुल हो गया है!॥ ४८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा सकला देवा मया सह मुनीश्वर।
दीनास्तस्थुः पुरो विष्णोर्मौनीभूताः सुदुःखिताः॥ ४९

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! मेरे साथ गये हुए समस्त देवगण ऐसा कहकर मौन, दुखी तथा दीन होकर भगवान् विष्णुजीके आगे खड़े हो गये॥ ४९॥

तदाकर्ण्य समादाय सुरान्नः सकलान् हरिः।
जगाम पर्वतं शीघ्रं कैलासं शिववल्लभम्॥ ५०

इस बातको सुनकर हमें तथा सभी देवताओंको अपने साथ लेकर भगवान् विष्णु बड़ी शीघ्रतासे शिवके प्रिय कैलास पर्वतपर गये॥ ५०॥

तत्र गत्वा हरिर्देवैर्मया च सुरवल्लभः।
ययौ शिववरस्थानं शंकरं द्रष्टुकाम्यया॥ ५१

सुरवल्लभ भगवान् विष्णु मुझ ब्रह्मा तथा उन देवताओंके साथ कैलास पहुँचकर भगवान् शिवके दर्शन करनेकी इच्छासे शिवजीके श्रेष्ठ स्थानपर गये॥ ५१॥

तत्र दृष्ट्वा शिवं विष्णुर्न सुरैर्विस्मितोऽभवत्।
तत्र स्थितान् शिवगणान् पप्रच्छ विनयान्वितः॥ ५२

किंतु वहाँ शिवजीको न देखकर देवताओंसहित भगवान् विष्णु आश्चर्यमें पड़ गये। फिर उन्होंने वहाँपर स्थित महेश्वरके गणोंसे विनयपूर्वक पूछा॥ ५२॥

विष्णुरुवाच

हे शांकराः शिवः कुत्र गतः सर्वप्रभुर्गणाः।
निवेदयत नः प्रीत्या दुःखितान्वै कृपालवः॥ ५३

विष्णु बोले—हे शंकरके गणो! आप सब बड़े दयालु हैं। आपलोग हम दुखीजनोंको कृपापूर्वक बताइये कि सर्वप्रभु शंकर इस समय कहाँपर हैं?॥ ५३॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सामरस्य हरेर्गणाः।
प्रोचुः प्रीत्या गणास्ते हि शंकरस्य रमापतिम्॥ ५४

ब्रह्माजी बोले—देवताओंके सहित भगवान् विष्णुकी बात सुनकर शंकरजीके उन गणोंने प्रीतिपूर्वक लक्ष्मीपति विष्णुसे कहा—॥ ५४॥

शिवगणा ऊचुः

हरे शृणु शिवप्रीत्या यथार्थं ब्रूमहे वयम्।
ब्रह्मणा निर्जरैः सार्द्धं वृत्तान्तमखिलं च यत्॥ ५५

शिवगण बोले—हे हरे! जो सम्पूर्ण वृत्तान्त है, ब्रह्मा और देवताओंके साथ उसे आप सुनिये, भगवान् शिवमें प्रेमके कारण हम यथार्थ रूपमें कहते हैं॥ ५५॥

सर्वेश्वरो महादेवो जगाम गिरिजालयम्।
संस्थाप्य नोऽत्र सुप्रीत्या नानालीलाविशारदः॥ ५६

विविध प्रकारकी लीलाओंमें पारंगत देवाधिदेव महादेव शिव हमलोगोंको यहाँ स्थापित करके अत्यन्त स्नेहपूर्वक भगवती पार्वतीके आवास-स्थानपर गये॥ ५६॥

तद्गुहाभ्यन्तरे शंभुः किं करोति महेश्वरः।
न जानीमो रमानाथ व्यतीयुर्बहवः समाः॥ ५७

हे लक्ष्मीपति! उस गुहाके भीतर उन्हें बहुत वर्ष व्यतीत हो गये हैं, वहाँ महेश्वर शम्भु क्या कर रहे हैं, इस बातको हम नहीं जानते हैं॥ ५७॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वेति वचनं तेषां स विष्णुः सामरो मया।
विस्मितोऽति मुनिश्रेष्ठ शिवद्वारं जगाम ह॥ ५८

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! उनकी बातोंको सुनकर मेरे तथा देवगणोंके साथ विष्णु आश्चर्यचकित हो गये और शिवजीके द्वारपर गये॥ ५८॥

तत्र गत्वा मया देवैः स हरिर्देववल्लभः।
आर्तवाण्या मुने प्रोचे तारस्वरतया तदा॥ ५९
शंभुमस्तौन्महाप्रीत्या सामरो हि मया हरिः।
तत्र स्थितो मुनिश्रेष्ठ सर्वलोकप्रभुं हरम्॥ ६०

हे मुनिश्रेष्ठ! वहाँ देवताओं एवं मुझ ब्रह्माके साथ जाकर देवताओंके प्रिय भगवान् श्रीहरिने ऊँचे स्वरमें आर्तवाणीसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक वहाँ स्थित सर्वलोकेश्वर भगवान् शिवकी स्तुति की॥ ५९-६०॥

विष्णुरुवाच

किं करोषि महादेवाभ्यन्तरे परमेश्वर।
तारकार्तान्सुरान्सर्वान् पाहि नः शरणागतान्॥ ६१

विष्णु बोले—हे महादेव! हे परमेश्वर! आप गुहाके भीतर क्या कर रहे हैं? तारकासुरसे पीड़ित, आपकी शरणमें आये हुए हम सभी देवताओंकी रक्षा कीजिये॥ ६१॥

इत्यादि संस्तुवन् शंभुं बहुधा सोऽमरैर्मया।
रुरोदाति हरिस्तत्र तारकार्तैर्मुनीश्वर॥ ६२

हे मुनीश्वर! इस प्रकार मुझ ब्रह्मा तथा देवताओंके सहित विष्णुने शिवकी अनेक प्रकारसे स्तुति की। उस समय तारकासुरसे पीड़ित देवताओंसहित श्रीहरि अत्यन्त विलाप करके रोने लगे॥ ६२॥

दुःखकोलाहलस्तत्र बभूव त्रिदिवौकसाम्।
मिश्रितश्शिव संस्तुत्यासुरार्त्तानां मुनीश्वर॥ ६३

हे मुनीश्वर! तारकासुरसे पीड़ित हुए देवताओंके आर्तनाद और शिवजीकी स्तुतिके मिश्रित होनेसे उस समय दुःखभरा महान् कोलाहल हुआ॥ ६३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे शिवविहारवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें शिवविहारवर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

भगवान् शिवके तेजसे स्कन्दका प्रादुर्भाव और सर्वत्र महान् आनन्दोत्सवका होना

ब्रह्मोवाच

तदाकर्ण्य महादेवो योगज्ञानविशारदः।
त्यक्तकामो न तत्याज संभोगं पार्वतीभयात्॥ १
आजगाम गृहद्वारि सुराणां निकटं शिवः।
दैत्येन पीडितानां च शंकरो भक्तवत्सलः॥ २

ब्रह्माजी बोले—देवताओं एवं विष्णुकी स्तुति सुनकर योगज्ञानविशारद भगवान् शंकर यद्यपि निष्काम हैं तथापि उन्होंने भोगका परित्याग नहीं किया। फिर वे भक्तवत्सल शंकर दैत्यसे पीड़ित हुए देवताओंके समीप घरके दरवाजेपर आये॥ १-२॥

देवाः सर्वे प्रभुं दृष्ट्वा हरिणा च मया शिवम्।
बभूवुः सुखिनश्चाति तदा वै भक्तवत्सलम्॥ ३

उस समय मुझ ब्रह्मा तथा विष्णुके साथ देवगण भक्तवत्सल प्रभु शिवका दर्शनकर अत्यन्त सुखी हुए॥ ३॥

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां सुराणां भगवान्भवः।
प्रत्युवाच विषण्णात्मा दूयमानेन चेतसा॥ ४

उन देवताओंका पूर्वोक्त वचन सुनकर दुखी आत्मा-वाले भगवान् शंकरने उद्विग्नमन होकर उत्तर दिया॥ ४॥

प्रणम्य सुमहाप्रीत्या नतस्कंधाश्च निर्जराः।
तुष्टुवुः शंकरं सर्वे मया च हरिणा मुने॥ ५

देवताओंने सिर झुकाकर परम स्नेहपूर्वक शंकरको प्रणाम किया और हे मुने! मुझ ब्रह्मा तथा विष्णुके साथ सभी देवताओंने शंकरकी स्तुति की॥ ५॥

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो।
अन्तर्यामी हि सर्वेषां सर्वं जानासि शंकर॥ ६

देवकार्यं कुरु विभो रक्ष देवान् महेश्वर।
जहि दैत्यान् कृपां कृत्वा तारकादीन् महाप्रभो॥ ७

शिव उवाच

हे विष्णो हे विधे देवाः सर्वेषां वो मनोगतिः।
यद्भावि तद्भवत्येव कोऽपि नो तन्निवारकः॥ ८

यज्जातं तज्जातमेव प्रस्तुतं शृणुतामराः।
शिवरेतस्खलितं वीर्यं को ग्रहीष्यति मेऽधुना॥ ९

स गृह्णीयादिति प्रोच्य पातयामास तद्भुवि।
अग्निर्भूत्वा कपोतो हि प्रेरितः सर्वनिर्जरैः॥ १०

अभक्षच्छांभवं वीर्यं चंच्वा तु निखिलं तदा।
एतस्मिन्नन्तरे तत्राजगाम गिरिजा मुने॥ ११

शिवागमविलंबे च ददर्श सुरपुंगवान्।
ज्ञात्वा तद्वृत्तमखिलं महाक्रोधयुता शिवा॥ १२

उवाच त्रिदशान् सर्वान् हरिप्रभृतिकाँस्तदा॥ १३

देव्युवाच

रे रे सुरगणाः सर्वे यूयं दुष्टा विशेषतः।
स्वार्थसंसाधका नित्यं तदर्थं परदुःखदाः॥ १४

स्वार्थहेतोर्महेशानमाराध्य परमं प्रभुम्।
नष्टं चक्रुर्मद्विहारं वंध्याऽभवमहं सुराः॥ १५

मां विरोध्य सुखं नैव केषांचिदपि निर्जराः।
तस्माद्दुःखं भवेद्वो हि दुष्टानां त्रिदिवौकसाम्॥ १६

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा विष्णुप्रमुखान् सुरान् सर्वान् शशाप सा।
प्रज्वलंती प्रकोपेन शैलराजसुता शिवा॥ १७

देवता बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणासागर प्रभो! आप सबके अन्तर्यामी हैं, हे शंकर! आप सब कुछ जानते हैं। हे विभो! हम देवताओंका कार्य कीजिये। हे महेश्वर! देवताओंकी रक्षा कीजिये तथा हे महाप्रभो! कृपा करके तारकादि असुरोंका विनाश कीजिये॥ ६-७॥

शिव बोले—हे विष्णो! हे विधाता! हे देवो! मैं आप सबके मनका अभिप्राय जान रहा हूँ, किंतु जो होना है, वह होता ही है, भावीका निवारण करनेवाला कोई नहीं है॥ ८॥

हे देवो! जो होना था, वह तो हो गया, अब जो उपस्थित है, उसके विषयमें सुनिये। मुझ शिवके स्खलित इस तेजको इस समय कौन धारण करेगा?॥ ९॥

'जिसे धारण करना हो, वह धारण करे'—इस प्रकार कहकर शंकरजी मौन हो गये। तब देवताओंसे प्रेरणा-प्राप्त अग्निने कपोत होकर अपनी चोंचसे शंकरके पृथ्वीपर गिरे समस्त तेजको ग्रहण कर लिया। हे नारद! इसी समय शिवके आगमनमें विलम्ब देखकर वहाँपर भगवती गिरिजा आकर उपस्थित हो गयीं। उन्होंने देवताओंको देखा। वहाँका वह सम्पूर्ण वृत्तान्त जानकर पार्वती महाक्रोधित हो गयीं। तब उन्होंने विष्णुप्रभृति सभी देवताओंसे क्रोधमें भरकर कहा—॥ १०—१३॥

देवी बोलीं—हे देवगणो! तुमलोग बड़े दुष्ट हो, तुम हमेशा अपने स्वार्थसाधनमें लगे रहते हो और अपने स्वार्थसाधनके निमित्त दूसरोंको कष्ट देते हो॥ १४॥

तुमलोगोंने अपने स्वार्थके लिये परमप्रभु शिवकी स्तुतिकर मेरा विहार भंग किया, हे देवो! इसी कारण मैं वन्ध्या हो गयी। हे देवताओ! मेरा विरोध करनेसे तुम देवताओंको कभी सुख प्राप्त नहीं होगा और तुम दुष्ट देवताओंको इसी प्रकार महादुःख प्राप्त होगा॥ १५-१६॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार क्रोधसे जलती हुई शैलपुत्री पार्वतीने विष्णुप्रभृति सभी देवगणोंको शाप दिया॥ १७॥

पार्वत्युवाच

अद्यप्रभृति देवानां वंध्या भार्या भवन्त्विति।
देवाश्च दुःखिताः सन्तु निखिला मद्विरोधिनः॥ १८

ब्रह्मोवाच

इति शप्त्वाखिलान्देवान् विष्ण्वाद्यान्सकलेश्वरी।
उवाच पावकं क्रुद्धा भक्षकं शिवरेतसः॥ १९

पार्वत्युवाच

सर्वभक्षी भव शुचे पीडितात्मेति नित्यशः।
शिवतत्त्वं न जानासि मूर्खोऽसि सुरकार्यकृत्॥ २०

रे रे शठ महादुष्ट दुष्टानां दुष्टबोधवान्।
अभक्षः शिववीर्यं यन्नाकार्षीरुचितं हितम्॥ २१

ब्रह्मोवाच

इति शप्त्वा शिवा वह्निं सहेशेन नगात्मजा।
जगाम स्वालयं शीघ्रमसंतुष्टा ततो मुने॥ २२

गत्वा शिवा शिवं सम्यक् बोधयामास यत्नतः।
अजीजनत्परं पुत्रं गणेशाख्यं मुनीश्वर॥ २३

तद्वृत्तान्तमशेषं च वर्णयिष्ये मुनेऽग्रतः।
इदानीं शृणु सुप्रीत्या गुहोत्पत्तिं वदाम्यहम्॥ २४

पावकार्पितमन्नादि भुंजते निर्जराः खलु।
वेदवाण्येति सर्वे ते सगर्भा अभवन्सुराः॥ २५

ततोऽसहंतस्तद्वीर्यं पीडिता ह्यभवन् सुराः।
विष्ण्वाद्या निखिलाश्चाति शिवाज्ञानष्टबुद्धयः॥ २६

अथ विष्णुप्रभृतिकाः सर्वे देवा विमोहिताः।
दह्यमाना ययुः शीघ्रं शरणं पार्वतीपतेः॥ २७

शिवालयस्य ते द्वारि गत्वा सर्वे विनम्रकाः।
तुष्टुवुः सशिवां शंभुं प्रीत्या सांजलयः सुराः॥ २८

पार्वती बोलीं—आजसे सब देवताओंकी स्त्रियाँ वन्ध्या हो जायँ और मेरा विरोध करनेवाले सभी देवगण सर्वदा दुःख प्राप्त करें॥ १८॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार सर्वेश्वरी भगवती पार्वतीने विष्णुप्रभृति देवगणोंको शाप देकर क्रोधपूर्ण हो शिवके तेजका भक्षण करनेवाले अग्निसे कहा—॥ १९॥

पार्वती बोलीं—हे अग्ने! आजसे तुम सर्वभक्षी होकर सदैव दुःख प्राप्त करोगे। तुम्हें शिवतत्त्वका ज्ञान नहीं है। तुम देवगणोंका कार्य करनेवाले मूर्ख हो॥ २०॥

हे शठ! हे दुष्टोंमें महादुष्ट! तुम बड़े दुर्बुद्धि हो, तुमने जो शिवके तेजका भक्षण किया है, यह अच्छा नहीं किया॥ २१॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इस प्रकार अग्निको शाप देकर असन्तुष्ट होकर भगवती पार्वती भगवान् महेश्वरके साथ शीघ्रतापूर्वक अपने आवासमें चली गयीं॥ २२॥

हे मुनीश्वर! वहाँ जाकर पार्वतीने प्रयत्नपूर्वक भलीभाँति शंकरजीको समझाया, फिर उनके सर्वश्रेष्ठ गणेश नामक पुत्र उत्पन्न हुए। हे मुने! इन गणेशजीका सम्पूर्ण वृत्तान्त मैं आगे कहूँगा। इस समय आप प्रेमपूर्वक कार्तिकेयकी उत्पत्तिका वृत्तान्त सुनिये, मैं कह रहा हूँ॥ २३-२४॥

देवतालोग अग्निके मुखसे ही भोजन करते हैं—ऐसा वेदका वचन है, अतः अग्निके गर्भधारण करनेसे सभी देवता गर्भयुक्त हो गये॥ २५॥

शिवके तेजको सहन न करते हुए वे देवता पीड़ित हो गये। यही दशा विष्णु आदि देवताओंकी भी हो गयी; क्योंकि देवी पार्वतीकी आज्ञासे उनकी बुद्धि नष्ट हो गयी थी॥ २६॥

इसके बाद विष्णुप्रभृति सभी देवता मोहित होकर [शिवके वीर्यरूप अग्निसे] जलते हुए शीघ्र ही पार्वतीपति भगवान् शंकरकी शरणमें गये। वे लोग शिवजीके गृहद्वारपर जाकर नम्रतासे हाथ जोड़ अत्यन्त प्रीतिपूर्वक पार्वतीसहित भगवान्‌की स्तुति करने लगे॥ २७-२८॥

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव गिरिजेश महाप्रभो।
किं जातमधुना नाथ तव माया दुरत्यया॥ २९

सगर्भाश्च वयं जाता दह्यमानाश्च रेतसा।
तव शंभो कुरु कृपां निवारय दशामिमाम्॥ ३०

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्यामरनुतिं परमेशः शिवापतिः।
आजगाम द्रुतं द्वारि यत्र देवाः स्थिता मुने॥ ३१

आगतं शंकरं द्वारि सर्वे देवाश्च साच्युताः।
प्रणम्य तुष्टुवुः प्रीत्या नर्तका भक्तवत्सलम्॥ ३२

देवा ऊचुः

शंभो शिव महेशान त्वां नताः स्म विशेषतः।
रक्ष नः शरणापन्नान् दह्यमानांश्च रेतसा॥ ३३

इदं दुःखं हर हर भवामो हि मृता ध्रुवम्।
त्वां विना कः समर्थोऽद्य देवदुःखनिवारणे॥ ३४

ब्रह्मोवाच

इति दीनतरं वाक्यमाकर्ण्य सुरराट् प्रभुः।
प्रत्युवाच विहस्याथ स सुरान् भक्तवत्सलः॥ ३५

शिव उवाच

हे हरे हे विधे देवाः सर्वे शृणुत मद्वचः।
भविष्यति सुखं वोऽद्य सावधाना भवन्तु हि॥ ३६

एतद्वमत मद्वीर्यं द्रुतमेवाखिलाः सुराः।
सुखिनस्तद्विशेषेण शासनान्मम सुप्रभोः॥ ३७

ब्रह्मोवाच

इत्याज्ञां शिरसाऽधाय विष्ण्वाद्याः सकलाः सुराः।
अकार्षुर्वमनं शीघ्रं स्मरन्तः शिवमव्ययम्॥ ३८

तच्छंभुरेतःस्वर्णाभं पर्वताकारमद्भुतम्।
अभवत्पतितं भूमौ स्पृशद् द्यामेव सुप्रभम्॥ ३९

अभवन्सुखिनः सर्वे सुराः सर्वेऽच्युतादयः।
अस्तुवन् परमेशानं शंकरं भक्तवत्सलम्॥ ४०

देवता बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे गिरिजेश! हे महाप्रभो! हे नाथ! यह क्या हो गया? निश्चय ही आपकी मायाको समझना बड़ा कठिन है॥ २९॥

हमलोग गर्भयुक्त होकर आपकी असह्य वीर्यज्वालासे जल रहे हैं, हे शम्भो! कृपा कीजिये और हमलोगोंकी दुरवस्थाका निवारण कीजिये॥ ३०॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! देवताओंकी इस प्रकारकी स्तुति सुनकर उमापति परमेश्वर शिव गृहद्वारपर जहाँ देवता स्थित थे, वहाँ शीघ्र आये॥ ३१॥

द्वारपर आये हुए सदाशिवको देखते ही विष्णुसमेत सभी देवगण विनम्र होकर प्रणामकर उन भक्तवत्सलकी प्रेमपूर्वक स्तुति करने लगे॥ ३२॥

देवता बोले—हे शम्भो! हे शिव! हे महादेव! आपको विशेष रूपसे प्रणाम करते हैं। आपके तेजसे जलते हुए हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये॥ ३३॥

हे हर! इस दुःखका हरण कीजिये, अन्यथा हमलोग निश्चित ही मर जायँगे। इस समय देवताओंके दुःखका निवारण करनेमें आपके बिना कौन समर्थ है?॥ ३४॥

ब्रह्माजी बोले—भक्तवत्सल, सुरेश्वर भगवान् शिवने ऐसी दीनवाणीको सुनकर हँसते हुए देवताओंको उत्तर दिया॥ ३५॥

शिव बोले—हे हरे! हे ब्रह्मन्! हे देवो! आप सभी मेरी बात सुनें। आपलोग आज ही सुखी हो जायँगे, सावधान हो जायँ। सभी देवगण मेरे तेजका शीघ्र ही वमन कर दें। मुझ सुप्रभुकी आज्ञा माननेसे आपलोगोंको विशेष सुख होगा॥ ३६-३७॥

ब्रह्माजी बोले—विष्णु आदि सभी देवताओंने इस आज्ञाको शिरोधार्य करके अव्यय भगवान् शिवका स्मरण करते हुए शीघ्र ही तेजका वमन कर दिया॥ ३८॥

शम्भुका स्वर्णिम आभावाला, अद्भुत तथा सुन्दर कान्तिवाला वह तेज भूमिपर गिरकर पर्वताकार हो गया और अन्तरिक्षका स्पर्श करने लगा॥ ३९॥

श्रीहरिसहित सभी देवगण सुखी हो गये और भक्तवत्सल परमेश्वर शिवकी स्तुति करने लगे॥ ४०॥

पावकस्त्वभवन्नैव सुखी तत्र मुनीश्वर।
तस्याज्ञां परमोऽदाद्वै शंकरः परमेश्वरः॥ ४१

हे मुनीश्वर! किंतु अग्निदेव वहाँ प्रसन्न नहीं हुए। तब परमेश्वर श्रेष्ठ शंकरने उन्हें आज्ञा दी॥ ४१॥

ततः स वह्निर्विकलः सांजलिर्नतको मुने।
अस्तौच्छिवं सुखी नात्मा वचनं चेदमब्रवीत्॥ ४२

हे मुने! तदनन्तर वे अग्निदेव मनमें सुख न मानकर विकल हो हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक शिवकी स्तुति करते हुए इस प्रकार बोले—॥ ४२॥

अग्निरुवाच

देवदेव महेशान मूढोऽहं तव सेवकः।
क्षमस्व मेऽपराधं हि मम दाहं निवारय॥ ४३
त्वं दीनवत्सलः स्वामिन् शंकरः परमेश्वरः।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा पावको दीनवत्सलम्॥ ४४

अग्नि बोले—देवाधिदेव महेश्वर! मैं मूर्ख हूँ तथापि आपका सेवक हूँ, मेरे अपराधको क्षमा करें और मेरे दाहका निवारण करें। हे स्वामिन्! आप दीनवत्सल परमेश्वर सदाशिव हैं। इस प्रकारसे प्रसन्नात्मा अग्निदेवने दीनवत्सल शिवसे कहा॥ ४३-४४॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य शुचेर्वाणीं स शंभुः परमेश्वरः।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा पावकं दीनवत्सलः॥ ४५

ब्रह्माजी बोले—अग्निकी यह बात सुनकर दीनवत्सल उन परमेशान सदाशिवने प्रसन्न होकर अग्निसे इस प्रकार कहा—॥ ४५॥

शिव उवाच

कृतं त्वनुचितं कर्म मद्रेतो भक्षितं हि यत्।
अतो निवृत्तस्ते दाहः पापाधिक्यान्मदाज्ञया॥ ४६

इदानीं त्वं सुखी नाम शुचे मच्छरणागतः।
अतः प्रसन्नो जातोऽहं सर्वं दुःखं विनश्यति॥ ४७

शिव बोले—[हे अग्नि!] पापकी अधिकताके कारण ही तुमने यह अनुचित कार्य किया कि मेरे तेजका भक्षण कर लिया, अब मेरी आज्ञासे तुम्हारे दाहका निवारण हो गया। हे अग्ने! अब तुम मेरी शरणमें आ गये हो, इससे मैं प्रसन्न हुआ। अब तुम्हारा सारा दुःख दूर हो जायगा और तुम सुखी हो जाओगे॥ ४६-४७॥

कस्याश्चित्सुस्त्रियां योनौ मद्रेतस्त्यज यत्नतः।
भविष्यसि सुखी त्वं हि निर्दाहात्मा विशेषतः॥ ४८

अब तुम किसी सुलक्षणा स्त्रीमें मेरे रेतको प्रयत्नपूर्वक स्थापित करो। इससे तुम दाहमुक्त होकर विशेष रूपसे सुखी हो जाओगे॥ ४८॥

ब्रह्मोवाच

शंभुवाक्यं निशम्येति प्रत्युवाच शनैः शुचिः।
सांजलिर्नतकः प्रीत्या शंकरं भक्तशंकरम्॥ ४९

ब्रह्माजी बोले—भगवान् शंकरकी बातको सुनकर अग्नि हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर प्रीतिपूर्वक भक्तोंके कल्याण करनेवाले भगवान् शंकरसे धीरे-धीरे बोले—॥ ४९॥

दुरासदमिदं तेजस्तव नाथ महेश्वर।
काचिन्नास्ति विना शक्त्या धर्तुं योनौ जगत्त्रये॥ ५०

हे महेश्वर! हे नाथ! आपका यह तेज असह्य है। शक्तिस्वरूपा भगवतीके अतिरिक्त तीनों लोकोंमें इसे धारण करनेमें कोई समर्थ नहीं है॥ ५०॥

इत्थं यदाऽब्रवीद्वह्निस्तदा त्वं मुनिसत्तम।
शंकरप्रेरितः प्रात्थ हृदाग्निमुपकारकः॥ ५१

हे मुनिश्रेष्ठ! अग्निने जब ऐसा कहा, तब हृदयसे अग्निका उपकार चाहनेवाले आपने भगवान् शंकरकी प्रेरणासे इस प्रकार कहा—॥ ५१॥

नारद उवाच

शृणु मद्वचनं वह्ने तव दाहहरं शुभम्।
परमानंददं रम्यं सर्वकष्टनिवारकम्॥ ५२

नारदजी बोले—हे अग्ने! तुम्हारे दाहका निवारण करनेवाला, कल्याणकारी, परम आनन्ददायक, रमणीय तथा सभी कष्टोंका निवारण करनेवाला मेरा वचन सुनो॥ ५२॥

कृत्वोपायमिमं वह्ने सुखी भव विदाहकः।
शिवेच्छया मया सम्यगुक्तं तातेदमादरात्॥ ५३

हे वह्ने! मेरे द्वारा बतलाये जानेवाले इस उपायको करके दाहरहित होकर सुखी हो जाओ। हे तात! भगवान् शिवकी इच्छासे ही मैंने आदरपूर्वक भलीभाँति कहा है॥ ५३॥

तपोमासस्नानकर्त्र्यः स्त्रियो याः स्युः प्रगे शुचे।
तद्देहेषु स्थापय त्वं शिवरेतस्त्विदं महत्॥ ५४

हे शुचे! माघमासमें प्रातःकाल जो स्त्रियाँ स्नान करती हों, इस महान् तेजको तुम उनके शरीरमें स्थापित कर दो॥ ५४॥

ब्रह्मोवाच

तस्मिन्नवसरे तत्रागताः सप्तमुनिस्त्रियः।
तपोमासि स्नानकामाः प्रातः सन्नियमा मुने॥ ५५

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! उसी अवसरपर माघमासमें प्रातःकाल नियमपूर्वक स्नान करनेकी इच्छासे सप्तर्षियोंकी स्त्रियाँ वहाँ आयीं॥ ५५॥

स्नानं कृत्वा स्त्रियस्ता हि महाशीतार्दिताश्च षट्।
गंतुकामा मुने याता वह्निज्वालासमीपतः॥ ५६

हे मुने! स्नान करके वे स्त्रियाँ अत्यन्त ठण्ढसे पीड़ित हो गयीं और उनमेंसे छः स्त्रियाँ अग्निज्वालाके समीप जानेकी इच्छासे वहाँसे चल पड़ीं॥ ५६॥

विमोहिताश्च ता दृष्ट्वारुन्धती गिरिशाज्ञया।
निषिषेध विशेषेण सुचरित्रा सुबोधिनी॥ ५७

उन्हें मोहित देखकर सुचरित्रा, ज्ञानवती देवी अरुन्धतीने शिवकी आज्ञासे उन्हें जानेसे विशेषरूपसे रोका॥ ५७॥

ताः षड् मुनिस्त्रियो मोहाद्धठात्तत्र गता मुने।
स्वशीतविनिवृत्त्यर्थं मोहिताः शिवमायया॥ ५८

हे मुने! भगवान् शिवकी मायासे मोहित वे छः ऋषिपत्नियाँ अपने शीतका निवारण करनेके लिये हठपूर्वक वहाँ जा पहुँचीं॥ ५८॥

तद्रेतःकणिकाः सद्यस्तद्देहान् विविशुर्मुने।
रोमद्वाराऽखिला वह्निरभूद्दाहविवर्जितः॥ ५९

हे मुने! [अग्निके द्वारा गृहीत] उस रेतके सभी कण रोमकूपोंके द्वारा शीघ्र ही उन ऋषिपत्नियोंके देहोंमें प्रविष्ट हो गये और वे अग्नि दाहसे मुक्त हो गये॥ ५९॥

अंतर्धाय द्रुतं वह्निर्ज्वालारूपो जगाम ह।
सुखी स्वलोकं मनसा स्मरंस्त्वां शंकरं च तम्॥ ६०

अग्नि अन्तर्धान होकर ज्वालारूपसे शीघ्र ही उन भगवान् शंकर और आपका मनसे स्मरण करते हुए सुखपूर्वक अपने लोकको चले गये॥ ६०॥

सगर्भास्ताः स्त्रियः साधोऽभवन् दाहप्रपीडिताः।
जग्मुः स्वभवनं तातारुंधती दुःखिताग्निना॥ ६१

हे साधो! वे स्त्रियाँ अग्निके द्वारा दाहसे पीड़ित और गर्भवती हो गयीं। हे तात! अरुन्धती दुखी होकर अपने आश्रमको चली गयीं॥ ६१॥

दृष्ट्वा स्वस्त्रीगतिं तात नाथाः क्रोधाकुला द्रुतम्।
तत्यजुस्ताः स्त्रियस्तात सुसंमंत्र्य परस्परम्॥ ६२

हे तात! अपनी स्त्रियोंकी गर्भावस्था देखकर उनके पति तुरंत क्रोधसे व्याकुल हो गये और परस्पर भलीभाँति विचार-विमर्श करके उन्होंने अपनी पत्नियोंका त्याग कर दिया॥ ६२॥

अथ ताः षट् स्त्रियः सर्वा दृष्ट्वा स्वव्यभिचारकम्।
महादुःखान्वितास्ताताभवन्नाकुलमानसाः॥ ६३

हे तात! वे छहों ऋषिपत्नियाँ अपनी गर्भावस्थाका विचार करके अत्यन्त दुःखित और व्याकुल चित्तवाली हो गयीं॥ ६३॥

तत्यजुश्शिवरेतस्तद्गर्भरूपं मुनिस्त्रियः।
ता हिमाचलपृष्ठेऽथाभवन् दाहविवर्जिताः॥ ६४

उन मुनिपत्नियोंने शिवके उस गर्भरूप तेजको हिमशिखरपर त्याग दिया और वे दाहरहित हो गयीं॥ ६४॥

असहन् शिवरेतस्तद्धिमाद्रिः कंपमुद्वहन्।
गंगायां प्राक्षिपत्तूर्णमसह्यं दाहपीडितः॥ ६५

भगवान् शिवके उस असहनीय तेजको धारण करनेमें असमर्थ होनेके कारण हिमालय प्रकम्पित हो उठे और दाहसे पीड़ित होकर उन्होंने शीघ्र ही उस तेजको गंगामें विसर्जित कर दिया॥ ६५॥

गंगयाऽपि च तद्वीर्यं दुस्सहं परमात्मनः।
निःक्षिप्तं हि शरस्तंबे तरंगैः स्वैर्मुनीश्वर॥ ६६

हे मुनीश्वर! गंगाने भी परमात्माके उस दुःसह तेजको अपनी तरंगोंके द्वारा सरकण्डोंके समूहमें स्थापित कर दिया॥ ६६॥

पतितं तत्र तद्रेतो द्रुतं बालो बभूव ह।
सुन्दरः सुभगः श्रीमांस्तेजस्वी प्रीतिवर्द्धनः॥ ६७

वहाँ गिरा हुआ वह तेज शीघ्र ही एक सुन्दर, सौभाग्यशाली, शोभायुक्त, तेजस्वी और प्रीतिको बढ़ानेवाले बालकके रूपमें परिणत हो गया॥ ६७॥

मार्गमासे सिते पक्षे तिथौ षष्ठ्यां मुनीश्वर।
प्रादुर्भावोऽभवत्तस्य शिवपुत्रस्य भूतले॥ ६८

हे मुनीश्वर! मार्गशीर्ष (अगहन) मासके शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिको उस शिवपुत्रका पृथ्वीपर प्रादुर्भाव हुआ॥ ६८॥

तस्मिन्नवसरे ब्रह्मन्नकस्माद्धिमशैलजा।
अभूतां सुखिनौ तत्र स्वगिरौ गिरिशोऽपि च॥ ६९

हे ब्रह्मन्! इस अवसरपर अपने कैलास पर्वतपर हिमालयपुत्री पार्वती तथा भगवान् शंकर भी अकस्मात् आनन्दित हो उठे॥ ६९॥

शिवाकुचाभ्यां सुस्राव पय आनन्दसंभवम्।
तत्र गत्वा च सर्वेषां सुखमासीन्मुनेऽधिकम्॥ ७०

हे मुने! भगवती पार्वतीके स्तनोंसे आनन्दातिरेकके कारण दुग्धस्राव होने लगा। वहाँ जाकर सबको अत्यन्त प्रसन्नता हुई॥ ७०॥

मंगलं चाऽभवत्तात त्रिलोक्यां सुखदं सताम्।
खलानामभवद्विघ्नो दैत्यानां च विशेषतः॥ ७१

हे तात! त्रिलोकीमें सभी सज्जनोंके यहाँ अत्यन्त सुख देनेवाला मांगलिक वातावरण हो गया। दुष्ट दैत्योंके यहाँ विशेष रूपसे विघ्न होने लगे॥ ७१॥

अकस्मादभवद् व्योम्नि परमो दुदुंभिध्वनिः।
पुष्पवृष्टिः पपाताऽशु बालकोपरि नारद॥ ७२

हे नारद! अकस्मात् अन्तरिक्षमें महान् दुन्दुभिनाद होने लगा और उस बालकपर पुष्पोंकी वर्षा होने लगी॥ ७२॥

विष्णवादीनां समस्तानां देवानां मुनिसत्तम।
अभूदकस्मात्परम आनन्दः परमोत्सवः॥ ७३

हे मुनिश्रेष्ठ! विष्णु आदि सभी देवताओंको अकस्मात् परम आनन्द हुआ और महान् उत्सव भी होने लगा॥ ७३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे शिवपुत्रजननवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें शिवपुत्रजननवर्णन नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

महर्षि विश्वामित्रद्वारा बालक स्कन्दका संस्कार सम्पन्न करना, बालक स्कन्दद्वारा क्रौंच-पर्वतका भेदन, इन्द्रद्वारा बालकपर वज्रप्रहार, शाख-विशाख आदिका उत्पन्न होना, कार्तिकेयका षण्मुख होकर छः कृत्तिकाओंका दुग्धपान करना

नारद उवाच

देवदेव प्रजानाथ ब्रह्मन् सृष्टिकर प्रभो।
ततः किमभवत्तत्र तद्वदाऽद्य कृपां कुरु॥ १

ब्रह्मोवाच

तस्मिन्नवसरे तात विश्वामित्रः प्रतापवान्।
प्रेरितो विधिना तत्रागच्छत्प्रीतो यदृच्छया॥ २

स दृष्ट्वालौकिकं धाम तत्सुतस्य सुतेजसः।
अभवत्पूर्णकामस्तु सुप्रसन्नो ननाम च॥ ३

अकरोत्सुनुतिं तस्य सुप्रसन्नेन चेतसा।
विधिप्रेरितवाग्भिश्च विश्वामित्रः प्रभाववित्॥ ४

ततः सोऽभूत्सुतस्तत्र सुप्रसन्नो महोतिकृत्।
सुप्रहस्याद्भुतमहो विश्वामित्रमुवाच च॥ ५

शिवसुत उवाच

शिवेच्छया महाज्ञानिन्नकस्मात्त्वमिहागतः।
संस्कारं कुरु मे तात यथावद्वेदसंमितम्॥ ६

अद्यारभ्य पुरोधास्त्वं भव मे प्रीतिमावहन्।
भविष्यसि सदा पूज्यः सर्वेषां नात्र संशयः॥ ७

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सुप्रसन्नो हि गाधिजः।
तमुवाचानुदात्तेन स्वरेण च सुविस्मितः॥ ८

विश्वामित्र उवाच

शृणु तात न विप्रोऽहं गाधिक्षत्रियबालकः।
विश्वामित्रेति विख्यातः क्षत्रियो विप्रसेवकः॥ ९

इति स्वचरितं ख्यातं मया ते वरबालक।
कस्त्वं स्वचरितं ब्रूहि विस्मितायाखिलं हि मे॥ १०

नारदजी बोले—हे देवदेव! हे प्रजानाथ! हे ब्रह्मन्! हे सृष्टिकर्ता प्रभो! इसके बाद वहाँ क्या हुआ, इसे आप कृपाकर बताइये॥ १॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात! इसी समय विधाताके द्वारा प्रेरित होकर महाप्रतापी विश्वामित्र स्वेच्छासे घूमते-घूमते वहाँ जा पहुँचे। इस तेजस्वी बालकके अलौकिक तेजको देखकर वे कृतार्थ हो गये और उन्होंने प्रसन्न होकर उस बालकको नमस्कार किया॥ २-३॥

उस बालकके प्रभावको जाननेवाले महर्षि विश्वामित्रने प्रसन्नचित्त हो विधिप्रेरित वाणीसे उस बालककी स्तुति की। महान् लीला करनेवाला वह बालक अत्यन्त प्रसन्न हुआ और अद्भुत हास्य करता हुआ विश्वामित्रसे बोला—॥ ४-५॥

शिवपुत्र बोले—हे महाज्ञानिन्! आप अचानक शिवेच्छासे यहाँ आ पहुँचे हैं। अतः हे तात! वेदोक्त रीतिसे मेरा यथाविधि संस्कार सम्पन्न कीजिये। आजसे आप प्रसन्नतापूर्वक मेरे पुरोहित हो जायँ, इससे आप सदा सबके पूज्य होंगे। इसमें संशय नहीं है॥ ६-७॥

ब्रह्माजी बोले—बालककी यह बात सुनकर गाधिपुत्र विश्वामित्रजी अत्यन्त प्रसन्न हो गये और आश्चर्यचकित होकर मन्द स्वरसे उस बालकसे उन्होंने कहा—॥ ८॥

विश्वामित्र बोले—हे तात! सुनो, मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, किंतु गाधिसुत क्षत्रियकुमार हूँ। मेरा नाम विश्वामित्र है, मैं तो ब्राह्मणसेवक क्षत्रिय हूँ॥ ९॥

हे श्रेष्ठ बालक! मैंने तुमसे अपना सारा चरित निवेदन कर दिया, तुम कौन हो? अपना सम्पूर्ण चरित्र मुझसे कहो। मैं आश्चर्यान्वित हो रहा हूँ॥ १०॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य तत्स्ववृत्तं जगाद ह।
ततश्चोवाच सुप्रीत्या गाधिजं तं महोतिकृत्॥ ११

ब्रह्माजी बोले—विश्वामित्रजीके इस वचनको सुनकर महान् लीला करनेवाले बालकने प्रसन्न हो उन गाधिपुत्र विश्वामित्रजीसे अपना सारा चरित्र कहा॥ ११॥

शिवसुत उवाच

विश्वामित्र वरान्मे त्वं ब्रह्मर्षिर्नात्र संशयः।
वसिष्ठाद्याश्च नित्यं त्वां प्रशंसिष्यंति चादरात्॥ १२

अतस्त्वमाज्ञया मे हि संस्कारं कर्तुमर्हसि।
इदं सर्वं सुगोप्यं ते कथनीयं न कुत्रचित्॥ १३

शिवसुत बोले—हे विश्वामित्रजी! आप मेरे वरदानसे ब्रह्मर्षि हैं, इसमें संशयकी बात नहीं है। वसिष्ठादि ऋषिगण भी आदरपूर्वक आपकी प्रशंसा करेंगे। इस कारण आप मेरी आज्ञासे मेरा संस्कार करें, यह सब रहस्य आपको गुप्त ही रखना चाहिये, कहीं नहीं कहना चाहिये॥ १२-१३॥

ब्रह्मोवाच

ततोऽकार्षीत्स संस्कारं तस्य प्रीत्याऽखिलं यथा।
शिवबालस्य देवर्षे वेदोक्तविधिना परम्॥ १४

ब्रह्माजी बोले—हे देवर्षे! तदनन्तर विश्वामित्रजीने परम प्रेमपूर्वक वेदोक्तरीतिसे भगवान् शिवके उस बालकके सम्पूर्ण संस्कार सम्पन्न किये॥ १४॥

शिवबालोऽपि सुप्रीतो दिव्यज्ञानमदात्परम्।
विश्वामित्राय मुनये महोतिकारकः प्रभुः॥ १५

महान् लीला करनेवाले प्रभु शिवपुत्रने भी बड़े प्रेमसे महर्षि विश्वामित्रजीको दिव्य ज्ञान प्रदान किया॥ १५॥

पुरोहितं चकारासौ विश्वामित्रं शुचेस्सुतः।
तदारभ्य द्विजवरो नानालीलाविशारदः॥ १६

नाना प्रकारकी लीलामें पारंगत अग्निपुत्रने विश्वामित्रजीको अपना पुरोहित बना लिया। उसी समयसे वे विश्वामित्र द्विजश्रेष्ठके रूपमें प्रतिष्ठित हो गये॥ १६॥

इत्थं लीला कृता तेन कथिता सा मया मुने।
तल्लीलामपरां तात शृणु प्रीत्या वदाम्यहम्॥ १७

हे मुने! उस बालकने इस प्रकार जो लीला की है, वह मैंने आपको बता दी। हे तात! उस बालककी दूसरी लीला मैं बता रहा हूँ, प्रेमपूर्वक सुनो॥ १७॥

तस्मिन्नवसरे तात श्वेतनामा च संप्रति।
तत्राऽपश्यत्सुतं दिव्यं निजं परमपावनम्॥ १८

ततस्तं पावको गत्वा दृष्ट्वालिंग्य चुचुम्ब च।
पुत्रेति चोक्त्वा तस्मै स शस्त्रं शक्तिं ददौ च सः॥ १९

उसी समय श्वेतने उस दिव्य तेजसम्पन्न परम पावन बालकको देखकर अपना पुत्र मान लिया। तदनन्तर अग्निदेवने उस स्थानपर जाकर बालकको गले लगाकर उसका चुम्बन किया और उन्होंने उस बालकको 'पुत्र' शब्दसे पुकारते हुए अपनी शक्ति तथा अस्त्र उसे प्रदान किया॥ १८-१९॥

गुहस्तां शक्तिमादाय तच्छृङ्गं चारुरोह ह।
तं जघान तया शक्त्या शृंगो भुवि पपात सः॥ २०

गुह कार्तिकेय उस शक्तिको लेकर क्रौंच पर्वतके शिखरपर चढ़ गये और उस शक्तिसे शिखरपर ऐसा प्रहार किया कि वह शिखर पृथिवीपर गिर पड़ा॥ २०॥

दशपद्ममिता वीरा राक्षसाः पूर्वमागताः।
तद्वधार्थं द्रुतं नष्टा बभूवुस्तत्प्रहारतः॥ २१

उस बालकका वध करनेके लिये सबसे पहले दस पद्म वीर राक्षस वहाँ आये, किंतु कुमारके प्रहारसे वे सभी शीघ्र ही विनष्ट हो गये॥ २१॥

हाहाकारो महानासीच्चकंपे साचला मही।
त्रैलोक्यं च सुरेशानः सदेवस्तत्र चागमत्॥ २२

उस समय सभी जगह महान् हाहाकार मच गया, पर्वतोंके सहित सारी पृथ्वी और त्रैलोक्य काँपने लगा। उसी समय देवगणोंके साथ देवराज इन्द्र वहाँ आ पहुँचे॥ २२॥

दक्षिणे तस्य पार्श्वे च वज्रेण स जघान ह।
शाखनामा ततो जातः पुमांश्चैको महाबलः॥ २३

पुनश्शक्रो जघानाशु वामपार्श्वे हि तं तदा।
वज्रेणाऽन्यः पुमाञ्जातो विशाखाख्योऽपरो बली॥ २४

ततस्तद्धृदयं शक्रो जघान पविना तदा।
परोऽभून्नैगमोपाख्यः पुमांस्तद्वन्महाबलः॥ २५

इन्द्रने अपने वज्रसे कार्तिकेयके दक्षिण पार्श्वमें प्रहार किया। वज्रके लगते ही उससे शाख नामक एक महान् बलवान् पुरुष प्रकट हो गया। पुनः इन्द्रने उसके वाम पार्श्वमें शीघ्र ही वज्रसे प्रहार किया, उस वज्रके लगते ही उससे एक और विशाख नामक बलवान् पुरुष उत्पन्न हो गया। फिर इन्द्रने वज्रसे उसके हृदयमें प्रहार किया, जिससे उसीके समान बलवान् नैगम नामक एक पुरुष प्रकट हो गया॥ २३—२५॥

तदा स्कंदादिचत्वारो महावीरा महाबलाः।
इन्द्रं हन्तुं द्रुतं जग्मुः सोऽयं तच्छरणं ययौ॥ २६

तब स्कन्द, शाख, विशाख तथा नैगम—ये चारों महाबलसम्पन्न महावीर इन्द्रको मारनेके लिये बड़ी शीघ्रतासे दौड़ पड़े। यह देखकर वे इन्द्र उनकी शरणमें गये॥ २६॥

शक्रः ससामरगणो भयं प्राप्य गृहात्ततः।
ययौ स्वलोकं चकितो न भेदं ज्ञातवान्मुने॥ २७

हे मुने! देवगणोंके सहित इन्द्र उनसे भयभीत हो उठे और वे विस्मित हो उस स्थानसे अपने लोक चले गये, किंतु उन्हें भी पराक्रमके रहस्यका ज्ञान नहीं हुआ॥ २७॥

स बालकस्तु तत्रैव तस्थाऽऽवानंदसंयुतः।
पूर्ववन्निर्भयस्तात नानालीलाकरः प्रभुः॥ २८
तस्मिन्नवसरे तत्र कृत्तिकाख्याश्च षट् स्त्रियः।
स्नातुं समागता बालं ददृशुस्तं महाप्रभुम्॥ २९
ग्रहीतुं तं मनश्चक्रुः सर्वास्ता कृत्तिकाः स्त्रियः।
वादो बभूव तासां तद्ग्रहणेच्छापरो मुने॥ ३०

हे तात! विविध प्रकारकी लीलाओंको करनेवाला वह बालक आनन्दपूर्वक निर्भय हो वहींपर स्थित हो गया। उसी समय कृत्तिका नामवाली छः स्त्रियाँ वहाँ स्नानके लिये आयीं और उन्होंने प्रभावशाली उस बालकको देखा। हे मुने! उन सभी कृत्तिकाओंने उस बालकको ग्रहण करना चाहा, उसी समय ग्रहण करनेकी इच्छासे उनमें परस्पर विवाद होने लगा॥ २८—३०॥

तद् वादशमनार्थं स षण्मुखानि चकार ह।
पपौ दुग्धं च सर्वासां तुष्टास्ता अभवन्मुने॥ ३१

तन्मनोगतिमाज्ञाय सर्वास्ताः कृत्तिकास्तदा।
तमादाय ययुर्लोकं स्वकीयं मुदिता मुने॥ ३२

हे मुने! उनके विवादका शमन करनेके लिये उस बालकने छः मुख बना लिये और उन सबका स्तनपान किया, जिससे वे परम प्रसन्न हो उठीं। हे मुने! फिर उस बालकके मनकी गति जानकर वे सभी कृत्तिकाएँ प्रसन्नतासे उसे लेकर अपने लोक चली गयीं॥ ३१-३२॥

तं बालकं कुमाराख्यं स्तनं दत्त्वा स्तनार्थिने।
वर्द्धयामासुरीशस्य सुतं सूर्याधिकप्रभम्॥ ३३

न चक्रुर्बालकं याश्च लोचनानामगोचरम्।
प्राणेभ्योऽपि प्रेमपात्रं यः पोष्टा तस्य पुत्रकः॥ ३४

उन्होंने सूर्यसे भी अधिक तेजस्वी तथा स्तनपानकी इच्छा करनेवाले उस कुमार नामवाले बालक शिवपुत्रको अपना दूध पिलाकर बड़ा किया। वे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय उस बालकको कभी आँखोंकी ओट न करतीं, जो पोषण करता है, उसीका वह पुत्र होता है॥ ३३-३४॥

यानि यानि च वस्त्राणि त्रैलोक्ये दुर्लभानि च।
ददुस्तस्मै च ताः प्रेम्णा भूषणानि वराणि वै॥ ३५

दिने दिने ताः पुपुषुर्बालकं तं महाप्रभम्।
प्रशंसितानि स्वादूनि भोजयित्वा विशेषतः॥ ३६

जो-जो वस्त्र एवं आभूषण इस त्रैलोक्यमें दुर्लभ हैं, उन सभी वस्त्रों एवं श्रेष्ठ भूषणोंको प्रेमसे वे उस बालकको प्रदान करतीं। इसी प्रकार वे अत्यन्त प्रशंसाके योग्य, दुर्लभ एवं स्वादिष्ट अन्नोंको प्रतिदिन खिला-खिलाकर उस बालकको पुष्ट करने लगीं॥ ३५-३६॥

अथैकस्मिन् दिने तात स बालः कृत्तिकात्मजः।
गत्वा देवसभां दिव्यां सुचरित्रं चकार ह॥ ३७

स्वमहो दर्शयामास देवेभ्यो हि महाद्भुतम्।
सविष्णुभ्योऽखिलेभ्यश्च महोतिकरबालकः॥ ३८

हे तात! इसके बाद एक दिन कृत्तिकाओंके उस पुत्रने दिव्य देवसभामें जाकर बड़ा सुन्दर चरित्र किया और महान् लीला करनेवाला वह बालक सम्पूर्ण देवताओंसहित विष्णुको अपना महान् अद्भुत ऐश्वर्य दिखाने लगा॥ ३७-३८॥

तं दृष्ट्वा सकलास्ते वै साच्युताः सर्षयः सुराः।
विस्मयं प्रापुरत्यन्तं पप्रच्छुस्तं च बालकम्॥ ३९

को भवानिति तच्छ्रुत्वा न किंचित्स जगाद ह।
स्वालयं स जगामाशु गुप्तस्तस्थौ हि पूर्ववत्॥ ४०

उसकी इस महिमाको देखकर विष्णुसहित अन्य देवगण तथा ऋषि अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये और उस बालकसे पूछने लगे कि हे बालक! तुम कौन हो? उनकी बात सुनकर उस बालकने कुछ भी नहीं कहा और वह शीघ्र ही अपने घर चला गया और पूर्ववत् गुप्तरूपसे रहने लगा॥ ३९-४०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे कार्तिकेयलीलावर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें कार्तिकेयकी लीलाका वर्णन नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

पार्वतीके कहनेपर शिवद्वारा देवताओं तथा कर्मसाक्षी धर्मादिकोंसे कार्तिकेयके विषयमें जिज्ञासा करना और अपने गणोंको कृत्तिकाओंके पास भेजना, नन्दिकेश्वर तथा कार्तिकेयका वार्तालाप, कार्तिकेयका कैलासके लिये प्रस्थान

नारद उवाच

देवदेव प्रजानाथ ततः किमभवद्विधे।
वदेदानीं कृपातस्तु शिवलीलासमन्वितम्॥ १

नारदजी बोले—हे देवाधिदेव! हे प्रजानाथ! हे विधे! इसके अनन्तर फिर क्या हुआ, आप इस समय कृपा करके शिवजीकी लीलासे युक्त इस चरित्रको कहिये॥ १॥

ब्रह्मोवाच

कृत्तिकाभिर्गृहीते वै तस्मिन् शंभुसुते मुने।
कश्चित्कालो व्यतीयाय बुबुधे न हिमाद्रिजा॥ २

तस्मिन्नवसरे दुर्गा स्मेराननसरोरुहा।
उवाच स्वामिनं शंभुं देवदेवेश्वरं प्रभुम्॥ ३

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इस प्रकार शिवपुत्रको ग्रहणकर उन्हें अपना पुत्र मानते हुए कृत्तिकाओंका कुछ काल व्यतीत हो गया, पर पार्वतीको यह समाचार ज्ञात न हुआ। उस समय पार्वतीने मन्द मुसकानयुक्त हँसते हुए अपने मुखकमलसे देवदेवेश्वर स्वामी श्रीसदाशिवसे कहा—॥ २-३॥

पार्वत्युवाच

देवदेव महादेव शृणु मे वचनं शुभम्।
पूर्वपुण्यातिभारेण त्वं मया प्राप्त ईश्वरः॥ ४

पार्वतीजी बोलीं—हे देवाधिदेव! हे महादेव! आप मेरे शुभ वचनको सुनिये। मेरे पूर्वजन्मके अत्यन्त पुण्य-प्रभावसे आप ईश्वर मुझे पतिरूपसे प्राप्त हुए हैं॥ ४॥

कृपया योगिषु श्रेष्ठो विहारैस्तत्परोऽभवः।
रतिभंगः कृतो देवैस्तत्र मे भवता भव॥ ५

भूमौ निपतितं वीर्यं नोदरे मम ते विभो।
कुत्र यातं च तद्देव केन देवेन निह्नुतम्॥ ६

कथं मत्स्वामिनो वीर्यममोघं ते महेश्वर।
मोघं यातं च किं किं वा शिशुर्जातश्च कुत्रचित्॥ ७

ब्रह्मोवाच

पार्वतीवचनं श्रुत्वा प्रहस्य जगदीश्वरः।
उवाच देवानाहूय मुनींश्चापि मुनीश्वर॥ ८

महेश्वर उवाच

देवाः शृणुत मद्वाक्यं पार्वतीवचनं श्रुतम्।
अमोघं कुत्र मे वीर्यं यातं केन च निह्नुतम्॥ ९

सभयं नाप तत्क्षिप्रं स चेद्दंडं न चार्हति।
शक्तौ राजा न शास्ता यः प्रजाबाध्यश्च भक्षकः॥ १०

ब्रह्मोवाच

शंभोस्तद्वचनं श्रुत्वा समालोच्य परस्परम्।
ऊचुः सर्वे क्रमेणैव त्रस्तास्तु पुरतः प्रभोः॥ ११

विष्णुरुवाच

ते मिथ्यावादिनः सन्तु भारते गुरुदारिकाः।
गुरुनिन्दारताः शश्वत्त्वद्वीर्यं यैश्च निह्नुतम्॥ १२

ब्रह्मोवाच

त्वद्वीर्यं निह्नुतं येन पुण्यक्षेत्रे च भारते।
स नाऽन्वितो भवेत्तत्र सेवने पूजने तव॥ १३

लोकपाला ऊचुः

त्वद्वीर्यं निह्नुतं येन पापिना पतितभ्रमात्।
भाजनं तस्य सोऽत्यन्तं तत्तापं कर्म संततम्॥ १४

देवा ऊचुः

कृत्वा प्रतिज्ञां यो मूढो नाऽऽपादयति पूर्णताम्।
भाजनं तस्य पापस्य त्वद्वीर्यं येन निह्नुतम्॥ १५

हे भव! योगियोंमें श्रेष्ठ आप मेरे साथ विहारमें प्रवृत्त हुए थे, उस समय देवताओंके साथ आपने मेरी रतिको भंग कर दिया था। हे विभो! आपका वह तेज मेरे उदरमें न जाकर पृथ्वीपर गिरा। हे देव! फिर वह तेज कहाँ गया? उसे किस देवताने छिपा लिया?॥ ५-६॥

हे महेश्वर! मेरे स्वामी! आपका वह तेज तो अमोघ है, कैसे व्यर्थ हो गया अथवा उससे कोई बालक कहीं प्रकट हुआ?॥ ७॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! पार्वतीजीकी यह बात सुनकर महेश्वर हँसने लगे और पुनः उन्होंने मुनियों और देवताओंको बुलाकर कहा—॥ ८॥

महेश्वर बोले—देवगणो! आपने पार्वतीके द्वारा कहे हुए वचनको सुना, अब मेरी बात सुनिये। कभी न निष्फल होनेवाला मेरा तेज कहाँ गया और किसने छिपा लिया? जो शीघ्र ही बता देगा, उसे कोई भय नहीं है और वह दण्डनीय नहीं होगा। शक्ति होनेपर जो राजा अच्छी प्रकारसे शासन नहीं करता, वह प्रजाका बाधक है और रक्षक न होकर भक्षक ही कहलाता है॥ ९-१०॥

ब्रह्माजी बोले—शिवजीकी बात सुनकर देवगण भयभीत हो गये और परस्पर विचारकर शिवजीके आगे क्रमशः कहने लगे॥ ११॥

विष्णुजी बोले—[हे सदाशिव!] जिन्होंने आपके तेजको छिपाया है, वे मिथ्यावादी हों और भारतमें जन्म लेकर गुरुपत्नीगमन तथा गुरुनिन्दाके पापके निरन्तर भागी बनें॥ १२॥

ब्रह्माजी बोले—जिसने आपके तेजको छिपाया है, वह पुण्यक्षेत्र इस भारतमें आपकी सेवा तथा पूजाका अधिकारी न हो॥ १३॥

लोकपालोंने कहा—जिस पापीने पतित होनेके भ्रमसे आपके तेजको छिपाया है, वह चोरीके पापका भाजन बने और अपने कर्मसे सदैव दुःखको प्राप्त करता रहे॥ १४॥

देवता बोले—जो मूर्ख प्रतिज्ञा करके अपनी प्रतिज्ञाका परिपालन नहीं करता, वह उस प्रतिज्ञाभंगके पापका भाजन बनता है, वही पाप उसे लगे, जिसने आपके तेजको छिपाया है॥ १५॥

देवपत्न्य ऊचुः

या निन्दति स्वभर्तारं परं गच्छति पूरुषम्।
मातृबन्धुविहीना च त्वद्वीर्यं निह्नुतं यया॥ १६

देवपत्नियाँ बोलीं—जो स्त्री अपने स्वामीकी निन्दा करती है और परपुरुषके साथ सम्बन्ध बनाती है, वह अपने माता-पिता तथा बन्धुओंसे विहीन होकर उस पापको प्राप्त करे, जिसने आपके तेजको छिपाया है॥ १६॥

ब्रह्मोवाच

देवानां वचनं श्रुत्वा देवदेवेश्वरो हरः।
कर्मणां साक्षिणश्चाह धर्मादीन्सभयं वचः॥ १७

ब्रह्माजी बोले—देवाधिदेव महेश्वरने देवताओंके वचन सुनकर कर्मके साक्षीभूत धर्मादि देवगणोंको भयभीत करते हुए कहा—॥ १७॥

श्रीशिव उवाच

देवैर्न निह्नुतं केन तद्वीर्यं निह्नुतं ध्रुवम्।
तदमोघं भगवतो महेशस्य मम प्रभोः॥ १८

यूयं च साक्षिणो विश्वे सततं सर्वकर्मणाम्।
युष्माकं निह्नुतं किं वा किं ज्ञातुं वक्तुमर्हथ॥ १९

श्रीशिवजी बोले—[हे धर्मादि देवगणो!] यदि मेरे तेजको देवगणोंने नहीं छिपाया है, तो बताओ कि मेरे तेजको किसने छिपाया है? मुझ प्रभु महेश्वरका वह तेज तो अमोघ है। आपलोग तो संसारमें सभीके कर्मके सतत साक्षी हैं, आपलोगोंसे कोई बात छिपी नहीं रह सकती, आप उसे जानने तथा कहनेमें समर्थ हैं॥ १८-१९॥

ब्रह्मोवाच

ईश्वरस्य वचः श्रुत्वा सभायां कंपिताश्च ते।
परस्परं समालोक्य क्रमेणोचुः पुरः प्रभोः॥ २०

ब्रह्माजी बोले—उस देवसभामें सदाशिवकी बात सुनते ही वे धर्म आदि काँप उठे और परस्पर एक-दूसरेकी ओर देखते हुए उन लोगोंने शंकरजीसे कहा—॥ २०॥

रते तु तिष्ठतो वीर्यं पपात वसुधातले।
मया ज्ञातममोघं तच्छंकरस्य प्रकोपतः॥ २१

भगवान् शंकरका रतिकालमें भी स्थित रहनेवाला तेज कोपके कारण पृथ्वीपर गिरा, वह अमोघ है, यह मुझे अच्छी तरह ज्ञात है॥ २१॥

क्षितिरुवाच

वीर्यं सोढुमशक्ताहं तद्वह्नौ न्यक्षिपं पुरा।
अतोऽत्र दुर्वहं ब्रह्मन्नबलां क्षन्तुमर्हसि॥ २२

पृथ्वी बोली—मैंने उस असहनीय तेजको धारण करनेमें अपनेको असमर्थ पाकर अग्निको सौंप दिया। अतः हे ब्रह्मन्! आप इसके लिये मुझ अबलाको क्षमा करें॥ २२॥

वह्निरुवाच

वीर्यं सोढुमशक्तोऽहं तव शंकर पर्वते।
कैलासे न्यक्षिपं सद्यः कपोतात्मा सुदुस्सहम्॥ २३

अग्नि बोले—हे शंकर! मैं कपोतरूपसे आपका तेज धारण करनेमें असमर्थ था, इसलिये मैंने उस दुस्सह तेजको कैलास पर्वतपर त्याग दिया॥ २३॥

गिरिरुवाच

वीर्यं सोढुमशक्तोऽहं तव शंकर लोकप।
गंगायां प्राक्षिपं सद्यो दुस्सहं परमेश्वर॥ २४

पर्वत [हिमालय] बोले—हे लोकरक्षक परमेश्वर शंकर! आपके उस असह्य तेजको धारण करनेमें असमर्थ होनेके कारण मैंने उसे शीघ्र गंगाजीमें फेंक दिया॥ २४॥

गंगोवाच

वीर्यं सोढुमशक्ताहं तव शंकर लोकप।
व्याकुलाऽति प्रभो नाथ न्यक्षिपं शरकानने॥ २५

गंगाजी बोलीं—हे लोकपालक शंकर! मैं भी आपका तेज सहन करनेमें असमर्थ हो गयी, तब हे नाथ! व्याकुल होकर मैंने उसे सरपतके वनमें छोड़ दिया॥ २५॥

वायुरुवाच

शरेषु पतितं वीर्यं सद्यो बालो बभूव ह।
अतीव सुन्दरः शम्भो स्वर्नद्याः पावने तटे॥ २६

सूर्य उवाच

रुदन्तं बालकं दृष्ट्वागममस्ताचलं प्रभो।
प्रेरितः कालचक्रेण निशायां स्थातुमक्षमः॥ २७

चन्द्र उवाच

रुदन्तं बालकं प्राप्य गृहीत्वा कृत्तिकागणः।
जगाम स्वालयं शंभो गच्छन्बदरिकाश्रमम्॥ २८

जलमुवाच

अमुं रुदन्तमानीय स्तन्यपानेन ताः प्रभो।
वर्द्धयामासुरीशस्य सुतं तव रविप्रभम्॥ २९

संध्योवाच

अधुना कृत्तिकानां च वने तं पोष्य पुत्रकम्।
तन्नाम चक्रुस्ताः प्रेम्णा कार्त्तिकश्चेति कौतुकात्॥ ३०

रात्रिरुवाच

न चक्रुर्बालकं ताश्च लोचनानामगोचरम्।
प्राणेभ्योऽपि प्रीतिपात्रं यः पोष्टा तस्य पुत्रक॥ ३१

दिनमुवाच

यानि यानि च वस्त्राणि भूषणानि वराणि च।
प्रशंसितानि स्वादूनि भोजयामासुरेव तम्॥ ३२

ब्रह्मोवाच

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा संतुष्टः पुरसूदनः।
मुदं प्राप्य ददौ प्रीत्या विप्रेभ्यो बहुदक्षिणाम्॥ ३३

पुत्रस्य वार्त्तां संप्राप्य पार्वती हृष्टमानसा।
कोटिरत्नानि विप्रेभ्यो ददौ बहुधनानि च॥ ३४

लक्ष्मी सरस्वती मेना सावित्री सर्वयोषितः।
विष्णुः सर्वे च देवाश्च ब्राह्मणेभ्यो ददुर्धनम्॥ ३५

प्रेरितः स प्रभुर्देवैर्मुनिभिः पर्वतैरथ।
दूतान् प्रस्थापयामास स्वपुत्रो यत्र तान् गणान्॥ ३६

वायु बोले—हे शम्भो! गंगाके पावन तटपर सरपतके वनमें गिरा हुआ वह तेज तत्काल अत्यन्त सुन्दर बालक हो गया॥ २६॥

सूर्य बोले—हे प्रभो! रोते हुए उस बालकको देखकर कालचक्रसे प्रेरित हुआ मैं वहाँ ठहरनेमें असमर्थ होनेके कारण अस्ताचलको चला गया॥ २७॥

चन्द्रमा बोले—हे शंकर! रोते हुए बालकको देखकर बदरिकाश्रमकी ओर जाती हुई कृत्तिकाएँ उसे अपने घर ले गयीं॥ २८॥

जल बोला—हे प्रभो! सूर्यके समान प्रभावाले अत्यन्त तेजस्वी आपके रोते हुए बालकको कृत्तिकाओंने अपना स्तनपान कराकर बड़ा किया है॥ २९॥

सन्ध्या बोली—उन कृत्तिकाओंने आपके पुत्रका पालन-पोषण करके कौतुकके साथ बड़े प्रेमसे उसका नाम कार्तिक रखा॥ ३०॥

रात्रि बोली—वे कृत्तिकाएँ प्राणोंसे भी अधिक प्रिय उस बालकको अपने नेत्रोंसे कभी ओझल नहीं करती हैं, जो पोषण करनेवाला होता है, उसीका वह (पोष्य) पुत्र होता है॥ ३१॥

दिन बोला—पृथ्वीपर प्रशंसाके योग्य जितने श्रेष्ठ वस्त्र एवं आभूषण हैं, उन्हें वे पहनाती हैं और स्वादिष्ट भोजन कराती हैं॥ ३२॥

ब्रह्माजी बोले—उन सबोंकी बातोंको सुनकर त्रिपुरसूदन शिवजी परम प्रसन्न हो गये और उन्होंने आनन्दित होकर प्रेमपूर्वक ब्राह्मणोंको बहुत-सी दक्षिणा दी॥ ३३॥

पुत्रका समाचार सुनकर पार्वती अत्यधिक प्रसन्न हुईं और उन्होंने ब्राह्मणोंको करोड़ों रत्न तथा बहुत-सा धन दक्षिणाके रूपमें दिया। लक्ष्मी, सरस्वती, मेना, सावित्री आदि सभी स्त्रियोंने तथा विष्णु आदि सभी देवताओंने ब्राह्मणोंको बहुत धन प्रदान किया॥ ३४-३५॥

देवताओं, मुनियों एवं पर्वतोंसे प्रेरित होकर उन भगवान् शिवने अपने गणों तथा दूतोंको वहाँ भेजा, जहाँ उनका पुत्र था॥ ३६॥

वीरभद्रं विशालाक्षं शंकुकर्णं कराक्रमम्।
नन्दीश्वरं महाकालं वज्रदंष्ट्रं महोन्मदम्॥ ३७
गोकर्णास्यं दधिमुखं ज्वलदग्निशिखोपमम्।
लक्षं च क्षेत्रपालानां भूतानां च त्रिलक्षकम्॥ ३८
रुद्रांश्च भैरवांश्चैव शिवतुल्यपराक्रमान्।
अन्यांश्च विकृताकारानसंख्यानपि नारद॥ ३९

हे नारद! उन्होंने वीरभद्र, विशालाक्ष, शंकुकर्ण, कराक्रम, नन्दीश्वर, महाकाल, वज्रदंष्ट्र, महोन्मद, गोकर्णास्य, अग्निके समान प्रज्वलित मुखवाले दधिमुख, लक्षसंख्यक क्षेत्रपाल तथा तीन लाख भूतों, शिवजीके समान पराक्रमवाले रुद्रों और भैरवों तथा अन्य असंख्य विकृत आकारवाले गणोंको वहाँ भेजा॥ ३७—३९॥

ते सर्वे शिवदूताश्च नानाशस्त्रास्त्रपाणयः।
कृत्तिकानां च भवनं वेष्टयामासुरुद्धताः॥ ४०

नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित उद्धत उन सभी शिवगणोंने कृत्तिकाओंके भवनको घेर लिया॥ ४०॥

दृष्ट्वा तान् कृत्तिकाः सर्वा भयविह्वलमानसाः।
कार्त्तिकं कथयामासुर्ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा॥ ४१

उन गणोंको देखकर कृत्तिकाएँ भयके मारे व्याकुल हो उठीं। तब उन्होंने ब्रह्मतेजसे जाज्वल्यमान कार्तिकसे कहा—॥ ४१॥

कृत्तिका ऊचुः

वत्स सैन्यान्यसंख्यानि वेष्टयामासुरालयम्।
किं कर्तव्यं क्व गन्तव्यं महाभयमुपस्थितम्॥ ४२

कृत्तिकाएँ बोलीं—हे वत्स! असंख्य सेनाओंने हमारे घरको घेर लिया है। क्या करना चाहिये? कहाँ जाना चाहिये? महाभय उपस्थित हो गया है॥ ४२॥

कार्तिकेय उवाच

भयं त्यजत कल्याण्यो भयं किं वा मयि स्थिते।
दुर्निवार्योऽस्मि बालश्च मातरः केन वार्यते॥ ४३

कार्तिकेय बोले—हे कल्याणकारिणी माताओ! आपलोग भयभीत न हों। मेरे रहते भय करनेका कोई कारण नहीं है। हे माताओ! मैं यद्यपि अभी बालक हूँ, पर अजेय हूँ। इस जगत्‌में मुझे जीतनेवाला कौन है?॥ ४३॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र सैन्येन्द्रो नन्दिकेश्वरः।
पुरतः कार्तिकेयस्योपविष्टः समुवाच ह॥ ४४

ब्रह्माजी बोले—उसी समय सेनापति नन्दिकेश्वर कार्तिकेयजीके सामने जाकर बैठ गये और बोले—॥ ४४॥

नन्दीश्वर उवाच

भ्रातः प्रवृत्तिं शृणु मे मातरश्च शुभावहाम्।
प्रेरितोऽहं महेशेन संहर्त्रा शंकरेण च॥ ४५
कैलासे सर्वदेवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
सभायां संस्थितास्तात महत्युत्सवमंगले॥ ४६
तदा शिवा सभायां वै शंकरं सर्वशंकरम्।
सम्बोध्य कथयामास तवान्वेषणहेतुकम्॥ ४७

नन्दीश्वर बोले—हे भाई! हे माताओ! जिस कारणसे हम यहाँ आये हैं, वह मंगलमय वृत्तान्त मुझसे सुनें, जगत्‌के संहार करनेवाले महेश्वरसे प्रेरित होकर मैं आपके पास आया हूँ। हे तात! कैलास पर्वतमें महान् मंगलदायी उत्सवमें सभामें ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा सभी देवता विद्यमान थे। उस समय सभामें भगवती पार्वतीने लोककल्याणकारी भगवान् शंकरको सम्बोधित करते हुए उनसे तुम्हारा पता लगानेके लिये कहा॥ ४५—४७॥

पप्रच्छ तान् शिवो देवान् क्रमात्त्वत्प्राप्तिहेतवे।
प्रत्युत्तरं ददुस्ते तु प्रत्येकं च यथोचितम्॥ ४८

शंकरने उन सभी देवताओंसे क्रमशः तुम्हारी प्राप्तिका उपाय पूछा। उनमेंसे प्रत्येकने यथोचित उत्तर दिया॥ ४८॥

त्वामत्र कृत्तिकास्थाने कथयामासुरीश्वरम्।
सर्वे धर्मादयो धर्माधर्मस्य कर्मसाक्षिणः॥ ४९

उसके बाद धर्म एवं अधर्मके तथा कर्मके साक्षीभूत सभी धर्मादि देवताओंने भगवान् शंकरको कृत्तिकाओंके घरमें तुम्हारा विराजमान होना बताया॥ ४९॥

प्रबभूव रहः क्रीडा पार्वतीशिवयोः पुरा।
दृष्टस्य च सुरैः शंभोर्वीर्यं भूमौ पपात ह॥ ५०

पूर्वकालमें शिव एवं पार्वतीका एकान्त स्थानमें विहार होता रहा। फिर देवताओंके द्वारा अवलोकन करनेपर उन शिवजीका तेज पृथ्वीपर गिर गया॥ ५०॥

भूमिस्तदक्षिपद्वह्नौ वह्निश्चाद्रौ स भूधरः।
गंगायां सोऽक्षिपद्वेगात् तरंगैः शरकानने॥ ५१

तत्र बालोऽभवस्त्वं हि देवकार्यकृतिः प्रभुः।
तत्र लब्धः कृत्तिकाभिस्त्वं भूमिं गच्छ सांप्रतम्॥ ५२

भूमिने उसे अग्निमें, अग्निने गिरिराज हिमालयमें और हिमालयने उसे गंगामें फेंक दिया। उसके बाद गंगाने अपनी तरंगोंसे उसे शीघ्रतापूर्वक सरपतके वनमें फेंक दिया। उस तेजसे देवताओंका कार्य करनेके लिये समर्थ तुम उत्पन्न हुए हो। कृत्तिकाओंने तुम्हें वहाँ प्राप्त किया। अतः इस समय तुम पृथ्वीपर चलो॥ ५१-५२॥

तवाभिषेकं शंभुस्तु करिष्यति सुरैः सह।
लप्स्यसे सर्वशस्त्राणि तारकाख्यं हनिष्यसि॥ ५३

भगवान् शंकर देवगणोंके सहित तुम्हारा अभिषेक करेंगे, तुम सम्पूर्ण शस्त्रास्त्र प्राप्त करोगे और तारक नामक असुरका वध करोगे॥ ५३॥

पुत्रस्त्वं विश्वसंहर्त्तुस्त्वां प्राप्तुं चाऽक्षमा इमाः।
नाग्निं गोप्तुं यथा शक्तः शुष्कवृक्षः स्वकोटरे॥ ५४

तुम विश्वके संहर्ता शिवजीके पुत्र हो। ये कृत्तिकाएँ आपको (पुत्रके रूपमें) प्राप्त करनेमें उसी प्रकार असमर्थ हैं, जैसे सूखा हुआ वृक्ष अपने कोटरमें अग्निको छिपानेमें समर्थ नहीं होता॥ ५४॥

दीप्तवांस्त्वं च विश्वेषु नासां गेहेषु शोभसे।
यथा पतन्महाकूपे द्विजराजो न राजते॥ ५५

तुम सारे संसारमें प्रकाशित हो, इन कृत्तिकाओंके घरमें रहनेसे तुम्हारी शोभा उसी प्रकार नहीं है, जैसे द्विजराज चन्द्रमा कूपके अन्दर रहकर प्रकाशित नहीं होता॥ ५५॥

करोषि च यथाऽऽलोकं नाऽऽच्छन्नोऽस्मासु तेजसा।
यथा सूर्यः कलाच्छन्नो न भवेन्मानवस्य च॥ ५६

जैसे मनुष्यके तेजसे सूर्यके तेजको छिपाया नहीं जा सकता है, उसी प्रकार जैसे तुम प्रकाश कर रहे हो, उसे हमलोगोंका तेज छिपा नहीं सकता॥ ५६॥

विष्णुस्त्वं जगतां व्यापी नान्यो जातोऽसि शांभव।
यथा न केषां व्याप्यं च तत्सर्वं व्यापकं नभः॥ ५७

हे शम्भुपुत्र! तुम अन्य कोई उत्पन्न नहीं हुए हो, सारे संसारको व्याप्तकर स्थित रखनेवाले विष्णु ही हो। जैसे आकाश व्यापक है, किसीका व्याप्य नहीं है, इसी प्रकार तुम भी किसीके व्याप्य नहीं हो, अपितु व्यापक हो॥ ५७॥

योगीन्द्रो नाऽनुलिप्तश्च भागी चेत्परिपोषणे।
नैव लिप्तो यथात्मा च कर्मयोगेषु जीविनाम्॥ ५८

जैसे कर्मयोगियोंका आत्मा उन कर्मोंसे निर्लिप्त रहता है, इसी प्रकार तुम भी परिपोषणके भागी होनेपर भी योगीन्द्र होनेके कारण निर्लिप्त हो॥ ५८॥

विश्वारंभस्त्वमीशश्च नासु ते संभवेत् स्थितिः।
गुणानां तेजसां राशिर्यथात्मानं च योगिनः॥ ५९

तुम इस विश्वसृष्टिके कर्ता तथा ईश्वर हो, परंतु इनमें तुम्हारी स्थिति उसी प्रकार नहीं रहती, जिस प्रकार योगीकी आत्मामें गुण और तेजकी राशि स्थित नहीं रहती॥ ५९॥

भ्रातर्ये त्वां न जानन्ति ते नरा हतबुद्धयः।
नाद्रियन्ते यथा भेकास्त्वेकवासाश्च पंकजान्॥ ६०

हे भाई! कमलोंका आदर न करनेवाले सहवासी मेढकोंकी भाँति वे मनुष्य हतबुद्धि हैं, जो आपको तत्त्वतः नहीं जानते॥ ६०॥

कार्तिकेय उवाच

भ्रातः सर्वं विजानासि ज्ञानं त्रैकालिकं च यत्।
ज्ञानी त्वं का प्रशंसा ते यतो मृत्युञ्जयाश्रितः॥ ६१

कर्मणां जन्म येषां वा यासु यासु च योनिषु।
तासु ते निर्वृतिं भ्रातः प्राप्नुवंतीह सांप्रतम्॥ ६२

कृत्तिकाज्ञानवत्यश्च योगिन्यः प्रकृतेः कलाः।
स्तन्येनासां वर्द्धितोऽहमुपकारेण संततम्॥ ६३

कार्तिकेय बोले—हे भाई! जो त्रैकालिक ज्ञान है, वह सब कुछ आप जानते हैं; आप मृत्युंजय भगवान् सदाशिवके सेवक हैं, इसलिये आपकी प्रशंसा जितनी भी की जाय, थोड़ी है। हे भ्रातः! कर्मवश जिन लोगोंका जिन-जिन योनियोंमें जन्म होता है, उन-उन योनियोंके भोगोंमें उनको सुख प्राप्त होता है। ये सभी कृत्तिकाएँ ज्ञानवती हैं, योगिनी हैं और प्रकृतिकी कलाएँ हैं। इन्होंने अपना दूध पिलाकर मुझे बड़ा बनाया है। इसलिये मेरे ऊपर निरन्तर इनका महान् उपकार है॥ ६१—६३॥

आसामहं पोष्यपुत्रो मदंशा योषितस्त्विमाः।
तस्याश्च प्रकृतेरंशास्ततस्तत्स्वामिवीर्यजः॥ ६४

मैं इनका पोष्य पुत्र हूँ, ये स्त्रियाँ मुझसे सम्बद्ध हैं, मैं जिस प्रकृतिके स्वामीके तेजसे उत्पन्न हुआ हूँ, ये उसी प्रकृतिकी कलाएँ हैं॥ ६४॥

न मद्भवो ह शैलेन्द्रकन्यया नन्दिकेश्वर।
सा च मे धर्मतो माता यथेमाः सर्वसंमताः॥ ६५

हे नन्दिकेश्वर! शैलेन्द्रकन्या पार्वतीसे मेरा जन्म नहीं हुआ है, वे उसी प्रकार मेरी धर्ममाता हैं, जिस प्रकार कृत्तिकाएँ सर्वसम्मतिसे मेरी माता हैं॥ ६५॥

शम्भुना प्रेषितस्त्वं च शंभोः पुत्रसमो महान्।
आगच्छामि त्वया सार्द्धं द्रक्ष्यामि देवताकुलम्॥ ६६

आप महान् हैं, शिवजीके पुत्रके समान हैं और मुझे लानेके लिये उन्होंने आपको भेजा है। इसलिये मैं भी आपके साथ चलूँगा और देवताओंका दर्शन करूँगा॥ ६६॥

इत्येवमुक्त्वा तं शीघ्रं संबोध्य कृत्तिकागणम्।
कार्त्तिकेयः प्रतस्थे हि सार्द्धं शंकरपार्षदैः॥ ६७

इस प्रकार कहकर कृत्तिकाओंसे आज्ञा लेकर वे कार्तिकेय शंकरके उन गणोंके साथ शीघ्र चल पड़े॥ ६७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे कार्त्तिकेयान्वेषणनन्दिसंवादवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें कार्तिकेयका अन्वेषण तथा नन्दिसंवादवर्णन नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

पार्वतीके द्वारा प्रेषित रथपर आरूढ़ हो कार्तिकेयका कैलासगमन, कैलासपर महान् उत्सव होना, कार्तिकेयका महाभिषेक तथा देवताओंद्वारा विविध अस्त्र-शस्त्र तथा रत्नाभूषण प्रदान करना, कार्तिकेयका ब्रह्माण्डका अधिपतित्व प्राप्त करना

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र ददर्श रथमुत्तमम्।
अद्भुतं शोभितं शश्वद्विश्वकर्मविनिर्मितम्॥ १

शतचक्रं सुविस्तीर्णं मनोयायि मनोहरम्।
प्रस्थापितं च पार्वत्या वेष्टितं पार्षदैर्वरैः॥ २

ब्रह्माजी बोले—उसी समय विश्वकर्माद्वारा विरचित अत्यन्त अद्भुत तथा शाश्वत शोभासे समन्वित एक रथ दिखायी पड़ा। उस रथमें सौ पहिये थे, वह बड़ा विस्तीर्ण और सुन्दर था, उसकी गति मनके समान वेगवाली थी, वह श्रेष्ठ रथ शिवजीके पार्षदोंसे घिरा हुआ था। पार्वतीजीने उसे भेजा था॥ १-२॥

समारोहत्ततोऽनंतो हृदयेन विदूयता।
कार्त्तिकः परमज्ञानी परमेशानवीर्यजः॥ ३

तदैव कृत्तिकाः प्राप्य मुक्तकेश्यः शुचाऽऽतुराः।
उन्मत्ता इव तत्रैव वक्तुमारेभिरे वचः॥ ४

कृत्तिका ऊचुः

विहायाऽस्मान् कृपासिन्धो गच्छसि त्वं हि निर्दयः।
नायं धर्मो मातृवर्गान् पालितो यत् सुतस्त्यजेत्॥ ५

स्नेहेन वर्द्धितोऽस्माभिः पुत्रोऽस्माकं च धर्मतः।
किं कुर्मः क्व च यास्यामो वयं किं करवाम ह॥ ६

इत्युक्त्वा कृत्तिकाः सर्वाः कृत्वा वक्षसि कार्त्तिकम्।
द्रुतं मूर्च्छामवापुस्ताः सुतविच्छेदकारणात्॥ ७

ताः कुमारो बोधयित्वा अध्यात्मवचनेन वै।
ताभिश्च पार्षदैः सार्द्धमारुरोह रथं मुने॥ ८

दृष्ट्वा श्रुत्वा मंगलानि बहूनि सुखदानि वै।
कुमारः पार्षदैः सार्द्धं जगाम पितृमन्दिरम्॥ ९

दक्षेण नंदियुक्तश्च मनोयायिरथेन च।
कुमारः प्राप कैलासं न्यग्रोधाऽक्षयमूलके॥ १०

तत्र तस्थौ कृत्तिकाभिः पार्षदप्रवरैः सह।
कुमारः शांकरिः प्रीतो नानालीलाविशारदः॥ ११

तदा सर्वे सुरगणा ऋषयः सिद्धचारणाः।
विष्णुना ब्रह्मणा सार्द्धं समाचख्युस्तदागमम्॥ १२

तदा दृष्ट्वा च गांगेयं ययौ प्रमुदितश्शिवः।
अन्यैः समेतो हरिणा ब्रह्मणा च सुरर्षिभिः॥ १३

शंखाश्च बहवो नेदुर्भेरी तूर्याण्यनेकशः।
उत्सवः सुमहानासीद्देवानां तुष्टचेतसाम्॥ १४

तदानीमेव तं सर्वे वीरभद्रादयो गणाः।
कुर्वन्तः स्वन्वयुः केलिं नानातालधरस्वराः॥ १५

स्तावकाः स्तूयमानाश्च चक्रुस्ते गुणकीर्त्तनम्।
जयशब्दं नमश्शब्दं कुर्वाणाः प्रीतमानसाः॥ १६

द्रष्टुं ययुस्तं शरजं शिवात्मजमनुत्तमम्॥ १७

परम ज्ञानी, अनन्त तथा शिवजीके तेजसे उत्पन्न कार्तिकेय दुखी मनसे उस रथपर सवार हो गये॥ ३॥

उसी समय बिखरे केशोंवाली कृत्तिकाओंने शोकसे व्याकुल हो कार्तिकेयके पास जाकर शोकोन्मादसे कहना प्रारम्भ किया—॥ ४॥

कृत्तिकाएँ बोलीं—हे कृपासिन्धो! आप हम सबको छोड़कर इस प्रकार निर्दयी होकर जा रहे हैं। पुत्रका धर्म यह नहीं है कि जिन माताओंने पालन-पोषण किया, उनका परित्यागकर वह चला जाय॥ ५॥

हमलोगोंने बड़े स्नेहसे तुम्हें बड़ा बनाया, तुम हमारे धर्मपुत्र हो, अब तुम्हीं बताओ कि हम क्या करें, कैसे रहें और कहाँ जायँ? इस प्रकार कहकर वे सभी कृत्तिकाएँ कार्तिकेयको अपने वक्षसे लगाकर पुत्रकी वियोगजन्य व्यथासे मूर्च्छित हो गयीं। तब कुमारने आध्यात्मिक वचनोंसे उन्हें समझाया। हे मुने! फिर वे उनके तथा पार्षदोंके साथ रथपर आरूढ़ हो गये॥ ६—८॥

अत्यधिक सुखदायी मंगलोंको देख तथा सुनकर कुमार कार्तिकेय पार्षदोंके साथ अपने पिताके घर गये॥ ९॥

अपने दाहिनी ओर नन्दिकेश्वरसे युक्त कुमार कार्तिकेय मनके समान वेगवाले रथसे कैलासपर्वतपर अक्षयवटवृक्षके समीप पहुँचे। विविध लीलाविशारद शंकरपुत्र कुमार कार्तिकेय उन कृत्तिकाओं तथा पार्षदोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक वहीं रुके। उसके बाद सभी देवता, ऋषिगण, सिद्ध, चारणोंने ब्रह्मा तथा विष्णुके साथ [शिवजीसे] कार्तिकेयके आनेका समाचार कहा॥ १०—१२॥

उस समय शिवजी गंगापुत्र (कार्तिकेय)-को आया हुआ देखकर विष्णु, ब्रह्मा, अन्य देवताओं तथा सुरर्षियोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक उनके पास गये॥ १३॥

उस समय शंख, भेरी आदि अनेक बाजे बजने लगे और आनन्दित हुए देवताओंके यहाँ महान् उत्सव होने लगा। उस समय वीरभद्र आदि सभी शिवगण अनेक तालपर गाना गाते तथा क्रीड़ा करते हुए शिवजीके पीछे-पीछे चले। स्तुतिपाठक स्तुतिपूर्वक गुणकीर्तन करने लगे और प्रसन्नमन होकर जय-जयकार तथा नमस्कार करने लगे और सरपतवनमें उत्पन्न हुए उस शिवजीके पुत्रको देखनेके लिये चले॥ १४—१७॥

पार्वती मंगलं चक्रे राजमार्गं मनोहरम्।
पद्मरागादिमणिभिः संस्कृतं परितः पुरम्॥ १८

पतिपुत्रवतीभिश्च साध्वीभिः स्त्रीभिरन्विताः।
लक्ष्म्यादित्रिंशद्देवीश्च पुरः कृत्वा समाययौ॥ १९

पार्वतीने राजमार्गको अनेक मांगलिक द्रव्योंसे अत्यन्त मनोहर बना दिया और पद्मराग आदि मणियोंसे पुरको चारों ओरसे अलंकृत किया। वे पति-पुत्रवाली, सुहागिन स्त्रियोंके साथ तथा लक्ष्मी आदि तीस देवियोंको आगेकर कार्तिकेयको लेने चल पड़ीं॥ १८-१९॥

रम्भाद्यप्सरसो दिव्याः सस्मिता वेषसंयुताः।
संगीतनर्तनपरा बभूवुश्च शिवाज्ञया॥ २०

ये तं समीक्षयामासुर्गांगेयं शंकरोपमम्।
ददृशुस्ते महत्तेजो व्याप्तमासीज्जगत्त्रये॥ २१

शिवजीकी आज्ञासे रम्भा आदि दिव्य अप्सराएँ सुन्दर वेशभूषासे सुसज्जित होकर मन्द-मन्द हासपूर्वक नृत्य एवं गान करने लगीं। जिन लोगोंने भगवान् शंकरके साथ गंगापुत्र कार्तिकेयको देखा, उन लोगोंको लगा कि सारे जगत्में एक बहुत बड़ा तेज व्याप्त हो रहा है॥ २०-२१॥

तत्तेजसा वृतं बालं तप्तचामीकरप्रभम्।
ववंदिरे द्रुतं सर्वे कुमारं सूर्यवर्चसम्॥ २२

जहृषुर्विनतस्कंधा नमश्शब्दरतास्तदा।
परिवार्योपतस्थुस्ते वामदक्षिणमागताः॥ २३

उस तेजसे आवृत, प्रतप्त सुवर्णके समान देदीप्यमान तथा सूर्यके समान तेजस्वी उस बालक कार्तिकेयकी सबने वन्दना की। उस बालकके सामने सभी लोग 'नमः' शब्दका उच्चारण करते हुए अपना सिर झुकाकर हर्षोल्लाससे भर गये और बायीं तथा दाहिनी ओर उन्हें घेरकर स्थित हो गये॥ २२-२३॥

अहं विष्णुश्च शक्रश्च तथा देवादयोऽखिलाः।
दण्डवत्पतिता भूमौ परिवार्य कुमारकम्॥ २४

[हे नारद!] मैंने, विष्णु एवं इन्द्रादि सभी देवताओंने कुमारको चारों ओरसे घेरकर दण्डवत् प्रणाम किया॥ २४॥

एतस्मिन्नन्तरे शंभुर्गिरिजा च मुदान्विता।
महोत्सवं समागम्य ददर्श तनयं मुदा॥ २५

हे मुने! उसी समय भगवान् शंकर तथा आनन्दसे परिपूर्ण देवी पार्वतीने प्रसन्नतापूर्वक उस महोत्सवमें आकर अपने पुत्रको देखा॥ २५॥

पुत्रं निरीक्ष्य च तदा जगदेकबंधुः
प्रीत्यान्वितः परमया परया भवान्या।
स्नेहान्वितो भुजगभोगयुतो हि साक्षात्
सर्वेश्वरः परिवृतः प्रमथैः परेशः॥ २६

जगत्के एकमात्र रक्षक, सर्पराजका भूषण धारण किये हुए तथा अपने प्रमथगणोंसे युक्त हो साक्षात् सर्वेश्वर सदाशिव पराम्बा भवानीके साथ बड़े स्नेहसे उस पुत्रको देखकर गद्गद हो प्रसन्नताको प्राप्त हुए॥ २६॥

अथ शक्तिधरः स्कन्दो दृष्ट्वा तौ पार्वतीशिवौ।
अवरुह्य रथात्तूर्णं शिरसा प्रणनाम ह॥ २७

उस समय शक्तिको धारण किये हुए कुमार स्कन्दने पार्वती एवं शिवको देखकर शीघ्रतापूर्वक रथसे उतरकर सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया॥ २७॥

उपगुह्य शिवः प्रीत्या कुमारं मूर्ध्नि शंकरः।
जघ्रौ प्रेम्णा परेशानः प्रसन्नः स्नेहकर्तृकः॥ २८

परमेश्वर भगवान् शिवने प्रसन्नतापूर्वक कुमारका आलिंगन करके प्रेमपूर्वक उनके सिरको सूँघा॥ २८॥

उपगुह्य गुहं तत्र पार्वती जातसंभ्रमा।
प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता॥ २९

तदा नीराजितो देवैः सकलत्रैर्मुदान्वितैः।
जयशब्देन महता व्याप्तमासीन्नभस्तलम्॥ ३०

पार्वतीजीने भी आश्चर्यमें पड़कर उस पुत्रको गले लगाया तथा स्नेहाधिक्यके कारण बहते हुए स्तनका दूध उसे पिलाने लगीं। प्रसन्न हो देवताओंने अपनी स्त्रियोंके साथ कुमारकी आरती उतारी, उस समय जय-जयकारकी महान् ध्वनिसे सारा आकाश-मण्डल गूँज उठा॥ २९-३०॥

ऋषयो ब्रह्मघोषेण गीतेनैव च गायकाः।
वाद्यैश्च बहवस्तत्रोपतस्थुश्च कुमारकम्॥ ३१
स्वमंकमारोप्य तदा महेशः
कुमारकं तं प्रभया समुज्ज्वलम्।
बभौ भवानीपतिरेव साक्षा-
च्छ्रियाऽन्वितः पुत्रवतां वरिष्ठः॥ ३२

अनेक ऋषियोंने वेदोंके उद्घोषसे, गायकोंने गीतसे तथा वाद्ययन्त्रोंके बजानेवालोंने वाद्योंसे कुमारका स्वागत किया। कान्तिसे देदीप्यमान अपने उस पुत्रको गोदमें धारणकर पुत्रवानोंमें श्रेष्ठ भवानीपति शंकर साक्षात् शोभासे सम्पन्न हुए॥ ३१-३२॥

कुमारः स्वगणैः सार्द्धमाजगाम शिवालयम्।
शिवाज्ञया महोत्साहैस्सह देवैर्महासुखी॥ ३३

इस प्रकार महान् उत्साहसम्पन्न देवताओं तथा अपने गणोंके साथ परम आनन्दित कुमार कार्तिकेय भगवान् शिवकी आज्ञासे शिवजीके भवनमें पधारे॥ ३३॥

दंपती तौ तदा तत्रैकपद्येन विरेजतुः।
विवंद्यमानावृषिभिरावृतौ सुरसत्तमैः॥ ३४

उस समय श्रेष्ठ देवताओं एवं ऋषियोंसे वन्दित तथा उनसे घिरे हुए वे दोनों शिवा-शिव एक साथमें परम शोभित हुए॥ ३४॥

कुमारः क्रीडयामास शिवोत्संगे मुदान्वितः।
वासुकिं शिवकंठस्थं पाणिभ्यां समपीडयत्॥ ३५

इधर कुमार भी प्रेमसे शिवजीकी गोदमें बैठकर खेलने लगे और उन्होंने उनके कण्ठमें लिपटे हुए वासुकि नागको अपने दोनों हाथोंसे दबाकर पकड़ लिया॥ ३५॥

प्रहस्य भगवान् शंभुः शशंस गिरिजां तदा।
निरीक्ष्य कृपया दृष्ट्या कृपालुर्लीलयाकृतिम्॥ ३६
मंदस्मितेन च तदा भगवान्महेशः
प्राप्तो मुदं च परमां गिरिजासमेतः।
प्रेम्णा स गद्गदगिरो जगदेकबंधु-
र्नोवाच किंचन विभुर्भुवनैकभर्त्ता॥ ३७

लीलासे युक्त कुमार कार्तिकेयको कृपादृष्टिसे देखकर कृपालु भगवान् शंकरने हँसते हुए पार्वतीसे उनकी प्रशंसा की। सर्वव्यापक, जगत्के एकमात्र पालनकर्ता तथा जगत्के एकमात्र स्वामी भगवान् महेश गिरिजाके सहित हर्षित होकर मन्द-मन्द हँसते हुए आनन्दसे विभोर हो गये, प्रेमवश गला रुँध गया और वे कुछ भी कह न सके॥ ३६-३७॥

अथ शंभुर्जगन्नाथो हृष्टो लौकिकवृत्तवान्।
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास कार्त्तिकम्॥ ३८

उसके बाद लोकवृत्तान्तको जाननेवाले जगत्पति भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर रत्नोंसे जड़े हुए रमणीय सिंहासनपर कुमार कार्तिकेयको बैठाया॥ ३८॥

वेदमंत्राभिपूतैश्च सर्वतीर्थोदपूर्णकैः।
सद्रत्नकुंभशतकैः स्नापयामास तं मुदा॥ ३९
सद्रत्नसाररचितकिरीटमुकुटांगदम्।
वैजयन्तीं स्वमालां च तस्मै चक्रं ददौ हरिः॥ ४०
शूलं पिनाकं परशुं शक्तिं पाशुपतं शरम्।
संहारास्त्रं च परमां विद्यां तस्मै ददौ शिवः॥ ४१

फिर वेदमन्त्रोंके द्वारा पवित्र किये गये समस्त तीर्थोंके जलसे पूर्ण रत्नजटित सौ कलशोंसे उनको प्रसन्नतापूर्वक स्नान कराया। भगवान् विष्णुने उत्तम प्रकारके रत्नोंसे निर्मित किरीट, मुकुट, बाजूबन्द, अपनी वैजयन्ती माला एवं सुदर्शन चक्र उन्हें प्रदान किया। सदाशिवने अपना त्रिशूल, पिनाक धनुष, परशु, शक्ति, पाशुपतास्त्र, बाण, संहारास्त्र एवं परम विद्या कुमारको प्रदान की॥ ३९—४१॥

अदामहं यज्ञसूत्रं वेदांश्च वेदमातरम्।
कमण्डलुं च ब्रह्मास्त्रं विद्यां चैवाऽरिमर्दिनीम्॥ ४२

मुझ ब्रह्माने यज्ञोपवीत, वेद, वेदमाता गायत्री, कमण्डलु, ब्रह्मास्त्र तथा शत्रुनाशिनी विद्या उन्हें प्रदान की॥ ४२॥

गजेन्द्रं चैव वज्रं च ददौ तस्मै सुरेश्वरः।
श्वेतच्छत्रं रत्नमालां ददौ पाशं जलेश्वरः॥ ४३

देवराज इन्द्रने अपना ऐरावत नामक गजेन्द्र तथा वज्र प्रदान किया। जलके स्वामी वरुणदेवने श्वेतच्छत्र, पाश तथा रत्नमाला उन्हें दी॥ ४३॥

मनोयायिरथं सूर्यः सन्नाहं च महाचयम्।
यमदंडं यमश्चैव सुधाकुंभं सुधानिधिः॥ ४४

हुताशनो ददौ प्रीत्या महाशक्तिं स्वसूनवे।
ददौ स्वशस्त्रं निर्ऋतिर्वायव्यास्त्रं समीरणः॥ ४५

सूर्यने मनकी गतिसे चलनेवाला उत्तम रथ और महातेजस्वी कवच दिया। यमराजने यमदण्ड तथा चन्द्रमाने अमृतपूर्ण घट प्रदान किया। अग्निने प्रसन्न होकर अपने पुत्रको महाशक्ति प्रदान की। निर्ऋतिने अपना शस्त्र तथा वायुने वायव्यास्त्र प्रदान किया॥ ४४-४५॥

गदां ददौ कुबेरश्च शूलमीशो ददौ मुदा।
नानाशस्त्राण्युपायांश्च सर्वे देवा ददुर्मुदा॥ ४६

कुबेरने गदा तथा ईश्वरने प्रसन्नतासे अपना त्रिशूल दिया। इसी प्रकार सभी देवताओंने प्रसन्नतापूर्वक अनेक शस्त्र तथा अनेक प्रकारके उपहार अर्पित किये॥ ४६॥

कामास्त्रं कामदेवोऽथ ददौ तस्मै मुदान्वितः।
गदां ददौ स्वविद्याश्च तस्मै च परया मुदा॥ ४७

क्षीरोदोऽमूल्यरत्नानि विशिष्टं रत्ननूपुरम्।
हिमालयो हि दिव्यानि भूषणान्यंशुकानि च॥ ४८

चित्रबर्हणनामानं स्वपुत्रं गरुडो ददौ।
अरुणस्ताम्रचूडाख्यं बलिनं चरणायुधम्॥ ४९

कामदेवने प्रसन्न होकर अपना कामास्त्र, गदा तथा अपनी आकर्षण एवं वशीकरण विद्याएँ परम प्रसन्नतासे उन्हें प्रदान कीं। क्षीरसागरने अमूल्य रत्न तथा विशिष्ट प्रकारका रत्नजटित नूपुर और हिमालयने दिव्य भूषण एवं वस्त्र प्रदान किये। गरुड़ने चित्रबर्हण (मयूर) नामका अपना पुत्र तथा ज्येष्ठ भ्राता अरुणने चरणोंसे युद्ध करनेवाला महाबलवान् ताम्रचूड (मुर्गा) दिया॥ ४७—४९॥

पार्वती सस्मिता हृष्टा परमैश्वर्यमुत्तमम्।
ददौ तस्मै महाप्रीत्या चिरंजीवित्वमेव च॥ ५०

लक्ष्मीश्च संपदं दिव्यां महाहारं मनोहरम्।
सावित्री सिद्धविद्यां च समस्तां प्रददौ मुदा॥ ५१

अन्याश्चापि मुने देव्यो या यास्तत्र समागताः।
स्वात्मवत्सु ददुस्तस्मै तथैव शिशुपालिकाः॥ ५२

मन्द मुसकानवाली पार्वतीने अत्यन्त प्रसन्नताके साथ अपने पुत्रको परमैश्वर्य एवं चिरंजीवी होनेका वर प्रदान किया। लक्ष्मीने दिव्य सम्पत्ति तथा मनोहर श्रेष्ठ हार प्रदान किया और सावित्रीने बड़े प्रेमसे समस्त सिद्धविद्याएँ प्रदान कीं। हे मुने! इसी प्रकार अन्य जो भी देवियाँ वहाँ आयी थीं, उन्होंने अपनी-अपनी प्रिय वस्तुएँ तथा बच्चेका पालना प्रदान किया॥ ५०—५२॥

महामहोत्सवस्तत्र बभूव मुनिसत्तम।
सर्वे प्रसन्नतां याता विशेषाच्च शिवाशिवौ॥ ५३

एतस्मिन्नन्तरे काले प्रोवाच प्रहसन् मुदा।
मुने ब्रह्मादिकान् देवान् रुद्रो भर्गः प्रतापवान्॥ ५४

हे मुनिश्रेष्ठ! उस समय वहाँ बहुत बड़ा महोत्सव हुआ और सब प्रसन्न हो गये। विशेषकर शिव-पार्वती तो अत्यन्त प्रसन्न हुए। हे मुने! उसी समय महाप्रतापी ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान् रुद्रने हँसते हुए प्रसन्नतापूर्वक ब्रह्मादि देवताओंसे कहा—॥ ५३-५४॥

शिव उवाच

हे हरे हे विधे देवाः सर्वे शृणुत मद्वचः।
सर्वथाहं प्रसन्नोऽस्मि वरान्वृणुत ऐच्छिकान्॥ ५५

शिवजी बोले—हे हरे! हे ब्रह्मन्! हे देवगणो! आप सब मेरी बात सुनें। मैं आपलोगोंपर अत्यधिक प्रसन्न हूँ। आपलोग अपने अभीष्ट वर मुझसे माँगिये॥ ५५॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं शंभोर्मुने विष्णवादयः सुराः।
सर्वे प्रोचुः प्रसन्नास्या देवं पशुपतिं प्रभुम्॥ ५६

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! शिवजीके इस वचनको सुनकर विष्णु आदि सभी देवताओंने प्रसन्नमुख होकर महादेव भगवान् पशुपतिसे कहा—॥ ५६॥

कुमारेण हतो ह्येष तारको भविता प्रभो।
तदर्थमेव संजातमिदं चरितमुत्तमम्॥ ५७

हे प्रभो! यह तारकासुर कुमारके द्वारा मारा जाय, इसके लिये ही यह सारा उत्तम चरित्र हुआ है॥ ५७॥

तस्मादद्यैव यास्यामस्तारकं हन्तुमुद्यताः।
आज्ञां देहि कुमाराय स तं हन्यात् सुखाय नः॥ ५८

इसलिये हमलोग उसे मारनेके लिये आज ही प्रस्थान करेंगे। आप हमलोगोंके सुखके लिये इन कुमारको तारकासुरके वधकी आज्ञा प्रदान कीजिये॥ ५८॥

तथेति मत्वा स विभुर्दत्तवांस्तनयं तदा।
देवेभ्यस्तारकं हन्तुं कृपया परिभावितः॥ ५९

देवगणोंके वचनको सुनकर सर्वव्यापी शंकरजीने कृपासे अभिभूत होकर देवगणोंके कल्याणके लिये 'तथास्तु' कहकर अपना पुत्र समर्पित कर दिया॥ ५९॥

शिवाज्ञया सुराः सर्वे ब्रह्मविष्णुमुखास्तदा।
पुरस्कृत्य गुहं सद्यो निर्जग्मुर्मिलिता गिरेः॥ ६०

शिवजीकी आज्ञासे ब्रह्मा, विष्णु जिनमें प्रमुख हैं, ऐसे देवगण मिलकर कार्तिकेयको आगेकर तारकासुरका वध करनेके लिये उसी समय पर्वतसे चल पड़े॥ ६०॥

बहिर्निस्सृत्य कैलासात्त्वष्टा शासनतो हरेः।
विरेचे नगरं रम्यमद्भुतं निकटे गिरेः॥ ६१

कैलाससे बाहर निकलकर विष्णुजीकी आज्ञासे विश्वकर्माने पर्वतके निकट ही अत्यन्त सुन्दर नगरकी रचना की॥ ६१॥

तत्र रम्यं गृहं दिव्यमद्भुतं परमोज्ज्वलम्।
गुहार्थं निर्ममे त्वष्टा तत्र सिंहासनं वरम्॥ ६२

उस नगरमें विश्वकर्माने अत्यन्त मनोहर, परम अद्भुत तथा अत्यन्त निर्मल गृह कुमारके लिये निर्मित किया तथा उस गृहमें उत्तम सिंहासनका भी निर्माण किया॥ ६२॥

तदा हरिः सुधीर्भक्त्या कारयामास मंगलम्।
कार्त्तिकस्याभिषेकं हि सर्वतीर्थजलैः सुरैः॥ ६३

तब परम बुद्धिमान् विष्णुने उस गृहमें नाना प्रकारके मांगलिक कृत्य करवाये और देवताओंके साथ सभी तीर्थोंके जलसे उस सिंहासनपर कार्तिकेयका अभिषेक किया॥ ६३॥

सर्वथा समलंकृत्य वासयामास संग्रहम्।
कार्त्तिकस्य विधिं प्रीत्या कारयामास चोत्सवम्॥ ६४

फिर कार्तिकेयको सुसज्जितकर [उनको प्रसन्न रखनेकी] समस्त सामग्री वहाँ एकत्रित कर दी तथा उस उपलक्ष्यमें अनेक विधि-विधान तथा उत्सव किये॥ ६४॥

ब्रह्मांडाधिपतित्वं हि ददौ तस्मै मुदा हरिः।
चकार तिलकं तस्य समानर्च सुरैस्सह॥ ६५

प्रणम्य कार्त्तिकं प्रीत्या सर्वदेवर्षिभिः सह।
तुष्टाव विविधैः स्तोत्रैः शिवरूपं सनातनम्॥ ६६

हरिने प्रेमसे उनको ब्रह्माण्डका अधिपतित्व प्रदान किया, फिर स्वयं तिलक लगाकर देवगणोंके साथ उनकी पूजा-अर्चना की। उन्होंने सभी देवताओं तथा ऋषियोंके साथ प्रीतिसे कार्तिकेयको प्रणाम किया और सनातन शिवस्वरूप उन कुमारकी विविध स्तोत्रोंसे स्तुति की॥ ६५-६६॥

वरसिंहासनस्थो हि शुशुभेऽतीव कार्त्तिकः।
स्वामिभावं समापन्नो ब्रह्मांडस्यापि पालकः॥ ६७

ब्रह्माण्डके पालक कार्तिकेय इस प्रकार उत्तम सिंहासनपर बैठकर स्वामित्वको प्राप्तकर अत्यन्त शोभित हुए॥ ६७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे कुमाराभिषेकवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें कुमारका अभिषेकवर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

कुमार कार्तिकेयकी ऐश्वर्यमयी बाललीला

ब्रह्मोवाच

अथ तत्र स गांगेयो दर्शयामास सूतिकाम्।
तामेव शृणु सुप्रीत्या नारद त्वं स्वभक्तिदाम्॥ १
द्विज एको नारदाख्य आजगाम तदैव हि।
तत्राध्वरकरः श्रीमान् शरणार्थं गुहस्य वै॥ २

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! वहाँपर रहकर कार्तिकेयने अपनी भक्ति देनेवाली जो बाललीला की, उस लीलाको आप प्रेमपूर्वक सुनिये। उस समय नारद नामक एक ब्राह्मण, जो यज्ञ कर रहा था, कार्तिकेयकी शरणमें आया॥ १-२॥

स विप्रः प्राप्य निकटं कार्त्तिकस्य प्रसन्नधीः।
स्वाभिप्रायं समाचख्यौ सुप्रणम्य शुभैः स्तवैः॥ ३

वह प्रसन्नमन ब्राह्मण कार्तिकेयके पास आकर उन्हें प्रणाम करके और सुन्दर स्तोत्रोंसे स्तुतिकर अपना अभिप्राय निवेदन करने लगा॥ ३॥

विप्र उवाच

शृणु स्वामिन्वचो मेऽद्य कष्टं मे विनिवारय।
सर्वब्रह्मांडनाथस्त्वमतस्ते शरणं गतः॥ ४

ब्राह्मण बोला—हे स्वामिन्! आप समस्त ब्रह्माण्डके अधिपति हैं, अतः मैं आपकी शरणमें आया हूँ; आप मेरा वचन सुनिये और आज मेरा कष्ट दूर कीजिये॥ ४॥

अजमेधाध्वरं कर्तुमारंभं कृतवानहम्।
सोऽजो गतो गृहान्मे हि त्रोटयित्वा स्वबंधनम्॥ ५

मैंने अजमेधयज्ञ करना प्रारम्भ किया था, किंतु वह अज अपना बन्धन तोड़कर मेरे घरसे भाग गया॥ ५॥

न जाने स गतः कुत्राऽन्वेषणं तत्कृतं बहु।
न प्राप्तोऽतस्स बलवान् भंगो भवति मे क्रतोः॥ ६

वह न जाने कहाँ चला गया, मैंने उसे बहुत खोजा, किंतु वह प्राप्त न हो सका। वह बड़ा बलवान् है। अतः अब तो मेरा यज्ञ भंग हो जायगा॥ ६॥

त्वयि नाथे सति विभो यज्ञभंगः कथं भवेत्।
विचार्य्यैवाऽखिलेशान कामं पूर्णं कुरुष्व मे॥ ७

हे विभो! आप-जैसे स्वामीके रहते मेरे यज्ञका विनाश किस प्रकार हो सकता है, इसलिये हे अखिलेश्वर! इस प्रकारसे विचारकर मेरी कामना पूर्ण कीजिये॥ ७॥

त्वां विहाय शरण्यं कं यायां शिवसुत प्रभो।
सर्वब्रह्मांडनाथं हि सर्वामरसुसेवितम्॥ ८

हे प्रभो! हे शिवपुत्र! सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके स्वामी और समस्त देवताओंसे सेवित होनेवाले आपको छोड़कर अब मैं किसकी शरणमें जाऊँ॥ ८॥

दीनबंधुर्दयासिन्धुः सुसेव्यो भक्तवत्सलः।
हरिब्रह्मादिदेवैश्च सुस्तुतः परमेश्वरः॥ ९

आप दीनबन्धु, दयासागर, भक्तवत्सल तथा सब प्रकारसे सेवाके योग्य हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा समस्त देवगण आप परमेश्वरकी स्तुति करते हैं॥ ९॥

पार्वतीनन्दनस्स्कन्दः परमेकः परंतपः।
परमात्मात्मदः स्वामी सतां च शरणार्थिनाम्॥ १०

आप पार्वतीको आनन्दित करनेवाले, स्कन्द नामवाले, परम, अद्वितीय, परंतप, परमात्मा, आत्मज्ञान देनेवाले तथा शरणकी इच्छा रखनेवाले सज्जनोंके स्वामी हैं॥ १०॥

दीनानाथ महेश शंकरसुत त्रैलोक्यनाथ प्रभो
मायाधीश समागतोऽस्मि शरणं मां पाहि विप्रप्रिय।
त्वं सर्वप्रभुरानताऽखिलविदब्रह्मादिदेवैः स्तुतः
त्वं मायाकृतिरात्मभक्तसुखदो रक्षापरो मायिकः ॥ ११

भक्तप्राणगुणाकरस्त्रिगुणतो भिन्नोऽसि शंभुप्रियः
शंभुः शंभुसुतः प्रसन्नसुखदः सच्चित्स्वरूपो महान्।
सर्वज्ञस्त्रिपुरघ्नशंकरसुतः सत्प्रेमवश्यः सदा
षड्वक्त्रः प्रियसाधुरानतप्रियः सर्वेश्वरः शंकरः।
साधुद्रोहकरघ्न शंकरगुरो ब्रह्मांडनाथो प्रभुः
सर्वेषाममरादिसेवितपदो मां पाहि सेवाप्रिय ॥ १२

वैरिभयंकर शंकर जनशरणस्य
वन्दे तव पदपद्मं सुखकरणस्य।
विज्ञप्तिं मम कर्णे स्कन्द निधेहि
निजभक्तिं जनचेतसि सदा विधेहि ॥ १३

करोति किं तस्य बली विपक्षो
दक्षोऽपि पक्षोभयपार्श्वगुप्तः।
किं तक्षकोऽप्यामिषभक्षको वा
त्वं रक्षको यस्य सदक्षमानः ॥ १४

विबुधगुरुरपि त्वां स्तोतुमीशो न हि स्यात्
कथय कथमहं स्यां मंदबुद्धिर्वराच्र्यः।
शुचिरशुचिरनार्यो यादृशस्तादृशो वा
पदकमलपरागं स्कन्द ते प्रार्थयामि ॥ १५

हे दीनानाथ! हे महेश! हे शंकरसुत! हे त्रैलोक्यनाथ! हे प्रभो! हे मायाधीश! हे ब्राह्मणप्रिय! मैं आपकी शरणमें आया हूँ, मेरी रक्षा कीजिये। आप सबके स्वामी हैं। ब्रह्मादि सभी देवता आपको प्रणामकर आपकी स्तुति करते हैं। आप मायासे शरीर धारण करनेवाले, अपने भक्तोंको सुख देनेवाले, सबकी रक्षा करनेवाले तथा मायाको वशमें रखनेवाले हैं ॥ ११ ॥

आप भक्तोंके प्राण, गुणोंके आगार, तीनों गुणोंसे भिन्न, शिवप्रिय, शिवस्वरूप, शिवके पुत्र, प्रसन्न, सुखदायक, सच्चित्स्वरूप, महान्, सर्वज्ञ, त्रिपुरका विनाश करनेवाले, श्रीशिवजीके पुत्र, सदा सत्प्रेमके वशमें रहनेवाले, छः मुखवाले, साधुओंके प्रिय, प्रणतजनपालक, सर्वेश्वर तथा सबके कल्याणकारी हैं। आप साधुओंसे द्रोह करनेवालोंके विनाशक, शिवको गुरु माननेवाले, ब्रह्माण्डके अधिपति, सर्वसमर्थ और सभी देवताओंसे सेवित चरणवाले हैं। हे सेवाप्रिय! मेरी रक्षा कीजिये। हे वैरियोंके लिये भयंकर तथा भक्तोंका कल्याण करनेवाले! लोगोंके शरणस्वरूप तथा सुखकारी आपके चरणकमलमें मैं प्रणाम करता हूँ। हे स्कन्द! मेरी प्रार्थनाको सुनिये और मेरे चित्तमें अपनी भक्ति प्रदान कीजिये ॥ १२-१३ ॥

जिसके पक्षमें होकर आप उभय पार्श्वमें रक्षा करते हैं, उसका अत्यन्त बलवान् तथा दक्ष शत्रु भी क्या कर सकता है! दक्षलोगोंसे माननीय आप जिसके रक्षक हैं, उसका तक्षक अथवा आमिषभक्षक क्या कर सकता है! ॥ १४ ॥

देवगुरु बृहस्पति भी आपकी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हैं, फिर आप ही बतलाइये कि अत्यन्त मन्दबुद्धि मैं आप परम पूज्यकी किस प्रकार स्तुति-प्रशंसा एवं पूजा करूँ। हे स्कन्द! मैं पवित्र, अपवित्र, अनार्य चाहे कुछ भी हूँ, आपके चरणकमलोंके परागके लिये प्रार्थना करता हूँ ॥ १५ ॥

हे सर्वेश्वर भक्तवत्सल कृपा-
सिन्धो त्वदीयोऽस्म्यहं
भृत्यः स्वस्य न सेवकस्य गणप-
स्याग:शतं सत्प्रभो।
भक्तिं क्वापि कृतां मनागपि विभो
जानासि भृत्यार्तिहा
त्वत्तो नास्त्यपरोऽविता न भगवन्
मत्तो नरः पामरः॥ १६

कल्याणकर्त्ता कलिकल्मषघ्नः
कुबेरबन्धुः करुणार्द्रचित्तः।
त्रिषट्कनेत्रो रसवक्त्रशोभी
यज्ञं प्रपूर्णं कुरु मे गुह त्वम्॥ १७

रक्षकस्त्वं त्रिलोकस्य शरणागतवत्सलः।
यज्ञकर्त्ता यज्ञभर्त्ता हरसे विघ्नकारिणाम्॥ १८

विघ्नवारण साधूनां सर्गकारण सर्वतः।
पूर्णं कुरु ममेशानसुत यज्ञ नमोऽस्तु ते॥ १९

सर्वत्राता स्कन्द हि त्वं सर्वज्ञाता त्वमेव हि।
सर्वेश्वरस्त्वमीशानो निवेशसकलाऽवनः॥ २०

संगीतज्ञस्त्वमेवासि वेदविज्ञः परः प्रभुः।
सर्वस्थाता विधाता त्वं देवदेवः सतां गतिः॥ २१

भवानीनन्दनः शंभुतनयो वयुनः स्वराट्।
ध्याता ध्येयः पितॄणां हि पिता योनिः सदात्मनाम्॥ २२

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य देवसम्राट् शिवात्मजः।
स्वगणं वीरबाह्वाख्यं प्रेषयामास तत्कृते॥ २३

तदाज्ञया वीरबाहुस्तदन्वेषणहेतवे।
प्रणम्य स्वामिनं भक्त्या महावीरो द्रुतं ययौ॥ २४

अन्वेषणं चकारासौ सर्वब्रह्माण्डगोलके।
न प्राप तमजं कुत्र शुश्राव तदुपद्रवम्॥ २५

जगामाऽथ स वैकुण्ठं तत्राऽजं प्रददर्श तम्।
उपद्रवं प्रकुर्वन्तं गलयूपं महाबलम्॥ २६

हे सर्वेश्वर! हे भक्तवत्सल! हे कृपासिन्धो! मैं आपका सेवक हूँ, हे सत्प्रभो! आप गणोंके पति हैं, अतः अपने सेवकके अपराधपर ध्यान न दें। हे विभो! मैंने कभी भी आपकी थोड़ी भी भक्ति नहीं की है, यह आप जानते हैं। हे भगवन्! आपसे बढ़कर कोई अपने भक्तोंकी रक्षा करनेवाला नहीं है और मुझसे बढ़कर कोई पामर जन नहीं है॥ १६॥

आप कल्याण करनेवाले, कलिके पापको नष्ट करने-वाले, कुबेरके बन्धु, करुणार्द्र चित्तवाले, अठारह नेत्र तथा छः मुखवाले हैं। हे गुह! आप मेरे यज्ञको पूर्ण कीजिये॥ १७॥

आप त्रिलोकीके रक्षक, शरणागतोंसे प्रेम करनेवाले, यज्ञके कर्ता, यज्ञके पालक और विघ्नकारियोंका वध करनेवाले हैं। साधुजनोंके विघ्नको दूर करनेवाले और सब प्रकारसे सृष्टि करनेवाले हे महेश्वरपुत्र! मेरे यज्ञको पूर्ण कीजिये; आपको नमस्कार है॥ १८-१९॥

हे स्कन्द! आप सबके रक्षक तथा सब कुछ जाननेवाले हैं। आप सर्वेश्वर, सबके शासक, सबके एकमात्र स्थान और सबका पालन करनेवाले हैं॥ २०॥

आप संगीतज्ञ, वेदवेत्ता, परमेश्वर, सबको स्थिति प्रदान करनेवाले, विधाता, देवदेव तथा सज्जनोंकी एकमात्र गति हैं। आप भवानीनन्दन, शम्भुपुत्र, ज्ञानके स्वरूप, स्वराट्, ध्याता, ध्येय, पितरोंके पिता तथा महात्माओंके मूल कारण हैं॥ २१-२२॥

ब्रह्माजी बोले—शिवजीके पुत्र देवसम्राट् कार्तिकेयने उस ब्राह्मणका वचन सुनकर वीरबाहु नामक अपने गणको उसे (यज्ञके बकरेको) खोजनेके लिये भेजा॥ २३॥

उनकी आज्ञासे महावीर वीरबाहु भक्तिपूर्वक अपने स्वामीको प्रणामकर उसे खोजनेके लिये शीघ्र ही चल पड़ा। उसने सारे ब्रह्माण्डमें उस बकरेकी खोज की, परंतु उसे कहीं नहीं पाया, केवल लोगोंसे उसके उपद्रवका समाचार सुना। तब वह वैकुण्ठमें गया और वहाँ उस महाबलवान् अजको उसने देखा, जो अपने गलेमें यज्ञके यूपको बाँधे हुए उपद्रव कर रहा था॥ २४—२६॥

धृत्वा तं शृंगयोर्वीरो धर्षयित्वातिवेगतः।
आनिनाय स्वामिपुरो विकुर्वन्तं रवं बहु॥ २७

वीरबाहु बड़े वेगके साथ उसकी दोनों सींगें पकड़कर एवं पटककर ऊँचे स्वरसे चिल्लाते हुए उस अजको अपने स्वामीके पास ले लाया॥ २७॥

दृष्ट्वा तं कार्तिकस्सोऽरमारुरोह स तं प्रभुः।
धृतब्रह्माण्डगरिमा महासूतिकरो गुहः॥ २८

उसको देखते ही सृष्टिकर्ता प्रभु कार्तिकेय समस्त ब्रह्माण्डका भार धारणकर उसके ऊपर आरूढ़ हो गये॥ २८॥

मुहूर्तमात्रतस्सोऽजो ब्रह्मांडं सकलं मुने।
बभ्राम श्रम एवाशु पुनस्तत्स्थानमागतः॥ २९

हे मुने! वह अज बिना विश्राम किये ही क्षणमात्रमें सारा ब्रह्माण्ड घूमकर फिर वहीं आ गया॥ २९॥

तत उत्तीर्य स स्वामी समुवास स्वमासनम्।
सोऽजः स्थितस्तु तत्रैव स नारद उवाच तम्॥ ३०

तब कार्तिकेय उससे उतरकर अपने आसनपर बैठ गये और वह अज वहीं खड़ा रहा। तब वह नारद [ब्राह्मण] कार्तिकेयसे कहने लगा—॥ ३०॥

नारद उवाच

नमस्ते देवदेवेश देहि मेऽजं कृपानिधे।
कुर्यामध्वरमानन्दात्सखायं कुरु मामहो॥ ३१

नारद बोला—हे देवदेवेश! आपको प्रणाम है। हे कृपानिधे! अब आप मेरे इस अजको मुझे प्रदान कीजिये, जिससे मैं आनन्दपूर्वक यज्ञ करूँ; आप मुझसे मित्रभाव रखिये॥ ३१॥

कार्तिक उवाच

वधयोग्यो न विप्राऽजः स्वगृहं गच्छ नारद।
पूर्णोऽस्तु तेऽध्वरः सर्वः प्रसादादेव मे कृतः॥ ३२

कार्तिकेय बोले—हे ब्राह्मण! यह अज वधके योग्य नहीं है। हे नारद! अब आप अपने घर जाइये, आपका सम्पूर्ण यज्ञ मेरी कृपासे पूर्ण हो गया॥ ३२॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य द्विजस्स्वामी वचनं प्रीतमानसः।
जगाम स्वालयं दत्त्वा तस्मा आशिषमुत्तमाम्॥ ३३

ब्रह्माजी बोले—कार्तिकेयके इस वचनको सुनकर प्रसन्नचित्त वह ब्राह्मण कार्तिकेयको उत्तम आशीर्वाद देकर अपने घर चला गया॥ ३३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे कुमाराद्भुतचरितवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें कुमारके अद्भुतचरितका वर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

तारकासुरसे सम्बद्ध देवासुर-संग्राम

ब्रह्मोवाच

हर्य्यादयस्सुरास्ते च दृष्ट्वा तच्चरितं विभोः।
सुप्रसन्ना बभूवुर्हि विश्वासासक्तमानसाः॥ १

वल्गान्तः कुर्वतो नादं भाविताश्शिवतेजसा।
कुमारं ते पुरस्कृत्य तारकं हन्तुमाययुः॥ २

ब्रह्माजी बोले—विभु कार्तिकेयके इस चरित्रको देखकर विष्णु आदि देवताओंके मनमें विश्वास हो गया और वे परम प्रसन्न हो गये। शिवजीके तेजसे प्रभावित होकर वे उछलते तथा सिंहनाद करते हुए कुमारको आगेकर तारकासुरका वध करनेहेतु चल पड़े॥ १-२॥

देवानामुद्यमं श्रुत्वा तारकोऽपि महाबलः।
सैन्येन महता सद्यो ययौ योद्धुं सुरान् प्रति॥ ३

महाबली तारकासुरने भी देवताओंके उद्योगको सुनकर बड़ी सेनाके साथ देवताओंसे युद्ध करनेके लिये शीघ्र प्रस्थान किया। देवगणोंने तारकासुरकी

देवा दृष्ट्वा समायान्तं तारकस्य महाबलम्।
बलेन बहु कुर्वन्तः सिंहनादं विसिस्मियुः॥ ४

तदा नभोऽङ्गना वाणीं जगादोपरि सत्वरम्।
शङ्करप्रेरिता सद्यो हर्यादीनखिलान् सुरान्॥ ५

बहुत बड़ी सेना देखकर अत्यन्त बलपूर्वक सिंहनाद करते हुए उसे आश्चर्यचकित कर दिया। उसी समय ऊपरसे बड़ी शीघ्रताके साथ शिवजीद्वारा प्रेरित आकाशवाणीने समस्त विष्णु आदि देवताओंसे शीघ्र कहा— ॥ ३—५ ॥

व्योमवाण्युवाच

कुमारं च पुरस्कृत्य सुरा यूयं समुद्यताः।
दैत्यान् विजित्य संग्रामे जयिनोऽथ भविष्यथ॥ ६

आकाशवाणी बोली—हे देवगण! आपलोग जो कुमारको आगे करके युद्ध करनेके लिये उद्यत हुए हैं, इससे आपलोग संग्राममें दैत्योंको जीतकर विजयी होंगे॥ ६॥

ब्रह्मोवाच

वाचं तु खेचरीं श्रुत्वा देवाः सर्वे समुत्सुकाः।
वीरशब्दान् प्रकुर्वन्तो निर्भया ह्यभवंस्तदा॥ ७

ब्रह्माजी बोले—आकाशवाणीको सुनकर सभी देवताओंमें अत्यन्त उत्साह भर गया और वे वीरोंकी भाँति गर्जना करते हुए उस समय निर्भय हो गये॥ ७॥

कुमारं च पुरस्कृत्य सर्वे ते गतसाध्वसाः।
योद्धुकामाः सुरा जग्मुर्महीसागरसंगमम्॥ ८

आजगाम द्रुतं तत्र यत्र देवाः स तारकः।
सैन्येन महता सार्द्धं असुरैर्बहुभिर्वृतः॥ ९

इस प्रकार भयसे रहित एवं युद्धकी इच्छावाले वे सभी देवता कुमारको आगे करके महीसागर-संगमपर गये। बहुत-से असुरोंसे घिरा वह तारक भी जहाँ देवता थे, वहाँपर अपनी बहुत बड़ी सेनाके साथ शीघ्र ही आ गया॥ ८-९॥

रणदुंदुभयो नेदुः प्रलयांबुदनिःस्वनाः।
कर्कशानि च वाद्यानि पराणि च तदागमे॥ १०

गर्जमानास्तदा दैत्यास्तारकेणासुरेण ह।
कंपयन्तो भुवं पादक्रमैर्वल्गु न कारकाः॥ ११

तच्छ्रुत्वा रवमत्युग्रं सर्वे देवा विनिर्भयाः।
ऐकपद्येन चोत्तस्थुर्योद्धुकामाश्च तारकम्॥ १२

गजमारोप्य देवेन्द्रः कुमारं ह्यग्रतोऽभवत्।
सुरसैन्येन महता लोकपालैः समावृतः॥ १३

उसके आनेपर प्रलयकालीन बादलके समान शब्द करनेवाली रणदुन्दुभियाँ तथा अन्य कर्कश बाजे बजने लगे। उस समय तारकासुरके साथ रहनेवाले समस्त असुर कूदते-फाँदते हुए पादप्रहारोंसे पृथ्वीको कँपाने लगे और गर्जना करने लगे। उस उग्र ध्वनिको सुनकर सभी देवगण अत्यन्त निर्भय हो एक साथ ही तारकासुरसे युद्ध करनेकी इच्छासे उठ खड़े हुए। स्वयं इन्द्रदेव कुमारको हाथीपर चढ़ाकर देवताओंकी बहुत बड़ी सेनाके साथ लोकपालोंसे युक्त हो आगे-आगे चलने लगे॥ १०—१३॥

तदा दुंदुभयो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः।
वीणावेणुमृदंगानि तथा गंधर्वनिस्स्वनाः॥ १४

उस समय अनेक प्रकारकी दुन्दुभि, भेरी, तुरही, वीणा, वेणु और मृदंग बजने लगे तथा गन्धर्व गान करने लगे॥ १४॥

गजं दत्त्वा महेन्द्राय कुमारो यानमारुहत्।
अनेकाश्चर्यसंभूतं नानारत्नसमन्वितम्॥ १५

कुमार इन्द्रको हाथी देकर अनेक आश्चर्योंसे युक्त तथा विविध रत्नोंसे जटित दूसरे यानपर सवार हो गये॥ १५॥

विमानमारुह्य तदा महायशाः
स शांकरिस्सर्वगुणैरुपेतः।
श्रिया समेतः परया बभौ महान्
संवीज्यमानश्चमरैर्महाप्रभैः॥ १६

उस समय सर्वगुणसम्पन्न महायशस्वी शंकरपुत्र कुमार कार्तिकेय विमानके ऊपर चढ़कर महाकान्तिमान् चामरोंसे वीज्यमान होते हुए अत्यन्त शोभित हो रहे थे॥ १६॥

प्राचेतसं छत्रमतीवसुप्रभं
रत्नैरुपेतं विविधैर्विराजितम्।
धृतं तदा तच्च कुमारमूर्ध्नि वै
ह्यनन्तचान्द्रैः किरणैर्महाप्रभैः॥ १७

उस समय प्रचेताके द्वारा दिया गया छत्र, जो अनेक रत्नोंसे जटित होनेके कारण महाकान्तिमान् था तथा जिससे चन्द्रकिरणोंके समान आभा निकल रही थी, वह कुमारके द्वारा मस्तकपर धारण किया गया था॥ १७॥

मिलितास्ते तदा सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः।
स्वैः स्वैर्बलैः परिवृता युद्धकामा महाबलाः॥ १८

उस समय युद्धकी इच्छावाले महाबलवान् इन्द्रादि समस्त देवता अपनी-अपनी सेनाके साथ सम्मिलित हुए॥ १८॥

एवं देवाश्च दैत्याश्च योद्धुकामाः स्थिता भुवि।
सैन्येन महता तेन व्यूहं कृत्वा पृथक् पृथक्॥ १९

इस प्रकार देवता एवं दानव व्यूहकी रचनाकर बहुत बड़ी सेनाके साथ युद्धकी इच्छासे रणभूमिमें आ डटे॥ १९॥

ते सेने सुरदैत्यानां शुशुभाते परस्परम्।
हन्तुकामे तदान्योऽन्यं स्तूयमाने च बन्दिभिः॥ २०

उस समय एक-दूसरेको मारनेकी इच्छावाली देवताओं तथा दैत्योंकी वे दोनों सेनाएँ चारणोंके द्वारा स्तुति की जाती हुई अत्यन्त सुशोभित हो रही थीं॥ २०॥

उभे सेने तदा तेषामगर्जेतां वनोपमे।
भयंकरेऽत्यवीराणामितरेषां सुखावहे॥ २१

कायरोंके लिये भयंकर तथा वीरोंके लिये सुखद समुद्रतुल्य उनकी दोनों सेनाएँ गरजने लगीं॥ २१॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र बलोन्मत्ताः परस्परम्।
दैत्या देवा महावीरा युयुधुः क्रोधविह्वलाः॥ २२

इसी बीच बलसे उन्मत्त महावीर दैत्य एवं देवता क्रोधसे अधीर हो परस्पर युद्ध करने लगे॥ २२॥

आसीत्सुतुमुलं युद्धं देवदैत्यसमाकुलम्।
रुण्डमुंडांकितं सर्वं क्षणेन समपद्यत॥ २३

उस समय देवों एवं दानवोंमें महाभयंकर युद्ध आरम्भ हो गया और क्षणमात्रमें पृथ्वी रुण्ड-मुण्डोंसे व्याप्त हो गयी॥ २३॥

भूमौ निपतितास्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः।
निकृत्तांगा महाशस्त्रैर्निहता वीरसंमताः॥ २४

केषांचिद्बाहवश्छिन्नाः खड्गपातैः सुदारुणैः।
केषांचिदूरवश्छिन्ना वीराणां मानिनां मृधे॥ २५

केचिन्मथितसर्वांगा गदाभिर्मुद्गरैस्तथा।
केचिन्निर्भिन्नहृदयाः पाशैर्भल्लैश्च पातिताः॥ २६

केचिद्विदारिताः पृष्ठे कुंतैर्ऋष्टिभिरंकुशैः।
छिन्नान्यपि शिरांस्येव पतितानि च भूतले॥ २७

सैकड़ों तथा हजारों वीरसम्मत योद्धा महाशस्त्रोंके प्रहारसे छिन्न-भिन्न होकर पृथ्वीपर गिरने लगे। युद्धमें अत्यन्त कठोर खड्गके प्रहारसे किसीकी भुजा छिन्न-भिन्न हो गयी और किन्हीं मानी वीरोंकी जाँघें कट गयीं। गदाओं तथा मुद्गरोंसे कुछ वीरोंके सभी अंग विदीर्ण हो गये। भालोंसे कुछ वीरोंकी छाती छिद गयी और कुछ पाशोंसे बाँध दिये गये। कुछ वीर पीठपर भाला, ऋष्टि एवं अंकुशके प्रहारसे घायल हो गये। किन्हींके सिर कटकर पृथ्वीपर गिर गये॥ २४—२७॥

बहूनि च कबंधानि नृत्यमानानि तत्र वै।
वल्गमानानि शतशो उद्यतास्त्रकराणि च॥ २८

वहाँ बहुत-से कबन्ध (सिर कटे हुए धड़) नाच रहे थे तथा कुछ लोग अपने हाथोंमें शस्त्र लिये हुए एक दूसरेको ललकार रहे थे॥ २८॥

नद्यः प्रवर्तितास्तत्र शतशोऽसृङ्वहास्तदा।
भूतप्रेतादयस्तत्र शतशश्च समागताः॥ २९

वहाँ रक्तकी सैकड़ों नदियाँ बह चलीं और सैकड़ोंकी संख्यामें भूत-प्रेत वहाँ आ गये॥ २९॥

गोमायवश्शिवाः तत्र भक्षयन्तः पलं बहु।
तथा गृध्रवटा श्येना वायसा मांसभक्षकाः।
बुभुजुः पतितानां च पलानि सुबहूनि वै॥ ३०

वहाँपर सियार-सियारिनें मांस खाने लगीं। गृध्रवट, श्येन तथा कौवे एवं अनेक मांसभक्षी जानवर युद्धमें गिरे हुए योद्धाओंके मांसका भक्षण करने लगे॥ ३०॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र तारकाख्यो महाबलः।
सैन्येन महता सद्यो ययौ योद्धुं सुरान् प्रति॥ ३१

इसी बीच महाबली तारकासुर बहुत बड़ी सेनाके साथ देवताओंसे युद्ध करनेके लिये वहाँ शीघ्र आ पहुँचा॥ ३१॥

देवा दृष्ट्वा समायान्तं तारकं युद्धदुर्मदम्।
योद्धुकामं तदा सद्यो ययुः शक्रादयस्तदा।
बभूवाथ महोन्नादः सेनयोरुभयोरपि॥ ३२

युद्धमें दुर्मद तारकासुरको युद्ध करनेके लिये आता हुआ देखकर इन्द्र आदि देवता भी शीघ्र ही वहाँ पहुँच गये। उस समय दोनों सेनाओंमें घोर गर्जना होने लगी॥ ३२॥

अथाभूद् द्वन्द्वयुद्धं हि सुरासुरविमर्दनम्।
यं दृष्ट्वा हर्षिता वीराः क्लीबाश्च भयमागताः॥ ३३

उस समय देवता तथा दैत्योंका विनाशकारी द्वन्द्व-युद्ध होने लगा, जिसे देखकर वीर हर्षित होते थे तथा कायर भयभीत हो जाते थे॥ ३३॥

तारको युयुधे युद्धे शक्रेण दितिजो बली।
अग्निना सह संह्लादो जंभेनैव यमः स्वयम्॥ ३४
महाप्रभुर्नैर्ऋतेन पाशी सह बलेन च।
सुवीरो वायुना सार्धं पवमानेन गुह्यराट्॥ ३५
ईशानेन समं शंभुर्युयुधे रणवित्तमः।
शुंभः शेषेण युयुधे कुंभश्चन्द्रेण दानवः॥ ३६
कुंजरो मिहिरेणाजौ महाबलपराक्रमः।
युयुधे परमास्त्रैश्च नानायुद्धविशारदः॥ ३७

रणमें दितिपुत्र बलवान् तारक इन्द्रके साथ, संह्लाद अग्निके साथ, यमराज जम्भके साथ, महाप्रभु निर्ऋतिके साथ, वरुण बलके साथ, सुवीर वायुके साथ तथा गुह्यराट् पवमानके साथ युद्ध करने लगा। रणकुशल शम्भु ईशानके साथ युद्ध करने लगा। शुम्भका शेषके साथ और दानव कुम्भका चन्द्रमाके साथ युद्ध होने लगा। उस युद्धमें महाबली, पराक्रमी तथा अनेक युद्धोंमें प्रवीण कुंजर मिहिरके साथ परम अस्त्रोंसे युद्ध करने लगा॥ ३४—३७॥

एवं द्वन्द्वेन युद्धेन महता च सुरासुराः।
संगरे युयुधुः सर्वे बलेन कृतनिश्चयाः॥ ३८
अन्योऽन्यं स्पर्द्धमानास्तेऽमरा दैत्या महाबलाः।
तस्मिन्देवासुरे युद्धे दुर्जया अभवन्मुने॥ ३९

इस प्रकार देवता तथा राक्षस अपनी-अपनी सेना लेकर महान् द्वन्द्वयुद्धके द्वारा रणभूमिमें विजयकी आशासे परस्पर युद्ध करने लगे। हे मुने! महाबली वे दैत्य तथा देवता उस देवासुरसंग्राममें परस्पर स्पर्धा करते हुए एक-दूसरेके लिये दुर्जेय हो गये॥ ३८-३९॥

तदा च तेषां सुरदानवानां
बभूव युद्धं तुमुलं जयैषिणाम्।
सुखावहं वीरमनस्विनां वै
भयावहं चैव तथेतरेषाम्॥ ४०

विजयकी इच्छा रखनेवाले उन देवगणों तथा दानवोंका घनघोर युद्ध छिड़ गया, जो मनस्वी वीरोंके लिये सुखदायक तथा कायरोंके लिये भयदायक था॥ ४०॥

मही महारौद्रतरा विनष्टकैः
सुरासुरैर्वै पतितैरनेकशः।
तस्मिन्नगम्यातिभयानका तदा
जाता महासौख्यवहा मनस्विनाम्॥ ४१

युद्धमें घायल हुए अनेक देवता तथा दानवोंके गिरनेसे वह रणभूमि अत्यन्त भयानक हो उठी। उस समय वह कायरोंके लिये अगम्य एवं भयंकर हो गयी और मनस्वियोंको प्रसन्न करनेवाली हुई॥ ४१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे युद्धप्रारंभवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें युद्धप्रारम्भवर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

देवराज इन्द्र, विष्णु तथा वीरक आदिके साथ तारकासुरका युद्ध

ब्रह्मोवाच

इति ते वर्णितस्तात देवदानवसेनयोः।
संग्रामस्तुमुलोऽतीव तत्प्रभ्वोः शृणु नारद॥ १

एवं युद्धेऽतितुमुले देवदानवसंक्षये।
तारकेणैव देवेन्द्रः शक्त्या परमया सह॥ २

सद्यः पपात नागाश्च धरण्यां मूर्च्छितोऽभवत्।
परं कश्मलमापेदे वज्रधारी सुरेश्वरः॥ ३

तथैव लोकपाः सर्वेऽसुरैश्च बलवत्तरैः।
पराजिता रणे तात महारणविशारदैः॥ ४

ब्रह्माजी बोले—हे तात! हे नारद! इस प्रकार मैंने देव-दानव-सेनाओंके भयंकर युद्धका वर्णन किया, अब दोनों सेनाओंके सेनापतियों—कार्तिकेय और तारकासुरके युद्धका वर्णन सुनिये। इस प्रकार देव-दानवके लिये विनाशकारी घोर संग्राममें तारकासुरने परम शक्ति अस्त्रद्वारा इन्द्रपर प्रहार किया, जिससे घायल होकर वे उसी क्षण हाथीसे गिर पड़े तथा मूर्च्छित हो गये। वज्र धारण करनेवाले इन्द्रको उस समय बहुत कष्ट हुआ। हे तात! उसी प्रकार अति बलवान् तथा महारणमें प्रवीण असुरोंने सभी लोकपालोंको भी पराजित कर दिया॥ १—४॥

अन्येऽपि निर्जरा दैत्यैर्युद्ध्यमानाः पराजिताः।
असहन्तो हि तत्तेजः पलायनपरायणाः॥ ५

युद्ध करते हुए दूसरे देवगण भी दैत्योंसे पराजित हो गये और उनके तेजको न सह सकनेके कारण इधर-उधर भागने लगे॥ ५॥

जगर्जुरसुरास्तत्र जयिनः सुकृतोद्यमाः।
सिंहनादं प्रकुर्वन्तः कोलाहलपरायणाः॥ ६

एतस्मिन्नन्तरे तत्र वीरभद्रो रुषान्वितः।
आससाद गणैर्वीरैस्तारकं वीरमानिनम्॥ ७

निर्जरान् पृष्ठतः कृत्वा शिवकोपोद्भवो बली।
तत्सम्मुखो बभूवाथ योद्धुकामो गणाग्रणीः॥ ८

तदा ते प्रमथाः सर्वे दैत्याश्च परमोत्सवाः।
युयुधुः संयुगेऽन्योऽन्यं प्रसक्ताश्च महारणे॥ ९

इस प्रकार सफल उद्योगवाले विजयी असुर गर्जना करने लगे तथा सिंहनाद करते हुए कोलाहल करने लगे। इसी समय क्रोधित हो उठे वीरभद्र अपनेको वीर माननेवाले तारकासुरकी ओर पराक्रमी गणोंके साथ आये। शिवजीके कोपसे उत्पन्न बलवान् वीरभद्र देवगणोंको अपने पीछे करके स्वयं सभी गणोंके आगे होकर युद्धकी इच्छासे तारकासुरके सामने आ गये। उस समय वे सभी प्रमथगण एवं दैत्य उत्साहित होकर उस रणस्थलमें एक-दूसरेपर प्रहारकर युद्ध करने लगे॥ ६—९॥

त्रिशूलैर्ऋष्टिभिः पाशैः खड्गैः परशुपट्टिशैः।
निजघ्नुः समरेऽन्योऽन्यं रणे रणविशारदाः॥ १०

रणमें कुशल वे एक-दूसरेपर त्रिशूल, ऋष्टि, पाश, खड्ग, परशु एवं पट्टिशसे प्रहार करने लगे॥ १०॥

तारको वीरभद्रेण स त्रिशूलाहतो भृशम्।
पपात सहसा भूमौ क्षणं मूर्छापरिप्लुतः॥ ११

उत्थाय स द्रुतं वीरस्तारको दैत्यसत्तमः।
लब्धसंज्ञो बलाच्छक्त्या वीरभद्रं जघान ह॥ १२

वीरभद्रने उस तारकको त्रिशूलसे अत्यधिक आहत कर दिया और वह क्षणभरमें मूर्च्छित होकर भूमिपर सहसा गिर पड़ा। इसके बाद उस दैत्यश्रेष्ठ तारकने मूर्च्छा त्यागकर बड़ी शीघ्रतासे उठकर वीरभद्रपर शक्तिसे बलपूर्वक प्रहार किया॥ ११-१२॥

वीरभद्रस्तथा वीरो महातेजा हि तारकम्।
जघान त्रिशिखेनाशु घोरेण निशितेन तम्॥ १३

पराक्रमी तथा महातेजस्वी वीरभद्रने भी अपने घोर त्रिशूलसे शीघ्र ही उस तारकासुरपर प्रहार किया॥ १३॥

सोऽपि शक्त्या वीरभद्रं जघान समरे ततः।
तारको दितिजाधीशः प्रबलो वीरसंमतः॥ १४

एवं संयुद्ध्यमानौ तौ जघ्नतुश्चेतरेतरम्।
नानास्त्रशस्त्रैः समरे रणविद्याविशारदौ॥ १५

तत्पश्चात् दैत्योंके अधीश्वर तथा वीरोंमें मान्य महाबली तारकने भी रणभूमिमें वीरभद्रपर शक्तिसे प्रहार किया। इस प्रकार युद्धविद्यामें कुशल युद्ध करते हुए वे दोनों ही अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे॥ १४-१५॥

तयोर्महात्मनोस्तत्र द्वन्द्वयुद्धमभूत्तदा।
सर्वेषां पश्यतामेव तुमुलं रोमहर्षणम्॥ १६

उस समय उन दोनों वीरोंमें सबके देखते-देखते ही अत्यन्त रोमांचकारी भयंकर द्वन्द्व-युद्ध होने लगा॥ १६॥

ततो भेरीमृदंगाश्च पटहानकगोमुखाः।
विनेदुर्विहता वीरैः शृण्वतां सुभयानकाः॥ १७

युयुधातेतिसन्नद्धौ प्रहारैर्जर्जरीकृतौ।
अन्योऽन्यमतिसंरब्धौ तौ बुधांगारकाविव॥ १८

एवं दृष्ट्वा तदा युद्धं वीरभद्रस्य तेन च।
तत्र गत्वा वीरभद्रमवोचस्त्वं शिवप्रियः॥ १९

तब भेरी, मृदंग, पटह, आनक तथा गोमुख बाजे बजने लगे, जिसे सुनकर वीर प्रसन्न तथा कायर व्याकुल हो गये। एक-दूसरेके प्रहारोंसे जर्जर कर दिये गये वे दोनों बड़ी सावधानीके साथ बुध तथा मंगलके समान बड़े वेगसे परस्पर युद्ध कर रहे थे। तब तारकासुरके साथ वीरभद्रका ऐसा युद्ध देखकर वहाँ वीरभद्रके पास जाकर शिवजीके प्रिय आप कहने लगे— ॥ १७—१९॥

नारद उवाच

वीरभद्र महावीर गणानामग्रणीर्भवान्।
निवर्तस्व रणादस्माद्रोचते न वधस्त्वया॥ २०

नारदजी बोले—हे वीरभद्र! हे महावीर! आप गणोंमें श्रेष्ठ हैं, आप इस युद्धसे हट जाइये; क्योंकि आपके द्वारा इसका वध उचित नहीं है॥ २०॥

एवं निशम्य त्वद्वाक्यं वीरभद्रो गणाग्रणीः।
अवदत्स रुषाविष्टस्त्वां तदा तु कृतांजलिः॥ २१

आपके इस वचनको सुनकर गणोंमें अग्रणी कुपित वीरभद्र हाथ जोड़कर आपसे कहने लगे— ॥ २१॥

वीरभद्र उवाच

मुनिवर्य महाप्राज्ञ शृणु मे परमं वचः।
तारकं च वधिष्यामि पश्य मेऽद्य पराक्रमम्॥ २२

वीरभद्र बोले—हे महाप्राज्ञ! हे मुनिवर्य! आप मेरे श्रेष्ठ वचनको सुनिये। मैं तारकका वध [अवश्य] करूँगा; आज मेरा पराक्रम आप देखें॥ २२॥

आनयन्ति च ये वीराः स्वामिनं रणसंसदि।
ते पापिनो महाक्लीबा विनश्यन्ति रणं गताः॥ २३

असद्गतिं प्राप्नुवन्ति तेषां च निरयो ध्रुवम्।
वीरभद्रो हि विज्ञेयो न वाच्यस्ते कदाचन॥ २४

जो वीर अपने स्वामीको युद्धभूमिमें ले आते हैं, वे पापी तथा महानपुंसक होते हैं और रणक्षेत्रमें नष्ट हो जाते हैं। वे अशुभ गति प्राप्त करते हैं तथा उनको नरक अवश्य प्राप्त होता है। [हे मुने!] आप मुझे वीरभद्र जानिये, आप पुनः ऐसा कभी मत कहियेगा॥ २३-२४॥

शस्त्रास्त्रैर्भिन्नगात्रा ये रणं कुर्वन्ति निर्भयाः।
इहामुत्र प्रशंस्यास्ते लभन्ते सुखमद्भुतम्॥ २५

अस्त्र-शस्त्रोंसे छिन्न-भिन्न अंगोंवाले जो निर्भय होकर युद्ध करते हैं, वे इस लोकमें तथा परलोकमें प्रशंसाके पात्र होते हैं तथा अद्भुत सुख प्राप्त करते हैं॥ २५॥

शृण्वन्तु मम वाक्यानि देवा हरिपुरोगमाः।
अतारकां महीमद्य करिष्ये स्वामिवर्जितः॥ २६

विष्णु आदि सभी देवगण मेरे वचन सुन लें। आज मैं इस पृथ्वीको तारकासुरसे रहित कर दूँगा॥ २६॥

इत्युक्त्वा प्रमथैस्सार्द्धं वीरभद्रो हि शूलधृक्।
विचिन्त्य मनसा शंभुं युयुधे तारकेण हि॥ २७

ऐसा कहकर त्रिशूल धारण किये हुए वीरभद्र प्रमथगणोंको साथ लेकर मनमें शिवजीका स्मरणकर तारकासुरके साथ युद्ध करने लगे॥ २७॥

वृषारूढैरनेकैश्च त्रिशूलवरधारिभिः।
महावीरैः त्रिनेत्रैश्च स रेजे रणसंगतः॥ २८

वृषभपर बैठे हुए, उत्तम त्रिशूल धारण किये हुए तथा तीन नेत्रोंवाले अनेक महावीरोंके साथ रणमें विद्यमान वे [वीरभद्र] सुशोभित हो रहे थे॥ २८॥

कोलाहलं प्रकुर्वन्तो निर्भयाः शतशो गणाः।
वीरभद्रं पुरस्कृत्य युयुधुर्दानवैः सह॥ २९

सैकड़ों गण कोलाहल करते हुए वीरभद्रको आगे करके निर्भय हो दानवोंके साथ युद्ध करने लगे॥ २९॥

असुरास्तेऽपि युयुधुः तारकासुरजीविनः।
बलोत्कटा महावीरा मर्दयन्तो गणान् रुषा॥ ३०
पुनः पुनश्चैव बभूव संगरो
महोत्कटो दैत्यवरैर्गणानाम्।
प्रहर्षमाणाः परमास्त्रकोविदाः
तदा गणास्ते जयिनो बभूवुः॥ ३१

इसी प्रकार तारकासुरके अधीन रहनेवाले बलोन्मत्त महावीर राक्षस भी क्रोधमें भरकर गणोंका मर्दन करते हुए युद्ध करने लगे। इस प्रकार उन दैत्योंके साथ गणोंका बहुत बड़ा विकट संग्राम बारंबार होने लगा, उस समय अस्त्र चलानेमें कुशल गण एक-दूसरेको प्रहर्षित करते हुए विजयी हो गये॥ ३०-३१॥

गणैर्जितास्ते प्रबलैरसुरा विमुखा रणे।
पलायनपरा जाता व्यथिता व्यग्रमानसाः॥ ३२

तब प्रबल गणोंसे पराजित हुए दैत्य रणभूमिसे विमुख हो दुखी एवं व्याकुलचित्त होकर भागने लगे॥ ३२॥

एवं भ्रष्टं स्वसैन्यं तद् दृष्ट्वा तत्पालकोऽसुरः।
तारको हि रुषाविष्टो हन्तुं देवगणान् ययौ॥ ३३

इस प्रकार अपनी सेनाको व्यथित तथा पराङ्मुख देखकर तारकासुर क्रोधित होकर देवताओंको मारनेके लिये चला॥ ३३॥

भुजानामयुतं कृत्वा सिंहमारुह्य वेगतः।
पातयामास तान्देवान् गणांश्च रणमूर्द्धनि॥ ३४

वह दस हजार भुजा धारणकर सिंहपर आरूढ़ हो बड़े वेगसे देवताओं तथा गणोंको युद्धमें गिराने लगा॥ ३४॥

स दृष्ट्वा तस्य तत्कर्म वीरभद्रो गणाग्रणीः।
चकार सुमहत्कोपं तद्वधाय महाबली॥ ३५

स्मृत्वा शिवपदांभोजं जग्राह त्रिशिखं परम्।
जज्वलुस्तेजसा तस्य दिशः सर्वा नभस्तथा॥ ३६

एतस्मिन्नन्तरे स्वामी वारयामास तं रणात्।
वीरबाहुमुखान्सद्यो महाकौतुकदर्शकः॥ ३७

तब गणोंके मुखिया महाबली वीरभद्रने उसके इस कर्मको देखकर उसके वधके लिये अत्यधिक क्रोध किया। उन्होंने शिवजीके चरण-कमलोंका स्मरण करके श्रेष्ठ त्रिशूल ग्रहण किया, उसके तेजसे सभी दिशाएँ तथा आकाश जलने लगे। इसी अवसरपर महान् कौतुक दिखानेवाले स्वामी कार्तिकेयने उन्हें तथा वीरबाहु आदि गणोंको युद्धभूमिसे हटा दिया॥ ३५—३७॥

तदाज्ञया वीरभद्रो निवृत्तोऽभूद्रणात्तदा।
कोपं चक्रे महावीरस्तारकोऽसुरनायकः॥ ३८

उनकी आज्ञासे वीरभद्र रणभूमिसे विरत हो गये। तब असुरनायक तारकासुरने महाक्रोध किया॥ ३८॥

चकार बाणवृष्टिं च सुरोपरि तदाऽसुरः।
ततोऽऽह्वासीत्सुरान्सद्यो नानास्त्ररणकोविदः॥ ३९

अनेक अस्त्रोंको चलाने तथा युद्धमें कुशल वह तारकासुर शीघ्र ही देवताओंको पीड़ित करके उनके ऊपर बाणवृष्टि करने लगा॥ ३९॥

एवं कृत्वा महत्कर्म तारकोऽसुरपालकः।
सर्वेषामपि देवानामशक्यो बलिनां वरः॥ ४०

एवं निहन्यमानांस्तान् दृष्ट्वा देवान् भयाकुलान्।
कोपं कृत्वा रणायाशु संनद्धोऽभवदच्युतः॥ ४१

इस प्रकार असुरोंका पालन करनेवाला एवं बलवानोंमें श्रेष्ठ वह तारक ऐसा [युद्धरूप] महान् कर्म करके देवताओंसे अजेय हो गया। इस प्रकार [असुरोंके द्वारा] मारे जाते हुए तथा भयभीत उन देवताओंको देखकर विष्णु क्रोध करके युद्धके लिये शीघ्र उद्यत हो गये॥ ४०-४१॥

चक्रं सुदर्शनं शार्ङ्गं धनुरादाय सायुधः।
अभ्युद्ययौ महादैत्यं रणाय भगवान् हरिः॥ ४२

भगवान् विष्णु सुदर्शनचक्र, शार्ङ्गधनुष तथा अन्य अस्त्र धारणकर रणहेतु महादैत्य तारकके सम्मुख पहुँच गये॥ ४२॥

ततः समभवद्युद्धं हरितारकयोर्महत्।
लोमहर्षणमत्युग्रं सर्वेषां पश्यतां मुने॥ ४३

गदामुद्यम्य स हरिर्जघानासुरमोजसा।
द्विधा चकार तां दैत्यस्त्रिशिखेन महाबली॥ ४४

तदनन्तर हे मुने! सबके देखते-देखते तारकासुर तथा विष्णुका रोमांचकारी, अति भयंकर तथा घोर युद्ध होने लगा। विष्णुने बड़े वेगके साथ गदा उठाकर असुर तारकपर प्रहार किया। महाबली तारकने भी त्रिशिखसे उस गदाके दो टुकड़े कर दिये॥ ४३-४४॥

ततः स क्रुद्धो भगवान्देवानामभयंकरः।
शार्ङ्गच्युतैः शरव्यूहैर्जघानासुरनायकम्॥ ४५

सोऽपि दैत्यो महावीरस्तारकः परवीरहा।
चिच्छेद सकलान्बाणान्स्वशरैर्निशितैर्द्रुतम्॥ ४६

अथ शक्त्या जघानाशु मुरारिं तारकासुरः।
भूमौ पपात स हरिस्तत्प्रहारेण मूर्च्छितः॥ ४७

तब देवताओंको अभय देनेवाले भगवान् विष्णु अत्यन्त क्रोधित हो गये और उन्होंने शार्ङ्गधनुषसे छोड़े गये बाणोंसे उस असुरनायकपर प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया। शत्रुवीरोंका हनन करनेवाले उस महावीर तारकासुरने भी अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उनके समस्त बाणोंको शीघ्रतासे काट दिया। इसके बाद तारकासुरने अपनी शक्तिसे विष्णुपर शीघ्रतापूर्वक प्रहार किया। उसके प्रहारसे मूर्च्छित होकर वे विष्णु पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ४५—४७॥

जग्राह स रुषा चक्रमुत्थितः क्षणतोऽच्युतः।
सिंहनादं महत्कृत्वा ज्वलज्ज्वालासमाकुलम्॥ ४८

तब क्षणभरके बाद चेतना प्राप्तकर वे उठ गये और उन्होंने महान् सिंहनाद करके क्रोधके साथ जलती हुई अग्निके समान तेजस्वी चक्रको धारण किया॥ ४८॥

तेन तं च जघानासौ दैत्यानामधिपं हरिः।
तत्प्रहारेण महता व्यथितो न्यपतद्भुवि॥ ४९

विष्णुने उस चक्रसे दैत्यराजपर प्रहार किया और उस तीव्र प्रहारसे आहत होकर वह पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ४९॥

पुनश्चोत्थाय दैत्येन्द्रस्तारकोऽसुरनायकः।
चिच्छेद त्वरितं चक्रं स्वशक्त्यातिबलान्वितः॥ ५०

पुनस्तया महाशक्त्या जघानामरवल्लभम्।

बलशाली उस असुरनायक दैत्यराज तारकने पुनः उठकर बड़ी तेजीके साथ अपनी शक्तिसे सुदर्शनचक्रको काट दिया और उसी महाशक्तिसे देवताओंके प्रिय अच्युतपर प्रहार किया। तब महावीर

अच्युतोऽपि महावीरो नन्दकेन जघान तम्॥ ५१

एवमन्योऽन्यमसुरो विष्णुश्च बलवानुभौ।
युयुधाते रणे भूरि तत्राक्षतबलौ मुने॥ ५२

विष्णुने भी नन्दक नामक खड्गसे उसपर प्रहार किया। हे मुने! इस प्रकार अक्षीण बलवाले बलवान् विष्णु तथा तारकासुर दोनों ही रणमें एक-दूसरेसे घोर संग्राम करते रहे॥ ५०—५२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे देवदैत्यसामान्ययुद्धवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें देवों और दैत्योंका सामान्ययुद्धवर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः

ब्रह्माजीका कार्तिकेयको तारकके वधके लिये प्रेरित करना, तारकासुरद्वारा विष्णु तथा इन्द्रकी भर्त्सना, पुनः इन्द्रादिके साथ तारकासुरका युद्ध

ब्रह्मोवाच

देवदेव गुह स्वामिन् शांकरे पार्वतीसुत।
न शोभते रणो विष्णुतारकासुरयोर्वृथा॥ १

विष्णुना न हि वध्योऽसौ तारको बलवानति।
मया दत्तवरस्तस्मात्सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ २

नान्यो हन्तास्य पापस्य त्वां विना पार्वतीसुत।
तस्मात्त्वया हि कर्तव्यं वचनं मे महाप्रभो॥ ३

ब्रह्माजी बोले—हे देवदेव! हे गुह! हे स्वामिन्! हे शंकरपुत्र! हे पार्वतीसुत! विष्णु तथा तारकासुरका यह व्यर्थ संग्राम शोभा नहीं देता। यह अति बलवान् तारक विष्णुसे नहीं मरेगा; क्योंकि मैंने उसको वरदान दिया है। यह मैं सत्य-सत्य कह रहा हूँ। हे पार्वतीसुत! आपके बिना इस पापीको मारनेवाला अन्य कोई नहीं है, इसलिये हे महाप्रभो! आप मेरा यह वचन स्वीकार कीजिये॥ १—३॥

सन्नद्धो भव दैत्यस्य वधायाशु परंतप।
तद्वधार्थं समुत्पन्नः शंकरात्त्वं शिवासुत॥ ४

रक्ष रक्ष महावीर त्रिदशान् व्यथितान् रणे।
न बालस्त्वं युवा नैव किं तु सर्वेश्वरः प्रभुः॥ ५

हे परन्तप! अब आप शीघ्र ही इस दैत्यके वधके लिये तत्पर हो जाइये। हे शिवापुत्र! इसको मारनेके लिये ही आप शंकरजीसे उत्पन्न हुए हैं। हे महावीर! आप रणभूमिमें इन पीड़ित देवगणोंकी रक्षा कीजिये, आप न तो बालक हैं, न युवा हैं, किंतु सर्वेश्वर प्रभु हैं॥ ४-५॥

शक्रं पश्य तथा विष्णुं व्याकुलं च सुरान् गणान्।
एनं जहि महादैत्यं त्रैलोक्यं सुखितं कुरु॥ ६

आप इस समय व्याकुल इन्द्र, विष्णु, अन्य देवताओं एवं गणोंको देखिये और इस महादैत्यका वध कीजिये तथा त्रैलोक्यको सुख प्रदान कीजिये॥ ६॥

अनेन विजितश्चेन्द्रो लोकपालैः पुरा सह।
विष्णुश्चापि महावीरो तर्जितस्तपसो बलात्॥ ७

त्रैलोक्यं निर्जितं सर्वमसुरेण दुरात्मना।
इदानीं तव सान्निध्यात्पुनर्युद्धं कृतं च तैः॥ ८

इसने पूर्वकालमें लोकपालोंसहित इन्द्रपर विजय प्राप्त की है और अपनी तपस्याके बलसे महावीर विष्णुको भी अपमानित किया है। इस दुरात्मा दैत्यने सम्पूर्ण त्रैलोक्यको जीत लिया और इस समय आपके सान्निध्यके कारण उन देवताओंसे पुनः युद्ध किया॥ ७-८॥

तस्मात्त्वया निहन्तव्यस्तारकः पापपूरुषः।
अन्यवध्यो न चैवायं मद्वराच्छंकरात्मज॥ ९

इस कारण आप इस दुरात्मा पापी तारकासुरका वध कीजिये। हे शंकरात्मज! यह मेरे वरदानके कारण आपके सिवा किसी अन्यसे नहीं मारा जा सकता॥ ९॥

इति श्रुत्वा मम वचः कुमारः शंकरात्मजः।
विजहास प्रसन्नात्मा तथास्त्विति वचोऽब्रवीत्॥ १०

[ब्रह्माजीने कहा—] मेरी यह बात सुनकर शंकरपुत्र कार्तिकेय प्रसन्नचित्त होकर हँसने लगे और 'ऐसा ही होगा'—यह वचन बोले॥ १०॥

विनिश्चित्यासुरवधं शांकरिः स महाप्रभुः।
विमानादवतीर्याथ पदातिरभवत्तदा॥ ११

तब वे महाप्रभु शंकरपुत्र असुरके वधका निश्चयकर विमानसे उतरकर पैदल हो गये॥ ११॥

पद्भ्यां तदासौ परिधावमानो
रेजेऽतिवीरः शिवजः कुमारः।
करे समादाय महाप्रभां तां
शक्तिं महोल्कामिव दीप्तिदीप्ताम्॥ १२
दृष्ट्वा तमायान्तमतिप्रचंड-
मव्याकुलं षण्मुखमप्रमेयम्।
दैत्यो बभाषे सुरसत्तमान्स
कुमार एष द्विषतां प्रहन्ता॥ १३

उस युद्धभूमिमें अपने हाथमें महोल्काके समान महाप्रभायुक्त देदीप्यमान शक्ति नामक अस्त्रको धारण किये हुए वे शिवपुत्र कार्तिकेय पैदल दौड़ते हुए अत्यन्त शोभायमान हो रहे थे। अत्यन्त प्रचण्ड, महाधैर्यशाली और अप्रमेय कार्तिकेयको अपने सम्मुख आता देखकर उस तारकासुरने देवगणोंसे कहा—क्या शत्रुओंका वध करनेवाले कुमार ये ही हैं?॥ १२-१३॥

अनेन साकं ह्यहमेकवीरो
योत्स्ये च सर्वानहमेव वीरान्।
गणांश्च सर्वानपि घातयामि
सलोकपालान् हरिनायकांश्च॥ १४

मैं अकेले ही इस कुमार एवं अन्य वीरोंके साथ युद्ध करूँगा और लोकपालोंसहित समस्त गणों एवं विष्णु आदि देवताओंका वध करूँगा॥ १४॥

इत्येवमुक्त्वा स तदा महाबलः
कुमारमुद्दिश्य ययौ च योद्धुम्।
जग्राह शक्तिं परमाद्भुतां च
स तारको देववरान् बभाषे॥ १५

ऐसा कहकर वह महाबली तारक कुमारको उद्देश्य करके युद्ध करनेके लिये चला। उसने हाथमें अत्यन्त अद्भुत शक्ति ले ली और वह श्रेष्ठ देवताओंसे कहने लगा—॥ १५॥

तारक उवाच

कुमारो मेऽग्रतश्चाद्य भवद्भिश्च कथं कृतः।
यूयं गतत्रपा देवा विशेषाच्छक्रकेशवौ॥ १६

तारक बोला—हे देवगणो! तुमलोगोंने इस बालक कुमारको मेरे आगे कैसे कर दिया? तुम सब बड़े निर्लज्ज हो, इन्द्र और विष्णु तो विशेष रूपसे लज्जाहीन हैं॥ १६॥

पुरैताभ्यां कृतं कर्म विरुद्धं वेदमार्गतः।
तच्छृणुध्वं मया प्रोक्तं वर्णयामि विशेषतः॥ १७

पूर्व समयमें भी इन दोनोंने वेदविरुद्ध कर्म किये हैं। मैं विशेषरूपसे उनका वर्णन कर रहा हूँ, तुमलोग सुनो॥ १७॥

तत्र विष्णुश्छली दोषी ह्यविवेकी विशेषतः।
बलिर्येन पुरा बद्धश्छलमाश्रित्य पापतः॥ १८

इन दोनोंमें विशेषरूपसे विष्णु तो छली, दोषी तथा अविवेकी है, जिसने पूर्वकालमें पापपूर्वक छल करके बलिको बाँधा था॥ १८॥

तेनैव यत्नतः पूर्वमसुरौ मधुकैटभौ।
शिरोहीनौ कृतौ धौर्त्याद्वेदमार्गो विवर्जितः॥ १९

उसीने यत्नपूर्वक वेदमार्गका त्यागकर धूर्ततासे मधु तथा कैटभ नामक राक्षसोंका सिर काट लिया था॥ १९॥

मोहिनीरूपतोऽनेन पंक्तिभेदः कृतो हि वै।
देवासुरसुधापाने वेदमार्गो विगर्हितः॥ २०

उसके बाद देवता एवं दैत्योंके अमृत-पानके समय उसीने मोहिनीरूप धारणकर पंक्ति-भेद किया और वेदमार्गको दूषित किया॥ २०॥

रामो भूत्वा हता नारी वाली विध्वंसितो हि सः।
पुनर्वैश्रवणो विप्रो हतो नीतिर्हता श्रुतेः॥ २१

उसने रामावतार लेकर ताड़का स्त्रीका वध किया, बालिको [छिपकर] मारा तथा विश्रवाके पुत्र विप्र रावणका वध किया, इस प्रकार उसने वेदनीतिका विनाश किया॥ २१॥

पापं विना स्वकीया स्त्री त्यक्ता पापरतेन यत्।
तत्रापि श्रुतिमार्गश्च ध्वंसितः स्वार्थहेतवे॥ २२

पापपरायण इसने बिना अपराधके ही अपनी स्त्रीका परित्याग कर दिया। इस प्रकार अपने स्वार्थके लिये इसने वेदमार्गको ध्वस्त किया॥ २२॥

स्वजनन्याः शिरश्छिन्नमवतारे रसाख्यके।
गुरुपुत्रापमानश्च कृतोऽनेन दुरात्मना॥ २३

छठे परशुरामावतारमें इस दुष्टने अपनी माताका सिर काट दिया और [गणेशको युद्धमें हराकर] गुरुपुत्रका अपमान किया॥ २३॥

कृष्णो भूत्वान्यनार्यश्च दूषिताः कुलधर्मतः।
श्रुतिमार्गं परित्यज्य स्वविवाहाः कृतास्तथा॥ २४

कृष्णावतारमें इसने कुलधर्मके विरुद्ध वेदमार्गको छोड़कर बहुत-से विवाह किये और अनेक नारियोंको दूषित किया॥ २४॥

पुनश्च वेदमार्गो हि निंदितो नवमे भवे।
स्थापितं नास्तिकमतं वेदमार्गविरोधकृत्॥ २५

इसके बाद नौवें बुद्धावतारमें इसने वेदमार्गकी निन्दा की और वेदमार्गका विरोध करनेवाले नास्तिक मतका स्थापन किया॥ २५॥

एवं येन कृतं पापं वेदमार्गं विसृज्य वै।
स कथं विजयेद्युद्धे भवेद्धर्मवतां वरः॥ २६

इस प्रकार जिसने वेदमार्गको छोड़कर पाप किया है, वह युद्धमें कैसे विजयी हो सकता है और कैसे धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ हो सकता है?॥ २६॥

भ्राता ज्येष्ठश्च यस्तस्य शक्रः पापी महान्मतः।
तेन पापान्यनेकानि कृतानि निजहेतुतः॥ २७

इसी प्रकार इसका ज्येष्ठ भ्राता इन्द्र भी महापापी कहा गया है; उसने भी अपने स्वार्थके लिये नाना प्रकारके पाप किये हैं॥ २७॥

निकृत्तो हि दितेर्गर्भः स्वार्थहेतोर्विशेषतः।
धर्षिता गौतमस्त्री वै हतो वृत्रश्च विप्रजः॥ २८

उसने अपने स्वार्थके लिये दितिके गर्भमें प्रवेशकर गर्भस्थ बालकके टुकड़े-टुकड़े कर दिये, गौतमकी स्त्रीसे व्यभिचार किया और ब्राह्मणकुमार वृत्रका वध किया॥ २८॥

विश्वरूपद्विजातेर्वै भागिनेयस्य यद्गुरोः।
निकृत्तानि च शीर्षाणि तदध्वाध्वंसितः श्रुतेः॥ २९

विश्वरूप ब्राह्मणका, जो असुरोंका भागिनेय तथा इन्द्रका गुरु भी था, उसका सिर काटकर इसने वेदमार्गको विनष्ट किया॥ २९॥

कृत्वा बहूनि पापानि हरिः शक्रः पुनः पुनः।
तेजोभिर्विहतावेव नष्टवीर्यौ विशेषतः॥ ३०

इस प्रकार विष्णु एवं इन्द्र वे दोनों बार-बार अनेक पाप करके तेजसे रहित तथा विनष्ट पराक्रमवाले हो गये हैं॥ ३०॥

तयोर्बलेन नो यूयं संग्रामे जयमाप्स्यथ।
किमर्थं मूढतां प्राप्य प्राणांस्त्यक्तुमिहागताः॥ ३१

[हे देवगण!] इन दोनोंके बलसे तुमलोग संग्राममें विजय नहीं प्राप्त कर सकोगे। फिर मूर्खता करके तुमलोग अपना प्राण त्याग करनेके लिये यहाँ क्यों आये हो?॥ ३१॥

जानन्तौ धर्ममेतौ न स्वार्थलंपटमानसौ।
धर्मं विनाऽमराः कृत्यं निष्फलं सकलं भवेत्॥ ३२

ये दोनों बड़े लम्पट एवं स्वार्थी हैं, इन्हें धर्मका ज्ञान नहीं है। हे देवताओ! धर्मके बिना किया गया सारा कृत्य व्यर्थ होता है॥ ३२॥

महाधृष्टाविमौ मेऽद्य कृतवंतौ पुरश्शिशुम्।
अहं बालं वधिष्यामि तयोः सोऽपि भविष्यति॥ ३३

ये दोनों बड़े धृष्ट हैं। इन दोनोंने इस बालकको मेरे सामने खड़ा कर दिया है। यदि मैं बालकका वध करूँगा, तो यह पाप भी इन्हीं दोनोंको लगेगा॥ ३३॥

किं तु बाल इतो यायाद् दूरं प्राणपरीप्सया।
इत्युक्त्वोद्दिश्य च हरी वीरभद्रमुवाच सः॥ ३४

किंतु यह बालक अपने प्राणकी रक्षाके लिये यहाँसे दूर चला जाय। विष्णु तथा इन्द्रके विषयमें इस प्रकार कहकर उसने वीरभद्रसे कहा—॥ ३४॥

पुरा हतास्त्वया विप्रा दक्षयज्ञे ह्यनेकशः।
तत्कर्मणः फलं चाद्य दर्शयिष्यामि तेऽनघ॥ ३५

तुमने भी पहले दक्षप्रजापतिके यज्ञमें अनेक ब्राह्मणोंका वध किया था। हे अनघ! मैं आज तुम्हें उस कर्मका फल चखाऊँगा॥ ३५॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवमुक्त्वा तु विधूय पुण्यं
निजं स तन्निन्दनकर्मणा वै।
जग्राह शक्तिं परमाद्भुतां च
स तारको युद्धवतां वरिष्ठः॥ ३६

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार युद्ध करनेवालोंमें श्रेष्ठ तारकासुरने विष्णु तथा इन्द्रके निन्दाकर्मसे अपना समस्त पुण्य नष्ट करके अत्यन्त अद्भुत शक्ति ग्रहण की॥ ३६॥

तं बालान्तिकमायान्तं तारकासुरमोजसा।
आजघान च वज्रेण शक्रो गुहपुरस्सरः॥ ३७

तब बड़े वेगसे बालकके समीप आते हुए उस तारकासुरको देखकर इन्द्रने कुमारके आगे होकर अपने वज्रसे उसपर प्रहार किया॥ ३७॥

तेन वज्रप्रहारेण तारको जर्जरीकृतः।
भूमौ पपात सहसा निंदाहतबलः क्षणम्॥ ३८

उस वज्रके प्रहारसे देवताओंकी निन्दासे नष्ट बलवाला तारकासुर जर्जर हो गया और क्षणमात्रमें पृथ्वीपर सहसा गिर पड़ा॥ ३८॥

पतितोऽपि समुत्थाय शक्त्या तं प्राहरद्रुषा।
पुरंदरं गजस्थं हि पातयामास भूतले॥ ३९

तब गिरनेपर भी उठकर उसने बड़े वेगसे इन्द्रपर अपनी शक्तिसे प्रहार किया और हाथीपर चढ़े इन्द्रको पृथ्वीपर गिरा दिया॥ ३९॥

हाहाकारो महानासीत्पतिते च पुरंदरे।
सेनायां निर्जराणां हि तद् दृष्ट्वा क्लेश आविशत्॥ ४०

इस प्रकार इन्द्रके गिरनेपर महान् हाहाकार होने लगा, यह देखकर देवताओंकी सेनामें शोक छा गया॥ ४०॥

तारकेणाऽपि तत्रैव यत्कृतं कर्म दुःखदम्।
स्वनाशकारणं धर्मविरुद्धं तन्निबोध मे॥ ४१

[हे नारद!] उस समय तारकने भी धर्मविरुद्ध एवं दुःखदायक जो कर्म अपने नाशके लिये किया, उसे आप मुझसे सुनें॥ ४१॥

पतितं च पदाक्रम्य हस्ताद्वज्रं प्रगृह्य वै।
पुनरुद्वज्रघातेन शक्रमाताडयद्भृशम्॥ ४२

उसने गिरे हुए इन्द्रको अपने पैरोंसे रौंदकर उनके हाथसे वज्र छीनकर उसी वज्रसे उनपर प्रहार किया॥ ४२॥

एवं तिरस्कृतं दृष्ट्वा शक्रं विष्णुः प्रतापवान्।
चक्रमुद्यम्य भगवांस्तारकं स जघान ह॥ ४३

इस प्रकार इन्द्रको तिरस्कृत होता हुआ देखकर प्रतापशाली भगवान् विष्णुने चक्र उठाकर तारकासुरपर प्रहार किया॥ ४३॥

चक्रप्रहाराभिहतो निपपात क्षितौ हि सः।
पुनरुत्थाय दैत्येन्द्रः शक्त्या विष्णुं जघान तम्॥ ४४

उस चक्रके प्रहारसे आहत होकर वह तारकासुर पृथ्वीपर गिर पड़ा। पुनः उठकर उस दैत्यराजने शक्ति नामक अस्त्रसे विष्णुपर प्रहार किया॥ ४४॥

तेन शक्तिप्रहारेण पतितो भुवि चाच्युतः।
हाहाकारो महानासीच्चुक्रुशुश्चाऽतिनिर्जराः॥ ४५

उस शक्तिके प्रहारसे विष्णु पृथ्वीपर गिर पड़े। इससे बड़ा हाहाकार मच गया और देवता लोग जोर-जोरसे चिल्लाने लगे॥ ४५॥

निमेषेण पुनर्विष्णुर्यावदुत्तिष्ठते स्वयम्।
तावत्स वीरभद्रो हि तत्क्षणादागतोऽसुरम्॥ ४६

एक निमेषमात्रमें पुनः अभी विष्णु उठ ही रहे थे, तभी उसी समय वीरभद्र उस असुरके समीप आ गये॥ ४६॥

त्रिशूलं च समुद्यम्य वीरभद्रः प्रतापवान्।
तारकं दितिजाधीशं जघान प्रसभं बली॥ ४७

तत्त्रिशूलप्रहारेण स पपात क्षितौ तदा।
पतितोऽपि महातेजास्तारकः पुनरुत्थितः॥ ४८

कृत्वा क्रोधं महावीरः सकलासुरनायकः।
जघान परया शक्त्या वीरभद्रं तदोरसि॥ ४९

प्रतापी एवं बलवान् वीरभद्रने अपना त्रिशूल लेकर बड़े वेगसे उस दैत्यपति तारकासुरपर बलपूर्वक प्रहार किया। तब उस त्रिशूलके लगते ही वह महातेजस्वी तारक पृथ्वीपर गिर पड़ा और गिरनेपर भी क्षणमात्रमें उठ गया। तब समस्त असुरोंके सेनापति उस महावीरने क्रोध करके अपनी परम शक्तिद्वारा वीरभद्रकी छातीपर प्रहार किया॥ ४७—४९॥

वीरभद्रोऽपि पतितो भूतले मूर्च्छितः क्षणम्।
तच्छक्त्या परया क्रोधान्निहतो वक्षसि ध्रुवम्॥ ५०

क्रोधसे चलाये गये उस प्रचण्ड शक्ति नामक अस्त्रके छातीपर लगते ही वीरभद्र भी क्षणमात्रमें मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ५०॥

सगणाश्चैव देवास्ते गंधर्वोरगराक्षसाः।
हाहाकारेण महता चुक्रुशुश्च मुहुर्मुहुः॥ ५१

तब गणोंसहित देवता, गन्धर्व, उरग तथा राक्षस बड़ा हाहाकार करते हुए बार-बार चिल्लाने लगे॥ ५१॥

निमेषमात्रात्सहसा महौजा-
स्सवीरभद्रो द्विषतां निहन्ता।
त्रिशूलमुद्यम्य तडित्प्रकाशं
जाज्वल्यमानं प्रभया विरेजे॥ ५२

स्वरोचिषा भासितदिग्वितानं
सूर्येन्दुबिम्बाग्निसमानमंडलम्।
महाप्रभं वीरभयावहं परं
कालाख्यमत्यंतकरं महोज्ज्वलम्॥ ५३

क्षणभरके पश्चात् शत्रुनाशक महातेजस्वी वीरभद्र जलती हुई अग्निके समान प्रभावाले एवं विद्युत्के समान देदीप्यमान त्रिशूल लेकर [युद्धस्थलमें] शोभित होने लगे। वह त्रिशूल अपनी कान्तिसे दिशाओंको प्रकाशित कर रहा था। वह सूर्य एवं चन्द्रके बिम्ब तथा अग्निके समान मण्डलवाला, महाप्रभासे युक्त, वीरोंको भय उत्पन्न करनेवाला, कालके समान सबका अन्त करनेवाला तथा महोज्ज्वल था॥ ५२-५३॥

यावत्त्रिशूलेन तदा हंतुकामो महाबलः।
वीरभद्रोऽसुरं तावत्कुमारेण निवारितः॥ ५४

महाबली वीरभद्र जैसे ही उस त्रिशूलसे असुरको मारनेके लिये उद्यत हुए, तभी कुमारने उन्हें रोक दिया॥ ५४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे तारकवाक्यशक्र-विष्णुवीरभद्रयुद्धवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें तारकवाक्यशक्र-विष्णुवीरभद्रयुद्धवर्णन नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

अथ दशमोऽध्यायः

कुमार कार्तिकेय और तारकासुरका भीषण संग्राम, कार्तिकेयद्वारा तारकासुरका वध, देवताओंद्वारा दैत्यसेनापर विजय प्राप्त करना, सर्वत्र विजयोल्लास, देवताओंद्वारा शिवा-शिव तथा कुमारकी स्तुति

ब्रह्मोवाच

निवार्य वीरभद्रं तं कुमारः परवीरहा।
समैच्छत्तारकवधं स्मृत्वा शिवपदाम्बुजौ॥ १

जगर्जाथ महातेजाः कार्तिकेयो महाबलः।
सन्नद्धः सोऽभवत्क्रुद्धः सैन्येन महता वृतः॥ २

ब्रह्माजी बोले—शत्रुपक्षके वीरोंका नाश करनेवाले कुमार कार्तिकेयने इस प्रकार वीरभद्रको [तारकासुरके वधसे] रोककर शिवजीके चरणकमलोंका ध्यानकर स्वयं तारकासुरके वधकी इच्छा की। विशाल सेनासे घिरे हुए महातेजस्वी एवं महाबली कार्तिकेय गरजने लगे और क्रुद्ध होकर तारकासुरके वधके लिये उद्यत हो गये॥ १-२॥

तदा जय जयेत्युक्तं सर्वैर्देवगणैस्तथा।
संस्तुतो वाग्भिरिष्टाभिस्तदैव च सुरर्षिभिः॥ ३

तारकस्य कुमारस्य संग्रामोऽतीव दुस्सहः।
जातस्तदा महाघोरः सर्वभूतभयंकरः॥ ४

शक्तिहस्तौ च तौ वीरौ युयुधाते परस्परम्।
सर्वेषां पश्यतां तत्र महाश्चर्यवतां मुने॥ ५

उस समय देवताओं, गणों एवं ऋषियोंने कार्तिकेयका जय-जयकार किया और उत्तम वाणीसे उनकी स्तुति की। उसके बाद तारकासुर तथा कुमारका अत्यन्त दु:सह, समस्त प्राणियोंको भय देनेवाला एवं महाघोर संग्राम होने लगा। हे मुने! दोनों वीर हाथमें शक्ति नामक अस्त्र लेकर परस्पर युद्ध करने लगे, उस समय सभी देखनेवालोंको महान् आश्चर्य हो रहा था॥ ३—५॥

शक्तिनिर्भिन्नदेहौ तौ महासाधनसंयुतौ।
परस्परं वञ्चयन्तौ सिंहाविव महाबलौ॥ ६

वैतालिकं समाश्रित्य तथा खेचरकं मतम्।
प्रापतं च समाश्रित्य शक्त्या शक्तिं विजघ्नतुः॥ ७

शक्ति-अस्त्रसे छिन्न-भिन्न अंगोंवाले तथा महान् साधनोंसे युक्त वे दोनों महाबली एक-दूसरेकी वंचना करते हुए दो सिंहोंके समान आपसमें प्रहार कर रहे थे। दोनों वैतालिक, खेचर तथा प्रापत नामक युद्ध-विधियोंका आश्रय लेकर शक्तिसे शक्तिपर प्रहार करने लगे॥ ६-७॥

एभिर्मन्त्रैर्महावीरौ चक्रतुर्युद्धमद्भुतम्।
अन्योऽन्यं साधकौ भूत्वा महाबलपराक्रमौ॥ ८

महाबलं प्रकुर्वन्तौ परस्परवधैषिणौ।
जघ्नतुः शक्तिधाराभी रणे रणविशारदौ॥ ९

मूर्ध्नि कंठे तथाचोर्वोर्जान्वोश्चैव कटीतटे।
वक्षस्युरसि पृष्ठे च चिच्छिदुश्च परस्परम्॥ १०

महावीर, महाबली एवं पराक्रमी वे दोनों ही एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छासे इन युद्धकलाओंसे अद्भुत युद्ध कर रहे थे। रणविद्यामें प्रवीण, वे एक-दूसरेके वधकी इच्छासे अपना पराक्रम प्रदर्शित करते हुए शक्तिकी धाराओंसे युद्ध करने लगे। वे दोनों परस्पर एक-दूसरेके सिर, कण्ठ, ऊरु, जानु, कटिप्रदेश, वक्ष:स्थल, हृदयदेश तथा पृष्ठपर आघात कर रहे थे॥ ८—१०॥

तदा तौ युध्यमानौ च हन्तुकामौ महाबलौ।
वल्गन्तौ वीरशब्दैश्च नानायुद्धविशारदौ॥ ११

उस समय अनेक युद्धोंमें कुशल एवं महाबली वे दोनों एक-दूसरेको मारनेकी इच्छासे वीरध्वनिसे ललकारते हुए युद्ध कर रहे थे। उस

अभवन्प्रेक्षकाः सर्वे देवा गंधर्वकिन्नराः।
ऊचुः परस्परं तत्र कोऽस्मिन् युद्धे विजेष्यते॥ १२

समय सभी देवता, गन्धर्व, किन्नर उस युद्धको देखने लगे और परस्पर कहने लगे—इस युद्धमें कौन जीतेगा?॥ ११-१२॥

तदा नभोगता वाणी जगौ देवांश्च सांत्वयन्।
असुरं तारकं चात्र कुमारोऽयं हनिष्यति॥ १३

मा शोच्यतां सुरैः सर्वैः सुखेन स्थीयतामिति।
युष्मदर्थं शंकरो हि पुत्ररूपेण संस्थितः॥ १४

तब देवताओंको सान्त्वना देते हुए आकाशवाणी हुई कि इस युद्धमें यह कुमार तारकासुरका वध करेगा। हे देवगणो! आपलोग चिन्ता न करें, सुखपूर्वक रहें, आपलोगोंके लिये शिवजी पुत्ररूपसे स्थित हुए हैं॥ १३-१४॥

श्रुत्वा तदा तां गगने समीरितां
वाचं शुभां स प्रमथैः समावृतः।
निहंतुकामः सुखितः कुमारको
दैत्याधिपं तारकमाश्वभूत्तदा॥ १५

उस समय आकाशमार्गसे आयी हुई उस शुभ वाणीको सुनकर प्रमथगणोंसे घिरे हुए कुमार अत्यन्त प्रसन्न हुए और दैत्यराज तारकासुरको मारनेहेतु तत्पर हुए॥ १५॥

शक्त्या तया महाबाहुराजघान स्तनांतरे।
कुमारः स्म रुषाविष्टस्तारकासुरमोजसा॥ १६
तं प्रहारमनादृत्य तारको दैत्यपुंगवः।
कुमारं चापि संक्रुद्धः स्वशक्त्या संजघान सः॥ १७

उसके बाद उन महाबाहुने क्रोधित होकर तारकासुरकी छातीमें उस शक्ति नामक अस्त्रसे बलपूर्वक आघात किया। तब दैत्यश्रेष्ठ उस तारकासुरने भी उस शक्तिका तिरस्कारकर अत्यन्त कुपित होकर कुमारपर अपनी शक्तिसे प्रहार किया॥ १६-१७॥

तेन शक्तिप्रहारेण शांकरिर्मूर्च्छितोऽभवत्।
मुहूर्ताच्चेतनां प्राप स्तूयमानो महर्षिभिः॥ १८

उस शक्तिके प्रहारसे कार्तिकेय मूर्च्छित हो गये, पुनः थोड़ी देरके पश्चात् चेतनायुक्त हो गये और महर्षिगण उनकी स्तुति करने लगे॥ १८॥

यथा सिंहो मदोन्मत्तो हन्तुकामस्तथासुरम्।
कुमारस्तारकं शक्त्या स जघान प्रतापवान्॥ १९

मदोन्मत्त सिंहकी भाँति उन प्रतापी कुमारने तारकासुरका वध करनेकी इच्छासे शक्तिसे उसपर प्रहार किया॥ १९॥

एवं परस्परं तौ हि कुमारश्चापि तारकः।
युयुधातेऽतिसंरब्धौ शक्तियुद्धविशारदौ॥ २०
अभ्यासपरमावास्तामन्योन्यं विजिगीषया।
पदातिनौ युध्यमानौ चित्ररूपौ तरस्विनौ॥ २१

इस प्रकार शक्तियुद्धमें निपुण कुमार तथा तारकासुर क्रोधमें भरकर युद्ध करने लगे। [युद्धमें] परम अभ्यस्त वे दोनों ही एक-दूसरेपर विजय प्राप्त करनेकी इच्छासे पैदल ही पैंतरा देकर बड़ी तेजीसे युद्ध कर रहे थे॥ २०-२१॥

विविधैर्घातपुंजैस्तावन्योन्यं विनिजघ्नतुः।
नानामार्गान्प्रकुर्वन्तौ गर्जन्तौ सुपराक्रमौ॥ २२
अवलोकपराः सर्वे देवगंधर्वकिन्नराः।
विस्मयं परमं जग्मुर्नोचुः किंचन तत्र ते॥ २३

दोनों ही अनेक प्रकारके घातोंसे एक-दूसरेपर प्रहार कर रहे थे, एक-दूसरेका छिद्र देख रहे थे, वे दोनों ही पराक्रमी गर्जना कर रहे थे। सभी देवता, गन्धर्व तथा किन्नर युद्ध देख रहे थे, सभी आश्चर्यसे चकित थे और कोई भी किसीसे कुछ भी नहीं कह रहा था॥ २२-२३॥

न ववौ पवमानश्च निष्प्रभोऽभूद्दिवाकरः।
चचाल वसुधा सर्वा सशैलवनकानना॥ २४

उस समय पवनका चलना भी बन्द हो गया, सूर्यकी कान्ति फीकी पड़ गयी और पर्वत एवं वन-काननोंसहित सारी पृथ्वी काँप उठी॥ २४॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र हिमालयमुखा धराः।
स्नेहार्दितास्तदा जग्मुः कुमारं च परीप्सवः॥ २५

इसी बीच हिमालय आदि सभी प्रमुख पर्वत स्नेहाभिभूत होकर कुमारकी रक्षाके लिये वहाँ पहुँचे॥ २५॥

ततः स दृष्ट्वा तान्सर्वान्भयभीतांश्च शांकरिः।
पर्वतान्गिरिजापुत्रो बभाषे परिबोधयन्॥ २६

तब शंकर एवं पार्वतीके पुत्र कार्तिकेयने उन सभी पर्वतोंको भयभीत देखकर समझाते हुए कहा— ॥ २६॥

कुमार उवाच

मा खिद्यतां महाभागा मा चिंतां कुर्वतां नगाः।
घातयाम्यद्य पापिष्ठं सर्वेषां वः प्रपश्यताम्॥ २७

कुमार बोले—हे महाभाग पर्वतो! आपलोग खेद मत करें और चिन्ता मत करें। मैं आप सभीके देखते-देखते इस पापीका वध करूँगा॥ २७॥

एवं समाश्वास्य तदा पर्वतान् निर्जरान् गणान्।
प्रणम्य गिरिजां शंभुमाददे शक्तिमुत्प्रभाम्॥ २८

तं तारकं हन्तुमनाः करशक्तिर्महाप्रभुः।
विरराज महावीरः कुमारः शंभुबालकः॥ २९

इस प्रकार उन्होंने पर्वतों, गणों तथा देवताओंको ढाँढस देकर गिरिजा एवं शम्भुको प्रणाम करके अत्यन्त देदीप्यमान शक्तिको हाथमें लिया। उस तारकको मारनेकी इच्छावाले शम्भुपुत्र महावीर महाप्रभु कुमार हाथमें शक्ति लिये हुए उस समय अद्भुत शोभा पा रहे थे॥ २८-२९॥

शक्त्या तया जघानाथ कुमारस्तारकासुरम्।
तेजसाढ्यः शंकरस्य लोकक्लेशकरं च तम्॥ ३०

पपात सद्यः सहसा विशीर्णाङ्गोऽसुरः क्षितौ।
तारकाख्यो महावीरः सर्वासुरगणाधिपः॥ ३१

कुमारेण हतः सोऽतिवीरः स खलु तारकः।
लयं ययौ च तत्रैव सर्वेषां पश्यतां मुने॥ ३२

इस प्रकार शंकरजीके तेजसे सम्पन्न कुमार कार्तिकेयने लोकको क्लेश देनेवाले उस तारकासुरपर उस शक्तिसे प्रहार किया। तब सभी असुरगणोंका अधिपति महावीर तारक नामक असुर सहसा छिन्न-भिन्न अंगोंवाला होकर उसी क्षण पृथ्वीपर गिर पड़ा। हे मुने! कार्तिकेयने इस प्रकार उस असुरका वध किया और वह भी सबके देखते-देखते वहींपर लयको प्राप्त हो गया॥ ३०—३२॥

तथा तं पतितं दृष्ट्वा तारकं बलवत्तरम्।
न जघान पुनर्वीरः स गत्वा व्यसुमाहवे॥ ३३

हते तस्मिन्महादैत्ये तारकाख्ये महाबले।
क्षयं प्रणीता बहवोऽसुरा देवगणैस्तदा॥ ३४

महाबलवान् तारकको रणभूमिमें गिरा हुआ देखकर वीर कार्तिकेयने पुनः उस प्राणविहीनपर प्रहार नहीं किया। तब उस तारक नामक महाबली महादैत्यकी मृत्यु हो जानेपर देवगणोंने असुरोंको विनष्ट कर दिया॥ ३३-३४॥

केचिद्भीताः प्रांजलयो बभूवुस्तत्र चाहवे।
छिन्नभिन्नांगकाः केचिन्मृता दैत्याः सहस्रशः॥ ३५

केचिज्जाताः कुमारस्य शरणं शरणार्थिनः।
वदन्तः पाहि पाहीति दैत्याः सांजलयस्तदा॥ ३६

कुछ युद्धमें भयभीत होकर हाथ जोड़ने लगे, कुछ छिन्न-भिन्न अंगोंवाले हुए और हजारों दैत्य मृत्युको प्राप्त हो गये। शरणकी इच्छावाले कुछ दैत्य हाथ जोड़कर 'रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये'—ऐसा कहते हुए कुमारकी शरणमें चले गये॥ ३५-३६॥

कियन्तश्च हतास्तत्र कियन्तश्च पलायिताः।
पलायमाना व्यथितास्ताडिता निर्जरैर्गणैः॥ ३७

कुछ मारे गये, कुछ भाग खड़े हुए और कुछ भागते समय देवताओंके द्वारा मारे जानेसे पीड़ित हो गये॥ ३७॥

सहस्रशः प्रविष्टास्ते पाताले च जिजीषवः।
पलायमानास्ते सर्वे भग्नाशा दैन्यमागताः॥ ३८

जीनेकी इच्छावाले हजारों दैत्य पाताललोकमें प्रविष्ट हो गये और कुछ दीनतापूर्वक निराश होकर भाग गये॥ ३८॥

एवं सर्वं दैत्यसैन्यं भ्रष्टं जातं मुनीश्वर।
न केचित्तत्र संतस्थुर्गणदेवभयात्तदा॥ ३९

हे मुनीश्वर! इस प्रकार सम्पूर्ण दैत्यसेना विनष्ट हो गयी। उस समय देवताओं तथा गणोंके भयसे कोई भी असुर वहाँ रुक न सका॥ ३९॥

आसीन्निष्कंटकं सर्वं हते तस्मिन्दुरात्मनि।
ते देवाः सुखमापन्नाः सर्वे शक्रादयस्तदा॥ ४०

उस दुरात्माके मारे जानेपर सभी लोग निष्कण्टक हो गये और इन्द्रादि वे सभी देवता आनन्दमग्न हो गये॥ ४०॥

एवं विजयमापन्नं कुमारं निखिलाः सुराः।
बभूवुर्युगपद् हृष्टास्त्रिलोकाश्च महासुखाः॥ ४१

इस प्रकार विजयको प्राप्त करनेवाले कुमार कार्तिकेयको देखकर सभी देवता एक साथ प्रसन्न हो उठे एवं सारा त्रैलोक्य महासुखी हो गया॥ ४१॥

तदा शिवोऽपि तं ज्ञात्वा विजयं कार्तिकस्य च।
तत्राजगाम स मुदा सगणः प्रियया सह॥ ४२

उस समय [भगवान्] शंकर भी कार्तिकेयकी विजयका समाचार सुनकर अपने गणों तथा पार्वतीके साथ प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आ पहुँचे॥ ४२॥

स्वात्मजं स्वाङ्कमारोप्य कुमारं सूर्यवर्चसम्।
लालयामास सुप्रीत्या शिवा च स्नेहसंकुला॥ ४३

स्नेहसे भरी हुई पार्वतीजी सूर्यके समान तेजस्वी अपने पुत्र कुमारको अपनी गोदीमें लेकर अत्यन्त प्रीतिपूर्वक लाड़-प्यार करने लगीं॥ ४३॥

हिमालयस्तदागत्य स्वपुत्रैः परिवारितः।
सबन्धुस्सानुगः शंभुं तुष्टाव च शिवां गुहम्॥ ४४

उसी समय अपने बन्धुओं, अनुचरों और पुत्रोंसहित हिमालय भी वहाँ आकर शंकर, पार्वती तथा कुमारकी स्तुति करने लगे॥ ४४॥

ततो देवगणाः सर्वे मुनयः सिद्धचारणाः।
तुष्टुवुः शांकरिं शंभुं गिरिजां तुषितां भृशम्॥ ४५

तदनन्तर सभी देवता, मुनि, सिद्ध एवं चारण शिव, शिवा एवं कुमारकी स्तुति करने लगे॥ ४५॥

पुष्पवृष्टिं सुमहतीं चक्रुश्चोपसुरास्तदा।
जगुर्गंधर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥ ४६

देवादिकोंने [आकाशमण्डलसे] पुष्पोंकी वर्षा की, गन्धर्वपति गान करने लगे तथा अप्सराएँ नृत्य करने लगीं॥ ४६॥

वादित्राणि तथा नेदुस्तदानीं च विशेषतः।
जयशब्दो नमः शब्दो बभूवोच्चैर्मुहुर्मुहुः॥ ४७

ततो मयाच्युतश्चापि संतुष्टोऽभूद्विशेषतः।
शिवं शिवां कुमारं च संतुष्टाव समादरात्॥ ४८

कुमारमग्रतः कृत्वा हरिकेन्द्रमुखाः सुराः।
चक्रुर्नीराजनं प्रीत्या मुनयश्चापरे तथा॥ ४९

उस समय विशेष रूपसे बाजे बजने लगे और ऊँचे स्वरसे जयशब्द तथा नमःशब्दका उच्चारण बारंबार होने लगा। तब मेरे साथ भगवान् विष्णु विशेष रूपसे प्रसन्न हुए और उन्होंने आदरपूर्वक शिव, शिवा एवं कुमारकी स्तुति की। इसके बाद ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवता, मुनि तथा अन्यलोग कुमारको आगेकर प्रेमपूर्वक उनकी आरती उतारने लगे॥ ४७—४९॥

गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा।
तदोत्सवो महानासीत्कीर्तनं च विशेषतः॥ ५०

उस समय गीत-बाजेके शब्दसे तथा वेदध्वनिके उद्घोषसे महान् उत्सव होने लगा और विशेष रूपसे स्थान-स्थानपर कीर्तन होने लगा॥ ५०॥

गीतवाद्यैः सुप्रसन्नैस्तथा साञ्जलिभिर्मुने।
स्तूयमानो जगन्नाथः सर्वैर्देवगणैरभूत्॥ ५१

हे मुने! उस समय प्रसन्न समस्त देवगणोंने हाथ जोड़कर गीत-वाद्योंसे भगवान् शंकरकी स्तुति की॥ ५१॥

ततः स भगवान् रुद्रो भवान्या जगदंबया।
सर्वैः स्तुतो जगामाथ स्वगिरिं स्वगणैर्वृतः॥ ५२

उसके बाद सबके द्वारा स्तुत तथा अपने गणोंसे घिरे हुए भगवान् रुद्र जगज्जननी भवानीके साथ अपने [निवासस्थान] कैलासपर्वतपर चले गये॥ ५२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे तारकासुरवधदेवोत्सववर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें तारकासुरवध तथा देवताओंका उत्सववर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

अथैकादशोऽध्यायः

कार्तिकेयद्वारा बाण तथा प्रलम्ब आदि असुरोंका वध, कार्तिकेयचरितके श्रवणका माहात्म्य

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र क्रौञ्चनामाचलो मुने।
आजगाम कुमारस्य शरणं बाणपीडितः॥ १
पलायमानो यो युद्धादसोढा तेज ऐश्वरम्।
तुतोदातीव स क्रौञ्चं कोट्यायुतबलान्वितः॥ २

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इसी बीच बाण नामके राक्षससे पीड़ित होकर क्रौंच नामका एक पर्वत कुमार कार्तिकेयकी शरणमें वहाँपर आया। वह बाण नामक राक्षस तारक-संग्रामके समय कुमारका ऐश्वर्यशाली तेज सहन न कर पानेके फलस्वरूप दस हजार सैनिकोंके साथ भाग गया था, वही क्रौंचको अतिशय दुःख देने लगा॥ १-२॥

प्रणिपत्य कुमारस्य स भक्त्या चरणाम्बुजम्।
प्रेमनिर्भरया वाचा तुष्टाव गुहमादरात्॥ ३

वह क्रौंच पर्वत भक्तिपूर्वक कुमारके चरण-कमलोंमें प्रणाम करके प्रेममयी वाणीसे आदरपूर्वक कार्तिकेयकी स्तुति करने लगा॥ ३॥

क्रौंच उवाच

कुमार स्कंद देवेश तारकासुरनाशक।
पाहि मां शरणापन्नं बाणासुरनिपीडितम्॥ ४

क्रौंच बोला—हे कुमार! हे स्कन्द! हे देवेश! हे तारकासुरका नाश करनेवाले! बाण नामक दैत्यसे पीड़ित मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये॥ ४॥

संगरात्ते महासेन समुच्छिन्नः पलायितः।
न्यपीडयच्च माऽऽगत्य हा नाथ करुणाकर॥ ५

हे महासेन! वह बाण [तारकासुरके संग्राममें] आपसे भयभीत होकर भाग गया था। हे नाथ! हे करुणाकर! वह आकर अब मुझे पीड़ित कर रहा है॥ ५॥

तत्पीडितस्ते शरणमागतोऽहं सुदुःखितः।
पलायमानो देवेश शरजन्मन् दयां कुरु॥ ६

दैत्यं तं नाशय विभो बाणाह्वं मां सुखीकुरु।
दैत्यघ्नस्त्वं विशेषेण देवावनकरः स्वराट्॥ ७

हे देवेश! उसी बाणसे पीड़ित होकर अत्यन्त दुःखित मैं भागता हुआ आपकी शरणमें आया हूँ। हे शरजन्मन्! दया कीजिये। हे विभो! उस बाण नामक राक्षसका नाश कीजिये और मुझे सुखी कीजिये; आप विशेष रूपसे दैत्योंको मारनेवाले, देवरक्षक तथा स्वराट् हैं॥ ६-७॥

ब्रह्मोवाच

इति क्रौंचस्तुतः स्कन्दः प्रसन्नो भक्तपालकः।
गृहीत्वा शक्तिमतुलां स्वां सस्मार शिवो धिया॥ ८

चिक्षेप तां समुद्दिश्य स बाणं शंकरात्मजः।
महाशब्दो बभूवाथ जज्वलुश्च दिशो नभः॥ ९

ब्रह्माजी बोले—जब क्रौंचने इस प्रकार कुमारकी स्तुति की, तब भक्तपालक वे कार्तिकेय प्रसन्न हुए और उन्होंने हाथमें अपनी अनुपम शक्ति लेकर मनमें शिवजीका स्मरण किया। इसके बाद उन शिवपुत्रने बाणको लक्ष्य करके उसे छोड़ दिया। उससे महान् शब्द हुआ और आकाश एवं दसों दिशाएँ प्रज्वलित हो उठीं॥ ८-९॥

सबलं भस्मसात्कृत्वासुरं तं क्षणमात्रतः।
गुहोपकंठं शक्तिः सा जगाम परमा मुने॥ १०

ततः कुमारः प्रोवाच क्रौंचं गिरिवरं प्रभुः।
निर्भयः स्वगृहं गच्छ नष्टः स सबलोऽसुरः॥ ११

हे मुने! क्षणमात्रमें ही सेनासहित उस असुरको जलाकर वह परम शक्ति पुनः कुमारके पास लौट आयी। उसके बाद प्रभु कार्तिकेयने उस क्रौंच नामक पर्वतश्रेष्ठसे कहा—अब तुम निडर होकर अपने घर जाओ, सेनासहित उस असुरका अब नाश हो गया॥ १०-११॥

तच्छ्रुत्वा स्वामिवचनं मुदितो गिरिराट् तदा।
स्तुत्वा गुहं तदारातिं स्वधाम प्रत्यपद्यत॥ १२

ततः स्कन्दो महेशस्य मुदा स्थापितवान्मुने।
त्रीणि लिंगानि तत्रैव पापघ्नानि विधानतः॥ १३

प्रतिज्ञेश्वरनामादौ कपालेश्वरमादरात्।
कुमारेश्वरमेवाथ सर्वसिद्धिप्रदं त्रयम्॥ १४

पुनः सर्वेश्वरस्तत्र जयस्तंभसमीपतः।
स्तंभेश्वराभिधं लिंगं गुहः स्थापितवान्मुदा॥ १५

तब स्वामी कार्तिकेयका वह वचन सुनकर पर्वतराज प्रसन्न हो गया और कुमारकी स्तुतिकर अपने स्थानको चला गया। हे मुने! उसके बाद कार्तिकेयने प्रसन्न होकर उस स्थानपर महेश्वरके पापनाशक तीन लिंग विधिपूर्वक आदरके साथ स्थापित किये, उन तीनों लिंगोंमें प्रथमका नाम प्रतिज्ञेश्वर, दूसरेका नाम कपालेश्वर और तीसरेका नाम कुमारेश्वर है—ये तीनों सभी सिद्धियाँ देनेवाले हैं। इसके बाद उन सर्वेश्वरने वहींपर जय-स्तम्भके सन्निकट स्तम्भेश्वर नामक लिंगको प्रसन्नतापूर्वक स्थापित किया॥ १२—१५॥

ततः सर्वे सुरास्तत्र विष्णुप्रभृतयो मुदा।
लिंगं स्थापितवन्तस्ते देवदेवस्य शूलिनः॥ १६

इसके बाद वहींपर विष्णु आदि सभी देवगणोंने भी प्रसन्नतापूर्वक देवाधिदेव शिवके लिंगकी स्थापना की॥ १६॥

सर्वेषां शिवलिङ्गानां महिमाभूत्तदाद्भुतः।
सर्वकामप्रदश्चापि मुक्तिदो भक्तिकारिणाम्॥ १७

[वहाँपर स्थापित] उन सभी लिंगोंकी बड़ी विचित्र महिमा है, जो सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाली तथा भक्ति करनेवालोंको मोक्ष प्रदान करनेवाली है॥ १७॥

ततः सर्वे सुरा विष्णुप्रमुखाः प्रीतमानसाः।
ऐच्छन्गिरिवरं गन्तुं पुरस्कृत्य गुहं मुदा॥ १८

तस्मिन्नवसरे शेषपुत्रः कुमुदनामकः।
आजगाम कुमारस्य शरणं दैत्यपीडितः॥ १९

तब प्रसन्नचित्तवाले विष्णु आदि समस्त देवगण कार्तिकेयको आगेकर कैलास पर्वतपर जानेका विचार करने लगे। उसी समय शेषका कुमुद नामक पुत्र दैत्योंसे पीड़ित होकर कुमारकी शरणमें आया॥ १८-१९॥

प्रलंबाख्योऽसुरो यो हि रणादस्मात्पलायितः।
स तत्रोपद्रवं चक्रे प्रबलस्तारकानुगः॥ २०

सोऽथ शेषस्य तनयः कुमुदोऽहिपतेर्महान्।
कुमारशरणं प्राप्तस्तुष्टाव गिरिजात्मजम्॥ २१

प्रलम्ब नामक प्रबल असुर, जो इसी युद्धसे भाग गया था, वह तारकासुरका अनुगामी वहाँ उपद्रव करने लगा। नागराज शेषका वह कुमुद नामक पुत्र अत्यन्त महान् था, जो कुमारकी शरणमें प्राप्त होकर उन गिरिजापतिपुत्रकी स्तुति करने लगा॥ २०-२१॥

कुमुद उवाच

देवदेव महादेव वरतात महाप्रभो।
पीडितोऽहं प्रलंबेन त्वाऽहं शरणमागतः॥ २२

कुमुद बोला—हे देवदेव! हे महादेवके श्रेष्ठ पुत्र! हे तात! हे महाप्रभो! मैं प्रलम्बासुरसे पीड़ित होकर आपकी शरणमें आया हूँ। हे कुमार!

पाहि मां शरणापन्नं प्रलंबासुरपीडितम्।
कुमार स्कन्द देवेश तारकारे महाप्रभो॥ २३

त्वं दीनबंधुः करुणासिन्धुरानतवत्सलः।
खलनिग्रहकर्ता हि शरण्यश्च सतां गतिः॥ २४

कुमुदेन स्तुतश्चेत्थं विज्ञप्तस्तद्वधाय हि।
स्वाञ्च शक्तिं स जग्राह स्मृत्वा शिवपदांबुजौ॥ २५

चिक्षेप तां समुद्दिश्य प्रलंबं गिरिजासुतः।
महाशब्दो बभूवाथ जज्वलुश्च दिशो नभः॥ २६

तं सायुतबलं शक्तिर्द्रुतं कृत्वा च भस्मसात्।
गुहोपकंठं सहसाजगामाक्लिष्टकारिणी॥ २७

ततः कुमारः प्रोवाच कुमुदं नागबालकम्।
निर्भयः स्वगृहं गच्छ नष्टः स सबलोऽसुरः॥ २८

तच्छ्रुत्वा गुहवाक्यं स कुमुदोऽहिपतेः सुतः।
स्तुत्वा कुमारं नत्वा च पातालं मुदितो ययौ॥ २९

एवं कुमारविजयं वर्णितं ते मुनीश्वर।
चरितं तारकवधं परमाश्चर्यकारकम्॥ ३०

सर्वपापहरं दिव्यं सर्वकामप्रदं नृणाम्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम्॥ ३१

ये कीर्तयन्ति सुयशोऽमितभाग्ययुता नराः।
कुमारचरितं दिव्यं शिवलोकं प्रयांति ते॥ ३२

श्रोष्यंति ये च तत्कीर्तिं भक्त्या श्रद्धान्विता जनाः।
मुक्तिं प्राप्स्यन्ति ते दिव्यामिह भुक्त्वा परं सुखम्॥ ३३

हे स्कन्द! हे देवेश! हे तारकशत्रो! हे महाप्रभो! आप प्रलम्बासुरसे पीड़ित हुए मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये। आप दीनबन्धु, करुणासागर, भक्तवत्सल, दुष्टोंको दण्डित करनेवाले, शरणदाता तथा सज्जनोंकी गति हैं॥ २२—२४॥

जब कुमुदने इस प्रकार स्तुति की तथा दैत्यके वधके लिये निवेदन किया, तब उन्होंने शंकरके चरणकमलोंका ध्यानकर अपनी शक्ति हाथमें ली॥ २५॥

गिरिजापुत्रने प्रलम्बको लक्ष्य करके शक्ति छोड़ी। उस समय महान् शब्द हुआ और सभी दिशाएँ तथा आकाश जलने लगे। अद्भुत कर्म करनेवाली वह शक्ति दस हजार सेनाओंसहित उस प्रलम्बको शीघ्र जलाकर कार्तिकेयके पास सहसा आ गयी। तदनन्तर कुमारने शेषपुत्र कुमुदसे कहा—वह असुर अपने अनुचरोंके सहित मार डाला गया, अब तुम निडर होकर अपने घर जाओ॥ २६—२८॥

तब नागराजका पुत्र कुमुद कुमारका वह वचन सुनकर उनकी स्तुतिकर उन्हें प्रणाम करके प्रसन्न होकर पाताललोकको चला गया॥ २९॥

हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैंने आपसे कुमारकी विजय, उनके चरित्र तथा परमाश्चर्यकारक तारकवधका वर्णन कर दिया। यह [आख्यान] सम्पूर्ण पापोंको दूर करनेवाला दिव्य तथा मनुष्योंकी समस्त कामनाको पूर्ण करनेवाला, धन्य, यशस्वी बनानेवाला, आयुको बढ़ानेवाला और सज्जनोंको भोग तथा मुक्ति प्रदान करनेवाला है। जो मनुष्य कुमारके इस दिव्य चरित्रका कीर्तन करते हैं, वे महान् यशवाले तथा महाभाग्यसे युक्त होते हैं और [अन्तमें] शिवलोकको जाते हैं। जो मनुष्य श्रद्धा और भक्तिके साथ उनकी इस कीर्तिको सुनेंगे, वे इस लोकमें परम सुख भोगकर अन्तमें दिव्य मुक्ति प्राप्त करेंगे॥ ३०—३३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे बाणप्रलंबवधकुमारविजयवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें बाणप्रलम्बवध तथा कुमारविजयवर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

विष्णु आदि देवताओं तथा पर्वतोंद्वारा कार्तिकेयकी स्तुति और वरप्राप्ति, देवताओंके साथ कुमारका कैलासगमन, कुमारको देखकर शिव-पार्वतीका आनन्दित होना, देवोंद्वारा शिवस्तुति

ब्रह्मोवाच

निहतं तारकं दृष्ट्वा देवा विष्णुपुरोगमाः।
तुष्टुवुः शांकरिं भक्त्या सर्वेऽन्ये मुदिताननाः॥ १

देवा ऊचुः

नमः कल्याणरूपाय नमस्ते विश्वमंगल।
विश्वबंधो नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वभावन॥ २

नमोऽस्तु ते दानववर्यहन्त्रे
बाणासुरप्राणहराय देव।
प्रलंबनाशाय पवित्ररूपिणे
नमो नमः शंकरतात तुभ्यम्॥ ३

त्वमेव कर्त्ता जगतां च भर्त्ता
त्वमेव हर्त्ता शुचिज प्रसीद।
प्रपञ्चभूतस्तव लोकबिंबः
प्रसीद शम्भ्वात्मज दीनबंधो॥ ४

देवरक्षाकर स्वामिन् रक्ष नः सर्वदा प्रभो।
देवप्राणावनकर प्रसीद करुणाकर॥ ५

हत्वा त्वं तारकं दैत्यं परिवारयुतं विभो।
मोचिताः सकला देवा विपद्भ्यः परमेश्वर॥ ६

ब्रह्मोवाच

एवं स्तुतः कुमारोऽसौ देवैर्विष्णुमुखैः प्रभुः।
वरान्ददावभिनवान्सर्वेभ्यः क्रमशो मुने॥ ७
शैलान्निरीक्ष्य स्तुवतः ततः स गिरिशात्मजः।
सुप्रसन्नतरो भूत्वा प्रोवाच प्रददद् वरान्॥ ८

स्कन्द उवाच

यूयं सर्वे पर्वता हि पूजनीयास्तपस्विभिः।
कर्मिभिर्ज्ञानिभिश्चैव सेव्यमाना भविष्यथ॥ ९
शंभोर्विशिष्टरूपाणि लिंगरूपाणि चैव हि।
भविष्यथ न संदेहः पर्वता वचनान्मम॥ १०
योऽयं मातामहो मेऽद्य हिमवान्पर्वतोत्तमः।
तपस्विनां महाभागः फलदो हि भविष्यति॥ ११

ब्रह्माजी बोले—तारकको मृत देखकर विष्णु आदि देवता तथा अन्य सभी लोग प्रसन्नमुख होकर भक्तिपूर्वक कुमारकी स्तुति करने लगे॥ १॥

देवता बोले—कल्याणरूप आपको नमस्कार है। हे विश्वमंगल! आपको नमस्कार है। हे विश्वबन्धो! हे विश्वभावन! आपको नमस्कार है॥ २॥

बड़े-बड़े दैत्योंका वध करनेवाले, बाणासुरके प्राणका हरण करनेवाले तथा प्रलम्बासुरका वध करनेवाले हे देव! आपको नमस्कार है। हे शंकरपुत्र! आप पवित्ररूपको बार-बार नमस्कार है। हे अग्निदेवके पुत्र! आप ही इस जगत्के कर्ता, भर्ता तथा हर्ता हैं। आप [हमलोगोंपर] प्रसन्न हों। यह लोकबिम्ब आपका ही प्रपंच है, हे शम्भुपुत्र! हे दीनबन्धो! आप प्रसन्न होइये॥ ३-४॥

हे देवरक्षक! हे स्वामिन्! हे प्रभो! हमलोगोंकी सर्वदा रक्षा कीजिये। हे देवताओंके प्राणकी रक्षा करनेवाले! हे करुणाकर! प्रसन्न होइये॥ ५॥

हे विभो! हे परमेश्वर! आपने परिवारयुक्त तारकासुरका वधकर सभी देवताओंको विपदाओंसे मुक्त कर दिया॥ ६॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इस प्रकार विष्णु आदि देवताओंने उन कुमारकी स्तुति की, तब उन्होंने सभी देवताओंको क्रमशः नवीन-नवीन वर दिये। इसके बाद उन शिवपुत्रने स्तुति करते हुए पर्वतोंको देखकर अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हें वर देते हुए कहा—॥ ७-८॥

स्कन्द बोले—तुम सभी पर्वत तपस्वियों, कर्मकाण्ड करनेवालों तथा ज्ञानियोंसे सदा पूजित तथा सेवित रहोगे। हे पर्वतो! मेरे वचनसे तुमलोग शिवके विशिष्टरूप तथा उनके लिंगरूपसे प्रतिष्ठित रहोगे, इसमें सन्देह नहीं है। ये पर्वतोत्तम महाभाग, जो मेरे नाना हिमालय हैं, वे तपस्वियोंको फल देनेवाले होंगे॥ ९—११॥

देवा ऊचुः

एवं दत्त्वा वरान् हत्वा तारकं चासुराधिपम्।
त्वया कृताश्च सुखिनो वयं सर्वे चराचराः॥ १२
इदानीं खलु सुप्रीत्या कैलासं गिरिशालयम्।
जननीजनकौ द्रष्टुं शिवाशंभू त्वमर्हसि॥ १३

देवता बोले—इस प्रकार आपने असुराधिपति तारकका वधकर तथा वर देकर चराचरसहित हम सभीको सुखी किया है। अब आप अपने माता-पिता पार्वती तथा शिवका दर्शन करनेके लिये प्रेमपूर्वक शिवजीके घर कैलासके लिये प्रस्थान कीजिये॥ १२-१३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा निखिला देवा विष्णवाद्याः प्राप्तशासनाः।
कृत्वा महोत्सवं भूरि सकुमारा ययुर्गिरिम्॥ १४

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर विष्णु आदि सभी देवता कार्तिकेयकी आज्ञासे बहुत बड़ा महोत्सवकर कुमारको लेकर कैलासकी ओर चले॥ १४॥

कुमारे गच्छति विभौ कैलासं शंकरालयम्।
महामंगलमुत्तस्थौ जयशब्दो बभूव ह॥ १५

सर्वव्यापक कार्तिकेयके कैलासकी ओर प्रस्थान करनेपर महामंगल दिखायी पड़ने लगा और जय-जयकारका शब्द होने लगा॥ १५॥

आरुरोह कुमारोऽसौ विमानं परमर्द्धिमत्।
सर्वतोलंकृतं रम्यं सर्वोपरि विराजितम्॥ १६

वे कुमार सम्पूर्ण ऋद्धियोंसे युक्त, सभी ओरसे अलंकृत, मनोहर तथा सर्वोपरि विराजमान विमानपर चढ़े॥ १६॥

अहं विष्णुश्च समुदौ तदा चामरधारिणौ।
गुहमूर्ध्नि महाप्रीत्या मुनेऽभूवं ह्यतन्द्रितौ॥ १७
इन्द्राद्या अमराः सर्वे कुर्वन्तो गुहसेवनम्।
यथोचितं चतुर्दिक्षु जग्मुश्च प्रमुदास्तदा॥ १८

हे मुने! अति प्रसन्न मैं और विष्णु बड़ी सावधानीसे प्रेमपूर्वक उनके ऊपर चामर डुलाने लगे और इन्द्रादि सभी देवता चारों ओरसे प्रीतिपूर्वक कुमारकी यथायोग्य सेवा करते हुए चलने लगे॥ १७-१८॥

शंभोर्जयं प्रभाषन्तः प्रापुस्ते शंभुपर्वतम्।
सानंदा विविशुस्तत्रोच्चरितो मंगलध्वनिः॥ १९

इस प्रकार वे सभी शिवजीके लिये जय-जयकार शब्दका उच्चारण करते हुए मंगलध्वनिपूर्वक बड़े आनन्दके साथ कैलासपर्वतपर पहुँचे॥ १९॥

दृष्ट्वा शिवं शिवां चैव सर्वे विष्ण्वादयो द्रुतम्।
प्रणम्य शंकरं भक्त्या करौ बद्ध्वा विनम्रकाः॥ २०

विष्णु आदि सभी लोग वहाँ शिवा-शिवका दर्शनकर शीघ्रतासे उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणामकर हाथ जोड़कर उनके सम्मुख सिर झुकाये हुए खड़े हो गये॥ २०॥

कुमारोऽपि विनीतात्मा विमानादवतीर्य च।
प्रणनाम मुदा शंभुं शिवां सिंहासनस्थिताम्॥ २१
अथ दृष्ट्वा कुमारं तं तनयं प्राणवल्लभम्।
तौ दंपती शिवौ देवौ मुमुदातेऽति नारद॥ २२

विनीतात्मा कुमारने भी विमानसे उतरकर सिंहासनपर विराजमान पार्वतीजीको तथा शिवजीको प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम किया। हे नारद! तब अपने प्राणप्रिय उस पुत्र कुमारको देखकर वे दोनों दम्पती शिव-पार्वती बहुत ही प्रसन्न हुए॥ २१-२२॥

महाप्रभुः समुत्थाप्य तमुत्संगे न्यवेशयत्।
मूर्ध्नि जघ्रौ मुदा स्नेहात्तं पस्पर्श करेण ह॥ २३
महानंदभरः शंभुश्चकार मुखचुंबनम्।
कुमारस्य महास्नेहात् तारकारेर्महाप्रभोः॥ २४

महाप्रभुने उन्हें उठाकर गोदमें बैठाया, उनका प्रसन्नता-पूर्वक सिर सूँघा और स्नेहपूर्वक हाथसे उनका स्पर्श किया। शिवजीने अत्यधिक आनन्दविभोर हो तारकासुरके शत्रु उन महाप्रभु कुमारका मुख चूमा॥ २३-२४॥

शिवापि तं समुत्थाप्य स्वोत्संगे संन्यवेशयत्।
कृत्वा मूर्ध्नि महास्नेहात् तन्मुखाब्जं चुचुम्ब ह॥ २५

इसी प्रकार पार्वतीने भी उनको उठाकर गोदमें ले लिया और उनका माथा सूँघकर मुखमण्डल चूमा॥ २५॥

तयोस्तदा महामोदो ववृधेऽतीव नारद।
दंपत्योः शिवयोस्तात भवाचारं प्रकुर्वतोः॥ २६

हे तात नारद! इस समय लौकिक आचार करते हुए उन पति-पत्नी शिव-पार्वतीको महान् आनन्द हुआ॥ २६॥

तदोत्सवो महानासीन्नानाश्चर्यः शिवालये।
जयशब्दो नमश्शब्दो बभूवातीव सर्वतः॥ २७

ततः सुरगणाः सर्वे विष्ण्वाद्या मुनयस्तथा।
सुप्रणम्य मुदा शंभुं तुष्टुवुः सशिवं मुने॥ २८

उस समय शिवजीके घरमें अनेक प्रकारके महान् उत्सव होने लगे और चारों ओर जय-जयकार एवं नमः शब्द होने लगा। उसके बाद हे मुने! वे विष्णु आदि सभी देवता एवं मुनिगण प्रसन्नतापूर्वक शिवजीको प्रणामकर उनकी स्तुति करने लगे॥ २७-२८॥

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव भक्तानामभयप्रद।
नमो नमस्ते बहुशः कृपाकर महेश्वर॥ २९

अद्भुता ते महादेव महालीला सुखप्रदा।
सर्वेषां शंकर सतां दीनबंधो महाप्रभो॥ ३०

देवता बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे भक्तोंको अभय प्रदान करनेवाले प्रभो! आपको नमस्कार है, हे महेश्वर! आप हमलोगोंपर कृपा कीजिये। हे महादेव! हे शंकर! हे दीनबन्धो! हे महाप्रभो! आपकी लीला अद्भुत है तथा सभी सज्जनोंको सुख देनेवाली है॥ २९-३०॥

वयं मूढधियश्चाज्ञाः पूजायां ते सनातनम्।
आवाहनं न जानीमो गतिं नैव प्रभोऽद्भुताम्॥ ३१

गंगासलिलधाराय ह्याधाराय गुणात्मने।
नमस्ते त्रिदशेशाय शंकराय नमो नमः॥ ३२

वृषांकाय महेशाय गणानां पतये नमः।
सर्वेश्वराय देवाय त्रिलोकपतये नमः॥ ३३

संहर्त्रे जगतां नाथ सर्वेषां ते नमो नमः।
भर्त्रे कर्त्रे च देवेश त्रिगुणेशाय शाश्वते॥ ३४

हे प्रभो! हम मूर्खबुद्धि तथा अज्ञानी लोग पूजनमें आपके सनातन आवाहनको तथा आपकी अद्भुत गतिको नहीं जानते हैं। गंगाजलको धारण करनेवाले, सबके आधार, गुणस्वरूप, आप देवेश्वरको नमस्कार है। आप शंकरको बारंबार नमस्कार है। आप वृषभध्वज, महेश्वर, गणाधिपतिको नमस्कार है। आप सर्वेश्वर एवं त्रिलोकपति देवको नमस्कार है। हे नाथ! हे देवेश! सभी लोकोंका संहार करनेवाले, सृष्टिकर्ता, पोषण करनेवाले, त्रिगुणेश तथा शाश्वत आपको नमस्कार है॥ ३१—३४॥

विसंगाय परेशाय शिवाय परमात्मने।
निष्प्रपंचाय शुद्धाय परमायाव्ययाय च॥ ३५

दण्डहस्ताय कालाय पाशहस्ताय ते नमः।
वेदमंत्रप्रधानाय शतजिह्वाय ते नमः॥ ३६

निःसंग, परमेश्वर, शिव, परमात्मा, निष्प्रपंच, शुद्ध, परम, अव्यय, हाथमें दण्ड धारण करनेवाले, कालस्वरूप, हाथमें पाश धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। वेदमन्त्रोंमें प्रधान तथा सैकड़ों जीभवाले आपको नमस्कार है॥ ३५-३६॥

भूतं भव्यं भविष्यं च स्थावरं जंगमं च यत्।
तव देहात्समुत्पन्नं सर्वथा परमेश्वर॥ ३७

पाहि नः सर्वदा स्वामिन्प्रसीद भगवन्प्रभो।
वयं ते शरणापन्नाः सर्वथा परमेश्वर॥ ३८

हे परमेश्वर! भूत, भविष्य, वर्तमान—तीनों काल तथा स्थावर-जंगमात्मक जो भी है, वह सर्वथा आपके विग्रहसे उत्पन्न हुआ है। हे स्वामिन्! हे भगवन्! हे प्रभो! हमलोगोंपर प्रसन्न होइये और सर्वदा हमलोगोंकी रक्षा कीजिये। हे परमेश्वर! हमलोग सभी प्रकारसे आपके शरणागत हैं॥ ३७-३८॥

शितिकण्ठाय रुद्राय स्वाहाकाराय ते नमः।
अरूपाय सरूपाय विश्वरूपाय ते नमः॥ ३९

शिवाय नीलकंठाय चिताभस्मांगधारिणे।
नित्यं नीलशिखंडाय श्रीकण्ठाय नमो नमः॥ ४०

शितिकण्ठ, रुद्र एवं स्वाहाकाररूपवाले आपको नमस्कार है। निराकार, साकार एवं विश्वरूपवाले आपको नमस्कार है। शिव, नीलकण्ठ, अंगमें सदा चिताकी भस्म धारण करनेवाले, नीलशिखण्ड एवं श्रीकण्ठ आपको बार-बार नमस्कार है॥ ३९-४०॥

सर्वप्रणतदेहाय संयमप्रणताय च।
महादेवाय शर्वाय सर्वार्चितपदाय च॥ ४१

सबके द्वारा प्रणम्य देहवाले, संयम धारण करनेवालों-पर कृपा करनेवाले, महादेव, सबके संहारकारक तथा सभीके द्वारा पूजित चरणवाले आपको नमस्कार है॥ ४१॥

त्वं ब्रह्मा सर्वदेवानां रुद्राणां नीललोहितः।
आत्मा च सर्वभूतानां सांख्यैः पुरुष उच्यसे॥ ४२

पर्वतानां सुमेरुस्त्वं नक्षत्राणां च चन्द्रमाः।
ऋषीणां च वसिष्ठस्त्वं देवानां वासवस्तथा॥ ४३

आप सभी देवगणोंमें ब्रह्मा हैं, रुद्रोंमें नीललोहित हैं तथा सभी जीवधारियोंमें आत्मा हैं। सांख्यमतावलम्बी आपको पुरुष कहते हैं। आप पर्वतोंमें सुमेरु, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, ऋषियोंमें वसिष्ठ तथा देवोंमें इन्द्र हैं॥ ४२-४३॥

ॐकारस्सर्ववेदानां त्राता भव महेश्वर।
त्वं च लोकहितार्थाय भूतानि परिषिञ्चसि॥ ४४

महेश्वर महाभाग शुभाशुभनिरीक्षक।
आप्यायास्मान्हि देवेश कर्तॄन्वै वचनं तव॥ ४५

आप सभी वेदोंमें ॐकारस्वरूप हैं। हे महेश्वर! हमलोगोंकी रक्षा कीजिये। आप लोकहितके लिये प्राणियोंका पालन करते हैं। हे महेश्वर! हे महाभाग! हे शुभाशुभको देखनेवाले! हे देवेश! आपकी आज्ञा पालन करनेवाले हम देवताओंकी रक्षा कीजिये॥ ४४-४५॥

रूपकोटिसहस्रेषु रूपकोटिशतेषु ते।
अन्तं गन्तुं न शक्ताः स्म देवदेव नमोऽस्तु ते॥ ४६

हमलोग आपके सहस्रकोटि तथा शतकोटि-स्वरूपका अन्त पानेमें समर्थ नहीं हैं। हे देवदेव! आपको नमस्कार है॥ ४६॥

ब्रह्मोवाच

इति स्तुत्वाऽखिला देवा विष्णवाद्याः प्रमुखस्थिताः।
मुहुर्मुहुस्सुप्रणम्य स्कन्दं कृत्वा पुरस्सरम्॥ ४७

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार विष्णु आदि समस्त देवता स्तुति करके बारंबार शिवजीको प्रणामकर उनके सम्मुख खड़े हो गये॥ ४७॥

देवस्तुतिं समाकर्ण्य शिवः सर्वेश्वरः स्वराट्।
सुप्रसन्नो बभूवाथ विजहास दयापरः॥ ४८

देवगणोंकी स्तुति सुनकर सर्वेश्वर स्वराट् दयालु शिव प्रसन्न हो गये और हँसने लगे॥ ४८॥

उवाच सुप्रसन्नात्मा विष्णवादीन्सुरसत्तमान्।
शंकरः परमेशानो दीनबंधुः सतां गतिः॥ ४९

इसके बाद प्रसन्न होकर वे दीनबन्धु, परमेश्वर, सत्पुरुषोंको गति देनेवाले भगवान् शंकर विष्णु आदि देवताओंसे कहने लगे—॥ ४९॥

शिव उवाच

हे हरे हे विधे देवा वाक्यं मे शृणुतादरात्।
सर्वथाऽहं सतां त्राता देवानां वः कृपानिधिः॥ ५०

दुष्टहन्ता त्रिलोकेशः शंकरो भक्तवत्सलः।
कर्ता भर्ता च हर्ता च सर्वेषां निर्विकारवान्॥ ५१

यदा यदा भवेद्दुःखं युष्माकं देवसत्तमाः।
तदा तदा मां यूयं वै भजन्तु सुखहेतवे॥ ५२

शिवजी बोले—हे हरे! हे विधे! हे देवगणो! आपलोग आदरपूर्वक मेरा वचन सुनें, मैं सब प्रकारसे सज्जनोंका रक्षक, आप देवगणोंके लिये दयानिधि, दुष्टोंका संहार करनेवाला, त्रिलोकेश, सबका कल्याण करनेवाला, भक्तवत्सल, सबका कर्ता-भर्ता-हर्ता एवं विकाररहित हूँ। देवसत्तमो! जब-जब आपलोगोंपर विपत्ति आये, तब-तब सुखप्राप्तिके लिये आपलोग मेरा भजन किया करें॥ ५०—५२॥

ब्रह्मोवाच

इत्याज्ञप्तास्तदा देवा विष्णवाद्याः समुनीश्वराः।
शिवां प्रणम्य सशिवं कुमारं च मुदान्विताः॥ ५३

कथयंतो यशो रम्यं शिवयोः शांकरेश्च तत्।
आनन्दं परमं प्राप्य स्वधामानि ययुर्मुने॥ ५४

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! उसके बाद मुनीश्वरोंसहित विष्णु आदि देवता शिवजीकी आज्ञा लेकर पार्वती, परमेश्वर एवं कुमारको प्रणामकर प्रसन्न होकर पार्वती-शिव एवं कुमारके रम्य यशका वर्णन करते हुए परम आनन्द प्राप्तकर अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ५३-५४॥

शिवोऽपि शिवया सार्द्धं सगणः परमेश्वरः।
कुमारेण युतः प्रीत्योवास तस्मिन् गिरौ मुदा॥ ५५

इत्येवं कथितं सर्वं कौमारं चरितं मुने।
शैवं च सुखदं दिव्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥ ५६

हे मुने! शिवजी भी अपने गणों, कुमार कार्तिकेय एवं पार्वतीके साथ प्रीतिपूर्वक आनन्दित होकर उस पर्वतपर निवास करने लगे। हे मुने! इस प्रकार मैंने कुमार कार्तिकेयका तथा शिवजीका सम्पूर्ण चरित, जो सुख प्रदान करनेवाला तथा दिव्य है, आपलोगोंसे कह दिया, अब और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ५५-५६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे स्वामिकार्तिकचरितगर्भितशिवाशिवचरितवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें स्वामिकार्तिकचरित-गर्भितशिवाशिवचरितवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

गणेशोत्पत्तिका आख्यान, पार्वतीका अपने पुत्र गणेशको अपने द्वारपर नियुक्त करना, शिव और गणेशका वार्तालाप

सूत उवाच

तारकारेरिति श्रुत्वा वृत्तमद्भुतमुत्तमम्।
नारदः सुप्रसन्नोऽथ पप्रच्छ प्रीतितो विधिम्॥ १

सूतजी बोले—तारकके शत्रु कुमारके अद्भुत तथा उत्तम चरित्रको सुनकर प्रसन्न हुए नारदजीने ब्रह्माजीसे प्रीतिपूर्वक पूछा॥ १॥

नारद उवाच

देवदेव प्रजानाथ शिवज्ञाननिधे मया।
श्रुतं कार्तिकसद्वृत्तममृतादपि चोत्तमम्॥ २
अधुना श्रोतुमिच्छामि गाणेशं वृत्तमुत्तमम्।
तज्जन्मचरितं दिव्यं सर्वमंगलमंगलम्॥ ३

नारदजी बोले—हे देवदेव! हे प्रजानाथ! हे शिवज्ञाननिधे! मैंने आपसे कार्तिकेयका अमृतसे भी उत्तम चरित्र सुना। अब मैं गणेशजीका उत्तम चरित्र सुनना चाहता हूँ। उनका जन्म एवं चरित्र [अत्यन्त] दिव्य तथा सभी मंगलोंका भी मंगल करनेवाला है॥ २-३॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य नारदस्य महामुनेः।
प्रसन्नमानसो ब्रह्मा प्रत्युवाच शिवं स्मरन्॥ ४

सूतजी बोले—उन महामुनि नारदका यह वचन सुनकर ब्रह्माजी प्रसन्नचित्त हो गये और शिवजीका स्मरण करते हुए कहने लगे—॥ ४॥

ब्रह्मोवाच

कल्पभेदाद्गणेशस्य जनिः प्रोक्ता विधेः परात्।
शनिदृष्टं शिरश्छिन्नं संचितं गाजमाननम्॥ ५

ब्रह्माजी बोले—कल्पके भेदसे गणेशजीका जन्म ब्रह्माजीसे भी पहले कहा गया है। एक समय शनिकी दृष्टि पड़नेसे उनका सिर कट गया और उसपर हाथीका सिर जोड़ दिया गया। अब मैं

इदानीं श्वेतकल्पोक्ता गणेशोत्पत्तिरुच्यते।
यत्र च्छिन्नं शिरस्तस्य शिवेन च कृपालुना॥ ६

श्वेतकल्पमें जिस प्रकार गणेशजीका जन्म हुआ था, उसे कह रहा हूँ, जिसमें कृपालु शंकरजीके द्वारा उनका शिरश्छेदन किया गया था॥ ५-६॥

संदेहो नात्र कर्तव्यः शंकरस्सूतिकृन्मुने।
स हि सर्वाधिपः शंभुर्निर्गुणः सगुणोऽपि हि॥ ७
तल्लीलयाखिलं विश्वं सृज्यते पाल्यते तथा।
विनाश्यते मुनिश्रेष्ठ प्रस्तुतं शृणु चादरात्॥ ८

हे मुने! शंकरजी सृष्टिकर्ता हैं, इस विषयमें सन्देह नहीं करना चाहिये। वे सबके स्वामी हैं, वे शिव सगुण होते हुए भी निर्गुण हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! उनकी लीलासे ही इस विश्वका सृजन, पालन तथा संहार होता है। अब आदरपूर्वक प्रस्तुत चरित्र सुनिये॥ ७-८॥

उद्वाहिते शिवे चात्र कैलासं च गते सति।
कियता चैव कालेन जातो गणपतेर्भवः॥ ९

शिवजीके विवाहके उपरान्त कैलास चले जानेपर कुछ समयके बाद गणेशजीका जन्म हुआ॥ ९॥

एकस्मिन्नेव काले च जया च विजया सखी।
पार्वत्या च मिलित्वा वै विचारे तत्पराभवत्॥ १०

किसी समय पार्वतीकी सखियाँ जया तथा विजया पार्वतीके साथ मिलकर विचार करने लगीं॥ १०॥

रुद्रस्य च गणाः सर्वे शिवस्याज्ञापरायणाः।
ते सर्वेऽप्यस्मदीयाश्च नन्दिभृंगिपुरस्सराः॥ ११
प्रमथास्ते ह्यसंख्याता अस्मदीयो न कश्चन।
द्वारि तिष्ठन्ति ते सर्वे शंकराज्ञापरायणाः॥ १२
ते सर्वेऽप्यस्मदीयाश्च तथापि न मिलेन्मनः।
एकश्चैवास्मदीयो हि रचनीयस्त्वयानघे॥ १३

शिवजीकी आज्ञामें रहनेवाले नन्दी, भृंगी आदि अनेक और असंख्य प्रमथगण हैं। यद्यपि वे हमारे भी गण हैं, फिर भी शंकरकी आज्ञाका पालन करनेवाले वे सभी द्वारपर स्थित रहते हैं, स्वतन्त्ररूपसे हमारा कोई भी गण नहीं है। यद्यपि वे सब हमारे भी हैं, किंतु हमारा मन उनसे नहीं मिलता है, इसलिये हे अनघे! हमारा भी कोई स्वतन्त्र गण होना चाहिये, अतः आप ऐसे एक गणकी रचना कीजिये॥ ११—१३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ता पार्वती देवी सखीभ्यां सुन्दरं वचः।
हितं मेने तदा तच्च कर्तुं स्माप्यध्यवस्यति॥ १४

ब्रह्माजी बोले—जब सखियोंने यह उत्तम वचन पार्वतीसे कहा, तब उन्होंने उसमें अपना हित मान लिया और वे वैसा करनेका प्रयत्न करने लगीं॥ १४॥

ततः कदाचिन्मज्जत्यां पार्वत्यां वै सदाशिवः।
नंदिनं परिभत्स्याथ ह्याजगाम गृहांतरम्॥ १५

इसके बाद किसी समय जब पार्वतीजी स्नान कर रही थीं, उसी समय [द्वारपर बैठे] नन्दीको डाँटकर शंकरजी भीतर चले आये॥ १५॥

आयान्तं शंकरं दृष्ट्वाऽसमये जगदंबिका।
उत्तस्थौ मज्जती सा वै लज्जिता सुन्दरी तदा॥ १६

शिवजीको असमयमें आता हुआ देखकर स्नान करती हुई वे सुन्दरी जगदम्बा लज्जित होकर उठ गयीं॥ १६॥

तस्मिन्नवसरे देवी कौतुकेनातिसंयुता।
तदीयं तद्वचश्चैव हितं मेने सुखावहम्॥ १७
एवं जाते तदा काले कदाचित्पार्वती शिवा।
विचिन्त्य मनसा चेति परमा या परेश्वरी॥ १८
मदीयः सेवकः कश्चिद्भवेच्छुभतरः कृती।
मदाज्ञया परं नान्यद्रेखामात्रं चलेदिह॥ १९

उस समय अत्यन्त कौतुकसे युक्त पार्वतीको सखियोंके द्वारा कहा गया वह वचन अत्यन्त हितकारी तथा सुखदायक प्रतीत हुआ। इसके बाद कुछ समय बीतनेपर परमाया परमेश्वरी पार्वतीने मनमें विचार किया कि मेरा भी कोई ऐसा सेवक होना चाहिये, जो श्रेष्ठ हो तथा योग्य हो और मेरी आज्ञाके बिना रेखामात्र भी इधर-से-उधर विचलित न हो॥ १७—१९॥

विचार्येति च सा देवी वपुषो मलसंभवम्।
पुरुषं निर्ममौ सा तु सर्वलक्षणसंयुतम्॥ २०
सर्वावयवनिर्दोषं सर्वावयवसुन्दरम्।
विशालं सर्वशोभाढ्यं महाबलपराक्रमम्॥ २१

इस प्रकार विचारकर उन देवीने अपने शरीरके मैलसे सर्वलक्षणसम्पन्न, शरीरके सभी अवयवोंसे सर्वथा निर्दोष, समस्त सुन्दर अंगोंवाले, विशाल, सर्वशोभा-सम्पन्न एवं महाबली तथा पराक्रमी पुरुषका निर्माण किया॥ २०-२१॥

वस्त्राणि च तदा तस्मै दत्त्वा सा विविधानि हि।
नानालंकरणं चैव बह्वाशिषमनुत्तमाम्॥ २२
मत्पुत्रस्त्वं मदीयोऽसि नान्यः कश्चिदिहास्ति मे।
एवमुक्तः स पुरुषो नमस्कृत्य शिवां जगौ॥ २३

पार्वतीने उसे नाना प्रकारके वस्त्र, अनेक प्रकारके अलंकार तथा अनेक उत्तम आशीर्वाद देकर कहा—तुम मेरे पुत्र हो, तुम्हीं मेरे हो और यहाँ कोई दूसरा मेरा नहीं है। इस प्रकार कहे जानेपर उस पुरुषने पार्वतीको नमस्कारकर कहा—॥ २२-२३॥

गणेश उवाच

किं कार्यं विद्यते तेऽद्य करवाणि तवोदितम्।
इत्युक्ता सा तदा तेन प्रत्युवाच सुतं शिवा॥ २४

गणेशजी बोले—आपका क्या कार्य है? मैं आपके द्वारा आदिष्ट कार्यको पूरा करूँगा। तब उनके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर पार्वतीने पुत्रसे कहा—॥ २४॥

शिवोवाच

हे तात शृणु मद्वाक्यं द्वारपालो भवाद्य मे।
मत्पुत्रस्त्वं मदीयोऽसि नान्यथा कश्चिदस्ति मे॥ २५

शिवा बोलीं—हे तात! मेरे वचनको सुनो। तुम आज मेरे द्वारपाल बनो, तुम मेरे पुत्र हो, केवल तुम्हीं मेरे हो, तुम्हारे अतिरिक्त यहाँ मेरा कोई नहीं है॥ २५॥

विना मदाज्ञां सत्पुत्र नैवायान्मद्गृहान्तरम्।
कोऽपि क्वापि हठात्तात सत्यमेतन्मयोदितम्॥ २६

हे सत्पुत्र! मेरी आज्ञाके बिना कोई भी मेरे घरके भीतर किसी प्रकार हठसे भी न जाने पाये। हे तात! यह मैंने तुमसे सत्य कह दिया॥ २६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा च ददौ तस्मै यष्टिं चातिदृढां मुने।
तदीयं रूपमालोक्य सुन्दरं हर्षमागता॥ २७

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! पार्वतीने इस प्रकार कहकर एक अत्यन्त दृढ़ लाठी उसे दी और उस बालकके सुन्दर रूपको देखकर वे हर्षित हो गयीं॥ २७॥

मुखमाचुंब्य सुप्रीत्यालिंग्य तं कृपया सुतम्।
स्वद्वारि स्थापयामास यष्टिपाणिं गणाधिपम्॥ २८
अथ देवीसुतस्तात गृहद्वारि स्थितो गणः।
यष्टिपाणिर्महावीरः पार्वतीहितकाम्यया॥ २९

उन्होंने प्रेमसे उस पुत्रका मुख चूमकर उसका आलिंगन करके हाथमें लाठी लिये हुए उन गणेशको अपने द्वारपर नियुक्त कर दिया। हे तात! इस प्रकार वह महावीर देवीपुत्र गण पार्वती माताकी रक्षाके लिये हाथमें लाठी लिये हुए द्वारपर पहरा देने लगा॥ २८-२९॥

स्वद्वारि स्थापयित्वा तं गणेशं स्वसुतं शिवा।
स्वयं च मज्जती सा वै संस्थितासीत्सखीयुता॥ ३०
एतस्मिन्नेव काले तु शिवो द्वारि समागतः।
कौतुकी मुनिशार्दूल नानालीलाविशारदः॥ ३१

एक समय अपने पुत्र उन गणेश्वरको द्वारपर नियुक्तकर वे पार्वती सखियोंके साथ स्नान करने लगीं। हे मुनिश्रेष्ठ! इसी समय परम कौतुकी तथा अनेक प्रकारकी लीलाएँ करनेमें प्रवीण वे शिवजी भी द्वारपर आ पहुँचे॥ ३०-३१॥

उवाच च शिवेशं तमविज्ञाय गणाधिपः।
मातुराज्ञां विना देव गम्यतां न त्वयाधुना॥ ३२

मज्जनार्थं स्थिता माता क्व यासीतो व्रजाधुना।
इत्युक्त्वा यष्टिकां तस्य रोधनाय तदाग्रहीत्॥ ३३

तब गणेशने उन शिवजीको बिना पहचाने कहा—हे देव! इस समय माताकी आज्ञाके बिना आप भीतर नहीं जा सकते। माताजी स्नान कर रही हैं, कहाँ चले जा रहे हैं? इस समय यहाँसे चले जाइये—इस प्रकार कहकर गणेशने उन्हें रोकनेके लिये अपनी लाठी उठा ली॥ ३२-३३॥

तं दृष्ट्वा तु शिवः प्राह कं निषेधसि मूढधीः।
मां न जानास्यसद्बुद्धे शिवोऽहमिति नान्यथा॥ ३४

ताडितस्तेन यष्ट्या हि गणेशेन महेश्वरः।
प्रत्युवाच स तं पुत्रं बहुलीलश्च कोपितः॥ ३५

उसे देखकर शिवजी बोले—हे मूर्ख! तुम किसे मना कर रहे हो, हे दुर्बुद्धे! तुम मुझे नहीं जानते, मैं शिव हूँ, कोई दूसरा नहीं। इसपर गणेशने लाठीसे शिवजीपर प्रहार किया, तब बहुत लीला करनेवाले शिवजीने कुपित होकर पुत्रसे कहा—॥ ३४-३५॥

शिव उवाच

मूर्खोऽसि त्वं न जानासि शिवोऽहं गिरिजापतिः।
स्वगृहं यामि रे बाल निषेधसि कथं हि माम्॥ ३६

शिवजी बोले—हे बालक! तुम मूर्ख हो, तुम मुझे नहीं जानते हो। मैं पार्वतीका पति शिव हूँ, हे बालक! मैं तो अपने ही घर जा रहा हूँ, तुम मुझे मना क्यों करते हो?॥ ३६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा प्रविशन्तं तं महेशं गणनायकः।
क्रोधं कृत्वा ततो विप्र दंडेनाताडयत्पुनः॥ ३७

ततश्शिवश्च संक्रुद्धो गणानाज्ञापयन्निजान्।
को वाऽयं वर्तते किं च क्रियते पश्यतां गणाः॥ ३८

ब्रह्माजी बोले—हे विप्र! ऐसा कह घरमें प्रवेश करते हुए उन शंकरजीपर गणनायक गणेशने क्रोध करते हुए पुनः डण्डेसे प्रहार किया। तब अत्यन्त कुपित हुए शिवजीने अपने गणोंको आज्ञा दी—हे गणो! देखो, यह कौन है और यहाँ क्या कर रहा है?॥ ३७-३८॥

इत्युक्त्वा तु शिवस्तत्र स्थितः क्रुद्धो गृहाद्बहिः।
भवाचाररतः स्वामी बह्वद्भुतसुलीलकः॥ ३९

ऐसा कहकर लोकाचारमें तत्पर रहनेवाले तथा अनेक अद्भुत लीलाएँ करनेवाले शिवजी महाक्रोधमें भरकर घरके बाहर ही स्थित रहे॥ ३९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे गणेशोत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें गणेशोत्पत्तिवर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

द्वाररक्षक गणेश तथा शिवगणोंका परस्पर विवाद

ब्रह्मोवाच

गणास्ते क्रोधसंपन्नास्तत्र गत्वा शिवाज्ञया।
पप्रच्छुर्गिरिजापुत्रं तं तदा द्वारपालकम्॥ १

ब्रह्माजी बोले—तब उन गणोंने क्रुद्ध हो शिवजीकी आज्ञासे वहाँ जाकर उन द्वारपाल गिरिजापुत्रसे पूछा॥ १॥

शिवगणा ऊचुः

कोऽसि त्वं कुत आयातः किं वा त्वं च चिकीर्षसि।
इतोऽद्य गच्छ दूरं वै यदि जीवितुमिच्छसि॥ २

शिवगण बोले—तुम कौन हो, कहाँसे आये हो और यहाँ क्या करना चाहते हो? यदि जीना चाहते हो तो यहाँसे शीघ्र ही दूर चले जाओ॥ २॥

ब्रह्मोवाच

तदीयं तद्वचः श्रुत्वा गिरिजातनयः स वै।
निर्भयो दण्डपाणिश्च द्वारपानब्रवीदिदम्॥ ३

ब्रह्माजी बोले—उनका वह वचन सुनकर हाथमें लाठी लिये हुए गिरिजापुत्रने निडर होकर उन द्वाररक्षक गणोंसे कहा—॥ ३॥

गणेश उवाच

यूयं के कुत आयाता भवंतः सुन्दरा इमे।
यात दूरं किमर्थं वै स्थिता अत्र विरोधिनः॥ ४

गणेशजी बोले—आपलोग कौन हैं और कहाँसे आये हैं? आपलोग तो बहुत ही सुन्दर हैं, शीघ्र ही यहाँसे दूर हो जाइये, विरोध करनेके लिये यहाँ क्यों स्थित हैं?॥ ४॥

ब्रह्मोवाच

एवं श्रुत्वा वचस्तस्य हास्यं कृत्वा परस्परम्।
ऊचुः सर्वे शिवगणा महावीरा गतस्मयाः॥ ५

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार उनके वचनको सुनकर शिवजीके सभी महावीर गणोंने आश्चर्यचकित होकर परस्पर हास्य करके कहा॥ ५॥

परस्परमिति प्रोच्य सर्वे ते शिवपार्षदाः।
द्वारपालं गणेशं तं प्रत्यूचुः क्रुद्धमानसाः॥ ६

शिवजीके उन पार्षदोंने आपसमें बातें करके कुपितमन होकर उन द्वारपाल गणेशजीसे कहा—॥ ६॥

शिवगणा ऊचुः

श्रूयतां द्वारपाला हि वयं शिवगणा वराः।
त्वां निवारयितुं प्राप्ताः शंकरस्याज्ञया विभोः॥ ७

शिवगण बोले—सुनिये, हम सब शिवजीके श्रेष्ठ गण ही यहाँके द्वारपाल हैं। हम उन विभु शंकरकी आज्ञासे तुम्हें यहाँसे हटानेके लिये आये हैं॥ ७॥

त्वामपीह गणं मत्वा न हन्यामोऽन्यथा हतः।
तिष्ठ दूरे स्वतः त्वं च किमर्थं मृत्युमीहसे॥ ८

तुमको भी एक गण समझकर हम तुम्हारा वध नहीं करते। अन्यथा तुम मार दिये गये होते। तुम स्वयं यहाँसे हट जाओ, क्यों मरना चाहते हो?॥ ८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तोऽपि गणेशश्च गिरिजातनयोऽभयः।
निर्भर्त्स्य शंकरगणान्न द्वारं मुक्तवांस्तदा॥ ९

ते सर्वेऽपि गणाः शैवाः तत्रत्या वचनं तदा।
श्रुत्वा तत्र शिवं गत्वा तद्वृत्तांतमथाब्रुवन्॥ १०

ततश्च तद्वचः श्रुत्वाद्भुतलीलो महेश्वरः।
विनिर्भर्त्स्य गणानूचे निजाँल्लोकगतिर्मुने॥ ११

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहे जानेके बाद भी गिरिजापुत्र निर्भय गणेश शंकरगणोंको बहुत फटकारकर द्वारसे नहीं हटे। तब वहाँके उन सम्पूर्ण शिवगणोंने भी गणेशजीका वचन सुनकर शिवजीके पास जाकर उस वृत्तान्तको निवेदित किया। हे मुने! तब अद्भुत लीला करनेवाले महेश्वर उस वचनको सुनकर अपने गणोंको डाँटकर लौकिक गतिका आश्रय लेकर कहने लगे—॥ ९—११॥

महेश्वर उवाच

कश्चायं वर्तते किं च ब्रवीत्यरिवदुच्छ्रितः।
किं करिष्यत्यसद्बुद्धिः स्वमृत्युं वाञ्छति ध्रुवम्॥ १२

महेश्वर बोले—हे गणो! यह कौन है? जो शत्रुके समान इतना उच्छृंखल होकर बातें करता है, यह असद्बुद्धि क्या करेगा, निश्चय ही यह अपनी मृत्यु चाहता है॥ १२॥

दूरतः क्रियतां ह्येष द्वारपालो नवीनकः।
क्लीबा इव स्थितास्तस्य वृत्तं वदथ मे कथम्॥ १३

स्वामिनोक्ता गणास्ते चाद्भुतलीलेन शंभुना।
पुनरागत्य तत्रैव तमूचुर्द्वारपालकम्॥ १४

इस नवीन द्वारपालको शीघ्र ही यहाँसे दूर करो, तुमलोग कायरोंकी भाँति खड़े होकर उसका समाचार मुझसे क्यों कह रहे हो? अद्भुत लीला करनेवाले शंकरके ऐसा कहनेपर उन गणोंने पुनः वहींपर आकर उन द्वारपाल गणेशसे कहा—॥ १३-१४॥

शिवगणा ऊचुः

रे रे द्वारप कस्त्वं हि स्थितश्च स्थापितः कुतः।
नैवास्मान्गणयस्येवं कथं जीवितुमिच्छसि॥ १५

शिवगण बोले—हे द्वारपाल! तुम कौन हो और किसके द्वारा नियुक्त होकर यहाँ स्थित हो, तुमको हमलोगोंकी कोई परवाह नहीं है, यहाँ रहकर कैसे जीना चाहते हो?॥ १५॥

द्वारपाला वयं सर्वे स्थिताः किं परिभाषसे।
सिंहासनगृहीतश्च शृगालः शिवमीहते॥ १६

द्वारपाल तो हमलोग हैं, तुम किस प्रकार अपनेको द्वारपाल कहते हो, शेरके आसनपर बैठकर सियार किस प्रकार अपने कल्याणकी इच्छा कर सकता है?॥ १६॥

तावद्गर्जसि मूर्ख त्वं यावद्गणपराक्रमः।
नानुभूतस्त्वयात्रैव ह्यनुभूतः पतिष्यसि॥ १७

हे मूर्ख! तुम तभीतक गर्जना कर रहे हो, जबतक तुम शिवगणोंके पराक्रमका अनुभव नहीं कर लेते हो। अभी जब तुम अनुभव कर लोगे, तब धराशायी हो जाओगे॥ १७॥

इत्युक्तस्तैस्सुसंक्रुद्धो हस्ताभ्यां यष्टिकां तदा।
गृहीत्वा ताडयामास गणांस्तान्परिभाषिणः॥ १८

उवाचाथ शिवापुत्रः परिभर्त्स्य गणेश्वरान्।
शंकरस्य महावीरान्निर्भयस्तान्गणेश्वरः॥ १९

तब उनके द्वारा कहे गये इस वचनको सुनकर गणेशजी दोनों हाथमें लाठी लेकर ऐसा बोलनेवाले उन गणोंको मारने लगे। तदनन्तर शिवापुत्र गणेशने निडर होकर शंकरके महावीर गणोंको घुड़ककर कहा—॥ १८-१९॥

शिवापुत्र उवाच

यात यात इतो दूरे नो चेद्वो दर्शयामि ह।
स्वपराक्रममत्युग्रं यास्यथात्युपहास्यताम्॥ २०

पार्वतीपुत्र बोले—जाओ, जाओ, यहाँसे दूर चले जाओ, अन्यथा मैं तुमलोगोंको प्रचण्ड पराक्रम दिखाऊँगा, जिससे तुमलोग उपहासास्पद हो जाओगे॥ २०॥

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य गिरिजातनयस्य हि।
परस्परमथोचुस्ते शंकरस्य गणास्तदा॥ २१

तब उन गिरिजापुत्रकी यह बात सुनकर शंकरके वे गण आपसमें कहने लगे॥ २१॥

शिवगणा ऊचुः

किं कर्तव्यं क्व गंतव्यं क्रियते स न किं पुनः।
मर्यादा रक्ष्यतेऽस्माभिरन्यथा किं ब्रवीति च॥ २२

शिवगण बोले—अब हमें क्या करना चाहिये, कहाँ जाना चाहिये। कहनेपर भी यह हमारी बात नहीं मानता। हमलोग तो मर्यादाकी रक्षा करते हैं, इसने ऐसी बात किस प्रकार कही॥ २२॥

ब्रह्मोवाच

ततः शंभुगणाः सर्वे शिवं दूरे व्यवस्थितम्।
क्रोशमात्रं तु कैलासाद्गत्वा ते च तथाऽब्रुवन्॥ २३
शिवो विहस्य तान्सर्वांस्त्रिशूलकर उग्रधीः।
उवाच परमेशो हि स्वगणान् वीरसंमतान्॥ २४

ब्रह्माजी बोले—तब शिवके सभी गणोंने कैलाससे एक कोसकी दूरीपर स्थित शंकरजीसे जाकर वह सब कहा—तब हाथमें त्रिशूल धारण किये हुए उग्रबुद्धि परमेश्वर शिवजीने हँसकर वीरमानी अपने उन गणोंसे कहा—॥ २३-२४॥

शिव उवाच

रे रे गणाः क्लीबमता न वीरा वीरमानिनः।
मदग्रे नोदितुं योग्या भर्त्सितः किं पुनर्वदेत्॥ २५

शिवजी बोले—हे गणो! तुमलोग कायर हो, वीरमानी वीर नहीं, मेरे सामने तुमलोग ऐसा कहनेके योग्य नहीं हो, डाँटे जानेपर वह पुनः क्या कह सकता है॥ २५॥

गम्यतां ताड्यतां चैष यः कश्चित्प्रभवेदिह।
बहुनोक्तेन किं चात्र दूरीकर्तव्य एव सः॥ २६

तुमलोग जाओ, उसपर प्रहार करो, चाहे वह कोई क्यों न हो, मैं तुमलोगोंसे अधिक क्या कहूँ, चाहे जैसे भी हो, उसे वहाँसे हटाओ॥ २६॥

ब्रह्मोवाच

इति सर्वे महेशेन जग्मुस्तत्र मुनीश्वर।
भर्त्सितास्तेन देवेन प्रोचुश्च गणसत्तमाः॥ २७

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! जब महेश्वरने अपने श्रेष्ठ गणोंको इस प्रकार फटकारा, तब वे गण पुनः वहाँ गये और बोले— ॥ २७॥

शिवगणा ऊचुः

रे रे त्वं शृणु वै बाल बलात्किं परिभाषसे।
इतस्त्वं दूरतो याहि नो चेन्मृत्युर्भविष्यति॥ २८

शिवगण बोले—अरे बालक! सुनो। तुम हठपूर्वक क्यों व्यर्थ बकवास करते हो, अब तुम यहाँसे दूर चले जाओ, अन्यथा तुम्हारी मृत्यु हो जायगी॥ २८॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचस्तेषां शिवाज्ञाकारिणां ध्रुवम्।
शिवासुतस्तदाभूत्स किं करोमीति दुःखितः॥ २९

ब्रह्माजी बोले—शिवके आज्ञाकारी उन गणोंका निश्चयपूर्वक वचन सुनकर 'मैं क्या करूँ'—यह सोचकर पार्वतीपुत्र गणेशजी बहुत दुखी हुए॥ २९॥

एतस्मिन्नन्तरे देवी तेषां तस्य च वै पुनः।
श्रुत्वा तु कलहं द्वारि सखीं पश्येति साब्रवीत्॥ ३०
समागत्य सखी तत्र वृत्तान्तं समबुध्यत।
क्षणमात्रं तदा दृष्ट्वा गता हृष्टा शिवान्तिकम्॥ ३१
तत्र गत्वा तु तत्सर्वं वृत्तं तद्यदभून्मुने।
अशेषेण तया सख्या कथितं गिरिजाग्रतः॥ ३२

इसी बीच द्वारपर गणोंका तथा गणेशका कलह सुनकर देवी पार्वतीने अपनी सखीसे कहा—देखो, द्वारपर किस प्रकारका कलह हो रहा है? सखीने वहाँ आकर सारा वृत्तान्त जान लिया और क्षणमात्रमें सब कुछ देखकर प्रसन्न होकर वह पार्वतीके पास गयी। हे मुने! जो कुछ भी घटित हुआ था, वहाँ जाकर उस सखीने वह सब यथार्थ रूपसे पार्वतीके आगे वर्णन किया॥ ३०—३२॥

सख्युवाच

अस्मदीयो गणो यो हि स्थितो द्वारि महेश्वरि।
निर्भर्त्सयन्ति तं वीराः शंकरस्य गणा ध्रुवम्॥ ३३
शिवश्चैव गणाः सर्वे विना तेऽवसरं कथम्।
प्रविशंति हठाद्गेहे नैतच्छुभतरं तव॥ ३४

सखी बोली—हे महेश्वरि! हमारा गण जो द्वारपर स्थित है, उसको शिवजीके वीर गण निश्चित रूपसे धमका रहे हैं। शिव तथा उनके वे सभी गण बिना अवसरके घरमें जबरदस्ती कैसे प्रवेश कर सकते हैं, यह तो आपके लिये शुभतर नहीं है॥ ३३-३४॥

सम्यक् कृतं ह्यनेनैव न हि कोऽपि प्रवेशितः।
दुःखं चैवानुभूयात्र तिरस्कारादिकं तथा॥ ३५
अतः परन्तु वाग्वादः क्रियते च परस्परम्।
वाग्वादे च कृते नैव तर्ह्यायान्तु सुखेन वै॥ ३६

इस बालकने बहुत अच्छा किया, जो इस कार्यके लिये दुःख तथा तिरस्कार आदिका अनुभव करके भी इसने किसीको घरमें आने नहीं दिया। इसके बाद इन लोगोंमें परस्पर विवाद चल रहा है, वाद-विवाद किये जानेपर वे सुखपूर्वक घरमें प्रवेश नहीं कर पायेंगे॥ ३५-३६॥

कृतश्चैवात्र वाग्वादस्तं जित्वा विजयेन च।
प्रविशंतु तथा सर्वे नान्यथा कर्हिचित्प्रिये॥ ३७
अस्मिन्नेवास्मदीये वै सर्वे संभर्त्सिता वयम्।
तस्माद्देवि त्वया भद्रे न त्याज्यो मान उत्तमः॥ ३८
शिवो मर्कटवत्तेऽद्य वर्तते सर्वदा सति।
किं करिष्यत्यहंकारमानुकूल्यं भविष्यति॥ ३९

हे प्रिये! यदि वाद-विवाद किया गया, तो मेरे गणको जीतकर विजय प्राप्त करनेके बाद ही वे घरमें प्रवेश कर सकते हैं, अन्यथा नहीं। हमारे गणको धमकी देनेसे इन गणोंने हमलोगोंको ही धमकी दी है, इसलिये हे देवि! हे भद्रे! आपको अपने श्रेष्ठ मानका त्याग नहीं करना चाहिये। हे सति! शिवजी तो बन्दरके समान सदा आपके अधीन हैं, वे अहंकार क्या करेंगे; अवश्य ही वे आपके अनुकूल हो जायँगे॥ ३७—३९॥

ब्रह्मोवाच

अहो क्षणं स्थिता तत्र शिवेच्छा वशतः सती॥ ४०
मनस्युवाच सा भूत्वा मानिनी पार्वती तदा॥ ४१

ब्रह्माजी बोले—आश्चर्य है कि वे सती पार्वती शिवेच्छासे क्षणभर वहाँ रुक गयीं और वे मानिनी होकर अपने मनमें कहने लगीं॥ ४०-४१॥

शिवोवाच

अहो क्षणं स्थितो नैव हठात्कारः कथं कृतः।
कथं चैवात्र कर्त्तव्यं विनयेनाथ वा पुनः॥ ४२

भविष्यति भवत्येव कृतं नैवान्यथा पुनः।
इत्युक्त्वा तु सखी तत्र प्रेषिता प्रियया तदा॥ ४३

शिवा बोलीं—अहो, यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि शिवके गण क्षणमात्र भी रुक नहीं सके। इस प्रकार प्रवेशका हठ उन लोगोंने कैसे ठान लिया! अब इस निमित्त उनसे विनय अथवा अन्य उपाय करना उचित प्रतीत नहीं हो रहा है। जो होना होगा, वही होगा, मैंने जो कर दिया है, उसे अन्यथा कैसे कर सकती हूँ। ऐसा कहकर प्रिया पार्वतीने अपनी सखीको वहाँ भेजा॥ ४२-४३॥

समागत्याऽब्रवीत्सा च प्रियया कथितं हि यत्।
समाचष्ट गणेशं तं गिरिजातनयं तदा॥ ४४

वह सखी आकर पार्वतीपुत्र गणेशसे प्रिया पार्वतीद्वारा कही गयी बात कहने लगी—॥ ४४॥

सख्युवाच

सम्यक्कृतं त्वया भद्र बलात्ते प्रविशंतु न।
भवदग्रे गणा ह्येते किं जयंतु भवादृशम्॥ ४५

सखी बोली—हे भद्र! तुमने बहुत अच्छा किया, ये लोग अब हठपूर्वक घरमें प्रवेश न करें। तुम्हारे सामने ये गण क्या हैं? जो कि तुम्हारे-जैसे गणको जीत लें॥ ४५॥

कृतं चेद्वाकृतं चैव कर्त्तव्यं क्रियतां त्वया।
जितो यस्तु पुनर्वापि न वैरमथ वा ध्रुवम्॥ ४६

करनेयोग्य अथवा न करनेयोग्य जो भी कर्तव्य हो, तुम उसे अवश्य करना। जो एक बार जीत लिया जायगा, वह फिर वैर नहीं करेगा॥ ४६॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्या मातुश्चैव गणेश्वरः।
आनन्दं परमं प्राप बलं भूरि महोन्नतिम्॥ ४७

ब्रह्माजी बोले—उस सखीके द्वारा कहे गये माताके वचनको सुनकर गणेश्वरको परम आनन्द, बल तथा महान् उत्साह प्राप्त हुआ॥ ४७॥

बद्धकक्षस्तथोष्णीषं बद्ध्वा जंघोरु संस्पृशन्।
उवाच तान् गणान् सर्वान् निर्भयं वचनं मुदा॥ ४८

उन्होंने अच्छी तरहसे कमर कस ली और पगड़ी बाँधकर ऊरु तथा जंघापर ताल ठोकते हुए निडर होकर उन सभी गणोंसे प्रसन्नतापूर्वक यह वचन कहा—॥ ४८॥

गणेश उवाच

अहं च गिरिजासूनुर्यूयं शिवगणास्तथा।
उभये समतां प्राप्ताः कर्तव्यं क्रियतां पुनः॥ ४९

गणेशजी बोले—मैं पार्वतीका पुत्र हूँ, तुमलोग शिवके गण हो, दोनों ही समान हैं, [हम सभी] अपने-अपने कर्तव्यका पालन करें॥ ४९॥

भवन्तो द्वारपालाश्च द्वारपोऽहं कथं न हि।
भवन्तश्च स्थितास्तत्राऽहं स्थितोऽत्रेति निश्चितम्॥ ५०

क्या आप लोग ही द्वारपाल रह सकते हैं, मैं द्वारपाल नहीं रह सकता? यदि आपलोग शिवके द्वारपर स्थित हैं, तो मैं भी यहाँ निश्चित रूपसे स्थित हूँ॥ ५०॥

भवद्भिश्च स्थितं ह्यत्र यदा भवति निश्चितम्।
तदा भवद्भिः कर्त्तव्यं शिवाज्ञापरिपालनम्॥ ५१
इदानीं तु मया चात्र शिवाज्ञापरिपालनम्।
सत्यं च क्रियते वीरा निर्णीतं मे यथोचितम्॥ ५२

जब आपलोग यहाँ स्थित रहियेगा, तब आपलोग शिवकी आज्ञाका पालन कीजियेगा। इस समय तो यहाँ मैं पार्वतीकी आज्ञाका पालन कर रहा हूँ। हे वीरो! यह सत्य है; मैंने उचित निर्णय लिया है॥ ५१-५२॥

तस्माच्छिवगणाः सर्वे वचनं शृणुतादरात्।
हठाद्वा विनयाद्वा न गंतव्यं मन्दिरे पुनः॥ ५३

इसलिये हे शिवगणो! आपलोग मेरा वचन आदरपूर्वक सुन लें, हठसे अथवा विनयसे आपलोगोंको घरके भीतर नहीं जाना चाहिये॥ ५३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तास्ते गणेनैव सर्वे ते लज्जिता गणाः।
ययुः शिवांतिकं तं वै नमस्कृत्य पुरः स्थिताः॥ ५४

ब्रह्माजी बोले—गणेश्वरके द्वारा इस प्रकार कहे गये वे सभी शिवगण लज्जित होकर शिवके पास गये और उन्हें प्रणामकर उनके आगे खड़े हो गये॥ ५४॥

स्थित्वा न्यवेदयन्सर्वे वृत्तान्तं च तदद्भुतम्।
करौ बद्ध्वा नतस्कंधाः शिवं स्तुत्वा पुरः स्थिताः॥ ५५

तत्सर्वं तु तदा श्रुत्वा वृत्तं तत्स्वगणोदितम्।
लौकिकीं वृत्तिमाश्रित्य शंकरो वाक्यमब्रवीत्॥ ५६

खड़े होकर उनलोगोंने वह सारा अद्भुत वृत्तान्त शिवजीसे निवेदन किया। इसके बाद फिर हाथ जोड़कर सिर झुकाये हुए वे शिवजीकी स्तुतिकर उनके आगे खड़े हो गये। तब अपने गणोंके द्वारा कहे गये उस समाचारको सुनकर शिवजी लौकिक व्यवहारका आश्रय लेकर यह वचन कहने लगे—॥ ५५-५६॥

शंकर उवाच

श्रूयतां च गणाः सर्वे युद्धं योग्यं भवेन्न हि।
यूयं चात्रास्मदीया वै स च गौरीगणस्तथा॥ ५७

विनयः क्रियते चेद्वै वश्यः शंभुः स्त्रिया सदा।
इति ख्यातिर्भवेल्लोके गर्हिता मे गणा ध्रुवम्॥ ५८

कृते चैवात्र कर्तव्यमिति नीतिर्गरीयसी।
एकाकी स गणो बालः किं करिष्यति विक्रमम्॥ ५९

शंकर बोले—हे समस्त गणो! सुनो, युद्ध करना भी उचित नहीं है, क्योंकि तुमलोग हमारे गण हो और वह बालक पार्वतीका गण है। हे गणो! यदि नम्रता प्रदर्शित की जाय, तो संसारमें मेरी यह निन्दनीय प्रसिद्धि होगी कि शिवजी सदा स्त्रीके वशमें रहते हैं और शिवके गण निर्बल हैं। जो जैसा करे, उसके साथ वैसा ही बर्ताव करना चाहिये—यही नीति सर्वश्रेष्ठ है। वह अकेला बालक गण क्या पराक्रम करेगा?॥ ५७—५९॥

भवन्तश्च गणा लोके युद्धे चातिविशारदाः।
मदीयाश्च कथं युद्धं हित्वा यास्यथ लाघवम्॥ ६०

स्त्रियाऽऽग्रहः कथं कार्यो पत्युरग्रे विशेषतः।
कृत्वा सा गिरिजा तस्य नूनं फलमवाप्स्यति॥ ६१

तस्मात्सर्वे च मद्वीराः शृणुतादरतो वचः।
कर्त्तव्यं सर्वथा युद्धं भावि यत्तद्भवत्विति॥ ६२

तुम सब मेरे गण हो और युद्धमें अत्यन्त कुशल हो, अतः युद्ध छोड़कर तुमलोग लघुताको कैसे प्राप्त होओगे, विशेषरूपसे पतिके आगे स्त्रीको हठ कैसे करना चाहिये। हठ करके वह पार्वती उसका फल अवश्य प्राप्त करेगी। इसलिये हे वीरो! तुम सब मेरी बात आदरपूर्वक सुनो, तुम लोग अवश्य युद्ध करो, जो होनहार है, वह तो होकर ही रहेगा॥ ६०—६२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा शंकरो ब्रह्मन् नानालीलाविशारदः।
विरराम मुनिश्रेष्ठ दर्शयँल्लौकिकीं गतिम्॥ ६३

ब्रह्माजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे मुनिश्रेष्ठ! अनेक प्रकारकी लीलाएँ करनेमें प्रवीण शंकरजी ऐसा कहकर लौकिक गति प्रदर्शित करते हुए चुप हो गये॥ ६३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे गणविवादवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें गणविवादवर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

गणेश तथा शिवगणोंका भयंकर युद्ध, पार्वतीद्वारा दो शक्तियोंका प्राकट्य, शक्तियोंका अद्भुत पराक्रम और शिवका कुपित होना

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ता विभुना तेन निश्चयं परमं गताः।
सन्नद्धास्तु तदा तत्र जग्मुश्च शिवमन्दिरम्॥ १

गणेशोऽपि तथा दृष्ट्वा ह्यायातान्गणसत्तमान्।
युद्धाऽऽटोपं विधायैव स्थितांश्चैवाब्रवीदिदम्॥ २

गणेश उवाच

आयान्तु गणपाः सर्वे शिवाज्ञापरिपालकाः।
अहमेकश्च बालश्च शिवाज्ञापरिपालकः॥ ३
तथापि पश्यतां देवी पार्वती सूनुजं बलम्।
शिवश्च स्वगणानां तु बलं पश्यतु वै पुनः॥ ४

बलवद्बालयुद्धं च भवानीशिवपक्षयोः।
भवद्भिश्च कृतं युद्धं पूर्वं युद्धविशारदैः॥ ५

मया पूर्वं कृतं नैव बालोऽस्मि क्रियतेऽधुना।
तथापि भवतां लज्जा गिरिजाशिवयोरिह॥ ६

ममैवं तु भवेन्नैव वैपरीत्यं भविष्यति।
ममैव भवतां लज्जा गिरिजाशिवयोरिह॥ ७

एवं ज्ञात्वा च कर्त्तव्यः समरश्च गणेश्वराः।
भवद्भिः स्वामिनं दृष्ट्वा मया च मातरं तदा॥ ८

क्रियते कीदृशं युद्धं भवितव्यं भवत्विति।
तस्य वै वारणे कोऽपि न समर्थस्त्रिलोकके॥ ९

ब्रह्मोवाच

इत्येवं भर्त्सितास्ते तु दंडभूषितबाहवः।
विविधान्यायुधान्येवं धृत्वा ते च समाययुः॥ १०
घर्षयन्तस्तथा दंतान् हुंकृत्य च पुनः पुनः।
पश्य पश्य ब्रुवन्तश्च गणास्ते समुपागताः॥ ११

ब्रह्माजी बोले—जब सर्वव्यापक शिवजीने अपने गणोंसे इस प्रकार कहा, तब उन्होंने युद्धका निश्चय कर लिया और कवच आदि धारणकर वे शिवजीके भवनके समीप गये। आये हुए उन श्रेष्ठ गणोंको देखकर युद्धकी तैयारी करके गणेशजी भी वहाँ स्थित गणोंसे यह कहने लगे—॥ १-२॥

गणेशजी बोले—शिवकी आज्ञाका पालन करनेवाले आप सब गण आयें, मैं अकेला बालक होते हुए भी [अपनी माता] पार्वतीकी आज्ञाका पालन करूँगा। तथापि आज देवी पार्वती अपने पुत्रका बल देखें और शंकर अपने गणोंका बल देखें॥ ३-४॥

भवानीके पक्षसे इस बालकका तथा शिवके पक्षसे बलवान् गणोंके बीच आज युद्ध होगा। युद्धमें विशारद आप सभी गण पूर्वकालमें अनेक युद्ध कर चुके हैं, मैं तो अभी बालक हूँ, मैंने कभी युद्ध नहीं किया है, किंतु आज युद्ध करूँगा। फिर भी शिव-पार्वतीके इस युद्धमें हार जानेपर आप सभीको ही लज्जित होना पड़ेगा, बालक होनेके कारण मुझे हार या जीतकी लाज नहीं है, इस युद्धका फल भी मेरे विपरीत ही होगा। मेरी तथा आपलोगोंकी लाज भवानी तथा शंकरकी लाज है॥ ५—७॥

हे गणेश्वरो! ऐसा समझकर ही युद्ध कीजिये। आपलोग अपने स्वामीकी ओर देखकर तथा मैं अपनी माताकी ओर देखकर यह युद्ध करूँगा॥ ८॥

यह युद्ध कैसा होगा, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती, इसे रोकनेमें इस त्रिलोकीमें कोई भी समर्थ नहीं होगा। जो होनहार है, वह भी होकर ही रहेगा॥ ९॥

ब्रह्माजी बोले—जब गणेशने शिवजीके गणोंको इस प्रकार फटकारा, तब वे शिवगण भी हाथोंमें दण्ड तथा अन्य आयुध लेकर आ गये। दाँत कटकटाते हुए हुंकार करते हुए और 'देखो-देखो' ऐसा बारंबार बोलते हुए वे गण आ गये॥ १०-११॥

नंदी प्रथममागत्य धृत्वा पादं व्यकर्षयत्।
धावन्भृंगी द्वितीयं च पादं धृत्वा गणस्य च॥ १२
यावत्पादे विकर्षन्तौ तावद्धस्तेन वै गणः।
आहत्य हस्तयोस्ताभ्यामुत्क्षिप्तौ पादकौ स्वयम्॥ १३

अथ देवीसुतो वीरस्संगृह्य परिघं बृहत्।
द्वारस्थितो गणपतिः सर्वानापोथयत्तदा॥ १४
केषांचित्पाणयो भिन्नाः केषांचित्पृष्ठकानि च।
केषांचिच्च शिरांस्येव केषांचिन्मस्तकानि च॥ १५
केषांचिज्जानुनी तत्र केषांचित्स्कंधकास्तथा।
केषाञ्चिज्जानुनी तत्र केषाञ्चित्स्कन्धास्तथा।
सम्मुखे चागता ये वै ते सर्वे हृदये हताः॥ १६
केचिच्च पतिता भूमौ केचिच्च विदिशो गताः।
केषांचिच्चरणौ छिन्नौ केचिच्छर्वान्तिकं गताः॥ १७

तेषां मध्ये तु कश्चिद्वै संग्रामे सम्मुखो न हि।
सिंहं दृष्ट्वा यथा यांति मृगाश्चैव दिशो दश॥ १८

तथा ते च गणाः सर्वे गताश्चैव सहस्रशः।
परावृत्य तथा सोऽपि सुद्वारि समुपस्थितः॥ १९

कल्पांतकरणे कालो दृश्यते च भयंकरः।
यथा तथैव दृष्टः स सर्वेषां प्रलयंकरः॥ २०

एतस्मिन्समये चैव सरमेशसुरेश्वराः।
प्रेरिता नारदेनेह देवाः सर्वे समागमन्॥ २१

समब्रुवंस्तदा सर्वे शिवस्य हितकाम्यया।
पुरः स्थित्वा शिवं नत्वा ह्याज्ञां देहि प्रभो इति॥ २२

त्वं परब्रह्म सर्वेशः सर्वे च तव सेवकाः।
सृष्टेः कर्ता सदा भर्ता संहर्ता परमेश्वरः॥ २३

रजस्सत्त्वतमोरूपो लीलया निर्गुणः स्वतः।
का लीला रचिता चाद्य तामिदानीं वद प्रभो॥ २४

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां मुनिश्रेष्ठ महेश्वरः।
गणान् भिन्नाँस्तदा दृष्ट्वा तेभ्यस्सर्वं न्यवेदयत्॥ २५
अथ सर्वेश्वरस्तत्र शंकरो मुनिसत्तम।
विहस्य गिरिजानाथो ब्रह्माणं मामुवाच ह॥ २६

सर्वप्रथम नन्दीने आकर गणेशका एक पैर खींचा, उसके बाद दौड़ते हुए भृंगी आकर उसका दूसरा पैर पकड़कर खींचने लगा। जबतक वे दोनों उसके पैर घसीट रहे थे, तबतक उस गणेशने अपने हाथोंसे प्रहारकर अपने पैर छुड़ा लिये॥ १२-१३॥

इसके बाद देवीपुत्र गणेश्वरने एक बड़ा परिघ लेकर द्वारपर स्थित हो सभी गणोंको मारना आरम्भ किया। इससे किन्हींके हाथ टूट गये, किन्हींकी पीठ फट गयी, किन्हींके सिर फूट गये और किन्हींके मस्तक कट गये। कुछ गणोंके जानु तथा कुछके कन्धे टूटकर अलग हो गये। जो लोग सामने आये, उन लोगोंके हृदयपर प्रहार किया गया। कुछ पृथ्वीपर गिरे, कुछ ऊर्ध्व दिशाओंमें जा गिरे, कुछके पैर टूट गये और कुछ शिवजीके समीप जा गिरे॥ १४—१७॥

उनमें कोई भी ऐसा गण नहीं था, जो संग्राममें गणेशके सामने दिखायी पड़े। जैसे सिंहको देखकर मृग दसों दिशाओंमें भाग जाते हैं, उसी प्रकार वे हजारों गण भाग गये और वे गणेश पुनः लौटकर द्वारपर स्थित हो गये। जिस प्रकार कल्पान्तके समय काल भयंकर दिखायी पड़ता है, उसी प्रकार उन सभीने गणेशको [कालके समान] प्रलयंकारी देखा॥ १८—२०॥

इसी बीच नारदजीसे प्रेरित होकर विष्णु, इन्द्रसहित सभी देवता वहाँ पहुँच गये॥ २१॥

तब शिवजीकी हितकामनासे उन लोगोंने शिवको नमस्कारकर उनके आगे खड़े होकर कहा— हे प्रभो! हमें आज्ञा दीजिये। आप परब्रह्म सर्वेश हैं और हम सब आपके सेवक हैं, आप सृष्टिके कर्ता, भर्ता और संहर्ता परमेश्वर हैं। आप स्वयं निर्गुण होते हुए भी अपनी लीलासे सत्त्व, रज तथा तमरूप हैं। हे प्रभो! आपने इस समय कौन-सी लीला प्रारम्भ की है, उसे हमें बताइये॥ २२—२४॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! उनका यह वचन सुनकर महेश्वरने [अपने] घायल गणोंकी ओर देखकर उनसे सब कुछ कहा। इसके बाद हे मुनिसत्तम! पार्वतीपति सर्वेश्वर शंकर हँसकर मुझ ब्रह्मासे कहने लगे—॥ २५-२६॥

शिव उवाच

ब्रह्मञ्छृणु मम द्वारि बाल एकः समास्थितः।
महाबलो यष्टिपाणिर्गेहावेशनिवारकः॥ २७
महाप्रहारकर्ताऽसौ मत्पार्षदविघातकः।
पराजयः कृतस्तेन मद्गणानां बलादिह॥ २८

शिवजी बोले—हे ब्रह्मन्! सुनिये, मेरे द्वारपर एक महाबली बालक हाथमें लाठी लिये हुए खड़ा है, वह सबको घरमें जानेसे रोकता है। वह भयंकर प्रहार करनेवाला है, उसने मेरे पार्षदोंको मार गिराया है और मेरे गणोंको बलपूर्वक पराजित कर दिया है॥ २७-२८॥

ब्रह्मन् त्वयैव गंतव्यं प्रसाद्योऽयं महाबलः।
यथा ब्रह्मन्नयः स्याद्वै तथा कार्यं त्वया विधे॥ २९

हे ब्रह्मन्! आप ही वहाँ जायँ और इस महाबलीको प्रसन्न करें। हे ब्रह्मन्! हे विधे! जैसी नीति हो, वैसा व्यवहार करें॥ २९॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य प्रभोर्वाक्यमज्ञात्वाऽज्ञानमोहितः।
तदीयनिकटं तात सर्वैर्ऋषिवरैरयाम्॥ ३०

ब्रह्माजी बोले—हे तात! शिवजीके इस वचनको सुनकर विशेष बातको न जानकर अज्ञानसे मोहित हुआ मैं सभी ऋषियोंके साथ उसके पास गया॥ ३०॥

समायान्तं च मां दृष्ट्वा स गणेशो महाबली।
क्रोधं कृत्वा समभ्येत्य मम श्मश्रूण्यवाकिरत्॥ ३१

वह महाबली गणेश मुझे आते हुए देखकर क्रोध करके मेरे सन्निकट आकर मेरी दाढ़ी उखाड़ने लगा॥ ३१॥

क्षम्यतां क्षम्यतां देव न युद्धार्थं समागतः।
ब्राह्मणोऽहमनुग्राह्यः शांतिकर्तानुपद्रवः॥ ३२

हे देव! क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये, मैं यहाँ युद्धके लिये नहीं आया हूँ। मैं तो ब्राह्मण हूँ, मुझपर कृपा कीजिये, मैं उपद्रवरहित हूँ तथा शान्ति करनेवाला हूँ॥ ३२॥

इत्येवं ब्रुवति ब्रह्मंस्तावत्परिघमाददे।
स गणेशो महावीरो बालोऽबालपराक्रमः॥ ३३

अभी मैं ऐसा कह ही रहा था, तभी हे नारद! युवाके समान पराक्रमी महावीर उस बालक गणेशने हाथमें परिघ ले लिया॥ ३३॥

गृहीतपरिघं दृष्ट्वा तं गणेशं महाबलम्।
पलायनपरो यातस्त्वहं द्रुततरं तदा॥ ३४
यात यात ब्रुवन्तस्ते परिघेन हतास्तदा।
स्वयं च पतिताः केचित्केचित्तेन निपातिताः॥ ३५
केचिच्च शिवसामीप्यं गत्वा तत्क्षणमात्रतः।
शिवं विज्ञापयाञ्चक्रुस्तद्वृत्तान्तमशेषतः॥ ३६

तब उस महाबली गणेशको परिघ धारण किये हुए देखकर मैं शीघ्रतासे भाग गया। मेरे साथके लोग कहने लगे—यहाँसे भागो, भागो, इतनेमें ही उसने उन्हें परिघसे मारना प्रारम्भ कर दिया, जिससे कुछ तो स्वयं गिर गये और कुछको उसने मार गिराया। कुछ लोग उसी क्षण शिवजीके समीप जाकर पूर्णरूपसे उस वृत्तान्तको शिवजीसे कहने लगे॥ ३४—३६॥

तथाविधांश्च तान् दृष्ट्वा तद्वृत्तान्तं निशम्य सः।
अपारमादधे कोपं हरो लीलाविशारदः॥ ३७

उन्हें वैसा देखकर और उस घटनाको सुनकर लीला-विशारद शिवजीको अपार क्रोध उत्पन्न हुआ॥ ३७॥

इंद्रादिकान्देवगणान् षण्मुखप्रवरान् गणान्।
भूतप्रेतपिशाचांश्च सर्वानादेशयत्तदा॥ ३८

तब उन्होंने इन्द्रादि देवगणों, कार्तिकेय आदि प्रमुख गणों, भूतों, प्रेतों एवं पिशाचोंको आज्ञा दी॥ ३८॥

ते सर्वे च यथायोग्यं गतास्ते सर्वतो दिशम्।
तं गणं हंतुकामा हि शिवाज्ञप्ता उदायुधाः॥ ३९
यस्य यस्यायुधं यच्च तत्तत्सर्वं विशेषतः।
तद् गणेशोपरि बलात्समागत्य विमोचितम्॥ ४०

शिवजीके द्वारा आदिष्ट वे लोग यथायोग्य हाथोंमें आयुध लिये हुए उस गणको मारनेकी इच्छासे सभी दिशाओंमें गये और जिस-जिसका जो विशेष अस्त्र था, उन-उन अस्त्रोंसे बलपूर्वक बालक गणेशपर प्रहार करने लगे॥ ३९-४०॥

हाहाकारो महानासीत् त्रैलोक्ये सचराचरे।
त्रिलोकस्था जनाः सर्वे संशयं परमं गताः॥ ४१

उस समय चराचरसहित त्रिलोकीमें हाहाकार मच गया और तीनों लोकोंमें रहनेवाले सभी लोग अत्यन्त संशयमें पड़ गये॥ ४१॥

न यातं ब्रह्मणोऽप्यायुर्ब्रह्मांडं क्षयमेति हि।
अकाले च तथा नूनं शिवेच्छावशतः स्वयम्॥ ४२

ते सर्वे चागतास्तत्र षण्मुखाद्याश्च ये पुनः।
देवा व्यर्थायुधा जाता आश्चर्यं परमं गताः॥ ४३

[वे आश्चर्यचकित हो कहने लगे कि] अभी ब्रह्माकी आयु समाप्त नहीं हुई है, तब इस ब्रह्माण्डका नाश कैसे हो रहा है? निश्चय ही यह शिवकी इच्छा है, जो अकालमें ही ऐसा हो रहा है। उस समय कार्तिकेय आदि जितने भी देवता थे, वे सभी वहाँ आये और उन सभीके शस्त्र व्यर्थ हो गये, जिसके कारण वे आश्चर्यचकित हो उठे॥ ४२-४३॥

एतस्मिन्नन्तरे देवी जगदम्बा विबोधना।
ज्ञात्वा तच्चरितं सर्वमपारं क्रोधमादधे॥ ४४

इसी बीच ज्ञानदायिनी देवी जगदम्बा उस सम्पूर्ण घटनाको जानकर अपार क्रोधमें भर गयीं॥ ४४॥

शक्तिद्वयं तदा तत्र तया देव्या मुनीश्वर।
निर्मितं स्वगणस्यैव सर्वसाहाय्यहेतवे॥ ४५
एका प्रचंडरूपं च धृत्वातिष्ठन्महामुने।
श्यामपर्वतसंकाशं विस्तीर्य मुखगह्वरम्॥ ४६
एका विद्युत्स्वरूपा च बहुहस्तसमन्विता।
भयंकरा महादेवी दुष्टदंडविधायिनी॥ ४७

हे मुनीश्वर! उस समय वहाँपर उन देवीने अपने गणकी सब प्रकारकी सहायताके लिये दो शक्तियोंका निर्माण किया। हे महामुने! जिसमें एक प्रचण्ड रूप धारणकर काले पहाड़की गुफाके समान मुख फैलाकर खड़ी हो गयी और दूसरी बिजलीके समान रूप धारण करनेवाली, बहुत हाथोंवाली तथा दुष्टोंको दण्ड देनेवाली भयंकर महादेवी थी॥ ४५—४७॥

आयुधानि च सर्वाणि मोचितानि सुरैर्गणैः।
गृहीत्वा स्वमुखे तानि ताभ्यां शीघ्रं च चिक्षिपे॥ ४८

देवायुधं न दृश्येत परिघः परितः पुनः।
एवं ताभ्यां कृतं तत्र चरितं परमाद्भुतम्॥ ४९

उन दोनों शक्तियोंने देवताओंके द्वारा छोड़े गये समस्त आयुध पकड़कर बड़ी शीघ्रतासे अपने मुखमें डाल लिये। उस समय किसी देवताका एक भी शस्त्र वहाँ नहीं दिखायी दे रहा था, केवल चारों ओर गणेशका परिघ ही दिखायी पड़ा। इस प्रकार उन दोनोंने वहाँ अत्यन्त अद्भुत चरित्र किया॥ ४८-४९॥

एको बालोऽखिलं सैन्यं लोडयामास दुस्तरम्।
यथा गिरिवरेणैव लोडितः सागरः पुरा॥ ५०

पूर्व समयमें जिस प्रकार गिरिश्रेष्ठ मन्दराचलने क्षीरसागरका मन्थन किया था, उसी प्रकार अकेले उस बालकने समस्त दुस्तर देवसेनाको मथ डाला॥ ५०॥

एकेन निहताः सर्वे शक्राद्या निर्जरास्तथा।
शंकरस्य गणाश्चैव व्याकुला अभवंस्तदा॥ ५१
अथ सर्वे मिलित्वा ते निःश्वस्य च मुहुर्मुहुः।
परस्परं समूचुस्ते तत्प्रहारसमाकुलाः॥ ५२

तब अकेले गणेशके द्वारा मारे-पीटे गये इन्द्रादि देवगण तथा शिवगण व्याकुल हो गये। इसके बाद गणेशके प्रहारसे व्याकुल हुए वे सभी एकत्रित होकर बारंबार श्वास छोड़ते हुए आपसमें कहने लगे—॥ ५१-५२॥

देवगणा ऊचुः

किं कर्तव्यं क्व गंतव्यं न ज्ञायन्ते दिशो दश।
परिघं भ्रामयत्येष सव्यापसव्यमेव च॥ ५३

देवगण बोले—अब क्या करना चाहिये और कहाँ जाना चाहिये? दसों दिशाओंका ज्ञान ही नहीं हो रहा है। यह बालक तो दायें-बायें परिघ घुमा रहा है॥ ५३॥

ब्रह्मोवाच

एतत्कालेऽप्सरः श्रेष्ठाः पुष्पचन्दनपाणयः।
ऋषयश्च त्वदाद्या हि येऽतियुद्धेऽतिलालसाः॥ ५४
ते सर्वे च समाजग्मुर्युद्धसंदर्शनाय वै।
पूरितो व्योम सन्मार्गस्तैस्तदा मुनिसत्तम॥ ५५

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! उसी समय पुष्प, चन्दन हाथमें लिये हुए अप्सराएँ तथा नारदादि ऋषि जो इस महान् युद्धको देखनेकी लालसावाले थे, वे सभी युद्ध देखनेके लिये वहाँ आये। हे मुनिश्रेष्ठ! उस समय उनके द्वारा आकाशमार्ग भर गया॥ ५४-५५॥

तास्ते दृष्ट्वा रणं तं वै महाविस्मयमागताः।
ईदृशं परमं युद्धं न दृष्टं चैकदापि हि॥ ५६

वे अप्सराएँ तथा ऋषिगण उस युद्धको देखकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये और कहने लगे—इस प्रकारका युद्ध तो कभी भी देखनेमें नहीं आया॥ ५६॥

पृथिवी कंपिता तत्र समुद्रसहिता तदा।
पर्वताः पतिताश्चैव चक्रुः संग्रामसंभवम्॥ ५७

उस समय समुद्रसहित सारी पृथ्वी काँपने लगी तथा पर्वत गिरने लगे, वे संग्रामकी सूचना दे रहे थे॥ ५७॥

द्यौर्ग्रहर्क्षगणैर्घूर्ण्णा सर्वे व्याकुलतां गताः।
देवाः पलायिताः सर्वे गणाश्च सकलास्तदा॥ ५८

केवलं षण्मुखस्तत्र नापलायत विक्रमी।
महावीरस्तदा सर्वानावार्य पुरतः स्थितः॥ ५९

आकाश, ग्रह एवं नक्षत्रमण्डल घूमने लगे, जिससे सभी व्याकुल हो उठे। सभी देवता तथा गण भाग गये। केवल पराक्रमी तथा महावीर कार्तिकेय ही नहीं भागे और सबको रोककर गणेशके सामने डटे रहे॥ ५८-५९॥

शक्तिद्वयेन तद्युद्धे सर्वे च निष्फलीकृताः।
सर्वास्त्राणि निकृत्तानि संक्षिप्तान्यमरैर्गणैः॥ ६०
येऽवस्थिताश्च ते सर्वे शिवस्यान्तिकमागताः।
देवाः पलायिताः सर्वे गणाश्च सकलास्तदा॥ ६१

उन दोनों शक्तियोंने उस युद्धमें सभीको असफल कर दिया और देवताओंके द्वारा चलाये गये सभी शस्त्रोंको काट दिया। जो लोग शेष बच गये थे, वे सब शिवजीके समीप आ गये, सभी देवता तथा शिवगण तो भाग ही चुके थे॥ ६०-६१॥

ते सर्वे मिलिताश्चैव मुहुर्नत्वा शिवं तदा।
अब्रुवन्वचनं क्षिप्रं कोऽयं गणवरः प्रभो॥ ६२

उन सभीने मिलकर शिवको बारंबार नमस्कारकर बड़ी शीघ्रतासे पूछा—हे प्रभो! यह श्रेष्ठ गण कौन है?॥ ६२॥

पुरा चैव श्रुतं युद्धमिदानीं बहुधा पुनः।
दृश्यते न श्रुतं दृष्टमीदृशं तु कदाचन॥ ६३

हमलोगोंने पहले भी युद्धका वर्णन सुना था, इस समय भी बहुत-से युद्ध देख रहे हैं, किंतु इस प्रकारका युद्ध न तो कभी देखा गया और न सुना ही गया!॥ ६३॥

किंचिद्विचार्यतां देव त्वन्यथा न जयो भवेत्।
त्वमेव रक्षकः स्वामिन्ब्रह्मांडस्य न संशयः॥ ६४

हे देव! अब कुछ विचार कीजिये, अन्यथा जय नहीं हो सकती है। हे स्वामिन्! आप ही इस ब्रह्माण्डके रक्षक हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ६४॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं तद्वचः श्रुत्वा रुद्रः परमकोपनः।
कोपं कृत्वा च तत्रैव जगाम स्वगणैः सह॥ ६५

ब्रह्माजी बोले—उनका यह वचन सुनकर परम-क्रोधी रुद्र कोप करके अपने गणोंसहित वहाँ गये॥ ६५॥

देवसैन्यं च तत्सर्वं विष्णुना चक्रिणा सह।
समुत्सवं महत्कृत्वा शिवस्यानुजगाम ह॥ ६६

तब देवगणोंकी सेना भी चक्रधारी विष्णुके साथ महान् उत्सव करके शिवजीके पीछे-पीछे गयी॥ ६६॥

एतस्मिन्नंतरे भक्त्या नमस्कृत्य महेश्वरम्।
अब्रवीन्नारद त्वं वै देवदेवं कृताञ्जलिः॥ ६७

हे नारद! इसी बीच आपने देवदेव महेश्वरको भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर नमस्कार करके कहा— ॥ ६७ ॥

नारद उवाच

देवदेव महादेव शृणु मद्वचनं विभो।
त्वमेव सर्वगस्स्वामी नानालीलाविशारदः॥ ६८

नारदजी बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे विभो! मेरा वचन सुनिये, आप सर्वत्र व्याप्त हैं, सबके स्वामी हैं तथा नानाविध लीलाओंको करनेमें प्रवीण हैं॥ ६८॥

त्वया कृत्वा महालीलां गणगर्वोऽपहारितः।
अस्मै दत्त्वा बलं भूरि देवगर्वश्च शंकर॥ ६९

दर्शितं भुवने नाथ स्वमेव बलमद्भुतम्।
स्वतंत्रेण त्वया शंभो सर्वगर्वप्रहारिणा॥ ७०

इदानीं न कुरुष्वेश तां लीलां भक्तवत्सलः।
स्वगणानमरांश्चापि सुसन्मान्याभिवर्द्धय॥ ७१

इमं न खेलयेदानीं जहि ब्रह्मपदप्रद।
इत्युक्त्वा नारद त्वं वै ह्यन्तर्द्धानं गतस्तदा॥ ७२

आपने महालीला करके गणोंके गर्वको दूर कर दिया। हे शंकर! आपने इनको बल देकर देवताओंके गर्वको भी नष्ट कर दिया। हे नाथ! हे शम्भो! स्वतन्त्र तथा सभीके गर्वको चूर करनेवाले आपने इस भुवनमें अपना अद्भुत बल दिखाया। हे भक्तवत्सल! अब आप उस लीलाको मत कीजिये और अपने इन गणोंका तथा देवताओंका सम्मान करके इनकी रक्षा कीजिये। हे ब्रह्मपददायक! अब इन्हें अधिक मत खेलाइये और इन गणेशका वध कीजिये। हे नारद! इस प्रकार कहकर आप वहाँसे अन्तर्धान हो गये॥ ६९—७२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे गणेशयुद्धवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें गणेशयुद्धवर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

विष्णु तथा गणेशका युद्ध, शिवद्वारा त्रिशूलसे गणेशका सिर काटा जाना

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा महेशानो भक्तानुग्रहकारकः।
त्वद्वाचा युद्धकामोऽभूत्तेन बालेन नारद॥ १

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! यह सुनकर भक्तोंके ऊपर कृपा करनेवाले महेश्वरने आपके कहनेसे उस बालकके साथ युद्ध करनेकी इच्छा की॥ १॥

विष्णुमाहूय संमन्त्र्य बलेन महता युतः।
सामरः सम्मुखस्तस्याप्यभूद्देवस्त्रिलोचनः॥ २

भगवान् त्रिलोचन विष्णुको बुलाकर उनसे मन्त्रणाकर एक बहुत बड़ी सेनासे युक्त होकर देवताओंके सहित उस गणेशके सम्मुख उपस्थित हुए॥ २॥

देवाश्च युयुधुस्तेन स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम्।
महाबला महोत्साहाश्शिवसद्दृष्टिलोकिताः॥ ३

उस समय सर्वप्रथम शिवकी शुभ दृष्टिसे देखे गये महाबलवान् देवता महान् उत्साहवाले शिवजीके चरण-कमलोंका ध्यान करके उसके साथ युद्धमें प्रवृत्त हुए॥ ३॥

युयुधेऽथ हरिस्तेन महाबलपराक्रमः।
महादेव्यायुधो वीरः प्रवणः शिवरूपकः॥ ४

यष्ट्या गणाधिपः सोऽथ जघानामरपुङ्गवान्।
हरिं च सहसा वीरः शक्तिदत्तमहाबलः॥ ५

महाबलवान् एवं अत्यन्त पराक्रमशील भगवान् विष्णु उस बालकसे युद्ध करने लगे। तब महादेवीके द्वारा दिये गये आयुधसे युक्त वह शिवस्वरूप वीर बालक गणेश भी श्रेष्ठ देवताओंको लाठीसे मारने लगा, शक्तिके द्वारा प्रदत्त महान् बलवाला वह सहसा विष्णुपर भी प्रहार करने लगा॥ ४-५॥

सर्वेऽमरगणास्तत्र विकुंठितबला मुने।
अभूवन् विष्णुना तेन हता यष्ट्या पराङ्मुखाः॥ ६

हे मुने! उसकी लाठीके प्रहारसे विष्णुसहित समस्त देवताओंके बल कुण्ठित हो गये और वे युद्धसे पराङ्मुख हो गये॥ ६॥

शिवोऽपि सह सैन्येन युद्धं कृत्वा चिरं मुने।
विकरालं च तं दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतः॥ ७

हे मुने! शिवजी भी अपनी सेनाके सहित बहुत कालतक युद्धकर उस बालकको महाभयंकर देखकर आश्चर्यचकित हो गये॥ ७॥

छलेनैव च हंतव्यो नान्यथा हन्यते पुनः।
इति बुद्धिं समास्थाय सैन्यमध्ये व्यवस्थितः॥ ८

'इसे छलसे ही मारा जा सकता है, अन्यथा नहीं मारा जा सकता है'—ऐसा विचारकर शिवजी सेनाओंके बीचमें स्थित हो गये॥ ८॥

शिवे दृष्टे तदा देवे निर्गुणे गुणरूपिणि।
विष्णौ चैवाथ संग्रामे आयाते सर्वदेवताः॥ ९
गणाश्चैव महेशस्य महाहर्षं तदा ययुः।
सर्वे परस्परं प्रीत्या मिलित्वा चक्रुरुत्सवम्॥ १०

उस समय निर्गुण एवं सगुण रूपवाले भगवान् शंकरको तथा विष्णुको युद्धभूमिमें उपस्थित देखकर सभी देवता तथा शिवगण अत्यधिक हर्षित हुए और वे सब आपसमें मिलकर प्रेमपूर्वक उत्सव मनाने लगे॥ ९-१०॥

अथ शक्तिसुतो वीरो वीरगत्या स्वयष्टितः।
प्रथमं पूजयामास विष्णुं सर्वसुखावहम्॥ ११

तब महाशक्तिके पुत्र वीर गणेशने बड़ी बहादुरीके साथ सर्वप्रथम अपनी लाठीसे सबको सुख देनेवाले विष्णुकी पूजा की अर्थात् उनपर प्रहार किया॥ ११॥

अहं च मोहयिष्यामि हन्यतां च त्वया विभो।
छलं विना न वध्योऽयं तामसोऽयं दुरासदः॥ १२

इति कृत्वा मतिं तत्र सुसंमन्त्र्य च शंभुना।
आज्ञां प्राप्याऽभवच्छैवीं विष्णुर्मोहपरायणः॥ १३

विष्णुने शिवजीसे कहा—'यह बालक बड़ा तामसी है और युद्धमें दुराधर्ष है, बिना छलके इसे नहीं मारा जा सकता, अतः हे विभो! मैं इसे मोहित करता हूँ और आप इसका वध कीजिये' इस प्रकारकी बुद्धि करके तथा शिवसे मन्त्रणा करके और शिवकी आज्ञा प्राप्तकर विष्णुजी [गणेशको] मोहपरायण करनेमें संलग्न हो गये॥ १२-१३॥

शक्तिद्वयं तथा लीनं हरिं दृष्ट्वा तथाविधम्।
दत्त्वा शक्तिबलं तस्मै गणेशायाभवन्मुने॥ १४

शक्तिद्वयेऽथ संलीने यत्र विष्णुः स्थितः स्वयम्।
परिघं क्षिप्तवांस्तत्र गणेशो बलवत्तरः॥ १५

हे मुने! विष्णुको वैसा देखकर वे दोनों शक्तियाँ गणेशको अपनी-अपनी शक्ति समर्पितकर वहीं अन्तर्धान हो गयीं। तब उन दोनों शक्तियोंके लीन हो जानेपर महाबलवान् गणेशने, जहाँ विष्णु स्वयं स्थित थे, वहींपर अपना परिघ फेंका॥ १४-१५॥

कृत्वा यत्नं किमप्यत्र वंचयामास तद्गतिम्।
शिवं स्मृत्वा महेशानं स्वप्रभुं भक्तवत्सलम्॥ १६

विष्णुने अपने प्रभु भक्तवत्सल महेश्वरका स्मरणकर यत्न करके उस परिघकी गतिको विफल कर दिया॥ १६॥

एकतस्तन्मुखं दृष्ट्वा शंकरोऽप्याजगाम ह।
स्वत्रिशूलं समादाय सुक्रुद्धो युद्धकाम्यया॥ १७

तब एक ओरसे उसके मुखको देखकर अत्यन्त कुपित हुए शिवजी भी अपना त्रिशूल लेकर युद्धकी इच्छासे वहाँ आ गये॥ १७॥

स ददर्शागतं शंभुं शूलहस्तं महेश्वरम्।
हन्तुकामं निजं वीरः शिवापुत्रो महाबलः॥ १८

तब वीर तथा महाबली शिवापुत्रने हाथमें त्रिशूल लेकर मारनेकी इच्छासे आये हुए महेश्वर शिवको देखा॥ १८॥

शक्त्या जघान तं हस्ते स्मृत्वा मातृपदांबुजम्।
स गणेशो महावीरः शिवाशक्तिप्रवर्द्धितः॥ १९

तब अपनी माताके चरणकमलोंका स्मरण करके शिवाकी शक्तिसे प्रवर्धित होकर उस महावीर गणेशने शक्तिसे उनके हाथपर प्रहार किया॥ १९॥

त्रिशूलं पतितं हस्ताच्छिवस्य परमात्मनः।
दृष्ट्वा सदूतिकस्तं वै पिनाकं धनुराददे॥ २०

तब परमात्मा शिवके हाथसे त्रिशूल गिर पड़ा, यह देखकर उत्तम लीला करनेवाले शिवने अपना पिनाक नामक धनुष उठा लिया॥ २०॥

तमप्यपातयद्भूमौ परिघेण गणेश्वरः।
हताः पंच तथा हस्ताः पञ्चभिश्शूलमाददे॥ २१

अहो दुःखतरं नूनं संजातमधुना मम।
भवेत्पुनर्गणानां किं भवाचारो जगाविति॥ २२

गणेश्वरने अपने परिघसे उस धनुषको भूमिपर गिरा दिया और परिघके पाँच प्रहारोंसे उनके पाँच हाथोंको घायल कर दिया। तब शंकरने त्रिशूल ग्रहण किया और लौकिक गति प्रदर्शित करते हुए वे अपने मनमें कहने लगे—अहो! इस समय जब मुझे महान् क्लेश प्राप्त हुआ, तब गणोंकी क्या दशा हुई होगी?॥ २१-२२॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरः परिघेण गणेश्वरः।
जघान सगणान् देवान् शक्तिदत्तबलान्वितः॥ २३

गता दशदिशो देवाः सगणाः परिघार्दिताः।
न तस्थुः समरे केऽपि तेनाद्भुतप्रहारिणा॥ २४

इसी बीच शक्तिके द्वारा दिये गये बलसे युक्त वीर गणेशने गणोंसहित देवताओंको परिघसे मारा। तब परिघके प्रहारसे आहत गणसहित सभी देवता दसों दिशाओंमें भाग गये और अद्भुत प्रहार करनेवाले उस बालकके सामने कोई भी ठहर न सका॥ २३-२४॥

विष्णुस्तं च गणं दृष्ट्वा धन्योऽयमिति चाब्रवीत्।
महाबलो महावीरो महाशूरो रणप्रियः॥ २५
बहवो देवताश्चैव मया दृष्टास्तथा पुनः।
दानवा बहवो दैत्या यक्षगंधर्वराक्षसाः॥ २६
नैतेन गणनाथेन समतां यान्ति केऽपि च।
त्रैलोक्येऽप्यखिले तेजो रूपशौर्यगुणादिभिः॥ २७

विष्णु भी उस गणको देखकर बोले—यह धन्य, महाबलवान्, महावीर, महाशूर तथा रणप्रिय योद्धा है। मैंने बहुत-से देवता, दानव, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व एवं राक्षसोंको देखा है, किंतु सम्पूर्ण त्रिलोकीमें तेज, रूप, गुण एवं शौर्यादिमें इसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता॥ २५—२७॥

एवं संब्रुवतेऽमुष्मै परिघं भ्रामयन् स च।
चिक्षेप विष्णवे तत्र शक्तिपुत्रो गणेश्वरः॥ २८

विष्णु इस प्रकार कह ही रहे थे कि शिवापुत्र गणेशने अपना परिघ घुमाते हुए विष्णुपर फेंका॥ २८॥

चक्रं गृहीत्वा हरिणा स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम्।
तेन चक्रेण परिघो द्रुतं खंडीकृतस्तदा॥ २९

तब विष्णुने भी चक्र लेकर शिवजीके चरण-कमलका ध्यान करके उस चक्रसे परिघके टुकड़े-टुकड़े कर दिये॥ २९॥

खंडं तु परिघस्यापि हरये प्राक्षिपद्गणः।
गृहीत्वा गरुडेनापि पक्षिणा विफलीकृतः॥ ३०

गणेश्वरने उस परिघके टुकड़ेको लेकर विष्णुपर प्रहार किया। तब गरुड़ पक्षीने उसे पकड़कर विफल बना दिया॥ ३०॥

एवं विचरितं कालं महावीरावुभावपि।
विष्णुश्चापि गणश्चैव युयुधाते परस्परम्॥ ३१

इस प्रकार बहुत समयतक विष्णु एवं गणेश्वर दोनों ही वीर परस्पर युद्ध करते रहे॥ ३१॥

पुनर्वीरवरः शक्तिसुतः स्मृतशिवो बली।
गृहीत्वा यष्टिमतुलां तया विष्णुं जघान ह॥ ३२

पुनः वीरोंमें श्रेष्ठ बलवान् शक्तिपुत्रने शिवका स्मरणकर अनुपम लाठी लेकर उससे विष्णुपर प्रहार किया॥ ३२॥

अविषह्य प्रहारं तं स भूमौ निपपात ह।
द्रुतमुत्थाय युयुधे शिवापुत्रेण तेन वै॥ ३३

विष्णु उस प्रहारको सहन करनेमें असमर्थ होकर पृथ्वीपर गिर पड़े और पुनः शीघ्रतासे उठकर उस शिवा-पुत्रसे संग्राम करने लगे॥ ३३॥

एतदंतरमासाद्य शूलपाणिस्तथोत्तरे।
आगत्य च त्रिशूलेन तच्छिरो निरकृंतत॥ ३४

इसी बीच अवसर पाकर पीछेसे आकर शूलपाणि शंकरने त्रिशूलसे उसका सिर काट लिया॥ ३४॥

छिन्ने शिरसि तस्यैव गणनाथस्य नारद।
गणसैन्यं देवसैन्यमभवच्च सुनिश्चलम्॥ ३५

हे नारद! तब उस गणेशका सिर कट जानेपर गणोंकी सेना तथा देवगणोंकी सेना निश्चिन्त हो गयी॥ ३५॥

नारदेन त्वयाऽऽगत्य देव्यै सर्वं निवेदितम्।
मानिनि श्रूयतां मानस्त्याज्यो नैव त्वयाधुना॥ ३६

उसके बाद आप नारदने जाकर देवीसे सब कुछ निवेदन किया और यह भी कहा—हे मानिनि! सुनिये, आप इस समय अपना मान मत छोड़ना॥ ३६॥

इत्युक्त्वाऽन्तर्हितस्तत्र नारद त्वं कलिप्रियः।
अविकारी सदा शंभुर्मनोगतिकरो मुनिः॥ ३७

हे नारद! इस प्रकार कहकर कलहप्रिय आप अन्तर्धान हो गये; आप विकाररहित हैं तथा शिवजीकी इच्छाके अनुसार चलनेवाले मुनि हैं॥ ३७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे गणेशयुद्धगणेशशिरश्छेदनवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें गणेशयुद्धगणेश-शिरश्छेदनवर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

पुत्रके वधसे कुपित जगदम्बाका अनेक शक्तियोंको उत्पन्न करना और उनके द्वारा प्रलय मचाया जाना, देवताओं और ऋषियोंका स्तवनद्वारा पार्वतीको प्रसन्न करना, शिवजीके आज्ञानुसार हाथीका सिर लाया जाना और उसे गणेशके धड़से जोड़कर उन्हें जीवित करना

नारद उवाच

ब्रह्मन् वद महाप्राज्ञ तद् वृत्तान्तेऽखिले श्रुते।
किमकार्षीन्महादेवी श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥ १

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे महाप्राज्ञ! अब आप मुझे बताइये कि सम्पूर्ण समाचार सुन लेनेपर महादेवीने क्या किया? उसे ठीक-ठीक सुनना चाहता हूँ॥ १॥

ब्रह्मोवाच

श्रूयतां मुनिशार्दूल कथयाम्यद्य तद्ध्रुवम्।
चरितं जगदंबाया यज्जातं तदनन्तरम्॥ २

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! उसके बाद जगदम्बाका जो चरित्र हुआ, उसे अब मैं सम्पूर्ण रूपसे कह रहा हूँ, सुनिये॥ २॥

मृदंगान्पटहांश्चैव गणाश्चावादयंस्तथा।
महोत्सवं तदा चक्रुर्हते तस्मिन्गणाधिपे॥ ३

गणाधिप उस गणेशके मार दिये जानेपर शिवजीके गणोंने मृदंग एवं पटह बजाये तथा महान् उत्सव किया॥ ३॥

शिवोऽपि तच्छिरश्छित्वा यावद्दुःखमुपाददे।
तावच्च गिरिजा देवी चुक्रोधाति मुनीश्वर॥ ४

हे मुनीश्वर! शिवजी भी गणेशजीका शिरश्छेदनकर ज्यों ही दुखी हुए, उसी समय गिरिजादेवी अत्यन्त क्रोधित हो गयीं॥ ४॥

किं करोमि क्व गच्छामि हाहा दुःखमुपागतम्।
कथं दुःखं विनश्येतास्याऽतिदुःखं ममाधुना॥ ५

उन्होंने कहा—हाय, मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? मुझे बहुत बड़ा दुःख उत्पन्न हो गया है। इसके मरनेसे तो मुझे बड़ा क्लेश हुआ, वह दुःख किस प्रकारसे दूर हो सकता है!॥ ५॥

मत्सुतो नाशितश्चाद्य देवैः सर्वैर्गणैस्तथा।
सर्वांस्तान्नाशयिष्यामि प्रलयं वा करोम्यहम्॥ ६

सभी देवताओं तथा गणोंने मेरे पुत्रको मार डाला है। अतः मैं उनका नाश कर दूँगी अथवा प्रलय कर दूँगी॥ ६॥

इत्येवं दुःखिता सा च शक्तीः शतसहस्रशः।
निर्ममे तत्क्षणं क्रुद्धा सर्वलोकमहेश्वरी॥ ७

इस प्रकार दुखी हुई उन सर्वलोकमहेश्वरीने उसी क्षण कुपित होकर करोड़ों शक्तियोंको उत्पन्न किया॥ ७॥

निर्मितास्ता नमस्कृत्य जगदंबां शिवां तदा।
जाज्वल्यमाना ह्यवदन्मातरादिश्यतामिति॥ ८

तेजसे जाज्वल्यमान उन उत्पन्न हुई शक्तियोंने जगदम्बा पार्वतीको नमस्कारकर कहा—हे मातः! आज्ञा दीजिये॥ ८॥

तच्छ्रुत्वा शंभुशक्तिः सा प्रकृतिः क्रोधतत्परा।
प्रत्युवाच तु ताः सर्वा महामाया मुनीश्वर॥ ९

हे मुनीश्वर! यह सुनकर शम्भुकी शक्ति महामाया प्रकृतिने क्रोधमें भरकर उन सभी शक्तियोंसे कहा— ॥ ९॥

देव्युवाच

हे शक्तयोऽधुना देव्यो युष्माभिर्मन्निदेशतः।
प्रलयश्चात्र कर्त्तव्यो नात्र कार्या विचारणा॥ १०

देवी बोलीं—हे शक्तियो! हे देवियो! तुम सब मेरी आज्ञासे प्रलय कर डालो; इसमें आप सभीको विचार नहीं करना चाहिये॥ १०॥

देवांश्चैव ऋषींश्चैव यक्षराक्षसकांस्तथा।
अस्मदीयान्परांश्चैव सख्यो भक्षत वै हठात्॥ ११

हे सखियो! तुमलोग देवता, ऋषि, यक्ष, राक्षस और अपने तथा दूसरे सबको हठपूर्वक खा डालो॥ ११॥

ब्रह्मोवाच

तदाज्ञप्ताश्च ताः सर्वाः शक्तयः क्रोधतत्पराः।
देवादीनां च सर्वेषां संहारं कर्तुमुद्यताः॥ १२

ब्रह्माजी बोले—तब पार्वतीकी आज्ञा पाते ही वे सभी शक्तियाँ क्रोधमें भरकर देवता आदि सभीका संहार करनेके लिये उद्यत हो गयीं॥ १२॥

यथा च तृणसंहारमनलः कुरुते तथा।
एवं ताः शक्तयः सर्वाः संहारं कर्तुमुद्यताः॥ १३

जिस प्रकार अग्नि तृणोंका संहार कर देती है, उसी प्रकार वे समस्त शक्तियाँ भी संहार करने लगीं॥ १३॥

गणपो वाथ विष्णुर्वा ब्रह्मा वा शंकरस्तथा।
इन्द्रो वा यक्षराजो वा स्कंदो वा सूर्य एव वा॥ १४
सर्वेषां चैव संहारं कुर्वंति स्म निरंतरम्।
यत्र यत्र तु दृश्येत तत्र तत्रापि शक्तयः॥ १५

[शिवके] गणाधिप, विष्णु, ब्रह्मा, शंकर, इन्द्र, यक्षराज, स्कन्द अथवा सूर्य आदिका वे निरन्तर संहार करने लगीं। जहाँ-जहाँ दृष्टि जाती, वहाँ-वहाँ केवल शक्तियाँ ही दिखायी पड़ती थीं॥ १४-१५॥

कराली कुब्जका खंजा लंबशीर्षा ह्यनेकशः।
हस्ते धृत्वा तु देवांश्च मुखे चैवाक्षिपंस्तदा॥ १६

उस समय कराली, कुब्जका, खंजा, लम्बशीर्षा आदि अनेक शक्तियाँ देवताओंको हाथसे पकड़कर मुखमें डालने लगीं॥ १६॥

तं संहारं तदा दृष्ट्वा हरो ब्रह्मा तथा हरिः।
इन्द्रादयोऽखिला देवा गणाश्च ऋषयस्तथा॥ १७
किं करिष्यति सा देवी संहारं वाप्यकालतः।
इति संशयमापन्ना जीवनाशा हताऽभवत्॥ १८

उस संहारको देखकर हर, ब्रह्मा, हरि तथा इन्द्रादि सभी देवतागण एवं ऋषि इस सन्देहमें पड़ गये कि क्या देवी अकालमें ही प्रलय कर देंगी? इस प्रकार उनमें जीवनकी आशा समाप्त-सी हो गयी॥ १७-१८॥

सर्वे च मिलिताश्चेमे किं कर्त्तव्यं विचिन्त्यताम्।
एवं विचारयन्तस्ते तूर्णमूचुः परस्परम्॥ १९

सभी लोगोंने मिलकर कहा कि अब हमें क्या करना चाहिये—सब लोग इसपर विचार करें। इस प्रकार परस्पर विचार करते हुए वे कहने लगे— ॥ १९॥

यदा च गिरिजा देवी प्रसन्ना हि भवेदिह।
तदा चैव भवेत्स्वास्थ्यं नान्यथा कोटि यत्नतः॥ २०

यदि गिरिजादेवी प्रसन्न हो जायँ तो शान्ति हो सकती है अन्यथा करोड़ों उपायोंसे भी शान्ति सम्भव नहीं है॥ २०॥

शिवोऽपि दु:खमापन्नो लौकिकीं गतिमाश्रितः।
मोहयन्सकलांस्तत्र नानालीलाविशारदः॥ २१

अनेक प्रकारकी लीलाओंको करनेमें प्रवीण शिवजी भी सबको मोहित करते हुए लौकिक गतिका आश्रय लेकर दु:खमें पड़ गये॥ २१॥

सर्वेषां चैव देवानां कटिर्भग्ना यदा तदा।
शिवा क्रोधमयी साक्षाद् गन्तुं न पुर उत्सहेत्॥ २२

किंतु सभी देवताओंकी कमर उस समय टूट गयी, जब पार्वतीके पास जानेका प्रश्न उठा। उन्होंने सोचा कि पार्वती साक्षात् क्रोधकी मूर्ति हैं, कोई भी उनके सामने जानेका साहस नहीं कर सकता है॥ २२॥

स्वीयो वा परकीयो वा देवो वा दानवोऽपि वा।
गणो वापि च दिक्पालो यक्षो वा किन्नरो मुनिः॥ २३
विष्णुर्वापि तथा ब्रह्मा शंकरश्च तथा प्रभुः।
न कश्चिद्गिरिजाग्रे च स्थातुं शक्तोऽभवन्मुने॥ २४

हे मुने! उस समय देवता, दानवगण, दिक्पाल, यक्ष, किन्नर, मुनि, विष्णु, ब्रह्मा एवं महाप्रभु शंकर आदि तथा अपना-पराया कोई भी गिरिजाके सामने खड़ा होनेमें समर्थ नहीं हुआ॥ २३-२४॥

जाज्वल्यमानं तत्तेजः सर्वतो दाहि तेऽखिलाः।
दृष्ट्वा भीततरा आसन् सर्वे दूरतरं स्थिताः॥ २५

सभी ओरसे पार्वतीके जलते हुए उस दाहक तेजको देखकर सभी लोग दूर खड़े हो गये॥ २५॥

एतस्मिन्समये तत्र नारदो दिव्यदर्शनः।
आगतस्त्वं मुने देवगणानां सुखहेतवे॥ २६
ब्रह्माणं मां भवं विष्णुं शंकरं च प्रणम्य सः।
समागत्य मिलित्वोचे विचार्य कार्यमेव वा॥ २७

हे मुने! उसी समय दिव्य दर्शनवाले आप नारद देवगणोंको सुखी करने वहाँ पहुँच गये। पास आकर मुझ ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकरको प्रणामकर सबके साथ मिलकर आप कहने लगे कि सोच-विचारकर ही कोई काम करना चाहिये॥ २६-२७॥

सर्वे संमन्त्रयांचक्रुस्त्वया देवा महात्मना।
दु:खशांतिः कथं स्याद्वै समूचुस्तत एव ते॥ २८
यावच्च गिरिजा देवी कृपां नैव करिष्यति।
तावन्नैव सुखं स्याद्वै नात्र कार्या विचारणा॥ २९

उसके बाद सभी देवताओंने आप महात्माके साथ मन्त्रणा की कि इस दु:खकी शान्ति किस प्रकार होगी; इसके बाद उन्होंने कहा—जबतक गिरिजादेवी कृपा नहीं करेंगी, तबतक दु:खकी शान्ति सम्भव नहीं है, इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिये॥ २८-२९॥

ऋषयो हि त्वदाद्याश्च गतास्ते वै शिवान्तिकम्।
सर्वे प्रसादयामासुः क्रोधशान्त्यै तदा शिवाम्॥ ३०

उसके बाद सभी ऋषि आपको साथ लेकर पार्वतीके पास गये और क्रोध शान्त करनेके लिये शिवाको प्रसन्न करने लगे॥ ३०॥

पुनः पुनः प्रणेमुश्च स्तुत्वा स्तोत्रैरनेकशः।
सर्वे प्रसादयन्प्रीत्या प्रोचुर्देवगणाज्ञया॥ ३१

सभीने बारम्बार प्रणाम किया और अनेक स्तोत्रोंसे स्तुति करके उन्हें प्रसन्न करते हुए देवगणोंकी आज्ञासे प्रेमपूर्वक कहा— ॥ ३१॥

सुरर्षय ऊचुः

जगदम्ब नमस्तुभ्यं शिवायै च नमोऽस्तु ते।
चंडिकायै नमस्तुभ्यं कल्याण्यै च नमोऽस्तु ते॥ ३२

देवर्षि बोले—हे जगदम्ब! आपको नमस्कार है, आप शिवाको नमस्कार है, आप चण्डिकाको नमस्कार है, आप कल्याणीको नमस्कार है॥ ३२॥

आदिशक्तिस्त्वमेवाम्ब सर्वसृष्टिकरी सदा।
त्वमेव पालिनी शक्तिस्त्वमेव प्रलयंकरी॥ ३३

हे अम्ब! आप ही आदिशक्ति हैं, आप ही सर्वदा सृष्टि करनेवाली, पालन करनेवाली तथा प्रलय करनेवाली शक्ति हैं॥ ३३॥

प्रसन्ना भव देवेशि शांतिं कुरु नमोऽस्तु ते।
सर्वं हि विकलं देवि त्रिजगत्तव कोपतः॥ ३४

हे देवेशि! आप प्रसन्न हों, शान्ति कीजिये। आपको नमस्कार है, हे देवि! आपके क्रोधसे सारा त्रैलोक्य विकल हो रहा है॥ ३४॥

ब्रह्मोवाच

एवं स्तुता परा देवी ऋषिभिश्च त्वदादिभिः।
क्रुद्धदृष्ट्या तदा तांश्च किंचिन्नोवाच सा शिवा॥ ३५

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार आप सभी ऋषियोंने मिलकर पराम्बाकी स्तुति की, तब भी क्रोधपूर्ण दृष्टिसे उनकी ओर देखती हुई उन शिवाने कुछ भी नहीं कहा॥ ३५॥

तदा च ऋषयः सर्वे नत्वा तच्चरणाम्बुजम्।
पुनरूचुश्शिवां भक्त्या कृतांजलिपुटाः शनैः॥ ३६

पुनः सभी ऋषियोंने उनके चरणकमलको नमस्कारकर परम भक्तिसे हाथ जोड़कर धीरेसे शिवासे कहा—॥ ३६॥

ऋषय ऊचुः

क्षम्यतां क्षम्यतां देवि संहारो जायतेऽधुना।
तव स्वामी स्थितश्चात्र पश्य पश्य तमम्बिके॥ ३७

ऋषिगण बोले—हे देवि! क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये। इस समय प्रलय होना चाहता है। हे अम्बिके! आपके स्वामी यहींपर स्थित हैं, देखिये, देखिये॥ ३७॥

वयं के च इमे देवा विष्णुब्रह्मादयस्तथा।
प्रजाश्च भवदीयाश्च कृतांजलिपुटाः स्थिताः॥ ३८

हम कौन हैं? ये ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता कौन हैं? वस्तुतः हम सब आपकी प्रजाएँ हैं और हाथ जोड़कर खड़े हैं॥ ३८॥

क्षंतव्यश्चापराधो वै सर्वेषां परमेश्वरि।
सर्वे हि विकलाश्चाद्य शांतिं तेषां शिवे कुरु॥ ३९

हे परमेश्वरि! हम सभीका अपराध क्षमा कीजिये। हे शिवे! सभी लोग व्याकुल हैं, अतः इनकी शान्ति कीजिये॥ ३९॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा ऋषयः सर्वे सुदीनतरमाकुलाः।
संतस्थिरे चंडिकाग्रे कृतांजलिपुटास्तदा॥ ४०

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर सभी ऋषिगण अत्यन्त दीनतासे व्याकुल हो अम्बिकाके सामने हाथ जोड़े हुए खड़े रहे॥ ४०॥

एवं श्रुत्वा वचस्तेषां प्रसन्ना चंडिकाऽभवत्।
प्रत्युवाच ऋषींस्तान्वै करुणाविष्टमानसा॥ ४१

इस प्रकार उनका वचन सुनकर चण्डिका प्रसन्न हो गयीं और करुणार्द्रचित्त हो ऋषियोंसे कहने लगीं—॥ ४१॥

देव्युवाच

मत्पुत्रो यदि जीवेत तदा संहरणं न हि।
यथा हि भवतां मध्ये पूज्योऽयं च भविष्यति॥ ४२
सर्वाध्यक्षो भवेदद्य यूयं कुरुत तद्यदि।
तदा शांतिर्भवेल्लोके नान्यथा सुखमाप्स्यथ॥ ४३

देवी बोलीं—यदि मेरा पुत्र जीवित हो जाय और तुमलोगोंके बीच प्रथम पूज्य हो, तो यह संहार नहीं होगा। यह आजसे सबका अध्यक्ष हो जाय और यदि तुमलोग उसे ऐसा कर दो तो लोकमें शान्ति हो सकती है अन्यथा तुमलोगोंको सुखकी प्राप्ति नहीं होगी॥ ४२-४३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तास्ते तदा सर्वे ऋषयो युष्मदादयः।
तेभ्यो देवेभ्य आगत्य सर्वं वृत्तं न्यवेदयन्॥ ४४

ब्रह्माजी बोले—[भगवतीके द्वारा] इस प्रकार कहे जानेपर आप सभी ऋषियोंने आ करके देवगणोंके समीप जाकर उन देवताओंसे सारा वृत्तान्त निवेदन किया॥ ४४॥

ते च सर्वे तथा श्रुत्वा शंकराय न्यवेदयन्।
नत्वा प्रांजलयो दीनाः शक्रप्रभृतयः सुराः॥ ४५

तब यह सुनकर दुःखित इन्द्रादि सभी देवगणोंने हाथ जोड़कर प्रणाम करके [इस वृत्तान्तको] शंकरसे निवेदित किया॥ ४५॥

प्रोवाचेति सुराञ्छ्रुत्वा शिवश्चापि तथा पुनः।
कर्त्तव्यं च तथा सर्वलोकस्वास्थ्यं भवेदिह॥ ४६

यह सुनकर शिवजीने भी देवताओंसे कहा—हमलोगोंको भी वही करना चाहिये, जिससे सारे संसारका कल्याण हो॥ ४६॥

उत्तरस्यां पुनर्यात प्रथमं यो मिलेदिह।
तच्छिरश्च समाहृत्य योजनीयं कलेवरे॥ ४७

अतः आपलोग उत्तर दिशाकी ओर जाइये और सर्वप्रथम जो मिले, उसका सिर लाकर इसके धड़में जोड़ दीजिये॥ ४७॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तैस्तत्कृतं सर्वं शिवाज्ञाप्रतिपालकैः।
कलेवरं समानीय प्रक्षाल्य विधिवच्च तत्॥ ४८
पूजयित्वा पुनस्ते वै गताश्चोदङ्मुखास्तदा।
प्रथमं मिलितस्तत्र हस्ती चाप्येकदन्तकः॥ ४९

ब्रह्माजी बोले—तदनन्तर शिवकी आज्ञा पालन करनेवाले देवताओंने ऐसा ही किया। गणेशजीका शरीर लाकर विधिपूर्वक उसका प्रक्षालन करके उसकी पूजाकर वे उत्तर दिशाकी ओर चल दिये, वहींपर उन्हें सर्वप्रथम एक दाँतवाला हाथी मिला॥ ४८-४९॥

तच्छिरश्च तदा नीत्वा तत्र तेऽयोजयन् ध्रुवम्।
संयोज्य देवताः सर्वाः शिवं विष्णुं विधिं तदा॥ ५०
प्रणम्य वचनं प्रोचुर्भवयुक्तं कृतं च नः।
अनंतरं च तत्कार्यं भवताद्धवशेषितम्॥ ५१

तब उसीका सिर लेकर उन्होंने गणेशके शरीरमें जोड़ दिया। सिर जोड़कर सभी देवताओंने ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकरको प्रणाम करके यह वचन कहा—आपने जैसा कहा था, वैसा हमने किया, अब इसके बाद जो कार्य शेष हो, उसे आपको करना चाहिये॥ ५०-५१॥

ततस्ते तु विरेजुश्च पार्षदाश्च सुराः सुखम्।
अथ तद्वचनं श्रुत्वा शिवोक्तं पर्यपालयन्॥ ५२

इसके बाद शिवके गण तथा देवता सुखपूर्वक सुशोभित हुए। पुनः शिवजीने जैसा कहा, वैसा ही उन लोगोंने पालन किया॥ ५२॥

ऊचुस्ते च तदा तत्र ब्रह्मविष्णुसुरास्तथा।
प्रणम्येशं शिवं देवं स्वप्रभुं गुणवर्जितम्॥ ५३
यस्मात्त्वत्तेजसः सर्वे वयं जाता महात्मनः।
त्वत्तेजस्तत्समायातु वेदमंत्राभियोगतः॥ ५४

तब ब्रह्मा, विष्णु आदि देवगण अपने प्रभु निर्गुण ब्रह्म ईश्वर शिवको प्रणाम करके उनसे बोले—जिस प्रकार हम महात्मालोग आपके तेजसे उत्पन्न हुए हैं, उसी प्रकार आपका तेज वेदमन्त्रोंके प्रभावसे इस शरीरमें भी प्रकट हो जाय॥ ५३-५४॥

इत्येवमभिमंत्रेण मंत्रितं जलमुत्तमम्।
स्मृत्वा शिवं समेतास्ते चिक्षिपुस्तत्कलेवरे॥ ५५

इस प्रकार उन लोगोंने शिवजीका स्मरण करके मन्त्रके द्वारा अभिमन्त्रित उत्तम जलको गणेशके शरीरपर छिड़का॥ ५५॥

तज्जलस्पर्शमात्रेण चिद्युतो जीवितो द्रुतम्।
तदोत्तस्थौ सुप्त इव स बालश्च शिवेच्छया॥ ५६

उस जलके स्पर्शमात्रसे ही वह बालक शिवजीकी इच्छासे चेतनायुक्त हो जीवित हो गया और सोये हुएकी भाँति उठ बैठा॥ ५६॥

सुभगः सुन्दरतरो गजवक्त्रः सुरक्तकः।
प्रसन्नवदनश्चाति सुप्रभो ललिताकृतिः॥ ५७

वह सुभग, अत्यन्त सुन्दर, हाथीके मुखवाला, लाल वर्णवाला, प्रसन्न मुखमण्डलवाला, अत्यन्त तेजस्वी तथा मनोहर आकृतिवाला था॥ ५७॥

तं दृष्ट्वा जीवितं बालं शिवापुत्रं मुनीश्वर।
सर्वे मुमुदिरे तत्र सर्वं दुःखं क्षयं गतम्॥ ५८

हे मुनीश्वर! उस बालक पार्वतीपुत्रको जीवित देखकर सभी लोग अत्यन्त प्रसन्न हो गये और सबका दुःख नष्ट हो गया॥ ५८॥

देव्यै संदर्शयामासुः सर्वे हर्षसमन्विताः।
जीवितं तनयं दृष्ट्वा देवी हृष्टतराभवत्॥ ५९

इसके बाद हर्षसे युक्त सभी लोगोंने देवीको उसे दिखाया और अपने पुत्रको जीवित देखकर देवी अत्यन्त प्रसन्न हुईं॥ ५९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे गणेशजीवनवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें गणेशजीवनवर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

पार्वतीद्वारा गणेशको वरदान, देवोंद्वारा उन्हें अग्रपूज्य माना जाना, शिवजीद्वारा गणेशको सर्वाध्यक्षपद प्रदान करना, गणेशचतुर्थीव्रतविधान तथा उसका माहात्म्य, देवताओंका स्वलोक-गमन

नारद उवाच

जीविते गिरिजापुत्रे देव्या दृष्टे प्रजेश्वर।
ततः किमभवत्तत्र कृपया तद्वदाधुना॥ १

नारदजी बोले—हे प्रजेश्वर! जब गिरिजाने अपने पुत्रको जीवित देख लिया, तब क्या हुआ? कृपापूर्वक उसको आप कहिये॥ १॥

ब्रह्मोवाच

जीविते गिरिजापुत्रे देव्या दृष्टे मुनीश्वर।
यज्जातं तच्छृणुष्वाद्य वच्मि तं महदुत्सवम्॥ २

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! जब देवीने देख लिया कि मेरा पुत्र जीवित हो गया, उसके बाद जो हुआ, उसे आप सुनिये, मैं उस महान् उत्सवको कह रहा हूँ॥ २॥

जीवितः स शिवापुत्रो निर्व्यग्रो विकृतो मुने।
अभिषिक्तस्तदा देवैर्गणाध्यक्षैर्गजाननः॥ ३

हे मुने! जब व्याकुलतासे रहित तथा विशेष आकृतिवाले शिवापुत्र गजानन जीवित हो गये, तब देवताओंने उन्हें गणाध्यक्षके पदपर अभिषिक्त किया॥ ३॥

दृष्ट्वा स्वतनयं देवी शिवा हर्षसमन्विता।
गृहीत्वा बालकं दोर्भ्यां प्रमुदा परिषस्वजे॥ ४

भगवती पार्वती अपने पुत्रको [अभिषिक्त] देखकर अत्यन्त हर्षित हो गयीं और अपनी दोनों भुजाओंसे बालकको गोदमें लेकर प्रेमपूर्वक उसका आलिंगन करने लगीं॥ ४॥

वस्त्राणि विविधानीह नानालंकरणानि च।
ददौ प्रीत्या गणेशाय स्वपुत्राय मुदांबिका॥ ५

जगदम्बाने उस अपने पुत्रको बड़े प्रेमसे नाना प्रकारके वस्त्र तथा अलंकार प्रदान किये॥ ५॥

पूजयित्वा तया देव्या सिद्धिभिश्चाप्यनेकशः।
करेण स्पर्शितः सोऽथ सर्वदुःखहरेण वै॥ ६

पूजयित्वा सुतं देवी मुखमाचुम्ब्य शांकरी।
वरान्ददौ तदा प्रीत्या जातस्त्वं दुःखितोऽधुना॥ ७

उन देवीने अनेक प्रकारकी सिद्धियोंसे उस बालकका पूजन करके सभी दुःखोंको दूर करनेवाले अपने कल्याणकारी हाथसे उसका स्पर्श किया। पूजन करनेके उपरान्त देवीने उसका मुख चूमा और प्रेमसे उसे अनेक वरदान दिये और कहा—पुत्र! तुमने इस समय बड़ा कष्ट उठाया॥ ६-७॥

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि पूर्वपूज्यो भवाधुना।
सर्वेषाममराणां वै सर्वदा दुःखवर्जितः॥ ८

हे पुत्र! तुम धन्य हो और कृतकृत्य हो, तुम सभी देवताओंके पहले पूजे जाओगे और सदा दुःखरहित रहोगे। चूँकि इस समय तुम्हारे मुखमण्डलपर

आनने तव सिन्दूरं दृश्यते सांप्रतं यदि।
तस्मात्त्वं पूजनीयोऽसि सिन्दूरेण सदा नरैः॥ ९
पुष्पैर्वा चन्दनैर्वापि गन्धेनैव शुभेन च।
नैवेद्येन सुरम्येण नीराजेन विधानतः॥ १०
ताम्बूलैरथ दानैश्च तथा प्रक्रमणैरपि।
नमस्कारविधानेन पूजां यस्ते विधास्यति॥ ११
तस्य वै सकला सिद्धिर्भविष्यति न संशयः।
विघ्नान्यनेकरूपाणि क्षयं यास्यन्त्यसंशयम्॥ १२

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा च तदा देवी स्वपुत्रं तं महेश्वरी।
नानावस्तुभिरुत्कृष्टैः पुनरप्यर्चयत्तथा॥ १३
ततः स्वास्थ्यं च देवानां गणानां च विशेषतः।
गिरिजाकृपया विप्र जातं तत्क्षणमात्रतः॥ १४
एतस्मिंश्च क्षणे देवा वासवाद्याः शिवं मुदा।
स्तुत्वा प्रसाद्य तं देवं भक्त्या निन्युः शिवांतिकम्॥ १५
संसाद्य गिरिशं पश्चादुत्संगे सन्न्यवेशयन्।
बालकं तं महेशान्यास्त्रिजगत्सुखहेतवे॥ १६
शिवोऽपि तस्य शिरसि दत्त्वा स्वकरपंकजम्।
उवाच वचनं देवान् पुत्रोऽयमिति मेऽपरः॥ १७
गणेशोऽपि तदोत्थाय नमस्कृत्य शिवाय वै।
पार्वत्यै च नमस्कृत्य मह्यं वै विष्णवे तथा॥ १८
नारदाद्यानृषीन्सर्वान्स त्वास्थाय पुरोऽब्रवीत्।
क्षंतव्यश्चापराधो मे मानश्चैवेदृशो नृणाम्॥ १९
अहं च शंकरश्चैव विष्णुश्चैते त्रयः सुराः।
प्रत्यूचुर्युगपत्प्रीत्या ददतो वरमुत्तमम्॥ २०
त्रयो वयं सुरवरा यथा पूज्या जगत्त्रये।
तथायं गणनाथश्च सकलैः प्रतिपूज्यताम्॥ २१
वयं च प्राकृताश्चायं प्राकृतः पूज्य एव च।
गणेशो विघ्नहर्त्ता हि सर्वकामफलप्रदः॥ २२
एतत्पूजां पुरा कृत्वा पश्चात्पूज्या वयं नरैः।
वयं च पूजिताः सर्वे नायं चापूजितो यदा॥ २३
अस्मिन्नपूजिते देवाः परपूजाकृता यदि।
तदा तत्फलहानिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा॥ २४

सिन्दूर दिखायी देता है, इसलिये लोगोंके द्वारा तुम सदा सिन्दूरसे पूजित होओगे। जो मनुष्य पुष्प, चन्दन, सुगन्धित द्रव्य, उत्तम नैवेद्य, विधिपूर्वक आरती, ताम्बूल, दान, परिक्रमा तथा नमस्कारविधानसे तुम्हारी पूजा करेगा, उसे सम्पूर्ण सिद्धि प्राप्त होगी, इसमें सन्देह नहीं। इतना ही नहीं तुम्हारे पूजनसे समस्त विघ्न भी निःसन्देह विनष्ट हो जायँगे॥ ८—१२॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर उन महेश्वरी देवीने नाना प्रकारके उत्कृष्ट पदार्थोंसे पुनः अपने उस पुत्रका पूजन किया। हे विप्र! तब गिरिजाकी कृपासे क्षणमात्रमें देवताओंको तथा विशेषकर शिवगणोंको शान्ति प्राप्त हुई॥ १३-१४॥

उसी समय इन्द्रादि देवता प्रसन्नतासे शिवकी स्तुति करके उन्हें प्रसन्नकर भक्तियुक्त होकर पार्वतीके पास ले गये। शिवको ले जानेके अनन्तर उन देवताओंने तीनों लोकके सुखके लिये महेश्वरीके उस पुत्रको शिवकी गोदमें बैठा दिया। शिवजीने भी उस बालकके सिरपर अपना करकमल रखकर देवगणोंसे यह वचन कहा—यह मेरा दूसरा पुत्र है॥ १५—१७॥

तब गणेशने भी उठकर शिवको, पार्वतीको, मुझे, विष्णुको प्रणाम करके सबके सामने खड़े होकर नारदादि सभी ऋषियोंसे कहा—आपलोग मेरे अपराधको क्षमा करें, मनुष्योंमें मान ऐसा ही होता है॥ १८-१९॥

तब मैं [ब्रह्मा], विष्णु तथा शंकर—इन तीनों देवताओंने एक साथ ही उस बालकको प्रेमपूर्वक उत्तम वर प्रदान करते हुए कहा—जिस प्रकार हम तीनों श्रेष्ठ देवता तीनों लोकोंमें पूज्य हैं, उसी प्रकार ये गणेश भी सभीके द्वारा पूजे जायँ। हमलोग प्राकृत (मौलिक) देवता हैं, उसी प्रकार ये भी प्राकृत हैं। गणेश विघ्नोंका हरण करनेवाले तथा सभी कामनाओंका फल प्रदान करनेवाले हैं। पहले इनकी पूजा करके बादमें मनुष्य हमलोगोंकी पूजा करें, यदि हमलोगोंकी पूजा की गयी और इनकी पूजा नहीं की गयी और हे देवताओ! यदि कोई इनकी पूजा किये बिना अन्य देवताओंकी पूजा करेगा तो उसे पूजाका फल प्राप्त नहीं होगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ २०—२४॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा स गणेशानो नानावस्तुभिरादरात्।
शिवेन पूजितः पूर्वं विष्णुनाऽनु प्रपूजितः॥ २५
ब्रह्मणा च मया तत्र पार्वत्या च प्रपूजितः।
सर्वैर्देवगणैश्चैव पूजितः परया मुदा॥ २६
सर्वैर्मिलित्वा तत्रैव ब्रह्मविष्णुहरादिभिः।
सगणेशश्शिवातुष्ट्यै सर्वाध्यक्षो निवेदितः॥ २७

पुनश्चैव शिवेनास्मै सुप्रसन्नेन चेतसा।
सर्वदा सुखदा लोके वरा दत्ता ह्यनेकशः॥ २८

शिव उवाच

हे गिरीन्द्रसुतापुत्र संतुष्टोऽहं न संशयः।
मयि तुष्टे जगत्तुष्टं विरुद्धः कोऽपि नो भवेत्॥ २९

बालरूपोऽपि यस्मात्त्वं महाविक्रमकारकः।
शक्तिपुत्रः सुतेजस्वी तस्माद्भव सदा सुखी॥ ३०

त्वन्नाम विघ्नहन्तृत्वे श्रेष्ठं चैव भवत्विति।
मम सर्वगणाध्यक्षः संपूज्यस्त्वं भवाधुना॥ ३१

एवमुक्त्वा शंकरेण पूजाविधिरनेकशः।
आशिषश्चाप्यनेका हि कृतास्तस्मिंस्तु तत्क्षणात्॥ ३२

ततो देवगणाश्चैव गीतं वाद्यं च नृत्यकम्।
मुदा ते कारयामासुस्तथैवाप्सरसां गणाः॥ ३३
पुनश्चैव वरो दत्तः सुप्रसन्नेन शंभुना।
तस्मै च गणनाथाय शिवेनैव महात्मना॥ ३४
चतुर्थ्यां त्वं समुत्पन्नो भाद्रे मासि गणेश्वर।
असिते च तथा पक्षे चंद्रस्योदयने शुभे॥ ३५

प्रथमे च तथा यामे गिरिजायाः सुचेतसः।
आविर्बभूव ते रूपं यस्मात्ते व्रतमुत्तमम्॥ ३६

तस्मात्तद्दिनमारभ्य तस्यामेव तिथौ मुदा।
व्रतं कार्यं विशेषेण सर्वसिद्ध्यै सुशोभनम्॥ ३७

यावत्पुनः समायाति वर्षान्ते च चतुर्थिका।
तावद्व्रतं च कर्तव्यं तव चैव ममाज्ञया॥ ३८

संसारे सुखमिच्छन्ति येऽतुलं चाप्यनेकशः।
त्वां पूजयन्तु ते भक्त्या चतुर्थ्यां विधिपूर्वकम्॥ ३९

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर शिवजीने अनेक प्रकारकी वस्तुओंसे गणेशकी पूजा की, उसके बाद विष्णुके द्वारा भी वे पूजित हुए। तदनन्तर मैंने एवं पार्वतीने उनकी पूजा की और देवगणोंने भी बड़े आदरके साथ उनका पूजन किया। उसी स्थानपर ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवने एक साथ मिलकर पार्वतीकी प्रसन्नताहेतु उन गणेशको सर्वाध्यक्ष शब्दसे सम्बोधित किया॥ २५—२७॥

इसके बाद शिवने प्रसन्न मनसे उन गणेशको लोकमें सदा सुख देनेवाले अनेक वर दिये॥ २८॥

शिवजी बोले—हे पार्वतीपुत्र! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ, इसमें सन्देह नहीं है, मेरे सन्तुष्ट रहनेपर जगत् सन्तुष्ट हो जाता है, कोई भी विरुद्ध नहीं हो सकता॥ २९॥

तुम बालकरूपसे हो और शक्तिके महापराक्रमी एवं परम तेजस्वी पुत्र हो। इसलिये सर्वदा सुखी रहो॥ ३०॥

हे बालक! विघ्नोंके नष्ट करनेमें तुम्हारा नाम सर्वश्रेष्ठ होगा। आजसे तुम मेरे सम्पूर्ण गणोंके अध्यक्ष एवं सबके पूजनीय होओगे। इस प्रकार कहकर शंकरने गणेशको उनकी अनेक पूजाविधि बतलाकर उसी क्षण उन्हें अनेक आशीर्वाद प्रदान किये॥ ३१-३२॥

उसके बाद देवताओं एवं अप्सराओंने प्रसन्न होकर [अनेक प्रकारके] गीत, वाद्य तथा नृत्य किये॥ ३३॥

इसके बाद कल्याणकारी महात्मा शंकरने प्रसन्न होकर उन गणेशको पुनः वर प्रदान किया॥ ३४॥

हे गणेश्वर! तुम भाद्रपदमासमें कृष्णपक्षकी चतुर्थीको शुभ चन्द्रोदयकालमें उत्पन्न हुए हो और रात्रिके प्रथम प्रहरमें गिरिजाके चित्तसे तुम्हारा रूप आविर्भूत हुआ है, इसलिये उसी दिन तुम्हारा उत्तम व्रत होगा॥ ३५-३६॥

उसी दिनसे आरम्भकर उसी तिथिको सभी सिद्धियोंके लिये मनुष्यको प्रसन्नतापूर्वक इस सुन्दर व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। एक वर्षमें जब भाद्रमासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथि पुनः आये, तबतक वर्षपर्यन्त तुम्हारे व्रतको मेरी आज्ञासे करना चाहिये। जो लोग इस संसारमें अनेक प्रकारके अतुल सुख चाहते हैं, वे प्रत्येक चतुर्थीके दिन विधिपूर्वक तुम्हारी पूजा करें॥ ३७—३९॥

मार्गशीर्षे तथा मासे रमा या वै चतुर्थिका।
प्रातः स्नानं तदा कृत्वा व्रतं विप्रान्निवेदयेत्॥ ४०

दूर्वाभिः पूजनं कार्यमुपवासस्तथाविधः।
रात्रेश्च प्रहरे जाते स्नात्वा संपूजयेन्नरः॥ ४१

मार्गशीर्षके महीनेमें रमा नामक जो चतुर्थी होती है, उस दिन प्रात:काल स्नानकर व्रतके लिये ब्राह्मणोंसे निवेदन करे। दूर्वासे पूजन करे तथा उपवास करे, रात्रिका प्रथम प्रहर उपस्थित होनेपर स्नान करके मनुष्यको [गणेशका] पूजन करना चाहिये॥ ४०-४१॥

मूर्तिं धातुमयीं कृत्वा प्रवालसंभवां तथा।
श्वेतार्कसंभवां चापि मार्द्दिकां निर्मितां तथा॥ ४२
प्रतिष्ठाप्य तदा तत्र पूजयेत्प्रयतः पुमान्।
गंधैर्नानाविधैर्दिव्यैश्चन्दनैः पुष्पकैरिह॥ ४३

धातुसे, मूँगेसे, श्वेत अर्कसे अथवा मिट्टीसे गणेशकी मूर्तिका निर्माण करके उसकी प्रतिष्ठाकर मनुष्य सावधान होकर नाना प्रकारके दिव्य गन्ध, चन्दन तथा पुष्पोंसे उनकी पूजा करे॥ ४२-४३॥

वितस्तिमात्रा दूर्वा च त्र्यंगा वै मूलवर्जिता।
ईदृशानां शाद्वलानां शतेनैकोत्तरेण ह॥ ४४
एकविंशतिकेनैव पूजयेत्प्रतिमां स्थिताम्।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्विविधैर्गणनायकम्॥ ४५
ताम्बूलाद्यर्घसद्द्रव्यैः प्रणिपत्य स्तवैस्तथा।
त्वां तत्र पूजयित्वेत्थं बालचंद्रं च पूजयेत्॥ ४६

गणेशजीकी पूजाके लिये जो दूर्वा हो, वह एक वित्ते (बारह अंगुल लम्बी)-की हो और तीन गाँठसे युक्त तथा मूलरहित होनी चाहिये। इस प्रकारकी एक सौ एक दूर्वाओं अथवा इक्कीस दूर्वाओंके द्वारा स्थापित प्रतिमाका पूजन करे। धूप, दीप तथा नाना प्रकारके नैवेद्य, ताम्बूल, अर्घ्य आदि उत्तम द्रव्योंसे और प्रणाम तथा स्तुतिके द्वारा गणेशजीकी पूजा करे। इस प्रकार तुम्हारा पूजनकर बालचन्द्रमाकी पूजा करे॥ ४४—४६॥

पश्चाद्विप्रांश्च संपूज्य भोजयेन्मधुरैर्मुदा।
स्वयं चैव ततो भुंज्यान्मधुरं लवणं विना॥ ४७

तदनन्तर ब्राह्मणोंकी पूजा करके प्रसन्नतापूर्वक मधुर पदार्थोंका भोजन कराना चाहिये, इसके बाद स्वयं भी लवणरहित मधुर भोजन करना चाहिये॥ ४७॥

विसर्जयेत्ततः पश्चान्नियमं सर्वमात्मनः।
गणेशस्मरणं कुर्यात्संपूर्णं स्याद् व्रतं शुभम्॥ ४८

तत्पश्चात् अपना सारा नियम विसर्जित करे और गणेशजीका स्मरण करे। इस प्रकारका अनुष्ठान करनेसे यह शुभ व्रत सम्पूर्ण होता है॥ ४८॥

एवं व्रतेन संपूर्णे वर्षे जाते नरस्तदा।
उद्यापनविधिं कुर्याद्व्रतसम्पूर्त्तिहेतवे॥ ४९
द्वादश ब्राह्मणास्तत्र भोजनीया मदाज्ञया।
कुंभमेकं च संस्थाप्य पूज्या मूर्तिस्त्वदीयका॥ ५०

इस प्रकार व्रत करते हुए एक वर्ष बीत जाय, तब उस व्रतकी सम्पूर्णताके लिये उद्यापन करना चाहिये। मेरी आज्ञासे उसमें बारह ब्राह्मणोंको भोजन कराये तथा एक कलशकी स्थापना करके तुम्हारी मूर्तिकी पूजा करे॥ ४९-५०॥

स्थण्डिलेऽष्टदलं कृत्वा तदा वेदविधानतः।
होमश्चैवात्र कर्तव्यो वित्तशाठ्यविवर्जितैः॥ ५१

वेदीपर अष्टदल कमल बनाकर मनुष्योंको धनकी कृपणतासे रहित होकर वेदविधिसे होम करना चाहिये॥ ५१॥

स्त्रीद्वयं च तथा चात्र बटुकद्वयमादरात्।
भोजयेत्पूजयित्वा वै मूर्त्यग्रे विधिपूर्वकम्॥ ५२
निशि जागरणं कार्यं पुनः प्रातः प्रपूजयेत्।
विसर्जनं ततश्चैव पुनरागमनाय च॥ ५३

इसके बाद मूर्तिके आगे दो स्त्रियों एवं दो वटुकोंकी विधिपूर्वक पूजाकर आदरसे उन्हें भोजन कराये। रात्रिमें जागरण करे, प्रात:काल पुनः पूजन करे। इसके बाद गणेशजीसे पुनः आनेके लिये प्रार्थनाकर उनका विसर्जन करे॥ ५२-५३॥

बालकाच्चाशिषो ग्राह्याः स्वस्तिवाचनमेव च।
पुष्पांजलिं प्रदद्याच्च व्रतसंपूर्णहेतवे॥ ५४

नमस्कारांस्ततः कृत्वा नानाकार्यं प्रकल्पयेत्।
एवं व्रतं कृतं येन तस्येप्सितफलं भवेत्॥ ५५

तत्पश्चात् बालक वटुओंसे आशीर्वाद ग्रहण करे तथा स्वस्तिवाचन भी कराये और व्रतकी सम्पूर्णताके लिये पुष्पांजलि समर्पित करे। उसके बाद नमस्कारकर अन्य कार्य सम्पन्न करे। जो इस प्रकार व्रतका अनुष्ठान करता है, उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है॥ ५४-५५॥

यो नित्यं श्रद्धया सार्द्धं पूजां चैव स्वशक्तितः।
कुर्य्यात्तव गणेशान सर्वकामफलाप्तये॥ ५६

सिन्दूरैश्चन्दनैश्चैव तंडुलैः केतकैस्तथा।
उपचारैरनेकैश्च पूजयेत्त्वां गणेश्वरम्॥ ५७

एवं त्वां पूजयेयुर्ये भक्त्या नानोपचारतः।
तेषां सिद्धिर्भवेन्नित्यं विघ्ननाशो भवेदिह॥ ५८

हे गणेश्वर! जो श्रद्धाके साथ नित्य अपनी शक्तिके अनुसार सभी कामनाओंका फल प्राप्त करनेके लिये सिन्दूर, चन्दन, तण्डुल, केतकीके फूल तथा अनेक प्रकारके उपचारोंसे तुझ गणेशकी पूजा करेगा और इस प्रकार जो भी लोग भक्तिपूर्वक अनेक उपचारोंसे तुम्हारी पूजा करेंगे, उनको सदा सिद्धि प्राप्त होगी तथा उनके विघ्नोंका नाश हो जायगा॥ ५६—५८॥

सर्वैर्वर्णैः प्रकर्त्तव्या स्त्रीभिश्चैव विशेषतः।
उदयाभिमुखैश्चैव राजभिश्च विशेषतः॥ ५९

सभी वर्णों, विशेषकर स्त्रीजनोंको गणेशजीका पूजन अवश्य करना चाहिये। अपने अभ्युदयकी कामना करनेवाले राजाओंको विशेष रूपसे पूजन करना चाहिये॥ ५९॥

यं यं कामयते यो वै तं तमाप्नोति निश्चितम्।
अतः कामयमानेन तेन सेव्यः सदा भवान्॥ ६०

[हे गणेश!] मनुष्य जो-जो कामनाएँ करता है, तुम्हारी पूजासे उसे निश्चित रूपसे प्राप्त करता है, इसलिये कामना करनेवाले उस मनुष्यको सदैव तुम्हारा पूजन करना चाहिये॥ ६०॥

ब्रह्मोवाच

शिवेनैवं तदा प्रोक्तं गणेशाय महात्मने।
तदानीं दैवतैश्चैव सर्वैश्च ऋषिसत्तमैः॥ ६१
तथेत्युक्त्वा तु तैः सर्वैर्गणैः शंभुप्रियैर्मुने।
पूजितो हि गणाधीशो विधिना परमेण सः॥ ६२

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! जब महात्मा शिवजीने गणेशजीसे इस प्रकार कहा, तभी सभी देवगणों, ऋषिवरों तथा समस्त शिवप्रिय गणोंने 'तथास्तु' कहकर विधिपूर्वक गणपतिका पूजन किया॥ ६१-६२॥

ततश्चैव गणाः सर्वे प्रणेमुस्ते गणेश्वरम्।
समानर्चुर्विशेषेण नानावस्तुभिरादरात्॥ ६३

गिरिजायास्समुत्पन्नो यश्च हर्षो मुनीश्वर।
चतुर्भिर्वदनैर्वै तमवर्ण्यं च कथं ब्रुवे॥ ६४

उसके बाद सभी गणोंने भी गणेशको प्रणाम किया और आदरपूर्वक अनेक प्रकारकी वस्तुओंसे विशेषरूपसे उनकी पूजा की। हे मुनीश्वर! उस समय भगवती गिरिजाको जो हर्ष उत्पन्न हुआ, उस अवर्णनीय हर्षको मैं अपने चारों मुखोंसे भी कैसे कहूँ॥ ६३-६४॥

देवदुंदुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
जगुर्गंधर्वमुख्याश्च पुष्पवर्षं पपात ह॥ ६५

जगत्स्वास्थ्यं तदा प्राप गणाधीशे प्रतिष्ठिते।
महोत्सवो महानासीत्सर्वं दुःखं क्षयं गतम्॥ ६६

देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं, अप्सराएँ नाचने लगीं, बड़े-बड़े गन्धर्व गान करने लगे और [आकाश-मण्डलसे] पुष्पवृष्टि होने लगी। इस प्रकार गणपतिकी प्रतिष्ठा होनेपर सारा जगत् सुखी हो गया, महोत्सव होने लगा एवं सारा दुःख नष्ट हो गया॥ ६५-६६॥

शिवाशिवौ च मोदेतां विशेषेणाति नारद।
आसीत्सुमंगलं भूरि सर्वत्र सुखदायकम्॥ ६७

हे नारद! उस समय विशेष रूपसे पार्वती तथा शिव प्रसन्न हुए। सर्वत्र सुखदायक महामंगल होने लगा॥ ६७॥

ततो देवगणाः सर्वे ऋषीणां च गणास्तथा।
समागताश्च ये तत्र जग्मुस्ते तु शिवाज्ञया॥ ६८

प्रशंसन्तः शिवां तत्र गणेशं च पुनः पुनः।
शिवं चैव तथा स्तुत्वा कीदृशं युद्धमेव च॥ ६९

यदा सा गिरिजा देवी कोपहीना बभूव ह।
शिवोऽपि गिरिजां तत्र पूर्ववत्संप्रपद्य ताम्॥ ७०
चकार विविधं सौख्यं लोकानां हितकाम्यया।
स्वात्मारामोऽपि परमो भक्तकार्योद्यतः सदा॥ ७१
विष्णुश्च शिवमापृच्छ्य ब्रह्माहं तं तथैव हि।
आगच्छाव स्वधामं च शिवौ संसेव्य भक्तितः॥ ७२
नारद त्वं च भगवन्संगीय शिवयोर्यशः।
आगमो भवनं स्वं च शिवौ पृष्ट्वा मुनीश्वर॥ ७३
एतत्ते सर्वमाख्यातं मया वै शिवयोर्यशः।
भवत्पृष्टेन विघ्नेशयशःसंमिश्रमादरात्॥ ७४

इदं सुमंगलाख्यानं यः शृणोति सुसंयतः।
सर्वमंगलसंयुक्तः स भवेन्मंगलालयः॥ ७५

अपुत्रो लभते पुत्रं निर्धनो लभते धनम्।
भार्यार्थी लभते भार्यां प्रजार्थी लभते प्रजाम्॥ ७६

आरोग्यं लभते रोगी सौभाग्यं दुर्भगो लभेत्।
नष्टपुत्रं नष्टधनं प्रोषिता च पतिं लभेत्।
शोकाविष्टः शोकहीनः स भवेन्नात्र संशयः॥ ७७

इदं गाणेशमाख्यानं यस्य गेहे च तिष्ठति।
सदा मंगलसंयुक्तः स भवेन्नात्र संशयः॥ ७८

यात्राकाले च पुण्याहे यः शृणोति समाहितः।
सर्वाभीष्टं स लभते श्रीगणेशप्रसादतः॥ ७९

उस समय समस्त देवता एवं ऋषिगण जो सभी वहाँ आये हुए थे, वे शिवजीकी आज्ञासे भगवती पार्वती तथा गणेशकी बारंबार प्रशंसा करते हुए, शिवकी स्तुति करते हुए तथा वह युद्ध कैसा था, उसका वर्णन करते हुए चले गये॥ ६८-६९॥

जब भगवती पार्वतीका क्रोध शान्त हो गया, तब शिवजी भी पूर्ववत् पार्वतीके समीप आकर लोकहितकी कामनासे नाना प्रकारके सुखद कार्य करने लगे। यद्यपि वे स्वात्माराम हैं, फिर भी भक्तोंके कार्यके लिये सदैव उद्यत रहते हैं। विष्णु तथा मैं ब्रह्मा उन पार्वती एवं शंकरकी भक्तिपूर्वक सेवाकर तथा शिवसे आज्ञा लेकर अपने स्थानको आ गये। हे नारद! हे भगवन्! हे मुनीश्वर! आप भी शिवा-शिवके यशका गान करके उनसे पूछकर अपने भवनको चले आये। हे नारद! आपके द्वारा पूछे जानेपर मैंने आपसे विघ्नेश्वर गणेशजीके यशसे मिश्रित भगवान् शिव तथा भगवती शिवाके यशका आदरपूर्वक पूर्णरूपसे वर्णन कर दिया॥ ७०—७४॥

जो संयत होकर इस मंगलदायक आख्यानको सुनता है, वह सभी मंगलोंसे युक्त होकर मंगलोंका आलय हो जाता है, पुत्रहीनको पुत्र, निर्धनको धन, स्त्रीकी इच्छावालेको स्त्री एवं प्रजा चाहनेवालेको प्रजाकी प्राप्ति होती है, रोगीको आरोग्य, भाग्यहीनको सौभाग्य, नष्ट पुत्रवालेको पुत्र, नष्ट धनवालोंको धन एवं जिस स्त्रीका पति विदेश गया हो, उसको पतिकी प्राप्ति होती है और शोकयुक्त पुरुष शोकसे रहित हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। गणेशसे सम्बन्धित यह आख्यान जिसके घरमें नित्य रहता है, वह सर्वदा मंगलसे युक्त होता है; इसमें संशय नहीं है। यात्राकालमें तथा पवित्र पर्वपर जो कोई सावधान होकर इसे सुनता है, वह गणेशकी कृपासे सम्पूर्ण मनोरथ प्राप्त कर लेता है॥ ७५—७९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे गणेशगणाधिपपदवीप्राप्तिवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें गणेशको गणाधिपकी पदवीप्राप्तिका वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

स्वामिकार्तिकेय और गणेशकी बाल-लीला, विवाहके विषयमें दोनोंका परस्पर विवाद, शिवजीद्वारा पृथ्वी-परिक्रमाका आदेश, कार्तिकेयका प्रस्थान, बुद्धिमान् गणेशजीका पृथ्वीरूप माता-पिताकी परिक्रमा और प्रसन्न शिवा-शिवद्वारा गणेशके प्रथम विवाहकी स्वीकृति

नारद उवाच

गणेशस्य श्रुता तात सम्यग्जनिरनुत्तमा।
चरित्रमपि दिव्यं वै सुपराक्रमभूषितम्॥ १

ततः किमभवत्तात तत्त्वं वद सुरेश्वर।
शिवाशिवयशस्स्फीतं महानन्दप्रदायकम्॥ २

ब्रह्मोवाच

साधु पृष्टं मुनिश्रेष्ठ भवता करुणात्मना।
श्रूयतां दत्तकर्णं हि वक्ष्येऽहं ऋषिसत्तम॥ ३
शिवा शिवश्च विप्रेन्द्र द्वयोश्च सुतयोः परम्।
दर्शं दर्शं च तल्लीलां महत्प्रेम समावहत्॥ ४
पित्रोर्लालयतोस्तत्र सुखं चाति व्यवर्द्धत।
सदा प्रीत्या मुदा चातिखेलनं चक्रतुः सुतौ॥ ५
तावेव तनयौ तत्र मातापित्रोर्मुनीश्वर।
महाभक्त्या यदा युक्तौ परिचर्यां प्रचक्रतुः॥ ६
षण्मुखे च गणेशे च पित्रोस्तदधिकं सदा।
स्नेहो व्यवर्द्धत महान् शुक्लपक्षे यथा शशी॥ ७

कदाचित्तौ स्थितौ तत्र रहसि प्रेमसंयुतौ।
शिवा शिवश्च देवर्षे सुविचारपरायणौ॥ ८

शिवाशिवावूचतुः

विवाहयोग्यौ संजातौ सुताविति च तावुभौ।
विवाहश्च कथं कार्यः पुत्रयोरुभयोः शुभम्॥ ९
षण्मुखश्च प्रियतमो गणेशश्च तथैव च।
इति चिंतासमुद्विग्नौ लीलानन्दौ बभूवतुः॥ १०

स्वपित्रोर्मतमाज्ञाय तौ सुतावपि संस्पृहौ।
तदिच्छया विवाहार्थं बभूवतुरथो मुने॥ ११

अहं च परिणेष्यामि ह्यहं चैव पुनः पुनः।
परस्परं च नित्यं वै विवादे तत्परावुभौ॥ १२

नारदजी बोले—हे तात! मैंने गणेशजीके श्रेष्ठ जन्मके आख्यानको सुन लिया तथा अत्यन्त पराक्रमसे युक्त उनका दिव्य चरित्र भी सुना। हे तात! हे सुरेश्वर! उसके बाद क्या हुआ? उसे भलीभाँति कहिये। यह आख्यान शिवा और शिवके यशसे परिपूर्ण तथा महान् आनन्द देनेवाला है॥ १-२॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! करुणार्द्र चित्तवाले आपने ठीक ही पूछा। हे ऋषिसत्तम! अब मैं [आगेकी कथा] कह रहा हूँ, उसे ध्यानसे सुनिये॥ ३॥

हे विप्रेन्द्र! शिवा एवं शिव अपने उन दोनों पुत्रोंकी उत्तम लीला बारंबार देखकर अत्यन्त प्रसन्न होने लगे॥ ४॥

माता-पिताके दुलारसे उनका सुख दिन-रात बढ़ने लगा और वे दोनों बड़ी प्रसन्नतासे आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करते थे। हे मुनीश्वर! वे दोनों पुत्र महान् भक्तिसे युक्त होकर माता-पिताकी सेवा करते थे। षण्मुख कार्तिकेय तथा गणेशके प्रति माता-पिताका अधिक स्नेह शुक्ल-पक्षके चन्द्रमाके समान सदा बढ़ने लगा॥ ५—७॥

हे देवर्षे! एक समय शिवा एवं शिव—वे दोनों प्रेमयुक्त होकर एकान्तमें बैठे हुए कुछ विचार कर रहे थे॥ ८॥

शिवा-शिव बोले—अब हमारे ये पुत्र विवाहके योग्य हो गये हैं। अतः इन दोनोंका शुभ विवाह कैसे किया जाय? जिस प्रकार षण्मुख प्रिय हैं, उसी प्रकार गणेश भी प्रिय हैं। इस प्रकारकी चिन्तामें पड़े हुए वे दोनों लीलाका आनन्द लेने लगे॥ ९-१०॥

हे मुने! अपने माता-पिताका यह विचार जानकर वे दोनों पुत्र उनकी इच्छासे विवाहके लिये लालायित हो उठे। 'मैं [पहले] विवाह करूँगा'—इस प्रकार बारंबार कहते हुए दोनों आपसमें विवाद करने लगे॥ ११-१२॥

श्रुत्वा तद्वचनं तौ च दंपती जगतां प्रभू।
लौकिकाचारमाश्रित्य विस्मयं परमं गतौ॥ १३
किं कर्तव्यं कथं कार्यो विवाहविधिरेतयोः।
इति निश्चित्य ताभ्यां वै युक्तिश्च रचिताद्भुता॥ १४
कदाचित्समये स्थित्वा समाहूय स्वपुत्रकौ।
कथयामासतुस्तत्र पुत्रयोः पितरौ तदा॥ १५

जगत्के अधिपति वे दोनों शिवा और शिव उनके वचनको सुनकर लोकाचारकी रीतिका आश्रय लेकर महान् आश्चर्यमें पड़ गये। अब क्या करना चाहिये और किस प्रकार इनके विवाहकी विधि सम्पन्न की जाय—ऐसा निश्चय करके उन दोनोंने एक अद्भुत युक्ति रची। किसी समय बैठकर माता-पिताने अपने दोनों पुत्रोंको बुलाकर कहा— ॥ १३—१५ ॥

अस्माकं नियमः पूर्वं कृतश्च सुखदो हि वाम्।
श्रूयतां सुसुतौ प्रीत्या कथयावो यथार्थकम्॥ १६

शिवा-शिव बोले—हमने तुम दोनोंके लिये एक सुखदायी नियम बनाया है। हे उत्तम पुत्रो! उसे प्रीतिसे सुनो, हमलोग यथार्थ रूपसे कह रहे हैं॥ १६॥

समौ द्वावपि सत्पुत्रौ विशेषो नात्र लभ्यते।
तस्मात्पणः कृतः शंदः पुत्रयोरुभयोरपि॥ १७

यश्चैव पृथिवीं सर्वां क्रान्त्वा पूर्वमुपाव्रजेत्।
तस्यैव प्रथमं कार्यो विवाहः शुभलक्षणः॥ १८

तुम दोनों ही पुत्र समानभावसे हमें प्रिय हो, इसमें कोई विशेष नहीं है। अतः हमलोगोंने तुमदोनों पुत्रोंके लिये एक कल्याणप्रद शर्त रखी है। तुम दोनोंमें जो कोई भी सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमाकर पहले चला आयेगा, उसीका शुभ लक्षणसम्पन्न विवाह पहले किया जायगा॥ १७-१८॥

ब्रह्मोवाच

तयोरेवं वचः श्रुत्वा शरजन्मा महाबलः।
जगाम मन्दिरात्तूर्णं पृथिवीक्रमणाय वै॥ १९
गणनाथश्च तत्रैव संस्थितो बुद्धिसत्तमः।
सुबुद्ध्या संविचार्येति चित्त एव पुनः पुनः॥ २०
किं कर्तव्यं क्व गंतव्यं लंघितुं नैव शक्यते।
क्रोशमात्रं गतः स्याद्वै गम्यते न मया पुनः॥ २१
किं पुनः पृथिवीमेतां क्रान्त्वा चोपार्जितं सुखम्।
विचार्येति गणेशस्तु यच्चकार शृणुष्व तत्॥ २२
स्नानं कृत्वा यथान्यायं समागत्य स्वयं गृहम्।
उवाच पितरं तत्र मातरं पुनरेव सः॥ २३

ब्रह्माजी बोले—उन दोनोंका वचन सुनकर महाबली कार्तिकेय पृथ्वीकी परिक्रमा करनेके लिये बड़ी शीघ्रतासे घरसे चल पड़े। किंतु बुद्धिमान् गणेशजी अपनी सद्बुद्धिसे चित्तमें बारंबार विचार करके वहीं स्थित रहे कि मुझे क्या करना चाहिये और कहाँ जाना चाहिये, मैं तो लाँघ भी नहीं सकता हूँ, कोसभर चलनेके बाद मैं पुनः चल नहीं सकता, फिर इस पृथ्वीकी परिक्रमा करके मैं कौन-सा सुख प्राप्त कर सकूँगा? ऐसा विचारकर गणेशजीने जो किया, उसे आप सुनिये। विधिपूर्वक स्नान करके स्वयं घर आकर वे माता-पितासे कहने लगे— ॥ १९—२३ ॥

गणेश उवाच

आसने स्थापिते ह्यत्र पूजार्थं भवतोरिह।
भवन्तौ संस्थितौ तातौ पूर्य्यतां मे मनोरथः॥ २४

गणेशजी बोले—हे तात! आप दोनोंकी पूजाके लिये मेरे द्वारा स्थापित इस आसनपर आप लोग बैठ जाइये और मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये॥ २४॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य पार्वतीपरमेश्वरौ।
अस्थातामासने तत्र तत्पूजाग्रहणाय वै॥ २५

ब्रह्माजी बोले—उनकी बात सुनकर पार्वती और परमेश्वर पूजा ग्रहण करनेके लिये आसनपर बैठ गये॥ २५॥

तेनाथ पूजितौ तौ च प्रक्रान्तौ च पुनः पुनः।
एवं च कृतवान् सप्त प्रणामांस्तु तथैव सः॥ २६

गणेशजीने उन दोनोंका पूजन किया और बारंबार उनकी परिक्रमा की, इस प्रकार सात परिक्रमा की तथा सात बार प्रणाम किया॥ २६॥

बद्धांजलिरथोवाच गणेशो बुद्धिसागरः।
स्तुत्वा बहुतिथस्तात पितरौ प्रेमविह्वलौ॥ २७

हे तात! बुद्धिसागर गणेशजीने बारंबार उनकी स्तुतिकर हाथ जोड़कर प्रेमविह्वल अपने माता-पितासे कहा— ॥ २७॥

गणेश उवाच

भो मातर्भो पितस्त्वं च शृणु मे परमं वचः।
शीघ्रं चैवात्र कर्तव्यो विवाहः शोभनो मम॥ २८

गणेशजी बोले—हे माता एवं हे पिता! आप मेरी श्रेष्ठ बात सुनिये, अब शीघ्र ही मेरा सुन्दर विवाह कर दीजिये॥ २८॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा गणेशस्य महात्मनः।
महाबुद्धिनिधिं तं तौ पितरावूचतुस्तदा॥ २९

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार महात्मा गणेशजीका यह वचन सुनकर माता-पिताने महाबुद्धिनिधि गणेशजीसे कहा—॥ २९॥

शिवाशिवावूचतुः

प्रक्रामेत भवान्सम्यक् पृथिवीं च सकाननाम्।
कुमारो गतवांस्तत्र त्वं गच्छ पुर आव्रज॥ ३०

शिवा-शिव बोले—तुम भी वनसहित पृथ्वीकी ठीक-ठीक परिक्रमा करो, कुमार गया हुआ है, वहाँ तुम भी जाओ और पहले चले आओ॥ ३०॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा पित्रोर्गणपतिर्द्रुतम्।
उवाच नियतस्तत्र वचनं क्रोधसंयुतः॥ ३१

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार माता-पिताके इस वचनको सुनकर गणेशजी संयत तथा कुपित होकर कहने लगे—॥ ३१॥

गणेश उवाच

भो मातर्भो पितर्धर्मरूपौ प्राज्ञौ युवां मतौ।
धर्मतः श्रूयतां सम्यक् वचनं मम सत्तमौ॥ ३२
मया तु पृथिवी क्रांता सप्तवारं पुनः पुनः।
एवं कथं ब्रुवाते वै पुनश्च पितराविह॥ ३३

गणेशजी बोले—हे माता एवं हे पिता! आप दोनों धर्मरूप और अत्यन्त विद्वान् माने गये हैं, अतः हे श्रेष्ठ [माता-पिता]! मेरी धर्मसम्मत बातको ठीक-ठीक सुनिये। मैंने तो सात बार पृथ्वीकी परिक्रमा की है, तब हे माता-पिता! आप दोनों ऐसा क्यों कह रहे हैं?॥ ३२-३३॥

ब्रह्मोवाच

तद्वचस्तु तदा श्रुत्वा लौकिकीं गतिमाश्रितौ।
महालीलाकरौ तत्र पितरावूचतुश्च तम्॥ ३४

ब्रह्माजी बोले—उसके बाद गणेशजीका वचन सुनकर महालीला करनेवाले उन दोनों शिवा-शिवने लौकिक रीतिका आश्रय लेते हुए कहा—॥ ३४॥

पितरावूचतुः

कदा क्रांता त्वया पुत्र पृथिवी सुमहत्तरा।
सप्तद्वीपा समुद्रांता महद्भिर्गहनैर्युता॥ ३५

माता-पिता बोले—हे पुत्र! तुमने अति विशाल, सात द्वीपवाली, समुद्रपर्यन्त फैली हुई तथा घोर जंगलोंसे परिव्याप्त पृथ्वीकी परिक्रमा कब की?॥ ३५॥

ब्रह्मोवाच

तयोरेवं वचः श्रुत्वा शिवाशंकरयोर्मुने।
महाबुद्धिनिधिः पुत्रो गणेशो वाक्यमब्रवीत्॥ ३६

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! शिवा-शिवके इस वचनको सुनकर महाबुद्धिके निधान पुत्र गणेशजी यह वचन कहने लगे—॥ ३६॥

गणेश उवाच

भवतोः पूजनं कृत्वा शिवाशंकरयोरहम्।
स्वबुद्ध्या हि समुद्रान्तपृथ्वीकृतपरिक्रमः॥ ३७
इत्येवं वचनं वेदे शास्त्रे वा धर्मसञ्चये।
वर्त्तते किं च तत्तथ्यं नहि किं तथ्यमेव वा॥ ३८

गणेशजी बोले—मैंने आप दोनों माता-पिता शिवा और शिवका पूजन करके अपनी बुद्धिसे समुद्रपर्यन्त पृथ्वीकी परिक्रमा कर ली। इस प्रकारका वचन वेदों, शास्त्रों तथा धर्मशास्त्रोंमें विद्यमान है, क्या यह वचन सत्य है अथवा सत्य नहीं है?॥ ३७-३८॥

पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रांतिं च करोति यः।
तस्य वै पृथिवीजन्यं फलं भवति निश्चितम्॥ ३९

माता-पिताका पूजनकर जो उनकी परिक्रमा कर लेता है, उसे पृथ्वीकी परिक्रमा करनेसे होनेवाला फल निश्चित रूपसे प्राप्त हो जाता है॥ ३९॥

अपहाय गृहे यो वै पितरौ तीर्थमाव्रजेत्।
तस्य पापं तथा प्रोक्तं हनने च तयोर्यथा॥ ४०

जो माता-पिताको घरमें छोड़कर तीर्थस्थानमें जाता है, उसके लिये वह वैसा ही पाप कहा गया है, जो उन दोनोंके वध करनेसे लगता है॥ ४०॥

पुत्रस्य च महत्तीर्थं पित्रोश्चरणपंकजम्।
अन्यतीर्थं तु दूरे वै गत्वा सम्प्राप्यते पुनः॥ ४१

इदं संनिहितं तीर्थं सुलभं धर्मसाधनम्।
पुत्रस्य च स्त्रियाश्चैव तीर्थं गेहे सुशोभनम्॥ ४२

इति शास्त्राणि वेदाश्च भाषन्ते यन्निरन्तरम्।
भवद्भ्यां तत्प्रकर्त्तव्यमसत्यं पुनरेव च॥ ४३
भवदीयं त्विदं रूपमसत्यं च भवेदिह।
तदा वेदोऽप्यसत्यो वै भवेदिति न संशयः॥ ४४
शीघ्रं च भवितव्यो मे विवाहः क्रियतां शुभः।
अथवा वेदशास्त्रं च व्यलीकं कथ्यतामिति॥ ४५

द्वयोः श्रेष्ठतमं मध्ये यत्स्यात्सम्यग्विचार्य तत्।
कर्तव्यं च प्रयत्नेन पितरौ धर्मरूपिणौ॥ ४६

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा पार्वतीपुत्रः स गणेशः प्रकृष्टधीः।
विरराम महाज्ञानी तदा बुद्धिमतां वरः॥ ४७

तौ दंपती च विश्वेशौ पार्वतीशंकरौ तदा।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य विस्मयं परमं गतौ॥ ४८

ततः शिवा शिवश्चैव पुत्रं बुद्धिविचक्षणम्।
संप्रशस्योचतुः प्रीत्या तौ यथार्थप्रभाषिणम्॥ ४९

शिवाशिवावूचतुः

पुत्र ते विमला बुद्धिः समुत्पन्ना महात्मनः।
त्वयोक्तं यद्वचश्चैव ततश्चैव च नान्यथा॥ ५०

समुत्पन्ने च दुःखे च यस्य बुद्धिर्विशिष्यते।
तस्य दुःखं विनश्येत सूर्ये दृष्टे यथा तमः॥ ५१

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्।
कूपे सिंहो मदोन्मत्तः शशकेन निपातितः॥ ५२

वेदशास्त्रपुराणेषु बालकस्य यथोदितम्।
त्वया कृतं तु तत्सर्वं धर्मस्य परिपालनम्॥ ५३

सम्यक्कृतं त्वया यच्च तत्केनापि भवेदिह।
आवाभ्यां मानितं तच्च नान्यथा क्रियतेऽधुना॥ ५४

माता-पिताका चरणकमल ही पुत्रके लिये महान् तीर्थ है, अन्य तीर्थ तो दूर जानेपर प्राप्त होता है॥ ४१॥

यह तीर्थ सन्निकट रहनेवाला, [सभी प्रकारसे] सुलभ और धर्मोंका साधन है। पुत्रके लिये माता-पिता तथा स्त्रीके लिये पति ही घरमें सर्वोत्तम तीर्थ है॥ ४२॥

वेद और धर्मशास्त्र निरन्तर ऐसा कहते हैं, आपलोगोंको भी यही करना चाहिये, अन्यथा ये असत्य हो जायँगे। ऐसी स्थितिमें आपका स्वरूप ही असत्य हो जायगा और तब वेद भी असत्य हो जायँगे, इसमें संशय नहीं है। अतः अब मेरा शुभ विवाह शीघ्रतासे कीजिये, अथवा वेदों और शास्त्रोंको मिथ्या कहिये॥ ४३—४५॥

हे धर्मस्वरूप माता-पिता! इन दोनोंमें जो श्रेष्ठतम हो, उसीको ठीक-ठीक विचारकर प्रयत्नपूर्वक कीजिये॥ ४६॥

ब्रह्माजी बोले—तब ऐसा कहकर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ उत्कृष्ट बुद्धिवाले पार्वतीपुत्र गणेशजी मौन हो गये॥ ४७॥

इसके बाद विश्वके स्वामी दम्पती पार्वतीपरमेश्वर उनका यह वचन सुनकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये। तदनन्तर उन शिवा-शिवने बुद्धिविचक्षण तथा यथार्थ बात कहनेवाले पुत्रकी प्रशंसा करते हुए यथार्थ बोलनेवाले उनसे प्रेमपूर्वक कहा—॥ ४८-४९॥

शिवा-शिव बोले—हे पुत्र! तुझ महात्मामें निर्मल बुद्धि उत्पन्न हुई है, तुमने जो बात कही है, वह सत्य ही है, इसमें सन्देह नहीं है। संकट उपस्थित होनेपर भी जिसकी बुद्धिमें विशेषता बनी रहती है, उसका दुःख उसी प्रकार दूर हो जाता है, जैसे सूर्यके उदय होनेपर अन्धकार दूर हो जाता है। जिसके पास बुद्धि है, उसीके पास बल है। बुद्धिहीनको बल कहाँसे प्राप्त होगा, [बुद्धिके बलसे] किसी खरगोशने मदोन्मत्त सिंहको कुएँमें गिरा दिया था। वेद-शास्त्रों तथा पुराणोंमें बालकके लिये जो धर्मपालन बताया गया है, तुमने वह सब धर्मपालन किया है। तुमने जो सम्यक् कार्य किया, उसे कोई नहीं कर सकता। हम दोनोंने तुम्हारी बात मान ली, अब उसे अन्यथा नहीं किया जा सकता है॥ ५०—५४॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा तौ समाश्वास्य गणेशं बुद्धिसागरम्।
विवाहकरणे चास्य मतिं चक्रतुरुत्तमाम्॥ ५५

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर वे दोनों बुद्धिसागर गणेशको आश्वस्तकर उनका विवाह करनेके लिये उत्तम विचार करने लगे॥ ५५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे गणेशविवाहोपक्रमो नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें गणेशविवाहोपक्रम नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

अथ विंशोऽध्यायः

प्रजापति विश्वरूपकी सिद्धि तथा बुद्धि नामक दो कन्याओंके साथ गणेशजीका विवाह तथा उनसे 'क्षेम' तथा 'लाभ' नामक दो पुत्रोंकी उत्पत्ति, कुमार कार्तिकेयका पृथ्वीकी परिक्रमाकर लौटना और क्षुब्ध होकर क्रौंचपर्वतपर चले जाना, कुमारखण्डके श्रवणकी महिमा

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र विश्वरूपः प्रजापतिः।
तदुद्योगं संविचार्य सुखमाप प्रसन्नधीः॥ १

ब्रह्माजी बोले—इसी बीच विश्वरूप नामक प्रजापति शिवा-शिवके इस निश्चयको जानकर प्रसन्नचित्त हुए॥ १॥

विश्वरूपप्रजेशस्य दिव्यरूपे सुते उभे।
सिद्धिबुद्धिरिति ख्याते शुभे सर्वांगशोभने॥ २

उन विश्वरूप प्रजापतिकी सिद्धि-बुद्धि नामक दो कन्याएँ थीं, जो सर्वांगसुन्दरी एवं दिव्य रूपवाली थीं॥ २॥

ताभ्यां चैव गणेशस्य गिरिजा शंकरः प्रभू।
महोत्सवं विवाहं च कारयामासतुर्मुदा॥ ३
संतुष्टा देवताः सर्वास्तद्विवाहे समागमन्।
यथा चैव शिवस्यैव गिरिजाया मनोरथः॥ ४
तथा च विश्वकर्माऽसौ विवाहं कृतवांस्तथा।
तथा च ऋषयो देवा लेभिरे परमां मुदम्॥ ५

गिरिजा एवं महेश्वरने आनन्दपूर्वक उन दोनोंके साथ गणेशजीका महोत्सवपूर्वक विवाह सम्पन्न कराया। सभी देवता प्रसन्न होकर उस विवाहमें आये। जैसा पार्वती एवं शंकरका मनोरथ था, वैसे ही विश्वकर्माने [बड़ी प्रसन्नताके साथ] गणेशका विवाह किया। देवता तथा ऋषिगण अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ ३—५॥

गणेशोऽपि तदा ताभ्यां सुखं परमदुर्लभम्।
प्राप्तवांश्च मुने तत्तु वर्णितुं नैव शक्यते॥ ६

कियता चैव कालेन गणेशस्य महात्मनः।
द्वयोः पत्न्योश्च द्वौ दिव्यौ तस्य पुत्रौ बभूवतुः॥ ७

हे मुने! उस समय गणेशको भी उन दोनोंसे अति दुर्लभ सुख प्राप्त हुआ, उस सुखका वर्णन नहीं किया जा सकता है। कुछ समय बीतनेके बाद महात्मा गणेशजीको उन दोनों भार्याओंसे दो दिव्य पुत्र उत्पन्न हुए॥ ६-७॥

सिद्धेर्गणेशपत्न्यास्तु क्षेमनामा सुतोऽभवत्।
बुद्धेर्लाभाभिधः पुत्रो ह्यासीत्परमशोभनः॥ ८

एवं सुखमचिन्त्यं वै भुञ्जाने हि गणेश्वरे।
आजगाम द्वितीयश्च क्रान्त्वा पृथ्वीं सुतस्तदा॥ ९

गणेशजीकी सिद्धि नामक पत्नीसे 'क्षेम' नामक पुत्र हुआ तथा बुद्धिसे 'लाभ' नामक परम सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार गणेशजी अचिन्त्य सुखका उपभोग करने लगे, इसके बाद शिवजीके दूसरे पुत्र [कार्तिकेय] पृथ्वीकी परिक्रमाकर वहाँ आ गये॥ ८-९॥

तावच्च नारदेनैव प्राप्तो गेहे महात्मना।
यथार्थं वच्मि नोऽसत्यं न छलेन न मत्सरात्॥ १०

उसी समय महात्मा नारद उनके घर पहुँच गये और उन्होंने कहा—[हे कार्तिकेय!] मैं यथार्थ कह रहा हूँ, असत्य नहीं, न छलसे अथवा न मत्सरसे कह रहा हूँ॥ १०॥

पितृभ्यां तु कृतं यच्च शिवया शंकरेण ते।
तन्न कुर्यात्परो लोके सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम्॥ ११

निष्कास्य त्वां कुक्रमणं मिषमुत्पाद्य यत्नतः।
गणेशस्य वरोऽकारि विवाहः परशोभनः॥ १२

तुम्हारे माता-पिता शिवा-शिवने जो कार्य किया है, उसे इस लोकमें कोई नहीं कर सकता। यह मैं सत्य-सत्य कह रहा हूँ। उन लोगोंने पृथ्वीकी परिक्रमाका बहाना बनाकर तुम्हें घरके बाहर निकालकर गणेशजीका उत्तम तथा अत्यन्त शोभन विवाह कर दिया॥ ११-१२॥

गणेशस्य कृतोद्वाहो लब्धवांस्त्रीद्वयं मुदा।
विश्वरूपप्रजेशस्य कन्यारत्नं महोत्तमम्॥ १३

पुत्रद्वयं ललाभासौ द्वयोः पत्न्योः शुभांगयोः।
सिद्धेः क्षेमं तथा बुद्धेर्लाभं सर्वसुखप्रदम्॥ १४

इस समय गणेशजीका विवाह हो गया है, उन्हें विश्वरूप प्रजापतिकी अत्यन्त मनोहर रत्नरूपा दो कन्याएँ स्त्रीके रूपमें प्राप्त हुई हैं। शुभ अंगोंवाली उन दोनों पत्नियोंसे उन्होंने दो पुत्र भी उत्पन्न किये हैं, सिद्धिसे क्षेम तथा बुद्धिसे लाभ नामक सर्वसुखप्रद पुत्र प्राप्त किये हैं॥ १३-१४॥

पत्न्योर्द्वयोर्गणेशोऽसौ लब्ध्वापुत्रद्वयं शुभम्।
मातापित्रोर्मतेनैव सुखं भुंक्ते निरंतरम्॥ १५

भवता पृथिवी क्रान्ता ससमुद्रा सकानना।
तच्छलाज्ञावशात्तात तस्य जातं फलं त्विदम्॥ १६

इस प्रकार वे गणेश अपनी दोनों पत्नियोंसे दो पुत्र प्राप्तकर माता-पिताके मतमें रहकर निरन्तर सुखोपभोग कर रहे हैं। छलपूर्वक दी गयी माता-पिताकी आज्ञासे तुमने समुद्र-वनसहित पृथ्वीकी परिक्रमा कर डाली। हे तात! उसका यह फल तुम्हें प्राप्त हुआ॥ १५-१६॥

पितृभ्यां हि कृतं यत्तु छलं तात विचार्यताम्।
स्वस्वामिभ्यां विशेषेण ह्यन्यः किन्न करोति वै॥ १७

हे तात! तुम्हारे माता-पिताने जो छल किया है, उसपर तुम विचार करो। जब अपने स्वामी ऐसा कर सकते हैं, तो दूसरा क्या नहीं कर सकता॥ १७॥

असम्यक्च कृतं ताभ्यां त्वत्पितृभ्यां हि कर्म ह।
विचार्यतां त्वयाऽपीह मच्चित्ते न शुभं मतम्॥ १८

तुम्हारे उन पिता-माताने यह अनुचित कार्य किया है, तुम इसपर विचार करो, मेरे विचारसे तो यह मत ठीक नहीं है॥ १८॥

दद्याद्यदि गरं माता विक्रीणीयात्पिता यदि।
राजा हरति सर्वस्वं कस्मै किं च ब्रवीतु वै॥ १९

यदि माता ही विष दे दे, पिता बेच दे और राजा सर्वस्व हर ले तो फिर किससे क्या कहा जा सकता है॥ १९॥

येनैवेदं कृतं स्याद्वै कर्मानर्थकरं परम्।
शांतिकामस्सुधीस्तात तन्मुखं न विलोकयेत्॥ २०

हे तात! जिस किसीने भी इस प्रकारका अनर्थकारी कार्य किया हो, उसका मुख शान्तिकी इच्छा रखनेवाले बुद्धिमान् पुरुषको नहीं देखना चाहिये॥ २०॥

इति नीतिः श्रुतौ प्रोक्ता स्मृतौ शास्त्रेषु सर्वतः।
निवेदिता च सा तेऽद्य यथेच्छसि तथा कुरु॥ २१

यह नीति श्रुतियों, स्मृतियों तथा शास्त्रोंमें सर्वत्र कही गयी है। मैंने उसे तुमसे कह दिया, अब तुम जैसा चाहो, वैसा करो॥ २१॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा नारद त्वं तु महेश्वरमनोगतिः।
तस्मै तथा कुमाराय वाक्यं मौनमुपागतः॥ २२

स्कन्दोऽपि पितरं नत्वा कोपाग्निज्वलितस्तदा।
जगाम पर्वतं क्रौंचं पितृभ्यां वारितोऽपि सन्॥ २३

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! महेश्वरके मनकी गति जाननेवाले आपने उन कुमारसे इस प्रकारका वचन कहकर मौन धारण कर लिया। तब कुमार स्कन्द भी माता-पिताको प्रणामकर क्रोधाग्निसे जलते हुए शिवा-शिवके मना करनेपर भी क्रौंच पर्वतपर चले गये॥ २२-२३॥

वारणे च कृते त्वद्य गम्यते च कथं त्वया।
इत्येवं च निषिद्धोऽपि प्रोच्य नेति जगाम सः॥ २४

न स्थातव्यं मया तातौ क्षणमप्यत्र किंचन।
यद्येवं कपटं प्रीतिमपहाय कृतं मयि॥ २५

एवमुक्त्वा गतस्तत्र मुने सोऽद्यापि वर्तते।
दर्शनेनैव सर्वेषां लोकानां पापहारकः॥ २६

तद्दिनं हि समारभ्य कार्तिकेयस्य तस्य वै।
शिवपुत्रस्य देवर्षे कुमारत्वं प्रतिष्ठितम्॥ २७

तन्नाम शुभदं लोके प्रसिद्धं भुवनत्रये।
सर्वपापहरं पुण्यं ब्रह्मचर्यप्रदं परम्॥ २८

कार्तिक्यां च सदा देवा ऋषयश्च सतीर्थकाः।
दर्शनार्थं कुमारस्य गच्छंति च मुनीश्वराः॥ २९

कार्तिक्यां कृत्तिकासंगे कुर्याद्यः स्वामिदर्शनम्।
तस्य पापं दहेत्सर्वं चित्तेप्सितफलं लभेत्॥ ३०

उमाऽपि दुःखमापन्ना स्कन्दस्य विरहे सति।
उवाच स्वामिनं दीना तत्र गच्छ मया प्रभो॥ ३१

तत्सुखार्थं स्वयं शंभुर्गतः स्वांशेन पर्वते।
मल्लिकार्जुननामासीज्ज्योतिर्लिङ्गं सुखावहम्॥ ३२

अद्यापि दृश्यते तत्र शिवया सहितश्शिवः।
सर्वेषां निजभक्तानां कामपूरः सतां गतिः॥ ३३

तमागतं स विज्ञाय कुमारः सशिवां शिवम्।
स विरज्य ततोऽन्यत्र गंतुमासीत्समुत्सुकः॥ ३४

देवैश्च मुनिभिश्चैव प्रार्थितः सोऽपि दूरतः।
योजनत्रयमुत्सृज्य स्थितः स्थाने च कार्तिकः॥ ३५

पुत्रस्नेहातुरौ तौ वै शिवौ पर्वणि पर्वणि।
दर्शनार्थं कुमारस्य तस्य नारद गच्छतः॥ ३६

[माता-पिताने कहा—] हे कार्तिकेय! मना करनेपर भी इस समय तुम क्यों जा रहे हो? किंतु इस प्रकार रोके जानेपर 'नहीं'—ऐसा कहकर वे कुमार चलने लगे और बोले—॥ २४॥

हे तात! मैं अब यहाँ क्षणमात्र भी नहीं रह सकता; क्योंकि आपने मुझपर प्रीति न कर ऐसा कपट किया है—इस प्रकार कहकर हे मुने! दर्शनमात्रसे ही सबका पाप हरनेवाले कुमार कार्तिकेय वहाँ चले गये और तभीसे वे आज भी वहींपर हैं॥ २५-२६॥

हे देवर्षे! उसी दिनसे लेकर वे शिवपुत्र कार्तिकेय कुमार ही रह गये। उनका यह नाम तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है, यह शुभदायक, सब पापोंको नष्ट करनेवाला, पुण्यस्वरूप तथा ब्रह्मचर्य प्रदान करनेवाला है॥ २७-२८॥

कार्तिक पूर्णिमाके दिन सभी देवता, ऋषि, मुनि तथा सभी तीर्थ कुमारके दर्शनके निमित्त जाते हैं॥ २९॥

कृत्तिकानक्षत्रयुक्त कार्तिक पूर्णिमा तिथिमें जो कुमारका दर्शन करता है, उसके पाप भस्म हो जाते हैं और उसे मनोवांछित फलकी प्राप्ति होती है॥ ३०॥

स्कन्दका वियोग होनेपर पार्वतीजी भी दुःखित हुईं और उन्होंने दीन होकर शिवजीसे कहा—हे प्रभो! आप मेरे साथ वहाँ चलिये॥ ३१॥

तब उनको सुखी करनेके लिये शंकरजी स्वयं अपने अंशसे [क्रौंच] पर्वतपर गये, वहाँ मल्लिकार्जुन नामक सुखदायक ज्योतिर्लिंग प्रतिष्ठित है॥ ३२॥

अपने भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले तथा सज्जनोंको शरण देनेवाले शिवजी पार्वतीके साथ आज भी वहाँ दिखायी पड़ते हैं॥ ३३॥

तब पार्वतीसहित उन शिवको आया हुआ जानकर वे कुमार विरक्त होकर वहाँसे अन्यत्र जानेको उद्यत हो गये॥ ३४॥

तब देवताओं तथा मुनियोंके बहुत प्रार्थना करनेपर भी वे कार्तिकेय उस स्थानसे तीन योजन दूर हटकर निवास करने लगे॥ ३५॥

हे नारद! पुत्रके स्नेहसे आतुर वे दोनों शिवा-शिव कुमारके दर्शनके लिये पर्व-पर्वपर वहाँ जाते रहते हैं॥ ३६॥

अमावास्यादिने शंभुः स्वयं गच्छति तत्र ह।
पूर्णमासीदिने तत्र पार्वती गच्छति ध्रुवम्॥ ३७

अमावास्याके दिन वहाँ शिवजी स्वयं जाते हैं एवं पूर्णमासीके दिन पार्वती निश्चित रूपसे उनके स्थानपर जाती हैं॥ ३७॥

यद्यत्तस्य च वृत्तान्तं भवत्पृष्टं मुनीश्वर।
कार्तिकस्य गणेशस्य परमं कथितं मया॥ ३८

हे मुनीश्वर! आपने कार्तिकेय तथा गणेश्वरका जो-जो वृत्तान्त पूछा, मैंने वह श्रेष्ठ वृत्तान्त आपसे वर्णित किया॥ ३८॥

एतच्छ्रुत्वा नरो धीमान् सर्वपापैः प्रमुच्यते।
शोभनां लभते कामानीप्सितान्सकलान्सदा॥ ३९

इस कथाको सुनकर बुद्धिमान् मनुष्य समस्त पापोंसे छूट जाता है और अपनी सम्पूर्ण अभिलषित शुभ कामनाओंको प्राप्त कर लेता है॥ ३९॥

यः पठेत्पाठयेद्वापि शृणुयाच्छ्रावयेत्तथा।
सर्वान्कामानवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥ ४०

जो इस कथाको पढ़ता है अथवा पढ़ाता है, सुनता है अथवा सुनाता है, वह सभी मनोरथ प्राप्त कर लेता है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ४०॥

ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी क्षत्रियो विजयी भवेत्।
वैश्यो धनसमृद्धस्स्याच्छूद्रस्सत्तमतामियात्॥ ४१

ब्राह्मण ब्रह्मवर्चस्वी तथा क्षत्रिय विजयी हो जाता है। वैश्य धनसे सम्पन्न हो जाता है और शूद्र श्रेष्ठता प्राप्त कर लेता है॥ ४१॥

रोगी रोगात्प्रमुच्येत भयान्मुच्येत भीतियुक्।
भूतप्रेतादिबाधाभ्यः पीडितो न भवेन्नरः॥ ४२

रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है और भयभीत व्यक्ति भयसे मुक्त हो जाता है। वह मनुष्य भूत-प्रेत आदि बाधाओंसे पीड़ित नहीं होता है॥ ४२॥

एतदाख्यानमनघं यशस्यं सुखवर्द्धनम्।
आयुष्यं स्वर्ग्यमतुलं पुत्रपौत्रादिकारकम्॥ ४३

अपवर्गप्रदं चापि शिवज्ञानप्रदं परम्।
शिवाशिवप्रीतिकरं शिवभक्तिविवर्द्धनम्॥ ४४

यह आख्यान पापरहित, यश तथा सुखको बढ़ानेवाला, आयुमें वृद्धि करनेवाला, स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला, अतुलनीय तथा पुत्र-पौत्रादि प्रदान करनेवाला, मोक्षदायक-शिवविषयक ज्ञानको देनेवाला, शिवाशिवका प्रीतिकारक तथा शिवकी भक्तिको बढ़ानेवाला है॥ ४३-४४॥

श्रवणीयं सदा भक्तैर्निष्कामैश्च मुमुक्षुभिः।
शिवाद्वैतप्रदं चैतत्सदाशिवमयं शिवम्॥ ४५

भक्तोंको तथा निष्काम मुमुक्षुओंको शिवजीके अद्वैतज्ञान देनेवाले, कल्याणकारक तथा सदा शिवमय इस आख्यानका सर्वदा श्रवण करना चाहिये॥ ४५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां चतुर्थे कुमारखण्डे गणेशविवाहवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें गणेशविवाहवर्णन नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयरुद्रसंहितायां चतुर्थः कुमारखण्डः समाप्तः॥

॥ ॐ श्रीसाम्बशिवाय नमः ॥ ॥ ॐ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमो युद्धखण्डः

अथ प्रथमोऽध्यायः

तारकासुरके पुत्र तारकाक्ष, विद्युन्माली एवं कमलाक्षकी तपस्यासे प्रसन्न ब्रह्माद्वारा उन्हें वरकी प्राप्ति, तीनों पुरोंकी शोभाका वर्णन

नारद उवाच

श्रुतमस्माभिरानंदप्रदं चरितमुत्तमम्।
गृहस्थस्यैव शंभोश्च गणस्कंदादिसत्कथम्॥ १
इदानीं ब्रूहि सुप्रीत्या चरितं वरमुत्तमम्।
शंकरो हि यथा रुद्रो जघान विहरन् खलान्॥ २

कथं ददाह भगवान्नगराणि सुरद्विषाम्।
त्रीण्येकेन च बाणेन युगपत्केन वीर्यवान्॥ ३

एतत्सर्वं समाचक्ष्व चरितं शशिमौलिनः।
देवर्षिसुखदं शश्वन्मायाविहरतः प्रभोः॥ ४

ब्रह्मोवाच

एवमेतत्पुरा पृष्टो व्यासेन ऋषिसत्तम।
सनत्कुमारं प्रोवाच तदेव कथयाम्यहम्॥ ५

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास महाप्राज्ञ चरितं शशिमौलिनः।
यथा ददाह त्रिपुरं बाणेनैकेन विश्वहृत्॥ ६

शिवात्मजेन स्कन्देन निहते तारकासुरे।
तत्पुत्रास्तु त्रयो दैत्याः पर्यतप्यन्मुनीश्वर॥ ७

तारकाक्षस्तु तज्ज्येष्ठो विद्युन्माली च मध्यमः।
कमलाक्षः कनीयांश्च सर्वे तुल्यबलाः सदा॥ ८
जितेन्द्रियाः सुसन्नद्धाः संयताः सत्यवादिनः।
दृढचित्ता महावीरा देवद्रोहिण एव च॥ ९
ते तु मेरुगुहां गत्वा तपश्चक्रुर्महाद्भुतम्।
त्रयः सर्वान्सुभोगांश्च विहाय सुमनोहरान्॥ १०

नारदजी बोले—[हे ब्रह्मन्!] हमने गणेश तथा स्कन्दकी सत्कथासे समन्वित गृहस्थ शिवजीके आनन्दप्रद उत्तम चरित्रका श्रवण किया। विहार करते हुए शिवजीने जिस प्रकार दुष्टोंका वध किया, अब आप उस श्रेष्ठ एवं उत्तम चरित्रका अत्यन्त प्रेमपूर्वक वर्णन कीजिये॥ १-२॥

पराक्रमशाली भगवान् शंकरने एक ही बाणसे एक साथ दैत्योंके तीनों पुरोंको किस प्रकार जलाया?॥ ३॥

आप मायासे निरन्तर विहार करनेवाले भगवान् शंकरके इस सम्पूर्ण चरित्रका वर्णन कीजिये, जो देवताओं तथा ऋषियोंको सुख देनेवाला है॥ ४॥

ब्रह्माजी बोले—हे ऋषिश्रेष्ठ! पूर्वकालमें व्यासजीने महर्षि सनत्कुमारसे यही बात पूछी थी, तब सनत्कुमारजीने उनसे जैसा कहा था, वही बात मैं आपसे कह रहा हूँ॥ ५॥

सनत्कुमार बोले—हे महाविद्वान् व्यासजी! आप शंकरके उस चरित्रको सुनिये, जिस प्रकार विश्वका संहार करनेवाले उन शिवने एक ही बाणसे त्रिपुरको भस्म किया था। हे मुनीश्वर! शिवजीके पुत्र कार्तिकेयके द्वारा तारकासुरका वध कर दिये जानेपर उसके तीनों पुत्र दैत्य घोर तप करने लगे॥ ६-७॥

उनमें तारकाक्ष ज्येष्ठ, विद्युन्माली मध्यम तथा कमलाक्ष कनिष्ठ था। वे सभी समान पराक्रमवाले, जितेन्द्रिय, महाबलवान्, कार्यमें तत्पर, संयमी, सत्यवादी, दृढ़चित्त, महावीर एवं देवताओंके द्रोही थे॥ ८-९॥

तीनों दैत्य सम्पूर्ण मनोहर भोगोंको त्यागकर मेरुकी गुफामें जाकर अत्यन्त अद्भुत तप करने लगे॥ १०॥

वसन्ते सर्वकामांश्च गीतवादित्रनिस्स्वनम्।
विहाय सोत्सवं तेपुस्त्रयस्ते तारकात्मजाः॥ ११

तारकासुरके वे तीनों पुत्र वसन्त-ऋतुमें उत्सवसहित गीत-वाद्यकी ध्वनि तथा समस्त कामनाएँ त्यागकर तप करने लगे॥ ११॥

ग्रीष्मे सूर्यप्रभां जित्वा दिक्षु प्रज्वाल्य पावकम्।
तन्मध्यसंस्थाः सिद्ध्यर्थं जुहुवुर्हव्यमादरात्॥ १२

ग्रीष्म-ऋतुमें सूर्यके तेजको जीतकर अपने चारों ओर अग्नि जलाकर तथा उसके मध्यमें स्थित होकर वे सिद्धिके लिये आदरपूर्वक हव्यकी आहुति देने लगे॥ १२॥

महाप्रतापपतिताः सर्वेऽप्यासन् सुमूर्च्छिताः।
वर्षासु गतसंत्रासा वृष्टिं मूर्द्धन्यधारयन्॥ १३
शरत्काले प्रभूतं तु भोजनं तु बुभुक्षिताः।
रम्यं स्निग्धं स्थिरं हृद्यं फलं मूलमनुत्तमम्॥ १४
संयमात्क्षुत्तृषो जित्वा पानान्युच्चावचान्यपि।
बुभुक्षितेभ्यो दत्त्वा तु बभूवुरुपला इव॥ १५

उस समय वे महान् गर्मीसे सन्तप्त होकर मूर्च्छित हो जाते थे और वर्षाकालमें निर्भीक होकर सिरपर वृष्टिको सह लेते थे। शरत्कालमें उत्पन्न हुए मनोहर, स्निग्ध, स्थिर, उत्तम फल-मूलादि पदार्थोंका तथा उत्तम प्रकारके पेय-पदार्थोंका भूखोंके लिये दानकर स्वयं भूखे रह जाते थे, वे संयमपूर्वक भूख-प्यासको जीतकर पत्थरके समान हो गये थे॥ १३—१५॥

संस्थितास्ते महात्मानो निराधाराश्चतुर्दिशम्।
हेमंते गिरिमाश्रित्य धैर्येण परमेण तु॥ १६
तुषारदेहसंछन्ना जलक्लिन्नेन वाससा।
आसाद्य देहं क्षौमेण शिशिरे तोयमध्यगाः॥ १७
अनिर्विण्णास्ततः सर्वे क्रमशोऽवर्द्धयंस्तपः।
तेपुस्त्रयस्ते तत्पुत्रा विधिमुद्दिश्य सत्तमाः॥ १८

वे महात्मा हेमन्त-ऋतुमें पहाड़ोंका आश्रय लेकर बड़ी धीरताके साथ स्थित हो, निराधार हो चारों दिशाओंमें निवास करने लगे। तुषारसे आच्छादित शरीरवाले वे सब निरन्तर जलसे भीगे हुए रेशमी वस्त्र धारणकर शिशिर-ऋतुमें जलके बीचमें खड़े होकर विषादरहित होकर क्रमशः अपने तपको बढ़ाने लगे। इस प्रकार ब्रह्माजीको उद्देश्य करके उस [तारकासुर]-के वे तीनों श्रेष्ठ पुत्र तप कर रहे थे॥ १६—१८॥

तप उग्रं समास्थाय नियमे परमे स्थिताः।
तपसा कर्षयामासुर्देहान् स्वान् दानवोत्तमाः॥ १९

वे श्रेष्ठ दानव परम नियममें स्थित रहकर कठोर तप करके तपस्याके द्वारा अपने शरीरको सुखाने लगे॥ १९॥

वर्षाणां शतकं चैव पदमेकं निधाय च।
भूमौ स्थित्वा परं तत्र तेपुस्ते बलवत्तराः॥ २०
ते सहस्रं तु वर्षाणां वातभक्षाः सुदारुणाः।
तपस्तेपुर्दुरात्मानः परं तापमुपागताः॥ २१

सौ वर्षतक एक पैरके सहारे पृथ्वीपर खड़े होकर उन अति बलवान् दैत्योंने तप किया। वे दारुण तथा दुरात्मा दैत्य हजार वर्षपर्यन्त वायुका भक्षणकर महान् कष्टसे युक्त हो तप करते रहे॥ २०-२१॥

वर्षाणां तु सहस्रं वै मस्तकेनास्थितास्तथा।
वर्षाणां तु शतेनैव ऊर्ध्वबाहव आस्थिताः॥ २२
एवं दुःखं परं प्राप्ता दुराग्रहपरा इमे।
ईदृक् ते संस्थिता दैत्या दिवारात्रमतंद्रिताः॥ २३

वे एक हजार वर्षतक पृथ्वीपर सिरके बल खड़े रहे और सौ वर्षतक दोनों भुजाओंको ऊपर उठाकर खड़े रहे। इस प्रकार दुराग्रहमें तत्पर होकर उन्होंने बहुत क्लेश प्राप्त किया, वे दैत्य आलस्यको छोड़कर दिन-रात तप करने लगे॥ २२-२३॥

एवं तेषां गतः कालो महान् सुतपतां मुने।
ब्रह्मात्मनां तारकाणां धर्मेणेति मतिर्मम॥ २४

हे महामुने! इस प्रकार धर्मपूर्वक तप करते हुए तथा ब्रह्माजीमें मन लगाये हुए उन तारकपुत्रोंका बहुत समय बीत गया, ऐसा मेरा विचार है। उसके बाद

प्रादुरासीत्ततो ब्रह्मा सुरासुरगुरुर्महान्।
संतुष्टस्तपसा तेषां वरं दातुं महायशाः॥ २५

मुनिदेवासुरैः सार्द्धं सांत्वपूर्वमिदं वचः।
ततस्तानब्रवीत्सर्वान् सर्वभूतपितामहः॥ २६

ब्रह्मोवाच

प्रसन्नोऽस्मि महादैत्या युष्माकं तपसा मुने।
सर्वं दास्यामि युष्मभ्यं वरं ब्रूत यदीप्सितम्॥ २७

किमर्थं सुतपस्तप्तं कथयध्वं सुरद्विषः।
सर्वेषां तपसो दाता सर्वकर्तास्मि सर्वदा॥ २८

सनत्कुमार उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शनैस्ते स्वात्मनो गतम्।
ऊचुः प्रांजलयः सर्वे प्रणिपत्य पितामहम्॥ २९

दैत्या ऊचुः

यदि प्रसन्नो देवेश यदि देयो वरस्त्वया।
अवध्यत्वं च सर्वेषां सर्वभूतेषु देहिनः॥ ३०

स्थिरान् कुरु जगन्नाथ पान्तु नः परिपंथिनः।
जरारोगादयः सर्वे नास्मान्मृत्युरगात् क्वचित्॥ ३१

अजराश्चामराः सर्वे भवाम इति नो मतम्।
समृत्यवः करिष्यामः सर्वानन्यांस्त्रिलोकके॥ ३२

लक्ष्म्या किं तद्विपुलया किं कार्यं हि पुरोत्तमैः।
अन्यैश्च विपुलैर्भोगैः स्थानैश्वर्येण वा पुनः॥ ३३

यत्रैव मृत्युना ग्रस्तो नियतं पंचभिर्दिनैः।
व्यर्थं तस्याखिलं ब्रह्मन् निश्चितं न इतीव हि॥ ३४

सनत्कुमार उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तेषां दैत्यानां च तपस्विनाम्।
प्रत्युवाच शिवं स्मृत्वा स्वप्रभुं गिरिशं विधिः॥ ३५

ब्रह्मोवाच

नास्ति सर्वामरत्वं च निवर्तध्वमतोऽसुराः।
अन्यं वरं वृणीध्वं वै यादृशो वो हि रोचते॥ ३६

सुरासुरके महान् गुरु तथा महायशस्वी ब्रह्माजी उनके तपसे सन्तुष्ट हो गये और उन्हें वर देनेके लिये प्रकट हुए॥ २४-२५॥

उस समय सभी प्राणियोंके पितामह ब्रह्माजी मुनियों, देवगणों तथा असुरोंके साथ वहाँ जाकर सान्त्वना देते हुए उन सभीसे यह वचन कहने लगे— ॥ २६॥

ब्रह्माजी बोले—हे महादैत्यो! मैं तुमलोगोंके तपसे प्रसन्न हो गया हूँ। मैं तुमलोगोंको सब कुछ दूँगा, जो तुमलोगोंका अभीष्ट वर हो, उसे कहो॥ २७॥

हे देवशत्रुओ! मैं सबकी तपस्याका फलदाता और सर्वदा सबका रचयिता हूँ, अतः बताओ कि तुमलोगोंने अत्यन्त कठिन तप किस उद्देश्यसे किया है?॥ २८॥

सनत्कुमार बोले—उनकी यह बात सुनकर उन सबने हाथ जोड़कर पितामहको प्रणाम करके फिर धीरे-धीरे अपने मनकी बात कही॥ २९॥

दैत्य बोले—हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं और हमें वर देना चाहते हैं, तो हमें सब प्राणियोंमें सभीसे अवध्यत्व प्रदान कीजिये॥ ३०॥

हे जगन्नाथ! आप हमें स्थिर कर दें और हमें जरा, रोग एवं मृत्यु आदि कभी भी प्राप्त न हों। हम सभी अजर-अमर हो जायँ—ऐसा हमारा विचार है। हमलोग तीनों लोकोंमें अन्य सभी प्राणियोंको मार सकें। पर्याप्त लक्ष्मीसे, उत्तम पुरोंसे, अन्य विपुल भोगोंसे, स्थानोंसे अथवा ऐश्वर्यसे हमें क्या प्रयोजन! हे ब्रह्मन्! यदि पाँच ही दिनोंमें प्राणी मृत्युके द्वारा ग्रसित हो जाता है—यह निश्चित ही है, तब तो उसका सब कुछ व्यर्थ हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ ३१—३४॥

सनत्कुमार बोले—उन तपस्वी दैत्योंकी यह बात सुनकर ब्रह्माने गिरिपर शयन करनेवाले अपने स्वामी भगवान् शंकरका स्मरण करके कहा— ॥ ३५॥

ब्रह्माजी बोले—हे असुरो! पूर्ण अमरत्व किसीको नहीं मिल सकता, इसलिये इस वरका आग्रह मत करो और अन्य वर माँग लो, जो तुमलोगोंको अच्छा लगे॥ ३६॥

जातो हनिष्यते नूनं जंतुः कोऽप्यसुराः क्वचित्।
अजरश्चामरो लोके न भविष्यति भूतले॥ ३७

ऋते तु खंडपरशोः कालकालाद्धरेस्तथा।
तौ धर्माधर्मपरमावव्यक्तौ व्यक्तरूपिणौ॥ ३८

हे असुरो! इस भूतलपर जहाँ भी जो कोई भी प्राणी जनमा है, वह अवश्य मरेगा, कालके भी काल भगवान् शंकर तथा श्रीहरिके अतिरिक्त इस जगत्में कोई भी प्राणी अजर-अमर नहीं हो सकता; क्योंकि वे दोनों धर्म, अधर्मसे परे हैं तथा व्यक्त और अव्यक्त हैं॥ ३७-३८॥

संपीडनाय जगतो यदि स क्रियते तपः।
सफलं तद्गतं वेद्यं तस्मात्सुविहितं तपः॥ ३९

यदि जगत्को पीड़ा पहुँचानेके लिये तप किया जाय, तो उसका फल नष्ट समझना चाहिये। अतः उत्तम उद्देश्यके लिये किया गया तप सफल होता है॥ ३९॥

तद्विचार्य स्वयं बुद्ध्या न शक्यं यत्सुरासुरैः।
दुर्लभं वा सुदुस्साध्यं मृत्युं वंचयतानघाः॥ ४०

तत्किंचिन्मरणे हेतुं वृणीध्वं सत्त्वमाश्रिताः।
येन मृत्युर्नैव वृतो रक्षतस्तत्पृथक् पृथक्॥ ४१

हे अनघ! तुमलोग स्वयं अपनी बुद्धिसे विचार करके जिस मृत्युका अतिक्रमण दुर्लभ एवं दुःसाध्य है और देवता तथा असुर भी ऐसा नहीं कर सके, ऐसी मृत्युके अतिरिक्त अन्य वर माँगो। तुमलोग सत्त्वगुणका आश्रय लेकर अपने मरणका हेतुभूत कोई वर माँगो तथा उस हेतुसे अपनी-अपनी रक्षाका उपाय अलग-अलग रूपसे करो, जिससे तुम्हारी मृत्यु न हो॥ ४०-४१॥

सनत्कुमार उवाच

एतद्विधिवचः श्रुत्वा मुहूर्त्तं ध्यानमास्थिताः।
प्रोचुस्ते चिंतयित्वाथ सर्वलोकपितामहम्॥ ४२

सनत्कुमार बोले—ब्रह्माका वचन सुनकर वे एक मुहूर्ततक ध्यानमें स्थित रहे, इसके बाद विचारकर लोकपितामह ब्रह्मासे कहने लगे—॥ ४२॥

दैत्या ऊचुः

भगवन्नास्ति नो वेश्म पराक्रमवतामपि।
अधृष्याः शात्रवानां तु यत्र वत्स्यामहे सुखम्॥ ४३

पुराणि त्रीणि नो देहि निर्मायात्यद्भुतानि हि।
सर्वसंपत्समृद्धान्यप्रधृष्याणि दिवौकसाम्॥ ४४

दैत्य बोले—हे भगवन्! हमलोग यद्यपि पराक्रमशील हैं, किंतु हमारे पास कोई ऐसा स्थान नहीं है, जिसमें शत्रु प्रवेश न कर सके और वहाँ हम सुखसे निवास कर सकें। अतः आप ऐसे तीन नगरोंका निर्माण कराकर हमें प्रदान कीजिये, जो परम अद्भुत, सभी सम्पत्तियोंसे परिपूर्ण और देवताओंके लिये सर्वथा अनतिक्रमणीय हों॥ ४३-४४॥

वयं पुराणि त्रीण्येवं समास्थाय महीमिमाम्।
चरिष्यामो हि लोकेश त्वत्प्रसादाज्जगद्गुरो॥ ४५

तारकाक्षस्ततः प्राह यदभेद्यं सुरैरपि।
करोति विश्वकर्मा तन्मम हेममयं पुरम्॥ ४६

ययाचे कमलाक्षस्तु राजतं सुमहत्पुरम्।
विद्युन्माली च संहृष्टो वज्रायसमयं महत्॥ ४७

हे लोकेश! हे जगद्गुरो! इस प्रकार हमलोग आपकी कृपासे इन तीनों पुरोंमें स्थित होकर इस पृथ्वीपर विचरण करेंगे। तत्पश्चात् तारकाक्ष बोला—जो देवगणोंसे भी अभेद्य हो, इस प्रकारका मेरा सुवर्णमय पुर विश्वकर्मा बनायें। कमलाक्षने चाँदीके अति विशाल पुरकी तथा विद्युन्मालीने प्रसन्न होकर वज्रके समान लोहेके पुरकी याचना की॥ ४५—४७॥

पुरेष्वेतेषु भो ब्रह्मन्नेकस्थानस्थितेषु च।
मध्याह्नाभिजिते काले शीतांशौ पुष्य संस्थिते॥ ४८

उपर्युपर्यदृष्टेषु व्योम्नि लीलाभ्रसंस्थिते।

हे ब्रह्मन्! जब मध्याह्नकालमें अभिजित् मुहूर्त हो, चन्द्रमा पुष्य नक्षत्रपर हो और आकाशमें नीले बादलोंपर स्थित होकर ये तीनों पुर क्रमशः एकके ऊपर एक रहते हुए लोगोंकी दृष्टिसे ओझल रहें।

वर्षत्सु कालमेघेषु पुष्करावर्तनामसु॥ ४९

तथा वर्षसहस्रान्ते समेष्यामः परस्परम्।
एकीभावं गमिष्यन्ति पुराण्येतानि नान्यथा॥ ५०

सर्वदेवमयो देवः सर्वेषां नः कुहेलया।
असंभवे रथे तिष्ठन् सर्वोपस्करणान्विते॥ ५१

असंभाव्यैककांडेन भिनत्तु नगराणि नः।
निर्वैरः कृत्तिवासास्तु योऽस्माकमिति नित्यशः॥ ५२

वंद्यः पूज्योऽभिवाद्यश्च सोस्माकं निर्दहेत्कथम्।
इति चेतसि संधाय तादृशो भुवि दुर्लभः॥ ५३

फिर जब पुष्कर और आवर्त नामक कालमेघ वर्षा कर रहे हों, उस समय एक हजार वर्षके उपरान्त हमलोग परस्पर मिलेंगे और ये तीनों पुर भी उसी समय एक स्थानपर स्थित हो जायँगे, इसमें सन्देह नहीं है। हमलोगोंद्वारा धर्मका अतिक्रमण हो जानेपर कोई देवता, जिसमें सभी देवोंका निवास हो, वह सम्पूर्ण युद्धसामग्रीसे युक्त होकर असम्भव रथपर बैठकर एक ही असम्भाव्य बाणसे हमारे नगरोंका भेदन करे। शिवजी तो किसीसे द्वेष नहीं करते। वे सदा हमलोगोंके वन्द्य, पूज्य तथा अभिवादनके योग्य हैं, तो फिर वे हमलोगोंके पुरोंको कैसे जला सकते हैं, वैसा कोई दूसरा पृथ्वीपर दुर्लभ है—उन दैत्योंने अपने मनमें यही विचारकर ऐसा वर माँगा॥ ४८—५३॥

सनत्कुमार उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां ब्रह्मा लोकपितामहः।
एवमस्त्विति तान् प्राह सृष्टिकर्त्ता स्मरन् शिवम्॥ ५४

सनत्कुमार बोले—[हे व्यासजी!] उनका यह वचन सुनकर सृष्टि करनेवाले लोकपितामह ब्रह्माने शिवजीका स्मरण करते हुए उनसे कहा—ऐसा ही होगा॥ ५४॥

आज्ञां ददौ मयस्यापि कुरु त्वं नगरत्रयम्।
कांचनं राजतं चैव आयसं चेति भो मय॥ ५५

इत्यादिश्य मयं ब्रह्मा प्रत्यक्षं प्राविशद्दिवम्।
तेषां तारकपुत्राणां पश्यतां निजधाम हि॥ ५६

उसके बाद उन्होंने मयको आज्ञा दी कि हे मय! तुम सोने, चाँदी और लोहेके तीन नगरोंका निर्माण कर दो। उनके समक्ष मयको यह आज्ञा प्रदानकर ब्रह्माजी उन तारकपुत्रोंके देखते-देखते अपने धाम स्वर्गलोकको चले गये॥ ५५-५६॥

ततो मयश्च तपसा चक्रे धीरः पुराण्यथ।
कांचनं तारकाक्षस्य कमलाक्षस्य राजतम्॥ ५७
विद्युन्माल्यायसं चैव त्रिविधं दुर्गमुत्तमम्।
स्वर्गे व्योम्नि च भूमौ च क्रमाज्ज्ञेयानि तानि वै॥ ५८
दत्त्वा तेभ्योऽसुरेभ्यश्च पुराणि त्रीणि वै मयः।
प्रविवेश स्वयं तत्र हितकामपरायणः॥ ५९

तदनन्तर धैर्यशाली मयने बड़े प्रयत्नके साथ तारकाक्षके लिये सोनेका, कमलाक्षके लिये चाँदीका तथा विद्युन्मालीके लिये लोहेका पुर बनाया और तीन प्रकारका दुर्ग भी बनाया, उन्हें क्रमसे स्वर्गमें, आकाशमें तथा भूलोकमें जानना चाहिये। उन असुरोंको तीनों पुर देकर मयने स्वयं भी उनके हितकी इच्छासे उस पुरीमें प्रवेश किया॥ ५७—५९॥

एवं पुरत्रयं प्राप्य प्रविष्टास्तारकात्मजाः।
बुभुजुः सकलान्भोगान्महाबलपराक्रमाः॥ ६०

इस प्रकार तीनों पुरोंको प्राप्तकर महाबली तथा पराक्रमशाली वे तारकासुरके पुत्र उनमें प्रविष्ट हुए और सभी प्रकारके सुखोंका भोग करने लगे॥ ६०॥

कल्पद्रुमैश्च संकीर्णं गजवाजिसमाकुलम्।
नानाप्रासादसंकीर्णं मणिजालसमावृतम्॥ ६१

सूर्यमण्डलसंकाशैर्विमानैः सर्वतोमुखैः।
पद्मरागमयैश्चैव शोभितं चन्द्रसन्निभैः॥ ६२

कल्पवृक्षोंसे व्याप्त, हाथी-घोड़ोंसे युक्त, नाना प्रकारकी अट्टालिकाओं तथा मणियोंसे परिपूर्ण वे नगर सूर्यमण्डलके समान देदीप्यमान, चारों ओर मुखवाले, चन्द्रमाके समान तथा पद्मराग मणियोंसे जटित विमानोंसे शोभित थे॥ ६१-६२॥

प्रासादैर्गोपुरैर्दिव्यैः कैलासशिखरोपमैः।
दिव्यस्त्रीजनसंकीर्णैर्गंधर्वैस्सिद्धचारणैः ॥ ६३

रुद्रालयैः प्रतिगृहमग्निहोत्रैः प्रतिष्ठितैः।
द्विजोत्तमैः शास्त्रविज्ञैः शिवभक्तिरतैः सदा॥ ६४

उन पुरोंमें कैलास पर्वतके शिखरके समान ऊँचे-ऊँचे मनोहर महल तथा गोपुर बने हुए थे। दिव्य देवांगनाओं, गन्धर्वों, सिद्धों तथा चारणोंसे वह पुर पूर्ण रूपसे भरा हुआ था। उनमें प्रत्येक घरमें शिवालय तथा अग्निहोत्रकुण्ड बने हुए थे। शास्त्रवेत्ता एवं शिवभक्त ब्राह्मण उन पुरोंमें सदा निवास करते थे॥ ६३-६४॥

वापीकूपतडागैश्च दीर्घिकाभिः सुशोभितम्।
उद्यानवनवृक्षैश्च स्वर्गच्युतगुणोत्तमैः॥ ६५
नदीनदसरिन्मुख्यपुष्करैः शोभितं सदा।
सर्वकामफलाद्यैश्चानेकैर्वृक्षैर्मनोहरम् ॥ ६६

बावली, कुएँ, तालाब, छोटे सरोवर और स्वर्गीय गुणोंवाले उद्यान एवं वन्य वृक्षों, कमलयुक्त नदियों और बड़ी-बड़ी सरिताओंसे वे पुर शोभित हो रहे थे। सभी ऋतुओंमें फल-फूल देनेवाले अनेक प्रकारके वृक्षोंसे वे पुर मनोहर प्रतीत हो रहे थे॥ ६५-६६॥

मत्तमातंगयूथैश्च तुरंगैश्च सुशोभनैः।
रथैश्च विविधाकारैः शिबिकाभिरलंकृतम्॥ ६७

समयादिशिकैश्चैव क्रीडास्थानैः पृथक्पृथक्।
वेदाध्ययनशालाभिर्विविधाभिः पृथक्पृथक्॥ ६८

वे झुण्ड-के-झुण्ड मदमत्त हाथियों, सुन्दर-सुन्दर घोड़ों, विविध आकारवाले रथों एवं शिविकाओंसे अलंकृत थे। उनमें समयानुसार अलग-अलग क्रीडास्थल बने हुए थे और वेदाध्ययनकी विविध पाठशालाएँ भी पृथक्-पृथक् बनी हुई थीं॥ ६७-६८॥

अदृष्टं मनसा वाचा पापान्वितनरैस्सदा।
महात्मभिश्शुभाचारैः पुण्यवद्भिः प्रवीक्ष्यते॥ ६९

पापीजन तो मन एवं वाणीके द्वारा उन नगरोंकी ओर देख भी नहीं सकते थे; शुभ आचरण करनेवाले पुण्यशाली महात्मा ही उन्हें देख सकते थे॥ ६९॥

पतिव्रताभिः सर्वत्र पावितं स्थलमुत्तमम्।
पतिसेवनशीलाभिर्विमुखाभिः कुधर्मतः॥ ७०

दैत्यशूरैर्महाभागैः सदारैः ससुतैर्द्विजैः।
श्रौतस्मार्तार्थतत्त्वज्ञैः स्वधर्मनिरतैर्युतम्॥ ७१

वहाँका उत्तम स्थल सर्वत्र अधर्मसे रहित तथा पतिसेवापरायण पतिव्रताओंके द्वारा पवित्र कर दिया गया था। उनमें महाभाग्यवान् बलवान् दैत्य अपनी स्त्रियों, पुत्रों और श्रुति-स्मृतिके रहस्यको जाननेवाले तथा अपने धर्ममें निरत ब्राह्मणोंके साथ निवास करते थे॥ ७०-७१॥

व्यूढोरस्कैर्वृषस्कंधैः सामयुद्धधरैः सदा।
प्रशांतैः कुपितैश्चैव कुब्जैर्वामनकैस्तथा॥ ७२

नीलोत्पलदलप्रख्यैर्नीलकुंचितमूर्द्धजैः ।
मयेन रक्षितैः सर्वैः शिक्षितैर्युद्धलालसैः॥ ७३

वरसमररतैर्युतं समंता-
दजशिवपूजनया विशुद्धवीर्यैः।
रविमरुतमहेन्द्रसंनिकाशैः
सुरमथनैः सुदृढैः सुसेवितं यत्॥ ७४

वे पुर चौड़ी छातीवाले, ऊँचे कंधोंवाले, साम एवं विग्रहके ज्ञाता, समय-समयपर शान्ति तथा कोप करनेवाले, कुबड़े तथा बौने, नीले कमलके समान काले-काले घुँघराले बालवाले, मयके द्वारा रक्षित तथा शिक्षित किये गये और युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले योद्धाओंसे परिपूर्ण थे। बड़े-बड़े युद्धोंमें निरत रहनेवाले, ब्रह्मा तथा सदाशिवके पूजनके प्रभावसे विशुद्ध पराक्रमवाले, सूर्य-वायु-इन्द्रके सदृश देवगणोंका मर्दन करनेवाले तथा अत्यन्त शक्तिशाली वीर उन पुरोंमें निवास करते थे॥ ७२—७४॥

शास्त्रवेदपुराणेषु ये ये धर्माः प्रकीर्तिताः।
शिवप्रियाः सदा देवास्ते धर्मास्तत्र सर्वतः॥ ७५

एवं लब्धवरास्ते तु दैतेयास्तारकात्मजाः।
शैवं मयमुपाश्रित्य निवसंति स्म तत्र ह॥ ७६

सर्वं त्रैलोक्यमुत्सार्य प्रविश्य नगराणि ते।
कुर्वंति स्म महद्राज्यं शिवमार्गरताः सदा॥ ७७

वेदों, शास्त्रों और पुराणोंमें जिन-जिन धर्मोंका वर्णन किया गया है, वे सभी धर्म तथा शिवजीके प्रिय देवता वहाँ चारों ओर व्याप्त थे। इस प्रकार वर प्राप्त किये हुए वे तारकपुत्र दैत्य शिवभक्त मयदानवका आश्रय लेकर वहाँ निवास करने लगे। उन नगरोंमें प्रवेश करके वे सदा शिवभक्तिनिरत होकर सम्पूर्ण त्रिलोकीको बाधित करके विशाल राज्यका उपभोग करने लगे॥ ७५—७७॥

ततो महान् गतः कालो वसतां पुण्यकर्मणाम्।
यथासुखं यथाजोषं सद्राज्यं कुर्वतां मुने॥ ७८

हे मुने! इस प्रकार अपने इच्छानुसार सुखपूर्वक उत्तम राज्य करते हुए उन पुण्यकर्मा राक्षसोंका वहाँ निवास करते हुए बहुत लम्बा काल व्यतीत हो गया॥ ७८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे त्रिपुरवधोपाख्याने त्रिपुरवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें त्रिपुरवधोपाख्यानमें त्रिपुरवर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

तारकपुत्रोंसे पीड़ित देवताओंका ब्रह्माजीके पास जाना और उनके परामर्शके अनुसार असुर-वधके लिये भगवान् शंकरकी स्तुति करना

व्यास उवाच

ब्रह्मपुत्र महाप्राज्ञ वद मे वदतां वर।
ततः किमभवद्देवाः कथं च सुखिनोऽभवन्॥ १

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य व्यासस्यामितधीमतः।
सनत्कुमारः प्रोवाच स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम्॥ २

सनत्कुमार उवाच

अथ तत्प्रभया दग्धा देवा हीन्द्रादयस्तथा।
संमन्त्र्य दुःखिताः सर्वे ब्रह्माणं शरणं ययुः॥ ३
नत्वा पितामहं प्रीत्या परिक्षित्याखिलाः सुराः।
दुःखं विज्ञापयामासुर्विलोक्यावसरं ततः॥ ४

देवा ऊचुः

धातस्त्रिपुरनाथेन सतारकसुतेन हि।
सर्वे प्रतापिता नूनं मयेन त्रिदिवौकसः॥ ५

अतस्ते शरणं याता दुःखिता हि विधे वयम्।
कुरु त्वं तद्वधोपायं सुखिनः स्याम तद्यथा॥ ६

व्यासजी बोले—हे ब्रह्मपुत्र! हे महाप्राज्ञ! हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! अब मुझे बताइये कि उसके बाद क्या हुआ और देवगण किस प्रकार सुखी हुए?॥ १॥

ब्रह्माजी बोले—महाबुद्धिमान् व्यासजीका यह वचन सुनकर शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करके सनत्कुमारजीने कहा—॥ २॥

सनत्कुमार बोले—तब उनके तेजसे दग्ध हुए इन्द्रादि देवता दुखी हो परस्पर मन्त्रणाकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये॥ ३॥

वे सभी निस्तेज देवता प्रीतिपूर्वक पितामहको प्रणाम करके अवसर देखकर उनसे अपना दुःख कहने लगे॥ ४॥

देवता बोले—हे विधाता! तारकपुत्रोंसहित त्रिपुरनाथ मयके द्वारा सभी देवता अत्यधिक पीड़ित किये जा रहे हैं। इसलिये हे ब्रह्मन्! हमलोग दुखी होकर आपकी शरणमें आये हैं; आप उनके वधका कोई उपाय कीजिये, जिससे हमलोग सुखी हो जायँ॥ ५-६॥

सनत्कुमार उवाच

इति विज्ञापितो देवैर्विहस्य भवकृद्विधिः।
प्रत्युवाचाथ तान्सर्वान्मयतो भीतमानसान्॥ ७

ब्रह्मोवाच

न भेतव्यं सुरास्तेभ्यो दानवेभ्यो विशेषतः।
आचक्षे तद्वधोपायं शिवं शर्वः करिष्यति॥ ८
मत्तो विवर्धितो दैत्यो वधं मत्तो न चार्हति।
तथापि पुण्यं वर्द्धेत नगरे त्रिपुरे पुनः॥ ९
शिवं च प्रार्थयध्वं वै सर्वे देवाः सवासवाः।
सर्वाधीशः प्रसन्नश्चेत्स वः कार्यं करिष्यति॥ १०

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य विधेर्वाणीं सर्वे देवाः सवासवाः।
दुःखितास्ते ययुस्तत्र यत्रास्ते वृषभध्वजः॥ ११
प्रणम्य भक्त्या देवेशं सर्वे प्रांजलयस्तदा।
तुष्टुवुर्विनतस्कंधाः शंकरं लोकशंकरम्॥ १२

देवा ऊचुः

नमो हिरण्यगर्भाय सर्वसृष्टिविधायिने।
नमः स्थितिकृते तुभ्यं विष्णवे प्रभविष्णवे॥ १३
नमो हरस्वरूपाय भूतसंहारकारिणे।
निर्गुणाय नमस्तुभ्यं शिवायामिततेजसे॥ १४

अवस्थारहितायाथ निर्विकाराय वर्चसे।
महाभूतात्मभूताय निर्लिप्ताय महात्मने॥ १५

नमस्ते भूतपतये महाभारसहिष्णवे।
तृष्णाहराय निर्वैराकृतये भूरितेजसे॥ १६

महादैत्यमहारण्यनाशिने दाववह्नये।
दैत्यद्रुमकुठाराय नमस्ते शूलपाणये॥ १७

महादनुजनाशाय नमस्ते परमेश्वर।
अम्बिकापतये तुभ्यं नमः सर्वास्त्रधारक॥ १८

नमस्ते पार्वतीनाथ परमात्मन्महेश्वर।
नीलकंठाय रुद्राय नमस्ते रुद्ररूपिणे॥ १९

सनत्कुमार बोले—देवगणोंके इस प्रकार कहनेपर सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी मयसे डरे हुए उन समस्त देवताओंसे हँसकर कहने लगे— ॥ ७ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवताओ! आपलोग उन दैत्योंसे बिलकुल मत डरिये, मैं उनके वधका उपाय बता रहा हूँ; शिवजी कल्याण करेंगे। मैंने ही इस दैत्यको बढ़ाया है, अतः मेरे हाथों इसका वध होना उचित नहीं है और इस समय त्रिपुरके नगरमें निरन्तर पुण्य बढ़ ही रहा है॥ ८-९॥

अतः इन्द्रसहित सभी देवता शिवजीसे प्रार्थना करें। यदि वे सर्वाधीश प्रसन्न हो जायँ, तो आपलोगोंके कार्यको पूर्ण करेंगे॥ १०॥

सनत्कुमार बोले—तब ब्रह्माजीकी बात सुनकर इन्द्रसहित सभी देवता दुखी होकर वहाँ गये, जहाँ शिवजी थे। हाथ जोड़कर बड़ी भक्तिसे देवेशको प्रणाम करके सिर झुकाकर वे सब लोककल्याणकारी शंकरकी स्तुति करने लगे॥ ११-१२॥

देवगण बोले—सम्पूर्ण सृष्टिका विधान करनेवाले हिरण्यगर्भ ब्रह्मास्वरूप आप शिवको नमस्कार है। पालन करनेवाले विष्णुस्वरूप आपको नमस्कार है॥ १३॥

सम्पूर्ण प्राणियोंका संहार करनेवाले हरस्वरूप आपको नमस्कार है। निर्गुण तथा अमिततेजस्वी आप शिवको नमस्कार है। अवस्थाओंसे रहित, निर्विकार, तेजस्वरूप, महाभूतोंमें आत्मस्वरूपसे वर्तमान, निर्लिप्त एवं महान् आत्मावाले आप महात्माको नमस्कार है॥ १४-१५॥

सम्पूर्ण प्राणियोंके अधिपति, शेषरूपसे पृथ्वीका भार उठानेवाले, तृष्णाको नष्ट करनेवाले, शान्त प्रकृतिवाले तथा अमिततेजस्वी आप शिवको नमस्कार है॥ १६॥

महादैत्यरूपी महावनको विनष्ट करनेके लिये दावाग्निके स्वरूप एवं दैत्यरूपी वृक्षोंके लिये कुठारस्वरूप आप शूलपाणिको नमस्कार है॥ १७॥

महादैत्योंका नाश करनेवाले हे परमेश्वर! आपको नमस्कार है। हे सभी अस्त्रोंके धारणकर्ता! आप अम्बिकापतिको नमस्कार है। हे पार्वतीनाथ! हे परमात्मन्! हे महेश्वर! आपको नमस्कार है। आप नीलकण्ठ, रुद्र तथा रुद्रस्वरूपको नमस्कार है॥ १८-१९॥

नमो वेदान्तवेद्याय मार्गातीताय ते नमः।
नमो गुणस्वरूपाय गुणिने गुणवर्जिते॥ २०

महादेव नमस्तुभ्यं त्रिलोकीनन्दनाय च।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय वासुदेवाय ते नमः॥ २१

संकर्षणाय देवाय नमस्ते कंसनाशिने।
चाणूरमर्दिने तुभ्यं दामोदर विषादिने॥ २२

वेदान्तसे जाननेयोग्य आपको नमस्कार है। सभी मार्गोंसे अगम्य आपको नमस्कार है। गुणस्वरूप, गुणोंको धारण करनेवाले एवं गुणोंसे सर्वथा रहित आपको नमस्कार है। त्रिलोकीको आनन्द देनेवाले हे महादेव! आपको नमस्कार है। प्रद्युम्न, अनिरुद्ध एवं वासुदेवस्वरूप आपको नमस्कार है। संकर्षणदेव एवं कंसनाशक आपको नमस्कार है। चाणूरका मर्दन करनेवाले एवं विरक्त रहनेवाले हे दामोदर! आपको नमस्कार है॥ २०—२२॥

हृषीकेशाच्युत विभो मृड शंकर ते नमः।
अधोक्षज गजाराते कामारे विषभक्षण॥ २३

हे हृषीकेश! हे अच्युत! हे विभो! हे मृड! हे शंकर! हे अधोक्षज! हे गजासुरके शत्रु! हे कामशत्रु! हे विषभक्षक! आपको नमस्कार है॥ २३॥

नारायणाय देवाय नारायणपराय च।
नारायणस्वरूपाय नारायणतनूद्भव॥ २४
नमस्ते सर्वरूपाय महानरकहारिणे।
पापापहारिणे तुभ्यं नमो वृषभवाहन॥ २५

नारायणदेव, नारायणपरायण, नारायणस्वरूप तथा सर्वरूप हे नारायणतनूद्भव! आपको नमस्कार है। महानरकसे बचानेवाले तथा पापोंको दूर करनेवाले हे वृषभवाहन! आपको नमस्कार है॥ २४-२५॥

क्षणादिकालरूपाय स्वभक्तबलदायिने।
नानारूपाय रूपाय दैत्यचक्रविमर्दिने॥ २६
नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
सहस्रमूर्त्तये तुभ्यं सहस्रावयवाय च॥ २७

क्षण आदि कालरूपवाले, अपने भक्तोंको बल प्रदान करनेवाले, अनेक रूपोंवाले तथा दैत्योंके समूहका नाश करनेवाले, ब्रह्मण्यदेवस्वरूप, गौ तथा ब्राह्मणोंका हित करनेवाले, सहस्रमूर्ति तथा सहस्र अवयवोंवाले आपको नमस्कार है॥ २६-२७॥

धर्मरूपाय सत्त्वाय नमः सत्त्वात्मने हर।
वेदवेद्यस्वरूपाय नमो वेदप्रियाय च॥ २८

नमो वेदस्वरूपाय वेदवक्त्रे नमो नमः।
सदाचाराध्वगम्याय सदाचाराध्वगामिने॥ २९

धर्मरूप, सत्त्वस्वरूप तथा सत्त्वात्मरूप हे हर! आपको नमस्कार है। वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य स्वरूपवाले तथा वेदप्रिय आपको नमस्कार है। वेदस्वरूप एवं वेदके वक्ता आपको नमस्कार है। सदाचारके मार्गसे जाननेयोग्य एवं सदाचारके मार्गपर चलनेवाले आपको बार-बार नमस्कार है॥ २८-२९॥

विष्टरश्रवसे तुभ्यं नमः सत्यमयाय च।
सत्यप्रियाय सत्याय सत्यगम्याय ते नमः॥ ३०

नमस्ते मायिने तुभ्यं मायाधीशाय वै नमः।
ब्रह्मगाय नमस्तुभ्यं ब्रह्मणे ब्रह्मजाय च॥ ३१

विष्टरश्रवा (विष्णु) तथा सत्यमय आपको नमस्कार है। सत्यप्रिय, सत्यस्वरूप तथा सत्यसे प्राप्त होनेवाले आपको नमस्कार है। मायाको अपने अधीन रखनेवाले आपको नमस्कार है। मायाके अधिपति आपको नमस्कार है। सामवेदस्वरूप, ब्रह्मस्वरूप तथा ब्रह्मासे उत्पन्न होनेवाले आपको नमस्कार है॥ ३०-३१॥

तपसे ते नमस्त्वीश तपसां फलदायिने।
स्तुत्याय स्तुतये नित्यं स्तुतिसंप्रीतचेतसे॥ ३२

श्रुत्याचारप्रसन्नाय स्तुत्याचारप्रियाय च।
चतुर्विधस्वरूपाय जलस्थलजरूपिणे॥ ३३

हे ईश! आप तपःस्वरूप, तपस्याका फल देनेवाले, स्तुतिके योग्य, स्तुतिरूप, स्तुतिसे प्रसन्नचित्त, श्रुतिके आचारसे प्रसन्न रहनेवाले, स्तुतिप्रिय, जरायुज-अण्डज आदि चार स्वरूपोंवाले एवं जल-थलमें प्रकट स्वरूपवाले हैं, आपको नमस्कार है॥ ३२-३३॥

सर्वे देवादयो नाथ श्रेष्ठत्वेन विभूतयः।
देवानामिन्द्ररूपोऽसि ग्रहाणां त्वं रविर्मतः॥ ३४

हे नाथ! सभी देवता आदि श्रेष्ठ होनेसे आपकी विभूति हैं। आप सभी देवताओंमें इन्द्रस्वरूप हैं और ग्रहोंमें आप सूर्य माने गये हैं॥ ३४॥

सत्यलोकोऽसि लोकानां सरितां द्युसरिद्भवान्।
श्वेतवर्णोऽसि वर्णानां सरसां मानसं सरः॥ ३५

आप लोकोंमें सत्यलोक, सरिताओंमें गंगा, वर्णोंमें श्वेत वर्ण और सरोवरोंमें मानसरोवर हैं॥ ३५॥

शैलानां गिरिजाताततः कामधुक्त्वं च गोषु ह।
क्षीरोदधिस्तु सिन्धूनां धातूनां हाटको भवान्॥ ३६

आप पर्वतोंमें हिमालय, गायोंमें कामधेनु, समुद्रोंमें क्षीरसागर एवं धातुओंमें सुवर्ण हैं॥ ३६॥

वर्णानां ब्राह्मणोऽसि त्वं नृणां राजासि शंकर।
मुक्तिक्षेत्रेषु काशी त्वं तीर्थानां तीर्थराड् भवान्॥ ३७
उपलेषु समस्तेषु स्फटिकस्त्वं महेश्वर।
कमलस्त्वं प्रसूनेषु शैलेषु हिमवांस्तथा॥ ३८

हे शंकर! आप वर्णोंमें ब्राह्मण, मनुष्योंमें राजा, मुक्तिक्षेत्रोंमें काशी तथा तीर्थोंमें प्रयाग हैं। हे महेश्वर! आप समस्त पाषाणोंमें स्फटिक मणि, पुष्पोंमें कमल तथा पर्वतोंमें हिमालय हैं॥ ३७-३८॥

भवान्वाग्व्यवहारेषु भार्गवस्त्वं कविष्वपि।
पक्षिष्वेवासि शरभः सिंहो हिंस्रेषु संमतः॥ ३९

आप व्यवहारोंमें वाणी हैं, कवियोंमें भार्गव, पक्षियोंमें शरभ और हिंसक प्राणियोंमें सिंह कहे गये हैं॥ ३९॥

शालग्रामशिला च त्वं शिलासु वृषभध्वज।
पूज्यरूपेषु सर्वेषु नर्मदालिंगमेव हि॥ ४०
नन्दीश्वरोऽसि पशुषु वृषभः परमेश्वर।
वेदेषूपनिषद्रूपो यज्वनां शीतभानुमान्॥ ४१

हे वृषभध्वज! आप शिलाओंमें शालग्रामशिला और सभी पूज्योंमें नर्मदा-लिंग हैं। हे परमेश्वर! आप पशुओंमें नन्दीश्वर नामक वृषभ (बैल), वेदोंमें उपनिषद्रूप और यज्ञ करनेवालोंमें चन्द्रमा हैं॥ ४०-४१॥

प्रतापितां पावकस्त्वं शैवानामच्युतो भवान्।
भारतं त्वं पुराणानां मकारोऽस्यक्षरेषु च॥ ४२
प्रणवो बीजमंत्राणां दारुणानां विषं भवान्।
व्योमव्याप्तिमतां त्वं वै परमात्मासि चात्मनाम्॥ ४३

आप तेजस्वियोंमें अग्नि, शैवोंमें विष्णु, पुराणोंमें महाभारत तथा अक्षरोंमें मकार हैं। बीजमन्त्रोंमें प्रणव (ओंकार), दारुण पदार्थोंमें विष, व्यापक वस्तुओंमें आकाश तथा आत्माओंमें परमात्मा हैं॥ ४२-४३॥

इन्द्रियाणां मनश्च त्वं दानानामभयं भवान्।
पावनानां जलं चासि जीवनानां तथामृतम्॥ ४४

आप सम्पूर्ण इन्द्रियोंमें मन, सभी प्रकारके दानोंमें अभयदान, पवित्र करनेवालोंमें जल तथा जीवित करनेवाले पदार्थोंमें अमृत हैं॥ ४४॥

लाभानां पुत्रलाभोऽसि वायुर्वेगवतामसि।
नित्यकर्मसु सर्वेषु संध्योपास्तिर्भवान्मतः॥ ४५

आप लाभोंमें पुत्रलाभ तथा वेगवानोंमें वायु हैं। आप सभी प्रकारके नित्यकर्मोंमें सन्ध्योपासन कहे गये हैं॥ ४५॥

क्रतूनामश्वमेधोऽसि युगानां प्रथमो युगः।
पुष्यस्त्वं सर्वधिष्ण्यानाममावास्या तिथिष्वसि॥ ४६

आप सम्पूर्ण यज्ञोंमें अश्वमेधयज्ञ, युगोंमें सत्ययुग, नक्षत्रोंमें पुष्य तथा तिथियोंमें अमावास्या हैं॥ ४६॥

सर्वर्तुषु वसंतस्त्वं सर्वपर्वसु संक्रमः।
कुशोऽसि तृणजातीनां स्थूलवृक्षेषु वै वटः॥ ४७

आप सभी ऋतुओंमें वसन्त, पर्वोंमें संक्रान्ति, तृणोंमें कुश और स्थूल वृक्षोंमें वटवृक्ष हैं॥ ४७॥

योगेषु च व्यतीपातः सोमवल्ली लतासु च।
बुद्धीनां धर्मबुद्धिस्त्वं कलत्रं सुहृदां भवान्॥ ४८
साधकानां शुचीनां त्वं प्राणायामो महेश्वर।
ज्योतिर्लिंगेषु सर्वेषु भवान् विश्वेश्वरो मतः॥ ४९

आप योगोंमें व्यतीपात, लताओंमें सोमलता, बुद्धियोंमें धर्मबुद्धि तथा सुहृदोंमें कलत्र हैं। हे महेश्वर! आप सम्पूर्ण पवित्र साधनोंमें प्राणायाम हैं तथा सभी ज्योतिर्लिंगोंमें विश्वेश्वर कहे गये हैं॥ ४८-४९॥

धर्मस्त्वं सर्वबंधूनामाश्रमाणां परो भवान्।
मोक्षस्त्वं सर्ववर्गेषु रुद्राणां नीललोहितः॥ ५०
आदित्यानां वासुदेवो हनूमान्वानरेषु च।
यज्ञानां जपयज्ञोऽसि रामः शस्त्रभृतां भवान्॥ ५१
गंधर्वाणां चित्ररथो वसूनां पावको ध्रुवम्।
मासानामधिमासस्त्वं व्रतानां त्वं चतुर्दशी॥ ५२
ऐरावतो गजेन्द्राणां सिद्धानां कपिलो मतः।
अनंतस्त्वं हि नागानां पितॄणामर्यमा भवान्॥ ५३
कालः कलयतां च त्वं दैत्यानां बलिरेव च।
किं बहूक्तेन देवेश सर्वं विष्टभ्य वै जगत्॥ ५४
एकांशेन स्थितस्त्वं हि बहिःस्थोऽन्वित एव च॥ ५५

आप सभी बन्धुओंमें धर्म, आश्रमोंमें संन्यासाश्रम, सभी वर्गोंमें मोक्ष तथा रुद्रोंमें नीललोहित हैं॥ ५०॥

आप आदित्योंमें वासुदेव, वानरोंमें हनुमान्, यज्ञोंमें जपयज्ञ तथा शस्त्रधारियोंमें राम हैं॥ ५१॥

आप गन्धर्वोंमें चित्ररथ, वसुओंमें पावक, मासोंमें अधिमास और व्रतोंमें चतुर्दशीव्रत हैं॥ ५२॥

आप गजेन्द्रोंमें ऐरावत, सिद्धोंमें कपिल, नागोंमें अनन्त और पितरोंमें अर्यमा माने गये हैं। आप कलना करनेवालोंमें काल तथा दैत्योंमें बलि हैं। हे देवेश! अधिक कहनेसे क्या लाभ, आप सारे जगत्को आक्रान्तकर बाहर तथा भीतर सर्वत्र एकांशरूपसे स्थित हैं॥ ५३—५५॥

सनत्कुमार उवाच

इति स्तुत्वा सुराः सर्वे महादेवं वृषध्वजम्।
स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैः शूलिनं परमेश्वरम्॥ ५६
प्रत्यूचुः प्रस्तुतं दीनाः स्वार्थं स्वार्थविचक्षणाः।
वासवाद्या नतस्कंधाः कृताञ्जलिपुटा मुने॥ ५७

सनत्कुमार बोले—हे मुने! इस प्रकार सिर झुकाकर हाथ जोड़कर अनेक प्रकारके दिव्य स्तोत्रोंसे त्रिशूलधारी परमेश्वर, वृषभध्वज महादेवकी स्तुतिकर स्वार्थसाधनमें कुशल इन्द्र आदि सभी देवता अत्यन्त दीन हो प्रस्तुत स्वार्थकी बात कहने लगे— ॥ ५६-५७॥

देवा ऊचुः

पराजिता महादेव भ्रातृभ्यां सहितेन तु।
भगवंस्तारकोत्पन्नैः सर्वे देवाः सवासवाः॥ ५८
त्रैलोक्यं स्ववशं नीतं तथा च मुनिसत्तमाः।
विध्वस्ताः सर्वसंसिद्धाः सर्वमुत्सादितं जगत्॥ ५९
यज्ञभागान्समग्राँस्तु स्वयं गृह्णाति दारुणः।
प्रवर्तितो ह्यधर्मस्तैर्ऋषीणां च निवारितः॥ ६०
अवध्याः सर्वभूतानां नियतं तारकात्मजाः।
तदिच्छया प्रकुर्वन्ति सर्वे कर्माणि शंकर॥ ६१
यावन्न क्षीयते दैत्यैर्घोरैस्त्रिपुरवासिभिः।
तावद्विधीयतां नीतिर्यया संरक्ष्यते जगत्॥ ६२

देवता बोले—हे महादेव! हे भगवन्! इन्द्रसहित सभी देवताओंको तारकासुरके तीनों पुत्रोंने पराजित कर दिया। उन्होंने समस्त त्रैलोक्यको अपने वशमें कर लिया है। उन लोगोंने सभी मुनिवरों तथा सिद्धोंका विध्वंस कर दिया है और सारे जगत्को तहस-नहस कर दिया है। वह भयंकर दैत्य समस्त यज्ञभागोंको स्वयं ग्रहण करता है। उन तारकपुत्रोंने वेदविरुद्ध अधर्मको बढ़ावा दे रखा है॥ ५८—६०॥

हे शंकर! वे तारकपुत्र सभी प्राणियोंसे निश्चित रूपसे अवध्य हैं, सभी लोग उन्हींकी इच्छासे कार्य करते हैं॥ ६१॥

जबतक त्रिपुरवासी दैत्योंके द्वारा जगत्का विध्वंस नहीं हो जाता है, तबतक आप ऐसी नीतिका निर्धारण करें, जिससे जगत्की रक्षा हो सके॥ ६२॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषामिन्द्रादीनां दिवौकसाम्।
शिवः संभाषमाणानां प्रतिवाक्यमुवाच सः॥ ६३

सनत्कुमार बोले—वार्तालाप करते हुए उन इन्द्रादि देवताओंका यह वचन सुनकर शिवजीने कहा— ॥ ६३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे देवस्तुतिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें देवस्तुतिवर्णन नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

त्रिपुरके विनाशके लिये देवताओंका विष्णुसे निवेदन करना, विष्णुद्वारा त्रिपुरविनाशके लिये यज्ञकुण्डसे भूतसमुदायको प्रकट करना, त्रिपुरके भयसे भूतोंका पलायित होना, पुनः विष्णुद्वारा देवकार्यकी सिद्धिके लिये उपाय सोचना

शिव उवाच

अयं वै त्रिपुराध्यक्षः पुण्यवान्वर्ततेऽधुना।
यत्र पुण्यं प्रवर्तेत न हंतव्यो बुधैः क्वचित्॥ १

जानामि देवकष्टं च विबुधाः सकलं महत्।
दैत्यास्ते प्रबला हंतुमशक्यास्तु सुरासुरैः॥ २

पुण्यवंतस्तु ते सर्वे समयास्तारकात्मजाः।
दुस्साध्यस्तु वधस्तेषां सर्वेषां पुरवासिनाम्॥ ३

मित्रद्रोहं कथं जानन्करोमि रणकर्कशः।
सुहृद्द्रोहे महत्पापं पूर्वमुक्तं स्वयंभुवा॥ ४

ब्रह्मघ्ने च सुरापे च स्तेये भग्नव्रते तथा।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः॥ ५

मम भक्तास्तु ते दैत्या मया वध्याः कथं सुराः।
विचार्यतां भवद्भिश्च धर्मज्ञैरेव धर्मतः॥ ६

तावत्ते नैव हंतव्या यावद्भक्तिकृतश्च मे।
तथापि विष्णवे देवा निवेद्यं कारणं त्विदम्॥ ७

सनत्कुमार उवाच

इत्येवं तद्वचः श्रुत्वा देवाः शक्रपुरोगमाः।
न्यवेदयन् द्रुतं सर्वे ब्रह्मणे प्रथमं मुने॥ ८
ततो विधिं पुरस्कृत्य सर्वे देवाः सवासवाः।
वैकुंठं प्रययुः शीघ्रं सर्वे शोभासमन्वितम्॥ ९

तत्र गत्वा हरिं दृष्ट्वा प्रणेमुर्जातसंभ्रमाः।
तुष्टुवुश्च महाभक्त्या कृतांजलिपुटाः सुराः॥ १०

स्वदुःखकारणं सर्वं पूर्ववत्तदनंतरम्।
न्यवेदयन्द्रुतं तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे॥ ११

देवदुःखं ततः श्रुत्वा दत्तं च त्रिपुरालयैः।
ज्ञात्वा व्रतं च तेषां तद्विष्णुर्वचनमब्रवीत्॥ १२

शिवजी बोले—हे देवताओ! इस समय यह त्रिपुराध्यक्ष पुण्यवान् है, जिसमें पुण्य हो, उसे विद्वानोंको कभी नहीं मारना चाहिये। हे देवताओ! मैं देवताओंके समस्त बड़े कष्टोंको जानता हूँ। वे दैत्य प्रबल हैं, देवता तथा असुर कोई भी उन्हें मारनेमें समर्थ नहीं है॥ १-२॥

दानव मयसहित वे सभी तारकपुत्र पुण्यवान् हैं, त्रिपुरमें रहनेवाले उन सभीका वध दुःसाध्य है॥ ३॥

युद्धमें अजेय होते हुए भी मैं जान-बूझकर किस प्रकार मित्रद्रोहका आचरण करूँ; क्योंकि स्वयम्भूने पहले कहा है कि मित्रद्रोह करनेमें महान् पाप होता है॥ ४॥

ब्रह्महत्यारा, सुरापान करनेवाला, स्वर्णकी चोरी करने-वाला तथा व्रतभंग करनेवाला—इन सभीके लिये शास्त्रकारोंने प्रायश्चित्त बताया है, किंतु कृतघ्नके लिये कोई प्रायश्चित्त-विधान नहीं है। हे देवताओ! धर्मके ज्ञाता आपलोग ही धर्मपूर्वक विचार करें कि वे दैत्य मेरे भक्त हैं, तब मैं उनका वध किस प्रकार कर सकता हूँ? हे देवताओ! जबतक वे मुझमें भक्ति रखते हैं, तबतक मैं उन्हें नहीं मार सकता तथापि आपलोग विष्णुसे इस कारणको बताइये॥ ५—७॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने! उनका यह वचन सुनकर इन्द्र आदि सभी देवताओंने सर्वप्रथम इस बातको ब्रह्माजीसे कहा। तदनन्तर ब्रह्माजीको आगेकर इन्द्रसहित सभी देवता शोभासम्पन्न वैकुण्ठधामको शीघ्र गये॥ ८-९॥

वहाँ जाकर आश्चर्यचकित उन देवताओंने विष्णुको देखकर उन्हें प्रणाम किया और दोनों हाथ जोड़कर परम भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति की, उसके अनन्तर सर्वसमर्थ उन विष्णुसे पूर्वकी भाँति अपने दुःखका समस्त कारण शीघ्र निवेदित किया। तब त्रिपुरवासियोंके द्वारा दिये गये देवगणोंके दुःखको सुनकर तथा उनके व्रतको जानकर विष्णुने यह वचन कहा—॥ १०—१२॥

विष्णुरुवाच

इदं सत्यं वचश्चैव यत्र धर्मः सनातनः।
तत्र दुःखं न जायेत सूर्ये दृष्टे यथा तमः॥ १३

सनत्कुमार उवाच

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा देवा दुःखमुपागताः।
पुनरूचुस्तथा विष्णुं परिम्लानमुखाम्बुजाः॥ १४

देवा ऊचुः

कथं चैव प्रकर्त्तव्यं कथं दुःखं निरस्यते।
कथं भवेम सुखिनः कथं स्थास्यामहे वयम्॥ १५

कथं धर्मा भविष्यंति त्रिपुरे जीविते सति।
देवदुःखप्रदा नूनं सर्वे त्रिपुरवासिनः॥ १६

किं वा ते त्रिपुरस्येह वधश्चैव विधीयताम्।
नो चेदकालिकी देवसंहतिः क्रियतां ध्रुवम्॥ १७

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा ते तदा देवा दुःखं कृत्वा पुनः पुनः।
स्थितिं नैव गतिं ते वै चक्रुर्देववरादिह॥ १८

तान्वै तथाविधान्दृष्ट्वा हीनान्विनयसंयुतान्।
सोऽपि नारायणः श्रीमांश्चिन्तयंश्चेतसा तथा॥ १९

किं कार्यं देवकार्येषु मया देवसहायिना।
शिवभक्तास्तु ते दैत्यास्तारकस्य सुता इति॥ २०

इति संचिन्त्य तत्काले विष्णुना प्रभविष्णुना।
ततो यज्ञाः स्मृतास्तेन देवकार्यार्थमक्षयाः॥ २१

तद्विष्णुस्मृतिमात्रेण यज्ञास्ते तत्क्षणं द्रुतम्।
आगतास्तत्र यत्रास्ते श्रीपतिः पुरुषोत्तमः॥ २२

ततो विष्णुं यज्ञपतिं पुराणं पुरुषं हरिम्।
प्रणम्य तुष्टुवुस्ते वै कृतांजलिपुटास्तदा॥ २३

भगवानपि तान्दृष्ट्वा यज्ञान्प्राह सनातनान्।
सनातनस्तदा सेंद्रान्देवानालोक्य चाच्युतः॥ २४

विष्णुरुवाच

अनेनैव सदा देवा यजध्वं परमेश्वरम्।
पुरत्रयविनाशाय जगत्त्रयविभूतये॥ २५

विष्णु बोले—यह बात सत्य है कि जहाँ सनातनधर्म विद्यमान होता है, वहाँ दुःख उसी प्रकार नहीं होता, जिस प्रकार सूर्यके दिखायी देनेपर अन्धकार नहीं रहता है॥ १३॥

सनत्कुमार बोले—इस बातको सुनकर दुःखित तथा मुरझाये हुए मुखकमलवाले देवता विष्णुसे पुनः कहने लगे—॥ १४॥

देवगण बोले—अब क्या करना चाहिये, यह दुःख किस प्रकारसे दूर हो, हमलोग कैसे सुखी रहें तथा किस प्रकारसे निवास करें। इस त्रिपुरके जीवित रहते धर्माचरण किस प्रकार हो सकेंगे, ये त्रिपुरवासी तो निश्चय ही देवताओंको दुःख देनेवाले हैं॥ १५-१६॥

[हे विष्णो!] आप या तो त्रिपुरका वध कीजिये, अन्यथा देवताओंको ही अकालमें मार डालिये॥ १७॥

सनत्कुमार बोले—तब इस प्रकार कहकर वे देवता बारंबार बड़े दुखी हुए और न तो विष्णुके पाससे उन्हें जाते बना और न तो रुकते ही बना। तब विष्णुने उन देवताओंको इस प्रकारसे हीन तथा विनययुक्त देखकर अपने मनमें विचार किया कि देवताओंकी सहायता करनेवाला मैं इन देवताओंके कार्यके लिये कौन-सा उपाय करूँ, तारका-सुरके वे पुत्र भी तो शिवजीके भक्त ही हैं॥ १८—२०॥

ऐसा सोचकर उसी समय सर्वसमर्थ उन विष्णुने देवताओंके कार्यके लिये अक्षय यज्ञोंका स्मरण किया॥ २१॥

उन विष्णुके स्मरणमात्रसे वे यज्ञ उसी क्षण शीघ्रता-पूर्वक वहाँ आ गये, जहाँ लक्ष्मीपति पुरुषोत्तम विद्यमान थे। उसके बाद उन्होंने हाथ जोड़कर प्रणाम करके यज्ञपति पुराणपुरुष श्रीहरिकी स्तुति की। तब सनातन भगवान् विष्णुने भी उन सनातन यज्ञोंको देखकर पुनः इन्द्रसहित देवताओंकी ओर देखकर उनसे कहा—॥ २२—२४॥

विष्णु बोले—हे देवगण! आपलोग त्रिपुरोंके विनाश एवं तीनों लोकोंके कल्याणके निमित्त इन यज्ञोंद्वारा सदा परमेश्वरका यजन कीजिये॥ २५॥

सनत्कुमार उवाच

अच्युतस्य वचः श्रुत्वा देवदेवस्य धीमतः।
प्रेम्णा ते प्रणतिं कृत्वा यज्ञेशं तेऽस्तुवन्सुराः॥ २६
एवं स्तुत्वा ततो देवा अयजन्यज्ञपूरुषम्।
यज्ञोक्तेन विधानेन संपूर्णविधयो मुने॥ २७

ततस्तस्माद्यज्ञकुंडात्समुत्पेतुः सहस्रशः।
भूतसंघा महाकायाः शूलशक्तिगदायुधाः॥ २८

ददृशुस्ते सुरास्तान् वै भूतसंघान् सहस्रशः।
शूलशक्तिगदाहस्तान्दण्डचापशिलायुधान् ॥ २९

नानाप्रहरणोपेतान् नानावेषधराँस्तथा।
कालाग्निरुद्रसदृशान्कालसूर्योपमाँस्तदा ॥ ३०

दृष्ट्वा तानब्रवीद्विष्णुः प्रणिपत्य पुरःस्थितान्।
भूतान्यज्ञपतिः श्रीमान् रुद्राज्ञाप्रतिपालकः॥ ३१

विष्णुरुवाच

भूताः शृणुत मद्वाक्यं देवकार्यार्थमुद्यताः।
गच्छन्तु त्रिपुरं सद्यः सर्वे हि बलवत्तराः॥ ३२
गत्वा दग्ध्वा च भित्त्वा च भङ्क्त्वा दैत्यपुरत्रयम्।
पुनर्यथागता भूतागंतुमर्हथ भूतये॥ ३३

सनत्कुमार उवाच

तच्छ्रुत्वा भगवद्वाक्यं ततो भूतगणाश्च ते।
प्रणम्य देवदेवं तं ययुर्दैत्यपुरत्रयम्॥ ३४
गत्वा तत्प्रविशंतश्च त्रिपुराधिपतेजसि।
भस्मसादभवन्सद्यः शलभा इव पावके॥ ३५
अवशिष्टाश्च ये केचित्पलायनपरायणाः।
निस्सृत्यारं समायाता हरेर्निकटमाकुलाः॥ ३६

तान्दृष्ट्वा स हरिः श्रुत्वा तच्च वृत्तमशेषतः।
चिंतयामास भगवान्मनसा पुरुषोत्तमः॥ ३७

किं कृत्यमधुना कार्यमिति संतप्तमानसः।
संतप्तानमरान्सर्वानाज्ञाय च सवासवान्॥ ३८

कथं तेषां च दैत्यानां बलाद्धत्वा पुरत्रयम्।
देवकार्यं करिष्यामीत्यासीच्चिन्तासमाकुलः॥ ३९

सनत्कुमार बोले—देवाधिदेव बुद्धिमान् विष्णुका वचन सुनकर वे देवता प्रेमपूर्वक यज्ञेशको प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे। हे मुने! इस प्रकार स्तुति करनेके पश्चात् सम्पूर्ण विधियोंके ज्ञाता वे देवता यज्ञोक्त विधानसे यज्ञपुरुषका यजन करने लगे॥ २६-२७॥

तब उस यज्ञकुण्डसे शूल, शक्ति और गदा हाथमें धारण किये महाकाय हजारों भूतसमुदाय उत्पन्न हुए॥ २८॥

उन देवताओंने हाथमें शूल-शक्ति-गदा-दण्ड-धनुष तथा शिलाका आयुध धारण किये हुए, इसके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकारके अस्त्र धारण किये हुए, नाना प्रकारके वेष धारण किये हुए, कालाग्नि रुद्रके समान तथा कालसूर्यके समान प्रतीत होनेवाले उन हजारों भूत-समुदायोंको देखा। अपने आगे खड़े उन भूतोंको देखकर और उन्हें प्रणामकर रुद्रकी आज्ञाका पालन करनेवाले यज्ञपति श्रीमान् विष्णु उनसे कहने लगे— ॥ २९—३१॥

विष्णुजी बोले—हे भूतगणो! तुम मेरी बात सुनो। तुमलोग महाबलवान् हो, अतः देवकार्यके लिये तत्पर हो शीघ्र त्रिपुरको जाओ। हे भूतगणो! वहाँ जाकर दैत्योंके तीनों पुरोंको तोड़-फोड़कर तथा जलाकर पुनः लौट आना, इसके बाद अपने कल्याणके लिये जहाँ इच्छा हो, वहाँ चले जाना॥ ३२-३३॥

सनत्कुमार बोले—तब भगवान् विष्णुकी वह बात सुनकर वे भूतगण उन देवाधिदेवको प्रणामकर दैत्योंके त्रिपुरकी ओर चल दिये। वहाँ जाकर त्रिपुरमें प्रवेश करते ही वे त्रिपुरके अधिपतिके तेजमें उसी प्रकार शीघ्र भस्म हो गये, जैसे अग्निमें पतिंगे भस्म हो जाते हैं। उनमें जो कोई शेष बचे, वे भाग गये और वहाँसे निकलकर व्याकुल हो शीघ्र विष्णुके समीप चले आये॥ ३४—३६॥

तब पुरुषोत्तम भगवान् हरि उनको देखकर तथा वह सारा वृत्तान्त सुनकर और इन्द्रसहित सभी देवताओंको दुखी जानकर सन्तप्तचित्त हो गये और सोचने लगे कि इस समय कौन-सा कार्य करना चाहिये। उन दैत्योंके तीनों पुरोंको बलपूर्वक नष्ट करके मैं देवताओंका कार्य किस प्रकार करूँ—वे इसी चिन्तासे व्याकुल हो उठे॥ ३७—३९॥

नाशोऽभिचारतो नास्ति धर्मिष्ठानां न संशयः।
इति प्राह स्वयं चेशः श्रुत्याचारप्रमाणकृत्॥ ४०
दैत्याश्च ते हि धर्मिष्ठाः सर्वे त्रिपुरवासिनः।
तस्मादवध्यतां प्राप्ता नान्यथासुरपुंगवाः॥ ४१
कृत्वा तु सुमहत्पापं रुद्रमभ्यर्चयंति ते।
मुच्यन्ते पातकैः सर्वैः पद्मपत्रमिवांभसा॥ ४२
रुद्राभ्यर्चनतो देवाः सर्वे कामा भवन्ति हि।
नानोपभोगसंपत्तिर्वश्यतां याति वै भुवि॥ ४३
तस्मात्तद्भोगिनो दैत्या लिंगार्चनपरायणाः।
अनेकविधसंपत्तेर्मोक्षस्यापि परत्र च॥ ४४
ततः कृत्वा धर्मविघ्नं तेषामेवात्ममायया।
दैत्यानां देवकार्यार्थं हरिष्ये त्रिपुरं क्षणात्॥ ४५
विचार्येत्थं ततस्तेषां भगवान्पुरुषोत्तमः।
कर्तुं व्यवस्थितः पश्चाद्धर्मविघ्नं सुरारिणाम्॥ ४६

धर्मात्माओंका अभिचारसे भी नाश नहीं होता, इसमें संशय नहीं है—ऐसा श्रुतिके आचारको प्रमाणित करनेवाले शंकरजीने स्वयं कहा है। हे श्रेष्ठ देवताओ! त्रिपुरमें रहनेवाले वे सभी दैत्य बड़े धर्मनिष्ठ हैं, इसलिये सर्वथा अवध्य हैं, यह बात असत्य नहीं है। वे महान् पाप करके भी रुद्रकी अर्चना करते हैं, इसलिये सभी प्रकारके पापोंसे वैसे ही मुक्त हो जाते हैं, जैसे पद्मपत्र जलसे पृथक् रहता है। हे देवताओ! रुद्रकी अर्चनासे सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं और पृथ्वीके अनेक प्रकारके भोग एवं सम्पत्तियाँ वशीभूत हो जाती हैं। अतः लिंगार्चनपरायण ये दैत्य इस लोकमें अनेक प्रकारकी सम्पत्तिका भोग कर रहे हैं और परलोकमें भी उन्हें मोक्ष प्राप्त होगा। फिर भी मैं अपनी मायासे उन दैत्योंके धर्ममें विघ्न डालकर देवताओंकी कार्यसिद्धिके निमित्त क्षणभरमें त्रिपुरका संहार करूँगा—इस प्रकार विचार करनेके पश्चात् वे भगवान् पुरुषोत्तम उन दैत्योंके धर्ममें विघ्न करनेके लिये तत्पर हो गये॥ ४०—४६॥

यावच्च वेदधर्मास्तु यावद्वै शंकरार्चनम्।
यावच्च शुचिकृत्यानि तावन्नाशो भवेन्न हि॥ ४७
तस्मादेवं प्रकर्तव्यं वेदधर्मस्ततो व्रजेत्।
त्यक्तलिंगार्चना दैत्या भविष्यन्ति न संशयः॥ ४८
इति निश्चित्य वै विष्णुर्विघ्नार्थमकरोत्तदा।
तेषां धर्मस्य दैत्यानामुपायं श्रुतिखण्डनम्॥ ४९
तदैवोवाच देवान्स विष्णुर्देवसहायकृत्।
शिवाज्ञया शिवेनैवाज्ञप्तस्त्रैलोक्यरक्षणे॥ ५०

जबतक उनमें वेदके धर्म हैं, जबतक वे शंकरकी अर्चना करते हैं और जबतक वे पवित्र कृत्य करते हैं, तबतक उनका नाश नहीं हो सकता। इसलिये अब ऐसा उपाय करना चाहिये कि वहाँसे वेदधर्म चला जाय, तब वे दैत्य लिंगार्चन त्याग देंगे, इसमें सन्देह नहीं—ऐसा निश्चय करके विष्णुजीने उन दैत्योंके धर्ममें विघ्न करनेके लिये श्रुतिखण्डनरूप उपाय किया। इसके बाद त्रैलोक्यरक्षणके लिये शिवके द्वारा आदिष्ट देवसहायक उन विष्णुने शिवकी आज्ञासे देवताओंसे कहा—॥ ४७—५०॥

विष्णुरुवाच

हे देवाः सकला यूयं गच्छत स्वगृहान्ध्रुवम्।
देवकार्यं करिष्यामि यथामति न संशयः॥ ५१
तान्रुद्राद्विमुखान्नूनं करिष्यामि सुयत्नतः।
स्वभक्तिरहितान् ज्ञात्वा तान्करिष्यामि भस्मसात्॥ ५२

विष्णुजी बोले—हे देवो! [इस समय] आप सभी लोग निश्चित रूपसे अपने घरको चले जायँ, मैं अपनी बुद्धिके अनुसार देवताओंका कार्य अवश्य करूँगा, इसमें सन्देह नहीं है। मैं बड़े यत्नसे उन्हें रुद्रसे अवश्य विमुख करूँगा और तब शिवजी अपनी शक्तिसे रहित जानकर उन्हें भस्म कर देंगे॥ ५१-५२॥

सनत्कुमार उवाच

तदाज्ञां शिरसाधायाश्वासितास्तेऽमरा मुने।
स्वस्वधामानि विश्वस्ता ययुः परममोदिताः॥ ५३

सनत्कुमार बोले—हे मुने! तब वे देवगण विष्णुकी आज्ञाको सिरपर धारणकर कुछ निश्चिन्त हुए और फिर ब्रह्माके द्वारा आश्वासित होनेपर प्रसन्न

ततश्चैवाकरोद्विष्णुर्देवार्थं हितमुत्तमम्।
तदेव श्रूयतां सम्यक्सर्वपापप्रणाशनम्॥ ५४

हो अपने-अपने स्थानोंको चले गये। इसके बाद विष्णुने देवताओंके लिये जो उत्तम उपाय किया, उसे आप भलीभाँति सुनिये, वह सभी पापोंका नाश करनेवाला है॥ ५३-५४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे त्रिपुरवधोपाख्याने भूतत्रिपुरधर्मवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें त्रिपुरवधोपाख्यानान्तर्गत भूतत्रिपुरधर्मवर्णन नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

त्रिपुरवासी दैत्योंको मोहित करनेके लिये भगवान् विष्णुद्वारा एक मुनिरूप पुरुषकी उत्पत्ति, उसकी सहायताके लिये नारदजीका त्रिपुरमें गमन, त्रिपुराधिपका दीक्षा ग्रहण करना

सनत्कुमार उवाच

असृजच्च महातेजाः पुरुषं स्वात्मसंभवम्।
एकं मायामयं तेषां धर्मविघ्नार्थमच्युतः॥ १

सनत्कुमार बोले—उन महातेजस्वी विष्णुने उनके धर्ममें विघ्न उत्पन्न करनेके लिये अपने ही शरीरद्वारा एक मायामय मुनिरूप पुरुषको उत्पन्न किया॥ १॥

मुंडिनं म्लानवस्त्रं च गुंफिपात्रसमन्वितम्।
दधानं पुंजिकां हस्ते चालयन्तं पदे पदे॥ २

वस्त्रयुक्तं तथा हस्तं क्षीयमाणं मुखे सदा।
धर्मेति व्याहरन्तं हि वाचा विक्लवया मुनिम्॥ ३

वह अपना सिर मुड़ाये हुए, मलिन वस्त्र धारण किये हुए, हाथमें एक गुम्फि (काष्ठ)-का पात्र लिये हुए, दूसरे हाथमें झाड़ू लिये तथा उससे पग-पगपर बुहारी करता हुआ, हस्तपरिमाणका वस्त्र अपने मुखपर लपेटे हुए विकल वाणीसे धर्म-धर्म इस प्रकार कह रहा था॥ २-३॥

स नमस्कृत्य विष्णुं तं तत्पुरः संस्थितोऽथ वै।
उवाच वचनं तत्र हरिं स प्रांजलिस्तदा॥ ४

अरिहन्नच्युतं पूज्यं किं करोमि तदादिश।
कानि नामानि मे देव स्थानं वापि वद प्रभो॥ ५

इत्येवं भगवान्विष्णुः श्रुत्वा तस्य शुभं वचः।
प्रसन्नमानसो भूत्वा वचनं चेदमब्रवीत्॥ ६

वह उन विष्णुको प्रणामकर उनके आगे स्थित हो गया, इसके बाद उसने हाथ जोड़कर पूज्य, अच्युत विष्णुसे यह वचन कहा—हे अरिहन्! [शत्रुनाशक] मैं क्या करूँ? इसके लिये आज्ञा दीजिये। हे देव! मेरे क्या-क्या नाम होंगे? हे प्रभो! मेरे स्थानका भी निर्देश कीजिये। इस प्रकार उसका यह शुभ वचन सुनकर भगवान् विष्णु प्रसन्नचित्त होकर यह वचन कहने लगे—॥ ४—६॥

विष्णुरुवाच

यदर्थं निर्मितोऽसि त्वं निबोध कथयामि ते।
मदंगज महाप्राज्ञ मद्रूपस्त्वं न संशयः॥ ७

विष्णुजी बोले—मेरे शरीरसे उत्पन्न हे महाप्राज्ञ! मैंने जिसके लिये तुम्हारा निर्माण किया है, उसे सुनो, मैं कह रहा हूँ। तुम मेरे ही रूप हो, इसमें सन्देह नहीं है॥ ७॥

ममांगाच्च समुत्पन्नो मत्कार्यं कर्तुमर्हसि।
मदीयस्त्वं सदा पूज्यो भविष्यसि न संशयः॥ ८

मेरे शरीरसे उत्पन्न हुए तुम मेरा कार्य करनेमें समर्थ हो। तुम मुझसे अभिन्न हो, इसलिये [लोकमें] सदा पूज्य होओगे, इसमें संशय नहीं है॥ ८॥

अरिहन्नाम ते स्यात्तु ह्यन्यानि च शुभानि च।
स्थानं वक्ष्यामि ते पश्चाच्छृणु प्रस्तुतमादरात्॥ ९

तुम्हारा नाम अरिहन् होगा, तुम्हारे अन्य भी शुभ नाम होंगे। मैं तुम्हारे स्थानको बादमें बताऊँगा, इस समय मेरा प्रस्तुत कार्य आदरसे सुनो॥ ९॥

मायिन्मायामयं शास्त्रं तत्षोडशसहस्रकम्।
श्रौतस्मार्तविरुद्धं च वर्णाश्रमविवर्जितम्॥ १०
अपभ्रंशमयं शास्त्रं कर्मवादमयं तथा।
रचयेति प्रयत्नेन तद्विस्तारो भविष्यति॥ ११
ददामि तव निर्माणे सामर्थ्यं तद्भविष्यति।
माया च विविधा शीघ्रं त्वदधीना भविष्यति॥ १२

हे मायावी! तुम सोलह हजार श्लोकोंवाला एक शास्त्र प्रयत्नपूर्वक बनाओ, जो मायामय, श्रुति-स्मृतिसे विरुद्ध, वर्णाश्रमधर्मसे रहित, अपभ्रंश शब्दोंसे युक्त और कर्मवादपर आधारित हो, आगे चलकर उसका विस्तार होगा। मैं तुम्हें उस शास्त्रके निर्माणका सामर्थ्य देता हूँ। अनेक प्रकारकी माया भी तुम्हारे अधीन हो जायगी॥ १०—१२॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य हरेश्च परमात्मनः।
नमस्कृत्य प्रत्युवाच स मायी तं जनार्दनम्॥ १३

उन परमात्मा श्रीविष्णुका वचन सुनकर वह मायावी प्रणामकर जनार्दनसे कहने लगा— ॥ १३॥

मुण्ड्युवाच

यत्कर्तव्यं मया देव द्रुतमादिश तत्प्रभो।
त्वदाज्ञयाखिलं कर्म सफलं च भविष्यति॥ १४

मुण्डी बोला—हे देव! मुझे जो करना हो, उसे शीघ्र बताइये। हे प्रभो! आपकी आज्ञासे सारा कार्य सिद्ध होगा॥ १४॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा पाठयामास शास्त्रं मायामयं तथा।
इहैव स्वर्गनरकप्रत्ययो नान्यथा पुनः॥ १५

सनत्कुमार बोले—मुण्डीके द्वारा ऐसा कहे जानेपर भगवान्‌ने उसे मायामय शास्त्र पढ़ाया और बताया कि स्वर्ग-नरककी प्रतीति यहींपर है; इसमें सन्देह नहीं है॥ १५॥

तमुवाच पुनर्विष्णुः स्मृत्वा शिवपदांबुजम्।
मोहनीया इमे दैत्याः सर्वे त्रिपुरवासिनः॥ १६
कार्यास्ते दीक्षिता नूनं पाठनीयाः प्रयत्नतः।
मदाज्ञया न दोषस्ते भविष्यति महामते॥ १७
धर्मास्तत्र प्रकाशन्ते श्रौतस्मार्त्ता न संशयः।
अनया विद्यया सर्वे स्फोटनीया ध्रुवं यते॥ १८

उसके बाद विष्णुने शिवजीके चरणकमलका स्मरण करके उससे पुनः कहा कि तुम त्रिपुरमें रहनेवाले इन समस्त दैत्योंको मोहित करो। तुम उन्हें दीक्षित करो और प्रयत्नपूर्वक इस शास्त्रको पढ़ाओ। हे महामते! मेरी आज्ञाके कारण तुम्हें [ऐसा करनेसे] दोष नहीं लगेगा। हे यते! इसमें सन्देह नहीं कि वहाँ श्रौत-स्मार्त धर्म प्रकाश कर रहे हैं, किंतु तुम इस विद्याके द्वारा उन सभीको धर्मसे च्युत करो॥ १६—१८॥

गंतुमर्हसि नाशार्थं मुण्डिंस्त्रिपुरवासिनाम्।
तमोधर्मं संप्रकाश्य नाशयस्व पुरत्रयम्॥ १९
ततश्चैव पुनर्गत्वा मरुस्थल्यां त्वया विभो।
स्थातव्यं च स्वधर्मेण कलिर्यावत्समाव्रजेत्॥ २०
प्रवृत्ते तु युगे तस्मिन्स्वीयो धर्मः प्रकाश्यताम्।
शिष्यैश्च प्रतिशिष्यैश्च वर्तनीयस्त्वया पुनः॥ २१

हे मुण्डिन्! अब तुम उन त्रिपुरवासियोंके विनाशके लिये जाओ और तमोगुणी धर्मको प्रकाशितकर तीनों पुरोंका नाश करो। हे विभो! उसके बाद वहाँसे मरुस्थलमें जाकर कलियुगके आनेतक वहीं अपने धर्मके साथ निवास करना और उस युगके आ जानेपर तुम शिष्य-प्रशिष्योंके साथ अपने धर्मका प्रचार करना और उसीका व्यवहार करना॥ १९—२१॥

मदाज्ञया भवद्धर्मो विस्तारं यास्यति ध्रुवम्।
मदनुज्ञापरो नित्यं गतिं प्राप्स्यसि मामकीम्॥ २२

एवमाज्ञा तदा दत्ता विष्णुना प्रभविष्णुना।
शासनाद्देवदेवस्य हृदा त्वन्तर्दधे हरिः॥ २३

ततस्समुंडी परिपालयन्हरे-
राज्ञां तथा निर्मितवांश्च शिष्यान्।
यथास्वरूपं चतुरस्तदानीं
मायामयं शास्त्रमपाठयत्स्वयम्॥ २४

यथा स्वयं तथा ते च चत्वारो मुंडिनः शुभाः।
नमस्कृत्य स्थितास्तत्र हरये परमात्मने॥ २५

हरिश्चापि मुनेस्तत्र चतुरस्तांस्तदा स्वयम्।
उवाच परमप्रीतः शिवाज्ञापरिपालकः॥ २६

यथा गुरुस्तथा यूयं भविष्यथ मदाज्ञया।
धन्याः स्थ सद्गतिमिह संप्राप्स्यथ न संशयः॥ २७

मेरी आज्ञासे तुम्हारे इस धर्मका निश्चित रूपसे विस्तार होगा तथा मेरी आज्ञामें तत्पर होकर तुम मेरी गति प्राप्त करोगे। इस प्रकार देवाधिदेव शंकरकी आज्ञासे सर्वसमर्थ विष्णुने उसे हृदयसे आदेश दिया, इसके बाद विष्णुजी अन्तर्धान हो गये॥ २२-२३॥

उसके बाद उस मुण्डीने विष्णुकी आज्ञाका पालन करते हुए उस समय अपने रूपके अनुसार चार शिष्योंका निर्माण किया और उन्हें स्वयं मायामय शास्त्र पढ़ाया॥ २४॥

जैसा वह स्वयं था, उसी प्रकारके वे चारों शुभ मुण्डी भी थे, वे परमात्मा श्रीविष्णुको नमस्कारकर वहींपर स्थित हो गये। हे मुने! तब शिवकी आज्ञाका पालन करनेवाले श्रीविष्णुने भी परम प्रसन्न होकर उन चारों शिष्योंसे स्वयं कहा—जैसे तुमलोगोंके गुरु हैं, वैसे ही मेरी आज्ञासे तुमलोग भी बनो। तुमलोग धन्य हो और इस लोकमें सद्गति प्राप्त करोगे, इसमें सन्देह नहीं है॥ २५—२७॥

चत्वारो मुंडिनस्तेऽथ धर्मं पाषंडमाश्रिताः।
हस्ते पात्रं दधानाश्च तुंडवस्त्रस्य धारकाः॥ २८
मलिनान्येव वासांसि धारयंतो ह्यभाषिणः।
धर्मो लाभः परं तत्त्वं वदन्तस्त्वतिहर्षतः॥ २९
मार्जनीं ध्रियमाणाश्च वस्त्रखंडविनिर्मिताम्।
शनैः शनैश्चलन्तो हि जीवहिंसाभयाद्ध्रुवम्॥ ३०
ते सर्वे च तदा देवं भगवंतं मुदान्विताः।
नमस्कृत्य पुनस्तत्र मुने तस्थुस्तदग्रतः॥ ३१

इसके बाद वे चारों मुण्डी हाथमें पात्र लिये, नासिकापर वस्त्र बाँधे, मलिन वस्त्र धारण किये हुए, अत्यधिक न बोलते हुए 'धर्म ही लाभ तथा परम तत्त्व है'—ऐसा अति हर्षपूर्वक कहते हुए, वस्त्रके छोटे-छोटे टुकड़ोंसे बनी हुई मार्जनी धारण किये हुए और जीवहिंसाके भयसे धीरे-धीरे चलते हुए विचरण करने लगे। हे मुने! तब वे सभी प्रसन्न होकर देवाधिदेव श्रीविष्णुको नमस्कारकर उनके आगे स्थित हो गये॥ २८—३१॥

हरिणा च तदा हस्ते धृत्वा च गुरवेऽर्पिताः।
अभ्यधायि च सुप्रीत्या तन्नामानि विशेषतः॥ ३२

यथा त्वं च तथैवैते मदीया वै न संशयः।
आदिरूपं च तन्नाम पूज्यत्वात्पूज्य उच्यते॥ ३३

उसके अनन्तर भगवान् विष्णुने उनका हाथ पकड़कर उन्हें गुरुको अर्पित कर दिया और अत्यन्त प्रेमके साथ विशेषरूपसे उनके नामोंको बताया और कहा—जैसे तुम मेरे हो, उसी प्रकार ये भी मेरे हैं, इसमें संशय नहीं है। तुम्हारा आदिरूप है, इसलिये आदिरूप यह नाम होगा और पूज्य होनेसे तुम पूज्य भी कहे जाओगे॥ ३२-३३॥

ऋषिर्यतिस्तथाकीर्य उपाध्याय इति स्वयम्।
इमान्यपि तु नामानि प्रसिद्धानि भवंतु वः॥ ३४
ममापि च भवद्भिश्च नाम ग्राह्यं शुभं पुनः।
अरिहन्निति तन्नाम ध्येयं पापप्रणाशनम्॥ ३५
भवद्भिश्चैव कर्तव्यं कार्यं लोकसुखावहम्।
लोकानुकूलं चरतां भविष्यत्युत्तमा गतिः॥ ३६

ऋषि, यति, कीर्य एवं उपाध्याय—ये नाम भी तुमलोगोंके प्रसिद्ध होंगे। तुमलोगोंको मेरे भी शुभ नामको ग्रहण करना चाहिये। अरिहन्—यह मेरा नाम ध्यानयोग्य तथा पापनाशक है। अब आपलोगोंको लोककल्याणकारी कार्य करते रहना चाहिये। लोकके अनुकूल आचरण करते हुए तुमलोगोंकी उत्तम गति होगी॥ ३४—३६॥

सनत्कुमार उवाच

ततः प्रणम्य तं मायी शिष्ययुक्तः स्वयं तदा।
जगाम त्रिपुरं सद्यः शिवेच्छाकारिणं मुदा॥ ३७
प्रविश्य तत्पुरं तूर्णं विष्णुना नोदितो वशी।
महामायाविना तेन ऋषिर्मायां तदाकरोत्॥ ३८
नगरोपवने कृत्वा शिष्यैर्युक्तः स्थितिं तदा।
मायां प्रवर्तयामास मायिनामपि मोहिनीम्॥ ३९

सनत्कुमार बोले—इसके बाद विष्णुको प्रणाम करके वह मायावी अपने शिष्योंके साथ प्रसन्नतापूर्वक शीघ्र ही शिवकी इच्छाके अनुसार कार्य करनेवाले त्रिपुरके पास गया। महामायावी विष्णुद्वारा प्रेरित वह जितेन्द्रिय ऋषि त्रिपुरमें शीघ्र प्रविष्ट होकर मायाचार करने लगा। उसने शिष्योंके सहित नगरके उपवनमें निवासकर बड़े-बड़े मायावियोंको भी मोहित करनेवाली माया फैलायी॥ ३७—३९॥

शिवार्चनप्रभावेण तन्माया सहसा मुने।
त्रिपुरे न चचालाशु निर्विण्णोऽभूत्तदा यतिः॥ ४०
अथ विष्णुं स सस्मार तुष्टाव च हृदा बहु।
नष्टोत्साहो विचेतस्को हृदयेन विदूयता॥ ४१
तत्स्मृतस्त्वरितं विष्णुः सस्मार शंकरं हृदि।
प्राप्याज्ञां मनसा तस्य स्मृतवान्नारदं द्रुतम्॥ ४२

हे मुने! जब शिवजीके अर्चनके प्रभावके कारण उसकी माया त्रिपुरमें सहसा न चल सकी, तो यति व्याकुल हो उठा। इसके बाद उत्साहहीन तथा चेतनारहित उसने दुखी मनसे विष्णुका स्मरण किया और हृदयसे उनकी स्तुति की। उसके द्वारा स्मरण किये गये विष्णुजीने हृदयमें शंकरजीका ध्यान किया और उनकी आज्ञा प्राप्तकर शीघ्र ही मनसे नारदजीका स्मरण किया॥ ४०—४२॥

स्मृतमात्रेण विष्णोश्च नारदः समुपस्थितः।
नत्वा स्तुत्वा पुरस्तस्य स्थितोऽभूत्साञ्जलिस्तदा॥ ४३
अथ तं नारदं प्राह विष्णुर्मतिमतां वरः।
लोकोपकारनिरतो देवकार्यकरः सदा॥ ४४
शिवाज्ञयोच्यते तात गच्छ त्वं त्रिपुरं द्रुतम्।
ऋषिस्तत्र गतः शिष्यैर्मोहार्थं तत्सुवासिनाम्॥ ४५

विष्णुजीके स्मरण करते ही नारदजी उपस्थित हुए और उन्हें प्रणामकर तथा उनकी स्तुतिकर हाथ जोड़े हुए वे उनके आगे खड़े हो गये। तब बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विष्णुजीने नारदजीसे कहा—आप तो सर्वदा लोकोपकारमें निरत तथा देवताओंका कार्य करनेवाले हैं। हे तात! मैं शिवजीकी आज्ञासे कहता हूँ कि आप शीघ्र ही त्रिपुरमें जायँ, उस पुरके निवासियोंको मोहित करनेके लिये एक ऋषि अपने शिष्योंके साथ वहाँ गये हैं॥ ४३—४५॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य नारदो मुनिसत्तमः।
गतस्तत्र द्रुतं यत्र स ऋषिर्मायिनां वरः॥ ४६
नारदोऽपि तथा मायी नियोगान्मायिनः प्रभोः।
प्रविश्य तत्पुरं तेन मायिना सह दीक्षितः॥ ४७
ततश्च नारदो गत्वा त्रिपुराधीशसन्निधौ।
क्षेमप्रश्नादिकं कृत्वा राज्ञे सर्वं न्यवेदयत्॥ ४८

सनत्कुमार बोले—उनका यह वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारदजी बड़ी शीघ्रतासे वहाँ गये, जहाँ मायावियोंमें श्रेष्ठ वह ऋषि था। नारदजी भी बड़े मायावी थे, उन्होंने मायावी प्रभु [विष्णु]-की आज्ञासे उस पुरमें प्रवेशकर उस मायावीसे दीक्षा ग्रहण कर ली। उसके बाद नारदजीने त्रिपुराधिपतिके पास जाकर उसका कुशल-मंगल आदि पूछकर राजासे सारा वृत्तान्त कहा॥ ४६—४८॥

नारद उवाच

कश्चित्समागतश्चात्र यतिर्धर्मपरायणः।
सर्वविद्याप्रकृष्टो हि वेदविद्यापरान्वितः॥ ४९
दृष्ट्वा च बहवो धर्मा नैतेन सदृशाः पुनः।

नारदजी बोले—[हे राजन्!] धर्मपरायण सभी विद्याओंमें पारंगत और वेदविद्यामें प्रवीण कोई यति आपके नगरमें आया है। हमने बहुत धर्म देखे हैं, परंतु इसके समान नहीं। इसके सनातनधर्मको देखकर हमने

वयं सुदीक्षिताश्चात्र दृष्ट्वा धर्मं सनातनम्॥ ५०
तवेच्छा यदि वर्तेत तद्धर्मे दैत्यसत्तम।
तद्धर्मस्य महाराज ग्राह्या दीक्षा त्वया पुनः॥ ५१

इससे दीक्षा ले ली है। अतः हे दैत्यसत्तम! हे महाराज! यदि आपकी भी इच्छा उस धर्ममें हो, तो आप भी उस धर्मकी दीक्षा ग्रहण कर लें॥ ४९—५१॥

सनत्कुमार उवाच

तदीयं स वचः श्रुत्वा महदर्थसुगर्भितम्।
विस्मितो हृदि दैत्येशो जगौ तत्र विमोहितः॥ ५२
नारदो दीक्षितो यस्माद्वयं दीक्षामवाप्नुमः।
इत्येवं च विदित्वा वै जगाम स्वयमेव ह॥ ५३

सनत्कुमार बोले—नारदजीका विशद अर्थगर्भित वचन सुनकर वह दैत्याधिपति बड़ा विस्मित हो उठा और मोहित होकर मनमें कहने लगा कि जब नारदजीने स्वयं दीक्षा ली है, तो हम भी उससे दीक्षा ग्रहण कर लें—ऐसा सोचकर वह स्वयं वहाँ गया॥ ५२-५३॥

तद्रूपं च तदा दृष्ट्वा मोहितो मायया तथा।
उवाच वचनं तस्मै नमस्कृत्य महात्मने॥ ५४

उसके स्वरूपको देखकर उसकी मायासे मोहित दैत्यने उस महात्माको नमस्कार करके यह वचन कहा—॥ ५४॥

त्रिपुराधिप उवाच

दीक्षा देया त्वया मह्यं निर्मलाशय भो ऋषे।
अहं शिष्यो भविष्यामि सत्यं सत्यं न संशयः॥ ५५

त्रिपुराधिप बोला—पवित्र अन्तःकरणवाले हे ऋषे! आप मुझे भी दीक्षा दीजिये, मैं आपका शिष्य बनूँगा, यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं है॥ ५५॥

इत्येवं तु वचः श्रुत्वा दैत्यराजस्य निर्मलम्।
प्रत्युवाच सुयत्नेन ऋषिः स च सनातनः॥ ५६
मदीया करणीया स्याद्यद्याज्ञा दैत्यसत्तम।
तदा देया मया दीक्षा नान्यथा कोटियत्नतः॥ ५७
इत्येवं तु वचः श्रुत्वा राजा मायामयोऽभवत्।
उवाच वचनं शीघ्रं यतिं तं हि कृताञ्जलिः॥ ५८

दैत्यराजके इस निर्मल वचनको सुनकर उस सनातन ऋषिने प्रयत्नके साथ कहा—हे दैत्यसत्तम! यदि तुम मेरी आज्ञाका सर्वथा पालन करोगे, तभी मैं दीक्षा दे सकता हूँ, अन्यथा करोड़ों यत्न करनेपर भी दीक्षा नहीं दूँगा। इस प्रकार यह वचन सुनकर राजा मायाके अधीन हो गया और हाथ जोड़कर बड़ी शीघ्रतासे यतिसे यह वचन कहने लगा—॥ ५६—५८॥

दैत्य उवाच

यथाज्ञां दास्यसि त्वं हि तत्तथैव न चान्यथा।
त्वदाज्ञां नोल्लंघयिष्ये सत्यं सत्यं न संशयः॥ ५९

दैत्यराज बोला—आप जैसी आज्ञा देंगे, मैं वैसा ही करूँगा। उसके विपरीत नहीं करूँगा, मैं आपकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करूँगा, यह सत्य है—सत्य है, इसमें संशय नहीं है॥ ५९॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य त्रिपुराधीशितुस्तदा।
दूरीकृत्य मुखाद्वस्त्रमुवाच ऋषिसत्तमः॥ ६०
दीक्षां गृह्णीष्व दैत्येन्द्र सर्वधर्मोत्तमोत्तमाम्।
येन दीक्षाविधानेन प्राप्स्यसि त्वं कृतार्थताम्॥ ६१

सनत्कुमार बोले—त्रिपुराधिपतिका यह वचन सुनकर उस ऋषिश्रेष्ठने अपने मुखसे वस्त्र हटाकर उससे कहा—हे दैत्येन्द्र! आप सभी धर्मोंमें परम उत्तम इस दीक्षाको ग्रहण कीजिये, जिस दीक्षाके विधानसे तुम कृतार्थ हो जाओगे॥ ६०-६१॥

इत्युक्त्वा स तु मायावी दैत्यराजाय सत्वरम्।
ददौ दीक्षां स्वधर्मोक्तां तस्मै विधिविधानतः॥ ६२
दैत्यराजे दीक्षिते च तस्मिन्ससहजे मुने।
सर्वे च दीक्षिता जातास्तत्र त्रिपुरवासिनः॥ ६३

[सनत्कुमार बोले—] ऐसा कहकर उस मायावीने विधि-विधानके साथ अपने धर्ममें बतायी गयी दीक्षा उस दैत्यराजको शीघ्र ही प्रदान की। हे मुने! अपने सहोदरोंके सहित उस दैत्यराजके दीक्षित हो जानेपर सभी त्रिपुरवासी भी उस धर्ममें दीक्षित हो गये॥ ६२-६३॥

मुनेः शिष्यैः प्रशिष्यैश्च व्याप्तमासीद् द्रुतं तदा।
महामायाविनस्तत्तु त्रिपुरं सकलं मुने॥ ६४

हे मुने! उस समय महामायावी उस ऋषिके शिष्यों तथा प्रशिष्योंसे वह सम्पूर्ण त्रिपुर शीघ्र ही व्याप्त हो गया॥ ६४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे सनत्कुमारपाराशर्य-संवादे त्रिपुरदीक्षाविधानं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें सनत्कुमारपाराशर्यसंवादमें त्रिपुरदीक्षाविधानवर्णन नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

मायावी यतिद्वारा अपने धर्मका उपदेश, त्रिपुरवासियोंका उसे स्वीकार करना, वेदधर्मके नष्ट हो जानेसे त्रिपुरमें अधर्माचरणकी प्रवृत्ति

व्यास उवाच

दैत्यराजे दीक्षिते च मायिना तेन मोहिते।
किमुवाच तदा मायी किं चकार स दैत्यपः॥ १

व्यासजी बोले—उस मायावीके द्वारा मोहित दैत्यराजके दीक्षित हो जानेपर उस मायावीने क्या कहा और दैत्यराजने क्या किया?॥ १॥

सनत्कुमार उवाच

दीक्षां दत्त्वा यतिस्तस्मा अरिहन्नारदादिभिः।
शिष्यैः सेवितपादाब्जो दैत्यराजानमब्रवीत्॥ २

सनत्कुमार बोले—उसे दीक्षा देकर नारदादि शिष्योंके द्वारा सेवित चरणकमलोंवाले अरिहन् यतिने दैत्यराजसे कहा—॥ २॥

अरिहन्नुवाच

शृणु दैत्यपते वाक्यं मम संज्ञानगर्भितम्।
वेदान्तसारसर्वस्वं रहस्यं परमोत्तमम्॥ ३
अनादिसिद्धः संसारः कर्तृकर्मविवर्जितः।
स्वयं प्रादुर्भवत्येव स्वयमेव विलीयते॥ ४
ब्रह्मादिस्तंबपर्यन्तं यावद्देहनिबंधनम्।
आत्मैवैकेश्वरस्तत्र न द्वितीयस्तदीशिता॥ ५
यद् ब्रह्मविष्णुरुद्राख्यास्तदाख्या देहिनामिमाः।
आख्या यथास्मदादीनामरिहन्नादिरुच्यते॥ ६

अरिहन् बोले—हे दैत्यराज! मेरे वचनको सुनो, जो वेदान्तका सार-सर्वस्व, परमोत्तम तथा रहस्यमय है। यह संसार कर्ता तथा कर्मसे रहित और अनादिकालसे स्वयंसिद्ध है। यह स्वयं उत्पन्न होता है तथा स्वयं विनष्ट भी हो जाता है। ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जितने भी शरीरधारी हैं, उनका एक आत्मा ही ईश्वर है, कोई दूसरा उनका शासक नहीं है। जिस प्रकार हम शरीरधारियोंके नाम हैं, उसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश आदि—ये नाम उन नामधारियोंके हैं, अनादि तो एक अरिहन् ही है॥ ३—६॥

देहो यथास्मदादीनां स्वकालेन विलीयते।
ब्रह्मादिमशकांतानां स्वकालाल्लीयते तथा॥ ७

जिस प्रकार हमलोगोंका शरीर समय आनेपर नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार ब्रह्मासे लेकर मच्छरतकका शरीर अपने समयसे नष्ट हो जाया करता है॥ ७॥

विचार्यमाणे देहेऽस्मिन्न किंचिदधिकं क्वचित्।
आहारो मैथुनं निद्रा भयं सर्वत्र यत्समम्॥ ८

विचार करनेपर ज्ञात होता है कि शरीरमें कहीं भी कोई विशेषता नहीं है; क्योंकि सभी जीवधारियोंमें आहार, मैथुन, निद्रा तथा भय समान हैं॥ ८॥

निराहारपरीमाणं प्राप्य सर्वो हि देहभृत्।
सदृशीमेव संतृप्तिं प्राप्नुयान्नाधिकेतराम्॥ ९

यथा वितृषिताः स्याम पीत्वा पेयं मुदा वयम्।

सभी शरीरधारी निराहार रहनेके उपरान्त भोजन प्राप्त करनेपर समान रूपसे तृप्त होते हैं, कम या अधिक नहीं। जैसे जब हम प्यासे होते हैं, तब प्रसन्नतापूर्वक जल पीकर तृप्त होते हैं, उसी प्रकार

तृषितास्तु तथान्येऽपि न विशेषोऽल्पकोऽधिकः॥ १०
सन्तु नार्यः सहस्राणि रूपलावण्यभूमयः।
परं निधुवने काले ह्यैकेवेहोपयुज्यते॥ ११

अश्वाः पराः शताः सन्तु सन्त्वनेकेऽप्यनेकधा।
अधिरोहे तथाप्येको न द्वितीयस्तथात्मनः॥ १२

पर्यङ्कशायिनां स्वापे सुखं यदुपजायते।
तदेव सौख्यं निद्राभिर्भूतभूशायिनामपि॥ १३

यथैव मरणाद्भीतिरस्मदादिवपुष्मताम्।
ब्रह्मादिकीटकांतानां तथा मरणतो भयम्॥ १४

सर्वे तनुभृतस्तुल्या यदि बुद्ध्या विचार्य्यते।
इदं निश्चित्य केनापि नो हिंस्यः कोऽपि कुत्रचित्॥ १५

धर्मो जीवदयातुल्यो न क्वापि जगतीतले।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्या जीवदया नृभिः॥ १६

एकस्मिन् रक्षिते जीवे त्रैलोक्यं रक्षितं भवेत्।
घातिते घातितं तद्वत्तस्माद्रक्षेन्न घातयेत्॥ १७

अहिंसा परमो धर्मः पापमात्मप्रपीडनम्।
अपराधीनता मुक्तिः स्वर्गोऽभिलषिताशनम्॥ १८

पूर्वसूरिभिरित्युक्तं सत्प्रमाणतया ध्रुवम्।
तस्मान्न हिंसा कर्त्तव्या नरैर्नरकभीरुभिः॥ १९

न हिंसासदृशं पापं त्रैलोक्ये सचराचरे।
हिंसको नरकं गच्छेत्स्वर्गं गच्छेदहिंसकः॥ २०

सन्ति दानान्यनेकानि किं तैस्तुच्छफलप्रदैः।
अभीतिसदृशं दानं परमेकमपीह न॥ २१

इह चत्वारि दानानि प्रोक्तानि परमर्षिभिः।
विचार्य नानाशास्त्राणि शर्मणेऽत्र परत्र च॥ २२

अन्य प्राणी भी तृप्त होते हैं, किसीमें न्यूनाधिक्य नहीं होता। रूप-लावण्यसे युक्त चाहे सहस्रों स्त्रियाँ क्यों न हों, किंतु सहवासकालमें एक ही स्त्रीका उपभोग सम्भव है॥ ९—११॥

अनेक प्रकारके घोड़े चाहे सौ हों, चाहे हजार हों, किंतु अपने अधिरोहणके समय एकका ही उपयोग सम्भव है, दूसरेका नहीं। निद्राकालमें पलंगपर सोनेवालेको जो सुख प्राप्त होता है, वही सुख निद्रासे व्याकुल हो पृथ्वीपर सोनेवालेको भी प्राप्त होता है। जैसे हम शरीरधारियोंको मरनेका भय है, उसी प्रकार ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त सभीको मृत्युसे भय होता है॥ १२—१४॥

यदि बुद्धिसे विचार किया जाय, तो सभी शरीरधारी समान हैं—ऐसा निश्चय करके किसीको भी कभी किसी जीवकी हिंसा नहीं करनी चाहिये। पृथ्वीतलपर जीवोंपर दया करनेके समान कोई दूसरा धर्म नहीं है, अतः ऐसा जानकर सभी प्रकारके प्रयत्नोंद्वारा मनुष्योंको जीवोंपर दया करनी चाहिये। एक जीवकी भी रक्षा करनेसे जैसे तीनों लोकोंकी रक्षा हो जाती है, उसी प्रकार एक जीवके मारनेसे त्रैलोक्यवधका पाप लगता है, इसलिये जीवोंकी रक्षा करनी चाहिये, हिंसा नहीं। अहिंसा सर्वश्रेष्ठ धर्म है तथा आत्माको पीड़ा पहुँचाना पाप है, दूसरोंके अधीन न रहना ही मुक्ति है और अभिलषित भोजनकी प्राप्ति ही स्वर्ग है। प्राचीन विद्वानोंने उत्तम प्रमाणके साथ ऐसा कहा है, इसलिये नरकसे डरनेवाले मनुष्योंको हिंसा नहीं करनी चाहिये। इस चराचर जगत्में हिंसाके समान कोई पाप नहीं है। हिंसक नरकमें जाता है तथा अहिंसक स्वर्गको जाता है॥ १५—२०॥

संसारमें अनेक प्रकारके दान हैं, परंतु तुच्छ फल देनेवाले उन दानोंसे क्या लाभ? अभयदानके सदृश कोई दूसरा दान नहीं है। मनीषियोंने अनेक शास्त्रोंका विचारकर इस लोक तथा परलोकमें कल्याणके लिये चार दानोंका वर्णन किया है॥ २१-२२॥

भीतेभ्यश्चाभयं देयं व्याधितेभ्यस्तथौषधम्।
देया विद्यार्थिनां विद्या देयमन्नं क्षुधातुरे॥ २३

यानि यानीह दानानि बहु मुन्युदितानि च।
जीवाभयप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ २४

भयभीत लोगोंको अभय प्रदान करना चाहिये, रोगियोंको औषधि देनी चाहिये, विद्यार्थियोंको विद्या देनी चाहिये तथा भूखोंको अन्न प्रदान करना चाहिये। अनेक मुनियोंने जो-जो दान कहे हैं, वे अभयदानकी सोलहवीं कलाकी भी बराबरी नहीं कर सकते॥ २३-२४॥

अविचिन्त्यप्रभावं हि मणिमंत्रौषधं बलम्।
तदभ्यस्यं प्रयत्नेन नामार्थोपार्जनाय वै॥ २५

मणि, मन्त्र एवं औषधिके प्रभाव तथा बलको अविचिन्त्य समझकर केवल यश तथा अर्थके उपार्जनके लिये ही उसका प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करना चाहिये॥ २५॥

अर्थानुपार्ज्य बहुशो द्वादशायतनानि वै।
परितः परिपूज्यानि किमन्यैरिह पूजितैः॥ २६

पंचकर्मेन्द्रियग्रामाः पंच बुद्धीन्द्रियाणि च।
मनो बुद्धिरिह प्रोक्तं द्वादशायतनं शुभम्॥ २७

बहुत धन उपार्जितकर द्वादशायतनोंका ही चारों ओरसे पूजन करना चाहिये, दूसरोंके पूजनसे क्या लाभ? पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन एवं बुद्धि—यही शुभ द्वादशायतन कहा गया है॥ २६-२७॥

इहैव स्वर्गनरकौ प्राणिनां नान्यतः क्वचित्।
सुखं स्वर्गः समाख्यातो दुःखं नरकमेव हि॥ २८
सुखेषु भुज्यमानेषु यत्स्याद्देहविसर्ज्जनम्।
अयमेव परो मोक्षो विज्ञेयस्तत्त्वचिंतकैः॥ २९
वासनासहिते क्लेशसमुच्छेदे सति ध्रुवम्।
अज्ञानोपरमो मोक्षो विज्ञेयस्तत्त्वचिंतकैः॥ ३०

प्राणियोंके लिये यहींपर स्वर्ग तथा नरक है, अन्यत्र कहीं नहीं। सुखका ही नाम स्वर्ग है तथा दुःखको नरक कहा गया है। सुखोंका भोग कर लेनेपर जो इस देहका परित्याग होता है, तत्त्वचिन्तकोंको इसे ही परम मोक्ष जानना चाहिये। वासनासहित समस्त क्लेशोंके नष्ट हो जानेपर अज्ञानके नाशको तत्त्वचिन्तकोंको मोक्ष जानना चाहिये॥ २८—३०॥

प्रामाणिकी श्रुतिरियं प्रोच्यते वेदवादिभिः।
न हिंस्यात्सर्वभूतानि नान्या हिंसाप्रवर्तिका॥ ३१

अग्निष्टोमीयमिति या भ्रामिका साऽसतामिह।
न सा प्रमाणं ज्ञातॄणां पश्वालंभनकारिका॥ ३२

वृक्षांश्छित्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिरकर्द्दमम्।
दग्ध्वा वह्नौ तिलाज्यादि चित्रं स्वर्गोऽभिलष्यते॥ ३३

वेदवेत्ता इस श्रुतिको प्रामाणिक कहते हैं कि किसी भी प्राणीकी हिंसा न करे। हिंसामें प्रवर्तन करनेवाली अन्य कोई श्रुति उपलब्ध नहीं है। अग्निष्टोमादि यज्ञोंसे सम्बद्ध जो पश्वालम्भन-श्रुति है, वह तो भ्रम उत्पन्न करनेवाली है और असज्जनोंके लिये है। पशुवधसे सम्बन्धित श्रुति तो ज्ञानियोंके लिये प्रमाण नहीं है। यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है कि वृक्षोंको काटकर, पशुओंका वधकर, उनके रुधिरका कीच बनाकर तथा आगमें तिल-घी आदिको जलाकर लोग स्वर्गकी अभिलाषा करते हैं॥ ३१—३३॥

इत्येवं स्वमतं प्रोच्य यतिस्त्रिपुरनायकम्।
श्रावयित्वाखिलान् पौरानुवाच पुनरादरात्॥ ३४

दृष्टार्थप्रत्ययकरान्देहसौख्यैकसाधकान्।
बौद्धागमविनिर्दिष्टान्धर्मान्वेदपरांस्ततः॥ ३५

इस प्रकार उस त्रिपुराधिपतिसे अपना विचार कहकर समस्त त्रिपुरवासियोंको सुनाकर वह यति आदरसे वेदोंके विपरीत, देहमात्रको सुख देनेवाले और प्रत्यक्षपर ही विश्वास करनेवाले धर्मोंका पुनः वर्णन करने लगा—॥ ३४-३५॥

आनंदं ब्रह्मणो रूपं श्रुत्यैवं यन्निगद्यते।
तत्तथैवेह मंतव्यं मिथ्या नानात्वकल्पना॥ ३६

यावत्स्वस्थमिदं वर्ष्म यावन्नेन्द्रियविक्लवः।
यावज्जरा च दूरेऽस्ति तावत्सौख्यं प्रसाधयेत्॥ ३७

श्रुति जो ऐसा कहती है कि आनन्द ही ब्रह्मका रूप है, उसे सही मानना चाहिये, अनेक धर्मोंकी कल्पना मिथ्या है। जबतक यह शरीर स्वस्थ है, जबतक इन्द्रियाँ निर्बल नहीं होतीं और जबतक वृद्धावस्था दूर है, तबतक सुखका उपभोग करते रहना चाहिये॥ ३६-३७॥

अस्वास्थ्येन्द्रियवैकल्ये वार्द्धके तु कुतः सुखम्।
शरीरमपि दातव्यमर्थिभ्योऽतः सुखेप्सुभिः॥ ३८

अस्वस्थ हो जानेपर, इन्द्रियोंके विकल हो जानेपर एवं वृद्धावस्था आ जानेपर सुखकी प्राप्ति किस प्रकारसे हो सकती है? इसलिये सुख चाहनेवालोंको अपना शरीर भी याचना करनेवालोंको प्रदान कर देना चाहिये॥ ३८॥

याचमानमनोवृत्तिप्रीणने यस्य नो जनिः।
तेन भूर्भारवत्येषा समुद्रागद्रुमैर्न हि॥ ३९

जिसका जन्म माँगनेवालोंकी मनोवृत्तिको प्रसन्न करनेके लिये नहीं हुआ, उसीसे यह पृथ्वी भारयुक्त है, समुद्रों, पर्वतों तथा वृक्षोंसे नहीं॥ ३९॥

सत्वरं गत्वरो देहः संचयाः सपरिक्षयाः।
इति विज्ञाय विज्ञाता देहसौख्यं प्रसाधयेत्॥ ४०

यह शरीर शीघ्र ही नष्ट होनेवाला है तथा संचित धन विनष्ट हो जानेवाले हैं—ऐसा जानकर ज्ञानवान्‌को देहसुखका उपाय करते रहना चाहिये॥ ४०॥

श्ववायसकृमीणां च प्रातर्भोज्यमिदं वपुः।
भस्मान्तं तच्छरीरं च वेदे सत्यं प्रपठ्यते॥ ४१

मुधा जातिविकल्पोऽयं लोकेषु परिकल्प्यते।
मानुष्ये सति सामान्ये कोऽधमः कोऽथ चोत्तमः॥ ४२

यह शरीर कुत्तों, कौवों तथा कीटोंका प्रातःकालीन भोजन है और शरीर अन्तमें भस्म होनेवाला है—ऐसा वेदमें ठीक ही कहा गया है। लोकोंमें जाति-कल्पना व्यर्थ ही की गयी है, सभी मनुष्य समान हैं तो कौन उच्च है और कौन नीच है!॥ ४१-४२॥

ब्रह्मादिसृष्टिरेषेति प्रोच्यते वृद्धपूरुषैः।
तस्य जातौ सुतौ दक्षमरीची चेति विश्रुतौ॥ ४३

प्राचीन पुरुष कहते हैं कि इस सृष्टिके आदिमें ब्रह्मा उत्पन्न हुए, उनके विख्यात दक्ष तथा मरीचि दो पुत्र उत्पन्न हुए॥ ४३॥

मारीचेन कश्यपेन दक्षकन्याः सुलोचनाः।
धर्मेण किल मार्गेण परिणीतास्त्रयोदश॥ ४४

अपीदानींतनैर्मर्त्यैरल्पबुद्धिपराक्रमैः।
अपि गम्यस्त्वगम्योऽयं विचारः क्रियते मुधा॥ ४५

मुखबाहूरुसञ्जातं चातुर्वर्ण्यं सहोदितम्।
कल्पनेयं कृता पूर्वैर्न घटेत विचारतः॥ ४६

जब मरीचिपुत्र कश्यपने दक्षकी सुन्दर नेत्रवाली तेरह कन्याओंसे धर्मपूर्वक विवाह किया तो फिर इस समयके अल्पबुद्धि तथा अल्प पराक्रमवाले लोगोंके द्वारा यह गम्य है, यह अगम्य है—ऐसा विचार व्यर्थ ही किया जाता है। मुख, बाहु, जंघा एवं चरणसे चारों वर्ण उत्पन्न हुए हैं—पूर्व पुरुषोंने यह कल्पना की है, जो कि विचार करनेपर ठीक नहीं लगती है॥ ४४—४६॥

एकस्यां च तनौ जाता एकस्माद्यदि वा क्वचित्।
चत्वारस्तनयास्तत्किं भिन्नवर्णत्वमाप्नुयुः॥ ४७

वर्णावर्णविभागोऽयं तस्मान्न प्रतिभासते।
अतो भेदो न मंतव्यो मानुष्ये केनचित्क्वचित्॥ ४८

एक ही पुरुषसे एक ही शरीरसे यदि चार पुत्र उत्पन्न हुए तो वे भिन्न-भिन्न वर्णोंके किस प्रकार हो सकते हैं। अतः वर्ण एवं अवर्णका यह विभाग उचित नहीं प्रतीत होता है और इसलिये किसीको भी मनुष्यमें कोई भेद नहीं मानना चाहिये॥ ४७-४८॥

सनत्कुमार उवाच

इत्थमाभाष्य दैत्येशं पौरांश्च स यतिर्मुने।
सशिष्यो वेदधर्मांश्च नाशयामास चादरात्॥ ४९
स्त्रीधर्मं खंडयामास पातिव्रत्यपरं महत्।
जितेन्द्रियत्वं सर्वेषां पुरुषाणां तथैव सः॥ ५०
देवधर्मान्विशेषेण श्राद्धधर्मांस्तथैव च।
मखधर्मान् व्रतादींश्च तीर्थश्राद्धं विशेषतः॥ ५१
शिवपूजां विशेषेण लिंगाराधनपूर्विकाम्।
विष्णुसूर्यगणेशादिपूजनं विधिपूर्वकम्॥ ५२
स्नानदानादिकं सर्वं पर्वकाले विशेषतः।
खंडयामास स यतिर्मायी मायाविनां वरः॥ ५३
किं बहूक्तेन विप्रेन्द्र त्रिपुरे तेन मायिना।
वेदधर्माश्च ये केचित्ते सर्वे दूरतः कृताः॥ ५४

सनत्कुमार बोले—हे मुने! दैत्यपति तथा पुरवासियोंसे आदरपूर्वक ऐसा कहकर शिष्यों-सहित उस यतिने वेदधर्मोंका नाश कर दिया। पातिव्रत्यरूपी महान् स्त्रीधर्मको तथा समस्त पुरुषोंके जितेन्द्रियत्वधर्मको खण्डित कर दिया। देवधर्म, श्राद्धधर्म, यज्ञधर्म, व्रत-तीर्थ विशेषरूपसे श्राद्ध, शिवपूजा, लिंगार्चन, विष्णु-सूर्य-गणेश आदिका विधिपूर्वक पूजन और विशेष रूपसे पर्वकालमें किये जानेवाले स्नान-दान आदि इन सबका खण्डन किया। हे विप्रेन्द्र! बहुत कहनेसे क्या लाभ! मायावियोंमें श्रेष्ठ उस मायावी यतिने त्रिपुरमें जो कुछ भी धर्म थे, उन सबको दूर कर दिया॥ ४९—५४॥

यतिधर्माश्रयाः सर्वा मोहितास्त्रिपुरांगनाः।
भर्तृशुश्रूषणवतीं विजहुर्मतिमुत्तमाम्॥ ५५
अभ्यस्याकर्षणीं विद्यां वशीकृत्यमयीमपि।
पुरुषाः सफलीचक्रुः परदारेषु मोहिताः॥ ५६

त्रिपुरकी सभी स्त्रियाँ उस यतिके धर्मका आश्रय लेकर मोहमें पड़ गयीं और उन्होंने पतिकी सेवाके उत्तम विचारका त्याग कर दिया। आकर्षण एवं वशीकरण विद्याका अभ्यासकर मोहित हुए पुरुष दूसरोंकी स्त्रियोंमें अपने मनोरथ सफल करने लगे॥ ५५-५६॥

अंतःपुरचरा नार्यस्तथा राजकुमारकाः।
पौराः पुरांगनाश्चापि सर्वे तैश्च विमोहिताः॥ ५७

अन्तःपुरकी स्त्रियाँ, राजकुमार, पुरवासी, पुरकी स्त्रियाँ आदि सभी मोहित हो गये॥ ५७॥

एवं पौरेषु सर्वेषु निजधर्मेषु सर्वथा।
पराङ्मुखेषु जातेषु प्रोल्ललास वृषेतरः॥ ५८

इस प्रकार सभी पुरवासियोंके अपने धर्मोंसे सर्वथा विमुख हो जानेपर अधर्मकी वृद्धि होने लगी॥ ५८॥

माया च देवदेवस्य विष्णोस्तस्याज्ञया प्रभो।
अलक्ष्मीश्च स्वयं तस्य नियोगात्त्रिपुरं गता॥ ५९

हे प्रभो! उन देवाधिदेव विष्णुजीकी मायासे और उनकी आज्ञासे स्वयं दरिद्रताने त्रिपुरमें प्रवेश किया॥ ५९॥

या लक्ष्मीस्तपसा तेषां लब्धा देवेश्वराद्वरात्।
बहिर्गता परित्यज्य नियोगाद्ब्रह्मणः प्रभोः॥ ६०

उन लोगोंने जिस महालक्ष्मीको तपस्याके द्वारा श्रेष्ठ देवेश्वरसे प्राप्त किया था, प्रभु ब्रह्मदेवकी आज्ञासे उन्हें छोड़कर वह बाहर चली गयी॥ ६०॥

बुद्धिमोहं तथाभूतं विष्णोर्मायाविनिर्मितम्।
तेषां दत्त्वा क्षणादेव कृतार्थोऽभूत्स नारदः॥ ६१
नारदोऽपि तथारूपो यथा मायी तथैव सः।
तथापि विकृतो नाभूत्पारमेशादनुग्रहात्॥ ६२
आसीत्कुंठितसामर्थ्यो दैत्यराजोऽपि भो मुने।
भ्रातृभ्यां सहितस्तत्र मयेन च शिवेच्छया॥ ६३

इस प्रकार विष्णुकी मायासे निर्मित उस प्रकारके बुद्धिमोहको उन्हें क्षणभरमें देकर वे नारदजी कृतार्थ हो गये। उन नारदने भी उस मायावी-जैसा रूप धारण कर लिया था, फिर भी परमेश्वरके अनुग्रहसे वे विकारयुक्त नहीं हुए। हे मुने! दोनों भाइयों तथा मयसहित वह दैत्यराज भी शिवजीकी इच्छासे पराक्रमहीन हो गया॥ ६१—६३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे त्रिपुरमोहनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें त्रिपुरमोहनवर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

त्रिपुरध्वंसके लिये देवताओंद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति

व्यास उवाच

तस्मिन् दैत्याधिपे पौरे सभ्रातरि विमोहिते।
सनत्कुमार किं चासीत्तदाचक्ष्वाखिलं विभो॥ १

सनत्कुमार उवाच

त्रिपुरे च तथाभूते दैत्ये त्यक्तशिवार्चने।
स्त्रीधर्मे निखिले नष्टे दुराचारे व्यवस्थिते॥ २
कृतार्थ इव लक्ष्मीशो देवैः सार्द्धमुमापतिम्।
निवेदितुं तच्चरित्रं कैलासमगमद्धरिः॥ ३

तस्योपकंठं स्थित्वाऽसौ देवैः सह रमापतिः।
ततो भूरि स च ब्रह्मा परमेण समाधिना॥ ४
मनसा प्राप्य सर्वज्ञं ब्रह्मणा स हरिस्तदा।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः शंकरं पुरुषोत्तमः॥ ५

विष्णुरुवाच

महेश्वराय देवाय नमस्ते परमात्मने।
नारायणाय रुद्राय ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणे॥ ६
एवं कृत्वा महादेवं दंडवत् प्रणिपत्य ह।
जजाप रुद्रमंत्रं च दक्षिणामूर्तिसंभवम्॥ ७
जले स्थित्वा सार्द्धकोटिप्रमितं तन्मनाः प्रभुः।
संस्मरन् मनसा शंभुं स्वप्रभुं परमेश्वरम्॥ ८
तावद्देवास्तदा सर्वे तन्मनस्का महेश्वरम्॥ ९

देवा ऊचुः

नमः सर्वात्मने तुभ्यं शंकरायार्तिहारिणे।
रुद्राय नीलकंठाय चिद्रूपाय प्रचेतसे॥ १०
गतिर्नः सर्वदा त्वं हि सर्वापद्विनिवारकः।
त्वमेव सर्वदास्माभिर्वंद्यो देवारिसूदन॥ ११
त्वमादिस्त्वमनादिश्च स्वानंदश्चाक्षयः प्रभुः।
प्रकृतेः पुरुषस्यापि साक्षात्स्त्रष्टा जगत्प्रभुः॥ १२

त्वमेव जगतां कर्ता भर्ता हर्ता त्वमेव हि।
ब्रह्मा विष्णुर्हरो भूत्वा रजःसत्त्वतमोगुणैः॥ १३

तारकोऽसि जगत्यस्मिन् सर्वेषामधिपोऽव्ययः।
वरदो वाङ्मयो वाच्यो वाच्यवाचकवर्जितः॥ १४

व्यासजी बोले—हे सनत्कुमार! हे विभो! भाइयों तथा पुरवासियोंसहित उस दैत्यराजके मोहित हो जानेपर क्या हुआ, वह सारा वृत्तान्त कहिये॥ १॥

सनत्कुमार बोले—त्रिपुरके वैसा हो जानेपर, उस दैत्यके शिवार्चनका त्याग कर देनेपर और वहाँका सम्पूर्ण स्त्रीधर्म नष्ट हो जानेपर तथा दुराचारके फैल जानेपर लक्ष्मीपति विष्णु कृतार्थ होकर देवताओंके साथ उसके चरित्रको शिवजीसे कहनेके लिये कैलास पहुँचे॥ २-३॥

देवताओंके साथ ब्रह्मासहित उनके पास स्थित होकर उन पुरुषोत्तम रमापति विष्णुने समाधिसे तथा मनसे प्राप्त होनेवाले उन सर्वज्ञ परमेश्वर सदाशिवकी इष्ट वाणीसे स्तुति की॥ ४-५॥

विष्णुजी बोले—आप महेश्वर, देव, परमात्मा, नारायण, रुद्र, ब्रह्मा तथा परब्रह्मस्वरूपको नमस्कार है। ऐसा कहकर महादेवको दण्डवत् प्रणाम करके शिवमें अपना मन लगाये हुए प्रभु विष्णुने अपने स्वामी उन परमेश्वर शिवका मनसे स्मरण करते हुए जलमें स्थित हो दक्षिणामूर्तिसे उत्पन्न हुए रुद्रमन्त्रका डेढ़ करोड़ जप किया। उस समय सभी देवता भी उन महेश्वरमें अपना मन लगाकर उनकी स्तुति करने लगे— ॥ ६—९॥

देवता बोले—सबमें आत्मरूपसे विराजमान, सबके दुःखोंको दूर करनेवाले, रुद्र, नीलकण्ठ, चैतन्यरूप एवं प्रचेता आप शंकरको नमस्कार है॥ १०॥

आप हम सबकी आपत्तियोंको दूर करनेवाले हैं तथा हम सबकी गति हैं। हे दैत्यसूदन! आप सर्वदा हमलोगोंसे वन्दनीय हैं। आप आदि, अनादि, स्वात्मानन्द, अक्षयरूप तथा प्रभु हैं। आप ही जगत्प्रभु तथा साक्षात् प्रकृति एवं पुरुषके भी स्रष्टा हैं॥ ११-१२॥

आप ही रज, सत्त्व तथा तमोगुणसे युक्त होकर ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्रस्वरूप होकर जगत्का सृजन, पालन तथा संहार करते हैं। आप इस जगत्में सबको तारनेवाले, सबके स्वामी, अविनाशी, वर देनेवाले, वाणीमय, वाच्य और वाच्य-वाचकभावसे रहित भी हैं॥ १३-१४॥

याच्यो मुक्त्यर्थमीशानो योगिभिर्योगवित्तमैः।
हृत्पुंडरीकविवरे योगिनां त्वं हि संस्थितः॥ १५

योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ योगिजन मुक्तिके लिये आप ईशानसे ही याचना करते हैं। आप ही योगियोंके हृदयरूप कमलमें विराजमान हैं॥ १५॥

वदंति वेदास्त्वां संतः परब्रह्मस्वरूपिणम्।
भवन्तं तत्त्वमित्यद्य तेजोराशिं परात्परम्॥ १६

सभी वेद एवं सन्तगण आपको ही तेजोराशि, परात्परस्वरूप और तत्त्वमसि इत्यादि वाक्यसे जाननेयोग्य परब्रह्मस्वरूप कहते हैं॥ १६॥

परमात्मानमित्याहुरस्मिन् जगति यद्विभो।
त्वमेव शर्व सर्वात्मन् त्रिलोकाधिपते भव॥ १७

हे विभो! हे शर्व! हे सर्वात्मन्! हे त्रिलोकाधिपते! हे भव! इस संसारमें जिसे परमात्मा कहा जाता है, वह आप ही हैं॥ १७॥

दृष्टं श्रुतं स्तुतं सर्वं ज्ञायमानं जगद्गुरो।
अणोरल्पतरं प्राहुर्महतोऽपि महत्तरम्॥ १८

हे जगद्गुरो! आपको ही दृष्ट, श्रुत, जाननेयोग्य, छोटेसे भी छोटा एवं महान्‌से भी महान् कहा गया है॥ १८॥

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रवणघ्राणं त्वां नमामि च सर्वतः॥ १९

आपके हाथ, चरण, नेत्र, सिर, मुख, कान तथा नासिका सभी दिशाओंमें व्याप्त हैं, अतः मैं आपको सभी ओरसे नमस्कार करता हूँ॥ १९॥

सर्वज्ञं सर्वतो व्यापिन् सर्वेश्वरमनावृतम्।
विश्वरूपं विरूपाक्षं त्वां नमामि च सर्वतः॥ २०

हे सर्वव्यापिन्! आप सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, अनावृत, विश्वरूप, विरूपाक्षको मैं सब ओरसे नमस्कार करता हूँ॥ २०॥

सर्वेश्वरं भवाध्यक्षं सत्यं शिवमनुत्तमम्।
कोटिभास्करसंकाशं त्वां नमामि च सर्वतः॥ २१

सर्वेश्वर, संसारके अधिष्ठाता, सत्य, कल्याणकारी, सर्वोत्तम, करोड़ों सूर्यके समान प्रकाशमान आपको मैं सब ओरसे नमस्कार करता हूँ॥ २१॥

विश्वदेवमनाद्यन्तं षट्त्रिंशत्कमनीश्वरम्।
प्रवर्तकं च सर्वेषां त्वां नमामि च सर्वतः॥ २२

विश्वदेव, आदि-अन्तसे रहित, छत्तीस तत्त्वोंवाले, सबसे महान् और सबको प्रवृत्त करनेवाले—आपको मैं सब ओरसे नमस्कार करता हूँ॥ २२॥

प्रवर्तकं च प्रकृतेः सर्वस्य प्रपितामहम्।
सर्वविग्रहमीशं हि त्वां नमामि च सर्वतः॥ २३

प्रकृतिको प्रवृत्त करनेवाले, सबके प्रपितामह, सर्वविग्रह तथा ईश्वर आपको मैं सब ओरसे नमस्कार करता हूँ॥ २३॥

एवं वदंति वरदं सर्वावासं स्वयम्भुवम्।
श्रुतयः श्रुतिसारज्ञं श्रुतिसारविदश्च ये॥ २४

जो श्रुतियाँ तथा श्रुतिसिद्धान्तवेत्ता हैं, वे आपको ही वरद, सबका निवासस्थान, स्वयम्भू तथा श्रुतिसारज्ञाता कहते हैं॥ २४॥

अदृश्यमस्माभिरनेकभूतं
त्वया कृतं यद्भवताथ लोके।
त्वामेव देवासुरभूसुराश्च
अन्ये च वै स्थावरजंगमाश्च॥ २५

आपने इस लोकमें जो अनेक प्रकारकी सृष्टि की है, वह हमलोगोंके दृष्टिपथमें नहीं आ सकती। देवता, असुर, ब्राह्मण, स्थावर, जंगम तथा अन्य जो भी हैं, उनका कर्ता आपको ही कहते हैं॥ २५॥

पाह्यनन्यगतीन् शंभो सुरान्नो देववल्लभ।
नष्टप्रायांस्त्रिपुरतो विनिहत्यासुरान्क्षणात्॥ २६

हे शम्भो! हे देववल्लभ! क्षणभरमें असुरोंका वध करके त्रिपुराधिपके द्वारा विनष्ट किये जा रहे हम अनन्यगतिवाले देवताओंकी रक्षा कीजिये॥ २६॥

मायया मोहितास्तेऽद्य भवतः परमेश्वर।
विष्णुना प्रोक्तयुक्त्या त उज्झिता धर्मतः प्रभो॥ २७

हे परमेश्वर! हे प्रभो! इस समय वे असुर विष्णुजीके द्वारा बताये गये उपायसे आपकी मायाद्वारा मोहित हो रहे हैं और धर्मसे बहिर्मुख हो रहे हैं॥ २७॥

संत्यक्तसर्वधर्माश्च बौद्धागमसमाश्रिताः।
अस्मद्भाग्यवशाज्जाता दैत्यास्ते भक्तवत्सल॥ २८

हे भक्तवत्सल! उन दैत्योंने हमलोगोंके भाग्यसे समस्त धर्मोंका त्याग कर दिया है और वेदविरुद्ध धर्मोंका आश्रय ले लिया है॥ २८॥

सदा त्वं कार्यकर्त्ता हि देवानां शरणप्रद।
वयं ते शरणापन्ना यथेच्छसि तथा कुरु॥ २९

हे शरणप्रद! आप तो सदासे ही देवताओंका कार्य करनेवाले हैं और इस समय हम आपकी शरणमें आये हुए हैं, आप जैसा चाहें, वैसा करें॥ २९॥

सनत्कुमार उवाच

इति स्तुत्वा महेशानं देवास्तु पुरतः स्थिताः।
कृतांजलिपुटा दीना आसन् संनतमूर्तयः॥ ३०

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार महेश्वरकी स्तुतिकर वे देवता दीन हो हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर उनके आगे खड़े हो गये॥ ३०॥

स्तुतश्चैवं सुरेन्द्राद्यैर्विष्णोर्जाप्येन चेश्वरः।
अगच्छत्तत्र सर्वेशो वृषमारुह्य हर्षितः॥ ३१

इस प्रकार इन्द्रादि देवताओंके द्वारा स्तुति किये जानेपर तथा विष्णुके जपसे प्रसन्न हुए भगवान् सर्वेश्वर बैलपर सवार हो वहाँ गये॥ ३१॥

विष्णुमालिंग्य नंदीशादवारुह्य प्रसन्नधीः।
ददर्श सुदृशा तत्र नन्दीदत्तकरोऽखिलान्॥ ३२

वहाँपर नन्दीश्वरसे उतरकर विष्णुका आलिंगन करके प्रसन्नचित्तवाले प्रभु नन्दीश्वरपर हाथ रखकर सभीकी ओर मनोहर दृष्टिसे देखने लगे॥ ३२॥

अथ देवान् समालोक्य कृपादृष्ट्या हरिं हरः।
प्राह गंभीरया वाचा प्रसन्नः पार्वतीपतिः॥ ३३

तत्पश्चात् पार्वतीपति शंकर प्रसन्न होकर कृपादृष्टिसे देवताओं एवं विष्णुजीकी ओर देखकर गम्भीर वाणीमें कहने लगे—॥ ३३॥

शिव उवाच

ज्ञातं मयेदमधुना देवकार्यं सुरेश्वर।
विष्णोर्मायाबलं चैव नारदस्य च धीमतः॥ ३४

शिवजी बोले—हे सुरेश्वर! इस समय मैंने देवताओंका कार्य भलीभाँति जान लिया है तथा महाबुद्धिमान् विष्णु एवं नारदके मायाबलको भी मैं अच्छी तरह जानता हूँ॥ ३४॥

तेषामधर्मनिष्ठानां दैत्यानां देवसत्तम।
पुरत्रयविनाशं च करिष्येऽहं न संशयः॥ ३५

हे देवसत्तम! मैं उन अधर्मी दैत्यों तथा त्रिपुरका विनाश करूँगा, इसमें संशय नहीं है॥ ३५॥

परन्तु ते महादैत्या मद्भक्ता दृढमानसाः।
अथ वध्या मयैव स्युर्व्याजत्यक्तवृषोत्तमाः॥ ३६

किंतु दृढ़ मनवाले वे महादैत्य मेरे भक्त हैं, यद्यपि मायासे मोहित होकर उन्होंने धर्मका त्याग कर दिया है, इसलिये मैं किस प्रकार उनका वध कर सकता हूँ॥ ३६॥

विष्णुर्हन्यात्परो वाथ यत्त्याजितवृषाः कृताः।
दैत्या मद्भक्तिरहिताः सर्वे त्रिपुरवासिनः॥ ३७

जब त्रिपुरमें रहनेवाले सभी दैत्य मेरी भक्तिसे रहित हो गये हैं, तो उनका वध भगवान् विष्णु करेंगे, जिन्होंने बहानेसे दैत्योंको धर्मच्युत किया है॥ ३७॥

इति शंभोस्तु वचनं श्रुत्वा सर्वे दिवौकसः।
विमनस्का बभूवुस्ते हरिश्चापि मुनीश्वर॥ ३८

हे मुने! इस प्रकार शिवजीके वचनको सुनकर सभी देवता तथा विष्णु अनमने हो गये॥ ३८॥

देवान् विष्णुमुदासीनान् दृष्ट्वा च भवकृद्विधिः।
कृताञ्जलिपुटः शंभुं ब्रह्मा वचनमब्रवीत्॥ ३९

अनन्तर देवताओं एवं विष्णुको उदास देखकर सृष्टिकर्ता ब्रह्माने हाथ जोड़कर शिवजीसे कहा— ॥ ३९ ॥

ब्रह्मोवाच

न किंचिद्विद्यते पापं यस्मात्त्वं योगवित्तमः।
परमेशः परब्रह्म सदा देवर्षिरक्षकः॥ ४०

ब्रह्माजी बोले—[हे प्रभो!] आपको कोई पाप नहीं लगेगा; क्योंकि आप परम योगवेत्ता हैं, आप परमेश्वर, परब्रह्म तथा सर्वदा देवताओं एवं ऋषियोंके रक्षक हैं॥ ४० ॥

तवैव शासनात्ते वै मोहिताः प्रेरको भवान्।
त्यक्तस्वधर्मत्वत्पूजाः परवध्यास्तथापि न॥ ४१

आप ही प्रेरणा देनेवाले हैं। आपके ही शासनसे मोहित होकर उन्होंने अपने धर्म तथा आपकी पूजाका त्याग कर दिया है, फिर भी वे दूसरोंके द्वारा अवध्य हैं॥ ४१ ॥

अतस्त्वया महादेव सुरर्षिप्राणरक्षक।
साधूनां रक्षणार्थाय हंतव्या म्लेच्छजातयः॥ ४२

अतः हे महादेव! हे देवर्षिप्राणरक्षक! आप सज्जनोंकी रक्षाके लिये इन म्लेच्छजातियोंका वध कीजिये॥ ४२ ॥

राज्ञस्तस्य न तत्पापं विद्यते धर्मतस्तव।
तस्माद्रक्षेद्द्विजान् साधून् कंटकान् वै विशोधयेत्॥ ४३

राजाका कर्तव्य होता है कि धर्मकी रक्षा करे तथा पापियोंका वध करे। आप राजा हैं, इसलिये ब्राह्मण तथा साधुओंकी रक्षाके निमित्त स्वयं आपको इस कण्टकका शोधन करना चाहिये। ऐसा करनेसे आपको पाप नहीं लगेगा॥ ४३ ॥

एवमिच्छेदिहान्यत्र राजा चेद्राज्यमात्मनः।
प्रभुत्वं सर्वलोकानां तस्माद्रक्षस्व माचिरम्॥ ४४

यदि राजा इस प्रकार अपने राज्यकी रक्षा करे, तो उसे इस लोकमें सर्वलोकाधिपत्य तथा परम कल्याण प्राप्त होता है। इस कारण आप स्वयं त्रिपुरका वधकर इन देवताओंकी रक्षा कीजिये, [प्रभो!]विलम्ब न करें॥ ४४ ॥

मुनीन्द्रेशास्तथा यज्ञा वेदाः शास्त्रादयोऽखिलाः।
प्रजास्ते देवदेवेश ह्यहं विष्णुरपि ध्रुवम्॥ ४५
देवतासार्वभौमस्त्वं सम्राट् सर्वेश्वरः प्रभो।
परिवारस्तवैवैष हर्यादि सकलं जगत्॥ ४६

हे देवदेवेश! मुनि, इन्द्र, ईश्वर, यज्ञ, वेद, समस्त शास्त्र तथा मैं और विष्णु—ये सभी आपकी प्रजाएँ हैं। हे प्रभो! आप देवगणोंके सार्वभौम सम्राट्, सर्वेश्वर हैं और विष्णुसे लेकर सारा संसार आपका परिवार है॥ ४५-४६ ॥

युवराजो हरिस्तेऽज ब्रह्माहं ते पुरोहितः।
राजकार्यकरः शक्रस्त्वदाज्ञापरिपालकः॥ ४७

हे अज! विष्णु आपके युवराज हैं, मैं आपका पुरोहित हूँ एवं ये इन्द्र आपके राज्यकी देखभाल करनेवाले तथा आपकी आज्ञाके परिपालक हैं॥ ४७ ॥

देवा अन्येऽपि सर्वेश तव शासनयन्त्रिताः।
स्वस्वकार्यकरा नित्यं सत्यं सत्यं न संशयः॥ ४८

हे सर्वेश! इसी प्रकार अन्य देवता भी आपके शासनमें रहकर सदा अपने-अपने कार्य करते हैं, यह सत्य है, सत्य है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४८ ॥

सनत्कुमार उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणः परमेश्वरः।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा शंकरः सुरपो विधिम्॥ ४९

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार उन ब्रह्माका वचन सुनकर देवरक्षक भगवान् शंकर प्रसन्नचित्त होकर ब्रह्मासे कहने लगे— ॥ ४९ ॥

शिव उवाच

हे ब्रह्मन् यद्यहं देवराजः सम्राट् प्रकीर्त्तितः।
तत्प्रकारो न मे कश्चिद् गृह्णीयां यमिह प्रभुः॥ ५०

शिवजी बोले—हे ब्रह्मन्! यदि मैं वस्तुतः देवराज तथा सबका सम्राट् कहा गया हूँ, फिर भी मेरे पास ऐसा कोई साधन नहीं है, जिससे मैं इस पदको ग्रहण कर सकूँ॥ ५०॥

रथो नास्ति महादिव्यस्तादृक् सारथिना सह।
धनुर्बाणादिकं चापि संग्रामे जयकारकम्॥ ५१

यमास्थाय धनुर्बाणान् गृहीत्वा योज्य वै मनः।
निहनिष्याम्यहं दैत्यान् प्रबलानपि संगरे॥ ५२

मेरे पास योग्य सारथीसहित महादिव्य रथ नहीं है और संग्राममें विजय दिलानेवाला धनुष-बाण आदि भी नहीं है, जिस रथपर बैठकर, धनुष-बाण लेकर तथा अपना मन लगाकर उन प्रबल दैत्योंका संग्राममें वध कर सकूँ॥ ५१-५२॥

सनत्कुमार उवाच

अद्य सब्रह्मका देवाः सेन्द्रोपेन्द्राः प्रहर्षिताः।
श्रुत्वा प्रभोस्तदा वाक्यं नत्वा प्रोचुर्महेश्वरम्॥ ५३

सनत्कुमार बोले—तब ब्रह्मा, इन्द्र एवं विष्णुके सहित सभी देवता प्रभुके वचनको सुनकर परम प्रसन्न हो उठे और महेश्वरको प्रणामकर उनसे कहने लगे— ॥ ५३॥

देवा ऊचुः

वयं भवाम देवेश तत्प्रकारा महेश्वर।
रथादिकाः तव स्वामिन्संनद्धाः संगराय हि॥ ५४

देवता बोले—हे देवेश! हे महेश्वर! हे स्वामिन्! हमलोग आपके रथादि उपकरण बनकर युद्धके लिये तैयार हैं॥ ५४॥

इत्युक्त्वा संहताः सर्वे शिवेच्छामधिगम्य ह।
पृथगूचुः प्रसन्नास्ते कृताञ्जलिपुटास्सुराः॥ ५५

इस प्रकार कहकर प्रसन्न हुए वे सभी देवता एकत्रित हो शिवजीकी इच्छा जानकर हाथ जोड़कर अलग-अलग कहने लगे॥ ५५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शिवस्तुतिवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शिवस्तुतिवर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये देवताओंद्वारा मन्त्रजप, शिवका प्राकट्य तथा त्रिपुर-विनाशके लिये दिव्य रथ आदिके निर्माणके लिये विष्णुजीसे कहना

सनत्कुमार उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु सर्वेषां देवादीनां वचो हरः।
अंगीचकार सुप्रीत्या शरण्यो भक्तवत्सलः॥ १

एतस्मिन्नन्तरे देवी पुत्राभ्यां संयुता शिवा।
आजगाम मुने तत्र यत्र देवान्वितो हरः॥ २

सनत्कुमार बोले—समस्त देवता आदिके इस वचनको सुनकर शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले भक्तवत्सल सदाशिवने उनकी बात स्वीकार कर ली। हे मुने! इसी बीच देवी पार्वती अपने दोनों पुत्रोंको लेकर वहाँ आ गयीं, जहाँ सदाशिव देवताओंके साथ स्थित थे॥ १-२॥

अथागतां शिवां दृष्ट्वा सर्वे विष्ण्वादयो द्रुतम्।
प्रणेमुरतिनम्रास्ते विस्मिता गतसंभ्रमाः॥ ३

तब देवीको वहाँ उपस्थित देखकर विष्णु आदि सभी देवता आश्चर्ययुक्त हो गये और सम्भ्रमयुक्त होकर नम्रतासे उन्हें शीघ्रतापूर्वक प्रणाम करने लगे॥ ३॥

प्रोचुर्जयेति सद्वाक्यं मुने सर्वे सुलक्षणम्।
तूष्णीमासन्नजानन्तस्तदागमनकारणम् ॥ ४

अथ सर्वैः स्तुता देवैर्देव्यद्भुतकुतूहला।
उवाच स्वामिनं प्रीत्या नानालीलाविशारदम्॥ ५

देव्युवाच

क्रीडमानं विभो पश्य षण्मुखं रविसंनिभम्।
पुत्रं पुत्रवतां श्रेष्ठं भूषितं भूषणैर्वरैः॥ ६

सनत्कुमार उवाच

इत्येवं लोकमात्रा च वाग्भिः संबोधितश्शिवः।
न ययौ तृप्तिमीशानः पिबन् स्कंदाननामृतम्॥ ७

न सस्मारागतान् देवान् दैत्यतेजोनिपीडितान्।
स्कंदमालिंग्य चाघ्राय मुमोदाति महेश्वरः॥ ८

जगदम्बाथ तत्रैव संमन्त्र्य प्रभुणा च सा।
स्थित्वा किञ्चित्समुत्तस्थौ नानालीलाविशारदा॥ ९

ततः स नंदी सह षण्मुखेन
तया च सार्द्धं गिरिराजपुत्र्या।
विवेश शम्भुर्भवनं सुलीलः
सुरैः समस्तैरभिवंद्यमानः ॥ १०

द्वारस्य पार्श्वतः तस्थुर्देवदेवस्य धीमतः।
तेऽथ देवा महाव्यग्रा विमनस्का मुनेऽखिलाः॥ ११

किं कर्तव्यं क्व गंतव्यं कः स्यादस्मत्सुखप्रदः।
किं तु किंत्विति संजातं हा हताः स्मेति वादिनः॥ १२

अन्योन्यं प्रेक्ष्य शक्राद्या बभूवुश्चातिविह्वलाः।
प्रोचुर्विकलवाक्यं ते धिक्कुर्वन्तो निजं विधिम्॥ १३

पापा वयमिहेत्यन्ये ह्यभाग्याश्चेति चापरे।
ते भाग्यवंतो दैत्येन्द्रा इति चान्येऽब्रुवन् सुराः॥ १४

तस्मिन्नेवांतरे तेषां श्रुत्वा शब्दाननेकशः।
कुंभोदरो महातेजा दंडेनाताडयत्सुरान्॥ १५

हे मुने! उन सभीने शुभ लक्षण प्रकट करनेवाला जय-जयकार किया और उनके आनेका कारण न जानते हुए वे लोग मौन हो गये। इसके बाद सभी देवताओंसे स्तुत एवं अद्भुत कुतूहल करनेवाली वे देवी नानालीला-विशारद अपने स्वामीसे प्रेमपूर्वक कहने लगीं— ॥ ४-५ ॥

देवी बोलीं—हे विभो! हे पुत्रवानोंमें श्रेष्ठ! उत्तम आभूषणोंसे भूषित तथा सूर्यके समान देदीप्यमान खेलते हुए अपने षण्मुख पुत्रको देखिये॥ ६ ॥

सनत्कुमार बोले—जब लोकमाताने अपनी वाणीसे इस प्रकार शिवजीको सम्बोधित करते हुए कहा, तब स्कन्दके मुखामृतका पान करते हुए शिवजीको तृप्ति नहीं हुई॥ ७॥

उस समय महेश्वरको दैत्योंके तेजसे पीड़ित होकर आये हुए देवताओंका स्मरण नहीं रहा और वे स्कन्दका आलिंगन करके तथा उनका सिर सूँघकर बड़े प्रसन्न हुए॥ ८॥

अनेक लीलाओंमें विशारद श्रीजगदम्बा भी महेश्वरसे मन्त्रणाकर कुछ कालतक वहीं स्थित रहकर पुनः उठ खड़ी हुईं। इसके बाद सभी देवताओंसे वन्दित होते हुए उत्तम लीलावाले भगवान् सदाशिवने कार्तिकेय, नन्दी तथा उन गिरिराजपुत्रीके साथ अपने भवनमें प्रवेश किया॥ ९-१० ॥

हे मुने! [शंकरको घरमें गया देख] सम्पूर्ण देवता महाव्याकुल एवं क्षुब्धमन होकर बुद्धिमान् देवाधिदेवके द्वारके समीप खड़े रहे। अब हम क्या करें, कहाँ जायँ, कौन हमलोगोंको सुख देनेवाला है और यह क्या हो गया? हाय हमलोग मारे गये—ऐसा वे सब कहने लगे। एक-दूसरेको देखकर इन्द्र आदि अत्यन्त व्याकुल हो गये और अपने भाग्यको धिक्कारते हुए विकल वचन कहने लगे। कुछ देवताओंने कहा—हाय! हमलोग बड़े पापी हैं। दूसरोंने कहा—हाय, हम अभागे हैं, अन्योंने कहा—वे असुर तो बड़े भाग्यवान् हैं॥ ११—१४ ॥

उसी समय उनके अनेक प्रकारके शब्दोंको सुनकर महातेजस्वी कुम्भोदर [नामका गण] देवताओंको दण्डसे मारने लगा। तब वे देवता भयभीत होकर

दुद्रुवुस्ते भयाविष्टा देवा हाहेति वादिनः।
अपतन्मुनयश्चान्ये विह्वलत्वं बभूव ह॥ १६
इन्द्रस्तु विकलोऽतीव जानुभ्यामवनीं गतः।
अन्ये देवर्षयोऽतीव विकलाः पतिता भुवि॥ १७

हाय-हाय करते हुए वहाँसे भाग गये। कितने ही मुनि तथा अन्य लोग गिर पड़े, उस समय चारों ओर हाहाकार होने लगा। इन्द्र अत्यन्त व्याकुल होकर घुटनोंके बल पृथ्वीपर गिर पड़े, इसी प्रकार अन्य देवता तथा ऋषि भी व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ १५—१७॥

सर्वे मिलित्वा मुनयः सुराश्च सममाकुलाः।
संगता विधिहर्योस्तु समीपं मित्रचेतसोः॥ १८

तब सभी देवता एवं मुनि परस्पर मिलकर व्याकुल हो शिवके मित्रभूत ब्रह्मा एवं विष्णुके समीप गये॥ १८॥

अहो विधिबलं चैतन्मुनयः कश्यपादयः।
वदंति स्म तदा सर्वे हरिं लोकभयापहम्॥ १९

अभाग्यान्न समाप्तं तु कार्यमित्यपरे द्विजाः।
कस्माद्विघ्नमिदं जातमित्यन्ये ह्यतिविस्मिताः॥ २०

इत्येवं वचनं श्रुत्वा कश्यपाद्युदितं मुने।
आश्वासयन्मुनीन्देवान् हरिर्वाक्यमुपाददे॥ २१

उस समय कश्यपादि सभी मुनि संसारका भय दूर करनेवाले विष्णुजीसे कहने लगे—अहो! यह प्रारब्धका बल है। दूसरे द्विज कहने लगे कि अभाग्यसे हमारा काम पूरा नहीं हुआ और दूसरे लोग अति विस्मित होकर विचार करने लगे कि यह विघ्न कैसे उपस्थित हो गया! हे मुने! तब कश्यपादिके द्वारा कहे गये इस वचनको सुनकर विष्णुजी मुनियों तथा देवताओंको सान्त्वना देते हुए यह वचन कहने लगे—॥ १९—२१॥

विष्णुरुवाच

हे देवा मुनयः सर्वे मद्वचः शृणुतादरात्।
किमर्थं दुःखमापन्ना दुखं तु त्यजताखिलम्॥ २२

महदाराधनं देवा न सुसाध्यं विचार्यताम्।
महदाराधने पूर्वं भवेद्दुःखमिति श्रुतम्।
विज्ञाय दृढतां देवाः प्रसन्नो भवति ध्रुवम्॥ २३

विष्णु बोले—हे देवताओ! हे मुनियो! आप सभीलोग हमारा वचन आदरसे सुनिये, आपलोग इस प्रकार क्यों दुखी हो रहे हैं, आपलोग अपने समस्त दुःखोंका त्याग कर दीजिये। हे देवताओ! महान् लोगोंका आराधन सरल नहीं है, आपलोग स्वयं विचार कीजिये, बड़े लोगोंकी आराधनामें पहले दुःख ही होता है—ऐसा हमने सुना है। हे देवताओ! शिवजी दृढ़ताको जानकर निश्चय ही प्रसन्न हो जाते हैं॥ २२-२३॥

शिवः सर्वगणाध्यक्षः सहसा परमेश्वरः।
विचार्यतां हृदा सर्वैः कथं वश्यो भवेदिति॥ २४

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य नमः पश्चादुदाहरेत्।
शिवायेति ततः पश्चाच्छुभद्वयमतः परम्॥ २५

कुरुद्वयं ततः प्रोक्तं शिवाय च ततः पुनः।
नमश्च प्रणवश्चैव मंत्रमेवं सदा बुधाः॥ २६

आवर्तध्वं पुनर्यूयं यदि शंभुकृते तदा।
कोटिमेकं तथा जप्त्वा शिवः कार्यं करिष्यति॥ २७

सदाशिव सभी गणोंके अध्यक्ष एवं परमेश्वर हैं। आप सभीलोग अपने मनमें विचार कीजिये कि वे सहसा कैसे वशमें हो सकते हैं। सबसे पहले ॐ का उच्चारण करके उसके बाद 'नमः' उच्चारण करे। पुनः 'शिवाय', फिर दो बार शुभं-शुभं, इसके बाद दो बार 'कुरु' बताया गया है। तदनन्तर 'शिवाय नमः' तदनन्तर प्रणव लगाना चाहिये। (ॐ नमः शिवाय शुभं शुभं कुरु कुरु शिवाय नमः ॐ) हे देवताओ! यदि आपलोग शिवजीके लिये इस मन्त्रका एक करोड़ सदा जप करें, तो शिवजी प्रसन्न होकर तुम्हारा कार्य अवश्य करेंगे॥ २४—२७॥

इत्युक्ते च तदा तेन हरिणा प्रभविष्णुना।
तथा देवाः पुनश्चक्रुर्हरस्याराधनं मुने॥ २८

संजजाप हरिश्चापि सविधिश्शिवमानसः।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं मुनीनां च विशेषतः॥ २९

मुहुः शिवेति भाषंतो देवा धैर्यसमन्विताः।
कोटिसंख्यं तदा कृत्वा स्थितास्ते मुनिसत्तम॥ ३०

एतस्मिन्नंतरे साक्षाच्छिवः प्रादुरभूत्स्वयम्।
यथोक्तेन स्वरूपेण वचनं चेदमब्रवीत्॥ ३१

श्रीशिव उवाच

हे हरे हे विधे देवा मुनयश्च शुभव्रताः।
प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूत जपेनानेन चेप्सितम्॥ ३२

देवा ऊचुः

यदि प्रसन्नो देवेश जगदीश्वर शंकर।
सुरान् विज्ञाय विकलान् हन्यन्तां त्रिपुराणि च॥ ३३

रक्षास्मान्परमेशान दीनबंधो कृपाकर।
त्वयैव रक्षिता देवाः सदापद्भ्यो मुहुर्मुहुः॥ ३४

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्तं वचनं तेषां श्रुत्वा सहरिवेधसाम्।
विहस्यांतस्तदा ब्रह्मन्महेशः पुनरब्रवीत्॥ ३५

महेश उवाच

हे हरे हे विधे देवा मुनयश्चाखिला वचः।
मदीयं शृणुतादृत्य नष्टं मत्वा पुरत्रयम्॥ ३६
रथं च सारथिं दिव्यं कार्मुकं शरमुत्तमम्।
पूर्वमंगीकृतं सर्वमुपपादयताचिरम्॥ ३७
हे विष्णो हे विधे त्वं हि त्रिलोकाधिपतिर्ध्रुवम्।
सर्वसम्राट्प्रकारं मे कर्तुमर्हसि यत्नतः॥ ३८
नष्टं पुरत्रयं मत्वा देवसाहाय्यमित्युत।
करिष्यथः प्रयत्नेनाधिकृतौ सर्गपालने॥ ३९

अयं मंत्रो महापुण्यो मत्प्रीतिजनकः शुभः।
भुक्तिमुक्तिप्रदः सर्वकामदः शैवकावहः॥ ४०

धन्यो यशस्य आयुष्यः स्वर्गकामार्थिनां नृणाम्।

हे मुने! उन सर्वसमर्थ विष्णुके द्वारा ऐसा कहे जानेपर देवतालोग उसी तरह शिवकी आराधना करने लगे। उस समय विष्णुजी भी ब्रह्माजीके साथ शिवमें अपना मन एकाग्रकर देवताओं एवं मुनियोंका विशेष रूपसे कार्य सिद्ध करनेके निमित्त जप करने लगे। हे मुनिसत्तम! धैर्य धारणकर वे देवगण बारंबार 'शिव' इस प्रकार उच्चारण करते हुए एक करोड़ मन्त्रका जपकर वहीं स्थित हो गये॥ २८—३०॥

इसी बीच स्वयं सदाशिव उनके सामने साक्षात् यथोक्त स्वरूपसे प्रकट हो गये और यह वचन कहने लगे— ॥ ३१॥

श्रीशिव बोले—हे हरे! हे विधे! हे देवगण! शुभव्रतवाले हे मुनियो! मैं इस जपसे प्रसन्न हूँ, आपलोग अभीष्ट वर माँगिये॥ ३२॥

देवगण बोले—हे देवेश! हे जगदीश! हे शंकर! यदि आप प्रसन्न हैं, तो देवताओंको व्याकुल जानकर त्रिपुरोंका वध कीजिये। हे परमेशान! हे दीनबन्धो! हे कृपाकर! आप हम सबकी रक्षा करें; क्योंकि आपने ही विपत्तियोंसे देवताओंकी सदा बारंबार रक्षा की है॥ ३३-३४॥

सनत्कुमार बोले—हे ब्रह्मन्! तब ब्रह्मा, विष्णु एवं देवताओंका कहा गया यह वचन सुनकर शिवजीने मन-ही-मन हँसकर कहा— ॥ ३५॥

महेश बोले—हे विष्णो! हे विधे! हे देवगणो! हे मुनियो! आप सब त्रिपुरको नष्ट हुआ समझकर आदर करके मेरे वचनको सुनें। आपलोगोंने पूर्व समयमें जो रथ, सारथी, दिव्य धनुष तथा उत्तम बाण देना स्वीकार किया था, वह सब शीघ्र उपस्थित कीजिये। हे विष्णो! हे विधे! आप त्रिलोकाधिपति हैं, इसलिये शीघ्र हमारे सम्राट् पदके योग्य सामग्री यत्नपूर्वक उपस्थित कीजिये। त्रिपुरको नष्ट समझकर सृष्टि तथा पालनके लिये नियुक्त किये गये आप दोनों इन देवताओंकी सहायता करें॥ ३६—३९॥

यह मन्त्र महापुण्यप्रद, मुझे प्रसन्न करनेवाला, शुभ, भोग-मोक्ष प्रदान करनेवाला, सभी प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, शिवभक्तोंको सुख देनेवाला, धन्य, यश देनेवाला, आयुको बढ़ानेवाला,

अपवर्गो ह्यकामानां मुक्तानां भुक्तिमुक्तिदः ॥ ४१

य इमं कीर्तयेन्मंत्रं शुचिर्भूत्वा सदा नरः।
शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ४२

स्वर्गकी इच्छा करनेवालोंको स्वर्ग तथा कामनारहित पुरुषोंको मुक्ति देनेवाला है, यह मुमुक्षुओंको भोग तथा मोक्ष दोनों प्रदान करता है। जो मनुष्य पवित्र होकर नित्य इस मन्त्रका जप करता है अथवा इस मन्त्रको सुनता अथवा सुनाता है, उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ॥ ४०—४२ ॥

सनत्कुमार उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य शिवस्य परमात्मनः।
सर्वे देवा मुदं प्रापुर्हरिर्ब्रह्माधिकं तथा ॥ ४३

सर्वदेवमयं दिव्यं रथं परमशोभनम्।
रचयामास विश्वार्थे विश्वकर्मा तदाज्ञया ॥ ४४

सनत्कुमार बोले—उन परमात्मा शिवजीके इस वचनको सुनकर सभी देवता प्रसन्न हो गये और विष्णु एवं ब्रह्माको अधिक प्रसन्नता हुई। तदनन्तर उनकी आज्ञासे विश्वकर्माने संसारके कल्याणके लिये सर्वदेवमय, दिव्य तथा अत्यन्त सुन्दर रथका निर्माण किया ॥ ४३-४४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे देवस्तुतिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें देवस्तुतिवर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

विश्वकर्माद्वारा निर्मित सर्वदेवमय दिव्य रथका वर्णन

व्यास उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ शैवप्रवर सन्मते।
अद्भुतेयं कथा तात श्राविता परमेशितुः ॥ १

इदानीं रथनिर्माणं ब्रूहि देवमयं परम्।
शिवार्थं यत्कृतं दिव्यं धीमता विश्वकर्मणा ॥ २

व्यासजी बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! हे शैवप्रवर! हे सन्मते! हे तात! आपने परमेश्वरकी यह अद्भुत कथा सुनायी। अब आप सर्वदेवमय परम दिव्य रथके निर्माणका वर्णन कीजिये, जिसे बुद्धिमान् विश्वकर्माने शिवजीके लिये निर्मित किया ॥ १-२ ॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य व्यासस्य स मुनीश्वरः।
सनत्कुमारः प्रोवाच स्मृत्वा शिवपदांबुजम् ॥ ३

सूतजी बोले—उन व्यासजीके इस वचनको सुनकर मुनीश्वर सनत्कुमार शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करके कहने लगे— ॥ ३ ॥

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास महाप्राज्ञ रथादेर्निर्मितिं मुने।
यथामति प्रवक्ष्येऽहं स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ ४
अथ देवस्य रुद्रस्य निर्मितो विश्वकर्मणा।
सर्वलोकमयो दिव्यो रथो यत्नेन सादरम् ॥ ५

सनत्कुमार बोले—हे व्यास! हे महाप्राज्ञ! हे मुने! मैं शिवजीके चरणकमलोंका ध्यानकर अपनी बुद्धिके अनुसार रथ आदिके निर्माणका वर्णन करूँगा, आप उसका श्रवण करें। विश्वकर्माने रुद्रदेवके सर्वलोकमय तथा दिव्य रथको यत्नसे आदरपूर्वक बनाया ॥ ४-५ ॥

सर्वभूतमयश्चैव सौवर्णः सर्वसंमतः।
रथांगं दक्षिणं सूर्यस्तद्वामं सोम एव च ॥ ६
दक्षिणं द्वादशारं हि षोडशारं तथोत्तरम्।
अरेषु तेषु विप्रेन्द्र आदित्या द्वादशैव तु ॥ ७

यह सर्वसम्मत तथा भूतमय रथ सुवर्णका बना हुआ था। उसके दाहिने चक्रमें सूर्य एवं बाँये चक्रमें चन्द्रमा विराजमान थे। हे विप्रेन्द्र! दाहिने चक्रमें बारह अरे लगे हुए थे, उन अरोंमें बारहों आदित्य

शशिनः षोडशारास्तु कला वामस्य सुव्रत।
ऋक्षाणि तु तथा तस्य वामस्यैव विभूषणम्॥ ८

प्रतिष्ठित थे और बायाँ पहिया सोलह अरोंसे युक्त था। हे सुव्रत! बायें पहियेके सोलह अरे चन्द्रमाकी सोलह कलाएँ थीं। सभी नक्षत्र उस वामभागके पहियेकी शोभा बढ़ा रहे थे॥ ६—८॥

ऋतवो नेमयः षट् च तयोर्वै विप्रपुंगव।
पुष्करं चांतरिक्षं वै रथनीडश्च मंदरः॥ ९

अस्ताद्रिरुदयाद्रिस्तु तावुभौ कूबरौ स्मृतौ।
अधिष्ठानं महामेरुराश्रयाः केशराचलाः॥ १०

वेगः संवत्सरास्तस्य अयने चक्रसंगमौ।
मुहूर्ता बंधुरास्तस्य शम्याश्चैव कलाः स्मृताः॥ ११

तस्य काष्ठाः स्मृता घोणाश्चाक्षदंडाः क्षणाश्च वै।
निमेषाश्चानुकर्षाश्च ईषाश्चानुलवाः स्मृताः॥ १२

हे विप्रश्रेष्ठ! छहों ऋतुएँ उन दोनों पहियोंकी नेमि थीं। अन्तरिक्ष उस रथका अग्रभाग हुआ और मन्दराचल रथनीड हुआ। अस्ताचल तथा उदयाचल उसके दोनों कूबर कहे गये हैं। महामेरु उस रथका अधिष्ठान तथा अन्य पर्वत उसके केसर थे। संवत्सर उस रथका वेग था तथा दोनों अयन (उत्तरायण एवं दक्षिणायन) चक्रोंके संगम थे। मुहूर्त उसके बन्धुर (बन्धन) तथा कलाएँ उसकी कीलियाँ कही गयी हैं। काष्ठा (कलाका तीसवाँ भाग) उसका घोण (जूएका अग्रभाग) और क्षण उसके अक्षदण्ड कहे गये हैं। निमेष उस रथका अनुकर्ष (नीचेका काष्ठ) और लव उसका ईषा कहा गया है॥ ९—१२॥

द्यौर्वरूथं रथस्यास्य स्वर्गमोक्षावुभौ ध्वजौ।
युगान्तकोटितौ तस्य भ्रमकामदुघौ स्मृतौ॥ १३

द्युलोक इस रथका वरूथ (लोहेका पर्दा) तथा स्वर्ग और मोक्ष उसकी दोनों ध्वजाएँ थीं। भ्रम और कामदुग्ध उसके जूएके दोनों सिर कहे गये हैं॥ १३॥

ईषादंडस्तथा व्यक्तं वृद्धिस्तस्यैव नड्वलः।
कोणास्तस्याप्यहंकारो भूतानि च बलं स्मृतम्॥ १४

व्यक्त उसका ईषादण्ड, वृद्धि नड्वल, अहंकार उसके कोने तथा पंचमहाभूत उस रथके बल कहे गये हैं॥ १४॥

इन्द्रियाणि च तस्यैव भूषणानि समन्ततः।
श्रद्धा च गतिरस्यैव रथस्य मुनिसत्तम॥ १५

समस्त इन्द्रियाँ ही उस रथके चारों ओरके आभूषण थे। हे मुनिसत्तम! श्रद्धा ही उस रथकी गति थी॥ १५॥

तदानीं भूषणान्येव षडंगान्युपभूषणम्।
पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि सुव्रताः॥ १६

हे सुव्रतो! उस समय षडंग (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द तथा ज्योतिष) उसके आभूषण बने। पुराण, न्याय, मीमांसा तथा धर्मशास्त्र उसके उपभूषण बने॥ १६॥

बलाशया वराश्चैव सर्वलक्षणसंयुताः।
मंत्रा घंटाः स्मृतास्तेषां वर्णपादास्तदाश्रमाः॥ १७

अथो बन्धो ह्यनन्तस्तु सहस्रफणभूषितः।
दिशः पादा रथस्यास्य तथा चोपदिशश्च ह॥ १८

पुष्कराद्याः पताकाश्च सौवर्णा रत्नभूषिताः।
समुद्रास्तस्य चत्वारो रथकंबलिनः स्मृताः॥ १९

सब लक्षणोंसे युक्त वर उसके बलके स्थान कहे गये हैं। वर्णाश्रमधर्म उसके चारों चरण तथा मन्त्र घण्टा कहे गये हैं। हजारों फणोंसे विभूषित अनन्त नामक सर्प उस रथके बन्धन हुए, दिशाएँ एवं उपदिशाएँ पाद बनीं। पुष्करादि तीर्थ उस रथकी रत्नजटित सुवर्णमय पताकाएँ और चारों समुद्र उस रथको ढँकनेवाले वस्त्र कहे गये हैं॥ १७—१९॥

गंगाद्याः सरितश्रेष्ठाः सर्वाभरणभूषिताः।
चामरासक्तहस्ताग्राः सर्वाः स्त्रीरूपशोभिताः॥ २०

तत्र तत्र कृतस्थानाः शोभयांचक्रिरे रथम्।
आवहाद्यास्तथा सप्त सोपानं हैममुत्तमम्॥ २१

लोकालोकाचलस्तस्योपसोपानाः समन्ततः।
विषमश्च तथा बाह्यो मानसादिस्तु शोभनः॥ २२

सभी प्रकारके आभूषणोंसे भूषित गंगा आदि सभी श्रेष्ठ नदियाँ हाथोंमें चँवर लिये हुए स्त्रीरूपमें सुशोभित होकर जगह-जगह स्थान बनाकर रथकी शोभा बढ़ाने लगीं। आवह आदि सातों वायु स्वर्णमय उत्तम सोपान बने एवं लोकालोक पर्वत उस रथके चारों ओर उपसोपान बने। मानस आदि सरोवर उस रथके बाहरी उत्तम विषम स्थान हुए॥ २०—२२॥

पाशाः समन्ततस्तस्य सर्वे वर्षाचलाः स्मृताः।
तलास्तस्य रथस्याऽथ सर्वे तलनिवासिनः॥ २३

सारथिर्भगवान्ब्रह्मा देवा रश्मिधराः स्मृताः।
प्रतोदो ब्रह्मणस्तस्य प्रणवो ब्रह्मदैवतम्॥ २४

अकारश्च महच्छत्रं मंदरः पार्श्वदंडभाक्।
शैलेन्द्रः कार्मुकं तस्य ज्या भुजंगाधिपः स्वयम्॥ २५

सभी वर्षाचल उस रथके चारों ओरके पाश और तललोकमें निवास करनेवाले सभी प्राणी उस रथके तलके भाग कहे गये हैं। भगवान् ब्रह्मा उसके सारथि और देवतागण घोड़ेकी रस्सी पकड़नेवाले कहे गये हैं। ब्रह्मदैवत ॐकार उन ब्रह्माका चाबुक था। अकार उसका महान् छत्र, मन्दराचल उस छत्रको धारण करनेवाला पार्श्ववर्ती दण्ड, पर्वतराज सुमेरु धनुष तथा स्वयं भुजंगराज शेषनाग उस धनुषकी डोरी बने॥ २३—२५॥

घंटा सरस्वती देवी धनुषः श्रुतिरूपिणी।
इषुर्विष्णुर्महातेजास्त्वग्निः शल्यं प्रकीर्तितम्॥ २६

हयास्तस्य तथा प्रोक्ताश्चत्वारो निगमा मुने।
ज्योतींषि भूषणं तेषामवशिष्टान्यतः परम्॥ २७

अनीकं विषसंभूतं वायवो वादकाः स्मृताः।
ऋषयो व्यासमुख्याश्च वाहवाहास्तथाभवन्॥ २८

श्रुतिस्वरूपा भगवती सरस्वती उस धनुषका घण्टा बनीं। महान् तेजस्वी विष्णुको बाण तथा अग्निको उस बाणका शल्य कहा गया है। हे मुने! चारों वेद उस रथके घोड़े कहे गये हैं। सभी प्रकारकी ज्योतियाँ उन अश्वोंकी परम आभूषण बनीं। समस्त विषसम्भूत पदार्थ सेना बने। सभी वायु बाजा बजानेवाले कहे गये हैं। व्यास आदि ऋषिगण उसे ढोनेवाले हुए॥ २६—२८॥

स्वल्पाक्षरैः संब्रवीमि किं बहूक्त्या मुनीश्वर।
ब्रह्मांडे चैव यत्किंचिद्वस्तुतद्वै रथे स्मृतम्॥ २९

[सनत्कुमार बोले—] हे मुनीश्वर! अधिक कहनेसे क्या लाभ, मैं संक्षेपमें ही बताता हूँ कि ब्रह्माण्डमें जो कुछ भी वस्तु है, वह सब उस रथमें विद्यमान कही गयी है॥ २९॥

एवं सम्यक्कृतस्तेन धीमता विश्वकर्मणा।
सरथादिप्रकारो हि ब्रह्मविष्णवाज्ञया शुभः॥ ३०

परम बुद्धिमान् विश्वकर्माने ब्रह्मा तथा विष्णुकी आज्ञासे इस प्रकारके रथ आदिसे युक्त शुभ साधनका भलीभाँति निर्माण किया था॥ ३०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे रथादियुद्धप्रकारवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें रथादियुद्धप्रकारवर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः

ब्रह्माजीको सारथी बनाकर भगवान् शंकरका दिव्य रथमें आरूढ़ होकर अपने गणों तथा देवसेनाके साथ त्रिपुर-वधके लिये प्रस्थान, शिवका पशुपति नाम पड़नेका कारण

सनत्कुमार उवाच

ईदृग्विधं महादिव्यं नानाश्चर्यमयं रथम्।
संनह्य निगमानश्वांस्तं ब्रह्मा प्रार्पयच्छिवम्॥ १

शंभवेऽसौ निवेद्याधिरोपयामास शूलिनम्।
बहुशः प्रार्थ्य देवेशं विष्ण्वादिसुरसंमतम्॥ २

ततस्तस्मिन् रथे दिव्ये रथप्राकारसंयुते।
सर्वदेवमयः शंभुरारुरोह महाप्रभुः॥ ३

सनत्कुमार बोले—इस प्रकारके महादिव्य तथा अनेक आश्चर्योंसे युक्त रथमें वेदरूपी घोड़े जोतकर ब्रह्माजीने उसे शिवजीको समर्पित किया। इसे शिवजीको अर्पण करके उन्होंने विष्णु आदि देवगणोंके सम्माननीय देवेश शिवजीसे बहुत प्रार्थना करके उन्हें रथपर बैठाया। तब समस्त रथ-सामग्रियोंसे सम्पन्न उस दिव्य रथपर सर्वदेवमय महाप्रभु शम्भु आरूढ़ हुए॥ १—३॥

ऋषिभिः स्तूयमानश्च देवगंधर्वपन्नगैः।
विष्णुना ब्रह्मणा चापि लोकपालैर्बभूव ह॥ ४

उस समय ऋषि, देवता, गन्धर्व, नाग, ब्रह्मा, विष्णु तथा समस्त लोकपाल उनकी स्तुति करने लगे॥ ४॥

उपावृतश्चाप्सरसांगणैर्गीतविशारदैः ।
शुशुभे वरदः शम्भुः स तं प्रेक्ष्य च सारथिम्॥ ५

तस्मिन्नारोहति रथं कल्पितं लोकसंभृतम्।
शिरोभिः पतिता भूमौ तुरंगा वेदसंभवाः॥ ६

चचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च महीधराः।
चकंपे सहसा शेषोऽसोढा तद्भारमातुरः॥ ७

अथाधः स रथस्यास्य भगवान्धरणीधरः।
वृषेन्द्ररूपी चोत्थाय स्थापयामास वै क्षणम्॥ ८

क्षणांतरे वृषेन्द्रोऽपि जानुभ्यामगमद्धराम्।
रथारूढमहेशस्य सुतेजस्सोढुमक्षमः॥ ९

गानमें प्रवीण अप्सराओंसे घिरे हुए वरदायक शिवजी उस सारथी (ब्रह्मा)-की ओर देखते हुए शोभित होने लगे। सर्वलोकमय उस निर्मित रथपर सदाशिवके चढ़ते ही वेदरूपी घोड़े सिरके बल पृथ्वीपर गिर पड़े, जिससे पृथ्वी तथा सभी पर्वत चलायमान हो गये और शेषनाग भी उस भारको सहनेमें असमर्थ होनेके कारण कम्पित हो उठे। तब पृथ्वीको धारण करनेवाले भगवान् शेष वृषेन्द्रका रूप धारणकर क्षणमात्रके लिये उस रथको उठाकर स्थापित करने लगे, किंतु रथपर आरूढ़ शिवजीके परम तेजको सहन करनेमें असमर्थ वृषेन्द्र भी घुटनोंके बल पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ५—९॥

अभीषुहस्तो भगवानुद्यम्य च हयांस्तदा।
स्थापयामास देवस्य वचनाद्वै रथं वरम्॥ १०

तब हाथमें लगाम पकड़े हुए ब्रह्माजीने शंकरजीकी आज्ञासे घोड़ोंको उठाकर रथको व्यवस्थित किया॥ १०॥

ततोऽसौ नोदयामास मनोमारुतरंहसः।
ब्रह्मा हयान्वेदमयान्नद्धान् रथवरे स्थितः॥ ११

पुराण्युद्दिश्य वै त्रीणि तेषां खस्थानि तानि हि।
अधिष्ठिते महेशे तु दानवानां तरस्विनाम्॥ १२

उसके बाद ब्रह्माजी स्वयं उस श्रेष्ठ रथपर सवार हो शिवकी आज्ञासे मन तथा पवनके समान वेगवाले रथमें जुते हुए उन वेदरूपी घोड़ोंको तेजीसे हाँकने लगे। शिवजीके बैठ जानेपर वह रथ उन बलवान् दानवोंके आकाशस्थित तीनों पुरोंको उद्देश्य करके चलने लगा॥ ११-१२॥

अथाह भगवान् रुद्रो देवानालोक्य शंकरः।
पशूनामाधिपत्यं मे दध्वं हन्मि ततोऽसुरान्॥ १३

पृथक् पशुत्वं देवानां तथान्येषां सुरोत्तमाः।
कल्पयित्वैव वध्यास्ते नान्यथा दैत्यसत्तमाः॥ १४

सनत्कुमार उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवदेवस्य धीमतः।
विषादमगमन्सर्वे पशुत्वं प्रतिशंकिताः॥ १५
तेषां भावमथ ज्ञात्वा देवदेवोऽम्बिकापतिः।
विहस्य कृपया देवान् शंभुस्तानिदमब्रवीत्॥ १६

शंभुरुवाच

मा वोऽस्तु पशुभावेऽपि पातो विबुधसत्तमाः।
श्रूयतां पशुभावस्य विमोक्षः क्रियतां च सः॥ १७
यो वै पाशुपतं दिव्यं चरिष्यति स मोक्ष्यति।
पशुत्वादिति सत्यं वः प्रतिज्ञातं समाहिताः॥ १८

ये चाप्यन्ये करिष्यन्ति व्रतं पाशुपतं मम।
मोक्ष्यन्ति ते न संदेहः पशुत्वात्सुरसत्तमाः॥ १९

नैष्ठिकं द्वादशाब्दं वा तदर्द्धं वर्षकत्रयम्।
शुश्रूषां कारयेद्यस्तु स पशुत्वाद्विमुच्यते॥ २०

तस्मात्परमिदं दिव्यं चरिष्यथ सुरोत्तमाः।
पशुत्वान्मोक्ष्यथ तदा यूयमत्र न संशयः॥ २१

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य महेशस्य परात्मनः।
तथेति चाब्रुवन्देवा हरिब्रह्मादयस्तथा॥ २२
तस्माद्वै पशवः सर्वे देवासुरवराः प्रभोः।
रुद्रः पशुपतिश्चैव पशुपाशविमोचकः॥ २३
तदा पशुपतीत्येतत्तस्य नाम महेशितुः।
प्रसिद्धमभवद् ह्यद्धा सर्वलोकेषु शर्मदम्॥ २४

मुदा जयेति भाषन्तः सर्वे देवर्षयस्तदा।
अमुदंश्चाति देवेशो ब्रह्मा विष्णुः परेऽपि च॥ २५

तस्मिंश्च समये यच्च रूपं तस्य महात्मनः।
जातं तद्वर्णितुं शक्यं न हि वर्षशतैरपि॥ २६

उस समय देवगणोंकी ओर देखकर कल्याण करनेवाले भगवान् रुद्रने कहा—हे श्रेष्ठ देवताओ! यदि आपलोग मुझे पशुओंका अधिपति बना दें, तो मैं असुरोंका वध करूँ। देवताओं तथा अन्य लोगोंके पृथक्-पृथक् पशुत्वकी कल्पना करनेपर ही वे दैत्यश्रेष्ठ वधके योग्य हो सकते हैं, अन्यथा नहीं॥ १३-१४॥

सनत्कुमार बोले—उन बुद्धिमान् देवाधिदेवके इस वचनको सुनकर सभी देवता पशुत्वके प्रति शंकित होकर दु:खित हो गये। तब देवाधिदेव अम्बिकापति शंकर देवताओंका भाव जानकर हँसते हुए उन देवताओंसे कहने लगे— ॥ १५-१६ ॥

शम्भु बोले—हे देवगणो! पशुभावको प्राप्त होनेपर भी आपलोगोंका पात नहीं होगा, मेरी बात सुनिये और उस पशुभावसे अपनेको मुक्त कीजिये। जो इस दिव्य पाशुपत व्रतका आचरण करेगा, वह पशुत्वसे मुक्त हो जायगा, मैंने आपलोगोंसे सत्य प्रतिज्ञा की है॥ १७-१८॥

हे श्रेष्ठ देवताओ! जो अन्य लोग भी मेरे पाशुपतव्रतका आचरण करेंगे, वे पशुत्वसे मुक्त हो जायँगे, इसमें संशय नहीं है। जो निष्ठापूर्वक बारह वर्ष, छः वर्ष अथवा तीन वर्षतक मेरी उपासना करेगा, वह पशुभावसे छूट जायगा। इसलिये हे श्रेष्ठ देवताओ! यदि आप लोग इस श्रेष्ठ एवं दिव्य व्रतका आचरण करेंगे, तो पशुत्वसे मुक्त हो जायँगे, इसमें सन्देह नहीं है॥ १९—२१॥

सनत्कुमार बोले—उन परमात्मा महेश्वरका यह वचन सुनकर ब्रह्मा, विष्णु आदि देवगणोंने कहा—ऐसा ही होगा। इसलिये [हे वेदव्यास!] देवता एवं असुर सभी उन प्रभुके पशु हैं और पशुओंको पाशसे मुक्त करनेवाले रुद्र भगवान् शंकर पशुपति हैं॥ २२-२३॥

तभीसे उन महेश्वरका यह कल्याणप्रद पशुपति नाम भी सभी लोकोंमें प्रसिद्ध हुआ॥ २४॥

उसके बाद सभी देवता तथा ऋषि प्रसन्नतापूर्वक जय-जयकार करने लगे। स्वयं देवेश, ब्रह्मा, विष्णु एवं अन्य लोग भी बहुत प्रसन्न हुए। उस समय उन परमात्माका जैसा अद्भुत रूप था, उसका वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता॥ २५-२६॥

एवंविधो महेशानो महेशान्यखिलेश्वरः।
जगाम त्रिपुरं हन्तुं सर्वेषां सुखदायकः॥ २७
तं देवदेवः त्रिपुरं निहंतुं
तदानु सर्वे तु रविप्रकाशाः।
गजैर्हयैस्सिंहवरै रथैश्च
वृषैर्ययुस्तेऽमरराजमुख्याः ॥ २८
हलैश्च शालैर्मुशलैर्भुशुण्डै-
र्गिरीन्द्रकल्पैर्गिरिसंनिभाश्च ।
नानायुधैः संयुतबाहवस्ते
ततो नु हृष्टाः प्रययुः सुरेशाः॥ २९
नानायुधाढ्याः परमप्रकाशा
महोत्सवाः शंभुजयं वदन्तः।
ययुः पुरस्तस्य महेश्वरस्य
तदेन्द्रपद्मोद्भवविष्णुमुख्याः ॥ ३०
जहृषुर्मुनयः सर्वे दंडहस्ता जटाधराः।
ववृषुः पुष्पवर्षाणि खेचरास्सिद्धचारणाः॥ ३१

इस प्रकारके स्वरूपवाले, सबके लिये सुखदायक अखिलेश्वर महेश तथा महेशानी त्रिपुरको मारनेके लिये चल पड़े। जिस समय देवाधिदेव उस त्रिपुरका वध करनेके लिये चले, उस समय सूर्यके समान तेजस्वी इन्द्र आदि सभी देवता उत्तम हाथी, घोड़े, सिंह, रथ तथा बैलपर सवार हो उनके पीछे-पीछे चले। हाथोंमें हल, शाल, मूसल, विशाल पर्वतके समान भुशुण्ड तथा विविध आयुध धारण किये हुए पर्वतसदृश वे इन्द्रादि देवता प्रसन्न होकर [त्रिपुरका वध करनेके लिये] चले॥ २७—२९॥

उस समय अनेक प्रकारके आयुधोंसे युक्त तथा परम प्रकाशमान इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता महोत्सव मनाते हुए तथा शिवजीकी जय-जयकार करते हुए उन महेश्वरके आगे-आगे चल रहे थे॥ ३०॥

उस समय हाथमें दण्ड लिये हुए तथा जटा धारण किये हुए सभी मुनि हर्षित हुए और आकाशमें विचरण करनेवाले सिद्ध तथा चारण पुष्पवृष्टि करने लगे॥ ३१॥

पुरत्रयं च विप्रेन्द्र व्रजन्सर्वे गणेश्वराः।
तेषां संख्यां च कः कर्तुं समर्थो वच्मि कांश्चन॥ ३२
गणेश्वरैर्देवगणैश्च भृङ्गी
समावृतः सर्वगणेन्द्रवर्यः।
जगाम योगांस्त्रिपुरं निहन्तुं
विमानमारुह्य यथा महेन्द्रः॥ ३३
केशो विगतवासश्च महाकेशो महाज्वरः।
सोमवल्लीसवर्णश्च सोमपः सनकस्तथा॥ ३४
सोमधृक् सूर्यवर्चाश्च सूर्यप्रेषणकस्तथा।
सूर्याक्षः सूरिनामा च सुरः सुन्दर एव च॥ ३५
प्रस्कंदः कुन्दरश्चण्डः कंपनश्चातिकंपनः।
इन्द्रश्चेन्द्रजवश्चैव यन्ता हिमकरस्तथा॥ ३६
शताक्षश्चैव पंचाक्षः सहस्राक्षो महोदरः।
सतीजुहः शतास्यश्च रंकः कर्पूरपूतनः॥ ३७
द्विशिखस्त्रिशिखश्चैव तथाहंकारकारकः।
अजवक्त्रोऽष्टवक्त्रश्च हयवक्त्रोऽर्द्धवक्त्रकः॥ ३८
इत्याद्या गणपा वीरा बहवोऽपरिमेयकाः।
प्रययुः परिवार्येशं लक्ष्यलक्षणवर्जिताः॥ ३९

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! जो सभी गणेश्वर तीनों पुरोंको जा रहे थे, उनकी संख्या बतानेमें कौन समर्थ है, तथापि मैं कुछको कह रहा हूँ॥ ३२॥

गणेश्वरों और देवगणोंके साथ सभी गणोंसे श्रेष्ठ भृंगी विमानमें चढ़कर महेन्द्रके समान त्रिपुरका वध करनेके लिये चला। केश, विगतवास, महाकेश, महाज्वर, सोमवल्ली, सवर्ण, सोमप, सनक, सोमधृक्, सूर्यवर्चा, सूर्यप्रेषण, सूर्याक्ष, सूरि, सुर, सुन्दर, प्रस्कन्द, कुन्दर, चण्ड, कम्पन, अतिकम्पन, इन्द्र, इन्द्रजव, हिमकर, यन्ता, शताक्ष, पंचाक्ष, सहस्राक्ष, महोदर, सतीजुह, शतास्य, रंक, कर्पूरपूतन, द्विशिख, त्रिशिख, अहंकारकारक, अजवक्त्र, अष्टवक्त्र, हयवक्त्र तथा अर्धवक्त्र इत्यादि बहुत-से असंख्य वीरगण, जो लक्ष्य-लक्षणसे रहित थे, वे शिवजीको घेरकर चले॥ ३३—३९॥

समावृत्य महादेवं तदापुस्ते पिनाकिनम्।
दग्धुं समर्था मनसा क्षणेन सचराचरम्॥ ४०
दग्धुं जगत्सर्वमिदं समर्थाः
किं त्वत्र दग्धुं त्रिपुरं पिनाकी।
रथेन किं चात्र शरेण तस्य
गणैश्च किं देवगणैश्च शम्भोः॥ ४१
स एव दग्धुं त्रिपुराणि तानि
देवद्विषां व्यास पिनाकपाणिः।
स्वयं गतस्तत्र गणैश्च सार्द्धं
निजैस्सुराणामपि सोऽद्भुतोतिः॥ ४२
किं तत्र कारणं चान्यद्वच्मि ते ऋषिसत्तम।
लोकेषु ख्यापनार्थं वै यशः परमलापहम्॥ ४३

अन्यच्च कारणं ह्येतद्दुष्टानां प्रत्ययाय वै।
सर्वेष्वपि च देवेषु यस्मान्नान्यो विशिष्यते॥ ४४

जो गण महादेव शिवको घेरकर उनके साथ चल रहे थे, वे मनसे ही चराचर जगत्को भस्म करनेमें समर्थ थे। किंतु यहाँ तो पिनाकधारी भगवान् शंकर स्वयं ही त्रिपुरको जलानेमें समर्थ थे। उन शम्भुको रथ, बाण, गणों तथा देवताओंकी क्या आवश्यकता थी, किंतु हे व्यास! हाथमें पिनाक धारण किये वे अपने गणों तथा देवताओंके साथ दैत्योंके उन तीनों पुरोंको जलानेके लिये जा रहे थे। यह उनकी अद्भुत लीला है॥ ४०—४२॥

हे ऋषिश्रेष्ठ! उसमें जो कारण है, उसे मैं आपसे कह रहा हूँ। दूसरोंके पापोंका नाश करनेवाले उन्होंने अपने यशका त्रिलोकीमें विस्तार करनेके निमित्त ऐसा किया और दूसरा यह भी कारण है कि दुष्टोंके मनमें यह विश्वास हो जाय कि सभी देवगणोंमें शिवजीसे बढ़कर अन्य कोई नहीं है॥ ४३-४४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शिवयात्रावर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शिवयात्रावर्णन नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

अथ दशमोऽध्यायः

भगवान् शिवका त्रिपुरपर सन्धान करना, गणेशजीका विघ्न उपस्थित करना, आकाशवाणीद्वारा बोधित होनेपर शिवद्वारा विघ्ननाशक गणेशका पूजन, अभिजित् मुहूर्तमें तीनों पुरोंका एकत्र होना और शिवद्वारा बाणाग्निसे सम्पूर्ण त्रिपुरको भस्म करना, मयदानवका बचा रहना

सनत्कुमार उवाच

अथ शम्भुर्महादेवो रथस्थः सर्वसंयुतः।
त्रिपुरं सकलं दग्धुमुद्यतोऽभूत्सुरद्विषाम्॥ १

शीर्षं स्थानकमास्थाय संधाय च शरोत्तमम्।
सज्जं तत्कार्मुकं कृत्वा प्रत्यालीढं महाद्भुतम्॥ २

निवेश्य दृढमुष्टौ च दृष्टिं दृष्टौ निवेश्य च।
अतिष्ठन्निश्चलस्तत्र शतं वर्षसहस्त्रकम्॥ ३

ततोऽङ्गुष्ठे गणाध्यक्षः स तुदत्यनिशं स्थितः।
न लक्ष्यं विविशुस्तानि पुराण्यस्य त्रिशूलिनः॥ ४

सनत्कुमार बोले—[हे व्यासजी!] इसके बाद महादेव शम्भु सम्पूर्ण सामग्रियोंसे युक्त हो उस रथपर बैठकर दैत्योंके सम्पूर्ण त्रिपुरको दग्ध करनेके लिये उद्यत हुए। उस रथके शीर्ष स्थानपर स्थित हो वे धनुषको चढ़ाकर उसपर उत्तम बाण सन्धानकर अत्यन्त अद्भुत प्रत्यालीढ आसनमें स्थित होकर दृढमुष्टिमें धनुषको पकड़कर अपनी दृष्टिमें दृष्टि डालकर निश्चल हो सौ हजार वर्षपर्यन्त वहाँ स्थित रहे। उस समय वे गणेशजी उन शिवजीके अँगूठेपर स्थिर हो निरन्तर उन्हें पीड़ित करने लगे, जिससे उनके लक्ष्यमें त्रिपुर दिखायी न पड़े॥ १—४॥

ततोऽन्तरिक्षादशृणोद्धनुर्बाणधरो हरः।
मुञ्जकेशो विरूपाक्षो वाचं परमशोभनाम्॥ ५

भो भो न यावद्भगवन्नर्चितोऽसौ विनायकः।
पुराणि जगदीशेश सांप्रतं न हनिष्यति॥ ६

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं गजवक्त्रमपूजयत्।
भद्रकालीं समाहूय ततोऽन्धकनिषूदनः॥ ७

तस्मिन् संपूजिते हर्षात्परितुष्टे पुरस्सरे।
विनायके ततो व्योम्नि ददर्श भगवान्हरः॥ ८
पुराणि त्रीणि दैत्यानां तारकाणां महात्मनाम्।
यथातथं हि युक्तानि केचिदित्थं वदंति ह॥ ९
परब्रह्मणि देवेशे सर्वोपास्ये महेश्वरे।
अन्यप्रसादतः कार्यसिद्धिर्घटति नेति हि॥ १०

स स्वतंत्रः परं ब्रह्म सगुणो निर्गुणोऽपि ह।
अलक्ष्यः सकलैः स्वामी परमात्मा निरंजनः॥ ११
पंचदेवात्मकः पंचदेवोपास्यः परः प्रभुः।
तस्योपास्यो न कोऽप्यस्ति स एवोपास्य आलयम्॥ १२
अथवा लीलया तस्य सर्वं संघटते मुने।
चरितं देवदेवस्य वरदातुर्महेशितुः॥ १३
तस्मिंस्थिते महादेवे पूजयित्वा गणाधिपम्।
पुराणि तत्र कालेन जग्मुरेकत्वमाशु वै॥ १४

एकीभावं मुने तत्र त्रिपुरे समुपागते।
बभूव तुमुलो हर्षो देवादीनां महात्मनाम्॥ १५

ततो देवगणाः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः।
जयेति वाचो मुमुचुः स्तुवंतश्चाष्टमूर्तिकम्॥ १६

अथाहेति तदा ब्रह्मा विष्णुश्च जगतां पतिः।
समयोऽपि समायातो दैत्यानां वधकर्मणः॥ १७

तेषां तारकपुत्राणां त्रिपुराणां महेश्वर।
देवकार्यं कुरु विभो एकत्वमपि चागतम्॥ १८

यावन्न यान्ति देवेश विप्रयोगं पुराणि वै।
तावद् बाणं विमुञ्चस्व त्रिपुरं भस्मसात्कुरु॥ १९

तब मुंजकेश, विरूपाक्ष तथा धनुष-बाणधारी शंकरने यह अत्यन्त मनोहर आकाशवाणी सुनी। हे जगदीश! हे ईश! हे भगवन्! जबतक आप इन गणेशजीका पूजन नहीं करेंगे, तबतक आप त्रिपुरका नाश नहीं कर सकेंगे॥ ५-६॥

तदनन्तर यह वचन सुनकर अन्धकका वध करनेवाले सदाशिवने भद्रकालीको बुलाकर गणेशजीकी पूजा की॥ ७॥

पूजासे उन गणेशके प्रसन्न हो जानेपर भगवान् शिवने आकाशमें स्वयं अपने आगे उन महात्मा दैत्य तारकपुत्रोंके तीनों पुरोंको देखा, जो यथायोग्य एक-दूसरेसे युक्त थे। इस विषयमें कोई ऐसा कहते हैं कि—परब्रह्म देवेश परमेश्वर तो सबके पूजनीय हैं, फिर उनके कार्यकी सिद्धि दूसरोंकी प्रसन्नतासे हो, यह तो उनके लिये उचित नहीं प्रतीत होता॥ ८—१०॥

वे परब्रह्म, स्वतन्त्र, सगुण, निर्गुण, परमात्मा तथा मायासे रहित एवं सभीसे अलक्ष्य हैं। वे परम प्रभु पंचदेवात्मक तथा पंचदेवोंके उपास्य हैं। उनका कोई भी उपास्य नहीं है, वे ही सबके उपास्य हैं। अथवा हे मुने! सबको वर देनेवाले उन देवाधिदेव महेश्वरकी लीलासे सभी चरित सम्भव हैं॥ ११—१३॥

जब महादेवजी गणेशका पूजनकर स्थित हो गये, उसी समय वे तीनों पुर शीघ्र ही एकमें मिल गये॥ १४॥

हे मुने! इस प्रकार त्रिपुरके एक साथ मिल जानेपर देवताओं तथा महात्माओंको बड़ी प्रसन्नता हुई॥ १५॥

तत्पश्चात् समस्त देवगण, महर्षि एवं सिद्धगण महादेवजीकी स्तुति करते हुए उनकी जय-जयकार करने लगे॥ १६॥

इसके बाद जगत्पति ब्रह्मा तथा विष्णुने कहा—हे महेश्वर! अब इन दैत्य तारकपुत्रोंके वधकार्यका समय उपस्थित हो गया है। हे विभो! आप देवकार्य सम्पन्न कीजिये; क्योंकि इनके तीनों पुर एक स्थानमें आ गये हैं। हे देवेश! जबतक ये पुर एक-दूसरेसे अलग नहीं होते, तबतक आप बाण छोड़िये और त्रिपुरको भस्म कर दीजिये॥ १७—१९॥

अथ सज्यं धनुः कृत्वा शर्वः संधाय तं शरम्।
पूज्यं पाशुपतास्त्रं स त्रिपुरं समचिन्तयत्॥ २०

तब शंकरजीने धनुषकी डोरी चढ़ाकर उसपर बाण रखकर त्रिपुरसंहारके लिये अपने पूज्य पाशुपतास्त्रका ध्यान किया॥ २०॥

अथ देवो महादेवो वरलीलाविशारदः।
केनापि कारणेनात्र सावज्ञं तदवैक्षत॥ २१

उसके बाद श्रेष्ठ लीलाविशारद शिवजी किसी कारणसे उन पुरोंको निरादरकी दृष्टिसे देखने लगे॥ २१॥

पुरत्रयं विरूपाक्षः कर्तुं तद्भस्मसात्क्षणात्।
समर्थः परमेशानो जानातु च सतां गतिः॥ २२
दग्धुं समर्थो देवेशो वीक्षणेन जगत्त्रयम्।
अस्मद्यशो विवृद्ध्यर्थं शरं मोक्तुमिहार्हसि॥ २३

आप विरूपाक्ष हैं और इन तीनों पुरोंको क्षणमात्रमें दग्ध करनेमें समर्थ हैं तथा सज्जनोंकी एकमात्र गति हैं। यद्यपि आप देवेश्वर अपनी दृष्टिमात्रसे तीनों लोकोंको भस्म करनेमें समर्थ हैं, किंतु हमलोगोंके यशको बढ़ानेके लिये आप इनपर अपना बाण छोड़िये॥ २२-२३॥

इति स्तुतोऽमरैः सर्वैर्विष्ण्वादिविधिभिस्तदा।
दग्धुं पुरत्रयं तद्वै बाणेनैच्छन्महेश्वरः॥ २४
मुहूर्तेऽभिजिदाख्ये तु विकृष्य धनुरद्भुतम्।
कृत्वा ज्यातलनिर्घोषं नादमत्यंतदुस्सहम्॥ २५
आत्मनो नाम विश्राव्य समाभाष्य महासुरान्।
मार्तंडकोटिवपुषं कांडमुग्रो मुमोच ह॥ २६

इस प्रकार जब विष्णु, ब्रह्मा आदि समस्त देवताओंने महेश्वरकी स्तुति की, तब उन्होंने उसी बाणसे तीनों पुरोंको भस्म करनेकी इच्छा की। उन शिवजीने अभिजित् मुहूर्तमें उस अद्भुत धनुषको खींचकर उसकी प्रत्यंचाकी टंकारसे अत्यन्त दुःसह शब्द करके और उन असुरोंको अपना नाम सुनाकर तथा उन्हें ललकारते हुए करोड़ों सूर्योंके समान देदीप्यमान बाण छोड़ा॥ २४—२६॥

ददाह त्रिपुरस्थांस्तान्दैत्याँस्त्रीन्विमलापहः।
स आशुगो विष्णुमयो वह्निशल्यो महाज्वलन्॥ २७

पापनाशक, जाज्वल्यमान, अग्निफलकसे युक्त तथा तीव्रगामी उस विष्णुमय बाणने त्रिपुरमें रहनेवाले उन तीनों दैत्योंको दग्ध कर दिया॥ २७॥

ततः पुराणि दग्धानि चतुर्जलधिमेखलाम्।
गतानि युगपद्भूमिं त्रीणि दग्धानि भस्मशः॥ २८
दैत्यास्तु शतशो दग्धास्तस्य बाणस्थवह्निना।
हाहाकारं प्रकुर्वंतश्शिवपूजाव्यतिक्रमात्॥ २९

इस प्रकार भस्म हुए वे तीनों पुर चार समुद्रोंकी मेखलावाली पृथ्वीपर एक साथ ही गिर पड़े और जले हुए वे पुर राखके रूपमें हो गये। शिवकी पूजामें व्यतिक्रमके कारण सैकड़ों दैत्य हाहाकार करते हुए उस बाणकी अग्निसे भस्म हो गये॥ २८-२९॥

तारकाक्षस्तु निर्दग्धो भ्रातृभ्यां सहितोऽभवत्।
सस्मार स्वप्रभुं देवं शंकरं भक्तवत्सलम्॥ ३०
भक्त्या परमया युक्तः प्रलपन् विविधा गिरः।
महादेवं समुद्वीक्ष्य मनसा तमुवाच सः॥ ३१

जब भाइयोंके सहित तारकाक्ष भस्म होने लगा, तब उसने अपने प्रभु भक्तवत्सल भगवान् सदाशिवका स्मरण किया। महादेवकी ओर देखकर परम भक्तिसे युक्त होकर वह नाना प्रकारके विलाप करता हुआ मन-ही-मन उनसे कहने लगा— ॥ ३०-३१॥

तारकाक्ष उवाच

भव ज्ञातोऽसि तुष्टोऽसि यद्यस्मान् सह बंधुभिः।
तेन सत्येन भूयोऽपि कदा त्वं प्रदहिष्यसि॥ ३२
दुर्लभं लब्धमस्माभिर्यदप्राप्यं सुरासुरैः।
त्वद्भावभाविता बुद्धिर्जाते जाते भवत्विति॥ ३३

तारकाक्ष बोला—हे भव! मैंने जान लिया है कि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हैं, अपने इस सत्यके प्रभावसे आप पुनः भाइयोंसहित हमें कब जलायेंगे? हे भगवन्! हमलोगोंने वह दुर्लभ वस्तु प्राप्त की है, जो देवताओं और असुरोंके लिये भी अप्राप्य है, हमारी बुद्धि जन्म-जन्मान्तरमें आपकी भक्तिसे भावित रहे॥ ३२-३३॥

इत्येवं विब्रुवन्तस्ते दानवास्तेन वह्निना।
शिवाज्ञयाद्भुतं दग्धा भस्मसादभवन्मुने॥ ३४

अन्येऽपि बाला वृद्धाश्च दानवास्तेन वह्निना।
शिवाज्ञया द्रुतं व्यास निर्दग्धा भस्मसात्कृताः॥ ३५

स्त्रियो वा पुरुषा वापि वाहनानि च तत्र ये।
सर्वे तेनाग्निना दग्धाः कल्पान्ते तु जगद्यथा॥ ३६

हे मुने! ऐसा कहते हुए उन दैत्योंको शिवजीकी आज्ञासे अग्निने अद्भुत रीतिसे जलाकर राख कर दिया। हे व्यासजी! उस अग्निने अन्य बालक तथा वृद्ध दानवोंको भी शिवजीकी आज्ञासे शीघ्र ही जलाकर राख कर दिया। जिस प्रकार कल्पान्तमें जगत् भस्म हो जाता है, उसी प्रकार उस अग्निने वहाँ जो भी स्त्री, पुरुष, वाहनादि थे, उन सभीको जला दिया॥ ३४—३६॥

भर्तृन्कंठगतान्हित्वा काश्चिद्दग्धा वरस्त्रियः।
काश्चित्सुप्ताः प्रमत्ताश्च रतिश्रांताश्च योषितः॥ ३७

बहुत-सी श्रेष्ठ स्त्रियाँ गलेमें भुजाएँ डालनेवाले अपने पतियोंको छोड़कर भस्म हो गयीं, सोयी हुई, प्रमत्त और रतिश्रान्त स्त्रियाँ भी भस्म हो गयीं॥ ३७॥

अर्द्धदग्धा विबुद्धाश्च बभ्रमुर्मोहमूर्च्छिताः।
तेन नासीत्सुसूक्ष्मोऽपि घोरत्रिपुरवह्निना॥ ३८

कोई आधी जलकर चेतनामें आ-आकर बारंबार मोहसे मूर्च्छित हो जाती थी। कोई अति सूक्ष्म भी ऐसी वस्तु शेष न बची, जो त्रिपुरकी अग्निसे भस्म न हुई हो॥ ३८॥

अविदग्धो विनिर्मुक्तः स्थावरो जंगमोऽपि वा।
वर्जयित्वा मयं दैत्यं विश्वकर्माणमव्ययम्॥ ३९

अविरुद्धं तु देवानां रक्षितं शंभुतेजसा।
विपत्कालेऽपि सद्भक्तं महेशशरणागतम्॥ ४०

केवल एक अविनाशी विश्वकर्मा मयदानवको छोड़कर स्थावर तथा जंगम कोई भी बिना जले न बचा, वह देवताओंका विरोधी नहीं था, विपत्तिकालमें भी महेशका शरणागत भक्त था और शिवजीके तेजसे रक्षित था॥ ३९-४०॥

सन्निपातो हि येषां नो विद्यते नाशकारकः।
दैत्यानामन्यसत्त्वानां भावाभावे कृताकृते॥ ४१

तस्माद्यत्नः सुसंभाव्यः सद्भिः कर्तव्य एव हि।
गर्हणात्क्षीयते लोको न तत्कर्म समाचरेत्॥ ४२

चाहे दैत्य हों, चाहे अन्य प्राणी हों, भावाभावकी अवस्थामें तथा कृत-अकृत कालमें महेश्वरके शरणागत होनेपर उनका नाशकारक पतन नहीं होता है। इसलिये सत्पुरुषोंको ध्यानपूर्वक इस प्रकारका यत्न करना चाहिये, जिससे भक्ति बढ़े। निन्दासे लोकका क्षय होता है, अतः उस कर्मको कभी नही करना चाहिये॥ ४१-४२॥

न संयोगो यथा तेषां भूयात् त्रिपुरवासिनाम्।
मतमेतद्धि सर्वेषां दैवाद्यदि यतो भवेत्॥ ४३

पुरुषको कभी ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये, जिससे उन त्रिपुरों-जैसा संयोग उपस्थित हो। क्या ही उत्तम बात होती कि प्रारब्धसे सभीका मन शिवजीमें लगता॥ ४३॥

ये पूजयंतस्तत्रापि दैत्या रुद्रं सबांधवाः।
गाणपत्यं ययुः सर्वे शिवपूजाविधेर्बलात्॥ ४४

उस समय भी जो दैत्य बान्धवोंसहित शिवपूजनमें तत्पर थे, वे सब शिवपूजाके प्रभावसे गणोंके अधिपति हो गये॥ ४४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे त्रिपुरदाहवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें त्रिपुरदाहवर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

अथैकादशोऽध्यायः

त्रिपुरदाहके अनन्तर भगवान् शिवके रौद्ररूपसे भयभीत देवताओंद्वारा उनकी स्तुति और उनसे भक्तिका वरदान प्राप्त करना

व्यास उवाच

ब्रह्मपुत्र महाप्राज्ञ धन्यस्त्वं शैवसत्तम।
किमकार्षुस्ततो देवा दग्धे च त्रिपुरेऽखिलाः॥ १
मयः कुत्र गतोऽदग्धो यतयः कुत्र ते गताः।
तत्सर्वं मे समाचक्ष्व यदि शंभुकथाश्रयम्॥ २

सूत उवाच

व्यासवाक्यं समाकर्ण्य भगवान्भवकृत्सुतः।
सनत्कुमारः प्रोवाच शिवपादयुगं स्मरन्॥ ३

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास महाबुद्धे पाराशर्य्य महेशितुः।
चरितं सर्वपापघ्नं लोकलीलानुसारिणः॥ ४
महेश्वरेण सर्वस्मिंस्त्रिपुरे दैत्यसंकुले।
दग्धे विशेषतस्तत्र विस्मितास्तेऽभवन्सुराः॥ ५
न किंचिदब्रुवन्देवाः सेन्द्रोपेन्द्रादयस्तदा।
महातेजस्विनं रुद्रं सर्वे वीक्ष्य ससंभ्रमाः॥ ६

महाभयंकरं रौद्रं प्रज्वलन्तं दिशो दश।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं प्रलयानलसन्निभम्॥ ७

भयाद्देवं निरीक्ष्यैव देवीं च हिमवत्सुताम्।
बिभ्यिरे निखिला देवप्रमुखास्तस्थुरानताः॥ ८

दृष्ट्वानीकं तदा भीतं देवानामृषिपुंगवाः।
न किंचिदूचुः संतस्थुः प्रणेमुस्ते समन्ततः॥ ९

अथ ब्रह्मापि संभीतो दृष्ट्वा रूपं च शांकरम्।
तुष्टाव तुष्टहृदयो देवैः सह समाहितः॥ १०
विष्णुना च सभीतेन देवदेवं भवं हरम्।
त्रिपुरारिं सगिरिजं भक्ताधीनं महेश्वरम्॥ ११

ब्रह्मोवाच

देवदेव महादेव भक्तानुग्रहकारक।
प्रसीद परमेशान सर्वदेवहितप्रद॥ १२
प्रसीद जगतां नाथ प्रसीदानंददायक।
प्रसीद शंकर स्वामिन् प्रसीद परमेश्वर॥ १३

व्यासजी बोले—हे ब्रह्मपुत्र! हे महाप्राज्ञ! आप धन्य हैं। हे शैवश्रेष्ठ! त्रिपुरके जल जानेपर सभी देवताओंने क्या किया, दाहसे रहित मय कहाँ गया, वे यतिगण कहाँ गये, यदि शिवजीकी कथासे सम्बन्धित अन्य कुछ हो, तो वह सब मुझे बताइये॥ १-२॥

सूतजी बोले—व्यासजीके इस वचनको सुनकर ब्रह्माजीके पुत्र भगवान् सनत्कुमार शिवके चरणयुगलका स्मरण करते हुए कहने लगे—॥ ३॥

सनत्कुमार बोले—हे महाबुद्धे! हे पराशरपुत्र व्यास! अब आप लोकलीलाका अनुसरण करनेवाले महेश्वरके सर्वपापनाशक चरित्रको सुनिये। महेश्वरके द्वारा दैत्योंसे परिपूर्ण समस्त त्रिपुरके दग्ध कर दिये जानेपर वे देवता विशेष रूपसे आश्चर्यचकित हुए। उस समय इन्द्र, विष्णुसहित सभी देवता महातेजस्वी रुद्रको देखकर आश्चर्यमें पड़ गये और कुछ भी नहीं बोले॥ ४—६॥

अत्यन्त भयंकर, रौद्र रूपवाले, दसों दिशाओंको प्रज्वलित करते हुए, करोड़ों सूर्योंके समान तथा प्रलयाग्नि-सदृश महादेवको तथा देवी पार्वतीको देखकर सभी देवगण भयभीत हो गये और सिर झुकाकर खड़े हो गये॥ ७-८॥

तब श्रेष्ठ ऋषिगण देवसेनाको इस प्रकार भयभीत देखकर कुछ भी नहीं बोले और वे [शिवको] प्रणामकर चारों ओर खड़े रहे॥ ९॥

तब शंकरजीके रूपको देखकर डरे हुए ब्रह्मा भी प्रसन्नचित्त होकर सावधान हो देवताओं तथा भयभीत विष्णुके साथ पार्वतीसहित भक्ताधीन देवदेव, भव, हर, त्रिपुरारि महेश्वरकी स्तुति करने लगे॥ १०-११॥

ब्रह्माजी बोले—हे देव! हे महादेव! हे भक्तानुग्रहकारक! हे सर्वदेवहितकारी परमेश्वर! आप प्रसन्न होइये। हे जगत्पते! प्रसन्न होइये, हे आनन्ददायक! प्रसन्न होइये। हे शंकर! हे स्वामिन्! प्रसन्न होइये। हे परमेश्वर! प्रसन्न होइये॥ १२-१३॥

ॐकाराय नमस्तुभ्यमाकारपरतारक।
प्रसीद सर्वदेवेश त्रिपुरघ्न महेश्वर॥ १४
नानावाच्याय देवाय प्रणतप्रिय शंकर।
अगुणाय नमस्तुभ्यं प्रकृतेः पुरुषात्पर॥ १५

जीवोंके उद्धारकर्ता आप ओंकारको नमस्कार है। हे सर्वदेवेश! त्रिपुरका विनाश करनेवाले हे महेश्वर! आप प्रसन्न होइये। हे प्रणतप्रिय! हे शंकर! अनेक नामोंसे वाच्य आप देवको नमस्कार है, हे प्रकृति एवं पुरुषसे पर! आप निर्गुणको नमस्कार है॥ १४-१५॥

निर्विकाराय नित्याय नित्यतृप्ताय भास्वते।
निरंजनाय दिव्याय त्रिगुणाय नमोऽस्तु ते॥ १६

निर्विकार, नित्य, नित्यतृप्त, प्रकाशमान, निरंजन, दिव्य तथा त्रिगुणरूप आपको प्रणाम है॥ १६॥

सगुणाय नमस्तुभ्यं स्वर्गेशाय नमोस्तु ते।
सदाशिवाय शांताय महेशाय पिनाकिने॥ १७

सगुणरूपधारी आपको नमस्कार है। स्वर्गेश, सदाशिव, शान्त, पिनाकधारी तथा महेश्वर आपको नमस्कार है॥ १७॥

सर्वज्ञाय शरण्याय सद्योजाताय ते नमः।
वामदेवाय रुद्राय तदाप्यपुरुषाय च॥ १८

सर्वज्ञ, शरण देनेवाले, सद्योजात, वामदेव, रुद्र एवं आप्यपुरुष आपको नमस्कार है॥ १८॥

अघोराय सुसेव्याय भक्ताधीनाय ते नमः।
ईशानाय वरेण्याय भक्तानंदप्रदायिने॥ १९

अघोर, सुसेव्य, भक्ताधीन, ईशान, वरेण्य (श्रेष्ठ) एवं भक्तोंको आनन्द देनेवाले आपको नमस्कार है॥ १९॥

रक्ष रक्ष महादेव भीतान्नः सकलामरान्।
दग्ध्वा च त्रिपुरं सर्वे कृतार्था अमराः कृताः॥ २०

स्तुत्वैवं देवताः सर्वे नमस्कारं पृथक्पृथक्।
चक्रुस्ते परमप्रीता ब्रह्माद्यास्तु सदाशिवम्॥ २१

हे महादेव! आपने त्रिपुरको जलाकर सभी देवताओंको कृतार्थ कर दिया, अब आप भयभीत समस्त देवताओंकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। इस प्रकार ब्रह्मादि सभी देवता अति प्रसन्न होकर भगवान् सदाशिवकी स्तुतिकर उन्हें पृथक्-पृथक् प्रणाम करने लगे॥ २०-२१॥

अथ ब्रह्मा स्वयं देवं त्रिपुरारिं महेश्वरम्।
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा नतस्कंधः कृतांजलिः॥ २२

इसके बाद स्वयं ब्रह्माजी सिर झुकाकर तथा हाथ जोड़कर त्रिपुरारि महेश्वरदेवकी स्तुति करने लगे॥ २२॥

ब्रह्मोवाच

भगवन्देवदेवेश त्रिपुरान्तक शंकर।
त्वयि भक्तिः परा मेऽस्तु महादेवानपायिनी॥ २३
सर्वदा मेऽस्तु सारथ्यं तव देवेश शंकर।
अनुकूलो भव विभो सदा त्वं परमेश्वर॥ २४

ब्रह्माजी बोले—हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे त्रिपुरान्तक! हे शंकर! हे महादेव! मेरी अनपायिनी श्रेष्ठ भक्ति आपमें सदैव बनी रहे। हे देवेश! हे शंकर! मैं सदा आपका सारथी बना रहूँ। हे विभो! हे परमेश्वर! आप सदा मेरे अनुकूल रहें॥ २३-२४॥

सनत्कुमार उवाच

इति स्तुत्वा विधिः शंभुं भक्तवत्सलमानतः।
विरराम नतस्कंधः कृतांजलिरुदारधीः॥ २५

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार उदार बुद्धिवाले ब्रह्मा कन्धा झुकाये हुए हाथ जोड़कर विनम्र हो भक्तवत्सल भगवान् शिवजीकी स्तुतिकर चुप हो गये॥ २५॥

जनार्दनोऽपि भगवान् नमस्कृत्य महेश्वरम्।
कृतांजलिपुटो भूत्वा तुष्टाव च महेश्वरम्॥ २६

इसके बाद भगवान् विष्णुने भी हाथ जोड़कर महेश्वरको प्रणाम करके उनकी स्तुति की॥ २६॥

विष्णुरुवाच

देवाधीश महेशान दीनबंधो कृपाकर।
प्रसीद परमेशान कृपां कुरु नतप्रिय॥ २७

विष्णुजी बोले—हे देवाधीश! हे महेश्वर! हे दीनबन्धो! हे कृपाकर! हे परमेश्वर! हे प्रणतप्रिय! आप प्रसन्न होइये और कृपा कीजिये॥ २७॥

निर्गुणाय नमस्तुभ्यं पुनश्च सगुणाय च।
पुनः प्रकृतिरूपाय पुनश्च पुरुषाय च॥ २८

निर्गुण होते हुए भी सगुण और प्रकृतिरूप होते हुए भी पुरुषरूप आपको नमस्कार है॥ २८॥

पश्चाद् गुणस्वरूपाय नतो विश्वात्मने नमः।
भक्तिप्रियाय शांताय शिवाय परमात्मने॥ २९

उसके बाद गुणरूप धारण करनेवाले विश्वात्मा आपको नमस्कार है। विश्वात्मा, भक्तप्रिय, शान्तस्वरूप तथा परमात्मा शिवको नमस्कार है॥ २९॥

सदाशिवाय रुद्राय जगतां पतये नमः।
त्वयि भक्तिर्दृढा मेऽद्य वर्द्धमाना भवत्विति॥ ३०

सदाशिव, रुद्र एवं जगत्पतिको नमस्कार है। आपमें आजसे मेरी भक्ति दृढ़ होकर निरन्तर बढ़ती रहे॥ ३०॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा विररामासौ शैवप्रवरसत्तमः।
सर्वे देवाः प्रणम्योचुस्ततस्तं परमेश्वरम्॥ ३१

सनत्कुमार बोले—ऐसा कहकर महाशिवभक्त विष्णु मौन हो गये। इसके बाद सभी देवता प्रणाम करके उन परमेश्वरसे कहने लगे—॥ ३१॥

देवा ऊचुः

देवनाथ महादेव करुणाकर शंकर।
प्रसीद जगतां नाथ प्रसीद परमेश्वर॥ ३२

देवता बोले—हे देवनाथ! हे महादेव! हे करुणाकर! हे शंकर! हे जगत्पते! हे परमेश्वर! प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये॥ ३२॥

प्रसीद सर्वकर्ता त्वं नमामस्त्वां वयं मुदा।
त्वयि भक्तिर्दृढास्माकं नित्यं स्यादनपायिनी॥ ३३

आप सर्वकर्ता हैं। आप प्रसन्न होइये। हमलोग प्रसन्नताके साथ आपको नमस्कार करते हैं। आपमें हमारी अविनाशी दृढ़ भक्ति सदा बनी रहे॥ ३३॥

सनत्कुमार उवाच

इति स्तुतश्च देवेशो ब्रह्मणा हरिणामरैः।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा शंकरो लोकशंकरः॥ ३४

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा देवताओंके द्वारा स्तुति किये जानेपर लोककल्याणकर्ता शंकरजीने प्रसन्नचित्त होकर कहा—॥ ३४॥

शंकर उवाच

हे विधे हे हरे देवाः प्रसन्नोऽस्मि विशेषतः।
मनोऽभिलषितं ब्रूत वरं सर्वे विचारतः॥ ३५

शंकर बोले—हे विधे! हे विष्णो! हे देवताओ! मैं विशेषरूपसे प्रसन्न हूँ। आपलोग अच्छी तरह विचारकर अपने मनोवांछित वरको बतलायें॥ ३५॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्तं वचनं श्रुत्वा हरेण मुनिसत्तम।
प्रत्यूचुः सर्वदेवाश्च प्रसन्नेनान्तरात्मना॥ ३६

सनत्कुमार बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! शिवजीके द्वारा कहे गये वचनको सुनकर सभी देवता प्रसन्नमनसे कहने लगे—॥ ३६॥

सर्वे देवा ऊचुः

यदि प्रसन्नो भगवन्यदि देयो वरस्त्वया।
देवदेवेश चास्मभ्यं ज्ञात्वा दासान्हि नः सुरान्॥ ३७
यदा दुःखं तु देवानां संभवेद्देवसत्तम।
तदा त्वं प्रकटो भूत्वा दुःखं नाशय सर्वदा॥ ३८

सभी देवता बोले—हे भगवन्! हे देवदेवेश! यदि आप प्रसन्न हैं और यदि आपको हमें वर देना ही है, तो हम देवताओंको अपना दास समझकर यह वर दीजिये कि हे देवश्रेष्ठ! जब-जब देवताओंपर विपत्ति पड़े, तब-तब आप प्रकट होकर सदा दुःखका निवारण करें॥ ३७-३८॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्तो भगवान् रुद्रो ब्रह्मणा हरिणामरैः।
युगपत्प्राह तुष्टात्मा तथेत्यस्तु निरंतरम्॥ ३९

स्तवैरेतैश्च तुष्टोऽस्मि दास्यामि सर्वदा ध्रुवम्।
यदभीष्टतमं लोके पठतां शृण्वतां सुराः॥ ४०

सनत्कुमार बोले—जब ब्रह्मा, विष्णु तथा देवताओंने भगवान् शंकरसे इस प्रकार कहा, तब उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर एक ही बार सभी देवताओंसे कहा—ऐसा ही होगा। हे देवगणो! मैं इन स्तोत्रोंसे प्रसन्न हूँ। इनका पाठ करनेवालों तथा सुननेवालोंको मैं निश्चित रूपसे सर्वदा लोकमें परम अभीष्ट वर देता रहूँगा॥ ३९-४०॥

इत्युक्त्वा शंकरः प्रीतो देवदुःखहरः सदा।
सर्वदेवप्रियं यद्वै तत्सर्वं च प्रददत्तवान्॥ ४१

इस प्रकार कहकर देवताओंके दुःखका सदा निवारण करनेवाले शंकरजीने प्रसन्न होकर जो भी समस्त देवताओंको प्रिय था, वह सब उन्हें प्रदान किया॥ ४१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे देवस्तुतिवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें देवस्तुतिवर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

त्रिपुरदाहके अनन्तर शिवभक्त मयदानवका भगवान् शिवकी शरणमें आना, शिवद्वारा उसे अपनी भक्ति प्रदानकर वितललोकमें निवास करनेकी आज्ञा देना, देवकार्य सम्पन्नकर शिवजीका अपने लोकमें जाना

सनत्कुमार उवाच

एतस्मिन्नंतरे शंभुं प्रसन्नं वीक्ष्य दानवः।
तत्राजगाम सुप्रीतो मयोऽदग्धः कृपाबलात्॥ १

प्रणनाम हरं प्रीत्या सुरानन्यानपि ध्रुवम्।
कृतांजलिर्नतस्कंधः प्रणनाम पुनश्शिवम्॥ २

अथोत्थाय शिवं दृष्ट्वा प्रेम्णा गद्गदसुस्वरः।
तुष्टाव भक्तिपूर्णात्मा स दानववरो मयः॥ ३

सनत्कुमार बोले—शिवजीको प्रसन्न देखकर उनकी कृपाके प्रभावसे भस्म होनेसे बचा हुआ मयदानव अति प्रसन्न होकर वहाँ आया। उसने सदाशिव एवं अन्य देवताओंको भी प्रेमपूर्वक हाथ जोड़कर सिर झुकाकर प्रणाम किया और उसके बाद शिवजीको पुनः प्रणाम किया। तदनन्तर उठकर शिवजीकी ओर देखकर भक्तिसे पूर्ण मनवाला वह श्रेष्ठ दानव मय प्रेमपूर्वक गद्गद वाणीसे उनकी स्तुति करने लगा—॥ १—३॥

मय उवाच

देवदेव महादेव भक्तवत्सल शंकर।
कल्पवृक्षस्वरूपोऽसि सर्वपक्षविवर्जितः॥ ४

मय बोला—हे देवदेव! हे महादेव! हे भक्तवत्सल! हे शंकर! आप कल्पवृक्षस्वरूप हैं तथा सभी पक्षोंसे रहित हैं॥ ४॥

ज्योतीरूपो नमस्तेऽस्तु विश्वरूप नमोऽस्तु ते।
नमः पूतात्मने तुभ्यं पावनाय नमो नमः॥ ५

हे प्रकाशरूप! आपको नमस्कार है। हे विश्वरूप! आपको नमस्कार है, आप पवित्रात्माको बार-बार नमस्कार है। आप पवित्र करनेवालेको बार-बार नमस्कार है॥ ५॥

चित्ररूपाय नित्याय रूपातीताय ते नमः।
दिव्यरूपाय दिव्याय सुदिव्याकृतये नमः॥ ६

नमः प्रणतसर्वार्तिनाशकाय शिवात्मने।
कर्त्रे भर्त्रे च संहर्त्रे त्रिलोकानां नमो नमः॥ ७

भक्तिगम्याय भक्तानां नमस्तुभ्यं कृपालवे।
तपः सत्फलदात्रे ते शिवाकांत शिवेश्वर॥ ८

विचित्र रूपवाले, नित्य तथा रूपसे अतीत आपको नमस्कार है। दिव्यरूप, दिव्य एवं अत्यन्त दिव्य आकृतिवाले आपको नमस्कार है। प्रणतजनोंकी सभी प्रकारकी विपत्तियोंको दूर करनेवाले तथा सबका कल्याण चाहनेवाले आपको नमस्कार है। त्रिलोकीके कर्ता, भर्ता तथा हर्ता आपको बार-बार नमस्कार है। हे शिवाकान्त! हे शिवेश्वर! भक्तोंको भक्तिसे प्राप्त होनेवाले, कृपा करनेवाले तथा तपस्याका उत्तम फल देनेवाले आपको प्रणाम है॥ ६—८॥

न जानामि स्तुतिं कर्तुं स्तुतिप्रिय परेश्वर।
प्रसन्नो भव सर्वेश पाहि मां शरणागतम्॥ ९

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य मयोक्तां हि संस्तुतिं परमेश्वरः।
प्रसन्नोऽभूद् द्विजश्रेष्ठ मयं प्रोवाच चादरात्॥ १०

शिव उवाच

वरं ब्रूहि प्रसन्नोऽहं मय दानवसत्तम।
मनोऽभिलषितं यत्ते तद्दास्यामि न संशयः॥ ११

सनत्कुमार उवाच

श्रुत्वा शिवं वचः शंभोः स मयो दानवर्षभः।
प्रत्युवाच प्रभुं नत्वा नतस्कंधः कृतांजलिः॥ १२

मय उवाच

देवदेव महादेव प्रसन्नो यदि मे भवान्।
वरयोग्योऽस्म्यहं चेद्धि स्वभक्तिं देहि शाश्वतीम्॥ १३
स्वभक्तेषु सदा सख्यं दीनेषु च दयां सदा।
उपेक्षामन्यजीवेषु खलेषु परमेश्वर॥ १४
कदापि नासुरो भावो भवेन्मम महेश्वर।
निर्भयः स्यां सदा नाथ मग्नस्त्वद्भजने शुभे॥ १५

सनत्कुमार उवाच

इति संप्रार्थ्यमानस्तु शंकरः परमेश्वरः।
प्रत्युवाच मयं नाथः प्रसन्नो भक्तवत्सलः॥ १६

महेश्वर उवाच

दानवर्षभ धन्यस्त्वं मद्भक्तो निर्विकारवान्।
प्रदत्तास्ते वराः सर्वेऽभीप्सिता ये तवाधुना॥ १७
गच्छ त्वं वितलं लोकं रमणीयं दिवोऽपि हि।
समेतः परिवारेण निजेन मम शासनात्॥ १८
निर्भयस्तत्र संतिष्ठ संहृष्टो भक्तिमान्सदा।
कदापि नासुरो भावो भविष्यति मदाज्ञया॥ १९

सनत्कुमार उवाच

इत्याज्ञां शिरसाधाय शंकरस्य महात्मनः।
तं प्रणम्य सुरांश्चापि वितलं प्रजगाम सः॥ २०
एतस्मिन्नन्तरे ते वै मुण्डिनश्च समागताः।
प्रणम्योचुश्च तान्सर्वान्विष्णुब्रह्मादिकान् सुरान्॥ २१
कुत्र याम वयं देवाः कर्म किं करवामहे।
आज्ञापयत नः शीघ्रं भवदादेशकारकान्॥ २२

हे स्तुतिप्रिय! हे परमेश्वर! मैं स्तुति करना नहीं जानता हूँ। हे सर्वेश! आप प्रसन्न हो जाइये और मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये॥ ९॥

सनत्कुमार बोले—हे द्विजश्रेष्ठ! मयद्वारा की गयी स्तुतिको सुनकर शंकरजी प्रसन्न हुए और आदरपूर्वक मयसे कहने लगे— ॥ १०॥

शिवजी बोले—हे दानवश्रेष्ठ मय! मैं [तुमपर] प्रसन्न हूँ, वर माँगो, मैं तुम्हारा जो भी मनोवांछित वर होगा, उसे प्रदान करूँगा, इसमें संशय नहीं है॥ ११॥

सनत्कुमार बोले—शिवका कल्याणकारी वचन सुनकर दानवश्रेष्ठ मय हाथ जोड़कर सिर झुकाकर शिवको नमस्कारकर कहने लगा— ॥ १२॥

मय बोला—हे देवदेव! हे महादेव! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और यदि मैं वर पानेके योग्य हूँ, तो मुझे अपनी शाश्वती भक्ति प्रदान कीजिये॥ १३॥

हे परमेश्वर! आप अपने भक्तोंके प्रति सर्वदा सख्यभाव तथा दीनोंके प्रति सदा दयाभाव रखिये और अन्य खल जीवोंकी उपेक्षा कीजिये। हे महेश्वर! मुझमें कभी भी असुरभाव न रहे। हे नाथ! मैं सदा निर्भय एवं आपके शुभ भजनमें मग्न रहूँ॥ १४-१५॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार मयदानवके प्रार्थना करनेपर भक्तवत्सल परमेश्वर भगवान् शंकर प्रसन्न होकर मयसे कहने लगे— ॥ १६॥

महेश्वर बोले—हे दानवश्रेष्ठ! तुम धन्य हो, तुम मेरे विकाररहित भक्त हो, इस समय जो भी तुम्हारे अभीष्ट वर हैं, उन सबको मैंने तुम्हें दे दिया। तुम मेरी आज्ञासे अपने परिवारसहित स्वर्गलोकसे भी मनोहर वितललोकको जाओ और भक्तियुक्त तथा निर्भय होकर वहाँ रहो। मेरी आज्ञासे तुम्हारे चित्तमें कभी भी असुरभाव उत्पन्न नहीं होगा॥ १७—१९॥

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] उसके बाद शिवजीकी आज्ञा शिरोधार्यकर उनको तथा देवताओंको भी प्रणामकर वह वितललोकको चला गया। इसी बीच वे मुण्डी भी वहाँ आ गये और ब्रह्मा, विष्णु आदि उन सभी देवताओंको प्रणामकर कहने लगे—हे देवताओ! हमलोग कहाँ जायँ तथा क्या करें, आपकी आज्ञा माननेवाले हम सभीको शीघ्रतासे आज्ञा दीजिये॥ २०—२२॥

कृतं दुष्कर्म चास्माभिर्हे हरे हे विधे सुराः।
दैत्यानां शिवभक्तानां शिवभक्तिर्विनाशिता॥ २३

कोटिकल्पानि नरके नो वासस्तु भविष्यति।
नोद्धारो भविता नूनं शिवभक्तविरोधिनाम्॥ २४

परन्तु भवदिच्छात इदं दुष्कर्म नः कृतम्।
तच्छान्तिं कृपया ब्रूत वयं वः शरणागताः॥ २५

हे हरे! हे विधे! हे देवो! हमलोगोंने दुष्कर्म किया है, जो कि शिवजीमें भक्ति रखनेवाले दानवोंकी शिवभक्तिको विनष्ट किया। [इस पापके फलस्वरूप] करोड़ों कल्पोंतक नरकमें हमलोगोंका वास होगा। शिवभक्तोंका विरोध करनेवाले हमलोगोंका उद्धार निश्चितरूपसे नहीं होगा, किंतु हमलोगोंने आपलोगोंकी इच्छासे ही यह दुष्कर्म किया है। अतः कृपापूर्वक आपलोग उसकी शान्तिका मार्ग बतायें, हम आपलोगोंके शरणागत हैं॥ २३—२५॥

सनत्कुमार उवाच

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा विष्णुब्रह्मादयः सुराः।
अब्रुवन्मुंडिनस्तांस्ते स्थितानग्रे कृतांजलीन्॥ २६

सनत्कुमार बोले—उनका वह वचन सुनकर विष्णु, ब्रह्मादि देवता अपने आगे हाथ जोड़कर खड़े उन मुण्डियोंसे कहने लगे—॥ २६॥

विष्ण्वादय ऊचुः

न भेतव्यं भवद्भिस्तु मुंडिनो वै कदाचन।
शिवाज्ञयेदं सकलं जातं चरितमुत्तमम्॥ २७

युष्माकं भविता नैव कुगतिर्दुःखदायिनी।
शिवदासा यतो यूयं देवर्षिहितकारकाः॥ २८

विष्णु आदि [देवता] बोले—हे मुण्डियो! तुमलोग किसी प्रकारका भय मत करो, यह सारा उत्तम चरित्र शिवजीकी आज्ञासे हुआ है। तुमलोगोंको दुःख देनेवाली दुर्गति कदापि न होगी; क्योंकि तुमलोग शिवजीके दास हो और देवताओं एवं ऋषियोंके हितकारी हो॥ २७-२८॥

सुरर्षिहितकृच्छंभुः सुरर्षिहितकृत्प्रियः।
सुरर्षिहितकृन्नृणां कदापि कुगतिर्न हि॥ २९

अद्यतो मतमेतं हि प्रविष्टानां नृणां कलौ।
कुगतिर्भविता ब्रूमः सत्यं नैवात्र संशयः॥ ३०

शंकरजी देवगणों एवं ऋषियोंके हितकर्ता हैं और देवताओं तथा ऋषियोंका हित करनेवाले लोग उन्हें प्रिय हैं, अतः देवताओं तथा ऋषियोंका हित करनेवाले मनुष्योंकी कदापि दुर्गति नहीं होती। इसके विपरीत मतको स्वीकार करनेवाले मनुष्योंकी कलियुगमें दुर्गति होगी, हम यह सत्य कहते हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ २९-३०॥

भवद्भिर्मुण्डिनो धीरा गुप्तभावान्ममाज्ञया।
तावन्मरुस्थली सेव्या कलिर्यावत्समाव्रजेत्॥ ३१

आगते च कलौ यूयं स्वमतं स्थापयिष्यथ।
कलौ तु मोहिता मूढाः संग्रहीष्यन्ति वो मतम्॥ ३२

हे मुण्डियो! तुमलोग मेरी आज्ञासे धैर्य धारणकर गुप्तरूपसे कलियुगके आनेतक मरुस्थलमें निवास करो। कलियुगके आनेपर तुमलोग अपना मत स्थापित करना; क्योंकि कलियुगमें लोग मोहमें पड़कर तुमलोगोंका मत स्वीकार कर लेंगे॥ ३१-३२॥

इत्याज्ञप्ताः सुरेशैश्च मुंडिनस्ते मुनीश्वर।
नमस्कृत्य गतास्तत्र यथोद्दिष्टं स्वमाश्रमम्॥ ३३

ततः स भगवान् रुद्रो दग्ध्वा त्रिपुरवासिनः।
कृतकृत्यो महायोगी ब्रह्माद्यैरभिपूजितः॥ ३४

हे मुनीश्वर! उन सुरेश्वरोंके द्वारा इस प्रकारकी आज्ञा प्राप्तकर वे मुण्डी उन्हें प्रणामकर यथानिर्दिष्ट अपने आश्रमको चले गये। इसके अनन्तर [हे व्यास!] त्रिपुरवासियोंको भस्म करनेके बाद कृतकृत्य हुए वे महायोगी भगवान् रुद्र ब्रह्मा आदिके द्वारा पूजित हुए॥ ३३-३४॥

स्वगणैर्निखिलैर्देव्या शिवया सहितः प्रभुः।
कृत्वामरमहत्कार्यं ससुतोऽन्तरधादथ॥ ३५
ततश्चान्तर्हिते देवे परिवारान्विते शिवे।
धनुः शररथाद्यैश्च प्राकारोऽन्तर्द्धिमागमत्॥ ३६

इस प्रकार देवताओंका महान् कार्य सम्पन्नकर वे प्रभु अपने गणों, देवी पार्वती तथा पुत्रोंसहित अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर परिवारसहित महादेव शंकरके अन्तर्धान हो जानेपर धनुष-बाण, रथ आदिसहित समस्त सामग्री विलुप्त हो गयी॥ ३५-३६॥

ततो ब्रह्मा हरिर्देवा मुनिगंधर्वकिन्नराः।
नागाः सर्पाश्चाप्सरसः संहृष्टाश्चाथ मानुषाः॥ ३७

स्वं स्वं स्थानं मुदा जग्मुः शंसन्तः शांकरं यशः।
स्वं स्वं स्थानमनुप्राप्य निर्वृतिं परमां ययुः॥ ३८

इसके बाद ब्रह्मा, विष्णु, सभी देवता, मुनि, गन्धर्व, किन्नर, नाग, सर्प, अप्सराएँ तथा मनुष्य प्रसन्न हो गये और प्रसन्नतापूर्वक शिवजीका यशोगान करते हुए अपने-अपने स्थानोंको चले गये एवं अपने-अपने स्थानोंपर पहुँचकर परम शान्तिको प्राप्त हुए॥ ३७-३८॥

एतत्ते कथितं सर्वं चरितं शशिमौलिनः।
त्रिपुरक्षयसंसूचि परलीलान्वितं महत्॥ ३९

धन्यं यशस्यमायुष्यं धनधान्यप्रवर्द्धकम्।
स्वर्गदं मोक्षदं चापि किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ४०

[हे वेदव्यास!] इस प्रकार मैंने आपसे त्रिपुरके वधको सूचित करनेवाले, महालीलासे परिपूर्ण तथा उत्कृष्ट सम्पूर्ण शिव-चरित्रका वर्णन कर दिया, जो धन्य, यशको फैलानेवाला, आयुकी वृद्धि करनेवाला, धन-धान्यको बढ़ानेवाला, स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं॥ ३९-४०॥

इदं हि परमाख्यानं यः पठेच्छृणुयात्सदा।
इह भुक्त्वाखिलान्कामान् अन्ते मुक्तिमवाप्नुयात्॥ ४१

जो इस उत्तम वृत्तान्तको सदा पढ़ता है तथा सुनता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण सुखोंको भोगकर अन्तमें मुक्ति प्राप्त करता है॥ ४१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे सनत्कुमारपाराशर्य्यसंवादे त्रिपुर-वधानंतरदेवस्तुतिमयस्तुतिमुंडिनिवेशनदेवस्वस्थानगमनवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें सनत्कुमारव्याससंवादके अन्तर्गत त्रिपुरवधके पश्चात् देवस्तुति-मयस्तुति-मुण्डिनिवेशन तथा देवताओंका स्वस्थानगमनवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

बृहस्पति तथा इन्द्रका शिवदर्शनके लिये कैलासकी ओर प्रस्थान, सर्वज्ञ शिवका उनकी परीक्षा लेनेके लिये दिगम्बर जटाधारी रूप धारणकर मार्ग रोकना, क्रुद्ध इन्द्रद्वारा उनपर वज्रप्रहारकी चेष्टा, शंकरद्वारा उनकी भुजाको स्तम्भित कर देना, बृहस्पतिद्वारा उनकी स्तुति, शिवका प्रसन्न होना और अपनी नेत्राग्निको क्षार-समुद्रमें फेंकना

व्यास उवाच

भो ब्रह्मन्भगवन्पूर्वं श्रुतं मे ब्रह्मपुत्रक।
जलंधरं महादैत्यमवधीच्छंकरः प्रभुः॥ १
तत्त्वं वद महाप्राज्ञ चरितं शशिमौलिनः।
विस्तारपूर्वकं शृण्वन्कस्तृप्येत्तद्यशोऽमलम्॥ २

व्यासजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे भगवन्! हे ब्रह्मपुत्र! मैंने सुना है कि पूर्वकालमें प्रभु शंकरजीने महादैत्य जलन्धरका वध किया था। हे महाप्राज्ञ! आप शंकरजीके उस चरित्रको विस्तारपूर्वक कहिये, उनके पावन चरित्रको सुनता हुआ कौन तृप्त हो सकता है॥ १-२॥

सूत उवाच

इत्येवं व्याससंपृष्टो ब्रह्मपुत्रो महामुनिः।
उवाचार्थवदव्यग्रं वाक्यं वाक्यविशारदः॥ ३

सूतजी बोले—महामुनि व्यासजीके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर बोलनेमें प्रवीण महामुनि सनत्कुमारजी शान्तिपूर्वक अर्थमय वचन कहने लगे—॥ ३॥

सनत्कुमार उवाच

एकदा जीवशक्रौ च भक्त्या परमया मुने।
दर्शनं कर्तुमीशस्य कैलासं जग्मतुर्भृशम्॥ ४

सनत्कुमार बोले—हे मुने! एक बार बृहस्पति एवं इन्द्र परम भक्तिसे युक्त हो शंकरजीका दर्शन करनेके लिये कैलासको गये थे॥ ४॥

अथ गुर्विन्द्रयोर्ज्ञात्वाऽऽगमनं शंकरः प्रभुः।
परीक्षितुं तयोर्ज्ञानं स्वदर्शनरतात्मनोः॥ ५

दिगम्बरोऽथ तन्मार्गमारुद्ध्य सद्गतिः सताम्।
जटाबद्धेन शिरसातिष्ठत्संशोभिताननः॥ ६

तब बृहस्पति तथा इन्द्रके आगमनको जानकर अपने दर्शनके लिये तत्पर मनवाले उन दोनोंके ज्ञानकी परीक्षा लेनेके लिये सिरपर जटाजूट बाँधकर प्रसन्नमुख तथा दिगम्बर होकर सज्जनोंको सद्गति देनेवाले प्रभु शंकर उनका मार्ग रोककर खड़े हो गये॥ ५-६॥

अथ तौ गुरुशक्रौ च कुर्वन्तौ गमनं मुदा।
आलोक्य पुरुषं भीमं मार्गमध्येऽद्भुताकृतिम्॥ ७

महातेजस्विनं शांतं जटासंबद्धमस्तकम्।
महाबाहुं महोरस्कं गौरं नयनभीषणम्॥ ८

उसके बाद आनन्दपूर्वक जाते हुए इन्द्र एवं बृहस्पतिने मार्गमें स्थित, भयंकर, अद्भुत आकारवाले, महातेजस्वी, सिरपर जटाजूट बाँधे हुए, शान्त, विशाल भुजाओंवाले, चौड़े वक्षःस्थलवाले, गौरवर्णवाले तथा भयावह नेत्रवाले पुरुषको देखा॥ ७-८॥

अथो पुरंदरोऽपृच्छत्स्वाधिकारेण दुर्मदः।
पुरुषं तं स्वमार्गान्तःस्थितमज्ञाय शंकरम्॥ ९

तब अपने अधिकारसे मदमत्त इन्द्रने मार्गमें स्थित उस शंकररूप पुरुषको न पहचानकर पूछा—॥ ९॥

पुरन्दर उवाच

कस्त्वं भोः कुत आयातः किं नाम वद तत्त्वतः।
स्वस्थाने संस्थितः शंभुः किं वान्यत्र गतः प्रभुः॥ १०

इन्द्र बोले—तुम कौन हो, कहाँसे आये हो और तुम्हारा नाम क्या है? प्रभु शिवजी अपने स्थानपर स्थित हैं अथवा कहीं अन्यत्र गये हुए हैं, ठीक-ठीक बताओ॥ १०॥

सनत्कुमार उवाच

शक्रेणेत्थं स पृष्टस्तु किंचिन्नोवाच तापसः।
शक्रः पुनरपृच्छद्वै नोवाच स दिगंबरः॥ ११

सनत्कुमार बोले—इन्द्रके द्वारा इस प्रकार पूछे गये उस तपस्वीने कुछ नहीं कहा। तब इन्द्रने पुनः पूछा, किंतु वह दिगम्बर कुछ नहीं बोला॥ ११॥

पुनः पुरंदरोऽपृच्छल्लोकानामधिपेश्वरः।
तूष्णीमास महायोगी लीलारूपधरः प्रभुः॥ १२

इत्थं पुनः पुनः पृष्टः शक्रेण स दिगम्बरः।
नोवाच किंचिद्भगवान् शक्रज्ञानपरीक्षया॥ १३

तब लोकाधीश्वर इन्द्रने पुनः पूछा, किंतु लीलारूपधारी महायोगी प्रभु शंकरजी मौन ही रहे। इस प्रकार इन्द्रके द्वारा बार-बार पूछे गये वे दिगम्बर भगवान् शिव इन्द्रके ज्ञानकी परीक्षा लेनेके लिये कुछ नहीं बोले॥ १२-१३॥

अथ चुक्रोध देवेशस्त्रैलोक्यैश्वर्यगर्वितः।
उवाच वचनं चैव तं निर्भर्त्स्य जटाधरम्॥ १४

तत्पश्चात् तीनों लोकोंके ऐश्वर्यसे गर्वित इन्द्रको महान् क्रोध उत्पन्न हुआ और उन जटाधारी दिगम्बरकी भर्त्सना करते हुए उन्होंने यह वचन कहा—॥ १४॥

इन्द्र उवाच

रे मया पृच्छ्यमानोऽपि नोत्तरं दत्तवानसि।
अतस्त्वां हन्मि वज्रेण कस्ते त्रातास्ति दुर्मते॥ १५

इन्द्र बोले—हे दुर्मते! मेरे द्वारा पूछे जानेपर भी तुमने उत्तर नहीं दिया। अतः मैं इस वज्रसे तुम्हारा वध करता हूँ, देखता हूँ कि कौन तुम्हारी रक्षा करता है॥ १५॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युदीर्य ततो वज्री संनिरीक्ष्य क्रुधा हि तम्।
हन्तुं दिगंबरं वज्रमुद्यतं स चकार ह॥ १६

सनत्कुमार बोले—ऐसा कहकर उन इन्द्रने क्रोधसे उस दिगम्बरकी ओर देखकर उसे मारनेके लिये [हाथमें] वज्र उठा लिया॥ १६॥

पुरंदरं वज्रहस्तं दृष्ट्वा देवस्सदाशिवः।
चकार स्तंभनं तस्य वज्रपातस्य शंकरः॥ १७

तब सदाशिव प्रभु शंकरने इन्द्रको हाथमें वज्र लिये हुए देखकर उस वज्रपातको स्तम्भित कर दिया॥ १७॥

ततो रुद्रः क्रुधाविष्टः करालाक्षो भयंकरः।
द्रुतमेव प्रजज्वाल तेजसा प्रदहन्निव॥ १८

तत्पश्चात् अत्यन्त भयंकर तथा विकराल नेत्रवाले रुद्र क्रुद्ध हो अपने तेजसे शीघ्र ही प्रज्वलित हो उठे, मानो जला डालेंगे॥ १८॥

बाहुप्रतिष्टंभभुवा मन्युनान्तः शचीपतिः।
समदह्यत भोगीव मंत्ररुद्धपराक्रमः॥ १९

भुजाके स्तम्भित हो जानेसे इन्द्र मन-ही-मन इस प्रकार प्रज्वलित हो गये, जैसे मन्त्र एवं औषधिसे अपने पराक्रमको रुद्ध देखकर सर्प प्रज्वलित होता है॥ १९॥

दृष्ट्वा बृहस्पतिस्तूर्णं प्रज्वलन्तं स्वतेजसा।
पुरुषं तं धिया ज्ञात्वा प्रणनाम हरं प्रभुम्॥ २०

कृतांजलिपुटो भूत्वा ततो गुरुरुदारधीः।
नत्वा च दंडवद्भूमौ प्रभुं स्तोतुं प्रचक्रमे॥ २१

तब अपने तेजसे प्रज्वलित होते हुए उस पुरुषको देखकर और बुद्धिसे उन्हें प्रभु शंकर जानकर बृहस्पतिने प्रणाम किया। उसके बाद उदारबुद्धिवाले बृहस्पति हाथ जोड़कर पृथ्वीपर दण्डवत् प्रणाम करके प्रभुकी स्तुति करने लगे—॥ २०-२१॥

गुरुरुवाच

नमो देवाधिदेवाय महादेवाय चात्मने।
महेश्वराय प्रभवे त्र्यम्बकाय कपर्दिने॥ २२

दीनानाथाय विभवे नमोऽन्धकनिषूदिने।
त्रिपुरघ्नाय शर्वाय ब्रह्मणे परमेष्ठिने॥ २३

गुरु बोले—देवाधिदेव, महादेव, परमात्मस्वरूप, सर्वसमर्थ, तीन नेत्रवाले तथा जटाजूटधारी महेश्वर आपको प्रणाम है। दीनोंके नाथ, सर्वव्यापक, अन्धकासुरका वध करनेवाले, त्रिपुरका वध करनेवाले, शर्व, परमेष्ठी तथा ब्रह्मस्वरूप आप [शिव]-को नमस्कार है॥ २२-२३॥

विरूपाक्षाय रुद्राय बहुरूपाय शंभवे।
विरूपायातिरूपाय रूपातीताय ते नमः॥ २४

विरूपाक्ष, रुद्र, बहुरूप, विरूप, अतिरूप तथा रूपसे अतीत आप शम्भुको नमस्कार है॥ २४॥

यज्ञविध्वंसकर्त्रे च यज्ञानां फलदायिने।
नमस्ते मखरूपाय परकर्मप्रवर्तिने॥ २५

कालांतकाय कालाय कालभोगिधराय च।
नमस्ते परमेशाय सर्वत्र व्यापिने नमः॥ २६

दक्षयज्ञका विध्वंस करनेवाले, यज्ञोंका फल देनेवाले, यज्ञस्वरूप तथा श्रेष्ठ कर्ममें प्रवृत्त करनेवाले आप [शिव]-को नमस्कार है। कालान्तक, कालस्वरूप, कालरूप सर्पको धारण करनेवाले, परमेश्वर तथा सर्वत्र व्यापक आप [शिव]-को नमस्कार है॥ २५-२६॥

नमो ब्रह्मशिरोहंत्रे ब्रह्मचंद्रस्तुताय च।
ब्रह्मण्याय नमस्तेऽस्तु नमस्ते परमात्मने॥ २७

ब्रह्माके सिरको काटनेवाले, ब्रह्मा तथा चन्द्रमासे स्तुत आपको नमस्कार है। ब्राह्मणोंका हित करनेवाले आपको नमस्कार है, आप परमात्माको नमस्कार है॥ २७॥

त्वमग्निरनिलो व्योम त्वमेवापो वसुंधरा।
त्वं सूर्यश्चन्द्रमा भानि ज्योतिश्चक्रं त्वमेव हि॥ २८

त्वमेव विष्णुस्त्वं ब्रह्मा तत्स्तुतस्त्वं परेश्वरः।
मुनयः सनकाद्यास्त्वं नारदस्त्वं तपोधनः॥ २९

त्वमेव सर्वलोकेशस्त्वमेव जगदात्मकः।
सर्वान्वयः सर्वभिन्नस्त्वमेव प्रकृतेः परः॥ ३०

आप ही अग्नि, वायु तथा आकाश हैं। आप ही जल तथा पृथ्वी हैं। आप ही सूर्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्र हैं। आप ही समस्त तारागण हैं। आप ही विष्णु हैं तथा आप ही उनसे स्तुत परमेश्वर हैं। आप ही सनकादि मुनि हैं, आप ही ब्रह्मा हैं तथा आप ही तपोधन नारद हैं। आप ही सारे जगत‍्के ईश्वर हैं तथा आप ही जगत्स्वरूप हैं। आप ही सबसे अन्वित, सबसे भिन्न एवं प्रकृतिसे परे हैं॥ २८—३०॥

त्वं वै सृजसि लोकांश्च रजसा विधिनामभाक्।
सत्त्वेन हरिरूपस्त्वं सकलं पासि वै जगत्॥ ३१

आप ही ब्रह्मा नाम धारणकर रजोगुणसे युक्त होकर सभी लोकोंकी सृष्टि करते हैं। आप ही विष्णुरूप होकर सत्त्वगुणयुक्त हो सम्पूर्ण जगत‍्का पालन करते हैं॥ ३१॥

त्वमेवासि महादेव तमसा हररूपधृक्।
लीलया भुवनं सर्वं निखिलं पांचभौतिकम्॥ ३२

हे महादेव! आप ही हरका रूप धारण करके तमोगुणसे युक्त होकर सम्पूर्ण पांचभौतिक जगत‍्का लीलापूर्वक संहार करते हैं॥ ३२॥

त्वद्ध्यानबलतः सूर्यस्तपते विश्वभावन।
अमृतं च्यवते लोके शशी वाति समीरणः॥ ३३

हे विश्वभावन! आपके ही ध्यानबलसे सूर्य तपता है, चन्द्रमा लोकमें अमृत बरसाता है और पवन बहता है॥ ३३॥

त्वद्ध्यानबलतो मेघाश्चांबु वर्षन्ति शंकर।
त्वद्ध्यानबलतः शक्रस्त्रिलोकीं पाति पुत्रवत्॥ ३४

त्वद्ध्यानबलतो मेघाः सर्वे देवा मुनीश्वराः।
स्वाधिकारं च कुर्वन्ति चकिता भवतो भयात्॥ ३५

हे शंकर! आपके ही ध्यानबलसे मेघ जलकी वृष्टि करते हैं और आपके ही बलसे इन्द्र पुत्रके समान त्रिलोकीकी रक्षा करते हैं। मेघ, सभी देवता एवं मुनीश्वर आपके ध्यानबलसे तथा आपके भयसे चकित होकर अपने-अपने कर्तव्यका पालन करते हैं॥ ३४-३५॥

त्वत्पादकमलस्यैव सेवनाद्भुवि मानवाः।
नाद्रियन्ते सुरान् रुद्र लोकैश्वर्यं च भुंजते॥ ३६

त्वत्पादकमलस्यैव सेवनादगमन्पराम्।
गतिं योगधनानामप्यगम्यां सर्वदुर्लभाम्॥ ३७

हे रुद्र! आपके चरणकमलके सेवनके प्रभावसे ही मनुष्य इस पृथ्वीपर अन्य देवताओंकी उपासना नहीं करते हैं और इस त्रिलोकके ऐश्वर्यका भोग करते हैं। इतना ही नहीं, वे आपके चरणकमलोंकी सेवासे ही योगियोंके लिये भी अगम्य तथा दुर्लभ गति प्राप्त करते हैं॥ ३६-३७॥

सनत्कुमार उवाच

बृहस्पतिरिति स्तुत्वा शंकरं लोकशंकरम्।
पादयोः पातयामास तस्येशस्य पुरंदरम्॥ ३८

सनत्कुमार बोले—[हे व्यासजी!] इस प्रकार बृहस्पतिने लोककल्याणकारी शिवजीकी स्तुति करके उन ईश्वरके चरणोंपर इन्द्रको गिराया॥ ३८॥

पातयित्वा च देवेशमिन्द्रं नतशिरोधरम्।
बृहस्पतिरुवाचेदं प्रश्रयावनतश्शिवम्॥ ३९

सिर नीचा किये हुए इन्द्रको शिवजीके चरणोंमें गिराकर विनयावनत बृहस्पतिने शिवजीसे यह कहा—॥ ३९॥

बृहस्पतिरुवाच

दीनानाथ महादेव प्रणतं तव पादयोः।
समुद्धर च शांतं स्वं क्रोधं नयनजं कुरु॥ ४०

बृहस्पति बोले—हे दीनानाथ! हे महादेव! आपके चरणोंपर गिरे हुए इन्द्रका उद्धार कीजिये और अपने नेत्रज क्रोधको शान्त कीजिये॥ ४०॥

तुष्टो भव महादेव पाहीन्द्रं शरणागतम्।
अग्निरेष शमं यातु भालनेत्रसमुद्भवः॥ ४१

हे महादेव! आप प्रसन्न हो जाइये और शरणमें आये हुए इन्द्रकी रक्षा कीजिये, आपके ललाटस्थित नेत्रसे उत्पन्न हुई यह अग्नि शान्त हो॥ ४१॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य गुरोर्वाक्यं देवदेवो महेश्वरः।
उवाच करुणासिन्धुर्मेघनिर्ह्रादया गिरा॥ ४२

सनत्कुमार बोले—गुरु बृहस्पतिकी यह बात सुनकर करुणासिन्धु देवदेव महेश्वरने मेघके समान गम्भीर वाणीसे कहा—॥ ४२॥

महेश्वर उवाच

क्रोधं च निस्सृतं नेत्राद्धारयामि बृहस्पते।
कथं हि कञ्चुकीं सर्पः संधत्ते नोज्झितां पुनः॥ ४३

महेश्वर बोले—हे बृहस्पते! मैं अपने नेत्रसे उत्पन्न हुए क्रोधको किस प्रकार धारण करूँ, सर्प अपनी छोड़ी गयी केंचुलको पुनः धारण नहीं करता है॥ ४३॥

सनत्कुमार उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य शंकरस्य बृहस्पतिः।
उवाच क्लिष्टरूपश्च भयव्याकुलमानसः॥ ४४

सनत्कुमार बोले—शिवका यह वचन सुनकर क्लेशयुक्त तथा भयसे व्याकुल चित्तवाले बृहस्पतिने कहा—॥ ४४॥

बृहस्पतिरुवाच

हे देव भगवन्भक्ता अनुकंप्याः सदैव हि।
भक्तवत्सलनामेति त्वं सत्यं कुरु शंकर॥ ४५

क्षेप्तुमन्यत्र देवेश स्वतेजोऽत्युग्रमर्हसि।
उद्धर्तः सर्वभक्तानां समुद्धर पुरंदरम्॥ ४६

बृहस्पति बोले—हे देव! हे भगवन्! आपको भक्तोंपर सर्वदा दया करनी चाहिये। हे शंकर! आप अपने भक्तवत्सल नामको सत्य कीजिये। हे देवेश! आप अपने इस अत्यन्त उग्र तेजको अन्यत्र छोड़ दीजिये। हे समस्त भक्तोंका उद्धार करनेवाले! आप इन्द्रका उद्धार कीजिये॥ ४५-४६॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्तो गुरुणा रुद्रो भक्तवत्सलनामभाक्।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा सुरेज्यं प्रणतार्त्तिहा॥ ४७

सनत्कुमार बोले—बृहस्पतिके ऐसा कहनेपर भक्त-वत्सल नामवाले तथा भक्तोंका दुःख दूर करनेवाले रुद्र प्रसन्नचित्त होकर देवपूज्य बृहस्पतिसे कहने लगे—॥ ४७॥

शिव उवाच

प्रीतः स्तुत्यानया तात ददामि वरमुत्तमम्।
इन्द्रस्य जीवदानेन जीवेति त्वं प्रथां व्रज॥ ४८

समुद्भूतोऽनलो योऽयं भालनेत्रात्सुरेशहा।
एनं त्यक्ष्याम्यहं दूरे यथेन्द्रं नैव पीडयेत्॥ ४९

शिवजी बोले—हे तात! मैं [तुम्हारी] इस स्तुतिसे प्रसन्न होकर उत्तम वर देता हूँ। इन्द्रको जीवनदान देनेके कारण तुम 'जीव'—इस नामसे विख्यात होओ। मेरे भालस्थित नेत्रसे इन्द्रको मारनेवाली जो यह अग्नि उत्पन्न हुई है, इसे मैं दूर फेंक देता हूँ, जिससे यह इन्द्रको पीड़ा न पहुँचाये॥ ४८-४९॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा तं करे धृत्वा स्वतेजोऽनलमद्भुतम्।
भालनेत्रात्समुद्भूतं प्राक्षिपल्लवणांभसि॥ ५०

ततश्चान्तर्दधे रुद्रो महालीलाकरः प्रभुः।
गुरुशक्रौ भयान्मुक्तौ जग्मतुः सुखमुत्तमम्॥ ५१

सनत्कुमार बोले—ऐसा कहकर शंकरजीने अपने तृतीय नेत्रसे उत्पन्न अपने तेजरूप अद्भुत अग्निको हाथमें लेकर क्षारसमुद्रमें फेंक दिया। तत्पश्चात् महालीला करनेवाले भगवान् शंकर अन्तर्धान हो गये। इन्द्र एवं बृहस्पति भयसे मुक्त हो परम सुखी हुए॥ ५०-५१॥

यदर्थं गमनोद्युक्तौ दर्शनं प्राप्य तस्य वै।
कृतार्थौ गुरुशक्रौ हि स्वस्थानं जग्मतुर्मुदा॥ ५२

इस प्रकार जिनके दर्शनके लिये इन्द्र एवं बृहस्पति जा रहे थे, उनका दर्शन पाकर वे कृतार्थ हो गये और प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानको लौट गये॥ ५२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलंधरवधोपाख्याने शक्रजीवनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरवधोपाख्यानके अन्तर्गत शक्रजीवनवर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

क्षारसमुद्रमें प्रक्षिप्त भगवान् शंकरकी नेत्राग्निसे समुद्रके पुत्रके रूपमें जलन्धरका प्राकट्य, कालनेमिकी पुत्री वृन्दाके साथ उसका विवाह

व्यास उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ ब्रह्मपुत्र नमोऽस्तु ते।
श्रुतेयमद्भुता मेऽद्य कथा शंभोर्महात्मनः॥ १

क्षिप्ते स्वतेजसि ब्रह्मन्भालनेत्रसमुद्भवे।
लवणांभसि किं ताताभवत्तत्र वदाशु तत्॥ २

व्यासजी बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! हे ब्रह्मपुत्र! आपको नमस्कार है, मैंने आज महात्मा शंकरकी यह अद्भुत कथा सुनी। हे ब्रह्मन्! शिवजीके द्वारा भालनेत्रसे उत्पन्न हुए अपने तेजको क्षारसमुद्रमें फेंक दिये जानेपर क्या हुआ? हे तात! उसे शीघ्र कहिये॥ १-२॥

सनत्कुमार उवाच

शृणु तात महाप्राज्ञ शिवलीलां महाद्भुताम्।
यच्छ्रुत्वा श्रद्धया भक्तो योगिनां गतिमाप्नुयात्॥ ३
अथो शिवस्य तत्तेजो भालनेत्रसमुद्भवम्।
क्षिप्तं च लवणाम्भोधौ सद्यो बालत्वमाप ह॥ ४

सनत्कुमार बोले—हे तात! हे महाप्राज्ञ! अब आप शिवकी परम अद्भुत लीलाको सुनिये, जिसे श्रद्धासे सुनकर भक्त योगियोंकी गति प्राप्त करते हैं। शिवजीके तीसरे नेत्रसे उत्पन्न वह तेज, जो खारे समुद्रमें फेंक दिया गया था, शीघ्र ही बालकरूप हो गया॥ ३-४॥

तत्र वै सिंधुगंगायाः सागरस्य च संगमे।
रुरोदोच्चैः स वै बालः सर्वलोकभयंकरः॥ ५

सभी लोकोंको भय देनेवाला वह बालक वहाँ गंगा-सागरके संगमपर स्थित हो बड़े ऊँचे स्वरमें रोने लगा॥ ५॥

रुदतस्तस्य शब्देन प्राकंपद्धरणी मुहुः।
स्वर्गश्च सत्यलोकश्च तत्स्वनाद् बधिरीकृतः॥ ६

बालस्य रोदनेनैव सर्वे लोकाश्च तत्रसुः।
सर्वतो लोकपालाश्च विह्वलीकृतमानसाः॥ ७

उस रोते हुए बालकके शब्दसे पृथ्वी बारंबार कम्पित हो उठी और स्वर्ग तथा सत्यलोक उसके स्वरसे बहरे हो गये। उस बालकके रुदनसे सभी लोक भयभीत हो उठे और समस्त लोकपाल व्याकुलचित्त हो गये॥ ६-७॥

किं बहूक्तेन विप्रेन्द्र चचाल सचराचरम्।
भुवनं निखिलं तात रोदनात्तच्छिशोर्विभो॥ ८

हे विप्रेन्द्र! हे तात! हे विभो! अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन, उस शिशुके रुदनसे चराचरसहित सम्पूर्ण जगत् चलायमान हो उठा॥ ८॥

अथ ते व्याकुलाः सर्वे देवाः समुनयो द्रुतम्।
पितामहं लोकगुरुं ब्रह्माणं शरणं ययुः॥ ९
तत्र गत्वा च ते देवा मुनयश्च सवासवाः।
प्रणम्य च सुसंस्तुत्य प्रोचुस्तं परमेष्ठिनम्॥ १०

उसके बाद मुनियोंके सहित व्याकुल समस्त देवता लोकगुरु पितामह ब्रह्माकी शरणमें गये। वहाँ जाकर इन्द्रसहित सभी देवताओं तथा मुनियोंने ब्रह्माको प्रणामकर तथा उनकी स्तुतिकर उनसे कहा—॥ ९-१०॥

देवा ऊचुः

लोकाधीश सुराधीश भयं नः समुपस्थितम्।
तन्नाशय महायोगिन् जातोऽयं ह्यद्भुतो रवः॥ ११

देवता बोले—हे लोकाधीश! हे सुराधीश! हमलोगोंके समक्ष भय उपस्थित हो गया है। हे महायोगिन्! उसका विनाश कीजिये, यह अद्भुत ध्वनि उत्पन्न हुई है॥ ११॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां ब्रह्मा लोकपितामहः।
गंतुमैच्छत्ततस्तत्र किमेतदिति विस्मितः॥ १२

सनत्कुमार बोले—तब उनका यह वचन सुनकर लोकपितामह ब्रह्माजी आश्चर्यचकित हो उठे कि 'यह क्या है' और वहाँ जानेकी इच्छा करने लगे॥ १२॥

ततो ब्रह्मा सुरैस्तातावतरत्सत्यलोकतः।
रसां तज्ज्ञातुमिच्छन्स समुद्रमगमत्तदा॥ १३

यावत्तत्रागतो ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः।
तावत्समुद्रस्योत्संगे तं बालं स ददर्श ह॥ १४

आगतं विधिमालोक्य देवरूप्यथ सागरः।
प्रणम्य शिरसा बालं तस्योत्संगे न्यवेशयत्॥ १५

ततो ब्रह्माब्रवीद्वाक्यं सागरं विस्मयान्वितः।
जलराशे द्रुतं ब्रूहि कस्यायं शिशुरद्भुतः॥ १६

हे तात! तब ब्रह्माजी देवताओंके साथ सत्यलोकसे पृथ्वीपर उतरे और उसका पता लगाते हुए समुद्रके किनारे गये। सभी लोकोंके पितामह ब्रह्मा ज्यों ही वहाँ आये, त्यों ही उन्होंने समुद्रकी गोदमें उस बालकको देखा। ब्रह्माको आया हुआ देखकर देवरूप धारणकर सागरने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करके उस बालकको उनकी गोदमें डाल दिया। तदनन्तर विस्मयमें पड़े हुए ब्रह्माजीने समुद्रसे यह वचन कहा—हे जलराशे! शीघ्र बताओ कि यह अद्भुत बालक किसका पुत्र है?॥ १३—१६॥

सनत्कुमार उवाच

ब्रह्मणो वाक्यमाकर्ण्य मुदितः सागरस्तदा।
प्रत्युवाच प्रजेशं स नत्वा स्तुत्वा कृतांजलिः॥ १७

सनत्कुमार बोले—तब ब्रह्माजीका वचन सुनकर समुद्र बड़ा प्रसन्न हुआ और वह हाथ जोड़कर नमस्कारकर स्तुति करनेके उपरान्त ब्रह्माजीसे कहने लगा—॥ १७॥

समुद्र उवाच

भो भो ब्रह्मन्मया प्राप्तो बालकोऽयमजानता।
प्रभवं सिंधुगंगायामकस्मात्सर्वलोकप॥ १८

समुद्र बोला—हे ब्रह्मन्! हे सर्वलोकस्वामिन्! मुझे गंगासागरके संगमपर यह बालक अकस्मात् प्राप्त हुआ है और मैं नहीं जानता कि यह किसका बालक है॥ १८॥

जातकर्मादिसंस्कारान्कुरुष्वास्य जगद्गुरो।
जातकोक्तफलं सर्वं विधातर्वक्तुमर्हसि॥ १९

हे जगद्गुरो! आप इसका जातकर्मादि संस्कार कीजिये और हे विधाता! इसके जातकसम्बन्धी समस्त फलोंको बताइये॥ १९॥

सनत्कुमार उवाच

एवं वदति पाथोधौ स बालः सागरात्मजः।
ब्रह्माणमग्रहीत्कण्ठे विधुन्वन्तं मुहुर्मुहुः॥ २०

विधूननं च तस्यैवं सर्वलोककृतो विधेः।
पीडितस्य च कालेय नेत्राभ्यामगमज्जलम्॥ २१

सनत्कुमार बोले—जब समुद्र ब्रह्माजीसे इस बातको कह रहा था, तभी उस बालकने ब्रह्माका कण्ठ पकड़ लिया, यद्यपि वे अपना गला बारंबार उससे छुड़ा रहे थे। हे व्यासजी! ब्रह्माजी गला छुड़ानेका बहुत प्रयत्न कर रहे थे, किंतु उस बालकने इतने जोरसे उनका कण्ठ दबाया कि पीड़ित ब्रह्माके नेत्रोंसे जल टपकने लगा॥ २०-२१॥

कराभ्यामब्धिजातस्य तत्सुतस्य महौजसः।
कथंचिन्मुक्तकण्ठस्तु ब्रह्मा प्रोवाच सादरम्॥ २२

तब ब्रह्माजीने किसी प्रकार उस महातेजस्वी समुद्रपुत्रके दोनों हाथोंसे अपना गला छुड़ाया और वे आदरपूर्वक समुद्रसे कहने लगे—॥ २२॥

ब्रह्मोवाच

शृणु सागर वक्ष्यामि तवास्य तनयस्य हि।
जातकोक्तफलं सर्वं समाधानरतः खलु॥ २३

नेत्राभ्यां विधृतं यस्मादनेनैव जलं मम।
तस्माज्जलंधरेतीह ख्यातो नाम्ना भवत्वसौ॥ २४

अधुनैवैष तरुणः सर्वशास्त्रार्थपारगः।
महापराक्रमो धीरो योद्धा च रणदुर्मदः॥ २५

भविष्यति च गंभीरः त्वं यथा समरे गुहः।
सर्वजेता च संग्रामे सर्वसंपद्विराजितः॥ २६

दैत्यानामधिपो बालः सर्वेषां च भविष्यति।
विष्णोरपि भवेज्जेता न कुतश्चित्पराभवः॥ २७

अवध्यः सर्वभूतानां विना रुद्रं भविष्यति।
यत एष समुद्भूतस्तत्रेदानीं गमिष्यति॥ २८

पतिव्रतास्य भविता पत्नी सौभाग्यवर्द्धिनी।
सर्वाङ्गसुन्दरी रम्या प्रियवाक्छीलसागरा॥ २९

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा शुक्रमाहूय राज्ये तं चाभ्यषेचयत्।
आमन्त्र्य सरितां नाथं ब्रह्मान्तर्द्धानमन्वगात्॥ ३०
अथ तद्दर्शनोत्फुल्लनयनः सागरस्तदा।
तमात्मजं समादाय स्वगेहमगमन्मुदा॥ ३१
अपोषयन्महोपायैः स्वबालं मुदितात्मकः।
सर्वांगसुन्दरं रम्यं महाद्भुतसुतेजसम्॥ ३२

अथाम्बुधिः समाहूय कालनेमिं महासुरम्।
वृन्दाभिधां सुतां तस्य तद्भार्यार्थमयाचत॥ ३३

कालनेम्यसुरो वीरोऽसुराणां प्रवरः सुधीः।
साधु मेनेम्बुधेर्याच्ञां स्वकर्मनिपुणो मुने॥ ३४

जलंधराय वीराय सागरप्रभवाय च।
ददौ ब्रह्मविधानेन स्वसुतां प्राणवल्लभाम्॥ ३५
तदोत्सवो महानासीद्विवाहे च तयोस्तदा।
सुखं प्रापुर्नदा नद्योऽसुराश्चैवाखिला मुने॥ ३६

समुद्रोऽति सुखं प्राप सुतं दृष्ट्वा हि सस्त्रियम्।

ब्रह्माजी बोले—हे सागर! सुनो, मैं तुम्हारे इस पुत्रका समस्त जातकोक्त फल विचारकर कहता हूँ॥ २३॥

इसने मेरे नेत्रोंसे निकले हुए जलको धारण किया है, इसलिये यह जलन्धर—इस नामसे प्रसिद्ध होगा॥ २४॥

यह इसी समय तरुण, सर्वशास्त्रार्थवेत्ता, महापराक्रमी, धैर्यवान् तथा रणदुर्मद योद्धा है। तुम्हारे तथा कार्तिकेयके समान यह युद्धमें गम्भीर होगा, यह संग्राममें सबको जीत लेगा तथा समस्त ऐश्वर्यसे परिपूर्ण होगा॥ २५-२६॥

यह बालक समस्त दैत्योंका अधिपति होगा तथा विष्णुको भी जीतनेवाला होगा, इसका पराभव कभी नहीं होगा। रुद्रको छोड़कर यह सभी प्राणियोंसे अवध्य होगा। जहाँसे इसकी उत्पत्ति हुई है, अन्तमें यह वहीं जायगा। इसकी पत्नी महापतिव्रता, सौभाग्यको बढ़ानेवाली, सर्वांगसुन्दरी, मनोहर, प्रिय वचन बोलनेवाली तथा शीलका सागर होगी॥ २७—२९॥

सनत्कुमार बोले—ऐसा कहकर [दैत्यगुरु] शुक्रको बुलाकर ब्रह्माजीने उस बालकको राज्यपर अभिषिक्त करवाया और समुद्रसे आज्ञा लेकर वे अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर उसके दर्शनसे प्रफुल्लित नेत्रवाला समुद्र उस पुत्रको लेकर प्रसन्नतासे अपने घर चला गया और प्रसन्नचित्त होकर अनेक उपायोंद्वारा सर्वांगसुन्दर, मनोहर, अत्यन्त अद्भुत एवं परम तेजस्वी अपने पुत्रका पालन-पोषण करने लगा॥ ३०—३२॥

उसके बाद सागरने महान् असुर कालनेमिको बुलाकर उसकी वृन्दा नामक पुत्रीको उसकी भार्याके निमित्त माँगा। हे मुने! वीर असुरोंमें श्रेष्ठ, बुद्धिमान् तथा अपने कार्य-साधनमें कुशल असुर कालनेमिने समुद्रकी याचना स्वीकार कर ली और ब्राह्मविवाहकी विधिसे समुद्रपुत्र वीर जलन्धरको अपनी प्राणप्रिय पुत्री प्रदान कर दी॥ ३३—३५॥

उस समय उन दोनोंके विवाहमें महान् उत्सव हुआ। हे मुने! समस्त नदों, नदियों एवं असुरोंको सुख प्राप्त हुआ। स्त्रीसहित पुत्रको देखकर समुद्रको भी अत्यधिक सुखकी प्राप्ति हुई और उसने ब्राह्मणों तथा

दानं ददौ द्विजातिभ्योऽप्यन्येभ्यश्च यथाविधि ॥ ३७
ये देवैर्निर्जिताः पूर्वं दैत्याः पातालसंस्थिताः ।
ते हि भूमंडलं याता निर्भयाः तमुपाश्रिताः ॥ ३८

ते कालनेमिप्रमुखास्ततोऽसुराः
तस्मै सुतां सिंधुसुताय दत्त्वा ।
बभूवुरत्यन्तमुदान्विता हि
तमाश्रिता देवविनिर्जयाय ॥ ३९
स चापि वीरोऽम्बुधिबालकोऽसौ
जलंधराख्योऽसुरवीरवीरः ।
संप्राप्य भार्यामतिसुन्दरीं वशी
चकार राज्यं हि कविप्रभावात् ॥ ४०

अन्य लोगोंको यथाविधि दान दिया। तब पातालमें रहनेवाले दैत्य, जो देवताओंके द्वारा पहले जीत लिये गये थे, वे पृथ्वीपर चले गये और निडर होकर उसके आश्रयमें रहने लगे ॥ ३६—३८ ॥

[उस समय] कालनेमि आदि वे असुर उस समुद्रपुत्रको कन्या देकर परम प्रसन्न हुए और देवताओंको जीतनेके लिये उसके आश्रित हो गये ॥ ३९ ॥

असुरवीरोंमें मुख्य वीर वह समुद्रपुत्र जितेन्द्रिय जलन्धर अति सुन्दरी भार्याको प्राप्तकर शुक्राचार्यके प्रभावसे राज्य करने लगा ॥ ४० ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलंधरवधोपाख्याने जलंधरोत्पत्तिविवाहवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरवधोपाख्यानके अन्तर्गत जलन्धरोत्पत्तिविवाहवर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

राहुके शिरश्छेद तथा समुद्रमन्थनके समयके देवताओंके छलको जानकर जलन्धरद्वारा क्रुद्ध होकर स्वर्गपर आक्रमण, इन्द्रादि देवोंकी पराजय, अमरावतीपर जलन्धरका आधिपत्य, भयभीत देवताओंका सुमेरुकी गुफामें छिपना

सनत्कुमार उवाच

एकदा वारिधिसुतो वृन्दापतिरुदारधीः ।
सभार्यः संस्थितो वीरोऽसुरैः सर्वैः समन्वितः ॥ १
तत्राजगाम सुप्रीतः सुवर्चास्त्वथ भार्गवः ।
तेजःपुंजो मूर्त इव भासयन्सकला दिशः ॥ २

तं दृष्ट्वा गुरुमायान्तमसुरास्तेऽखिला द्रुतम् ।
प्रणेमुः प्रीतमनसः सिंधुपुत्रोऽपि सादरम् ॥ ३

दत्त्वाशीर्वचनं तेभ्यो भार्गवस्तेजसां निधिः ।
निषसादासने रम्ये संतस्थुस्तेऽपि पूर्ववत् ॥ ४

अथ सिंध्वात्मजो वीरो दृष्ट्वा प्रीत्या निजां सभाम् ।
जलंधरः प्रसन्नोऽभूदनष्टवरशासनः ॥ ५

तत्स्थितं छिन्नशिरसं दृष्ट्वा राहुं स दैत्यराट् ।
पप्रच्छ भार्गवं शीघ्रमिदं सागरनन्दनः ॥ ६

सनत्कुमार बोले—एक बार वृन्दाका पति वह वीर तथा उदार बुद्धिवाला समुद्रपुत्र जलन्धर अपनी पत्नी वृन्दा एवं समस्त असुरोंके साथ बैठा था ॥ १ ॥

उसी समय अत्यन्त प्रसन्न, महातेजस्वी, मूर्तस्वरूप तेजपुंजके समान भासित होते हुए शुक्राचार्य दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए वहाँ आये। उन गुरुको आते हुए देखकर प्रसन्न मनवाले उन सभी असुरों तथा जलन्धरने भी शीघ्र आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया ॥ २-३ ॥

तब तेजोनिधि भार्गव उन्हें आशीर्वाद देकर रम्य आसनपर बैठ गये और वे [असुरगण] भी पूर्ववत् बैठ गये। उसके बाद स्थिर तथा उत्तम शासनवाला वह वीर सिन्धुपुत्र जलन्धर प्रेमसे अपनी सभाको देखकर प्रसन्न हुआ। वहाँ बैठे हुए सिरकटे राहुको देखकर उस दैत्यराज समुद्रपुत्रने शीघ्रतापूर्वक शुक्राचार्यसे यह पूछा— ॥ ४—६ ॥

जलंधर उवाच

केनेदं विहितं राहोः शिरश्छेदनकं प्रभो।
तद्ब्रूहि निखिलं वृत्तं यथावत्तत्त्वतो गुरो॥ ७

जलन्धर बोला—हे प्रभो! हे गुरो! राहुके सिरको किसने काटा है? हे गुरो! उस सम्पूर्ण वृत्तान्तको मुझे ठीक-ठीक बताइये॥ ७॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सिन्धुपुत्रस्य भार्गवः।
स्मृत्वा शिवपदांभोजं प्रत्युवाच यथार्थवत्॥ ८

सनत्कुमार बोले—समुद्रपुत्र जलन्धरका यह वचन सुनकर भृगुपुत्र शुक्राचार्य शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करके यथार्थरूपमें कहने लगे—॥ ८॥

शुक्र उवाच

जलंधर महावीर सर्वासुरसहायक।
शृणु वृत्तांतमखिलं यथावत्कथयामि ते॥ ९
पुराऽभवद् बलिर्वीरो विरोचनसुतो बली।
हिरण्यकशिपोश्चैव प्रपौत्रो धर्मवित्तम॥ १०

शुक्र बोले—हे जलन्धर! हे महावीर! हे असुरोंके सहायक! तुम सुनो, मैं सारा वृत्तान्त तुमसे यथार्थ रूपसे कह रहा हूँ। पूर्व समयमें विरोचनका पुत्र तथा हिरण्यकशिपुका प्रपौत्र वीर, बलवान् और धर्मात्मा बलि [नामक दैत्य] हुआ था॥ ९-१०॥

पराजिताः सुरास्तेन रमेशं शरणं ययुः।
सवासवाः स्ववृत्तांतमाचख्युः स्वार्थसाधकाः॥ ११

उससे पराजित हुए इन्द्रसहित सभी देवता, जो स्वार्थसाधनमें अत्यन्त निपुण थे, विष्णुकी शरणमें गये और उन्होंने अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त उनसे कहा॥ ११॥

तदाज्ञयाऽसुरैः सार्द्धं चक्रुः संधिमथो सुराः।
स्वकार्यसिद्धये तात छलकर्मविचक्षणाः॥ १२

अथामृतार्थं सिंधोश्च मंथनं चक्रुरादरात्।
विष्णोः सहायिनस्ते हि सुराः सर्वेऽसुरैस्सह॥ १३

ततो रत्नोपहरणमकार्षुर्दैत्यशत्रवः।
जगृहुर्यत्नतो देवाः पपुरप्यमृतं छलात्॥ १४

ततः पराभवं चक्रुरसुराणां सहायतः।
विष्णोः सुराः सशक्रास्तेऽमृतपानाद्बलान्विताः॥ १५

हे तात! तब छलकर्ममें निपुण उन देवताओंने उन विष्णुकी आज्ञासे अपने कार्यकी सिद्धिहेतु असुरोंके साथ सन्धि कर ली। इसके बाद विष्णुके सहायक उन सभी देवताओंने अमृतके लिये असुरोंके साथ आदरपूर्वक समुद्रमन्थन किया। तत्पश्चात् दैत्यशत्रु देवताओंने [समुद्रमन्थनसे उत्पन्न हुए] रत्न स्वयं हरण कर लिये और यत्नपूर्वक छलसे अमृत ग्रहण कर लिया तथा उसका पान भी कर लिया। तदनन्तर अमृतपानसे बलशाली हुए इन्द्रसहित उन देवताओंने विष्णुकी सहायतासे असुरोंको पराजित कर दिया॥ १२—१५॥

शिरश्छेदं चकारासौ पिबतश्चामृतं हरिः।
राहोर्देवसभायां वै पक्षपाती हरेस्सदा॥ १६

इन्द्रके सर्वदा पक्षपाती उन विष्णुने देवताओंकी सभामें अमृत पीते हुए राहुका शिरश्छेदन कर दिया॥ १६॥

सनत्कुमार उवाच

एवं कविस्तस्य शिरश्छेदं राहोः शशंस च।
अमृतार्थे समुद्रस्य मंथनं देवकारितम्॥ १७
रत्नोपहरणं चैव दैत्यानां च पराभवम्।
देवैरमृतपानं च कृतं सर्वं च विस्तरात्॥ १८

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार शुक्राचार्यने अमृतके लिये देवताओंद्वारा कराये गये समुद्रमन्थन, राहुके शिरश्छेदन, रत्नोंके अपहरण, दैत्योंके पराभव और देवोंद्वारा किये गये अमृतपान—इन सबका विस्तारपूर्वक वर्णन किया॥ १७-१८॥

तदाकर्ण्य महावीरोऽम्बुधिबालः प्रतापवान्।
चुक्रोध क्रोधरक्ताक्षः स्वपितुर्मंथनं तदा॥ १९

अथ दूतं समाहूय घस्मराभिधमुत्तमम्।
सर्वं शशंस चरितं यदाह गुरुरात्मवान्॥ २०

तब अपने पिता [समुद्र]-का मन्थन सुनकर क्रोधके कारण रक्त नेत्रोंवाला वह महावीर तथा महाप्रतापी समुद्रपुत्र जलन्धर कुपित हो उठा। इसके बाद उसने शीघ्र ही घस्मर नामक [अपने] उत्तम दूतको बुलाकर उससे सारा वृत्तान्त कहा, जिसे

अथ तं प्रेषयामास स्वदूतं शक्रसन्निधौ।
संमान्य बहुशः प्रीत्याऽभयं दत्त्वा विशारदम्॥ २१

आत्मवान् गुरु शुक्राचार्यने बताया था। तत्पश्चात् बहुत प्रकारसे सम्मानित करके तथा अभय देकर अपने उस कुशल दूतको उसने प्रेमपूर्वक इन्द्रके समीप भेजा॥ १९—२१॥

दूतस्त्रिविष्टपं तस्य जगामारमलं सुधीः।
घस्मरोऽम्बुधिबालस्य सर्वदेवसमन्वितम्॥ २२

उस समुद्रपुत्र जलन्धरका वह बुद्धिमान् दूत घस्मर बड़ी शीघ्रतासे सभी देवगणोंसे युक्त स्वर्गलोकको गया॥ २२॥

तत्र गत्वा स दूतस्तु सुधर्मां प्राप्य सत्वरम्।
गर्वादखर्वमौलिर्हि देवेन्द्रं वाक्यमब्रवीत्॥ २३

वहाँ जाकर वह दूत शीघ्र ही सुधर्मा सभामें पहुँचकर बड़े अहंकारके साथ देवराज इन्द्रसे यह वचन कहने लगा—॥ २३॥

घस्मर उवाच

जलंधरोऽब्धितनयः सर्वदैत्यजनेश्वरः।
सुप्रतापी महावीरः स्वयं कविसहायवान्॥ २४

दूतोऽहं तस्य वीरस्य घस्मराख्यो न घस्मरः।
प्रेषितस्तेन वीरेण त्वत्सकाशमिहागतः॥ २५

अव्याहताज्ञः सर्वत्र जलंधर उदग्रधीः।
निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणुष्व तत्॥ २६

घस्मर बोला—समुद्रपुत्र जलन्धर सभी दैत्योंका अधिपति, महाप्रतापी एवं महावीर है तथा शुक्राचार्य उसके सहायक हैं। मैं उसी वीरका घस्मर नामक दूत हूँ और वस्तुतः घस्मर (भक्षक) नहीं हूँ, उसी वीरके द्वारा भेजे जानेपर मैं आपके पास आया हूँ। सर्वत्र अप्रतिहत आज्ञावाले महान् बुद्धिमान् तथा सम्पूर्ण देवताओंको जीतनेवाले उस जलन्धरने जो कहा है, उसे आप सुनिये॥ २४—२६॥

जलंधर उवाच

कस्मात्त्वया मम पिता मथितः सागरोऽद्रिणा।
नीतानि सर्वरत्नानि पितुर्मे देवताधम॥ २७

उचितं न कृतं तेऽद्य तानि शीघ्रं प्रयच्छ मे।
ममायाहि विचार्येत्थं शरणं दैवतैः सह॥ २८

अन्यथा ते भयं भूरि भविष्यति सुराधम।
राज्यविध्वंसनं चैव सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम्॥ २९

जलन्धर बोला—हे देवाधम! तुमने किस कारणसे पर्वतके द्वारा मेरे पिता समुद्रका मन्थन किया? और मेरे पिताके सारे रत्नोंका अपहरण किया? तुमने यह उचित नहीं किया, उन रत्नोंको अभी शीघ्र लौटा दो और विचार करके देवताओंसहित मेरी शरणमें आ जाओ। अन्यथा हे सुराधम! तुम्हारे समक्ष बहुत बड़ा भय उपस्थित होगा तथा तुम्हारा राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। मैं यह सत्य कह रहा हूँ॥ २७—२९॥

सनत्कुमार उवाच

इति दूतवचः श्रुत्वा विस्मितस्त्रिदशाधिपः।
उवाच तं स्मरन्निन्द्रो भयरोषसमन्वितः॥ ३०

सनत्कुमार बोले—दूतकी यह बात सुनकर देवराज इन्द्र विस्मित हो गये और वे भय तथा रोषसे युक्त हो उसे (पूर्ववृत्तान्तको) याद करते हुए कहने लगे—॥ ३०॥

अद्रयो मद्भयात् त्रस्ताः स्वकुक्षिस्था यतः कृताः।
अन्येऽपि मद् द्विषस्तेन रक्षिता दितिजाः पुरा॥ ३१

तस्मात्तद्रत्नजातं तु मया सर्वं हृतं किल।
न तिष्ठति मम द्रोही सुखं सत्यं ब्रवीम्यहम्॥ ३२

[हे दूत!] मेरे भयसे भागे हुए पर्वतोंको तथा अन्य मेरे दानवशत्रुओंको पूर्वकालमें उस समुद्रने शरण दी थी, इसीलिये मैंने उसके सारे रत्नोंका अपहरण कर लिया है। मेरा द्रोही सुखसे नहीं रह सकता है, मैं यह सत्य कह रहा हूँ॥ ३१-३२॥

शंखोऽप्येवं पुरा दैत्यो मां द्विषन्सागरात्मजः।
अभवन्मूढचित्तस्तु साधुसंगात्समुज्झितः॥ ३३

ममानुजेन हरिणा निहतः स हि पापधीः।
हिंसकः साधुसंघस्य पापिष्ठः सागरोदरे॥ ३४

पहले भी इसी सागरके शंख नामक मूर्ख पुत्रने मुझसे विरोध किया था, इसलिये साधुओंने उसे अपने साथ नहीं रखा। वह साधुओंका हिंसक और बड़ा पापी था, वह समुद्रमें छिपा रहता था, अतः मेरे छोटे भाई विष्णुने उसका संहार कर दिया॥ ३३-३४॥

तद् गच्छ दूत शीघ्रं त्वं कथयस्वास्य तत्त्वतः।
अब्धिपुत्रस्य सर्वं हि सिंधोर्मंथनकारणम्॥ ३५

अतः हे दूत! तुम शीघ्र जाओ और उस समुद्रपुत्रसे सागरमन्थनका समस्त कारण ठीक-ठीक कह दो॥ ३५॥

सनत्कुमार उवाच

इत्थं विसर्जितो दूतो घस्मराख्यः सुबुद्धिमान्।
तदेन्द्रेणागमत्तूर्णं यत्र वीरो जलंधरः॥ ३६
तदिदं वचनं दैत्यराजो हि तेन धीमता।
कथितो निखिलं शक्रप्रोक्तं दूतेन वै तदा॥ ३७

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार इन्द्रके द्वारा विसर्जित किया गया वह महाबुद्धिमान् दूत शीघ्र ही वहाँ पहुँचा, जहाँ वीर जलन्धर था। उस बुद्धिमान् दूतने इन्द्रद्वारा कही गयी सभी बातोंको दैत्यराज जलन्धरसे कह दिया॥ ३६-३७॥

तन्निशम्य ततो दैत्यो रोषात्प्रस्फुरिताधरः।
उद्योगमकरोत्तूर्णं सर्वदेवजिगीषया॥ ३८

तदोद्योगेऽसुरेन्द्रस्य दिग्भ्यः पातालतस्तथा।
दितिजाः प्रत्यपद्यन्ते कोटिशः कोटिशस्तथा॥ ३९

इन्द्रके वचनको सुनकर दैत्यके ओष्ठ क्रोधसे फड़कने लगे और वह शीघ्र ही सभी देवताओंको जीतनेकी इच्छासे उद्योग करने लगा। उस दैत्येन्द्रके उद्योग करते ही सभी दिशाओंसे तथा पातालसे करोड़ों-करोड़ दैत्य आकर उपस्थित हो गये॥ ३८-३९॥

अथ शुंभनिशुंभाद्यैर्बलाधिपतिकोटिभिः।
निर्जगाम महावीरः सिन्धुपुत्रः प्रतापवान्॥ ४०

तत्पश्चात् वह महावीर तथा प्रतापशाली समुद्रपुत्र जलन्धर शुम्भ-निशुम्भ आदि करोड़ों सेनापतियोंके साथ [देवताओंपर विजय करनेके लिये] निकल पड़ा॥ ४०॥

प्राप त्रिविष्टपं सद्यः सर्वसैन्यसमावृतः।
दध्मौ शंखं जलधिजो नेदुर्वीराश्च सर्वतः॥ ४१

इस प्रकार अपनी सम्पूर्ण सेनाओंको साथ लेकर वह जलन्धर शीघ्र ही स्वर्गमें पहुँच गया। उसने शंख बजाया तथा सभी वीर चारों ओरसे गरजने लगे॥ ४१॥

गत्वा त्रिविष्टपं दैत्यो नन्दनाधिष्ठितोऽभवत्।
सर्वसैन्यं समावृत्य कुर्वाणः सिंहवद्रवम्॥ ४२

इन्द्रलोक पहुँचकर उस दैत्यने सम्पूर्ण सेनाके साथ सिंहनाद करते हुए नन्दनवनमें डेरा डाल दिया॥ ४२॥

पुरमावृत्य तिष्ठत्तद् दृष्ट्वा सैन्यबलं महत्।
निर्ययुस्त्वमरावत्या देवा युद्धाय दंशिताः॥ ४३

नगरको चारों ओरसे घेरकर स्थित उसकी बड़ी सेनाको देखकर देवता कवच धारणकर युद्धके लिये अमरावतीपुरीसे निकल पड़े॥ ४३॥

ततः समभवद्युद्धं देवदानवसेनयोः।
मुसलैः परिघैर्बाणैर्गदापरशुशक्तिभिः॥ ४४

इसके बाद देवों और दैत्योंकी सेनाओंके बीच मूसल, परिघ, बाण, गदा, परशु एवं शक्तियोंसे युद्ध होने लगा॥ ४४॥

तेऽन्योऽन्यं समधावेतां जघ्नतुश्च परस्परम्।
क्षणेनाभवतां सेने रुधिरौघपरिप्लुते॥ ४५

पतितैः पात्यमानैश्च गजाश्वरथपत्तिभिः।
व्यराजत रणे भूमिः संध्याभ्रपटलैरिव॥ ४६

वे एक-दूसरेकी ओर दौड़ने लगे और एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे, थोड़ी ही देरमें दोनों सेनाएँ रुधिरसे लथपथ हो गयीं। हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सेनाओंके गिरने तथा गिरानेसे सारी रणभूमि सन्ध्याकालीन बादलोंके समान प्रतीत होने लगी॥ ४५-४६॥

तत्र युद्धे मृतान्दैत्यान्भार्गवस्तानजीवयत्।
विद्ययामृतजीविन्या मंत्रितैस्तोयबिन्दुभिः॥ ४७

शुक्राचार्य अमृतसंजीवनी विद्याके द्वारा अभिमन्त्रित जलबिन्दुओंसे युद्धमें मरे हुए दैत्योंको जिलाने लगे॥ ४७॥

देवानपि तथा युद्धे तत्राजीवयदंगिराः।
दिव्यौषधैः समानीय द्रोणाद्रेः स पुनः पुनः॥ ४८

अंगिरा (बृहस्पति) भी द्रोणपर्वतसे बारंबार दिव्य औषधियोंको लाकर उनके द्वारा युद्धमें देवताओंको जिलाने लगे॥ ४८॥

दृष्ट्वान्स तथा युद्धे पुनरेव समुत्थितान्।
जलंधरः क्रोधवशो भार्गवं वाक्यमब्रवीत्॥ ४९

तब जलन्धरने देवताओंको पुनर्जीवित होते देखकर क्रोधमें भरकर शुक्राचार्यसे यह वचन कहा— ॥ ४९॥

जलंधर उवाच

मया देवा हता युद्धे उत्तिष्ठन्ति कथं पुनः।
त्वत्तः संजीवनी विद्या नैवान्यत्रेति वै श्रुता॥ ५०

जलन्धर बोला—[हे गुरो!] मेरे द्वारा युद्धमें मारे गये देवता कैसे जीवित होते जा रहे हैं? मैंने तो सुन रखा है कि संजीवनीविद्या आपके अतिरिक्त और किसीके पास है ही नहीं॥ ५०॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सिन्धुपुत्रस्य भार्गवः।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा गुरुः शुक्रो जलंधरम्॥ ५१

सनत्कुमार बोले—सिन्धुपुत्रकी यह बात सुनकर गुरु शुक्राचार्यने प्रसन्नचित्त होकर जलन्धरसे कहा— ॥ ५१॥

शुक्र उवाच

दिव्यौषधीः समानीय द्रोणाद्रेरंगिराः सुरान्।
जीवयत्येष वै तात सत्यं जानीहि मे वचः॥ ५२

जयमिच्छसि चेत्तात शृणु मे वचनं शुभम्।
ततः सोऽरं भुजाभ्यां त्वं द्रोणमब्धावुपाहर॥ ५३

शुक्र बोले—हे तात! ये अंगिरा (बृहस्पति) द्रोणपर्वतसे औषधियोंको लाकर देवताओंको जीवित कर रहे हैं, मेरी बात सत्य मानो। हे तात! यदि तुम विजय चाहते हो, तो मेरी हितकारी बात सुनो, तुम शीघ्र ही उस द्रोणपर्वतको अपनी भुजाओंसे उखाड़कर समुद्रमें डाल दो॥ ५२-५३॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्तः स तु दैत्येन्द्रो गुरुणा भार्गवेण ह।
द्रुतं जगाम यत्रासावास्ते चैवाद्रिराट् च सः॥ ५४

सनत्कुमार बोले—गुरु शुक्राचार्यके द्वारा इस प्रकार कहा गया वह दैत्येन्द्र शीघ्र ही वहाँ पहुँचा, जहाँ वह पर्वतराज [द्रोण] था॥ ५४॥

भुजाभ्यां तरसा दैत्यो नीत्वा द्रोणं च तं तदा।
प्राक्षिपत्सागरे तूर्णं चित्रं न हरतेजसि॥ ५५

उसने वेगपूर्वक अपनी भुजाओंसे उस द्रोण पर्वतको लेकर शीघ्र ही समुद्रमें डाल दिया। शिवजीके तेजके सम्बन्धमें यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं थी॥ ५५॥

पुनरायान्महावीरस्सिन्धुपुत्रो महाहवम्।
जघानास्त्रैश्च विविधैः सुरान्कृत्वा बलं महत्॥ ५६

इसके बाद वह महावीर जलन्धर विशाल सेना लेकर पुनः युद्धस्थलमें लौट आया और अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे देवगणोंका संहार करने लगा॥ ५६॥

अथ देवान्हतान्दृष्ट्वा द्रोणाद्रिमगमद् गुरुः।
तावत्तत्र गिरींद्रं तं न ददर्श सुरार्चितः॥ ५७

ज्ञात्वा दैत्यहृतं द्रोणं धिषणो भयविह्वलः।
आगत्य देवान्प्रोवाच जीवो व्याकुलमानसः॥ ५८

तब देवताओंको मरा हुआ देखकर देवपूजित देवगुरु द्रोणपर्वतपर गये, परंतु उन्होंने उस पर्वतराजको वहाँ नहीं देखा। दैत्यके द्वारा पर्वतको अपहृत जानकर देवगुरु भयसे विह्वल हो उठे और आकरके व्याकुलचित्त होकर देवताओंसे वे कहने लगे— ॥ ५७-५८ ॥

गुरुरुवाच

पलायध्वं सुराः सर्वे द्रोणो नास्ति गिरिर्महान्।
ध्रुवं ध्वस्तश्च दैत्येन पाथोधितनयेन हि॥ ५९

गुरु बोले—हे देवताओ! तुमलोग भाग जाओ, महापर्वत द्रोण अब नहीं है, निश्चय ही समुद्रपुत्र जलन्धरने उसे ध्वस्त कर दिया है॥ ५९ ॥

जलंधरो महादैत्यो नायं जेतुं क्षमो यतः।
रुद्रांशसंभवो ह्येष सर्वामरविमर्दनः॥ ६०

मया ज्ञातः प्रभावोऽस्य यथोत्पन्नः स्वयं सुराः।
शिवापमानकृच्छक्रचेष्टितं स्मरताखिलम्॥ ६१

सभी देवताओंका मर्दन करनेवाला यह महादैत्य जलन्धर जीता नहीं जा सकता है; क्योंकि यह रुद्रके अंशसे उत्पन्न है। हे देवताओ! यह जिस प्रकार उत्पन्न हुआ है तथा जैसा इसका प्रभाव है, उसे मैं जानता हूँ। शिवजीका अपमान करनेवाले इन्द्रकी सम्पूर्ण चेष्टाको आपलोग स्मरण कीजिये ॥ ६०-६१ ॥

सनत्कुमार उवाच

श्रुत्वा तद्वचनं देवाः सुराचार्यप्रकीर्तितम्।
जयाशां त्यक्तवन्तस्ते भयविह्वलितास्तथा॥ ६२

दैत्यराजेन तेनातिहन्यमानाः समन्ततः।
धैर्यं त्यक्त्वाऽपलायन्त दिशो दश सवासवाः॥ ६३

सनत्कुमार बोले—देवताओंके आचार्य बृहस्पतिके द्वारा कहे गये उस वचनको सुनकर भयसे व्याकुल हुए उन देवगणोंने विजयकी आशा त्याग दी और उस दैत्यराजके द्वारा चारों ओरसे मारे जाते हुए इन्द्रसहित सभी देवता धैर्य त्यागकर दसों दिशाओंमें भाग गये॥ ६२-६३ ॥

देवान्विद्रावितान्दृष्ट्वा दैत्यः सागरनंदनः।
शंखभेरीजयरवैः प्रविवेशामरावतीम्॥ ६४

प्रविष्टे नगरीं दैत्ये देवाः शक्रपुरोगमाः।
सुवर्णाद्रिगुहां प्राप्ता न्यवसन्दैत्यतापिताः॥ ६५

तब देवगणोंको पलायित देखकर सागरपुत्र दैत्य जलन्धरने शंख, भेरी तथा जयध्वनिके साथ अमरावतीपुरीमें प्रवेश किया। तब उस दैत्यके नगरीमें प्रविष्ट होनेपर इन्द्र आदि देवता उस दैत्यसे पीड़ित होकर सुमेरु पर्वतकी गुफामें छिप गये॥ ६४-६५ ॥

तदैव सर्वेष्वसुरोऽधिकारे-
ष्विन्द्रादिकानां विनिवेश्य सम्यक्।
शुंभादिकान्दैत्यवरान् पृथक्पृथक्
स्वयं सुवर्णाद्रिगुहां व्यगान्मुने॥ ६६

हे मुने! तब वह असुर इन्द्रादिकोंके सभी अधिकारोंपर श्रेष्ठ शुम्भादि दैत्योंको भलीभाँति पृथक्-पृथक् नियुक्तकर स्वयं [देवताओंको खोजते हुए] मेरु पर्वतकी गुफामें जा पहुँचा॥ ६६ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलंधरवधोपाख्याने देवजलंधरयुद्धवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरवधोपाख्यानमें देव-जलन्धरयुद्धवर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

जलन्धरसे भयभीत देवताओंका विष्णुके समीप जाकर स्तुति करना, विष्णुसहित देवताओंका जलन्धरकी सेनाके साथ भयंकर युद्ध

सनत्कुमार उवाच

पुनर्दैत्यं समायान्तं दृष्ट्वा देवाः सवासवाः।
भयात्प्रकंपिताः सर्वे सहैवादुद्रुवुर्द्रुतम्॥ १
वैकुंठं प्रययुः सर्वे पुरस्कृत्य प्रजापतिम्।
तुष्टुवुस्ते सुरा नत्वा सप्रजापतयोऽखिलाः॥ २

सनत्कुमार बोले—इन्द्रसहित सभी देवता उस दैत्यको पुनः आता हुआ देखकर भयसे काँप उठे और शीघ्र ही एक साथ भाग गये। प्रजापतिको आगेकर वे सब वैकुण्ठमें गये और फिर प्रजापतिसहित सभी देवता प्रणामकर विष्णुकी स्तुति करने लगे— ॥ १-२ ॥

देवा ऊचुः

हृषीकेश महाबाहो भगवन् मधुसूदन।
नमस्ते देवदेवेश सर्वदैत्यविनाशक॥ ३
मत्स्यरूपाय ते विष्णो वेदान्नीतवते नमः।
सत्यव्रतेन सद्राज्ञा प्रलयाब्धिविहारिणे॥ ४

देवता बोले—हे हृषीकेश! हे महाबाहो! हे भगवन्! हे मधुसूदन! हे देवदेवेश! हे सर्वदैत्यविनाशक! आपको नमस्कार है। मत्स्यरूप धारणकर सत्यव्रत राजाके साथ प्रलयाब्धिमें विहार करनेवाले तथा वेदोंको लानेवाले मत्स्यरूप हे विष्णो! आपको नमस्कार है॥ ३-४॥

कुर्वाणानां सुराणां च मंथनायोद्यमं भृशम्।
बिभ्रते मंदरगिरिं कूर्मरूपाय ते नमः॥ ५
नमस्ते भगवन्नाथ क्रतवे सूकरात्मने।
वसुंधरां जनाधारां मूर्द्धतो बिभ्रते नमः॥ ६

समुद्रमन्थनके लिये देवताओंके महान् उद्योग करते समय मन्दराचलपर्वतको धारण करनेवाले कच्छपरूप आपको नमस्कार है। मनुष्योंको आश्रय देनेवाली इस वसुन्धराको दाढ़पर धारण करनेवाले यज्ञवाराहस्वरूप हे भगवन्! आपको नमस्कार है॥ ५-६॥

वामनाय नमस्तुभ्यमुपेन्द्राख्याय विष्णवे।
विप्ररूपेण दैत्येन्द्रं बलिं छलयते विभो॥ ७

विप्ररूपसे दैत्येन्द्र बलिको छलनेवाले उपेन्द्र नामक वामनरूपधारी हे विष्णु! हे विभो! आपको नमस्कार है॥ ७॥

नमः परशुरामाय क्षत्रनिःक्षत्रकारिणे।
मातुर्हितकृते तुभ्यं कुपितायासतां द्रुहे॥ ८
रामाय लोकरामाय मर्यादापुरुषाय ते।
रावणांतकरायाशु सीतायाः पतये नमः॥ ९

क्षत्रियोंके क्षत्रका अन्त करनेवाले, माताका हित करनेवाले, कुपित होनेवाले तथा दुष्टजनोंका विनाश करनेवाले और परशुरामके रूपसे अवतार धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। लोकको प्रसन्न करनेवाले, मर्यादापुरुष तथा शीघ्र रावणका वध करनेवाले और सीतापति रामके रूपमें अवतार ग्रहण करनेवाले आपको नमस्कार है॥ ८-९॥

नमस्ते ज्ञानगूढाय कृष्णाय परमात्मने।
राधाविहारशीलाय नानालीलाकराय च॥ १०
नमस्ते गूढदेहाय वेदनिंदाकराय च।
योगाचार्याय जैनाय बौद्धरूपाय मापते॥ ११

गूढ़ ज्ञानवाले, राधाके साथ विहार करनेवाले तथा विविध लीला करनेवाले कृष्णरूपधारी आप परमात्माको नमस्कार है। गुप्त शरीर धारण करनेवाले, योगके आचार्य तथा वेदविरुद्ध जैनरूप एवं बौद्धरूपको धारण करनेवाले आप लक्ष्मीपतिको नमस्कार है॥ १०-११॥

नमस्ते कल्किरूपाय म्लेच्छानामन्तकारिणे।
अनन्तशक्तिरूपाय सद्धर्मस्थापनाय च॥ १२
नमः कपिलरूपाय देवहूत्यै महात्मने।
वदते सांख्ययोगं च सांख्याचार्याय वै प्रभो॥ १३

सद्धर्मकी स्थापनाके लिये म्लेच्छोंका विनाश करनेवाले, अनन्त शक्तिसे सम्पन्न तथा कल्किरूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। हे प्रभो! देवहूतिके लिये कपिलरूप धारणकर सांख्ययोगका उपदेश करनेवाले आप महात्मा सांख्याचार्यको नमस्कार है॥ १२-१३॥

नमः परमहंसाय ज्ञानं संवदते परम्।
विधात्रे ज्ञानरूपाय येनात्मा संप्रसीदति॥ १४

परमहंसरूपसे आत्ममुक्तिपरक परम ज्ञानका उपदेश करनेवाले, ज्ञानरूप विधाता आपको नमस्कार है॥ १४॥

वेदव्यासाय वेदानां विभागं कुर्वते नमः।
हिताय सर्वलोकानां पुराणरचनाय च॥ १५
एवं मत्स्यादितनुभिर्भक्तकार्योद्यताय ते।
सर्गस्थितिध्वंसकर्त्रे नमस्ते ब्रह्मणे प्रभो॥ १६

समस्त लोकोंके हितके लिये पुराणोंकी रचना करनेवाले तथा वेदोंका विभाग करनेवाले वेदव्यासरूपधारी आपको नमस्कार है। इस प्रकार मत्स्यादिरूपोंसे भक्तोंके कार्यके लिये तत्पर रहनेवाले तथा सृष्टि, पालन एवं प्रलय करनेवाले ब्रह्मरूप हे प्रभो! आपको नमस्कार है॥ १५-१६॥

आर्तिहन्त्रे स्वदासानां सुखदाय शुभाय च।
पीताम्बराय हरये ताक्ष्र्ययानाय ते नमः।
सर्वक्रियायैककर्त्रे शरण्याय नमो नमः॥ १७

अपने दासोंके दुःखोंको दूर करनेवाले, सुखद, शुभस्वरूप, गरुड़पर सवारी करनेवाले, पीताम्बरधारी आप विष्णुको नमस्कार है। सभी क्रियाओंके एकमात्र कर्ता तथा शरणागतरक्षक आपको बार-बार नमस्कार है॥ १७॥

दैत्यसंतापितामर्त्यदुःखादिध्वंसवज्रक।
शेषतल्पशयायार्कचन्द्रनेत्राय ते नमः॥ १८

दैत्योंके द्वारा सन्तप्त देवताओंके दुःखका नाश करनेवाले हे वज्रस्वरूप! शेषरूपी शय्यापर शयन करनेवाले तथा सूर्यचन्द्रनेत्रवाले आपको नमस्कार है॥ १८॥

कृपासिन्धो रमानाथ पाहि नः शरणागतान्।
जलंधरेण देवाश्च स्वर्गात्सर्वे निराकृताः॥ १९
सूर्यो निस्सारितः स्थानाच्चन्द्रो वह्निस्तथैव च।
पातालान्नागराजश्च धर्मराजो निराकृतः॥ २०

हे कृपासागर! हे रमानाथ! हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये, जलन्धरने सभी देवताओंको स्वर्गसे निकाल दिया है। उसने सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्निको उनके स्थानसे हटा दिया है तथा पातालसे नागराजको और धर्मराजको भी निकाल दिया है॥ १९-२०॥

विचरंति यथा मर्त्याः शोभंते नैव ते सुराः।
शरणं ते वयं प्राप्ता वधस्तस्य विचिन्त्यताम्॥ २१

वे देवता मनुष्योंके समान भटक रहे हैं, इससे वे शोभित नहीं हो रहे हैं। इसलिये हम आपकी शरणमें आये हुए हैं, आप उसके वधका उपाय सोचिये॥ २१॥

सनत्कुमार उवाच

इति दीनवचः श्रुत्वा देवानां मधुसूदनः।
जगाद करुणासिन्धुर्मेघनिर्ह्लादया गिरा॥ २२

सनत्कुमार बोले—तब करुणासिन्धु मधुसूदन देवताओंका यह दीन वचन सुनकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहने लगे—॥ २२॥

विष्णुरुवाच

भयं त्यजत हे देवा गमिष्याम्यहमाहवम्।
जलंधरेण दैत्येन करिष्यामि पराक्रमम्॥ २३
इत्युक्त्वा सहसोत्थाय दैत्यारिः खिन्नमानसः।
आरोहद्गरुडं वेगात्कृपया भक्तवत्सलः॥ २४

विष्णुजी बोले—हे देवताओ! आपलोग भयका त्याग कीजिये, मैं स्वयं युद्धमें जाऊँगा और दैत्य जलन्धरसे युद्ध करूँगा। इस प्रकार कहकर दुखी मनवाले भक्तवत्सल दैत्यारि विष्णु अनुग्रहपूर्वक सहसा उठकर गरुड़पर वेगसे सवार हो गये॥ २३-२४॥

गच्छन्तं वल्लभं दृष्ट्वा देवैस्सार्द्धं समुद्रजा।
सांजलिर्बाष्पनयना लक्ष्मीर्वचनमब्रवीत्॥ २५

उस समय देवताओंके साथ जाते हुए अपने पति [श्रीविष्णु]-को देखकर नेत्रोंमें जल भरकर हाथ जोड़कर समुद्रपुत्री लक्ष्मीजीने यह वचन कहा— ॥ २५ ॥

लक्ष्म्युवाच

अहं ते वल्लभा नाथ भक्ता यदि च सर्वदा।
तत्कथं ते मम भ्राता युद्धे वध्यः कृपानिधे॥ २६

लक्ष्मीजी बोलीं—हे नाथ! यदि मैं आपकी प्रिया और सदा आपकी भक्त हूँ, तो हे कृपानाथ! आप मेरे भाईका वध युद्धमें कैसे कर सकते हैं?॥ २६॥

विष्णुरुवाच

जलंधरेण दैत्येन करिष्यामि पराक्रमम्।
तैः संस्तुतो गमिष्यामि युद्धाय त्वरितान्वितः॥ २७
रुद्रांशसंभवत्वाच्च ब्रह्मणो वचनादपि।
प्रीत्या च तव नैवायं मम वध्यो जलंधरः॥ २८

विष्णुजी बोले—मैं उस जलन्धरके साथ अपना पराक्रम करूँगा, देवोंने मेरी स्तुति की है, अतः मैं शीघ्र ही युद्धके लिये जाऊँगा, किंतु रुद्रांशसे उसके उत्पन्न होने, ब्रह्माको वचन देने तथा तुम्हारी प्रीतिके कारण इस जलन्धरका वध नहीं करूँगा॥ २७-२८॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा गरुडारूढः शंखचक्रगदासिभृत्।
विष्णुर्वेगाद्ययौ योद्धुं देवैः शक्रादिभिस्सह॥ २९

द्रुतं स प्राप तत्रैव यत्र दैत्यो जलंधरः।
कुर्वन् सिंहरवं देवैर्ज्वलद्भिर्विष्णुतेजसा॥ ३०

अथारुणानुजजवपक्षवातप्रपीडिताः।
वात्याविवर्तिता दैत्या बभ्रमुः खे यथा घनाः॥ ३१

सनत्कुमार बोले—यह कहकर विष्णु शंख, चक्र, गदा तथा तलवार धारणकर गरुड़पर सवार हो गये और इन्द्रादि देवताओंको साथ लेकर युद्ध करनेके लिये वेगपूर्वक चल पड़े। विष्णुके तेजसे प्रकाशित होते देवताओंके साथ सिंहनाद करते हुए वे [विष्णु] शीघ्र वहाँ पहुँचे, जहाँ वह जलन्धर था। उस समय अरुणके लघु भ्राता गरुड़के पंखोंके वायुवेगसे पीड़ित हुए दैत्य इस प्रकार चक्कर काटने लगे, जैसे वायुके द्वारा उड़ाये गये बादल आकाशमण्डलमें घूमने लगते हैं॥ २९—३१॥

ततो जलंधरो दृष्ट्वा दैत्यान् वात्याप्रपीडितान्।
उद्धृत्य वचनं क्रोधाद् द्रुतं विष्णुं समभ्यगात्॥ ३२
एतस्मिन्नन्तरे देवाश्चक्रुर्युद्धं प्रहर्षिताः।
तेजसा च हरेः पुष्टा महाबलसमन्विताः॥ ३३

तब वायुके वेगसे पीड़ित हुए दैत्योंको देखकर अमर्षयुक्त वचन कहता हुआ जलन्धर बड़ी तेजीसे विष्णुपर झपटा। इसी बीच विष्णुके तेजसे देदीप्यमान महाबलशाली देवता भी प्रसन्न होकर युद्ध करने लगे॥ ३२-३३॥

युद्धोद्यतं समालोक्य देवसैन्यमुपस्थितम्।
दैत्यानाज्ञापयामास समरे चातिदुर्मदान्॥ ३४

तब वहाँपर उपस्थित देवसेनाको युद्धके लिये उद्यत देखकर जलन्धरने युद्धमें दुर्मद दैत्योंको आज्ञा दी॥ ३४॥

जलंधर उवाच

भो भो दैत्यवरा यूयं युद्धं कुरुत दुस्तरम्।
शक्राद्यैरमरैरद्य प्रबलैः कातरैः सदा॥ ३५

जलन्धर बोला—हे श्रेष्ठ दैत्यो! तुमलोग सदासे कायर, किंतु प्रबल इन इन्द्रादि देवताओंके साथ आज अत्यन्त कठिन युद्ध करो॥ ३५॥

मौर्यास्तु लक्षसंख्याता धौम्रा हि शतसंख्यकाः।
असुराः कोटिसंख्याताः कालकेयास्तथैव च॥ ३६
कालकानां दौर्हृदानां कंकानां लक्षसंख्यया।
अन्येऽपि स्वबलैर्युक्ता विनिर्यांतु ममाज्ञया॥ ३७

एक लाख संख्यावाले मौर्य, सौ संख्यावाले धौम्र, करोड़ोंकी संख्यावाले कालकेय, एक लाखकी संख्यावाले कालक-दौर्हृद तथा कंक नामक असुर तथा अन्य असुर भी मेरी आज्ञासे अपनी-अपनी

सर्वे सज्जा विनिर्यात बहुसेनाभिसंयुताः।
नानाशस्त्रास्त्रसंयुक्ता निर्भया गतसंशयाः॥ ३८

भो भो शुंभनिशुंभौ च देवान्समरकातरान्।
क्षणेन सुमहावीर्यौ तुच्छान्नाशयतं युवाम्॥ ३९

सेनाओंके साथ निकलें। सभी लोग सज्जित होकर विशाल सेनाओंसे युक्त हो अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण किये हुए निर्भय एवं संशयरहित होकर निकल पड़ें। हे शुम्भ एवं निशुम्भ! महाबलवान् तुम दोनों क्षणमात्रमें युद्ध करनेमें कायर तथा तुच्छ देवताओंका विनाश कर दो॥ ३६—३९॥

सनत्कुमार उवाच

दैत्या जलंधराज्ञप्ता इत्थं युद्धविशारदाः।
युयुधुस्तेऽसुराः सर्वे चतुरंगबलान्विताः॥ ४०

सनत्कुमार बोले—जब जलन्धरने इस प्रकार दैत्योंको आज्ञा दी, तब युद्धविशारद वे समस्त असुर अपनी चतुरंगिणी सेना लेकर युद्ध करने लगे॥ ४०॥

गदाभिस्तीक्ष्णबाणैश्च शूलपट्टिशतोमरैः।
केचित्परशुशूलैश्च निजघ्नुस्ते परस्परम्॥ ४१

वे गदा, तीक्ष्ण बाण, शूल, पट्टिश, तोमर, परशु और शूलादि अस्त्रोंसे एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे॥ ४१॥

नानायुधैः परैस्तत्र निजघ्नुस्ते बलान्विताः।
देवास्तथा महावीरा हृषीकेशबलान्विताः।
युयुधुस्तीक्ष्णबाणाश्च क्षिपन्तः सिंहवद्रवाः॥ ४२

केचिद्बाणैः सुतीक्ष्णैश्च केचिन्मुसलतोमरैः।
केचित्परशुशूलैश्च निजघ्नुस्ते परस्परम्॥ ४३

इत्थं सुराणां दैत्यानां संग्रामः समभून्महान्।
अत्युल्बणो मुनीनां हि सिद्धानां भयकारकः॥ ४४

विष्णुके बलसे युक्त वे महाबलवान् देवगण सेनाओंको साथ लेकर अनेक प्रकारके श्रेष्ठ आयुधोंसे प्रहार करने लगे। वे सिंहके समान गर्जन करते हुए तथा बाणोंको छोड़ते हुए युद्ध कर रहे थे। कोई तीक्ष्ण बाणोंसे, कोई मूसलों और तोमरोंसे तथा कोई परशुसे एवं त्रिशूलसे एक-दूसरेपर प्रहार कर रहे थे। इस प्रकार देव-दानवोंमें महाभयंकर संग्राम छिड़ गया, जो मुनियों तथा सिद्धोंमें भय उत्पन्न करनेवाला था॥ ४२—४४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलन्धरवधोपाख्याने देवयुद्धवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरवधोपाख्यानके अन्तर्गत देवयुद्धवर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

विष्णु और जलन्धरके युद्धमें जलन्धरके पराक्रमसे सन्तुष्ट विष्णुका देवों एवं लक्ष्मीसहित उसके नगरमें निवास करना

सनत्कुमार उवाच

अथ दैत्या महावीर्याः शूलैः परशुपट्टिशैः।
निजघ्नुः सर्वदेवांश्च भयव्याकुलमानसान्॥ १

दैत्यायुधैः समाविद्धदेहा देवाः सवासवाः।
रणाद्विदुद्रुवुः सर्वे भयव्याकुलमानसाः॥ २

पलायनपरान् दृष्ट्वा हृषीकेशः सुरानथ।
विष्णुर्वै गरुडारूढो योद्धुमभ्याययौ द्रुतम्॥ ३

सनत्कुमार बोले—इसके बाद महापराक्रमी दैत्य शूल, परशु और पट्टिशोंसे भयसे व्याकुल चित्तवाले देवताओंपर प्रहार करने लगे। तब दैत्योंके आयुधोंसे छिन्न-भिन्न शरीरवाले इन्द्रसहित सभी देवता भयसे व्याकुलचित्त हो उठे और रणसे भागने लगे। तत्पश्चात् देवताओंको भागते हुए देखकर हृषीकेश विष्णु गरुड़पर सवार होकर शीघ्र ही युद्ध करनेके लिये आ गये॥ १—३॥

सुदर्शनेन चक्रेण सर्वतः प्रस्फुरन् रुचा।
सुशोभितकराब्जश्च रेजे भक्ताभयंकरः॥ ४

शंखखड्गगदाशार्ङ्गधारी क्रोधसमन्वितः।
कठोरास्त्रो महावीरः सर्वयुद्धविशारदः॥ ५

धनुषं शार्ङ्गनामानं विस्फूर्य्य विननाद ह।
तस्य नादेन त्रैलोक्यं पूरितं महता मुने॥ ६

शार्ङ्गनिस्सृतबाणैश्च दितिजानां शिरांसि वै।
चकर्त्त भगवान् विष्णुः कोटिशो रुट्समाकुलः॥ ७

अथारुणानुजजवपक्षवातप्रपीडिताः।
वात्याविवर्त्तिता दैत्या बभ्रमुः खे यथा घनाः॥ ८

ततो जलंधरो दृष्ट्वा दैत्यान्वात्याप्रपीडितान्।
चुक्रोधाति महादैत्यो देववृन्दभयंकरः॥ ९

मर्दयन्तं च तं दृष्ट्वा दैत्यान् प्रस्फुरिताधरः।
योद्धुमभ्याययौ वीरो वेगेन हरिणा सह॥ १०

स चकार महानादं देवासुरभयंकरम्।
दैत्यानामधिपः कर्णा विदीर्णाः श्रवणात्ततः॥ ११

भयङ्करेण दैत्यस्य नादेनापूरितं तदा।
जलंधरस्य महता चकम्पे सकलं जगत्॥ १२

ततः समभवद्युद्धं विष्णुदैत्येन्द्रयोर्महत्।
आकाशं कुर्वतोर्बाणैस्तदा निरवकाशवत्॥ १३
तयोश्च तेन युद्धेन परस्परमभून्मुने।
देवासुरर्षिसिद्धानां भीकरेणातिविस्मयः॥ १४

विष्णुर्दैत्यस्य बाणौघैर्ध्वजं छत्रं धनुः शरान्।
चिच्छेद तं च हृदये बाणेनैकेन ताडयन्॥ १५

ततो दैत्यः समुत्पत्य गदापाणिस्त्वरान्वितः।
आहत्य गरुडं मूर्ध्नि पातयामास भूतले॥ १६

विष्णुं जघान शूलेन तीक्ष्णेन प्रस्फुरद्रुचा।
हृदये क्रोधसंयुक्तो दैत्यः प्रस्फुरिताधरः॥ १७

भक्तोंको अभय देनेवाले वे विष्णु चारों ओर प्रकाश फैलाते हुए सुदर्शन चक्रको हाथमें धारण करनेके कारण अत्यन्त शोभायमान हो रहे थे। हे मुने! समस्त युद्धोंमें विशारद, शंख-खड्ग-गदा एवं शार्ङ्ग धनुष धारण किये हुए, कठोर अस्त्रोंसे युक्त तथा अत्यन्त कुपित उन महावीर विष्णुने शार्ङ्ग नामक धनुष चढ़ाकर उसकी टंकार की, उसके महान् नादसे त्रिलोकी व्याप्त हो गयी॥ ४—६॥

क्रोधमें भरे हुए भगवान् विष्णुने धनुषसे छोड़े गये बाणोंके द्वारा करोड़ों दैत्योंके सिर काट डाले॥ ७॥

उस समय अरुणके छोटे भाई गरुड़के पंखोंकी वायुके वेगसे पीड़ित हुए दैत्य आकाशमें पवनप्रेरित बादलोंके समान चक्कर काटने लगे। तब दैत्योंको गरुड़के पंखोंकी आँधीसे पीड़ित देखकर देवताओंमें भय उत्पन्न करनेवाले महादैत्य जलन्धरने अत्यधिक क्रोध किया॥ ८-९॥

उन्हें दैत्योंको मर्दित करता हुआ देखकर फड़कते हुए ओठोंवाला वह जलन्धर विष्णुसे युद्ध करनेके लिये वेगपूर्वक आ गया। उस दैत्यपतिने देवताओं तथा असुरोंको भय उत्पन्न करनेवाला महानाद किया, उससे [सुननेवालोंके] कान विदीर्ण हो गये॥ १०-११॥

दैत्य जलन्धरके महाभयंकर नादसे सारा जगत् व्याप्त हो गया और काँप उठा॥ १२॥

इसके बाद बाणोंसे आकाशको पूर्ण करते हुए विष्णु तथा उस दैत्येन्द्रमें घमासान युद्ध होने लगा॥ १३॥

हे मुने! परस्पर उन दोनोंके उस भयंकर युद्धसे देवों, असुरों, ऋषियों तथा सिद्धोंको बड़ा आश्चर्य उत्पन्न हुआ। विष्णुने दैत्यकी छातीमें एक बाणसे प्रहार करते हुए बाणसमूहोंसे उसके ध्वज, छत्र, धनुष तथा बाणोंको काट दिया। इसी बीच उस दैत्यने भी बड़ी शीघ्रतासे हाथमें गदा लेकर उछलकर [उस गदासे] गरुड़के सिरपर प्रहार करके उसे पृथ्वीपर गिरा दिया॥ १४—१६॥

फड़कते हुए ओठोंवाले उस दैत्यने कुपित होकर अपने चमचमाते हुए तीक्ष्ण शूलसे भगवान् विष्णुकी छातीपर भी प्रहार किया॥ १७॥

विष्णुर्गदां च खड्गेन चिच्छेद प्रहसन्निव।
तं विव्याध शरैस्तीक्ष्णैः शार्ङ्गं विस्फूर्य दैत्यहा॥ १८

उसके बाद दैत्यनाशक विष्णुने हँसते हुए अपने खड्गसे उसकी गदा काट दी और शार्ङ्ग धनुषकी प्रत्यंचा चढ़ाकर तीक्ष्ण बाणोंसे उसे बेध दिया॥ १८॥

विष्णुर्जलंधरं दैत्यं भयदेन शरेण ह।
क्रोधाविष्टोऽतितीक्ष्णेन जघानाशु सुरारिहा॥ १९

इस प्रकार देवताओंके शत्रुओंका वध करनेवाले विष्णु क्रोधमें भरकर अत्यन्त तीक्ष्ण एवं भयदायक बाणसे जलन्धर दैत्यपर शीघ्रतासे प्रहार करने लगे॥ १९॥

आगतं तस्य तं बाणं दृष्ट्वा दैत्यो महाबलः।
छित्त्वा बाणेन विष्णुं च जघान हृदये द्रुतम्॥ २०

तब महाबली दैत्यने उनके बाणको आया हुआ देखकर अपने बाणसे उसे काटकर बड़ी शीघ्रतासे विष्णुकी छातीपर प्रहार किया॥ २०॥

केशवोऽपि महाबाहुं विक्षिप्तमसुरेण तम्।
शरं तिलप्रमाणेन च्छित्त्वा वीरो ननाद ह॥ २१

महाबाहु वीर विष्णु भी असुरके द्वारा छोड़े गये, उस बाणको तिलके समान काटकर गर्जन करने लगे॥ २१॥

पुनर्बाणं समाधत्त धनुषि क्रोधवेपितः।
महाबलोऽथ बाणेन चिच्छेद स शिलीमुखम्॥ २२
वासुदेवः पुनर्बाणं नाशाय विबुधद्विषः।
क्रोधेनाधत्त धनुषि सिंहवद्विननाद ह॥ २३
जलंधरोऽथ दैत्येन्द्रः कोपाच्छिन्नाधरो बली।
शरेण स्वेन शार्ङ्गाख्यं धनुश्चिच्छेद वैष्णवम्॥ २४

फिर क्रोधसे काँपते हुए विष्णुने जब दूसरा बाण धनुषपर रखा, तभी महाबली उस दैत्यने अपने बाणसे उस बाणको काट डाला। तब वासुदेव विष्णुने क्रोधपूर्वक उस राक्षसके विनाशके लिये पुनः धनुषपर बाण चढ़ाया और सिंहकी भाँति गर्जना की। बलशाली दैत्येन्द्र जलन्धरने भी क्रोधसे अपने ओठोंको काटते हुए अपने बाणसे विष्णुके उस शार्ङ्ग नामक धनुषको काट डाला॥ २२—२४॥

पुनर्बाणैः सुतीक्ष्णैश्च जघान मधुसूदनम्।
उग्रवीर्यो महावीरो देवानां भयकारकः॥ २५
स च्छिन्नधन्वा भगवान् केशवो लोकरक्षकः।
जलंधरस्य नाशाय चिक्षेप स्वगदां पराम्॥ २६
सा गदा हरिणा क्षिप्ता ज्वलज्ज्वलनसन्निभा।
अमोघगतिका शीघ्रं तस्य देहे ललाग ह॥ २७

इसके बाद देवताओंको भय देनेवाला, उग्र पराक्रमवाला तथा महावीर वह दैत्य तीक्ष्ण बाणोंसे मधुसूदनपर प्रहार करने लगा। तब कटे हुए धनुषवाले लोकरक्षक भगवान् विष्णुने जलन्धरके विनाशके लिये अपनी विशाल गदा चलायी। जलती हुई अग्निके समान विष्णुके द्वारा चलायी गयी वह अमोघ गदा बड़ी शीघ्रतासे उस राक्षसके शरीरमें लगी॥ २५—२७॥

तया हतो महादैत्यो न चचालापि किंचन।
जलंधरो मदोन्मत्तः पुष्पमालाहतो यथा॥ २८

वह महादैत्य उसके प्रहारसे पुष्पमालासे आहत हुए मदोन्मत्त हाथीके समान कुछ भी विचलित नहीं हुआ॥ २८॥

ततो जलंधरः क्रोधी देवत्रासकरोऽक्षिपत्।
त्रिशूलमनलाकारं हरये रणदुर्म्मदः॥ २९
अथ विष्णुस्तत्त्रिशूलं चिच्छेद तरसा द्रुतम्।
नंदकाख्येन खड्गेन स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम्॥ ३०
छिन्ने त्रिशूले दैत्येन्द्र उत्प्लुत्य सहसा द्रुतम्।
आगत्य हृदये विष्णुं जघान दृढमुष्टिना॥ ३१

तदनन्तर देवताओंमें भय उत्पन्न करनेवाले रणदुर्मद उस जलन्धरने क्रोधमें भरकर अग्निके सदृश त्रिशूल विष्णुपर चलाया। तब विष्णुने शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करके अपने नन्दक नामक खड्गसे शीघ्र ही बड़ी तेजीसे उस त्रिशूलको काट दिया। त्रिशूलके कट जानेपर उस दैत्यने सहसा उछलकर शीघ्रतापूर्वक आकर अपनी दृढ़ मुष्टिसे विष्णुकी छातीपर प्रहार किया॥ २९—३१॥

सोऽपि विष्णुर्महावीरोऽविगणय्य च तद्व्यथाम्।
जलंधरं च हृदये जघान दृढमुष्टिना॥ ३२

ततस्तौ बाहुयुद्धेन युयुधाते महाबलौ।
बाहुभिर्मुष्टिभिश्चैव जानुभिर्नादयन्महीम्॥ ३३

एवं हि सुचिरं युद्धं कृत्वा तेनासुरेण वै।
विस्मितोऽभून्मुनिश्रेष्ठ हृदि ग्लानिमवाप ह॥ ३४

अथ प्रसन्नो भगवान्मायी मायाविदां वरः।
उवाच दैत्यराजानं मेघगंभीरया गिरा॥ ३५

तब उन महावीर विष्णुने भी उस व्यथाकी चिन्ता न करके अपनी दृढ़ मुष्टिसे जलन्धरके हृदयपर प्रहार किया। तदनन्तर जानुओं, बाहुओं एवं मुष्टियोंसे पृथ्वीको शब्दायमान करते हुए उन दोनों महावीरोंका बाहुयुद्ध होने लगा। हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार उस दैत्यसे बहुत देरतक युद्ध करके विष्णु विस्मित हो गये और मनमें दुःखका अनुभव करने लगे। इसके बाद मायाविदोंमें श्रेष्ठ तथा माया करनेवाले विष्णुने प्रसन्न होकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें दैत्यराजसे कहा— ॥ ३२—३५ ॥

विष्णुरुवाच

भो भो दैत्यवरश्रेष्ठ धन्यस्त्वं रणदुर्मदः।
महायुधवरैर्यत्त्वं न भीतो हि महाप्रभुः॥ ३६
एभिरेवायुधैरुग्रैर्दैत्या हि बहवो हताः।
महाजौ दुर्मदा वीराश्छिन्नदेहा मृतिं गताः॥ ३७
युद्धेन ते महादैत्य प्रसन्नोऽस्मि महान्भवान्।
न दृष्टस्त्वत्समो वीरस्त्रैलोक्ये सचराचरे॥ ३८

विष्णुजी बोले—हे दैत्यश्रेष्ठ! तुम महाप्रभु, रणदुर्मद तथा धन्य हो, जो इन उत्तम आयुधोंसे तनिक भी भयभीत नहीं हुए। मैंने इन्हीं उग्र आयुधोंसे महायुद्धमें बहुत-से दुर्मद तथा वीर दैत्योंको मारा है, वे छिन्नदेह होकर मृत्युको प्राप्त हो गये। हे महादैत्य! मैं तुम्हारे युद्धसे प्रसन्न हो गया हूँ, तुम महान् हो, तुम्हारे समान वीर चराचरसहित त्रिलोकीमें आजतक दिखायी नहीं पड़ा॥ ३६—३८ ॥

वरं वरय दैत्येन्द्र प्रीतोऽस्मि तव विक्रमात्।
अदेयमपि ते दद्मि यत्ते मनसि वर्तते॥ ३९

हे दैत्यराज! तुम्हारे पराक्रमसे मैं प्रसन्न हूँ, तुम्हारे मनमें जो भी हो, उस वरको माँगो, वह अदेय हो, तो भी तुम्हें दूँगा॥ ३९ ॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य विष्णोर्मायाविनो हरेः।
प्रत्युवाच महाबुद्धिर्दैत्यराजो जलंधरः॥ ४०

सनत्कुमार बोले—उन महामायावी विष्णुका यह वचन सुनकर महाबुद्धिमान् दैत्यराज जलन्धरने कहा— ॥ ४० ॥

जलंधर उवाच

यदि भावुक तुष्टोऽसि वरमेतं ददस्व मे।
मद्भगिन्या मया सार्द्धं मद्गेहे सगणो वस॥ ४१

जलन्धर बोला—हे भावुक! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मुझे यह वरदान दीजिये कि आप मेरी बहन (महालक्ष्मी) तथा अपने गणोंके साथ मेरे घरमें निवास करेंगे॥ ४१ ॥

सनत्कुमार उवाच

तदाकर्ण्य वचस्तस्य महादैत्यस्य खिन्नधीः।
तथास्त्विति च देवेशो जगाद भगवान् हरिः॥ ४२

सनत्कुमार बोले—उस महादैत्यके इस वचनको सुनकर खिन्न मनवाले देवेश भगवान् विष्णुने—'ऐसा ही हो' यह कहा॥ ४२ ॥

उवास स ततो विष्णुः सर्वदेवगणैस्सह।
जलंधरं नाम पुरमागत्य रमया सह॥ ४३

उसके बाद विष्णुजी सभी देवताओं एवं महालक्ष्मीके साथ जलन्धरके नगरमें आकर निवास करने लगे॥ ४३ ॥

अथो जलंधरो दैत्यः स्वभगिन्या च विष्णुना।
उवास स्वालयं प्राप्तो हर्षाकुलितमानसः॥ ४४

तब हर्षसे पूर्ण मनवाला वह जलन्धर भी अपने घर आकर अपनी बहन लक्ष्मी और विष्णुके साथ निवास करने लगा॥ ४४ ॥

जलंधरोऽथ देवानामधिकारेषु दानवान्।
स्थापयित्वा सहर्षः सन् पुनरागान्महीतलम्॥ ४५

वह जलन्धर देवताओंके अधिकारपर दानवोंको नियुक्तकर हर्षित होकर पुनः पृथ्वीपर लौट आया॥ ४५॥

देवगंधर्वसिद्धेषु यत्किंचिद्रत्नसंचितम्।
तदात्मवशगं कृत्वाऽतिष्ठत्सागरनंदनः॥ ४६
पातालभवने दैत्यं निशुंभं सुमहाबलम्।
स्थापयित्वा स शेषादीनानयद्भूतलं बली॥ ४७
देवगंधर्वसिद्धौघान् सर्पराक्षसमानुषान्।
स्वपुरे नागरान्कृत्वा शशास भुवनत्रयम्॥ ४८

वह सागरपुत्र जलन्धर देव, गन्धर्व एवं सिद्धोंके पास जो रत्न संचित था, उसे अपने अधीन करके रहने लगा। वह महाबली पाताललोकमें महाबलवान् निशुम्भ नामक दैत्यको स्थापितकर शेषादिको पृथ्वीपर ले आया और देव, गन्धर्व, सिद्ध, सर्प, राक्षस तथा मनुष्योंको अपने पुरमें नागरिक बनाकर तीनों लोकोंपर शासन करने लगा॥ ४६—४८॥

एवं जलंधरः कृत्वा देवान्स्ववशवर्तिनः।
धर्मेण पालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान्॥ ४९
न कश्चिद् व्याधितो नैव दुःखितो न कृशस्तथा।
न दीनो दृश्यते तस्मिन्धर्माद्राज्यं प्रशासति॥ ५०

इस प्रकार देवगणोंको अपने वशमें करके जलन्धर धर्मपूर्वक प्रजाओंका पालन वैसे ही करने लगा, जैसे पिता अपने औरस पुत्रोंका पालन करता है। उसके धर्मपूर्वक राज्यका शासन करते रहनेपर कोई भी रोगी, दुखी, दुर्बल और दीन नहीं दिखायी पड़ता था॥ ४९-५०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलंधरोपाख्याने विष्णुजलंधरयुद्धवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरोपाख्यानमें विष्णु-जलन्धरयुद्धवर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

जलन्धरके आधिपत्यमें रहनेवाले दुखी देवताओंद्वारा शंकरकी स्तुति, शंकरजीका देवर्षि नारदको जलन्धरके पास भेजना, वहाँ देवोंको आश्वस्त करके नारदजीका जलन्धरकी सभामें जाना, उसके ऐश्वर्यको देखना तथा पार्वतीके सौन्दर्यका वर्णनकर उसे प्राप्त करनेके लिये जलन्धरको परामर्श देना

सनत्कुमार उवाच

एवं शासति धर्मेण महीं तस्मिन्महासुरे।
बभूवुर्दुःखिनो देवा भर्त्र्यभावान्मुनीश्वर॥ १

सनत्कुमार बोले—हे मुनीश्वर! इस प्रकार उस महान् असुरके धर्मपूर्वक पृथ्वीका शासन करते रहनेपर उसके स्वामित्वमें रहनेके कारण देवता दुखी हुए॥ १॥

दुःखितास्ते सुराः सर्वे शिवं शरणमाययुः।
मनसा शंकरं देवदेवं सर्वप्रभुं प्रभुम्॥ २
तुष्टुवुर्वाग्भिरिष्टाभिर्भगवन्तं महेश्वरम्।
निवृत्तये स्वदुःखस्य सर्वदं भक्तवत्सलम्॥ ३

वे सभी दुखित देवता मन-ही-मन देवाधिदेव सर्वप्रभु भगवान् सदाशिवकी शरणमें आये और अपने दुःखको दूर करनेके लिये सब कुछ देनेवाले भक्तवत्सल भगवान् महेश्वरकी मनोहर वाणीसे स्तुति करने लगे॥ २-३॥

आहूय स महादेवो भक्तानां सर्वकामदः।
नारदं प्रेरयामास देवकार्यचिकीर्षया॥ ४

तब भक्तजनोंके सभी मनोरथ पूर्ण करनेवाले महादेवने देवकार्य करनेकी इच्छासे नारदको बुलाकर [वहाँ जानेहेतु] प्रेरित किया। इसके बाद ज्ञानी,

अथ देवमुनिर्ज्ञानी शंभुभक्तः सतां गतिः।
शिवाज्ञया ययौ दैत्यपुरे देवान्स नारदः॥ ५

शिवजीके भक्त तथा सज्जनोंका उद्धार करनेवाले देवर्षि नारद शिवजीकी आज्ञासे देवताओंके पास दैत्यपुरीमें गये॥ ४-५॥

व्याकुलास्ते सुराः सर्वे वासवाद्या द्रुतं मुनिम्।
आगच्छन्तं समालोक्य समुत्तस्थुर्हि नारदम्॥ ६
ददुस्त आसनं नत्वा मुनये प्रीतिपूर्वकम्।
नारदाय सुराः शक्रमुखा उत्कंठिताननाः॥ ७
सुखासीनं मुनिवरमासने सुप्रणम्य तम्।
पुनः प्रोचुः सुरा दीना वासवाद्या मुनीश्वरम्॥ ८

उस समय व्याकुल इन्द्रादि सभी देवता मुनि नारदको आते देखकर शीघ्रतासे उठ गये। उत्कण्ठापूर्ण मुखवाले इन्द्र आदि देवताओंने नारद-मुनिको नमस्कार करके प्रीतिपूर्वक उन्हें आसन प्रदान किया। तदनन्तर सुखपूर्वक आसनपर बैठे हुए उन मुनिको पुनः प्रणाम करके इन्द्रादि दुखित देवताओंने मुनीश्वरसे कहा—॥ ६—८॥

देवा ऊचुः

भो भो मुनिवरश्रेष्ठ दुःखं शृणु कृपाकर।
श्रुत्वा तन्नाशय क्षिप्रं प्रभुस्त्वं शंकरप्रियः॥ ९
जलंधरेण दैत्येन सुरा विद्राविता भृशम्।
स्वस्थानाद्भर्तृभावाच्च दुःखिता वयमाकुलाः॥ १०
स्वस्थानादुष्णरश्मिश्च चन्द्रो निस्सारितस्तथा।
वह्निश्च धर्मराजश्च लोकपालास्तथेतरे॥ ११
सुबलिष्ठेन वै तेन सर्वे देवाः प्रपीडिताः।
दुःखं प्राप्ता वयं चाति शरणं त्वां समागताः॥ १२
संग्रामे स हृषीकेशं स्ववशं कृतवान् बली।
जलंधरो महादैत्यः सर्वामरविमर्दकः॥ १३

देवता बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! हे कृपाकर! [हमलोगोंके] दुःखको सुनिये और सुनकर उसे शीघ्र दूर कीजिये, आप प्रभु हैं तथा शंकरप्रिय हैं। दैत्य जलन्धरने देवताओंको [पराजितकर] उन्हें अपने स्थानसे हटा दिया है। इस समय उसके स्वामित्वमें रहनेके कारण हमलोग दुखी तथा व्याकुल हैं। उसके द्वारा सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, धर्मराज, लोकपाल तथा अन्य देवता भी अपने स्थानोंसे हटा दिये गये हैं। उस महाबलवान् दैत्यने हम सभी देवताओंको बहुत पीड़ित किया है, अतः हम सभी अत्यन्त दुखी होकर आपकी शरणमें आये हैं। सभी देवताओंका मर्दन करनेवाले उस बलवान् महादैत्य जलन्धरने संग्राममें विष्णुको भी अपने वशमें कर लिया है॥ ९—१३॥

तस्य वश्यो वराधीनोऽवात्सीत्तत्सदने हरिः।
स लक्ष्म्या सहितो विष्णुर्यो नः सर्वार्थसाधकः॥ १४
जलंधरविनाशाय यत्नं कुरु महामते।
त्वं नो दैववशात्प्राप्तः सदा सर्वार्थसाधकः॥ १५

हमलोगोंके समस्त कार्यको सिद्ध करनेवाले विष्णु वर देनेके कारण उसके वशमें होकर लक्ष्मीसहित उसके घरमें निवास कर रहे हैं। हे महामते! आप सदा सर्वार्थसाधक हैं, हमलोगोंके भाग्यसे ही आप यहाँ आये हैं, अतः जलन्धरके विनाशके लिये कोई उपाय कीजिये॥ १४-१५॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषाममराणां स नारदः।
आश्वास्य मुनिशार्दूलस्तानुवाच कृपाकरः॥ १६

सनत्कुमार बोले—उन देवताओंकी यह बात सुनकर कृपा करनेवाले वे मुनिश्रेष्ठ नारदजी उन्हें आश्वस्त करके कहने लगे—॥ १६॥

नारद उवाच

जानेऽहं वै सुरा यूयं दैत्यराजपराजिताः।
दुःखं प्राप्ताः पीडिताश्च स्थानान्निस्सारिताः खलु॥ १७
स्वशक्त्या भवतां स्वार्थं करिष्ये नात्र संशयः।
अनुकूलोऽहमिह वो दुःखं प्राप्ता यतोऽमराः॥ १८

नारदजी बोले—हे देवताओ! मैं जानता हूँ कि आपलोग दैत्यराज जलन्धरसे पराजित हो गये हैं और अपने-अपने स्थानोंसे हटा दिये गये हैं, अतः आपलोग दुखित तथा पीड़ित हैं। मैं अपनी शक्तिके अनुसार आपलोगोंका कार्य सिद्ध करूँगा, इसमें कोई संशय नहीं है। आपलोगोंने बड़ा दुःख उठाया है, मैं आपलोगोंके अनुकूल हूँ॥ १७-१८॥

सनत्कुमार उवाच

एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठो द्रष्टुं दानववल्लभम्।
आश्वास्य सकलान्देवाञ्जलंधरसभां ययौ॥ १९

सनत्कुमार बोले—ऐसा कहकर मुनिश्रेष्ठ नारदजी सभी देवताओंको आश्वस्त करके उस दानवप्रिय जलन्धरको देखनेके लिये उसकी सभामें गये॥ १९॥

अथागतं मुनिश्रेष्ठं दृष्ट्वा दैत्यो जलंधरः।
उत्थाय परया भक्त्या ददौ श्रेष्ठासनं वरम्॥ २०

स तं संपूज्य विधिवद्दानवेन्द्रोऽतिविस्मितः।
सुप्रहस्य तदा वाक्यं जगाद मुनिसत्तमम्॥ २१

तदनन्तर दैत्य जलन्धरने मुनिश्रेष्ठ नारदको आया हुआ देखकर बड़ी भक्तिके साथ उठकर उन्हें श्रेष्ठ तथा उत्तम आसन प्रदान किया। तत्पश्चात् विधिपूर्वक उनकी पूजाकर वह दानवेन्द्र बहुत आश्चर्यमें पड़ गया और हँस करके मुनिवरसे यह वचन कहने लगा— ॥ २०-२१॥

जलंधर उवाच

कुत आगम्यते ब्रह्मन् किं च दृष्टं त्वया क्वचित्।
यदर्थमिह आयातस्तदाज्ञापय मां मुने॥ २२

जलन्धर बोला—हे ब्रह्मन्! आपका आगमन कहाँसे हो रहा है, आपने कहींपर कुछ देखा है क्या! हे मुने! आप यहाँ जिसलिये आये हैं, उसे मुझको बताइये॥ २२॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य दैत्येन्द्रस्य महामुनिः।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा नारदो हि जलंधरम्॥ २३

सनत्कुमार बोले—उस दैत्येन्द्रका यह वचन सुनकर महामुनि नारदजी प्रसन्नचित्त होकर जलन्धरसे कहने लगे— ॥ २३॥

नारद उवाच

सर्वदानवदैत्येन्द्र जलंधर महामते।
धन्यस्त्वं सर्वलोकेश रत्नभोक्ता त्वमेव हि॥ २४

नारदजी बोले—सम्पूर्ण दैत्यों तथा दानवोंके अधिपति हे जलन्धर! तुम धन्य हो, हे सर्वलोकेश! तुम्हीं सारे रत्नोंका उपभोग करनेयोग्य हो॥ २४॥

मदागमनहेतुं वै शृणु दैत्येन्द्रसत्तम।
यदर्थमिह चायातस्त्वहं वक्ष्येऽखिलं हि तत्॥ २५

हे दैत्येन्द्रसत्तम! मेरे आनेका कारण सुनो, मैं जिस निमित्तसे यहाँ आया हूँ, मैं वह सब कह रहा हूँ॥ २५॥

गतः कैलासशिखरं दैत्येन्द्राहं यदृच्छया।
योजनायुतविस्तीर्णं कल्पद्रुममहावनम्॥ २६

कामधेनुशताकीर्णं चिंतामणिसुदीपितम्।
सर्वरुक्ममयं दिव्यं सर्वत्राद्भुतशोभितम्॥ २७

हे दैत्येन्द्र! मैं अपनी इच्छासे कैलासपर्वतपर गया था, जो दस हजार योजन विस्तारवाला, कल्पवृक्षके महान् वनसे युक्त, सैकड़ों कामधेनुओंसे समन्वित, चिन्तामणिसे प्रकाशित, सम्पूर्णरूपसे सुवर्णमय, दिव्य तथा सभी प्रकारकी अद्भुत वस्तुओंसे सुशोभित हो रहा है॥ २६-२७॥

तत्रोमया सहासीनं दृष्टवानस्मि शंकरम्।
सर्वाङ्गसुन्दरं गौरं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम्॥ २८

वहाँपर मैंने पार्वतीके साथ बैठे हुए गौरवर्ण, सर्वांगसुन्दर, त्रिनेत्र एवं चन्द्रमाको मस्तकपर धारण किये हुए भगवान् शंकरको देखा॥ २८॥

तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं वितर्को मेऽभवत्तदा।
क्वापीदृशी भवेद् वृद्धिस्त्रैलोक्ये वा न वेति च॥ २९

तावत्तवापि दैत्येन्द्र समृद्धिः संस्मृता मया।
तद्विलोकनकामोऽहं त्वत्सांनिध्यमिहागतः॥ ३०

महान् आश्चर्यसे परिपूर्ण उस कैलासको देखकर मैंने अपने मनमें विचार किया कि त्रिलोकीमें कहीं कोई ऐसी समृद्धि है अथवा नहीं। हे दैत्येन्द्र! उसी समय मुझे तुम्हारी समृद्धिका स्मरण हुआ और उसीको देखनेकी इच्छासे मैं तुम्हारे पास यहाँ आया हूँ॥ २९-३०॥

सनत्कुमार उवाच

इति नारदतः श्रुत्वा स दैत्येन्द्रो जलंधरः।
स्वसमृद्धिं समग्रां वै दर्शयामास सादरम्॥ ३१
दृष्ट्वा स नारदो ज्ञानी देवकार्यसुसाधकः।
प्रभुप्रेरणया प्राह दैत्येन्द्रं तं जलंधरम्॥ ३२

नारद उवाच

तवास्ति सुसमृद्धिर्हि वरवीराखिलाधुना।
त्रैलोक्यस्य पतिस्त्वं हि चित्रं किं चात्र संभवम्॥ ३३
मणयो रत्नपुंजाश्च गजाद्याश्च समृद्धयः।
ते गृहेऽद्य विभांतीह यानि रत्नानि तान्यपि॥ ३४
गजरत्नं त्वयानीतं शक्रस्यैरावतस्तथा।
अश्वरत्नं महावीर सूर्यस्योच्चैःश्रवा हयः॥ ३५
कल्पवृक्षस्त्वयानीतो निधयो धनदस्य च।
हंसयुक्तविमानं च त्वयानीतं हि वेधसः॥ ३६
इत्येवं वररत्नानि दिवि पृथ्व्यां रसातले।
यानि दैत्येन्द्र ते भांति गृहे तानि समन्ततः॥ ३७
त्वत्समृद्धिमिमां पश्यन्सम्पूर्णां विविधामहम्।
प्रसन्नोऽस्मि महावीर गजाश्वादिसुशोभिताम्॥ ३८
जायारत्नं महाश्रेष्ठं जलंधर न ते गृहे।
तदानेतुं विशेषेण स्त्रीरत्नं वै त्वमर्हसि॥ ३९
यस्य गेहे सुरत्नानि सर्वाणि हि जलंधर।
जायारत्नं न चेत्तानि न शोभंते वृथा ध्रुवम्॥ ४०

सनत्कुमार उवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा नारदस्य महात्मनः।
उवाच दैत्यराजो हि मदनाकुलमानसः॥ ४१

जलंधर उवाच

भो भो नारद देवर्षे नमस्तेऽस्तु महाप्रभो।
जायारत्नवरं कुत्र वर्तते तद्वदाधुना॥ ४२
ब्रह्मांडे यत्र कुत्रापि तद्रत्नं यदि वर्त्तते।
तदानेष्ये ततो ब्रह्मन्सत्यं सत्यं न संशयः॥ ४३

नारद उवाच

कैलासे ह्यतिरम्ये च सर्वर्द्धिसुसमाकुले।
योगिरूपधरः शंभुरस्ति तत्र दिगम्बरः॥ ४४
तस्य भार्या सुरम्या हि सर्वलक्षणलक्षिता।
सर्वांगसुन्दरीनाम्ना पार्वतीति मनोहरा॥ ४५

सनत्कुमार बोले—नारदजीसे ऐसा सुनकर उस दैत्यपति जलन्धरने बड़े आदरके साथ उन्हें अपनी सारी समृद्धि दिखायी। तब देवगणोंका कार्य सिद्ध करनेवाले वे ज्ञानी नारदजी उसे देखकर शंकरजीकी प्रेरणासे उस दैत्येन्द्र जलन्धरसे कहने लगे—॥ ३१-३२॥

नारदजी बोले—हे श्रेष्ठ वीर! तुम्हारे पास इस समय निःसन्देह सारी सम्पत्ति है, तुम त्रिलोकीके पति भी हो। अतः इसमें आश्चर्य क्या हो सकता है। मणि, रत्नोंकी राशियाँ, घोड़े, हाथी आदि समृद्धियाँ तथा जो अन्य रत्न हैं, वे सब तुम्हारे घरमें सुशोभित हो रहे हैं॥ ३३-३४॥

हे महावीर! तुमने इन्द्रके हाथियोंमें रत्नभूत ऐरावतको ले लिया है तथा सूर्यका अश्वरत्न उच्चैःश्रवा घोड़ा भी ले लिया है। तुम कल्पवृक्ष भी ले आये हो तथा कुबेरकी सारी निधियाँ भी तुम्हारे पास हैं। तुम ब्रह्माजीका हंसयुक्त विमान भी ले आये हो। इस प्रकार हे दैत्येन्द्र! पृथ्वी, पाताल तथा स्वर्गलोकमें जो भी उत्तम रत्न हैं, वे सब तुम्हारे घरमें सुशोभित हो रहे हैं॥ ३५—३७॥

हे महावीर! गज, अश्वादिसे सुशोभित तुम्हारी इस सम्पूर्ण समृद्धिको देखता हुआ मैं प्रसन्न हूँ॥ ३८॥

किंतु हे जलन्धर! तुम्हारे घरमें सर्वश्रेष्ठ स्त्रीरत्न नहीं है, इसलिये तुम विशेषरूपसे स्त्रीरत्नको लानेका प्रयत्न करो। हे जलन्धर! जिसके घरमें सभी सुन्दर रत्न हों, किंतु यदि स्त्रीरत्न न हो, तो वे सब शोभित नहीं होते हैं और निश्चय ही वे सभी रत्न व्यर्थ हो जाते हैं॥ ३९-४०॥

सनत्कुमार बोले—महात्मा नारदकी इस बातको सुनकर दैत्यराज कामसे व्याकुलचित्त होकर कहने लगा—॥ ४१॥

जलन्धर बोला—हे देवर्षे! हे नारद! आपको नमस्कार है। हे महाप्रभो! इस समय वह श्रेष्ठ स्त्रीरत्न कहाँ है? मुझे बताइये। हे ब्रह्मन्! इस ब्रह्माण्डमें जहाँ कहीं भी वह स्त्रीरत्न है, तो मैं उसे वहाँसे लाऊँगा, यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं है॥ ४२-४३॥

नारदजी बोले—अत्यन्त मनोहर सर्वसमृद्धिसम्पन्न कैलास पर्वतपर योगीका रूप धारण किये हुए दिगम्बर शम्भु रहते हैं। सुरम्य, सभी लक्षणोंसे सम्पन्न, सर्वांगसुन्दरी तथा मनोहर पार्वती नामक उनकी भार्या है॥ ४४-४५॥

तदीदृशं रूपमनन्यसंगतं
दृष्टं न कुत्रापि कुतूहलाढ्यम्।
अत्यद्भुतं मोहनकृत्सुयोगिनां
सुदर्शनीयं परमर्द्धिकारि॥ ४६

हाव-भावसे पूर्ण ऐसा मनोहर रूप अन्यत्र कहीं भी देखनेको नहीं मिलता। वह अत्यन्त अद्भुत रूप परम योगियोंको भी मोहित करनेवाला, दर्शनके योग्य और सम्पूर्ण समृद्धियोंको प्रदान करनेवाला है॥ ४६॥

स्वचित्ते कल्पयाम्यद्य शिवादन्यः समृद्धिमान्।
जायारत्नान्विताद्वीर त्रिलोक्यां न जलंधर॥ ४७

हे वीर! हे जलन्धर! मैं अपने मनमें अनुमान करता हूँ कि स्त्रीरत्नसे युक्त शिवजीसे बढ़कर अन्य कोई भी इस समय तीनों लोकोंमें समृद्धिशाली नहीं है॥ ४७॥

यस्या लावण्यजलधौ निमग्नश्चतुराननः।
स्वधैर्य्यं मुमुचे पूर्वं तया कान्योपमीयते॥ ४८

गतरागोऽपि हि यया मदनारिः स्वलीलया।
निजतंत्रोऽपि हि यतः स स्वात्मवशगः कृतः॥ ४९

यथा स्त्रीरत्नसंभोक्तुः समृद्धिस्तस्य साभवत्।
तथा न तव दैत्येन्द्र सर्वरत्नाधिपस्य च॥ ५०

पूर्वकालमें जिसके लावण्यसमुद्रमें डूबकर ब्रह्माजीने अपना धैर्य खो दिया था, उससे किसी दूसरी स्त्रीकी उपमा कैसे की जा सकती है। जिसने अपनी लीलासे कामके शत्रु, रागरहित तथा स्वतन्त्र शंकरको भी अपने वशमें कर लिया है। हे दैत्येन्द्र! उस स्त्रीरत्नका सेवन करनेवाले शिवकी जैसी समृद्धि है, वैसी समृद्धि सम्पूर्ण रत्नोंके अधिपति होनेपर भी तुम्हारे पास नहीं है॥ ४८—५०॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा स तु देवर्षिर्नारदो लोकविश्रुतः।
ययौ विहायसा देवोपकारकरणोद्यतः॥ ५१

सनत्कुमार बोले—ऐसा कहकर देवताओंका उपकार करनेके लिये उद्यत लोकविख्यात वे देवर्षि नारद आकाशमार्गसे चले गये॥ ५१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलंधरवधोपाख्याने देवर्षिजलंधरसंवादो नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरवधोपाख्यानमें देवर्षि-जलन्धरसंवादवर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

पार्वतीको प्राप्त करनेके लिये जलन्धरका शंकरके पास दूतप्रेषण, उसके वचनसे उत्पन्न क्रोधसे शम्भुके भ्रूमध्यसे एक भयंकर पुरुषकी उत्पत्ति, उससे भयभीत जलन्धरके दूतका पलायन, उस पुरुषका कीर्तिमुख नामसे शिवगणोंमें प्रतिष्ठित होना तथा शिवद्वारपर स्थित रहना

व्यास उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ नारदे हि गते दिवि।
दैत्यराट् किमकार्षीत्स तन्मे वद सुविस्तरात्॥ १

व्यासजी बोले—हे सर्वज्ञ सनत्कुमार! देवर्षि नारदके स्वर्गलोक चले जानेपर उस दैत्यराजने क्या किया? उसे विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये॥ १॥

सनत्कुमार उवाच

तमामन्त्र्य गते दैत्यं नारदे दिवि दैत्यराट्।
तद्रूपश्रवणादासीदनंगज्वरपीडितः॥ २

सनत्कुमार बोले—उस दैत्यसे कहकर नारदजीके स्वर्गलोक चले जानेपर पार्वतीके रूपके श्रवणसे वह दैत्यराज जलन्धर कामज्वरसे पीड़ित हो गया॥ २॥

अथो जलंधरो दैत्यः कालाधीनः प्रनष्टधीः।
दूतमाह्वाययामास सैंहिकेयं विमोहितः॥ ३

उसके बाद कालके अधीन होनेसे उसकी बुद्धि नष्ट हो गयी और मोहको प्राप्त हो उसने सैंहिकेय नामक दूतको बुलाया॥ ३॥

आगतं तं समालोक्य कामाक्रांतमनाः स हि।
सुसंबोध्य समाचष्ट सिंधुपुत्रो जलंधरः॥ ४

उसे आया हुआ देखकर कामसे आक्रान्त मनवाला वह सागरपुत्र जलन्धर उसे समझाकर कहने लगा— ॥ ४ ॥

जलंधर उवाच

भो भो दूतवरश्रेष्ठ सर्वकार्यप्रसाधक।
सैंहिकेय महाप्राज्ञ कैलासं गच्छ पर्वतम्॥ ५
तत्रास्ति योगी शंभ्वाख्यस्तपस्वी च जटाधरः।
भस्मभूषितसर्वाङ्गो विरक्तो विजितेन्द्रियः॥ ६

जलन्धर बोला—हे दूतोंमें श्रेष्ठ! हे सभी कार्य सिद्ध करनेवाले! हे महाप्राज्ञ सिंहिकापुत्र! तुम कैलास-पर्वतपर जाओ, वहाँपर जटाधारण किये हुए, सर्वांगमें भस्म लपेटे हुए, परम विरक्त, तपस्वी एवं जितेन्द्रिय शिव नामक योगी रहता है॥ ५-६ ॥

तत्र गत्वेति वक्तव्यं योगिनं दूत शंकरम्।
जटाधरं विरक्तं तं निर्भयेन हृदा त्वया॥ ७

हे योगिंस्ते दयासिन्धो जायारत्नेन किं भवेत्।
भूतप्रेतपिशाचादिसेवितेन वनौकसा॥ ८

मन्नाथे भुवने योगिन्नोचिता गतिरीदृशी।
जायारत्नमतस्त्वं मे देहि रत्नभुजे निजम्॥ ९

हे दूत! उस जटाधारी परम विरक्त योगी शंकरके पास जाकर भयरहित मनसे तुम [मेरा सन्देश] इस प्रकार कहना—हे योगिन्! हे दयासिन्धो! वनमें निवास करनेवाले और भूत-प्रेत-पिशाचादिसे सेवित आपको स्त्रीरत्नसे क्या प्रयोजन है? हे योगिन्! जब समस्त भुवनाधिपति मुझ-जैसा स्वामी विद्यमान है, तब तुम्हें ऐसा करना उचित नहीं है, अतः तुम अपना स्त्रीरत्न सभी रत्नोंका सेवन करनेवाले मुझे दे दो॥ ७—९ ॥

यानि यानि सुरत्नानि त्रैलोक्ये तानि सन्ति मे।
मदधीनं जगत्सर्वं विद्धि त्वं सचराचरम्॥ १०

तुम इस बातको जान लो कि सारा चराचर जगत् मेरे अधीन है और त्रिलोकीमें जो-जो उत्तम रत्न हैं, वे सब मेरे अधीन हैं॥ १० ॥

इन्द्रस्य गजरत्नं चोच्चैःश्रवोरत्नमुत्तमम्।
बलाद्गृहीतं सहसा पारिजातस्तरुस्तथा॥ ११

मैंने इन्द्रका ऐरावत हाथी, उच्चैःश्रवा घोड़ा एवं पारिजात वृक्ष बलपूर्वक सहसा छीन लिया है॥ ११ ॥

विमानं हंससंयुक्तमंगणे मम तिष्ठति।
रत्नभूतं महादिव्यमुत्तमं वेधसोद्भुतम्॥ १२

ब्रह्माका हंसयुक्त विमान मेरे आँगनमें विद्यमान है, जो रत्नस्वरूप महादिव्य एवं अद्भुत है॥ १२ ॥

महापद्मादिकं दिव्यं निधिरत्नं स्वदस्य च।
छत्रं मे वारुणं गेहे कांचनस्त्रावि तिष्ठति॥ १३

किञ्जल्किनी महामाला सर्वदाऽम्लानपंकजा।
मत्पितुः सा ममैवास्ति पाशश्च कपतेस्तथा॥ १४

मृत्योरुत्क्रांतिदा शक्तिर्मया नीता बलाद्वरा।
ददौ मह्यं शुचिर्दिव्ये शुचिशौचे च वाससी॥ १५

एवं योगीन्द्र रत्नानि सर्वाणि विलसंति मे।
अतस्त्वमपि मे देहि स्वस्त्रीरत्नं जटाधर॥ १६

कुबेरके महापद्म आदि दिव्य निधिरत्न तथा सुवर्णकी वर्षा करनेवाला वरुणका छत्र मेरे घरमें है। सर्वदा विकसित कमलोंवाली किंजल्किनी नामक मेरे पिताकी माला तो मेरी ही है और जलाधिपति वरुणका पाश भी मेरे यहाँ ही है। मृत्युकी सर्वश्रेष्ठ शक्ति, जिसका नाम उत्क्रान्तिदा है, उसे भी मैंने मृत्युसे बलपूर्वक छीन लिया है। अग्निदेवने मुझे दिव्य परम पवित्र तथा कभी भी मलिन न होनेवाले दो वस्त्र दिये हैं। इस प्रकार हे योगीन्द्र! सभी रत्न मेरे पास शोभित हो रहे हैं। अतः हे जटाधर! तुम भी मुझे अपना स्त्रीरत्न प्रदान करो॥ १३—१६ ॥

सनत्कुमार उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य नन्दिना स प्रवेशितः।
जगामोग्रसभां राहुर्विस्मयोद्धुतलोचनः॥ १७
तत्र गत्वा शिवं साक्षाद्देवदेवं महाप्रभुम्।
स्वतेजोध्वस्ततमसं भस्मलेपविराजितम्॥ १८
महाराजोपचारेण विलसन्तं महाद्भुतम्।
सर्वाङ्गसुन्दरं दिव्यभूषणैर्भूषितं हरम्॥ १९
प्रणनाम च तं गर्वात्तत्तेजः क्रांतविग्रहः।
निकटं गतवान् शंभोः स दूतो राहुसंज्ञकः॥ २०

अथो तदग्र आसीनो वक्तुकामो हि सैंहिकः।
त्र्यंबकं स तदा संज्ञाप्रेरितो वाक्यमब्रवीत्॥ २१

राहुरुवाच

दैत्यपन्नगसेव्यस्य त्रैलोक्याधिपतेः सदा।
दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः॥ २२
जलंधरोऽब्धितनयः सर्वदैत्यजनेश्वरः।
त्रैलोक्यस्येश्वरस्सोऽथाभवत्सर्वाधिनायकः ॥ २३

स दैत्यराजो बलवान्देवानामन्तकोपमः।
योगिनं त्वां समुद्दिश्य स यदाह शृणुष्व तत्॥ २४

महादिव्यप्रभावस्य तस्य दैत्यपतेः प्रभोः।
सर्वरत्नेश्वरस्य त्वमाज्ञां शृणु वृषध्वज॥ २५

श्मशानवासिनो नित्यमस्थिमालाधरस्य च।
दिगंबरस्य ते भार्या कथं हैमवती शुभा॥ २६

अहं रत्नाधिनाथोऽस्मि सा च स्त्रीरत्नसंज्ञिता।
तस्मान्ममैव सा योग्या नैव भिक्षाशिनस्तव॥ २७

मम वश्यास्त्रयो लोका भुंजेऽहं मखभागकान्।
यानि संति त्रिलोकेऽस्मिन् रत्नानि मम सद्मनि॥ २८

वयं रत्नभुजस्त्वं तु योगी खलु दिगम्बरः।
स्वस्त्रीरत्नं देहि मह्यं राज्ञः सुखकराः प्रजाः॥ २९

सनत्कुमार बोले—उसका यह वचन सुनकर नन्दीने उसे भीतर प्रवेश कराया, तब अद्भुत नेत्रोंवाला वह (सिंहिकापुत्र) राहु विस्मित होकर शिवजीकी सभाकी ओर चला। उसने उस सभामें जाकर अपने तेजसे समस्त अन्धकारको दूर करनेवाले, भस्मका लेप लगाये हुए, महाराजोपचारसे सुशोभित होते हुए, अत्यन्त अद्भुत, दिव्य भूषणोंसे भूषित तथा सर्वांगसुन्दर साक्षात् देवदेव महाप्रभु शिवजीको देखा, उनके तेजसे पराभूत शरीरवाले राहु नामक उस दूतने गर्वसे शिवजीको प्रणाम किया और उनके समीप गया॥ १७—२० ॥

इसके बाद वह सिंहिकापुत्र शिवके आगे बैठकर उनसे कुछ कहनेकी इच्छा करने लगा, तब उनका संकेत पाकर उसने यह वचन कहा— ॥ २१ ॥

राहु बोला—दैत्य एवं सर्पोंसे सदा सेवित तथा तीनों लोकोंके अधिपति जलन्धरका मैं दूत हूँ और उनके द्वारा भेजे जानेपर आपके पास आया हूँ। वे जलन्धर समुद्रके पुत्र हैं, सभी दैत्योंके स्वामी हैं और अब वे त्रिलोकीके अधिपति हैं, सभीके अधिनायक हैं॥ २२-२३ ॥

वे बलवान् दैत्यराज देवगणोंके लिये महाकालके समान हैं। आप योगीको उद्देश्य करके उन्होंने जो कहा है, उसे श्रवण कीजिये॥ २४॥

हे वृषध्वज! महादिव्य प्रभाववाले तथा सभी रत्नोंके स्वामी उन प्रभु दैत्यपतिकी आज्ञाको आप सुनिये॥ २५ ॥

श्मशानमें निवास करनेवाले, सदा अस्थियोंकी माला धारण करनेवाले तथा दिगम्बर रहनेवाले तुम्हारी भार्या वह शुभ हिमालयपुत्री [पार्वती] कैसे हो सकती है?॥ २६ ॥

वह स्त्रीरत्न है और मैं समस्त रत्नोंका अधिपति हूँ, अतः वह मेरे ही योग्य है, भिक्षा माँगकर खानेवाले तुम्हारे योग्य वह नहीं है। तीनों लोक मेरे वशमें हैं, मैं ही यज्ञभागोंको ग्रहण करता हूँ। इस त्रिलोकीमें जो भी रत्न हैं, वे सभी मेरे घरमें हैं। रत्नोंका उपभोग करनेवाले हम हैं, तुम तो दिगम्बर योगी हो, तुम अपना स्त्रीरत्न मुझे प्रदान करो; क्योंकि प्रजाएँ राजाको सुख देनेवाली होती हैं॥ २७—२९ ॥

सनत्कुमार उवाच

वदत्येवं तथा राहौ भ्रूमध्याच्छूलपाणिनः।
अभवत्पुरुषो रौद्रस्तीव्राशनिसमस्वनः॥ ३०

सिंहास्यप्रचलज्जिह्वः सज्ज्वालनयनो महान्।
ऊर्ध्वकेशः शुष्कतनुर्नृसिंह इव चापरः॥ ३१

सनत्कुमार बोले—अभी राहु अपनी बात कह ही रहा था कि शंकरके भ्रू-मध्यसे वज्रके समान शब्द करता हुआ एक महाभयंकर पुरुष प्रकट हो गया। सिंहके समान उसका मुख था, उसकी जीभ लपलपा रही थी, नेत्रोंसे अग्नि निकल रही थी; ऊर्ध्वकेश तथा सूखे शरीरवाला वह पुरुष दूसरे सिंहके समान जान पड़ता था॥ ३०-३१॥

महातनुर्महाबाहुस्तालजंघो भयंकरः।
अभिदुद्राव वेगेन राहुं स पुरुषो द्रुतम्॥ ३२

विशाल शरीर तथा भुजाओंवाला, ताड़ वृक्षके समान जाँघवाला तथा भयंकर वह पुरुष [प्रकट होते ही] बड़े वेगसे शीघ्रताके साथ राहुपर झपट पड़ा॥ ३२॥

स तं खादितुमायान्तं दृष्ट्वा राहुर्भयातुरः।
अधावदतिवेगेन बहिः स च दधार तम्॥ ३३

तब खानेके लिये उसे आता हुआ देखकर भयभीत वह राहु बड़े वेगसे भागने लगा, किंतु सभाके बाहर ही उस पुरुषने उसे पकड़ लिया॥ ३३॥

राहुरुवाच

देवदेव महेशान पाहि मां शरणागतम्।
सुराऽसुरैस्सदा वन्द्यः परमैश्वर्यवान् प्रभुः॥ ३४

राहु बोला—हे देवदेव! हे महेशान! मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये। आप देवताओं तथा असुरोंसे सदा वन्दनीय, महान् ऐश्वर्य तथा प्रभुतासे सम्पन्न हैं॥ ३४॥

ब्राह्मणं मां महादेव खादितुं समुपागतः।
पुरुषोऽयं तवेशान सेवकोऽतिभयंकरः॥ ३५

हे महादेव! हे ईशान! आपका यह महाभयंकर सेवक पुरुष मुझ ब्राह्मणको खानेके लिये आया हुआ है॥ ३५॥

एतस्माद्रक्ष देवेश शरणागतवत्सलः।
न खादेत यथायं मां नमस्तेऽस्तु मुहुर्मुहुः॥ ३६

हे देवेश! हे शरणागतवत्सल! इस पुरुषसे मेरी रक्षा कीजिये, जिससे यह मुझे खा न सके, आपको बार-बार नमस्कार है॥ ३६॥

सनत्कुमार उवाच

महादेवो वचः श्रुत्वा ब्राह्मणस्य तदा मुने।
अब्रवीत्स्वगणं तं वै दीनानाथप्रियः प्रभुः॥ ३७

सनत्कुमार बोले—हे मुने! तब ब्राह्मणकी बात सुनकर दीनों तथा अनाथोंसे प्रेम करनेवाले प्रभु महादेवने अपने उस गणसे कहा—॥ ३७॥

महादेव उवाच

प्रभुं च ब्राह्मणं दूतं राह्वाख्यं शरणागतम्।
शरण्या रक्षणीया हि न दण्ड्या गणसत्तम॥ ३८

महादेवजी बोले—हे गणसत्तम! शरणमें आये हुए राहु नामक ब्राह्मण दूतको छोड़ दो; क्योंकि ऐसे लोग शरणके योग्य, रक्षाके पात्र होते हैं, दण्डके योग्य नहीं होते हैं॥ ३८॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्तौ गिरिजेशेन सगणः करुणात्मना।
राहुं तत्याज सहसा ब्राह्मणेति श्रुताक्षरः॥ ३९

सनत्कुमार बोले—करुणामय हृदयवाले गिरिजापतिके ऐसा कहनेपर उस गणने 'ब्राह्मण' यह शब्द सुनते ही राहुको सहसा छोड़ दिया॥ ३९॥

राहुं त्यक्त्वाम्बरे सोऽथ पुरुषो दीनया गिरा।
शिवोपकंठमागत्य महादेवं व्यजिज्ञपत्॥ ४०

तब राहुको आकाशमें छोड़कर वह पुरुष महादेवजीके पास आकर दीनवाणीमें कहने लगा—॥ ४०॥

पुरुष उवाच

देवदेव महादेव करुणाकर शंकर।
त्याजितं मम भक्ष्यं ते शरणागतवत्सल॥ ४१

क्षुधा मां बाधते स्वामिन्क्षुत्क्षामश्चास्मि सर्वथा।
किं भक्ष्यं मम देवेश तदाज्ञापय मां प्रभो॥ ४२

पुरुष बोला—हे देवदेव! महादेव! हे करुणाकर! हे शंकर! हे शरणागतवत्सल! आपने मेरे भक्ष्यको छुड़ा दिया। हे स्वामिन्! इस समय मुझको भूख कष्ट दे रही है, मैं भूखसे अत्यन्त दुर्बल हो गया हूँ। हे देवेश! हे प्रभो! मेरा क्या भक्ष्य है, उसे मुझे बताइये॥ ४१-४२॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य पुरुषस्य महाप्रभुः।
प्रत्युवाचाद्भुतोतिः स कौतुकी स्वहितङ्करः॥ ४३

सनत्कुमार बोले—उस पुरुषका यह वचन सुनकर अद्भुत लीला करनेवाले तथा भक्तोंका कल्याण करनेवाले कौतुकी महाप्रभुने कहा—॥ ४३॥

महेश्वर उवाच

बुभुक्षा यदि तेऽतीव क्षुधा त्वां बाधते यदि।
संभक्षयात्मनश्शीघ्रं मांसं त्वं हस्तपादयोः॥ ४४

महेश्वर बोले—यदि तुम्हें बहुत भूख लगी है और तुम भूखसे व्याकुल हो रहे हो, तो तुम शीघ्र अपने हाथों एवं पैरोंके मांसका भक्षण करो॥ ४४॥

सनत्कुमार उवाच

स शिवेनैवमाज्ञप्तश्चखाद पुरुषः स्वकम्।
हस्तपादोद्भवं मांसं शिरः शेषोऽभवद्यथा॥ ४५

दृष्ट्वा शिरोऽवशेषं तु सुप्रसन्नः सदाशिवः।
पुरुषं भीमकर्माणं तमुवाच सविस्मयः॥ ४६

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार शिवजीके द्वारा आदिष्ट वह पुरुष अपने हाथों तथा पैरोंका मांस भक्षण करने लगा। जब केवल सिरमात्र शेष रह गया, तब सिरमात्र शेष देखकर वे सदाशिव उसपर बहुत प्रसन्न होकर आश्चर्यचकित हो उस भयंकर कर्मवाले पुरुषसे कहने लगे—॥ ४५-४६॥

शिव उवाच

हे महागण धन्यस्त्वं मदाज्ञाप्रतिपालकः।
संतुष्टश्चास्मि तेऽतीव कर्मणानेन सत्तम॥ ४७

त्वं कीर्तिमुखसंज्ञो हि भव मद्द्वारकः सदा।
महागणो महावीरः सर्वदुष्टभयंकरः॥ ४८

शिवजी बोले—हे महागण! मेरी आज्ञाका पालन करनेवाले तुम धन्य हो, हे सत्तम! मैं तुम्हारे इस कर्मसे अत्यन्त ही प्रसन्न हूँ। आजसे तुम्हारा नाम कीर्तिमुख होगा, तुम महावीर एवं सभी दुष्टोंके लिये भयंकर महागण होकर मेरे द्वारपाल बनो॥ ४७-४८॥

मत्प्रियस्त्वं मदर्चायां सदा पूज्यो हि मज्जनैः।
त्वदर्चां ये न कुर्वन्ति नैव ते मत्प्रियंकराः॥ ४९

तुम मेरे अत्यन्त प्रिय हो और मेरे भक्तजन मेरी अर्चनाके समय सदा तुम्हारी भी पूजा करेंगे, जो लोग तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे, वे मुझे प्रिय नहीं होंगे॥ ४९॥

सनत्कुमार उवाच

इति शंभोर्वरं प्राप्य पुरुषः प्रजहर्ष सः।
तदाप्रभृति देवेशद्वारे कीर्तिमुखः स्थितः॥ ५०

सनत्कुमार बोले—शिवजीसे इस प्रकारका वरदान प्राप्तकर वह पुरुष अत्यन्त प्रसन्न हो गया और उसी समयसे वह कीर्तिमुख शिवजीके द्वारपर रहने लगा॥ ५०॥

पूजनीयो विशेषेण स गणश्शिवपूजने।
नार्चयन्तीह ये पूर्वं तेषामर्चा वृथा भवेत्॥ ५१

अतः शिवपूजामें उस गणकी विशेषरूपसे पूजा करनी चाहिये, जो पहले उसकी पूजा नहीं करते हैं, उनकी पूजा व्यर्थ हो जाती है॥ ५१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलंधरवधोपाख्याने दूतसंवादो नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरवधोपाख्यानमें दूतसंवादवर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

अथ विंशोऽध्यायः

दूतके द्वारा कैलासका वृत्तान्त जानकर जलन्धरका अपनी सेनाको युद्धका आदेश देना, भयभीत देवोंका शिवकी शरणमें जाना, शिवगणों तथा जलन्धरकी सेनाका युद्ध, शिवद्वारा कृत्याको उत्पन्न करना, कृत्याद्वारा शुक्राचार्यको छिपा लेना

व्यास उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ कथा ते श्राविताद्भुता।
महाप्रभोः शंकरस्य यत्र लीला च पावनी॥ १

इदानीं ब्रूहि सुप्रीत्या कृपां कृत्वा ममोपरि।
राहुर्मुक्तः कुत्र गतः पुरुषेण महामुने॥ २

व्यासजी बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! आपने अद्भुत कथा सुनायी, जिसमें महाप्रभु शंकरकी पवित्र लीला है। हे महामुने! अब मेरे ऊपर कृपा करके प्रेमपूर्वक यह बताइये कि [श्रीशंकरजीके भ्रूमध्यसे प्रकट] उस पुरुषके द्वारा मुक्त किया गया राहु कहाँ गया?॥ १-२॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य व्यासस्यामितमेधसः।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा ब्रह्मपुत्रो महामुनिः॥ ३

सूतजी बोले—अमित बुद्धिवाले व्यासजीका वचन सुनकर ब्रह्माके पुत्र महामुनि सनत्कुमार प्रसन्नचित्त होकर कहने लगे—॥ ३॥

सनत्कुमार उवाच

राहुर्विमुक्तो यस्तेन सोऽपि तद्वर्वरस्थले।
अतः स वर्वरो भूत इति भूमौ प्रथां गतः॥ ४

सनत्कुमार बोले—वह राहु उस पुरुषके द्वारा वर्वर स्थानपर मुक्त कर दिया गया, इसलिये वह वर्वर नामसे पृथ्वीपर विख्यात हुआ॥ ४॥

ततः स मन्यमानः स्वं पुनर्जनिमथानतः।
गतगर्वो जगामाथ जलंधरपुरं शनैः॥ ५

तब [उस पुरुषके द्वारा इस प्रकार छुटकारा प्राप्त करनेपर] वह अपना नया जन्म मानता हुआ फिर गर्वरहित हो शनैः-शनैः जलन्धरके नगरमें पहुँचा॥ ५॥

जलंधराय सोऽभ्येत्य सर्वमीशविचेष्टितम्।
कथयामास तद्व्यासाद्व्यास दैत्येश्वराय वै॥ ६

हे व्यास! उसने वहाँ जाकर दैत्येन्द्र जलन्धरसे शंकरकी सारी चेष्टाका वर्णन विस्तारपूर्वक किया॥ ६॥

जलंधरस्तु तच्छ्रुत्वा कोपाकुलितविग्रहः।
बभूव बलवान्सिन्धुपुत्रो दैत्येन्द्रसत्तमः॥ ७

उसे सुनकर दैत्यराजोंमें श्रेष्ठ बलवान् सिन्धुपुत्र जलन्धर क्रोधसे व्याकुल हो उठा॥ ७॥

ततः कोपपराधीनमानसो दैत्यसत्तमः।
उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह॥ ८

तब क्रोधके वशीभूत चित्तवाले उस दैत्येन्द्रने समस्त दैत्योंको युद्धके लिये उद्यत होनेका आदेश दिया॥ ८॥

जलंधर उवाच

निर्गच्छन्त्वखिला दैत्याः कालनेमिमुखाः खलु।
तथा शुंभनिशुंभाद्या वीराः स्वबलसंयुताः॥ ९

जलन्धर बोला—कालनेमि आदि एवं शुम्भ-निशुम्भ आदि सभी वीर दैत्य अपनी-अपनी सेनाओंसे युक्त होकर [युद्धके लिये] निकलें॥ ९॥

कोटिर्वीरकुलोत्पन्नाः कंबुवंश्याश्च दौर्हृदाः।
कालकाः कालकेयाश्च मौर्या धौम्रास्तथैव च॥ १०

वीरकुलमें उत्पन्न एक करोड़ कम्बुवंशीय, दौर्हृद, कालक, कालकेय, मौर्य तथा धौम्रगण भी शीघ्र चलें॥ १०॥

इत्याज्ञाप्यासुरपतिः सिंधुपुत्रः प्रतापवान्।
निर्जगामाशु दैत्यानां कोटिभिः परिवारितः॥ ११

महाप्रतापी सिन्धुपुत्र वह दैत्यपति इस प्रकार आज्ञा देकर करोड़ों दैत्योंको साथ लेकर शीघ्र ही चल पड़ा॥ ११॥

ततस्तस्याग्रतः शुक्रो राहुश्छिन्नशिरोऽभवत्।
मुकुटश्चापतद्भूमौ वेगात्प्रस्खलितस्तदा॥ १२
व्यराजत नभः पूर्णं प्रावृषीव यथा घनैः।
जाता अशकुना भूरि महानिद्राविसूचकाः॥ १३

शुक्र एवं कटे हुए सिरवाला राहु उसके आगे-आगे चलने लगे। उसी समय जलन्धरका मुकुट वेगसे खिसककर पृथ्वीपर गिर पड़ा और समस्त आकाशमण्डल वर्षाकालके समान मेघोंसे आच्छन्न हो गया तथा मृत्युसूचक बहुत-से भयानक अपशकुन होने लगे॥ १२-१३॥

तस्योद्योगं तथा दृष्ट्वा गीर्वाणास्ते सवासवाः।
अलक्षितास्तदा जग्मुः कैलासं शंकरालयम्॥ १४
तत्र गत्वा शिवं दृष्ट्वा सुप्रणम्य सवासवाः।
देवाः सर्वे नतस्कंधाः करौ बद्ध्वा च तुष्टुवुः॥ १५

तब उसकी इस प्रकारकी युद्धकी तैयारी देखकर इन्द्रसहित वे देवता छिपकर शिवजीके निवासस्थान कैलास पर्वतपर गये। वहाँ जाकर इन्द्रसहित सभी देवता शिवजीको देखकर उन्हें प्रणामकर कंधा झुकाये हुए हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे—॥ १४-१५॥

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव करुणाकर शंकर।
नमस्तेऽस्तु महेशान पाहि नः शरणागतान्॥ १६
विह्वलाः वयमत्युग्रं जलंधरकृतात्प्रभो।
उपद्रवात्सदेवेन्द्राः स्थानभ्रष्टाः क्षितिस्थिताः॥ १७

देवता बोले—हे देवदेव! महादेव! हे करुणाकर! हे शंकर! आपको प्रणाम है। हे महेशान! हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये। हे प्रभो! इन्द्रसहित हमलोग जलन्धरद्वारा किये गये उपद्रवसे अत्यन्त व्याकुल हो गये हैं और अपना-अपना स्थान छोड़कर पृथ्वीपर स्थित हैं॥ १६-१७॥

न जानासि कथं स्वामिन्देवापत्तिमिमां प्रभो।
तस्मान्नो रक्षणार्थाय जहि सागरनन्दनम्॥ १८

हे प्रभो! हे स्वामिन्! आप देवताओंकी इस विपत्तिको कैसे नहीं जानते? अतः आप हमलोगोंकी रक्षाके लिये जलन्धरका वध कीजिये॥ १८॥

अस्माकं रक्षणार्थाय यत्पूर्वं गरुडध्वजः।
नियोजितस्त्वया नाथ न क्षमः सोऽद्य रक्षितुम्॥ १९
तदधीनो गृहे तस्य रमया सह तिष्ठति।
वयं च तत्र तिष्ठामस्तदाज्ञावशगाः सुराः॥ २०

हे नाथ! आपने जो पूर्वसमयमें हमलोगोंकी रक्षाके लिये विष्णुजीको नियुक्त किया था, इस समय वे भी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हैं। अब वे भी उसके अधीन होकर लक्ष्मीके साथ उसके घरमें रहते हैं और हम देवगण भी उसके वशवर्ती होकर वहीं रहते हैं॥ १९-२०॥

अलक्षिता वयं चात्रागताः शंभो त्वदंतिकम्।
स आयाति त्वया कर्त्तुं रणं सिंधुसुतो बली॥ २१
अतः स्वामिन् रणे त्वं तमविलंबं जलंधरम्।
हंतुमर्हसि सर्वज्ञ पाहि नः शरणागतान्॥ २२

हे शम्भो! हमलोग छिपकर आपकी शरणमें आये हैं, इस समय वह बलवान् जलन्धर आपसे युद्ध करनेके लिये आ रहा है। अतः हे स्वामिन्! हे सर्वज्ञ! आप शीघ्र ही युद्धमें उस जलन्धरका वध कीजिये और हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये॥ २१-२२॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा ते सुराः सर्वे प्रभुं नत्वा सवासवाः।
पादौ निरीक्ष्य संतस्थुर्महेशस्य विनम्रकाः॥ २३

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] ऐसा कहकर वे सभी देवता प्रभुको प्रणामकर उन महेश्वरके चरण देखते हुए विनम्र हो वहीं स्थित हो गये॥ २३॥

इति देववचः श्रुत्वा प्रहस्य वृषभध्वजः।
द्रुतं विष्णुं समाहूय वचनं चेदमब्रवीत्॥ २४

तब देवगणोंका यह वचन सुनकर शिवजी हँसकर विष्णुको शीघ्रतासे बुलाकर यह वचन कहने लगे—॥ २४॥

ईश्वर उवाच

हृषीकेश महाविष्णो देवाश्चात्र समागताः।
जलंधरकृतापीडाः शरणं मेऽतिविह्वलाः॥ २५

जलंधरः कथं विष्णो संगरे न हतस्त्वया।
तद् गृहं चापि यातोऽसि त्यक्त्वा वैकुण्ठमात्मनः॥ २६

मया नियोजितस्त्वं हि साधुसंरक्षणाय च।
निग्रहाय खलानां च स्वतंत्रेण विहारिणा॥ २७

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य महेशस्य वचनं गरुडध्वजः।
प्रत्युवाच विनीतात्मा नतकः साञ्जलिर्हरिः॥ २८

विष्णुरुवाच

तवांशसंभवत्वाच्च भ्रातृत्वाच्च तथा श्रियः।
मया न निहतः संख्ये त्वमेनं जहि दानवम्॥ २९

महाबलो महावीरोऽजेयस्सर्वदिवौकसाम्।
अन्येषां चापि देवेश सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम्॥ ३०

मया कृतो रणस्तेन चिरं देवान्वितेन वै।
मदुपायो न प्रवृत्तस्तस्मिन्दानवपुंगवे॥ ३१

तत्पराक्रमतस्तुष्टो वरं ब्रूहीत्यहं खलु।
इति मद्वचनं श्रुत्वा स वव्रे वरमुत्तमम्॥ ३२

मद्भगिन्या मया सार्द्धं मद्गेहे ससुरो वस।
मदधीनो महाविष्णो इत्यहं तद्गृहं गतः॥ ३३

सनत्कुमार उवाच

इति विष्णोर्वचः श्रुत्वा शंकरः स महेश्वरः।
विहस्योवाच सुप्रीतः सदयो भक्तवत्सलः॥ ३४

महेश्वर उवाच

हे विष्णो सुरवर्य त्वं शृणु मद्वाक्यमादरात्।
जलंधरं महादैत्यं हनिष्यामि न संशयः॥ ३५

स्वस्थानं गच्छ निर्भीतो देवा गच्छंत्वपि ध्रुवम्।
निर्भया वीतसंदेहा हतं मत्वाऽसुराधिपम्॥ ३६

सनत्कुमार उवाच

इति श्रुत्वा महेशस्य वचनं स रमापतिः।
सनिर्जरो जगामाशु स्वस्थानं गतसंशयः॥ ३७

ईश्वर बोले—हे हृषीकेश! हे महाविष्णो! जलन्धरसे सन्त्रस्त हुए ये देवगण अत्यन्त व्याकुल होकर यहाँ मेरी शरणमें आये हुए हैं। हे विष्णो! आपने युद्धमें जलन्धरका वध क्यों नहीं किया और आप स्वयं भी अपना वैकुण्ठ छोड़कर उसके घर चले गये हैं। स्वयं स्वतन्त्र होकर विहार करनेवाले मैंने दुष्टोंके निग्रहके लिये तथा सज्जनोंकी रक्षाके लिये आपको नियुक्त किया था॥ २५—२७॥

सनत्कुमार बोले—शंकरका यह वचन सुनकर गरुडध्वज विष्णु विनम्र हो सिर झुकाये हुए हाथ जोड़कर कहने लगे—॥ २८॥

विष्णुजी बोले—हे प्रभो! आपके अंशसे प्रकट होने तथा लक्ष्मीजीका भाई होनेके कारण मैंने युद्धमें उसका वध नहीं किया, अब आप ही इस दानवका वध कीजिये॥ २९॥

हे देवेश! वह महाबली तथा महावीर दानव सभी देवताओं तथा अन्य लोगोंके लिये भी अजेय है, मैं यह सत्य कह रहा हूँ। देवताओंसहित मैंने बहुत समयतक उसके साथ युद्ध किया, परंतु मेरा कोई भी उपाय उस दानवश्रेष्ठपर नहीं चला। उसके पराक्रमसे सन्तुष्ट होकर मैंने उससे कहा—वर माँगो; तब उसने मेरा वचन सुनकर यह उत्तम वरदान माँगा—हे महाविष्णो! आप देवताओं एवं मेरी भगिनी लक्ष्मीके साथ मेरे घरमें निवास करें और मेरे अधीन रहें, अतः मैं उसके घर चला गया॥ ३०—३३॥

सनत्कुमार बोले—विष्णुजीका यह वचन सुनकर दयालु तथा भक्तवत्सल वे महेश्वर शंकर अतिप्रसन्न होकर हँसकर कहने लगे—॥ ३४॥

महेश्वर बोले—हे विष्णो! हे सुरश्रेष्ठ! आप मेरी बातको आदरपूर्वक सुनिये। मैं महादैत्य जलन्धरका वध करूँगा, इसमें सन्देह नहीं है। उस असुरपतिको मारा गया समझकर आप भयरहित हो अपने स्थानको जाइये और सभी देवता भी भयमुक्त तथा सन्देहरहित होकर अपने स्थानको जायँ॥ ३५-३६॥

सनत्कुमार बोले—महेश्वरका यह वचन सुनकर रमापति विष्णु सन्देहरहित हो देवगणोंके साथ अपने स्थानको चले गये। हे व्यास! इसी बीच वह अति

एतस्मिन्नन्तरे व्यास स दैत्येन्द्रोऽतिविक्रमः।
सन्नद्धैरसुरैस्सार्धं शैलप्रान्तं ययौ बली॥ ३८
कैलासमवरुध्याथ महत्या सेनया युतः।
संतस्थौ कालसंकाशः कुर्वन्सिंहरवं महान्॥ ३९
अथ कोलाहलं श्रुत्वा दैत्यनादसमुद्भवम्।
चुक्रोधातिमहेशानो महालीलः खलांतकः॥ ४०

पराक्रमी तथा बलवान् दैत्यपति युद्धके लिये तत्पर असुरोंके साथ कैलासके समीप पहुँचा और कैलासको घेरकर तीव्र सिंहनाद करता हुआ कालके समान वह महती सेनाके साथ वहीं रुक गया॥ ३७—३९॥

उसके बाद दैत्योंके सिंहनादसे उत्पन्न महाकोलाहल सुनकर दुष्टोंका संहार करनेवाले तथा महालीला करनेवाले महेश्वर अत्यन्त क्रोधित हो उठे॥ ४०॥

समादिदेश संख्याय स्वगणान्स महाबलान्।
नंद्यादिकान्महादेवो महोतिः कौतुकी हरः॥ ४१

तब महालीला करनेवाले कौतुकी महादेवने महाबलवान् नन्दी आदि अपने गणोंको युद्धके लिये आज्ञा दी॥ ४१॥

नन्दीभमुखसेनानीमुखास्सर्वे शिवाज्ञया।
गणाश्च समनह्यंत युद्धायातित्वरान्विताः॥ ४२
अवतेरुर्गणाः सर्वे कैलासात्क्रोधदुर्मदाः।
वल्गन्तो रणशब्दांश्च महावीरा रणाय हि॥ ४३

तब शिवजीकी आज्ञासे नन्दी, गजमुख आदि प्रमुख सेनापति तथा सभी गण बड़ी शीघ्रतासे युद्धके लिये तत्पर हो गये। वे सभी महावीर गण युद्धके लिये क्रोधसे दुर्मद हो नाना प्रकारके युद्धसम्बन्धी शब्द करते हुए कैलास पर्वतसे उतरे॥ ४२-४३॥

ततः समभवद्युद्धं कैलासोपत्यकासु वै।
प्रमथाधिपदैत्यानां घोरं शस्त्रास्त्रसंकुलम्॥ ४४

उसके बाद कैलासकी उपत्यकाओंमें प्रमथगणों और दैत्योंमें अस्त्र-शस्त्रोंसे घोर युद्ध होने लगा॥ ४४॥

भेरीमृदंगशंखौघैर्निःस्वनैर्वीरहर्षणैः।
गजाश्वरथशब्दैश्च नादिता भूर्व्यकंपत॥ ४५

उस समय वीरोंमें हर्ष उत्पन्न करनेवाली भेरी, मृदंग तथा शंखोंकी ध्वनियों और हाथी, घोड़े तथा रथोंके शब्दोंसे नादित हुई पृथ्वी कम्पित हो उठी॥ ४५॥

शक्तितोमरबाणौघैर्मुसलैः प्राशपट्टिशैः।
व्यराजत नभः पूर्णं मुक्ताभिरिव संवृतम्॥ ४६

शक्ति, तोमर, बाण, मूसल, प्राश एवं पट्टिशोंसे आकाशमण्डल मोतियोंसे भरा हुआ जैसा लगने लगा॥ ४६॥

निहतैरिव नागाश्वैः पत्तिभिर्भूर्व्यराजत।
वज्राहतैः पर्वतेन्द्रैः पूर्वमासीत्सुसंवृता॥ ४७

मरे हुए हाथी, घोड़े एवं पैदल सेनाओंके द्वारा पृथ्वी इस प्रकार पट गयी, जैसे पूर्व समयमें [इन्द्रके] वज्रसे आहत हुए पर्वतराजोंसे पटी हुई थी॥ ४७॥

प्रमथाहतदैत्यौघैर्दैत्याहतगणैस्तथा।
वसासृङ्मांसपङ्काढ्या भूरगम्याभवत्तदा॥ ४८

प्रमथाहतदैत्यौघान्भार्गवः समजीवयत्।
युद्धे पुनः पुनश्चैव मृतसंजीवनी बलात्॥ ४९

दृष्ट्वा व्याकुलितांस्तांस्तु गणाः सर्वे भयार्दिताः।
शशंसुर्देवदेवाय सर्वे शुक्रविचेष्टितम्॥ ५०

उस समय प्रमथोंके द्वारा मारे गये दैत्यों एवं दैत्योंके द्वारा मारे गये प्रमथोंके मज्जा, रक्त एवं मांसके कीचड़से पृथ्वी व्याप्त हो गयी, जिससे उसपर चलना असम्भव हो गया। तब शुक्राचार्य प्रमथगणोंके द्वारा युद्धमें मारे गये दैत्योंको मृतसंजीवनी विद्याके प्रभावसे बारंबार जिलाने लगे। उन्हें इस प्रकार जीवित होते देखकर व्याकुल तथा भयभीत सभी गणोंने देवदेव शिवजीसे शुक्राचार्यकी सारी घटना निवेदित की॥ ४८—५०॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् रुद्रश्चकार क्रोधमुल्बणम्।
भयंकरोऽतिरौद्रश्च बभूव प्रज्वलन्दिशः॥ ५१

अथ रुद्रमुखात्कृत्या बभूवातीव भीषणा।
तालजंघा दरीवक्त्रा स्तनापीडितभूरुहा॥ ५२

सा युद्धभूमिं तरसा ससाद मुनिसत्तम।
विचचार महाभीमा भक्षयन्ती महासुरान्॥ ५३

अथ सा रणमध्ये हि जगाम गतभीर्द्रुतम्।
यत्रास्ते संवृतो दैत्यवरेन्द्रैस्स हि भार्गवः॥ ५४

स्वतेजसा नभो व्याप्य भूमिं कृत्वा च सा मुने।
भार्गवं स्वभगे धृत्वा जगामान्तर्हिता नभः॥ ५५

विधृतं भार्गवं दृष्ट्वा दैत्यसैन्यगणास्तथा।
प्रम्लानवदना युद्धान्निर्जग्मुर्युद्धदुर्मदाः॥ ५६

अथोऽभज्यत दैत्यानां सेना गणभयार्दिता।
वायुवेगहता यद्वत्प्रकीर्णा तृणसंहतिः॥ ५७

भग्नां गणभयाद्दैत्यसेनां दृष्ट्वातिमर्षिताः।
निशुंभशुंभौ सेनान्यौ कालनेमिश्च चुक्रुधुः॥ ५८

त्रयस्ते वारयामासुर्गणसेनां महाबलाः।
मुञ्चन्तः शरवर्षाणि प्रावृषीव बलाहकाः॥ ५९

ततो दैत्यशरौघास्ते शलभानामिव व्रजाः।
रुरुधुः खं दिशः सर्वा गणसेनामकंपयन्॥ ६०

गणाः शरशतैर्भिन्ना रुधिरासारवर्षिणः।
वसंतकिंशुकाभासा न प्राजानन्हि किंचन॥ ६१

ततः प्रभग्नं स्वबलं विलोक्य
नन्द्यादिलंबोदरकार्त्तिकेयाः।
त्वरान्विता दैत्यवरान्प्रसह्य
निवारयामासुरमर्षणास्ते॥ ६२

यह सुनकर भगवान् रुद्रने अत्यधिक क्रोध किया और दिशाओंको प्रज्वलित करते हुए वे भयंकर तथा अत्यधिक रौद्ररूपवाले हो गये। उस समय रुद्रके मुखसे महाभयंकर कृत्या प्रकट हो गयी। ताड़ वृक्षके समान उसकी जाँघें थीं। गुफाके समान उसका मुख था और उसके स्तनसे बड़े-बड़े वृक्ष टूट जाते थे॥ ५१-५२॥

हे मुनिसत्तम! महाभयंकर वह कृत्या बड़े वेगसे युद्धभूमिमें आ गयी और महान् असुरोंका भक्षण करती हुई विचरण करने लगी। इसके बाद वह निर्भय होकर शीघ्र ही वहाँ जा पहुँची, जहाँ महान् दैत्योंसे घिरे हुए शुक्राचार्य थे। हे मुने! वह अपने तेजसे आकाश एवं पृथ्वीको व्याप्तकर शुक्रको अपने गुह्यदेशमें छिपाकर आकाशमें अन्तर्धान हो गयी॥ ५३—५५॥

तब युद्धदुर्मद दैत्यसेनाके वीर शुक्राचार्यको तिरोहित देखकर मलिनमुख होकर रणभूमिसे भागने लगे॥ ५६॥

शिवगणोंसे भयभीत हुई असुरोंकी सेना वायुके वेगसे बिखरे हुए तृणसमूहकी भाँति भागने लगी॥ ५७॥

इस प्रकार गणोंके भयसे दैत्योंकी सेनाको छिन्न-भिन्न होते देखकर सेनापति निशुम्भ, शुम्भ एवं कालनेमिको महान् क्रोध हुआ। उन महाबली तीनों सेनापतियोंने वर्षाकालीन मेघके समान बाणोंकी वृष्टि करते हुए गणोंकी सेनाको भगाना प्रारम्भ किया। उन असुरोंके बाण शलभसमूहोंकी भाँति आकाश तथा सभी दिशाओंको व्याप्तकर गणोंकी सेनाको कँपाने लगे॥ ५८—६०॥

सैकड़ों बाणोंसे बिंधे हुए तथा रुधिरकी धारा बहाते हुए शिवगण वसन्त ऋतुमें किंशुकके पुष्पकी भाँति सुशोभित हो रहे थे और उन्हें कुछ भी ज्ञात न हो पा रहा था। इस प्रकार अपनी सेनाको छिन्न-भिन्न होते देखकर कुपित हुए गणेश, कार्तिकेय एवं नन्दी आदि महाक्रोधकर बड़ी शीघ्रतासे उन महादैत्योंको रोकने लगे॥ ६१-६२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलंधरवधोपाख्याने सामान्यगणासुरयुद्धवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरवधोपाख्यानमें सामान्यगण-असुरयुद्धवर्णन नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

अथैकविंशोऽध्यायः

नन्दी, गणेश, कार्तिकेय आदि शिवगणोंका कालनेमि, शुम्भ तथा निशुम्भके साथ घोर संग्राम, वीरभद्र तथा जलन्धरका युद्ध, भयाकुल शिवगणोंका शिवजीको सारा वृत्तान्त बताना

सनत्कुमार उवाच

ते गणाधिपतीन्दृष्ट्वा नन्दीभमुखषण्मुखान्।
अमर्षादभ्यधावंत द्वंद्वयुद्धाय दानवाः॥ १

सनत्कुमार बोले—तब नन्दी, गणेश, कार्तिकेय आदि गणाधिपतियोंको देखकर वे दानव द्वन्द्वयुद्ध करनेके लिये क्रोधपूर्वक दौड़े॥ १॥

नन्दिनं कालनेमिश्च शुंभो लंबोदरं तथा।
निशुंभः षण्मुखं देवमभ्यधावत शंकितः॥ २

कालनेमि नन्दीकी ओर, शुम्भ गणेशकी ओर और निशुम्भ कार्तिकेयकी ओर शंकित होकर दौड़ा॥ २॥

निशुंभः कार्तिकेयस्य मयूरं पंचभिः शरैः।
हृदि विव्याध वेगेन मूर्च्छितः स पपात ह॥ ३
ततः शक्तिधरः क्रुद्धो बाणैः पञ्चभिरेव च।
विव्याध स्यंदने तस्य हयान्यन्तारमेव च॥ ४

निशुम्भने कार्तिकेयके मयूरके हृदयमें पाँच बाणोंसे वेगपूर्वक प्रहार किया, जिससे वह मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। तब कुमारने क्रोधित हो पाँच बाणोंसे उसके रथ, घोड़ों और सारथीपर प्रहार किया॥ ३-४॥

शरेणान्येन तीक्ष्णेन निशुंभं देववैरिणम्।
जघान तरसा वीरो जगर्ज रणदुर्मदः॥ ५

इसके बाद रणदुर्मद उन वीर कार्तिकेयने अपने दूसरे तीक्ष्ण बाणसे देवशत्रु निशुम्भपर बड़े वेगसे प्रहार किया और घोर गर्जना की॥ ५॥

असुरोऽपि निशुंभाख्यो महावीरोऽतिवीर्यवान्।
जघान कार्तिकेयं तं गर्जन्तं स्वेषुणा रणे॥ ६

महाबली निशुम्भ नामक असुरने भी युद्धमें गर्जना करते हुए उन कार्तिकेयपर अपने बाणसे प्रहार किया॥ ६॥

ततः शक्तिं कार्तिकेयो यावज्जग्राह रोषतः।
तावन्निशुंभो वेगेन स्वशक्त्या तमपातयत्॥ ७

तब कार्तिकेयने जबतक क्रोधसे अपना शक्ति नामक आयुध लिया, इतनेमें निशुम्भने वेगपूर्वक अपनी शक्तिसे उन्हें गिरा दिया॥ ७॥

एवं बभूव तत्रैव कार्तिकेयनिशुंभयोः।
आहवो हि महान्व्यास वीरशब्दं प्रगर्जतोः॥ ८

हे व्यास! इस प्रकार वीरध्वनि करके गरजते हुए कार्तिकेय एवं निशुम्भका वहींपर घोर युद्ध होने लगा॥ ८॥

ततो नन्दीश्वरो बाणैः कालनेमिमविध्यत।
सप्तभिश्च हयान्केतुं रथं सारथिमाच्छिनत्॥ ९

नन्दीश्वरने भी अपने बाणोंसे कालनेमिको बेध दिया। उन्होंने अपने सात बाणोंसे कालनेमिके घोड़े, सारथी, रथ तथा ध्वजाका छेदन कर दिया॥ ९॥

कालनेमिश्च संक्रुद्धो धनुश्चिच्छेद नंदिनः।
स्वशरासननिर्मुक्तैर्महातीक्ष्णैः शिलीमुखैः॥ १०

तब कालनेमिने क्रुद्ध होकर अपने धनुषसे छूटे हुए अत्यन्त तीखे बाणोंसे नन्दीका धनुष काट दिया॥ १०॥

अथ नन्दीश्वरो वीरः कालनेमिं महासुरम्।
तमपास्य च शूलेन वक्षस्यभ्यहनद्दृढम्॥ ११
स शूलभिन्नहृदयो हताश्वो हतसारथिः।
अद्रेः शिखरमुत्पाट्य नन्दिनं समताडयत्॥ १२

उसके बाद नन्दीश्वरने उस धनुषको त्यागकर शूलसे महादैत्य कालनेमिके वक्षःस्थलपर जोरसे प्रहार किया। इस प्रकार घोड़े और सारथिके नष्ट हो जानेपर एवं त्रिशूलसे वक्षःस्थलके फट जानेपर उसने पर्वतका शिखर उखाड़कर नन्दीश्वरपर प्रहार किया॥ ११-१२॥

अथ शुंभो गणेशश्च रथमूषकवाहनौ।
युध्यमानौ शरव्रातैः परस्परमविध्यताम्॥ १३

गणेशस्तु तदा शुंभं हृदि विव्याध पत्रिणा।
सारथिं च त्रिभिर्बाणैः पातयामास भूतले॥ १४

ततोऽतिक्रुद्धः शुंभोऽपि बाणवृष्ट्या गणाधिपम्।
मूषकं च त्रिभिर्विध्वा ननाद जलदस्वनः॥ १५

उस समय रथपर सवार शुम्भ एवं मूषकपर सवार श्रीगणेशजी युद्ध करते हुए एक-दूसरेको बाणसमूहोंसे बेधने लगे। उसके बाद गणेशजीने शुम्भके हृदयमें बाणसे प्रहार किया और तीन बाणोंसे सारथिपर प्रहार करके उसे पृथ्वीपर गिरा दिया। तब अत्यन्त कुपित शुम्भ भी बाणवृष्टिसे गणेशजीको तथा तीन बाणोंसे मूषकको बेधकर मेघके समान गर्जन करने लगा॥ १३—१५॥

मूषकः शरभिन्नाङ्गश्चचाल दृढवेदनः।
लम्बोदरश्च पतितः पदातिरभवत्स हि॥ १६

ततो लम्बोदरः शुंभं हत्वा परशुना हृदि।
अपातयत्तदा भूमौ मूषकं चारुरोह सः॥ १७

बाणोंसे छिन्न अंगवाला मूषक अत्यन्त पीड़ित होकर भाग चला, जिसके कारण गणेशजी गिर पड़े और वे पैदल ही युद्ध करने लगे। फिर तो उन लम्बोदरने परशुसे शुम्भके वक्षःस्थलपर प्रहार करके उसे पृथ्वीपर गिरा दिया तदनन्तर वे पुनः मूषकपर सवार हो गये॥ १६-१७॥

समरायोद्यतश्चाभूत्पुनर्गजमुखो विभुः।
प्रहस्य जघ्नतुः क्रोधात्तोत्रेणैव महाद्विपम्॥ १८

गणेशजी समरके लिये पुनः उद्यत हो गये और उन्होंने हँसकर क्रोधसे शुम्भपर इस प्रकार प्रहार किया, जैसे अंकुशसे हाथीपर प्रहार होता हो॥ १८॥

कालनेमिर्निशुंभश्च ह्युभौ लंबोदरं शरैः।
युगपच्चख्नतुः क्रोधादाशीविषसमैर्द्रुतम्॥ १९

तं पीड्यमानमालोक्य वीरभद्रो महाबलः।
अभ्यधावत वेगेन कोटिभूतयुतस्तथा॥ २०

तब कालनेमि एवं निशुम्भ दोनों ही क्रोधपूर्वक एक साथ सर्पके समान [तीक्ष्ण] बाणोंसे शीघ्रतासे गणेशपर प्रहार करने लगे। तब महाबली वीरभद्र उन्हें इस प्रकार पीड़ित किया जाता हुआ देखकर बड़े वेगसे करोड़ों भूतोंको साथ लेकर दौड़े॥ १९-२०॥

कूष्मांडा भैरवाश्चापि वेताला योगिनीगणाः।
पिशाचा डाकिनी संघा गणाश्चापि समं ययुः॥ २१

उनके साथ कूष्माण्ड, भैरव, वेताल, योगिनियाँ, पिशाच, डाकिनियाँ एवं गण भी चले॥ २१॥

ततः किलकिला शब्दैः सिंहनादैः सघर्घरैः।
विनादिता डमरुकैः पृथिवी समकंपत॥ २२

ततो भूताः प्रधावंतो भक्षयंति स्म दानवान्।
उत्पत्य पातयंति स्म ननृतुश्च रणांगणे॥ २३

उस समय उन लोगोंके किलकिला शब्द, सिंहनाद, घर्घर एवं डमरूके शब्दसे पृथ्वी निनादित होकर काँप उठी। उस समय समरभूमिमें भूतगण दौड़-दौड़कर दानवोंका भक्षण करने लगे और उनके ऊपर चढ़कर उन्हें गिराने लगे और नाचने लगे॥ २२-२३॥

एतस्मिन्नंतरे व्यासाभूतां नन्दी गुहश्च तौ।
उत्थितावाप्तसंज्ञौ हि जगर्जतुरलं रणे॥ २४

हे व्यास! इसी बीच नन्दी और कार्तिकेयको चेतना आ गयी और वे उठ गये तथा रणभूमिमें गरजने लगे॥ २४॥

स नन्दी कार्तिकेयश्च समायातौ त्वरान्वितौ।
जघ्नतुश्च रणे दैत्यान्निरंतरशरव्रजैः॥ २५

वे नन्दीश्वर एवं कार्तिकेय शीघ्र रणभूमिमें आ गये और अपने बाणोंद्वारा दैत्योंपर निरन्तर प्रहार करने लगे॥ २५॥

छिन्नैर्भिन्नैर्हतैर्दैत्यैः पातितैर्भक्षितैस्तथा।
व्याकुला साभवत्सेना विषण्णवदना तदा॥ २६

तब छिन्न-भिन्न हुए दैत्यगण पृथ्वीपर गिरने लगे और उन गिरे हुए दैत्योंको भूतगण खाने लगे, इससे दैत्योंकी सेना विषादग्रस्त तथा व्याकुल हो गयी॥ २६॥

एवं नन्दी कार्तिकेयो विकटश्च प्रतापवान्।
वीरभद्रो गणाश्चान्ये जगर्जुः समरेऽधिकम्॥ २७

इस प्रकार प्रतापी नन्दी, कार्तिकेय, गणेशजी, वीरभद्र तथा अन्य गण युद्धभूमिमें जोर-जोरसे गरजने लगे॥ २७॥

निशुंभशुंभौ सेनान्यौ सिन्धुपुत्रस्य तौ तथा।
कालनेमिर्महादैत्योऽसुराश्चान्ये पराजिताः॥ २८

जलन्धरके वे दोनों सेनापति शुम्भ-निशुम्भ, महादैत्य कालनेमि एवं अन्य असुर पराजित हो गये॥ २८॥

प्रविध्वस्तां ततस्सेनां दृष्ट्वा सागरनन्दनः।
रथेनातिपताकेन गणानभिययौ बली॥ २९

तब अपनी सेनाको विध्वस्त हुआ देखकर बलवान् जलन्धर ऊँची पताकावाले रथपर सवार हो गणोंके समक्ष आ गया॥ २९॥

ततः पराजिता दैत्या अप्यभूवन्महोत्सवाः।
जगर्जुरधिकं व्यास समरायोद्यतास्तदा॥ ३०

हे व्यासजी! तब पराजित हुए दैत्य भी महान् उत्साहसे भर गये और युद्धके लिये तैयार होकर गरजने लगे॥ ३०॥

सर्वे रुद्रगणाश्चापि जगर्जुर्जयशालिनः।
नन्दिकार्तिकदंत्यास्यवीरभद्रादिका मुने॥ ३१

हे मुने! विजयशील शिवके गण नन्दी, कार्तिकेय, गजानन, वीरभद्र आदि भी गर्जना करने लगे॥ ३१॥

हस्त्यश्वरथसंह्लादः शंखभेरीरवस्तथा।
अभवत्सिंहनादश्च सेनयोरुभयोस्तथा॥ ३२

उस समय दोनों सेनाओंमें हाथियों, घोड़ों तथा रथोंके शब्द, शंख एवं भेरियोंकी ध्वनि एवं सिंहनाद होने लगे॥ ३२॥

जलंधरशरव्रातैर्नीहारपटलैरिव।
द्यावापृथिव्योराच्छन्नमंतरं समपद्यत॥ ३३

शैलादिं पञ्चभिर्विध्वा गणेशं पञ्चभिश्शरैः।
वीरभद्रं च विंशत्या ननाद जलदस्वनः॥ ३४

कार्तिकेयस्ततो दैत्यं शक्त्या विव्याध सत्वरम्।
जलंधरं महावीरो रुद्रपुत्रो ननाद च॥ ३५

जलन्धरके बाणसमूहोंसे द्युलोक तथा भूलोकके बीचका स्थान उसी प्रकार आच्छादित हुआ, जैसे कुहरेसे आकाश आच्छन्न हो जाता है। वह नन्दीपर पाँच, गणेशपर पाँच और वीरभद्रपर बीस बाणोंसे प्रहार करके मेघके समान गर्जन करने लगा। तब रुद्रपुत्र महावीर कार्तिकेयने बड़ी शीघ्रतासे अपनी शक्तिद्वारा उस दैत्य जलन्धरपर प्रहार किया और वे गर्जन करने लगे॥ ३३—३५॥

स घूर्णनयनो दैत्यः शक्तिनिर्भिन्नदेहकः।
पपात भूमौ त्वरितमुदतिष्ठन्महाबलः॥ ३६

ततः क्रोधपरीतात्मा कार्तिकेयं जलंधरः।
गदया ताडयामास हृदये दैत्यपुंगवः॥ ३७

शक्तिसे विदीर्ण देहवाला वह महाबली दैत्य आँखोंको घुमाता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा, किंतु बड़ी शीघ्रतासे उठ गया। इसके बाद उस दैत्यश्रेष्ठ जलन्धरने बड़े क्रोधसे कार्तिकेयके हृदयमें गदासे प्रहार किया॥ ३६-३७॥

गदाप्रभावं सफलं दर्शयन् शंकरात्मजः।
विधिदत्तवराद् व्यास स तूर्णं भूतलेऽपतत्॥ ३८

हे व्यासजी! तब वे शंकरपुत्र कार्तिकेय ब्रह्माके द्वारा दिये गये वरदानके कारण उस गदाके प्रहारको सफल प्रदर्शित करते हुए शीघ्र पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ३८॥

तथैव नंदी ह्यपतद्भूतले गदया हतः।
महावीरोऽपि रिपुहा किंचिद्व्याकुलमानसः॥ ३९

ततो गणेश्वरः क्रुद्धः स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम्।
संप्राप्यातिबलो दैत्यगदां परशुनाच्छिनत्॥ ४०

इसी प्रकार शत्रुहन्ता एवं महावीर नन्दी भी गदाके प्रहारसे घायल होकर कुछ व्याकुलमन हो पृथ्वीपर गिर पड़े। उसके बाद महाबली गणेशजीने अत्यन्त क्रुद्ध हो शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करके बड़े वेगसे दौड़कर अपने परशुसे दैत्यकी गदाको काट दिया॥ ३९-४०॥

वीरभद्रस्त्रिभिर्बाणैर्हृदि विव्याध दानवम्।
सप्तभिश्च हयान्केतुं धनुश्छत्रं च चिच्छिदे॥ ४१

वीरभद्रने तीन बाणोंसे उस दानवके वक्ष:स्थलपर प्रहार किया तथा सात बाणोंसे उसके घोड़ों, ध्वजा, धनुष एवं छत्रको काट डाला॥ ४१॥

ततोऽतिक्रुद्धो दैत्येन्द्रः शक्तिमुद्यम्य दारुणाम्।
गणेशं पातयामास रथमन्यं समारुहत्॥ ४२

तब दैत्येन्द्रने अत्यधिक कुपित होकर अपनी दारुण शक्तिको उठाकर उसके प्रहारसे गणेशको [पृथ्वीपर] गिरा दिया और स्वयं दूसरे रथपर सवार हो गया॥ ४२॥

अभ्यगादथ वेगेन स दैत्येन्द्रो महाबलः।
विगणय्य हृदा तं वै वीरभद्रं रुषान्वितः॥ ४३
वीरभद्रं जघानाशु तीक्ष्णेनाशीविषेण तम्।
ननाद च महावीरो दैत्यराजो जलंधरः॥ ४४

इसके बाद वह दैत्येन्द्र क्रोधित होकर अपने मनमें उन वीरभद्रको कुछ न समझकर वेगपूर्वक उनकी ओर दौड़ा। दैत्यराज महावीर जलन्धरने तीखे बाणसे शीघ्रतापूर्वक उन वीरभद्रपर प्रहार किया और गर्जना की॥ ४३-४४॥

वीरभद्रोऽपि संक्रुद्धस्सितधारेण चेषुणा।
चिच्छेद तच्छरं चैव तं विव्याध महेषुणा॥ ४५

ततस्तौ सूर्यसंकाशौ युयुधाते परस्परम्।
नानाशस्त्रैस्तथास्त्रैश्च चिरं वीरवरोत्तमौ॥ ४६

वीरभद्रस्ततस्तस्य हयान्बाणैरपातयत्।
धनुश्चिच्छेद रथिनः पताकां चापि वेगतः॥ ४७

तब वीरभद्रने भी अति क्रुद्ध होकर तीक्ष्ण धारवाले बाणसे उसके बाणको काट दिया और अपने महान् बाणसे उसपर प्रहार किया। इस प्रकार सूर्यके समान अत्यन्त तेजस्वी तथा वीरवरोंमें श्रेष्ठ वे दोनों अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे बहुत समयतक परस्पर युद्ध करते रहे। वीरभद्रने अपने बाणोंसे उस रथी दैत्यके घोड़ोंको अनेक बाणोंसे मार गिराया और उसके धनुष तथा ध्वजको भी वेगपूर्वक काट दिया॥ ४५—४७॥

अथो स दैत्यराजो हि पुप्लुवे परिघायुधः।
वीरभद्रोपकंठं स द्रुतमाप महाबलः॥ ४८

इसके बाद वह महाबली दैत्यराज परिघ-अस्त्र लेकर दौड़ा और वीरभद्रके पास शीघ्र जा पहुँचा॥ ४८॥

परिघेनातिमहता वीरभद्रं जघान ह।
महाबलोऽब्धितनयो मूर्ध्नि वीरो जगर्ज च॥ ४९

उस महाबली वीर समुद्रपुत्र जलन्धरने उस विशाल परिघसे वीरभद्रके सिरपर प्रहार किया और गर्जना की॥ ४९॥

परिघेनातिमहता भिन्नमूर्द्धा गणाधिपः।
वीरभद्रः पपातोर्व्यां मुमोच रुधिरं बहु॥ ५०

उस महान् परिघसे गणेश्वर वीरभद्रका सिर फट गया और वे पृथ्वीपर गिर पड़े, [उनके सिरसे] बहुत रक्त बहने लगा॥ ५०॥

पतितं वीरभद्रं तु दृष्ट्वा रुद्रगणा भयात्।
अपागच्छन् रणं हित्वा क्रोशमाना महेश्वरम्॥ ५१

वीरभद्रको पृथ्वीपर गिरा हुआ देखकर रुद्रगण भयसे शंकरजीको पुकारते हुए रणभूमि छोड़कर भागने लगे॥ ५१॥

अथ कोलाहलं श्रुत्वा गणानां चन्द्रशेखरः।
निजपार्श्वस्थितान् वीरानपृच्छद् गणसत्तमान्॥ ५२

तब शिवजीने गणोंका कोलाहल सुनकर अपने समीपमें स्थित महाबली गणोंसे पूछा॥ ५२॥

शंकर उवाच

किमर्थं मद्गणानां हि महाकोलाहलोऽभवत्।
विचार्यतां महावीराः शांतिः कार्या मया ध्रुवम्॥ ५३

शिवजी बोले—हे महावीरो! मेरे गणोंका यह महान् कोलाहल क्यों हो रहा है, तुमलोग पता लगाओ। मैं इसे शीघ्र ही शान्त करूँगा॥ ५३॥

इति यावत्स देवेशो गणान्पप्रच्छ सादरम्।
तावद्गणवरास्ते हि समायाताः प्रभुं प्रति॥ ५४

वे देवेश अभी गणोंसे आदरपूर्वक पूछ ही रहे थे, तभी वे श्रेष्ठ गण प्रभु शिवके पास पहुँच गये॥ ५४॥

तान्दृष्ट्वा विकलान् रुद्रः पप्रच्छ कुशलं प्रभुः।
यथावत्ते गणा वृत्तं समाचख्युश्च विस्तरात्॥ ५५

तच्छ्रुत्वा भगवान् रुद्रो महालीलाकरः प्रभुः।
अभयं दत्तवांस्तेभ्यो महोत्साहं प्रवर्द्धयन्॥ ५६

उन्हें विकल देखकर प्रभु शंकरजी उनका कुशल पूछने लगे, तब उन गणोंने विस्तारपूर्वक सारा वृत्तान्त यथावत् कह दिया। तब महान् लीला करनेवाले प्रभु भगवान् रुद्रने उसे सुनकर महान् उत्साह बढ़ाते हुए उन्हें अभय प्रदान किया॥ ५५-५६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलंधरवधोपाख्याने विशेषयुद्धवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरवधोपाख्यानमें विशेष युद्धवर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

श्रीशिव और जलन्धरका युद्ध, जलन्धरद्वारा गान्धर्वी मायासे शिवको मोहितकर शीघ्र ही पार्वतीके पास पहुँचना, उसकी मायाको जानकर पार्वतीका अदृश्य हो जाना और भगवान् विष्णुको जलन्धरपत्नी वृन्दाके पास जानेके लिये कहना

सनत्कुमार उवाच

अथ वीरगणै रुद्रो रौद्ररूपो महाप्रभुः।
अभ्यगाद् वृषभारूढः संग्रामं प्रहसन्निव॥ १

रुद्रमायान्तमालोक्य सिंहनादैर्गणाः पुनः।
निवृत्ताः संगरे रौद्रा ये हि पूर्वं पराजिताः॥ २

वीरशब्दं च कुर्वन्तस्तेऽप्यन्ये शांकरा गणाः।
सोत्सवाः सायुधा दैत्यान्निजघ्नुः शरवृष्टिभिः॥ ३

सनत्कुमार बोले—इसके बाद रौद्ररूपवाले महाप्रभु शंकर बैलपर सवार हो वीरगणोंके साथ हँसते हुए संग्रामभूमिमें गये। जो रुद्रगण पहले पराजित होकर भाग गये थे, वे शिवजीको आते हुए देखकर सिंहनाद करते हुए युद्धभूमिमें पुनः लौट आये। वे और शंकरके अन्य गण भी शब्द करते हुए आयुधोंसे युक्त हो बड़े उत्साहके साथ बाणोंकी वर्षासे दैत्योंको मारने लगे॥ १—३॥

दैत्या हि भीषणं रुद्रं सर्वे दृष्ट्वा विदुद्रुवुः।
शांकरं पुरुषं दृष्ट्वा पातकानीव तद्भयात्॥ ४

अथो जलंधरो दैत्यान्निवृत्तान्प्रेक्ष्य संगरे।
अभ्यधावत्स चंडीशं मुञ्चन्बाणान्सहस्रशः॥ ५

निशुंभशुंभप्रमुखा दैत्येन्द्राश्च सहस्रशः।
अभिजग्मुश्शिवं वेगाद्रोषात्संदष्टदच्छदाः॥ ६

उस समय सभी दैत्य भयंकर रुद्रको देखकर इस प्रकार भागने लगे, जिस प्रकार शिवभक्तको देखकर उसके भयसे पाप भाग जाते हैं। तदनन्तर युद्धमें असुरोंको पराङ्मुख देखकर वह जलन्धर हजारों बाणोंको छोड़ता हुआ शंकरजीकी ओर दौड़ा। शुम्भ-निशुम्भ आदि हजारों दैत्यराज भी क्रोधसे ओठोंको चबाते हुए बड़े वेगसे शंकरजीकी ओर जाने लगे॥ ४—६॥

कालनेमिस्तथा वीरः खड्गरोमा बलाहकः।
घस्मरश्च प्रचंडश्चापरे चापि शिवं ययुः॥ ७

वीर कालनेमि, खड्गरोमा, बलाहक, घस्मर, प्रचण्ड तथा अन्य दैत्य भी शिवजीकी ओर दौड़ पड़े॥ ७॥

बाणैः संछादयामासुर्द्रुतं रुद्रगणांश्च ते।
अंगानि चिच्छिदुर्वीराः शुंभाद्या निखिला मुने॥ ८

हे मुने! शुम्भ आदि सभी वीरों [दैत्यगणों]-ने शीघ्र ही बाणोंके द्वारा रुद्रगणोंको ढँक दिया और उनके अंगोंको छिन्न-भिन्न कर दिया॥ ८॥

बाणांधकारसंछन्नं दृष्ट्वा गणबलं हरः।
तद्बाणजालमाच्छिद्य बाणैराववृते नभः॥ ९

दैत्यांश्च बाणवात्याभिः पीडितानकरोत्तदा।
प्रचंडबाणजालौघैरपातयत भूतले॥ १०

खड्गरोमशिरः कायात्तथा परशुनाच्छिनत्।
बलाहकस्य च शिरः खट्वांगेनाकरोद्द्विधा॥ ११

स बध्वा घस्मरं दैत्यं पाशेनाभ्यहनद्भुवि।
महावीरं प्रचंडं च चकर्त्त त्रिशिखेन ह॥ १२

वृषभेण हताः केचित्केचिद्बाणैर्निपातिता।
न शेकुरसुराः स्थातुं गजाः सिंहार्दिता इव॥ १३

ततः क्रोधपरीतात्मा दैत्यान् धिक् कृतवान् रणे।
शुंभादिकान्महादैत्यः प्रहसन्प्राह धैर्यवान्॥ १४

जलंधर उवाच

किं व उच्चरितैर्मातुर्धावद्भिः पृष्ठतो हतैः।
न हि भीतवधः श्लाघ्यः स्वर्गदः शूरमानिनाम्॥ १५

यदि वः प्रधने श्रद्धा सारो वा क्षुल्लका हृदि।
अग्रे तिष्ठत मात्रं मे न चेद्ग्राम्यसुखे स्पृहा॥ १६

रणे मृत्युर्वरश्चास्ति सर्वकामफलप्रदः।
यशःप्रदो विशेषेण मोक्षदोऽपि प्रकीर्त्तितः॥ १७

सूर्यस्य मंडलं भित्त्वा यायाद्वै परमं पदम्।
परिव्राट् परमज्ञानी रणे यः सम्मुखे हतः॥ १८

मृत्योर्भयं न कर्तव्यं कदाचित्कुत्रचिद्बुधैः।
अनिवार्यो यतो ह्येष उपायैर्निखिलैरपि॥ १९

मृत्युर्जन्मवतां वीरा देहेन सह जायते।
अद्य वाब्दशतांते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः॥ २०

तब शंकरने अपने गणोंको बाणोंके अन्धकारसे आवृत देखकर शीघ्रतापूर्वक दैत्योंके बाणसमूहोंको काटकर अपने बाणोंसे आकाशको भर दिया॥ ९॥

उन्होंने बाणोंकी आँधीसे दैत्योंको पीड़ित कर दिया और बाणसमूहोंसे दैत्योंको पृथ्वीतलपर गिरा दिया। उन्होंने अपने परशुसे खड्गरोमाका सिर धड़से अलग कर दिया और खट्वांगसे बलाहकके सिरके दो टुकड़े कर दिये। घस्मर नामक दैत्यको पाशमें बाँधकर उसे भूमिपर पटक दिया और अपने त्रिशूलसे महावीर प्रचण्डको काट डाला॥ १०—१२॥

शिवजीके वृषभने कुछको मार डाला, कुछ बाणोंके द्वारा मार दिये गये और कुछ दैत्य सिंहसे पीड़ित हाथियोंकी भाँति स्थित रहनेमें असमर्थ हो गये॥ १३॥

तब क्रोधाविष्ट मनवाला वह महादैत्य जलन्धर शुम्भादि दैत्योंको धिक्कारने लगा और धैर्ययुक्त होकर हँसता हुआ कहने लगा—॥ १४॥

जलन्धर बोला—[पहले शंकरजीसे बोला—] भागकर पीठ दिखाते हुए माताके मलके समान इन दैत्योंको मारनेसे क्या लाभ; क्योंकि भयभीत लोगोंको मारना श्लाघ्य तथा वीरोंके लिये स्वर्गप्रद नहीं होता। यदि युद्ध करनेमें तुम्हारी श्रद्धा है, हृदयमें थोड़ा भी साहस है तथा यदि ग्राम्यसुखमें थोड़ी भी स्पृहा नहीं है, तो मेरे सामने खड़े रहो॥ १५-१६॥

[पुनः अपने वीरोंसे बोला—] युद्धभूमिमें मर जाना अच्छा है, यह सभी कामनाओंका फल देनेवाला, यशकी प्राप्ति करानेवाला तथा विशेषकर मोक्ष देनेवाला भी कहा गया है। जो रणभूमिमें युद्ध करते हुए मारा जाता है, वह संन्यासी एवं परमज्ञानी होता है और सूर्यमण्डलको भेदकर परमपदको प्राप्त करता है। बुद्धिमानोंको कभी भी कहीं भी मृत्युसे भयभीत नहीं होना चाहिये; क्योंकि समस्त उपायोंसे भी इसे रोका नहीं जा सकता है॥ १७—१९॥

हे वीरो! यह मृत्यु तो जन्म लेनेवालोंके शरीरके साथ ही पैदा होती है, वह आज हो अथवा सौ वर्ष बाद हो, प्राणियोंकी मृत्यु तो निश्चित है॥ २०॥

तन्मृत्युभयमुत्सार्य युध्यध्वं समरे मुदा।
सर्वथा परमानन्द इहामुत्राप्यसंशयः॥ २१

इसलिये मृत्युका भय त्यागकर संग्राममें प्रसन्नतापूर्वक युद्ध करो, ऐसा करनेसे इस लोकमें तथा परलोकमें भी निःसन्देह परम आनन्दकी प्राप्ति होती है॥ २१॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा बोधयामास स्ववीरान्बहुशः स हि।
धैर्यं दधुर्न ते भीत्या पलायंतो रणाद् द्रुतम्॥ २२

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] ऐसा कहकर उसने अपने वीरोंको अनेक प्रकारसे समझाया, किंतु वे भयके कारण धैर्य धारण न कर सके और रणसे भागने लगे॥ २२॥

अथ दृष्ट्वा स्वसैन्यं तत्पलायनपरायणम्।
चुक्रोधाति महावीरः सिंधुपुत्रो जलंधरः॥ २३

तब अपनी सेनाको भागती हुई देखकर महाबली सिन्धुपुत्र जलन्धरको बड़ा क्रोध उत्पन्न हो गया॥ २३॥

ततः क्रोधपरीतात्मा क्रोधाद्रुद्रं जलंधरः।
आह्वापयामास रणे तीव्राशनिसमस्वनः॥ २४

इसके बाद क्रोधसे आविष्ट मनवाला वह जलन्धर क्रोधसे वज्रकी ध्वनिके समान कठोर शब्द करके युद्धभूमिमें रुद्रको ललकारने लगा॥ २४॥

जलंधर उवाच

युद्धस्वाद्य मया सार्धं किमेभिर्निहतैस्तव।
यच्च किञ्चिद्बलं तेऽस्ति तद्दर्शय जटाधर॥ २५

जलन्धर बोला—हे जटाधर! तुम आज मेरे साथ युद्ध करो, इन्हें मारनेसे क्या लाभ! यदि तुम्हारे पास कुछ बल है, तो उसे दिखाओ॥ २५॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा बाण सप्तत्या जघान वृषभध्वजम्।
जलंधरो महादैत्यः शंभुमक्लिष्टकारिणम्॥ २६
तानप्राप्तान्महादेवो जलंधरशरान्द्रुतम्।
निजैर्हि निशितैर्बाणैश्चिच्छेद प्रहसन्निव॥ २७
ततो हयान्ध्वजं छत्रं धनुश्चिच्छेद सप्तभिः।
जलंधरस्य दैत्यस्य न तच्चित्रं हरे मुने॥ २८

सनत्कुमार बोले—ऐसा कहकर उस महादैत्य जलन्धरने सत्तर बाणोंसे अक्लिष्टकर्मा वृषभध्वज शिवजीपर प्रहार किया। महादेवजीने अपनेतक न पहुँचे हुए जलन्धरके उन बाणोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे शीघ्र ही हँसते-हँसते काट दिया और सात बाणोंसे उस जलन्धर दैत्यके घोड़े, पताका, छत्र और धनुषको काट गिराया। हे मुने! शंकरके लिये यह अद्भुत बात नहीं थी॥ २६—२८॥

स च्छिन्नधन्वा विरथः पाथोधितनयोऽसुरः।
अभ्यधावच्छिवं क्रुद्धो गदामुद्यम्य वेगवान्॥ २९

तब कटे हुए धनुषवाला तथा रथविहीन वह सिन्धुपुत्र दैत्य जलन्धर गदा लेकर क्रोधके साथ वेगशील होकर शिवजीकी ओर दौड़ा॥ २९॥

प्रभुर्गदां च तत्क्षिप्तां सहसैव महेश्वरः।
पाराशर्य्य महालीलो द्रुतं बाणैर्द्विधाकरोत्॥ ३०

तथापि मुष्टिमुद्यम्य महाक्रुद्धो महासुरः।
अभ्युद्ययौ महावेगाद्रुद्रं तं तज्जिघांसया॥ ३१

हे पराशरपुत्र! तब महान् लीला करनेवाले प्रभु महेश्वरने उसके द्वारा चलायी गयी गदाको शीघ्र ही सहसा दो टुकड़ोंमें कर दिया। फिर भी वह महादैत्य क्रोधमें भरकर अपनी मुष्टिका तानकर उन महादेवको मारनेकी इच्छासे बड़े वेगसे उनपर झपटा॥ ३०-३१॥

तावदेवेश्वरेणाशु बाणौघैः स जलंधरः।
अक्लिष्टकर्मकारेण क्रोशमात्रमपाकृतः॥ ३२
ततो जलंधरो दैत्यो रुद्रं मत्वा बलाधिकम्।

इतनेमें अक्लिष्ट कर्म करनेवाले ईश्वरने अपने बाणसमूहोंसे शीघ्र ही उस जलन्धरको एक कोस पीछे ढकेल दिया। तत्पश्चात् दैत्य जलन्धरने रुद्रको

ससर्ज मायां गांधर्वीमद्भुतां रुद्रमोहिनीम्॥ ३३

तस्य मायाप्रभावात्तु गंधर्वाप्सरसां गणाः।
आविर्भूता अनेके च रुद्रमोहनहेतवे॥ ३४

अपनेसे अधिक बलवान् जानकर उनको मोहित करनेवाली अद्भुत गान्धर्वी मायाका निर्माण किया। उस समय उसकी मायाके प्रभावसे शंकरजीको मोहित करनेके लिये अप्सराओं एवं गन्धर्वोंके अनेक गण प्रकट हो गये॥ ३२—३४॥

ततो जगुश्च ननृतुर्गंधर्वाप्सरसां गणाः।
तालवेणुमृदंगांश्च वादयन्ति स्म चापरे॥ ३५

उसके बाद गन्धर्व तथा अप्सराओंके वे गण नाचने-गाने लगे तथा दूसरे ताल, वेणु और मृदंग बजाने लगे॥ ३५॥

तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं गणै रुद्रो विमोहितः।
पतितान्यपि शस्त्राणि करेभ्यो न विवेद सः॥ ३६

उस महान् आश्चर्यको देखकर रुद्र अपने गणोंके साथ [उस रणभूमिमें] मोहित हो गये। उन्हें अपने हाथसे अस्त्रोंके गिरनेका भी ध्यान न रहा॥ ३६॥

एकाग्रीभूतमालोक्य रुद्रं दैत्यो जलंधरः।
कामतस्स जगामाशु यत्र गौरी स्थिताऽभवत्॥ ३७

युद्धे शुंभनिशुंभाख्यौ स्थापयित्वा महाबलौ।
दशदोर्दण्डपंचास्यस्त्रिनेत्रश्च जटाधरः॥ ३८

महावृषभमारूढस्सर्वथा रुद्रसंनिभः।
आसुर्य्या मायया व्यास स बभूव जलंधरः॥ ३९

इस प्रकार रुद्रको एकाग्रचित्त देखकर कामके वशीभूत वह दैत्य जलन्धर बड़ी शीघ्रतासे वहाँ पहुँचा, जहाँ गौरी विराजमान थीं। हे व्यास! युद्धभूमिमें महाबली शुम्भ तथा निशुम्भको नियुक्तकर तथा स्वयं दस भुजा, पाँच मुख, तीन नेत्र तथा जटा धारणकर, महावृषभपर आरूढ़ हो वह जलन्धर अपनी आसुरी मायाके प्रभावसे सर्वथा शंकरके समान सुशोभित होने लगा॥ ३७—३९॥

अथ रुद्रं समायान्तमालोक्य भववल्लभा।
अभ्याययौ सखीमध्यात्तद्दर्शनपथेऽभवत्॥ ४०

शिवप्रिया पार्वती रुद्रको आते हुए देखकर सखियोंके मध्यसे उसके सामने आकर उपस्थित हो गयीं॥ ४०॥

यावद्ददर्श चार्वंगीं पार्वतीं दनुजेश्वरः।
तावत्स वीर्यं मुमुचे जडांगश्चाभवत्तदा॥ ४१

उस दैत्यराजने ज्यों ही पार्वतीको देखा, उसी समय संयमरहित हो गया और उसके अंग जड़ हो गये॥ ४१॥

अथ ज्ञात्वा तदा गौरी दानवं भयविह्वला।
जगामान्तर्हिता वेगात्सा तदोत्तरमानसम्॥ ४२

तदनन्तर वे गौरी उस दानवको पहचानकर भयसे व्याकुल हो वेगपूर्वक अन्तर्धान होकर उत्तरमानसकी ओर चली गयीं॥ ४२॥

तामदृष्ट्वा ततो दैत्यः क्षणाद्विद्युल्लतामिव।
जवेनागात्पुनर्योद्धुं यत्र देवो महेश्वरः॥ ४३

तत्पश्चात् क्षणमात्रमें ही बिजलीकी लताके समान पार्वतीको न देखकर वह दैत्य पुनः युद्ध करनेके लिये बड़े वेगसे वहाँ पहुँच गया, जहाँ शिवजी थे॥ ४३॥

पार्वत्यपि महाविष्णुं सस्मार मनसा तदा।
तावद्ददर्श तं देवं सोपविष्टं समीपगम्॥ ४४

तं दृष्ट्वा पार्वती विष्णुं जगन्माता शिवप्रिया।
प्रसन्नमनसोवाच प्रणमन्तं कृतांजलिम्॥ ४५

तब पार्वतीने भी मनसे महाविष्णुका स्मरण किया और उन्होंने तत्क्षण अपने समीप उन विष्णुको बैठा हुआ देखा। तदनन्तर जगज्जननी शिवप्रिया पार्वती हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उन विष्णुको देखकर प्रसन्नचित्त हो उनसे कहने लगीं—॥ ४४-४५॥

पार्वत्युवाच

विष्णो जलंधरो दैत्यः कृतवान्परमाद्भुतम्।
तत्किं न विदितं तेऽस्ति चेष्टितं तस्य दुर्मतेः॥ ४६
तच्छ्रुत्वा जगदम्बाया वचनं गरुडध्वजः।
प्रत्युवाच शिवां नत्वा सांजलिर्नम्रकंधरः॥ ४७

पार्वतीजी बोलीं—हे विष्णो! जलन्धर दैत्यने परम आश्चर्यजनक कार्य किया है, क्या आपको उस दुर्बुद्धिकी चेष्टा विदित नहीं है?। तब [भगवान्] गरुड़ध्वजने जगदम्बाका वह वचन सुनकर हाथ जोड़कर सिर झुकाकर शिवाको प्रणामकर कहा— ॥ ४६-४७ ॥

श्रीभगवानुवाच

भवत्याः कृपया देवि तद्वृत्तं विदितं मया।
यदाज्ञापय मां मातस्तत्कुर्य्यां त्वदनुज्ञया॥ ४८

श्रीभगवान् बोले—हे देवि! आपकी कृपासे मुझे वह वृत्तान्त ज्ञात है। हे माता! आप मुझे जो आज्ञा दें, उसे मैं आपके आदेशसे करनेके लिये तत्पर हूँ॥ ४८ ॥

सनत्कुमार उवाच

तच्छ्रुत्वा विष्णुवचनं पुनरप्याह पार्वती।
हृषीकेशं जगन्माता धर्मनीतिं सुशिक्षयन्॥ ४९

सनत्कुमार बोले—विष्णुके इस वचनको सुनकर जगन्माता पार्वती धर्मनीतिकी शिक्षा देती हुई हृषीकेशसे कहने लगीं— ॥ ४९ ॥

पार्वत्युवाच

तेनैव दर्शितः पन्था बुध्यस्व त्वं तथैव हि।
तत्स्त्रीपातिव्रतं धर्मं भ्रष्टं कुरु मदाज्ञया॥ ५०

नान्यथा स महादैत्यो भवेद्वध्यो रमेश्वर।
पातिव्रतसमो नान्यो धर्मोऽस्ति पृथिवीतले॥ ५१

पार्वतीजी बोलीं—उस दैत्यने ही ऐसा मार्ग प्रदर्शित किया है, अब उसीका अनुसरण आप भी कीजिये। मेरी आज्ञासे आप उसकी स्त्रीका पातिव्रत्य भंग कीजिये। हे लक्ष्मीपते! उसके बिना वह महादैत्य नहीं मारा जा सकता है; क्योंकि पातिव्रतधर्मके समान अन्य कोई भी धर्म पृथ्वीतलपर नहीं है॥ ५०-५१ ॥

सनत्कुमार उवाच

इत्यनुज्ञां समाकर्ण्य शिरसाधाय तां हरिः।
छलं कर्त्तुं जगामाशु पुनर्जालंधरं पुरम्॥ ५२

सनत्कुमार बोले—पार्वतीकी यह आज्ञा सुनकर विष्णुजी उसे शिरोधार्य करके छल करनेके लिये शीघ्र ही पुनः जलन्धरकी नगरीकी ओर चले॥ ५२ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलंधरवधोपाख्याने जलंधरयुद्धवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरवधोपाख्यानके अन्तर्गत जलन्धरयुद्धवर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

विष्णुद्वारा माया उत्पन्नकर वृन्दाको स्वप्नके माध्यमसे मोहित करना और स्वयं जलन्धरका रूप धारणकर वृन्दाके पातिव्रतका हरण करना, वृन्दाद्वारा विष्णुको शाप देना तथा वृन्दाके तेजका पार्वतीमें विलीन होना

व्यास उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ वद त्वं वदतां वर।
किमकार्षीद्धरिस्तत्र धर्मं तत्याज सा कथम्॥ १

व्यासजी बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! अब आप बताइये कि विष्णुने वहाँ जाकर क्या किया और उस [स्त्री]-ने अपने धर्मको कैसे छोड़ा?॥ १ ॥

सनत्कुमार उवाच

विष्णुर्जालंधरं गत्वा दैत्यस्य पुटभेदनम्।
पातिव्रत्यस्य भंगाय वृन्दायाश्चाकरोन्मतिम्॥ २
वृन्दां स दर्शयामास स्वप्नं मायाविनां वरः।

सनत्कुमार बोले—दैत्य जलन्धरके नगरमें जाकर विष्णु वृन्दाके पातिव्रतधर्मको नष्ट करनेका विचार करने लगे। मायावियोंमें श्रेष्ठ उन्होंने वृन्दाको

स्वयं तन्नगरोद्यानमास्थितोऽद्भुतविग्रहः॥ ३
अथ वृन्दा तदा देवी तत्पत्नी निशि सुव्रता।
हरेर्मायाप्रभावात्तु दुस्स्वप्नं सा ददर्श ह॥ ४

स्वप्न दिखाया और स्वयं अद्भुत रूप धारण करके उसके नगरके उद्यानमें स्थित हो गये। तब उसकी पतिव्रता पत्नी देवी वृन्दाने विष्णुकी मायाके प्रभावसे रात्रिमें दुःस्वप्न देखा॥ २—४॥

स्वप्नमध्ये हि सा विष्णुमायया प्रददर्श ह।
भर्त्तारं महिषारूढं तैलाभ्यक्तं दिगंबरम्॥ ५
कृष्णप्रसूनभूषाढ्यं क्रव्यादगणसेवितम्।
दक्षिणाशां गतं मुंडं तमसा च वृतं तदा॥ ६

उसने विष्णुकी मायासे स्वप्नमें देखा कि उसका पति भैंसेपर आरूढ़ होकर शरीरमें तेल लगाये हुए नग्न होकर काले पुष्पोंसे विभूषित हो राक्षसोंके साथ दक्षिण दिशाकी ओर जा रहा है, उसका सिर मुँड़ा हुआ है और वह अन्धकारसे ढका हुआ है॥ ५-६॥

स्वपुरं सागरे मग्नं सहसैवात्मना सह।
इत्यादि बहुदुःस्वप्नान्निशांते सा ददर्श ह॥ ७

इसी तरह उसने अपनेको और अपने नगरको समुद्रमें डूबते हुए देखा। इस प्रकार उसने रात्रिके शेष भागमें बहुत प्रकारके दुःस्वप्नोंको देखा॥ ७॥

ततः प्रबुध्य सा बाला तं स्वप्नं स्वं विचिन्वती।
ददर्शोदितमादित्यं सच्छिद्रं निष्प्रभं मुहुः॥ ८

इसके बाद वह बाला जगकर देखे गये अपने स्वप्नोंपर विचार कर ही रही थी कि उसने उदित होते हुए सूर्यको छिद्रयुक्त और निष्प्रभ देखा॥ ८॥

तदनिष्टमिदं ज्ञात्वा रुदंती भयविह्वला।
कुत्रचिन्नाप सा शर्म गोपुराट्टालभूमिषु॥ ९

इन घटनाओंको अनिष्टकारी जानकर वह भयसे विह्वल हो गयी और रोने लगी, उसे द्वार, अट्टालिका आदि कहीं भी शान्ति नहीं मिली॥ ९॥

ततः सखीद्वययुता नगरोद्यानमागमत्।
तत्रापि सा गता बाला न प्राप कुत्रचित्सुखम्॥ १०

तदनन्तर वह अपनी दो सखियोंके साथ नगरके बगीचेमें आयी, परंतु उस बालाको वहाँ भी कुछ शान्ति नहीं मिली॥ १०॥

ततो जलंधरस्त्री सा निर्विण्णोद्विग्नमानसा।
वनाद्वनान्तरं याता नैव वेदात्मना तदा॥ ११

इसके बाद वह जलन्धरकी स्त्री दुःखित होकर घबराती हुई एक वनसे दूसरे वनमें गयी, किंतु वह अपने विषयमें कुछ नहीं समझ पायी॥ ११॥

भ्रमती सा ततो बाला ददर्शातीव भीषणौ।
राक्षसौ सिंहवदनौ दृष्ट्वा दशनभासुरौ॥ १२

घूमती हुई उस बालाने सिंहके समान मुखवाले, चमकते हुए दाढ़ और दाँतवाले भयंकर दो राक्षसोंको देखा॥ १२॥

तौ दृष्ट्वा विह्वलातीव पलायनपरा तदा।
ददर्श तापसं शांतं सशिष्यं मौनमास्थितम्॥ १३

उन दोनोंको देखकर भयसे विह्वल वह ज्यों ही भागने लगी, त्यों ही उसने शिष्यके साथ मौन बैठे हुए शान्त एक तपस्वीको देखा॥ १३॥

ततस्तत्कंठमासाद्य निजां बाहुलतां भयात्।
मुने मां रक्ष शरणमागतास्मीत्यभाषत॥ १४

तदनन्तर भयभीत उसने उन तपस्वीके गलेमें भुजारूपी लताको डालकर कहा—हे मुने! मेरी रक्षा कीजिये, मैं आपकी शरणमें आयी हूँ॥ १४॥

मुनिस्तां विह्वलां दृष्ट्वा राक्षसानुगतां तदा।
हुंकारेणैव तौ घोरौ चकार विमुखौ द्रुतम्॥ १५

दो राक्षसोंद्वारा पीछा की जाती हुई तथा भयसे विह्वल उसको देखकर मुनिने 'हूँ' शब्दसे ही उन दोनों राक्षसोंको शीघ्र भगा दिया॥ १५॥

तद् हुंकारभयत्रस्तौ दृष्ट्वा तौ विमुखौ गतौ।
विस्मितातीव दैत्येन्द्रपत्नी साभून्मुने हृदि॥ १६

हे मुने! उनके हुंकारमात्रसे भयभीत होकर भागते हुए उन दोनों राक्षसोंको देखकर वह दैत्येन्द्रपत्नी वृन्दा अपने मनमें बहुत अधिक विस्मित हो गयी॥ १६॥

ततस्सा मुनिनाथं तं भयान्मुक्ता कृतांजलिः।
प्रणम्य दंडवद्भूमौ वृन्दा वचनमब्रवीत्॥ १७

तदनन्तर भयमुक्त वृन्दाने उन मुनिनाथको हाथ जोड़कर दण्डवत् भूमिपर प्रणामकर यह वचन कहा— ॥ १७॥

वृन्दोवाच

मुनिनाथ दयासिन्धो परपीडानिवारक।
रक्षिताहं त्वया घोराद्भयादस्मात्खलोद्भवात्॥ १८

वृन्दा बोली—हे दयाके सागर! हे मुनिनाथ! हे दूसरोंकी पीड़ाको दूर करनेवाले! इन दुष्टोंके घोर भयसे आपने मेरी रक्षा की है॥ १८॥

समर्थः सर्वथा त्वं हि सर्वज्ञोऽपि कृपानिधे।
किंचिद्विज्ञप्तुमिच्छामि कृपया तन्निशामय॥ १९

हे कृपाके सागर! यद्यपि आप सर्वज्ञ हैं, सर्वथा समर्थ हैं, तथापि मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहती हूँ, कृपया आप उसे सुनें॥ १९॥

जलंधरो हि मद्भर्त्ता रुद्रं योद्धुं गतः प्रभो।
स तत्रास्ते कथं युद्धे तन्मे कथय सुव्रत॥ २०

हे प्रभो! मेरे स्वामी जलन्धर रुद्रसे युद्ध करनेके लिये गये हैं। वे वहाँ युद्धमें कैसे हैं? हे सुव्रत! आप उसे मुझसे कहिये॥ २०॥

सनत्कुमार उवाच

मुनिस्तद्वाक्यमाकर्ण्य मौनं कपटमास्थितः।
कर्त्तुं स्वार्थं विधानज्ञः कृपयोर्ध्वमवैक्षत॥ २१

सनत्कुमार बोले—उसके वाक्यको सुनकर कपट करके मौन बैठा हुआ तथा स्वार्थको सिद्ध करनेमें कुशल वह मुनि कृपा करके ऊपरकी ओर देखने लगा॥ २१॥

तावत्कपीशावायातौ तं प्रणम्याग्रतः स्थितौ।
ततस्तद्भ्रूलतासंज्ञानियुक्तौ गगनं गतौ॥ २२

उसी समय दो बन्दर आये और उसको प्रणामकर सामने खड़े हो गये। इसके बाद उनकी भौंहोंके इशारेसे नियुक्त होकर वे आकाशकी ओर चले गये॥ २२॥

नीत्वा क्षणार्द्धमागत्य पुनस्तस्याग्रतः स्थितौ।
तस्यैव कं कबंधं च हस्तावास्तां मुनीश्वर॥ २३

हे मुनीश्वर! आधे क्षणमें ही लौटकर जलन्धरके मस्तक, धड़ और दोनों हाथोंको लेकर वे उसके सामने खड़े हो गये॥ २३॥

शिरः कबंधं हस्तौ तौ दृष्ट्वाब्धितनयस्य सा।
पपात मूर्च्छिता भूमौ भर्तृव्यसनदुःखिता॥ २४

वह वृन्दा सिन्धुनन्दन जलन्धरके सिर, धड़ और दोनों हाथोंको देखकर पतिके दुःखसे दुखित तथा मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़ी [और विलाप करने लगी]॥ २४॥

वृन्दोवाच

यः पुरा सुखसंवादैर्विनोदयसि मां प्रभो।
स कथं न वदस्यद्य वल्लभां मामनागसाम्॥ २५

वृन्दा बोली—हे प्रभो! जो आप पहले सुखकी बात सुनाकर मुझे प्रसन्न किया करते थे, वही आज आप अपनी निरपराध पत्नीसे बोलते क्यों नहीं हैं?॥ २५॥

येन देवाः सगंधर्वा निर्जिता विष्णुना सह।
कथं स तापसेनाद्य त्रैलोक्यविजयी हतः॥ २६

अहो! जिन्होंने पहले गन्धर्वोंके साथ विष्णु और देवताओंको भी पराजित कर दिया था, वे ही त्रैलोक्यविजयी आज एक तपस्वीसे कैसे मारे गये हैं?॥ २६॥

नांगीकृतं हि मे वाक्यं रुद्रतत्त्वमजानता।
परं ब्रह्म शिवश्चेति वदन्त्या दैत्यसत्तम॥ २७

हे दैत्यश्रेष्ठ! मैंने आपसे पूर्वमें कहा था कि शिव परब्रह्म हैं, परंतु आपने रुद्रके तत्त्वको न जानकर मेरे उस वाक्यको स्वीकार नहीं किया॥ २७॥

ततस्त्वं हि मया ज्ञातस्तव सेवाप्रभावतः।
गर्वितेन त्वया नैव कुसंगवशगेन हि॥ २८

आपकी सेवाके प्रभावसे मैंने जान लिया था कि आप कुसंगके वशीभूत होकर गर्वके कारण मेरी बात नहीं मान रहे हैं॥ २८॥

इत्थं प्रभाष्य बहुधा स्वधर्मस्था च तत्प्रिया।
विललाप विचित्रं सा हृदयेन विदूयता॥ २९

अपने धर्ममें परायण जलन्धरकी पत्नी इस प्रकार कह-कहकर दुखित हृदयसे अनेक प्रकारसे विलाप करने लगी॥ २९॥

ततः सा धैर्यमालंब्य दुःखोच्छ्वासान्विमुञ्चती।
उवाच मुनिवर्यं तं सुप्रणम्य कृताञ्जलिः॥ ३०

तदनन्तर दुःखसे उच्छ्वास छोड़ती हुई तथा धैर्य धारणकर वह वृन्दा उन मुनिश्रेष्ठको प्रणामकर हाथ जोड़कर बोली—॥ ३०॥

कृपानिधे मुनिश्रेष्ठ परोपकरणादर।
मयि कृत्वा कृपां साधो जीवयैनं मम प्रभुम्॥ ३१

हे कृपानिधे! हे मुनिश्रेष्ठ! दूसरेका उपकार करनेमें ही आपका आदर है। इसलिये मुझपर कृपा करके हे साधो! मेरे इस स्वामीको आप जीवित कर दें॥ ३१॥

यत्त्वमस्य पुनः शक्तो जीवनाय मतो मम।
अतः संजीवयैनं मे प्राणनाथं मुनीश्वर॥ ३२

हे मुनीश्वर! मैं समझती हूँ कि आप पुनः इनको जीवित करनेमें समर्थ हैं, इसलिये मेरे प्राणनाथको आप जीवित कर दें॥ ३२॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा दैत्यपत्नी सा पातिव्रत्यपरायणा।
पादयोः पतिता तस्य दुःखश्वासान् विमुञ्चती॥ ३३

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार कहकर पातिव्रतधर्ममें तत्पर वह दैत्यपत्नी दुःखसे श्वास छोड़ती हुई उनके पैरोंपर गिर पड़ी॥ ३३॥

मुनिरुवाच

नायं जीवयितुं शक्तो रुद्रेण निहतो युधि।
रुद्रेण निहता युद्धे न जीवन्ति कदाचन॥ ३४

मुनि बोले—यह युद्धमें रुद्रके द्वारा मारा गया है, इसलिये इसको जिलानेमें मैं समर्थ नहीं हूँ; क्योंकि रुद्रके द्वारा युद्धमें मारा गया व्यक्ति कभी जीवित नहीं होता॥ ३४॥

तथापि कृपयाविष्ट एनं संजीवयाम्यहम्।
रक्ष्याः शरणगाश्चेति जानन्धर्मं सनातनम्॥ ३५

तथापि शरणागतकी रक्षा करनी चाहिये, इस शाश्वत धर्मको जानता हुआ मैं कृपासे युक्त होकर इसे जीवित कर देता हूँ॥ ३५॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा स मुनिस्तस्या जीवयित्वा पतिं मुने।
अंतर्दधे ततो विष्णुः सर्वमायाविनां वरः॥ ३६

सनत्कुमार बोले—हे मुने! सभी मायावियोंमें श्रेष्ठ वे मुनिरूपी विष्णु ऐसा कहकर उसके पतिको जीवित करके वहाँसे अन्तर्धान हो गये॥ ३६॥

द्रुतं स जीवितस्तेनोत्थितः सागरनन्दनः।
वृन्दामालिंग्य तद्वक्त्रं चुचुम्ब प्रीतमानसः॥ ३७

उनके द्वारा जीवित समुद्रपुत्र जलन्धर भी शीघ्र उठकर प्रसन्नमनसे वृन्दाका आलिंगनकर उसके मुखका स्पर्श करने लगा॥ ३७॥

अथ वृन्दापि भर्तारं दृष्ट्वा हर्षितमानसा।
जहौ शोकं च निखिलं स्वप्नवद् हृद्यमन्यत॥ ३८

पतिको देखकर वृन्दाने हर्षित मनसे सभी प्रकारके शोकका परित्याग कर दिया और इस घटनाको स्वप्नके समान समझा॥ ३८॥

अथ प्रसन्नहृदया सा हि संजातहृच्छया।
रेमे तद्वनमध्यस्था तद्युक्ता बहुवासरान्॥ ३९

वह प्रसन्नचित्तसे कामका उदय होनेपर उस वनके मध्यमें ही उसके साथ बहुत दिनोंतक विहार करती रही॥ ३९॥

कदाचित्सुरतस्यांते दृष्ट्वा विष्णुं तमेव हि।
निर्भर्त्स्य क्रोधसंयुक्ता वृन्दा वचनमब्रवीत्॥ ४०

एक बार सहवासके अन्तमें उसको विष्णुके रूपमें जानकर क्रोधसे युक्त होकर फटकारती हुई वृन्दा यह वचन बोली—॥ ४०॥

वृन्दोवाच

धिक् तदेवं हरे शीलं परदाराभिगामिनः।
ज्ञातोऽसि त्वं मया सम्यङ्मायी प्रत्यक्षतापसः॥ ४१

वृन्दा बोली—अरे परस्त्रीगामी हरि! तुम्हारे इस प्रकारके चरित्रको धिक्कार है। मैंने तुमको अच्छी प्रकारसे जान लिया है। तुमने ही मायाका आश्रय लेकर तपस्वीका वेष धारण किया था॥ ४१॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा क्रोधमापन्ना दर्शयन्ती स्वतेजसम्।
शशाप केशवं व्यास पातिव्रत्यरता च सा॥ ४२

सनत्कुमार बोले—हे व्यास! पातिव्रतपरायण उस वृन्दाने ऐसा कहकर क्रोधयुक्त होकर अपने तेजको दिखाते हुए विष्णुको शाप दे दिया॥ ४२॥

रे महाधम दैत्यारे परधर्मविदूषक।
गृह्णीष्व शठ मद्दत्तं शापं सर्वविषोल्बणम्॥ ४३

रे महाधम! दैत्यशत्रु! तुम दूसरेके धर्मको दूषित करनेवाले हो, इसलिये अरे शठ! सभी प्रकारके विषोंसे तीव्र मेरे द्वारा दिये गये शापको ग्रहण करो॥ ४३॥

यौ त्वया मायया ख्यातौ स्वकीयौ दर्शितौ मम।
तावेव राक्षसौ भूत्वा भार्यां तव हरिष्यतः॥ ४४

तुमने अपनी मायासे जिन दो पुरुषोंको दिखाया था, वे ही दोनों राक्षस बनकर तुम्हारी पत्नीका हरण करेंगे॥ ४४॥

त्वं चापि भार्यादुःखार्तो वने कपिसहायवान्।
भ्रम सर्पेश्वरेणायं यस्ते शिष्यत्वमागतः॥ ४५

तुम भी पत्नीके दुःखसे दुखित होकर वानरोंकी सहायता लेकर वनमें भटकते हुए घूमो और यह जो सर्पोंका स्वामी (शेषनाग) तुम्हारा शिष्य बना था, यह भी तुम्हारे साथ भ्रमण करे॥ ४५॥

इत्युक्त्वा सा तदा वृन्दा प्राविशद्धव्यवाहनम्।
विष्णुना वार्यमाणापि तत्स्थितासक्तचेतसा॥ ४६

ऐसा कहकर वह वृन्दा उस समय विष्णुके द्वारा रोके जानेपर भी अपने पति जलन्धरका मनमें ध्यान करते हुए अग्निमें प्रवेश कर गयी॥ ४६॥

तस्मिन्नवसरे देवा ब्रह्माद्या निखिला मुने।
आगताः खे समं दारैः सद्गतिं वै दिदृक्षवः॥ ४७

हे मुने! उस समय उसकी उत्तम गतिको देखनेकी इच्छावाले ब्रह्मा आदि सभी देवता अपनी भार्याओंके साथ आकाशमण्डलमें स्थित हो गये॥ ४७॥

अथ दैत्येन्द्रपत्न्यास्तु तज्ज्योतिःपरमं महत्।
पश्यतां सर्वदेवानामलोकमगमद्द्रुतम्॥ ४८

शिवातनौ विलीनं तद्वृन्दातेजो बभूव ह।
आसीज्जयजयारावः खस्थितामरपंक्तिषु॥ ४९

उस समय दैत्येन्द्रपत्नीकी वह परम ज्योति देवताओंके देखते-देखते ही शीघ्र अदृष्ट हो गयी और शिवा पार्वतीके शरीरमें उस वृन्दाका तेज विलीन हो गया। उस समय आकाशमें स्थित देवताओंने जय-जयकी ध्वनि की॥ ४८-४९॥

एवं वृन्दा महाराज्ञी कालनेमिसुतोत्तमा।
पातिव्रत्यप्रभावाच्च मुक्तिं प्राप परां मुने॥ ५०

हे मुने! इस प्रकार कालनेमिकी श्रेष्ठ पुत्री महारानी वृन्दाने पातिव्रतके प्रभावसे परा मुक्तिको प्राप्त किया॥ ५०॥

ततो हरिस्तामनुसंस्मरन्मुहु-
र्वृन्दाचिताभस्मरजोऽवगुंठितः ।
तत्रैव तस्थौ सुरसिद्धसंघकैः
प्रबोध्यमानोऽपि ययौ न शांतिम्॥ ५१

उस समय हरिने उसका स्मरणकर उसकी चिताकी भस्मधूलिको धारण कर लिया, देवता और सिद्धोंके ज्ञान देनेपर भी उनको कुछ शान्ति नहीं मिली और वे वहींपर स्थित हो गये॥ ५१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलंधरवधोपाख्याने वृन्दापातिव्रतभंगदेहत्यागवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरवधोपाख्यानके अन्तर्गत वृन्दापातिव्रतभंग और देहत्यागवर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

दैत्यराज जलन्धर तथा भगवान् शिवका घोर संग्राम, भगवान् शिवद्वारा चक्रसे जलन्धरका शिरश्छेदन, जलन्धरका तेज शिवमें प्रविष्ट होना, जलन्धर-वधसे जगत्‌में सर्वत्र शान्तिका विस्तार

व्यास उवाच

विधेः श्रेष्ठसुत प्राज्ञ कथेयं श्राविताद्भुता।
ततश्च किमभूदाजौ कथं दैत्यो हतो वद॥ १

व्यासजी बोले— ब्रह्माजीके श्रेष्ठ पुत्र परम बुद्धिमान् हे सनत्कुमारजी! आपने इस परम अद्भुत कथाका श्रवण कराया। इसके बाद क्या हुआ, उस युद्धमें वह दैत्य जलन्धर किस प्रकार मारा गया, इसे कहिये॥ १॥

सनत्कुमार उवाच

अदृश्य गिरिजां तत्र दैत्येन्द्रे रणमागते।
गांधर्वे च विलीने हि चैतन्योऽभूद्वृषध्वजः॥ २

अंतर्धानगतां मायां दृष्ट्वा बुद्धो हि शंकरः।
चुक्रोधातीव संहारी लौकिकीं गतिमाश्रितः॥ ३

सनत्कुमार बोले— जब वह दैत्यपति जलन्धर पार्वतीको न देखकर युद्धभूमिमें लौट आया और गान्धर्वी माया विलीन हो गयी, तब वृषभध्वज भगवान् शंकर चैतन्य हुए। मायाके अन्तर्धान हो जानेपर भगवान् शंकरको ज्ञान हुआ, तदनन्तर संहार करनेवाले शंकर लौकिक गतिका आश्रय लेकर अत्यधिक क्रुद्ध हुए॥ २-३॥

ततः शिवो विस्मितमानसः पुन-
र्जगाम युद्धाय जलंधरं रुषा।
स चापि दैत्यः पुनरागतं शिवं
दृष्ट्वा शरोघैः समवाकिरद्रणे॥ ४

इसके बाद शिवजी विस्मितमन तथा क्रुद्ध होकर जलन्धरसे युद्ध करनेके लिये चल दिये। उस दैत्यने भी शिवजीको पुनः आता हुआ देखकर उनपर बाणोंकी वर्षा करना प्रारम्भ कर दिया॥ ४॥

क्षिप्तं प्रभुस्तं शरजालमुग्रं
जलंधरेणातिबलीयसा हरः।
द्रुतं प्रचिच्छेदशरैर्वरैर्निजै-
र्न चित्रमत्र त्रिभवप्रहन्तुः॥ ५

ततो जलंधरो दृष्ट्वा रुद्रमद्भुतविक्रमम्।
चकार मायया गौरीं त्र्यम्बकं मोहयन्निव॥ ६

प्रभु शिवजीने बलशाली उस जलन्धरके द्वारा छोड़े गये उग्र बाणोंको अपने श्रेष्ठ बाणोंसे बड़ी शीघ्रतासे काटकर गिरा दिया। त्रिभुवन-संहारकर्ता शिवके लिये यह कोई अद्भुत बात नहीं हुई। तदनन्तर अद्भुत पराक्रमवाले शंकरजीको देखकर जलन्धरने उन्हें मोहित करनेके लिये मायाकी पार्वती बनायी॥ ५-६॥

रथोपरि गतां बद्धां रुदन्तीं पार्वतीं शिवः।
निशुंभशुंभदैत्यैश्च वध्यमानां ददर्श सः॥ ७
गौरीं तथाविधां दृष्ट्वा लौकिकीं दर्शयन् गतिम्।
बभूव प्राकृत इव शिवोऽप्युद्विग्नमानसः॥ ८

शिवजीने रथपर स्थित, बँधी हुई, विलाप करती हुई एवं शुम्भ तथा निशुम्भके द्वारा मारी जाती हुई पार्वतीको देखा। तब उस स्थितिवाली पार्वतीको देखकर लौकिक गति प्रदर्शित करते हुए शिवजी सामान्यजनोंकी तरह अत्यन्त व्याकुल हो उठे॥ ७-८॥

अवाङ्मुखस्थितस्तूष्णीं नानालीलाविशारदः।
शिथिलांगो विषण्णात्मा विस्मृत्य स्वपराक्रमम्॥ ९

उस समय अनेक प्रकारकी लीलाओंमें प्रवीण शंकरजीके अंग शिथिल हो गये और अपना पराक्रम भूलकर वे दुखी होकर मुख नीचे करके मौन हो गये॥ ९॥

ततो जलंधरो वेगात् त्रिभिर्विव्याध सायकैः।
आपुंखमग्नैस्तं रुद्रं शिरस्युरसि चोदरे॥ १०
ततो रुद्रो महालीलो ज्ञाततत्त्वः क्षणात्प्रभुः।
रौद्ररूपधरो जातो ज्वालामालातिभीषणः॥ ११
तस्यातीव महारौद्ररूपं दृष्ट्वा महासुराः।
न शेकुः प्रमुखे स्थातुं भेजिरे ते दिशो दश॥ १२

उसके बाद जलन्धरने पुंखतक धँसनेवाले तीन बाणोंसे वेगपूर्वक शिवजीके सिर, हृदय तथा उदरप्रदेशपर प्रहार किया। तब महालीला करनेवाले तथा ज्ञानतत्त्ववाले भगवान् रुद्रने क्षणभरमें अग्निज्वालाके समूहसे युक्त अत्यन्त भयंकर रौद्ररूप धारण कर लिया। उनके इस अतिमहारौद्ररूपको देखकर महादैत्यगण सम्मुख खड़े रहनेमें असमर्थ हो गये और दसों दिशाओंमें भागने लगे॥ १०—१२॥

निशुंभशुंभावपि यौ विख्यातौ वीरसत्तमौ।
अपि तौ शेकतुर्नैव रणे स्थातुं मुनीश्वर॥ १३
जलंधरकृता मायान्तर्हिताभूच्च तत्क्षणम्।
हाहाकरो महानासीत्संग्रामे सर्वतोमुखे॥ १४
ततः शापं ददौ रुद्रस्तयोः शुंभनिशुंभयोः।
पलायमानौ तौ दृष्ट्वा धिक्कृत्य क्रोधसंयुतः॥ १५

हे मुनीश्वर! उस समय वीरोंमें विख्यात महावीर जो शुम्भ एवं निशुम्भ थे, वे भी रणमें स्थित न रह सके। जलन्धरके द्वारा रची गयी माया क्षणभरमें विलुप्त हो गयी। उस संग्राममें चारों ओर महान् हाहाकार होने लगा। तब उन दोनोंको भागते हुए देखकर क्रुद्ध हुए रुद्रने धिक्कारकर उन शुम्भ-निशुम्भको इस प्रकार शाप दिया—॥ १३—१५॥

रुद्र उवाच

युवां दुष्टावतिखलावपराधकरौ मम।
पार्वतीदंडदातारौ रणादस्मात्पराङ्मुखौ॥ १६

रुद्र बोले—तुम दोनों दैत्य महान् दुष्ट हो, तुम दोनों पार्वतीको दण्ड देनेवाले हो, मेरा महान् अपराध करनेवाले हो और इस संग्रामसे भाग रहे हो॥ १६॥

पराङ्मुखो न हन्तव्य इति वध्यौ न मे युवाम्।
मम युद्धादतिक्रांतौ गौर्या वध्यौ भविष्यतः॥ १७
एवं वदति गौरीशे सिन्धुपुत्रो जलंधरः।
चुक्रोधातीव रुद्राय ज्वलज्ज्वलनसन्निभः॥ १८

युद्धसे भागनेवालेको नहीं मारना चाहिये, अतः मैं तुम दोनोंका वध नहीं करूँगा, किंतु गौरी मेरे युद्धसे भागे हुए तुम दोनोंका वध अवश्य करेंगी। अभी शंकरजी यह बात कह ही रहे थे कि जलती हुई अग्निके समान समुद्रपुत्र जलन्धर अत्यधिक क्रुद्ध हो उठा॥ १७-१८॥

रुद्रे रणे महावेगाद्ववर्ष निशितान् शरान्।
बाणांधकारसंछन्नं तथा भूमितलं ह्यभूत्॥ १९

उसने बड़े वेगके साथ शिवजीपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करना प्रारम्भ कर दिया, जिससे पृथ्वीतल बाणोंके अन्धकारसे ढँक गया॥ १९॥

यावद् रुद्रः प्रचिच्छेद तस्य बाणगणान् द्रुतम्।
तावत्स परिघेणाशु जघान वृषभं बली॥ २०

अभी रुद्र उसके बाणोंको काटनेमें लगे ही थे कि इतनेमें उस बलशालीने परिघसे वृषभपर प्रहार किया॥ २०॥

वृषस्तेन प्रहारेण परावृत्तो रणांगणात्।
रुद्रेण कृश्यमाणोऽपि न तस्थौ रणभूमिषु॥ २१

अथ लोके महारुद्रः स्वीयं तेजोऽतिदुःसहम्।
दर्शयामास सर्वस्मै सत्यमेतन्मुनीश्वर॥ २२

ततः परमसंक्रुद्धो रुद्रो रौद्रवपुर्धरः।
प्रलयानलवद् घोरो बभूव सहसा प्रभुः॥ २३

उस प्रहारसे आहत हुआ वृषभ रणभूमिसे पीछेकी ओर हटने लगा। शंकरजीके द्वारा खींचे जानेपर भी वह युद्धभूमिमें स्थित न रह सका। हे मुनीश्वर! उस समय महारुद्रने सभीके लिये अति दुःसह अपना तेज लोकमें दिखाया—यह सत्य है। उन प्रभु रुद्रने अत्यधिक क्रुद्ध होकर रौद्ररूप धारण कर लिया और वे सहसा प्रलयकालकी अग्निके समान अत्यन्त भयंकर हो गये॥ २१—२३॥

दृष्ट्वा पुरःस्थितं दैत्यं मेरुकूटमिव स्थितम्।
अवध्यत्वमपि श्रुत्वाप्यन्यैरभ्युद्यतोऽभवत्॥ २४

मेरुशृंगके समान अचल उस दैत्यको अपने आगे स्थित देखकर तथा उसे दूसरेसे अवध्य जानकर वे स्वयं उस दैत्यको मारनेके लिये उद्यत हो गये॥ २४॥

ब्रह्मणो वचनं रक्षन् रक्षको जगतां प्रभुः।
हृदानुग्रहमातन्वंस्तद्वधाय मनो दधत्॥ २५

जगत्की रक्षा करनेवाले उन महाप्रभुने ब्रह्माके वचनकी रक्षा करते हुए और हृदयमें दयाका भाव रखते हुए उस दैत्यके वधके लिये मनमें निश्चय किया॥ २५॥

कोपं कृत्वा परं शूली पादांगुष्ठेन लीलया।
महांभसि चकाराशु रथांगं रौद्रमद्भुतम्॥ २६

उस समय क्रोध करके अपनी लीलासे त्रिशूलधारी भगवान् शंकरने महासमुद्रमें अपने पैरके अँगूठेसे शीघ्र ही भयानक तथा अद्भुत रथ-चक्रका निर्माण किया॥ २६॥

कृत्वार्णवांभसि शितं भगवान् रथाङ्गं
स्मृत्वा जगत्त्रयमनेन हतं पुरारिः।
दक्षान्धकांतकपुरत्रययज्ञहंता
लोकत्रयांतककरः प्रहसन्नुवाच॥ २७

उन्होंने उस महासमुद्रमें अत्यन्त जाज्वल्यमान रथचक्रका निर्माण करके तथा यह स्मरणकर कि निश्चय ही इससे तीनों लोकोंका वध किया जा सकता है, वे दक्ष, अन्धक, त्रिपुर तथा यज्ञका विनाश करनेवाले भगवान् शंकर हँसते हुए बोले—॥ २७॥

महारुद्र उवाच

पादेन निर्मितं चक्रं जलंधर महाम्भसि।
बलवान्यदि चोद्धर्त्तुं तिष्ठ योद्धुं न चान्यथा॥ २८

महारुद्र बोले—हे जलन्धर! मैंने महासमुद्रमें अपने पैरके अँगूठेसे इस चक्रका निर्माण किया है, यदि तुम बलवान् हो तो इस चक्रको पानीके बाहर करके मुझसे युद्ध करनेके लिये ठहरो, अन्यथा भाग जाओ॥ २८॥

सनत्कुमार उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा क्रोधेनादीप्तलोचनः।
प्रदहन्निव चक्षुर्भ्यां प्राहालोक्य स शंकरम्॥ २९

सनत्कुमार बोले—उनके उस वचनको सुनकर जलन्धरकी आँखें क्रोधसे जलने लगीं और वह अपने क्रोधभरे नेत्रोंसे शंकरजीको जलाता हुआ-सा उनकी ओर देखकर कहने लगा—॥ २९॥

जलंधर उवाच

रेखामुद्धृत्य हत्वा च सगणं त्वां हि शंकर।
हत्वा लोकान्सुरैः सार्धं स्वभागं गरुडो यथा॥ ३०

हन्तुं चराचरं सर्वं समर्थोऽहं सवासवम्।
को महेश्वर मद्बाणैरभेद्यो भुवनत्रये॥ ३१

जलन्धर बोला—हे शंकर! मैं रेखाके समान इस चक्र सुदर्शनको उठाकर गणोंसहित तुम्हारा एवं देवताओंके साथ समस्त लोकोंका वधकर गरुड़के समान अपना भाग ग्रहण करूँगा। हे महेश्वर! मैं इन्द्रसहित चर-अचर सभीका नाश करनेमें समर्थ हूँ। इस त्रिलोकीमें ऐसा कौन है, जो मेरे बाणोंके द्वारा अभेद्य हो?॥ ३०-३१॥

बालभावेन भगवांस्तपसैव विनिर्जितः।
ब्रह्मा बलिष्ठः स्थाने मे मुनिभिः सुरपुङ्गवैः॥ ३२

मैंने अपनी बाल्यावस्थामें ही तपस्याके प्रभावसे भगवान् ब्रह्माको भी जीत लिया था और वे बलवान् ब्रह्मा मुनियों एवं देवताओंके साथ मेरे घरमें हैं॥ ३२॥

दग्धं क्षणेन सकलं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
तपसा किं त्वया रुद्र निर्जितो भगवानपि॥ ३३

हे रुद्र! मैंने चराचरसहित सम्पूर्ण त्रिलोकीको क्षणमात्रमें जला दिया और अपनी तपस्यासे भगवान् विष्णुको भी जीत लिया है, फिर मैं तुम्हें क्या समझता हूँ?॥ ३३॥

इन्द्राग्नियमवित्तेशवायुवारीश्वरादयः ।
न सेहिरे यथा नागा गंधं पक्षिपतेरिव॥ ३४

इन्द्र, अग्नि, यम, कुबेर, वायु, वरुण आदि भी मेरे पराक्रमको उसी प्रकार नहीं सह सकते, जिस प्रकार सर्प गरुड़की गन्धको भी सहन नहीं कर सकते॥ ३४॥

न लब्धं दिवि भूमौ च वाहनं मम शंकर।
समस्तान्पर्वतान्प्राप्य धर्षिताश्च गणेश्वराः॥ ३५

गिरीन्द्रो मन्दरः श्रीमान्नीलो मेरुः सुशोभनः।
धर्षितो बाहुदण्डेन कण्ड्वा उत्सर्पणाय मे॥ ३६

हे शंकर! स्वर्ग तथा भूलोकमें मेरे लिये कोई वाहन नहीं मिला, मैंने समस्त पर्वतोंपर जाकर सभी गणेश्वरोंको परास्त किया है। मैंने अपनी खुजली मिटानेके लिये पर्वतराज हिमालय, मन्दर, शोभामय नीलपर्वत तथा सुन्दर मेरु पर्वतको अपने बाहुदण्डसे घिस डाला है॥ ३५-३६॥

गंगा निरुद्धा बाहुभ्यां लीलार्थं हिमवद्गिरौ।
अरीणां मम भृत्यैश्च जयो लब्धो दिवौकसाम्॥ ३७

वडवाया मुखं बद्धं गृहीत्वा तां करेण तु।
तत्क्षणादेव सकलमेकार्णवमभूत्तदा॥ ३८

ऐरावतादयो नागाः क्षिप्ताः सिन्धुजलोपरि।
सरथो भगवानिन्द्रः क्षिप्तश्च शतयोजनम्॥ ३९

मैंने हिमालय पर्वतपर लीला करनेहेतु अपनी भुजाओंसे गंगाजीको रोक दिया था। मेरे भृत्योंने शत्रु देवताओंपर विजय प्राप्त की है। मैंने बड़वानलका मुख अपने हाथोंसे पकड़कर जब बन्द कर दिया, उसी क्षण सम्पूर्ण जगत् जलमय हो गया था। मैंने ऐरावत आदि हाथियोंको समुद्रके जलपर फेंक दिया तथा रथसहित भगवान् इन्द्रको सैकड़ों योजन दूर फेंक दिया॥ ३७—३९॥

गरुडोऽपि मया बद्धो नागपाशेन विष्णुना।
उर्वश्याद्या मयानीता नार्यः कारागृहांतरम्॥ ४०

मां न जानासि रुद्र त्वं त्रैलोक्यजयकारिणम्।
जलंधरं महादैत्यं सिंधुपुत्रं महाबलम्॥ ४१

मैंने विष्णुजीके सहित गरुड़को भी नागपाशमें बाँध लिया तथा उर्वशी आदि अप्सराओंको अपने कारागारमें बन्दी बना लिया। हे रुद्र! त्रिलोकीपर विजय प्राप्त करनेवाले मुझ सिन्धुपुत्र महाबलवान् महादैत्य जलन्धरको तुम नहीं जानते॥ ४०-४१॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वाथ महादेवं तदा वारिधिनन्दनः।
न चचाल न सस्मार निहतान्दानवान्युधि॥ ४२

दुर्मदेनाविनीतेन दोर्भ्यामास्फोट्य दोर्बलात्।
तिरस्कृतो महादेवो वचनैः कटुकाक्षरैः॥ ४३

सनत्कुमार बोले—उस समय महादेवसे ऐसा कहकर उस समुद्रपुत्र [जलन्धर]-ने युद्धमें मारे गये दानवोंका स्मरण नहीं किया और न तो वह [इधर-उधर] हिला-डुला ही। उस दुर्विनीत एवं मदान्ध दैत्यने दोनों बाहुओंको ठोककर अपने बाहुबलसे तथा कटु वचनोंसे रुद्रका अपमान किया॥ ४२-४३॥

तच्छ्रुत्वा दैत्यवचनममंगलमतीरितम्।
विजहास महादेवः परमं क्रोधमादधे॥ ४४

उस दुष्टके द्वारा कहे गये अमंगल वचनको सुनकर महादेव हँसे तथा बहुत क्रोधित हो गये॥ ४४॥

सुदर्शनाख्यं यच्चक्रं पादांगुष्ठविनिर्मितम्।
जग्राह तत्करे रुद्रस्तेन हन्तुं समुद्यतः॥ ४५

उन्होंने अपने पैरके अँगूठेसे जिस सुदर्शन नामक चक्रका निर्माण किया था, उसको अपने हाथमें ले लिया और उससे उसको मारनेके लिये रुद्र उद्यत हो गये॥ ४५॥

सुदर्शनाख्यं तच्चक्रं चिक्षेप भगवान्हरः।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं प्रलयानलसन्निभम्॥ ४६

प्रदहद्रोदसी वेगात्तदासाद्य जलंधरम्।
जहार तच्छिरो वेगान्महदायतलोचनम्॥ ४७

भगवान् शिवने प्रलयकालकी अग्निके सदृश एवं करोड़ों सूर्योंके समान देदीप्यमान उस सुदर्शन-चक्रको उसपर फेंका। आकाश तथा भूमिको प्रज्वलित करते हुए उस चक्रने वेगसे जलन्धरके पास आकर बड़े-बड़े नेत्रोंवाले उसके सिरको वेगपूर्वक काट दिया॥ ४६-४७॥

रथात्कायः पपातोर्व्यां नादयन्वसुधातलम्।
शिरश्चाप्यब्धिपुत्रस्य हाहाकारो महानभूत्॥ ४८

उस सिन्धुपुत्र दैत्यका शरीर एवं सिर भूतलको नादित करता हुआ रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा और चारों ओर महान् हाहाकार होने लगा॥ ४८॥

द्विधा पपात तद्देहो ह्यंजनाद्रिरिवाचलः।
कुलिशेन यथा वारांनिधौ गिरिवरो द्विधा॥ ४९

काले पहाड़के समान उसका शरीर दो टुकड़े होकर उसी प्रकार गिर पड़ा, जैसे वज्रके प्रहारसे अति विशाल पर्वत दो टुकड़े होकर समुद्रमें गिर पड़ता है॥ ४९॥

तस्य रौद्रेण रक्तेन सम्पूर्णमभवज्जगत्।
ततः समस्ता पृथिवी विकृताभून्मुनीश्वर॥ ५०

तद्रक्तमखिलं रुद्रनियोगान्मांसमेव च।
महारौरवमासाद्य रक्तकुंडमभूदिह॥ ५१

हे मुनीश्वर! उसके भयंकर रक्तसे सारा जगत् व्याप्त हो गया और उससे पृथ्वी [लाल हो जानेसे] विकृत हो गयी। शिवजीकी आज्ञासे उसका सम्पूर्ण रक्त एवं मांस महारौरव [नरक]-में जाकर रक्तका कुण्ड बन गया॥ ५०-५१॥

तत्तेजो निर्गतं देहाद् रुद्रे च लयमागमत्।
वृन्दादेहोद्भवं यद्वद्गौर्य्यां हि विलयं गतम्॥ ५२

जलंधरं हतं दृष्ट्वा देवगन्धर्वपन्नगाः।
अभवन्सुप्रसन्नाश्च साधु देवेति चाब्रुवन्॥ ५३

उसके शरीरसे निकला हुआ तेज शंकरमें उसी प्रकार समा गया, जिस प्रकार वृन्दाके शरीरसे उत्पन्न तेज गौरीमें प्रविष्ट हो गया था। जलन्धरको मरा हुआ देखकर उस समय देव, गन्धर्व तथा नागगण अत्यन्त प्रसन्न हो उठे और शंकरजीको साधुवाद देने लगे॥ ५२-५३॥

सर्वे प्रसन्नतां याता देवसिद्धमुनीश्वराः।
पुष्पवृष्टिं प्रकुर्वाणास्तद्यशो जगुरुच्चकैः॥ ५४

देवांगना महामोदान्ननृतुः प्रेमविह्वलाः।
कलस्वराः कलपदं किन्नरैः सह संजगुः॥ ५५

सभी देव, सिद्ध एवं मुनीश्वर भी प्रसन्न हो गये और पुष्पवृष्टि करते हुए उच्च स्वरमें उनका यशोगान करने लगे। देवांगनाएँ प्रेमसे विह्वल होकर अति आनन्दपूर्वक नृत्य करने लगीं और मनोहर रागयुक्त शब्दोंसे किन्नरोंके साथ सुन्दर पदोंको गाने लगीं॥ ५४-५५॥

दिशः प्रसेदुः सर्वाश्च हते वृन्दापतौ मुने।
ववुः पुण्याः सुखस्पर्शा वायवस्त्रिविधा अपि॥ ५६

चन्द्रमाः शीततां यातो रविस्तेपे सुतेजसा।
अग्नयो जज्वलुः शांता बभूवाविकृतं नभः॥ ५७

एवं त्रैलोक्यमखिलं स्वास्थ्यमापाधिकं मुने।
हतेऽब्धितनये तस्मिन्हरेणानन्तमूर्तिना॥ ५८

हे मुने! उस समय वृन्दापति जलन्धरके मर जानेपर सभी ओर पवित्र तथा सुखद स्पर्शवाली दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं, [शीतल, मन्द, सुगन्ध] तीनों प्रकारकी वायु चलने लगी। चन्द्रमा शीतलतासे युक्त हो गया, सूर्य परम तेजसे तपने लगा, शान्त अग्नि जलने लगी और आकाश निर्मल हो गया। इस प्रकार हे मुने! अनन्तमूर्ति सदाशिवके द्वारा उस समुद्रपुत्र जलन्धरके मारे जानेपर सम्पूर्ण त्रैलोक्य अत्यधिक शान्तिमय हो गया॥ ५६—५८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलंधरवधोपाख्याने जलंधरवधवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरवधोपाख्यानके अन्तर्गत जलन्धरवधवर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

जलन्धरवधसे प्रसन्न देवताओंद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति

सनत्कुमार उवाच

अथ ब्रह्मादयो देवा मुनयश्चाखिलास्तथा।
तुष्टुवुर्देवदेवेशं वाग्भिरिष्टाभिरानताः॥ १

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव शरणागतवत्सल।
साधुसौख्यप्रदस्त्वं हि सर्वदा भक्तदुःखहा॥ २

त्वं महाद्भुतसल्लीलो भक्तिगम्यो दुरासदः।
दुराराध्योऽसतां नाथ प्रसन्नः सर्वदा भव॥ ३

वेदोऽपि महिमानं ते न जानाति हि तत्त्वतः।
यथामति महात्मानः सर्वे गायन्ति सद्यशः॥ ४

माहात्म्यमतिगूढं ते सहस्रवदनादयः।
सदा गायन्ति सुप्रीत्या पुनन्ति स्वगिरं हि ते॥ ५

कृपया तव देवेश ब्रह्मज्ञानी भवेज्जडः।
भक्तिगम्यः सदा त्वं वा इति वेदा ब्रुवन्ति हि॥ ६

त्वं वै दीनदयालुश्च सर्वत्र व्यापकः सदा।
आविर्भवसि सद्भक्त्या निर्विकारः सतां गतिः॥ ७

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] इसके बाद ब्रह्मा आदि सभी देवता एवं मुनिगण सिर झुकाकर प्रिय वाणीसे देवदेवेशकी स्तुति करने लगे—॥ १॥

देवता बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे शरणागतवत्सल! आप सदा सज्जनोंको सुख देनेवाले तथा भक्तोंका दुःख दूर करनेवाले हैं॥ २॥

आप अद्भुत उत्तम लीला करनेवाले, [एकमात्र] भक्तिसे प्राप्त होनेवाले, दुर्लभ तथा दुष्टजनोंके द्वारा दुराराध्य हैं। हे नाथ! आप सर्वदा प्रसन्न रहें॥ ३॥

हे प्रभो! वेद भी यथार्थ रूपसे आपकी महिमाको नहीं जानते, महात्मालोग अपनी बुद्धिके अनुसार आपके उत्तम यशका गान करते हैं। हजार मुखोंवाले शेषनाग आदि प्रेमपूर्वक सदा आपकी अत्यन्त गूढ़ महिमाका गान करते हैं एवं वे अपनी वाणीको पवित्र करते हैं॥ ४-५॥

हे देवेश! आपकी कृपासे जड़ भी ब्रह्मज्ञानी हो जाता है और आप सदा भक्तिसे ही प्राप्य हैं—ऐसा वेद कहते हैं॥ ६॥

हे प्रभो! आप दीनदयाल तथा सदा सर्वत्र व्यापक, निर्विकार तथा सज्जनोंके रक्षक हैं, आप सद्भक्तिसे आविर्भूत होते हैं। हे महेशान! आपकी

भक्त्यैव ते महेशान बहवः सिद्धिमागताः।
इह सर्वसुखं भुक्त्वा दुःखिता निर्विकारतः॥ ८

पुरा यदुपतिर्भक्तो दाशार्हः सिद्धिमागतः।
कलावती च तत्पत्नी भक्त्यैव परमां प्रभो॥ ९

तथा मित्रसहो राजा मदयन्ती च तत्प्रिया।
भक्त्यैव तव देवेश कैवल्यं परमं ययौ॥ १०

सौमिनी नाम तनया कैकेयाग्रभुवस्तथा।
तव भक्त्या सुखं प्राप परं सद्योगिदुर्लभम्॥ ११

भक्तिसे बहुत लोग इस लोकमें सभी प्रकारके सुखका उपभोग करके सिद्धिको प्राप्त हुए हैं और निराकार उपासनासे दुखित हुए हैं॥ ७-८॥

हे प्रभो! पूर्व समयमें यदुवंशी भक्त दाशार्ह तथा उनकी पत्नी कलावतीने आपकी भक्तिसे ही परम सिद्धि प्राप्त कर ली थी। हे देवेश! इसी प्रकार राजा मित्रसह तथा उनकी पत्नी मदयन्तीने भी आपकी भक्तिसे ही परम कैवल्यपदको प्राप्त किया था। केकयनरेशकी सौमिनी नामक कन्याने आपकी भक्तिसे महायोगियोंके लिये भी दुर्लभ परम सुख प्राप्त किया था॥ ९—११॥

विमर्षणो नृपवरः सप्तजन्मावधि प्रभो।
भुक्त्वा भोगांश्च विविधांस्त्वद्भक्त्या प्राप सद्गतिम्॥ १२

चन्द्रसेनो नृपवरः त्वद्भक्त्या सर्वभोगभुक्।
दुःखमुक्तः सुखं प्राप परमत्र परत्र च॥ १३

हे प्रभो! राजाओंमें श्रेष्ठ विमर्षणने आपकी भक्तिसे सात जन्मपर्यन्त अनेक प्रकारके सुखोंका उपभोग करके सद्‌गति प्राप्त की थी। नृपश्रेष्ठ चन्द्रसेनने आपकी भक्तिद्वारा दुःखसे छुटकारा पाया तथा इस लोकमें एवं परलोकमें नाना प्रकारके भोग प्राप्त करते हुए वे आनन्द करते रहे॥ १२-१३॥

गोपीपुत्रः श्रीकरस्ते भक्त्या भुक्त्वेह सद्गतिम्।
परं सुखं महावीरशिष्यः प्राप परत्र वै॥ १४

महावीरके शिष्य गोपीपुत्र श्रीकरने भी आपकी भक्तिसे इस लोकमें परम सुख भोगकर परलोकमें सद्‌गति प्राप्त की॥ १४॥

त्वं सत्यरथभूजानेर्दुःखहर्ता गतिप्रदः।
धर्मगुप्तं राजपुत्रमतार्षीः सुखिनं त्विह॥ १५

आपने [प्रसन्न होकर] सत्यरथ नामक भूपतिका दुःख हरण किया तथा उन्हें सद्‌गति प्रदान की। आपने राजपुत्र धर्मगुप्तको सुखी बनाया तथा उन्हें तार दिया॥ १५॥

तथा शुचिव्रतं विप्रमदरिद्रं महाप्रभो।
त्वद्भक्तिवर्तिनं मात्रा ज्ञानिनं कृपयाऽकरोः॥ १६

हे महाप्रभो! आपने माताके उपदेशसे आपकी भक्ति करनेवाले शुचिव्रत नामक ब्राह्मणको कृपापूर्वक धनवान् तथा ज्ञानी बना दिया॥ १६॥

चित्रवर्मा नृपवरस्त्वद्भक्त्या प्राप सद्गतिम्।
इह लोके सदा भुक्त्वा भोगानमरदुर्लभान्॥ १७

नृपश्रेष्ठ चित्रवर्माने आपकी भक्तिसे इस लोकमें देवदुर्लभ सुखोंको भोगकर अन्तमें सद्‌गति प्राप्त की॥ १७॥

चन्द्रांगदो राजपुत्रः सीमंतिन्या स्त्रिया सह।
विहाय सकलं दुःखं सुखी प्राप महागतिम्॥ १८

द्विजो मंदरनामापि वेश्यागामी खलोऽधमः।
त्वद्भक्तः शिव संपूज्य तया सह गतिं गतः॥ १९

चन्द्रांगद नामक राजपुत्रने अपनी स्त्री सीमन्तिनीसहित आपकी भक्तिसे सारे दुःखोंको त्यागकर सुखसम्पन्न हो महागतिको प्राप्त किया। हे शिव! मन्दर नामवाला ब्राह्मण, जो वेश्यागामी, अधम तथा महाखल था, वह भी आपकी भक्तिसे युक्त होकर आपका पूजनकर उस वेश्याके साथ सद्‌गतिको प्राप्त हुआ॥ १८-१९॥

भद्रायुस्ते नृपसुतः सुखमाप गतव्यथः।
त्वद्भक्तिकृपया मात्रा गतिं च परमां प्रभो॥ २०

हे प्रभो! भद्रायु नामक राजपुत्रने भी आपकी भक्तिद्वारा कृपा प्राप्तकर दुःखोंसे मुक्त हो सुख प्राप्त किया और माताके साथ परम गति प्राप्त की॥ २०॥

सर्वस्त्रीभोगनिरतो दुर्जनस्तव सेवया।
विमुक्तोऽभूदपि सदाऽभक्ष्यभोजी महेश्वर॥ २१

शंबरः शंकरो भक्तश्चिताभस्मधरः सदा।
नियमाद्भस्मनः शंभो स्वस्त्रिया ते पुरं गतः॥ २२

हे महेश्वर! सदा अभक्ष्यभक्षण करनेवाला तथा सभी स्त्रियोंमें सम्भोगरत दुर्जन भी आपकी सेवासे मुक्त हो गया। हे शम्भो! चिताकी भस्म धारण करनेवाला शम्बर, जो शिवका महाभक्त था, वह नियमपूर्वक सदा चिताका भस्म धारण करनेसे शंकररूप होकर अपनी स्त्रीके साथ आपके लोकको गया॥ २१-२२॥

भद्रसेनस्य तनयस्तथा मंत्रिसुतः प्रभो।
सुधर्मशुभकर्माणो सदा रुद्राक्षधारिणौ॥ २३

त्वत्कृपातश्च तौ मुक्तावास्तां भुक्त्वेह सत्सुखम्।
पूर्वजन्मनि यौ कीशकुक्कुटौ रुद्रभूषणौ॥ २४

हे प्रभो! [इसी प्रकार] भद्रसेनका पुत्र तथा उसके मन्त्रीका पुत्र, जो उत्तम धर्म तथा शुभ कर्म करते थे और सदा रुद्राक्ष धारण करते थे, वे दोनों ही आपकी कृपासे इस लोकमें उत्तम सुख भोगकर मुक्त हो गये। ये दोनों ही पूर्वजन्ममें कपि तथा कुक्कुट थे और रुद्राक्ष धारण करते थे॥ २३-२४॥

पिंगला च महानन्दा वेश्ये द्वे तव भक्तितः।
सद्गतिं प्रापतुर्नाथ भक्तोद्धारपरायण॥ २५

शारदा विप्रतनया बालवैधव्यमागता।
तव भक्तेः प्रभावात्तु पुत्रसौभाग्यवत्यभूत्॥ २६

भक्तोंका उद्धार करनेमें तत्पर रहनेवाले हे नाथ! पिंगला तथा महानन्दा नामक दो वेश्याएँ भी आपकी भक्तिसे सद्गतिको प्राप्त हुईं। किसी ब्राह्मणकी शारदा नामक कन्या बालविधवा हो गयी थी, वह आपकी भक्तिके प्रभावसे पुत्रवती तथा सौभाग्यवती हो गयी॥ २५-२६॥

बिन्दुगो द्विजमात्रो हि वेश्याभोगी च तत्प्रिया।
चञ्चुला त्वद्यशः श्रुत्वा परमां गतिमाययौ॥ २७

इत्यादि बहवः सिद्धिं गता जीवास्तव प्रभो।
भक्तिभावान्महेशान दीनबन्धो कृपालय॥ २८

त्वं परः प्रकृतेर्ब्रह्म पुरुषात्परमेश्वर।
निर्गुणस्त्रिगुणाधारो ब्रह्मविष्णुहरात्मकः॥ २९

नाममात्रका ब्राह्मण, वेश्यागामी बिन्दुग एवं उसकी पत्नी चंचुला दोनों ही आपका यश श्रवणकर परम गतिको प्राप्त हुए। हे प्रभो! हे महेशान! हे दीनबन्धो! हे कृपालय! इस प्रकार आपकी भक्तिसे अनेक जीवोंको सिद्धि प्राप्त हुई है। हे परमेश्वर! आप प्रकृति तथा पुरुषसे परे ब्रह्म हैं, आप निर्गुण तथा त्रिगुणके आधार हैं और ब्रह्मा-विष्णु-हरात्मक भी आप ही हैं॥ २७—२९॥

नानाकर्मकरो नित्यं निर्विकारोऽखिलेश्वरः।
वयं ब्रह्मादयः सर्वे तव दासा महेश्वर॥ ३०

आप निर्विकार तथा अखिलेश्वर होकर भी नाना प्रकारके कर्म करते हैं। हे महेश्वर शंकर! हम ब्रह्मा आदि सभी देवता आपके दास हैं॥ ३०॥

प्रसन्नो भव देवेश रक्षास्मान्सर्वदा शिव।
त्वत्प्रजाश्च वयं नाथ सदा त्वच्छरणं गताः॥ ३१

हे नाथ! हे देवेश! हे शिव! हम सभी आपकी प्रजा हैं और सदा आपके शरणागत हैं, अतः आप प्रसन्न होइये और सदा हमलोगोंकी रक्षा कीजिये॥ ३१॥

सनत्कुमार उवाच

इति स्तुत्वा च ते देवा ब्रह्माद्याः समुनीश्वराः।
तूष्णीं बभूवुर्हि तदा शिवाङ्घ्रिद्वन्द्वचेतसः॥ ३२

अथ शंभुर्महेशानः श्रुत्वा देवस्तुतिं शुभाम्।
दत्त्वा वरान् वरान् सद्यः तत्रैवान्तर्दधे प्रभुः॥ ३३

देवाः सर्वेऽपि मुदिता ब्रह्माद्या हतशत्रवः।
स्वं स्वं धाम ययुः प्रीता गायन्तः शिवसद्यशः॥ ३४

इदं परममाख्यानं जलंधरविमर्दनम्।
महेशचरितं पुण्यं महाघौघविनाशनम्॥ ३५

देवस्तुतिरियं पुण्या सर्वपापप्रणाशिनी।
सर्वसौख्यप्रदा नित्यं महेशानंददायिनी॥ ३६

यः पठेत्पाठयेद्वापि समाख्यानमिदं द्वयम्।
स भुक्त्वेह परं सौख्यं गाणपत्यमवाप्नुयात्॥ ३७

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार ब्रह्मादि देवता तथा सभी मुनीश्वर स्तुति करके शिवजीके चरणयुगलका ध्यान करते हुए मौन हो गये। इसके बाद महेश्वर प्रभु शंकरजी देवगणोंकी शुभ स्तुति सुनकर उन्हें श्रेष्ठ वर देकर शीघ्र अन्तर्धान हो गये॥ ३२-३३॥

शत्रुओंके मारे जानेसे ब्रह्मादि सभी देवता प्रसन्न हो गये और शिवजीके उत्तम यशका गान करते हुए अपने-अपने धामको चले गये। जलन्धरवधसे सम्बन्धित भगवान् शिवका यह श्रेष्ठ आख्यान पुण्यको देनेवाला एवं पापोंको नष्ट करनेवाला है॥ ३४-३५॥

देवताओंके द्वारा की गयी यह स्तुति पुण्य देनेवाली, समस्त पापोंको नष्ट करनेवाली, सब प्रकारके सुखोंको देनेवाली तथा सर्वदा महेशको आनन्द प्रदान करनेवाली है। जो इन दोनों आख्यानोंको पढ़ता है अथवा पढ़ाता है, वह इस लोकमें महान् सुख भोगकर [अन्तमें] गणपतित्वको प्राप्त करता है॥ ३६-३७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलंधरवधोपाख्याने देवस्तुतिवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरवधोपाख्यानके अन्तर्गत देवस्तुतिवर्णन नामक पच्चीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

विष्णुजीके मोहभंगके लिये शंकरजीकी प्रेरणासे देवोंद्वारा मूलप्रकृतिकी स्तुति, मूलप्रकृतिद्वारा आकाशवाणीके रूपमें देवोंको आश्वासन, देवताओंद्वारा त्रिगुणात्मिका देवियोंका स्तवन, विष्णुका मोहनाश, धात्री (आँवला), मालती तथा तुलसीकी उत्पत्तिका आख्यान

व्यास उवाच

ब्रह्मपुत्र नमस्तेऽस्तु धन्यस्त्वं शैवसत्तम।
यच्छ्राविता महादिव्या कथेयं शांकरी शुभा॥ १
इदानीं ब्रूहि सुप्रीत्या चरितं वैष्णवं मुने।
स वृन्दां मोहयित्वा तु किमकार्षीत्कुतो गतः॥ २

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास महाप्राज्ञ शैवप्रवर सत्तम।
वैष्णवं चरितं शंभुचरिताढ्यं सुनिर्मलम्॥ ३
मौनीभूतेषु देवेषु ब्रह्मादिषु महेश्वरः।
सुप्रसन्नोऽवदच्छंभुः शरणागतवत्सलः॥ ४

व्यासजी बोले—हे ब्रह्मपुत्र! आपको नमस्कार है। हे श्रेष्ठ शिवभक्त! आप धन्य हैं, जो आपने शंकरजीकी यह महादिव्य शुभ कथा सुनायी। हे मुने! अब आप प्रेमपूर्वक श्रीविष्णुजीके चरित्रको सुनाइये, उन्होंने वृन्दाको मोहितकर क्या किया और वे कहाँ गये?॥ १-२॥

सनत्कुमार बोले—हे महाप्राज्ञ! हे शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ व्यासजी! अब आप शिवचरित्रसे परिपूर्ण तथा निर्मल विष्णुचरित्रको सुनिये। जब ब्रह्मादिक देवता [स्तुतिकर] मौन हो गये, तब शरणागतवत्सल शंकर अति प्रसन्न होकर कहने लगे—॥ ३-४॥

शंभुरुवाच

ब्रह्मन्देववराः सर्वे भवदर्थे मया हतः।
जलंधरो मदंशोऽपि सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ ५

सुखमापुर्न वा ताताः सत्यं ब्रूतामराः खलु।
भवत्कृते हि मे लीला निर्विकारस्य सर्वदा॥ ६

शम्भु बोले—हे ब्रह्मन्! हे सभी श्रेष्ठ देवगण! मैं यह सत्य-सत्य कह रहा हूँ कि यद्यपि जलन्धर मेरा ही अंश था, फिर भी मैंने आपलोगोंके लिये उसका वध किया। हे तात! हे देवतागण! आपलोग सच-सच बताइये कि आपलोगोंको सुख प्राप्त हुआ अथवा नहीं। सर्वदा मुझ निर्विकारकी लीला आपलोगोंके निमित्त ही हुआ करती है॥ ५-६॥

सनत्कुमार उवाच

अथ ब्रह्मादयो देवा हर्षादुत्फुल्ललोचनाः।
प्रणम्य शिरसा रुद्रं शशंसुर्विष्णुचेष्टितम्॥ ७

सनत्कुमार बोले—तदनन्तर देवताओंके नेत्र हर्षसे खिल उठे और वे शंकरजीको प्रणामकर विष्णुका वृत्तान्त निवेदन करने लगे॥ ७॥

देवा ऊचुः

महादेव त्वया देव रक्षिताः शत्रुजाद् भयात्।
किंचिदन्यत्समुद्भूतं तत्र किं करवामहै॥ ८

देवता बोले—हे महादेव! हे देव! आपने शत्रुओंके भयसे हमारी रक्षा की, किंतु एक बात और हुई है, उसमें हम क्या करें?॥ ८॥

वृन्दा विमोहिता नाथ विष्णुना हि प्रयत्नतः।
भस्मीभूता द्रुतं वह्नौ परमां गतिमागता॥ ९

वृन्दालावण्यसंभ्रान्तो विष्णुस्तिष्ठति मोहितः।
तच्चिताभस्मसंधारी तव मायाविमोहितः॥ १०

हे नाथ! विष्णुने बड़े प्रयत्नके साथ वृन्दाको मोहित किया और वह शीघ्र ही अग्निमें भस्म होकर परम गतिको प्राप्त हुई है, किंतु इस समय वृन्दाके लावण्यपर आसक्त हुए विष्णु मोहित होकर उसकी चिताका भस्म धारण करते हैं, वे आपकी मायासे विमोहित हो गये हैं॥ ९-१०॥

स सिद्धमुनिसंघैश्च बोधितोऽस्माभिरादरात्।
न बुध्यते हरिः सोऽथ तव मायाविमोहितः॥ ११

सिद्धों, मुनियों तथा हमलोगोंने उन्हें बड़े आदरके साथ समझाया, किंतु वे हरि आपकी मायासे मोहित होनेके कारण कुछ भी नहीं समझ रहे हैं॥ ११॥

कृपां कुरु महेशान विष्णुं बोधय बोधय।
त्वदधीनमिदं सर्वं प्राकृतं सचराचरम्॥ १२

अतः हे महेशान! आप कृपा कीजिये और विष्णुको समझाइये; यह प्राकृत सम्पूर्ण चराचर जगत् आपके ही अधीन है॥ १२॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य महेशो हि वचनं त्रिदिवौकसाम्।
प्रत्युवाच महालीलः स्वच्छन्दस्तान्कृताञ्जलीन्॥ १३

सनत्कुमार बोले—देवगणोंके इस वचनको सुनकर महालीला करनेवाले तथा स्वतन्त्र [भगवान्] शंकर हाथ जोड़े हुए उन देवगणोंसे कहने लगे—॥ १३॥

महेश उवाच

हे ब्रह्मन्हे सुराः सर्वे मद्वाक्यं शृणुतादरात्।
मोहिनी सर्वलोकानां मम माया दुरत्यया॥ १४
तदधीनं जगत्सर्वं यद्देवासुरमानुषम्।
तयैव मोहितो विष्णुः कामाधीनोऽभवद्धरिः॥ १५

महेश बोले—हे ब्रह्मन्! हे देवो! आपलोग श्रद्धापूर्वक मेरे वचनको सुनें। सम्पूर्ण लोकोंको मोहित करनेवाली मेरी माया दुस्तर है। देवता, असुर एवं मनुष्योंके सहित सारा जगत् उसीके अधीन है। उसी मायासे मोहित होनेके कारण विष्णु कामके अधीन हो गये हैं॥ १४-१५॥

उमाख्या सा महादेवी त्रिदेवजननी परा।
मूलप्रकृतिराख्याता सुरामा गिरिजात्मिका॥ १६

वह माया ही उमा नामसे विख्यात है, जो इन तीनों देवताओंकी जननी है। वही मूलप्रकृति तथा परम मनोहर गिरिजाके नामसे विख्यात है।

गच्छध्वं शरणं देवा विष्णुमोहापनुत्तये।
शरण्यां मोहिनीं मायां शिवाख्यां सर्वकामदाम्॥ १७

स्तुतिं कुरुत तस्याश्च मच्छक्तेस्तोषकारिणीम्।
सुप्रसन्ना यदि च सा सर्वं कार्यं करिष्यति॥ १८

हे देवताओ! आपलोग विष्णुका मोह दूर करनेके लिये शीघ्र ही शरणदायिनी, मोहिनी तथा सभी कामनाएँ पूर्ण करनेवाली शिवा नामक मायाकी शरणमें जाइये और उस मेरी शक्तिको सन्तुष्ट करनेवाली स्तुति कीजिये, यदि वे प्रसन्न हो जायँगी तो [आपलोगोंका] सारा कार्य पूर्ण करेंगी॥ १६—१८॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा तान्सुरान् शंभुः पञ्चास्यो भगवान्हरः।
अंतर्दधे द्रुतं व्यास सर्वैश्च स्वगणैः सह॥ १९
देवाश्च शासनाच्छंभोर्ब्रह्माद्या हि सवासवाः।
मनसा तुष्टुवुर्मूलप्रकृतिं भक्तवत्सलाम्॥ २०

सनत्कुमार बोले—हे व्यास! पंचमुख भगवान् शंकर हर उन देवताओंसे ऐसा कहकर अपने सभी गणोंके साथ अन्तर्धान हो गये और शंकरकी आज्ञाके अनुसार इन्द्रसहित ब्रह्मादिक देवता मनसे भक्तवत्सला मूलप्रकृतिकी स्तुति करने लगे॥ १९-२०॥

देवा ऊचुः

यदुद्भवाः सत्त्वरजस्तमोगुणाः
सर्गस्थितिध्वंसविधानकारकाः।
यदिच्छया विश्वमिदं भवाभवौ
तनोति मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम्॥ २१
पाहि त्रयोविंशगुणान् सुशब्दितान्
जगत्यशेषे समधिष्ठिता परा।
यद्रूपकर्माणि जगत्त्रयोऽपि ते
विदुर्न मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम्॥ २२
यद्भक्तियुक्ताः पुरुषास्तु नित्यं
दारिद्र्यमोहात्ययसंभवादीन्।
न प्राप्नुवन्त्येव हिं भक्तवत्सलां
सदैव मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम्॥ २३

देवता बोले—जिस मूलप्रकृतिसे उत्पन्न हुए सत्त्व, रज और तम—ये गुण इस सृष्टिका सृजन, पालन तथा संहार करते हैं और जिसकी इच्छासे इस विश्वका आविर्भाव तथा तिरोभाव होता है, उस मूलप्रकृतिको हम नमस्कार करते हैं। जो परा शक्ति शब्द आदि तेईस गुणोंसे समन्वित हो इस जगत्में व्याप्त है, जिसके रूप और कर्मको वे तीनों लोक नहीं जानते, उस मूलप्रकृतिको हम नमस्कार करते हैं॥ २१-२२॥

जिनकी भक्तिसे युक्त पुरुष दारिद्र्य, मोह, उत्पत्ति तथा विनाश आदिको नहीं प्राप्त करते हैं, उन भक्तवत्सला मूलप्रकृतिको हम नमस्कार करते हैं॥ २३॥

कुरु कार्यं महादेवि देवानां नः परेश्वरि।
विष्णुमोहं हर शिवे दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते॥ २४

हे महादेवि! हे परमेश्वरि! हम देवताओंका कार्य कीजिये। हे शिवे! विष्णुके मोहको दूर कीजिये। हे दुर्गे! आपको नमस्कार है॥ २४॥

जलंधरस्य शंभोश्च रणे कैलासवासिनः।
प्रवृत्ते तद्वधार्थाय गौरीशासनतः शिवे॥ २५

वृन्दा विमोहिता देवि विष्णुना हि प्रयत्नतः।
स्ववृषात्त्याजिता वह्नौ भस्मीभूता गतिं गता॥ २६

हे देवि! कैलासवासी शंकर एवं जलन्धरके युद्धमें उसका वध करनेके लिये शिवके प्रवृत्त होनेपर गौरीके आदेशसे ही विष्णुने बड़े प्रयत्नके साथ वृन्दाको मोहित किया और उसका सतीत्व नष्ट किया। तब वह अग्निमें भस्म हो गयी और उत्तम गतिको प्राप्त हुई॥ २५-२६॥

जलंधरो हतो युद्धे तद्भयान्मोचिता वयम्।
गिरिशेन कृपां कृत्वा भक्तानुग्रहकारिणा॥ २७

तब भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले शंकरने हमलोगोंपर कृपा करके जलन्धरका वध कर दिया और हम सभीको उसके भयसे मुक्त भी कर दिया है॥ २७॥

तदाज्ञया वयं सर्वे शरणं ते समागताः।
त्वं हि शंभुर्युवां देवि भक्तोद्धारपरायणौ॥ २८

हे देवि! हम सभी उन शंकरकी आज्ञासे आपकी शरणमें आये हैं; क्योंकि आप और शंकर दोनों ही अपने भक्तोंका उद्धार करनेमें निरत रहते हैं॥ २८॥

वृन्दालावण्यसंभ्रांतो विष्णुस्तिष्ठति तत्र वै।
तच्चिताभस्मसंधारी ज्ञानभ्रष्टो विमोहितः॥ २९

[हे भगवति!] वृन्दाके लावण्यसे भ्रमित हुए विष्णु इस समय ज्ञानसे भ्रष्ट तथा विमोहित होकर उसकी चिताका भस्म धारणकर वहीं स्थित हैं॥ २९॥

संसिद्धसुरसंघैश्च बोधितोऽपि महेश्वरि।
न बुध्यते हरिः सोऽथ तव मायाविमोहितः॥ ३०

कृपां कुरु महादेवि हरिं बोधय बोधय।
यथा स्वलोकं पायात्स सुचित्तः सुरकार्यकृत्॥ ३१

हे महेश्वरि! आपकी मायासे मोहित होनेके कारण सिद्धों तथा देवताओंके द्वारा समझाये जानेपर भी वे विष्णु नहीं समझ रहे हैं। हे महादेवि! कृपा कीजिये और विष्णुको समझाइये, जिससे देवताओंका कार्य करनेवाले वे विष्णु स्वस्थचित्त होकर अपने लोककी रक्षा करें॥ ३०-३१॥

इति स्तुवंतस्ते देवाः तेजोमंडलमास्थितम्।
ददृशुर्गगने तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम्॥ ३२

तन्मध्याद्भारतीं सर्वे ब्रह्माद्याश्च सवासवाः।
अमराः शुश्रुवुर्व्यास कामदां व्योमचारिणीम्॥ ३३

इस प्रकारकी स्तुति करते हुए देवताओंने अपनी कान्तिसे समस्त दिशाओंको व्याप्त किये हुए एक तेजोमण्डलको आकाशमें स्थित देखा। हे व्यास! इन्द्रसहित ब्रह्मा आदि सभी देवताओंने मनोरथोंको देनेवाली आकाशवाणी उस [तेजोमण्डल]-के मध्यसे सुनी॥ ३२-३३॥

आकाशवाण्युवाच

अहमेव त्रिधा भिन्ना तिष्ठामि त्रिविधैर्गुणैः।
गौरी लक्ष्मीः सुरा ज्योती रजःसत्त्वतमोगुणैः॥ ३४

तत्र गच्छत यूयं वै तासामंतिक आदरात्।
मदाज्ञया प्रसन्नास्ता विधास्यन्ते तदीप्सितम्॥ ३५

आकाशवाणी बोली—हे देवताओ! मैं ही तीन प्रकारके गुणोंके द्वारा अलग-अलग तीन रूपोंमें स्थित हूँ; रजोगुणरूपसे गौरी, सत्त्वगुणसे लक्ष्मी तथा तमोगुणसे सुराज्योतिके रूपमें स्थित हूँ। अतः आपलोग मेरी आज्ञासे उन देवियोंके समीप आदरपूर्वक जाइये, वे प्रसन्न होकर उस मनोरथको पूर्ण करेंगी॥ ३४-३५॥

सनत्कुमार उवाच

शृण्वतामिति तां वाचमन्तर्द्धानमगान्महः।
देवानां विस्मयोत्फुल्लनेत्राणां तत्तदा मुने॥ ३६

ततः सर्वेऽपि ते देवाः श्रुत्वा तद्वाक्यमादरात्।
गौरीं लक्ष्मीं सुरां चैव नेमुस्तद्वाक्यचोदिताः॥ ३७

सनत्कुमार बोले—हे मुने! विस्मयसे उत्फुल्ल नेत्रोंवाले देवताओंद्वारा उस वाणीको सुनते ही वह तेज अन्तर्धान हो गया। तत्पश्चात् सभी देवगण उस आकाश-वाणीको सुनकर तथा उस वाक्यसे प्रेरित होकर गौरी, लक्ष्मी तथा सुरादेवीको प्रणाम करने लगे॥ ३६-३७॥

तुष्टुवुश्च महाभक्त्या देवीस्ताः सकलाः सुराः।
नानाविधाभिर्वाग्भिस्ते ब्रह्माद्या नतमस्तकाः॥ ३८

ब्रह्मादि सभी देवताओंने नतमस्तक होकर विविध स्तुतियोंसे परम भक्तिपूर्वक उन देवियोंकी स्तुति की॥ ३८॥

ततोऽरं व्यास देव्यस्ता आविर्भूताश्च तत्पुरः।
महाद्भुतैः स्वतेजोभिर्भासयन्त्यो दिगंतरम्॥ ३९

अथ ता अमरा दृष्ट्वा सुप्रसन्नेन चेतसा।
प्रणम्य तुष्टुवुर्भक्त्या स्वकार्यं च न्यवेदयन्॥ ४०

हे व्यासजी! तब वे देवियाँ अपने अद्भुत तेजसे सभी दिशाओंको प्रकाशित करती हुईं शीघ्र ही उनके समक्ष प्रकट हो गयीं। तब देवताओंने उन देवियोंको देखकर अत्यन्त प्रसन्नमनसे उन्हें प्रणाम करके भक्तिसे उनकी स्तुति की और अपना कार्य निवेदित किया॥ ३९-४०॥

ततश्चैताः सुरान्दृष्ट्वा प्रणतान्भक्तवत्सलाः।
बीजानि प्रददुस्तेभ्यो वाक्यमूचुश्च सादरम्॥ ४१

देव्य ऊचुः

इमानि तत्र बीजानि विष्णुर्यत्रावतिष्ठति।
निर्वपध्वं ततः कार्यं भवतां सिद्धिमेष्यति॥ ४२

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा तास्ततो देव्योऽन्तर्हिता अभवन्मुने।
रुद्रविष्णुविधीनां हि शक्तयस्त्रिगुणात्मिकाः॥ ४३

ततस्तुष्टाः सुराः सर्वे ब्रह्माद्याश्च सवासवाः।
तानि बीजानि संगृह्य ययुर्यत्र हरिः स्थितः॥ ४४

वृन्दाचिताभूमितले चिक्षिपुस्तानि ते सुराः।
स्मृत्वा ताः संस्थितास्तत्र शिवशक्त्यंशका मुने॥ ४५

निक्षिप्तेभ्यश्च बीजेभ्यो वनस्पत्यस्त्रयोऽभवन्।
धात्री च मालती चैव तुलसी च मुनीश्वर॥ ४६

धात्र्युद्भवा स्मृता धात्री माभवा मालती स्मृता।
गौरीभवा च तुलसी तमःसत्त्वरजोगुणाः॥ ४७

विष्णुर्वनस्पतीर्दृष्ट्वा तदा स्त्रीरूपिणीर्मुने।
उदतिष्ठत्तदा तासु रागातिशयविभ्रमः॥ ४८

दृष्ट्वा स याचते मोहात्कामासक्तेन चेतसा।
तं चापि तुलसी धात्री रागेणैवावलोकताम्॥ ४९

यच्च बीजं पुरा लक्ष्म्या माययैव समर्पितम्।
तस्मात्तदुद्भवा नारी तस्मिन्नीर्ष्यापराभवत्॥ ५०

अतः सा बर्बरीत्याख्यामवापातीव गर्हिताम्।
धात्रीतुलस्यौ तद्रागात्तस्य प्रीतिप्रदे सदा॥ ५१

ततो विस्मृतदुःखोऽसौ विष्णुस्ताभ्यां सहैव तु।
वैकुंठमगमत्तुष्टः सर्वदेवैर्नमस्कृतः ॥ ५२

कार्तिके मासि विप्रेन्द्र धात्री च तुलसी सदा।

इसके बाद भक्तवत्सला उन देवियोंने प्रणाम करते हुए देवताओंको देखकर उन्हें अपना-अपना बीज दिया और आदरपूर्वक उनसे यह वचन कहा— ॥ ४१ ॥

देवियाँ बोलीं—[हे देवगणो!] जहाँ विष्णु स्थित हैं, वहाँ इन बीजोंको बो देना, इससे आपलोगोंका कार्य सिद्ध हो जायगा॥ ४२॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने! इस प्रकार कहकर वे देवियाँ अन्तर्धान हो गयीं। वे ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्रकी त्रिगुणात्मक शक्तियाँ थीं। तब इन्द्रसहित ब्रह्मा आदि सभी देवता प्रसन्न हो गये और उन बीजोंको लेकर वहाँ गये, जहाँ भगवान् विष्णु स्थित थे॥ ४३-४४॥

हे मुने! उन देवताओंने वृन्दाकी चिताके नीचे भूतलपर उन बीजोंको डाल दिया और उन शिव-शक्तियोंका स्मरण करके वे वहींपर स्थित हो गये॥ ४५॥

हे मुनीश्वर! उन डाले गये बीजोंसे धात्री, मालती तथा तुलसी नामक तीन वनस्पतियाँ उत्पन्न हो गयीं। धात्रीके अंशसे धात्री, महालक्ष्मीके अंशसे मालती तथा गौरीके अंशसे तुलसी हुई, जो तम, सत्त्व तथा रजोगुणसे युक्त थीं॥ ४६-४७॥

हे मुने! तब स्त्रीरूपिणी उन वनस्पतियोंको देखकर उनके प्रति विशेष रागविलासके विभ्रमसे युक्त होकर विष्णुजी उठ बैठे। उन्हें देखकर मोहके कारण कामासक्त चित्तसे वे उनके प्रेमकी याचना करने लगे। तुलसी एवं धात्रीने भी रागपूर्वक उनका अवलोकन किया॥ ४८-४९॥

सर्वप्रथम लक्ष्मीने जिस बीजको मायासे देवताओंको दिया था, उससे उत्पन्न हुई स्त्री मालती उनसे ईर्ष्या करने लगी। इसलिये वह बर्बरी—इस गर्हित नामसे पृथ्वीपर विख्यात हुई और धात्री तथा तुलसी रागके कारण उन विष्णुके लिये सदा प्रीतिप्रद हुईं॥ ५०-५१ ॥

तब विष्णुका दुःख दूर हो गया और वे सभी देवताओंसे नमस्कृत होते हुए प्रसन्न होकर उन दोनोंके साथ वैकुण्ठ-लोकको चले गये। हे विप्रेन्द्र! कार्तिकके महीनेमें धात्री और तुलसीको सभी देवताओंके लिये प्रिय जानना चाहिये और विशेष करके ये

सर्वदेवप्रिया ज्ञेया विष्णोश्चैव विशेषतः ॥ ५३

विष्णुको अत्यन्त प्रिय हैं। हे महामुने! उन दोनोंमें भी तुलसी अत्यन्त श्रेष्ठ तथा धन्य है। यह गणेशको छोड़कर सभी देवताओंको प्रिय है तथा सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है॥ ५२—५४॥

तत्रापि तुलसी धन्यातीव श्रेष्ठा महामुने।
त्यक्त्वा गणेशं सर्वेषां प्रीतिदा सर्वकामदा॥ ५४

वैकुण्ठस्थं हरिं दृष्ट्वा ब्रह्मेन्द्राद्याश्च तेऽमराः।
नत्वा स्तुत्वा महाविष्णुं स्वस्वधामानि वै ययुः॥ ५५

इस प्रकार ब्रह्मा, इन्द्र आदि वे देवता विष्णुको वैकुण्ठमें स्थित देखकर उनको नमस्कारकर तथा उनकी स्तुतिकर अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ५५॥

वैकुण्ठोऽपि स्वलोकस्थो भ्रष्टमोहः सुबोधवान्।
सुखी चाभून्मुनिश्रेष्ठ पूर्ववत्संस्मरन् शिवम्॥ ५६

इत्याख्यानमघौघघ्नं सर्वकामप्रदं नृणाम्।
सर्वकामविकारघ्नं सर्वविज्ञानवर्द्धनम्॥ ५७

हे मुनिश्रेष्ठ! मोह भंग हो जानेसे विष्णुजी ज्ञान प्राप्तकर शिवजीका स्मरण करते हुए अपने वैकुण्ठलोकमें सुखपूर्वक निवास करने लगे। यह आख्यान मनुष्योंके सभी पापोंको दूर करनेवाला, मनुष्योंकी सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, समस्त कामविकारोंको नष्ट करनेवाला तथा सभी प्रकारके विज्ञानको बढ़ानेवाला है॥ ५६-५७॥

य इदं हि पठेन्नित्यं पाठयेद्वापि भक्तिमान्।
शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि स याति परमां गतिम्॥ ५८

पठित्वा य इदं धीमानाख्यानं परमोत्तमम्।
संग्रामं प्रविशेद्वीरो विजयी स्यान्न संशयः॥ ५९

जो भक्तिसे युक्त होकर इस आख्यानको नित्य पढ़ता, पढ़ाता है, सुनता अथवा सुनाता है, वह परम गतिको प्राप्त करता है। जो बुद्धिमान् वीर इस अत्युत्तम आख्यानको पढ़कर संग्राममें जाता है, वह विजयी होता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५८-५९॥

विप्रानां ब्रह्मविद्यादं क्षत्रियाणां जयप्रदम्।
वैश्यानां सर्वधनदं शूद्राणां सुखदं त्विदम्॥ ६०

यह [आख्यान] ब्राह्मणोंको ब्रह्मविद्या देनेवाला, क्षत्रियोंको जय प्रदान करनेवाला, वैश्योंको अनेक प्रकारका धन देनेवाला तथा शूद्रोंको सुख देनेवाला है॥ ६०॥

शंभुभक्तिप्रदं व्यास सर्वेषां पापनाशनम्।
इहलोके परत्रापि सदा सद्गतिदायकम्॥ ६१

हे व्यासजी! यह शिवजीमें भक्ति प्रदान करनेवाला, सभीके पापोंका नाश करनेवाला और इस लोक तथा परलोकमें उत्तम गति देनेवाला है॥ ६१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे जलंधरवधानंतर-देवीस्तुतिविष्णुमोहविध्वंसवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरके वधके पश्चात् देवीस्तुति-विष्णुमोहविध्वंसवर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २६॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

शंखचूडकी उत्पत्तिकी कथा

सनत्कुमार उवाच

अथान्यच्छंभुचरितं प्रेमतः शृणु वै मुने।
यस्य श्रवणमात्रेण शिवभक्तिर्दृढा भवेत्॥ १

सनत्कुमार बोले—हे मुने! अब आप शंकरजीका एक और चरित प्रेमपूर्वक सुनिये, जिसके सुननेमात्रसे शंकरजीके प्रति दृढ़ भक्ति उत्पन्न हो जाती है॥ १॥

शंखचूडाभिधो वीरो दानवो देवकंटकः।
यथा शिवेन निहतो रणमूर्ध्नि त्रिशूलतः॥ २

तच्छंभुचरितं दिव्यं पवित्रं पापनाशनम्।
शृणु व्यास सुसंप्रीत्या वच्मि सुस्नेहतस्तव॥ ३

एक शंखचूड नामक दानव था, जो महावीर और देवताओंके लिये कण्टक था। शिवजीने त्रिशूलसे जिस प्रकार युद्धभूमिमें उसका वध किया, हे व्यासजी! उस पवित्र, पापनाशक तथा दिव्य चरित्रको आप अत्यन्त प्रेमपूर्वक सुनिये, मैं आपके स्नेहसे उसको कह रहा हूँ॥ २-३॥

मरीचेस्तनयो धातुः पुत्रो यः कश्यपो मुनिः।
स धर्मिष्ठः सृष्टिकर्त्ता विद्यावान्प्रजापतिः॥ ४

पूर्व समयमें ब्रह्माजीके मरीचि नामक पुत्र हुए। उन मरीचिके पुत्र जो कश्यप मुनि हुए, वे बड़े धर्मशील, सृष्टिकर्ता, विद्यावान् तथा प्रजापति थे॥ ४॥

दक्षः प्रीत्या ददौ तस्मै निजकन्यास्त्रयोदश।
तासां प्रसूतिः प्रसभं न कथ्या बहुविस्तृताः॥ ५

यत्र देवादिनिखिलं चराचरमभूज्जगत्।
विस्तरात्तत्प्रवक्तुं च कः क्षमोऽस्ति त्रिलोकके॥ ६

प्रस्तुतं शृणु वृत्तान्तं शंभुलीलान्वितं च यत्।
तदेव कथयाम्यद्य शृणु भक्तिप्रवर्द्धनम्॥ ७

तासु कश्यपपत्नीषु दनुस्त्वेका वरांगना।
महारूपवती साध्वी पतिसौभाग्यवर्द्धिता॥ ८

दक्षने उन्हें प्रेमपूर्वक अपनी तेरह कन्याएँ प्रदान कीं, उनकी बहुत-सी सन्तानें हुईं, जिन्हें विस्तारसे यहाँ कहना सम्भव नहीं है। उनसे ही सम्पूर्ण देवता तथा चराचर जगत् उत्पन्न हुआ। तीनों लोकोंमें उनको विस्तारसे कहनेमें कौन समर्थ है? अब प्रस्तुत वृत्तान्तको सुनिये, जो शिवलीलासे युक्त तथा भक्तिको बढ़ानेवाला है, मैं उसको कह रहा हूँ, सुनिये। कश्यपकी उन स्त्रियोंमें एक दनु नामवाली थी, जो सुन्दरी, महारूपवती, साध्वी एवं पतिके सौभाग्यसे सम्पन्न थी॥ ५—८॥

आसंस्तस्या दनोः पुत्रा बहवो बलवत्तराः।
तेषां नामानि नोच्यन्ते विस्तारभयतो मुने॥ ९

उस दनुके अनेक बलवान् पुत्र थे। हे मुने! विस्तारके भयसे मैं उनके नामोंको यहाँ नहीं बता रहा हूँ॥ ९॥

तेष्वेको विप्रचित्तिस्तु महाबलपराक्रमः।
तत्पुत्रो धार्मिको दंभो विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः॥ १०

नासीत्तत्तनयो वीरस्ततश्चिंतापरोऽभवत्।
शुक्राचार्यं गुरुं कृत्वा कृष्णमंत्रमवाप्य च॥ ११

तपश्चकार परमं पुष्करे लक्षवर्षकम्।
कृष्णमंत्रं जजापैव दृढं बद्ध्वासनं चिरम्॥ १२

उनमें एक विप्रचित्ति नामवाला दानव था, जो महाबली और पराक्रमी था। उसका दम्भ नामक पुत्र धार्मिक, विष्णुभक्त तथा जितेन्द्रिय हुआ। उसे कोई पुत्र नहीं था, इसलिये वह चिन्ताग्रस्त रहता था। उसने शुक्राचार्यको गुरु बनाकर उनसे कृष्णमन्त्र प्राप्त करके पुष्कर क्षेत्रमें एक लाख वर्षपर्यन्त घोर तपस्या की। उसने दृढ़तापूर्वक आसन लगाकर दीर्घकालतक कृष्णमन्त्रका जप किया॥ १०—१२॥

तपः प्रकुर्वतस्तस्य मूर्ध्नो निःसृत्य प्रज्वलत्।
विससार च सर्वत्र तत्तेजो हि सुदुःसहम्॥ १३

तपस्या करते हुए उस दैत्यके सिरसे एक जलता हुआ दु:सह तेज निकलकर चारों ओर फैलने लगा॥ १३॥

तेन तप्ताः सुराः सर्वे मुनयो मनवस्तथा।
सुनासीरं पुरस्कृत्य ब्रह्माणं शरणं ययुः॥ १४

प्रणम्य च विधातारं दातारं सर्वसंपदाम्।
तुष्टुवुर्विकलाः प्रोचुः स्ववृत्तान्तं विशेषतः॥ १५

उस तेजसे सभी देवता, मुनि एवं मनुगण सन्तप्त हो उठे और इन्द्रको आगेकर वे ब्रह्माजीकी शरणमें गये। उन लोगोंने सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके दाता ब्रह्माजीको प्रणाम करके उनकी स्तुति की और व्याकुल होकर अपना वृत्तान्त विशेषरूपसे निवेदन किया॥ १४-१५॥

तदाकर्ण्य विधातापि वैकुंठं तैर्ययौ सह।
तदेव विज्ञापयितुं निखिलेन हि विष्णवे॥ १६

तत्र गत्वा त्रिलोकेशं विष्णुं रक्षाकरं परम्।
प्रणम्य तुष्टुवुः सर्वे करौ बद्ध्वा विनम्रकाः॥ १७

देवा ऊचुः

देवदेव न जानीमो जातं किं कारणं त्विह।
संतप्ताः सकला जातास्तेजसा केन तद्वद॥ १८
तप्तात्मनां त्वमविता दीनबंधोऽनुजीविनाम्।
रक्ष रक्ष रमानाथ शरण्यः शरणागतान्॥ १९

सनत्कुमार उवाच

इति श्रुत्वा वचो विष्णुर्ब्रह्मादीनां दिवौकसाम्।
उवाच विहसन्प्रेम्णा शरणागतवत्सलः॥ २०

विष्णुरुवाच

सुस्वस्था भवताव्यग्रा न भयं कुरुतामराः।
नोपप्लवा भविष्यन्ते लयकालो न विद्यते॥ २१

दानवो दंभनामा हि मद्भक्तः कुरुते तपः।
पुत्रार्थी शमयिष्यामि तमहं वरदानतः॥ २२

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्तास्ते सुराः सर्वे धैर्यमालंब्य वै मुने।
ययुर्ब्रह्मादयः सुस्थाः स्वस्वधामानि सर्वशः॥ २३

अच्युतोऽपि वरं दातुं पुष्करं संजगाम ह।
तपश्चरति यत्रासौ दंभनामा हि दानवः॥ २४

तत्र गत्वा वरं ब्रूहीत्युवाच परिसान्त्वयन्।
गिरा सूनृतया भक्तं जपन्तं स्वमनुं हरिः॥ २५

तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णोर्दृष्ट्वा तं च पुरः स्थितम्।
प्रणनाम महाभक्त्या तुष्टाव च पुनः पुनः॥ २६

दंभ उवाच

देवदेव नमस्तेऽस्तु पुंडरीकविलोचन।
रमानाथ त्रिलोकेश कृपां कुरु ममोपरि॥ २७
स्वभक्तं तनयं देहि महाबलपराक्रमम्।
त्रिलोकजयिनं वीरमजेयं च दिवौकसाम्॥ २८

उसे सुनकर ब्रह्मा भी उन देवताओंको साथ लेकर उसे पूर्णरूपसे विष्णुसे कहनेके लिये वैकुण्ठलोक गये॥ १६॥

वहाँ जाकर सबकी रक्षा करनेवाले त्रिलोकेश विष्णुको हाथ जोड़कर प्रणाम करके विनम्र होकर वे सब उनकी स्तुति करने लगे॥ १७॥

देवता बोले—हे देवदेव! हम नहीं जानते कि किस तेजसे हम सभी अत्यधिक सन्तप्त हो रहे हैं, इसमें कौन-सा कारण है, उसे आप बताइये? हे दीनबन्धो! आप सन्तप्तचित्त अपने सेवकोंकी रक्षा करनेवाले हैं। हे रमानाथ! आप [सबको] शरण देनेवाले हैं। हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये॥ १८-१९॥

सनत्कुमार बोले—ब्रह्मादि देवताओंकी यह बात सुनकर शरणागतवत्सल भगवान् विष्णुजी हँसते हुए प्रेमपूर्वक कहने लगे—॥ २०॥

विष्णुजी बोले—हे देवताओ! आपलोग निश्चिन्त तथा शान्त रहिये और भयभीत न होइये, प्रलयकाल अभी उपस्थित नहीं हुआ है और न तो कोई उपद्रव ही होनेवाला है। मेरा भक्त दम्भ नामक दानव तप कर रहा है, वह पुत्र चाहता है, इसलिये मैं उसे वरदान देकर शान्त कर दूँगा॥ २१-२२॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने! विष्णुजीके ऐसा कहनेपर ब्रह्मा आदि वे सभी देवता धैर्य धारणकर पूर्णरूपसे स्वस्थ होकर अपने-अपने निवासस्थानको चले गये॥ २३॥

भगवान् विष्णु भी वर देनेके लिये पुष्कर क्षेत्रमें गये, जहाँ वह दम्भ नामक दानव तप कर रहा था॥ २४॥

वहाँ जाकर विष्णुने अपने मन्त्रका जप करते हुए उस भक्तको सान्त्वना देते हुए मधुर वाणीमें कहा—वर माँगो। तब विष्णुका यह वचन सुनकर तथा उनको अपने सामने खड़ा देखकर उसने महाभक्तिसे उन्हें प्रणाम किया तथा बार-बार उनकी स्तुति की—॥ २५-२६॥

दम्भ बोला—हे देवदेव! हे कमललोचन! हे रमानाथ! हे त्रिलोकेश! आपको प्रणाम है, मेरे ऊपर कृपा कीजिये। आप मुझे महाबली, पराक्रमी, तीनों लोकोंको जीतनेवाला, वीर, देवताओंके लिये अजेय तथा आपकी भक्तिसे युक्त पुत्र प्रदान कीजिये॥ २७-२८॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्तो दानवेन्द्रेण तं वरं प्रददौ हरिः।
निवर्त्य चोग्रतपसः ततः सोऽन्तरधान्मुने॥ २९

सनत्कुमार बोले—दानवेन्द्रके इस प्रकार कहनेपर नारायणने उसे वैसा ही वरदान दिया और हे मुने! उसे तपस्यासे विरतकर वे अन्तर्धान हो गये॥ २९॥

गते हरौ दानवेन्द्रः कृत्वा तस्यै दिशे नमः।
जगाम स्वगृहं सिद्धतपाः पूर्णमनोरथः॥ ३०

भगवान्‌के अन्तर्धान हो जानेपर सिद्ध हुए तपवाला तथा पूर्ण मनोरथवाला वह दानव उस दिशाको नमस्कार करके अपने घर चला गया॥ ३०॥

कालेनाल्पेन तत्पत्नी सगर्भा भाग्यवत्यभूत्।
रराज तेजसात्यन्तं रोचयंती गृहान्तरम्॥ ३१

इसके बाद थोड़े ही समयमें उसकी भाग्यवती पत्नीने गर्भ धारण किया और अपने तेजसे घरको प्रकाशित करती हुई वह शोभा प्राप्त करने लगी॥ ३१॥

सुदामा नाम गोपो यो कृष्णस्य पार्षदाग्रणीः।
तस्या गर्भे विवेशासौ राधाशप्तश्च यन्मुने॥ ३२

असूत समये साध्वी सुप्रभं तनयं ततः।
जातकं सुचकारासौ पिताऽऽहूय मुनीन्बहून्॥ ३३

हे मुने! सुदामा नामक गोप, जो कृष्णका प्रधान पार्षद था, जिसे राधाने शाप दिया था, वही उसके गर्भमें आया। समय आनेपर उस साध्वीने तेजस्वी पुत्रको जन्म दिया। इसके अनन्तर पिताने बहुत-से मुनियोंको बुलाकर उसका जातकर्म-संस्कार कराया॥ ३२-३३॥

उत्सवः सुमहानासीत्तस्मिञ्जाते द्विजोत्तम।
नाम चक्रे पिता तस्य शंखचूडेति सद्दिने॥ ३४

पितुर्गेहे स ववृधे शुक्लपक्षे यथा शशी।
शैशवेऽभ्यस्तविद्यस्तु स बभूव सुदीप्तिमान्॥ ३५

हे द्विजश्रेष्ठ! उसके उत्पन्न होनेपर महान् उत्सव हुआ और पिताने शुभ दिनमें उसका शंखचूड—यह नाम रखा। वह [शंखचूड] पिताके घरमें शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान बढ़ने लगा और बाल्यावस्थामें ही विद्याका अभ्यासकर अत्यन्त तेजस्वी हो गया॥ ३४-३५॥

स बालक्रीडया नित्यं पित्रोर्हर्षं ततान ह।
प्रियो बभूव सर्वेषां कुलजानां विशेषतः॥ ३६

वह अपनी बालक्रीडासे माता-पिताके हर्षको नित्य बढ़ाने लगा। वह सभीको प्रिय हुआ और अपने कुटुम्बियोंको विशेष प्रिय हुआ॥ ३६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शंखचूडोत्पत्तिवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडोत्पत्तिवर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २७॥

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

शंखचूडकी पुष्कर-क्षेत्रमें तपस्या, ब्रह्माद्वारा उसे वरकी प्राप्ति, ब्रह्माकी प्रेरणासे शंखचूडका तुलसीसे विवाह

सनत्कुमार उवाच

ततश्च शंखचूडोऽसौ जैगीषव्योपदेशतः।
तपश्चकार सुप्रीत्या ब्रह्मणः पुष्करे चिरम्॥ १

गुरुदत्तां ब्रह्मविद्यां जजाप नियतेन्द्रियः।
स एकाग्रमना भूत्वा करणानि निगृह्य च॥ २

सनत्कुमार बोले—इसके बाद उस शंखचूडने जैगीषव्य महर्षिके उपदेशसे ब्रह्माजीके पुष्कर-क्षेत्रमें प्रीतिपूर्वक बहुत कालपर्यन्त तप किया। उसने एकाग्रमन होकर इन्द्रियों तथा उनके विषयोंको जीतकर गुरुके द्वारा दी गयी ब्रह्मविद्याका जप करना प्रारम्भ किया॥ १-२॥

तपन्तं पुष्करे तं वै शंखचूडं च दानवम्।
वरं दातुं जगामाशु ब्रह्मा लोकगुरुर्विभुः॥ ३

इस प्रकार पुष्करमें तप करते हुए उस शंखचूड दानवको वर देनेके लिये लोकगुरु विभु ब्रह्मा शीघ्र वहाँ गये॥ ३॥

वरं ब्रूहीति प्रोवाच दानवेन्द्रं विधिस्तदा।
स दृष्ट्वा तं ननामातिनम्रस्तुष्टाव सद्गिरा॥ ४

वरं ययाचे ब्रह्माणमजेयत्वं दिवौकसाम्।
तथेत्याह विधिस्तं वै सुप्रसन्नेन चेतसा॥ ५

ब्रह्माने जब उस दानवेन्द्रसे कहा—'वर माँगो' तब वह उन्हें देखकर अत्यधिक विनम्र होकर श्रेष्ठ वाणीसे उनकी स्तुति करने लगा। उसके बाद उसने ब्रह्मासे वर माँगा कि देवगण मुझे जीत न सकें। तब ब्रह्माजीने प्रसन्न मनसे उससे कहा कि ऐसा ही होगा॥ ४-५॥

श्रीकृष्णकवचं दिव्यं जगन्मंगलमंगलम्।
दत्तवान् शंखचूडाय सर्वत्र विजयप्रदम्॥ ६

उन्होंने उस शंखचूडको जगत्के मंगलको भी मंगल बनानेवाला ('जगन्मंगलमंगल' नामक) और सर्वत्र विजय प्रदान करनेवाला दिव्य श्रीकृष्णकवच प्रदान किया॥ ६॥

बदरीं संप्रयाहि त्वं तुलस्या सह तत्र वै।
विवाहं कुरु तत्रैव सा तपस्यति कामतः॥ ७

धर्मध्वजसुता सेति संदिदेश च तं विधिः।
अन्तर्धानं जगामाशु पश्यतस्तस्य तत्क्षणात्॥ ८

'तुम बदरिकाश्रम चले जाओ और वहाँ तुलसीके साथ विवाह करो। वह पतिकी कामनासे वहींपर तप कर रही है। वह धर्मध्वजकी कन्या है'—इस प्रकार ब्रह्माजीने उससे कहा और उसके देखते-देखते शीघ्र ही उसी क्षण अन्तर्धान हो गये॥ ७-८॥

ततः स शंखचूडो हि तपःसिद्धोऽतिपुष्करे।
गले बबंध कवचं जगन्मंगलमंगलम्॥ ९

आज्ञया ब्रह्मणः सोऽपि तपःसिद्धमनोरथः।
समाययौ प्रहृष्टास्यस्तूर्णं बदरिकाश्रमम्॥ १०

तदनन्तर तपस्यासे सिद्धि प्राप्तकर उस शंखचूडने वहीं पुष्करमें ही जगत्के परम कल्याणकारी उस कवचको गलेमें बाँध लिया। इसके बाद तपस्यासे सिद्ध मनोरथवाला प्रसन्नमुख वह शंखचूड ब्रह्माकी आज्ञासे शीघ्र ही बदरिकाश्रममें आया॥ ९-१०॥

यदृच्छयाऽऽगतस्तत्र शंखचूडश्च दानवः।
तपश्चरन्ती तुलसी यत्र धर्मध्वजात्मजा॥ ११

सुरूपा सुस्मिता तन्वी शुभभूषणभूषिता।
सकटाक्षं ददर्शासौ तमेव पुरुषं परम्॥ १२

वह दानव शंखचूड अपनी इच्छासे घूमते हुए वहाँ आ गया, जहाँ धर्मध्वजकी कन्या तुलसी तप कर रही थी। सुन्दर रूपवाली, मन्द-मन्द मुसकानवाली, सूक्ष्म कटिप्रदेशवाली तथा शुभ भूषणोंसे भूषित उसने उस श्रेष्ठ पुरुषको कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे देखा॥ ११-१२॥

दृष्ट्वा तां ललितां रम्यां सुशीलां सुन्दरीं सतीम्।
उवास तत्समीपे तु मधुरं तामुवाच सः॥ १३

तब शंखचूड भी उस मनोहर, रम्य, सुशील, सुन्दरी एवं सतीको देखकर उसके समीप स्थित हो गया और मधुर वाणीमें उससे कहने लगा—॥ १३॥

शंखचूड उवाच

का त्वं कस्य सुता त्वं हि किं करोषि स्थितात्र किम्।
मौनीभूता किंकरं मां संभावितुमिहार्हसि॥ १४

शंखचूड बोला—[हे देवि!] तुम कौन हो, किसकी कन्या हो, तुम यहाँ क्या कर रही हो और मौन होकर यहाँ क्यों बैठी हो? तुम मुझे अपना दास समझकर सम्भाषण करो॥ १४॥

सनत्कुमार उवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा सकामं तमुवाच सा॥ १५

सनत्कुमार बोले—इस प्रकारका वचन सुनकर उस तुलसीने सकामभावसे उससे कहा—॥ १५॥

तुलस्युवाच

धर्मध्वजसुताहं च तपस्यामि तपस्विनी।
तपोवने च तिष्ठामि कस्त्वं गच्छ यथासुखम्॥ १६

तुलसी बोली—मैं धर्मध्वजकी कन्या हूँ और इस तपोवनमें तपस्या करती हूँ। तुम कौन हो? सुखपूर्वक यहाँसे चले जाओ॥ १६॥

नारीजातिर्मोहिनी च ब्रह्मादीनां विषोपमा।
निन्द्या दोषकरी माया शृंखला ह्यनुशायिनाम्॥ १७

नारीजाति ब्रह्मा आदिको भी मोह लेनेवाली, विषके समान, निन्दनीय, दूषित करनेवाली, मायारूपिणी तथा ज्ञानियोंके लिये शृंखलाके समान होती है॥ १७॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा तुलसी तं च सरसं विरराम ह।
दृष्ट्वा तां सस्मितां सोऽपि प्रवक्तुमुपचक्रमे॥ १८

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार उससे मधुर वचन बोलकर तुलसी चुप हो गयी। तब मन्द-मन्द मुसकानवाली उस तुलसीकी ओर देखकर वह भी कहने लगा—॥ १८॥

शंखचूड उवाच

त्वया यत्कथितं देवि न च सर्वमलीककम्।
किञ्चित्सत्यमलीकं च किंचिन्मत्तो निशामय॥ १९

शंखचूड बोला—हे देवि! तुमने जो कहा है, वह सब झूठ नहीं है, उसमें कुछ सत्य है और कुछ झूठ भी है, अब कुछ मुझसे सुनो॥ १९॥

पतिव्रताः स्त्रियो याश्च तासां मध्ये त्वमग्रणीः।
न चाहं पापदृक्कामी तथा त्वं नेति धीर्मम॥ २०

संसारमें जितनी भी पतिव्रता स्त्रियाँ हैं, उनमें तुम अग्रगण्य हो। मैं पापदृष्टिवाला और कामी नहीं हूँ, उसी प्रकार तुम भी वैसी नहीं हो, मेरी तो ऐसी ही बुद्धि है॥ २०॥

आगच्छामि त्वत्समीपमाज्ञया ब्रह्मणोऽधुना।
गांधर्वेण विवाहेन त्वां ग्रहीष्यामि शोभने॥ २१

शंखचूडोऽहमेवास्मि देवविद्रावकारकः।
मां न जानासि किं भद्रे न श्रुतोऽहं कदाचन॥ २२

हे शोभने! मैं इस समय ब्रह्माजीकी आज्ञासे तुम्हारे पास आया हूँ और गान्धर्व विवाहके द्वारा तुम्हें ग्रहण करूँगा। हे देवि! मैं देवताओंको भगा देनेवाला शंखचूड नामक दैत्य हूँ। हे भद्रे! क्या तुम मुझे नहीं जानती और क्या तुमने मेरा नाम कभी नहीं सुना है?॥ २१-२२॥

दनुवंश्यो विशेषेण दम्भपुत्रश्च दानवः।
सुदामा नाम गोपोऽहं पार्षदश्च हरेः पुरा॥ २३

मैं विशेष करके दनुके वंशमें उत्पन्न हुआ हूँ और दम्भका पुत्र शंखचूड नामक दानव हूँ। मैं पूर्व समयमें श्रीकृष्णका पार्षद सुदामा नामक गोप था॥ २३॥

अधुना दानवेन्द्रोऽहं राधिकायाश्च शापतः।
जातिस्मरोऽहं जानामि सर्वं कृष्णप्रभावतः॥ २४

राधिकाके शापसे मैं इस समय दैत्यराज हूँ। मुझे अपने पूर्वजन्मका स्मरण है, मैं श्रीकृष्णके प्रभावसे सब कुछ जानता हूँ॥ २४॥

सनत्कुमार उवाच

एवमुक्त्वा शंखचूडो विरराम च तत्पुरः।
दानवेन्द्रेण सेत्युक्ता वचनं सत्यमादरात्।
सस्मितं तुलसी तुष्टा प्रवक्तुमुपचक्रमे॥ २५

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार कहकर शंखचूड चुप हो गया। तब दानवेन्द्रके द्वारा आदरपूर्वक सत्य वचन कहे जानेपर वह तुलसी सन्तुष्ट हो गयी और मन्द-मन्द मुसकराती हुई कहने लगी॥ २५॥

तुलस्युवाच

त्वयाहमधुना सत्त्वविचारेण पराजिता।
स धन्यः पुरुषो लोके न स्त्रिया यः पराजितः॥ २६

तुलसी बोली—आपने अपने सात्त्विक विचारसे इस समय मुझे पराजित कर दिया है। संसारमें वह पुरुष धन्य है, जो स्त्रीसे पराजित नहीं होता॥ २६॥

सत्क्रियोऽप्यशुचिर्नित्यं स पुमान्यः स्त्रिया जितः।
निन्दन्ति पितरो देवा मानवाः सकलाश्च तम्॥ २७

जिस पुरुषको स्त्रीने जीत लिया, वह सत्कर्ममें निरत होनेपर भी नित्य अपवित्र है, देवता, पितर तथा मनुष्य सभी लोग उसकी निन्दा करते हैं॥ २७॥

शुध्येद्विप्रो दशाहेन जातके मृतसूतके।
क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशाहतः॥ २८

शूद्रो मासेन शुध्येत्तु हीति वेदानुशासनम्।
न शुचिः स्त्रीजितः क्वापि चितादाहं विना पुमान्॥ २९

जनन एवं मरणके सूतकमें ब्राह्मण दस दिनमें शुद्ध होता है, क्षत्रिय बारह दिनमें, वैश्य पन्द्रह दिनमें और शूद्र एक महीनेमें शुद्ध होता है—ऐसी वेदकी आज्ञा है, परंतु स्त्रीके द्वारा विजित पुरुष बिना चितादाह हुए कभी भी शुद्ध नहीं होता॥ २८-२९॥

न गृह्णन्तीच्छया तस्मात्पितरः पिण्डतर्पणम्।
न गृह्णन्ति सुरास्तेन दत्तं पुष्पफलादिकम्॥ ३०

तस्य किं ज्ञानसुतपोजपहोमप्रपूजनैः।
विद्यया दानतः किं वा स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम्॥ ३१

उसके तर्पणका जल एवं पिण्ड भी पितरलोग इच्छापूर्वक ग्रहण नहीं करते और देवता उसके द्वारा दिये गये पुष्प, फल आदिको ग्रहण नहीं करते हैं। उसके ज्ञान, श्रेष्ठ तप, जप, होम, पूजन, विद्या एवं दानसे क्या लाभ है, जिसके मनको स्त्रियोंने हर लिया हो?॥ ३०-३१॥

विद्याप्रभावज्ञानार्थं मया त्वं च परीक्षितः।
कृत्वा कांतपरीक्षां वै वृणुयात्कामिनी वरम्॥ ३२

मैंने आपकी विद्याका प्रभाव जाननेके लिये ही आपकी परीक्षा ली है; क्योंकि स्वामीकी परीक्षा करके ही स्त्रीको अपने पतिका वरण करना चाहिये॥ ३२॥

सनत्कुमार उवाच

इत्येवं प्रवदन्त्यां तु तुलस्यां तत्क्षणे विधिः।
तत्राजगाम संस्त्रष्टा प्रोवाच वचनं ततः॥ ३३

सनत्कुमार बोले—अभी तुलसी इस प्रकार कह ही रही थी कि जगत्स्त्रष्टा ब्रह्माजी वहाँ आ गये और यह वचन कहने लगे—॥ ३३॥

ब्रह्मोवाच

किं करोषि शंखचूड संवादमनया सह।
गांधर्वेण विवाहेन त्वमस्या ग्रहणं कुरु॥ ३४

ब्रह्माजी बोले—हे शंखचूड! तुम इसके साथ क्या संवाद कर रहे हो? गान्धर्वविवाहके द्वारा तुम इसको ग्रहण करो॥ ३४॥

त्वं वै पुरुषरत्नं च स्त्रीरत्नं च त्वियं सती।
विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान् भवेत्॥ ३५

तुम पुरुषोंमें रत्न हो और यह सती भी स्त्रियोंमें रत्न है। चतुरोंके साथ चतुरका संगम गुणयुक्त होता है॥ ३५॥

निर्विरोधं सुखं राजन् को वा त्यजति दुर्लभम्।
योऽविरोधसुखत्यागी स पशुर्नात्र संशयः॥ ३६

हे राजन्! यदि विरोधके बिना ही दुर्लभ सुख प्राप्त होता हो तो ऐसा कौन है, जो उसका त्याग करेगा? जो निर्विरोध सुखका त्याग करनेवाला है, वह पशु है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३६॥

किं त्वं परीक्षसे कांतमीदृशं गुणिनं सति।
देवानामसुराणां च दानवानां विमर्दकम्॥ ३७

हे सति! तुम देवताओं, असुरों तथा दानवोंका मर्दन करनेवाले इस प्रकारके गुणवान् पतिकी परीक्षा क्यों करती हो?॥ ३७॥

अनेन सार्धं सुचिरं विहारं कुरु सर्वदा।
स्थाने स्थाने यथेच्छं च सर्वलोकेषु सुन्दरि॥ ३८

हे सुन्दरि! तुम इसके साथ सभी लोकोंमें स्थान-स्थानपर चिरकालतक सर्वदा अपनी इच्छाके अनुसार विहार करो॥ ३८॥

अंते प्राप्स्यति गोलोके श्रीकृष्णं पुनरेव सः।
चतुर्भुजं च वैकुण्ठे मृते तस्मिंस्त्वमाप्स्यसि॥ ३९

अन्तमें वह गोलोकमें श्रीकृष्णको पुनः प्राप्त करेगा और उसके मर जानेपर तुम भी वैकुण्ठमें चतुर्भुज श्रीकृष्णको प्राप्त करोगी॥ ३९॥

सनत्कुमार उवाच

इत्येवमाशिषं दत्त्वा स्वालयं तु ययौ विधिः।
गांधर्वेण विवाहेन जगृहे तां च दानवः॥ ४०

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार यह आशीर्वाद देकर ब्रह्मा अपने लोकको चले गये और उस दानवने गान्धर्वविवाहके द्वारा उसे ग्रहण किया॥ ४०॥

एवं विवाह्य तुलसीं पितुः स्थानं जगाम ह।
स रेमे रमया सार्धं वासगेहे मनोरमे॥ ४१

इस प्रकार तुलसीसे विवाहकर वह अपने पिताके घर चला गया और अपने मनोहर भवनमें उस सुन्दरीके साथ रमण करने लगा॥ ४१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शंखचूडतपःकरणविवाहवर्णनं नामाष्टविंशोऽध्यायः॥ २८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडकी तपस्या तथा विवाहका वर्णन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २८॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

शंखचूडका राज्यपदपर अभिषेक, उसके द्वारा देवोंपर विजय, दुखी देवोंका ब्रह्माजीके साथ वैकुण्ठगमन, विष्णुद्वारा शंखचूडके पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताना और विष्णु तथा ब्रह्माका शिवलोक-गमन

सनत्कुमार उवाच

स्वगेहमागते तस्मिन् शंखचूडे विवाहिते।
तपःकृत्वा वरं प्राप्य मुमुदुर्दानवादयः॥ १

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] तपस्या करके वर प्राप्त करनेके उपरान्त विवाह किये हुए उस शंखचूडके घर आनेपर दानव आदि अत्यन्त प्रसन्न हो गये॥ १॥

स्वलोकादाशु निर्गत्य गुरुणा स्वेन संयुताः।
सर्वेऽसुराः संमिलिताः समाजग्मुस्तदन्तिकम्॥ २

प्रणम्य तं सविनयं संस्तुत्य विविधादरात्।
स्थितास्तत्रैव सुप्रीत्या मत्वा तेजस्विनं विभुम्॥ ३

सोऽपि दम्भात्मजो दृष्ट्वाऽऽगतं कुलगुरुं च तम्।
प्रणनाम महाभक्त्या साष्टांगं परमादरात्॥ ४

अपने लोकसे शीघ्र निकलकर सभी असुर एकत्रित हो अपने गुरु शुक्राचार्यको साथ लेकर उसके पास आये और विनयपूर्वक उसे प्रणाम करके आदरपूर्वक उसकी स्तुति करते हुए उसको समर्थ एवं तेजस्वी मानकर प्रसन्नतापूर्वक वहींपर स्थित हो गये। दम्भके पुत्र शंखचूडने भी अपने घर आये हुए उन कुलगुरुको देखकर बड़े आदरसे महाभक्तिपूर्वक उन्हें साष्टांग प्रणाम किया॥ २—४॥

अथ शुक्रः कुलाचार्यो दृष्ट्वाशिषमनुत्तमाम्।
वृत्तान्तं कथयामास देवदानवयोस्तदा॥ ५

स्वाभाविकं च तद्वैरमसुराणां पराभवम्।
विजयं निर्जराणां च जीवसाहाय्यमेव च॥ ६

तत्पश्चात् दैत्योंके कुलाचार्य शुक्रने उसे देखकर उत्तम आशीर्वाद प्रदान किया और देवताओं तथा दानवोंका वृत्तान्त उससे कहा। उन्होंने देव-दानवके स्वाभाविक वैर, देवताओंकी विजय, असुरोंकी पराजय तथा बृहस्पतिके द्वारा देवताओंकी सहायताका वर्णन किया॥ ५-६॥

ततः स सम्मतं कृत्वाऽसुरैः सर्वैः समुत्सवम्।
दानवाद्यसुराणां तमधिपं विदधे गुरुः॥ ७

तदा समुत्सवो जातोऽसुराणां मुदितात्मनाम्।
उपायनानि सुप्रीत्या ददुस्तस्मै च तेऽखिलाः॥ ८

इसके बाद गुरु शुक्राचार्यने सभी दैत्योंकी सम्मति लेकर दानवों एवं असुरोंका अधिपति बनाकर उसे राज्यपदपर अभिषिक्त किया। उस समय प्रसन्न मनवाले असुरोंका महान् उत्सव हुआ। उन सभीने प्रेमपूर्वक उस शंखचूडको नाना प्रकारकी भेंट अर्पण की॥ ७-८॥

अथ दम्भात्मजो वीरः शंखचूडः प्रतापवान्।
राज्याभिषेकमासाद्य स रेजेऽसुरराट् तदा॥ ९

स सेनां महतीं कर्षन्दैत्यदानवरक्षसाम्।
रथमास्थाय तरसा जेतुं शक्रपुरीं ययौ॥ १०

गच्छन्स दानवेन्द्रस्तु तेषां सेवनकुर्वताम्।
विरेजे शशिवद्भानां ग्रहाणां ग्रहराडिव॥ ११

आगच्छन्तं शङ्खचूडमाकर्ण्याखण्डलस्स्वराट्।
निखिलैरमरैः सार्धं तेन योद्धुं समुद्यतः॥ १२

वह वीर तथा महाप्रतापी दम्भपुत्र शंखचूड राज्यपदपर अभिषिक्त होकर अत्यन्त शोभित होने लगा। वह दैत्यों, दानवों एवं राक्षसोंकी बहुत बड़ी सेना लेकर रथपर आरूढ़ होकर इन्द्रपुरीको जीतनेके लिये वेगपूर्वक चल पड़ा। उस समय [विजययात्राके लिये] जाता हुआ वह दानवेन्द्र उन दैत्योंके बीच ताराओंके मध्यमें चन्द्रमाकी भाँति तथा ग्रहोंके मध्यमें ग्रहराज सूर्यके समान सुशोभित हो रहा था। शंखचूडको आता हुआ सुनकर उससे युद्ध करनेके लिये देवराज इन्द्र सम्पूर्ण देवताओंके साथ उद्यत हो गये॥ ९—१२॥

तदाऽसुरैः सुराणां च संग्रामस्तुमुलो ह्यभूत्।
वीराऽऽनन्दकरः क्लीबभयदो रोमहर्षणः॥ १३

महान्कोलाहलो जातो वीराणां गर्जतां रणे।
वाद्यध्वनिस्तथा चाऽऽसीत्तत्र वीरत्ववर्द्धिनी॥ १४

देवाः प्रकुप्य युयुधुरसुरैर्बलवत्तराः।
पराजयं च संप्रापुरसुरा दुद्रुवुर्भयात्॥ १५

पलायमानांस्तान्दृष्ट्वा शंखचूडः स्वयं प्रभुः।
युयुधे निर्जरैः साकं सिंहनादं प्रगर्ज्य च॥ १६

उस समय देवता और असुरोंमें रोमांचकारी घोर युद्ध छिड़ गया, जो वीरोंको आनन्द देनेवाला तथा कायरोंको भय देनेवाला था। उस युद्धमें गरजते हुए वीरोंका महान् कोलाहल उत्पन्न हुआ और वीरताको बढ़ानेवाली वाद्यध्वनि होने लगी। अति बलवान् देवगण क्रुद्ध होकर असुरोंके साथ युद्ध करने लगे। असुर पराजित हुए और भयके कारण भागने लगे। उन्हें भागते देखकर दैत्यराज शंखचूड सिंहनादके समान गर्जना करके देवताओंके साथ स्वयं युद्ध करने लगा॥ १३—१६॥

तरसा सहसा चक्रे कदनं त्रिदिवौकसाम्।
प्रदुद्रुवुः सुराः सर्वे तत्सुतेजो न सेहिरे॥ १७

यत्र तत्र स्थिता दीना गिरीणां कंदरासु च।
तदधीना न स्वतंत्रा निष्प्रभाः सागरा यथा॥ १८

वह बड़े वेगसे सहसा देवताओंको नष्ट करने लगा, कोई भी देवता उसके तेजको न सह सके और भागने लगे। वे दीन होकर पर्वतोंकी कन्दराओंमें जहाँ-तहाँ छिप गये और कुछ देवताओंने स्वतन्त्र न रहकर उसकी अधीनता स्वीकार कर ली तथा सगरपुत्रोंके समान प्रभाहीन हो गये॥ १७-१८॥

सोऽपि दंभात्मजः शूरो दानवेन्द्रः प्रतापवान्।
सुराधिकारान्संजह्रे सर्वाल्लँलोकान्विजित्य च॥ १९

त्रैलोक्यं स्ववशं चक्रे यज्ञभागांश्च कृत्स्नशः।
स्वयमिन्द्रो बभूवापि शासितं निखिलं जगत्॥ २०

इस प्रकार वीर तथा प्रतापशाली दम्भपुत्र दानवेन्द्र शंखचूडने सारे लोकोंको जीतकर समस्त देवताओंका अधिकार हरण कर लिया। उसने तीनों लोकोंको तथा सम्पूर्ण यज्ञभागोंको अपने वशमें कर लिया, वह स्वयं इन्द्र बन गया और सारे जगत्पर शासन करने लगा॥ १९-२०॥

कौबेरमैन्दवं सौर्यमाग्नेयं याम्यमेव च।
कारयामास वायव्यमधिकारं स्वशक्तितः॥ २१
देवानामसुराणां च दानवानां च रक्षसाम्।
गंधर्वाणां च नागानां किन्नराणां रसौकसाम्॥ २२
त्रिलोकस्य परेषां च सकलानामधीश्वरः।
स बभूव महावीरः शंखचूडो महाबली॥ २३
एवं स बुभुजे राज्यं राजराजेश्वरो महान्।
सर्वेषां भुवनानां च शंखचूडश्चिरं समाः॥ २४
तस्य राज्ये न दुर्भिक्षं न मारी नाऽशुभग्रहाः।
आधयो व्याधयो नैव सुखिन्यश्च प्रजाः सदा॥ २५
अकृष्टपच्या पृथिवी ददौ सस्यान्यनेकशः।
ओषध्यो विविधाश्चासन्सफलाः सरसाः सदा॥ २६
मण्याकराश्च नितरां रत्नखन्यश्च सागराः।
सदा पुष्पफला वृक्षा नद्यः सुसलिलावहाः॥ २७
देवान् विनाखिला जीवाः सुखिनो निर्विकारकाः।
स्वस्वधर्मास्थिताः सर्वे चतुर्वर्णाश्रमाः परे॥ २८

उसने अपनी शक्तिसे कुबेर, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, यम तथा वायुका अधिकार छीन लिया। वह महान् वीर तथा महाबली शंखचूड देव, असुर, दानव, राक्षस, गन्धर्व, नाग, किन्नर, मनुष्य तथा अन्य सभी लोगों तथा तीनों लोकोंका अधिपति बन गया॥ २१—२३॥

इस प्रकार राजाओंके भी राजा उस महान् शंखचूडने बहुत वर्षपर्यन्त सभी भुवनोंपर राज्य किया॥ २४॥

उसके राज्यमें दुर्भिक्ष, महामारी, अशुभ ग्रह, आधि, व्याधि—ये नहीं थे, सभी प्रजाएँ सर्वदा सुखी रहती थीं। पृथ्वी बिना जोते ही नाना प्रकारके धान्य उत्पन्न करती थी। फलों तथा रसोंसे युक्त नाना प्रकारकी औषधियाँ सर्वदा उत्पन्न होती थीं। खानोंसे मणियाँ तथा समुद्रसे रत्न निरन्तर निकलते थे। वृक्ष सदैव फल-फूलसे हरे-भरे रहते थे और नदियाँ मधुर जल बहाती रहती थीं॥ २५—२७॥

[उस समय] देवताओंको छोड़कर सारे जीव सुखी तथा विकाररहित थे। चारों वर्ण एवं आश्रमके सभी लोग अपने-अपने धर्ममें स्थित थे॥ २८॥

तस्मिन् शासति त्रैलोक्ये न कश्चिद् दुःखितोऽभवत्।
भ्रातृवैरत्वमाश्रित्य केवलं दुःखिनोऽमराः॥ २९

इस प्रकार उसके शासनकालमें कोई भी दुखी नहीं था, भ्रातृ-वैरको लेकर केवल देवता ही दुखी थे॥ २९॥

स शंखचूडः प्रबलः कृष्णस्य परमः सखा।
कृष्णभक्तिरतः साधुः सदा गोलोकवासिनः॥ ३०

पूर्वशापप्रभावेण दानवीं योनिमाश्रितः।
न दानवमतिः सोऽभूद्दानवत्वेऽपि वै मुने॥ ३१

वह महाबली शंखचूड गोलोकवासी श्रीकृष्णका परम सखा था, साधुस्वभाववाला वह श्रीकृष्णकी भक्तिमें सदा निरत रहता था। हे मुने! वह तो पूर्वजन्मके शापके प्रभावसे दानवयोनिको प्राप्त हुआ था, दानवकुलमें जन्म होनेपर भी वह दानवोंकी-सी बुद्धिवाला नहीं था॥ ३०-३१॥

ततः सुरगणाः सर्वे हृतराज्याः पराजिताः।
संमन्त्र्य सर्षयस्तात प्रययुर्ब्रह्मणः सभाम्॥ ३२

तत्र दृष्ट्वा विधातारं नत्वा स्तुत्वा विशेषतः।
ब्रह्मणे कथयामासुः सर्वं वृत्तांतमाकुलाः॥ ३३

हे तात! तत्पश्चात् राज्यसे वंचित तथा पराजित सभी देवता आपसमें मन्त्रणाकर और ऋषियोंको साथ लेकर ब्रह्माकी सभामें गये। उन्होंने वहाँ ब्रह्माजीको देखकर उन्हें प्रणामकर तथा विशेषरूपसे उनकी स्तुति करके व्याकुल होकर ब्रह्माजीसे सारा वृत्तान्त निवेदन किया॥ ३२-३३॥

ब्रह्मा तदा समाश्वास्य सुरान् सर्वान्मुनीनपि।
तैश्च सार्द्धं ययौ लोके वैकुण्ठं सुखदं सताम्॥ ३४
ददर्श तत्र लक्ष्मीशं ब्रह्मा देवगणैः सह।
किरीटिनं कुंडलिनं वनमालाविभूषितम्॥ ३५
शंखचक्रगदापद्मधरं देवं चतुर्भुजम्।

तदनन्तर ब्रह्मा उन सभी देवताओं एवं मुनियोंको सान्त्वना देकर उनके साथ सज्जनोंको सुख देनेवाले वैकुण्ठलोक गये। ब्रह्माने देवगणोंके साथ वहाँ जाकर किरीट-कुण्डलधारी, वनमालासे विभूषित, शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये हुए, चतुर्भुज, पीतवस्त्रधारी

सनंदनाद्यैः सिद्धैश्च सेवितं पीतवाससम्॥ ३६

दृष्ट्वा विष्णुं सुराः सर्वे ब्रह्माद्याः समुनीश्वराः।
प्रणम्य तुष्टुवुर्भक्त्या बद्धाञ्जलिकरा विभुम्॥ ३७

तथा सनन्दन आदि सिद्धोंसे सेवित लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुको देखा। मुनीश्वरोंसहित ब्रह्मा आदि सभी देवता विभु विष्णुको देखकर उन्हें प्रणाम करके भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे— ॥ ३४—३७॥

देवा ऊचुः

देवदेव जगन्नाथ वैकुंठाधिपते प्रभो।
रक्षास्मान् शरणापन्नान् श्रीहरे त्रिजगद्गुरो॥ ३८

त्वमेव जगतां पाता त्रिलोकेशाच्युत प्रभो।
लक्ष्मीनिवास गोविन्द भक्तप्राण नमोऽस्तु ते॥ ३९

देवता बोले—हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे वैकुण्ठाधिपति! हे प्रभो! हे त्रिजगद्गुरो! हे श्रीहरे! हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये। हे त्रिलोकेश! हे अच्युत! हे प्रभो! हे लक्ष्मीनिवास! हे गोविन्द! आप ही संसारके रक्षक हैं। हे भक्तप्राण! आपको नमस्कार है॥ ३८-३९॥

इति स्तुत्वा सुराः सर्वे रुरुदुः पुरतो हरेः।
तच्छ्रुत्वा भगवान्विष्णुर्ब्रह्माणमिदमब्रवीत्॥ ४०

इस प्रकार स्तुतिकर सभी देवता नारायणके आगे रुदन करने लगे। यह सुनकर भगवान् विष्णुने ब्रह्मासे यह कहा—॥ ४०॥

विष्णुरुवाच

किमर्थमागतोऽसि त्वं वैकुंठं योगिदुर्लभम्।
किं कष्टं ते समुद्भूतं तत् त्वं वद ममाग्रतः॥ ४१

विष्णु बोले—[हे ब्रह्मन्!] योगियोंके लिये भी दुर्लभ इस वैकुण्ठमें आप किस उद्देश्यसे आये हैं, आपको कौन-सा कष्ट आ पड़ा है? उसे आप मेरे सामने कहिये॥ ४१॥

सनत्कुमार उवाच

इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं प्रणम्य च मुहुर्मुहुः।
बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा विनयानतकन्धरः॥ ४२

वृत्तान्तं कथयामास शंखचूडकृतं तदा।
देवकष्टसमाख्यानं पुरो विष्णोः परात्मनः॥ ४३

सनत्कुमार बोले—नारायणका यह वचन सुनकर ब्रह्माजीने बारंबार उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़कर बड़े विनयके साथ सिर झुकाकर शंखचूडके द्वारा देवताओंको दिये गये दुःखसे सम्बन्धित सारा वृत्तान्त परमात्मा विष्णुके सामने कह सुनाया॥ ४२-४३॥

हरिस्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वतः सर्वभाववित्।
प्रहस्योवाच भगवांस्तद्रहस्यं विधिं प्रति॥ ४४

तब सब प्रकारसे सबके भावोंको जाननेवाले भगवान् विष्णु उनका वचन सुनकर हँस करके ब्रह्माजीसे उसका रहस्य इस प्रकार कहने लगे—॥ ४४॥

श्रीभगवानुवाच

शंखचूडस्य वृत्तान्तं सर्वं जानामि पद्मज।
मद्भक्तस्य च गोपस्य महातेजस्विनः पुरा॥ ४५

श्रीभगवान् बोले—हे ब्रह्मदेव! मैं पूर्वजन्मके अपने परम भक्त महातेजस्वी गोप शंखचूडका सारा वृत्तान्त जानता हूँ॥ ४५॥

शृणु तत् सर्ववृत्तान्तमितिहासं पुरातनम्।
संदेहो नैव कर्तव्यः शं करिष्यति शङ्करः॥ ४६

आप उसका प्राचीन इतिहासयुक्त वृत्तान्त सुनिये, इसमें सन्देह न कीजिये, शंकरजी मंगल करेंगे॥ ४६॥

सर्वोपरि च यस्यास्ति शिवलोकः परात्परः।
यत्र संराजते शंभुः परब्रह्म परेश्वरः॥ ४७

जिनका परात्पर शिवलोक सभी लोकोंके ऊपर स्थित है, जहाँ शंकरजी स्वयं परब्रह्म परमेश्वरके रूपमें विराजमान हैं, तीनों शक्तियोंको धारण करनेवाले

प्रकृतेः पुरुषस्यापि योऽधिष्ठाता त्रिशक्तिधृक्।
निर्गुणः सगुणः सोऽपि परंज्योतिःस्वरूपवान्॥ ४८

यस्यांगजास्तु वै ब्रह्मंस्त्रयः सृष्ट्यादिकारकाः।
सत्त्वादिगुणसंपन्ना विष्णुब्रह्महराभिधाः॥ ४९

स एव परमात्मा हि विहरत्युमया सह।
यत्र मायाविनिर्मुक्तो नित्यानित्यप्रकल्पकः॥ ५०

तत्समीपे च गोलोको गोशाला शंकरस्य वै।
तस्येच्छया च मद्रूपः कृष्णो वसति तत्र ह॥ ५१

जो प्रकृति एवं पुरुषके भी अधिष्ठाता हैं, जो निर्गुण, सगुण तथा परम ज्योतिःस्वरूप हैं और हे ब्रह्मन्! सृष्टि आदिके करनेवाले तथा सत्त्व आदि गुणोंसे युक्त विष्णु, ब्रह्मा एवं महेश्वर नामक तीन देव जिनके अंगसे उत्पन्न हुए हैं, मायासे सर्वथा मुक्त एवं नित्यानित्यके व्यवस्थापक वे ही परमात्मा उमाके साथ जहाँ विहार करते हैं, उसीके समीप गोलोक है और वहीं शिवजीकी गोशाला है, उन्हींकी इच्छासे वहाँपर मेरे स्वरूपमें स्थित श्रीकृष्ण निवास करते हैं॥ ४७—५१॥

तद्गवां रक्षणार्थाय तेनाज्ञप्तः सदा सुखी।
तत्संप्राप्तसुखः सोऽपि संक्रीडति विहारवित्॥ ५२

शंकरने अपनी गौओंकी रक्षाके लिये उन श्रीकृष्णको नियुक्त किया है। वे भी गौओंकी रक्षासे सुखी होकर विहार करते हुए वहाँ क्रीड़ा करते हैं॥ ५२॥

तस्य नारी समाख्याता राधेति जगदम्बिका।
प्रकृतेः परमा मूर्तिः पंचमी सुविहारिणी॥ ५३

प्रकृतिकी पाँचवीं परम मूर्ति जगदम्बा राधा, जो उनकी स्त्री कही गयी हैं, वे भी वहाँ निवास करती हैं॥ ५३॥

बहुगोपाश्च गोप्यश्च तत्र संति तदंगजाः।
सुविहारपरा नित्यं राधाकृष्णानुवर्तिनः॥ ५४

स एव लीलया शंभोरिदानीं मोहितोऽनया।
संप्राप्तो दानवीं योनिं मुधा शापात्स्वदुःखदाम्॥ ५५

वहींपर उनके अंगसे उत्पन्न हुए अनेक गोप एवं गोपियाँ हैं, जो उन राधा-कृष्णके अनुवर्ती रहकर सदा विहार करते हैं। उन्हींमेंसे यह गोप (शंखचूड) शंकरकी इस लीलासे मोहित होकर राधाके शापसे दुःखदायी दानवी योनिको व्यर्थ ही प्राप्त हो गया है॥ ५४-५५॥

रुद्रशूलेन तन्मृत्युः कृष्णेन विहितः पुरा।
ततः स्वदेहमुत्सृज्य पार्षदः स भविष्यति॥ ५६

इति विज्ञाय देवेश न भयं कर्तुमर्हसि।
शंकरं शरणं याहि स सद्यः शं विधास्यति॥ ५७

अहं त्वं चामराः सर्वे तिष्ठन्त्विह विसाध्वसाः॥ ५८

श्रीकृष्णने उसकी मृत्यु रुद्रके त्रिशूलसे पहले ही निश्चित की है, उसके बाद वह अपने देहका त्यागकर श्रीकृष्णका पार्षद होगा। हे देवेश! ऐसा जानकर आप भय मत कीजिये, शंकरकी शरणमें जाइये, वे शीघ्र कल्याण करेंगे। मैं, आप एवं सभी देवता भयरहित होकर यहाँ निवास करें॥ ५६—५८॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा सविधिर्विष्णुः शिवलोकं जगाम ह।
संस्मरन्मनसा शंभुं सर्वेशं भक्तवत्सलम्॥ ५९

सनत्कुमार बोले—ऐसा कहकर विष्णुजी भक्तवत्सल सर्वेश शिवका मनसे स्मरण करते हुए ब्रह्माजीके साथ शिवलोक गये॥ ५९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शंखचूडवधोपाख्याने शंखचूडराज्यकरणवर्णनपूर्वकतत्पूर्वभववृत्तचरित्रवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडवधोपाख्यानमें शंखचूडराज्य-करणवर्णनपूर्वक उसका पूर्वभववृत्तचरित्रवर्णन नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मा तथा विष्णुका शिवलोक पहुँचना, शिवलोककी तथा शिवसभाकी शोभाका वर्णन, शिवसभाके मध्य उन्हें अम्बासहित भगवान् शिवके दिव्यस्वरूपका दर्शन और शंखचूडसे प्राप्त कष्टोंसे मुक्तिके लिये प्रार्थना

सनत्कुमार उवाच

गत्वा तदैव सविधिस्तदा व्यास रमेश्वरः।
शिवलोकं महादिव्यं निराधारमभौतिकम्॥ १
साह्लादोऽभ्यन्तरं विष्णुर्जगाम मुदिताननः।
नानारत्नपरिक्षिप्तं विलसन्तं महोज्ज्वलम्॥ २

संप्राप्य प्रथमं द्वारं विचित्रं गणसेवितम्।
शोभितं परया लक्ष्म्या महोच्चमतिसुन्दरम्॥ ३
ददर्श द्वारपालांश्च रत्नसिंहासनस्थितान्।
शोभितान् श्वेतवस्त्रैश्च रत्नभूषणभूषितान्॥ ४
पञ्चवक्त्रत्रिनयनान्गौरसुन्दरविग्रहान्।
त्रिशूलादिधरान्वीरान् भस्मरुद्राक्षशोभितान्॥ ५
स ब्रह्मापि रमेशश्च तान् प्रणम्य विनम्रकः।
कथयामास वृत्तान्तं प्रभुसंदर्शनार्थकम्॥ ६

तदाज्ञां च ददुस्तस्मै प्रविवेश तदाज्ञया।
परं द्वारं महारम्यं विचित्रं परमप्रभम्॥ ७

प्रभूपकंठगत्यर्थं वृत्तान्तं संन्यवेदयत्।
तद् द्वारपाय चाज्ञप्तस्तेनान्यं प्रविवेश ह॥ ८

एवं पंचदशद्वारान्प्रविश्य कमलोद्भवः।
महाद्वारं गतस्तत्र नन्दिनं प्रददर्श ह॥ ९

सम्यङ् नत्वा च तं स्तुत्वा पूर्ववत्तेन नन्दिना।
आज्ञप्तश्च शनैर्विष्णुर्विवेशाभ्यंतरं मुदा॥ १०

ददर्श गत्वा तत्रोच्चैः सभां शंभोः समुत्प्रभाम्।
तां पार्षदैः परिवृतां लसद्देहैः सुभूषिताम्॥ ११

माहेश्वरस्य रूपैश्च दिग्भुजैः शुभकान्तिभिः।
पञ्चवक्त्रैस्त्रिनयनैः शितिकंठैर्महोज्ज्वलैः॥ १२

सद्रत्नयुक्तरुद्राक्षभस्माभरणभूषितैः।

सनत्कुमार बोले—हे व्यासजी! उस समय ब्रह्मासहित भगवान् विष्णु अत्यन्त दिव्य, निराधार एवं अभौतिक शिवलोक पहुँचकर आनन्दित तथा प्रसन्नमुख होकर भीतर गये, जो नाना प्रकारके रत्नोंसे निर्मित, महोज्ज्वल और शोभासे युक्त था॥ १-२॥

उन्होंने गणोंसे सेवित, अद्भुत, अत्यन्त ऊँचे, परम सुन्दर और अत्यधिक शोभासम्पन्न पहले द्वारपर आकर श्वेत वस्त्रोंसे सुशोभित, रत्नमय आभूषणोंसे भूषित, रत्नके सिंहासनपर स्थित, पाँच मुख तथा तीन नेत्रवाले, गौर तथा सुन्दर शरीरवाले, त्रिशूल आदि धारण किये हुए और भस्म तथा रुद्राक्षसे सुशोभित महावीर द्वारपालोंको देखा। तब ब्रह्माके सहित विष्णुने बड़ी विनम्रताके साथ उन्हें प्रणाम करके प्रभुदर्शनके निमित्त सारा वृत्तान्त बताया॥ ३—६॥

तब उन्होंने आज्ञा प्रदान की और वे उनकी आज्ञासे प्रविष्ट हुए। दूसरा द्वार भी परम मनोहर, विचित्र तथा अत्यन्त प्रभायुक्त था। प्रभुके पास जानेके लिये उन्होंने वहाँके द्वारपालसे वृत्तान्त निवेदित किया और उस द्वारपालसे आज्ञा प्राप्तकर वे अन्य द्वारमें प्रविष्ट हुए॥ ७-८॥

इस प्रकार पन्द्रह द्वारोंमें क्रमसे प्रवेश करके वे पद्मयोनि एक विशाल द्वारपर पहुँचे और उन्होंने वहाँ नन्दीको देखा। उन्हें भलीभाँति नमस्कारकर तथा उनकी स्तुति करके विष्णुजीने पूर्वकी भाँति उन नन्दीसे आज्ञा प्राप्तकर धीरेसे प्रसन्नतापूर्वक भीतर प्रवेश किया॥ ९-१०॥

वहाँ पहुँचकर उन लोगोंने शिवजीकी उच्च महासभा देखी, जो महाप्रभासे युक्त सुन्दर शरीरवाले, शिवके स्वरूपवाले, शुभ कान्तिवाले, दस भुजाओंवाले, पाँच मुखोंवाले, तीन नेत्रोंवाले, नीले कण्ठवाले, परम कान्तिसे युक्त, रत्नमय रुद्राक्षों तथा भस्मरूप आभरणोंसे भूषित पार्षदोंसे घिरी हुई थी। वह सभा उदीयमान

नवेन्दुमंडलाकारां चतुरस्त्रां मनोहराम्॥ १३
मणीन्द्रहारनिर्माणहीरसारसुशोभिताम् ।
अमूल्यरत्नरचितां पद्मपत्रैश्च शोभिताम्॥ १४
माणिक्यजालमालाभिर्नानाचित्रविचित्रिताम्।
पद्मरागेन्द्ररचितामद्भुतां शंकरेच्छया ॥ १५
सोपानशतकैर्युक्तां स्यमंतकविनिर्मितैः।
स्वर्णसूत्रग्रन्थियुक्तैश्चारुचन्दनपल्लवैः ॥ १६
इन्द्रनीलमणिस्तंभैर्वेष्टितां सुमनोहराम्।
सुसंस्कृतां च सर्वत्र वासितां गंधवायुना॥ १७
सहस्त्रयोजनायामां सुपूर्णां बहुकिंकरैः।
ददर्श शंकरं साम्बं तत्र विष्णुः सुरेश्वरः॥ १८

चन्द्रमण्डलके आकारवाली, चौकोर, मनोहर, श्रेष्ठ मणियोंके हारसे युक्त एवं उत्तम हीरोंसे सुशोभित, अमूल्य रत्नोंसे रचित, पद्मपत्रोंसे शोभित, मणियोंके समूहोंकी मालाओंसे सुशोभित, अनेक प्रकारके चित्रोंसे चित्रित तथा शंकरजीके इच्छानुसार पद्मरागकी श्रेष्ठ मणियोंद्वारा विरचित थी॥ ११—१५॥

उस सभामें स्वर्णके सूत्रोंसे पिरोये हुए अत्यन्त मनोहर चन्दन वृक्षके पत्तोंके बन्दनवार थे तथा उसमें स्यमन्तक मणिनिर्मित सैकड़ों सोपान बने हुए थे। उस सभामें इन्द्रनीलमणिके खम्भे लगे हुए थे और वह अत्यन्त मनोहर, सुसंस्कृत तथा सुगन्धित वायुसे सुवासित थी। उसकी चौड़ाई हजारों योजन थी और वह अनेक सेवकोंसे परिपूर्ण थी। सुरेश्वर विष्णुने उस सभामें अम्बा पार्वतीसहित भगवान् शंकरको देखा॥ १६—१८॥

वसन्तं मध्यदेशे च येथेन्दुतारकावृतम्।
अमूल्यरत्ननिर्माणचित्रसिंहासनस्थितम् ॥ १९
किरीटिनं कुंडलिनं रत्नमालाविभूषितम्।
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं बिभ्रतं केलिपंकजम्॥ २०
पुरतो गीतनृत्यञ्च पश्यन्तं सस्मितं मुदा॥ २१
शांतं प्रसन्नमनसमुमाकान्तं महोल्लसम्।
देव्या प्रदत्तताम्बूलं भुक्तवन्तं सुवासितम्॥ २२
गणैश्च परया भक्त्या सेवितं श्वेतचामरैः।
स्तूयमानं च सिद्धैश्च भक्तिनम्रात्मकंधरैः॥ २३
गुणातीतं परेशानं त्रिदेवजनकं विभुम्।
निर्विकल्पं निराकारं साकारं स्वेच्छया शिवम्॥ २४
अमायमजमाद्यञ्च मायाधीशं परात्परम्।
प्रकृतेः पुरुषस्यापि परमं स्वप्रभुं सदा॥ २५
एवं विशिष्टं तं दृष्ट्वा परिपूर्णतमं समम्।
विष्णुर्ब्रह्मा तुष्टुवतुः प्रणम्य सुकृतांजली॥ २६

उस सभाके बीचमें अमूल्य रत्ननिर्मित विचित्र सिंहासनपर बैठे हुए शिवजी ताराओंके बीच चन्द्रमाकी की भाँति सुशोभित हो रहे थे। वे किरीट, कुण्डल एवं रत्नोंकी मालासे सुशोभित थे, सभी अंगोंमें भस्म लगाये हुए थे तथा हाथोंमें लीलाकमल धारण किये हुए थे। वे अपने आगे होनेवाले गीत एवं नृत्यको बड़ी प्रसन्नताके साथ मुसकराते हुए देख रहे थे। वे उमापति शान्त, प्रसन्नमन तथा महान् उल्लाससे युक्त थे और भगवतीके द्वारा दिये गये सुगन्धित ताम्बूलका सेवन कर रहे थे। गणलोग परम भक्तिसे श्वेत चँवर डुला रहे थे और सिद्धगण भक्तिसे सिर झुकाये चारों ओरसे उनकी स्तुति कर रहे थे। उन गुणातीत, परमेश्वर, तीनों देवताओंको उत्पन्न करनेवाले, सर्वव्यापी, निराकार, निर्विकल्प, अपनी इच्छासे सगुण रूप धारण करनेवाले, मायारहित, अजन्मा, आदिदेव, मायाधीश, परात्पर, प्रकृति एवं पुरुषसे भी परे, विशिष्ट, परिपूर्णतम, समभाववाले अपने प्रभु शिवको देखकर ब्रह्मा एवं विष्णु हाथ जोड़कर प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे— ॥ १९—२६॥

विष्णुविधी ऊचतुः

देवदेव महादेव परब्रह्माखिलेश्वर।
त्रिगुणातीत निर्व्यग्र त्रिदेवजनक प्रभो॥ २७

वयं ते शरणापन्ना रक्षास्मान्दुःखितान्विभो।
शंखचूडार्दितान्क्लिष्टान्सन्नाथान्परमेश्वर ॥ २८

अयं योऽधिष्ठितो लोको गोलोक इति स स्मृतः।
अधिष्ठाता तस्य विभुः कृष्णोऽयं त्वदधिष्ठितः॥ २९

पार्षदप्रवरस्तस्य सुदामा दैवयंत्रितः।
राधाशप्तो बभूवाथ शंखचूडश्च दानवः॥ ३०

तेन निःसारिताः शंभो पीड्यमानाः समन्ततः।
हृताधिकारास्त्रिदशा विचरन्ति महीतले॥ ३१

त्वां विना न स वध्यश्च सर्वेषां त्रिदिवौकसाम्।
तं घातय महेशान लोकानां सुखमावह॥ ३२

त्वमेव निर्गुणः सत्योऽनंतोऽनंतपराक्रमः।
सगुणः सन्निवेशश्च प्रकृतेः पुरुषात्परः॥ ३३

रजसा सृष्टिसमये त्वं ब्रह्मा सृष्टिकृत्प्रभो।
सत्त्वेन पालने विष्णुस्त्रिभुवावनकारकः॥ ३४

तमसा प्रलये रुद्रो जगत्संहारकारकः।
निस्त्रैगुण्ये शिवाख्यातस्तुर्य्यो ज्योतिःस्वरूपकः॥ ३५

त्वं दीक्षया च गोलोके त्वं गवां परिपालकः।
त्वद्गोशालामध्यगश्च कृष्णः क्रीडत्यहर्निशम्॥ ३६

त्वं सर्वकारणं स्वामी विधिर्विष्ण्वीश्वरः परम्।
निर्विकारी सदासाक्षी परमात्मा परेश्वरः॥ ३७

दीनानाथसहायी च दीनानां प्रतिपालकः।
दीनबंधुस्त्रिलोकेशः शरणागतवत्सलः॥ ३८

अस्मानुद्धर गौरीश प्रसीद परमेश्वर।
त्वदधीना वयं नाथ यदिच्छसि तथा कुरु॥ ३९

विष्णु और ब्रह्मा बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे परब्रह्म! हे अखिलेश्वर! हे त्रिगुणातीत! हे निर्व्यग्र! हे त्रिदेवजनक! हे प्रभो! हम आपकी शरणमें आये हैं। हे विभो! हे परमेश्वर! शंखचूडके द्वारा पीड़ित तथा सन्तप्त किये गये हम दुखित तथा अनाथोंकी रक्षा कीजिये॥ २७-२८॥

यह गोलोक, जिसकी स्थिति आपके ही द्वारा है, उस गोलोकके अधिष्ठाता आपने श्रीकृष्णको नियुक्त किया है। उनका श्रेष्ठ पार्षद सुदामा प्रारब्धवश राधिकाके शापसे शंखचूड नामक दानवके रूपमें उत्पन्न हुआ है। हे शम्भो! उसने हमलोगोंको नाना प्रकारकी यातनाएँ देकर [स्वर्गलोकसे] निकाल दिया है, अपने अधिकारोंसे वंचित देवतालोग पृथ्वीपर घूम रहे हैं॥ २९—३१॥

हे महेशान! आपके बिना वह अन्य देवताओंसे नहीं मारा जा सकता, अतः आप उसका वध कीजिये और सभी लोकोंको सुखी बनाइये। [हे प्रभो!] आप ही निर्गुण, सत्य, अनन्त एवं अनन्त पराक्रमवाले हैं। आप सगुण, प्रकृति एवं पुरुषसे परे तथा सर्वत्र व्यापक हैं॥ ३२-३३॥

हे प्रभो! आप सृष्टिकालमें रजोगुणसे ब्रह्माके रूपमें सृष्टि करते हैं एवं पालनकालमें सत्त्वगुणसे युक्त हो विष्णुके रूपमें जगत्का पालन करते हैं, प्रलयकालमें तमोगुणसे युक्त हो रुद्रके रूपमें इस जगत्का संहार करते हैं एवं त्रिगुणसे परे चौथे शिव नामक ज्योतिःस्वरूप भी आप ही हैं। आप अपनी दीक्षासे गोलोकमें गायोंका पालन करते हैं तथा आपकी गोशालामें श्रीकृष्ण दिन-रात क्रीड़ा करते रहते हैं। आप सबके कारण तथा स्वामी हैं और आप ही ब्रह्मा, विष्णु तथा ईश्वर हैं, आप निर्विकारी, सदा साक्षी, परमात्मा एवं परमेश्वर हैं॥ ३४—३७॥

आप दीनों एवं अनाथोंके सहायक हैं, दीनोंके रक्षक, दीनबन्धु, त्रिलोकेश एवं शरणागतवत्सल हैं॥ ३८॥

हे गौरीश! हे परमेश्वर! आप प्रसन्न हो जाइये और हमलोगोंका उद्धार कीजिये। हे नाथ! हमलोग आपके अधीन हैं, अतः जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा कीजिये॥ ३९॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा तौ सुरौ व्यास हरिर्ब्रह्मा च वै तदा।
विरेमतुः शिवं नत्वा करौ बद्ध्वा विनीतकौ॥ ४०

सनत्कुमार बोले—हे व्यासजी! इस प्रकार कहकर वे दोनों देवता—ब्रह्मा एवं विष्णु विनम्र होकर हाथ जोड़कर शिवको नमस्कार करके मौन हो गये॥ ४०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शंखचूडवधे देवदेवस्तुतिर्नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडवधके अन्तर्गत देवदेवस्तुतिवर्णन नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३०॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

शिवद्वारा ब्रह्मा-विष्णुको शंखचूडका पूर्ववृत्तान्त बताना और देवोंको शंखचूडवधका आश्वासन देना

सनत्कुमार उवाच

अथाकर्ण्य वचः शंभुर्हरिविध्योः सुदीनयोः।
उवाच विहसन्वाण्या मेघनादगभीरया॥ १

सनत्कुमार बोले—अत्यन्त दीन ब्रह्मा तथा विष्णुजीका वचन सुनकर शंकरजी हँसते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहने लगे—॥ १॥

शिव उवाच

हे हरे वत्स हे ब्रह्मंस्त्यजतं सर्वशो भयम्।
शंखचूडोद्भवं भद्रं सम्भविष्यत्यसंशयम्॥ २
शंखचूडस्य वृत्तान्तं सर्वं जानामि तत्त्वतः।
कृष्णभक्तस्य गोपस्य सुदाम्नश्च पुरा प्रभो॥ ३

शिवजी बोले—हे हरे! हे वत्स! हे ब्रह्मन्! आप दोनों शंखचूडसे उत्पन्न भयका पूर्णरूपसे त्याग कर दीजिये, आप लोगोंका निःसन्देह कल्याण होगा। हे प्रभो! शंखचूडका सारा वृत्तान्त मैं जानता हूँ, वह पूर्वजन्ममें श्रीकृष्णका परम भक्त सुदामा नामका गोप था॥ २-३॥

मदाज्ञया हृषीकेशो कृष्णरूपं विधाय च।
गोशालायां स्थितो रम्ये गोलोके मदधिष्ठिते॥ ४

मेरी आज्ञासे ही विष्णु श्रीकृष्णका रूप धारण करके मेरे द्वारा अधिष्ठित रम्य गोलोककी गोशालामें निवास करते हैं॥ ४॥

स्वतंत्रोऽहमिति स्वं स मोहं मत्वा गतः पुरा।
क्रीडाः समकरोद्बह्वीः स्वैरवर्तीव मोहितः॥ ५

'मैं स्वतन्त्र हूँ' अपनेको ऐसा समझकर वे पहले मोहको प्राप्त हुए और इस प्रकार मोहित होकर स्वच्छन्दकी भाँति नाना प्रकारकी क्रीडाएँ करने लगे॥ ५॥

तं दृष्ट्वा मोहयत्युग्रं तस्याहं मायया स्वया।
तेषां संहृत्य सद्बुद्धिं शापं दापितवान् किल॥ ६

इत्थं कृत्वा स्वलीलां तां मायां संहृतवानहम्।
ज्ञानयुक्तास्तदा ते तु मुक्तमोहाः सुबुद्धयः॥ ७

तब मैंने उन्हें अपनी मायासे मोहित कर दिया, जिससे उनकी सद्बुद्धि नष्ट हो गयी और उनसे उस सुदामाको शाप दिला दिया। इस प्रकार अपनी लीला करके मैंने [अपनी] माया हटा ली। तब मोहसे मुक्त हो जानेके कारण वे ज्ञानयुक्त तथा सद्बुद्धियुक्त हो गये॥ ६-७॥

समीपमागतास्ते मे दीनीभूय प्रणम्य माम्।
अकुर्वन्सुनुतिं भक्त्या करौ बध्वा विनम्रकाः॥ ८

वृत्तान्तमवदन् सर्वं लज्जाकुलितमानसाः।
ऊचुर्मत्पुरतो दीना रक्ष रक्षेति वै गिरः॥ ९

तब वे मेरे समीप आये और दीन होकर मुझे प्रणामकर हाथ जोड़कर विनम्र भावसे भक्तिपूर्वक मेरी स्तुति करने लगे। तब लज्जासे युक्त मनवाले उन सभीने सारा वृत्तान्त कहा और दीन होकर 'रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये'—मेरे सामने ऐसा वचन कहने लगे॥ ८-९॥

तदा त्वहं भवस्तेषां संतुष्टः प्रोक्तवान् वचः।
भयं त्यजत हे कृष्ण यूयं सर्वे मदाज्ञया॥ १०

रक्षकोऽहं सदा प्रीत्या सुभद्रं वो भविष्यति।
मदिच्छयाऽखिलं जातमिदं सर्वं न संशयः॥ ११

स्वस्थानं गच्छ त्वं सार्द्धं राधया पार्षदेन च।
दानवस्तु भवेत्सोऽयं भारतेऽत्र न संशयः॥ १२

शापोद्धारं करिष्येऽहं युवयोः समये खलु।

मदुक्तमिति संधार्य शिरसा राधया सह॥ १३

श्रीकृष्णोऽमोददत्यन्तं स्वस्थानमगमत्सुधीः।
न्यष्ठातां सभयं तत्र मदाराधनतत्परौ॥ १४

मत्वाखिलं मदधीनमस्वतन्त्रं निजं च वै।
स सुदामाऽभवद्राधाशापतो दानवेश्वरः॥ १५

शङ्खचूडाभिधो देवद्रोही धर्मविचक्षणः।
क्लिश्नाति सुबलात्कृत्स्नं सदा देवगणं कुधीः॥ १६

मन्मायामोहितः सोऽतिदुष्टमन्त्रिसहायवान्।
तद्भयं त्यजताश्वेव मयि शास्तरि वै सति॥ १७

तब उनसे सन्तुष्ट होकर मैंने यह वचन कहा—हे कृष्ण! आप सभी मेरी आज्ञासे भयका त्याग कर दीजिये। मैं आपलोगोंका सदा रक्षक हूँ। मेरे प्रसन्न रहनेसे आपलोगोंका कल्याण होगा। यह सब मेरी इच्छासे हुआ है, इसमें सन्देह नहीं है। [हे कृष्ण!] आप इन राधा एवं पार्षदके साथ अपने स्थानको जाइये। यह [सुदामा] इस भारतवर्षमें दानवके रूपमें जन्म लेगा, इसमें सन्देह नहीं है। समय आनेपर मैं आप दोनोंके शापका उद्धार करूँगा॥ १०—१२$^{1}/_{2}$॥

तब बुद्धिमान् श्रीकृष्ण मेरे वचनको शिरोधार्य करके राधाके साथ बड़ी प्रसन्नतासे अपने स्थानको चले गये और वे दोनों ही भयपूर्वक मेरी आराधना करते हुए वहाँ निवास करने लगे॥ १३-१४॥

उस समय उन्हें ज्ञान हुआ कि यह सारा जगत् मेरे (शंकरके) अधीन है और मैं श्रीकृष्ण सर्वथा पराधीन हूँ। वह सुदामा राधाके शापसे शंखचूड नामक दानवेन्द्र हुआ, जो धर्ममें निपुण होकर भी देवद्रोही है और वह दुर्बुद्धि अपने बलसे सभी देवगणोंको सदा पीड़ा पहुँचा रहा है। मेरी मायासे मोहित होनेके कारण उसे दुष्ट मन्त्रियोंकी सहायता भी प्राप्त हो रही है। अतः मुझ शासकके रहते आपलोग शीघ्र ही उसके भयका त्याग कर दीजिये॥ १५—१७॥

सनत्कुमार उवाच

इत्यूचिवान् शिवो यावद्धरिब्रह्मपुरः कथाम्।
अभवत्तावदन्यच्च चरितं तन्मुने शृणु॥ १८

तस्मिन्नेवान्तरे कृष्णो राधया पार्षदैः सह।
सद्गोपैराययौ शंभुमनुकूलयितुं प्रभुम्॥ १९

प्रभुं प्रणम्य सद्भक्त्या मिलित्वा हरिमादरात्।
संमतो विधिना प्रीत्या संतस्थौ शिवशासनात्॥ २०

सनत्कुमार बोले—हे मुने! अभी जब शिवजी ब्रह्मा एवं विष्णुके सामने इस प्रकारकी कथा कह ही रहे थे कि इतनेमें जो अन्य घटना घटी, उसे आप सुनिये। उसी समय श्रीकृष्ण राधिका, अन्य पार्षद एवं गोपोंके साथ प्रभु शंकरको अनुकूल करनेके लिये वहाँ आ गये। वे सद्भक्तिपूर्वक शंकरजीको प्रणाम करके विष्णुसे आदरपूर्वक मिलकर ब्रह्माकी सलाह मानकर शिवकी आज्ञासे प्रेमपूर्वक उनके समीप बैठ गये॥ १८—२०॥

ततः शंभुं पुनर्नत्वा तुष्टाव विहिताञ्जलिः।
श्रीकृष्णो मोहनिर्मुक्तो ज्ञात्वा तत्त्वं शिवस्य हि॥ २१

इसके बाद शिवजीको पुनः प्रणामकर मोहनिर्मुक्त श्रीकृष्णजी शिवतत्त्वको जानकर हाथ जोड़े हुए उनकी स्तुति करने लगे—॥ २१॥

श्रीकृष्ण उवाच

देवदेव महादेव परब्रह्म सतांगते।
क्षमस्व चापराधं मे प्रसीद परमेश्वर॥ २२

त्वत्तः शर्व च सर्वं च त्वयि सर्वं महेश्वर।
सर्वं त्वं निखिलाधीश प्रसीद परमेश्वर॥ २३

त्वं ज्योतिः परमं साक्षात्सर्वव्यापी सनातनः।
त्वया नाथेन गौरीश सनाथाः सकला वयम्॥ २४

सर्वोपरि निजं मत्वा विहरन्मोहमाश्रितः।
तत्फलं प्राप्तवानस्मि शापं प्राप्तः सवामकः॥ २५

पार्षदप्रवरो यो मे सुदामा नाम गोपकः।
स राधाशापतः स्वामिन्दानवीं योनिमाश्रितः॥ २६

अस्मानुद्धर दुर्गेश प्रसीद परमेश्वर।
शापोद्धारं कुरुष्वाद्य पाहि नः शरणागतान्॥ २७

इत्युक्त्वा विररामैव श्रीकृष्णो राधया सह।
प्रसन्नोऽभूच्छिवस्तत्र शरणागतवत्सलः॥ २८

श्रीशिव उवाच

हे कृष्ण गोपिकानाथ भयं त्यज सुखी भव।
मयानुगृह्णता तात सर्वमाचरितं त्विदम्॥ २९

संभविष्यति ते भद्रं गच्छ स्वस्थानमुत्तमम्।
स्थातव्यं स्वाधिकारे च सावधानतया सदा॥ ३०

विहरस्व यथाकामं मां विज्ञाय परात्परम्।
स्वकार्यं कुरु निर्व्यग्रं राधया पार्षदैः खलु॥ ३१

वाराहे प्रवरे कल्पे तरुण्या राधया सह।
शापप्रभावं भुक्त्वा वै पुनरायास्यति स्वकम्॥ ३२

सुदामा पार्षदो यो हि तव कृष्ण प्रियप्रियः।
दानवीं योनिमाश्रित्येदानीं क्लिश्नाति वै जगत्॥ ३३

शापप्रभावाद्राधाया देवशत्रुश्च दानवः।
शङ्खचूडाभिधः सोऽति दैत्यपक्षी सुरद्रुहः॥ ३४

श्रीकृष्ण बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे परब्रह्म! हे सत्पुरुषोंकी गति! हे परमेश्वर! मेरा अपराध क्षमा कीजिये और मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। हे शर्व! सब कुछ आपसे ही उत्पन्न होता है और हे महेश्वर! सब कुछ आपमें ही स्थित है। हे सर्वाधीश! सब कुछ आप ही हैं, अतः हे परमेश्वर! आप प्रसन्न होइये॥ २२-२३॥

आप ही साक्षात् परम ज्योति, सर्वव्यापी एवं सनातन हैं। हे गौरीश! आपके नाथ होनेसे हम सभी सनाथ हैं॥ २४॥

मोहमें पड़ा हुआ मैं अपनेको सर्वोपरि मानकर विहार करता रहा, जिसका फल मुझे यह मिला कि मैं शापग्रस्त हो गया और हे स्वामिन्! जो सुदामा नामक मेरा श्रेष्ठ पार्षद है, वह राधाके शापसे दानवी योनिको प्राप्त हो गया है। हे दुर्गेश! हे परमेश्वर! आप हमलोगोंका उद्धार कीजिये और प्रसन्न हो जाइये, शापसे उद्धार कीजिये और हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये। इस प्रकार कहकर श्रीकृष्ण राधाके सहित मौन हो गये। तब शरणागतवत्सल शिव उनपर प्रसन्न हो गये॥ २५—२८॥

श्रीशिव बोले—हे कृष्ण! हे गोपिकानाथ! आप भयका त्याग कीजिये और सुखी हो जाइये। हे तात! मैंने ही अनुग्रह करते हुए यह सब किया है॥ २९॥

आपका कल्याण होगा। अब आप अपने उत्तम स्थानको जाइये और सावधानीपूर्वक अपने अधिकारका पालन कीजिये। मुझको परात्पर जानकर इच्छानुसार विहार कीजिये और निर्भय होकर राधा तथा पार्षदोंके साथ अपना कार्य कीजिये॥ ३०-३१॥

उत्तम वाराहकल्पमें युवती राधाके साथ शापका फल भोगकर वह पुनः अपने लोकको प्राप्त करेगा॥ ३२॥

हे कृष्ण! आपका अत्यन्त प्रिय पार्षद जो सुदामा था, वही इस समय दानवी योनिमें जन्म ग्रहण करके सारे जगत्को क्लेश दे रहा है, यह शंखचूड नामक दानव राधाके शापके प्रभावसे ही देवशत्रु, दैत्योंका पक्ष लेनेवाला और देवताओंसे द्रोह करनेवाला हो गया है॥ ३३-३४॥

तेन निःसारिता देवाः सेन्द्रा नित्यं प्रपीडिताः।
हृताधिकारा विकृताः सर्वे याता दिशो दश॥ ३५

उसने इन्द्रसहित सभी देवताओंको पीड़ा देकर निकाल दिया है, जिससे वे देवता अधिकारविहीन एवं व्याकुल होकर दसों दिशाओंमें भटक रहे हैं॥ ३५॥

ब्रह्माच्युतौ तदर्थे हीहागतौ शरणं मम।
तेषां क्लेशविनिर्मोक्षं करिष्ये नात्र संशयः॥ ३६

उसीके वधके निमित्त ये ब्रह्मा तथा विष्णु मेरी शरणमें यहाँ आये हैं, मैं इनका दुःख दूर करूँगा, इसमें संशय नहीं है॥ ३६॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा शंकरः कृष्णं पुनः प्रोवाच सादरम्।
हरिं विधिं समाभाष्य वचनं क्लेशनाशनम्॥ ३७

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] श्रीकृष्णसे इतना कहकर भगवान् शंकर ब्रह्मा तथा विष्णुको सम्बोधित करके आदरपूर्वक क्लेशनाशक वचन पुनः कहने लगे—॥ ३७॥

शिव उवाच

हे हरे हे विधे प्रीत्या ममेदं वचनं शृणु।
गच्छतं त्वरितं तातौ देवानंदाय निर्भयम्॥ ३८
कैलासवासिनं रुद्रं मद्रूपं पूर्णमुत्तमम्।
देवकार्यार्थमुद्भूतं पृथगाकृतिधारिणम्॥ ३९

शिवजी बोले—हे विष्णो! हे ब्रह्मन्! आप दोनों मेरी बात सुनिये। देवताओंको भयरहित करनेके लिये शीघ्र ही आप दोनों कैलासपर्वतपर जायँ, जहाँ मेरे पूर्ण रूप रुद्रका निवास है। मैंने ही देवताओंका कार्य करनेके लिये पृथक् रूपको धारण किया है॥ ३८-३९॥

एतदर्थे हि मद्रूपः परिपूर्णतमः प्रभुः।
कैलासे भक्तवशतः संतिष्ठति गिरौ हरे॥ ४०
मत्तस्त्वत्तो न भेदोऽस्ति युवयोः सेव्य एव सः।
चराचराणां सर्वेषां सुरादीनां च सर्वदा॥ ४१

हे हरे! परिपूर्णतम एवं भक्तपराधीन मुझ प्रभुका ही वह रुद्ररूप देवताओंके कार्यके लिये कैलासपर्वतपर विराजमान है। मुझमें एवं आपमें कोई भेद नहीं है। मेरा वह रुद्ररूप आप दोनोंका, चराचर जगत्का, सभी देवताओं एवं मुनियोंका सर्वदा सेव्य है॥ ४०-४१॥

आवयोर्भेदकर्ता यः स नरो नरकं व्रजेत्।
इहापि प्राप्नुयात्कष्टं पुत्रपौत्रविवर्जितः॥ ४२
इत्युक्तवन्तं दुर्गेशं प्रणम्य च मुहुर्मुहुः।
राधया सहितः कृष्णः स्वस्थानं सगणो ययौ॥ ४३

जो मनुष्य हम दोनोंमें भेद रखेगा, वह नरकगामी होगा और वह इस लोकमें पुत्र-पौत्रादिसे रहित होकर नाना प्रकारका क्लेश प्राप्त करेगा। ऐसा कहते हुए गौरीपतिको बार-बार प्रणामकर श्रीकृष्ण राधा तथा गणोंके साथ अपने स्थानको चले गये॥ ४२-४३॥

हरिर्ब्रह्मा च तौ व्यास सानन्दौ गतसाध्वसौ।
मुहुर्मुहुः प्रणम्येशं वैकुंठं ययतुर्द्रुतम्॥ ४४

हे व्यासजी! इसी प्रकार वे ब्रह्मा तथा विष्णु भी सन्देहरहित हो शिवजीको बारंबार प्रणामकर आनन्दके साथ शीघ्र वैकुण्ठ चले गये॥ ४४॥

तत्रागत्याखिलं वृत्तं देवेभ्यो विनिवेद्य तौ।
तानादाय ब्रह्मविष्णू कैलासं ययतुर्गिरिम्॥ ४५

वे ब्रह्मा तथा विष्णु वहाँ आकर सारा वृत्तान्त देवताओंसे कहकर तथा उन्हें साथ लेकर कैलासपर्वतपर गये॥ ४५॥

तत्र दृष्ट्वा महेशानं पार्वतीवल्लभं प्रभुम्।
दीनरक्षात्तदेहं च सगुणं देवनायकम्॥ ४६

तुष्टुवुः पूर्ववत्सर्वे भक्त्या गद्गदया गिरा।
करौ बद्ध्वा नतस्कंधा विनयेन समन्विताः॥ ४७

दीनोंकी रक्षा करनेके लिये सगुण रूपसे शरीर धारण किये हुए देवाधिपति पार्वतीवल्लभ महेश्वर प्रभुको वहाँ देखकर सभी देवताओंने पूर्वकी भाँति हाथ जोड़कर विनयसे युक्त होकर सिर झुकाकर गद्‌गद वाणीसे भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करना प्रारम्भ किया॥ ४६-४७॥

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव गिरिजानाथ शंकर।
वयं त्वां शरणापन्ना रक्ष देवान्भयाकुलान्॥ ४८

देवता बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे गिरिजानाथ! हे शंकर! हम सभी देवता आपकी शरणमें आये हैं, भयसे व्याकुल देवताओंकी रक्षा कीजिये॥ ४८॥

शंखचूडं दानवेन्द्रं जहि देवनिषूदनम्।
तेन विक्लाविता देवाः संग्रामे च पराजिताः॥ ४९

हृताधिकाराः कुतले विचरंति यथा नराः।
देवलोको हि दुर्दृश्यस्तेषामासीच्च तद्भयात्॥ ५०

देवताओंको कष्ट देनेवाले दैत्यराज शंखचूडका वध कीजिये, उसने देवताओंको व्याकुल कर दिया है और युद्धमें पराजित कर दिया है। उसने देवताओंके समस्त अधिकार छीन लिये हैं, जिससे वे लोग मनुष्योंकी भाँति पृथ्वीपर भटक रहे हैं और उसके भयसे उनके लिये देवलोकका देखनातक दुर्लभ हो गया है॥ ४९-५०॥

दीनोद्धार कृपासिन्धो देवानुद्धर संकटात्।
शक्रं भयान्महेशान हत्वा तं दानवाधिपम्॥ ५१

इति श्रुत्वा वचः शंभुर्देवानां भक्तवत्सलः।
उवाच विहसन् वाण्या मेघनादगभीरया॥ ५२

अतः दीनोंका उद्धार करनेवाले हे कृपासिन्धो! इस संकटसे देवताओंका उद्धार कीजिये और उस दानवेन्द्रका वधकर इन्द्रको भयसे मुक्त कीजिये। देवताओंके इस वचनको सुनकर हँसते हुए भक्तवत्सल भगवान् शंकरने मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा—॥ ५१-५२॥

श्रीशंकर उवाच

हे हरे हे विधे देवाः स्वस्थानं गच्छत ध्रुवम्।
शंखचूडं वधिष्यामि सगणं नात्र संशयः॥ ५३

श्रीशंकरजी बोले—हे विष्णो! हे ब्रह्मन्! हे देवगण! आपलोग अपने स्थानको जाइये, मैं सेनासहित उस शंखचूडका वध अवश्य करूँगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५३॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य महेशस्य वचः पीयूषसंनिभम्।
ते सर्वे प्रमुदा ह्यासन्नष्टं मत्वा च दानवम्॥ ५४

सनत्कुमार बोले—शंकरकी इस अमृततुल्य वाणीको सुनकर सभी देवता दैत्योंको मरा जानकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये॥ ५४॥

हरिर्जगाम वैकुंठं सत्यलोके विधिस्तदा।
प्रणिपत्य महेशं च सुराद्याः स्वपदं ययुः॥ ५५

इसके बाद शंकरजीको प्रणामकर विष्णु वैकुण्ठलोक एवं ब्रह्मा सत्यलोक चले गये तथा देवगण अपने-अपने स्थानोंको चले गये॥ ५५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शंखचूडवधे शिवोपदेशो नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडवधके अन्तर्गत शिवोपदेशवर्णन नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३१॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

भगवान् शिवके द्वारा शंखचूडको समझानेके लिये गन्धर्वराज चित्ररथ (पुष्पदन्त)-को दूतके रूपमें भेजना, शंखचूडद्वारा सन्देशकी अवहेलना और युद्ध करनेका अपना निश्चय बताना, पुष्पदन्तका वापस आकर सारा वृत्तान्त शिवसे निवेदित करना

सनत्कुमार उवाच

अथेशानो महारुद्रो दुष्टकालः सतां गतिः।
शंखचूडवधं चित्ते निश्चिकाय सुरेच्छया॥ १

सनत्कुमार बोले—तब दुष्टोंके लिये कालस्वरूप तथा सज्जनोंके रक्षक महारुद्र ईश्वरने देवताओंकी इच्छासे अपने मनमें शंखचूडके वधका

दूतं कृत्वा चित्ररथं गंधर्वेश्वरमीप्सितम्।
शीघ्रं प्रस्थापयामास शंखचूडांतिके मुदा॥ २

सर्वेश्वराज्ञया दूतो ययौ तन्नगरं च सः।
महेन्द्रनगरोत्कृष्टं कुबेरभवनाधिकम्॥ ३

गत्वा ददर्श तन्मध्ये शंखचूडालयं वरम्।
राजितं द्वादशैर्द्वारैर्द्वारपालसमन्वितम्॥ ४

स दृष्ट्वा पुष्पदन्तस्तु वरं द्वारं ददर्श सः।
कथयामास वृत्तान्तं द्वारपालाय निर्भयः॥ ५

अतिक्रम्य च तद् द्वारं जगामाभ्यन्तरे मुदा।
अतीव सुन्दरं रम्यं विस्तीर्णं समलंकृतम्॥ ६

स गत्वा शंखचूडं तं ददर्श दनुजाधिपम्।
वीरमंडलमध्यस्थं रत्नसिंहासनस्थितम्॥ ७

दानवेन्द्रैः परिवृतं सेवितं च त्रिकोटिभिः।
शतकोटिभिरन्यैश्च भ्रमद्भिः शस्त्रपाणिभिः॥ ८

एवंभूतं च तं दृष्ट्वा पुष्पदंतः सविस्मयः।
उवाच रणवृत्तान्तं यदुक्तं शंकरेण च॥ ९

निश्चय किया और गन्धर्वराज चित्ररथ (पुष्पदन्त)-को अपना अभीष्ट दूत बनाकर शीघ्र ही प्रसन्नतापूर्वक शंखचूडके समीप भेजा। तब सर्वेश्वरकी आज्ञासे वह दूत इन्द्रकी अमरावतीपुरीसे भी अधिक ऐश्वर्यसम्पन्न तथा कुबेरके भवनसे भी उत्कृष्ट भवनोंवाले उस दैत्येन्द्रके नगरमें गया॥ १—३॥

उसने वहाँ जाकर बारह दरवाजोंसे युक्त शंखचूडका भवन देखा, जहाँ प्रत्येक द्वारपर द्वारपाल नियुक्त थे॥ ४॥

उनको देखते हुए उस पुष्पदन्तने प्रधान द्वारको देखा और निर्भय हो वहाँके द्वारपालसे सारा वृत्तान्त निवेदन किया। तब अत्यन्त सुन्दर, रम्य, विस्तृत तथा भलीभाँति अलंकृत उस द्वारको पार करके वह प्रसन्नतापूर्वक भीतर गया। वहाँ जाकर उसने वीरोंके मण्डलमें विराजमान तथा रत्नसिंहासनपर बैठे हुए उस दानवाधिपति शंखचूडको देखा। उस समय वह तीन करोड़ दैत्यराजोंसे घिरा हुआ था तथा वे उसकी सेवा कर रहे थे और अन्य सौ करोड़ दानव हाथोंमें शस्त्र लेकर उसके चारों ओर पहरा दे रहे थे। इस प्रकार उसे देखकर पुष्पदन्तको बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने शंकरके द्वारा कहे गये युद्धका सन्देश इस प्रकार कहा—॥ ५—९॥

पुष्पदंत उवाच

राजेन्द्र शिवदूतोऽहं पुष्पदंताभिधः प्रभो।
यदुक्तं शंकरेणैव तच्छृणु त्वं ब्रवीमि ते॥ १०

पुष्पदन्त बोला—हे राजेन्द्र! मैं शिवजीका पुष्पदन्त नामक दूत हूँ। हे प्रभो! शंकरने जो सन्देश भेजा है, उसे श्रवण कीजिये, मैं आपसे कह रहा हूँ॥ १०॥

शिव उवाच

राज्यं देहि च देवानामधिकारं हि सांप्रतम्।
नो चेत्कुरु रणं सार्द्धं परेण च मया सताम्॥ ११

देवा मां शरणापन्ना देवेशं शंकरं सताम्।
अहं क्रुद्धो महारुद्रस्त्वां वधिष्याम्यसंशयम्॥ १२

हरोऽस्मि सर्वदेवेभ्यो ह्यभयं दत्तवानहम्।
खलदंडधरोऽहं वै शरणागतवत्सलः॥ १३

राज्यं दास्यसि किं वा त्वं करिष्यसि रणं च किम्।
तत्त्वं ब्रूहि द्वयोरेकं दानवेन्द्र विचार्य्य वै॥ १४

शिवजी बोले—तुम सज्जन देवताओंका राज्य तथा उनका अधिकार इस समय लौटा दो, अन्यथा मुझे अपना शत्रु समझकर मेरे साथ युद्ध करो॥ ११॥

मैं सज्जनोंका रक्षक हूँ और देवतालोग मेरी शरणमें आये हैं, अतः मैं महारुद्र क्रुद्ध होनेपर निःसन्देह तुम्हारा वध करूँगा॥ १२॥

मैं हर हूँ, मैंने सभी देवताओंको अभयदान दिया है। मैं शरणागतवत्सल हूँ और दुष्टोंको दण्ड देनेवाला हूँ॥ १३॥

हे दानवेन्द्र! तुम राज्य लौटाओगे अथवा युद्ध करोगे, विचार करके इन दोनोंमें एक तात्त्विक बात बताओ॥ १४॥

पुष्पदंत उवाच

इत्युक्तं यन्महेशेन तुभ्यं तन्मे निवेदितम्।
वितथं शंभुवाक्यं न कदापि दनुजाधिप॥ १५

अहं स्वस्वामिनं गंतुमिच्छामि त्वरितं हरम्।
गत्वा वक्ष्यामि किं शंभुं तथा त्वं वद मामिह॥ १६

सनत्कुमार उवाच

इत्थं च पुष्पदंतस्य शिवदूतस्य सत्पतेः।
आकर्ण्य वचनं राजा हसित्वा तमुवाच सः॥ १७

शंखचूड उवाच

राज्यं दास्ये न देवेभ्यो वीरभोग्या वसुंधरा।
रणं दास्यामि ते रुद्र देवानां पक्षपातिने॥ १८

यस्योपरि प्रयायी स्यात्स वीरो भुवनेऽधमः।
अतः पूर्वमहं रुद्र त्वां गमिष्याम्यसंशयम्॥ १९

प्रभात आगमिष्यामि वीरयात्रा विचारतः।
त्वं गच्छाचक्ष्व रुद्राय हीदृशं वचनं मम॥ २०

इति श्रुत्वा शंखचूडवचनं सुप्रहस्य सः।
उवाच दानवेन्द्रं स शंभुदूतस्तु गर्वितम्॥ २१

पुष्पदंत उवाच

अन्येषामपि राजेन्द्र गणानां शंकरस्य च।
न स्थातुं संमुखे योग्यः किं पुनस्तस्य संमुखम्॥ २२

स त्वं देहि च देवानामधिकाराणि सर्वशः।
त्वमरं गच्छ पातालं यदि जीवितुमिच्छसि॥ २३

सामान्यममरं तं नो विद्धि दानवसत्तम।
शंकरः परमात्मा हि सर्वेषामीश्वरेश्वरः॥ २४

इन्द्राद्याः सकला देवा यस्याज्ञावर्तिनः सदा।
सप्रजापतयः सिद्धा मुनयश्चाप्यहीश्वराः॥ २५

हरेर्विधेश्च स स्वामी निर्गुणः सगुणः स हि।
यस्य भ्रूभंगमात्रेण सर्वेषां प्रलयो भवेत्॥ २६

शिवस्य पूर्णरूपश्च लोकसंहारकारकः।
सतां गतिर्दुष्टहन्ता निर्विकारः परात्परः॥ २७

पुष्पदन्त बोला—हे दैत्यराज! शंकरने मुझसे जो कुछ कहा है, उसे मैंने तत्त्वतः आपसे निवेदन किया। शंकरजीका वचन कभी झूठा होनेवाला नहीं है। अब मैं शीघ्र ही अपने स्वामी सदाशिवके पास जाना चाहता हूँ। मैं जाकर शम्भुसे क्या कहूँगा, इसे मुझको तुम बताओ॥ १५-१६॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार श्रेष्ठ स्वामीवाले शिवदूत पुष्पदन्तकी बात सुनकर वह दानवेन्द्र हँसकर उससे कहने लगा—॥ १७॥

शंखचूड बोला—मैं देवताओंको राज्य नहीं दूँगा। यह पृथ्वी वीरभोग्या है। हे रुद्र! देवताओंके पक्षमें रहनेवाले तुमसे मैं युद्ध करूँगा। जिस राजाके ऊपर शत्रुकी चढ़ाई हो जाती है, वह भुवनमें अधम वीर होता है। अतः हे रुद्र! मैं निश्चित रूपसे पहले तुम्हारे ऊपर चढ़ाई करूँगा॥ १८-१९॥

[हे दूत!] तुम जाओ और मेरा यह वचन रुद्रसे कह दो कि मैं वीरयात्राके विचारसे प्रातःकाल आऊँगा॥ २०॥

शंखचूडका यह वचन सुनकर उस शिवदूतने हँस करके गर्वयुक्त उस दानवेन्द्रसे कहा—॥ २१॥

पुष्पदन्त बोला—हे राजेन्द्र! तुम शिवजीके अन्य गणोंके सामने भी नहीं ठहर सकते, तब शिवजीके सम्मुख कैसे खड़े हो सकते हो?॥ २२॥

अतः तुम्हें उचित यही है कि देवताओंका समस्त अधिकार उन्हें प्रदान कर दो और यदि जीवित रहना चाहते हो, तो शीघ्र ही पातालमें चले जाओ। हे दानवश्रेष्ठ! तुम शंकरजीको सामान्य देवता मत समझो; शंकरजी सभी ईश्वरोंके ईश्वर तथा परमात्मा हैं॥ २३-२४॥

[हे दैत्येन्द्र!] प्रजापतियोंके सहित इन्द्रादि समस्त देवता, सिद्ध, मुनिगण तथा नागराज सभी सर्वदा उनकी आज्ञामें रहते हैं। वे विष्णु तथा ब्रह्माके स्वामी हैं और वे सगुण होकर भी निर्गुण हैं। जिनके भ्रुकुटीको टेढ़ा करनेमात्रसे सभीका प्रलय हो जाता है। शिवका यह पूर्णरूप लोकसंहारकारक है। वे सज्जनोंके रक्षक, दुष्टोंके हन्ता, निर्विकार तथा परसे भी परे हैं॥ २५—२७॥

ब्रह्मणोऽधिपतिः सोऽपि हरेरपि महेश्वरः।
अवमान्यं न वै तस्य शासनं दानवर्षभ॥ २८
किं बहूक्तेन राजेन्द्र मनसा संविचार्य च।
रुद्रं विद्धि महेशानं परं ब्रह्म चिदात्मकम्॥ २९
देहि राज्यं हि देवानामधिकारांश्च सर्वशः।
एवं ते कुशलं तात भविष्यत्यन्यथा भयम्॥ ३०

वे महेश्वर ब्रह्मा तथा विष्णुके भी अधिपति हैं। हे दानवश्रेष्ठ! उनकी आज्ञाकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। हे राजेन्द्र! बहुत कहनेसे क्या लाभ? तुम मनसे विचार करके रुद्रको महेशान तथा चिदात्मक परब्रह्म जानो। अतः तुम देवताओंका राज्य तथा सम्पूर्ण अधिकार लौटा दो। हे तात! ऐसा करनेसे तुम्हारा कल्याण होगा, अन्यथा भय होगा॥ २८—३०॥

सनत्कुमार उवाच

इति श्रुत्वा दानवेन्द्रः शंखचूडः प्रतापवान्।
उवाच शिवदूतं तं भवितव्यविमोहितः॥ ३१

सनत्कुमार बोले—दूतकी इस प्रकारकी बात सुनकर प्रतापी दानवेन्द्र शंखचूड भवितव्यसे मोहित होकर उस शिवदूतसे कहने लगा—॥ ३१॥

शंखचूड उवाच

स्वतो राज्यं न दास्यामि नाधिकारान् विनिश्चयात्।
विना युद्धं महेशेन सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम्॥ ३२
कालाधीनं जगत्सर्वं विज्ञेयं सचराचरम्।
कालाद्भवति सर्वं हि विनश्यति च कालतः॥ ३३
त्वं गच्छ शंकरं रुद्रं मयोक्तं वद तत्त्वतः।
स च युक्तं करोत्वेवं बहुवार्तां कुरुष्व नो॥ ३४

शंखचूड बोला—[हे दूत!] मैं यह सत्य कहता हूँ कि शिवसे बिना युद्धके स्वयं न तो देवताओंका राज्य दूँगा और न तो अधिकार ही दूँगा। इस सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को कालके अधीन जानना चाहिये। कालसे ही सब कुछ उत्पन्न होता है तथा कालसे ही विनष्ट भी हो जाता है। तुम रुद्र शंकरके पास जाओ और यथार्थ रूपसे मेरे द्वारा कही गयी बात कह दो, जैसा उचित हो, वे करें, तुम बहुत बातें मत करो॥ ३२—३४॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा शिवदूतोऽसौ जगाम स्वामिनं निजम्।
यथार्थं कथयामास पुष्पदंतश्च सन्मुने॥ ३५

सनत्कुमार बोले—हे मुने! इस प्रकार बात करके वह पुष्पदन्त नामका शिवदूत अपने स्वामीके पास चला गया और उसने सारा वृत्तान्त यथार्थरूपसे निवेदित किया॥ ३५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शंखचूडवधे दूतगमनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडवधके अन्तर्गत दूतगमनवर्णन नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

शंखचूडसे युद्धके लिये अपने गणोंके साथ भगवान् शिवका प्रस्थान

सनत्कुमार उवाच

तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्य सुरराट् ततः।
सक्रोधः प्राह गिरिशो वीरभद्रादिकान्गणान्॥ १

सनत्कुमार बोले—तब उस दूतका वचन सुनकर देवाधिदेव भगवान् शंकर कुपित होकर वीरभद्रादि गणोंसे कहने लगे—॥ १॥

रुद्र उवाच

हे वीरभद्र हे नंदिन् क्षेत्रपालाष्टभैरवाः।
सर्वे गणाश्च सन्नद्धाः सायुधा बलशालिनः॥ २
कुमाराभ्यां सहैवाद्य निर्गच्छन्तु ममाज्ञया।
स्वसेनया भद्रकाली निर्गच्छतु रणाय च।
शंखचूडवधार्थाय निर्गच्छाम्यद्य सत्वरम्॥ ३

रुद्र बोले—हे वीरभद्र! हे नन्दिन्! हे क्षेत्रपालो! हे अष्टभैरव! समस्त बलशालीगण! तुम लोग मेरी आज्ञासे अपने-अपने शस्त्र लेकर युद्धके लिये तैयार हो जाओ और दोनों कुमारोंके साथ [युद्धके लिये] निकल पड़ो। ये भद्रकाली भी अपनी सेनाके साथ युद्धके लिये चलें। मैं शंखचूड़का वध करनेके लिये अभी शीघ्र ही निकल रहा हूँ॥ २-३॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याज्ञाप्य महेशानो निर्ययौ सैन्यसंयुतः।
सर्वे वीरगणास्तस्यानुययुः संप्रहर्षिताः॥ ४

एतस्मिन्नन्तरे स्कंदगणेशौ सर्वसैन्यपौ।
ययतुर्मुदितौ नद्धौ सायुधौ च शिवान्तिके॥ ५
वीरभद्रश्च नन्दी च महाकालः सुभद्रकः।
विशालाक्षश्च बाणश्च पिंगलाक्षो विकंपनः॥ ६
विरूपो विकृतिश्चैव मणिभद्रश्च बाष्कलः।
कपिलाख्यो दीर्घदंष्ट्रो विकरस्ताम्रलोचनः॥ ७
कालंकरो बलीभद्रः कालजिह्वः कुटीचरः।
बलोन्मत्तो रणश्लाघ्यो दुर्जयो दुर्गमस्तथा॥ ८
इत्यादयो गणेशानाः सैन्यानां पतयो वराः।
तेषां च गणनां वच्मि सावधानतया शृणु॥ ९

शंखकर्णः कोटिगणैर्युतः परविमर्दकः।
दशभिः केकराक्षश्च विकृतोऽष्टाभिरेव च॥ १०
चतुःषष्ट्या विशाखश्च नवभिः पारियात्रिकः।
षड्भिः सर्वान्तकः श्रीमांस्तथैव विकृताननः॥ ११
जालको हि द्वादशभिः कोटिभिर्गणपुंगवः।
सप्तभिः समदः श्रीमान्दुन्दुभोऽष्टाभिरेव च॥ १२
पंचभिश्च करालाक्षः षड्भिः संदारको वरः।
कोटिकोटिभिरेवेह कंदुकः कुंडकस्तथा॥ १३
विष्टंभोऽष्टाभिरेवेह गणपः सर्वसत्तमः।
पिप्पलश्च सहस्रेण संनादश्च तथाविधः॥ १४
आवेशनस्तथाष्टाभिस्त्वष्टाभिश्चन्द्रतापनः।
महाकेशः सहस्रेण कोटीनां गणपो वृतः॥ १५

कुंडी द्वादशभिर्वीरैस्तथा पर्वतकः शुभः।
कालश्च कालकश्चैव महाकालशतेन वै॥ १६
अग्निकः शतकोट्या च कोट्याग्निमुख एव च।
आदित्यो ह्यर्द्धकोट्या च तथा चैव घनावहः॥ १७
सन्नाहश्च शतेनैव कुमुदः कोटिभिस्तथा।
अमोघः कोकिलश्चैव शतकोट्या सुमंत्रकः॥ १८
काकपादः कोटिषष्ट्या षष्ट्या संतानकस्तथा।
महाबलश्च नवभिः पञ्चभिर्मधुपिंगलः॥ १९
नीलो नवत्या देवेशः पूर्णभद्रस्तथैव च।
कोटीनां चैव सप्तानां चतुर्वक्त्रो महाबलः॥ २०
कोटिकोटिसहस्राणां शतैर्विंशतिभिस्तथा।
तत्राजग्मुस्तथा वीरास्ते सर्वे संगरोत्सवे॥ २१

सनत्कुमार बोले—इस प्रकारकी आज्ञा देकर शिवजी अपनी सेनाके साथ निकल पड़े और सभी वीरगण भी अत्यन्त हर्षित होकर उनके पीछे चल पड़े॥ ४॥

इसी बीच सभी सेनाओंके स्वामी कुमार कार्तिकेय तथा गणेशजी भी प्रसन्न होकर आयुधोंसे युक्त होकर शिवजीके समीप गये। वीरभद्र, नन्दी, महाकाल, सुभद्रक, विशालाक्ष, बाण, पिंगलाक्ष, विकम्पन, विरूप, विकृति, मणिभद्र, बाष्कल, कपिल, दीर्घदंष्ट्र, विकर, ताम्रलोचन, कालंकर, बलीभद्र, कालजिह्व, कुटीचर, बलोन्मत्त, रण-श्लाघ्य, दुर्जय एवं दुर्गम इत्यादि गणेश्वर तथा श्रेष्ठ सेनापति भी शिवजीके साथ रणभूमिमें चले। अब मैं उनकी संख्या बता रहा हूँ, सावधानीपूर्वक सुनिये॥ ५—९॥

शत्रुओंका मर्दन करनेवाला शंखकर्ण एक करोड़ सेनाके साथ, केकराक्ष दस करोड़, विकृत आठ करोड़, विशाख चौंसठ करोड़, पारियात्रिक नौ करोड़, सर्वान्तक छः करोड़, श्रीमान् विकृतानन छः करोड़, गणोंमें श्रेष्ठ जालक बारह करोड़, समद सात करोड़, श्रीमान् दुन्दुभ आठ करोड़, करालाक्ष पाँच करोड़, श्रेष्ठ सन्दारक छः करोड़, कन्दुक तथा कुण्डक एक-एक करोड़, सभीमें श्रेष्ठ विष्टम्भ नामक गणेश्वर आठ करोड़, पिप्पल एवं सन्नाद हजार करोड़, आवेशन तथा चन्द्रतापन आठ-आठ करोड़ और गणेश्वर महाकेश सहस्र करोड़ गणोंसे घिरा हुआ था॥ १०—१५॥

कुण्डी एवं पर्वतक बारह करोड़ वीरों, काल, कालक एवं महाकाल सौ करोड़, अग्निक सौ करोड़, अग्निमुख एक करोड़, आदित्य एवं घनावह आधा-आधा करोड़, सन्नाह तथा कुमुद सौ करोड़, अमोघ, कोकिल एवं सुमन्त्रक सौ-सौ करोड़, काकपाद और सन्तानक साठ-साठ करोड़, महाबल नौ करोड़, मधुपिंगल पाँच करोड़, नील, देवेश एवं पूर्णभद्र नब्बे-नब्बे करोड़, महाबलवान् चतुर्वक्त्र सात करोड़ गणोंके साथ, इसी प्रकार अन्य महावीर गण हजारों, सैकड़ों तथा बीसों करोड़ गणोंको साथ लेकर वहाँ युद्धोत्सवमें आये॥ १६—२१॥

भूतकोटिसहस्रेण प्रमथैर्कोटिभिस्त्रिभिः।
वीरभद्रश्चतुःषष्ट्या लोमजानां त्रिकोटिभिः॥ २२
काष्ठारूढश्चतुःषष्ट्या सुकेशो वृषभस्तथा।
विरूपाक्षश्च भगवांश्चतुःषष्ट्या सनातनः॥ २३

वीरभद्र सहस्र करोड़ भूतगणों, तीन करोड़ प्रमथों, चौंसठ करोड़ गणों एवं तीन करोड़ लोमजोंके सहित आये। काष्ठारूढ, सुकेश, वृषभ, विरूपाक्ष एवं भगवान् सनातन भी चौंसठ करोड़ गणोंके साथ आये॥ २२-२३॥

तालकेतुः षडास्यश्च पञ्चास्यश्च प्रतापवान्।
संवर्तकस्तथा चैत्रो लंकुलीशः स्वयं प्रभुः॥ २४
लोकांतकश्च दीप्तात्मा तथा दैत्यांतकः प्रभुः।
देवो भृङ्गीरिटिः श्रीमान्देवदेवप्रियस्तथा॥ २५
अशनिर्भानुकश्चैव चतुःषष्ट्या सहस्रशः।
कंकालः कालकः कालो नन्दी सर्वान्तकस्तथा॥ २६
एते चान्ये च गणपा असंख्याता महाबलाः।
युद्धार्थं निर्ययुः प्रीत्या शंखचूडेन निर्भयाः॥ २७

तालकेतु, षडास्य, पंचास्य, प्रतापी संवर्तक, चैत्र, लकुलीश, स्वयंप्रभु लोकान्तक, दीप्तात्मा, दैत्यान्तक, प्रभु, देव भृंगी, देवाधिदेव महादेवके अत्यन्त प्रिय श्रीमान् रिटि, अशनि, भानुक चौंसठ सहस्र करोड़ गणोंके साथ आये। इसी प्रकार कंकाल, कालक, काल, नन्दी, सर्वान्तक तथा अन्य असंख्य महाबली गणेश्वर शंखचूडके साथ युद्धके लिये निर्भय होकर प्रेमपूर्वक निकल पड़े॥ २४—२७॥

सर्वे सहस्रहस्ताश्च जटामुकुटधारिणः।
चन्द्ररेखावतंसाश्च नीलकंठास्त्रिलोचनाः॥ २८
रुद्राक्षाभरणाः सर्वे तथा सद्भस्मधारिणः।
हारकुंडलकेयूरमुकुटाद्यैरलंकृताः॥ २९
ब्रह्मेन्द्रविष्णुसंकाशा अणिमादिगुणैर्वृताः।
सूर्यकोटिप्रतीकाशाः प्रवीणा युद्धकर्मणि॥ ३०

ये सभी गण हजारों हाथोंसे युक्त तथा जटा-मुकुट धारण किये हुए थे। वे मस्तकपर चन्द्रकलासे युक्त, नीलकण्ठ एवं त्रिलोचन थे। सभी रुद्राक्ष एवं भस्म धारण किये हुए थे और हार, कुण्डल, केयूर एवं मुकुट आदिसे अलंकृत थे। वे ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णुके सदृश, अणिमादि सिद्धियोंसे युक्त, करोड़ों सूर्योंके समान देदीप्यमान एवं युद्धक्रियामें अत्यन्त प्रवीण थे॥ २८—३०॥

पृथिवीचारिणः केचित्केचित्पातालचारिणः।
केचित् व्योमचराः केचित्सप्तस्वर्गचरा मुने॥ ३१
किं बहूक्तेन देवर्षे सर्वलोकनिवासिनः।
ययुः शिवगणाः सर्वे युद्धार्थं दानवैः सह॥ ३२

हे मुने! उनमें कोई पृथ्वीमें, कोई पातालमें, कोई आकाशमें तथा कोई सातों स्वर्गोंमें विचरण करनेवाले थे। हे देवर्षे! बहुत कहनेसे क्या लाभ, उस समय सम्पूर्ण लोकोंमें रहनेवाले सभी शिवगण दानवोंसे युद्ध करनेके लिये आ पहुँचे॥ ३१-३२॥

अष्टौ च भैरवा रौद्रा रुद्राश्चैकादशाशु ये।
वसवोऽष्टौ वासवश्चादित्या द्वादश ते द्रुतम्॥ ३३

जो आठों भैरव, महाभयानक एकादश रुद्र, आठों वसु, इन्द्र, द्वादशादित्य थे, वे शीघ्र आ पहुँचे॥ ३३॥

हुताशनश्च चन्द्रश्च विश्वकर्माश्विनौ च तौ।
कुबेरश्च यमश्चैव निर्ऋतिर्नलकूबरः॥ ३४
वायुश्च वरुणश्चैव बुधश्च मंगलश्च वै।
ग्रहाश्चान्ये महेशेन कामदेवश्च वीर्यवान्॥ ३५

हुताशन, चन्द्रमा, विश्वकर्मा, दोनों अश्विनीकुमार, कुबेर, यम, निर्ऋति, नलकूबर, वायु, वरुण, बुध एवं मंगल तथा अन्य ग्रह और वीर्यवान् कामदेव शिवजीके साथ आये॥ ३४-३५॥

उग्रदंष्ट्रश्चोग्रदण्डः कोरटः कोटभस्तथा।
स्वयं शतभुजा देवी भद्रकाली महेश्वरी॥ ३६
रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानोपरि संस्थिता।
रक्तवस्त्रपरीधाना रक्तमाल्यानुलेपना॥ ३७
नृत्यन्ती च हसन्ती च गायन्ती सुस्वरं मुदा।
अभयं ददती स्वेभ्यो भयं चारिभ्य एव सा॥ ३८

उग्रदंष्ट्र, उग्रदण्ड, कोरट, कोटभ आदि महागण आये। स्वयं सौ भुजा धारण की हुई भगवती भद्रकाली महादेवी स्वयं उस युद्धमें उपस्थित हुईं। वे उत्तम रत्नोंसे निर्मित विमानपर बैठी हुई थीं, रक्त वस्त्र, रक्त अनुलेपन एवं रक्तमाल्य धारण किये हुए थीं, प्रसन्नतासे हँसती हुई, सुस्वरसे गाती हुई, नृत्य करती हुई वे अपने भक्तोंको अभय प्रदान कर रही थीं तथा शत्रुओंको भय उत्पन्न कर रही थीं॥ ३६—३८॥

बिभ्रती विकटां जिह्वां सुलीलां योजनायताम्।
शंखचक्रगदापद्मखड्गचर्मधनु:शरान् ॥ ३९

वे एक योजनपर्यन्त लम्बी विकट जिह्वा धारण किये हुए उसे लपलपा रही थीं और शंख, चक्र, गदा, पद्म, खड्ग, चर्म, धनुष तथा बाण धारण की हुई थीं॥ ३९॥

खर्परं वर्तुलाकारं गंभीरं योजनायतम्।
त्रिशूलं गगनस्पर्शि शक्तिं च योजनायताम्॥ ४०
मुद्गरं मुसलं वज्रं खड्गं फलकमुल्बणम्।
वैष्णवास्त्रं वारुणास्त्रं वायव्यं नागपाशकम्॥ ४१
नारायणास्त्रं गांधर्वं ब्रह्मास्त्रं गारुडं तथा।
पार्जन्यं च पाशुपतं जृंभणास्त्रं च पार्वतम्॥ ४२
महावीरं च सौरं च कालकालं महानलम्।
माहेश्वरास्त्रं याम्यं च दंडं संमोहनं तथा॥ ४३
समर्थमस्त्रकं दिव्यं दिव्यास्त्रं शतकं परम्।
बिभ्रती च करैः सर्वैरन्यान्यपि च सा तदा॥ ४४
आगत्य तस्थौ सा तत्र योगिनीनां त्रिकोटिभिः।
सार्धं च डाकिनीनां वै विकटानां त्रिकोटिभिः॥ ४५

वे एक योजनका गोल तथा अत्यन्त गहरा खर्पर, आकाशको स्पर्श करता हुआ त्रिशूल, एक योजन लम्बी शक्ति, मुद्गर, मुसल, वज्र, खड्ग, विशाल फलक (ढाल), वैष्णवास्त्र, वारुणास्त्र, वायव्यास्त्र, नागपाश, नारायणास्त्र, गन्धर्वास्त्र, ब्रह्मास्त्र, गरुडास्त्र, पर्जन्यास्त्र, पाशुपतास्त्र, जृम्भणास्त्र, पर्वतास्त्र, महावीरास्त्र, सौरास्त्र, कालकालास्त्र, महानलास्त्र, महेश्वरास्त्र, यमदण्ड, सम्मोहनास्त्र, दिव्य समर्थास्त्र एवं सैकड़ों-सैकड़ों दिव्यास्त्र एवं अन्य भी अस्त्र अपने हाथोंमें धारण किये हुए तीन करोड़ योगिनियों एवं तीन करोड़ विकट डाकिनियोंके साथ वहाँ आकर स्थित हो गयीं॥ ४०—४५॥

भूतप्रेतपिशाचाश्च कूष्माण्डा ब्रह्मराक्षसाः।
वेताला राक्षसाश्चैव यक्षाश्चैव सकिन्नराः॥ ४६
तैश्चैवाभिवृतः स्कंदः प्रणम्य चन्द्रशेखरम्।
पितुः पार्श्वे सहायो यः समुवास तदाज्ञया॥ ४७

इसी प्रकार भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, वेताल, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व तथा किन्नरोंसे घिरे हुए स्कन्द शिवजीको प्रणाम करके और उनकी आज्ञासे वे उनके समीप स्थित हो गये॥ ४६-४७॥

अथ शम्भुः समानीय स्वसैन्यं सकलं तदा।
युद्धार्थमगमद् रुद्रः शङ्खचूडेन निर्भयः॥ ४८

चन्द्रभागानदीतीरे वटमूले मनोहरे।
तत्र तस्थौ महादेवो देवनिस्तारहेतवे॥ ४९

इसके बाद रुद्र शिवजी अपनी सारी सेना लेकर शंखचूडके साथ युद्ध करनेके लिये निर्भय होकर चल पड़े। महादेव चन्द्रभागा नदीके तटपर एक मनोहर वटवृक्षके नीचे देवताओंका कष्ट दूर करनेहेतु स्थित हो गये॥ ४८-४९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शङ्खचूडवधे महादेवयुद्धयात्रावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडवधके अन्तर्गत महादेवयुद्धयात्रावर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३३॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

तुलसीसे विदा लेकर शंखचूडका युद्धके लिये ससैन्य पुष्पभद्रा नदीके तटपर पहुँचना

व्यास उवाच

विधितात महाबुद्धे मुने जीव चिरं समाः।
कथितं सुमहच्चित्रं चरितं चन्द्रमौलिनः॥ १
शिवदूते गते तत्र शङ्खचूडश्च दानवः।
किं चकार प्रतापी स तत्त्वं वद सुविस्तरम्॥ २

व्यासजी बोले—हे महाबुद्धिमान् ब्रह्मपुत्र! हे मुने! आप चिरकालतक जीवित रहें, आपने शिवजीका बड़ा विचित्र चरित्र वर्णन किया। अब आप विस्तारपूर्वक बताइये कि शिवजीके दूतके चले जानेपर प्रतापी शंखचूडने क्या किया?॥ १-२॥

सनत्कुमार उवाच

अथ दूते गते तत्र शंखचूडः प्रतापवान्।
उवाच तुलसीं वार्तां गत्वाभ्यन्तरमेव ताम्॥ ३

सनत्कुमार बोले—शिवदूतके चले जानेपर प्रतापी शंखचूडने भीतर जाकर तुलसीसे उस बातको कहा—॥ ३॥

शङ्खचूड उवाच

शम्भुदूतमुखाद्देवि युद्धायाहं समुद्यतः।
तेन गच्छाम्यहं योद्धुं शासनं कुरु मे ध्रुवम्॥ ४

शंखचूड बोला—हे देवि! शिवदूतके मुखसे युद्धका सन्देश प्राप्त होनेके कारण मैं युद्धके लिये तैयार होकर जा रहा हूँ, अब तुम मेरे शासनका कार्य सँभालना॥ ४॥

इत्येवमुक्त्वा स ज्ञानी नानाबोधनतः प्रियाम्।
क्रीडां चकार हर्षेण तमनादृत्य शंकरम्॥ ५

इस प्रकार यह कहकर उस ज्ञानी शंखचूडने नाना प्रकारके वाक्योंसे अपनी प्रियतमाको समझाया और शंकरका अनादरकर हर्षपूर्वक उसके साथ क्रीड़ा की॥ ५॥

तौ दम्पती चिक्रीडाते निमग्नौ सुखसागरे।
नानाकामकलाभिश्च निशि चाटुशतैरपि॥ ६

अनेक प्रकारकी कामकलाओं तथा मधुर वचनोंसे परस्पर संलाप करते हुए वे पति-पत्नी सुखसागरमें निमग्न हो रातमें क्रीडा करते रहे॥ ६॥

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय प्रातःकृत्यं विधाय च।
नित्यकार्यं च कृत्वादौ ददौ दानमनंतकम्॥ ७

ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर प्रातःकालीन कृत्य करके नित्य-कर्म सम्पन्नकर उसने बहुत दान दिया॥ ७॥

पुत्रं कृत्वा च राजेन्द्रं सर्वेषु दानवेषु च।
पुत्रे समर्प्य भार्यां च स राज्यं सर्वसंपदम्॥ ८

प्रियामाश्वासयामास स राजा रुदतीं पुनः।
निषेधन्तीं च गमनं नाना वार्ताः प्रकथ्य च॥ ९

निजसेनापतिं वीरं समाहूय समादृतः।
आदिदेश स संनद्धः संग्रामं कर्तुमुद्यतः॥ १०

इसके बाद अपने पुत्रको सभी दानवोंका राजा बनाकर सारी सम्पत्ति एवं राज्य, पुत्र तथा भार्याको समर्पितकर उस राजाने बारंबार रोती हुई तथा अनेक बातें कहकर युद्धमें जानेसे मना करनेवाली अपनी भार्याको आश्वस्त किया। उसके बाद उसने अपने वीर सेनापतिको आदरपूर्वक बुलाकर उसे आज्ञा दी और स्वयं सन्नद्ध होकर संग्राम करनेके लिये उद्यत हुआ॥ ८—१०॥

शंखचूड उवाच

अद्य सेनापते वीराः सर्वे समरशालिनः।
सन्नद्धाखिलकर्माणो निर्गच्छन्तु रणाय च॥ ११

शंखचूड बोला—हे सेनापते! युद्ध करनेमें कुशल सभी वीर सभी प्रकारसे सुसज्जित होकर युद्धके लिये चलें॥ ११॥

दैत्याश्च दानवाः शूरा षडशीतिरुदायुधाः।
कंकानां बलिनां शीघ्रं सेना निर्यातु निर्भयाः॥ १२

बलशाली कंकोंकी सेना, जिसमें छियासी महाबलवान् दैत्य एवं दानव हैं, आयुधोंसे युक्त हो शीघ्र निर्भय होकर निकलें॥ १२॥

पञ्चाशदसुराणां हि निर्गच्छन्तु कुलानि वै।
कोटिवीर्याणि युद्धार्थं शम्भुना देवपक्षिणा॥ १३

असुरोंके पचास कुल, जिसमें करोड़ों महावीर हैं, वे भी देवपक्षपाती शंकरसे युद्ध करनेके लिये निकलें॥ १३॥

सन्नद्धानि च धौम्राणां कुलानि च शतं द्रुतम्।
निर्गच्छन्तु रणार्थं हि शम्भुना मम शासनात्॥ १४
कालकेयाश्च मौर्याश्च दौर्हृदाः कालकास्तथा।
सज्जा निर्यान्तु युद्धाय रुद्रेण मम शासनात्॥ १५

धूम्रनामक दैत्योंके सौ कुल शिवसे युद्ध करनेके लिये मेरी आज्ञासे शीघ्र निकलें। इसी प्रकार कालकेय, मौर्य, दौर्हृद तथा कालक तैयार होकर मेरी आज्ञासे रुद्रके साथ संग्रामके लिये निकलें॥ १४-१५॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याज्ञाप्यासुरपतिर्दानवेन्द्रो महाबलः।
निर्जगाम महासैन्यः सहस्त्रैर्बहुभिर्वृतः॥ १६
तस्य सेनापतिश्चैव युद्धशास्त्रविशारदः।
महारथो महावीरो रथिनां प्रवरो रणे॥ १७
त्रिलक्षाक्षौहिणीयुक्तो मांडल्यं च चकार ह।
बहिर्बभूव शिविराद्रणे वीरभयङ्करः॥ १८
रत्नेन्द्रसारनिर्माणं विमानमभिरुह्य सः।
गुरुवर्गं पुरस्कृत्य रणार्थं प्रययौ किल॥ १९
पुष्पभद्रानदीतीरे यत्राक्षयवटः शुभः।
सिद्धाश्रमे च सिद्धानां सिद्धिक्षेत्रं सुसिद्धिदम्॥ २०
कपिलस्य तपःस्थानं पुण्यक्षेत्रे च भारते।
पश्चिमोदधिपूर्वे च मलयस्य हि पश्चिमे॥ २१
श्रीशैलोत्तरभागे च गंधमादनदक्षिणे।
पञ्चयोजनविस्तीर्णे दैर्घ्ये शतगुणस्तथा॥ २२
शुद्धस्फटिकसंकाशा भारते च सुपुण्यदा।
पुष्पभद्रा नदी रम्या जलपूर्णा सरस्वती॥ २३
लवणोदधिप्रिया भार्या शश्वत्सौभाग्यसंयुता।
सरस्वतीसंश्रिता च निर्गता सा हिमालयात्॥ २४
गोमन्तं वामतः कृत्वा प्रविष्टा पश्चिमोदधौ।
तत्र गत्वा शंखचूडः शिवसेनां ददर्श ह॥ २५

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] महाबली असुरराज दानवेन्द्र शंखचूड इस प्रकार आज्ञा देकर सहस्रों सेनाओंको लेकर चल पड़ा॥ १६॥

युद्धशास्त्रमें प्रवीण, महारथी, महावीर, रथियोंमें श्रेष्ठ तथा वीरोंमें भयंकर उसके सेनापतिने भी तीन लाख अक्षौहिणी सेनासे युक्त होकर मण्डल बनाया और वह युद्ध करनेके लिये शिविरसे बाहर निकला॥ १७-१८॥

शंखचूड भी उत्तम रत्नोंसे बने हुए विमानपर चढ़कर गुरुजनोंको आगेकर संग्रामके लिये चला। पुष्पभद्रा नदीके किनारे सिद्धक्षेत्रमें सिद्धोंका आश्रम एवं श्रेष्ठ अक्षयवट है। वह सिद्धिप्रद सिद्धक्षेत्र है। पुण्यक्षेत्र भारतमें कपिलकी तपोभूमि है। यह स्थान पश्चिम सागरके पूर्व तथा मलय पर्वतके पश्चिममें, श्रीपर्वतके उत्तर भागमें तथा गन्धमादनके दक्षिणमें पाँच योजन चौड़ा एवं पाँच सौ योजन लम्बा है॥ १९—२२॥

भारतमें शुद्ध स्फटिकके समान जलवाली, उत्तम पुण्य प्रदान करनेवाली, जलपूर्ण तथा रम्य पुष्पभद्रा तथा सरस्वती नदी है, जो क्षारसमुद्रकी प्रिय भार्या है, वह पुष्पभद्रा निरन्तर सौभाग्ययुक्त होकर हिमालयसे निकलकर सरस्वती नदीमें मिलती है और गोमन्तक पर्वतको बायेंकर पश्चिम सागरमें गिरती है। वहाँ जाकर शंखचूडने शिवकी सेनाको देखा॥ २३—२५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शङ्खचूडयात्रावर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडयात्रावर्णन नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३४॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

शंखचूडका अपने एक बुद्धिमान् दूतको शंकरके पास भेजना, दूत तथा शिवकी वार्ता, शंकरका सन्देश लेकर दूतका वापस शंखचूडके पास आना

सनत्कुमार उवाच

तत्र स्थित्वा दानवेन्द्रो महान्तं दानवेश्वरम्।
दूतं कृत्वा महाविज्ञं प्रेषयामास शंकरम्॥ १
स तत्र गत्वा दूतश्च चन्द्रभालं ददर्श ह।
वटमूले समासीनं सूर्यकोटिसमप्रभम्॥ २
कृत्वा योगासनं दृष्ट्या मुद्रायुक्तं च सस्मितम्।
शुद्धस्फटिकसंकाशं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा॥ ३

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] वहाँ स्थित होकर उस दानवेन्द्रने अत्यन्त बुद्धिमान् एक महान् दैत्येश्वरको दूत बनाकर शिवजीके समीप भेजा॥ १॥

उस दूतने वहाँ जाकर वटवृक्षके नीचे बैठे हुए, करोड़ों सूर्यके समान महातेजस्वी, योगासन लगाये हुए, ध्यानमुद्रायुक्त, मन्द-मन्द मुसकराते हुए, शुद्ध स्फटिकके समान परमोज्ज्वल, ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान,

त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरावृतम्।
भक्तमृत्युहरं शांतं गौरीकान्तं त्रिलोचनम्॥ ४
तपसां फलदातारं कर्त्तारं सर्वसंपदाम्।
आशुतोषं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्॥ ५
विश्वनाथं विश्वबीजं विश्वरूपं च विश्वजम्।
विश्वेश्वरं विश्वकरं विश्वसंहारकारणम्॥ ६
कारणं कारणानां च नरकार्णवतारकम्।
ज्ञानप्रदं ज्ञानबीजं ज्ञानानन्दं सनातनम्॥ ७

त्रिशूल-पट्टिश धारण किये हुए, व्याघ्रचर्म ओढ़े हुए, भक्तोंकी मृत्यु दूर करनेवाले, शान्त, तपस्याका फल देनेवाले, सम्पूर्ण सम्पत्ति प्रदान करनेवाले, शीघ्र प्रसन्न होनेवाले, प्रसन्नमुख, भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले, विश्व-बीज, विश्वरूप, विश्वको उत्पन्न करनेवाले, विश्वेश्वर, विश्वकर्ता, विश्वसंहारके कारण, कारणोंके भी कारण, नरकसमुद्रसे पार उतारनेवाले, ज्ञानदाता, ज्ञानबीज तथा ज्ञानमें ही आनन्दित रहनेवाले, तीन नेत्रवाले, सनातन उमापति विश्वनाथको देखा॥ २—७॥

अवरुह्य रथाद् दूतस्तं दृष्ट्वा दानवेश्वरः।
शंकरं सकुमारं च शिरसा प्रणनाम सः॥ ८
वामतो भद्रकालीं च स्कंदं तत्पुरतः स्थितम्।
लोकाशिषं ददौ तस्मै काली स्कंदश्च शंकरः॥ ९

उस दानवेश्वरके दूतने रथसे उतरकर कुमारसहित शंकरजीको देखकर सिर झुकाकर प्रणाम किया। उनके बायीं ओर विराजमान भद्रकाली तथा उनके आगे स्थित स्कन्दको भी प्रणाम किया। उसके बाद काली, शंकर एवं स्कन्दने लोकरीतिसे उसे आशीर्वाद दिया॥ ८-९॥

अथासौ शंखचूडस्य दूतः परमशास्त्रवित्।
उवाच शंकरं नत्वा करौ बध्वा शुभं वचः॥ १०

इसके बाद सकल शास्त्रोंका ज्ञाता शंखचूडका वह दूत हाथ जोड़कर शिवको प्रणाम करके उत्तम वचन कहने लगा—॥ १०॥

दूत उवाच

शंखचूडस्य दूतोऽहं त्वत्सकाशमिहागतः।
वर्तते ते किमिच्छाद्य तत्त्वं ब्रूहि महेश्वर॥ ११

दूत बोला—हे महेश्वर! मैं शंखचूडका दूत यहाँ आपके पास आया हूँ, आपकी क्या इच्छा है? उसे आप कहिये॥ ११॥

सनत्कुमार उवाच

इति श्रुत्वा च वचनं शंखचूडस्य शंकरः।
प्रसन्नात्मा महादेवो भगवांस्तमुवाच ह॥ १२

सनत्कुमार बोले—शंखचूडके दूतकी बात सुनकर प्रसन्नचित्त भगवान् महादेवने उससे कहा—॥ १२॥

महादेव उवाच

शृणु दूत महाप्राज्ञ वचो मम सुखावहम्।
कथनीयमिदं तस्मै निर्विवादं विचार्य च॥ १३

महादेवजी बोले—हे महाबुद्धिमान् दूत! तुम मेरे सुखदायक वचनको सुनो और विचार करके मेरे वचनको निर्विवाद रूपसे उनसे कह देना॥ १३॥

विधाता जगतां ब्रह्मा पिता धर्मस्य धर्मवित्।
मरीचिस्तस्य पुत्रश्च कश्यपस्तत्सुतः स्मृतः॥ १४

समस्त धर्मोंके ज्ञाता तथा जगत्के निर्माता ब्रह्मा धर्मके भी पिता हैं, उनके पुत्र मरीचि तथा उनके पुत्र कश्यप कहे गये हैं॥ १४॥

दक्षः प्रीत्या ददौ तस्मै निजकन्यास्त्रयोदश।
तास्वेका च दनुः साध्वी तत्सौभाग्यविवर्द्धिनी॥ १५

दक्षने उन कश्यपको अपनी तेरह कन्याएँ प्रसन्नताके साथ प्रदान कीं। उनमें एक दनु नामवाली थी। साधु स्वभाववाली वह उनके सौभाग्यको बढ़ानेवाली थी॥ १५॥

चत्वारस्ते दनोः पुत्रा दानवास्तेजसोल्बणाः।
तेष्वेको विप्रचित्तिस्तु महाबलपराक्रमः॥ १६

उस दनुके परम तेजस्वी चार दानव पुत्र हुए। उनमें एक विप्रचित्ति था, जो महाबलवान् एवं पराक्रमी था॥ १६॥

तत्पुत्रो धार्मिको दंभो दानवेन्द्रो महामतिः।
तस्य त्वं तनयः श्रेष्ठो धर्मात्मा दानवेश्वरः॥ १७

उस विप्रचित्तिका धार्मिक तथा महाबुद्धिमान् दानवराज दम्भ नामक पुत्र हुआ। तुम उसीके श्रेष्ठ, धर्मात्मा पुत्र तथा दानवोंके राजा हो॥ १७॥

पुरा त्वं पार्षदो गोपो गोपेष्वेव च धार्मिकः।
अधुना राधिकाशापाज्जातस्त्वं दानवेश्वरः॥ १८

दानवीं योनिमायातस्तत्त्वतो न हि दानवः।
निजवृत्तं पुरा ज्ञात्वा दैववैरं त्यजाधुना॥ १९

तुम पूर्वजन्ममें श्रीकृष्णके पार्षद, परम धार्मिक एवं सभी गोपोंमें मुख्य थे, किंतु इस समय तुम राधिकाके शापसे दानवेन्द्र हो गये हो। यद्यपि तुम दानवयोनिमें आ गये हो, किंतु वास्तवमें दानव नहीं हो। इस प्रकार अपने पुराने जन्मका वृत्तान्त जानकर देवताओंके साथ वैर त्याग दो॥ १८-१९॥

द्रोहं न कुरु तैः सार्द्धं स्वपदं भुंक्ष्व सादरम्।
नाधिकं सविकारं च कुरु राज्यं विचार्य च॥ २०

तुम अपने पदपर स्थित रहकर राज्यका आदरपूर्वक सुखोपभोग करो, देवगणोंसे अधिक द्वेष मत करो एवं विचारपूर्वक राज्य करो॥ २०॥

देहि राज्यं च देवानां मत्प्रीतिं रक्ष दानव।
निजराज्ये सुखं तिष्ठ तिष्ठन्तु स्वपदे सुराः॥ २१

हे दानव! देवगणोंका राज्य लौटा दो और मेरी प्रीतिकी रक्षा करो। तुम अपने राज्यपर स्थित रहो और देवता भी अपने पदपर स्थित रहें॥ २१॥

अलं भूतविरोधेन देवद्रोहेण किं पुनः।
कुलीनाः शुद्धकर्माणः सर्वे कश्यपवंशजाः॥ २२

सामान्य प्राणियोंके साथ भी विद्वेष करना बुरा होता है, फिर देवताओंसे विरोधका तो कहना ही क्या? वे सब कुलीन, शुद्ध कर्म करनेवाले तथा कश्यपके वंशमें उत्पन्न हुए हैं॥ २२॥

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
ज्ञातिद्रोहजपापस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ २३

ब्रह्महत्यादि जो कोई भी पाप हैं, वे जाति-द्रोहजनित पापकी सोलहवीं कलाकी भी बराबरी नहीं कर सकते॥ २३॥

सनत्कुमार उवाच

इत्यादिबहुवार्त्तां च श्रुतिस्मृतिपरां शुभाम्।
प्रोवाच शंकरः तस्मै बोधयन् ज्ञानमुत्तमम्॥ २४

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] इस प्रकार शंकरने उत्तम ज्ञानका बोध कराते हुए श्रुति एवं स्मृतिसे सम्बन्धित शुभ बातें उससे कहीं॥ २४॥

शिक्षितः शंखचूडेन स दूतस्तर्कवित्तमः।
उवाच वचनं नम्रो भवितव्यविमोहितः॥ २५

तब शंखचूडके द्वारा शिक्षित तथा तर्कविद् वह दूत होनहारसे मोहित होकर विनम्रतापूर्वक इस प्रकार यह वचन कहने लगा—॥ २५॥

दूत उवाच

त्वया यत्कथितं देव नान्यथा तत्तथा वचः।
तथ्यं किंचिद्यथार्थं च श्रूयतां मे निवेदनम्॥ २६

दूत बोला—हे देव! आपने जो वचन कहा है, वह अन्यथा नहीं है, किंतु मेरा कुछ तथ्यपूर्ण एवं यथार्थ निवेदन सुनिये॥ २६॥

ज्ञातिद्रोहे महत्पापं त्वयोक्तमधुना च यत्।
तत्किमीशासुराणां च न सुराणां वद प्रभो॥ २७

आपने अभी जो कहा है कि जातिद्रोह महापाप है। हे ईश! क्या यह असुरोंके लिये ही है, देवोंके लिये नहीं? हे प्रभो! इसे बताइये॥ २७॥

सर्वेषामिति चेत्तद्वै तदा वच्मि विचार्य च।
निर्णयं ब्रूहि तत्राद्य कुरु संदेहभंजनम्॥ २८

मधुकैटभयोर्दैत्यवरयोः प्रलयार्णवे।
शिरश्छेदं चकारासौ कस्माच्चक्री महेश्वर॥ २९

त्रिपुरैः सह संयुद्धं भस्मत्वकरणं कुतः।
भवाञ्चकार गिरिश सुरपक्षीति विश्रुतम्॥ ३०

यदि यह सबके लिये है, तो मैं विचारकर आपसे कुछ कह रहा हूँ, आप ही उसका निर्णय कीजिये और मेरा सन्देह दूर कीजिये। हे महेश्वर! चक्रधारी विष्णुने प्रलयके समय समुद्रमें दैत्यश्रेष्ठ मधु एवं कैटभका शिरश्छेद क्यों किया? हे गिरिश! यह तो प्रसिद्ध है कि देवताओंके पक्षधर आपने युद्धमें त्रिपुरको भस्म किया, तो ऐसा आपने क्यों किया?॥ २८—३०॥

गृहीत्वा तस्य सर्वस्वं कुतः प्रस्थापितो बलिः।
सुतलादि समुद्धर्तुं तद्द्वारे च गदाधरः॥ ३१

विष्णुने बलिका सर्वस्व लेकर उसे पाताल लोकमें क्यों भेज दिया? सुतल आदि लोकका उद्धार करनेके लिये उसके द्वारपर गदा धारणकर क्यों स्थित हैं?॥ ३१॥

सभ्रातृको हिरण्याक्षः कथं देवैश्च हिंसितः।
शुंभादयोऽसुराश्चैव कथं देवैर्निपातिताः॥ ३२

इन देवताओंने भाईसहित हिरण्याक्षको क्यों मारा और इन्हीं देवताओंने शुम्भादि असुरोंको क्यों मारा?॥ ३२॥

पुरा समुद्रमथने पीयूषं भक्षितं सुरैः।
क्लेशभाजो वयं तत्र ते सर्वे फलभोगिनः॥ ३३

पूर्वकालमें समुद्रमन्थन किये जानेपर देवगणोंने ही अमृतका पान किया। हम सभीको क्लेश प्राप्त हुआ, किंतु इसका [अमृतपानरूप] फल देवताओंने भोगा॥ ३३॥

क्रीडाभांडमिदं विश्वं कालस्य परमात्मनः।
स ददाति यदा यस्मै तस्यैश्वर्यं भवेत्तदा॥ ३४
देवदानवयोर्वैरं शश्वन्नैमित्तिकं सदा।
पराजयो जयस्तेषां कालाधीनः क्रमेण च॥ ३५

यह जगत् भगवान् कालका क्रीडापात्र है, वे जिस समय जिसे ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, उस समय वह ऐश्वर्यवान् हो जाता है। देवताओं एवं दैत्योंका वैर सदा किसी-न-किसी निमित्त होता आया है। क्रमशः जीत और हार कालके अधीन है॥ ३४-३५॥

तवानयोर्विरोधे च गमनं निष्फलं भवेत्।
समसंबंधिनां तद्वै रोचते नेश्वरस्य ते॥ ३६

इन दोनोंके विरोधमें आपका आ जाना निष्फल प्रतीत हो रहा है। यह विरोध तो समान सम्बन्धियोंका ही अच्छा लगता है, आप सदृश ईश्वरका नहीं॥ ३६॥

सुरासुराणां सर्वेषामीश्वरस्य महात्मनः।
इयं ते रहिता लज्जा स्पर्धास्माभिः सहाधुना॥ ३७

यतोऽधिका चैव कीर्तिर्हानिश्चैव पराजये।
तवैतद्विपरीतं च मनसा संविचार्यताम्॥ ३८

आप तो देवता तथा असुर सभीके स्वामी हैं, अतः इस समय आप महात्माकी केवल हमलोगोंसे यह स्पर्धा निर्लज्जताकी बात है। विजय होनेपर अधिक कीर्ति तथा पराजय होनेपर हानि—ये दोनों ही आपके लिये सर्वथा विपरीत हैं, इसे मनसे विचार कीजिये॥ ३७-३८॥

सनत्कुमार उवाच

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा संप्रहस्य त्रिलोचनः।
यथोचितं च मधुरमुवाच दानवेश्वरम्॥ ३९

सनत्कुमार बोले—यह वचन सुनकर शिवजी हँसकर दानवराजसे यथोचित मधुर वचन कहने लगे—॥ ३९॥

महेश उवाच

वयं भक्तपराधीना न स्वतंत्राः कदापि हि।
तदिच्छया तत्कर्माणो न कस्यापि च पक्षिणः॥ ४०

महेश बोले—हम अपने भक्तोंके अधीन हैं, स्वतन्त्र कभी नहीं हैं, हम उनकी इच्छासे ही कर्म करते हैं और किसीके भी पक्षपाती नहीं हैं॥ ४०॥

पुरा विधिप्रार्थनया युद्धमादौ हरेरपि।
मधुकैटभयोर्दैत्यवरयोः प्रलयार्णवे॥ ४१

पूर्वकालमें ब्रह्माकी प्रार्थनासे ही प्रलयार्णवमें विष्णु तथा दैत्यश्रेष्ठ मधु-कैटभका युद्ध हुआ था॥ ४१॥

देवप्रार्थनया तेन हिरण्यकशिपोः पुरा।
प्रह्लादार्थं वधोऽकारि भक्तानां हितकारिणा॥ ४२

भक्तोंका कल्याण करनेवाले उन्हीं विष्णुने पूर्वकालमें देवताओंकी प्रार्थनासे प्रह्लादकी रक्षाके निमित्त हिरण्यकशिपुका वध किया था॥ ४२॥

त्रिपुरैः सह संयुद्धं भस्मत्वकरणं ततः।
देवप्रार्थनयाकारि मयापि च पुरा श्रुतम्॥ ४३
सर्वेश्वर्याः सर्वमातुर्देवप्रार्थनया पुरा।
आसीच्छुंभादिभिर्युद्धं वधस्तेषां तया कृतः॥ ४४

देवगणोंकी प्रार्थनासे मैंने भी त्रिपुरोंके साथ युद्ध किया तथा उन्हें भस्म किया—यह बात सब लोग जानते हैं। पूर्वकालमें देवताओंकी प्रार्थनासे सबकी स्वामिनी तथा सबकी माताने शुम्भादिके साथ युद्ध किया और उन्होंने उनका वध भी किया॥ ४३-४४॥

अद्यापि त्रिदशाः सर्वे ब्रह्माणं शरणं ययुः।
स सदेवो हरिर्मां च देवः शरणमागतः॥ ४५
हरिब्रह्मादिकानां च प्रार्थनावशतोऽप्यहम्।
सुराणामीश्वरो दूत युद्धार्थमगमं खलु॥ ४६

आज भी सभी देवता ब्रह्माकी शरणमें गये और देवताओंसहित विष्णु-ब्रह्मा मेरी शरणमें आये। हे दूत! देवताओंका स्वामी मैं भी ब्रह्मा तथा विष्णुकी प्रार्थनाके कारण युद्धके लिये आया हूँ॥ ४५-४६॥

पार्षदप्रवरस्त्वं हि कृष्णस्य च महात्मनः।
ये ये हताश्च दैतेया न हि केऽपि त्वया समाः॥ ४७

[हे दूत! शंखचूडसे कहना कि] तुम महात्मा श्रीकृष्णके श्रेष्ठ पार्षद हो। पहले जो-जो दैत्य मारे गये, उनमें कोई भी तुम्हारे समान नहीं था॥ ४७॥

का लज्जा महती राजन् मम युद्धे त्वया सह।
देवकार्यार्थमीशोऽहं विनयेन च प्रेषितः॥ ४८

हे राजन्! देवताओंका कार्य करनेके लिये तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें मुझे कौन-सी बड़ी लज्जा है। देवताओंके कार्यके लिये मैं ईश्वर विनयपूर्वक भेजा गया हूँ॥ ४८॥

गच्छ त्वं शंखचूडं वै कथनीयं च मे वचः।
स च युक्तं करोत्वत्र सुरकार्यं करोम्यहम्॥ ४९

[अतः हे दूत!] तुम जाओ और शंखचूडसे मेरा वचन कह देना कि मैं तो देवकार्य अवश्य करूँगा, उसे जो उचित हो, वैसा करे॥ ४९॥

इत्युक्त्वा शंकरस्तत्र विरराम महेश्वरः।
उत्तस्थौ शंखचूडस्य दूतोऽगच्छत्तदन्तिकम्॥ ५०

ऐसा कहकर महेश्वर चुप हो गये और शंखचूडका दूत उठा और उसके पास चला गया॥ ५०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शङ्खचूडवधे शिवदूतसंवादो नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडवधके अन्तर्गत शिवदूतसंवादवर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३५॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

शंखचूडको उद्देश्यकर देवताओंका दानवोंके साथ महासंग्राम

सनत्कुमार उवाच

स दूतस्तत्र गत्वा च शिववाक्यं जगाद ह।
सविस्तरं यथार्थं च निश्चयं तस्य तत्त्वतः॥ १

सनत्कुमार बोले—उस दूतने वहाँ जाकर शिवजीकी सारी बात तथा उनका निश्चय विस्तारपूर्वक यथार्थ रूपसे कह दिया॥ १॥

तच्छ्रुत्वा शंखचूडोऽसौ दानवेन्द्रः प्रतापवान्।
अंगीचकार सुप्रीत्या रणमेव स दानवः॥ २

उसे सुनकर उस प्रतापी दानवेन्द्र शंखचूडने बड़े प्रेमके साथ युद्ध करनेकी चुनौती स्वीकार कर ली॥ २॥

समारुरोह यानं च सहामात्यैश्च सत्वरः।
आदिदेश स्वसैन्यं च युद्धार्थं शंकरेण च॥ ३

इसके बाद वह बड़ी शीघ्रताके साथ अमात्योंके सहित विमानपर आरूढ़ हुआ और शंकरजीके साथ युद्ध करनेके लिये उसने अपनी सेनाको आज्ञा दे दी॥ ३॥

शिवः स्वसैन्यं देवांश्च प्रेरयामास सत्वरः।
स्वयमप्यखिलेशोऽपि सन्नद्धोऽभूच्च लीलया॥ ४

शिवजीने भी शीघ्रतासे अपनी सेना एवं देवताओंको [युद्धके लिये] प्रेरित किया और वे स्वयं सर्वेश्वर होकर लीलापूर्वक युद्धके लिये तैयार हो गये॥ ४॥

युद्धारम्भो बभूवाशु नेदुर्वाद्यानि भूरिशः।
कोलाहलश्च संजातो वीरशब्दस्तथैव च॥ ५

इसके बाद शीघ्र ही युद्ध प्रारम्भ हो गया। उस समय अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे, कोलाहल और वीरोंकी गर्जनाएँ होने लगीं॥ ५॥

देवदानवयोर्युद्धं परस्परमभून्मुने।
धर्मतो युयुधे तत्र देवदानवयोर्गणः॥ ६

हे मुने! देव और दानवोंका परस्पर युद्ध होने लगा। देवता तथा दानव धर्मपूर्वक युद्ध करने लगे॥ ६॥

स्वयं महेन्द्रो युयुधे सार्धं च वृषपर्वणा।
भास्करो युयुधे विप्रचित्तिना सह धर्मतः॥ ७

स्वयं महेन्द्र वृषपर्वाके साथ तथा भास्कर विप्रचित्तिके साथ धर्मपूर्वक युद्ध करने लगे॥ ७॥

दंभेन सह विष्णुश्च चकार परमं रणम्।
कालासुरेण कालश्च गोकर्णेन हुताशनः॥ ८
कुबेरः कालकेयेन विश्वकर्मा मयेन च।
भयंकरेण मृत्युश्च संहारेण यमस्तथा॥ ९
कालम्बिकेन वरुणश्चंचलेन समीरणः।
बुधश्च घटपृष्ठेन रक्ताक्षेण शनैश्चरः॥ १०
जयन्तो रत्नसारेण वसवो वर्चसां गणैः।
अश्विनौ दीप्तिमद्भ्यां च धूम्रेण नलकूबरः॥ ११
धुरंधरेण धर्मश्च गणकाक्षेण मंगलः।
शोभाकरेण वैश्वानः पिपिटेन च मन्मथः॥ १२
गोकामुखेन चूर्णेन खड्गनाम्नासुरेण च।
धूम्रेण संहलेनापि विश्वेन च प्रतापिना॥ १३
द्वादशार्का पलाशेन युयुधुर्धर्मतः परे।
असुरैरमराः सार्द्धं शिवसाहाय्यशालिनः॥ १४

दम्भके साथ विष्णुका महान् युद्ध होने लगा। काल कालासुरके साथ, अग्नि गोकर्णके साथ, कुबेर कालकेयके साथ, विश्वकर्मा मयके साथ, मृत्यु भयंकरके साथ, यमराज संहारके साथ, वरुण कालम्बिकके साथ, समीरण चंचलके साथ, बुध घटपृष्ठके साथ, शनैश्चर रक्ताक्षके साथ, जयन्त रत्नसारके साथ, अष्ट वसु वर्चस्‌गणोंके साथ, अश्विनीकुमार दोनों दीप्तिमानोंके साथ, नलकूबर धूम्रके साथ, धर्म धुरन्धरके साथ, मंगल गणकाक्षके साथ, वैश्वान शोभाकरके साथ, कामदेव पिपिटके साथ, बारहों आदित्य गोकामुख, चूर्ण, खड्ग नामक असुर, धूम्र, संहल, विश्व, प्रतापी एवं पलाशके साथ धर्मपूर्वक युद्ध करने लगे। शिवकी सहायता प्राप्तकर देवगण असुरोंके साथ युद्ध करने लगे॥ ८—१४॥

एकादश महारुद्राश्चैकादशभयंकरैः।
असुरैर्युयुधुर्वीरैर्महाबलपराक्रमैः॥ १५
महामणिश्च युयुधे चोग्रचंडादिभिः सह।
राहुणा सह चन्द्रश्च जीवः शुक्रेण धर्मतः॥ १६
नन्दीश्वरादयः सर्वे दानवप्रवरैः सह।
युयुधुश्च महायुद्धे नोक्ता विस्तरतः पृथक्॥ १७

एकादश महारुद्र भयंकर, महाबली, महापराक्रमी तथा वीर ग्यारह असुरोंसे युद्ध करने लगे। महामणि उग्रचण्ड आदिके साथ, चन्द्रमा राहुके साथ तथा बृहस्पति शुक्राचार्यके साथ धर्मपूर्वक युद्ध करने लगे। नन्दीश्वर आदि शिवगण भी दानवोंके साथ युद्ध करने लगे, उसका पृथक्-पृथक् वर्णन विस्तारके भयसे नहीं किया गया॥ १५—१७॥

वटमूले तदा शंभुस्तस्थौ काल्याः सुतेन च।
सर्वे च युयुधुः सैन्यसमूहाः सततं मुने॥ १८
रत्नसिंहासने रम्ये कोटिदानवसंयुते।
उवास शंखचूडश्च रत्नभूषणभूषितः॥ १९
महायुद्धो बभूवाथ देवासुरविमर्दनः।
नानायुधानि दिव्यानि चलन्ति स्म महामृधे॥ २०

हे मुने! उस समय शिवजी काली एवं पुत्रके साथ वटके मूलमें स्थित रहे और समस्त सैन्यसमूह निरन्तर युद्ध कर रहे थे। रत्नजटित आभूषणोंसे भूषित शंखचूड भी करोड़ों दानवोंसे युक्त रत्नजटित मनोहर सिंहासनपर बैठा हुआ था। इसके बाद देवताओं एवं असुरोंका विनाश करनेवाला महायुद्ध छिड़ गया। उस महायुद्धमें नाना प्रकारके दिव्य आयुध चल रहे थे॥ १८—२०॥

गदर्ष्टिपट्टिशाश्चक्रभुशुंडिप्रासमुद्गराः ।
निस्त्रिंशभल्लपरिघाः शक्त्युन्मुखपरश्वधाः ॥ २१

शरतोमरखड्गाश्च शतघ्न्यश्च सहस्रशः ।
भिंदिपालादयश्चान्ये वीरहस्तेषु शोभिताः ॥ २२

गदा, ऋष्टि, पट्टिश, चक्र, भुशुण्डी, प्रास, मुद्गर, निस्त्रिंश, भाला, परिघ, शक्ति, उन्मुख, परशु, बाण, तोमर, खड्ग, सहस्रों तोपें, भिन्दिपाल एवं अन्य शस्त्र वीरोंके हाथोंमें शोभित हो रहे थे ॥ २१-२२ ॥

शिरांसि चिच्छिदुश्चैभिर्वीरास्तत्र महोत्सवाः ।
वीराणामुभयोश्चैव सैन्ययोर्गर्जतो रणे ॥ २३

गजास्तुरंगा बहवः स्यन्दनाश्च पदातयः ।
सारोहवाहा विविधास्तत्रासन् सुविखंडिताः ॥ २४

महान् उत्साहसे युक्त वीर लोग युद्धमें गरजती हुई दोनों सेनाओंके वीरोंके सिरोंको इन आयुधोंसे काटने लगे। हाथी, घोड़े, रथ, पैदल तथा अनेक प्रकारके सवारसहित वाहन युद्धमें कट रहे थे ॥ २३-२४ ॥

निकृत्तबाहूरुकरकटिकर्णयुगाङ्घ्रयः ।
संछिन्नध्वजबाणासितनुत्रवरभूषणाः ॥ २५

समुद्धतकिरीटैश्च शिरोभिः सह कुंडलैः ।
संरंभनष्टैरास्तीर्णा बभौ भूः करभोरुभिः ॥ २६

महाभुजैः साभरणैः संछिन्नैः सायुधैस्तथा ।
अंगैरन्यैश्च सहसा पटलैर्वा ससारघैः ॥ २७

भुजा, जङ्घा, हाथ, कटि, दोनों कान, पैर, ध्वज, बाण, तलवार, कवच एवं उत्तम आभूषण कटकर पृथ्वीपर गिरने लगे। उस समय योद्धाओंके कटे हुए किरीट-कुण्डलयुक्त सिरोंसे तथा हाथियोंकी कटी हुई सूँड़ोंसे, कटी हुई आभूषणयुक्त भुजाओं तथा कटे हुए आयुधों एवं कटे हुए अन्य अंगोंसे समस्त पृथ्वी मधुमक्खीके छत्तोंके समान पट गयी ॥ २५—२७ ॥

मृधे भटाः प्रधावंतः कबंधान् स्वशिरोक्षिभिः ।
पश्यन्तस्तत्र चोत्पेतुरुद्यतायुधसद्भुजैः ॥ २८

युद्धमें कटे हुए सिरोंकी आँखोंसे कबन्धकी ओर देखते हुए योद्धा शस्त्र धारण की हुई भुजाओंको ऊपरकी ओर उठाकर जहाँ-तहाँ दौड़ रहे थे ॥ २८ ॥

वल्गन्तोऽतितरां वीरा युयुधुश्च परस्परम् ।
शस्त्रास्त्रैर्विविधैस्तत्र महाबलपराक्रमाः ॥ २९

केचित्स्वर्णमुखैर्बाणैर्विनिहत्य भटान्मृधे ।
व्यनदन् वीरसन्नादं सतोया इव तोयदाः ॥ ३०

सर्वतः शरकूटेन वीरः सरथसारथिम् ।
वीरं संछादयामास प्रावृट्सूर्यमिवाम्बुदः ॥ ३१

महाबलवान् एवं महापराक्रमी वीर तीव्र नाद करते हुए अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे परस्पर युद्ध कर रहे थे। कुछ योद्धा युद्धमें सुवर्णमुखवाले बाणोंसे योद्धाओंको मारकर जलवृष्टि करनेवाले मेघोंके समान वीरगर्जना कर रहे थे। कोई वीर चारों ओरसे अपने बाणोंसे रथसहित सारथीको इस प्रकार ढँक दे रहा था, जिस प्रकार बादल सूर्यको ढँक लेता है ॥ २९—३१ ॥

अन्योऽन्यमभिसंसृत्य युयुधुर्द्वन्द्वयोधिनः ।
आह्वयंतो विशंतोऽग्रे क्षिपंतो मर्मभिर्मिथः ॥ ३२

द्वन्द्वयुद्ध करनेवाले वीर एक-दूसरेसे भिड़कर ललकारते हुए तथा एक-दूसरेके आगे जाते हुए मर्मस्थलपर प्रहार करते हुए आपसमें युद्ध कर रहे थे ॥ ३२ ॥

सर्वतो वीरसंघाश्च नानाबाहुध्वजायुधाः ।
व्यदृश्यंत महासंख्ये कुर्वन्तः सिंहसंरवम् ॥ ३३

महारवान् स्वशंखांश्च विदध्मुर्वै पृथक् पृथक् ।
वल्गनं चक्रिरे तत्र महावीराः प्रहर्षिताः ॥ ३४

उस महायुद्धमें वीरसमूह चारों ओरसे अपने हाथोंमें नाना प्रकारके ध्वज तथा आयुध लेकर सिंहनाद करते हुए दिखायी पड़ रहे थे। उस युद्धमें महावीर महान् शब्द करनेवाले अपने शंखोंको पृथक्-पृथक् बजा रहे थे और प्रसन्न होकर घोर नाद कर

एवं चिरतरं कालं देवदानवयोर्महत्।
बभूव युद्धं विकटं करालं वीरहर्षदम्॥ ३५

महाप्रभोश्च लीलेयं शंकरस्य परात्मनः।
यया संमोहितं सर्वं सदेवासुरमानुषम्॥ ३६

रहे थे। इस प्रकार दीर्घकालतक देवताओं तथा दानवोंका विकट, भयंकर तथा वीरोंको हर्षित करनेवाला महायुद्ध हुआ। परमात्मा महाप्रभु शंकरकी यह लीला है, जिसने देवता, मनुष्य एवं असुरोंसहित सभीको मोहित कर रखा है॥ ३३—३६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शङ्खचूडवधे परस्परयुद्धवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडवधके अन्तर्गत परस्परयुद्धवर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३६॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

शंखचूडके साथ कार्तिकेय आदि महावीरोंका युद्ध

सनत्कुमार उवाच

तदा देवगणाः सर्वे दानवैश्च पराजिताः।
दुद्रुवुर्भयभीताश्च शस्त्रास्त्रक्षतविग्रहाः॥ १

ते परावृत्य विश्वेशं शंकरं शरणं ययुः।
त्राहि त्राहीति सर्वेशेत्यूचुर्विह्वलया गिरा॥ २

सनत्कुमार बोले—[हे व्यासजी!] उस समय दानवोंने सभी देवताओंको पराजित कर दिया, जिससे शस्त्रास्त्रोंसे क्षत-विक्षत अंगोंवाले देवता भयभीत होकर भागने लगे॥ १॥

वे लौटकर शिवजीकी शरणमें गये और 'हे सर्वेश! रक्षा करो, रक्षा करो', ऐसा विह्वल वाणीमें कहने लगे॥ २॥

दृष्ट्वा पराजयं तेषां देवादीनां स शंकरः।
सभयं वचनं श्रुत्वा कोपमुच्चैश्चकार ह॥ ३

निरीक्ष्य स कृपादृष्ट्या देवेभ्यश्चाभयं ददौ।
बलं च स्वगणानां वै वर्द्धयामास तेजसा॥ ४

तब उन देवताओंकी इस प्रकारकी पराजय देखकर तथा उनका भययुक्त वचन सुनकर शिवजीने महान् क्रोध किया। कृपादृष्टिसे देखकर उन्होंने देवताओंको अभयदान दिया तथा अपने तेजसे गणोंके बलको बढ़ाया॥ ३-४॥

शिवाज्ञप्तस्तदा स्कन्दो दानवानां गणैः सह।
युयुधे निर्भयः संख्ये महावीरो हरात्मजः॥ ५

कृत्वा क्रोधं वीरशब्दं देवो यस्तारकान्तकः।
अक्षौहिणीनां शतकं समरे स जघान ह॥ ६

रुधिरं पातयामास काली कमललोचना।
तेषां शिरांसि संछिद्य बभक्ष सहसा च सा॥ ७

तब शिवपुत्र महावीर कार्तिकेय शिवजीकी आज्ञा लेकर रणक्षेत्रमें दानवोंके साथ निर्भय होकर युद्ध करने लगे। तारकासुरका वध करनेवाले कार्तिकेयने क्रोध करके वीरध्वनि करते हुए उनकी सौ अक्षौहिणी सेनाको युद्धमें मार डाला। कमलके समान नेत्रवाली काली सहसा दैत्योंका सिर काटकर रक्त बहाने लगीं और उनका भक्षण करने लगीं॥ ५—७॥

पपौ रक्तानि तेषां च दानवानां समन्ततः।
युद्धं चकार विविधं सुरदानवभीषणम्॥ ८

शतलक्षं गजेन्द्राणां दानवानां तथा रणे।
समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप लीलया॥ ९

वे दानवोंके रुधिरका चारों ओरसे पान करने लगीं और देवताओं तथा दानवोंके लिये भयंकर विविध प्रकारके युद्ध करने लगीं। उन्होंने रणमें लीलापूर्वक सौ लाख हाथी एवं सौ लाख दानवोंको एक हाथसे उठाकर मुखमें डाल लिया॥ ८-९॥

कबंधानां सहस्त्रं च सन्ननर्त रणे बहु।
महान् कोलाहलो जातः क्लीबानां च भयंकरः॥ १०

पुनः स्कंदः प्रकुप्योच्चैः शरवर्षां चकार ह।
पातयामास क्षणतः कोटिशोऽसुरनायकान्॥ ११

हजारों कबन्ध युद्धभूमिमें नृत्य करने लगे। उस समय महान् कोलाहल होने लगा, जो कायरोंके लिये भयप्रद था। इसके बाद स्कन्द कुपित हो पुनः बाणोंकी वर्षा करने लगे और उन्होंने क्षणभरमें करोड़ों असुरसेनापतियोंको मारकर गिरा दिया॥ १०-११॥

दानवाः शरजालेन स्कन्दस्य क्षतविग्रहाः।
भीताः प्रदुद्रुवुः सर्वे शेषा मरणतस्तदा॥ १२

जो शेष दानव मरनेसे बच गये, वे सब स्कन्दके बाणोंसे क्षत-विक्षत तथा भयभीत होकर भागने लगे॥ १२॥

वृषपर्वा विप्रचित्तिर्दंडश्चापि विकंपनः।
स्कंदेन युयुधुः सार्द्धं तेन सर्वे क्रमेण च॥ १३

तब वृषपर्वा, विप्रचित्ति, दण्ड, विकम्पन—ये सब बारी-बारीसे स्कन्दके साथ युद्ध करने लगे॥ १३॥

महामारी च युयुधे न बभूव पराङ्मुखी।
बभूवुस्ते क्षतांगाश्च स्कंदशक्तिप्रपीडिताः॥ १४

महामारीस्कंदयोश्च विजयोऽभूत्तदा मुने।
नेदुर्दुंदुभयः स्वर्गे पुष्पवृष्टिः पपात ह॥ १५

महामारी भी युद्ध करने लगी और युद्धसे नहीं हटी। उधर स्कन्दकी शक्तिसे पीड़ित हुए असुरगण क्षत-विक्षत होने लगे। हे मुने! उस समय स्कन्द एवं महामारीकी विजय हुई, स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं और फूलोंकी वृष्टि होने लगी॥ १४-१५॥

स्कंदस्य समरं दृष्ट्वा महारौद्रं तमद्भुतम्।
दानवानां क्षयकरं यथा प्रकृतिकल्पकम्॥ १६

महामारीकृतं तच्चोपद्रवं क्षयहेतुकम्।
चुकोपातीव सहसा संनद्धोऽभूत्स्वयं तदा॥ १७

तब कार्तिकेयके महाभयानक, अद्भुत, दानवोंका क्षय करनेवाले एवं कल्पान्तसदृश और महामारीके द्वारा किये गये क्षयकारी उपद्रवको देखकर वह शंखचूड अत्यन्त कुपित हुआ और स्वयं सहसा युद्धके लिये तैयार हुआ॥ १६-१७॥

वरं विमानमारुह्य नानाशस्त्रास्त्रसंयुतम्।
अभयं सर्ववीराणां नानारत्नपरिच्छदम्॥ १८

महावीरैः शंखचूडो जगाम रथमध्यतः।
धनुर्विकृष्य कर्णान्तं चकार शरवर्षणम्॥ १९

वह शंखचूड अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे युक्त, विविध रत्नोंसे जटित तथा सभी वीरोंको अभय देनेवाले विमानपर चढ़कर महावीरोंके साथ रणभूमिमें उपस्थित हो गया और कर्णपर्यन्त धनुषकी प्रत्यंचा खींचकर बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ १८-१९॥

तस्य सा शरवृष्टिश्च दुर्निवार्या भयंकरी।
महाघोरांधकारश्च वधस्थाने बभूव ह॥ २०

उसकी वह शरवृष्टि भयानक थी तथा प्रतीकारके योग्य नहीं थी, उससे युद्धस्थलमें घनघोर अन्धकार छा गया॥ २०॥

देवाः प्रदुद्रुवुः सर्वे येऽन्ये नन्दीश्वरादयः।
एक एव कार्त्तिकेयस्तस्थौ समरमूर्द्धनि॥ २१

सभी देवता तथा नन्दीश्वर आदि जो अन्य थे, वे महागण भागने लगे, उस युद्धमें एकमात्र कार्तिकेय ही डटे रहे॥ २१॥

पर्वतानां च सर्पाणां नागानां शाखिनां तथा।
राजा चकार वृष्टिं च दुर्निवार्यां भयंकरीम्॥ २२

तद्वृष्ट्या प्रहतः स्कन्दो बभूव शिवनन्दनः।
नीहारेण च सांद्रेण संवृतो भास्करो यथा॥ २३

उस समय दानवराजने पर्वतों, सर्पों, नागों एवं वृक्षोंकी भयंकर एवं दुर्निवार्य वर्षा की, उस वृष्टिसे शिवपुत्र स्कन्द उसी प्रकार आहत (आच्छन्न) हो गये, जैसे घने कोहरेसे आच्छादित सूर्य॥ २२-२३॥

नानाविधां स्वमायां च चकार मयदर्शिताम्।
तां नाविदन् सुराः केऽपि गणाश्च मुनिसत्तम॥ २४

हे मुनिश्रेष्ठ! उसने मय दानवके द्वारा सिखायी गयी अपनी अनेक प्रकारकी माया फैलायी, किंतु कोई भी देवता तथा गण उसे नहीं जान सके॥ २४॥

तदैव शङ्खचूडश्च महामायी महाबलः।
शरेणैकेन दिव्येन धनुश्चिच्छेद तस्य वै॥ २५

उसी समय महामायावी एवं महाबली शंखचूडने अपने एक ही दिव्य बाणसे उनके धनुषको काट दिया॥ २५॥

बभञ्ज तद्रथं दिव्यं चिच्छेद रथरक्षकान्।
मयूरं जर्जरीभूतं दिव्यास्त्रेण चकार सः॥ २६

उसने उनके दिव्य रथ एवं रथके रक्षकोंको नष्ट कर दिया तथा अपने दिव्यास्त्रसे उनके मयूरको जर्जर कर दिया॥ २६॥

शक्तिं चिक्षेप सूर्याभां तस्य वक्षसि घातिनीम्।
मूर्च्छामवाप सहसा तत्प्रहारेण स क्षणम्॥ २७

उसने उनके वक्ष:स्थलपर सूर्यके समान देदीप्यमान एवं आघात करनेवाली अपनी शक्ति चलायी, तब उसके प्रहारसे वे कार्तिकेय सहसा मूर्च्छित हो गये॥ २७॥

पुनश्च चेतनां प्राप्य कार्तिकः परवीरहा।
रत्नेन्द्रसारनिर्माणमारुरोह स्ववाहनम्॥ २८
स्मृत्वा पादौ महेशस्य साम्बिकस्य च षण्मुखः।
शस्त्रास्त्राणि गृहीत्वैव चकार रणमुल्बणम्॥ २९

पुनः [क्षणमात्रमें] चेतना प्राप्तकर शत्रुवीरोंको नष्ट करनेवाले कार्तिकेय अपने महारत्नजटित वाहनपर सवार हो गये। वे कार्तिकेय पार्वतीसहित शिवके चरणोंका स्मरणकर अस्त्र-शस्त्र लेकर घनघोर संग्राम करने लगे॥ २८-२९॥

सर्पांश्च पर्वतांश्चैव वृक्षांश्च प्रस्तरांस्तथा।
सर्वांश्चिच्छेद कोपेन दिव्यास्त्रेण शिवात्मजः॥ ३०

उन शिवपुत्रने क्रोधपूर्वक अपने दिव्यास्त्रसे उसके समस्त सर्पों, पर्वतों, वृक्षों एवं पाषाणोंको काट दिया॥ ३०॥

वह्निं निवारयामास पार्जन्येन शरेण ह।
रथं धनुश्च चिच्छेद शंखचूडस्य लीलया॥ ३१
सन्नाहं सर्ववाहांश्च किरीटं मुकुटोज्ज्वलम्।
वीरशब्दं चकारासौ जगर्ज च पुनः पुनः॥ ३२

उन्होंने पार्जन्य बाणके द्वारा लीलासे ही शंखचूडके आग्नेयास्त्रको शान्त कर दिया और उसका रथ तथा धनुष भी काट डाला। वे उसके कवच, समस्त वाहन, उज्ज्वल किरीट एवं मुकुटको नष्टकर वीरध्वनि करने लगे तथा बारंबार गरजने लगे॥ ३१-३२॥

चिक्षेप शक्तिं सूर्याभां दानवेन्द्रस्य वक्षसि।
तत्प्रहारेण संप्राप मूर्च्छां दीर्घतमेन च॥ ३३
मुहूर्तमात्रं तत्क्लेशं विनीय स महाबलः।
चेतनां प्राप्य चोत्तस्थौ जगर्ज हरिवर्चसः॥ ३४

उसके बाद उन्होंने दानवेन्द्रकी छातीपर सूर्यके समान देदीप्यमान शक्तिसे प्रहार किया। उस अत्यन्त तीव्र प्रहारसे वह मूर्च्छित हो गया। वह महाबली थोड़ी ही देरमें शक्तिकी पीड़ा दूरकर चेतना प्राप्त करके उठ गया तथा सिंहके समान गर्जना करने लगा॥ ३३-३४॥

शक्त्या जघान तं चापि कार्तिकेयं महाबलम्।
स पपात महीपृष्ठेऽमोघां कुर्वन् विधिप्रदाम्॥ ३५

उस महाबलीने कार्तिकेयपर अपनी शक्तिसे प्रहार किया, तब कार्तिकेय विधाताके द्वारा दी गयी शक्तिको अमोघ सिद्ध करनेके लिये पृथ्वीतलपर गिर पड़े॥ ३५॥

काली गृहीत्वा तं क्रोडे निनाय शिवसन्निधौ।
ज्ञानेन तं शिवश्चापि जीवयामास लीलया॥ ३६
ददौ बलमनंतं च समुत्तस्थौ प्रतापवान्।
गमनाय मतिं चक्रे पुनस्तत्र शिवात्मजः॥ ३७

तब काली उन्हें अपनी गोदमें उठाकर शिवजीके पास ले आयीं। शिवजीने अपनी लीलासे ज्ञानके द्वारा उन्हें जीवित कर दिया और उन्हें अनन्त बल प्रदान किया। तब वे महाप्रतापी शिवपुत्र उठ बैठे तथा पुनः युद्धमें जानेका विचार करने लगे॥ ३६-३७॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरो वीरभद्रो महाबलः।
शंखचूडेन युयुधे समरे बलशालिना॥ ३८

इसी बीच महाबली तथा पराक्रमी वीरभद्र बलशाली शंखचूडके साथ रणक्षेत्रमें युद्ध करने लगे॥ ३८॥

ववर्ष समरेऽस्त्राणि यानि यानि च दानवः।
चिच्छेद लीलया वीरस्तानि तानि निजैः शरैः॥ ३९

उस दानवने समरमें जिन-जिन अस्त्रोंको चलाया, उन-उन अस्त्रोंको उन वीरभद्रने लीलापूर्वक अपने बाणोंसे नष्ट कर दिया॥ ३९॥

दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे दानवेश्वरः।
तानि चिच्छेद तं बाणैर्वीरभद्रः प्रतापवान्॥ ४०

तब उस दानवेश्वरने सैकड़ों दिव्य अस्त्र छोड़े, किंतु प्रतापी वीरभद्रने अपने बाणोंसे उनका छेदन कर दिया॥ ४०॥

अथातीव चुकोपोच्चैः शंखचूडः प्रतापवान्।
शक्त्या जघानोरसि तं स चकंपे पपात कौ॥ ४१

तब प्रतापी शंखचूड अत्यन्त कुपित हुआ। उसने अपनी शक्तिके द्वारा उनकी छातीपर प्रहार किया, जिससे वे काँप उठे और पृथ्वीपर गिर गये॥ ४१॥

क्षणेन चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ गणेश्वरः।
जग्राह च धनुर्भूयो वीरभद्रो गणाग्रणीः॥ ४२

इसके बाद गणोंमें प्रमुख गणेश्वर वीरभद्र क्षणमात्रमें चेतना प्राप्तकर उठ बैठे और उन्होंने पुनः अपना धनुष ले लिया॥ ४२॥

एतस्मिन्नन्तरे काली जगाम समरं पुनः।
भक्षितुं दानवान् स्वांश्च रक्षितुं कार्तिकेच्छया॥ ४३
वीरास्तामनुजग्मुश्च ते च नन्दीश्वरादयः।
सर्वे देवाश्च गंधर्वा यक्षा रक्षांसि पन्नगाः॥ ४४
मद्यभांडांश्च बहुशः शतशो वाद्यवाहकाः।
पुनः समुद्यताश्चासन् वीरा उभयतोऽखिलाः॥ ४५

इसी बीच काली कार्तिकेयकी इच्छासे दानवोंका भक्षण करने तथा अपने गणोंकी रक्षा करनेहेतु युद्धभूमिमें गयीं और वे नन्दीश्वर आदि वीरगण, सभी देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस तथा नाग उनके पीछे-पीछे चलने लगे। बाजे बजने लगे, सैकड़ों वीर मधुभाण्ड लिये हुए थे। दोनों पक्षके वीर युद्धके लिये उद्यत थे॥ ४३—४५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शङ्खचूडवधे ससैन्यशंखचूडयुद्धवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडवधके अन्तर्गत ससैन्यशंखचूडयुद्धवर्णन नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३७॥

अथाष्टत्रिंशोऽध्यायः

श्रीकालीका शंखचूडके साथ महान् युद्ध, आकाशवाणी सुनकर कालीका शिवके पास आकर युद्धका वृत्तान्त बताना

सनत्कुमार उवाच

सा च गत्वा हि संग्रामं सिंहनादं चकार ह।
देव्याश्च तेन नादेन मूर्च्छामापुश्च दानवाः॥ १

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] महादेवीने युद्धस्थलमें पहुँचते ही सिंहनाद किया, देवीके उस नादसे दानव मूर्च्छित हो गये॥ १॥

अट्टाट्टहासमशिवं चकार च पुनः पुनः।
तदा पपौ च माध्वीकं ननर्त रणमूर्द्धनि॥ २

भगवतीने बार-बार अशुभ अट्टहास किया, वे मद्यपान करने लगीं तथा युद्धभूमिमें नृत्य करने लगीं॥ २॥

उग्रदंष्ट्रा चोग्रदंडा कोटवी च पपौ मधु।
अन्याश्च देव्यस्तत्राजौ ननृतुर्मधु संपपुः॥ ३

इसी प्रकार उग्रदंष्ट्रा, उग्रदण्डा, कोटवी आदि भी मधुपान करने लगीं। अन्य देवियाँ भी युद्धक्षेत्रमें मधुपान और नृत्य करने लगीं॥ ३॥

महान् कोलाहलो जातो गणदेवदले तदा।
जहृषुर्बहुगर्जन्तः सर्वे सुरगणादयः॥ ४

उस समय गणों एवं देवताओंके दलमें महान् कोलाहल उत्पन्न हो गया और सभी देवता तथा गण आदि तीव्र गर्जन करते हुए हर्षित हो रहे थे॥ ४॥

दृष्ट्वा कालीं शंखचूडः शीघ्रमाजौ समाययौ।
दानवाश्च भयं प्राप्ता राजा तेभ्योऽभयं ददौ॥ ५
काली चिक्षेप वह्निं च प्रलयाग्निशिखोपमम्।
राजा जघान तं शीघ्रं वैष्णवाङ्क्तिलीलया॥ ६

तब शंखचूड कालीको देखकर शीघ्र संग्रामभूमिमें आया। जो दानव भयभीत हो रहे थे, उन्हें राजाने अभयदान दिया। कालीने प्रलयाग्निकी शिखाके समान आग्नेयास्त्र चलाया, तब शंखचूडने उसे अपने वैष्णवास्त्रसे शान्त कर दिया॥ ५-६॥

नारायणास्त्रं सा देवी चिक्षेप तदुपर्यरम्।
वृद्धिं जगाम तच्छस्त्रं दृष्ट्वा वामं च दानवम्॥ ७
तं दृष्ट्वा शंखचूडश्च प्रलयाग्निशिखोपमम्।
पपात दंडवद्भूमौ प्रणनाम पुनः पुनः॥ ८

उन देवीने शीघ्र ही उसके ऊपर नारायणास्त्रका प्रयोग किया। वह अस्त्र दानवको प्रतिकूल देखकर जब बढ़ने लगा, तब तो प्रलयाग्निकी शिखाके समान उस अस्त्रको [अपनी ओर आता] देखकर वह पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिर पड़ा और गिरकर बारंबार उसे प्रणाम करने लगा॥ ७-८॥

निवृत्तिं प्राप तच्छस्त्रं दृष्ट्वा नम्रं च दानवम्।
ब्रह्मास्त्रमथ सा देवी चिक्षेप मंत्रपूर्वकम्॥ ९

दानवको इस प्रकार विनम्र देखकर वह अस्त्र शान्त हो गया। तब उन देवीने मन्त्रपूर्वक ब्रह्मास्त्र चलाया॥ ९॥

तं दृष्ट्वा प्रज्ज्वलन्तं च प्रणम्य भुवि संस्थितः।
ब्रह्मास्त्रेण दानवेन्द्रो विनिर्वारं चकार ह॥ १०

जलते हुए उस ब्रह्मास्त्रको देखकर उसे प्रणामकर वह पृथ्वीपर खड़ा हो गया। दानवेन्द्रने इस प्रकार ब्रह्मास्त्रसे भी अपनी रक्षा की॥ १०॥

अथ क्रुद्धो दानवेन्द्रो धनुराकृष्य रंहसा।
चिक्षेप दिव्यान्यस्त्राणि देव्यै वै मंत्रपूर्वकम्॥ ११

इसके बाद दानवेन्द्र क्रोधित हो बड़े वेगसे धनुष चढ़ाकर देवीपर मन्त्रपूर्वक दिव्यास्त्र छोड़ने लगा॥ ११॥

आहारं समरे चक्रे प्रसार्य मुखमायतम्।
जगर्ज साट्टहासं च दानवा भयमाययुः॥ १२

देवी भी विशाल मुख फैलाकर संग्राममें समस्त अस्त्र-शस्त्र खा गयीं और अट्टहासपूर्वक गरजने लगीं, जिससे दानव भयभीत हो उठे॥ १२॥

काल्यै चिक्षेप शक्तिं स शतयोजनमायताम्।
देवी दिव्यास्त्रजालेन शतखंडं चकार सा॥ १३

तब उस दानवने सौ योजन विस्तारवाली अपनी शक्तिसे कालीपर प्रहार किया, किंतु उन देवीने दिव्यास्त्रोंसे उस शक्तिके सौ-सौ टुकड़े कर दिये॥ १३॥

स च वैष्णावमस्त्रं च चिक्षेप चंडिकोपरि।
माहेश्वरेण काली च विनिर्वारं चकार सा॥ १४

तब उसने चण्डिकापर वैष्णवास्त्र चलाया, किंतु कालीने माहेश्वर अस्त्रसे उसे निष्फल कर दिया॥ १४॥

एवं चिरतरं युद्धमन्योऽन्यं संबभूव ह।
प्रेक्षका अभवन् सर्वे देवाश्च दानवा अपि॥ १५
अथ क्रुद्धा महादेवी काली कालसमा रणे।
जग्राह मन्त्रपूतं च शरं पाशुपतं रुषा॥ १६

इस प्रकार बहुत कालपर्यन्त उन दोनोंका परस्पर युद्ध होता रहा, देवता एवं दानव दर्शक बनकर उस युद्धको देखते रहे। उसके बाद युद्धमें कालके समान क्रुद्ध हुई महादेवीने रोषपूर्वक मन्त्रसे पवित्र किया हुआ पाशुपतास्त्र ग्रहण किया॥ १५-१६॥

क्षेपात्पूर्वं तन्निषेद्धुं वाग्बभूवाशरीरिणी।
न क्षिपास्त्रमिदं देवि शंखचूडाय वै रुषा॥ १७
मृत्युःपाशुपतान्नास्त्यमोघादपि च चंडिके।
शंखचूडस्य वीरस्योपायमन्यं विचारय॥ १८

उसके चलानेके पूर्व ही उसे रोकनेके लिये यह आकाशवाणी हुई—हे देवि! आप क्रोधपूर्वक इस अस्त्रको शंखचूड़पर मत चलाइये। हे चण्डिके! इस अमोघ पाशुपतास्त्रसे भी वीर शंखचूडकी मृत्यु नहीं होगी। अतः कोई अन्य उपाय सोचिये॥ १७-१८॥

इत्याकर्ण्य भद्रकाली न चिक्षेप तदस्त्रकम्।
शतलक्षं दानवानां जघास लीलया क्षुधा॥ १९
अत्तुं जगाम वेगेन शंखचूडं भयंकरी।
दिव्यास्त्रेण च रौद्रेण वारयामास दानवः॥ २०
अथ क्रुद्धो दानवेन्द्रः खड्गं चिक्षेप सत्वरम्।
ग्रीष्मसूर्योपमं तीक्ष्णधारमत्यंतभीकरम्॥ २१

यह सुनकर भद्रकालीने उस अस्त्रको नहीं चलाया और वे भूखसे युक्त होकर लीलापूर्वक सौ लाख दानवोंका भक्षण कर गयीं। वे भयंकर देवी शंखचूडको भी खानेके लिये वेगपूर्वक दौड़ीं, तब उस दानवने दिव्य रौद्रास्त्रके द्वारा उन्हें रोक दिया। इसके बाद दानवेन्द्रने कुपित होकर शीघ्र ही ग्रीष्मकालीन सूर्यके सदृश, तीक्ष्ण धारवाला तथा अत्यन्त भयंकर खड्ग चलाया॥ १९—२१॥

सा काली तं समालोक्यायान्तं प्रज्वलितं रुषा।
प्रसार्य मुखमाहारं चक्रे तस्य च पश्यतः॥ २२

तब काली उस प्रज्वलित खड्गको अपनी ओर आता देखकर रोषपूर्वक अपना मुख फैलाकर उसके देखते-देखते उसका भक्षण कर गयीं॥ २२॥

दिव्यान्यस्त्राणि चान्यानि चिच्छेद दानवेश्वरः।
प्राप्तानि पूर्वतश्चक्रे शतखंडानि तानि च॥ २३

इसी प्रकार उसने और भी बहुत-से दिव्यास्त्रोंका प्रयोग किया, किंतु भगवतीने उसके सभी अस्त्रोंके पूर्ववत् सौ खण्ड कर दिये॥ २३॥

पुनरत्तुं महादेवी वेगतस्तं जगाम ह।
सर्वसिद्धेश्वरः श्रीमानन्तर्धानं चकार सः॥ २४

पुनः महादेवी उसे खानेके लिये बड़े वेगसे दौड़ीं, तब सर्वसिद्धेश्वर वह [दानवराज] अन्तर्धान हो गया॥ २४॥

वेगेन मुष्टिना काली तमदृष्ट्वा च दानवम्।
बभंज च रथं तस्य जघान किल सारथिम्॥ २५

कालीने उस दानवको न देखकर बड़े वेगसे अपनी मुष्टिकाके द्वारा उसके रथको नष्ट कर दिया तथा सारथीको मार डाला॥ २५॥

अथागत्य द्रुतं मायी चक्रं चिक्षेप वेगतः।
भद्रकाल्यै शंखचूडः प्रलयाग्निशिखोपमम्॥ २६

इसके बाद उस मायावी शंखचूडने बड़ी शीघ्रतासे युद्धस्थलमें प्रकट होकर प्रलयाग्निकी शिखाके समान जलते हुए चक्रसे भद्रकालीपर प्रहार किया॥ २६॥

सा देवी तं तदा चक्रं वामहस्तेन लीलया।
जग्राह स्वमुखेनैवाहारं चक्रे रुषा द्रुतम्॥ २७

मुष्ट्या जघान तं देवी महाकोपेन वेगतः।
बभ्राम दानवेन्द्रोऽपि क्षणं मूर्च्छामवाप सः॥ २८

देवीने उस चक्रको अपने बायें हाथसे लीलापूर्वक पकड़ लिया और बड़े क्रोधके साथ शीघ्र ही अपने मुखसे उसका भक्षण कर लिया। देवीने अत्यन्त क्रोधपूर्वक बड़े वेगसे मुष्टिकाद्वारा उसपर प्रहार किया, जिससे वह दानवराज चक्कर काटने लगा और मूर्च्छित हो गया॥ २७-२८॥

क्षणेन चेतनां प्राप्य स चोत्तस्थौ प्रतापवान्।
न चक्रे बाहुयुद्धं च मातृबुद्ध्या तया सह॥ २९

वह प्रतापी क्षणभरमें चेतना प्राप्त करके पुनः उठ गया और उनके प्रति माताका भाव रखनेके कारण उसने उनके साथ बाहुयुद्ध नहीं किया॥ २९॥

गृहीत्वा दानवं देवी भ्रामयित्वा पुनः पुनः।
ऊर्ध्वं च प्रापयामास महाकोपेन वेगतः॥ ३०

देवीने उस दानवको पकड़कर बारंबार घुमाकर बड़े क्रोधके साथ वेगपूर्वक ऊपरको फेंक दिया॥ ३०॥

उत्पपात च वेगेन शंखचूडः प्रतापवान्।
निपत्य च समुत्तस्थो प्रणम्य भद्रकालिकाम्॥ ३१
रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानं सुमनोहरम्।
आरुरोह स हृष्टात्मा न भ्रान्तोऽपि महारणे॥ ३२
दानवानां हि क्षतजं सा पपौ कालिका क्षुधा।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी॥ ३३
लक्षं च दानवेन्द्राणामवशिष्टं रणेऽधुना।
उद्धतं गुञ्जतां सार्द्धं ततस्त्वं भुंक्ष्व चेश्वरि॥ ३४

वह प्रतापी शंखचूड बड़े वेगसे ऊपर गया, पुनः नीचे गिरकर भद्रकालीको प्रणामकर स्थित हो गया। तत्पश्चात् प्रसन्नचित्त वह दानवश्रेष्ठ रत्ननिर्मित विमानपर सवार हुआ और सावधान होकर युद्धके लिये उद्यत हो गया। काली भी क्षुधातुर हो दानवोंका रक्तपान करने लगीं, इसी बीच वहाँ आकाशवाणी हुई कि हे ईश्वरि! अभीतक इस रणमें महान् उद्धत एवं गर्जना करते हुए एक लाख दानव शेष हैं। अतः आप इनका भक्षण करें॥ ३१—३४॥

संग्रामे दानवेन्द्रं च हन्तुं न कुरु मानसम्।
अवध्योऽयं शंखचूडस्तव देवीति निश्चयम्॥ ३५
तच्छ्रुत्वा वचनं देवी निःसृतं व्योममंडलात्।
दानवानां बहूनां च मांसं च रुधिरं तथा॥ ३६
भुक्त्वा पीत्वा भद्रकाली शंकरान्तिकमाययौ।
उवाच रणवृत्तान्तं पौर्वापर्येण सक्रमम्॥ ३७

हे देवि! आप संग्राममें इस दानवराजके वधका विचार न कीजिये, यह शंखचूड आपसे अवध्य है—यह निश्चित है। आकाशमण्डलसे निकली हुई इस वाणीको सुनकर देवी भद्रकाली बहुतसे दानवोंका मांस एवं रुधिर खा-पीकर शिवजीके पास आ गयीं और आद्योपान्त युद्धका सारा वृत्तान्त पूर्वापर क्रमसे उन्होंने उनसे निवेदन किया॥ ३५—३७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शङ्खचूडवधे कालीयुद्धवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडवधके अन्तर्गत कालीका युद्धवर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३८॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

शिव और शंखचूडके महाभयंकर युद्धमें शंखचूडके सैनिकोंके संहारका वर्णन

व्यास उवाच

श्रुत्वा काल्युक्तमीशानो किं चकार किमुक्तवान्।
तत्त्वं वद महाप्राज्ञ परं कौतूहलं मम॥ १

व्यासजी बोले—हे महाप्राज्ञ! भद्रकालीके वचनको सुनकर शिवजीने क्या कहा और क्या किया? उसे आप तत्त्वतः कहिये, मुझे सुननेकी बड़ी ही उत्सुकता है॥ १॥

सनत्कुमार उवाच

काल्युक्तं वचनं श्रुत्वा शंकरः परमेश्वरः।
महालीलाकरः शंभुर्जहासाश्वासयञ्च ताम्॥ २

सनत्कुमार बोले—कालीके द्वारा कहे गये वचनको सुनकर महान् लीला करनेवाले कल्याणकारी परमेश्वर शम्भु उन कालीको आश्वस्त करते हुए हँसने लगे॥ २॥

व्योमवाणीं समाकर्ण्य तत्त्वज्ञानविशारदः।
ययौ स्वयं च समरे स्वगणैः सह शंकरः॥ ३

तत्त्वज्ञानविशारद शिवजी आकाशवाणीको सुनकर अपने गणोंको साथ लेकर स्वयं युद्धस्थलमें गये॥ ३॥

महावृषभमारूढो वीरभद्रादिसंयुतः।
भैरवैः क्षेत्रपालैश्च स्वसमानैः समन्वितः॥ ४

रणं प्राप्तो महेशश्च वीररूपं विधाय च।
विरराजाधिकं तत्र रुद्रो मूर्त इवांतकः॥ ५

वीरभद्रादि गणों एवं अपने समान भैरवों तथा क्षेत्रपालोंको साथ लिये हुए महावृषभपर आरूढ़ होकर महेश्वर वीररूप धारणकर युद्धभूमिमें पहुँचे। उस समय वे रुद्र मूर्तिमान् काल ही प्रतीत हो रहे थे॥ ४-५॥

शंखचूडः शिवं दृष्ट्वा विमानादवरुह्य सः।
ननाम परया भक्त्या शिरसा दंडवद्भुवि॥ ६

तं प्रणम्य तु योगेन विमानमारुरोह सः।
तूर्णं चकार सन्नाहं धनुर्जग्राह सेषुकम्॥ ७

शंखचूडने शिवजीको देखकर विमानसे उतरकर परमभक्तिपूर्वक भूमिमें गिरकर सिरसे उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। उन्हें प्रणाम करके वह योगमार्गसे पुनः विमानपर जा चढ़ा और शीघ्र ही उसने कवच धारणकर धनुष-बाण उठा लिया॥ ६-७॥

शिवदानवयोर्युद्धं शतमब्दं बभूव ह।
बाणवर्षमिवोग्रं तद्वर्षतोर्मोघयोस्तदा॥ ८

शंखचूडो महावीरः शरांश्चिक्षेप दारुणान्।
चिच्छेद शंकरस्तान्वै लीलया स्वशरोत्करैः॥ ९

उसके बाद शिव तथा उन दानवोंका सौ वर्षपर्यन्त घनघोर युद्ध होता रहा, जिसमें निरन्तर वर्षा करते हुए मेघोंके समान बाणोंकी वर्षा हो रही थी। महावीर शंखचूड शिवजीपर दारुण बाण छोड़ रहा था, किंतु शंकरजी अपने बाणोंसे उन्हें छिन्न-भिन्न कर देते थे॥ ८-९॥

तदंगेषु च शस्त्रौघैस्ताडयामास कोपतः।
महारुद्रो विरूपाक्षो दुष्टदण्डः सतां गतिः॥ १०

दानवो निशितं खड्गं चर्म चादाय वेगवान्।
वृषं जघान शिरसि शिवस्य वरवाहनम्॥ ११

दुष्टोंको दण्ड देनेवाले तथा सज्जनोंके रक्षक विरूपाक्ष महारुद्रने अत्यन्त क्रोधपूर्वक अपने शस्त्रसमूहोंसे उसके अंगोंपर प्रहार किया। उस दानवने भी वेगयुक्त होकर अपनी तीक्ष्ण तलवार एवं ढाल लेकर शिवजीके श्रेष्ठ वाहन वृषभके सिरपर प्रहार किया॥ १०-११॥

ताडिते वाहने रुद्रस्तं क्षुरप्रेण लीलया।
खड्गं चिच्छेद तस्याशु चर्म चापि महोज्ज्वलम्॥ १२

वृषभपर प्रहार किये जानेपर शंकरजीने तीक्ष्ण धारवाले छूरेसे लीलापूर्वक शीघ्र ही उसके खड्ग एवं अति उज्ज्वल ढालको काट दिया॥ १२॥

छिन्नेऽसौ चर्मणि तदा शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः।
द्विधा चक्रे स्वबाणेन हरस्तां संमुखागताम्॥ १३

तब ढालके कट जानेपर उस दानवने शक्ति चलायी, किंतु शिवजीने अपने बाणसे सामने आयी हुई उस शक्तिके दो टुकड़े कर दिये॥ १३॥

कोपाध्मातः शंखचूडः चक्रं चिक्षेप दानवः।
मुष्टिपातेन तच्चाप्यचूर्णयत्सहसा हरः॥ १४

गदामाविध्य तरसा संचिक्षेप हरं प्रति।
शंभुना सापि सहसा भिन्ना भस्मत्वमागता॥ १५

तब क्रोधसे व्याकुल दानव शंखचूडने चक्रसे प्रहार किया, किंतु शिवजीने सहसा अपनी मुष्टिके प्रहारसे उसे भी चूर्ण कर दिया। इसके बाद उसने शिवजीपर बड़े वेगसे गदासे प्रहार किया, किंतु शिवजीने उसे भी छिन्न-भिन्न करके भस्म कर दिया॥ १४-१५॥

ततः परशुमादाय हस्तेन दानवेश्वरः।
धावति स्म हरं वेगाच्छंखचूडः क्रुधाकुलः॥ १६

समाहृत्य स्वबाणौघैरपातयत शंकरः।
द्रुतं परशुहस्तं तं भूतले लीलयासुरम्॥ १७

तब क्रोधसे व्याकुल दानवेश्वर शंखचूड हाथमें परशु लेकर वेगसे शिवजीकी ओर दौड़ा। शंकरने बड़ी शीघ्रतासे लीलापूर्वक अपने बाणसमूहोंसे हाथमें परशु लिये हुए उस असुरको आहतकर पृथ्वीपर गिरा दिया॥ १६-१७॥

ततः क्षणेन संप्राप्य संज्ञामारुह्य सद्रथम्।
धृतदिव्यायुधशरो बभौ व्याप्याखिलं नभः॥ १८

तत्पश्चात् थोड़ी ही देरमें वह सचेत हो रथपर आरूढ़ होकर दिव्य आयुध एवं बाण धारणकर समस्त आकाशमण्डलको व्याप्तकर शोभित होने लगा॥ १८॥

आयान्तं तं निरीक्ष्यैव डमरुध्वनिमादरात्।
चकार ज्यारवं चापि धनुषो दुःसहं हरः॥ १९
पूरयामास ककुभः श्रृंगनादेन च प्रभुः।
स्वयं जगर्ज गिरिशस्त्रासयन्नसुरांस्तदा॥ २०

उसे अपनी ओर आता हुआ देखकर शिवजीने आदरपूर्वक डमरू बजाया और धनुषकी प्रत्यंचाकी दुःसह ध्वनि भी की। प्रभु गिरीशने श्रृंगनादके द्वारा सारी दिशाएँ पूरित कर दीं और स्वयं असुरोंको भयभीत करते हुए गर्जना करने लगे॥ १९-२०॥

त्याजितेभमहागर्वैर्महानादैर्वृषेश्वरः।
पूरयामास सहसा खं गां वसुदिशस्तथा॥ २१
महाकालः समुत्पत्य ताडयद् गां तथा नभः।
कराभ्यां तन्निनादेन क्षिप्ता आसन्पुरा रवाः॥ २२

नन्दीश्वरने हाथीके महागर्वको छुड़ा देनेवाले महानादोंसे सहसा पृथ्वी, आकाश तथा आठों दिशाओंको पूर्ण कर दिया। महाकालने बड़ी तेजीसे दौड़कर अपने दोनों हाथोंको पृथ्वी एवं आकाशपर पटक दिया, जिससे पहलेके शब्द तिरोहित हो गये॥ २१-२२॥

अट्टाट्टहासमशिवं क्षेत्रपालश्चकार ह।
भैरवोऽपि महानादं स चकार महाहवे॥ २३

इसी प्रकार उस महायुद्धमें क्षेत्रपालने अशुभसूचक अट्टहास किया तथा भैरवने भी नाद किया॥ २३॥

महाकोलाहलो जातो रणमध्ये भयंकरः।
वीरशब्दो बभूवाथ गणमध्ये समन्ततः॥ २४

युद्धस्थलमें महान् कोलाहल होने लगा और गणोंके मध्यमें चारों ओर सिंहगर्जना होने लगी॥ २४॥

संत्रेसुर्दानवाः सर्वे तैः शब्दैर्भयदैः खरैः।
चुकोपातीव तच्छ्रुत्वा दानवेन्द्रो महाबलः॥ २५
तिष्ठ तिष्ठेति दुष्टात्मन् व्याजहार यदा हरः।
देवैर्गणैश्च तैः शीघ्रमुक्तं जय जयेति च॥ २६
अथागत्य स दंभस्य तनयः सुप्रतापवान्।
शक्तिं चिक्षेप रुद्राय ज्वालामालातिभीषणाम्॥ २७

उन भयदायक एवं कर्कश शब्दोंसे सभी दानव व्याकुल हो उठे। महाबलवान् दानवेन्द्र उसे सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा। जब शिवजीने कहा—रे दुष्ट! खड़ा रह, खड़ा रह, उसी समय देवताओं एवं गणोंने भी शीघ्र जय-जयकार की। इसके बाद महाप्रतापी दम्भपुत्रने आकर ज्वाला-मालाके समान अत्यन्त भीषण शक्ति शिवजीपर चलायी॥ २५—२७॥

वह्निकूटप्रभायान्ती क्षेत्रपालेन सत्वरम्।
निरस्तागत्य साजौ वै मुखोत्पन्नमहोल्कया॥ २८

पुनः प्रववृते युद्धं शिवदानवयोर्महत्।
चकंपे धरणी द्यौश्च सनगाब्धिजलाशया॥ २९

दांभिमुक्तान् शरान् शंभुः शरांस्तत्प्रहितान्स च।
सहस्त्रशः शरैरुग्रैश्चिच्छेद शतशस्तदा॥ ३०

क्षेत्रपालने अग्निज्वालाके समान आती हुई उस शक्तिको बड़ी शीघ्रतासे युद्धमें आगे बढ़कर अपने मुखसे उत्पन्न उल्कासे नष्ट कर दिया। उसके अनन्तर पुनः शिवजी एवं उस दानवका महाभयंकर युद्ध होने लगा, जिससे पर्वत, समुद्र एवं जलाशयोंके सहित पृथ्वी एवं द्युलोक कम्पित हो उठे। दम्भपुत्र शंखचूडके द्वारा छोड़े गये सैकड़ों-हजारों बाणोंको शिवजी अपने उग्र बाणोंसे छिन्न-भिन्न कर रहे थे तथा शिवजीके द्वारा छोड़े गये सैकड़ों-हजारों बाणोंको वह भी अपने उग्र बाणोंसे छिन्न-भिन्न कर देता था॥ २८—३०॥

ततः शंभुस्त्रिशूलेन संक्रुद्धस्तं जघान ह।
तत्प्रहारमसह्याशु कौ पपात स मूर्च्छितः॥ ३१

तब शिवजीने अत्यधिक क्रोधित हो अपने त्रिशूलसे दानवपर प्रहार किया, उसके प्रहारको सहनेमें असमर्थ वह मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ३१॥

ततः क्षणेन संप्राप संज्ञां स च तदासुरः।
आजघान शरै रुद्रं तान्सर्वानात्तकार्मुकः॥ ३२

इसके बाद क्षणमात्रमें ही चेतना प्राप्तकर वह असुर धनुष लेकर बाणोंसे शिवजीपर प्रहार करने लगा॥ ३२॥

बाहूनामयुतं कृत्वा छादयामास शंकरम्।
चक्रायुतेन सहसा शंखचूडः प्रतापवान्॥ ३३

ततो दुर्गापतिः क्रुद्धो रुद्रो दुर्गार्तिनाशनः।
तानि चक्राणि चिच्छेद स्वशरैरुत्तमैर्द्रुतम्॥ ३४

ततो वेगेन सहसा गदामादाय दानवः।
अभ्यधावत वै हन्तुं बहुसेनावृतो हरम्॥ ३५

उस प्रतापी दानवराज शंखचूडने दस हजार भुजाओंका निर्माणकर दस हजार चक्रोंसे शंकरजीको ढक दिया। तदनन्तर कठिन दुर्गतिके नाशकर्ता दुर्गापति शंकरजीने कुपित होकर अपने श्रेष्ठ बाणोंसे शीघ्र ही उन चक्रोंको काट दिया। तब बहुत-सारी सेनासे घिरा हुआ वह दानव बड़े वेगसे सहसा गदा उठाकर शंकरजीको मारनेके लिये दौड़ा॥ ३३—३५॥

गदां चिच्छेद तस्याश्वापततः सोऽसिना हरः।
शितधारेण संक्रुद्धो दुष्टगर्वापहारकः॥ ३६

छिन्नायां स्वगदायां च चुकोपातीव दानवः।
शूलं जग्राह तेजस्वी परेषां दुःसहं ज्वलत्॥ ३७

सुदर्शनं शूलहस्तमायान्तं दानवेश्वरम्।
स्वत्रिशूलेन विव्याध हृदि तं वेगतो हरः॥ ३८

दुष्टोंके गर्वको नष्ट करनेवाले शिवजीने क्रुद्ध होकर तीक्ष्ण धारवाली तलवारसे शीघ्र ही उसकी गदा भी काट दी। तब अपनी गदाके छिन्न-भिन्न हो जानेपर उस दानवको बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और उस तेजस्वीने शत्रुओंके लिये असह्य अपना प्रज्वलित त्रिशूल धारण किया। शिवजीने हाथमें त्रिशूल लेकर आते हुए उस सुदर्शन दनुजेश्वरके हृदयमें बड़े वेगसे अपने त्रिशूलसे प्रहार किया॥ ३६—३८॥

त्रिशूलभिन्नहृदयान्निष्क्रान्तः पुरुषः परः।
तिष्ठ तिष्ठेति चोवाच शंखचूडस्य वीर्यवान्॥ ३९

तब त्रिशूलसे विदीर्ण शंखचूडके हृदयसे एक पराक्रमी श्रेष्ठ पुरुष निकला और 'खड़े रहो, खड़े रहो'—इस प्रकार कहने लगा॥ ३९॥

निष्क्रामतो हि तस्याशु प्रहस्य स्वनवत्ततः।
चिच्छेद च शिरो भीममसिना सोऽपतद्भुवि॥ ४०

ततः काली चखादोग्रं दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान्।
असुरांस्तान् बहून् क्रोधात् प्रसार्य स्वमुखं तदा॥ ४१

उसके निकलते ही शिवजीने हँसकर शीघ्र अपने खड्गसे उसके शब्द करनेवाले भयंकर सिरको काट दिया, जिससे वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। इधर कालीने अपना उग्र मुख फैलाकर बड़े क्रोधसे अपने दाँतोंसे उन असुरोंके सिरोंको पीस-पीसकर चबाना प्रारम्भ कर दिया॥ ४०-४१॥

क्षेत्रपालश्चखादान्यान्बहून्दैत्यान्क्रुधाकुलः।
केचिन्नेशुर्भैरवास्त्रच्छिन्ना भिन्नास्तथापरे॥ ४२

इसी प्रकार क्षेत्रपाल भी क्रोधमें भरकर अनेक असुरोंको खाने लगे और जो अन्य शेष बचे, वे भैरवके अस्त्रसे छिन्न-भिन्न होकर नष्ट हो गये॥ ४२॥

वीरभद्रोऽपरान् वीरान् बहून् क्रोधादनाशयत्।
नन्दीश्वरो जघानान्यान् बहूनमरमर्दकान्॥ ४३

एवं बहुगणा वीरास्तदा संनह्य कोपतः।
व्यनाशयन्बहून्दैत्यानसुरान् देवमर्दकान्॥ ४४

वीरभद्रने क्रोधपूर्वक दूसरे बहुत-से वीरोंको नष्ट कर दिया एवं नन्दीश्वरने अन्य बहुत-से देवशत्रु असुरोंको मार डाला। इसी प्रकार उस समय शिवजीके बहुत-से गणोंने देवताओंको कष्ट देनेवाले अनेक दैत्यों तथा असुरोंको नष्ट कर दिया॥ ४३-४४॥

इत्थं बहुतरं तत्र तस्य सैन्यं ननाश तत्।
विद्रुताश्चापरे वीरा बहवो भयकातराः॥ ४५

इस प्रकार उसकी बहुत-सी सेना नष्ट हो गयी और भयसे व्याकुल हुए अनेक दूसरे वीर भाग गये॥ ४५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शंखचूडसैन्यवधवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडसैन्यवधवर्णन नामक उनतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३९॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

शिव और शंखचूडका युद्ध, आकाशवाणीद्वारा शंकरको युद्धसे विरत करना, विष्णुका ब्राह्मणरूप धारणकर शंखचूडका कवच माँगना, कवचहीन शंखचूडका भगवान् शिवद्वारा वध, सर्वत्र हर्षोल्लास

सनत्कुमार उवाच

स्वबलं निहतं दृष्ट्वा मुख्यं बहुतरं ततः।
तथा वीरान् प्राणसमान् चुकोपातीव दानवः॥ १

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] इसके बाद अपनी मुख्य-मुख्य बहुत-सी सेनाओंको तथा प्राणके समान वीरोंको नष्ट होते देखकर दानव अत्यधिक क्रुद्ध हुआ॥ १॥

उवाच वचनं शंभुं तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव।
किमेतैर्निहतैर्मेऽद्य संमुखे समरं कुरु॥ २

इत्युक्त्वा दानवेन्द्रोऽसौ सन्नद्धः समरे मुने।
अगच्छन्निश्चयं कृत्वाऽभिमुखं शंकरस्य च॥ ३

उसने शंकरजीसे कहा—मैं युद्धभूमिमें खड़ा हूँ और आप भी स्थिर हो जाइये। इनको मारनेसे क्या लाभ, मेरे सामने [खड़े होकर] युद्ध कीजिये। हे मुने! इस प्रकार कहकर वह दानव [युद्ध करनेका] निश्चयकर सन्नद्ध होकर युद्धभूमिमें शंकरजीके सम्मुख गया॥ २-३॥

दिव्यान्यस्त्राणि चिक्षेप महारुद्राय दानवः।
चकार शरवृष्टिं च तोयवृष्टिं यथा घनः॥ ४

मायाश्चकार विविधा अदृश्या भयदर्शिताः।
अप्रतर्क्याः सुरगणैर्निखिलैरपि सत्तमैः॥ ५

तां दृष्ट्वा शंकरस्तत्र चिक्षेपास्त्रं च लीलया।
माहेश्वरं महादिव्यं सर्वमायाविनाशनम्॥ ६

वह दानव शिवजीपर दिव्य अस्त्र छोड़ने लगा। जैसे मेघ जलवृष्टि करता है, उसी प्रकार वह बाणोंकी वर्षा करने लगा। उसने भय उत्पन्न करनेवाली अनेक प्रकारकी माया भी प्रकट की। उस अप्रतर्क्य मायाको समस्त देवता भी न देख सके। उस मायाको देखकर शिवजीने सभी प्रकारकी मायाको नष्ट करनेवाले महादिव्य माहेश्वर अस्त्रको लीलापूर्वक छोड़ा॥ ४—६॥

तेजसा तस्य तन्माया नष्टाश्चासन् द्रुतं तदा।
दिव्यान्यस्त्राणि तान्येव निस्तेजांस्यभवन्नपि॥ ७

अथ युद्धे महेशानस्तद्वधाय महाबलः।
शूलं जग्राह सहसा दुर्निवार्यं सुतेजसाम्॥ ८

उसके तेजसे शीघ्र ही उस असुरकी सारी माया तत्काल नष्ट हो गयी और वे दिव्यास्त्र भी निस्तेज हो गये। उसके बाद महाबली महेश्वरने युद्धमें उसका वध करनेके लिये तेजस्वियोंके लिये भी दुर्निवार्य त्रिशूल सहसा धारण किया॥ ७-८॥

तदैव तन्निषेद्धुं च वाग्बभूवाशरीरिणी।
क्षिप शूलं न चेदानीं प्रार्थनां शृणु शंकर॥ ९
सर्वथा त्वं समर्थो हि क्षणाद् ब्रह्माण्डनाशने।

उसी समय उन्हें रोकनेके लिये आकाशवाणी हुई, हे शंकर! इस समय आप त्रिशूल मत चलाइये, [मेरी] प्रार्थना सुनिये। हे ईश! आप क्षणमात्रमें सारे

किमेकदानवस्येश शङ्खचूडस्य सांप्रतम्॥ १०

तथापि वेदमर्यादा न नाश्या स्वामिना त्वया।
तां शृणुष्व महादेव सफलं कुरु सत्यतः॥ ११

यावदस्य करेऽत्युग्रं कवचं परमं हरेः।
यावत्सतीत्वमस्त्येव सत्या अप्यस्य योषितः॥ १२

तावदस्य जरामृत्युः शंखचूडस्य शंकर।
नास्तीत्यवितथं नाथ विधेहि ब्रह्मणो वचः॥ १३

ब्रह्माण्डको नष्ट करनेमें समर्थ हैं, तब इस समय एक शंखचूड दानवके वधकी क्या बात! फिर भी आप स्वामीको वेद-मर्यादा नष्ट नहीं करनी चाहिये। हे महादेव! उसे सुनिये और सत्यरूपसे सफल कीजिये। जबतक इसके हाथमें विष्णुका परम उग्र कवच है और जबतक इसकी पतिव्रता स्त्रीका सतीत्व है, तबतक हे शंकर! इस शंखचूडकी जरा एवं मृत्यु नहीं हो सकती। हे नाथ! ब्रह्माके इस वचनको आप सत्य कीजिये॥ ९—१३॥

इत्याकर्ण्य नभोवाणीं तथेत्युक्ते हरे तदा।
हरेच्छयागतो विष्णुस्तं दिदेश सतां गतिः॥ १४

वृद्धब्राह्मणवेषेण विष्णुर्मायाविनां वरः।
शङ्खचूडोपकंठं च गत्वोवाच स तं तदा॥ १५

इस आकाशवाणीको सुनकर 'वैसा ही होगा'—इस प्रकार शंकरजीके कहनेपर उसी समय शिवजीकी इच्छासे सज्जनोंके रक्षक विष्णु वहाँ आये और शंकरजीने उन्हें आज्ञा दी। तब मायावियोंमें श्रेष्ठ विष्णु वृद्ध ब्राह्मणका वेष धारणकर शंखचूडके पास जाकर उससे कहने लगे—॥ १४-१५॥

वृद्धब्राह्मण उवाच

देहि भिक्षां दानवेन्द्र मह्यं प्राप्ताय सांप्रतम्॥ १६

नेदानीं कथयिष्यामि प्रकटं दीनवत्सलम्।
पश्चात्त्वां कथयिष्यामि पुनः सत्यं करिष्यसि॥ १७

वृद्ध ब्राह्मण बोले—हे दानवेन्द्र! इस समय आपके पास आये हुए मुझ ब्राह्मणको भिक्षा प्रदान कीजिये। मैं इस समय आप दीनवत्सलसे स्पष्ट नहीं कहूँगा, [प्रतिज्ञाके] बादमें आपसे कहूँगा, तब आप [उसे देकर] अपनी प्रतिज्ञा सत्य करेंगे॥ १६-१७॥

ओमित्युवाच राजेन्द्रः प्रसन्नवदनेक्षणः।
कवचार्थी जनश्चाहमित्युवाचेति सच्छलात्॥ १८

तब राजाने प्रसन्नमुख होकर 'हाँ'—ऐसा कह दिया। इसके बाद उन्होंने छलसे कहा कि मैं आपका कवच चाहता हूँ॥ १८॥

तच्छ्रुत्वा दानवेन्द्रोऽसौ ब्रह्मण्यः सत्यवाग्विभुः।
तद् ददौ कवचं दिव्यं विप्राय प्राणसंमतम्॥ १९

इसे सुनकर ब्राह्मणभक्त तथा सत्यभाषी दानवराजने अपने प्राणोंके समान दिव्य कवच ब्राह्मणको दे दिया॥ १९॥

माययेत्थं तु कवचं तस्माज्जग्राह वै हरिः।
शङ्खचूडस्य रूपेण जगाम तुलसीं प्रति॥ २०

इस प्रकार विष्णुने मायासे उससे कवच ले लिया और शंखचूडका रूप धारणकर वे तुलसीके पास गये॥ २०॥

गत्वा तत्र हरिस्तस्या योनौ मायाविशारदः।
वीर्याधानं चकाराशु देवकार्यार्थमीश्वरः॥ २१

वहाँ जाकर मायाविशारद विष्णुने देवकार्यकी सिद्धिके निमित्त उसके साथ रमण किया॥ २१॥

एतस्मिन्नन्तरे शंभुमीरयन् स्ववचः प्रभुः।
शंखचूडवधार्थाय शूलं जग्राह प्रज्वलत्॥ २२

इसी बीच प्रभु विष्णुने शिवजीको अपने वचनके पालनके निमित्त प्रेरित किया, तब शंखचूडका वध करनेके लिये शंकरने अपना प्रज्वलित शूल धारण किया॥ २२॥

तच्छूलं विजयं नाम शङ्करस्य परात्मनः।
सञ्चकाशे दिशः सर्वा रोदसीं संप्रकाशयन्॥ २३

कोटिमध्याह्नमार्तण्डप्रलयाग्निशिखोपमम्।
दुर्निवार्यं च दुर्द्धर्षमव्यर्थं वैरिघातकम्॥ २४

तेजसां चक्रमत्युग्रं सर्वशस्त्रास्त्रनायकम्।
सुरासुराणां सर्वेषां दुःसहं च भयंकरम्॥ २५

संहर्तुं सर्वब्रह्मांडमवलंब्य च लीलया।
संस्थितं परमं तत्र एकत्रीभूय विज्वलत्॥ २६

धनुः सहस्रं दीर्घेण प्रस्थेन शतहस्तकम्।
जीवब्रह्मस्वरूपं च नित्यरूपमनिर्मितम्॥ २७

विभ्रमद् व्योम्नि तच्छूलं शंखचूडोपरि क्षणात्।
चकार भस्म तच्छीघ्रं निपत्य शिवशासनात्॥ २८

अथ शूलं महेशस्य द्रुतमावृत्य शंकरम्।
ययौ विहायसा विप्र मनोयायि स्वकार्यकृत्॥ २९

नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे जगुर्गंधर्वकिन्नराः।
तुष्टुवुर्मुनयो देवा ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥ ३०

बभूव पुष्पवृष्टिश्च शिवस्योपरि संततम्।
प्रशशंस हरिर्ब्रह्मा शक्राद्या मुनयस्तथा॥ ३१

शंखचूडो दानवेन्द्रः शिवस्य कृपया तदा।
शापमुक्तो बभूवाथ पूर्वरूपमवाप ह॥ ३२

अस्थिभिः शंखचूडस्य शंखजातिर्बभूव ह।
प्रशस्तं शंखतोयं च सर्वेषां शंकरं विना॥ ३३

विशेषेण हरेर्लक्ष्म्याः शंखतोयं महाप्रियम्।
संबंधिनां च तस्यापि न हरस्य महामुने॥ ३४

तमित्थं शंकरो हत्वा शिवलोकं जगाम सः।
सुप्रहृष्टो वृषारूढः सोमस्कन्दगणैर्वृतः॥ ३५

परात्मा शिवजीका वह विजय नामक त्रिशूल सभी दिशाओं तथा भूमिको प्रकाशित करता हुआ करोड़ों मध्याह्नकालीन सूर्यों तथा प्रलयाग्निकी अग्निशिखाके समान, दुर्धर्ष, दुर्निवार्य, व्यर्थ न जानेवाला, शत्रुओंको नष्ट करनेवाला, तेजोंका समूह, अत्यन्त उग्र, सभी शस्त्रास्त्रोंका नायक, सभी देवताओं तथा राक्षसोंके लिये दुःसह तथा महाभयंकर था॥ २३—२५॥

लीलापूर्वक सारे ब्रह्माण्डको नष्ट करनेके लिये तत्पर होकर जलता हुआ वह त्रिशूल एकत्र होकर वहाँ स्थित था। शिवजीका वह त्रिशूल एक हजार धनुष लम्बा, सौ हाथ चौड़ा था। जीव एवं ब्रह्मके स्वरूप, नित्यरूप तथा किसीके द्वारा भी निर्मित न किये हुए उस त्रिशूलने आकाशमण्डलमें चक्कर काटते हुए शीघ्र ही शिवजीकी आज्ञासे शंखचूडके सिरपर गिरकर उसे क्षणमात्रमें भस्म कर दिया॥ २६—२८॥

हे विप्र! इसके बाद वह त्रिशूल पुनः अपना कार्य समाप्तकर मनके वेगके समान वेगसे आकाशमार्गसे शिवजीके पास चला आया॥ २९॥

उस समय स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं, गन्धर्व तथा किन्नर गाने लगे, मुनि तथा देवता प्रसन्न हो उठे और अप्सराएँ नाचने लगीं। शिवजीके ऊपर निरन्तर फूलोंकी वर्षा होने लगी तथा विष्णु, ब्रह्मा एवं इन्द्रादि देवगण शिवजीकी प्रशंसा करने लगे॥ ३०-३१॥

इस प्रकार दानवेन्द्र शंखचूड शिवजीकी कृपासे शापमुक्त हो गया और अपने पूर्वरूपको प्राप्त हो गया॥ ३२॥

शंखचूडकी अस्थियोंसे एक प्रकारकी शंखजाति प्रकट हुई। शंखका जल शंकरजीके अतिरिक्त अन्य सभी देवताओंके लिये प्रशस्त माना गया है। विशेषकर विष्णु एवं लक्ष्मीके लिये तथा उनके सम्बन्धियोंके लिये तो शंखका जल महाप्रिय है, किंतु हे महामुने! वह शंकरजीको प्रिय नहीं है॥ ३३-३४॥

इस प्रकार शिवजी शंखचूडका वधकर अति प्रसन्न होकर वृषभपर आरूढ़ हो उमा, स्कन्द एवं अपने गणोंके साथ शिवलोकको चले गये॥ ३५॥

हरिर्जगाम वैकुंठं कृष्णः स्वस्थो बभूव ह।
सुराः स्वविषयं प्रापुः परमानन्दसंयुताः॥ ३६

जगत्स्वास्थ्यमतीवाप सर्वं निर्विघ्नमाप कम्।
निर्मलं चाभवद्व्योम क्षितिः सर्वा सुमंगला॥ ३७

विष्णु वैकुण्ठको चले गये, श्रीकृष्ण भी स्वस्थ हो गये और देवता अपना-अपना अधिकार पा गये तथा परम आनन्दसे युक्त हो गये। सारा संसार अत्यन्त शान्त हो गया। सम्पूर्ण जल विघ्नरहित हो गया, आकाश स्वच्छ हो गया तथा सम्पूर्ण पृथ्वी मंगलमयी हो गयी॥ ३६-३७॥

इति प्रोक्तं महेशस्य चरितं प्रमुदावहम्।
सर्वदुःखहरं श्रीदं सर्वकामप्रपूरकम्॥ ३८

धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वविघ्ननिवारणम्।
भुक्तिदं मुक्तिदं चैव सर्वकामफलप्रदम्॥ ३९

[हे व्यास!] इस प्रकार मैंने शिवजीका चरित कह दिया, जो आनन्द प्रदान करनेवाला, सारे दुःखोंको दूर करनेवाला, लक्ष्मीकी वृद्धि करनेवाला, सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, धन्य, यश तथा आयुको बढ़ानेवाला, समस्त विघ्नोंको नष्ट करनेवाला, भुक्ति एवं मुक्तिको प्रदान करनेवाला एवं समस्त कामनाओंका फल देनेवाला है॥ ३८-३९॥

य इदं शृणुयान्नित्यं चरितं शशिमौलिनः।
श्रावयेद्वा पठेद्वापि पाठयेद्वा सुधीर्नरः॥ ४०

धनं धान्यं सुतं सौख्यं लभेतात्र न संशयः।
सर्वान्कामानवाप्नोति शिवभक्तिं विशेषतः॥ ४१

जो बुद्धिमान् मनुष्य शंकरके इस चरित्रको नित्य सुनता, सुनाता, पढ़ता अथवा पढ़ाता है, वह इस लोकमें धन-धान्य, सुत तथा सुख प्राप्त करता है और सभी कामनाओंको विशेषकर शिवभक्तिको प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४०-४१॥

इदमाख्यानमतुलं सर्वोपद्रवनाशनम्।
परमज्ञानजननं शिवभक्तिविवर्द्धनम्॥ ४२

ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी क्षत्रियो विजयी भवेत्।
धनाढ्यो वैश्यजः शूद्रः शृण्वन् सत्तमतामियात्॥ ४३

इस अतुलनीय, सभी उपद्रवोंका नाश करनेवाले, परम ज्ञान उत्पन्न करनेवाले तथा शिवके प्रति भक्तिकी वृद्धि करनेवाले आख्यानको सुननेवाला ब्राह्मण तेजसे युक्त, क्षत्रिय विजयी, वैश्य धनसे सम्पन्न एवं शूद्र श्रेष्ठताको प्राप्त करता है॥ ४२-४३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शंखचूडवधोपाख्यानं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडवधवर्णन नामक चालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४०॥

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

शंखचूडका रूप धारणकर भगवान् विष्णुद्वारा तुलसीके शीलका हरण, तुलसीद्वारा विष्णुको पाषाण होनेका शाप देना, शंकरजीद्वारा तुलसीको सान्त्वना, शंख, तुलसी, गण्डकी एवं शालग्रामकी उत्पत्ति तथा माहात्म्यकी कथा

व्यास उवाच

नारायणश्च भगवान् वीर्याधानं चकार ह।
तुलस्याः केन यत्नेन योनौ तद्वक्तुमर्हसि॥ १

व्यासजी बोले—[हे मुने!] भगवान् नारायणने किस उपायसे तुलसीके साथ रमण किया, उसे आप मुझसे कहिये॥ १॥

सनत्कुमार उवाच

नारायणो हि देवानां कार्यकर्ता सतां गतिः।
शंखचूडस्य रूपेण रेमे तद्रामया सह॥ २
तदेव शृणु विष्णोश्च चरितं प्रमुदावहम्।
शिवशासनकर्तुश्च मातुश्च जगतां हरेः॥ ३
रणमध्ये व्योमवचः श्रुत्वा देवेन शंभुना।
प्रेरितः शंखचूडस्य गृहीत्वा कवचं परम्॥ ४
विप्ररूपेण त्वरितं मायया निजया हरिः।
जगाम शंखचूडस्य रूपेण तुलसीगृहम्॥ ५
दुन्दुभिं वादयामास तुलसीद्वारसन्निधौ।
जयशब्दं च तत्रैव बोधयामास सुन्दरीम्॥ ६

सनत्कुमार बोले—[हे व्यासजी!] सज्जनोंकी रक्षा करनेवाले तथा देवताओंका कार्य सम्पन्न करनेवाले भगवान् विष्णुने शंखचूडका रूप धारणकर उसकी स्त्रीके साथ रमण किया। जगन्माता पार्वती एवं शिवकी आज्ञाका पालन करनेवाले श्रीहरि विष्णुके आनन्ददायी उस चरित्रको सुनिये॥ २-३॥

युद्धके मध्यमें आकाशवाणीको सुनकर भगवान् शिवजीसे प्रेरित हुए विष्णु शीघ्र अपनी मायासे ब्राह्मणका रूप धारणकर शंखचूडका कवच ग्रहण करके पुनः उस शंखचूडका रूप धारणकर तुलसीके घर गये। उन्होंने तुलसीके द्वारके पास दुन्दुभि बजायी और जयशब्दका उच्चारणकर उस सुन्दरीको जगाया॥ ४—६॥

तच्छ्रुत्वा चैव सा साध्वी परमानन्दसंयुता।
राजमार्गं गवाक्षेण ददर्श परमादरात्॥ ७

यह सुनकर वह साध्वी बहुत प्रसन्न हुई और अत्यन्त आदरपूर्वक खिड़कीसे राजमार्गकी ओर देखने लगी॥ ७॥

ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा कारयामास मंगलम्।
द्रुतं चकार शृंगारं ज्ञात्वाऽऽयातं निजं पतिम्॥ ८

उसने ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन देकर मंगल कराया, तदनन्तर अपने पतिको आया जानकर शीघ्र शृंगार भी किया॥ ८॥

अवरुह्य रथाद्विष्णुस्तद्देव्या भवनं ययौ।
शंखचूडस्वरूपः स मायावी देवकार्यकृत्॥ ९

शंखचूडके स्वरूपवाले तथा देवकार्य करनेवाले वे मायावी विष्णु रथसे उतरकर उस देवीके भवनमें गये॥ ९॥

दृष्ट्वा तं च पुरः प्राप्तं स्वकान्तं सा मुदान्विता।
तत्पादौ क्षालयामास ननाम च रुरोद च॥ १०

तब अपने स्वामीको सामने आया देखकर प्रसन्नतासे युक्त होकर उसने उनका चरणप्रक्षालन किया, प्रणाम किया और वह रोने लगी॥ १०॥

रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास मंगलम्।
ताम्बूलं च ददौ तस्मै कर्पूरादिसुवासितम्॥ ११

उसने उन्हें रत्नके सिंहासनपर बैठाया और कपूरसुवासित ताम्बूल प्रदान किया॥ ११॥

अद्य मे सफलं जन्म जीवनं संबभूव ह।
रणे गतं च प्राणेशं पश्यन्त्याश्च पुनर्गृहे॥ १२
इत्युक्त्वा सकटाक्षं सा निरीक्ष्य सस्मितं मुदा।
पप्रच्छ रणवृत्तांतं कान्तं मधुरया गिरा॥ १३

'आज मेरा जन्म एवं जीवन सफल हो गया, जो कि युद्धमें गये हुए अपने स्वामीको पुनः घरमें देख रही हूँ'—ऐसा कहकर वह मुसकराती हुई प्रसन्नतापूर्वक तिरछी नजरोंसे स्वामीकी ओर देखकर मधुर वाणीमें युद्धका समाचार पूछने लगी॥ १२-१३॥

तुलस्युवाच

असंख्यविश्वसंहर्ता स देवप्रवरः प्रभुः।
यस्याज्ञावर्त्तिनो देवा विष्णुब्रह्मादयः सदा॥ १४

तुलसी बोली—हे प्रभो! असंख्य विश्वका संहार करनेवाले वे देवाधिदेव शंकर ही हैं, जिनकी आज्ञाका पालन ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवता सर्वदा करते हैं॥ १४॥

त्रिदेवजनकः सोऽत्र त्रिगुणात्मा च निर्गुणः।
भक्तेच्छया च सगुणो हरिब्रह्माप्रवर्तकः॥ १५

वे तीनों देवताओंको उत्पन्न करनेवाले, त्रिगुणात्मक होते हुए निर्गुण तथा भक्तोंकी इच्छासे सगुण रूप धारण करनेवाले ब्रह्मा एवं विष्णुके भी प्रेरक हैं॥ १५॥

कुबेरस्य प्रार्थनया गुणरूपधरो हरः।
कैलासवासी गणपः परब्रह्म सतां गतिः॥ १६

यस्यैकपलमात्रेण कोटिब्रह्मांडसंक्षयः।
विष्णुब्रह्मादयोऽतीता बहवः क्षणमात्रतः॥ १७

कर्तुं सार्द्धं च तेनैव समरं त्वं गतः प्रभो।
कथं बभूव संग्रामस्तेन देवसहायिना॥ १८

कुशली त्वमिहायातस्तं जित्वा परमेश्वरम्।
कथं बभूव विजयस्तव ब्रूहि तदेव मे॥ १९

श्रुत्वेत्थं तुलसीवाक्यं स विहस्य रमापतिः।
शंखचूडरूपधरस्तामुवाचामृतं वचः॥ २०

श्रीभगवानुवाच

यदाहं रणभूमौ च जगाम समरप्रियः।
कोलाहलो महान् जातः प्रवृत्तोऽभून्महारणः॥ २१
देवदानवयोर्युद्धं संबभूव जयैषिणोः।
दैत्याः पराजितास्तत्र निर्जरैर्बलगर्वितैः॥ २२
तदाहं समरं तत्राकार्षं देवैर्बलोत्कटैः।
पराजिताश्च ते देवाः शंकरं शरणं ययुः॥ २३

रुद्रोऽपि तत्सहायार्थमाजगाम रणं प्रति।
तेनाहं वै चिरं कालमयौत्सं बलदर्पितः॥ २४
आवयोः समरः कान्ते पूर्णमब्दं बभूव ह।
नाशो बभूव सर्वेषामसुराणां च कामिनि॥ २५
प्रीतिं च कारयामास ब्रह्मा च स्वयमावयोः।
देवानामधिकाराश्च प्रदत्ता ब्रह्मशासनात्॥ २६
मयागतं स्वभवनं शिवलोकं शिवो गतः।
सर्वस्वास्थ्यमतीवाप दूरीभूतो ह्युपद्रवः॥ २७

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा जगतां नाथः शयनं च चकार ह।
रेमे रमापतिस्तत्र रमया स तया मुदा॥ २८

सा साध्वी सुखसंभावाकर्षणस्य व्यतिक्रमात्।
सर्वं वितर्कयामास कस्त्वमेवेत्युवाच सा॥ २९

कैलासवासी, गणोंके स्वामी, परब्रह्म तथा सज्जनोंके रक्षक शिवजीने कुबेरकी प्रार्थनासे सगुण रूप धारण किया था॥ १६॥

जिनके एक पलमात्रमें करोड़ों ब्रह्माण्डोंका क्षय हो जाता है तथा जिनके एक क्षणभरमें विष्णु एवं ब्रह्मा व्यतीत हो जाते हैं। हे प्रभो! उन्हींके साथ आप युद्ध करने गये थे। आपने उन देवसहायक सदाशिवके साथ किस प्रकार संग्राम किया?॥ १७-१८॥

आप उन परमेश्वरको जीतकर यहाँ सकुशल लौट आये। हे प्रभो! आपकी विजय किस प्रकार हुई, उसे मुझे बताइये। तुलसीके इस प्रकारके वचनको सुनकर शंखचूडका रूप धारण किये हुए वे रमापति हँसकर अमृतमय वचन कहने लगे—॥ १९-२०॥

श्रीभगवान् बोले—जब युद्धप्रिय मैं समरभूमिमें गया, उस समय महान् कोलाहल होने लगा और महाभयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। विजयकी कामनावाले देवता तथा दानव दोनोंका युद्ध होने लगा, उसमें बलसे दर्पित देवताओंने दैत्योंको पराजित कर दिया॥ २१-२२॥

उसके बाद मैंने बलवान् देवताओंके साथ युद्ध किया और वे देवता पराजित होकर शंकरकी शरणमें पहुँचे॥ २३॥

रुद्र भी उनकी सहायताके लिये युद्धभूमिमें आये, तब मैंने भी अपने बलके घमण्डसे उनके साथ बहुत कालतक युद्ध किया। हे प्रिये! इस प्रकार हम दोनोंका युद्ध वर्षपर्यन्त होता रहा, जिसमें हे कामिनि! सभी असुरोंका विनाश हो गया। तब स्वयं ब्रह्माजीने हम दोनोंमें प्रीति करा दी और मैंने उनके कहनेसे देवताओंका सारा अधिकार उन्हें सौंप दिया॥ २४—२६॥

इसके बाद मैं अपने घर लौट आया और शिवजी शिवलोकको चले गये। इस प्रकार सारा उपद्रव शान्त हो गया और सब लोग सुखी हो गये॥ २७॥

सनत्कुमार बोले—ऐसा कहकर जगत्पति रमानाथने शयन किया और रमासे रमापतिके समान प्रसन्नतासे उस स्त्रीके साथ रमण किया। उस साध्वीने रतिकालमें सुख, भाव और आकर्षणमें भेद देखकर सारी बातें जान लीं और उसने कहा—तुम कौन हो?॥ २८-२९॥

तुलस्युवाच

को वा त्वं वद मामाशु भुक्ताहं मायया त्वया।
दूरीकृतं मत्सतीत्वमथ त्वां वै शपाम्यहम्॥ ३०

तुलसी बोली— तुम मुझे शीघ्र बताओ कि तुम हो कौन? तुमने मेरे साथ कपट किया और मेरे सतीत्वको नष्ट किया है, अतः मैं तुमको शाप देती हूँ॥ ३०॥

सनत्कुमार उवाच

तुलसीवचनं श्रुत्वा हरिः शापभयेन च।
दधार लीलया ब्रह्मन्स्वमूर्तिं सुमनोहराम्॥ ३१

तद् दृष्ट्वा तुलसी रूपं ज्ञात्वा विष्णुं तु चिह्नतः।
पातिव्रत्यपरित्यागात् क्रुद्धा सा तमुवाच ह॥ ३२

सनत्कुमार बोले— [हे व्यासजी!] तुलसीका वचन सुनकर विष्णुने शापके भयसे लीलापूर्वक अपनी अत्यन्त मनोहर मूर्ति धारण कर ली॥ ३१॥

उस रूपको देखकर और चिह्नसे उन्हें विष्णु जानकर तथा उनसे पातिव्रतभंग होनेके कारण कुपित होकर वह तुलसी उनसे कहने लगी—॥ ३२॥

तुलस्युवाच

हे विष्णो ते दया नास्ति पाषाणसदृशं मनः।
पतिधर्मस्य भंगेन मम स्वामी हतः खलु॥ ३३

तुलसी बोली— हे विष्णो! आपमें थोड़ी-सी भी दया नहीं है, आपका मन पाषाणके समान है, मेरे पातिव्रतको भंगकर आपने मेरे स्वामीका वध कर दिया॥ ३३॥

पाषाणसदृशस्त्वं च दयाहीनो यतः खलः।
तस्मात्पाषाणरूपस्त्वं मच्छापेन भवाधुना॥ ३४

आप पाषाणके समान अत्यन्त निर्दय एवं खल हैं, अतः मेरे शापसे आप इस समय पाषाण हो जाइये॥ ३४॥

ये वदन्ति दयासिन्धुं त्वां भ्रान्तास्ते न संशयः।
भक्तो विनापराधेन परार्थे च कथं हतः॥ ३५

जो लोग आपको दयासागर कहते हैं, वे भ्रममें पड़े हैं, इसमें सन्देह नहीं है। आपने बिना अपराधके दूसरेके निमित्त अपने ही भक्तका वध क्यों करवाया?॥ ३५॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा तुलसी सा वै शंखचूडप्रिया सती।
भृशं रुरोद शोकार्ता विललाप भृशं मुहुः॥ ३६

सनत्कुमार बोले— [हे व्यासजी!] ऐसा कहकर शंखचूडकी प्रिय पत्नी तुलसी शोकसे विकल हो रोने लगी और बार-बार बहुत विलाप करने लगी॥ ३६॥

ततस्तां रुदतीं दृष्ट्वा स विष्णुः परमेश्वरः।
सस्मार शंकरं देवं येन संमोहितं जगत्॥ ३७

तब उसे रोती हुई देखकर परमेश्वर विष्णुने शिवका स्मरण किया, जिनसे संसार मोहित है॥ ३७॥

ततः प्रादुर्बभूवाथ शंकरो भक्तवत्सलः।
हरिणा प्रणतश्चासीत्संनुतो विनयेन सः॥ ३८

शोकाकुलं हरिं दृष्ट्वा विलपन्तीं च तत्प्रियाम्।
नयेन बोधयामास तं तां कृपणवत्सलाम्॥ ३९

तब भक्तवत्सल शंकर वहाँ प्रकट हो गये। श्रीविष्णुने उन्हें प्रणाम किया और बड़े विनयके साथ उनकी स्तुति की। विष्णुको शोकाकुल तथा शंखचूडकी पत्नीको विलाप करती हुई देखकर शंकरने नीतिसे विष्णुको तथा उस दुखियाको समझाया॥ ३८-३९॥

शंकर उवाच

मा रोदीस्तुलसि त्वं हि भुंक्ते कर्मफलं जनः।
सुखदुःखदो न कोऽप्यस्ति संसारे कर्मसागरे॥ ४०

प्रस्तुतं शृणु निर्दुःखं शृणोतु सुमना हरिः।
द्वयोः सुखकरं यत्तद् ब्रवीमि सुखहेतवे॥ ४१

शिवजी बोले— हे तुलसी! मत रोओ, व्यक्तिको अपने कर्मका फल भोगना ही पड़ता है। इस कर्मसागर संसारमें कोई किसीको सुख अथवा दुःख देनेवाला नहीं है। अब तुम उपस्थित इस दुःखको दूर करनेका उपाय सुनो एवं विष्णु भी इसे सुनें। जो तुमदोनोंके लिये सुखकर है, उसे मैं तुमलोगोंके सुखके लिये बतलाता हूँ॥ ४०-४१॥

तपस्त्वया कृतं भद्रे तस्यैव तपसः फलम्।
तदन्यथा कथं स्याद्वै जातं त्वयि तथा च तत्॥ ४२

इदं शरीरं त्यक्त्वा च दिव्यदेहं विधाय च।
रमस्व हरिणा नित्यं रमया सदृशी भव॥ ४३

तवेयं तनुरुत्सृष्टा नदीरूपा भवेदिह।
भारते पुण्यरूपा सा गण्डकीति च विश्रुता॥ ४४

कियत्कालं महादेवि देवपूजनसाधने।
प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति वरेण मे॥ ४५

स्वर्गे मर्त्ये च पाताले तिष्ठ त्वं हरिसन्निधौ।
भव त्वं तुलसीवृक्षो वरा पुष्पेषु सुन्दरि॥ ४६

वृक्षाधिष्ठातृदेवी त्वं वैकुंठे दिव्यरूपिणी।
सार्धं रहसि हरिणा नित्यं क्रीडां करिष्यसि॥ ४७

नद्यधिष्ठातृदेवी या भारते बहुपुण्यदा।
लवणोदस्य पत्नी सा हर्यंशस्य भविष्यसि॥ ४८

हरिर्वै शैलरूपी च गंडकी तीरसंनिधौ।
संकरिष्यत्यधिष्ठानं भारते तव शापतः॥ ४९

तत्र कोट्यश्च कीटाश्च तीक्ष्णदंष्ट्रा भयंकराः।
तच्छित्त्वा कुहरे चक्रं करिष्यंति तदीयकम्॥ ५०

शालग्रामशिला सा हि तद्भेदादतिपुण्यदा।
लक्ष्मीनारायणाख्यादिश्चक्रभेदाद्भविष्यति ॥ ५१

शालग्रामशिला विष्णोस्तुलस्यास्तव संगमः।
सदा सादृश्यरूपा या बहुपुण्यविवर्द्धिनी॥ ५२

तुलसीपत्रविच्छेदं शालग्रामे करोति यः।
तस्य जन्मान्तरे भद्रे स्त्रीविच्छेदो भविष्यति॥ ५३

तुलसीपत्रविच्छेदं शंखं हित्वा करोति यः।
भार्याहीनो भवेत्सोऽपि रोगी स्यात्सप्तजन्मसु॥ ५४

हे भद्रे! तुमने [पूर्व समयमें] तपस्या की थी, उसी तपस्याका यह फल प्राप्त हुआ है, तुम्हें विष्णु प्राप्त हुए हैं, वह अन्यथा कैसे हो सकता है?॥ ४२॥

अब तुम इस शरीरको त्यागकर दिव्य शरीर धारणकर महालक्ष्मीके समान हो जाओ और विष्णुके साथ नित्य रमण करो। तुम्हारी यह छोड़ी हुई काया एक नदीके रूपमें परिवर्तित होगी और वह भारतमें पुण्यस्वरूपिणी गण्डकी नामसे विख्यात होगी। हे महादेवि! तुम मेरे वरदानसे बहुत समयतक देवपूजनके साधनके लिये प्रधानभूत तुलसी वृक्षरूपमें उत्पन्न होगी॥ ४३—४५॥

तुम स्वर्ग, मर्त्य एवं पाताल—तीनों लोकोंमें विष्णुके साथ निवास करो। हे सुन्दरि! तुम पुष्पवृक्षोंमें उत्तम तुलसी वृक्ष बन जाओ। तुम सभी वृक्षोंकी अधिष्ठात्री दिव्यरूपधारिणी देवीके रूपमें वैकुण्ठमें विष्णुके साथ एकान्तमें नित्यक्रीड़ा करोगी और भारतमें तुम गण्डकीके रूपमें रहोगी, वहाँपर भी नदियोंकी अधिष्ठात्री देवी होकर सभीको अत्यन्त पुण्य प्रदान करोगी तथा विष्णुके अंशभूत लवणसमुद्रकी पत्नी बनोगी॥ ४६—४८॥

भारतमें उसी गण्डकीके किनारे ये विष्णु भी तुम्हारे शापसे पाषाणरूपमें स्थित रहेंगे। वहाँपर तीखे दाँतवाले तथा भयंकर करोड़ों कीड़े उन शिलाओंको काटकर उसके छिद्रमें विष्णुके चक्रका निर्माण करेंगे॥ ४९-५०॥

उन कीटोंके द्वारा छिद्र की गयी शालग्राम-शिला अत्यन्त पुण्य प्रदान करनेवाली होगी। चक्रोंके भेदसे उन शिलाओंके लक्ष्मीनारायण आदि नाम होंगे॥ ५१॥

उस शालग्रामशिलासे जो लोग तुझ तुलसीका संयोग करायेंगे, उन्हें अत्यन्त पुण्य प्राप्त होगा॥ ५२॥

हे भद्रे! जो शालग्रामशिलासे तुलसीपत्रको अलग करेगा, दूसरे जन्ममें उसका स्त्रीसे वियोग होगा॥ ५३॥

जो शंखसे तुलसीपत्रका विच्छेद करेगा, वह सात जन्मपर्यन्त भार्याहीन रहेगा तथा रोगी होगा॥ ५४॥

शालग्रामश्च तुलसी शंखं चैकत्र एव हि।
यो रक्षति महाज्ञानी स भवेच्छ्रीहरिप्रियः॥ ५५

त्वं प्रिया: शंखचूडस्य चैकमन्वन्तरावधि।
शंखेन सार्धं त्वद्भेदः केवलं दुःखदस्तव॥ ५६

इस प्रकार जो महाज्ञानी शालग्रामशिला, तुलसी तथा शंखको एक स्थानपर रखेगा, वह श्रीहरिका प्रिय होगा। तुम एक मन्वन्तरपर्यन्त शंखचूडकी पत्नी रही, शंखचूडके साथ यह तुम्हारा वियोग केवल इसी समय तुम्हें दुःख देनेके लिये हुआ है॥ ५५-५६॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा शंकरस्तत्र माहात्म्यमूचिवांस्तदा।
शालग्रामशिलायाश्च तुलस्या बहुपुण्यदम्॥ ५७

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] ऐसा कहकर शंकरजीने शालग्रामशिला तथा तुलसीके महान् पुण्य देनेवाले माहात्म्यका वर्णन किया॥ ५७॥

ततश्चान्तर्हितो भूत्वा मोदयित्वा हरिं च ताम्।
जगाम स्वालयं शंभुः शर्मदो हि सदा सताम्॥ ५८

इति श्रुत्वा वचः शंभोः प्रसन्ना तु तुलस्यभूत्।
तद्देहं च परित्यज्य दिव्यरूपा बभूव ह॥ ५९

इस प्रकार उस तुलसी तथा श्रीविष्णुको प्रसन्न करके सज्जनोंका सदा कल्याण करनेवाले शंकरजी अन्तर्धान होकर अपने लोक चले गये। शिवजीकी यह बात सुनकर तुलसी प्रसन्न हो गयी और [उसी समय] उस शरीरको छोड़कर दिव्य देहको प्राप्त हो गयी॥ ५८-५९॥

प्रजगाम तया सार्द्धं वैकुंठं कमलापतिः।
सद्यस्तद्देहजाता च बभूव गंडकी नदी॥ ६०

कमलापति विष्णु भी उसीके साथ वैकुण्ठ चले गये और उसी क्षण तुलसीके द्वारा परित्यक्त उस शरीरसे गण्डकी नदीकी उत्पत्ति हुई॥ ६०॥

शैलोऽभूदच्युतः सोऽपि तत्तीरे पुण्यदो नृणाम्।
कुर्वंति तत्र कीटाश्च छिद्रं बहुविधं मुने॥ ६१

भगवान् विष्णु भी उसके तटपर मनुष्योंका कल्याण करनेवाले शालग्रामशिलारूप हो गये। हे मुने! उसमें कीट अनेक प्रकारके छिद्र करते हैं॥ ६१॥

जले पतंति यास्तत्र शिलास्तास्त्वतिपुण्यदाः।
स्थलस्था पिंगला ज्ञेयाश्चोपतापाय चैव हि॥ ६२

जो शिलाएँ जलमें पड़ी रहती हैं, वे अत्यन्त पुण्यदायक होती हैं एवं जो स्थलमें रहती हैं, उन्हें पिंगला नामवाली जानना चाहिये, वे मनुष्योंको सन्ताप ही प्रदान करती हैं॥ ६२॥

इत्येवं कथितं सर्वं तव प्रश्नानुसारतः।
चरितं पुण्यदं शंभोः सर्वकामप्रदं नृणाम्॥ ६३

आख्यानमिदमाख्यातं विष्णुमाहात्म्यमिश्रितम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं पुण्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ६४

[हे मुने!] मैंने आपके प्रश्नोंके अनुसार मनुष्योंकी सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले तथा पुण्य प्रदान करनेवाले सम्पूर्ण शिवचरित्रको कह दिया। विष्णुके माहात्म्यसे मिश्रित आख्यान, जिसे मैंने कहा है, वह भुक्ति-मुक्ति तथा पुण्य देनेवाला है, आगे [हे व्यास!] अब आप और क्या सुनना चाहते हैं॥ ६३-६४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शंखचूडवधोपाख्याने तुलसीशापवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडवधोपाख्यानके अन्तर्गत तुलसीशापवर्णन नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४१॥

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

अन्धकासुरकी उत्पत्तिकी कथा, शिवके वरदानसे हिरण्याक्षद्वारा अन्धकको पुत्ररूपमें प्राप्त करना, हिरण्याक्षद्वारा पृथ्वीको पाताललोकमें ले जाना, भगवान् विष्णुद्वारा वाराहरूप धारणकर हिरण्याक्षका वधकर पृथ्वीको यथास्थान स्थापित करना

नारद उवाच

शंखचूडवधं श्रुत्वा चरितं शशिमौलिनः।
अहं तृप्तोऽस्मि नो त्वत्तोऽमृतं पीत्वा यथा जनः॥ १

ब्रह्मन्यच्चरितं तस्य महेशस्य महात्मनः।
मायामाश्रित्य सल्लीलां कुर्वतो भक्तमोददाम्॥ २

ब्रह्मोवाच

शंखचूडवधं श्रुत्वा व्यासः सत्यवतीसुतः।
अप्राक्षीदिममेवार्थं ब्रह्मपुत्रं मुनीश्वरम्॥ ३
सनत्कुमारः प्रोवाच व्यासं सत्यवतीसुतम्।
सुप्रशंस्य महेशस्य चरितं मंगलायनम्॥ ४

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास महेशस्य चरितं मंगलायनम्।
यथान्धको गाणपत्यं प्राप शंभोः परात्मनः॥ ५

कृत्वा परमसंग्रामं तेन पूर्वं मुनीश्वर।
प्रसाद्य तं महेशानं सत्त्वभावात्पुनः पुनः॥ ६
माहात्म्यमद्भुतं शंभोः शरणागतरक्षिणः।
सुभक्तवत्सलस्यैव नानालीलाविहारिणः॥ ७
माहात्म्यमेतद् वृषभध्वजस्य
श्रुत्वा मुनिर्गंधवतीसुतो हि।
वचो महार्थं प्रणिपत्य भक्त्या
ह्युवाच तं ब्रह्मसुतं मुनीन्द्रम्॥ ८

व्यास उवाच

को ह्यंधको वै भगवन्मुनीश
कस्यान्वये वीर्यवतः पृथिव्याम्।
जातो महात्मा बलवान् प्रधानः
किमात्मकः कस्य सुतोऽन्धकश्च॥ ९
एतत्समस्तं सरहस्यमद्य
प्रब्रूहि मे ब्रह्मसुत प्रसादात्।
स्कंदान्मया वै विदितं हि सम्यक्
महेशपुत्रादमितावबोधात् ॥ १०

नारदजी बोले—शंखचूडके वधसे सम्बद्ध महादेवजीके चरित्रको सुनकर मैं उसी प्रकार तृप्त नहीं हो रहा हूँ, जिस प्रकार कोई व्यक्ति अमृतका पानकर तृप्त नहीं होता। इसलिये हे ब्रह्मन्! मायाका आश्रय लेकर भक्तोंको आनन्द प्रदान करनेवाली उत्तम लीला करनेवाले उन महात्मा महेशका जो चरित है, उसे आप मुझसे कहिये॥ १-२॥

ब्रह्माजी बोले—शंखचूडका वध सुननेके पश्चात् सत्यवतीसुत व्यासजीने ब्रह्मपुत्र मुनीश्वर सनत्कुमारसे भी यही बात पूछी थी। व्यासकी प्रशंसा करके सनत्कुमारने मंगलदायक महेश्वरचरित्रको कहा था॥ ३-४॥

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] आप शंकरजीके मंगलदायक उस चरित्रको सुनिये, जिसमें अन्धकने परमात्मा शंकरके गाणपत्यपदको प्राप्त किया॥ ५॥

हे मुनीश्वर! पहले तो उसने शंकरजीसे घोर युद्ध किया। उसके बाद अपने सात्त्विक भावसे बारंबार उन्हें प्रसन्न किया। शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले, परम भक्तवत्सल तथा नाना प्रकारकी लीला करनेवाले शंकरका माहात्म्य अद्भुत है। शंकरके इस प्रकारके माहात्म्यको सुनकर सत्यवतीसुत व्यासजीने मुनीश्वर सनत्कुमारजीको प्रणाम किया, फिर भक्तिभावसे विनम्र हो ब्रह्मपुत्र मुनीश्वरसे महान् अर्थपूर्ण वाणीमें कहा— ॥ ६—८॥

व्यासजी बोले—हे भगवन्! हे मुनीश्वर! यह अन्धक कौन था? इस पृथ्वीपर उसने किसके वंशमें जन्म लिया? वह किस कारणसे इतना बलवान् तथा महात्मा हुआ तथा वह किस नामवाला तथा किसका पुत्र था?॥ ९॥

हे भगवन्! ब्रह्मपुत्र! अब आप इन सारे रहस्योंका वर्णन कीजिये। वैसे तो अनन्तज्ञान-सम्पन्न महेशपुत्र स्कन्दके द्वारा मैं इन बातोंको जानता हूँ॥ १०॥

गाणपत्यं कथं प्राप शंभोः परमतेजसः।
सोऽन्धको धन्य एवाति यो बभूव गणेश्वरः॥ ११

महातेजस्वी शंकरकी कृपासे उसने गाणपत्य पदको किस प्रकार प्राप्त किया। वस्तुतः वह अन्धक महाधन्य है, जो उसे गाणपत्यकी प्राप्ति हुई॥ ११॥

ब्रह्मोवाच

व्यासस्य चैतद्वचनं निशम्य
प्रोवाच स ब्रह्मसुतस्तदानीम्।
महेश्वरोतीः परमाप्तलक्ष्मीः
संश्रोतुकामं जनकं शुकस्य॥ १२

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! व्यासजीके इस प्रकारके वचनको सुनकर ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारने महामंगलदायक शिवजीके चरित्रको सुननेकी इच्छावाले शुकदेवजीके पिता [व्यास]-से कहा॥ १२॥

सनत्कुमार उवाच

पुरागतो भक्तकृपाकरोऽसौ
कैलासतः शैलसुतागणाढ्यः।
विहर्तुकामः किल काशिकां वै
स्वशैलतो निर्जरचक्रवर्ती॥ १३

सनत्कुमार बोले—किसी समय देवसम्राट् भक्तवत्सल भगवान् शंकर अपने गणों तथा पार्वतीको साथ लेकर कैलाससे विहार करनेके लिये काशी आये॥ १३॥

स राजधानीं च विधाय तस्यां
चक्रे परोतीः सुखदा जनानाम्।
तद्रक्षकं भैरवनामवीरं
कृत्वा समं शैलजया हि बह्वीः॥ १४

उन्होंने काशीको अपनी राजधानी बनाया, भैरवको उसका रक्षक नियुक्त किया तथा पार्वतीके साथ मनुष्योंको आनन्द देनेवाली नाना प्रकारकी लीलाएँ करने लगे॥ १४॥

स एकदा मंदरनामधेयं
गतो नगं तद्वरसुप्रभावात्।
तत्रापि नानागणवीरमुख्यैः
शिवासमेतो विजहार भूरि॥ १५
पूर्वे दिशो मन्दरशैलसंस्था
कपर्दिनश्चंडपराक्रमस्य ।
चक्रे ततो नेत्रनिमीलनं तु
सा पार्वती नर्मयुतं सलीलम्॥ १६

किसी समय वरदानके कारण वे अपने गणोंके साथ मन्दराचलपर गये और वहाँपर पार्वतीके साथ विहार करनेमें प्रवृत्त हो गये। उसके बाद पार्वतीने नर्मक्रीडा [प्रेम-परिहास] करते हुए मन्दराचलपर पूर्व दिशाकी ओर मुखकर बैठे हुए चण्ड पराक्रमवाले सदाशिवके नेत्र लीलापूर्वक बन्द कर दिये॥ १५-१६॥

प्रवालहेमाब्जधृतप्रभाभ्यां
कराम्बुजाभ्यां निमिमील नेत्रे।
हरस्य नेत्रेषु निमीलितेषु
क्षणेन जातः सुमहांधकारः॥ १७
तत्स्पर्शयोगाच्च महेश्वरस्य
करौ च तस्याः स्खलितं मदांभः।
शंभोर्ललाटे क्षणवह्नितप्तो
विनिर्गतो भूरि जलस्य बिन्दुः॥ १८

मूँगे तथा स्वर्णकमलकी कान्तिसे युक्त अपनी दोनों भुजाओंसे जब पार्वतीने उनके नेत्र बन्द कर दिये, तब शिवजीके नेत्रोंके बन्द हो जानेपर क्षणभरमें घोर अन्धकार छा गया। तब सदाशिवके ललाटका स्पर्श करते ही उनके ललाटपर स्थित अग्निकी उष्णतासे पार्वतीके दोनों हाथोंसे स्वेदबिन्दु टपकने लगे॥ १७-१८॥

गर्भो बभूवाथ करालवक्त्रो
भयंकरः क्रोधपरः कृतघ्नः।
अन्धो विरूपी जटिलश्च कृष्णो
नरेतरो वैकृतिकः सुरोमा॥ १९

तब उससे एक बालक उत्पन्न हुआ, जो भयंकर, विकराल मुखवाला, महाक्रोधी, कृतघ्न, अन्धा, जटाधारी, कृष्णवर्णवाला, कुरूप, मनुष्यसे भिन्न स्वरूपवाला, विकृत तथा बहुत रोमोंसे युक्त था॥ १९॥

गायन्हसन्प्ररुदन्नृत्यमानो
विलेलिहानो घनघोरघोषः।
जातेन तेनाद्भुतदर्शनेन
गौरीं भवोऽसौ स्मितपूर्वमाह॥ २०

उत्पन्न होते ही उसने गाना, हँसना, नाचना, रोना तथा जीभ चाटना प्रारम्भ किया और वह महाघोर शब्द करने लगा। विचित्र दर्शनवाले उस बालकके उत्पन्न होते ही शंकरजीने गौरीसे हँसते हुए कहा— ॥ २० ॥

श्रीमहेश उवाच

निमील्य नेत्राणि कृतं च कर्म
विभेषि साऽस्माद्दयिते कथं त्वम्।
गौरी हरात्तद्वचनं निशम्य
विहस्यमाना प्रमुमोच नेत्रे॥ २१
जाते प्रकाशे सति घोररूपो
जातोऽन्धकारादपि नेत्रहीनः।
तादृग्विधं तं च निरीक्ष्य भूतं
पप्रच्छ गौरी पुरुषं महेशम्॥ २२

श्रीमहेश बोले—हे प्रिये! तुमने मेरे नेत्रोंको बन्दकर जो कर्म किया है, अब उससे भयभीत क्यों हो रही हो? महादेवजीके इस वचनको सुनकर हँसती हुई गौरीने उनके नेत्रोंको छोड़ दिया। तब प्रकाश हो जानेपर वह अन्धा पुरुष अन्धकारसे भी अधिक घोर रूपवाला हो गया। तब इस प्रकारके रूपवाले उस पुरुषको देखकर गौरीने महेश्वरसे पूछा— ॥ २१-२२ ॥

गौर्युवाच

कोऽयं विरूपो भगवन्हि जातो
नावग्रतो घोरभयंकरश्च।
वदस्व सत्यं मम किं निमित्तं
सृष्टोऽथ वा केन च कस्य पुत्रः॥ २३

गौरी बोलीं—हे भगवन्! हम दोनोंके सामने यह घोर, भयंकर तथा विकृताकार कौन उत्पन्न हो गया है? आप मुझसे सत्य कहिये, किस कारणसे तथा किसने इसकी सृष्टि की है, यह किसका पुत्र है?॥ २३ ॥

सनत्कुमार उवाच

श्रुत्वा हरस्तद्वचनं प्रियाया
लीलाकरः सृष्टिकृतोऽन्धरूपम्।
लीलाकरायास्त्रिजगज्जनन्या
विहस्य किंचिद्भगवानुवाच॥ २४

सनत्कुमार बोले—लीला करनेवाले एवं अन्धकको उत्पन्न करनेवाले भगवान् शंकरने लीला करनेवाली त्रिजगज्जननी प्रिया पार्वतीकी बात सुनकर हँसते हुए कहा— ॥ २४ ॥

महेश उवाच

शृण्वम्बिके ह्यद्भुतवृत्तकारे
उत्पन्न एषोऽद्भुतचण्डवीर्यः।
निमीलिते चक्षुषि मे भवत्या
स स्वेदजो मेऽन्धकनामधेयः॥ २५

महेश बोले—अद्भुत चरित्र करनेवाली हे अम्बिके! तुम्हारे द्वारा मेरे नेत्रोंके बन्द कर दिये जानेपर तुम्हारे हाथोंके स्वेदकणसे उत्पन्न यह अद्भुत महापराक्रमशाली अन्धक नामवाला असुर प्रकट हुआ है॥ २५॥

त्वं चास्य कर्तास्य यथानुरूपं
त्वया स सख्या दयया गणेभ्यः।
स रक्षितव्यस्त्वयि तं हि वैकं
विचार्य बुद्ध्या करणीयमार्ये॥ २६

तुम्हीं इसकी जन्मदात्री हो, अतः हे आर्ये! तुम्हीं दयापूर्वक अपनी सखियोंके साथ गणोंसे इसकी रक्षा करो और बुद्धिसे विचारकर इसके विषयमें जो करना चाहती हो, उसे करो॥ २६ ॥

सनत्कुमार उवाच

गौरी ततो भर्तृवचो निशम्य
कारुण्यभावात्सहिता सखीभिः।
नानाप्रकारैर्बहुभिर्ह्युपायै-
श्चकार रक्षां स्वसुतस्य यद्वत्॥ २७

सनत्कुमार बोले—तदनन्तर अपने पतिके इस वचनको सुनकर गौरी [अपनी] सखियोंके साथ दयाभावसे अनेक प्रकारके उपायोंसे अपने पुत्रकी रक्षा करने लगीं॥ २७॥

कालेऽथ तस्मिन् शिशिरे प्रयातो
हिरण्यनेत्रस्त्वथ पुत्रकामः।
स्वज्येष्ठबंधोस्तनयप्रतानं
संवीक्ष्य चासीत्प्रियया नियुक्तः॥ २८

एक बार शिशिरकाल उपस्थित होनेपर अपने बड़े भाईकी सन्ततिवृद्धिको देखकर अपनी स्त्रीसे प्रेरित होकर पुत्रकी कामनावाला हिरण्याक्ष [तपस्या करनेके लिये] वहाँ पहुँचा॥ २८॥

अरण्यमाश्रित्य तपश्चकारा-
सुरस्तदा कश्यपजः सुतार्थम्।
काष्ठोपमोऽसौ जितरोषदोषः
संदर्शनार्थं तु महेश्वरस्य॥ २९

वह कश्यपपुत्र असुर वनका आश्रय लेकर क्रोधादि दोषोंको जीतकर पुत्रप्राप्तिके निमित्त काष्ठके समान स्थिर होकर शंकरजीके दर्शनहेतु तप करने लगा॥ २९॥

तुष्टः पिनाकी तपसास्य सम्यग्
वरप्रदानाय ययौ द्विजेन्द्र।
तत्स्थानमासाद्य वृषध्वजोऽसौ
जगाद दैत्यप्रवरं महेशः॥ ३०

हे द्विजेन्द्र! तब उसकी तपस्यासे पूर्ण रूपसे प्रसन्न होकर शंकरजी वर देनेके लिये गये। उस स्थानपर आकर वे वृषध्वज महेश उस दैत्यश्रेष्ठसे बोले— ॥ ३०॥

महेश उवाच

हे दैत्यनाथ कुरु नेन्द्रियसंघपातं
किमर्थमेतद् व्रतमाश्रितं ते।
प्रब्रूहि कामं वरदो भवोऽहं
यदिच्छसि त्वं सकलं ददामि॥ ३१

महेश बोले—हे दैत्यराज! तुम अपनी इन्द्रियोंको कष्ट मत दो, तुम किस निमित्त यह व्रत कर रहे हो। तुम अपना मनोरथ कहो, मैं शंकर तुम्हें वर दूँगा। तुम जो चाहते हो, वह सब मैं दूँगा॥ ३१॥

सनत्कुमार उवाच

सरस्यमाकर्ण्य महेशवाक्यं
ह्यतिप्रसन्नः कनकाक्षदैत्यः।
कृतांजलिर्नम्रशिरा उवाच
स्तुत्या च नत्वा विविधं गिरीशम्॥ ३२

सनत्कुमार बोले—शिवजीका यह सरस वचन सुनकर वह दैत्य हिरण्याक्ष अत्यन्त प्रसन्न हो गया और हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर एवं नमस्कार करके विविध स्तुतिपूर्वक शंकरजीसे कहने लगा— ॥ ३२॥

हिरण्याक्ष उवाच

पुत्रस्तु मे चन्द्रललाट नास्ति
सुवीर्यवान्दैत्यकुलानुरूपी ।
तदर्थमेतद् व्रतमास्थितोऽहं
तं देहि देवेश सुवीर्यवन्तम्॥ ३३
यस्माच्च मद् भ्रातुरनंतवीर्याः
प्रह्लादपूर्वा अपि पञ्चपुत्राः।
ममेह नास्तीति गतान्वयोऽहं
को मामकं राज्यमिदं बुभूषेत्॥ ३४
राज्यं परस्य स्वबलेन हत्वा
भुङ्क्तेऽथवा स्वं पितुरेव दृष्टम्।
स प्रोच्यते पुत्र इह त्वमुत्र
पुत्री स तेनापि भवेत्पितासौ॥ ३५

हिरण्याक्ष बोला—हे चन्द्रमौले! मुझे दैत्यवंशके योग्य एवं अति पराक्रमी कोई पुत्र नहीं है, उसीके लिये मैं इस तपस्यामें प्रवृत्त हुआ हूँ। अतः हे देवेश! आप मुझे महाबलवान् पुत्र प्रदान कीजिये; क्योंकि मेरे भाईको प्रह्लाद आदि पाँच महाबलवान् पुत्र हैं, मुझे पुत्र नहीं है, मैं वंशहीन हो गया हूँ, अतः मेरे इस राज्यका भोग कौन करेगा? जो अपने बाहुबलसे दूसरेके राज्यको अपने अधिकारमें करके उसका भोग करता है अथवा पिताके राज्यका उपभोग करता है, वही इस लोकमें तथा परलोकमें पुत्र कहा जाता है और उसी पुत्रसे पिता भी पुत्रवान् होता है॥ ३३—३५॥

ऊर्ध्वं गतिः पुत्रवतां निरुक्ता
मनीषिभिर्धर्मभृतां वरिष्ठैः।
सर्वाणि भूतानि तदर्थमेव-
मतः प्रवर्तेत पशून् स्वतेजः॥ ३६
निरन्वयस्याथ न संति लोकाः
तदर्थमिच्छन्ति जनाः सुरेभ्यः।
सदा समाराध्य सुराङ्घ्रिपंकजं
याचन्त इत्थं सुतमेकमेव॥ ३७

वरिष्ठ धर्मज्ञ ऋषियोंने पुत्रवानोंकी ही ऊर्ध्वगति कही है, इसीलिये सभी प्राणी उसीके लिये कामना करते हैं, अन्यथा मरनेके पश्चात् वह तेज पशुओंमें चला जाता है अर्थात् व्यर्थ हो जाता है। पुत्रहीनको उत्तम लोक नहीं प्राप्त होता है, इसलिये लोग उसके लिये इच्छा रखते हैं और देवताओंके चरण-कमलकी आराधनाकर उनसे एक पुत्रकी भी याचना करते हैं॥ ३६-३७॥

सनत्कुमार उवाच

एतद्भवस्तद्वचनं निशम्य
कृपाकरो दैत्यनृपस्य तुष्टः।
तमाह दैत्याधिप नास्ति पुत्रः
त्वद्वीर्यजः किंतु ददामि पुत्रम्॥ ३८

सनत्कुमार बोले—तब कृपालु शंकर दैत्यराजके उस वचनको सुनकर प्रसन्न हो गये और उससे बोले—हे दैत्यराज! यद्यपि तुम्हारे वीर्यसे पुत्र उत्पन्न नहीं होगा, फिर भी मैं तुम्हें पुत्र प्रदान करता हूँ॥ ३८॥

ममात्मजं त्वन्धकनामधेयं
त्वत्तुल्यवीर्यं त्वपराजितं च।
वृणीष्व पुत्रं सकलं विहाय
दुःखं प्रतीच्छस्व सुतं त्वमेव॥ ३९

तुम अन्धक नामक मेरे पुत्रका वरण कर लो, जो तुम्हारे ही समान बलवान् और अजेय है। तुम सब दुःखोंको त्यागकर उसीको अपना पुत्र मान लो॥ ३९॥

इत्येवमुक्त्वा प्रददौ स तस्मै
हिरण्यनेत्राय सुतं प्रसन्नः।
हरस्तु गौर्य्या सहितो महात्मा
भूतादिनाथस्त्रिपुरारिरुग्रः॥ ४०

इस प्रकार कहकर प्रसन्न होकर पार्वतीसहित त्रिपुरारि उग्ररूप महात्मा शंकरने उस हिरण्याक्षको पुत्र प्रदान कर दिया॥ ४०॥

ततो हरात्प्राप्य सुतं स दैत्यः
प्रदक्षिणीकृत्य यथाक्रमेण।
स्तोत्रैरनेकैरभिपूज्य रुद्रं
तुष्टः स्वराज्यं गतवान्महात्मा॥ ४१

इसके बाद वह महात्मा दैत्य शंकरसे पुत्र प्राप्तकर यथाक्रम उनकी प्रदक्षिणाकर तथा अनेक स्तोत्रोंसे रुद्रकी स्तुतिकर प्रसन्न होकर अपने राज्यको चला गया॥ ४१॥

ततस्तु पुत्रं गिरिशादवाप्य
रसातलं चंडपराक्रमस्तु।
इमां धरित्रीमनयत्स्वदेशं
दैत्यो विजित्वा त्रिदशानशेषान्॥ ४२

तदनन्तर प्रचण्ड पराक्रमी वह दैत्य सदाशिवसे पुत्र प्राप्तकर सम्पूर्ण देवताओंको जीतकर इस पृथ्वीको अपने देश पातालमें लेकर चला गया॥ ४२॥

ततस्तु देवैर्मुनिभिश्च सिद्धैः
सर्वात्मकं यज्ञमयं करालम्।
वाराहमाश्रित्य वपुः प्रधान-
माराधितो विष्णुरनन्तवीर्यः॥ ४३

उसके अनन्तर देवताओं, मुनियों एवं सिद्धोंने सर्वात्मक, यज्ञमय तथा महाविकराल प्रधान वाराहरूपका आश्रय लेकर अनन्त पराक्रमवाले विष्णुका आराधन किया॥ ४३॥

घोणाप्रहारैर्विविधैर्धरित्रीं
विदार्य पातालतलं प्रविश्य।
तुंडेन दैत्यान् शतशो विचूर्ण्य
दंष्ट्राभिरग्र्याभिरखंडिताभिः॥ ४४

तब अपनी नासिकाके विविध प्रहारोंसे पृथ्वीको विदीर्णकर पातालमें प्रविष्ट हो तुण्डके द्वारा तथा अखण्डित दाढ़ोंके अग्रभागसे सैकड़ों दैत्योंको चूर्ण करके वज्रके समान कठोर पादप्रहारोंसे

पादप्रहारैरशनिप्रकाशै-
रुन्मथ्य सैन्यानि निशाचराणाम्।
मार्तंडकोटिप्रतिमेन पश्चात्
सुदर्शनेनाद्भुतचंडतेजाः ॥ ४५
हिरण्यनेत्रस्य शिरो ज्वलन्तं
चिच्छेद दैत्यांश्च ददाह दुष्टान् ।
ततः प्रहृष्टो दितिजेन्द्रराज-
स्तमन्धकं तत्र स चाभ्यषिञ्चत्॥ ४६

निशाचरोंकी सेनाओंको मथकर करोड़ों सूर्योंके समान जाज्वल्यमान अपने सुदर्शनसे अद्भुत तथा प्रचण्ड तेजवाले विष्णुने हिरण्याक्षके तेजस्वी सिरको काट दिया और दैत्योंको जला भी दिया। हिरण्याक्षके मर जानेपर उन्होंने प्रसन्न होकर अन्धकको राज्यपदपर अभिषिक्त कर दिया॥ ४४—४६॥

स्वस्थानमागत्य ततो धरित्रीं
दंष्ट्राङ्कुरेणोद्धरतः प्रहृष्टः।
भूमिं च पातालतलान्महात्मा
पुपोष भागं त्वथ पूर्वकं तु॥ ४७
देवैः समस्तैर्मुनिभिः प्रहृष्टै-
रभिष्टुतः पद्मभुवा च तेन।
ययौ स्वलोकं हरिरुग्रकायो
वराहरूपस्तु सुकार्यकर्ता॥ ४८

इस प्रकार महात्मा विष्णु पातालतलसे पृथ्वीका उद्धारकर अपनी दाढ़ोंके अग्रभागसे पृथ्वीको पुनः अपने स्थानपर प्रतिष्ठितकर परम प्रसन्न हो गये और पूर्वकी भाँति उसकी रक्षा करने लगे। प्रसन्न हुए समस्त देवता, मुनि तथा ब्रह्माजीने उनकी स्तुति की। उसके बाद उग्र शरीरवाले तथा उत्तम कार्य करनेवाले वराहरूपधारी विष्णु अपने लोकको चले गये॥ ४७-४८॥

हिरण्यनेत्रेऽथ हतेऽसुरेशे
वराहरूपेण सुरेण सद्यः।
देवाः समस्ता मुनयश्च सर्वे
परे च जीवाः सुखिनो बभूवुः॥ ४९

इस प्रकार वराहरूप विष्णुदेवके द्वारा दैत्यराज हिरण्याक्षके मारे जानेसे सभी देवता, मुनि तथा अन्य सभी जीव सुखी हो गये॥ ४९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे हिरण्याक्षवधो नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें हिरण्याक्षवधवर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

हिरण्यकशिपुकी तपस्या, ब्रह्मासे वरदान पाकर उसका अत्याचार, भगवान् नृसिंहद्वारा उसका वध और प्रह्लादको राज्यप्राप्ति

व्यास उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ हते तस्मिन्सुरद्रुहि।
किमकार्षीत्ततस्तस्य ज्येष्ठभ्राता महासुरः॥ १

कुतूहलमिति श्रोतुं ममास्तीह मुनीश्वर।
तच्छ्रावय कृपां कृत्वा ब्रह्मपुत्र नमोऽस्तु ते॥ २

व्यासजी बोले—हे सर्वज्ञ! हे सनत्कुमार! देवताओंसे द्रोह करनेवाले उस हिरण्याक्षके मार दिये जानेपर उसके ज्येष्ठ भ्राता महान् असुर [हिरण्यकशिपु]-ने क्या किया? हे मुनीश्वर! मुझे इस वृत्तान्तको सुननेके लिये महान् कौतूहल हो रहा है। हे ब्रह्मपुत्र! कृपा करके मुझे उसे सुनाइये, आपको नमस्कार है॥ १-२॥

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य व्यासस्य स मुनीश्वरः।
सनत्कुमारः प्रोवाच स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम्॥ ३

ब्रह्माजी बोले—व्यासजीके वचनको सुनकर सनत्कुमार शिवके चरणकमलोंका स्मरण करके कहने लगे—॥ ३॥

सनत्कुमार उवाच

भ्रातर्येवं विनिहते हरिणा क्रोडमूर्तिना।
हिरण्यकशिपुर्व्यास पर्यतप्यद्रुषा शुचा॥ ४

सनत्कुमार बोले—हे व्यास! वराहरूप धारण करनेवाले [भगवान्] विष्णुके द्वारा भाई हिरण्याक्षका वध कर दिये जानेपर हिरण्यकशिपु क्रोध एवं शोकसे सन्तप्त हो उठा। इसके बाद विष्णुसे वैरमें रुचि रखनेवाले उस हिरण्यकशिपुने प्रजाओंको कष्ट देनेके लिये निर्दयी वीर असुरोंको आज्ञा दी॥ ४-५॥

ततः प्रजानां कदनं विधातुं कदनप्रियान्।
निर्दिदेशाऽसुरान्वीरान्हरिवैरप्रियो हि सः॥ ५

अथ ते भर्तृसंदेशमादाय शिरसाऽसुराः।
देवप्रजानां कदनं विदधुः कदनप्रियाः॥ ६

तब वे निर्दयी असुर अपने स्वामीकी आज्ञा प्राप्तकर देवताओं तथा प्रजाओंको कष्ट देने लगे॥ ६॥

ततो विप्रकृते लोकेऽसुरैस्तैर्दुष्टमानसैः।
दिवं देवाः परित्यज्य भुवि चेरुरलक्षिताः॥ ७

इस प्रकार जब दुष्ट बुद्धिवाले उन असुरोंने लोकका उत्पीड़न प्रारम्भ किया, तब देवतालोग स्वर्ग छोड़कर अलक्षित होकर पृथ्वीपर घूमने लगे॥ ७॥

हिरण्यकशिपुर्भ्रातुः संपरेतस्य दुःखितः।
कृत्वा करोदकादीनि तत्कलत्राद्यसान्त्वयत्॥ ८

हिरण्यकशिपुने भी भाईके मर जानेसे दुःखित होकर उसे तिलांजलि आदि प्रदानकर उसकी स्त्री आदिको सान्त्वना प्रदान की॥ ८॥

ततः स दैत्यराजेन्द्रो ह्यजेयमजरामरम्।
आत्मानमप्रतिद्वंद्वमेकराज्यं व्यधित्सत॥ ९

इसके बाद वह दैत्यराज अपनेको अजर, अमर, अजेय और प्रतिद्वन्द्वीरहित जानकर एकच्छत्र राज्य करने लगा॥ ९॥

स तेपे मंदरद्रोण्यां तपः परमदारुणम्।
ऊर्ध्वबाहुर्नभोदृष्टिः पादांगुष्ठाश्रितावनिः॥ १०

वह मन्दराचलकी गुफामें पैरके अँगूठेमात्रको पृथ्वीपर टेककर दोनों भुजाओंको ऊपर उठाकर आकाशकी ओर देखते हुए अत्यन्त कठोर तप करने लगा॥ १०॥

तस्मिंस्तपस्तप्यमाने देवाः सर्वे बलान्विताः।
दैत्यान्सर्वान्विनिर्जित्य स्वानि स्थानानि भेजिरे॥ ११

इस प्रकार जब वह असुर तप कर रहा था, तब सभी बलवान् देवताओंने समस्त दैत्योंको जीतकर अपना-अपना पद पुनः प्राप्त कर लिया॥ ११॥

तस्य मूर्ध्नः समुद्भूतः सधूमोऽग्निस्तपोमयः।
तिर्यगूर्ध्वमधोलोकानतपद्विष्वगीरितः॥ १२

तेन तप्ता दिवं त्यक्त्वा ब्रह्मलोकं ययुः सुराः।
धात्रे विज्ञापयामासुस्तत्तपोविकृताननाः॥ १३

[तपस्या करते हुए] उस हिरण्यकशिपुके सिरसे धूमसहित तपोमय अग्नि प्रकट हुई। वह तिरछे, ऊपर, नीचे तथा चारों ओरसे फैलकर सभी लोकोंको तपाने लगी। उससे तप्त होकर देवगण स्वर्गलोक छोड़कर ब्रह्मलोक चले गये। उसकी तपस्यासे विकृत मुखवाले उन देवताओंने ब्रह्माजीसे सारा वृत्तान्त कहा॥ १२-१३॥

अथ विज्ञापितो देवैर्व्यास तैरात्मभूर्विधिः।
परीतो भृगुदक्षाद्यैर्ययौ दैत्येश्वराश्रमम्॥ १४

प्रताप्य लोकानखिलांस्ततोऽसौ
समागतं पद्मभवं ददर्श।
वरं हि दातुं तमुवाच धाता
वरं वृणीष्वेति पितामहोऽपि।
निशम्य वाचं मधुरां विधातु-
र्वचोऽब्रवीदेवममूढबुद्धिः॥ १५

हे व्यास! उन देवताओंके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर स्वयम्भू ब्रह्माजी भृगु, दक्ष आदिको अपने साथ लेकर उस दैत्येन्द्रके आश्रमपर गये। उसके बाद अपनी तपस्यासे सारे लोकोंको सन्तप्तकर उस दैत्यराजने वर देनेके लिये आये हुए ब्रह्माजीको देखा। पितामह ब्रह्माने भी उससे कहा—वर माँग लो। तब विधाताका मधुर वचन सुनकर वह बुद्धिमान् यह वचन कहने लगा—॥ १४-१५॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

मृत्योर्भयं मे भगवन्प्रजेश
पितामहाभून्न कदापि देव।
शस्त्रास्त्रपाशाशनिशुष्कवृक्ष-
गिरीन्द्रतोयाग्निरिपुप्रहारैः ॥ १६
देवैश्च दैत्यैर्मुनिभिश्च सिद्धैः
त्वत्सृष्टजीवैर्बहुवाक्यतः किम्।
स्वर्गे धरण्यां दिवसे निशायां
नैवोर्ध्वतो नाप्यधतः प्रजेश ॥ १७

हिरण्यकशिपु बोला—हे भगवन्! हे प्रजेश! हे पितामह! हे देव! शस्त्र, अस्त्र, पाश, वज्र, सूखे वृक्ष, पहाड़, जल, अग्नि तथा शत्रुओंके प्रहारसे और देव, दैत्य, मुनि, सिद्ध तथा आपके द्वारा रचित सृष्टिके किसी भी जीवसे मुझे मृत्युका भय न हो, हे प्रजेश! अधिक क्या कहूँ, स्वर्गमें, पृथ्वीपर, रात एवं दिनमें, ऊपर-नीचे कहीं भी मेरी मृत्यु न हो॥ १६-१७॥

सनत्कुमार उवाच

तस्यैतदीदृग्वचनं निशम्य
दैत्येन्द्र तुष्टोऽस्मि लभस्व सर्वम्।
प्रणम्य विष्णुं मनसा तमाह
दयान्वितोऽसाविति पद्मयोनिः ॥ १८
अलं तपस्ते परिपूर्णकामः
समाः सहस्राणि च षण्णवत्यः।
उत्तिष्ठ राज्यं कुरु दानवानां
श्रुत्वा गिरं तत्सुमुखो बभूव ॥ १९
राज्याभिषिक्तः प्रपितामहेन
त्रैलोक्यनाशाय मतिं चकार।
उत्साद्य धर्मान् सकलान्प्रमत्तो
जित्वाहवे सोऽपि सुरान्समस्तान् ॥ २०

सनत्कुमार बोले—उस दैत्यके इस प्रकारके वचनको सुनकर मनमें विष्णुको प्रणाम करके दयासे युक्त होकर ब्रह्माजी उससे बोले—हे दैत्येन्द्र! मैं [तुमपर] प्रसन्न हूँ, तुम सब कुछ प्राप्त करो॥ १८॥

[हे दैत्येन्द्र!] अब तुम तपस्या करना छोड़ो; क्योंकि तुम्हारा मनोरथ परिपूर्ण हो गया। उठो, छियानबे हजार वर्षतक दानवोंका राज्य करो। यह वाणी सुनकर वह हर्षित हो गया। उसके अनन्तर ब्रह्माजीके द्वारा अभिषिक्त वह दैत्य प्रमत्त होकर सभी धर्मोंको नष्ट करके और देवताओंको भी युद्धमें जीतकर तीनों लोकोंको नष्ट करनेका विचार करने लगा॥ १९-२०॥

ततो भयाद् इन्द्रमुखाश्च देवाः
पितामहाज्ञां समवाप्य सर्वे।
उपद्रुता दैत्यवरेण जाताः
क्षीरोदधिं यत्र हरिस्तु शेते ॥ २१

तब उस दैत्यराजसे पीड़ित हुए इन्द्रादि सभी देवता भयसे व्याकुल हो पितामहकी आज्ञा प्राप्त करके क्षीरसागरमें गये, जहाँ विष्णु शयन करते हैं॥ २१॥

आराधयामासुरतीव विष्णुं
स्तुत्वा वचोभिः सुखदं हि मत्वा।
निवेदयामासुरथो प्रसन्नं
दुःखं स्वकीयं सकलं हि ते ते ॥ २२

उन्होंने विष्णुको अपने लिये सुखदायक जानकर अनेक प्रकारके वचनोंसे उनकी स्तुति करके प्रसन्न हुए विष्णुसे अपना सारा दुःख निवेदित किया॥ २२॥

श्रुत्वा तदीयं सकलं हि दुःखं
तुष्टो रमेशः प्रददौ वरांस्तु।
उत्थाय तस्माच्छयनादुपेन्द्रो
निजानुरूपैर्विविधैर्वचोभिः ॥ २३
आश्वास्य देवानखिलान्मुनीन्वा
उवाच वैश्वानरतुल्यतेजाः।
दैत्यं हनिष्ये प्रसभं सुरेशाः
प्रयात धामानि निजानि तुष्टाः ॥ २४

तब प्रसन्न विष्णुने उनका समस्त दुःख सुनकर उन्हें अनेक वरदान दिये और शय्यासे उठकर अग्निके समान तेजस्वी उन्होंने अपने अनुरूप नाना प्रकारकी वाणियोंसे आश्वासन देते हुए कहा कि हे देवताओ! आपलोग प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थानको जायँ; मैं उस दैत्यका वध अवश्य करूँगा॥ २३-२४॥

श्रुत्वा रमेशस्य वचः सुरेशाः
शक्रादिकास्ते निखिलाः सुतुष्टाः।
ययुः स्वधामानि हिरण्यनेत्रा-
नुजं च मत्वा निहतं मुनीश॥ २५

आश्रित्य रूपं जटिलं करालं
दंष्ट्रायुधं तीक्ष्णनखं सुनासम्।
सैंहं च नारं सुविदारितास्यं
मार्तंडकोटिप्रतिमं सुघोरम्॥ २६

युगांतकालाग्निसमप्रभावं
जगन्मयं किं बहुभिर्वचोभिः।
अस्ते रवौ सोऽपि हि गच्छतीशो
गतोऽसुराणां नगरीं महात्मा॥ २७

कृत्वा च युद्धं प्रबलैः स दैत्यै-
र्हत्वाथ तान्दैत्यगणान्गृहीत्वा।
बभ्राम तत्राद्भुतविक्रमश्च
बभंज तांस्तानसुरान्नृसिंहः॥ २८

दृष्टः स दैत्यैरतुलप्रभाव-
स्ते रेभिरे ते हि तथैव सर्वे।
सिंहं च तं सर्वमयं निरीक्ष्य
प्रह्लादनामा दितिजेन्द्रपुत्रः।
उवाच राजानमयं मृगेन्द्रो
जगन्मयः किं समुपागतश्च॥ २९

प्रह्लाद उवाच

एष प्रविष्टो भगवाननन्तो
नृसिंहमात्रो नगरं त्वदन्तः।
निवृत्य युद्धाच्छरणं प्रयाहि
पश्यामि सिंहस्य करालमूर्त्तिम्॥ ३०

यस्मान्न योद्धा भुवनत्रयेऽपि
कुरुष्व राज्यं विनमन्मृगेन्द्रम्।
श्रुत्वा स्वपुत्रस्य वचो दुरात्मा
तमाह भीतोऽसि किमत्र पुत्र॥ ३१

उक्त्वेति पुत्रं दितिजाधिनाथो
दैत्यर्षभान्वीरवरान्स राजा।
गृह्णन्तु वै सिंहममुं भवन्तो
वीरा विरूपभ्रुकुटीक्षणं तु॥ ३२

तस्याज्ञया दैत्यवरास्ततस्ते
ग्रहीतुकामा विविशुर्मृगेन्द्रम्।

हे मुनीश! विष्णुका वचन सुनकर इन्द्र आदि सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न हो गये और हिरण्याक्षके भाईको मरा हुआ मानकर अपने-अपने लोकको चले गये॥ २५॥

तदनन्तर महाजटायुक्त, विकराल, तीखे दाँतस्वरूप आयुधवाले, तीक्ष्ण नखोंवाले, सुन्दर नासिकावाले, पूर्णतः खुले हुए मुखवाले, करोड़ों सूर्यके समान जाज्वल्यमान, अत्यन्त भयंकर, अधिक क्या कहें प्रलयकालीन अग्निके समान प्रभाववाले वे महात्मा विष्णु जगन्मय नृसिंहका रूप धारण करके सूर्यके अस्त होते समय असुरोंकी नगरीमें गये॥ २६-२७॥

अद्भुत पराक्रमवाले नृसिंह प्रबल दैत्योंके साथ युद्ध करते हुए उन्हें मारकर शेष दैत्योंको पकड़कर घुमाने लगे और उन्होंने उन असुरोंको पटककर मार डाला॥ २८॥

दैत्योंने उन अतुल प्रभाववाले नृसिंहको देखा और उन्होंने पुनः युद्ध करना प्रारम्भ किया। हिरण्यकशिपुके प्रह्लाद नामक पुत्रने नृसिंहको देखकर राजासे कहा—यह मृगेन्द्र जगन्मय विष्णु तो नहीं हैं?॥ २९॥

प्रह्लाद बोले—ये भगवान् अनन्त नृसिंहका रूप धारणकर आपके नगरमें प्रविष्ट हुए हैं, अतः आप युद्ध छोड़कर उनकी शरणमें जाइये, मैं इस सिंहकी विकराल मूर्तिको देख रहा हूँ॥ ३०॥

[हे दैत्येन्द्र!] इनसे बढ़कर इस जगत्में और कोई योद्धा नहीं है, अतः इनकी प्रार्थनाकर आप राज्य करें। तब अपने पुत्रकी बात सुनकर दुरात्मा उससे बोला—हे पुत्र! क्या तुम डर गये हो?॥ ३१॥

पुत्रसे इस प्रकार कहकर दैत्योंके स्वामी उस राजाने महावीर श्रेष्ठ दैत्योंको आज्ञा दी कि हे वीरो! इस विकृत भृकुटी तथा नेत्रवाले नृसिंहको पकड़ लो॥ ३२॥

तब उसकी आज्ञासे पकड़नेकी इच्छावाले दैत्यश्रेष्ठ उस सिंहकी ओर जाने लगे, किंतु वे क्षणभरमें इस प्रकार दग्ध हो गये, जैसे रूपकी

क्षणेन दग्धाः शलभा इवाग्निं
रूपाभिलाषात्प्रविविक्षवो वै॥ ३३
दैत्येषु दग्धेष्वपि दैत्यराज-
श्चकार युद्धं स मृगाधिपेन।
शस्त्रैः समग्रैरखिलैस्तथास्त्रैः
शक्त्यर्ष्टिपाशांकुशपावकाद्यैः ॥ ३४
संयुध्यतोरेव तयोर्जगाम
ब्राह्मं दिनं व्यास हि शस्त्रपाण्योः।
प्रवीरयोर्वीररवेण गर्जतोः
परस्परं क्रोधसुयुक्तचेतसोः॥ ३५
ततः स दैत्यः सहसा बहूंश्च
कृत्वा भुजान् शस्त्रयुतान्निरीक्ष्य।
नृसिंहरूपं प्रययौ मृगेन्द्रं
संयुध्यमानं सहसा समन्तात्॥ ३६
ततः सुयुद्धं त्वतिदुःसहं तु
शस्त्रैः समस्तैश्च तथाखिलास्त्रैः।
कृत्वा महादैत्यवरो नृसिंहं
क्षयं गतैः शूलधरोऽभ्युपायात्॥ ३७
ततो गृहीतः स मृगाधिपेन
भुजैरनेकैर्गिरिसारवद्भिः।
निधाय जानौ स भुजान्तरेषु
नखांकुरैर्दानवमर्मभिद्भिः ॥ ३८
नखास्त्रहृत्पद्मसृग्विमिश्र-
मुत्पाद्य जीवाद्विगतः क्षणेन।
त्यक्तस्तदानीं स तु काष्ठभूतः
पुनः पुनश्चूर्णितसर्वगात्रः॥ ३९
तस्मिन्हते देवरिपौ प्रसन्नः
प्रह्लादमामंत्र्य कृतप्रणामम्।
राज्येऽभिषिच्याद्भुतवीर्यविष्णु-
स्ततः प्रयातो गतिमप्रतर्क्याम्॥ ४०
ततोऽतिहृष्टाः सकलाः सुरेशाः
प्रणम्य विष्णुं दिशि विप्र तस्याम्।
ययुः स्वधामानि पितामहाद्याः
कृतस्वकार्यं भगवन्तमीड्यम्॥ ४१
प्रवर्णितं त्वन्धकजन्म रुद्राद्
हिरण्यनेत्रस्य मृतिर्वराहात्।
नृसिंहतस्तत्सहजस्य नाशः
प्रह्लादराज्याप्तिरिति प्रसंगात्॥ ४२

अभिलाषावाले पतिंगे अग्निके समीप जाते ही जल जाते हैं। उन दैत्योंके दग्ध हो जानेपर वह दैत्यराज स्वयं सभी अस्त्र, शस्त्र, शक्ति, पाश, अंकुश, अग्नि आदिके द्वारा नृसिंहसे संग्राम करने लगा॥ ३३-३४॥

हे व्यास! इस प्रकार शस्त्र धारणकर गर्जनाकर क्रोधपूर्वक परस्पर युद्ध करते हुए उन दोनों महावीरोंका ब्रह्माके एक दिनके बराबर समय व्यतीत हो गया॥ ३५॥

उसके बाद अनेक भुजाओंको धारणकर चारों ओरसे युद्ध करते हुए उन नृसिंहको देखकर वह दैत्य पुनः उनसे सहसा भिड़ गया॥ ३६॥

तब वह महादैत्य नाना प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे अत्यन्त दुःसह संग्राम करके उन शस्त्रास्त्रोंके क्षीण हो जानेपर शूल लेकर नृसिंहपर झपट पड़ा॥ ३७॥

इसके बाद नृसिंहने पर्वतके समान अपनी अनेक कठोर भुजाओंसे उसे पकड़ लिया और भुजाओंके मध्य दोनों जानुओंपर उस दानवको रखकर मर्मभेदी नखांकुरोंसे उसके हृत्कमलको फाड़कर उसे लहूलुहान करके उसके सभी अंगोंको चूर्ण कर डाला। प्राणोंसे रहित हो जानेपर वह उस समय काष्ठके समान हो गया॥ ३८-३९॥

उस देवशत्रुके मारे जानेपर अद्भुत पराक्रमवाले विष्णु प्रसन्न होकर प्रणाम किये हुए प्रह्लादको बुलाकर उसे राज्यपर अभिषिक्त करनेके अनन्तर अन्तर्धान हो गये। हे विप्र! तब अत्यन्त हर्षित पितामहादि समस्त देवता अपना कार्य पूर्ण कर चुके स्तुत्य भगवान् विष्णुको एवं उस दिशाकी ओर प्रणामकर अपने-अपने धामको चले गये। [हे व्यास!] मैंने प्रसंगवश रुद्रसे अन्धकका जन्म, वराहसे हिरण्याक्षकी मृत्यु, नृसिंहसे उसके भाई हिरण्यकशिपुका वध एवं प्रह्लादकी राज्यप्राप्ति—इन सबका वर्णन किया॥ ४०—४२॥

श्रृणु त्विदानीं द्विजवर्य मत्तोऽ-
न्धकप्रभावं भवकृत् प्रलब्धम्।
हरेण युद्धं खलु तस्य पश्चाद्
गणाधिपत्यं गिरिशस्य तस्य॥ ४३

हे द्विजवर्य! अब आप शिवजीसे प्राप्त अन्धकके पराक्रम, शिवसे उसके युद्ध तथा बादमें उसकी शिवजीसे गणाधिपत्यकी प्राप्तिको मुझसे सुनिये॥ ४३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे गणाधिपत्यप्राप्त्यंधक-जन्महिरण्यनेत्रहिरण्यकशिपुवधवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें गणाधिपत्यप्राप्ति-अन्धकजन्म-हिरण्यनेत्र-हिरण्यकशिपुवधवर्णन नामक तैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४३॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

अन्धकासुरकी तपस्या, ब्रह्माद्वारा उसे अनेक वरोंकी प्राप्ति, त्रिलोकीको जीतकर उसका स्वेच्छाचारमें प्रवृत्त होना, मन्त्रियोंद्वारा पार्वतीके सौन्दर्यको सुनकर मुग्ध हो शिवके पास सन्देश भेजना और शिवका उत्तर सुनकर क्रुद्ध हो युद्धके लिये उद्योग करना

सनत्कुमार उवाच

ततो हिरण्याक्षसुतः कदाचि-
त्संश्रावितो नर्मयुतैर्मदान्धैः।
तैर्भ्रातृभिः संप्रयुतो विहारे
किमंध राज्येन तवाद्य कार्यम्॥ १
हिरण्यनेत्रस्तु बभूव मूढः
कलिप्रियं नेत्रविहीनमेव।
यो लब्धवांस्त्वां विकृतं विरूपं
घोरैस्तपोभिर्गिरिशं प्रसाद्य॥ २
स त्वं न भागी खलु राज्यकस्य
किमन्यजातोऽपि लभेत राज्यम्।
विचार्यतां तद्भवतैव नूनं
वयं तु तद्भागिन एव सत्यम्॥ ३

सनत्कुमार उवाच

तेषां तु वाक्यानि निशम्य तानि
विचार्य बुद्ध्या स्वयमेव दीनः।
तान् शान्तयित्वा विविधैर्वचोभिः
गतस्त्वरण्यं निशि निर्जनं तु॥ ४
वर्षायुतं तत्र तपश्चचार
जजाप जाप्यं विधृतैकपादः।
आहारहीनो नियमोर्ध्वबाहुः
कर्त्तुं न शक्यं हि सुरासुरैर्यत्॥ ५

सनत्कुमार बोले—किसी समय जब हिरण्याक्षपुत्र अन्धक भाइयोंके साथ खेल रहा था, तब क्रीड़ामें आसक्त तथा मदान्ध उसके भाइयोंने [उपहास करते हुए] उससे कहा—हे अन्धक! तुम्हें राज्यसे क्या प्रयोजन?॥ १॥

[तुम्हारा पिता] हिरण्याक्ष निश्चय ही बड़ा मूर्ख था, जिसने घोर तपस्याके द्वारा शिवजीको प्रसन्नकर तुम्हारे-जैसा कलहप्रिय, अन्धा, विकृत एवं कुरूप पुत्र प्राप्त किया। तुम निश्चय ही राज्यके भागी नहीं हो। क्या दूसरेसे उत्पन्न हुआ व्यक्ति राज्यका अधिकारी बन सकता है? तुम्हीं विचार करो, उसके अधिकारी तो सचमुच हमलोग ही हैं॥ २-३॥

सनत्कुमार बोले—उनके उन वचनोंको वह बुद्धिसे स्वयं विचार करके दीन हो गया और उन्हें नाना प्रकारके वचनोंसे सान्त्वना देकर रातमें ही अकेले निर्जन वनको चला गया। वहाँ निराहार रहकर वह एक पैरपर खड़ा हो दोनों भुजाओंको उठाकर दस हजार वर्षपर्यन्त घोर तप एवं मन्त्रका जप करने लगा, जो देवता एवं राक्षसोंसे भी सम्भव नहीं था।

प्रज्वाल्य वह्निं स्म जुहोति गात्र-
मांसं सरक्तं खलु वर्षमात्रम्।
तीक्ष्णेन शस्त्रेण निकृत्य देहात्
समन्त्रकं प्रत्यहमेव हुत्वा॥ ६

वह अग्नि जलाकर तीक्ष्ण शस्त्रसे अपने शरीरसे मांस काटकर वर्षपर्यन्त प्रतिदिन मन्त्रपूर्वक रक्तयुक्त मांसका होम करने लगा॥ ४—६॥

स्नाय्वस्थिशेषं कुणपं तदासौ
क्षयं गतं शोणितमेव सर्वम्।
यदास्य मांसानि न सन्ति देहं
प्रक्षेप्तुकामस्तु हुताशनाय॥ ७
ततः स दृष्टस्त्रिदशालयैर्जनैः
सुविस्मितैर्भीतियुतैः समस्तैः।
अथामरैः शीघ्रतरं प्रसादितो
बभूव धाता नुतिभिर्नुतो हि॥ ८
निवारयित्वाथ पितामहस्तं
ह्युवाच त्वं चाद्य वरं वृणीष्व।
यस्याप्तिकामस्तव सर्वलोके
सुदुर्लभं दानव तं गृहाण॥ ९

जब उसके शरीरमें मांस नहीं रह गया, केवल स्नायु एवं अस्थिमात्र शेष रह गया, समस्त रक्त नष्ट हो गया, तब उसने अपने शरीरको ही अग्निमें डाल देनेका विचार किया। उसके अनन्तर सभी देवता अत्यन्त विस्मित एवं भयभीत होकर उसकी ओर देखने लगे, तब उन देवताओंने ब्रह्माजीको नमस्कारकर अनेक स्तुतियोंसे शीघ्र ही उन्हें प्रसन्न किया। ब्रह्माने उसे तपस्यासे विरत करके कहा—हे दानव! आज तुम वर माँगो, समस्त लोकमें जो दुर्लभ है एवं जिसकी प्राप्तिके लिये तुम इच्छुक हो, उस वरको मुझसे प्राप्त कर लो॥ ७—९॥

स पद्मयोनेस्तु वचो निशम्य
प्रोवाच दीनः प्रणतस्तु दैत्यः।
यैर्निष्ठुरैर्मे प्रहृतं तु राज्यं
प्रह्लादमुख्या मम सन्तु भृत्याः॥ १०

ब्रह्माके इस वचनको सुनकर दीन एवं विनम्र होकर उस दैत्यने कहा—हे ब्रह्मन्! प्रह्लाद आदि मेरे जिन निष्ठुर भाइयोंने मेरा राज्य छीन लिया है, वे मेरे सेवक हों॥ १०॥

अंधस्य दिव्यं हि तथास्तु चक्षु-
रिन्द्रादयो मे करदा भवन्तु।
मृत्युस्तु माभून्मम देवदैत्य-
गंधर्वयक्षोरगमानुषेभ्यः॥ ११
नारायणाद्वा दितिजेन्द्रशत्रोः
सर्वाज्जनात्सर्वमयाच्च शर्वात्।
श्रुत्वा वचस्तस्य सुदारुणं तत्
सुशंकितः पद्मभवस्तमाह॥ १२

मुझ अन्धेको दिव्य नेत्रकी प्राप्ति हो जाय एवं इन्द्रादि देवता मुझे कर प्रदान करें। मेरी मृत्यु देव, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, सर्प, राक्षस, मनुष्य, दैत्योंके शत्रु श्रीनारायण, आदि किसी प्राणी तथा सर्वमय शंकरसे भी न हो। उसके उस कठिन वचनको सुनकर ब्रह्माजी शंकित हो उससे कहने लगे—॥ ११-१२॥

ब्रह्मोवाच

दैत्येन्द्र सर्वं भविता तदेतद्
विनाशहेतुं च गृहाण किंचित्।
यस्मान्न जातो न जनिष्यते वा
यो न प्रविष्टो मुखमन्तकस्य॥ १३

ब्रह्माजी बोले—हे दैत्येन्द्र! यह सब पूर्ण होगा, किंतु अपनी मृत्युका कोई कारण अवश्य वरण करो; क्योंकि न तो ऐसा हुआ है और न होगा, जो कालके मुखमें प्रविष्ट न हुआ हो॥ १३॥

अत्यन्तदीर्घं खलु जीवितं तु
भवादृशाः सत्पुरुषाः त्यजन्तु।
एतद्वचः सानुनयं निशम्य
पितामहात्प्राह पुनः स दैत्यः॥ १४

अतः आप-जैसे सत्पुरुष अत्यन्त दीर्घ जीवनकी इच्छाका त्याग कर दें। ब्रह्माके इस अनुनयपूर्ण वचनको सुनकर वह दैत्य पुनः कहने लगा—॥ १४॥

अंधक उवाच

कालत्रये याश्च भवन्ति नार्यः
श्रेष्ठाश्च मध्याश्च तथा कनिष्ठाः।
तासां च मध्ये खलु रत्नभूता
ममापि नित्यं जननीव काचित्॥ १५
कायेन वाचा मनसाप्यगम्या
नारी नृलोकस्य च दुर्लभा या।
तां कामयानस्य ममास्तु नाशो
दैत्येन्द्रभावाद्भगवान्स्वयंभूः ॥ १६
वाक्यं तदाकर्ण्य स पद्मयोनिः
सुविस्मितः शंकरपादपद्मम्।
सस्मार संप्राप्य निदेशमाशु
शंभोस्तु तं प्राह ततोऽन्धकं वै॥ १७

ब्रह्मोवाच

यत्कांक्षसे दैत्य वरांस्तु ते वै
सर्वं भवत्येव वचः सकामम्।
उत्तिष्ठ दैत्येन्द्र लभस्व कामं
सदैव वीरैस्तु कुरुष्व युद्धम्॥ १८
श्रुत्वा तदेतद्वचनं मुनीश
विधातुराशु प्रणिपत्य भक्त्या।
लोकेश्वरं हाटकनेत्रपुत्रः
स्नाय्वस्थिशेषस्तु तमाह देवम्॥ १९

अंधक उवाच

कथं विभो वैरिबलं प्रविश्य
ह्यनेन देहेन करोमि युद्धम्।
स्नाय्वस्थिशेषं कुरु मांसपुष्टं
करेण पुण्येन च मां स्पृशाद्य॥ २०

सनत्कुमार उवाच

श्रुत्वा वचस्तस्य स पद्मयोनिः
करेण संस्पृश्य च तच्छरीरम्।
गतः सुरेन्द्रैः सहितः स्वधाम
संपूज्यमानो मुनिसिद्धसंघैः॥ २१
संस्पृष्टमात्रः स च दैत्यराजः
सम्पूर्णदेहो बलवान् बभूव।
संजातनेत्रः सुभगो बभूव
हृष्टः स्वमेवं नगरं विवेश॥ २२

अन्धक बोला—[हे ब्रह्मदेव!] तीनों कालोंमें जितनी भी श्रेष्ठ, मध्यम तथा कनिष्ठ स्त्रियाँ हैं, उन सभीमें जो रत्नस्वरूप सर्वश्रेष्ठ हो, वही मेरी माताके समान हो। हे भगवन्! हे स्वयम्भू! जो मनुष्यलोकके लिये दुर्लभ तथा मन, वाणी और शरीरसे सर्वथा अगम्य हो, जब मैं दैत्येन्द्र-भावसे उसकी कामना करूँ, तब मेरा नाश हो जाय॥ १५-१६॥

उसका वचन सुनकर ब्रह्माजीने आश्चर्य-चकित हो शिवके चरणकमलोंका स्मरण किया और शम्भुकी आज्ञा प्राप्त करके उस अन्धकसे शीघ्र कहा—॥ १७॥

ब्रह्माजी बोले—हे दैत्य! तुम जो भी अभिलाषा करते हो, तुम्हारी वे सभी कामनाएँ पूर्ण होंगी। हे दैत्येन्द्र! अपना अभीष्ट प्राप्त करो और वीरोंके साथ सदा युद्ध करो॥ १८॥

हे मुनीश्वर! ब्रह्माजीके ऐसे वचन सुनकर स्नायु तथा अस्थिमात्रशेष वह हिरण्याक्षपुत्र अन्धक ब्रह्माजीको भक्तिपूर्वक प्रणामकर उन प्रभुसे कहने लगा—॥ १९॥

अन्धक बोला—हे विभो! मैं इस विकृत शरीरसे शत्रुओंकी सेनामें प्रविष्ट होकर किस प्रकार युद्ध कर सकता हूँ? अतः अपने पवित्र हाथसे मुझे स्पर्श कीजिये और स्नायु तथा अस्थिशेष इस शरीरको शीघ्र ही मांससे पुष्ट कर दीजिये॥ २०॥

सनत्कुमार बोले—उसका वचन सुनकर वे ब्रह्मा उसके शरीरका स्पर्श करके मुनियों तथा सिद्धोंसे पूजित होते हुए देवेश्वरोंके साथ अपने धामको चले गये॥ २१॥

ब्रह्माके स्पर्शमात्रसे ही वह दैत्यराज सम्पूर्ण शरीरवाला तथा बलसम्पन्न हो गया। वह नेत्रयुक्त तथा सुन्दर हो गया और प्रसन्न होकर अपने नगरमें प्रविष्ट हुआ॥ २२॥

उत्सृज्य राज्यं सकलं च तस्मै
प्रह्लादमुख्यास्त्वथ दानवेन्द्राः।
तमागतं लब्धवरं च मत्वा
भृत्या बभूवुर्वशगास्तु तस्य॥ २३

तदनन्तर प्रह्लाद आदि सभी दैत्येन्द्र उसे वर प्राप्तकर आया हुआ समझकर सम्पूर्ण राज्य उसके लिये छोड़कर उसके अधीन होकर उसके सेवक हो गये॥ २३॥

ततोऽन्धकः स्वर्गमगाद्विजेतुं
सेनाभियुक्तः सहभृत्यवर्गः।
विजित्य देवान् प्रधने समस्तान्
करप्रदं वज्रधरं चकार॥ २४
नागान्सुपर्णान्वरराक्षसांश्च
गंधर्वयक्षानपि मानुषांस्तु।
गिरीन्द्रवृक्षान्समरेषु सर्वां-
श्चतुष्पदः सिंहमुखान्विजिग्ये॥ २५

तदनन्तर अन्धकने अपने भृत्यों एवं सेनाओंके साथ विजयकी इच्छासे स्वर्गकी ओर प्रस्थान किया और वहाँ युद्धमें समस्त देवताओंको जीतकर वज्रको धारण करनेवाले इन्द्रको भी करदाता बना दिया। उसने नागों, पक्षियों, बड़े-बड़े राक्षसों, गन्धर्वों, यक्षों, मनुष्यों, पर्वतों, वृक्षों एवं सिंहादि समस्त पशुओंको भी युद्धमें जीत लिया॥ २४-२५॥

त्रैलोक्यमेतद्धि चराचरं वै
वशं चकारात्मनि संनियोज्य।
ततोऽनुकूलानि सुदर्शनानि
नारीसहस्राणि बहूनि गत्वा॥ २६
रसातले चैव तथा धरायां
त्रिविष्टपे याः प्रमदाः सुरूपाः।
ताभिर्युतोऽन्येषु स पर्वतेषु
रराम रम्येषु नदीतटेषु॥ २७

उसने इस चराचर त्रैलोक्यपर अधिकार करके उसे अपने वशमें कर लिया। इसके बाद अपने अनुकूल सुन्दर हजारों स्त्रियोंके साथ विहार करता हुआ पाताल, पृथ्वीलोक तथा स्वर्गमें जितनी रूपवती स्त्रियाँ थीं, उनके साथ पर्वतों तथा मनोहर नदीतटोंपर वह रमण करने लगा॥ २६-२७॥

क्रीडायमानः स तु मध्यवर्ती
तासां प्रहर्षादथ दानवेन्द्रः।
तत्पीतशिष्टानि पिबन्प्रवृत्त्यै
दिव्यानि पेयानि सुमानुषाणि॥ २८

उनके मध्यमें क्रीड़ा करता हुआ वह दैत्येन्द्र काम-प्रवृत्तिके लिये स्त्रियोंके पीनेसे बचे हुए दिव्य एवं मानुष पेयोंको प्रसन्नताके साथ पीता था॥ २८॥

अन्यानि दिव्यानि तु यद्रसानि
फलानि पुष्पाणि सुगंधवंति।
संप्राप्य यानानि सुवाहनानि
मयेन सृष्टानि गृहोत्तमानि॥ २९

वह नाना प्रकारके दिव्य रस, फल, सुगन्धित पुष्प प्राप्त करके मय [दानव]-द्वारा निर्मित उत्तम गृहों तथा यानों एवं सुन्दर वाहनोंका सेवन करता था॥ २९॥

पुष्पार्घधूपान्नविलेपनैश्च
सुशोभितान्यद्भुतदर्शनैश्च।
संक्रीडमानस्य गतानि तस्य
वर्षायुतानीह तथान्धकस्य॥ ३०

अद्भुत दर्शनवाले पुष्प, अर्घ्य, धूप, मिष्टान्न, अंगराग आदिसे युक्त हो क्रीड़ा करते हुए उस अन्धक दैत्यके उत्तम दस हजार वर्ष बीत गये॥ ३०॥

जानाति किंचिन्न शुभं परत्र
यदात्मनः सौख्यकरं भवेद्धि।
सदान्धको दैत्यवरः स मूढो
मदांधबुद्धिः कृतदुष्टसंगः॥ ३१

इस प्रकार भोग करते हुए उसे परलोकमें अपने कल्याण करनेवाले पुण्यका ज्ञान न रहा और वह मूर्ख दैत्यराज मदान्धबुद्धि होकर दुष्टोंके साथ निवास करने लगा॥ ३१॥

ततः प्रमत्तस्तु सुतान्प्रधानान्
कुतर्कवादैरभिभूय सर्वान्।
चचार दैत्यैः सहितो महात्मा
विनाशयन्वैदिकसर्वधर्मान् ॥ ३२
वेदान्द्विजान् वित्तमदाभिभूतो
न मन्यते स्माप्यमरान्गुरूंश्च।
रेमे तथा दैवगतो हतायुः
स्वैरैरहोभिर्गमयन्वयश्च ॥ ३३
ततः कदाचिद्गतवान्ससैन्यो
बहुप्रयाता पृथिवीतलेऽस्मिन्।
अनेकसंख्या अपि वर्षकोट्यः
प्रहर्षितो मंदरपर्वतं तु॥ ३४
स्वर्णोपमां तत्र निरीक्ष्य शोभां
बभ्राम सैन्यैः सह मानमत्तः।
क्रीडार्थमासाद्य च तं गिरीन्द्रं
मतिं स वासाय चकार मोहात्॥ ३५
शुभं दृढं तत्र पुरं स कृत्वा
मुदा स्थितो दैत्यपतिः प्रभावात्।
निवेशयामास पुनः क्रमेण
अत्यद्भुतं मन्दरशैलसानौ॥ ३६
दुर्योधनो वैधसहस्तिसंज्ञौ
तन्मंत्रिणौ दानवसत्तमस्य।
ते वै कदाचिद्गिरिसुस्थले हि
नारीं सुरूपां ददृशुस्त्रयोऽपि॥ ३७
ते शीघ्रगा दैत्यवरास्तु हर्षाद्
द्रुतं महादैत्यपतिं समेत्य।
ऊचुर्यथादृष्टमतीव प्रीत्या
तथान्धकं वीरवरं हि सर्वे॥ ३८

मंत्रिण ऊचुः

गुहान्तरे ध्याननिमीलिताक्षो
दैत्येन्द्र कश्चिन्मुनिरत्र दृष्टः।
रूपान्वितश्चन्द्रकलार्द्धचूडः
कटिस्थले बद्धगजेन्द्रकृत्तिः॥ ३९
नागेन्द्रभोगावृतसर्वगात्रः
कपालमालाभरणो जटालः।
स शूलहस्तः शरतूणधारी
महाधनुष्मान्विधृताक्षसूत्रः ॥ ४०

इसके बाद वह महात्मा प्रमत्त होकर कुतर्कयुक्त बातचीतसे अपने प्रधान पुत्रोंको तिरस्कृतकर सभी वैदिक धर्मोंका विनाश करता हुआ दैत्योंके साथ विचरण करने लगा॥ ३२॥

धनके अहंकारसे मदान्ध वह वेदों, ब्राह्मणों, देवताओं तथा गुरुओंका अपमान करने लगा और दैववश हतायु हो अपनी आयुको स्वेच्छाचारपूर्वक क्षीण करता हुआ रमण करने लगा॥ ३३॥

इस प्रकार इस पृथ्वीतलपर करोड़ों वर्ष निवास करते हुए वह [अन्धक] किसी समय हर्षित होकर अपनी सेनाके साथ मन्दराचलपर गया और वहाँकी स्वर्णिम शोभा देखकर मानमत्त हो सैनिकोंके साथ घूमने लगा। वह क्रीडाके लिये उस पर्वतपर आकर मोहवश वहाँ निवास करनेका विचार करने लगा॥ ३४-३५॥

उसने अपने पराक्रमसे प्रसन्नतापूर्वक मनोहर एवं दृढ़ नगरका निर्माणकर स्वयं उसके शिखरपर अपने निवासहेतु महासुन्दर भवन बनवाया॥ ३६॥

उस दैत्येन्द्रके दुर्योधन, वैधस तथा हस्ती नामक मन्त्री थे। किसी समय उन तीनों मन्त्रियोंने उस पर्वतशिखरपर एक रूपवती सुन्दर स्त्रीको देखा॥ ३७॥

शीघ्रगामी उन सभी दैत्योंने हर्षित होकर उस वीरवर दैत्येन्द्र अन्धकके समीप आकर जैसा देखा था, वैसा प्रेमपूर्वक कहा—॥ ३८॥

मन्त्री बोले—हे दैत्येन्द्र! मन्दराचलकी गुफामें ध्यानमें नेत्र बन्द किये हुए, रूपवान्, चन्द्रकी आधी कलाको मस्तकपर धारण किये तथा कटिप्रदेशमें व्याघ्रचर्म लपेटे हुए कोई मुनि दिखायी पड़े हैं॥ ३९॥

उनके सारे शरीरमें भुजंग लिपटे हुए हैं, वे सिरपर जटा तथा गलेमें कपालकी माला धारण किये हुए हैं, हाथमें त्रिशूल लिये हुए, बाण तथा तरकस धारण किये हुए हैं, महान् धनुष धारण किये हुए और

खड्गी त्रिशूली लकुटी कपर्दी
चतुर्भुजो गौरतराकृतिर्हि।
भस्मानुलिप्तो विलसत्सुतेजाः
तपस्विवर्योऽद्भुतसर्ववेषः ॥ ४१

तस्याविदूरे पुरुषश्च दृष्टः
स वानरो घोरमुखः करालः।
सर्वायुधो रूक्षकरश्च रक्षन्
स्थितो जरद्गोवृषभश्च शुक्लः॥ ४२

तस्योपविष्टस्य तपस्विनोऽपि
सुचारुरूपा तरुणी मनोज्ञा।
नारी शुभा पार्श्वगता हि तस्य
दृष्टा च काचिद्भुवि रत्नभूता॥ ४३

प्रवालमुक्तामणिहेमरत्न-
वस्त्रावृता माल्यशुभोपगूढा।
सा येन दृष्टा स च दृष्टिमान्स्याद्
दृष्टेन चान्येन किमत्र कार्यम्॥ ४४

मान्या महेशस्य च दिव्यनारी
भार्या मुनेः पुण्यवतः प्रिया सा।
योग्या हि द्रष्टुं भवतश्च सम्य-
गानाय्य दैत्येन्द्र सुरत्नभोक्तुः॥ ४५

सनत्कुमार उवाच

श्रुत्वेति तेषां वचनानि तानि
कामातुरो घूर्णितसर्वगात्रः।
विसर्जयामास मुनेः सकाशं
दुर्योधनादीन्सहसा स दैत्यः॥ ४६

आसाद्य ते तं मुनिमप्रमेयं
बृहद्व्रतं मंत्रिवरा हि तस्य।
सुराजनीतिप्रवणा मुनीश
प्रणम्य तं दैत्यनिदेशमाहुः॥ ४७

मंत्रिण ऊचुः

हिरण्यनेत्रस्य सुतो महात्मा
दैत्याधिराजोऽन्धकनामधेयः ।
त्रैलोक्यनाथो भवकृन्निदेशा-
दिहोपविष्टोऽद्य विहारशाली॥ ४८

तन्मन्त्रिणो वै वयमङ्गवीरा-
स्तवोपकंठं च समागताः स्म।
तत्प्रेषितास्त्वां यदुवाच तद्वै
शृणुष्व संदत्तमनास्तपस्विन्॥ ४९

अक्षसूत्र पहने हुए हैं, वे लकुट, त्रिशूल एवं खड्ग धारण किये हुए हैं, वे जटाजूटसे युक्त, चार भुजाओंवाले, गौर वर्णवाले तथा भस्मसे लिप्त हैं, वे महातेजस्वी प्रतीत हो रहे हैं, उनका सम्पूर्ण वेष अद्भुत है॥ ४०-४१ ॥

उनसे थोड़ी ही दूरपर एक पुरुष दिखायी पड़ा, वह वानरके समान महाभयंकर मुखवाला, विकराल, हाथोंमें सम्पूर्ण अस्त्र लिये उनकी रक्षा करता हुआ स्थित है। वहींपर शुक्लवर्णका एक श्वेत वृद्ध बैल भी है॥ ४२ ॥

हमलोगोंने बैठे हुए उस तपस्वीके निकट पृथ्वीपर रत्नभूता एक सुन्दर रूपवाली मनोहर युवती भी देखी है। वह स्त्री प्रवाल, मुक्तामणि तथा रत्नोंसे निर्मित आभूषणों तथा वस्त्रोंको धारण की हुई है। वह मनोहर मालासे सुशोभित है। जिसने उस महासुन्दरीको देख लिया है, वास्तवमें वही दृष्टिवाला है, उसे देख लेनेपर अन्यको देखनेका कोई प्रयोजन नहीं है। वह दिव्य नारी उन महापुण्यवान् महर्षि महेश्वरकी प्रिया भार्या है। हे दैत्येन्द्र! आप सुन्दर रत्नोंके भोक्ता हैं, अतः उसे अपने घर लाकर भलीभाँति देखनेमें समर्थ हैं॥ ४३—४५ ॥

सनत्कुमार बोले—उन मन्त्रियोंकी इस बातको सुनकर वह दैत्य कामातुर हो उठा और उसका सारा शरीर घूमने लगा। उसने दुर्योधनादि मन्त्रियोंको उन मुनिके समीप शीघ्र ही भेजा॥ ४६ ॥

हे मुनीश! उत्तम राजनीतिमें परम प्रवीण उन श्रेष्ठ मन्त्रियोंने महाव्रती एवं अप्रमेय उन मुनिके पास जाकर प्रणाम करके उस दैत्यकी आज्ञा इस प्रकार कही— ॥ ४७ ॥

मन्त्री बोले—हिरण्याक्षके पुत्र दैत्याधिराज त्रैलोक्य-स्वामी महामना, जिनका नाम अन्धक है; वे ब्रह्माजीकी आज्ञासे विहार करते हुए इस मन्दराचलपर विराजमान हैं॥ ४८ ॥

हे तपस्विन्! हम उनके अंगरक्षक तथा मन्त्री हैं, उनके द्वारा भेजे गये हमलोग आपके समीप आये हैं और उन्होंने जो सन्देश दिया है, उसे ध्यान देकर आप सुनें॥ ४९ ॥

त्वं कस्य पुत्रोऽसि किमर्थमत्र
सुखोपविष्टो मुनिवर्य धीमन्।
कस्येयमीदृक्तरुणी सुरूपा
देया शुभा दैत्यपतेर्मुनीन्द्र॥ ५०

हे बुद्धिमान् मुनिवर! आप किसके पुत्र हैं और किस कारण यहाँ सुखपूर्वक बैठे हुए हैं, ऐसी महासुन्दरी यह तरुणी किसकी भार्या है? हे मुनीन्द्र! आप इसे शीघ्र ही दैत्यराजको समर्पित कर दें॥ ५०॥

क्वेदं शरीरं तव भस्मदिग्धं
कपालमालाभरणं विरूपम्।
तूणीरसत्कार्मुकबाणखड्ग-
भुशुंडिशूलाशनितोमराणि ॥ ५१
क्व जाह्नवी पुण्यतमा जटाग्रे
क्वायं शशी वा कुणपास्थिखण्डम्।
विषानलो दीर्घमुखः क्व सर्पः
क्व संगमः पीनपयोधरायाः॥ ५२

कहाँ तो भस्मसे लिप्त, कपालमालायुक्त, महाकुरूप तुम्हारा यह शरीर और कहाँ तरकस-धनुष-बाण, खड्ग, भुशुण्डी, त्रिशूल, बाण एवं तोमर आदि दिव्यास्त्र। कहाँ जटाके अग्रभागमें परम पवित्र गंगा तथा सिरपर मनोहर चन्द्रमा और कहाँ दुर्गन्धियुक्त अस्थिखण्ड। कहाँ विषवमन करनेवाले दीर्घमुख सर्प और कहाँ सुपुष्ट स्तनवाली स्त्रीका संगम?॥ ५१-५२॥

जरद्गवारोहणमप्रशस्तं
क्षमावतस्तस्य न दर्शनं च।
संध्याप्रणामः क्वचिदेष धर्मः
क्व भोजनं लोकविरुद्धमेतत्॥ ५३

बूढ़े बैलकी सवारी करना प्रशस्त नहीं है, क्षमावान् तपस्वीका ऐसा व्यवहार नहीं देखा जाता और सन्ध्या-वन्दन आदि ही तपस्वियोंका धर्म है, लोकविरुद्ध भोजन उनके लिये निषिद्ध है॥ ५३॥

प्रयच्छ नारीं मम सान्त्वपूर्वं
स्त्रिया तपः किं कुरुषे विमूढ।
अयुक्तमेतत्त्वयि नानुरूपं
यस्मादहं रत्नपतिस्त्रिलोके॥ ५४
विमुञ्च शस्त्राणि मयाद्य चोक्तः
कुरुष्व पश्चात्तप एव शुद्धम्।
उल्लङ्घ्य मच्छासनमप्रधृष्यं
विमोक्ष्यसे सर्वमिदं शरीरम्॥ ५५

अरे मूर्ख! तुम इस स्त्रीको शान्तिपूर्वक मुझे समर्पित करो, स्त्रीके साथ तपस्या क्यों कर रहे हो? यह तुम्हारे लिये अनुचित है और तुम्हारे अनुकूल नहीं है; क्योंकि मैं तीनों लोकोंका रत्नपति हूँ। अतः तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि पहले शस्त्रोंका त्याग करो, इसके बाद शुद्ध तप करो। मेरी अलंघनीय आज्ञाका उल्लंघन करनेपर तुम्हें अपने शरीरको छोड़ना पड़ेगा॥ ५४-५५॥

मत्वान्धकं दुष्टमतिप्रधानो
महेश्वरो लौकिकभावशीलः।
प्रोवाच दैत्यं स्मितपूर्वमेव-
माकर्ण्य सर्वं त्वथ दूतवाक्यम्॥ ५६

तब लौकिक भावका आश्रयकर जगत्प्रधान शिवजीने उस दूतके सम्पूर्ण वचनको सुनकर अन्धकको दुष्टबुद्धि जानकर हँसते हुए उससे कहा— ॥ ५६॥

शिव उवाच

यद्यस्मि रुद्रस्तव किं मया स्यात्
किमर्थमेवं वदसीति मिथ्या।
शृणु प्रभावं मम दैत्यनाथ
न्याय्यं न वक्तुं वचनं त्वयैवम्॥ ५७

शिवजी बोले—हे दैत्यनाथ! यदि मैं रुद्र हूँ, तो तुम्हारा मुझसे क्या तात्पर्य है, तुम इस प्रकार मिथ्या क्यों बोलते हो? तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं, तुम मेरे प्रभावको सुनो॥ ५७॥

नाहं क्वचित्त्वं पितरं स्मरामि
गुहांतरे घोरमनन्यचीर्णम्।
एतद् व्रतं पाशुपतं चरामि
न मातरं त्वज्ञतमो विरूपः॥ ५८

मुझे अपने माता-पिताका स्मरण नहीं, इस गुफामें महामूर्ख तथा विकृत रूपवाला मैं अन्योंके लिये दुर्लभ इस घोर पाशुपतव्रतका आचरण करता हूँ॥ ५८॥

अमूलमेतन्मयि तु प्रसिद्धं
सुदुस्त्यजं सर्वमिदं ममास्ति।
भार्या ममेयं तरुणी सुरूपा
सर्वंसहा सर्वगतस्य सिद्धिः॥ ५९
एतर्हि यद्यद्रुचितं तवास्ति
गृहाण तद्वै खलु राक्षस त्वम्।
एतावदुक्त्वा विरराम शंभुः
तपस्विवेषः पुरतस्तु तेषाम्॥ ६०

सनत्कुमार उवाच

गंभीरमेतद्वचनं निशम्य
ते दानवास्तं प्रणिपत्य मूर्ध्ना।
जग्मुस्ततो दैत्यवरस्य सूनुं
त्रैलोक्यनाशाय कृतप्रतिज्ञम्॥ ६१
बभाषिरे दैत्यपतिं प्रमत्तं
प्रणम्य राजानमदीनसत्त्वाः।
ते तत्र सर्वे जयशब्दपूर्वं
रुद्रेण यत्तत्स्मितपूर्वमुक्तम्॥ ६२

मंत्रिण ऊचुः

निशाचरश्चञ्चलशौर्यधैर्यः
क्व दानवः कृपणः सत्त्वहीनः।
क्रूरः कृतघ्नश्च सदैव पापी
क्व दानवः सूर्यसुताद्बिभेति॥ ६३
राजस्त्वमुक्तोऽखिलदैत्यनाथ-
स्तपस्विना तन्मुनिना विहस्य।
मत्वा स्वबुद्ध्या तृणवत्त्रिलोकं
महौजसा वीरवरेण नूनम्॥ ६४
क्वाहं च शस्त्राणि च दारुणानि
मृत्योश्च संत्रासकरं क्व युद्धम्।
क्व वीरको वानरवक्त्रतुल्यो
निशाचरो जरसा जर्जरांगः॥ ६५
क्वायं स्वरूपः क्व च मंदभाग्यो
बलं त्वदीयं क्व च वीरुधो वा।
शक्तोऽपि चेत्त्वं प्रयतस्व युद्धं
कर्तुं तदा ह्येहि कुरुष्व किंचित्॥ ६६
वज्राशनेस्तुल्यमिहास्ति शस्त्रं
भवादृशां नाशकरं च घोरम्।
क्व ते शरीरं मृदुपद्मतुल्यं
विचार्य चैवं कुरु रोचते यत्॥ ६७

मेरे विषयमें ऐसी प्रसिद्धि है कि मूलरहित तथा दुस्त्यज यह सारा जगत् मुझसे ही उत्पन्न हुआ है और सुन्दर रूपवाली, सब कुछ सहनेवाली तथा मुझ सर्वव्यापककी सिद्धिरूपा यह तरुणी मेरी भार्या है॥ ५९॥

हे राक्षस! इस समय तुम्हें जो-जो अच्छा लगे, उसे तुम ग्रहण करो। उनके सामने ऐसा कहकर तपस्वीवेशधारी सदाशिवने मौन धारण कर लिया॥ ६०॥

सनत्कुमार बोले—यह गम्भीर वचन सुनकर उन दानवोंने उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम किया, तदनन्तर त्रैलोक्य-विनाशके लिये प्रतिज्ञा करनेवाले हिरण्याक्षपुत्र अन्धक दैत्यके पास गये। उन सभी पराक्रमी दैत्योंने उस मदोन्मत्त दैत्यपतिको प्रणामकर जयशब्दका उच्चारण करते हुए हँसकर शिवजीने जो बात कही थी, उसे सुनाया॥ ६१-६२॥

मन्त्री [अन्धकासुरसे] बोले—[हे राजन्! तपस्वी शिवने आपके विषयमें कहा है कि] निशाचर, अस्थिर वीरता-धीरतावाला, सामर्थ्यरहित, क्रूरकर्मा, कृतघ्न, कृपण तथा सर्वदा पाप करनेवाला वह दानव क्या सूर्यपुत्र यमराजसे नहीं डरता [जो मुझसे युद्धकी इच्छा कर रहा है?] सभी दैत्योंके स्वामी हे राजन्! अपनी बुद्धिसे त्रैलोक्यको तृणवत् समझनेवाले महान् तेजस्वी, तपोनिष्ठ तथा परमवीर उस मुनिने हँसते हुए आपके विषयमें पुनः कहा है—कहाँ तो वृद्धावस्थाके कारण जर्जर अंगोंवाला मैं और कहाँ ये [तुम्हारे] दारुण शस्त्र और मृत्युको भी आतंकित करनेवाला युद्ध! कहाँ वह वानरके जैसा मुखवाला मेरा गण वीरक और कहाँ [परम समर्थ] वह राक्षस! कहाँ तो [राक्षसका दुर्धर्ष] वह स्वरूप और कहाँ मन्दभाग्य मैं! कहाँ तुम्हारा [अतुलनीय] सैन्यबल और कहाँ [मेरे आश्रयभूत] ये वृक्ष-लता आदि! इसपर भी यदि तुम अपनेको सामर्थ्य-सम्पन्न मानते हो तो प्रयत्न करो, युद्ध करनेके लिये यहाँ आओ और कुछ [सामर्थ्य प्रदर्शन] करो। [कहाँ तो] मेरे पास तुम-जैसे लोगोंको नष्ट कर देनेवाला महाभयंकर अस्त्र और कहाँ कोमल कमलके समान तुम्हारा शरीर, अतः विचार करके तुम वैसा ही करो, जैसा तुम्हें अच्छा लगता हो॥ ६३—६७॥

इत्येवमादीनि वचांसि भद्रं
तपस्विनोक्तानि च दानवेश।
युक्तं न ते तेन सहात्र युद्धं
त्वामाह राजन्स्मयमान एव॥ ६८

हे दैत्यपते! इस प्रकारके अनेक वचन उस तपस्वीने हँसते हुए आपसे कहे हैं। हे राजन्! आपके लिये उसके साथ युद्ध करना उचित नहीं है॥ ६८॥

विवस्तुशून्यैर्बहुभिः प्रलापै-
रस्माभिरुक्तैर्यदि बुध्यसे त्वम्।
तपोभियुक्तेन तपस्विना वै
स्मर्तासि पश्चान्मुनिवाक्यमेतत्॥ ६९

यदि आप हमलोगोंके द्वारा कहे गये अनुचित तथ्यहीन अनेक कथनोंसे तथा तपमें निरत उस तपस्वीके द्वारा कहे वचनोंसे समझ जाते हैं, तब तो ठीक है, अन्यथा मुनिके इस वचनको आप बादमें याद करेंगे॥ ६९॥

सनत्कुमार उवाच

ततः स तेषां वचनं निशम्य
जज्वाल रोषेण स मंदबुद्धिः।
आज्यावसिक्तस्त्विव कृष्णवर्त्मा
सत्यं हितं तत्कुटिलं सुतीक्ष्णम्॥ ७०

सनत्कुमार बोले—इसके बाद उनका सत्य, हितकर, कुटिल तथा तीक्ष्ण वचन सुनकर वह मन्दबुद्धि क्रोधसे उसी प्रकार आगबबूला हो गया, जिस प्रकार घी डालनेसे आग प्रज्वलित हो जाती है॥ ७०॥

गृहीतखड्गो वरदानमत्तः
प्रचंडवातानुकृतिं च कुर्वन्।
गन्तुं च तत्र स्मरबाणविद्धः
समुद्यतोऽभूद्विपरीतदैवः ॥ ७१

तदनन्तर प्रतिकूल भाग्यवाला, वरदानसे प्रमत्त तथा कामबाणसे बिँधा हुआ वह दैत्य खड्ग लेकर पवनके समान वेगसे वहाँ जानेको उद्यत हो गया॥ ७१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे अंधकगाणपत्यपदलाभोपाख्याने दूतसंवादो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें अन्धकगाणपत्यपदलाभोपाख्यानमें दूतसंवादवर्णन नामक चौवालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४४॥

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

अन्धकासुरका शिवकी सेनाके साथ युद्ध

सनत्कुमार उवाच

गतस्ततो मत्तगजेन्द्रगामी
पीत्वा सुरां घूर्णितलोचनश्च।
महानुभावो बहुसैन्ययुक्तः
प्रचंडवीरो वरवीरयायी॥ १

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] तदनन्तर मदिरा पानकर नेत्रोंको घुमाता हुआ मदमत्त गजके समान गतिवाला तथा श्रेष्ठ वीरोंके साथ चलनेवाला वह प्रचण्ड वीर बहुत-सी सेनासे युक्त हो वहाँ गया॥ १॥

ददर्श दैत्यः स्मरबाणविद्धो
गुहां ततो वीरकरुद्धमार्गाम्।
स्निग्धं यथा वीक्ष्य पतंगसंज्ञः
दशाप्रदीपं च कृमिर्ह्युपेत्य॥ २

कामके बाणसे बिँधे हुए उस दैत्यने वीरकके द्वारा अवरुद्ध मार्गवाली उस गुफाको उसी प्रकार देखा, जैसे तैलपूर्ण जलते हुए दीपकको प्रेमपूर्वक देखकर उसे प्राप्तकर पतंग विनष्ट हो जाता है॥ २॥

तथा प्रदर्श्याशु पुनः पुनश्च
संपीड्यमानोऽपि स वीरकेण।

उसी प्रकार बार-बार देखकर वीरकके द्वारा पीड़ित किये जानेपर भी वह मूर्ख महादैत्यपति

बभूव कामाग्निसुदग्धदेहोऽ-
न्धको महादैत्यपतिः स मूढः ॥ ३
पाषाणवृक्षाशनितोयवह्नि-
भुजंगशस्त्रास्त्रबिभीषिकाभिः ।
संपीडितोऽसौ न पुनः प्रपीड्य:
पृष्टश्च कस्त्वं समुपागतोऽसि ॥ ४
निशम्य तद् गां स्वमतं स तस्मै
चकार युद्धं स तु वीरकेण।
मुहूर्तमाश्चर्यवदप्रमेयं
संख्ये जितो वीरतरेण दैत्यः ॥ ५
ततस्तु संग्रामशिरो विहाय
क्षुत्क्षामकंठस्तृषितो गतोऽभूत्।
चूर्णीकृते खड्गवरे च खिन्ने
पलायमानो गतविस्मयः सः ॥ ६
चक्रुस्तदाजिं सह वीरकेण
प्रह्लादमुख्या दितिजप्रधानाः।
लज्जांकुशाकृष्टधियो बभूवुः
सुदारुणाः शस्त्रशतैरनेकैः ॥ ७
विरोचनस्तत्र चकार युद्धं
बलिश्च बाणश्च सहस्त्रबाहुः।
भजिः कुजंभस्त्वथ शंबरश्च
वृत्रादयश्चाप्यथ वीर्यवन्तः ॥ ८
ते युद्ध्यमाना विजिताः समन्ताद्
द्विधाकृता वै गणवीरकेण।
शेषे हतानां बहुदानवाना-
मुक्तं जयत्येव हि सिद्धसंघैः ॥ ९
भेरुंडजानाभिनयप्रवृत्ते
मेदोवसामांससुपूयमध्ये ।
क्रव्यादसंघातसमाकुले तु
भयंकरे शोणितकर्दमे तु ॥ १०
भग्नैस्तु दैत्यैर्भगवान् पिनाकी
व्रतं महापाशुपतं सुघोरम्।
प्रिये मया यत्कृतपूर्वमासी-
द्दाक्षायणीं प्राह सुसांत्वयित्वा ॥ ११

शिव उवाच

तस्माद्बलं यन्मम तत्प्रणष्टं
मर्त्यैरमर्त्यस्य यतः प्रपातः।
पुण्यक्षयाही ग्रह एव जातो
दिवानिशं देवि तव प्रसंगात् ॥ १२

अन्धक कामाग्निसे दग्ध शरीरवाला हो गया। वीरकने पाषाण, वृक्ष, वज्र, जल, अग्नि, सर्प एवं अस्त्र-शस्त्रोंसे उसे पीड़ा पहुँचायी और पुनः पीड़ित करके पूछा कि तुम कौन हो और कहाँसे आये हो? उसका वचन सुनकर अन्धकने अपना अभिप्राय प्रकट किया और उस वीरकके साथ युद्ध करने लगा। आश्चर्य है कि उस अप्रमेय महावीर वीरकने अन्धकको एक मुहूर्तमें युद्धमें जीत लिया। महान् खड्गके चूर-चूर हो जानेपर दुखी तथा विस्मयरहित वह अन्धक युद्धभूमि छोड़कर भूख-प्याससे व्याकुल हो भाग खड़ा हुआ ॥ ३—६ ॥

तत्पश्चात् प्रह्लाद आदि प्रधान दैत्य उसके साथ युद्ध करने लगे, किंतु अत्यन्त भयंकर वे दैत्य अनेक शस्त्रास्त्रोंसे लड़ते हुए पराजित होनेके कारण लज्जित हो गये ॥ ७ ॥

तब विरोचन, बलि, हजारों भुजाओंवाला बाण, भजि, कुजम्भ, शम्बर एवं वृत्र आदि पराक्रमी दैत्य युद्ध करने लगे। चारों ओरसे घेरकर युद्ध करते हुए उन दैत्योंको शिवके गण वीरकने पराजित कर दिया। उनके दो टुकड़े कर दिये। बहुतसे दानवोंके मर जानेपर और कुछके शेष रहनेपर सिद्धसंघोंने जय-जयकार किया ॥ ८-९ ॥

मेदा, मांस, पीवसे महाभयंकर उस युद्धके बीच गीदड़ आनन्दसे नाचने लगे एवं रुधिरके भयंकर कीचड़में [विचरण करते हुए] मांसाहारी जन्तुओंसे सारी रणभूमि भयंकर दिखायी पड़ने लगी। उस समय वीरकद्वारा दैत्योंके विनष्ट हो जानेपर भगवान् सदाशिवने दाक्षायणीको सान्त्वना देकर कहा—हे प्रिये! मैंने पूर्वमें जिस कठिन महापाशुपत व्रतको किया था, उसे करने जा रहा हूँ ॥ १०-११ ॥

शिवजी बोले—हे देवि! रात-दिन तुम्हारे साथ प्रसंगके कारण मेरी सेनाका क्षय हो गया, मरणधर्मा दैत्योंके द्वारा मेरी अमर्त्य सेनाका विनाश हुआ, यह किसी पुण्यनाशक ग्रहका ही प्रभाव है ॥ १२ ॥

उत्पाद्य दिव्यं परमाद्भुतं तु
पुनर्वरं घोरतरं च गत्वा।
तस्माद् व्रतं घोरतरं चरामि
सुनिर्भया सुन्दरि वै विशोका॥ १३

सनत्कुमार उवाच

एतावदुक्त्वा वचनं महात्मा
उत्पाद्य घोषं शनकैश्चकार।
स तत्र गत्वा व्रतमुग्रदीप्तो
गतो वनं पुण्यतमं सुघोरम्॥ १४

चर्तुं हि शक्यं तु सुरासुरैर्य-
न्न तादृशं वर्षसहस्रमात्रम्।
सा पार्वती मंदरपर्वतस्था
प्रतीक्ष्यमाणाऽऽगमनं भवस्य॥ १५

पतिव्रता शीलगुणोपपन्ना
एकाकिनी नित्यमथो विभीता।
गुहान्तरे दुःखपरा बभूव
संरक्षिता सा सुतवीरकेण॥ १६

ततः स दैत्यो वरदानमत्तः
तैर्योधमुख्यैः सहितो गुहां ताम्।
विभिन्नधैर्यः पुनराजगाम
शिलीमुखैर्मारसमुद्भवैश्च॥ १७

अत्यद्भुतं तत्र चकार युद्धं
हित्वा तदा भोजनपाननिद्राः।
रात्रिं दिवं पंचशतानि पंच
क्रुद्धः ससैन्यैः सह वीरकेण॥ १८

खड्गैः सकुंतैः सह भिंदिपालैः
गदाभुशुंडीभिरथो प्रकांडैः।
शिलीमुखैरर्द्धशशीभिरुग्रै-
र्वितस्तिभिः कूर्ममुखैर्ज्वलद्भिः॥ १९

नाराचमुख्यैर्निशितैश्च शूलैः
परश्वधैस्तोमरमुद्गरैश्च।
खड्गैर्गुडैः पर्वतपादपैश्च
दिव्यै रथास्त्रैरपि दैत्यसंघैः॥ २०

नदीधितिर्भिन्नतनुः पपात
द्वारं गुहायाः पिहितं समस्तम्।
तैरायुधैर्दैत्यभुजप्रयुक्तै-
र्गुहामुखे मूर्छित एव पश्चात्॥ २१

हे सुन्दरि! अब मैं वनमें जाकर परम दिव्य एवं अद्भुत वर प्राप्तकर अत्यन्त कठिन व्रत करूँगा, तुम पूर्णरूपसे भयरहित तथा शोकविहीन रहना॥ १३॥

सनत्कुमार बोले—इतना वचन कहकर अत्यन्त तेजस्वी महात्मा शंकर [अपने शृंगीका] धीरेसे शब्द करके अत्यन्त घोर पुण्यतम वनमें जाकर पाशुपतव्रतका अनुष्ठान करने लगे॥ १४॥

जिस व्रतको देवता एवं दानव भी करनेमें समर्थ नहीं हैं, उसे उन्होंने हजार वर्षपर्यन्त किया। उस समय पतिव्रता तथा शीलगुणसे सम्पन्न पार्वती मन्दर पर्वतपर स्थित हो सदाशिवके आगमनकी प्रतीक्षा करती हुई अकेले गुफाके अन्दर सदा भयभीत तथा दुखी रहा करती थीं, उस समय पुत्र वीरक ही उनकी रक्षा करता था॥ १५-१६॥

इसके बाद वरदानसे उन्मत्त तथा कामदेवके बाणोंसे धैर्यरहित वह दैत्य बड़ी शीघ्रतासे प्रह्लाद आदि दैत्योंके साथ उस गुफाके पास आ गया॥ १७॥

उसने भोजन, पान एवं निद्राका परित्यागकर कुपित हो अपने सैनिकोंको साथ लेकर पाँच-सौ-पाँच रात-दिन वीरकके साथ अत्यन्त अद्भुत युद्ध किया। खड्ग, बरछी, भिन्दिपाल, गदा, भुशुण्डी, अर्ध चन्द्रमाके समान, वितस्तिमात्र तथा कछुएके समान मुखवाले प्रकाशमान बाणों, तीक्ष्ण त्रिशूलों, परशु, तोमर, मुद्गर, खड्ग, गोले, पर्वत, वृक्ष तथा दिव्यास्त्रोंसे उस वीरकने दैत्योंके साथ युद्ध किया॥ १८—२०॥

दैत्योंद्वारा चलाये गये उन शस्त्रोंसे गुफाके द्वार बन्द हो गये, कहीं लेशमात्र भी प्रकाश नहीं रहा, वीरक भी शस्त्रोंकी चोटसे आहत होकर गुफाके द्वारपर मूर्च्छित होकर गिर पड़ा॥ २१॥

आच्छादितं वीरकमस्त्रजालै-
दैत्यैश्च सर्वैस्तु मुहूर्तमात्रम्।
अपावृतं कर्तुमशक्यमासी-
न्निरीक्ष्य देवी दितिजान् सुघोरान्॥ २२
भयेन सस्मार पितामहं तु
देवी सखीभिः सहिता च विष्णुम्।
सैन्यं च मद्वीरवरस्य सर्वं
संस्मारयामास गुहान्तरस्था॥ २३
ब्रह्मा तया संस्मृतमात्र एव
स्त्रीरूपधारी भगवांश्च विष्णुः।
इन्द्रैश्च सर्वैः सह सैन्यकैश्च
स्त्रीरूपमास्थाय समागतास्ते॥ २४
भूत्वा स्त्रियस्ते विविशुस्तदानीं
मुनीन्द्रसंघाश्च महानुभावाः।
सिद्धाश्च नागास्त्वथ गुह्यकाश्च
गुहान्तरं पर्वतराजपुत्र्याः॥ २५
यस्मात्सुराज्यासनसंस्थिताना-
मन्तःपुरे संगमनं विरुद्धम्।
ततः सहस्राणि नितंबिनीना-
मनन्तसंख्यान्यपि दर्शयन्त्यः॥ २६
रूपाणि दिव्यानि महाद्भुतानि
गौर्यै गुहायां तु सवीरकार्यैः।
स्त्रियः प्रहृष्टा गिरिराजकन्या
गुहान्तरं पर्वतराजपुत्र्याः॥ २७
स्त्रीभिः सहस्रैश्च शतैरनेकै-
र्नेदुश्च कल्पांतरमेघघोषाः।
भेर्यश्च संग्रामजयप्रदास्तु
ध्माताः सुशंखाः सुनितम्बिनीभिः॥ २८
मूर्छां विहायाद्भुत चंडवीर्यः
स वीरको वै पुरतः स्थितस्तु।
प्रगृह्य शस्त्राणि महारथानां
तैरेव शस्त्रैर्दितिजान् जघान॥ २९
ब्राह्मी ततो दंडकरा विरुद्धा
गौरी तदा क्रोधपरीतचेताः।
नारायणी शंखगदासुचक्र-
धनुर्द्धरा पूरितबाहुदंडा॥ ३०
विनिर्ययौ लांगलदण्डहस्ता
व्योमालका कांचनतुल्यवर्णा।

सभी दैत्योंसे तथा उनके अस्त्रोंसे मुहूर्तमात्रके लिये वीरकको आच्छादित देखकर तथा यह देखकर कि यह भयंकर दैत्योंको हटा नहीं पा रहा है, गुफामें स्थित देवीने भयपूर्वक सखियोंके साथ ब्रह्मा, विष्णु तथा समस्त गणोंकी सेनाका स्मरण किया॥ २२-२३॥

उनके स्मरणमात्रसे ही ब्रह्मा, भगवान् विष्णु तथा इन्द्र सभी सैनिकोंके साथ स्त्रीरूप धारणकर वहाँ आ गये। स्त्री बनकर वे देवता, मुनि, महात्मा, सिद्ध, नाग तथा गुह्यक पर्वतराजकी पुत्रीकी गुफाके भीतर प्रविष्ट हुए॥ २४-२५॥

उनके स्त्रीरूप धारण करनेका कारण यह था कि उत्तम राजाके आसनस्थ होनेपर उसके अन्तःपुरमें पुरुषवेशमें जाना निषिद्ध है, इसलिये वे स्त्रीसमूहके रूपमें एकत्रित हो गये। वीरकार्य करनेवाली ये अद्भुत रूपवाली स्त्रियाँ जब पार्वतीकी गुफामें प्रविष्ट हुईं, तो उन स्त्रियोंको देखकर पार्वती अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं॥ २६-२७॥

उस समय सैकड़ों हजारों नितम्बिनी स्त्रियोंके द्वारा प्रलयकालीन प्रचण्ड मेघके समान घोषवाली तथा विजय देनेवाली हजारों भेरियाँ और शंख बजाये गये॥ २८॥

अद्भुत तथा प्रचण्ड पराक्रमवाला वीरक भी मूर्च्छा त्यागकर शस्त्रको लेकर महारथियोंके आगे खड़ा हो गया और उन्हीं शस्त्रोंसे दैत्योंका वध करने लगा॥ २९॥

उस समय हाथमें दण्ड लिये हुए ब्राह्मी, क्रोधसे युक्त चित्तवाली गौरी, अपने हाथोंमें शंख, गदा, चक्र तथा धनुष धारण की हुई नारायणी, हाथमें लांगल, दण्ड लिये कांचनके समान वर्णवाली व्योमालका

धारासहस्राकुलमुग्रवेगं
वैडौजसी वज्रकरा तदानीम्॥ ३१
सहस्रनेत्रा युधि सुस्थिरा च
सुदुर्जया दैत्यशतैरधृष्या।
वैश्वानरी शक्तिरसौम्यवक्त्रा
याम्या च दंडोद्यतपाणिरुग्रा॥ ३२
सुतीक्ष्णखड्गोद्यतपाणिरूपा
समाययौ नैर्ऋतिघोरचापा।
तोयालिका वारणपाशहस्ता
विनिर्गता युद्धमभीप्समाना॥ ३३
प्रचंडवातप्रभवा च देवी
क्षुधावपुस्त्वंकुशपाणिरेव।
कल्पान्तवह्निप्रतिमां गदां च
पाणौ गृहीत्वा धनदोद्भवा च॥ ३४
यक्षेश्वरी तीक्ष्णमुखा विरूपा
नखायुधा नागभयंकरी च।
एतास्तथान्याः शतशो हि देव्यः
सुनिर्गताः संकुलयुद्धभूमिम्॥ ३५
दृष्ट्वा च तत्सैन्यमनन्तपारं
विवर्णवर्णाश्च सुविस्मिताश्च।
समाकुलाः संचकिता भयाद्वै
देव्यो बभूवुर्हृदि दीनसत्त्वाः॥ ३६
चक्रुः समाधाय मनः समस्ताः
ता देववध्वो विधिशक्तिमुख्याः।
सुसम्मतत्वेन गिरीशपुत्र्याः
सेनापतिर्वीरसुघोरवीर्यः॥ ३७
चक्रुर्महायुद्धमभूतपूर्वं
निधाय बुद्धौ दितिजाः प्रधानाः।
निवर्तनं मृत्युमथात्मनश्च
नारीभिरन्ये वरदानसत्त्वाः॥ ३८
अत्यद्भुतं तत्र चकार युद्धं
गौरी तदानीं सहिता सखीभिः।
कृत्वा रणे चाद्भुतबुद्धिशौण्डं
सेनापतिं वीरकघोरवीर्यम्॥ ३९
हिरण्यनेत्रात्मज एव भूप-
श्चक्रे महाव्यूहमरं सुकर्मा।
संभाव्य विष्णुं च निरीक्ष्य याम्यां
सुदारुणं तद्गिलनामधेयम्॥ ४०

तथा हाथमें हजारों धारवाले, प्रचण्ड वेगसे युक्त, उग्र वेगवाले वज्रको लिये हुए ऐन्द्री युद्धहेतु निकल पड़ीं॥ ३०-३१॥

हजार नेत्रोंवाली, युद्धमें निश्चल रहनेवाली, अत्यन्त दुर्जय, सैकड़ों दैत्योंसे कभी पराजित न होनेवाली तथा भयंकर मुखवाली वैश्वानरी तथा हाथमें दण्ड लिये हुए उग्र याम्या शक्ति भी युद्धमें प्रवृत्त हो गयीं॥ ३२॥

हाथमें अत्यन्त तीक्ष्ण तलवार तथा घोर धनुष लेकर निर्ऋति शक्ति आयीं। वरुणका पाश हाथमें धारणकर युद्धकी अभिलाषा करती हुई तोयालिका निकल पड़ीं। प्रचण्ड पवनकी महाशक्ति भूखसे व्याकुल हो हाथमें अंकुश लेकर एवं कुबेरकी शक्ति हाथमें प्रलयकालकी अग्निके समान गदा लेकर युद्धभूमिमें आ पहुँचीं। तीक्ष्ण मुखवाली, कुरूपा, नखरूप आयुधवाली, नागके समान भयंकर यक्षेश्वरी आदि देवियाँ तथा इसी प्रकारकी अन्य सैकड़ों देवियाँ संग्रामभूमिमें निकल पड़ीं॥ ३३—३५॥

उसकी अपार सेना देखकर वे देवियाँ विस्मित, भयसे व्याकुल, फीके वर्णवाली तथा अत्यन्त कातर हो गयीं। उसके बाद ब्रह्माणी आदि सभी देवशक्तियोंने पार्वतीकी सम्मतिसे अपने मनको समाहितकर वीरकको अपना सेनापति बनाया। इसके बाद वरदानसे शक्तिसम्पन्न प्रधान दैत्य मनमें यह विचारकर अभूतपूर्व युद्ध करने लगे कि आज इन नारियोंसे हम मृत्युको प्राप्त होंगे अथवा इनपर विजय प्राप्त करेंगे। उस समय संग्रामभूमिमें अद्भुत बुद्धिसम्पन्न वीरकको अपना सेनापति बनाकर पार्वतीने सखियोंके साथ युद्धमें अद्भुत युद्धकौशल दिखलाया॥ ३६—३९॥

महापराक्रमी हिरण्याक्षपुत्र राजा अन्धकने भी महाव्यूहकी रचना की और विष्णुकी सम्भावना करके यमकी शक्तिको अवस्थित देखकर [उनसे लड़नेके लिये] महाभयंकर गिल नामक राक्षसको नियुक्त किया॥ ४०॥

मुखं करालं विधिसेवयाऽस्य
तस्मिन् कृते भगवानाजगाम।
कल्पान्तघोरार्कसहस्रकांति-
कीर्णश्च वै कुपितः कृत्तिवासाः॥ ४१
गते ततो वर्षसहस्रमात्रे
तमागतं प्रेक्ष्य महेश्वरं च।
चक्रुर्महायुद्धमतीवमात्रं
नार्यः प्रहृष्टाः सह वीरकेण॥ ४२
प्रणम्य गौरी गिरिशं च मूर्ध्ना
संदर्शयन् भर्तुरतीव शौर्यम्।
गौरी प्रयुद्धं च चकार हृष्टा
हरस्ततः पर्वतराजपुत्रीम्॥ ४३
कंठे गृहीत्वा तु गुहां प्रविष्टो
रमासहस्राणि विसर्जितानि।
गौरी च सम्मानशतैः प्रपूज्य
गुहामुखे वीरकमेव स्थापयन्॥ ४४
ततो न गौरीं गिरीशं च दृष्ट्वा-
सुरेश्वरो नीतिविचक्षणो हि।
द्रुतं स्वदूतं विघसाख्यमेव
स प्रेषयामास शिवोपकंठम्॥ ४५
तैस्तैः प्रहारैरपि जर्जरांग-
स्तस्मिन् रणे देवगणेरितैर्यः।
जगाद वाक्यं तु सगर्वमुग्रं
प्रविश्य शंभुं प्रणिपत्य मूर्ध्ना॥ ४६

दूत उवाच

संप्रेषितोऽहं विविशे गुहां तु
ह्येषोऽन्धकस्त्वां समुवाच वाक्यम्।
नार्या न कार्यं तव किंचिदस्ति
विमुञ्च नारीं तरुणीं सुरूपाम्॥ ४७
प्रायो भवांस्तापसस्तज्जुषस्व
क्षान्तं मया यत्कमनीयमन्तः।
मुनिर्विरोधव्य इति प्रचिन्त्य
न त्वं मुनिस्तापस किं तु शत्रुः॥ ४८
अतीव दैत्येषु महाविरोधी
युध्यस्व वेगेन मया प्रमथ्य।
नयामि पातालतलानुरूपं
यमक्षयं तापस धूर्त्त हि त्वाम्॥ ४९

ब्रह्माजीकी सेवा करनेसे उसका मुख अत्यन्त विकराल हो गया था, इसीलिये उसे मारनेके लिये भगवान् विष्णु आये। उसी समय हजार वर्ष बीत जानेपर प्रलयकालीन हजारों सूर्यके समान कान्तिवाले व्याघ्रचर्मधारी भगवान् शिवजी भी कुपित होकर युद्धभूमिमें आये। तब उन महेश्वरको युद्धभूमिमें आया देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई उन स्त्रियोंने वीरकको साथ लेकर महायुद्ध किया॥ ४१-४२॥

उस समय सिर झुकाकर सदाशिवको प्रणाम करके पतिका पराक्रम प्रदर्शित करती हुई गौरीने प्रसन्नतापूर्वक घोर युद्ध किया। उसके बाद शंकरजी पार्वतीको हृदयसे लगाकर गुफाके भीतर प्रविष्ट हो गये। पार्वतीने उन हजारों स्त्रियोंको अनेक प्रकारसे सम्मानितकर विदा किया और वीरकको गुफाके द्वारपर रहने दिया॥ ४३-४४॥

उसके बाद नीतिमें विचक्षण उस असुरने गौरी एवं गिरीशको संग्रामभूमिमें न देखकर शिवजीके पास विघस नामक अपना दूत भेजा॥ ४५॥

उस संग्राममें देवताओंके प्रहारसे क्षत-विक्षत शरीरवाले उस दैत्यने शिवजीके पास जाकर उन्हें सिरसे प्रणामकर गर्वयुक्त कठोर वचन कहा—॥ ४६॥

दूत बोला—हे शम्भो! अन्धकद्वारा भेजा गया मैं इस गुफामें प्रविष्ट हुआ हूँ। उस अन्धकने आपको सन्देश भेजा है कि तुम्हें स्त्रीसे कोई प्रयोजन नहीं है, अतः इस रूपवती युवती नारीको शीघ्र त्याग दो॥ ४७॥

प्रायः आप तपस्वीको अन्तःकरणको भूषित करनेवाले क्षमा आदि गुणोंका सेवन करना चाहिये। मुनियोंसे विरोध नहीं करना चाहिये—ऐसा विचारकर मैं तुमसे विरोध नहीं करना चाहता, वस्तुतः तुम तपस्वी मुनि नहीं हो, किंतु शत्रु हो। हे धूर्त तापस! तुम हम दैत्योंके महाविरोधी शत्रु हो, अतः शीघ्रतासे मेरे साथ युद्ध करो, मैं आज ही तुम्हारा वध करके तुम्हें रसातल पहुँचाता हूँ॥ ४८-४९॥

सनत्कुमार उवाच

एतद्वचो दूतमुखान्निशम्य
कपालमाली तमुवाच कोपात्।
ज्वलन्विषादेन महांस्त्रिनेत्रः
सतां गतिर्दुष्टमदप्रहर्ता॥ ५०

सनत्कुमार बोले—दूतके मुखसे ये वचन सुनकर सज्जनोंके रक्षक, दुष्टोंके मदको नष्ट करनेवाले, कपालमाली, महान्, त्रिनेत्र शम्भु शोकाग्निसे जलते हुए बड़े क्रोधसे उस दूतसे कहने लगे— ॥ ५० ॥

शिव उवाच

व्यक्तं वचस्ते तदतीव चोग्रं
प्रोक्तं हि तत्त्वं त्वरितं प्रयाहि।
कुरुष्व युद्धं हि मया प्रसह्य
यदि प्रशक्तोऽसि बलेन हि त्वम्॥ ५१

शिवजी बोले—[हे दूत!] तुमने जो बात कही है, वह बड़ी कठोर है। अब तुम शीघ्र चले जाओ और उससे कहो—यदि तुम बलवान् हो तो शीघ्र आकर मेरे साथ बलपूर्वक युद्ध करो॥ ५१ ॥

यः स्यादशक्तो भुवि तस्य कोऽर्थो
दारैर्धनैर्वा सुमनोहरैश्च।
आयान्तु दैत्याश्च बलेन मत्ता
विचार्यमेवं तु कृतं मयैतत्॥ ५२
शरीरयात्रापि कुतस्त्वशक्तेः
कुर्वन्तु यद्यद्विहितं तु तेषाम्।
ममापि यद्यत्करणीयमस्ति
तत्तत्करिष्यामि न संशयोऽत्र॥ ५३

इस पृथ्वीपर जो अशक्त है, उसे मनोहर स्त्री तथा धनसे क्या प्रयोजन? बलसे मत्त दैत्य आ जायँ; मैंने यह निश्चय किया है। अशक्त पुरुष तो शरीरयात्रामें भी असमर्थ हैं, अतः उनके लिये जो विहित हो, उसे करें और मुझे भी जो करना है, उसे मैं करूँगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५२-५३ ॥

सनत्कुमार उवाच

एतद्वचस्तद्विघसोऽपि तस्मा-
च्छ्रुत्वा हरान्निर्गत एव हृष्टः।
प्रागात्ततो गर्जितहुङ्कृतानि
कुर्वंस्ततो दैत्यपतेः सकाशम्॥ ५४

सनत्कुमार बोले—शिवजीसे यह वचन सुनकर वह विघस भी प्रसन्न होकर वहाँसे निकल पड़ा और उसके बाद गर्जनापूर्वक हुंकार भरता हुआ दैत्यपतिके पास गया॥ ५४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे युद्धप्रारम्भदूतसंवादवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें युद्धप्रारम्भ-दूतसंवादवर्णन नामक पैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४५॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

भगवान् शिव एवं अन्धकासुरका युद्ध, अन्धककी मायासे उसके रक्तसे अनेक अन्धकगणोंकी उत्पत्ति, शिवकी प्रेरणासे विष्णुका कालीरूप धारणकर दानवोंके रक्तका पान करना, शिवद्वारा अन्धकको अपने त्रिशूलमें लटका लेना, अन्धककी स्तुतिसे प्रसन्न हो शिवद्वारा उसे गाणपत्य पद प्रदान करना

सनत्कुमार उवाच

तस्येङ्गितज्ञश्च स दैत्यराजो
गदां गृहीत्वा त्वरितः ससैन्यः।

सनत्कुमार बोले—हे व्यास! शिवजीका अभिप्राय जानकर उस दैत्यराजने गदा लेकर देवगणोंसे सर्वथा अभेद्य गिल नामक दैत्यको आगेकर सेनाके सहित शीघ्र शिवजीकी गुफाके दरवाजेपर पहुँचकर वज्रके

कृत्वाथ सोऽग्रे गिलनामधेयं
सुदारुणं देववरैरभेद्यम्॥ १
गुहामुखं प्राप्य महेश्वरस्य
बिभेद शस्त्रैरशनिप्रकाशैः।
अन्ये ततो वीरकमेव शस्त्रै-
रवाकिरन् शैलसुतां तथान्ये॥ २
द्वारं हि केचिद्रुचिरं बभञ्जुः
पुष्पाणि पत्राणि विनाशयेयुः।
फलानि मूलानि जलं च हृद्य-
मुद्यानमार्गानपि खंडयेयुः॥ ३
विलोडयेयुर्मुदिताश्च केचि-
च्छृङ्गाणि शैलस्य च भानुमन्ति।
ततो हरः संस्मृतवान् स्वसैन्यं
समाह्वयन् कुपितः शूलपाणिः॥ ४
भूतानि चान्यानि सुदारुणानि
देवान्ससैन्यान्सह विष्णुमुख्यान्।
आहूतमात्रानुगणाः ससैन्या
रथैर्गजैर्वाजिवृषैश्च गोभिः॥ ५
उष्ट्रैः खरैः पक्षिवरैश्च सिंहैः
ते सर्वदेवाः सहभूतसंघैः।
व्याघ्रैर्मृगैः सूकरसारसैश्च
समीनमत्स्यैः शिशुमारमुख्यैः॥ ६
अन्यैश्च नानाविधजीवसंघै-
र्विशीर्णदंशैः स्फुटितैः श्मशानैः।
भुजंगमैः प्रेतशतैः पिशाचै-
र्दिव्यैर्विमानैः कमलाकरैश्च॥ ७
नदीनदैः पर्वतवाहनैश्च
समागताः प्रांजलयः प्रणम्य।
कपर्दिनं तस्थुरदीनसत्त्वाः
सेनापतिं वीरकमेव कृत्वा॥ ८
विसर्जयामास रणाय देवान्
विश्रांतवाहानथ तत्पिनाकी।
युद्धे स्थिरं लब्धजयं प्रधानं
संप्रेषितास्ते तु महेश्वरेण॥ ९
चक्रुर्युगान्तप्रतिमं च युद्धं
मर्यादहीनं सगिलेन सर्वे।
दैत्येन्द्रसैन्येन सदैव घोरं
क्रोधाग्निगीर्णास्त्रिदशास्तु संख्ये॥ १०

समान तीखे शस्त्रोंसे प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया, कुछ दैत्योंने वीरकपर और कुछ दैत्योंने पार्वतीपर शस्त्रोंसे प्रहार किया। कुछ दैत्योंने गुफाके मनोहर द्वारको तोड़ दिया, कुछने द्वारपर लगे पत्र, पुष्प, फल, मूल तथा मनोहर जल एवं उद्यानमार्गोंको नष्ट कर दिया। कुछने प्रसन्न होकर पर्वतके दीप्तिमान् शिखरोंको तोड़ दिया॥ १—३ $^{1}/_{2}$ ॥

तदनन्तर त्रिशूलधारी शिवजीने कुपित होकर अपनी सेनाका, दारुण भूतगणोंका तथा सैन्यसहित विष्णु आदि देवगणोंका स्मरण किया। शिवजीके स्मरण करते ही रथ, गज, घोड़े, बैल, गाय, ऊँट, गधे, पक्षिगण, सिंह, व्याघ्र, मृग, सूकर, सारस, मीन, मत्स्य, शिशुमार, सर्प, सैकड़ों प्रेत-पिशाच, दिव्य विमान, तालाब, नदी, नद, पर्वत, वाहन एवं अन्य जीवोंके साथ समस्त देवता उपस्थित हो गये और हाथ जोड़कर शिवजीको प्रणामकर निर्भय होकर स्थित हो गये। उसके अनन्तर शिवजीने वीरकको सेनापति बनाकर थके वाहनवाले उन देवताओं एवं युद्धमें निश्चित विजय पानेवाले प्रधान वीरोंको भेजा। महेश्वरके द्वारा भेजे गये उन सभी देवगणोंने उस गिलसहित दैत्यराजकी सेनाके साथ निरन्तर प्रलयकालके समान मर्यादाहीन घनघोर युद्ध किया। तब विघसने युद्ध करते हुए उन ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य एवं चन्द्रमा

तस्मिन्क्षणे युध्यमानाश्च सर्वे
ब्रह्मेन्द्रविष्णवर्कशशांकमुख्याः ।
आसन्निगीर्णा विघसेन तेन
सैन्ये निगीर्णेऽस्ति तु वीरको हि॥ ११

आदि समस्त देवोंको क्रोधपूर्वक निगल लिया। इस प्रकार विघसके द्वारा अपनी समस्त सेनाके निगल लिये जानेपर केवल वीरक रह गया॥ ४—११ ॥

विहाय संग्रामशिरोगुहां तां
प्रविश्य शर्वं प्रणिपत्य मूर्ध्ना।
प्रोवाच दुःखाभिहतः स्मरारिं
सुवीरको वाग्मिवरोऽथ वृत्तम्॥ १२
निगीर्णं ते सैन्यं विघसदितिजेनाद्य भगव-
न्निगीर्णोऽसौ विष्णुस्त्रिभुवनगुरुर्दैत्यदलनः।
निगीर्णौ चन्द्रार्कौ द्रुहिणमघवानौ च वरदौ
निगीर्णास्ते सर्वे यमवरुणवाताश्च धनदः॥ १३

तब संग्रामभूमिको छोड़कर उस गुफामें प्रवेश करके सिर झुकाकर कामशत्रु शिवजीको प्रणाम करके वक्ताओंमें श्रेष्ठ वह वीरक दुखी होकर उनसे सारा वृत्तान्त कहने लगा। हे भगवन्! विघस दैत्यने आपकी सारी सेना निगल ली। वह त्रिलोकगुरु दैत्यविनाशक भगवान् विष्णुको निगल गया। उसने सूर्य तथा चन्द्रमाको, वरदायक ब्रह्मा तथा इन्द्रको निगल लिया। वह यम, वरुण, पवन एवं कुबेर आदिको भी निगल गया॥ १२-१३ ॥

स्थितोऽस्म्येकः प्रह्वः किमिह करणीयं भवतु मे
अजेयो दैत्येन्द्रः प्रमुदितमना दैत्यसहितः॥ १४
अजेयं त्वां प्राप्तः प्रतिभयमना मारुतगतिः
स्वयं विष्णुर्देवः कनककशिपुं कश्यपसुतम्।
नखैस्तीक्ष्णैर्भक्त्या तदपि भगवान् शिष्टवशगः
प्रवृत्तस्त्रैलोक्यं विधमतु मलं व्यात्तवदनः॥ १५

केवल मैं ही अकेला रह गया हूँ, मुझे अब क्या करना है। वह अजेय दैत्यपति सेनासहित प्रसन्नचित्त है। मैं भयभीत होकर वायुके समान वेगवान् होकर आप अजेयके पास आया हूँ। भगवान् विष्णुने अपना मुख फैलाकर कश्यपपुत्र हिरण्यकशिपुको अपने तीव्र नखोंसे विदीर्ण किया था, वे भक्तोंके वशीभूत हो त्रिलोकीके कण्टकोंका नाश करनेमें प्रवृत्त रहते हैं॥ १४-१५ ॥

वसिष्ठाद्यैः शप्तो भुवनपतिभिः सप्तमुनिभिः
तथाभूते भूयस्त्वमिति सुचिरं दैत्यसहितः॥ १६

पूर्वकालमें उन्हें वसिष्ठादि लोकरक्षक सप्तर्षियोंने शाप दिया था कि तुम दैत्योंके साथ चिरकालपर्यन्त युद्ध करते हुए उनके द्वारा निगल लिये जाओगे॥ १६ ॥

ततस्तेनोक्तास्ते प्रणयवचनैरात्मनि हितैः
कदास्माद्वै घोराद्भवति मम मोक्षो मुनिवराः।
यतः क्रुद्धैरुक्तो विघसहरणाद्युद्धसमये
ततो घोरैर्बाणैर्विदलितमुखे मुष्टिभिरलम्॥ १७

इसके बाद जब विष्णुने विनम्र होकर मुनियोंसे प्रार्थना की कि हे मुनिगणो! इस घोर शापसे मेरा छुटकारा कैसे होगा? तब क्रुद्ध हुए उन मुनिगणोंने कहा—युद्धकालमें जब घोर बाणोंकी वर्षाकर विघस नामक दैत्य तुम्हें निगल लेगा, तब तुम अपने घूसोंसे उसके मुखपर प्रहारकर निकलोगे॥ १७ ॥

बदर्याख्यारण्ये ननु हरिगृहे पुण्यवसतौ
निसंस्तभ्यात्मानं विगतकलुषो यास्यसि परम्।
ततस्तेषां वाक्यात्प्रतिदिनमसौ दैत्यगिलनः
क्षुधार्तः संग्रामाद् भ्रमति पुनरामोदमुदितः॥ १८

तत्पश्चात् पुण्याश्रम बदरीवन नामक हरिगृहमें जब तुम अवतार लोगे, तब शापरहित हो अपने परमात्मा-रूपमें अवस्थित हो जाओगे। तभीसे वह गिल नामक दैत्य प्रतिदिन भूखा रहकर बड़ी प्रसन्नताके साथ युद्धस्थलमें घूमता रहता था।

तमश्चेदं घोरं जगदुदितयोः सूर्यशशिनो-
र्यथाशुक्रस्तुभ्यं परमरिपुरत्यंतविकरः।
हतान्देवैर्दैत्यान्पुनरमृतविद्यास्तुतिपदैः
सवीर्यान्संहृष्टान्व्रणशतवियुक्तान्प्रकुरुते ॥ १९

जिस प्रकार जगत्को प्रकाशित करनेवाले सूर्य एवं चन्द्रमासे राहु शत्रुता करता है, उसी प्रकार देवताओंके परम शत्रु शुक्राचार्य देवोंके द्वारा मारे गये सभी दैत्योंको संजीवनी विद्याके स्तुतिपदोंसे

वरं प्राणास्त्याज्यास्तव मम तु संग्रामसमये
भवान्साक्षीभूतः क्षणमपि वृतः कार्यकरणे॥ २०

व्रणरहितकर जीवित कर देते हैं। आपको तथा मुझे युद्धस्थलमें भले ही प्राण त्याग करना पड़े, किंतु अब आप ही इस युद्धमें प्रमाण हैं और आप ही इस कार्यको सँभालें॥ १८—२०॥

सनत्कुमार उवाच

इतीदं सत्पुत्रात्प्रमथपतिराकर्ण्य कुपित-
श्चिरं ध्यात्वा चक्रे त्रिभुवनपतिः प्रागनुपमम्।
प्रगायत्सामाख्यं दिनकरकराकारवपुषा
प्रहासात्तन्नाम्ना तदनु निहतं तेन च तमः॥ २१

सनत्कुमार बोले—त्रिभुवनपति प्रमथपति सदाशिव पुत्र वीरककी बात सुनकर बहुत कुपित हुए और देरतक विचार करते रहे, तदनन्तर उन्होंने सूर्यके समान देदीप्यमान अपने शरीरसे उत्तम सामवेदका गान किया और बड़ा अट्टहास किया, जिससे समस्त अन्धकार दूर हो गया॥ २१॥

प्रकाशेऽस्मिँल्लोके पुनरपि महायुद्धमकरोद्
रणे दैत्यैः सार्द्धं विकृतवदनैर्वीरकमुनिः।
शिलाचूर्णं भुक्त्वा प्रवरमुनिना यस्तु जनितः
स कृत्वा संग्रामं पुरमपि पुरा यश्च जितवान्॥ २२

तब इस लोकमें प्रकाश हो जानेपर वीरक मुनिने रणमें विकृत मुखवाले दैत्योंके साथ पुनः महायुद्ध किया। शिलाद मुनिने पत्थरका चूर्ण खाकर जिन नन्दीश्वरको उत्पन्न किया था तथा जिन्होंने त्रिपुरको भी पूर्वकालमें जीत लिया था, उन नन्दीने घनघोर युद्ध प्रारम्भ कर दिया॥ २२॥

महारुद्रः सद्यः स खलु दितिजेनातिगिलितः
ततश्चासौ नन्दी निशितशरशूलासिसहितः।
प्रधानो योधानां मुनिवरशतानामपि महान्
निवासो विद्यानां शमदममहाधैर्यसहितः॥ २३
निरीक्ष्यैवं पश्चाद् वृषभवरमारुह्य भगवान्
कपर्दी युद्धार्थी विघसदितिजं सम्मुखमुखः।
जपन्दिव्यं मन्त्रं निगलनविधानोद्गिलनकं
स्थितः सज्जं कृत्वा धनुरशनिकल्पानपि शरान्॥ २४
ततो निष्क्रांतोऽसौ विघसवदनाद्वीरकमुनि-
र्गृहीत्वा तत्सर्वे स्वबलमतुलं विष्णुसहिताः।
समुद्गीर्णाः सर्वे कमलजबलारीन्दुदिनपाः
प्रहृष्टं तत्सैन्यं पुनरपि महायुद्धमकरोत्॥ २५

नन्दीको भी उस राक्षसने निगल लिया। ऐसा देखकर योद्धाओं एवं मुनियोंमें अग्रगण्य तथा सभी विद्याओंके निवास, शम-दम-धैर्यादि गुणोंसे युक्त स्वयं कपर्दी महारुद्र वृषभपर सवार हो निगले हुए देवगणोंको उगलवा देनेवाले दिव्य मन्त्रका जप करते हुए तीक्ष्ण बाण, शूल तथा खड्ग लेकर युद्धके लिये उस राक्षसके सम्मुख उपस्थित हुए। इतनेमें महावीर वीरक सभीको लेकर उस विघस राक्षसके मुखसे निकले। इसी प्रकार विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य आदि सभी निकल आये। तब उनकी सेना प्रसन्न होकर पुनः युद्ध करने लगी॥ २३—२५॥

जिते तस्मिन् शुक्रस्तदनु दितिजान्युद्धविहतान्
यदा विद्यावीर्यात्पुनरपि सजीवान्प्रकुरुते।
तदा बद्ध्वाऽऽनीतः पशुरिव गणैर्भूतपतये
निगीर्णस्तेनासौ त्रिपुररिपुणा दानवगुरुः॥ २६

उस सेनाके जीत लेनेपर देवगणोंके द्वारा मारे गये समस्त दैत्योंको शुक्राचार्य अपनी संजीवनी विद्याके बलसे पुनः जीवित करने लगे। तब गणोंने शुक्राचार्यको पशुके समान बाँधकर शिवजीके समीप उपस्थित किया और त्रिपुरारि शिवजीने उन दानवगुरुको निगल लिया॥ २६॥

विनष्टे शुक्राख्ये सुररिपुनिवासस्तदखिलो
जितो ध्वस्तो भग्नो भृशमपि सुरैश्चापि दलितम्।
प्रभूतैर्भूतौघैर्दितिजकुणपग्रासरसिकैः
सरुण्डैर्नृत्यद्भिर्निशितशरशक्त्युद्धतकरैः ॥ २७

इस प्रकार शुक्राचार्यके विनष्ट हो जानेपर देवताओंने सारी दैत्यसेनाको जीत लिया, विध्वस्त कर दिया और पूर्णरूपसे कुचल डाला। उस समय दैत्योंके शरीरको उत्साहपूर्वक खानेवाले भूतगणोंसे

प्रमत्तैर्वेतालैः सुदृढकरतुंडैरपि खगै-
र्वृकैर्नानाभेदैः शवकुणपपूर्णास्यकवलैः।
विकीर्णे संग्रामे कनककशिपोर्वंशजनक-
श्चिरं युद्धं कृत्वा हरिहरमहेन्द्रैश्च विजितः॥ २८

एवं तीक्ष्ण बाण तथा शक्ति हाथमें लिये नाचते हुए सिरकटे दैत्योंके धड़ोंसे सारी रणभूमि व्याप्त हो गयी। प्रमत्त वेतालों, अत्यन्त दृढ़ चोंच एवं पंजेवाले पक्षियों एवं नाना प्रकारके भेड़ियोंने मरे हुए राक्षसोंके मांसको अपने मुखमें रखकर आनन्दसे भक्षण करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार हिरण्यकशिपुके वंशमें उत्पन्न हुआ वह दैत्यराज चिरकालपर्यन्त युद्ध करके विष्णु, महेन्द्र एवं शिवसे जीत लिया गया॥ २७-२८॥

प्रविष्टे पाताले गिरिजलधिरंध्राण्यपि तथा
ततः सैन्ये क्षीणे दितिजवृषभश्चांधकवरः।
प्रकोपे देवानां कदनदवरो विश्वदलनो
गदाघातैर्घोरैर्विदलितमदश्चापि हरिणा॥ २९

पराजित होनेपर उस दैत्यकी सारी सेना पातालमें, पर्वतोंकी गुफाओंमें एवं समुद्रमें छिप गयी। अपनी सारी सेनाके क्षीण हो जानेपर दैत्यश्रेष्ठ अन्धक, जो क्रुद्ध होनेपर न केवल देवताओं, अपितु विश्वका नाश करनेमें समर्थ था, उसका विष्णुने गदाके भयंकर प्रहारोंसे मद चूर-चूर कर दिया॥ २९॥

न वै यः संग्रामं त्यजति वरलब्धः किल यतः
तदा ताडैर्घोरैस्त्रिदशपतिना पीडिततनुः।
ततः शस्त्रास्त्रौघैस्तरुगिरिजलैश्चाशु विबुधान्
जिगायोच्चैर्गर्जन्प्रमथपतिमाहूय शनकैः॥ ३०

स्थितो युद्धं कुर्वन् रणपतितशस्त्रैर्बहुविधैः
परिक्षीणैः सर्वैस्तदनु गिरिजारुद्रमतुदत्।
तथा वृक्षैः सर्पैरशनिनिवहैः शस्त्रपटलै-
र्विरूपैर्मायाभिः कपटरचनाशम्बरशतैः॥ ३१

उसने युद्धभूमिका परित्याग नहीं किया; क्योंकि उसे ब्रह्माजीका वरदान प्राप्त था। उसके बाद इन्द्रके घोर अस्त्रोंसे पीड़ित हुआ वह दैत्य अपने शस्त्रास्त्रसमूहों, वृक्षों, पर्वतों एवं जलके प्रहारोंसे देवताओंको शीघ्र जीतकर जोरसे गर्जना करते हुए प्रमथपति शिवको संकेतोंके द्वारा बुलाकर युद्धभूमिमें गिरे हुए अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे युद्ध करता हुआ स्थित रहा। उन सबके समाप्त हो जानेपर वह वृक्षों, सर्पों, वज्रके समान शस्त्रोंद्वारा तथा शम्बरकी सैकड़ों माया एवं कपट रचनाद्वारा गिरिजा एवं महादेवको पीड़ा पहुँचाने लगा॥ ३०-३१॥

विजेतुं शैलेशं कुहकमपरं तत्र कृतवान्
महासत्त्वो वीरस्त्रिपुररिपुतुल्यश्च मतिमान्।
न वध्यो देवानां वरशतमनोन्मादविवशः
प्रभूतैः शस्त्रास्त्रैः सपदि दितिजो जर्जरतनुः॥ ३२

तदीयाद्विष्यन्दात्क्षिततितलगतैरन्धकगणै-
रतिव्याप्तं घोरं विकृतवदनं स्वात्मसदृशम्।
दधत्कल्पान्ताग्निप्रतिमवपुषा भूतपतिना
त्रिशूलेनोद्भिन्नस्त्रिपुररिपुणा दारुणतरम्॥ ३३

शंकरके समान महावीर, देवताओंसे अवध्य, महासत्त्वसम्पन्न, मतिमान्, सैकड़ों वरदान पानेसे उन्मत्त हुए दैत्य अन्धकने शंकरको जीतनेके लिये एक और माया की, यद्यपि उसका शरीर देवताओंके शस्त्रास्त्रोंके द्वारा जर्जर हो उठा था। उसकी मायाके प्रभावसे, उसके गिरे हुए रक्त-बिन्दुओंसे अनेक विकृतवदन अन्धकगण रणभूमिमें व्याप्त हो गये। तब प्रलयकालीन अग्निके समान शरीर धारण करनेवाले त्रिपुरारि सदाशिवने अपने त्रिशूलसे उन दैत्योंका भेदन प्रारम्भ किया॥ ३२-३३॥

यदा सैन्यात्सैन्यं पशुपतिहतादन्यदभवद्-
व्रणोत्थैरत्युष्णैः पिशितनिसृतैर्बिन्दुभिरलम्।
तदा विष्णुर्योगात्प्रमथपतिमाहूय मतिमान्
चकारोग्रं रूपं विकृतवदनं स्त्रैणमजितम्॥ ३४

करालं संशुष्कं बहुभुजलताक्रांतकुपितो
विनिष्क्रांतः कर्णाद्रणशिरसि शंभोश्च भगवान्॥ ३५

इस प्रकार शिवजीके त्रिशूलके प्रहारके आघातसे मांस विदीर्ण हो जानेके कारण प्रवाहित रक्तबिन्दुओंसे अनेक अन्धक उत्पन्न होने लगे। तब महाबुद्धिमान् विष्णुने शंकरजीको बुलाकर योगद्वारा अत्यन्त विकृत मुखवाला, उग्र, अजेय, कराल तथा अत्यन्त शुष्क स्त्रीका रूप धारण कर लिया। अनेक भुजाओंसे युक्त तथा कुपित भगवान् विष्णु उस युद्धस्थलमें शंकरजीके कानसे प्रकट हुए॥ ३४-३५ ॥

रणस्था सा देवी चरणयुगलालङ्कृतमही
स्तुता देवैः सर्वैः तदनु भगवान् प्रेरितमतिः।
क्षुधार्ता तत्सैन्यं दितिजनिसृतं तच्च रुधिरं
पपौ सात्युष्णं तद्रणशिरसि सृक्कर्दममलम्॥ ३६

युद्धभूमिमें उत्पन्न हुई वे देवी अपने युगलचरणोंसे पृथ्वीको सुशोभित करने लगीं। सभी देवगण उनकी स्तुति करने लगे। उसके बाद शंकरजीकी प्रेरणासे क्षुधासे व्याकुल वे देवी मांसकी कीचसे युक्त उस रणभूमिमें दैत्यपतिके शरीरसे निकले हुए उष्ण रुधिरका पान करने लगीं॥ ३६ ॥

ततस्त्वेको दैत्यस्तदपि युयुधे शुष्करुधिरः
तलाघातैर्घोरैरशनिसदृशैर्जानुचरणैः ।
नखैर्वज्राकारैर्मुखभुजशिरोभिश्च गिरिशं
स्मरन् क्षात्रं धर्मं स्वकुलविहितं शाश्वतमजम्॥ ३७

इस प्रकार रक्तके सूख जानेपर वह दैत्य अकेला होनेपर भी अपने कुलक्रमागत सनातन क्षात्रधर्मका स्मरण करता हुआ अपने वज्रके समान घूँसों, जानु, चरणों, नखों, भुजाओं तथा सिरके द्वारा शंकरसे युद्ध करता रहा॥ ३७ ॥

रणे शांतः पश्चात्प्रमथपतिना भिन्नहृदय-
स्त्रिशूले संप्रोतो नभसि विधृतः स्थाणुसदृशः।
अधःकायः शुष्कस्तपनकिरणैर्जीर्णतनुमान्
जलासारैर्मेघैः पवनसहितैः क्लेदितवपुः॥ ३८

[इस प्रकार युद्धकर] तब वह रणमें शान्त हो गया, बादमें क्रुद्ध हुए शिवजीने अपने त्रिशूलसे उसका हृदय विदीर्ण कर दिया और स्थाणुके समान उसके ठूँठ शरीरको त्रिशूलपर टाँगकर आकाशमें उठा लिया। उसका शरीर सूर्यके तापसे सूखने लगा, पवनप्रेरित जलपूर्ण बादलोंने उसके शरीरको गीला कर दिया और उसका सारा शरीर जीर्ण-शीर्ण हो गया॥ ३८ ॥

विशीर्णस्तिग्मांशोस्तुहिनशकलाकारशकल-
स्तथाभूतः प्राणांस्तदपि न जहौ दैत्यवृषभः।
तदा तुष्टः शंभुः परमकरुणावारिधिरसौ
ददौ तस्मै प्रीत्या गणपतिपदं तेन विनुतः॥ ३९

सूर्यकी किरणोंसे सन्तप्त, हिमखण्डोंसे खण्डित होनेपर भी उस दैत्यराजने प्राण-त्याग नहीं किया और वह भगवान् शंकरकी निरन्तर स्तुति करता रहा। यह देखकर करुणासागर परम दयालु भगवान् शंकरने उसकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर उसे गाणपत्यपद प्रदान किया॥ ३९ ॥

ततो युद्धस्यान्ते भुवनपतयः सार्थं रमणै-
स्तवैर्नानाभेदैः प्रमथपतिमभ्यर्च्य विधिवत्।
हरिब्रह्माद्यास्ते परमनुतिभिः तुष्टुवुरलं
नतस्कंधाः प्रीता जय जय गिरं प्रोच्य सुखिताः॥ ४०

उस समय युद्धके अन्तमें भुवनपति श्रीहरि, ब्रह्मा तथा समस्त देवताओंने शंकरजीकी विधिपूर्वक पूजाकर कंधा झुकाकर मनोहर एवं सारगर्भित स्तुतियोंसे उनकी स्तुति की तथा प्रसन्न होकर उनकी जय-जयकार करके वे सुखी हो गये। तत्पश्चात् भगवान्

हरस्तैस्तैः सार्धं गिरिवरगुहायां प्रमुदितो
विसृज्यैकानंशान् विविधबलिना पूज्यसुनगान्।
चकाराज्ञां क्रीडां गिरिवरसुतां प्राप्य मुदितां
तथा पुत्रं घोराद्विघसवदनान्मुक्तमनघम्॥ ४१

भूतपति नाना प्रकारकी सामग्रीसे पूजित देवगणोंको सत्कारसहित विदाकर पार्वतीके साथ प्रसन्न हो गुहामें क्रीड़ा करने लगे। उस समय वे घोर विघसके मुखसे पापरहित पुत्र वीरकके निकल जानेसे बड़े ही प्रसन्न हो रहे थे॥ ४०-४१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे अंधकवधोपाख्याने अन्धकयुद्धवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें अन्धकवधोपाख्यानमें अन्धकयुद्धवर्णन नामक छियालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४६॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

शुक्राचार्यद्वारा युद्धमें मरे हुए दैत्योंको संजीवनी-विद्यासे जीवित करना, दैत्योंका युद्धके लिये पुनः उद्योग, नन्दीश्वरद्वारा शिवको यह वृत्तान्त बतलाना, शिवकी आज्ञासे नन्दीद्वारा युद्ध-स्थलसे शुक्राचार्यको शिवके पास लाना, शिवद्वारा शुक्राचार्यको निगलना

व्यास उवाच

तस्मिन्महति संग्रामे दारुणे लोमहर्षणे।
शुक्रो दैत्यपतिर्विद्वान् भक्षितस्त्रिपुरारिणा॥ १

इति श्रुतं समासान्मे तत्पुनर्ब्रूहि विस्तरात्।
किं चकार महायोगी जठरस्थः पिनाकिनः॥ २

न ददाह कथं शंभोः शुक्रं तं जठरानलः।
कल्पान्तदहनः कालो दीप्ततेजाश्च भार्गवः॥ ३

विनिष्क्रान्तः कथं धीमान् शंभोर्जठरपंजरात्।
कथमाराधयामास कियत्कालं स भार्गवः॥ ४

कथं च लब्धवान्विद्यां तां मृत्युशमनीं पराम्।
का सा विद्या परा तात यया मृत्युर्हि वार्यते॥ ५

लेभेऽन्धको गाणपत्यं कथं शूलाद्विनिर्गतः।
देवदेवस्य वै शंभोर्मुनेर्लीलाविहारिणः॥ ६

एतत्सर्वमशेषेण महाधीमन् कृपां कुरु।
शिवलीलामृतं तात शृण्वतः कथयस्व मे॥ ७

व्यासजी बोले—उस भयानक तथा रोमांच उत्पन्न कर देनेवाले महायुद्धमें भगवान् सदाशिवने विद्वान् दैत्याचार्य शुक्रको निगल लिया—यह बात मैंने संक्षेपमें सुनी, अब आप उसे विस्तारके साथ कहिये कि शिवजीके उदरमें स्थित महायोगी शुक्राचार्यने क्या किया, शिवजीकी प्रलयकालीन अग्निके समान जठराग्निने उन शुक्रको जलाया क्यों नहीं? कालरूप बुद्धिमान् तथा तेजस्वी शुक्राचार्य किस प्रकार शिवजीके जठरपंजरसे बाहर निकले, उन शुक्रने किसलिये तथा कितने समयतक आराधना की, उन्होंने मृत्युका शमन करनेवाली उस परा विद्याको कैसे प्राप्त किया और हे तात! वह कौनसी विद्या है, जिससे मृत्युका निवारण हो जाता है, देवाधिदेव, लीलाविहारी भगवान् शंकरके त्रिशूलसे छुटकारा पाये हुए अन्धकने किस प्रकार गाणपत्यपद प्राप्त किया? हे परम बुद्धिमान् तात! कृपा कीजिये और शिवलीलामृतका पान करनेवाले मुझको यह सब विशेष रूपसे बताइये॥ १—७॥

ब्रह्मोवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा व्यासस्यामिततेजसः।
सनत्कुमारः प्रोवाच स्मृत्वा शिवपदांबुजम्॥ ८

ब्रह्माजी बोले—हे तात! अमिततेजस्वी व्यासजीके इस वचनको सुनकर शिवजीके चरणकमलका स्मरण करके सनत्कुमारजी कहने लगे—॥ ८॥

सनत्कुमार उवाच

श्रृणु व्यास महाबुद्धे शिवलीलामृतं परम्।
धन्यस्त्वं शैवमुख्योऽसि ममानन्दकरः स्वतः॥ ९

प्रवर्तमाने समरे शंकरांधकयोस्तयोः।
अनिर्भेद्यपविव्यूहगिरिव्यूहाधिनाथयोः ॥ १०

पुरा जयो बभूवापि दैत्यानां बलशालिनाम्।
शिवप्रभावादभवत्प्रमथानां मुने जयः॥ ११

सनत्कुमार बोले—हे महाबुद्धिमान् व्यास! आप मुझसे शिवलीलामृतका श्रवण कीजिये, आप धन्य हैं, शिवजीके परम भक्त हैं और विशेषकर मुझे तो बहुत आनन्द देनेवाले हैं। जिस समय अत्यन्त दुर्भेद्य वज्रव्यूहके अधिपति भगवान् शंकर एवं गिरिव्यूहके अधिपति अन्धकमें घनघोर युद्ध छिड़ा हुआ था, उस समय सर्वप्रथम बलशाली दैत्योंकी विजय हुई और हे मुने! उसके बाद शिवजीके प्रभावसे प्रमथगणोंकी विजय हुई॥ ९—११॥

तच्छ्रुत्वासीद्विषण्णो हि महादैत्योऽन्धकासुरः।
कथं स्यान्मे जय इति विचारणपरोऽभवत्॥ १२

अपसृत्य ततो युद्धादन्धकः परबुद्धिमान्।
द्रुतमभ्यगमद्वीर एकलः शुक्रसन्निधिम्॥ १३

प्रणम्य स्वगुरुं काव्यमवरुह्य रथाच्च सः।
बभाषेदं विचार्याथ सांजलिर्नीतिवित्तमः॥ १४

यह सुनकर महान् दैत्य अन्धकासुर अत्यन्त दुःखित हुआ और वह विचार करने लगा कि मेरी विजय किस प्रकार होगी। इसके बाद परम बुद्धिमान्, महावीर वह अन्धक संग्राम छोड़कर शीघ्र ही अकेले शुक्राचार्यके पास गया। परम नीतिज्ञ वह अन्धक रथसे उतरकर अपने गुरु शुक्राचार्यको प्रणाम करके हाथ जोड़कर विचार करके यह कहने लगा— ॥ १२—१४॥

अंधक उवाच

भगवंस्त्वामुपाश्रित्य गुरोर्भावं वहामहे।
पराजिता भवामो नो सर्वदा जयशालिनः॥ १५

अन्धक बोला—हे भगवन्! हमलोग आपका आश्रय लेकर आपको गुरु मानते हैं, सर्वदा विजय पानेवाले हमलोग आज पराजित हो रहे हैं॥ १५॥

त्वत्प्रभावात्सदा देवान्समस्तान्सानुगान्वयम्।
मन्यामहे हरोपेन्द्रमुखानपि हि कत्तृणान्॥ १६

अस्मत्तो बिभ्यति सुराः सदा भवदनुग्रहात्।
गजा इव हरिभ्यश्च ताक्ष्र्येभ्य इव पन्नगाः॥ १७

[हे देव!] आपके प्रभावसे हमलोग सदैव शंकर, विष्णु आदि देवताओंको तथा उनके अनुचरोंको क्षुद्र तृणके समान समझते हैं और आपके अनुग्रहसे सभी देवता हमसे उसी प्रकार डरते रहते हैं, जैसे सिंहोंसे हाथी और गरुडोंसे सर्प डरते रहते हैं॥ १६-१७॥

अनिर्भेद्यं पविव्यूहं विविशुर्दैत्यदानवाः।
प्रमथानीकमखिलं विधूय त्वदनुग्रहात्॥ १८

आपके अनुग्रहसे प्रमथोंकी सम्पूर्ण सेनाको ध्वस्तकर दैत्यों तथा दानवोंने दुर्भेद्य वज्रव्यूहमें प्रवेश किया॥ १८॥

वयं त्वच्छरणा भूत्वा सदा गा इव निश्चलाः।
स्थित्वा चरामो निःशंकमाजावपि हि भार्गव॥ १९

रक्षरक्षाभितो विप्र प्रव्रज्य शरणागतान्।
असुरान् शत्रुभिर्वीरैरर्दितांश्च मृतानपि॥ २०

प्रमथैर्भीमविक्रांतैः क्रांतान्मृत्युप्रमाथिभिः।
सूदितान्पतितान्पश्य हुंडादीन्मद्गणान्वरान्॥ २१

हे भार्गव! हमलोग आपकी शरणमें रहकर पृथ्वीके समान सदा अविचल होकर युद्धस्थलमें निःशंक विचरण करते हैं। हे विप्र! वीर शत्रुओंसे पीड़ित होकर भागकर शरणमें आये हुए असुरोंकी तथा मृत दैत्योंकी भी आप रक्षा करें। मृत्युको पराजित करनेवाले महापराक्रमी प्रमथगणोंसे मार खाकर युद्धमें गिरे हुए उन हुण्ड आदि मेरे गणोंको देखिये॥ १९—२१॥

य: पीत्वा कणधूमं वै सहस्रं शरदां पुरा।
त्वया प्राप्ता वरा विद्या तस्या: कालोऽयमागत:॥ २२

अद्य विद्याफलं तत्ते सर्वे पश्यन्तु भार्गव।
प्रमथा असुरान्सर्वान् कृपया जीवयिष्यत:॥ २३

आपने पूर्वकालमें सहस्रों वर्षपर्यन्त तुषाग्निजन्य धूमका पानकर जिस संजीवनी-विद्याको प्राप्त किया है, अब उसके उपयोगका समय आ गया है। हे भार्गव! इस समय आप कृपाकर सभी असुरोंको जीवित कर दें, जिससे सभी प्रमथ आपकी इस विद्याके प्रभावको देखें॥ २२-२३॥

सनत्कुमार उवाच

इत्थमन्धकवाक्यं स श्रुत्वा धीरो हि भार्गव:।
तदा विचारयामास दूयमानेन चेतसा॥ २४
किं कर्तव्यं मयाद्यापि क्षेमं मे स्यात्कथं त्विति।
सन्निपातविधिर्जीव: सर्वथानुचितो मम॥ २५
विद्येयं शंकरात्प्राप्ता तद्गणान् प्रति योजये।
तद्रणे मर्दितान्वीरै: प्रमथै: शंकरानुगै:॥ २६
शरणागतधर्मोऽथ प्रवर: सर्वतो हृदा।
विचार्य शुक्रेण धिया तद्वाणी स्वीकृता तदा॥ २७
किंचित्स्मितं तदा कृत्वा सोऽब्रवीद्दानवाधिपम्।
भार्गव: शिवपादाब्जं स्मृत्वा स्वस्थेन चेतसा॥ २८

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार अन्धकके वचनको सुनकर परम धीर वे शुक्राचार्य दुखी मनसे विचार करने लगे। मुझे इस समय क्या करना चाहिये, मेरा कल्याण कैसे हो, इन मरे हुओंको जिलानेके लिये संजीवनीविद्याका प्रयोग मेरे लिये सर्वथा अनुचित है। वह विद्या मुझे शंकरजीद्वारा प्राप्त हुई है, अत: इसका उपयोग शिवजीके अनुचर वीर प्रमथोंके द्वारा रणमें मारे गये दैत्योंको जीवित करनेके लिये कैसे करूँ। किंतु शरणमें आये हुएकी रक्षा करना सर्वोपरि धर्म है, तब हृदय तथा बुद्धिसे विचारकर शुक्राचार्यने उसकी बात अंगीकार कर ली॥ २४—२७॥

इसके बाद शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करके कुछ-कुछ हँसकर स्वस्थचित्त हो शुक्राचार्यने दैत्यराजसे कहा—॥ २८॥

शुक्र उवाच

यत्त्वया भाषितं तात तत्सर्वं तथ्यमेव हि।
एतद्विद्योपार्जनं हि दानवार्थं कृतं मया॥ २९
दु:सहं कणधूमं वै पीत्वा वर्षसहस्रकम्।
विद्येयमीश्वरात्प्राप्ता बंधूनां सुखदा सदा॥ ३०
प्रमथैर्मथितान्दैत्यान् रणेऽहं विद्ययानया।
उत्थापयिष्ये म्लानानि शस्यानि जलभुग्यथा॥ ३१
निर्व्रणान्नीरुज: स्वस्थान् सुप्त्वेव पुनरुत्थितान्।
मुहूर्तेऽस्मिंश्च द्रष्टासि दैत्यांस्तानुत्थितान्निजान्॥ ३२

शुक्र बोले—हे तात! आपने जो कहा, सब सत्य ही है, मैंने सचमुच इस विद्याकी प्राप्ति दानवोंके लिये ही की है। मैंने सहस्रवर्षपर्यन्त तुषाग्निजन्य धूमको पीकर शिवजीसे इस विद्याको प्राप्त किया था, जो बन्धुगणोंको सर्वदा सुख देनेवाली है। मैं इस विद्याके प्रभावसे संग्राममें देवताओंद्वारा मारे गये इन दैत्योंको उसी प्रकार उठा दूँगा, जिस प्रकार मुरझायी हुई फसलोंको मेघ जीवित कर देता है। आप अभी इसी क्षण देखेंगे कि ये दैत्य व्रणरहित एवं स्वस्थ होकर सोकर उठे हुएके समान पुन: जीवित हो गये हैं॥ २९—३२॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा सोऽन्धकं शुक्रो विद्यामावर्तयत्कवि:।
एकैकं दैत्यमुद्दिश्य स्मृत्वा विद्येशमादरात्॥ ३३
विद्यावर्तनमात्रेण ते सर्वे दैत्यदानवा:।
उत्तस्थुर्युगपद्वीरा: सुप्ता इव धृतायुधा:॥ ३४
सदाभ्यस्ता यथा वेदा: समये वा यथाम्बुदा:।
श्रद्धयार्थास्तथा दत्ता ब्राह्मणेभ्यो यथापदि॥ ३५

सनत्कुमार बोले—अन्धकसे इस प्रकार कहकर शुक्राचार्यने बड़े आदरके साथ शिवजीका स्मरणकर एक-एक दैत्यको उद्देश्य करके संजीवनीविद्याका प्रयोग किया। उस विद्याके प्रयोगमात्रसे वे समस्त दैत्य एवं दानव सोकर जगे हुएके समान शस्त्र धारण किये हुए एक साथ उसी प्रकार उठ गये, जिस प्रकार निरन्तर अभ्यस्त वेद, जैसे समयपर मेघ एवं आपत्तिकालमें श्रद्धासे ब्राह्मणोंको दिया गया दान फलदायी हो जाता है॥ ३३—३५॥

उज्जीवितांस्तु तान्दृष्ट्वा हुंडादींश्च महासुरान्।
विनेदुरसुराः सर्वे जलपूर्णा इवाम्बुदाः॥ ३६

रणोद्यताः पुनश्चासन्गर्जन्तो विकटान् रवान्।
प्रमथैः सह निर्भीता महाबलपराक्रमाः॥ ३७

शुक्रेणोज्जीवितान्दृष्ट्वा प्रमथा दैत्यदानवान्।
विसिष्मिरे ततः सर्वे नंद्याद्या युद्धदुर्मदाः॥ ३८

विज्ञाप्यमेवं कर्मैतद्देवेशे शंकरेऽखिलम्।
विचार्य बुद्धिमंतश्च ह्येवं तेऽन्योन्यमब्रुवन्॥ ३९

आश्चर्यरूपे प्रमथेश्वराणां
तस्मिंस्तथा वर्तति युद्धयज्ञे।
अमर्षितो भार्गवकर्म दृष्ट्वा
शिलादपुत्रोऽभ्यगमन्महेशम् ॥ ४०
जयेति चोक्त्वा जययोनिमुग्र-
मुवाच नंदी कनकावदातम्।
गणेश्वराणां रणकर्म देव
देवैश्च सेन्द्रैरपि दुष्करं यत्॥ ४१
तद्भार्गवेणाद्य कृतं वृथा नः
संजीवितांस्तान्हि मृतान्विपक्षान् ।
आवर्त्य विद्यां मृतजीवदात्री-
मेकैकमुद्दिश्य सहेलमीश॥ ४२
तुहुंडहुंडादिककुंभजंभ-
विपाकपाकादिमहासुरेन्द्राः ।
यमालयादद्य पुनर्निवृत्ता
विद्रावयन्तः प्रमथांश्चरन्ति॥ ४३
यदि ह्यसौ दैत्यवरान्निरस्तान्
संजीवयेदत्र पुनः पुनस्तान्।
जयः कुतो नो भविता महेश
गणेश्वराणां कुत एव शांतिः॥ ४४

सनत्कुमार उवाच

इत्येवमुक्तः प्रमथेश्वरेण
स नंदिना वै प्रमथेश्वरेशः।
उवाच देवः प्रहसंस्तदानीं
तं नंदिनं सर्वगणेशराजम्॥ ४५

तब हुण्ड आदि असुरोंको पुनः जीवित देखकर सभी दैत्य जलपूर्ण बादलके समान गर्जन करने लगे॥ ३६॥

तत्पश्चात् विकट ध्वनि करके गरजते हुए महान् बल तथा पराक्रमवाले वे दैत्य निर्भीक होकर प्रमथगणोंके साथ पुनः युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये। युद्धमें अभिमानी नन्दी आदि सभी प्रमथगण शुक्राचार्यके द्वारा जीवित किये गये उन दैत्यों तथा दानवोंको देखकर अत्यन्त विस्मित हो उठे। इस सम्पूर्ण कर्मको देखकर 'शंकरजीसे निवेदन करना चाहिये'—इस प्रकार विचारकर वे बुद्धिमान् गण परस्पर कहने लगे॥ ३७—३९॥

प्रमथेश्वरोंके उस आश्चर्यकर युद्धयज्ञमें शुक्राचार्यके इस प्रकारके कार्यको देखकर शिलादपुत्र नन्दीश्वर अमर्षयुक्त हो शिवके समीप गये और 'जय हो, जय हो'—इस प्रकार कहकर जय देनेवाले एवं कनकके समान निष्कलंक शिवजीसे बोले—हे देव! युद्धस्थलमें इन्द्रसहित देवों एवं गणेश्वरोंने जो अत्यन्त कठिन कार्य किया है, हे ईश! हमारे उन सभी कार्योंको शुक्राचार्यने व्यर्थ कर दिया, एक-एक राक्षसको उद्देश्य करके मृतसंजीवनी-विद्याका प्रयोगकर युद्धमें मरे हुए उन सारे विपक्षियोंको उन्होंने बिना श्रमके जीवित कर दिया॥ ४०—४२॥

इस समय यमपुरीसे लौटे हुए तुहुण्ड, हुण्ड, कुम्भ, जम्भ, विपाक, पाक आदि महादैत्य [युद्धस्थलमें] प्रमथगणोंका विनाश करते हुए विचरण कर रहे हैं॥ ४३॥

हे महेश! यदि मारे गये श्रेष्ठ दैत्योंको शुक्राचार्य इसी प्रकार जीवित करते रहे, तो हम गणेश्वरोंकी विजय किस प्रकार सम्भव है और हमें शान्ति कहाँ?॥ ४४॥

सनत्कुमार बोले—प्रमथेश्वर नन्दीके इस प्रकार कहनेपर प्रमथेश्वरोंके ईश्वर महादेव हँसते हुए सभी गणेश्वरोंमें श्रेष्ठ नन्दीसे कहने लगे—॥ ४५॥

शिव उवाच

नन्दिन्प्रयाहि त्वरितोऽति मात्रं
द्विजेन्द्रवर्यं दितिनन्दनानाम्।
मध्यात्समुद्धृत्य तथानयाशु
श्येनो यथा लावकमंडजातम्॥ ४६

सनत्कुमार उवाच

स एवमुक्तो वृषभध्वजेन
ननाद नंदी वृषसिंहनादः।
जगाम तूर्णं च विगाह्य सेनां
यत्राभवद्भार्गववंशदीपः॥ ४७

तं रक्ष्यमाणं दितिजैः समस्तैः
पाशासिवृक्षोपलशैलहस्तैः।
विक्षोभ्य दैत्यान् बलवान् जहार
काव्यं स नन्दी शरभो यथेभम्॥ ४८

स्त्रस्ताम्बरं विच्युतभूषणं च
विमुक्तकेशं बलिना गृहीतम्।
विमोचयिष्यन्त इवानुजग्मुः
सुरारयस्सिंहरवांस्त्यजन्तः॥ ४९

दंभोलिशूलासिपरश्वधाना-
मुद्दंडचक्रोपलकंपनानाम्।
नंदीश्वरस्योपरि दानवेन्द्रा
वर्षं ववर्षुर्जलदा इवोग्रम्॥ ५०

तं भार्गवं प्राप्य गणाधिराजो
मुखाग्निना शस्त्रशतानि दग्ध्वा।
आयात्प्रवृद्धेऽसुरदेवयुद्धे
भवस्य पार्श्वे व्यथितारिपक्षः॥ ५१

अयं स शुक्रो भगवन्नितीदं
निवेदयामास भवाय शीघ्रम्।
जग्राह शुक्रं स च देवदेवो
यथोपहारं शुचिना प्रदत्तम्॥ ५२

शिवजी बोले—हे नन्दी! तुम इसी क्षण शीघ्रतासे जाओ और दैत्योंके मध्यसे शुक्राचार्यको इस प्रकार पकड़कर शीघ्र ले आओ, जिस प्रकार बाज लवा पक्षीके बच्चेको पकड़ लेता है॥ ४६॥

सनत्कुमार बोले—शिवजीके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर नन्दी सिंहके समान गर्जना करते हुए दैत्योंकी सेनाको चीरते हुए उस स्थानपर पहुँच गये, जहाँ भार्गववंशके दीपक शुक्राचार्य थे। बड़े-बड़े दैत्य पाश, खड्ग, वृक्ष, पाषाण, पर्वत आदि शस्त्र हाथमें लेकर उनकी रक्षा कर रहे थे। बलवान् नन्दीश्वरने दैत्योंको विक्षुब्ध करके शुक्राचार्यको इस प्रकार पकड़ लिया, जिस प्रकार शरभ हाथीको पकड़ लेता है॥ ४७-४८॥

तब ढीले वस्त्रवाले, बिखरे केशवाले एवं गिरते हुए आभूषणोंवाले शुक्राचार्यको छुड़ानेके लिये अनेक राक्षस सिंहनाद करते हुए उनके पीछे दौड़े॥ ४९॥

दैत्येन्द्र नन्दीश्वरपर मेघके समान वज्र, शूल, तलवार, परशु, तीक्ष्ण चक्र, पाषाण एवं कम्पन आदि नाना प्रकारके शस्त्रोंकी घोर वर्षा करने लगे॥ ५०॥

गणाधिराज नन्दीश्वर उन सभी शस्त्रोंको अपने मुखकी अग्निसे भस्म करके उस महाभयानक युद्धस्थलमें शत्रुपक्षको पीड़ित करके शुक्राचार्यको लेकर शिवजीके पास चले आये और शिवजीसे यह कहने लगे—हे भगवन्! यह वही शुक्र है। तब देवदेव शिवजीने देवगणोंके लिये अग्निके द्वारा दी गयी आहुतिके समान शुक्राचार्यको ग्रहण कर लिया।

न किंचिदुक्त्वा स हि भूतगोप्ता
चिक्षेप वक्त्रे फलवत्कवीन्द्रम्।
हाहारवस्तैरसुरैः समस्तै-
रुच्चैर्विमुक्तो हहहेति भूरि॥ ५३

प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले उन सदाशिवने बिना कुछ बोले ही उन शुक्राचार्यको फलके समान अपने मुखमें रख लिया, जिससे वे समस्त असुर ऊँचे स्वरमें महान् हाहाकार करने लगे॥ ५१—५३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे अंधकयुद्धे शुक्रनिगीर्णनवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें अन्धकयुद्धोपाख्यानमें शुक्रनिगीर्णनवर्णन नामक सैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४७॥

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

शुक्राचार्यकी अनुपस्थितिसे अन्धकादि दैत्योंका दुखी होना, शिवके उदरमें शुक्राचार्यद्वारा सभी लोकों तथा अन्धकासुरके युद्धको देखना और फिर शिवके शुक्ररूपमें बाहर निकलना, शिव-पार्वतीका उन्हें पुत्ररूपमें स्वीकारकर विदा करना

व्यास उवाच

शुक्रे निगीर्णे रुद्रेण किमकार्षुश्च दानवाः।
अंधकेशा महावीरा वद तत्त्वं महामुने॥ १

व्यासजी बोले—हे महामुने! रुद्रके द्वारा शुक्राचार्यके निगल लिये जानेपर महावीर उन अन्धकादि दैत्योंने क्या किया? आप उसे कहिये॥ १॥

सनत्कुमार उवाच

काव्ये निगीर्णे गिरिजेश्वरेण
दैत्या जयाशारहिता बभूवुः।
हस्तैर्विमुक्ता इव वारणेन्द्राः
शृङ्गैर्विहीना इव गोवृषाश्च॥ २
शिरो विहीना इव देहसंघा
द्विजा यथा चाध्ययनेन हीनाः।
निरुद्यमाः सत्त्वगुणा यथा वै
यथोद्यमा भाग्यविवर्जिताश्च॥ ३
पत्या विहीनाश्च यथैव योषा
यथा विपक्षाः खलु पक्षिणौघाः।
आयूंषि हीनानि यथैव पुण्यै-
र्व्रतैर्विहीनानि यथा श्रुतानि॥ ४
विना यथा वैभवशक्तिमेकां
भवन्ति हीनाः स्वफलैः क्रियौघाः।
यथा विशूराः खलु क्षत्रियाश्च
सत्यं विना धर्मगणो यथैव॥ ५

सनत्कुमार बोले—शिवजीके द्वारा शुक्राचार्यके निगल लिये जानेपर दैत्य उसी प्रकार विजयकी आशासे रहित हो गये, जैसे सूँड़से रहित हाथी, सींगसे रहित वृषभ, सिरविहीन देहसमुदाय, अध्ययनसे हीन द्विज, उद्यमरहित सामर्थ्यशाली, भाग्यसे रहित उद्यम, पतिविहीन स्त्री, पंखसे रहित पक्षी, पुण्यरहित आयु, व्रतविहीन शास्त्रज्ञान, शूरतासे रहित क्षत्रिय, सत्यसे रहित धर्म और एकमात्र वैभवशक्तिके बिना समस्त क्रियाएँ अपने फलोंसे रहित हो जाती हैं॥ २—५॥

नन्दिना च हृते शुक्रे गिलिते च विषादिना।
विषादमगमन्दैत्या यतमानरणोत्सवाः॥ ६

नन्दीके द्वारा शुक्राचार्यके हरण कर लिये जाने एवं शिवजीके द्वारा उन्हें निगल लिये जानेपर युद्धके लिये प्रयत्नशील होते हुए भी सभी दैत्य दुःखको प्राप्त हुए॥ ६॥

तान् वीक्ष्य विगतोत्साहानन्धकः प्रत्यभाषत।
दैत्यांस्तु हुंडहुंडादीन्महाधीरपराक्रमः॥ ७

उन्हें उत्साहरहित देखकर महान् धैर्य तथा पराक्रमसे युक्त अन्धकने हुण्ड, तुहुण्ड आदि दैत्योंसे इस प्रकार कहा—॥ ७॥

अंधक उवाच

कविं विक्रम्य नयता नन्दिना वंचिता वयम्।
तनूर्विना कृताः प्राणाः सर्वेषामद्य नो ननु॥ ८
धैर्यं वीर्यं गतिः कीर्तिः सत्त्वं तेजः पराक्रमः।
युगपन्नो हृतं सर्वमेकस्मिन् भार्गवे हृते॥ ९
धिगस्मान् कुलपूज्यो यैरेकोऽपि कुलसत्तमः।
गुरुः सर्वसमर्थश्च त्राता त्रातो न चापदि॥ १०

अन्धक बोला—अपने पराक्रमसे शुक्राचार्यको पकड़कर ले जाते हुए इस नन्दीने हमलोगोंको धोखा दिया है, उसने निश्चय ही हमलोगोंको बिना प्राणके कर दिया है। केवल एक शुक्राचार्यके हरण कर लिये जानेसे हमलोगोंका धैर्य, ओज, कीर्ति, बल, तेज और पराक्रम एक साथ ही नष्ट हो गया। हमलोगोंको धिक्कार है, जो कि हम कुलपूज्य, परम कुलीन, सर्वसमर्थ, रक्षक एवं गुरुकी इस आपत्तिमें रक्षा न कर सके॥ ८—१०॥

तद्यूयमविलंब्येह युध्यध्वमरिभिः सह।
वीरैस्तैः प्रमथैर्वीराः स्मृत्वा गुरुपदांबुजम्॥ ११

अतः तुम सब वीर गुरुके चरणकमलोंका स्मरण करके बिना विलम्ब किये ही उन वीर शत्रु प्रमथगणोंके साथ युद्ध करो॥ ११॥

गुरोः काव्यस्य सुखदौ स्मृत्वा चरणपंकजौ।
सूदयिष्याम्यहं सर्वान् प्रमथान् सह नन्दिना॥ १२

गुरु शुक्राचार्यके सुखद चरणकमलोंका स्मरणकर मैं नन्दीसहित सभी प्रमथोंको नष्ट कर दूँगा॥ १२॥

अद्यैतान् विवशान् हत्वा सहदेवैः सवासवैः।
भार्गवं मोचयिष्यामि जीवं योगीव कर्मतः॥ १३

आज मैं इन्द्रसहित देवताओंके साथ इन प्रमथगणोंको मारकर इन्हें विवशकर शुक्राचार्यको इस प्रकार छुड़ाऊँगा, जिस प्रकार योगी कर्मसे जीवको छुड़ा देता है॥ १३॥

स चापि योगी योगेन यदि नाम स्वयं प्रभुः।
शरीरात्तस्य निर्गच्छेदस्माकं शेषपालकः॥ १४

यद्यपि ऐसा भी सम्भव है कि हमलोगोंमेंसे शेषका पालन करनेवाले महायोगी प्रभु शुक्र स्वयं योगबलसे शिवजीके शरीरसे निकल जायँ॥ १४॥

सनत्कुमार उवाच

इत्यन्धकवचः श्रुत्वा दानवा मेघनिस्स्वनाः।
प्रमथान् निर्दयाः प्राहुर्मर्तव्ये कृतनिश्चयाः॥ १५

सनत्कुमार बोले—अन्धककी यह बात सुनकर मेघके समान गर्जना करनेवाले निर्दय दैत्य मरनेका निश्चयकर प्रमथगणोंसे कहने लगे—॥ १५॥

सत्यायुषि न नो जातु शक्ताः स्युः प्रमथा बलात्।
असत्यायुषि किं गत्वा त्यक्त्वा स्वामिनमाहवे॥ १६

आयुके शेष रहनेपर प्रमथगण हमें बलपूर्वक जीत नहीं सकते, किंतु यदि आयु समाप्त हो गयी है, तो स्वामीको युद्धभूमिमें छोड़कर भागनेसे क्या लाभ है?॥ १६॥

ये स्वामिनं विहायातो बहुमानधना जनाः।
यांति ते यांति नियतमंधतामिस्रमालयम्॥ १७

अयशस्तमसा ख्यातिं मलिनीकृत्य भूरिशः।
इहामुत्रापि सुखिनो न स्युर्भग्ना रणाजिरे॥ १८

अत्यन्त अहंकारी जो लोग अपने स्वामीको छोड़कर चले जाते हैं, वे निश्चय ही अन्धतामिस्र नरकमें गिरते हैं। युद्धभूमिसे भागनेवाले अपयशरूपी अन्धकारसे अपनी ख्यातिको अत्यधिक मलिन करके इस लोक एवं परलोकमें सुखी नहीं रहते हैं॥ १७-१८॥

किं दानैः किं तपोभिश्च किं तीर्थपरिमज्जनैः।
धरातीर्थे यदि स्नानं पुनर्भवमलापहे॥ १९
संप्रधार्येति तद्वाक्यं दैत्यास्ते दनुजास्तथा।
ममंथुः प्रमथानाजौ रणभेरीं निनाद्य च॥ २०
तत्र बाणासिवज्रौघैः कठिनैश्च शिलामयैः।
भुशुण्डिभिंदिपालैश्च शक्तिभल्लपरश्वधैः॥ २१
खट्वांगैः पट्टिशैः शूलैर्लकुटैर्मुसलैरलम्।
परस्परमभिघ्नन्तः प्रचक्रुः कदनं महत्॥ २२

पुनर्जन्मरूपी मलका नाश करनेवाले धरातीर्थ—युद्धतीर्थमें यदि मनुष्य स्नान कर लेता है, तो दान, तप एवं तीर्थस्नानसे क्या लाभ? इस प्रकार उन वाक्योंपर विचारकर दैत्य तथा दानव रणभेरी बजाकर प्रमथगणोंको युद्धभूमिमें पीड़ित करने लगे। युद्धमें उन्होंने बाण, खड्ग, वज्र, भयंकर शिलीमुख, भुशुण्डी, भिन्दिपाल, शक्ति, भाला, परशु, खट्वांग, पट्टिश, त्रिशूल, दण्ड एवं मुसलोंसे परस्पर प्रहार करते हुए घोर संहार किया॥ १९—२२॥

कार्मुकाणां विकृष्टानां पततां च पतत्रिणाम्।
भिंदिपालभुशुंडीनां क्ष्वेडितानां रवोऽभवत्॥ २३
रणतूर्य्यनिनादैश्च गजानां बहुबृंहितैः।
ह्रेषारवैर्हयानांश्च महान्कोलाहलोऽभवत्॥ २४

उस समय खींचे जाते हुए धनुषों, छोड़े जाते हुए बाणों, चलाये जाते हुए भिन्दिपालों एवं भुशुण्डियोंका शब्द हो रहा था। रणकी तुरहियोंके निनादों, हाथियोंके चिंघाड़ों तथा घोड़ोंकी हिनहिनाहटोंसे सर्वत्र महान् कोलाहल मच गया॥ २३-२४॥

अतिस्वनैरवापूरि द्यावाभूम्योर्यदन्तरम्।
अभीरूणां च भीरूणां महारोमोद्गमोऽभवत्॥ २५
गजवाजिमहारावस्फुटशब्दग्रहाणि च।
भग्नध्वजपताकानि क्षीणप्रहरणानि च॥ २६

भूमि तथा आकाशके मध्य गूँजे हुए शब्दोंसे साहसी तथा कायर सभीको बहुत रोमांच होने लगा। वहाँ हाथी, घोड़ोंकी घोर ध्वनिसे स्पष्ट शब्द हो रहे थे, जिनसे ध्वज एवं पताकाएँ टूट गयीं तथा शस्त्र नष्ट हो गये॥ २५-२६॥

रुधिरोद्गारचित्राणि व्यश्वहस्तिरथानि च।
पिपासितानि सैन्यानि मुमूर्च्छुरुभयत्र वै॥ २७

खूनकी धारासे रणस्थली अद्भुत हो गयी, हाथी, घोड़े एवं रथ नष्ट हो गये और युद्धकी पिपासा रखनेवाली दोनों ओरकी सेनाएँ मूर्च्छित हो गयीं॥ २७॥

अथ ते प्रमथा वीरा नंदिप्रभृतयस्तदा।
बलेन जघ्नुरसुरान्सर्वान्प्रापुर्जयं मुने॥ २८

हे मुने! उसके बाद नन्दी आदि प्रमथगणोंने अपने बलसे सभी दैत्योंको मारा और विजय प्राप्त की॥ २८॥

दृष्ट्वा सैन्यं च प्रमथैर्भज्यमानमितस्ततः।
दुद्राव रथमास्थाय स्वयमेवान्धको गणान्॥ २९

इस प्रकार प्रमथोंके द्वारा अपनी सेनाको विनष्ट होता हुआ देखकर स्वयं अन्धक रथपर आरूढ़ हो शिवगणोंपर झपट पड़ा॥ २९॥

शरासारप्रयुक्तैस्तैर्वज्रपातैर्नगा इव।
प्रमथा नेशिरे चास्त्रैर्निस्तोया इव तोयदाः॥ ३०

अन्धकके द्वारा प्रयुक्त किये गये बाणों तथा अस्त्रोंसे प्रमथगण इस प्रकार नष्ट हो गये, जिस प्रकार वज्रप्रहारसे पर्वत एवं पवनसे जलरहित मेघ नष्ट हो जाते हैं॥ ३०॥

यान्तमायान्तमालोक्य दूरस्थं निकटस्थितम्।
प्रत्येकं रोमसंख्याभिर्विव्याधेषुभिरन्धकः॥ ३१
दृष्ट्वा सैन्यं भज्यमानमन्धकेन बलीयसा।
स्कंदो विनायको नंदी सोमनंद्यादयः परे॥ ३२
प्रमथा प्रबला वीराः शंकरस्य गणा निजाः।
चुक्रुधुः समरं चक्रुर्विचित्रं च महाबलाः॥ ३३

अन्धकने आने-जानेवाले, दूरस्थ एवं निकटस्थ एक-एक गणको देखकर असंख्य बाणोंसे उन्हें विद्ध कर दिया। तब बलवान् अन्धकके द्वारा नाशको प्राप्त होती हुई अपनी सेनाको देखकर स्वामीकार्तिकेय, गणेश, नन्दीश्वर, सोमनन्दी आदि एवं दूसरे भी शिवजीके वीर प्रमथ तथा महाबली गण उठे और क्रुद्ध हो युद्ध करने लगे॥ ३१—३३॥

विनायकेन स्कंदेन नंदिना सोमनंदिना।
वीरेण नैगमेयेन वैशाखेन बलीयसा॥ ३४
इत्याद्यैस्तु गणैरुग्रैरंधकोऽप्यंधकीकृतः।
त्रिशूलशक्तिबाणौघधारासंपातपातिभिः ॥ ३५

ततः कोलाहलो जातः प्रमथासुरसैन्ययोः।
तेन शब्देन महता शुक्रः शंभूदरे स्थितः॥ ३६

छिद्रान्वेषी भ्रमन्सोऽथ विनिकेतो यथानिलः।
सप्तलोकान्सपातालान् रुद्रदेहे व्यलोकयत्॥ ३७

ब्रह्मनारायणेन्द्राणां सादित्याप्सरसां तथा।
भुवनानि विचित्राणि युद्धं च प्रमथासुरम्॥ ३८

स वर्षाणां शतं कुक्षौ भवस्य परितो भ्रमन्।
न तस्य ददृशे रन्ध्रं शुचे रन्ध्रं खलो यथा॥ ३९

शांभवेनाथ योगेन शुक्ररूपेण भार्गवः।
इमं मंत्रवरं जप्त्वा शंभोर्जठरपंजरात्॥ ४०

निष्क्रान्तो लिङ्गमार्गेण प्रणनाम ततः शिवम्।
गौर्य्या गृहीतः पुत्रार्थं तदविघ्नेश्वरीकृतः॥ ४१

अथ काव्यं विनिष्क्रांतं शुक्रमार्गेण भार्गवम्।
दृष्ट्वोवाच महेशानो विहस्य करुणानिधिः॥ ४२

महेश्वर उवाच

शुक्रवन्निःसृतो यस्माल्लिंगान्मे भृगुनन्दन।
कर्मणा तेन शुक्रस्त्वं मम पुत्रोऽसि गम्यताम्॥ ४३

सनत्कुमार उवाच

इत्येवमुक्तो देवेन शुक्रोऽर्कसदृशद्युतिः।
प्रणनाम शिवं भूयस्तुष्टाव विहितांजलिः॥ ४४

शुक्र उवाच

अनंतपादस्त्वमनंतमूर्ति-
रनंतमूर्द्धान्तकरः शिवश्च ।
अनन्तबाहुः कथमीदृशं त्वां
स्तोष्ये ह नुत्यं प्रणिपत्य मूर्ध्ना॥ ४५

उस समय गणेश, स्कन्द, नन्दी, सोमनन्दी, नैगमेय एवं वैशाख आदि उग्र गणोंने त्रिशूल, शक्ति तथा बाणोंकी वर्षासे अन्धकको भी अन्धा कर दिया॥ ३४-३५॥

उस समय असुरों और प्रमथगणोंकी सेनाओंमें कोलाहल होने लगा। उस महान् शब्दके द्वारा शिवजीके उदरमें स्थित हुए शुक्र अपने निकलनेका रास्ता खोजते हुए शिवजीके उदरमें चारों ओर इस प्रकार घूमने लगे, जिस प्रकार आधाररहित पवन इधर-उधर भटकता है। उन्होंने शिवजीके देहमें सप्त पातालसहित सात लोकोंको एवं ब्रह्मा, नारायण, इन्द्र, आदित्य तथा अप्सराओंके विचित्र भुवन तथा प्रमथों एवं असुरोंके युद्धको देखा॥ ३६—३८॥

उन शुक्रने शिवजीके उदरमें चारों ओर सौ वर्षपर्यन्त घूमते हुए भी कहीं कोई छिद्र वैसे ही नहीं प्राप्त किया, जैसे दुष्ट व्यक्ति पवित्र व्यक्तिमें कोई छिद्र नहीं देख पाता। तब शिवजीसे प्राप्त किये गये योगसे श्रेष्ठ मन्त्रका जप करके भृगुकुलोत्पन्न वे शुक्राचार्य शिवजीके उदरसे उनके लिंगमार्गसे शुक्र (वीर्य)-रूपसे निकले और उन्होंने शिवजीको प्रणाम किया। इसके बाद पार्वतीने पुत्ररूपसे उन्हें ग्रहण किया और उन्हें विघ्नरहित कर दिया॥ ३९—४१॥

तब लिंगसे वीर्यरूपमें निकले हुए शुक्रको देखकर दयासागर शिवजी हँसकर उनसे कहने लगे—॥ ४२॥

महेश्वर बोले—हे भृगुनन्दन! आप मेरे लिंगसे वीर्यरूपमें निकले हैं, इस कारण आपका नाम शुक्र हुआ और आप मेरे पुत्र हुए, अब जाइये॥ ४३॥

सनत्कुमार बोले—शिवजीके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर सूर्यके समान कान्तिमान् शुक्रने शिवको पुनः प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उनकी स्तुति की॥ ४४॥

शुक्र बोले—आप अनन्त चरणवाले, अनन्त मूर्तिवाले, अनन्त सिरवाले, अन्त करनेवाले, कल्याण-स्वरूप, अनन्त बाहुवाले तथा अनन्त स्वरूपवाले हैं, इस प्रकार सिर झुकाकर प्रणाम करनेयोग्य आपकी स्तुति मैं कैसे करूँ। आप अष्टमूर्ति होते हुए भी

त्वमष्टमूर्तिस्त्वमनन्तमूर्ति-
स्त्वमिष्टदः सर्वसुरासुराणाम्।
अनिष्टदृष्टेश्च विमर्दकश्च
स्तोष्ये ह नुत्यं कथमीदृशं त्वाम्॥ ४६

अनन्तमूर्ति हैं, आप सभी देवताओं तथा असुरोंको वांछित फल देनेवाले तथा अनिष्ट दृष्टिवालेका संहार करनेवाले हैं, इस प्रकार सर्वथा प्रणाम किये जानेयोग्य आपकी स्तुति मैं किस प्रकार करूँ॥ ४५-४६॥

सनत्कुमार उवाच

इति स्तुत्वा शिवं शुक्रः पुनर्नत्वा शिवाज्ञया।
विवेश दानवानीकं मेघमालां यथा शशी॥ ४७

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार शिवकी स्तुतिकर उन्हें पुनः नमस्कार करके शुक्रने शिवकी आज्ञासे दानवोंकी सेनामें इस प्रकार प्रवेश किया, जिस प्रकार मेघमालामें चन्द्रमा प्रवेश करता है॥ ४७॥

निगीर्णनमिति प्रोक्तं शंकरेण कवे रणे।
शृणु मंत्रं च तं जप्तो यः शंभोः कविनोदरे॥ ४८

[हे व्यासजी!] इस प्रकार मैंने युद्धमें शिवजीके द्वारा शुक्रके निगल जानेका वर्णन किया, अब उस मन्त्रको सुनिये, जिसे शिवजीके उदरमें शुक्रने जपा था॥ ४८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे शुक्रनिगीर्णनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शुक्रनिगीर्णन नामक अड़तालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४८॥

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

शुक्राचार्यद्वारा शिवके उदरमें जपे गये मन्त्रका वर्णन, अन्धकद्वारा भगवान् शिवकी नामरूपी स्तुति-प्रार्थना, भगवान् शिवद्वारा अन्धकासुरको जीवनदानपूर्वक गाणपत्य पद प्रदान करना

सनत्कुमार उवाच

ॐ नमस्ते देवेशाय सुरासुरनमस्कृताय भूतभव्यमहादेवाय हरितपिंगललोचनाय बलाय बुद्धिरूपिणे वैयाघ्रवसनच्छदायारणेयाय त्रैलोक्यप्रभवे ईश्वराय हराय हरिनेत्राय युगान्तकरणायानलाय गणेशाय लोकपालाय महाभुजाय महाहस्ताय शूलिने महादंष्ट्रिणे कालाय महेश्वराय अव्ययाय कालरूपिणे नीलग्रीवाय महोदराय गणाध्यक्षाय सर्वात्मने सर्वभावनाय सर्वगाय मृत्युहंत्रे पारियात्रसुव्रताय ब्रह्मचारिणे वेदान्तगाय तपोन्तगाय पशुपतये व्यंगाय शूलपाणये वृषकेतवे हरये जटिने शिखंडिने लकुटिने

[शुक्राचार्यने भगवान् शिवके उदरमें जिस मन्त्रका जप किया था, उस मन्त्रका भावार्थ इस प्रकार है—]

सनत्कुमार बोले—[हे महर्षे] 'ॐ जो देवताओंके स्वामी, सुर-असुरद्वारा वन्दित, भूत और भविष्यके महान् देवता, हरे और पीले नेत्रोंसे युक्त, महाबली, बुद्धिस्वरूप, बाघम्बर धारण करनेवाले, अग्निस्वरूप, त्रिलोकीके उत्पत्तिस्थान, ईश्वर, हर, हरिनेत्र, प्रलयकारी, अग्निस्वरूप, गणेश, लोकपाल, महाभुज, महाहस्त, त्रिशूल धारण करनेवाले, बड़ी-बड़ी दाढ़ोंवाले, कालस्वरूप, महेश्वर, अविनाशी, कालरूपी, नीलकण्ठ, महोदर, गणाध्यक्ष, सर्वात्मा, सबको उत्पन्न करनेवाले, सर्वव्यापी, मृत्युको हटानेवाले, पारियात्र पर्वतपर उत्तम व्रत धारण करनेवाले, ब्रह्मचारी, वेदान्तप्रतिपाद्य, तपकी अन्तिम सीमातक पहुँचनेवाले, पशुपति, विशिष्ट अंगोंवाले, शूलपाणि, वृषध्वज, पापापहारी, जटाधारी, शिखण्ड धारण करनेवाले,

महायशसे भूतेश्वराय गुहावासिने वीणापणवतालवते अमराय दर्शनीयाय बालसूर्य-निभाय श्मशानवासिने भगवते उमापतये अरिन्दमाय भगस्याक्षिपातिने पूष्णोर्दशननाशनाय क्रूरकर्तकाय पाशहस्ताय प्रलयकालाय उल्कामुखायाग्निकेतवे मुनये दीप्ताय विशांपतये उन्नयते जनकाय चतुर्थकाय लोकसत्तमाय वामदेवाय वाग्दाक्षिण्याय वामतो भिक्षवे भिक्षुरूपिणे जटिने स्वयं जटिलाय शक्रहस्तप्रतिस्तंभकाय वसूनां स्तंभकाय क्रतवे क्रतुकराय कालाय मेधाविने मधुकराय चलाय वानस्पत्याय वाजसनेति समाश्रमपूजिताय जगद्धात्रे जगत्कर्त्रे पुरुषाय शाश्वताय ध्रुवाय धर्माध्यक्षाय त्रिवर्त्मने भूतभावनाय त्रिनेत्राय बहुरूपाय सूर्यायुतसमप्रभाय देवाय सर्वतूर्य-निनादिने सर्वबाधाविमोचनाय बंधनाय सर्वधारिणे धर्मोत्तमाय पुष्पदंतायाविभागाय मुखाय सर्वहराय हिरण्यश्रवसे द्वारिणे भीमाय भीम-पराक्रमाय ॐ नमो नमः।

इमं मन्त्रवरं जप्त्वा शुक्रो जठरपंजरात्।
निष्क्रान्तो लिंगमार्गेण शंभोः शुक्रमिवोत्कटम्॥ १

दण्डधारी, महायशस्वी, भूतेश्वर, गुहामें निवास करनेवाले, वीणा और पणवपर ताल लगानेवाले, अमर, दर्शनीय, बालसूर्य-सरीखे रूपवाले, श्मशानवासी, ऐश्वर्यशाली, उमापति, शत्रुदमन, भगके नेत्रोंको नष्ट कर देनेवाले, पूषाके दाँतोंके विनाशक, क्रूरतापूर्वक संहार करनेवाले, पाशधारी, प्रलयकालरूप, उल्कामुख, अग्निकेतु, मननशील, प्रकाशमान, प्रजापति, ऊपर उठानेवाले, जीवोंको उत्पन्न करनेवाले, तुरीयतत्त्वरूप, लोकोंमें सर्वश्रेष्ठ, वामदेव, वाणीकी चतुरतारूप, वाममार्गमें भिक्षुरूप, भिक्षुक, जटाधारी, जटिल—दुराराध्य, इन्द्रके हाथको स्तम्भित करनेवाले, वसुओंको विजडित कर देनेवाले, यज्ञस्वरूप, यज्ञकर्ता, काल, मेधावी, मधुकर, चलने-फिरनेवाले, वनस्पतिका आश्रय लेनेवाले, वाजसन नामसे सम्पूर्ण आश्रमोंद्वारा पूजित, जगद्धाता, जगत्कर्ता, सर्वान्तर्यामी, सनातन, ध्रुव, धर्माध्यक्ष, भूः-भुवः-स्वः—इन तीनों लोकोंमें विचरनेवाले, भूतभावन, त्रिनेत्र, बहुरूप, दस हजार सूर्योंके समान प्रभाशाली, महादेव, सब तरहके बाजे बजानेवाले, सम्पूर्ण बाधाओंसे विमुक्त करनेवाले, बन्धनस्वरूप, सबको धारण करनेवाले, उत्तम धर्मरूप, पुष्पदन्त, विभागरहित, मुख्यरूप, सबका हरण करनेवाले, सुवर्णके समान दीप्त कीर्तिवाले, मुक्तिके द्वारस्वरूप, भीम तथा भीमपराक्रमी हैं, उन्हें नमस्कार है, नमस्कार है।'—इस श्रेष्ठ मन्त्रका जप करके शिवजीके जठरपंजरसे उनके लिंगमार्गसे उत्कट वीर्यकी भाँति शुक्राचार्य बाहर आये॥ १॥

गौर्या गृहीतः पुत्रार्थं विश्वेशेन ततः कृतः।
अजरश्चामरः श्रीमान्द्वितीय इव शंकरः॥ २

पार्वतीने उन्हें पुत्ररूपमें ग्रहण किया और विश्वेश्वरने उन्हें अजर-अमर एवं ऐश्वर्यमय बनाकर दूसरे शिवके समान कर दिया॥ २॥

त्रिभिर्वर्षसहस्रैस्तु समतीतैर्महीतले।
महेश्वरात्पुनर्जातः शुक्रो वेदनिधिर्मुनिः॥ ३

इस प्रकार तीन हजार वर्ष बीत जानेपर वेदनिधि मुनि शुक्र महेश्वरसे पुनः पृथ्वीपर उत्पन्न हुए॥ ३॥

ददर्श शूले संशुष्कं ध्यायन्तं परमेश्वरम्।
अंधकं धैर्यसंपन्नं दानवेशं तपस्विनम्॥ ४

तब उन्होंने शिवके त्रिशूलपर अत्यन्त शुष्क शरीरवाले, महाधैर्यवान् और तपस्वी दानवराज अन्धकको शिवजीका ध्यान करते हुए देखा॥ ४॥

महादेवं विरूपाक्षं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम्।
अमृतं शाश्वतं स्थाणुं नीलकंठं पिनाकिनम्॥ ५
वृषभाक्षं महाज्ञेयं पुरुषं सर्वकामदम्।
कामारिं कामदहनं कामरूपं कपर्दिनम्॥ ६

[वह शिवजीके १०८ नामोंका इस प्रकार स्मरण कर रहा था], महादेव, विरूपाक्ष, चन्द्रार्धकृतशेखर अमृत, शाश्वत, स्थाणु, नीलकण्ठ, पिनाकी, वृषभाक्ष, महाज्ञेय, पुरुष, सर्वकामद, कामारि, कामदहन, कामरूप,

विरूपं गिरिशं भीमं स्रग्विणं रक्तवाससम्।
योगिनं कालदहनं त्रिपुरघ्नं कपालिनम्॥ ७
गूढव्रतं गुप्तमंत्रं गंभीरं भावगोचरम्।
अणिमादिगुणाधारं त्रिलोकैश्वर्यदायकम्॥ ८
वीरं वीरहणं घोरं विरूपं मांसलं पटुम्।
महामांसादमुन्मत्तं भैरवं वै महेश्वरम्॥ ९
त्रैलोक्यद्रावणं लुब्धं लुब्धकं यज्ञसूदनम्।
कृत्तिकानां सुतैर्युक्तमुन्मत्तं कृत्तिवाससम्॥ १०
गजकृत्तिपरीधानं क्षुब्धं भुजगभूषणम्।
दत्तालंबं च वेतालं घोरं शाकिनिपूजितम्॥ ११
अघोरं घोरदैत्यघ्नं घोरघोषं वनस्पतिम्।
भस्माङ्गं जटिलं शुद्धं भेरुंडशतसेवितम्॥ १२
भूतेश्वरं भूतनाथं पञ्चभूताश्रितं खगम्।
क्रोधितं निष्ठुरं चण्डं चण्डीशं चण्डिकाप्रियम्॥ १३
चण्डं तुंगं गरुत्मन्तं नित्यमासवभोजनम्।
लेलिहानं महारौद्रं मृत्युं मृत्योरगोचरम्॥ १४
मृत्योर्मृत्युं महासेनं श्मशानारण्यवासिनम्।
रागं विरागं रागांधं वीतरागशतार्चितम्॥ १५
सत्त्वं रजस्तमोधर्ममधर्मं वासवानुजम्।
सत्यं त्वसत्यं सद्रूपमसद्रूपमहेतुकम्॥ १६
अर्द्धनारीश्वरं भानुं भानुकोटिशतप्रभम्।
यज्ञं यज्ञपतिं रुद्रमीशानं वरदं शिवम्॥ १७
अष्टोत्तरशतं ह्येतन्मूर्तीनां परमात्मनः।
शिवस्य दानवो ध्यायन् मुक्तस्तस्मान्महाभयात्॥ १८

कपर्दी, विरूप, गिरिश, भीम, स्रग्वी, रक्तवासा, योगी, कालदहन, त्रिपुरघ्न, कपाली, गूढव्रत, गुप्तमन्त्र, गम्भीर, भावगोचर, अणिमादि गुणाधार, त्रिलोकैश्वर्यदायक, वीर, वीरहण, घोर, विरूप, मांसल, पटु, महामांसाद, उन्मत्त, भैरव, महेश्वर, त्रैलोक्यद्रावण, लुब्ध, लुब्धक, यज्ञसूदन, कृत्तिकासुतयुक्त, उन्मत्त, कृत्तिवासा, गजकृत्तिपरीधान, क्षुब्ध, भुजगभूषण, दत्तालम्ब, वेताल, घोर, शाकिनीपूजित, अघोर, घोर दैत्यघ्न, घोरघोष, वनस्पति, भस्मांग, जटिल, शुद्ध, भेरुण्डशतसेवित, भूतेश्वर, भूतनाथ, पंचभूताश्रित, खग, क्रोधित, निष्ठुर, चण्ड, चण्डीश, चण्डिकाप्रिय, चण्ड, तुंग, गरुत्मान्, नित्य आसवभोजन, लेलिहान, महारौद्र, मृत्यु, मृत्योरगोचर, मृत्योर्मृत्यु, महासेन, श्मशानारण्यवासी, राग, विराग, रागान्ध, वीतरागशतार्चित, सत्त्व, रज, तम, धर्म, अधर्म, वासवानुज, सत्य, असत्य, सद्रूप, असद्रूप, अहेतुक, अर्धनारीश्वर, भानु, भानुकोटि-शतप्रभ, यज्ञ, यज्ञपति, रुद्र, ईशान, वरद और शिव—इस प्रकार परमात्मा शिवजीकी इन एक सौ आठ मूर्तियोंका ध्यान करता हुआ वह दैत्य उस महाभयसे मुक्त हो गया॥ ५—१८॥

दिव्येनामृतवर्षेण सोऽभिषिक्तः कपर्दिना।
तुष्टेन मोचितं तस्माच्छूलाग्रादवरोपितः॥ १९

उक्तश्चाथ महादैत्यो महेशानेन सोऽन्धकः।
असुरः सांत्वपूर्वं यत्कृतं सर्वं महात्मना॥ २०

प्रसन्न हुए शिवजीने दिव्य अमृतकी वर्षासे उसका अभिषेक किया और उस त्रिशूलके अग्रभागसे उसे उतारा और महात्मा शिवजीने वह सब कृत्य उस महादैत्य अन्धकसे शान्तिपूर्वक कहा, जिसे उन्होंने पहले किया था॥ १९-२०॥

ईश्वर उवाच

भो भो दैत्येन्द्र तुष्टोऽस्मि यमेन नियमेन च।
शौर्येण तव धैर्येण वरं वरय सुव्रत॥ २१

आराधितस्त्वया नित्यं सर्वनिर्धूतकल्मषः।
वरदोऽहं वरार्हस्त्वं महादैत्येन्द्रसत्तम॥ २२

प्राणसंधारणादस्ति यच्च पुण्यफलं तव।
त्रिभिर्वर्षसहस्त्रैस्तु तेनास्तु तव निर्वृतिः॥ २३

ईश्वर बोले—हे दैत्येन्द्र! हे सुव्रत! मैं तुम्हारे यम, नियम, शौर्य एवं धैर्यसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगो। हे श्रेष्ठ महादैत्येन्द्र! तुमने निष्पाप होकर नित्य मेरी आराधना की है, तुम वरके योग्य हो, इसलिये मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ। इस प्रकार तीन सहस्र वर्षपर्यन्त प्राणधारण करनेका तुम्हारा जो पुण्यफल है, उससे तुम्हारी मुक्ति हो जाय॥ २१—२३॥

सनत्कुमार उवाच

एतच्छ्रुत्वान्धकः प्राह वेपमानः कृतांजलिः।
भूमौ जानुद्वयं कृत्वा भगवन्तमुमापतिम्॥ २४

अंधक उवाच

भगवन्यन्मयोक्तोऽसि दीनो हीनः परात्परः।
हर्षगद्गदया वाचा मया पूर्वं रणाजिरे॥ २५
यद्यत्कृतं विमूढत्वात्कर्म लोकेषु गर्हितम्।
अजानता त्वां तत्सर्वं प्रभो मनसि मा कृथाः॥ २६

पार्वत्यामपि दुष्टं यत्कामदोषात्कृतं मया।
क्षम्यतां मे महादेव कृपणो दुःखितो भृशम्॥ २७

दुःखितस्य दया कार्या कृपणस्य विशेषतः।
दीनस्य भक्तियुक्तस्य भवता नित्यमेव हि॥ २८

सोऽहं दीनो भक्तियुक्त आगतः शरणं तव।
रक्षा मयि विधातव्या रचितोऽयं मयाञ्जलिः॥ २९
इयं देवी जगन्माता परितुष्टा ममोपरि।
क्रोधं विहाय सकलं प्रसन्ना मां निरीक्षताम्॥ ३०
क्वास्याः क्रोधः क्व कृपणो दैत्योऽहं चन्द्रशेखर।
तत्सोढा नाहमर्द्धेन्दुचूड शंभो महेश्वर॥ ३१

क्व भवान्परमोदारः क्व चाहं विवशीकृतः।
कामक्रोधादिभिर्दोषैर्जरसा मृत्युना तथा॥ ३२

अयं ते वीरकः पुत्रो युद्धशौंडो महाबलः।
कृपणं मां समालक्ष्य मा मन्युवशमन्वगाः॥ ३३

तुषारहारशीतांशुशंखकुन्देन्दुवर्णभाक्।
पश्येयं पार्वतीं नित्यं मातरं गुरुगौरवात्॥ ३४

नित्यं भवद्भ्यां भक्तस्तु निर्वैरो दैवतैः सह।
निवसेयं गणैः सार्द्धं शांतात्मा योगचिंतकः॥ ३५

मा स्मरेयं पुनर्जातं विरुद्धं दानवोद्भवम्।
त्वत्कृपातो महेशान देह्येतद्वरमुत्तमम्॥ ३६

सनत्कुमार बोले—यह सुनकर अन्धकने पृथ्वीपर दोनों घुटनोंको टेककर काँपते हुए हाथ जोड़कर उमापति शिवजीसे कहा—॥ २४॥

अन्धक बोला—हे भगवन्! मैंने इससे पूर्वमें आप परात्पर परमात्माको युद्धक्षेत्रमें प्रसन्न गद्‌गद वाणीसे दीन, हीन इत्यादि जो कहा है एवं हे शम्भो! मूर्ख होनेके कारण अज्ञानवश इस लोकमें जो-जो निन्दित कर्म किया है, उसे आप अपने मनमें न रखें॥ २५-२६॥

हे महादेव! मैंने कामविकारसे पार्वतीके प्रति अपराध किया है, उसे क्षमा करें; क्योंकि मैं अत्यन्त कृपण एवं दुखी हूँ॥ २७॥

हे प्रभो! अत्यन्त दुखित, कृपण, दीन एवं भक्तिसे युक्त जनपर आपको विशेष रूपसे दया करनी चाहिये॥ २८॥

मैं दीन आपकी शरणमें आया हूँ, अतः मेरी रक्षा कीजिये। मैंने हाथ जोड़ रखे हैं॥ २९॥

मुझपर सन्तुष्ट होनेवाली जगज्जननी ये देवी समस्त क्रोध त्यागकर मेरे ऊपर प्रसन्न होकर मुझे देखें॥ ३०॥

हे चन्द्रशेखर! हे अर्धेन्दुचूड! हे शम्भो! हे महेश्वर! कहाँ तो इन महादेवीका क्रोध और कहाँ मैं दयाका पात्र दैत्य, फिर भी आप मेरा अपराध क्षमा करते रहें॥ ३१॥

कहाँ आप जैसे परमोदार और कहाँ काम, क्रोधादि दोषों एवं मृत्यु तथा वृद्धावस्थाके वशीभूत रहनेवाला मैं। [हे प्रभो!] आपका यह युद्धकुशल तथा महाबली पुत्र वीरक मुझ दयापात्रको देखकर अब क्रोध न करे॥ ३२-३३॥

तुषार, हार, चन्द्र, शंख तथा कुन्दके समान स्वच्छ वर्णवाले हे प्रभो! मैं इन माता पार्वतीको अत्यन्त आदरसे नित्य देखा करूँ। अब मैं आप दोनोंका सदा भक्त होकर तथा देवताओंके साथ वैररहित होकर शान्तचित्त और योगपरायण हो इन गणोंके साथ निवास करूँ॥ ३४-३५॥

हे महेशान! आपकी कृपासे मैं दानवकुलमें उत्पन्न होनेके कारण किये गये विपरीत कर्मोंका स्मरण कभी न करूँ, आप मुझे यह उत्तम वर दीजिये॥ ३६॥

सनत्कुमार उवाच

एतावदुक्त्वा वचनं दैत्येन्द्रो मौनमास्थितः।
ध्यायंस्त्रिलोचनं देवं पार्वतीं प्रेक्ष्य मातरम्॥ ३७

ततो दृष्टस्तु रुद्रेण प्रसन्नेनैव चक्षुषा।
स्मृतवान्पूर्ववृत्तांतमात्मनो जन्म चाद्भुतम्॥ ३८

सनत्कुमार बोले—इतना कहकर उस दैत्येन्द्रने माता पार्वतीकी ओर देखकर भगवान् शिवका ध्यान करते हुए मौन धारण कर लिया। तदनन्तर शिवजीने प्रसन्नतापूर्ण दृष्टिसे उसे देखा, तब उसे अपने पूर्ववृत्तान्त तथा अद्भुत जन्मका स्मरण हो आया॥ ३७-३८॥

तस्मिन्स्मृते च वृत्तान्ते ततः पूर्णमनोरथः।
प्रणम्य मातापितरौ कृतकृत्योऽभवत्ततः॥ ३९

पार्वत्या मूर्ध्न्युपाघ्रातः शंकरेण च धीमता।
तथाऽभिलषितं लेभे तुष्टाद् बालेन्दुशेखरात्॥ ४०

एतद्वः सर्वमाख्यातमन्धकस्य पुरातनम्।
गाणपत्यं महादेवप्रसादात्परसौख्यदम्॥ ४१

मृत्युंजयश्च कथितो मंत्रो मृत्युविनाशनः।
पठितव्यः प्रयत्नेन सर्वकामफलप्रदः॥ ४२

इस प्रकार उस पूर्ववृत्तान्तका स्मरण होनेपर वह पूर्णमनोरथवाला हो गया और माता-पिताको प्रणामकर कृतकृत्य हो गया। इसके बाद बुद्धिमान् शिवजी तथा पार्वतीने उसका मस्तक सूँघा और उसने प्रसन्न हुए सदाशिवसे अभिलषित वर प्राप्त किया। [हे वेदव्यासजी!] इस प्रकार मैंने अन्धकका सारा पुरातन वृत्तान्त और शंकरजीकी कृपासे उसे सुख देनेवाले गाणपत्य पदकी प्राप्तिका वर्णन किया और सभी कामनाओंका फल देनेवाले तथा मृत्युका विनाश करनेवाले मृत्युंजय मन्त्रको भी मैंने कहा, इसको यत्नपूर्वक पढ़ना (जपना) चाहिये॥ ३९—४२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे अंधकगणजीवनप्राप्तिवर्णनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ४९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें अन्धकगणजीवप्राप्तिवर्णन नामक उनचासवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४९॥

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

शुक्राचार्यद्वारा काशीमें शुक्रेश्वर लिंगकी स्थापनाकर उनकी आराधना करना, मूर्त्यष्टक स्तोत्रसे उनका स्तवन, शिवजीका प्रसन्न होकर उन्हें मृतसंजीवनी-विद्या प्रदान करना और ग्रहोंके मध्य प्रतिष्ठित करना

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास यथा प्राप्ता मृत्युप्रशमनी परा।
विद्या काव्येन मुनिना शिवान्मृत्युञ्जयाभिधात्॥ १

पुरासौ भृगुदायादो गत्वा वाराणसीं पुरीम्।
बहुकालं तपस्तेपे ध्यायन्विश्वेश्वरं प्रभुम्॥ २

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] मृत्युंजय नामक शिवजीसे जिस प्रकार शुक्राचार्य मुनिने मृत्युनाशिनी विद्या प्राप्त की, उसे आप सुनें। पूर्वकालमें भृगुपुत्र शुक्राचार्य वाराणसीपुरीमें जाकर विश्वेश्वर प्रभुका ध्यान करते हुए दीर्घकालतक तप करते रहे॥ १-२॥

स्थापयामास तत्रैव लिंगं शंभोः परात्मनः।
कूपं चकार सद्रम्यं वेदव्यास तदग्रतः॥ ३

पंचामृतैर्द्रोणमितैर्लक्षकृत्वः प्रयत्नतः।

हे वेदव्यास! उन्होंने वहाँ परमात्मा शिवका लिंग स्थापित किया और उसके सामने एक मनोहर कूपका निर्माण करवाया। उन्होंने द्रोण-परिमाणके पंचामृतसे उन देवेशको एक लाख बार स्नान करवाया

स्नापयामास देवेशं सुगंधस्नपनैर्बहु॥ ४
सहस्रकृत्वो देवेशं चन्दनैर्यक्षकर्दमैः।
समालिलिंप सुप्रीत्या सुगन्धोद्वर्त्तनान्यनु॥ ५
राजचंपकधत्तूरैः करवीरकुशेशयैः।
मालतीकर्णिकारैश्च कदंबैर्बकुलोत्पलैः॥ ६
मल्लिकाशतपत्रीभिस्सिंधुवारैः सकिंशुकैः।
बन्धूकपुष्पैः पुन्नागैर्नागकेशरकेशरैः॥ ७
नवमल्लीचिबिलिकैः कुंदैः समुचुकुन्दकैः।
मन्दारैर्बिल्वपत्रैश्च द्रोणैर्मरुबकैर्बृकैः।
ग्रन्थिपर्णैर्दमनकैः सुरम्यैश्चूतपल्लवैः॥ ८
तुलसीदेवगंधारीबृहत्पत्रीकुशांकुरैः।
नंद्यावर्तैरगस्त्यैश्च सशालैर्देवदारुभिः॥ ९
कांचनारैः कुरबकैर्दूर्वांकुरकुरुंटकैः।
प्रत्येकमेभिः कुसुमैः पल्लवैरपरैरपि॥ १०
पत्रैः सहस्रपत्रैश्च रम्यैर्नानाविधैः शुभैः।
सावधानेन सुप्रीत्या स समानर्च शंकरम्॥ ११
गीतनृत्योपहारैश्च संस्तुतः स्तुतिभिर्बहु।
नाम्नां सहस्रैरन्यैश्च स्तोत्रैस्तुष्टाव शंकरम्॥ १२
सहस्रं पञ्चशरदामित्थं शुक्रो महेश्वरम्।
नानाप्रकारविधिना महेशं स समर्चयत्॥ १३
यदा देवं नानुलोके मनागपि वरोन्मुखम्।
तदान्यं नियमं घोरं जग्राहातीव दुःसहम्॥ १४
प्रक्षाल्य चेतसोऽत्यन्तं चांचल्याख्यं महामलम्।
भावनावार्भिरसकृदिन्द्रियैः सहितस्य च॥ १५
निर्मलीकृत्य तच्चेतो रत्नं दत्त्वा पिनाकिने।
प्रपपौ कणधूमौघं सहस्रं शरदां कविः॥ १६
काव्यमित्थं तपो घोरं कुर्वन्तं दृढमानसम्।
प्रससाद स तं वीक्ष्य भार्गवाय महेश्वरः॥ १७
तस्माल्लिंगाद्विनिर्गत्य सहस्रार्काधिकद्युतिः।
उवाच तं विरूपाक्षः साक्षाद्दाक्षायणीपतिः॥ १८

महेश्वर उवाच

तपोनिधे महाभाग भृगुपुत्र महामुने।
तपसानेन ते नित्यं प्रसन्नोऽहं विशेषतः॥ १९

और इसी प्रकार नाना प्रकारके सुगन्धित द्रव्योंसे भी एक लाख बार स्नान करवाया। उन्होंने देवेशका चन्दन, यक्षकर्दम* और सुगन्धित उबटनसे हजारों बार प्रीतिपूर्वक अनुलेपन किया॥ ३—५॥

उन्होंने राजचम्पक, धतूरा, कनेर, कमल, मालती, कर्णिकार, कदम्ब, बकुल, उत्पल, मल्लिका, शतपत्री, सिन्धुवार, किंशुक, बन्धूकपुष्प, पुन्नाग, केशर, नागकेशर, नवमल्ली, चिबिलिक, कुन्द, मुचुकुन्द, मन्दार, बेलपत्र, द्रोण, मरुबक, वृक, ग्रन्थिपर्ण, दमनक, सुरम्य आम्रपत्र, तुलसी, देवगन्धारी, बृहत्पत्री, कुशांकुर, नन्द्यावर्त, अगस्त्य, साल, देवदारु, कचनार, कुरबक, दूर्वांकुर, कुरुण्टक—इन प्रत्येक पुष्पोंसे तथा अनेक प्रकारके दूसरे मनोहर पल्लवों, पत्तों तथा कमलोंसे सावधानचित्त हो प्रीतिपूर्वक शिवजीका पूजन किया॥ ६—११॥

तदनन्तर उन्होंने गीत, नृत्य, उपहार, बहुत-सी स्तुतियों, शिवसहस्रनामस्तोत्र तथा अन्य स्तुतियोंसे शिवजीको प्रसन्न किया। इस प्रकार शुक्राचार्य पाँच हजार वर्षपर्यन्त नाना प्रकारकी अर्चनविधिसे महेश्वर शिवकी पूजा करते रहे॥ १२-१३॥

जब उन्होंने शिवजीको वरदानके लिये थोड़ा भी उन्मुख न देखा, तब अत्यन्त कठिन दूसरा नियम धारण किया। भावनारूपी जलसे इन्द्रियोंसहित चित्तके चांचल्यरूपी महान् दोषको धोकर उस चित्तरूप महारत्नको निर्मल करके शिवजीके लिये अर्पण करके शुक्राचार्य हजारों वर्षपर्यन्त तुषाग्निजन्य धूमराशिका पान करने लगे॥ १४—१६॥

इस प्रकार दृढ़ मनवाला होकर घोर तप करते हुए उनको देखकर शिवजी शुक्राचार्यपर अत्यन्त प्रसन्न हो गये और हजारों सूर्योंसे भी अधिक तेजवाले दाक्षायणीपति विरूपाक्ष शिवजी उस लिंगसे प्रकट होकर कहने लगे—॥ १७-१८॥

महेश्वर बोले—हे तपोनिधे! हे महाभाग! हे महामुने! हे भृगुपुत्र! मैं आपके इस तपसे विशेषरूपसे प्रसन्न हूँ। हे भार्गव! आप अपना मनोभिलषित

* 'कर्पूरागरुकस्तूरीकङ्कोलैर्यक्षकर्दमः।' (अमरकोश) एक प्रकारका सुगन्धित अंगलेप, जो कपूर, अगरु, कस्तूरी और कंकोलको समान मात्रामें मिलाकर बनाया जाता है।

मनोऽभिलषितं सर्वं वरं वरय भार्गव।
प्रीत्या दास्येऽखिलान्कामान्नादेयं विद्यते तव॥ २०

सनत्कुमार उवाच

निशम्येति वचः शंभोर्महासुखकरं परम्।
स बभूव कविस्तुष्टो निमग्नः सुखवारिधौ॥ २१

उद्यदानंदसंदोहरोमांचांचितविग्रहः।
प्रणनाम मुदा शंभुमंभोजनयनो द्विजः॥ २२

तुष्टावाष्टतनुं तुष्टः प्रफुल्लनयनांचलः।
मौलावञ्जलिमाधाय वदन् जय जयेति च॥ २३

भार्गव उवाच

त्वं भाभिराभिरभिभूय तमः समस्त-
मस्तं नयस्यभिमतानि निशाचराणाम्।
देदीप्यसे दिवमणे गगने हिताय
लोकत्रयस्य जगदीश्वर तन्नमस्ते॥ २४

लोकेऽतिवेलमतिवेलमहामहोभि-
र्निर्भासि कौ च गगनेऽखिललोकनेत्रः।
विद्राविताखिलतमाः सुतमो हिमांशो
पीयूषपूरपरिपूरित तन्नमस्ते॥ २५

त्वं पावने पथि सदा गतिरप्युपास्यः
कस्त्वां विना भुवनजीवन जीवतीह।
स्तब्धप्रभंजनविवर्द्धितसर्वजंतोः
संतोषिताहिकुलसर्वग वै नमस्ते॥ २६

विश्वैकपावक नतावक पावकैक-
शक्ते ऋते मृतवतामृतदिव्यकार्यम्।
प्राणिष्यदो जगदहो जगदंतरात्मं-
स्त्वं पावकः प्रतिपदं शमदो नमस्ते॥ २७

समस्त वर माँगिये, मैं प्रसन्न होकर आपकी सभी कामनाएँ पूर्ण करूँगा। आपके लिये कुछ भी अदेय नहीं है॥ १९-२०॥

सनत्कुमार बोले—शिवजीके इस अत्यन्त सुख देनेवाले श्रेष्ठ वचनको सुनकर शुक्राचार्य हर्षित हो गये और आनन्दसमुद्रमें निमग्न हो गये॥ २१॥

कमलके समान नेत्रवाले तथा हर्षातिरेकसे रोमांचित विग्रहवाले शुक्राचार्यने प्रसन्नतापूर्वक शिवजीको प्रणाम किया और प्रफुल्लित नेत्रोंवाला होकर सिरपर अंजलि लगाकर जय-जयकार करते हुए बड़ी प्रसन्नतासे वे अष्टमूर्ति* शिवजीकी स्तुति करने लगे— ॥ २२-२३॥

भार्गव बोले—हे जगदीश्वर! आप अपने तेजसे समस्त अन्धकारको दूरकर रातमें विचरण करनेवाले राक्षसोंके मनोरथोंको नष्ट कर देते हैं। हे दिनमणे! आप त्रिलोकीका हित करनेके लिये आकाशमें सूर्यरूपसे प्रकाशित हो रहे हैं; ऐसे आपको नमस्कार है॥ २४॥

हे हिमांशो! आप पृथ्वी तथा आकाशमें समस्त प्राणियोंके नेत्र बनकर चन्द्ररूपसे विराजमान हैं और लोकमें व्याप्त अन्धकारका नाश करनेवाले एवं अमृतकी किरणोंसे युक्त हैं। हे अमृतमय! आपको नमस्कार है॥ २५॥

हे भुवनजीवन! आप पावनपथ—योगमार्गका आश्रय लेनेवालोंकी सदा गति तथा उपास्यदेव हैं। इस जगत्‌में आपके बिना कौन जीवित रह सकता है। आप वायुरूपसे समस्त प्राणियोंका वर्धन करनेवाले और सर्पकुलोंको सन्तुष्ट करनेवाले हैं। हे सर्वव्यापिन्! आपको नमस्कार है॥ २६॥

हे विश्वके एकमात्र पावनकर्ता! हे शरणागतरक्षक! यदि आपकी एकमात्र पावक (पवित्र करनेवाली एवं दाहिका) शक्ति न रहे, तो मरनेवालोंको मोक्ष प्रदान कौन करे? हे जगदन्तरात्मन्! आप ही समस्त प्राणियोंके भीतर वैश्वानर नामक पावक (अग्निरूप) हैं और उन्हें पग-पगपर शान्ति प्रदान करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है॥ २७॥

* पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, यजमान (क्षेत्रज्ञ या आत्मा), चन्द्रमा और सूर्य—इन आठोंमें अधिष्ठित शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, महादेव और ईशान—ये अष्टमूर्तियोंके नाम हैं।

पानीयरूप परमेश जगत्पवित्र
चित्रं विचित्रसुचरित्रकरोऽसि नूनम्।
विश्वं पवित्रममलं किल विश्वनाथ
पानीयगाहनत एतदतो नतोऽस्मि॥ २८

हे जलरूप! हे परमेश! हे जगत्पवित्र! आप निश्चय ही विचित्र उत्तम चरित्र करनेवाले हैं। हे विश्वनाथ! आपका यह अमल पानीय रूप अवगाहनमात्रसे विश्वको पवित्र करनेवाला है, अतः आपको नमस्कार करता हूँ॥ २८॥

आकाशरूपबहिरंतरुतावकाश-
दानाद्विकस्वरमिहेश्वर विश्वमेतत्।
त्वत्तः सदा सदय संश्वसिति स्वभावात्
संकोचमेति भवतोऽस्मि नतस्ततस्त्वाम्॥ २९

हे आकाशरूप! हे ईश्वर! यह संसार बाहर एवं भीतरसे अवकाश देनेके ही कारण विकसित है, हे दयामय! आपसे ही यह संसार स्वभावतः सदा श्वास लेता है और आपसे ही यह संकोचको प्राप्त होता है, अतः आपको प्रणाम करता हूँ॥ २९॥

विश्वंभरात्मक बिभर्षि विभोऽत्र विश्वं
को विश्वनाथ भवतोऽन्यतमस्तमोऽरिः।
स त्वं विनाशय तमो मम चाहिभूष
स्तव्यात्परः परपरं प्रणतस्ततस्त्वाम्॥ ३०

हे विश्वम्भरात्मक [पृथ्वीरूप]! हे विभो! आप ही इस जगत्का भरण-पोषण करते हैं। हे विश्वनाथ! आपके अतिरिक्त दूसरा कौन अन्धकारका विनाशक है। हे अहिभूषण! मेरे अज्ञानरूपी अन्धकारको आप दूर करें, आप स्तवनीय पुरुषोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं, अतः आप परात्परको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ३०॥

आत्मस्वरूप तव रूपपरंपराभि-
राभिस्ततं हर चराचररूपमेतत्।
सर्वांतरात्मनिलय प्रतिरूपरूप
नित्यं नतोऽस्मि परमात्मजनोऽष्टमूर्ते॥ ३१

हे आत्मस्वरूप! हे हर! आपकी इन रूप-परम्पराओंसे यह सारा चराचर जगत् विस्तारको प्राप्त हुआ है। सबकी अन्तरात्मामें निवास करनेवाले हे प्रतिरूप! हे अष्टमूर्ते! मैं भी आपका जन हूँ, मैं आपको नित्य नमस्कार करता हूँ॥ ३१॥

इत्यष्टमूर्तिभिरिमाभिरबंधुबंधो
युक्तः करोषि खलु विश्वजनीनमूर्त्ते।
एतत्ततं सुविततं प्रणतप्रणीत
सर्वार्थसार्थपरमार्थ ततो नतोऽस्मि॥ ३२

हे दीनबन्धो! हे विश्वजनीनमूर्ते! हे प्रणत-प्रणीत (शरणागतोंके रक्षक)! हे सर्वार्थसार्थपरमार्थ! आप इन अष्टमूर्तियोंसे युक्त हैं और यह विस्तृत जगत् आपसे व्याप्त है, अतः मैं आपको प्रणाम करता हूँ॥ ३२॥

सनत्कुमार उवाच

अष्टमूर्त्यष्टकेनेत्थं परिष्टुत्येति भार्गवः।
भर्गं भूमिमिलन्मौलिः प्रणनाम पुनः पुनः॥ ३३

सनत्कुमार बोले—भार्गवने इस प्रकार अष्टमूर्ति-स्तुतिके आठ श्लोकोंसे शिवजीकी स्तुतिकर भूमिमें सिर झुकाकर उनको बार-बार प्रणाम किया॥ ३३॥

इति स्तुतो महादेवो भार्गवेणातितेजसा।
उत्थाय भूमेर्बाहुभ्यां धृत्वा तं प्रणतं द्विजम्॥ ३४

उवाच श्लक्ष्णया वाचा मेघनादगभीरया।
सुप्रीत्या दशनज्योत्स्नाप्रद्योतितदिगंतरः॥ ३५

अत्यन्त तेजस्वी भार्गवसे इस प्रकार स्तुत महादेवजी प्रणाम करते हुए उन ब्राह्मणको अपनी भुजाओंसे पकड़कर तथा पृथ्वीसे उठाकर अपने दाँतोंकी कान्तिसे दिगन्तरको प्रकाशित करते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीमें अत्यन्त प्रेमपूर्वक कहने लगे—॥ ३४-३५॥

महादेव उवाच

विप्रवर्य कवे तात मम भक्तोऽसि पावनः।
अनेनात्युग्रतपसा स्वजन्याचरितेन च॥ ३६
लिंगस्थापनपुण्येन लिंगस्याराधनेन च।
दत्तचित्तोपहारेण शुचिना निश्चलेन च॥ ३७
अविमुक्तमहाक्षेत्रपवित्राचरणेन च।
त्वां दयया प्रपश्यामि तवादेयं न किंचन॥ ३८

महादेवजी बोले—हे विप्रवर्य! हे कवे! हे तात! आप मेरे पवित्र भक्त हैं, आपके द्वारा की गयी उग्र तपस्या, लिंगप्रतिष्ठाजन्य पुण्य, लिंगाराधन, अपने पवित्र एवं निश्चल चित्तके समर्पण तथा अविमुक्त-जैसे महाक्षेत्रमें किये गये पवित्राचरणसे मैं आपको दयापूर्वक देखता हूँ, आपके लिये कुछ भी अदेय नहीं है॥ ३६—३८॥

अनेनैव शरीरेण ममोदरदरीगतः।
मद्वरेन्द्रियमार्गेण पुत्रजन्मत्वमेष्यसि॥ ३९

आप इसी शरीरसे मेरी उदररूपी गुफामें प्रविष्ट हो पुनः लिंगेन्द्रिय मार्गसे निकलकर पुत्रभावको प्राप्त होंगे॥ ३९॥

यच्छाम्यहं वरं तेऽद्य दुष्प्राप्यं पार्षदैरपि।
हरेर्हिरण्यगर्भाच्च प्रायशोऽहं जुगोप यम्॥ ४०

अब मैं अपने पार्षदोंके लिये भी दुर्लभ वर आपको प्रदान करता हूँ, जिसे मैंने ब्रह्मा तथा विष्णुसे भी गुप्त रखा है॥ ४०॥

मृतसंजीवनी नाम विद्या या मम निर्मला।
तपोबलेन महता मयैव परिनिर्मिता॥ ४१

मृतसंजीवनी नामक जो मेरी निर्मल विद्या है, उसका निर्माण मैंने स्वयं अपने महान् तपोबलसे किया है॥ ४१॥

त्वां तां तु प्रापयाम्यद्य मंत्ररूपां महाशुचे।
योग्यता तेऽस्ति विद्यायास्तस्याः शुचितपोनिधे॥ ४२

यं यमुद्दिश्य नियतमेतामावर्तयिष्यसि।
विद्यां विद्येश्वरश्रेष्ठां सत्यं प्राणिष्यति ध्रुवम्॥ ४३

हे महाशुचे! उस मन्त्ररूपा विद्याको मैं आपको प्रदान करता हूँ। हे शुचितपोनिधे! आपमें उस विद्याकी प्राप्तिकी योग्यता है। आप जिस किसीको उद्देश्य करके विद्येश्वर भगवान् शिवकी इस श्रेष्ठ विद्याका आवर्तन करेंगे, वह अवश्य ही जीवित हो जायगा, यह सत्य है॥ ४२-४३॥

अत्यर्कमत्यग्नि च ते तेजो व्योम्नि च तारकम्।
देदीप्यमानं भविता ग्रहाणां प्रवरो भव॥ ४४
अपि च त्वां करिष्यन्ति यात्रां नार्यो नरोऽपि वा।
तेषां त्वद् दृष्टिपातेन सर्वकार्यं प्रणश्यति॥ ४५
तवोदये भविष्यन्ति विवाहादीनि सुव्रत।
सर्वाणि धर्मकार्याणि फलवन्ति नृणामिह॥ ४६

आपका देदीप्यमान तेज आकाशमण्डलमें सूर्य तथा अग्निसे बढ़कर होगा, आप प्रकाशमान होंगे और श्रेष्ठ ग्रह होंगे। जो स्त्री या पुरुष आपके सम्मुख यात्रा करेगा, आपकी दृष्टि पड़नेमात्रसे उनका सारा कार्य नष्ट हो जायगा और हे सुव्रत! मनुष्योंके समस्त विवाह आदि धर्मकार्य आपके उदयकालमें ही फलप्रद होंगे॥ ४४—४६॥

सर्वाश्च तिथयो नन्दास्तव संयोगतः शुभाः।
तव भक्ता भविष्यन्ति बहुशुक्रा बहु प्रजाः॥ ४७

सम्पूर्ण नन्दा तिथियाँ (प्रतिपदा, षष्ठी तथा एकादशी) आपके संयोगसे शुभ होंगी। आपके भक्त अत्यन्त पराक्रमी तथा अधिक सन्तानोंसे युक्त होंगे॥ ४७॥

त्वयेदं स्थापितं लिंगं शुक्रेशमिति संज्ञितम्।
येऽर्चयिष्यन्ति मनुजास्तेषां सिद्धिर्भविष्यति॥ ४८

आपके द्वारा स्थापित किये गये इस लिंगका नाम शुक्रेश्वर होगा। जो मनुष्य इसकी अर्चना करेंगे, उनकी कार्यसिद्धि होगी॥ ४८॥

आवर्षं प्रतिघस्त्रं ये नक्तव्रतपरायणाः।
त्वद्दिने शुक्रकूपे ये कृतसर्वोदकक्रियाः॥ ४९

शुक्रेशमर्चयिष्यन्ति शृणु तेषां तु यत्फलम्।
अवन्ध्यशुक्रास्ते मर्त्याः पुत्रवन्तोऽतिरेतसः॥ ५०

पुंस्त्वसौभाग्यसंपन्ना भविष्यन्ति न संशयः।
उपेतविद्यास्ते सर्वे जनाः स्युः सुखभागिनः॥ ५१

इति दत्त्वा वरान्देवस्तत्र लिंगे लयं ययौ।
भार्गवोऽपि निजं धाम प्राप संतुष्टमानसः॥ ५२

इति ते कथितं व्यास यथा प्राप्ता तपोबलात्।
मृत्युंजयाभिधा विद्या किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥ ५३

वर्षभर प्रतिदिन नक्तव्रतपरायण जो लोग प्रति शुक्रवारको शुक्रकूपमें स्नान एवं तर्पणकर इन शुक्रेश शिवकी पूजा करेंगे, उसका फल सुनिये—उनका वीर्य कभी निष्फल नहीं जायगा, वे पुत्रवान् एवं अति वीर्यवान् होंगे। वे सभी लोग पुरुषत्व एवं सौभाग्यसे सम्पन्न, विद्यायुक्त तथा सुखी होंगे, इसमें संशय नहीं है॥ ४९—५१॥

इस प्रकार वर देकर शिवजी उसी लिंगमें लीन हो गये और शुक्राचार्य भी प्रसन्नचित्त होकर अपने स्थानको चले गये। हे व्यासजी! शुक्रने जिस प्रकार अपने तपोबलसे मृत्युंजय नामकी विद्या प्राप्त की, उसे मैंने कह दिया, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ५२-५३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे मृतसंजीवनीविद्याप्राप्तिवर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें मृतसंजीवनीविद्याप्राप्तिवर्णन नामक पचासवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५०॥

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

प्रह्लादकी वंशपरम्परामें बलिपुत्र बाणासुरकी उत्पत्तिकी कथा, शिवभक्त बाणासुरद्वारा ताण्डव नृत्यके प्रदर्शनसे शंकरको प्रसन्न करना, वरदानके रूपमें शंकरका बाणासुरकी नगरीमें निवास करना, शिव-पार्वतीका विहार, पार्वतीद्वारा बाणपुत्री ऊषाको वरदान

व्यास उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ श्राविता सुकथाद्भुता।
भवतानुग्रहात्प्रीत्या शंभ्वनुग्रहनिर्भरा॥ १

इदानीं श्रोतुमिच्छामि चरितं शशिमौलिनः।
गाणपत्यं ददौ प्रीत्या यथा बाणासुराय वै॥ २

व्यासजी बोले—हे सर्वज्ञ! हे सनत्कुमार! आपने मुझपर अनुग्रहकर परम प्रीतिसे शिवके अनुग्रहसे पूर्ण यह अत्यन्त अद्भुत कथा सुनायी। अब शिवजीके उस चरित्रको सुनना चाहता हूँ, जिस प्रकार उन्होंने प्रीतिपूर्वक बाणासुरको गाणपत्यपद प्रदान किया॥ १-२॥

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यासादरात्तां वै कथां शंभोः परात्मनः।
गाणपत्यं यथा प्रीत्या ददौ बाणासुराय हि॥ ३

अत्रैव सुचरित्रं च शंकरस्य महाप्रभोः।
कृष्णेन समरोप्यत्र शंभोर्बाणानुगृह्णतः॥ ४

अत्रानुरूपं शृणु मे शिवलीलान्वितं परम्।
इतिहासं महापुण्यं मनःश्रोत्रसुखावहम्॥ ५

सनत्कुमार बोले—हे व्यास! जिस प्रकार शिवजीने प्रसन्नतापूर्वक बाणासुरको गाणपत्यपद प्रदान किया, परमात्मा शिवजीके उस चरित्रको अब आप आदरपूर्वक सुनिये। इसी चरित्रके अन्तर्गत बाणासुरपर अनुग्रह करनेवाले महाप्रभु सदाशिवका श्रीकृष्णके साथ युद्ध भी हुआ॥ ३-४॥

अब शिवकी लीलासे युक्त, मन तथा कानको सुख देनेवाले तथा महापुण्यदायक इतिहासको सुनिये॥ ५॥

ब्रह्मपुत्रो मरीचिर्यो मुनिरासीन्महामतिः।
मानसः सर्वपुत्रेषु ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः॥ ६

तस्य पुत्रो महात्मासीत्कश्यपो मुनिसत्तमः।
सृष्टिप्रवृद्धकोऽत्यन्तं पितुर्भक्तो विधेरपि॥ ७

तस्य त्रयोदशमिता दक्षकन्याः सुशीलिकाः।
कश्यपस्य मुनेर्व्यास पत्न्यश्चासन्पतिव्रताः॥ ८

तत्र ज्येष्ठा दितिश्चासीद्दैत्यास्तत्तनयाः स्मृताः।
अन्यासां च सुता जाता देवाद्याः सचराचराः॥ ९

ज्येष्ठायाः प्रथमौ पुत्रौ दितेश्चास्तां महाबलौ।
हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्ततः॥ १०

हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारो दैत्यसत्तमाः।
ह्लादानुह्लादसंह्लादप्रह्लादश्चेत्यनुक्रमात्॥ ११

प्रह्लादस्तत्र हि महान्विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः।
यं नाशितुं न शक्तास्तेऽभवन्दैत्याश्च केऽपि ह॥ १२

विरोचनः सुतस्तस्य महादातृवरोऽभवत्।
शक्राय स्वशिरो योऽदाद्याचमानाय विप्रतः॥ १३

तस्य पुत्रो बलिश्चासीन्महादानी शिवप्रियः।
येन वामनरूपाय हरयेऽदायि मेदिनी॥ १४

तस्यौरसः सुतो बाणः शिवभक्तो बभूव ह।
मान्यो वदान्यो धीमांश्च सत्यसंधः सहस्रदः॥ १५

शोणिताख्ये पुरे स्थित्वा स राज्यमकरोत्पुरा।
त्रैलोक्यं च बलाज्जित्वा तन्नाथानसुरेश्वरः॥ १६

तस्य बाणासुरस्यैव शिवभक्तस्य चामराः।
शंकरस्य प्रसादेन किंकरा इव तेऽभवन्॥ १७

तस्य राज्येऽमरान्हित्वा नाभवन्दुःखिताः प्रजाः।
सापत्न्याद् दुःखितास्ते हि परधर्मप्रवर्तिनः॥ १८

सहस्रबाहुवाद्येन स कदाचिन्महासुरः।
तांडवेन हि नृत्येनातोषयत्तं महेश्वरम्॥ १९

तेन नृत्येन संतुष्टः सुप्रसन्नो बभूव ह।
ददर्श कृपया दृष्ट्या शंकरो भक्तवत्सलः॥ २०

पूर्वकालमें ब्रह्माजीके मानसपुत्र मरीचि नामक प्रजापति हुए, जो उनके सभी पुत्रोंमें ज्येष्ठ, श्रेष्ठ एवं महाबुद्धिमान् मुनि थे। उनके पुत्र मुनिश्रेष्ठ महात्मा कश्यप हुए, जो इस सृष्टिके प्रवर्तक हैं। वे अपने पिता मरीचि तथा ब्रह्माजीके अत्यन्त भक्त थे॥ ६-७॥

हे व्यासजी! दक्षकी सुशील तेरह कन्याएँ थीं, जो उन कश्यपमुनिकी पतिव्रता स्त्रियाँ थीं॥ ८॥

उनमें ज्येष्ठ कन्याका नाम दिति था, सभी दैत्य उसीके पुत्र कहे गये हैं और अन्य स्त्रियोंसे चराचरसहित सभी देवता आदि सन्तानें उत्पन्न हुईं॥ ९॥

ज्येष्ठ पत्नी दितिसे महाबलवान् दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें हिरण्यकशिपु ज्येष्ठ तथा हिरण्याक्ष कनिष्ठ था। उस हिरण्यकशिपुके क्रमसे ह्लाद, अनुह्लाद, संह्लाद तथा प्रह्लाद नामक चार दैत्यश्रेष्ठ पुत्र हुए॥ १०-११॥

उन सभीमें प्रह्लाद अत्यन्त जितेन्द्रिय तथा भगवान् विष्णुका परम भक्त था, जिसका नाश करनेमें कोई भी दैत्य समर्थ नहीं हुआ। उस प्रह्लादका पुत्र विरोचन हुआ, जो दानियोंमें श्रेष्ठ था और जिसने ब्राह्मणरूपी इन्द्रके माँगनेपर अपना सिर ही दे दिया॥ १२-१३॥

उस विरोचनका पुत्र महादानी एवं शिवप्रिय बलि हुआ, जिसने वामनावतार धारणकर याचना करनेवाले विष्णुको सम्पूर्ण पृथ्वी दान कर दी॥ १४॥

उसी बलिका औरस पुत्र बाण हुआ, जो शिवभक्त, मान्य, दानी, बुद्धिमान्, सत्यप्रतिज्ञ एवं हजारोंका दान करनेवाला था। वह दैत्यराज बाणासुर अपने बलसे तीनों लोकोंको तथा उसके स्वामियोंको जीतकर शोणित नामक पुरमें रहकर राज्य करता था॥ १५-१६॥

सभी देवगण शंकरजीकी कृपासे शिवभक्त उस बाणासुरके दासकी भाँति हो गये॥ १७॥

उस बाणासुरके राज्यमें देवताओंको छोड़कर अन्य प्रजाएँ दुखी नहीं थीं। देवगणोंके दुःखका कारण यह था कि बाणासुर उनका शत्रु था एवं वह असुरकुलमें उत्पन्न हुआ था। एक समय उस महादैत्यने अपनी हजार भुजाओंको बजाकर ताण्डव नृत्यद्वारा उन महेश्वरको प्रसन्न कर लिया। भक्तवत्सल भगवान् शंकर उस नृत्यसे सन्तुष्ट तथा अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उन्होंने कृपादृष्टिसे उसकी ओर देखा॥ १८—२०॥

भगवान्सर्वलोकेशः शरण्यो भक्तकामदः।
वरेण च्छंदयामास बालेयं तं महासुरम्॥ २१

सर्वलोकेश, शरणागतवत्सल एवं भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले भगवान् शंकरने उस बलिपुत्र बाणासुरको वर प्रदान करनेकी इच्छा की॥ २१॥

सनत्कुमार उवाच

बालेयः स महादैत्यो बाणो भक्तवरः सुधीः।
प्रणम्य शंकरं भक्त्या नुनाव परमेश्वरम्॥ २२

सनत्कुमार बोले—[हे मुने!] अत्यन्त बुद्धिमान् एवं शिवभक्त वह बलि-पुत्र बाणासुर परमेश्वर शिवको भक्तिसे प्रणामकर स्तुति करने लगा—॥ २२॥

बाणासुर उवाच

देवदेव महादेव शरणागतवत्सल।
संतुष्टोऽसि महेशान ममोपरि विभो यदि॥ २३
मद्रक्षको भव सदा मदुपस्थः पुराधिपः।
सर्वथा प्रीतिकृन्मे हि ससुतः सगणः प्रभो॥ २४

बाणासुर बोला—हे देवदेव! हे महादेव! हे शरणागतवत्सल! हे महेशान! हे विभो! हे प्रभो! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं, तो मेरे नगरके अधिपति बनकर अपने पुत्रों एवं गणोंके सहित इसीके समीप निवासकर मेरा हित करते हुए मेरी रक्षा कीजिये॥ २३-२४॥

सनत्कुमार उवाच

बलिपुत्रः स वै बाणो मोहितः शिवमायया।
मुक्तिप्रदं महेशानं दुराराध्यमपि ध्रुवम्॥ २५
स भक्तवत्सलः शंभुर्दत्त्वा तस्मै वरांश्च तान्।
तत्रोवास तथा प्रीत्या सगणः ससुतः प्रभुः॥ २६
स कदाचिद् बाणपुरे चक्रे देवासुरैः सह।
नदीतीरे हरः क्रीडां रम्ये शोणितकाह्वये॥ २७

सनत्कुमार बोले—शिवजीकी मायासे मोहित हुए बलिपुत्र बाणासुरने मुक्ति देनेवाले दुराराध्य शिवसे केवल इतना ही वर माँगा। भक्तवत्सल प्रभु शंकर उस बाणासुरको उन वरोंको देकर गणों तथा पुत्रोंसहित उसके पुरमें निवास करने लगे। किसी समय बाणासुरके शोणितपुर नामक मनोहर नगरमें नदीके तटपर शिवजीने देवगणों एवं दैत्योंके साथ क्रीड़ा की॥ २५—२७॥

ननृतुर्जहसुश्चापि गंधर्वाप्सरसस्तथा।
जेपुः प्रणेमुर्मुनय आनर्चुस्तुष्टुवुश्च तम्॥ २८
ववल्गुः प्रमथाः सर्वे ऋषयो जुहुवुस्तथा।
आययुः सिद्धसंघाश्च ददृशुः शांकरीं रतिम्॥ २९

उस समय गन्धर्व एवं अप्सराएँ नाचने-हँसने लगीं। मुनियोंने शिवको प्रणाम किया, उनका जप, पूजन तथा स्तवन किया। प्रमथगण अट्टहास करने लगे, ऋषिलोग हवन करने लगे एवं सिद्धगण यहाँ आये और शिवकी क्रीड़ा देखने लगे॥ २८-२९॥

कुतार्किका विनेशुश्च म्लेच्छाश्च परिपंथिनः।
मातरोऽभिमुखास्तस्थुर्विनेशुश्च बिभीषिकाः॥ ३०

म्लेच्छ, कुमार्गी तथा कुतर्की विनष्ट हो गये। समस्त देवमाताएँ शिवजीके सम्मुख उपस्थित हो गयीं तथा सभी प्रकारके भय नष्ट हो गये॥ ३०॥

रुद्रसद्भावभक्तानां भवदोषाश्च निःसृताः।
तस्मिन्दृष्टे प्रजाः सर्वाः सुप्रीतिं परमां ययुः॥ ३१

उस क्रीड़ासे रुद्रमें सद्भावना रखनेवाले भक्तोंके सांसारिक दोष दूर हो गये। उस समय शिवजीका दर्शन करते ही सभी प्रजाएँ अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं॥ ३१॥

ववल्गुर्मुनयः सिद्धाः स्त्रीणां दृष्ट्वा विचेष्टितम्।
पुपुषुश्चापि ऋतवः स्वप्रभावं तु तत्र च॥ ३२

मुनि तथा सिद्धगण स्त्रियोंकी अद्भुत चेष्टाको देखकर अट्टहास करने लगे। समस्त ऋतुएँ वहाँ अपना-अपना प्रभाव प्रकट करने लगीं॥ ३२॥

ववुर्वाताश्च मृदवः पुष्पके सरधूसराः।
चुकूजुः पक्षिसंघाश्च शाखिनां मधुलम्पटाः॥ ३३
पुष्पभारावनद्धानां रारट्येरंश्च कोकिलाः।
मधुरं कामजननं वनेषूपवनेषु च॥ ३४

पुष्पोंके परागसे मिश्रित सुगन्धित वायु बहने लगी, पक्षिसमूह कूजन करने लगे एवं पुष्पोंके भारसे अवनत वृक्षशाखाओंपर मधुलम्पट कोयलें वनों तथा उपवनोंमें कामोत्पादक मधुर शब्द करने लगीं॥ ३३-३४॥

ततः क्रीडाविहारे तु मत्तो बालेन्दुशेखरः।
अनिर्जितेन कामेन दृष्टः प्रोवाच नन्दिनम्॥ ३५

उस समय क्रीडाविहारमें उन्मत्त तथा कामपर विजय न प्राप्तकर उससे देखे जानेमात्रसे ही कामके वशीभूत सदाशिवने नन्दीसे कहा— ॥ ३५ ॥

चन्द्रशेखर उवाच

वामामानय गौरीं त्वं कैलासात्कृतमंडनाम्।
शीघ्रमस्माद्वनाद्गत्वा ह्युक्त्वाऽकृष्णामिहानय ॥ ३६

चन्द्रशेखर बोले—हे नन्दिन्! तुम शीघ्र ही इस वनसे कैलास जाकर मेरा सन्देश कहकर शृंगारसे युक्त गौरीको यहाँ ले आओ॥ ३६ ॥

सनत्कुमार उवाच

स तथेति प्रतिज्ञाय गत्वा तत्राह पार्वतीम्।
सुप्रणम्य रहोदूतः शंकरस्य कृताञ्जलिः॥ ३७

सनत्कुमार बोले—'ऐसा ही करूँगा', इस प्रकारकी प्रतिज्ञाकर वहाँ जाकर शंकरके दूत नन्दीने हाथ जोड़कर एकान्तमें पार्वतीसे कहा— ॥ ३७ ॥

नन्दीश्वर उवाच

द्रष्टुमिच्छति देवि त्वां देवदेवो महेश्वरः।
स्ववल्लभां रूपकृतां मयोक्तं तन्निदेशतः॥ ३८

नन्दीश्वर बोले—हे देवि! देवदेव महादेव महेश्वर शृंगारसे युक्त अपनी भार्याको देखना चाहते हैं, मैंने उनके आदेशसे ऐसा कहा है॥ ३८ ॥

सनत्कुमार उवाच

ततस्तद्वचनाद्गौरी मंडनं कर्तुमादरात्।
उद्यताभून्मुनिश्रेष्ठ पतिव्रतपरायणा॥ ३९

आगच्छामि प्रभुं गच्छ वद तं त्वं ममाज्ञया।
आजगाम ततो नंदी रुद्रासन्नं मनोगतिः॥ ४०

सनत्कुमार बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! उनके इस वचनको सुनकर पतिव्रतधर्मपरायणा भगवती पार्वती बड़ी प्रसन्नतासे अपना शृंगार करने लगीं और नन्दीसे बोलीं—तुम मेरी आज्ञासे शीघ्र शिवजीके पास जाओ और उनसे कहो कि मैं अभी आ रही हूँ। यह सुनकर मनकी गतिके समान चलनेवाले नन्दीश्वर महादेवके पास चले आये॥ ३९-४० ॥

पुनराह ततो रुद्रो नन्दिनं परविभ्रमः।
पुनर्गच्छ ततस्तात क्षिप्रमानय पार्वतीम्॥ ४१

बाढमुक्त्वा स तां गत्वा गौरीमाह सुलोचनाम्।
द्रष्टुमिच्छति ते भर्ता कृतवेषां मनोरमाम्॥ ४२

शंकरो बहुधा देवि विहर्तुं संप्रतीक्षते।
एवं पतौ सुकामार्ते गम्यतां गिरिनंदिनि॥ ४३

नन्दीको अकेले आया देख शिवजीने नन्दीसे पुनः कहा—हे तात! तुम पुनः जाओ और पार्वतीको शीघ्र लिवा लाओ। तब नन्दीने 'बहुत अच्छा' कहकर वहाँ जाकर मनोहर नेत्रवाली गौरीसे कहा—आपके पति शृंगार की हुई आप मनोरमाको देखना चाहते हैं। हे देवि! विहार करनेकी उत्कण्ठासे वे उत्सुकतापूर्वक आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, अतः हे गिरिनन्दिनि! आप अपने पतिके पास शीघ्र चलिये॥ ४१—४३ ॥

अप्सरोभिः समग्राभिरन्योन्यमभिमंत्रितम् ।
लब्धभावो यथा सद्यः पार्वत्या दर्शनोत्सुकः॥ ४४

अयं पिनाकी कामारिः वृणुयाद्यां नितंबिनीम्।
सर्वासां दिव्यनारीणां राज्ञी भवति वै ध्रुवम्॥ ४५

पार्वतीके आनेमें देर देखकर समग्र अप्सराओंने परस्पर मिलकर विचार किया कि शिवजी पार्वतीको शीघ्र देखना चाहते हैं। इस अवस्थामें वे जिस स्त्रीका वरण करेंगे, वह स्त्री निश्चय ही समस्त दिव्य स्त्रियोंकी रानी होगी॥ ४४-४५ ॥

वीक्षणं गौरि रूपेण क्रीडयेन्मन्मथैर्गणैः।
कामोऽयं हंति कामारिमूचुरन्योऽन्यमादृताः॥ ४६

इस समय कामशत्रु शिवको यह काम दुःख दे रहा है, इसलिये हम पार्वतीका रूप धारण करें, कदाचित् हमें पार्वतीके रूपमें देखकर वे मन्मथगणोंसहित हमारे साथ क्रीडा करें। वे आदरपूर्वक आपसमें ऐसा विचार करने लगीं॥ ४६ ॥

स्प्रष्टुं शक्नोति या काचिदृते दाक्षायणीं स्त्रियम्।
सा गच्छेत्तत्र निःशंकं मोहयेत्पार्वतीपतिम्॥ ४७

अतः जो स्त्री दाक्षायणीसे रहित इन शंकरका स्पर्श कर सके, वही निःशंक भावसे पार्वतीपति शिवजीके पास जाय और उन्हें मोहित करे॥ ४७॥

कूष्मांडतनया तत्र शंकरं स्प्रष्टुमुत्सहे।
अहं गौरीसुरूपेण चित्रलेखा वचोऽब्रवीत्॥ ४८

तब कूष्माण्ड (कुम्भाण्ड)-की कन्या चित्रलेखाने यह वचन कहा—'मैं गौरीका सुन्दर रूप धारणकर शिवजीका स्पर्श कर सकती हूँ॥ ४८॥

चित्रलेखोवाच

यदधान्मोहिनीरूपं केशवो मोहनेच्छया।
पुरा तद्वैष्णवं योगमाश्रित्य परमार्थतः॥ ४९
उर्वश्याश्च ततो दृष्ट्वा रूपस्य परिवर्तनम्।
कालीरूपं घृताची तु विश्वाची चांडिकं वपुः॥ ५०
सावित्रिरूपं रंभा च गायत्रं मेनका तथा।
सहजन्या जयारूपं वैजयं पुंजिकस्थली॥ ५१
मातॄणामप्यनुक्तानामनुक्ताश्चाप्सरोवराः ।
यत्नाद्रूपाणि ताश्चक्रुः स्वविद्यासंयुता अनु॥ ५२
ततस्तासां तु रूपाणि दृष्ट्वा कुंभांडनंदिनी।
वैष्णवादात्मयोगाच्च विज्ञातार्था व्यडंबयत्॥ ५३

चित्रलेखा बोली—केशवने शिवजीको मोहित करनेकी इच्छासे परमार्थके लिये वैष्णवयोगका आश्रय लेकर जिस मोहिनीरूपको धारण किया, उसीको मैं धारण करती हूँ। तदनन्तर उसने उर्वशीके परिवर्तित रूपको देखा, इसी प्रकार—उसने देखा कि घृताचीने कालीरूप, विश्वाचीने चण्डिकारूप, रम्भाने सावित्रीरूप, मेनकाने गायत्रीरूप, सहजन्याने जयारूप, पुंजिकस्थलीने विजयाका रूप तथा समस्त अप्सराओंने मातृगणोंका रूप यत्नपूर्वक बना लिया है। उनके रूपोंको देखकर कुम्भाण्डपुत्री चित्रलेखाने भी वैष्णवयोगसे सारे रहस्योंको जानकर अपने रूपको छिपा लिया॥ ४९—५३॥

ऊषा बाणासुरसुता दिव्ययोगविशारदा।
चकार रूपं पार्वत्या दिव्यमत्यद्भुतं शुभम्॥ ५४

दिव्य योगविशारद बाणासुरकी कन्या ऊषाने वैष्णवयोगके प्रभावसे अत्यन्त मनोहर, सुन्दर और अद्भुत पार्वतीका रूप धारण किया॥ ५४॥

महारक्ताब्जसंकाशं चरणं चोत्तमप्रभम्।
दिव्यलक्षणसंयुक्तं मनोऽभीष्टार्थदायकम्॥ ५५

ऊषाके चरण लाल कमलके समान दिव्य कान्तिवाले, उत्तम प्रभासे सम्पन्न, दिव्य लक्षणोंसे संयुक्त एवं मनके अभिलषित पदार्थोंको देनेवाले थे॥ ५५॥

तस्या रमणसंकल्पं विज्ञाय गिरिजा ततः।
उवाच सर्वविज्ञाना सर्वान्तर्यामिनी शिवा॥ ५६

उसके बाद सर्वान्तर्यामिनी तथा सब कुछ जाननेवाली शिवा गिरिजा शिवजीके साथ उसकी रमणकी इच्छा जानकर कहने लगीं— ॥ ५६॥

गिरिजोवाच

यतो मम स्वरूपं वै धृतमूषे सखि त्वया।
सकामत्वेन समये संप्राप्ते सति मानिनि॥ ५७

अस्मिंस्तु कार्तिके मासि ऋतुधर्मास्तु माधवे।
द्वादश्यां शुक्लपक्षे तु यस्तु घोरे निशागमे॥ ५८

कृतोपवासां त्वां भोक्ता सुप्तामंतःपुरे नरः।
स ते भर्त्ता कृतो देवैस्तेन सार्द्धं रमिष्यसि॥ ५९

आबाल्याद्विष्णुभक्तासि यतोऽनिशमतंद्रिता।
एवमस्त्विति सा प्राह मनसा लज्जितानना॥ ६०

गिरिजा बोलीं—हे सखि ऊषे! हे मानिनि! तुमने समय प्राप्त होनेपर सकामभावसे मेरा रूप धारण किया, अतः तुम इसी कार्तिक मासमें ऋतुधर्मिणी होओगी। वैशाख मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको घोर अर्धरात्रिमें उपवासपूर्वक अन्तःपुरमें सोयी हुई अवस्थामें तुमसे जो कोई पुरुष आकर रमण करेगा, देवगणोंने उसीको तुम्हारा पति नियुक्त किया है। उसीके साथ तुम रमण करोगी; क्योंकि तुम बाल्यावस्थासे ही आलस्यरहित होकर सर्वदा विष्णुमें भक्ति रखनेवाली हो। तब 'ऐसा ही हो'—इस प्रकार ऊषाने मनमें कहा और वह लज्जित हो गयी॥ ५७—६०॥

अथ सा पार्वती देवी कृतकौतुकमण्डना।
रुद्रसंनिधिमागत्य चिक्रीडे तेन शंभुना॥ ६१

इसके बाद शृंगारसे युक्त होकर रुद्रके समीप आकर वे देवी पार्वती उन शम्भुके साथ क्रीड़ा करने लगीं॥ ६१॥

ततो रतान्ते भगवान् रुद्रश्चादर्शनं ययौ।
सदारः सगणश्चापि सहितो दैवतैर्मुने॥ ६२

हे मुने! तदनन्तर रमणके अन्तमें भगवान् सदाशिव स्त्रियों, गणों एवं देवताओंके साथ अन्तर्धान हो गये॥ ६२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे ऊषाचरित्रवर्णने शिवाशिवविहारवर्णनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें ऊषाचरित्रवर्णनके क्रममें शिवाशिवविहारवर्णन नामक इक्यावनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५१॥

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अभिमानी बाणासुरद्वारा भगवान् शिवसे युद्धकी याचना, बाणपुत्री ऊषाका रात्रिके समय स्वप्नमें अनिरुद्धके साथ मिलन, चित्रलेखाद्वारा योगबलसे अनिरुद्धका द्वारकासे अपहरण, अन्तःपुरमें अनिरुद्ध और ऊषाका मिलन तथा द्वारपालोंद्वारा यह समाचार बाणासुरको बताना

सनत्कुमार उवाच

शृणुष्वान्यच्चरित्रं च शिवस्य परमात्मनः।
भक्तवात्सल्यसंगर्भि परमानन्ददायकम्॥ १

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] अब आप परमात्मा शिवका दूसरा चरित्र सुनिये, जो भक्त-वत्सलतासे पूर्ण तथा परमानन्ददायक है॥ १॥

पुरा बाणासुरो नाम दैवदोषाच्च गर्वितः।
कृत्वा तांडवनृत्यं च तोषयामास शंकरम्॥ २

पूर्वकालमें भाग्यदोषसे गर्वित होकर बाणासुरने ताण्डव नृत्यकर शिवजीको सन्तुष्ट किया था॥ २॥

ज्ञात्वा संतुष्टमनसं पार्वतीवल्लभं शिवम्।
उवाच चासुरो बाणो नतस्कन्धः कृतांजलिः॥ ३

उसके बाद पार्वतीपति शिवजीको सन्तुष्ट मनवाला जानकर बाणासुर सिर झुकाकर विनम्र हो हाथ जोड़कर कहने लगा—॥ ३॥

बाण उवाच

देवदेव महादेव सर्वदेवशिरोमणे।
त्वत्प्रसादाद् बली चाहं शृणु मे परमं वचः॥ ४

बाणासुर बोला—हे देवाधिदेव! हे महादेव! हे सर्वदेवशिरोमणे! यद्यपि मैं आपकी कृपासे अत्यन्त बलवान् हूँ, तथापि मेरी प्रार्थना सुनिये॥ ४॥

दोःसहस्त्रं त्वया दत्तं परं भाराय मेऽभवत्।
त्रिलोक्यां प्रतियोद्धारं न लभे त्वदृते समम्॥ ५

आपने मुझे हजार भुजाएँ प्रदान की हैं, किंतु ये मेरे लिये भारस्वरूप हो गयी हैं, इस त्रिलोकीमें आपके अतिरिक्त और कोई दूसरा योद्धा मेरे समान नहीं है॥ ५॥

हे देव किमनेनापि सहस्रेण करोम्यहम्।
बाहूनां गिरितुल्यानां विना युद्धं वृषध्वज॥ ६

हे देव! अब मैं इन हजार भुजाओंको लेकर क्या करूँ? हे वृषभध्वज! बिना युद्धके पर्वतके सदृश इन भुजाओंका क्या प्रयोजन?॥ ६॥

कण्डूत्या निभृतैर्दोर्भिर्युयुत्सुर्दिग्गजानहम्।
पुराण्याचूर्णयन्नद्रीन्भीतास्तेऽपि प्रदुद्रुवुः॥ ७

मया यमः कृतो योद्धा वह्निश्च कृतको महान्।
वरुणश्चापि गोपालो गवां पालयिता तथा॥ ८

गजाध्यक्षः कुबेरस्तु सैरन्ध्री चापि निर्ऋतिः।
जितश्चाखंडलो लोके करदायी सदा कृतः॥ ९

युद्धस्यागमनं ब्रूहि यत्रैते बाहवो मम।
शत्रुहस्तप्रयुक्तैश्च शस्त्रास्त्रैर्जर्जरीकृताः॥ १०

पतंतु शत्रुहस्ताद्वा पातयन्तु सहस्रधा।
एतन्मनोरथं मे हि पूर्णं कुरु महेश्वर॥ ११

सनत्कुमार उवाच

तच्छ्रुत्वा कुपितो रुद्रस्त्वट्टहासं महाद्भुतम्।
कृत्वाऽब्रवीन्महामन्युर्भक्तबाधाऽपहारकः॥ १२

रुद्र उवाच

धिग्धिक् त्वां सर्वतो गर्विन्सर्वदैत्यकुलाधम।
बलिपुत्रस्य भक्तस्य नोचितं वच ईदृशम्॥ १३

दर्पस्यास्य प्रशमनं लप्स्यसे चाशु दारुणम्।
महायुद्धमकस्माद्वै बलिना मत्समेन हि॥ १४

तत्र ते गिरिसंकाशा बाहवोऽनलकाष्ठवत्।
छिन्ना भूमौ पतिष्यन्ति शस्त्रास्त्रैः कदलीकृताः॥ १५

यदेष मानुषशिरो मयूरसहितो ध्वजः।
विद्यते तव दुष्टात्मंस्तस्य स्यात्पतनं यदा॥ १६

स्थापितस्यायुधागारे विना वातकृतं भयम्।
तदा युद्धं महाघोरं संप्राप्तमिति चेतसि॥ १७

निधाय घोरं संग्रामं गच्छेथाः सर्वसैन्यवान्।

मैं अपनी इन मजबूत भुजाओंकी खुजली मिटानेके लिये युद्धकी इच्छासे दिग्गजोंके पास गया, वहाँ जाकर मैंने उनके पुरोंको तहस-नहस कर दिया, पर्वतोंको उखाड़ दिया, किंतु वे भी भयभीत होकर भाग गये॥ ७॥

मैंने अपने यहाँ यमराजको योद्धाके रूपमें, अग्निको महान् कर्मकारके रूपमें, वरुणको गायोंके पालन करनेवाले गोपालके रूपमें, कुबेरको गजाध्यक्षके रूपमें, निर्ऋतिको अन्तःपुरकी परिचारिकाके रूपमें नियुक्त किया है। मैंने इन्द्रको जीत लिया और उसे लोकमें सदा करदाता बना दिया है। अब आप मुझे युद्धका कोई ऐसा उपाय बताइये, जहाँपर मेरी ये भुजाएँ शत्रुओंके हाथसे प्रयुक्त शस्त्रास्त्रके द्वारा जर्जर कर दी जायँ॥ ८—१०॥

हे महेश्वर! ये [मेरी भुजाएँ] शत्रुओंके हाथोंसे गिर जायँ अथवा वे स्वयं उसके हाथोंको हजार टुकड़ोंमें विभक्त कर दें, आप मेरे इस मनोरथको पूर्ण कीजिये॥ ११॥

सनत्कुमार बोले—भक्तजनोंके संकटको दूर करनेवाले महामन्यु रुद्रने यह सुनकर क्रुद्ध हो अत्यन्त अद्भुत अट्टहास करके कहा—॥ १२॥

रुद्र बोले—हे समस्त दैत्यकुलमें अधम! हे अहंकारी! तुझे सब प्रकारसे धिक्कार है, तुझ बलिपुत्र तथा मेरे भक्तके लिये इस प्रकारका वचन कहना उचित नहीं है। तुम अपने इस अहंकारकी शान्ति शीघ्र प्राप्त करोगे। मेरे-जैसे बलवान्से तुम्हें अकस्मात् प्रचण्ड युद्धका सामना करना पड़ेगा॥ १३-१४॥

पर्वतके समान तुम्हारी ये भुजाएँ उस युद्धमें शस्त्रास्त्रोंसे छिन्न-भिन्न होकर इस प्रकार भूमिपर गिरेंगी, जैसे अग्निसे जलाया गया काष्ठ पृथ्वीपर गिर जाता है॥ १५॥

हे दुष्टात्मन्! मोरसे युक्त मनुष्यके सिरवाली यह तुम्हारी ध्वजा जो शस्त्रागारपर स्थापित है, वह जब बिना वायुके गिर जाय, तब चित्तमें समझना कि तुम्हारे सामने महाघोर भय उपस्थित हो गया है। उस समय तुम अपनी सेनासहित घोर संग्राममें जाना। अब तुम अपने घर जाओ, अभी वहाँ तुम्हारा सब प्रकारसे

सांप्रतं गच्छ तद्वेश्म यतस्तद्विद्यते शिवः॥ १८
तथा तान्स्वमहोत्पातांस्तत्र द्रष्टासि दुर्मते।
इत्युक्त्वा विररामाथ गर्वहृद्भक्तवत्सलः॥ १९

सनत्कुमार उवाच

तच्छ्रुत्वा रुद्रमभ्यर्च्य दिव्यैरंजलिकुड्मलैः।
प्रणम्य च महादेवं बाणश्च स्वगृहं गतः॥ २०

कुंभाण्डाय यथावृत्तं पृष्टः प्रोवाच हर्षितः।
पर्यैक्षिष्टासुरो बाणस्तं योगं ह्युत्सुकः सदा॥ २१

अथ दैवात्कदाचित्स स्वयं भग्नं ध्वजं च तम्।
दृष्ट्वा तत्रासुरो बाणो हृष्टो युद्धाय निर्ययौ॥ २२
स स्वसैन्यं समाहूय संयुक्तः साष्टभिर्गणैः।
इष्टिं सांग्रामिकां कृत्वा दृष्ट्वा सांग्रामिकं मधु॥ २३

ककुभां मंगलं सर्वं संप्रेक्ष्य प्रस्थितोऽभवत्।
महोत्साहो महावीरो बलिपुत्रो महारथः॥ २४

इति हृत्कमले कृत्वा कः कस्मादागमिष्यति।
योद्धा रणप्रियो यस्तु नानाशस्त्रास्त्रपारगः॥ २५

यस्तु बाहुसहस्रं मे छिनत्त्वनलकाष्ठवत्।
तथा शस्त्रैर्महातीक्ष्णैश्छिनद्मि शतशस्त्विह॥ २६

एतस्मिन्नन्तरे कालः संप्राप्तः शंकरेण हि।
यत्र सा बाणदुहिता सुजाता कृतमंगला॥ २७

माधवं माधवे मासि पूजयित्वा महानिशि।
सुप्ता चांतःपुरे गुप्ते स्त्रीभावमुपलंभिता॥ २८

गौर्या संप्रेषितेनापि व्याकृष्टा दिव्यमायया।
कृष्णात्मजात्मजेनाथ रुदन्ती सा ह्यनाथवत्॥ २९

स चापि तां बलाद्भुक्त्वा पार्वत्याः सखिभिः पुनः।
नीतस्तु दिव्ययोगेन द्वारकां निमिषान्तरात्॥ ३०

मृदिता सा तदोत्थाय रुदन्ती विविधा गिरः।
सखीभ्यः कथयित्वा तु देहत्यागे कृतक्षणा॥ ३१

कल्याण है। हे दुर्मते! तुम बड़े घोर उत्पातोंको देखोगे। इस प्रकार कहकर अहंकारका नाश करनेवाले भक्तवत्सल शिव मौन हो गये॥ १६—१९॥

सनत्कुमार बोले—यह सुनकर बाणासुर अपने अंजलिस्थ दिव्य पुष्पोंसे महादेव रुद्रका पूजन करके उन्हें प्रणामकर अपने घर चला गया। उसने कुम्भाण्डके पूछनेपर हर्षित हो सारा वृत्तान्त कह सुनाया और उत्सुक होकर उस योगकी प्रतीक्षा करने लगा। इसके अनन्तर अकस्मात् अपना ध्वज भग्न हुआ देखकर वह बाणासुर हर्षित होकर युद्धके लिये चल पड़ा॥ २०—२२॥

अपनी सेनाको बुलाकर उस महावीर, महारथी एवं महोत्साही बलिपुत्र बाणासुर ने अपने आठ गणोंको साथ लेकर संग्रामसम्बन्धी यज्ञकर विजयप्रद मधुका एवं सभी दिशाओंमें मांगलिक द्रव्योंका दर्शनकर युद्धके लिये प्रस्थान किया॥ २३-२४॥

उसने अपने मनमें विचार किया कि आज रणप्रिय, नाना शस्त्रास्त्रोंका पारगामी वह कौन-सा योद्धा है, जो मुझसे युद्ध करनेके लिये कहाँसे आयेगा? क्या वह सचमुच मेरी सहस्रों भुजाओंको अग्निदग्ध काष्ठके समान नष्ट कर देगा? मैं भी युद्धमें महातीव्र अपने शस्त्रोंसे सैकड़ों योद्धाओं को काट डालूँगा॥ २५-२६॥

इसी बीच शिवजीकी प्रेरणासे वह काल आ पहुँचा, जब बाणासुरकी सुन्दर कन्या ऊषा शृंगारकर विराजमान थी॥ २७॥

वह वैशाख मासकी अर्धरात्रिमें विष्णुकी पूजाकर स्त्रीभावसे उपलम्भित होकर गुप्त अन्तःपुरमें सो रही थी। तभी भगवती पार्वतीकी दिव्य मायासे आकृष्ट होनेके कारण कृष्णपुत्र प्रद्युम्नसे उत्पन्न हुए अनिरुद्धने उस रात्रिमें उससे बलपूर्वक विहार किया, जिससे वह अनाथके समान रोने लगी। अनिरुद्ध भी उस कन्यासे बलपूर्वक रमणकर पार्वतीकी सखियोंके साथ दिव्य योगसे क्षणमात्रमें द्वारकापुरी चले आये॥ २८—३०॥

तब उपभोग की हुई वह कन्या उठकर रोते-रोते अपनी सखियोंसे नाना प्रकारके वाक्य कहते हुए शरीरका त्याग करनेके लिये तैयार हो गयी॥ ३१॥

सख्या कृतात्मनो दोषं सा व्यास स्मारिता पुनः।
सर्वं तत्पूर्ववृत्तान्तं ततो दृष्ट्वा च साऽभवत्॥ ३२

अब्रवीच्चित्रलेखां च ततो मधुरया गिरा।
ऊषा बाणस्य तनया कुंभांडतनयां मुने॥ ३३

ऊषोवाच

सखि यद्येष मे भर्ता पार्वत्या विहितः पुरा।
केनोपायेन ते गुप्तः प्राप्यते विधिवन्मया॥ ३४
कस्मिन्कुले स वा जातो मम येन हृतं मनः।
इत्यूषावचनं श्रुत्वा सखी प्रोवाच तां तदा॥ ३५

चित्रलेखोवाच

त्वया स्वप्ने च यो दृष्टः पुरुषो देवि तं कथम्।
अहं समानयिष्यामि न विज्ञातस्तु यो मम॥ ३६

दैत्यकन्या तदुक्ते तु रागांधा मरणोत्सुका।
रक्षिता च तया सख्या प्रथमे दिवसे ततः॥ ३७

पुनः प्रोवाच सोषां वै चित्रलेखा महामतिः।
कुंभांडस्य सुता बाणतनयां मुनिसत्तम॥ ३८

व्यसनं तेऽपकर्षामि त्रिलोक्यां यदि भाव्यते।
समानेष्ये नरं यस्ते मनोहर्ता तमादिश॥ ३९

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा वस्त्रपुटके देवान्दैत्यांश्च दानवान्।
गन्धर्वसिद्धनागांश्च यक्षादींश्च तथालिखत्॥ ४०
तथा नरांस्तेषु वृष्णीन् शूरमानकदुंदुभिम्।
व्यलिखद्रामकृष्णौ च प्रद्युम्नं नरसत्तमम्॥ ४१
अनिरुद्धं विलिखितं प्राद्युम्निं वीक्ष्य लज्जिता।
आसीदवाङ्मुखी चोषा हृदये हर्षपूरिता॥ ४२

ऊषा प्रोवाच चौरोऽसौ मया प्राप्तस्तु यो निशि।
पुरुषः सखि येनाशु चेतोरत्नं हृतं मम॥ ४३

यस्य संस्पर्शनादेव मोहिताहं तथाभवम्।
तमहं ज्ञातुमिच्छामि वद सर्वं च भामिनि॥ ४४

कस्यायमन्वये जातो नाम किं चास्य विद्यते।
इत्युक्ता साब्रवीन्नाम योगिनी तस्य चान्वयम्॥ ४५

हे व्यासजी! जब सखियोंने उसके द्वारा किये गये पूर्व दोषका स्मरण कराया, तो वह अपने पूर्व कृत्योंका स्मरण करने लगी। हे मुने! उस समय बाणासुरकी पुत्री ऊषाने कुम्भाण्डकी पुत्री चित्रलेखासे मधुर वाणीमें कहा— ॥ ३२-३३ ॥

ऊषा बोली—हे सखि! यदि पार्वतीने पहले ही इसे मेरा पति निश्चित किया है, तो वह गुप्त पति किस उपायसे मुझे प्राप्त हो सकता है? जिसने मेरा मन हरण किया, वह किस कुलमें उत्पन्न हुआ है? ऊषाकी यह बात सुनकर सखीने उससे कहा— ॥ ३४-३५ ॥

चित्रलेखा बोली—हे देवि! तुमने स्वप्नमें जिस पुरुषको देखा है, उसे मैं किस प्रकारसे लाऊँ, जो मेरे ज्ञानसे परे है, उसको ले आना किस प्रकार सम्भव है!॥ ३६ ॥

उसके ऐसा कहनेपर अनुरागवती दैत्यकन्या ऊषाने उसके वियोगके कारण मरनेका निश्चय कर लिया, किंतु उस सखीने [समझा-बुझाकर] प्रथम दिन उसकी रक्षा की। इसके बाद हे मुनिश्रेष्ठ! कुम्भाण्डकी पुत्री महाबुद्धिमती उस चित्रलेखाने बाणासुरकी पुत्री ऊषासे पुनः इस प्रकार कहा—हे सखि! तुम अपने मनको हरण करनेवाले उस पुरुषको बताओ, यदि वह इस त्रिलोकीमें कहीं भी है, तो मैं उसे लाऊँगी और तुम्हारी विपत्ति दूर करूँगी॥ ३७—३९ ॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार कहकर चित्रलेखाने वस्त्रके ऊपर देव, दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, नाग तथा यक्ष आदिके चित्र खींचे। उसने मनुष्योंमें वृष्णिवंशी यादवों, शूर, वसुदेव, बलराम, कृष्ण तथा नरश्रेष्ठ प्रद्युम्नका चित्र खींचा॥ ४०-४१ ॥

जब उसने प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्धका चित्र खींचा, तो उस चित्रको देखते ही लज्जित हो ऊषाने अपना मुख नीचे कर लिया और मनसे वह अत्यन्त प्रसन्न हुई॥ ४२ ॥

ऊषा बोली—हे सखि! रात्रिमें आकर जिसने शीघ्र ही मेरे चित्तरत्नको चुराया था, वह यही पुरुष है, मैंने उसे पा लिया। हे भामिनि! जिसके स्पर्शमात्रसे मैं मोहित हो गयी थी, उसे मैं जानना चाहती हूँ, तुम सब कुछ बताओ। यह किसके कुलमें उत्पन्न हुआ है और इसका क्या नाम है? ऊषाके ऐसा कहनेपर उस योगिनीने उसके वंश तथा नामका वर्णन किया॥ ४३—४५ ॥

सर्वमाकर्ण्य सा तस्य कुलादि मुनिसत्तम।
उत्सुका बाणतनया बभाषे सा तु कामिनी॥ ४६

हे मुनिसत्तम! उसका कुल आदि सब कुछ जानकर बाणासुरकी पुत्री उस कामिनी ऊषाने उत्कण्ठित हो इस प्रकार कहा— ॥ ४६ ॥

ऊषोवाच

उपायं रचय प्रीत्या तत्प्राप्त्यै सखि तत्क्षणात्।
येनोपायेन तं कान्तं लभेयं प्राणवल्लभम्॥ ४७

ऊषा बोली—हे सखि! अब तुम उसकी प्राप्तिके लिये प्रेमपूर्वक कोई उपाय करो, जिससे मैं अपने उस प्राणवल्लभ पतिको शीघ्र प्राप्त कर सकूँ॥ ४७॥

यं विनाहं क्षणं नैकं सखि जीवितुमुत्सहे।
तमानयेह सद्यत्नात्सुखिनीं कुरु मां सखि॥ ४८

हे सखि! मैं जिसके बिना एक क्षण भी जीवन धारण करनेमें समर्थ नहीं हूँ, उसे प्रयत्नपूर्वक शीघ्र यहाँ लाओ और मुझे सुखी करो॥ ४८॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्ता सा तया बाणात्मजया मंत्रिकन्यका।
विस्मिताऽभून्मुनिश्रेष्ठ सुविचारपराऽभवत्॥ ४९

सनत्कुमार बोले—हे मुनिवर! तब बाणकी कन्याके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर मन्त्री कुम्भाण्डकी पुत्री चित्रलेखा विस्मित हो गयी और विचार करने लगी॥ ४९॥

ततः सखीं समाभाष्य चित्रलेखा मनोजवा।
बुद्ध्वा तं कृष्णपौत्रं सा द्वारकां गंतुमुद्यता॥ ५०

इसके बाद सखीसे आज्ञा लेकर मनके समान वेगवाली वह चित्रलेखा उस पुरुषको कृष्णका पौत्र अनिरुद्ध जानकर द्वारका जानेको उद्यत हो गयी॥ ५०॥

ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां तृतीये तु गतेऽहनि।
आप्रभातान्मुहूर्ते तु संप्राप्ता द्वारकां पुरीम्॥ ५१

एकेन क्षणमात्रेण नभसा दिव्ययोगिनी।
ततश्चांतःपुरोद्याने प्राद्युम्निर्ददृशे तया॥ ५२

क्रीडन्नारीजनैः सार्द्धं प्रपिबन्माधवी मधु।
सर्वांगसुन्दरः श्यामः सुस्मितो नवयौवनः॥ ५३

वह ज्येष्ठ मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको प्रातःकालसे तीन प्रहर बीत जानेपर द्वारकापुरी पहुँची। उस दिव्य योगिनीने क्षणमात्रमें आकाशमार्गसे अन्तःपुरके उद्यानमें प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्धको देखा। उस समय सर्वांगसुन्दर श्यामवर्ण तथा नवीन यौवनयुक्त वे अनिरुद्ध स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा कर रहे थे। वे माधवी लतासे निर्मित मधुका पान कर रहे थे और मन्द-मन्द हँस रहे थे॥ ५१—५३॥

ततः खट्वां समारूढमंधकारपटेन सा।
आच्छादयित्वा योगेन तामसेन च माधवम्॥ ५४
ततः सा मूर्ध्नि तां खट्वां गृहीत्वा निमिषान्तरात्।
संप्राप्ता शोणितपुरं यत्र सा बाणनंदिनी॥ ५५
कामार्ता विविधान्भावाञ्चकारोन्मत्तमानसा।
आनीतमथ तं दृष्ट्वा तदा भीता च साऽभवत्॥ ५६

उसके बाद शय्यापर बैठे हुए उन अनिरुद्धको उसने तामस योगके द्वारा अन्धकार-पटसे आच्छादित कर दिया, पुनः उस शय्याको अपने सिरपर रखकर वह क्षणमात्रमें शोणितपुरमें आ गयी, जहाँ कामपीड़ित वह बाणकन्या ऊषा उन्मत्तचित्त होकर नाना प्रकारके भाव व्यक्त कर रही थी। उस समय लाये गये अपने पति अनिरुद्धको देखकर ऊषा भयभीत हो गयी॥ ५४—५६॥

अंतःपुरे सुगुप्ते च नवे तस्मिन्समागमे।
यावत्क्रीडितुमारब्धं तावज्ज्ञातं च तत्क्षणात्॥ ५७
अंतःपुरद्वारगतैर्वेत्रजर्जरपाणिभिः ।
इंगितैरनुमानैश्च कन्यादौःशील्यमाचरन्॥ ५८
स चापि दृष्टस्तैस्तत्र नरो दिव्यवपुर्धरः।
तरुणो दर्शनीयस्तु साहसी समरप्रियः॥ ५९

अत्यन्त सुरक्षित उस अन्तःपुरमें नवीन समागममें ज्यों ही उन दोनोंने क्रीड़ा प्रारम्भ की, उसी समय हाथमें बेंत लिये द्वारपालोंने कामचेष्टाओं तथा अनुमानोंसे कन्याके दुराचरणको जान लिया। उन लोगोंने दिव्य शरीरधारी, नवयुवक, साहसी एवं युद्धकलामें कुशल उस पुरुष (अनिरुद्ध)-को भी देख लिया॥ ५७—५९॥

तं दृष्ट्वा सर्वमाचख्युर्बाणाय बलिसूनवे।
पुरुषास्ते महावीराः कन्यान्तःपुररक्षकाः॥ ६०

इसके बाद अन्तःपुरके रक्षक उन महावीर पुरुषोंने उसे देखकर सारा वृत्तान्त बलिपुत्र बाणसे कह दिया॥ ६०॥

द्वारपाला ऊचुः

देव कश्चिन्न जानीते गुप्तश्चांतःपुरे बलात्।
स कोऽस्ति तव कन्यां वै स्वयंग्राहादधर्षयत्॥ ६१

दानवेन्द्र महाबाहो पश्य पश्यैनमत्र च।
यद्युक्तं स्यात्तत्कुरुष्व न दुष्टा वयमित्युत॥ ६२

द्वारपाल बोले—हे देव! अत्यन्त सुरक्षित अन्तःपुरमें प्रवेशकर किसी पुरुषने आपकी कन्याके साथ बलात् शयन किया है, वह कौन है, हमलोग उसे नहीं जानते। हे दानवेन्द्र! हे महाबाहो! इसे देखिये, देखिये और जो उचित हो, उसे कीजिये, हमलोग दोषी नहीं हैं॥ ६१-६२॥

सनत्कुमार उवाच

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा दानवेन्द्रो महाबलः।
विस्मितोऽभून्मुनिश्रेष्ठ कन्यायाः श्रुतदूषणः॥ ६३

सनत्कुमार बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! उनका वचन सुनकर और कन्याका दोष सुनकर महाबली दैत्येन्द्र [बाणासुर] आश्चर्यचकित हो गया॥ ६३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे ऊषाचरित्रवर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें ऊषाचरित्रवर्णन नामक बावनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५२॥

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

क्रुद्ध बाणासुरका अपनी सेनाके साथ अनिरुद्धपर आक्रमण और उसे नागपाशमें बाँधना, दुर्गाके स्तवनद्वारा अनिरुद्धका बन्धनमुक्त होना

सनत्कुमार उवाच

अथ बाणासुरः क्रुद्धस्तत्र गत्वा ददर्श तम्।
दिव्यलीलात्तवपुषं प्रथमे वयसि स्थितम्॥ १

तं दृष्ट्वा विस्मितं वाक्यं कि कारणमथाब्रवीत्।
बाणः क्रोधपरीतात्मा युधि शौंडो हसन्निव॥ २

अहो मनुष्यो रूपाढ्यः साहसी धैर्यवानिति।
कोऽयमागतकालश्च दुष्टभाग्यो विमूढधीः॥ ३

येन मे कुलचारित्रं दूषितं दुहिता हिता।
तं मारयध्वं कुपिताः शीघ्रं शस्त्रैः सुदारुणैः॥ ४

दुराचारं च तं बद्ध्वा घोरे कारागृहे ततः।
रक्षध्वं विकटे वीरा बहुकालं विशेषतः॥ ५

न जाने कोऽयमभयः को वा घोरपराक्रमः।
विचार्येति महाबुद्धिः संदिग्धोऽभूच्छरासुरः॥ ६

सनत्कुमार बोले—इसके बाद बाणासुरने अत्यन्त क्रुद्ध हो वहाँ जाकर दिव्य लीलासे युक्त शरीरवाले तथा नवीन युवावस्थासे सम्पन्न उन अनिरुद्धको देखा॥ १॥

उन्हें देखकर आश्चर्यचकित हो युद्धमें प्रचण्ड वह बाणासुर क्रोधसे आगबबूला हो हँसते हुए उनके आनेके कारणोंपर विचार करता हुआ राक्षसोंसे बोला—अहो! इतना रूपवान्, साहसी, धैर्यशील, अभागा एवं मूर्ख यह कौन पुरुष है, जिसकी मृत्यु आसन्न है और जिसने मेरी पुत्रीको दूषितकर मेरा कुल दूषित किया है। तुमलोग क्रुद्ध होकर अपने अति कठोर शस्त्रोंसे शीघ्र ही उसका वध करो। अथवा इस दुराचारीको बाँधकर बहुत कालके लिये घोर तथा विकट कारागारमें रखो। 'मालूम नहीं कि निर्भीक एवं महापराक्रमी यह कौन है'—यह सोचकर वह महाबुद्धि बाणासुर सन्देहमें पड़ गया॥ २—६॥

ततो दैत्येन सैन्यं तु दशसाहस्रकं शनैः।
वधाय तस्य वीरस्य व्यादिष्टं पापबुद्धिना॥ ७

इसके बाद उस पापबुद्धि दैत्यने उस वीरको मारनेके लिये दस हजार सैनिकोंको आज्ञा दी॥ ७॥

तदादिष्टास्तु ते वीराः सर्वतोऽन्तःपुरं द्रुतम्।
छादयामासुरत्युग्राश्छिंधि भिंदीति वादिनः॥ ८

शत्रुसैन्यं ततो दृष्ट्वा गर्जमानः स यादवः।
अंतःपुरं द्वारगतं परिघं गृह्य चातुलम्॥ ९

निष्क्रांतो भवनात्तस्माद्वज्रहस्त इवान्तकः।
तेन तान्किंकरान् हत्वा पुनश्चान्तःपुरं ययौ॥ १०

एवं दशसहस्राणि सैन्यानि मुनिसत्तम।
जघान रोषरक्ताक्षो वर्द्धितः शिवतेजसा॥ ११

लक्षे हतेऽथ योधानां ततो बाणासुरो रुषा।
कुंभांडं स गृहीत्वा तु युद्धे शौंडं समाह्वयत्॥ १२

अनिरुद्धं महाबुद्धिं द्वन्द्वयुद्धे महाहवे।
प्राद्युम्निं रक्षितं शैवतेजसा प्रज्वलत्तनुम्॥ १३

ततो दशसहस्राणि तुरंगाणां रथोत्तमान्।
युद्धप्राप्तेन खड्गेन दैत्येन्द्रस्य जघान सः॥ १४

तद्वधाय ततः शक्तिं कालवैश्वानरोपमाम्।
अनिरुद्धो गृहीत्वा तां तया तं निजघान ह॥ १५

रथोपस्थे ततो बाणस्तया शक्त्याहतो दृढम्।
स साश्वस्तत्क्षणं वीरस्तत्रैवान्तरधीयत॥ १६

तस्मिंस्त्वदर्शनं प्राप्ते प्राद्युम्निरपराजितम्।
आलोक्य ककुभः सर्वाः तस्थौ गिरिरिवाचलः॥ १७

अदृश्यमानस्तु तदा कूटयोधः स दानवः।
नानाशस्त्रसहस्रैस्तं जघान हि पुनः पुनः॥ १८

छद्मना नागपाशैस्तं बबंध स महाबलः।
बलिपुत्रो महावीरः शिवभक्तः शरासुरः॥ १९

उसके द्वारा आदिष्ट समस्त वीरोंने 'मारो-काटो' कहते हुए शीघ्र ही चारों ओरसे अन्तःपुरको घेर लिया॥ ८॥

तब शत्रुसेनाको अन्तःपुरके द्वारपर आया हुआ देखकर गर्जना करते हुए वे अनिरुद्ध अतुलनीय परिघ हाथमें लेकर, हाथमें वज्र लिये हुए कालके समान भवनसे निकले और उससे समस्त सैनिकोंका वधकर पुनः अन्तःपुरमें चले गये। हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार शिवके तेजसे पराक्रमशील अनिरुद्धने क्रोधसे रक्तनेत्र हो दस हजार सेनाओंका वध कर दिया॥ ९—११॥

इसके बाद [पुनः युद्धके लिये आयी हुई] एक लाख सेनाका वध कर दिये जानेपर क्रोधमें भरे हुए बाणासुरने युद्धकुशल कुम्भाण्डको लेकर शिवतेजसे रक्षित तथा कान्तिमान् शरीरवाले महाबुद्धिमान् प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्धको उस महायुद्धमें द्वन्द्वयुद्धके लिये ललकारा॥ १२-१३॥

तब उन्होंने दैत्येन्द्रकी दस हजार सेना, उतने घोड़े और उतने ही रथोंको उसीके खड्गसे नष्ट कर दिया, जो द्वन्द्वयुद्धमें उन्हें बाणासुरसे प्राप्त हुआ था॥ १४॥

इसके बाद अनिरुद्धने कालाग्निके समान शक्ति उसके वधके लिये ग्रहणकर उसके ऊपर प्रहार किया॥ १५॥

इसके बाद रथके पिछले भागमें स्थित वह वीर बाणासुर उस शक्तिसे दृढ़तापूर्वक आहत होते ही रथ एवं घोड़ोंके सहित उसी क्षण वहींपर अन्तर्धान हो गया॥ १६॥

तब बिना पराजित हुए उस दैत्यके अन्तर्धान हो जानेपर अनिरुद्ध सभी दिशाओंकी ओर देखकर पहाड़के समान अचल हो गये। उस समय अन्तर्हित होकर वह दैत्य कपटपूर्वक युद्ध करता हुआ नाना प्रकारके शस्त्रोंसे अनिरुद्धपर बार-बार प्रहार करने लगा॥ १७-१८॥

उसके बाद महाबली महावीर तथा शिवभक्त बलिपुत्र बाणासुरने छलसे अनिरुद्धको नागपाशमें बाँध लिया॥ १९॥

तं बध्वा पंजरांतःस्थं कृत्वा युद्धादुपारमत्।
उवाच बाणः संक्रुद्धः सूतपुत्रं महाबलम्॥ २०

इस प्रकार उन्हें बाँधकर पिंजड़ेमें बन्द करके बाणासुर युद्धसे विश्राम करने लगा। इसके बाद उसने क्रोधमें भरकर महाबली सूतपुत्र (सारथी)-से कहा— ॥ २० ॥

बाणासुर उवाच

सूतपुत्र शिरश्छिन्धि पुरुषस्यास्य वै लघु।
येन मे दूषितं पूतं बलादुदुष्टेन सत्कुलम्॥ २१
छित्वा तु सर्वगात्राणि राक्षसेभ्यः प्रयच्छ भोः।
अथास्य रक्तमांसानि क्रव्यादा अपि भुंजताम्॥ २२
अगाधे तृणसंकीर्णे कूपे पातकिनं जहि।
किं बहूक्त्या सूतपुत्र मारणीयो हि सर्वथा॥ २३

बाणासुर बोला—हे सूतपुत्र! बड़ी शीघ्रतासे इस पुरुषका सिर काट लो, जिसने बलपूर्वक मेरे पवित्र उत्तम कुलको दूषित किया है अथवा इसके सम्पूर्ण शरीरको काटकर राक्षसोंको दे दो और इसके रुधिर तथा मांसको मांसभक्षी [चील, कौवे आदि] भी खायें अथवा इस पापीको तृणोंसे व्याप्त गहरे कुएँमें डालकर मार डालो। हे सूतपुत्र! बहुत क्या कहूँ, यह सभी प्रकारसे वधके योग्य है॥ २१—२३ ॥

सनत्कुमार उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा धर्मबुद्धिर्निशाचरः।
कुंभांडस्त्वब्रवीद्वाक्यं बाणं सन्मंत्रिसत्तमम्॥ २४

सनत्कुमार बोले—उसका यह वचन सुनकर वह धर्मबुद्धिवाला राक्षस कुम्भाण्ड बाणासुरसे नीतियुक्त यह वाक्य कहने लगा— ॥ २४ ॥

कुंभांड उवाच

नैतत्कर्तुं समुचितं कर्म देव विचार्यताम्।
अस्मिन् हते हतो ह्यात्मा भवेदिति मतिर्मम॥ २५

कुम्भाण्ड बोला—हे देव! विचार कीजिये, यह कर्म करना उचित नहीं है; क्योंकि इसके मार डालनेपर आत्माका हनन होगा, ऐसा मेरा विचार है॥ २५ ॥

अयं तु दृश्यते देव तुल्यो विष्णोः पराक्रमैः।
वर्धितश्चन्द्रचूडस्य त्वदिष्टस्य सुतेजसा॥ २६
अथ चन्द्रललाटस्य साहसेन समस्त्वयम्।
इमामवस्थां प्राप्तोऽस्ति पौरुषे संव्यवस्थितः॥ २७
अयं शिवप्रसादाद्वै कृष्णपौत्रो महाबलः।
अस्मांस्तृणोपमान् वेत्ति दष्टोऽपि भुजगैर्बलात्॥ २८

हे देव! यह तो पराक्रममें विष्णुके समान तथा आपके इष्ट शिवजीके तेजसे बढ़ा हुआ दिखायी पड़ रहा है, पुरुषार्थमें शिवजीके साहससे भरा हुआ यह इस अवस्थाको प्राप्त हुआ है। श्रीकृष्णका यह महाबली पौत्र बलपूर्वक दैत्यरूपी सर्पोंसे डँसा हुआ भी शिवजीके प्रसादसे हमलोगोंको तृणके समान समझ रहा है॥ २६—२८ ॥

सनत्कुमार उवाच

एतद्वाक्यं तु बाणाय कथयित्वा स दानवः।
अनिरुद्धमुवाचेदं राजनीतिविदुत्तमः॥ २९

सनत्कुमार बोले—बाणासुरसे ऐसा वचन कहकर राजनीतिविशारद उस दैत्यने अनिरुद्धसे कहा— ॥ २९ ॥

कुंभांड उवाच

कोऽसि कस्यासि रे वीर सत्यं वद ममाग्रतः।
केन वा त्वमिहानीतो दुराचार नराधम॥ ३०
दैत्येन्द्रं स्तुहि वीरं त्वं नमस्कुरु कृताञ्जलिः।
जितोऽस्मीति वचो दीनं कथयित्वा पुनः पुनः॥ ३१
एवं कृते तु मोक्षः स्यादन्यथा बंधनादि च।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य प्रतिवाक्यमुवाच सः॥ ३२

कुम्भाण्ड बोला—हे वीर! हे दुराचारी! हे नराधम! तुम कौन हो, किसके पुत्र हो और तुमको यहाँ कौन लाया है—यह सब मेरे समक्ष सत्य-सत्य कहो और 'मैं हार गया'—इस प्रकारका दीन वचन बार-बार कहकर हाथ जोड़कर दैत्येन्द्रकी स्तुति करो तथा उन्हें नमस्कार करो। ऐसा करनेपर तुम बन्धनसे मुक्त हो जाओगे, अन्यथा बँधे ही रहोगे। उसका यह वचन सुनकर वे उत्तर देने लगे— ॥ ३०—३२ ॥

अनिरुद्ध उवाच

रे रे दैत्याऽधमसखे करपिंडोपजीवक।
निशाचर दुराचार शत्रुधर्मं न वेत्सि भोः॥ ३३
दैन्यं पलायनं चाथ शूरस्य मरणाधिकम्।
विरुद्धं चोपशल्यं च भवेदिति मतिर्मम॥ ३४

क्षत्रियस्य रणे श्रेयो मरणं सम्मुखे सदा।
न वीरमानिनो भूमौ दीनस्येव कृतांजलिः॥ ३५

सनत्कुमार उवाच

इत्यादि वीरवाक्यानि बहूनि स जगाद तम्।
तदाकर्ण्य स बाणोऽसौ विस्मितोऽभूच्चुकोप च॥ ३६

तदोवाच नभोवाणी बाणस्याश्वासनाय हि।
शृण्वतां सर्ववीराणामनिरुद्धस्य मंत्रिणः॥ ३७

व्योमवाण्युवाच

भो भो बाण महावीर न क्रोधं कर्तुमर्हसि।
बलिपुत्रोऽसि सुमते शिवभक्त विचार्यताम्॥ ३८

शिवः सर्वेश्वरः साक्षी कर्मणां परमेश्वरः।
तदधीनमिदं सर्वं जगद्वै सचराचरम्॥ ३९
स एव कर्ता भर्ता च संहर्ता जगतां सदा।
रजः सत्त्वतमोधारी विधिविष्णुहरात्मकः॥ ४०

सर्वस्यान्तर्गतः स्वामी प्रेरकः सर्वतः परः।
निर्विकार्यव्ययो नित्यो मायाधीशोऽपि निर्गुणः॥ ४१

तस्येच्छयाऽबलो ज्ञेयो बली बलिवरात्मज।
इति विज्ञाय मनसि स्वस्थो भव महामते॥ ४२

गर्वापहारी भगवान्नानालीलाविशारदः।
नाशयिष्यति ते गर्वमिदानीं भक्तवत्सलः॥ ४३

सनत्कुमार उवाच

इत्याभाष्य नभोवाणी विरराम महामुने।
बाणासुरस्तद्वचनादनिरुद्धं न जघ्निवान्॥ ४४
किं तु स्वान्तःपुरं गत्वा पपौ पानमनुत्तमम्।

अनिरुद्ध बोले—हे अधम दैत्यके मित्र! प्रजाद्वारा प्राप्त धनसे आजीविका चलानेवाले हे निशाचर! हे दुराचारी! तुम शत्रुधर्मको नहीं जानते॥ ३३॥

दीनता तथा युद्धसे भागना शूरके लिये मरनेसे भी बढ़कर है, यह प्रतिकूल और शल्यके समान दुःखदायी है, ऐसा मेरा विचार है॥ ३४॥

वीर तथा मानी क्षत्रियके लिये संग्राममें सम्मुख होकर मृत्युको प्राप्त हो जाना श्रेयस्कर है, किंतु दीनकी भाँति हाथ जोड़कर भूमिपर रहना श्रेष्ठ नहीं है॥ ३५॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकारके वीरतापूर्ण अनेक वाक्य अनिरुद्धने उस दैत्यसे कहे। यह सुनकर बाणासुरसहित वह कुम्भाण्ड आश्चर्यचकित हुआ और क्रोधित हो उठा। उसी समय सभी वीरों, अनिरुद्ध तथा मन्त्रीको सुनाते हुए उस बाणासुरको समझानेके लिये आकाशवाणी हुई॥ ३६-३७॥

आकाशवाणी बोली—हे महावीर! हे बाणासुर! हे सुमते! हे शिवभक्त! तुम बलिके पुत्र हो, तुम्हारे लिये क्रोध करना उचित नहीं है, इसपर जरा विचार करो॥ ३८॥

शिवजी सबके ईश्वर, कर्मोंके साक्षी तथा परमेश्वर हैं, यह चराचर जगत् उन्हींके अधीन है॥ ३९॥

वे ही सत्त्वगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी होकर ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवरूपसे इस जगत्के कर्ता, पालक तथा संहारक हैं। वे सबके अन्तर्यामी, स्वामी, सबके प्रेरक, सबसे परे, निर्विकार, अविनाशी, नित्य मायाके अधिपति तथा निर्गुण हैं। हे बलिके श्रेष्ठ पुत्र! उनकी इच्छासे निर्बलको भी बलवान् जानना चाहिये। हे महामते! ऐसा मनमें जानकर सावधान हो जाओ॥ ४०—४२॥

अभिमानका नाश करनेवाले, भक्तोंका पालन करनेवाले तथा नाना प्रकारकी लीला करनेमें निपुण भगवान् सदाशिव अभी तुम्हारा अभिमान नष्ट करेंगे॥ ४३॥

सनत्कुमार बोले—हे महामुने! ऐसा कहकर आकाशवाणी शान्त हो गयी और बाणासुरने उसके वचनके अनुसार अनिरुद्धको नहीं मारा, किंतु अपने अन्तःपुरमें जाकर उस प्रतिकूल बुद्धिवालेने उत्तम रसका

तद्वाक्यं च विसस्मार विजहार विरुद्धधीः॥ ४५

ततोऽनिरुद्धो बद्धस्तु नागभोगैर्विषोल्बणैः।
प्रिययाऽतृप्तचेतास्तु दुर्गां सस्मार तत्क्षणात्॥ ४६

पान किया और वह उस वचनको भूल गया तथा विहार करने लगा। उसके बाद भयंकर विषवाले नागोंसे बँधे हुए तथा प्रियाके बिना अतृप्त चित्तवाले अनिरुद्धने उसी क्षण दुर्गादेवीका स्मरण किया॥ ४४—४६॥

अनिरुद्ध उवाच

शरण्ये देवि बद्धोऽस्मि दह्यमानस्तु पन्नगैः।
आगच्छ मे कुरु त्राणं यशोदे चंडरोषिणि॥ ४७

शिवभक्ते महादेवि सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी।
त्वां विना रक्षको नान्यस्तस्माद्रक्ष शिवे हि माम्॥ ४८

अनिरुद्ध बोले—हे शरण्ये! हे देवि! हे यशोदे! हे चण्डरोषिणि! मैं बँधा हूँ तथा सर्पोंसे भस्म हो रहा हूँ, आप आइये और मेरी रक्षा कीजिये। हे शिवभक्ते! हे शिवे! हे महादेवि! आप सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय करनेवाली हैं, आपके अतिरिक्त कोई भी रक्षा करनेवाला नहीं है, अतः आप मेरी रक्षा कीजिये॥ ४७-४८॥

सनत्कुमार उवाच

तेनेत्थं तोषिता तत्र काली भिन्नाञ्जनप्रभा।
ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां संप्राप्तासीन्महानिशि॥ ४९
गुरुभिर्मुष्टिनिर्घातैर्दारयामास पंजरम्।
शरांस्तान्भस्मसात्कृत्वा सर्परूपान् भयानकान्॥ ५०
मोचयित्वानिरुद्धं तु ततश्चांतःपुरं ततः।
प्रवेशयित्वा दुर्गा तु तत्रैवादर्शनं गता॥ ५१

सनत्कुमार बोले—उनके द्वारा इस प्रकारकी स्तुति किये जानेपर निखरे हुए काजलके समान वर्णवाली कालीजी ज्येष्ठ मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको महानिशामें प्रकट हुईं। उन्होंने अपनी विशाल मुष्टिके प्रहारसे उस पिंजरेको तोड़ दिया तथा उन भयानक सर्परूपी बाणोंको भस्मकर अनिरुद्धको बन्धनमुक्त करके उन्हें अन्तःपुरमें प्रविष्ट करानेके पश्चात् दुर्गा वहींपर अन्तर्धान हो गयीं॥ ४९—५१॥

इत्थं देव्याः प्रसादात्तु शिवशक्तेर्मुनीश्वर।
कृच्छ्रमुक्तोऽनिरुद्धोऽभूत्सुखी चैव गतव्यथः॥ ५२

हे मुनीश्वर! इस प्रकार शिवशक्तिरूपा देवीकी कृपासे अनिरुद्ध दुःखसे निवृत्त हो गये और व्यथारहित होकर सुखी हो गये॥ ५२॥

अथ लब्धजयो भूत्वानिरुद्धः शिवशक्तितः।
प्राद्युम्निर्बाणतनयां प्रियां प्राप्य मुमोद च॥ ५३

पूर्ववद्विजहारासौ तया स्वप्रियया सुखी।
पीतपानः सुरक्ताक्षः स बाणसुतया ततः॥ ५४

तब शिवशक्तिके प्रभावसे विजय प्राप्तकर तथा बाणपुत्री अपनी प्रियाको प्राप्तकर अनिरुद्ध आनन्दित हो गये। इसके बाद मद्यपान करके लाल नेत्रोंवाले वे अनिरुद्ध अपनी प्रिया उस बाणासुरकी कन्याके साथ सुखी होकर पूर्वकी भाँति विहार करने लगे॥ ५३-५४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे ऊषाचरित्रे अनिरुद्धोषाविहारवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें ऊषाचरित्रमें अनिरुद्ध-ऊषाविहारवर्णन नामक तिरपनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५३॥

अथ चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नारदजीद्वारा अनिरुद्धके बन्धनका समाचार पाकर श्रीकृष्णकी शोणितपुरपर चढ़ाई, शिवके साथ उनका घोर युद्ध, शिवकी आज्ञासे श्रीकृष्णका उन्हें जृम्भणास्त्रसे मोहित करके बाणासुरकी सेनाका संहार करना

व्यास उवाच

अनिरुद्धे हृते पौत्रे कृष्णस्य मुनिसत्तम।
कुंभांडसुतया कृष्णः किमकार्षीद्धि तद्वद॥ १

व्यासजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! कुम्भाण्डकी पुत्री चित्रलेखाद्वारा अपने पौत्र अनिरुद्धका हरण कर लिये जानेपर श्रीकृष्णने क्या किया, उसे कहिये॥ १॥

सनत्कुमार उवाच

ततो गतेऽनिरुद्धे तु तत्स्त्रीणां रोदनस्वनम्।
श्रुत्वा च व्यथितः कृष्णो बभूव मुनिसत्तम॥ २

सनत्कुमार बोले—हे मुनिसत्तम! अनिरुद्धके चले जानेपर उन स्त्रियोंके रोनेके शब्दको सुनकर श्रीकृष्णको बहुत दुःख हुआ॥ २॥

अपश्यतां चानिरुद्धं तद्बन्धूनां हरेस्तथा।
चत्वारो वार्षिका मासा व्यतीयुरनुशोचताम्॥ ३

अनिरुद्धको बिना देखे उनके बन्धुओं तथा श्रीकृष्णको शोक करते हुए वर्षाकालके चार मास बीत गये॥ ३॥

नारदात्तदुपाकर्ण्य वार्तां बद्धस्य कर्म च।
आसन्सुव्यथिताः सर्वे वृष्णयः कृष्णदेवताः॥ ४
कृष्णस्तद्वृत्तमखिलं श्रुत्वा युद्धाय चादरात्।
जगाम शोणितपुरं तार्क्ष्यमाहूय तत्क्षणात्॥ ५
प्रद्युम्नो युयुधानश्च गतः साम्बोऽथ सारणः।
नंदोपनंदभद्राद्या रामकृष्णानुवर्तिनः॥ ६

तब नारदजीसे उनकी वार्ता तथा उनके बंधनका समाचार सुनकर सब यादवगण तथा श्रीकृष्णजी अति दुखी हुए। उस सम्पूर्ण वृत्तान्तको सुनकर श्रीकृष्ण उसी समय आदर-पूर्वक गरुडको बुलाकर युद्धके लिये शोणितपुरको गये। उस समय प्रद्युम्न, युयुधान, साम्ब, सारण, नन्द, उपनन्द, भद्र, बलराम तथा कृष्णके अनुवर्ती सब लोग चले॥ ४—६॥

अक्षौहिणीभिर्द्वादशभिः समेता सर्वतो दिशम्।
रुरुधुर्बाणनगरं समन्तात्सात्वतर्षभाः॥ ७

बारह अक्षौहिणी सेनाके साथ श्रेष्ठ यादवोंने चारों ओरसे बाणासुरके नगरको घेर लिया॥ ७॥

भज्यमानपुरोद्यानप्राकाराट्टालगोपुरम्।
वीक्ष्यमाणो रुषाविष्टस्तुल्यसैन्योऽभिनिर्ययौ॥ ८

नगर, उद्यान, प्राकार, अटारी, गोपुर आदिको विध्वस्त होता हुआ देखकर क्रोधसे व्याप्त वह बाणासुर भी उतनी ही सेनाके साथ निकल पड़ा॥ ८॥

बाणार्थे भगवान् रुद्रः ससुतः प्रमथैर्वृतः।
आरुह्य नन्दिवृषभं युद्धं कर्तुं समाययौ॥ ९
आसीत्सुतुमुलं युद्धमद्भुतं लोमहर्षणम्।
कृष्णादिकानां तैस्तत्र रुद्राद्यैर्बाणरक्षकैः॥ १०
कृष्णशंकरयोरासीत्प्रद्युम्नगुहयोरपि।
कूष्मांडकूपकर्णाभ्यां बलेन सह संयुगः॥ ११

बाणासुरकी रक्षा करनेके लिये भगवान् सदाशिव नन्दी वृषभपर सवार होकर अपने पुत्र तथा प्रमथगणोंके साथ युद्ध करनेके लिये गये। वहाँ बाणासुरके रक्षक रुद्र आदिसे श्रीकृष्ण आदिका अद्भुत, रोमांचकारी तथा भयंकर युद्ध हुआ। कृष्णके साथ शिवजीका, प्रद्युम्नके साथ कार्तिकेयका एवं कूष्माण्ड और कूपकर्णके साथ बलरामका परस्पर द्वन्द्वयुद्ध होने लगा॥ ९—११॥

सांबस्य बाणपुत्रेण बाणेन सह सात्यकेः।
नन्दिना गरुडस्यापि परेषां च परैरपि॥ १२

साम्बका बाणासुरके पुत्रके साथ, सात्यकिका बाणासुरके साथ, गरुडका नन्दीके साथ और अन्य लोगोंका अन्य लोगोंके साथ युद्ध होने लगा॥ १२॥

ब्रह्मादयः सुराधीशा मुनयः सिद्धचारणाः।
गंधर्वाऽप्सरसो यानैर्विमानैर्द्रष्टुमागमन्॥ १३

उस समय ब्रह्मा आदि देवता, मुनि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व तथा अप्सराएँ अपने वाहनों तथा विमानोंसे युद्ध देखनेके लिये आये॥ १३॥

प्रमथैर्विविधाकारै रेवत्यंतैः सुदारुणम्।
युद्धं बभूव विप्रेन्द्र तेषां च यदुवंशिनाम्॥ १४

हे विप्रेन्द्र! विविध आकारवाले रेवती आदि प्रमथोंके साथ उन यदुवंशियोंका बड़ा भयानक युद्ध हुआ॥ १४॥

भ्रात्रा रामेण सहितः प्रद्युम्नेन च धीमता।
कृष्णश्चकार समरमतुलं प्रमथैः सह॥ १५
तत्राग्निनाऽभवद्युद्धं यमेन वरुणेन च।
विमुखेन त्रिपादेन ज्वरेण च गुहेन च॥ १६
प्रमथैर्विविधाकारैस्तेषामत्यन्तदारुणम्।
युद्धं बभूव विकटं वृष्णीनां रोमहर्षणम्॥ १७
बिभीषिकाभिर्बह्वीभिः कोटरीभिः पदे पदे।
निर्लज्जाभिश्च नारीभिः प्रबलाभिरदूरतः॥ १८
शंकरानुचरान् शौरिर्भूतप्रमथगुह्यकान्।
द्रावयामास तीक्ष्णाग्रैः शरैः शार्ङ्गधनुश्च्युतैः॥ १९
एवं प्रद्युम्नप्रमुखा वीरा युद्धमहोत्सवाः।
चक्रुर्युद्धं महाघोरं शत्रुसैन्यं विनाशयन्॥ २०
विशीर्यमाणं स्वबलं दृष्ट्वा रुद्रोऽत्यमर्षणः।
क्रोधं चकार सुमहन्ननाद च महोल्बणम्॥ २१
तच्छ्रुत्वा शंकरगणा विनेदुर्युयुधुश्च ते।
मर्दयन्प्रतियोद्धारं वर्द्धिताः शंभुतेजसा॥ २२
पृथग्विधानि चायुङ्क्त शार्ङ्गास्त्राणि पिनाकिने।
प्रत्यक्षैः शमयामास शूलपाणिरविस्मितः॥ २३
ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतम्।
आग्नेयस्य च पार्जन्यं नैजं नारायणस्य च॥ २४
कृष्णसैन्यं विदुद्राव प्रतिवीरेण निर्जितम्।
न तस्थौ समरे व्यास पूर्णरुद्रसुतेजसा॥ २५
विद्राविते स्वसैन्ये तु श्रीकृष्णश्च परंतपः।
स्वं ज्वरं शीतलाख्यं हि व्यसृजद् वारुणं मुने॥ २६
विद्राविते कृष्णसैन्ये कृष्णस्य शीतलज्वरः।
अभ्यपद्यत तं रुद्रं मुने दशदिशो दहन्॥ २७
महेश्वरोऽथ तं दृष्ट्वायान्तं स्वं विसृजज्ज्वरम्।
माहेश्वरो वैष्णवश्च युयुधाते ज्वरावुभौ॥ २८
वैष्णवोऽथ समाक्रंदन्माहेश्वरबलार्दितः।
अलब्ध्वाऽभयमन्यत्र तुष्टाव वृषभध्वजम्॥ २९

भाई बलराम तथा बुद्धिमान् प्रद्युम्नके सहित श्रीकृष्णजीने प्रमथगणोंके साथ घोर भयानक युद्ध किया। वहाँ अग्नि, यम, वरुण आदि देवताओंके साथ विमुख, त्रिपाद, ज्वर और गुहका युद्ध हुआ। विविध आकारवाले प्रमथोंके साथ उन यादवोंका विकट, भयंकर तथा रोमहर्षण युद्ध होने लगा॥ १५—१७॥

बहुत-सी विभीषिकाओंसे, कोटरियोंसे तथा निर्लज्ज प्रबल स्त्रियोंसे पास-पाससे युद्ध होने लगा॥ १८॥

तब श्रीकृष्णजीने शिवजीके भूत, प्रमथ तथा गुह्यक आदि अनुचरोंको अपने शार्ङ्ग धनुषसे छोड़े हुए तीक्ष्ण अग्रभागवाले बाणोंसे पीड़ित किया। इस प्रकार युद्धके उत्साही प्रद्युम्न आदि वीर भी शत्रुकी सेनाका नाश करते हुए महाभयंकर युद्ध करने लगे। तब अपनी सेनाको नष्ट होते हुए देखकर शिवजीने उसे सहन न करते हुए महान् क्रोध किया और भयंकर गर्जन किया॥ १९—२१॥

यह सुनकर शिवजीके गण गरजने लगे तथा शिवजीके तेजसे तेजस्वी हुए वे शत्रुयोद्धाओंको नष्ट करते हुए युद्ध करने लगे। श्रीकृष्णने शार्ङ्गधनुषपर नाना प्रकारके अस्त्रोंको रखकर शिवजीके ऊपर प्रहार किया, तब विस्मित न होते हुए महादेवजीने प्रत्यक्ष रूपसे अस्त्रोंको शान्त कर दिया। शिवजीने ब्रह्मास्त्रको ब्रह्मास्त्रसे, वायव्यास्त्रको पर्वतास्त्रसे तथा नारायणके आग्नेय अस्त्रको अपने पर्जन्यास्त्रसे शान्त कर दिया॥ २२—२४॥

प्रत्येक योद्धासे जीती हुई श्रीकृष्णजीकी सेना भागने लगी, हे व्यासजी! वह सेना शिवके सम्पूर्ण तेजके कारण युद्धमें न रुक सकी। हे मुने! अपनी सेनाके पलायन करनेपर परम तपस्वी श्रीकृष्णने वरुणदेवता-सम्बन्धी अपने शीतल नामक ज्वरको छोड़ा॥ २५-२६॥

हे मुने! श्रीकृष्णकी सेनाके भाग जानेपर श्रीकृष्णका शीतलज्वर दसों दिशाओंको भस्म करता हुआ उन शिवजीके समीप गया। उसको आता हुआ देखकर महादेवने अपना ज्वर छोड़ा। उस समय शिवज्वर तथा विष्णुज्वर आपसमें युद्ध करने लगे। तब विष्णुका ज्वर शिवजीके ज्वरसे पीड़ित होकर क्रन्दन करने लगा और कहीं अपनी रक्षा न देखकर शिवजीकी स्तुति करने लगा॥ २७—२९॥

अथ प्रसन्नो भगवान्विष्णुज्वरनुतो हरः।
विष्णुशीतज्वरं प्राह शरणागतवत्सलः॥ ३०

तब विष्णुके ज्वरद्वारा वन्दित शरणागत-वत्सल सदाशिवने प्रसन्न होकर विष्णुके शीतज्वरसे कहा— ॥ ३० ॥

महेश्वर उवाच

शीतज्वर प्रसन्नोऽहं व्येतु ते मज्ज्वराद्भयम्।
यो नौ स्मरति संवादं तस्य न स्याज्ज्वराद्भयम्॥ ३१

महेश्वर बोले—हे शीतज्वर! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, तुमको मेरे ज्वरसे भय नहीं होगा, जो कोई हम दोनोंके संवादका स्मरण करेगा, उसको ज्वरसे भय नहीं होगा॥ ३१ ॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्तो रुद्रमानम्य गतो नारायणज्वरः।
तं दृष्ट्वा चरितं कृष्णो विसिस्माय भयान्वितः॥ ३२
स्कन्दः प्रद्युम्नबाणौघैरर्द्यमानोऽथ कोपितः।
जघान शक्त्या प्रद्युम्नं दैत्यसंघात्यमर्षणः॥ ३३
स्कंदशक्तिहतस्तत्र प्रद्युम्नः प्रबलोऽपि हि।
असृग्विमुञ्चन्गात्रेभ्यो बलेनापाक्रमद्रणात्॥ ३४
कुंभांडकूपकर्णाभ्यां नानास्त्रैश्च समाहतः।
दुद्राव बलभद्रोऽपि न तस्थेऽपि रणे बली॥ ३५

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार कहे जानेपर वह वैष्णवज्वर शिवजीको नमस्कार करके चला गया। उस चरित्रको देखकर श्रीकृष्ण भयभीत तथा विस्मित हो गये। प्रद्युम्नके बाणसमूहसे पीड़ित होकर कुपित हुए दैत्य-संघाती स्कन्दने अपनी शक्तिसे प्रद्युम्नको आहत कर दिया। तब स्वामी कार्तिकेयकी शक्तिसे आहत बलवान् प्रद्युम्न अपने शरीरसे रुधिर बहाते हुए संग्रामभूमिसे हट गये। कुम्भाण्ड और कूपकर्णके द्वारा अनेक अस्त्रोंसे आहत किये गये बली बलभद्र भी युद्धमें स्थिर न रह सके और भाग गये॥ ३२—३५ ॥

कृत्वा सहस्त्रं कायानां पीत्वा तोयं महार्णवात्।
गरुडो नाशयत्यथाऽऽवर्तैर्मेघार्णवांबुभिः॥ ३६
अथ क्रुद्धो महेशस्य वाहनो वृषभो बली।
वेगेन महतारं वै शृंगाभ्यां निजघान तम्॥ ३७
शृंगघातविशीर्णांगो गरुडोऽतीव विस्मितः।
विदुद्राव रणात्तूर्णं विहाय च जनार्दनम्॥ ३८

गरुड़ने हजारों रूप धारणकर महासागरसे जलका पानकर और मेघोंके समान जल छोड़कर बहुत-से लोगोंका नाश किया। तब शिवजीके वाहन बलवान् वृषभने कुपित होकर उन गरुडजीको बड़े वेगसे शीघ्रतापूर्वक सींगोंद्वारा विदीर्ण कर दिया। तब सींगोंके आघातसे विदीर्ण शरीरवाले गरुड़जी अत्यन्त विस्मित हो शीघ्र ही भगवान्‌को छोड़कर युद्धस्थलसे भाग गये॥ ३६—३८ ॥

एवं जाते चरित्रे तु भगवान्देवकीसुतः।
उवाच सारथिं शीघ्रं रुद्रतेजोऽतिविस्मितः॥ ३९

ऐसा चरित्र होनेपर देवकीपुत्र भगवान् श्रीकृष्ण शिवजीके तेजसे विस्मित हो शीघ्र ही अपने सारथीसे कहने लगे— ॥ ३९ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

हे सूत शृणु मद्वाक्यं रथं मे वाहय द्रुतम्।
महादेवसमीपस्थो यथा स्यां गदितुं वचः॥ ४०

श्रीकृष्ण बोले—हे सूत! तुम मेरे वचनको सुनो, मेरे रथको शीघ्र ले चलो, जिससे मैं शिवके समीप स्थित होकर उनसे कुछ कह सकूँ॥ ४० ॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्तो हरिणा सूतो दारुकः स्वगुणाग्रणीः।
द्रुतं तं वाहयामास रथं रुद्रसमीपतः॥ ४१

सनत्कुमार बोले—भगवान्‌के इस प्रकार कहनेपर अपने गुणोंके कारण मुख्य दारुक नामक सारथि शीघ्र ही उस रथको शिवजीके समीप ले गया॥ ४१ ॥

अथ विज्ञापयामास नतो भूत्वा कृतांजलिः।
श्रीकृष्णः शंकरं भक्त्या प्रपन्नो भक्तवत्सलम्॥ ४२

तब शरणागत हुए श्रीकृष्णने झुककर हाथ जोड़कर भक्तवत्सल शिवजीसे भक्तिपूर्वक प्रार्थना की॥ ४२ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

देवदेव महादेव शरणागतवत्सल।
नमामि त्वाऽनंतशक्तिं सर्वात्मानं परेश्वरम्॥ ४३
विश्वोत्पत्तिस्थाननाशहेतुं सज्ज्ञप्तिमात्रकम्।
ब्रह्मलिंगं परं शांतं केवलं परमेश्वरम्॥ ४४
कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो द्रव्यमेव च।
क्षेत्रं च प्राण आत्मा च विकारस्तत्समूहकः॥ ४५
बीजरोहप्रवाहस्तु त्वन्मायैषा जगत्प्रभो।
तन्निबंधं प्रपद्येह त्वामहं परमेश्वरम्॥ ४६

श्रीकृष्ण बोले—हे देवोंके देव! हे महादेव! हे शरणागतवत्सल! आप अनन्त शक्तिवाले, सबके आत्मरूप परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। आप संसारकी उत्पत्ति-स्थिति एवं नाशके कारण, सज्ज्ञप्तिमात्र, ब्रह्मलिंग, परमशान्त, केवल, परमेश्वर, काल, दैव, कर्म, जीव, स्वभाव, द्रव्य, क्षेत्र, प्राण, आत्मा, विकार तथा अनेक समुदायवाले हैं, हे संसारके स्वामिन्! बीजरोह तथा प्रवाहरूपी यह आपकी माया है, इस कारण मैं आप बन्धनहीन परमेश्वरकी शरणमें आया हूँ॥ ४३—४६॥

नानाभावैर्लीलयैव स्वकृतैर्निर्जरादिकान्।
नूनं बिभर्षि लोकेशो हंस्युन्मार्गान्स्वभावतः॥ ४७

आप लोकेश्वर अपने द्वारा किये गये विविध भावोंसे लीलापूर्वक देवता आदिका पोषण करते हैं तथा बुरे मार्गमें जानेवालोंको स्वभावसे विनष्ट करते हैं॥ ४७॥

त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये।
यं पश्यन्त्यमलात्मानमाकाशमिव केवलम्॥ ४८
त्वमेव चाद्यः पुरुषोऽद्वितीयस्तुर्य आत्मदृक्।
ईशो हेतुरहेतुश्च सविकारः प्रतीयसे॥ ४९
स्वमायया सर्वगुणप्रसिद्ध्यै भगवन्प्रभो।
सर्वान्वितः प्रभिन्नश्च सर्वतस्त्वं महेश्वर॥ ५०

आप ही ब्रह्म, परम ज्योतिःस्वरूप तथा शब्दब्रह्मरूप हैं, आप निर्मल आत्माको योगी केवल आकाशके समान देखते हैं। आप ही आदिपुरुष, अद्वितीय, तुर्य, आत्मद्रष्टा, ईश, हेतु, अहेतु तथा विकारी प्रतीयमान होते हैं। हे प्रभो! हे भगवन्! हे महेश्वर! आप अपनी मायासे सम्पूर्ण गुणोंकी प्रसिद्धिके निमित्त सभीसे युक्त तथा सभीसे भिन्न भी हैं॥ ४८—५०॥

यथैव सूर्योऽपिहितश्छायारूपाणि च प्रभो।
स्वच्छायया संचकास्ति ह्ययं परमदृग्भवान्॥ ५१

हे प्रभो! जिस प्रकार सूर्य छायारूपोंका तिरस्कार करके अपनी कान्तिसे प्रकाश करता है, उसी प्रकार दिव्य नेत्रवाले आप सर्वत्र प्रकाश कर रहे हैं॥ ५१॥

गुणेनापिहितोऽपि त्वं गुणे नैव गुणान् विभो।
स्वप्रदीपश्चकासि त्वं भूमन् गिरिश शंकर॥ ५२
त्वन्मायामोहितधियः पुत्रदारगृहादिषु।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति प्रसक्ता वृजिनार्णवे॥ ५३

हे विभो! हे भूमन्! हे गिरिश! आप गुणोंसे बिना ढके हुए भी अपने गुणोंसे समस्त गुणोंको दीपकके समान प्रकाशित करते हैं। हे शंकर! आपकी मायासे मोहित बुद्धिवाले पुत्र, स्त्री, गृह आदिमें आसक्त होकर पापसमुद्रमें डूबते-उतराते रहते हैं॥ ५२-५३॥

दैवदत्तमिमं लब्ध्वा नृलोकमजितेन्द्रियः।
यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो ह्यात्मवंचकः॥ ५४

जो अजितेन्द्रिय पुरुष प्रारब्धवश इस मनुष्य जन्मको प्राप्तकर आपके चरणोंमें प्रेम नहीं करता, वह शोक करनेयोग्य तथा आत्मवंचक है॥ ५४॥

त्वदाज्ञयाहं भगवान्बाणदोश्छेत्तुमागतः।
त्वयैव शप्तो बाणोऽयं गर्वितो गर्वहारिणा॥ ५५

हे भगवन्! मैं आपकी आज्ञासे बाणासुरकी भुजाओंको काटनेके लिये आया हूँ, अभिमानके नाश करनेवाले आपने ही इस गर्वित बाणासुरको शाप दिया है॥ ५५॥

निवर्त्तस्व रणाद्देव त्वच्छापो न वृथा भवेत्।
आज्ञां देहि प्रभो मे त्वं बाणस्य भुजकृन्तने॥ ५६

हे देव! आप संग्रामभूमिसे लौट जाइये, जिससे आपका शाप व्यर्थ न हो। हे प्रभो! आप मुझे बाणासुरके हाथ काटनेकी आज्ञा दीजिये॥ ५६॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचः शंभुः श्रीकृष्णस्य मुनीश्वर।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा कृष्णस्तुत्या महेश्वरः॥ ५७

सनत्कुमार बोले—हे मुनीश्वर! श्रीकृष्णके इस वचनको सुनकर महेश्वर शिवजीने श्रीकृष्णकी स्तुतिसे प्रसन्नचित्त होकर कहा—॥ ५७॥

महेश्वर उवाच

सत्यमुक्तं त्वया तात मया शप्तो हि दैत्यराट्।
मदाज्ञया भवान्प्राप्तो बाणदोर्दंडकृन्तने॥ ५८
किं करोमि रमानाथ भक्ताधीनः सदा हरे।
पश्यतो मे कथं वीर स्याद् बाणभुजकृन्तनम्॥ ५९
अतस्त्वं जृंभणास्त्रेण मां जृंभय मदाज्ञया।
ततस्त्वं कुरु कार्यं स्वं यथेष्टं च सुखी भव॥ ६०

महेश्वर बोले—हे तात! आपने सत्य कहा, मैंने दैत्यराजको शाप दिया है। आप मेरी आज्ञासे बाणासुरकी भुजाओंको काटनेके लिये आये हैं। हे रमानाथ! हे हरे! मैं क्या करूँ, मैं सदा भक्तोंके अधीन हूँ। हे वीर! मेरे देखते हुए बाणासुरकी भुजाओंका छेदन किस प्रकार हो सकता है। अतः आप मेरी आज्ञासे जृम्भणास्त्रसे मेरा जृम्भण (जम्भाई आना) कीजिये, इसके बाद अपना यथेष्ट कार्य कीजिये और सुखी हो जाइये॥ ५८—६०॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्तः शंकरेणाथ शार्ङ्गपाणिः सुविस्मितः।
स्वरणस्थानमागत्य मुमोद स मुनीश्वर॥ ६१

सनत्कुमार बोले—हे मुनीश्वर! शिवजीके इस प्रकार कहनेपर वे श्रीकृष्णजी अति विस्मित हुए और अपने युद्धस्थलमें आकर प्रसन्न हुए॥ ६१॥

जृंभणास्त्रं मुमोचाथ संधाय धनुषि द्रुतम्।
पिनाकपाणये व्यास नानास्त्रकुशलो हरिः॥ ६२

हे व्यासजी! इसके बाद अनेक अस्त्रोंके संचालनमें कुशल भगवान् श्रीकृष्णजीने शीघ्र ही जृम्भणास्त्रका धनुषपर सन्धानकर उसे शिवजीके ऊपर छोड़ा॥ ६२॥

मोहयित्वा तु गिरिशं जृंभणास्त्रेण जृंभितम्।
बाणस्य पृतनां शौरिर्जघानासिगदर्ष्टिभिः॥ ६३

उस जृम्भणास्त्रसे जृम्भित हुए शिवको मोहित करके श्रीकृष्णने खड्ग, गदा तथा ऋष्टिसे बाणासुरकी सेनाओंको मार डाला॥ ६३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे बाणासुररुद्र-कृष्णादियुद्धवर्णनं नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें बाणासुररुद्रकृष्णादियुद्धवर्णन नामक चौवनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५४॥

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भगवान् कृष्ण तथा बाणासुरका संग्राम, श्रीकृष्णद्वारा बाणकी भुजाओंका काटा जाना, सिर काटनेके लिये उद्यत हुए श्रीकृष्णको शिवका रोकना और उन्हें समझाना, बाणका गर्वापहरण, श्रीकृष्ण और बाणासुरकी मित्रता, ऊषा-अनिरुद्धको लेकर श्रीकृष्णका द्वारका आना

व्यास उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ ब्रह्मपुत्र नमोऽस्तु ते।
अद्भुतेयं कथा तात श्राविता मे त्वया मुने॥ १

व्यासजी बोले—हे सर्वज्ञ! हे ब्रह्मपुत्र! हे सनत्कुमार! आपको नमस्कार है। हे मुने! हे तात! आपने मुझे यह अद्भुत कथा सुनायी॥ १॥

जृंभिते जृंभणास्त्रेण हरिणा समरे हरे।
हते बाणबले बाणः किमकार्षीच्च तद्वद॥ २

श्रीकृष्णके द्वारा युद्धमें जृम्भणास्त्रसे शिवजीके मोहित किये जानेपर तथा बाणकी सेनाके मार दिये जानेपर बाणासुरने क्या किया, उसको कहिये॥ २॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य व्यासस्यामिततेजसः।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा ब्रह्मपुत्रो मुनीश्वरः॥ ३

सूतजी बोले—अमिततेजस्वी उन व्यासजीका वचन सुनकर ब्रह्माके पुत्र मुनीश्वर [सनत्कुमार] प्रसन्नचित्त होकर कहने लगे—॥ ३॥

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास महाप्राज्ञ कथां च परमाद्भुताम्।
कृष्णशंकरयोस्तात लोकलीलानुसारिणोः॥ ४

सनत्कुमार बोले—हे महाप्राज्ञ! हे व्यासजी! हे तात! लोकलीलाका अनुसरण करनेवाले श्रीकृष्ण तथा शिवजीकी अद्भुत तथा सुन्दर कथाका श्रवण कीजिये॥ ४॥

शयिते लीलया रुद्रे सपुत्रे सगणे सति।
बाणो विनिर्गतो युद्धं कर्तुं कृष्णेन दैत्यराट्॥ ५

पुत्रों तथा गणोंसहित लीलासे शिवजीके सो जानेपर वह दैत्यराज बाणासुर कृष्णके साथ युद्ध करनेके लिये निकल पड़ा॥ ५॥

कुंभांडसंगृहीताश्वो नानाशस्त्रास्त्रधृक् ततः।
चकार युद्धमतुलं बलिपुत्रो महाबलः॥ ६

कुम्भाण्डसे घोड़ा लेकर वह महाबली दैत्य अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको धारणकर अतुलनीय युद्ध करने लगा॥ ६॥

दृष्ट्वा निजबलं नष्टं स दैत्येन्द्रोऽत्यमर्षितः।
चकार युद्धमतुलं बलिपुत्रो महाबलः॥ ७

उस महाबली दैत्येन्द्र बाणासुरने अपनी सेनाको नष्ट हुआ देखकर क्रोधित हो घोर युद्ध किया॥ ७॥

श्रीकृष्णोऽपि महावीरो गिरिशाप्तमहाबलः।
उच्चैर्जगर्ज तत्राजौ बाणं मत्वा तृणोपमम्॥ ८

उस संग्राममें शिवजीसे महान् बल पाकर महावीर श्रीकृष्णने बाणासुरको तिनकेके समान मानकर बड़े जोरसे गर्जन किया॥ ८॥

धनुष्टंकारयामास शार्ङ्गाख्यं निजमद्भुतम्।
त्रासयन्बाणसैन्यं तदवशिष्टं मुनीश्वर॥ ९

हे मुनीश्वर! बाणासुरकी शेष बची हुई सेनाको भयभीत करते हुए वे अपने अद्भुत शार्ङ्ग नामक धनुषकी टंकार करने लगे॥ ९॥

तेन नादेन महता धनुष्टंकारजेन हि।
द्यावाभूम्योरन्तरं वै व्याप्तमासीदनन्तरम्॥ १०

धनुषकी टंकारसे उत्पन्न हुए उस तीव्र नादसे भूमि और आकाशका मध्यभाग व्याप्त हो गया॥ १०॥

चिक्षेप विविधान्बाणान्बाणाय कुपितो हरिः।
कर्णान्तं तद्विकृष्याथ तीक्ष्णानाशीविषोपमान्॥ ११

उसी समय श्रीकृष्णने क्रोधित हो उस धनुषको कानतक खींचकर बाणासुरके ऊपर सर्पोंके समान विषैले अनेक तीक्ष्ण बाणोंको छोड़ा॥ ११॥

आयातस्तान्निरीक्ष्याऽथ स बाणो बलिनन्दनः।
अप्राप्तानेव चिच्छेद स्वशरैः स्वधनुश्च्युतैः॥ १२

बलिपुत्र बाणासुरने उन बाणोंको आता हुआ देखकर अपने धनुषसे निकले हुए बाणोंसे उन्हें अपनेतक पहुँचनेके पहले बीचमें ही काट दिया॥ १२॥

पुनर्जगर्ज स विभुर्बाणो वैरिगणार्दनः।
तत्रसुर्वृष्णयः सर्वे कृष्णात्मानो विचेतसः॥ १३

शत्रुओंको विनष्ट करनेवाला वह दैत्यराज बाण पुनः गर्जना करने लगा, तब वहाँ सम्पूर्ण यादव भयभीत हो गये और श्रीकृष्णका स्मरण करते हुए मूर्च्छित हो गये॥ १३॥

स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं चिक्षेप निजसायकान्।
स कृष्णायातिशूराय महागर्वो बलेः सुतः॥ १४

इसके बाद बलिके पुत्र महान् अहंकारी बाणने शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करके अतिशूर श्रीकृष्णके ऊपर अपने बाण छोड़े॥ १४॥

कृष्णोऽपि तानसंप्राप्तानच्छिनत्स्वशरैर्द्रुतम्।
स्मृत्वा शिवपदाम्भोजममरारिर्महाबलः॥ १५

तब महादैत्योंके शत्रु श्रीकृष्णजीने भी शिवजीके चरणकमलोंका स्मरणकर अपने बाणोंसे उन बाणोंको दूरसे शीघ्र ही काट दिया॥ १५॥

रामादयो वृष्णयश्च स्वं स्वं योद्धारमाहवे।
निजघ्नुर्बलिनः सर्वे कृत्वा क्रोधं समाकुलाः॥ १६

तब संग्राममें आकुल बलराम आदि सभी बली यादवोंने क्रोध करके अपने-अपने प्रतियोद्धाको मारा॥ १६॥

इत्थं चिरतरं तत्र बलिनोश्च द्वयोरपि।
बभूव तुमुलं युद्धं शृण्वतां विस्मयावहम्॥ १७

इस प्रकार वहाँ उन दोनों बली पुरुषोंका बहुत समय-तक भयानक युद्ध हुआ, जो सुननेवालोंको भी आश्चर्यचकित कर देनेवाला था॥ १७॥

तस्मिन्नवसरे तत्र क्रोधं कृत्वाऽति पक्षिराट्।
बाणासुरबलं सर्वं पक्षाघातैरमर्दयत्॥ १८

संग्राममें उस समय गरुड़जीने अति क्रोध करके अपने पंखोंके प्रहारोंसे बाणासुरकी सब सेनाको चूर्ण-चूर्ण कर दिया॥ १८॥

मर्दितं स्वबलं दृष्ट्वा मर्दयन्तं च तं बली।
चुकोपाति बलेः पुत्रः शैवराड् दितिजेश्वरः॥ १९

स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं सहस्त्रभुजवान्द्रुतम्।
महत्पराक्रमं चक्रे वैरिणां दुःसहं स वै॥ २०

तब अपनी सेनाका मर्दन करनेवाले गरुड़को तथा अपनी सेनाको मर्दित देखकर शैवोंमें श्रेष्ठ बलवान् उस दैत्यने उनके ऊपर अति क्रोध किया और हजार भुजावाले उस दैत्यने शीघ्र ही महादेवके चरणारविन्दोंका स्मरण करके शत्रुओंके लिये असह्य महान् पराक्रम प्रदर्शित किया॥ १९-२०॥

चिक्षेप युगपद्बाणानमितांस्तत्र वीरहा।
कृष्णादिसर्वयदुषु गरुडे च पृथक् पृथक्॥ २१

वहाँ वीरोंको नष्ट करनेवाले उस दैत्यने एक साथ श्रीकृष्णादि समस्त यादवोंपर तथा गरुड़के ऊपर अलग-अलग अनेक बाणोंसे प्रहार किया॥ २१॥

जघानैकेन गरुडं कृष्णमेकेन पत्रिणा।
बलमेकेन च मुने परानपि तथा बली॥ २२

हे मुने! बलवान् उस दैत्यने एक बाणसे गरुड़को, एक बाणसे श्रीकृष्णको, एकसे बलरामको और एकसे अन्य लोगोंको मारा॥ २२॥

ततः कृष्णो महावीर्यो विष्णुरूपः सुरारिहा।
चुकोपातिरणे तस्मिञ्जगर्ज च महेश्वरः॥ २३

जघान बाणं तरसा शार्ङ्गनिःसृतसच्छरैः।
अति तद्बलमत्युग्रं युगपत्स्मृतशंकरः॥ २४

उस समय बड़े पराक्रमी विष्णुके अवताररूप तथा दैत्योंका नाश करनेवाले परमेश्वर श्रीकृष्ण उस युद्धमें अत्यधिक कुपित हुए और गरजने लगे तथा शिवजीका स्मरणकर अपने धनुषसे छोड़े हुए बाणोंसे अति उग्र पराक्रमवाले उसके सैनिकों तथा उस दैत्य बाणासुरपर उन्होंने एक साथ प्रहार किया॥ २३-२४॥

चिच्छेद तद्धनुः शीघ्रं छत्रादिकमनाकुलः।
हयांश्च पातयामास हत्वा तान्स्वशरैर्हरिः॥ २५

निश्चिन्त होकर श्रीकृष्णने अपने बाणोंसे उसके धनुष, छत्र आदिको काट दिया और उसके घोड़ोंको मारकर गिरा दिया॥ २५॥

बाणोऽपि च महावीरो जगर्जाति प्रकुप्य ह।
कृष्णं जघान गदया सोऽपतद्धरणीतले॥ २६

महावीर बाणासुरने अतिक्रोधित हो गर्जन किया और अपनी गदासे श्रीकृष्णपर प्रहार किया, जिससे वे पृथ्वीपर गिर पड़े॥ २६॥

उत्थायारं ततः कृष्णो युयुधे तेन शत्रुणा।
शिवभक्तेन देवर्षे लोकलीलाऽनुसारतः॥ २७

हे देवर्षे! तब श्रीकृष्ण लोकमें लीला करनेके कारण शीघ्र ही भूमिसे उठकर शिवभक्त उस शत्रुके साथ युद्ध करने लगे॥ २७॥

एवं द्वयोश्चिरं कालं बभूव सुमहान् रणः।
शिवरूपो हरिः कृष्णः स च शैवोत्तमो बली॥ २८

इस प्रकार उन दोनोंमें बहुत समयतक घोर संग्राम होता रहा, भगवान् श्रीकृष्ण शिवरूप थे तथा वह बली बाणासुर शिवजीके भक्तोंमें श्रेष्ठ था॥ २८॥

कृष्णोऽथ कृत्वा समरं चिरं बाणेन वीर्यवान्।
शिवाऽऽज्ञया प्राप्तबलश्चुकोपाति मुनीश्वर॥ २९

हे मुनीश्वर! पराक्रमशाली श्रीकृष्ण बहुत देरतक बाणासुरके साथ युद्धकर पुनः शिवजीकी आज्ञासे बल प्राप्तकर अत्यधिक क्रोधित हो उठे॥ २९॥

ततः सुदर्शनेनाशु कृष्णो बाणभुजान्बहून्।
चिच्छेद भगवान् शंभुः शासनात्परवीरहा॥ ३०

तदनन्तर शत्रुवीरोंका नाश करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने शिवजीकी आज्ञासे शीघ्र ही सुदर्शनचक्रसे बाणासुरकी बहुत-सी भुजाओंको काट दिया॥ ३०॥

अवशिष्टा भुजास्तस्य चत्वारोऽतीव सुन्दराः।
गतव्यथो बभूवाशु शंकरस्य प्रसादतः॥ ३१

उस समय उसकी श्रेष्ठ चार भुजाएँ शेष रह गयीं और शिवजीके अनुग्रहसे वह शीघ्र ही व्यथारहित हो गया॥ ३१॥

गतस्मृतिर्यदा बाणः शिरश्छेत्तुं समुद्यतः।
कृष्णो वीरत्वमापन्नस्तदा रुद्रः समुत्थितः॥ ३२

जिस समय बाणासुर शिवजीके स्मरणसे हीन हुआ, उसी समय वीरताको प्राप्त हुए श्रीकृष्ण उसका सिर काटनेको उद्यत हुए, तब भगवान् सदाशिव उनके सामने खड़े हो गये॥ ३२॥

रुद्र उवाच

भगवन्देवकीपुत्र यदाज्ञप्तं मया पुरा।
तत्कृतं च त्वया विष्णो मदाज्ञाकारिणा सदा॥ ३३

रुद्र बोले—हे भगवन्! हे देवकीपुत्र! हे विष्णो! मैंने जो पहले आपको आज्ञा दी थी, मेरी आज्ञाका पालन करनेवाले आपने वैसा ही किया॥ ३३॥

मा बाणस्य शिरश्छिंधि संहरस्व सुदर्शनम्।
मदाज्ञया चक्रमिमममोघं मज्जने सदा॥ ३४

अब आप बाणासुरके सिरको मत काटिये, मेरी आज्ञासे अपने सुदर्शनचक्रको लौटा लीजिये; क्योंकि मेरे भक्तके ऊपर सदा यह चक्र निष्फल होगा॥ ३४॥

दत्तं मया पुरा तुभ्यमनिवार्यं रणे तव।
चक्रं जयं च गोविन्द निवर्तस्व रणात्ततः॥ ३५

हे गोविन्द! संग्राममें मैंने आपको यह अनिवार्य सुदर्शन चक्र दिया है, इसलिये इस विजयचक्रको युद्धभूमिसे लौटा लीजिये॥ ३५॥

दधीचे रावणे वीरे तारकादिपुरेष्वपि।
विना मदाज्ञां लक्ष्मीश रथाङ्गं नामुचः पुरा॥ ३६

त्वं तु योगीश्वरः साक्षात्परमात्मा जनार्दन।
विचार्यतां स्वमनसा सर्वभूतहिते रतः॥ ३७

वरमस्य मया दत्तं न मृत्युर्भयमस्ति वै।
तन्मे वचः सदा सत्यं परितुष्टोऽस्म्यहं तव॥ ३८

हे लक्ष्मीश! पहले भी आपने यह सुदर्शनचक्र दधीचि, वीर रावण तथा तारक आदिके ऊपर मेरी आज्ञाके बिना नहीं चलाया। आप तो योगीश्वर साक्षात् परमात्मा, जनार्दन तथा सब प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले हैं, इसका अपने मनमें विचार कीजिये। मैंने इसे यह वर दे दिया है कि तुम्हें मृत्युका भय नहीं रहेगा। अतः मेरा यह वचन सदा सत्य होगा, मैं आपसे सन्तुष्ट हूँ॥ ३६—३८॥

पुराऽयं गर्वितो मत्तो युद्धं देहीति मेऽब्रवीत्।
भुजान्कण्डूयमानस्तु विस्मृतात्मगतिर्हरे॥ ३९

तदाहमशपं तं वै भुजच्छेत्ताऽऽगमिष्यति।
अचिरेणातिकालेन गतगर्वो भविष्यसि॥ ४०

हे हरे! पहले यह अपनी भुजाओंको खुजलाकर अपनी गतिको भूल गया और गर्वित तथा उन्मत्त होकर इसने मुझसे युद्धका वर माँगा। तब मैंने उसे शाप दिया कि थोड़े ही समयमें तुम्हारी भुजाओंको काटनेवाला आयेगा और तुम्हारा अभिमान नष्ट हो जायगा॥ ३९-४०॥

मदाज्ञया हरिः प्राप्तो भुजच्छेत्ता तवाऽथ वै।
निवर्तस्व रणाद्गच्छ स्वगृहं सवधूवरः॥ ४१

वे बाणसे बोले—मेरी आज्ञासे तुम्हारी भुजाओंको काटनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण आ गये हैं, इसलिये तुम अब संग्रामसे लौट जाओ और [श्रीकृष्णसे कहा—] वधू और वरके साथ अपने स्थानको चले जाओ॥ ४१॥

इत्युक्तः स तयोर्मैत्रीं कारयित्वा महेश्वरः।
तमनुज्ञाप्य सगणः सपुत्रः स्वालयं ययौ॥ ४२

ऐसा कहकर शिवजी उन दोनोंमें मित्रता कराकर उनको आज्ञा देकर गणों तथा पुत्रोंसहित अपने स्थानको चले गये॥ ४२॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचः शंभोः संहृत्य च सुदर्शनम्।
अक्षताङ्गस्तु विजयी तत्कृष्णोऽन्तःपुरं ययौ॥ ४३
अनिरुद्धं समाश्वास्य सहितं भार्यया पुनः।
जग्राह रत्नसंघातं बाणदत्तमनेकशः॥ ४४
तत्सखीं चित्रलेखां च गृहीत्वा परयोगिनीम्।
प्रसन्नोऽभूत्ततः कृष्णः कृतकार्यः शिवाज्ञया॥ ४५

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार भगवान् शिवजीका वचन सुनकर अपने सुदर्शनचक्रको लौटाकर अक्षत शरीरवाले विजयी श्रीकृष्णने अन्तःपुरमें प्रवेश किया। भार्यासहित अनिरुद्धको आश्वासन देकर उन्होंने बाणासुरके द्वारा प्रदान किये गये अनेक रत्नसमुदायको स्वीकार किया। ऊषाकी सखी परमयोगिनी चित्रलेखाको लेकर शिवजीकी आज्ञासे कृतकृत्य श्रीकृष्ण अति प्रसन्न हुए॥ ४३—४५॥

हृदा प्रणम्य गिरिशमामंत्र्य च बलेः सुतम्।
परिवारसमेतस्तु जगाम स्वपुरीं हरिः॥ ४६

पथि जित्वा च वरुणं विरुद्धं तमनेकधा।
द्वारकां च पुरीं प्राप्तः समुत्सवसमन्वितः॥ ४७

विसर्जयित्वा गरुडं सखीन्वीक्ष्योपहस्य च।
द्वारकायां ततो गत्वा कामचारी चचार ह॥ ४८

इसके बाद श्रीकृष्ण हृदयसे शिवजीको प्रणामकर बलिपुत्र बाणासुरसे विदा लेकर कुटुम्ब-सहित अपने नगरको चले गये। मार्गमें प्रतिकूल हुए वरुणको अनेक प्रकारसे जीतकर वे आनन्दित होकर द्वारकापुरीमें आये। इसके बाद गरुड़जीको विसर्जितकर अपने मित्रोंको देखकर तथा उनसे हास-परिहास करते हुए द्वारकामें पहुँचकर इच्छानुसार विचरण करने लगे॥ ४६—४८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे बाणभुजकृन्तनगर्वापहार-वर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें बाणभुजकृन्तन-गर्वापहारवर्णन नामक पचपनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५५॥

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

बाणासुरका ताण्डवनृत्यद्वारा भगवान् शिवको प्रसन्न करना, शिवद्वारा उसे अनेक मनोऽभिलषित वरदानोंकी प्राप्ति, बाणासुरकृत शिवस्तुति

नारद उवाच

कृष्णे गते द्वारकायामनिरुद्धेन भार्यया।
अकार्षीत्किं ततो बाणस्तत्त्वं वद महामुने॥ १

सनत्कुमार उवाच

कृष्णे गते द्वारकायामनिरुद्धेन भार्यया।
दुःखितोऽभूत्ततो बाणः स्वाज्ञानं संस्मरन्हृदा॥ २

ततो नन्दी शिवगणो बाणं प्रोवाच दुःखितम्।
दैत्यं शोणितदिग्धाङ्गमनुतापसमन्वितम्॥ ३

नन्दीश्वर उवाच

बाण शंकरसद्भक्त मानुतापं कुरुष्व भोः।
भक्तानुकम्पी शंभुर्वै भक्तवत्सलनामधृक्॥ ४
तदिच्छया च यज्जातं तज्जातमिति चेतसा।
मन्यस्व भक्तशार्दूल शिवं स्मर पुनः पुनः॥ ५
मन आद्ये समाधाय कुरु नित्यं महोत्सवम्।
भक्तानुकम्पनश्चाऽस्य शंकरस्य पुनः पुनः॥ ६

नन्दिवाक्यात्ततो बाणो द्विषा शीर्षकमात्रकः।
शिवस्थानं जगामाशु धृत्वा धैर्यं महामनाः॥ ७
गत्वा तत्र प्रभुं नत्वा रुरोदातीव विह्वलः।
गतगर्वव्रजो बाणः प्रेमाकुलितमानसः॥ ८
संस्तुवन्विविधैः स्तोत्रैः संनमन्नुतितस्तथा।
यथोचितं पादघातं कुर्वन्विक्षेपयन्करान्॥ ९
ननर्त तांडवं मुख्यं प्रत्यालीढादिशोभितम्।
स्थानकैर्विविधाकारैरालीढप्रमुखैरपि॥ १०
मुखवादसहस्राणि भ्रूक्षेपसहितान्यपि।
शिरःकम्पसहस्राणि प्राप्तानीकः सहस्रशः॥ ११
वारीश्च विविधाकारा दर्शयित्वा शनैः शनैः।
तथा शोणितधाराभिः सिञ्चयित्वा महीतलम्॥ १२
रुद्रं प्रसादयामास शूलिनं चन्द्रशेखरम्।
बाणासुरो महाभक्तो विस्मृतात्मगतिर्नतः॥ १३

ततो नृत्यं महत्कृत्वा भगवान्भक्तवत्सलः।
उवाच बाणं संहृष्टो नृत्यगीतप्रियो हरः॥ १४

नारदजी बोले—हे महामुने! भार्यासहित अनिरुद्ध तथा श्रीकृष्णजीके द्वारकापुरीमें चले जानेपर बाणासुरने क्या किया, इसको आप कहिये॥ १॥

सनत्कुमार बोले—भार्यासहित अनिरुद्ध तथा श्रीकृष्णके द्वारका चले जानेपर बाणासुर मन-ही-मन अपने अज्ञानका स्मरण करता हुआ अत्यन्त दुखी हुआ॥ २॥

तब शिवजीके गण नन्दीने रक्तसे संलिप्त शरीरवाले, पश्चात्तापयुक्त तथा दुखी दैत्य बाणासुरसे कहा—॥ ३॥

नन्दीश्वर बोले—हे शिवके भक्त बाणासुर! तुम दुखी न होओ, भगवान् शिवजी भक्तोंपर कृपा करनेवाले भक्तवत्सल नामधारी हैं। हे भक्तोंमें श्रेष्ठ! जो कुछ हुआ, उनकी इच्छासे हुआ है, इस प्रकार चित्तमें मानकर बारंबार शिवजीका स्मरण करो॥ ४-५॥

उन आदिदेव शिवजीमें मन लगाकर नित्य भक्तोंपर दया करनेवाले महादेवका बारंबार उत्सव करो॥ ६॥

उसके बाद नन्दीके कहनेसे द्वेषरहित होकर वह दैत्य बाणासुर हर्षित हो धैर्य धारणकर शीघ्र शिवजीके स्थानको चला गया॥ ७॥

वहाँ जाकर प्रभुको नमस्कारकर गर्वरहित होकर प्रेमसे पूर्ण मनवाला बाणासुर विह्वल होकर रोने लगा और अनेक स्तोत्रों तथा स्तुतियोंसे नमस्कार करता हुआ, यथोचित चरणन्यासकर हाथोंको चलाता हुआ, अनेक प्रकारके आलीढ आदि स्थानकों तथा प्रत्यालीढ आदि मुद्राओंसे शोभित ताण्डव नृत्य करने लगा॥ ८—१०॥

वह सहस्रों मुखके बाजोंको बजाने, भौंह चलाने, सिरको कँपाने तथा सहस्रों प्रकारसे अंग चलाने लगा। धीरे-धीरे अनेक प्रकारके नृत्योंको दिखाकर तथा रुधिरकी धाराओंसे भूमिको सींचकर अपनी गति तथा अहंकारको विस्मृत किये हुए उस महाभक्त बाणासुरने चन्द्रशेखर शिवको प्रसन्न किया॥ ११—१३॥

तब नृत्यगीतप्रिय भक्तवत्सल भगवान् शिवजीने प्रसन्न होकर सुन्दर नृत्य करनेवाले बाणासुरसे कहा—॥ १४॥

रुद्र उवाच

बाण तात बलेः पुत्र संतुष्टो नर्तनेन ते।
वरं गृहाण दैत्येन्द्र यत्ते मनसि वर्तते॥ १५

रुद्र बोले—हे बाणासुर! हे बलिपुत्र! हे तात! मैं तुम्हारे इस नृत्यसे प्रसन्न हूँ। हे दैत्येन्द्र! तुम्हारे मनमें जो हो, वह वरदान माँगो॥ १५॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचः शम्भोर्दैत्येन्द्रेण तदा मुने।
बाणेन संवृणीतोऽभूद्व्रस्तु व्रणरोपणे॥ १६
बाहुयुद्धस्य चोद्धत्तिर्गाणपत्यमथाक्षयम्।
ऊषापुत्रस्य राज्यं तु तस्मिन् शोणितकाह्वये॥ १७
निर्वैरता च विबुधैर्विष्णुना च विशेषतः।
न पुनर्दैत्यता दुष्टा रजसा तमसा युता॥ १८
शंभुभक्तिर्विशेषेण निर्विकारा सदा मुने।
शिवभक्तेषु च स्नेहो दया सर्वेषु जंतुषु॥ १९
इति कृत्वा वरान् शंभोर्बलिपुत्रो महाऽसुरः।
प्रेम्णाऽश्रुनयनो रुद्रं तुष्टाव सुकृतांजलिः॥ २०

सनत्कुमार बोले—हे मुने! तब शिवजीका यह वचन सुनकर उस दैत्येन्द्र बाणासुरने अपना घाव भरनेके लिये वर माँगा, इसके साथ ही बाहुयुद्धके लिये क्षमा, अक्षय गाणपत्यका भाव तथा उस शोणितपुर नामक नगरमें ऊषापुत्रका राज्य हो, देवताओंसे तथा विशेषकर विष्णुसे निर्वैरता और रजोगुण तथा तमोगुणसे युक्त दुष्ट दैत्यभावका विनाश हो, विशेषकर शिवजीकी निर्विकार भक्ति, शिवके भक्तोंके प्रति स्नेह तथा सब प्राणियोंके प्रति दयाभाव हो। हे मुने! उस बाण दैत्यने शिवजीसे इन वरोंको माँगकर नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए हाथ जोड़कर प्रेमपूर्वक शिवजीकी स्तुति की—॥ १६—२०॥

बाण उवाच

देवदेव महादेव शरणागतवत्सल।
त्वां नमामि महेशान दीनबन्धो दयानिधे॥ २१
कृता मयि कृपातीव कृपासागर शंकर।
गर्वोपहारितः सर्वः प्रसन्नेन मम प्रभो॥ २२
त्वं ब्रह्म परमात्मा हि सर्वव्याप्यखिलेश्वरः।
ब्रह्मांडतनुरुग्रेशो विराट् सर्वान्वितः परः॥ २३

बाणासुर बोला—हे देव! हे महादेव! हे शरणागतवत्सल! हे महेश्वर! हे दीनबन्धो! हे दयानिधे! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे कृपासागर! हे शंकर! हे प्रभो! आपने मुझपर बड़ी कृपा की, आपने प्रसन्न होकर मेरा गर्व दूर कर दिया। आप ब्रह्म, परमात्मा, सर्वव्यापी, अखिलेश्वर, ब्रह्माण्डरूपी शरीरवाले, उग्र, ईश, विराट्, सबमें व्याप्त तथा सबसे परे हैं॥ २१—२३॥

नाभिर्नभोऽग्निर्वदनमंबु रेतो दिशः श्रुतिः।
द्यौः शीर्षमङ्घ्रिरुर्वी ते मनश्चन्द्रस्तव प्रभो॥ २४
दृगर्को जठरं वार्द्धिर्भुजेन्द्रो धिषणा विधिः।
प्रजापतिर्विसर्गश्च धर्मो हि हृदयं तव॥ २५
रोमाण्यौषधयो नाथ केशा जलमुचस्तव।
गुणास्त्रयस्त्रिनेत्राणि सर्वात्मा पुरुषो भवान्॥ २६
ब्राह्मणं ते मुखं प्राहुर्बाहुं क्षत्रियमेव च।
ऊरुजं वैश्यमाहुस्ते पादजं शूद्रमेव च॥ २७

हे प्रभो! आकाश आपकी नाभि, मुख अग्नि, जल वीर्य है, दिशाएँ कान, द्युलोक मस्तक, पृथ्वी चरण तथा चन्द्रमा मन है, सूर्य नेत्र, ऋद्धि उदर, इन्द्र भुजाएँ, ब्रह्मा बुद्धि, प्रजापति विसर्ग तथा धर्म आपका हृदय है। हे नाथ! औषधियाँ आपके रोम हैं, मेघ आपके केश हैं, तीनों गुण आपके तीनों नेत्र हैं, आप सर्वात्मा पुरुष हैं। आपका मुख ब्राह्मण है, भुजाएँ क्षत्रिय, जंघा वैश्य और चरण शूद्र कहे गये हैं॥ २४—२७॥

त्वमेव सर्वदोपास्यः सर्वैर्जीवैर्महेश्वर।
त्वां भजन्परमां मुक्तिं लभते पुरुषो ध्रुवम्॥ २८

हे महेश्वर! आप ही नित्य सब जीवोंके उपासना करनेयोग्य हैं, आपका भजन करनेवाला मनुष्य निश्चय ही परम मुक्ति प्राप्त कर लेता है॥ २८॥

यस्त्वां विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियमीश्वरम्।
विपर्ययेन्द्रियार्थार्थं विषमत्त्यमृतं त्यजन्॥ २९

जो मनुष्य आत्माके प्रिय ईश्वर आपको त्याग देता है, वह मानो अमृतका त्याग करता हुआ इन्द्रियोंके लिये अकल्याणकारी विषका ही भक्षण करता है॥ २९॥

विष्णुर्ब्रह्माऽथ विबुधा मुनयश्चामलाशयाः।
सर्वात्मना प्रपन्नास्त्वां शंकरं प्रियमीश्वरम्॥ ३०

विष्णु, ब्रह्मा, सभी देवता, निर्मलभाववाले मुनि आप प्रिय ईश्वरके सब प्रकारसे शरणागत हैं॥ ३०॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा बलिपुत्रस्तु विरराम शरासुरः।
प्रेमप्रफुल्लिताङ्गश्च प्रणम्य स महेश्वरम्॥ ३१
इति श्रुत्वा स्वभक्तस्य बाणस्य भगवान्भवः।
सर्वं लभिष्यसीत्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत॥ ३२
ततः शंभोः प्रसादेन महाकालत्वमागतः।
रुद्रस्यानुचरो बाणो महाप्रमुदितोऽभवत्॥ ३३
इति किल शरनाम्ना शंकरस्यापि वृत्तं
सकलगुरुजनानां सद्गुरोः शूलपाणेः।
कथितमिह वरिष्ठं श्रोत्ररम्यैर्वचोभिः
सकलभुवनमध्ये क्रीडमानस्य नित्यम्॥ ३४

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार कहकर उस दैत्य बाणासुरने प्रेमसे विह्वल अंगवाला हो शिवजीको प्रणामकर मौन धारण कर लिया। अपने भक्त बाणासुरका यह वचन सुनकर भगवान् सदाशिव 'तुम सब कुछ प्राप्त करोगे'—इस प्रकार कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ३१-३२॥

तब शिवजीके अनुग्रहसे महाकालत्वको प्राप्त हुआ वह शिवजीका अनुचर बाणासुर बड़ा प्रसन्न हुआ॥ ३३॥

[हे व्यासजी!] सभी गुरुजनोंके परम गुरु तथा समस्त पृथ्वीके मध्यमें क्रीड़ा करनेवाले शूलपाणि शंकर तथा बाणासुरके सुन्दर वृत्तान्तका कानोंको प्रिय लगनेवाले वचनोंमें आपसे यह वर्णन किया॥ ३४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे बाणासुरगणपत्वपदप्राप्तिवर्णनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें बाणासुरगाणपत्यपदप्राप्तिवर्णन नामक छप्पनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५६॥

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

महिषासुरके पुत्र गजासुरकी तपस्या तथा ब्रह्माद्वारा वरप्राप्ति, उन्मत्त गजासुरद्वारा अत्याचार, उसका काशीमें आना, देवताओंद्वारा भगवान् शिवसे उसके वधकी प्रार्थना, शिवद्वारा उसका वध और उसकी प्रार्थनासे उसका चर्म धारणकर 'कृत्तिवासा' नामसे विख्यात होना एवं कृत्तिवासेश्वर लिंगकी स्थापना करना

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास महाप्रेम्णा चरितं शशिमौलिनः।
यथाऽवधीत् त्रिशूलेन दानवेन्द्रं गजासुरम्॥ १
दानवे निहते देव्या समरे महिषासुरे।
देवानां च हितार्थाय पुरा देवाः सुखं ययुः॥ २

सनत्कुमार बोले—हे व्यासजी! शिवजीके [उस] चरित्रको अत्यन्त प्रेमसे सुनिये, जिस प्रकार महादेवने दानवेन्द्र गजासुरको त्रिशूलसे मारा। पूर्वकालमें देवगणोंके हितके लिये युद्धमें देवीके द्वारा दानव महिषासुरका वध कर दिये जानेपर देवता सुखी हो गये॥ १-२॥

तस्य पुत्रो महावीरो मुनीश्वर गजासुरः।
पितुर्वधं हि संस्मृत्य कृतं देव्या सुरार्थनात्॥ ३
स तद्वैरमनुस्मृत्य तपोऽर्थं गतवान् वने।
समुद्दिश्य विधिं प्रीत्या ततापं परमं तपः॥ ४

हे मुनीश्वर! देवताओंकी प्रार्थनासे देवीद्वारा किये गये अपने पिताके वधका स्मरण करके महावीर गजासुर, उस वैरका स्मरणकर तप करनेहेतु वनमें गया और ब्रह्माजीको उद्देश्य करके प्रीतिपूर्वक कठोर तप करने लगा॥ ३-४॥

अवध्योऽहं भविष्यामि स्त्रीपुंसैः कामनिर्जितैः।
संविचार्येति मनसाऽभूत्तपोरतमानसः॥ ५
स तेपे हिमवद् द्रोण्यां तपः परमदारुणम्।
ऊर्ध्वबाहुर्नभोदृष्टिः पादांगुष्ठाश्रितावनिः॥ ६

'मैं कामके वशीभूत स्त्री तथा पुरुषोंसे अवध्य होऊँ'—इस प्रकार मनमें विचारकर वह तपमें दत्तचित्त हो गया। वह हिमालय पर्वतकी गुफामें भुजाओंको उठाकर आकाशमें दृष्टि लगाये हुए पैरके अँगूठेसे पृथ्वीको टेककर परम दारुण तप करने लगा॥ ५-६॥

जटाभारैः स वै रेजे प्रलयार्क इवांशुभिः।
महिषासुरपुत्रोऽसौ गजासुर उदारधीः॥ ७

वह उदार बुद्धिवाला महिषासुरपुत्र गजासुर जटाओंके भारकी कान्तिसे प्रलयके सूर्यके समान प्रकाशित हो रहा था। उसके मस्तकसे उत्पन्न हुई

तस्य मूर्ध्नः समुद्भूतः सधूमोऽग्निस्तपोमयः ।
तिर्यगूर्ध्वमधोलोकांस्तापयन्विष्वगीरितः ॥ ८

चुक्षुभुर्नद्युदन्वंतश्चाग्नेर्मूर्द्धसमुद्भवात् ।
निपेतुः सग्रहास्तारा जज्वलुश्च दिशो दश॥ ९

तेन तप्ताः सुराः सर्वे दिवं त्यक्त्वा सवासवाः ।
ब्रह्मलोकं ययुर्विज्ञापयामासुश्चचाल भूः॥ १०

तपोमय धूमाग्नि तिरछे, ऊपर तथा नीचेके लोकोंको तप्त करती हुई चारों ओर फैल गयी। उसके मस्तकसे प्रकट हुई अग्निसे नदी तथा समुद्र सूख गये, ग्रहोंसहित तारे गिरने लगे तथा दसों दिशाएँ प्रज्वलित हो गयीं॥ ७—९॥

उस अग्निसे तप्त हुए इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता स्वर्गलोकको त्यागकर ब्रह्मलोकको गये और ब्रह्माजीसे बोले कि पृथ्वी चलायमान हो रही है॥ १०॥

देवा ऊचुः

विधे गजासुरतपस्तप्ता वयमथाकुलाः ।
न शक्नुमो दिवि स्थातुमतस्ते शरणं गताः॥ ११

विधे ह्युपशमं तस्य चान्याञ्जीवयितुं कुरुथा।
लोका नंक्ष्यत्यन्यथा हि सत्यं सत्यं ब्रुवामहे॥ १२

इति विज्ञापितो देवैर्वासवाद्यैः स आत्मभूः ।
भृगुदक्षादिभिर्ब्रह्मा ययौ दैत्यवराश्रमम्॥ १३

तपन्तं तपसा लोकान् यथाऽभ्रापिहितं दिवि।
विलक्ष्य विस्मितः प्राह विहसन्सृष्टिकारकः॥ १४

देवगण बोले—हे विधे! गजासुरके तपसे हमलोग सन्तप्त तथा व्याकुल हैं और स्वर्गमें स्थित रहनेमें समर्थ नहीं हैं, इसलिये आपकी शरणमें आये हैं। हे ब्रह्मन्! आप कृपाकर अन्य लोगोंको जीवित रखनेके लिये उस दैत्यको शान्त कीजिये, अन्यथा सभी लोग नष्ट हो जायँगे। हमलोग सत्य-सत्य कह रहे हैं। इस प्रकार इन्द्र आदि देवों तथा भृगु, दक्ष आदिसे प्रार्थित हुए ब्रह्माजी उस दैत्येन्द्रके आश्रमपर गये। आकाशमें मेघोंसे ढँके हुए सूर्यके समान लोकोंको तपाते हुए उसको देखकर विस्मित हो ब्रह्माजीने हँसते हुए कहा—॥ ११—१४॥

ब्रह्मोवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ दैत्येन्द्र तपः सिद्धोऽसि माहिषे।
प्राप्तोऽहं वरदस्तात वरं वृणु यथेप्सितम्॥ १५

ब्रह्माजी बोले—हे दैत्येन्द्र! हे महिषपुत्र! हे तात! उठो, उठो, तुम्हारा तप सिद्ध हुआ, मैं तुम्हें वर देनेके लिये आया हूँ, अपनी इच्छाके अनुकूल वर माँगो॥ १५॥

सनत्कुमार उवाच

उत्थायोत्थाय दैत्येन्द्र ईक्षमाणो दृशा विभुम्।
गिरा गद्गदया प्रीतोऽगृणाद्देवं स माहिषिः॥ १६

सनत्कुमार बोले—उस दैत्येन्द्र गजासुरने उठकर अपने नेत्रोंसे विभु ब्रह्माजीको देखते हुए प्रसन्न होकर वर माँगनेके लिये गद्गद वाणीसे कहा—॥ १६॥

गजासुर उवाच

नमस्ते देवदेवेश यदि दास्यसि मे वरम्।
अवध्योऽहं भवेयं वै स्त्रीपुंसैः कामनिर्जितैः॥ १७

महाबलो महावीर्योऽजेयो देवादिभिः सदा।
सर्वेषां लोकपालानां निखिलर्द्धिसुभुग्विभो॥ १८

गजासुर बोला—हे देवदेवेश! आपको नमस्कार है, यदि आप मुझे वर दे रहे हैं, तो मैं कामके वशीभूत स्त्री-पुरुषोंसे अवध्य हो जाऊँ। हे विभो! मैं महाबलवान्, वीर्यवान् तथा देवता आदिसे सदा अजेय और सम्पूर्ण लोकपालोंकी समस्त सम्पत्तिको भोगनेवाला होऊँ॥ १७-१८॥

सनत्कुमार उवाच

एवं वृतः शतधृतिर्दानवेन स तेन वै।
प्रादात्तत्तपसा प्रीतो वरं तस्य सुदुर्लभम्॥ १९

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार उस दैत्यके वर माँगनेपर उसके तपसे प्रसन्न हुए ब्रह्माजीने उसे अति दुर्लभ वरदान दिया॥ १९॥

एवं लब्धवरो दैत्यो माहिषिश्च गजासुरः।
सुप्रसन्नमनाः सोऽथ स्वधाम प्रत्यपद्यत॥ २०

इस प्रकार वह महिषासुरपुत्र गजासुर वर पाकर अति प्रसन्नचित्त होकर अपने स्थानको चला गया॥ २०॥

स विजित्य दिशः सर्वा लोकांश्च त्रीन्महासुरः।
देवासुरमनुष्येन्द्रान् गंधर्वगरुडोरगान्॥ २१
इत्यादीन्निखिलाञ्जित्वा वशमानीय विश्वजित्।
जहार लोकपालानां स्थानानि सह तेजसा॥ २२
देवोद्यानश्रियाजुष्टमध्यास्ते स्म त्रिविष्टपम्।
महेन्द्रभवनं साक्षान्निर्मितं विश्वकर्मणा॥ २३
तस्मिन्महेन्द्रस्य गृहे महाबलो
महामना निर्जितलोक एकराट्।
रेमेऽभिवंद्यांघ्रियुगः सुरादिभिः
प्रतापितैरूर्जितचंडशासनः ॥ २४
स इत्थं निर्जितककुबेकराड् विषयान्प्रियान्।
यथोपजोषं भुंजानो नातृप्यदजितेन्द्रियः॥ २५
एवमैश्वर्यमत्तस्य दृप्तस्योच्छास्त्रवर्तिनः।
काले व्यतीते महति पापबुद्धिरभूत्ततः॥ २६
महिषासुरपुत्रोऽसौ संचिक्लेश द्विजान्वरान्।
तापसान्नितरां पृथ्व्यां दानवः सुरमर्दनः॥ २७
सुरान्नरांश्च प्रमथान्सर्वांश्चिक्लेशदुर्मतिः।
धर्मान्वितान्विशेषेण पूर्ववैरमनुस्मरन्॥ २८
एकस्मिन्समये तात दानवोऽसौ महाबलः।
अगच्छद्राजधानीं वै शंकरस्य गजासुरः॥ २९
समागतेऽसुरेन्द्रे हि महान्कलकलो मुने।
त्रात त्रातेति तत्रासीदानंदवनवासिनाम्॥ ३०
महिषाऽसुरपुत्रोऽसौ यदा पुर्यां समागतः।
प्रमथन्प्रमथान्सर्वान्निजवीर्यमदोद्धतः ॥ ३१
तस्मिन्नवसरे देवाः शक्राद्यास्तत्पराजिताः।
शिवस्य शरणं जग्मुर्नत्वा तुष्टुवुरादरात्॥ ३२
न्यवेदयन्दानवस्य तस्य काश्यां समागमम्।
क्लेशाधिक्यं तत्रत्यानां तन्नाथानां विशेषतः॥ ३३

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव तव पुर्यां गतोऽसुरः।
कष्टं दत्ते त्वज्जनानां तं जहि त्वं कृपानिधे॥ ३४
यत्र यत्र धरायां च चरणं प्रमिणोति हि।
अचलां सचलां तत्र करोति निज भारतः॥ ३५
ऊरुवेगेन तरवः पतन्ति शिखरैः सह।

तदुपरान्त सम्पूर्ण दिशाओं तथा तीनों लोकोंको जीतकर एवं देवता, असुर, मनुष्य, इन्द्र, गन्धर्व, गरुड और सर्प आदिको भी जीतकर उन्हें अपने वशमें करके संसारको जीतनेवाले उस दैत्यने तेजसहित लोकपालोंके स्थानोंका हरण कर लिया। देवोद्यानकी शोभासे युक्त साक्षात् विश्वकर्माद्वारा निर्मित किये गये स्वर्गस्थित महेन्द्रगृहमें वह निवास करने लगा॥ २१—२३॥

महाबली, महामना तथा लोकोंको जीतनेवाला और कठोर शासनवाला वह दैत्य पीड़ित हुए देवताओंसे अपने दोनों चरणोंमें प्रणाम कराते हुए महेन्द्रके उस घरमें विहार करने लगा। इस प्रकार जीती हुई दिशाओंका एकमात्र स्वामी अजितेन्द्रिय वह दैत्य प्रिय विषयोंको लोलुपतासे भोगता हुआ तृप्त न हुआ॥ २४-२५॥

इस प्रकार ऐश्वर्यसे उन्मत्त, अहंकारी तथा शास्त्रोंका उल्लंघन करनेवाले उस दैत्यको बहुत समय बीत जानेपर पापबुद्धि उदित हुई। देवगणोंको पीड़ा देनेवाला महिषासुरका वह पुत्र पृथ्वीपर श्रेष्ठ ब्राह्मणों तथा तपस्वियोंको अत्यधिक क्लेश देने लगा॥ २६-२७॥

वह दुष्टबुद्धि दैत्य पहलेके वैरभावका स्मरण करता हुआ देवताओं तथा सभी प्रमथोंको और विशेषकर धर्मात्माओंको अति कष्ट देने लगा। हे तात! एक समय वह महाबली दैत्य गजासुर शिवजीकी राजधानी काशीको गया। हे मुने! उस समय दैत्येन्द्रके आनेपर आनन्दवनमें निवास करनेवालोंका 'रक्षा करो, रक्षा करो' इस प्रकारका महाशब्द होने लगा॥ २८—३०॥

जिस समय अपने वीर्य और मदसे उन्मत्त हुआ महिषासुरका पुत्र सभी प्रमथोंको पीड़ित करता हुआ नगरीमें आया, उसी समय गजासुरसे पराजित हुए इन्द्रादि सब देवता शिवजीकी शरणमें गये और आदरसे प्रणामकर उनकी स्तुति करने लगे। उन्होंने काशीमें उस दैत्यके आगमन तथा विशेषकर वहाँ रहनेवाले शिवभक्तोंका अति दुःख भी निवेदन किया॥ ३१—३३॥

देवगण बोले—हे देवदेव! हे महादेव! आपकी नगरीमें आया हुआ दैत्य गजासुर आपके भक्तजनोंको कष्ट दे रहा है, अत: हे कृपानिधे! आप उसका वध करें॥ ३४॥

वह भूमिपर जहाँ-जहाँ चरण रखता है, वहाँ उसके भारसे अचल पृथ्वी भी चलायमान हो जाती है। उसकी जंघाके वेगसे डालियोंसहित वृक्ष गिरने

यस्य दोर्दंडघातेन चूर्णाः स्युश्च शिलोच्चयाः ॥ ३६
यस्य मौलिजसंघर्षाद् घना व्योम त्यजन्त्यपि।
नीलिमानं न चाद्यापि जह्युस्तत्केशसंगजम्॥ ३७
यस्य निश्वाससंभारैरुत्तरंगा महाब्धयः।
नद्योऽप्यमन्दकल्लोला भवंति तिमिभिः सह॥ ३८
योजनानां सहस्राणि नव यस्य समुच्छ्रयः।
तावानेव हि विस्तारः तनोर्मायाविनोऽस्य हि॥ ३९
यन्नेत्रयोः पिंगलिमा तथा तरलिमा पुनः।
विद्युताः नोह्यतेऽद्यापि सोऽयं स्माऽऽयाति सत्वरम्॥ ४०

लगते हैं। उसके भुजदण्डके आघातसे शिखरोंसहित पर्वत चूर्ण हो जाते हैं, उसके मुकुटके संघर्षसे मेघ आकाशका त्याग करते हैं और उसके बालोंके सम्पर्कसे उत्पन्न हुए नीलेपनको वे अबतक भी नहीं छोड़ते। जिसके निःश्वासके भारोंसे ऊँची तरंगोंवाले महासागर तथा नदियाँ भी जलजन्तुओंके सहित बड़ा कल्लोल करती हैं, जिसके शरीरकी ऊँचाई उसकी मायासे नौ सहस्र योजन हो जाती है तथा मायावी उस दैत्यका विस्तार (चौड़ाईका घेरा) भी उतना ही हो जाता है, जिसके नेत्रोंके पीलेपन और चांचल्यको बिजली आज भी नहीं धारण कर सकती है, वही बड़े वेगसे यहाँ आ गया है॥ ३५—४०॥

यां यां दिशं समभ्येति सोऽयं दुःसहदानवः।
अवध्योऽहं भवामीति स्त्रीपुंसैः कामनिर्जितैः॥ ४१
इत्येवं चेष्टितं तस्य दानवस्य निवेदितम्।
रक्षस्व भक्तान्देवेश काशीरक्षणतत्पर॥ ४२

वह असह्य दैत्य जिस-जिस दिशामें जाता है, 'कामसे जीते हुए स्त्री-पुरुषोंसे मैं अवध्य हूँ', इस प्रकार वहाँ कहता है। काशीकी रक्षामें तत्पर रहनेवाले हे देवेश! इस प्रकार हम लोगोंने उस दैत्यकी चेष्टाका आपसे निवेदन किया, आप भक्तोंकी रक्षा कीजिये॥ ४१-४२॥

सनत्कुमार उवाच

इति संप्रार्थितो देवैर्भक्तरक्षणतत्परः।
तत्राऽऽजगाम सोरं तद्वधकामनया हरः॥ ४३

सनत्कुमार बोले—देवताओंद्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये जानेपर भक्तोंकी रक्षामें तत्पर वे शिवजी उसके वधकी कामनासे बड़ी शीघ्रतासे वहाँ आये॥ ४३॥

आगतं तं समालोक्य शंकरं भक्तवत्सलम्।
त्रिशूलहस्तं गर्जन्तं जगर्ज स गजासुरः॥ ४४
ततस्तयोर्महानासीत्समरो दारुणोऽद्भुतः।
नानास्त्रशस्त्रसंपातैर्वीराराव प्रकुर्वतोः॥ ४५

त्रिशूल हाथमें धारण किये हुए उन भक्तवत्सल शिवजीको गरजते हुए आया देखकर गजासुर गरजने लगा। तब वीरगर्जन करते हुए उन दोनोंका अनेक अस्त्रों तथा शस्त्रोंके प्रहारसे दारुण तथा अद्भुत युद्ध हुआ॥ ४४-४५॥

गजासुरोऽतितेजस्वी महाबलपराक्रमः।
विव्याध गिरिशं बाणैस्तीक्ष्णैर्दानवघातिनम्॥ ४६

अति तेजस्वी तथा महाबली गजासुरने दैत्योंका विनाश करनेवाले शिवजीपर तीव्र बाणोंसे प्रहार किया॥ ४६॥

अथ रुद्रो रौद्रतनुः स्वशरैरतिदारुणैः।
तच्छरांश्चिच्छिदे तूर्णमप्राप्तांस्तिलशो मुने॥ ४७

हे मुने! उस समय भयंकर शरीरवाले शिवजीने अपने अति दारुण बाणोंसे अपने समीप न पहुँचे हुए उसके बाणोंको शीघ्र ही खण्ड-खण्ड कर दिया॥ ४७॥

ततो गजासुरः क्रुद्धोऽभ्यधावत्तं महेश्वरम्।
खड्गहस्तः प्रगर्ज्योच्चैर्हतोऽसीत्यद्य वै मया॥ ४८
ततस्त्रिशूलहेतिस्तमायान्तं दैत्यपुंगवम्।
विज्ञायावध्यमन्येन शूलेनाभिजघान तम्॥ ४९
प्रोतस्तेन त्रिशूलेन स च दैत्यो गजासुरः।
छत्रीकृतमिवात्मानं मन्यमानो जगौ हरम्॥ ५०

तब हाथमें खड्ग लेकर 'अब तुम मेरे द्वारा मारे गये'—इस प्रकार ऊँचे स्वरसे गर्जनकर क्रोधित होकर गजासुर शिवजीकी ओर दौड़ा। तब त्रिशूलधारी भगवान् शिवने उस दैत्यश्रेष्ठको आता हुआ देखकर तथा अन्यके द्वारा अवध्य जानकर उसे त्रिशूलसे मारा। उस त्रिशूलसे विद्ध हुआ वह गजासुर दैत्य अपनेको शिवका छत्ररूप मानता हुआ शिवजीकी स्तुति करने लगा॥ ४८—५०॥

गजासुर उवाच

देवदेव महादेव तव भक्तोऽस्मि सर्वथा।
जाने त्वां त्रिदिवेशानं त्रिशूलिन्स्मरहारिणम्॥ ५१
तव हस्ते मम वधो महाश्रेयस्करो मतः।
अंधकारे महेशान त्रिपुरांतक सर्वग॥ ५२
किंचिद्विज्ञप्तुमिच्छामि तच्छृणुष्व कृपाकर।
सत्यं ब्रवीमि नासत्यं मृत्युंजय विचारय॥ ५३
त्वमेको जगतां वंद्यो विश्वस्योपरि संस्थितः।
कालेन सर्वैर्मर्तव्यं श्रेयसे मृत्युरीदृशः॥ ५४

गजासुर बोला—हे देवदेव! हे महादेव! मैं सब प्रकारसे आपका भक्त हूँ। हे त्रिशूलिन्! मैं कामदेवका नाश करनेवाले आप देवेशको जानता हूँ॥ ५१ ॥

हे अन्धकारे! हे महेशान! हे त्रिपुरान्तक! हे सर्वग! आपके हाथसे मेरा वध परम कल्याणकारी हुआ॥ ५२ ॥

हे कृपालो! हे मृत्युंजय! मैं कुछ निवेदन करना चाहता हूँ, उसे सुनिये, सत्य ही कहूँगा, असत्य नहीं, आप विचार कीजिये। एकमात्र आप संसारके वन्दनीय हैं तथा संसारके ऊपर स्थित हैं। समयसे सभीको मरना है, परंतु ऐसी मृत्यु कल्याणके निमित्त होती है॥ ५३-५४॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य शंकरः करुणानिधिः।
प्रहस्य प्रत्युवाचेशो माहिषेयं गजासुरम्॥ ५५

सनत्कुमार बोले—उसका यह वचन सुनकर दयानिधि शिवजीने हँसकर महिषासुरके पुत्र गजासुरसे कहा—॥ ५५ ॥

ईश्वर उवाच

महापराक्रमनिधे दानवोत्तम सन्मते।
गजासुर प्रसन्नोऽस्मि स्वानुकूलं वरं वृणु॥ ५६

ईश्वर बोले—हे महापराक्रमनिधे! हे दानवोत्तम! हे श्रेष्ठ मतिवाले! हे गजासुर! मैं प्रसन्न हूँ, अपने अनुकूल वर माँगो॥ ५६ ॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य महेशस्य वचनं वरदस्य हि।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा दानवेन्द्रो गजासुरः॥ ५७

सनत्कुमार बोले—वर देनेवाले शिवजीका यह वचन सुनकर दानवेन्द्र गजासुरने प्रसन्नचित्त होकर कहा—॥ ५७॥

गजासुर उवाच

यदि प्रसन्नो दिग्वासस्तदा नित्यं वसान मे।
इमां कृत्तिं महेशान त्वत्त्रिशूलाग्निपाविताम्॥ ५८
स्वप्रमाणां सुखस्पर्शां रणांगणपणीकृताम्।
दर्शनीयां महादिव्यां सर्वदैव सुखावहाम्॥ ५९
इष्टगंधिः सदैवास्तु सदैवास्त्वतिकोमला।
सदैव निर्मला चास्तु सदैवास्त्वतिमंडना॥ ६०
महातपोनलज्वालां प्राप्यापि सुचिरं विभो।
न दग्धा कृत्तिरेषा मे पुण्यगंधनिधेस्ततः॥ ६१
यदि पुण्यवती नैषा मम कृत्तिर्दिगंबर।
तदा त्वदंगसंगोस्याः कथं जातो रणांगणे॥ ६२
अन्यं च मे वरं देहि यदि तुष्टोऽसि शंकर।
नामास्तु कृत्तिवासास्ते प्रारभ्याद्यतनं दिनम्॥ ६३

गजासुर बोला—हे महेशान! हे दिगम्बर! यदि आप प्रसन्न हैं, तो अपने त्रिशूलकी अग्निसे पवित्र किये हुए मेरे इस देहचर्मको नित्य धारण कीजिये। अपने प्रमाणवाले, कोमल स्पर्शवाले, युद्धक्षेत्रमें समर्पित किये गये, देखनेयोग्य, महादिव्य, निरन्तर सुखदायक मेरे चर्मको धारण कीजिये। यह चर्म सदा सुगन्धयुक्त, अतिकोमल, निर्मल तथा अति शोभायमान हो॥ ५८—६० ॥

हे विभो! तेज धूप तथा अग्निकी लपटको बहुत देरतक प्राप्त करके भी पवित्र सुगन्धनिधिके कारण मेरा यह देहचर्म भस्म न हो॥ ६१ ॥

हे दिगम्बर! यदि मेरा यह चर्म पुण्यमय नहीं होता, तो युद्धस्थलमें आपके अंगके साथ इसका संग कैसे होता। हे शिवजी! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मुझे दूसरा वर दीजिये कि आजसे प्रारम्भकर आपका नाम कृत्तिवासा हो॥ ६२-६३ ॥

सनत्कुमार उवाच

श्रुत्वेति स वचस्तस्य शंकरो भक्तवत्सलः।
तथेत्युवाच सुप्रीतो महिषासुरजं च तम्॥ ६४
पुनः प्रोवाच प्रीतात्मा दानवं तं गजासुरम्।
भक्तप्रियो महेशानो भक्तिनिर्मलमानसम्॥ ६५

सनत्कुमार बोले—उसका यह वचन सुनकर भक्तप्रिय भक्तवत्सल महेशान शिवजी प्रसन्न होकर भक्तिसे निर्मल मनवाले उस गजासुर नामक दानवसे पुनः कहने लगे—॥ ६४-६५ ॥

ईश्वर उवाच

इदं पुण्यं शरीरं ते क्षेत्रेऽस्मिन्मुक्तिसाधने।
मम लिंगं भवत्वत्र सर्वेषां मुक्तिदायकम्॥ ६६
कृत्तिवासेश्वरं नाम महापातकनाशनम्।
सर्वेषामेव लिंगानां शिरोभूतं विमुक्तिदम्॥ ६७

ईश्वर बोले—मुक्तिके साधन इस क्षेत्रमें तुम्हारा यह पवित्र शरीर सभीके लिये मुक्तिदायक मेरा लिंग होगा। यह महापापोंका नाश करनेवाला, समस्त श्रेष्ठ लिंगोंमें प्रधान एवं मुक्तिको देनेवाला कृत्तिवासेश्वर नामक लिंग होगा॥ ६६-६७॥

कथयित्वेति देवेशस्तत्कृत्तिं परिगृह्य च।
गजासुरस्य महतीं प्रावृणोद्धि दिगंबरः॥ ६८

इस प्रकार कहकर उन दिगम्बर देवेशने गजासुरके उस विस्तृत चर्मको लेकर उसे धारण कर लिया॥ ६८॥

महामहोत्सवो जातस्तस्मिन्नह्नि मुनीश्वर।
हर्षमापुर्जनाः सर्वे काशीस्थाः प्रमथास्तथा॥ ६९
हरिब्रह्मादयो देवा हर्षनिर्भरमानसाः।
तुष्टुवुस्तं महेशानं नत्वा सांजलयस्ततः॥ ७०
हते तस्मिन्दानवेशे माहिषे हि गजासुरे।
स्वस्थानं भेजिरे देवा जगत्स्वास्थ्यमवाप च॥ ७१

हे मुनीश्वर! उस दिन बहुत बड़ा महोत्सव हुआ, काशीनिवासी सभी लोग तथा प्रमथगण प्रसन्न हो गये। उस समय हर्षपूर्ण मनवाले विष्णु, ब्रह्मा आदि देवताओंने हाथ जोड़कर शिवजीको नमस्कार करके उनकी स्तुति की। दानवोंके स्वामी महिषासुरपुत्र गजासुरके मार दिये जानेपर देवगणोंने अपने स्थानको प्राप्त कर लिया और संसार सुखी हो गया॥ ६९—७१॥

इत्युक्तं चरितं शंभोर्भक्तवात्सल्यसूचकम्।
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं धनधान्यप्रवर्द्धनम्॥ ७२
य इदं शृणुयात्प्रीत्या श्रावयेद्वा शुचिव्रतः।
स भुक्त्वा च महासौख्यं लभेतान्ते परं सुखम्॥ ७३

इस प्रकार भक्तोंके प्रति दयासूचक, स्वर्ग-कीर्ति एवं आयुको देनेवाले और धनधान्यको बढ़ानेवाले शिवचरित्रका वर्णन कर दिया गया। उत्तम व्रतवाला जो मनुष्य इसे प्रीतिसे सुनता है अथवा सुनाता है, वह महान् सुख पाकर अन्तमें मोक्षको प्राप्त करता है॥ ७२-७३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे गजासुरवधो नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें गजासुरवधवर्णन नामक सत्तावनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५७॥

अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

काशीके व्याघ्रेश्वर लिंग-माहात्म्यके सन्दर्भमें दैत्य दुन्दुभिनिर्ह्लादके वधकी कथा

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास प्रवक्ष्यामि चरितं शशिमौलिनः।
यथा दुंदुभिनिर्ह्लादमवधीद्दितिजं हरः॥ १
हिरण्याक्षे हते दैत्ये दितिपुत्रे महाबले।
विष्णुदेवेन कालेन प्राप दुःखं महद्दितिः॥ २
दैत्यो दुंदुभिनिर्ह्लादो दुष्टः प्रह्लादमातुलः।
सांत्वयामास तां वाग्भिर्दुःखितां देवदुःखदः॥ ३
अथ दैत्यः स मायावी दितिमाश्वास्य दैत्यराट्।
देवाः कथं सुजेयाः स्युरित्युपायमचिन्तयत्॥ ४

सनत्कुमार बोले—हे व्यासजी! सुनिये, मैं शिवजीके चरित्रको कहता हूँ, जिस प्रकार महादेवने दुन्दुभिनिर्ह्लाद नामक दैत्यको मारा। समय पाकर विष्णुदेवके द्वारा दितिके पुत्र महाबली दैत्य हिरण्याक्षके मारे जानेपर दिति बड़े दुःखको प्राप्त हुई। तब प्रह्लादके मामा दुन्दुभिनिर्ह्लाद नामक देवदुःखदायी दुष्ट दैत्यने उस दुखित दितिको आश्वासनयोग्य वाक्योंसे धीरज बँधाया। इसके बाद वह मायावी दैत्यराज दितिको आश्वासन देकर 'देवताओंको किस प्रकार जीता जाय' ऐसा उपाय सोचने लगा॥ १—४॥

देवैश्च घातितो वीरो हिरण्याक्षो महासुरः।
विष्णुना च सह भ्रात्रा सच्छलैर्दैत्यवैरिभिः॥ ५

किं बलाश्च किमाहारा किमाधारा हि निर्जराः।
मया कथं सुजेयाः स्युरित्युपायमचिंतयत्॥ ६

विचार्य बहुशो दैत्यस्तत्त्वं विज्ञाय निश्चितम्।
अवश्यमग्रजन्मानो हेतवोऽत्र विचारतः॥ ७

ब्राह्मणान्हन्तुमसकृदन्वधावत वै ततः।
दैत्यो दुन्दुभिनिर्ह्लादो देववैरी महाखलः॥ ८

यतः क्रतुभुजो देवाः क्रतवो वेदसंभवाः।
ते वेदा ब्राह्मणाधारास्ततो देवबलं द्विजाः॥ ९

निश्चितं ब्राह्मणाधाराः सर्वे वेदाः सवासवाः।
गीर्वाणा ब्राह्मणबला नात्र कार्या विचारणा॥ १०

ब्राह्मणा यदि नष्टाः स्युर्वेदा नष्टास्ततः स्वयम्।
अतस्तेषु प्रणष्टेषु विनष्टाः सततं सुराः॥ ११

यज्ञेषु नाशं गच्छत्सु हताहारास्ततः सुराः।
निर्बलाः सुखजय्याः स्युर्निर्जितेषु सुरेष्वथ॥ १२
अहमेव भविष्यामि मान्यस्त्रिजगतीपतिः।
आहरिष्यामि देवानामक्षयाः सर्वसंपदः॥ १३
निर्वेक्ष्यामि सुखान्येव राज्ये निहतकंटके।
इति निश्चित्य दुर्बुद्धिः पुनश्चिंततवान्खलः॥ १४
द्विजाः क्व सन्ति भूयांसो ब्रह्मतेजोऽतिबृंहिता।
श्रुत्यध्ययनसंपन्नास्तपोबलसमन्विताः॥ १५
भूयसां ब्राह्मणानां तु स्थानं वाराणसी खलु।
तामादावुपसंहृत्य यायां तीर्थान्तरं ततः॥ १६
यत्र यत्र हि तीर्थेषु यत्र यत्राश्रमेषु च।
संति सर्वेऽग्रजन्मानस्ते मयाद्याः समन्ततः॥ १७

इति दुंदुभिनिर्ह्लादो मतिं कृत्वा कुलोचिताम्।
प्राप्यापि काशीं दुर्वृत्तो मायावी न्यवधीद् द्विजान्॥ १८

समित्कुशान्समादातुं यत्र यान्ति द्विजोत्तमाः।
अरण्ये तत्र तान्सर्वान्स भक्षयति दुर्मतिः॥ १९

दैत्योंके शत्रु देवताओंने विष्णुके द्वारा कपटपूर्वक भाईसहित महान् असुर वीर हिरण्याक्षको मरवा दिया॥ ५॥

देवताओंका बल क्या है, उनका आहार क्या है, उनका आधार क्या है और वे मेरे द्वारा किस प्रकार जीते जा सकते हैं—ऐसा उपाय वह सोचने लगा। इस प्रकार अनेक बार विचारकर निश्चित तत्त्वको जानकर उस दैत्यने निष्कर्ष निकाला कि इस विषयमें मेरे विचारसे ब्राह्मण ही कारण हैं। तब देवताओंका शत्रु महादुष्ट दैत्य दुन्दुभिनिर्ह्लाद बारंबार ब्राह्मणोंको मारनेके लिये दौड़ा॥ ६—८॥

देवता यज्ञके भोगी हैं, यज्ञ वेदोंसे उत्पन्न हैं, वे वेद ब्राह्मणोंके आधारपर हैं, अतः ब्राह्मण ही देवताओंके बल हैं। सम्पूर्ण वेद तथा इन्द्रादि देवता ब्राह्मणोंपर आधारित और ब्राह्मणोंके बलवाले हैं, यह निश्चय है, इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये। यदि ब्राह्मण नष्ट हो जायँ, तो वेद स्वयं नष्ट हो जायँगे, अतः उन वेदोंके नष्ट हो जानेपर देवता स्वयं भी नष्ट हो जायँगे॥ ९—११॥

यज्ञोंका नाश हो जानेपर देवता भोजनसे रहित होकर निर्बल हो जानेसे सुगमतासे जीते जायँगे और इसके बाद देवताओंके पराजित हो जानेपर मैं ही तीनों लोकोंमें माननीय हो जाऊँगा, देवताओंकी अक्षय सम्पत्तियोंका हरण कर लूँगा और निष्कण्टक राज्यमें सुख भोगूँगा—इस प्रकार निश्चयकर वह दुर्बुद्धि खल फिर विचार करने लगा कि ब्रह्मतेजसे युक्त, वेदोंका अध्ययन करनेवाले और तप तथा बलसे पूर्ण अधिक ब्राह्मण कहाँ हैं, बहुतसे ब्राह्मणोंका स्थान निश्चय ही काशीपुरी है, सर्वप्रथम उस नगरीको ही जीतकर फिर दूसरे तीर्थोंमें जाऊँगा। जिन-जिन तीर्थोंमें तथा जिन-जिन आश्रमोंमें जो ब्राह्मण हैं, उन सबका भक्षण कर जाऊँगा॥ १२—१७॥

ऐसा अपने कुलके योग्य विचारकर वह दुराचारी तथा मायावी दुन्दुभिनिर्ह्लाद काशीमें आकर ब्राह्मणोंको मारने लगा। समिधा तथा कुशाओंको लानेके लिये ब्राह्मण जिस वनमें जाते थे, वहींपर वह दुष्टात्मा उन सभीका भक्षण कर लेता था। जिस प्रकार उसे कोई

यथा कोऽपि न वेत्त्येवं तथाऽऽच्छन्नोऽभवत्पुनः।
वने वनेचरो भूत्वा यादोरूपो जलाशये॥ २०

अदृश्यरूपी मायावी देवानामप्यगोचरः।
दिवा ध्यानपरस्तिष्ठेन्मुनिवन्मुनिमध्यगः॥ २१

प्रवेशमुटजानां च निर्गमं हि विलोकयन्।
यामिन्यां व्याघ्ररूपेणाभक्षयद् ब्राह्मणान् बहून्॥ २२

निःशङ्कं भक्षयत्येवं न त्यजत्यपि कीकशम्।
इत्थं निपातितास्तेन विप्रा दुष्टेन भूरिशः॥ २३

न जाने, इस प्रकार वह वनमें वनेचर होकर तथा जलाशयमें जल-जन्तुरूप होकर छिपा रहता था। इसी प्रकार अदृश्य रूपवाला वह मायावी देवगणोंसे भी अगोचर होकर दिनमें मुनियोंके मध्य मुनि होकर ध्यानमें तत्पर रहता था। पर्णशालाओंके प्रवेश तथा निर्गमको देखता हुआ वह दैत्य रात्रिमें व्याघ्ररूपसे बहुतसे ब्राह्मणोंका भक्षण करता था। वह निःशंक होकर ऐसा भक्षण करता कि अस्थितकको नहीं छोड़ता था। इस प्रकार उस दुष्टने बहुत-से ब्राह्मणोंको मार डाला॥ १८—२३॥

एकदा शिवरात्रौ तु भक्तस्त्वेको निजोटजे।
सपर्यां देवदेवस्य कृत्वा ध्यानस्थितोऽभवत्॥ २४

एक समय शिवरात्रिमें एक शिवभक्त अपने उटजमें देवोंके देव शिवकी पूजा करके ध्यानमें लीन हुआ॥ २४॥

स च दुंदुभिनिर्ह्रादो दैत्येन्द्रो बलदर्पितः।
व्याघ्ररूपं समास्थाय तमादातुं मतिं दधे॥ २५

तं भक्तं ध्यानमापन्नं दृढचित्तं शिवेक्षणे।
कृतास्त्रमन्त्रविन्यासं तं क्रांतुमशकन्न सः॥ २६

तब उस दैत्येन्द्र दुन्दुभिनिर्ह्रादने बलसे दर्पित होकर व्याघ्रका रूप धारणकर उसे भक्षण करनेकी इच्छा की। तब ध्यान करते हुए शिवजीके अवलोकनमें दृढ़चित्त होकर अस्त्रमन्त्रोंका विन्यास करनेवाले उस भक्तको भक्षण करनेमें वह समर्थ न हुआ॥ २५-२६॥

अथ सर्वगतः शम्भुर्ज्ञात्वा तस्याशयं हरः।
दैत्यस्य दुष्टरूपस्य वधाय विदधे धियम्॥ २७

यावदादित्सति व्याघ्रस्तावदाविरभूद्धरः।
जगद्रक्षामणिस्त्र्यक्षो भक्तरक्षणदक्षधीः॥ २८

रुद्रमायान्तमालोक्य तद्भक्तार्चितलिंगतः।
दैत्यस्तेनैव रूपेण ववृधे भूधरोपमः॥ २९

सर्वव्यापी शिवने उसके आशयको जानकर उस दुष्टरूप दैत्यका वध करनेकी इच्छा की। जब उसने व्याघ्र-रूपसे भक्त ब्राह्मणको ग्रहण करना चाहा, तभी संसारकी रक्षारूपमणि, तीन नेत्रोंवाले तथा भक्तोंकी रक्षा करनेमें प्रवीण बुद्धिवाले शिवजी प्रकट हुए। भक्तसे पूजित उस लिंगसे प्रकट हुए शिवजीको देखकर वह दैत्य फिर उसी रूपसे पर्वतके समान हो गया॥ २७—२९॥

सावज्ञमथ सर्वज्ञं यावत्पश्यति दानवः।
तावदायान्तमादाय कक्षायंत्रे न्यपीडयत्॥ ३०

पंचास्यस्त्वथ पंचास्यं मुष्ट्या मूर्द्धन्यताडयत्।
भक्तवत्सलनामासौ वज्रादपि कठोरया॥ ३१

जब उसने सर्वज्ञ शिवजीको अवज्ञासहित आया हुआ देखा, तब वह [व्याघ्ररूपी] दुष्ट दैत्य उनकी ओर झपटा। इतनेमेंही उसे पकड़कर भगवान्ने अपनी काँखमें दबा लिया तथा भक्तवत्सल शिवजीने वज्रसे भी अतिकठोर मुष्टिसे उस व्याघ्रके सिरपर प्रहार किया॥ ३०-३१॥

स तेन मुष्टिघातेन कक्षानिष्पेषणेन च।
अत्यार्तमारटद्व्याघ्रो रोदसीं पूरयन्मृतः॥ ३२

तेन नादेन महता संप्रवेपितमानसाः।

उस मुष्टिके आघातसे तथा काँखमें पीसे जानेसे दुखी हुआ वह व्याघ्र अतिनादसे आकाश और पृथिवीको भरता हुआ मर गया। उसके रोदनके महान् नादसे व्याकुलचित्त हुए तपस्वी लोग उसके शब्दका

तपोधनाः समाजग्मुर्निशि शब्दानुसारतः॥ ३३
तत्रेश्वरं समालोक्य कक्षीकृतमृगेश्वरम्।
तुष्टुवुः प्रणताः सर्वे शर्वं जयजयाक्षरैः॥ ३४

ब्राह्मणा ऊचुः

त्रायतां त्रायतां देव प्रत्यूहाद्दारुणादितः।
अनुग्रहं कुरुष्वेश तिष्ठात्रैव जगद्गुरो॥ ३५
अनेनैव स्वरूपेण व्याघ्रेश इति नामतः।
कुरु रक्षां महादेव ज्येष्ठस्थानस्य सर्वदा॥ ३६
अन्येभ्यो ह्युपसर्गेभ्यो रक्ष नस्तीर्थवासिनः।
दुष्टानपास्य गौरीश भक्तेभ्यो देहि चाभयम्॥ ३७

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां भक्तानां चन्द्रशेखरः।
तथेत्युक्त्वा पुनः प्राह स भक्तान्भक्तवत्सलः॥ ३८

महेश्वर उवाच

यो मामनेन रूपेण द्रक्ष्यति श्रद्धयात्र वै।
तस्योपसर्गसंधानं पातयिष्याम्यसंशयम्॥ ३९
मच्चरित्रमिदं श्रुत्वा स्मृत्वा लिंगमिदं हृदि।
संग्रामे प्रविशन्मर्त्यो जयमाप्नोत्यसंशयम्॥ ४०
एतस्मिन्नन्तरे देवाः समाजग्मुः सवासवाः।
जयेति शब्दं कुर्वन्तो महोत्सवपुरःसरम्॥ ४१
प्रणम्य शंकरं प्रेम्णा सर्वे सांजलयः सुराः।
नतस्कंधाः सुवाग्भिस्ते तुष्टुवुर्भक्तवत्सलम्॥ ४२

देवा ऊचुः

जय शंकर देवेश प्रणतार्तिहर प्रभो।
एतद्दुन्दुभिनिर्ह्लादवधात् त्राता वयं सुराः॥ ४३
सदा रक्षा प्रकर्तव्या भक्तानां भक्तवत्सल।
वध्याः खलाश्च देवेश त्वया सर्वेश्वर प्रभो॥ ४४
इत्याकर्ण्य वचस्तेषां सुराणां परमेश्वरः।
तथेत्युक्त्वा प्रसन्नात्मा तस्मिंल्लिंगे लयं ययौ॥ ४५
सविस्मयास्ततो देवाः स्वं स्वं धाम ययुर्मुदा।
तेऽपि विप्रा महाहर्षात्पुनर्याता यथागतम्॥ ४६

अनुसरण करते हुए रात्रिमें वहाँ आये। वहाँ मृगेश्वर सिंहको काँखमें करनेवाले शिवजीको देखकर वे सब नम्र हो जय-जयकार करके उनकी स्तुति करने लगे— ॥ ३२—३४ ॥

ब्राह्मण बोले—हे जगद्गुरो! हे ईश्वर! कठिन उपद्रवसे रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये और दया करके इस स्थानमें स्थित रहिये। हे महादेव! आप इसी स्वरूपसे व्याघ्रेश नामसे इस ज्येष्ठ नामक स्थानकी रक्षा कीजिये। हे गौरीश! दुष्टोंका नाश करके हम तीर्थवासियोंकी अनेक प्रकारके उपद्रवोंसे रक्षा कीजिये और भक्तोंको अभयदान दीजिये॥ ३५—३७॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार अपने उन भक्तोंका वचन सुनकर भक्तवत्सल शिवजीने 'तथास्तु' कहकर भक्तोंसे पुनः कहा— ॥ ३८ ॥

महेश्वर बोले—जो मनुष्य श्रद्धासे मुझे इस रूपमें यहाँ देखेगा, उसके दुःखको मैं अवश्य दूर करूँगा॥ ३९ ॥

मेरे इस चरित्रको सुनकर तथा मेरे इस लिंगका अपने हृदयमें स्मरण करके युद्धमें प्रवेश करनेवाला मनुष्य निःसन्देह विजयको प्राप्त करेगा। इसी अवसरपर इन्द्रादि समस्त देवता उत्सवपूर्वक जय-जयकार करते हुए वहाँ आये॥ ४०-४१ ॥

देवताओंने अंजलि बाँधकर कन्धा झुकाकर प्रेमसे शिवजीको प्रणामकर मधुर वाणीसे भक्तवत्सल महादेवकी स्तुति की॥ ४२ ॥

देवगण बोले—हे देवोंके स्वामी! हे प्रभो! हे प्रणतोंका दुःख हरनेवाले! आपने इस दुन्दुभि-निर्ह्लादके वधसे हम सब देवगणोंकी रक्षा की। हे भक्तवत्सल! हे देवेश! हे सर्वेश्वर! हे प्रभो! आपको सदा भक्तोंकी रक्षा करनी चाहिये तथा दुष्टोंका वध करना चाहिये॥ ४३-४४ ॥

उन देवताओंका यह वचन सुनकर परमेश्वरने 'ऐसा ही होगा'—यह कहकर प्रसन्न हो उस लिंगमें प्रवेश किया। तब विस्मित हुए देवता अपने-अपने धामको चले गये तथा ब्राह्मण भी बड़े हर्षके साथ यथेष्ट स्थानको चले गये॥ ४५-४६ ॥

इदं चरित्रं परमं व्याघ्रेश्वरसमुद्भवम्।
शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि पठेद्वा पाठयेत्तथा॥ ४७

सर्वान्कामानवाप्नोति नरः स्वमनसेप्सितान्।
परत्र लभते मोक्षं सर्वदुःखविवर्जितः॥ ४८

जो मनुष्य व्याघ्रेश्वर-सम्बन्धी इस चरित्रको सुनता है अथवा सुनाता है, पढ़ता है अथवा पढ़ाता है; वह सम्पूर्ण मनोवांछित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है तथा सभी दुःखोंसे रहित होता हुआ मोक्षको प्राप्त करता है॥ ४७-४८॥

इदमाख्यानमतुलं शिवलीलामृताक्षरम्।
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम्॥ ४९

परं भक्तिप्रदं धन्यं शिवप्रीतिकरं शिवम्।
परमज्ञानदं रम्यं विकारहरणं परम्॥ ५०

यह अनुपम शिवलीलाके अमृताक्षरवाला इतिहास स्वर्गदायक, कीर्तिको बढ़ानेवाला, पुत्र-पौत्रको बढ़ानेवाला, अतिशय भक्तिको देनेवाला, धन्य, शिवजीकी प्रीतिको देनेवाला, कल्याणकारी, मनोहर, परम ज्ञानको देनेवाला और अनेक प्रकारके विकारोंको दूर करनेवाला है॥ ४९-५०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे दुंदुभिनिर्ह्राददैत्यवधवर्णनं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें दुन्दुभिनिर्ह्राददैत्यवधवर्णन नामक अट्ठावनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५८॥

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

काशीके कन्दुकेश्वर शिवलिंगके प्रादुर्भावमें पार्वतीद्वारा विदल एवं उत्पल दैत्योंके वधकी कथा, रुद्रसंहिताका उपसंहार तथा इसका माहात्म्य

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास सुसंप्रीत्या चरितं परमेशितुः।
यथावधीत्स्वप्रियया दैत्यमुद्दिश्य संज्ञया॥ १

आस्तां पुरा महादैत्यौ विदलोत्पलसंज्ञकौ।
अपुंवध्यौ महावीरौ सुदृप्तौ वरतो विधेः॥ २

तृणीकृतत्रिजगती पुरुषाभ्यां स्वदोर्बलात्।
ताभ्यां सर्वे सुरा ब्रह्मन् दैत्याभ्यां निर्जिता रणे॥ ३

सनत्कुमार बोले—हे व्यासजी! अब आप प्रेमपूर्वक शिवजीके उस चरित्रको सुनिये, जिस प्रकार उन्होंने संकेतद्वारा दैत्यको बताकर अपनी प्रियासे उस दैत्यका वध कराया था। पूर्व समयमें विदल तथा उत्पल नामक दो महाबली दैत्य थे। वे दोनों ही ब्रह्माजीके वरसे मनुष्योंसे वध न होनेका वर पाकर बड़े पराक्रमी तथा अभिमानी हो गये थे। हे ब्रह्मन्! उन दैत्योंने अपनी भुजाओंके बलसे तीनों लोकोंको तृणवत् कर दिया तथा संग्राममें सम्पूर्ण देवताओंको जीत लिया॥ १—३॥

ताभ्यां पराजिता देवा विधेस्ते शरणं गताः।
नत्वा तं विधिवत्सर्वे कथयामासुरादरात्॥ ४

उन दैत्योंसे पराजित हुए सब देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये और आदरसे उनको विधिपूर्वक प्रणामकर उन्होंने [दैत्योंके उपद्रवको] कहा॥ ४॥

इति ब्रह्मा ह्यवोचत्तान् देव्या वध्यौ च तौ ध्रुवम्।
धैर्यं कुरुत संस्मृत्य सशिवां शिवमादरात्॥ ५

तब ब्रह्माजीने उनसे यह कहा कि ये दोनों दैत्य निश्चय ही पार्वतीजीद्वारा मारे जायँगे। आप सब पार्वतीसहित शिवजीका भलीभाँति स्मरण करके धैर्य धारण कीजिये॥ ५॥

भक्तवत्सलनामासौ सशिवाशंकरः शिवः।
शं करिष्यत्यदीर्घेण कालेन परमेश्वरः॥ ६

देवीसहित भक्तवत्सल तथा कल्याण करनेवाले वे परमेश्वर बहुत शीघ्र ही आपलोगोंका कल्याण करेंगे॥ ६॥

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वा तांस्ततो ब्रह्मा तूष्णीमासीच्छिवं स्मरन्।
तेऽपि देवा मुदं प्राप्य स्वं स्वं धाम ययुस्तदा॥ ७

अथ नारददेवर्षिः शिवप्रेरणया तदा।
गत्वा तदीयभवनं शिवासौन्दर्यमुज्जगौ॥ ८

श्रुत्वा तद्वचनं दैत्यावास्तां मायाविमोहितौ।
देवीं परिजिहीर्षू तौ विषमेषुप्रपीडितौ॥ ९

विचारयामासतुस्तौ कदा कुत्र शिवा च सा।
भविष्यति विधेः प्राप्तोदयान्नाविति सर्वदा॥ १०
एकस्मिन्समये शंभुर्विजहार सुलीलया।
कौतुकेनैव चिक्रीडे शिवा कंदुकलीलया॥ ११
सखीभिः सह सुप्रीत्या कौतुकाच्छिवसन्निधौ॥ १२

उदञ्चन्त्यञ्चदंगानां लाघवं परितन्वती।
निश्वासामोदमुदितभ्रमराकुलितेक्षणा॥ १३
भ्रश्यद्धम्मिल्लसन्माल्यस्वपुराकृतभूमिका।
स्विद्यत्कपोलपत्रालीस्त्रवदंबुकणोज्ज्वला॥ १४
स्फुटच्चोलांशुकपथतिर्यदंगप्रभावृता।
उल्लसत्कंदुकास्फालातिश्रोणितकराम्बुजा॥ १५
कंदुकानुगसद्दृष्टिनर्तितभ्रूलतांचला।
मृडानी किल खेलंती ददृशे जगदम्बिका॥ १६

अंतरिक्षचराभ्यां च दितिजाभ्यां कटाक्षिता।
क्रोडीकृताभ्यामिव वै समुपस्थितमृत्युना॥ १७

विदलोत्पलसंज्ञाभ्यां दृप्ताभ्यां वरतो विधेः।
तृणीकृतत्रिजगतीपुरुषाभ्यां स्वदोर्बलात्॥ १८
देवीं तां संजिहीर्षन्तौ विषमेषुप्रपीडितौ।
दिव उत्तेरतुः क्षिप्रं मायां स्वीकृत्य शांबरीम्॥ १९

धृत्वा पारिषदीं मायामायातामम्बिकान्तिकम्।
तावत्यन्तं सुदुर्वृत्तावतिचंचलमानसौ॥ २०

सनत्कुमार बोले—तब देवताओंसे ऐसा कहकर वे ब्रह्माजी शिवका स्मरण करके मौन हो गये और वे देवता भी प्रसन्न होकर अपने-अपने लोकको चले गये॥ ७॥

तत्पश्चात् शिवजीकी प्रेरणासे देवर्षि नारदजीने उनके घर जाकर पार्वतीकी सुन्दरताका वर्णन किया॥ ८॥

तब नारदजीका वचन सुनकर मायासे मोहित, विषयोंसे पीड़ित तथा पार्वतीका हरण करनेकी इच्छावाले उन दोनों दैत्योंने मनमें विचार किया कि प्रारब्धके उदय होनेके कारण हम दोनोंको वह पार्वती कब और कहाँ मिलेगी॥ ९-१०॥

किसी समय शिवजी अपनी लीलासे विहार कर रहे थे, उसी समय पार्वती भी कौतुकसे अपनी सखियोंके साथ प्रीतिपूर्वक शिवजीके समीप कन्दुक-क्रीडा करने लगीं॥ ११-१२॥

ऊपरको गेंद फेंकती हुई, अपने अंगोंकी लघुताका विस्तार करती हुई, श्वासकी सुगन्धसे प्रसन्न हुए भौंरोंसे घिरनेके कारण चंचल नेत्रवाली, केशपाशसे माला टूट जानेके कारण अपने रूपको प्रकट करनेवाली, पसीना आनेसे उसके कणोंसे कपोलोंकी पत्ररचनासे शोभित, प्रकाशमान चोलांशुक (कुर्ती)-के मार्गसे निकलती हुई अंगकी कान्तिसे व्याप्त, शोभायमान गेंदको ताड़न करनेसे लाल हुए करकमलोंवाली और गेंदके पीछे दृष्टि देनेसे कम्पायमान भौंहरूपी लताके अंचलवाली जगत्‌की माता पार्वती खेलती हुई दिखायी दीं॥ १३—१६॥

आकाशमें विचरते हुए उन दोनों दैत्योंने कटाक्षोंसे देखा, मानो उपस्थित मृत्युने ही दोनोंको गोदमें ले लिया हो। ब्रह्माजीके वरदानसे गर्वित विदल और उत्पल नामक दोनों दैत्य अपनी भुजाओंके बलसे तीनों लोकोंको तृणके समान समझते थे॥ १७-१८॥

कामदेवके बाणोंसे पीड़ित हुए दोनों दैत्य उन देवी पार्वतीके हरणकी इच्छासे शीघ्र ही शाम्बरी माया करके आकाशसे उतरे। अति दुराचारी तथा अति चंचल मनवाले वे दोनों दैत्य मायासे गणोंका रूप धारणकर पार्वतीके समीप आये॥ १९-२०॥

अथ दुष्टनिहंत्रा वै सावज्ञेन हरेण तौ।
विज्ञातौ च क्षणादास्तां चांचल्याल्लोचनोद्भवात्॥ २१

कटाक्षिताथ देवेन दुर्गा दुर्गतिघातिनी।
दैत्याविमाविति गणौ नेति सर्वस्वरूपिणा॥ २२

अथ सा नेत्रसंज्ञां स्वस्वामिनस्तां बुबोध ह।
महाकौतुकिनस्तात शंकरस्य परेशितुः॥ २३

ततो विज्ञाय संज्ञां तां सर्वज्ञार्द्धशरीरिणी।
तेनैव कंदुकेनाथ युगपन्निर्जघान तौ॥ २४

महाबलौ महादेव्या कंदुकेन समाहतौ।
परिभ्रम्य परिभ्रम्य तौ दुष्टौ विनिपेततुः॥ २५

वृन्तादिव फले पक्वे तालेनानिललोलिते।
दंभोलिना परिहते श्रृंगे इव महागिरेः॥ २६

तौ निपात्य महादैत्यावकार्यकरणोद्यतौ।
ततः परिणतिं यातो लिंगरूपेण कंदुकः॥ २७

कंदुकेश्वरसंज्ञं च तल्लिंगमभवत्तदा।
ज्येष्ठेश्वरसमीपे तु सर्वदुष्टनिवारणम्॥ २८

एतस्मिन्नेव समये हरिब्रह्मादयः सुराः।
शिवाविर्भावमाज्ञाय ऋषयश्च समाययुः॥ २९

अथ सर्वे सुराः शम्भोर्वरान्प्राप्य तदाज्ञया।
स्वधामानि ययुः प्रीतास्तथा काशीनिवासिनः॥ ३०

सांबिकं शंकरं दृष्ट्वा कृतांजलिपुटाश्च ते।
प्रणम्य तुष्टुवुर्भक्त्या वाग्भिरिष्टाभिरादरात्॥ ३१

सांबिकोऽपि शिवो व्यास क्रीडित्वा सुविहारवित्।
जगाम स्वालयं प्रीतः सगणो भक्तवत्सलः॥ ३२

कंदुकेश्वरलिंगं च काश्यां दुष्टनिबर्हणम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं सर्वकामदं सर्वदा सताम्॥ ३३

इदमाख्यानमतुलं श्रृणुयाद्यो मुदान्वितः।
श्रावयेद्वा पठेद्यश्च तस्य दुःखभयं कुतः॥ ३४

इह सर्वसुखं भुक्त्वा नानाविधमनुत्तमम्।
परत्र लभते दिव्यां गतिं वै देवदुर्लभाम्॥ ३५

तभी दुष्टोंका नाश करनेवाले शिवजीने क्षणमात्रमें चंचल नेत्रोंसे उन दोनोंको जान लिया। सर्वस्वरूपी महादेवने संकटको दूर करनेवाली पार्वतीकी ओर देखा, उन्होंने समझ लिया कि ये दोनों दैत्य हैं, गण नहीं हैं॥ २१-२२॥

उस समय पार्वतीजी महाकौतुकी तथा कल्याणकारी परमेश्वर अपने पति शिवके नेत्र-संकेतको समझ गयीं॥ २३॥

उस नेत्रसंकेतको जानकर शिवजीकी अर्धांगिनी पार्वतीने सहसा उसी गेंदसे उन दोनोंपर एक साथ प्रहार कर दिया। तब महादेवी पार्वतीके गेंदसे प्रताड़ित हुए महाबलवान् वे दोनों दुष्ट घूम-घूमकर उसी प्रकार गिर पड़े, जिस प्रकार वायुके वेगसे ताड़के वृक्षके गुच्छेसे पके हुए फल तथा वज्रके प्रहारसे सुमेरु पर्वतके शिखर गिर जाते हैं॥ २४—२६॥

कुत्सित कर्ममें प्रवृत्त हुए उन दैत्योंको मारकर वह गेंद लिंगस्वरूपको प्राप्त हुआ॥ २७॥

उसी समयसे वह लिंग कन्दुकेश्वर नामसे प्रसिद्ध हो गया। सभी दोषोंका निवारण करनेवाला वह लिंग ज्येष्ठेश्वरके समीप है॥ २८॥

इसी समय शिवको प्रकट हुआ जानकर विष्णु, ब्रह्मा आदि सब देवता तथा ऋषिगण वहाँ आये॥ २९॥

इसके बाद सम्पूर्ण देवता तथा काशीनिवासी शिवजीसे वरोंको पाकर उनकी आज्ञासे अपने स्थानको चले गये। पार्वतीसहित महादेवको देखकर उन्होंने अंजलि बाँधकर प्रणामकर भक्ति और आदरपूर्वक मनोहर वाणीसे उनकी स्तुति की॥ ३०-३१॥

हे व्यासजी! उत्तम विहारको जाननेवाले भक्तवत्सल शिवजी पार्वतीके साथ क्रीड़ा करके प्रसन्न होकर गणोंसहित अपने लोकको चले गये॥ ३२॥

काशीपुरीमें कन्दुकेश्वर नामक लिंग दुष्टोंको नष्ट करनेवाला, भोग और मोक्षको देनेवाला तथा निरन्तर सत्पुरुषोंकी कामनाको पूर्ण करनेवाला है॥ ३३॥

जो मनुष्य इस अद्भुत चरित्रको प्रसन्न होकर सुनता या सुनाता है, पढ़ता या पढ़ाता है, उसको दुःख और भय नहीं होता है। वह इस लोकमें सब प्रकारके उत्तम सुखोंको भोगकर परलोकमें देवगणोंके लिये भी दुर्लभ दिव्य गतिको प्राप्त करता है॥ ३४-३५॥

इति ते वर्णितं तात चरितं परमाद्भुतम्।
शिवयोर्भक्तवात्सल्यसूचकं शिवदं सताम्॥ ३६

हे तात! भक्तोंपर कृपालुताका सूचक, सज्जनोंका कल्याण करनेवाला तथा परम अद्भुत शिव-पार्वतीका यह चरित्र मैंने आपसे कहा॥ ३६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वामन्त्र्य तं व्यासं तन्नुतो मद्वरात्मजः।
ययौ विहायसा काशीं चरितं शशिमौलिनः॥ ३७

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार शिवजीके चरित्रका वर्णनकर, उन व्यासजीसे अनुज्ञा लेकर और उनसे वन्दित होकर मेरे श्रेष्ठ पुत्र सनत्कुमार आकाशमार्गसे शीघ्र ही काशीको चले गये॥ ३७॥

युद्धखंडमिदं प्रोक्तं मया ते मुनिसत्तम।
रौद्रीयसंहितामध्ये सर्वकामफलप्रदम्॥ ३८

इयं हि संहिता रौद्री सम्पूर्णा वर्णिता मया।
सदाशिवप्रियतरा भुक्तिमुक्तिफलप्रदा॥ ३९

हे मुनिश्रेष्ठ! रुद्रसंहिताके अन्तर्गत सब कामनाओं और सिद्धियोंको पूर्ण करनेवाले इस युद्धखण्डका वर्णन मैंने आपसे किया। शिवको अत्यन्त सन्तुष्ट करनेवाली तथा भुक्ति-मुक्तिको देनेवाली इस सम्पूर्ण रुद्रसंहिताका वर्णन मैंने आपसे किया॥ ३८-३९॥

इमां यश्च पठेन्नित्यं शत्रुबाधानिवारिकाम्।
सर्वान्कामानवाप्नोति ततो मुक्तिं लभेत ना॥ ४०

जो मनुष्य शत्रुबाधाका निवारण करनेवाली इस रुद्रसंहिताको नित्य पढ़ता है, वह सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त करता है और उसके बाद मुक्तिको प्राप्त कर लेता है॥ ४०॥

सूत उवाच

इति ब्रह्मसुतः श्रुत्वा पित्रा शिवयशः परम्।
शतनामाप्य शंभोश्च कृतार्थोऽभूच्छिवानुगः॥ ४१

सूतजी बोले—इस प्रकार ब्रह्माके पुत्र नारदजी अपने पितासे शिवजीके परम यश तथा शिवके शतनामोंको सुनकर कृतार्थ एवं शिवानुगामी हो गये॥ ४१॥

ब्रह्मनारदसंवादः सम्पूर्णः कथितो मया।
शिवः सर्वप्रधानो हि किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ४२

मैंने यह ब्रह्मा और नारदजीका सम्पूर्ण संवाद आपसे कहा। शिवजी सम्पूर्ण देवताओंमें प्रधान हैं, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं॥ ४२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां पञ्चमे युद्धखण्डे विदलोत्पलदैत्यवधवर्णनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः॥ ५९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें विदल और उत्पलदैत्यवधवर्णन नामक उनसठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५९॥

॥ इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयरुद्रसंहितायां पञ्चमो युद्धखण्डः समाप्तः॥
॥ समाप्तेयं द्वितीया रुद्रसंहिता॥ २॥

॥ श्रीशिवमहापुराण-प्रथम-खण्ड—पूर्वार्ध सम्पूर्ण॥